# हिन्दी

# विश्वकोष

[ दशम भाग ]

तौलिन् ( सं० पु० ) तुलैव तोलं तत् विद्यते अस्य इति। तुलाराशि।

तौलिया ( हिं० स्त्री० ) एक प्रकारका मोटा अंगोछा। यह स्नान आदि करनेके बाद शरीर पोंछनेके काममें आती है।

तौली ( हिं० स्त्री० ) १ मट्टीकी एक प्रकारकी छोटी प्याली। २ मट्टीका चौड़े मुंहका बड़ा बरतन। इसमें विशेषकर गुड़ रक्खा जाता है।

तौली ( सं० पु० ) तुलैव तौलं तत् विद्यते अस्य इति। १ तुलाराशि। तुलादण्डं मानदण्डं धारयति यः सः। २ तुलादण्डधारी वणिक्। ३ बङ्गालकी तिली जाति। यह जाति तुलादण्ड धारण और वंशपरम्परासे व्यवसाय करती आई है, इस कारण तिली जातीका दूसरा नाम तौली पड़ा है। कोई कोई इस जातिको तौलिक समझते हैं, परन्तु तौलिक प्रतिलोम वर्णसङ्कर जाति है, उसके साथ तौली जातिका कोई भी सम्बन्ध नहीं।

तिली और तैलिक देखो

तौल्य ( सं० त्रि० ) तुलया परिच्छिन्नं ष्यञ्। १ तुला-द्वारा परिच्छिन्न, जो तौल कर बांटा गया हो। २ तुल्य, सदृश।

तौल्वलायन ( सं० पु० ) तुल्वलस्य ऋषेरपत्यं युवा, तुल्वल-इञ् फक्। तुल्वल ऋषिके युवा वंशज।

तौल्वलि ( सं० पु० ) तुल्वलस्य ऋषेरपत्यं इञ्। तुल्वल ऋषिके वंशज।

तौल्वल्यादि ( सं० पु० ) पाणिनिका गणविशेष। तौल्वलि, धारणि, पारणि, रावणि, दैलीपि, दैवति, वार्कलि, नैवकि, दैवमति, दैवयज्ञि, चाफट्टकि, वैल्वकि, वैङ्कि, आनुराहति, पौष्करसादि, आनुराहति, आनुति, प्रादोहनि, नैमिश्र, प्राड़ाहति, वान्धकि, वैशोति, आसिनासि, आहिंसि, आसुरि, नैमिषि, आसिबन्धकि, पौष्करेणुपालि, वैकर्णि, वैरकि, वैहति। ( पाणिनि २।४।६१ )

तौवरक ( सं० त्रि० ) तुवर्या इदं अण् स्वार्थे कन्। १ तुवरी सम्बन्धीय स्नेहादि। २ तुवरक।

तौविलिका ( सं० स्त्री० ) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

तौषायण ( सं० त्रि० ) तुषस्य अदूरदेशादि पक्षादित्वात् फक्। तुषके समीपवर्त्ती देश।

तौषार ( सं० पु० ) १. तुषारका जल, पालेका पानी। ( त्रि० ) तुषारस्येदं तुषार-अण्। २ तुषार सम्बन्धीय।

तुषार देखो।

तौहीन (अ० स्त्री०) अपमान, अप्रतिष्ठा, बेइज्जती।

त्मन (सं० पु०) आत्मन् आलोपः। आत्मा।

त्यक्त (सं० त्रि०) त्यज-क्त। ज्ञातत्यागी, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ। पर्याय—हीन, समुज्झित, उत्सृष्ट, धूत, विधूत, विनाकृत, विरटित और निरूढ़।

त्यक्तव्य (सं० त्रि०) त्यज-तव्य। त्यजनीय, छोड़ने योग्य।

त्यक्तृ (सं० त्रि०) त्यज्-तृच्। त्यागकारी, छोड़नेवाला।

त्यगल (सं० पु०) ग्रन्थकर्त्ता, वह जो किताब बनाता हो।

त्यग्नायि (सं० क्ली०) सामभेद, एक प्रकारका साम।

त्यजन (सं० क्ली०) त्यज ल्युट्। त्याग, छोड़नेका काम।

त्यजनीय (सं० त्रि०) त्यज-अनीयर्। त्यागने योग्य, छोड़ने काबिल।

त्यजस् (सं० पु०) त्यज भावे असुन्। १ त्याग। (त्रि०) कर्त्तरि असुन्। २ त्यागकर्त्ता, छोड़नेवाला।

त्यज्यमान (सं० त्रि०) जिसका त्याग कर दिया गया हो, जो छोड़ दिया गया हो।

त्यद् (सं० त्रि०) त्यज-अदि सच डित्। (त्यजितनीति। उण् १।१३१) १ आकाश। २ वायु। (भाग० १०।२।२६) ३ सर्वदा परोक्षाभिधानार्थ वस्तु। ४ प्रसिद्ध, मशहूर। यह शब्द सर्वनाम है। इसका रूप त्यदादिकी नाईं होगा, जैसे पुलिङ्गमें स्यः, त्यौ, त्ये, स्त्रीलिङ्गमें स्या, त्ये, त्याः और क्लीवलिङ्गमें त्यद्, ते, तानि इत्यादि। अव्ययीभाव समासमें इस शब्दका अच् समासान्त होता है। यथा—त्यस्य समीपे उपत्यदं इत्यादि।

त्यदादि (सं० पु०) पाणिनीय गणसूत्रोक्त शब्द समूह—त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्। अत्व विधिमें अर्थात् टि स्थानमें अत् होता है। इस विषयमें शब्द पर्यन्त ग्रहण ही भाष्यकारका अभिलषित है। त्यदादिके टि स्थानमें अत् होता है, इसमें त्यद्से ले कर किम् पर्यन्त मालूम पड़ता है, किन्तु भाष्यकारका कहना है कि अत्व विधिमें द्वि पर्यन्त ग्रहण जानना चाहिये।

त्याग (सं० पु०) त्यज-भावे घञ्। १ उत्सर्ग, किसी पदार्थ परसे अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पाससे अलग करनेकी क्रिया। मनुने लिखा है, कि माता, पिता, स्त्री और पुत्र ये चारों त्यागने योग्य नहीं हैं अर्थात् इन्हें त्याग नहीं करना चाहिये।

२ दान। ३ विवेकी पुरुष, ज्ञानी मनुष्य। ४ सर्व कर्मफल विसर्जन, विरक्ति आदिके कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदिको छोड़नेकी क्रिया। त्यागका विषय गीतामें इस प्रकार लिखा है—

संन्यास और त्यागमें सचमुच कोई विभेद नहीं है। संन्यासकी ही एक विशेष अवस्थाको त्याग कहते हैं। विद्वानोंने समस्त काम्यधर्मोंके परित्यागको संन्यास और समस्त कर्मोंके फलकी आशा न रखनेको त्याग बतलाया है। अतएव संन्यासकी विशेष अवस्थाको गिनती त्यागमें की गई है। त्याग और संन्यासके विषयमें कुछ ऋषियोंके जटिल सिद्धान्त देख कर मतभेदसा प्रतीत होता है, किन्तु बहुत गौरसे देखा जाय, तो कोई मतभेद नहीं मालूम पड़ता। कोई कोई कहते हैं, कि जीव देह, मन और इन्द्रियादि द्वारा जो काम करता है, वह केवल बन्धनके लिये है। इस कारण यह भी अन्यान्य दोषोंकी नाईं परित्याज्य है। फिर कोई ठीक इसका विपरीत कहते हैं। उनका कहना है, कि यज्ञ, दान और तप आदि कर्मानुष्ठानों द्वारा विशुद्ध हो कर चित्त ब्रह्मज्ञानका अधिकारी होता है, अतएव यह परित्याज्य नहीं है। भगवान्ने इसके विषयमें अर्जुनसे यों कहा था—"त्यागके तीन भेद हैं, सात्विक, राजसिक और तामसिक। यज्ञ, दान और तप आदि कर्म कभी भी छोड़ने योग्य नहीं हैं। इनका अनुष्ठान सर्वदा करना चाहिये, क्योंकि यज्ञ, दान और तप आदि कर्मोंसे मनुष्योंकी देह, मन और इन्द्रियां विशुद्ध वा निर्मल हो जाती हैं। अतएव आसक्ति और फलकामना-रहित हो कर इन सबका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। विद्वानोंने बन्धनके भयसे जिस कर्मके परित्यागकी बात कही है, वह तो कर्म है। अमुक कार्य द्वारा हमें अमुक प्रकारके सुख मिलेंगे, इस उद्देश्यसे जो काम किया जाता है, उसे काम्यधर्म कहते हैं। काम्यधर्म द्वारा आत्मज्ञान लाभके उपयुक्त चित्तशुद्धि तो नहीं होती; पर स्वर्गादि फल अवश्य मिलते हैं। सुतरां मुक्ति नहीं हो कर बन्धन ही हुआ। इसीसे जो ऐहिक और पारत्रिक किसी प्रकार

के सुखभोगको इच्छा नहीं रखते, केवल मुक्ति अर्थात् भ्रान्तिज्ञान द्वारा देह, मन और इन्द्रियादि जडपदार्थोंके साथ अभिन्नभावसे आत्माको पाते हैं, वे इसी भ्रान्तिके विनाशके लिये मुझसे प्रार्थना करते हैं। इस कारण काम्यधर्मके अनुष्ठानको उन्हें जरूरत नहीं पड़ती, यही समझ कर वे नित्य और नैमित्तिक कर्मका कभी भी परित्याग नहीं करते। क्योंकि नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका यथाविधि अनुष्ठान करनेसे जीवका कभी बन्धन नहीं होता, परन्तु ब्रह्मज्ञान अवश्य होता है। अतएव मोहवश इन सब कर्मोंके परित्यागको तामसत्याग कहते हैं। शारीरिक क्लेश और अर्थभयादिके डरसे अत्यन्त कष्टजनक जान जो कर्म परित्याग किया जाता है, उसे राजस परित्याग कहते हैं। इस तरह कर्मत्याग करनेसे त्यागका फल नहीं होता। जो समस्त आसक्ति फलाकांक्षाको आशा छोड़ कर केवल कर्त्तव्यके ख्यालसे जो नित्य और नैमित्तिक कर्म किया जाता है, वही सात्विक त्याग है। कर्ममें आसक्ति और फलाभिलाषके परित्यागको ही कर्मत्याग कहते हैं, न कि क्रियाके त्याग को।

जो न तो अकुशल कर्मोंसे कुछ विद्वेष रखते हैं और न शुभजनक कार्यमें आसक्त ही रहते हैं, वे ही यथार्थमें कर्मत्यागी हैं। जब तक देह, मन और इन्द्रियां कायम रहेंगी, तब तक कोई भी प्राणी अशेष कर्म परित्याग नहीं कर सकता। क्योंकि जीवन धारण करनेमें देह, मन और इन्द्रियोंको क्रिया अवश्य होती ही है। यहां तक कि स्वप्नावस्थामें भी क्रिया बन्द नहीं रहती। अतएव कर्मोंका जो परित्याग है, वह क्रियाका भी परित्याग है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। किन्तु जो कर्मके फलत्यागी हैं, वेही त्यागी कहलाते हैं। कर्मफलत्याग ही त्याग पदवाच्य है।" (गीता १८ अ०) ५ किसी बातको छोड़नेकी क्रिया। ६ सम्बन्ध या लगाव न रखनेकी क्रिया। ७ कन्यादान। (टि०) (त्रि०) ८ त्यागकर्त्ता, छोड़नेवाला।

त्यागना (हिं० क्रि०) पृथक् करना, छोड़ना।

त्यागपत्र (सं० क्ली०) त्यागस्य पत्रं। १ दानपत्र, वह पत्र जिसमें, किसी प्रकारके त्यागका उल्लेख हो। २ दायपरित्यागीलेख, तिलाकनामा। ३ इस्तीफा।

त्यागवान् (सं० त्रि०) त्यागी जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करनेकी शक्ति हो।

त्यागशील (सं० त्रि०) त्याग एवं शीलं यस्य। दानशील, उदार, दानी।

त्यागस्वीकार (सं० पु०) आत्मस्वार्थ विसर्जन, अपने सुखका परित्याग।

त्यागिन् (सं० त्रि०) त्यजतीति त्यज-घिणुन्। १ दाता, दानी। २ शूर। ३ वर्जनशील, छोड़नेवाला। ४ कर्मफलत्यागी, सांसारिक सुखको छोड़नेवाला।

त्यागिम (सं० त्रि०) त्यागेन निर्वृत्त, त्याग-मप्। त्यक्त, छोड़ा हुआ।

त्याज्य (सं० त्रि०) त्यज्यते इति त्यज कर्मणि ण्यत्, त्यजेश्च इति न कुत्वं। १ वर्जनीय, जो छोड़ देने योग्य हो। २ दानके योग्य।

त्यादृश (सं० त्रि०) त्यस्य इव दृश्यते असौ त्यद् दृश-क्विप्। तादृश, उसके समान, वैसा।

त्यों (हिं० क्रि०-वि०) १ उस प्रकार, उस तरह। २ तत्काल, उसी समय।

त्योरी (हिं० स्त्री०) अवलोकन, दृष्टि, निगाह।

त्योहार (हिं० पु०) धार्मिक या जातीय उत्सव दिन, पर्वदिन।

त्योहारी (हिं० स्त्री०) त्योहारके उपलक्षमें छोटों लड़कों या नौकरों आदिको दिये जानेका धन।

त्यौं (हिं० क्रि०-वि०) त्यों देखो।

त्यौनार (हिं० पु०) ढंग, तर्ज।

त्यौर (हिं० पु०) त्योरी देखो।

त्यौराना (हिं० क्रि०) सिरमें चक्कर आना, माथा घूमना।

त्यौरी (हिं० स्त्री०) त्योरी देखो।

त्यौरुस (हिं० पु०) त्योरुस देखो।

त्यौहार (हिं० पु०) त्योहार देखो।

त्यौहारी (हिं० स्त्री०) त्योहारी देखो।

त्रङ्ग (सं० पु०) त्रगि-अच्। पुरभेद, एक प्राचीन नगरका नाम जो पहले राजा हरिश्चन्द्रका राजनगर था।

त्रपमान (सं० त्रि०) त्रप्-शानच्। लज्जामान, जिसने लज्जा पाई हो।

त्रपा (सं० स्त्री०) त्रप्यते इति त्रप-अङ्, ततष्टाप्। १ लज्जा, लाज, शर्म। २ कुलटा, छिनाल स्त्री। ३ कीर्त्ति, यश। ४ कुल, वंश। (त्रि०) ५ सलज्ज, लज्जित, शरमिन्दा।

त्रपाक (सं० पु०) त्रपते लज्जते त्रप-आक। म्लेच्छ विशेष, नीच जाति।

त्रपानिरस्त (सं० त्रि०) त्रपया निरस्तः। निर्लज्ज, लज्जा हीन, बेशर्म, बेहया।

त्रपान्वित (सं० त्रि०) त्रपया अन्वितः। लज्जायुक्त, शरमिन्दा।

त्रपारण्डा (सं० स्त्री०) त्रपायां रण्डेव, लज्जाहीनत्वात् तथात्वं। वेश्या, रंडी।

त्रपावत् (सं० त्रि०) त्रपा विद्यतेऽस्य, त्रपा-मतुप्, मस्य व। लज्जाशील, लज्जावान्, हयामन्द।

त्रपित (सं० त्रि०) त्रप-क्त। त्रपायुक्त, लज्जित, शरमिन्दा।

त्रपिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन तृप्र-इष्ठन्। प्रियस्थिरेत्यादिना तृप्र-शब्दस्य त्रप् आदेशः। अत्यन्त लज्जित, बहुत लज्जावान्।

त्रपीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन तृप्रः तृप-ईयसुन् तृपस्य त्रप् आदेशः। त्रपिष्ठ, अत्यन्त लज्जित।

त्रपु (सं० क्ली०) अग्निं दृष्ट्वा त्रपते इव त्रप-उस्। १ सीसक, सीसा। २ रङ्ग, टीन। इसे तामिलमें तगरम, मलयमें तिम, फलघ, ब्रह्ममें खेम, अरबमें कसदिन, रैसस और पारसमें उरजिज कहते हैं। (It-latta, banda, stagnata, Fr. Ferblace; Ger. Weissblech, zinn; Rus. Blacha shest°)

यह धातु देखनेमें चाँदीकी तरह होती है। जब यह परिष्कार रहती है, तब बहुत सफेद दीख पड़ती है। इसमें कुछ स्वाद भी है। घिसनेसे एक प्रकारकी गन्ध निकलती है। सोना जैसी नहीं होने पर भी यह धातु सीसासे कुछ कड़ी होती है। इसका भारीपन ७२८ है। यह बड़ा ही घातसह है, कितना ही इसे पीटें तो भी यह टूटती नहीं। यहां तक कि एक टीनसे १०००० पतली चद्दर बन सकती है। '००७-इञ्च परिधिविशिष्ट टीनके तारमें सोलह सतह सेरका बोझ लटका सकते हैं। इसको पीट कर इच्छानुसार जितना पतला कर सकते हैं, उतना चौड़ा नहीं कर सकते। यह बहुत ही कोमल होता है, सहजमें ही झुक जाता है। तांबा, जस्ता आदि धातुओंके साथ टीन बहुत आसानीसे मिल सकती है। दूसरी धातुओंमें कलई करने वा ढांकनेमें टीन बहुत व्यवहृत होती है। इसकी चद्दर द्वारा मढ़नेसे लोहेमें मोरचा नहीं लगता। अग्निका स्पर्श करानेसे टीन लोहेके भीतर भी प्रवेश करती है और उसका रंग सफेद बना देती है। मालूम पड़ता है, इसी कारण स्कौटलैण्डमें टीनकी चद्दर श्वेतलौह (White iron) नामसे प्रसिद्ध है। टीनको गला कर उसमें पतली लोहेकी चद्दर डुबो देनेसे साधारणतः 'श्वेतलौह' बनता है। विलायतमें श्वेतलौहका खूब आदर है।

तांबेके रसोई बनानेके बरतनोंमें बहुत जल्द मोरचा लग जाता है, किन्तु यदि टीनको चद्दरसे उसमें कलई की जाय तो फिर मोरचा नहीं पड़ता। नाइट्रिक म्युरियाटिक, नाइट्रोसलफिउरिक और टर्टारिक एसीडमें टीनको गला कर वह बहुतसे रंगोंमें मिलायी जाती है। इससे रंग सदा एकसा बना रहता है और सफेदी भी बढ़ती है।

बहुत प्राचीन कालसे टीन जनसाधारणके काममें आ रही है। यजुर्वेदमें हम लोग 'त्रपु' शब्दका उल्लेख पाते हैं—

"लौहश्चमे सीसश्चमे त्रपुश्चमे यज्ञेन कल्पन्तामशुक्लयजुः १८।१२

इसके सिवा अथर्ववेदमें (११।३।८) छान्दोग्योपनिषत् (४।१७।७) आदि श्रुतियोंमें एवं मनु याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें 'त्रपु' अर्थात् टीनका उल्लेख है। नपुंसक (पशुपक्षी) की हत्या करने पर याज्ञवल्क्यने प्रायश्चित्तस्वरूप एक माष और सीसा दान करनेकी व्यवस्था की है। (३।२७३)

महाभारतमें त्रपुको चाँदीका मल बतलाया है।

(भारत उद्योग० ३८अ०)

भारतमें जिस तरह वैदिक युगसे त्रपुका व्यवहार चला आ रहा है उसी तरह यूरोपमें भी चिरकालसे इसका प्रचार है। हिरोदोतस, दिओदोरस सिक्युलस और ष्ट्राबो फिनिकीय वणिकोंके कासितेरी देश वा टीन द्वीपमें यात्राका विवरण लिपिबद्ध कर गये हैं। पुराणके

जाननेवालोंने सिसिली द्वीप और विलायतके कर्णवालको प्राचीन कासितेरो देश माना है। यथार्थमें अब भी कर्णवाल नामक स्थानमें खानसे जितनो टीन निकलती है उतना यूरोपके और किसी दूसरे स्थानसे नहीं निकलती।

प्राचीन कालमें आर्य ऋषि लोग अथवा फिनिकोय वणिक् लोग टीनसे कौन चीज बनाते थे, उसका कोई खासा प्रमाण नहीं मिलता। यज्ञमें टीनको जरूरत पड़ती थी, यह हम लोगोंको यजुर्वेदसे पता लगता है। स्मृतिमें त्रपुको गिनती मूल्यवान् वस्तुमें की गई है। टीन और तांबेको एक साथ मिलानेसे कांसा बनता है, यह भी भारतवासी बहुत प्राचीन कालसे जानते हैं।

हजारीबाग, धारवार, गुजरात और मध्यभारतके बस्तार राज्यमें कई जगह टीन पत्थर (Tin stone) पाया गया है। किन्तु अच्छी टीन कहीं भी नहीं मिलती। ब्रह्मदेश, मलयप्रायोद्वीप, यव-द्वीप और चीनमें त्रपुकी खान मिलती है जिनमेंसे मलयप्रायो द्वीपको खान संसारमें प्रसिद्ध है। इतनी टीन और कहीं नहीं मिलता। प्राचीन कालमें यहींसे भारतवर्षमें त्रपु भेजा जाता था। यहांके तावय नगरमें १५८६ ई०को प्रसिद्ध भ्रमणकारी राफफिच आकर यों लिख गये हैं—

I went from Pegu to Malacca, passing many of the sea-ports of Pegu, as Martaban, the island of Tavoy; whence all india is supplied with tin, Tenasserim, the island of Junk Ceylon, and many others.

अब भी मलयसे भारतवर्षमें टीन आता है। यहांसे टीनकी प्रति वर्ष १२०१३ लाख रुपयेकी रफ्तनी होती है।

त्रपु खानके भीतर दो अवस्थाओंमें रहता है। कभी कभी यह सिंकताञ्जन, तांबे और सीसे आदिके साथ चिमटा रहता है। इसीको टीन-लौह कहते हैं। इसको गला कर परिष्कार करनेसे टीनका टुकड़ा बनता है। दूसरी अवस्थामें यह बालू आदिके साथ मिश्रित रहता है, इसको गिनती अकृत्रिम टीनमें की गई है।

त्रपुककटी (सं० स्त्री०) १ त्रपुसी, ककड़ी। २ प्रसा, खीरा।



त्रपुटी (सं० स्त्री०) सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

त्रपुल (सं० क्ली०) त्रपते अग्निसंस्पर्शेन लज्जते इव त्रप-बाहु० उलच्। रङ्ग, रांगा।

त्रपुष (सं० क्ली०) त्रप-बाहु० उष। १ रङ्ग, रांगा। २ त्रपुसी फल, खीरा। पर्याय—कण्टकिफल, सुधावास और सुशीतल। छोटे फलके गुण—नील, बल, तृष्णा, भ्रम, दाह, पित्त और रक्तपित्तनाशक। पके फलके गुण—अम्ल, उष्ण, पित्तल, कफ और वातनाशक। बड़े फलका गुण—मूत्रल, शीत, रुच, पित्त और अस्रकृच्छ्रनाशक।

त्रपुषतैल (सं० क्ली०) त्रपुषवीजतैल, खीरेका तेल।

त्रपुषी (सं० स्त्री०) त्रपुष गौरा० ङीष्। १ ककंटी, ककड़ी। २ त्रपुष, खीरा।

त्रपुस (सं० क्ली०) त्रप बाहुलकात् उस। १ रङ्ग, रांगा। २ ककंटी, ककड़ी।

त्रपुसा (सं० स्त्री०) त्रपुसी, महेन्द्रवारुणी, बड़ा इन्द्रायण।

त्रपुसी (सं० स्त्री०) त्रपुस गौरा ङीष्। १ महेन्द्रवारुणी, बड़ा इन्द्रायण। २ फल लताविशेष, खीरा (Cucumber)। पर्याय—पीतपुष्पा, काण्डालु, त्रपुककंटी, बहुफला, कोषफला, तुन्दिलफला, कण्टकीलता, सुधावासा। गुण—यह रुच्य, मधुर, शिशिर, गुरु, भ्रम, पित्त, विदाह और वमननाशक है। (राजनि०) इसको दो जाति हैं, एक तो भूमिचारिणी अर्थात् जमीन पर फैलनेवाली और दूसरी मञ्चचारिणी अर्थात् मचान वा दीवार पर फैलनेवाली। भूमिचारिणीका फल छोटा और मोटा होता है। एवं शीतकालसे ग्रीष्मकाल तक रहता है। मञ्चचारिणीका फल लम्बा और साथ ही साथ मोटा भी होता है। किसीका फल सफेद और किसीका सब्ज रंगका देखनेमें आता है। इसकी तरकारी भी बनती है, परन्तु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्चके साथ कच्चा ही खाते हैं। इसके बीज दवाके काममें आता है। फल और बीजोंकी तासीर ठण्ढी होती है। इसके भीतरमें जलका अंश पाया जाता है, इसी कारण लोग इसे चीरा वा खीरा कहते हैं। यह फल वर्षासे ले कर शरत्काल तक पाया जाता है। ३ ककड़ी।

त्र्यादि (सं० पुं०) रङ्गादि सप्त धातु, राँगा इत्यादि सात धातुओंके नाम, जैसे-रांगा, सीसा, ताँबा, चाँदी, सोना, काला लोहा, लोहेकी मैल।

त्रप्स ( सं० स्त्री० ) घनीभूत श्लेष्मादि, जमी हुई श्लेष्मा या कफ।

त्रप्स्य ( सं० क्ली० ) घनेतर दधि, पतला दही।

त्रय (सं० क्ली०) त्रि-तयप्। १ त्रितय, तीन युक्त। २ त्रित्व संख्या युक्त। तीसरी संख्या।

त्रयःपञ्चाशत् (सं० स्त्री०) १ त्रयधिकपञ्चाशत्, तिरपन।

त्रयय्याय्य ( सं० पु० ) त्रयं जन्मत्रयं याति या बाहु० आय्य। जन्मत्रयप्राप्त, वह जिसने तीनों प्रकारके जन्म पाये हैं। तीनों जन्मके समय – मातृगर्भसे जन्म तक प्रथम, मौञ्जिबन्धन अर्थात् उपनयन संस्कार द्वितीय और यज्ञदीक्षा तृतीय।

त्रयश्चत्वारिंशत् ( सं० स्त्री० ) त्रयधिका चत्वारिंशत्, त्रिशब्दस्य त्रयस् आदेशः। वह संख्या जो चालीससे तीन अधिक हो, तैंतालीस।

त्रयःषष्टि ( सं० स्त्री० ) त्रयधिका षष्टिः। वह संख्या जो साठ और तीनके योगसे बनी हो, तिरेसठ।

त्रयस्—आदेश विशेष, अशीति शब्द और बहुव्रीहि समास के सिवा संख्यावाचक उत्तरपद परे रहे तो त्रि शब्दके स्थानमें त्रयस् होता है। यथा त्रयोदश आदि। अशीति शब्द परे रहने पर नहीं होता है। यथा— त्र्यशीति। ( पा ६।३।४८ )

त्रयस्त्रिंश ( सं० त्रि० ) त्रयस्त्रिंशत् पूरणे-डट्। जो तीससे तीन अधिक हो।

त्रयस्त्रिंशत् ( सं० स्त्री० ) त्रयधिका त्रिंशत्, त्रि शब्दस्य त्रयस् आदेशः। वह संख्या जो तीस और तीनके योगसे बनती हो।

त्रयस्त्रिंशत्पति ( सं० पु० ) त्रयस्त्रिंशत् देवानां पतिः। १ इन्द्र। वेदमें ३३ देवताओंकी कथा है, उनमें इन्द्र सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं, अतः इन्द्रका नाम त्रयस्त्रिंशत्पति हुआ है। २ प्रजापति। ये देवताओंके अधिपति हैं, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य ये एकत्रिंशत् इन्द्र और प्रजापति ये त्रयस्त्रिंशत हुए। ( शतपथब्रा० ११।६।३।५ )

त्रयस्त्रिंशस्तोम ( सं० पु० ) त्रयस्त्रिंशत्स्तोमो यस्य। यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

त्रयस्त्रिंशिन् ( सं० क्ली० ) त्रयस्त्रिंशत् ऋचः सन्त्यस्मिन् इनि डिच्च। त्रयस्त्रिंशत् ऋक् द्वारा गीयमान सामभेद, वह साम जो ३३ ऋचों द्वारा गाया जाता है।

त्रयःसप्तति ( सं० स्त्री० ) त्रयधिका सप्ततिः। तीन अधिक सत्तर, तिहत्तरकी संख्या।

त्रयी ( सं० स्त्री० ) त्रय ङीप्। ऋक्, यजुः और साम ये तीनों वेद। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर। सर्गके आदिमें ऋङ्मय ब्रह्मा, स्वर्गस्थितिमें यजुर्मय विष्णु, सर्गनाशमें साममय रुद्र ये ही त्रयी हैं। २ पुरन्ध्री, पति पुत्र कन्या आदिसे भरी पूरी स्त्री। ३ सुमति। ४ सोमराजी लता। ५ भवानी, दुर्गा।

त्रयीतनु ( सं० पु० ) त्रयी वेदो एव तनुः शरीरं यस्य। सूर्य। समस्त वेद सूर्यसे प्रचारित हुए हैं। इसीसे सूर्यका नाम त्रयीतनु पड़ा है।

त्रयीधर्म ( सं० पु० ) त्रय्या वेदत्रयेण विधीयमानो धर्मः। वैदिक धर्म, जैसे ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि।

त्रयीमय ( सं० पु० ) त्रयात्मकः मयट्। १ सूर्य। (त्रि०) २ त्रयीधर्मात्मक। ३ वराहरूप। ( पु० ) ४ परमेश्वर। ( भाग० २।४।१७ )

त्रयीमुख ( सं० पु० ) त्रयी मुखे यस्य। ब्राह्मण।

त्रयोदश ( सं० त्रि० ) त्रयोदशानां पूरणः, त्रयोदशन् डट्। त्रयोदश संख्याका पूरण, तेरह।

त्रयोदशचारित्र (सं० क्ली०) जैनधर्मानुसार मुनियोंके लिए अवश्य पालनीय तेरह चारित्र। यथा—(१) पूर्ण अहिंसा, (२) पूर्ण सत्य, (३) पूर्ण अचौर्य, (४) पूर्ण ब्रह्मचर्य, (५) पूर्ण परिग्रहत्याग, (६) मार्ग संशोधनपूर्वक गमन करना, (७) मिष्ट, हितकर, मार्जित और संदेह रहित वचन बोलना, (८) दिनमें एक बार निर्दोष और अनुद्दिष्ट आहार ग्रहण करना, (९) शरीर, शास्त्र, कमण्डलु आदि उपकरणोंको नेत्रोंसे देख कर रखना और उठाना, (१०) त्रस और स्थावर किसी भी प्रकारके जीवको पीड़ा न हो, ऐसी शुद्ध प्राणिरहित भूमि पर मलमूत्रादि क्षेपण कर प्रासुक जलसे शौचक्रिया करना, (११) मनकी (१२) वचनकी और (१३) कायकी पूर्ण रूपसे वशमें करना वा रोकना। जैनधर्म देखो।

त्रयोदशद्वीप (सं० पु०) जैन-शास्त्रानुसार वे तेरह द्वीप जिनमें अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। जम्बू, धातकीखण्ड, पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, क्षौद्रवर, नन्दीश्वर, अरुणवर, अरुणाभासवर, कुण्डलवर, शङ्खवर और रुचिकवर इन तेरह द्वीपोंमें अवस्थित जिन मन्दिरोंको अष्टाह्निकापर्वमें पूजा की जाती है।

त्रयोदशन् (सं० त्रि०) त्रयधिका दश। वह संख्या जो तीन और दशके योगसे बनती हो, तेरहकी संख्या यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है। २ त्रयोदश संख्यायुक्त, किसी समय तेरह महीनेका संवत्सर होता है। मलमास होनेंं पर तेरह महीनेका वर्ष होता है।

त्रयोदशवाचकशब्द—१ अपक्षपातिता, २ इन्द्रियानिग्रह, ३ अमत्सरता, ४ क्षमा, ५ लज्जा, ६ तितिक्षा, ७ अनसूया, ८ त्याग, ९ सरलता, १० ध्यान, ११ धैर्य, १२ दया, १३ अहिंसा ये ही सत्य स्वरूप है। (भारत शान्ति० १६२ अ०)। त्रयोदश दोष—१ काम, २ क्रोध, ३ मोह, ४ मद, ५ मात्सर्य, ६ ईर्षा, ७ शोक, ८ निद्रा, ९ अकार्य प्रवृत्ति, १० असूया, ११, कृपा, १२ भय, १३ प्रतिविधानेच्छा। (भारत शान्ति १६३ अ०)

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु (सं० पु०) गुग्गुलु औषधभेद। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—बबूर, अश्वगन्धा, हवुषा, गुलञ्च, शतमूली, गोक्षुर, रास्ना, श्यामालता, शुलफा, शठी, यवानी और शुण्ठी इनके समान भागोंको चूर कर जितना हो उतना ही गुग्गुल और गुग्गुलसे आधा घी मिलावें बाद १ तोला प्रातःकाल जल, यूष, मद्य, उष्णजल, दुग्ध वा मांसरस इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करनेसे त्रिकशूल, जानुशूल, हनुस्तम्भ, बाहुगत वात सन्धि, अस्थिस्नायु और मज्जागत वात कोष्ठगत वायु, वात श्लैष्मिक रोग, वायुके कारण हृद्रोग और योनिरोग, भग्नास्थि, खञ्ज, खञ्जता, गृध्रसी तथा पक्षाघात रोग जाते रहते हैं। (भावप्रकाश द्वितीयभा०)

त्रयोदशी (सं० स्त्री०) त्रयोदश डित्वात् ङीप्। तिथिविशेष, किसी पक्षकी तेरहवीं तिथि, तेरस। पुराणके अनुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करनेके लिये बहुत उपयुक्त है।

त्रयोनवति (सं० त्रि०) त्रयधिका नवतिः। जो गिनतीमें नब्बेसे तीन अधिक हो, तिरानबे।

त्रयोविंशति (सं० स्त्री०) त्रयधिका विंशतिः। वह संख्या जो बीस और तीनके योगसे बनती हो, तेईसकी संख्या।

त्रय्यारुण (सं० पु०) १ मान्धातावंशके त्रिधर्माके पुत्रका नाम। २ पन्द्रहवें द्वापरके एक व्यासका नाम। ३ भरतवंशीय उरुक्षवके पुत्र एक राजाका नाम।

त्रय्यारुणि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। ये लोमहर्षणके शिष्य और काश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शिंशपायन और हारीतके सहपाठी थे (भाग०)

त्रस (सं० क्ली०) त्रस्यन्ति बिभ्यत्यस्मिन् त्रस घञर्थे क। १ वन, जंगल। २ जङ्गम। ३ त्रसरेणु, सूक्ष्मकण। ४ जैन धर्मानुसार एक प्रकारके जीव। इन जीवोंके चार भेद हैं, जैसे—द्वीन्द्रिय अर्थात् दो इन्द्रियोंवाले जीव, त्रीन्द्रिय तीन इन्द्रियोंवाले जीव, चतुरिन्द्रिय अर्थात् चार इन्द्रियोंवाले जीव और पञ्चेन्द्रिय अर्थात् पाँच इन्द्रियोंवाले जीव।

त्रसदस्यु (सं० पु०) पुरुकुत्सके पुत्र और मान्धाताके एक पौत्रका नाम।

त्रसन (सं० क्ली०) त्रस-भावे ल्युट्। १ भय, डर। २ उद्वेग। कर्त्तरि ल्युट्। (त्रि०) ३ त्रासयुक्त, जिसे डर लगा हो।

त्रसर (सं० पु०) त्रस बाहु० अरन्। तन्तुवायका उपकरण विशेष, जुलाहोंकी ढरकी, तसर। पर्याय—सूत्रवेष्टन तसर।

त्रसरेणु (सं० पु०) त्रसश्चलत्वात् भीत इव रेणुः। सूक्ष्म कण, वे छोटे छोटे चमकीले कण जो छेदमेंसे आती हुई धूपमें नाचता वा घूमता दिखाई देता है। ६ परमाणु वा ३ द्व्यणुका एक त्रसरेणु होता है। परमाणु दिखाई नहीं पड़ता है, किन्तु जब त्रसरेणु होता है अर्थात् ६ परमाणु एकत्र होते हैं तभी वह देखनेमें आता है। सूर्यकी किरण जब झरोखेमें होकर प्रवेश करती है, तब उस प्रकाशमें जो छोटा पदार्थ विचरण करता दिखाई देता है, वही त्रसरेणु है। (स्त्री०) २ सूर्यपत्नीभेद, सूर्यकी एक स्त्रीका नाम।

त्रसित (हिं० वि०) भयभीत, डरा हुआ।

त्रसुर (सं० त्रि०) त्रस्-उरच्। भीरु, डरपोक।

त्रस्त (सं०, त्रि०) त्रस-क्त। १ भीत, डरा हुआ। २ चकित, जिसे आश्चर्य हुआ हो। ३ शीघ्र, जल्दी। ४ पीड़ित, जिसे कष्ट पहुंचा हो।

त्रस्नु (सं० त्रि०) त्रस्यतीति त्रस-क्नु। त्रासयुक्त, भय-भीत, डरा हुआ।

त्राटक (सं० पु०) योगके षट्कर्मोंसे छटा कर्म वा साधन। इसमें अनिमिषरूपसे किसी बिन्दु पर दृष्टि रखी जाती है।

त्राण (सं० क्ली०) त्रै भावे ल्युट् वा क्तः पक्षे तस्य नत्वं। १ रक्षण, रक्षा, बचाव। २ त्रायते इति कर्त्तरि ल्यु। २ रक्षिता, जिसकी रक्षा की गई हो। (क्ली०) त्रायतेऽनेन इति करणे ल्युट्। ३ रक्षाका साधन, कवच। ४ त्रायमाणालता।

त्राणकर्त्ट (सं० पु०) रक्षक।

त्राणा (सं० स्त्री०) त्राण-टाप्। त्रायमाणालता।

त्रात (सं० त्रि) त्रै-क्त, विकल्पे तस्य नत्वाभावः। १ रक्षित, जिसकी रक्षाकी गई हो। (क्ली०) भावे क्त। २ रक्षण, बचाव।

त्रातव्य (सं० त्रि०) त्रा-तव्य। रक्षा करनेके योग, बचानेके लायक।

त्राता (हिं० पु०) रक्षक, बचानेवाला।

त्रातार (सं० पु०) रक्षक, वह जो रक्षा करता हो।

त्रात्ट (सं० त्रि०) त्रै-तृच्। रक्षाकर्त्ता, बचानेवाला।

त्रापुष (सं० पु०) त्रपुणा निर्वृत्तं अण् षुक् च। रङ्ग-निर्मित पात्रादि, रांगेका बना हुआ बरतन या और कोई पदार्थ।

त्रिमन् (सं० त्रि०) त्रै पालने मनिन्। रक्षक, बचाने-वाला।

त्रायन्तिका (सं० स्त्री०) त्रायमाणा-लता।

त्रायन्ती (सं० स्त्री०) त्रा-क्विप् त्रा अयति इ-शतृ ततः ङीप्। त्रायमाणालता।

त्रायमाण (सं० त्रि०) त्रै कर्मणि शानच्। रक्ष्यमाण, बचानेवाला।

त्रायमाणा (सं० स्त्री०) त्रायमाण-टाप्। क्षुद्र डुम्बुरा-कृति फललताविशेष, बनफशेको तरहकी एक प्रकार-की लता जो जमीन पर फैलती है। इसमें बीच बीचमें छोटी डंडियां निकलती है और उनमें बसंले श्रोज होते है। पर्याय—वार्षिक, त्रायन्ती, बल-भद्रिका, बलदेवा, सुभद्रोणी, भद्रनामिका, कतला, त्राय-माणिका, बलभद्रा, सुकामा, वार्षिकी, गिरिजा, अनुजा, माङ्गल्यार्हा, देवलता, पालिनी, भयनाशिनी, अवनी, रक्षणी और त्रामा। गुण—यह शीत, मधुर, गुल्म, ज्वर, कफ, अस्र, भ्रम, तृष्णा, क्षय, ग्लानि, विष और छर्दि-नाशक है। भावप्रकाशमें इसे कषाय, तिक्तरस, सारक, पित्त कफ, ज्वर रोग, हृद्गुल्म, अर्श, भ्रम, शूल और विषनाशक माना है।

त्रायमाणिका (सं० स्त्री०) त्रायमाणालता।

त्रायवृन्त (सं० पु०) अनूपदेशजात गण्डीर नामक शाकविशेष, गंडोर या गुंडिरो नामका साग।

त्रायोदश (सं० त्रि०) त्रयोदशानां भावे अण्। त्रयोदशी-भव जो काम त्रयोदशीमें किया जाय।

त्रास सं० पु०) त्रस भावे घञ्। १ भय, डर। २ मणिका एक दोष। ३ कष्ट, तकलीफ।

त्रासकर (सं० त्रि०) त्रास-कृ-ट। भयजनक, डराने-वाला। २ निवारक, दूर करनेवाला।

त्रासदिष्ट (सं० पु०) कुकुरदष्ट रोगभेद वह रोग जो कुत्ते के काटनेसे उत्पन्न हो।

त्रासदस्यव (सं० क्ली०) त्रसदस्युके स्तोत्र-सम्बन्धी साम।

त्रासदायो (सं० त्रि०) त्रासं भयं ददाति दा णिनि। भयदाता, डरानेवाला। इसका नामान्तर शङ्कर है।

त्रासन (सं० क्ली०) त्रस-णिच् भावे ल्युट्। १ भयोत्पादन, डरानेका कार्य। (त्रि०) कर्त्तरि ल्यु। २ भयोत्पादक, डरानेवाला, भय दिखानेवाला।

त्रासनीय (सं० त्रि०) त्रस णिच् अनीयर। ताड़नीय, दण्ड देने या डराने योग्य।

त्रासित (सं० त्रि०) त्रस्-णिच्-क्त। १ भीत, जो डराया गया हो। २ त्रस्त, जिसे कष्ट पहुंचाया गया हो।

त्रासिन् (सं० त्रि०) त्रस्-णिच्-णिनि। भयशील, डरा हुआ।

त्राहि (सं० क्रि०) त्रै-लोट् हि। रक्षा करो, बचाओ। त्राहि कहनेसे 'तुम रक्षा करो' ऐसा समझना चाहिये।

त्रि (सं० त्रि०) तरतीति तॄ-ड्रि। तरतेर्ड्रिः। उण् ५।६६।

त्रित्व संख्याविशिष्ट, तीन। तीनके वाचकशब्द काल—भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान; अग्नि—दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय; भुवन—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल; गङ्गामार्ग—मन्दाकिनी, भागीरथी, भोगवती; शिवचक्षु—चन्द्र, सूर्य और अग्नि, गुण—सत्त्व, रज, तम, सन्ध्या—प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या, सायंसन्ध्या, राम—परशुराम, दाशरथीराम, बलराम। यह शब्द बहुवचनान्त है।

त्रिंश (सं॰ त्रि॰) त्रिंशत्-डट्। तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८। त्रिंशत्तम, तीसवाँ।

त्रिंशक (सं॰ त्रि॰) त्रिंशता क्रीतः वुन्-डित्त्व। जिसे खरीदनेमें तीस द्रव्य लगे हों।

त्रिंशच्छत (सं॰ क्ली॰) त्रिंशदधिकं शतं। वह संख्या जो एकसौ और तीसके योगसे बनती हो, एक सौ तीसकी संख्या।

त्रिंशत् (सं॰ त्रि॰) त्रयो दशतः परिमाणमस्य। पंक्ति त्रिंशदित। पा ५।१।५९। इति निपातनात् साधुः। संख्या-विशेष, तीस।

त्रिंशतक (सं॰ त्रि॰) त्रिंशत् परिमाणमस्य कन्। १ त्रिंशत्परिमाण। २ उतनी ही संख्या।

त्रिंशति (सं॰ स्त्री॰) त्रिंशत् पृषोदरादित्वात् साधुः। तीसकी संख्या।

त्रिंशत्तम (सं॰ त्रि॰) त्रिंशतः पूरणः तमप्। तीस संख्याका पूरक, तीसवाँ।

त्रिंशत्पत्र (सं॰ क्ली॰) त्रिंशत् संख्यानि पत्राणि दलानि प्रतिपुष्पमस्य। कुमुद, कोईंका फूल।

त्रिंशांश (सं॰ पु॰) त्रिंशत्त्रिंशत् पूरणोऽशः। १ किसी पदार्थका तीसवां भाग। २ राशिका त्रिंशत् पूरणभाग, एक राशिका तीसवाँ भाग। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—मेषादि बारह राशियोंको तीससे भाग देने पर जो अंश पाया जाता है, उसीका नाम त्रिंशांश है। यह त्रिंशांश मेषादि राशियोंमें जिस तरह व्यवहृत होता है, उसके नियम इस प्रकार हैं—

मेषादि बारह राशियां 'विषम' और 'सम'में विभक्त हुई हैं। जो छह राशियां विषम मानी गई हैं, उनके त्रिंशांशके विचार करनेमें मङ्गल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र ये पाँच ग्रह क्रमसे ५।५।८।७।५ अंशके अधि-पति होते हैं। प्रत्येक राशि तीस अंशोंमें विभक्त है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अतएव जिस किसी विषम संज्ञक राशिके त्रिंशांशका विचार करना हो, उस राशिके प्रथम अंशसे पञ्चमांश तक मङ्गलग्रह त्रिंशांशके अधिपति, फिर षष्ठांशसे दशमांश तक शनिग्रह त्रिंशांशके अधिपति होते हैं। ११ अंशसे १८ अंश तक बृहस्पति, १९से २५ अंश तक बुध, २६ अंशसे ३० अंश तक शुक्र त्रिंशांशके अधिपति होते हैं।

जिस प्रकार ६ विषम राशियोंके त्रिंशांशका विचार किया गया है, उसी प्रकार ६ समराशियोंके त्रिंशांश-विचार करनेमें भी शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मङ्गल ग्रह क्रमशः त्रिंशांशके अधिपति होते हैं। (कोष्ठीप्र॰)

सभी राशियोंको तीस भागोंमें बाँट कर मङ्गल, शनि, बृहस्पति बुध और शुक्र ये क्रमसे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन छः विषम राशियोंमें ५।५।८।७।५ भागके अधिपति होते हैं। तथा वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन इन छः राशियोंमें वैप-रीत्यानुसार है अर्थात् शुक्र, बुध, शनि, मङ्गल क्रमसे पञ्च, सप्त, अष्ट, पञ्च और पञ्चभागके अधिपति माने गये हैं।

त्रिंशांश जन्मफल—मङ्गलके तीसवें अंशमें जन्म होनेसे मनुष्य स्त्री-विजयी, धनहीन, क्रोधपरायण, आत्मविषयमें गर्वित, तस्करकर्मकारी एवं पुत्र और वित्त-विहीन होता है। यदि बुधके तीसवें अंशमें हो, तो वह उत्कृष्टविभव और सुखसम्पन्न, नाना प्रकारके रत्नोंसे समन्वित होता है एवं दिनोंदिन उसके कोषागारकी वृद्धि होती है। बृहस्पतिके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे श्रेष्ठ कामिनीका वल्लभ, नित्यभाग्यसम्पन्न, राजप्रिय और दीर्घायु एवं शुक्रके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे श्रीमान्, बहु आत्मा-युक्त, दानधर्मपरायण, देवताओंका अर्चक तथा नृत्य-गीतसमायुक्त होता है।

जिसका जन्म शनिके त्रिंशांशमें हो, वह पापात्मा, लोभी, परनिन्दक, परदाररत और धनवान् होता है। प्रकारान्तरमें—मङ्गलके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे मनुष्य सर्व धातुविषयोंका वक्ता, सर्वदा क्रियायुक्त, धन और दार-वर्जित, तस्कर, मलिनदेह और धूर्त्तस्वभावका होता है।

शनिके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे मलिन, धूर्त्त, सर्वदा कातर, सत्य और शौचविहीन सेवापरायण, कृपण और नीचस्वभावयुक्त, बृहस्पतिके त्रिंशांशमें जन्म लेनेसे उग्र स्वभावविशिष्ट, सुन्दर शरीरयुक्त, बुद्धिमान्, भोक्ता, धनी सुखी, गुणाढ्य और विषम लोचनविशिष्ट, बुधके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे सर्वदा धर्म, अर्थ, काम, सुत, कीर्त्ति और जययुक्त, प्रज्ञाविवेककुशली, गुणवान्, उत्तम आश्रययुक्त, दिव्याङ्ग और सुगन्धि पुष्पयुक्त तथा शुक्रके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे बहुगुणपरिपूर्ण, सुन्दर, मनोहर, दृष्टिसम्पन्न, युवतियोंको आमोददाता; सर्वशास्त्र वेत्ता, ब्राह्मण और गुरुभक्त, दानशील और कृपालु होता है। (कोष्ठीप्र०)

त्रिक (सं० क्ली०) त्रयाणां सङ्घः कन्। १ त्रित्वसंख्या, तीनका समूह। २ पृष्ठ वंशाधर, रीढ़के नीचेका भाग जहां कूल्हेकी हड्डियां मिलती हैं। ३ कटिभाग, कमर। ४ त्रिफला। ५ त्रिकटु। ६ त्रिपथसंस्थान तिरमुहानी। ७ गोक्षुर, गोखरू। ८ त्रिमद। तृतीयेन रूपेण ग्रहणं यस्य कन् पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्। ९ तृतीयक, तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। त्रयः अधिकाः शुल्कं लाभो वृद्धिर्वा यत्र शतादौ। १० तीन रुपये सैकड़ेका सूद या लाभ आदि। ११ सन्धिभेद, शरीरका जोड़ या गिरह।

त्रिककुद् (सं० त्रि०) त्रीणि ककुदसदृशानि ध्वजतुल्यानि शृङ्गाणि यस्य ककुदस्य अन्त्यलोपः। 'त्रिककुद्पर्वते।' पा ५।४।१४७। १ त्रिकूट पर्वत। २ विष्णु। इन्होंने एक बार एकदन्त और तीन शृङ्ग वराह मूर्त्ति धारण कर पृथ्वीका उद्धार किया था, इसीसे इनका नाम त्रिककुद पड़ा है (भारतशांति ३४४ अ०) ३ दशरात्रसाध्य यज्ञभेद, दश दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ। (त्रि०) ४ जिसके तीन शृङ्ग हों।

त्रिककुभ् (सं० पु०) त्रेधा कं पीतं उदकं स्कुभ्नाति स्कुभ क्विप् छान्दसः सलोपः। १ उदानवायु जिससे डकार और छींक आती है। २ नवरात्रसाध्य यज्ञभेद, नौ दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

त्रिककुब्धामन् (सं० पु० मूर्द्धोमध्यभेदेन तिसृणां ककुभां दिशां समाहारः त्रिककुब् तत् धाम आश्रयो यस्य विष्णु।

त्रिकग्रह (सं० पु०) एक प्रकारका वातरोग।

त्रिकट (सं० पु०) त्रीन् वातादिदोषान् कटति आवृणोति-अच्। गोक्षुरवृक्ष, गोखरू।

त्रिकटु (सं० क्ली०) त्रयाणां कटुरसानां समाहारः। सोंठ मिर्च और पोपल ये तीन वस्तुएँ। पर्याय—त्र्यूषण, व्योष, कटुत्रय, कटुत्रिक। गुण—यह दीपन, कास, श्वास, त्वक्‌रोग, गुल्म, मेह, कफ, स्थौल्य, मेद, श्लीपद और पीनस नाशक है।

त्रिकटुक (सं० क्ली०) त्रिकटु।

त्रिकट्वाद्यमोदक (सं० पु०) मोदक औषधविशेष।

इसकी प्रस्तुतप्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, अकवन, सोहिञ्जनका मूल, विड़ङ्ग, हींग, कुटकी, वृहती, कण्टकारी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, अजवायन, अतीस, चीतेकी छाल, सोवर्चल, जीरा, हवुषा और धनिया, प्रत्येकको आध आध छटांक ले कर उसे चूर्ण करें। पीछे जौका सत्तू साढ़े ग्यारह सेर, घी तीन पाव, तिलका तेल तीन पाव और मधु तीन पाव सबको एक साथ मिला कर मोदक बनाया जाता है। प्रत्येक दिन दो तोला भर खानेसे कठिनसे कठिन प्रमेह नष्ट हो जाता है।

(भावप्र० तृतीयभा० प्रमेहाधि०)

त्रिकटुगुटिका (सं० स्त्री०) गुटिका औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली-त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण आध पाव तथा गुग्गुल एक पाव इनको एकत्र कर गोखरूके काढ़ेसे ७ दिन तक भावना दें। दोष, काल और बलानुसार इसका व्यवहार करनेसे मेह, वातरोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदर आदि रोग जाते रहते हैं तथा वायु भी स्वपथगामी हो जाती है।

(भावप्र० तृतीयख० प्रमेहाधि०)

त्रिकट्वाद्यवर्त्ति (सं० स्त्री०) वर्त्ति औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली-त्रिकटु, सैन्धव, सर्षप, गृहधूम, कुड़ और मदनफल सबका मिश्रित परिमाण २ तोला, मधु ८ तोला और गुड़ २ तोला इन सबका एकत्र पाक कर अंगूठेके बराबर बत्ती बनावें। पीछे उसे घीमें भिगो कर गुह्यमें प्रयोग करनेसे आनाह, उदावर्त्त, उदर और गुल्मरोग दूर हो जाता है। (भावप्र० तृतीयभा०)

त्रिकण्ट (सं० पु०) त्रयः कण्टाः कण्टकाः अस्य। १ गोक्षुर, गोखरू। २ स्नुही वृक्ष। ३ मत्स्यभेद, टेंगरा मछली। ४ पत्रगुप्त, तिधारा, थूहर। ५ वृहती मिलित अग्निदमनी और दुरालभा इन तीनों द्रव्योंका समूह। पर्याय—कण्टकारीत्रय, कण्टकात्रय, कण्टकत्रय।

त्रिकण्टक (सं० पु० स्त्री०) १ लघुगर्गमत्स्य, टेंगरा मछली। (त्रि०) कण्टकत्रयान्वित, जिसमें तीन काँटे हों। २ गोक्षुर वृक्ष, गोखरू। ३ त्रिशूल।

त्रिकण्टकक्वाथ (सं० पु०) क्वाथ औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—कण्टकारी, सोंठ और गुलञ्च प्रत्येकका समभाग लेकर काढ़ा बनावें। पीछे उस काढ़ेमें पीपलका चूर्ण डाल कर पान करनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खांसी, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, प्रतिश्याय (जुकाम) और ऊर्ध्वगत रोग जाता रहता है। इस क्वाथको सवेरे सेवन करनेका विधान है।

त्रिकत्रय (सं० पु०) त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमद, हड़, बहेड़ा और आंवला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा चीता और वायविडंग इन सबका समूह।

त्रिकत्रयाद्यलौह (सं० पु०) औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—मण्डूर, घृत, शर्करा, मधु प्रत्येकका आठ-आठ तोला और कान्तलौह १ तोला, इन सबको सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आंवला, बहेड़ा, मोथा, चीता और विडङ्गके क्वाथसे पत्थर या लोहेके बरतनमें भावना दे कर धूपमें सुखावें। आदि, मध्य और अन्तमें अनुपानके साथ सेवन करनेसे सुदारुण पाण्डु, कामला और हलीमक रोग जाता रहता है। (रसेन्द्रसारसं०)

त्रिकद्रुक (सं० पु०) ज्योतिः गो और आयुः नामक यज्ञ जो छह दिनोंमें समाप्त होता है।

त्रिकर्मन् (सं० पु०) त्रीणि कर्माणि यस्य। विप्रके यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, दान देना, पढ़ना और पढ़ाना ये ६ ब्राह्मणोंके धर्म हैं। इन ६ कर्मोंमें वृत्तिके लिये याजन, प्रतिग्रह और अध्यापनके सिवा अवृत्त्यर्थ दान, इज्या और अध्ययनरूप कर्मकारी ब्राह्मणको त्रिकर्मा कहते हैं। (भारत अनुशा० १४१ अ०)

त्रिकल (सं० पु०) १ तीन मात्राओंका शब्द, प्लुत। २ दोहेका एक भेद। इसमें ८ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। (त्रि०) जिसमें तीन कलाएं हों।

त्रिकलिङ्ग—त्रकलिंग और त्रिलिंग शब्द देखो।

त्रिकष (सं० क्ली०) त्रिसृणां कशानां तदाघातानां समाहारः। कशाघातत्रय, कोड़ा मारनेके तीन प्रकार वा भेद।

त्रिकशूल (सं० क्ली०) त्रिकस्य शूलं, ६-तत्। रोगविशेष, एक प्रकारका वातरोग। नितम्बकी दोनों हड्डियों एवं गर्दनकी दोनों हड्डियोंके सन्धिस्थानको त्रिक कहते हैं। इन दोनोंमें अथवा दोमेंसे किसी एकमें जब वायु द्वारा पीड़ा होने लगती है, तब उसे त्रिकशूल कहते हैं। ऐसी हालतमें यन्त्रके साथ बालूका स्वेद तथा रोगीके पीछे वनगोइठीकी आग देनी चाहिये। (भावप्र०)

त्रिका (सं० स्त्री०) त्रिधा कायति कै क, ततष्टाप्। कूपसमीपस्थ जलोद्धारक चिद्रादमय यन्त्रभेद, कुएं परका वह चौखटा जिसमें गराड़ी लगी होती है।

त्रिकाण्ड (सं० पु०) त्रीणि काण्डान्यस्य। १ अमरसिंहके एक कोषका नाम। इसमें तीनकाण्ड है—स्वर्गवर्गादि काण्ड, भूमिवर्गादि काण्ड और सामान्य काण्ड। तीन काण्ड रहनेके कारण इसका नाम त्रिकाण्ड पड़ा है। २ निरुक्त। इसमें भी तीन काण्ड हैं—प्रथम काण्ड नैघण्टुक, द्वितीय नैगम, तृतीय दैवत।

त्रिकाण्डी (सं० स्त्री०) त्रयाणां काण्डानां समाहारः ङीप्। १ काण्डत्रय वह ग्रन्थ जिसमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंका वर्णन हो (त्रि०) २ त्रिकाण्डयुक्त, जिसमें तीन काण्ड हों।

त्रिकाम (सं० पु०) बुद्धदेव।

त्रिकाय (सं० पु०) त्रयः कायाः अस्य यद्वा त्रिकं अयति अय अपादाने अच् घञ् वा। बुद्ध।

त्रिकार्षिक (सं० क्ली०) कर्षाय हितं ठक्, त्रयाणां वातपित्तकफानां कार्षिकं। नागरथ, अतीस और मोथा इन तीनोंका समूह। २ त्रिकर्ष परिमाण, ६ तोला।

त्रिकाल (सं० क्ली०) त्रयाणां कार्यकालभूतभविष्यत्कालानां समाहारः। १ भूत वर्त्तमान और भविष्यत् काल। २ प्रातः मध्याह्न और सायाह्न काल।

त्रिकालज्ञ (सं० पु०) त्रिकालं जानाति ज्ञा-क। १ अर्हत्, जिनेन्द्र। २ बुद्ध। (त्रि०) ३ भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानका ज्ञाता।

त्रिकालज्ञता (सं० स्त्री०) १ तीनों कालोंकी बातें जाननेकी शक्ति। २ जैनधर्मानुसार वह ज्ञान जो अर्हन्तके होता है, केवलज्ञानत्व।

त्रिकालदर्शक (सं० त्रि०) जो तीनों कालोंकी बात जानते हों। (पु०) जिन भगवान्।

त्रिकालदर्शिता (सं० स्त्री०) त्रिकालज्ञता देखो।

त्रिकालदर्शी (सं० पु०) त्रिकालं पश्यति दृश-णिनि। १ जिन, अर्हन्त। २ ऋषि, मुनि। ३ त्रिकालज्ञ, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानका जाननेवाला व्यक्ति।

त्रिकूट (सं० पु०) त्रीणि कूटानि शृङ्गाण्यस्य। त्रिशृङ्ग पर्वत-विशेष, तीन शिखरवाला पर्वत, वह पर्वत जिसकी तीन चोटियां हों। यह पर्वत लवणसमुद्रके मध्यस्थित और लङ्कापुरका आधार है। पर्याय—सुवेल, त्रिककुत्, त्रिकूट त्रिशृङ्ग, चित्रकूटक। यह एक पीठस्थान है। यहां भगवती रुद्रसुन्दरीके रूपमें विराजित हैं। (देवीभा० ७।३०।६६) २ क्षीरोदसमुद्रके मध्यस्थित पर्वत, सुमेरुका पुत्र। यह पर्वत समुद्र भेद कर बाहर निकला है। यहां देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर, अप्सर, गन्धर्व, सिद्ध और चारणगण क्रीड़ा करने आते हैं। इसकी तीन चोटियां हैं। एक चोटी सोनेकी है जहां सूर्य आश्रय लेते हैं। दूसरी चोटी चाँदीकी है; यह चोटी तरह तरहके फूलोंसे आच्छादित है। यहां चन्द्रमा वास करते हैं। तीसरी चोटी बरफसे ढकी रहती है और वैदूर्य, इन्द्रनील आदि मणियोंकी प्रभासे चमकती रहती है। यही पहाड़की सबसे ऊँची चोटी है; यह पर्वत नास्तिकों और पापियोंको दिखलाई नहीं देता। (वामनपु०) (क्लो०) त्रिकूटः पर्वतः उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्त्यस्य अर्श आदित्वात् अच्। ३ सिन्धुलवण, सेंधा नमक।

त्रिकूटलवण (सं० क्लो०) त्रिकूटं सामुद्रीमिव लवणं। द्रोणी लवण, एक प्रकारका नमक।

त्रिकूटवत् (सं० पु०) त्रीणि कूटानि अस्त्यस्य त्रि-कूट-मतुप् मस्य व। त्रिकूट पर्वत।

त्रिकूटा (सं० स्त्री०) भैरवीभेद, तान्त्रिकोंकी एक भैरवी।

त्रिकूटाख्य (सं० क्लो०) काचलवण, काचिया नोन, काला नमक।

त्रिकूर्चक (सं० क्लो०) सुश्रुतोक्त शस्त्रभेद, सुश्रुतके अनुसार फोड़े आदि चीरनेका एक शस्त्र। इसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीरु, राजा आदिकी अस्त्र-चिकित्साके लिये होता है।

त्रिकोण (सं० क्लो०) त्रयः कोणा यस्य। १ योनि, भग। २ कामरूपस्थ पीठविशेष, कामरूपके अन्तर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है। करतोयासे ले कर दिकरवासिनी तक सौ योजन फैला हुआ सर्व सिद्धिक्षेत्र माना गया है। कामरूप देखो। ३ लग्नस्थानसे नवम और पञ्चम स्थान। ४ त्रिभुज क्षेत्रभेद, तीन कोनेका क्षेत्र। ५ मोक्ष। ६ त्रिकोटियुक्त पदार्थ, तीन कोनेवाली कोई वस्तु।

त्रिकोणक (सं० पु०) तीन कोणका पिण्ड, तिकोना पिण्ड।

त्रिकोणघण्टा (सं० पु०) एक प्रकारका तिकोना बाजा, जो लोहेकी मोटी सुलाखका बना हुआ रहता है। इस पर लोहेके एक दूसरे टुकड़ेसे आघात करके ताल देते हैं।

त्रिकोणफल (सं० क्लो०) त्रिकोणं तास्र फलं यस्य। शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। २ त्रिभुजका क्षेत्रफल।

त्रिकोणभवन (सं० क्लो०) त्रिकोणस्थान, जन्मकुण्डलीमें लग्नसे पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

त्रिकोणमण्डलभूमि (सं० स्त्री०) नदीके मुहाना पर स्थित मात्राशून्य वकारके जैसा द्वीप, डेलटा।

त्रिकोणमिति—(त्रिकोण + मिति = परिमाण) शास्त्रभेद, त्रिकोण वा त्रिभुजकी बाहु और कोणका सम्बन्ध निर्णय करना ही पहले इस शास्त्रका मुख्य उद्देश्य था, किन्तु गणितशास्त्रकी उन्नतिके साथ साथ त्रिकोणमितिका कलेवर पुष्ट होता गया और बीजगणितका विषय भी इसमें शामिल कर दिया गया। अब त्रिकोणमिति कहनेसे उसी ग्रन्थका बोध होता है जिसमें त्रिभुज, चतुर्भुज आदि क्षेत्रोंकी बाहु और कोणका विचार हो। सबसे पहले ग्रीकोंने यह शास्त्र प्रकाशित किया। हमारे भारतवर्षमें भी पूर्वकालसे त्रिकोणमिति प्रचलित है और वह गणितविद्यामें विशेष पारदर्शी बड़े भारी विद्वान् द्वारा लिखा गया है। त्रिकोणमितिके विषयमें वे जितना जानते थे, सबको लिपिबद्ध करना उन्होंने आवश्यक न

संमझा। मालूम होता है, जमीन आदि मापनेके लिए रेखागणितव्युत्पन्न किसी विद्वान्ने पहले पहल इसका प्रणयन किया था।

त्रिकोणमिति प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है—सरल त्रिकोणमिति ( Plane trigonometry ) और वृत्तल त्रिकोणमिति ( Spherical trigonometry )। इनके सिवा और भी एक श्रेणी है, जिसे वैश्लेषिक त्रिकोणमिति ( Analytical trigonometry ) कहते हैं।

साइन, कोसाइन, टैञ्जेण्ट, कोटैञ्जेण्ट, सीकैण्ट और कोसीकैण्ट ये सब शब्द त्रिकोणमितिमें अकसर व्यवहृत हुआ करते हैं। ये सभी अमिश्रराशि हैं। नीचे इनके लक्षण लिखे जाते हैं—

मान लो, क ख ग एक समकोण त्रिभुज है और ख कोण एक समकोण है।

ग

ख क
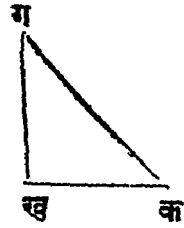
$\frac{खग}{कग}$, $\frac{कख}{कग}$, $\frac{खग}{कख}$, ये यथाक्रम कोणक,के साइन (Sine), कोसाइन Cosine) और टैञ्जेण्ट (tangent) नामसे तथा इनके विपरीत अनुपात $\frac{कग}{खग}$, $\frac{कग}{कख}$, और $\frac{कख}{खग}$, यथाक्रम कोसीकण्ट ( Cosecant ), सीकण्ट ( Sicant ) और कोटैञ्जेण्ट ( Cotanjent ) नामसे पुकारे जाते हैं। किसी कोणविशेषके ( यथा क कोण ) साइन आदि लिखनेमें साइन क, इस तरह लिखा जाता है और यदि इन सब राशियोंके वर्ग आदि लिखने हों, तो ( साइन क )$^{२}$ ( कोसाइन ) क २ आदि न लिख कर साइन$^{२}$ क, कोसाइन$^{२}$ क इस तरह लिखना चाहिये।

रेखागणितके मतसे जब दो भिन्न सरल रेखाएं भिन्न भिन्न दिशाओंसे आ कर एक दूसरीसे मिल जाती है, तब कोण बनता है। किन्तु त्रिकोणमितिमें कोणको उत्पत्ति किसी और प्रकारसे बतलाई गई है और यही उक्त गणितशास्त्रमें ग्राह्य है।

मान लो, क ख एक निर्दिष्ट रेखा है और क एक निर्दिष्ट बिन्दु है। क प एक दूसरी रेखा पहले क ख-के साथ मिल कर घडीकी सूईकी गतिके विपरीत ओर घूमती है। इस घूमनेवाली रेखा और क ख निर्दिष्ट रेखाके योगसे ख क प कोण उत्पन्न होता है। रेखागणितके मतसे ख क प कोण कहनेसे सूक्ष्म कोणका ही बोध होता है। किन्तु त्रिकोणमितिके मतसे ख क प कहनेसे अनेक कोण समझे जाते हैं। क्योंकि जितनी बार एक सम्पूर्ण चक्कर शेष होता है, उतनी ही बार समकोण जोडने पड़ते हैं।
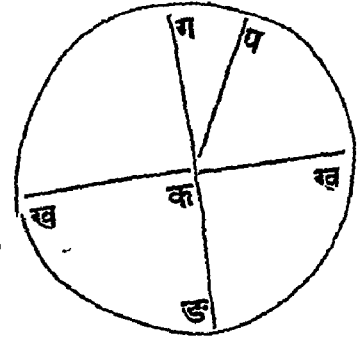
ख क रेखाको घ बिन्दु तक बढाओ और ग क ङ एक लम्बी रेखा करो। जब क प रेखा क ग रेखाके साथ मिलेगी, तब एक समकोण बनेगा। पीछे क ख रेखाके साथ मिलनेसे दो समकोण, क ङ के साथ मिलनेसे ३ समकोण और फिर क ख रेखाके साथ मिलनेसे ४ समकोण बनेंगे।

रेखागणितके साथ त्रिकोणमितिका एक और भी अन्तर है। रेखागणितके कोणके पहले कोई चिह्न नहीं लगता. किन्तु त्रिकोणमितिमें विपरीत दिशामें घूमनेसे उत्पन्न कोई न कोई चिह्न लग हो जाता है। गणितज्ञ लोग एक मत हो कर पूर्व चित्रमें चिह्नित और उत्पन्न कोणको योजक और विपरीत ओर उत्पन्न कोणको वियोजक चिह्नसे चिह्नित करते हैं।

इसी प्रकार रेखाके विषयमें भी भिन्न भिन्न चिह्न व्यवहृत होते हैं। ख घ के ऊपर और क ग के समान्तर जितनी रेखाएं खींची गई हैं, उनमेंसे योजक और विपरीत ओर खींचनेसे वियोजक चिह्न होता है। फिर ४थे चित्रमें जो सब रेखाएं क खके साथ समान्तर कर ग ङको दाहिनी ओर खींची गई है, वे
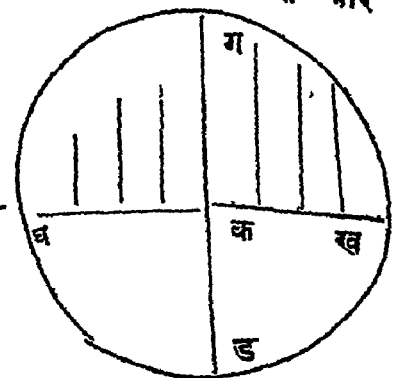
योजक्से और विपरीत ओर खोंची जाने पर वियोजक चिह्नसे चिह्नित होती हैं, दृष्टान्त स्वरूप यदि क ख रेखाकी लम्बाई × ½ मान लें, तो क ख रेखाकी लम्बाई ½ माननी पड़ेगी ।
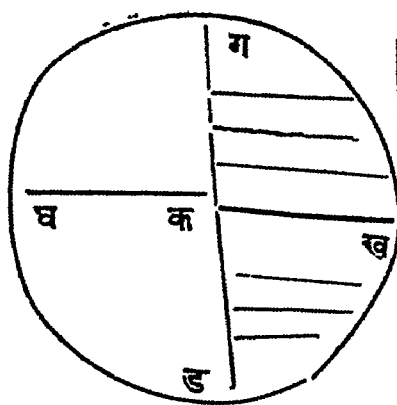
एक समकोणको ९० समान भागोंमें बांटनेसे प्रत्येक भागको १ डिग्री और प्रत्येक डिग्रीको ६० समभागोंमें बांटनेसे प्रत्येक भागको १ मिनट एवं इसो तरह १ मिनटको ६० समभागोंमें विभक्त करनेसे प्रत्येक सेकेण्ड कहते हैं । डिग्री, मिनट और सेकेण्डके चिह्न क्रमशः °, ′, ″ हैं । ५ पांच डिग्री ६ मिनट ८ सेकेण्ड यदि लिखना हो, तो ५°६′८″ इस प्रकार लिखा जाता है ।

कोण मापनेकी एक और प्रक्रिया है । तदनुसार एक समकोणको १०० भागोंमें विभक्त करना होता है । प्रत्येक भागको एक ग्रेड, और प्रत्येक ग्रेडको १०० भागोंमें बांटनेसे प्रत्येकको १ मिनट तथा प्रत्येक मिनटको १०० भागोंमें बांटनेसे प्रत्येकको १ सेकेण्ड कहते हैं । इनके चिह्न यथाक्रम ग्रे, ′, ″ हैं । पन्द्रह ग्रेड छः मिनट और सात सेकेण्डको अङ्कमें इस प्रकार लिखते हैं, जैसे—१५ ग्रे ६′ ७″ । फ्रान्समें इसी प्रक्रियासे कोण नापनेका प्रस्ताव किया गया था, किन्तु वह कार्यमें परिणत न हुआ ।

उपर्युक्त दोके सिवा कोण नापनेकी और भी एक प्रक्रिया है । यही प्रक्रिया सबसे अधिक काममें लाई जाती है और उच्चगणितमें केवल इसी प्रक्रिया द्वारा कोण मापा जाता है । किसी वृत्तकी परिधिका उसके व्यास द्वारा भाग देनेसे जो संख्या पाई जाती हैं, वे वृत्तके लिये एक हैं । यह संख्या ग्रीक वर्ण (π) इसी द्वारा लिखी जाती है, इसका परिमाण ३·१४१५९··· अर्थात् प्रायः २२/७ है । यदि किसी वृत्तको परिधिसे उसके व्यासार्धके समान कर एक अंश करके लिया जाय, तो उस परिधिखण्डके अभिमुखी केन्द्रस्थ कोणका परिमाण सभी वृत्तोंके लिये समान है । इस परिमिति कोणको एक रेडियन ( radian ) कहते हैं । जिस प्रकार डिग्री और ग्रेड प्रभृति द्वारा कोणका परिमाण निर्णय किया जाता है, उसी प्रकार इस रेडियनके परिमाणमें भी कोण निर्दिष्ट होता है ।

यदि क और ख दो अनपूरक ( Complimentary ) कोण हों, तो ख अर्थात् क + ख = ९०°

साइन क = कोसाइन ख
कोसाइन क = साइन ख
टैञ्जेण्ट क = कोटैञ्जेण्ट ख
सीकण्ट क = कोसीकण्ट ख
कोसीकण्ट क = सीकण्ट ख

क और ख यदि परिपूरक ( supplementary ) कोण हों अर्थात् क + ख = १८०° हों, तो

साइन क = साइन ख
कोसाइन क = कोसाइन ख
टैञ्जेण्ट क = टैञ्जेण्ट ख

उपर्युक्त सम्बन्धसे सीकण्ट, कोसीकण्ट और कोटैञ्जेण्टका विषय मालूम किया जाता है । यथा—

$$\text{सीकण्ट क} = \frac{१}{\text{कोसाइन क}} = \frac{-१}{\text{कोसाइन ख}} = \text{सीकण्ट ख}$$

इसी प्रकार—

$$\text{कोसीकण्ट क} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्ट क}} = \frac{१}{\text{साइन ख}} = \text{कोसीकण्ट ख}$$

$$\text{कोटैञ्जेण्ट क} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्ट क}} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्ट}} = \text{कोटैञ्जेण्ट}$$

१ से ३६०° तकके कोणसमूहके साइन आदिके परिमाण और चिह्नमें कैसा परिवर्त्तन हुआ करता है, वह निम्नलिखित चित्रसे मालूम हो जायगा ।

| क | ०° | | ९०° | | १८०° | | २७०° | | ३६०° |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| साइन क | ० | + | १ | + | ० | — | −१ | — | ० |
| कोसाइन क | १ | + | ० | — | −१ | — | ० | + | १ |
| टैञ्जेण्ट क | ० | + | ∞ | — | ० | + | ∞ | — | ० |
| कोसीकण्ट क | ∞ | + | १ | + | ∞ | — | १ | — | ∞ |
| सीकण्ट क | १ | + | ∞ | — | १ | — | ∞ | + | १ |
| कोटैञ्जेण्ट क | ∞ | + | ० | — | ∞ | + | ० | — | ∞ |

स्तम्भमें पूर्वलिखित यदि कोणका परिमाण हो, तो साइन आदिका परिमाण जो होगा, वही १,३,५,७,९ स्तम्भमें लिखा गया है।

कोणका परिमाण यदि ०से ९०°, ९०°से १८०°, १८० से २७०° और २७०° से ३६०° हो, तो उनके पहले कौन चिह्न लगेगा, वह २,४,६,८ स्तम्भमें लिखा गया है।

प्रत्येक त्रिकोणमें ६ अंश, ३ बाहु और ३ कोण होते हैं, इनमेंसे यदि १ बाहु और दूसरे २ अंश मालूम हों, तो तीसरे अंशका परिमाण निर्णय किया जा सकता है। केवल एक जगह इसका कुछ वैलक्षण्य हो जाता है। यदि किसी त्रिभुजके कोणोंको क ख ग कहें और उक्त कोणोंको विपरीत बाहुके नाम क ख और ग हो, तो

$$\frac{\text{साइन क}}{\text{क}_1} = \frac{\text{साइन ख}}{\text{ख}_1} = \frac{\text{साइन ग}}{\text{ग}_1}$$

$$\text{व कोसाइन क} = \frac{\text{ख}_1^2 + \text{ग}_1^2 - \text{क}_1^2}{2\,\text{ख}_1\,\text{ग}_1}$$

$$\text{कोसाइन ख} = \frac{\text{ग}_1^2 + \text{क}_1^2 - \text{ख}_1^2}{2\,\text{ग}_1\,\text{क}_1}$$

$$\text{कोसाइन ग} = \frac{\text{क}_1^2 + \text{ख}_1^2 - \text{ग}_1^2}{2\,\text{क}_1\,\text{ख}_1}$$

इसके सिवा क+ख ग=१८०°=π और अन्यान्य त्रिकोणमितिके विशेष विशेष नियम विशेष विशेष स्थानोंमें व्यवहृत होते हैं। उक्त नियमों और रेखागणित- की कईएक प्रतिज्ञाओंकी सहायतासे त्रिकोणका निर्णय विषय निकाला जाता है

वर्तुल त्रिकोणमिति ग्रहनक्षत्रादिके अवस्थान और पथनिर्णय करनेके लिये व्यवहृत होती है। यदि कोई समतल कोण वर्त्तुलका केन्द्र भेद कर इसे दो खण्डोंमें विभक्त करे, तो प्रत्येक वर्त्तुलच्छेद महावृत्त कहलाता है। इस तरह ३ महावृत्त द्वारा सीमाबद्ध असमतल क्षेत्रको वर्त्तुल त्रिकोण (spherical triangle) कहते हैं। सरल त्रिकोणमितिमें जो सब नियम व्यवहृत होते हैं, वर्त्तुल त्रिकोणमितिमें भी वही सब नियम लागू है।

त्रिकोणा (सं० स्त्री०) १ योनि, भग। २ शृङ्गाटकवृक्ष, सिंघाड़ेकी लता।

त्रिक्षार (सं० क्ली०) त्रयाणां क्षाराणां समाहारः नक्षारत्रय समूह, जवाखार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारोंका समूह।

त्रिखुर (सं० पु०) त्रीणि खुराणीव अग्राणि यस्य। कोकिलाक्ष वृक्ष, ताल मखाना।

त्रिख (सं० क्ली०) त्रिधा खं आकाशोऽवकाशः फलेऽत्र। त्रपुष, खीरा।

त्रिखट्व (सं० क्ली०) त्रिसृणां खट्वानां समाहारः। खट्वात्रय. तीन चारपाइयोंका समूह।

त्रिखट्वी (सं० स्त्री०) त्रिखट्व-ङीप्। त्रिखट्व देखो।

त्रिखर्व (सं० पु०) सामवेदकी शाखाके विशेषाध्यायी।

त्रिगङ्ग (सं० पु०) तिस्रो गङ्गा नद्यो यत्र बहुव्रीह्यर्थे "नदीभिश्च" इति सूत्रेण अव्ययीभावः। तीर्थभेद महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

त्रिगण (सं० पु०) त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणः वर्गः। त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम।

त्रिगन्धक (सं० क्ली०) त्रयाणां गन्धकद्रव्याणां समाहारः। त्रिजात देखो।

त्रिगम्भीर (सं० पु०) त्रिभिः गम्भीरः। वह जिसका सत्व (आचरण), स्वर और नाभि गम्भीर हो। लोगोंका विश्वास है कि ऐसा आदमी सदा सुखी रहता है।

त्रिगर्त्त (सं० पु०) त्रयो गर्त्ता यत्र। १ देशविशेष। इसका वर्त्तमान नाम जालन्धर है। वृहत्संहिताके अनुसार यह कूर्मविभागके उत्तरकी ओर अवस्थित है। (वृहत्सं० १४।२५) जालन्धर देखो। २ त्रिगर्तदेशस्थ भूमि। ३ इस देशके निवासी।

त्रिगर्त्तक (सं० पु०) त्रिगर्त्त एव स्वार्थेकन्। त्रिगर्त्त देश।

त्रिगर्त्तषष्ठ (सं० पु०) त्रिगर्त्तः षष्ठो वर्गो यस्य। आयु, जीविसङ्घ भेद।

त्रिगर्त्ता (सं० स्त्री०) त्रयो योनिस्थाः गर्ता यस्याः। १ कामुकी स्त्री, छिनाल स्त्री। कामुकी स्त्री एकयोनिका होने पर भी मैथुनके समय त्रियोनिकाके तुल्य हो जाती है, इसीसे इसका नाम त्रिगर्ता पड़ा है। २ झुरझुरा।

त्रिगर्त्तिक (सं० पु०) त्रिगर्त्त देश।

त्रिगुण (सं० क्ली०) त्रयाणां सत्वरजस्तमसां गुणाना समाहारः। सांख्यशास्त्रप्रसिद्ध सत्व, रज और तमोगुणात्मक

प्रधान। सत्त्व, रज और तम इन्हींसे सबसे पहले प्रधानकी उत्पत्ति हुई। इस प्रधानका नाम है बुद्धितत्त्व। इस बुद्धितत्त्वसे ही सब उत्पन्न होता है। (सांख्यका० ११)

त्रिगुण अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी है। प्रधान व्यक्त सदृश है। यह परिदृश्यमान संसार त्रिगुणात्मक और अविवेकी है, अर्थात् इसके विवेक वा भेद नहीं है। यह गाय है, यह घोड़ा है, जिस तरह यह पृथक् किया जाता है, उस तरह व्यक्त और गुण पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी कारण जो जो गुण हैं, वही वही व्यक्त हैं। गुण और व्यक्त एक ही हैं। विषय भोग्य है ऐसा जानकर जिसे भोग करते हैं वही पदार्थ भोग्य है। त्रिगुण वा त्रिगुणोत्पन्न व्यक्त भोग्य पदार्थ हैं, इसीसे व्यक्तका नाम विषय पड़ा है। यह व्यक्त सभी पुरुषोंके भोग करनेका पदार्थ है।

सामान्य वेश्याकी तरह सभीका भोग्य-पदार्थ है, इस कारण व्यक्त सामान्य है। अचेतन, सुख दुःख और मोहका बोधाभाव है, अतः व्यक्त अचेतन है। प्रसव-धर्मी बुद्धिसे अहङ्कारादि निकले हैं, इस कारण व्यक्त प्रपञ्चधर्मी है। अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय और पञ्च-तन्मात्र तथा तन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुए हैं।

यह त्रिगुण अभिन्न भावसे जड़ा हुआ है। व्यक्त भी त्रिगुण है और अव्यक्त भी त्रिगुण है, जिसका कार्य है यह महादादि, वह भी त्रिगुण है। यह गुण है, यह प्रधान है, इसको पृथक् नहीं कर सकते। त्रिगुण वा प्रधान अचेतनका अनुमान इस प्रकार है, अचेतन मृत्पिण्डसे अचेतन घड़े ही बन सकते हैं। इस कारण प्रधान वा प्रधानोत्पन्न सुख दुःख और मोहमें चेतनता नहीं है, इस कारण त्रिगुण अचेतन है। यह त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तम प्रकाशार्थ है, प्रवृत्त्यर्थ है। प्रवृत्त्यर्थ और नियमार्थ है, एक दूसरेसे अभिभूत है, एक दूसरेका आश्रित है, एक दूसरेसे उत्पन्न होता है, एक दूसरेसे मैथुन सम्बन्ध है, एक दूसरेमें वर्त्तमान है एवं यह सुख, दुःख और मोह. तम मोहात्मक है। सुख सत्त्व है, दुःख रज है और मोह. तम है। सत्त्व गुण प्रकाशार्थ अर्थात् प्रकाशसमर्थ है; रज प्रवृत्त्यर्थ अर्थात् प्रवृत्तसमर्थ है, तम नियमार्थ अर्थात् नियमसमर्थ, है वा नियम अर्थमें स्थित है। अतएव सत्त्व रज और तमोगुण क्रमशः प्रकाशक्रिया और स्थिति-शील रूपमें परिगणित होता है। एक दूसरेसे अभिभूत है अर्थात् प्रत्येक गुण शेष दो गुणोंको वशीभूत करता है। जब सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब रज और तमोगुण अपने अपने गुणोंसे अभिभूत हो कर प्रीति और प्रकाश स्वभावमें वास करता है। जब रजोगुण उत्कट होता है, तब सत्त्व और तमोगुण अभिभूत हो कर अप्रीति और प्रवृत्तिधर्ममें वास करता है। तमोगुण जब उत्कट होता है, तब सत्त्व और रजोगुण अभिभूत हो कर विषाद और स्थितिशील धर्ममें वास करता है। यह त्रिगुण परस्पर मिथुनभावमें सम्बद्ध है। रज सत्त्वको ले कर मिथुन और सत्त्व रजको भी ले कर मिथुन हुआ है अर्थात् यह एक दूसरेका सहायक है। त्रिगुण एक दूसरेमें वर्त्तमान हैं अर्थात् सभी गुण त्रिगुणमें ही अल्पाधिकभावसे रहते हैं, इसका एक उदाहरण देनेसे स्पष्ट हो जायगा। एक सुन्दरी स्त्री स्वामीके सुख, सपत्नीके दुःख और लम्पटके मोहका कारण है। उसमें यह त्रिगुण है। ऐसा जान कर ही वह इस प्रकार प्रकृतिके अनुसार सुख-दुःख और मोहका कारण हुई है। इसी प्रकार संसारके सभी विषयोंमें ही समझना चाहिये।

सत्त्वगुण लघु और प्रकाशक है, रजोगुण उपष्टम्भक और चञ्चल है तथा तमोगुण गुरु और आवरक है। ये तीनों एक साथ मिलाकर प्रदीपकी नाईं किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध करते है। जब सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब अङ्गादि लघु, बुद्धि प्रकाश और सभी इन्द्रियां प्रसन्न होती है। रजोगुण उपष्टम्भक और चञ्चल उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक वृष जब दूसरे वृषको देखता है, तो वह उपष्टम्भक अर्थात् रजोगुण द्वारा चालित होता है। इस उस समय इसी रजोगुणका आधिक्य होता है। इस कारण चित्त चञ्चल हो जाता है और उसीके अनुसार काम करने लगता है। तम गुरु और आवरणक है। जब तमका आधिक्य होता है तब अङ्गादि भारी मालूम पड़ने लगता है और सभी इन्द्रियां आच्छन्न हो जाती हैं अर्थात् अपना काम नहीं कर सकतीं।

यहां यह कह सकते हैं, कि त्रिगुण जब एक दूसरेके विरुद्ध रहता है, तब वह किस प्रकार प्रदीपकी नाईं

किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध कर सकता है? इसका उत्तर यह है, कि प्रदीपमें तेल, अग्नि और बत्ती इन तीन पदार्थोंके विरुद्ध स्वभाव होने पर भी वह एकत्र संयोगसे प्रकाश द्वारा दूसरे दूसरे पदार्थोंको प्रकाश पहुंचाता है। उसी प्रकार सत्व, रज और तम एक दूसरेके विरुद्ध रहने पर भी वह अपने अपने स्वार्थसाधनमें समर्थ है। (सांख्यका) कोई कोई कहते हैं, कि त्रिगुण वैशेषिक दर्शनोक्त गुणपदार्थ है वा द्रव्य पदार्थ। इसमें गुण शब्द रहनेसे गुण पदार्थ समझा जाता है, किन्तु यथार्थमें यह गुणपदार्थ नहीं है। सांख्यदर्शनके भाष्यमें इस प्रकार मीमांसा की गई है—

"सत्वादीनि द्रव्याणि न वैशेषिकवद्गुणाः संयोगवत्वात् लघुत्व-चलत्व-गुरुत्वादिधर्मकत्वाच्च अस्मिञ्छास्त्रे श्रुत्यादौ तु गुणशब्दः पुरुषोपकरणत्वात् पुरुषपशुबन्धनकत्रिगुणात्मकमहदादि रज्जुनिर्मातृत्वाच्च प्रयुज्यते" ( सांख्यद० भाष्य १।६१ )

सत्वादि तीनों गुण द्रव्य पदार्थ न कि गुणपदार्थ। संयोगत्वाके लिये लघुत्व, चलत्व और गुरुत्व आदि द्रव्यपदार्थोंके ही धर्म हैं। गुण पदार्थके धर्म नहीं है। इसे द्रव्य पदार्थ न कह कर गुण पदार्थ कहा गया है। इसका कारण यह है कि पुरुषरूप पशुबन्धन करनेके लिये प्रकृति त्रिगुण महदादि रज्जु बनाते हैं। इसीसे इसको गुणपदार्थ बतलाया है। विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो। ( त्रि० ) २ सत्वादि गुणयुक्त, जिसके सत्वादि तीनों गुण हों। मनुने लिखा है, कि जगत् त्रिगुणमय है, एक आत्माके सिवा और सभी पदार्थोंमें ही त्रिगुण वर्त्तमान है। ३ तीन द्वारा गुणित, तीनगुना, तिगुना। ४ त्रिशिख, जिसकी तीन शाखाएं हों।

त्रिगुणा (सं० स्त्री०) त्रयो गुणा यस्याः। १ दुर्गा। २ माया। ३ स्वनामख्यात बीजभेद, तन्त्रमें एक प्रसिद्ध बीजका नाम।

त्रिगुणाकर्ण ( सं० त्रि० ) त्रिगुणौ कर्णौ यस्य। त्रिगुण कर्णरूप लक्षणान्वित। जिसके कान तीन भागोंमें चीरे हुए हों। यह शुभलक्षणका चिह्न है।

त्रिगुणाकृत ( सं० त्रि० ) त्रिगुणं कर्षणं कृतं त्रिगुणा डाच्। सङ्ख्यायाश्च गुणान्तायाः। पा ५।४।५९। जो खेत तीन बार जोता गया हो।

त्रिगुणाख्यरस ( सं० पु० ) वातरोगका रस।

त्रिगुणात्मक (सं० क्ली०) त्रयो गुणाः तेजोवत्स्वरूपा आत्मानो यस्य। त्रिगुणविशिष्ट, जिसमें सत्व, रज और तम ये तीनों गुण हों।

त्रिगुणित ( सं० त्रि० ) त्रिभिर्गुणितः। त्रिराहत, जो तीन बार गुणा किया गया हो।

त्रिगुणी (सं० स्त्री०) त्रयो गुणा पत्रे यस्याः। त्रिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। बेलके पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसीसे इसका यह नाम पड़ा।

त्रिगुल ( तिगुँल ) — बम्बई-प्रदेशवासी एक जाति। जिनकी तीन पीढ़ी गोलक ( जारज ) हैं, वे ही त्रिगुल नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। किसी किसी स्थानके त्रिगुलोंका कहना है कि ब्राह्मण माता और शूद्र पिताके औरससे उनकी उत्पत्ति हुई है। प्रवाद है, कि पेशवाओंके शासनकालमें जितनी भी ब्राह्मण-स्त्रियां और ब्राह्मण विधवायें परपुरुषके सहवाससे गर्भवती होती थीं, उन्हें महाराष्ट्रोंके प्रधान तीर्थ पण्ढरपुरमें भेज देते थे। वहां वे प्रसवके बाद नवजातशिशुको अन्य किसीको दे देती थीं। इसी कारण पण्ढरपुरमें और उसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें त्रिगुलोंकी संख्या अधिक है।

इन लोगोंके आङ्गिरस, भरद्वाज, हरिताक्ष, काश्यप, लोहित और ओवत्स गोत्र हैं। ये स्मार्त्त वा भागवत हैं, देखनेमें प्रायः मराठा ब्राह्मणोंके सदृश हैं। ये लोग प्रधानतः पर्णजीवी हैं, पर कुछ दिनोंमें बहुतसे लोग शस्यव्यवसाय, महाजनी, दूकानदारी और नौकरी करने लग गये हैं। सबकी अवस्था एकसी नहीं है। आहार व्यवहार, चाल-चलन सब देशस्थ ब्राह्मणोंसे मिलते जुलते हैं। ब्राह्मणोंकी तरह ये लोग भी यज्ञोपवीत पहनते हैं; किन्तु किसी दूसरी श्रेणीके ब्राह्मण इन लोगोंके साथ आहार वा विवाह-शादी नहीं करते। देशस्थ ब्राह्मण ही इनके पुरोहित हैं। वाराणसी, नासिक, आलन्द, पण्ढरपुर और तुलजापुर ये इनके प्रधान तीर्थ हैं।

इन लोगोंमें कई एक विशेष नियम हैं। पहले प्रसवके समय स्त्रियां पिताके घर जाती हैं। सन्तान उत्पन्न होनेके बाद प्रसूतिगृहमें तीन मास तक दीया जलाया

जाता है। प्रसवके बाद प्रथम दस दिन ग्रामको पुरोहित आ कर शान्तिपाठ करते और पोछे प्रसूतिको धानसे आशीर्वाद देते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, वे प्रसूति और शिशुके ललाटमें भस्म भी लगाते हैं। इस देशमें जिस तरह छठोके दिन पुरोहित आकर षष्ठी-रात्रिकी पूजा करते हैं, उसी तरह इन लोगोंमें भी पांचवें दिन धाय आ कर यथारीति षष्ठी-पूजा करती है। इस दिन चार ब्राह्मण रात भर जग कर शान्ति पाठ करते हैं और सवेरे उनको कुछ दक्षिणा तथा पान-सुपारी दे कर बिदा करते हैं। ग्यारहवें दिन प्रसूति और शिशु स्नानादि करके शुद्ध होते हैं। सन्तान उत्पन्न होनेके तीन मास बाद प्रसूति अपने स्वामीके घर जाती है।

१० वर्ष होनेके पहले ही बालकका उपनयन होता है।

त्रिगूढ़ ( सं० पु० ) स्त्रियोंके वेषमें पुरुषोंका नृत्य।

त्रिग्रामी ( सं० स्त्री० ) त्रयाणां ग्रामाणां समाहारः। १ तीन ग्रामोंका समूह। २ एक ग्रामका नाम।

त्रिघटा—एक कल्पित नगर जो हिमालयको चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहा जाता है, कि यहां विद्याधर आदि रहते हैं।

त्रिचक्र (सं० पु०) त्रीणि चक्राणि यस्य। अश्विनीकुमारों-का रथ।

त्रिचक्षु (सं० पु०) त्रीणि चक्षूंषि यस्य। त्रिनेत्र महादेव।

त्रिचतुर (सं० त्रि०) त्रयो वा चत्वारो वा विकल्पार्थे डच. समासान्तः। तीन या चार।

त्रिचत्वारिंश (सं० त्रि०) त्र्यधिका चत्वारिंशत् पूरणे डट्। तेंतालीसवां।

त्रिचत्वारिंशत् ( सं० त्रि० ) त्र्यधिका चत्वारिंशत्। जो गिनतीमें चालीससे तीन अधिक हो, तेंतालीस।

त्रिचित् ( सं० पु० ) त्रीन् अग्नीन् चिनोति स्म चि-भूते क्विप्। अग्नित्रयस्य चयनकारी।

त्रिचित ( सं० पु० ) त्रिभिः विभागैरिष्टकाभिः चितः। गार्हपत्य अग्निभेद, एक प्रकारको गार्ह-पत्याग्नि।

त्रिचिनापल्ली ( त्रिशिरापल्ली )—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १०° १६' से ११° ३२' उ० और देशा० ७८° ८' से ७९° ३०' पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ३६३२ वर्गमील है। इसके पूर्वमें तञ्जोर, उत्तरमें आर्काट और सलेम, पश्चिममें कोयम्बतुर और मदुरा, तथा दक्षिणमें पुदुकोट राज्य है।

इस जिलेमें जितनी भी नदियां हैं, उन सबमें कावेरी नदी प्रधान है। यह पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती हुई श्रीरङ्गम् द्वीपके निकट जा दो शाखाओंमें विभक्त हो गई है, जिनमेंसे एक तो कावेरी नामसे प्रसिद्ध है और दूसरी कोलिरून नामसे। कावेरी नदीके दक्षिण और उत्तरमें चूने और लोहेकी खानें हैं; परन्तु वे काममें नहीं लाई जातीं। यहांकी जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात लगभग ३४ इं० है।

इसमें कुल शहर और ग्राम मिला कर ८३७ लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः १४४७७०० है, जिनमें अधिकांश हिन्दू और थोड़े मुसलमान तथा ईसाई हैं। ये लोग तामिल बोली बोलते हैं, किन्तु कुछ तेलगू तथा कर्णाटी भाषाका भी व्यवहार करते हैं। तमाम जिला कुलितलै, मुसिरि, परम्बलूर, त्रिचिनापल्ली और उदैयारपालयम् इन पांच तहसीलोंमें विभक्त है।

विशेष ऐतिहासिक विवरण इसी नामके शहरमें देखो।

२ उक्त जिलेका एक तालुक यह अक्षा० १०° ३८' से ११° २' उ० और देशा० ७८° २८' से ७८° १' पू०में अव-स्थित है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३८२०८१ है। इसमें शहर और ग्राम दोनों मिला कर १८३ हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० १०° ४८' उ० और देशा० ७८° ४२' पू०के मध्य कावेरी नदीके दाहिने किनारे मन्द्राजसे १८५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

इस नगरकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा प्रवाद है— पूर्व समयमें त्रिशिरा नामका एक राक्षस पर्वतकी गुहामें रहता था। पर्वतके चारों ओर घना जंगल था। उक्त राक्षसके भयसे कोई वहां जानेका साहस नहीं करता था। बाद सुरवदित्तान नामक किसी साहसी वीर पुरुषने इस राक्षसको मार डाला। उसी दिनसे इसका नाम त्रिशिरापल्ली पड़ गया। सुरवदित्तानने त्रिशिरा-राक्षसको मार कर यहांका जंगल कटवा डाला और

उसी जगह राजधानी स्थापन की। ये किस समयमें आविर्भूत हुए थे, इसका पता नहीं चलता। सुरवदिस्तानने त्रिशिराराक्षसके भयसे इस जनपदको रक्षा की थी, इसीसे वहांके लोग कावेरी नदीके दोनों किनारे शिवालय निर्माण कर सुब्रह्मण्य नामसे उनकी पूजा करते हैं।

कहा जाता है, कि ईसाकी पाचवीं शताब्दीके पहलेसे यहां चोल-राजाओंका राज्य था। मगधके अशोक राजाके विजयस्तम्भमें जो शिलालेख है, उसमें चोल-राजाओंके नाम पाये जाते हैं। उरैयुर नामक स्थानमें चोल-राजाओंकी राजधानी थी, जो त्रिचिनापल्लीसे एक मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०४७२१ है, जिनमें अधिकांश हिन्दू और कुछ मुसलमान तथा ईसाई हैं।

जिस समय रामानुजाचार्य श्रीरङ्गक्षेत्रमें रह कर विशिष्टाद्वैतमतका प्रचार कर रहे थे, उस समय करिकाल नामक कोई चोल राज त्रिचिनापल्लीमें राज्य करते थे। १०१७ ई०में श्रीरामानुजाचार्यका जन्म हुआ था और १७ वर्षकी उम्रमें वे काञ्चीपुर और वहांसे फिर श्रीरङ्गम्‌को पढ़ाने गये थे, पीछे वे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो कर काञ्चीपुरको लौट आये। इसके बाद वे तिरुपति होते हुए विशिष्टाद्वैतमतका प्रचार करनेके लिये श्रीरङ्गम् गये। उस समय उनकी उम्र ५० वर्षसे कम न होगी। इसके भी बहुत समय बाद श्रीरङ्गम्‌में उनका देहान्त हुआ था। इससे प्रतीत होता है, कि चोल-राजने करिकाल १०६० ई०के बाद किसी समय राज्य किया होगा। मधुरापुरीके विवरणमें लिखा है, कि सुन्दर पाण्ड्यने उरैयुरको जला डाला था और वहांके पूर्वशासनकर्त्ताके पुत्र करिकालको कुम्भकोणका शासनकर्त्ता बनाया था। मि० टेलरने परम्परागत विवरणकी सहायतासे यह दिखलाया है, कि उरैयुरके तहस-नहस हो जाने पर चोल राजधानी उठ कर कुम्भकोण चली गई थी।

१०७१ ई०में विजयबाहु लङ्काके सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्वकालमें चोल-राजने सिंहल पर आक्रमण किया, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। सिंहलके राजाने ११२६ ई०में चोलराज्य पर धावा किया। वे भी कृतकार्य न हो कर वहांसे लौट आये। पराक्रमबाहुने ११५३ से ११८६ ई० तक सिंहलमें राज्य किया। पाण्ड्य कुलशेखरके सिंहल-राजसे पराजित होने पर चोल-राजने उन्हें नष्ट राज्य लौटानेमें सहायता की थी। इस पर पराक्रमबाहुने प्रतिशोध लेनेके लिए चोलराज्य पर धावा किया और कुछ प्रदेश दखल कर लिए।

मुसलमानोंने किस समय त्रिशिरापल्ली पर आक्रमण किया था, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। हजरत सुलतान अलाउद्दीन् साहबने १२८० ई०में मधुरापुरी जीत कर उसे अपने राज्यमें मिला लिया था। १३१० ई०में दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीन्‌के प्रधान सेनानायक बल्लाल-राजधानी द्वारसमुद्र लूट कर रामेश्वर तक अग्रसर हुए थे। त्रिशिरापल्लीके आक्रमणके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलने पर भी अन्ततः इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है, कि उन लोगोंने त्रिशिरापल्लीमें लूट मचाई थी।

तञ्जोर और मधुरापुरीके विवरणसे जाना जाता है, कि तञ्जोरके शेष राजा वीरशेखरने त्रिशिरापल्ली और मधुरापुरीको अपने राज्यमें मिला लिया था। विजयनगरके सेनानायक कतियान नागनायकने वीरशेखरको परास्त कर त्रिशिरापल्ली, तञ्जोर और मधुरापुरी पर कब्जा किया था। विजयनगरके राजा अच्युतरायने अपने साले सेवप्पानायकको तञ्जोर और त्रिशिरापल्लीका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। इस समय त्रिचिनापल्लीमें डकैतोंकी संख्या बहुत बढ़ गई और उनसे लोग बहुत भय खाने लगे। विश्वनाथ नायकको मधुरापुरीके शासनकर्त्ता होनेके बाद त्रिचिनापल्लीमें डकैतोंका प्रभाव मालूम हो गया। उन्होंने तञ्जोरके राजाको त्रिचिनापल्लीके बदले वल्लाम नामक दुर्ग दे दिया और स्वयं वहां आ कर देखा, कि त्रिचिनापल्ली अत्यन्त स्वास्थ्यकर स्थान है और दुर्गका संस्कार हो जानेसे वह और भी सुदृढ़ हो जायगा। ऐसा सोच कर उन्होंने राजधानी स्थापित की। त्रिचिनापल्लीके प्राचीन प्राचीरका संस्कार कराया तथा एक नई चहार-दीवारी भी बनवाई। इसी प्राचीरके पश्चात्‌भागमें खाई खुदवा कर इसे दुर्भेद्य कर दिया। खाईमें जल लानेके लिए कावेरी नदी तक एक

नाला लगा दिया। इस समय नदीके दोनों पारके जङ्गल कटवा कर आबादी की गई और भिन्न भिन्न देशोंके शिल्पकारोंको ला कर यहां बसाया गया। विश्वनाथने ब्राह्मणोंके रहनेके लिए स्वतन्त्र घर बनवा दिये थे। थोड़े ही दिनोंके मध्य यह नगर सुख-समृद्धिशाली देशोंमें गिना जाने लगा। इस समय इन्होंने श्रीरङ्गक्षेत्रके रङ्गनाथ-स्वामीके मन्दिरके बाहरवाले दरवाजे पर एक गोपुर निर्माण किया; ये कभी मथुरामें और कभी त्रिचिनापल्लीमें रहते थे। इस समयसे ले कर चांदसाहबके अधिकारके समय (१७३६ ई०) तक मथुरापुरी और त्रिचिनापल्ली नायक-राजाओंके शासनाधीन था। मदुरा देखो। नायक-राजगण अधिकांश समय तक त्रिचिनापल्लीमें रह कर राजकाज करते थे। १६२६ ई०में तिरुमलके राजा होने पर वे राजधानीको उठा कर मथुरापुरीको ले गये। इनके पुत्र मलकाद्रि (मत्तु वीरप्पा)-ने त्रिचिनापल्लीदुर्ग-का पुनः संस्कार किया। इनके पुत्र चोक्कनाथ १६६१ ई०में जब राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने पुनः त्रिचिनापल्लीमें राजधानी कायम की। नायक-राजाओं-ने उनके समयसे ले कर १७३१ ई० तक त्रिचिनापल्लीमें वास किया था। १७३१ ई०में अन्तिम नायक-राज विजय राघवकी मृत्यु हुई। उन्हें कोई सन्तान न थी, इसलिए उनकी विधवा रानी मीनाची देवीने बङ्गारु-तिरुमलके पुत्र विजयकुमार मुत्तु तिरुमलको गोद लिया और आप नाबालिगकी अभिभाविका हो कर राज-कार्य करने लगी। इस समय बङ्गारुतिरुमलने प्रकृत उत्तराधिकारी होनेका दावा किया। ये ख्यातनाम तिरुमल नायकके छोटे भाई और कुमार मुत्तुके प्रपौत्र थे। इनके पिता कुमार तिरुमलने रङ्गकृष्ण मुत्तु वीरप्पाके समयमें थोड़े दिनोंके लिए युवराजका कार्य किया था। जब ये किसी तरह उनके प्रपितामह राज्यके अधिकारी न हुए, तब ये किसी हालतसे प्रकृत उत्तराधिकारी हो नहीं सकते थे। दलवाय वेंकटाचार्यने तिरुमलको राजा बनानेकी पूरी चेष्टा की; किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। अन्तमें वेंकटाचार्यने अपने मनोरथकी सिद्धिका कोई उपाय न देख आरकाड़के नवाब दोस्त अलीके पुत्र सुबेदार अलीकी शरण ली और उनसे कहा,—'यदि आप बङ्गारु-तिरुमलको राजसिंहासन पर बैठा सकें, तो आपको ३० लाख रुपये दिये जायंगे।" सुबेदार अली अच्छा मौका हाथ आता देख कर चांदसाहबके साथ त्रिचिनापल्लीके दुर्गके सामने आ पहुंचे और उन्होंने सहसा बलपूर्वक रानीके सैन्य-सामन्तोंको पराजय किया। पीछे उन्होंने देखा, कि दुर्ग अधिकार करना बहुत सहज है; इस हेतु छल करके दोनों पक्षका विवाद मिटानेके लिए उन्हें अपने दरबारमें बुलाया। बङ्गारुतिरुमल तो दरबारमें पहुंच गये; किन्तु मीनाचीदेवीके पक्षसे कोई नहीं गया। तब उन्होंने बङ्गारुतिरुमलको प्रकृत स्वत्वाधिकारी स्थिर कर राज्यशासनका भार अर्पण किया और ३० लाख रुपयेका एक पत्र उनसे लिखवा लिया। रुपया वसूल करनेका भार चांद साहबके हाथ दे कर नवाबके पुत्र आरकाड़को चले गये। उनके चले जानेपर मीनाची देवीने चांदसाहबको कहला भेजा "यदि राज्य बङ्गारुतिरुमलके बदले मेरे ही हाथमें रखा जाय, तो मैं आपको १ करोड़ रुपया दूंगी।" चांदसाहबने रुपयेके लोभमें पड़ कर बङ्गारुतिरुमलको रानीके हाथमें ही सौंप दिया। चांदसाहबने अपनी बात पूरी करनेके लिये मीनाची देवीके सामने हाथमें कुरान ले कर शपथ खाया था। कोई कोई इतिहास-लेखक कहते हैं कि—'उन्होंने कुरान के बदले एक ईंटको अच्छे कपड़ेसे ढक कर अपने हाथ में ले शपथ खाया था।' कोषागारमें रुपया नहीं रहनेसे एक करोड़ रुपयेके रत्नादि दिये गये। मीनाची देवीने बङ्गारुतिरुमलको मथुरापुरीका शासन-कर्त्ता बना कर भेजा। १७३८ ई०को चांदसाहबने त्रिचिनापल्लीमें आ कर धोखेसे दुर्गमें प्रवेश किया और रानीको अपने घरमें नजरबन्दी कर आप राजा बन बैठे।

रानीने अपने बचावका कोई रास्ता न देख विष खा कर आत्महत्या कर डाली। अब चांदसाहब निष्कण्टक हो गये। बङ्गारुतिरुमलने अपनेको निरावलम्ब देख सतारा जा कर महाराष्ट्र-पतिसे सहायता मांगी। महाराष्ट्र सेना-नायक रघुजी भोंसले एक दल सैन्य ले कर कर्णाटक प्रदेशको गये। आरकाड़के नवाब दोस्त अलीने उनसे छेड़छाड़ की; किन्तु १७४० ई०को २०वीं मईको वे वेलूरके निकट पराजित हो कर मार डाले गये। रघुजी

भोंसलेने त्रिचिनापल्ली अवरोध कर १७४१ ई०को २६ वीं मार्चको दुर्ग अधिकार किया। इधर चांदसाहबने भी उनके पुत्रको कैद कर सतारा भेज दिया और सेना-नायक मुरारि रावको त्रिचिनाका शासन-भार सौंपा, १८ हजार महाराष्ट्र-सेना रख कर आप सितारोको चले गये। बङ्गारुतिरुमलने इनसे भेंट कर राज्य-प्राप्तिकी इच्छा प्रगट की। रघुजी भोंसलेने युद्धका खर्च ३० लाख रुपये मांगे। बङ्गारुतिरुमल उस समय उतना देनेको राजी हो गये, किन्तु वे अदा कर न सके। १७४३ ई०में जब निजाम-उल-मुल्क-आसफजाह त्रिचिनापल्लीको अवरोध करने आये तब मुरारी राव भी दुर्ग छोड़ कर भाग चले। उस समय त्रिचिनापल्ली और मदुरापुरी निजामके आदेशसे आरकाड़के नवाबके अधीन हो गया। बङ्गारुतिरुमलने पुनः भाग्य-परीक्षाके लिये निजामकी शरण ली। निजाम बहादुरने उन्हें सम्मान करते हुये कहा, कि 'युद्ध-व्यय ३० लाख रुपये और वार्षिक भेंट ३० लाख रुपये देनेसे उन्हें राज्य मिल सकता है।' इस समय त्रिचिनापल्लीके शासन-कर्त्ता अनवर उद्दीन्ने बङ्गारुतिरुमलको दैनिक व्ययके लिये १०० रुपये और उनके पुत्रको २५० रुपये नियत कर दिये तथा मदुरापुरी लौटा देनेकी बात दी। बङ्गारुतिरुमल इस वृत्तिको भोग करते करते परलोकको चल बसे।

१७४८ ई०में निजाम-उल मुल्ककी मृत्यु हुई। उनके लड़के नासिरजङ्गने पितृपद प्राप्त किया। इस समय चांदसाहबने भी सतारासे छुटकारा पाया। निजामके एक दौहित्र मुजफ्फरजङ्ग जब नासिरजङ्गके विरुद्ध चांदसाहबके षड़यन्त्रमें शामिल हुये, तब फ्रांसीसियोंने भी मुजफ्फरजङ्गका पक्ष अवलम्बन किया। अङ्गरेजोंने नवाब अनवर उद्दीन् और निजाम नासिर जङ्गका साथ दिया। १७४९ ई०की १२ वीं जुलाईको आरकाड़से २५ कोस दूर अम्बर नामक स्थानमें लड़ाई छिड़ी। इस लड़ाईमें अनवर उद्दीन् पराजित हो कर मृत्युको प्राप्त हुये। इनके दूसरे लड़के महम्मद अलीने त्रिचिनापल्ली भाग कर आरकाड़के नवाबका नाम ग्रहण किया और अङ्गरेज-गवर्मेण्टसे सहायता मांगी। इधर चांदसाहब पुदिचेरीमें फ्रांसीसी-गवर्मेण्टकी सहायता-से कर्णाटकके नवाब हो गये। चांदसाहबने फ्रांसीसी-सेना साथ ले त्रिचिनापल्ली जा घेरा। इस समय महम्मद अली अर्थके अभावसे बहुत ही कष्टमें थे। उन्होंने महिसुरके राजासे अर्थ और सेनाकी सहायता मांगनेके लिये प्रतिज्ञापत्र इस प्रकार लिख भेजा,—"यदि आप मुझे इस घोर विपद्से बचावें तो त्रिचिना-पल्ली प्रदेश आपको अर्पण करूं।"

महिसुरके सेनानायक दलवाय नन्दीराव और महाराष्ट्रके सेनानायक मुरारिराव नवाबकी सहायताके लिये अपनी अपनी सेनाको साथ ले कृष्णनारायणपुरके निकट आ पहुँचे। फ्रांसीसी सेनाने उन्हें रोका। कप्तान कोप यह संवाद पाकर उनकी सहायताके लिये चल पड़े और पराजित हो कर करालकालके गालमें फंस गये। इसके बाद कप्तान डंटनने इस युद्धमें सहायता पहुँचायी। नन्दीराव और मुरारिराव अपनी अपनी सेनाके साथ त्रिचिनापल्ली तक अग्रसर हुए। इधर तञ्जोरके राजाने महम्मद अलीके साहाय्य लिये अपने सेनानायक मङ्कोजीके साथ ३००० अश्वारोही और २००० पदातिसेना भेजीं। पदुकोट्टईके तण्डीमान ४०० सो अश्वारोही और ३०० सौ पदातिक सैन्य साथ ले आ पहुँचे। बाद मेजर लरेन्सने सेण्टडेविड-दुर्गसे ४०० सौ गोरे और ११०० सौ सिपाहीको ले त्रिचिनापल्लीकी ओर आते समय फ्रांसीसी रकके समीप फ्रांसीसियोंको परास्त किया और वे त्रिचिनापल्लीके दुर्गके भीतर आ डटे। उन्होंने चान्दसाहबको पराजय करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। इस समय चान्दसाहब श्रीरङ्गक्षेत्रके विष्णुमन्दिरमें और फ्रांसीसी जम्बुकेश्वरकी छावनीमें ठहरे हुए थे। दोनों पक्षोंमें कई एक छोटी छोटी लड़ाईयां चलती रही। धीरे धीरे विपक्षियोंकी रसद कम जानेके कारण फ्रांसीसी सेनानायकने जम्बुकेश्वर छोड़ कर श्रीरङ्गमन्दिरमें आश्रय लिया। तब मेजर लरेन्सने श्रीरङ्गके सम्मुख दक्षिण द्वारको अवरोध किया। इस समय क्लाइव उत्तरकी ओर कोलरून नदीके किनारे, तञ्जोरके सेना-नायक मङ्कोजी विष्णुमन्दिरके निकट और महिसुरके सेनानायक नन्दीराय पश्चिमकी ओर अपेक्षा कर रहे थे।

चांदसाहब इस तरह चारों ओरसे घिर गये। जब क्लाइवने सुना कि फ्रांसीसीसेना चांदसाहबकी सहायताके लिये आ रही है, तब वे छिपके १०० सौ गोरे, १००० सिपाही और दो हजार महाराष्ट्रसेनाको साथ ले फ्रांसीसीको रोकनेके लिये आगे बढ़े। वलिकन्दपुरके सामने दोनोंमें घनघोर युद्ध मचा, जिसमें क्लाइवकी ही जीत हुई। इस युद्धमें १०० सौ फ्रांसीसी, ४०० सौ सिपाही और ३४० देशीय अश्वारोहीके साथ फ्रांसीसी-सेनानायक कैद किये गये। चांदसाहबने यह सम्वाद सुन कर तञ्जोरके सेनानायक मंकोजीसे सन्धि कर ली। चांदसाहबने मंकोजीके ऊपर विश्वास करके उन्हें आत्मसमर्पण किया। मंकोजीने विश्वास-घातकतासे चांदसाहबको अपने हाथसे मार डाला। फ्रांसीसीका पराभव और चांदसाहबकी मृत्युका सम्वाद पाकर फ्रांसीसी शासनकर्त्ता डुप्ले अत्यन्त दुःखित हुए।

बाद १७५३ ई०के नवम्बर मासमें फ्रांसीसियोंकी नई सेना आने पर विपक्षियोंने रातके समय त्रिचिनापल्ली अधिकार करनेके अभिप्रायसे दलटन-व्यूहके निकट आक्रमण किया; किन्तु सफलता प्राप्त न की। इसमें ३५० फ्रांसीसीसेना अङ्गरेजोंके हस्तगत हुई। १७५४ ई०के फरवरी मासमें अङ्गरेजोंकी रसद कलियुर नामक स्थानमें आ जानेसे फ्रांसीसी सेनानायकने वह रसद छीन ली और पदुकोट्टाई-प्रदेशमें लूट मार मचाते हुवे तञ्जोरकी ओर अग्रसर हुवे। इसके बाद अगस्त मासके अन्तमें अङ्गरेज और फ्रांसीसीके बीच कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां हुई; किन्तु पीछे दोनोंमें सन्धि हो गई। महिसुरके सेनापतिका नाम इस सन्धिमें न रहनेसे वे इस सन्धिको माननेमें वाध्य न हुए और उन्होंने कहला भेजा कि—"मैं इस नियमसे वाध्य नहीं हो सकता।"

कप्तान स्मिथ १५० गोरे और ७०० काले सिपाही ले कर त्रिचिनापल्लीके दुर्गकी रक्षा कर रहे थे। उन्होंने दुर्गका अच्छी तरह संस्कार किया। फ्रांसीसीने इस दुर्ग पर आक्रमण करनेकी पूरी कोशिश की। किन्तु वे इसमें कृतकार्य न हो सके।

१७६० ई०के मई मासमें हैदर अली महिसुरके प्रधान हो गये। १७८० ई०में उन्होंने अंगरेजोंके साथ लड़ाई ठान दी और १७८१ ई०में वे स्वयं कर्णाटकमें आ कर त्रिचिनापल्ली और मदुरामें लूट-मार मचाने लगे। उन्होंने जलप्रणालीका बांध काट कर सब आबादी जमीन नष्ट कर दी और कर्नल वेलीको कैद कर महिसुर भेज दिया। बाद त्रिचिनापल्लीका दुर्ग अधिकार किया। सर-आयरकूट पराजित हो कर पीछे हट गये; किन्तु १ली जुलाईकी जो लड़ाई छिड़ी, उसमें हैदरकी हार और सर-आयरकूटकी जीत हुई।

१७८२ ई०में हैदर अलीके मरने पर उनके लड़के टीपू सुलतान कर्णाटकको छोड़ कर महिसुरको लौट आये। १७८२ ई०में गवर्मेण्टके साथ नवाबकी एक सन्धि हुई।

१७९९ ई०में टीपूकी मृत्युके बाद श्रीरङ्गपत्तन अधिकृत हो जाने पर अन्यान्य कागजोंके साथ नवाब हैदरके बहुतसे पत्र पाये गये। 'नवाब अंग्रेजोंके विरुद्ध टीपूके पक्षमें हैं और १७९२ ई०में उन्होंने सन्धि तोड़ दी है' इस कारण वृटिश-गवर्मेण्टने यह प्रदेश अपने साम्राज्यमें मिला लिया और नवाबकी वृत्ति कायम कर दी।

अभी त्रिचिनापल्लीमें दुर्ग नहीं है, केवल दो दरवाजे पूर्व गौरवका परिचय दे रहे हैं। दुर्गकी दीवार टूट-फूट गई है और उसके चारों ओरकी खाईको भर कर उसके ऊपर रास्ता बना दिया गया है। दुर्गके भीतर पुराना राजभवन आज भी विद्यमान है, जिसमें तहसीलदारकी कचहरी, मुन्सफकी कचहरी, स्थानीय कोषागार और औषधालय अलग अलग बना दिये गये हैं।

त्रिचिनापल्ली दुर्गका पर्वत तयुमानस्वामीमलय नामसे प्रसिद्ध है। पर्वतके ऊपर जानेके लिये चारों ओर पत्थरकी सीढ़ियां बनी हुई हैं। सीढ़ीके ऊपर महादेव तयुमानस्वामीका मन्दिर है। सामनेका पहाड़ काट कर एक घर बना दिया गया है। कर्णाटकके युद्धके समय उसमें बारूद रखी जाती थी। इस मन्दिरका दृश्य बहुत सुन्दर है। अनुमान किया जाता है, कि मन्दिर चोलराजाओंसे बनाया गया होगा। प्रति वर्ष भाद्रमासमें महादेवका उत्सव होता है। जबसे त्रिचिनापल्ली अंग्रेजोंके हाथ आया है, तबसे यहांकी बहुत उन्नति हुई है। यहां जिलेके जज, कलक्टर, मुन्सफ डाक्टर, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि रहते हैं।

इस शहरमें एस, पी, जी, हाइस्कूल, अंग्रेजोंका एक सेना-निवास और दक्षिण-प्रदेशके रेलवेका एक प्रधान कार्यालय है। यहांकी जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है।

त्रिचूर—मन्द्राजके कोचीनराज्यका एक शहर। यह अक्षा० १०° ३२' उ० और देशा० ७६° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५५८५ है। यह एक प्राचीन शहर है। यहांके स्थल-पुराणके अनुसार परशुराम इसके अधिष्ठाता माने जाते हैं। १७६० ई०में जमोरिनने इस पर चढ़ाई करके अपना दखल जमा लिया था। पीछे १७७६ ई०में यह स्थान हैदर अलीके और १७८८ ई०में टीपू सुलतानके हाथ लगा। १७७४ ई०में यहां मट्टीका एक दुर्ग बनाया गया था, जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यह शहर वाणिज्य-का एक प्रधान केन्द्र है। यहां डिष्ट्रिक्ट-जज, मजि-ष्ट्रेटकी अदालत, चिकित्सालय और तीन हाईस्कूल हैं। इनके सिवा शंकराचार्यके छात्रोंके बनाए हुए बहुत प्राचीन तीन मठ हैं। इनमेंसे एक मठमें फिलहाल ब्राह्मण को भोजन तथा वेदकी शिक्षा दी जाती है।

त्रिजगत् ( सं० क्लो० ) त्रिगुणितं जगत् संज्ञात्वात् कर्म-धारयः। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ये तीनों लोक।

त्रिजट ( सं० पु० ) तिस्रः जटाः यस्य। १ महादेव। २ ब्राह्मणका नाम जिसको वनयात्राके समय रामचन्द्रने बहुतसी गायें दीं थीं।

त्रिजटा ( सं० स्त्री० ) तिस्रो जटाः यस्याः। राक्षसीभेद, विभीषणकी बहन। यह राक्षसी अशोकवाटिकामें जानकी-जीके पास रहा करती थी। सीताके प्रति इसका बहुत प्रेम था। जब कभी अन्यान्य राक्षसी सीता पर अत्याचार करती, तब यह उन्हें रोक देती थी। त्रिजटाने स्वप्नमें राक्षसोंका अमङ्गल देखा था और वह स्वप्नवृत्तान्त सुना-सुना कर सीताको उत्साहित करती थी।

( रामा० सुन्दर० २७-३० अ० )

२ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। इसके तीन पत्रोंमें ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर रहते हैं। वृक्ष शक्तिरूपी है, वृक्ष मूलमें वज्र रहता है तथा समूचे पत्ते ब्रह्मस्वरूप हैं। इन पत्तोंसे हर वा हरिकी अर्चना करनी चाहिये। शक्ति-पूजामें बेलके पत्ते अत्यन्त प्रयोजनीय है। इन पत्तों-द्वारा पूजा करनेसे कैवल्यलाभ होता है।

( ज्ञानभैरवीतन्त्र ६प० )

त्रिजटो ( सं० पु० ) महादेव, शिव।

त्रिजड़ ( हिं० पु० ) १ कटारी। २ तलवार।

त्रिजातक ( सं० क्लो० ) त्रिजातस्वार्थे कन्। इलायची, दारचीनी और तेजपत्ता इन तीन प्रकारके पदार्थोंका समूह। इसे त्रिसुगन्धि भी कहते हैं। यदि इसमें नाग-केशर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे। त्रिजात और चतुर्जात ये दोनों ही रेचक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुखगत-दुर्गन्धनाशक, लघु, पित्तवर्द्धक, अग्निकारक, वर्णप्रसादक तथा कफ, वायु और विष-नाशक है।

त्रिजीवा ( सं० पु० ) त्रिषु राशिषु जीवा। तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चापकी ज्या।

त्रिज्या ( सं० स्त्री० ) व्यासकी आधी रेखा, किसी वृत्त के केन्द्रसे परिधि तक खींची हुई रेखा।

त्रिणा ( सं० क्लो० ) तृण पृषोदरा० साधुः। तृण, घास।

त्रिणता ( सं० स्त्री० ) त्रिषु स्थानेषु नता नम्र णत्वं। पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३। १ धनु, धनुष। ( त्रि० ) २ जो तीन जगह झुका हुआ हो।

त्रिणत्व ( सं० क्लो० ) त्रिणस्य भाव त्रिण-त्व। तृणका भाव।

त्रिणयन ( सं० पु० ) त्रीणि नयनानि यस्य। शिव, महा-देव।

त्रिणव ( सं० पु० ) त्रिरावृत्ता नवच समासान्तः संज्ञा त्वात् णत्वं। सप्तविंशावृत्त सामस्तोमभेद, साम-गान-की एक प्रणाली, जिसमें एक विशेष प्रकारसे उसकी सत्ताईस आवृत्तियां करते हैं। सत्ताईस बार आवृ-त्तियां करनेमें प्रथमपर्यायमें, प्रथम तीन, मध्यम ५ और उत्तम १; द्वितीयपर्यायमें प्रथम एक, मध्यम तीन और उत्तम पांच तथा तृतीयपर्यायमें प्रथम पांच, मध्यम एक और उत्तम तीन। इन तीन पर्यायमें नौ-नौ करके तीन नौ अर्थात् २७ बारकी आवृत्तियां सामस्तोम हैं। इस समष्टि स्तोमकी सभी आवृत्तियां करनेसे त्रिणव होता है।

त्रिणाक—त्रिनाक देखो।

त्रिणाचिकेत ( सं० पु० ) त्रिः कृत्वश्चितो नाचिकेतः अग्नि-र्येन, पूर्वपदादिति णत्वं। १ यजुर्वेदके एक विशेष

भागका नाम। २ उस भागके अनुयायी। यजुर्वेदका प्रख्यात भाग त्रिणाचिकेत नामसे ख्यात है। ३ नारायण। (भारत १२।३३८।४)

त्रित (सं० पु०) १ देवताभेद, एक देवताका नाम। २ ब्रह्माके मानसपुत्ररूप ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम जो ब्रह्माके मानसपुत्र माने जाते हैं। ३ गौतममुनिके पुत्र। एकत और द्वित नामक इनके दो भाई थे, पर ये दोनोंसे अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे। ऋषि लोग इनका गुण देख कर इन्हें गौतमको नाईं पूजा करते थे। किसी समय ये अपने भाइयोंके अनुरोधसे उनके साथ पशुसंग्रह करनेके लिए जङ्गलमें गये। वहां दोनों भाइयोंने इनके संग्रह किये हुए पशु छीन कर इन्हें अकेला छोड़ कर घरका रास्ता लिया। इसी बीच एक भेड़िया आया, जिसे देख कर ये डरके मारे दौड़ने लगे और दौड़ते हुए एक गहरे कुएँमें जा गिरे। वहीं इन्होंने सोमयोग आरम्भ किया, जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे। उन्हीं देवताओंके वरसे ये कुएँसे निकले। महाभारतमें लिखा है, कि इसी कुएँसे सरस्वती नदीका आविर्भाव हुआ।

त्रितक्ष (सं० क्ली०-स्त्री०) त्रयाणां तक्ष्णां समाहारः अच् समा०। तीनों तक्ष, तीनों सूत्रधर।

त्रितन्त्रीवीणा—वीणावाद्यविशेष। यह कच्छपी वीणाकी तरहका होता है। केवल इसका खोल काठका बना होता और इसमें तीन आवद्ध रहते हैं। इस वीणाके तीन तार कच्छपीके नायकीसुर और पञ्चमके जैसे होते हैं। बजानेका ढंग भी कच्छपीसा है। यन्त्रकोष।

इसका आधुनिक नाम सितार है, जो वीणाका अनुकल्प है। तिग्रव्द्की पारसी भाषामें 'से' कहते हैं, इसीसे अमीर खुसरुने तीन तारोंसे युक्त त्रितन्त्रीका सेतार वा सितार नाम रखा है।

त्रितय (सं० क्ली०) त्रयोऽवयवा अस्य त्रि-तयप्। (संख्याया अवयवे तयप्। पा। ५।२।४२) धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका समूह। २ सन्निपात। (त्रि०, ३ त्रिप्रकार, तीन तरह।

त्रितल (सं० त्रि०) त्रितलगृह, तीन खण्डेका घर।

त्रिताप (सं० क्ली०) त्रयाणां तापानां समाहारः आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीनों प्रकार के दुःख। आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका होता है, शारीरिक और मानसिक। वात पित्त और श्लेष्मादिके विपर्ययसे उत्पन्न ज्वर, अतिसार आदि रोग शारीरिक दुःख है। काम, क्रोध, प्रियवियोग और अप्रियसम्वादसे जो दुःख उत्पन्न होता है, वह मानसिक दुःख है। आधिभौतिकके चार भेद है, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। शीत, उष्ण, वात, वर्षा और वज्रपतन आदिसे जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे आधिदैविक कहते हैं। लोग त्रितापमें पड़ कर तरह तरहके कष्ट पाते हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये सभी त्रितापके नाशक हैं। त्रितापके नाश होनेसे ही मोक्ष मिलता है। लगातार त्रितापसे पीड़ित रहनेके बाद मनुष्यके सामने शास्त्रजिज्ञासाका उद्देश्य पहुँच जाता है। शास्त्रजिज्ञासाका उद्देश्य पहुंच जानेसे ही वे मोक्षके पथ पर अग्रसर होते हैं।

त्रिदण्ड (सं० पु०) त्रिदण्ड चतुरङ्गुलगोवालवेष्टनान्योन्यसम्वन्धं अस्त्यस्य, अर्श आदित्वादच्। १ सन्न्यासाश्रम, संन्यास आश्रमका चिह्न। (क्ली) त्रयाणां दण्डानां समाहारः। यतियोंके चार अङ्गुलपरिमित तीन दण्ड जो एक दूसरेमें बंधे रहते हैं। यथा—वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड।

त्रिदण्डक (सं० क्ली०) त्रिदण्ड स्वार्थे कन्। त्रिदण्ड।

त्रिदण्डी (सं० पु०) त्रिदण्डमस्त्यस्य इति इनि। त्रिदण्डधारी यति, वे जिनके कायदण्ड, मनोदण्ड और वाग्दण्ड बुद्धिमें स्थापित है अर्थात् जो ज्ञानबलसे मन, वचन और कर्म इन तीनोंको दमन कर सकते, वे ही त्रिदण्डी कहला सकते हैं। केवल तीनों दण्ड धारण कर लेनेसे को त्रिदण्डी बन नहीं सकते। वरन् काम और क्रोधको दूर हटा कर जो त्रिदण्डका यथाव्यवहार करते, वे ही त्रिदण्डीपदवाच्य तथा सिद्धिलाभके अधिकारी हैं। (मनु १२।१०।११)

त्रिदण्डग्रहण करनेसे उनका प्रेतत्व दूर हो जाता है। त्रिदण्डियोंका आद्यश्राद्ध नहीं करना पड़ता है, किन्तु मृत्युके बाद ग्यारह दिनोंमें पार्वणश्राद्ध करना पड़ता है। २ यज्ञोपवीत, जनेऊ।

त्रिदल (सं॰ पु॰) त्रीणि दलानि यस्य। बिल्ववृक्ष, बेल-का पेड़।

त्रिदला (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि दलानि प्रतिपत्रं यस्याः। गोधापदीलता, हंसपदी।

त्रिदश (सं॰ पु॰) तृतीया दशा यस्य। त्रिशब्दस्यात्र त्रिभागवत् तृतीयार्थकता वा त्रिस्रो जन्मसत्ता-विनाशाख्याः न तु मर्त्यानामिव वृद्धिपरिणामक्षयाख्याः दशा यस्यः यद्वा त्रीन् तापान् दशति दन्श चलर्थं क पृषो॰ साधुः वा त्रयधिका त्रिरावृत्ताः दश परिमाणमस्य। देवताओंका स्थिर यौवनसम्पन्न। देवताओंके जन्म, सत्ता और विनाशाख्या अवस्था हैं; किन्तु यह अवस्था मानवोंके जैसा वृद्धि, परिणाम और क्षयरूप नहीं है। देवगण मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक त्रितापोंको नाश करते हैं। देवताओंकी संख्या तीन आवृत्ति दश अर्थात् तीस है, किन्तु उनका परिमाण त्रयस्त्रिंशत् अर्थात् तेंतीस बतलाया है। यहां पर एक एक त्रिशब्दतन्त्रता द्वारा उच्चारणके कारण त्रयस्त्रिंशत्-का बोध होता है। इन्हीं सब कारणोंसे देवताओंका नाम त्रिदश पड़ा है।

तेंतीस प्रधान देवतायें हैं—१२ अर्क, ११ रुद्र, ८ अष्टवसु और २ अश्विनीकुमार। कोई कोई कहते हैं, कि दोनों अश्विनीकुमारको छोड़, इन्द्र और प्रजापतिको लेकर तेंतीस होते हैं। त्रिस्रोदशाः जाग्रदावस्था यस्य। २ जीव। ३ देवताओंका वासस्थान, स्वर्ग। (त्रि॰) त्रिंशत्परिमित, तीस।

त्रिदशगुरु (सं॰ पु॰) त्रिदशानां देवानां गुरुः ६-तत्। देवगुरु, वृहस्पति।

त्रिदशगोप (सं॰ पु॰) त्रिदशो देवभेद इन्द्रः गोपो रक्षकोऽस्य। इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी नामका कीड़ा।

त्रिदशत्व (सं॰ क्ली॰) त्रिदशस्य भावः त्रिदश-त्व। देवत्व।

त्रिदशदारु (सं॰ क्ली॰) देवदारुकाष्ठ।

त्रिदशदीर्घिका (सं॰ स्त्री॰) त्रिदशानां देवानां दीर्घिका। स्वर्गङ्गा, आकाशगङ्गा।

त्रिदशपति (सं॰ पु॰) त्रिदशानां पतिः ६-तत्। इन्द्र।

त्रिदशमञ्जरी (सं॰ स्त्री॰) त्रिदशप्रिया मञ्जरी यस्याः। संज्ञात्वात् न कप्। तुलसी।



त्रिदशवधू (सं॰ स्त्री॰) त्रिदशानां वधूः। अप्सरा।

त्रिदशवर्त्मन् (सं॰ क्ली॰) त्रिदशानां वर्त्म। नभस्, आकाश।

त्रिदशसर्षप (सं॰ पु॰) त्रिदशप्रियः सर्षपः। देवसर्षप, एक प्रकारको सरसों।

त्रिदशाङ्कुश (सं॰ पु॰) त्रिदशस्य अङ्कुशः। वज्र।

त्रिदशाचार्य (सं॰ पु॰) त्रिदशानां आचार्यः। देवताओं-के गुरु वृहस्पति।

त्रिदशाधिप (सं॰ पु॰) त्रिदशानां अधिपः। त्रिदेशके अधिपति, इन्द्र।

त्रिदशाध्यक्ष (सं॰ पु॰) त्रिदशानां अध्यक्षः। विष्णु।

त्रिदशायन (सं॰ पु॰) त्रिदशानां अयनं यत्र। विष्णु।

त्रिदशायुध (सं॰ पु॰) त्रिदशानां आयुधः। वज्र, इन्द्रका धनुष।

त्रिदशारि (सं॰ पु॰) त्रिदशानां देवानां अरि ६-तत्। देवताओंके शत्रु, असुर।

त्रिदशालय (सं॰ पु॰) त्रिदशस्य आलयः ६-तत्। १ स्वर्ग। २ सुमेरुपर्वत।

त्रिदशावास (सं॰ पु॰) त्रिदशानां आवासः। १ स्वर्ग। २ सुमेरुपर्वत।

त्रिदशाहार (सं॰ पु॰) त्रिदशानां आहारः। अमृत, सुधा।

त्रिदशेश्वर (सं॰ पु॰) त्रिदशानां ईश्वरः। इन्द्र।

त्रिदशेश्वरी (सं॰ स्त्री॰) त्रिदशेश्वर-ङीप्। दुर्गा।

त्रिदालिका (सं॰ स्त्री॰) त्रिदलिका वृक्षविशेष, चामर-कषा, सातला।

त्रिदिनस्पृश् (सं॰ पु॰) त्रिदिनं चान्द्रदिनत्रयं स्पृशति स्पृश-क्विप्। क्षयाह, वह तिथि जो तीन दिनोंको स्पर्श करती है।

६० दण्ड अहोरातके मध्य यदि दो तिथियोंका संपूर्ण अवसान हो तो उसे अवमदिन कहते हैं और एक एक तिथि यदि तीन वारको स्पर्श करती हो, तो उसे त्र्यह-स्पर्श कहते हैं। ऐसे दिनमें स्नान और दानादिके अति-रिक्त और कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

त्रिदिव (सं॰ पु॰) त्रयो ब्रह्मविष्णुरुद्राः दीव्यन्त्यत्र, दिव-घञ्, वा दीव्यन्ति इति दिवाः दिव-क, त्रयः सत्व-रजस्तमोरूपाः दिवा क्रीड़का यत्र। १ स्वर्ग; ब्रह्मा,

विष्णु और महेश्वर स्वर्ग में रहते हैं, इसोसे स्वर्ग का नाम त्रिदिव पड़ा। २ आकाश। (क्लो०) ३ सुख।

त्रिदिवा (सं० स्त्री०) नदोभेद, एक नदोका नाम। २ एला; इलायची।

त्रिदिवाधीश (सं० पु०) त्रिदिवस्य अधीशः। इन्द्र।

त्रिदिवेश (सं० पु०) त्रिदिवस्य ईशः। देवता।

त्रिदिवेश्वर—त्रिदिवाधीश देखो।

त्रिदिवोद्भवा (सं० स्त्री०) त्रिदिव उद्भवो यस्याः। १ स्थूलएला, बड़ो इलायची। २ गङ्गा। (त्रि०) ३ स्वर्गभवमात्र, जो स्वर्ग से उत्पन्न हुआ हो।

त्रिदिवौकस् (सं० पु०) त्रिदिव ओको यस्य। देवता।

त्रिदृश् (सं० पु०) त्रिस्रः दृशः नेत्राणि यस्य। वा त्रीणि भूतादीनि पश्यति दृश् क्विप्। त्रिनयन, महादेव, शिव।

त्रिदोष (सं० क्लो०) त्रयाणां दोषाणां समाहारः। १ वात, पित्त और कफ ये तीन दोष। २ त्रिदोषज रोगभेद, वात, पित्त और कफसे उत्पन्न रोग, सन्निपात।

त्रिदोषज (सं० त्रि०) त्रिदोषाज्जायते जन-ड। वात, पित्त और कफजनित सन्निपात आदि रोग। ज्वर देखो।

त्रिदोषज वमिरोगमें अत्यन्त शूल भुक्तद्रव्योंका अपाक, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास और मोह होता है। इसका रोगी सर्वदा उष्ण, नील वा रक्तवर्ण लवणाम्लरसविशिष्ट पदार्थ वमन करता है।

त्रिदोषघ्न (सं० त्रि०) त्रिदोषं हन्ति हन-टक्। त्रिदोषनाशक।

त्रिदोषदावानलरस (सं० पु०) ज्वरमें दिये जानेका एक प्रकारका रस।

त्रिदोषरोहिणी (सं० स्त्री०) गलेका एक रोग जो त्रिदोषसे उत्पन्न होता है।

त्रिदोषसम्भव (सं० पु०) सन्निपात।

त्रिदोषहारी (सं० पु०) ज्वरको औषधि।

त्रिध्वनि (सं० पु०) एक प्रकारको रागिणी।

त्रिधन्वन् (सं० पु०) सुधन्वा राजाके एक पुत्रका नाम। ये त्रिधन्वाके त्रय्यरुण नामक सर्वविद्याविशारद एक पुत्र निकले। (हरिवंश १२ अ०)

त्रिदर्शी (सं० पु०) महादेव, शिव।

त्रिधा (अव्य) त्रि-प्रकारे धाच्। त्रिविध, तीन प्रकारसे, तीन तरहसे।

त्रिधातु (सं० पु०) त्रिन् धर्मार्थकामान् दधाति, पुष्णातीति धा-तुन्। १ गणेश। (क्लो०) त्रयाणां धातूनां समाहारः। धातुत्रय, सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिधात्व (सं० क्लो०) त्रिधा भावे त्व। त्रिप्रकारत्व, तीन प्रकारका भाव।

त्रिधामन् (सं० पु०) त्रीणि भूरादीनि सत्वादीनि वा धामानि यस्य। १ विष्णु। २ शिव। ३ अग्नि। ४ मृत्यु। (क्लो०) त्रयाणां धातूनां धाम्नां समाहारः। ५ धामत्रय, तीनों धाम। ६ स्वर्ग। (त्रि०) ७ त्रिसंख्यान्वित, जिसमें तीन अंक हों।

त्रिधामूर्त्ति (सं० पु०) त्रिधा मूर्त्तिर्यस्य। परमेश्वर जिनके अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों हैं।

त्रिधारक (सं० पु०) तिस्रो धारा अग्राण्यस्य, ततः स्वार्थे कन्। गुण्डतृण, बड़ा नागरमोथा, गुँदला। २ कसेरूका पेड़।

त्रिधारस्नुही (सं० स्त्री०) त्रिषु भागेषु धारा यस्याः सा एव स्नुही। स्नुहीविशेष, तिधाराथूहर, तीन धारवाला सेंहुड़। इसका पर्याय—वज्र और स्नुही है।

त्रिधारा (सं० स्त्री०) त्रिषु स्थानेषु धारा प्रवाहो अस्य:। धारात्रयान्वित गङ्गा, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकोंमें बहनेवाली गङ्गा।

त्रिधाविशेष (सं० पु०) त्रिधा त्रिप्रकारो विशेषः। सांख्यके अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज और महाभूत तीनों प्रकारके रूप धारण करनेवाला शरीर। इसके मध्य सूक्ष्म शरीर नियत, मातापितृज शरीररस, भस्म वा विष्ठारूपमें परिणत होता है।

त्रिधासर्ग (सं० पु०) त्रिधात्रि प्रकारः सर्गः। भूतादि सर्ग।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, और पैशाच ये आठ प्रकारके देवसर्ग हैं। पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर ये पाँच प्रकारके तिर्यग्सर्ग हैं। मानुषसर्ग भी एक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रभृति सभी जातियां ही मानुष-सर्गके अन्तर्गत हैं। ये ही तीन प्रकारके सर्ग हैं, जिनके अन्तर्गत सारी सृष्टि आ जाती है।

त्रिनयन (सं० पु०) त्रीणि चन्द्रसूर्याग्निरूपाणि नय-

नानि यस्य, पूर्व पदात् संज्ञायामिति प्राप्ते क्षुभ्नादिषु च इति निषेधात् न णत्वं। १ शिव, महादेव। महादेवके तीसरे नेत्रकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है— एक दिन पार्वतीने हँसीसे महादेवकी दोनों आँखें अपने हाथोंसे मूंद रखीं। ऐसा करनेसे सारा संसार अंधकार-मय दीखने लगा और होम तथा वषट्कार शून्य हो गया। तब महादेवके ललाटदेशसे एक युगान्तकालीन प्रचण्ड मार्त्तण्ड सदृश नेत्र उत्पन्न हुआ। इस नेत्रकी ज्योतिसे चारों दिशायें जगमगा उठीं। बहुत जल्द अन्ध-कार दूर हो गया और हिमालय पर्वत दग्ध होने लगा। यह अद्भुत दृश्य देख कर पार्वती महादेवका स्तव करने लगीं। तब महादेवने प्रकृतिस्थ हो कर पार्वतीसे कहा,—देवि। तूने बिना आगे-पीछे सोचे मेरी दोनों आँखें मूंद रखी थीं, जिससे सारा संसार अंधकार-मय और विनष्टप्राय हो गया था। उस समय मैंने उन सबकी रक्षाके लिये ही इस समुज्ज्वल तृतीय नेत्रकी सृष्टि की है। (भारत अनुशासन० १४० अ०)

(त्रि०) २ लोचनत्रययुक्त, जिसको तीन आँखें हों।

त्रिनयना (सं० स्त्री०) त्रीणि नयनानि यस्याः टाप्। दुर्गा।

त्रिनवति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका नवतिः। वह संख्या जो तीन और नब्बेके योगसे बनती हो, तिरानवेकी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क। (त्रि०) ततः पूरणे-डट्। ३ तिरानवे।

त्रिनवतितम (सं० त्रि०) त्रिनवति-तमप्। तिरानवेवाँ।

त्रिनाक (सं० पु०) नास्ति अकं दुःखं यस्मिन् नाकं पुण्यलोकः तृतीयं नाकं। १ तृतीय नाक, स्वर्ग। २ उत्तम स्थान।

त्रिनाभ (सं० पु०) त्रयो लोको नाभौ यस्य अच् समा-सान्तः। विष्णु।

त्रिनिष्क (सं० त्रि०) त्रिभिर्निष्कैः क्रीतं ठञ् तस्य लुक्। जो तीन निष्कमें खरीदा गया हो, जिस-की कीमत तीन निष्क हो।

त्रिनेत्र (सं० पु०) त्रीणि नेत्राणि यस्य। १ महादेव, शिव। २ स्वर्ण, सोना।

त्रिनेत्र—झालावाड़के लखतर-राज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह अभी तरनेत नामसे मशहूर है और विख्यात प्राचीन नगरथानके पार्श्वमें अवस्थित है।

थानमाहात्म्यके मतसे सुराष्ट्रके एक अंशका नाम देवपञ्चाल है। यहां त्रिनेत्रेश्वर महादेव रहते हैं। इन्हींके नामानुसार इस स्थानका नाम त्रिनेत्र वा तरनेत पड़ा है। त्रिनेत्रमाहात्म्यके मतानुसार सत्ययुगमें मान्धाताने यहां एक सूर्यमन्दिर निर्माण किया था। स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें लिखा है,—

'त्रिपथगामिनी गङ्गाके ईशान कोणमें संगालेश्वर नामक एक तीर्थके माहात्म्यसे यहाँकी सब मछलियाँ तीन आँखवाली हो गई थीं। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सर्व पाप जाते रहते हैं।' ये सब बातें सुन कर पार्वतीने एक दिन महादेवसे पूछा, कि त्रिपथगामिनी गङ्गा किस कारण यहाँ आई थीं और यहाँकी मछलियोंके क्यों त्रिनेत्र हो गये थे? इसके उत्तरमें महादेवने कहा,— "किसी कारणसे अज्ञानान्ध ऋषियोंने मुझे शाप दिया। इस पर बहुतसे ऋषिगण मुझको शापग्रस्त देख कर कठोर तपस्या करने लगे। मैंने भी ऋषियोंके शापसे राजरूप धारण किया था। कठोर तपस्या करने पर भी उन्हें मुझसे दर्शन न हुआ, मुझसे साक्षात् नहीं होने पर भी वे सब त्रिनेत्र हो गये थे। तभीसे यह स्थान एक प्रधान तीर्थमें गिना जाने लगा। यह सम्वाद चारों ओर फैल जाने पर भृगु प्रभृति ऋषिगण आकर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए और उन्होंने वहाँ संगालेश्वर नामक महादेवकी मूर्त्ति स्थापन की, उन्हें भी मुझसे दर्शन नहीं होने पर तीन आँखें हो गईं। बाद उन्होंने ध्यानमें मेरा स्वरूप जान कर कहा- 'प्रभो! यदि आप हम पर सन्तुष्ट हैं तो हमें यही वर दीजिये, कि यहाँ त्रिपथ-गामिनी गङ्गा प्रवाहित हो।' उसी समय मेरे अनुग्रहसे त्रिपथगामिनी गङ्गा जमीन छेद कर बाहर निकलीं और इसमें मछलियोंके तीन आँखें हो गईं।"

(प्रभासखण्ड २१४ अ०)

यहाँके सङ्गालेश्वर महादेव ही त्रिनेत्रेश्वर कहलाते हैं। यहाँ बहुतसे मनुष्य वास करते हैं।

त्रिनेत्रचूड़ामणि (सं० पु०) त्रिनेत्रस्य चूडामणिः शिरो-भूषणं। चन्द्र, चन्द्रमा।

त्रिनेत्ररस ( सं० पु० ) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा जिसका व्यवहार सन्निपातरोगमें होता है। इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है,—शोधे हुए पारे, गन्धक और फूंके हुए तांबेका बराबर भाग लेकर जितना हो, उतने ही गायके दूधसे उसे मलते हैं। पीछे कड़ी धूपमें सुखा कर उसे संभालू और सोहिञ्जनके क्वाथसे एक दिन तक फिर मर्दन करते हैं। बाद उसे गोल बना कर एक अन्धमूषायन्त्रमें रखते और बालुकायन्त्रमें तीन प्रहर तक पाक करते हैं। इसके बाद उसे खरलमें पीस कर चूर चूर कर डालते हैं। चूर्णमें इसके आठवें भागके बराबर विष मिला कर इसे अच्छी तरह मलते हैं और एक एक गोली २ रत्तीको बनाते हैं। पञ्चकोलके क्वाथ अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे कठिनसे कठिन सन्निपातज्वर नाश हो जाता है। (भावप्र०)

त्रिनेत्रा ( सं० स्त्री० ) वाराही कन्द।

त्रिनैष्किक ( सं० त्रि० ) त्रिभिर्निष्कैः क्रीतं त्रिनिष्क-ठञ् ठञि उत्तरपदस्य वृद्धिः। जो तीन निष्कमें खरीदा गया हो, जिसका मूल्य तीन निष्क हो।

त्रिपक्ष ( सं० पु० ) तृतीयः पक्षः संख्याशब्दस्य वृत्तौ पूरणार्थत्वात्। तृतीयपक्ष, तीसरा पक्ष। आद्यश्राद्ध-कालमें प्रेतोद्देश्यसे वृषोत्सर्ग नहीं होने पर त्रिपक्षमें किया जा सकता है।

"षष्ठे मासि त्रिपक्षे वा।" (श्राद्धतत्त्व)

त्रिपक्षस् ( अव्य० ) तीन पक्षोंसे।

त्रिपञ्च ( सं० त्रि० ) त्रिगुणिताः पञ्च। जो गिनतीमें दश से पांच अधिक हो, पन्द्रह। यह शब्द नित्य बहु-वचनान्त है।

त्रिपञ्चाङ्ग ( सं० पु० ) त्रिपञ्च पञ्चदश अङ्गानि यस्य। समाधिभेद। इस समाधिमें १५ अङ्ग हैं; यथा,यम, नियम, त्याग, मौन, देश, सुकालता, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्‌स्थिति, प्राण-संयमन, प्रत्याहार, धारणा, आत्म-ध्यान और समाधि।

त्रिपञ्चाश ( सं० त्रि० ) त्रिपञ्चाशत् पूरणे डट्। जो गिनतीमें पचाससे तीन और अधिक हो, तिरपन।

त्रिपञ्चाशत् ( सं० स्त्री० ) त्र्यधिका पञ्चाशत्। १ पचाससे तीन अधिककी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्रिपञ्चाशत्तम (सं० त्रि०) त्रिपञ्चाशत् पूरणे तमप्। तिरपन संख्याका पूरण।

त्रिपटु ( सं० पु० ) १ कांच, शीशा। २ विड़ सैन्धव और काच ये तीन प्रकारके नमक।

त्रिपताक ( सं० क्ली० ) तिस्रः पताका इव रेखा यत्र। १ रेखात्रयान्वित ललाटदेश। माथा वा ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों। २ मध्यमा और अनामिका छोड़ शेष तीन उंगलियोंको उठाकर हाथका फैलाना।

त्रिपती (सं० स्त्री०) तिरपति देखो।

त्रिपत्र (सं० पु०) त्रीणि त्रीणि पत्राणि यस्य। १ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। २ तीन तीन दल लगे हुए बेलके पत्ते। बेलका पेड़ परम तीर्थ माना गया है। इसके तीन पत्तोंमेंसे ऊपरका पत्ता शिव स्वरूप, बांया पत्ता ब्रह्मा और दहिना पत्ता विष्णु है। ( क्लि० ) त्रयाणां पत्राणां समाहारः। ३ पत्रत्रय, जिसमें तीन पत्ते लगे हों।

त्रिपत्रक ( सं० पु०) त्रिपत्र संज्ञायां कन्। १ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। ( क्ली० ) त्रयाणां पत्राणां समाहारः। संज्ञायां कन्। २ तुलसी, कुंद और बेलके पत्तोंका समूह।

त्रिपत्रा ( सं० स्त्री० ) १ अरहरका पेड़। २ तिपतिया घास।

त्रिपथ (सं० क्ली०) त्रयाणां पथां समाहारः अच् समा०। १ कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गोंका समूह। २ त्रिमार्गयुक्त, तिमुहानी।

त्रिपथगा ( सं० स्त्री० ) त्रिपथे स्वर्गमर्त्यपाताल मार्गे गच्छतीति गम-ड। गङ्गा। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीन लोकोंमें गङ्गा बहती हैं, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

"गंगा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च।
त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता॥"
(रामा० १।४४।६)

त्रिपथगामिनी (सं० स्त्री०) त्रिपथ-गम-णिनि-ङीप्। गङ्गा।

त्रिपद—त्रिपाद् देखो।

त्रिपद ( सं० पु० ) त्रीणि पदानि यस्य। १ त्रिविक्रम, परमेश्वर। २ तिपाई। ३ त्रिभुज। यज्ञोंकी वेदी नापनेको प्राचीन कालको एक नाप जो प्रायः तीन हाथसे कुछ कम

होती थी। (त्रि०) ४ तीन पदयुक्त, जिसके तीन पद वा चरण हों।

त्रिपदा (सं० स्त्री०) त्रयः पादाः मूलानि यस्याः। टापि पादस्य पद्भावः। १ हंसपदीलता, लाल रङ्गका लज्जू। पर्याय—गोधापदी, सुवहा और हंसपदी है। (त्रि०) त्रयः पादाः चरणानि यस्याः। २ त्रिपादयुक्त गायत्री। गायत्रीमें केवल तीन ही पद होते हैं। इसीलिये इसका यह नाम पड़ा। त्रिपदागायत्री ही एकमात्र ब्रह्मप्राप्तिका उपाय है।

त्रिपदिका (सं० स्त्री०) त्रयः पदाः यस्याः त्रिपदी तत संज्ञायां कन् ततष्टाप्। पूजा कालीन शङ्ख रखनेका पात्र एक प्रकारका पात्र जिस पर देवपूजनके समय शङ्ख रखा जाता है। यह तिपाईकी तरहका पीतल आदिका बना होता है। इस पत्रके ऊपर शङ्ख रख कर अर्घ्य स्थापन करना पड़ता है। २ तिपाई। ३ सङ्कीर्ण रागका एक भेद।

त्रिपदी (सं० स्त्री०) त्रयः पादाः अस्याः अन्त्यलोपः समा०, ङीपि पद्भावः। १ त्रिपादयुक्त। २ गायत्रीछन्दः। इसके प्रत्येक पदमें ८ अक्षर होते हैं। इसलिये तीन पदमें २४ अक्षरका एक छन्द होता है।

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूलहमस्य पांसुरे। (ऋक् १।२२।१७)

२ हस्तियोंके पादबन्धनार्थ रज्जुभेद, वह रस्सी जिससे हाथियोंके पाँव बांधे जाते हैं। ४ अर्घ्याधार पात्रभेद, तिपाई। ५ छन्दोविशेष, एक प्रकारका छन्द। लक्षण—

"पज्झटिकान्ता यदि यमकान्ता
द्वादश परिणत मात्रा।
किन्नरगीति तदितिनिवीति
स्यादिसमाक्षरगाथा॥" (काव्योदय)

त्रिपदीछन्दमें तीन तीन करके पद रहते हैं। जिनमेंसे पहले और दूसरे पदके साथ तथा तृतीयपद युग्मचरणके तृतीयपदके साथ तुकबन्दी रहती है।

त्रिपत्र (सं० पु०) चन्द्रमाके दश घोड़ोंमेंसे एक।

त्रिपरिक्रान्त (सं० पु०) त्रिषु इत्यर्थं कर्मसु परिक्रान्तः चेष्टमानः। वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े-पढ़ावे और दान दे।



त्रिपर्ण (सं० पु०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्य। १ पलासका पेड़। (त्रि०) २ त्रिदलपत्रत्रय, जिसमें तीन पत्ते हों।

त्रिपर्णिका (सं० स्त्री०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्याः संज्ञाया कन्-टाप्, टापि अतइत्वं। कन्दविशेष, एक प्रकारकी मूली। पर्याय—वृहत्पत्रा, छिन्नग्रन्थिनिका, कन्दालु, कन्दबहुला, आम्लवल्ली, विनारुहा और त्रिपर्णी है। इसका गुण - मधुर, शीतल, श्वास, काश, विष और व्रणविनाशक है। २ यवास।

त्रिपर्णी (सं० स्त्री०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्याः। गौरादित्वात् ङीष्। १ शालपर्णी। २ वनकार्पासी, वनकपास। ३ पृश्निपर्णी, पिठवनलता।

त्रिपर्याय (सं० त्रि०) जिसमें तीन तह लगी हों।

त्रिपला (सं० स्त्री०) त्रिफला।

त्रिपाठ (सं० पु०) त्रयाणां पाठः। तीन पदक्रमसंहिताका पाठ।

त्रिपाठी (सं० पु०) त्रीन् पदक्रमसंहितारूपग्रन्थान् पठति पठ-णिनि। १ तीन वेदोंका जाननेवाला पुरुष, त्रिवेदी। २ ब्राह्मणोंकी एक जाति, त्रिवेदी, तिवारी।

त्रिपाण (सं० क्ली०) त्रिः कृत्वः पानं उदकपानं यस्य, इतौ सुचो लोपः, संज्ञात्वात् णत्वं। १ वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो। २ वल्कल, छाल।

त्रिपाद (सं० पु०) त्रयः पादा अस्य, संख्यापूर्वत्वेऽपि समासान्तविधेरनित्यत्वान्नान्त्यलोपः। १ परमेश्वर। २ ज्वर, बुखार।

त्रिपाद (सं० पु०) त्रयः पादा अस्य, संख्या पूर्वत्वादन्त्यलोपः। त्रिविक्रम विष्णु। भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण कर बलिसे तीन पद भूमि मांगी। तेजस्वी बलिने तथास्तु कह कर उनकी माँग पूरी की। उसी समय भगवान्‌ने वामनरूप परित्याग किया और बलिको सर्वदेवमय विराट्‌रूप दिखलाया। बलिको ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वी उनके दोनों पैर हैं, आकाश मस्तक है, चन्द्र और सूर्य दोनों नेत्र हैं; इत्यादि। बलि भयानक विश्वरूप देख कर मोहित हो गये। तब भगवान्‌के एक पैरसे बलिकी सारी भूमि, शरीरसे आकाश, दोनों बाहुसे सब दिशायें छा गईं। उनके दूसरे पदमें स्वर्गके प्रायः सभी स्थान आ गये। किन्तु तीसरा पद रखनेको

कहीं जगह न बची, तब भगवान्‌ने उसे स्वर्ग से ले कर मर्त्यलोक, जनलोक और तपोलोकके ऊपर सत्यलोकमें फैलाया। भगवान्‌का यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है। ( भागवत ८।२० अ० और हरिवंश २६२ अ० ) वामन और बलि देखो। २ ज्वर, बुखार।

त्रिपादिका ( सं० स्त्री० ) त्रयः पादिका मूलानि यस्याः कप्, ततष्टाप्, टापि अत इत्वं। १ हंसपादीलता, लाल, रङ्गका लज्जालु। संस्कृतपर्याय—हंसपदी, हंसपादी, कीटमाता और त्रिपदिका है। २ तिपाई।

त्रिपापचक्र (सं० क्ली०) त्रिपापस्य चक्रम्। ज्योतिषोक्त त्रिपापविषयक चक्र। इस चक्रसे वर्ष भरका शुभाशुभ फल जाना जाता है। ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है,—

राशिचक्रमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र हैं। प्रत्येक मनुष्यका किसी न किसी नक्षत्रमें जन्म हुआ ही करता है। इसी कारण २७ नक्षत्रोंका एक चक्र लिखा गया। इन चक्रोंको देख कर हर एक मनुष्य जिस वर्षका चाहे शुभाशुभ फल मालूम कर सकता है।

त्रिपापचक्रफल—त्रिपापचक्रके जिस वर्षमें चन्द्र और बुध वर्षाधिपति हों उस वर्षमें शुभफल जानना चाहिये। फिर जिस वर्षमें राहु और शनि वर्षपति हों, उस वर्षमें मृत्यु तुल्य फल; दो वृहस्पतिमें सुख, मंगल और रविके वर्षाधिपतिमें दुःख होता है। केतुपताकी, केतुकुण्डली और गुरुकुण्डली इन तीनोंके मतसे भी यदि पापग्रहका वर्ष हो, तो उस वर्ष जीवनका डर रहता है। रवि और मंगलके वर्षमें दुःख, केतुके वर्षमें महाक्लेश, चन्द्र और बुधके वर्षमें सुख, वृहस्पति और शुक्रके वर्षमें राज्यलाभ तथा राहु और शनिके वर्षमें महाक्लेश होता है।

त्रिपापचक्रमें दो रविके रहनेसे क्लेश, दो चन्द्रसे सुख, दो मंगलसे अग्निभय और पीड़ा, दो बुधसे धनसञ्चय, दो शनिसे सर्वनाश, दो वृहस्पतिसे राजभोग, दो राहुसे अस्त्रभय और दो शुक्रके रहनेसे नाना प्रकारके सुख मिलते हैं। त्रिपापचक्रमें तीन रवि हों, तो वित्तनाश; तीन चन्द्र हों, तो रौप्य और शुभवस्त्रलाभ; तीन मंगल हों, तो जीवनसञ्चय; तीन बुध हों, तो रत्नलाभ; तीन शनि हों, तो वध और बन्धन; तीन वृहस्पति हों, तो अतुल ऐश्वर्य, तीन राहु हों, तो अस्त्राघात, तीन शुक्र हों, तो सर्वदा लाभ और यदि तीन केतु हों, तो ज्वरपीड़ा होती है। त्रिपापके वर्षमें नाना प्रकारके कष्ट हुआ करते हैं। (ज्योतिष०)

त्रिपिटक ( सं० क्ली० ) बौद्धोंका धर्मग्रन्थ। बुधकी मृत्युके उपरान्त उनके ५०० शिष्योंने पाटलीपुत्रके निकटवर्ती किसी गुहामें एकत्र हो कर उनकी उपदेशावलीका संग्रह किया। यही बौद्धोंकी पहली समिति है। इसी प्रकारकी धर्म-समितिका नाम सङ्घ है। उन्होंने प्रभुके उपदेशोंको तीन भागोंमें विभक्त किया (१) शिष्योंके प्रति बुद्धका उपदेश, (२) तत् प्रदर्शित नियम विधि, (३) तत्कथित धर्ममत। यही तीन पिटक सूत्र, विनय और अभिधर्म नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रथम पिटकमें नीति वा विनय सम्बन्धीय विषयोंका वर्णन है, द्वितीय पिटकमें सूत्रावली और तृतीय पिटकमें दार्शनिक तत्त्वसमूहकी बातें लिखी हैं। द्वितीय और तृतीय पिटक कभी कभी धर्म नामसे भी पुकारे जाते हैं। ये सब सूत्र शाक्यमुनिकृत बतलाये जाते हैं। इनमें कथोपकथनके छलसे नीतिशास्त्र और दार्शनिकतत्त्वकी आलोचना की गई है। नारायण, जनार्दन, शिव, ब्रह्मा, पितामह, वरुण, शङ्कर, कुबेर, शक्र, वासव-विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंका भी उल्लेख इस धर्मग्रन्थमें है। इण्डिया-आफिसकी लाईब्रेरीमें चीन-भाषामें लिखा हुआ जो बौद्धोंका त्रिपिटक है, वह २००० खण्डोंमें विभक्त है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि "अत्थकथा" नामक पालिभाषामें जो टिप्पणी थी, उसे अशोकके पुत्र महेन्द्रने सिंहलमें ले जा कर वहाँ उसका सिंहली-भाषामें अनुवाद किया और बुद्धघोषने प्रायः ४३० ई०में शेषोक्त ग्रन्थका अनुवाद पुनः पालिभाषामें किया। फिर किसी किसीका मत है, कि राजा वत्तगमनीके राजत्वकालमें ( ईसाके ८८—७६ सन् पहले ) सिंहलके याजकों और कनिष्कसे जो धर्मसभा संगठित हुई थी ( १०—४० ई० ) उसीमें उक्त मत लिपिबद्ध हुआ। सिंहलके याजकोंने जो कुछ लिखा है, वह सिंहली-भाषामें ही है और पीछे ५म ई० सन्‌में वह

पालिभाषामें अनुवादित हुआ; किन्तु पूर्वोक्त धर्म-सभामें संस्कृत भाषा ही व्यवहृत हुई थी। बौद्धधर्मके प्रतिष्ठित मत चिरकाल तक एकसे नहीं रहे। बीच बीचमें उनका परिवर्तन भी होता गया। महावंश नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि बुद्धकी मृत्युके बाद २०० वर्षके अभ्यन्तर १८ बार इसी प्रकार परिवर्तन हुआ था। बौद्धधर्मके जन्मभूमि भारतवर्षमें वैदिक अनुयायियों-ने इसका घोर विरोध किया था, किन्तु सिंहलमें इसके विरुद्ध कोई विशेष बात न छिड़ी थी। १६ शताब्दीमें तामिलोंने सिंहल पर आक्रमण कर बौद्धशास्त्रोंको तहस नहस कर डालनेका खूब प्रयत्न किया था, किन्तु वहांके याजकोंने यह वृत्तान्त दूत द्वारा श्यामदेशमें कहला भेजा। पीछे ब्रह्मदेशसे उपर्युक्त याजकोंने आ कर धर्मग्रन्थको रचा की। अठारहवीं शताब्दीका शेष न होने पाया था, कि सिंहलमें याजकोंके यत्नसे बौद्धधर्म-की जड़ पुनः मजबूत हो गई। तभीसे याजक लोग उत्साही हो कर बौद्धधर्मके मतका प्रचार कर रहे हैं। इन लोगोंके छापेखाने अलग हैं और वहींसे अनेक पुस्तक तथा छोटे छोटे धर्मग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

त्रिपिण्ड (सं॰ क्ली॰) त्रीणि पिण्डानि देयानि यत्र। पार्वण-श्राद्धमें पिता, पितामह और प्रपितामहके उद्देश्यसे दिये हुए तीनों पिण्ड।

त्रिपिण्डी (सं॰ स्त्री॰) त्रयाणां पिण्डानां समाहारः ङीप्। त्रिपिण्ड देखो।

त्रिपिब (सं॰ पु॰) कर्णाभ्यां जिह्वया च पिबति पा-क। वार्ध्रीणस लम्बकर्ण छागभेद; लम्बे कानवाला बड़ा खसी। यह अपने दोनों कान और जीभसे जल पीता है, इसीसे इसका नाम त्रिपिब पड़ा। ऐसा बकरा मनुके अनुसार पितृकर्मके लिए बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप (सं॰ क्ली॰) मर्त्त्यं, पातालापेक्षया तृतीयं पिष्टकं भुवनं वृत्तौ त्रिशब्दस्य त्रिभागवत् पूरणार्थता। १ स्वर्ग। २ आकाश।

त्रिपिष्टपसद् (सं॰ पु॰) त्रिपिष्टपे सीदति सद क्विप्। देवता।

त्रिपु (सं॰ पु॰) स्तेन, चोर।

त्रिपुट (सं॰ पु॰) त्रीणि पुटानि अस्य। १ सतीलक, मटर। २ तीर, किनारा। ३ हस्तभेद, एक हाथका माप। ४ तालकयन्त्र, ताला। ५ गोक्षुरवृक्ष, गोखरूका पेड़। ६ शर। ७ खेसारी। इसका पर्याय—त्रिपुट और खण्डिक है। इसका गुण—मधुर, तिक्त, तुवर, रूक्ष, कफ और पित्तनाशक, रुचिकर, ग्राहक, शीतल, खञ्ज और पङ्गुकारक तथा अत्यन्त वायु-वृद्धिकर है।

त्रिपुटक (सं॰ पु॰) त्रिपुट संज्ञायां कन्। १ वेदल खेसारी। २ फोड़ेका एक आकार। ३ त्रिभुज।

त्रिपुटा (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि पुटानि यस्याः। १ मल्लिका, चमेली। २ बेलीका फूल। ३ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ४ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ५ स्थूलैला, बड़ी इला-यची। ६ त्रिवृत्, निसोथ। ७ कर्णस्फोटलता, कनफोड़ा बेल। ८ रक्तत्रिवृत। ९ श्वेतत्रिवृत्। १० कुलत्थिका, कुलथी। ११ तन्त्रोक्तदेवीविशेष, तान्त्रिकोंकी एक देवी जो अभिष्टदात्री मानी जाती है।

यह त्रिपुटा देवी पारिजातवनमें सुन्दर रत्नमय सिंहासन पर कल्पवृक्षके नीचे रहती हैं। इनकी पूजा सदा करनी चाहिये। ये अभिष्टदात्री हैं।

त्रिपुटिन् (सं॰ पु॰) त्रीणि पुटानि सन्त्यस्य इनि ङीप्। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। २ विदलविशेष, खेसारी।

त्रिपुटी (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि पुटानि सन्त्यस्याः अच् गौरा॰ ङीष्। १ त्रिवृता, निसोथ। २ सूक्ष्मैला, छोटी इला-यची। त्रयाणां ज्ञातृज्ञानज्ञेय रूपाणां पुटानामा-काराणां समाहारः ङीप्। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप तीनों पुट।

त्रिपुटरूप द्वैत या दोके अभावके लिये सभी भूतों-की उत्पत्तिके पहले केवल सर्वव्यापी चैतन्य था, इसके सिवा और कुछ नहीं था। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इन तीनोंका नाम त्रिपुट है। प्रलयकालमें यह त्रिपुटी नहीं रहती है। जागतिक सृष्टिकालमें इस त्रिपुटीका पृथक् पृथक् ज्ञान हुआ करता है। प्रलयकालमें फिर अभिन्नज्ञान नहीं रहता। जो ही ज्ञाता है, वे ही ज्ञेय हैं और वे ही ज्ञान भी हैं। अतः सब एक ही है।

उत्पन्न विज्ञानमय कोषको ज्ञाता कहते हैं। मनो-मय कोष ज्ञान है तथा शब्द स्पर्शादि सभी विषय ज्ञेय हैं। इसके समूहका नाम त्रिपुटी है। उत्पत्तिके पहले

इस त्रिपुटीकी सत्ता असम्भव है। उस समय यह परिपूर्ण अद्वैतके स्वरूपमें रहती है। (पञ्चदशी।)

शंकराचार्यरचित 'त्रिपुटी प्रकरण' एवं आनन्दतीर्थ और प्रज्ञानन्दकृत-त्रिपुटी प्रकरणकी टीकामें इसका विस्तृत विवरण देखो।

त्रिपुटीफल (सं० पु०) त्रिपुटी पुटत्रयं फलेऽस्य। एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़।

त्रिपुण्ड्र (सं० क्लो०) त्रयाणां पुण्ड्राणां इक्षुवदाकाराणां समाहारः। तिलकभेद, भस्मको तीन आडी रेखाओंका तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। त्रिपुण्ड्र धारण कर शिव-पूजा करनेका विधान है।

बिना भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाये शिवपूजा निष्फल है। शैवको त्रिपुण्ड्र और वैष्णवको ऊर्द्धपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जो लोग त्रिपुण्ड्रको निन्दा करते, वे मानों महादेवकी निन्दा करते हैं, जो इसे ललाट पर लगाते, वे मानों शिवजीको धारण करते हैं। तिलक और शिवपूजा देखो।

त्रिपुनित्तुर—मन्द्राजके कोचीन-राज्यके अन्तर्गत कनयनूर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ९°५७' उ० और देशा० ७६° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३००० के लगभग है। शहरसे १½ मील दूर एक पहाड़के ऊपर सुन्दर भवन बना हुआ है, जिसमें कोचीनके राजा अकसर आ कर रहा करते हैं।

त्रिपुर (सं० स्त्री०) त्रिगुणिताः पुरः समासान्तविधेरनित्यत्वात् आर्वेन अच् समा०। मयदानवके बनाये हुए असुरोंके तीनों नगर।

त्रिपुर (सं० क्लो०) त्रयाणां पुराणां समाहारः। असुरोंके तीनों पुर। त्रिपुरका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है,—'तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तारकासुरके तीन लड़कोंने कठोर तपस्या आरम्भ की। ब्रह्मा उनलोगोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो वर देनेको उद्यत हुए। इस पर उन्होंने प्रार्थना की, कि जिससे हम लोग समस्त भूतोंसे अवध्य होवें, वही वर देनेकी कृपा करें। पर ब्रह्मा यह वर देनेको राजी न हुए। बाद इन तीनों भाइयोंने मिल कर फिर ब्रह्मासे इस प्रकार निवेदन किया, 'हम लोग यही वर चाहते हैं, कि हम तीनों तीन पुरमें रह कर जनसमाजमें पूजित होवें और हजार वर्ष बाद जब हम तीनों एक साथ मिल जावें, उस समय यदि कोई एक वाणसे तीनों पुरोंका एक साथ संहार कर सके, तो हम लोगोंकी उसीके हाथसे मृत्यु होगी।' ब्रह्मा तथास्तु कह कर चल दिये। इस समय इन तीनोंने तीन पुर निर्माण करनेके लिये मयदानवको नियुक्त किया। मयदानवने अपने तपोबलसे स्वर्गमें काञ्चनमय, अन्तरीक्षमें रजतमय और मर्त्यलोकमें लौहमय तीन पुरोंका निर्माण किया। हर एक पुर सौ योजन विस्तृत था और वह गृह, अट्टालिका, प्राकार, तोरण आदिसे सुशोभित होता था। तारकाक्ष स्वर्णमय पुरीका, कमलाक्ष रजतमय पुरीका और विद्युन्माली लौहमय पुरीका अधीश्वर हुआ। इन लोगोंने जब अस्त्रके बलसे तीनों लोक पर आक्रमण किया, तब असुर लोग देवताओंको नाना प्रकारके कष्ट देने लगे। तारकाक्षको हरि नामक एक पुत्र था जिसने कठोर तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर मांगा कि "मैं अपने पुरमें एक ऐसा तालाब प्रस्तुत करनेकी इच्छा करता हूं कि जिसका जल यदि अस्त्र निहत वीरोंके ऊपर फेंका जाय तो वे पुनर्जीवित हो जावें।" इससे वे और भी दुर्द्धर्ष हो गये। देवताओंने पद पद पर लाञ्छित हो ब्रह्माकी शरण ली और विनयपूर्वक जब उनसे असुरोंके दौरात्म्यकी कथा कह सुनाई तब ब्रह्माने कहा, 'ये तीनों दानव मेरेही वरके प्रभावसे अभिमानमें चूर चूर हो रहे हैं, शीघ्र ही उन लोगोंका सर्वनाश होगा। महादेवके सिवा और कोई देवता एक वाणसे इन तीन पुरोंको भेद नहीं सकता। अतः हम लोग उन्हींके पास चलें। इससे तीनों पुरोंका अति शीघ्र नाश होगा और ये तीनों दानव मारे जायगे।' यह कह कर वे सबके सब महादेवके समीप गये। महादेवने देवताओंकी बात सुन कर कहा, 'तुम लोग पहले हमारे आधे बलको लेकर युद्ध करनेको तैयार हो जावो।' इस पर देवगण बोले, 'हम लोग आपको आधी शक्ति ले कर लड़ें, ऐसा सामर्थ्य हममें नहीं है, बल्कि आप ही हम लोगोंके आधे बलको ग्रहण करें तो और अच्छा हो।' तब महादेव देवताओंके आधे बलको ले कर और भी अधिक बलशाली हो उठे। इसी समयसे शिवका नाम महादेव

हुआ है। महादेवने देवताओं से कहा,-'तुम लोग यदि मेरे लिये धनुष और रथ तैयार कर दो, तो मैं बहुत जल्द त्रिपुराको दग्ध कर डालूंगा।' तब देवगण विश्वकर्मा-को बुला कर रथ बनवाने लगे। उन्होंने पर्वत, वन, द्वीप और भूतों से परिवृत विशाल नगरसम्पन्न वसुन्धरा-को महादेवका रथ बनाया; मन्दिर, पर्वत, दानवालय और जलनिधि रथका अक्ष, भागीरथी जङ्घा; दिशाएं भूषण, नक्षत्र ईषा, सत्ययुग और स्वर्गयुग काष्ठ; भुजग-राज, अनन्तदेव, कुबेर, हिमालय, विन्ध्याचल, सूर्य और चन्द्र चक्र; सप्तर्षिमण्डल चक्ररक्षक, गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु और आकाशपृष्ठभाग, जल और नदी बन्धनसामग्री, दिन, रात्रि, कला, काष्ठा, छः ऋतु और समस्त दीप्तग्रह अनुकर्ष; तारागण वरूथ; धर्म, अर्थ और काम त्रिवेणु, फलपुष्पसे सुशोभित ओषधि और लता घण्टा; रात्रि और दिनपूर्व और अपरपक्ष, धृतराष्ट्रप्रमुख दशनागपति ईषा; महोरगगण योक्त्र; सम्वर्त्तक मेघ युगचर्म, काल पृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनञ्जय और अन्यान्य नागगण अश्वोंके केशबन्धन, समस्त दिशाएँ और धर्म, सत्य, तप, तथा अर्थ अश्वरश्मि; सन्ध्या, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति और ग्रह-नक्षत्रादिसे सुशोभित नभोमण्डल बाह्या-वरण, लोकेश्वर, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर अश्व; पूर्व-अमावस्या पूर्वपौर्णमासी, उत्तर अमावस्या और उत्तर पौर्णमासी अश्वयोक्त्र, पूर्व अमावस्याके अधिष्ठित पितृगण, युगकीलक, मन, रथोपस्थ, सरस्वती, रथका पश्चाद्भाग; शक्र-चापसमन्वित विद्युत पवनोद्धूत पताका; वषट्कार प्रतोद एवं गायत्री शीर्षबन्धन हुई। विष्णु, सोम और हुतासन ये तीनों महात्माके योगसे महादेवके बाण कल्पित हुए। अग्नि उस बाणका काण्ड; सोम फलक और विष्णु तीक्ष्णधारस्वरूप हुए। पहले ईशानके यज्ञमें जो वर्ष कल्पित हुआ था, अभी उसने शरासनका रूप और सावित्रीने मौर्वीका रूप धारण किया। कालचक्रसे अभेद्य दिव्यवर्म वह्निभूत हुआ। मैनाक और मेरुपर्वत ये दोनों ध्वजयष्टि हुए। सौदामिनी सहित मेघमाला पताका हुई। इस प्रकार अपूर्व रथ शरासनादिके तैयार हो जाने पर देवताओंने यह वृतान्त महादेवसे जा सुनाया। महादेवने उस पर अपने प्रधान समस्त अस्त्रोंको रखा और आकाशको ध्वजयष्टि बना कर उसके ऊपर महा-वृषभको सन्निवेशित किया। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर, रथके पार्श्वरक्षक, अथर्व और आङ्गिरस, चक्र-रक्षक तथा ऋग्वेदादि पार्श्वचर हुए। 'ओंकार' रथके सामने लिख दिया गया। महादेवने छः ऋतुओंसे युक्त सम्वत्सरको विचित्र शरासन बना कर अपनी छायाको ही मौर्वी बनाया। भगवान् रुद्र साक्षात् कालस्वरूप हैं, संवत्सर उनके शरासन हैं, इसी लिये उनकी छायारूप कालरात्रि उस शरासनकी मौर्वी हुई। विष्णु, अग्नि और चन्द्र ये लोग उनके बाणस्वरूप हुए। महादेवने इन शरोंपर भृगु और अङ्गिराकी यज्ञसम्भूत दुःसह क्रोधाग्निको स्थापन किया। महादेवने इस रथ पर चढ़ कर देवताओंसे कहा,-'अभी कौन महात्मा मेरे सारथीका काम करेंगे?' इस पर देवगण बोले,—"आप जिनको आज्ञा देवें, वे ही आपके सारथी होंगे।" फिर महादेवने कहा,—"जो मुझसे अधिक श्रेष्ठ हों, तुम लोग उसका विचार कर उन्हें बहुत जल्द सारथी बना कर भेजो।" यह सुन कर देवताओंने पितामहको शरण ले कर कहा, "इस युद्धमें आप हीको सारथीका काम करना होगा।" पितामह इसे स्वीकार कर महादेवके सारथीके पद पर अभिषिक्त हुए। तब महादेव विष्णुसोमाग्नि-समुत्पन्न शर ग्रहण कर रथ पर चढ़े। कमलयोनि (ब्रह्मा) भूतनाथके वाक्यानुसार त्रिपुरकी ओर रथ हांकने लगे। शूलपाणि महादेव जब क्रोधसे अधीर हो उठे, तब तीनों लोक कांपने लगा। उस समय वह रथ सोम, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र तथा उस शरासनके संचालनसे चलन सका। तब नारायणने उस शरभागसे निकल कर वृषभ-रूप धारण कर उस महारथको अपनी पीठ पर रख लिया। महादेव घोड़ोंकी पीठ और वृषभके मस्तक पर सवार हो कर सिंहनाद करते हुए दानवपुरकी ओर देखने लगे और उन्होंने घोड़ेके स्तनको काट डाला तथा वृषभके खुरोंको दो खण्डोंमें विभक्त किया। तभीसे घोड़े स्तनहीन हैं और गोसमूहके खुर दो भागोंमें बंटे हुए हैं। बाद महादेव शरासनकी प्रत्यञ्चा खींच और उसे पाशु-पतास्त्रमें संयोजित कर त्रिपुरकी अपेक्षा करने लगे।

तब वे तीनों पुर एक साथ मिल गये। यह देख कर देवता, सिद्ध और महर्षिगण अत्यन्त आह्लादित हुए और वे महादेवका स्तव करने लगे। तब त्रिलोकेश्वर महादेवने दिव्यशरासन खींच कर तीनों पुरों पर लक्ष्य करते हुए उस त्रैलोक्यसारभूत शरको छोड़ा। उस शरसे त्रिपुर उसी समय भूतल पर गिर पड़ा। असुरगण घोरतर आर्त्तनाद करने लगे। तब भगवान् शङ्करने उन्हें दग्ध कर पश्चिमसागरमें फेंक दिया। चारों ओरसे महादेवके स्तुति-गान होने लगे। महादेवके क्रोधके प्रभावसे त्रिपुर भस्म हो गया। बाद महादेवने अपने क्रोधको रोका। पृथ्वी भारशून्य हो गई, देवगण स्वर्गराजमें अधिष्ठित हुए। (भा॰त कर्णप॰ ३५ अ॰, तथा हरिवंश।)

त्रिपुरघ्न (सं॰ पु॰) त्रिपुरं हन्ति हन-टक। महादेव। त्रिपुर देखो।

त्रिपुरदहन (सं॰ पु॰) महादेव, शिव।

त्रिपुरदास—एक भगवद्भक्त कायस्थ। ये पहले वृटिश गवर्मेण्टके अधीन मुहर्रिरका काम करते थे। इसमें इन्हें बहुत आमदनी होती थी। इनके पास जितना धन था, सभी इन्होंने भगवत्सेवामें लगा दिया। प्रति वर्ष गोवर्द्धन पर्वत पर ये श्रीनाथजीको शीतवस्त्र देते थे। सरकारी नौकरी छूट जाने पर ये दरिद्र हो गये। जमा कुछ भी रकम न थी, जो कुछ आमदनी होती थी, उसे भगवत्सेवामें खर्चकर डालते थे। इस समय इनकी अवस्था शोचनीय हो जाने पर भी ये श्रीनाथजको येनकेन प्रकारेण गात्रवस्त्र देते ही थे। एक वर्ष दुर्भाग्यवश जब वस्त्रका इन्तजाम न हो सका, तब इन्होंने अपनी पीतलकी दवात बेच कर उसी पैसेसे श्रीनाथजीका गात्रवस्त्र खरीद दिया। इस बार भण्डारीने इसे श्रीनाथजीको न देकर कहीं दूसरी जगह रख दिया। रातमें भण्डारीको स्वप्न सुनाया कि, 'मैं जाड़ेसे कष्ट पा रहा हूं, और तूने त्रिपुरदासके दिये हुये कपड़ेको उठा रखा है, हजारों शाल-बनात रहते भी मेरा जाड़ा नहीं जाता। अतः त्रिपुरदासके कपड़ेको हमें शीघ्र दो।

(भक्तमाल)

त्रिपुरभैरवी (सं॰ स्त्री॰) त्रिपुरा धर्मार्थकामानां दात्री सा चासौ भैरवी चेति। एक देवीका नाम। ये रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रपरिधाना और चतुर्भुजा हैं। इनके ऊर्ध्वदक्षिणहस्तमें माला, अधोदक्षिण-हस्तमें उत्तम पुस्तक, दोनों वामहस्तोंमें अभयवर है, शरीरकी दीप्ति सहस्रसूर्यकी नाईं उज्ज्वल है, तीन नेत्र हैं, चाल गजेन्द्रसी है, दोनों स्तन बड़े बड़े हैं, श्वेतप्रेतके ऊपर बैठी हुई हैं तथा सर्वालङ्कारभूषिता और सहास्यवदना हैं। इनके मस्तक, वक्षस्थल और कटि इन तीन अङ्गोंको छोड़ कर शेष मुण्डमालासे सुशोभित है। तीनों नेत्र मधु पानसे भ्रमित हैं तथा ओष्ठाधर रक्तवर्ण है। इसी प्रकार त्रिपुरभैरवीका ध्यान करना चाहिये। (कालिकापु॰ ७४ अ॰)

त्रिपुरभैरवीके पूजोपकरण-पात्रादि और आसनादिका किसी दूसरी पूजामें व्यवहार न करना चाहिए।

त्रिपुरभैरवीकी पूजा करनेका समय तीन मुहूर्त्तकाल लिखा है। इनकी पूजामें तीस बारसे कम जप नहीं करते हैं। अङ्गुष्ठ, मध्यमा और अनामिका इन तीन उंगलियोंके योगसे पुष्पादि चढ़ाते और माला द्विगुण करके पहनाते है। साधक चर्मासन पर बैठ कर दोनों पैरोंको पीछेकी ओर रख एकाग्रचित्तसे निर्जनस्थानमें इस देवीकी पूजा करते हैं। विघ्नसाधक पुष्प और नैवेद्यादिको बायें हाथसे चढ़ाते हैं। इस देवीको यदि विधानपूर्वक पूजा न की जाय, तो पूजकके शरीरमें अवश्य ही निन्दितव्याधि उत्पन्न होती है। स्त्री, पुत्र और भृत्यादि अवशीभूत होते हैं तथा पीछे उनको शस्त्राघातसे मृत्यु होती है। यह त्रिपुरभैरवी योगनिद्रा जगज्जननी मायाका रूपभेद है। एक ही माया अनेक रूपमें क्रीड़ा करती है। (कालिकापु॰ ७४ अ॰)

त्रिपुरमल्लिका (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि पुराणि दलावृत्तयो यस्याः, सा चासौ मल्लिका चेति। पुष्पवृक्षविशेष, एक प्रकारके चमेलीका पेड़।

त्रिपुरा (सं॰ स्त्री॰) त्रीन् धर्मार्थकामान् पुरति पुरतो ददाति पुर-क, ततष्टाप्। देवीविशेष, त्रिपुरादेवी कामाख्याकी एक मूर्त्तिका नाम। वाग्भव, कामबीज और ईश्वर, धर्म, अर्थ तथा कामादिके साधक और ये कुण्डलीयुक्त हो कर त्रिपुरादेवीके मूलमन्त्र होते हैं। कामरूपिणी कामाख्या तीन प्रकारके पदार्थ दान करती

हैं और तीनके आगे पूजी जाती हैं। इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। ( कालिकापु० ६३ अ० )

इस देवीका मण्डल त्रिकोण—तीन रेखासे निर्मित है, तीन पुर मन्त्रके तीन अक्षर हैं, रूप तीन प्रकारके हैं और त्रिदेवोंकी सृष्टिके लिए कुण्डलीशक्ति भी तीन ही प्रकारकी है। ये सभी वस्तु तीन तीनकी हैं, इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। (कालिकापु० ६३ अ०)

इनका रूप सिन्दूरपुञ्जसदृश है, इनके तीन नेत्र हैं, चार भुजा हैं, बायीं ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पुष्प-धनु है, अधोहस्तमें पुस्तक है, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पांच बाण हैं, अधोहस्तमें अक्षमाला है, चार कुणप ( बरछा ) पीठ पर और एक रक्षाके लिए दण्डायमान हैं, जटाजूट है। अर्द्ध चन्द्र द्वारा बद्धकेश हैं, नग्ना हैं, मध्यदेशमें त्रिवलि द्वारा सुशोभिता हैं, सब अलंकारोंसे भूषिता हैं। सर्वाङ्गसुन्दरी हैं, मङ्गलमयी हैं, धनवितरणकारिणी हैं तथा सर्वलक्षणसम्पन्ना हैं। इसी प्रकार उस मूर्त्तिका ध्यान करना पड़ता है।

इसी रूपसे पहले ध्यान करना चाहिये और अपनेको भी तीन प्रकारके रूपोंमें समझना चाहिये।

द्वितीय त्रिपुरा मूर्त्ति इस प्रकार है—बन्धुकपुष्पसदृशी, जटाजूट तथा चन्द्रद्वारा मण्डिता, सर्वलक्षणसम्पन्ना, सब प्रकारके अलङ्कारोंसे सुशोभिता, उद्यत्सूर्यसदृश वस्त्रपरिधाना, पद्मपर्यङ्कसंस्थिता, मुक्ता और रत्नावलीयुता, पीनोन्नतपयोधरयुक्ता, त्रिवलिसुशोभिता, आसवके आमोदमें सन्तुष्टा, नेत्राह्लादकरी, विशुद्धा, जगत्की क्षोभिणी, त्रिनेत्रा, योनिमुद्राके प्रति ईषत् हास्यसमायुक्ता, नवयौवनसम्पन्ना, मृणालतुल्य चतुर्भुजा, बायीं ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पुस्तक, अधोहस्तमें अभय, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें अक्षमाला, अधोहस्तमें वर, मलद्रक्ता, सूर्याभा, कदम्बोपवनान्तरिता, शुभदायिनी और कामाह्लादकारी हैं। यही मनोहरा द्वितीय त्रिपुरामूर्त्तिका ध्यान है। ( कालिकापु० ६३ अ० )

तृतीय त्रिपुराकी मूर्त्ति जवाकुसुम-सदृशी, मुक्तकेशी, शुभानना और हास्यकारी है। ये सदाशिवकी प्रेतवत् स्थापन कर उन्होंके हृदय पर पद्मासनके रूपमें बैठी हुई हैं। ग्रीवादेशसे आपादलम्बिनी रक्तोत्पलमिश्रित मुण्डमालाधारिणी, पीनोन्नतपयोधरा, चतुर्भुजा, दिगम्बरी, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें अक्षमालाधारिणी, अधोहस्तमें वरदा, बायीं ओरके ऊर्द्ध हस्तमें भी अक्षमालाधारिणी तथा अधोहस्तमें वरदायिनी, त्रिनेत्रा, हास्यमुखी, मलद्रुधिरभोगार्त्ता और सर्वांग सुन्दरी हैं। साधकको इसी प्रकार तीसरी मूर्त्तिका ध्यान करना चाहिये।

( कालिकापु० ६३ अ० )

आद्यरूप वाग्भाव, द्वितीय कामबीज और तृतीय डामर एवं मोहन नामसे प्रसिद्ध है। साधकको चाहिये कि वे पहले एक एक करके तीनों रूपोंका ध्यान कर बाहरके सदृश हृदयाभ्यन्तरमें भी तीनों मन्त्रोंको उच्चारण कर षोडशोपचारसे प्रत्येकको पूजा करें। देवीकी तीनों मूर्ति एकत्र कर उसके बीचमें तीनों मन्त्र एक साथ करके हृदयमें रखें।

कामरूपिणी त्रिपुरादेवीकी नौ प्रकारसे पूजा की जाती है। विधिवत् त्रिपुराकी पूजा करनेसे साधकके अभीष्ट पूर्ण होते हैं और अन्तमें वे देवलोकको जाते हैं।

( कालिकापु० ६३ अ० )

त्रिपुरा—पूर्व-बङ्गालका एक प्रान्त-भूभाग। इस प्रदेशके कई अंश जिला-त्रिपुरा नामसे बङ्गालके लाटके अधीन और कई अंश पार्वत्य-त्रिपुरा नामसे त्रिपुराके प्राचीन राजवंशके अधीन हैं।

जिला त्रिपुरा—यह अक्षा० २३°-२´ से २४° १६´ उ० और देशा० ९०° ३४´ से ९१° २२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २४९८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बङ्गालके अन्तर्गत मैमनसिंह जिलेके कई अंश और आसामके अन्तर्गत श्रीहट्ट जिला, दक्षिणमें नोआखाली जिला, पश्चिममें मेघना नदी और पूर्वमें पार्वत्य-त्रिपुरा है। जिला-त्रिपुराको पूर्व-सीमा ही वृटिशभारतकी पूर्वान्त-सीमा है। १८५४ ई०में भारत गवर्मेण्टकी ओरसे मि० लिसेष्टरने और त्रिपुराराजकी ओरसे मि० क्याम्बेलने यह सीमा निर्द्धारित की। पहले यह जिला चट्टग्रामके कमिश्नरके अधीन था। १८७५ ई०से यह ढाकाके कमिश्नरके अधीन हो गया।

इस जिलेकी भूमि सब जगह समतल है, केवल पूर्वांशमें कहीं कहीं लालमाइ पर्वतका कुछ कुछ अंश

है। नदी और खाड़ीकी संख्या अधिक है। देशका वाणिज्य प्रायः नाव द्वारा ही चलता है। ग्रीष्मकालमें नदी और खाड़ीके सूख जाने अथवा जलके कम जाने पर भी उसी राह हो कर वाणिज्य होता है। बड़ी बड़ी नदियोंमें वर्षाकालमें बाढ़ आ जाती है, जिससे निकटवर्ती घर आदि जलमग्न हो जाते हैं। निम्नस्थानकी मट्टी बहुत हलकी और उच्च स्थानकी कड़ी पाई जाती है।

लालमाई पहाड़ पर कपासकी खेती अधिक होती है। जङ्गल परिष्कार किये जाने पर इस पहाड़ पर सब जगह बैलगाड़ी आ-जा सकती है। इस पहाड़के उत्तर मयनामती पहाड़ पर पार्वत्य-त्रिपुराके महाराजकी कई एक अट्टालिकायें हैं, वहां जिला-त्रिपुराका प्रधान शहर कुमिल्ला है जहां अङ्गरेज लोग वास करते हैं। समस्त लालमाई पहाड़ पहले महाराजके अधीन था; किन्तु कुछ दिनसे मयनामतीके घरके सिवा गवर्मेण्टने और कहीं भी महाराजका अधिकार न दिया। अन्तमें महाराजने प्रायः २८ हजार रुपये दे कर समस्त पहाड़ खरीद लिया है। त्रिपुराको राजवंशी लालमाई (लालमयी) नामक किसी राजकन्याके नामसे इस पहाड़का नामकरण हुआ है।

इस जिलेके पश्चिममें मेघना नदी प्रवाहित है। केवल इसी नदीमें बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं। गोमती, डाकातिया तथा तितास प्रभृति नदियोंमें डोंगी सब समय चलती है।

मेघना—चांदपुरके निकट मेघनामें गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदी मिली हैं। तीन नदियोंका जल मिल जानेसे इस जिलेकी मेघना नदीका परिसर और वेग अधिक हो गया है। नदीमें कई जगह चर भी पड़ गया है। इस नदीमें आना जाना बहुत खतरानाक है। नदीमें धंसे हुए बहादुरी काठ और बड़े बड़े वृक्षकी शाखाओंमें टकरानेसे प्रायः नावें नष्ट हो जाया करती हैं। रेनेल साहबके समयमें ब्रह्मपुत्र और मेघनाका सङ्गम वर्त्तमान स्थलसे ६० मील उत्तर भैरवराज नामक स्थानमें था। कालक्रमसे चर पड़ जानेके कारण नदीकी गति बदल गयी है। इस नदीके निकटवर्त्ती स्थानमें 'बरिसालके कमान'की नाईं कामानका शब्द होता है। यह शब्द कहांसे आता है, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता।

गोमती—मेघनाके बाद ही गोमती इस जिलेकी प्रधान नदी है। यह लालमाई नदीसे निकली है और जिला त्रिपुराको दो समान भागोंमें विभक्त करती है। जिलेका प्रधान शहर कुमिल्ला नगर इसीके किनारे अवस्थित है। नगरसे ८ मील उत्तरमें यह नदी इस जिलेमें प्रवेश करती है। दाउदकान्दिके निकट गोमती मेघनामें मिलती है। वर्षाकालमें यह नदी बहुत प्रबल हो उठती है। शीतकाल और ग्रीष्मकालमें यह कई जगह सूख जाती है और लोग इसे पैदल पार हो जाते हैं। कुमिल्ला छोड़ कर इसके किनारे जाफरगञ्ज तथा पाँचपोखरिया नामक और दो प्रधान शहर पड़ते हैं। नदीकी लम्बाई कुल ६६ मील है जिसमेंसे ३६ मील इसी जिलेमें पड़ता है।

डाकातिया—यह पार्वत्य-त्रिपुरासे निकल कर सुआगाजी नामक स्थानमें त्रिपुरा जिलेमें प्रवेश करती है। इसकी लम्बाई १५० मील है। यह पश्चिमकी ओर लाचाम, चितोषी और हाजीगञ्जके निकट होती हुई पश्चिमकी ओर बह गई है। फिर वहांसे दक्षिणकी ओर ६३ मील आनेके बाद नोआखाली जिलेके रायपुर नामक ग्रामके निकट मेघनामें मिली है।

तिताश—यह नदी इस जिलेके उत्तरमें प्रवाहित है और लालपुरके चरके निकट मेघनामें गिरी है। इसकी लम्बाई ८२ मील है। इसके किनारे ब्राह्मणबाड़िया पड़ता है।

उक्त नदियोंके सिवा सुहरी, विजयगांग, बूढ़ीगाँग आदि और भी कई एक छोटी छोटी नदियां हैं। इन सब नदियोंके पार होनेके ८ घाट हैं। गोमतीमें कुमिल्ला, कम्पनीगञ्ज और मुरपुर; सुहुरीमें शुभापुर, पशुराम और कारबुनी; तितासमें उजानी शहर और विजयगाङ्गमें नयांनपुर नामक स्थानमें पार होनेके घाट हैं।

समस्त जिलेमें १०४ खाड़ियां हैं, जिनमेंसे चांदपुरकी खाड़ी और गोकर्णकी खाड़ी विशेष विख्यात है। इनमें बड़े बड़े गर्त्त भी हैं, जिनमेंसे सराइल परगनेमें आटकोपागर्त्त, ककाइगर्त्त, बड़ालेगर्त्त, चाल्तागर्त्त, काजलागर्त्त, आलतागर्त्त, खोलघारीगर्त्त, बबदा-

खाँनं परगनेमें बड़ागत्त, वांदचाड़ गत्त और नुरनगर परगनेमें मनधारीगत्त ही विशेष विख्यात है। इनमेंसे कोई भी १ वर्गमीलसे कम नहीं है। बड़ालेगत्त ५.८ वर्गमील विस्तृत है।

इस जिलेके उत्तरमें मछलीका कारबार है। ये सब मछलियाँ ढाका और चट्टग्राम भेजी जाती हैं।

जिलेसे शीतलपाटी बनाने योग्य घास और सोलाकी रफ्तनी होती है।

जिलेका अधिकांश खेत पङ्कमय होनेके कारण धानकी फसल अच्छी लगती है और पौधा बहुत लम्बा बढ़ता है। सराइल परगनेमें २८ फुट लम्बा पयाल देखा गया है।

लालमाई पहाड़ पर १८७१ ई०में बहुतसी लोहेकी खानें आविष्कृत हुईं; किन्तु अच्छा लोहा और खानमें अधिक कोयला नहीं रहनेके कारण खानका काम आरम्भ नहीं हुआ।

इस देशका आम बहुत खराब होता है। अन्य स्थानोंकी नाईं आमकी लकड़ी भी उतनी अच्छी नहीं होती है। सुपारी, बेत, खजूर आदिके रससे आमदनी होती है। यहांके जङ्गलोंमें हाथी, बाघ, चीता, जंगली सूअर, गीदड़ और भैंस अधिक पाये जाते हैं। तरह तरहके पक्षी भी मिलते हैं, जो चीन और चट्टग्राम भेजे जाते हैं। यहां भैंसेके चमड़ेका व्यवसाय भी होता है।

त्रिपुरामें तिपारा नामक एक असभ्य जातिका वास है। ये बङ्गालियोंसे कोई सम्पर्क नहीं रखते। इन लोगोंकी भाषा स्वतन्त्र है; किन्तु कोई वर्णमाला नहीं है। एक प्रकारका विकृत हिन्दूधर्म ही इन लोगोंका धर्म है।

सराइल परगनेमें एक प्रकारका मसलिन कपड़ा प्रस्तुत होता है, जिसे ताञ्जिब कहते हैं और यह ढाकाके विख्यात मसलिनसे किसी अंशमें कम नहीं है। इसका सूत हाथसे काता जाता है। इसके सिवा शीतलपाटीका व्यवसाय भी यहां खूब चलता है। चपटा नामक स्थानमें पहले अंगरेजोंके अधीन बाफता कपड़ेका कारबार था। अब उसका बिलकुल कारखाना बन्द हो गया है।

त्रिपुरा जिलेमें अंगरेजोंके राजत्वकालका इतिहास—१७६५ ई०में बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंके साथ त्रिपुरा भी अंगरेजोंके हाथ आ गया। इसके पहले १५८८ ई०में त्रिपुरा और नोआखाली सरकार सुवर्णग्रामके अधीन था। १७२२ ई०में सरकार सुवर्णग्राम और सुलतान सुजाने जो जो अंश जीत कर इस सरकारके अन्तर्भुक्त किये थे, वे १३ चकलोंमें विभक्त हुए। उनमेंसे त्रिपुरा और नोआखाली चकला जहाङ्गीरनगरके अधीन था। चकला जहाङ्गीरनगर पुनः कई एक जमींदारियोंमें विभक्त हुआ। जिनमें जलालपुरके जमींदार प्रधान गिने जाते थे। १७२८ ई०में सुजा खाँने बङ्गालको २५ "इहतिमाम" नामक अंशोंमें विभक्त किया। इस समय पूर्वोक्त जलालपुर जमींदारीको एक 'इहतिमाम' बनाया गया। नोआखाली और त्रिपुरा इसी इहतिमामके अन्तर्गत था। १७६५ ई०में अंगरेजोंका बङ्गालमें अधिकार हो जानेसे जलालपुरका शासन-भार राजा हिम्मतसिंह और जमारत खाँ नामक दो जमींदारोंके हाथ सौंप दिया गया। बाद १७६९ से १७७२ ई० तक तीन पुरुष अंगरेजोंके तत्त्वावधानमें रहे, जिनके नाम मि० कलसाल, मि० हारिस और मि० ल्यम्बर्ट थे। १७७२ ई०में एक व्यक्तिको कलक्टरकी उपाधि दे कर उनके हाथ शासन-भार सौंपा गया। १७७४ ई०में प्रोभिन्सियल कौन्सियल स्थापित हुई। तभीसे १७८० ई० तक कौन्सिलके नियुक्त नायब ही राजत्वसम्बन्धके सभी कार्य करते थे और दूसरे दूसरे कार्य कई एक शिक्षित अंगरेज कर्मचारियों द्वारा किये जाते थे। १७८१ ई०में नोआखाली और त्रिपुरा स्वतन्त्र विभाग गिना जाने लगा। बहुतसे अंगरेज-कर्मचारीके हाथमें इस नूतन विभागका भार रहा, किन्तु उन लोगोंके हाथमें मजिष्ट्रेटकी क्षमता न थी। अन्तमें १८२२ ई०में त्रिपुरा और नोआखाली पुनः विभक्त किया गया। इसके बाद भी सीमा और परगनेकी व्यवस्था ले कर समय समय पर बहुत परिवर्त्तन हो गया है।

इस जिलेमें तीन विभाग हैं—सदर उपविभाग, चांदपुर और ब्राह्मणबाड़िया उपविभाग। सदर उपविभागमें कुमिल्ला, मुरादनगर, दाउदकान्दि, चांदिना,

जगन्नथदीघी और लाक्साम नामक छह थाने हैं। इस उपविभागमें प्रायः ४ हजार ७ सौ ग्राम लगते हैं। ब्राह्मणबाड़ियामें कसबा, नबिनगर और ब्राह्मणबाड़िया ये तीन थाने तथा चांदपुरविभागमें चाँदपुर और हातीगच्छ नामक दो थाने हैं। समग्र जिलेमें ११७ परगने पड़ते हैं। इसका क्षेत्रफल २४९१ वर्गमील है। लोकसंख्या लगभग २११७९९१ है जिनमेंसे मुसलमानोंको संख्या अधिक है।

पार्वत्यत्रिपुरा—यह स्थान त्रिपुराके प्राचीन राजवंशके अधीन है। राजा अंगरेजोंके मित्र हैं। अंगरेजोंकी ओरसे एक पोलिटिकल-एजेण्ट इस राजसभामें रहते हैं। आगरतला नामक स्थानमें राजधानी है। यह नगर हाउड़ नदीके ऊपर अवस्थित है। इस राज्यके उत्तरमें आसामके अन्तर्गत श्रीहट्ट जिला, दक्षिणमें नोआखाली और चट्टग्राम, पूर्वमें लुसाई और चट्टग्रामका पार्वत्यप्रदेश और पश्चिममें बङ्गालके अन्तर्गत जिला त्रिपुरा है। त्रिपुराराजको पार्वत्य-राज्य छोड़ कर जिला-त्रिपुरामें चकला-रोसनाबाद नामक एक बड़ी जमींदारी है। वृटिशगवर्मेण्टको इसका कर देना पड़ता है। समग्र राज्यसे राजाको जो कुछ आमदनी होती है, उससे अधिक इस जमींदारीकी आमदनी है। सम्भवतः राजा मुसलमानोंके करद थे। समतल भूभागके लिए वे मुसलमानको कर देते थे। मुसलमानोंने लुसाइयोंके हाथसे राज्यका उत्पात दूर करनेके लिए शायद जान-बूझ कर ही पार्वत्य-प्रदेश राजाके हाथसे किसी दिन लेनेकी चेष्टा न की। इससे जाना जाता है, कि राजाके राज्यमें कुछ करद जमींदारी और कुछ स्वाधीन राज्यकी सृष्टि हुई होगी।

प्रति राजाकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारीके लिए बहुत गड़बड़ी मचती थी। उत्तराधिकारी कुकियोंके साथ मिल कर घमसान युद्ध करते थे। राजा स्वयं जो भविष्यत्में उत्तराधिकारी निरूपित कर देते थे। जो भविष्यत्में राजा होते, उनकी उपाधि युवराज होती थी। युवराजके बाद बड़े ठाकुरका पद मिलता था। राजाकी मृत्युके बाद युवराज राजा और बड़े ठाकुर युवराज होते थे। राजाके पुत्र रहने पर भी युवराज ही राज्य पाते थे। यदि राजा युवराजादि नियुक्त किये बिना मर जाते, तो उनके ज्येष्ठ पुत्र ही गद्दी पर बैठते थे। इस तरह युवराजके राजा होने पर वे बड़े ठाकुरको ही युवराजका पद देनेमें बाध्य होते थे। उनके जीवित रहते भी बड़े ठाकुर एक दिन तक राज्य भोग कर सकते थे। पहले इष्ट-इण्डिया कम्पनी प्रत्येक राजाके राज्यारोहणके समय कुछ नजराना पाती थी और वह उन्हें पोशाक उपाधि तथा सनद प्रदान करती थी। वर्तमान समयमें राजा स्वाधीनभावसे सभी कार्य कर सकते हैं। १८७१ ई०से एक पोलिटिकल-एजेण्ट नियुक्त हुए हैं। राजाके साथ अंगरेजोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक राजाके राज्यारोहणके समय अभी भी वृटिश-गवर्मेण्टको पार्वत्य-त्रिपुराका एक वर्षके राजस्वका अर्द्धांश उत्तराधिकार-कर-स्वरूप (Succession-duty) देना पड़ता है।

राजा स्वेच्छाचारी होते हैं। राजाकी इच्छाके अनुसार आदेश ही आईन है। ईंटोंके घर बनाने, तालाब खोदवाने और विवाहोत्सवमें पालकी व्यवहार करनेमें राजाकी आज्ञा लेनी पड़ती है। राजा चिरानुगत प्रथाओंको मानते हैं। प्रायः सभी राजकर्मचारी राजाके स्वसम्पर्कीय व्यक्ति होते हैं। बहुतसे पद पुनः वंशगत हो गये हैं। इसीसे कभी कभी १०।१२ वर्षके बालक भी जिलेके कमिश्नरको नाईं उच्चपद पर प्रतिष्ठित होते देखे गये हैं।

१८७२ ई०में बङ्गाल गवर्मेण्टकी ओरसे बाबू नीलमणिदास नामक एक विचक्षण बङ्गाली त्रिपुराराज्यमें दीवान नियुक्त हुए। इन्होंसे राज्यको खूब उन्नति हुई है। राज्यका परिमाण ४०८६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः एक लाख है। नीलमणि बाबूने यहां वृटिशगवर्मेण्टके दृष्टान्तमें व्यवस्थापकसभा, फौजदारी-आईन, दीवानी-आईन, पुलिस-आईन, तमादी-आईन इत्यादि प्रचलित किये हैं; किन्तु राजाका आदेश अब भी सर्वोपरि है।

पार्वत्य-त्रिपुरामें समतलवासी और पर्वतवासी ये दो प्रकारकी प्रजा हैं। समतलवासी प्रजा जिला-त्रिपुराके लोगोंकी नाईं है। पश्चिम-सीमासे दो कोस प्रशस्त स्थानमें तथा नोआखाली, जिला त्रिपुरा और चटग्रामकी सीमान्तमें इन लोगोंका वास है। पर्वतवासी खाना-

बाड़ीको प्रजाके नामसे अभिहित हैं। पार्वत्य प्रत्येक ग्राममें एक एक सर्दार सर्दारके नामके बाद 'बाड़ी' शब्द जोड़ कर उस ग्रामका नामकरण किया जाता है।

यह प्रदेश साधारणतः पर्वतमय है। भूमि पश्चिमसे ऊंची होती गई है। ५।६ पर्वतमालायें समानान्तररूपसे अवस्थित हैं। प्रत्येक पर्वतमें ६ कोसका अन्तर है। पर्वत पर बांसका जङ्गल और निम्नभूमिमें बेतका जङ्गल ही अधिक है। पूर्व दिशाके प्रधान पर्वतका नाम जाम्पुई है। इसकी सबसे ऊंची चोटी बेतलिङ्गशिव ३२०० फुट ऊंची है। यहांकी प्रधान नदियाँ गोमती, हावरा, खोआई, बलाई, मनु, जुरी और फेनी हैं। इन नदियों में जंगलके बड़े बड़े वृक्षकी शाखायें बहा कर लाते हैं, जिनसे अच्छी अच्छी नावें बनाई जाती हैं। लुसाईगण जंगलमें बड़े बड़े बोया नामके सांपको मारते और उनका मांस खाते हैं। जाम्पुईके सिवा इस प्रदेशमें और भी कई एक पर्वतमाला हैं।

गोमती नदी—अठरमुड़ा पर्वतसे चायमा और लङ्ग तराई पर्वतसे रायमा नामक दो नदियाँ निकल कर डुमरा नामक जलप्रपातसे कुछ ऊपर एकत्र हो कर गोमती नाम धारण करती हैं। काशीगाङ्ग और पिता-गाङ्ग नामकी दो उपनदियां हैं, जो बीबी-बाजार नामक ग्रामके निकट जिला त्रिपुरामें प्रवेश करती हैं।

मनु नदी—सकन्तलङ्ग पर्वतके खोईशिव शिखरसे निकल कर श्रीहट्टमें प्रवेश करती है। देव और दुलाई नामक इसकी दो उपनदियाँ यथाक्रमसे कामनाथ और कदमछाटा नामक स्थानमें इसके साथ मिल गई हैं।

इन सब नदियोंमें पानसी, डिङ्गी, शालती आदि चलती हैं। इन नदियोंमें ३० मन बोझ लाद कर नावें आ जा सकती हैं। पर्वत पर कहीं कहीं कोयले और तरह तरहके पत्थर पाये जाते हैं। कामनाथ और शिशी पर्वत पर दो नदियां हैं, जिन्हें नुनचड़ा कहते हैं। इन दो नदियोंके उत्पत्तिस्थानका जल लवणाक्त और उष्ण होता है। जाम्पुई पर्वत पर नमककी खान है।

जङ्गलमें हाथी और चीते बहुत देखे जाते हैं। हाथी पकड़नेके लिए राज-दरबारसे अनुमति लेनी पड़ती और कर देना पड़ता है। प्रत्येक हाथी बेचते समय भी उसके मूल्यसे राजप्राप्य कर काट कर उसका आठवां अंश राजाको देना पड़ता है। जङ्गलसे सुग्गा पकड़ कर अन्य देशमें भेजनेसे राजा एक प्रकारका कर लेते हैं। वर्षाके समय जङ्गलविभागमें डांस, मच्छड़ आदि इतने अधिक होते हैं, कि वनवासी भी कभी कभी अपना वास स्थान छोड़ कर अन्यत्र चले जाते हैं।

पार्वत्य त्रिपुरा आगरतला और कैलाशहर इन दो विभागोंमें विभक्त है। आगरतला विभागमें ४२ हजार और कैलाशहर-विभागमें ६ हजार पार्वतीय लोगोंका वास है। समतल स्थानमें कुल २७ हजार मनुष्य रहते हैं।

पार्वतीय जाति तीन भागोंमें विभक्त है। १, तिपरा वा टिपरा। तिपरा देखो। २, जामाइता, ३, नोआतिया और रियङ्ग। यहां कूकी और लुसाइयोंका भी वास है। कुकी और लुसाई देखो। पार्वतीय उपत्यकामें मणिपुरी जाति रहती है।

वे निम्नलिखित कई एक उत्सव मनाते हैं—१, चैत्र-मासके अन्तिम दिनमें साल समाप्त होनेके उपलक्षमें एक उत्सव करते हैं। इसमें भोज और आमोद-आह्लाद ही अधिक किया जाता है। यह उत्सव सात दिन तक रहता है। २, आश्विन मासमें फसल काटते समय "मिकाटाल" वा नवान्न नामक उत्सव होता है। पार्वतीय लोग यह उत्सव मानते हैं। इसमें देवतासे जमीनकी उर्वरताके लिये प्रार्थना करते हैं। ३, अग्रहायण मासमें हैमन्तिक धान्य काटे जाने पर नूतन मद्यका एक उत्सव होता है। इसमें वे 'मनुई' नामक धान्यसे एक प्रकारकी कांजी प्रस्तुत करते और देवताको नवीन चावल उत्सर्ग करते हैं और सब कोई नवीन चावल खाते तथा बकरा, पक्षी और शूकर आदिकी भी बलि देते हैं।

इन लोगोंके प्रधान उत्सवका नाम 'केरपूजा' है। सर्वापद्शान्तिके लिये आषाढ़ मासमें यह उत्सव होता और ढाई दिन तक रहता है। सब कोई पहले दिनके दश बजे रातसे तीसरे दिनके छह बजे प्रातःकाल तक अपने अपने घरका दरवाजा बन्द रखते हैं। घरके बाहर कोई नहीं जा सकता है। बीचमें कुछ कालके लिये

दिनमें दो बार बाहर निकल सकते हैं। आगरतलामें राजप्रासादके निकट एक स्थान बांससे घिरा हुआ है, उसी जगह उत्सव मनाया जाता है।

विदेशियोंका वास—चट्टग्रामके पार्वत्य प्रदेशसे लुशाई-युद्धके समय कुलीका काम करनेके लिये चाकमा जाति लोग इस देशमें आ बस गये हैं।

ग्राम-नगरादि—एक आगरतला नगरके सिवा और कोई दूसरा प्रसिद्ध नगर नहीं है। कैलाशहर और त्रिपुराको प्राचीन राजधानी उदयपुर ग्राम ही इस प्रदेशमें सबसे बड़ा है।

आगरतला कुमिल्लासे ३० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी अट्टालिकायें उतनी सुन्दर नहीं हैं। सामान्य ढोखप्रका मकान ही राजभवन है। यहां केवल नौ सौ मनुष्योंका वास है, सड़कें अच्छी नहीं हैं।

कैलाशहर—पर्वतके नीचे अवस्थित एक ग्राम है। एक उपविभागका सदर होनेके कारण यहां हाट लगती है। इस हाटमें तमाकू, सुपारी और सूखी मछलीके साथ रूई बदली जाती है।

उदयपुर—यह गोमतीके बायें किनारे प्राचीन राजधानी उदयपुरसे कई कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां पार्वतीय रूईकी हाट लगती है। बहादुरी काठ, बांस और रूईके बदले पहाड़ी लोग तमाकू, नमक और सूखी मछली ले जाते हैं। १८६१ ई०को वर्त्तमान उदयपुरमें कूकी लोगोंने बहुत अत्याचार मचाया था। वे ग्रामके अधिकांश मनुष्योंको मार कर और बहुतोंको पकड़ कर अपने देश ले गये थे।

वर्त्तमान आगरतलासे २ कोस पूर्वमें प्राचीन आगरतला है। १८६४ ई०में यहां १ हजार मनुष्य रहते थे। पहले यहां राजाओंका वास था। १८४४ ई०को आगरतलामें नूतन राजधानी हुई। प्राचीन आगरतलाका राजभवन अभी भी भग्नावस्थामें विद्यमान है। यहां राजा और रानियोंके कई एक स्मरणस्तम्भ हैं। पुराने राजभवनके निकट एक छोटे मन्दिरमें पहाड़ी लोगोंके चौदह देवताओंकी प्रतिमा हैं। मन्दिरके निकट होकर जाते समय सब कोई यहां तक कि मुसलमान भी प्रतिमाको प्रणाम किया करते हैं।

प्राचीन उदयपुर सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें राजा उदयमाणिक्यसे राजधानीमें परिणत हुआ और उन्हींके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यह भी गोमतीके बायें किनारे पड़ता है। प्राचीन राजभवन आदि अभी भी घने जङ्गलमें वर्त्तमान हैं। यहां ८ फुट लम्बा एक लोहेका कामान है। लोगोंका विश्वास है कि इस पर फूल रखनेसे शुभाशुभ जाना जाता है। पथिक कामान देख कर सलाम करते हैं। यह कामान किसका है और किस तरह कहांसे यहां आया है कोई भी नहीं बता सकता।

यह प्राचीन उदयपुर एक पीठ स्थान है। यहांकी देवीका नाम त्रिपुरादेवी और भैरवका नाम त्रिपुरेश है। यहां सतीका दाहिना पैर गिर पड़ा था। भैरवलिङ्ग सफेद पत्थरके बने हुए हैं। त्रिपुरादेवीके मन्दिरमें अनेक यात्री एकत्र होते हैं।

भारतचन्द्रने भैरवका नाम नल बतलाया है। देवीके मन्दिरके निकट बहुतसे छोटी छोटी अट्टालिकाओंके ऊपर बङ्गला अक्षरमें खुदा हुआ शिलालेख है। मन्दिरके समीपमें अण्डाकार एक बड़ा तथा परिष्कार तालाब है। इसके किनारे दुष्प्रवेश्य जङ्गल है।

त्रिपुराका इतिहास—बङ्गला भाषामें लिखा हुआ राजमाला नामक एक काव्यग्रन्थ है, जिसमें त्रिपुराके राजवंशका इतिहास लिखा है। त्रिपुरा अत्यन्त प्राचीनकालसे आजतक एक राजवंशके अधीन आ रहा है। राजमालाके मतसे यह राजवंश चन्द्रवंशोद्भूत है। चन्द्रवंशमें ययातिके पुत्र द्रुह्यु से इस वंशकी उत्पत्ति गणना की जाती है, किन्तु गौर कर विचार करनेसे स्थिर हुआ है कि यह वंश शान जातिसे उत्पन्न हुआ है। शान जाति लौहित्यवंश नामसे अभिहित हुई। अंगरेज लोग इस जातिके व्याख्याकालमें इसे Tibbeto-Burman कहते हैं।

त्रिपुराके राजाओंसे प्रतिष्ठित एक अब्द अभी भी प्रचलित है। इस देशमें प्रचलित सन्‌से ३ वर्ष पहले त्रिपुराब्द प्रतिष्ठित हुआ।

जब चन्द्रवंशीय राजगण भारतवर्षमें सम्राट् थे, तब भारतके पूर्वसीमान्तवर्ती हिड़िम्ब देशके दक्षिणस्थ

पर्वतमय राज्य 'किरात' देश कहलाता था। किरात देखो। चन्द्रवंशीय राजा ययातिके चौथे पुत्र राजा हुए। राजमालाके मतसे द्वितीय पुत्र द्रुह्यु पितासे परित्यक्त होकर इसी किरात देशमें आये। किरात देशकी कपिला (ब्रह्मपुत्र) नदीके किनारे किरातराजके साथ द्रुह्युका युद्ध हुआ। इस युद्धमें किरातोंको पराजय करके वे राजा बन बैठे। बाद उन्होंने कपिलाके किनारे त्रिवेग नामक नगर निर्माण कर वहीं राजधानी स्थापन की। द्रुह्युको ययातिने शाप दिया था कि "द्रुह्यु! तुमने मेरे हृदयसे जन्मग्रहण करके भी अपनी उमर प्रदान न की; इस कारण तुम्हारा प्रियतर अभिप्राय कहीं भी सिद्ध नहीं होगा। जहां घोड़ा, रथ, हाथी, राजाके योग्य सवारी, गाय, गदहा, बकरा, पालकी आदि द्वारा गमनागमन न हो सके, सर्वदा बेड़ा और प्लुतगति द्वारा आवागमन हो सके और जहां राजशब्द प्रसिद्ध न हो, तुम स्ववंशमें उसी देशमें वास करोगे।" (महाभा०सम्भव ८४ अध्या०) महाभारतके मतानुसार इनके वंशमें 'भोजगण' उत्पन्न हुए थे। (प० सम्भव ८५ अध्या०)

राजमालाके मतसे यही किरातदेश त्रिपुरा है और ययातिके पुत्र ही यहांके प्रथम राजा थे। राजमालाके मतानुसार द्रुह्युके बाद उनके पुत्र त्रिपुर राजा हुए। विष्णुपुराण और हरिवंशमें द्रुह्युके दो पुत्र बभ्रु और सेतुके नाम पाये जाते हैं। सेतुके पौत्रका नाम गान्धार था। श्रीमद्भागवतमें गान्धारके परवर्त्ती ५ पुरुषके नाम पाये जाते हैं, किन्तु उनमें त्रिपुरका नाम नहीं मिलता है। पुराणके मतानुसार द्रुह्युके पुत्र गान्धारसे गान्धारका नामकरण हुआ है। इस तरह पौराणिकके मतसे ऐसा स्वीकार किया जाता है, कि द्रुह्यु भारतवर्षके पूर्वप्रान्तमें न आ कर पश्चिमप्रान्तमें गये थे।

जो कुछ हो, राजमालाके मतसे उक्त त्रिपुरसे ले कर वर्त्तमान काल तक त्रिपुर एक ही राजवंशके अधीन आ रहा है।

त्रिपुरने राज्यसिंहासन पर बैठ किरात-राज्यका नाम परिवर्त्तन किया और अपने नामके अनुसार त्रिपुरा राज्य और किरात जातिका नाम त्रिपुरा (टिपरा) जाति रखा। त्रिपुर प्रजापीड़क थे और शिवद्वेषी हो कर उन्होंने अपने राज्यसे शैव नाम लोप किया। धर्मद्वेषी त्रिपुरके अत्याचारसे ब्राह्मण धीरे धीरे दूसरे देश जा कर बसने लगे। बहुतसी प्रधान प्रजाने अत्याचारीके हाथसे राज्योद्धारके लिए कामरूपके अधिपतिसे प्रार्थना की, किन्तु वे त्रिपुरपतिके भयसे इस विषयमें सहमत न हुए। प्रजा हताश हो कर स्वदेशको लौट आई। इतनेमें अपुत्रक त्रिपुरकी मृत्यु हुई। विधवा रानी सिंहासन पर बैठ कर राज्य करने लगीं। ब्राह्मणोंने राजवंश नष्टप्राय देख शिवकी आराधना की। शिवजीने वर दिया कि, "तुम लोगोंकी इच्छा पूर्ण होगी। मेरे औरस और विधवा रानीके गर्भसे एक सुलक्षण पुत्र उत्पन्न होगा।" कुछ समयके बाद वैसा ही हुआ। रानीने तीन नेत्रवाला एक पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम त्रिलोचन रखा गया। दश वर्षकी अवस्थामें त्रिलोचन राजा हुए। राजा त्रिलोचनने क्रमशः प्रजाको युद्धविद्या सिखायी। बाद चारों ओरके राज्य जय कर अपने राज्यकी उन्नति करने लगे। इन्होंने ही त्रिपुरपतियोंमें राज-चिह्न, और धवलछत्रका पहले पहल व्यवहार किया। तभीसे आज तक उक्त चिह्न चला आ रहा है। पार्श्ववर्ती हैडिम्ब-देशाधिपतिने त्रिपुराधिपति त्रिलोचनके साथ सद्भाव रखनेके लिए अपनी लड़कीका विवाह कर दिया। महाराज त्रिलोचन शिवभक्त थे और शिवके आदेशसे उन्होंने चौदह देवप्रतिमा प्रतिष्ठित कीं। ये चौदह देवता ही त्रिपुरा पतियोंके कुलदेवताके रूपमें आज भी पूजे जाते हैं।

"हरोमा हरिमावाणी कुमारो गणपो विधुः।
खाब्धि गंगा शिखी कामो हिमाद्रिश्च चतुर्दश॥"

हर, उमा, हरि, लक्ष्मी, सरस्वती, कार्त्तिक, गणेश, चन्द्र, आकाश, समुद्र, गङ्गा, काम और हिमालय ये ही चौदह देवता हैं।

त्रिलोचनने एक यज्ञका अनुष्ठान करके दैवज्ञ-ब्राह्मणको लानेके लिए गङ्गासागरक्षेत्रमें अपने आदमीको भेजा था। वङ्गदेशके वैदिक ब्राह्मणको जब मालूम हुआ कि त्रिपुरराज जीवित हैं, तब पहले तो वे आनेको राजी न हुए; किन्तु अन्तमें त्रिपुरके मृत्यु-सम्वाद पर

विश्वास कर उन्होंने आ कर त्रिलोचनका यज्ञसम्पन्न किया। इस यज्ञमें किरात (त्रिपुरा) और कूकियोंसे लाये हुए अनेक हंसमहिषादि बलिदान किये गए। हैडिम्ब-राजकुमारीके गर्भसे त्रिलोचनके बारह पुत्र उत्पन्न हुए। राजमालाके मतसे ये सब पुत्र विष्णु और शिवकी देहकी नाईं अङ्ग-प्रत्यङ्गविशिष्ट थे। वर्त्तमान कालमें भी प्रवाद है, कि राजवंशधर इसी तरह लक्षणकान्त होंगे।

राजमालामें लिखा है, कि—"त्रिपुराधिपति त्रिलोचन राजा युधिष्ठिरके समसामयिक थे; किन्तु महाभारतमें इनका नामोल्लेख नहीं है, पर राजसूययज्ञकालमें भीमसे पूर्वदेश जय करनेके समय किरातके राजाका पराजय-विवरण और घोषयात्राके बाद कर्णसे पूर्व दिशामें जयके समय त्रिपुरा राज्यका जयविवरण लिखा है। महाभारतकी लड़ाईमें त्रिपुराधिपति किसी पक्षमें उपस्थित नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है, फिर राजसूययज्ञके समय उपस्थित राजाओंमें भी उनका नाम पाया नहीं जाता है; किन्तु त्रिलोचन और युधिष्ठिरका समय निरूपण कर देखनेसे दोनों समसामयिक प्रतीत नहीं होते हैं। त्रिलोचनकी वंशावली राजमालामें जो कुछ लिखी है, उससे जाना जाता है, कि त्रिपुराके राजा वीरचन्द्र माणिक्यके भतीजे ब्रजेन्द्रचन्द्र तक त्रिलोचनसे १०८ पीढ़ी हो गई है। वर्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंके मतानुसार त्रिलोचन ब्रजेन्द्रचन्द्रसे २६२६ वर्ष पहले वर्त्तमान थे। वर्त्तमान त्रिपुर राजके पूर्ववर्ती महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्यके १२७७ बङ्गाब्दकी ३० वर्षकी अवस्थामें मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र ब्रजेन्द्रचन्द्र बहुत बच्चे थे। अभी यदि युधिष्ठिर कलियुगके प्रारम्भमें वर्त्तमान थे, ऐसा स्वीकार किया जाय, तो ब्रजेन्द्रसे ४८६८ वर्ष पहले विद्यमान होंगे; क्योंकि महाराज ईशानचन्द्रकी मृत्युके समयमें कलियुगके ४८६८ वर्ष बीत चुके थे। इस हिसाबसे युधिष्ठिर और त्रिलोचनमें १३३२ वर्षका फर्क पड़ता है। १३३२ वर्षमें ४० पुरुषका अभाव देखा जाता है; किन्तु महाभारतके वनपर्वमें जब त्रिपुरा नाम पाया जाता है, तब अनुमान किया जा सकता है, कि त्रिलोचनके पिता त्रिपुर युधिष्ठिरके पूर्ववर्ती न थे, पर समसामयिक थे। सभापर्वमें भीमके दिग्विजयके समय जब किरात राज्यका नाम त्रिपुरा नाम न हो कर किरात नाम ही देखा जाता है, तब यह भी समझना होगा कि राजसूययज्ञके समय त्रिपुरके रहने पर भी उन्होंने स्वराज्यका नाम परिवर्त्तन नहीं किया। यह भी सम्भव है; क्योंकि राजसूययज्ञके बाद दुर्योधनने द्यूतक्रीड़ामें पाण्डवको बारह वर्षके लिये वन भेजा था। इसी बारह वर्षके अन्तमें घोषयात्रा हुई। इसके बाद कर्णसे त्रिपुरा जीता गया। सुतरां भीमसे किरात राज्य जीते जानेके बारह वर्ष बाद कर्णसे त्रिपुरा नामक किरात राज्यका जीता जाना कुछ असम्भव नहीं है। इसी घटनासे त्रिपुरको युधिष्ठिरका समसामयिक कह सकते हैं। राजमालाके मतसे त्रिपुर द्रुह्युके पुत्र हैं। यदि ऐसा स्वीकार किया जाय, तो त्रिपुर युधिष्ठिरके बहुत पूर्ववर्ती हो जाते हैं; किन्तु त्रिपुरामें एक प्रवाद है, कि "त्रिपुर द्रुह्युके पुत्र नहीं हैं। केवल उत्तर-पुरुषमात्र हैं। द्रुह्युसे बीस राजाओंके बाद त्रिपुर सिंहासन पर बैठे।" इस प्रवाद पर विश्वास करनेसे देखा जाता है, कि ययातिके तीसरे पुत्र द्रुह्युसे निम्न २२वीं पीढ़ीमें त्रिपुर और ययातिके कनिष्ठ पुत्र पुरुकी ३८वीं पीढ़ीमें युधिष्ठिर वर्त्तमान थे। पौराणिक-विवरणमें ४।५ पुरुषका अन्तर (१५०।१७५ वर्षका फर्क होने पर भी) धर्त्तव्य नहीं है। अतएव राजमालाके मतसे त्रिलोचनको युधिष्ठिरके समसामयिक स्वीकार करनेकी अपेक्षा, महाभारतके मतसे त्रिपुरको युधिष्ठिरके समसामयिक स्वीकार करना ही सङ्गत है; किन्तु इस जगह यह कहना उचित होगा, कि ये सब घटनायें निःसन्देह ऐतिहासिक नहीं कही जा सकतीं हैं।

राजमालाके मतसे त्रिलोचन त्रिपुरके पुत्र माने गये हैं, किन्तु त्रिलोचनके जन्मविवरणका जो उपाख्यान दिया गया है, वह अस्वाभाविक स्वीकार किया जा सकता है।

कल्पाब्दके हिसाबसे भी देखा गया है, कि युधिष्ठिर

और त्रिलोचनमें जो १३२३ वर्ष वा ४० पीढ़ीका अन्तर पड़ता है, उससे अनुमान किया जा सकता है, कि उक्त ४० पिढ़ियों अथवा उनसे भी अधिक पीढ़ियोंके राजा त्रिपुरको तरह देवद्विजविद्वेषी थे। इस कारण राजमालाके कवियोंने अपने इतिहासमें उक्त विद्वेषी राजाओंका उल्लेख न करके शैव और द्विजभक्त राजा त्रिलोचनको शिवके वरसे प्राप्त शिवपुत्र माना है।

त्रिलोचन यथार्थमें चन्द्रवंशोद्भव नहीं है। राजमालामें भी उन्हें शिवजीके औरससे उत्पन्न बतलाया गया है। इधर पाश्चात्य गवेषणासे स्थिर हुआ है, कि मणिपुर राजवंशकी नाईं त्रिपुराका राजवंश भी शान वा लौहित्यवंशोद्भूत है अथवा यदि उसे चन्द्रवंशीय भी कहा जाय, तो भी प्रमाणको कोई विशेष सुविधा नहीं; क्योंकि इसके पहले ही देखा गया है, कि द्रुह्यु से लेकर त्रिपुरके मध्य ३२ राजाओंके नाम तथा त्रिपुरसे ले कर त्रिलोचनके मध्य ४० राजाओंके नाम नहीं मिलते हैं। कौन कह सकता है, कि उक्त दो समयके मध्य राज्य एक राजवंशसे दूसरे वंशके हाथ नहीं गया होगा।

जो कुछ हो, अभी राजमालाधृत इतिहास हीका अनुसरण करना होगा। त्रिलोचनके जीतेजी उनके श्वसुर हैड़िम्बपतिकी मृत्यु हुई। वे अपुत्रक थे। त्रिपुराके बारह राजकुमार मातामह राज्यके उत्तराधिकारी बन कर आपसमें राज्याधिकारके लिये झगड़ने लगे। इस पर त्रिलोचनने अपने बड़े पुत्रको हैड़िम्बदेशका राजा बना कर भ्रातृविरोध शान्त किया। महाराज त्रिलोचनने बहुत समय तक राज्य किया। उनके समान दीर्घायु राजा आज तक कोई त्रिपुराके सिंहासन पर न बैठे, किन्तु उनके बड़े भाई मातामह-राज्य हैड़िम्बदेशके राजा हुए थे। वे ही पैतृकराज्य पानेके लिये राजा दक्षिणके विरुद्ध ससैन्य अग्रसर हुए थे। सात दिनों तक दोनों भाइयोंमें युद्ध होता रहा। बाद हैड़िम्बराजने मध्यम भ्राताको पराजित कर पितृराज्य अधिकार कर लिया और वे दोनों राज्यको मिलाकर शासन करने लगे। राज्यच्युत राजा दक्षिण और उनके दूसरे दश भाइयोंने त्रिपुरा परित्याग कर खालानसा नदी पार हो, एक जगह वासस्थान स्थिर किया। महाराज त्रिलोचनके इस बड़े पुत्रका नाम राजमालामें नहीं पाया जाता।

कुछ समयके बाद प्रजा-विद्रोहसे हैड़िम्बराज, राज्यच्युत और प्रवासी राजा दक्षिण पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। महाराज दक्षिणके बाद उनके पुत्र तयदक्षिण राजा हुए। इनसे लेकर प्रमार तक ५३ राजाओंके शासनकालमें त्रिपुरामें कोई विशेष घटना नहीं घटी। महाराज प्रमारके पुत्र कुमार राजा हो श्यामलनगरमें शिवके दर्शन करने गये। श्यामलनगर शिवका प्रिय क्षेत्र समझा जाता था। यह श्यामलनगर कहां है, उसका पता नहीं चलता। पर कहते हैं, कि चट्टग्रामके उत्तरीय पर्वतका सुप्रसिद्ध शम्भुनाथ-शिवमन्दिर बहुत प्राचीनकालमें त्रिपुराधिपतिका बनाया हुआ है। अब भी मन्दिरके संस्कारका खर्च त्रिपुरा राजकोषसे दिया जाता है। इससे अनुमान किया जाता है कि यही स्थान उस समय श्यामलनगर नामसे प्रसिद्ध था।

राजमालाके त्रिलोचनसे ले कर निम्न २७वें पुरुषके महाराज ईश्वरको 'फा' की उपाधि थी। त्रिपुराभाषामें 'फा' का अर्थ 'पिता' होना है। कोई कोई राजा गौरवके लिये यह "फा"की उपाधि ग्रहण करते थे।

महाराज कुमारके बाद उनके पुत्र सुकुमार, सुकुमारके बाद उनके पुत्र तरराव और तररावके बाद उनके पुत्र राज्येश्वर त्रिपुराके सिंहासन पर बैठे। महाराज राज्येश्वर बहुत क्रूरस्वभावके थे। उन्होंने पुत्र पानेके लिये शिवजीकी तपस्या की; किन्तु तपस्यासे विफल हो उन्होंने क्रोधित हो कर मंदिरकी शिवप्रतिमाके दोनों पैर बाणसे छेद डाले। शिवजीने इस अपराधसे त्रिपुरा छोड़ दिया। अन्तमें महाराज राज्येश्वरने शिवके उद्देश्यसे दो नरबलि देकर दो पुत्र प्राप्त किये। शायद इसी समयसे त्रिपुरामें नरबलिकी प्रथा पहले पहल आरम्भ हुई। महाराज राज्येश्वरके बाद उनके बड़े लड़के मिशलिराज राजा हुए। उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण उनके बाद उनके छोटे भाई तेजाङ्ग-फा राज्य-सिंहासन पर बैठे। तेजाङ्ग-फाके बाद सात राजा और हुए। उन लोगोंके शासनकालमें कोई विशेष घटना न हुई।

बाद महाराज प्रतीत राज्यसिंहासन पर बैठे। उन्होंने हैडिम्ब राजके साथ दोनों राज्योंकी सीमानिर्द्धारण कर सन्धि स्थापन की और दोनों राज्यकी सन्धिके स्थान पर एक श्वेतवर्णका स्तम्भ निर्माण करके दोनों राजाने शपथ खायी, कि यदि वे आपसमें सीमा लङ्घन करें, तो काला कौवा भी सफेद हो जायगा। दोनों राजाओंमें ऐसा गहरा प्रेम देख पार्श्ववर्त्ती राजा भयभीत हो गये और वे एक दूसरेसे फूट करानेकी कोशिश करने लगे। अन्तमें किसी राजाने त्रिपुरेश्वरके पास एक सुन्दरी स्त्रीको भेंटमें भेजा। हैडिम्ब-राजने इस स्त्रीकी सुन्दरता सुन कर त्रिपुरेश्वरके हाथसे उसे लेनेकी कोशिश की, किन्तु पूर्वोक्त दृढ़सङ्कल्पके कारण वैसा न किया। महाराज प्रतीतके बाद और कितने राजा हुए। इन लोगोंके समयमें भी कोई घटना न हुई।

इसके बाद महाराज जनक-फा राजा हुए। ये बड़े युद्ध कुशल थे। इन्होंने राज्य-सीमा बढ़ानेकी आशासे दक्षिणमें अनेक देश जय किये। अन्तमें रांगामटीके अधीश्वर निक्कने दश हजार सुशिक्षित कूकी सेनाओंको साथ ले उन्हें रोका; किन्तु युद्धमें पराजित हो कर उन्हें भागना पड़ा। महाराज जनक-फाने रांगामटीमें त्रिपुराकी राजधानी स्थापन की। इनके समयमें ब्रह्मदेशकी राजधानी अमरापुर तक त्रिपुराके राजाका अधिकार विस्तृत था। अन्तमें उन्होंने वंगदेश जय करनेका संकल्प किया, किन्तु युद्धमें राजकोष शून्य हो जाने पर उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। इनके बाद २० राजा और हुए जिनके नाममात्र इतिहासमें है।

बाद सिंहतुङ्ग-फा राजा हुए। इनके समयमें आराकान राजाके एक चौधरी बहुतसे मणिमाणिक्य भेंट ले कर गौड़पतिके समीप जा रहे थे। महाराज सिंहतुङ्गफाने उसे बलपूर्वक छीन लिया। गौड़ेश्वरने यह संवाद पाकर त्रिपुरा जीतनेके लिये एक बड़ी सेना भेजी। त्रिपुरापतिने गौड़ेश्वरके सेनाबलसे भयभीत हो सन्धि करनी चाही, किन्तु रानीने अपने स्वामीको कायर बतलाते हुए तिरस्कार किया और सेनाओंको उत्साहित करनेके लिये कहा,—'तुम लोगोंके राजा शृगालकी तरह कार्य कर रहे हैं; किन्तु मैं उसे पसन्द न करती। मैं स्वयं युद्ध करूंगी, जिसकी इच्छा हो, वह मेरे साथ लड़े और कुलगौरवकी रक्षा करे।' समस्त सेना रानीका साथ देनेको प्रस्तुत हुई। रानीने सेनाओं परसे खुश हो कर उन्हें भैंसे और बकरेके मांससे अच्छी तरह भोजन कराया। दूसरे दिन दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। त्रिपुराकी रानी हाथी पर सवार हो, सैन्यपरिचालन करने लगीं। युद्धमें गौड़सेना प्रायः सभी विनष्ट हुई। इस समय गौड़ाधिप कौन थे, यह मालूम नहीं। राजमालामें उनका नाम भी नहीं है। महाराज सिंहतुङ्ग फाकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कुञ्जहोम फा राजा हुए। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे; किन्तु उनकी स्त्री उनकी माताकी तरह तेजस्विनी और विदूषी थीं। महाराज कुञ्जहोम-फाके बाद उनके पुत्र दानकुरू-फा राजा हुए। उनके १८ पुत्र थे। भविष्यत्में इन १८ पुत्रोंमेंसे राज्याधिकारी कौन होंगे, इसका निरूपण करनेके लिये महाराज दानकुरूफाने ३० क्रोडाशील मुर्गेको अनाहार कुछ काल तक बन्द कर रखा। अन्तमें वे अपने पुत्रोंको ले एक साथ भोजन करनेको बैठ गये। इसके पहले उन्होंने उन सब क्षुधातुर मुर्गोंको भोजन करनेके स्थान पर छिपके छोड़ देनेके लिये अपने अनुचरोंसे कह दिया था। जब मुर्गे अन्नपात्रमें मुख देने लगे, तब महाराजने अपने पुत्रोंसे कहा,—'तुम लोगोंमेंसे यदि कोई सामर्थ्यवान् हो, तो किसी उपायसे इन्हें यहांसे हटावो।' वे बहुत उपाय करने लगे, किन्तु एकबार बहुतसे मुर्गोंको हटा न सके। अन्तमें छोटे राजकुमार रत्न-फाने कुछ अन्न अपने हाथमें ले लिया और थोड़ी दूर जाकर जमीन पर छिड़क दिया। इस पर सभी मुर्गे उसी जगह भोजन करनेको चले गये। राजाने छोटे कुमारकी बुद्धिमत्ता और प्रत्युत्पन्नमतित्व देख कर उन्हें उत्तराधिकारी निरूपण किया।

महाराज दानकुरू-फाकी मृत्युके बाद राजकुमारोंने षड़यन्त्र करके पितृनिर्वाचित राजकुमार रत्न-फाको राज्यसे अलग कर सबसे बड़े राजकुमार राजा-फाको सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

कुमार रत्न-फाने राजसे भगाये जाने पर गौड़ेश्वरकी शरण ली। उस समय तुघरिल खाँ गौड़के शासनकर्त्ता

थे। इनके साथ रत्न-फाको मित्रता हुई। उन्होंने कुमारको चार वर्ष तक बहुत आदरसे अपने पास रखा। पीछे एक बड़ी सेना साथ दे कर पितृराज्यका उद्धार करनेमें सहायता की।

जब रत्न-फा ससैन्य त्रिपुराप्रान्तमें पहुंचे, तब राजवंशके अनेक सुहृदोंने उनका साथ दिया। युद्धमें त्रिपुराके राजाको हार हुई। कुमार रत्न-फा निष्कण्टक होनेके लिये उन विश्वासघाती १७ भाइयोंका प्राण नाश कर आप राजा बन बैठे। शायद यह घटना ६८८ त्रिपुराब्दमें (१२७७ ई०) हुई होगी। यह त्रिपुराब्द त्रिपुराके राजाओंका निज प्रतिष्ठित एक अब्द है। यह अब्द किससे, कब और क्यों प्रतिष्ठित हुआ? इसका पूरा पता नहीं चलता। १८६२ ई०में महाराज ईशान चन्द्रमाणिक्यकी मृत्यु हुई। उस समय त्रिपुराब्द १२७२ था। अतः ईसवी और त्रिपुराब्दमें ५९० वर्षका अन्तर पड़ता है। अतएव ५९२ ई०में प्रथम त्रिपुराब्द प्रचलित हुआ।

महाराज रत्न-फाने राज्य लाभ कर कृतज्ञताके निदर्शनस्वरूप तुघरिल-खांको १०० हाथी और तरह तरहके मणिमाणिक्य प्रदान किये। इन रत्नोंमेंसे एक ऐसा रत्न था कि वैसा बड़ा रत्न गौड़ेश्वरको भी न था। तुघरिलने इस रत्नको पाकर बहुत आनन्दसे रत्न-फाको माणिक्यकी उपाधि और ४००० सुशिक्षित सैन्य प्रदान कीं। रत्न-फाने महोपकारी बन्धुदत्त उपाधि धारण कर यह नियम चलाया, कि कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप उनके वंशधर प्रत्येक राजा यह 'माणिक्य' उपाधि धारण करेंगे। मुसलमान ऐतिहासिकगण इस घटनाको तुघरिलकर्त्तृक त्रिपुरा-विजय कह कर वर्णन कर गए हैं। मि० मर्समानने अपने इतिहासमें लिखा है कि गौड़के शासनकर्त्ता गयास-उद्दीनने त्रिपुराके राजासे कर ग्रहण किया था, किन्तु राजमालामें इसका कोई उल्लेख नहीं है। महाराज रत्नमाणिक्यने अपने राज्यमें बहुतसे दुर्ग निर्माण किये थे।

महाराज रत्नमाणिक्यके बाद प्रतापमाणिक्य राजा हुए। इनके समयमें सुवर्णग्रामके बङ्गाधिप शामस-उद्दीनने प्रताप-माणिक्य पर आक्रमण किया। इस युद्धमें पार्वत्य त्रिपुरा छोड़ कर और सभी स्थान मुसलमानोंके हाथ आ गये। प्रताप-माणिक्यके प्रपौत्रके समय तक यही सब स्थान मुसलमानोंके अधिकारमें थे। महाराज प्रतापकी अपुत्रक अवस्थामें मृत्यु हुई। सुतरां उनके छोटे भाई मुकुट राजा हुए। महाराज महामाणिक्यके बड़े लड़के ओधर्मने उनको जीवन दशामें ही संन्यास ग्रहण किया और छोटे लड़के ओधन उनके मरते समय कमसीन थे।

वसन्तरोगसे महाराज महामाणिक्यका देहान्त हुआ। कुमार ओधर्म उस समय संन्यासी होकर काशीमें थे। महाराज महामाणिक्यकी मृत्युके बाद त्रिपुराके बहुतसे मनुष्य उनकी तलाशमें काशी पहुंचे। वहां उन्होंने ओधर्मसे कहा,-'कुमार! आपके पिताकी मृत्यु हो गई। सेनाओंने प्रतिज्ञा की है, कि आपके जीतेजी दूसरेकी बात तो दूर रहे, छोटे कुमारको भी सिंहासन पर नहीं बैठने देंगे।' राजकुमारने इस अनुरोधसे बाध्य होकर राज्यभार ग्रहण किया। ये ८१७ त्रिपुराब्दमें (१४०७ ई०में) राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने मुसलमानोंके हाथसे त्रिपुराके सभी राज्यांश लौटा लिए। महाराजने इन सब प्रदेशोंको इस तरह लूट लिया था, कि कुछ दिनों तक वहांके अधिवासियोंको वल्कल पहनना पड़ा था। इसका बदला लेनेके लिये गौड़ाधिपने अहमदशाहको सेनाको पराजित कर पूर्वबङ्गाल लूटा। कुमिल्लानगरमें इन्होंने एक सरोवर खोदवा कर उसका नाम धर्मसागर रखा। इसके बनानेमें दो वर्ष लगे थे। इन्होंने ताम्रशासनके द्वारा ब्राह्मणोंको बहुतसी जमीन दान दी। इनके समयमें ब्राह्मणोंको पुत्र कन्याके विवाहका खर्च राजकोषसे दिया जाता था। इन्हींके समयमें बङ्गला पद्यछन्दमें राजमाला रची गई। ३२ वर्ष राज्य करनेके बाद महाराज धर्ममाणिक्य परलोकको चल बसे। महाराज ओधर्मके बाद ८४९ त्रिपुराब्दमें (१४३९ ई०में) उनके छोटे लड़के राजा हुए। राजमालामें उनका नाम नहीं है। बहुत थोड़े समयके बाद ही सेनापतियोंके षड़यन्त्रसे वे मारे गये और ओधर्मके छोटे भाई ओधन राजा हुए। ओधनमाणिक्यने राजा होनेके साथ ही पराः-

काका सेनापतियोंको क्षमता ह्रास करनेके लिए मन्त्रियोंसे सलाह ली। एक दिन उन्होंने अपने काष्टका सम्राट् बन कर किसी निर्जनस्थानमें दुर्दान्त सेनापतियों-को बुलाया। उस निर्जनस्थानमें राजाके आदेशसे अनेक गुप्तचर एकत्र थे। उन्होंने सेनापतियों पर आक्रमण कर उन्हें मार गिराया। दुर्दान्तोंके मारे जाने पर युद्ध-कुशल विश्वस्त राय चयचाग-नामक व्यक्तिको प्रधान सेनापति बनाकर महाराज धन्यमाणिक्य राज्य करने लगे। इस समय त्रिपुराके पूर्वमें एक सफेद हाथी दृष्टिगत हुआ। महाराजने इसे पकड़ लानेको कहा। कुकियोंने हाथीको पकड़ा, किन्तु उन्होंने उसे राजाके पास न भेजा। इस पर सेनापति चयचागरायने थानाङ्गोनगरमें कुकियोंको पराजित कर हाथी ले लिया और उन्हें निरवशाभूत भी कर लिया। वे अभी भी कई अंशोंमें त्रिपुराके राजाके वशीभूत हैं। बाद वीर-वर चयचागने ८२२ त्रिपुराब्दमें ( १५१२ ई०में ) आरा-कानके राजाकी सेनाओंको पराजित कर चट्टग्राम प्रदेश त्रिपुराराज्यमें मिला लिया। इस पर गौड़के नवाब सैयद हुसेन शाहने कुपित हो कर गोरमल्लिक नामक एक पठानीको सेनापति बना कर भेजा। कुमिलामें चयचाग और गोरमल्लिकके साथ लड़ाई छिड़ी। प्रथम युद्धमें त्रिपुरासैन्य पराजित हो कर पीछे हट गई और मुसलमान-सैन्य मेहेरकुल दुर्ग अधिकार कर राङ्गामाटी-की ओर अग्रसर हुई। सेनापति चयचागने लौटते समय सोनामुड़ाके दुर्गमें आश्रय ले कर गोमती नदीमें एक बांध बांध दिया, जिससे ३ दिनों तक जलस्रोत बन्द हो गया। मुसलमान लोग नदीको सूखा समझ ज्यों ही पैदल पार कर रहे थे त्यों ही सेनापतिने बांध तोड़ दिया। जिससे अधिकांश मुसलमान-सेना जलमें डूब मरी। जो कुछ बच रही उन्होंने चण्डीगढ़में आ कर आश्रय लिया। किन्तु रातको त्रिपुराकी सेनाने दुर्गमें प्रवेश कर बहुतों-को मार डाला। बहुत थोड़ी सेना अपने प्राण ले कर गौड़को भाग गयी। मेहेरकुलदुर्गमें शत्रुको पराजित करनेकी आशासे महाराज धन्यमाणिक्यने एक काले अश्वारूढ़ बालककी भवानीके निकट बलि दी थी। बाद चयचागने आराकानराज्यके कई अंश जीत लिये।

हायतन खां नामक गौड़के एक दूसरे सेनापति इस समय पुनः त्रिपुराकी ओर अग्रसर हुए। कुमिल्लाके निकट युद्ध हुआ। पहले युद्धमें चयचाग तो पराजित हुए, किन्तु अन्तमें पूर्व कौशल अवलम्बन कर उनने सुगड़िया दुर्गके नीचे मुसलमान-सेनाको जलमें बहा दिया। बची खुची सेनाने सुगड़िया दुर्गमें आश्रय लिया। द्विगुण सैन्य नहीं होनेसे त्रिपुराका जीतना असम्भव है, ऐसा जान कर वे नौ दो ग्यारह हो गये। बहुतसे कैद भी किये गए।

त्रिपुरामें पहले चौदह देवताओंके निकट वार्षिक एक हजार नरबलि दी जाती थी। महाराज धन्य-माणिक्यने उसे बन्द कर अपराधी और युद्धमें बन्दी शत्रुओंको बलि देनेकी प्रथा प्रचलित की। उन्होंने मिथिलासे गीतवाद्यविशारद मनुष्योंको बुला कर अपने राज्यमें संगीतविद्याका खूब प्रचार किया। तभीसे राज-वंशके प्रत्येक मनुष्यका कुछ न कुछ अनुराग उस ओर देखा जाता है। महाराज धन्यमाणिक्यने एक शिव-मन्दिर और १ मन सोनेकी भुवनेश्वरी प्रतिमा निर्माण की। ८२५ त्रिपुराब्दमें (१५१५ ई०में) उनकी मृत्यु हुई। महारानी भी उनके साथ सती हो गईं। धन्यके बड़े लड़के ध्वजमाणिक्य राजा हुए। ६ वर्ष राज्य करनेके बाद इन्द्र नामका एक शिशुपुत्रको छोड़ महाराज ध्वज-माणिक्य परलोकको सिधारे।

बाद ध्वजमाणिक्यके छोटे भाई देवमाणिक्य ८६२ त्रिपुराब्दमें ( १५२२ ई०में ) राजा हुए। वे पहले पहल चट्टग्रामसे प्रचुर धन और बहुतसे दुष्ट मनुष्योंको कैद कर लाये। बन्दि लोग चौदह देवताओंके निकट बलिदान दिये गये। चोन्ताई (चौदह देवताओंके प्रधान पूजक)-ने इस समय राजासे कहा,—'शिवजीने प्रधान सेनापतियोंका रक्त चाहा है।' देवताको खुश करनेके लिये महाराजने दुष्ट पुरोहितकी मन्त्रणासे प्रधान सेनाप-तियोंका वध किया। कुछ दिन बाद हो जब उन्होंने जाना कि चोन्ताई ध्वजमाणिक्यकी स्त्रीके साथ मिल कर उन्हें मार डालनेकी कोशिशमें हैं, तब वे भी सतर्क हो गये। किन्तु सुअवसर पा कर चोन्ताईने छिपके उन्हें मार कर इन्द्रमाणिक्यको ८४५ ई० में सिंहासन पर बिठाया और

आप रानीके साथ राज्य करने लगी। चार महीनेके बाद जब सेनाओंने जाना कि चोन्ताईने रानीकी सलाहसे देवमाणिक्यको मार डाला है। तब उन्होंने उन्मत्त हो कर परपिष्ठ चोन्ताई, पापिनी रानी और पापीयसीके गर्भजात शिशु महाराज इन्द्रमाणिक्यको विनाश कर एक गड्ढेमें गाड़ दिया।

इसके बाद देवमाणिक्यके बड़े लड़के विजयमाणिक्य ८४५ त्रिपुराब्दमें (१५३५ ई० में) राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। विजयने राजा हो कर जब देखा, कि मन्त्री ही प्रकृतराजा हैं, वे साची गोपालमात्र हैं। तब उन्होंने खूब शराब पिलाकर मन्त्रीको मार डाला। इनके समयमें दिल्लीके सम्राट्‌ने त्रिपुराकी स्वाधीनता स्वीकार की। विजयमाणिक्यने कई हजार पठान अश्वारोही सेना नियुक्त की। खासियाके राजा उन्हें वार्षिक ५ हाथी और १० घोड़े करस्वरूप देते थे। अभिमानमें आ कर जब जयन्तियाके राजाने उनकी अधीनता स्वीकार न की, तब विजयमाणिक्यने उनका विनाश करनेके लिए १२सौ भंगीको १२ सौ कुदाली दे कर भेजा। भंगीके हाथसे मरना अपमानजनक समझ कर जयन्तीके राजाने उनकी अधीनता स्वीकार की। पीछे उन्होंने पठान सेनाको चट्टग्राम जीतनेके लिए भेजा, किन्तु उन लोगोंकी तनखाह बाकी थी इसलिए वे राजाको मार डालनेके लिए तैयार हो गये। महाराज विजयमाणिक्यको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वयं युद्ध करके उन लोगोंको कैद कर लिया और चौदह देवताओंके सामने बलिदान दिया। बाद बङ्गालके नवाब सुलेमानने एक हजार अश्वारोही और १० हजार पदाति सेनाके साथ महम्मद खाँ नामक सेनापतिको त्रिपुरा भेजा। चट्टग्राममें ८ मास तक लड़ाई होती रही। युद्धमें पहले त्रिपुराके सेनापति विनष्ट हुए सही; किन्तु पीछे मुसलमानोंकी ही हार हुई। सेनापति महम्मद खाँ लोहेके पिंजरेमें बन्द करके राजधानीको लाये गए; यहाँ चौदह देवताओंके निकट उनकी बलि दी गई।

कुछ दिन बाद विजय-माणिक्यने स्वयं बङ्गदेश पर आक्रमण किया। उनके साथ २६ हजार पदाति, ५ हजार अश्वारोही और ५ हजार नावें थीं। सुवर्णग्राममें लड़ाई छिड़ी, मुसलमान लोग हार गये। पीछे वे लाचा नदी पार कर पद्मापर्यन्त अनेक स्थानोंमें लूट मार मचाते हुए लौट आये। ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे आकर लूटकी सामग्री राजधानी भेज दी गई और आप श्रीहट्टमें लूट मार मचाने लगे। श्रीहट्टको लूट कर उन्होंने वहाँके एक ग्रामके सभी अधिवासियोंको विनाश कर डाला और पीछे बहुतसे जलाशय खुदवा कर वे स्वदेशको लौट आये।

विजयमाणिक्य एक दिन कल्पतरु हुये थे। इनके छोटे लड़के अमरने सेनापति गोपीप्रसादकी कन्यासे विवाह किया। किसी ज्योतिषीने राजासे कहा था, कि उनके छोटे लड़के ही राजा होंगे।' यह सुन कर उन्होंने अपने बड़े लड़केको तीर्थयात्राके बहानेसे पुरुषोत्तममें भेज दिया। विजयमाणिक्य प्रबल पराक्रमसे ४७ वर्ष राज्य कर ८८३ त्रिपुराब्दमें वसन्तरोगसे मरे। बहुतसी रानियां भी उनके साथ सती हुईं।

बाद उनके छोटे लड़के अनन्त श्वसुरकी सहायतासे राजा हुए, किन्तु डेढ़ वर्षके बाद श्वसुरसे ही गुप्त तौरसे मार डाले गये। उनकी स्त्री जब सती होनेको चलीं, तब उनके पिता गोपीप्रसादने उनको रोका। अन्तमें रानीने स्वयं सिंहासन पर बैठनेकी इच्छा प्रगट की; किन्तु विश्वासघातक जामातृहन्ता गोपीप्रसाद कन्याको राज्यसिंहासन न दे कर स्वयं उदयमाणिक्य नाम धारण करके ८८५ त्रिपुराब्दमें (१५८५ ई०में) सिंहासन पर बैठे। बाद उन्होंने कन्याको चण्डीगढ़ग्राम जागीर देकर हस्तीगढ़की रानी बनाया। गोपीप्रसाद पहले धर्मनगरके तहसीलदार थे, पीछे राजाके पाचक बाद चोबदार और अन्तमें शालग्रामको छू कर शपथ खा करके सेनापति हुए।

उदयमाणिक्यने राजधानी राङ्गामटीका नाम बदल कर उदयपुर रखा। उनके समयमें बहुतसे जलाशय और प्रासाद बनाये गये। उनके २४० स्त्रियां थीं जिनमेंसे अनेक भ्रष्टा थीं। इस समय गौड़के एक मुसलमान राजपुत्र भ्रमण करनेके लिये त्रिपुरा आये। महाराजने उनका खूब सत्कार किया। भ्रष्ट रानियोंमेंसे किसी किसीने इनके साथ भी सङ्केत की। यह रहस्य मालूम

हो जाने पर उदयमाणिक्यने गौड़-राजपुत्रको देशसे निकलवा दिया और भ्रष्टा स्त्रियोंको हाथीके पैरसे कुचलवा दिया।

मुगलोंने पुनः इस समय चट्टग्राम पर अधिकार किया। युद्धमें २४ हजार त्रिपुरसैन्य विनष्ट हुई। इस युद्धके ५ वर्ष बाद किसी स्त्रीने विष खिला कर राजाके प्राण नाश किये। उदयमाणिक्यके समय त्रिपुरामें घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे बहुतसी प्रजा नष्ट हुई।

उदयमाणिक्यके बाद उनके लड़के जयमाणिक्य १००६ त्रिपुराब्दमें (१५८६ई०में) राजा हुए। वे नाममात्रके राजा थे। उनके चाचा रङ्गनारायण ही सर्वेसर्वा हो कर राज्य चलाते थे। रङ्गनारायणने देखा कि महाराज अनन्तमाणिक्यके चाचा (विजयमाणिक्यके भाई) अमर बहुत प्रबल हो उठे हैं, उनको शीघ्र दमन नहीं करनेसे पुरातन राजवंश पुनः इनके हाथ लग जायगा। यह सोच कर उन्होंने एक दिन अमरको भोजन करनेके लिये बुलाया। वहां अमरके एक बन्धुने तलवारसे एक पानको दो खण्ड कर उन्हें इशारा किया। अमर यह इशारा समझ हठात् असुस्थताका बहाना करके घोड़े पर सवार हो चल दिये। पीछे वे एक दूसरेको मारनेकी चेष्टा करने लगे। रङ्गनारायणने भय खा कर दुर्गमें आश्रय लिया और पत्रद्वारा अपने भाईको ससैन्य आकर अमर पर चढ़ाई करनेके लिये बुलाया। राहमें पत्रवाहक अमरसे पकड़ा गया और कैद कर लिया गया। अमरने रङ्गका हस्ताक्षर बना एक कृत्रिमपत्र तैयार कर रङ्गके निज विश्वस्त अनुचर द्वारा उनके भाईके पास भेज दिया। रङ्गके भाईने पत्र पाकर वाहकका ज्यों ही आलिङ्गन किया त्यों ही वह उनका मस्तक काट कर अमरके पास ले आया। अमरने उस मस्तकको दुर्गमें रङ्गके पास भेजवा दिया। रङ्ग मस्तक देख व्याकुल हो उठे और सोचने लगे, कि जब भाई मारे जा चुके हैं, तब अवश्य ही उनको सेना भी निहत हुई होगी। इस पर वे आप भी भयभीत हो किला छोड़ कर भाग गये। दो दिन छिपके रहनेके बाद अमरकी एक सेनाने उन्हें देख पाया और उसने तुरत उनका मस्तक काट कर अमरको उपहार दिया। अमरने खुश हो कर उस सैनिकको 'साहसनारायण'की उपाधि दो।

जयमाणिक्यने यह सम्वाद पा कर अमरको एक पत्र लिखकर पूछा कि वे ऐसा अत्याचार क्यों कर रहे हैं? अमर अस्त्रमुखसे उत्तर देनेके लिये ससैन्य अग्रसर हुए। महाराज जयमाणिक्य डरकर कहीं भाग गये। अमरको सेनाने उन्हें रास्तेमें पकड़ कर मार डाला। केवल एक वर्ष राज्य करनेके बाद जयमाणिक्य मारे गये थे।

१००७ त्रिपुराब्दमें अमरमाणिक्य राज्यसिंहासन पर बैठे। राजा होनेके साथ ही इन्होंने त्रिपुराके सभी जमींदारोंको लिख भेजा, "एक सुदीर्घ दीर्घिका खुदवानी होगी। इसके लिये आप लोग कुदाल भेजें।" उनके कथनानुसार ८ जमींदारोंने ७३०० कुदाल भेजे थे। बाद उदयपुरमें जो बड़ी दीर्घिका खुदवाई गई, वह आज भी अमरसागर नामसे प्रसिद्ध है। श्रीहट्टके अन्तर्गतके जमींदारोंने इस कार्यमें कुदालो नहीं भेजी थी। इस कारण महाराज अमरने उन्हें कैद करनेके लिये २२ हजार सेना भेजी। जमींदारने भाग कर श्रीहट्टके मुसलमान शासनकर्त्ताकी शरण ली। उनके लड़के कैद कर लिये गये। अमरमाणिक्यने यह सुन कर श्रीहट्टके मुसलमान शासनकर्त्ताके विरुद्ध यात्रा की और गरुड़व्यूह बनाकर सूर्योदयके समय लड़ाई छेड़ दी। दो पहरको कुछकाल तक विश्राम करनेके बाद पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। सन्ध्याकालमें मुसलमान लोग पराजित हुए। १००८ त्रिपुराब्दमें (१५९८ ई०में) शायद यह घटना हुई होगी। इसी समयसे श्रीहट्ट त्रिपुराका करप्रद हुआ। नोआखालीके अन्तर्गत बलरामके जमींन्दारने पहले अमरमाणिक्यको कर नहीं दिया और कहा कि, अमर जारज है। अतएव वे राज्यके विधिसङ्गत अधिकारी नहीं हो सकते। यह सुनकर महाराज अमरने एक दल सेना भेजकर युद्धमें उन्हें करप्रद बनाया। इस समय बाकलाचन्द्रद्वीप बहुत समृद्धशाली था। अमरमाणिक्यने धनके लोभसे उस राज्यमें लूटपाट मचाई और बहुतसे अधिवासियोंको दासके रूपमें बन्द किया बहुतोंको खरीदा भी। बाद उन्होंने ब्राह्मण-दम्पती और तुलापुरुष दान किया तथा दीर्घिका बनवाई। १०१९ त्रिपुराब्दमें बङ्गालके नवाब इसलाम

खाँने राजधानी ढाकासे त्रिपुरा पर धावा किया। अमर माणिक्यके इशा खाँ नामक एक मुसलमान सेनापति था। एक बड़ी सेना ले कर महाराज अमरने उन्हींको युद्धमें भेजा। इशा खाँने शत्रुके सामने होते हुए भी समय जान कर आक्रमण न किया। त्रिपुराके प्रधान मन्त्रीने यह सुनकर और भी एक दल सेना उनकी सहायताके लिये भेजी और इशा खाँको हुक्म दिया, कि वे अब समयकी अपेक्षा न कर विपक्ष पर आक्रमण करें। इस समय अमरमाणिक्यकी स्त्रीने इशा खाँको प्रसादस्वरूप अपना चरणामृत भेजवा दिया। इशा खाँने रानीके इस अनुग्रहसे उत्साहित हो बारह हजार अश्वारोही और कुछ पदाति सेना ले कर शत्रु पर हठात् आक्रमण किया। मुसलमान लोग पराजित हो कर भाग चले और इशा खाँ विजयी होकर लौट आये।

इसके बाद अमरमाणिक्यने आराकान पर आक्रमण कर उसके अन्तर्गत कई एक प्रदेश जीत लिये। आराकानपतिने बार बार पराजित होने पर पोर्त्तु-गीजोंकी सहायता ली और त्रिपुराके राजा पर धावा किया। युद्धमें पहले त्रिपुरापति पराजित हुए, किन्तु बलसञ्चय कर पुनः आराकान पर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए। इस पर आराकानके राजाने एक वर्ष तक लड़ाई बन्द रखनेके लिये अनुरोध किया। दोनों पक्षके लोग आगामी दुर्गोत्सवके पहले युद्ध करनेको सहमत हुए, क्योंकि युद्धमें बन्दियोंको दुर्गाके सामने बलि दे सकेंगे। त्रिपुराकी सेना लौट आई। आराकान-पतिने अच्छा मौका देख सन्धिभङ्ग कर दी तथा चट्टग्राम पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। त्रिपुरापतिने अपने तीनों पुत्रोंको सेनापति बना कर एक बड़ी सेनाके साथ भेजा। आराकानपतिने भयभीत हो हाथीदांतका बना हुआ मुकुट उपहार दिया और राजकुमारोंके निकट सन्धिका प्रस्ताव पेश किया। मुकुटके अधि-कारके लिये तीनों राजकुमारोंमें अनबन हो गई। ऐसे अवसर पर आराकानके राजाने त्रिपुराकी सेना पर धावा किया। तीनों राजकुमारोंमेंसे एक आहत हाथी-की पीठ परसे गिर कर पञ्चत्वको प्राप्त हुए और शेष दो राजकुमार पराजित हो कर भाग चले। मगोंने उनका अनुसरण किया था। पुनः दोनोंमें मुठभेड़ हुई। इस बार त्रिपुराके पठान-अश्वारोहियोंके अवाध्य हो जानेसे कुमारोंकी हार हुई। मग लोग राजधानी उदयपुर पहुँच गये। अमरमाणिक्य दुर्लक्षण समझ राजधानी छोड़ कर देवघाट नामक स्थानको चले गये। मग लोग उदयपुरको लूट कर वापिस आ गये। उसी समय फेनी नदी त्रिपुराकी दक्षिणीसीमा निर्दिष्ट हुई। चट्टग्रामादि स्थान आराकानराजके अन्तर्गत हुए। महाराज राज्यकी अवस्था, पुत्रोंकी बुद्धि और विवेचना आदि देख कर दुःखसे व्याकुल हो उठे। अन्तमें एक दिन पवित्र मनु नदीमें स्नान कर उन्होंने अफीम खा कर प्राणत्याग किया। उनकी स्त्री भी सती हो गईं।

१०२१ त्रिपुराब्दमें (१६११ ई०में) अमरमाणिक्यके पुत्र राजधर राजा हुए। वे शान्तिप्रिय वैष्णव थे। सिर्फ देवकार्यमें लगे रहते थे। उन्होंने एक सुन्दर विष्णुमन्दिर निर्माण किया था, जिसमें ८ गायक सर्वदा हरिनाम-कीर्त्तन करनेके लिये नियुक्त थे। उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंको विस्तर जमीन दान दी थी। मन्त्रियोंके उनकी उदारता पर छेड़-छाड़ करने पर महाराज राजधर बोले,—"शेष अवस्थाको मेरे अदृष्टमें क्या होगा, यह कौन कह सकता है। समय रहते पर-कालका उपाय करना अच्छा है।" इधर बङ्गालके नवाबने राजधरकी ऐसी अवस्था सुन त्रिपुरा पर आक्रमण करनेके लिये एक सैन्यदल भेजा, किन्तु त्रिपुराके सेना-पतिके कौशलसे वे पराजित हुए। राजधर ३ वर्ष राज्य कर गोमतीमें डूब मरे।

बाद १०२३ त्रिपुराब्दमें (१६३१ ई०में) राजधरके पुत्र यशोधर राजा हुए। राजा होनेके साथ ही इन्होंने त्रिपुरामें मग लोगोंका अत्याचार निवारण किया। इनके समयमें दिल्लीश्वर जहांगीरने कई एक हाथी करस्वरूप मांगे थे। महाराज यशोधरके देनेमें अस्वीकार करने पर दिल्लीके आदेशसे बङ्गालके नवाबने त्रिपुरा पर आक्रमण किया। दिल्लीसे मुगल-सैन्य भी पहुँच चुकी थी। युद्धमें त्रिपुराके राजा परा-जित और बन्दी हुए। मुगलसेना राज्यका कुछ अंश लूट बन्दी महाराज यशोधरमाणिक्यको साथ ले कर

दिल्ली पहुँचो। सम्राट् ने उन्हें छुटकारा दे कर कहा, कि 'यदि वे प्रति वर्ष कई एक हाथी और घोड़े करस्वरूप दें, तो उनके विरुद्ध लड़ाई नहीं ठानी जायगी। यशो धरने इसे अस्वीकार किया और यवनसे पराजित होने पर वे तीर्थाटनमें पापदेह क्षय करनेके लिये प्रयाग, मथुरा वृन्दावनादिको गये। ७२ वर्षको अवस्थामें वृन्दावनमें विष्णु सेवा करते हुए उनका प्राणान्त हुआ। उधर त्रिपुरामें अवशिष्ट मुगल सेना लगातार दो वर्ष तक राज्यमें लूट-मार मचाती रही। इतनेमें वहां महामारी उपस्थित हुई, जिसमें अधिकांश मुगलोंकी मृत्यु हो गई और अवशिष्ट प्राण जानेके भयसे त्रिपुरा छोड़ दिल्लीको चले आये। बाद कल्याणमाणिक्य सभी त्रिपुरवासियों-की सम्मतिसे राज्यसिंहासन पर बैठे।

१०३५ त्रिपुराब्दमें (१६२५ ई०में) कल्याणमाणिक्य राजा हुए। वे किनके पुत्र थे, वह राजमालामें लिखा नहीं है; किन्तु लोग उन्हें यशोधरमाणिक्यके ज्ञाति भ्राता बतलाते हैं। अनुमान किया जाता है, कि महाराज राजधरमाणिक्यके एक भाई आराकान-युद्धमें हाथीके पैरतले मर चुके थे और दो भाग गये थे। कल्याणमाणिक्य इन्हीं दोमेंसे किसीके पुत्र होंगे। कल्याणमाणिक्यके जन्मसम्बन्धमें भी एक लौकिकप्रवाद है—उनका पिता एक दिन आखेटको बाहर निकले। एक पलायित मृगके पीछे दौड़ते दौड़ते मध्याह्नकालमें वे प्याससे कातर हो गये। बाद जलकी खोज करते करते वे बाछाल-प्रजाके घर पर गये। त्रिपुरा जातिमें बाछाल नामक एक सम्प्रदाय है। कल्याणके पिता उस बाछालकी रूपवती कन्याको देख कर मोहित हो गये। बाछाल-कुमारीने भी राजपुत्रको आत्मसमर्पण किया और उसीसे कल्याण-माणिक्यका जन्म हुआ। महाराज कल्याणमाणिक्य विद्वान्, बुद्धिमान् और बलशाली थे। उन्होंने सेनाओंको सुशिक्षित किया। उन्हींसे त्रिपुराके राजपरिवारमें एक नूतन नियम स्थापित हुआ। उन्होंने ही सबसे पहले युवराज पदकी सृष्टि कर अपने बड़े लड़के गोविन्दको उस पद पर नियुक्त किया और सिक्केमें अपने नामके साथ 'शिव' देवनाम अङ्कित किया था। उन्हींके समय से राजनामके साथ देवनाम योग कर सिक्का मुद्रित हुआ करता था। सम्राट् शाहजहान्‌ने उनसे कर मांगा था, किन्तु कल्याणमाणिक्यके अस्वीकार करने पर सम्राट्‌ने बङ्गालके सुबेदार शाह सुजाको त्रिपुरा पर चढ़ाई करनेका हुक्म दिया। शाह सुजाने जो सैन्यदल भेजा था, उनके साथ एक चर्मनिर्मित कामान था। जो कुछ हो, महाराज कल्याणने मुसलमानोंको पराजित कर भगा दिया था। इसके बाद कल्याणने तुला उपलक्षमें उड़ीसा, मथुरा आदि दूर स्थानोंसे ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रचुर धन दान दिये थे और अपने राज्यमें घूम घूम कर निःस्व प्रजाको अर्थदान तथा ब्राह्मणोंको यथेष्ट भूमि दान दी थी। जब कोई तीर्थाटनकी इच्छा करता तो, वे अपने राजकोषसे उसका खर्च देते थे। नूरनगरके कसबा ग्राममें उनकी प्रसिद्ध दीर्घिका आज भी 'कल्याणसागर' नामसे विद्यमान है। कल्याण ३४ वर्ष राज्य कर १०६८ त्रिपुराब्दमें स्वर्गको प्राप्त हुए।

बाद युवराज गोविन्ददेव 'माणिक्य' की उपाधि धारण कर १०६८ त्रिपुराब्दमें (१६५८ ई०में) राज्य-सिंहासन पर बैठे। उनकी स्त्री कमला महादेवी बहुत धर्मपरायणा थीं। उनके सिक्केके एक पृष्ठ पर शिव और स्वामीका नाम तथा दूसरे पृष्ठ पर उनका नाम अङ्कित रहता था। उनका निर्मित कमलासागर आज भी कसबा ग्राममें वर्त्तमान है। महाराज गोविन्दके छोटे भाई नक्षत्रराय बङ्गालके सूबेदार शाह सुजाके साथ मिल कर त्रिपुरा आक्रमण करनेको उद्यत हुए; किन्तु महाराज गोविन्दमाणिक्यने सोचा, कि इस युद्धमें चाहे मेरा प्राण जायगा अथवा मेरे भाईका। यह समझ कर उन्होंने बिना युद्ध किये नक्षत्रके हाथमें राज्य सौंप आप आराकान राज्यमें आश्रय ग्रहण किया। इधर नक्षत्रराय छत्र माणिक्य नामसे सिंहासन पर बैठे। महाराज गोविन्द आराकानके आश्रयमें जब चट्टग्राममें रहते थे, तब भ्रातृयुद्धसे पराजित शाह सुजाने आ कर आराकानमें आश्रय लिया। राहमें महाराज गोविन्ददेवने उनका खूब सत्कार किया और यथासाध्य सहायता भी दी। सुजाने उनके व्यवहारसे लज्जित हो कर क्षमाप्रार्थना मांगी और अपनी "निमचा" नामक बहुमूल्य तलवार प्रदान की।

सुजाके आराकान पहुँचने पर आराकानके राजा सुजाकी कन्याके रूपसे मुग्ध हो गये। उसे हस्तगत करनेके लिये उन्होंने अपने राज्यमें यह प्रचार किया, कि सुजा अपने कौशलसे आराकान जीतनेके लिये आये हैं, अतएव उन्हें मार डालना उचित है; किन्तु बिना युद्धका रक्तका गिरना बौद्धोंके नियमसे अनुचित था, इसलिये उन्होंने छिपके सुजाको पकड़ मंगाया और उन्हें एक नावमें बांध कर नदीमें डुबो दिया। सुजाकी स्त्रीने अपनी छातीमें छुरी चुभा कर प्राण त्याग किया और दो कन्याओंने विष खा कर आत्महत्या की। तीसरी कन्याको आराकानके राजाने ग्रहण किया था।

इधर ७ वर्ष राज्य करके छत्रमाणिक्य जगन्नाथ और नरहरि नामक दो पुत्र छोड़ परलोक सिधारे। छत्रकी मृत्युके बाद गोविन्ददेव पुनः सिंहासन पर बैठे। उन्होंने सुजाके प्रति आराकान-राजके नृशंस-व्यवहारसे मर्माहत हो कर सुजाकी तलवारकी सहायतासे अर्थसंग्रह किया और कुमिल्लानगरमें एक मस्जिद बनवाई जो आज भी 'सुजा-मस्जिद' नामसे वर्त्तमान है। महाराज गोविन्दमाणिक्यने मेहेरकुल-आबाद और वातिसा ग्राममें दीर्घिका खुदवाई। वे भी ताम्रशासन द्वारा ब्राह्मणोंको बहुतसी जमीन दान कर गए हैं। १०७९ त्रिपुराब्द (१६६९ ई०में) उनका देहान्त हो गया।

१०८० त्रिपुराब्दमें (१६७० ई०में) युवराज रामदेव ठाकुर (गोविन्दके ज्येष्ठ पुत्र) राजा हुए। उन्होंने पहले अपने साले बलिभीमनारायणको युवराजके पद पर नियुक्त किया। बाद अपने बड़े लड़के रत्नदेवको भी उसी पद पर स्थापित किया। इसके अनन्तर उन्होंने युवराज-पदका अव्यवहित होनेके बाद ही 'बड़ा ठाकुर' नामक एक पदकी सृष्टि कर उस पर अपने दूसरे पुत्र दुर्जयदेवको नियुक्त किया। इनको राज्यच्युत करनेके लिए षड़यन्त्र रचा गया; किन्तु इसका कुछ फल न हुआ। घनश्याम और चन्द्रमणि नामक उनके और भी दो पुत्र थे।

१०८२ त्रिपुराब्दमें (१६८२ ई०में) युवराज रत्नदेव राजा हुए। उन्होंने अपने छोटे भाई दुर्जयमणिको 'बड़ा ठाकुर'का पद और मामा बलिभीमनारायणको 'युवराज'-का पद प्रदान किया; किन्तु उन्हें धीरे धीरे हटा कर राजवंशीय चम्पकराय और गौरीचरणको युवराज-पद पर तथा चौथे भाई चन्द्रमणिको 'बड़े ठाकुर'के पद पर नियुक्त किया। रत्नदेवके १२५ विवाह हुए थे। रत्नमाणिक्यकी बहुत कच्ची उमर थी; किन्तु शेषोक्त युवराजगण उनकी अपेक्षा बड़े और बहुत अत्याचारी थे। इस समय बंगालके नवाब साइस्ताखांने नरेन्द्रठाकुर नामक रत्नमाणिक्यके एक चाचाकी सहायतासे त्रिपुरा पर आक्रमण किया और उसे जीत भी लिया। बाद वे रत्नमाणिक्य और तीनों युवराजोंको कैद कर लाये।

साइस्ता खाँकी सहायतासे नरेन्द्रठाकुर राजा हुए। तीन वर्ष राज्य करनेके बाद रत्नमाणिक्यने साइस्ता खाँको हस्तगत कर पुनः राज्याधिकार किया। २९ वर्ष राज्य करनेके बाद रत्नमाणिक्यके तीसरे भाई घनश्यामने उन्हें राजच्युत किया।

घनश्याम राज्य पा कर महेन्द्रमाणिक्य नामसे सिंहासन पर बैठे। मन्त्रीके परामर्शसे महेन्द्रने एक स्त्रीके दो स्वामी रहना युक्तिसिद्ध नहीं है, यह जान रत्नमाणिक्यको मार डाला। अन्तमें भ्रातृवधके पापसे दुःस्वप्न देखते देखते २ वर्षके अभ्यन्तर ही उनका प्राणवायु उड़ गया।

११२४ त्रिपुराब्दमें (१७१४ ई०में) युवराज दुर्जयदेव धर्ममाणिक्य नाम धारण कर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उन्होंने चन्द्रमणिको युवराजके पद पर और बड़े लड़के गंगाधरको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया। बंगालके नाजिरने इस समय एक दल सैन्य भेज त्रिपुराके कई एक जिले अधिकार कर लिए और वहां मुसलमान जमींदार नियुक्त किया तथा एक दल मुगलसैन्य उदयपुरमें रख दी। एक दिन मुगल लोग जब निश्चिन्तचित्तसे भोजन कर रहे थे, तब धर्ममाणिक्यने हठात् उन पर आक्रमण किया और उन्हें छिन्न भिन्न कर मार डाला। बहुत थोड़े लोग प्राण ले कर भाग पाये।

छत्रमाणिक्यके लड़के जगन्नाथने इस समय ढाकाके मुसलमान-शासनकर्त्ताके साथ मिल कर त्रिपुरा पर

चढ़ाई की। युद्धमें पहले तो त्रिपुराकी जीत हुई; किन्तु पीछे महाराज, धर्ममाणिक्य पराजित हो कर भाग गए।

११४२ त्रिपुराब्दमें (१७३२ ई०में) जगद्राममाणिक्यने मुसलमानोंके साहाय्यसे राज्य प्राप्त किया, किन्तु उनसे त्रिपुरामें जो क्षति हुई, वह आज तक संशोधित न हो सकी। मुसलमान-दीवान मीर हबीवने पार्वत्य त्रिपुरा स्वाधीन रख अन्य समस्त स्थान मुसलमान राज्यमें मिला लिए और उन्हें मुसलमान जमींदारके हाथ सौंपा। केवल जगद्राम-माणिक्यको २२ परगनेका चकला रोशनावाद जागीरके रूपमें दे दिया। यह जमींदारी अब भी मौजद है। त्रिपुराके राजा अभी इसका कर वृटिश-सरकारको देते हैं।

धर्ममाणिक्य राज्यच्युत हो कर मुसलमानोंकी सहायताके बिना और कोई दूसरा उपाय न देख मुर्शिदाबादको चले गये। वहाँ उन्होंने जगत् सेठसे मित्रता की और उनकी सहायतासे पुनः राज्यप्राप्त किया। धर्ममाणिक्यने बंगला भाषामें महाभारतका अनुवाद किया। थोड़े समयके बाद धर्ममाणिक्यकी मृत्यु हुई।

बाद ढाकाके फौजदारने धर्ममाणिक्यके बड़े लड़के गङ्गाधरको उनके पिताके समयका बाकी राजस्व परिशोध करनेको कहा। इस पर उन्होंने अपनी अक्षमता प्रगट की। युवराज चन्द्रमणि वह ऋण परिशोध कर फौजदारकी सहायतासे मुकुन्दमाणिक्य नामसे राजा हुए। मुकुन्दने राज्य पा कर अधर्म नहीं किया। उन्होंने अपने भतीजे गङ्गाधरको हो युवराजके पद पर और बड़े लड़के पांचकौड़ीको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया तथा जामीनस्वरूप पांचकौड़ीको मुर्शिदाबादमें रख छोड़ा। मुकुन्दमाणिक्यने रुद्रमणि नामक एक ज्ञातिको हाथी पकड़नेके लिये मतिया पहाड़ पर भेजा। वहां रुद्रमणिने बूचरनारायण नामक पार्वतीय त्रिपुरा सर्दारके साथ मिल कर मुकुन्दमाणिक्यको एक पत्र लिख भेजा, कि—'पार्वतीय त्रिपुरगण यवन-संश्रवमें रहना नहीं चाहते। महाराजकी अनुमति पानेसे वे फौजदार-सानुचर हाजीके लिये मुनसिपको वध करनेमें प्रस्तुत हैं।' मुकुन्दमाणिक्यने पत्र पा कर चिन्तित हो उत्तर दिया, कि—'ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके बड़े लड़के जामीनस्वरूप मुर्शिदाबादमें हैं।' रुद्रमणि इस पर भी स्थिर न हो कर फौजदारको मार डालनेके लिये तैयार हो गये। मुकुन्दमाणिक्यने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो कर वह पत्र फौजदारको दिया। फौजदारने प्राणरक्षाके लिये कृतघ्न न हो कर सोचा, कि महाराज मुकुन्द भी इस षड़यन्त्रमें शामिल हैं। सुतरां उन्होंने उनको, उनके लड़के भद्रमणि, कृष्णमणि और बड़े ठाकुर गङ्गाधरको कैद कर लिये। रुद्रमणिठाकुरने यह सम्वाद पा कर ससैन्य आ उदयपुरको घेर लिया।

इसी बीच महाराज मुकुन्दने यवनके हाथ बन्दी हो जाने पर विष खाकर आत्महत्या कर डाली। रानी सती होनेको तैयार हो गईं। इस पर सर्दार बूचरनारायणने उन्हें उत्तराधिकारी नियुक्त करनेकी प्रतिज्ञा की। रानीने पहले अपने पुत्र पांचकौड़ी, और उनके बाद गङ्गाधरको उत्तराधिकारी निर्देश किया; किन्तु बूचरनारायणके रुद्रमणिको उत्तराधिकारी निर्वाचित करने पर रानीने चितामें बैठ आत्महत्या की।

सर्दार बूचरनारायणके साहाय्यसे रुद्रमणिठाकुर जयमाणिक्य (२य) नाम धारण कर राज्यसिंहासन पर बैठे। ये गोविन्दमाणिक्यके छोटे भाईके छोटे लड़केके ज्येष्ठ पुत्र थे। फौजदारने अपने अपराध पर क्षमा प्रार्थना मांगी। इस पर जयमाणिक्यने उन्हें अभयदान दिया। रुद्रमणि प्रभृति राजकुमार छुटकारा पाकर ढाकाको चल दिये।

पांचकौड़ी उस समय भी बङ्गालके नवाबके निकट थे। वे बहुत दिनोंसे त्रिपुराका कोई सम्वाद नहीं पानेसे नवाबकी अनुमति ले नाव पर चढ़ कर स्वदेशको आ रहे थे। पद्मागर्भमें उन्हें ज्यों ही कृष्णमणिके पत्रसे राज्यकी अवस्था मालूम हो गई त्यों ही वे पुनः मुर्शिदाबाद लौट गये। नवाबने उनसे सब बातें सुन कर ढाकाके शासनकर्त्ताको उन्हें सहायता देनेका आदेश किया। बङ्गालके नवाबने इस समय पांचकौड़ीको सिंहासन पर बैठनेकी अनुमति स्वरूप एक सनद दी।

पांचकौड़ीके ससैन्य कुमिल्ला पहुंचने पर प्रजा और सभी कर्मचारियोंने उन्हें अपना राजा बनाया। उदय-

युद्धमें लड़ाई छिड़ी। द्वितीय जयमाणिक्य पराजित हुए। ११४८ त्रिपुराब्दमें ( १७३८ ई०में ) पाचकौड़ी इन्द्रमाणिक्य ( २य ) नाम ग्रहण कर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उनके भाई कृष्णमणि युवराज और हरिमणि बड़े ठाकुर हुए।

जयमाणिक्य राज्यच्युत हो कर हरिनारायण चौधरी नामक एक व्यक्ति समस्त मेहरकुलके सैन्यदल और १४ सौ सेनाओंको साथ ले त्रिपुराके कई स्थान लूटने लगे। अन्तमें उन्होंने रिशवत देकर ढाकाके शासनकर्त्ता जलकादेरखाँको वशीभूत किया तथा इन्द्रमाणिक्यके विरुद्ध उत्तेजित किया। रौसनाबादके बाकी खजानाके कारण जलकादेर खाँ इन्द्रमाणिक्यको कैद कर ढाका ले गये। इस समय ढाकामें धर्ममाणिक्यके पुत्र गङ्गाधर रहते थे। उन्होंने जलकादेर खाँको घूस देकर राजा होना चाहा। महम्मद रफि नामक एक व्यक्तिने एक दल सेना साथ ले जलकादेरको आज्ञानुसार गङ्गाधरको त्रिपुराके सिंहासन पर बिठाया। गङ्गाधर द्वितीय उदयमाणिक्य नामसे राजा हुए।

जयमाणिक्य राज्यच्युत हो ढाकाके ३ परगनेका जमींदारीसत्व ले कर वास कर रहे थे। ( इनके वंशधर अब भी ढाकामें हैं। वे 'कादवाके राजा' वा 'ढाकाके राजा' नामसे प्रसिद्ध हैं। ) जयमाणिक्यने सफलता प्राप्त न कर सकने पर वृद्ध जगद्रामको पुनः भुलावेमें डालनेकी चेष्टा की। उन्होंने कहला भेजा, कि—'यदि जगद्राम रिशवत देकर ढाकाके नवाबको वशीभूत कर सकें, तो वे (जयमाणिक्य) पुनः राजा हो सकते हैं और राजा हो पर जगद्रामके भाई नरहरिको युवराज अवश्य बनावेंगे।' जगद्रामने भी वैसा हो किया। जलकादेर खाँ भी अर्थके दास थे। उन्होंने भी इसी समय उदयमाणिक्यके बदले जयमाणिक्यको त्रिपुराका राजा स्वीकार किया और उदयको भगा कर उन्हें सिंहासन पर बिठाया। जयमाणिक्यने पुनः राज्य पाकर जगद्रामके भाई नरहरिको युवराज बनाया।

इस समय निवाइस महम्मद ढाकाके शासनकर्त्ता हुए। हुसेनकुली खाँ उनके सहकारी थे। इन्द्रमाणिक्यने हुसेनकुलीसे मित्रता की और उनकी सहायतासे बङ्गालके नवाब अलीवर्दी खाँसे सैन्य लेकर त्रिपुरा पर अधिकार जमाया। द्वितीय जयमाणिक्य कैदी बनाकर मुर्शिदाबाद भेज दिये गये। इन्द्रमाणिक्यने दूसरी बार राज्यप्राप्त कर मुर्शिदाबादमें एक प्रतिनिधि रखा। कुछ दिनोंके बाद मुर्शिदाबादसे सम्वाद आया कि जयमाणिक्यने नवाबके प्रियपात्र हाजी हुसेनके साथ मित्रता की है और हाजी हुसेन उन्हें राज्य देनेकी चेष्टामें है। इन्द्रमाणिक्य उद्विग्न हो मुर्शिदाबाद गये और उन्होंने सब बातें अलीवर्दी खाँसे कह सुनाईं। नवाबने हाजी हुसेनको इसके लिये तिरस्कार कर जयमाणिक्यको कारागारमें रखनेका आदेश दिया। इन्द्रमाणिक्य अपने राज्यको लौट आये। इसके बाद हाजी हुसेन अपमानका बदला लेनेके लिये कुमिल्लाके फौजदार हो कर त्रिपुरा आये और इन्द्रमाणिक्यके राज्यमें अत्याचार करने लगे। इन्द्रमाणिक्यने इसे सहन न कर नवाबको खबर दी। उन्होंने इसका अनुसन्धान लेनेके लिये हुसेन उद्दीन्को भेजा। वे इसका पता लगा कर हाजी हुसेन और इन्द्रमाणिक्यको साथ ले मुर्शिदाबाद गये। नवाबने हाजीका ही दोष ठहरा कर उन्हें इन्द्रमाणिक्यको क्षतिपूर्ति करनेको कहा। १७४४ ई०में इन्द्रमाणिक्य इस उपलक्षमें मुर्शिदाबादमें थे। मरहट्टा-युद्धमें नवाबने उन्हें एक दल सेनाका भार सौंपा, किन्तु शारीरिक अस्वस्थ रहनेके कारण वे युद्धमें जा न सके। उनकी अस्वस्थताको बात सुनकर नवाबने हाजी हुसेनके ऊपर चिकित्साका भार दिया। हाजीने चिकित्सकके साथ परामर्श करके जो औषध उन्हें खिलाई थी, उसीसे उनका प्राणान्त हुआ। नवाबने लौट कर उनकी खोज ली और मृत्युसम्वाद सुनकर बहुत आक्षेप किया। बाद उन्होंने उनके छोटे भाईको राज्य देनेके लिये कहा। फौजदार हाजी हुसेन वैसा हो करनेको राजी हुए और कुमिल्ला पहुँच कर उन्होंने युवराज कृष्णमणिको रौसनाबादसे भगा दिया एवं समसेर गाजी और अबदुल रजाक नामक दो व्यक्तियोंके ऊपर शासनभार अर्पण किया। युवराज कृष्णमणिने बाहुबलसे स्वाधीन त्रिपुराके कुछ अंश अपने दखलमें कर लिए। इसके बाद हाजी हुसेन मुर्शिदाबाद आए और द्वितीय जयमाणिक्यको कारागारसे

मुक्त कर त्रिपुरा ले गए। जाते समय ढाकामें उनकी मृत्यु हुई। तब हाजीने उनके भाई हरिधनठाकुरको विजयमाणिक्य नाम देकर सिंहासन पर बिठाया और रोसनाबादसे मासिक एक हजार रुपये उन्हें देनेकी व्यवस्था कर दी। रोसनाबादका राजस्व बाकी रह जानेके कारण विजयमाणिक्य कैद कर लिए गए और कुछ समयके बाद वहीं उनका प्राणान्त हुआ।

समशेर गाजी और अबदुल रजाक रोसनाबादमें शासन करने लगे। त्रिपुरा जातिसे कर मांगने पर उन्होंने कहा कि राजवंश छोड़ कर और किसीको हम लोग कर नहीं देंगे। इस पर उन दोनों मुसलमानोंने परामर्श कर द्वितीय उदयमाणिक्यके भतीजे वनमाली ठाकुरको लक्ष्मणमाणिक्य नाम दे कर त्रिपुराके राजा बनानेका सङ्कल्प किया। युवराज कृष्णमाणिक्यको यह बात मालूम होने पर उन्होंने त्रिपुराका राजसिंहासन तोड़ कर नदीमें बहा दिया। लक्ष्मणमाणिक्य बांसके बने हुए सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उन दो मुसलमानोंने उनके नामसे नोआखाली और चट्टग्राम प्रभृति देशोंमें लूट-पाट करना आरम्भ की तथा वे लूटके मालसे अपने धनागार भरने लगे। रोसनाबादकी प्रजाने उनके अत्याचारको सहन न कर नवाब मीर-कासिम अली खांसे प्रार्थना की। इस पर नवाबने सेना भेज दोनोंको कैदी बना कर तोपसे उड़ा डाला।

११७० त्रिपुराब्दमें (१७६० ई०में) युवराज कृष्णमणि नवाब कासिम अली खांकी सनद ले कर कृष्णमाणिक्य नामसे राजा हुए। उन्होंने त्रिपुरामें नवीन राजसिंहासन प्रस्तुत किया और उदयपुर परित्याग कर आगरतलामें राजधानी स्थापित की। कृष्णमाणिक्यने अपने भाई हरिमणिको युवराजके पद पर और अपने चचेके पोते वीरमणिको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया। इस समय चट्टग्रामके मुसलमान बहुत अत्याचार कर रहे थे। कसबाग्राममें लड़ाई छिड़ी। महाराज कृष्णमाणिक्यने पराजित हो कर दुर्गमें आश्रय लिया और वहांसे अस्त्रनिक्षेप कर मुसलमानोंको परास्त किया। कसबा-दुर्गका भग्नावशेष अब भी कालीगामके उत्तरमें वर्त्तमान है। इस समय अंगरेजोंने बंगाल दखल किया। पीछे १७६५ ई०में लार्ड क्लाइवने बंगालकी दीवानी पाकर राल्फलिक नामक एक व्यक्तिको रेसिडेण्ट बना कर त्रिपुरा भेजा।

२य रत्नमाणिक्यने कुमिल्लेमें जो सप्तदश चूड़ामन्दिरका आरम्भ किया था, उसे महाराज कृष्णमाणिक्यने समाप्त कर उसमें जगन्नाथकी मूर्त्ति स्थापित की, युवराज हरिमणि कण्ठमणि और राजधरमणि नामक दो शिशुपुत्र छोड़ कर परलोकको सिधारे। महाराज कृष्णमाणिक्य और उनकी स्त्री जाह्नवा देवी कण्ठमणिका अनादर और राजधरका समादर करती थीं। ११८१ त्रिपुराब्दमें (१७८० ई०की, ११वीं जुलाई) महाराज कृष्णमाणिक्यकी मृत्यु हुई। उस समय कुमार राजधर कुमिल्लामें और रेसिडेण्ट लिक चट्टग्राममें थे।

स्वामीकी मृत्युके बाद रानी जाह्नवादेवी त्रिपुरामें राज्य करने लगीं। रेसिडेण्टने गवर्नर जेनरल वारेन् हेस्टिंग्सको यह सम्वाद पहुंचाया। मि० लिकके आगरतला आने पर रानीने उन्हें कहला भेजा कि राजधरके सिंहासन पर बैठनेसे वे राजकार्यसे अलग हो जांयगी। बड़े ठाकुर वीरमणि रानीका अभिप्राय समझ कर राज्याधिकार करनेके अभिलाषी हुए, किन्तु हठात् मृत्यु हो जानेसे वे कुछ भी कर न सके। राज्यच्युत लक्ष्मणमाणिक्यने ऐसे सुयोगमें सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा की, किन्तु जाह्नवादेवीके कौशलसे वे वशीभूत हुए।

जाह्नवादेवीने कुमिल्लेमें एक दीर्घिका खुदवाई, जो आज भी रानीकी दीघी नामसे वर्त्तमान है। वारेन् हेष्टिंग्सने रानीके कथनानुसार राजधरको त्रिपुरापति स्वीकार किया। ११८५ त्रिपुराब्दमें (१७८५ ई०में) महाराज राजधरमाणिक्य सिंहासन पर बैठे और उन्होंने महाराज लक्ष्मणमाणिक्यके पुत्र दुर्गामणि ठाकुरको युवराजके पद पर नियुक्त किया। राजधर राजा हुए सही, किन्तु वे लिखना पढ़ना कुछ भी नहीं जानते थे। इसलिये अंगरेज गवर्मेण्टने रोसनाबाद कुछ दिनोंके लिये त्रिपुराके कलेक्टरके हाथ लगा दिया। उस समय वहांकी आमदनी १३८०००) रुपयेकी थी। महाराज अपने खर्चके लिये मासिक १ हजार रुपये पाते थे।

राजधरने मणिपुरके राजा जयसिंहको कन्यासे विवाह किया। इनसे इन्हें कोई सन्तान न थो। दूसरो स्त्रीके गर्भसे उनके चार पुत्र थे जिनमेंसे दो को शैशव-कालमें ही मृत्यु हुई और दो जीवित रहे।

इनके समयमें ब्रह्मदेशाधिपतिने त्रिपुरा और आराकान पर आक्रमण किया। सेनापति आशुमणिने मग लोगोंको पराजित किया। आराकान ब्रह्मदेशके अधिकारमें आया। कूकियोंके विद्रोही होने पर सेनापति आशुमणिने उन्हें परास्त किया।

राजधरने अपने बड़े लड़के रामगङ्गाको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त कर उनके हाथमें राज्यशासनका भार सौंपा। वे विद्वमन्त्री कालीचरणको सलाह ले कर अच्छी तरह राजकार्य चलाते थे। श्रीहट्टके किसी भद्र कायस्थकी कन्या चन्द्रतारासे रामगङ्गाका विवाह हुआ था।

राजधरने राजधानीमें वृन्दावन नामक एक विग्रहकी प्रतिष्ठा की और सोनाग्राममें राजधरगञ्ज नामका एक बाजार स्थापित किया। राजधर अन्तिम अवस्थामें वैराग्य अवलम्बन कर १२१४ त्रिपुराब्दमें (१८०४ ई०में) कराल कालके गालमें फंसे। पिताकी मृत्युके बाद रामगङ्गा राजा और भाई काशीचन्द्र युवराज हुए। युवराज दुर्गामणिने कुलाचारानुसार राज्य पानेके लिये आवेदन किया। अन्तमें १८०८ ई०को १८वीं जुलाईको प्रभिन्सियल कोर्टके मतसे वे ही रोशनाबाद जमींदारीके अधिकारी ठहराये गये। महाराज रामगङ्गामाणिक्यने सदर दीवानीमें अपील की। अपीलमें भी दुर्गामणिका स्वत्व कायम रहा। अतः अंगरेज गवर्मेण्टने दुर्गामणिको त्रिपुरापति बनाया। रामगङ्गा राज्य छोड़ कर श्रीहट्टको चले गये और वहांके विवगाँव और वालिशिरा नामक दो परगनेका जमींदारी स्वत्व ले कर सपरिवार रहने लगे।

दुर्गामाणिक्य १८०८ ई०में राजा हुए। उन्होंने पहले दीवान रामरत्नको कन्या सुमित्रा देवीको व्याहा, उनके गर्भसे दो कन्या उत्पन्न हुईं। पीछे उन्होंने नकुल गाइलिमको कन्या मधुमतिसे विवाह किया।

दुर्गामाणिक्यने काशीमें शिवका स्थापन और शिव-मन्दिर निर्माण किया। उन्होंने दो वर्ष राज्य करके द्वितीय विजयमाणिक्यके पौत्र शम्भुचन्द्र ठाकुरको युवराज पदोपयोगी छत्रदण्डादि दिये थे, किन्तु उनका अभिषेक नहीं हुआ। शम्भुचन्द्रके हाथमें राज्यभार देकर आप काशीको चले गये। बादमें १२२६ त्रिपुराब्दको (१८०९ ई०के अप्रिल मासको) पटनेमें उनका देहान्त हुआ।

दुर्गामाणिक्यको मृत्युके बाद रामगङ्गा अंगरेजके अनुग्रहसे पुनः राजा हुए। काशमणि ठाकुरके पुत्र (महाराज राजधरके बड़े भाई) अर्जुनमणि ठाकुर, मनोनीत युवराज शम्भुचन्द्र ठाकुर और रानी सुमित्रा महादेवीने रोशनाबाद जमींदारीके लिये मुकद्दमा चलाया; किन्तु रामगङ्गा माणिक्य पहले बड़े ठाकुर थे इसलिये सदर दीवानी अदालतमें उन्होंका स्वत्व स्थिर किया गया। मुकद्दमा शेष होने पर रामगङ्गा १२३१ त्रिपुराब्दमें (१८२१ ई०में) दूसरी बार राजा हुए। काशीचन्द्र पुन युवराजके पद पर और रामगङ्गाके पुत्र कृष्णकिशोर बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त हुए।

शम्भुचन्द्र मुकद्दमेमें हार कर काईपे प्रभृति कुकियोंके साथ मिल गये और युद्धका आयोजन करने लगे, किन्तु त्रिपुराके सेनापति सुबा धनञ्जयसे परास्त हुए। ब्रह्मराजने त्रिपुरा पर चढाई की, किन्तु रामगङ्गाने अपने कौशलसे उन्हें राज्यमें प्रवेश करने न दिया। ब्रह्मयुद्धमें इन्होंने अंगरेजोंकी सहायता की थी।

महाराज रामगङ्गामाणिक्यने सोनाग्राममें एक दीर्घिका खुदवाई जिसका नाम गङ्गासागर रखा गया। यह दीर्घिका आज भी वर्त्तमान है। उन्होंने अपने गुरु भुवनमोहन और गुरुपत्नी और किशोरीदेवी नामके दो विग्रह प्रतिष्ठित किये। उनके केवल एक स्त्री थी। वे पारसी भाषामें पण्डित, शास्त्र, शस्त्रविद्या और मल्लयुद्धमें पटु थे। १२३६ त्रिपुराब्दमें (१८२६ ई०में) चन्द्रग्रहणके समय रातको मस्तकमें दीक्षा-गुरुका पद और वक्षस्थलमें शालग्राम धारण कर महाराज रामगङ्गामाणिक्य स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। वृन्दावनमें भी उन्होंने रासविहारी नामक देवता स्थापित किया। मृत्युके बाद उनकी हड्डियां वृन्दावनके उसी देवालयमें

गाड़ी गई। उनके श्राद्धमें १८ हजार रुपये केवल गरीबोंको बाँटे गये थे।

१२३७ त्रिपुराब्दमें (१८२७ ई०के मार्च मासमें) युवराज काशीचन्द्र राजा हुए। रामगङ्गामाणिक्यके समयसे त्रिपुरापतिके अभिषेक काल तक ब्रटिशराज उन्हें खिलात दिया करते थे। कृष्णकिशोर युवराज और कृष्णचन्द्र नामक काशीचन्द्रके पुत्र बड़े ठाकुर हुए। कृष्णचंद्रको माता कुटिलाची महादेवी मणिपुर-राज-कन्या थीं। उन्होंने अपने पुत्रोंको युवराज बनाने कहा, इसलिए काशीचन्द्रने उनका यथेष्ट तिरस्कार किया।

इस समय फ्रान्सीसी एक कुर्जन रौसनाबादके अध्यक्ष हुए। वे राजाके विश्वासपात्र हो कर बहुत धनशाली हो गये थे। इनके बड़े लड़के चन्द्ननगरमें सब से सुन्दर अट्टालिका बना गए हैं। काशीचन्द्र शराब बहुत पीते थे, इसलिए तीन वर्ष राज्य करनेके बाद हो इनका प्राणान्त हुआ।

१२४० त्रिपुराब्दमें कृष्णकिशोर राजा हुए। बड़े ठाकुर कृष्णचन्द्रके मर जाने पर कृष्णकिशोरने अपने लड़के ईशानचन्द्रको (जिनको उमर ढाई वर्षकी थी) युवराजके पद पर नियुक्त किया। कृष्णकिशोरने तान्त्रिकोंके अनुरोधसे अनेक चण्डालोंका वध किया और उनके मस्तकसे महापात्र और हड्डीसे महाशङ्ख की माला बनवा कर उन्हें तान्त्रिकोंको दान दिए। विद्वान्, वीर और युद्धकुशल होने पर भी वे मद्यप और इन्द्रियपरायण थे, कृष्णकिशोरके समयमें चट्टग्राम के कमिश्नरने त्रिपुराको स्वाधीनता ले लेनेको चेष्टा की, किन्तु गवर्नर जेनरलने उसे अनुमोदन न किया। उनके दूसरे लड़के उपेन्द्र बड़े ठाकुर हुए।

कृष्णकिशोर शिकारप्रिय थे। शिकारके हेतु उन्होंने जलाभूमिमें राजधानी बसाई और उसका नाम रखा 'नूतन हवेली'। ९ पुत्र और १५ कन्यायें छोड़ कर कृष्णकिशोर १२५९ त्रिपुराब्दमें वज्राघातसे मरे। इनके अपरिमित व्ययके कारण चाकले रौसनाबाद बहुत ऋणसे ग्रसित था।

१२५९ त्रिपुराब्दके २० माघको (१८५० ई०की १ली फरवरीको) महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्य राजा और बड़े ठाकुर उपेन्द्र युवराज हुए। उस समय राज्यका ११ लाख रुपये ऋण था। कृष्णकिशोरने अपनी माताकी सहचरीके लड़के बलरामको आला-हाजीके पद पर नियुक्त किया। ईशानने उसे सुचतुर समझ कर दीवानका पद दिया, किन्तु बलराम अपने भाई श्रीदामकी सहायतासे राजमें अत्याचार करके अपना कोष भरने लगे। यह देख कर राजा और युवराज छोड़ कर और सभी विरक्त हो उठे। त्रिपुराके प्रधान मनुष्य उन्हें मार डालनेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें कुकियोंकी सहायता ले परीचित और कीर्त्ति नामक दो व्यक्तियोंने नायक हो कर बलराम तथा श्रीदामके घर पर धावा किया। बलराम भाग गये और श्रीदाम मारे गए। ईशानचन्द्रने क्रुद्ध होकर बलरामके शत्रुओंको बन्दी और श्रीदामहन्ता कीर्त्तिका प्राणनाश किया। बलरामके प्रति प्रजाका विद्वेष जान कर महाराज ईशानने उन्हें पदच्युत किया और ब्रजमोहन ठाकुरको दीवान बनाया। द्वितीय विजयमाणिक्यके पुत्र इस समय कैशी नदीके दक्षिण किनारे बगाचतल नामक स्थानमें एक छोटा राज्य स्थापन कर त्रिपुराके दक्षिणांशमें लूट मार मचाते थे। ईशानचन्द्रने उन्हें वशीभूत किया। युवराज उपेन्द्र पिता सरीखे मद्यपान और कुक्रियासक्त थे। १२६१ त्रिपुराब्दमें उनकी मृत्यु हो जाने पर त्रिपुरामें शान्ति विराजने लगी। ब्रजमोहन दीवान भी ऋण शोध न कर सके। रौसनाबाद हाथसे निकलने पर हो गया। कलराजपरिवारका भरणपोषण क्लेशकर हो पड़ा। कलकत्तेके ठाकुर वंशीय दक्षिणारञ्जन मुखोपाध्याय इस समय त्रिपुरा आ पहुँचे। उन्होंने महाराजको दिलासा दिया। इस पर महाराजने उन्हींको मन्त्री बनाना चाहा, किन्तु उनके चरित्रमें दोष रहनेके कारण राजगुरु विपिनविहारी गोस्वामीने समस्त कर्मचारियोंके परामर्शसे महाराजको इस काममें बाधा दी। उन्होंने गुरु-महाराज ईशान अत्यन्त गुरुभक्त थे। उन्होंने गुरु-वाक्यसे दक्षिणा बाबूको विदा करके उन्हें कहा, 'प्रभो! मैं चाकले रौसनाबादकी रक्षाका उपाय नहीं देखता हूं। आपके चरण पर राज्य और जमींदारी सौंपता हूं, आप ही इसकी रक्षा कीजिये।'

विपिनविहारीने १२६५ त्रिपुराव्दमें त्रिपुराका शासन भार अपने ऊपर लिया। कलकत्तेमें कार्य चलानेके लिये इस समय यज्ञचन्द्र चट्टोपाध्याय नामक एक अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य आममोक्तार नियुक्त हुए। वे छह मास कलकत्तेमें और छह मास आगरतलामें रहते थे। गुरु विपिनविहारीने अमात्योंके परामर्शसे राज्यका ऋणशोध अनेक उपायसे किया। ईशानचन्द्रने २ खण्ड भूमि आवाद कराकर उनका नाम अपने दो पुत्रोंके नाम पर व्रजेन्द्रनगर और नवद्वीप रखा। गुरुको सलाहसे इन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको युवराज और बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त करना चाहा। इस पर उनके भाई चक्रान्त करने लगे। उन्होंने भयसे ईशानचन्द्रको कहला भेजा कि ईशानके दो पुत्रोंके सिवा और किसीको कोई उत्तराधिकारी पद नहीं देवें। राजाको भी छिपके मार डालनेकी कोशिश होने लगी, किन्तु गुप्तचरके कौशलसे यह बात जान लेने पर राजाने उन्हें पकड़ मंगाया और कैद कर लिया। इस समय चट्टग्राममें सिपाही विद्रोह आरम्भ हो गया था। ईशानचन्द्रने इसे दमन करनेमें अंगरेजोंको खूब सहायता की।

१२६८ त्रिपुराव्दमें कूकियोंका उत्पात शुरू हुआ, किन्तु महाराजने उसे तुरंत दमन किया। इस समय बड़े ठाकुर और युवराजके पद पानेके लिये नीलकृष्ण और वीरचन्द्र नामक ईशानके दोनों भाई आपसमें झगड़ने लगे। मु‚दमा करने पर भी वे विजयी न हुए, किन्तु इसके परिणाममें वृटिश गवर्मेण्टके साथ त्रिपुराकी मित्रताके रूपमें एक सन्धि हुई।

ईशानचन्द्रने तीसरे पुत्रके नाम पर भी रोहिणी नगर नाम रखकर एक नूतन नगर बसाया और तीसरे पुत्रको जागीर दी। तिष्णा परगनेमें रानी चन्द्रेश्वरी महादेवीके नामसे एक बाजार बसाया गया। चन्द्रेश्वरने वृन्दावनमें राधामाधवकी एक मूर्त्ति स्थापन की।

१२७२ त्रिपुराव्दके ११ श्रावणको ३४ वर्षकी अवस्थामें महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्य उत्तराधिकारी नियुक्त किये बिना वातरोगसे परलोकको चल बसे। इन्होंने ही त्रिपुरामें नूतन राजप्रासाद निर्माण किया था। केवल एक दिन तक इन्होंने इस प्रासादका भोग किया था। बहुत तर्क वितर्कके बाद वीरचन्द्रमाणिक्यने राज्य प्राप्त किया। ये धार्मिक तथा साहित्यानुरागी थे। इन्हींके यत्नसे त्रिपुराराज्यमें बहुतसे सुनियम बनाये गये हैं। इनके बाद राजा विजयमाणिक्य और राजा राधाकिशोर देव वर्मनमाणिक्यने त्रिपुरा-राजसिंहासनको सुशोभित किया। वर्त्तमान राजाका नाम H. H. राजा वीरेन्द्रकिशोरमाणिक्य बहादुर है। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे १३ तोपोंकी सलामी मिलती है। त्रिपुरामें बौद्धधर्म प्रचलित है।

"रामपालके राजत्वकालमें प्रसिद्ध बौद्धतान्त्रिक विरूप आविर्भूत हुए। इनका दूसरा नाम धर्मपाल था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कालविरूप था। एक समय आचार्य कालविरूप त्रिपुराको आये। उनका सदुपदेश सुनकर त्रिपुरापति विमुग्ध हो गये और उनसे तान्त्रिक-बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। आचार्यके निकट रहते रहते राजा भी एक सिद्ध हो गये। तान्त्रिक-बौद्धोंके मतसे भी शक्तिसङ्गम नहीं होनेसे सिद्धिलाभ नहीं होती है। एक दिन राजाको भी आदेश मिला कि पद्मावती नामक डोमकी कन्याको शक्तिरूपसे ग्रहण करने पर उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। राजाने हृष्टचित्तसे डोमनीको ग्रहण किया। उसको साथ ले वे राजधानी छोड़ वनको चले गये और वहीं साधना करने लगे। क्रमशः वे डोमराज वा डोमाचार्य नामसे विख्यात हुए। इनकी असाधारण क्षमता थी; किन्तु डोमकन्याके सहवास करनेके कारण वे राज्यसे निर्वासित हुए थे। उनकी अनुपस्थितिमें राज्यमें महामारी पहुंची। ज्योतिषियोंने गणना कर कहा कि राजाके नहीं रहनेसे ही ऐसी दुर्घटना उपस्थित हुई है। प्रजाने राजाको बहुत यत्नसे बुलाया। राजाके आने पर राज्यमें शान्ति स्थापित हुई। उन्होंने धर्म नामक तान्त्रिकबौद्ध मतका प्रचार किया। बहुत थोड़े दिनोंके मध्य बहुतसे लोगोंने इस मतको ग्रहण कर लिया। धर्मपूजामें वज्रयोगिनी, वज्रवाराही, वज्रडाकिनी, वज्रभैरव वा क्षेत्रपाल, नाथ आदिकी पूजा की जाती है।"

त्रिपुरान्तक (सं० पु०) त्रिपुरस्य अन्तं करोति अन्त-णिच् ण्वुल । १ शिव, महादेव।

त्रिपुरारि (सं० पु०) त्रिपुरस्य अरिः, ६-तत्। १ शिव, महादेव। २ एक टीकाकारका नाम, पार्वतीनाथके पुत्र। इनको बनाई हुई अनर्घराघव और मालतीमाधवकी टीका पायी जाती है।

त्रिपुरारिपाल—एक संस्कृत कवि। सदुक्तिकर्णामृतमें इसको कविता उद्धृत हुई है।

त्रिपुरारिरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। इसको प्रस्तुत प्रणाली—हिङ्गुलोत्थ, पारा, ताँबा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, विष प्रत्येक १ तोला, चाँदीकी भस्म आध तोला, इन सबको एक साथ मिला कर अदरखके रससे मलते हैं और बाद २ रत्तीको गोली बनाते हैं। इसका अनुपान मधु, चीनी वा अदरखका रस है। इसके सेवन करनेसे आठों प्रकारके ज्वर, प्लीहोदर, शोथ और अतिसार बहुत जल्द आराम हो जाते हैं। शङ्करने जिस प्रकार त्रिपुरको दग्ध कर डाला था, उसी प्रकार यह दवा भी रोगोंको अति शीघ्र जला देती है, इसीसे इसका नाम त्रिपुरारिरस पड़ा।

त्रिपुरुष (सं० क्लो०) त्रयाणां पुरुषाणां समाहारः। १ पित्रादि पुरुषत्रय, पिता, पितामह और प्रपितामह। त्रयः पुरुषाः पित्रादयो भोक्तारो यस्य। २ भोगभेद, सम्पत्तिका वह भोग जो तीन पीढ़ियां अलग अलग करें।

प्रपितामहने जिसका भोग किया हो, पीछे उसके पुत्रने किया हो और बाद जिसे उसका भी पुत्र भोग कर रहा हो, उसे त्रिपुरुष कहते हैं; किन्तु पितामह, पिता और पुत्र इन तीनोंके जीवित रहते जो भोग किया जाता है, उसे एक पुरुष भोग कहते हैं।

(त्रि०) त्रयः पुरुषाः परिमाणमस्याः ठन् तस्य लुक्। ३ पुरुषत्रयपरिमित, जो तीन पीढ़ियोंसे चला आ रहा हो।

त्रिपुरेशाद्रि (सं० पु०) काश्मीरका एक पर्वत।

त्रिपुष (सं० पु०) १ ककड़ी। २ खीरा। ३ गेहूँ।

त्रिपुषा (सं० स्त्री०) त्रीन् वातादिदोषत्रयान् पुष्णातीति पुष-क, ततष्टाप्। कृष्णत्रिवृत्, काला निसोथ।

त्रिपुष्कर (सं० क्लो०) त्रयाणां पुष्कराणां समाहारः। १ पुष्करत्रय, ब्रह्मकृत तीर्थभेद। २ ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठके भेदसे पुष्कर कुण्ड। (पु०) ३ नक्षत्र, वार, तिथिरूप अशुभयोगभेद। पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्र, विशाखा, रवि, मङ्गल और शनिवार तथा द्वितीया, सप्तमी, तथा द्वादशी तिथिमें मृत्यु होनेसे त्रिपुष्करयोग होता है। मृत्युके दिन उक्त वार, नक्षत्र और तिथिके पड़नेसे ही इस प्रकारका त्रिपुष्करयोग लगता है।

यह त्रिपुष्करयोग बहुत अशुभ है। इस योगमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे बहुत जल्द उसकी शान्ति करनी चाहिये, नहीं तो उसके परिवारके प्रायः सभी आदमी मर जाते हैं, यहां तक कि उसके वृक्ष आदि भी नष्ट हो जाते हैं। पूर्वोक्त तिथि, वार, नक्षत्रमें जन्म होनेसे जारजयोग होता है। इसमें यदि कोई लाभ हो, तो वैसा ही लाभ और तीन बार होता है, यदि हानि हो, तो वैसी ही हानि और तीन बार होती है और यदि कोई चीज चोरी गई हो, तो वैसीही तीन बार चोरी होती है। इस योगमें मरनेसे प्रथम मास वा वर्षमें पीड़ा होती और उसके पुत्र विनष्ट होते हैं। देवतासे रक्षाकी जाने पर भी पुत्रकी रक्षा नहीं है।

त्रिपुष्करयोगकी शान्ति अशौचके दिन करनी होती है। इसमें देरी करनेसे धीरे धीरे अनर्थ होने लगता है। अर्थात् पुत्र, भाई, स्त्री, पति, श्वसुर, माता, पिता, स्वसा, चाचा, बहनोई, बड़े भाई, स्वामी, अपत्य इनमेंसे एक एककी मृत्यु क्रमशः होने लगती है। १६ मास पूरने पर बान्धव नष्ट होते और यदि बान्धव न हो, तो वास्तु वृक्ष तक भी जीवित नहीं रहते। इस योगमें यदि कोई मरे, तो उसके परिवारमें तीन आदमी और मरते हैं। यदि कोई वस्तु लाभ हो, तो वैसा ही लाभ और तीन बार होता है। इस प्रकार शुभाशुभ कार्यमें तीन तीन कर मङ्गलामङ्गल होते हैं, इसीसे इस योगका नाम त्रिपुष्कर हुआ है। इसकी शान्ति करनेमें वराह-संहितोक्त अयुतहोम करना होता है। यदि इसमें कोई अशक्त हो, तो उसे सुवर्णादि दान करना चाहिये। आचार्य द्वारा होम और बलि प्रभृति की जाती हैं।

शान्तिविवरण पुष्कर शब्दमें देखो।

त्रिपृष्ठ ( सं० पु० ) जैन-पुराणानुसार पोदनपुरके राजा प्रजापतिके पुत्र, इस युगके ९ नारायणोंमेंसे प्रथम नारायण। इनकी माताका नाम भगवती था। नारायण त्रिपृष्ठ ग्यारहवें तीर्थङ्कर भगवान् श्रेयांसनाथके समयमें उत्पन्न हुए थे। इनका जीव पूर्वभवमें मारीचकी पर्यायमें था। इनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी। इन्होंने प्रतिनारायण अश्वग्रीवको युद्धमें परास्त और निहत किया था तथा आप तीन खण्डके स्वामी बने थे। इनके पास चक्रवर्तीसे आधी सम्पत्ति थी, इसलिये ये अर्द्धचक्रवर्ती कहलाते थे ; अन्य ८ नारायणोंके विषयमें भी यही बातें हैं। इनकी १६००० रानियां थीं ; पट्टरानीका नाम था स्वयंप्रभा। इनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम श्रीविजय था। इनके पिता प्रजापतिने पिहितास्रव मुनिके निकट दीक्षा ली थी और निर्वाणप्राप्त हुए थे, किन्तु नारायण त्रिपृष्ठ मर कर नरक गये।

(प्राचीन जैन-इतिहास १म भाग पृ० ११२-१३ )

त्रिपौरुष ( सं० क्लो० ) त्रीन् पित्रादीन् पुरुषान् व्याप्नोति अण् उत्तरपदवृद्धिः। पित्रादि क्रमसे तीन पीढ़ियोंका भोग। त्रिपुरुष देखो।

त्रिपौलिया ( हिं० स्त्री० ) तिरपौलिया देखो।

त्रिप्पपूर—मन्द्राजके त्रिवाङ्कुरराज्यके अन्तर्गत त्रिवन्द्रम् तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० ८° ३२´ उ० और देशा० ७६° ५८´ पू०में त्रिवन्द्रम्से ५ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६३७ है। यहां विष्णुके चरणोंकी पूजा होती है, इस कारण इसकी गिनती तीर्थोंमें की गई है। कहते हैं कि, त्रिवाङ्कुर राजवंशके कुलदेवता अनन्तपद्मनाभका मस्तक तिरुवल्लभमें, धड़ त्रिवन्दरममें और पैर त्रिप्पपूरमें है। इस कारण यह ग्राम बहुत पवित्र माना जाता है।

त्रिप्रश्न ( सं० पु० ) त्रयाणां दिग्देशकालानां प्रश्नः। १ दिक्, देश और कालविषयक प्रश्न, दिशा, देश और कालसम्बन्धी प्रश्न।

त्रिप्रस्रुत ( सं० पु० ) त्रिषु स्थानेषु प्रस्रुतः। मद स्रवित मत्तगज, वह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानोंसे मद झड़ता हो।

त्रिप्लक्ष ( सं० पु० ) जनपदविशेष, एक बहुत प्राचीन देशका नाम।

त्रिफला (सं० स्त्री०) त्रयाणां फलानां समाहारः अजादित्वात्। "द्विगोः" ( पा० ४।१।२१ ) इति सूत्रेण ङीप्। १ आंवले, हड़ और बहेड़ेका समूह। इसका पर्याय—त्रिफली, फलत्रय और फलत्रिक है। यह आंखोंके लिए हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और विषमज्वरका नाशक माना जाता है। इसके द्वारा वैद्यकमें अनेक प्रकारके घृत आदि बनाए जाते हैं।

त्रिफलाघृत ( सं० क्लो० ) त्रिफलानां रसेन युक्तं घृतं। घृतऔषधभेद। घी ६४ सेर, क्राथके लिए मिला हुआ त्रिफला ३८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गायका दूध ६४ सेर, चूर्ण मिला हुआ ६१ सेर इन्हीं सबके मेलसे यह घृत प्रस्तुत होता है। इसके सेवन करनेसे तिमिर-रोग जाता रहता है। (भैषज्यर०)

प्रस्तुतकी दूसरी विधि—घी ६४, क्राथके लिए त्रिफला (प्रत्येकका) ६२ सेर, जल ४८ सेर, शेष १२ सेर, दूध ६४ सेर, कल्कार्थ त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, यष्टिमधु, कुटकी, पुण्डरीककाष्ठ, छोटी इलायची, विडङ्ग, नागेश्वर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, श्यामालता, रक्तचन्दन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा प्रत्येकका दो दो तोला ले कर घृत प्रस्तुत करते हैं। इससे तिमिररोग एवं कामल, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, कण्डु आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

(भैषज्यर०)

त्रिफलादिलौह (सं० क्लो० ) औषधविशेष। इसके बनानेकी विधि यह है—त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, विड़ङ्ग, कुट, वच, चीतामूल, यष्टिमधु प्रत्येकका चूर्ण १ पल, लौहचूर्ण ८ पल, गुग्गुल ८ पल, इन सबको १२ पल मधुके साथ घोट कर औषध बनाते हैं। प्रातःकाल इसका सेवन करनेसे दुःसाध्य आमवात, पाण्डु, हलीमक, शूल, स्वयथु और विषमज्वर जाता रहता है।

त्रिफलाद्यघृत ( सं० क्लो० ) १ चक्रदत्तोक्त घृतऔषधभेद। छोटे और बड़ेके भेदसे यह दो प्रकारका है।

लघुत्रिफलाद्यघृतमें ६४ सेर घी और १६ सेर प्रतमूलीके क्राथमें कल्क, त्रिफला और यष्टिमधु ६१ सेर

डाल कर आग पर चढ़ाते हैं। थोड़ी देर बाद उसे उतार कर उसमें एक सेर मधु मिला देते हैं। इससे त्रिदोषज तिमिररोग दूर हो जाता है।

त्रिफलाद्यमहाघृत—घृत ऽ४ सेर, क्वाथके लिए मिला हुआ त्रिफला ऽ२ सेर, जल ऽ६ सेर, शेष ऽ४ सेर, भृङ्गराजरस ऽ४ सेर अथवा वासकमूल ऽ२ सेर, जल ऽ६ सेर, शेष ऽ४ सेर, शतमूलीका रस ऽ४ सेर, छागदुग्ध ऽ४ सेर अथवा पूर्ववत् क्वाथ ऽ४ सेर, आँवलेका रस ऽ४ सेर, कल्कार्थ पीपल, चीनी, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, यष्टिमधु, क्षीरकाकोलिका, गम्भारीकी छाल, कण्टकारी आदिका मिश्रित भाग ऽ१ सेर लेकर यह महाघृत प्रस्तुत करते हैं। इसके सेवन करनेसे सभी तरहके चक्षुरोग नष्ट हो जाते हैं। यह नेत्ररोगके लिए रामबाण है। (भैषज्यर०)

२ कृमिरोगोक्त घृत—औषधभेद। यह घृत ऽ४ सेर, गोमुत्र ऽ६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला, निसोथ, दन्तीमूल, वच, कमलगट्टा ऽ१ सेर लेकर प्रस्तुत किया जाता है। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके कृमिरोग जाते रहते हैं।

दूसरी विधि—हड़, बहेड़ा, आँवला, विडङ्ग प्रत्येक १६ पल, पीपल, पीपरामूल, चई, चीतामुल, सोंठ सबको मिला कर १६ पल, दशमूल १६ पल, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ऽ८ सेर, घृत ऽ४ सेर, कल्कार्थ सैन्धव लवण ऽ२ सेर सबको एक साथ मिला कर आग पर चढ़ाते हैं। बाद आग परसे उतार कर ऽ१ सेर चीनी डाल देते हैं। इसका गुण भी पूर्ववत् है। (भैषज्यर०)

त्रिफलीकृत (सं॰ त्रि॰) त्रिः त्रिवारं फली कृतः त्रितुषीकृतः। वह चावल जिसकी भूसी तीन बार निकाली गई हो।

त्रिबन्द्रम्—मन्द्राजके त्रिवाङ्कुर राजकी एक राजधानी। यह अक्षा॰ ८° २९' उ॰ और देशा॰ ७६° ५७' पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ८८८ वर्गमील है और लोकसंख्या प्रायः ५७८८२ है। मलयालम् प्रदेशको सामाजिक प्रथाका एक केन्द्र होनेके कारण यह नगर बहुत प्रसिद्ध है। त्रिवाङ्कुड राजके प्रासाद, सभामण्डप और दुर्ग इसी नगरमें हैं। नगरके चारों ओरका दृश्य बहुत मनोहर है। समुद्रके किनारेसे यह एक कोस दूर है। इसके सामने समुद्र गर्भमें एक बालूका चर और दलदलविशिष्ट द्वीप पश्चिमघाट पर्वतके क्रोड़वर्ती जमीनके साथ मिल गया है। करमानय नदी इस नदीके निकट हो कर बहती है। नगरका दक्षिण भाग अस्वास्थ्यकर है। घने नारियलके बगीचे होनेके कारण उस अंशकी जलवायु खराब है। यहांका दुर्ग उतना मजबूत नहीं है, चारों ओर दृढ़ और ऊंचे प्राचीरसे घिरा है। त्रिवाङ्कुड राजका यही सबसे प्रधान शहर है। यहां त्रिवाङ्कुड़के महाराज और इटिशसेना रहती हैं।

दुर्गमें राजवंशका प्रासाद तथा पद्मनाभ नामक विष्णुमूर्त्तिका विख्यात मन्दिर है। इन सब अट्टालिकाओंके बड़े बड़े बरामदे, झरोखे आदि कारुकार्ययुक्त हैं, जो देखनेमें बहुत सुन्दर लगते हैं। पद्मनाभका मन्दिर बहुत प्राचीन और पुण्यस्थान होनेके कारण प्रसिद्ध है। मन्दिरके रहनेसे ही यहाँ त्रिवाङ्कुडकी राजधानी उठा कर लाई गई। मन्दिरकी देवोत्तर-सम्पत्तिसे वार्षिक ७५ हजार रुपयेकी आय है। बहुतोंने आधुनिक राजाओंको यह अस्वास्थ्यकर स्थानका दुर्गवास छोड़नेके लिए अनुरोध किया, किन्तु प्राचीन वासस्थानकी माया तथा ब्राह्मणोंके कथनानुसार वे यह स्थान छोड़ देनेको राजी न हुए। प्रति पुण्याह कर्ममें महाराजकी उपस्थितिका प्रयोजन पड़ता है, इस कारण वे और भी पद्मनाभके मन्दिरका सान्निध्यवास परित्याग नहीं कर सकते। इस नगरमें महाराजकी एक टकसाल जिसमें पैसेके सिवा और कोई मुद्रा नहीं ढलती है। शहरके उत्तरमें स्कन्धावार, अस्त्रागार, अस्पताल, नायर ब्रिग्रेड नामक नायर सैन्यदलके कार्यालयादि और युरोपीयनके वासस्थान हैं। सैन्यदलमें प्रायः १४ सौ सेना हैं जिनमेंसे तीन यूरोपीय सेनानायक हैं। ये लोग मन्द्राज गवर्नमेण्टसे नियुक्त हुए हैं। महाराजके बाद ही दीवानका पूरा अधिकार रहता है। उनके वासस्थान तथा कार्यालयादि भी इसी शहरमें हैं। शहरमें एक सदर अदालत, एक चिकित्सालय और अंगरेज डाक्टरके अधीन अस्पताल है, जिनमेंसे गर्भिणीका अस्पताल, साधारण अस्पताल, पागलोंका अस्पताल और

वसन्तरोगका अस्पताल स्वतन्त्र है। यहां महाराजका एक कालेज है जिसकी बनावट देखने योग्य है। १८३५ ई०को शहरमें एक मान-मन्दिर स्थापित हुआ है। महाराज ही इस मन्दिरके अधिष्ठाता हैं। १८५४ ई०में इस मन्दिरकी एक शाखा अगस्त्येश्वर पर्वतके ऊपर स्थापित हुई है। पहले यहां यूरोपीय ज्योतिषी रहते थे, अभी उनकी जगह पर देशीय ज्योतिषी हैं। खर्च पड़नेके कारण १६६५ ई०में अगस्त्येश्वरका मान-मन्दिर तोड़ डाला गया। यहांका 'नेपियर म्युजियम्' नामक जादूघर बहुत सुन्दर है। त्रिवाङ्कुरराजाकी ४५ अतिथिशालाओंमेंसे प्रधान अतिथिशाला जो इसी नगरमें अवस्थित है, राजव्ययसे परिचालित होती है। 'त्रिवाङ्कुर राज-गजट' नामक साप्ताहिक पत्र मलयालम् और अंगरेजी भाषामें इसी स्थानसे प्रकाशित होता है। नागरकायल शहरमें 'त्रिवाङ्कुर टाइम्स' नामक अंगरेजी समाचारपत्र महीनेमें तीन बार निकलता है। त्रिवाङ्कुरके राजाकी राय लेकर अङ्गरेजोंने यहां टेलिग्राफआफिस खोला गया है।

त्रिबन्धन (सं० पु०) १ सूर्यवंशके पौत्र एक राजाका नाम। २ जाग्रदादि तीनों अवस्थाके जीव।

त्रिबन्धु (सं० पु०) त्रिलोकका बन्धु।

त्रिबलि (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता वलिः। उदरस्थित वलीत्रय, वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं।

त्रिबलीक (सं० क्ली०) तिस्रो वल्यो यत्र कप्। १ वायु। २ मलद्वार, गुदा।

त्रिबाहु (सं० पु०) त्रयो बाहवो यस्य। १ रुद्रानुचरभेद, रुद्रके एक अनुचरका नाम। २ असियुद्धाकारभेद, तलवारका एक हाथ।

त्रिभ (सं० क्ली०) त्रयाणां भानां राशीनां समाहारः। १ लग्नादि राशित्रय, लग्न इत्यादि तीनों राशि। २ तीन राशि। (त्रि०) ३ नक्षत्रत्रययुक्त, जिसमें तीन नक्षत्र हों, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रयुक्त भाद्र, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी और हस्ता नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास।

त्रिभङ्ग (सं० त्रि०) त्रीणि भङ्गानि वक्राणि यस्य।क्ष व त्रि-भङ्ग, तीन जगहसे टेढ़ा, श्रीकृष्णकी एक मूर्त्ति जिसमें भगवान्‌की ग्रीवा, कटि और जानु कुछ वक्र भावसे बने होते हैं।

त्रिभङ्गी (सं० स्त्री०) १ मात्रावृत्त छन्दोभेद, एकमात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएं होती हैं और १०,८,८,६ मात्राओं पर यति होती है। २ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। इसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है। ३ शुद्ध रागका एक भेद। (त्रि०) ४ त्रिभङ्ग, तीन जगहसे टेढ़ा।

त्रिभजीवा (सं० स्त्री०) त्रिभस्य जीवा, ६-तत्। त्रिज्या, व्यासकी आधी रेखा।

त्रिभज्या (सं० स्त्री०) व्यासार्द्ध रेखा, त्रिजग।

त्रिभण्डी (सं० स्त्री०) त्रीन् वातादि दोषान् भण्डति परिहसतीति भण्ड-अण् ततो ङीप्। त्रिवृता, निसोथ।

त्रिभद्र (सं० क्ली०) त्रिषु नखक्षतदन्तक्षतमर्द्दनेष्वपि भद्रं यस्मिन्। मसङ्ग, भोग, रतिक्रिया।

त्रिभमौर्विका (सं० स्त्री०) त्रिजग, व्यासकी आधी रेखा।

त्रिभाग (सं० पु०) तृतीयो भागः पूरणार्थत्वात्। तृतीय भाग, तीसरा हिस्सा।

त्रिभानु (सं० पु०) तुर्वसु वंशके एक राजाका नाम।

त्रिभाव (सं० पु०) त्रिषु कालेषु भावोऽस्य। त्रिकालिक पदार्थ।

त्रिभुक्ति (सं० पु०) त्रिषु भुक्तिरस्य। तिरहुत या मिथिला-देश।

त्रिभुज (सं० क्ली०) त्रयो भुजा यत्र। त्रिबाहुक, तीन भुजाओंका क्षेत्र। क्षेत्र देखो।

त्रिभुवन (सं० क्ली०) त्रयाणां भुवनानां लोकानां समाहारः, पत्रादित्वात् ङीप्। त्रिलोक, स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

त्रिभुवन—समाधितन्त्र नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

त्रिभुवन चक्रवर्त्ती—दक्षिण प्रदेशके राजाओंकी उपाधि। चेर, चोल, पाण्ड्य, चालुक्य प्रभृति वंशोंमें बहुतसे राजाओंने यह उपाधि ग्रहण की थी।

त्रिभुवनपाल—१ गुजरातके चौलुक्य वंशके एक राजाका नाम। ये तिहुनपाल नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने १२९८

सम्बतसे ले कर केवल चार वर्ष तक राज्य किया था। किसीके मतसे इन्होंने ही सूर्यशतककी टोका रची थी।

२ गौड़राज धर्मपालके महासामन्ताधिपति। ये ब्राह्मण और पण्डितोंका खूब आदर करते थे। इन्हींके अनुरोधसे राजा धर्मपालने नारायण भट्टारकको बहुतसो जमोन दान दो थो। दूताङ्गद नामक संस्कृत छाया नाटकके रचयिता कवि सुभटने इन्होंके आश्रय और उत्साहसे उक्त पुस्तक रचना की थी।

त्रिभुवनलाल—नारदविलास नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

त्रिभुवनेश्वर लिङ्ग (सं० क्लो०) भुवनेश्वर वा एकाम्र क्षेत्रका प्रधान लिङ्ग। एकाम्र और भुवनेश्वर देखो।

त्रिभुवनसुन्दरी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा। २ पार्वती।

त्रिभूम (सं० पु०। तिस्रो भूमयः ऊर्द्धाधो मध्यस्था अस्य, अच समासान्तः। प्रासादभेद, तीन खण्डोंवाला मकान, तिमहला घर।

त्रिभोनलग्न (सं० क्लो०) क्षितिजवृत्त पर पड़नेवाले क्रान्तिवृत्तका ऊपरो मध्य भाग।

त्रिमङ्गल—एक विख्यात द्राविड़ पण्डित। इन्होंने त्रिमङ्गलवार्त्तिक नामक मध्वाचार्यका मतपोषक एक बड़ा ग्रन्थ प्रणयन किया है।

त्रिमण्डला (सं० स्त्री०) लूता भेद, एक प्रकारकी जह रीली मकड़ी।

त्रिमद (सं० पु०) त्रिगुणितो मदः संज्ञात्वात् कर्मधा०। विद्यामद, धनमद, और अभिजनमद ये तोन प्रकारके मदोत्पन्न गर्वत्रय, परिवार, विद्या और धन इन तीन कारणोंसे होनेवाला अभिमान। २ मुस्ता, चित्रक, विडङ्ग, मोथा, चीता और वाय विडङ्ग इन तीन चीजोंका समूह।

त्रिमधु (सं० क्लो०) त्रिगुणितं मधु संज्ञात्वात् कर्मधा०। १ दुग्धादित्रय, दुध, चीनी और शहद इन तीनोंका समूह। (पु०) २ ऋग्वेदैकदेश, ऋग्वेदके एक अंशका नाम। ३ ऋग्वेदका यागभेद, ऋग्वेदका एक यज्ञ। ४ वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त अंश पढ़े। ५ मधुवातादि तीनों ऋक् जाननेवाला पुरुष।

त्रिमधुर (सं० क्लो०) त्रिगुणितं मधुरं संज्ञात्वात् कर्मधा०। घी, शहद, और चीनी इन तोनका समूह।

त्रिमल्ल—इस नामके बहुतसे संस्कृत और तामिल ग्रन्थकार दक्षिण प्रदेशमें हो गए हैं, जिनमेंसे निम्नलिखित प्रधान हैं—

१म—इन्होंने गोतगोरी, गोपालाख्या और भक्तिविलास चम्पू प्रणयन किए।

२य—इन्होंने 'अलुव्याख्या' नामक सिद्धान्तकौमुदो को एक व्याख्या पुस्तक लिखो है।

३य—ये तिरुमल आवाई नामसे प्रसिद्ध हैं। द्वैतसिद्धि नामक वेदान्त, सहस्रकिरणो और सारकौमुदो प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

त्रिमल्लज्ञान—आश्वलायनोय विश्वपराध-प्रायश्चित्त नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

त्रिमल्लतनय—कात्यायनस्नानसूत्रके एक टोकाकार।

त्रिमल्लभट्ट—अलङ्कारमञ्जरी नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिमल्लभट्ट वैद्य—आयुर्वेदके जाननेवाले एक प्रसिद्ध तैलङ्ग पण्डित। ये शिङ्गणके पौत्र, वल्लभके पुत्र और रसप्रदीपके रचयिता शङ्करभट्टके पिता थे। इन्होंने द्रव्यगुणशतश्लोकी, योगतरङ्गिनी, वृत्तमाणिक्यमाला और वैद्यचन्द्रोदय आदि वैद्यकग्रन्थ प्रणयन किये।

त्रिमातृ (सं० त्रि०) त्रयाणां लोकानां माता, निर्माता। त्रिलोक-निर्माणकारक तीनों लोकोंके बनानेवाले।

त्रिमात्र (सं० पु०) तिस्रः मात्रा उच्चारणकालेऽस्य। प्लुत स्वर। एकमात्र स्वर ह्रस्व, द्विमात्र स्वर दीर्घ, त्रिमात्र स्वर प्लुत और व्यञ्जन अर्द्धमात्र है, प्रणव त्रिमात्र है, प्रत्येक कार्यके प्रारभमें त्रिमात्र प्रणव उच्चारण करना पड़ता है।

त्रिमात्रिक (सं० त्रि०) तीन मात्राओंका, जिसमें तीन मात्राएँ हों, प्लुत।

त्रिमार्ग (सं० क्लो०) त्रयाणां मार्गाणां समाहारः। तीन पथ, तिमुहानी।

त्रिमार्गगा (सं० स्त्री०) त्रिभिः मार्गैः गच्छति गम-ड। गङ्गा।

त्रिमार्गगामिनी (सं० स्त्री०) त्रिभिर्मार्गैर्गच्छति गम-णिनि-ङीप्। गङ्गा।

त्रिमार्गा (सं० स्त्री०) त्रयो मार्गाः यस्याः। १ गङ्गा। २ त्रिमुहानी।

त्रिमार्गी (सं० स्त्री०) त्रिमार्गा देखो।

त्रिमाली—बम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक प्रकारकी भिक्षाजीवि जाति। इन लोगोंका कहना है, कि बहुत दिन हुए तैलङ्गसे यह जाति कर्णाटक प्रदेशमें आ बसी है। ये लोग तेलगु भाषा बोलते हैं। भिक्षा ही इनकी जातिगत उपजीविका है। कोई कोई रुद्राक्ष, तुलसीमाला, यज्ञसूत्र आदिका व्यवसाय करके भी जीविका निर्वाह करते हैं। मछली, मांस, शराब आदि व्यवहार इन लोगोंमें खूब है। ये लोग १० दिन तक अशौच मानते हैं। आचार, व्यवहार, व्रत, उपवासादि मराठी कुणवियोंसे सरीखा है। बाल्यविवाह और विधवा विवाह आदिकी प्रथा प्रचलित है।

त्रिमुकुट (सं० पु०) त्रीणि मुकुटानीव शृङ्गानि यस्य। त्रिकुट पर्वत, वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियां हों।

त्रिमुख (सं० पु०) त्रीणि मुखानि यस्य। १ शाक्यमुनि। २ गायत्री जपनेकी चौबीस मुद्राओंमेंसे एक मुद्रा। मुद्रा देखो।

त्रिमुखा (सं० स्त्री०) त्रीणि मुखानि यस्याः। बौद्ध देवीभेद, मायादेवी। पर्याय—मारीची, वज्रकालिका, विकटा, वज्रवाराही, गौरी और पात्रिरथा है।

त्रिमुखी (सं० स्त्री०) बुद्धकी माता, मायादेवी। महायान शाखाके बौद्धदेवी रूपसे इनकी उपासना करते हैं।

त्रिमुनि (सं० क्ली०) त्रयाणां मुनीनां समाहारः पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ये तीनों मुनि। २ पाणिनि आदि तीनों मुनियोंके बनाये हुए व्याकरण।

त्रिमूर्त्ति (सं० पु०) तिस्रो मूर्त्तयो यस्य। १ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता। २ सूर्य। (स्त्री०) ब्रह्मशक्तिभेद, ब्रह्माकी एक शक्ति। यह शक्ति एक रूपिणी होने पर भी जगज्जनपालनके रूपमें भिन्न रूपकी हो गई है। ३ बौद्ध देवीभेद, बौद्धोंकी एक देवी।

त्रिमूर्द्ध (सं० पु०) त्रयो मूर्द्धानोऽस्य, बहुव्री० डीघसमासान्तः। १ तीन देवता। (त्रि०) २ जिसके तीन मस्तक हों।

त्रिमोहानी—यशोर जिलेका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २२°५४ उ० और देशा० ८९°१० पू०, केशवपुरसे २॥ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ भद्रानदी कपोताक्षसे अलग हो कर बहती है। जिस जगह इस नदीके तीन मुख वा मुहाने हो गये हैं वही जगह त्रिमोहानी नामसे प्रसिद्ध है। नदीके किनारे यह स्थान हाटके लिये प्रसिद्ध है। इस जगहके ग्रामका नाम चन्द्रा है। यहां पहले चीनीका बहुत कारबार चलता था, लेकिन अब उतना नहीं होता। तोभी यहांसे दूर दूर देशोंमें चीनीकी रफ्तनी होती है। चैत मासमें वारुणीके समय यहां एक बड़ा मेला लगता है। त्रिमोहानीसे एक पाव दूरमें मिर्जानगर है जहां मुसलमानोंके समयमें यशोरके फौजदार रहते थे। १८१५ ई० तक यह स्थान यशोरके मध्य एक बड़ा नगर गिना जाता था, किन्तु अभी इसका पूर्व गौरव जाता रहा।

त्रिम्बक—बम्बईके नासिक जिलेका एक प्रसिद्ध शहर और तीर्थस्थान। यह अक्षा० १९°५४ उ० और देशा० ७३°३३ पू० नासिक नगरसे २० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३३२१ है।

स्थानमाहात्म्यमें यह स्थान त्रिम्बक नामसे प्रसिद्ध है। त्रिम्बकेश्वर महादेव यहां प्रतिष्ठित हैं, इसीसे यह पुण्य स्थानोंमें गिना गया है। इस त्रिम्बकके कई एक माहात्म्य पाये जाते हैं, जिनमेंसे एक पद्मपुराणके पातालखण्डके अन्तर्गत है, एक वराहपुराणके और एक नारदपुराणके उत्तर खण्डमें वर्णित हैं।

यहांके त्रिम्बकेश्वर-महादेवका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। वर्त्तमान मन्दिर सदाशिव रावसे बनाया गया है। मन्दिरके खर्चके लिये गवर्मेण्टसे वार्षिक १२०००) रु० मिलते हैं। अहल्याबाईने यहां एक सुन्दर मन्दिर निर्माण किया था।

त्रिम्बक दुर्ग पहाड़के ऊपर समुद्रपृष्ठसे ४२४८ फुट और निकटवर्त्ती ग्रामसे १८०० फुट ऊँचे पर अवस्थित है। ऐसा दुर्भेद्य और दुर्गम दुर्ग इस प्रान्तमें और कहीं नहीं देखनेमें आता। दुर्गमें जानेके केवल दो

द्वार हैं। दक्षिण द्वार होकर रसद आदि पहुँचाई जाती है और उत्तर द्वार होकर केवल एक मनुष्य जा सकता है। यह चारों ओर ऊँचे नीचे पहाड़ोंसे घिरा है। दुर्ग द्वार छोड़ कर पहाड पर कहीं कहीं बहुतसे बुर्ज हैं। १८५७ ई०में पण्डाओंको उत्तेजनासे कई एक भील और ठाकुरोंने यहांके सरकारी कोषागार पर आक्रमण किया था। दक्षिण प्रदेशके भिन्न भिन्न स्थानोंसे बहुतसे यात्री यहां जुटते हैं। वृहस्पतिके सिंह राशिमें प्रवेशके समय यहाँ भी कुम्भ लगता है। आमदनी ८८००) रु०को है। इसके सिवा वार्षिक ३५००) रु० तीर्थयात्रियोंसे भी प्राप्त होते हैं। शहरमें केवल एक चिकित्सालय है।

त्रिम्बकजी देङ्गलिया—पेशवा बाजीरावके एक विश्वासी और आश्रित व्यक्ति। ये पहले एक सामान्य जासूस वा गुप्तचरका काम करते थे। जिस समय होलकरके डरसे बाजीराव पूनासे पहाडमें भाग आये थे, उस समय इन्होंने बाजीरावके पत्रका जवाब बहुत अल्प समयमें उन्हें ला कर दिया था। इनकी कार्यकुशलताको देख बाजीराव इन पर बहुत खुश हुए थे। तभीसे त्रिम्बकजी हमेशा उन्हींके साथ रहा करते थे। वे अत्यन्त चतुर, धूर्त्त तथा पटु थे। थोड़े ही समयमें बाजीरावके हृदय पर इन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। बाजीराव सबोंकी अपेक्षा इन पर अधिक विश्वास रखते थे। अतः धीरे धीरे ये उनके एक प्रधान मन्त्रदाता हो गये। सच पूछिये तो ये बाजीरावका बहुत सम्मान करते थे। बाजीराव जो फरमाते, त्रिम्बक हिताहितका विचार किये बिना उसे फौरन कर डालते थे। क्रमशः इनकी अवस्था उन्नत होने लगी। सेनापति गणपत रावकी जागीर जब जब्त कर ली गई, तब इन्होंने ही सेनापतिका पद ग्रहण किया था।

इसके कुछ दिन बाद ही खुसरूजीने जब कर्णाटक प्रदेशके शासनकर्तृत्वका पद त्याग कर रेसिडेन्सी एजेण्ट का पद प्राप्त किया तब त्रिम्बकजी कर्णाटकके शासनकर्त्ता बनाये गये।

अंगरेजोंके ऊपर ये बहुत जलते थे। वृटिशराज्यको ध्वंस करने तथा इनकी हस्तीको भारतवर्षसे विलुप्त कर डालनेके लिये इन्होंने कोई कसर उठा न रखी थी। इनकी उत्तेजनासे बाजीराव वृटिश-गवर्मेण्टके शत्रु हो गये। उनके पंजेसे बाजीरावको स्वाधीन करनेके लिये त्रिम्बक गोसावी और अरबी सेना नियुक्त करने लगे। १८१५ ई०में इन्हींके परामर्शसे बाजीरावने सिन्धिया, भोंसले, होलकर और पिण्डारियोंके पास गुप्तचर भेजा। बाद सब कोई मिलकर येनकेन प्रकारेण वृटिश पराक्रम खर्व हो जाय, वही षड़यन्त्र रचने लगे।

इसी वर्ष इन्होंने पण्ढरपुर नामक पुण्यक्षेत्रमें गङ्गाधर शास्त्रीको गुप्तभावसे मरवा डाला। इस ब्रह्महत्याके पापसे वे पीछे विलुप्त ही हो गये। यह पापकाण्ड छिपानेसे भी छिप न सका। बम्बईके गवर्नर एल फिंष्टन साहबको इस बातकी खबर लग गई। उन्होंने त्रिम्बकजीको बहुत जल्द वृटिश गवर्मेण्टके हाथ अर्पण करनेके लिये पेशवाको बुला भेजा। बाजीराव तो त्रिम्बकको बहुत चाहते थे। अतः वे उन्हें वृटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा देनेको राजी न हुए। इसपर एक दल वृटिश सेनाने पूना पर धावा मारा। त्रिम्बकजीने कोई उपाय न देख (२५ सितम्बरको) वृटिश गवर्मेण्टको आत्मसमर्पण किया। सालसेटके थाना दुर्गमें वे बन्दी हुए। बाजीरावने उन्हें छुड़ा लानेके लिये अपना कुल दिमाग लड़ाया। थाना दुर्गमें केवल गोरा ही पहरू थे, उन्हें रिशवत दे कर वशीभूत करना अथवा उनकी आँखोंमें धूल डाल कर उन्हें भगा देना कोई सहज काम नहीं था। केवल एक साईसकी सहायतासे त्रिम्बकजी किसी तरह थाना दुर्गसे भाग आये थे। साईसने त्रिम्बकजीसे कोई बात तो की नहीं, पर इशारेसे घोड़ेका शरीर मलमल कर एक गीत गाया जिसका मर्म इस प्रकार था,–'झाड़ीके मध्य अनेक धनुर्धर रहते हैं, वहीं पेड़के तले एक घोड़ा बंधा हुआ है, फौरन वहां जाओ और घोड़े पर सवार हो दाक्षिणात्यको स्वाधीन करो।'

त्रिम्बकजी उस गानका आशय समझ गये, पर यूरोपीय सैनिकोंको कुछ भी समझमें न आया। सचमुच वहांसे भागते समय इन्होंने खूब बहादुरी दिखलाई थी। आज भी महाराष्ट्रगण त्रिम्बकके दूसरे कार्यके लिए तो नहीं, पर उनके भागनेके साहस और कौशलकी खूब तारीफ करते हैं।

वहांसे भाग आने पर वे चुप हो न बैठे। अंग्रेजोंके ऊपर उनका क्रोध और भी बढ़ गया। वे नासिक, सङ्गमनेरि, खानदेश और महादेश आदि पार्वतीय स्थानोंमें घूम घूम कर भील, रामुसी और वड़ सैन्यको संग्रह करने लगे। फलतनके अन्तर्गत रेवाड़ नामक स्थानमें उनका प्रधान अड्डा था। वहाँ जङ्गलमें जब ये सोते थे, तब ५०० रामूसी सेना सशस्त्र उनकी रक्षा करती थी। बाजीराव भी धनसे उन लोगोंको सहायता करने लगे।

अब त्रिम्बक पिण्डारियोंकी नाईं ब्रटिश राज्यमें उत्पात मचाने लगे। एलफिन्ष्टन साहबने फिर बाजीरावको कहला भेजा कि वे तुरंत त्रिम्बकजीको पकड़वा दें, नहीं तो उनका बहुत अनिष्ट होगा। जब तक वे त्रिम्बकजीको पकड़वा न देंगे, तब तक सिंहगढ, पुरन्दर, तथा रायगढका दुर्ग ब्रटिशके हाथ रहेगा। कुछ दिन तो बाजीरावने मीठी मीठी बातोंसे एलफिन्ष्टनको भुलावेमें डालनेकी चेष्टा की, पर उससे कोई फल न हुआ। ७वीं मईको (१८१७ ई०) एलफिन्सटनने पुनः कहला भेजा कि जब अब भी पेशवाने त्रिम्बकके प्रतिभूस्वरूप तीन दुर्गको न छोड़ा, तब पूना पर अधिकार करनेके लिये सेना भेजनी पड़ी। इधर पूनाके पास अंग्रेजी सेना पहुंच गई। बाजीरावने उक्त तीनों दुर्ग छोड़ दिये और अङ्गरेजोंको प्रसन्न रखनेके लिए यह घोषणा कर दी कि त्रिम्बकको मरा या जिन्दा जो पकड़ कर लावेगा, उसे दो लाख रुपये पारितोषिकमें दिये जायंगे। इसके सिवा वे त्रिम्बकजीके अनुगत आत्मीय स्वजनोंके ऊपर भी लोगोंको दिखलानेके लिये अत्याचार करने लगे।

जो कुछ हो, इस बार बाजीराव प्रकाश्य रूपसे चाहे जो करें, पर त्रिम्बकजी जिससे ब्रटिशके पंजेमें न पड़ें, गुप्तरूपसे उसका भी आयोजन करने लगे। अभी जिससे ब्रटिशराज्य ध्वंस हो जाय, एलफिन्ष्टन भी शीघ्र ही इस लोकसे चल बसे, बाजीराव इसकी भी चिन्तामें लग गये। अपनी इस कामनाको पूरा करनेके लिये बाजीरावने प्रधान मन्त्री बापूगोखलाको एक कोटि रुपये दिये। भोंसले, सिन्धिया और होलकरसे भी पत्र-व्यवहार होता था। इसी समय यशोवन्तरावने घोड़पड़ेमें एलफिन्ष्टनको यह गुप्त समाचार कह दिया। एलफिन्ष्टन बाजीरावसे जा मिले। इस समय भी दोनोंमें अच्छा सद्भाव था। जो कुछ हो, थोड़े दिनके बाद यह सुलगती आग धधक उठी। चारों ओरसे मराठोसेना पूनामें आने लगी। एलफिन्ष्टन साहब विपद्‌को आशङ्का कर पूनासे दो कोस उत्तर किर्की ग्रामको चले गये। १८१७ ई०को ५ नवम्बरको किर्कीमें एक छोटी लड़ाई हुई। १७ नवम्बरको अंगरेजीसेनाने पूना पर अधिकार कर लिया। बाजीराव कई एक युद्धोंमें परास्त हो ससैन्य रणसे भाग गये।

त्रिम्बकजी जुनिरके उत्तर लांलघांटके बामनवाड़ो-ग्राममें दलबलके साथ पेशवासे मिले। यहांका गिरिसङ्कट बहुत दुर्गम था, जेनरल स्मिथ ससैन्य उनका पीछा करते आ रहे थे। त्रिम्बकने यहां प्राणपणसे उनका सामना किया था। कई एक युद्धोंमें पराजित हो जानेसे महाराष्ट्र सेना निरुत्साह हो गई थी। अतः त्रिम्बकजीके विशेष प्रयत्न करने पर भी वे युद्ध कर न सके। पुनः पेशवाको लड़ाईमें पीठ दिखानी पड़ी। कुड़िगाँ नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ जिसमें बहुतसे यूरोपीय कर्मचारी मारे गये तथा घायल हुए। त्रिम्बकने युद्धमें साहस तो खूब दिखलाया, पर वे अंगरेजी आग्नेय अस्त्रके सामने ठहर न सके। महाराष्ट्रको हार हुई। युद्धमें बाजीरावने त्रिम्बक आदिको सम्बोधन देते हुये कहा था, तुम लोगोंको धिक्कार है, कि मुट्ठी भर सेनाको तुम-लोग हरा न सके, अभी वह तुम्हारा गर्व कहां चला गया?

कई जगह भटकते भटकते त्रिम्बकजी ब्रटिशके फंदेमें फंस गये। इस बार उन्हें चुनारके दुर्गमें कैद किया गया, अब फिर मुक्ति लाभकी आशा न रही।

त्रिम्रुत (सं० पु०) त्रिवृत्त, निसोथ।

त्रियम्बक (सं० पु०) त्रीणि अम्बकानि यस्य। इयङ् वा (छन्दस्युभयथा। पा ६।४।७७) त्रिनेत्र, महादेव।

त्रियव (सं० क्ली०) त्रयो यवाः परिमाणं यस्य। परिमाण-विशेष, एक परिमाण जो तीन जौके बराबर या एक रत्तीके लगभग होता है।

त्रियष्टि ( सं० स्त्री० ) त्रिषु वातपित्तकफात्मकेषु दोषेषु यष्टिरिव। १ क्षुपभेद पित पापड़ा, शाहतरा। २ त्रिगुच्छ हार।

त्रियान ( सं० क्ली० ) बौद्धोंके तीन प्रधान भेद या यान, यथा महायान, हीनयान और मध्यमयान।

त्रियामक ( सं० क्ली० ) त्रिषु कालेषु यमयति यम-ण्वुल् पाप।

त्रियामा ( सं० स्त्री० ) त्रयो यामा अस्याः। निशा, रात्रि। रातके पहले चार दण्डों और अन्तिम चार दण्डोंको गिनती दिनमें की जाती है, जिससे रातमें केवल तीन ही पहर बच रहते हैं, इसीसे उसे त्रियामा कहते हैं। २ हरिद्रा, हलदी। ३ यमुना नदी। ४ कृष्ण त्रिवृत्, काला निसोथ। ५ नीली, नीलका पेड़।

त्रियुग ( सं० पु० ) त्रीणि युगानि सत्यत्रेताद्वापररूपाणि आविर्भावकालोऽस्य। १ विष्णु। २ वसन्तादि काल त्रय, वसन्त, वर्षा और शरद् ये तीन ऋतुएं। ३ सत्य, त्रेता और द्वापर ये तीनों युग। ( त्रि० ) ४ षडैश्वर्यशाली, जिसे छवों प्रकारके ऐश्वर्य हों।

त्रिशूह ( सं० पु० ) कपिलाश्व, सफेद रंगका घोड़ा।

त्ररत्न ( सं० क्ली० ) बौद्धधर्मके प्रधान तीन धन यथा बुद्ध, धर्म और सङ्घ।

त्रिरश्मि ( सं० क्ली० ) त्रिकोण।

त्रिरसक ( सं० क्ली० ) त्रयाणां रसकाणां समाहारः। १ त्रिप्रकार रसयुक्त सुरा, वह मदिरा जिसमें तीन प्रकारके रस या स्वाद हों। २ तीन बार मधु पान।

त्रिरात्र ( सं० क्ली० ) त्रिसृणां रात्रीणां समाहारः अच् समा०। संख्यापूर्वत्वात् क्लीवता। १ रात्रित्रय, तीन रात। २ तदुपलक्षित तीन दिन। ३ गर्गत्रिरात्र नामक योग। ४ एक प्रकारका व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है।

त्रिरूप ( सं० पु० ) त्रीणि रूपाण्यस्य। अश्वमेधीय अश्वभेद, अश्वमेध यज्ञके लिये एक विशेष प्रकारका घोड़ा।

त्रिरेख ( सं० पु० ) तिस्रो रेखा यत्र। १ शङ्ख। ( क्ली० ) तिसृणां रेखानां समाहारः। २ रेखात्रय, तीन रेखा। ( त्रि० ) ३ तीन रेखाओंवाला, जिसमें तीन रेखाएं हों।

त्रिल ( सं० पु० ) त्रयो लाः लघुवर्णा यत्र। लघुवर्णयुत नगण।

त्रिलघु ( सं० त्रि० ) त्रयो लघवो यत्र। १ छन्दोग्रन्थ प्रसिद्ध नगण। २ पुरुषविशेष, वह पुरुष जिसकी गर्दन, जांघ और मूत्रेन्द्रिय छोटो हो। पुरुषके लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं। ( काशीखण्ड ११ अ० )

त्रिलवण ( सं० क्लि० ) त्रयाणां लवणानां समाहारः, त्रिगुणितं लवणं संज्ञात्वात् वा कर्मधारय०। लवनत्रय; सेंधा, साँभर और सोचर नमक।

त्रिलिङ्ग ( सं० त्रि० ) त्रीणि लिङ्गानि अस्य। १ पुंस्त्वादि तीनो लिङ्गयुक्त शब्द। त्रीणि सत्वादीनि लिङ्गानि अनुमापकानि अस्य। २ अहङ्कार आदि। ३ वात इत्यादि धातुदोषसे उत्पन्न एक प्रकारका रोग। ४ तैलङ्ग देशका बना संस्कृत रूप।

त्रिलिङ्ग—( तैलङ्ग ) दक्षिण भारतका एक प्राचीन देश। कोई कोई कहते हैं, कि कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ों पर शिवलिङ्ग रूपमें आविर्भूत हुए थे शायद इसी कारण इस प्रदेशका नाम त्रिलिङ्ग पड़ा है। अभी उसीका अपभ्रंश रूप तैलङ्ग है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि प्राचीन कालमें इसका नाम त्रिकलिङ्ग था, 'क' का लोप हो कर त्रिलिङ्ग हुआ, एवं अपभ्रंशरूपमें कोई तो तिलङ्ग कोई तैलङ्ग और कोई तिलिङ्ग इत्यादि कहा करते हैं। कलिंग शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

यथार्थमें त्रिकलिङ्गसे त्रिलिङ्ग हुआ है वा नहीं, यह ठीक ठीक कह नहीं सकते। महाभारतके समयमें इसका विस्तार वैतरणी नदीसे लेकर गोदावरीके कलिङ्ग राज्य तक था। किन्तु उस समय इसका कोई अंश त्रिकलिङ्ग वा त्रिलिङ्ग नामसे प्रसिद्ध न था। १ली शताब्दीमें प्लिनिने मोदोगलिङ्गम् ( Modogalingam ) शब्दका उल्लेख किया है। तैलङ्ग शब्दमें मुदुका अर्थ तीन है, सुतरां मोदोगलिङ्गम् शब्दके प्रयोगसे त्रिकलिङ्ग नामका बोध हो सकता है। २री शताब्दीमें टलेमीने त्रिग्लिप्टन वा त्रिग्लिफन् देशका उल्लेख किया है। यह शब्द संस्कृत त्रिकलिङ्ग वा त्रिलिङ्ग इन दो शब्दोंका रूपान्तर मात्र हो सकता है।

६ठी शताब्दीसे शिलालिपि वा ताम्रशासनमें त्रिक-

लिङ्ग देशका उल्लेख पाया जाता है। उत्कल और कलिङ्ग के राजाओंने भी 'त्रिकलिङ्गनाथ' नामसे अपना परिचय दिया है।

११वीं शताब्दीके प्रथमभागमें उत्कलराज उद्योत-केशरीके समयमें उत्कीर्ण ब्रह्मेश्वर लिपिमें हम लोग सबसे पहले 'तिलङ्ग' देशका उल्लेख पाते हैं। इस शिलालेखमें लिखा है, कि महाराज उद्योतकेशरीके पूर्व पुरुष पहले तिलङ्ग देशमें राज्य करते थे, वहांसे आ कर उन्होंने उत्कल पर अधिकार जमाया। यही तिलङ्ग देश अभी तैलङ्ग नामसे मशहूर है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यह 'तिलङ्ग' शब्द 'त्रिकलिङ्ग' शब्दका अपभ्रंश है वा 'त्रिलिङ्ग'का इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन यह कह सकते हैं, कि कलिङ्ग राज्यका दक्षिणांश एक समय तिलङ्ग नामसे विख्यात था। शक्तिसङ्गम-तन्त्रके मतानुसार श्रीशैलसे लेकर चोलेशके मध्य भाग तक तैलङ्गदेश है।

श्रीशैल कर्णुल जिलेमें तथा चोलेश वा चोललिङ्ग-स्वामी उत्तर आर्कट जिलेके श्रीलङ्गिपुरमें अवस्थित है। कृष्णा नदीसे पेन्नर वा पिनाकिनी नदी तक दाक्षि-णात्यके पूर्वांशमें प्रायः समस्त भूभाग पहले तैलङ्ग नामसे मशहूर था। कुछ लोगोंका मत है कि पुराणमें जो अंध्र-राज्यका उल्लेख है, वही तैलङ्ग देश है। ७वीं शताब्दी में चीन परिव्राजक यूएनचुयंग अंध्रराज्यमें आये थे। उनके मतानुसार यह राज्य ३००० लोग अर्थात् प्राय: ५००० मील विस्तृत* है और इसकी राजधानीका नाम वेङ्गलि (वेङ्गि) है। गोदावरी जिलेमें इलोरासे ६ मील उत्तर वेङ्गि वा वेगि पड़ता है।† इस हिसाबसे (कनिंहम आदि प्रत्नतत्त्वविदोंके मतसे) अन्ध्र वा तैलङ्ग देश गोदावरी और कृष्णा नदीका मध्यवर्ती भूभाग होता है।

आइन-इ-अकबरीमें‡ 'तेलिङ्गाना' वा तैलङ्ग सूबा बरार या बेरारके दक्षिणांशमें निर्दिष्ट हुआ है। उस समय सरकार तेलिङ्गना १९ परगनोंमें विभक्त था और ७१९०४००० दाम राजस्व वसूल होता था।

तिब्बतके पण्डित तारानाथने १६०८ ई०में लिखा है, 'कलिङ्ग त्रिलिङ्गका ही कुछ अंश है।'*

फिर १७९३ ई०में रेनेल साहब लिख गये हैं, 'तेलि-ङ्गनकी राजधानी वरङ्गल है। यह कृष्णा और गोदावरी-के बीच तथा विसियापुरके (बिजापुर ?) पूर्वमें अव-स्थित है।§

इस तैलङ्ग वा त्रिलिङ्गके मनुष्य और उनकी अवल-म्बित भाषा तैलङ्ग वा तेलगू नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्त-मान समयमें उत्तर श्रीकाकोलम् (चिकाकोल)से ले कर दक्षिण परवक्काड् (पुलिकट) तक तेलगू भाषा प्रच-लित है। चिकाकोलके समीप उड़ियाने और पुलिकटके बादसे तामिल भाषाने तेलगूका स्थान अधिकार कर लिया है। इधर पश्चिमांशमें महाराष्ट्रकी पूर्वसीमा, महिसुर, कर्णुल जिला और निजाम राज्य तक तेलगू भाषा चलती है। भाषा-संस्थानकी ओर दृष्टिपात करनेसे तेलगू भाषा-प्रचलित भूभागको ही तैलङ्ग देश कह सकते है। इस हिसाबसे त्रिकलिङ्ग शब्दसे त्रिलिङ्ग वा तैलङ्ग नाम पड़ा है, यह स्वीकार कर सकते हैं और कलिङ्ग देशको तैलङ्गका एक अंश समझ सकते हैं।

कलिङ्ग देखो।

७वीं शताब्दीमें यूएनचुयङ्गने अंध्रदेशमें आ कर देखा था, कि यहां मध्यभारतकी लिपि प्रचलित है। इस-से हम लोगोंको प्रमाण मिलता है, कि उस समय मध्य-भारतकी वर्णमालाके साथ उड़ीसाकी वर्णमालाका भी आकार मिलता जुलता था। कालक्रमसे आजकल इतना विभेद पड़ गया है, कि तैलङ्गकी वर्णमालाको एक सम्पूर्ण पृथक् वर्णमाला कहनेमें भी कोई अयुक्ति नहीं।

कुमारिलभट्ट दाक्षिणात्यकी भाषाको अन्ध्र-द्राविड़ भाषा कह कर वर्णन कर गये हैं। तामिल देखो। कुमा-रिल वर्णित आन्ध्र भाषा आज भी तेलगू नामसे प्रसिद्ध है

* Beal's Buddhist Records of the Western World, Vol. II, p. 217.

† R. Sewell's Lists of Antiquities in the Madras Presidency, Vol. I p 36

‡ Jarrett's Ain Akbari, Vol. II p. 228, 237.

* Schiefner's Taranatha, p. 264.

§ Rennell's Memoir, 3rd edition, p. cx.

तैलङ्ग भाषामें १२ स्वर और ३५ व्यञ्जनवर्ण हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, (ह्रस्व), ए (दीर्घ), ऐ, ओ (ह्रस्व), ओ (दीर्घ) और औ यही १२ स्वर है एवं क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ और क्ष यही ३५ व्यञ्जन हैं।

तैलङ्गके पण्डितोंका कहना है, कि कण्व मुनिने सबसे पहले तेलगू व्याकरणकी रचना की। एक बार वे आन्ध्र-राजकी सभामें उपस्थित हुए थे। इसी राजके समयसे संस्कृत भाषा तैलङ्ग देशमें प्रचलित हुई। उक्त प्रवादसे कुछ कुछ ऐसा मालूम पड़ता है, कि ब्राह्मणोंने आ कर ही तैलङ्ग देशमें संस्कृत भाषाका प्रचार किया और उन्हींके आधार पर 'तैलङ्गलिपि और तैलङ्ग व्याकरण बनाया गया। कण्वका तैलङ्ग व्याकरण अभी विलुप्त हो गया है। अभी जो सबसे पुराना तेलगू व्याकरण मिलता है, वह भी नन्नय वा नन्नपभट्टका संस्कृत भाषा में बनाया हुआ है। नन्नपभट्टने ही तेलगू भाषामें महाभारतका प्रकाश किया। अभी नन्नपभट्टका महाभारत ही तेलगू भाषाका आदिग्रन्थ समझा जाता है। चालुक्यराज विष्णु वर्द्धनके समयमें नन्नप आविर्भूत हुए थे। चालुक्य वंशमें विष्णुवर्द्धन नामक नौ दश राजाओंने विभिन्न समयमें राजत्व किया था। चालुक्य शब्द देखो। किस विष्णु वर्द्धनके समयमें नन्नप विद्यमान थे, उसका पता नहीं चलता। यदि शेष विष्णु वर्द्धनका समय हो तो भी नन्नपभट्टको ११वीं शताब्दीके कवि कह सकते हैं।

कोई कोई तो इन्हें आदि ग्रन्थकार मानते हैं पर वह ठीक प्रतीत नहीं होता। इनके विस्तृत ग्रन्थकी रचना-प्रणाली और भाषाकी छटा देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि तेलगू भाषाकी सृष्टि इनके बहुत पहले ही हो चुकी थी तथा इनके महाभारत बनाये जानेके पहले भी अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ प्रचलित थे। नन्नपभट्टके बाद अप्प कविने तेलगू भाषामें एक तेलगू व्याकरण श्लोकके आकारमें प्रणयन किया।

वेमन नामक एक व्यक्तिने सूत्राकारमें दो हजारसे अधिक धर्मनीति-विषयक उपदेश तेलगू भाषामें लिखे है। इनकी वाक्यावलीमें धर्मकाण्ड और द्वैतवादकी निन्दा रहनेसे कोई कोई इन्हें ईसाधर्मके परवर्ती बतलाते है। किन्तु वेमनके विशुद्ध आध्यात्मिक और अद्वैतवादविषयक सरल उपदेशोंको भाषा पढ़ने से वह बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। इसके सिवा तैलङ्ग भाषामें और भी कई एक ग्रन्थ हैं। मुद्रायन्त्रके प्रभावसे तैलङ्गमें भी प्रतिवर्ष अनेक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

त्रिलिङ्गक (सं० त्रि०) त्रिलिङ्ग स्वार्थे कन्। त्रिलिंग देखो।

त्रिलिङ्गी (सं० स्त्री०) त्रयाणां लिङ्गानां समाहारः ङीप्। लिङ्गत्रय,-तीनों लिङ्ग।

त्रिलोक (सं० क्ली०) १ त्रिभुवन, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। (पु०) २ स्वर्ग, मर्त्य और पातालके अधिवासी।

त्रिलोक—हिन्दीके एक कवि। ये १७५४ ई०में वर्त्तमान थे। सुजानचरितमें इनका नाम दिया हुआ है। इनकी रस पद्यकी कविता बड़ी सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"मेरो मन मोह्यो सांवरो अब घर ही मो पै रह्यो न जाय।
चपल तिरछी भौंहसों सर्वस्व हो मेरो लियो चुराय॥
माई हौं गोरस ले निकसी वृन्दावन होरी मंझार।
आय अचानक औचक मदुकी वहीं मेरी दीन्हीं ढार॥
गहि अञ्चर मो सो यों कह्यो कौन हो तुम काकी नार।
के वेरी या मारो गई दान हो हमारो डार॥
और कहां लगि वरणिये कह तब री जोइ आवे लाज।
जन त्रिलोक प्रभुसो रंगी देखो मेरे तनको साज॥"

त्रिलोकधृत् (सं० पु०) त्रयाणां लोकानां धृत् धृ इति रस्य धृ-क्विप्। परमेश्वर।

त्रिलोकदास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने भजनावली नामक ग्रन्थ बनाया है। ये १७२० ई०के लगभग विद्यमान थे।

त्रिलोकनाथ (सं० पु०) त्रयानां लोकानां नाथः। परमेश्वर।

त्रिलोकसिंह—एक हिन्दी कवि। इनका बनाया हुआ सभा-प्रकाश नामक ग्रन्थ मिलता है, जिसे इन्होंने १७२० ई०में बनाया था।

त्रिलोकात्मन् (सं० पु०) त्रयो लोकाः आत्मानः स्वरूपाणि यस्य। परमेश्वर।

त्रिलोकपति ( सं० पु० ) परमेश्वर।

त्रिलोकी (सं० स्त्री०) त्रयाणां लोकानां समाहारः ङीष्। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक; भूलोक, भुवनलोक और स्वर्गलोक।

त्रिलोकीनाथ ( सं० पु० ) त्रिलोकनाथ देखो।

त्रिलोकीनाथ भुवनेश—हिन्दीके एक कवि। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण, महाराज मानसिंह अयोध्यानरेशके भतीजे थे। ये भाषाके अच्छे कवि थे। इन्होंने पहले चाणक्यनीतिका एकादश अध्याय पर्यन्त भाषा छन्दोंमें अनुवाद किया और फिर संवत् १९३७में भुवनेशभूषण नामक ५० पृष्ठोंका स्फुट शृङ्गार कविताका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया। इनके बनाये हुए और भी ग्रन्थ मिलते हैं, यथा भुवनेश-विलास और भुवनेश-अङ्क-प्रकाश। इनके कुटुम्बमें प्राय सभी थोड़ा बहुत काव्य रचना करते थे। भुवनेशजीका स्वर्गवास हुए करीब २५ वर्ष के हुए हैं। इन्होंने व्रजभाषामें कविता की है जो सरस और मनोहर है। उदाहरणार्थ इनका केवल एक छन्द नीचे लिखा जाता है—

"कर कंज केवार पै राजि रहे छहरी छवि लौ छुटिकै अलिकै।
अँगिराति जम्हाति भली विधि सों अधनैननि आनि परी पलकै॥
भुवनेश जु भाषे बनै न कछु मुख मंजुल अम्बुजसे झलकै।
मनमोहन नैन मलिन्दन सों रस लेत न क्यों कटिकै कलिकै॥"

त्रिलोकेन्द्रकीर्ति—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने सामायिकसूत्रकी टीका रची है।

त्रिलोकेश (सं० पु०) त्रयाणां लोकानामीशः। १ परमेश्वर। २ सूर्य।

त्रिलोचन ( सं० पु० ) त्रीणि लोचनानि यस्य। १ शिव, महादेव। २ काशीके चौदह लिङ्गोंमेंसे एक लिङ्ग। ३ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने पार्थविजय नामका एक काव्य बनाया है।

त्रिलोचनतीर्थ—विरजा क्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ।

(कपिलसंहिता)

त्रिलोचन-दास—एक प्रसिद्ध व्यक्ति। वर्द्धमानसे दश कोस उत्तर गुसकरा स्टेशनसे पांच कोस दूर कुनूर नदीके किनारे मङ्गलकोटके समीप कुआ वा को नामका एक ग्राम है, वहीं १४४५ ई०में इनका जन्म हुआ था। इनके और तीन नाम हैं—सुलोचन, लोचनानन्द, लोचन। शेषोक्त लोचन नामसे वे ही प्रसिद्ध थे। चरितामृत और भक्तिरत्नाकरादि प्राचीन ग्रन्थोंमें ये सुलोचन नामसे ही मशहूर है।

गुसकरा स्टेशनके समीप कांकड़ा ग्राममें विख्यात चैतन्यमङ्गल गायक प्राणकृष्ण चक्रवर्त्तीके घरमें इनके हस्तलिखित अनेक ग्रन्थ है। उस मौलिक ग्रन्थमें तथा छापाके चैतन्यमङ्गलमें जमीन आसमानका फर्क है।

फिर बहुतसे लोग कहते हैं, कि लोचनदास संस्कृत नहीं जानते थे, किन्तु यह असत्य जान पड़ता है। प्रसिद्ध राय रामानन्द कृत संस्कृत जगन्नाथवल्लभके श्लोकाशका जो एक मनोहर पद्यानुवाद है वह लोचन दासका ही बनाया हुआ है। अगर वे संस्कृत नहीं जानते होते तो श्लोकके अनुवादमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे।

इनकी लिखावट अच्छी और बड़ी होती थी। अपने घरमें एक पत्थरके ऊपर बैठ कर शून्य आकाशके तले ये चैतन्यमङ्गल काव्य लिखते थे। वह पत्थर आज भी विद्यमान है। जिसके दर्शनके लिए वैष्णव लोग आज भी जाया करते है। १५३० शकमें इनका देहान्त हुआ था।

त्रिलोचन दास—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने कातन्त्र-वृत्तिपञ्जिका और कातन्त्रोत्तरपरिशिष्टकी रचना की है।

त्रिलोचनदेव न्यायपञ्चानन—नवद्वीपके एक नैयायिक पण्डित, रामके छात्र। ये न्यायकुसुमाञ्जलिव्याख्या रच गये हैं।

त्रिलोचनपाल—महाराज राज्यपालके पुत्र। ये शायद प्रयाग अञ्चलमें राज्य करते थे। प्रयागसे प्रदत्त त्रिलोचनपालका १०८४ अङ्काङ्कित एक ताम्रशासन एशियाटिक सोसाइटीमें रखा हुआ है। उसे पढ़ कर प्रत्नतत्त्वविद् किलहर्ण साहबने इस अंककी सम्वत्ज्ञापक स्थिर किया है। (Indian Antiquary, vol. XVII p.34)

किन्तु इस ताम्रशासनकी १०८४ शक सम्वत्का भी

मान सकते हैं, क्योंकि मूल ताम्रशासनमें सम्वत् शब्द स्पष्ट नहीं है। ताम्रशासनमें इन्हें राज्यपालके पुत्र और विजयपालके पौत्र बतलाया है। ११८८ सम्वत्में जो ताम्र शासन उत्कीर्ण हुआ है, उसमें महाराजपुत्र राज्यपाल का परिचय है। (Ind. Ant. XVIII. p. 26) पूर्वोक्तको और शेषोक्तको सम्वत् माननेसे राजयपालके ताम्रशासनमें केवल २०० वर्षका अन्तर देखा जाता है। 'महाराज-पुत्र' राजयपालने भी कान्यकुब्जराज गोविन्दचन्द्रको सम्मतिसे भूमिदान किया था। ऐसा होनेसे राजयपालका गोविन्दचन्द्रके अधीन होना साबित होता है; किन्तु त्रिलोचनपालको परम भट्टारक महाराजाधिराज इत्यादि स्वाधीन राजाकी उपाधि मिली थी।

२ एक पराक्रान्त राजा जो पश्चिमोत्तर प्रदेशमें राज्य करते थे। उन्होंने सुलतान महमुदके साथ युद्ध किया था।

३ लाटदेशके चौलुक्यवंशीय एक विख्यात राजा, वत्सराजके पुत्र। ये ८२७ शकमें राज्य करते थे।

त्रिलोचन भट्टाचार्य—न्यायसङ्केत नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिलोचनमिश्र—धर्मकोष नामक धर्मशास्त्रके संग्रहकार। वर्द्धमान और आह्निकतत्त्वमें रघुनन्दनने इनके वचन उद्धृत किये हैं।

त्रिलोचन शिवाचार्य—रत्नत्रयोद्योत और सिद्धान्तसारावली नामक शैवशास्त्रकार।

त्रिलोचना (सं॰ स्त्री॰) दुर्गा।

त्रिलोचनाचार्य—वैयाकरण कौटिपत्र नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिलोचनादित्य—एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने नाट्यलोचन और लोचनव्याख्याञ्जन ग्रन्थ बनाये हैं।

त्रिलोचनाष्टमी (सं॰ स्त्री॰) त्रिलोचनाय शिवपूजायै या अष्टमी। ज्यैष्ठमासकी गौणचान्द्र कृष्णाष्टमी। इस अष्टमीमें शिवकी पूजा करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

त्रिलोचनी (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि लोचनानि यस्याः। दुर्गा।

त्रिलोचनेश्वरतीर्थ (सं॰ क्लो॰) त्रिलोचनेश्वर नाम तीर्थ। तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

त्रिलोह (सं॰ क्लो॰) सुवर्ण, रजत और ताम्र; सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिलोहक (सं॰ क्लो॰) सोना, चाँदी और ताँबा ये तीनों धातु।

त्रिलोहक (सं॰ त्रि॰) त्रीणि लोहानि धातवो यत्र, संज्ञायां कन्। सुवर्ण, रजत और ताम्रमय पात्रादि; सोने, चाँदी और ताँबेके बरतन आदि।

त्रिवण (सं॰ पु॰) सम्पूर्ण जातिका एक राग। यह दो पहरके समय गाया जाता है। कोई कोई इसे हिंडोल रागका पुत्र मानता है।

त्रिवणी (हिं॰ स्त्री॰) एक संकर रागिणी। यह शंकराभरण, जयश्री और नरनारायणके योगसे बनती है।

त्रिवत्स (सं॰ पु॰) त्रयो वत्साः वत्सराः यस्य सः। तीन वर्षका पशु।

त्रिवर्ग (सं॰ पु॰) त्रयाणां धर्मार्थकामानां वर्गः समूहः। १ अर्थ, धर्म और काम। २ त्रिफला। ३ त्रिकटु। ४ वृद्धि, स्थिति और क्षय। ५ सत्व, रज और तम ये तीनों गुण। ६ ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियां। ७ सुनीति। ८ गायत्री।

त्रिवर्ण (सं॰ क्लो॰) १ तीन रङ्ग।

त्रिवर्णक (सं॰ क्लो॰) त्रिवर्ण स्वार्थे कन्। १ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियां। २ त्रिफला। ३ श्याम, रक्त और पीत; काला, लाल और पीला रंग। ४ गोक्षुर, गोखरू। ५ त्रिकटु।

त्रिवर्णकृत् (सं॰ पु॰) सरट, गिरगिट। यह तीनों रंग धारण कर सकता है।

त्रिवर्णा (सं॰ स्त्री॰) वन कार्पासी, वन-कपास।

त्रिवर्त्त (सं॰ पु॰) एक प्रकारका मोती। कहा जाता है कि जिसके पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है।

त्रिवर्त्मगा (सं॰ स्त्री॰) त्रिपथगा, गङ्गा।

त्रिवर्त्मन् (सं॰ क्लो॰) १ त्रिपथ। त्रीणि वर्त्मानि यस्य। २ देवयान, पितृयान और दक्षिणायन इन तीनों मार्गोंके जीव।

त्रिवर्ष (सं॰ त्रि॰) त्रयो वर्षा वत्सराः यस्य। १ तीन वर्षके जीव। (पु॰ क्लो॰) २ वर्षत्रय, तीन वर्ष।

त्रिवर्षा (सं॰ स्त्री॰) तीन वर्षकी गाय।

त्रिवर्षिका (सं॰ स्त्री॰) त्रिवर्षा देखो।

त्रिवर्षीय ( सं० त्रि० ) त्रिवर्ष भवः गहादित्वात् छ। त्रिवर्षोत्पन्न, जो केवल तीन वर्ष तक ठहरता है।

त्रिवली ( सं० स्त्री० ) इन्दीवर, नोलकमल।

त्रिवल्य ( सं० पु० ) बहुत प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। इस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

त्रिवांकुर (तिरुवाङ्कोड वा तिरुवाङ्कूड़)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत देशीय राजशासित एक मित्रराज्य। यह अक्षा० ८°४' और १०° २१' उ० तथा देशा० ७६° १४' और ७७°३७' पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें कोचीनराज्य, पूर्वमें मदुरा और तिन्नेवेली जिला, पश्चिम और दक्षिणमें भारत महासागर है। यह राज्य उत्तर दक्षिणमें ८७ कोस लम्बा और ३८ कोस चौड़ा है। भूपरिमाण ६७३० वर्गमील है। इसमें ३१ तालुक लगते हैं। इसकी राजधानी त्रिबन्द्रम् है। यहां त्रिवाङ्कुरके राजा वास करते हैं।

यही राज्य प्राचीन केरलका दक्षिणांश है। इसके कई एक नाम पाये जाते हैं, यथा—श्रीविल्वकुण्ड, श्रीवर्द्धमपुर और पद्मनाभपुर। पेरिप्लसके अनुसार इसका एक प्राचीन नाम 'पुरलि' है।

त्रिवाङ्कुरका प्राकृतिकदृश्य अत्यन्त सुन्दर है। पूर्वांशमें पर्वतमाला बहुत घने जङ्गलसे ढकी है। पर्वतका शिखर ८ हजार फुट ऊंचा है। समुद्रके किनारेसे ५ कोस दूर समस्त क्षेत्रमें नारियल और सुपारीके वृक्ष देखे जाते हैं। ये ही दोनों द्रव्य देशके धनागमके प्रधान उपाय है। सारा देश एक प्रकारकी उर्वर उपत्यकासे आच्छादित है, पूर्व-पश्चिममें नदियां प्रवाहित हैं। समुद्रके किनारे तथा अभ्यन्तर बहुतसे ह्रद हैं जिनमेंसे खाड़ी कट कर एक दूसरेसे मिल गई है। जब नदीमें जल नहीं रहता वा आसानीसे समुद्र होकर आ जा नहीं सकते, तब इन्हीं ह्रदों हो कर लोग आते जाते हैं। नाञ्चिनाड़ नामक पूर्व विभागमें धान और ताड़ बहुत उपजते हैं। यह नगर ठीक तिन्नेवेली जिलेके जैसा है, पर कहीं कहीं अनुर्वर जमीन भी पाई जाती है। समुद्रके किनारेकी जमीन सबसे अधिक उर्वरा है। पर्वतमालाका दृश्य बहुत मनोरम है। दक्षिणांशमें पर्वतमाला जङ्गलोंसे आच्छादित और खूब ऊंची है। मध्यस्थलका पहाड़ उतना ऊंचा नहीं है। उपत्यकादिमें ऊंचे मन्दिर और गिर्जा हैं। पश्चिमांशमें बहुतसे बगीचे हैं। मनारगुडि, कोलाचल, विलिञ्जम, पन्तराड़, अञ्जेङ्गो, कुइलोन (कोलम्ब), कायङ्कुलम्, पोरकाड़ और अलेपि नामक प्रधान बन्दर समुद्रके किनारे अवस्थित है। इनमेंसे अलेपि, कुइलोन और कोलाचल बन्दरोंमें हो बड़े बड़े जहाजादि आते जाते हैं और सब दूसरे बन्दरोंमें देशी बड़ी बड़ी नावें आती है। पेरियर नदीके पश्चिममें पर्वतमालाका नाम अनमलय है। इसी शिखरसे ताम्रपर्णी नदी निकली है। यहांकी उपत्यकामें सब जगह काफी और चाय उपजती है। एरिविमलय वा हामिलटन उपत्यका ३ कोस लम्बी और डेढ़ कोस चौड़ी है जिसमेंसे २० हजार बीघे जमीनमें केवल काफी और चायकी फसल होती है। मेलमलय वा कानन्दवन पर्वत पर भी ऐसा ही लम्बा चौड़ा चाय और काफीका क्षेत है। त्रिवाङ्कुरके सबसे ऊंचे पर्वतशिखरका नाम अनयमुडि है, जिसकी ऊँचाई ८८३७ फुट है। हिमालयके दक्षिणमें यही सबसे ऊंचा पर्वत है। इसके समीप और भी कई एक शिखरकी ऊँचाई ८ हजार फुट है। इस पर्वतमालाके दक्षिणमें एलाचि-पर्वतमाला है, जहां दारचीनी बहुत उपजती है। यह पर्वतमाला दक्षिणमें क्रमशः पतली और छोटी होकर कन्याकुमारिका तक विस्तृत है। इस अञ्चलमें मनुष्योंका वास बहुत कम है।

घाट पर्वतसे इस देशकी बहुतसी नदियां उत्पन्न हुई हैं। पेरियर नदी ही इस देशमें प्रधान है। यह पर्वतके बहुत ऊँचे स्थानसे निकल १४२ मील आकर कोदङ्गलुर नामक स्थानमें समुद्रके एक जलावर्त्तमें गिरी है। इस नदीके मुहानेसे ऊपर ३० कोस तक नावें चलती हैं। इसके बाद पम्बइ नदी है। इसकी अचिनकइल और कल्लदा नामकी दो उपनदियां हैं। कुलितोरइ वा पश्चिमताम्रपर्णी नदी महेन्द्रगिरि नामक पर्वतसे उत्पन्न हो कर तिन्नेवेलि जिलेमें प्रवेश करती है। बड़ी ताम्रपर्णी नदी भी अगस्त्येश्वर पर्वतसे निकल कर उसी जिलेमें प्रवेश करती है। दक्षिणांशमें प्रलय और कोदर नामक स्थानमें पाण्ड्य राजाओंके बनाये हुए बहुतसे आनिकट वा जीलावरोध हैं। तीरवर्त्ती जलावर्त्त

झदोंको लम्बाई प्रायः एक सौ कोस है और चौघाट-से त्रिवन्द्रम् तक विस्तृत है। त्रिवन्द्रम् और कुइ-लोनके बीचमें ३ कोस जमीन बहुत ऊंची है। इस जगह दो खाडी काटकर उत्तर दक्षिणमें झदोंके साथ मिला दी गई हैं। अलेपिके पूर्वमें बिम्बनाझद जो सबसे बड़ा है, किन्तु ग्रीष्मकालमें इसका जल बहुत सुख जाता है।

खनिज पदार्थों में लोहा यथेष्ट पाया जाता है इसके सिवा फिटकरी, गन्धक और कृष्ण ग्रीस पाये जाते हैं। हाथी दाँत इस देशका प्रधान द्रव्य है। जङ्गलमें हाथी, शाम्बर, नीलगाय और अन्यान्य हरिण पाये जाते हैं।

इस देशकी लोकसंख्या प्रायः ढाई करोड है जिन-मेंसे १ करोड़से अधिक हिन्दू होंगे। ईसाईको संख्या सैकड़े २६ और मुसलमानकी सैकड़े ७ है। इसकी राजधानी त्रिवन्द्रम्‌की लोकसंख्या लगभग ४२ हजार है। प्रधान वाणिज्यकेन्द्र और प्रधान बन्दर अलेपि शहर है, इसकी लोकसंख्या २६ हजार है। प्रधान सेना-निवास कुइलोन शहरकी जनसंख्या १४ हजार है। इसके सिवा नागरकोल शहरमें १७ हजार, कोट्टायममें १२ हजार और ग्रेनकोट्टायम् शहरमें ८ हजार मनुष्योंका वास है। एतद्भिन्न परवर, कोतर, शरेतलय प्रभृति स्थानोंमें क्रमशः वृद्धि हो रही है।

यहां मलवारमें प्रचलित मरुमक्कातायमविधि ही सामाजिक शासनार्थ प्रचलित है। तामिल, तेलगु और मराठी लोग अपनी देशीय विधिके अनुसार चलते हैं। नाम्बुरियोंका बड़ा लड़का विवाह करता और उत्तराधि-कारी होता है। अन्यान्य सन्तान पैतृकविषयका अधि-कार नहीं पाते हैं। कन्या अधिक वर्ष तक अविवाहिता रहती है; यहां तक कि अनेक वृद्धावस्था हो जाने पर भी अविवाहितावस्थामें मरती हैं। नाम्बुरी देखो। नायरों-में प्रथाके अनुसार बालिकावस्थामें ही कन्याका विवाह हो जाता है; किन्तु वे स्वामीगृहमें नहीं जातीं वा स्वामीके साथ उनका कोई संश्रव नहीं रहता है। वे पिताके घरमें ही रहती और यौवनकालमें स्वजातीय किसी व्यक्ति वा किसी ब्राह्मणसे मिल कर स्वामी स्त्रीके रूपमें वास करती हैं। इन कन्याओंके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेते वे ही मामाके उत्तराधिकारी होते हैं। नायरों में भांजा वा भांजी नहीं रहनेसे उत्तराधिकारीविहीन हो जाता है। वे पोष्यपुत्रको नाई पोष्यभगिनीको ग्रहण करते और उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्रको उत्तराधिकारी बनाते हैं। नायर सन्तानमेंसे कोई भी पिताकी विवा-हिता पत्नीसे उत्पन्न नहीं हैं और परस्पर मामाके उत्तराधिकारी मात्र हैं। वे मामाके श्राद्धादि और विषय-सम्पत्ति अधिकार करते हैं। नायर और नाम्बुरि बड़े ही शुद्धाचारी होते हैं। ब्राह्मण शवदाह करते, किन्तु नायर लोग वंशप्रथाके अनुसार शवदाह वा समाहित करते है। श्मशान वा साधारण समाधिस्थान नहीं है, वे अपने उद्यानमें किसी जगह शवदाह वा समाहित करते हैं। ये लोग शिखास्थानमें शिखा धारण न कर तालुमें धारण करते और उसे सम्मुखकी ओर उल्टा रखते है। नायर शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कृषिद्रव्योंमें धान और नारियल प्रधान है। लाल-मिर्च और सुपारीकी उपज भी कम नहीं है। कटहल गरीबोंका प्रधान अवलम्बन है। इसका फल वे खाते और काठसे घर आदि बनाते हैं। हल्दीके गाछके जैसा यहां इलायचीका गाछ यथेष्ट उपजता है। इलायची-का गाछ ६से १० फुट लम्बा होता है। यथासमय जङ्गल काट कर इलायची बोते और आश्विन कार्तिकमें पकने पर उसे काट लाते हैं। इसमें राजसरकारको कर देना पड़ता है। काफीकी उपज अच्छी होती है। चाय भी कम नहीं उपजती। इसके पत्ते बहुत अच्छे होते हैं। भैंसे और बैल दोनों ही हलमें जोते जाते हैं।

इस देशमें जमीनके ऊपर कोई नियमित राजकर वा खजाना नहीं है। मलवारमें सभी जनम् वा उत्तरा-धिकारसूत्रसे निष्कर जमीन भोग करते हैं। नाम्बुरि ब्राह्मणोंने परशुरामसे यह देश निष्करवासस्थान बना लिया। कहा जाता है, कि तभीसे यह देश बिना कर-का ही उपभुक्त हो रहा है। अभी विवाङ्कुरके राजाने एक प्रकारका कर निश्चित किया है। जो जमीन जिस वंशके अधीन पूर्व समयसे आ रही है, वह गृहस्थ किसी

प्रकारका कर आज तक नहीं देता। किन्तु जब कोई 'जनम्' स्वत्वको जमोन स्वजाति छोड़ कर किसी दूसरेके हाथ बेचता वा बन्धक रखता है, तब उस जमीन-का 'जनम्' स्वत्व नष्ट हो जाता और राजा उसके ऊपर शुल्क कायम कर देते हैं। इस करको 'राज-भोगम्' कहते हैं। जितनी जमीन पर कर लगाया जाता है। उसमें बोनेके लिये बीजका आधा खर्च राजा देते हैं और उस जमीनका जो कुछ कर प्रजा देती है उसका छठा हिस्सा राजा पाते हैं। इस तरह सम्प्रति बहुतसी जमीन विदेशियोंके हाथ आ गई है; इसे कानम् वा चिर-स्थायी बन्दोबस्त कहते और जो जमीन नायरोंके हाथ पहलेसे आ रही है उसे 'मादम्बिमार' कहते हैं। इससे राजा राजभोगम् वसूल नहीं करते। जनम् स्वत्वकी जमीन विद्रोहके अपराध और उत्तराधिकारीके नहीं रहने पर राजाके दखलमें आ जाती है। बाढ़की जमीन, चरकी जमीन और समुद्रका चर राजाके कब्जेमें है, इसे सरकारी जमीन कहते हैं।

इस देशसे नारियल, नारियलकी रस्सी, हुक्केका खोल, नारियलका तेल, सूखी अदरख वा सोंठ, लाल मिर्च, लोना मछली, बहादुरी काठ, काफी, इलायची, मोम, इमली और तालाबकी मछली रफ्तनी होती तथा दूसरे दूसरे देशोंसे तमाखू, विलायती द्रव्य, चावल, सूत, रुई और तांबेकी आमदनी होती है।

इस देशमें १८ मुन्सफी, ६० फौजदारी, ५ जिला अदा-लत और राजधानीमें एक सदर अदालत है। पुलिस-का एक भी स्वतन्त्र प्रबन्ध नहीं है। दीवान पेशकार (वा विभागीय प्रधान कर्मचारी) और तहसीलदार लोग पुलिसका काम करते हैं। त्रिवन्दरम्में २, कुई-लोनमें एक और अलेपिमें एक उच्च विद्यालय तथा कालेज है। इसके सिवा २५ जिला स्कूल और बालिका-विद्यालय हैं।

१८६१ ई०में डाकघर स्थापित हुआ, जिसमें केवल राजकीय कार्य चलाया जाता है। अभी उसमें साधा-रणका भी अधिकार दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त और भी ८८ डाकघर हैं।

महाराजके पास १२६० पदाति सैन्य, ६० अश्वारोही ३० गोलन्दाज और ४ कमान हैं।

इतिहास—त्रिवाङ्कुरका प्राचीन विश्वासयोग्य इति-हास नहीं है। प्रवाद है, कि परशुरामने जब समुद्र-के ग्राससे समस्त मलयालम् भूभाग बचाया था, तब उन्होंने यह प्रदेश नाम्बुरि नामक ब्राह्मणोंको दान दिया। ई० सनसे ६८ वर्ष पहले नाम्बुरिगण इस प्रदेशमें शासन करते थे। बाद ब्राह्मण लोग एक क्षत्रियको बारह वर्ष तक अपना राजा बनाते और एक आदमीका बारह वर्षका समय पुरने पर एक दूसरे आदमीको उस पद पर अभिषिक्त करते थे।

त्रिवाङ्कुरके दीवान सङ्कुनिमेननने त्रिवाङ्कुरका प्राचीन इतिहास इस प्रकार लिखा है—

परशुरामने मलयालम् भूभागका उद्धार कर दक्षिण-केरलमें भानुविक्रम नामक एक चेरराजको अभिषिक्त किया। भानुविक्रमके बाद उनके भतीजे आदित्य-विक्रम परशुरामसे राजा बनाये गए थे। पीछे परशुराम उदयवर्माको उत्तर केरल प्रदान किया। त्रेतायुगमें यह घटना हुई। कलियुगमें ४८ राजाओंने दक्षिण केरलमें राज्य किया। १८६० कल्पाब्दमें राजा कुल-शेखर आर्वामें राज्य करते थे। कुछ दिन बाद ही उन्होंने संन्यास धर्म ग्रहण किया। आज भी त्रिवाङ्कुरके भिन्न भिन्न स्थानोंके मन्दिरोंमें उनकी मूर्त्ति पूजा हुआ करती है। बहुत समयके बाद शकाब्दके प्रारम्भमें मदुरा-के राजा वीरवर्माने पाण्ड्य और चेर राज्य पर अधि-कार किया। पीछे कोङ्गराजाओंने चेर राज्य जीत लिया। इस समय चेरराजवंशने मदुरा और तिन्नेवेलीका अंश परित्याग कर त्रिवाङ्कुरमें आकर आश्रय ग्रहण किया।

पेरुमलोंने प्रायः २०० वर्ष केरल राज्य पर शासन किया। इस समय सिरीयक ईसाई और यहूदीगण कोचीनमें आकर रहने लगे। अन्तमें पेरुमलराज कोचीनके राजा और कालिकटके सामरिराजको राज-दण्ड देकर अन्तर्हित हो गये।

उपर्युक्त विवरण केवल प्रवादमूलक है, यह प्रकृत ऐतिहासिकसा ग्रहण नहीं किया जा सकता। बाद उल्लेखयोग्य दो राजाओंके नाम पाये जाते हैं—एक वीर-मार्त्तण्ड वर्मा, ये ७३१ ई०में विद्यमान थे और दूसरे उदयमार्त्तण्ड वर्मा, इन्होंने ८२४ ई०में कोलम्बाब्द स्थापन

किया। यह अब्द अभी मलयालम् अब्द नामसे प्रचलित है। बाद ११८८ और १३३० ई०में आदित्यवर्मा नामक दो राजाओंके नाम मिलते हैं। वीररामभार्त्तण्ड वर्माने (१३३५-१३७८ ई०के मध्य) त्रिवन्द्रम्का राजप्रासाद और दुर्ग निर्माण किया। उनके पीछे एरवीवर्माने १३७६से १३८२ ई०तक राज्यशासन किया। केरलवर्मा कुलशेखर-पेरुमलके ३ मास राजत्व कर स्वर्गगमन करने पर उनके यमज सहोदर चेर उदयमार्त्तण्ड वर्मा राजा हुए। इन्होंने १३८२से १४४४ ई० तक राज्य किया। ये चेरमादेवी नामक स्थानमें रहते थे। वहां इनको शिलालिपि भी है। बाद निम्नलिखित राजाओंने यथाक्रमसे राज्य किया,—

| राजाओंके नाम | राज्यकाल |
|---|---|
| वनवनाड़ मुत्तराज | १४४४-१४५८ ई० |
| वीरमार्त्तण्डवर्मा | १४५८-१४७१ |
| आदित्यवर्मा | १४७१-१४७८ |
| एरवीवर्मा | १४७८-१५०४ |
| मार्त्तण्ड वर्मा | १५०४ |
| वीरएरवी वर्मा | १५०४-१५२८ |
| मार्त्तण्ड वर्मा | १५२८-१५३७ |
| उदयमार्त्तण्ड वर्मा | १५३७-१५६० |
| केरलवर्मा | १५६०-१५६३ |
| आदित्यवर्मा | १५६३-१५६७ |
| उदयमार्त्तण्डवर्मा | १५६७-१५९४ |
| वीरएरवी वर्मा | १५९४-१६०४ |
| वीर वर्मा | १६०४-१६०६ |
| रवि वर्मा | १६०६-१६१९ |
| उन्निकेरल वर्मा | १६१९-१६२५ |
| रवि वर्मा | १६२५-१६३२ |
| उन्निकेरल वर्मा | १६३२-१६६१ |
| आदित्य वर्मा | १६६१-१६७७ |

शेष आदित्यवर्मा और उनके ज्ञातिगण मारे गये। उनकी भांजी उमयम रानी १६७७ ई०में राज्यकी अभिभाविकाके रूपमें नियुक्त हुईं। १६८० ई०में मुसलमानोंने त्रिवाङ्कुर पर आक्रमण किया। उन लोगोंके अधिनायक त्रिवन्द्रम्में कुछ काल रहे थे। अन्तमें राजवंशीय सेनापति केरलवर्माने उन्हें राज्यसे भगा कर मार डाला। उमयम रानीके पुत्र रविवर्मा वयःप्राप्त होने पर १६८४ ई०में राज्यसिंहासन पर बैठे। रविवर्माके परवर्त्ती राजाओंकी तालिका नीचे दी जाती है—

मार्त्तण्ड वर्मा पेरुमलने १७२९से १७४६ ई० तक राज्य किया। इन्होंने १७४२ ई०में इलाइदातुनाड़ और १७४५ ई०में कायङ्कुलम् फतह किये। बाद बनजी-रामवर्मा पेरुमल राजा हुए। इन्होंने कई स्थान जय किये।

१७७६से १७९२ ई० तक टीपू सुलतानके साथ युद्धमें त्रिवाङ्कोरराज अंगरेजोंके अत्यन्त विश्वस्त बन्धु थे। टीपूके मलवार जीतने पर त्रिवाङ्कोरके राजा बहुत डर गये और १७८८ ई०में अंगरेजोंके साथ सन्धि करके राजाको अपने खर्चसे दो दल अङ्गरेजीसेना रखनेकी अनु-

प्राप्ति मिली। इन सेनाओंका खर्च उन्हें नगद वा लाल-मिर्च देकर शोध करना पड़ता था। यह सैन्यदल विपिन-द्वीपके निकट पहुंचने न पाया था कि टीपूने त्रिवाङ्कोर पर धावा किया। आयकोट्ट और कोदङ्गलूर ये दोनों दुर्ग ओलन्दाजोंसे त्रिवाङ्कोरके राजाने खरीदे थे। टीपूने उन पर अपना दावा जमाया और युद्ध ठान दिया। भाग्य-क्रमसे युद्धमें टीपू पराजित हुए और उनके दलके २ हजार मनुष्य मारे गये। दूसरे वर्ष (१७९० ई०में) टीपूने पुनः त्रिवाङ्कोर पर आक्रमण किया और इस बार वे पराजित हुए। १७९२ ई०में अंगरेजोंने टीपूके अधिकृत प्रदेशके कुछ अंश (तीन जिले) राजाको लौटा दिये और उसके बदले राजा तीन दल सिपाही सैन्य और एक दल अंगरेज-गोलन्दाज सैन्यका खर्च देनेको बाध्य हुए। १८०५ ई०में अंगरेजोंने राजाको फिर भी एक दल सिपाहीसैन्यका खर्च वार्षिक ८ लाख रुपये देनेको बाध्य किया। १८०९ ई०में यह रुपया बहुत बाकी पड़ गया। इसका दोष दीवानके मत्थे मढ़ा गया। अङ्गरेजोंने दीवानको कामसे अलग हो जाने कहा। इस पर ३० हजार नायर विद्रोही होकर अङ्गरेजोंको रक्षितसैन्य पर टूट पड़े। अङ्गरेजोंने मध्यस्थ हो कर कर्णाटक-विग्रेड नामक अधिक व्ययसाध्य अंगरेजी-सेनादलके छत्रभङ्ग किया। उसका खर्च राजाने दिया। तभीसे त्रिवाङ्कोड़में और कोई दुर्घटना न घटी। १८१० ई०में बलरामकी मृत्यु हुई। इनके बाद लक्ष्मीरानीने कुछ काल तक राज्य कर कर्नल मनरो नामक रेसिडेण्टके हाथ राज्य परिचालनका भार सौंपा। १८१४ ई०में लक्ष्मीरानीकी मृत्युके बाद उनकी बहन पार्वतीरानीने अभिभाविका हो कर राजा रामवर्माको सिंहासन पर अधिष्ठित किया। रामवर्मा १७ वर्ष राज्य कर १८४९ ई०में कराल कालके गालमें फंसे। उनके भाई मार्त्तण्ड वर्मा राजा हुए। बाद इनके भांजे वनजोवाल रामवर्माने १८६० ई०से १८८० ई० तक राज्य किया। १८६२ ई०में गवर्नर जेनरलने उत्तराधिकारीके अभावमें दत्तक बहन ग्रहण करनेका अधिकार प्रदान किया। ये सब दत्तक रानियां अत्तिल नामक स्थानमें रहतीं और तुम्बत्तो नामसे प्रसिद्ध थीं। मलवारके नियमानुसार इस राज्यमें राजाके बाद उनके भाई और तब बड़े भांजे राजा हुआ करते हैं। वर्त्तमान राजाके भूतपूर्व महाराजका पूरा नाम श्रीपद्मनाभदास-वनजोवाल-रामवर्मा-कुलशेखर-किरीटपति मुन्ने-सुलतान-महाराज राजाराम राजा बहादुर सर समसेरजङ्ग जी० सी० एस० आई० था। इनके सम्मानार्थ २१ तोपें दी जाती थीं। यहांके महाराज सम्पूर्ण स्वाधीन हैं। अपराधियोंके जीवनमरणके ऊपर इनकी पूरी क्षमता है अर्थात् प्रयोजन पड़ने पर ये प्राणदण्ड दे सकते हैं। इनकी मातृभाषा मलयालम् है।

त्रिवाङ्कोरमें अभी आदर्श हिन्दूराज्य है। राजा विशेषरूपसे हिन्दूशास्त्रके अनुसार चलते हैं, इसीसे उन्हें प्रति दिन कमसे कम एक बार पद्मनाभ स्वामीके मन्दिरमें जाना पड़ता है।

त्रिवार (सं० क्रि०) १ वारत्रययुक्त, तीन बार, तीन दफा। (पु०) २ गरुड़के एक पुत्रका नाम।

(भारत उद्योग १०० अ०)

त्रिवाहु (सं० पु०) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक हाथ।

त्रिविक्रम (सं० पु०) त्रिषु लोकेषु बलिवञ्चनार्थं भूपाताल-स्वर्गेषु क्रमः पादन्यासो यस्य यद्वा त्रीन् लोकान् विशेषेण क्रमेति व्याप्नोतीति विक्रम-अच्। १ विष्णु। २ वामनका अवतार।

त्रिविक्रम—१ सदुक्तिकर्णामृतधृत संस्कृत कवि। किसीके मतसे सदुक्तिकर्णामृतमें दो विक्रमकी कवितायें उद्धृत हुई हैं, जिनमेंसे एक भागवत और दूसरा वैद्य है। २ एक धर्मशास्त्रकार। निर्णयसिन्धु और प्रतिष्ठा-मयूखमें इनके वचन उद्धृत हुए हैं।

३ एक अभिधानकर्त्ता। हेमाद्रि और दिनकरको रघुवंशटीकामें इनका नाम उद्धृत हुआ है।

४ कालविधान नामक ज्योतिषग्रन्थकार। महादेव और विश्वनाथने इनका मत उद्धृत किया है।

५ उदाहरण नामक संस्कृतके काव्यकार।

६ एक विख्यात ज्योतिषी। इन्होंने तिथिसारिणी, नक्षत्रव्यवहार, शतश्लोकव्यवहारक वा त्रिविक्रमशतक, स्त्रीजातक इत्यादि नामक कई एक ज्योतिषग्रन्थ बनाये हैं।

७ पञ्चिकोद्योत नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

८ मदालसाचम्पूके रचयिता।

९ रामकीर्त्ति मुकुन्दमाला नामक संस्कृतग्रन्थकार।

त्रिविक्रमभट्टारक—एक विख्यात तान्त्रिक, राम भारतीके शिष्य। इन्होंने मन्त्ररत्नमञ्जुषा नामक तन्त्र और सुगूढ़ार्थदीपिका नामक शारदातिलककी एक टीका रची है।

त्रिविक्रमदेव,—१ प्राकृत-व्याकरणकी त्रिविक्रमा नामक वृत्तिके रचयिता। ये जैनधर्मावलम्बी मल्लिनाथके पुत्र और आदित्यवर्माके पौत्र थे।

२ लौहप्रदीप नामक वैद्यकग्रन्थकार। इन्होंने गौड़ान्तःपुर वैद्य कह कर अपना परिचय दिया है। भोजराज, वङ्गसेन आदिके ग्रन्थ देख कर यह ग्रन्थ बनाया गया है। इसमें नाना प्रकारके खनिजद्रव्योंका गुणागुण वर्णन किया गया है।

त्रिविक्रम पण्डित—पुण्यग्रामके एक विख्यात शास्त्री। इन्होंने पञ्चायुधप्रपञ्च नामक एक संस्कृत भाण प्रणयन किया है।

त्रिविक्रम पण्डिताचार्य—वायुस्तुति, नृसिंहस्तुति और विष्णुस्तुतिके रचयिता। ये त्रिविक्रम पण्डित नामसे प्रसिद्ध हैं।

त्रिविक्रममिश्र—योगदीपिका नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार।

त्रिविक्रम सूरि—रघुसूरिके पुत्र। इन्होंने आचारचन्द्रिका और प्रतिष्ठापद्धति नामक ग्रन्थ बनाये हैं।

त्रिविक्रमाचार्य—१ गीर्वाणभाषाभूषण नामक संस्कृतके अभिधानकार।

त्रिविक्रमानन्द—सारसंग्रहज्ञानभूषा नामक वेदान्तिक ग्रन्थकार।

त्रिविद् (सं० त्रि०) तीनों वेदके जाननेवाले।

त्रिविद्य (सं० पु०) तिस्रो विद्याऽस्य। त्रिवेदज्ञ द्विज, तीनों वेदके जाननेवाले द्विज।

त्रिविध (सं० त्रि०) तिस्रो विधा अस्य। तीन प्रकारका, तीन तरहका।

त्रिविनत (सं० त्रि०) जो देवता ब्राह्मण और गुरुके प्रति अद्भुत श्रद्धा और भक्ति रखता हो।

त्रिविष्टप (सं० क्लो०) विशन्ति अस्मिन् सुकृतिनः विश-कपन् तुट यलञ्च। १ स्वर्ग। २ तिब्बत देश।

त्रिविष्टपसद् (सं० पु०) त्रिविष्टपे स्वर्गे सीदति सद-क्विप्। देवता।

त्रिविष्टब्ध (सं० क्लो०) त्रीणि विष्टब्धानि यत्र। त्रिदण्ड-रूप तीन अवष्टम्भ।

त्रिविस्त (सं० त्रि०) त्रीणि विस्तानि स्वर्णकर्षं मूल्यवान् अनर्हति ठक् तस्य वा लुक्। जिसका दाम तीन स्वर्ण कर्ष हो।

त्रिविस्तीर्ण (सं० पु०) त्रिभिः विस्तीर्णः। शुभलक्षण-युक्त पुरुष, वह पुरुष जिसका ललाट, कमर और छाती ये तीनों अङ्ग चौड़े हों। ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है।

त्रिवीज (सं० पु०) श्यामाक, सावाँ।

त्रिवृत् (सं० पु०) त्रि-वृ-क्विप्, तुक् च। लताविशेष, निसोथ। इसके संस्कृत पर्याय—सर्वानुभूति, सुवहा, त्रिपुटा, सरण, सरमा, त्रिपुटी, रोचनी, मालविका, मसूरी श्यामा, अर्द्धचन्द्रा, विदला, सुवेणी, कालिङ्गक, कालमेषी, काली, त्रिवेला, त्रिवृत्तिका, श्वेता और सारा हैं। कोई तो इन्हें सामान्य त्रिवृत् के और कोई श्वेत त्रिवृत्के पर्याय बतलाते हैं।

कृष्ण त्रिवृत्के पर्याय—श्यामा, कालिन्दी, सुषेणिका, काला, मसूरविदला, अर्द्धचन्द्रा, कालमेषिका, कालमेशिका, पालिन्दी।

श्वेत त्रिवृत्के पर्याय—त्रिवृत्, वृकाची, सुवहा, त्रिभण्डी, त्रिपुटा।

अरुणत्रिवृत्के पर्याय—व्याघ्रादनी, कटुरणा, निःसृता, त्रिवृता, अरुणा।

निसोथ भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारी जाती है; जैसे,—वर्द्धमान, ढाका, यशोर और वरिशालके अञ्चलमें तेउड़ी, मैमनसिंहमें त्रिशिरा, बङ्गमें कहीं कहीं दुधकलमी, सन्थालपरगनेमें वनएतका, पञ्जाबमें चिताबांस, बम्बईमें निशोतर, फुटकारी, दक्षिणमें तिकुरी, तामिलमें शिवदई, तेलगुमें तेगड़ और अरबी भाषामें तरबन्द वा तरबद। अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Ipomaea Turpethum (India jalap)।

यह लता सारे भारतवर्षमें, सिंहल, भारतमहासागरीय द्वीपपुञ्ज, मलय, अष्ट्रेलिया आदि नाना देशोंमें

पाई जाती है। कलकत्तेमें कई जगह उद्यानोंकी शोभा बढ़ानेके लिये यह लता लगाई गई है; किन्तु दवाके काममें जङ्गली लता ही फायदामन्द है।

वैद्यकके मतसे सामान्य त्रिवृत्का गुण—कटु, उष्ण, क्रमि, श्लेष्मा, उदररोग, कुष्ठ, कण्डु और व्रणनाशक है, विरेचनमें इसे प्रशस्त माना है। (राजनि०)

अरुण त्रिवृत्का गुण—स्वादु, कषाय, मृदु, रेचक, रुक्ष, कटु, दोषपाकमें पित्त और कफनाशक है। राजवल्लभके मतसे श्वेतत्रिवृत् और अरुणत्रिवृत्के गुणमें थोड़ा ही फर्क पड़ता है।

भावप्रकाशके मतसे श्वेत त्रिवृत्का गुण—विरेचन, स्वादु, उष्ण, वायुकर, रुक्ष तथा पित्तज्वर, श्लेष्मा, पित्त, शोफ और उदररोग नाशक है। कृष्ण त्रिवृत्का गुण—श्वेतत्रिवृत्से कुछ हीन, तीव्र, विरेचक, मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रान्ति और कण्ठोत्कर्षकर है। (भावप्रकाश) अभी देशीय वैद्यगण अकसर विरेचक औषधस्वरूप त्रिवृत्को ही काममें लाते हैं। भारतवासीकी भाईं अरबीचिकित्सकगण भी बहुत प्राचीनकालसे औषधमें त्रिवृत्का व्यवहार करते आये हैं। आविसेन्नाने 'तरवद' नामसे इस विरेचक औषधका उल्लेख किया है। इसी 'तरवद'से अंगरेजी नाम Turbith or turpeth नाम पड़ा है।

डाक्तर एनस्लि, वालिच, गर्डन, ल्लास आदि अनेक यूरोपीय चिकित्सकोंने त्रिवृत्का उत्कृष्ट विरेचक गुण स्वीकार किया है। इनके सिवा डाक्तर आलष्टनका मत है कि यह वात, कुष्ठ और शोथरोगमें भी विशेष उपकारी है। इतने गुण रहने पर भी एक समय त्रिवृत्का बहुत अनादर हो गया था। डाक्तर उसफन्सीने निजसे परीक्षा करके* तथा उन्हींके अनुवर्त्ती होकर डाक्तर वेरिङ्गने अपना मत प्रकट किया कि, "इसका गुण बिलकुल अनिश्चित है, भैषज्यसंग्रह पुस्तकमें इसका नाम नहीं रहना ही उचित है।" उन दोनोंकी बातों पर विश्वास रखते हुए यूरोपमें इसका प्रचार उठ गया। किन्तु भारतवर्षमें ज्योंका त्यों बना रहा। मुदिनसेरिफ आदि विचक्षण चिकित्सकोंने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा, त्रिवृत्के सोकड़की छालमें जैसा गुण है वैसा और किसी अङ्गमें नहीं है। बाजारमें इसकी जड़ और जड़की छाल दोनों एक साथ बिकती है। सोकड़की छाल एक एक लतासे २से ३ इञ्च तक लम्बी और चौथाई इञ्चसे एक इञ्च तक मोटी होती है। इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं। इसमें गोल गोल फल लगते हैं। सफेद निसोथके सोकड़की छाल धूसर वा रक्ताभ धूसर देखनेमें आती है। काली निसोथ पिंगल वर्णकी होती है और इसकी छाल सफेद निसोथसे बहुत पतली होती है। इसका जुलाब सबसे अच्छा समझा जाता है।

वर्त्तनं वृत् त्रि· तिस्रः वृतो यत्र। (त्रि०) २ त्रिधा त्रिगुणित। तीन बार तिगुना, यज्ञोपवीत। यज्ञोपवीतको तीन बार त्रिगुणित करके बनाते हैं, इसीसे इसका नाम त्रिवृत् पड़ा है।

यद्यपि मनुने 'त्रिगुण' कार्य" अर्थात् तिगुणा करनेको भी कहा है तथापि छन्दोगपरिशिष्ट आदिके मतानुसार यज्ञोपवीतको तीन बार तिगुना करना चाहिये।

त्रिवर्त्तते वृत-क्विप्। ३ मिश्रित तेज, जल और अन्न। ४ त्रिगुणित, तिगुना। त्रिभिः ऋग्यजुःसामभि वर्त्तते वृत कर्त्तरि क्विप्। (पु०) ५ यज्ञ। त्रिस्त्रिवर्त्तते त्रिशब्दस्य वोप्सार्थत्वं। ६ ऋक्‌विशेषका नरक। यह नरक ऋग्वेदके साथ साथ ब्रह्माके पूर्वमुखसे उत्पन्न हुआ है। (विष्णुपु० १।५।४८)

त्रिवृता (सं० स्त्री०) त्रिभिरवयवैर्वृता। त्रिवृत्, निसोथ। त्रिवृत देखो।

त्रिवृत्करण (सं० क्ली०) त्रिवृतां करणं ६-तत्। तेज, जल और अन्नका त्रयात्मक करण, क्षिति, जल और तेज इन तीनोंका मिश्रण। इन तीन भूतोंको दो भागोंमें विभक्त कर प्रत्येकके एक एक अर्द्धको फिर दो भागोंमें बांटते हैं, बाद स्वीय अर्द्धको छोड़ कर शेष दो अर्द्धोंमें एक एक भाग जोड़ना होता है, इसीको त्रिवृत्करण कहते हैं।

छान्दोग्योपनिषद्‌में इस प्रकार लिखा है—

उक्त तीन देवताओंके अर्थात् तेज, जल और अन्न रूप तीन देवताओंके वीजभूत अव्याकृत स्वाभावस्थामें अनु

* Dr. O. Shaughnessy's Bengal Dispensatory.
* Waring's Pharmacopaeia of India.

प्रवेश कर इनके नाम रूप व्यक्त करते हैं। इसी अभिप्रायसे दर्शन कर उन तीन देवताओंमेंसे एक एकको तिगुणा करते हैं। जिस प्रकार समान परिमाणके तीन सूतोंको तिगुणा करनेसे रस्सी बनती है, उसी प्रकार तेज, जल और अन्न इन सबको भी त्रिवृत्करण समझना चाहिए। किन्तु तीनोंके नाम पृथक् पृथक् रखे गये हैं, अर्थात् यह तेज है, यह जल है, यह अन्न है इत्यादि तेजोंको विशेष माना है। उक्त तीनों तेज देवताओंके उक्त रूपमें यथोक्त जीवोंके साथ अन्तःप्रविष्ट होते हैं और वैराजपिण्ड अर्थात् देवताओंके पिण्डमें अनुप्रवेश करके इनके ये नाम हैं एवं इनके ये रूप हैं इत्यादि प्रकारसे उसी तरह नाम रूप व्यक्त करते हैं। जिस तरह इस वहिःस्थ पिण्डसे तीन देवताओंका त्रिवृत्करण हुआ है। देवताओंका जो त्रिवृत्करण कहा गया है उसका उदाहरण इस प्रकार है—

अग्निका जो लोहित रूप देखा जाता है, वह उन्हीं तेजोंका रूप है, शुक्ल रूप जलका है और जो कृष्ण रूप है उसे अन्नका अर्थात् अत्रिवृत्कृत पृथ्वीका रूप समझना चाहिए। ऐसा होने पर भी लोग अग्निको इन तीन रूपोंके अतिरिक्त मानते हैं। इससे अग्निका अग्नित्व नष्ट हो गया है। पहले वे तीनोंरूप विवेकविज्ञानवशतः अग्नि समझे जाते थे, पर तेज द्वारा वह अग्निबुद्धि और अग्निशब्द अपगत हो गया है। रक्तोपधान संयुक्त स्फटिक मणिको ग्रहण करनेसे पहले वह पद्मराग मणिके जैसा प्रतीत होता है, लेकिन जब इसके स्वरूपका ज्ञान हो जाता है, अर्थात् यह रक्तोपधान है ऐसा मालूम पड़ने लगता है, तब फिर पद्मरागका ज्ञान जाता रहता है। उसी तरह जब तक अग्निके पूर्वोक्त तीन गुणोंका ज्ञान नहीं होता, तभी तक अग्निबुद्धि और अग्निशब्द रहता है। तीनों रूपोंका सम्यक् ज्ञान हो जानेसे ही उनको पृथकताका ज्ञान दूर हो जाता है।

यथार्थमें वह विकार मात्र है, केवल तीनों रूप ही सत्य हैं। तीनों रूपोंको छोड़ कर और कुछ भी सत्य नहीं है।

सूर्यका जो लोहित रूप देखा जाता है, वह तेजका रूप है; चन्द्रमाका शुक्ल रूप जलका और कृष्णरूप अन्नका अर्थात् अत्रिवृत्कृत पृथ्वीका है। जब तक तीनों गुणोंका सम्यक् ज्ञान नहीं होता, तब तक वे पृथक् पृथक् रूपसे प्रतीत होते हैं। विवेकज्ञान हो जानेसे तीन रूपोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता, इसीसे केवल वे ही तीनों रूप एक मात्र सत्य हैं।

उक्त तीन रूपोंके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है। तेज, जल और अन्न जिस तरह इन तीन देवताओंके त्रिवृत् करनेमें एक एक होता है, वह इसी तरह जानना चाहिये। पहले जो उदाहरण दिया गया, वह तेजका था। अब जल और अन्नका उदाहरण दिया जाता है।

पृथ्वीमें गन्ध है और जलमें रस है; किन्तु तेजमें वे सब नहीं हैं। गन्ध और रस तेजमें नहीं है, सारा संसार त्रिवृत् है, केवल तीनों रूप ही सत्य है, अन्न और जल निष्पाद्य प्रयुक्त जल ही सत्य है, जल भी केवल तेजः सम्पाद्य है। सुतरां जल और नाम मात्र तेज ही सत्य है, तेज और सत्पदार्थ निष्पाद्य है, सुतरां तेज भी नाम मात्र है। अतः वही सत्पदार्थ सत्य है, वायु और आकाश त्रिवृत्कृत नहीं हैं, तभी वे तेजके अन्तर्गत नहीं हैं।

जितने त्रिवृत्कृत हैं, सभी असत्य हैं। केवल एक मात्र सत् पदार्थ ही सत्य है। (छान्दोग्य उप० भाष्य)

त्रिवृत्त (सं० त्रि०) त्रिगुणित, तिगुणा।

त्रिवृत्ता (सं० स्त्री०) त्रिरावृत्ता, त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवृत्ति (सं० स्त्री०) तिस्रः वृत्तयः कर्मधा०। त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवृत्तिका (सं० स्त्री०) तिस्रः वृत्तयोऽस्याः कप्। १ त्रिवृत्, निसोथ। (त्रि०) २ त्रिधावृत्तियुक्त, जिसको तीन वृत्तियां हों।

त्रिवृत्पर्णी (सं० स्त्री०) त्रीन् दोषान् नाशकत्वेन। वृणोति त्रिवृत त्रिदोषघ्नं पर्णमस्याः। हिलमोचिका, हुरहुर।

त्रिवृद्वेद (सं० पु०) ऋगाद्यात्मना, त्रिवर्त्तते त्रिवृत् कर्मधा०। १ त्रयी; ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। २ उनसे उत्पन्न प्रणव। जो उक्त तीनों वेदको जानते हैं, वे ही वेदविद् कहलाते और ये तीनों वेद जिनमें प्रतिष्ठित हैं और जो आद्य अक्षर ब्रह्म अर्थात् प्रणवको जानते हैं; वे ही वेदज्ञ हैं।

त्रिवृन्त ( सं॰ पु॰ ) पलाश वृक्ष, ढाकका पेड़।

त्रिवृष ( सं॰ पु॰ ) एकादश द्वापरके व्यास, पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापरके व्यासका नाम।

त्रिवृषन् ( सं॰ पु॰ ) एक राजर्षिका नाम, त्र्यरुणके पिता।

त्रिवेणी ( सं॰ स्त्री॰) तिस्रो वेण्यः वारिप्रवाहा विमुक्ताः संयुक्ता वा यत्र। बङ्गालके हुगली जिलेके अन्तर्गत गङ्गा-तीरस्थ एक तीर्थ और ग्राम। यह अक्षा॰ २२° ५८' उ॰ और देशा॰ ८८° २६' पू॰में अवस्थित है। त्रिवेणी ग्रामके सामने गङ्गामें चर पड़ गया है। इस चरके दक्षिणमें दूसरे किनारे यमुनाका मुहाना है। त्रिवेणी ग्रामके उत्तर हो कर सरस्वती आ कर गङ्गामें मिल गई है। इन तीन नदियोंके सङ्गमस्थानके कारण इसका त्रिवेणी नाम पड़ा है। त्रिवेणी ग्राम पहले एक प्रधान बन्दर था। ग्रीक लोग इस बन्दरका हाल जानते थे। प्लिनी लिख गए हैं कि दक्षिणमें गोदावरी मुहानेसे जो सब जहाज पटने जाते उन्हें पहले त्रिवेणी हो कर जाना पड़ता था। टलेमीकी पुस्तकमें भी त्रिवेणीका उल्लेख है। त्रिवेणीके नीचे सरस्वतीकी खाईमें मिट्टी खोदते समय अभी बहुतसे मस्तूल, पुरानी नावें और शृङ्खलादि देखे जाते हैं। ग्राममें भी कई जगह मट्टी-के नीचे अट्टालिकाओंकी दीवार मिलती हैं।

सरस्वती मुहानेके उत्तरमें त्रिवेणीका सुप्रशस्त घाट है। कहा जाता है कि उड़ीसेके गजपतिवंशीय अन्तिम स्वाधीन राजा मुकुन्ददेवने यह घाट निर्माण किया था। १५५२ ई॰में मुकुन्ददेव सिंहासन पर बैठे। तीन सौ वर्षसे अधिक हो गये हैं तो भी घाट ज्योंका त्यों बना हुआ है। बीचमें एक बार इसकी मरम्मत हुई है। इस घाटमें चांदनी वा घर नहीं है। इस घाटके बगलमें चांदनी विशिष्ट एक सुन्दर घाट है जहां गङ्गा यात्रियोंके घर हैं।

त्रिवेणीकी दक्षिणसीमामें एक विख्यात मस्जिद है जिसमें जाफर खाँ और उनके वंशके कई एक व्यक्तियों-की समाधियां हैं। जाफरखाँ पाण्डुआके गोहत्यासे घटित युद्धके नायक शाह सफीके चचा थे। जाफर खाँके साथ हुदियाके राजाका युद्ध हुआ था, उसी युद्धमें जाफर मारे गये थे। उनके लड़केने हुगलीके राजाको परास्त कर उनकी लडकीको व्याहा था। मस्जिदमें उस राजकन्या-की भी समाधि है। मुसलमान पर्वमें हिन्दूलोग आज भी राजकन्याकी कब्रमें सिरनी चढ़ाते हैं। सुना जाता है कि जाफर खाँ भी गङ्गाको पूजा करते थे।

मि॰ ब्लाकम्यान जाफरकी मस्जिद देख कर इस प्रकार लिख गये हैं—

मस्जिद दो दीवारोंसे घिरी है। बाहरवाली पहली दीवार बड़े बड़े पत्थरोंकी बनी हुई है। कहा जाता है कि ये हिन्दू मन्दिरको तोड़ कर उन्होंने पत्थर संग्रह किये थे। गङ्गाकी ओर दीवार पर उसके कई एक प्रमाण पाये जाते हैं। क्योंकि पत्थरों पर बहुतसी हिन्दू देव-देवियोंकी अङ्गहीन मूर्तियां और पंखदार साँप बिच्छू आदिकी मूर्तियां अङ्कित हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि ये सब पत्थर सचमुचमें किसी हिन्दू मन्दिरसे लिये गये हैं। इस दीवार पर जमीनसे चार हाथ ऊपरमें एक लोहेका खम्भा गड़ा हुआ है। प्रवाद है कि यह जाफर खाँका युद्धास्त्र था। दूसरी दीवार पहली दीवारके दक्षिणकी ओरसे निकल कर मस्जिदको घेरे हुये हैं। यह दानादार पत्थरोंकी बनी हुई है। वर्त्तमान खादिम आस्तानाके अध्यक्षको निपट मूर्ख नहीं कह सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि जाफर खाँका कब्रिस्तान सबसे पश्चिममें है। आयेन खाँ, गायेन खाँ और बोरखाँ गाजी नामक जाफरके तीन पुत्रोंकी भी अलग अलग तीन कब्रें हैं। पहली दीवारके मध्य बर खाँ गाजीके दो पुत्र रहीम खाँ गाजी और करीम खाँ गाजी-की समाधिस्तम्भ हैं। दूसरी दीवारके मध्य पश्चिमकी ओर ४० हाथके अन्तर पर एक मसजिदका भग्नावशेष देखा जाता है। यह भी हिन्दू मन्दिरके उपकरणसे बनी हुई है। इसके गुम्बजके स्तम्भ बहुत मोटे हैं। इस मस्जिदकी पश्चिमी भीतमें बहुतसे लेख खुदे हुए हैं और भीतरमें कई एक अरबी भाषामें लिखी हुई शिलालिपियां हैं। उनके पढ़नेसे जाना जाता है कि तुर्की खाँ महम्मद जाफर खाँने ६९८ हिजरीमें ( १२९८ ई॰में ) यह मस्जिद निर्माण की। इसके अलावा बहुतसे ईंटोंकी भीतके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। यहांके

अधिवासियोंका कहना है कि ये सब खादिमोंके घर थे।

प्राचीन पुराणादिमें प्रयाग ही त्रिवेणी नामसे प्रसिद्ध है। प्रयागमें गङ्गाके साथ यमुना और सरस्वतीके मिल जानेसे उस स्थानको युक्तवेणी और त्रिवेणी नामक ग्राममें गङ्गासे सरस्वती और यमुनाके स्वतन्त्र हो कर भिन्न मुख हो जानेसे उस स्थानको मुक्तवेणी कहते हैं।

रघुनन्दनके प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है कि 'प्रद्युम्न-नगरके दक्षिण और सरस्वती नदीके उत्तरमें दक्षिण प्रयाग है। इस स्थानमें गङ्गासे यमुना दूर रह गई है। यहां स्नान करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल होता है। उन्मुक्तवेणी दक्षिण-प्रयाग सप्तग्रामके निकट दक्षिण देशमें त्रिवेणी नामसे प्रसिद्ध है।'

स्मार्त्त रघुनन्दन श्री चैतन्यके समकालवर्त्ती थे, सुतरां चार सौ वर्ष पहले भी जो त्रिवेणी तीर्थवत् प्रसिद्ध और प्रयागके समान गिनी जाती थी उसका प्रमाण पाया जाता है। इसके सिवा कविकङ्कणकी चण्डीमें भी त्रिवेणी-का उल्लेख और उसकी समृद्धिका कुछ कुछ प्रमाण है। त्रिवेणी एक प्रधान तीर्थ और वाणिज्यका स्थान कह कर उक्त पुस्तकमें वर्णित है।

त्रिवेणीमें त्रिवेश्वर नामका एक स्थान है। इसके सामने गङ्गाके एक दहको लोग कालीदह कहते हैं।

त्रिवेणी-घाटके उत्तरमें बान्दा पहाड़ है। यहां एक जगह प्राचीन कालका एक बड़ा पत्थर विद्यमान है जिसे लोग धोबिनका पाट कहते हैं। त्रिवेणीके घाटसे कुछ उत्तरमें उस पत्थरके समीप एक पुष्करिणी भी है, वह भी 'धोबिनका पोखर' नामसे मशहूर है।

जाफर खाँकी मसजिदमें जो लौहदण्डकी कथा कही जा चुकी है उसके विषयमें एक प्रवाद है। लोग साधारणतः उसे 'गाजीका कुठार' और उस स्थानको 'दफरा गाजीका तला' कहते हैं। वह लौहदण्ड नवानेसे नव जाता है, किन्तु दोबारसे गिर नहीं पड़ता, इसीसे एक प्रवाद इस प्रकार है, 'गाजीका कुठार नवता, चढ़ता किन्तु गिरता नहीं।' दफरा गाजीके विषयमें एक कहानी भी इस तरह है। दफ़रा गाजी नामक कोई मुसलमान धनी थे। एक दिन निमन्त्रणसे लौटते समय राहमें तूफान तथा वृष्टिने उन्हें घेर लिया। समीपमें कोई आश्रम न पा कर वे पासके एक बड़े वटवृक्ष पर चढ़ गये। वृक्षके पास ही श्मशान था। भूत और प्रेतिनी उस वृक्ष पर बैठ आपसमें कुछ बात चीत कर रही थीं, प्रेतिनीने भूतसे पूछा 'क्या मेरा विवाह नहीं होगा'? क्या इसी अवस्थामें चिरकाल तक रहूंगी?' भूतने जवाब दिया—'बहन। अमुक ग्रामके दफरा गाजीके नौकरको कल उसीकी गाय उसे मार डालेगी वह मर कर भूत होगा। उसी भूतके साथ तुम्हें व्याहूंगा।' दफरा गाजीने सब बातें सुन लीं और वृष्टि बन्द होने पर उसने घरकी राह ली। यहां उसने किसीसे कुछ न कह कर उस नौकरको बुलाया और उसे एक घरमें बन्द कर ताला लगा दिया, किन्तु वे उसकी ताली उसी जगह भूल आये। उनकी स्त्रीने उसे छिपा रखा। इधर उनकी गाय रस्सी तोड़ कर बहुत उत्पात मचाने लगी। कभी वह गङ्गाके किनारे और कभी घरमें इधर उधर कूदती और अनर्थ करती थी। गृहिणी-ने देखा कि यह भारी विपद् आ गयी, ऐसा होनेसे राह-के मुसाफिर मारे जा सकते हैं। ऐसा सोच कर उसने गायको बांधनेके लिये उस नौकरको बाहर कर दिया। ज्योंही वह गायको बाँधने गया त्योंही उसने ऐसा सींग मारा कि उसके पेटकी अंतड़ी आदि बाहर निकल आई और उसकी प्राणवायु उड़ गई।

घर आने पर दफरा गाजीको नौकरकी मृत्युका हाल मालूम हो गया। वे किसीको कुछ कहे बिना संध्याके समय उसी श्मशानके वटवृक्ष पर छिपके बैठ गये। कुछ समयके बाद उन्होंने सुना, प्रेतिनी कह रही है, 'तुमने कहा, कि दफरा गाजीका नौकर मरने पर भूत होगा लेकिन ऐसा तो हुआ नहीं।' भूतने कहा 'हां। उसका जन्म भूतयोनिमें न हुआ। गाय जब रस्सी तोड़कर गङ्गाके किनारे गई थी, तब उसके सींगमें गङ्गाकी मट्टी लग गई थी। मरते समय मृत्तिकाके स्पर्शसे नौकर उद्धार हो गया।' दफरागाजीने यह सुनकर अपने मनमें कहा, 'हिन्दूकी देवी गङ्गाका जब ऐसा माहात्म्य है, तो मैं गङ्गाके किनारे रहनेसे क्यों वञ्चित रहूं।' यह सोच कर दूसरे दिन जहां जाफर खाँकी मस्जिद थी, उसी जगह वे आकर रहने लगे। इसके पश्चिम ओरकी

दोवार पर अर्थात् जहाँ गाजोका कुठार है, वहाँ बिना छतका एक पत्थरका घर देखनेमें आता है। कहा जाता है, कि दफरा गाजो गङ्गावासी हो कर उस स्थान पर रहते थे। लोगोंका विश्वास है कि विश्वकर्माने गङ्गाके आदेशसे गङ्गाभक्तके लिये रात भरमें वह घर निर्माण किया था, किन्तु सवेरा हो जानेसे वे रह न सके और घर अधूरा हो रह गया। दफरा गाजी गङ्गास्तव करके मुक्त हो गये थे।

गङ्गाकी स्तवमालाके मध्य संस्कृत भाषाके सुललित छन्दमें एक स्तव है जिसे दराफखाँ नामक किसो मुसलमानने रचा है। स्तव जैसा भावविशुद्ध है वैसा हो सुललित भो है। प्रायः सभो हिन्दू यह स्तव जानते हैं और गङ्गास्नातक नित्य इसे पाठ करते हैं। इस स्तवका शेष इस प्रकार है—

"सुरधुनिमुनिकन्ये तारयेः पुण्यवन्तं
स तरति निजपुण्यैस्तत्र किं ते महत्वम्।
यदि च गतिविहीनं तारयेः पापिनं मा
तदिह तव महत्वं तन्महत्वं महत्वं॥"
इति दराफखांविरचितं गंगाष्टकं समाप्तम्।

गाजोका कुठार और जाफरखांका युद्धास्त्र तथा दफरागाजी, दराफखाँ और जाफरखांके नाम और उनकी गङ्गाभक्तिकी कथा सुन कर अनुमान किया जाता है, कि ये सब एक व्यक्तिके विवरण हैं। लोगोंके मुखमें एक जाफरखाँके नामने हो त्रिविध आकार धारण किया है।

पहले संस्कृत शिक्षाके लिये चार स्थान नदिया राज्यमें विशेष विख्यात थे, इन चारोंको चार समाज कहते हैं। ये चारों स्थान नवद्वोप, भाटपाडा, गुप्तिपाड़ा और यही त्रिवेणो है। इस समय त्रिवेणोमें तोस संस्कृतकी पाठशालायें हैं।

सुविख्यात सर विलियम जोन्सके संस्कृत शिक्षक अद्वितोय पण्डित जगन्नाथ तर्कपञ्चाननने यहां जन्म ग्रहण किया था और वे उसी ग्रामके वासी थे।

जगन्नाथ तर्कपंचानन देखो।

वारुणी और मकर-संक्रान्तिको त्रिवेणीमें तोन दिनों तक मेला लगता है उस समय बहुत यात्री इकट्ठे होते हैं। इसके सिवा ग्रहणादिमें भी अनेक यात्री आते हैं।

२ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नारूप पारिभाषिक तोनों नदियोंका सङ्गमस्थान।

त्रिवेणु (संं० पु०) त्रयो वेणवो यत्र। रथमुखस्थित अवयव भेद, रथके अगले भागके एक अंगका नाम।

त्रिवेद (सं० पु०) त्रीन् वेदान् वेत्ति-विद्-अण्, त्रयो वेदाः अधीतत्वेन सन्त्यस्य अण् वा। १ वेदत्रयवेत्ता, तोनों वेदके जाननेवाले। २ ऋक, यजु और साम ये तीनों वेद। ३ वेदत्रयविहित कर्म, तोन वेदोंमें बतलाये हुए कर्म।

त्रिवेदी (सं० पु०) त्रिवेदं वेत्ति-इन्। १ वेदत्रयज्ञ; ऋक, यजु और साम इन तोनों वेदके जाननेवाले। २ ब्राह्मणोंका एक भेद।

त्रिवेला (सं० स्त्री०) तिस्रो वेला सोमानोऽस्य। त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवैष्किक (सं०त्रि०) त्रोणि विस्ताणि स्वर्णकर्षं मूल्यान्य-र्हति ठक तस्य च लुगभावः। स्वर्णकर्षमूल्यार्ह, जिसकी कीमत तीन स्वर्णकर्ष हो।

त्रिशक्ति (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता शक्तिः। १ कालो, तारा और त्रिपुरा ये तोनों देवियाँ। २ इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपी तीनों ईश्वरोय शक्तियाँ। ३ राजाओंको, प्रभाव, उत्साह और मन्त्र; ये तोनों शक्तियाँ। ४ त्रिगुणात्मक प्रधान, बुद्धित्व। ५ गायत्री।

त्रिशक्तिधृत् (सं० पु०) त्रिशक्तिं इच्छादिशक्तित्रयं धरति धृ-क्विप्। १ परमेश्वर। २ विजिगोषु राजाका नाम।

त्रिशङ्कु (सं० पु०) त्रयः शङ्कव इव यत्र। १ मार्जार, बिल्ली। २ शलभ, पतंग, टिड्डी। ३ चातक पची, पपोहा। ४ खद्योत, जुगनू। ५ पर्वतविशेष, एक पहाडका नाम। ६ सूर्यवंशोय एक राजा। इनका विषय रामायणमें इस प्रकार लिखा है,—राजा त्रिशङ्कुने सशरोर स्वर्गलाभकी कामनासे अपने गुरु वशिष्ठदेवको यज्ञ करने कहा। वशिष्ठने इसमें अनिच्छा प्रकट की और 'ऐसा नहीं हो सकता' यह उनसे कहा। इस प्रकार त्रिशङ्कु वशिष्ठसे विमुख हो कर दक्षिण दिशाको चल दिये। वहाँ वशिष्ठके लड़के तपस्या कर रहे थे। त्रिशङ्कुने उनको शरण ली और यज्ञ करनेके लिये विशेष अनुरोध किया। तब वशिष्ठके लड़कों-

ने उनसे कहा, 'मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि मारी गई है । जब पिताजीने इसका खंडन कर दिया, तब तुम उसे उल्लङ्घन कर क्यों दूसरेकी शरण लेते हो ? उन्होंने जो कुछ कहा है वह अमोघ है और किसी हालतसे टल नहीं सकता । सुतरां जब उन्होंने "ऐसा नहीं हो सकता" यह कहा, तब हम लोग पिताजीकी आज्ञाके विरुद्ध यह यज्ञ नहीं कर सकते।' इस पर त्रिशङ्कु बोले "आपके पिताने मुझे विमुख कर दिया और आपने भी वैसा ही किया, अब मैं किसी दूसरेका आश्रय लेनेको बाध्य हूं ।" यह सुन कर वशिष्ठके लड़के क्रोधसे अधीर हो उठे और 'तुम चाण्डाल हो जाओ' ऐसा शाप दे कर वे अपने अपने आश्रमको चल दिये । बाद त्रिशङ्कु चाण्डालत्व प्राप्त कर इधर उधर भ्रमण करने लगे और दुःखसे नितान्त विह्वल हो उन्होंने महर्षि विश्वामित्रका आश्रय ग्रहण किया । राजाको चण्डालरूपी और विफलकर्मा देख कर विश्वामित्रका हृदय दयासे भर आया और वे बोले 'मै दिव्य चक्षुसे देखता हूं कि तुम महाबलसम्पन्न अयोध्याधिपति हो और अभिशापसे चण्डालत्वको प्राप्त हुए हो । जिस कार्यके लिये तुम मेरे समीप आये हो उसे कहो "तुम्हारा कल्याण होगा ।" तब त्रिशङ्कु राजाने हाथ जोड़ कर कहा, 'प्रभो! मैं यज्ञ करके सशरीर स्वर्ग जाना चाहता हूं, यही मेरा अभिलाष है । मैं गुरु वशिष्ठ और उनके लड़कोंसे विमुख हो चुका हूं, अभी आपही मेरे एक मात्र आश्रयदाता हैं । मैंने अनेक यज्ञ किये हैं और कभी भी धर्म विगर्हित कार्य नहीं करता ।" विश्वामित्रने त्रिशङ्कुकी यह बात सुन कर कहा, 'डरो मत, गुरुके अभिशापसे तुम्हारी ऐसी अवस्था हो गई है । तुम इसी अवस्थामें सशरीर स्वर्गको पहुंच जावोगे । अभी मैं यज्ञ साहाय्यकारी पुण्यकर्मा महर्षियोंको बुलाता हूं, तुम निश्चिन्त हो कर यज्ञ करो ।' तब विश्वामित्रने अपने पुत्रोंको यज्ञका आयोजन करने कहा और सब शिष्योंको बुला कर कहा, 'तुम लोग मेरी आज्ञासे ऋत्विक् और वशिष्ठपुत्रादि बहुश्रुत ऋषियोंको सुहृद और शिष्यों के साथ बुला लावो । 'जायंगे या नहीं' जो जैसा कहें वह मुझे खबर दो । शिष्यगण चारों ओर चल दिये । वेदविद् सभी ऋषि यज्ञमें आने लगे, केवल वशिष्ठके पुत्र और महोदय नामक ऋषि नहीं आये । उन्होंने कहला भेजा कि, जिस यज्ञका याजक क्षत्रिय है विशेषतः जो चण्डाल है उसको यज्ञस्थलोंमें सुर और ऋषि लोग किस प्रकार हवि भोजन करेंगे । विश्वामित्र यह वचन सुन कर क्रुद्ध हो बोले, "वशिष्ठके पुत्र जब बिना दोषके मुझे दोषी बनाते हैं, तब वे मेरे इस अभिशापसे कुरूप कुक्कुर मांसाहारी भंगीकी योनिमें सात सौ वर्ष तक जन्म लेकर इस संसारमें भटकते फिरें । महोदय भी निषादत्वको प्राप्त कर अधिक समय तक दुर्गति भोगें ।" बाद विश्वामित्रने समागत ऋषियों से कहा, 'त्रिशङ्कुने सशरीर स्वर्ग जानेकी इच्छा करते हुए मेरी शरण ली है । अतः ये जिससे ज्ञान द्वारा सशरीर स्वर्ग जा सकें आप लोग मेरे साथ उसी यज्ञका अनुष्ठान करें ।'

ऋषियोंने विश्वामित्रको अत्यन्त क्रोधित स्वभावका जान कुछ भी प्रतिवाद किये बिना यज्ञका आरम्भ कर दिया ।

विश्वामित्र स्वयं इस यज्ञमें अध्वर्यु बने । मन्त्रकोविद ऋत्विक शास्त्रानुसार सब कार्य करने लगे । महर्षि विश्वामित्रने देवताओंको हविर्भाग प्रदान किया, किन्तु कोई देवता यज्ञमें न आये । तब विश्वामित्रने क्रुध हो स्रुवको उठा कर त्रिशङ्कुसे यह कहा, 'नरेश्वर! मेरी अर्जित तपस्याका प्रभाव देखो! अभी मैं अपने तेजसे तुम्हें स्वर्ग भेजता हूं । कोई भी सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकता है, पर तुम जाओ। मैंने अपनी तपस्या द्वारा जो फल प्राप्त किया है, तुम उसीके प्रभावसे सशरीर स्वर्गको जा सकते हो।' विश्वामित्रके इतना कहने पर त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्गको जाने लगे । इधर इन्द्रने त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्गकी ओर आते देख कर, कहा, 'मूर्ख! तुम्हारे लिये स्वर्गमें स्थान नहीं । तुम पर गुरुका शाप है, अतः यहांसे औंधे मुंह मर्त्यलोकको लौट जावो ।' त्रिशङ्कु जब नीचे गिरने लगे, तब 'मुझे बचाइये' कह कर जोरसे चिल्ला उठे । इस पर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और "ठहरो, ठहरो" यह कह कर उन्होंने दक्षिणकी ओर दूसरे सप्तर्षियों और नक्षत्रोंकी रचना आरम्भ की । इन्द्रने सृष्टि करनेकी इच्छा करते

हुए पुनः सोचा कि इन्द्रशून्य सृष्टि ही प्रशस्त है। सब देवता भयभीत हो कर विश्वामित्रकी शरणमें पहुंचे। तब विश्वामित्रने उनसे कहा, मैंने त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्ग पहुंचाने की प्रतिज्ञा की है, अब वह किस प्रकार मिथ्या हो सकती। अतः अब वह राजा जहांकि तहां वास करेंगे और जब तक मनुष्य वर्त्तमान रहेंगे तब तक हमारे बनाए सप्तर्षि और नक्षत्र उनके चारों ओर रहेंगे।' आप लोग इस विषयमें क्या कहते हैं। देवताओंने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तबसे त्रिशङ्कु वहीं आकाशमें सफेद नक्षत्रोंके बीच नीचे शिर किए हुए लटके हैं और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। (रामायण १।५७-६२ सर्ग)

हरिवंशमें त्रिशङ्कुका विषय इस प्रकार लिखा है—

महाराज त्रय्यारुणके सत्यव्रत नामक एक पुत्र था। ये बहुत पराक्रमी थे। इन्होंने वैवाहिक नियमका उल्लङ्घन कर दूसरेकी विवाहिता स्त्रीको अपने घर ला उसे अपनी स्त्री बना कर रख लिया। जब महाराज त्रय्यारुणको यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने सत्यव्रतको कलङ्की समझ कर परित्याग किया। इस प्रकार पितासे तिरस्कृत होने पर सत्यव्रतने उनसे पूछा, "मैं कहां रहूं।' इस पर वे बहुत बिगड़े और बोले, 'तुम चाण्डालोंके साथ जा कर रहो। मैं तुम्हारे सरीखा दुरात्मा पुत्र द्वारा पुत्रवान् होनेकी इच्छा नहीं करता।' सत्यव्रत पिताके आदेशसे नगर छोड़ बाहर हो गये। वशिष्ठने भी इसमें कुछ छेड़ छाड़ न की। इसी तरह सत्यव्रत अपना समय चाण्डालोंके साथ बिताने लगे। इस प्रान्त पर भगवान् इन्द्रकी ऐसी कुदृष्टि पड़ी कि बारह वर्ष तक वृष्टि हो न हुई। इधर विश्वामित्र अपनी स्त्रीको इसी प्रान्तमें छोड़ आप कठोर तपस्या करनेके लिए किसी दूसरी जगह चले गए थे। इससे विश्वामित्रकी स्त्री अन्यान्य पुत्रोंके भरणपोषणके लिए ऋषिके औरस-जात मध्यम पुत्रको गलेमें बाँध कर सौ गायोंको बेचने निकलीं। जब वह सत्यव्रतके पास पहुंची, तो उन्होंने ऋषिको प्रसन्न रखने अथवा अनुग्रह प्राप्ति की आशासे उनकी खबर ली एवं उनके भरणपोषणका भार ग्रहण किया। विश्वामित्रके पुत्र सत्यव्रतसे पाले गए थे, इसी कारण उनका नाम गालव पड़ा।

सत्यव्रत प्रतिज्ञाबद्ध हो कर विश्वामित्रको पत्नीका प्रतिपालन करने लगे। सत्यव्रतके राज्यसे बहिर्गत होते समय वशिष्ठने कुछ भी नहीं कहा था; इस कारण वे ऋषि पर कुपित रहते थे। सत्यव्रतके ऊपर उनके पिता जो अप्रसन्न थे उसी महापापसे इन्द्रने बारह वर्ष तक वृष्टि बन्द कर दी थी। अभी सत्यव्रतने बारह वर्षके बीच दुर्वह दीक्षा ग्रहण की अर्थात् पापसे निवृत्त हो कर कुलकी निष्कृति लाभ की; किन्तु एक बार मांसके अभावके कारण उन्होंने वशिष्ठकी कामधेनु गौको मार कर उनका मांस विश्वामित्रके लड़केको खिलाया था और स्वयं भी खाया था, सुतरां यह घोर महापापका काम हुआ। वशिष्ठको जब अपनी गौके मारे जानेका हाल मालूम हुआ तब उन्होंने सत्यव्रतसे कहा; 'यदि तुम ये दोनों पाप नहीं किये होते तो निश्चय ही मैं तुम्हारे पापरूपी शङ्कुको दूर कर देता। एक तो तुमने अपने पिताको असन्तुष्ट किया, दूसरे अपने गुरुकी गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं तथा ऋषि-पुत्रोंको खिलाया। यही तीन महापातक तुमने किये। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती।' सत्यव्रतने ये तीन महापातक किये थे, इसीसे वे त्रिशङ्कु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्रकी स्त्री और पुत्रोंकी रक्षा की थी, इसलिये ऋषिने उनसे वर मांगनेके लिए कहा। त्रिशङ्कुने सशरीर स्वर्ग जानेकी प्रार्थना की विश्वामित्रने 'तथास्तु' कह कर स्वीकार किया। पीछे बारह वर्षकी अनावृष्टिका भय दूर होने पर उन्होंने त्रिशङ्कुको उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। विश्वामित्रके यज्ञ करने पर देवताओंने भी वशिष्ठका अनादर किया और त्रिशङ्कुके सशरीर स्वर्गारोहणकी अनुमोदन किया। सत्यव्रतने केकयवंशकी सत्यरथा नामक कन्याको व्याहा था और उसीके गर्भसे प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रको त्रैशङ्कव भी कहते हैं।

७ नक्षत्रविशेष, एक तारा। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यह वही त्रिशंकु हैं, जिन्हें इन्द्र आकाशसे गिरा रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्रने रोक दिया था।

(हरिवंश १२-१३ अ०)

त्रिशङ्कुज ( सं० पु० ) त्रिशङ्कोर्जायते जन-ड। हरिश्चन्द्र राजा।

त्रिशङ्कुयाजी ( सं० पु० ) त्रिशङ्कुं याजयति यज-णिनि। विश्वामित्र ऋषि। त्रिशंकु देखो।

त्रिशत ( सं० क्लो० ) त्रिगुणितं शतं मध्यलो०। त्रिगुणित शत, तिगुना सौ, तीन सौ।

त्रिशतीप्रसारिणीतैल ( सं० क्लो० ) तैल औषध भेद। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४८ सेर, क्वाथार्थ मूल-पत्र और शाखाके साथ सारविशिष्ट गन्धभद्रा १०० पल, पाकार्थ जल ६४ सेर शेष १६ सेर, अश्वगन्धा १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूल १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दधिका जल १६ सेर, कांजी ३२ सेर, कल्क पाकार्थ जल २५६ सेर, कल्कार्थ जीवनीय गण प्रत्येक १ पल, अदरख ५ पल, भिलावेकी मुष्टि ३० पल, पिपरामूल २ पल, चीतामूल २ पल, यवचार २ पल, सैन्धव २ पल, सचल लवण २ पल, मजीठ २ पल, गन्धभद्रा २ पल, यष्टिमधु २ पल, इन सब द्रव्योंको तैल विधिके अनुसार पाक कर उतार लेते हैं। यह तैल अभ्यङ्ग, वस्तिकर्म, निरूह, पान और नस्यार्थमें व्यवहृत होता है। यह वातरोगका एक उत्कृष्ट तैल है। इस तैलका व्यवहार करनेसे अस्सी प्रकारकी वातज व्याधि और बीस प्रकारकी पैत्तिक तथा श्लेष्मिक व्याधि बहुत जल्द प्रशमित हो जाती हैं। इसके सिवा गृध्रसी, अस्थिभङ्ग, मन्दाग्नि, अरोचक, अपस्मार, उन्माद, विभ्रम, पक्षाघात, सर्वाङ्गहत, वातगुल्म आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्नावली)

त्रिशरण ( सं० क्लो० ) त्रीणि शरणानि यस्य। १ बुद्ध। २ जैनियोंके एक आचार्यका नाम।

त्रिशर्करा (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता शर्करा, मध्यलो०। गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनोंका समूह।

त्रिशला ( सं० स्त्री ) त्रिस्रः शला यस्याः पृषोद० साधुः। अर्हन् मातृविशेष, वर्द्धमान या महावीर स्वामीकी माताका नाम।

त्रिशल्य ( सं० पु०-क्लो० ) जैनधर्मानुसार माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य। मनमें और वचनमें तथा कार्यमें कुछ और ही करना यही मायाशल्य है, तत्त्वार्थ अर्थात् जिनागममें अश्रद्धान वा सन्देह करना मिथ्यात्वशल्य है और भविष्यमें विषयभोगोंकी वांछा करना निदानशल्य है। इन तीनोंके रहते हुए मनुष्य व्रती नहीं हो सकते अर्थात् जिनमें ये तीन शल्य पाई जांय, उनका अहिंसादि व्रत वृथा है।

( तत्त्वार्थसूत्र ७।१८ )

त्रिशाख ( सं० त्रि०) तिस्रः शाखा अग्राणि यस्य। शिखाकार अग्रत्रय युक्त, जिसमें आगेको ओर तीन शाखाएं निकली हों।

त्रिशाखपत्र ( सं० पु० ) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

त्रिशाण (सं० त्रि०) त्रयः शाणाः परिमाणमस्य तैः क्रीतं वा अण् तस्य वा लुक्। १ त्रिशाण परिमित। २ जो एक त्रिशाणमें खरीदा गया हो।

त्रिशालक ( सं० क्लो० ) तिस्रः शाला यत्र वा कप्। हिरण्यनामाख्य वस्तु भेद, वह इमारत जिसके उत्तर और और कोई इमारत न हो। ऐसी इमारतें अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिख ( सं० क्लो० ) तिस्रः शिखा यस्य। १ त्रिशूल। २ किरीट। ३ रावणके एक पुत्रका नाम। ४ बिल्व, बेल। ५ तामस नामक मन्वन्तरके इन्द्रका नाम। ( त्रि० ) ६ शिखात्रययुक्त, जिसको तीन शिखाएं हों।

त्रिशिखर ( सं० पु० ) त्रीणि शिखराणि यस्य। त्रिकूट पर्वत, वह पहाड़ जिसको तीन चोटियां हों।

त्रिशिखिदला ( सं० स्त्री० ) तिस्रः शिखाः सन्त्यत्र इनि तादृशं दलमस्य। मालाकन्द नामक मूल।

त्रिशिखिन् (सं० त्रि०) त्रिशिखाः सन्त्यस्य इनि। त्रिशिख, जिसको तीन चोटियां हों।

त्रिशिरस् ( सं० पु० ) त्रीणि शिरांसि अस्य। १ कुबेर। २ रावणके एक पुत्रका नाम। ३ खरके एक सेनापतिका नाम। ४ ज्वर पुरुष। इसे दानवोंके राजा रावणको सहायताके लिये महादेवजीने उत्पन्न किया था। इसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ आंखें थीं। ५ जैवरथ। ६ त्वष्टा प्रजापतिके पुत्रका नाम। ७ असुरविशेष, एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारतमें है। यह खर-दूषणकी सेनामें वर्त्तमान था। श्रीरामजीके द्वारा १४ हजार राक्षसोंके मारे जाने पर त्रिशिरा और खर ये दो

दोनों बचे थे। (त्रि०) ८ जिसके तोन शिर हैं।

त्रिशोर्ष (सं० त्रि०) त्रीणि शीर्षाणि यस्य। १ त्रिशिखर, जिसको तोन चोटियां हों। २ त्वष्टा प्रजापतिके पुत्रका नाम।

त्रिशीर्षक (सं० क्लो०) त्रिशोर्ष-कप्। त्रिशूल।

त्रिशीर्षन् (सं० पु०) त्वष्टाके एक पुत्रका नाम।

त्रिशुच (सं० पु०) तिस्रः शुचो दीप्तयः शोका वा अस्य। १ धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वो तीनों स्थानोंमें है। २ आध्यात्मिकादि शोकत्रययुक्त, वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकारके दुःख हों।

त्रिशूल (सं० पु०) त्रीणि शूलानि इव अग्राणि यस्य। स्वनामख्यात अस्त्रविशेष, एक प्रकारका अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेवजीको अस्त्र माना जाता है। इसका संस्कृत पर्याय—त्रिशिख, शूल और त्रिशीर्षक है। २ दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख। ३ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारको मुद्रा। इसमें अंगूठेको कनिष्ठा उंगलोके साथ मिलाते हैं और बाकी तोन उंग-लियोंको फैला देते हैं।

त्रिशूलखात (सं० क्लो०) त्रिशूलेन खातं। तीर्थविशेष, एक तोर्थका नाम। इस तोर्थमें स्नान कर पितृ और देवताओंको अर्चना करनेसे गाणपत्यदेह प्राप्त होती है।

त्रिशूलमुद्रा (सं० स्त्री०) त्रिशूलं आकारत्वेनास्त्यस्याः। मुद्राविशेष, एक प्रकारको मुद्रा। त्रिशूल देखो।

त्रिशूलो (सं० पु०) त्रिशूलं अस्त्रमस्त्यस्य, त्रिशूल-इनि। १ शिव, महादेव। (स्त्री०) २ दुर्गा। (त्रि०) ३ त्रिशूलधारो, त्रिशूलको धारण करनेवाले। (क्लो०) ४ पारद, पारा।

त्रिशृङ्ग (सं० पु०) तीणि शृङ्गाणि यस्य। १ त्रिकूट पर्वत। इसी पहाड़ पर लङ्का बसी है। २ त्रिकोण।

त्रिशृङ्गो (सं० पु०) त्रीणि शृङ्गाणीव सन्त्यस्य त्रिशृङ्ग-इनि। रोहित मत्स्य, टेंगना नामको मछलो जिसके शिर पर तोन कांटे होते हैं।

त्रिशोक (सं० पु०) त्रय आध्यात्मिकादयः शोका अस्य। जीव, आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ये तोन प्रकारके शोक जीवके होते हैं, इसोसे जीव मात्र ही त्रिशोक है। २ कण्व ऋषिके एक पुत्रका नाम।

त्रिश्रुतिमध्यम (सं० पु०) एक प्रकारका विकृत स्वर। यह सन्दोपनो नामको श्रुतिसे आरम्भ होता है। इसमें चार श्रुतिया होती हैं।

त्रिषंयुक्त (सं० त्रि०) त्रिभिः त्रिभिः संयुक्तं वेत्ति छन्द-सीति चानुवृत्तौ वेदे षत्वं। १ तोन बार हविसंयुक्त यज्ञ। २ जो तोन चोजोंसे संयुक्त हो।

त्रिषंवत्सर (सं० क्लो०) त्रयः संवत्सराः साधनकाला अस्य वेदे षत्वं। त्रिवर्ष साध्य सत्रभेद, तीन वर्षमें होने-वाला एक प्रकारका सत्र।

त्रिषन्धि (सं० त्रि०) त्रयः सन्धयोऽस्य, वेदे वा षत्वं। त्रिसन्धियुक्त, जो तोन भागोंमें विभक्त हो।

त्रिषवण (सं० क्लो०) सूयते सोमोऽत्र सु आधारे ल्युट् पूर्व पदादिति। त्रिकाल, प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तोनों काल।

त्रिषष्ट (सं० त्रि०) त्रिषष्टा युतं शतादित्वात् ड। त्रिषष्टि युत शतादि, क्रममें तिरसठके स्थान पर पड़नेवाला, तिर-सठवां।

त्रिषष्टि (सं० स्त्री०) त्र्यधिका षष्टि, बहुत्वेऽपि एक-वचनं। त्र्यधिक षष्टि संख्या, वह संख्या जो साठसे तोन और अधिक हो, तिरसठको संख्या। २ उक्त संख्या-सूचक अङ्क।

त्रिषष्टितम (सं० त्रि०) त्रिषष्टि पूरणे तमप्। त्रिषष्टि संख्याका पूरण, तिरसठवा।

त्रिषुपर्ण (सं० पु०) त्रयः सुपर्णास्तद्वाचकशब्दा यत्र। १ बहृच वेदके एक भागका नाम। त्रिसौपर्ण देखो। २ उक्त व्रत। ३ उक्त व्रतधारो पुरुष।

त्रिष्टुभ (सं० स्त्री०) त्रिषु स्थानेषु स्तुभ्यते स्तुभ क्विप् षत्वं। एकादश अक्षर पादक वर्णवृत्त छन्दोभेद, एक वैदिक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें ग्यारह अक्षर होते हैं। इन्द्र ग्यारह अक्षरोंसे त्रिष्टुभ छन्दका विधान करते हैं। (शुक्लयजु० ९।३३)

यह छन्द प्रजापतिके मांससे उत्पन्न हुआ है।

(भागवत० ३।१२।२९।)

इसका प्रकार नीचे लिखे अनुसार है—

इन्द्रवज्रा ॥ ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥ ॥

उपेन्द्रवज्रा । ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥ ॥

उपजाति भिन्न छन्दयोगसे—

सुमुखी । । । । ॥ । । ॥ । । ॥

शालिनी ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥

वातोर्मि ॥ ॥ ॥ ॥ । । ॥ ॥ । ॥ ॥

भ्रमरविलसित ॥ ॥ ॥ ॥ । । । । । । ॥

अनुकूला ॥ । । ॥ ॥ । । । । ॥ ॥

रथोद्धता ॥ । ॥ । । । ॥ । ॥ । ॥

स्वागता ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ ॥

दोधक ॥ । । ॥ । । ॥ । । ॥ ॥

मोटनक ॥ ॥ । । ॥ । । । । । ॥

वृत्ता । । । । । । । । ॥ ॥ ॥

भद्रिका । । । । । । । । ॥ ॥ ॥

उपस्थित } ।
प्रखचित } । ॥ । । । ॥ ॥ ॥ । ॥ ॥

उपचित्र । । ॥ । । ॥ । । ॥ । ॥

कुपुरुषजनिता । । । । । । ॥ । ॥ ॥ ॥

अश्वसिता ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ ॥

विध्वङ्कमाला ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥

सान्द्रपद ॥ । । ॥ ॥ । । । । ॥ ।

द्रुता ॥ । ॥ । ॥ । । । ॥ । ॥

इन्दिरा । । । ॥ । ॥ ॥ । ॥ । ॥

दमनक । । । । । । । ॥ । । ।

मालतीमाला ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

( छन्दो० वृत्त० पिंगल )

त्रिष्टोम ( सं० पु० ) त्रय: स्तोमा यत्र, षत्वं । एक प्रकार-का यज्ञ। यह यज्ञ चतष्टति यज्ञके पहले और पीछे किया जाता है।

त्रिष्ठ ( सं० पु० ) त्रिषु चक्रेषु तिष्ठति स्था-क अम्बाम्बेत्या-दिना षत्वं। चक्रत्रय स्थित रथ, तीन पहियोंका रथ या गाड़ी।

त्रिष्ठन् (सं० त्रि०) त्रिषु विद्यादानयज्ञेषु स्था-वा० इनि सुषामादित्वात् षत्वं। विद्यादि शीलयुक्त; विद्यादान और यज्ञयुक्त।

त्रिस् (सं० अव्य) त्रि वारार्थे सुच। त्रिवार, तीन बार।

त्रिसंवत्सर ( सं० क्लो० ) त्रिगुणितः संवत्सरः। त्रिवर्ष, तीन साल।

त्रिसङ्गम ( सं०.पु० ) १ तीन नदियोंके मिलनेका स्थान। २ किसी प्रकारको तीन चीजोंका मेल।

त्रिसन्धि ( सं० स्त्री० ) त्रय सन्धयोऽन्तरकाला विकाशे ऽस्याः। पुष्पभेद, एक प्रकारका फूल जो लाल सफेद और काला तीन रङ्गोंका होता है। संस्कृत पर्याय—सान्ध्यकुसुमा, सन्धिवल्ली, सदाफला, त्रिसन्ध्यकुसुमा, काण्डा सुकुमारा और सन्धिजा। गुण—रुचिकर, कफ, कास और त्रिदोषनाशक है।

त्रिसन्धिपुष्पदा ( सं० पु० ) त्रिसन्ध फूलका पेड़।

त्रिसन्धी ( सं० स्त्री० ) शुक्ल त्रिसन्ध, सफेद त्रिसन्ध फूल।

त्रिसन्ध्य ( सं० क्ली० ) तिसृणां सन्ध्यानां समाहारः आवन्तो वेति पाक्षिको क्लीवता। प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन काल। जो तिथि त्रिसन्ध्य-व्यापिनी, अर्थात् सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक रहती है, वह सब कार्यों-के लिए प्रशस्त है।

त्रिसन्ध्यकुसुम ( सं० स्त्री० ) त्रिसन्ध्यं कुसुमं यस्याः। त्रिसन्धि देखो।

त्रिसन्ध्यव्यापिनी (सं० स्त्री०) त्रिसन्ध्यं व्याप्नोति वि-आप णिनि ङीप्। वह तिथि जो सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक रहती है।

त्रिसन्ध्या ( सं० स्त्री० ) १ त्रिसन्धि पुष्प वृक्ष, त्रिसन्धि फूलका पेड़। २ प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों सन्ध्याएं।

त्रिसप्तन् ( सं० त्रि० ) त्रिगुणिताः सप्त। वह संख्या जो सातको तीनसे गुना करनेसे उत्पन्न हो, इक्कीसकी संख्या।

त्रिसप्तति ( सं० स्त्री० ) त्र्यधिका सप्ततिः। सत्तर और तीनका जोड़, तिहत्तरकी संख्या।

त्रिसप्ततितम (सं० त्रि०) त्रिसप्तति पूरणे तमप्। तिहत्तर पूरण, तिहत्तरवाँ।

त्रिसम ( सं० क्ली० ) त्रीणि हरीतकी नागरगुड़ानिसमानि यत्र। सोंठ, गुड़ और हड़ इन तीनोंके बराबर बराबर भागोंका समूह।

त्रिसर ( सं० पु० ) त्रिभिः स्तीयते स्तृ-अप्। कृशर, तिल-मिश्रित अन्न, खिचड़ी।

त्रिसरक ( सं० क्ली० ) त्रिवारं सरकं, मद्यपानं सरकाणां

श्रीधुपानानां समाहारः वा० पात्रादित्वात् न ङीप्। तीन बार मधु पान।

त्रिसरा (सं० स्त्री०) त्रिसर देखो।

त्रिसरो (सं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा जिसके सर्वाङ्ग भिन्न भिन्न वर्णके हों केवल शिर काला हो।

त्रिसर्ग (सं० पु०) त्रयाणां सत्वरजस्तमसां सर्गः। सत्व, रज और तम तीनों गुणोंका सर्ग, सृष्टि।

त्रिसवन (सं० क्ली०) त्रिकाल साध्य वैदिक सवन।

त्रिसवनस्नायी (सं० पु०) त्रिसवने त्रिकाले स्नातीति स्ना णिनि। त्रिकालस्नायी, वह जो तीनों काल स्नान करता हो।

त्रिसामन् (सं० पु०) त्रीणि सामानि स्तुतिसाधनानि यस्य। परमेश्वर।

त्रिसामा (सं० स्त्री०) त्रिसामन्-टाप्। महेन्द्र पर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम। (भागव० ५।१९।१८)

त्रिसाहस्र (सं० त्रि०) त्रीणि सहस्राणि परिमाणस्य अण् उत्तरपदवृद्धिः। जो तीन हजारका हो अथवा जिसमें तीन हजार हों।

त्रिसिता (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता सिता। त्रिशर्करा देखो।

त्रिसीत्य (सं० क्ली०) त्रिवारं सीतया सहितं यत्। (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) वह जमीन जो तीन बार जोती गई हो।

त्रिसुगन्धि (सं० क्ली०) त्रयाणां सुगन्धिद्रव्याना समाहारः। त्रिजातक, दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगन्धित मसालोंका समूह।

त्रिसुपर्ण (सं० पु०) १ ऋग्वेदके तीन विशिष्ट मन्त्रोंका नाम। २ यजुर्वेदके तीन विशिष्ट मन्त्रोंका नाम। त्रिसुपर्ण देखो।

त्रिसुपर्णिक (सं० पु०) वह पुरुष जो त्रिसुपर्णका जाननेवाला हो।

त्रिसुवर्चक (सं० पु०) आङ्गिरस च्यवनरूप अग्नि।

त्रिसौगन्ध्य—त्रिसुगन्धि देखो।

त्रिसौपर्ण (सं० क्ली०) सुपर्णेन ऋषिणा कृतं अण् ह्रस्वी त्रिशब्दस्य सुजर्थता उत्तरपदवृद्धिः। सुपर्ण ऋषिका किया हुआ एक व्रत। महर्षि सुपर्णने कठोर तपस्या, नियम और दमगुणके प्रभावसे स्वयं भगवान् नारायणसे इस धर्मको पाया था और वे प्रतिदिन तीनबार करके इसका पाठ किया करते थे। इसी कारण विद्वान् लोग इस धर्मको त्रिसौपर्ण कहते हैं। इस धर्मका वर्णन ऋग्वेदमें आया है। इसका अनुष्ठान बहुत कठिन है। जगत्प्राण समीरणने महर्षि सुपर्णसे यह सनातन धर्म पाया था। पीछे समीरणने यह धर्म विघमासी महर्षियोंको और फिर उन्होंने भी इसे महासमुद्रको प्रदान किया। बाद यह धर्म पुनः भगवान् नारायणमें लीन हो गया। (भारत शान्तिप० ३५० अ०)

सुपर्णा एव स्वार्थे अण्, त्रयः सौपर्णाः यत्र। २ मन्त्र विशेष, ऋग्वेदके निम्नलिखित तीन मन्त्रके नाम त्रिसौपर्ण हैं—

> चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृत प्रतीका वयुनानि वस्ते।
> तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतु र्यत्र देवा दधिरे भागधेयं॥
> एकः सुपर्णः ससमुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
> तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हिमातरं॥
> सुपर्णविप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
> छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्तसोमस्य मिमते द्वादश॥"
> (ऋक् १०।११४।३-५)

एक युवती स्त्री है, जिनके मस्तक पर चार वेणी हैं, जो सुन्दर और स्निग्ध हैं, जो अच्छे अच्छे वस्त्र पहनती हैं, दो पक्षी जिनके ऊपर बैठे रहते हैं और जहां देवता अपना अपना भाग पाते हैं। (इस जगह नारी शब्दका अर्थ यज्ञवेदी है) इसके चारों ओर घी रहनेसे यह स्निग्ध है और इसीको वेणी कहा गया है। यज्ञ सामग्री ही अच्छे अच्छे वस्त्र हैं। इसमें जो दो पक्षी बतलाये गये हैं, वे यजमान और पुरोहित हैं। सुपर्ण अर्थात् जीव और परमात्मा इसमें निविष्ट हैं। इस वेदीमें अग्न्यादि देवता अपना अपना भाग पाते हैं। एक सुपर्णने (पक्षीने) समुद्रमें प्रवेश किया और वहां इस विश्व भुवनको देख पाया। परिणत बुद्धिके द्वारा मैं उन्हें क्या देखता हूं कि वे निकटवर्त्तिनी माताको चूम रहे हैं और माता भी उन्हें चूम रही है। यहां पर पक्षीका अर्थ प्राणवायु वा परमात्मा है, समुद्र जो है, वह ब्रह्माण्ड है, उन्होंने इस विश्वको, समस्त

भुवनको एवं भूतजातको विशेषरूपसे स्थापित किया है। माताका अर्थ वाक्य या बोली है। प्राणके नहीं रहनेसे बोली नहीं निकलती। सुपर्ण एक ही हैं, पर पण्डितोंने कल्पना करके उनके अनेक रूप बतलाये हैं। ये लोग यज्ञके समय नाना प्रकारके छन्द उच्चारण करते हैं और बारह सोमपात्र संस्थापन करते हैं। सुपर्ण अर्थात् परमात्मा एक ही है, पर तत्त्वज्ञ लोग उन्हें छन्द और स्तोत्रादि द्वारा अनेक बतलाते हैं। भिन्न भिन्न देवताओंका एक आत्मा है। ( सायण ) २ परमेश्वरका नामभेद, परमेश्वरका एक नाम।

'त्रिसौपर्ण तथा ब्रह्म यजुषा शतरुद्रियं ।' (भारत शां० २८६अ०)

कई जगह 'त्रिसौवर्ण' ऐसा पाठ है। यह लिपिकर प्रमाद है, इसीसे यह शब्द नहीं लिया गया।

त्रिस्कन्ध ( सं० क्लो० ) त्रयः स्कन्धा इव अवयवा यस्य। ज्योतिःशास्त्र। नाना प्रकारके भेदविषयक ज्योतिःशास्त्र तीन स्कन्धोंसे प्रतिष्ठित हैं। संहितास्कन्ध, तन्त्रस्कन्ध और होरास्कन्ध, येही तीन ज्योतिःशास्त्रके स्कन्ध हैं। जिसमें ज्योतिःशास्त्रके सभी विवरण रहते हैं, उसे संहितास्कन्ध; जिसमें गणित द्वारा ग्रहगतिका निरूपण होता है, उसे तन्त्रस्कन्ध और जिसमें अङ्ग विनिमय अर्थात् यात्रा विवाह आदिका वर्णन रहता है उसे होरास्कन्ध कहते हैं। (वृहत्सं १।८)।

त्रिस्तनी (सं० स्त्री०) त्रयः स्तना अस्याः ङीप्। १ राक्षसी भेद, एक राक्षसीका नाम, जिसके तीन स्तन थे। २ गायत्री।

त्रिस्तावा ( सं० स्त्री० ) त्रिगुणिता तावती वेदिः अच् समासान्तटिलोपौ समासस्य निपात्यते। ( द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदि। पा ५।४।८४। ) अश्वमेध यज्ञकी वेदी जो साधारण वेदीसे तिगुनी बड़ी होती थी।

त्रिस्थली ( सं० स्त्री० ) त्रयाणां गया काशी-प्रयाग-रूपस्थलानां समाहारः। काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुण्यस्थान।

त्रिस्थान ( सं० पु० ) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानोंमें रहनेवाला परमेश्वर।

त्रिस्नान ( सं० क्लो० ) त्रिषु कालेषु स्नानमत्र। त्रिकाल स्नानाङ्ग व्रतभेद, सबेरे, दो पहर और संध्या तीनों समयका स्नान जो वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवालेके लिये आवश्यक है। कई प्रायश्चित्तोंमें भी त्रिकालस्नान करना पड़ता है।

त्रिस्पृशा ( सं० स्त्री० ) त्रीणि चान्द्रदिनानि एकस्मिन् सावने दिने स्पृशति स्पृश-क। एकादशीभेद। जिस एकादशीके पूर्वदिन दशमी और दूसरे दिन कुछ एकादशी, पीछे द्वादशी, और रातके अन्तमें त्रयोदशी होती है, उसे त्रिस्पृशा कहते हैं, अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी ये तीन तिथि एक सावन दिनमें रहनेसे त्रिस्पृशा होती है। ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्यकार्योंके लिये उपयुक्त मानी जाती है। इसमें स्नानदानादि विशेष फलप्रद हैं।

त्रिस्रोता (सं० स्त्री०) त्रीणि स्रोतांसि यस्याः, त्रिषु स्थानेषु स्वर्ग-मर्त्य पातालेषु स्रोतो यस्याः। गङ्गा।

त्रिस्रोता (तिस्ता)—उत्तर बङ्गालकी एक बड़ी नदी। यह अक्षा० २८° २' उ० और देशा० ८८° ४४' पू०में अवस्थित है। तिब्बतके अन्तर्गत चतामू ह्रदसे इसकी उत्पत्ति हुई है। फिर सिकिमके काञ्चनजङ्घाशृङ्ग पर भी इसका दूसरा उत्पत्तिस्थान पाया जाता है। दार्जिलिङ्गकी उत्तरी सीमामें यह नदी सिकिमसे अलग हो कर वृटिश राज्यमें प्रवेश करती है। कुछ दूर तक दार्जिलिङ्गकी सीमामें प्रवाहित होकर रञ्जित नदीके साथ मिलती है और दक्षिणकी ओर दार्जिलिङ्गके पहाड़ी प्रदेश होती हुई जलपाईगुड़ी जिलेमें प्रवेश करती है। यहां इसके किनारे पहाड़ पर शालकी जंगल है। जिस स्थान पर तिस्ता शिवकगोला नामक गिरिवर्त्म होती हुई समतल भूमिमें गिरती है, उस जगह उसकी चौड़ाई ७८ सौ गज है। नदीमें कहीं कहीं पत्थरके बड़े बड़े टुकड़े रहनेसे नावके लिये बहुत विपज्जनक है। तराईसे पृथक् हो कर जलपाईगुड़ीमें और पीछे बक्सीगञ्जके निकट कोचबिहार राज्यमें यह नदी प्रवेश करती है और जयसिंहके निकट कोचविहार छोड़कर वारुणी ग्रामसे ६ मील उत्तर रङ्गपुर जिलेमें बहती है। रङ्गपुरमें भवानीगञ्ज उपविभागके मध्य चिलमारी थानाके निकट बगोआ नामक स्थानसे नीचे यह ब्रह्मपुत्रमें गिरी है। रङ्गपुरमें

इसकी लम्बाई ११० मील और चौड़ाई ६से ८ सौ गज है। उस स्थान पर इसका स्रोत बहुत प्रखर है। सभी समय रङ्गपुरमें इस नदी होकर सौ मन बोझ लाद कर नावें जाती आती हैं। तिस्तानदीका गर्भ बालुमय है। इसके दक्षिणी भागको कापासियासे लेकर नलगञ्जहाट तक पागली नदी कहते हैं।

तिस्ताका जलस्रोत बहुत जल्दी जल्दी बदलता रहता है। इस तरह इसके अनेक पुरातन गर्भ छोटी तिस्ता, बूढी तिस्ता तथा मरी तिस्ता नामसे पुकारे जाते हैं। १७६४-७२ ई०में मेजर रैनेलके भूमापके समय तिस्ताका प्रधान स्रोत दक्षिणकी ओर बहता हुआ दिनाजपुरकी आत्रेयी नदीके साथ मिल कर गङ्गा या पद्मामें गिरता था। १७८७ ई०को रङ्गपुरमें जो महाप्लावन हुआ था, उस समय तिस्ता उक्त पथको छोड गई थी और दक्षिण-पूर्वकी ओर अपनी हो एक शाखामें मिलकर बहुतसे देश, घाट तथा मनुष्योंको नष्ट करती हुई ब्रह्मपुत्रमें गिरी थी। इससे पश्चिमी किनारेका घोड़ामारा नामक वृहत्गञ्ज जिस तरह प्रति वर्ष पीछे हटता जा रहा है, उससे अनुमान किया जाता है, कि उक्त ग्रामकी प्रकृत अवस्थिति बहुत जल्द लुप्त हो जायगी। तिस्ताके इस तरह परिवर्त्तन होनेसे उत्तर-बङ्ग रेलवेके किनारे डोमर नामक स्थानमें हाट बाजार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

दार्जिलिङ्गमें इसकी प्रधान शाखाओंके नाम रङ्गनु, रोङ्गो, बडो रंजित, रङ्गजो, रायेङ्ग और शिवक है। यहां इसका जल समुद्रके जैसा नीला और कभी कभी दूधसा सफेद हो जाता है। जलपाईगुड़ीमें तिस्ताकी अनेक उपनदियां और शाखा नदियां हैं जो उतना प्रबल वा प्रयोजनीय नहीं है। इनमेंसे घाघट और मानस विख्यात है।

तिस्ताका संस्कृत नाम त्रिस्रोता वा तृष्णा है। कालिकापुराणमें इसका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है—किसी समय एक शिवभक्त असुरने भगवतीकी उपेक्षा करते हुए उनके साथ लड़ाई ठान दी। युद्धमें कातर होकर वह असुर तृष्णातुर हो गया और शिवजीसे जलके लिये प्रार्थना की। इस पर शिवजीने भगवतीके वक्षसे दूधकी धाराके रूपमें पानी निकाल कर उसे पिला दिया। असुरकी तृष्णा मिट जाने पर भी वह धारा बन्द नहीं हुई वरं तीन धाराओंमें विभक्त हो कर पृथ्वीमें प्रवाहित हुई।

त्रिस्रोतसी ( सं० स्त्री० ) त्रीणि स्रोतांसि सन्ति अस्याः। वह नदी जिससे तीन स्रोत निकले हों।

त्रिहल्य ( सं० क्ली० ) त्रिवारं हलेन कृष्टं हल यत्। वह खेत जो तीन बार जोता गया हो। इसका पर्याय-त्रिगुणाकृत, तृतीयाकृत और त्रिसीत्य है।

त्रिहायण ( सं० त्रि० ) त्रयो: हायना वयोऽस्य, णत्वं। १ त्रिवर्ष वयस्क गवादि, तीन वर्षका बछड़ा। २ त्रिवत्सर, तीन वर्ष।

त्रिहायणी ( सं० स्त्री० ) त्रिहायण-ङीप्। १ त्रिवर्ष गाभि, तीन वर्षका बछड़ा। २ द्रौपदी। कृत युगमें वेदवती, त्रेतामें जनकात्मजा और द्वापरमें द्रौपदी ये ही कृष्णा और त्रिहायणी नामसे प्रसिद्ध हैं।

त्रिहुत—तिरहुत देखो।

त्रीषु ( सं० त्रि० ) त्रय इषवः परिमाणमस्य कन् तस्य लुक्। वाणत्रयपरिमित स्थान, तीन वाणों तककी दूरीका स्थान।

त्रीषुक ( सं० क्ली० ) त्रय इषवो यत्र कप्। वाणत्रययुक्त धनु, तीन वाणवाला धनुष।

त्रीष्टक ( सं० पु० ) त्रिस्रः ऋगादिरूपा इष्टका यस्य। अग्निभेद, एक प्रकारकी वैदिक अग्नि।

त्रुटि (सं० स्त्री०) त्रुट्यते त्रुट-इन् सच कित्। १ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। २ अल्प, थोड़ा, कमी, कसर। ३ संशय, सन्देह। ४ कालभेद, समयका एक अत्यन्त सूक्ष्म विभाग। दो परमाणुका एक अणु और तीन अणुका एक त्रसरेणु होता है। जब सूर्यकी किरण झरोखे होकर घरमें प्रवेश करती है तब यह त्रसरेणु देखा जाता है। सूर्यकी किरणके योगसे अत्यन्त लघुत्वके कारण जो इधर उधर आकाशमें उड़ता दिखाई देता है वही त्रसरेणु है। ऐसे ऐसे तीन त्रसरेणु जो समय भोग करते उसीका नाम त्रुटि है। त्रुटिरूपसे कालको सौ भाग करनेसे एक वेध, तीन वेधका एक लव, तीन लवका एक निमेष और तीन निमेषका एक क्षण होता है।

५ कुमारानुचर मातृ भेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। ६ अभाव। ७ भूल, चूक। ८ वचनभङ्ग।

त्रुटित (सं० त्रि०) त्रुट-क्त। १ छिन्न, कटा या टूटा हुआ। २ भग्न। ३ आहत। ४ आघातित, जिस पर आघात लगा हो। ५ स्खलित, गिरा हुआ।

त्रुटिबीज (सं० पु०) अरुई, कच्चू।

त्रुटिस्वीकार (सं० पु०) त्रुटीना स्वीकारः। दोषस्वीकार भूल मंजूर करना।

त्रेता (सं० स्त्री०) त्रीन् भेदान् एति प्राप्नोति वा त्रित्वा मिता पृषो० साधुः। १ अग्नित्रय, दक्षिण, गार्हपत्य और आह्वनीय नामक तीन प्रकारकी अग्नि। वेदविद् मुनियोंने अग्निको तीन बार प्रणयण किया था, इसीसे अग्निके त्रेता नाम पड़े हैं। (हरिवंश २०५।५)

महाराज इलानन्दनने एक अरणि निर्माण कर शमी वृक्षसे अग्निमन्थनपूर्वक उसे तीन भागोंमें विभक्त किया तथा उस अग्निमें अनेक प्रकारके यज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञमें महाराजको गन्धर्वोंका सालोक्य मिला जो पहले केवल अग्नि था। गन्धर्वोंके वरके प्रभावसे महाराजने उसे तीन भागोंमें बाँट दिया। तभीसे अग्नि तीन भागोंमें विभक्त है। (हरिवंश २६,४५,४६)

२ द्यूत विशेष, तीन कौड़ियोंके चित हो जानेसे त्रेता होती है।

जिस पासेसे जुआ खेला जाता है उसके जिस ओर तीन विंदिया हों, उस ओर यदि वह पासा चित हो जाय तो त्रेता होती है। 'त्रेतया हृतसर्वस्वः' (मृच्छकटिक ३ सत्य और द्वापर युगान्तरवर्त्ती युगभेद, चार युगोंमेंसे दूसरा युग। कार्त्तिक मासको शुक्लानवमी तिथिमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति हुई है, इसीसे कार्त्तिक मासकी शुक्लानवमी बहुत पुण्य तिथि मानी जाती है। इसी युगमें भगवान्ने वामन, परशुराम और श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतार लिया था। इस युगमें पुण्यके तीन पाद और पापका एक पाद होता है। पुष्कर ही प्रधान तीर्थ है, ब्राह्मण सात्त्विक हैं और प्राण अस्थिगत है। मनुष्यका परिमाण चौदह हाथ और उनकी आयुका परिमाण दश हजार वर्ष होता है। चांदीके पात्र काममें आते हैं। यह युग १२९६००० वर्षका होता है। इस समय सूर्यवंशीय वाहुक, सगर, अंशुमान्, असमञ्जा, दिलीप, भगीरथ, अज, दशरथ, श्रीरामचन्द्र और कुश ये लोग राजचक्रवर्त्ती होंगे। तथा सब लोग दानधर्मपरायण, ब्राह्मण सात्त्विक और राजगण यज्ञपरायण होंगे।

त्रेता युगमें राजा अपनी प्रजाको सन्तानकी तरह पालन करते हैं, इसीसे अन्तमें वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं। त्रेतायुगके आनेसे ही धर्मका एक पद जाता रहता है। लोगोंको अधिक कष्ट भुगना नहीं पड़ता। सबके सब दयालु होते, कोई भी धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता। तथा वे यागयज्ञपरायण और विष्णुध्यानरत होते हैं। क्षत्रिय भूमिके अधिकारी होते, शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते तथा ब्राह्मण उदारचित्त, वेदवेदान्त-पारग, प्रतिग्रहनिरत, सत्यसन्ध, जितेन्द्रिय और विष्णु-सेवी होते हैं। स्त्रियां पतिरता होतीं, पुत्र पितृभक्ति-परायण होते तथा वसुन्धरा शस्यशालिनी होती है।

(पाद्मे क्रियायोगसार)

मनुके मतानुसार इस युगमें मनुष्योंकी आयु तीन सौ वर्ष होती है। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है,—सत्ययुगके बीत जाने पर त्रेतायुगमें मर्त्यलोक वेदोदित सभी कर्म अच्छी तरहसे नहीं हो सकता। इस समय वैदिक कर्म बहुत क्लेशकर होगा, वेदार्थयुक्त सभी शास्त्र स्मृतिके रूपमें अवस्थित रहेंगे और ऐसे घोर संसार सागरमें शिव ही एक मात्र हर्त्ता कर्त्ता होंगे।

त्रेताग्नि (सं० पु०) दक्षिण, गार्हपत्य और आहव-नीय ये तीन प्रकारकी अग्नि।

त्रेताय (सं० पु०) त्रेतायां एकोऽयः। द्यूत भेद, पासा खेलनेका एक प्रकार।

त्रेतायुग (सं० क्ली०) त्रेतैव युगं। द्वितीय युग। त्रेता देखो।

त्रेतायुगाद्य (सं० स्त्री०) त्रेतायुगस्य आद्या तिथिः। कार्त्तिक शुक्ला नवमी। इसी दिन त्रेताका जन्म या आरम्भ होना माना जाता है। यह तिथि पुण्य-तिथियोंमें गिनी जाती है।

त्रेतिनी (सं० स्त्री०) त्रेता अस्त्यस्य इनि-ङीप्। त्रेता-ग्निसोध्य क्रिया, वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आह्वनीय तीनों प्रकारकी अग्नियोंसे हो।

त्रेधा (सं० अव्य) त्रिप्रकारं त्रि-एधाच, संख्यायां विधार्थे धा। (पा ५।३।४२) इति-धा। (एधाच। पा ५।३।४६) त्रिप्रकार, तीन तरहसे।

त्रैंश (सं० क्ली०) त्रिंशदध्यायाः परिमाणमस्य ब्राह्मणस्य ड। तीस अध्याय परिमित ब्राह्मणभेद।

त्रै (त्रि० वि०) तीन।

त्रैककुद (सं० क्ली०) त्रिककुद नाम पर्वतः तत्र भव अण्। सौवीराञ्जन, एक प्रकारका काजल या सुरमा।

त्रैककुभ (सं० क्ली०) त्रिककुभ् अण्। १ उदान सम्बन्धीय। २ नवरात्रि साध्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त होता है।

त्रैकट् (सं० क्ली०) त्रिकट्।

त्रैकण्टक (सं० त्रि०) त्रिकण्टकः लघुगर्गमत्स्य ततः परिमाणे रजतादि त्वात् अञ्। लघुगर्गमत्स्यका परिमाण, जो छोटे टेंगरा मछलीके परिमाणका हो।

त्रैकालज्ञ (सं० त्रि०) त्रिकालज्ञ-अण्। त्रिकालज्ञ सम्बन्धीय, तीनों कालका।

त्रैकालिक (सं० त्रि०) त्रिकाले भवः ठञ्। भूत भविष्यत् और वर्तमान कालवर्त्ती, तीनों कालमें या सदा होनेवाला।

त्रैकाल्य (सं० क्ली०) त्रिकाल स्वार्थे ष्यञ्। भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल।

त्रैकूटक—चेदिराज्यमें कलचूरि वंशका समसामयिक त्रिकूटक वा त्रैकूटक वंश राज्य करता था। आज तक इस वंशके धरसेन नामक केवल एक ही राजाका नाम पाया गया है। उनका २०७ सम्वत्‌में प्रदत्त एक ताम्र-शासन आविष्कृत हुआ है। पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे वह अङ्क चेदि-सम्वत्-ज्ञापक है। यदि यह बात सत्य हो, तो ४५६ ई०में राजा धरसेन विद्यमान थे, ऐसा समझना चाहिये। (२४६ ई०में चेदि सम्वत् प्रतिष्ठित हुआ।) त्रैकूटक राजाओंसे स्थापित एक अब्द प्रचलित था। उनके २४५ ई०में प्रदत्त और भी एक ताम्रशासन पाया गया है जिसमें "त्रैकूटकानां प्रवर्द्ध-मान राज्य सम्वत्" ऐसा लिखा हुआ है, किन्तु उसमें इस वंशके किसी राजाका नाम नहीं है। राजा धरसेनने अश्वमेध यज्ञ किया था, ऐसा उनके प्रदत्त ताम्रशासनमें लिखा है। इससे प्रमाणित होता है, कि त्रैकूटक वंशीय राजाओंका प्रभाव एक समय बहुत बढ़ा चढ़ा था।

त्रैकोणिक (सं० पु०) १ वह जिसके तीन पार्श्व हों, तिमहला। २ वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैगर्त्त (सं० पु०) त्रिगर्त्तो देशविशेषः सोऽभिजनोऽस्य तस्य वा अण्। १ वह जो पुरुषानुक्रमसे त्रिगर्त्त देशमें रहता हो। २ त्रिगर्त्त देशके राजा।

त्रैगर्त्तक (सं० त्रि०) त्रिगर्त्तस्य देशभेदस्य अदूर देशादि त्रिगर्त्त वुञ्। त्रिगर्त देशके निकटवर्ती देशादि।

त्रैगुणिक (सं० त्रि०) त्रिगुणार्थं द्रव्यं एक गुणं प्रयच्छति त्रिगुण-ठक्। १ जो तीन बार गुणा किया गया हो। २ जिसमें तीनों प्रकारके गुण हों।

त्रैगुण्य (सं० क्ली०) त्रिगुणानां भावः कर्म वा स्वार्थे ष्यञ्। १ सत्वादि गुणत्रय, सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंका धर्म वा भाव।

त्रैत (सं० पु०) त्रीन् वत्सान् तनोति युगपत् तन बाहु० ड त्रितः गर्भभेदः तत्र भवः अण्। १ युगपज्जन्मधारक गर्भजात पशु, वह पशु जिसके साथ साथ दो और पशु पैदा हुए हों। २ किसी तीन चीजोंका समूह।

त्रैतन (सं० पु०) अत्यन्त निष्ठुर दासभेद।

त्रैदशिक (सं० क्ली०) त्रिदशा देवता अस्य ठञ्। देव अङ्गुल्यग्र रूप तीर्थभेद, उँगलीका अगला भाग जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैध (सं० अव्य) त्रि प्रकारं इति त्रिधा ततः धमुञ 'द्वित्र्योश्चधमुञ्। पा ५।३।४५) त्रिप्रकार, तीन तरहसे।

त्रैधर्म्य (सं० क्ली०) त्रयाणां वेदानां धर्मान् अर्हति ष्यञ्। ऋगादिवेद सम्बन्धीय होत।

त्रैधातवी (सं० स्त्री०) उदवसानीयाख्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

त्रैधातवीय (सं० क्ली०) त्रैधातवी गहादि० छ। यज्ञ-भेदाङ्ग कर्मभेद।

त्रैधातुक (सं० त्रि०) त्रिभिः धातुभिः स्वर्णरौप्यताम्रै-र्निर्वृत्तः ठञ्। १ स्वर्णादि धातुत्रय निष्पाद्य, जो तीनों धातुओंसे बनाया गया हो। (पु०) २ तीनों लोक।

त्रैनिष्किक (सं० त्रि०) त्रिभिः निष्कैः क्रीतं ठक्। जो तीन निष्कोंमें खरीदा गया हो, जिसको कीमत तीन निष्क हो।

त्रैपारायणिक (सं० त्रि०) त्रिः पारायणं आवर्त्तयति ठञ्। जिसने तीन बार वेद पढ़ा हो।

त्रैपुर (सं० पु०) त्रिपुर-स्वार्थे अण्। १ त्रिपुरदेश २ उस देशके निवासी। ३ उस देशके राजा। ४ त्रिपुर नामक असुर भेद, त्रिपुरासुर नामका एक राक्षस।

त्रैफल (सं० क्लो०) त्रिफलानां तदाद्यद्रव्याणामिदं अण्। चक्रदत्तोक्त घृतभेद, चक्रदत्तके अनुसार वैद्यकमें एक प्रकारका घृत। इसको प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है—घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये त्रिफला दो सेर, जल ४८ सेर, शेष २ सेर, दूध ४ सेर, चूर्णके लिये त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, यष्टिमधु, कुट, पुण्डरीक काष्ठ, छोटी इला-यची, विडङ्ग, नागेश्वर नीलोत्पल, अनन्तमूल, श्यामा-लता, रक्तचन्दन, हरिद्रा और दारुहरिद्रा प्रत्येक दो दो तोला, इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला कर यथा-नियम घृत प्रस्तुत करते हैं, इससे तिमिर, कामल, विसर्प, प्रदर आदि अनेक प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं। (चक्रदत्त)

त्रैबलि (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम जिनका उल्लेख महाभारतमें आया है।

त्रैमातुर (सं० पु०) तिसृणां मातृणामपत्यं अण्, मातु-वत्। लक्ष्मण। ये कौशल्या, कैकयी और सुमित्राके स्नेह-भाजन थे। सुमित्राने कौशल्या और कैकयीके चरुका अंश खाया था और उन्हींसे लक्ष्मणजीकी उत्पत्ति है इसीसे उनका नाम त्रैमातुर पड़ा। लक्ष्मण देखो।

त्रैमासिक (सं० त्रि०) त्रैमासं तृतीयमासं भूतः स्वस-त्तया प्राप्त ठञ्, त्रिशब्दस्य पूरणार्थत्वेन संख्यावाच-कत्वाभावात् न द्विगुत्वं 'द्विगोलुगनपत्ये' इति नलुक्। १ जिसकी उम्र तीन वर्षकी हो। २ त्रिमासभव, हर तीसरे महीने होनेवाला।

त्रैमास्य (सं० क्लो०) त्रिमास स्वार्थे ष्यञ्। त्रिमास, तीन महीने।

त्रैयम्बक (सं० पु०) त्र्यम्बको देवता अस्य। १ त्र्यम्बक देवताके उद्देशसे ग्रहण किया हुआ एक पशु। २ होम भेद, एक प्रकारका होम। ३ रुद्र देवताकी धनुर्विद्या-भेद। ४ रुद्रदेवताका बलि प्रभृति, महादेवके उद्देशसे ग्रहण किये हुए उपहार आदि। (त्रि०) ५ त्र्यम्बक सम्बन्धी।

त्रयम्बका (सं० स्त्री०) गायत्री।

त्रैयावक (सं० स्त्री०) त्र्यावादेशभेदे भवः धूमादि वुञ्, अत वृद्धि निषेधात् ऐच्। त्र्यावादेशभव, जो त्र्यावादेशसे उत्पन्न हुआ हो।

त्रैराशिक (सं० क्लो०) त्रीन् राशीन् अधिकृत्य प्रवृत्तं ठञ्। गणितभेद, गणितकी क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियों-को सहायतासे चौथी अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है।

तीन राशियाँ लेकर यह काम किया जाता है, इसीसे इसका नाम त्रैराशिक (Rule of three) पड़ा है। तीन निर्दिष्ट राशियोंमेंसे एक और फिर एकका जितना गुणा वा भाग होगा, निर्णेय चौथी अवशिष्ट राशिका उतना ही गुणा वा भाग होगा। अतः त्रैरा-शिककी प्रक्रिया गुणन और भागकी मूलक है। जैसे—एक मन चीनीका मूल्य ७॥/ आना हो, तो ५ मन चीनीका मूल्य कितना होगा?

इस प्रश्नमें ५ मन एक मनका जितना गुणा है, ५ मनका मूल्य भी एक मनके मूल्यका अर्थात् ७॥/ आनेका उतना ही गुणा होगा। सुतरां ७॥/ आनेको पञ्चगुण या ५से गुणा करनेसे ५ मनका मूल्य ३८/ हुआ इस प्रश्नके अङ्कोंको दूसरी रीतिसे रख कर उत्तर निकाला जा सकता है, जैसे—

| मन | | मन | | | रुपया | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | : | ५ | : | : | ७॥/; | उ० |

अर्थात् इष्ट राशि। यह अङ्कपात इस प्रकारसे पढ़ना होता है।

१ जैसे ५ सम्बन्धमें ७॥/ आ० है वैसे उनके सम्बन्ध-में भी। इस लिये उ निकालनेमें ७॥/) आनेको ५से गुणा कर गुणनफलको १से भाग देना होता है, किन्तु १से भाग देना वा नहीं देना दोनों एकसा है। अतएव ५से गुणा कर जो गुणनफल होगा, वही उके बराबर है। यहां पर ५ मनसे गुणा किया गया, ऐसा न ख्याल कर

अनवच्छिन्नराशि ५ से ही गुणा किया गया है, ऐसा समझना चाहिए, अन्यथा गुणक्रिया सम्भव नहीं है।

उदाहरण—यदि ८ भरी सोनेका मूल्य ४२) रु० हो, तो ३ भरी सोनेका मूल्य कितना होगा।

यहां पर पहले १ भरीका मूल्य निकाल कर उसे तोनसे गुणा करने पर तीन भरीका मूल्य निकल आवेगा।

एक भरीका मूल्य निकालनेमें ८ भरीके मूल्य ४२ रुपयेमें ८से भाग देना होगा। ४२ रुपयेमें ८से भाग देने पर भागफल ५।) रु० होता है। अब उसे ३से गुणा करने पर १५॥।) आ० हुआ और यही प्रश्नका उत्तर है। अभी इस प्रश्नके अङ्कोंको पूर्ववत् रखनेसे इस प्रकार होता है। जैसे—

| भरी | भरी | रु० |
|---|---|---|
| ८ : | ३ : | : ४२ : उ० वा इष्ट राशि |

किन्तु ४२को पहले ८से भाग दे कर पीछे भागफलको उसे गुणा नहीं कर यदि ४२को ही उसे गुणा करें और गुणनफलको ८से भाग दें, तो फलमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अतएव ४२को ३से गुणाकर गुणनफल १२६में ८का भाग देनेसे भागफल १५॥।) हुआ। इसी प्रकार प्रश्नकी सभी प्रक्रियाओंको भली भांति सोच विचार कर परवर्त्ती नियम स्थिर हो सकता है।

त्रैराशिकके अङ्कपातका नियम-तीन निर्दिष्ट राशियोंमें-से जो राशि इष्ट चौथी राशिको जातिकी हो, उसे तोसरे स्थानमें रखते हैं। पोछे प्रश्नका भाव भली भांति सोच कर यह देखना होता है, कि चौथी राशि तीसरी राशिसे बड़ी होगी वा छोटी। यदि बड़ी हो, तो निर्दिष्ट राशियोंमेंसे अवशिष्ट दोमें जो बड़ी होगी उसे अथवा यदि छोटी हो, तो उन दो राशियोंमेंसे जो छोटी होगी उसे दूसरे स्थानमें तथा शेषको प्रथम स्थानमें रखते हैं।

प्रक्रिया घटित नियम—

पहली और दूसरी राशि यदि भिन्न भिन्न श्रेणीकी हों, तो उन्हें आवश्यकतानुसार सबसे निम्न वा एक श्रेणीमें करते हैं। क्रिया करते समय उन्हें अनवच्छिन्न समझना चाहिये। तीसरी राशि यदि मिश्र राशि हो, तो उसे आवश्यकतानुसार सबसे निम्न श्रेणीमें लाते हैं। पीछे दूसरी और तीसरी राशिके गुणनफलको पहली राशिसे भाग दे कर जो भागफल हो वही उत्तर होगा। तीसरी राशि जिस श्रेणीमें लाई गई है उत्तर भी उसी श्रेणीमें होगा।

पीछे जरूरत होने पर उसे उच्च वा निम्न भिन्न भिन्न श्रेणियोंमें लानेसे प्रकृत उत्तर निकल आवेगा। दूसरे सभी अङ्कोंको रखनेसे वा उन्हें अन्य श्रेणीमें लानेसे यदि पहली और दूसरी श्रेणीका अथवा पहली और तीसरीका कोई साधारण गुणनीयक रहे, तो उससे उनमें भाग देना होता है और भागफल ले कर पूर्वलिखित कार्य करना होता है। ऐसा करनेसे कुछ प्रभेद नहीं पड़ेगा और प्रक्रियाकी भी सुविधा होगी। क्योंकि भाज्य और भाजक दोनों राशिको किसी एक राशिसे भाग देनेसे भागफलमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उदाहरण—यदि ५॥४ सेर तेलका दाम ४२॥।०) आना हो, तो ४१८ सेरका दाम कितना होगा?

इस प्रश्नमें इष्ट या अज्ञात राशि रुपया है। अतएव उसी जातिका ४२॥।०) आना तीसरे स्थानमें रखा गया एवं प्रश्नकी गतिसे ऐसा ज्ञात हुआ कि इष्ट राशि तीसरी राशिसे कम होगी। इसी कारण अवशिष्ट दो राशियोंमेंसे जो राशि छोटी है उसे दूसरे स्थानमें और शेषको पहले स्थानमें रखा।

| मन | मन | रुपया |
|---|---|---|
| ५॥४ : : | ४१८ : : | ४२॥।० : उ० |

पीछे पहली और दूसरी राशिको सेरमें ला कर और तीसरी मिश्र राशिको आनेमें ला कर फिर इस प्रकार लिखा गया।

| सेर | सेर | आना |
|---|---|---|
| २२४ : : | १६८ : : | ६८४ : उ० |

अब प्रक्रियाके नियमानुसार—

$$\frac{६८४ \times १६८}{२२४} = \frac{६८४ \times ३}{४} = १७१ \times ३ = ५१३ \text{ आना}$$

अर्थात् ३२।०) उत्तर हुआ।

यहां १६८ और २२४ को ५६से भाग देने पर अंश ३ और हर चार हुआ ; फिर ६८४ और ४ को ४ से भाग दिया गया।

इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिये ।

त्रैरूप्य (सं॰ क्लो॰) त्रिरूपस्य भावः ष्यञ्। त्रिधारूप, जिसका आकार तीन प्रकारका हो ।

त्रैलिङ्ग (सं॰ क्लो॰) त्रीणि सत्त्वरजस्तमांसि पुंस्त्रीक्लीवरूपाणि वा लिङ्गानि यस्य तस्येदं वा अण्। त्रिलिङ्ग-प्रधान कार्य । त्रिलिंग देखो ।

त्रैलोक (सं॰ पु॰, त्रिलोक स्वार्थे अण्। त्रैलोक्य, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक ।

त्रैलोक्य (सं॰ क्लो॰) त्रिलोको एव स्वार्थे ष्यञ्। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ।

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस (सं॰ पु॰) १ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त ज्वरनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—स्वर्ण, रौप्य और अभ्र प्रत्येक दो भाग; लौह और प्रवाल प्रत्येक ५ भाग तथा रससिन्दूर ७ भाग इन सबको एक साथ मिला कर घृतकुमारीके रससे घोंटते हैं। पीछे २ रत्तीको गोली बना कर छायामें सुखाते हैं। इस औषधको बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे क्षय, कास (खांसी), गुल्म, प्रमेह, जीर्ण ज्वर और उन्माद आदि रोगोंको शान्ति होती है। यह औषध वायुको शान्तिकारक है। (रसेन्द्रसारस॰ ज्वर चि॰)

२ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषध भेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—हीरा, स्वर्ण, मुक्ता, तीक्ष्ण लौह प्रत्येक एक एक भाग, अभ्र ४ भाग, रससिन्दूर चार भाग इन सबको पत्थरके खलमें लौहदण्डसे घृतकुमारीके रसके साथ घोंटते हैं। बाद एक रत्तीको गोली बनाते हैं। पार्वती और सूर्यदेवको पूजा कर इस रसका सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग और ज्वरका नाश होकर सुख मिलता है। अदरकके साथ रसके सेवन करनेसे श्लेष्मा जाती रहती है। श्लेष्माके सूख जाने पर मात्रिक पित्तको अधिकतामें घृत और चीनी वात-श्लेष्मामें पीपरका चूर्ण और मधु तथा प्रमेहमें दूधका सेवन करना चाहिए। यह औषध कास और कफवातनाशक, बल और अग्निवर्द्धक, आयु और पुष्टिकर, हृष्य तथा सर्व रोगनाशक है। (रसेन्द्रसा॰ वातव्याधिचि॰)

त्रैलोक्यडम्बररस (सं॰ पु॰) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, ताम्र, गन्धक, पीपर, जयपाल कटकी, (लालमिर्च), हरीतकी (हड़) निसोथ प्रत्येकके एक तोलेको थूहरके दूधमें मिला कर २ रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान मधु है। इस औषधसे नवज्वर बहुत जल्द जाता रहता है।

(रसेन्द्रसारस॰ ज्वरचि॰)

त्रैलोक्यमल्ल—१ चौलुक्यराज प्रथम भीमदेवके परवर्त्ती राजा, प्रथम कर्णदेवका नामान्तर। चौलुक्य देखो।

२ कालञ्जरराज त्रैलोक्यवर्मदेव किसी किसी ताम्रशासनमें त्रैलोक्यमल्लदेव नामसे प्रसिद्ध हैं।

३ ग्वालियरके कच्छपारिवंशमें उत्पन्न मालवके विजेता राजा कोर्त्तिराजके पुत्र। इनका दूसरा नाम मूलदेव था। राजा मूलदेव भुवनपाल नामसे भी पुकारे जाते थे। इनको पत्नीका नाम देवव्रता था जिनके गर्भसे राजा देवपाल उत्पन्न हुए थे।

ग्वालियरके सास्‌बाहु मन्दिरमें ११५० विक्रममें उत्कीर्ण महीपालको शिलालिपिसे जाना जाता है, कि कच्छपघात वा कच्छपारिवंशमें लक्ष्मण नामके एक राजा थे। उनके पुत्र वज्रदामाने गाधिनगर वा कान्यकुब्जराजको परास्त कर गोपाद्रि दुर्ग (ग्वालियरके दुर्ग) पर अधिकार जमाया। वज्रदामाके पुत्र मङ्गलराज और मङ्गलराजके पुत्र कोर्त्तिराजने मालवदेशको फतह किया तथा सिंहपानीय ग्राममें शिवमन्दिरको प्रतिष्ठा को। इन्होंके पुत्र मूलदेव थे। इनमें चक्रवर्त्ती राजाके सभी लक्षण मिलते थे। मूलदेव ही त्रैलोक्यमल्ल नामसे मशहूर थे। इनके पुत्र देवपालके बाद इनके पोते पद्मपाल बहुत शूरवीर तथा युद्धप्रिय निकले। दक्षिण भारतमें भी ये युद्ध करने गये थे। युवावस्थामें ही इनको अकाल मृत्यु हुई। बाद इनके ज्ञातिभ्राता सूर्यपालके पुत्र महीपाल राजा हुए। कच्छपारिवंश इतिहासमें कच्छवह वंश नामसे प्रसिद्ध है। ग्वालियर देखो।

४ नेपालके तृतीय ठाकुरीवंशीय एक राजा। १४७२ ई॰में इस वंशके राजा यक्षमल्लको मृत्यु हुई। यक्षमल्लके तीन पुत्र थे। सबसे बड़े जयरायमल्लने भाटग्राममें एक स्वतन्त्र राजवंश स्थापित किया। इन्होंने सिर्फ १५ वर्ष राज्य किया था। पीछे इनके लड़के सुवर्णमल्ल, सुवर्णमल्लके पुत्र प्राणमल्ल और प्राणमल्लके पुत्र विश्वमल्ल एक एकने

१५ वर्ष शासन किया। पीछे विश्वमल्लके एक पुत्र त्रैलोक्य-मल्ल १५१७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। शायद इन्होंने भी १५ वर्ष राजत्व किया था। नेपाल देखो।

त्रैलोक्यमोहन (सं० त्रि०) त्रैलोक्यं मोहयति, मुह-णिच्-ल्यु। तन्त्रोक्त ताराकवचभेद। यह कवच सर्वापद्विनाशक, सर्वविद्यामय और सर्व मन्त्रमय है। जो इसे धारण करते वा रोज जपते हैं, वे सर्वज्ञ और सर्वसिद्ध होते, उनके घरमें लक्ष्मी वास करती तथा मुँह पर सरस्वती विराजमान रहती हैं। इस कवचके प्रभावसे किसी प्रकारका कष्ट भुगतना नहीं पड़ता। इस कवचको जाने बिना जो तारादेवीकी अर्चना करते हैं, वे अल्पायु, निर्धन और मूर्ख होते हैं। इसीसे तारादेवीके उपासकको चाहिये, कि वे सबसे पहले इस कवचको जान लें और तब तारादेवीकी पूजामें हाथ डालें।

त्रैलोक्यराज (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम।

त्रैलोक्यवर्मदेव—कालञ्जरके एक राजाका नाम। अपने पिता परमर्दिदेवके मरने पर ये १२०३ ई०में राजगद्दी पर बैठे थे। इन्हींके समयमें मुसलमानोंने कालञ्जर पर आक्रमण किया था। अजयगढ़में इनकी राजधानी थी। १२३३ ई०में दिल्लीके सम्राट् अलतमस् एक बार कालञ्जरको लूटने आये थे। इनके पिताके समयमें महोवा प्रदेश कालञ्जर राज्यसे अधिकारभ्रष्ट हो पृथ्वीराजके हाथ लगा था। इन्होंने चेदिराज कलचुरी-वंशके हाथसे रेवा प्रदेश जीता था। इनका अधिकार रेवा प्रदेशके पूर्वांशके उत्तर जौनपुर और मिर्जापुर जिला तक विस्तृत था। शायद बघेल राजाओंके प्रबल होने पर उस अञ्चलसे इनका अधिकार जाता रहा। ये चन्देल वा चन्द्रात्रेय वंशके थे। चन्द्रात्रेयवंश देखो।

त्रैलोक्यविजया (सं० स्त्री०) त्रैलोक्यस्य विजयो यस्याः। सिद्धि, भाँग।

त्रैलोक्यसुन्दररस (सं० पु०) १ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद, वैद्यकमें एक प्रकारका रस। प्रस्तुत प्रणाली—पारा ४ भाग, अभ्रक ६ भाग, लोह ८ भाग, गन्धक, हरीतकी, आमलकी (आँवला), बहेड़ा, सोंठ, पीपर, मिर्च, मोच रस, तालमूली (मुसली) और गुरुच प्रत्येकके ५ भागको एक साथ मिला कर चीता और शोहञ्जनके काढ़ेमें दश दिन तक बीस बार भावना देते हैं। पीछे आध तोलेकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान चीता और मधु है। इसके सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु, क्षय और ज्वरातिसाररोग शान्त होता है। (रसेन्द्रसारस० पाण्डुचि०)

२ ज्वरनाशक औषधभेद। मिश्रित एक तोला पारा और एक तोला गन्धकको एक साथ मिला कर उसे कूटज, तालमूली, धतूरे, तरोई, जयन्ती और मण्डूकपर्णीके पत्तोंके रसमें मिला कर सुखाते हैं। पीछे एक रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे त्रिदोषज ज्वर अतिशीघ्र दूर होता है। यह विरेचक है। शरीरका उत्ताप यदि अधिक हो गया हो, तो नारियलके पानीसे इसका प्रयोग करना चाहिये। (रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

त्रैवण (सं० त्रि०) त्रिवणस्य वनत्रयस्य इदं शिवादि-अण्। त्रिवण सम्बन्धी।

त्रैवणि (सं० पु०) त्रिवणस्य ऋषेरपत्यं इञ्। त्रिवण ऋषिकी सन्तान।

त्रैवणीय (सं० त्रि०) त्रिवणः सोऽस्यास्ति इति उत्करादि-छ। त्रैवण सम्बन्धयुक्त।

त्रैवर्गिक (सं० त्रि०) त्रिवर्गाय हितं वा ठञ्। धर्मार्थकामसाधन कर्मादि, वह कर्म जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी साधना हो। २ त्रिवर्गरत, जो त्रिवर्गमें लगे हों।

त्रैवर्ग्य (सं० त्रि०) त्रिवर्गे भव साधुः ष्यञ्। त्रिवर्गसाधन धनादि, वह धन जिससे अर्थ, धर्म और काम इन तीनोंकी साधना हो।

त्रैवर्णिक (सं० पु०) त्रिषु वर्णेषु विहितः ठञ्। १ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन जातियोंका धर्म। (त्रि०) २ तीन वर्ण सम्बन्धी।

त्रैवर्षिक (सं० त्रि०) त्रिवर्षे भविष्यति ठञ्, 'वर्षस्या भविष्यति' इति उत्तरपद न वृद्धिः। तीन वर्षोंमें होनेवाला, जो तीन वर्षोंमें होता हो।

त्रैवार्षिक (सं० त्रि०) त्रिवर्षे भूतः भवति वा, ठञ् अभविष्यत्वात् उत्तरपदवृद्धिः। १ त्रिवर्षभूत, जो तीन वर्षोंमें हुआ हो। २ जो तीन वर्षोंमें अथवा हर तीसरे वर्ष हो।

त्रैविक्रम (सं० त्रि०) त्रिविक्रमस्य इदं अण्। १ त्रिविक्रमसम्बन्धी। (पु०) २ त्रिविक्रमावतार विष्णु।

त्रैविद्य (सं० पु०) तिस्रो विद्याः समाहृताः ऋक्-यजुः सामरूप त्रिविद्यं तदधीते वेद वा अण्। १ त्रिवेदज्ञ, तीनों वेदोंका जाननेवाला मनुष्य। २ तीन विद्या। ३ व्रतविशेष, एक प्रकारका व्रत।

त्रैविध मुनि—सिद्धान्तशिरोमणि नामक जैनग्रन्थके रचयिता।

त्रैविध्य (सं० क्ली०) त्रिविधस्य भावः ष्यञ्। त्रिप्रकारत्व, तीन प्रकार, तीन तरह।

त्रैविष्टप (सं० पु०) त्रिविष्टपे वसति अण्। स्वर्गमें रहनेवाले देवता।

त्रैविष्टपेय (सं० पु०) त्रिविष्टपे वसति वा ढक्। देवता।

त्रैवृष्ण (सं० पु०) त्रिवृष्णस्य अपत्यं वा अण्। राजविशेष, एक राजाका नाम।

त्रैवेदिक (सं० त्रि०) त्रिषु वेदेषु तदध्ययनार्थं विहितः ठक्। तीनों वेद अध्ययन करनेके व्रतादि।

त्रैशङ्कव (सं० पु०) त्रिशङ्कोरपत्यं अण्। त्रिशङ्कुके पुत्र हरिश्चन्द्र। त्रिशंकु देखो।

त्रैशाण (सं० त्रि०) त्रयः शानाः परिमाणमस्य तैः क्रीतं वा अण् विकल्प पक्षे लुक्। १ त्रिशाण परिमित, जो एक त्रिशाणके बराबर हो। २ त्रिशाण परिमाण द्वारा क्रीत, जो एक त्रिशाणमें खरीदा गया हो।

त्रैशोक (सं० क्ली०) त्रिशोकेन ऋषिणा दृष्टं साम। 'विश्वा पृतना' इत्यादि ऋग्वेदका ब्रह्मस्तुतिविषयक सामभेद।

त्रैष्टुभ (सं० त्रि०) त्रिष्टुप् उत्सादि अण्। त्रिष्टुभछन्द सम्बन्धीय। त्रिष्टुभ देखो।

त्रैसानु (सं० पु०) तुर्वसुवंशके राजा गोभानुके पुत्रका नाम।

त्रैस्वर्य (सं० क्ली०) त्रिस्वर-स्वार्थे ष्यञ्। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीनों प्रकारके स्वर।

त्रैहायण (सं० त्रि०) त्रिहायणस्य इदं हायनान्तत्वाटण्। १ त्रिवर्षसम्बन्धी, तीन वर्षोंसे होनेवाला। (क्ली०) २ तीन वर्षका समय।

त्रोटक (सं० त्रि०) त्रुट-णिच-ण्वुल्। १ छेदक। (क्ली०) २ दृश्यकाव्यभेद, नाटकका एक भेद। इसमें ५, ७, ८ वा ९ अङ्क होते हैं। स्वर्गीय और पार्थिव विषय इसके प्रधान वर्णनीय हैं। यह नाटक शृङ्गाररसका प्रधान है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। स्तम्भितरम्भ और विक्रमोर्वशी प्रभृति त्रोटक दृश्यकाव्य हैं। ३ एक रागका नाम। ४ एक विषैला कीड़ा। ५ शङ्कराचार्यके एक शिष्यका नाम।

त्रोटकी (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम।

त्रोटि (सं० स्त्री०) त्रोट्यते भिद्यतेऽनया त्रोटि-इ (अच् इः। उण् ४।१३८) १ कटफल, जायफल। २ चञ्चु, चोंच। ३ पक्षिभेद, एक प्रकारकी चिड़िया। ४ मीनभेद, एक प्रकारकी मछली।

त्रोटिहस्त (सं० पु०) त्रोटिश्चञ्चुर्हस्त इव ग्रहणसाधनं यस्य। पक्षी, चिड़िया।

त्रोटी (सं० स्त्री०) त्रोटि-ङीष्। १ टोंटो। २ चिड़िया की चोंच। त्रोटि देखो।

त्रोतल (सं० क्ली०) १ तोड़ल तन्त्र। (त्रि०) २ तोतला, जो बोलनेमें तुतलाता हो।

त्रोत्र (सं० क्ली०) त्रायते शिक्ष्यते नियम्यतेऽनेन त्रै ष्ट्रन् (अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ। उण् ४।१७२) गवादि ताड़नदण्ड, चाबुक। पर्याय—प्राजन, तोदन और प्रवयण। २ अस्त्र। ३ आरूपक्रिया। ४ व्याधिभेद, एक प्रकारका रोग।

त्रोम्बे—बम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत सालसेट तालुकका एक बन्दर। यह अक्षा० १९°२´ उ० और देशा० ७२°५७´ पू० बम्बई शहरसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २७७२ है। यहां कुष्ठपीड़ित रोगियोंका एक आश्रम है।

त्र्यंश (सं० पु०) तृतीयोंऽशः। १ तृतीय अंश, तीसरा भाग। २ त्रिगुणित अंश, तिगुना भाग।

त्र्यक्ष (सं० पु०) त्रीणि अक्षीणि नेत्राणि यस्य ततः समासान्तप्रत्ययः। त्रिनेत्र, शिव। २ दैत्यविशेष, एक दैत्यका नाम। (त्रि०) ३ नेत्र त्रयविशिष्ट, जिसको तीन आँखें हों।

त्र्यक्षर (सं० पु०) त्रीणि अकारोकारमकाररूपाणि

अन्राणि यस्य। १ प्रणव। त्र्यक्षर प्रणव ही ब्रह्म है। इसमें तीनों वेद अवस्थित हैं। (क्लो०) २ छन्दो-भेद, एक प्रकारका छन्द। ३ त्रिवर्णात्मक तन्त्रोक्त मन्त्रभेद, तन्त्रमें वह यन्त्र जिसमें तीन अक्षर हों। ४ घटक। (त्रि०) ५ वर्णत्रययुक्त मात्र. तीन अक्षरोंका।

त्र्यङ्ग (सं० क्लो०) त्रीणि अङ्गानि अस्य। सौविष्टिकृत हवि।

त्र्यङ्गट (सं० क्लो०) त्रिभिरङ्गैरट्यते गम्यते त्र्यङ्ग-अट् अप्, शकन्ध्वादित्वादलोपः। १ शिक्यभेद, छीका, सिकहर। २ धौताञ्जनी। (पु०) ३ ईश्वर। ४ चन्द्रमा।

त्र्यङ्गुल (सं० त्रि०) तिस्रोऽङ्गुल्यः प्रमाणमस्य, तद्धि-तार्थद्वि० इयसच. तस्य लुकि अच् समा०। १ अङ्गुलि-त्रय परिमित, जो तीन उँगलीका हो। २ अङ्गुलित्रय परिमित खातयुक्त, जो तीन उँगली खुदा गया हो।

त्र्यञ्जन (सं० क्लो०) त्रयाणां अञ्जनानां समाहारः। कालाञ्जन, रसाञ्जन और पुष्पाञ्जन ये तीनों अञ्जन, काला सुरमा, रसौत और वे फूल जो अञ्जनोंमें मिलाए जाते हैं, जैसे तिल, चमेली, नीम, लौंग अगस्त्य इत्यादि।

त्र्यञ्जल (सं० क्लो०) त्रयाणां अञ्जलीनां समाहारः वा० टच् समा०। १ समाहृत तीनों अञ्जली। त्रीभिरञ्ज-लिभिः क्रीतः तद्धितार्थद्विगौ तु तद्धितलुकि टच्। २ त्र्यञ्जलि, जो तीन अञ्जलिमें खरीदा गया हो।

त्र्यधिपति (सं० पु०) त्रयाणां अधिपतिः ६-तत्। तीनों लोकके अधिपति, कृष्ण, विष्णु।

त्र्यधिष्ठान (सं० पु०) त्रीणि मनोवाक्शरीराणि अधि-ष्ठानान्यस्य, तिसृणां जाग्रदादीनां अधिष्ठानं वा। १ जीव। २ चैतन्य, चेतनता।

त्र्यधीश (सं० पु०) त्रयाणां अधीशः। त्र्यधिपति, तीनों लोकके स्वामी विष्णु।

त्र्यध्वगा (सं० स्त्री०) त्रीभिरध्वभिर्गच्छति। गङ्गा।

त्र्यनीक (सं० पु०) त्रीणि उष्णवर्षशीतात्मानि अनी-कानि गुणा अस्य। १ संवत्सराभिमानी देवताभेद। २ हाथी, घोड़े और रथको सेना।

त्र्यम्बक (सं० क्लो०) त्रीणि अम्बकानि नयनानि यस्य त्रयाणां लोकानां अम्बक पिता इति। १ शिव, महादेव। २ महादेवके अंशसे उत्पन्न चन्द्रशेखर नामक पौष्य राजाके पुत्र। ये सार्वभौम राजा होकर त्रिलोकमें विख्यात हुए थे। ३ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक रुद्र।

त्र्यम्बकसख (सं० पु०) त्र्यम्बकस्य सखा टच् समा-सान्तः। त्र्यम्बकके सखा, कुवेर। कुवेर देखो।

त्र्यम्बका (सं० स्त्री०) त्रीणि अम्बकानि यस्याः। दुर्गा, जिनके सोम, सूर्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यमृतयोग (सं० पु०) त्रयाणां तिथिवारनक्षत्राणां अमृत-तुल्यो योगः। तिथि, नक्षत्र और वार विषयक योगभेद, एक प्रकारका योग जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और वारोंके संयोगसे होता है। इस योगका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

यदि रवि और मङ्गलवारको नन्दा अर्थात् प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी, स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा और मूला नक्षत्र हो, शुक्र और सोमवार को भद्रा अर्थात्. द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी, भद्रा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और उत्तर भाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवारको जाया अर्थात् त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया, मृगशिरा, श्रवणा, पुष्या, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् और अश्विनी नक्षत्र हो, वृहस्पतिवार-को चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथि, उत्तराषाढ़ा, विशाखा, अनुराधा, मघा और पुनर्वसु नक्षत्र हो, शनि-वारको पूर्णा, दशमी, पञ्चमी, पूर्णिमा वा अमावस्या तिथि और रोहिणी, हस्ता तथा धनिष्ठा नक्षत्र हो, तो त्र्यमृतयोग होता है। यह योग यात्राके लिये बहुत शुभ है। यात्रिककरणमें यह त्र्यमृतयोग बहुत उत्तम माना है। विष्टि व्यतीपातादि दोषयुक्त होने पर भी यदि इस त्र्यमृतका योग हो, तो भी सब दोष नष्ट हो जाते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

त्र्यरुण (सं० पु०) त्रिवृष्णके पुत्र राजर्षिभेद।

त्र्यरुषि (सं० त्रि०) त्रीणि अरुषीणि रोचमानानि शुभ्राणि ककुपृष्ठपार्श्वस्थानानि यस्य। रोचमान शुभ्र पृष्ठादि स्थानत्रययुक्त गवादि, जिस पशुकी पीठ पर तीन सुन्दर सफेद ककुप् या कुब्बड़ हो।

त्र्यवर (सं० त्रि०) सेवकत्रयविशिष्ट, जिसके तीन नौकर हों।

त्र्यवि (सं० पु०) षण्मासात्मकः कालः अवि विस्त्रोऽवयो यस्य। अष्टादश मास वयस्क पशु, अठारह महीनेका पशु।

त्र्यब्द (सं० क्लो०) त्रयाणां अब्दानां समाहारः। १ वर्ष त्रय, तीन वर्ष। (त्रि०) २ त्रिवर्षवयस्क, जिसकी उमर तीन वर्षकी हो।

त्र्यशीत (सं० त्रि०) त्र्यशीति ततः पूरणे डट्। त्र्यशीति संख्याका पूरण, तिरासीवां।

त्र्यशीति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका अशीतिः कर्मधा०। १ अस्सो और तीनका जोड़, तिरासी। २ उक्त संख्या-सूचक अङ्क।

त्र्यशीतितम (सं० त्रि०) त्र्यशीति पूरणे तमप्। त्र्यशीति संख्याका पूरण, तिरासीवां।

त्र्यष्टक (सं० क्लो०) सुश्रुतोक्त जलनिक्षेपण स्थानभेद, सुश्रुतके अनुसार वह स्थान जहां जल फेंका जाता है।

त्र्यष्टन् (सं० त्रि०) त्रिगुणिताः अष्ट। १ चतुर्विंशति संख्या, चौबीसकी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्र्यस्र (सं० क्लो०) तिस्रः अस्रयः कोणा यस्य अच् समा०। १ त्रिकोण। २ त्रिपुट क्षुप, मटरका गाछ। ३ व्याघ्रनख, बाघका नाखून। (स्त्री०) ४ शुक्ल त्रिवृति, सफेद निसोथ। ५ वार्षिक मल्लिका, चमेली।

त्र्यस्रफल (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सेमरका पेड़।

त्र्यह (सं० पु०) त्रयाणां अह्नां समाहारः समासान्त टच्, समाहारद्विगुत्वात् अह्नादेशः। दिनत्रय, तीन दिन।

त्र्यहस्पर्श (सं० पु०) त्र्यहं चान्द्रदिनत्रयं स्पृशति स्पृश-अण्। १ तिथित्रयस्पर्शी एक सावन दिन, वह सावन दिन जिसे तीन तिथियां स्पर्श करती हों। २ दिनक्षय, दिनका घटना।

त्र्यहस्पृश (सं० क्लो०) त्र्यहं स्पृशति स्पृश-क। सावन दिनत्रयस्पर्शी एक तिथि, वह तिथि जो तीन सावन दिनोंको स्पर्श करती हो। ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदिके लिए निषिद्ध पर स्नान दान आदिके लिए अच्छी मानी जाती है। अवम देखो। त्र्यह-स्पृश-क्विन्

त्र्यहस्पृश्।

'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।

त्र्यहस्पृक् तदहोरात्रमुपोष्या सा सदा तिथिः॥" (स्मृति)

पहले एकादशी पोछे द्वादशी और रात्रिके शेषमें त्रयोदशी होनेसे त्र्यहस्पृक् होता है। यही तिथि उपोष्य है अर्थात् इस तिथिमें उपवास करना चाहिए।

त्र्याहिकारिरस (सं० पु०) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषध भेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, तूतिया और शङ्खके प्रत्येक भागको द्रावोशाक, जयन्ती और नटियाँ शाक-के रससे सात सात बार भावना दे कर ४ रत्तीको हरएक गोली बनाते हैं। जोरा और घीके साथ सेवन करनेसे त्र्याहिक या तिजारी ज्वर जाता रहता है।

त्र्यहीन (सं० पु०) त्रिभिरहोभिः निवृत्त ख। त्रिदिन साध्य क्रतुभेद, तीन दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

त्र्यहैहिक (सं० त्रि०) ईहायां चेष्टायां भवं ऐहिकं धनं त्र्यहे दिनत्रये पर्याप्तं ऐहिकं धनं यस्य। दिनत्रय-निर्वाहोचित धनयुक्त, वह गृहस्थ जिनके यहां तीन दिन तक निर्वाह करनेके लिए यथेष्ट सामग्री हो।

मनुने चार प्रकारके गृहस्थ बतलाए हैं—कुशूलधान्यक, कुम्भीधान्यक, त्र्यहैहिक और अश्वस्तनिक। जो गृहस्थ तीन दिनको जोविका सञ्चय कर रखते हैं उन्हें त्र्यहै-हिक कहते हैं। ऐसे गृहस्थ मध्यम समझे जाते हैं।

त्र्याक्षायण (सं० पु०) त्र्यक्षस्य युवा अपत्यं फञ्। शिशुपाल हरादिके युवा वंशज।

त्र्याक्षायणभक्त (सं० पु०) त्र्याक्षायणः तस्य विषयो देशः ऐषुकादिः भक्तल्। त्र्याक्षायणका विषय।

त्र्यायुष (सं० क्लो०) त्रयाणां बाल्ययौवनस्थविराणां आयुषां समाहारः वेदे अच् समा०। बाल्यादि आयुस्त्रय, बाल्य यौवन और स्थविर ये तीन अवस्थायें।

त्र्यार्षेय (सं० पु०) त्रयः आर्षेयाः ऋषयो यत्र। १ त्रिप्रवर गोत्रभेद, वह गोत्र जिसके तीन प्रवर हों। ऋषेरयं ठक् आर्षेयः ऋषिधर्मः त्रय आर्षेयाः धर्मा येषां। २ अन्ध, बधिर और मूक, अन्धा, बहरा और गूंगा। इन तीनोंको यज्ञमें जानेका अधिकार नहीं है। तीन ऋषियों-मेंसे एकने दूसरेको चीज देख कर आंखें बंद कर लीं। इसीसे वे अन्धे हुए, दूसरेने परनिन्दा श्रवणशङ्का करके कान मूंद लिये, इसीसे वे बहरे हो गये और तीसरेने मिथ्याकथनकी शङ्का की थी, इसीसे वे गूंगे हुए थे।

त्र्याशिर (सं० त्रि०) तिस्रः दधितक्रपयोरूपा आशिरः यस्य। अग्निका हविभेद।

त्र्याह्व (सं० पु०-स्त्री०) त्रिभिः वक्षुपादैः राहन्ति आ-ह्वन-अच्, 'पूर्वपदात् संज्ञायामग' इति णत्वं। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका पक्षी।

त्र्याहाव (सं० पु०) त्रैयाहावक देशभेद, त्रययाहावक नामका एक देश।

त्र्याहिक (सं० पु०) त्र्यहे भव ठञ्। आर्षत्वात् पूर्वं न ऐच्। १ त्र्यहभव ज्वरादि, हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। (त्रि०) २ तीन दिनोंमें होनेवाला।

त्र्युदय (सं० क्लो०) त्रिषु सवनेषु उदयो गतिरस्य। सोमाख्य द्रव्य।

त्र्युधन् (सं०पु०) त्रिभिः वसन्तशरद्धेमन्तैः ऋतुभिरूधोऽस्य अनङ्, ङ्लस्य। वसन्तादिरूपोधोयुक्त वत्सररूप वृषभ, पालने योग्य सांढ़।

त्र्यूषण (सं० क्लो०) त्रयाणां ऊषणानां समाहारः पृषो० वा दीर्घः। १ त्रिकटु, सोंठ, पीपल और मिर्च। इसका गुण—दीपन, श्वास, कास, त्वगामय, गुल्म, मेह, कफ, स्थौल्य, मेद श्लीपद और पीनस रोगनाशक है। २ चरकोक्त घृतविशेष, चरकके अनुसार एक प्रकारका घृत जो उक्त औषधियोंके मेलसे बनाया जाता है।

त्र्यूषणादिमण्डूर (सं० क्लो०) एक प्रकारकी औषध जिसका व्यवहार पाण्डु रोगमें होता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, चई, चीतामूल, दारुहल्दी, दालचीनी, स्वर्णमाक्षिक, पीपर, मूली और देवदारु प्रत्येकका दो दो पल चूर्ण, यह चूर्ण जितना हो उससे दूना शोधित मण्डूरचूर्ण और मण्डूरचूर्णसे ८ गुना गोमूत्रकी जरूरत पड़ती है। पहले गोमूत्रमें मण्डूरको पाक करते और गाढ़ा होने पर उसमें उक्त चूर्ण डाल देते हैं। पीछे अंजीरके (गूलरके) बराबर गोली बनाते हैं। मट्ठेके साथ इसका सेवन करनेसे कामल, मेह, प्लीहा आदि रोग दूर हो जाते हैं। अजीर्ण होने पर भोजन करना उचित नहीं है। (भैषज्यर०)

त्र्यूषणाद्यवर्त्ती (सं० स्त्री०) वर्त्तिविशेष, एक प्रकारकी बत्ती। त्रिकटु, त्रिफला, दारचीनी, सैन्धव और मनःशिला इन सबको मिला कर बत्ती तैयार करनी पड़ती है। इस बत्तीका आंखमें प्रयोग करनेसे आँखका कीचड़ जाता रहता है।

त्र्यृच (सं० क्लो०) तिसृणां ऋचां समाहारः अच समा०। ऋक्‌त्रय, ऋग्वेदके तीन मन्त्र।

त्र्येणी (सं० स्त्री०) त्रीणि एतानि अस्य वा त्रिषु स्थानेषु एतः कर्बुरो यस्याः 'वर्णादनुदात्तात् ङीप, तस्य न, ततो णत्वं। कर्बुरा स्त्री, वह स्त्री जिसके शरीरमें तीन जगह चितकबड़े दाग हों।

त्व (सं० त्रि०) तनोति विस्तारयति तन-क्विप, अनस्य वः (तनोते रनश्च वः। उण् २।६२) १ भिन्न, अन्य, दूसरा। २ एक।

त्वं (सं० त्रि०) सर्वनाम युष्मद् प्रथमैकवचनं। तुम, आप।

त्वक् (सं० पु०) त्वच् देखो।

त्वक्कण्डुर (सं० पु०) त्वचः कण्डुं राति रा-क। व्रण, फोड़ा।

त्वक्क्षीरा (सं० स्त्री०) त्वचः वंशत्वचः क्षीरमस्त्यत्र। वंशलोचना, वंशलोचन।

त्वक्क्षीरी (सं० स्त्री०) त्वक्‌क्षीर-गौरा ङीष्। वंशलोचना, वंशलोचन। पर्याय—वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, वंशज, शुभ्रा, वंशक्षीरी और वैणवी।

त्वक्छद (सं० पु०) त्वगिव छदो यस्य। क्षीरीश वृक्ष, क्षीरकंचुकी।

त्वक्छेद (सं० क्लो०) (Circumcision) मुसलमान प्रभृति म्लेच्छ जातियोंका एक संस्कार। इसमें मुसलमान बालकोंके लिङ्गोंका अगला चमड़ा काटा जाता है।

त्वक्तरङ्ग (सं० पु०) त्वचस्तरङ्ग इव। कण्डुपदार्थ।

त्वक्त्र (सं० क्लो०) त्वचं त्रायति त्रा-क। वर्म, कवच, बखतर।

त्वक्पञ्चक (सं० क्लो०) त्वचां पञ्चकं। बड़, पीपल, गूलर, सीरीस और पाकर ये पांचों वृक्ष। गुण—शीतल, व्रण, शोथ, विसर्प, विष्टंभ और आध्माननाशक, तिक्त, कषाय, लघु और लेखन।

त्वक्पत्र (सं० क्लो०) त्वगेव पत्राणि यस्य। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। पर्याय—सूत्कट, भृङ्ग, त्वच, चोच और वराङ्गक है।

त्वक्पत्री (सं॰ स्त्री॰) त्वक्, गौरा॰ ङीष्। १ हिङ्गुपत्री। पर्याय—कारवी, पृथ्वी, वाष्पीका, कबरी और पृथु। २ केलेका पेड़। ३ तेजपत्तेके जैसी पत्ता।

त्वक्परिपुटन (सं॰ क्ली॰) त्वचः परिपुटनं। चमड़ेका खींचना, शरीरसे चमड़ेका अलग करना।

त्वक्पाक (सं॰ पु॰) त्वचः पाको यत्र। शूकदोष निमित्त पीड़कारोगविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका रोग जिसमें पित्त और रक्तके कुपित होनेसे शरीरमें फुंसियां निकल आती हैं। शूकदोष देखो।

त्वक्पारुष्य (सं॰ क्ली॰) त्वचः पारुष्यं कठोरता। त्वक्का काठिन्य, चमड़ेका कड़ापन।

त्वक्पुष्प (सं॰ क्ली॰) त्वचः पुष्पमिव। १ रोमाञ्च, रोएं खड़े हो जाना। २ किलास, सेहुआं रोग।

त्वक्पुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) चर्मरोग विशेष, एक प्रकारका चमड़ेका रोग।

त्वचस् (सं॰ क्ली॰) त्वच्यतेऽनेन त्वच करणे असुन्। बल, ताकत।

त्वचीयस् (सं॰ त्रि॰) अतिशयेन त्वचिता ईयसुन् तृणोलोपः। दीप्त, चमकता हुआ।

त्वक्सार (सं॰ पु॰) त्वचि सारो यस्य। १ वंश, बांस। २ वंशका त्वक्, बांसका छिलका। ३ गुड़त्वक्, दारचीनी। ४ शोणत्वच, सनका पौधा।

त्वक्सारभेदिनी (सं॰ स्त्री॰) त्वचः सारं भिनत्ति भिदणिनि ङीप्। क्षुद्रचंचुत्वच, छोटा चेंच।

त्वक्सारा (सं॰ स्त्री॰) त्वक्सारो वंश उत्पत्तिकारत्वेनास्त्यस्याः अच् ततष्टाप्। वंशलोचना, वंसलोचन।

त्वक्सुगन्ध (सं॰ पु॰) त्वचि सुगन्धः सद्गन्धो यस्य। १ नारंगी नीवू। २ लवङ्ग, लौंग।

त्वक्सुगन्धा (सं॰ स्त्री॰) त्वचि सुगन्धो यस्याः। १ एलबालुका नामक गन्धद्रव्य, एलुवा। २ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

त्वक्स्वाद्वी (सं॰ स्त्री॰) त्वचि स्वाद्वी। दारचीनी।

त्वगङ्कुर (सं॰ पु॰) त्वचश्चर्मणः अङ्कुर इव। रोमाञ्च।

त्वगाक्षीरी (सं॰ स्त्री॰) त्वक्क्षीरी पृषोदरा॰ साधुः। वंशलोचना, वंसलोचन।

त्वग्गन्ध (सं॰ पु॰) त्वचि गन्धो यस्य। नागरङ्ग, नारङ्गी नीवू।

त्वग्ज (सं॰ क्ली॰) त्वचः जायते जन ड। १ रोम, रोआं। २ रुधिर, लोहू।

त्वग्दोष (सं॰ पु॰) त्वचो दोषो दूषणं यस्मात्। कुष्ठरोग, कोढ़। इसमें शरीर पर चकत्ते पड़कर फिर पीछे छिप जाते हैं। इसको गिनती महारोगोंमें की गई है। महापातकज ८ प्रकारके जो रोग कहे गये हैं, उन्हींमेंसे यह एक है। इस रोगसे यदि किसीको मृत्यु हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त किये बिना दाहकर्म करना निषिद्ध है। मोहवश यदि कोई दाह कर्म कर ले, तो उसे चान्द्रायणव्रत करना होता है। (शुद्धितत्व)

लोध्र, नीराम्ल और कनकचूर्णको कुछ गरम कर जहां जहां ये चकत्ते पड़ गये हों, वहां उसे लगा देनेसे रोग जाता रहता है। (गरुड़ १८४ अ॰)

त्वग्दोषापहा (सं॰ स्त्री॰) त्वग्दोषं रोगविशेषं अपहन्ति हन ड-टाप्। सोमराजी, बकुची, बावची।

त्वग्दोषारि (सं॰ पु॰) त्वग्दोषस्य अरिः, तन्नाशकत्वात् तथात्वं। हस्तिकन्द। इससे त्वग्दोष नष्ट होता है।

त्वग्दोषी (सं॰ त्रि॰) त्वग्दोषोऽस्त्यस्य त्वग्दोष-इनि। त्वग्दोषयुक्त, जिसे कुष्ठरोग हो।

त्वग्भेद (सं॰ पु॰) त्वचो भेदः ६-तत्। त्वक्का भेद, चमड़ेका फटना।

त्वग्भेदक (सं॰ पु॰) त्वचो भेदकः। त्वक्भेदकारी, वह जो चमडा छेदता हो। समान जातिमें यदि कोई किसीका चमड़ा छेद करे अथवा खून बहावे, तो उसे एक सौ पण दण्ड होगा।

त्वङ्कार (सं॰ पु॰) तुम इस प्रकारका वाक्य। गुरुजनोंको त्वङ्कार अर्थात् तुम इस तरहका वाक्य कहनेसे भारी दोष समझा जाता है। ऐसी हालतमें कहनेवालोंको चाहिये कि वे उपवास कर अपमानितोंके पैर पकड़ और उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करें।

त्वच् (सं॰ स्त्री॰) त्वच्यते संव्रियते देहोऽनया, त्वचति संवृणोति वा देहं त्वच-क्विप्। १ वल्कल, छाल। २ चर्म, चमड़ा। ३ स्पर्शग्राहक वाह्येन्द्रियभेद, पांच इन्द्रियोंमेंसे एक। यह इन्द्रिय सारे शरीरके ऊपरी भागमें

व्याप्त है। इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम आदिका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्राचीन ऋषियोंने इसे वायुके सत्वांशसे उत्पन्न माना है और इसको अधिष्ठात्री देवी वायु बतलाई है। ४ गुड़त्वक्, दारचीनी। पर्याय—त्वचा, वल्कल, भृङ्ग, वराङ्ग, मुखशोधन, शकल, सिंहल, वन्य, सुरस, कामवल्लभ, उत्कट, बहुगन्ध, विल्लल, वनप्रिय, नटपर्ण, गन्धवल्क, वर और शीत। गुण—यह कटु, शीतल, कफ और कासनाशक, शुक्र और आमदोषनाशक, कण्ठशुद्धिकर तथा लघु है। ५ कंचुक, केंचुल।

त्वच् (सं० क्लो०) प्रशस्ता त्वगस्त्यस्य, इति अर्श आदित्वादच्। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ त्वगपत्र, तेजपत्ता।

त्वचस् (सं० क्लो०) त्वच-असुन। त्वच् देखो।

त्वचस्य (सं० त्रि०) त्वचसि हितं यत्। त्वगिन्द्रियका हितकर।

त्वचा (सं० स्त्री०) त्वच् पक्षे टाप् वा त्वचति संवृणोति सर्वशरीरमिति अच् ततष्टाप। १ त्वक्, चर्म, चमड़ा। २ मिष्ट वल्कल, दारचीनी।

त्वचापत्र (सं० क्लो०) त्वचा त्वक् पत्रमिव यस्य। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता।

त्वचिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन त्वग्वान् त्वग्वत् इष्ठन्, ततो मतुपो लुक्। (विन्मतोर्लुक्। पा ५।३।६४) अत्यन्त त्वक् युक्त, ज्यादा चमड़ावाला।

त्वचिसार (सं० पु०) त्वचि सारो यस्य। वंश, बंस।

त्वचिसुगन्धा (सं० स्त्री०) त्वचि सुगन्धो यस्याः, सप्तम्याः अलुक्। छुद्रैला, छोटी इलायची।

त्वचीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन त्वग्वान् त्वच् ईयसुन् मतोर्लुक्। अत्यन्त त्वक् युक्त, जिसमें अधिक चमड़ा या छिलका हो।

त्वज्ज्ञान (सं० क्लो०) त्वचा ज्ञानं। स्पर्श इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञान।

त्वज्ज्ञेय (सं० त्रि०) त्वचा ज्ञेयः। स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा जानने योग्य।

त्वत् (सं० त्रि०) तन-क्विप् अनो वः तुक् च। (तनोतेरन इच वः। उण् २।६३) १ भिन्न। २ युष्मद् शब्दको प्रथमाके एकवचनका रूप।

त्वत्कृत (सं० त्रि०) त्वया कृतः ३ तत्। तुमसे किया हुआ।

त्वत्तस् (सं० अव्य) एकार्थवृत्तेः युष्मदस्तसिल्। तुम्हारे निकटसे।

त्वदीय (सं० त्रि०) तव इदं त्वदादित्वेन वृद्धत्वात् छ, त्वदादेशः। तुम्हारा। जिस जगह बहुवचन हो, उस जगह त्वदीय शब्द न होकर युष्मदीय शब्द होगा।

त्वद्विध (सं० त्रि०) तवेव विधा प्रकारो यस्य। त्वत् सदृश, तुम्हारे जैसा।

त्वम्पदलक्ष्यार्थ (सं० पु०। त्वमिति पदस्य लक्ष्योऽर्थः। चैतन्य, चेतनता।

त्वम्पदवाच्य (सं० त्रि०) त्वम्पदस्य वाच्यः। त्वं, ब्रह्म। जिस प्राणीके देह आदि आवरण नहीं है वे ही त्वं है।

त्वम्पदवाच्यार्थ (सं० त्रि०) त्वमिति पदस्य वाच्योऽर्थः। अज्ञानादिकी व्यष्टि।

त्वम्पदाभिध (सं० पु०) त्वंपदं अभिधा यस्य। त्वम्पद वाच्य जीव, जिनके 'अहं' इत्यादि अभिमान छिपे हुए हैं और बोधस्वरूपमें अवस्थित हैं, वे ही त्वम्पदाभिध हैं।

त्वन्मय (सं० त्रि०) युष्मत् स्वरूपे मयट्। त्वत् स्वरूप।

त्वयता (सं० स्त्री०) त्वया दत्तं पृषो० साधुः। तुमसे दिया हुआ।

त्वरण (सं० क्लो०) त्वर भावे ल्युट्। त्वरा, शीघ्रता, जल्दी।

त्वरणीय (सं० त्रि०) त्वर-अनीयर्। द्रुतगमनशील, जल्दी जानेवाला।

त्वरमाण (सं० त्रि०) त्वर-शानच्। सत्वर, तेज।

त्वरा (सं० स्त्री०) त्वरणमिति, त्वर-अङ्, ततः टाप्। वेग, शीघ्रता, जल्दी। पर्याय—सम्भ्रम, आवेग, त्वरि, तूर्णि और संवेग है।

त्वरायण (सं० त्रि०) त्वरा अयनं यस्य। ततो णत्वं। त्वरासक्त, शीघ्रता करनेवाला, जल्दबाज।

त्वरारोह (सं० पु०) पारावत, कपोत, कबूतर।

त्वरावत् (सं० त्रि०) त्वरास्त्यस्य त्वरा मतुप् मस्य वः। त्वरायुक्त, शीघ्रता करनेवाला।

त्वरि (सं० स्त्री०) त्वरणमिति त्वर् भावे इन्। त्वरा, शीघ्रता, जल्दी।

त्वरित (सं० क्लो०) त्वर-क्त। १ शीघ्र, जल्दी। (त्रि०) २ तेज।

त्वरितक (सं० पु०) त्वरितं कायति प्रकाशते जायते कै-क। ब्रीहिभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका चावल जिसे तूर्णक भी कहते हैं।

त्वरितगति (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दश अक्षर होते हैं। इसके पांचवें और दशवें वर्ण गुरु और शेष वर्ण लघु होते हैं।

त्वरिता (सं० स्त्री०) देवीभेद, तन्त्रके अनुसार एक देवो। इसकी पूजा युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये की जाती है। इसका विधान अग्निपुराणके १४१ अध्यायमें और इसकी यन्त्रादिका विषय तन्त्रसारमें लिखा है।

त्वरितोदित (सं० क्लो०) त्वरितं शीघ्रं यथा तथा उदितं कथितं। शीघ्रोच्चारित वाक्य, बहुत जल्द उच्चारण किया हुआ वाक्य।

त्वलग (सं० त्रि०) त्वलग पृषो० साधुः। जलसर्प; पानी-का सांप।

त्वष्ट (सं० त्रि०) त्वक्ष तनूकरणे क्त। तनूकृत, जो पतला या सूक्ष्म किया गया हो।

त्वष्टि (सं० पु०) मनूक्त सङ्कीर्ण जातिभेद, मनुके अनुसार एक संकर जाति।

त्वष्टीमती (सं० स्त्री०) त्वष्टा तदनुग्रहोऽस्त्यस्याः मतुप-पृषो० साधुः। त्वष्टाकी अनुग्रहयुक्ता स्त्री, विश्वकर्माकी दयालु स्त्री।

त्वष्टृ (सं० पु०) त्वेषति दीप्यति त्विष दीप्तौ तृच, इतो अत्वञ्च (नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ इति। उण् २।८६) १ आदित्य-भेद। बारह आदित्योंमेंसे ग्यारहवें आदित्य। ये आंखके अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं। विराट पुरुषकी दो आंखोंके डिम्ब पृथक् पृथक् उत्पन्न होने पर लोकपाल त्वष्टा (ग्यारहवें आदित्य) अपने अंशसे चक्षुके साथ अधि-देवता स्वरूप उसमें प्रविष्ट हो गये। उसी चक्षुसे जीवका ज्ञान हुआ करता है। त्वक्षति तनूकरोति, काष्ठादिकं शिल्पकार्य त्वात्त्वक्ष—तृच्। २ विश्वकर्मा। विष्णु-पुराणके अनुसार ये सूर्यके सात सारथियोंमेंसे एक हैं। ३ विश्वकर्मकि पुत्रविशेष, विश्वकर्माके एक पुत्रका नाम। ४ प्रजापतिविशेष, एक प्रजापतिका नाम। ५ महादेव, शिव। ६ वर्णसङ्करजातिविशेष, सूत्रधार नामकी वर्णसंकरजाति। ७ चित्रा नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवताका नाम। ८ तक्षणकर्त्ता, बढ़ई। ९ पशु और मनुष्यादिके गर्भके अभ्यन्तरस्थित रेतोरूप विभाग-कारक देवभेद, एक वैदिक देवता। ये पशुओं और मनुष्योंके गर्भमें वीर्यका विभाग करनेवाले माने जाते हैं। १० ताम्र, तांबा।

त्वष्टृमत् (सं० त्रि०) त्वष्टृ अस्त्यर्थे मतुप्। वीर्याधिष्ठातृ देवभेदयुक्त, एक देवता जो वीर्यके अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं।

त्वाचप्रत्यक्ष (सं० क्लो०) त्वाचं त्वच-सम्बन्धि प्रत्यक्षं। स्पर्श ज्ञान, छूकर किसी चीजका अनुभव करना।

त्वादत्त (सं० त्रि०) त्वया दत्तः वेदे साधुः। जो तुमसे दिया गया हो।

त्वादूत (सं० त्रि०) त्वं दूतो येषां। तुम जिसके दूत हो।

त्वादृश (सं० त्रि०) त्वमिव दृश्यते युष्मद् दृश-क्विन्। तुम्हारे जैसा, तुम सरीखा।

त्वादृक्ष (सं० त्रि०) त्वमिव दृश्यतेऽसौ युष्मद् दृश-कञ् (त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। पा ३।२।६०) तुम्हारे सदृश, तुम्हारे जैसा।

त्वायत् (सं० त्रि०) त्वामात्मन इच्छति, सुप आत्मनः क्यच्, क्यजन्ताच्छतः शतृ। आत्माभिलाषी, जो अपनी इज्जत वा प्रतिष्ठा चाहता हो।

त्वायु (सं० त्रि०) त्वामात्मन इच्छति क्यच् युष्मदस्त्वदा-देशौ क्याच्छन्दसि' इति उ। जो तुम्हें चाहता हो।

त्वावसु (सं० पु०) त्वं वसु व्यापकोऽस्य त्वादेशः वेदे पृषो० साधुः। तुमसे व्याप्त।

त्वावृध (सं० पु०) त्वया वर्द्धितः। तुमसे बढ़ाया हुआ।

त्वाष्टी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

त्वाष्ट्र (सं० त्रि०) त्वष्टा देवता अस्य अण्। १ त्वष्टा देवताके उद्देशसे लाया हुआ घी इत्यादि। २ वृत्रासुर। ३ त्वष्टा या विश्वकर्माका बनाया हुआ हथियार, वज्र। ४ चित्रा नक्षत्र। ५ विश्वरूप।

त्वाष्ट्री (सं० स्त्री०) त्वष्टा अधिष्ठात्री देवता अस्य, त्वष्टृ-अण् ङीप्। १ चित्रा नक्षत्र। २ विश्वकर्माकी कन्या संज्ञाका एक नाम। यह सूर्यको व्याही थी और इसके गर्भसे अश्विनीकुमारका जन्म हुआ था।

त्विष् ( सं० स्त्री० ) त्विष दीप्तौ सम्पदादि त्वादिक्विप्। १ शोभा, प्रभा, चमक। २ वाक्य। ३ व्यवसाय। ४ जिगीषा, जयकी इच्छा। (त्रि०) ५ दीप्यमान चमकता हुआ।

त्विषा (सं० स्त्री०) त्विष् हलन्तात् वा टाप्। दीप्ति, प्रभा, चमक दमक।

त्विषामीश ( सं० पु० ) त्विषां ईशः अलुक् समासः। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, आकका पेड़।

त्विषाम्पति ( सं० पु० ) त्विषां पतिः षष्ठ्याः अलुक्। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष।

त्विषि ( सं० स्त्री० ) त्विष दीप्तौ त्विष् इन् सच कित् ( इगुपधात् कित्। उण् ४।११९ ) किरण।

त्विषित ( सं० त्रि० ) त्विट् जाताऽस्य तारकादि इतच्। ज्वलित, चमकता हुआ।

त्विषीमत् ( सं० त्रि० ) त्विषि विद्यतेऽस्य त्विषि मतुप् वेदे दीर्घः। दीप्तिमत्, चमकता हुआ।

त्वेष ( सं० त्रि० ) त्विष पचाद्यच्। दीप्त, जगमगाता हुआ।

त्वेषथ ( सं० त्रि० ) त्विषअथ। दीप्त, चमकता हुआ।

त्वेषद्युम्न (सं० त्रि०) त्वेषं दीप्तं द्युम्नं यस्य। दीप्यमान यशोयुक्त, जिसका यश जगमगाता हो।

त्वेषनृम्ण ( सं० त्रि० ) त्वेषं नृम्णं यस्य। प्रदीप्त बल, जिसे खूब ताकत हो।

त्वेषप्रतीक ( सं० त्रि० ) त्वेष प्रतीकः यस्य। दीप्तमुख, जिसका मुंह बहुत चमकता हो।

त्वेषरथ ( सं० त्रि० ) त्वेषः रथः यस्य। दीप्तरथ, चमकीला रथ।

त्वेषस् ( सं० क्लो० ) त्विष असुन्। दीप्त, प्रकाशमान।

त्वेषसंदृश् ( सं० त्रि० ) त्वेषः संदृक् यस्य। दीप्त संदर्शन।

त्वेषी ( सं० स्त्री० ) दीप्ता।

त्वै ( सं० अव्य० ) १ विशेष। २ वितर्क।

त्वैषीरथी ( सं० पु० ) कुशिक।

त्वोत ( सं० त्रि० ) त्वया उतः वेदे साधुः। तुमसे रचित, जो तुमसे बचाया गया हो।

त्सरु ( सं० पु० ) त्सरति कौटिल्यं गच्छतित्सर-उ। १ खड्गमुष्टि, तलवारको मूठ। इसका पर्याय—मुष्टितालतल है। २ सर्प, सांप।

त्सारिन ( सं० त्रि० ) त्सरणयुक्त, बहुत डरपोक।

त्सारुक ( सं० त्रि०) त्सरौ तद्युद्धे निपुणः। आकर्षादि कन् ततः स्वार्थे अण्। असियुद्धनिपुण, जो तलवार चलानेमें निपुण हो।

# थ

थ—थकार, संस्कृत और हिन्दी वर्णमालाका सतरहवां व्यञ्जनवर्ण और तवर्गका दूसरा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान दन्तमूल है। दन्तमूलके द्वारा जिह्वाके अग्रभागका स्पर्श होने पर इस वर्णका उच्चारण होता है। इस आभ्यन्तर प्रयत्नके कारण इसको वर्णस्पर्शता होती है। इसमें विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण बाह्य प्रयत्न होते हैं।

पर्याय—त्रिवासी, महाग्रन्थि, ग्रन्थिग्राह, भयानक, शिली, शिरसिज, दन्ती, भद्रकाली, शिलोच्चय, कृष्ण, बुद्धि, विकर्णा, दक्षिणाशा, अधिप, भ्रमर, वरदा, भोगदा, केश, वामजङ्घा, अलस, अनल, लोल, उज्ज्वयिनी, पृथु, गुह्य, शरच्चन्द्र, विदारक। ( वर्णाभिधान ) इसका आकार इस प्रकार है—"थ"।

इसके ध्यानके मन्त्र—

'नीलवर्णां त्रिनयनां षड्भुजां वरदां पराम्।
पीतवस्त्रपरिधानां सदा सिद्धिप्रदायिनीम्॥
एवं ध्यात्वा थकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पंचदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा॥
तरुणादित्यसंकाशं थकारं प्रणमाम्यहम्॥" (वर्णोद्धारतन्त्र०)

मातृकान्यासमें—वाम जङ्घा पर थकारका न्यास किया जाता है।

इसका स्वरूप—कुण्डली, मोक्षरूपिणी, त्रिशक्ति,

त्रिबिन्दु पंचप्राणमय और सर्वदा पञ्चप्राणमयवर्ण एवं नवोदित सूर्यके समान है। (कामधेनुतन्त्र)

काव्यादिमें थकारका प्रथम प्रयोग होनेसे फल युद्ध होता है। ("थस्तु युद्धम्" वृत्तरत्ना० टी०)

थ (सं० पु०) थुड़-संवृत्तौ ड। १ पर्वत, पहाड़। २ व्याधिभेद, एक रोग। ३ भय। ४ भक्षण, आहार। ५ रक्षण। ६ मङ्गल। ७ साध्वस। (त्रि०) ८ भयरक्षक।

थंका (हिं० पु०) बिलमुकता।

थंब (हिं० पु०) खंभा। २ सहारा। ३ राजपूतोंका एक भेद।

थंबो (हिं० स्त्री०) १ खड़ी लकड़ी। २ सहारेकी बल्ली, चांड़, थूनी।

थंभ (हिं० पु०) खंभा।

थंभन (हिं० पु०) १ स्तम्भन, रुकावट, ठहराव। २ तन्त्रके छः प्रयोगोंमेंसे एक। ३ एक प्रकारकी दवा जो शरीरसे निकली हुई वस्तु जैसे मल मूत्र शुक्र इत्यादि को रोके रहे।

थक (हिं० पु०) थाक देखो।

थकना (हिं० क्रि०) १ शिथिल होना, क्लान्त होना। २ जब जाना, हैरान हो जाना। ३ मुग्ध होना, लुभाना। ४ वुढ़ापेसे अशक्त होना। ५ शिथिल पड जाना, चलता न रहना, धीमा पड़ जाना।

थकरी (हिं० स्त्री०) खसकी कूंची जिससे स्त्रियां बाल झाड़ती हैं।

थकान (हिं० स्त्री०) शिथिलता, थकावट।

थकाना (हिं० क्रि०) शिथिल करना, हराना।

थकामांदा (हिं० वि०) श्रमित, मिहनत करते करते अशक्त।

थकार (सं० पु०) थ स्वरूपे कारः। 'थ' अक्षर।

थकारादि (सं० पु०) थकार आदिर्यस्य। जिसके प्रारम्भमें थ अक्षर हो।

थकारान्त (सं० त्रि०) थकारोऽन्तो यस्य। जिसके अन्तमें थ हो।

थकाव (हिं० पु०) थकावट।

थकावट (हिं० स्त्री०) शिथिलता।

थकाहट (हिं० स्त्री०) थकावट देखो।

थकित (हिं० वि०) १ श्रान्त, शिथिल, थका हुआ। २ मुग्ध, मोहित।

थकिया (सं० स्त्री०) १ वह मोटी तह जो किसी गाढ़ी चीजके जम जानेसे हो जाती है। २ गली हुई धातुका जमा हुआ लौंदा।

थकौहां (हिं० वि०) शिथिल, कुछ थका हुआ।

थक्का (हिं० पु०) १ गली हुई धातुका जमा हुआ कतरा। २ किसी गाढ़ी चीजकी मोटी तह, जमा हुआ कतरा।

थगर—निम्न ब्रह्मके तौङ्गु जिलेके अन्तर्गत एक नगर। इसके मध्य होकर बहुतसे गिरिश्रेणि गये हैं और कहीं कहीं तरह तरहके वृक्ष तथा लतासे परिपूर्ण क्षेत्र देखे जाते हैं।

थगित (हिं० वि०) १ ठहरा हुआ, रुका हुआ। २ शिथिल, ढीला। ३ मन्द, सुस्त।

थड़ा (हिं० पु०) १ बैठनेका स्थान, बैठक। २ दूकानकी गद्दी।

थतिया—युक्तप्रदेशके फरुखाबाद जिलेके अन्तर्गत तिरवा नगरसे ३॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित एक नगर। पहले यहाँ बहुत मनुष्योंका वास था। अब भी यहां बाजार आदि हैं। बहुतसी सड़कें इस नगरमें आ मिली हैं। यहां गो आदिका व्यवसाय होता है। नगरमें पुलिस, डाकघर, अंगरेजी विद्यालय, सराय प्रभृति हैं। नगरसे दक्षिण एक ऊँची जमीनके ऊपर दुर्गका चिह्न देखनेमें आता है। पहले उस दुर्गमें ताल ग्रामके बघेला राजपूत रहते थे।

१८५७ ई०में यहांके दुर्गपति बघेला सर्दार भी विद्रोही हुए थे। विद्रोहके बाद वे द्वीपान्तर भेजे गये और उनका किला तहस नहस कर डाला गया।

थतुन—निम्न ब्रह्मके तेनसेरिम विभागका एक जिला। यह अक्षा० १६° २८´ से १७° ५१´ उ० और देशा० ९६° ३९´ से ९८° २०´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५०७९ वर्गमील है। इसके उत्तरमें सलवीन और थौनगीन नदियोंका सङ्गमस्थान, पूर्वमें थौनगीन नदी ७० मील तक प्रवाहित है तथा दक्षिण-पश्चिममें मर्त्तवानकी खाड़ी और सीतंग नदीका मुहाना है। जिला चारों ओर पर्वत मालासे घिरा हुआ है।

जिलेकी प्रधान नदी थोनगोन है जो अमहर्ष्ट जिलेसे निकल कर २८० मील तक बहती हुई जिलेके उत्तर सलवोन नदीसे जा मिली है। इसके सिवा हैलेङ्गवे, सलवीन, गैङ्ग, बिलीन और सितङ्ग नामक कई एक नदियाँ जिलेके चारों ओर प्रवाहित हैं। यहांके जङ्गलमें हाथी, चीता, बाघ, हरिण, सूअर, भालू और तरह तरहके पक्षी पाये जाते हैं।

यह जिला पहले मोन वा तैलङ्गके अधिकारमें था। आज कल भी इसके कुछ अंश इन्हीं लोगोंके अधिकारमें है। १८५२ ई०में बरमाकी दूसरी लड़ाईमें यह अंगरेजोंके दखलमें आया।

इसमें दो शहर और ११७३ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३४३५१० है। करेन जातिके लोगोंकी संख्या सबसे अधिक है। यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ है। धानही जिलेकी प्रधान उपज है। यहांसे विलायती कपड़े, रेशम, चांदी, धान, सालकी लकड़ी और चूनेके पत्थरकी रपतनी होती है। १८८३ ई०से यहां ट्रामगाड़ी भी चलाने लगी है।

सम्पूर्ण जिला तीन उपविभागोंमें विभक्त है, पहला पान उपविभाग, जो दोनथमी नदीके पूर्वस्थ भागमें पड़ता है, दूसरा कौकरी और तीसरा थतुन उपविभाग है। डिष्ट्रिक्ट जज और सहकारी जजसे विचारकार्य सम्पादन होता है। यहांकी आय १६ लाख रुपयेसे अधिक की है।

थतुन जिला विद्यास्थितिमें बहुत पीछा पड़ा हुआ है, किन्तु इसकी उन्नति अब धीरे धीरे होती जा रही है। आजकल यहां केवल ११ सेकेण्डरी, २११ प्राइमरी और ३२८ एलिमेण्ट्री स्कूल है। विद्याविभागमें वार्षिक २३८००) रु० व्यय होते है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें थतुन और पौङ्ग नामक दो शहर लगते हैं।

३ उपरोक्त जिलेका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १६° ५५' उ० और देशा० ८७° २२' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४३४२ है। अभी यहांकी पूर्व समृद्धि जाती रही। तैलङ्ग इतिहासमें यह स्थान बहुत विख्यात है। कई एक ऐतिहासिकोंका कहना है, कि ८वीं शताब्दीमें यह नगर स्थापित हुआ है और बहुत काल तक यहां स्वाधीन राज्यको राजधानी था। १०वीं शताब्दीमें ब्रह्मराज अनवरतने इस पर अधिकार किया। ब्रह्मपुरावृत्तमें थतुनके अधिकार करनेका विषय विस्तारपूर्वक लिखा है। इस नगरमें अनेक बौद्ध देवालय देखे जाते हैं, किन्तु अधिकांश भग्नावस्थामें पड़े हैं।

थक्की (हिं० स्त्री०) राशि, ढेर, पुञ्ज।

थन (हिं० पु०) चौपायोंका स्तन।

थनकुटी (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटी पक्षी। यह नील रङ्गके लिये चमकीला होता है और कीड़े मकोड़े खाता है।

थनगन (हिं० पु०) बरमा, बरार और मलवारमें होनेवाला एक बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत बनानेके काममें आती है।

थनटूट (हिं० स्त्री०) वह स्त्री जिसके स्तनसे दूध नहीं निकलता हो।

थनी (हिं० स्त्री०) १ बकरियोंके गलेके नीचे लटकती हुई दो थैलियां जिनका आकार स्तनसा होता है, गलथना। २ थनके आकारका निकला हुआ मांसका अङ्कुर जो हाथियोंके कानके पास होता है। इस तरहका हाथी ऐबी समझा जाता है। ३ वह लटकता हुआ मांस जो घोड़ेकी लिङ्गेन्द्रियमें रहता है और जिसका आकार थन सा होता है। घोड़ेमें यह एक ऐब समझा जाता है।

थनेला (हिं० पु०) १ स्त्रियोंके स्तन पर होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसमें सूजन और पीड़ा होती है तथा घाव भी हो जाता है। २ एक प्रकारका कीड़ा। यह गुबरैलेकी जातिका होता और गाय भैंस आदिके थनमें डङ्क मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनैत (हिं० पु०) १ ग्रामका प्रधान, गांवका मुखिया। २ जमींदारकी ओरसे गांवका लगान वसूल करनेवाला मनुष्य।

थपकना (हिं० क्रि०) १ स्नेहवश किसीके शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना, बच्चेको सुलानेके लिए उसे धीरे धीरे ठोंकना। २ ढाढ़स बंधाना, दम दिलासा देना। ३ किसीका गुस्सा ठण्ढा करना, शान्त करना।

थपकी (हिं० स्त्री०) १ वह आघात जो प्यारसे किसीके

शरीर पर हथेली द्वारा धीरे धीरे पहुँचाया जाता है। २ हाथसे आहिस्ता आहिस्ता ठोंकनेकी क्रिया। ३ वह कड़ा आघात जो हाथके झटकेसे पहुँचाया जाता है। ४ वह मुंगरी जिससे जमीन पीट कर चौरस की जाती है। ५ थापी। ६ मोटे मोटे कपड़े पीटनेका धोबीका मुंगरा।

थपड़ी ( हिं० स्त्री० ) करतलोंका परस्पर आघात दोनों फैली हुई हथेलियोंको एक दूसरे पर मारनेकी क्रिया। २ ताली बजनेकी आवाज। ३ जीरा, नमक और हींग मिली हुई बेसनकी पूरी।

थपथपी ( हिं० क्रि० ) थपकी देखो।

थपना ( हिं० क्रि० ) १ स्थापित होना, ठहरना। २ प्रतिष्ठित होना। ३ धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना ( हिं० पु० ) १ किसी धातुको पीटनेका पत्थर, लकड़ी आदिका औजार। २ थापी।

थपुआ ( हिं० पु० ) चौड़ा, चौरस और चिपटा छाजनका खपड़ा। खपरैलमें प्रायः थपुआ और नरिया दोनोंका मेल होता है।

थपेड़ा (हिं० पु०) १ वह आघात जो हथेलीसे पहुंचाया जाता है, थप्पड़। २ धक्का, टक्कर, ठोकर।

थप्पड़ ( हिं० पु० ) १ तमाचा, चपेट। २ धक्का, टक्कर ३ दाद या फुंसियोंका चकत्ता, चकत्ता।

थप्पा ( हिं० पु० ) एक प्रकारका जहाज।

थम (हिं० पु०) १ स्तम्भ, खम्भा, थूनी। २ केलेका पेड़। ३ देवीको चढ़ानेकी छोटी छोटी पूरियां और हलुआ।

थमकारी (हिं० वि०) स्तम्भन करनेवाला, रोकनेवाला।

थमना ( हिं० क्रि० ) १ रुकना, ठहरना। २ किसी चीजका जारी न रहना, बन्द हो जाना। ३ धैर्य धरना सब्र करना।

थर (हिं० स्त्री०) १ तह, परत। ( पु० ) २ बाघकी मांद।

थर और पार्कर—बम्बईके सिन्ध प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २४° १३' से २६° १५' उ० और देशा० ६८° ५१' से ७१° ८' पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें खैरपुर राज्य, पूर्वमें जयसलमेर, मलानी, जोधपुर और पालनपुर राज्य; दक्षिणमें कच्छकी लवणाक्त दलदलभूमि और पश्चिममें हैदराबाद जिला है। भूपरिमाण १२८४१ वर्गमील है। जिलेका सदर अमरकोट है।

थर और पार्कर जिलेको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—एक भाग 'पट' वा समतल भूभाग और दूसरा 'थर' वा मरुभूमि है। पट भूभाग समुद्रसे ५० वा १०० फुट ऊँचा है। इसके मध्य भी कहीं कहीं २०० फुट ऊँचा बालूका पहाड़ विद्यमान है। किन्तु थरमें उससे ऊँचा बालूका पहाड़ एक भी नहीं देखा जाता। कुछ दिन पहले यह भूभाग मरुभूमिसा दीखता था, जलकी सुविधा भी वैसी नहीं थी। लेकिन अभी रोड़ी नामक खाड़ीके हो जानेसे जलका कष्ट जाता रहा। इस भूभागमें पहलेसे नारा और मिथ्री नामकी दो खाड़ियां बहती आ रही हैं और इनसे चोर तथा थरथाल नामके दो कृत्रिम स्रोत निकल कर प्रायः ८० मील तक बह गये हैं।

थर वा मरुमय अंशमें एक भी नदी वा खाड़ी नहीं है। इसके दक्षिण-पूर्वमें पार्कर नामक भूभाग है जो थरसे बिलकुल विभिन्न है। यहां कई एक छोटे छोटे पहाड़ देखे जाते हैं जिनकी ऊँचाई ३५० फुटसे अधिक की नहीं होगी। इसका पूर्वभाग उतना ऊँचा नहीं है और जो कुछ है भी वह अब धीरे धीरे समतलक्षेत्रमें परिणत होता जा रहा है।

जिलेमें कई जगह सूखी नदीका गर्भ रह गया है जो देखनेसे ही मालूम पड़ता है, कि एक समय सिन्धु नदी अथवा उसकी शाखा प्रशाखाके स्रोत इसी हो कर बहते थे। अभी जहां मरुभूमि है, पहले उसी जगह काफी अनाज उपजते थे। बहुतसी ईंटें और पात्रादि जो वहां पाये गये हैं उनसे जाना जाता है, कि एक समय वहां मनुष्योंका वास था।

पुरातत्त्व—पार्कके भूभागमें बहुतसे प्राचीन देवालयोंके भग्नावशेष देखे जाते हैं। विरावेसे १४ मील उत्तर-पश्चिममें गोर्चा नामक एक प्राचीन और प्रसिद्ध जैन देवमन्दिर है। यहा की जिनमूर्त्ति देखनेके लिये दूर दूर देशोंसे जैन लोग आते है। इसके निकट पारा नगर नामक एक प्राचीन नगरका ध्वंशावशेष पड़ा है जिसका आयतन प्रायः ६ मील होगा। धर्मसिंह नामक किसी व्यक्तिने यह नगर स्थापन किया था। पहले यह विशेष समृद्धिशाली और बहुजनाकीर्ण था।

१६वीं शताब्दीमें इसकी अवनति हो रही है। यहांके प्राचीन भग्न देवालयका शिल्पनैपुण्य देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। खिप्रानगरसे दक्षिण नाराखाडीके ऊपर रताकोट नामक एक विध्वस्त नगर देखा जाता है। प्रवाद है कि १००० वर्ष पहले रता नामक किसी मनुष्यने यह नगर स्थापन किया। छः सौ वर्ष पहलेसे इसकी अवस्था शोचनीय हो गई है। जिलेके नाना स्थानोंमें तलपुर मीरोंके समयके बनाये हुए अनेक दुर्ग देखनेमें आते हैं, जिनमेंसे इस्लामकोट, मित्ति और सिङ्गाल प्रधान हैं। अभी ये सब भग्नावस्थामें पड़े हैं।

इतिहास—जिलेका प्राचीन इतिहास बहुत कम जाना जाता है। यहांके सोढ़ा राजपूतोंका कहना है, कि उज्जयिनीमें उन लोगोंके पूर्वपुरुष परमार सोढ़ा वास करते थे। १२२६ ई०में वे सिन्धुप्रदेशको आये और यहांके शासनकर्त्ताओंको हरा कर आप राजा बन बैठे। इनके पहले यहां सूमरागण राज्य करते थे। कोई कोई कहते हैं, कि १६वीं शताब्दीमें सूमरागण सोढ़ा राजपूतोंसे परास्त हुए थे। १७५० ई०में वे भी कलहोरोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। इस समय कुछ काल तक यह जिला सिन्धुराज्यके शासनाधीन रहा। कलहोरोंके अधःपतनके बाद यह जिला तलपुर-मीरोंके अधिकारमें आया। वे लोग उपजका ⅓ भाग प्रजासे वसूल करते थे। उनके समयमें यहां कई जगह दुर्गादि बनाये गये।

बहुत दिनों तक थर और पार्कर जिला डकैतोंका अड्डा कह कर प्रसिद्ध था। वे लोग कच्छ और निकट वर्त्ती जिलाओंमें लूटमार मचाते थे।

१८४३ ई०में जब सिन्धुप्रदेश वृटिशराज्यके अन्तर्भुक्त हुआ, तब इस जिलेके लोगोंने कच्छके शासनाधीन रहनेकी इच्छा की। इसके अनुसार १८४४ ई०में बलिआरी, दिपला, मित्ति, इस्लामकोट, सिङ्गला, विरावा पिटापुर, बीजासर और पार्कर कच्छमें मिलाये गये एवं अमरकोट, गदरा और नराई आदि कई एक भूभाग हैदराबाद कलक्टरीके अधीन हुए।

लाखराज और हिन्दू-विवाहके उत्सवमें पटेल वा प्रधान लोग जो अनर्थक अर्थ संग्रह करते थे, वह उठा दिया गया और सर्दारोंको अच्छे व्यवहार करनेसे भी निषेध किया गया। इन सब कारणोंसे सोढ़ाराजपूत लोग नाराज हो गये और विद्रोही हो उठे। १८४९ ई०में विद्रोह कुछ कुछ शान्त हुआ। गवर्मेण्ट उन लोगोंके असन्तोषके कारण जाननेको इच्छुक हुई। इस पर उन्होंने कहा, 'हम लोग कराड़ बनियोंसे विवाहमें करस्वरूप २६॥ रुपये और ऋणके समय एक रुपया लेन करनेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि यह नियम बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। हम लोग जो निष्कर जमीन भोग करते हैं, वह बहुत कम हो गई हैं और कुछ हम लोगोंसे छीन भी ली गई हैं, वह हमें लौटा दी जांय। विशेष कर दुर्भिक्षके समय हम लोगोंके व्यवहार्य अफीम वा शस्यादि पर शुल्क न लगाया जाय। हम लोग बहुत दिनोंसे ही भ्रमणकालमें जब कभी बनियोंके घर पहुंच जाते तो बिना कुछ दिये ही भोजन करते और अनाज पाते आ रहे हैं। हम लोगोंकी यह प्रथा ज्योंकी त्यों बनी रहे। इसके अलावा अमरकोटसे जो शुल्क वसूल होता है, उसका कुछ अंश हम लोगोंको भी मिले।'

उन लोगोंका यह आवेदन सुन कर वृटिश गवर्मेण्टने इस प्रकारका बन्दोबस्त कर दिया—

कराड़ बनियोंके विवाहमें सोढ़ाराजपूतगण करस्वरूप सैकड़े ५) रु०के हिसाबसे ११०००) रु०का वार्षिक सूद पावेंगे, बहुतसी निष्कर जमीन भी भोग कर सकेंगे और अमरकोटसे जो शुल्क वसूल होगा, उसका कुछ भाग उन्हें भी दिया जायगा।

१८५० ई०में सोढ़ाके जमींदारके साथ अमरकोट और नारा विभागका एक प्रकारका बन्दोबस्त हो गया। पीछे १८५४ ई०में सिन्धु प्रदेशके कमिश्नर सर बार्टल फ्रियरने यहां दस साला बन्दोबस्त कायम किया।

१८५६ ई०में इस जिलेका मरुमय भाग और पार्कर, पुनः सिन्धुप्रदेशके साथ मिला दिये गये।

१८५९ ई०में बहुतसी कोलीसैन्य रानाके साथ मिल कर विद्रोही हो गई। पीछे हैदराबादसे सेनाने जा कर उन्हें दमन किया। १८६८ ई०में विचारानुसार रानाको १४ वर्ष और उनके मन्त्रीको १० वर्षका निर्वासन दण्ड मिला। तभीसे जिलेमें कोई दुर्घटना न घटी।

यहांकी लोकसंख्या प्रायः २६३८८४ है। इसमेंसे सैकड़े ५३ मुसलमान, २१ हिन्दू और अहिन्दू असभ्य जाति प्रायः सैकड़े २३ है। इसके अलावा यहां जैन, सिख, ईसाई, यहूदी और ब्राह्म भी हैं। बाजरा और दूध ही यहांके लोगोंकी प्रधान उपजीविका है। धान, ज्वार और दलहनकी फसल भी कम नहीं लगती।

वाणिज्य—थर और पार्करसे प्रधानतः तरह तरहके अनाज, पशम, घी, ऊंट, गाय, भेंड़े, चमड़े, मछली, नमक आदिकी रफ्तनी और रूई, धातु, सूखा फल, रंग, कपड़ा, रेशम, गुड़ और तमाकूकी आमदनी होती है। यहां ऊनी और सूती कपड़े तैयार होते हैं।

शासन—राजस्व और विचारादिका काम एक डिपटी कमिश्नरके हाथमें है। इनके ऊपर जज और मजिष्ट्रेट इन दोनोंका अधिकार है। इनके अधीन एक डिपटी कलक्टर और एक मुख्तियार हैं।

विद्याभिज्ञतिमें यह जिला बहुत गिरा हुआ है। अभी यहां कुल १६४ स्कूल हैं। अमरकोट टेकनिकल स्कूलमें बढ़ई और लोहारका काम सिखाया जाता है। विद्या-विभागमें वार्षिक ३४०००) रुपये खर्च होते हैं। इसके सिवा यहां चिकित्सालय भी है।

थरकाना (हिं० क्रि०) भयसे कांपना।

थरघर (हिं० स्त्री०) १ भयादिहेतु कम्पन, डरसे कांपनेकी मुद्रा।

थरथर-कंपनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। जब यह बैठती है तो कांपती हुई मालूम पड़ती है।

थरथराना (हिं० क्रि०) १ भयसे कांपना। २ कांपना।

थरथराहट (हिं० स्त्री०) डरसे उत्पन्न कंपकपी।

थरथरी (हिं० स्त्री०) थरथराहट देखो।

थरना (हिं० क्रि०) १ हथौड़ी आदिसे धातु पर आघात करना। (पु०) २ पत्तीको नकाशी बनानेका सुनारोंका औजार।

थरवदी—निम्नब्रह्मके अन्तर्गत पेगूविभागका एक जिला। यह अक्षा० १७° ३१' से १८° ४७ उ० और देशा० ९५° ५५' से ९६° १०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८५१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें प्रोम जिला, पूर्वमें पेगुयोम-गिरि, दक्षिणमें ह्नन्थवदी और पश्चिममें इरावती नदी है। इसका प्रधान सदर थरवदी है। सदरके समीप हो कर इरावती-ष्टेट-रेलवे गई है।

यहांकी इरावती और मित नदियोंकी अववाहिका और पेगुयोम पहाड़का प्राकृतिक दृश्य, बहुत मनोहर है। प्रधान शैलशृङ्ग बरवेसकन और क्योकपुन्दङ्ग २००० फुट ऊंचे हैं। शैलमालाके मध्य क्योक्-त-द अर्थात् शैलसेतु नामक एक विचित्र पहाड़ है जो तालाबके ऊपरमें चारों ओर विस्तृत है। यह सेतुके जैसा देखनेमें लगता है, इसीसे इसका नाम शैलसेतु पड़ा है।

लोकसंख्या प्रायः ३८५५७० है, जिनमेंसे बौद्धोंकी संख्या सबसे अधिक है। अनेक हिन्दूधर्मावलम्बी हिन्दुस्थानी, बङ्गाली, उड़िया तेलगू और तामिल लोग भी यहां आकर बस गये हैं। इस जिलेमें ५ शहर और १८९८ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन उर्वरा है, अत तरह तरहकी काफी फसल उत्पन्न होती है। इस जिलेका इतिहास हेनजदा जिलेके साथ संश्लिष्ट है।

थरहरी (हिं० स्त्री०) वह कंपकपी जो डरके कारण हुई हो।

थराड़—थराड़ और मोरवाड़ा राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° २३' १०" उ० और देशा० ७१° ३७' पू०में अवस्थित है। यहां थराड़के राजा वास करते हैं।

थराड़ और मोरवाड़ा—बम्बई प्रदेशके पालनपुर एजेन्सीके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २४° १०' उ० और देशा० ७२° २८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७७८८ है। यह राज्य उत्तर-दक्षिणमें प्रायः १२३ कोस तक विस्तृत है। इसके उत्तरमें मारवाड़ जिला, पूर्वमें पालनपुरराज्य, दक्षिणमें भावर और तेलवारा-राज्य है। राज्यकी अधिकांश जमीन अनुर्वर और बालुकामय है, सिर्फ ग्रामोंके निकट कुछ कुछ कालीमट्टी पाई जाती है। यहां ५०से ८० हाथ जमीन खोदने पर पानी मिलता है। सुतरां जलकी विशेष सुविधा नहीं है। इसी कारण फसल अच्छी नहीं लगती। यहां वैशाख और ज्येष्ठ मासमें असह्य गरमी पड़ती है। पानीसे

माईलवी तक एक पक्की सड़क राज्यके मध्य हो कर गई है।

यहां बहुत दिनोंसे बघेला राजपूतगण राज्य करते थे। १८१८ ई०में खोसा आदि लुटेरोंके उत्पातसे तङ्ग आ कर यहांके सामन्तराजने वृटिश गवर्मेण्टकी शरण ली थी।

राज्यके भूतपूर्व सरदारका नाम ठाकुर खेङ्गरसिंह था। राजा थराड नामक नगरमें रहते और राजकार्य स्वयं चलाते हैं।

राज्यकी आय ८५०००) रु० है। इन्हें ५० अश्वारोही और ३० पदातिक सैन्य हैं। राजाके मरने पर उनके बड़े लड़के ही उत्तराधिकारी होते हैं।

थरि (हिं० स्त्री०) बाघ आदिकी मांद, खुर।

थरिया (हिं० स्त्री०) थाली देखो।

थरहट (हिं० पु०) आदमियोंकी बस्ती।

थर्मामीटर (अं० पु०) वह यन्त्र जिससे सरदी गरमी नापी जाती है। तापमान देखो।

थर्राना (हिं० क्रि०) भयसे कांपना, दहलना।

थल (हिं० पु०) १ स्थल, जगह, ठिकाना। २ शुष्क स्थान, सूखी धरती। ३ थलका मार्ग। ४ व्रणमण्डल, फोड़ेका लाल और सूजा हुआ घेरा। ५ चवन्नीके बराबरका बादलेका गोल साज। यह बच्चोंकी टोपी आदि पर टांका जाता है। ६ रेत पड़ी हुई स्थान, रेगिस्तान, भूड़। ७ बाघकी मांद। ८ ऊँची धरती, टीला।

थलकना (हिं० क्रि०) १ झोल पड़नेके कारण ऊपर नीचे हिलना। २ थल थल करना, मोटाईके कारण शरीरका मांस हिलना।

थलचर (हिं० पु०) वह जीव जो पृथ्वी पर रहते हैं।

थलचारी (हिं० वि०) भूमि पर चलनेवाला।

थलथल (हिं० वि०) हिलता हुआ।

थलथलाना (हिं० क्रि०) मोटाईके कारण शरीरका मांस हिलना।

थलबेड़ा (हिं० पु०) वह जगह जहां नाव या जहाज आ कर ठहरता है, नाव या जहाज लगनेका घाट।

थलभारी (हिं० पु०) कहारोंकी एक बोली। इससे वे पिछले कहारोंको आगे रेतीले मैदानका होना सूचित करते हैं।

थलिया (हिं० स्त्री०) थाली।

थली (हिं० स्त्री०) १ स्थान, जगह, ठिकाना। २ ऊँची जमीन, टीला। ३ परती जमीन। ४ बालूका मैदान, रेतीली जमीन। ५ बैठनेका स्थान, बैठक। ६ जलके नीचेका तल।

थवई (हिं० पु०) वह जो मकान बनाता हो, कारीगर, राज।

थवन (हिं० पु०) वधूकी तीसरी बार अपने पतिके घरकी यात्रा।

थवना (हिं० पु०) कच्ची मट्टीका एक गोला। इसमें लगी हुई लकड़ीके छेदमें चरखीकी लकड़ी पड़ी रहती है।

थहराना (हिं० क्रि०) १ कमजोरीके कारण अङ्गोंका कांपना। २ कांपना।

थहराना (हिं० क्रि०) गहराईका पता लगाना, थाह लेना। २ किसीकी विद्या वा आन्तरिक इच्छाका पता लगाना।

थहारना (हिं० क्रि०) जहाजको ठहराना।

थांग (हिं० स्त्री०) १ वह गुप्त स्थान जहां चोर या डाकू आ कर ठहरते हैं। २ अनुसन्धान, खोज, पता। ३ गुप्तरूपसे किसी बातका पता लगाना, भेद।

थांगी (हिं० पु०) १ वह मनुष्य जो चोरीका माल लेता हो वा अपने पास रखता हो। २ चोरोंका भेदिया। ३ वह मनुष्य जो चोरीके मालका पता लगाता हो, जासूस। ४ चोरोंके गोलका सरदार।

थांगीदारी (हिं० स्त्री०) थांगीका काम।

थांभ (हिं० पु०) १ खम्भा। २ थूनी, चांड़।

थांवला (हिं० पु०) किसी लगे हुए पौधेका घेरा या गड्ढा, थाला।

था (हिं० क्रि०) 'है' शब्दका भूतकाल, रहा।

थाई (हिं० वि०) १ स्थिर रहनेवाला, जो बहुत दिनों तक बना रहे। (पु०) २ बैठनेका स्थान, बैठक। ३ ध्रुवपद, स्थायी। यह पद गानेमें बार बार कहा जाता है।

थाक (हिं० पु०) १ ग्रामसीमा, गांवकी सरहद। २ पुञ्ज, राशि, ढेर।

थाति (हिं॰ स्त्री॰) १ स्थिरता, ठहराव।

थाती (हिं॰ स्त्री॰) वह वस्तु जो समय पर काम आनेके लिए रखी जाती है। २ धरोहर, अमानत। ३ सञ्चित धन, जमा, पूंजी।

थान (हिं॰ पु॰) १ स्थान, जगह, ठौर। २ घोड़े या चौपाये बांधनेका स्थान। ३ निवासस्थान, डेरा। ४ मन्दिर, देवल। ५ लिङ्गेन्द्रिय। ६ संख्या, अदद। ७ घोड़ेके नीचे बिछाई जानेकी घास। ८ कपड़े गोटे आदिका पूरा टुकड़ा।

थान—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने १८४८ ई॰में दलेलप्रकाश नामक ग्रन्थ बनाया। इनके पिताका नाम निहालराय और पितामहका नाम महासिंह था। दलेलप्रकाशमें एकादश अध्याय और कोरब साढ़े तीन सौके छन्द है। आदिमें इन्होंने जिस छन्दका नाम आ गया है उसका लक्षण भी उसी स्थान पर कह दिया है। इसी प्रकार जहां किसी छन्दमें कोई अलङ्कार आ गया वहां उनका भी लक्षण कह दिया है। एक स्थान पर राग रागिनियोंका नाम आया, वहां इन्होंने उनका भी वर्णन कर दिया है। ग्रन्थके अन्तमें कुछ चित्रकविता भी की गई है। इन्होंने चित्रकाव्यके विषयमें क्रमाक्षरोंका जो एक छन्द कहा है, वह बहुत अच्छा है। आपने अनुप्रासका समावेश भी किया है, पर अधिकतासे नहीं। कुल मिला कर थानरामकी कविता सन्तोषजनक है। उदाहरणार्थ दो कविताएं नीचे देते हैं—

(१) जै लम्बोदर शम्भुसुवन अम्भोरुह-लोचन।
चरचित चन्दन चन्द्रभाल बंदन रुचि रोचन॥
मुख मंडल गंडालि गंड मंडित श्रुतिकुंडल।
वृंदारक वर वृंद चरन बंदत अखंड बल॥
बर अभय गदा अंकुश धरण विघन हरण मंगल करन।
कवि थान भवासौ सिद्धि बर एक दंत जै तुव सरण॥

(२) पोथी पै दाहिनी परम हंसबाहिनी हो
पोथी पर बीना सुर मंगल मढ़त है।
आसन कंबल अंग अंबर धवल मुख
चंद सों अवल रंग नवल चढ़त है॥
ऐसी मातु भारतीकी आरती करत, थान
जाको जस विधि ऐसो पंडित पढ़त है।
ताको दयादीठ लाख पाखर निराखरके,
मुखते मधुर मंजु आखर कढ़त है॥

थान—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ राज्यके अन्तर्गत लखतर राज्यका एक शहर। लोकसंख्या प्रायः १३९७ है। बढ़वानसे राजकोट तककी सड़क इसी शहर हो कर गई है। शहरमें एक दुर्ग है। यहांके त्रिनेत्रेश्वरका मन्दिर, कन्दोलाका सूर्यमन्दिर और वसाङ्गोका वासुकी मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

शहरके निकट कमला और प्रीतम (प्रियतम) नामकी दो पुष्करिणी हैं। प्रवाद है, कि इन दो सरोवरोंमें लक्ष्मीनारायण स्नान करते थे। दुर्गका नाम कन्दोला है, यहीं सुविख्यात सूर्यमन्दिर प्रतिष्ठित है। कन्दोला दुर्गके सामने पर्वतके ऊपर सोनगढ़ दुर्ग है। वासुकी मन्दिरके जैसा वन्दियाबेली नामक स्थानमें बन्दूक नामका एक और भी सर्पमन्दिर है। जिसके निकट टाला पर्वतमाला अवस्थित है। इस पर्वतके एक अंशको माण्डव पर्वत कहते हैं। इसके ऊपर माण्डव दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

थानक (हिं॰ पु॰) १ स्थान, जगह। २ बबूला, फेन। ३ वह गड्ढा या घेरा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है, थाला। ४ नगर।

थाना (हिं॰ पु॰) १ ठहरनेका स्थान, अड्डा, ठहराव। २ पुलिसकी बड़ी चौकी। यहां अपराधोंकी सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही भी रहते हैं। ३ बाँसोंका समूह, बांसकी कोठी।

थाना—बम्बई प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा॰ १८°४२´ से २०°२२´ उ॰ और देशा॰ ७२°३९´ से ७३°४८´ पू॰में अवस्थित है। इसके उत्तरमें पोर्त्तगीज अधिकृत दमन और सूरत जिला; पूर्वमें नासिकनगर, अहमदनगर और पूना; दक्षिणमें कोलाबा जिला और पश्चिममें अरबसागर है। जिलेके उत्तरी और पूर्वी भूभाग ऊंचे हैं। नासिक जिलेके अन्तर्गत त्र्यम्बक पर्वतसे वैतरणी नदी निकली है। यह एक पवित्र नदी है। जिलेके निकट सालसेट द्वीप है।

यहां झील एक भी नहीं है। लेकिन कुर्ला और थानामें बम्बई नगरसे ७॥ कोसकी दूरी पर वेहार नामक

स्थानमें एक जलसञ्चय जलाशय है। जिसका परिमाण ४२०० बीघा है। इसका जल उम्बई शहरमें जाता है। तीन बांध दे कर यह जलाशय तैयार हुआ है। इसके निकट खेती वा वाणिज्य व्यवसाय करनेकी गवर्मेण्टकी ओरसे मनाही है। पहले इस जलाशयका जल परिष्कार रहता था, अभी इसमें नल आदिके लग जानेसे कुछ खराब हो गया है।

जिलेके चारों ओर पर्वत है। सालसेट द्वीपके उत्तर दक्षिणमें जो पर्वतमाला है, वही सबसे प्रधान है। मथेरन और दमन पर्वत भी कम ऊँचाईको नहीं है। वैतरणी नदीके उत्पत्ति स्थानसे उत्तर-दक्षिणमें बहुतसे पहाड़ हैं। इनमेंसे किसी किसी पहाडके ऊपर प्राचीन सुदृढ दुर्ग देखनेमें आते हैं जिनमेंसे माहुली और मलनगढ़ प्रसिद्ध है।

पेशवाके अधिकृत कुछ राज्योंको लेकर यह जिला संगठित हुआ है। अन्यान्य ऐतिहासिक विषय बम्बई शब्दमे देखो। इसमें ७ शहर और १६४६ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्राय: ८११४२२ है। सालसेट और वेसिन नामक स्थानके ईसाई लोग १६वीं शताब्दीमें सेण्टजेभियर और उनके अनुचरोंसे दीक्षित हुए। ये लोग भण्डारी, कुनवी, कोली आदि जातियोंसे ईसाई हुए हैं। ईसाई होने पर भी ये लोग जातिभेद मानते है, और अभी ईसाई भण्डारी, ईसाई कुनवी कहलाते हैं। इन लोगोंके पोर्तुगोज ईसाई भी नाम है। जब कभी गिर्जामें मेला लगता है, तब ईसाईके सिवा और भी बहुतसे हिन्दू तथा पारसी वहां इकट्ठे होते हैं। उनका विश्वास है, कि गिर्जामें जानेसे अनेक रोग दूर हो जाते है, इसीसे वे लोग वहां जाकर तरह तरहके पूजोपहार दिया करते हैं। ईसाई लोग भी हिन्दू ग्राम्य देवताकी भक्ति और पूजा करते है। इसमें जो सात शहर लगते हैं, उनके नाम ये है--बन्दरा, वेहीन, भीवन्दी, कल्याण, केलवेमाहीन, कुर्ला और थाना।

चावल, नमक, काठ, चून और सूखी मछलीकी रफ्तनी और कपडा, अनाज, तमाकू, नारियल, चीनी और गुडकी आमदनी होती है।

कृषिकार्य हो यहांके लोगोंकी मुख्य उपजोविका है, बाद नमक तैयार करनेका काम है। नमकके २०० कारखाने है जिनमें प्रतिवर्ष ४६१७०००) मन नमक प्रस्तुत होता है। समुद्रके जलको धूपमें सुखा कर नमक बनाते है।

शासनकार्यको सुविधाके लिये यह जिला तीन उपविभागोंमें विभक्त कर सहकारी कलक्टर तथा एक डिपटीकलेक्टरके अधीन रखा गया है। विचारकार्य डिष्ट्रिक्ट और सेसन जज तथा छह सहकारी जजों द्वारा सम्पादन होता है।

यहां एक डिष्ट्रीक्ट जेल, ११ छोटे जेल, एक हवालात, ३ हाई स्कूल, ८ मिडिल और २४१ प्राइमरी स्कूल है।

२ थाना जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १९° १२ उ० और देशा० ७२° ५८´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: १६०११ है। सालसेट खाड़ीके तीरवर्त्ती होनेके कारण यह नगर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। दुर्ग, पोर्तुगीज-गिर्जा और कई एक जलाशय इसको पूर्व समृद्धिका परिचय देते है। तेरहवों शताब्दीमें यह एक स्वाधीन राज्यको राजधानी था। १३१८ ई०में मुबारक खिलजी इसके शासनकर्त्ता हुए। १५२९ ई०में काम्बे शहरको नौसेनाके विनष्ट और वेसिन-उपकूलके दग्ध होने पर इस नगराधिपतिने पोर्तुगीजोंको अधीनता स्वीकार की। पोर्त्तुगीजोंने इस नगरको दो बार और गुजरातीने एक बार लूटा था। १५३३ ई०में सन्धिके अनुसार यह नगर पोर्तुगीजोंको दे दिया गया। उनके समयमें नगरकी खूब उन्नति हुई थी। १७३९ ई०में पोर्तुगीजोंके हाथसे वेसिनके साथ साथ थानाका अधिकार जाता रहा। १८७४ ई०में पोर्त्तुगीजोंने पुन: थाना नगर जीतनेके लिये नौ सेना भेजी। घनघोर युद्धके बाद अंगरेज लोग विजयी हुए। इस नगरमें एक रेलवे ष्टेशन है। बम्बईसे सिर्फ एक घंटेका रास्ता होनेसे यहां बम्बईके अनेक अंगरेज कर्मचारी आकर रहते हैं। शहरमें जीजीभोय हाईस्कूल, बालक तथा बालिकाके मिडिल-इंगलिश स्कूल और ४ वर्नेक्युलर स्कूल है। १८६३ ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई है।

२ अयोध्याके अन्तर्गत उनाव जिलेका एक शहर। यह उनाव शहरसे २॥० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। अकबरके राजत्वकालमें चौहान ठाकुर थानसिंह और पुराणसिंहसे यह नगर प्रतिष्ठित हुआ है। थानसिंह यहां एक दुर्ग भी निर्माण कर गये हैं।

थानापति ( हिं० पु० ) ग्राम देवता।

थानाभवन—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेके अन्तर्गत कैराना तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९°३५' उ० और देशा० ७७°२५' पू० मुजफ्फरनगरसे ८ कोस उत्तर पश्चिममें कृष्णा नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ८८६१ है। अकबरके समयमें यह 'थानाभीम' नामसे मशहूर था। यहांके भवानीदेवीके मन्दिरसे वर्त्तमान नाम प्रसिद्ध हुआ है। भवानीदेवीके दर्शन करनेके लिये अनेक यात्री आया करते हैं।

सिपाही विद्रोहके समय काजी मह्बुर अलीखाँ और उनके भतीजे इनायतअलीको अधिनायकतामें यहां भी विद्रोह हुआ था। शेखजादागण इन विद्रोहियोंके प्रधान थे। विद्रोहके बाद नगरको चहारदीवारी और आठ फाटक तोड डाले गये। यहां १७वीं शताब्दीकी कई एक मस्जिदें और समाधियां हैं।

थानो ( हिं० पु० ) १ स्थानका मालिक। २ लोकपाल, दिक्‌पाल। ( वि० ) ३ सम्पन्न, पूर्ण।

थानैत ( हिं० पु० ) थानैत देखो।

थानेदार ( हिं० पु० ) थानेका अफसर या प्रधान। इनका काम शान्ति बनाये रखना तथा अपराधोंकी छानबीन करना है।

थानेदारो ( हिं० स्त्री० ) थानेदारका पद वा कार्य।

थानेश्वर—१ पञ्जाबके कर्णाल जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ५५' से ३०° २५' उ० और देशा० ७६° ३६' से ७७° १७' पू० यमुना नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ५९९ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: १७३२०८ है। इसमें थानेश्वर, लादव और शाहाबाद नामके तीन शहर तथा ४१८ ग्राम लगते है। तहसीलकी आय दो लाख रुपयेसे अधिक है। पहले यह स्थान अम्बाला जिलेके अन्तर्गत था। १८९७ ई०में यह कर्णाल जिलेमें मिला दिया गया। तहसीलके चारों ओर ढाक ( पलास )के जंगल हैं।

२ उक्त तहसीलका एक पवित्र नगर और प्राचीन हिन्दूतीर्थ। यह अक्षा० २९° ५९' उ० और देशा० ७६° ५०' पू० कुरुक्षेत्रके ठीक समतल क्षेत्रमें सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। इसका संस्कृत नाम स्थाण्वीश्वर है, इसीका अपभ्रंशरूप थानेश्वर हो गया है। महाभारतमें स्थाणुतीर्थ नामसे इसका उल्लेख है। लोकसंख्या लगभग ५०६६ है।

७वीं शताब्दीमें युएनचुअंग जब यहाँ आये थे, उस समय स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) स्वतन्त्र राज्योंमें गिना जाता था। चीन-परिव्राजकने लिखा है कि यह राज्य प्राय: ५८३ कोस विस्तृत था। १०११ ई०में गजनीके महमूदने इस नगर पर आक्रमण किया और वे यहाँको प्रसिद्ध चक्रस्वामीकी मूर्त्ति गजनीको उठा ले गये।

सिखोंके अभ्युदयके समयमें सरदार मिठासिंहने थानेश्वर पर अधिकार जमाया। बाद वे अपने भतीजेको यह पुण्यतीर्थ अर्पण कर गये। मुगलोंके आधिपत्य-कालमें यहांके अनेक मन्दिर तोड-फोड़ डाले गये और उस स्थान पर मसजिदें बनाई गईं। सिखोंने पुनः सब मसजिदें अधिकार कर वहाँ अपना धर्मग्रन्थ पाठका स्थान बनाया।

मिठासिंहका वंश लोप होने पर यह स्थान १८५० ई०में हटिशगवर्मेण्टके अधिकारभुक्त हुआ। पहले यहाँ बहुत मनुष्योंका वास था। सदर्क उठ जानेसे लोकसंख्या बहुत कम गई है। कुरुक्षेत्र देखो।

थानैत ( हिं० पु० ) १ किसी स्थानका मालिक। २ ग्रामदेवता वा किसी स्थानका देवता।

थाप (हिं० स्त्री०) १ तबले, मृदङ्ग आदि पर पूरे पंजेका आघात, ठोंक। २ शपथ, कसम। ३ मान, कदर। ४ महत्त्व स्थापन, प्रतिष्ठा, धाक, साक। ५ स्थिति, जमाव। ६ पञ्चायत। ७ छाप, निशान। ८ थप्पड़, तमाचा।

थापन (हिं० पु०) १ स्थापित करनेकी क्रिया। २ प्रतिष्ठित करनेका कार्य, रखनेका काम।

थापना ( हिं० क्रि० ) स्थापित करना, बैठाना। २ हाथ या साँचेसे पीट या दबा कर किसी गीली वस्तुको कुछ बनाना। ( स्त्री० ) ३ प्रतिष्ठा, स्थापन। ४ नवरात्रमें

दुर्गा पूजाके लिये घट स्थापना। ५ किसी प्रतिमाको स्थापना या प्रतिष्ठा।

थापरा (हिं॰ पु॰) छोटी नाव, डोंगी।

थापा (हिं॰ पु॰) १ पंजेका छापा या निशान जिसे स्त्रियां किसी मङ्गलके अवसर पर दीवार आदि पर बनाती हैं। २ पुञ्ज, राशि, ढेर। ३ गोली सामग्री दबा कर या डालकर कोई वस्तु बनानेका सांचा। ४ नेपालियोंकी एक जाति। ५ चन्दा जो गांवमें देवो देवताको पूजाके लिये संग्रह किया जाता है। ६ गोवर आदिका वह निशान जो खलियानमें अनाजके ढेर पर लगाया जाता है, चांकी। ७ रंग आदि पोत कर कोई चिह्न अङ्कित करनेका सांचा, छापा।

थापिया (हिं॰ स्त्री॰) थापी देखो।

थापो (हिं॰ स्त्री॰) १ काठका बना हुआ चौड़े सिरेको एक मुंगरी। इससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटता है। २ गच पीटनेकी राज या कारीगरकी चिपटी मुँगरी।

थाम (हिं॰ पु॰) १ स्तम्भ, खंभा। २ मस्तूल। (स्त्री॰) ३ थामनेकी क्रिया या ढंग, पकड़।

थामना (हिं॰ क्रि॰) १ गति अवरुद्ध करना। २ गिरने पड़नेसे बचाना। ३ किसी कार्यका भार ग्रहण करना। ४ हाथमें लेना, पकड़ना। ५ सहायता देना, सहारा देना। ६ चौकसीमें रखना, पहरेमें करना।

थायेतम्यो—निम्न ब्रह्माके पेगूके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा॰ १८° ५२' से १९° ५८' उ॰ और देशा॰ ९४° ३४' से ९५° ५२' पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ४७५० वर्गमोल है। इसके उत्तरमें उत्तर ब्रह्म, पूर्वमें तोङ्गू जिला, दक्षिणमें प्रोम और पश्चिममें सान्दोये है। उत्तर ब्रह्मके ठीक निम्नभागमें अवस्थित होनेके कारण यह जिला निम्न ब्रह्मके सोमान्त प्रदेशको स्पर्श करता है। इरावतीका डेल्टा दखल करनेके बाद १८५३ ई॰में डलहौसीने इसे निम्नब्रह्मसे पृथक कर सीमा निर्दिष्ट कर दिया। यह जिला उत्तरमें आराकानसे पेगु-योमा गिरिमाला तक विस्तृत है। इसके पूर्वमें पेगु-योमा और पश्चिममें आराकान-योमा गिरिमाला है। शेषोक्त गिरिमाला ५००० फुट ऊँची है। कायितङ्ग, नातुदङ्ग और खोदङ्ग-मङ्गनिमा नामक इसके तीन शिखर हैं। यह पहाड़ देखनेमें बहुत सुन्दर है और इससे अनेक नदियां निकली हैं। चार गिरिपथ इस पर्वतश्रेणीके मध्य हो कर सान्दोये प्रदेशको चले गये हैं। ग्रीष्मकालके सिवा इन राहों हो कर जाना आना बहुत दुःसाध्य हो जाता है।

इरावती इस जिलेकी प्रधान नदी है जो थायेतम्योके उत्तरसे दक्षिण तक विस्तृत है। इसका किनारा बहुत ऊंचा है, इसीसे इस जिलेका कोई स्थान बाढ़से नहीं डूबता। इस नदीमें दो द्वीप हैं—थायेतम्योनगरके सामनेका येवत्त द्वीप और न्योङ्ग-बिन्-सिप द्वीप। ग्रीष्मकालमें इस नदीका जल बहुत घट जाने पर भी किसी जगह पांच फुटसे कम गहरा नहीं होता।

पश्चिमकी ओरसे तीन और पूर्वसे दो नदियां इरावतीमें आ गिरी हैं। प्रथम तीन नदियोंके नाम—पान, मातान और मदी तथा शेषोक्त दोके नाम कारिनी और बाटेट है। पान उत्तर ब्रह्मसे निकल कर कई मील जानेके बाद थायेतम्यो नगरके निकट और मातान निम्न ब्रह्मसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर १५० मील जानेके बाद कामानगरके निकट इरावतीमें गिरी है। पूर्वकी दो नदियोंमेंसे एक कायिनी नदी उत्तर ब्रह्मके योमाशैलसे निकल कर मायिदे नगरसे कुछ दूर इरावतीके साथ मिलती है। बाटले नदीके मुंह पर ४५० फुट लम्बा काठका एक पुल है जिसके ऊपर हो कर रंगून और मायिदेका रास्ता गया है।

इस जिलेमें बहुतसे गरम सोते बहते हैं। थायेतम्यो नगरसे ७ मील उत्तर पश्चिममें पदकविन नगरके निकट किरासन तेल पाया जाता है। जङ्गलमें चीता, वनबिलाव, हरिण, हाथी, गैंड़ा, बाघ आदि मिलते हैं।

ब्रह्मदेशके इतिहासमें थायेतम्योका नाम बहुत कम पाया जाता है। पहले इस अञ्चलमें प्यू स जातिके लोग रहते थे। भारतवर्षके धर्मयाजकोंने जब इस प्रदेशके लोगोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया, तब शायद इस जिलेका निम्नभाग थरचेत (श्रोचेत-यहांका प्रोम) के साथ संश्लिष्ट था। ४४४ ई॰ सन्के पहले द्यूत-ना-झेङ्गसे प्रोम वंश स्थापित होने पर यह प्रदेश उन्हींके राज्य भुक्त हुआ। बाद ही प्रोमवंशका पतन होने पर पहली शताब्दीके अन्तमें थमनद-रेतने पगनमें एक राज्य

बसाया। उनके वंशधरोंने ११०० वर्षसे अधिक राज्य किया। इस समय थायेतम्यो पगन राज्यके अन्तर्भुक्त था। पीछे यह जिला सान सरदारोंसे अधिकृत हुआ। १८५२-५३ ई०में जब ग्रेटब्रिटिश राज्यमें मिलाया गया, तब थायेतम्यो प्रोम प्रदेशका एक महकूमा हुआ। १८७० ई०में इसे पृथक् कर एक डिपटी कमिश्नरके अधीन कर दिया गया है।

इसमें थायेतम्यो और आलनम्यो नामके दो शहर तथा १२७५ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २३२८७०६ है। इनमेंसे अधिकांश लोग विशुद्ध मग वा ब्रह्मवंशके हैं। इसके सिवा और कई जातियां यहां वास करती हैं, यथा—चीन, तेलगू, तामिल, हिन्दुस्थानी, सान, करी, बङ्गाली, चीन देशीय और अन्यान्य।

जिलेके उत्पन्न द्रव्योंमें चावल, तेलहन, रुई तमाकू और प्याज प्रधान है।

इस जिलेसे कत्था, सुपारी, रुई, चावल, नमक, अपरिष्कृत रेशम और मिट्टीके बरतनोंकी रफ़्तनी और अपरिष्कृत रुई, रेशम नील, चमड़े आदिकी आमदनी होती है।

इस अञ्चलमें विद्याकी खूब उन्नति है। प्रति वर्ष १६ हजार रुपयेसे अधिक इस विभागमें खर्च होते हैं। यहाँ चार अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें कुल तीन शहर लगते हैं।

३ उपरोक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १८° २०' उ० और देशा० ९५° १२' पू०में इरावती नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। कहते हैं, कि १३०६ ई०में पगनके शेष राजाने यह शहर स्थापित हुआ है। लोकसंख्या प्रायः १५८२४ है। यहाँ अंग्रेजी सेनाओंका वास है। अप्रेल और मई मासमें यहाँ बहुत गरमी पड़ती है। शहरमें अस्पताल और स्कूल हैं।

**थारू**—बिहार और उत्तर भारतकी एक जाति। थारुओंकी उत्पत्तिके विषयमें नाना मतभेद पाये जाते हैं। इसकी 'रौतर' नामक श्रेणीका कहना है कि वे चित्तौरके राजपूतोंसे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता।

पूर्णियाके अन्तर्गत कुशी नदीसे कुमायूँ और नेपालके अन्तर्गत सारदानदी तक हिमालय निम्न-प्रदेशमें इस जातिका यत्र तत्र वास है। अति प्राचीन कालमें गोरखपुरके लालगञ्जके पास वातकान् और देवगञ्ज ग्राममें थारुओंका वास था, ऐसा वहांके लोगोंका विश्वास है।

थारू लोग देखनेमें काले तथा इनके सिरके बाल लम्बे और घने होते हैं। आकृति और चालचलन प्रायः स्थानीय लोगोंके समान ही होता है।

गोरखपुरके थारू लोग दो भागोंमें विभक्त है—एक पूरबी और दूसरे पछमी। पछमी लोग अपनेको ऊंचो बत लाते हैं और पूर्वियोंके साथ आहार विहार नहीं करते। पछमियोंमें भी दो थोक है—बड़का और छुटका। अयोध्याके अन्तर्गत गोण्डा प्रदेशके कठरिया और डंगरिया नामके थारुओंमें भी दो श्रेणी है। बिहारमें रउतर श्रेणी श्रेष्ठ समझी जाती है।

चितवनिया वा चितौनिया कहलानेवाले थारू जुलाहेका काम करते हैं। ये लोग मृतव्यक्तिको श्राद्धादि क्रियाएं नहीं करते और न इनकी स्त्रियाँ प्रसवके बाद अशौच-पालन ही करती हैं। बारातमें सिर्फ चार पाँच आदमी जाते हैं और गाना बजाना कुछ भी नहीं होता। बाल्य और प्रौढ़ दोनों प्रकारके विवाह इनमें प्रचलित है। लड़केका बाप नौ रुपये कन्याको देता है। यह प्रथा इनमें बहुत दिनोंसे प्रचलित है। परन्तु अवस्थाविशेषमें इसमें तारतम्य भी हो सकता है। नकी विवाह-प्रथा निम्नश्रेणीके हिन्दुओंके समान है। ब्राह्मण लोग पुरोहितका काम करते हैं। मर्दनिया और चितौनियोंके विवाहमें (विवाहसे पहले) वर पक्षवाले तीन दिन तक कन्या पक्षवालोंको खिलाते हैं। बड़ी उम्रमें ब्याह होनेसे वधूको शीघ्र ही स्वामीके पास आना पड़ता है। इस समय वधू और उसके साथ आनेवाले कुटुम्बियोंके स्वागतके लिए वरके घर "दुलहिन भतावन" (बहूभात) नामका उत्सव होता है। परन्तु वधूकी उम्र कम होने पर उसे पुनः पीहर जाना पड़ता है और ऋतुमती न होने तक वहीं रहना पड़ता है।

इनमें बहु-विवाह और विधवा विवाह प्रचलित है। विवाह बन्धन समाजकी अनुमतिसे छूट सकता है।

ऐसी दशामें परित्यक्ता स्त्री पुनः अपना विवाह कर सकती है। परन्तु यह विवाह विधवा-विवाहको तरह होता है। इस तरहको स्त्रीको दोनों पक्षवाले 'उढारी' स्त्री कहते हैं। परन्तु दूसरे पतिके आत्मीयवर्गको सम्मतिके बिना विवाहिता होने पर तथा 'भताना' न देनेसे ऐसी स्त्री 'सुरैतिन' वा वेश्याके समान समझी जाती है। समाजच्युत होने पर भी उसे 'भताना' देना पड़ता है।

आदिम असभ्य जातियोंमें प्रचलित प्राणोपूजा और प्रकृतिपूजाका मिश्रण ही थारुओंका धर्म है। वीर ऋचेश्वर इनके एक प्रधान उपास्य देवता हैं। दूर देशमें जानेसे पहले उनको पूजा को जाती है। खेरी जिलेके थारू लोग कहा करते हैं, कि राजचक्रवर्ती वेणके ऋचेश्वर वा रच्छ नामके एक पुत्र थे। राजाने क्रुद्ध हो कर आदेश किया कि उन्हें (ऋचेश्वरको) दल सहित उत्तरको ओर ऐसे स्थानमें निर्वासित किया जाय, जिससे फिर वे लौट न सकें। राजाके आदेशसे ऋचेश्वर अपने दल सहित निर्वासित हुए। रास्तेमें वे जहाँ तहाँ लूटने लगे; बलपूर्वक उन्होंने बहुतसी स्त्रियां भी इकट्ठी कीं। उन स्त्रियोंके गर्भसे जो सन्तान हुई, वह थारू कहलाने लगी। ऋचेश्वरने हिमालयके वनमें बड़े यत्नसे थारुओंको रक्षा की थी। थारुओंका विश्वास है, कि अब भी रणमें, वनमें, मार्गमें सब जगह ऋचेश्वर उनकी रक्षा करते हैं। ये मद्दैव और धरचण्डी नामके और भी दो देवताओंको पूजते हैं। गो, मेष, शूकर आदि निर्विघ्न विचरण कर सकें, इसके लिए ये धरचण्डीको पूजा करते हैं। ये 'मरी' नामक देवताको भी उपासना करते हैं। कोई कोई 'मरी' और हिन्दुओंकी कालीदेवीको एक ही समझते हैं। चम्पारणमें 'कुआं' ग्राम्यदेवताकी तरह पूजा जाता है। परन्तु फिलहाल इनमें शिव और कालीपूजाका प्रचार होनेसे उक्त देवताओंको पूजा क्रमशः घटती जाती है। थारू लोग कालिका देवीको ही जगत्में सर्वश्रेष्ठ देवता मानते और जीवन मरणकी कर्त्री समझ उनकी पूजा करते हैं। जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती, वे उसके लिए कालिकादेवीसे प्रार्थना करती हैं, गोण्डा प्रदेशके देवीपाटनमें कालिकादेवीके पूजोत्सवमें ये अनेक जन्तुओंका वध करते और उसीमें आनन्द मानते हैं। ये लोग भैरव, ठाकुर, महादेव आदि नामसे शिवके लिङ्गको प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा करते हैं। थारू लोग उन्हें सृष्टिके स्थितिकर्त्ता मानते हैं। बहुतसे थारुओंके मकानके सामने मिट्टीके टीले पर मिट्टीके शिवलिङ्ग देखनेमें आते हैं।

अभी अधिकतासे हिन्दूधर्मको मान कर चलने परे भी थारुओंका पूर्व विश्वास तिरोहित नहीं हुआ है। ज्वर, खाँसी, उदरामय, मूर्च्छा, शिरःपीड़ा, उन्माद, दुःस्वप्न तथा अन्यान्य रोगोंके उपस्थित होने पर ये उसे उपदेवताका कार्य समझते हैं। किसी भी प्रकारको पीड़ा क्यों न हो, ये ओझाको अवश्य बुलाते हैं। उन लोगोंके दिलमें ऐसा विश्वास बैठा हुआ है, कि अधिकांश उपदेवता ओझाओंकी आज्ञा मानते हैं, ओझा चाहें तो पीड़ित शरीरसे भूतको अलग कर सकते हैं और चाहें तो उन्हें स्थानान्तरित कर शत्रुओंको कष्ट दे सकते हैं, प्राण तक नष्ट कर सकते हैं। इसलिए थारू लोग ओझाओंसे बहुत डरते हैं। भूत झाड़ते समय ओझा बायें हाथमें काण्डेकी राख और सरसों ले कर कालिकादेवीके लिए निम्न लिखित मन्त्र पढ़ते हैं—

"गुरु है गुरु सैर तन्त्र मन्त्र गुरु, लखे निरञ्जन, तोका सोहै फूलका भार, हमका सोहै गुन विद्याके भार; जहान जै विद्या नहीं, कमरा कामके विद्या। जैसे विद्या कमरू कान के लागै, ऐसे विद्या लागइ मोर।"

थारुओंकी अन्त्येष्टिक्रिया नाना प्रकारकी है। बहुतोंके मतसे पहले ये लोग मुरदेको सिर्फ गाड़ दिया करते थे। परन्तु अब हिन्दुओंको देखा-देखी ये शवदाह करने लगे हैं; सिर्फ हैजा और चेचकवालेको गाड़ते हैं गाड़ने वा दाह करनेसे पहले ये सिन्दूर लपेट कर मुरदेको एक रात्रि घरके सामने मिट्टीके टीले पर सुला रखते हैं। थारुओंका विश्वास है, कि रातको मृत व्यक्तिको प्रेतात्मा वन्य जन्तुओंको खदेड़ कर शवकी रक्षा करती है। अन्त्येष्टि क्रिया ग्रामके दक्षिणांशमें होती है। दाहके बाद उसकी भस्म ले कर पासकी नदीमें डालते हैं। जो पहले चितामें आग लगाता है, उसे १० दिन तक

पातक रहता है। अशुचि-अवस्थामें उसको कोई भी छूता नहीं, उसे अकेला रहना पड़ता है। दश दिनके बाद (कहीं कहीं १२ दिन बाद) मृत व्यक्तिके आत्मीय लोग उसके घर आ कर चौरकर्म और पान-भोजनादि करते हैं, जिसमें मद्य-मांसका भी व्यवहार होता है।

ज्ञानी, शिकारमें सिद्धहस्त, ऐन्द्रजालिक वा भैषज्य वित् किसी प्रधान व्यक्तिकी मृत्यु होने पर उसे घरमें ही गाड़ देते हैं। उस दिनसे वह घर देवमन्दिरके समान समझा जाता है, उस घरमें फिर कोई रहता नहीं। थारुओंका कहना है, कि उस घरमें सिर्फ मृत व्यक्तिकी आत्मा ही अधिष्ठित रहती है और वह अपने परिवारवर्ग-को आशीर्वाद दिया करती है। तीन वा छः महीने बाद मृत व्यक्तिके आत्मीय और प्रतिवासीगण उस शवमन्दिरमें आते हैं। यहां मिट्टीसे प्रतिमूर्ति बना कर उसे तरह तरहके रंगोंसे रंगते हैं, यही मृत व्यक्तिकी प्रतिमा समझी जाती है। प्रतिमाके प्रस्तुत होने पर उसके पैरों पर रँधा हुआ मांस और शराब चढ़ा कर सब जमीन पर लेट कर विलाप करते रहते हैं। उसके बाद किसी निदर्शनको देख कर जब वे समझ लेते हैं कि मृत व्यक्तिकी आत्मा मूर्तिमें प्रविष्ट हो चुकी, तब सब आनन्दसे नाचते गाते हैं और अन्तमें उस प्रसादी मद्य-मांसको खा जाते हैं।

हिन्दू लोग थारुओंके हाथका पानी नहीं पीते। हिन्दूओंके लिए ये अस्पृश्य अन्त्यज जातिमें शामिल हैं। थारुजाति अत्यन्त शान्तिप्रिय है। किसी भी हिन्दू-जातिसे इनका झगड़ा नहीं होता।

ये झुम प्रथाके अनुसार खेती करते हैं। कृषिजीवी होने पर भी ये अकसर अपना स्थान बदला करते हैं। ये लोग जंगली हाथी पकड़नेमें बड़े सिद्धहस्त हैं। इनमें अच्छे अच्छे माहुत पाये जाते हैं।

थारू लोग बांका नामके तृणसे एक तरहकी खूब-सूरत चटाई बनाते हैं।

बङ्गालमें करीब २० हजार थारुओंका वास है।

थाल (हिं॰ पु॰) बड़ी थाली।

थाला (हि॰ पु॰) १ आलवाल, थाँवला। २ कुंडी जिसमें ताला लगाया जाता है।

थाली (हिं॰ स्त्री॰) १ गोल छिछला बरतन जो काँसे या पीतलका बना होता है, बड़ी तश्तरी। २ नाचकी एक गत।

थाव (हिं॰ स्त्री॰) थाह देखो।

थाह (हिं॰ स्त्री॰) १ गहराईका अन्त, जलाशयका तल भाग। २ कम गहरा पानी। ३ गहराईका पता। ४ किसी संख्या वा परिमाणका अनुमान। ५ परिमिति, अन्त, हद। ६ गुप्त रीतिसे लगाया हुआ किसी बातका पता। ७ चित्तकी बातका पता।

थाहना (हिं॰ क्रि॰) १ गहराईका पता लगाना। २ अनुमान करना, अंदाज लेना।

थिएटर (अं॰ पु॰) १ रंगभूमि, रंग शाला। २ नाटकका अभिनय।

थिगली (हिं॰ स्त्री॰) १ कपड़े आदिका छोटा टुकड़ा जो किसी बड़े कपड़े आदिका छेद बंद करनेके लिये जोड़ कर सी दिया जाता है, चकती।

थिति (हिं॰ स्त्री॰) १ स्थायित्व, ठहराव। २ वह स्थान जहां आकर विश्राम किया जाता है। ३ रहन, रहाइस। ४ रक्षा। ५ अवस्था, दशा।

थिबाऊ (हिं॰ पु॰) दहिने अंगका फड़कना। इसे ठग लोग अपने लिये अशुभ समझते हैं।

थिर (हिं॰ वि॰) १ अचल, ठहरा हुआ। २ शान्त, धीर। ३ स्थायी, दृढ़।

थिरक (हिं॰ पु॰) नृत्यमें पैरोंका हिलना डोलना।

थिरकना (हिं॰ क्रि॰) १ नृत्यमें अङ्ग सञ्चालन करना। २ ठमक ठमक कर नाचना।

थिरता (हिं॰ स्त्री॰) १ अचलत्व, ठहराव। २ स्थायित्व। ३ अचञ्चलता, शान्ति।

थिरथिरा (हिं॰ पु॰) भारतवर्षका एक प्रकारका बुल-बुल। यह प्रायः जाड़ेके दिनोंमें ही दिखाई पड़ता है।

थिरना (हिं॰ क्रि॰) १ जलका क्षुब्ध न रहना, पानीका हिलना डोलना, बंद होना। २ पानी छन जाना, निथ-रना। ३ पानीमें मिली हुई गन्दी वस्तुका उसके पेंदेमें जा कर जमना। ४ थिर कर साफ होना।

थिराना (हिं॰ क्रि॰) १ लहराते हुए जलको स्थिर होने देना। २ पानी या और किसी पतली चीजको स्थिर

करना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय। ३ थिरा कर किसी घुली हुई वस्तुको नीचे बैठने देना। ४ थिरा कर पानी छानना।

थी (हिं॰ क्रि॰) 'था'का स्त्री।

थीहरा (हिं॰ पु॰) आपत्तिके समय रक्षा या सहायताका भार। ग्रामका प्रत्येक समर्थ मनुष्य बारी बारीसे इस तरहका भार अपने ऊपर लेता है।

थीबो—ब्रह्मदेशके अन्तिम स्वाधीन राजाका नाम।

थोरागढ़—कर्णाट प्रदेशका एक नगर।

थुकवाना (हिं॰ क्रि॰) थुकाना देखो।

थुकहाई (हिं॰ वि॰) थूकी जाने योग्य स्त्री, जिसकी निन्दा सब करते हों।

थुकाई (हिं॰ स्त्री॰) थूकनेका काम।

थुकाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी दूसरेसे थूकनेका काम कराना। २ उगलवाना। ३ तिरस्कार या निन्दा कराना।

थुकाफजीहत (हिं॰ स्त्री॰) निन्दा और तिरस्कार, धिक्कार।

थुकी (हिं॰ स्त्री॰) रेशमके तागोंमें उन्हें सुलझानेके लिये थूकका लगाना।

थुड़ी (हिं॰ स्त्री॰) धिक्कार, लानत।

थुत्कार (सं॰ पु॰) क्र-भावे घञ्, थुत् इत्यव्यक्तशब्दस्य कारः करणं यत्र। निष्ठीवन, वह शब्द जो थूक फेंकनेसे होता है।

थुथना (हिं॰ पु॰) थूथन देखो।

थुथाना (हिं॰ क्रि॰) अप्रसन्न होना, मुंह फुलाना।

थुथुक्त (सं॰ स्त्री॰) थुथु इत्य व्यक्तशब्दं करोत्यस्यां क्र-वा॰ आधारे क्विप्। १ हैलाका, वह आवाज जो जोरसे थूकनेमें मुंहसे निकलती है। २ पक्षीविशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

थुनेर (हिं॰ पु॰) गठिवनका एक भेद।

थुन्नी (हिं॰ स्त्री॰) स्तम्भ, खंभा, चांड़।

थुपरना (हिं॰ क्रि॰) गरमी पहुँचानेके लिये मड़ुवेकी बालोंका ढेर लगाकर दबाना।

थुपरा (हिं॰ पु॰) मड़ुवेके बालोंका ढेर।

थुरना (हिं॰ क्रि॰) १ कूटना। २ मारना, पीटना।

थुरहथा (हिं॰ वि॰) १ छोटे हाथवाला, जिसकी हथेलीमें कमचीज आवे। २ किफायत करनेवाला।



थुर्वण (सं॰ क्लो॰) थुर्व भावे ल्युट्। हनन, हत्या, कतल।

थुलना (हिं॰ पु॰) पहाड़ी ऊनी कपड़ा वा कम्बल।

थुली (हिं॰ स्त्री॰) दल कर कई टुकड़े किया हुआ अनाज, दलिया।

थुवा (हिं॰ पु॰) थूवा देखो।

थूंक (हिं॰ पु॰) थूक देखो।

थूंकना (हिं॰ क्रि॰) थूकना देखो।

थू (हिं॰ अव्य॰) १ थूकनेका शब्द। २ तिरस्कार सूचक शब्द, धिक्, छिः।

थूक (हिं॰ पु॰) निष्ठीवन, खखार, लार। मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवोंको जिह्वाके अग्र भाग तथा मुखके अभ्यन्तरकी मांसल झिल्लियोंमें अत्यन्त उभरे हुए सूक्ष्म-छिद्र होते जो दानेकी तरह दीख पड़ते हैं। ये छिद्र एक प्रकारके गाढ़े रससे भरे रहते हैं। भिन्न भिन्न जन्तुओंमें भिन्न भिन्न प्रकारका रस होता है। मनुष्य आदि प्राणियोंके थूकमें मिला हुआ रासायनिक द्रव्य पाचनमें सहायता देता है।

थूकना (हिं॰ क्रि॰) १ मुंहसे थूक फेंकना। २ मुंहमें रखी हुई वस्तुको गिराना, उगलना। ३ तिरस्कृत करना, निन्दा करना, धिक्कारना।

थूथन (हिं॰ पु॰) लम्बा निकला हुआ मुंह।

थूथनी (हिं॰ स्त्री॰) १ थथून देखो। २ हाथोके मुंहका एक रोग। इसमें उसके तालूमें घाव हो जाता है।

थूथरा (हिं॰ वि॰) वह मुँह जो थूथनके जैसा बाहर निकला रहता है, भद्दा चेहरा।

थून (हिं॰ स्त्री॰) १ स्तम्भ, खंभा, चांड़। (पु॰) २ मन्द्राजमें होनेवाला एक प्रकारका गन्ना।

थूना (हिं॰ पु॰) मट्टोका लौंदा। यह परेता खोंस कर सूत या रेशम फेरनेके काममें आता है।

थूनी (हिं॰ स्त्री॰) १ स्तम्भ, खंभा, थम। २ सहारेका खंभा, चाँड़। ३ गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सीका फंदा लगा कर मथानीका डंडा अटकाया जाता है।

थूबी (हिं॰ स्त्री॰) साँपका विष दूर करनेकी एक युक्ति। इसमें लोहेसे काटे हुए स्थानको दागते हैं।

थूरना (हिं॰ क्रि॰) १ दलित करना, कूटना। २ ठूस

ठूस कर खाना। ३ मारना, पीटना। ४ कस कर भरना ठूसना।

थूर्त्त (सं० वि०) थूर्व्-क्त। विनाशित, जिसकी हानि हुई हो।

थूला (हिं० वि०) हृष्ट पुष्ट, मोटा ताजा।

थूली (हिं० स्त्री०) १ अनाजका वह मोटा कण जो टल कर अलग किया जाता है। २ गायको बच्चा जनने पर दिये जानेका पकाया हुआ दलिया। ३ सूजी।

थूवा (हिं० पु०) १ ऊंचो भूमि, टीला। २ मट्टीका लोंदा। ३ ढूहके आकारका काला रंगा हुआ पिंडा। तम्बाकू बेचनेवाले इसे अपनी दूकानों पर चिह्नके लिये रखते हैं। ४ गोली मट्टोका पिंडा, धोंधा। ५ सीमा सूचक स्तूप, मट्टोका वह चिह्न जो सरहदके निशानके लिये उठाया जाता है। (स्त्री०) ६ धिक्कारका शब्द।

थूहर (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी टहनियां लचीली नहीं होतीं, गांठों परसे गुल्ली या डंडेके आकारके डंठल निकलते हैं। इसके कई भेद हैं। किसीमें बहुत मोटे दलके लम्बे पत्ते होते हैं और किसीमें एक भी पत्ता नहीं होता। इसके डंठलों और पत्तोंमें कड़ुआ दूध भरा रहता है। इसमें पीले रंगके फूल भी लगते हैं। औषधके काममें इसका दूध बहुत उपयोगी है। यदि दूधमें सानी हुई बाजरेके आँटेकी गोली कुछ काल तक रख कर सेवन करे तो पेटका दर्द जाता रहता है और पेट भी परिष्कार हो जाता है। थूहरके दूधमें भिगोई हुई चनेकी दाल जुलाबका काम देती है। इसकी राखसे निकाला हुआ खार भी दवामें बहुत काम देता है और इसका कोयला बारूद बनानेके काममें आता है। विशेष विवरण स्नुही शब्दमें देखो।

थूहा (हिं० पु०) १ राशि, ढेर, ढूह। २ ऊंचो भूमि, टीला।

थूही (हिं० स्त्री०) १ मट्टीका ढेर। २ मट्टीके खंभे। इन पर गाड़ी या घिरनीकी लकड़ी ठहराई जाती है।

थेंथर (हिं० वि०) श्रान्त, सुस्त, हैरान।

थेईथेई (हिं० बि०) ताल सूचक नाचकी आवाज और मुद्रा।

थेगली (हिं० वि०) थिगली देखो।

थेवा (हिं० पु०) १ अंगूठीका नगीना। २ मुहर खोदी जानेका धातुका पत्र। ३ नगीना जड़नेका अंगूठीका एक घर।

थेवेनो (कनिष्ठ) एक प्रसिद्ध भ्रमणकारी। इन्होंने पारसमें जन्मग्रहण किया था। फ्रान्सके मियाना नगरमें १६६७ ई० ता० १८ नवेम्बरको इनकी मृत्यु हुई। ये Petis de la Croiz के मित्र थे और इसलिए इन्होंने उनके Memoirs नामक ग्रन्थका संशोधन किया था। यह ग्रन्थ (१६८८ ई०में) तीन खण्डोंमें छपा था। थेवेनो १६६५ ई० ता० ६ नवम्बरको वसोरासे जहाज पर सवार हो जनवरीको १० तारीखको सूरत आए थे। ये भड़ौंच होते हुए अहमदाबाद, बम्बई, आगरा, देहली, इलाहाबाद, बरहमपुर, गोया, गोलकुण्डा, हैद्राबाद, मछलीपट्टम, सूरत, बन्दर अब्बास, सिराज, कूम और फरसङ्ग भ्रमण कर मियाना पहुंचे थे। इनके भ्रमण-वृत्तान्तसे उस समयकी भारतकी अवस्थाका कुछ कुछ परिज्ञान हो सकता है।

थैंचा (हिं० पु०) वह छप्पर जो खेतमें मचानके ऊपर रखा जाता है।

थैला (हिं० पु०) किसी वस्तुको भर कर बन्द करनेका एक पात्र जो कपड़े टाट आदिको सी कर बनाया जाता है, बड़ा कोश। २ जंघेसे लेकर घुटने तकका पायजामेका एक भाग। ३ वह कोश जिसमें रुपये भरे रहते हैं, तोड़ा।

थैली (हिं० स्त्री०) १ छोटा थैला, कोसा। २ रुपयोंसे परिपूर्ण कोश, तोड़ा।

थैलीदार (हिं० पु०) १ खजानेमें रुपये उठानेका एक मनुष्य। २ तहसीलदार, रोकड़िया।

थैलीबरदारी (हिं० स्त्री०) थैली उठा कर पहुंचानेका कार्य, थैलियोंकी ढोआई।

थोक (हिं० पु०) १ पुञ्ज, राशि, ढेर। २ समूह, झुण्ड, जत्था। ३ वह स्थान जहां कई एक ग्रामोंकी सीमाएं मिलती हों। ४ इकट्ठा बेचनेकी चीज। ५ एकत्रित वस्तु, कुल। ६ किसी खास एक आदमीका जमीनका टुकड़ा।

थोकदार (हिं० पु०) वह व्यापारी जो इकट्ठा माल बेचता हो।

थोडन ( सं० क्ली० ) थुड़-ल्युट्। सम्बरण, आच्छादन ढकना।

थोड़ा ( हिं० वि० ) न्यून, अल्प, कम, जरासा।

थोती ( हिं० स्त्री० ) मवेशीके मुखका अग्रभाग, थूथन।

थोथ (हिं० स्त्री०) १ निःसारता, खोखलापन। २ तोंद, पेटी।

थोथरा ( हिं० वि० ) १ खोखला, खाली। २ निःसार, पोला। ३ व्यर्थका, निकम्मा।

थोथा ( हिं० वि० ) १ जो बिना सारका हो, खोखला। २ कुण्ठित, भोथा, जिसकी धार तेज न हो। ३ बिना पूंछका, बांड़ा। ४ व्यर्थका, निकम्मा। ( पु० ) ५ मट्टीका वह साँचा जिसमें बरतन ढाला जाता है।

थोथी ( हिं० स्त्री० ) एक प्रकारकी घास।

थोपड़ी ( हिं० स्त्री० ) थप्पड़, चपत, धौल।

थोपना ( हिं० क्रि० ) १ पानीमें सनी हुई वस्तुके लोंदेको चिपकानेके लिये दूसरी वस्तु पर फैला कर डालना। २ आक्रमण आदिसे रक्षा करना, बचाना। ३ मोटा लेप चढ़ाना। ४ आरोपित करना, मत्थे मढ़ना।

थोबड़ ( हिं० पु० ) थूथन।

थोब रखना ( हिं० क्रि० ) जहाजको धार पर चढ़ाना।

थोरी ( हिं० स्त्री० ) एक हीन अनार्य जाति।

थौनेयक ( सं० पु० ) ग्रन्थि पर्ण, गठिवनका पेड़।

# द

द—दकार, संस्कृत एवं हिन्दी वर्णमालाका अठारहवां व्यञ्जनवर्ण और तवर्गका तीसरा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान दन्तमूल है। दन्तमूलके साथ जिह्वाके अग्रभागका स्पर्श होने पर इस वर्णका उच्चारण होता है, इसलिए इसमें स्पर्शवर्णता है। इस वर्णके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष वाह्यप्रयत्न होते हैं। यह अल्पप्राण है। इसके पर्याय—अद्रि, ईश, धातकी, धाता, दाता, त्रास, कलत्रक, दीन, ज्ञान, दान, भक्ति, आवहनी, धरा, सुषुम्ना, योगिनी, सद्यःकुन्तल, वामगुल्फक, कात्यायनी, शिवा, दुर्गा, अनङ्गनामा, त्रिकण्टकी, स्वस्तिक, कुटिलारूप, कृष्ण, श्यामा, जितेन्द्रिय, धर्मकृत, वासदेव, भ्रमरेश, सुचञ्चला, हरिद्रापुरवेदी, दक्षपाणि, त्रिरेखक। ( वर्णाभिधान ) इसकी अधिष्ठात्री देवीका ध्यान इस प्रकार है—

"ध्यानमस्य दकारस्य वक्ष्यते शृणु पार्वति।
चतुर्भुजां पीतवस्त्रां नवयौवनसंस्थितां॥
अनेकरत्नघटितहारनूपुरशोभितां।
एवं ध्यात्वा दकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
त्रिशक्तिसहितं देवि त्रिबिन्दुसहितं तथा।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं दकारं प्रणमाम्यहम्॥" (वर्णोद्धारत०)

दकारकी अधिष्ठात्री देवी चतुर्भुजा, पीतवस्त्रपरिधाना और नवयुवती तथा नाना रत्नादि खचित हार नूपुरादिसे सुशोभित है। इस प्रकार दकारका ध्यान कर इसका दश बार जप करना चाहिये। पीछे त्रिशक्ति संयुक्त, त्रिबिन्दुसहित और आत्मादि तत्त्व संयुक्त दकारको प्रणाम करना चाहिए। कामधेनुतन्त्रमें दकारका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

दकार चतुर्वर्ग-प्रदायक है, पञ्चदेवमय और पञ्चप्राणमय है, त्रिशक्ति और त्रिगुणयुक्त है, रक्तविद्युल्लताकार और आत्मादितत्त्वसंयुक्त है। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग होने पर सुखकी प्राप्ति होती है। (वृत्तर० टीका) मातृकान्यासमें इस वर्णके वामगुल्फमें न्यास किया जाता है।

द ( सं० पु० ) दैप शब्दे वा दा दाने दो वाहुलकात् क। १ अचल, पर्वत, पहाड़। २ दन्त, दाँत। ३ दाता। ददाति आनन्दमिति दा-क। ( स्त्री० ) ४ भार्या, स्त्री। दो खण्डने सम्पादितात् भावे क्विप्। ( क्ली० ) ५ खण्डन। ६ रक्षण, रक्षा। ददाति दा-क। (त्रि०) दाता, देनेवाला।

दई ( हिं० पु० ) १ ईश्वर, विधाता। २ दैव संयोग, प्रारब्ध।

दईमारा (हिं० वि०) जिस पर ईश्वरका कोप हो, अभागा, कमबख्त।

दंग (फा० वि०) १ आश्चर्यान्वित, विस्मित, चकित (पु०) २ भय, डर।

दंगई (हिं० वि०) उपद्रवी, लड़ाका, झगड़ालू।

दंगल (फा० पु०) १ मल्लयुद्ध, पहलवानोंकी कुश्ती। २ वह स्थान जहां पहलवान लड़ते हैं, अखाड़ा। ३ समूह, जमात, दल। ४ बहुत मोटा तोशक।

दंगवारा (हिं० पु०) किसानोंको आपसमें हल बैल देकर सहायता, जिता, हरसोत।

दंगा (फा० पु०) उपद्रव, बखेड़ा। २ शोरगुल, गुलगपाड़ा।

दंगैत (हिं० वि०) १ उपद्रवी, लड़ाका। २ बागी।

दँतिया (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे दाँत।

दंद (हिं० स्त्री०) १ वह गरमी जो किसी पदार्थसे निकलती है। (पु०) २ द्वन्द्व, लड़ाई झगड़ा। ३ हल्ला गुल्ला, गुलगपाड़ा।

दंदाना (फा० पु०) उभरी हुई वस्तुओंकी पंक्ति जो दांतके आकारसी होती है।

दंदानेदार (फा० वि०) जिसमें दाँतकी तरह निकले हुए कंगूरोंकी पंक्ति हो।

दंदारू (हिं० पु०) छाला, फफोला।

दंदी (हिं० वि०) उपद्रवी, झगड़ालू।

दंवरी (हिं० स्त्री०) बैलोंसे रौंदवानेका काम जिससे अनाजके सूखे डंठलोंमेंसे दाने झड़ जाते हैं।

दंश (सं० पु०) दंश दंशने पदाद्यच्। कीटविशेष, डांस, बगदर। इसका पर्याय—वनमक्षिका, गोमक्षिका, अरण्यमक्षिका, भम्भरालिका, पांशुर, दंशक, दुष्टमुख, क्रूर, क्षुद्रिका और दंशमशक है। विष्ठा, मूत्र, मृतदेह और सड़े हुए अंडोंसे दंश प्रभृति अनेक तरहके कीड़े उत्पन्न होते हैं। इसके काटनेसे शरीरमें सूजन और पीड़ा होती है। दशतीव शरीरं। २ वर्म, बकतर। दंश भावे घञ्। ३ दंशन, दाँत काटनेकी क्रिया। ४ दोष। ५ सर्पक्षत, साँपके काटनेका घाव। ६ दन्तक्षत, दाँत काटनेसे उत्पन्न घाव। ७ द्वेष, वैर। ८ दन्त दांत। ९ विषैले जन्तुओंका डंक। १० आक्षेप वचन, कटूक्ति, बौछार। ११ एक असुर जिसकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है—

सत्ययुगमें दंश नामका एक प्रबल पराक्रान्त असुर रहता था। वह भृगु मुनिसे ज्यादा उमरका था। एकदिन वह असुर भृगुकी स्त्रीको हर ले गया। इस पर भृगुने अत्यन्त क्रोधित हो कर उसे शाप दिया कि, 'तू मल मूत्रका कीड़ा हो जा।' शापसे डर कर जब असुरने भृगुसे बार बार क्षमा प्रार्थना की, तब उनका शरीर दयासे पिघल गया और बोले—"मेरे वंशमें जो राम होंगे वही तुझे मुक्त करेंगे।" बाद यह दंश कीटयोनिको प्राप्त हुआ। कर्ण जब परशुरामसे अस्त्रविद्या सीख रहे थे, तब एक दिन परशुराम कर्णकी जांघ पर अपना सिर रख कर सो गये। ठीक उसी समय वह कीड़ा कर्णके समीप पहुँच उनकी जांघमें काटने लगा। गुरुकी निद्रा भङ्ग होनेके डरसे कर्णने अपनी जांघ न हटाई। कुछ समय बाद जब जांघसे रक्तकी धारा निकल कर परशुरामके शरीर पर गिरने लगी, तब परशुरामकी नींद टूटी। कर्णने सारा हाल गुरुसे कह सुनाया।

परशुरामने कर्णकी बात सुन कर उस कीड़ेकी ओर ताका। वह सफेद कीड़ा था और उसके शरीरका आकार सूअर सा, दांत तेज और समूचा शरीर सूई सरीखे रोएँसे ढका था। परशुरामके ताकतेही कीड़ेने उसी रक्तके बीच अपना कीट शरीर छोड़ा और शापसे विमुक्त हो कर रामसे प्रार्थना की। बाद वह अपने स्थानको चला गया। (भारत शान्तिप० ३४०)

दंशक (सं० पु०) दशतीति दन्श-ण्वुल्। १ दंश, डांस नामकी मक्खी। २ नृपभेद, एक राजाका नाम। ये काम्पन देशके अधिपति थे। (त्रि०) ३ दंशनकर्त्ता, काटनेवाला; जो दाँतसे काट खाय।

दंशन (सं० पु०) १ दाँतसे काटना, डसना। २ वर्म, कवच।

दंशनाशिनी (सं० स्त्री०) दंशं नाशयति नाशि-णिनि-ङीप्। तैलकीटभेद, एक प्रकारका तेलका कीड़ा।

दंशभीरु (सं० पु०) दंशात् वनमक्षिकातः भीरुः। महिष, भैंसा।

दंशमूल (सं० पु०) दंशवदुग्रं मूलमस्य। शिग्रुवृक्ष, सहजनका पेड़।

दंशवदन (सं० पु०) कङ्क पक्षी, सफेद चील, कांक।

दंशिका (सं० स्त्री०) वनमक्षिका, डांस।

दंशित (सं० त्रि०) दंशो वर्म सञ्जातोऽस्य परिहित-त्वादिति. दंश तारकादित्वात् इतच्। १ वर्मित, कवच आदिसे ढका हुआ। दंश्यते दन्श णिच् भावे क्त। दष्ट, दाँतसे काटा हुआ।

दंशी (सं० स्त्री०) क्षुद्रो दंशः स्वल्पार्थे ङीष्, वा दश-तीति दंश-अच् गौरा ङीष्। १ क्षुद्र दंश, छोटा डांस। २ कुकुर, कुत्ता। (त्रि०) जो दांतसे काटता हो, डसने वाला। ४ कटूक्ति कहनेवाला, आक्षेप वचन कहने वाला। ५ द्वेषी, वैर रखनेवाला।

दंशूक (सं० त्रि०) दन्श वाहुलकात् ऊक। दंशन-शील, डसने योग्य।

दंशेर (सं० त्रि०) दंश वाहु० एरक्। अपकारक, बुराई करनेवाला।

दंष्ट्र (सं० पु०) १ दन्श-त्र। २ दन्त, दांत। ३ शूकर, सूअर।

दंष्ट्रा (सं० स्त्री०) दश्यतेऽनया दन्श करणे ष्ट्रन्, (दाम्नीशसेति। पा ३।२।१८२) वा 'सर्वधातुभ्य ष्ट्रन्' इति ष्ट्रन्। १ स्थूल दन्तभेद, बड़े बड़े दाँत, दाढ़, चौभर। २ वृश्चिकाली, बिछुआ नामका पौधा। इसमें रोईंदार फल लगते हैं।

दंष्ट्रानखविष (सं० पु०) दंष्ट्रायां नखे च विषं यस्य। मार्जारादि, वह जन्तु जिसके नख और दांतमें विष हो। बिल्ली, कुत्ता, बन्दर, मकर, मेंढ़क, प्रचलाक (कोड़ा,) छिपकली, गोह, सांप और चार पैर वाले कीड़े दंष्ट्रा-नख, विष। उनके दांत, नख, मूत, विष्ठा, वीर्य, लार, रज, मुँह आदिमें विष रहता है।

दंष्ट्रायुध (सं० पु०) दंष्ट्रा आयुध इव यस्य। वराह, सूअर।

दंष्ट्राल (सं० त्रि०) दंष्ट्रा अस्ति चूड़ादित्वात् ल। १ दंष्ट्रायुक्त, बड़े बड़े दांतोंवाला। (पु०) २ राक्षस-विशेष, एक राक्षसका नाम।

दंष्ट्राविष (सं० पु०) दंष्ट्रायां विषमस्य। भौम सर्प, वह साप जिसके दाँतोंमें विष रहता है।

दंष्ट्रास्त्र (सं० पु०-स्त्री०) दंष्ट्राऽस्त्रमिवास्य। वराह, सूअर।

दंष्ट्रिका (सं० स्त्री०) दंष्ट्रो विद्यतेऽस्याः, दंष्ट्रा, ठन्। १ दंष्ट्रा, दाढ़, चौभर। (त्रि०) २ दंष्ट्रायुक्त, जिसके दाढ़ हो।

दंष्ट्री (सं० पु०-स्त्री०) प्रशस्ता दंष्ट्रा अस्त्यस्य इति इनि। १ शूकर, सूअर। २ सर्प, साप। (त्रि०) ३ दंष्ट्रायुक्त, बड़े बड़े दांतवाला।

दंसना (सं० स्त्री०) दंस, चुरादित्वात् णिच्, ततोभावे युच्। कर्म, काम।

दंसनावत् (सं० त्रि०) दंसना विद्यतेऽस्य मतुप्, ततो मस्य वः। १ कर्मयुक्त। २ अलौकिक शक्तिमान, जिसे खूब ताकत हो।

दंसस् (सं० क्ली०) दसस्-असुन्। कर्म, काम।

दंसि (सं० पु०) दन्स-इन्। कर्म, काम।

दंसिष्ठ (सं० त्रि०) दन्स तृण् दंसयिता अतिशयेन सः इष्ठन् तृणो लुकि णिलोपः। १ अत्यन्त कर्मकर्त्ता, जो खूब काम करता हो। २ दर्शनीयतम, देखने योग्य। ३ अत्यन्त शत्रुहिंसक।

दंसु (सं० क्ली०) अलौकिक शक्ति, अद्भुत ताकत।

दंसुजूत (सं० त्रि०) दान्त अश्वद्वारा सुष्ठु प्रेरित, जो खूब तेज घोड़ेसे भेजा गया हो।

दंसुपत्नी (सं० स्त्री०) १ वह जिसे अलौकिक शक्ति-सम्पन्न मालिक हो। २ दमन करने वाट असुरोंके पति।

दक (सं० क्ली०) उदक पृषोदरादित्वात् साधुः। जल, पानी।

दकलावणिक (सं० पु०) यूषविशेष।

दकार (सं० पु०) द स्वरूपे कारः। तवर्गका तीसरा अक्षर 'द'।

दकारादि (सं० त्रि) दकार आदिर्यस्य। जिसके आदि-में दकार हो।

दकारान्त (सं० त्रि०) दकारोऽन्तो यस्य। जिसके अन्तमें दकार हो।

दकीका (अ० पु०) १ कोई बारीक बात। २ युक्ति, उपाय। ३ शर्म, लज्जा।

दकोदर (सं० क्ली०) दकं जलस्फीतं उदरं यत्र। सुश्रुतोक्त उदररोगभेद, एक तरहकी पेटकी बीमारी। सुश्रुतमें ऐसा लिखा है, कि शरीरस्थ समस्त दोष पृथक्

रूपसे अथवा मिल कर प्लोहोदर, बद्धगुद, आगन्तुक और दकोदर आदि रोग उत्पन्न करते हैं।

दकोदरके लक्षण—स्नेहपान द्वारा अनुवासित होने वा वमन वा विरेचन कराने अथवा निरूढ़ वस्तिका प्रयोग करनेके बाद यदि शीतल जल पान किया जाय, तो जलवाहिनी नाड़ियोंके दूषित होने वा पहलेकी तरह जठरकी अंतड़ियां स्नेहोपलिप्त हो जाती हैं और उससे दकोदर हो जाता है। इस रोगमें नाभिमण्डल स्निग्ध किन्तु वृत्ताकारमें शीघ्र ही उन्नत और जलसे भरा हुआ सा हो जाता है। चर्मखण्ड जलपूर्ण होने पर जैसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दित होता है, दकोदरमें भी वैसा ही होता है।

इस रोगमें आध्मान, गमनकी अशक्ति, दौर्बल्य, शोफ, अङ्गोंकी अवसन्नता, वायु और मल रुक जाता है। (सुश्रुत) विशेष विवरणके लिये उदर शब्द देखो।

दक्खिन (हिं० पु०) दक्षिण देखो।

दक्खिनी (हिं० वि०) जो दक्षिण दिशामें हो, दक्खिनका। दाक्षिणी देखो।

दक्ष (सं० पु०) दक्ष कर्त्तरि अच्। १ ताम्रचूड़, मुर्गा। २ अत्रि ऋषि। ३ शिववृषभ, महादेवका बैल। ४ वृक्ष-भेद, एक तरहका पेड़। ५ दक्षसंहिताके कर्त्ता कोई मुनि। मनु, अत्रि आदिने जो धर्मशास्त्र रचे हैं, दक्ष-संहिता उन्हींमेंसे एक है। ६ महेश्वर। ७ उशीनरके पुत्र नृपभेद, एक राजा जो उशीनरके पुत्र थे। (भागवत ८।२४।) ८ विष्णु। ९ बल। (निघंटु०)

(क्ली०) १० वीर्य। (शुक्ल यजु० १४।३)

(त्रि०) ११ चतुर, कुशल, निपुण, जिसमें किसी काम-को झटपट और सुगमतासे करनेकी शक्ति हो, होशि-यार। १२ दक्षिण भाग, दाहना।

(पु०) १३ एक प्रजापति, जिनसे देवताओंकी उत्पत्ति हुई। (पुराण)

ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें प्रजापति दक्षकी स्तुति की गई है। किसी किसी मन्त्रमें उनको ज्योतिष्कोंका पिता बतलाया है। जैसे—'हे शोभनदीप्तिशाली सूर्य! दक्ष जिनके पितृपुरुष हैं, उन शोभन ज्योतिष्क देवोंसे हमारे अनपराधकी कामना करना।" (ऋक् ६।५०।२) दक्ष अदितिके पिता हैं। अदितिसे ज्योतिष्क और देवोंकी उत्पत्ति हुई है, इसीलिये दक्षको देवताओंका पितृपुरुष माना गया है। ऋक् संहिताके अन्य मन्त्रों-(१०।७२ सू०)-में लिखा है—"देवोंके उत्पन्न होनेसे पहले ब्रह्मणस्पति कर्मकारकी तरह कार्य करते थे। असत्से सत् उत्पन्न हुआ। देवोंकी उत्पत्तिके प्रथमकाल-में (इस प्रकार) असत्से सत्की उत्पत्ति हुई। बादमें उत्तानपद्से दिक् हुआ। उत्तानपद्से 'भू' और 'भू' से दिक्की उत्पत्ति हुई। अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुए, फिर दक्षसे अदिति। हे दक्ष! जिन्होंने अदितिके रूपमें जन्म ग्रहण किया है, वे तुम्हारी कन्या * हैं, पीछे उन्हींसे भद्र और अविनाशी देवोंकी उत्पत्ति हुई।"

अदितिसे दक्ष, फिर दक्षसे अदिति उत्पत्ति की हुई, इस बातका तात्पर्य क्या? इस विषयमें यास्कने निरुक्तमें लिखा है—"दक्ष आदित्य (अर्थात् अदितिके पुत्र) हैं और आदित्यके पुत्र होनेके कारण वे स्तुत्य हैं। अदिति दाक्षा-यणी अर्थात् दक्षकी कन्या हैं। (श्रुतिमें लिखा है, कि) 'अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति उत्पन्न हुए हैं' यह कैसे सम्भव हो सकता है? या तो दोनोंका एक साथ जन्म हुआ होगा अथवा देव धर्मके अनुसार दोनों ही एक दूसरेसे उत्पन्न और प्रकृति-प्राप्त हुए।

जर्मन विद्वान् रोथका मत है कि यहां दक्ष Spiri-tuac force है और अदिति Eternity।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—"केवल प्रजापति ही सबसे पहले हुए थे। प्रजापतिने प्रजाकामा हो कर पहले यज्ञ किया था कि मुझे बहुत सन्तान प्राप्त हो, श्री प्राप्त हो, यशस्वी होऊं, और अन्न मिले। उन्हींका नाम दक्ष है।" (२।४।४।१)।

पुराणोंमें जिस तरह विष्णुको विश्वका पालक बत-लाया है, उसी तरह दक्षको भी माना है। जैसे—"प्रजापति वै भरतः स हीदं सर्वं बिभर्त्ति।" (शतपथ ६।८।१।१४) अर्थात् प्रजापति ही भरत हैं, क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्का भरणपोषण करते हैं।

हरिवंशमें दक्षको विष्णुका ही स्वरूप माना है.—

"व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसम्भवः।
दक्षः प्रजापति भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः॥"
(हरिवंश २।११ अ०)

* विष्णुपुराणके मतसे भी अदिति दक्षकी कन्या है (४।२।५)

रामायण, महाभारत तथा पुराण-ग्रन्थोंमें दक्षयज्ञका जैसा प्रसङ्ग है, वेदमें उसका कुछ उल्लेख न रहने पर भी तैत्तिरीयसंहिताके २य काण्डके ६ष्ठ प्रपाठकके रुद्रके प्रभाव प्रस्तावमें उसका कुछ आभास पाया जाता है।

महाभारत और पुराणादिके मतसे—ब्रह्माके दक्षिणाङ्गुष्ठसे दक्षका जन्म है।

इससे पहले मानसको सृष्टि होती थी। दक्ष प्रजापतिने जब देखा कि मानस-सृष्टिके द्वारा प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, तब उन्होंने पहले पहल मैथुन द्वारा प्रजाको सृष्टि की। तभीसे मनुष्य, पशु और पक्षी आदिकी मैथुन-द्वारा सृष्टि होने लगी है।

दक्षोत्पत्तिके विषयमें गरुड-पुराणमें इस प्रकार लिखा है—विधाताने प्रजा-सृष्टिकी अभिलाषासे पहले धर्म, रुद्र, मनु, सनक, भृगु आदि प्रजाकर्त्ता मानसपुत्रोंकी सृष्टि की, पीछे उनके दक्षिणाङ्गुष्ठ-द्वारा दक्षको तथा वामाङ्गुष्ठसे दक्षपत्नीकी उत्पत्ति हुई। दक्षने उस पत्नीसे बहुतसी कन्यायें उत्पन्न कीं और ब्रह्माके मानसपुत्रोंको सौंप दीं। रुद्रको सती नामको कन्या प्राप्त हुई। क्रमसे रुद्रके असंख्य महाबल पुत्र उत्पन्न हुए। किसी समय दक्ष हयमेध-यज्ञ कर रहे थे, वहां सती भी अनाहूता होकर आईं और दक्ष-द्वारा अपमानित हो कर उन्होंने प्राण तज दिये। इस पर महादेव क्रुद्ध होकर यज्ञ ध्वंस कर दिया और दक्षको अभिशाप दिया कि "तुम ध्रुवके वंशमें उत्पन्न हो कर मनुष्यत्वको प्राप्त होवो।" बादमें ध्रुववंशोत्पन्न प्रचेताओंके कठोर तपस्या द्वारा प्रजापतित्वको प्राप्त होने पर, मारिषाके गर्भमें दक्ष उत्पन्न हुए। अनन्तर दक्षने चतुर्विध मानस प्रजाको सृष्टि की। जब यह मानस-सृष्ट प्रजा भी वृद्धिको प्राप्त न हुई, तब मैथुन द्वारा प्रजाकी सृष्टि करनेके लिए उन्होंने वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह कर लिया और उससे उन्होंने हजार पुत्र उत्पन्न किए। इन पुत्रोंसे भी प्रजाकी वृद्धि न हुई। इसके बाद असिक्नीके ६० कन्याएं उत्पन्न हुईं जिनमेंसे दो अङ्गिराको, दो कृशाश्वको, दश धर्मको, तेरह कश्यपको और सत्ताईस चन्द्रको प्रदान की गईं। धीरे धीरे इनके द्वारा चराचर जगत्‌की सृष्टि हुई और तभीसे मैथुन-द्वारा सृष्टि क्रियाका प्रवर्तन हुआ। (गरुडपु० ५।६ अ०)

कालिकापुराणमें लिखा है,—इस जगत्‌की आदिसृष्टिके समय ब्रह्माने अर्द्धशरीरमें पुरुष और अर्द्ध शरीरमें स्त्री हो कर, उसी स्त्रीके गर्भसे विराट पुरुषको उत्पन्न किया और उनसे कहा, "तुम प्रजापतिको सृष्टि करो।" अनन्तर विराट-पुरुषने तपस्या करके स्वायम्भुव मनुको सृष्टि की। स्वायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माको परितुष्ट किया। ब्रह्माने सन्तुष्ट हो कर सृष्टिके लिए दक्षको उत्पन्न किया। उत्पन्न होनेके साथ ही दक्षने मनु और विधिको दश बार प्रणाम किया। इस पर ब्रह्माने और भी दश प्रजापतिको सृष्टि की। दक्षने बहुतर प्रधान प्रधान देवर्षि, महर्षि और सोमप आदि पितृगणोंको उत्पन्न कर सृष्टि प्रवर्तित की। यही दक्षका प्रतिसर्ग है। (का०पु० १८ अ०)

दक्ष प्रजापतिने योगमायाको लक्ष्य करके कठोर तपस्या की थी। योगमाया सन्तुष्ट हो कर प्रत्यक्षगोचर हुईं और दक्षसे कहा—"तुम्हारे स्तवसे मैं सन्तुष्ट हुई हूं, तुम अभिलषित वर मांगो।" दक्षने कहा—'यदि वर देती हैं, तो यह दीजिये कि आप मेरी कन्या हो कर महादेवकी पत्नी होवें। महामाये! यह वर केवल मेरा हो नहीं है वरन् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरका भी समझें।' महामाया उत्तरमें "तथास्तु" कह कर बोलीं कि "मैं शीघ्र ही तुम्हारी पत्नीके गर्भसे तुम्हारी कन्यारूपमें अवतीर्ण हो कर शङ्करको सहधर्मिणी होऊंगी। किन्तु जिस समय मेरा तुम अनादर करोगे, मैं उसी समय देह त्याग दूंगी। मैं प्रत्येक सृष्टिमें तुम्हारी कन्या हो कर महादेवकी पत्नी होऊंगी।" इतना कह कर महामाया अन्तर्हित हो गईं। अनन्तर दक्ष स्त्री-सङ्गके बिना ही सङ्कल्प, अभिसन्धि, मानस और चिन्ताकी सहायतासे प्रजा उत्पादन करने लगे। ये सब पुत्र नारदके उपदेशानुसार पृथिवी पर्यटन करने लगे। इससे भी जब प्रजाकी वृद्धि न हुई, तब आपने मैथुन-धर्ममें वीरणतनया असिक्नीके साथ विवाह किया। 'इसके गर्भसे सन्तान होवें', पहले ऐसी अभिसन्धि करनेके साथ ही उसके गर्भसे महामायाने जन्म लिया। ये सतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। देवोंके प्रयत्नसे महादेवके साथ

सतीका विवाह हो गया। प्रजापति दक्षने एक महा-यज्ञका अनुष्ठान करना शुरू कर दिया। इस यज्ञमें अस्सी हजार ऋत्विक् होतकार्यमें व्याप्त थे, चौंसठ हजार देवर्षि उद्गाता थे, नारद आदि बहुतर ऋषि अध्वर्यु और होता थे। समस्त देवताओंके साथ विष्णु इस यज्ञके अधिष्ठाता और स्वयं ब्रह्मा इसके देवविधि-प्रदर्शक थे। इस यज्ञमें समस्त दिक्पालगण द्वारपाल और रक्षक थे। उस स्थान पर मूर्तिमान् यज्ञ स्वयं उपस्थित था। पृथिवी स्वयं यज्ञवेदी थी। प्रजापति दक्षने सभीको वरण किया था। महादेव कपाली होनेके कारण यज्ञार्ह नहीं है, ऐसा समझ कर दक्षने यज्ञमें सिर्फ उन्हें निमन्त्रण नहीं दिया था। सती प्रिय-तनया होने पर भी कपालीकी भार्या थीं, इस लिए वे भी निमन्त्रित नहीं हुईं। यह सुन कर सती अत्यन्त क्रोधित हुईं और दक्षके इस निदारुण कार्यका स्मरण कर मनही मन जलने लगीं। इस समय कोप-रक्तनयना सतीने योगबल से समस्त द्वारोंको रोक कर कुम्भक धारण किया; इस महाकुम्भकमें ब्रह्मरन्ध्र भेद कर उनकी प्राणवायु निकल गई। उस समय शिव मानसरोवरमें सन्ध्या समापन कर कैलासको लौट रहे थे। मार्गमें सतीके देहत्यागका संवाद पा कर वे शीघ्र ही घर लौटे और वहां विजयाके मुंहसे सब सुन कर अत्यन्त रुष्ट हुए। उस समय महा-रुद्रकी आँख, कान और मुखकुहरसे अग्निकणोद्गार प्रलयसूर्यसन्निभ ज्वलन्त उल्का निकलने लगी। इसके बाद महादेव यज्ञ-स्थानके बहिर्भागमें जा विराजे और दूरसे उस समुज्ज्वल यज्ञस्थानको देख कर वीरभद्रको शीघ्र ही वहां भेज दिया। वीरभद्र अपने दलबलके साथ यज्ञ-स्थलमें पहुंचे और महात्मा दक्षके यज्ञको ध्वंस करने लगे। वीरभद्रको यज्ञ ध्वंस करते देख देवोंके साथ विष्णुने उन्हें वारण किया। वीरभद्रको निवारित होते देख लालपीली आँखें कर महादेव स्वयं यज्ञस्थानमें घुस पड़े और यज्ञ ध्वंस करने लगे। उन्होंने समस्त देवताओंको भगा दिया और मृगका रूप धारण कर भागते हुए यज्ञका पीछा किया, यज्ञ ब्रह्मलोकमें प्रविष्ट हो गया। पीछे पीछे महादेव भी पहुंचे। बेचारा यज्ञ डर गया और ब्रह्मलोक-से उतर कर अपनी मायासे सतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। फिर क्या था, यज्ञानुगामी रुद्र मृत सतीके पास पहुंचते ही उन्हें देख कर यज्ञको भूल गये और सतीके शोकमें व्याकुल हो कर रोने लगे। (कालिकापु० ८-१८अ०)

सती देखो।

दक्षोत्पत्तिके विषयमें हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—दश प्रचेताओंके मानस द्वारा मारिषाके गर्भ और सोमदेवके अंशसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। अनन्तर इन्होंने स्थावर, जङ्गम आदि विविध पदार्थोंकी सृष्टि कर कुछ मनःकल्पित कन्याओंकी सृष्टि की। उन कन्याओंमेंसे १० धर्मको दो गईं, १३ कश्यपको और अवशिष्ट २१ कन्याएं सोमदेवको दी गईं। उनके गर्भसे गो, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव आदि नाना जातिके प्राणियोंकी सृष्टि हुई। इसी समयसे स्त्री-पुरुषके सह-योगसे प्रजा-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। इससे पहले मनन, दर्शन और स्पर्शद्वारा प्रजाकी सृष्टि होती था रही थी, वह अब वर्जित हो गई। ब्रह्माके दक्षिण-अङ्गुष्ठसे दक्ष और वामाङ्गुष्ठसे उनकी पत्नी उत्पन्न हुई, यह बात अन्यत्र कही जा चुकी है। परन्तु इस जगह दक्षको प्रचेताओंका पुत्र कहा गया है। सोमदेवके दौहित्र हो कर भी वे किस तरह उनके श्वशुर हुए, इस सन्देहके निवारणार्थ जनमेजयने कहा है—'उत्पत्ति निरोध अर्थात् जन्म मृत्यु, प्राणिमात्रका ही नियत धर्म है। इसमें ऋषि और ज्ञानियोंके लिए कोई मोहका विषय नहीं है। प्रत्येक युगमें दक्ष आदि नृपतियोंकी एक बार उत्पत्ति और फिर लय हुआ है। पहले ज्येष्ठत्व कनि-ष्ठत्व कुछ भी न था, एक मात्र तपोबल ही उत्कर्ष और अपकर्षका कारण था। प्रजाविधाता दक्ष विधाता द्वारा आदिष्ट हो कर भूतोंकी सृष्टि करने लगे। दक्ष प्रजापतिने पहले ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी और मृग आदिकी मानस-द्वारा सृष्टि की; किन्तु पीछे जब देखा कि मानस-सृष्ट प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, तब उन्होंने प्रजा-सृष्टि-की उत्कट वासनासे स्त्री-पुरुषके सहयोग द्वारा विविध प्राणियोंकी सृष्टि करना ही श्रेय समझा और वीरण प्रजापतिकी असिक्नी नामकी कन्याका पाणि-

ग्रहण किया। अनन्तर प्रजापति दक्षने उस असिक्नोके गर्भसे ५ हजार वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किये। इनके ५००० पुत्र जो प्रजा-सृष्टिके लिये व्यस्त थे, नारदके उपदेशसे वे निरुद्दिष्ट हो गये। दक्षने इस संवादके पाते ही नारदका संहार किया ब्रह्माको मालूम पड़ते ही वे स्वयं दक्षके पास आये और पुत्रकी प्रार्थना करने लगे। दक्षने उत्तर दिया—"मैं अपना कन्या असिक्नोको तुम्हें दे रहा हूं, उसके गर्भसे नारदका पुनर्जन्म होगा। अतएव इसे ले कर कश्यपको प्रदान करना।" इतना कह कर उन्होंने अपनो कन्या ब्रह्माको सौंप दो। अभिसम्पातके भयसे कश्यपने उस कन्याको ग्रहण किया और उसके गर्भसे पुनः नारदको उत्पादन किया। उसके बाद प्रजापति दक्षने धर्मपत्नी वोरणतनया द्वारा साठ कन्यायें उत्पन्न कीं और धर्मको दश, कश्यपको तेरह सोमको सत्ताईस, अरिष्टनेमिको चार, वसुपुत्रको दो तथा अङ्गिरा और कृशाश्वको भो दो चार कन्याएं दीं। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वतो, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा इन दश कन्याओंने धर्मको प्रतिग्रह किया। बादमें विश्वासे विश्वदेवगण, साध्यासे साध्यगण, मरुत्वतोसे मरुत्वत्‌गण, वसुसे वसुगण; भानुसे भानु, मूहूर्त्तासे मूहूर्तगण, लम्बासे घोष, यामोसे नागवोथो; अरुन्धतोसे पार्थिव पदार्थ, संकल्पासे सर्वात्मरूप तथा संकल्पा, यामिनो और नागवोथोसे वृषल उत्पन्न हुए। इस तरह क्रमशः एक दक्ष प्रजापतिसे चराचर जगत्‌को सृष्टि होने लगो। (हरिवंश २।३ अ०)

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—प्रजापति दक्ष ब्रह्माके आत्मज थे और मनु-कन्या प्रसूतिके साथ इनका विवाह हुआ था। प्रसूतिके गर्भसे १६ कन्याएं उत्पन्न हुईं थीं, जिनमेंसे १३ कन्याएं धर्मको एक अग्निको तथा एक पितरोंको प्रदान की थी। सती नामको कन्याके साथ महादेवने विवाह किया था। प्रजापति दक्ष अत्यन्त दुहितृवत्सल थे। किसी समय विश्वस्रष्टाओंने एक वृहत् यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें समस्त देवता उपस्थित थे। प्रजापति दक्ष जब इस यज्ञमें आये, तब उन्हें देख कर सब खड़े हो गये, सिर्फ ब्रह्मा और शिव नहीं उठे। दक्षके आसन ग्रहण करने तक महादेव अपने हो आसन पर बैठे रहे, दक्षका कुछ भो सम्मान नहीं किया। दक्ष मारे क्रोधके उन्मत्तप्राय हो कर शिवको निन्दा करने लगे। महादेव रुष्ट न हुए, सभामें हो बैठे रहे।

दक्ष सिर्फ निन्दा करके हो चुप न रहे, वरन् क्रोधमें आ कर उन्होंने जल-स्पर्श-पूर्वक यह अभिशाप दिया कि "यह देवाधम शिव, इन्द्र और उपेन्द्रादिके साथ यज्ञभागको प्राप्त न होवे।" इस प्रकार शाप दे कर दक्ष अपने घर लौट आये। इधर गिरिशानुचर नन्दोश्वरको शापका हाल मालूम हुआ: उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर, जिन्होंने दक्षके वाक्यका अनुमोदन किया था उनको ऐसा प्रतिशाप दिया कि, "महादेव कभी किसोका अपकार नहीं करते। उनसे जो लोग द्वेष रखेंगे, उनको कभो भी कार्यसिद्धि न होगी। इस दक्षको बुद्धि देहको आत्मा मान कर ध्यान करती है और वह आत्मतत्त्व भूल गई है। दक्ष पशुओंके समान अत्यन्त स्त्री-कामी होगा और शीघ्र हो उसका बकरेका मुंह हो जायगा। वस्तुतः इस दक्षका मुंह बकरेके समान हो होना चाहिये क्योंकि वह अविद्याको तत्त्वविद्या समझता है।"

श्वशुर दक्ष और जामाता शिव इन दोनोंमें सर्वदा इसी तरहका विवाद चलने लगा। कुछ दिन बाद परमेष्ठो ब्रह्माने दक्षको प्रजापतिका सब आधिपत्य प्रदान किया, जिससे दक्षका अभिमान और भो बढ़ गया।

अनन्तर दक्षने वृहस्पतिके नामसे उत्कृष्ट यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञमें त्रिलोक निमन्त्रित हुआ। सिर्फ महादेव और सतीको निमन्त्रण नहीं दिया। यज्ञको खबर पड़ते हो, सतोने महादेवसे वहां जानेके लिए अनुमति मांगो। महादेवने आज्ञा न दो। परन्तु सतो बिना निमन्त्रणके पित्रालय पहुंच गईं और यज्ञस्थलमें पिताके द्वारा अपमानित हो कर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। महादेव नारदके मुंहसे सतोके शरीरत्यागको बात सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसी समय उन्होंने अपने मस्तकसे एक जटा उत्पाटन कर उसे भूमि पर फेंक दिया, जिससे वीरभद्रकी उत्पत्ति हुई। वोरभद्र यज्ञ ध्वंस करनेके लिए गये। उन्होंने भृगुको दाढ़ी और पूषाके दांत उखाड़

कर दक्षके वक्षःस्थल पर मारा और वे तीक्ष्ण अस्त्रसे उनका मस्तक छेदने लगे। परन्तु पुनः पुनः अस्त्राघात करने पर भी जब मस्तक छेद न सके, तब उसने दक्षको काष्ठ-निष्पीड़नादिरूप पशुमारणोपयोगी एक यन्त्रमें डाल कर उनका मस्तक देहसे पृथक् कर दिया। पीछे उस छिन्न मस्तकको दक्षिणाग्निमें होम कर यज्ञशाला जला डाली। इस तरह दक्षयज्ञका बिलकुल ध्वंस हो गया। लोक-पितामह ब्रह्मा दक्षके इस तरह मारे जानेकी खबर सुन कर अन्यान्य देवोंके साथ कैलास पर्वत पर उप-स्थित हुए और नाना प्रकारके स्तवोंसे महादेवको सन्तुष्ट कर उनसे दक्ष आदिके जीवनकी प्रार्थना करने लगे। महादेवने सन्तुष्ट हो कर कहा—दक्ष जैसे बालकोंके अपराध पर मैं ध्यान नहीं देता। जो लोग देव-मायामें विमोहित हैं, उन्होंको मैंने दण्ड दिया है। प्रजापति दक्षका मुंह भस्म हो चुका है, अब उनका मुख छाग-जैसा हो जायगा तथा वह भगदेव और मित्र नामक देवताके चक्षु द्वारा अपने यज्ञभागका दर्शन करेगा। पूषा स्वयं पिष्टभोजी होंयगे। ये यजमानके दन्त द्वारा यज्ञीय द्रव्य भक्षण करेंगे और जिनके अङ्ग बिलकुल नष्ट हो चुके हैं, वे अश्विनीकुमारद्वयको बाहु-द्वारा बाहु-विशिष्ट होंगे और पूषाके हस्त द्वारा हस्तवान् और छागकी दाढ़ी हो भृगुकी दाढ़ी होगी। अनन्तर ब्रह्माने देवोंके साथ महादेवके वाक्यानुसार दक्षका मस्तक आदि अङ्ग उक्त प्रकारसे संयोजित कर दिये। फिर दक्षने विधानानुसार यज्ञ समाप्त किया और महादेवका नाना प्रकारसे स्तव करने लगे। (भागवत ४।१।७ अ०) 'रुद्र' और 'सती' शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

दक्षकन्या (सं० स्त्री०) दक्षस्य कन्या ६-तत्। दक्षकी कन्या, सती। दक्षकी असिक्नी नामकी स्त्रीसे ६० कन्यायें उत्पन्न हुई थीं, जिनमें १० धर्मको, १३ कश्यप-को, २७ चन्द्रमाको, भृगु, अङ्गिरा और कृशाश्व इन तीनोंको दो दो तथा तार्क्ष्यको ४ कन्यायें व्याही थीं। (भागवत ६।६ अ०) मनुकी कन्या प्रसूतिके गर्भसे १६ कन्यायें उत्पन्न हुईं जिनमेंसे १३ धर्मको, १ अग्निको, १ पितृगणको और १ महादेवको समर्पण की गई थीं। (भागवत ४।१ अ०) दक्ष देखो।

दक्षक्रतु (सं० पु०) दक्षस्य क्रतुः ६-तत्। दक्षका यज्ञ-भेद, दक्षका वह यज्ञ जिसमें उन्होंने शिवजीको नहीं बुलाया था। दक्ष देखो। दक्षाः कुशलाः क्रतवो संकल्पा येषां। २ चक्षुरादि इन्द्रियरूप प्राण।

दक्षक्रतुध्वंसी (सं० पु०) दक्षक्रतुं ध्वंसयति ध्वंस-णिच्, णिनि। १ महादेव। २ महादेवके अंशसे उत्पन्न वीरभद्र। महादेवको जटासे इनको उत्पत्ति है। इन्होंने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा (सं० स्त्री०) दक्षात् जायते जन-ड। दक्षकी कन्या, सती, दुर्गा, अश्विनी प्रभृति।

दक्षजापति (सं० पु०) दक्षजानां दक्षकन्यानां पतिः। चन्द्र, महादेव प्रभृति।

दक्षतनया (सं० स्त्री०) दक्षस्य तनया। दक्ष प्रजापति-की कन्या, दुर्गा अश्विनी प्रभृति। प्रसूतिके गर्भसे श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्त्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती ये सोलह कन्यायें उत्पन्न हुईं। दक्ष देखो।

दक्षता (सं० स्त्री०) दक्षस्य भावः भावे तल्-टाप्। नैपुण्य, पटुता, योग्यता, कमाल।

दक्षताति (सं० स्त्री०) मानसिक शक्ति।

दक्षनिधन (सं० क्ली०) सामभेद।

दक्षपति (सं० पु०) दक्षाणां बलानां पतिः। बलाधिपति जिनमें सबसे अधिक बल हो।

दक्षपितृ (सं० पु०) दक्षः दक्ष प्रजापतिः पिता उत्पाद-को यस्य, समासान्तविधेरनित्यत्वात् न कप्। १ दक्ष प्रजापतिसे उत्पन्न प्राणाभिमानी देव। २ वीर्योत्पादक। (स्त्री०) ३ अश्विनी प्रभृति, इनके उत्पादक दक्ष हैं, इसीसे इनका नाम दक्षपितृका पड़ा है।

दक्षयज्ञ (सं० क्ली०) दक्षस्य यज्ञं वा दक्षेण अनुष्ठितं यज्ञं। दक्ष प्रजापति द्वारा अनुष्ठित यज्ञविशेष वह यज्ञ जो दक्षसे किया गया हो। दक्ष देखो।

दक्षयज्ञभङ्ग (सं० पु०) दक्षयज्ञस्य भङ्गः। वीरभद्रके दक्षका यज्ञ विध्वंस।

दक्षयज्ञविनाशिनी (सं० स्त्री०) दुर्गा। दुर्गा या सती ही दक्षयज्ञ भङ्गके कारण थी, इसीसे दुर्गाको दक्षयज्ञ-विनाशिनी कहते हैं।

दक्षयागापहारी ( सं० पु० ) महादेव, शिव ।

दक्षविहिता ( सं० स्त्री० ) दक्षेण विहिता गीतिका । १ गीतिकाभेद, एक प्रकारका गीत । (त्रि०) २ दक्षकृत, दक्षसे किया हुआ ।

दक्षवृध (सं० त्रि०) जिसने अपनी योग्यतासे उन्नति की हो ।

दक्षस् ( सं० क्ली० ) दक्ष करणे असुन् । बल, ताकत् ।

दक्षसाधन ( सं० त्रि० ) दक्षस्य साधनः । बलसाधक ।

दक्षसावर्णि ( सं० पु० ) मनुभेद, नवम मनु । भागवतमें इनके विषयमें इस प्रकार लिखा है—वरुणसे इनकी उत्पत्ति हुई, भूतकेतु, दीप्तिकेतु आदि इनके पुत्र थे । इस मन्वन्तरमें मरीचि गर्भ आदि देवता हैं, अद्भुत इनके इन्द्र हैं, द्युतिमान् आदि ऋषि, आयुष्मान्‌से अम्बु-धाराके गर्भमें भगवान् विष्णु ऋषभदेवके नामसे अवतीर्ण हुए थे । ये अद्भुत नामक इन्द्रको सर्व सम्पत्समृद्ध त्रिलोक के भोगो बतलाते हैं । दशम मनुका नाम भी दक्षसावर्णि था । ये उपश्लोकके पुत्र थे । भूरिषेण आदि इन्होंके वंश-धर थे । इस मन्वन्तर हविष्मान् आदि ब्राह्मण अर्थात् हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्त्ति आदि ऋषि और सुरसेन,अनिरुद्ध आदि देव तथा शम्भु देवराज हैं । भग-वान् विभुने विश्वसृक् विप्रके घर विसूचिके अंशांशसे जन्मग्रहण किया था, वे विष्वक्‌सेन नामसे प्रसिद्ध थे । उस समय देवराजका शम्भुके साथ मैत्री हुई थी । ( भाग० ८।१३ अ० ) दक्षसावर्णिके समय पुलहपुत्र हविष्मान्, भृगुतनय सुकृति, अत्रिपुत्र अपोमूर्त्ति, वशि-ष्ठतनय अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रमति, कश्यपपुत्र नभोग और अङ्गिरापुत्र सत्य ये सात महर्षि थे । ये ही ऋषि-मन्वके अद्वितीय लक्ष्य कहे गये हैं । दक्षसावर्णिके सुत उत्तमौजा, वीर्यवान्, कूलिषध्न, शतानीक, नरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा ये १० पुत्र थे । ( हरिवंश ७ अ० मार्कण्डेयपु० ८४अ०)

दक्षसुत (सं० पु०) दक्षस्य सुतः । १ देवता । (शब्दार्थचि०) प्रजापतिने दक्षके पुत्रोंके नष्ट हो जाने पर पुत्रिका उत्पन्न कीं और उनसे देवता आदि उत्पन्न हुए । इन पुत्रि-काओंके पुत्र होनेके कारण दक्षोंमें पुत्रत्व सिद्ध हुआ । विधाताने जब दक्षको प्रजासृष्टिके लिये आदेश दिया, तब उन्होंने मनके प्रभावसे ऋषि, देवता, सुर, गन्धर्व आदिको सृष्टि की ।

२ हर्यश्वादि पुत्र । दक्षप्रजापतिके हर्यश्व आदि पुत्र हुए । वे सभी प्रजाकी वृद्धिके लिए सचेष्ट रहते थे, किन्तु नारदके उपदेशानुसार वे पृथिवीका परिमाण जाननेके लिए चारों दिशाओंको गये थे, फिर लौटे नहीं । (हरिवंश ३ अ०)

( स्त्री० ) ३ अश्विनी आदि दक्षकन्याओंका नाम ।

दक्षा ( सं० स्त्री० ) दक्षते वर्द्धते भारधारणे समर्था भवति दक्ष-अच्-टाप् । पृथ्वी ।

दक्षाध्वरध्वंसक ( सं० पु० ) दक्षस्य अध्वरं ध्वंसयति ध्वन्स णिच्-ण्वुल् । १ शिव । २ शिवजीकी जटासे उत्पन्न वीरभद्र ।

दक्षाध्वरध्वंसकृत् ( सं० पु० ) दक्षाध्वरस्य ध्वंसं करोति । कृ क्विप् तुगागमः । दक्ष-यज्ञ-विनाशक शिव, वीरभद्र ।

दक्षाय्य ( सं० पु० ) दक्षते कार्येषु समर्थो भवति दक्ष आय्य । ( श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः । उण् ३।९६ ) १ गरुड । २ गृध्र पक्षी । दक्ष वृद्धौ आय्य । ( त्रि० ) ३ वर्द्धक, बढ़ाने या उन्नति करनेवाला । ४ पूजनीय ।

दक्षाराम ( द्राक्षाराम )—गोदावरी जिलेके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध स्नाततीर्थ । यह कोटीफली नामक प्रसिद्ध तीर्थसे ७ मील पूर्व और रामचन्द्रपुरसे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित है । यहां भीमेश्वरका एक बड़ा मन्दिर है । इसका लिङ्ग दुमंजलेकी छतको भेद कर दो फुट ऊंचा चला गया है । पूजाके वक्त पुरोहितको दुमंजल पर बैठ कर लिङ्गका अभिषेकादि करना पड़ता है । प्रधान मन्दिरके भीतर और भी छोटे मन्दिर हैं । प्रधान मन्दिर बड़ी खूबसूरतीको लिए हुए, नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित है । यहां श्रीलन्दाजोंकी दो खूबसूरत कब्रे हैं । भीमेश्वरके मन्दिरमें ईसाकी बारहवीं शताब्दीके बहुतसे शिलालेख पाये जाते हैं ।

दक्षि ( सं० त्रि० ) दहनशील, जलाये जाने योग्य ।

दक्षिण ( सं० त्रि० ) दक्षते इति दक्ष-इनन् ( द्रुदक्षिभ्या मिनन् । उण् २।५० ) १ दक्षिणोद्भूत, जो दक्षिण दिशामें हो । २ परच्छन्दानुवर्त्ती, जो दूसरेके अभिप्रायसे चलता हो । ३ वह दिशा जो सूर्यकी ओर मुंह करके खड़े

होनेसे दहने हाथको ओर पड़ती है, उत्तरके सामनेको दिशा। ४ अपसव्य, दहना, दाहना। किसीको दान देते समय ओंकार शब्द उच्चारण करके दहिने हाथसे देते और पीछे स्वस्ति वाक्य पढ़ते हैं। ५ नायकभेद, जिस नायकके बहुतसी नायिका हो और जिसका अनुराग सब पर समान हो, उसे दक्षिणनायक कहते हैं। ६ प्रदक्षिण। ७ तन्त्रोक्त आचार विशेष, शैवाचारसे दक्षिणाचार श्रेष्ठ और दक्षिणसे वामाचार उत्कृष्ट है। ८ विष्णु। ९ दक्षिणाग्नि। ब्राह्मणोंके दहिने कानमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सोम, सूर्य और अनल रहते हैं, इसीसे क्षुत, दन्तोच्छिष्ट, अनृत और पतितोंके साथ आलाप करते समय दहिना कान स्पर्श करना चाहिये। (पराशर) १० उदर, पेट। ११ समर्थ, निपुण।

दक्षिणकालिका (सं० स्त्री०) दक्षिणा अनुकूला कालिका आद्याशक्ति, जिन्होंने शिवजीको छाती पर दहिना पैर रखा है, कालिका देवी। श्यामा और दशमहाविद्या देखो।

दक्षिणगोल (सं० पु०) दक्षिणः गोलः। विषुवत् रेखासे दक्षिण पड़नेवाली छह राशियां। तुला, विछा, धनु, मकर, कुम्भ और मीन इन छह राशियोंका नाम दक्षिण गोल है।

दक्षिणतस् (सं० अव्य) दक्षिण अतसुच्। १ दक्षिण दिशा। २ दक्षिण भाग।

दक्षिणतस्कपर्द (सं० त्रि०) दक्षिणतः शिरसो दक्षिणे भागे कपर्दश्चूड़ा यस्य। दक्षिण भाग चूड़ायुक्त, जिसके दक्षिणकी ओर शिखर हो।

दक्षिणतीर (सं० क्ली०) दक्षिणं तीरं। दक्षिण तीर, दहिना किनारा।

दक्षिणतीर (सं० क्ली०) नदी इत्यादिका दहिना किनारा।

दक्षिणत्रा (सं० क्ली०) दक्षिण वेदे निपातनात् त्रा। दक्षिणभागादि।

दक्षिणदिक् (सं० स्त्री०) दक्षिणस्य दिक्। पूर्व प्रभृति दश दिशाओंके अन्तर्गत एक दिशा, उत्तरकी विपरीत दिशा, जिसके अधिपति भौम हैं।

पूर्वकालमें सूर्यदेवने यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके यह दिशा गुरु कश्यपको दक्षिणास्वरूप दी, उसी समयसे यह दिशा दक्षिण नामसे प्रसिद्ध हुई है। दिक् देखो।

दक्षिणदेश—दाक्षिणात्य देखो।

दक्षिणधुरीण (सं० त्रि०) शकटके दक्षिण भागका धुरायुक्त, बैलगाड़ीके दहिनी ओरका धुरा।

दक्षिणपथ—दक्षिणा देखो।

दक्षिणपश्चात् (सं० अव्य०) दक्षिणस्याः परायाश्च दिशः अन्तराला दिक् बहुव्रीहौ आति, परस्य पश्चादादेशः। नैऋत कोण।

दक्षिणपश्चार्द्ध (सं० पु०) दक्षिण-पश्चिम भाग।

दक्षिणपश्चिमा (सं० स्त्री०) दक्षिणस्याः परायाश्च दिशः अन्तरालादिक्, ततः पुम्वत्। नैऋत कोण।

दक्षिणपाञ्चालक (सं० त्रि०) दक्षिणपञ्चाल सम्बन्धीय। पञ्चाल देखो।

दक्षिणपूर्वा (सं० स्त्री०) दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं इति समासः। १ पूर्व-दक्षिण कोण, अग्निकोण। (त्रि०) २ अग्निकोणस्थित, जो अग्निकोणमें पड़ता हो।

दक्षिणमानस (सं० क्ली०) गयास्थित तीर्थ विशेष, गयाके एक तीर्थका नाम। यह तीर्थ गयाके दक्षिण भागमें पड़ता है। इसमें तीन और तीर्थ हैं।

दक्षिणमार्ग (सं० पु०) १ तन्त्रोक्त आचारभेद। २ पितृयान नामक मार्गभेद।

दक्षिणमेरु (सं० पु०) दक्षिणकेन्द्र। (The south-pole)

दक्षिणराढ़ (सं० स्त्री०) राढ़का दक्षिणांश। राढ़ देखो।

दक्षिणराय—सुन्दरवनके प्रसिद्ध वनदेवता। बङ्गालके दक्षिणांशमें जहां बहुतसे जङ्गल हैं और व्याघ्र आदिका भय है, वहीं दक्षिणरायको पूजा होती है। ये व्याघ्रजातिके अधिष्ठाता समझे जाते हैं। मलङ्गी, मौल्या जङ्गली आदि नीच जातियां दक्षिणराय और कालुराय को बड़ो भक्त हैं। जङ्गली लोग जब सुन्दरवनमें लकड़ो चीरने जाते हैं, तो पहले दक्षिणरायको पूजा कर लेते हैं। डायमण्ड-हारबर और मातलाकी तरफ जहां जहां आबादी है, सर्वत्र दक्षिणरायको पूजा होती है। उच्च-श्रेणीके हिन्दुओंमें दक्षिणरायकी पूजा उतनी प्रचलित न होने पर भी, निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमें इनको पूजा बहुत दिनोंसे प्रचलित है। बङ्गालके दक्षिणाञ्चलके मुसलमान भी पीर गाजीकी तरह दक्षिणरायकी विशेष भक्ति करते हैं और समय समय पर पूजा भी करते हैं।

माधवाचार्य, कृष्णराम आदि बहुतसे बङ्गाली कवियों-ने दक्षिणरायकी लीलाके आधार पर कई ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें कृष्णरामदासका रायमङ्गल नामक ग्रन्थ उल्लेख-योग्य है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है कि प्रभाकर नामके एक राजा थे, जिन्होंने वन कटवा कर राज्य स्थापन किया था। इन्होंको महादेवको पूजा करनेसे दक्षिणराय प्राप्त हुए थे। दक्षिणराय अठारह भाँटोके राजा हुए थे। कालूरायके परामर्शानुसार हिजली जा कर इन्होंने नरसिंह पर शासन किया था। खनिया नामक स्थानमें बड़े खाँ गाजोके साथ इनका युद्ध हुआ था। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गई थो।

बड़े खाँ गाजीके प्रसङ्गसे मालूम होता है कि जिस समय बङ्गालमें मुसलमानोंका प्राबल्य था, उसो समय दक्षिणराय आविर्भूत हुए थे, उसके चारो तरफ व्याघ्रोंका बड़ा उपद्रव था। परन्तु इनके प्रतापसे व्याघ्र किसीका अनिष्ट न कर सकते थे। इसोलिए नोच लोग इन्हें व्याघ्रा-रोही और व्याघ्रके राजा समझ कर बड़ी भक्ति करते थे। कवि कृष्णरामने लिखा है, कि बड़े खाँ गाजोके फकीरोंने दक्षिणरायके अधिकारमें जा, अनुगत उनकी प्रजाको तङ्ग करना शुरू कर दिया, इसलिए दक्षिणरायसे बड़े खाँ गाजोका युद्ध ठन गया और उस युद्धमें दक्षिणरायका शिर कट गया; परन्तु दैवबलसे कटा हुआ सिर फिर जुड़ गया। आखिर महादेवने आ कर दोनोंका झगड़ा निबटा दिया और दोनोंमें मित्रता कर दो। तभीसे बङ्गालके दक्षिणाञ्चलमें निम्न श्रेणीके हिन्दू और मुसल-मान बड़े खाँ गाजो और दक्षिणरायके मस्तकको पूजा करते आ रहे हैं।

पौष-संक्रान्तिके दिन दक्षिणरायके साथ साथ उनके वाहन व्याघ्र और कुम्भीरकी मृन्मय मूर्त्तिको भो पूजा हुआ करतो है। कहीं कहीं दक्षिणराय और कालूराय क्षेत्रपालके रूपमें पूजे जाते हैं। किसो किसीका कहना है, कि महादेवने जब ब्रह्माका मस्तक छेदा था, उस समय ब्रह्माके मस्तकसे कालूराय और दक्षिणराय-की उत्पत्ति हुई थो।

दक्षिण शाहबाजपुर—मेघना नदोमें सुप्रसिद्ध एक होप। यह बाखरगञ्ज जिलेका एक महकूमा है। १८४५ ई०में इसे पृथक् महकूमा किया गया। भोला और बरहा उद्दीन हाउलदर नामके दो थाने इसके अन्तर्गत हैं भूपरिमाण ६१५ वर्गमोल है। इसमें ४०८ ग्राम लगते हैं।

प्रवाद है, कि १८७६ ई०की ३१वीं अक्तूबरको जो तूफान उठा था उससे लेलित खाँ नामक इस महकूमेके प्रायः सभो लोग विनष्ट हुए थे।

दक्षिणसद् (सं० त्रि०) दक्षिण भागमें स्थित, जो दक्षिणको ओर पड़ता हो।

दक्षिणसमुद्र (सं० पु०) दक्षिणः समुद्रः कर्मधा०। दक्षिणदिक् स्थित समुद्र, लवण समुद्र।

दक्षिणस्थ (सं० त्रि०) दक्षिणे भागे तिष्ठति स्था-क। १ वह सारथो जो अपने प्रभुके दक्षिण ओर खड़ा हो। २ दक्षिण भागस्थित, जो दाहिनो ओर पड़ता हो।

दक्षिणा (सं० स्त्री०) दक्षिण-टाप्। १ दक्षिण दिक्, दक्षिणदिशा। पर्याय—अवाची, शमनी, यामी, वैव-स्वती।

दक्षिण दिशाकी वायुका गुण षड्रसयुक्त, चक्षुका हितकारक, बलवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, सुख, कान्ति और बुद्धिदायक, श्लेष्मनाशक, विदाही, श्रम और वायुवर्द्धक है। गण्ड पद (फोलपांव) कौटजनक है। इस दिशाके अधिपति वृष कन्या और मकरराशि है। (ज्योतिस्तत्त्व) २ यज्ञादिविधि दान। ३ प्रतिष्ठा, इज्जत, सम्मान। ४ यज्ञादिके अवसान पर ब्राह्मणोंको दिये जानेका धन, ब्राह्मणों वा पुरोहितोंको यज्ञादि कर्म करानेके पीछे जो धन दिया जाता है, उसे दक्षिणा कहते हैं। दान यज्ञ व्रत आदिकी दक्षिणा नहीं देनेसे, वह राखमें घी डालने-के जैसा निष्फल हो जाता है। इसीसे प्रत्येक कार्यको समाप्ति पर दक्षिणा देना कर्त्तव्य है।

"अदत्तदक्षिणं दानं व्रतं चैव नृपोत्तम।
विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः॥" (भविष्यपु०)

शुचि हो कर भक्तिपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। दक्षिणा दिये बिना किया कराया सब काम निष्फल हो जाता है। जितने दान कहे गये हैं उनमेंसे सोना ही श्रेष्ठ है। इसो कारण सभी दानोंमें सोनेको दक्षिणा देनेका विधान है।

"सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते॥" (व्यास)

बहुतसे दानोंमें जहां गोवस्त्रादि दक्षिणाका विधान है, वहां गो वस्त्रादि ही देने चाहिये। जहां दक्षिणाका कोई उल्लेख नहीं है, केवल वहीं सुवर्ण दक्षिणा प्रशस्त है। सभी धातुओंमें सोना श्रेष्ठ है, इसी कारण 'सुवर्ण दक्षिणेष्यते' ऐसा लिखा है।

"सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च।
नित्य श्राद्धं देवपूजा सर्वमेव सदक्षिणं॥" (स्कन्दपु०)

नित्यश्राद्ध, देवपूजा आदिमें सोने, चाँदी, ताँबे, धान और चावल सभीको दक्षिणा दी जा सकती है। देय द्रव्यका तृतीयांश दक्षिणा देनी चाहिये। लेकिन जिस दानको दक्षिणा कही नहीं गई है, उसका दशांश वा शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनी होती है। (स्कन्दपु०)

तुलापुरुष आदि दानोंमें उसका दशांश वा अर्द्ध दक्षिणा देनेको लिखा है और जितने ऋत्विक् हों, सबको दश दश निष्क-यज्ञ दक्षिणाके साथ यज्ञकर्त्ताको फल देता है। कार्य समाप्त होने पर ही दक्षिणा देनी चाहिये नहीं तो वह प्रतिक्षण बढ़ती है। कार्य हो जाने पर मुहूर्त कालके भीतर नहीं देनेसे द्विगुण वृद्धि, एक दिन बीत जाने पर शत गुण, तीन दिन पर उसका दश गुण, एक महीने पर लाख गुण और एक वर्ष बीत जाने पर तीन कोटि गुणकी वृद्धि होती है। पीछे यजमानको उस कर्मका फल नहीं मिलता और कर्मकर्त्ता ब्रह्मस्वापहारी होता है। लक्ष्मी शाप दे कर उसके घरसे जाती रहती हैं। बाद वह दरिद्र व्याधियुक्त हो कर कष्टसे समय बिताता है और उसका दिया हुआ श्राद्धतर्पणादि उसके पितृगण भी ग्रहण नहीं करते हैं। यजमानकी यदि दक्षिणा देनेमें विलम्ब हो जाय, तो पुरोहितको मांग लेनी उचित है, नहीं तो दोनों ही नरकगामी होते हैं। दक्षिणा मांगने पर यदि यजमान न दे, तो वह ब्रह्मस्वापहारीके समान पातकी होता और निश्चय ही उसे कुम्भीपाक नरकको हवा खानी पड़ती है, केवल यही नहीं, यमदूतका दण्ड सहते हुए वहां लाख वर्ष तक रहना पड़ता है। पीछे वह चाण्डालकी योनिमें जन्म लेता और सर्वदा व्याधियुक्त दरिद्र रहता है। यहाँ तक कि उसके पापसे सात पुरुष तक नरकगामी होते हैं। (ब्रह्मवैवर्त्त पु०)

दक्षिणा यज्ञकी पत्नी है। कार्त्तिकी पूर्णिमाकी रातको जो एक बार रासमहोत्सव हुआ था उसीमें श्री कृष्णके दक्षिणांशसे इसकी उत्पत्ति हुई थी, इसीसे इसका नाम दक्षिणा पड़ा।

दक्षिणाका दूसरा नाम दोहा है। ये सभी स्थानोंमें पूजी जाती हैं। बिना दक्षिणाके संसारके सभी काम निष्फल हैं। (भागवत) ५ नायिकाविशेष। नायकके अन्य स्त्रियों पर आसक्त होने पर भी जो स्त्री पहलेकी तरह नायकके प्रति गौरव, भय, प्रेम, सद्भाव आदि परित्याग नहीं करती, उसे दक्षिणा नायिका कहते हैं। ६ पुरस्कार, भेंट।

**दक्षिणांशव्रणी** (सं० पु०) दक्षिणांशे दक्षस्कन्धे व्रणो ऽस्त्यस्य इनि। दक्षिणस्कन्धस्थित व्रणयुक्त, वह जिसके दहिने कन्धे पर फोड़ा हुआ हो। पिताकी बहन अर्थात् फूफीके साथ संभोग करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। अजा दान करनेसे यह रोग जाता रहता है।

**दक्षिणाकपर्द** (सं० पु०) वशिष्ठ।

**दक्षिणाकाल** (सं० पु०) दक्षिणा देनेका समय।

**दक्षिणाग्नि** (सं० पु०) दक्षिणोऽग्निः। यज्ञाग्निविशेष। यज्ञमें दक्षिणकी ओर जो अग्नि स्थापित की जाती है उसका नाम दक्षिणाग्नि है।

**दक्षिणाग्र** (सं० पु०) दक्षिणस्यां अग्रमस्य। दक्षिण दिग-भागस्थिताग्र कुशादि, वह कुश जिसका अगला भाग दक्षिण भागमें रहे।

**दक्षिणाचल** (सं० पु०) दक्षिणा दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणे प्रदेशे वा स्थितोऽचलः पर्वत। मलय पर्वत, मलयाचल।

**दक्षिणाचार** (सं० पु०) दक्षिणः अप्रतिकूलः आचारः। १ तन्त्रोक्त आचार भेद। इसमें अपने आपको शिव मान कर पञ्चतत्त्वसे शिवाकी पूजा की जाती है और मद्यके स्थानमें विजयारस दिया जाता है। विजयारस भी पञ्चमकारमेंसे एक है। यह आचार वामाचारसे श्रेष्ठ और प्रायः वैदिक माना जाता है। २ शिष्टाचारविशिष्ट शुद्ध और उत्तम आचरण। ३ दक्षिणादिग्‌गतिशाली, जिसकी गति दक्षिणकी ओर हो।

दक्षिणाज्योतिस् ( सं० पु० ) दक्षिणा दक्षिणस्यां ज्योतिरस्य । पञ्चौदन छागभेद ।

दक्षिणात् ( सं० अव्य० ) दक्षिणस्यां दिशि, दक्षिणस्या दिशः दक्षिणा वा दिक् दक्षिणा-आति ( उत्तराधरदक्षिणादातिः । पा ५।३।३४ ) १ दक्षिण दिक्, दक्षिणकी ओर । २ दक्षिणमें । ३ दक्षिणसे ।

दक्षिणान्तिका (सं० स्त्री०) वैतालीय छन्द । यह मात्रावृत्त है । वैतालीय मात्रावृत्तके पहले और तीसरे चरणमें १४ मात्राएं और दूसरे तथा चौथे चरणमें १६ मात्राएं रहती हैं, किन्तु इसमें प्रभेद यह है, कि यदि दूसरी और तीसरी मात्रामें एक गुरु हो, तो यह दक्षिणान्तिका मात्रावृत्त होगी और दूसरी दूसरी मात्रा वैतालीय सी होती है।

दक्षिणापथ (सं० पु०) दक्षिणा पन्थाः अच्, समासान्तः । १ देशभेद, एक देशका नाम । अवन्ती और ऋक्ष पर्वत पार कर दक्षिण पथमें कई एक राहें गई हैं जो विन्ध्य पर्वत और समुद्रगामिनी पयोष्णी नदी है । यहां महर्षियोंके आश्रम और विदर्भोंके पथ हैं जो कोशलको ओर चले गये हैं । इसके बाद दक्षिण दिशामें जो देश पड़ता है, उसीका नाम दक्षिणापथ है । ( भारत ३।१६ अ० ) दाक्षिणात्य देखो । २ दक्षिणस्थितमार्गमात्र, वह रास्ता जो दक्षिणकी ओर गया हो।

दक्षिणापथिक (सं० त्रि०) दक्षिणापथोऽस्त्यस्य स्वामित्वेन आवासत्वेन वा ठन् । दक्षिणापथदेशवासी, दक्षिणापथ देशके राजा, दक्षिण देशके सम्बन्धी ।

दक्षिणापरा ( सं० स्त्री० ) दक्षिणाया अपराया दिशोऽन्तराला दिक् । १ नैर्ऋतकोण । ( त्रि० ) २ तत्संस्थित, जो नैर्ऋत कोणमें पड़ता हो ।

दक्षिणाप्रवण ( सं० त्रि० ) दक्षिणा दक्षिणस्यां प्रवणं निम्नं । उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणकी ओर नीचा स्थान, श्राद्धादि प्रदेश । यह स्थान श्राद्धादिके लिए प्रशस्त होता है ।

"शुचिदेशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ।
दक्षिणा प्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥" ( मनु० ३।२०६ )

श्राद्धकार्यके लिए अस्थि वा अङ्गारादिशून्य शुचि और निर्जन प्रदेश निश्चित कर, उसे गोबरसे लीपना चाहिए । वह स्थान यदि स्वभावतः दक्षिणको ओर क्रमशः नीचा न हो, तो प्रयत्न करके उसे दक्षिणावनत करना चाहिए "दक्षिणाप्रवणं ।" ( कात्यायनश्रौ० २२।३।१६ ) "दक्षिणाप्रवणं देवयजनं भवति ।" ( कर्क )

दक्षिणाप्रष्टि ( सं० पु० ) धुर्यापेक्षया प्रकृष्टं देशमश्नोति प्र-अश-क्तिच् दक्षिणा दक्षिणभागे प्रष्टिः वाह्यः । १ धुर्यके मध्य दक्षिणस्थित अश्वभेद, वह घोड़ा जो तीन घोड़ोंके रथको गाड़ीमें आगे जोता जाता है । २ दक्षिणस्थित प्रष्टि सदृश अश्व ।

दक्षिणाबन्ध ( सं० पु० ) दक्षिणायां बन्धः अनुबन्धः । गृहस्थ आदिके दक्षिणानुबन्धका एकभेद । जो अभिमान पूर्वक दक्षिणा देते है और काम मोह आदिसे अभिभूत हैं, ऐसे गृहस्थ, ब्रह्मचारी, भिक्षु और वैखानसोंके लिए ही दक्षिणाबन्ध कहा गया है । "दक्षिणाबन्धो नाम गृहस्थब्रह्मचारिभिक्षुकवैखानसानां कामभोहोपचेतसां अभिमानपूर्वकं दक्षिणां प्रयच्छतां दक्षिणाबन्ध इत्युच्यते ।" (तन्त्रसार) बद्धावस्थामें अर्थात् जिनका अभिमान दूर नहीं हुआ है, उनके लिए बद्धावस्था समझना चाहिए ।

दक्षिणामुख (सं० त्रि०) १ दक्षिणा दक्षिणस्यां मुखं यस्य । दक्षिणादिङ्मुख, दक्षिणास्य, जिसका मुंह दक्षिणकी ओर हो । पूर्वकी ओर मुंह करके भोजन करनेसे आयुकी वृद्धि और दक्षिणमुख बैठ कर भोजन करनेसे यशकी प्राप्ति होती है । ( मनु० )

परन्तु जिनके पिता जीवित हैं, उनके लिए यह विधि नहीं है । वे यदि दक्षिणमुख बैठ कर भोजन करें, तो उन्हें पितृघाती समझना चाहिये । जीवितपितृकोंको अमाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, और दक्षिणमुख भोजन न करना चाहिये । ( तिथितत्त्व ) दक्षिणको तरफ मुंह करके पितरोंका तर्पण करना चाहिए । ( क्ली० ) २ दक्षिणकी ओर मुख ।

दक्षिणामूर्ति ( सं० पु० ) दक्षिणा अनुकूला मूर्तिरस्य संज्ञात्वात् न पुंवत् । शिव मूर्तिभेद, तन्त्रके अनुसार शिवकी एक मूर्ति । साधकश्रेष्ठको प्रति दिन शिवकी दक्षिणामूर्तिका ध्यान करना चाहिये । इस मूर्तिका एक वर्ष तक ध्यान करनेसे शास्त्रव्याख्यानकी शक्ति प्राप्त होती है । ( तन्त्रसार )

इसका ध्यान इस प्रकार है—

"प्रोद्यच्छाम्रमहावटद्रुमतले योगासनस्थं प्रभुं ।
अध्यात्मतत्त्वबुभुत्सुभिः प्रतिदिशं प्रोद्वीक्ष्यमाणाननं ॥
मुद्रां तर्कमयीं दधानममलं कर्पूरगौरं शिवं ।
हृद्यन्तः कलये स्फुरन्तमनिशं श्रीदक्षिणामूर्त्तिकं ॥"

ये महावटके तले योगासनसे अवस्थित हैं, अध्यात्मतत्त्वके जिज्ञासुगण चारों तरफसे उनका मुख निहारते हैं, वे तर्कमुद्रा धारण किये हुए हैं, उनका वर्ण कर्पूरवत् शुभ्र है, वे सर्वदा देदीप्यमान हैं। ऐसे दक्षिणामूर्ति महादेवका सर्वदा ध्यान करना चाहिए। (तन्त्रसार) समासमें 'कप्' होता है, उस अवस्थामें 'दक्षिणमूर्त्तिक' ऐसा रूप हो जाता है।

**दक्षिणामूर्त्तिमुनि**—उद्धारकोष वा कोषध्याननिर्णय नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

**दक्षिणायन** (सं० क्ली०) दक्षिणा दक्षिणस्यां दक्षिणगोले वा अयनं रवेः। १ सूर्यको दक्षिण गति, सूर्यको कर्करेखासे दक्षिण मकर रेखाकी ओर गति। २ सूर्यका दक्षिण गोलरूप तुलादि छठों राशिमें जाना।

सूर्य गगनमण्डलमें प्रतिवर्ष आषाढ़मासके अन्तमें उत्तरकी ओर जहां तक गमन करते हैं, वहां तकका नाम उत्तरक्रान्ति और क्रान्ति तथा उत्तर क्रान्तिसे ले कर जहाँ तक दक्षिणकी ओर गमन करते हैं, इसका नाम दक्षिणक्रान्ति है। इन दो प्रकारकी गतियोंको दक्षिणायण और उत्तरायण कहते हैं। अर्थात् सूर्य जब श्रावणसे पौषमास तक उत्तरी रेखासे दक्षिणी रेखाकी जाते हैं, तब उसे दक्षिणायन और जब माघ माससे आषाढ़ तक दक्षिणी रेखासे उत्तरीरेखाको जाते हैं, तब उसे उत्तरायण कहते हैं। इन दो सीमाओंके बीच पृथ्वीका जो अंश पड़ता है, उसका नाम मध्यखण्ड है। इस खण्डमें १२ राशि है और इन बारहोंके अन्तर्गत १०१६ नक्षत्र देखनेमें आते हैं। गगन-मण्डलके मध्यखण्डसे उत्तर जो अंश है, उसे उत्तरखण्ड कहते हैं। इस खण्डमें ३५ राशि अर्थात् पुञ्ज हैं और उनके भी अन्तर्गत १४५६ नक्षत्र हैं। यह हम लोगोंको यूरोपीय ज्योतिर्विदों द्वारा पता लगा है। मध्य खण्डमें जितने अचल नक्षत्र हैं, उनमेंसे कितनोंको एक एक कर आकृति निर्दिष्ट कर पूर्वकालमें ज्योतिर्विदोंने उन्हें बारह भागोंमें राशिचक्र नामसे सीमाबद्ध किया है। इन बारह राशियोंके नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

मेषराशिके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता है। जिन दो दिनोंमें सूर्य उस रेखामें रहते हैं, उन दिनोंमें दिवा और रात्रिमान बराबर होता है।

विषुवरेखाके उत्तरकी ओर ६ राशि अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या और फिर दक्षिणकी ओर ६ राशि अर्थात् तुला, विछा, धनु, मकर, कुम्भ और मीन तिर्यक् भावसे अवस्थित है।

पृथ्वी अपने कक्ष पर घूमते घूमते वैशाख माससे जब मीन और मेषराशिके बीच पहुंच जाती है अर्थात् जिस अंशमें राशिचक्रके साथ विषुव रेखासे मिलती है, तब उस अंशके साथ सूर्यका समसूत्रपात होता है और मीन तथा मेष राशि ठीक सूर्यके सामने रहती हैं। इस समय पृथ्वीके निरक्षवृत्तके ऊपर सूर्यरश्मि ठीक सीधी पड़ती है। इसी कारण पृथ्वी पर सब जगह उस दिन दिवा और रात्रिमान बराबर रहता है। अर्थात् जब सूर्य विषुवरेखा पर रहते हैं, तब उनकी क्रान्ति शून्य होती है और एक मेरुसे दूसरे मेरु तकका गोलकार्द्ध प्रकाशमय रहता है। सूर्यकी उत्तरक्रान्ति जितनी ही बढ़ती है, उतना ही उत्तरमेरु पार कर सूर्यका प्रकाश फैल जाता तथा दक्षिणमेरु प्रकाशहीन हो जाता है और सूर्यकी दक्षिणक्रान्ति जितनी बढ़ती है, उतना ही दक्षिणमेरु पार कर सूर्यका प्रकाश फैलता तथा उत्तरमेरु प्रकाशहीन हो जाता है। सूर्यकी क्रान्तिका परिमाण २३° २८′ है। वैशाखमासमें सूर्य मेषराशिमें प्रवेश कर रोज एक अंशसे कुछ कम हो कर ज्येष्ठमासमें वृषराशिमें पहुंच जाते हैं। मेषराशिसे कुछ पश्चिम और कुछ उत्तरमें वृषराशि अवस्थित है। सूर्य रोज एक अंशसे कमकी चालसे जा कर आषाढ़ मासमें मिथुन राशिमें प्रवेश करते हैं। मिथुनराशिके वृषराशिके ठीक उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। सूर्य मिथुन राशि पार कर श्रावणमासमें कर्कट राशिमें जाते हैं। जिस स्थान पर राशिचक्रके

साथ उत्तरक्रान्तिकी रेखा मिली है, वह स्थान उस दिन ठीक सूर्यके सामने रहता है। इसके बाद सूर्य उत्तरकी ओर नहीं जाते। इसीसे उस समयको अयनान्तकाल कहते हैं। सूर्य इस राशिसे ३०° पार कर भाद्रमासको सिंह राशिमें गमन करते हैं। यह सिंह राशि कर्कट राशिके दक्षिण पश्चिम भागमें अवस्थित है। पीछे सूर्य आश्विन मासको कन्याराशिमें जाते हैं। मेषराशिमें विषुवरेखाके साथ चक्रका जैसा संयोग है, वैसा ही संयोग तुलाराशिमें समझना चाहिए। मेषराशि तुला राशिसे १८०° दूर है। इसी कारण मेषादि ६ राशियां राशिचक्रका अर्द्ध भाग और तुलादि ६ राशियां उस चक्रका अपरार्द्ध अंश है। सूर्य कार्त्तिक मासमें तुलाराशिमें, अग्रहायण मासमें वृश्चिक राशिमें और पौष मासमें धनुराशिमें प्रवेश करते हैं। जिस अंशमें राशिचक्रके साथ दक्षिणक्रान्तिकी रेखा मिलती है, वह अंश उस दिनके ठीक सूर्यके सामने पड़ता है। फिर इस स्थानसे सूर्य दक्षिणकी ओर नहीं जाते। इसीसे यह समय दक्षिणायनान्तकाल कहलाता है। इस राशिके बाद कुम्भराशि और तब मीन राशि पड़ती है जिनमें सूर्य क्रमशः फाल्गुन और चैत्र माससें प्रवेश करते हैं।

इसी प्रकार पृथ्वी फिरसे वैशाख मासमें मीन और मेषराशिके मध्यस्थलमें जा पहुंचती है। विषुवरेखाके साथ राशिचक्रका जो अंश मिलता है, उस अंशके सूर्यमण्डलके सामने आने पर दिवा और रात्रिमान सदा एक सा रहता है। यथार्थमें सूर्य ही एक राशिसे दूसरी राशिमें पूर्वोक्त रूपसे भ्रमण करते हैं, ऐसा नहीं, सचल पदार्थमें अवस्थित हो कर अचल पदार्थकी ओर दृष्टिपात करनेसे उस पदार्थका गतिभ्रम होता है। इसी भ्रमके कारण ऐसा दीख पड़ता है। इसका फल यह निकलता है, कि पृथ्वी उपरोक्त क्रमसे एक राशिसे दूसरी राशिमें जा कर उत्तरायण और दक्षिणायनके अनुसार बारह राशियोंका भोग करती हुई एक वर्षमें सूर्यकी एक बार परिक्रमा करती है। सूर्य, पृथ्वी और अयन देखो। दक्षिणायनमें पुण्य कर्म तथा प्रतिष्ठा आदि करना निषेध है।

मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि दक्षिणायनमें विवाह, व्रत, चूड़ादि संस्कार, दीक्षा, यज्ञ, गृहप्रवेश, दान पूजा, प्रतिष्ठादि नहीं करनी चाहिये। यदि कोई मोहवश कर भी ले, तो उसे फल नहीं होता।

फिर स्मृतिमें भी लिखा है कि देवता, वापी और आरामादिकी प्रतिष्ठा उत्तरायणमें करनी चाहिये। दक्षिणायणमें नहीं करनेसे फल प्राप्त नहीं होता, किन्तु दक्षिणायनमें मातृ, भैरव, वराह, नरसिंह, त्रिविक्रम और महिषासुरहन्त्रीकी प्रतिष्ठा की जा सकती है।

(कालमा० वैद्यनाम०)

दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है इसीसे दुर्गोत्सवके समय सन्ध्या कालमें देवीका उद्बोधन करना होता है। ३ दक्षिणायनाभिमानी देवताभेद। ४ दक्षिणभागस्थित प्राण।

**दक्षिणारण्य** (सं० क्ली०) दक्षिणस्थं अरण्यं। अरण्यभेद, एक जंगलका नाम।

**दक्षिणारुस्** (सं० पु०) दक्षिणे दक्षिणभागे अरुर्व्रणं यस्य। व्याधि कर्त्तृक दक्षिणाङ्ग व्रणित मृग, वह मृग जिसके दहिने अङ्गमें व्याधाके तीर मारनेसे घाव हो गया हो।

**दक्षिणार्ह** (सं० पु०) दक्षिणा अर्हति दक्षिणा-अर्ह (अर्हः। पा ३।२।१२) दक्षिणायोग्य, वह जो दक्षिणाके उपयुक्त हो। इसका पर्याय—दक्षिणीय और दक्षिण्य है।

**दक्षिणावत्** (सं० त्रि०) दक्षिण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। दक्षिणायुक्त।

**दक्षिणावर्त्त** (सं० त्रि०) दक्षिणे आवर्त्तते आ-वृत अच्। १ दक्षिणमें आवर्त्तयुक्त जो दाहिनी ओर घुमा हुआ हो। २ दक्षिणदिक्‌स्थित, जो दक्षिणकी ओर अवस्थित हो। (पु०) ३ शङ्ख विशेष, एक प्रकारका शङ्ख जिसका घुमाव दाहिनी ओरका होता है।

**दक्षिणावर्त्तकी** (सं० स्त्री०) वृश्चिकाली नामका पौधा।

**दक्षिणावर्त्तवती** (सं० स्त्री०) दक्षिणे आवर्त्तते आवृत बाहुल्, गौरादित्वात् ङीष्। वृश्चिकाली नामका पौधा।

**दक्षिणावर्त्ता** (सं० स्त्री०) मेषशृङ्ग, भेंड़के सींग।

**दक्षिणावह** (सं० पु०) दक्षिणा दक्षिणदिक्‌तो वहति वह अच्। दक्षिणानिल, दक्षिणसे आनेवाली हवा।

**दक्षिणावृत्** (सं० त्रि०) दक्षिणे आवर्त्तते वृत-क्विप्। दक्षिणावर्त्त।

दक्षिणाशा (सं० स्त्री० दक्षिणा आशा दिक्। दक्षिण-दिक्, दक्षिण दिशा।

दक्षिणाशापति (सं० पु०) दक्षिणस्या दिशः अधिपति। १ यम। २ मङ्गलग्रह।

दक्षिणासद्—दक्षिणसद् देखो।

दक्षिणाहि (सं० अव्य) दक्षिण दूरार्थे आहि। दूरस्थित दक्षिण भाग।

दक्षिणित् (सं० अव्य) दक्षिणात् वेदे पृषोदरादित्वात् साधुः। दक्षिणको ओर।

दक्षिणी (हिं० स्त्री०) दक्षिण देशको भाषा। (पु०) २ दक्षिणदेशका निवासी। (वि०) ३ दक्षिणदेश सम्बन्धी, दक्षिण देशका।

दक्षिणीय (सं० त्रि०) दक्षिणामर्हति दक्षिणा-छ। १ दक्षिणार्ह, जो दक्षिणाका पात्र हो। २ दक्षिण सम्बन्धी, दक्षिणका।

दक्षिणेतर (सं० त्रि०) दक्षिणादितरः। दक्षिणसे इतर, वाम, बायां।

दक्षिणेन (सं०अव्य) दक्षिणएनप्। दक्षिणकी ओर इस शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है।

दक्षिणेर्मन् (सं० पु०) दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य ततोऽनिच्। व्याध कर्तृक दक्षिण पार्श्वका आहत मृग, वह हरिण जिसके दहिने बगलमें व्याधाके तीरसे घाव हो गया हो।

दक्षिणेश्वर—वंगालमें चौबीस परगने जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह हुगली नदीके किनारे अवस्थित है और कलकत्तेसे कुछ उत्तरमें पड़ता है। यहां बारूद तैयार करनेका कारखाना, बारह मनोहर शिवमन्दिर और एक सुन्दर कालीका मन्दिर है।

दक्षिणोत्तर (सं० त्रि०) दक्षिण और उत्तरको ओर अवस्थित, जो दक्षिण और उत्तरमें पड़ता हो।

दक्षिणोत्तरी (सं० त्रि०) दक्षिण भागके ऊपर अवस्थित।

दक्षिण्य (सं० त्रि०) दक्षिणां अर्हति दक्षिणा यत्। दक्षिणार्ह, जो दक्षिणाका पात्र हो।

दक्षिणेश्वरलिङ्ग (सं० क्ली०) काशीस्थित दक्षप्रजापति स्थापित लिङ्गभेद, काशीका एक लिङ्ग जिसे दक्षप्रजापतिने स्थापित किया था। दक्षप्रजापतिने ब्रह्माके आदेशसे काशीमें शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। वहां वे अनन्यचित्तसे उनकी पूजादि करते थे। महादेवने सन्तुष्ट हो दक्षको वर दिया और कहा—"तुम्हारे सम्पूर्ण अपराध मैंने क्षमा कर दिये, तुम्हें और भी एक वर देता हूं कि तुमने जिस लिङ्गकी प्रतिष्ठा की है, वह दक्षिणेश्वरलिङ्गके नामसे प्रसिद्ध होगा। जो लोग इस लिङ्गकी सेवा करेंगे, मैं उनके सहस्र सहस्र अपराध क्षमा कर दूंगा। तुम भी इस लिङ्गकी पूजाके कारण सबके मान्य बनोगे और दो परार्द्धकालके बाद मोक्ष प्राप्त करोगे।' इतना कह कर महादेव उस लिङ्गमें अन्तर्हित हो गये। (काशीख० ६१ अ०)

दखमा (हिं० पु०) पारसीके मुर्दे रखनेका स्थान। पारसी लोग शवको जलाते या गाड़ते नहीं है, बल्कि उसे खास निर्जन स्थानमें रख देते हैं जहां चील, कौए आदि उनका मांस खा जाते हैं। इस कामके लिये थोड़ासा स्थान पचीस तीस फुट ऊंची दीवारसे घेर दिया जाता है और इसके ऊपरी भागमें जंगला मढ़ा जाता है। वे इसी जंगले पर शव रख देते हैं, चील-कौए आदिसे उसका मांस खाये जाने पर हड्डियां जंगले होकर नीचे गिर पड़ती है।

दखल (अ० पु०) १ अधिकार, कबजा। २ हस्तक्षेप, हाथ डालना। ३ प्रवेश, पहुंच।

दखलदिहानी (हिं० स्त्री०) किसी वस्तु पर किसीको अधिकार दिला देना, कबजा दिलवाना।

दखलनामा (अ० पु०) दखलदिहानीका सरकारी आज्ञा-पत्र।

दखील (अ० वि०) अधिकार रखनेवाला।

दखीलकार (फा० पु०) कमसे कम बारह वर्ष तक किसी जमींदारके खेत पर अपना दखल जमाये रखनेका आसामी।

दखीलकारी (फा० स्त्री०) १ दखीलकारका पद। २ वह जमीन जिस पर दखीलकारका अधिकार हो।

दगड़ (हिं० पु०) एक प्रकारका ढोल जो लड़ाईमें बजाया जाता है, जंगी ढोल।

दगड़ना (हिं० क्रि०) सत्य वचनका विश्वास न करना।

दगदगा (अ० पु०) १ डर, भय। २ संदेह, शक। ३ एक प्रकारकी कंडील।

दगदगाना ( हिं॰ क्रि॰ ) चमकना, दमदमाना।

दगदगाहट ( हिं॰ स्त्री॰ ) चमक, दमक।

दगदगी ( हिं॰ स्त्री॰ ) दगदगा देखो।

दगना ( हिं॰ क्रि॰ ) १ बन्दूक या तोपका छूटना। २ दागा जाना। ३ दग्ध होना, जलना।

दगरो ( हिं॰ स्त्री॰ ) बिना मलाईका दही।

दगलफसल ( हिं॰ पु॰ ) धोखा फरेब।

दगला ( हिं॰ पु॰ ) रुईदार वा मोटे कपड़ेका अंगरखा।

दगवाना ( हिं॰ क्रि॰ ) किसी दूसरेको दागनेके काममें लगाना।

दगहा ( हिं॰ वि॰ ) १ दागवाला। २ सफेद दागवाला। ३ प्रेतकर्म-कर्त्ता, जिसने प्रेतक्रिया की हो। ४ जो दग्ध किया गया हो।

दगा ( अ॰ स्त्री॰ ) कपट, छल, धोखा।

दगादार ( फा॰ वि॰ ) विश्वासघातक, धोखेबाज, छली।

दगाबाज ( फा॰ वि॰ ) १ कपटी, छली। ( पु॰ ) २ वह मनुष्य जो धोखा देता हो, छली आदमी।

दगाबाजी ( फा॰ स्त्री॰ ) छल, कपट, धोखा।

दगार्गल ( सं॰ क्ली॰ ) दकस्य जलस्य अर्गलमिव, गमध्यपाठे तु पृषोदरादित्वात् गकारस्य ककारः दकार्गलं। निर्जल स्थानके ऊपरी लक्षण देख कर भूमिके नीचे पानी होने अथवा न होनेका ज्ञान।

इसका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें रक्तवाहिनी शिराएँ होती है, उसी प्रकार पृथ्वीमें ऊपर नीचे जलवाहिनी शिराएं होती है। एक वर्ण और एक रसयुक्त जलके आकाशसे गिरने पर मट्टी अनेक वर्णों तथा रसोंसे युक्त हो जाती है। इसी कारण जलकी परीक्षा मट्टी द्वारा करनी चाहिये। इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, पवन, चन्द्र, शङ्कर आदि देवगण क्रमशः प्रदक्षिणक्रमसे पूर्वादि सभी दिशाओंके अधिपति हैं। आठों दिशाओंमें बहनेवाली शिराएं अपने अपने अधिपतिके नामसे पुकारी जाती हैं।

पृथ्वीके मध्य जो शिरा प्रवाहित है, उसे महाशिरा कहते हैं। महाशिराके अलावा और भी सैकड़ों शिराएँ हैं, जो नाना प्रकारसे निकल कर भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

चारों ओर अवस्थित तथा पातालसे उत्थित जो सब जलशिराएं हैं, वे शुभजनक हैं। कोणको ओरसे अर्थात् अग्नि, नैऋत, वायु और ईशान इन चार कोणोंमें निकली हुई शिराएं शुभजनक नहीं हैं। यदि किसी निर्जन स्थानमें बेंतका वृक्ष हो, तो समझना चाहिये कि उससे पश्चिम तीन हाथकी दूरी पर डेढ़ पुरुसे नीचे अच्छे जलकी शिरा है और उससे भी आध पुरुसे* नीचे पाण्डुवर्ण मण्डूक, पीतवर्ण मृत्तिका और पुटभेदक पाषाण इन्हीं चिह्नोंके नीचे जल है। निर्जन प्रदेशमें यदि जामुनका पेड़ हो, तो उससे उत्तर तीन हाथकी दूरी पर दो पुरुसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा अवस्थित है। इस जगह एक पुरुसे नीचे लौहगन्धिका मृत्तिका और पाण्डुवर्ण मण्डूक है, ऐसा समझना चाहिये। जम्बु वृक्षके पूर्वको ओर पास ही यदि वल्मीक हो, तो उससे दक्षिण दो पुरुसेकी दूरी पर दो पुरुसे नीचे स्वादिष्ट जल मिलेगा। मट्टी खोदते समय यदि आध पुरुसे नीचे मछली और कबूतरके समान पत्थर एवं मट्टी नीली निकले तो समझना चाहिये यहां बहुत समय तक जल रहता है। गूलरवृक्षसे तीन हाथ पश्चिम एक पुरुसे जमीनके नीचे सफेद हड्डी और अञ्जनके जैसा पत्थर निकले, तो आध पुरुसेकी दूरी पर उत्तम जलयुक्त शिरा मिलेगी। अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ उत्तर यदि वल्मीक रहे, तो समझना चाहिये, पश्चिमको ओर आध पुरुसेकी दूरी पर जल है। मट्टी खोदते समय यदि आधपुरुसे नीचे गोह नामक जन्तु और एक पुरुसे नीचे धूसरवर्ण मट्टी तथा उसके भी कुछ नीचे पीली एवं रेतीली मट्टी मिले, तो वहां अपरिमित जल पाया जायगा। वल्मीकसे एकत्रित निर्गुण्डी वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण दो पुरुसे नीचेमें अशोष्य और स्वादु जल; उससे भी आध पुरुसे नीचे रोहित मछली, तब कपिलवर्ण और उससे भी नीचे मण्डूर वर्ण तथा रेतीली मट्टी मिलेगी और वहांका जल बहुत स्वादिष्ट होगा। यदि बेर पेड़से पूर्व वल्मीक देखा जाय, तो उसके बगलमें तीन पुरुसे नीचे जल अवश्य मिलेगा। जहां ढाक तथा बेरका पेड़ एक साथ मिला हो, वहां तीन पुरुसे नीचे पश्चिमकी ओर जलशिरा, उससे भी

* भट्टोत्पलके मतसे १ पुरुषा = १२ उंगली।

एक पुरुसे नीचे दुन्दुभिका चिह्न; यदि बेल और गूलरका पेड़ मिला हो, तो दक्षिणको ओर तीन हाथ छोड़ कर तीन पुरसे नीचे जल तथा उससे भी आध पुरसे नीचे कृष्णमण्डूक मिलेगा। कठगूलर पेड़के समीप यदि वल्मीक नजर आवे, तो समझना चाहिये, कि पश्चिमको ओर तीन पुरसे नीचे दिग्वाही शिरा प्रवाहित है। इससे भी आध पुरसे नीचे ईषत् पाण्डुवर्ण और पीली मिट्टी, दूधके जैसा रुफेद पत्थर और कुमुदके जैसा मूषक देखनेमें आवेगा। जलहीन स्थानमें जहां सफेद नौसादरका पेड़ देखा जाय, वहां पूर्वकी ओर तीन हाथको दूरी पर प्रथम दक्षिणवाहिनी शिरा प्रवाहित होती है। इस जगहको जमीन खोदनेमें नीलोत्पलवर्ण और कपोतवर्ण विशिष्ट मालूम पड़ेगी तथा हाथ भरके फासले पर अजगन्धी मत्स्य और क्षीर समन्वित जल मिलेगा। शोणाक वृक्षके पश्चिम-उत्तरकी ओर दो हाथ छोड़ कर कुमुद नामकी शिरा मिलेगी। यह शिरा तीन पुरसे नीचे हो कर बहती है। यदि विभीतक वृक्षके दाहिने बगलमें वल्मीक हो, तो समझना चाहिये, कि पूर्वकी ओर आध पुरसे नीचे हो कर जलशिरा प्रवाहित है। यदि वहांसे हाथ भरको दूरी पर वल्मीक रहे, तो साढ़े चार पुरसे नीचे जल प्रवाहिणी शिरा अवश्य बहती होगी। उस जगहकी एक पुरसे नीचेकी मट्टी सफेद तथा कुङ्कुमकी तरह चमकीला पत्थर मिलेगा। तीन वर्ष बीत जाने पर वहांकी जलवाहिनी शिरा नष्ट हो जायगी, ऐसा समझना चाहिये। (वृहत्संहिता ५४ अ०)

दग़ैल (फा० वि०) १ जिसमें दाग हो। २ जिसमें कुछ दोष हो। (पु०) ३ छली, कपटी, दगाबाज।

दग्ध (सं० त्रि०) दह-क्त। १ कृतदाह, भस्मीकृत, जो जल गया हो, जला या जलाया हुआ।

"दशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः॥" (साहित्यद०)

२ दुःखित, जिसे कष्ट पहुंचा हो, जिसका हृदय दग्ध हुआ हो वा जो जल गया हो।

(क्ली०) ३ शरीरस्थ अग्निदाहभेद, वह शरीर जो जल गया हो। शरीरका कोई अङ्ग जल जाने पर निम्न लिखित प्रणालीसे उसका प्रतिविधान करना चाहिए। अग्नि घृत, तैलादि स्नेहविशिष्ट अथवा नीरस द्रव्यका आश्रय ले कर दहन-कार्य सम्पन्न करती है। अग्नि द्वारा सन्तप्त होने पर घृत तैल आदि स्नेह-द्रव्य सूक्ष्म शिराओंमें प्रविष्ट हो जाते हैं, इस कारण वह त्वक् और मांस आदिके भीतर प्रवेश कर शीघ्र ही दहन करते हैं। इसी लिए स्नेह-द्रव्य द्वारा दग्ध होने पर अत्यन्त वेदना होती है। यह अग्निदग्ध चार प्रकारका है—प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यक्दग्ध और अतिदग्ध। जिसमें जलन पड़े और रंग बदल जाय उसे प्लुष्ट कहते हैं। जिसमें दग्ध स्थान पर स्फोट (फफोला) हो जाय और वह स्थान अत्यन्त उष्ण, दाहयुक्त, रक्तवर्ण, पाक एवं वेदनाविशिष्ट हो तथा, विलम्बसे आरोग्य हो, उसका नाम है दुर्दग्ध। दग्ध स्थान गम्भीर न हो और पके ताड़की तरह उसका रंग हो तथा पूर्वोक्त लक्षण उसमें विद्यमान हो, तो उसे सम्यक् दग्ध समझना चाहिये। अतिदग्ध होनेसे, दग्ध स्थानका मांस झूल जाता है, शरीर शिथिल और शिरा, स्नायु, सन्धि एवं अस्थि नष्ट हो जाती है तथा अत्यन्त ज्वर, दाह, पिपासा, मूर्च्छा आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इसमें क्षत स्थान देरसे भरता है और भर जाने पर विवर्ण हो जाता है। इस चार प्रकारके दग्धोंके द्वारा अग्निकर्मका साधन हुआ करता है।

अग्नि द्वारा प्राणियोंका रक्त कुपित हो कर शीघ्र ही वेग-विशिष्ट हो जाता है।

रक्तके उस वेगके कारण पित्त भी वेगवान् हो जाता है। अग्नि और पित्त दोनों प्रायः एक जातिके पदार्थ हैं और एक ही रस-विशिष्ट हैं; इसीलिए अग्नि-दग्ध स्थानमें तीव्र वेदना, स्वभावतः जलन और स्फोट हो जाते हैं तथा ज्वर और तृष्णाकी वृद्धि होती है।

दग्ध-चिकित्सा—प्लुष्ट दग्धमें अग्निका ताप तथा उष्णक्रिया और उष्ण औषधका प्रयोग करना चाहिए। उसके द्वारा शरीर घर्मात्त होने पर और भी तरल हो जाता है। शीतल जल द्वारा स्वभावतः उक्त स्कन्दित (जम जाना) होता है। इस लिए प्लुष्ट-दग्धमें उष्णके सिवा शीतल क्रिया कभी भी सुखकर नहीं होती। दुर्दग्ध स्थान पर उष्ण एवं शीतल दोनों प्रकारकी क्रियाएं करनी चाहिए। दग्ध स्थान पर घी लगाना और शीतल वस्तु सेचन करना चाहिए। सम्यक् दग्ध होने पर

वंशलोचन, चन्दन, गेरू और गुलञ्च इनको घोमें मिला कर प्रलेप देना चाहिए। अथवा ग्राममें वा जल-बहुल देशोंमें जो पशु रहते हैं, उनका अथवा जलजन्तुका मांस पीस कर उसका भी प्रलेप दिया जा सकता है। पित्तजन्य विद्रधि होने पर जैसे निरन्तर उष्ण क्रिया की जाती है, इसमें भी वैसा ही करना चाहिए। अति दग्ध स्थानका जो माम शोर्ण हो जाता है, उसे उठा कर देखना चाहिए और उस पर शीतल क्रिया करनी चाहिए। उसके बाद शालिधान्यके तुष-विहीन तण्डुलों (चावलों) को पीस कर घीमें मिला कर अथवा गावके क्वाथमें गावकी छाल पीस कर उसमें घृत मिला कर उसका प्रलेप देना चाहिए। गुलञ्चके पत्तेसे अथवा पानीमें होनेवाले किसी पेड़के पत्तेसे क्षत-स्थानको ढक रखना चाहिए। पित्तजन्य विसर्परोगमें जो क्रियाएं की जाती हैं, इसमें भी उनका प्रयोग करना चाहिए। मोम, जेठी मधु, लोधके पेड़की छाल, धूना, मंजीठ, चन्दन और मूर्वामूल इनको एक साथ पीस कर, घृत पाक करना चाहिए। इस घीसे सब प्रकारके अग्निदग्ध व्रण अच्छी तरह भर जाते हैं। स्नेह-द्रव्यके संयोगसे दग्ध होने पर उसमें रूक्ष क्रिया ही विशेष लाभदायक होती है।

उष्ण वायु और रौद्र (धूप वा घाम) द्वारा दग्ध होने पर शीतल क्रिया करनी चाहिए। अतिशय तेज द्वारा दग्ध होने पर किसी भी प्रतिकारसे उसको शान्ति नहीं होती। वज्राग्नि-द्वारा दग्ध हो कर यदि जीवित रहे, तो तमाम शरीरमें घृत तैलादि स्नेह-द्रव्योंका मर्दन और सेवन करना चाहिए तथा पूर्वोक्त अग्निदग्धके प्रलेपका भी प्रयोग करना चाहिए।

शस्त्र-चिकित्सामें अग्निक्रिया ही प्रधान है। पीड़ित स्थानको अग्नि-द्वारा दग्ध करनेका नाम अग्निक्रिया है। अग्निकर्मके विधानानुसार दग्ध करनेसे वह रोग फिर कभी नहीं होता। जो रोग क्षार-द्वारा आरोग्य नहीं होते, वे अग्निक्रियासे आरोग्य हो जाते हैं। स्नेहद्रव्यसे पीड़ित स्थान पर अग्निकर्म करना हो, तो उसमें पिप्पली, छागीविष्ठा, गोदन्त, शर, शलाका, जाम्बवौष्ठ अथवा अन्य किसी प्रकारका लौह, मधु गुड़, घृत, तैल और वसा आदि द्रव्योंके संयोगकी आवश्यकता होती है।

किसी प्रकारके त्वक् रोगमें, यदि दग्ध करनेकी आवश्यकता आ पड़े, तो पिप्पली, छागीविष्ठा, गोदन्त, शर और शलाकाके द्वारा मांसगत रोगमें दग्ध करना हो, तो जाम्बवौष्ठ वा अन्य किसी प्रकारके लौह-द्वारा; शिरागत, स्नायुगत, सन्धिगत, वा अस्थिगत रोगमें दग्ध करना हो, तो गुड़, मधु वा अन्य किसी प्रकारके घृत तैलादि स्नेह-द्रव्य द्वारा दग्ध करना चाहिए।

शरत् और ग्रीष्मऋतुके सिवा अन्य सभी ऋतुओंमें रोग विशेषसे पीड़ित स्थान दग्ध किया जा सकता है। परन्तु दग्ध क्रियाका प्रयोग तभी करना चाहिए, जब कि वह रोग अन्य किसी भी प्रक्रियासे आरोग्य न हो। अन्यथा दग्धकर्म करना उचित नहीं।

रोगीको, दग्धकर्म करनेसे पहले पिच्छिल अन्न खिलाना चाहिए; तब दग्ध करना चाहिए।

किसी किसी विद्वान्‌के मतसे यह दो प्रकारका है— त्वक्‌दग्ध और मांसदग्ध। परन्तु सुश्रुतके मतसे शिरा, स्नायु, सन्धि और अस्थि-स्थानमें भी इस प्रकार दग्ध करनेका निषेध नहीं है। त्वक्‌को दग्ध करनेसे 'चट्-चट्' शब्द, दुर्गन्ध और त्वक्‌का सङ्कोच होता है। मांसको दग्ध करनेसे दग्धस्थान कपोतवर्ण, अल्प स्फीत, वेदनाविशिष्ट, शुष्क, संकुचित और क्षत हो जाता है। शिरा और स्नायु पर दग्धकर्म करनेसे दग्धस्थान कृष्ण-वर्ण और उन्नतव्रणविशिष्ट तथा रक्तादिका स्राव बंद हो जाता है। सन्धि और अस्थिको दग्ध करनेसे दग्धस्थान रूक्ष, अरुणवर्ण और कर्कश हो जाता है तथा दग्धजनित क्षत भी शीघ्र आरोग्य नहीं होता। शिरोरोग और अधि-मन्थ रोगमें भ्रू, ललाट और ललाटकी अस्थिको दग्ध करना पड़ता है। वर्त्मरोगमें, चक्षुके दृष्टि-स्थान पर अलक्तक आच्छादित कर वर्त्म स्थानके रोग पर दग्ध क्रिया करनी चाहिये। रोगके स्थानभेदसे अग्निकर्मके भी चार भेद हैं—वलय, बिन्दु, विलेपन और प्रतिसारण। चूड़ीकी तरह गोल रेखाके आकार दग्ध करनेका नाम वलय है। बिन्दुके आकार दग्ध करना बिन्दु कहलाता है। शरीरके सिर्फ चमड़ेको जला देना, विलेखन है। उष्ण घृत वा तैलादि तरल पदार्थके संयोगसे जो दग्ध-कर्म होता है एवं जिसमें दग्धका उपकारी द्रव्य शरीरमें

व्याप्त हो जाय उसे प्रतिसारण कहते हैं। इससे विलम्बमें आरोग्यता प्राप्त होती है। (सुश्रुत) अग्निदग्ध देखो।
(क्लो०) ४ कलण, एक प्रकारको घास। (रत्नमाला०)
५ तिथिभेद-युक्त चन्द्राश्रित राशि। (ज्योतिस्तत्त्व)
इस दग्धग्रहमें जो भी कार्य किया जाता है, वह नष्ट हो जाता है। ६ वारभेद-युक्त नक्षत्रभेद।

दग्धकाक (सं० पु०-स्त्री०) दग्ध इव काकः। द्रोणकाक, डोम कौवा।

दग्धपातन्याय (सं० पु०) न्यायभेद, एक प्रकारका न्याय।

दग्धमन्त्र (सं० पु०) दग्धः मन्त्रः कर्मधा०। तन्त्रसारोक्त मन्त्रभेद, तन्त्रके अनुसार एक मन्त्र। इसके मूर्द्धा प्रदेशमें वह्नि और वायुयुक्त वर्ण होते हैं।

दग्धमत्स्य (सं० पु०) अग्निदग्ध मीन, भुनी हुई मछली।

दग्धरथ (सं० पु०) दग्धः रथः यस्य। इन्द्रके एक सारथी, चित्ररथ गन्धर्वका नामान्तर। ये इन्द्रके यहां सारथीका काम करते थे। इनके एक विचित्र रथ था, इसीसे इनका नाम चित्ररथ पड़ा। किसी समय पाण्डवगण पाञ्चालको जा रहे थे, इसी समय दग्धरथ सोमाश्रयण तीर्थमें गङ्गामें पैठ कर रमणियोंके साथ क्रीडा कर रहे थे। पाण्डवोंको अपनी ओर आते देख ये धनुष्टङ्कार करते हुए अर्जुनके पास पहुँच गये और अभिमानसे बोले,—"मैं यहाँ जलविहार करता हूं। इस समय देवगण भी यहां आनेका साहस नहीं करते। तुमने मनुष्य हो कर क्या सोच कर यहां आनेका साहस किया?' इस प्रकार दोनोंमें कुछ काल तक वादानुवाद होता रहा। पीछे घनघोर युद्ध छिड़ हो गया। अर्जुनने आग्नेय शास्त्रके प्रभावसे इनका रथ दग्ध कर डाला। उसी समयसे ये दग्धरथ नामसे प्रसिद्ध हुए। बाद इन्होंने अर्जुनके साथ मित्रता कर ली और उन्हें चक्षुषीविद्या सिखला दी। (महाभारत आदिप० १७० अ०)

दग्धरुह (सं० पु०) दग्ध अपि रोहति रुह-क। तिलकक्षुप। तिलक वृक्ष।

दग्धरुहा (सं० स्त्री०) दग्धरुह-टाप्। वृक्षविशेष. कुरुह नामका पेड़।

दग्धवर्णक (सं० पु०) रोहिष नामक तृण, रोहिष नामकी घास।

दग्धा (सं० स्त्री०) १ सूर्यावस्थान दिक्, वह दिशा जिस ओर सूर्य अवस्थान करता हो, सूर्यके अस्त होनेकी दिशा, पश्चिम। २ वृक्षविशेष, एक तरहका पेड। इसे कुरु कहते हैं। पर्याय—कुरुह, दग्धरुहा, दग्धिका, स्थलेरुहा, रोमशा, कर्कशदला, भस्मरोहा, सुदग्धिका। गुण-कटु, कषाय, उष्ण, कफवातनाशक, पित्तप्रकोपक, जठराग्निकारक। (राजनि०)

३ राशिभेदयुक्त तिथिभेद, विशिष्ट राशियोंसे युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ। जैसे वैशाख मासको शुक्लाष्टमी, आषाढ़को शुक्लाष्टमी, भाद्रपदको शुक्लादशमी, कार्त्तिकको शुक्लाद्वादशी, पौषको शुक्लाद्वितीया, फाल्गुनको शुक्लाचतुर्थी, श्रावणको कृष्णाष्टमी आश्विनको कृष्णाष्टमी, अग्रहनको कृष्णादशमी, माघकी कृष्णाद्वादशी, चैत्रको कृष्णाद्वितीया और ज्येष्ठकी कृष्णाचतुर्थी। ये दग्धा तिथियां निष्फला है और इनको मासदग्धा कहते हैं। इन दग्धा तिथियोंमें यदि कोई यात्रा करे, तो उसको मृत्यु निश्चित है, चाहे वह इन्द्र-तुल्य क्यों न हो। दग्धातिथिमें विवाह होनेसे स्त्री विधवा हो जाती है, कृषिकार्यमें फलका अभाव, विद्यारम्भमें मूर्खता, स्त्री-सङ्गममें गर्भपात और मूलधनका नाश होता है। अतएव दग्धातिथियोंमें कोई भी शुभ कार्य न करना चाहिए। (ज्योतिस्तत्त्व)

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी, बुद्धवारको तृतीया, वृहस्पतिवारको षष्ठी शुक्रवारको अमावस्या और पूर्णिमा एवं शनिवारको सप्तमी होनेसे वह तिथि दग्धा समझी जाती है; इनको दिनदग्धा कहते है। दिनदग्धा तिथियोंमें भी कोई शुभ कार्य न करना चाहिये। (ज्योतिःसारसंग्रह)

दग्धाक्षर (सं० पु०) पिङ्गलके अनुसार झ, ह, र, भ और ष ये पाँचों अक्षर। इनका छन्दके आरम्भमें रखना वर्जित है।

दग्धास्य (सं० पु०) कुमारिच क्षुप लालमिर्चका पौधा।

दग्धाह्व (सं० पु०) क्षारप्रधान वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़।

दग्धिका (सं० स्त्री०) कुत्सिता दग्धा-कन् (कुत्सिते। पा ५।३।७४) टाप्। १ दग्धान्न, जला हुआ भात। इसका पर्याय-भिस्सटा, भिस्सिटा, भिस्सिटा, भिस्सिटा और भिक्षिका है। २ दग्धावृक्ष, कुरु नामका पेड़।

दग्धेष्टका (सं॰ स्त्री॰) दग्ध इष्टका, जली हुई ईंट, झांवा।

दग्धोदर (सं॰ क्ली॰) दग्धं उदरं। क्षतोदर, जला हुआ पेट।

दचक (हिं॰ स्त्री॰) १ वह चोट जो झटके वा दबावसे हो जाती है। २ धक्का, ठोकर। ३ दबाव।

दचकन (हिं॰ क्रि॰) १ ठोकर खाना। २ दब जाना। ३ झटका खाना। यह सकर्मक क्रिया भी है।

दचना (हिं॰ क्रि॰) गिरना, पड़ना।

दज्जाल (अ॰ पु॰) १ मिथ्यावादी, धूर्त्त, बेईमान। २ निष्ठुर।

दहघल (हिं॰ पु॰) सहदेई नामका पौधा।

दड़ोकना (हिं॰ क्रि॰) दहाड़ना, गाय, सांढ़ आदिका बोलना।

दढ़ियल (हिं॰ वि॰) दाढ़ीवाला, जिसने दाढ़ी रखी हो।

दणियर (हिं॰ पु॰) सूर्य।

दण्ड (सं॰ क्ली॰) दण्ड घञ्, वा दाम्यतेऽनेन दम-ड। इनन्तात् डः। उण् १।११३। यष्टि लाठी, डंडा।

दण्ड धारण करनेसे लाभ—गिर पड़ने पर उसके सहारे उठ सकते हैं, शत्रु के आक्रमण करने पर अपनी रक्षा कर सकते हैं इत्यादि। यह आयुष्कर और भयनाशक है। (वैद्यक) ब्राह्मण पर दंड उठाने पर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र आचरण करना चाहिये।

२ वह दंड जिसे ब्रह्मचारी धारण करते हैं। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लिए उपनयनके समय दंड धारण करनेकी विधि है। तदनुसार ब्राह्मणको बिल्व और पलाशका, क्षत्रियको वट और खदिरका एवं वैश्यको पिलु और उदुम्बर-काष्ठका दंड धारण करना चाहिये। ब्राह्मणोंका दंड केशान्त पर्यन्त, क्षत्रियोंका दंड ललाट पर्यन्त और वैश्योंका दंड नासिका पर्यन्त होना चाहिए। (मनु २।४५-४८)

संन्यासियोंके लिए दंड ग्रहणके विषयमें विशेषता है। यथा—

"कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः।
चतुर्थो परमो हंसो यो यः पश्चात् स उत्तमः॥" (हारीत)

कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस इन संन्यासियोंमें पहलेकी अपेक्षा पीछेके उत्तरोत्तर उन्नत और श्रेष्ठ हैं। कमलाकरने लिखा है, कुटीचक और बहूदकको तीन दंड, हंसको एक वैणवदंड तथा परमहंसको एक दंड रखना चाहिए। (निर्णयसि॰)

मेधातिथि लिखते हैं—

"यावन्नस्युस्त्रयो दंडास्तावदेकेन वर्त्तयेत्"

अर्थात्, जब तक त्रिदंडी न हो सकें, तब तक एक ही दंड रखो, परन्तु यहां त्रिदंड यष्टिपर नहीं है, वाग्दंडादि दमनपर है।

पहले जो परमहंसके लिए एक दंडकी बात कही गई है वह अविद्वानोंके लिए है; परमज्ञानियोंके लिये नहीं। महोपनिषद्में लिखा है—'न दंडं न शिखां नाच्छादनं न भैक्षं चरति परमहंसः' 'ज्ञानमेवास्य दंडः।' अर्थात् ज्ञान ही परमहंसका दंड स्वरूप है।

३ व्यूहभेद, एक प्रकारका व्यूह। अग्निपुराणके मतसे मण्डल और असंहतके भेदसे नाना प्रकारके दण्ड हैं, यथा—तिर्यग्वृत्ति, वृत्ति, सर्वतोवृत्ति, पृथग्वृत्ति। इनके नामान्तर इस प्रकार हैं—प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, वैकुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, सञ्जय, विशाल, सूची, स्थूणाकर्ण, चमूमुख, सर्पमुख, वलय, अतिक्रान्त, प्रतिक्रान्त, विपर्यय, स्थूणापक्ष, धनुःपक्ष, द्विस्थूण, ऊर्ध्वदंड, द्विदंड, चतुर्दण्ड, गोमूत्रिका, सञ्चारी, शकट, मकर, इत्यादि। व्यूह देखो।

भावे अच्। ४ दमन, शासन। ५ शरणागतत्राण, सर्वभूतमें अहिंसा और दानरूप कर्मचय।

(भारत मोक्षधर्म)

दण्ड इवाचरति दंड-क्विप् ततो भावे घञ्। ६ दंड तुल्यस्थिति, दंड देने योग्य अवस्था। दंड करणादौ अच्। ७ प्रकाण्ड, बड़ा भारी। ८ अश्व, घोड़ा। ९ कोण, कोना। १० मन्थन, मथानी। ११ सैन्य, सेना। १२ भूमिका परिमाणभेद, जमीन मापनेका एक प्रकारका दंड वा गज। यह चार हाथ लम्बा होता है। (लीलावती)

१३ सूर्यका एक परिषद्। १४ यम, दण्डकर्त्ता। १५ अभिमान, घमण्ड। १६ दंडाकार ग्रहभेद, एक ग्रह जो दंडके आकारका होता है। महाशृंगारक देखो। १७ इक्ष्वाकुराजके एक पुत्र। इन्हींके नामानुसार दण्ड-

कारणका नामकरण हुआ है। (हरिवंश १०,अ०) १८ सोठ पलकी बराबर समय। घटिग्रन्त देखो।

१९ विष्णु। (भारत १३।१४९।१०१) २० शिव। (भारत १३।२८६ अ०) २१ दंडाकार ऋजु सूर्य में परिवेषका एक भेद। (वृहत्सं० १३ अ०) २२ दंडवत् स्थित सूर्यादिकी किरणोंका संघात। (वृहत्सं० ३०अ०)

२३ राज्यकी रक्षाके लिये राजाओंकी ओरसे किया जानेवाला चौथा उपाय। साम, दाम, भेद और दंड ये चार उपाय हैं। स्वदेश और परदेशके भेदसे दंडमें पार्थक्य होता है। राजा स्वदेश अर्थात् अपने राज्यमें प्रजाशासनके लिये जो दंडविधि प्रचलित करता है, उसे स्वदेश-दण्ड कहते हैं। अग्निपुराणमें लिखा है—परदेशमें प्रयोज्य दण्डादि प्रकाश और अप्रकाशके भेदसे दो प्रकारके है। लुण्ठन, ग्रामघात, शस्त्रघात, अग्निदीपन, विष, अग्नि और विविध पुरुषोंकी सहायतासे वध, ये प्रकाश-दण्ड हैं। साधु-दूषण और उदक-दूषण इनको अप्रकाश-दण्ड कहते हैं। (अग्निपु० १७४ अ०)

प्रजा शासन दण्डके विषयमें महाभारत और हिन्दू-धर्मशास्त्रादिमें जैसा वर्णन है, यहां उसका सार मात्र कहा जाता है।

राजाको किस अपराधमें कैसा दण्डविधान करना चाहिए, इस विषयमें निम्न प्रकार लिखा है।

ऋणदान—उत्तमर्णके कर्ज देने पर यदि अधमर्ण परिशोध (चुकता) न करे, पीछे उत्तमर्ण राजाके पास नालिश करे और अधमर्ण ऋणको स्वीकार करे, तो अधमर्णको एक सौ पणमेंसे ५ पण दण्ड देना चाहिए, परन्तु अधमर्ण यदि ऋणको अस्वीकार करे, तो उसे सौ पणमेंसे १० पण दण्ड देना उचित है। उत्तमर्णको बन्धक (गिरवी) ले कर ऋणस्थानमें वृद्धि ग्रहण करना चाहिए अर्थात् प्रतिमास सैकड़ा पीछे अस्सी भागका एक भाग व्याज लेना चाहिए। यदि कोई भोगार्थ वस्तु वा दास दासीको उत्तमर्णके पास गिरवी रख कर अधमर्ण रुपये कर्ज लेवे, तो उन रुपयोंका जुदो व्याज नहीं ली जाती। इसका अतिक्रम करनेसे दण्डनीय होंगे।

मिथ्या साक्ष्य (झूठी गवाही)—लोभके वशवर्ती झूठी गवाही देनेसे हजार पण दण्ड होता है। मोहके कारण झूठी गवाही देनेसे ढाई सौ पण, भयके कारण मिथ्या साक्षी देनेसे हजार पण, स्नेहमें आ कर झूठी गवाही देनेवालेको हजार पण, कामाधीन हो कर झूठी गवाही देनेसे ढाई हजार पण, क्रोधवश देनेसे तीन हजार पण, अज्ञानतासे देने पर दो सौ पण और असावधानतासे झूठी गवाही देने पर एक पण दण्ड होता है। राजाको सत्यधर्मके पालनार्थ और अधर्मके शासनके लिए उक्त दण्डविधान करना चाहिए। परन्तु क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण यदि बारम्बार मिथ्या साक्ष्य दें, तो उन्हें पूर्वोक्त दण्ड दे कर देशसे निकाल देना चाहिए। ब्राह्मणको अर्थदण्ड न करके, सिर्फ निर्वासन-दण्ड ही देना चाहिए।

निःक्षेप—यदि कोई व्यक्ति विश्वासपूर्वक किसीके पास धन गच्छित (धरोहर) रखे और उसे फिर वह वापिस न दे, तो राजाको उचित है कि उसे सुवर्णादि-चोरके समान दण्ड दें। जो व्यक्ति मिथ्या प्रतारणादिके द्वारा परधन हरण करता है, उसको तथा उसके सहायकोंको वध-दण्ड मिलता है।

अस्वामि-विक्रय—जो अस्वामी हो कर स्वामीकी अनुमतिके विना उसकी चीज वेचता है और वह व्यक्ति यदि द्रव्य स्वामीके वंशका कोई हो, तो उसे ६ सौ पण दण्ड देना चाहिए और यदि द्रव्य-स्वामीके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो, तो उसे चौरदण्डसे दण्डित करना चाहिए।

सम्भूयसमुत्थान—बहुतसे मिल कर काम करें, उनमेंसे परस्परका अंश भी यथा नियमसे विभाग कर लें। यदि मोहवश इससे अन्यथा करें, तो राजाको चाहिए कि उसको चौर्यके निमित्त एक सुवर्णका दण्ड दें।

क्रयविक्रयानुशय—क्रय वा विक्रय करके जो पीछे अनुताप करता है, वह उस द्रव्यको दश दिनके भीतर फिरती दे वा फिरती ले सकता है। परन्तु दश दिनके बाद इस तरह फिरती लिया वा दिया नहीं जा सकता। यदि बलपूर्वक लौटा दे वा फिरती ले, तो उसको ६ सौ पणका दण्ड होता है।

दोषविशिष्टकन्यादान—दोषविशिष्टा कन्याके अवगुणोंको छिपा कर यदि उसका कोई सम्प्रदान करे,

तो राजा उसे ७६ पणका दण्ड देता है। जो व्यक्ति द्वेषके कारण किसी कन्या पर 'चतयोनि है,' 'कुमारी नहीं है' कह कर दोष लगाता है और उसे प्रमाणित नहीं कर सकता राजा उसे सौ पणका दण्ड देता है।

स्वामि-पाल विवाद—पशुओंके बारेमें स्वामी और पालक नियमका व्यतिक्रम करे, तो राजाको विचार पूर्वक दण्ड देना चाहिए। यदि कर्षकके दोषसे शस्यको हानि हो, तो राजा उसे जितना शस्य राजाका प्राप्य है, उससे दश गुना दण्ड दे। स्वामी और पशुपालके रक्षण के दोषसे पशुद्वारा शस्य नष्ट होने पर भी राजाको उक्त प्रकार दण्डविधान करना चाहिए।

वाक्‌पारुष्य (गालीगलौज)—क्षत्रिय यदि ब्राह्मणको गाली देवे, तो उसे सौ पण, वैश्यको डेढ़ वा दो सौ पण और शूद्रको वध (अर्थात् दशविध-शारीरिक दण्डोंमेंसे कोई एक) दण्ड देना चाहिए।

ब्राह्मण यदि क्षत्रियको गाली दे, तो उसे ५० पण दण्ड देना पड़ता है, वैश्यको दे तो २५ पण और शूद्रको दे तो १२ पण दण्ड होता है। द्विजातियोंमें, समवर्णमें परस्पर अपभाषण होने पर १२ पण दण्ड होना चाहिए। किन्तु यदि कोई अकथ्य गाली-गलौज करे तो इसे पूर्वोक्त दण्डसे दूना दण्ड देना चाहिए।

एक जाति अर्थात् शूद्र यदि द्विजातियोंके प्रति कठिन वाक्यका प्रयोग करे, तो शूद्रको जिह्वाच्छेदका दण्ड मिलना चाहिए। दर्पित भावसे शूद्र यदि ब्राह्मणको धर्मोपदेश दे तो राजाको उसके मुंह और कानमें गरम तेल डलवा देना चाहिए। किन्तु यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकी विद्या, देश, जाति, संस्कार और कर्मके विषयमें, दर्प करके अन्यथा कुछ कहे, तो उसे दो सौ पण दण्ड होना चाहिए।

माता, पिता, पत्नी, भ्राता, पुत्र अथवा गुरु, इनको गाली देनेसे एक सौ पण दण्ड होना चाहिए।

दण्डपारुष्य (मारपीट)—यदि अन्त्यज (अर्थात् शूद्र) किसी भी अङ्गसे श्रेष्ठ जातिको मारे, तो राजाको उचित है कि वह उसके उस अङ्गको छेद दे। शूद्र यदि श्रेष्ठ जातिको मारनेके लिए हाथ या डंडा उठावे, तो उसे हस्तच्छेदका दण्ड मिलना चाहिए और यदि पद-द्वारा आघात किया हो, तो पदच्छेद होना उचित है।

शूद्र यदि ब्राह्मणके साथ एक आसन पर बैठे तो राजाको उचित है कि उसके कटिदेश पर लौहमय तप्त शलाका दाग कर देशसे निकाल दें अथवा मरने न पावे इस ढंगसे उसका पश्चात्‌भाग (चूतड़) काट लें। दर्प करके यदि शूद्र ब्राह्मणके शरीर पर थूक दे, तो उसके ओठाधर छेद देना चाहिए; पेशाब करनेसे लिङ्गच्छेद, अधोवायु त्यागनेसे गुह्यदेश छेदन, और अहङ्कारपूर्वक यदि हस्तद्वारा ब्राह्मणके केश धारण करे वा हिंसाजन्य पदद्वय और डाढ़ी पकड़े तो उसके दोनों हाथ छेद देना चाहिए। समान जातिमें यदि कोई किसीका चर्मभेद अथवा रक्तदर्शन करे, तो उसे एक सौ पण दण्ड होगा। मांसभेद-कारीको ६ निष्क दण्ड होगा। अस्थि भेद करनेवालेको निर्वासनदण्ड होगा। मनुष्य अथवा पशुओंको मार कर पीड़ा देनेसे पीड़ाके अनुसार दंड होगा। अङ्गभेद, चत वा रक्तपात होने पर, मारनेवालेको आहत व्यक्तिके आराम पड़नेके लिए औषध और पथ्य आदिका खर्च देना पड़ता है; नहीं देनेसे उस व्ययके समान दंड होता है।

चौर्यादि—मालिकके सामने बल-पूर्वक जो चोरी की जाती है, उसे साहस कहते हैं और असमक्षमें छिप कर चोरी करनेको चोरी। यदि कोई किसीको चीज ले कर अस्वीकार करे कि, "मैंने नहीं ली," तो उसे भी चोरी कहते हैं। चोर जिन जिन अङ्गोंसे चोरी करता है, राजाको उचित है कि उसके वे अङ्ग छेद दें, जिससे फिर वह चोरी न कर सके। पिता, आचार्य, भार्या, पुरोहित आदि सभी दण्डनीय हैं। राजा यदि स्वयं अपराध करे तो उन्हें भी दंड ग्रहण करना पड़ता है। राजा स्वयं जो अर्थदंड देंगे, उसे पानीमें डाल देंगे वा ब्राह्मणको दे देंगे।

चोरी करनेवाला गुणदोषज्ञ यदि शूद्र हो तो अष्टगुण; इसी प्रकार वैश्य चोरको १६ गुण, क्षत्रिय चोरको ३२ गुण और ब्राह्मण चोरको ६४ गुण दंड दिया जाता है। यदि ब्राह्मण बहुत गुणवान् हो, तो शतगुण दंडकी व्यवस्था करनी चाहिए, उससे भी अधिक गुणवान् होने पर १२८ गुण अधिक दंड होना चाहिए।

गम्या वा वेश्यागमन—स्त्री-संग्रह और परदारसम्भोग-से लोकमें वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है और उससे नाना प्रकारके अधर्म एवं सर्वनाश उपस्थित होते हैं। इसलिए परदारसम्भोगमें प्रवृत्त लोगोंके लिए नाना प्रकार उद्वेगजनक नासाकर्णच्छेदनादि कठोर दंड-विधान करना उचित है। परस्त्रीको सुगन्ध माला आदि भेजना, उससे परिहास करना, आलिङ्गन करना, उसके अलङ्कार छूना, वस्त्र पकड़ना, उसके साथ एक शय्या पर सोना और एक साथ भोजन करना इत्यादि अपराध करनेवालोंकी गणना स्त्री-संग्रहण रूपमें करनी चाहिए। स्त्रियोंके अपस्थान पर यदि पुरुष हाथ लगावे वा स्त्री यदि पुरुषके अपस्थानको स्पर्श करे और पुरुष कुछ न कहे, तो यह दोष सानुमत स्त्रीसंग्रहपदवाच्य होगा।

शूद्र यदि अकामा ब्राह्मणीके साथ उक्त प्रकार व्यवहार करे, तो उसे प्राण दंड होगा। चारों ही वर्णके लिए भार्या सर्वदा अत्यन्त रक्षणीया है। भिक्षाजीवी, बन्दी, ऋत्विक् और सूपकारादि कारुकर, ये लोग परस्त्रीके साथ अनवारित भावसे बात चीत कर सकते हैं; किन्तु स्वामीके निषेध कर देने पर उन्हें बोलना बन्द कर देना चाहिए। निषेध करने पर भी जो बात चीत करता है, उसे एक सुवर्ण दण्ड देना पड़ता है।

ऊपर जो विधि लिखी गई है, वह नट, नर्तक वा भार्याजीवी आदि नीचोंकी स्त्रियोंके लिए लागू नहीं हो सकती। तोभी उपर्युक्त व्यक्तियोंकी स्त्री वा दासीके साथ छिप कर व्यभिचार करनेवालोंको किञ्चित् दण्ड देना उचित है।

अकामा कन्याके साथ सम्भोग करनेसे सद्यः शारीरिक दण्ड होगा। समानजातीय अकामा कन्या-गमनमें शारीरिक दण्ड नहीं है। अपकृष्ट जातीय स्त्री यदि अपनेसे उत्कृष्ट जातीय पुरुषको भजना करे, तो उसे कुछ भी दण्ड नहीं होगा। जो पुरुष दर्प करके बल-पूर्वक समान जातीय पर स्त्रीकी योनिमें अङ्गुलि प्रक्षेप करे, उसकी दो अङ्गुलि उसी समय छेद देनी चाहिए और ६०० पण भी दण्ड देना चाहिए। सकामा समानजातीय स्त्रीके साथ यदि उक्त रूप व्यवहार किया जाय, तो उसकी अङ्गुलि नहीं छेदी जायगी; किन्तु अत्यासक्ति निवारणके लिए दो सौ पण दण्ड अवश्य होगा। यदि कोई कन्या अन्य कन्याकी योनिमें उंगली डाले, तो उसे दो सौ पण दण्ड तथा दूना शुल्क और दश बेंत मारना उचित है। (मनु ८।३६९)

यदि वयस्का स्त्री कन्याको उक्त प्रकारसे नष्ट करे, तो उसका मस्तक मूंड कर अंगुलि छेद देना चाहिए और गदहे पर चढ़ा कर राजपथमें घुमाना चाहिए। जो स्त्री 'मैं धनकी कन्या हूं' यह समझ कर वा अपने सौन्दर्यके मदमें आकर अपने पतिको त्याग दे और परपुरुषके साथ रमण करे, तो उसे जनसमूहके बीचमें ले जाकर कुत्तोंसे नुचवाना चाहिए। पाप करनेवाले उस पुरुषको तप्त लोह पर सुलाकर जलाना चाहिए और जब तक वह भस्म न हो जाय, तब तक लकड़ी देते रहना चाहिए। एक बार दण्डित हो कर यदि फिर एक वर्ष बीतने पर वही अपराध करे तो उस दुष्टको दूना दंड देना चाहिए। व्रात्यजात स्त्री और चांडाली स्त्रीके साथ गमन करनेसे भी यही दंड देना चाहिये। रक्षिता हो वा अरक्षिता, शूद्र यदि द्विजातीय स्त्रीसे सम्भोग करे तो उसे लिङ्गच्छेद और सर्वस्व हरणका दंड देना चाहिए तथा भर्तृ आदि रक्षिता स्त्रीके साथ गमन करनेसे वध और सर्वस्वहरण दंड होगा। वैश्य यदि रक्षिता ब्राह्मणीसे रमण करे, तो उसे सहस्र पण दंड और गदहेके मूत्रसे मस्तक मुण्डन करना चाहिए।

वैश्य और क्षत्रिय यदि रक्षाहीना ब्राह्मणीके साथ रमण करे, तो उसे शूद्रवत् दण्ड होगा, अथवा दर्भ वा शर द्वारा ढक कर उसे जला देना उचित है। ब्राह्मण यदि रक्षिता ब्राह्मणीके साथ बलपूर्वक सम्भोग करे, तो सहस्र पण दण्ड और सकामा ब्राह्मणी-गमनमें ५०० पण दण्ड होगा। ब्राह्मणके समस्त पापयुक्त होने पर भी उसे सर्वस्व धनके साथ अक्षत शरीरमें निर्वासन दण्ड देना उचित है। वैश्य यदि रक्षिता क्षत्रिया स्त्रीके साथ गमन करे अथवा क्षत्रिय यदि इस प्रकारकी वैश्य-स्त्रीसे सम्भोग करे, तो दोनोंको अरक्षिता ब्राह्मणी-गमनमें जो दंड दिया जाता है वही दंड देना उचित है। ब्राह्मण यदि रक्षिता क्षत्रिया वा वैश्या स्त्री-गमन करे, तो सहस्र पण दण्ड होगा। वैश्य यदि अरक्षिता क्षत्रियाके साथ

क्रम करे, तो वैश्यको ५०० पण दंड होगा, क्षत्रिय के लिए गधेके मूत्रसे मस्तक-मुंडन अथवा ५०० पण दण्डकी व्यवस्था है। अरक्षिता क्षत्रिया वा वैश्या गमनमें ब्राह्मणको सहस्र पण दंड होगा। चण्डालादि स्त्रियोंके साथ गमन करनेसे भी ब्राह्मणके लिए उक्त दण्ड हो है। जिस राजाके राज्यमें दंडके भयसे कोई भी चोरी, परस्त्री-गमन, वाक्पारुष्य, साहस-दण्डपारुष्य आदि अपराध नहीं करता, वह राजा इन्द्रके समान प्रभावशाली है।

यदि कर्मक्षम ऋत्विक्को यजमान अकारण त्याग दे अथवा यदि निर्दोष यजमानको पुरोहित अकारण त्याग दे, तो दोनोंको एक सौ पण दण्ड देना पड़ता है। (मनु० ८।३८८)

पिता, माता, स्त्री और पुत्र इनको बिना पतित हुए, मोह-पूर्वक परित्याग करनेसे ६०० पण दंड होता है

द्विजातियोंमें, गार्हस्थ्यादि आश्रम-घटित शास्त्रानुष्ठानके विषयमें यदि परस्पर विवाद हो जाय, तो आत्महितकामी राजाको चाहिये कि उसी समय कोई दण्ड स्थिर न करें। ऐसी अवस्थामें जो जिस प्रकार संभ्रमके योग्य हैं, उनको उसी प्रकारसे पूजा करके सान्त्वना द्वारा उनके क्रोधका उपशम करना चाहिये और ब्राह्मणोंकी सहायतासे धर्मकी व्यवस्था समझा देनी चाहिए। कोई गृहस्थ यदि माङ्गलिक कार्यमें २० ब्राह्मणोंको भोज देना चाहे, और प्रतिवेशी अथवा तदनन्तरवर्ती अनुवेशी भोजनार्ह ब्राह्मणको छोड़ कर अन्य ब्राह्मणोंको बुलावे, तो राजाको उसे एक मासा चांदीका दण्ड देना चाहिये। स्वयं श्रोत्रिय होकर यदि कोई प्रतिवेशी वा अनुवेशी श्रोत्रिय साधुओंको विवाहादि भूति-कार्योंमें भोजन न करावे, तो उसे भोजनसे द्विगुण भोज्य द्रव्य और एक मासा सोना दण्डस्वरूप देना पड़ता है।

जो पण्य-वस्तुएं राजाकी खास कहलाती हैं, अथवा जिनको देशान्तर ले जानेको राजाने मनाई कर दी है, उन वस्तुओंको यदि कोई व्यवसायी लोभमें आकर देशान्तर ले जाय, तो राजाको चाहिये कि उसका सर्वस्व हरण कर लें। राजा पण्य द्रव्यके लभ्यांशमेंसे बीसवां अंश लेंगे। यदि कोई व्यक्ति शुल्क न देनेके अभिप्रायसे असत्मार्गका अवलम्बन करे, रात्रिको क्रय विक्रय करे वा बेची हुई चीजोंकी संख्या घटा कर कहे, तो उसे आपलापित राजदेयसे आठ गुना दण्ड मिलता है।

ब्राह्मण यदि प्रभुत्व एवं लोभके वशीभूत हो कर अनिच्छुक ब्राह्मणसे पैर धोना आदि दास्यकर्म करावे तो राजा उसके लिए ६०० पण दण्ड विधान करेंगे। (मनु० ८ अ०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें दंडविधिके संबन्धमें इस प्रकार लिखा है—

राजाको क्रोध और लोभशून्य हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ व्यवहारको विशेषरूपसे जान कर दण्ड विधान करना चाहिये।

दण्ड-पारुष्य—आघात, चिह्न और प्रयोजन-आदिको पर्यालोचना तथा जन-प्रवादके ऊपर निर्भर करके, किन्तु साक्षी-रहित विवादमें विशेष पर्यालोचना करके दण्ड देना चाहिए। शरीर पर भस्म, पङ्क अथवा धूलि देने पर दश पण दण्ड होगा। अपवित्र वस्तु पादधौत और निष्ठीवन जल स्पर्श करानेसे पूर्वोक्त दण्डको अपेक्षा दूना दण्ड होगा। सम व्यक्तिके प्रति यह नियम है। उत्कृष्ट व्यक्ति वा परस्त्रीके प्रति ऐसा करनेसे दूना दंड और हीन व्यक्तिके प्रति ऐसा व्यवहार करनेसे आधा दंड होगा। चित्तवैकल्य वा मत्ततादि वश ऐसा करनेसे दंड नहीं होगा। स्वजातिको प्रहार करने वा उसके प्रति पैर उठानेसे दश पण दंड होगा। परस्पर हननार्थ शस्त्र उद्यत करनेसे उत्तम साहसका दंड होगा। पद, केश, वस्त्र अथवा हाथ पकड़ कर खींचनेसे दश पण दंड होगा। वस्त्र द्वारा बन्धन, गात्रमर्दन एवं आकर्षणपूर्वक पाद प्रहार करनेसे सौ पण दंड होगा। काष्ठादि प्रहारसे आहत व्यक्तिके रक्तपात न होने पर उस प्रहर्ता व्यक्तिको ३२ पण और रक्तपात होने पर उससे दूना दंड होगा। हाथ पैर अथवा दांत तोड़नेसे कान वा नाक काटनेसे पूर्व व्रणको ज्यादा बढ़ा देनेसे, और जिससे मनुष्य मुर्देके समान हो जाय ऐसी ताड़ना करनेसे मध्यम साहसका दंड देना चाहिये। गमन, भोजन और बात कहना बन्द कर देनेसे चक्षु और जिह्वा छेद देनेसे तथा ग्रीवा बाहु वा ऊरु छेदनेसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिए।

जिस अपराधमें एक व्यक्तिको जो दण्ड हुआ है, बहुतसे मिल कर एक व्यक्तिको मारें तो उस अपराधमें उससे दूना दण्ड भोगना पड़ेगा। दूसरेको भित्ति मुगदर आदिसे अभिहत, विदारित, द्विधाकृत तथा भूमिशायित करनेसे उसका यथा—क्रमसे पांच दश और बीस पण दंड होगा, तथा गृह स्वामीको पुनः संस्कार करने योग्य धन देना पड़ेगा। जो परकीय गृहमें दुःखजनक काष्ठ-कादि वा विषसर्पादि प्राणहर द्रव्य फेंकेगा, उसे क्रमशः १६ पण और मध्यम साहसका दण्ड होगा। छागादि क्षुद्र पशुको ताडन, रक्तपात, शृङ्गादि छेदन एवं कर-चरणादि अङ्गच्छेदन करनेसे यथाक्रमसे दो पण चार पण और आठ पण दंड होगा। इनकी हत्या अथवा लिङ्गच्छेदन करनेसे मध्यम साहसका दंड होगा। गवादि महापशुके प्रति ऐसा व्यवहार करनेसे दूना दण्ड होगा।

जो साधारण वस्तुका अपलाप करता और दासीका धर्म नष्ट करता है, त्यागके उपयुक्त कारणके बिना ही पितामाता आदिको त्याग देता है, उसके लिए १०० पण दंड कहा गया है। रजक यदि धोधनार्थ समर्पित पर-कीय वस्त्रको पहने, तो तीन दंड, बेच दे, भाड़े पर दे, गिरवी रखे वा बान्धवोंको पहननेके लिए दे, तो उसे दश पण दंड होगा।

आयुर्वेदको बिना जाने ही केवल जीविका निर्वाह करनेके लिए किसी पशुपक्षीकी मिथ्या चिकित्सा करनेसे, चिकित्सकको प्रथम साहसका दंड होगा; साधारण मनुष्यकी मिथ्या चिकित्सा करनेसे मध्यम साहस और राजपुरुषके साथ ऐसा व्यवहार करनेसे उत्तम साहसका दंड होगा। (याज्ञव० २ अ०)

वर्त्तमानमें ये दंडविधियाँ प्रचलित नहीं हैं। ब्रिटिश गवर्मेण्टने अब नये नये कानून चलाए हैं।

२४ कौरव पक्षीय एक वीर। इनके भाईका नाम दंडधार था। दंडधारकी मृत्युके बाद ये अर्जुनके हाथ मारे गये थे। (भारत कर्ण० ११ अ०) २५ द्रुपदके एक राजाका नाम। (भारत आदि० ६७ अ०) २६ इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमेंसे एक। ये शुक्राचार्यके शिष्य थे। २७ यमके पुत्रका नाम। दंडयति कर्त्तरि अच्। २८ राजा, दंड-विधानकर्त्ता। २९ हलकी लम्बी लकड़ी।

दण्डक (सं० पु०-क्ली०) दंडइव कायति कै-क। १ छन्दो-भेद। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें २७ अक्षर होते हैं। दंडक दो प्रकारका होता है, एक गणात्मक और दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमें गणोंका बन्धन होता है अर्थात् किस गणके बाद फिर कौन गण आना चाहिये इसका नियम होता है। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरोंकी गिनती होती है अर्थात् जो गणोंके बंधनसे मुक्त होता है। किसी किसीमें कहीं कहीं लघु गुरुका नियम होता है। हिन्दी काव्यमें जो कवित्त और घना-क्षरी छन्द अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तकके अन्त-र्गत हैं। २ इक्ष्वाकुराजाके एक पुत्रका नाम। ये शुक्रा-चार्यके शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरुकी कन्याका कौमार्य धर्म नष्ट किया। इस पर शुक्राचार्यने शाप दे कर उन्हें इनके पुरके साथ भस्म कर दिया। इनका देश जङ्गल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा। (रामायण) ३ वातरोगविशेष, एक प्रकारका वातरोग। इस रोगमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अङ्ग स्तब्ध हो कर ऐंठसे जाते हैं। ४ डंडा। ५ दंड देनेवाला पुरुष, शासक। ६ दंडकारण्य। ७ शुद्धरागका एक भेद।

दण्डकन्दक (सं० पु०) दंडवत् कन्दो मूलं यस्य। धरणी कन्द, सेमरका मुसला।

दण्डकर्त्तृ (सं० त्रि०) दंडस्य कर्त्ता। जो दंड विधान करते हों।

दण्डकर्मन् (सं० क्ली०) दंडस्य कर्म। दंडविधायक-का काम।

दण्डकल (सं० पु०) छन्दोभेद, एक छन्दका नाम। इसमें १०, ८ और १४के विरामसे ३२ मात्राएं होती हैं।

दण्डका (सं० स्त्री०) दंडक स्त्रीलिङ्गवाचित टाप्। नागवल्लीलता।

दण्डकाक (सं० पु०) दंडी यमदंड इव काकः, अमङ्गल सूचकत्वात् अस्य तथात्वं। द्रोण काक, काला कौआ, डोम कौआ।

दण्डकारण्य (सं० क्ली०) दंडक नाम अरण्य। दंडका वन, दंडक नामक राजाका राज्य। यह प्राचीन वन विन्ध्य पर्वतसे ले कर गोदावरीके किनारे तक विस्तृत था। इस वनमें श्रीरामचन्द्रजी वनवासके कालमें चौदह

वर्ष रहे थे। यहीं शूर्पणखाके नाक-कान कटे थे और सीता हरण हुआ था। इस अरण्यका बहुत अंश आज भी वर्त्तमान है। यह स्थान बहुत रमणीय है। (रामायण)

दण्डकाष्ठ (सं० क्लो०) दंडार्थं काष्ठं। दंड सम्बन्धोय काष्ठ। दण्ड देखो।

दण्डको (सं० स्त्री०) ढोलक।

दण्डगौरो (सं० स्त्री०) अप्सराभेद, एक अप्सराका नाम।

दण्डग्रहण (सं० क्लो०) दंडस्य ग्रहणं। संन्यासाश्रम अवलम्बन। इन आश्रमियोंके हाथमें आश्रम चिह्नस्वरूप एक एक दंड रहता है।

दण्डग्राह (सं० त्रि०) दण्डं गृह्णाति ग्रह-अण्। दण्ड-धारक, दण्ड रखनेवाला।

दण्डघ्न (सं० त्रि०) दंडेन देहेन हन्ति हन-टक्। १ दंडपारुष्यकर्त्ता, डंडेसे मारनेवाला। जिस राजाके राज्यमें चोर परस्त्रोगामो, दंडपारुष्यकारी प्रभृति न हों वे इन्द्रलोकको पाते हैं। २ दंडको न माननेवाला, वह मनुष्य जो राजाके दिये हुए दंडको न मानता हो।

दण्डचक्र (सं० पु०) १ पुराणोक्त अस्त्रभेद। २ सैन्य विभागभेद।

दण्डचक्रादिन्याय (सं० पु०) न्यायभेद। न्याय देखो।

दण्डढक्का (सं० स्त्री०) दंडा ताड्यमाना ढक्का। वाद्य विशेष, दमामा, नगारा, धौंसा। इसका संस्कृत पर्याय-नाली, घटी, यामनाली, यमेरुका, यामघोष, दम्मस, दुन्दुभि, दुन्दु और गभीरिका है।

दण्डताम्री (सं० स्त्री०) दंडेन ताड्यमाना ताम्री ताम्र निर्मित वाद्यं। ताम्रीवाद्यभेद, वह जलतरङ्ग बाजा जिसमें ताँबेकी कटोरियाँ काममें लाई जाती है।

दण्डत्व (सं० क्लो०) दंडस्य भावः भावे त्व। दंडता, दंडका भाव।

दण्डदास (सं० पु०) दंडादि धन शुद्धयर्थं-दासः। राज-कृत दंड शुद्धिके लिये दास्य स्वोकार करनेवाला, वह जो दंडका रुपया न दे सकनेके कारण दास हुआ हो। दास देखो।

दण्डदेवकुल (सं० क्लो०) दंडदेवस्य कुलं यत्र। धर्माधिकरण, पुलिस अदालत।

दण्डधर (सं० पु०) धरतीति धरः पचाद्यच् दंडस्य धरः। १ यम, यमराज। २ राजा, शासनकर्त्ता। राजा सभी लोगोंकी स्थितिके लिये दंड धारण करते हैं इसीलिये राजाका नाम दंडधर पड़ा है। ३ संन्यासी। (त्रि०) ४ लगुड धारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डधार (सं० पु०) दंड धरति धृ-अण्। १ यमराज। २ राजा। ३ स्वनामख्यात एक नृपति, एक राजाका नाम। इन्होंने क्रोधवर्द्धन असुरके अंशमें जन्म ग्रहण किया था। कुरु पाण्डवकी लड़ाईमें यह दुर्योधनको ओर था और अर्जुनसे घोर युद्ध कर मारा गया था। इसका भाई दंड भी इसी युद्धमें निहत हुआ था। (भारत कर्ण १८ अ०) ४ पाडव पक्षोय एक वोर, पाण्डव पक्षके एक योद्धाका नाम। यह पाँडवकी ओरसे लड़ा था और कर्णके हाथसे मारा गया था। (भारत कर्ण ५० अ०५) ५ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ६ दण्डधारक, दंड धारण करनेवाला, शासक।

दण्डधारण (सं० क्लो०) दंडस्य धारणं ६ तत्। १ दंड ग्रहण। २ संन्यास आश्रमका अवलम्बन।

दण्डधारी (सं० त्रि०) दंडं धरति दंड-धृ-णिनि। १ दंडधर, डंडा रखनेवाला। २ दंडाश्रमो, संन्यास आश्रम अवलम्बन करनेवाला।

दण्डधृश् (सं० पु०) दंडधारी।

दण्डन (सं० क्लो०) दंड ल्युट्। दंड देनेको क्रिया, शासन।

दण्डनायक (सं० पु०) दंडं राज्ञः चतुर्थोपायं नयति नो-ण्वुल्। १ सेनापति। २ दंडप्रणेता नृप, दंडविधान करनेवाला राजा। ३ दंड देनेके अधिकारो, विचारपति, हाकिम। ४ सूर्यके एक अनुचरका नाम।

दण्डनिपातन (सं० क्लो०) दंडस्य निपातनं। दंड देनेको क्रिया, शासन।

दण्डनीति (सं० स्त्री०) दण्डेन नोयते वा दंडो नीयते-ऽनया. नी कर्मणि करणे वा क्तिन्। १ अर्थशास्त्र, राजनैतिक शास्त्र, वह शास्त्र जिसमें राज्यशासन सम्बन्धी समस्त नियम और उपदेश हों, चाणक्य आदिके नीति-शास्त्र।

"दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति वा पुनः।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रीन् लोकानतिवर्तते" (भारत)

एक दण्डनीतिमें ही औशनसी आदि विद्याओंका वास है और उसीसे समस्त विद्याओंका प्रारम्भ कहा गया है। दमन ही एकमात्र दंड है। इस दंडमें राजा अवस्थान करता है; इस कारण राजाका नाम भी दंड है। राजा जिसके द्वारा लोगोंको संस्थापित करता है, उसे दंडनीति कहते हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है—

भगवान् कमलयोनि ब्रह्माने लोकस्थितिके लिये दंडनीतिका प्रणयन किया है। इस नीतिशास्त्रमें अनेकानेक विषय हैं, यथा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; सत्व, रज और तम ये मोक्षके तीन वर्ग; वृद्धि, क्षय और समानत्व नाम दंडज त्रिवर्ग; चित्त, देश, काल, उपाय कार्य और सहाय ये नीतिज षड्वर्ग; कर्मकांड, ज्ञानकांड और कृषि वाणिज्यादि जीविकाकांड, अमात्यरक्षार्थ नियुक्त चर और गुप्तचरोंका विषय, राजपुत्रके लक्षण, चरोंके विविध उपाय, साम, दाम, दंड, भेद, उपेक्षा, भेदकरण, मन्त्रण और विभ्रम, मन्त्रसिद्धि और असिद्धिका फल, भय, सत्कार और वित्तग्रहणार्थ अधम, मध्यम और उत्तम ये तीन सन्धियाँ, चतुर्विध यात्राकाल, त्रिवर्गका विस्तार, धर्मयुक्त विजय, अर्थद्वारा विजय और आसुरिक विजय; अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और कोष इन पांच वर्गोंका विविध लक्षण; प्रकाश्य और अप्रकाश्य सेनाका विषय, अष्टविध गूढ़ विषय प्रकाश, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, भारवह, चर, पोत और उपदेष्टा इन अष्टविध सेनाङ्गोंका विषय, वस्त्रादि और अन्नादिमें विषयोग, अभिचार, अरि, मित्र और उदासीनोंका विषय पथ-गमनमें ग्रहनक्षत्रादि-जनित समस्त गुण, भूमिगुण, आत्मरक्षा, आश्वास, रथादि निर्माणका अनुसन्धान, मनुष्य, हस्ती, अश्व और रणसज्जाके उपाय, विविध व्यूह; विचित्र युद्ध-कौशल; धूमकेतु आदि ग्रहोंके उत्पात, उल्का आदिका पतन, सुप्रणालीसे युद्ध, पलायन, अस्त्रशस्त्रमें शाणप्रदान, अस्त्र-ज्ञान, सैन्य व्यसन, मोचन, सेनामें हर्षोत्पाटन, पीडा, आपद्‌काल, पदाति-ज्ञान, खात, खनन, पताकादि प्रदर्शन-पूर्वक शत्रुके अन्तःकरणमें भय सञ्चारण, चोर, उग्र-स्वभाव, अरण्यवासी, अग्निदाता, विषप्रयोक्ता, प्रतिरूपकारी, प्रधान व्यक्तिके भेद, वृक्षच्छेदन, मन्त्रतन्त्रादिके प्रभावसे हस्तियोंका बल-ह्रास, शङ्कोत्पादन, अनुरक्त व्यक्तिके आराधन और विश्वासजनक द्वारा पर-राष्ट्रमें पीडा-प्रदान; राज्यकी ह्रास-वृद्धि और समता, कार्यसामर्थ्य, राष्ट्रवृद्धि, शत्रुमध्यस्थित मित्रोंका संग्रह, बलवानोंका विनाश-साधन और पीडन, सूक्ष्म व्यवहार, खलका उन्मूलन, व्यायाम, दान, द्रव्य-संग्रह, अभृत व्यक्तियोंका भरण-पोषण, भृत व्यक्तियोंका पर्यवेक्षण, यथासमय अर्थदान, व्यसनमें अनासक्ति, भूपतिके गुण, सेनापतिके गुण, त्रिवर्गके कारण और गुण-दोष, असत् अभिसन्धि, अनुगतोंके व्यवहार, सबमें आशङ्का, अनवधानता-परिहार, अलब्ध विषयोंमें लोभ, लब्ध विषयोंकी वृद्धि, प्रवृद्ध धनके विधानानुसार सत्पात्रमें दान, धर्म, अर्थ और काम; व्यसनोंके विनाशार्थ अर्थदान; मृगया, अक्षक्रीड़ा, सुरापान और स्त्री-सम्भोग इन चार प्रकारके कामज तथा वाक्पारुष्य, उग्रता, दण्डपारुष्य निग्रह, आत्मत्याग और अर्थदूषण इन छः प्रकारके क्रोधज व्यसनोंका विषय, विविधयन्त्र और कार्ययन्त्र, चिह्नविलोप, चैत्य-छेदन, अवरोध, कृष्यादि कार्यका अनुशासन, नाना प्रकारके उपकरण; द्रव्योपार्जनके लिये युद्धयात्रा, युद्धोपाय, पणव, आनक, शङ्ख और भेरी इन छः प्रकारके द्रव्योंका विषय, लब्ध राज्यमें शान्ति स्थापन, साधुओंकी पूजा, विद्वानोंके साथ मित्रता, दान और होमका परिज्ञान, माङ्गल्य वस्तुका स्पर्श, शरीर-संस्कार, आहार, आस्तिकता, एक मार्गसे उन्नति लाभ, सत्य और मधुर वाक्य, सामाजिक उत्सव, गृहकार्य, चत्वरादि स्थानके प्रत्यक्ष और परोक्ष व्यवहारका अनुसन्धान, ब्राह्मणकी अदण्डनीयता, युक्तानुसार दण्डविधान, अनुजीवियोंमें जाति और गुणगत पक्षपात, नगरवासियोंकी रक्षाका विधान, द्वादश राजमंडल विषयक चिन्ता, बहत्तर प्रकार शारीरिक प्रतीकार; देश, जाति और कुलके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उपाय; अर्थस्पृहा, कृष्यादि मूलकार्योंकी प्रणाली, मायायोग, नौकानिमज्जनादि द्वारा नदीका पथरोध इत्यादि।

इस शास्त्रके द्वारा जगत्‌के समस्त मनुष्य दण्ड-प्रभावसे पुरुषार्थ फलको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं, इसलिए इसका नाम दण्डनीति पड़ा है। इस दंडनीतिमें ही

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग निहित है। ब्रह्माने पहले लक्षाध्यायको दंडनीति रची थी, बादमें प्रजावर्गको आयुको अल्पता पर विचार कर उसको संक्षिप्त कर दिया। महेश्वरने इसे दश हजार अध्यायोंमें प्रसिद्ध किया। उक्त संक्षिप्त नीतिशास्त्र 'वैशालाक्ष'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। अनन्तर इन्द्रने उसका ५ हजार अध्यायोंमें वर्णन किया, जो 'बाहुदण्डक' नामसे विख्यात हुआ। बृहस्पतिने इस 'बाहुदण्डक' ग्रन्थका तीन हजार अध्यायोंमें प्रचार किया और वह 'बार्हस्पत्य' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अन्तमें शुक्राचार्यने इस शास्त्रको एक हजार अध्यायोंमें रचा। इस प्रकारसे यह जगत्में प्रचारित हुआ। एक दण्डनीतिके प्रभावसे हो जन-समाजमें नीति और धर्मका प्रचार हुआ है।

(भारत शान्तिप० ५९ अ०)

२ प्रजाको दण्ड दे कर अथवा पीड़ित करके शासनमें रखनेको राजाओंको नोति, सेना आदिके द्वारा बल-प्रयोग करनेको विधि।

दण्डनीय (सं० त्रि०) दण्ड-अनीयर्। दण्डार्ह, दंड देने योग्य।

दण्डनेतृ (सं० त्रि०) दण्डं नयति दंड नी-तृच्। दण्ड-विधाता, सजा देनेवाला।

दण्डप (सं० पु०) दण्डेन पाति पा क। दंड द्वारा पालक राजा, दण्डके द्वारा शासन करनेवाला राजा।

दण्डपांशुल (सं० पु०) दंडेन दंडधारणेन पांशुलः नीचः। द्वारपाल, दरवान।

दण्डपाणि (सं० पु०) दंडः यष्टिः पाणौ यस्य। १ यम। ये अपने हाथमें हमेशा दंड लिए रहते हैं। २ काशीस्थित भैरवभेद, काशीमें भैरवकी एक मूर्त्ति। पूर्णभद्र नामक किसी यक्षने महादेवकी आराधना करके एक पुत्र प्राप्त किया जिसका नाम रखा गया हरिकेश। हरिकेश बचपनहीसे महादेवका बड़ा भक्त था। पीछे उन्होंने महादेवके उद्देश्यसे कठोर तपस्या आरम्भ की। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। महादेव इनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर पार्वतीके साथ वहाँ पहुँच गये और हरिकेशका शरीर स्पर्श किया। इस पर हरिकेशके हृदयमें ज्ञानका उदय हुआ और अपने अभीष्ट देवको सामने देख वे फूले न समाये और उनकी स्तुति करने लगे। बाद शिवजी बोले—"यक्ष! तुम काशीके दंडधर हो जा। वहाके दुष्टोंका शासन और साधुओंका पालन करना। आजसे तुम्हारा नाम दंडपाणि रहा। सम्भ्रम और उद्भ्रम नामके मेरे दो गण तुम्हारो सहायताके लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किये कोई काशीमें मुक्ति नहीं पा सकेगा। जो मेरे भक्त होंगे, उन्हें भी पहले तुम्हारी पूजा करनी पड़ेगी। देवगण और मानव समाजमें तुम ही प्रधान पूजनीय होंगे।" इतना कह कर महादेवने आनन्दकानन-में प्रवेश किया। दंडपाणि महादेवके आदेशानुसार काशीपुरका शासन कर रहे हैं। (काशीख० ३२ अ०)

३ स्वनामख्यात चन्द्रवंशीय नृपविशेष, चन्द्रवंशके एक राजाका नाम। ४ बुद्ध मूर्त्तिभेद, बुद्धदेवकी एक मूर्त्तिका नाम।

दण्डपात (सं० पु०) दंडस्य पातः। सन्निपात रोग विशेष। इसमें रोगीको नींद नहीं आती, वह इधर उधर पागलकी तरह घूमता है।

दण्डपातन (सं० क्लो०) दण्डस्य पातनं। दंड निक्षेप, डंडेका फेंकना।

दण्डपारुष्य (सं० क्लो०) दंडेन यत् पारुष्यं परुषता दंड्य-तेऽनेनेति दंडोदेहस्तेन यत् पारुष्यं विरुद्धाचरणं। १ व्यवहार विषयभेद, दुष्टकार्य, मार पोट। दूसरेके शरीर पर हाथ पैर और अस्त्र आदिसे आघात करने तथा धूल मलमूत्र आदि फेंकनेको दंडपारुष्य कहते हैं अर्थात् देहके प्रति जो कुछ विरुद्धाचरण किया जाय, उसीका नाम दंडपारुष्य है। २ राजाओंके सात व्यसनों-मेंसे एक। ३ अठारह विवादोंमेंसे एक। दंड देखो।

दण्डपाल (सं० पु०) दण्डं शरीरं पालयति पालि-अण्। १ मत्स्यभेद, दाढ़िका मछलो। दण्डेन पालयति पालि-अच्। २ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार दरबान।

दण्डपालक (सं० पु०) दण्डपालात् कायति कै-क। मकूलमत्स्य, बाम मछली।

दण्डपाली (सं० स्त्री०) तुलायन्त्र, तराजू।

दण्डपाशक (सं० पु०) १ प्रधान दण्डदाता, दण्ड देनेवाला प्रधान कर्मचारी। २ घातक, जल्लाद।

दण्डपाशिक (सं० पु०) घातुक, जल्लाद।

दण्डपिङ्गलक (सं॰ पु॰) दंडः देहः पिङ्गलोऽत्र। उत्तरस्थ देशभेद, एक देशका नाम जो उत्तरको ओर पड़ता है।

दण्डप्रणाम (सं॰ पु॰) दंडवत्, भूमिमें डंडेके समान पड़ कर प्रणाम करनेकी क्रिया।

दण्डवध (सं॰ पु॰) दंडेन वधः। प्राणदण्ड।

दण्डबालधि (सं॰ पु॰) दंड इव बालधिर्यस्य। हस्ती, हाथी।

दण्डबाहु (सं॰ त्रि॰) दंड इव बाहुर्यस्य। १ दंडाकार बाहुयुक्त, जिसको बाहु डंडेके आकारसी हो।

दण्डभीति (सं॰ स्त्री॰) दंडस्य भीतिः ६-तत्। दंडित होनेका भय, सजा पानेका डर।

दण्डभृत् (सं॰ पु॰) चक्रभ्रामणार्थं लगुड़ादिकं भ्रमति भृ क्किप् तुगागमश्च। १ कुम्भकार, कुम्हार। दंडं दमनं बिभर्त्ति। (त्रि॰) २ दंडधारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डमत्स्य (सं॰ पु॰) दंडइव मत्स्यः। दण्डाकार मत्स्यभेद, एक प्रकारको मछली जो देखनेमें डंडे या सांपके आकारको होती है, बाम मछली। इसका गुण—तिक्त, पित्तरक्त और कफनाशक, शुक्र तथा बलवर्द्धक है।

दण्डमातङ्ग (सं॰ पु॰) तगर, एक प्रकारका पेड़।

दण्डमाथ (सं॰ पु॰) दंडकारी माथः पन्थाः। प्रधान पथ, सीधा रास्ता।

दण्डमाथिक (सं॰ पु॰) दंडमाथं धावति ठक्। प्रधान पथसे धावमान व्यक्ति, वह मनुष्य जो सीधे रास्तेसे जाता हो।

दण्डमानव (सं॰ पु॰) दंडप्रधानो मानवः मध्यलो॰ कर्मधा॰। दंडप्रधान जन, वह जिसे दंड देनेकी अधिक आवश्यकता पड़ती हो, बालक, लड़का।

दण्डमुद्रा (सं॰ स्त्री॰) दंडाकारा मुद्रा। तन्त्रसारोक्त मुद्राभेद, तन्त्रकी एक मुद्रा। इसमें मुट्ठी बांधकर बीचकी उंगली ऊपरको खड़ी करते हैं।

दण्डयात्रा (सं॰ स्त्री॰) दंडाय शत्रुदमनाय यात्रा या यात्रा प्रयाणं। १ दिग्विजय। २ सेनाको चढ़ाई। ३ वरयात्रा, बारात।

दण्डयाम (सं॰ पु॰) दंडं यच्छति यम-अण्। १ यमराज। २ दिवस, दिन। दंडे इन्द्रियदमने यामः संयमो यस्य। ३ अगस्त्य मुनि।

दण्डयोग (सं॰ पु॰) दंडविधान, शास्तिप्रदान।

दण्डरी (सं॰ स्त्री॰) दंडं तदाकारं राति रा-क-गौरा॰ ङीष्। डङ्गरी वृक्ष, एक प्रकारकी ककड़ी।

दण्डवत् (सं॰ त्रि॰) दंड· विद्यतेऽस्य दंड-मतुप् मस्य वः। १ दंडविशिष्ट, दंडधारी। (स्त्री॰) २ साष्टाङ्ग प्रणाम, पृथ्वी पर लेट कर किया हुआ नमस्कार।

दण्डवादिन् (सं॰ पु॰) दंडेन वदति वद-णिनि। १ द्वारपाल। (त्रि॰) २ दंडवक्ता, जो सजा देनेका डर दिखलाता हो।

दण्डवाच्य (सं॰ क्लो॰) अवस्थानभेद।

दण्डवासिक (सं॰ पु॰) द्वारपाल, ड्योढ़ीदार, दरवान।

दण्डवासी (सं॰ पु॰) दंडेन वसति वस णिनि। १ द्वारपाल, दरवान। २ एक ग्रामका शासनकर्त्ता, गांवका हाकिम या मुखिया।

दण्डवाही (सं॰ पु॰) दंडं वहति वह-णिनि। दंडधारक पुलिस कर्मचारी।

दण्डविधि (सं॰ स्त्री॰) वह नियम या व्यवस्था जो अपराधोंके दंडसे सम्बन्ध रखता हो, जुर्म और सजाका कानून। ( Criminal law )

दण्डविष्कम्भ (सं॰ पु॰) दंडः मन्थान दंडं विष्कभ्नाति निबध्नाति यत्र, वि-स्कन्भ अधिकरणे घञ् ततोषत्वं। मन्थनदंड बांधनेका स्तम्भ, मट्ठा मथनेका खंभा।

दण्डवृक्ष (सं॰ पु॰) दंडाकारः पत्रादिहीनत्वात् वृक्षः। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर, सेंहुड़। ( Euphorbia ) स्वार्थे कन्। दंड वृक्षक, एक प्रकारका पेड़ जिसमें पत्ते आदि कुछ भी नहीं होते। यह डंडेकी तरह खड़ा रहता है। इसीसे इसका नाम दंडवृक्ष पड़ा है।

दण्डव्यूह (सं॰ पु॰) दंडसंज्ञको व्यूहः। व्यूहभेद, सेनाको डंडेके आकारकी स्थिति। इसमें आगे सेनाध्यक्ष, बीचमें राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर हाथी, हाथियोंकी बगलमें घोड़े और घोड़ोंकी बगलमें पैदल सिपाही रहते थे। इस व्यूहका उल्लेख मनुस्मृतिमें आया है। अग्निपुराणमें इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं।

दण्डव्रतधर (सं॰ पु॰) दंडस्य व्रतं तस्य धरः। १ दंड रूप व्रतधारी राजा। २ दंडधर, यम। (त्रि॰) ३ दण्डधारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डसंहिता (सं० स्त्री०) दंडस्य संहिता शास्त्रं। दंडविषयक शास्त्र, फौजदारी आईन (Penal code)

दण्डसहाय (सं० पु०) दंडे सहायः। दुष्ट दमन प्रभृतिमें राजाका साहाय्य, वह सहायता जो दुष्टोंको दमन करनेके लिये राजाको ओरसे पहुंचाई जाती है।

दण्डसेन (सं० पु०) १ पुरुवंशके एक राजा जो विष्वक्सेनके पुत्र थे। २ द्वापरयुगके एक राजाका नाम। (भारत० आदिप० १८०)

दण्डस्थान (सं० क्लो०) दंडस्य स्थानं ६-तत्। दंडका स्थानविशेष, वह स्थान जहां दंड दिया जा सकता है। मनुने दंडके लिये १० स्थान निर्णय किये हैं,—उपस्थ, उदर, जिह्वा, दोनों हाथ दोनों पैर, चक्षु, नासिका, कर्ण, धन और देह। राजा अपराधके अनुसार उक्त दश स्थानोंमें दंडका विधान कर सकते हैं। (मनु ८।१२४-२५) दंड देखो।

दण्डहस्त (सं० क्लो०) दंडइव हस्तो वृन्तरूपो यस्य। तगरपुष्प, तगरका फूल।

दण्डा (सं० स्त्री०) नागवला, गंगेरन, गुलसकरी।

दण्डा (हिं० पु०) डंडा देखो।

दण्डाख्य (सं० क्लो०) तीर्थभेद, एक तीर्थस्थान जो चम्पा नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें स्नान दानादि करनेसे हजार गौ दान करनेका फल होता है।

दण्डाघात (सं० पु०) दंडेन आघातः ३-तत्। दंड द्वारा प्रहार, डंडेसे मारनेकी क्रिया।

दण्डाजिन (सं० क्लो०) दंडश्च अजिनश्च इयोः समाहारः। १ साधु संन्यासियोंके धारण करनेका दंड और मृगचर्म। तच्छलेन धार्य तथा अस्त्रास्य च। २ शठता, कपट वेश, झूठमूठका आडम्बर। कपटो बाहरसे तो दंड मृगचर्म आदि धारण करते, किन्तु भीतरसे कपट भरा रहता है। इसी कारण दंडा शब्दसे शठताका भी अर्थ होता है।

दण्डाज्ञा (सं० स्त्री०) दंडस्य आज्ञा। दंडादेश, सजा देनेका हुक्म।

दण्डादण्डि (सं० अव्य०) दंडेश्च दंडेश्च प्रहृत्य प्रहृत्त युद्धं इच् समासान्तः पूर्वपददीर्घः। इच् कर्मव्यतिहारे। पा ५।४।१२७) परस्पर यष्टि द्वारा युद्ध, डंडेकी मार पीट, लट्ठबाजी।

दण्डादि (सं० क्लो०) दंड आदिर्यस्य। पाणिन्युक्त गणभेद पाणिनिका एक गण। दंड, मुसल, मधुपर्क कशा, अर्घ, मेघ, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ और भङ्ग ये दंडादि गण है। (पाणिनि)

दण्डाधिप (सं० पु०) दंडस्य अधिपतिः ६-तत्। दंडाधिपति, राजा।

दण्डाधिपति (सं० पु०) दंडस्य अधिपतिः ६-तत्। दंड-देनेके अधिपति, राजा।

दण्डापतानक (सं० क्लो०) वातरोगविशेष, एक प्रकारकी वात-व्याधि। इसमें कफ और वातके बिगड़नेसे मनुष्यको देह सूखे काठकी तरह जड़ हो जाती है।

दण्डापूपन्याय (सं० पु०) दण्डे दंडाकर्षे अपूपस्य तत्सम्बन्धस्य कर्षः तत्प्रतिपादकन्यायः। न्यायभेद, एक प्रकारका न्याय वा दृष्टान्तकथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसीसे कोई कठिन कार्य हो गया तब उससे सम्बन्ध रखनेवाला सहज कार्य अवश्य हो हुआ होगा। जैसे—कोई गृहस्थ अपने घरके किसी जगह डण्डेमें बांध कर मालपूआ रख गया हो और लौट कर उसने चूहेको डंडा खाते देखा हो, तो यह सहज ही समझमें आ जाता है कि उस चूहेने मालपूआ तो पहले ही उड़ा दिया होगा क्योंकि जब वह डंडा सरीखी कड़ी चीज खा रहा है, तो उसने मालपूआ जैसी नरम और मीठी चीज न खायी हो यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। अतएव निर्णय हुआ कि चूहेने अवश्य ही मालपूआ खाया है। इसी प्रकार किसी कष्टसाध्य कार्यकी सिद्धिके अनुमान करनेको दण्डापूपन्याय कहा जा सकता है। न्याय देखो।

दण्डायमान (सं० त्रि०) जो डंडेकी तरह सीधा खड़ा हो।

दण्डार (सं० पु०) दंड अस्त्यर्थे ऋ-अण्। १ वाहन, गाड़ी, नाव आदि। २ मत्त हस्ती, मतवाला हाथी। ३ कुम्भकारचक्र, कुम्हारका चाक। ४ यन्त्रभेद, धनुष।

दण्डार्त्त (सं० क्लो०) चम्पा नदीके समीपस्थ तीर्थभेद, एक तीर्थ जो चम्पा नदीके किनारे पड़ता है।

दण्डालय (सं० पु०) १ न्यायालय जहांसे दंडका विधान हो। २ दंड दिये जानेका स्थान। ३ एक छन्द। कोई कोई इसे दंडकला भी कहता है।

दण्डासन ( सं० क्लो० ) आसनभेद एक प्रकारका आसन।

दण्डाहत ( सं० क्लो० ) दण्डेन आहतं। १ तक्र, छाछ, मट्ठा। ( त्रि० ) २ दंड द्वारा ताड़ित, डंडेसे मारा हुआ।

दण्डिक ( सं० पु० ) दंडोऽस्त्यस्य दंड-ठन्। ( अत-इनिठनौ पा। ५।२।११५ ) १ दंडधारक, वह जो डंडा रखता हो। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका गुण—तिक्त, कफ, वायु और पित्तनाशक तथा लघु है। ( त्रि० ) ३ दंडदाता, मारनेवाला।

दण्डिका ( सं० स्त्री० ) दंडिक टाप्। १ हारविशेष। २ रज्जु, डोरी, रस्सी। ३ श्रेणी, कतार। ४ बीस अक्षरों-का एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें रगणके बाद एक जगण इस प्रकार गणोंका जोड़ा तीन बार आता है और अन्तमें गुरु लघु होता है।

दण्डित ( सं० त्रि० ) सञ्जातोऽस्य दंडतारकादित्वादि-तच्। कृतदंड, दंड पाया हुआ, जिसे दंड मिला हो। इसका पर्याय—दापित और साधित है।

दण्डिन् ( सं० पु० ) दंडोऽस्त्यस्य दण्ड-इनि। १ यम। २ नृप, राजा। ३ द्वारपाल। ४ मञ्जु-घास, मूंज। ५ सूर्यके एक पार्श्वचरका नाम। ६ जिनदेव। ७ दमनक वृक्ष, दौनेका पौधा। ८ चतुर्थाश्रमविशिष्ट, दंडाश्रमी, वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे वा किये हो। दंडी देखो। ९ दंडधारक, दंडधारण करने-वाला व्यक्ति। १० महादेव। ११ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

१२ संस्कृत साहित्यके एक प्रधान कवि। कोई कोई इन्हें व्यासके बाद ही आसन देनेके लिए प्रस्तुत है। एक उद्भट श्लोक है—

"जाते जगति वाल्मीके कविरित्यभिधीयते।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥"

वाल्मीकि-द्वारा ही 'कवि' शब्द प्रचलित हुआ। अर्थात् वाल्मीकिके पहले किसीने कवि आख्या नहीं पाई, उनके बाद व्यासने जन्म लिया तो 'कवी' अर्थात् दो कवि हुए, फिर दण्डी हुए, जिससे 'कवयः' अर्थात् तीन कवि हो गये।

किसी किसीका कहना है कि उक्त श्लोक महाकवि कालिदासका है, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता ; क्योंकि दण्डी महाकविके बहुत पीछे हुए हैं। पर हां, कालिदास नामधारी अन्य किसी परवर्ती व्यक्तिका हो सकता है।

ऊपरके श्लोकके अनुसार दंडीको कालिदाससे श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कालिदासकी रचना दंडीकी अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट है। लेकिन दंडीके सुमधुर, सुललित और उत्तम छन्दोविन्यासको देख कर उन्हें भी महाकवि कह सकते हैं।

संस्कृतवित् पंडितोंका कहना है कि दंडीने तीन ग्रन्थ रचे थे जिनमें 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श' ये दो ग्रन्थ मिलते हैं। थोड़े दिन हुए, प्रो० पिसचेल साहबने प्रकट किया था कि शूद्रक-रचित मृच्छकटिका नामक जो नाटक है, वही दंडीका तृतीय ग्रन्थ है। उनको विश्वास है, कि दंडीने काव्यादर्शमें (२।२६१) जो यह श्लोक लिखा है कि—

'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥"

वह मृच्छकटिकके प्रथमाङ्कसे उद्धृत किया गया है। दंडीने कभी भी दूसरेका श्लोक उद्धृत नहीं किया। इसलिये मृच्छकटिक दंडीका ही रचा हुआ मालूम पड़ता है। मृच्छकटिकमें जिस ढङ्गसे मानव-जीवनके घटना-वैचित्र्यका वर्णन किया गया है, दंडीके दश-कुमारमें भी वही ढङ्ग पाया जाता है *।

पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्नने इसके उत्तरमें प्रमाणित किया है कि "उक्त श्लोक दंडीका रचा हुआ नहीं है। अन्यान्य अलङ्कारशास्त्रोंमें भी इसका उल्लेख है। दंडीने काव्यादर्शमें महाभारत, शकुन्तला तथा शिशुपालवधसे भी कोई कोई श्लोक मूलतः वा सामान्यतः उद्धृत किए हैं जैसा कि नीचेके श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है—

"पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगानुपलभ्य च।
यथासामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्यलक्षणं॥"

पूर्व शास्त्रसे संग्रह किया है यह कवि स्वयं स्वीकार करते हैं। ऐसी दशामें मृच्छकटिकके वचन ( श्लोक )

* Pischel's edition of Rudrata's Cringaratilaka and Rayyaka's Sahridayalila.

काव्यादर्शमें रहनेके कारण मृच्छकटिककी दंडि रचित नहीं कहा जा सकता। विशेषतः दशकुमारचरितकी आडम्बर-युक्त भाषा और मृच्छकटिककी सरल भाषा इन दोनोंकी पर्यालोचना करनेसे दोनों ग्रन्थ एक व्यक्ति के लिखे हुए हैं, यह कदापि नहीं कहा जा सकता। मृच्छकटिकके रचयिता शूद्रक हैं जो दंडीसे बहुत पहले हुए हैं, इसके बहुत प्रमाण भी हैं ' † शूद्रक देखो।

बहुतोंका मत है कि दंडी ६ठीं शताब्दीमें आविर्भूत हुए थे। कोई कहते हैं कि काव्यादर्शमें (१।१२) 'छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः।' इस वचनमें 'छन्दोविचिति'का उल्लेख है और वही दंडीका तीसरा ग्रन्थ है और किसी किसीका यह कहना है, कि 'दशकुमारका' उत्तरार्द्ध दंडीका रचा हुआ नहीं है।

१३ संस्कृत भाषामें अनामयस्तोत्रके रचयिता।

१४ काव्यप्रकाशके एक टीकाकार।

१५ नाममाला § नामक संस्कृत कोषके रचयिता।

दण्डिमन (सं० पु०) दंडस्य भावः कर्म वा इमनिच्। दंडभाव, दंड देनेका काम।

दण्डी—हिन्दूका एक उपासक संप्रदाय। ये लोग दंड और कमंडलु लिए इधर उधर भ्रमण करते हैं, इसी कारण इनका नाम दंडी पड़ा। ब्राह्मणके सिवा और किसीको दंडी होनेका अधिकार नहीं है। फिर पिता, माता, पुत्र, कन्या और भार्याके रहते भी दंडी होना निषेध है। (निर्वाणतन्त्र १३ पटल)

पिता माता इत्यादिके नहीं रहने पर ब्राह्मण जब संन्यासाश्रम ग्रहण करनेके नितान्त उत्सुक हों, तभी वे किसी दंडी गुरुके पास जा सकते हैं। दंडी गुरु भी फिर उन्हें विशेषरूपसे जाचकर ज्ञातव्य विषय जान लेते और जब उन्हें अच्छी तरहसे मालूम हो जाता है कि यथार्थमें दंडी होनेको इनकी गहरी उत्कण्ठा है, तब उन्हें मन्त्र दान करते हैं।

मन्त्रप्रदानका नियम यह है,—गुरु पहले शिष्यके शरीरमें फूत्कार दे कर प्राण प्रतिष्ठा करते और पीछे अन्नप्राशनादि सभी संस्कार फिरसे करते हैं। इसके उपरान्त दशाक्षर मन्त्र देते हैं। शिष्य इस मन्त्रको मूल मन्त्र समझ कर जप करता है। मन्त्र लेते समय उसकी शिखा मूंड दी जाती और जनेऊ उतार कर भस्म लगा दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इस प्रकार यथाविहित क्रियादि कर चुकनेके बाद गुरु दण्ड, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र देते हैं। दण्ड ही दण्डियोंके लिए अत्यन्त आदरकी वस्तु है, क्योंकि वे इसके ऊपर महामायाकी कल्पना करके पूजा करते हैं।

दण्डीलोग गेरुआ वस्त्र पहनते, सिर मुड़ाये रहते और भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं। ये लोग अग्नि, धातु, वा धातव पात्रादि स्पर्श नहीं करते, सुतरां अपने हाथसे रसोई नहीं बना सकते हैं। साथमें यदि कोई ब्रह्मचारी रहे, तो उन्हींसे रसोई बना कर खा सकते, अन्यथा किसी ब्राह्मणके घरसे पक्की रसोई मांग कर खा सकते हैं। सोनेके लिए इन्हें केवल एक छोटी चटाई और एक तकिया चाहिये। इन-के लिए दो बार भोजन करना तथा ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसी दूसरी जातिका अन्न खाना निषेध है। इन सब नियमोंका बारह वर्ष तक पालन करके बाद दंडको जलमें फेंक दंडी परमहंस आश्रमको प्राप्त करता है।

किन्तु कोई कोई बारह वर्षके पहले ही दंड फेंक देता और कोई थोड़े ही दिन तक इस आश्रममें रहता है। दंडियोंके साधारणतः विशुद्धाचारी होने पर भी तान्त्रिक दंडियोंके लिए छिप कर मद्यमांसादि व्यवहार करनेकी व्यवस्था लिखी है—

"पंचतत्वं सदा सेव्यं गुप्तभावे जितेंद्रिय.।"

(प्राणतोषिणी)

किन्तु ऐसी व्यवस्था रहने पर भी कितने तान्त्रिक दंडी लोग मद्यमांसादिका व्यवहार नहीं करते। जो करते भी हैं, वे बहुत छिप कर।

निर्गुण ब्रह्मोपासना ही दंडियोंका प्रधान धर्म है। लेकिन जो इस प्रकारकी उपासना नहीं कर सकते उनके लिए शिवादिकी उपासना लिखा है।

† Proc of the Asiatic Society, of Bengal, 1887 p. 198.

§ 'नाममाला' नामक और एक संस्कृत कोष है जिसके रचयिता धनंजय कवि हैं। यह ग्रन्थ छप चुका है।

इस धर्म सम्प्रदायमें जो विशेष विद्वान् हैं, वे तो अपना अधिकांश समय अध्ययनादिमें बिताते हैं। वे मोमांसा, न्याय, वेदान्त और अन्यान्य शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं। बहुतसे ब्राह्मण पंडित उनके समीप शिक्षा प्राप्त करनेके निमित्त आते हैं।

मरने पर दंडियोंका शवदाह नहीं होता, या तो शव मिट्टीमें गाड़ दिया जाता या नदीमें फेंक दिया जाता है। काशीमें आज भी बहुतसे दंडी दिखाई देते हैं।

फिर एक दूसरी श्रेणीके दंडो हैं जो अपने परिवारके साथ रहते हुए भी दंडो कहलाते हैं। ये लोग सांसारिक विषय वासनामें लिप्त रहते हैं। इनकी उपाधि 'तीर्थ' 'आश्रम' आदि हैं। यही नहीं, वरन् कभी कभी दंड, कमंडलु और गेरुआ वस्त्रके साथ तीर्थयात्राको निकलते हैं। काशी जिलेमें कई जगह इस सम्प्रदायके लोग देखे जाते हैं। ये लोग अपने सम्प्रदायमें ही विवाह करते न कि अपने मठके दंडीके घरमें।

इस घरबारी ( गृहस्थ ) दंडीके ऊपर एक गल्प है। कितने संन्यासियोंके मुखसे ऐसा सुना जाता है कि कोई सुरसिक दंडो किसी स्त्रीके रूप पर मोहित हो उसे ले कर संसारी हो गये थे। उसीसे घरबारी ( गृहस्थ ), दंडी ऐसा नाम चला आ रहा है।

वैष्णव दण्डो नामक एक और श्रेणीके दण्डो हैं। ये लोग अपने साथ त्रिदण्डो अर्थात् तीन दण्डको एकमें बांध इधर उधर लिए फिरते हैं। चतुर्भुज नारायण इनके उपास्य देवता है। ये लोग शिखा छोड़ कर तमाम सिर मुड़ा देते, गेरुवा वस्त्र पहनते तथा गलेमें तुलसीकाष्ठ और कमलबीजको माला एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं। वैष्णव दंडी बड़े शुद्धाचारी होते हैं, यथासमय वेदाध्ययन और नित्य क्रिया किया करते हैं। इन लोगोंका भोजन, अग्निस्पर्श, कौपीन और कमंडलुधारण तथा उर्द्धदैहिक सभी क्रियाएं शैव दण्डियों सरीखी हैं; किन्तु कुलाचारी शैव दंडियोंके जैसा कोई मद्यमांसका व्यवहार नहीं करते।

दण्डोत्पल (सं॰ क्लो॰) दण्डयुक्तं उत्पलमिव। वृक्षभेद, एक पौधेका नाम। ( Canscorda decussata ) यह एक प्रकारका शाक जातीय क्षुप है। कमलके जैसा इसका कुसुमस्थित वृन्त दण्डको तरह लम्बा होता है, इसोसे इसे दण्डोत्पल कहते हैं। पीला, लाल और सफेद फूलके भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। दंडोत्पलके विषयमें बहुतोंका मतभेद देखनेमें आता है।

इसे कुछ लोग गूमा, कुछ लोग कुकरौंधा और कुछ बड़ी सहदेया समझते हैं। कोई कोई कहते है, कि इसका नाम दण्डकलस है। अब यह देखना चाहिए, कि दण्डोत्पलको प्रकृतिक संज्ञाको यदि दण्डकलस कहें, तो द्रोणपुष्पीके विषयमें भेद पड़ जाता है। क्योंकि द्रोणपुष्पीको ही लोग दण्डकलस कहते है, कारण इसमें द्रोणकलशके जैसा छोटे छोटे सफेद दलयुक्त पुष्प लगते है। फल भी ठीक गोशीर्षकको आकृतिका होता है, इसीसे उसे गोशीर्षक भी कहते हैं। उड़ीसामें यह गोंदच और क्रम लोगोंके देशमें गूमा नामसे मशहूर है। दण्डोत्पलको कहीं कहीं शङ्खपुष्पी वा शङ्काहुली कहते है। किन्तु शङ्खपुष्पो और दण्डोत्पल भिन्न भिन्न जातिका पौधा है। शायद मालूम पड़ता है कि इसके तीन भेद जो बतलाये गये है, उनमेंसे शुक्लपुष्प दण्डोत्पलको शङ्काहुली और पीतपुष्प दण्डोत्पलको गोबरिया कहते हैं। गोबरियाका अपभ्रंश गोवन्दिनी है। अरुणपुष्प दण्डोत्पलको उनसे भिन्न बतलाया है, लेकिन यह युक्तिसङ्गत नहीं है। क्योंकि भावप्रकाशमें उक्त तीनों प्रकारके पुष्पोंको कुकरौंधाके अन्तर्गत माना है। रत्नमालामें उसे कुकरौंधा, गोबरिया और गोच्छाल नामसे उल्लेख किया है। इससे यह साबित होता है, ये तीनों वृक्ष ही दण्डोत्पल नहो है और न इनके फूल हो कमलके जैसे लम्बे होते है। अब यह देखना आवश्यक है कि किस जातिके वृक्षको दण्डोत्पल कह सकते हैं। जब पहले यह कहा जा चुका है कि दीर्घवृन्तयुक्त कमलके सदृश जिसका फूल होता है वही दण्डोत्पल है तब सहदेव जातीय पुष्पशाकको ही दण्डोत्पल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। क्योंकि इसका फूल उत्पल सा और वृन्त भी लम्बा होता है। लोग इसके पौधेको अकसर दोवालके ऊपर लगाया करते हैं। इसके पत्ते हरसिंगार ( सिउली )के पत्ते सदृश, पर उनसे कुछ मोटे होते हैं।

इसमें वृन्तके ऊपर स्वल्प दलयुक्त चन्द्रमल्लिका पुष्पाकृति के पुष्प लगते हैं। यह पुष्प प्रस्फुटित हो कर जब सूख जाता है, तब उससे बहुत बारीक रूई निकल कर हवामें इधर उधर उड़ती है। यही यथार्थ में श्वेतपुष्प दण्डोत्पल है। बहु दलयुक्त सहदेवीको पीत दण्डोत्पल और इसी जातिके अरुण पुष्पको अरुण दण्डोत्पल कह सकते हैं। पीत दण्डोत्पलका नामान्तर गोवन्दनी और गन्धवल्ली है। इसका गुण—क्षय, श्वास और कासनाशक तथा अग्निदीपक है। (राजनि०)

दण्डोत्पला (सं० स्त्री०) श्वेत पुष्प दंडोत्पल, सफेद फूल वाला दंडोत्पल।

दण्ड्य (सं० त्रि०) दंड कर्मणि यत। दंडनीय, दंड पाने योग्य, जिसे दंड देना उचित हो।

दत् (सं० पु०) दन्त पृषोदरादि० साधुः। दन्त, दांत।

दतवन (हिं० स्त्री०) दतुअन देखो।

दतारा (हिं० वि०) दाँतवाला, जिसमें दाँत हो।

दतिउर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत थाना जिलेके माहिम उपविभागका एक बन्दर। यह अक्षा० १९° १७' उ० और देशा० ७२° ५०' पू०; माहिमसे १० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इस बन्दरके निकट एक दुर्गका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। शायद यह दुर्ग पोर्त्तुगीजोंसे बनाया गया होगा।

दतिया—१ बुन्देलखंडके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २५°३४' से २६°१७' उ० और देशा० ७८°१७' से ७८°५६' पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ८३६ वर्गमील है। इसके पूर्वमें झांसी प्रदेश और तीनों ओर ग्वालियर राज्य पड़ता है। लोकसंख्या १५२० है।

१८०२ ई०को वेसिनकी सन्धिके अनुसार बुन्देलखंडके अन्यान्य प्रदेशोंके साथ दतिया राज्य पेशवासे अंगरेजोंके हाथ सौंपा गया। १८०४ ई०में अंगरेजोंने दतियाके राजा परीक्षित्‌के साथ सन्धि कर ली। राजा परीक्षित्‌के बाद उनके दत्तक पुत्र विजय बहादुर राज्य सिंहासन पर बैठे। १८५७ ई०में राजा विजयकी मृत्युके बाद उनके पोष्य पुत्र भवानी राजा हुए। ये बुन्देला राजपूत हैं। इनका जन्म १८४५ ई०में हुआ था। वर्त्तमान महाराजका नाम H. H. महाराज सर लोकेन्द्र गोविन्दसिंह बहादुर K. C. S. I. और युवराजका नाम राजा बहादुर बलभद्रसिंहजी है।

राज्यकी आमदनी प्रायः १०००००) रु०की है। सैनिक विभागमें ८७ कमान, १६० गोलन्दाज, ७०० अश्वारोही और ३०४० पदातिक सेना है। राजसम्मानके लिये १५ तोपें छोड़ी जाती हैं।

२ बुन्देलखंडके दतिया राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २५° ४०' उ० और देशा० ७८° ३०' पू० एक छोटे पहाड़के ऊपर अवस्थित है। यह आगरेसे १२५ मील दक्षिण-पश्चिम तथा समुद्रसे १४८ मील उत्तर-पूर्व आगरेसे समुद्र तक जानेवाले रास्ते पर पड़ता है। शहरके मध्यस्थलमें तरह तरहके फल वृक्ष तथा प्रमोद उद्यानसे सम्वलित राज प्रासाद है। यहांसे प्रायः ४ मीलकी दूरीमें बहुतसे जैनमन्दिर देखे जाते हैं।

दत्त (सं० त्रि०) दीयते इति दा-क्त। १ रक्षित, बचाया हुआ। २ कृत दान, दिया हुआ। इसका संस्कृत पर्याय—विसृष्ट और विश्राणित है। (पु०) दा भावे क्त। ३ दान। ४ एक ऋषि। ये अत्रिके पुत्र और दत्तात्रेय नामसे प्रसिद्ध थे। भागवतके मतसे ये विष्णुके बाईस अवतारोंमेंसे छठे अवतार माने गये हैं। इन्होंने इस अवतारमें अलर्क और प्रह्लादके समीप आत्मविद्या वर्णन की थी। इनके पुत्रका नाम निमि था। ५ अग्निसिंहनन्दन जैनभेद, जैनियोंके नौ वासुदेवोंमेंसे एक। ६ एक राजाका नाम। (भारत १२।२३६।१५) ७ यदुवंशीय राजाधिदेवके पुत्र। (हरिवंश ३८।२) ८ वैश्योंकी एक उपाधि। ९ ब्राह्मणोंमें शर्मन्, क्षत्रियोंमें वर्मन् वैश्योंमें दत्त और शूद्रोंमें दास ये कई एक साधारण उपाधि हैं। १० एक प्रकारके बंगाली कायस्थोंकी उपाधि। गौड़में मल्लिकोंकी दत्त उपाधि है। कुल। ११ पुत्रभेद, दत्तक।

दत्तक (सं० पु०) दत्त एव स्वार्थे कन्। द्वादशविध पुत्रोंके अन्तर्गत पुत्रविशेष, बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक, शास्त्रविधिसे बनाया हुआ पुत्र, वह जो वास्तवमें पुत्र न हो पर पुत्र मान लिया गया हो, गोद लिया हुआ लड़का, मुतबन्ना।

दत्तक-विषयक अनेक ग्रन्थ हैं, यथा—कुबेराचार्य, कोलप्पाचार्य, नन्द पंडित और राम पंडितको चार 'दत्तकचन्द्रिका,' व्यासाचार्यका 'दत्तकदर्पण', अनन्तरामको 'दत्तकदीधिति' तथा शास्त्री और विश्वनाथ उपाध्याय प्रणीत 'दत्तकनिर्णय' अनन्तदेव-कृत 'दत्तकपुत्र

विधि', नन्दपण्डित, माधवाचार्य और रामकवि-प्रणीत भिन्न भिन्न 'दत्तक मीमांसा', शूलपाणि-कृत 'दत्तकविवेक' और 'दत्तकल्पलता', अनन्तदेव-कृत 'दत्तकौस्तुभ', धर्मराजका 'दत्तरत्नाकर', माधव पण्डितका 'दत्तादर्श', गङ्गदेव वाजपेयीकी 'दत्तकचन्द्रिका', नागोजी भट्टका 'दत्तकौस्तुभ', कृष्णमिश्रका 'दत्तकाभाषण', श्रीनाथ भट्टका 'दत्तनिर्णय', दत्तकतिलक आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं। इनमेंसे नन्द पण्डितकी 'दत्तकमीमांसा' और देवानन्द भट्ट वा कुवेर प्रणीत 'दत्तकचन्द्रिका' ही सर्वापेक्षा मान्य है। ये दो ग्रन्थ भारतवर्षके प्रायः समस्त प्रदेशोंमें तुल्यरूपसे प्रामाण्य और समादृत होते हैं। 'दत्तक'के विषयमें, शास्त्रोंमें कोई विशेष मतभेद न होने पर भी जहां जहां 'दत्तकमीमांसा' और 'दत्तकचन्द्रिका'के मतमें अनैक्य है, वहां वहां 'दत्तकचन्द्रिका'का मत बङ्गाल और दक्षिणप्रदेशके किसी किसी स्थानमें आदृत होता है—और 'दत्तकमीमांसा'का मत मिथिला एवं काशीकी तरफ मुख्यरूपसे गण्य है।

पुत्र उत्पन्न हुए बिना पितृऋणसे उद्धार नहीं होता और पुन्नाम नरकका भोग होता है। इसलिए अपुत्रकको पुत्र ग्रहण करना चाहिए।

''अपुत्रेण सुतः कार्यः यादृक् तादृक् प्रयत्नतः।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनाय च॥
अपुत्रेणैव कर्त्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्यस्मात् कार्यः प्रयत्नतः॥'' (मनु)

अपुत्रक व्यक्तिको श्राद्ध,तर्पण आदि तथा नामकी रक्षाके लिए अतिशय प्रयत्नके साथ पुत्र ग्रहण करना चाहिए अर्थात् विशेष प्रयत्न करके पुत्र-प्रतिनिधि दत्तकादि ग्रहण करना चाहिए। पुत्रके बिना अन्य किसी भी उपायसे नामकी रक्षा नहीं होती और पितृगण भी श्राद्धतर्पणादिके अभावसे नितान्त अवसन्न हो जाते हैं; इसलिए अपुत्रकके लिए दत्तकादिका ग्रहण करना अवश्य कर्तव्य है। पुत्र उत्पन्न हो कर यदि मर जाय तो पितृऋणसे तो मुक्त हो सकते हैं; परन्तु श्राद्धतर्पण आदि कुछ भी सम्पन्न नहीं होते। इस कारण मृतपुत्र व्यक्ति (अर्थात् जिसका पुत्र मर गया हो)-को भी पुत्र ग्रहण करना आवश्यकीय है।

''अपुत्रो मातृपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च।
ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः॥
पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्लब्धुमर्हति॥'' (शौनक)

'मृतपुत्रो वा' इस पदसे व्यक्त होता है, कि मृतपुत्र व्यक्तिका पुत्र-ग्रहण करना अवश्यकर्तव्यमें गण्य है। परन्तु जिनके पुत्रकी तो मृत्यु हो गई है और पौत्र वा प्रपौत्र जीवित है, ऐसी दशामें उसको दत्तक ग्रहण करना पड़ेगा या नहीं? इसका समाधान इस प्रकार हैं—'उसको दत्तक ग्रहण करनेकी जरूरत नहीं; कारण पुत्र-ग्रहणका उद्देश्य नाम-रक्षा और पितृगणका श्राद्ध तर्पणादि कार्य सम्पन्न होना है और वह कार्य पौत्र वा प्रपौत्रसे भी हो सकता है। इसलिए उसको पुत्र-ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं। अपुत्रकको पुत्र प्रतिनिधि धारना चाहिए। प्रतिनिधि शब्दसे क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्र समझना चाहिए।

''क्षेत्रजादीन् सुतानेतानेकादश यथोदितान्।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान् मनीषिणः॥'' (मनु)

क्रियाके लोपके कारण मनीषियोंने क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको ही पुत्र प्रतिनिधि कहा है। जैसे घृतके अभावमें तेलको उसका प्रतिनिधि कहा गया है, उसी प्रकार औरसपुत्रके अभावमें ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको पुत्र-प्रतिनिधि समझना चाहिए। औरस-पुत्रको ले कर पुत्र बारह प्रकारके हैं; यथा—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र। पुत्र देखो।

''अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिर्यै पुरातनैः।
न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनतया नरैः॥

पुत्र प्रतिनिधि अनेक प्रकार होने पर भी कलियुगमें शक्तिहीनताके कारण अपुत्रक व्यक्ति उक्त सभी प्रकारके पुत्रोंको ग्रहण करनेमें समर्थ न होंगे।

'इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः।''

दत्तक पुत्रके सिवा कलियुगमें अन्य प्रकारके पुत्र ग्रहण करना निषिद्ध वा वर्जित है।

कलिकालमें अपुत्रकके नामकी रक्षा और श्राद्ध तर्पण आदिके लिए एकमात्र दत्तक पुत्र ही उपाय स्वरूप है। प्रत्येक अपुत्रक व्यक्तिके लिए दत्तक ग्रहण करना आवश्यक है।

जन्म ले कर तीन ऋणोंसे मुक्त होना प्रत्येक हिन्दूका कर्तव्य है। ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषियोंके, यज्ञ द्वारा देवताओंके और पुत्रोत्पादन द्वारा पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो सकते हैं। इसलिए पुत्रोत्पादन अवश्य विधेय है। परन्तु जिनके पुत्र नहीं हुआ है, वे पितृ-ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते; और इसीलिए उन्हें पुत्र-प्रतिनिधिकी आवश्यकता होती है। कलिकालमें ग्यारह प्रकारके पुत्रनिधियोंमेंसे दत्तकके सिवा अन्य प्रकारके पुत्र-प्रतिनिधि ग्रहण करना निषिद्ध है, इस कारण कलिमें अपुत्रक व्यक्तिके लिए दत्तक ग्रहण करनेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। 'अपुत्रक व्यक्ति दत्तक ग्रहण करे' इससे यह समझना चाहिए कि स्त्रियोंको दत्तक ग्रहण करनेको क्षमता नहीं है; पतिकी अनुमतिके विना कोई भी विधवा स्त्री दत्तक ग्रहण नहीं कर सकती और स्त्रीकी अनुमतिके बिना पति भी दत्तक देने वा ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। स्वामी यदि मृत्यु समयमें अनुमति दें, तो वह विधवा स्त्री दत्तक ग्रहण कर सकती है। पति जितने दत्तक ग्रहण करनेकी अनुमति दे जांय, स्त्रीको उतने ही दत्तक ग्रहण करनेका अधिकार है।

"न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुरिति अनेन विधवाया भर्त्रनुज्ञानासम्भवात् अनधिकारो गम्यते। न च सधवाया स्वभर्त्रनुज्ञापेक्षा पारतन्त्रात्।" (दत्तकमीमांसा)

सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर दत्तकग्रहण कर सकती है या नहीं? इसका समाधान इस प्रकार है—सधवा स्त्री स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती किन्तु स्वामीके साथ मिल कर सभी कार्य कर सकती है। स्वामी यदि दत्तकग्रहणकी अनुमति विना दिये ही मर जाय, तो विधवा स्त्रीको दत्तक ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि स्वामीकी मृत्युके बाद ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर अनायास ही वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गलोकको जा सकती है, अतएव दत्तक-ग्रहण निष्प्रयोजन है। जैसा कि कहा है—

"मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

इति मनुना ब्रह्मचर्येणैव तत्परिहाराभिधानादिति सकलमकलङ्कं।" (दत्तकमीमांसा)

'अपुत्रेण' यह शब्द एक वचन है, इसलिए इसका अर्थ यह होता है कि एक ही अपुत्रक व्यक्ति दत्तक ग्रहण करे, दो वा तीन व्यक्ति मिल कर नहीं। कारण दत्तक आदिका द्वामुष्यायणत्व स्मरण विरुद्ध हुआ है, इसलिए ऐसा नहीं कर सकते।

"द्वामुष्यायणका ये स्युर्दत्तक्रीतकादयः।
गोत्रद्वयेऽप्यनुद्वाह शुंगशैशिरयोर्यथा॥" (दत्तकमीमांसा)

दत्तकविधि—ब्राह्मणोंका सपिंडसे पुत्र संग्रह करना चाहिए, अर्थात् सपिंडके पुत्रको दत्तक वा गोद लेवें। सपिंडका पुत्र यदि न मिले तो असपिंड, और असपिंडका भी न मिले तो सगोत्रके पुत्रको दत्तक ग्रहण करना चाहिए। यदि सगोत्रका पुत्र न मिले, तो असगोत्रका पुत्र ग्रहण करें, किन्तु दत्तक ग्रहण करनेमें सपिंडका पुत्र ही सर्वापेक्ष श्रेष्ठ कहा गया है। अतएव सपिंडके पुत्रको गोद लेनेके लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए। सप्तम पुरुष पर्यन्त ज्ञातिको सपिंड कहते हैं। सपिंड पुत्रके न मिलने पर समानोदक पुत्र, समानोदक पुत्रके न मिलने पर साकुल्य पुत्र और साकुल्य पुत्र भी न मिले तो सगोत्रका पुत्र दत्तक-ग्रहणके योग्य है। यह भी यदि न मिल सके, तो भिन्न गोत्रके पुत्रको गोद लेना चाहिये। इतनी विधियोंके द्वारा दत्तककी आवश्यकता दिखलाई है; किन्तु दौहित्र, भागिनेय और मातृस्वसृ पुत्रको कदापि गोद न लेना चाहिए।

"ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्य पुत्रसंग्रहः।
तदभावेऽसपिण्डे वा अन्यत्र तु न कारयेत्॥"

ब्राह्मणादि सपिंड वा उसके अभावमें असपिंड पुत्र ग्रहण कर सकते हैं, पर अन्यत्र नहीं कर सकते। 'अन्यत्र न तु' अन्यत्र न करें, इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिके पुत्रको ग्रहण नहीं कर सकते। परन्तु 'अन्यत्र' अर्थात् सपिंड और असपिंडके सिवा अन्यके पुत्रको ग्रहण न कर सकेंगे, ऐसा अर्थ करनेसे वचनान्तरके साथ विरोध होता है, क्योंकि वचनान्तरमें स्पष्ट लिखा है—

'सपिण्डापत्यकञ्चैव सगोत्रजमथापिवा।
अपुत्रकोद्विजोयस्मात् पुत्रत्वे परिकल्पयेत्॥

समानगोत्रजाभावे पालयेदन्यगोत्रजं ।
दौहित्रं भागिनेयञ्च मातृस्वसृसुतं विना ॥"

अपुत्रक द्विज सपिण्डादिके पुत्रको ग्रहण करे, उसके अभावमें सगोत्रजपुत्रको ग्रहण करे और वह भी न मिले तो अन्य गोत्रज पुत्रको दत्तक बनावे। परन्तु दौहित्र (धेवता), भागिनेय (भानजा) और मातृस्वसृपुत्र (मौसेरा भाई)को कदापि दत्तक न बनावे। इसलिए अन्यत्र शब्दका अर्थ सवर्णातिरिक्त समझना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मणके ही पुत्रको दत्तक बना सकता है, क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्रके पुत्रको नहीं। क्षत्रियादि के विषयमें ऐसा ही समझना चाहिये। मनु और वृद्ध याज्ञवल्क्यने भी ऐसा ही कहा है—

"माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमःसुतः ॥ (मनु)
"सजातीयः सुतो ग्राह्यः पिंडदाता स रिक्थभाक् ।"

प्रतिग्रहीताके यदि पुत्र न हो, तो पिता और माताको चाहिये कि वे उसे सन्तुष्टचित्तसे सजातीय पुत्रको प्रदान करें; इसीका नाम दत्रिम वा दत्तकपुत्र है। यह सजातीय दत्तक पुत्र पिण्डतर्पणादि करता है, इसलिये ग्रहीताके धनका अधिकारी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये दौहित्र भागिनेय आदिको दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते। परन्तु शूद्र इनको दत्तक ले सकता है।

"क्षत्रियाणां स्वजातौ च गुरुगोत्रसमेऽपि वा ।
वैश्यानां वैश्यजातेस्तु शूद्राणां शूद्रजातिषु ॥
सर्वेषामेव वर्णानां जातिष्वेव न चान्यतः ।
दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्रैस्तु क्रियते सुतः ॥
ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयः सुतः क्वचित् ।"
(दत्तकमी०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबको अपने अपने वर्णमेंसे दत्तक ग्रहण करना उचित है इसका अतिक्रम नहीं करना चाहिये। परन्तु ब्राह्मणादि तीन वर्ण भागिनेय आदिको दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते, एक मात्र शूद्र ही भागिनेय आदिको दत्तक बना सकते हैं। शूद्रोंके विषयमें यह विशेष विधि है।

दत्तकदाता—जिसके एक ही पुत्र है, ऐसा व्यक्ति दत्तक नहीं दे सकता। जिसके अनेक पुत्र हों, वही पुत्रदान कर सकता है। जिसके दो पुत्र हैं, वह भी पुत्रदान नहीं कर सकता। कारण उनमेंसे यदि एकको दत्तक दिया जाय तो एक ही रह जाता है और पीछे वह यदि मर जाय तो उसका भी नाम लोप हो जायगा, पिंड-तर्पणादि कार्य सम्पन्न नहीं होंगे और सन्ततिके अभावसे पितृगण अवसन्न हो जावेंगे। इसलिये द्विपुत्र व्यक्ति भी पुत्र दान नहीं कर सकता।

"नैकपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं कदाचन ।
बहुपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं प्रयत्नतः ॥
द्विपुत्रस्यापि पुत्रदाने अपरपुत्रनाशे वंशविच्छेदमाशंक्याह बहुपुत्रेणेति ॥" (दत्तकमीमांसा)

एक पुत्रका पिता कदापि पुत्र-दान नहीं कर सकता। बहुतसे पुत्रोंका पिता ऐसा कर सकता है। 'बहु पुत्र व्यक्ति पुत्रदान दे' इस विधानके द्वारा द्विपुत्र व्यक्तिके लिए भी पुत्रदानका निषेध किया गया है। स्त्रियां पतिके रहते हुए अथवा प्रोषित वा मर जाने पर पतिकी अनुमति होने पर ही पुत्र प्रदान कर सकती है अन्यथा नहीं।

निरपेक्षदान—

"दद्यान् मातापिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ।"

माता और पिता जिसको दान कर देते हैं ऐसे पुत्रको दत्तक कहते हैं। जिस स्थल पर माता और पिता प्रीति-पूर्वक, दूसरेके वंशका नाश होते देख, उसके प्रति दयापरवश हो पुत्र दान करते हैं, उसी पुत्रको दत्तक कहा जा सकता है।

रुपया-पैसा दे कर पिता माताको सन्तुष्ट करके जो पुत्र लिया जाता है, उसे दत्तक नहीं कहा जा सकता। ऐसे पुत्रको 'क्रीतपुत्र' कह सकते हैं। क्रीत पुत्रका ग्रहण करना निषिद्ध है, यह बात पहले ही कही जा चुकी है।

पुत्र-प्रतिग्रहकी विधि—जिस दिन पुत्र ग्रहण करना हो, उसके एक दिन पहले उपवास करना चाहिये और दूसरे दिन (पुत्र ग्रहणके दिन) अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर वेदपारग आचार्यके साथ मधुपर्कादिके द्वारा राजा और द्विजातियोंकी पूजा करनी चाहिए। समस्त आत्मीय-स्वजन तथा बन्धुबान्धवोंको आमन्त्रण कर उन्हें

सुमिष्ट भोजन आदिके द्वारा परितुष्ट करना चाहिए।

तदनन्तर बन्धुओंके साथ दाताके समक्ष जा कर "पुत्रं देहि" (अर्थात् मुझे पुत्रदान दीजिए) ऐसी याचना करनी चाहिए। दाता यदि पुत्र दान देनेमें समर्थ हो, तो ग्रहीताको चाहिए कि वह पुत्रदान-प्रयोगविधिके अनुसार पुत्रको ग्रहण कर लें। "देवस्य त्वादि" इस मन्त्रके द्वारा पुत्र ग्रहण किया जाता है। उपरान्त ऋक्त्रयका जप करके शिशुका मस्तक सूंघना चाहिए और फिर नृत्य गीत आदि माङ्गलिक कार्योंके सम्पन्न होने पर उसे घर ले आना चाहिए। *

अनन्तर आचार्यको दक्षिणा देनी चाहिए। यदि राजा दत्तक ग्रहण करे, तो राज्यार्द्ध अर्थात् राज्यकी जितनी आय हो, उससे आधी दक्षिणा देनी चाहिए। वैश्यादिको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। ग्रहीताको उचित है कि दत्तक ग्रहण कर, स्व-शास्त्रोक्त विधिके अनुसार, उस दत्तक (पुत्र)-के पिताके द्वारा कोई संस्कार कार्यादि सम्पन्न करावे। यदि कोई संस्कार हो चुका हो, तो पुनः संस्कार करानेकी कोई आवश्यकता नहीं। जो संस्कार न हुए हों, उन्हीं केवल संस्कारोंको कराना चाहिए।

जिस बालकका चूड़ाकरण संस्कार हो चुका है, उसे दत्तकरूपमें न लेना ही उचित है और न देना। अतएव पांच वर्ष तकके बच्चोंको ही गोद लेना चाहिए, फिर नहीं। *

* "शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि पुत्रसंग्रहकारणं।
अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च ॥
वाससी कुंडले मुद्रा उष्णीषं चांगुलीयकं।
आचार्यं धर्मसंयुक्तं वैष्णवं वेदपारगं ॥
मधुपर्केन सपूज्य राजानञ्च द्विजान् शुचीन्।
दातुः समक्षं गत्वा च पुत्रं देहीति याचयेत् ॥
दाने समर्थो दाताऽस्मै यो यज्ञेनेति पंचभिः।" (दत्तकमीमांसा)

* "पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते।
आचूड़ान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥
चूड़ाद्या यदि संस्कारा निज गोत्रेण वै कृताः।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥
ऊर्द्ध्वन्तु पंचमाद्वर्षात् न दत्ताद्या सुता नृप।"
(दत्तकमीमांसा)

दत्तक द्वारा होनेवाले श्राद्धका निर्णय—दत्तक-ग्रहणके बाद यदि ग्रहीताके पुत्र उत्पन्न हो, तो ग्रहीताको मृत्यु होने पर, सपिंडीकरणके बाद षोड़श श्राद्धमें दत्तकका अधिकार नहीं रहता। इसमें ज्येष्ठ और कनिष्ठके नियमकी रक्षा नहीं होती। दत्तक ज्येष्ठ होने पर भी, औरस पुत्रके रहते हुए सपिंडीकरणके अन्तमें षोड़श श्राद्ध नहीं कर सकता।

दत्तकाशौच—दत्तकके जननकुलमें यदि कोई मर जाय, तो उसका अशौच नहीं होता। केवल ग्रहीतृकुलमें जनन और मरणमें होनेसे त्रिरात्रि अशौच रहता है; अर्थात् ग्रहीता आदि व्यक्तियोंका यथासम्भव जनन और मरण होने पर दत्तकको, तथा दत्तककी स्त्री और उसके पुत्रादिका यथासम्भव जनन और मरण होने पर ग्रहीता आदिको तीन दिनका अशौच लगता है।

दत्तक यदि सपिंड हो, तो भी अशौच तीनही दिनका होता है, सम्पूर्ण नहीं।

"भिन्नगोत्राः पृथक् पिंडाः पृथक् वंशकराःस्मृताः।
जनने मरणे चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः ॥
भिन्नगोत्रः सगोत्रो वा नीतः सत्कुल चेच्छया।
जनने मरणे तस्य त्र्यहाशौचं विधीयते ॥"
(दत्तकमीमांसा)

दत्तक चाहे सपिंड हो और चाहे सगोत्र वा भिन्नगोत्र हो, जनन और मरणमें उसे तीन ही दिनका अशौच लगता है। दत्तकके समान दत्तक-ग्रहीताको भी तीन दिन अशौचका पालन करना पड़ता है। परन्तु द्व्यामुष्यायण-दत्तकके जननकुल और ग्रहीतृकुल दोनों कुलोंमें तीन दिन अशौच होता है। कन्याकी जिस प्रकार आत्मपक्षमें साविंड्य निवृत्ति होती है, दत्तकका भी उसी प्रकार आत्मपक्षमें (अर्थात् अपनेको सम्हाल कर चतुर्थ पुरुष पर्यन्त सापिंड्यके कारण तीन दिनका अशौच होता है। दत्तकको पञ्चम पुरुषसे दशम पुरुष पर्यन्त एक दिनका अशौच लगता है। दशम पुरुषके ऊपर स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। 'दत्तकचन्द्रिका'के मतसे यदि ग्रहीता द्वारा दत्तक उपनीत हुआ हो, तो ग्रहीताकी मृत्यु होने पर उसे दश दिनका अशौच लगेगा।

"गुरुप्रेतस्य शिष्यास्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥"

इति, मरीचिवचनेन शिष्यस्य गुरुप्रेतकार्यकरणनिमित्त दशाहाशौचमुक्तं भवति, अत्र गुरुशब्द आचार्यादिरूपः। गुरुत्वमत्राप्यस्ति उपनयनादिकर्तृत्वात् ततश्च दत्तकस्य प्रतिग्रहीतृक्रियाकरण एव दशरात्राशौच सिद्धति, अन्यथा त्रिरात्रमेव" (दत्तकमीमांसा)

साग्नि—दत्तकको साम्वत्सरिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानका अनुसार करना चाहिये; पार्वणविधानानुसार नहीं।

दत्तकके विवाह—दत्तकके विवाहादिमें परिवेदन दोष नहीं होता, अर्थात् ज्येष्ठ सहोदरके अविवाहित रहते हुए दत्तक विवाह नहीं कर सकता और दत्तक अविवाहित हो तो उसके कनिष्ठ सहोदरका विवाह नहीं हो सकता। दत्तकके विवाहस्थल पर ग्रहीतृकुलमें त्रैपुरुषिक सापिण्ड है, अर्थात् ग्रहीतृकुलमें दत्तक चतुर्थी कन्याके साथ विवाह कर सकता है।

दत्तकका मातामहपक्ष—यदि ग्रहीताके बहुतसी स्त्रियां हों और गृहीत दत्तककी वृद्धि उपस्थित हो, तो दत्तक-ग्रहीताकी कौन सी स्त्रीके पितादि उसका मातामह पक्ष होगा? शास्त्रोंमें प्रथमा स्त्रीको धर्मपत्नी कहा है, द्वितीया आदि कामपत्नी कही गई है, अतएव प्रथम स्त्रीके पितादि ही मातामह पक्ष होगा। जिस स्थल पर पतिकी अनुमतीके अनुसार विधवा स्त्रियां दत्तक ग्रहण करती है, उस स्थल पर स्वामी अपनी स्त्रियोंमेंसे जिसको अनुमति दे जायगा और उसके अनुसार जो दत्तक ग्रहण करेगी, उसीके पितादि दत्तकका मातामह पक्ष होगा।

दत्तक-दायविभाग—दत्तक ग्रहणकी बाद औरस पुत्र उत्पन्न हो, तो उस औरस पुत्रको ३ भाग और दत्तक पुत्रको १ भाग मिलेगा। बंगालमें तीन भागमेंसे दो भाग दत्तकको मिलता है।

"उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे तृतीयांशहराः स्मृताः।
सवर्णा असवर्णास्तु ग्रासाच्छादनभागिनः॥
चतुर्थांशहरा स्मृता इति द्वितीय चरणे क्वचित् पाठः।"
(दत्तकचन्द्रिका)

दत्तक-कन्याग्रहणविधि—दौहित्रादिके द्वारा उपकार पानेकी प्रत्याशा कर दत्तककन्या ग्रहण की जा सकती है। यह शास्त्रानुमोदित है, पुराणादिमें इसका उदाहरण मिलता है। दशरथने शान्ताको दत्तककन्याके रूपमें ग्रहण किया था। इत्यादि।

अविवाहितके लिए दत्तकका निषेध—अविवाहित पुरुष दत्तक ग्रहण नहीं कर सकता। दार परिग्रह न करनेसे अपुत्रक तो कहलाता है, पर उसके पुत्र होनेकी सम्भावना अवश्य है, इसलिए उसके लिए दत्तक ग्रहण करनेका निषेध है।

बहुतसी स्त्रियोंके होते हुए यदि स्वामी उन स्त्रियोंको दत्तक ग्रहण करनेकी अनुमति दे और तदनुसार प्रत्येक स्त्री एक एक दत्तक ग्रहण कर ले, तो ऐसी दशामें शास्त्रानुसार सिद्ध होने पर भी प्रथम गृहीत दत्तक ही धनका अधिकारी होता है तथा एक समयमें अनेक दत्तक गृहीत होने पर किसी भी दत्तकको धन ग्रहण करनेका अधिकार नहीं होता।

वीरमित्रोदयके मतसे—पति यदि मरते समय दत्तककी आज्ञा न दे सके और मर जाय, तो स्त्री स्वयं दत्तक ग्रहण कर सकती है। बंगालमें ऐसा नहीं होता।

स्त्री अथवा शूद्रको दत्तक ग्रहण करना हो, तो पहले ब्राह्मणके द्वारा होम कर लेना चाहिए। ऐसा नहीं करनेसे दत्तकत्व सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मणादिके द्वारा आवश्यक मन्त्रादिका पाठ कराना चाहिए। मन्त्र-पाठके बिना ही स्त्री और शूद्रादिका दत्तकत्व सिद्ध हो सकता है, किन्तु होमके बिना कदापि दत्तकत्व सिद्ध नहीं होता। उत्तरकालमें कोई अनर्थ न हो, इसके लिए बन्धुबान्धव और राजपुरुषके समक्षमें दत्तक ग्रहण करना मङ्गल है। (दत्तचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा)

दत्तकग्रहण प्रयोगविधि—ग्रहीताको दत्तक-ग्रहणके एक दिन पहले उपवास करना चाहिए, फिर उसके दूसरे दिन प्रातःकृत्य सम्पन्न करके आचमन, विष्णुस्मरण और नारायणको गन्धपुष्प चढ़ा कर स्वस्तिवाचन करना चाहिये। "ॐ कर्तव्येऽस्मिन् पुत्रप्रतिग्रहकर्मणि पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु, ॐ पुण्याहं" यह मन्त्र तीन बार पढ़ा जाता है।

इस तरह स्वस्ति और ऋद्धिको तीन बार करना चाहिए, परन्तु शूद्रके लिए "स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु" इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

सामवेदियोंको—"ॐ अस्ति सोमोऽहं" और यजुर्वेदियोंको—"ॐ सूर्य: सोमो यम कालः" यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

उसके बाद "एते गन्धपुष्पे ॐ आदित्यादि नवग्रहेभ्यो नमः" ऐसा कह कर पूजा करें। फिर गणेशादि पञ्च देवता, इन्द्रादि दश दिक्पाल, गुरु और ब्राह्मणको पूजा करें। उसके बाद सङ्कल्प करें जो इस प्रकार है—

"ओंविष्णुरों तत्सदद्य अमुके मा स अमुके पक्षे अमुक तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा (शूद्र हों तो अमुक दासः) अप्रजालप्रयुक्तपैटकऋणापकरणपुन्नामनरका त्राण द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं आत्मवंशरक्षार्थञ्च मनुवृह स्पतिवशिष्ठशौनकपराशरादिर्षि वाक्यानुसारेन स्वशाखो क्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहमहं करिष्ये।"

सामवेदी हो तो 'देवो वो' इत्यादि, यजुर्वेदी हो तो 'यज्जाग्रतो' इत्यादि, संकल्पसूक्त पाठ करना चाहिए बादमें विघ्ननाशके लिए गणेशपूजा करें और ब्रह्म, होता, आचार्य और सदस्यको वरण करें।

दत्तक-ग्रहीता कहें—'ओंम् साधु भवानास्ता' ब्राह्मण कहें—'ओंम् साध्वहमासे', कर्त्ता कहे 'अर्चयिष्यामो भवन्त" और ब्राह्मण कहें—'ओंम् अर्चय।' इसके बाद ब्राह्मणको वस्त्र अलङ्कार आदि दे कर उनके दक्षिण जानुका स्पर्श कर कहें—

"विष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुक तिथौ मत्सङ्कल्पितशौनकाद्युक्तविधिना पुत्रग्रहणकर्मणि ब्रह्मकर्म करणाय अमुक गोत्रं श्रीअमुक देवशर्माणं एभिः पाद्यादिभिरभ्यर्च्य भवन्त महं वृणे" (ब्राह्मण हों तो वृतोऽस्मि कहें)। उसके बाद 'यथाविहितं ब्रह्मकर्म कुरु' ऐसा कहें। ब्राह्मण हों तो 'यथा ज्ञानं करवाणि' ऐसा कहें। इस प्रकार होता, आचार्य और सदस्योंको वरण करना चाहिए। बादमें होता आदि वेदी पर बैठ कर पञ्चगव्यद्वारा स्वशाखोक्त यथाविहित मन्त्र पढ़कर पञ्चगव्यका शोधन करें। पञ्चगव्यका शोधन हो चुकने पर प्रणव द्वारा पञ्चगव्यको एकत्र करके इस मन्त्रसे वेदोका शोधन करना चाहिए— ओंम् वेदावेदिः समाप्यते वर्हिषा वर्हिरिन्द्रियं यूपेन यूप आप्यायते प्रणीतोऽग्निरग्निना।' उसके बाद वेदोके ऊपर चन्द्रातप (चँदवा) लगाना चाहिये, मन्त्र इस प्रकार है—'ओंम् ऊर्द्ध्व ऊषण ऊतये तष्ठादेवो नः सविता। ऊर्द्ध्वोराजस्य सविता यदञ्जिभिर्वाग्भिर्विह्वयामहे।'

उक्त शान्तिकलसको दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर "ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थ वरुणस्य ऋत सदन्यसि वरुणस्य ऋत सदनमसि वरुणस्य ऋत सदनी मासोद" इस मन्त्र द्वारा शान्तिकुम्भमें जल भरना चाहिए। उसके बाद वेदीके मध्य पञ्चवर्णके चूर्णद्वारा सर्वतोभद्रमण्डल अथवा अष्टदलकमल बनाना चाहिए। इसमें शालग्राम शिला स्थापन कर पूजा करनी चाहिए। पहले सामान्यार्घ्य और भूतशुद्धयादि करें। प्रथम घटमें गणेश, द्वितीय घटमें सूर्य, तृतीय घटमें विष्णु, चतुर्थ घटमें शिव और पञ्चम घटमें दुर्गाको पूजा करें तथा आदित्यादि नवग्रहों और इन्द्रादि दशदिक्पालोंका पृथक् पृथक् आवाहनादि करके पूजन करें। अनन्तर शान्तिकलसमें वरुणका आह्वान करके यथाशक्ति पूजा करें। फिर गणपति, प्रजापति, विष्णु और धर्मको षोडशोपचारसे पूजा करें। इस प्रकार पूजा करके पितृगणका आवाहन कर शक्तिके अनुसार उनको पूजा करनी चाहिए। "ओंम् पितृभ्यो नम, ओंम् कुलदेवताभ्यो नमः, ओंम् गुरुभ्यो नमः, ओंम् अग्नये नमः, ओंम् सूर्यसावित्र्यै नमः, ओंम् वायवे नमः, ओंम् सूर्याय नमः, ओंम् प्रजापतये नमः, ओंम् सोमाय नमः, ओंम् दिवे नमः, ओंम् पृथिव्यै नमः, ओंम् भूर्नमः, ओंम् भुवर्नमः, ओंम् स्वर्नमः, ओंम् भूर्भुवः स्वर्नमः, ओंम् अग्नये स्विष्टिकृते नमः" इनकी पूजा कर स्व-गृह्योक्त विधिसे कुंड वा स्थण्डिलमें वह्निस्थापन कर होम करना चाहिए। यजुर्वेदियोंको यजुर्वेदोक्त और सामवेदियोंको सामवेदोक्त विधिके अनुसार कुशण्डिका सम्पन्न करनी चाहिए। उसके बाद आचार्यको भी उचित है, कि ब्राह्मणादिके साथ ग्रहीताको दाताके पास ले जा कर "ओंम् पुत्रं देहि" इस प्रकार पुत्रकी याचना करें। बादमें पुत्रदाता आचमनपूर्वक विष्णुका नाम स्मरण कर गुरु, गणेश और नवग्रह आदिकी पूजा करें। फिर स्वस्तिवाचन करें—'ओंम् कर्त्तव्येऽस्मिन् पुत्रदानकर्मणि ओंम् पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ओंम् पुण्याहम्'

( इसको तीन बार पढ़ना होगा। ) फिर स्वस्तिऋद्धिका पाठ करें।

अनन्तर वेदीके पूर्वमें पांच घट आरोपित कर घटस्थापनोक्त मन्त्र द्वारा पांच घट स्थापन करें। फिर देवीके ईशानकोणमें शान्तिकलस स्थापन करें।

अनन्तर 'स्वस्तिनः इन्द्रो' और 'सूर्य सोमो यमः कालः' ये दो मन्त्र पढ़ें बादमें नारायणको गन्ध पुष्प दे कर पूजा करें और इस प्रकार सङ्कल्प करें,—

'ओविष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रः ओअमुक देवशर्मा ओपरमेश्वरप्रोत्यर्थं पुत्रदानकर्माहं करिष्ये।'

इसके बाद सङ्कल्पसूक्तका पाठ करें और गणेश आदिकी पद्यादि द्वारा पूजा कर पुत्रदान करें। उत्सर्ग करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

"विष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रः ओअमुक देवशर्मा चतुस्त्रिष्टुप् पञ्चानुष्टुप् पुत्रदाने विप्रे यज्ञेन दक्षिणया समपरियज्ञिरे इति पठित्वा ये च यज्ञेत्यादि पञ्च ऋचश्च पठित्वा इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापकरण पुन्नामनरकत्राणवंशरक्षासिद्धयर्थं आत्मनश्च परमेश्वरप्रोत्यर्थं अमुक गोत्राय अमुक प्रवराय ओअमुकाय तुभ्यमहं सम्प्रददे।'

अनन्तर "मम प्रतिगृह्णातु पुत्रं भवान्" यह मन्त्र पढ़ कर "प्रतिगृह्णोयुस्ते" कहते हुए अक्षतके साथ जल चढ़ावें और उसके बाद दक्षिणा देवें। अनन्तर "विष्णुरो तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुकगोत्रः ओअमुकदेवशर्मा परमेश्वरप्रोतकामनया याचते तत्पुत्रदानकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं कांचनं तन्मूल्यं वा ओविष्णुदैवतं अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय ओअमुकाय तुभ्यमहं संप्रददे" इतना कह कर बालकको ग्रहीताके हस्तमें अर्पण करें। इसी समय दाता बालकको प्रतिग्रहीताको देवें। दत्तकग्रहीता 'ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ" इस मन्त्रको पढ़ कर बालकको अपने हाथोंमें ले लेवें। फिर गोदमें बिठा कर 'ॐ अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयाधिजायसे आत्मावै पुत्रनामासि संजीव शरदः शतं" इस मन्त्रके द्वारा बालकका मस्तक सूंघें और यह मन्त्र पढ़ें—"धर्मा यत्वा परिगृह्णामि ॐ सन्तानाय त्वा परिगृह्णामि।" इसके बाद ॐ 'वस्त्राणि परिधत्स्व" इस मन्त्रके द्वारा वस्त्र पहराना चाहिए। अनन्तर उष्णीष और कुंकुमादि द्वारा तिलक करें तथा "ॐ हिरण्यरूपमवसे कृणुध्वं" इस मन्त्रके द्वारा अलंकृत कर बालकको गोदमें लेवें। पश्चात् "ॐ स्वस्तिनो मिमितामश्विनोर्भ्यां स्वस्ति ते व्यादिभि वनवैयः स्वस्ति पूषा स्वरोदधातु नः स्वस्ति वाद्या वा पृथिवो सूचेतमा स्वस्तये वायुमुपब्रुवा मही सोमं, स्वस्ति भुवसं यम्पतिः। ॐ बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्य सोमा भवन्तु नः विश्वेदेवा नोद्यो स्वस्तये वैश्वानरा वसुरग्निः स्वस्तये देवा अभवन्नभवः स्वस्तये स्वस्तये स्वस्तिनो रुद्रपात्वंहसः स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्यो रेवती स्वस्ति न इन्द्रस्याग्निश्च स्वस्तिनो ऽदितयेकृधि। स्वस्तिपन्था मनुरेम सूर्याचन्द्रमसौ च पुनर्दधता नता जानता सङ्गमे मयि स्वप्मरेथ नन्तारिष्टनेमि रिष्टमरिष्टनेमि महङ्गूतं वयसं देवतानां असुरघ्नं इन्द्रसखं समित्सुहाय्यसोनामिवारुहेम अयं होमुचमाङ्गोरसङ्ग्यश्च सम्मातेयं मनसा च ताक्षं प्रेतपाणि स्मरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्बादिष्वभयन्नस्तु तदस्तु मित्रावरुणा तदग्नये संयोरश्यमन्तु सस्तं अशोमहि गाधसुतः प्रतिष्ठन्ना मा दिवे बृहते साधनाय गृहावै प्रतिष्ठासूक्तं तत् प्रतिष्ठितं मया वाचा संस्तव्यं तस्मादेत्य विद्वूये पुष्पं लभते गृहाणि वै नानाजिगमिषति पशूनां प्रतिष्ठा।"

इस मन्त्रको पढ़ कर अग्निकी पश्चिम दिशामें उपवेशन करें और अग्निकी पश्चिमदिशामें अपने दाहिने बालकको बिठा कर आचार्यके दाहिने ग्रहीता स्वयं बैठे। इसके बाद आचार्य होम करना प्रारम्भ करें।

"ॐ यस्त्वाहृदाव्यारिणामन्य मामोमर्त्यं माव्याजोऽवीपिजात वेदोयशोऽस्मासुधेहि प्रजाभिरग्ने रमृतत्वमश्यां स्वाहा॥१॥ ॐ यस्मैत्वां सुकृते जातवेद उलोकमग्ने कृणवस्योणं अश्विणं सपुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं यिंनश्नते स्वाहा॥२॥ ॐ त्वं त्वामग्ने पर्यवहन् सूर्यां वहतुनासह। पुनः पतिभ्योजायादा अग्ने प्रजयासह स्वाहा॥३॥ ॐ सोमोऽददगन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये रयित्वापुत्रानूचाददे दग्ने में होय मश्चो इमां स्वाहा॥४॥

ॐ इहैवत्वं यागियोस्तवं विश्वमायुव्यश्नुतं विश्वमायुव्यश्नुतं। क्रीडतौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वो स्वोये गृहे स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ आनः प्रजा जनयतु प्रजापति वाजरसाय-मानलयं मा आयुर्मङ्गलो: पतिलोकमाविश सन्नोभव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ अघोरचा सुरपति क्ष्यधिगिरा पश भ्य: सुमनाः सुवर्चः। वोरसूर्देवकामा स्योनो शन्ना भव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ इमां त्वमिन्द्रमील्व. सुपुत्रान् कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेका दशं कृधि स्वाहा ॥ ८ ॥ सम्राज्ञि श्वशुरे भव ॐ साम्राज्ञि श्वश्र्वा भव। ननन्दरि च सम्राज्ञि भव सम्राज्ञि अधिदेवृषु स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानिनौ। सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्टी दधतु नौ स्वाहा ॥ १० ॥ इन-दश मन्त्रों द्वारा प्रत्येकका चरुहोम करके प्रजापति होम करना चाहिए। मन्त्र — 'ॐ प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वजातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तुवयं स्याम पतयोरयीणां स्वाहेति मन्त्रेणाष्टोत्तरशत आज्यपायसहोमं कुर्यात्।"

प्रायश्चित्त-होम सम्पन्न कर दक्षिणान्त करें। "अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा अमुक गोत्रस्य अमुकदेवशर्मणः सङ्कल्पित पुत्र प्रतिग्रहाङ्गहोमकर्मणि ब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थं पूर्णपात्रं श्रीविष्णुदैवतं अमुक गोत्राय श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददानि।" ब्रह्म-दक्षिणा सम्पन्न कर "अग्नेत्वं" इत्यादि मन्त्र द्वारा अग्नि-विसर्जन करे। उसके बाद 'अद्येत्यादि मत्सङ्कल्पितपुत्रपरिग्रहाङ्गहोमकर्मणि गोत्रादिकर्म प्रतिष्ठार्थं इदं सुवर्णं श्रीविष्णुदैवतं अमुक गोत्राय श्रीअमुक देवशर्मणे होत्रे तुभ्यमहं सम्प्रददे।" इत्यादि रूपसे दक्षिणान्त करें। इसके उपरान्त ब्राह्मण, आत्मीय स्वजन आदिको भोजन करा कर महोत्सव करें।

पोष्यपुत्र देखो।

दत्तकपुत्र (सं० पु०) दत्तक एव पुत्रः। बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक प्रकारका पुत्र। माता वा पिताने जिस पुत्रको दान कर दिया है, उसे दत्तकपुत्र कहते हैं।

दत्तक देखो।

दत्तचित्त (सं० त्रि०) जिसने किसी काममें खूब जी लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत् (सं० पु०) गत उत्सर्पिणीके दस अर्हत्-भेद, गत उत्सर्पिणीके आठवें अर्हत्।

दत्तनृत्योपहार (सं० त्रि०) नृत्य द्वारा कृत अभिवादन, नाच द्वारा की हुई स्तुति।

दत्तप्राण (सं० त्रि०) जिसने अपना जीवन उत्सर्ग किया हो।

दत्तमार्ग (सं० त्रि०) गतिरोध नहीं करना, राहसे अलग हो जाना।

दत्तवर (सं० त्रि०) १ जिससे वर दिया गया हो। २ वह वर जो प्रार्थना करने पर मिला हो।

दत्तशत्रु (सं० पु०) राजाधिदेव शूरके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३८ अ०)

दत्तशुल्का (सं० स्त्री०) वह कन्या जिसके लिये शुल्क वा पण दिया गया हो।

दत्तहस्त (सं० त्रि०) जिसने अवलम्ब वा रक्षाके लिए हाथ दिया हो, रक्षित।

दत्तात्मा (सं० पु०) बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक पुत्र। मनुने लिखा है, कि जिस पुत्रको उसके माता पिताने त्याग दिया हो अथवा जिसके माता-पिताका देहान्त हो चुका हो और जो स्वयं किसीके पास जा कर उसका दत्तक पुत्र बने, वह ग्रहीताका दत्तात्मा वा स्वयं दत्तपुत्र कहलाता है।

दत्तात्रेय—विष्णु अवतारके ऋषिभेद। महाभारत, हरिवंश, भागवत, विष्णुपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें दत्तात्रेयका उल्लेख है। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराणमें जो कथा लिखी है, इस प्रकार है—

कुशिक वंशीय कोई कोढ़ी ब्राह्मण प्रतिष्ठानपुरमें रहते थे। उनकी स्त्री पतिव्रता और स्वामिभक्ता थी। अनेक कष्ट झेलते हुए भी वह प्राणपणसे स्वामीकी सेवा शुश्रूषा किया करती और सदा उन्हें खुश रखनेकी कोशिश करती रहती थी। एक बार वह ब्राह्मण किसी सुन्दरी वेश्या पर आसक्त हो गये और उसके घर ले जानेके लिये उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा। उसके आज्ञानुसार वह पतिव्रता स्त्री घोर घनघटाच्छन्न रात्रिमें स्वामीको अपने कन्धे पर बिठा और साथमें कुछ रुपया

ले वेश्याके घरको निकलो। रास्तेमें शूलविद्ध अणी-माण्डव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे। अंधेरी रातमें कोढ़ी ब्राह्मणका पैर उन्हें लग गया। महर्षि माण्डव्य बहुत बिगड़े और शाप दिया, 'जिस नराधमने पावसे हमें ठेल दिया है, वह सूर्य निकलते निकलते मर जायगा।' सती स्त्री इस विकट अभिशापको सुन कर बहुत दुःखित हुई और बोली 'जाओ! सूर्यका उदय ही नहीं होगा, सती की बात टलनेकी नहीं'। जब सूर्यका उदय न हुआ तो पृथ्वीके नाशको सम्भावना हुई। इस पर सब देवता बहुत चिन्तित हो ब्रह्माके पास गये और सूर्योदयके नहीं होनेसे यज्ञ-लोपकी कथा सुनाई। ब्रह्माने कहा, 'तेज द्वारा तेजका और तपस्या द्वारा तपस्याका उपशम होता है। जब पतिव्रताके माहात्म्यके प्रभावसे सूर्य उदय नहीं होते हैं, तब पतिव्रता स्त्री द्वारा ही उनका उदय करना होगा।' ब्रह्माके कथनानुसार वे सबके सब महासाध्वी अत्रि मुनिकी सहधर्मिणीके पास गये और अपना दुखड़ा रोया। देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए अनसूयाने जा कर ब्राह्मणपत्नीको समझाया और मधुर स्वरसे कहा, 'तुम्हारे वचनसे सूर्यका उदय बन्द हो गया है जिससे यज्ञ और सृष्टिके लोप होनेको सम्भावना है। अतः तुम सूर्योदय होने दो, बाद तुम्हारे पतिके मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूंगी और उनका शरीर नीरोग हो जायगा।' अनसूयाको बात सुन कर ब्राह्मणपत्नी सम्मत हो गई। सूर्यका उदय हुआ और मृत ब्राह्मणको अनसूयाने जीवित कर दिया। देवताओंने प्रसन्न हो कर जब अनसूयासे वर मांगने कहा, तब वह बोली', 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण करें।' ब्रह्मादिने इसे स्वीकार कर लिया।

यथा समय ब्रह्माने सोम बन कर, विष्णुने दत्तात्रेय बन कर और महेश्वरने दुर्वासा बन कर अनसूयाके घर जन्म लिया। हैहयराजके उद्धत स्वभावसे जब अति तंग आ गये, तब भगवान् दत्तात्रेय क्रुद्ध हो कर सातवें ही दिन गर्भसे निकल आए थे। दत्तात्रेय अनेक दैत्यदलन और शिष्टका पालन कर थोड़ी ही उमरमें योगी हो विषयभोगसे विरक्त हो गये थे। वे सदा ऋषि कुमारोंके साथ योग साधन किया करते थे। एक बार वे अपने साथियों और संसारसे छुटकारा पानेके लिये बहुत समय तक सरोवरमें डूबे रहे। पर तो भी ऋषिकुमारोंने उनका संग न छोड़ा, वे सरोवरके किनारे उनके आसरे बैठे रहे। उन्हें छलनेके लिये दत्तात्रेय एक सुन्दरीको साथ लिए निकले और उसके साथ मद्यपान तथा नृत्य-गीत करने लगे। इस पर भी ऋषिकुमारोंने उनका साथ न छोड़ा। उन्होंने सोचा, कि दत्तात्रेय महापुरुष हैं, योगियोंके भी नियन्ता हैं, किसी विषयमें इनकी आसक्ति नहीं है। सुतरां मद्यपान तथा स्त्रीसङ्गकी कालिमा उनमें लग नहीं सकती। जो योगवित् तथा योगीश्वर हैं, वे भी उनका स्मरण किया करते हैं।

एक समय जम्भासुरके साथ देवताओंका घनघोर युद्ध हुआ। इसमें असुरोंकी ही जीत हुई। बृहस्पतिकी आज्ञासे देवताओंने जा कर दत्तात्रेयकी स्तुति किया। उनके कहनेसे देवताओंने पुनः दैत्योंके साथ युद्ध घोषणा कर दी। किन्तु दैत्योंके प्रबल आक्रमणसे डर कर देवगण सहायताके लिये फिर भी दत्तात्रेयके पास आए। दैत्योंने भी उनका पीछा न छोड़ा, वरं उन्हें खदेरते हुए वहां तक पहुंच गये। उन्होंने देखा, कि परा क्रमी दत्तात्रेय अपनी बगलमें जगत्‌की वरणीया लक्ष्मीको लिए बैठे हुए हैं। लक्ष्मीके रूप पर दैत्यगण मोहित हो गये और देवताओंको छोड़ उसी रमणीरत्नको डोलीमें चढ़ा चलते बने। तब दत्तात्रेयने हँस कर देवताओंसे कहा, 'सौभाग्यवश अब तुम लोग विजयी हो गये। क्योंकि जब लक्ष्मी दैत्योंका सहाङ्ग छोड़ कर उनके शिर पर चढ़ बैठी हैं, तब निश्चय ही उन्हें परित्याग कर किसी दूसरेका आश्रय लेंगी।' दत्तात्रेयके वचनोंसे उत्साहित देवताओंने दैत्योंका विनाश कर डाला। लक्ष्मी भी उनके शिर परसे गिरकर दत्तात्रेयकी पार्श्ववर्त्तिनी हुईं।

राजा कार्त्तवीर्यार्जुनने विवेकके वशीभूत हो पहले राजपद ग्रहण करना न चाहा। पीछे वे दत्तात्रेयके कहनेसे सिंहासन पर बैठे थे। अलर्क आदि राजर्षियोंने दत्तात्रेयसे योगोपदेश प्राप्त किया था।

(मार्क० पु० १५।१९ अ०) दत्त देखो।

दत्तात्रेयके नाम पर निम्नलिखित अध्यात्मशास्त्र प्रचलित हैं—

अद्भुतगोता, अवधूतगोता, दत्तगोतायोगशास्त्र, वर्णप्रबोध, विद्यागोता, स्वात्मसम्बित्युपदेश, दत्तात्रेयगोरक्ष और दत्तात्रेयोपनिषत्। इसके सिवा दत्तात्रेयतन्त्र, दत्तात्रेयचन्द्रिका, दत्तात्रेयपटल, दत्तात्रेयसंहिता, दत्तात्रेयहृदय आदि कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ भी देखनेमें आते हैं। 'दत्तात्रेय-महापूजा-वर्णना' नामक संस्कृत ग्रन्थमें दत्तात्रेयकी पूजादि वर्णित है। जैनी लोग भी दत्तात्रेयकी पूजा करते हैं। दिगम्बरानुचर द्वारा रचित दत्तात्रेय-माहात्म्यमें इस विषयकी बहुतसी बातें लिखी हैं। भागवतमें लिखा है, कि दत्तात्रेयने चौबीस पदार्थोंसे अनेक शिक्षाएं सोखी थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थोंको वे अपना गुरु मानते थे। चौबीस पदार्थोंके नाम ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतङ्ग, मधुकर, हाथी, मधुहारी, हरिण, मछली, पिङ्गला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सांप, मकड़ी और तितली।

दत्तात्रेय दैवज्ञ—विवाहभूषण नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

दत्तप्रदानिक (सं० क्लो०) दत्तस्य सम्प्रदानं ग्रहणमस्त्यस्य दत्त-प्रदान-ठन्। अष्टादश विवाद पदान्तर्गत विवादपदविशेष, अठारह प्रकारके विवाद पदोंमेंसे पाँचवां विवादपद। चार प्रकारके दानमार्गोंमें हो दत्तप्रदानिक पदार्थके अन्तर्गत अदेय, देय, दत्त और अदत्त ये चार प्रकारके दानमार्ग हो दत्तप्रदानिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

जो दान देकर फिरसे अन्याय पूर्वक उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसे दत्तप्रदानिक कहते हैं और यह व्यवहारपदके अन्तर्गत है। इसका विषय वीरमित्रोदयमें जो लिखा है, वह इस प्रकार है। स्थावर वस्तु पर प्रकाश्यरूपसे अधिकार कर सकते हैं। दानका जो विषय स्वीकार कर लिया गया हो, उसे अवश्य देना चाहिये और जो दे दिया गया हो, उसे फिरसे लेना कर्त्तव्य नहीं है। लेनेवाला जब तक दानवस्तुको ग्रहण न कर ले तब तक दाताका स्वत्व उस परसे नहीं जाता। दाता उस वस्तु परसे अपना स्वत्व हटा भी क्यों न ले, लेकिन जब तक ग्रहीता उसे ग्रहण न करे, तब तक दाताका स्वत्व उस पर बना रहता है। असम्पूर्णरूपसे दान दे कर फिरसे जो ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट करे, तो उस ग्रहण करनेका नाम दत्तप्रदानिक व्यवहार है। जब वस्तु दे दी जाती है, तब यही ग्रहण करेंगे, ऐसा निश्चय कर उसी उद्देशसे दाताके त्याग करने पर ग्रहीताका स्वत्व हो जाता है। यदि ग्रहीताको इच्छा दान लेनेकी ओर न रहे, तो वह स्वत्व नहीं रहता। याज्ञवल्क्य-संहितामें इस प्रकार लिखा है—परिवार प्रतिपालनके अविरोधमें आत्मीय द्रव्य दान कर सकता है। अर्थात् जितनेसे परिवारका भली भांति पालन हो सके, उतना धन रख कर तब दान कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। पुत्रपौत्रादिके रहते सर्वस्व दान नहीं कर सकते एवं पहले यदि किसी दूसरेको कुछ वस्तु देनेकी बात दे भी चुके हों तो भी वह नहीं दे सकते। प्रतिग्रह प्रकाश्य भावसे ही करना चाहिये। जो कुछ दान देनेको स्वीकार किया हो, वही दान करना उचित है। दान करके फिरसे उसे लेना बिलकुल निषेध है।

दत्तानपकर्मन् (सं० क्लो०) दत्तस्य अनपकर्म आदानं यत्र। दत्तप्रदानिक, दान किए हुए पदार्थको अन्याय पूर्वक फिरसे प्राप्त करनेका प्रयत्न।

दत्तामित्र (सं० पु०) सौवीर नृपभेद।

(भारत आदि १३९ अ०)

किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्के मतानुसार ग्रीक लोगोंके निकट यह शब्द Demitrius नामसे प्रसिद्ध है।

दत्तावधान (सं० त्रि०) दत्तं अवधानं येन। अवहित, एकाग्र चित्त, सावधान।

दत्तासन (सं० त्रि०) दत्तं आसनं येन। प्रदत्तासन, जिसे आसन दिया गया हो।

दत्ति (सं० स्त्री०) दा भावे क्तिन्। दान।

दत्तिक (सं० त्रि०) अल्पो दत्तः ठक्। अल्पदत्त, थोड़ा दिया हुआ।

दत्ती (हिं० स्त्री०) दृढ़सम्बन्ध, सगाईका पक्का होना।

दत्तेय (सं० पु०) दत्तायां अपत्यं पुमान् दत्त-ढक्। इन्द्र।

दत्तोपनिषद् ( सं० स्त्री० ) उपनिषद् भेद, एक उपनिषद् का नाम ।

दत्तोलि ( सं० पु० ) पुलस्त्य मुनिका एक नाम ।

दत्र ( सं० क्ली० ) दा-बाहु० कत्रन् । १ धन । २ हिरण्य, सोना ।

दत्रिम ( सं० त्रि० ) दानेन निर्वृत्तः दा-क्त्रि कर्मणि मप् । १ दान द्वारा निष्पन्न । ( पु० ) २ दत्तक पुत्र । दत्तक देखो ।

दद ( सं० त्रि० ) दा-बाहु० श । दाता, देनेवाला ।

ददन ( सं० क्ली० ) दद भावे ल्युट् । दान ।

ददमर ( सं० पु० ) वृक्ष विशेष, एक प्रकारका पेड़ ।

ददरा ( हिं० पु० ) छाननेका कपड़ा, छन्ना, साफी ।

ददरी ( हिं० स्त्री० ) वह दाग जो पके हुए तम्बाकूके पत्ते पर पड़ जाता है ।

ददा ( हिं० पु० ) दादा देखो ।

ददि ( सं० त्रि० ) दा-कि । दाता, दान देनेवाला ।

ददित्र ( सं० पु० ) दाता ।

ददियाससुर ( हिं० पु० ) श्वसुरका पिता, ससुरका बाप ।

ददियासास ( हिं० स्त्री० ) ददिया श्वसुरकी स्त्री, सासकी सास ।

ददिहाल (हिं० पु०) १ दादाका कुल । २ दादाका घर ।

ददोड़ा ( हिं० पु० ) ददोरा देखो ।

ददोरा ( हिं० पु० ) शरीर पर उभड़ा हुआ वह दाग जो मच्छर बर्रे आदिके काटनेसे हो गया हो, चकत्ता ।

दद्दशानपवि ( सं० पु० ) अग्नि, आग ।

दद्द—भरुकच्छके गुर्जरवंशीय कई एक राजा इसी नामसे परिचित हैं । उनकी आज्ञासे उत्कीर्ण अनेक ताम्रशासन पाये गये हैं । किसीके मतानुसार ये लोग वलभी राजाओंके सामन्त माने जाते हैं । १म दद्द नामके अतिरिक्त औरोंके नाम मालूम नहीं । ये भरुकच्छके १म गुर्जर राज नामसे प्रसिद्ध थे और प्रायः ४३० ई०में राज्य शासन करते रहे । इनके पुत्रका नाम जयभट वीतराग था । इन्हीं जयभटके औरससे २य दद्द प्रशान्तराग उत्पन्न हुए थे । इनके समयके ४००, ४१५ और ४१७ शककी उत्कीर्ण ताम्रशासन पाये गये हैं । ये ज्ञानी और सहिवेकी राजा थे । इन्होंने दार्शनिक ग्रन्थ भी रचा तथा नाना स्थानोंमें मठ निर्माण कर वहां अपना धर्ममत और शास्त्रीय उपदेशके लिये ब्राह्मण नियुक्त किया था ।

इनके बाद गुर्जरवंशीय कौन राजा राज्य करते रहे, उनका कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला है । ताम्रशासनमें ( ३य ) दद्दका उल्लेख है । डाक्टर बुहलरके मतसे ये ५८० ई०में राज्य करते थे । खोदित लिपिसे ऐसा जाना जाता है कि इन्होंने अपने शत्रु नागवंशोंको परास्त कर विन्ध्यशैल तक अपना अधिकार फैला लिया था । इनके उत्तराधिकारी ( २य ) जयभट हुए । जयभटके पुत्रका नाम ( ४र्थ ) दद्दप्रशान्तराग था । खेड़ासे ३८० और ३८१ ( चेदि ) सम्वत्‌के उत्कीर्ण दो ताम्रशासन पाये गये हैं । जिनसे जाना जाता है कि (४र्थ) दद्दने ६२८ से ६३३ ई० तक राज्यशासन किया । ये सूर्यके उपासक थे । इन्होंने सम्राट् श्रीहर्षदेवके प्रबल आक्रमणसे वलभीराजको बचाया था इतनी कृतज्ञता दिखलाने पर भी दोनोंमें अधिक दिन तक मित्रता न बनी रही । वलभीराज ( २य ) ध्रुवसेनने ६४८ ई०में गुर्जर राजधानी भरुकच्छ जीत कर यहां ताम्रशासन अर्पण किया । किन्तु गुर्जरराज अधिक दिन तक गिरी दशामें पड़े न रहे । वलभीराज ( ४र्थ ) धरसेनके मरने पर (४र्थ ) दद्द प्रशान्तराग पुनः प्रबल हो उठे । इसके कुछ दिन बाद ही चालुक्यराजने गुर्जर राज्यके दक्षिणांश पर अधिकार कर लिया । ४र्थ दद्दके पुत्रका नाम भी जयभट था । जयभटके पुत्र बाहुसहाय थे और यही (५म) दद्द हुए । वलभी और चालुक्य राजाओंके साथ इन्हें अनेक बार लड़ना पड़ा था । इनके पुत्रका नाम भी जयभट था । इनके ४५६ और ४८६ ( चेदि ) सम्वत्‌में प्रदत्त दो ताम्रशासन मिलते हैं । अन्तिम चेदि सम्वत् ७३४-३५ ई० होता है । इनके बाद गुर्जर वंशीय और किसी राजाका नाम नहीं मिलता ।

दद्रु ( सं० पु० ) १ कच्छप, कछुआ । २ ददाति कण्डूमिति दद-बाहु० रुः वा दरिद्राति दुर्गन्धत्वेन, दरिद्रा-कुप्रत्ययान्तेन साधुः । त्वग्रोगविशेष, दादका रोग । इसका पर्याय—दद्रुरक, दद्रू और दद्रू । यह रोग

कुष्ठरोगके अन्तर्गत माना गया है। भावप्रकाशमें लिखा है-कुष्ठमें रक्तवर्ण कण्डुयुक्त जो पीडका मण्डलाकारमें निकलती है उसे दद्रु कहते हैं। इसकी चिकित्सा इस प्रकार है—कुट्की, विडङ्ग, चक्रमर्द, हल्दी, सैन्धव और सरसों इन सबको कांजीके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे दाग और कुष्टरोग जाता रहता है। दूसरी विधि—दूब, मर्चा (औषधविशेष), सैन्धव, चक्रवंड और हल्दी इन सबका बराबर बराबर भाग ले कर कांजीके साथ पीसते हैं। बाद तीन दिन तक इसका लेप देनेसे दद्रु और कुष्ठरोग आरोग्य हो जाता है।

भावप्रकाशके मतसे—गाँडर घास, सफेद सरसों और थूहरका पत्ता इन तीनोंको बराबर बराबर भागसे दूना चकवंडका पत्ता, इन सबको बिना कूटे अठगुने गायकी छाकमें डुबो देते हैं। तीन दिन बाद उन्हें एक साथ पीस कर सात दिन तक प्रलेप देनेसे दद्रुरोग नाश हो जाता है। प्रलेप देनेके पहले उस जगहको बनगोंइठासे खुजला लेना चाहिये। कुष्ठसर्षप, श्रीनिकेत (तारपीनका तेल), हरिद्रा, त्रिकटु, चक्रमर्दका बीज और मूलकबीज इन सबको छाकके साथ पीस कर दाद पर लगानेसे दादरोग आरोग्य हो जाता है। सैन्धव, चक्रमर्दका बीज, शर्करा नागकेशर और कृष्णाजिनको कैथके रसके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे दद्रुरोग शीघ्र विनष्ट हो जाता है। स्वर्णक्षीरी, व्याधिघात, शिरीष, निम्ब शाल, कूटज और लतासालका चूर्ण तैयार कर स्नानके बाद उसे दादकी जगह पर घिस कर लगानेसे दाद बहुत जल्द जाती रहती है। (सुश्रुत कुष्ठाधिकार) गरुड़पुराणके मतानुसार यह एक प्रकारके व्रण जातिका रोग है। हरिद्रा, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र और सैन्धव इन सबको एक साथ पीस कर लगानेसे यह रोग आरोग्य हो जाता है।

(गरुडपु० १८४ अ०)

दद्रुक (सं० पु०) दद्रुरेव स्वार्थे कन्। दद्रु रोग।

दद्रुघ्न (सं० पु०) दद्रं दद्रुरोगं हन्ति हन-टक्। चक्रमर्दक, चक्रमर्दा, चकवंड।

दद्रुण (सं० त्रि०) दद्रुरस्त्यस्य दद्रु-ण। दद्रुरोगी, जिसे दद्रुरोग हुआ हो।

दद्रुनाशिनी (सं० स्त्री०) दद्रुं नाशयति नश णिच् णिनि ङीप्। तैलिनी कीट, एक प्रकारका वृक्ष।

दद्रुरोगी (सं० त्रि०) दद्रुरोगोऽस्त्यस्य दद्रुरोग-इनि। दद्रुरोगविशिष्ट, जिसे दादका रोग हुआ हो।

दद्रू (सं० पु०) दरिद्राति दुर्गन्धत्वयङ्गमनेनेति दरिद्रा-ऊः, रकारेकाराकाराणां लोपश्च (दरिद्रातेर्यो लोपश्च। उण् १।८२) दद्रु, दादका रोग।

दद्रूघ्न (सं० पु०) दद्रुं हन्ति हन टक्। दद्रु, दाद।

दद्रूण (सं० त्रि०) दद्रु न। दद्रु।

दधन्वत् (सं० त्रि०) दधि-मतुप्, वेदे निपातनात् दधना-देशे मस्य वः। दधिविशिष्ट, जिसमें दही मिला हुआ हो।

दधालिया—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत महीकाण्ठाका एक राज्य। यहांके प्रधान एक करद सर्दार हैं। उन्हें बरोदा-के गायकवाडको वार्षिक ७००) रु० 'घासदाना' कह कर तथा एदरके राजाको ६००) रु० सैन्यको रसद कह कर कर स्वरूप देने पड़ते हैं। महीकान्तामें वे अपने वंशके स्थापनकालसे ही राज्य करते आ रहे हैं। ये सिसोदिया राजपूत हैं और राजपूतानेसे यहां आ कर बस गये हैं। दत्तकपुत्र लेनेके विषयमें इन लोगोंमें कोई छेड़छाड नहीं है। ज्येष्ठ पुत्र ही राज्यके अधिकारी होते हैं। १६७४ ई०में प्रथम ठाकुर या प्रधान एदरके राजा यहां नौकरी करते थे और उसीमें उन्हें ४८ ग्राम उपहारमें मिले थे। किन्तु पीछे जब वे मारवारके राजकुमारोंको सेवा करनेको राजी न हुए तब उनको उक्त वृत्ति कुछ घटा दी गई।

दधि (सं० पु०) दधातीति धा कि (आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च। पा ३।२।१७१) दुग्धविकारविशेष दही, जमाया हुआ दूध। इसका पर्याय—क्षीरज, मङ्गल्य, विरल और पयस्य है। इसका गुण—उष्णवीर्य, अग्नि-दीप्तिकारक, स्निग्ध, कषाय, गुरु, अम्लविपाक, धारक, रक्तपित्तकारक, शोथजनक, मेदोवर्द्धक, कफप्रदायक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, मूत्रकृच्छ्र, प्रतिश्याय, शीतक-नामक विषमज्वर, अतीसार, अरुचि और कृशताके लिये बहुत उपकारी है। दधि पांच प्रकारका होता है, पहला मन्द, दूसरा स्वादु, तीसरा स्वाद्वम्ल, चौथा अम्ल और पाँचवाँ अत्यम्ल।

मन्ददधि—जो दूध विकृत हो कर कुछ गाढ़ा हो

गया हो और अच्छो तरह दधिके रूपमें न जमा हो, उसे मन्द दधि कहते हैं। इसका गुण—मल और मूत्रनिःसारक तथा त्रिदोषजनक है।

स्वादुदधि—जो दूध अच्छो तरह गाढ़ा हो कर अत्यन्त मधुर रसके साथ जम गया हो और खट्टे रसका अनुभव न होता हो, उसे स्वादु दधि कहते हैं। इसका गुण—अत्यन्त अभिष्यन्दी, शुक्रजनक, मेदोवर्द्धक, कफकारक, वायुनाशक, मधुरविपाक और रक्तपित्तका दोषनाशक है।

स्वाद्वम्लदधि - जो दूध गाढ़ा हो कर कुछ कसैला लिये मधुर अम्ल स्वाद देता हो, उसे स्वाद्वम्ल दधि कहते हैं। इसका गुण सामान्य दधि सरीखा है।

अम्लदधि—जिस दधिमें मिठास न हो, वरं अम्लरस पाया जाय, उसे अम्लदधि कहते हैं। इसका गुण—अग्निसन्दोपक, रक्तपित्तवर्द्धक और कफवर्द्धक है।

अत्यम्लदधि—जिस दधिसे दन्त तथा रोम हर्ष हो जाय और कण्ठसे दाह देने लगे, उसे अत्यम्ल दधि कहते हैं। इसका गुण—अग्निदोप्तिकारक और रक्तपित्तजनक है।

गव्यदधि—मधुर रस, बलकारक, रुचिजनक पवित्र, अग्निदोपक, स्निग्ध, पुष्टिकारक और वायुनाशक है। सब प्रकारके दधियोंमें गव्यदधि ही अधिक गुणविशिष्ट है।

महिषदधि—अत्यन्त स्नेहयुक्त, कफकारक, वायु और पित्तनाशक, मधुरविपाक, अभिष्यन्दो, शुक्रवर्द्धक, गुरु और रक्तदूषक है।

छागदधि—उत्तम संग्रामी, लघु, त्रिदोषनाशक, अग्निदोप्तिकारक तथा श्वास, कास, अर्श, चय और क्षयरोगमें हितकर है।

पक्व दुग्धदधि—अच्छो तरह उबाले हुए दूधसे जो दधि बनता है, उसका गुण—रुचिकारक, स्निग्ध, अत्यन्त गुणकारी, पित्त और वायुनाशक तथा धात्वग्नि समूहका बलकारक है।

निःसार दुग्धदधि—असार दूध अर्थात् जिस दूधसे मक्खन निकाल लिया गया हो, वैसे दूधसे जो दधि जमाया जाता है, वह धारक, शीतवीर्य, वायुवर्द्धक, लघु, विष्टम्भी, अग्निदोप्तिकारक, रुचिजनक और ग्रहणी रोगनाशक है।

गालितदधि - जिस दधिका तोड़ निकाल लिया गया है उसे गालित दधि कहते हैं। इसका गुण—स्निग्ध वायुनाशक, कफकारक, गुरु बलकारक, पुष्टिजनक, रुचिजनक, मधुररस और अत्यन्त पित्तजनक नहीं है।

शर्करायुक्त दधि—(चोनी मिला हुआ दही) यह दधि सब प्रकारके दधियोंमें श्रेष्ठ गुणदायक है। इससे प्यास, रक्तपित्त और दाह जाता रहता है। गुड़युक्त दधि वायु नाशक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, तृप्तिकर और गुरु है। रातको दही खाना मना है। एकान्त भोजन करते समय जल, घी, चोनी, मूंग, तरकारी, मधु अथवा आँवला इनमेंसे किसो एकको दधिके साथ मिला कर खाना चाहिये। उष्ण करके भी रातमें खा सकते हैं। यद्यपि रातमें दधि खाना निषिद्ध है तो भी घी आदिके साथ मिला कर खानेसे वह दोषावह नहीं है। किन्तु रक्तपित्त और कफोद्भव रोगमें जल वा घी मिला कर दहीका सेवन करना अप्रशस्त है।

हेमन्त, शिशिर और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें दधि खाना स्वास्थ्यकर है तथा शरत् ग्रीष्म और वसन्त इन ऋतुओंमें अहितकर। दधिलोलुप मनुष्य यदि उक्त नियमका उल्लङ्घन कर दधिका सेवन करे, तो वह ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम और उग्र कामला रोगसे पीड़ित रहता है। दधिके स्नेह समन्वित ऊपरी भागको मलाई वा छालो और मण्डको मस्तु वा तोड़ कहते हैं। दधिकी छालोमें मधुर रस, गुरु, शुक्रवर्द्धक एवं वायु और अग्निप्रणाशक गुण है। खट्टा हो जाने पर इसका गुण वस्तिशोधक एवं पित्त और कफवर्द्धक है। दधिके तोड़में क्लान्तिनाशक, बलकारक, अभिलाषजनक, स्रोतःसमूहका शोधनजनक, आह्लादजनक, कफघ्न, पिपासाजनक, वातापहारक, लघु, प्रीतिजनक और शीघ्र हो सञ्चित मलविरेचक गुण माना गया है। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें दधिका विषय इस प्रकार लिखा है—दही तीन प्रकारका होता है-मधुर, अम्ल और अत्यम्ल पीछे कषाय। यह स्निग्ध और उष्ण एवं पीनस, विषमज्वर, अतिसार, अरुचि और मूत्रकृच्छ्ररोग-शान्तिकर, तेज-

रकर, ग्राथकर और मङ्गलजनक है। मीठा दहीसे चक्षुरोग उत्पन्न होता है तथा कफ और मेदको वृद्धि होती है। खट्टा दही पित्तश्लेष्माको बढ़ाता है और जो बहुत खट्टा है उससे रक्त दूषित होता है। मन्दजात अर्थात् जो अच्छी तरह जमने नहीं पाता, वह दही विदाही होता है, गलेमें दाह उत्पन्न करता है तथा उससे मल, मूत्र, वायु, पित्त और कफको वृद्धि होती है।

गव्यदधि - स्निग्ध, मधुर, अग्निकर रुचिकर, और पवित्र है।

छागीदधि—लघु, कफ, पित्तका शान्तिकर, वायुजनित क्षयरोगका निवृत्तिकर, अर्श, श्वास और कास रोगका हितकर एवं अग्निकर है।

माहिष दधि-मधुर, वृष्य, वायुपित्तका शान्तिकर, कफवर्द्धक और स्निग्ध है।

उष्ट्र दधि—उबालने पर कटु रस, क्षारयुक्त, गुरुपाक और भेदकर तथा वात, अर्श, कुष्ठ, क्रमि और पेटको बीमारीमें शान्तिकर है।

आविक दधि - भेंड़के दूधका जमाया हुआ दही वात, श्लेष्मा और अर्श वर्द्धकर। रस और पाक होने पर मधुर, चक्षुरोगकर एवं दोषवर्द्धक है।

घोड़ीका दधि—अग्निकर, चक्षुरोग और वातवर्द्धक, रुक्ष, उष्ण, कषाय एवं कफ तथा मूत्रनाशक है।

नारी दधि—स्निग्ध, पाक होने पर मधुर, बलकर, तृप्तिकर, भार, चक्षुका हितकर एवं दोषशान्तिकर है।

हस्तिनीका दधि—लघुपाक, कफघ्न, उष्णवीर्य, अजीर्ण, कफ एवं मलवर्द्धक है। लेकिन जितने प्रकारके दधि बतलाये गए हैं, उनमेंसे गव्य दधि ही श्रेष्ठ है। गायका दही स्वादिष्ट होता है, वस्त्रसे छानने पर यह शरीरको मजबूत बनाता है, वायुको शान्त करता है और श्लेष्माको बढ़ाता है। लेकिन इससे पित्त कुपित नहीं होता। दधिकी मलाई गुरुपाक, वृष्य, वायुकी शान्तिकर, अग्निकर एवं कफ और शुक्रवर्द्धक है। बिना मलाईका दधि रुक्ष, मलरोधक, वायुवर्द्धनकर, अग्निकर, लघु, कषाय और रुचिकर होता है। शरत्, ग्रीष्म और वसन्तकालमें दही खाना अप्रशस्त और हेमन्त शिशिर तथा वर्षाकालमें प्रशस्त है। दहीका तोड़ा या पानी तृष्णा और क्लान्तिनाशक, लघु, शरीरके द्वारका शोधनकर, अम्ल, कषाय, मधुर और वातश्लेष्माका शान्तिकर है, किन्तु यह तेजोवर्द्धक नहीं है। इसके सिवा यह प्रह्लादकर, तृप्ति, बल, रुचिकर तथा मलभेदक भी है। जितने प्रकारके दधि ऊपर बतलाए गए हैं उन्हें सात प्रकारके दधिके अन्तर्गत समझना चाहिये। स्वादु, अम्ल, अत्यम्ल, मन्दजात पक्वदुग्धजात, दधिरस और असार यही सात प्रकारके दधि है। इनका तोड़ या पानी भी दधि सरीखा गुणकारी है। (सुश्रुत)

शरत्कालमें दधिका गुण—गुरु, अम्ल और रक्तपित्तवर्द्धक, शोफ, तृष्णा, ज्वर, शूल और विषमज्वरकारक है।

हेमन्तकालमें दधिका गुण—गुरु, स्निग्ध, मधुर, कफकृत और बलवर्द्धक, वृष्य, मेध्य, पुष्टि, तुष्टि तथा वृद्धिदायक है।

शिशिरमें दधिका गुण—अम्ल मधुर, गुरु, वृष्य, बलकारक, बल और वीर्य नाशक है।

ग्रीष्ममें दधिका गुण लघु अम्ल, उष्ण, रक्तपित्तकारक, शोष, भ्रम और पिपासाकारक है।

वर्षामें दधिका गुण—शीतल, शोष, वात, भ्रम, श्रम और अतिसारनाशक है (राजवल्लभ) इस समय यह पीनस, अतिसार, शीत, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता रोगमें विशेष फायदामन्द माना गया है। (हारीत ८ अ०) २ वस्त्र, कपड़ा।

दधि (हिं० पु०) समुद्र, सागर।

दधिक (सं० पु०) श्रीवेष्टकवृक्ष, सलाइका पेड़।

दधिकर्म (सं० पु०) दधिसंस्कारक कर्म। दधिसंस्कारक वैदिक कर्मभेद।

दधिकांदो (हिं० पु०) एक प्रकारका उत्सव जो प्रायः जन्माष्टमीके समय होता है। इसमें लोग हल्दी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं। प्रवाद है, कि जब श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था, तब गोपों और गोपियोंने आनन्दमें मग्न होकर हल्दी मिला हुआ दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि गलियोंमें दहीका कीचड़ सा हो गया था।

दधिकूर्चिका (सं० स्त्री०) दधिजाता कूर्चिका वा अर्द्धोदकोष्ण दुग्धे दध्यम्लसंयोगात् जाता। दुग्ध विकार भेद, फटे हुए दूधका वह अंश जो पानी निकलने पर

बच जाता है, छेना। उबाले हुए दूधके साथ दही मिल जानेसे अर्थात् गरम दूधमें खटाई मिल जानेसे दूध फट जाता है, उसी फटे हुए अंशको दधिकूर्चिका कहते हैं। इसका गुण—वातनाशक, ग्राहक, रूक्ष और दुर्जर है।

दधिक्रा (सं॰ पु॰) दधिः दधद्रव्यं धारयन् सन् क्रामति, क्रम-विट् अन्तस्यात। १ अश्वरूप अग्न्यात्मक देवभेद, एक वैदिक देवता जो घोडेके आकारके माने जाते हैं। २ अश्व, घोडा।

दधिक्रावन् (सं॰ पु॰) दधिः दधत् क्रामति क्रम-वनिप्, अन्तस्यात्। अश्वरूप अग्न्यात्मक देवभेद, वैदिकके एक देवता जिनका आकार घोडेसा माना गया है।

दधिग्राम—श्रीकृष्णका एक लीलास्थान।

दधिचार (सं॰ पु॰) दधि चारयति चालयति चर-णिच् अण्। दधिमन्थनदण्ड, दही मथनेका डंडा, मथानी। इसका पर्याय—वैशाख, तक्राट और करघर्षण है।

दधिज (सं॰ क्ली॰) दध्नो जायते जन-ड। नवनीत, मक्खन।

दधिजात (सं॰ पु॰) १ नवनीत, मक्खन। २ उदधिसुत, चन्द्रमा।

दधित्थ (सं॰ पु॰) दधिवर्णो द्रव्यस्तिष्ठत्यस्मिन्, स्था-क, पृषोदरादित्वात् साधुः। कपित्थ, कैथ।

दधित्थाख्य (सं॰ पु॰) दधित्थं आख्याति कपित्थद्रव्यं अनुकरोति आ-ख्या-क। सरलद्रव, लोबान।

दधिधेनु (सं॰ स्त्री॰) दधिनिर्मिता धेनुः। दानार्थ-कल्पित दधिकुम्भ निर्मित धेनुभेद, दानके लिये कल्पित गौ जिसकी कल्पना दहीके मटकेमें की जाती है। इस-का विषय हेमाद्रिदानखण्डमें इस प्रकार लिखा है—जिस स्थान पर यह कल्पित धेनु प्रस्तुत करनी पडती है उस स्थानको गोबरसे अच्छी तरह पोत देते हैं। फूलोंसे सुशोभित एक गोचर्म रखना होता है। पीछे जमीन पर कुश फैला कर उसके ऊपर कृष्णाजिनका आसन रखते हैं और धानके ऊपर दधिकुम्भ स्थापित करते हैं। इसके बछडेकी भी कल्पना कर उसका मुंह सोनेका बनाना होता है। पीछे प्रशस्तपत्र द्वारा धेनुके श्रवण, मुक्ताफल द्वारा चक्षु, चन्दन और अगुरु द्वारा शृङ्ग, शर्करा द्वारा जिह्वा, श्रीखण्ड द्वारा घ्राण, फलमूल द्वारा दण्ड, ताम्र द्वारा पृष्ठ, दर्भ द्वारा रोम, सूत्रमय द्वारा पुच्छ, सुवर्ण द्वारा शृङ्ग, रौप्य द्वारा खुर, नवनीत द्वारा स्तन और इक्षु द्वारा पाद प्रस्तुत करते हैं। इसके अनन्तर धेनु सर्वा-भरणसे संयुक्त की जाती है। बाद वस्त्रयुग्म और गन्ध-पुष्पादि द्वारा धेनुकी पूजा करते हैं। जितेन्द्रिय और सकलगुणसम्पन्न कुलीन ब्राह्मणोंको दधिक्राव्णो इत्यादि मंत्र पढ़ कर वह धेनु दान देते हैं और साथ साथ उन्हें छत्रपादुका आदि भी देने होते हैं। इस प्रकार दधिमय धेनु जो दान करते हैं और उस दिन केवल दधि खा कर ही रहते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। इतनाही नहीं, उनके पूर्व दश, अधस्तन दश और एक आप ये इक्कीस पुरुष विष्णुलोकको जाते हैं। जहां नदियां मधु-वाहिनी हैं, पायसमय कर्दम है एवं जहां ऋषि, मुनि और सिद्धगण अवस्थान करते हैं, दाता उसी स्थान पर पहुंच जाते हैं। (हेमाद्रिदानख॰ वराहपु॰) जो यह भक्ति-पूर्वक श्रवण करते हैं, उन्हें भी अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है।

दधिनाम (सं॰ क्ली॰) १ कपित्थ फल, कैथका फल। २ कपित्थ वृक्ष, कैथका पेड़।

दधिपयस् (सं॰ क्ली॰) दधि च पयश्च। दधि और पय दही और दूध।

दधिपयसादि (सं॰ क्ली॰) दधिपयः आदिर्यस्य। गणभेद, एक प्रकारका गण। इस गणका समाहारद्वन्द्व निषेध हुआ है। दधिपयस्, मधुसर्पिस, ब्रह्म प्रजापति, शिव-वैश्रवण, स्कन्दविशाख, परिव्राट्, कौशिक, प्रवर्ग्य, उपसद, शुक्लकृष्ण, इध्मावर्हिस्, दीक्षातपस्, मेधातपस्, अध्ययनतपस्, उदूखलमुसल आदि अवसान, श्रद्धा, मेधा, ऋक्साम और वाङ्मनस् ये सब दधिपयस् आदि गण हैं। (पाणिनि)

दधिपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) दधीव शुभ्रं पुष्पमस्याः कप् टापि अतइत्वं। श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता।

दधिपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) दधीव पुष्पमस्याः जातित्वात् ङीष्। १ कोलसिम्बी, सेम। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। ३ कटभी वृक्ष, लघु ज्योतिष्मती लता, छोटी रनजीत।

दधिपूप (सं० पु०) दधिपक्वः पूपः। अपूपभेद, एक प्रकारका पकवान। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—शालि धान के चूर्णको दहीमें मिला कर घीमें तला जाता है। बाद उसे गोलाकारमें प्रस्तुत करते हैं। इसका गुण—गुरु, बलकारक, वृंहण, वायु और पित्तनाशक, अग्निजनक तथा रुचिकर है।

दधिपूर्वमुख (सं० पु०) दधिपूर्वं मुखं यस्य। दधिमुख। दधिमुख देखो।

दधिफल (सं० पु०) दधीव शुभ्रोद्भयः फले यस्य। कपित्थ, कैथ।

दधिभव (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन।

दधिमण्ड (सं० पु०) दध्नः मण्डः। दधिका मस्तु दहीका पानी। दधि देखो।

दधिमण्डातक (सं० क्ली०) दधि मस्तुनि, दहीका पानी।

दधिमण्डोद (सं० पु०) दधिमण्ड इव उदकं यत्र, उदकस्य उदादेशः। दधिसमुद्र, दहीका समुद्र। इस समुद्रका जल दहीके जलके समान होता है, इसीसे इसका नाम दधिमण्डोद हुआ है।

दधिमण्डोद्भव (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन।

दधिमुख (सं० पु०) दधिवत् शुभ्रं मुखं यस्य। रामचन्द्रका एक बन्दरसैन्य। यह सुग्रीवका मामा और मधुवनका रक्षक था। हनुमान आदि बन्दरोंने सीता सम्वाद पा कर इस बनमें उत्सव किया था। पहले दधिमुखने बन्दरोंको उत्सव करनेसे मना किया, किन्तु उन्होंने उसकी बात अनसुनी कर उसका बहुत अपमान किया था। (रामायण ४।६२,६३,६४ सर्ग)

दधियार (हिं० पु०) एक लता जो जीवन्तिकाकी जातिकी होती है। इसके पत्ते लम्बे और पानके आकारके होते हैं। इसकी टहनियों आदिमेंसे दूध निकलता है। इसके फूल सूर्यमुखी फूलसे होते हैं। औषधमें यह बहुत उपयोगी है, अर्कपुष्पी, अन्धाहुली।

दधिलेह (सं० पु०) दधिसर, दहीका ऊपरी भाग, छाली, मलाई।

दधिवक्त्र (सं० पु०) दधिवत् वक्त्रं यस्य। दधिमुख।

दधिवत् (सं० त्रि०) दधि अस्त्यत्र मतुप् वेदे मस्य वः। दधियुक्त, जिसमें दही मिला हो।

दधिवामन (सं० क्ली०) १ शालग्राम मूर्त्तिके मध्य-वामन मूर्त्ति भेद, इनका लक्षण इस प्रकार है—

"अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीननीरदोपमं।
दधिवामनकं ज्ञेयं गृहिणा च सुखप्रदं॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त० प्रकृतिख०)

इनकी आकृति छोटी, द्विचक्रयुक्त और नवीन-बादलके जैसा वर्ण है। यह मूर्त्ति गृहस्थोंके लिये सुखजनक है, अर्थात् गृहस्थ यदि इस मूर्त्तिकी पूजा करे अथवा घरमें प्रतिष्ठित करे, तो उसे सुख अवश्य मिलता है। (पु०) २ दध्योदन द्वारा हवनीय वामनभेद। वामनका दध्योदन द्वारा होम करनेसे सब प्रकारकी दुर्गतियां जाती रहती हैं।

"दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्यते दुर्गतः।
स्मृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥"
(तन्त्रसार—दधिवामनप्र०)

दधिवारि (सं० क्ली०) दध्नः वारि ६ तत्। दधिमस्तु, दहीका पानी।

दधिवस्तुका (सं० स्त्री०) १ गोदन्त हरिताल। २ दुरालभाभेद, जवासा, धमासा।

दधिवाहन (सं० पु०) अङ्ग नामक राजाके पुत्र।
(हरिवंश ३१ अ०)

दधिशोण (सं० पु०) शुक्ल वानर, सफेद बन्दर।

दधिषाय्य (सं० पु०) दधिस्यति सो-आय्य, ततो षत्वं निपा० साधुः। (दधिषाय्यः। उण् ३।९८) घृत, घी।

दधिसक्तु (सं० पु०) दध्युपसिक्ताः सक्तवः। दध्युपसिक्त सत्तू, दही मिला हुआ सत्तू।

दधिसर (सं० पु०) दध्नः सरः। दधिस्नेह, छाली, मलाई।

दधिसागर (सं० पु०) पुराणके अनुसार दहीका समुद्र।

दधिसार (सं० पु०) दध्नः सारः। नवनीत, मक्खन।

दधिसुत (हिं० पु०) १ कमल। २ मुक्ता, मोती। ३ चन्द्रमा। ४ जालन्धर दैत्य। ५ विष, जहर।

दधिसुत (सं० पु०) नवनीत मक्खन।

दधिसुता (हिं० स्त्री०) सीप। उदधिसुता देखो।

दधिस्कन्द (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

दधिस्नेह (सं० पु०) दध्नः स्नेहः। दधिका सर, दही-

को मलाई। इसका पर्याय—दधिसर, मर, दध्युत्तरग और कट्वर है। इसका गुण दधि शब्दमें देखो।

दधिस्वेद (सं॰ पु॰) दध्नः स्वेद इव। तक्र, छाछ, मट्ठा।

दधीच (सं॰ पु॰) दधीचि मुनि, शुक्राचार्यके एक पुत्र।

दधीचास्थ (सं॰ पु॰) दधीचस्य अस्थि। १ वज्र। २ हीरक, हीरा।

दधीचि—एक पौराणिक ऋषि। ये वेदमें दध्यञ्च और महाभारतमें दधीच तथा दधीचि नामसे प्रसिद्ध हैं। यास्कके निरुक्तके मतसे ये अथर्वाके पुत्र हैं, इसीसे ऋगादि वेदोंमें इनका नाम आथर्वण लिखा है। (निरुक्त १२।३३) ब्रह्माण्डपुराणमें इनको शुक्राचार्यका पुत्र बतलाया है। सरस्वतीसे इनके सारस्वत नामक पुत्रगण उत्पन्न हुए थे। (ब्रह्माण्डपु॰ उ॰ १म अ॰) किसी किसी पुराणमें इन्हें अथर्वके औरस और कर्दमकन्या शान्तिके गर्भसे उत्पन्न माना है। ऋक्संहिताके दो ऋकोंमें दधीचके विषयमें ऐसा लिखा है—

"दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच ॥"

(१।११६।१२)

अथर्वाके पुत्र दधीचने अश्वमस्तक धारण कर तोमाओं को मधुविद्या सिखलाई थी।

"आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतं।

स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥"

(ऋक् १।११७।२२)

हे अश्वियुगल! तुमने आथर्वण दधीचिके धड़ पर घोड़ेका मस्तक जोड़ दिया था। उन्होंने भी सत्यका पालन करते हुए त्वष्टासे * लब्ध मधुविद्या तुम दोनोंको सिखला दी थी। हे दस्रद्वय! यह विद्या तुम लोगोंकी अपिकक्ष्यरूपा¶ हुई थी।

सायणने प्रथमोक्त १२ ऋक्के भाष्यमें शाट्यायन और वाजसनेयप्रपञ्चसे जो उपाख्यान उद्धृत किया है वह इस प्रकार है—"इन्द्रो दधीचे प्रवर्ग्यविद्यां मधुविद्यां चोपदिश्य यदीमामन्यस्मै वक्ष्यसि शिरस्ते छेत्स्यामीत्युवाच। ततोऽश्विनावश्वस्य शिरश्छित्वा दधीचः शिरः प्रच्छिद्यान्यत्र निधाय तत्राश्व्यं शिरः प्रत्यधत्तां। तेन च दध्यङ् ऋचः सामानि यजूंषि च प्रवर्ग्य विषयाणि मधुविद्याप्रतिपादकं ब्राह्मणं चाश्विनावध्यापयामास। तदिन्द्रो ज्ञात्वा वज्रेण तच्छिरोऽच्छिनत्। अथाश्विनौ तस्य स्वकीयं मानुषं शिरः प्रत्यधत्तामिति।"

इन्द्रने दधीचिको प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्या सिखला कर कहा था, 'यदि यह विद्या तुम किसी दूसरेको बतला दोगे, तो हम तुम्हारा शिर काट डालेंगे।' अश्वियुगलने दधीचका शिरश्छेदन कर उसे अन्यत्र रख दिया और उस स्थान पर फिर घोड़ेका शिर जोड़ ऋक्, साम और यजुः इन तीन प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्याप्रतिपादक ब्राह्मणोंका अध्ययन किया। यह बात जब इन्द्रको मालूम हुई, तब उन्होंने फिर उस शिरको काट गिराया। बाद अश्वियुगलने धड़ पर पुनः मनुष्यवाला पहला शिर लगा दिया।

ऋग्वेदमें और दो जगह दधीचिकी मस्तकास्थिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

प्रतिकूल शब्दरहित इन्द्रने दधीचिकी अस्थिसे नौ गुण निन्यानबे बार वृत्रगणका वध किया था। पर्वत पर छिपे हुए दधीचिके अश्वमस्तकको पानेकी जब इन्द्रको इच्छा हुई, तब उन्होंने उसे शर्य्यणावतमें पाया था।

(१।८४।१३) (१।८४।१४)

उक्त दो ऋकोंके विषयमें शाट्यायनीका एक इतिहास यों प्रसिद्ध है—

अथर्वाके पुत्र दधीचिको फिरसे जीवित देख कर असुर लोग देवताओंसे परास्त हुए थे। पीछे दधीचिके स्वर्ग चले जाने पर असुर लोग पुनः पृथ्वी पर भर गये। बाद इन्द्र उनसे लड़नेमें असमर्थ हो दधीचिकी तलाश करने लगे। यहाँ उन्हें न देख वे स्वर्ग जा कर सभीसे पूछने लगे, 'दधीचिका अवशिष्ट अङ्ग कहाँ है?' जवाब मिला, 'दधीचिका केवल अश्वरूप मस्तक मौजूद है जिससे उन्होंने अश्विद्वयको मधुविद्या सिखलाई थी।' इन्द्रने कहा, 'मैं उसी मस्तककी खोजमें हूं।' इस पर वे बोले, 'हम लोग नहीं कह सकते, वह मस्तक कहाँ है।' इस पर इन्द्रने जब उन्हें मस्तककी तलाश करने कहा, तब उन्होंने शर्य्यणावत् नामक कुरुक्षेत्रके जघ-

* सायणने यहाँ 'त्वष्टा' शब्दका 'अर्थ' इन्द्र लिखा है।

¶ सायणने 'अपिकक्ष्य' शब्दका अर्थ किया है प्रवर्ग्यविद्याख्य रहस्य।

नाईमें इसे पाया था। पीछे इन्द्रने उसी मस्तकको हड्डीसे असुरोंका वध किया था।

भागवतमें भी दधीचिके अश्वशिरके विषयमें कुछ प्रसङ्ग है। श्रीधरस्वामीने भी सायण की तरह इस उपाख्यानको प्राचीन ग्रन्थसे बहुत बढ़ा चढ़ा कर उद्धृत किया है। ( भागवत ६।११ अ० और श्रीधरटीका द्रष्टव्य )

महाभारतमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—दक्ष जिस समय हरिद्वारमें विना शिवजीके यज्ञका अनुष्ठान करते थे, उस समय इन्होंने शिवजीको निमन्त्रित करनेके लिए दक्षको बहुत समझाया था, किन्तु दक्षने एक भी न सुनी। इस पर रुद्रभक्त दधीचि यज्ञसभाको छोड़ कर चले गये थे। इनके शिष्य नन्दी इनसे शिव मन्त्रमें दीक्षित हो शिवपार्षद कहलाने लगे।

एक समय दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। इस पर इन्द्र बहुत डर गये और उन्होंने अलम्बुषा अप्सराको यज्ञ भङ्ग करनेके लिये भेजा। जिस समय ये सरस्वतीके किनारे तर्पण कर रहे थे, उसी समय अलम्बुषा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। अलम्बुषाको देखकर दधीचिका वीर्यस्खलित हो गया जिससे एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। यही पुत्र सारस्वत नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवगण जब वृत्रासुरके भयसे तंग तंग आ गये, तब उन्हें मालूम पड़ा, कि दधीचिका अस्थिनिर्मित वज्र पाये विना वृत्रका नाश नहीं हो सकता है। तब देवराज इन्द्रने इनके पास जा कर अस्थिके लिये प्रार्थना की। जो इन्द्र दधीचिके कट्टर शत्रु थे, आज उन्हींके उपकारके लिये दधीचिने अपना शरीर तक अर्पण कर दिया। अग्निपुराणमें लिखा है, कि केवल वज्र ही नहीं बल्कि दधीचिकी अस्थिसे और भी अनेक अस्त्र बनाये गये थे।

दधीच्यस्थि ( सं० क्ली० ) दधीचेरस्थि। १ दधीचि मुनिकी अस्थि जिससे वज्र बनाया गया। २ वज्र। ३ हीरक, हीरा। दधीचि देखो।

दधीमुख ( सं० पु० ) वानरभेद, एक बन्दरका नाम।

दधृष ( सं० त्रि० ) धृष्णोतीति, धृष-क्विन्, द्वित्वादिकञ्च निपातनात् सिद्धं ( ऋत्विक् दधृगिति। पा ३।२।५९ ) १ धृष्ट, निर्लज्ज, वेहया। २ धर्षक, दमन करनेवाला, साहसी।

दधृष्वनि ( सं० त्रि० ) दधृगिवाचरति दधृष् क्विप्, ततो बाहुलकात् वनि। धर्षक, अभिभावक, पराजित करनेवाला।

दध्न ( सं० पु० ) दधते जीवेभ्यः पापपुण्यफलाफलं दधातीति दध दाने बाहुलकात् न। यम, चौदह यमोंमेंसे एक यम।

दध्यग्र ( सं० क्ली० ) दधिमर, दहीकी मलाई।

दध्यङ्ग ( सं० पु० ) सरल द्रव लोबान।

दध्यञ्च् ( सं० पु० ) दधिं धारकं अञ्चति अनृच-क्विप्। अथर्वा ऋषिके पुत्र दधीचि मुनि

इन्द्रने दधीचिको प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्या सिखा कर कहा था कि यदि तुम यह विद्या किसीको बतलाओगे तो मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा। इस पर अश्वियुगलने दधीचिका सिर काट कर अलग रख दिया और उसके धड़ पर घोड़ेका सिर लगा दिया। इस तरह उन्होंने दधीचिसे प्रवर्ग्य, (मधु), ऋक्, साम और यजु प्रभृति विद्यायें सीखीं। जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आ कर उनका घोड़ेवाला सिर वज्रसे काट डाला। बाद अश्वियुगलने उनके धड़ पर फिर उनका अपना सिर लगा दिया।

( ऋक् १।११६।१२ सायण ) दधीचि देखो।

दध्यन्न ( सं० क्ली० ) दध्युपसिक्तं अन्नं। दधिमिश्रित अन्न, दही मिला हुआ अनाज।

दध्यानी ( सं० स्त्री० ) दधिवत् शुभ्रतां आनयति आ-नी-क्विप्। सुदर्शन वृक्ष, मदन मस्त।

दध्याली ( सं० स्त्री० ) दध्यानी देखो।

दध्याशिर ( सं० त्रि० ) दधाति पुष्णाति इति दधि शृणाति हिनास्ति इत्याशी दध्येव आशीर्यस्य। दोषघातक।

दध्याह्वः ( सं० पु० ) कपित्थ वृक्ष, कैथका पेड़।

दध्युत्तर ( सं० क्ली० ) दध्नः उत्तरं चरमावस्थां गच्छतीति गम-ड। दधिस्नेह दहीकी मलाई।

दध्युत्तरग ( सं० क्ली० ) दध्नः उत्तरं चरमावस्थां गच्छतीति गम ड। दधिस्नेह, दहीकी मलाई।

दध्युद ( सं० पु० ) दधिवदुदकं यस्य उदकस्य उदादेशः। दधिसमुद्र, दहीका समुद्र।

दध्योदन ( सं० पु० ) दध्युपसिक्तः ओदनः। दधिमिश्रित ओदन, दही मिला हुआ भात।

दन (हिं० पु०) दिन।

दनकर (हिं० पु०) सूर्य।

दनकौर—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेके अन्तर्गत शिकन्दराबाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° २१' उ० और देशा० ७७° ३३' पू०के मध्य बुलन्दशहरसे २० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या ५४४४ है। कहते है, कि महाभारतके वीर द्रोणने यह नगर बसाया था। यहां एक तालाब और एक मन्दिर है जो आज भी द्रोणाचार्य नामसे पुकारा जाता है। शहरके पास ही यमुना नदी बहती है। यहां घी, चीनी और शस्यका व्यापार होता है।

दनखर—पञ्जाबके काङ्गडा जिलेकी एक प्राचीन राजधानी। यह अक्षा ३२°५' उ० और देशा० ७८°१५' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ७१२ है।

दनगा (हिं० पु०) खेतका छोटा टुकड़ा।

दनगोधा—त्रिपुराके अन्तर्गत साचर नदीके किनारे एक ग्राम। यहां वाणिज्य व्यवसायकी अच्छी वृद्धि है।

दनदनाना (हिं० क्रि०) १ दन दन शब्द करना। २ आनन्द करना, खुशी मनाना।

दनमणि (हिं० पु०) सूर्य।

दनादन (हिं० वि०) दन दन शब्दके साथ।

दनायुस् (सं० स्त्री०) दक्षको कन्या, कश्यपकी स्त्री। इनके चार पुत्र थे—विक्षर, वल, वीर और वृत्र (भारत आदि ६५ अ०) दनायुस्के पुत्र दानव नामसे प्रसिद्ध है।

दनु (सं० स्त्री०) १ दक्षकी एक कन्या जो कश्यपकी व्याही थी। इसके चालीस पुत्र हुए थे जिनके नाम ये हैं—विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशङ्कु, गगनमूर्द्धा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपद, एकचक्र, विरुपाक्ष महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चन्द्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रलम्ब, नरक, वातापी, शठ, वनायु और दीर्घजिह्व। ये सब दानव कहलाते हैं। इनमे जो चन्द्र और सूर्य हैं, वे देव सूर्यसे भिन्न है। २ एक दानवका नाम, जो श्रीदानवका पुत्र था।

दनुज (सं० पु०) दनोर्जायते जन-ड। असुर, राक्षस।

दनुजदलनी (सं० स्त्री०) दनुजस्य दलनी। असुरनाशिनी, दुर्गा।

दनुजद्विष् (सं० पु०) दनुजानां असुराणां द्विट शत्रुः वा दनुजान् द्वेष्टि द्विष-क्विप्। १ देवता। (त्रि०) २ दनुजशत्रु, जो असुरके दुश्मन हों।

दनुजराय (हिं० पु०) दानवोंका राजा हिरण्यकश्यप।

दनुजारि (सं० पु०) दनुजस्य अरिः ६-तत्। दनुजशत्रु, देवता।

दनुजेन्द्र (सं० पु०) दानवोंका राजा रावण।

दनुजेश (सं० पु०) १ हिरण्यकश्यप। २ रावण।

दनुष (सं० पु०) राक्षस।

दनुसंभव (सं० पु०) सम्भवत्यस्मात् संभू-अप् दनोः सम्भवः। दनुके पुत्र, दानव।

दनुसूनु (सं० पु०) दनोः सूनुः। दनुकी सन्तान, दानव।

दन्त (सं० पु०) दम-तन् (हसिमृग्रिणिति। उण् ३।८६) १ अद्रिकटक, पर्वतका मध्य भाग। २ कुञ्ज, हाथीका दांत। ३ पर्वतनितम्ब, पहाडका ढालुवां किनारा। ४ सानु, अधित्यका, ऊंचा पथरीला मैदान। ५ मुखके भीतर चर्वण साधन अस्थिभेद, अंकुरके रूपमें निकली हुई हड्डी जो जीवोंके मुंह, तालु, गले और पेटमें होती है और आहार भखाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खोदने इत्यादि कामोंमें आती है, दांत। इसकी संख्या बत्तीस है। पर्याय—रदन, दशन, रद, द्विज, खरु। (शब्दरत्नावली)

आहार करनेकी नलीसे लेकर मुखके भीतर संलग्न जितने कठिन पदार्थ है, वे दांत कहलाते हैं। प्राणीमात्रको हो दांत होते हैं, किन्तु आहार्य द्रव्य तथा अभ्यासका पार्थक्यके अनुसार दांत भी पृथक् पृथक् होते हैं, दांतोंकी ऐसी पृथक्तासे प्राणीतत्त्वविदोंको प्राणीको श्रेणीविभाग करनेमें बहुत सहायता मिली है।

शारीरतत्त्वविद् पण्डितोंके मतसे दांत तीन भागोंमें विभक्त है, पहला मस्तक (Crown), दूसरा जड़ (Rood) और तीसरा ग्रीवा (Neck)। प्रत्येक दांतके भीतर एक धमनी और एक स्नायु प्रवेश करती है तथा प्रत्येकके बीचमें एक छोटा गड्ढा देखा जाता है। इस गड्ढेके भीतर पल्प (Pulp) अर्थात् दांतके लिए एक

कोमल रक्तपूर्ण और सचेतन पदार्थ देखनेमें आता है। दांतको लम्बे रूपसे छेद करनेसे उसमें चार पदार्थ देखे जाते है-(१) डेण्टाइन (Dentine), (२) सिमेण्ट वा क्रुष्टापिट्रोसा (Cement or creusta petrosa), (३) ऐनामेल (Enamel) और (४) पल्प (pulp)
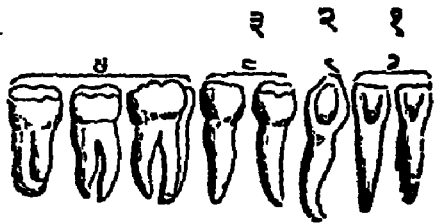
१ डेण्टाइन—यह दांतका प्रधान अंश है। इसके भी फिर तीन भेद है—(१) दृढ वा शुद्ध डेण्टाइन (Hard or true dentine), (२)भासो डेण्टाइन (vaso dentine), (३) अस्थिशो डेण्टाइन (osteo dentine)। डेण्टाइन सिमेण्ट और एनामेल द्वारा आवृत रहता है। इसमें अनेक छोटे छोटे नल और गह्वर तथा मृण्मय कणिका देखी जाती हैं। इन सब सूक्ष्म नलों और गह्वरोंमें चूर्णखण्डक कणिका (Calcareous particles) तथा एक प्रकारका वर्णहीन तरल पदार्थ रहता है। डेण्टाइनके मध्य स्थानमें पल्प नामका गह्वर देखा जाता है। सूक्ष्म सूक्ष्म नलों और गह्वरोंके मुख इसी पल्प गह्वरमें लगे रहते है।
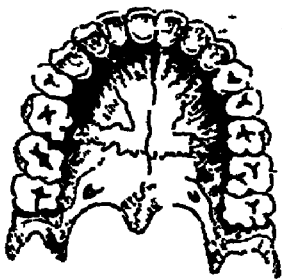
इनमेंसे प्रत्येकको एक एक वहिरावरण है जिसे डेण्टाल सिद् (dental sheath) वा दन्तावरण कहते हैं।

जिस मूल रक्तवहा नाडोमय पल्प (Primitive vascular pulp) द्वारा डेण्टाइन परिपुष्ट होता है, वह जब स्थायीरूपसे चूर्णकविहीन रहता है, तब लाल कणिकामय रक्तवहा नाडी द्वारा व्यूहतन्तु वा झिल्लीमें (Tissue) लाया जाता है। इस प्रकारके डेण्टाइनको भासो डेण्टाइन (vaso dentine) कहते है।

क्षुद्र कोषमय (cellular basis) रक्तवहा नाड़ीके (vascular canals) चारों ओर जब समकेन्द्रिक स्तर पर सज्जित रहता है, तब डेण्टाइनका कुछ रूपान्तर हो जाता है। इस अवस्थाके डेण्टाइनको अस्थिशो डेण्टाइन (osteo dentine) कहते हैं।

२। सिमेण्ट वा क्रुष्टा पिट्रोसा अर्थात् दाँतका कठिन पदार्थ—यह दाँतके मूल भागको ढंक रहता है। हाथी तथा और कितने प्रकारके जन्तुओंके दाँतोंमें सिमेण्ट अधिक मात्रामें रहता है।

३। एनामेल—दाँतके व्यूहतन्तु (Tissue)-में यह सबसे कठिन है। यह दाँतके मस्तक (crown) को आवृत किये रहता है।

४। पल्प—ये डेण्टाइनके मध्यस्थानको अपनाये हुए है। इसमें रक्तवहा नाडो, स्नायु और संयोगतन्तु देखे जाते है।

डेण्टाइन और भासोडेण्टाइनयुक्त दन्तमत्स्य ही साधारणतः देखे जाते है। मनुष्य और मांसाहारी जन्तुओंके दाँत देखनेसे ही पता लगता है कि उनमें डेण्टाइन और एनामल भरे है। किन्तु उनके दाँतके मस्तक (crown) पर सिमेण्टका एक पतला आवरण रहता है।

मनुष्यके दो वार दांत निकलते हैं—१ दुग्धदन्त (यह दाँत बहुत कम समय तक रहता है) और २ दोर्घकाल स्थायी दन्त।

दुग्धदन्त—ये दो वर्षको अवस्थामें ही निम्नलिखित प्रणालीक्रमसे निकलते है।

१। ऊपरके चौभड़के बीच ४ इनसाइजर वा कोटक दन्त जो ८से १० मास तक रहते हैं।

२। नीचेके चौभड़के दोनों ओरके इनसाइजर और ४ मोलर वा चर्वणदन्त—१२से १४ मास।

३। ४ क्यानाइन वा श्वोवनदन्त—१८से २० मास।

४। ४ पश्चाद्भागके मोलर २०से २४ मास।

दोर्घकालस्थायी दन्त—छः वर्षकी अवस्थाके भीतर ही दुग्धदन्त झड़ जाते है। पीछे दोर्घकाल स्थायी दन्त निकलते है। वारह या तेरह वर्षके भीतर दाँत निकल आते है। २१ या २२ वर्षकी अवस्थामें जब आखिरी चौभड़ या अकिलदाढ़ (wisdom-tooth) निकलती है, तब ३२ दाँत पूरे हो जाते है। निम्न-

लिखित प्रणाली-क्रमसे वे सब दाँत निकलते हैं।

१। प्रथम मोलर ६ वर्षकी अवस्थामें,
२। दो मध्यके इनसाइजर ७ ,, ,,
३। दो समीपके ,, ८ ,, ,,
४। प्रथम वाइकाम्पिड वा द्विमूली ९ ,, ,,
५। द्वितीय ,, १० ,, ,,
६। क्यानाइन ११-१२ ,, ,,
७। द्वितीय मोलर १२-१३ ,, ,,
८। ज्ञानदन्त (अकिलदाढ़ १७-२१ ,, ,,

दुग्धदन्तके मोलर दन्तकी जगह पर वाइकाम्पिड दन्त और मोलरदन्तके पीछे तीन तीन करके स्थायी-मोलर दन्त निकलते हैं। ३२ दाँतोंमें प्रत्येक दाढ़के आधे भागमें २ इनसाइजर १ क्यानाइन, २ वाइकाम्पिड और ३ मोलर रहते हैं, सुतरां कुल ८ इनसाइजर, ४ क्यानाइन, ८ वाइकाम्पिड और १२ मोलरदंत है। इनमेंसे ८ इनसाइजर दंत सामनेकी दो दाढ़ोंमें रहते है। ये दांत लम्बे और चिपटे होते हैं। इनमें धार रहती है। जिससे खाद्य पदार्थ आसानीसे काट कर खाया जाता है।

दाढ़के इनसाइजर दाँतके पासही ४ क्यानाइन दंत हैं। ये दांत लम्बे होते है और इनको एक बगल चिपटी होती है।

क्यानाइन दंतके बाद ही ८ वाइकाम्पिड दंत रहते हैं जिन्हें प्रिमोलर ( Premolar ) दंत भी कहते है। इनको जड ( Fang ) का अगला भाग दो खण्डोंमें विभक्त रहता है। इनके पार्श्वको ओर गड्ढ़ा, ऊपरमें चिपटा और दोनों बगल २ गुटिका देखी जाती है। नीचेके जबड़ेके बीचमें दो इन्साइजर हैं जो ६-८ मासकी अवस्थामें निकलते है।

सबसे पीछे १२ मोलर दाँत रहते हैं। इनका शिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिनसे पीसा या चबाया जाता है।

ज्ञानदन्त या अकिलदाढ़ एकभी लम्बी नहीं होती।

दांतका रासायनिक पदार्थ—

दन्तास्थिमें सैकड़े २३ भाग जान्तव पदार्थ
क्रुष्टा पिट्रोसा वा सिमेण्ट ,, ३० भाग ,, ,,
डेण्टाइन ,, २८ भाग ,, ,,
एनामेल ,, ३.५ भाग ,, ,,

दांतोंमें जो खनिज पदार्थ देखे जाते हैं, उनमें क्यालसिक फस्फेट, क्यालसिक कार्बनेट, क्यालसिक फ्लुटोराइड और म्याग्निसिक फस्फेट प्रधान हैं।

दांत देख कर कौन जन्तु किस श्रेणीका है तथा उसके अभ्यासादि किस प्रकारके हैं, उसका निरूपण किया जा सकता है। हमलोग देखते हैं, कि मांसाहारी जन्तुओंके मोलर दन्त पेषणदन्तके जैसा न हो कर तीक्ष्णधारविशिष्ट होते हैं। कीड़े मकोड़े खानेवाले जन्तुओंके मोलर दांत दंदानेदार तथा खूब बारीक होते हैं।

फल खानेवाले जन्तुओंके मोलर दांतोंके ऊपर गोलदाने से रहते हैं और पाकभोजी जन्तुओंके मोलर दांतोंका ऊपरी भाग चौड़ा तथा असमान रहता है।

मनुष्य तथा और दूधपिलानेवाले जीवोंमें दांत दाढ़ और ऊपरी जबड़ेके मांसमें लगे रहते हैं। मछलियों और सरीसृपोंके दांत केवल जबड़ोंमें हो नहीं, तालुमें भी होते है। पक्षियोंको चोंच ही दांतका काम करती है, उनके दांत नहीं होते। असली दांत मसूड़ोंके गड्ढोंमें जमे रहते हैं। सरीसृप आदिमें दांतका जबड़ेको हड्डीसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। रीढ़वाले जन्तुओंमें मुंहको छोड़ स्रोत अर्थात् भोजन भीतर ले जानेवाले नलमें और कहीं दांत नहीं होते। बिना रीढ़वाले छोटे छोटे जन्तुओंमें दांतोंकी स्थिति और आकृतिमें परस्पर बहुत विभिन्नता है। किसीके मुंहमें किसीको अंतड़ीमें अर्थात् स्रोतके किसी स्थानमें दांत हो सकते हैं। केकड़ा, झिंगवा आदिके उदरमें महीन महीन दांत या दानेदार हड्डियां सी होती हैं। जलके भीतर बहुतसे ऐसे कोड़े है जिनका मुंह गोल या चक्राकार होता है। ऐसे कीड़ेके मुंहके किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दांतोंका मण्डलसा होता है। मनुष्य और बनमानुसमें दन्तावलि पूर्ण होती है।

दन्तोद्गमफल—बालक यदि सदन्त उत्पन्न हो, तो वह पितामाताका घातक होता है। जातबालकके पहले ही मासमें दांत निकलने पर पिताकी मृत्यु, दूसरे

मासमें निकलने पर माताकी और तीसरे मासमें निकल पर सहोदरकी मृत्यु होती है। चार मासमें दांत निकलना शुभजनक है। पांच मासमें दांत निकलनेसे सन्ततिबालक मिष्टभोजी और सुखी होता हैं, ६ मासमें निकलनेसे पण्डित, ७ मासमें बलवान्, ८ मासमें दरिद्र, ९ मासमें चोर और दश मासमें निकलनेसे उसीकी मृत्यु होती है। ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें दांत निकालना अच्छा है। यदि पूर्वोक्त अशुभजनक महीनोंमें दांत निकलें तो उसकी शान्ति करना आवश्यक है शान्ति करनेमें पहले ८ पुत्तलिका बना कर उन्हें सुगन्ध गन्धद्रव्योंसे अनुलिप्त करते हैं। पीछे शुक्लपुष्प द्वारा स्थापित कर ब्राह्मणपूजा और होमादि करते हैं।*

रतिक्रीडामें दन्ताघातका स्थान—मैथुनके समय स्तन, गण्ड, ओष्ठ और अधर इन पांच स्थानोंमें दाँत गड़ाना स्त्रियोंके लिये सुखजनक है।

"स्तनयोर्गण्डयोश्चैव ओष्ठे चैव तथाधरे।
दन्ताघातः प्रकर्त्तव्यः कामिनीनां सुखावहः॥" (कामशास्त्र)

गर्भकालके सातवें मासमें बालकके दन्तमूलका प्रादुर्भाव होता है।

दन्तक (सं० पु०) दन्ते दन्तमार्जने प्रसितः कन्। १ दन्त मार्जन प्रसित, वह पीप जो दांत मलनेसे निकलती है। दन्त इव कन्। २ शैलशृङ्ग, पहाड़की चोटी। ३ पर्वतसे बहिर्निर्गत पाषाणभेद, पहाड़से निकलनेवाला एक प्रकारका पत्थर। स्वार्थे कन्। ४ दन्त, दांत।

दन्तकथा (सं० स्त्री०) जनश्रुति, ऐसी बात जिसे बहुत दिनोंसे लोग एक दूसरेसे सुनते चले आये हों।

दन्तकराल (सं० पु०) दंतरोगभेद, दाँतकी एक प्रकारकी बीमारी।

दन्तकर्षण (सं० पु०) दंतान् कर्षति कृष-ल्यु। जम्बीर, जंभीरी नीबू।

दन्तकाष्ठ (सं० क्ली०) दंतधावनार्थं काष्ठं। दंतधावनकाष्ठ, दतुवन।

दन्तकाष्ठका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है,-वल्ली लता, गुल्म और वृक्षोंके प्रभेदके कारण हजारों प्रकारके दंतकाष्ठ हो सकते हैं। इस कारण किस किस वृक्षका दंतकाष्ठ शुभजनक है और किस किस वृक्षका अशुभजनक सो लिखते हैं। अज्ञातपूर्व काष्ठका वा पत्रसमन्वित, युग्मपर्व, पाटित ऊर्द्ध्वशुष्क और त्वक्‌विहीन दंतकाष्ठसे दंतधावन नहीं करना चाहिए। वैकङ्कत, श्रीफल और काश्मीरी वृक्षकी दतुवन करनेसे ब्रह्मसम्मिनी द्युतिः प्राप्त होती है। हेमतरुवृक्षके दंतकाष्ठसे उत्तमा भार्या, वटवृक्षसे वृद्धि, अर्कवृक्षसे तेजोवृद्धि, मधुक वृक्षसे पुत्रलाभ और ककुभवृक्षसे सबोंका प्रियत्व प्राप्त होता है। शिरीष और करञ्ज वृक्षका यदि दंतकाष्ठ हो, तो लक्ष्मी; प्लक्षका हो, तो अभीप्सित अर्थसिद्धि; जातिवृक्षका हो तो मनुष्यत्व प्राप्ति; अश्वत्थ वृक्षका हो, तो प्राधान्यलाभ, वदरी और वृहती वृक्षका हो तो आरोग्य और आयुवृद्धि, तथा विल्व और खदिर वृक्षका हो, तो ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। नीमकी दतुवन करनेसे अर्थ प्राप्ति, करवीरसे अन्नलाभ, भाण्डीरसे अर्थ तथा अन्नलाभ और अर्जुन वृक्षकी दतुवन करनेसे शत्रुनाश होता है। शाल, अश्वकर्ण, भद्रदारु और आटरूषक वृक्षके दंतकाष्ठका व्यवहार करनेसे गौरव प्रकाश और प्रियंगु, अपामार्ग, जंबू तथा दाड़िमका व्यवहार करनेसे सब प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं। पूर्व और उत्तर मुख बैठ कर दतुवन करनी चाहिये। दतुवन करके मुख धो लेना चाहिये। बाद उस दतुवन को किसी अच्छे स्थानमें फेंक देना चाहिये। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि दंतकाष्ठके प्रशस्त दिक्की ओर गिरनेसे शुभकर और यदि वह ऊपरमें हो कहीं पर अटका रहे, तो अत्यंत शुभजनक फल प्राप्त होता है। ऐसा नहीं होनेसे अशुभकर फल मिलता है।

प्रातः कालमें शौचादि कार्य सम्पन्न करके दतुवन करनी चाहिए। तिक्त, कटु, कषाय, सुगन्धि, कण्टक, युक्त और चीरिकाष्ठ सब दतुवनोंमें श्रेष्ठ है।

निषिद्धकाष्ठ—गुवाक, ताल, हिंताल, केतकी, खर्जूर और नारियल ये सब वृक्ष तृणराज नामसे प्रसिद्ध हैं। अतः इनका दंतकाष्ठ काममें न लाना चाहिए।

खदिर, कदंब, करञ्ज, वट, तिंतड़ी, वेणुपृष्ठ, आम्र, निंब, अपामार्ग, विल्व, अर्क तथा डूमर इन सब वृक्षोंके दंतकाष्ठ प्रशस्त माने गये हैं।

दंतकाष्ठका परिमाण—वैश्योंके लिए बारह अङ्गुली

का शूद्रोंके लिए छः उंगलोका और स्त्रियोंके लिए चार उंगलीका दंतकाष्ठ बतलाया है ।

'द्वादशांगुलंच वैश्यानां शूद्राणांतु षडंगुलम् ।
चतुरंगुलमानेन नारीणां विधिरुच्यते ॥" (मरीचि)

दन्तधावन देखो ।

दन्तकाष्ठक (सं० क्लो०) ह्रस्वं काष्ठं काष्ठां दन्त-धावनयोग्यं काष्ठकं । आहुल्य वृक्ष, तरवटका पेड़ ।

दन्तकूर (सं० पु०) दन्ताः कूरं अन्नमिव चर्व्यंत्वात् यत्र । संग्राम, युद्ध, लड़ाई ।

दन्तकेतु (सं० पु०) लघुनिम्बू वृक्ष, छोटा नोबूका पेड़ ।

दन्तक्रूर (सं० पु०) दन्ताः क्रूराः यत्र । १ देशविशेष, एक देशका नाम । २ दंतकूर देशके राजा ।

(भारत द्रोण प० ६० अ०)

दन्तग्राही (सं० त्रि०) दंतं गृह्णाति ग्रह-णिनि । जो दंत नष्ट करता हो, दांत बरबाद करनेवाला ।

दन्तघर्ष (सं० पु०) दंतस्य घर्षः ६-तत् । सभी दांतोंका परस्पर घर्षणभेद, दांत पर दांत दबाकर घिसनेकी क्रिया, दांतका किरकिराना । भोजन कर लेने पर भी जिसका हृदय क्षुधासे पोड़ित हो और दांत किर-किराते हों उसकी आयुका शेष समझना चाहिए । निद्राकी अवस्थामें बच्चे कभी कभी दांत किरकिराते हैं जो अशुभ समझा जाता है । रोगीके पक्षमें यह और भी अशुभ लक्षण है ।

दन्तघात (सं० पु०) १ दंतस्य घातः दंतेन वा । दंत द्वारा आघात, दाँतसे काटना । २ निम्बूवृक्ष, नीबूका पेड़ ।

दन्तचाल (सं० पु०) दंतानां चालचलनमत्र । वात रोपद्रवभेद, दाँतका हलना । वृद्ध होने पर दांत आपसे आप हलने लगते हैं ।

दन्तच्छद (सं० पु०) दंताञ्छादयन्तेऽनेन छदि-णिच् घ, ततो ह्रस्वः (पुंसि संज्ञायां घ प्रायेण । पा० ३।३।११८) ओष्ठ, ओंठ ।

दन्तच्छदी (सं० स्त्रो०) मधुरविंबो, बिंबाफल, कुंदरू ।

दन्तच्छदोपमा (सं० स्त्री०) दंतच्छदस्य ओष्ठस्य उपमा सादृश्यं यत्र । विंबीलता, बिंबाफल, कुंदरू । कविने इसके साथ ओष्ठको उपमा दी है, इसीसे इसका नाम दन्तच्छदोपमा पड़ा है ।

दन्तजात (सं० त्रि०) जातो दन्तोऽस्य, निष्ठान्तत्वात् पर-निपातः । १ जातदन्त, जिसे दांत निकल आए हों । २ दांत निकलनेके योग्य । गर्भोपनिषद्में लिखा है, कि बच्चेको सातवें महीनेमें दांत निकलना चाहिए । यदि उस समय दांत न निकले, तो अशौच लगता है ।

दन्तजाड़ (सं० क्लो०) दंतानां मूलं कर्णादित्वात् जाह । दंतमूल, दाँतकी जड़ ।

दन्तताल (सं० पु०) ताल देनेका एक प्रकारका प्राचीन बाजा ।

दन्तदर्शन (सं० क्लो०) दंतानां दर्शनं दृश-णिच्-ल्युट । युद्ध या चिड़चिड़ाहटमे दांत निकालनेको क्रिया । युद्धमें सबसे पहले दांत निकालना, पीछे शब्द करना और तब युद्ध करना चाहिए । (महाभारत बन प० ७१ अ०)

दंतधावन (सं० क्लो०) दंतानां धावनं । १ दंतमार्जन, दांत धाने या साफ करनेका काम, दातुन करनेको क्रिया । दंतानां धावनं यस्मात् । २ दंतकाष्ठ, दतुवन, दतून ।

प्रातःकाल उठकर सभोको दतुवन करना आवश्यक है । दतुवन करनेसे मुखको दुर्गन्ध आदि जाती रहती हैं, दाँत परिष्कार और अधिक दिन तक स्थायी रहते हैं । इसो कारण दतुवन करना हर एकका अवश्य कर्तव्य है ।

दंतधावनका विषय आह्निकतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है,—

"मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्षयेत् दंतधावनम् ॥"

(आह्निकतत्त्व)

मुंह बासी रहनेसे दुर्गन्ध निकलती है, इसीसे यत्न-पूर्वक दंतधावन करना उचित है ।

सबेरे यथाविधि शौचकर्म सम्पन्न करनेके बाद दतुवन करके स्नान करना चाहिए । दांत परिष्कार करनेमें दंतकाष्ठ ही एक मात्र प्रशस्त है । इस कारण दंत-धावन करनेके लिए दंतकाष्ठका इन्तजाम करना अवश्य कर्तव्य है । कोमल साथ साथ कड़ ुई तीती और कसैली दतुवन जिससे दांतके मांसमें असर न पड़े, दंतधावनके लिए प्रशस्त है । कनेर, आम, करञ्ज, मौलसरी आदि

कण्टक वृक्षसे तथा क्षीरयुक्त वृक्षसे जो कड़ुआ, कसैला, तीता और सुगन्धित हो, दंतकाष्ठ संग्रह करना चाहिए। दंतकाष्ठ देखो। दक्षिण और पश्चिममुखो होकर दतुवन करना निषेध है। यदि कोई मोहवश दक्षिणमुखी हो कर दतुवन करे, तो उसको आयुक्षय होती हैं, पश्चिममुखी हो कर दतुवन करनेसे रोग होता है। बाद मरने पर उसे नरक जाना पड़ता है।

"दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पश्चिमाभिमुखस्तथा।
न दन्तधावनं कुर्यात् कुर्याच्चेत् नारकी भवेत्॥"
(आह्निकतत्त्व)

पूर्व और उत्तरमुखो होकर दतुवन करना प्रशस्त है। दाँतोंको ऊपर नीचे भलीभाँति दतुवनसे घिसकर मुंहको जलपूर्ण करनेसे तथा चक्षुको जलसे धोनेसे दृष्टि प्रसन्न होती है। अमावस्या, षष्ठी, नवमी, प्रतिपद्, एकादशी और उपवासमें तथा श्राद्धवासरमें और रविवारके दिन लकड़ीसे दतुवन न करनी चाहिए। इन सब निषिद्ध दिनोंमें तथा उस स्थानमें जहाँ दतुवन न मिलती हो, वहां कपड़ेसे दाँत और जीभ घिस कर बारह बार कुल्ली करके मुंह साफ करना चाहिए। अर्दित, कर्णशूलग्रस्त, दंतरोगी, नवज्वर, शोषरोगी, कासरोगी और मूर्च्छाव्याधियुक्त मनुष्योंको दंतकाष्ठका व्यवहार करना बिलकुल मना है। (राजव०)

दन्तधावनका गुण—प्रतिदिन दतुवन करनेसे मुंहका कड़ुआपन तथा जीभ और दाँतके मैल जाते रहते हैं और मुंहको रुचि होती है। दाँतोंको तर्जनीसे कदापि घिसना न चाहिये, इसके लिये मध्यमा, अनामिका वा वृद्धाङ्गुष्ठ प्रशस्त है। सूर्योदयके पहले दतुवन करना उचित है। जो सूर्योदय होने पर दतुवन करते हैं, उनकी सब क्रियायें भ्रष्ट होती है। स्नान करते वक्त दतुवन करनेसे उनके पितृगण निराश हो कर चले जाते हैं तथा देवता लोग उनकी पूजा ग्रहण नहीं करते। जो मध्याह्न और अपराह्नके समय दतुवन करते हैं, उन पर देवता और पितृगण रुष्ट रहते हैं।

"सूर्योदये द्विजश्रेष्ठ यः कुर्याद्दन्तधावनं;
नित्यक्रियाफलं तस्य सर्वमेव विनश्यति॥
यः स्नानसमये कुर्यात् जैमिने दंतधावनं।
निराशाः पितरो यांति तस्य देवाः सुवर्षयः॥
दंतस्य धावनं कुर्यात् यो मध्याह्ने पराह्णयोः।
तस्य पुष्पं न गृह्णंति देवताः पितरो जलं॥"
(पाद्म क्रियायोगसार)

दन्तकाष्ठ कनिष्ठा उंगलीके अग्रभागके समान होना चाहिये। यह ब्राह्मणके लिये बारह उंगली, क्षत्रियके लिये नौ, वैश्यके लिये आठ और शूद्रके लिये छः उंगलीका होना आवश्यक है।

दन्तधावनका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—मनुष्य अपनी स्वास्थ्यरक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें जगें पीछे शौचकार्यादि करके हाथ पैर धो डालें। इसके अनन्तर दतुवन करें। दतुवन बारह उंगली लम्बी, कनिष्ठा उंगलिके अग्रभागके समान मोटी, सीधी तथा बिना गांठकी होनी चाहिये। बाद जिससे दन्तवेष्टित मांसमें चोट न पहुंचे इसके लिये दतुवनके अग्रभागको कूंची मरीखा बनावें और उसमें दन्तशोधन चूर्ण मिला कर दतुवन करें।

मधुर, त्रिकटु सर्षपतैल, सैन्धवलवण, तेज और वल्कल चूर्ण द्वारा प्रतिदिन शोधन तैयार करे। मधुरकाष्ठमें मोलकाष्ठ, कटुरसयुक्त काष्ठमें करञ्ज और तिक्तरसयुक्त काष्ठमें निम्ब प्रशस्त है। अतः इन्हीं सब पेड़ोंकी दतुवन अच्छी मानी गई है। इस प्रकार दन्तधावन करनेसे मुखकी विरसता, दन्तगतरोग, जिह्वागत रोग जाते रहते है तथा रुचि, मुखकी निर्मलता और लघुता उत्पन्न होती है। अकवनकी दतुवन करनेसे वीर्य लाभ होता है, वटसे शरीरकी कान्ति खुलती है। करञ्जसे जय होती है, पाकरसे अर्थ सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। खैरसे शरीरमें सुगन्ध निकलती है, बेलसे धन प्राप्त होती है, अपामार्गसे वाक्‌की सिद्धि होती है, आमसे नीरोगी होता है। कदम्बसे धारणशक्ति बढ़ती है, चम्पासे मति दृढ़ होती है। शिरीष वृक्षसे कीर्ति, सौभाग्य और परमायु प्राप्त होती है। अपाङ्ग वृक्षसे धारण शक्ति बढ़ती है, दाड़िम, अर्जुन और कूटज वृक्षसे दन्तधावन करनेसे मनुष्य सुन्दर आकृतिसम्पन्न होता है। जाती, तगर और मन्दारपुष्पकाष्ठसे दुःस्वप्न दूर होता है। सुपारीके पेड़की दतुवन काममें न लानी

चाहिये, यह पहले ही कह चुके हैं। गलरोगी, तालुरोगी, ओष्ठरोगी, जिह्वा और दंतरोगी, मुख और मुखशोथरोगीको दतुवन नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य दुर्बल हो, जिसकी पाचनशक्ति कम गई हो, जो श्वास, कास, वमि, हिक्का और मूर्च्छा आदि रोगोंसे ग्रसित हो, जो मदरोगसे, शिरोरोगसे पीड़ित हो, जो पिपासित, श्रान्त और मद्यपानसे क्लांत हो गया हो तथा जो अर्दित रोगसे, कर्णशूलसे, नेत्ररोगसे, नवज्वरसे और हृद्रोगसे आक्रांत हो, उसे दंतकाष्ठ वर्जन करना कर्त्तव्य है। दतुवन कर चुकनेके बाद जीभी करनी चाहिये, तब कुल्ली करके मुंह अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। (भावप्रकाश)

धावयत्यनेन धावि-ल्युट्। ३ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। ४ गुच्छ करञ्ज, करञ्जका पेड़। ५ बकुल, मौलसिरी।

दन्तधावनक ( सं० पु० ) दंतधावन, स्वार्थे कन्। दंतधावन, दातुन करनेको क्रिया।

दन्तपत्र (सं० क्ली०) दंतइव पत्राणि अस्य। १ कर्णाभरण विशेष, ( Earing ) कानका एक गहना। २ गजदंतनिर्मित पत्राकार कर्णभूषणभेद, पत्तेके आकारका गहना जो हाथीके दांतका बना होता है।

दन्तपत्रक ( सं० क्ली० ) कुंदपुष्प, मकरंद।

दन्तपवन (सं० क्ली०) दंतं पुनाति अनेन पू करणे ल्युट्। १ दंतकाष्ठ, दातुन, दतुवन। भावे ल्युट्। २ दंतधावन, दांत साफ करनेका काम।

दन्तपात (सं० पु०) दंतस्य पातः ६-तत्। १ दंतका पतन, दांतका झड़ना। २ घोड़ोंकी वह अवस्था जब उसके दांत आपसे आप झड़ने लगते हैं। वृहत्संहितामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

जब घोड़ेके छः सफेद दांत निकल आवें, तब उसे शिशु समझना चाहिये। वे सब दांत जब कषाय वर्णके हो जांय, तब उसकी अवस्था दो वर्षकी जाननी चाहिये। मध्यम और अंतके दांतोंके झड़ने वा समुदित होनेसे घोड़ेकी उमर ३से ५ वर्ष तककी होती है। दांतोंमें जो दाग पड़ जाता है उसका नाम सन्दंश है; अथवा जबड़ेके दोनों ओर एक साथ जो दो दांत निकलते हैं, उसे भी सन्दंश कहते हैं। यह सन्दंश यदि काला, कुछ पीला, सफेद, कांचके जैसा, मक्खीके जैसा तथा शङ्खके जैसा हो जाय तो उसे यथाक्रम उत्तरोत्तर तीन तीन वर्ष अधिक उमर का जानना चाहिये। अर्थात् सन्दंशके काला होनेसे घोड़ेकी उमर ८ वर्षकी, पीला होनेसे ११ वर्षकी और सफेद होनेसे १४ वर्षकी होती है। अनन्तर घोड़ेके दांतोंमें छेद हो जानेसे उसकी उमर चौबीस वर्षकी, उनके हलनेसे सत्ताईस वर्षकी और झड़नेसे उसकी उमर तीस वर्षकी होती है, ऐसा जानना चाहिये।

(वृहत्संहिता ६६ अ० )

दन्तपार (हिं० स्त्री०) दाँतकी पीड़ा, दांतका दर्द।

दन्तपाली ( सं० स्त्री० ) दंतस्य पाली ६-तत्। १ दंताग्र, दांतका अगला भाग। तालु, ओष्ठ, अधर और दंताग्र प्रभृति यदि रक्त वर्णके हों तो सुख, वनिता, अर्थ तथा संतति प्राप्त होती है। २ शिशुदन्तरोग, बच्चोंके दांतका एक रोग।

दन्तपीठक ( सं० क्ली० ) दंतवेष्ट, दांतोंके ऊपरका मांस, मसूड़ा।

दन्तपुप्पुटक ( सं० पु० ) दंतरोगभेद, मसूड़ोंका एक रोग जिसमें वे सूज जाते और दर्द करते हैं।

दन्तपुर (दन्तपुरी)—बौद्धग्रन्थके मतानुसार प्राचीन कलिङ्ग राज्यका एक नगर। बौद्ध धर्मकी तूती जब चारों ओर बोल रही थी, तब यह नगर बहुत बढ़ा चढ़ा था। बौद्धाधिकारके पहले इसका क्या नाम था, मालूम नहीं। कलिङ्गराज ब्रह्मदत्तके समय यहां बुद्धदेवका दन्त स्थापित हुआ था और उसी पर एक मन्दिर भी बनवाया गया था, इसीसे इसका नाम 'दन्तपुर' या 'दंतपुरी' पड़ा है।

दन्तपुरका वर्त्तमान स्थाननिर्णय ले कर पुरातत्त्वविदोंमें बहुत मतभेद है। डा० राजेन्द्र लालमित्रने अपने उड़ीसाके पुरातत्त्वमें लिखा है, कि कलिङ्गनगरीमें पहले पहल बुद्धदंत स्थापित हुआ। वहांसे यह पिपलीके निकट एक मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया गया। राजेन्द्रपाल उक्त स्थानका नामोल्लेख करते समय उसे दंतपुर बतला गये हैं।

फार्गुसन साहबने सिंहलो बौद्धग्रन्थ दाठावंशको दुहाई दे कर प्रमाणित किया है, कि प्राचीन दंतपुरी नगरी ही यहांकी पुरी नगरी है। पुरीमें जगन्नाथदेवका मन्दिर जो वेदोवत् स्थानके ऊपर निर्मित है, वह फार्गुसन साहबके मतानुसार बौद्धोंके दहगोबके जैसा है और गठनप्रणाली भी ठीक उसोको तरह है। सुतरां जगन्नाथका मन्दिर हो दंतमन्दिर है और पुरी दंतपुरी नगरी है। किन्तु दाठावंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि क्षेम नामक बुद्धके एक शिष्यने बुद्धदेवको चितासे दाहकालमें एक दंत संग्रह किया। उन्होंने वह दंत कलिङ्गराज ब्रह्मदत्तको दे दिया। ब्रह्मदत्तने उस दंतके ऊपर एक मन्दिर बनवाया जिसका भीतरी भाग सोनेसे मढ़वा दिया था। ब्रह्मदत्तने मन्दिरका निर्माण किया, दहगोबका नहीं। ब्रह्मदत्तके वंशमें ३७०से ३८० ई०के समकालमें गुहशिव नामक एक राजा हुए। गुहशिव ब्राह्मणधर्मको श्रेष्ठता स्वीकार करते थे। वे ब्राह्मणके शिष्य तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिके पूजक थे। एक दिन राजधानी दंतपुरमें दंतोत्सव देख वे मुग्ध हो गये और बौद्ध बन गये। इस पर ब्राह्मणलोग बहुत बिगड़े और उन्होंने पाटलीपुत्रके राजा पाण्डुराजको यह समाचार कहला भेजा। पाण्डुराजने जब सुना कि उनके अधीनस्थ राजा ने दूसरा धर्म अवलम्बन कर लिया है, तब उन्होंने उन्हें कैद कर लानेके लिये चैतन्य नामक किसी सामन्त राजाको दलबलके साथ भेजा। चैतन्य दंतपुर जाकर दंतमन्दिरादि देख मुग्ध हो गये और उसी समय बौद्ध बन गये। किन्तु पाण्डुराजका आदेश जिससे उल्लङ्घन न हो सके। इस कारण युद्धमें राजा गुहशिवको परास्त और बन्दी कर दंतपुरसे दंत भी साथ ले वे पाटलीपुत्र पहुंच गये।

बुद्धदंतके पाटलीपुत्रमें आनेसे ही राज्यमें अनेक प्रकारको आश्चर्य घटनाएं होने लगीं। पाण्डुराज आप भी बड़े विस्मित हो गए। इस पर ब्राह्मणलोग नारायणके सर्वव्यापकत्व और असंख्य अवतारत्वकी कथाएं सुना सुना कर राजाको प्रबोध देने लगे, लेकिन फल कुछ भी न निकला। पाण्डु भी आखिरमें बौद्ध हो ही गए। उन्होंने दंतका एक मन्दिर भी बनवा दिया। पाण्डुके मरने पर गुहशिव दंत ले कर अपने राज्यको लौट आए। क्षीरधार नामक एक राजाने उन पर आक्रमण किया, किन्तु वे ही युद्धमें मारे गए। क्षीरधारके भतीजे जब राजा हुए, तब वे एक एक करके गुहशिवको तङ्ग करने लगे। उज्जयनीके राजपुत्र दंतकुमारने राजा गुहशिवकी कन्या हेममालासे विवाह किया था। गुहशिवने विपदको आशङ्का देख अपने जामातासे कहा, 'यदि युद्धमें मेरी मृत्यु हो जाय, तो दंत ले कर तुम सिंहलको चला जाना।' वैसा ही हुआ भी। युद्धमें गुहशिव मारे गए, राजपुत्र दंतकुमार स्त्रीके साथ दंत ले कर सिंहलको चल दिये। राहमें वे ताम्रलिप्तमें ठहरे और वहांसे जहाज पर चढ़ कर सिंहलको रवाना हुए। इस प्रसङ्गसे जाना जाता है, कि दंतपुर जगन्नाथपुरी नहीं है। फाहियान जब ५वीं शताब्दीमें पुरी आए थे, उस समय पुरी हो एक बड़ा बन्दर था और दक्षिण जानेके लिए इसी बन्दरमें जहाज पर चढ़ना होता था। दंतकुमार वैसा न कर सिंहल जानेके लिए जब तमोलुक गए थे, तब यह स्वीकार करना होगा, कि उसीके पास किसी स्थान पर दंतपुर अवस्थित था।

डा० राजेन्द्रलालने अपने उड़ीसाके प्रत्नतत्त्वमें लिखा है, कि मेदिनीपुरके अन्तर्गत जलेश्वरसे ६ कोस दक्षिणमें दांतन नामका जो स्थान है वही प्राचीन दंतपुर है। यह तमोलुकसे २५ कोस दूरमें पड़ता है।

इस दांतनके विषयमें जगन्नाथके पंडा कहते हैं, कि जगन्नाथ जब दक्षिणको आ रहे थे, तब उन्होंने इसी स्थान पर दंतधावन करके दंतकाष्ठ फेंका था। पंडा लोग यात्रियोंको मन्दिरमें एक चांदीको दतुवन दिखलाया करते हैं।

पुराविद् कनिंहमने स्वप्रणीत प्राचीन भूविवरणके ५१७वें पृष्ठमें रोमकपण्डित प्लिनीके भारतीय स्थान समूहके स्थाननिर्णय करते समय कहा है, कि प्राचीन कलिङ्गराज्य कलिङ्गन् अन्तरीपसे दंतगुड़ नगर तक विस्तृत था। यह कलिङ्गन अंतरीप वर्त्तमान कलिङ्गापत्तनके निकट और दंतगुड़ नगर प्लिनीके मतानुसार गङ्गाके मुहानेसे ५७४ मील दूर है। वर्त्तमान राजमहेन्द्री नगरकी दूरी गङ्गा-मुहानेसे प्रायः उतनी ही होगी।

सुतरां कनिंहमके मतानुसार राजमहेन्द्री ही प्लिनीकथित दंतगुड वा दंतपुर नगर है। प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा है, कि वर्त्तमान कलिङ्गपत्तनसे राजमहेन्द्री वा प्राचीन दंतपुरको दूरी केवल १५ कोस है।

राजमहेन्द्री जो दन्तपुर नहीं है, वह विश्वकोषके 'कलिङ्ग' शब्दमें देखो।

मेदिनीपुर जिलेमें दांतन नामका एक परगना है जिसका भूपरिमाण ३८०.३ वर्गमील है। इसका राजस्व १०८०६) रु० है। इसमें ३४ जमींदारी और ३३७ ग्राम लगते हैं। इस परगनेका प्रधान ग्राम दांतन है। यहां जगन्नाथदेवका एक मन्दिर है। प्रवाद है, कि अभिराम चौधरीके बहुत पहले यहांके मन्दिरको देवसेवाके लिये परगनेकी आय निर्दिष्ट थी। यहां दूसरे दूसरे देशोंसे बारोक चावल और ईखको आमदनी होती है।

दन्तपुष्प (सं० क्लो०) दंतइव शुक्लं पुष्पं यस्य। १ कतक फल, निर्मली। २ कुन्द, कुंदका फूल। ३ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़।

दन्तप्रक्षालन (सं० क्लो०) दंतस्य प्रक्षालनं। १ दंत-धावन दांत साफ करनेका काम। २ दंतकाष्ठ, दतुवन, दातुन। दन्तधावन देखो।

दन्तफल (सं० क्लो०) दंतइव शुभं फलं यस्य। १ कतक-फल, निर्मली। २ कपित्थ, कैथ।

दन्तफला (सं० स्त्रो०) दंतफल-टाप्। पिप्पली।

दन्तभङ्ग (सं० पु०) दंतस्य भङ्गः। दांतका टूटना।

दन्तभाग (सं० पु०) दंतसहितो भागः। गजाग्र भाग, हाथीके मस्तकके सामनेका भाग जहां दांत दिखाई पड़ते हैं।

दन्तमय (सं० त्रि०) दंतस्य विकार दंत-मयट्। १ दंत निर्मित, दांतका बना हुआ। २ दंतस्वरूप, दांतके जैसा।

शंख, पशुकी सींग, पशुकी हड्डियां वा दांतके बने हुए द्रव्य ये सब चौमवस्त्र (सनके रेशोंसे बने हुए कपड़े) को तरह गोमूत्र वा जलयुक्त सफेद सरसोंके चूर्णसे विशुद्ध होते हैं।

दन्तमल (सं० क्लो०) दंतलग्नं दंतस्य वा मलं। दंत-लग्नक्लेद, दांतकी मैल। इसका पर्याय—पुष्पिका है।

दन्तमांस (सं० क्लो०) दंतसंलग्नं मासं। दंत संलग्न मांस, मसूड़ा।

दन्तमूल (सं० क्लो०) दंतस्य मूलं। १ दंतका मूल, दांतकी जड़। २ दंतरोगभेद, दांतका एक रोग। दन्तरोग देखो।

दन्तमूलिका (सं० स्त्रो०) दंत इव शुक्लं मूलं यस्याः कप्, टापि अत इत्वं। दंतोवृक्ष, जमालगोटेका पेड़।

दन्तमूलीय (सं० पु०) दंतमूले भवः छ। तवर्गादि, ये वर्ण दंतमूलसे उच्चारण किये जाते हैं, इसीसे इनका नाम दंतमूलीय पड़ा है।

दन्तरञ्जन (सं० क्लो०) काशीष, कसोस।

दन्तरोग (सं० पु०) दन्तस्य रोगः ६ तत्। मुखरोगान्त-र्गत दन्तमूल सम्बन्धीय रोगभेद, दन्तपीड़ा, दांतका दर्द। इसका विषय सुश्रुत, भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है—

दन्तरोग—शीताद, दन्तपुप्पुटक दन्तवेष्टक, शौषोर, महाशौषोर, परिदर, उपकुश, दन्तवैदर्भ, अधिमांस और ५ प्रकारको नाडी ये पन्द्रह प्रकारके रोग दांतोंको जड़में हुआ करते हैं। दन्तमूलसे अकस्मात् दुर्गन्धयुक्त कृष्णवर्ण और क्लिन्न शोणित जब थोड़ा थोड़ा करके निकलता है और जब दांतका मांस शीर्ण हो पक कर गिरने लगता है, तब उसे शीताद नामक रोग कहते हैं। यह रोग कफ और शोणितसे उत्पन्न होता है।

दन्तपुप्पुटक—दो या तीन दन्तमूलोंमें जब अत्यन्त वेदना होती है और सूजन पड़ जाती है, तब उसे दन्त-पुप्पुटक रोग कहते हैं। इसकी भी उत्पत्ति कफ और रक्तसे है।

दन्तवेष्टक—दंतमूलसे पीप और शोणितके निकलने और उससे दंत चालित होने अर्थात् हलनेसे दंतवेष्टक रोग होता है। यह रोग दूषित शोणितसे उत्पन्न होता है।

शौषोर—दंतमें जब सूजन पड़ती, वेदना होती और रक्तस्राव होता है, तब उसे शौषोर रोग कहते हैं।

महाशौषोर—दंतमूलसे दांतोंके चालित होनेसे, तालु, ओष्ठ और दंतमूलके अवदीर्ण होनेसे तथा दंत

मूलके मांसके पकने पर मुखमें यन्त्रणा होनेसे शुण्डाशी-थीर रोग होता है।

परिदर—दंतमांसके शीर्ण होनेसे, निष्ठोवनके समय अर्थात् थूक फेंकते समय लेहके निकलनेसे परिदररोग होता है। यह रोग पित्त, रक्त और कफकर्त्तृक उत्पन्न होता है।

उपकुश—दंतमूलमें जब दर्द होता है और पक कर जब दाँत हलने लगते हैं, थोड़ो रगड़से जब शोणित निकलने लगता है, रक्तस्रावके बाद जब दंतमूल सूज जाता है और मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है, तब उसे उपकुश रोग कहते हैं। इस रोगकी उत्पत्ति रक्त-पित्तसे है।

दन्तवैदर्य—किसी तरह घर्षित होनेसे जब दंत-मूलमें दर्द मालूम पड़े और वह सूज जाय तथा सभी दाँत हलने लगे, तब उसे दंतवैदर्य कहते हैं। यह रोग किसी प्रकारके आघातसे उत्पन्न होता है। इसमें वायुकर्त्तृक स्वाभाविक दाँतोंसे अधिक दाँत निकलते हैं। उन सब दाँतोंके निकलते समय बहुत तीव्र वेदना होती है; किन्तु उनके निकल जाने पर पूर्वसी वेदना नहीं रहती, बहुत कुछ कम जाती है।

अधिमांसक—गालके भीतरके शेष भागके दाँतोंमें जब सूजन होती है और दर्द भी होता है तथा लेह गिरने लगता है, तब उसे अधिमांसक रोग कहते हैं। यह कफसे उत्पन्न होता है।

दन्तमूलमें पांच प्रकारकी नलियां उत्पन्न होती हैं यथा—दालन, क्रमिदंतक, दंतहर्ष, भञ्जनक, शर्करा, कपालिका और हनुमोक्ष।

दालन—जिससे दाँत विदीर्ण होनेके जैसा दर्द होने लगता है, उसे दालनरोग कहते हैं। इस रोगकी उत्पत्ति वायुसे है।

क्रमिदन्त—दाँतोंके कृष्णवर्ण छिद्रयुक्त और चालित होनेसे, उनसे रक्तस्राव निकलनेसे और अकारण हो अर्थात् बिना दाबनेसे हो कड़ कड़ शब्द करनेसे तथा दर्द मालूम पड़नेसे क्रमिदंतरोग समझा जाता है। यह रोग वायुसे उत्पन्न होता है।

दन्तहर्ष—दाँत जब शीतल वा उष्णस्पर्श बरदाश्त कर न सकें तब उसे दंतहर्ष रोग कहते हैं। इस रोगकी भी उत्पत्ति वायुसे है।

भञ्जनक—मुख और दंतभङ्ग होनेसे तथा अत्यन्त यातना होनेसे भञ्जनक रोग समझा जाता है। यह रोग कफ और वातसे उत्पन्न होता है।

दंतशर्करा—मलसञ्चित हो कर शर्कराकी तरह कठिन हो जानेसे दाँतोंके गुणकी हानि होती है। इसीको दंतशर्करा कहते हैं। इस दंतशर्कराके साथ जब दंतमूलका मांस नीचे झुक जाता है, तब उसे कपा-लिका कहते हैं। इस रोगमें दंतनष्ट हो जाते हैं। शोणितमिश्रित पित्तसे दंतरोग हो कर श्याम वा नील-वर्ण हो जानेसे श्यामदंतरोग समझा जाता है। वायु कर्तृक उपद्रव होने पर हनु जब सन्धिविशिष्ट हो जाता है, तब उसे हनुमोक्ष कहते हैं। इस रोगमें अर्दित वायु-का लक्षण देखा जाता है। (सुश्रुत मुखरोगनि )

दंतरोगकी चिकित्सा—शीताद नामक रोगमें रक्तको साफ कर सरसों, त्रिफला और मोथा इनके क्वाथको रसाञ्जनमें मिला कर कुल्ली करनी चाहिये। प्रियङ्गु, त्रिफला और मोथा इनके चूर्णका लेप तथा यष्टिमधु, उत्पल, पद्म और त्रिफलाके क्वाथकी नस लेनी चाहिये। शिरोविरेचन, नस्य और स्निग्ध भोजन भी इसमें विशेष हितकर है। दन्तवेष्टरोगमें लोध्र, रक्तचन्दन, यष्टिमधु, और लाक्षा इन सबका चूर्ण, मधु, घृत और शर्कराके संयोग-से यज्ञडुम्बुरका क्वाथ बना कर उससे कुल्ली करते हैं। शौषीररोगमें रक्तमोक्षण करके लोध्र, मोथा, रसाञ्जन और मधुको एक साथ मिला कर उनका लेप लगाते हैं और यज्ञडुम्बुरके क्वाथकी कुल्ली करते हैं। परिदर रोगमें शीताद रोगके जैसा प्रतिकार करना होता है। दंतोपकुश रोगमें वमन, विरेचन और शिरो-विरेचन करके काकडुम्बुर या गोजियाके पत्तोंसे शोणितको शान्ति करनी चाहिए। पीछे लवण और त्रिकटुको मधुके संयोगसे मञ्जन करना चाहिये। पीपर, सरसों, सोंठ और निचुलके फल इन सबको जल में सिद्ध कर कुछ उष्णावस्थामें ही कुल्ली करनी चाहिये। जीवकके साथ घीको पाक कर कुल्ली और नसका प्रयोग करना भी हितकर है। दंतवैदर्भ रोगमें शस्त्र द्वारा

दंतमूल संशोधित करके चारप्रयोग पूर्वक शीतल क्रिया करनी चाहिये। श्यावदन्तके उत्पन्न होने पर उन्हें उद्धृत करके अग्निका प्रयोग करना चाहिये। दंतमूलमें यदि अधिक मांसरोग हो गया हो, तो उसे काट कर वच, पीपर, पारा, सोहागा और यवचार इनके चूर्णको मधुके साथ प्रयोग करना अच्छा है। पीछे मधुके साथ पीपरके क्वाथको कुल्ली करनेको लिखा है। पटोल, त्रिफला और निम्ब इन कसैले पदार्थोंसे दंतमूलका साफ करना, शिरोविरेचन तथा धूमविरेचन लेना हितकर है।

दंतनालीकी चिकित्सा—जिस दंतमूलमें नाली उत्पन्न हुई हो, उस दंतको निकाल फेंकना चाहिये। शस्त्र द्वारा मांस काट कर चार वा अग्नि द्वारा शोधन करना चाहिये। नालीरोगमें दांतके नहीं निकालनेसे हनुप्राको हड्डी भेद कर नाली उत्पन्न हो जाती है। अतएव नालीरोगमें दंत वा भग्नास्थिको अलग कर देना उचित है।

जिस दंतमूलका बन्धन अस्थिर रहता है, उसमें यदि दंतशूल निकले, तो उसे निकाल फेंकना उचित नहीं है। उसके उखाड़नेसे लोहू अधिक निकलेगा और उससे अन्धता वा अर्दित नामक वायुरोग आदि कठिनसे कठिन रोग उत्पन्न हो जायगे। यदि दांत हिलते हों, तो जाती पुष्पका पेड़, मदन, स्वादुकण्टक और खदिर इनके क्वाथसे दंतमूल साफ करना चाहिये। दंतमूलमें नालीके उत्पन्न होनेसे नालीका पथ काट डालना चाहिये और तब जाती, मदन, कटुक, स्वादुकण्टक, खदिर, यष्टिमधु, लोध्र और मञ्जिष्ठा, इनके कषायमें तेलको पाक करके शोधनार्थ नालीके स्थानमें इसका प्रयोग करना चाहिये।

दंतहर्षरोगमें स्नेह (घृत वा तैल) वा त्रैवृत घृत, वातघ्न द्रव्यके क्वाथको कुल्लीका प्रयोग प्रशस्त है। स्नेह द्रव्यका धूम वा नस्य अथवा स्निग्ध द्रव्यका भोजन भी हितकर है। मांसरस, यवागु, दुग्ध, संतानिका, घृत, शिरोवस्ति और वातघ्न अन्यान्य प्रतिकार भी हितकर हैं। दंतशर्करारोगमें जिससे दंतमूल आहत न हो, इस प्रकारसे शस्त्रपात करके शर्कराको निकाल फेंकना चाहिये। दंतहर्षरोगमें जो सब प्रतिकार बतलाये गये हैं, वही इस रोगमें भी करने होते है। कपालिका रोग अत्यंत कष्टसाध्य होने पर भी पूर्वोक्त प्रतिकार उसके लिये हितकर है। क्रिमिदन्तरोगमें जिससे दांत हलने न पावे, इस प्रकारसे स्वेदका प्रयोग करके रसरक्तादिको निकाल देना चाहिए। पीछे वातघ्न अवपीडन और स्नेह गण्डूष तथा भद्रदार्व्यादिगणस्थ और वर्षाभू इन दो द्रव्योंका लेप देनेका विधान है। हिलते वाले दांतोंको उखाड़ कर दंतमूलके गड्ढेको चार वा अग्निसे दग्ध करना चाहिये। बादमें विदारी, यष्टिमधु, शृङ्गाटक और कसेरु इस सबके सहयोगसे दशगुने दूधमें तेल पाक करके नसका प्रयोग करना चाहिये। हनुमोक्षरोगमें अर्दित नामक वायुरोगके जैसा प्रतिकार करना होता है। अम्लफल और शीतल जलसे दंतधावन तथा अत्यंत कठिन द्रव्यभक्षण दंतरोगके लिये हितजनक नहीं है। (सुश्रुत मुखरोगचि०)

भावप्रकाशमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

नागरमोथा, हरीतकी, त्रिकटु, विडङ्ग और निम्बपत्र इन्हें गोमूत्र द्वारा पीस कर गोली बनाते हैं। पीछे उन गोलियोंको धूपमें सुखा लेते हैं। प्रतिदिन एक गोली मुंहमें रख कर रातको यदि सो जाय तो उससे निश्चय ही चलितदंत दृढ़ हो जाते हैं।

तैल वा घृत ८४ सेर, कल्कार्थ दुरालभा, खदिर काष्ठ, विट् खदिर, जामुनका छिलका, आमका छिलका, यष्टिमधु और नीलोत्पल प्रत्येक एक एक छटांक; क्वाथार्थ नीलझिण्टी (नीली कठसरैया) साढ़े बारह सेर, जल ६।।४ सेर, शेष ६ सेर। इस तैल वा घृतको पाक कर मुंहमें रखनेसे दंतरोग नष्ट होता है।

करालदन्त—संचित वायुकर्तृक दंतसमूह जब धीरे धीरे भयानक विकटाकृतिका हो जाता है, तब उसे करालदंत कहते हैं। प्रायः सभी प्रकारके दंतरोगोंमें लाक्षाद्यतैल उपकारी है। तैल ८४ सेर; कल्कके लिए लोध, कटफल, मञ्जिष्ठा, पद्मकेशर, पद्मकाष्ठ, रक्तचन्दन, नीलोत्पल और यष्टिमधु प्रत्येक एक एक पल; क्वाथके लिये उक्त मिश्रित द्रव्य ८२।।, जल ६।।४ सेर, शेष १६ सेर, लाक्षारस ८४ सेर और दूध ८४ सेर इस

तिलको पाक कर मुंहमें धारण करनेसे दालंन, दंतहर्ष, दंतमोक्ष, कपालिका, शीताद, पूतिवक्त्र, अरुचि और मुखवैरस्य नष्ट हो कर दांत मजबूत हो जाते हैं। (भावप्रकाश)

दन्तरोगो (सं० त्रि०) दंतरोगयुक्त, जिसे दांतका रोग हुआ हो।

दन्तलेखक (सं० त्रि०) दंतान् लिखति जीविकार्थं लिख ण्वुल् नित्यसमासः। दंतलेखनरूप जीविका युक्त, जो दंतलेखनसे अपनी जीविका चलाता हो।

दन्तलेखन (सं० क्लो०) अस्त्रविशेष। इसके द्वारा दांतको जड़के पास मसूड़े चीर कर मवाद आदि निकाले जाते हैं जिससे दांतको पोड़ा दूर हो जाती है। दंतशर्करा नामक रोगमें इस अस्त्रकी आवश्यकता होती है। इसका एक सिरा धारदार और चौकोना होता है और दूसरा खूब ...ला हुआ रहता है।

दन्तवक्र (सं० पु०) नृपविशेष। इन्होंने पृथुकीर्त्तिके गर्भ और वृद्धशर्माके औरससे जन्म ग्रहण किया था। ये करुष देशके राजा थे और अत्यंत प्रबल पराक्रान्त तथा दंतवक्र नामसे प्रसिद्ध थे। (हरिवंश ३४ अ०)

कृष्णने द्वारकामें रहते समय इन्हें मारा था। (भाग०) ये शिशुपालके भाई थे। शिशुपालके मारे जाने पर दतिहा नामक ग्राममें कृष्णने लड़ाईमें अपनी गदासे इनका प्राण संहार किया त्रेतामें यह कुम्भकर्ण और सत्ययुगमें हिरण्यकशिपु दैत्य हुआ था। (श्रीवृन्दावनलीलामृत)

दन्तवत् (सं० त्रि०) दंतः विद्यतेऽस्य दंत-मतुप् ततो मस्य वः। दंतविशिष्ट, जिसके दांत हों।

दन्तवल (सं० पु०) हस्ति, हाथी।

दन्तवल्क (सं० क्लो०) दंतस्य वल्कमिव। दंतावरण चर्मात्मक मांसभेद, दांतको जड़के ऊपरका मांस, मसूड़ा।

दन्तवर्त्ति (सं० स्त्रो०) दंतनिर्मिता वर्त्तिं। चक्रदत्तके अनुसार एक प्रकारकी बत्ती। वर्त्तिका देखो।

दन्तवस्त्र (सं० क्लो०) दंतानां वस्त्रं आच्छादकत्वात्। ओष्ठ, ओंठ।

दन्तवासस् (सं० पु०) दंतस्य वासः वस्त्रमिव आवरकत्वात्। ओष्ठ, ओंठ।

दन्तविघात (सं० पु०) दंतस्य विघातः। दंताघात, दांतका आघात।

दन्तविद्रधि (सं० पु०) दंतरोगभेद, दांतका एक रोग। दन्तरोग देखो।

दन्तवोज (सं० पु०) दंताइव वीजानि यस्य। दाड़िम, अनार।

दन्तवीणा (सं० स्त्रो०) एक प्रकारको वोणा जो दांतमें लगा कर बजाया जाता है।

दन्तवेदना (सं० स्त्री) दंतस्य वेदना ६-तत्। दंतव्यथा, दांतका दर्द।

दन्तवेष्ट (सं० पु०) १ दंतरोगभेद, दांतका एक रोग। स्वार्थे वान्। २ दंतवेष्टक, मसूड़ा। दन्तरोग देखो।

दन्तवैदर्भ (सं० पु०) दंतरोग भेद, दांतका एक रोग। दन्तरोग देखो।

दन्तव्यसन (सं० क्लो०) दंतस्य व्यसनं। दंतनाश, दांतका बरबाद होना।

दन्तशङ्कु (सं० पु०) सुश्रुतोक्त अस्त्रभेद, चीर फाड़का एक औजार यह जौके पत्ताके आकारका होता है।

दन्तशट (सं० पु०) दंतेषु शट इव ग्लानिजनकत्वात्। दंतशठ।

दन्तशठ (सं० पु०) दंतेषु शठ इव। १ जम्बीर, जंबीरी-नीबू। २ कपित्थ, कैथ। ३ कमरङ्गक, कमरख। ४ नागरङ्गक, नारङ्गी। ५ अम्ल, खटाई। जिनके खानेसे खटाईके कारण दांत गुठले हो जायं वे हो दंतशठ हैं।

दन्तशठा (सं० स्त्रो०) दंतेषु शठा। १ चाङ्गेरी, अमलोनी, खट्टानोनिया। २ क्षुद्राम्लिका, चुक, चूक।

दन्तशर्करा (सं० स्त्रो०) दंतस्य शर्करेव। दंतरोग विशेष, दांतोंका एक रोग जो मैल जम कर बैठ जानेके कारण होता है।

जिसके दांतोंमें मैल चीनीको तरह जम जाती है, उसीको दंतशर्करा कहते हैं। इसमें दांतके सब गुण जाते रहते हैं। गोरक्षककंटो (गोरखो) की जड़ पीस कर जलके साथ उसे तीन दिन तक पीनेसे यह रोग दूर हो जाता है।

दन्तशाण (सं० पु०) दंतानां शाण इव। निम्बकण, स्त्रियोंके दांतमें लगानेका रंगीन मंजन, मिस्सी।

दन्तशिरा (सं० स्त्री०) दंतानां शिरा यत्र। मसूड़ा।

दन्तशुद्धि (सं० स्त्री०) दंतस्य शुद्धि, ६-तत्। दाँतकी विशुद्धता, दांतकी सफाई।

दन्तशूल (सं० पु०) दंतस्य शूलद्दव, शूलवेदनवद् वेदनादायकत्वात्। दंतवेदना दांतकी पीड़ा।
दंतरोग देखो।

दन्तशोफ (सं० पु०) दंतस्य शोफ इव। दंत रोगविशेष, दंतार्बुद; दांतके मसूड़ोंमें होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसका पर्याय—दंतशूल, दंतशोफ और द्विजवर्ण है।

दन्तसंघर्ष (सं० पु०) दंतस्य संघर्षः। दाँतोंका घर्षण, दांतसे दांतकी रगड़। दंत संघर्षण नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है।

दन्तहर्ष (सं० पु०) दंतानां हर्षो यस्मात्। दंतरोग विशेष। जिसके दांत शीत और उष्ण सह्य न कर सके उसे दंतरोग हुआ है ऐसा समझना चाहिये। दंतरोग देखो। स्नान करते समय जिसका शरीर अत्यंत पीड़ित और दंतहर्ष उपस्थित हो जाय उसकी मृत्यु बहुत निकट समझी जाती है।

दन्तहर्षक (सं० पु०) दंतान् हर्षति हृष-णिच्-ण्वुल। जम्बीर, जंबीरी नीबू।

दन्तहर्षण (सं० पु०) दंतान् हर्षयति हृष-णिच ल्यु। जंबीर, जंबीरी नीबू।

दन्ताग्र (सं० क्ली०) दंतस्य अग्रं। दांतका अगला भाग।

दन्ताघात (सं० पु०) दंतान् आहंति आ-हन-अण्। १ निंबूक, नीबू। २ दशनाघात, दाँतका आघात।

दन्ताद (सं० पु०) सुश्रुतोक्त दंतखादक क्रमिरोगभेद, दांतको जड़ या सन्धिमें पड़नेवाले कोड़े। ये रक्तसे उत्पन्न होते और बाल, नाखून तथा दांत खाते हैं।

दन्तादंति (सं० स्त्री०) दंतैश्च दंतैश्च प्रहृत्य प्रवृत्तं युद्धं इच् समासान्तः पूर्वाणो दीर्घः। परस्पर दंतप्रहार द्वारा प्रवृत्त युद्ध; एक दूसरेको दांतसे काटनेको लड़ाई।

दन्ताना – मध्यभारतके पश्चिम मालवा एजेन्सीके अधीन एक सामान्य सर्दारका राज्य। यहांके ठाकुर या सर्दार सिन्धियासे १८०) रु० तनखाह पाते हैं।

दन्तान्तर (सं० क्ली०) दंतस्य अंतरं। दांतके मध्य, दांतके बीच।

मूंछके बाल मुंहमें जानेसे उच्छिष्ट नहीं होते और दन्तमध्यस्थित अन्नादि भी मुंहको उच्छिष्ट नहीं कर सकते।

दन्तायुध (सं० पु०) दंतएव आयुधं यस्य। शूकर, शूअर।

दन्तार्बुद (सं० पु० क्ली०) दंतस्य अर्बुदमिव। दंतरोगभेद, मसूड़ेमें होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसका पर्याय—दंतशूल, दंतशोफ और द्विजव्रण है।

दन्तालिका (सं० स्त्री०) दंतान् अलति पर्याप्नोति अल-ण्वुल् टापि अतइत्वं। बल्गा, लगाम।

दन्ताली (सं० स्त्री०) दंतान अलति अल-अण् गौरादित्वात् ङीष्। बल्गा, लगाम।

दन्तावल (सं० पु०) अतिशयितौ दंतौ यस्य दंत वलच (दंतशिखात् सञ्ज्ञायां। पा ५।२।११२) ततो दीर्घः। हस्ती, हाथी।

दन्तिका (सं० स्त्री०) दम तन् गौरा० ङीष् स्वार्थे कन् ततो ह्रस्वः। दंती वृक्ष, जमालगोटा।

दन्तिजा (सं० स्त्री०) दंतिका पृषो० साधुः। दंतिका; जमालगोटा।

दन्तिदन्त (सं० पु०) दंतिना दंतः ६ तत्। हस्तिदंत, हाथीके दाँत।

दन्तिन् (सं० पु०) प्रशस्तौ दन्तौ स्तः अस्य दन्त-इनि। हस्ती, हाथी।

दन्तिनी (सं० स्त्री०) दन्तस्तदाकारोऽस्त्यस्याः मूले दन्त-इनि-ङीष्। दंतीवृक्ष, जमालगोटा।

दन्तिमूलिका (सं० स्त्री०) दंति गजदंतयुक्तमिव मूलमस्याः कप् कापि अतइत्वं। दंतीवृक्ष, जमालगोटा।

दन्ती (सं० स्त्री०) दाम्यत्यनया दम-तन् ततो गौरादित्वात् ङीष्। (हसिमृग्रिणवेति। उण् ३।८६) स्वनामख्यात वृक्ष, अंडीकी जातिका एक पेड़। (Croton polyondrum or Baliospermum montanum) इसकी जड़ सूअरके दाँतसी होती है। दंती दो प्रकारकी होती है—लघुदंती और बृहद्दंती। जिसके पत्ते गूलरके पत्तोंके जैसे होते हैं, वह लघुदंती और जिसके

एरंडया अंडोंसे होते वह हरहरी है। पर्याय— शीघ्रा श्येनघण्टा, निकुम्भी, नागस्फोता, दंतिनी, उपचित्ता, भद्रा, रुचा, रेचनी, अनुकूला, निःशल्या, चक्रदंती, विशल्या, मधुपुष्पा, एरण्डफला, तरुणी, एरण्डपत्रिका, अनुरेवती, विशोधनी, कुम्भी, उडुम्बरदला, निकुम्भदलिका, प्रत्यक्‌पर्णी और उदुम्बरपर्णी। (अम', राजनि०) इसका गुण—कटु, उष्ण, शूल, आम, त्वक्‌दोष, अर्श, व्रण, अश्मरी और शल्यनाशक है। (राजवल्लभ) लघु दंतीके फल मधुर रस, मधुर, विपाक, शीतवीर्य, मल और मूत्रनिःसारक तथा गरदोष, शोथ और कफनाशक है। दोनों दंती सारक, कटुरस, कटुविपाक, अग्निप्रदीपक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा गुदाङ्कुर, अश्मरी, शूल, अर्श, कण्डू, कुष्ठ, विदाह, पित्त, रक्तदोष, कफ, शोथ, उदर और क्रमिनाशक है। (भावप्रकाश) वर्त्तमान यूरोपीय चिकित्सकोंके मतसे यह बहुत विरेचक मानी गई है। इसके बीज अधिक मात्रामें देनेसे विषका काम करते है। कहीं कहीं जयपालके बदले दंतीके बीज व्यवहृत होते हैं। इसके रससे लोहा गल जाता है।

दन्तीफल (सं० क्ली०) १ पिप्पली। २ दंतीके बीज।

दन्तीफलसमाकृति (सं० पु०) पिस्ताद्रुम, पोस्ता।

दन्तीबीज (सं० क्ली०) जैपालबीज, जमालगोटेका बीज।

दन्तीहरीतकी (सं० स्त्री०) गुल्माधिकारकी औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—अथपोटलीबद्ध हरीतकी २५, दंतीमूल २५ पल, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस क्वाथजलमें २५ पल पुराना गुड डाल कर उसे छान लेते हैं। बाद उसके साथ पूर्वोक्त २५ हरीतकी दे कर पाक करते हैं। आसन्न पाकमें निसोथका चूर्ण ४ पल, तिलतैल ४ पल, पीपल चूर्ण ४ तोला और सोंठ चूर्ण ४ तोला डाल कर अच्छी तरह हलते है और पीछे उतार लेते है। शीतल होने पर उसमें मधु ४ पल, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागकेशर प्रत्येक २ तोला मिला देते हैं। सेवनकी मात्रा २ तोला और एक हरीतकी है। इससे गुल्म, प्लीहा और शोथ आदि अनेक प्रकारके रोग जाते रहते है।

(भैषज्यर० गुल्माधि०)

दन्तुर (सं० त्रि०) उन्नता दंताः सन्त्यस्य. दंत उरच (दंत उन्नत उरच्। पा ५।२।१०६) १ उन्नतदंत, जिसके दांत आगे निकले हों, दंतुला, दांतू। सूअरको मारनेसे दूसरे जन्ममें दन्तुर हो कर जन्मग्रहण करता है। (शातातप) सामुद्रिकके मतसे दंतुला मनुष्य कदाचित् ही मूर्ख होता है। (पु०) २ हस्ती, हाथी। ३ शूकर, सूअर।

दन्तुरक (सं० पु०) देशभेद, एक देश जो पूर्व दिशामें अवस्थित माना गया है। (वृहत्सं० १४।६)

दन्तुरच्छद (सं० पु०) दंतुर उन्नतानतच्छदो यस्य। बीजपुर, बिजौरा नीबू।

दन्तेवर—मध्यप्रदेशके वस्तार राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। अक्षा० १८° ५४' उ० और देशा० ८१° २३' २०" पू०के मध्य दङ्कानि और लङ्कानि नदियोंके सङ्गम स्थान पर तथा वैला दिल्लाज नामक पहाड़के पश्चिममें अवस्थित है। यहां दंतेश्वरी नामक कालीका प्रसिद्ध मन्दिर है।

दन्तोच्छिष्ट (सं० क्ली०) दंतेन उच्छिष्टं। दंत द्वारा उच्छिष्ट, वह जो दांतसे जूठा किया गया हो।

दन्तोज्ज्वला (सं० स्त्री०) श्वेत जातीपुष्प वृक्ष, सफेद जायफलका पेड़।

दन्तोत्पाटन (सं० क्ली०) दंतस्य उत्पाटनं। दांतका उत्पाटन, दांतका उखाड़ना।

दन्तोद्भेद (सं० पु०) दंतस्य उद्भेदः। दंतोद्गम दांतका निकलना।

दन्तोलूखलिक (सं० पु०) दंतइव उलूखलः सोऽस्यास्ति इति ठन्। (अतइनिठनौ। पा ५।२।११५) वाणप्रस्थविशेष, एक प्रकारके संन्यासी। ये उखली आदिमें कूटा हुआ अन्न नहीं खाते, दांत द्वारा धान आदिसे चावल निकाल कर खाते है। ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाजके दाने ये लोग अग्निपक्व चीज नहीं खाते।

दन्तोष्ठ (सं० क्ली०) दंताश्च ओष्ठौ च तेषां समाहारः। दंत और ओष्ठका समाहार, दांत और ओंठ।

दन्तोष्ठ्य (सं० पु०) दंतोष्ठे भवः शरीरावयवत्वात् यत्। दंत ओष्ठ द्वारा उच्चारणीय वर्ण, वह वर्ण जिसका उच्चारण दांत और ओंठसे हो। ऐसा वर्ण 'व' है।

दन्त्य ( सं० त्रि० ) दंतेषु भवः दंत यत्। ( शरीरावयवत्वाच्च। पा ४।३।५५ ) १ दंतोद्भव, जिसका उच्चारण दाँतकी सहायतासे हो तवर्ग। २ दंतसम्बन्धी। ३ दाँतोंका हितकारी।

दन्त्यवर्ण ( सं० पु० ) दंतोद्भव वर्ण, दंत द्वारा उच्चारित वर्ण, त, थ, द, ध, न, स और व है।

दन्त्र ( सं० पु० ) दंत, दाँत।

दन्दशूक (सं० पु०) गर्हितं दशति दन्श यङ् उकः। जपदशा यङः। पा ३।२।१६६ ) १ सर्प, सांप। २ राक्षस। ( त्रि० ) ३ हिंस्र, हिंसा करनेवाला।

दन्दह्यमान ( सं० त्रि० ) दग्ध, दहकता हुआ।

दन्द्रम्यमाण ( सं० त्रि० ) द्रम-यङ् शानच्। कुटिल गतियुक्त, टेढ़ी चालवाला।

दन्न (हिं० पु०) तोपआदिके छूटनेका दन्न शब्द।

दपट (हिं० स्त्री०) घुड़की, डपट, डपेट।

दपटना ( हिं० क्रि० ) डाटना, झिड़कना, घुड़कना।

दपु ( हिं० पु० ) दर्प, अहंकार, शेखी।

दपेट (हिं० स्त्री०) दपट देखो।

दपेटना ( हिं० क्रि० ) दपटना देखो।

दफतर ( हिं० पु० ) दफ्तर देखो।

दफतरी ( हिं० पु० ) दफ्तरी देखो।

दफतरीखाना ( हिं० पु० ) दफ्तरीखाना देखो।

दफती ( अ० स्त्री० ) गत्ता, कुट, वसली।

दफन ( अ० पु० ) १ किसी चीजको जमीनमें गाड़नेकी क्रिया। २ मुरदेको जमीनमें गाड़नेकी क्रिया।

दफनाना ( हिं० क्रि० ) जमीनमें दबाना, गाड़ना।

दफरा ( हिं० पु० ) नावके दोनों ओर लटकता हुआ काठका टुकड़ा। दूसरी नावकी टकरसे बचनेके लिये यह लटकाया जाता है, हौंस।

दफराना ( हिं० क्रि० ) १ नावकी आपसमें टक्कर लड़नेसे बचाना। २ पाल खड़ा करना। ३ रक्षा करना, बचाना।

दफला—आसामके अन्तर्गत दरङ्ग और लक्ष्मीपुर जिलेकी एक असभ्य जाति। ये लोग साधारणतः लक्ष्मीपुरके निकटस्थ पर्वतों पर वास करते हैं। १८७२ ई०में दरङ्गके अन्तर्गत आमतोला नामक स्थानके अधिवासी दफलागण जब पार्वत्य दफलाओंसे आक्रान्त हुए थे, तब वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें दमन करनेके लिये पुलिस भेजा। पुलिसने दफलाके वासस्थान पर धावा मारा, किन्तु कोई फल न निकला। बाद १८७४।७५ ई०में हथियारबंद एक दूसरा सैन्यदल पहुंचा और उन्होंने बन्दी दफलाओंका उद्धार किया।

दफलापुर—सताराकी पोलिटिकल एजेन्सीके अधीन एक जागीर। यह अक्षा० १७°०´ उ० और देशा० ७५°७´ पू०में अवस्थित है। यह यथार्थमें जाठराज्यका एक अंश है। दफलापुर ग्रामके पटेल इस जागीरके स्थापनकर्त्ता हैं। इसी ग्रामके नामानुसार उनका एक नाम दफला पड़ा था। १८२० ई०में अङ्गरेजोंने वर्त्तमान जाठपतिके पूर्वपुरुषोंके साथ एक सन्धि की। उसी सन्धिके अनुसार जाठपतिने अपने राज्यका स्थायी अधिकार पाया। १८७२ ई०में जाठपतिका ऋणशोधके लिये सताराके राजाने इस जाठ राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया और ऋण शोध हो जाने पर १८४१ ई०में वह फिर उन्हें लौटा दिया। इस जाठ जागीरके आर्थिक विषयकी व्यवस्था कर देनेके लिये अङ्गरेजोंने कई बार इसके शासनकार्यमें हस्तक्षेप किया और बहुत तरहके अत्याचार हो जानेसे १८७४ ई०में जाठ राज्याधिपतिकी ओरसे उन्होंने अपने हाथमें राज्यका भार ले लिया। आनसे कुछ पहले लक्ष्मीबाई दफला नामकी एक विधवा दफलापुरकी शासनकर्त्री थीं।

दफलापुर राज्यमें ६ पृथक् पृथक् ग्राम लगते हैं। इसका क्षेत्रफल ८४ वर्गमील है। राजस्व प्रायः ८०१०) रु० है। यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य बाजरा, ज्वार, रुई और गेहूं है। यहां तीन विद्यालय हैं।

दफा (अ० स्त्री०) १ बार, बेर। २ किसी कानूनी किताबका एक अंश जिसमें किसी एक अपराधके सम्बन्धमें व्यवस्था हो, धारा। ( त्रि० ) ३ तिरस्कृत, हटाया हुआ, दूर किया हुआ।

दफादार ( फा० पु० ) फौजके कर्मचारी जिसके अधीन कुछ सिपाही हों।

दफादारी ( हिं० स्त्री० ) १ दफादारका पद। २ दफादारका काम।

दफीना ( अ० पु० ) गड़ा हुआ धन वा खजाना।

दफ्तर (फा० पु०) १ कार्य्यालय, आफिस। २ सविस्तर पत्र लम्बी चौड़ी चिट्ठी। ३ विस्तृत वृत्तांत, चिट्ठा।

दफ्तरो (फा० पु०) १ किसी दफ्तरका कर्मचारी। इसका मुख्यकाम कागज आदि दुरुस्त करना और रजिष्टरों आदि पर रूल खींचना है। २ वह जो किताबोंको जिल्द बांधता हो, जिल्दसाज, जिल्दबंद।

दफ्तरोखाना (फा० पु०) किताबोंको जिल्द बांधनेका स्थान।

दबंग (हिं० वि०) प्रभावशाली, दबाववाला।

दबक (हिं० स्त्री०) १ छिपकनेका भाव। २ सिकुड़न। ३ धातु आदिको लंबा करनेके लिये पोटनेकी क्रिया।

दबकगर (हिं० पु०) दबका या तार बनानेवाला।

दबकना (हिं० क्रि०) १ डरके मारे किसी तंग स्थानमें छिपना। २ लुकना, छिपना। ३ किसी धातुको बढाना या चौड़ा करना, पीटना। ४ डांटना, डपटना।

दबकनी (हिं० स्त्री०) भातीका वह भाग जिसमें हो कर उसमें हवा प्रवेश होती है।

दबकवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेको दबकानेमें लगाना।

दबका (हिं० पु०) कामदानीका सुनहला चिपटा तार।

दबकाना (हिं० क्रि०) १ छिपाना, ढांकना। २ डांटना, डपटना।

दबकी (हिं० स्त्री०) १ मट्टीका एक बरतन। इसका आकार सुराही सा होता है। इसमें पानी भर कर चरवाहे और किसान खेत पर ले जाया करते हैं। २ दबकने या छिपनेका भाव।

दबकेका सलमा (फा० पु०) चमकीला सलमा।

दबकैया (हिं० पु०) वह जो सोने चांदीके तारोंको पीट कर बढ़ाता और चौड़ा करता है, दबकगर।

दबगर (हिं० पु०) १ वह जो ढाल बनाता हो। २ वह जो चमड़ेके कुप्पे बनाता हो।

दबड़ुसड़ (हिं० वि०) कायर, डरपोंक।

दबदबा (अ० पु०) प्रताप, रोबदाब।

दबना (हिं० क्रि०) १ बोझके नीचे आना। २ दाब या पंजेमें आना। ३ ऐसी अवस्थामें आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके। ४ अनुचित रूपसे किसीको चीज दूसरेके अधिकारमें चला जाना। ५ शान्त रहना। ६ किसी बातका एक हो जगह स्थिर रहना, किसी बातका जहांका तहां रह जाना। ७ अपनी जगह पर डटा न रहना पीछे हटना। ८ किसीके प्रभाव या दबावमें आ कर विवश होना। ९ अच्छा न जंचना। १० संकोच करना। ११ मन्द पड़ना, धीमा पड़ना।

दबमो (हिं० पु०) हिमालय पहाड़ पर मिलनेवाला एक प्रकारका बकरा।

दबलान—राजपुतानेके बुन्दी राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २५°२४' उ० और देशा० ७५°४' पू०के मध्य बुन्दी शहरसे ११ मील उत्तर मेज नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या ११२६ के लगभग है। १७४५ ई०में यहां महाराव राजा उमेदसिंहके अधीन हारराजपूतोंके साथ जयपुरके महाराज ईश्वरोसिंहको सेनाका तुमुल संग्राम हुआ था। युद्धमें महाराजकी ही जीत हुई।

दबवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेको दबानेमें लगाना।

दबवाली—पञ्जाबके हिसर जिलेके अन्तर्गत सिरसा तहसीलको एक उपतहसील। भूपरिमाण ३४९ वर्गमील है। इसमें ५९ ग्राम लगते हैं।

दबस (हिं० पु०) वह माल जो जहाजी गोदाममें रहता है, जहाज परको रसद तथा दूसरा सामान।

दबाई (हिं० स्त्री०) रौंदवानेका काम।

दबाऊ (हिं० वि०) १ दबानेवाला। २ जिसका अगला भाग पिछले भागसे अधिक बोझल हो, झब्बू।

दबाना (हि० क्रि०) १ भारके नीचे रखना। २ किसी पदार्थ पर बहुत जोर लगाना। ३ किसीको असहाय अवस्थामें ले आना। ४ जल्दीसे आगे बढ कर किसी चीजको पकड़ लेना। ५ बेईमानीसे किसीकी चीज जब्त करना। ६ शान्त करना, दमन करना। ७ अपने स्थानसे पीछे हटाना। ८ धरतीके नीचे गाड़ना, दफन करना। ९ जोर डाल कर विवश करना। १० दूसरेके गुणों या महत्त्वका प्रकाश न होने देना। ११ किसी बातको फैलने न देना।

दबावा (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत लम्बा चौड़ा सन्दूक जो काठका बना होता है। यह युद्धको एक

सामग्री है। इसमें कुछ आदमियोंको बिठा कर गुप्त रूपसे सुरंग खोदने अथवा और कोई उपद्रव करनेके लिये दुश्मनके किलेमें उतार देते हैं।

दबाव (हिं० पु०) १ दबानेकी क्रिया, चाप। २ दबानेका भाव। ३ प्रताप, रोब।

दबिल (हिं० पु०) हलवाइयोंका एक औजार। यह काठका बना होता है और देखनेमें खुरपी या खुरचनी सा लगता है। इससे वे बेसन आदि भूनते, खोवा बनाते या चीनीकी चाशनी आदि मिलाते हैं।

दबीज (फा० वि०) मोटे दलका, गाढ़ा, संगीन।

दबीर (फा० पु०) १ वह जो लिखनेका काम करता हो, मुंशी। २ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक उपाधि।

दबूसा (हिं० पु०) १ जहाजका पिछला भाग, पिच्छल। २ पतवार लगी रहनेका बड़ी नावका पिछला भाग। ३ जहाजका कमरा।

दबैला (हिं० वि०) १ जिस पर रोब पड़ा हो, दबा हुआ। २ जल्दी जल्दी होनेवाला।

दबैल (हिं० वि०) १ जो किसीके प्रभाव या दबावमें पड़ा हो। २ जो बहुत डरता हो, दब्बू।

दबोचना (हिं० क्रि०) १ किसीको अकस्मात् पकड़ कर दबा लेना, धर दबाना। २ छिपाना।

दबोस (हिं० स्त्री०) चमकीला पत्थर।

दबौता (हिं० पु०) लकड़ीका एक कुंडा। यह पानीमें भिगोए हुए नीलके डंठलों आदिको दबानेके लिए ऊपरसे रख दिया जाता है।

दबौनी (हिं० स्त्री०) १ बरतनों पर फूल पत्ती आदि उभारनेका औजार जो लोहेका बना होता है। २ जुलाहोंकी वह लकड़ी जो भजनीके ऊपरकी ओर लगी रहती है।

दभोई (दर्भवती) बंबई प्रदेशके अन्तर्गत गायकवाड़ राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २०° १०' उ० और देशा० ७३° ७८' पू०, बड़ोदा राज्यसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४५३८ है। यहां अष्टम हाउस, पथिकोंका डाकबंगला, रेलवेष्टेशन, औषधालय, कारागार और बहुतसे विद्यालय हैं। इनके सिवा रूईसे बीज बाहर निकालनेकी एक कल भी है। यही ११वीं शताब्दीका प्रसिद्ध दर्भवती नगर माना जाता है।

दभ्य (सं० त्रि) दभि अच् ततो यत्। हन्तव्य, मारनेयोग्य, कतल करने काबिल।

दभ्र (सं० त्रि०) दभ्नोतीति दन्भ-रक्। (स्थायितंचीति) उण् २।१३) १ अल्प, थोड़ा। २ अल्पयुक्त, जिसमें बहुत कम समाता हो। (पु०) ३ समुद्र। (स्त्री०) ४ उत्तरदिक्, उत्तर दिशा।

दम (सं० पु०) दम भावे घञ्। १ दण्ड, दमन, सजा। मनुष्योंको दमन करनेके लिये दण्डका नाम दम पड़ा है। दंड देखो। इसका पर्याय—दन्ति, दमथ और दमन है। २ बाह्येन्द्रिय निग्रह, इन्द्रियोंको वशमें रखना। बुरे कामोंसे चित्तको लौटनेका नाम दम है अर्थात् जिससे बुरे कामोंमें चित्त प्रवृत न हो वा चित्तको किसी कुकर्मकी ओर झुका देख जिस शक्तिके बलसे वह उस कुकर्मकी ओरसे लौटाया जाता है उसको दम कहते हैं। ३ कर्दम, कीचड़। ४ गृह, घर। ५ एक प्राचीन महर्षिका नाम। (भारत १३।२६।५) ६ मरुत्त राजके पुत्र। (भाग० ८।२।२८) ७ मरुत्तके पौत्र। ये दुष्टों को दमन करते थे तथा बहुत बलवान् और दया दाक्षिण्यादि सब प्रकारके सद्गुणोंसे विभूषित थे। इन्होंने बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेनाके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। ये नौ वर्ष तक माताके गर्भमें रहे थे। इनके पुरोहितने समझा था, कि जिसको जननीको नौ वर्ष तक इस प्रकार इन्द्रियका दमन करना पड़ा है, वह बालक स्वयं भी बहुत दमनशील होगा। इसी कारण पुरोहितने इनका नाम दम रखा था। महाराज दमने वृषपर्वासे धनुर्वेद और दैत्यराज दुन्दुभिसे अनेक तरहके अस्त्रादि सीखे थे। वेद वेदाङ्गके भी ये अच्छे ज्ञाता थे। (मार्कण्डेयपु० १३३-१३४ अ०) ८ भीम राजाके एक पुत्र जो दमयन्तीके भाई थे। (भारत ३।५३।३) ९ विष्णु। १० बुद्धका एक नाम।

दम (फा० पु०) १ श्वास, सांस। २ नशे आदिके लिये सांसके साथ धूआं खींचनेका काम। ३ प्राण, जान, जी। ४ सांस खींच कर जोरसे बाहर फेंकनेका काम। ५ एक बार सांस लेनेका समय, पल, लहमा। ६

व्यक्तित्व। ७ जीवनी शक्ति। ८ पकानेकी एक क्रिया। इसमें किसी खाद्य पदार्थको बरतनमें रखते और उसका मुंह बन्द करके आग पर चढा देते हैं। इस प्रकार बरतनके भीतरको भाफ जो बाहर नहीं निकलने पाती उस पदार्थको पकनेमें बहुत सहायता पहुंचाती है। ९ संगीतमें किसी स्वरका देर तक उच्चारण। १० धोखा, छल, फरेब। ११ तलवार या छुरी आदिका बाढ, धार।

दम (हिं० पु०) एक प्रकारकी तिकोनी कमाची जो दरी बुननेवालोंके काममें आती है। इसमें सवा सवा गजको तीन लकड़ियां एक दूसरोसे बंधी रहती हैं। ये करघेमें पड़ी रहती और उनमें जोती बंधी रहती है। यह जोती पैरके अंगूठेमें बांध दी जाती है। बुननेके समय यह पैरके बल नीचे दबाया जाता है।

दमक (सं० त्रि०) दमयतीति दम णिच्-ण्वुल्। दमनकर्त्ता, शासनकारी।

दमक (हिं० स्त्री०) द्युति, चमक, चमचमाहट।

दमकना (हिं० क्रि०) चमकना, चमचमाना।

दमकल—अग्निसे गृहादिकी रक्षा करनेका एक यन्त्र। दमकल दो प्रकारकी होती है, एक हाथसे चलाने की और दूसरी वाष्पीय यन्त्रसे। नगरोंमें गृहदाहके निवारणके लिए बहुत पहलेसे ही अनेक तदवीरें होती आ रही हैं। ईशाजन्मके दो सौ वर्ष पहले भी ग्रीस और रोममें इस विषयमें कई एक यन्त्रादि उद्भावित और प्रचलित थे।

इतिहास। भुजनेल और प्लिनी हामा (Hama) नामक एक प्रकारके यन्त्रकी कथा उल्लेख कर गये हैं। कितनोंने तो इसे एक प्रकारको जलकूपी माना है, किन्तु होलष्टनका कहना है, कि यह जलकूपी नहीं है। यह एक प्रकारका बड़ा हुक वा टेढ़ा लोहा है जो किसी बड़े दण्डाग्रमें बंधा रहता था। मालूम पडता है, इससे अग्निविशिष्ट द्रव्यादिको खींच कर उन्हें बुझानेकी कोशिश करते थे।

प्लिनोने (Pliny the younger) नल वा साइफनकी सहायतासे आग बुझानेकी कथा उल्लेख की है।

जिसे कल कह सकते हैं, उसका ईसाजन्मके १५० वर्ष पहले आविष्कार हुआ। सिबियस (Ctsibius) नामक एक प्रसिद्ध ग्रीक यन्त्रतत्त्ववित् टलेमी फिलाडेलफसके राजत्वकालमें मिश्र देशमें रहते थे। जब वे अलेक जेण्ड्रियामें थे, तब हिरो (Hero) नामक उनके एक छात्र था जो अपने स्पिरिटेलिया (Spiritalia) नामक ग्रन्थमें एक प्रकारकी कलका वर्णन कर गये हैं। उस कलमें एक प्रकारका जलोत्तोलनयन्त्र (Forcing pump) और दो बड़े नल लगे हुए थे। इस यन्त्रको उन्नति होनेसे ही यहांको हस्तचालित दमकलका आविष्कार हुआ है। मि: बिलने अपने जगत्‌को उन्नति नामक ग्रन्थमें कहा है, कि हिरोके इस यन्त्रमें वर्त्तमान हस्तचालित दमकलके समस्त मूल सूत्र थे। केवल दिनों दिन ज्ञानोन्नतिके साथ साथ ही इन सूत्रोंको उन्नति हुई है।

सम्राट् ट्रोजन (Emperor Trojon) अपनी अट्टालिकाके आपोलोडोरस (Apallodorus) नामक यन्त्रको कथा उल्लेख कर गये हैं। इस यन्त्रमें जल भरा हुआ एक चमड़ेका कुप्पा रहता था और उस कुप्पेके साथ नल लगा हुआ था। कुप्पेको दबानेसे नल हो कर जल अग्निस्थानमें पहुंचता था।

१५१८ ई०को जर्मनीके अगसवर्ग नगरमें आग बुझानेके लिये पिचकारीकी तरहको एक प्रकारको कल थी जिसे (Instrument of fire वा Water-syringe) कहते थे।

कस्पर सोटने (Caspur Schott) एक और प्रकारको कलका उल्लेख किया है। वह कल १६१५ ई०को नुरेनबर्गमें व्यवहृत होती थी और प्रायः हिरोको उल्लिखित कलकी तरह थी। इसे घोड़े खींच कर ले जाते थे। इसमें एक बड़ा नल लगा हुआ रहता था। कलको चालू करनेमें २८ मनुष्योंकी जरूरत पडती थी। इससे एक इञ्च मोटी जलकी धारा निकलती जो ८० फुट ऊपर जा कर गिरती थी। १७ वीं शताब्दीके अंतमें वायुकक्ष (Air-chamber) के खिसका एक मोटा नल (Hose) व्यवहृत हुआ। ये सब द्रव्यसंयुक्त कलें १६८४ ई०में व्यवहृत होती थीं, इसका उल्लेख पेरल्ट (Perrault) कर गये हैं। उन्होंने १६७० ई०में भाण्डार-हाइड (Vander-Hide) सकसन

पाइपका Sanction Pipe) आविष्कार किया। विलायतमें १६ वीं शताब्दीके अन्त तक हस्तचालित दमकलका व्यवहार था। अग्निस्तम्भन देखो। ये सब कलें पीतलकी बनी थीं। दो बड़े पानीके बरतनोंके बीच दो भार खड़े रहते थे। दो मनुष्य उन भारोंको जब जलमें प्रविष्ट कर पकड़ते थे तब उन दोनों बरतनोंको बगलके छेदोंसे जल निकल पड़ता था और एक ऊर्ध्व मुख नल द्वारा वह जल बाहर जा गिरता था। उन दोनों लम्बित भारोंको एक बार दबा कर खींच लेते और फिर दबा देते थे। प्रत्येक दबावके समय बहुत सा जल भक भक शब्द करता हुआ नल द्वारा केवल निकल ही पड़ता, ऊपर नहीं जा सकता था। पीछे वायुकच और कैम्बिसका मोटा नल व्यवहृत हो जानेसे उक्त अभाव जाता रहा। अब भी जलके ऊपर बढ़ घनीभूत वायुके दबावसे और जलोत्तलन यंत्रकी क्रियासे जलका वेग सदा एक सा रहता है। दोनों भारोंकी उन्नति और अवनतिमें जलाधारका न तो लोप होता और न वेग ही कमता है।

पीछे इसके साथ साथ बहुत उन्नति की गई। नल द्वारा जिससे कीचड़ वा ढेला न जा सके, उसका भी उपाय कर दिया गया है। जलाधारका जल खर्च हो जाने पर अभी पुष्करिणी वा नदीका जल बहुत आसानीसे काममें लाया जाता है। यहां छोटी कल एक घोड़ेसे खींची जा सकती है, दो चार मनुष्य भी ठेल कर ले जा सकते हैं। बड़ी कलमें दो वा चार घोड़ोंकी जरूरत होती है। अभी कैम्बिस या चमड़ेका नल काममें लाया जाता है। अमेरिकामें रुईको जमा करके एक प्रकारका नल बनाते हैं। सम्प्रति बड़ी बड़ी कलोंमें वाष्पीय-यन्त्रके हो जानेसे २८ मनुष्योंका परिश्रम बच गया है।

लन्दनको दमकलके आफिसकी कलोंसे प्रति मिनटमें ८० गैलन जल निकल सकता है। एक कल परिचालक, एक अग्नि-रक्षक और अन्यान्य द्रव्योंके साथ एक एक कलका वजन ४०-५० मनसे कम नहीं होगा। इसे दो घोड़े एक घण्टेमें तीन कोस तक खींच कर ले जा सकते है। वृहत् अग्निकाण्डमें दो कलको एक साथ मिला कर काम कर सकते हैं। ऐसा करनेसे प्रति मिनटमें १८० गैलन जल निकल सकता है।

१८३० ई०में जब लन्दनके आर्गाइल रूम्‌स नामक घरमें आग लगी थी तभी सबसे पहले यह कल वाष्पीय यन्त्रकी सहायतासे चलाई गई। टेम्सके ऊपर बहुतसी बहनेवाली दमकलें बनाई गईं। वे भी वाष्पीय यन्त्रोंकी सहायतासे परिचालित होती थीं। ये सब कलें प्रति मिनटमें १४०० गैलन जल दे सकती थीं। जब पार्लियामेण्टके घरमें आग लगी, तब इससे भी अधिक क्षमताशाली कल प्रस्तुत की गई थी। किन्तु लन्दन सेतुके निकटस्थ कारखानेमें १८६१ ई०को जब आग लगी थी, तब उन सब कलोंमेंसे एक भी ऐसी न निकली जो उसे बुझा सके। अधिकांश भस्म हो जानेके बाद आग बुझाई गई थी।

सामान्य अग्निकाण्डमें हस्तचालित कलोंसे विशेष उपकार होता है; क्योंकि वाष्प संग्रह करनेमें बड़ी कलोंमें जितनी देरी लगती है, उतनेमें तो सामान्य अग्निकाण्डमें घरकी कुल चीजें भस्म हो जा सकती है। हस्तचालित बहुत सी कलें इच्छानुसार काममें लो ला सकते हैं, किन्तु वृहत् अग्निकाण्डमें जहाँ छोटी कलसे काम नहीं चल सकता वहीं बड़ी कलका प्रयोजन पड़ता है। लेकिन जब तक बड़ी कल काम शुरू न कर दे तब तक छोटी कलसे चारों ओरकी रक्षा करनी उचित है।

दमकलके विषयमें एक संदेह अब भी बना है। वह यह है, कि भारी अग्निकाण्डमें कलसे जल देनेमें आग बुझती है वा बढ़ती? कलसे कितना ही जल क्यों न दिया जाय, तो भी अग्निकी तुलनामें उसका परिमाण बहुत अल्प है। देखा जाता है, कि अग्निके जलते समय अङ्गार जल मध्यगत अक्सिजनके साथ मिल कर अङ्गाराम्ल वाष्प (Carbonic oxide Gas) उत्पादन करता है। इस वाष्पमें भी जलसे अधिक अक्सिजन वियुक्त हाइड्रोजन राशि और दाह्य पदार्थ है। अतः अग्निमें जब कम जल दिया जाता है, तबसे दोनों द्रव्य जल कर अग्निको लपटको और भी बढ़ाते हैं। जलको वाष्पाकारमें लानेमें अग्निका उत्ताप जितना नष्ट होता है, उक्त दो वाष्प जल कर उससे कहीं अधिक उत्ताप जमा करते

है। इस विषयमें अब भी विशेष आलोचना वा मीमांसा नहीं हुई है।

दमकल चलानेके लिये एक दल शिक्षित मनुष्यको आवश्यकता है। इनके मस्तक पर दृढ़ शिरस्त्राण और धातुनिर्मित स्कन्धत्राण रहते हैं। इनके रहनेसे जलते हुए घरका भग्नांश वा बीम वरगा उनके ऊपर गिर भी क्यों न जाय, तौभी कुछ अनिष्ट नहीं होता, इन लोगोंका साहस भी प्रशंसनीय है। ये लोग जलका नल ले कर जैसी वीरता और साहसके साथ अग्निक्षेत्रमें कूद पड़ते हैं प्रज्वलित गृहसे लोगोंके जीवन और धनकी रक्षा करते हैं, वह विस्मयजनक है। अभी यूरोपमें सब जगह लन्दनके नियम दमकलके लोगोंको सिखाये जाते हैं। लन्दनके दमकल-आफिसमें जो कोई अग्निकाण्डको खबर पहुंचाता है, उसे पारितोषिक मिलता है। इसी कारण लन्दनमें जब कभी कहीं आग लगती है, तो बहुत जल्द आफिसमें खबर पहुंच जाती है।

अभी प्रायः सभी प्रधान शहरोंमें कहां आग लगी है उसे देखनेके लिये गिर्जाके शिखरके जैसा एक ऊंचा काठका घर बना रहता है। इस घरमें रात दिन एक पहरु बैठा रहता है जिसका काम शहरके चारों ओर निगाह डालनेके सिवा और कुछ भी नहीं है। जब कहीं आग दीख पड़ती है, तब वह तुरंत ही नीचे आ कर दमकल आफिसमें खबर पहुंचाता है।

कनस्टाण्टिनोपलमें स्वर्ण अंतरीपके दोनों बगल उक्त प्रकारके दो अग्निदर्शन-गृह बने हैं। वहां भी पहरा बैठता है। पहरु जब कहीं आग देखता है, तब उसके इशारा करनेसे ही दूसरे दूसरे पहरु नगरके अमुक स्थानमें आग लगी है' ऐसा कह कर चिल्लाते और जमीन पर बेंत पीटते हैं। क्षण भरमें सारे नगरमें बिजलीकी नाईं यह सम्वाद फैल जाता है। यहां तक कि यदि बोस्फोरसके दूसरे किनारे भी आग लगी हो, तो शहरके लोगोंको इस तरहके सम्वादसे घबड़ा देते हैं। पहरूदार नगरवासियोंको बाध्य करके अग्नि बुझानेमें नियुक्त करते हैं। ये लोग अग्निसंश्लिष्ट घरोंको तोड़ फोड़ कर अग्नि बुझाते हैं। जब आग एक घण्टेसे अधिक देर तक ठहर जाती है, तब देशनायक स्वयम् उस स्थान पर पहुंच जाते और लोगोंको उत्साहित करते हैं। ऐसी प्रथामें नगरवासियोंको देशाधिपके दर्शन करनेका अच्छा मौका मिल जाता है। अतः वे मनसे आग बुझाते और देशाधिपके पहुंच जाने पर उनके सामने अपना दुखड़ा रोते हैं। वर्त्तमान कालमें देशाधिप अग्नि स्थान पर स्वयम् न आ कर अपने वजीरको भेज देते हैं। २ उक्त सिद्धान्त पर बना हुआ एक यन्त्र। इसकी सहायतासे कुएंसे जल निकाला जाता है।

**दमकला** ( हिं० पु० ) एक प्रकारका बड़ा पात्र जो दमकलके जैसा बना होता है। इसमें पिचकारी लगी रहती है जिससे बड़ी बड़ी महफिलोंमें लोगों पर गुलाब जल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है। २ पाल चढ़ानेका एक जहाज।

**दमखम** ( फा० पु० ) १ दृढ़ता, मजबूती। २ जीवनी शक्ति, प्राण। ३ तलवारकी धार और उसका झुकाव।

**दमघोष** ( सं० पु० ) चन्द्रवंशीय एक राजा। ये चेदिदेशके अधिपति शिशुपालके पिता थे। इनका दूसरा नाम श्रुतश्रवा भी है।

**दमघोषसुत** ( सं० पु० ) दमघोषस्य सुतः। दमघोषके पुत्र, शिशुपाल।

**दमचा** ( हिं० पु० ) खेतके कोने पर बनी हुई मचान। इस पर बैठ कर खेतिहर अपने खेतको रखवाली करता है।

**दमचूल्हा** ( हिं० पु० ) एक प्रकारका लोहेका बना हुआ गोल चूल्हा। इसके बीचमें एक जाली होती है जिसके बीच एक और बड़ा छेद होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रख कर उसकी दीवार पर पकानेका बरतन रखा जाता है और नीचेके छेदसे हवा दी जाती है जिससे आग सुलगती रहती है। कोयलेके जल जाने पर उसकी राख जाली हो कर नीचे गिर पड़ती है।

**दमजोड़ा** ( हिं० पु० ) असि, तलवार।

**दमड़ा** ( हिं० पु० ) धन, रुपया, दाम।

**दमड़ी** (हिं० स्त्री०) १ पैसेके आठ भागोंमेंसे एक भाग। २ एक प्रकारका पक्षी।

दमथ (सं० पु०) दम उपशमे दम अथच् (बाहुलकात् दशमिदमिभ्यश्च। उण् ३।११४) दम, दण्ड, सजा।

दमथु (सं० पु०) दम भावे अथु। दम, सजा।

दमदमा—१ बङ्गालके २४ परगने जिलेके अन्तर्गत बारकपुर उपविभागका एक महकूमा। यह अक्षा० २२° ३४' उ० और २२° ४१' उ० तथा देशा० ८८° २६' और ८८° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है भूपरिमाण २४ वर्गमील है। इसके मध्य हो कर मध्य-बङ्गरेलपथ गया है।

२ उक्त महकूमेका एक शहर। यह अक्षा० २२° ३८' उ० और देशा० ८८° २५' पू० कलकत्तासे ७ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०८०४ है। यहां म्युनिसपलिटी और सैनिकावास है। यह सैनिकावास ईंटोंका बना हुआ है और बहुत प्रशस्त है। १७८३ ई०से लेकर १८५३ ई० तक यह कमान आदि रखनेका स्थान था। १८५३ ई०में यह मोरट उठ कर चला गया। उस समय यहाँ एक अस्त्रागार, सैनिकावास, अस्पताल, बड़ाबाजार, अनेक परिष्कार जलपूर्ण दीघो और प्रोटेष्टाण्टोंका गिरजा था। जिस सन्धिके अनुसार बङ्गालके नवाबने अङ्गरेजोंको कलकत्ता, कासिमबाजार और ढाका ये तीनों देश दे दिये थे, वह सन्धि इसो स्थान पर हस्ताक्षरित हुई थी। (१७५७ ई०की ६ ठो फरवरो) यहां पूर्ववङ्ग रेलवेको एक स्टेशन और अङ्गरेजी स्कूल है। प्रतिवर्ष मुसलमान फकीर शाह फरोदके उद्देश्यसे यहां एक मेला लगता है।

दमदमा (फा० पु०) मोरचा, धुस।

दमदमा—पूर्व बङ्गाल और आसामके लक्ष्मीपुर जिलेके अंतर्गत डिब्रूगढ़ उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° ३४' उ० और देशा० ८५° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां चायका व्यवसाय खब चलता है। यहां एक प्राचोन दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

दमदार (फा० वि०) १ जिसमें जोनेकी शक्ति बहुत हो। २ दृढ़, मजबूत। ३ जिसमें अधिक समय तक सांस रह सके। ४ तेज धारवाला, चोखा।

दमन (सं० पु०) दाम्यतीति दम-ल्यु। १ दण्ड, दबाने या रोकनेको क्रिया। २ इन्द्रियादिका बाह्यवृत्तिनिरोध, इन्द्रियोंको चंचलता रोकना। ३ पुष्पवृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़। ४ कुन्द पुष्पवृक्ष। ५ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम। (भारत ३।५३।६) ६ दमराजाके एक पुत्रका नाम। महाराज दमने दमन-ऋषिकी आराधना करके सब पुत्र प्राप्त किये थे, इसीसे उन्होंने पुत्रका नाम दमन रखा था। (भारत ३।५३।८) ७ विष्णु। (भारत १३।१४९।३४) ८ महादेव, शिव।

दमनक (सं० पु०) दमन एव स्वार्थे कन्। वृक्षविशेष, दौना। इसका पर्याय—दमन, दान्त गन्धोत्कटा, मुनि, जटिला, दंतो, पाण्डुराग, ब्रह्मजटा, पुण्डरोक, तापसपत्री, पवित्रक, देवशेखर, कुलपत्र, विनोत, तपस्विपत्र, मुनिपत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजटो और कुलपत्रक। (भावप्रकाश) इसके फूल सुगन्धित और जटाकृतिके होते हैं। इसका गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, कटु, कुष्ठदोष, विष, विषस्फोट और विकारनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण-हृद्य, वृष्य और सुगन्धि, ग्रहणी, अस्र क्लेद तथा कण्डूनाशक है। (क्लो०) २ छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ६ अक्षर होते हैं। इसमें तोन नगण, एक लघु और एक गुरु होता है। ३ एकादश अक्षरपादक छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ११ अक्षर रहते तथा शेष वर्ण छोड़ कर और सब अक्षर लघु होते हैं। (त्रि०) ४ दमनशील, दमन करनेवाला।

दमनकारोपणोत्सव (सं० पु०) दमनकस्य आरोपणार्थाय उत्सवः। श्रीकृष्णको दमनक अर्पणार्थ महापूजारूप उत्सवविशेष। श्रीकृष्णको दमनक-दानोत्सव विधि हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—

चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें श्रीकृष्णको दमनक दान करके उत्सव करना चाहिये।

मधुमासकी शुक्लाएकादशीतिथिमें प्रातः कर्म समाप्त करके दमनक वनमें जाते हैं और वहां निम्न लिखित मन्त्रसे उसकी प्रार्थना करते हैं—

"अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन।
शोकार्तिं हर मे नित्यं आनन्दं जनयस्व मे॥
नेष्यामि कृष्णपूजार्थं त्वां कृष्णप्रीतिकारकं।"

इस प्रकार प्रार्थना और प्रणाम कर दमनकको हाथमें लेते हैं। पीछे पञ्चगव्य द्वारा उसे प्रक्षालन कर पूजा करते हैं और वस्त्रसे आच्छादन कर वेदपाठ करते हुए घर लाते हैं। अनन्तर दमनकाधिवास करना होता है।

अधिवासविधि—श्रीकृष्णके आगे इसे रख कर सर्वतोभद्रमण्डल करते हैं और उसके ऊपर इस दमनकको संस्थापित कर निम्नमन्त्र द्वारा अधिवास करते हैं। मन्त्र—

"पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः।
दमन ! त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः॥"

पीछे मनोज कामदेवकी पूजा करनी होती है और एकसौ आठ बार कामगायत्रीका जप करके आमन्त्रण करना होता है। पुष्पाञ्जलि द्वारा निम्नलिखित मन्त्रसे वन्दना की जाती है। मन्त्र—

"नमोऽस्तु पुष्पवाणाय जगदाह्लादकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रदायिने॥"

बाद श्रीकृष्णको इस मन्त्रसे आमन्त्रण करते हैं।

"आमन्त्रितोऽसि देवेश ! पुराणपुरुषोत्तम:।
प्रातस्त्वा पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव॥
निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभं।
सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे॥"

इस प्रकार आमन्त्रण करके नृत्य गीतादि द्वारा रात्रि जग कर बिताते हैं। दूसरे दिन सवेरे प्रातःकार्य समाप्त कर दमनक आरोपणके लिये महापूजा की जाती है। बाद दमनकको भक्तिपूर्वक हाथमें ले कर निम्न मन्त्रसे श्रीकृष्णको अर्पण करते हैं। मन्त्र—

"देव देव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक।
कृत्स्नान् पूरय मे कृष्ण कामान् कामेश्वरीप्रिय॥
इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात्।
इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्निह पूरय॥"

अनन्तर दमनक-पुष्पकी माला इस मन्त्रसे श्रीकृष्णको चढ़ाते हैं—

"मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वजः॥
वनमाला यथा देव ! कौस्तुभं संततं हृदि।
तद्वद्दामनकीं मालां पूजाञ्च हृदये वह॥"

इसके पश्चात् नृत्यगीतादि तथा ब्राह्मण भोजन करा कर महोत्सव करते हैं।

चैत्रमासमें दमनक आरोपण करनेमें यदि कोई विघ्न हो जाय, तो वैशाख वा श्रावण मासमें कर सकते हैं।

जो इस दमनक आरोपणका उत्सव करते हैं, उनके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं, तथा उन्हें समस्त तीर्थस्नानादिका फल मिलता है। (हरिभक्तिविलास १४ वि०)

दमनन्दि—आर्यतिलक नामक प्राकृत जैन ग्रन्थके रचयिता।

दमनशील (सं० त्रि०) दमन करनेकी जिसकी प्रकृति हो, दमन करनेवाला।

दमनी (सं० स्त्री०) दम्यतेऽग्निरनया दम-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। अग्निदमनी वृक्ष।

दमनी (हिं० स्त्री०) सङ्कोच, लज्जा।

दमनीय (सं० त्रि०) १ दमन होनेके योग्य। २ जो दबाया जा सके।

दमपुख्त (फा० पु०) जो दम दे कर पकाया गया हो।

दमबाज (फा० वि०) जो दम करता हो, बहाना करनेवाला।

दमबाजी (फा० स्त्री०) दम या बहाना करनेका काम।

दमयत् (सं० त्रि०) दम णिच्-शतृ। १ शासनकर्त्ता, शासन करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

दमयन्ती (सं० स्त्री०) दमयति नाशयति अमङ्गलादिकमिति दम-णिच्-शतृ ङीप्। १ भद्रमल्लिका। २ नल राजाकी पत्नी, वैदर्भराज भीमकी कन्या। सुन्दरतामें यह अद्वितीय थीं। निषधराज नलको जब इनके रूपकी कथा मालूम हुई, तब वे इन पर लट्टू हो रहे। उन्होंने अपने प्रेमका विषय एक हंस द्वारा दमयन्तीके पास भेजवा दिया। दमयंती भी हंससे नलके रूप और गुणादि सुन कर उन पर आसक्त हो गई। इसी समय विदर्भराज दमयंतीको विवाहयोग्य देख कर स्वयम्बरकी तैयारी करने लगे। देश देशके नृपगण इस स्वयम्बरमें आये, यहां तक कि इन्द्रादि लोकपालगण भी दमयंतीको पानेकी इच्छा करते हुए पधारे।

रास्तेमें आते समय देवताओंने नलको देख कर उन्हें

दूत बना दमयंतीके पास भेजा। नल देवताओंके वरसे अलक्ष्य रूपसे दमयंतीके पास पहुंचे और देवताओंका अभिप्राय कह सुनाया। उत्तरमें दमयंतीने कहा, "मैं पहलेहीसे नलको वर चुकी हूं। उनके सिवा और कोई भी मेरे स्वामी नहीं हो सकते।"

यह सुन कर देवगण नल रूप धारण कर स्वयम्बर-स्थलमें खड़े रहे। दमयंती और कोई दूसरा उपाय न देख देवताओंकी स्तुति करने लगीं। पीछे इन्होंने देवताओंके स्वेदविरहित, स्तब्धनेत्र, दिव्यमाल्यधारी देहसे नलको पहचान कर उनके गलेमें माला डाल दी उन दोनोंने कुछ दिनोंतक सुखसे समय व्यतीत किया। पीछे नल जुएमें अपना सर्वस्व खो कर वनको चले गये। पतिव्रता दमयंती भी उनके साथ हो लीं। स्रोभ्रष्ट होनेपर मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है। एक दिन नलराज पतिपरायणा सोई हुई स्त्रीको निविड़ वनमें छोड़ आप किसी दूसरे वनमें चले गये। अंतमें दमयंत बहुत कष्ट झेलती हुई पिताके घर पहुंचीं।

दमयंती पतिविरहसे बहुत अधीर हो गईं। इनके पिताने नलकी खोजमें सर्वत्र अपने अनुचरोंको भेजा, लेकिन कहीं भी उनका पता न लगा। तब दमयंतीने कोई दूसरा उपाय न देख एक अद्भुत उपाय ढूंढ निकाला। वे जानती थीं कि राजा नल श्रीभ्रष्ट और अपमानित हो कर हो कहीं अवश्य छिपे हुए हैं। किसी असामान्य घटनाके सिवा उन्हें छिपे हुए स्थानसे बाहर निकलना असम्भव है। इसी कारण इन्होंने घोषणा कर दी कि राजा नलके अनेक समय तक अज्ञातवास करनेके कारण उनकी स्त्री दमयंतीने स्वयम्बर द्वारा विवाह करनेकी इच्छा कर ली है। यह सम्वाद पाते ही सर्वसहिष्णु नल स्थिर न रह सके। इतने दिनों तक वे अयोध्याधिपति ऋतुपर्णके यहां छद्म वेशमें अतिहीन अश्वपालका काम करते थे। अयोध्यापति जब स्वयम्बरमें जाने लगे, तब राजा नल भी उनका सारथि बन कर विदर्भ राज्यको गये। दमयंतीने दासीके मुखसे जब इस सारथिके अलौकिक रूप गुणादिकी कथा सुनी, तब ये सन्दिग्धचित्तसे अश्वशालामें पहुंचीं। वहां अश्वपालको अपना हृदयवल्लभ नल पहचान कर उनके चरणों पर गिर पड़ीं और स्वयम्बर घोषणारूप धृष्टताके लिये क्षमा प्रार्थना की। दमयंती इस प्रकार स्वामीको पा कर पुनः भक्त राज्यमें राजमहिषी हुईं। (भारतवनप०) नल देखो।

दमलचेरि—मन्द्राज प्रदेशके अंतर्गत उत्तर अर्काटका एक गिरिपथ। यह अक्षा० १३°२५' ४०" उ० और देशा० ७५° ५' पू०में अवस्थित है। इसी राह हो कर महाराष्ट्रवीर शिवाजी १६७६ ई०में पहली बार कर्णाटक पर चढ़ाई करनेके लिये गये थे। इसी स्थान पर १७४० ई०में नवाब दोस्तअली महाराष्ट्रोंसे युद्धमें मारे गये थे। १७८०-८२ ई०में हैदर अलीकी सेनाने जब कर्णाटक पर आक्रमण किया था, तब इसी राह होकर रसद भेजी जाती थी।

दमलिङ्ग—पञ्जाबके अंतर्गत बसहर राज्यका एक ग्राम। यह अक्षा० ३१°४५' उ० और देशा० ७७°३९' पू० समुद्र पृष्ठसे ८४०० फुट ऊंचे पर अवस्थित है। यहांके अधिवासी चोनतातारोंसे मिलते जुलते हैं। ये बौद्ध धर्मावलम्बी हैं।

दमान—१. पञ्जाबके अंतर्गत एक बड़ा जिला। यह अक्षा० २८° ४०' और ३२°२०' उ० तथा देशा० ६९°३०' और ७१°२०' पू०में अवस्थित है। सुलेमान पर्वतका पूर्वपाददेशस्थित प्रदेश और डेरा इस्माइल खांके अंतर्गत सिन्धुनदीका दक्षिणतीर इसी जिलेके अंतर्गत है। यहांकी भूमि अनुर्वर और पश्वादिविहीन है।

२ बम्बई प्रेसिडेन्सीके गुजरात प्रदेशके अंतर्गत पोर्त्तुगीजोंके अधीन एक नगर। यह अक्षा० २०°२५' उ० और देशा० ७२°५३' पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें भगवान नदी, पूर्वमें वृटिश राज्य, दक्षिणमें कलेम नदी और पश्चिममें काम्बे उपसागर है। नगर हवेली परगनेके साथ इसका परिमाणफल १४९ वर्गमील है।

दमानके दो विभाग हैं—१ परगना नायर वा दमान ग्राण्डी तथा २ परगना कलन पवीरो वा दमान पिकेनो। इनके सिवा ५से ७ मील तक हवेली परगनेका एक पृथक अंश है।

दमान नगर १५३१ ई०में पोर्त्तुगीजोंसे लूटा गया था। यहाके अधिवासियोंने इसका पुनः संस्कार किया। बाद १५५८ ई०में पोर्त्तुगीजोंने पुनः इसे अधिकार कर

यहां स्थायिरूपसे रहनेका बन्दोबस्त किया। इसमें २८ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्राय: १७३८१ है।

यह स्थान काम्बे उपसागरके सामने अवस्थित है और दमनगङ्गा नामक नदी द्वारा दमानग्राण्डि (बड़ा दमान) और दमानपिकोनो (क्षुद्र दमान) नामक दो विभागोंमें विभक्त है। दमानग्राण्डि दक्षिणको ओर थाना नामक इटिशाधिकृत जिलेमें संलग्न है और दमानपिकोना उत्तर की ओर सूरतके सीमान्त प्रदेशमें अवस्थित है। शेषोक्त भाग इस कन्ष्ट-याण्टिनो डिब्रागाञ्जाके अधीन पोर्त्तुगीजोंसे १५५८ ई० की दूसरी फरवरीको अधिकृत हुआ। नगर हवेली परगनेका परिमाणफल ६० वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: २७४६२ है।

१७८० ई०को छठी जनवरीको पूना नगरको सन्धिके अनुसार यह परगना महाराष्ट्रोंने पोर्त्तुगीजोंके हाथ अर्पण किया।

दमानकी प्रधान नदियां भगवान्, कलेम, नन्दलखाल वा दमनगङ्गा है। ये काम्बे उपसागरमें गिरि हैं। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर है। यहां बहुत बड़े बड़े जङ्गल हैं।

यहांको जमीन उर्वरा है। चावल, गेहूं और तमाखू यहांके प्रधान उत्पन्नद्रव्य हैं। चावलको सुविधा रहने पर भी यहां कुल ३० जमीन आबाद होती है। जमीन पर ही एक प्रकारका टैक्स निर्द्धारित है जिससे प्राय: ८०००) रु० का राजस्व वसूल होता है।

पोर्त्तुगीजोंको क्षमता ह्रास होनेके पहले अफ्रीकाके उपकूलके साथ दमानका खूब व्यवसाय चलता था। १८१७से १८३७ ई० तक चीन राज्यके साथ यहांका अफीमका व्यवसाय होता था। किन्तु अंगरेजोंसे सिन्धु देश जीते जानेके बाद अफीमको रफतनी बन्द हो गई और तभीसे दमानका अफीमका व्यवसाय उठ गया है।

पूर्व समयमें कपड़े बुनने और रंगानेके लिए दमान शहर प्रसिद्ध था। बुननेका काम आज कल भी चल रहा है। यहां माजू और खजूरके पत्तेकी टोकरी बनाई जाती है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये दमानको एक प्रदेशमें गिनती हुई है। यहां एक म्युनिसपालिटी है। गोआ के गवर्नर जनरलके अधीन एक शासनकर्त्तासे दमान शासित होता है। विचार विभाग एक जजके अधीन है और ये एक अटर्णी-जनरल तथा दो या तोन कर-णिककी सहायतासे विचार-कार्य करते हैं।

यहां दो दुर्ग है। पहले दुर्गमें गवर्नरका प्रासाद, सैन्यका आवास, अस्पताल, म्युनिसिपल आफिस, अदालत-गृह, जेल, दो गिरजा और दूसरे दूसरे मकान हैं। छोटा दुर्ग सेण्ट जिरोमोकी सहायतासे पोर्त्तगीज द्वारा स्थापित हुआ है जिसमें एक गिरजा और एक गोरस्थान है।

दमसाज (फा० पु०) किसी गवैयेके गानेके समय उसकी सहायताके लिए स्वर भरनेवाला आदमी।

दमा (फा० पु०) एक प्रसिद्ध रोग। इसमें श्वास-वाहिनी नलीके अंतिम भागमें आकुंचन और ऐंठनके कारण श्वास लेनेमें बहुत दर्द होता है, खांसी आती है और कफ रुक रुक कर बड़ी कठिनतासे धीरे धीरे निकलता है। रोगी इसमें बहुत कष्ट पाते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता।

दमाद (हिं० पु०) जामाता, कन्याका पति।

दमादम (हिं० क्रि० वि०) १ दम दम शब्दके साथ। २ लगातार, बराबर।

दमान (हिं० पु०) दामन, पालकी चादर।

दमानक (हिं० स्त्री०) तोपोंकी बाढ़।

दमाम (हिं० पु०) दमामा देखो।

दमामा (फा० पु०) नगारा, डंका।

दमाह (हिं० पु०) बैलोंका एक रोग। इसमें बैल हांफने लगता है।

दमित (सं० त्रि०) दम्यते स्म दम क्त। (वा दान्त शान्तेति। पा ७।२।२७) १ शासित, जो वश किया गया हो। २ क्लेशसहिष्णु, कष्ट सहनेवाला।

दमितृ (सं० पु०) दम-तृच्। शासनकर्त्ता।

दमिन् (सं० त्रि०) दमोऽस्यास्तीति दम-इनि। १ दमनविशिष्ट, दमन करनेवाला। (क्ली०) २ सागर और सिन्धुसङ्गमके दक्षिणस्थ तीर्थभेद। ३ उक्त तीर्थ-प्रवर्त्तक एक ऋषि। यह तीर्थ पापनाशक है। यहां ब्रह्मादि देवताओंने महेश्वरको उपासना को थी। इसमें स्नान और देवताओंसे परिवृत रुद्रको पूजा करनेसे जन्मावधि सभी पाप जाते रहते हैं। अश्वमेध यज्ञ करने-

से जो फल होता है, केवल यहां स्नान करनेसे वही फल प्राप्त होता है। (भारत १।८२ अ०)

दमी (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका जेबी या सफरी हैंचा। (वि०) २ दम लगानेवाला। ३ गांजा पीनेवाला, गंजेड़ी। ४ जो दमा रोगसे ग्रसित हो।

दमीसारथि (सं० पु०) बुद्धका नामान्तर।

दमुनस् (सं० पु०) दमुनस्, 'अन्येषामपि दृश्यते' इति पले दीर्घः वा दम-उनस् (दमेरुनसिः। उण् ४।२३४) १ अग्नि। २ शुक्राचार्य (त्रि०) ३ दमयिता, दमन करनेवाला।

दमे (सं० अव्य) दम-बाहुलकात्-के। स्टह, घर।

दमोड़ा (हिं० पु०) मूल्य, कीमत।

दमोदर (हिं० पु०) दामोदर देखो

दमोह—१ मध्यप्रदेशके चीफ-कमिश्नरके शासनाधीन जब्बलपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २३° १०' से २४°२६' उ० और देशा० ७९°५७' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८१६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बुन्देलखण्ड, पूर्वमें जब्बलपुर, दक्षिणमें नरसिंहपुर और पश्चिममें सागर जिला है। प्रधान नगर दमोह इसी शासन विभागका सदर है। इस जिलेके चारों ओर पर्वतश्रेणी है, इसीसे सीमा निर्धारण करनेमें बहुत गड़बड़ी होती है। दक्षिणकी ओर बालुका-प्रस्तरमय ऊँची पर्वत-श्रेणी तथा अनेक शाखा प्रशाखायें हैं जो नरसिंहपुर और जब्बलपुर जिलेमें इसको पृथक् करती है। पूर्वकी ओर भाँदला पहाड़ क्रमशः उत्थित हो कर अन्तमें भांडके पर्वतमें मिल गया है। पश्चिममें विन्ध्याचल श्रेणी सीमान्त प्रदेशके बहुत दूर तक फैली हुई है। अधिक ऊँचा नहीं होने पर भी यह पर्वत जिलेमें परम रमणीय है और प्राकृतिक दृश्यके सौन्दर्यको बढ़ाता है। बीच-बीचमें अल्प ऊँचाईके घने जङ्गलसे परिपूर्ण पर्वतकी उपत्यका भूमि विराजमान है। इस उपत्यकाके कई अंश सागर जिलेके अन्तर्गत है। इस तरह तीन ओर पर्वतश्रेणीसे वेष्टित दमोह जिलेकी मालभूमि उत्तरकी ओर क्रमनिम्न होती चली आ रही है। अन्तमें उत्तर सीमाका भूभाग सहसा अवनत हो कर बुन्देलखण्डकी विस्तीर्ण समतल भूमि देखनेमें आती है। दक्षिण और पूर्व प्रान्तमें पार्वत्य भूमि छोड़ कर जिलेका अधिकांश समतल उर्वरा है, केवल बीचबीचमें एक दो छत्रभङ्ग पहाड़ देखे जाते हैं। जिलेका मध्य भाग ही सबसे अधिक उर्वरा है। जिलेकी समस्त नदियां दक्षिणसे उत्तरकी ओर प्रवाहित है, जिनमेंसे प्रधान सोनार और बैरमा नदियां वियास, कोप्रा, गुराइया आदि उपनदियोंके साथ मिल कर बहुत वेगसे उत्तरी सीमा तक पहुंच गई है। इस स्थान पर सोनार नदी पूर्वकी ओर घूम कर बैरमाके साथ मिल गई है और पीछे उक्त संयुक्त नदियाँ दमोह जिलेसे बाहर निकल कर राहमें किसी दूसरी नदीके साथ मिल गई है, अंतमें यमुनामें जा गिरी है।

पहले वर्त्तमान दमोह और सागर जिला महोवा नगरके चन्देल राजाओंके अधीन था और बाहिलरो नगरके प्रतिनिधिसे शासित होता था। कुछ प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेषके सिवा चन्देल राजाओंकी और कोई कीर्त्ति अभी विद्यमान नहीं है। ११वीं शताब्दीके अंतमें चन्देल राजाओंका अधःपतन होने पर बुन्देलखण्डके खतोलावासी गोंड़ोंने इसका अधिकांश अधिकार कर लिया। पीछे प्रायः १५०० ई०में विख्यात बुन्देलराज वीरवर बड़सिंहदेवने गोंड़ोंको परास्त कर दमोह पर अपना अधिकार जमाया। बाद यह जिला मुसलमानोंके हाथ आया। आज भी यहां मुसलमान शासनकर्त्ताओंके वंशधरगण वास करते हैं, किन्तु इन लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी है और अवस्था भी शोचनीय हो गई है। महाराष्ट्रोंके अभ्युत्थानके समय ज्योंही मुसलमानोंका प्रताप घटने लगा, त्योंही पन्नावासी महावीर राजा छत्रशालने दमोह और सागरको अपने राज्यमें मिला लिया। इन्हींके समयमें हट्टा दुर्ग बनाया गया है। १७३३ ई०में फरुखाबादके नबाबने दमोह पर आक्रमण किया। राजा छत्रशालने उन्हें मार भगानेके लिये पेशवासे सहायता माँगी। इस सहायताके प्रतिदानमें छत्रशालने अपने राज्यको तीन बराबर भागोंमें विभक्त कर दो भाग अपने दो लड़कोंको और एक भाग पेशवाको दिया था। वर्त्तमान दमोह जिलेका कुछ भाग उन्हीं

तीन अंशोंमें पड़ा था। जो कुछ हो, महाराष्ट्रोंने बहुत जल्द सारा राज्य अपना लिया।

तभीसे यह जिला सागरके महाराष्ट्रोंके अधीन चला आ रहा था। उनके दौरात्म्यसे इसके अनेक स्थान अरण्य में परिणत हो गये हैं। अंतमें १८१८ ई०में दमोह जिला अंगरेजोंको सौंपा गया। तभीसे इसको दिनो दिन श्रीवृद्धि हो रही है।

यहांको लोकसंख्या प्रायः २८५३२६ है। हिन्दूमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंको संख्या प्रायः ⅙ अंश है; अन्यान्य हिन्दुओंमें कुर्मी हो सबसे अच्छे गृहस्थ कहलाते हैं। ये लोग शिष्ट और राजभक्त हैं। दूसरे दूसरे कृषिजीवियोंमें लोधोगण प्रधान हैं। ये कृषिकार्य में कुर्मियोंसे कम नहीं हैं, किन्तु ये लोग बड़े दुर्दान्त और प्रतिहिंसाप्रिय होते हैं। इन लोगोंकी संख्या सबसे अधिक है। ये उत्कृष्ट सैन्य होनेके उपयुक्त हैं। अवशिष्ट जातियोंमें गोण्ड, काछो, चमार, धीमल और चण्डाल अधिक हैं। मुसलमानोंको संख्या बहुत थोड़ो है और जो कुछ है भी वे प्रायः सभी सुन्नी सम्प्रदायके हैं।

इस जिलेमें दमोह और हट्टा नामके दो शहर तथा ११११६ ग्राम लगते हैं।

१८८१-८२ ई० में दमोह जिलेको कुल २७९९ वर्गमील जमीनमेंसे केवल ८१० वर्गमील जमीन आवाद होतो थी। कृषिजात द्रव्योंमें गेहूं प्रधान है, अन्यान्य अनाजोंमें धान और सरसों हो उल्लेखयोग्य है। कपास भी कुछ कुछ उपजाई जाती है। प्रधान कृषक कुर्मी प्राय २५० वर्ष पहले गङ्गा और यमुनाके मध्यदेशसे (अन्तर्वेदीसे) यहां आ बसे हैं। इन लोगोंमेंसे क्या स्त्री क्या पुरुष सभी खेत जा कर काम करते हैं और यही इन लोगोंकी उन्नतिका मूल कारण है। कुर्मी लोग शान्तिप्रिय और राजभक्त होते हैं। इनके बाद लोधीगण कृषिकार्यमें विशेष पटु हैं। गोण्ड लोग पार्वत्यप्रदेशमें बहुत कम खेती करते हैं और कितने कुर्मी तथा लोधियोंके यहां मजदूरी कर जीविका पालते हैं।

जिलेका अधिकांश व्यवसायवाणिज्य प्रधानतः कुण्डलपुर और बन्दकपुरके दो मेलोंमें हो हुआ करता है। कुण्डलपुरका मेला चैत्रमासमें होलीके बादसे हो आरम्भ होता और एक महीना तक रहता है। वहां नेमिनाथके मन्दिरके निकट यह मेला लगता है। बहुतसे जैन एकत्रित हो कर नेमिनाथको उपासना करते और सामाजिक विवाद विसम्वादकी मीमांसा करते हैं। इसमें बहुतोंको अर्थदण्ड होता है जो मन्दिरके खर्चमें लगाया जाता है। बन्दकपुरका मेला माघ और फाल्गुन मासमें वसन्तपञ्चमी और शिवरात्रिके उपलक्षमें लगता है। इस समय भिन्न भिन्न देशोंसे भक्तगण अपनी मनस्कामनासिद्धिके लिये यागीश्वर महादेवके मन्दिरमें आते और गङ्गा तथा नर्मदाका जल उन पर चढ़ाते हैं। इस तरह पूजासे मन्दिरकी वार्षिक आय प्रायः १२०००) रु० होती है। दमोह-निवासी महाराष्ट्रीय पण्डित नागजी-बल्लालके पिताने १७८१ ई०में यह मन्दिर निर्माण किया है। प्रवाद है, कि एक रात स्वप्नमें उन्हें पृथ्वीमें गड़े हुए शिवलिङ्गका हाल मालूम हुआ और उस स्थान पर मन्दिरके तैयार हो जानेसे महादेव आपसे आप जमीन फाड़ कर निकल आये। तभीसे यहाँ अनेक यात्री आने लगे हैं। अभी उक्त अवसर पर प्रायः लाखसे अधिक यात्री समागम होते हैं। बहुतसे व्यवसायी सौदागर आदि इस मेलेमें आ कर खरीद बिक्री करते हैं। तरह तरहके कपड़े, बरतन और खिलौने आदि हो मेलेके प्रधान वाणिज्य द्रव्य हैं। पूर्व दिशासे विलायती और देशी कपड़े, तमाकू, पान, सुपारी, नारियल, तरह तरहके मसाले, चीनी, गुड़ और धातुनिर्मित भाँति भाँतिके बरतनोंको आमदनी होती है। राजपूतानेसे नमक आता है। इनमेंसे द्रव्य जिलेमें बहुत कम खपत होती है, अधिकांश द्रव्य यहाँसे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। रफ्तनीमें गेहूं, चना, चावल, घी, कपास, मोटा कपड़ा और पशुचर्म प्रधान हैं।

सागरसे जब्बलपुरका राजपथ, सागरसे जोकाई तक की सड़क, हट्टा होती हुई नागोद तकको सड़क तथा एक दूसरी सड़क दमोह होती हुई गई है।

१८६१ ई०में दमोह मध्यप्रदेशके एक पृथक् जिलेके रूपमें परिणत हुआ है। यूरोपीय डिपटी कमिश्नरके एक सहकारी कमिश्नर और तहसीलदारकी सहायतासे यहाका शासनकार्य चलाया जाता है।

दमोह जिलेका जलवायु स्वास्थ्यकर है। नर्मदा तीरवर्ती भूभाग तथा उत्तरीय भारतकी अपेक्षा यहां ग्रीष्मका प्रादुर्भाव बहुत कम है। शीतकालमें प्रायः सामान्य वृष्टि होती है। वृष्टिके बादसे ही पाले आदिका गिरना बन्द हो जाता है। वार्षिक वृष्टिपात प्रायः ५६ इञ्च है।

जिलेमें प्लेग तथा वसन्त रोगसे बहुत मनुष्योंकी मृत्यु होती है। जबसे टीका देनेकी प्रथा आरम्भ हुई है, तबसे वसन्त रोगका प्रादुर्भाव कुछ कम हो गया है।

२ उक्त दमोह जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २३°१०' से २४°४' उ० और देशा० ७८° ३' से ७८° ५७' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १७८७ वर्गमील तथा लोकसंख्या १८३३१६ है। इस तहसीलमें इसी नामका एक शहर और ६८२ ग्राम लगते हैं। सदर मिला कर यहां ४ दीवानी और ७ फौजदारी अदालत हैं। तहसीलकी आय प्रायः २१६०००) रु० की है। इसके उत्तर-पश्चिममें सोनार नदी प्रवाहित है।

३ उपरोक्त दमोह जिलेका एक प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २३°५०' उ० और देशा० ७८° २७' पू०में अवस्थित है। कहते हैं, कि राजा नलकी स्त्री दमयंतीके नाम पर शहरका नामकरण हुआ है। लोकसंख्या प्रायः १२३५५ है। सागरसे जब्बलपुरका ऊंचा राजपथ और सागरसे जोकाई होता हुआ इलाहाबादका राजपथ इसी नगर हो कर गया है। नगरकी दीवार वालुकाप्रस्तरके ऊपर स्थापित है, इसीसे वर्षाका जल पुष्करिणीमें ठहरने नहीं पाता। कुएँ आदि भी यहां अधिक नहीं हैं। फुटेरा ताल नामकी जो एक बड़ी पुष्करिणी है उसमें भी काफी जल नहीं है। शहरके आस पास पहाड़ रहनेसे यहां गर्मी बहुत पड़ती है। नगरमें एक भी उल्लेखयोग्य मन्दिर नहीं है। पहले यहां बहुतसे प्राचीन हिन्दू-देवोंके मन्दिर थे, किन्तु मुसलमानोंने उन्हें तोड़ फोड़ कर दुर्ग आदि बना लिये जिनका अभी केवल भग्नावशेष रह गया है।

दम्पती (सं० पु०) जाया च पतिश्च द्वन्द्वे जायाशब्दस्य पक्षे दमादेशः। मिलित जाया और पति, स्त्रीपुरुषका जोड़ा। यह शब्द नित्य द्विवचनान्त है। द्वन्द्व समासमें जायापती, दम्पती और जम्पती ये तीन पद होते हैं। जायायाः जमभावो दम्भावश्च। जाया शब्दके स्थानमें विकल्पसे जम् और दम् आदेश होता है।

दम्भ (सं० पु०) दम्भते इति दम्भ-घञ्। १ कपट, छल, धोखा। २ शाठ्य, बदजाती, शरारत।

भागवतमें लिखा है, कि अधर्म ब्रह्माके पुत्र थे और उनकी स्त्री मिथ्या थी। मिथ्याके गर्भसे माया नामक एक कन्या और दम्भ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। माया और दम्भ सहोदर होने पर भी अधर्मांशसम्भूतके कारण परस्पर मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुष हुए थे। इसी दम्भ और मायासे लोभ और निकृति (शठता) नामक एक पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई। ३ महत्त्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये झूठा आडम्बर, पाखण्ड। ४ वह काम जो लोभ और वञ्चनासे किया गया हो। ५ पूजा तथा सम्मान पानेके लिये स्वधार्मिकत्व ख्यापन। ६ अभिमान, घमण्ड। ६ धर्मके प्रति अनुत्साह, पाप।

दम्भक (सं० पु०) दन्भ-ण्वुल्। प्रतारक, पाखण्डी, ढकोसलेबाज।

जो सदा लुब्ध रहते अर्थात् जिनके हृदयमें सदा धन लोभकी इच्छा बनी रहती, जो धर्मके चिह्न प्रभृति धारण करते और जनसमाजमें अपनी धार्मिकताका परिचय देते, वे वैड़ालव्रतिक हैं।

दम्भचर्या (सं० स्त्री०) शठता, वञ्चना, ठगी।

दम्भन (सं० पु०) दन्भ भावे ल्युट्। १ दम्भ, पाखण्ड। २ मोहन, लुभानेकी क्रिया।

दम्भिन् (सं० त्रि०) दन्भ-णिनि। १ दम्भकर्त्ता, आडम्बर रचनेवाला। २ अभिमानी, घमण्डी, झूठी ठसकवाला।

दम्भोद्भव (सं० पु०) १ सार्वभौम नामक एक राजा। ये बहुत दाम्भिक थे। नर नामक एक ऋषिने इनका अभिमान चूर किया था। (भारत उद्योग ८१ अ०) (त्रि०) २ जो दम्भ या ठगीसे किया गया हो।

दम्भोलि (सं० पु०) दम्भ भावे असुन्, दम्भसि प्रेरणे अलति पर्याप्नोति अल-इन्। वज्र, इन्द्रास्त्र।

दम्य (सं० पु०) दम्यते इति दम-यत्। १ प्राप्त भारवहनयोग्य वत्सतर, वह बछड़ा जिसकी अवस्था बोझ ढोनेकी हो गई हो। (त्रि०) २ दमनीय,

दमन करनेके योग्य। (पु०) २ अनड्वान्, वह बैल जो बधिया करने योग्य हो।

दय (सं० पु०) दय बाहुलकात् अप्। दया, कृपा, करुणा।

दया (सं० स्त्री०) दय भिदादयङ ततष्टाप्। करुणा, दुःखित जीवके प्रति अनुकम्पा, अर्थात् मनका वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरेके कष्टको देख कर उत्पन्न होता है और उस कष्टको दूर करनेकी चेष्टा करता है।

क्रियायोग साधनमें लिखा है, कि दूसरेके कष्टको निवारणके लिये जो प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है उसीका नाम दया है। सब जीवोंके प्रति मङ्गल और हित कार्यके लिये जो सब कार्य किये जाते हैं, उन्हींका नाम दया है। दया एक मात्र प्रधान कर्म है।

देवी भागवतमें अहिंसाको परमधर्म बतलाया है एवं सब जीवोंके प्रति दया करना उचित है। दया मोहकी स्त्री है। दयाके बिना इस संसारमें सभी काम निष्फल है।

२ दक्षकी एक कन्या जो धर्मको ब्याही गई थी। ३ शान्तिरसका व्यभिचारिभाव।

दयाकूर्च (सं० पु०) दयाया कूर्च इव। बुद्धदेव।

दयाकृष्ण—हिन्दीके एक कवि। इनके बनाये हुए कई एक ग्रन्थ मिलते है।

दयादास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने नैनकपचासा और विनयमाला नामके ग्रन्थ बनाये है।

दयादेव—हिन्दीके एक कवि। ये १७५४ ई०में विद्यमान थे। सूदनने सुजान-चरित्रमें इनका नाम कहा है।

दयादृष्टि (सं० स्त्री०) किसीके प्रति करुणा वा अनुग्रहका भाव, रहम या मेहरबानीकी नजर।

दयानत (अ० स्त्री०) सत्यनिष्ठा, ईमान।

दयानतदार (अ० पु०) सच्चा, ईमानदार।

दयानतदारी (अ० स्त्री०) ईमानदारी।

दयानन्द सरस्वती—एक गुजराती वेदान्तिक और धर्ममत प्रचारक। इन्होंने अपना जीवनचरित हिन्दीके एक संवादपत्रमें प्रकाशित कराया था।

दयानन्द गुजरातके अन्तर्गत काठियावाड़ जिलेमें मोरवीके राजाके अधीनस्थ किसी नगरमें उत्तर प्रदेशीय ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अपना असली नाम और पितामाताका नाम प्रकट नहीं किया। इसका कारण आपने यह बतलाया है, कि 'मैंने धर्मानुरोधसे अपने मातापिताका नाम प्रकट नहीं किया है। घरवालोंको खबर लगते ही वे मुझे घर लौटा ले जायेंगे, उनके साथ सम्बन्ध होते ही मुझे उनके अभाव दूर करनेके लिये फिर अर्थोपार्जन वा अर्थस्पर्श करना पड़ेगा और उससे मैंने जिस कार्यके लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, उसमें विषम व्याघात पहुंचेगा।'

दयानन्दने पाँच वर्षकी उम्रमें वर्णमाला सीख ली और जाति एवं वंशके नियमानुसार उसी उम्रमें उन्हें बहुतसे वैदिक मन्त्र कंठस्थ करा दिये गये। आठ वर्षकी अवस्थामें आपका उपनयन संस्कार हुआ। उपनयनके बाद ही आपने गायत्री, सन्ध्या, वन्दना और रुद्राध्यायसे ले कर यजुर्वेद-संहिता तक पढ़ना शुरू कर दिया।

इनके पिता शैव थे, इसलिए बहुत थोड़ी उम्रमें ही ये मिट्टीसे शिवलिङ्ग बना कर उनकी पूजा करने लगे। शैवोचित उपवास व्रतादिमें भी आप अभ्यस्त हो गये। परन्तु माता इसमें आपत्ति करती थीं, क्योंकि आप अभी बच्चे ही थे और उपवास आदि करना बच्चोंके लिए हानिप्रद है। इस विषयमें कभी कभी पितामातामें परस्पर विवाद हो जाता था।

इस समय दयानन्द संस्कृत व्याकरण सीखते थे, वैदिक मन्त्रादि कंठस्थ करते थे और प्रतिदिन पिताके साथ शिवपूजार्थ शिवमन्दिरमें जाया करते थे। चौदह वर्षकी अवस्थामें आपने सम्पूर्ण यजुर्वेदसंहिता, अन्यान्य वेदोंके कुछ कुछ अंश तथा "शब्दरूपावली" कंठ कर ली थी। उस देशके लोग इतनेसे विद्याशिक्षा समाप्त समझते थे।

इनके पिता कर वसूल करते और मजिष्ट्रेटका भी काम करते थे। दयानन्द कह गये है कि "पिताने जब मुझे पार्थिवलिङ्गपूजाके लिए दीक्षित किया था, उस समय मुझे बड़ा कष्ट हुआ था।" इससे मालूम होता है कि दीक्षाके दिन ही आपका मत-परिवर्तन हुआ था। दीक्षाके दिन इन्हें दिन भर उपवास करना पड़ा था और

रातको पिताके साथ मन्दिरमें जा कर जागरण करना पड़ा था। आधी रातको आपने देखा, कि मन्दिरके पूजक, भृत्य और कुछ उपासक मन्दिरके बाहर जा कर सो गये, उनके साथ आपके पिता भी थे। दयानन्द सन्देहाकुलितचित्तसे शिवके ईश्वरत्वके विषयमें विचार करने लगे। सन्देह बढ़ गया। आपने उसी समय पिताको जगाया और उनसे प्रश्न किया। पिताने पूछा, "यह बात क्यों पूछ रहे हो?" दयानन्दने कहा, "यह देवमूर्ति ही परमेश्वर है, ऐसी मुझे धारणा नहीं होती; उनके ऊपरसे चूहे आदि चले जाते हैं, किन्तु सर्वशक्तिमान् हो कर भी वे कुछ प्रतीकार नहीं करते।" इस पर पिताने इन्हें समझानेकी कोशिश की और कहा—'उस प्रतिमामें, शुद्धमन्त्र ब्राह्मणादिके द्वारा प्रतिष्ठित होनेके कारण देवत्व आ गया है। वर्त्तमान कलियुगमें किसीको भी शिवके साक्षात् दर्शन नहीं होते, भक्तगण इस प्रतिमामें ही भक्तिबलसे उनकी सत्ताकी कल्पना करते हैं।"

इन बातोंसे दयानन्दको तृप्ति न हुई। श्रान्ति और क्षुधा लगनेके कारण आप पितासे अनुमति ले कर घर चले आये। पिताने उपवास भङ्ग न करनेके लिए विशेष भावसे सतर्क कर दिया; किन्तु घर आने पर माताने उन्हें खिला दिया। दूसरे दिन पिताने आपको उपवास-भङ्गके पापका स्वरूप समझाया, पर इनकी देवता-भक्ति पहलेसे ही दूर हो चुकी थी, इसलिए उन बातोंको ये धारणामें न ला सके। इसके बाद आपने अपना मत अप्रकट रक्खा और विद्योपार्जनमें लग गये। इस समय आप वैदिक कर्मकाण्ड, निघण्टु, निरुक्त और पूर्व-मीमांसा पढ़ रहे थे।

जब आप सोलह वर्षके हुए, तब आपके छोटे भाईका जन्म हुआ। आपके और भी दो छोटी बहनें और एक छोटा भाई था। एक दिन रात्रिके समय चौदह वर्षकी उम्रमें आपकी एक बहन मर गई। दयानन्दके जीवनमें यह पहला शोक था। इस शोकमें आप मृत्यु और मुक्तिकी चिन्ता करने लगे। इस चिन्तामें आपने प्रण कर लिया कि "कुछ भी हो, सर्वस्व त्याग कर मैं मुक्तिका मार्ग ढूंढूंगा।" फिर आपने उपवास प्रायश्चित्त आदि सब छोड़ दिये, पर किसीसे अपने मनकी बात न कही। इसके बाद ही आपके खुल्लतातका शरीरान्त हो गया। ये दयानन्दको बहुत ही प्यार करते थे। इनके वियोगसे दयानन्द अत्यन्त क्षुब्ध हुए और जीवनकी नश्वरताको भलीभाँति समझ कर अपनी प्रतिज्ञा-पालनके लिए तत्पर हो गये।

इस समय इनके पिता इनके विवाहकी कोशिश करने लगे। परन्तु विवाह करनेकी इच्छा इनकी बिल कुल न थी। बहुत अरजी विनती करके इन्होंने एक वर्षके लिए विवाह स्थगित करा दिया और काशीमें जा कर संस्कृत शास्त्र पढ़नेके लिए पितासे अनुमति मांगी। परन्तु पिताने अनुमति न दी। शायद भाग जाय, इस डरसे इनके पिताने अपने ग्रामसे तीन कोस दूरी पर एक याजकके पास इन्हें पढ़ने भेज दिया। कुछ दिन बाद फिर विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। दयानन्द भी घर आये। उस समय आपकी उमर २१ वर्षकी थी। अब अनुरोध करनेसे कोई न मानेगा, यह सोच कर आप छिप कर घरसे निकल पड़े। इनके पिताने, उसी समय कई घुड़-सवार भेजे, पर कुछ फल न हुआ—दयानन्दका पता न लगा।

दयानन्द घुड़सवारोंकी निगाहोंसे छिप कर पैदल चलने लगे। रास्तेमें भिक्षुक ब्राह्मणोंने उनका सर्वस्व छीन लिया और कहा—'संसारमें जितना भी दान दोगे, परलोकमें उतना ही मङ्गल होगा।' कुछ समय बाद दयानन्द शैल नामक स्थानमें उपस्थित हुए। यहां लाल भगत नामके एक विद्वान् रहते थे, जिनकी बात इन्हें पहले ही मालूम थी। उनके सिवा शैलमें एक ब्रह्मचारी भी रहते थे। दयानन्द उनके दलमें प्रविष्ट हो संन्यासी हो गये। दीक्षाके समय दयानन्दका नाम "शुद्धचैतन्य" रक्खा गया। संन्यासीके वेशमें शुद्ध-चैतन्य-स्वामी अहमदाबादके निकटवर्ती कुथल्लाबाद नामक छोटेसे राज्यमें पहुँचे। दुर्भाग्यवश वहाँ दयानन्दके परिवारवर्गके साथ एक संन्यासीकी भेंट हो गई। उन लोगोंने दयानन्दके पिताको खबर दी कि शुद्ध चैतन्य स्वामी सिद्धपुरके मेलामें जा रहे हैं। शुद्धचैतन्यस्वामी और अन्यान्य कालवश जिस समय दरदी स्वामीके साथ

नीलकण्ठके मन्दिरमें ठहरे हुए थे, उस समय दयानन्दके पिता आकर उनके सामने उपस्थित हुए। पिताने इन्हें पुनः घर लौटनेके लिए बहुत अनुरोध किया; पर इन्होंने एक न मानी। आखिर जब सब तरहसे हार गये, तब पिताने इन्हें कैदियोंकी तरह सिपाहियोंके हाथ सुपुर्द किया। कुछ भी हो, दयानन्द कौशलसे फिर भाग कर अहमदाबाद आ गये। वहांसे भाग कर कुछ दिन आप बड़ौदा राज्यमें रहे। बड़ौदाके चेतनमठमें कुछ ब्रह्मचारियों और ब्रह्मानन्दस्वामीसे आपकी जान-पहचान हो गई। इसी जगह आपने पहले पहल वेदान्त पढ़ना शुरू किया था। ब्रह्मानन्दस्वामीके उपदेशसे ही आपको जीव और ब्रह्मके एकत्वका भलीभांति ज्ञान हुआ था।

इसके बाद आप काशी आये। यहां प्रधान प्रधान पण्डितोंके साथ आपने परिचय किया। सच्चिदानन्द परमहंसने योग शिक्षाके लिए इन्हें नर्मदातीरवर्ती चानोद कन्याली जानेको कहा। दयानन्द वहां पहुंच गए और दीक्षितोंके परिचय होने पर परमानन्द परमहंसके शिष्य बन गये। इन्हींके पास रह कर आपने वेदान्तसार, वेदान्तपरिभाषा आदिका अध्ययन किया था। उसके बाद आप योग-शिक्षाके लिए दीक्षित हुए। थोड़ी उमर थी, इसलिए पहले दीक्षाके विषयमें कुछ बाधा दी, किन्तु पीछे इनका आग्रह देखकर परमानन्द परमहंसने दीक्षा दे कर दण्डग्रहण करा दिया। इस दीक्षाके समय आपका नाम हो गया—दयानन्द सरस्वती। कुछ दिन बाद दयानन्द चानोदसे व्यासाश्रममें पहुंचे। योगानन्द नामके एक योगिराजने इन्हें योग-शिक्षा दी। कुछ समय योगाभ्यास करनेके बाद, योगकी उच्चतम शिक्षा अर्जन करनेके लिए आप अहमदाबादके निकटवर्ती किसी स्थानमें गये। वहांके दो योगियोंने आपको योगविद्याके शेष गुप्त विषयकी शिक्षा दी। उसके बाद दयानन्द, योगकी नूतन प्रणाली सीखनेके लिए राजपूतानाके अंतर्गत आबू पर्वत पहुंचे।

१८५५ ई०में दयानन्द हरिद्वारके महा-मेलामें उपस्थित हुए। कुछ दिन वहां ठहर कर आप ताहरी नामक स्थानमें गये। वहां मांसाहारी ब्राह्मणों और तन्त्रशास्त्रको देखकर आप बड़े विरक्त हुए। अनन्तर आप श्रीनगर जा कर केदारघाटके एक मन्दिरमें रहने लगे। यहां गङ्गागिरि नामक एक दार्शनिक साधुके पास आपने दर्शनशास्त्रका अध्ययन किया। दर्शन-विषय पर आप शास्त्रार्थ भी करते थे। दो मास बाद संन्यासियोंके साथ आप रुद्रप्रयाग पहुंचे। वहांसे अगस्त्याश्रम गये। उसके बाद उसके उत्तरवर्ती शिवपुर नामक स्थानमें शीत काल व्यतीत कर केदारघाट और गुप्तकाशीमें लौट आये। चानोदमें रहते समय सङ्गदोषसे आप गांजा पीनेमें अभ्यस्त हो गये थे। एक दिन रातको नशासे छुटकारा पानेके लिये दयानन्दने एक शिवमन्दिरमें जा कर आश्रय लिया। बरामदेमें वृषमूर्त्ति और प्रकाण्ड नन्दीमूर्त्ति थी। वृषमूर्त्तिका उदर रिक्त था। सहसा दयानन्दकी दृष्टि वृषमूर्तिके उदरमें छिपे हुए एक मनुष्य पर पड़ी। आप मूर्तिके उदरका द्वार खोलना ही चाहते थे, कि इतनेमें वह व्यक्ति फुरतीसे निकल कर भाग गया। दयानन्द प्रस्तरमूर्त्तिमें प्रविष्ट हुए और रात भर आनन्दसे सोये। सबेरे एक वृद्धा रमणी उस मूर्तिकी पूजा करने आई। पूजाके समय दयानन्द वृषमूर्तिके उदरमें ही थे। कुछ देर बाद वृद्धाने दधि और गुड़ लाकर वृषको (भोग) दिया और उसके भीतर दयानन्दको देख, उन्हें नररूपी वृष समझ प्रणाम किया एवं आहार्य उनके सामने रख दिया। दयानन्द क्षुधार्त थे, सब खा गये। दधिके खानेसे उनका नशा छूट गया। यहांसे फिर वे नर्मदाके उत्पत्तिस्थानमें चले गये।

दयानन्द शेष दशामें दुग्ध और अन्नके सिवा और कुछ आहार न करते थे, अन्तमें आपने अन्न भी छोड़ दिया था।

संन्यासियोंकी तरह आपका शरीर कृश वा क्षीण न था। आपका शरीर सुदीर्घ, सुन्दर और विलक्षण सबल था। एक महाराष्ट्री पण्डितने आपके विषयमें कहा है—दयानन्द पांच पहलवानोंकी ताकत रखते थे और पाण्डित्य भी उनमें पांच विद्वानोंका मौजूद था।

दयानन्द मूर्त्तिपूजाके विद्वेषी थे। अपने मत प्रचार के लिये आप सर्वदा भ्रमण किया करते थे। जहाँ जाते थे, वहीं "आर्य-समाज" नामकी समितिकी स्थापना

और स्वमतानुयायी भाष्यसहित ऋग्वेद प्रकाशित करते थे। भाष्य आपने स्वयं रचा है। इस भाष्यमें आपने मूर्तिपूजा प्रतिपादन श्लोकोंके भाष्यकी अन्यरूप व्याख्या कर एकेश्वरवादका प्रतिपादन किया है। दयानन्दके भाष्यका सर्वत्र आदर नहीं होता।

दयानन्द कलकत्ते भी आये थे। सभी उनके लिये आग्रहान्वित हुए थे। बङ्गालके प्रसिद्ध व्यक्ति केशवचन्द्र सेनने इन्हें अपने मकान पर ठहराया था। केशवचन्द्रके मकान पर एक प्रकाश्य सभामें आपका व्याख्यान हुआ था। आपकी भाषा सरल और सतेज थी। संस्कृतमें ही आपकी बातचीत होती थी। वक्तृता हिन्दीमें भी देते थे। बम्बईमें अरब-सागरके किनारे आपका एक आश्रम था। आप पुराणोंके उपाख्यानों पर बिलकुल विश्वास न करते थे। कोई यदि "रूपक" कह कर उनकी व्याख्या करता था, तो आप बड़े जोरसे बोल उठते थे,—"सब झूठी बातें हैं।" बम्बईमें रहते समय आपने गेरुआ वसन छोड़ दिये थे और लालपाड़की धोती पहना करते थे।

आपने लाहोरमें एक वक्तृता दी थी, जिसके अंतमें कहा था—प्राणायाम द्वारा योगमार्ग अवलम्बनके सिवा ब्रह्मप्राप्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है। जो योगके भीतर प्रवेश नहीं कर सके हैं, वे धर्ममन्दिरके बाहर घूम रहे हैं।

दयानन्द अजमेरमें, ३० अक्टोबर शनिवारकी शामके ६ बजे, उनसठ वर्षकी उमरमें परलोक सिधारे थे। बहुतसे लोग आपके शवके पीछे पीछे गये थे। दो मन चन्दन, आठ मन सामान्य काठ और ढाई सेर कपूर आपकी चितामें दिया गया था।

इस समय, दयानन्दद्वारा प्रवर्तित "आर्यसमाज" विधवाविवाह आदि कार्योंके प्रचारमें अग्रसर हो रहा है। दयानन्दने 'सत्यार्थप्रकाश' नामकी एक पुस्तक लिखी है, जिसमें साम्प्रदायिक द्वेष भरा हुआ है। यह ग्रन्थ स्वमतकी पुष्टिके लिए लिखा गया है।

**दयानाथदुबे**—हिन्दीके एक कवि। सन् १८३२ ई०में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनका बनाया हुआ प्रेमसम्बन्धी एक ग्रन्थ मिलता है जिसका नाम है "आनन्द रस।"

**दयानिधान** (सं० पु०) दयाका पुञ्ज, बहुत दयालु पुरुष।

**दयानिधि** (सं० पु०) १ वह मनुष्य जिसके चित्तमें बहुत दया हो, बहुत मेहरबान आदमी। २ ईश्वरका एक नाम।

**दयापात्र** (सं० पु०) वह जिस पर दया करना उचित हो।

**दयानिधि**—बैसवाड़ेके रहनेवाले एक हिन्दी कवि। ये १७५४ ई०में जन्मे थे। राजा अचलसिंहकी आज्ञासे इन्होंने शालिहोत्र नामक एक ग्रन्थ लिखा था।

**दयापाल**—१ रूपसिद्धि नामक शाकटायनके मतानुसार एक संस्कृत व्याकरणके रचयिता। २ अङ्ग देशके एक राजाका नाम। (भ० ब्रह्मख० २०।४०)

**दयामय** (सं० त्रि०) दया-मयट्। १ अत्यन्त दयालु, दयासे पूर्ण। (पु०) २ ईश्वरका एक नाम।

**दयार** (हिं० पु०) १ देवदारका पेड़। (अ० पु०) २ प्रान्त, प्रदेश।

**दयाराम**—१ एक विख्यात स्मार्त पण्डित। इन्होंने दानप्रदीप, पदचन्द्रिका, स्मृतिसंग्रह नामक संस्कृत भाषामें कई धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ प्रकाश किये हैं। २ शालग्रामशिलामाहात्म्यके रचयिता। ३ देवकीनन्दनके पुत्र। इन्होंने 'रसमानस' नामक एक संस्कृत वैद्यक ग्रन्थकी रचना की है। ४ काश्मीरवासी साहेबरामके पुत्र। इन्होंने लिङ्गपुराणकी टीका प्रणयन की है। ५ दिहमीके रहनेवाले एक कवि। ये जातिके ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम लछिराम था। इन्होंने २२० पृष्ठका दयाविलास नामक एक ग्रन्थ बनाया है। ये १७७९ ई०में विद्यमान थे। ६ हिन्दीके एक कवि। ये जातिके वैश्य थे। इन्होंने सीताचरित्र उपन्यास और मनुस्मृतिआल्हा नामके दो ग्रन्थ बनाये हैं।

**दयाराम त्रिपाठी**—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सन् १७१२ ई०में हुआ था। इनकी कविता प्रधानतः शान्तरसकी और भक्ति हुई होती थी। इनका "अनेकार्थ" भी प्रसिद्ध है।

**दयारामवाचस्पति**—मुग्धबोधके एक टीकाकार।

**दयार्द्र** (सं० त्रि०) दयासे भीगा हुआ, दयालु।

**दयाल** (सं० पु०) मीठीबोली बोलनेवाली एक चिड़िया।

दयाल—१ हिन्दीके एक कवि। ये गुजराती ब्राह्मण थे। सन् १८८३ ई०में ये जीवित थे। इसके पिताका नाम भोम कवि था। इनको बनाई हुई दानदीपक नामक पुस्तक मिलती है।

२ बनारसवासी एक हिन्दी कवि। इन्होंने राशि माला नामकी पुस्तक रची है। ये जातिके कायस्थ थे।

दयालसिंह—इनका पूरा नाम सर्दार दयालसिंह मजीठिया था। इनका जन्म पञ्जाबमें एक प्रतिष्ठित सिक्ख कुलमें १८४८ ई०में हुआ था। इनका परिवार दानशीलताके लिये प्रसिद्ध है। इनके पितामह सर्दार देशासिंह जाटोंके नेता थे। महाराज रणजित्सिंहने देशासिंहको उनके समरकौशल और उनके अन्यगुणों पर प्रसन्न हो कर उन्हें अमृतसरका शासनकर्त्ता बनाया। दयालसिंहके पिता लेहनासिंह खालसा सेनाके सेनापति थे। १८५४ ई०में जब इनके पिताका देहान्त हुआ, तब इनकी अवस्था केवल ५ वर्षकी थी। कोर्ट आफ वार्डको देख रेखमें इनको सम्पत्तिका प्रबन्ध और शिक्षा होने लगी। इन्होंने शीघ्रही अंगरेजी और फारसी भाषाओंमें अभिज्ञता प्राप्त कर ली। अपनी सम्पत्तिका अधिकार मिल जाने पर ये दो वर्ष तक इङ्गलैण्डमें भी रहे थे। वहाँ इनकी खूब खातिर हुई थी। वहाँसे लौट कर इन्होंने देशमें सामाजिक और राजनीतिक विषयों की उन्नति करनेके लिये प्रयत्न किया था। ये पञ्जाबके राजनीतिक नेता थे। पञ्जाबके प्रधान अंगरेजी पत्र 'ट्रिव्यून' के ये प्रतिष्ठाता थे। मरते समय इन्होंने पुस्तकालयके लिये ६० हजार रुपयेका एक दानपत्र लिख दिया था। कालेज खोलनेके लिये इन्होंने जो सम्पत्ति दी थी उसका मूल्य १५ लाख रुपये है। ये कांग्रेसके सञ्चालकोंमेंसे एक थे। इन्हींकी सहायतासे लाहौरमें कांग्रेसका अधिवेसन हुआ था। १८०५ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

दयालु (सं० त्रि०) दयते इति दय-आलुच्। (स्पृहि गृहीति पा ३।२।१५८) दयायुक्त, दयावान्। इसका पर्याय—कारुणिक, कृपालु और सूरत है।

दयालुता (सं० स्त्री०) दया करनेकी प्रवृत्ति, दया होनेका भाव।

दयालु प्रमन्न—गोपालसहस्रनामभूषणके रचयिता।

दयालु मिश्र—कवीन्द्रचन्द्रोदयधृत कवि।

दयावंत (हिं० वि०) दयायुक्त, दयालु।

दयावत् (सं० त्रि०) दया विद्यतेऽस्य, दया-मतुप्, मस्य वः। दयायुक्त, दयालु।

दयावती (हिं० वि०) १ दया करनेवाली। (स्त्री०) २ ऋषभस्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे पहली श्रुति।

दयावान् (हिं० पु०) जिसके चित्तमें दया हो, दयालु।

दयावीर (सं० पु०) दयया वीरः ३ तत्। १ दयायुक्त वीर, वह मनुष्य जो दूसरेके दुःख दूर करनेके लिए प्राण तक दे सकता है। २ दयायुक्त नायकभेद. वीर-रसके लक्षणमें चार नायकोंका उल्लेख है—दानवीर, धर्मवीर, दयावीर, और युद्धवीर।

दयाशङ्कर—१ एक विख्यात धर्मशास्त्रवित् पण्डित, धरणीधरके पुत्र। इनका बनाया हुआ शाङ्खायनीय पुण्डरीकक्रतुप्रयोग पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि ये १७६८ ई०में जीवित थे। इनके बनाए हुए कई एक ग्रन्थ है जिनमेंसे कुछके नाम ये है—

अध्वरपद्धति, आधानपद्धति, उपक्रमविधि, और्द्ध्वदेहिकपद्धति, जातकर्मादि समावर्त्तनान्तप्रयोग, तिथिनिर्णय, दर्शश्राद्धप्रयोग, दानप्रदीप, नीतिविवेक, पौण्डरीकक्रतुप्रयोग, रत्नाकर, वास्तुचन्द्रिका, वृद्धिश्राद्धविधि, व्रतोद्यापनकौमुदीप्रकाश, शुद्धिरत्न, श्राद्धपद्धति, श्राद्धप्रयोग, होत्रविधानतन्त्र, आत्मज्ञानोपनिषट्टीका, आश्वलायनसूत्रवृत्ति, शाङ्खायनगृह्यसूत्रका प्रयोगदीप, सामतन्त्रकी टीका आदि।

२ अनुबन्धखण्डनवादके रचयिता।

३ ग्रहदीपिका, प्रश्नमनोरमटीका और मल्लारिपद्धतिटीकाके प्रणेता।

४ चिकित्साकलिका नामक वैद्यक ग्रन्थकार।

दयाशील (सं० त्रि०) दया एव शीलं यस्य। दयालु, दयावान्।

दयासखी—हिन्दीके एक कवि। ये रसपन्नकी अनेक कविताएँ बना गए हैं। इनकी कविता प्रशंसनीय होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते है—

"रसिया ना मानै मोरी अखियन भरत गुलाल।

अछन अछन पाछे अलबेली निरख नवेली बाल ॥
रंग भरी गोरी गई बोरी करत अटपटे ख्याल ।
दयासखी घनश्याम लाडले भुज भर करत निहाल ॥"

दयासागर ( सं० पु० ) जिसके चित्तमें अगाध दया हो, अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयासागर—एक जैन मुनि ।

दयासुन्दर—यशोधरचरित्र नामक संस्कृत जैन-ग्रन्थके रचयिता । ये जातिके कायस्थ थे ।

दयित ( सं० पु० ) दय-क्त । १ पति । (त्रि०) २ प्रियपात्र, प्यारा ।

दयिता ( सं० स्त्री० ) दयित-टाप् । भार्या, पत्नी, स्त्री ।

दयिताधीन ( सं० पु० ) दयितायाः अधीनः । स्त्रीके वशीभूत, जोरूका गुलाम ।

दयित् ( सं० त्रि० ) दय-इत्न् । दयाशील, दयालु ।

दय् ( सं० त्रि० ) देव क्विप्-जट् । देवनकर्त्ता ।

दर ( सं० क्ली० ) १ शङ्ख । २ गर्त्त, गड्ढा, दरार । ३ भय; डर । ४ कन्दर, गुफा । ( पु० स्त्री० ) ५ पर्वतगुहा, पहाड़की कन्दरा ।

दर ( हिं० पु० ) १ सेना, समूह । २ स्थान, जगह । ३ जुलाहोंकी तानेकी डंडियां गाड़नेका स्थान। (स्त्री०) ४ भाव, निर्ख । ५ प्रमाण, ठीक ठिकाना । (त्रि०) ६ किञ्चित्, थोड़ा, जरासा ।

दर ( फा० पु० ) द्वार, दरवाजा ।

दरक ( सं० त्रि० ) दर भये क्वादिभ्यो वुनः इति-वुन् । भीरु, डरपोक, कायर ।

दरक ( हिं० स्त्री० ) वह दरार जो जोर या दाब पड़नेसे हो जाता है ।

दरकण्टिका ( सं० स्त्री० ) दर ईषत् कंटो यस्याः कप् टापि अत इत्वं । शतावरी, सतावर नामको औषध ।

दरकच ( हिं० स्त्री० ) १ वह चोट जो जोरसे रगड या ठोकर खानेसे लगी । २ वह चोट जो कुचल जानेसे लगी ।

दरकटी ( हिं० स्त्री० ) भावका ठहराव, दरकी मुकर्री ।

दरकना ( हिं० क्रि० ) विदीर्ण होना, चिरना ।

दरका (हिं० पु०) १ विदीर्ण होनेका चिह्न, दरार । २ वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय ।

दरकाना (हिं० क्रि०) १ फाड़ना । २ फटना ।

दरकार ( फा० वि० ) आवश्यक, जरूरी ।

दरकिनार (फा० क्रि० वि०) पृथक्, अलग, दूर ।

दरकूच ( फा० क्रि० वि० ) बराबर यात्रा करता हुआ ।

दरखास्त (फा० स्त्री०) १ निवेदन-प्रार्थना । २ प्रार्थना पत्र, निवेदन पत्र ।

दरख्त ( फा० पु० ) वृक्ष, पेड़ ।

दरगाह ( फा० स्त्री० ) १ चौखट, देहरी । २ दरबार, कचहरी । ३ किसी सिद्धपुरुषका समाधिस्थान, मकबरा, मजार । ४ मठ, तीर्थस्थान ।

दरगुजर ( फा० वि० ) १ वञ्चित, अलग, बाज । २ क्षमा प्राप्त, मुआफ ।

दरगुजरना ( फा० क्रि० ) १ त्यागना, छोड़ना । २ क्षमा करना, मुआफ करना ।

दरङ्ग—आसाम प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला । यह अक्षा० २६° १२' से २७° ० उ० और देशा० ९१° ४२' से ९३° ४७' पू०में अवस्थित है । भूपरिमाण ३४१८ है । इसके उत्तरमें भूटान, टोवङ्ग और अका तथा दफला पहाड़; पूर्वमें लखिमपुर जिला और मङ्गलदई नदी; दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र और पश्चिममें कामरूप है ।

यह जिला भैरवी और ब्रह्मपुत्रनदीके सङ्गम पर अवस्थित है । तेजपुर इस जिलेका सदर है ।

बहुतसी बड़ी तथा छोटी नदियां इस प्रदेश हो कर प्रवाहित हैं । २००से ५०० फुट ऊंचे अनेक छोटे छोटे पहाड है । यह प्रदेश वन और जङ्गलमय है । यहां सब प्रकारके हिंस्र जन्तु पाये जाते हैं, शिकारीको बाघका शिकार करनेमें २०) रु०, चीता बाघ मारनेमें ५) रु०, भालू मारनेमे १०) रु० और हरिण मारनेमें २॥) रु० तक दिये जाते है । जंगली हाथी कभी कभी अनाज बहुत नुकसान करता है ।

ब्रह्मपुत्र दरङ्गकी सबसे प्रधान नदी है । इसकी पाँच मुख्य शाखायें हैं—१ भैरवी, २ धिलादरी, ३ बनेश्वरी, ४ नोनाई और ५ बड़ी नदी । इनके सिवा यहां और भी २६ छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं । यहां हृद एक भी नहीं है । खेतीकी सुविधा तथा ब्रह्मपुत्र नदीकी बाढ़ रोकनेके लिये दो बांध है ।

आसामसे पृथक् इतिहास दरङ्गका नहीं है । पुरा-

तैरव और स्थानीय परम्परागत प्रवादसे जाना जाता है कि पुराकालमें ब्रह्मपुत्र नदोको उपत्यकासे लेकर बहुत दूर तक हिन्दू सभ्यता फैली हुई थी। तेजपुर नगरके चारों ओर पहाड़ समूह पर जङ्गलावृत मन्दिर और प्रासादके जो सब ध्वंसावशेष है उनसे मालूम होता है, कि ये सब मन्दिरादि किसो विशिष्ट क्षमतापन्न जातिसे बनाये गये थे और ये लोग किसो आक्रमण कारोसे विनष्ट हुए थे, यह सहजमें अनुमान किया जाता है। कोई कोई कहते है कि, बङ्गालके अधिपति सुलेमानके सेनापति कालापहाड़से ही ये सब धर्म-विघातक काम हुए थे; फिर कोई कहते है, कि यह बाणराजाके साथ श्रीकृष्णके युद्धका फल है। हिन्दूराज्यके पतनके बाद आसामके अन्यान्य प्रदेशोंको नाईं दरङ्ग पुनः असभ्योंके हाथमें आ गया। ब्रह्म-देशके पहाड़से आई हुई सानवंशोद्भूत आहोम जाति तेरहवीं शताब्दीको ब्रह्मपुत्रको उपत्यकामें प्रवेश कर धीरे धीरे नीचेको ओर अग्रसर हुई थी। अंगरेजोंके आगमन काल तक इन्होंने हो इस स्थानको अपने अधिकारमें कर रखा था। उत्तरमें पर्वत श्रेणोका प्रदेश आहोम-राज प्रतिवर्ष ८ महीनेके लिये भुटियाको धान आदिकी फसल उपजानेके लिये देते और इसके बदले उनसे प्रतिवर्षके उत्पन्न द्रव्योंमेंसे कुछ अंश ले लेते थे। वर्षके शेष चार मास अर्थात् आषाढ़से आश्विन तक वे स्वयं ही इस प्रदेशके ऊपर राज्य करते थे। अंगरेजोंसे १८२६ ई०में आसाम जीत जानेके बाद भी कुछ दिनों तक यही बन्दोवस्त चलता रहा। किन्तु १८४० ई०में भुटियाका स्थान कमा कर उन्हें वार्षिक ५०००) रु० दिये जाने लगे। इस विवादो जमीनसे अंगरेज सरकार ५१८५०) रु० राजस्व पाने लगी।

जिन भुटियाको कथा ऊपर लिखी गई है, वे भूटान राज्यके अधीन नहीं, बल्कि लासा गवर्मेण्टके अधीन हैं। वे तिब्बतियोंके साथ खूब व्यवसाय करते हैं। भुटियाके अलावा पूर्व दिशामें अका वा ह्रसो नामक एक छोटी जाति वास करती है। ये वार्षिक ७००) रु० कर पाते हैं। यहां तक कि उन्होंने १८३३ ई०में भी एक प्रदेशका दावा करके वृटिश अधिकार पर दखल जमाया था। अका देखो।

Vol.

इसके और भी पूर्वमें दफला नामक एक जाति है। ये १८७२ ई०में अमतोला ग्राम पर आक्रमण कर वहांके बहुतसे मनुष्योंको कैद कर ले गये थे। किन्तु १८७४।७५ ई०में एक दल सेनाने उन्हें उद्धार किया। दफला देखो। यहांको लोकसंख्या प्रायः ३३७३१३ है।

दरङ्गको अधिवासियोंमें असभ्य जाति ही प्रधान है। इनमेंसे कछारी, राभा और कोचको संख्या अधिक है। इनके सिवा आहोम, कुटिया, भुटिया, दफला, गारी, मेच आदि और भी कई एक जातिया है; यहांके सभी मुसलमान सुन्नी हैं और इनको अवस्था खूब बढ़ो चढ़ो है। कछारियोंमें बहुतोंने ईसाई धर्म अवलम्बन किया है। यहा एक गिरजा और बहुतसे मिशनरी स्कूल हैं। गवर्मेण्ट वार्षिक १५००) रु० स्कूलके खर्चके लिये देती है। १८७२ ई०को तेजपुरमें एक ब्राह्म-समाज स्थापित हुआ है।

तेजपुर ही इस जिलेका सबसे बड़ा शहर है। इसके सिवा विश्वनाथ, हवाला, मोहनपुर, नलबाड़ी और कुरुयागाँव नामक कई एक वाणिज्यप्रधान ग्राम हैं।

यहा चावल ही प्रधान शस्य है। चावल दो प्रकारका होता—१ला शालो वा आमन, यह शीतकालमें काटा जाता और यही प्रधान खाद्य है। २रा आउस—यह ग्रीष्म कालमें काटा जाता है। धान काटनेके बाद सरसों, मटर, उरद आदिको फसल होती है।

यहांके कृषकोंकी अवस्था खराब नहीं है। ये गव-मेंण्टकी खास जमीन दखल करते है क्योंकि इन लोगों-में ऐसी क्षमता है। जिनके पास जमीन नहीं है वा कर लेनेको भी क्षमता नही है, वे भी साधारणतः मजदूरी करने नहीं जाते।

दरङ्ग न तो बाढ़के जलसे प्लावित होता और न वृष्टिके अभावसे भी कष्ट पाता है दुर्भिक्षका यहां नाम भी नहीं है। वर्त्तमान शताब्दीके प्रथम भागमें एक बार अनाजका कष्ट हुआ था, वह भी सिर्फ ब्रह्मदेश-वासियोंके आक्रमणके कारण, न कि वृष्टिके अभावसे।

रेशम बुनना ही यहांका एक मात्र शिल्पकर्म है। रेशम दो प्रकारका होता है। एंडिया और मुगा। यहां बहुतसे लोग सूत कातते, बुनते और रंगते हैं। रेशम-

वस्त्र बुननेके सिवा कई जगह पीतल और मिट्टीके बर-तन भी तैयार किये जाते हैं।

चायकी खेती यहाँ केवल साहबोंके द्वारा ही की जाती है और लगभग दो सौ चायके बागीचे हैं।

यहांकी रफतनी द्रव्योंमें चाय, सरसों और रेशम वस्त्र ही प्रधान है। चाय-बागीचोंके निकटस्थ स्थानोंमें प्रति सप्ताह मेला लगता है। कहीं कहीं वार्षिक मेला भी हुआ करता है। यहां भुटिया लोग छोटे छोटे घोड़े, कम्बल, लवण, मोम, स्वर्ण, लाक्षा प्रभृति बेचते हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी द्वारा स्टीमर पर सब समय आ जा सकते हैं। इसके सिवा जाने आनेके दूसरे रास्ते बहुत थोड़े हैं। आसाम-रास्ता ( Assam Northern Trunk Road ) नामक एक प्रशस्त रास्ता दरङ्गके एक प्रान्तसे ले कर दूसरे प्रान्त तक प्रायः १४३ मील चला गया है। आसाम-बङ्ग-रेल पथसे (Assam Bengal Railway) इस प्रदेशमें जाने आनेको बहुत सुविधा हो गई है।

यहां ५ थाने लगते हैं। तेजपुरमें जिलेका सदर, मजिष्ट्रेटको अदालत और अन्यान्य कर्मचारियोंके कार्यालय हैं।

बङ्गालके अन्यान्य प्रदेशोंकी नाईं यहां शिक्षाकी उन्नति देखी नहीं जाती। तेजपुरमें एक गवर्मेंट अंग-रेजी विद्यालय और मिशनरियोंका एक नार्मल स्कूल है।

सविराम ज्वर, आमाशय आदिरोग यहां प्रायः हुआ करते हैं। यहां दो दातव्य औषधालय भी हैं।

दरङ्गिरि—आसाम प्रदेशके गारोपहाड़के अन्तर्गत एक ग्राम। यह सोमेश्वरी नदीके किनारे अक्षा० २५° ४६' उ० और देशा० ९०° ५६' पू०में अवस्थित है। इसके निकट १० मील लम्बी और ६ मील चौड़ी एक सुन्दर कोयले-की जमीन है। यहां यथेष्ट कोयला पाया जाता है।

दरज ( हिं० स्त्री० ) दरार, दराज।

दरजन ( हिं० पु० ) दर्जन देखो।

दरजा ( हिं० पु० ) १ दर्जा देखो। २ लोहा ढालनेका एक यन्त्र।

दरजिन ( हिं० स्त्री ) दर्जिन देखो।

दरजी ( हिं० पु० ) दर्जी देखो।

दरण ( सं० पु०) १ दलने वा पीसनेकी क्रिया। २ ध्वंस, विनाश।

दरणि (सं० पु०-स्त्री०) दृ विदारणे अनि ( दृणातेरण्यनिः। उण् २।१०३ ) कूलभङ्ग, नदीके किनारेका टूटना। इसका संस्कृत पर्याय—कूलङ्कष और कूलतरङ्गुल है।

दरथ ( सं० पु० ) दृ-विदारणे अथ। १ प्रसरण, चारों ओरका फैलाव। २ गर्त्त, गड्ढा, दरार।

दरद् ( सं० स्त्री० ) दृनाति दृ-विदारणे अदि ( दृदमसो इदिः। उण् १।१२९ ) १ अद्रि, पर्वत, पहाड़। २ प्रताप, झरना। ३ भय, डर, खौफ। ४ म्लेच्छ जाति। ५ देश-विशेष, एक देशका नाम। ६ तीर, किनारा।

दरद ( सं० क्लो० ) दर ईषत् दायति शुध्यतीति, दै-क। १ हिङ्गुल ईंगुर, सिंगरफ। इसके पर्याय-दरद, म्लेच्छ, चित्राङ्ग और चूर्ण पारद हैं। दरद तीन भागोंमें विभक्त है-चर्मार, शुकतुण्डक और हंसपाद। ये तीनों यथाक्रम एक दूसरेसे अधिक गुणदायक है, अर्थात् चर्मारसे शुक-तुण्डकमें और शुकतुण्डकसे हंसपादमें विशेष गुण है। चर्मार श्वेतवर्ण, शुकतुण्डक पीतवर्ण और हंसपाद जवापुष्प सरीखा लोहितवर्ण होता है। हंसपाद हिङ्गुल ही सर्वोत्कृष्ट है। औषधमें दरदका व्यवहार करनेमें हंसपादही प्रशस्त है। शोधित हिङ्गुलका गुण—तिक्त, कषाय, कटुरस एवं चक्षुरोग, कफ, पित्त, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और गरदोषनाशक है। हिङ्गुलको पीस कर ऊर्द्धपातनके नियमानुसार डमरू-यन्त्रमें पाक करके जो रस बनता है, वह स्वभावतः विशुद्ध है। अतः उसे शोधन करनेकी जरूरत नहीं पड़ता।

दरद शोधन विधि—भेंड़ीके दूध और अम्लवर्ग द्वारा यन्त्रके साथ सात बार भावना देनेसे हिङ्गुल शोधित होता है। हिङ्गुलसे रस निकालनेमें उसे कागजी नाबू अथवा नीमके पत्तोंके रससे एक पहर तक पीस कर पारेकी नाईं ऊर्द्धपातन करते हैं। पीछे ऊपरके पात्र-संलग्न रसको ले लेते हैं। यह शुद्ध और हितजनक होता है। सुतरां सभी कार्योंमें इसका प्रयोग कर सकते हैं। (भावप्र०)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इस प्रकारके हिङ्गुलको हिङ्गुल, शुकतुण्डक और रसगन्धक नामसे उल्लेख किया है। रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे इनकी शोधन-प्रणाली—पहले

अम्लवर्गके साथ पीछे भैंसके दूधके साथ घोंटनेसे हिङ्गुल शोधित होता है। दूसरी विधि—भैंसोंके दूधमें सात बार और अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे भी यह शोधित होता है। तीसरी विधि-जंबीरी नीबूके रससे दोलयन्त्र इसे पाक कर अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे यह विशुद्ध होता है। रसगन्धक हिङ्गुल देखनेमें खरबूजेके फल जैसा लगता है और सबसे उमदा होता है। विशुद्ध हिङ्गुल, मेह और कुष्ठहारक, रुचिकर, बलप्रद, मेधा और अग्निवर्द्धक है। (रसेन्द्रसारसंग्रह।)]

हिंगुल देखो।

२ देशविशेष, काश्मीर और हिन्दूकुश पर्वतके प्रदेशका प्राचीन नाम। वृहत्संहितामें इस देशको ईशान कोणमें स्थित बतलाया है। लेकिन आजकल जो दारद नामकी पहाड़ी जाति है उसका वासस्थान लद्दाख, गिलगित, चित्रपाल, नागर हुंजा आदि स्थानोंमें ही है। प्राचीन यूनानी और रोमन लेखक भी इस जातिका निवास-स्थान हिन्दूकुशके आस पास ही बतला गये हैं। (वृहत्सं० १४ अ०) ३ दरदः देशविशेषः, सोऽभिजनोऽस्य. तस्य राजा वा अण्, बहुषु अणो लुक्। दरद देशवासी, दरद देशके लोग। ४ दरद देशके राजा। दरद देशवासीके अर्थमें दरद शब्द बहुवचनान्त होना चाहिये. किन्तु आर्षप्रयोगमें कहीं कहीं एक वचनान्त भी देखा जाता है। यथा—

"शाल्वराजश्च दरदो विदेहाधिपतिस्तथा।"

(हरिवंश ८१ अ०)

५ म्लेच्छ जातिभेद। इस जातिके लोग पहले क्षत्रिय थे, पीछे वृषलत्वको प्राप्त हो गये हैं। दारद देखो।

मनुस्मृतिमें लिखा है कि पौण्ड्रक, औड्र, द्राविड़, काम्बोज, जवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश ये सब देशोद्भव क्षत्रिय लोग उपनयनादि संस्कारविहीन हो जाने और ब्राह्मणोंका दर्शन न पानेसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गये हैं। आजकल दरद नामको जाति काश्मीरके आस पास लद्दाखसे ले कर नागर-हुंजा और चित्राल तक पाई जाती है। इस जातिके लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं। लेकिन यदि इनका भाषा और रीति नीतिको ओर दृष्टि डाली जाय, तो ऐसा प्रगट होता है, कि ये लोग आर्यकुलोत्पन्न हैं। मुसलमान हो जानेके कारण ये फारसी अक्षरोंका व्यवहार करते हैं सही, मगर इनकी भाषा काश्मीरोसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। (त्रि०) दरं भयं ददाति दा-क। ६ भयदायक, भयङ्कर।

दरद (फा० पु०) १ कष्ट, पीड़ा, व्यथा। २ करुणा, सहानुभूति, दया, तर्स। विशेष दर्दमें देखो।

दरदर (फा० क्रि० वि०) द्वार द्वार, दरवाजे दरवाजे।

दरदरा (हिं० वि०)जिसके कण स्थूल हों, जो खूब बारीक न पीसा हो।

दरदराना (हिं० क्रि०) बहुत बारीक न पीसना, थोड़ा पीसना।

दरदरी (हिं० वि०) जिसके रवे मोटे हों।

दरदवंत (फा० वि०) १ कृपालु, दयालु। २ पीड़ित. दुखी।

दरदालान (फा० पु०) दालानके बाहरका दालान।

दरद्द (हिं० पु०) दर्द देखो।

दरपन (हिं० पु०) दर्पण, आइना शीशा।

दरपना (हिं० क्रि०) १ क्रोध करना। २ अहङ्कार करना।

दरपनी (हिं० स्त्री०) छोटा आइना।

दरपरदा (फा० क्रि० वि०) छिपाकर, आड़में।

दरपेश (फा० क्रि० वि०) सम्मुख, सामने।

दरब (हिं० पु०) १ धन, दौलत। २ धातु। ३ एक प्रकारकी चादर जिसका किनारा मोटा हो।

दरबर (सं० पु०) दरेषु शङ्खेषु वरः श्रेष्ठः। पाञ्चजन्य शङ्ख।

दरबहारा (हिं० पु०) सड़े हुए वनस्पतियोंका एक प्रकारका मद्य।

दरबा (फा० पु०) १ काठका खानेदार संदूक जिसमें कबूतर आदि रखे जाते हैं। इसके एक एक खानेमें एक एक पक्षी रखा जाता है। २ किसी पक्षी या जीवके रहनेका दीवार या पेडका कोटर।

दरबान (फा० पु०) द्वारपाल, ड्योढीदार।

दरबानी (फा० स्त्री०) द्वारपालका कार्य, दरबानका काम।

दरबार (फा० पु०) १ राजा पात्रमित्रके साथ जिस स्थान

पर बैठ कर राजकीय कार्य करते हैं, उसीका नाम दरबार है। २ राजसभा, कचहरी। ३ महाराज, राजा। ४ अमृतसरमें सिक्खोंका मन्दिर। इसमें ग्रन्थ-साहब रखा हुआ है। ५ द्वार, दरवाजा।

दरबारदारी (फा० स्त्री०) १ राजसभामें उपस्थिति, दरबारमें हाजरी। २ किसीके पास बारबार जाकर बैठने और बिनती करनेका काम।

दरबारविलासी (फा० पु०) द्वारपाल, दरवान।

दरबारी (फा० पु०) १ राजसभाका सभासद, दरबारमें बैठनेवाला आदमी (वि०) २ राजसभाके योग्य, दरबारके लायक।

दरबारी कान्हड़ा (फा० पु०) एक प्रकारका राग। इसमें ऋषभके अतिरिक्त शेष सब कोमल स्वर लगते हैं।

दरभ (हिं० पु०) दर्भ देखो।

दरभङ्गा—बिहार प्रदेशके तिरहुत कमिश्नरीके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २५°२४' से २६°४०' उ० और देशा० ८५°३१' से ८६°४४' पू०में अवस्थित है। पहले यह पटना कमिश्नरीके अन्तर्भुक्त था। १८७५ ई०के जनवरी महीनेमें तिरहुत जिलेको विभाग कर स्वतन्त्र दो जिले कर दिये गये। उसी समय तिरहुत जिलेके पूर्वांशस्थित दरभङ्गा, मधुबनी और ताजपुर उपविभाग लेकर दरभङ्गा जिला सङ्गठित हुआ। इस जिलेके उत्तरमें नेपाल राज्य, दक्षिणमें मुङ्गेर और गङ्गानदी, पूर्वमें भागलपुर और पश्चिममें मुजफ्फरपुर है। जिलेकी लम्बाई ४८ कोस है। भूपरिमाण ३३३८ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २९१२६११ है। यहाँ ब्राह्मण, बाभन, राजपूत, अहीर, दुसाध, धानुक, कोइरी, मल्लाह, चमार, केवट, कुर्मी, मुसहर, ताँती और तेली आदिकी संख्या अधिक है। इनके अलावा मुसलमान और ईसाई भी हैं। जिलेमें आम और बाँसके उद्यान यथेष्ट हैं।

बाघमती, गण्डक, छोटी गण्डक, कराइ, कमला, तिलजुगा आदि नदियां प्रधान हैं। २० वर्गमील परिमित तालबड़ेला नामक ह्रद जिलेमें सबसे बड़ा है। इस जिलेमें धानके बड़े बड़े पौधे लगते हैं जिनकी ऊँचाई ८ से १२ हाथ तक होती है। धान, तीसी, नील, सरसों, गेहूँ, महुआ, मसूरी, कोदों, चना, उरद, मूंग, जुन्हरी, बारली, तमाखू आदिकी उपज अच्छी होती है। अलीपुर परगनेमें धानकी खेती अधिक होती है। नीलका व्यवसाय अङ्गरेजोंके अधिकारमें और चीनी हिन्दुस्तानीके अधिकारमें है। ताजपुरके अन्तर्गत पूसा नामक स्थानमें तमाखूकी कोठी स्थापित हुई है। युरोपीय और अमेरिकन कृषि-प्रणालीके अनुसार तमाखूकी खेती और चुरुट तैयार होता है। जिलेमें ४ शहर और ३२३३ ग्राम लगते हैं। मधुबनीमें संस्कृतके कई एक विद्यालय हैं। ज्वर ही यहाँकी प्रधान व्याधि है।

२ इसी जिलेका प्रधान उपविभाग। यह अक्षा० २५°३८' से २६°२६' उ० और देशा० ८५°४१' से ८६°४४' पू०में पड़ता है। भूपरिमाण १२२४ वर्गमील और जनसंख्या लगभग १०६५५८५ है। इसमें एक दीवानी और ५ फौजदारी अदालत हैं तथा दरभङ्गा एवं रुसेरा नामके दो शहर और १३०६ ग्राम लगते हैं।

३ दरभङ्गा जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० २६°१०' उ० और देशा० ८५°५४' पू० छोटी बाघमती नदीके किनारे अवस्थित है। बिहार प्रदेशके मध्य यही तीसरा शहर है। लोकसंख्या प्रायः ६६२४४ है जिनमेंसे हिन्दू ही अधिक हैं। शहरमें म्युनिसपलिटी और बड़े बड़े मनोरम सरोवर हैं।

दरभङ्गा शहर सम्भवतः मुसलमान नगरी था। कोई कोई कहते हैं, कि दरभङ्गा खाँसे यह नगर स्थापित हुआ है। किसीका अनुमान है कि द्वारबङ्गसे दरभङ्गा नाम हुआ है। असंख्य पुष्करिणी देख कर बहुतसे लोग कहते हैं, कि सेनानिवास स्थापन करनेके लिये प्रचुर मट्टी ली गई थी और वे ही गर्त पुष्करिणीके रूपमें परिणत हो गये हैं।

शहरके चारों ओरकी जमीन बहुत नीची है और प्रायः बाघमती और कमलाकी बाढ़से डूब जाती है। यहांके बाजार बहुत बड़े बड़े हैं, हाट प्रतिदिन लगती है। तिरहुत स्टेट रेलवे गङ्गातीरवर्ती बाजितपुरसे आ कर दरभङ्गा शहरमें मिल गई है। बाजितपुरके सामने इष्ट इण्डियन रेलवेके बाढ़ नामक ष्टेशन है। दरभङ्गा जानेमें बाढ़से जहाज पर चढ़ कर बाजितपुर होते हुए जाना पड़ता है। इस शहरसे सरसों आदि तेलहन

बोज, घी और काठकी रफ्तनी होती है।

इतिहास—महेश ठाकुरके पिताका नाम चांद ठाकुर था। ये मध्य भारतके खण्डवाला कुलोद्भव श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। ये सोलहवीं शताब्दीमें तिरहुत आ कर भवसिंह देववंशीय राजाओंके यहां पुरोहितका काम करते थे। भवसिंह देवका विवरण मिथिला शब्दमें देखो।

रघुनन्दन राय नामक एक मैथिल ब्राह्मण महेश ठाकुरके छात्र थे। दरभङ्गाके अन्तर्गत गौड़ परगनेके मध्यगत रामपुर ग्राममें रघुनन्दनका घर था। दिल्लीके सम्राट् अकबरको सब धर्मोंकी कथावार्त्ता सुननेका बड़ा शौक था। इसी सूत्रसे रघुनन्दन एक दिन अकबरके दरबारमें पहुँचे। उन्होंने वहां शास्त्रीय तर्कमें जय प्राप्त की। अकबरने सन्तुष्ट हो कर ९६५ फसलीको २४वीं चैतकी (१५६८ ई०में) उन्हें पण्डितका खिताब और तिरहुतके अन्तर्गत हाती परगनेकी जमींदारी प्रदान की। रघुनन्दन पण्डित दिग्विजयमें बहिर्गत हुए थे; अतः उन्होंने उक्त जमींदारी अपने पास रखनेकी इच्छा न की। उन्होंने देश आ कर महेश ठाकुरको गुरुदक्षिणामें जमींदारी दे दी। महेशने प्रथमतः दान ग्रहण न किया, किन्तु पीछे बाध्य हो कर शिष्यकी वासना पूरी की। पर वे विषयके लोभी न थे, अतः बहुत हठ करके उन्होंने पुनः रघुनन्दनको जमींदारी लौटा दी। इसके बाद ही १५५८ ई०में महेशकी मृत्यु हुई। रघुनन्दन दिग्विजयमें निकले थे, इस कारण वे गुरुदत्त धनका भोग करनेके लिये बिलकुल राजी न हुए। इस पर महेशके दूसरे लड़के गोपाल ठाकुर पिताके दानपत्रके बलसे हाती परगनेका बन्दोबस्त करानेके लिए दिल्लीको गये। दिल्ली दरबारके विचारसे महेश

ठाकुरका स्वत्व कायम किया गया। जमींदारी बन्दोबस्त प्राप्त कर लौटते समय १५८५ ई०को काशीमें गोपालकी मृत्यु हुई। इस समय टोडरमल अकबरके दरबारमें रहते थे। गोपालके समयमें ही दिल्लीसे दरभङ्गका एक फौजदार नियुक्त हुआ।

दरभङ्गकी प्रजाका प्रथम भूसम्पत्ति हाती परगनेका परिमाण २१७२४१ बीघा है। इस परगनेके भवारा ग्राममें महेश ठाकुरके वंशधर रहते थे। अकबरके समयमें बङ्गालके सूबादार जलालुद्दीनको बनाई हुई एक मस्जिद भवारा ग्राममें वर्त्तमान है।

दरभङ्गा जिलेका प्रायः ⅞ स्थान अभी दरभङ्गाराजके अधिकारमें आ गया है।

महेश ठाकुरने जमींदारी-प्राप्तिके साथ साथ 'सादुद' कर ग्रहण करनेका अधिकार पाया था। किन्तु १७८८ ई०में कलक्टर साहबके लिखे हुए विवरणसे जाना जाता है, कि १७२७ ई० तक महेशके वंशधर इस प्रकारका कर ग्रहण करनेके अधिकारी न थे, पर १७२८ ई०में महब्बतजङ्गको सुबादारीके समयमें उन्हें उक्त कर ग्रहण करनेकी क्षमता दी गई थी।

१५५८ ई०में महेश ठाकुर पाँच लड़के छोड़ कर परलोकको सिधारे। बड़े लड़के रामचन्द्र ठाकुरकी अविवाहित अवस्थामें मृत्यु हुई। दूसरे लड़के गोपाल ठाकुर कुछ काल तक जमींदारी भोग करके काशीके वासी हुए और १५८५ ई०में स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। तीसरे अचित् ठाकुर (अजित वा अच्युत) अपुत्रक अवस्थामें मरे। चौथे परमानन्द ठाकुर मध्यम भाईके बाद जमींदारी भोग करने लगे, किन्तु उनका भी अपुत्रक अवस्थामें देहांत हुआ। पीछे पांचवें शुभङ्कर ठाकुरने जमींदारीका अधिकार प्राप्त किया। १६०७ ई०में इनकी मृत्यु हुई। दरभङ्गके वर्तमान राजगण इन्हीं शुभङ्करके वंशोत्पन्न हैं।

शुभङ्करकी मृत्युके बाद पुरुषोत्तमने पितृसम्पत्ति पाई। १६४२ ई०में उनके मरने पर उनके सबसे छोटे भाई सुन्दर ठाकुर सारी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। २० वर्ष राज्य करनेके बाद १६६२ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे इनके बड़े लड़केने राज्याधिकार पाया। १६८४ ई०में महीनाथके अपुत्रक अवस्थामें मरने पर उनके छोटे भाई नृपति ठाकुर राजा बन बैठे। १७०० ई०में नृपतिके मरने पर उनके दूसरे लड़के रघुसिंह राज्याधिकारी हुए। सूबादार महब्बत जङ्गको उपयुक्त भेंट देकर रघुसिंहने 'राजा'की उपाधि पाई और वार्षिक लाख रुपये कर दे कर सरकार तिरहुतकी मुकर्रर जमा ग्रहण की। नवाब महब्बतके दीवान राजा धरणीधरको फिर भी ५० हजार रुपये नजराना दे कर उन्होंने निर्विवादसे जमींदारी भोग करनेकी व्यवस्था कर ली। रघुने नूतन जमींदारी और राजाकी उपाधि पा कर अपने वंशगत 'ठाकुर'की उपाधि छोड़ दी और राजबोधक 'सिंह'की उपाधि ग्रहण की। कुछ दिनके बाद राजा रघुसिंहके पितामह सुन्दर ठाकुरके दूसरे भाई नारायण ठाकुरके प्रपौत्र एकनाथ ठाकुर इनसे डाह करने लगे। उन्होंने नवाब महब्बत जङ्गको सूचना दी कि, राजा रघुसिंह लाख रुपये कर देकर जिस सरकार तिरहुतका भोग कर रहे हैं, उसकी अभी सात गुनी वृद्धि हो गई है। सचमुच १६८५ ई०में सरकार तिरहुतसे ७६८२८७) रु० राजस्व वसूल होता था। नवाब यह सम्वाद पा कर उसी समय तिरहुतकी चल दिये और वहाँ जाकर उन्होंने राजा रघुकी सम्पत्ति जब्त कर ली तथा उनके परिवारवर्गको कैद कर पटना भेज दिया। राजा रघु प्राण ले कर किसी तरह भागे। नवाबने उन्हें पकड़नेके लिये आदमी नियुक्त किये। कुछ दिनोंके बाद वे स्वयं नवाबके समीप पहुँचे और उनका प्रसाद लाभ कर पुनः स्वराज्यमें प्रतिष्ठित हुए। किन्तु इस बार उनकी सब क्षमता जाती रही। वे सरकार तिरहुतके तहसीलदार मात्र हो कर रहे और 'सादुद' कर ग्रहण करनेका अधिकार उन्हें इस शर्त पर मिला कि वे सरकार तिरहुतके विचारादि कार्य करेंगे, प्रजाका कष्ट दूर करेंगे और देशकी उन्नतिकी ओर विशेष ध्यान रखेंगे। राजा रघुने जीवनके अवशिष्ट कालमें ये सब स्वत्व प्रतिपालन किये थे। १७३६ ई०में उनका देहान्त हुआ। उनके बड़े लड़के विष्णुसिंहने पितृ अधिकार पाया, किन्तु अपुत्रकावस्थामें १७४० ई०को उनकी मृत्यु हुई। बाद इनके भाई नरेन्द्रसिंह पैतृकसम्पत्तिके अधिकारी

हुए। १७५४ ई०में नवाब अलिवर्दी खांने उन्हें कई विषयोंमें 'दस्तुरत्' वसूल करनेका अधिकार दिया था।

नरेन्द्रसिंह यह अधिकार पा कर प्रति असल मौजेमें 'बेरिहदिह' अर्थात् १॥० रु०, प्रत्येक कबुलियतके प्रत्येक रुपयेमें एक आना, प्रत्येक कबुलियतके रुपयेमें सैकड़े २) रु० सूद और अपनी जमींदारोमें सैकड़े १०) रु० मलिकाना लिया करते थे। १७६० ई०को राजा नरेन्द्रका अपुत्रकावस्थामें देहान्त हुआ। उन्होंने पूर्वोक्त एकनाथ ठाकुरके बड़े लड़के प्रतापको गोद लिया था। इस समय तक मधुवनोके निकट भौरा नामक स्थानमें राजप्रासाद था। आज भी वहां मट्टोके दुर्गका भग्नावशेष विद्यमान है। इस दुर्गको राजा रघुने बनवाया था। प्रतापने राज्यप्राप्त कर १७६२ ई०को दरभङ्गेमें एक प्रासाद निर्माण किया। आज भी वह प्रासाद वर्त्तमान है और दरभङ्गके राजपरिवार उसमें वास करते हैं। नवाब कासिम अलो खांने राजा प्रतापसिंहको 'सादुद्र कर' ग्रहण करनेका अधिकार प्रदान किया, किन्तु अंगरेज गवर्मेंटने १७६२ ई०में 'ननकर' ग्राम 'दस्तुरत' ग्रहण करने और मलिकाना वसूल करनेका अधिकार लौटा लिया और राजा नरेन्द्रको रानाको जोवन-खर्चके लिये १० ग्राम; राजा प्रतापके भाई मधुसिंहके लिये २ ग्राम और राजाको मासिक एक हजार रुपये दिये। १७७६ ई०में राजा प्रतापको अपुत्रकावस्थामें मृत्यु हुई। बाद उनके भाई मधुसिंह राजा हुए। ६ वर्ष के बाद उनके साथ सरकार तिरहुतका अधिकांश बन्दोवस्त कर दिया गया। मधुसिंह इतनो बड़ो जमींदारो पर शासन करनेमें बिलकुल समर्थ न थे। राजा मधुसिंहने राज्यप्राप्त कर अङ्गरेजसे दस्तुरत वसूल करनेका अधिकार पुनः पानेका आवेदन किया। उन्होंने कहा, कि उनके यहां प्राप्त रुपये बाको रह जानेके कारण यह अधिकार ले लिया गया है सुप्रीम काउन्सिलके इसका अनुसन्धान करनेकी इच्छा प्रगट करने पर राजा मधु सनद आदि दिखानेमें राजो न हुए। उन्होंने जवाब दिया कि कानूनगोका हिसाब देखनेसे हो सब बातें मालूम हो जायँगी। इसके सिवा उन्होंने जिस वर्षमें दस्तुरत वसूल करनेको क्षमता ले लो गई थो उस वर्षसे लेकर आज तक उनके जितने रुपये नुकसान हुए थे उसको एक तालिका दो थो। जो कुछ हो, अंगरेज गवर्मेंटने उन्हें ८ वर्षको बाको दस्तुरतमें पटनेके कोषागारसे १८३०००) रु० दिये और १७७१ ई०में गवर्नर मि० ब्यान्सि टार्टने दस्तुरत् अदा करनेको क्षमताके बदले मासिक एक हजार रुपये देनेको व्यवस्था कर दो, किन्तु उसो वर्षके नमम्बर महोनेमें ऐसा सुना गया है, कि राजा मधुसिंह दस्तुरतके बन्दोवस्तमें लिखे हुए शर्तोंमेंसे कोई शर्त प्रतिपालन नहीं करते हैं (अर्थात् देशको भलाई नहीं करते, देशका कष्ट दूर नहीं करते तथा देशको उन्नतिकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते), वरं प्रजासे उन्होंने जमा और जमोन भी छोन लो है। इसके अलावा वे बन्दोवस्तो सरकार तिरहुतमें भी सुचारुरूपसे शासन पालन नहीं कर सकते हैं। उनको ये सब शिकायतें सुन कर वे कैद कर लिए गये, किन्तु दूसरे वर्ष पुनः उन्हींके साथ सरकार तिरहुतका बन्दोवस्त कर दिया गया। इस समय सरकार तिरहुतका कर २८५१८१) रु० निरूपित हुआ। राजा छुटकारा पा कर अपने राज्यको आये, किन्तु राजस्वका किस्तो रुपया बाको पड़ने लगा। कलक्टरके रिपोर्ट करने पर १७८९ ई०में यह स्थिर हुआ कि राजाके साथ बन्दोवस्त नहीं रहेगा। इस समय दशशाला बन्दोवस्तका आयोजन हो रहा था। राजा मधुसिंहने उन बन्दोवस्तके कर्त्तव्य साधनमें पराङ्मुख हो कर निवेदन किया, कि जब तक अंग्रेजराज उन्हें सरकार तिरहुतका मुकररो बंदोवस्त, मलिकाना और दस्तुरत वसूल करनेका अधिकार न देंगे, तब तक वे कुछ भी नहीं करेंगे। इस पर गवर्नर जेनरलने १७९० ई०में राजाको जमींदारो फयेज-उद्दीन् और बरकत-उल्ला खांके साथ बंदोवस्त कर दो। अन्तमें बोर्डके विचारसे राजा मधुसिंहने पुनः मलिकाना और दस्तुरत अदा करनेका अधिकार पाया। किन्तु वे जमींदारो लौटानेके लिए षड़यन्त्र करने लगे। १७९१ ई०के नमम्बर महोनेमें फयेज उद्दीन्ने अपना हिस्सा छोड़ दिया और कहा, कि राजा मधुसिंहके बहकानेसे कोई प्रजा मालगुजारो नहीं देती है, अतः कलक्टरने बाध्य हो कर फयेज-उद्दोनका परित्यक्त

भी राजा मधुके साथ बंदोवस्त कर दिया। बरकत उल्ला खाँ भी इस समय घरकी छत परसे गिर कर कराल कालके गालमें फंसे और उनके उत्तराधिकारियोंके जमींदारी अपने पास रखनेमें अस्वीकार करने पर अवशिष्ट जमींदारीका भी राजा मधुके हाथ बंदोबस्त कर देनेका विचार हुआ। किन्तु राजा अलीपुर परगने और सरकार तिरहुतकी मुकररी जमा पाये बिना बंदोवस्त करनेको राजी न हुए। इस पर कलकटरने १७८३ ई०में बहुतसे ठेकेदारोंके साथ ७ वर्षोंके लिए बंदोवस्त कर दिया। पीछे कलकटरने पुनः राजाके साथ मलिकाना और दस्तुरतके अलावा १६८५०६) रु०में जमींदारी बंदोवस्त कर देनेका विचार किया। पहले राजाने और भी ६ हजार रुपये कमा देनेकी चेष्टा की, किन्तु अन्तमें दस हजार रुपये और बढ़ाकर जमींदारीका भार ग्रहण किया।

१८०८ ई०में मधुसिंह ५ लड़के छोड़ कर स्वर्गलोककी प्राप्त हुए। बड़े लड़के कृष्णसिंहकी अपुत्रकावस्थामें मृत्यु हो गई। पीछे दूसरे लड़के छत्रसिंह राजा हुए। १८३९ ई०में छत्रसिंहका भी देहान्त हो गया। इन्होंने ही सबसे पहले 'महाराज' की उपाधि धारण की थी। छत्रसिंहने अपनी जीवन दशामें सारी सम्पत्ति बड़े लड़के रुद्रसिंहके हाथ समर्पण की और छोटे वासुदेवको जराइल परगना, ४ मकान, २ हाथी और राजप्रासादमें कई एक घर दिये। छत्रसिंहने अपने भाइयोंमेंसे कीर्त्तिको परगना जबदी, गोविंदको परगना पहाड़पुर और रघु तथा रामपतिको परगना पचाही दिया। वे जीते जी कलकटरीमें अपना नाम खारीज करा कर अपने लड़के रुद्रका नाम लिखवा गये थे। पिताकी मृत्युके बाद वासुदेवसिंह आधा राज्य पानेके लिए कुलाचारकी उपेक्षा करके नालिश की, किन्तु मुकदमेमें वे हार गये। पीछे अपील करने पर भी कुछ न हुआ। महाराज रुद्रसिंह १८५० ई०में परलोकको सिधारे और उनके लड़के महेश्वर सिंह राजा हुए। १८६० ई०में झंझारपुरमें महेश्वरकी मृत्यु हुई। इस समय महेश्वरके दोनों पुत्र लक्ष्मीश्वर और रामेश्वर नाबालिग थे। इस कारण सारी सम्पत्ति कोर्ट-आफ-वार्ड्सके अधीन हुई। इस समय जमींदारीकी आय प्रायः १६ लाख रुपयेकी थी, किन्तु ऋण ७० लाख रुपये था, बंदोवस्त भी अच्छा नहीं था।

दरभङ्गेकी जमींदारी तिरहुत, मुङ्गेर, पुर्णिया और भागलपुरमें अवस्थित है। तिरहुतमें जराइल, हाटी और अलीपुर परगनोंमें, भागलपुरके बचौर, तिरहुत और नरदोगा परगनोंमें, पुर्णियाके धर्मपुर परगनेमें और मुङ्गेरके हवेली खरगपुर परगनेमें दरभङ्गाराजकी जमींदारी है। धर्मपुर परगना १७७६ ई०में सम्राट् शाहआलमने राजा प्रतापसिंहको दिया था। १२ वर्षोंमें कोर्ट-आफ-वार्ड्सने ७० लाख ऋण चुका कर राज्यकी आय भी ८ लाख बढ़ा दी। बाद लक्ष्मीश्वरसिंहने बालिग हो कर राज्यका भार ग्रहण किया। १८९८ ई०में उनके मरने पर उनके छोटे भाई वर्त्तमान महाराजधिराज सर रामेश्वरसिंह, के०, सि०, आइ०, इ०, राज-कार्य चला रहे हैं। ये कुछ समय तक वायसरायकी मन्त्री-सभाके सभ्य थे। राज्यकी आमदनी ८० लाख रुपयेकी है। कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें संलग्न महाराजका एक भवन है जो 'दरभङ्गा बिलडिंग' नामसे प्रसिद्ध है। जमींदारी कई एक विभागोंमें विभक्त है। प्रत्येक विभाग एक एक सब-मैनेजरके अधीन है। प्रत्येक मैनेजरके अधीन तहसीलदार हैं जिन्हें मालगुजारी आदि वसूल करनेका अधिकार है।

दरमन (फा० पु०) औषध, इलाज।

दरमा (हिं० स्त्री०) बांसकी एक प्रकारकी चटाई। इससे बंगालमें झोपड़ियोंकी दीवार बनाई जाती है।

दरमाहा (फा० पु०) मासिक वेतन, तनखाह।

दरमियान (फा० पु०) मध्य, बीच।

दरमियानी (फा० वि०) १ मध्यका, बीचका। (फा० पु०) २ मध्यस्थ, वह मनुष्य जो दो आदमियोंके बीचके झगड़ेका निबटेरा करता है, दलाल।

दरवाजा (फा० पु०) १ द्वार, मुहाना। २ कपाट, किवाड़।

दरवी (हिं० स्त्री०) १ साँपका फन। २ सँड़सी, दस्तपनाह। ३ करछुल, पौना।

दरवेश (फा० पु०) मुसलमानोंका भिक्षोपजीवी धर्मसम्प्रदायविशेष, फकीर, साधु। पहले यह सम्प्रदाय बारह श्रेणियोंमें विभक्त था। पीछे इसकी संख्या और भी बढ़ गई है। मुसलमानोंमें प्रवाद है, कि ओवाइस बिन-अमीर इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे। किन्तु दरवेशके वर्त्तमान जो सब सम्प्रदाय सारे मुसलमान राज्योंमें विच्छिन्न भावसे फैले हुए है, वे कहते है, कि मसनवि-सरीफके ग्रन्थकर्त्ता मौलवी-सम्प्रदाय प्रवर्त्तक जलालुद्दीन् रूमिसे यह सम्प्रदाय प्रवर्त्तित हुआ है।

तुरुष्कप्रदेशके दरवेशगण ६० श्रेणियोंमें विभक्त है। इन्होंने वहां अपना बहुत कुछ अधिकार जमा लिया है। कनस्तान्तिनोपलके 'बताशी' वा 'बेकताशी' नामक सम्प्रदाय कुरानके निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार नहीं चलता और न महम्मदको ही ईश्वर-प्रेरित समझ कर विश्वास करता है। तुरुष्कके रफाई नामक दरवेशगण अत्यन्त आत्मनिर्यातन करते है। वे इसारिया नामसे प्रसिद्ध है। भारतवर्षके अनेक दरवेश ही नीच वंशोद्भव और असच्चरित्र हैं। इनमेंसे अधिकाश बेशरा सम्प्रदायभुक्त है। ये लोग कभी कभी चहारीके पश्चिम प्रदेश तक धावा मारते हैं। भारतीय फकीरके अवशिष्टांश जो बा-सरा सम्प्रदायभुक्त हैं वे सलिक कहलाते है।

बादि-उद्दीनशाह मदारके नाम पर दरवेशके सम्प्रदायका मदरिया नाम पड़ा है। बादि-उद्दीन मदारको कोई कोई जान्दशा मदार भी कहते हैं।

नकसाबन्दी दरवेशगण अपने धर्मतत्त्वको छापसे समझानेकी चेष्टा करते है। नर्त्तक दरवेशोंमेंसे अधि-काश शिक्षित हैं। जब तक वे चक्कर खा कर गिर नहीं पड़ते, तब तक घूम घूम कर नाचते रहते हैं।

रफैया दरवेशगण छुरीसे अपना शरीर छेदते, जलता हुआ अंगार निगलते, कांच चबाते तथा इसी प्रकारके अन्यान्य उन्मत्त सदृश कार्य करते है। वे समझते हैं, कि इस प्रकार कठोर कार्य करनेसे ईश्वरके साथ पुनर्मिलित हो जानेकी सम्भावना रहती है।

गुलसानिया नामक एक और प्रकारके दरवेश है। वे लोग अल्लाह अल्लाह चिल्लाते हुए अपने सिरको आगे पीछे तब तक झुलाते रहते हैं, जब तक मूर्च्छित हो कर गिर नहीं पड़ते।

दरश (हिं० पु०) दर्श देखो।

दरशन (हिं० पु०) दर्शन देखो।

दरशाना (हिं० क्रि०) दरसना देखो।

दरस (हिं० पु०) १ दर्शन, देखा देखो। २ भेंट, मुलाकात। ३ रूप, सुन्दरता, छवि।

दरसन (हिं० पु०) दर्शन देखो।

दरसना (हिं० क्रि०) १ दिखाई पड़ना, देखनेमें आना। २ देखना, लखना।

दरसनीहुंडी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी हुंडी जिसके भुगतानकी मितिको दश दिन या उससे कम दिन बाकी हों। २ एक ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई दूसरी वस्तु शामिल हो जाय।

दरसान (सं० पु०) दृ-विदारणे दृ-असानच्। द्योत, प्रकाश।

दरसाना (हिं० क्रि०) १ दृष्टिगोचर कराना, दिखलाना। २ स्पष्ट करना, प्रकट करना।

दरसावना (हिं० क्रि०) दरसाना देखो।

दरांती (हिं० स्त्री०) १ हंसिया जिससे घास वा फसल काटी जाती है।

दराज (फा० वि०) १ दीर्घ, लम्बा, बड़ा। (फा० क्रि० वि०) २ अधिक, बहुत।

दराज (हिं० स्त्री०) १ दरार, दरज, शिगाफ। २ संदूक-नुमा खाना जो मेजमें लगा रहता है। इसमें कुछ वस्तु रख कर ताला लगा सकते हैं।

दरायुस् (प्रथम) [जन्द भाषामें दारयवुस्]—साधारणतः ये Darius Hystaspes नामसे प्रसिद्ध है। ये हृय-स्तास्प नामक किसी पारस्य सम्भ्रान्तके पुत्र थे।

कहते हैं, कि पारस्यराज कादूरसके पुत्र काम्बाई-सिसकी मृत्युके बाद स्मारदिस नामक पारस्यके एक मगुपने (Magus) अन्याय पूर्वक पारस्यका सिंहासन अधिकार कर लिया। दरायुसने पारस्यके छः संभ्रान्तोंका दल बांध कर स्मारदिसको मार डाला। इस हत्या-काण्डके बाद वहां प्रश्न उठा, कि पारस्यके राजा कौन होंगे? बहुत तर्कवितर्कके बाद यह स्थिर हुआ कि दूसरे

दिन सूर्योदयके समय सात मनुष्य घोड़े पर सवार हो किसी निर्दिष्ट स्थानमें उपस्थित हों। वहां जिनका घोड़ा सबसे पहले हिनहिनावेगा, वही सिंहासनके अधिकारी ठहराए जायगे। दरायुस्के इबारिस नामका एक विश्वस्त और विचक्षण भृत्य था। उसीके कौशलसे दरायुसका घोड़ा सबसे पहले हिनहिनाया। ठीक इसी समय परिष्कार आकाशमें बिजलीको कड़कड़ाहट और मेघका गर्जन सुनाई पड़ा। इस घटनाको देख अन्य छह मनुष्य बहुत जल्द घोड़े परसे उतर कर दरायुस्के पाँव तले गिर पड़े और उन्हें सम्राट् स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार ( ५२१ ई० सन्के पहले ) दरायुस्ने पारस्यका सिंहासन सुशोभित किया। अरबी लोगोंको छोड़ कर एशियाके जिन सब जातियोंने काइरस और काम्बाइसिसको अधीनता स्वीकार कर ली थी, वे भी अब दरायुस्को छत्रछायामें आ गईं। सिंहासन पर बैठनेके बाद ही इन्होंने पहले अतोषा और अर्तिस्तोन नामकी काइरसकी दो कन्याओंसे, पीछे काइरसके पुत्र स्मारदिसकी कन्या पटमिम और ओटानिस नामक एक दूसरे व्यक्तिकी कन्यासे विवाह किया।

अपने प्रभुत्वकी जड़ मजबूत कर इन्होंने पहले एक अश्वमूर्त्ति बनवाई और उसके ऊपर इस प्रकार लिखवा दिया—'हयतास्पके पुत्र दारयवुस्ने अपने घोड़ेकी चतुरता तथा इबारिस नामक भृत्यकी तीक्ष्ण बुद्धिके बलसे पारस्यका साम्राज्य पाया था।'

इसके अनन्तर इन्होंने पारस्य साम्राज्यको २० प्रदेशोंमें विभक्त कर एक शासनकर्त्ताके अधीन प्रत्येकका नाम क्षत्रपी ( Satraphy ) रक्खा। इन सब शासनकर्त्ताओंके नाम भी क्षत्रप रखे गये। प्रत्येक क्षत्रपसे कितना कर लिया जायगा तथा सेनाओं और राजपरिवारके लिये कितना द्रव्य देना पड़ेगा, दरायुसने उसको भी तादाद स्थिर कर दी।

उधर सारदिसके शासनकर्त्ता ओरिटस बिना कारण-के सम्भ्रान्त लोगोंकी हत्या बहुत निष्ठुरतासे किया करते थे। यह देख दरायुसने उन्हें दण्ड देनेका संकल्प कर लिया। ओरिटस्के विरुद्ध सेना न भेज कर दरायुसने स्वयं कुछ लोगोंको साथ ले उन्हें मार डाला।

इसके कुछ समय बाद ही दरायुस् जब आखेटको निकले थे, तब घोड़ेसे उतरते समय इनका घुटना चकनाचूर हो गया था। डिमवसिडिस नामक एक चिकित्सकको चिकित्सासे इन्होंने बहुत जल्द आरोग्य लाभ कर लिया।

दरायुस जब काम्बाइसिसके शरीर-रक्षक बन कर मिस्र गए थे, तब वहां स्यामसके दुर्द्धर्ष शासनकर्त्ता पलिक्रेटिसके भाई सिलोसनके शरीर पर इन्होंने एक ऐसा सुंदर कपड़ा देखा कि उसे खरीदनेकी इनको उत्कट इच्छा हो गई। किन्तु सिलोसनने बिना कुछ लिए ही उसे इन्हें दे दिया था। पीछे जब ये पारस्यके राजा हुए, तब सिलोसनने आ कर इन्हें पहले को बात याद दिला दी। इस पर इन्होंने प्रचुर स्वर्ण और रजत मुद्रा देना चाहा। किन्तु सिलोसनने अर्थ लेना तो अस्वीकार किया पर अपनी जन्मभूमि स्यामसको उद्धार कर उन्हें प्रदान करनेकी प्रार्थना की। दरायुस इस पर भी सहमत हो गए और स्यामसके उद्धारके लिए ओटानिसको एक दल सेनाके साथ भेजा। ओटानिस-ने बहुत आसानीसे स्यामस पर अधिकार कर उसे सिलोसनको अर्पण किया।

ठीक इसी समय बाबिलनके अधिवासी विद्रोही हो उठे। दरायुसने यह संवाद पा कर ही प्रभूत सेनाको साथ ले उनके विरुद्ध यात्रा की और नगरको घेर लिया। कई दिन बीत गए, पर बाबिलोनियोंको परास्त कर उन्हें अधीनता स्वीकार करानेका कोई लक्षण दीख नहीं पड़ता था। इसी प्रकार एक वर्ष आठ मास गुजर गए। दरायुसके सभी कौशल बाबिलोनियोंके सामने निष्फल होने लगे। अवरोधके बीसवें महीनेमें ग्रोपिरस नामक दरायुसके एक कर्मचारीके बुद्धिकौशलसे बाबि-लन हाथमें आ गया। ग्रोपिरस अपनी नाक और कान काट कर बाबिलोनियोंके समीप गए थे और दरायुसने उनकी यह दुर्दशा हुई है, कह सुनाया था। बाबि-लोनियोंने उनकी बात पर विश्वास कर अपना सभी भार उन पर सुपुर्द कर दिया। अच्छा मौका देख कर ग्रोपिरसने विश्वासघातकतासे दरायुसके हाथ बाबिलन नगर समर्पण किया। दरायुसने नगर पर पूरा अधि-

कार जमा कर ३००० सम्भ्रान्त मनुष्योंकी हत्या की और दुर्गादिको तोड़ फोड़ डाला (५१६ ई०के पहले)।

बाबिलन तो हाथ लग गया। अब दरायुस स्क्रिदिया राज्य पर आक्रमण करनेके लिए तैयारी करने लगे। प्राय: ७—८ लाख सेना इकट्ठी की गई। बसफोरस उपसागरके ऊपर एक काठका पुल बनाया गया। दरायुस प्रभूत सेनाको साथ ले सुसासे रवाना हुए और काठ पुल हो कर बसफोरस पार हो गए। यहाँ ये पुलके बनानेवाले सामिया द्वीपके अधिवासी माराड्रोक्लीशको यथेष्ट पुरष्कार दे थ्रे सके मध्य होते हुए दानियूब नदी पार हुए और डान नदीकी ओर जाने लगे। अन्तमें ये स्क्रिदियाके अभ्यन्तर पहुंचे और स्क्रिदियन लोग सामने तो युद्ध न कर सके, पर छिप कर तथा सुविधा देख कर पारसिकों पर आक्रमण करने लगे। दरायुस को रसद जब धीरे धीरे कमने लगी तब वे लौट जानेको तैयारी करने लगे। पीड़ित और दुर्बल सेनाओंको छोड़ कर एक दिन ये निशाकालमें छिपके वहांसे चल दिए और काठके पुल द्वारा बसफोरस पार कर थ्रेस होते हुए धीरे धीरे एसियाके अभ्यन्तर पहुंचे। ये आठ हजार सेनाओंको मेलाविजसके अधीन रख कर उन्हें थ्रेस पर चढ़ाई करनेको कह आये थे। मेलाविजसने इस विषयमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार उनका स्क्रिदियाविजयका उद्यम निष्फल हुआ।

पारस्यको पहुंच कर दरायुसने पुलको ओर सिन्धु-नदी तक अपना प्रभुत्व फैला लिया।

५०१ ई० सन्के पहले नकसस्-द्वीपमें जब गड़बड़ी शुरू हुई, तब वहांके सम्भ्रान्त लोग इस प्रदेशको छोड़नेको वाध्य हुए और उन्होंने जा कर मिलिटसके शासनकर्त्ता अरिष्टलोरससे सहायता मांगी। अरिष्टलोरसने भी सार्दिशके शासनकर्त्ता दरायुसके भाई आर्त्ताफारनिसको मदद चाही। आर्त्ताफारनिसने पारस्यके सम्राट्से सम्मति ले ली और मेलाबेटिसके अधीन २०० जहाज लगा कर उन्हें मिलिटस जाने और अरिष्टलोरसको सेनाको साथ ले नकसस- द्वोप पर चढ़ाई कर देनेकी आज्ञा दी। चार मास घेरा डाले रहनेके बाद अरिष्टलोरसने जब देखा कि रसद धीरे धीरे कमती जा रही है और शत्रु भी हाथ नहीं आता, तब उन्होंने आइयोनियोंको विद्रोही होनेके लिये उत्तेजित किया। तदनुसार आइयोनियोंने विद्रोही हो कर सार्दिस नगर जला डाला और मिलिटस द्वोप शत्रु के हाथ लगा।

(४८४ ई०के पहले)

एथेन्सके अधिवासियोंने उस विद्रोहमें अरिष्टलोरसको सहायता दी है, यह जान कर दरायुस आग बबूला हो गये। इन्होंने डेटिस और आर्त्ताफारनिसके अधीन एक दल सेना अटिकाद्वोपमें भेजी। सुप्रसिद्ध मारथन युद्ध-क्षेत्रमें मिलट्यायडिसके अधीन पारस्य-सेना एथेंसवासोसे पूरी तरह पराजित हो एशियाको लौट आई। (४९० ई० सन्के पहले) दरायुस फिर भी एक बार एथेंस पर चढ़ाईको तैयारी करने लगे। किन्तु युद्धारम्भके पहले ही इनका स्वर्गवास हो गया।

(४८५ ई०के पहले)

इनके समयमें पारस्यराज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। राजकोय सम्वादादि भेजनेके लिये उन्होंने निर्दिष्ट दूरोके अनुसार राज्य भरमें मनुष्य द्वारा डाक भेजनेकी व्यवस्था कर दी थी।

राजा होनेके पहले इनके तीन पुत्र थे, पीछे और चार पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था।

दरायुस् (द्वितीय)-ये साधारणतः दरायुस् अकास नामसे प्रसिद्ध हैं। ये आर्त्ता जरक्षेशके जारज पुत्र थे। द्वितीय जरक्षेशके मारे जानेके बाद ये घातक सलदियानसको सिंहासन च्युत कर स्वयं पारस्यके सिंहासन पर बैठे (४२३ ई० सन्के पहले)।

इनके दो पुत्र थे। पहलेका नाम आर्त्ता जरक्षेश और दूसरेका काइरस (Cyrus) था। ये सम्पूर्णरूपसे स्त्रीशासन और अपनी स्त्री पारिसेटिससे परिचालित होते थे। अतः इनका राज्यशासन सुचारु रूपसे नहीं चलता था। अनेक क्षत्रिय राजविद्रोही हो गये, जिनमेंसे अधिकांशने परास्त हो कर इनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। १० वर्ष राज्य कर चुकनेके बाद ४०४ ई० सन्के पहले इनका देहान्त हुआ। पीछे इनके पुत्र आर्त्ता जरक्षेश पारस्यके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।

दरायुस् (तृतीय)—ये द्वितीय दरायुसके प्रपौत्र और इसी वंशके अन्तिम पारस्य राजा थे। इन्होंने तृतीय आर्त्ताजरक्षेशके बाद पारस्य-सिंहासनको सुशोभित किया था (३३६ ई० सन्‌के पहले)। इनके राजत्वके दूसरे वर्ष अलेकसन्दरने हेलेस्पेण्ट पा कर एशियामें प्रवेश किया। दरायुस्‌के साथ अलेकसन्दरको कई बार मुठभेड़ हुई थी और हर समय दरायुसको ही हार होती गई थी। पचास वर्षकी अवस्थामें ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए (३३० ई० सन्‌के पूर्व)। इन्होंने केवल छह वर्ष राज्य किया था।

दरार (हिं० स्त्री०) दरज, शिगाफ।

दरारना (हिं० क्रि०) विदीर्ण होना, फटना।

दरारा (हिं० पु०) धक्का, दरेरा, रगड़ा।

दरिंदा (फा० पु०) मांसभक्षक वनजन्तु, फाड़ खानेवाला जन्तु।

दरि (सं० स्त्री०) दृ विदारणे इन् ङीष्। १ कन्दर, गुहा। २ तक्षककुलजात सर्पभेद।

दरित (सं० त्रि०) दरो भयमस्य सञ्जातः, दर-तारकादित्वात् इतच्। भीत, डरपोक।

दरिद्र (सं० पु०) दरिद्राति दुर्गच्छति दरिद्रा-अच्। १ निर्धन, कंगाल मनुष्य। पर्याय—निःस्व, दुर्विध, दीन, दुर्गत, कोकट, दुस्थ और अस्तमित। (सं० त्रि०) २ निर्धन, गरीब, कंगाल।

पद्मपुराणमें लिखा है, कि जो मनुष्ययोनिमें जन्म ले कर तीन दिन भी उपवास नहीं करते अर्थात् किसी व्रत नियमादिका अनुष्ठान नहीं करते और किसी तीर्थको नहीं जाते तथा सुवर्ण गो प्रभृति दान नहीं करते, वे ही दरिद्र हो कर जन्म ग्रहण करते हैं।

मनुका मत है, कि जो किसी शुभ कार्यादिका अनुष्ठान नहीं करते, वे ही दरिद्र होते है।

स्त्री, बालक, वृद्ध, उन्मत्त और दरिद्रको धनदण्डकी जगह बेंत आदिकी सजा देनी चाहिये।

दरिद्रता (सं० स्त्री०) दरिद्रस्य भावः दरिद्र-तल्। दरिद्रत्व, निर्धनता, कंगाली।

दरिद्रत्व (सं० क्ली०) दरिद्र-त्व। दरिद्रता, निर्धनता, गरीबी।

दरिद्राण (सं० क्ली०) दरिद्रकी अवस्था, दारिद्र्य, गरीबी।

दरिद्रायक (सं० त्रि०) दरिद्रातीति दरिद्रा ण्वुल्। दरिद्र, दीन, गरीब।

दरिद्रित (सं० त्रि०) दरिद्रा-क्त। दरिद्र, गरीब।

दरिद्रित (सं० त्रि०) दरिद्रा-तृण् वा तृच्। दरिद्रायक, दुःखी, गरीब।

दरिन् (सं० त्रि०) दृ-भये विदारे वा इनि। १ भीरु, डरपोक। २ विदारणशील, फाड़नेवाला।

दरिया (फा० पु०) १ नदी। २ सिन्धु, समुद्र।

दरिया (हिं० पु०) दलिया।

दरिया—अफगानिस्तानके अन्तर्गत एक ह्रद। यह अक्षा० ३३° ३५´ उ० और देशा० ६४° ३´ पू०में अवस्थित है। यह सियाकोसे ४० मील दक्षिणमें पड़ता है।

दरिया इ-नेरिज—नामक एक ह्रद पारस्यके अन्तर्गत सिराज नगरसे १० मील पूर्वमें अवस्थित है। इसकी लम्बाई ६० मील है।

दरियाई (फा० वि०) १ नदी संबन्धी। २ नदीमें रहनेवाला। ३ नदीके पासका। ४ समुद्र संबन्धी। (स्त्री०) ५ गुड्डीको दूर ले जा कर हवामें छोड़नेकी क्रिया, भोली। ६ एक प्रकारकी रेशमी पतली साटन।

दरियाईघोड़ा (हिं० पु०) अफ्रिकामें नदियोंके किनारेकी दलदलों और भाड़ियोंमें पाये जानेवाला एक प्रकारका जानवर। यह गैंड़ेकी तरहका होता और इसकी खाल मोटी होती है। इसके पैरोंमें चार चार उँगलियां रहती जो खुरके आकारकी होती हैं। मुंहके अन्दर कटीले दांत होते हैं। इसका शरीर नाटा, मोटा, भारी और बेढंगा होता है। इसके शरीर पर बाल नहीं होते। नाक फूली और उभरी हुई तथा पूंछ और आँखें छोटी होती है। इसका खाद्य पदार्थ पौधेकी जड़ और कास है। सारा दिन यह भाड़ियों आदिमें छिपा रहता है। रातको अपना आहार ढूंढनेके लिये बाहर निकलता और फसल आदिकी हानि पहुंचाता है। जरासा खटका या भय पाते ही यह नदीमें जा कर गोता मार लेता है। यह बहुत डरपोक जानवर होता, इसी कारण नदीसे बहुत दूर नहीं जाता है।

लोग इसका शिकार गड्ढे खोद कर करते हैं। रातको गड्ढोंमें गिर कर फंस जानेसे यह मार डाला जाता है। इसके चमड़ेसे एक प्रकारका लचीला और मजबूत चाबुक बनता है। विशेष कर मिस्र देशमें इस चाबुकका प्रचार है। वहांकी प्रजा इसको मारसे बहुत भय खाती है। पूर्व समयमें इस प्रकारके घोड़े नील नदीके किनारे बहुत पाये जाते थे, पर अब शिकार होनेके कारण कुछ कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल (हिं० पु०) अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्रके किनारे होनेवाला एक प्रकारका नारियल। इसको गिरो और छिलका सूखने पर बहुत कड़ा हो जाता है। गिरो दवाके काममें लाई जाती है, खोपड़े-का पात्र बनता है जिसे संन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियागञ्ज—सारण जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान वाणिज्य स्थान।

दरियादासी—एक सम्प्रदाय। प्रवाद है, कि ये आधे हिन्दू और आधे मुसलमान होते हैं। ये निर्गुण उपासक हैं, किसी देव प्रतिमूर्त्तिको अर्चना नहीं करते हैं। इस सम्प्रदायको दरिया साहब नामक एक व्यक्तिने चलाया था।

दरियादिल (फा० वि०) उदार, दानी।

दरियादिली (फा० स्त्री०) उदारता।

दरियापुर—१ बरारके अन्तर्गत अमरावती जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २०° ४८´ से २१° २०´ उ० और देशा० ७७° ११´ से ७७° ३८´ पू०में अवस्थित है। इसका परिमाण फल ५०५ वर्गमील है। कुल राजस्व ५७००००) रु० है। यहां ७ दीवानी और ३ फौजदारी अदालत तथा दो थाने हैं। लोकसंख्या प्रायः ११३६९८ है। इसमें एक शहर और २२४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २०° ५८´ और देशा० ७७° २२´ ३०´´ पू० एलिचपुर नगरसे प्रायः ३६ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासियों-में कुनवीकी संख्या ही अधिक है। यहां फौजदारी और दीवानी अदालतके अतिरिक्त दो स्कूल और थाना हैं। नगरके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और मस्जिदें हैं।

दरियाबाद—अयोध्याके अन्तर्गत, बड़बांको जिलेका एक परगना। इसके उत्तरमें रादोसराय, पूर्वमें गगरानट और दक्षिणमें बसोरी परगना है। परिमाणफल २१´ वर्गमील है। यह परगना हिन्दुओंके सत्नामी नाम सम्प्रदायका प्रधान अड्डा है। यहांके उत्पन्न द्रव्योंमें चावल, गेहूं, ईख और ज्वार आदि प्रधान हैं।

२ युक्तप्रदेशके बड़बांको जिलेके अन्तर्गत रामसनेही-घाट तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५३´ उ० और देशा० ८१° ३४´ पू०; अवध और रोहिलखण्ड रेलवेके समीप अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५९२८ है। कहते हैं, पन्द्रहवीं शताब्दीमें जौनपुरके महम्मदशाह नामक किसी कर्मचारीने इसे बसाया है। पहले यहां जिलेका सदर था, किन्तु जलवायु खराब रहनेके कारण अदालत तथा समस्त कार्यालय उठ कर बड़बांकोको चले गये। यहां एक अस्पताल, एक स्कूल और दो बाजार हैं।

दरियाफ्त (फा० वि०) ज्ञात, मालूम।

दरिया बरामद (हिं० पु०) दरियाबरार देखो।

दरियाबरार (फा० पु०) वह भूमि जो किसी नदीको धारा हट जानेसे निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियाबुर्द (फा० पु०) नदीको धारासे नष्टकी गई हुई जमीन। इस प्रकारकी जमीन खेतीके योग्य नहीं रहती।

दरियाव (हिं० पु०) १ दरिया देखो। २ समुद्र, सिन्धु।

दरी (सं० स्त्री०) दरि-ङीष्। १ पर्वतकी गुहा, खोह। २ पहाड़के बीच वह नीचस्थान जहां कोई नदी बहती वा गिरती हो।

दरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका मोटा दलका बिछौना जो मोटे सूतोंका बुना हुआ होता है, शत-रंजी। (वि०) २ विदीर्ण करनेवाला, फाड़नेवाला। ३ डरपोक, डरनेवाला।

दरीखाना (फा० पु०) एक प्रकारका घर जिसमें बहुत-से दरवाजे हों, बारहदरी।

दरीचा (फा० पु०) १ खिड़की, झरोखा। २ छोटा द्वार। ३ खिड़कीके पास बैठनेकी जगह।

दरीची ( फा० पु० ) १ झरोखा, खिड़की। २ खिड़कीके पास बैठनेकी जगह।

दरीबा ( हिं० पु० ) १ पानका बाजार। २ बाजार।

दरीभृत ( सं० पु० ) पर्वत, पहाड़।

दरीमुख ( सं० क्लो० ) दर्य्याः मुखं ६-तत्। १ गिरि-गुहाका मुख, गुफाका मुंह। २ रामकी सेनाका एक बन्दर।

दरीवत् ( सं० लि० ) दरी विद्यतेऽस्य दरी-मतुप् मस्य वः। गुहाविशिष्ट पर्वत, वह पहाड़ जिसमें बहुतसी गुहायें हों।

दरेंती ( हिं० स्त्री० ) अनाज दलनेका छोटा औजार, चक्की।

दरेक ( हिं० पु० ) बकाइनका पेड़।

दरेग ( अ० पु० ) कमी, कसर।

दरेरना ( हिं० क्रि० ) १ रगड़ना, पीसना। २ रगड़ते हुए धक्का देना।

दरेरा ( हिं० पु० ) १ रगड़ा, धक्का। २ मेंहका झाला। ३ बहावका जोर, तोड़।

दरेस ( हिं० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी छींट। (वि०) २ तैयार, बना बनाया।

दरेसी ( हिं० स्त्री० ) तैयारी, मरम्मत, दुरुस्ती।

दरोग ( अ० पु० ) असत्य, झूठ।

दरोगहलफो ( अ० स्त्री० ) १ सत्य बोलनेका शपथ खा कर भी झूठ बोलना। २ झूठी गवाही देनेका जुर्म।

दरोगा ( हिं० पु० ) दारोगा देखो।

दरोड़—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़ प्रदेशके झालावर विभागका एक सामान्य राज्य। इसमें केवल एक ग्राम लगता है जिसमें दो करद स्वाधीन जमींदारों-का अधिकार है। राज्यकी आय प्रायः ११८०) रु० है जिस-मेंसे वृटिश गवर्मेंएटको २६६ और जूनागढ़के नवाबको ५० रु० करस्वरूप देने पड़ते हैं।

दरोदर (सं० पु० क्लो० दरो भयं तज्जनकं उदरं यस्य वा दुरोदर पृषो० साधुः। दुरोदर, पाशा-क्रीड़ा, जुआ।

दरोतो–बङ्गालके शाहाबाद जिलेका एक ग्राम। यह राम-गढ़से ५ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहां शवर कीर्त्तिका ध्वंसावशेष है।

दरौली—सारण जिलेके अन्तर्गत चानवाड़ा विभागका एक प्रधान ग्राम। यहां हिन्दुओंके दो छोटे मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। इसके सिवा यहां दो सुन्दर जलाशय और दो बड़े स्तूप हैं।

दर्कार ( हिं० क्रि० वि० ) दरकार देखो।

दर्गाह ( हिं० पु० ) दरगाह देखो।

दर्ज (हिं० स्त्री०) १ दरज देखो। (वि०) २ लिखा हुआ, कागज पर चढ़ा हुआ।

दर्जन (हिं० पु०) बारहका समूह, एकत्रित बारह वस्तुएं।

दर्जा ( अ० पु० ) १ श्रेणी, कोटि, वर्ग। चढ़ाईके क्रममें ऊंचा नीचा स्थान। ३ एक ओहदा। ४ विभाग, खण्ड। (क्रि० वि० ) ५ गुणित, गुना।

दर्जिन ( फा० स्त्री० ) १ दर्जी जातिकी स्त्री०। २ दर्जी-की स्त्री।

दर्जी ( फा० पु०) १ कपड़े सोनेका व्यवसाय करनेवाला मनुष्य। २ कपड़ा सीनेवाली जातिका पुरुष।

दर्त्तृ ( सं० त्रि०) दृ विदारे दृ-तृच् वेदे इड़भावः। दार-यिता, विदारणकर्त्ता, फाड़नेवाला।

दर्त्तृ (सं० पु०) दृ-बाहु० त्र इडभावश्छान्दसः। दारक, वह जो फाड़ता हो।

दर्द ( फा० पु० ) १ व्यथा, पीड़ा। २ दुःख; तकलीफ। ३ सहानुभूति, करुणा, दया। ४ हानिका दुःख।

दर्दमंद ( फा० वि० ) १ पीड़ित, जिसे दर्द हो। २ जिसे सहानुभूति हो, दयावान्।

दर्दर ( सं० पु०) दृ-यङ् अच् पृषो० साधुः। १ पर्वत, पहाड़। २ ईषद् भग्नभाजन, वह पात्र जो कुछ कुछ भग्न हो गया हो।

दर्दराम्र ( सं० पु० ) व्यञ्जन विशेष। इसका पर्याय—सोनाम्रोण है।

दर्दरीक ( सं० क्लो० ) दारयतीव कर्णौ दृ-णिच्-ईकन्। १ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा। २ भेक, बेंग।

दर्दुर ( सं० पु० ) दृणाति कर्णौ शब्देनेति दृ-उरच्। १ भेक, मेढ़क, बेंग। २ मेघ, बादल। ३ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। ४ पर्वतभेद, मलय पर्वतसे लगा हुआ एक पर्वत। ५ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम। ६ अभ्रक धातुभेद, अबरक नामकी धातु। ७ उक्त पर्वतके निकट

की रोग। ८ अनन वा, एक प्रकारका छोटा पौधा। ९ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी नामका एक कीड़ा। १० शालिधान्यभेद, एक प्रकारका धान।

दर्दुरक (सं० पु०) दर्दुराय कायति दर्दुर इव कायति शब्दायते वा कै-क। १ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। २ भेक, मेढ़क।

दर्दुराच्छदा (सं० स्त्री०) दर्दुर इव छदो यस्याः। ब्राह्मी, बूटी।

दर्दुरदला (सं० स्त्री०) मण्डूकपर्णी, खुलकुडी।

दर्दुरपर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

दर्दुरा (सं० स्त्री०) दृणाति दारयति वा असुरान् दृ-उरच् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः, ततष्टाप्। चण्डिका, दुर्गा।

दर्द्रू (सं० पु०) दद्रु रोग, दादकी बीमारी।

दद्रु (सं० पु०) दरिद्रा बाहु' उः' दद्रुरोगभेद, दाद नामक रोग।

दद्रुघ्न (सं० पु०) दद्रु' हन्ति दद्रु-हन-टक्। चक्रमर्दक, चकवँड़।

दद्रुघ्नपत्र (सं० क्ली०) १ पत्रशाकविशेष, एक प्रकारका साग। २ चक्रमर्द पत्र, चकवँड़का पत्ता।

दद्रुनाशिनी (सं० स्त्री०) दद्रु' नाशयति नश-णिच्-णिनि ततो ङीप्। तैलिनी वृक्ष।

दद्रू (सं० पु०) दद्रु रोग, दादकी बीमारी।

दद्रुण (सं० त्रि०) दद्रुरस्यास्तीति दद्रु-न ततो णत्वं (लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः'। पा ५।२।१००) दद्रुरोगी, जिसे दादका रोग हुआ हो।

दद्रूरोगी (सं० त्रि०) दद्रू रोगः अस्यास्तीति दद्रूरोग इनि। दद्रु रोगी, जिसे दाद हुई हो।

दर्प (सं० पु०) दृप्यते इति दृप भावे घञ्। १ अहङ्कार। इसका पर्याय—गर्व, अहङ्कृति, अवलिप्तता अभिमान, ममता, मान, चित्तोन्नति और स्मर है।

अधिक धनादि होने पर दूसरेके प्रति जो अवज्ञा की जाती है उसीका नाम दर्प है।

दर्प, धन और विद्यादिसे उत्पन्न होता है। एक मात्र दर्प ही सर्वनाशका मूल है। इस संसारमें जब तक मनुष्योंके दर्प नहीं होते, तभी तक वे उन्नति कर सकते हैं। दर्प होनेके साथ ही भगवान् उसका प्रतिफल देते हैं। क्या छोटे, क्या बड़े सभी दर्पी होनेसे सत्तानाश हो जाते हैं। यहां तक कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, धर्म, यम, गरुड, वह्नि, जय, विजय, सुर और असुर आदि जिनके गर्व होंगे वे तत्क्षणात् प्रतिफल पायेंगे। इसलिए प्रत्येक उन्नतिकामीका दर्प परिहार करना अवश्य कर्त्तव्य है। २ मृगभेद, एक प्रकारका हरिण। ३ उष्मा, रिस, कोप। ४ उच्छृङ्खलत्व, उद्दंडता, अक्खड़पन। ५ धर्ममर्य्यादातिक्रम। ६ उत्साह। ७ कस्तूरी। ८ आतङ्क, दबाव, रोब।

दर्पक (सं० पु०) दर्पयति दर्पयति मोहयति वा दृप-णिच्-ण्वुल्। १ कामदेव। ये सभी व्यक्तियोंको मोहित करते हैं, इसीसे इनका नाम दर्पक पड़ा है। (त्रि०) २ अहङ्कार और मोहकारक, अभिमान करनेवाला।

दर्पण (सं० क्ली०) दर्पयति सन्दीपयति दृप-णिच्-ल्युट्। १ चक्षु, नेत्र, आँख। २ सन्दीपन, उभारनेका कार्य, उत्तेजना। (पु० क्ली०) दर्पयति दृप-णिच्-ल्युट् (नन्दि ग्रहीति। पा ३।१।१३४) ३ रूपदर्शनाधार, आरसी, आइना। इसका पर्याय—मुकुर, आदर्श, आत्मदर्श, मन्दर, दर्शन, प्रतिबिम्बाल, कर्क और कर्कर है। इसमें आयुःकारी और पापनाशकका गुण माना है। प्रातःकाल उठ कर दर्पणमें अपना मुख देखनेसे उस दिन शुभ होता है। ४ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम। ५ नदभेद, एक नदीका नाम। इस नदीके विषयमें कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—

दर्पण नामका एक प्रसिद्ध पर्वत है। इस पर यक्षोंके साथ कुबेर सर्वदा वास करते हैं। इसके मध्यमें रोहित मछलीके आकारके जैसा रोहण नामका एक पर्वत है जिसके छूनेसे ही लोहा सोना हो जाता है। इसके पास ही दर्पण नामकी एक नदी है, जो हिमालय पहाड़से निकली है। इसका फल लौहित्यनदके जैसा है। लौहित्यके उत्पन्न होनेसे श्रीकृष्णने सब देवताओंके साथ तथा सब तीर्थोदक द्वारा वहां स्नान किया था। इस स्नानसे उनका पाप और दर्प बिलकुल दूर हो गया था, इसीसे यह दर्पण नामसे प्रसिद्ध हुआ है। (कालिकापुराण ८१ अ०)

जो कार्त्तिकमासकी शुक्ल-प्रतिपद् तिथिको इस नदीमें स्नान कर दर्पणाचलपर कुबेरकी पूजा करते, वे

यस ऐश्वर्यंयुक्त हो कर ब्रह्मलोकको जाते हैं। इस दपणाचलके पूर्वमें अग्निमान् नामक एक पर्वत है, जिसका आकार साँप सा दीख पड़ता है। पर्वतको ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई उसी सरीखा है।

दर्पद (सं० त्रि०) दर्पं ददाति दा-क। १ गर्वदायक पदार्थ, अभिमान उत्पन्न करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

दर्पपत्रक (सं० पु०) काशतृण, कुश, डाभ।

दर्पहन् (सं० त्रि०) दर्पं हन्ति हन-क्विप्। १ गर्व हारक, अभिमान या घमण्ड दूर करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

दर्पा (सं० स्त्री०) कस्तूरी।

दर्पारम्भ (सं० पु०) दर्पस्य आरम्भः ६-तत्। अहङ्कारका आरम्भ। इसका नामान्तर मदस्फटि है।

दर्पित (सं० त्रि०) दृप-क्त। अहङ्कृत, अहङ्कारसे भरा हुआ।

दर्पी (सं० त्रि०) दृप-इन्। दाम्भिक, घमण्डी, अहङ्कारी।

दर्भ (सं० पु०) दृणाति विदारयति दृ-भ (दृदलिभ्या भः। उण् ३।१५१) कुश। इसका पर्याय—उलपतृण और काश है। दर्भ दो प्रकारका होता है जिनमेंसे एकका पर्याय—कुश, दर्भ, वर्हि, सूच्यग्र और यज्ञभूषण तथा दूसरेका दीर्घपत्र और क्षुरपत्र है। दोनों प्रकारके कुश त्रिदोषनाशक, मधुर, कषायरस, शीतवीर्य और मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृष्णा, वस्तिगतरोग, प्रदर तथा रक्त-दोषनाशक है। (भावप्र०) कैसा ही धर्मका काम क्यों न किया जाय, उसमें धर्मका नितान्त प्रयोजन है। श्राद्धादि कर्मोंमें दर्भमय ब्राह्मण बनाना पड़ता है और आसन भी कुशका ही होता है। काश, कुश, वल्वज, तोक्ष्ण, रोमश, मौञ्ज और शाद्वल ये छह प्रकारके दर्भ हैं।

कुश अरत्नि (कुहनीसे कनिष्ठाके सिरे तक) परि-माणका होना चाहिये।

वर्जनीय दर्भ—पथ, यज्ञभूमि, आस्तरण, आसन और पिण्डस्थित दर्भ वर्जनीय है। पिण्डके लिये जो दर्भ आस्तृत होता है, उस दर्भसे यदि कोई पितृ तर्पण करे, तो उसका तर्पण निष्फल होता है।

सात, पांच वा नौ कुशोंसे ब्राह्मण, ब्रह्मा और विस्तर (आसन) बनाना चाहिये। इसमें प्रभेद यह है, कि ब्राह्मण और ब्रह्मा बनानेमें कुशको अग्रभागके साथ ढाई बार मुड़ कर अग्रभाग ऊपर रखते हैं, पर विष्टर बनानेमें उसे दाहिनी ओर नहीं करके बायों ओर करते और अग्रभागको नोचेको तरफ रखते हैं। २ कुशासन, कुशका आसन

दर्भक (सं० पु०) घोड़ेके पांवका एक रोग।

दर्भकुसुम (सं० पु०) कृमि जाति, कीड़ेकी एक जात।

दर्भकेतु (सं० पु०) कुशध्वज, राजा जनकके भाई।

दर्भट (सं० क्ली०) दृभ संदर्भे बाहु० अटन्। निभृत गृह, भीतरी कोठरी।

दर्भपत्र (सं० पु०) दर्भस्येव पत्रमस्य। काश, काँस।

दर्भपुष्प (सं० पु०) सर्पभेद, एक प्रकारका साँप।

दर्भमय (सं० त्रि०) दर्भात्मकः दर्भ शरादि० मयट्। कुशनिर्मित ब्राह्मणादि, कुशके बने हुए ब्रह्मा, ब्राह्मण आदि।

दर्भमूला (सं० स्त्री०) दर्भस्येव मूलमस्याः ङोष्। १ औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। २ कुशमूल, कुशकी जड़।

दर्भर (सं० पु०) दर्भस्य सन्निकृष्ट देशादि दर्भ अश्मादि-त्वात् रः। १ दर्भादिके अदूर देशादि, कुश आदिके निकटस्थ स्थान। २ लाव पक्षी।

दर्भवट (सं० क्ली०) अन्तर्गृह, भीतरी कोठरी।

दर्भसमष्ट (सं० पु०) दर्भादिका आसन, कुशका बिछौना।

दर्भसूप (सं० पु०) दर्भप्रचुरोऽनूपः संज्ञानूत्वेऽपि क्षुभ्नादि पाठात् परे पूर्वपदात् न णत्वं। दर्भप्रचुर अनूपदेश भेद।

दर्भस्तम्ब (सं० पु०) दर्भादिका गुच्छ, कुशका गुच्छा।

दर्भासन (सं० पु०) कुशासन, कुशका बना हुआ बिछावन।

दर्भाह्वय (सं० पु०) दर्भं आह्वयति सादृश्यात् आ ह्वे-श। मुञ्ज तृणभेद, मूंज नामकी घास।

दर्भि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। महाभारतमें लिखा है, कि इन्होंने ऋषि ब्राह्मणोंके उपकारके लिये

अर्द्धकोल नामक तीर्थ स्थापन किया। इस तीर्थमें चार समुद्र अवस्थित हैं। जो इसमें स्नान करते वे सब प्रकारको दुर्गतियोंसे छुटकारा पाते हैं। (भारत वनप० ८३ अ०)

दर्म (सं० त्रि०) दृ-विदारे बाहु० म। दारक, फाड़नेवाला।

दर्मन् (सं० पु०) दृ-विदारे बाहु० मनिन्। दर्म देखो।

दर्माण—पञ्जाबके अन्तर्गत गुरुदासपुर जिलेकी शकरगढ़ तहसीलका एक नगर। यहां एक सामान्य म्युनिसिपलिटि है। पहाड़ी महाजन यहां वास करते हैं।

दर्मियान (हिं० पु०) दरमियान देखो

दर्मियानी (हिं० वि०) दरमियानी देखो।

दर्य (सं० त्रि०) दरस्य हितं गवादित्वात् यत्। दरहित, भयसाधन।

दर्रा (फा० पु०) पहाड़ी रास्ता, घाटी।

दर्रा (हिं० पु०) १ मोटा आटा। २ कंकरीली मट्टी। ३ दरार, दरज।

दर्राज (फा० स्त्री०) काठ सीधा करनेका एक यन्त्र जो लकड़ीका बना होता है।

दर्राना (हिं० क्रि०) बेधड़क चला जाना, बिना डरके चला जाना।

दर्व (सं० पु०) दृणाति विदारयतीति दृ-व। १ हिंसा करनेवाला मनुष्य, राक्षस। २ जाति विशेष, एक जाति जिसका उल्लेख दरद, किरात आदिके साथ महाभारतमें आया है। (भारत २।५१।१३) ३ दव जातिका निवासभूत जनपदविशेष, वह देश जहां दव जाति बसती थी। यह वर्त्तमान पञ्जाब प्रदेशके उत्तरमें अवस्थित था। स्त्रियां टाप्। ४ उशीनरकी पत्नीभेद, उशीनरको एक स्त्रोका नाम।

दर्वट (सं० पु०) दर्वाय हिंसायै अटति अट अच् शकन्ध्वादित्वात् दलोपः। १ दण्डवादी, सजा देनेकी धमकी। २ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार, दरबान।

दर्वरीक (सं० पु०) दृ विदारे दृ-ईकन्। १ इन्द्र। २ वायु। ३ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा।

दर्वा—१ बरारके वून जिलेका एक तालुक। इसका क्षेत्रफल १०६२ वर्गमील है। इसमें ३२३ ग्राम लगते हैं। राजस्व कुल २६६८२३०) रु० है। यहा एक दीवानी, दो फौजदारी अदालत और ८ थाने हैं।



२ उक्त तालुकका एक नगर। यह अक्षा० २०°१८´ ३०´´ उ० और देशा० ७७°४८´ पू०में अवस्थित है। यह शहर वून जिलेके सदरसे २४ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांसे लेकर सदर तक एक पक्की सड़क गई है। यहां एक थाना, एक डाकघर, पथिकोंके लिये एक बंगला और एक स्कूल हैं। दर्वा एक प्राचीन नगरी है।

दर्वि (सं० स्त्री०) दृणाति विदारयत्यनेन दृ-विन्। १ व्यञ्जनादि कारक, करछी, डोवा। इसका संस्कृत पर्याय-कम्बि, खजाका, दर्वी, कम्बी और खजाकज है। २ सर्पकी फणा, सांपका फन।

दर्विक (सं० पु०) दर्वि स्वार्थे कन्, अभिधानात् पुंस्त्वं। दर्वी देखो।

दर्विका (सं० स्त्री०) दर्वि स्वार्थे कन् टाप्। १ दार्विका, करछी, डोवा। २ कज्जलभेद, आंखमें लगानेका एक प्रकारका काजल। यह घीसे भरे दीयेमें बत्ती जला कर जमाया जाता है। यह काजल देवता और देवोको चढ़ाया जाता है। ३ गोजिह्वालता, बनगोभी, गोजिया।

दर्विपत्रिका (सं० स्त्री०) गोजिह्वा, गोजिया।

दर्विहोम (सं० पु०) दर्व्याः होमः ६-तत्। दर्वीसाधन होमभेद।

दर्विहोमो (सं० त्रि०) दर्विहोमोऽस्यास्तीति इनि। दर्वी-होमकारी, दर्वी नामक होम करनेवाला।

दर्वी (सं० स्त्री०) दर्वि बाहु० ङीष्। दर्वि, करछी, चमचा, डोवा।

दर्वीकर (सं० पु०) दर्वीं फणां करोतीति कृ-ट, वा दर्वी फणा कर इवास्य। सर्प, फनवाला सांप। दर्वीकर सर्पके विषयमें सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा हुआ है।

सर्प अनेक प्रकारके होते हैं, साधारणतः अस्सी प्रकारके हैं जो दर्वीकर, मण्डली, राजिमण्ड, निर्विष और वैकरञ्ज इन पांच श्रेणियोंमें विभक्त हैं।

इनमेंसे दर्वीकरके २६ भेद हैं, यथा—कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेतकपोत, महाकपोत, वलाहक, महासर्प, शङ्खपाल, लोहिताक्ष, गवेधुक, परिसर्प, खण्डफणा, ककुद, पद्म, महापद्म, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुण्डरीक, भ्रूकुटीमुख, पुष्पाभिकीर्ण, गिरिसर्प,

ऋजुसर्प, श्वेतोदर, महाशिर और अलगर्द इन २६ प्रकारके सर्पोंको फन होते हैं इसीसे इनका नाम दर्वीकर हुआ है। जिन सर्पोंके मस्तक पर रथाङ्ग, लाङ्गल, छत्र, स्वस्तिक अथवा अङ्कुशके चिह्न रहते हैं उन्हें भी दर्वीकर कहते हैं। ये सप फणाविशिष्ट और शीघ्रगामी होते हैं तथा दिनके समयमें इधर उधर विचरण करते हैं। दर्वीकरके काटनेसे त्वक्, चक्षु, नख, दन्त, मूत्र, पुरीष और दंश-स्थान काले हो जाते हैं तथा शरीरको रुक्षता, मस्तक-का भार, सन्धि स्थानमें वेदना, कटि, पृष्ठ और ग्रीवाको दुर्बलता, जृम्भन, कम्प, वाक्यकी अवसन्नता, शरीरकी जड़ता, शुष्क उद्गार, कास, श्वास, हिक्का, वायुकी ऊर्द्धगति, वेदना, वमनकी इच्छा, तृष्णा, लालास्राव, फेणानिःसरण, इन्द्रियकार्यका अवरोध आदि तरह तरहकी यातनाएं उत्पन्न होती हैं। विशेष विवरण सर्प शब्दमें देखो।

दर्वीसंक्रमण (सं० क्ली०) एक तीर्थ। यह तीर्थ तीनों लोकमें पूजित है और इसमें स्नान दानादि करनेसे अश्व-मेध यज्ञका फल होता तथा स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। (भारत वन ८४अ०)

दर्वीहोम (सं० पु०) दर्विहोम देखो।

दर्श (सं० पु०) दृश्यते उपर्यधोभावापन्न समसूत्रपात-न्यायेन राश्यंशाद्यवच्छेदनसहावस्थितौ चन्द्रसूर्यौ यत्र यत्र दृश अधिकरणे घञ्। १ सूर्य और चन्द्रमाका सङ्गम काल, अमावस्या तिथि। २ दर्शकाल कर्त्तव्य यागभेद, वह यज्ञ जो अमावस्याके दिन किया जाय। ३ दर्शन।

दर्शक (सं० पु०) दर्शयति नृपादिसमीप-गमनपथ-मिति दृश-णिच् ण्वुल्। १ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार। द्वार-पालगण लोगोंको राजाके पास ले जाकर उनके दर्शन कराते हैं, इसीसे इनका नाम दर्शक हुआ है। (त्रि०) २ द्रष्टा, देखनेवाला, प्रधान, मुख्य। ४ निपुण। ५ दर्श-यिता, दिखानेवाला।

दर्शकगङ्गाहार—बङ्गाल देशके मालदह जिलेका एक राजस्व विभाग। इसका परिमाणफल १०७२९ वर्गमील और राजस्व २०८) रु० है। यहां एक भी नदी नहीं है, किन्तु अनेक जलाशय, झील और नाले हैं। बहुत सी जलाभूमि रहनेके कारण यह स्थान अत्यन्त अस्वा-स्थ्यकर है। यहां ज्वर और गात्र वेदना सब समय हुआ करती है। यहांकी भूमि उर्वरा है इसीसे चावल, गेहूं और सरसों आदिकी फसल अच्छी लगती है।

दर्शत (सं० पु०) दृश्यतेऽसौ दिवि दृश कर्मणि अतच्। १ सूर्य। २ चन्द्रमा। (त्रि०) ३ दर्शनीय, देखने लायक।

दर्शतश्री (सं० त्रि०) दर्शनीयविभूति, देखनेयोग्य ऐश्वर्य।

दर्शन (सं० क्ली०) दृश्यतेऽनेनेति दृश करणे ल्युट्। १ नयन, आंख। २ स्वप्न। ३ बुद्धि। ४ धर्म। ५ दर्पण। ६ इच्छा। ७ वर्ण। ८ मुलाकात, भेंट। जैसे—अब न मालूम आपके कब दर्शन होंगे। यह शब्द बड़ोंके लिए प्रयुक्त होता है। ९ चाक्षुष ज्ञान, वह बोध जो दृष्टिके द्वारा हो, अवलोकन, साक्षात्कार, देखादेखी। पर्याय—निर्वर्णन, निध्यान, आलोकन, ईक्षण, निभा-लन। (जटाधर)

जिसके देखनेसे पुण्य एवं पाप होता है, उसका वर्णन ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

सुब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव, देवप्रतिमा, तीर्थस्नायी नर, सूर्य, सती स्त्री, संन्यासी, यति, मुनि, ब्रह्मचारी, गो, वह्नि, गुरु, गजेन्द्र, सिंह, श्वेताश्व, शुक, पिक, खञ्जन, हंस, मयूर, सवत्सा धेनु, पतिपुत्रवती नारी, तीर्थयात्री नर, सुवर्ण वा मणिमयप्रदीप, मुक्ता, हीरक, माणिक्य, तुलसी, शुक्लपुष्प, शुक्लधान्य, घृत, दधि, मधु-पूर्णकुम्भ, राजा, राजेन्द्र, दर्पण, जल, शुक्लपुष्पमाला, गोरोचना, कर्पूर, रजत, सरोवर, पुष्पित पुष्पोद्यान, देवपूजाके निमित्त स्थापित घट, शङ्ख, दुन्दुभि, कस्तूरी, कुङ्कुम, शुक्ति, प्रवाल, स्फटिक, कुशमूल, गङ्गामृत्तिका, कुश, ताम्र, विशुद्ध पुराण-ग्रन्थ, सवीज विष्णुमन्त्र, रत्न, तपस्वी, सिद्धमंत्र, समुद्र, कृष्णसार, यज्ञ, महोत्सव, गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, गोधूलि, गोष्ठ, गोष्पद, पक्क शस्य-युक्त क्षेत्र, श्यामा स्त्री, क्षेमङ्करी वेश्या, गन्ध, दूर्वाक्षतयुक्त तण्डुल, सिद्धान्न और परमान्न इन सबके दर्शनसे पुण्य होता है तथा समस्त अमङ्गलोंका नाश होता है। कार्त्तिकी पूर्णिमाकी राधिका, पौषमासकी शुक्ला तिथिमें पद्मा, आश्विनकी अष्टमीमें दुर्गा, जन्माष्टमीमें विल्व-

माधव तथा काशीमें अन्नपूर्णा आदिके दर्शन करनेसे अशेष पुण्य लाभ होता है। (ब्रह्मवै०पु०श्रीकृष्ण जन्मख०)

दृश्यते यथार्थ तत्त्वमनेन दृश करणे ल्युट्।१० शास्त्र, अध्यात्मवेदक शास्त्रभेद, जिसके द्वारा यथार्थ तत्त्वका ज्ञान होता है, उसे दर्शन कहते हैं।

ज्ञान लाभ करनेके लिए दर्शन ही एक मात्र उपाय है। दर्शनशास्त्रका अध्ययन बिना किये किसी भी तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। यह दर्शन शास्त्र आस्तिक, नास्तिक, जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि नाना भेदोंके कारण नाना प्रकार है। उपनिषदोंमें आर्य-दर्शनका मूलसूत्र प्रकट किया गया है। अध्यात्मतत्त्वविद् ऋषिगण बहुदर्शिता द्वारा जिस तत्त्वका प्रकाश करते हैं, उसीका नाम दर्शन है। वेदकी संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद्के आधार पर जो परमार्थ-सम्बन्धी कुछ मत प्रचारित हुए थे, उनका भी नाम दर्शन है। परमार्थ तत्त्वका अनुसन्धान करना ही आर्य-दर्शनशास्त्रोंका प्रधान उद्देश्य है। इन दर्शनशास्त्रोंमें ही जगत्के कारणोंका निरूपण और मनुष्यकी मुक्तियां वा पारलौकिक उन्नति साधनके उपाय निर्द्धारण आदि आलोचित हुए हैं। इनमें षड्दर्शन ही प्रधान हैं, जैसे—साङ्ख्य, पातञ्जल, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त। माधवाचार्यने 'सर्वदर्शन संग्रह'में षड्दर्शनके सिवा और भी दश दर्शनोंका संक्षिप्त विवरण लिखा है, यथा—चार्वाक, बौद्ध, आर्हत् वा जैन, नकुलीश, पाशुपत, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, रसेश्वर, पाणिनि, शैव और प्रत्यभिज्ञा। ये सब दर्शनशास्त्र सूत्र प्रणालीसे लिखे गये हैं।

दर्शनशास्त्रमें प्रवेश करनेके पहले 'तत्त्वपदार्थ' और 'कारण' आदि शब्दोंका अर्थ जान लेना आवश्यक है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदि दर्शनशास्त्रोंके प्रारम्भमें कुछ पदार्थ वा तत्त्व अङ्गीकृत हुए हैं। जैसे—न्यायशास्त्रमें षोड़श पदार्थ, वैशेषिकमें सप्त पदार्थ, सांख्यमें पञ्चतत्त्व और पातञ्जलमें षड्विंशति तत्त्व माने गये हैं। वर्तमान समयमें पदार्थ शब्दका प्रचलित अर्थ केवल कतिपय इन्द्रियगोचर वस्तुओंका निर्देश करता है। जैसे—जल, स्वर्ण, पारद, मृत्तिका, इत्यादि। परन्तु दर्शनशास्त्रमें व्यवहृत पदार्थ शब्दका ऐसा अर्थ नहीं है जैसे व्याकरणशास्त्रके पढ़नेमें पहले पहल कुछ स्वतः-सिद्ध संज्ञाओंका ज्ञान कराया जाता है, उसी प्रकार दर्शनशास्त्रमें प्रवेश करनेसे पहले तत्त्व और पदार्थसे काम पड़ता है, इन्हें दर्शनशास्त्रकी धातु वा संज्ञा समझना चाहिये। दर्शनशास्त्रके अनुसार हर एक कार्यका कारण है। न्याय और वैशेषिक दर्शनमें भिन्न शब्द द्वारा तथा वेदान्तदर्शनमें भिन्न शब्द द्वारा कारणका नामकरण हुआ है। न्याय और वैशेषिकमें कारण तीन प्रकार माना गया है—समवायी, असमवायी और निमित्तकारण। वेदान्तिकोंने और भी एक साङ्केतिक कारण माना है। उनका कहना है, कि जो कारण अन्य उपादानकी सहायताके बिना ही कार्यको उत्पत्ति करता है और स्वयं कार्यरूपमें परिणत नहीं होता उसे विवर्त उपादानकारण कहते हैं, जैसे रज्जु-सर्पका भ्रम होनेसे रज्जु ही उस मिथ्या सर्पज्ञानमें विवर्तउपादानकारण होता है; अर्थात् रज्जु स्वयं सर्प नहीं होती बल्कि अन्य उपादानकी सहायतासे मिथ्या सर्पज्ञान उत्पन्न करती है।

अब माधवाचार्यके 'षड्दर्शन'के अनुसार यथाक्रमसे चार्वाक् आदि अन्य दर्शनोंका विवरण लिखा जाता है।

चार्वाक दर्शन—नास्तिकोंमें चार्वाक् ही श्रेष्ठ है। इस दर्शनके अनुसार मनुष्यको जीवन भर सुखके उपायोंकी चिन्ता करते रहना चाहिए।

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥" (सर्वदर्शस०)

चार्वाकके मतसे देह ही आत्मा है, देहके सिवा आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, प्रत्यक्ष मात्र ही प्रमाण है, अनुमान आदि प्रमाण नहीं है। कामिनी-सम्भोग उपादेय द्रव्य-भक्षण और उत्तम वसन-परिधानादिसे उत्पन्न होनेवाला सुख ही परमपुरुषार्थ है। सुखान्वेषणके सिवा और कुछ भी प्रयोजनीय नहीं है। इस मतके अनुसार भूत चार ही हैं। चार्वाक मतावलम्बीगण आकाशको भूत नहीं मानते।

विशेष विवरण चार्वाक शब्दमें देखो।

बौद्धदर्शन—यह दर्शन चार श्रेणियोंमें विभक्त है,

१ माध्यमिक, २ योगाचार ३ सौत्रान्तिक और ४ वैभाषिक। माध्यमिकोंके मतसे—कुछ भी नहीं है, सब कुछ शून्य है। स्वप्नावस्थामें जो वस्तुएं देखनेमें आती है, जाग्रत अवस्थामें वे नहीं दिखलाई देतीं और जो पदार्थ जाग्रत् अवस्थामें दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्वप्नावस्थामें नहीं दीखते तथा सुषुप्ति अवस्थामें भी कुछ उपलब्धि नहीं होती। इससे मालूम होता है, कि वस्तुतः कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है। यदि सत्य होते, तो समस्त अवस्थाओंमें दिखलाई देते। योगाचारके मतसे—बाह्य वस्तु मात्रही अलीक है, केवल क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा ही सत्य है। यह विज्ञान दो प्रकारका है, १ प्रवृत्तिविज्ञान और २ आलयविज्ञान। जाग्रत और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसे प्रवृत्तिविज्ञान ; और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसे आलयविज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान केवल आत्माके अवलम्बनसे ही उत्पन्न होता है। सौत्रान्तिकके मतसे—बाह्य वस्तु सत्य और अनुमानसिद्ध है। वैभाषिकोंके मतसे—बाह्य वस्तुएँ प्रत्यक्षसिद्ध है। बौद्धधर्मके उपदेष्टा एकमात्र भगवान् बुद्ध होने पर भी, शिष्योंमें मतभेदका होना असम्भव नहीं है। जैसे किसी व्यक्तिने कहा कि "सूर्य अस्त हो गया"। इस वाक्यको सुन कर लम्पट और चोर, परदार और परधन-हरणका समय उपस्थित हुआ, ऐसा समझेंगे और सुनिकृष्टिगण सन्ध्यावन्दनादिका समय हुआ, ऐसा समझेंगे। इससे मालूम होता है कि वक्ताके एक ही वाक्यका श्रोतागण अपने अभिप्रायानुसार भिन्न भिन्न अर्थ लगा लेते हैं। इसके अनुसार पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन द्वादश इन्द्रियोंका आयतन होनेके कारण, शरीरको द्वादशायतन कहते है। बौद्धोंके मतानुसार—देवता सुगत है, जगत् क्षणभङ्गुर है, प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण है एवं दुःख, आयतन, समुदय और मार्ग ये चार तत्त्व हैं। विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूपस्कन्ध ये पञ्चस्कन्ध दुःखतत्त्व है। पांच इन्द्रिय तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पांच विषय एवं मन और धर्मायतन ( अर्थात् बुद्धि ) ये द्वादश आयतनतत्त्व हैं। मनुष्योंके अन्तःकरणमें स्वभावतः जो राग द्वेषादि उत्पन्न होते हैं, उन्हें समुदय-तत्त्व कहते हैं। सभी संस्कार क्षणमात्र स्थायी हैं। इसी तरह जो स्थिर वासना है, उसका नाम मार्गतत्त्व है। यह मार्गतत्त्व ही निर्वाण है। चर्मासन, कमण्डलु, मुण्डन, चीर, पूर्वाह्णभोजन, समूहावस्थान और रक्ताम्बर ये ७ बौद्धोंके यति धर्मके अङ्ग हैं।

विशेष विवरण जानना हो तो बौद्ध शब्द देखो।

आर्हत वा जैनदर्शन—आर्हत्गण दिगम्बर होते हैं। इनके आगमोंमें बौद्धोंके क्षणिकवादका खण्डन किया गया है। आर्हतदर्शनके अनुसार आत्मा क्षणिक नहीं वरन् नित्य है। यदि प्रत्येक शरीरमें एक एक आत्मा निरन्तर विद्यमान न रहती तो ऐहिक फल साधन के लिए कृषि-वाणिज्यादि कर्मोंमें किसी प्रकार भी लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं होती। कारण अपने लिए ही सब कोई उपायानुष्ठान करते है। यदि उपायानुष्ठान कर्त्ता आत्मा फल भोगनेके समय उपस्थित न रहे तो एकके फल-भोगके लिए दूसरेको प्रवृत्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है ? आर्हतमतानुसार आत्मा चिरस्थायी है, जीवका परिमाण देहके सदृश है, आर्हत ( अर्हन्त ) ही परमेश्वर वा परमात्मा है जो सर्वज्ञ, एवं वीतराग अर्थात् रागद्वेषादिसे शून्य हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय हैं, इन्हींसे मोक्षका प्राप्ति होती है। जिनोक्त तत्त्वोंके ज्ञानमें विपरीत ज्ञान और संशयादिका निवारणादि रूप सम्यक् श्रद्धाको सम्यग्दर्शन कहते हैं। संक्षेपमें वा विस्तारितरूपमें जैनोक्त तत्त्वोंके यथार्थ ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं ( जो सम्यग्दर्शन-पूर्वक ही होता है ) और जैनागमानुसार अहिंसा, सुनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच व्रतोंका पालन करना सम्यक् चारित्र है। स्थावर हो चाहे जङ्गम, किसी भी प्रकारके जीवका मन-वचन-कायसे विनाश न करना अहिंसा है, बिना दिये हुए पदार्थको ग्रहण न करना अस्तेय है, सत्य और हितकर अथच प्रिय वचन बोलना सुनृत है, कामको जीतना ब्रह्मचर्य है तथा समस्त पदार्थोंसे ममत्व त्याग देना अपरिग्रह है। ये पाँच महाव्रत हैं। इनके साधनसे परमपदकी प्राप्ति होती है। इस दर्शनमें

प्राय: सभी दर्शनोंका अपशाहित्य खण्डन किया गया है। विस्तृत विवरण जाननेके लिए ८वें भागमें जैनधर्म शब्द देखो।

नकुलीश पाशुपत दर्शन—यह दर्शन परम कारुणिक महादेवको ही परमेश्वर एवं जीवोंको पशु बतलाता है। जीवोंके अधिपति होनेके कारण परमेश्वरको पशुपति भी कहा जा सकता है। जैसे किसी विषयका सम्पादन करनेके लिये अस्मदादि, अन्ततः हस्तपदादिको सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार अन्य वस्तुकी सहायताके बिना ही जगदीश्वरने जगज्जात समुदय निर्माण किया है इसलिए उनको स्वतन्त्रकर्त्ता भी कहा जा सकता है तथा अस्मदादिके द्वारा जो कार्य सम्पन्न होते हैं, उनके भी कारण परमेश्वर हैं ; इसलिए उनको सब कार्यका कारण भी कहा जा सकता है। इस दर्शनके मतसे, मुक्ति दो प्रकारकी है—एक दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति और दूसरी परमैश्वर्यकी प्राप्ति। दुःखोत्पन्न निवृत्तिरूप मुक्ति होने पर फिर कभी दुःख नहीं होता। इसलिए उस मुक्तिको चरम दुःखनिवृत्ति कहते है। दृक्‌शक्ति द्वारा कोई विषय अभिज्ञात नहीं रहता, कितना भी सूक्ष्म, कितना भी व्यवहित वा दूरस्थ क्यों न हो, स्थूल अव्यवहित और अदूरवर्ती वस्तुकी तरह दृष्टिगोचर होता है तथा जिस वस्तुमें जो गुण वा दोष है, वह भी मालूम हो जाता है ; फलतः सभी विषय दृक्‌शक्तिमान् व्यक्तिके ज्ञानपथके पथिक होते है। क्रियाशक्ति होनेसे जब जिस विषयको अभिलाषा होती है, उसी समय वह सुसम्पन्न हुआ करता है। क्रियाशक्ति युक्त व्यक्तिकी केवल इच्छा मात्रको अपेक्षा करती है। मुक्त व्यक्तिको इच्छा होने पर अन्य किसी कारणकी अपेक्षा न कर, शीघ्र ही उसके मनोरथकी पूर्त्ति होती है। इस प्रकार दृक्‌शक्ति और क्रियाशक्तिरूप मुक्ति परमेश्वरकी तत्तत् शक्ति सदृश है, इस कारण उसका नाम पारमैश्वर्य मुक्ति है। पूर्णप्रज्ञदर्शनमें कथित भगवद्दासत्व प्राप्तिको मुक्ति कहा गया है। मुक्त व्यक्ति यदि दासत्वरूप अधीनताशृङ्खलतामें बद्ध ही रहा, तो उसे मुक्त किस तरह कहा जा सकता है ? इत्यादि रूपसे इसमें प्रज्ञपूर्ण दर्शनका खण्डन किया गया है। इस दर्शनमें प्रधान धर्मसाधनको चर्याविधि कहते है। चर्या दो प्रकारकी है, एक व्रत और दूसरी द्वार। त्रिसन्ध्या भस्मस्नान, भस्मशय्या पर शयन और उपहार इन तीन क्रियाओंको व्रत कहते हैं। 'ह, ह, हा' इस प्रकार हास्यरूप हसित, गन्धर्वशास्त्रानुसार महादेवके गुणगानरूप गीत, नाट्यशास्त्र-सम्मत नृत्य, पुङ्गवके चीत्कारके समान चीत्काररूप हुङ्कार, प्रणाम और जप इन छः कर्मोंको उपहार कहते हैं। इस प्रकारके व्रत जनसमाजमें न कर अत्यन्त गुप्तरीतिसे सम्पन्न करने चाहिए। द्वाररूप चर्याके छः भेद है—क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृङ्गारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण। सुप्त न होने पर भी दिखलाई देनेको क्राथन कहते है। वायुके सम्पर्कसे कम्पितकी तरह शरीरादिके कम्पनको स्पन्दन, खञ्ज व्यक्तिके समान गमनको मन्दन, परम रूपवती स्त्रीके सन्दर्शनसे वास्तविक कामुक न होने पर भी कामुककी भांति कुत्सित व्यवहार करनेको शृङ्गारण, कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञानशून्यकी तरह विगर्हित कर्मानुष्ठानको अवितत्करण और निरर्थक वाधितार्थक शब्दोच्चारणको अवितद्भाषण कहते है। इस दर्शनके अनुसार तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका साधन है। शास्त्रान्तरमें भी तत्त्वज्ञानको मुक्तिका साधन कहा गया है, किन्तु शास्त्रान्तर द्वारा मुक्ति तत्त्वज्ञान होनेकी सम्भावना न होनेसे यही शास्त्र मुमुक्षुओंके लिए अवलम्बनीय है। विशेषरूपसे समस्त वस्तुओंका ज्ञान बिना हुए तत्त्वज्ञान नहीं होता। इस शास्त्रमें पारमैश्वर्यको प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति इन दोनोंका होना ही मुक्ति है और ये ही दोनों योगका फल है। इस दर्शनके मतसे कार्य नित्य है और परमेश्वर स्वतन्त्रकर्त्ता है। नकुलीश-पाशुपत देखो।

शैवदर्शन—इस दर्शनमें शिवको परमेश्वर और जीवोंको पशु कहा गया है। नकुलीशपाशुपत-दर्शनके मतसे परमेश्वरके कर्मादि निरपेक्षकर्त्तव्य कहे गये है, किन्तु ऐसा न मान कर जिस व्यक्तिने जिस प्रकारका कर्म किया है, परमेश्वरने उसे तदनुरूप ही फल दिया है, इस कारण परमेश्वरको कर्मादिसापेक्ष कर्त्ता कहा गया है। अस्मदादिके अतिरिक्त कोई एक जगत्कर्त्ता है,

यह अनुमानसिद्ध है। अस्मदादिकी तरह परमेश्वरका प्राकृत शरीर नहीं है, पञ्चमन्त्रात्मक शक्ति ही उनका शरीर है। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात ये पाँच मन्त्र यथाक्रमसे ईश्वरके मस्तक, मुख, हृदय और पादस्वरूप हैं तथा अनुग्रह, तिरोभाव, प्रलय, स्थिति और सृष्टिरूप पञ्चकृत्योंके भी कारण हैं। आगम द्वारा फिलहाल मालूम होता है कि अस्मदादिकी तरह ईश्वरके भी नयनादिविशिष्ट शरीर हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। उन आगमोंका तात्पर्य इस प्रकार है, कि निराकार वस्तुको चिन्ताके स्वरूपका ध्यान नहीं हो सकता, इस कारण भक्तवत्सल परमेश्वर भक्तोंके उन कार्योंके सम्पादनार्थ करुणापूर्वक कभी कभी तादृश आकार धारण करते हैं। इस दर्शनके मतसे पदार्थ तीन प्रकारका है, १ पति, २ पशु और ३ पाश। पति पदार्थ स्वयं भगवान् शिव हैं और जो शिवत्वको प्राप्त हुए हैं, वे पशु हैं तथा शिवत्वपदकी प्राप्तिके लिए दीक्षादि उपाय पाश हैं। पशु पदार्थ जीवात्मा है। यह जीवात्मा महत् चेतनादि पदवाच्य है; देहादिसे भिन्न सर्वव्यापक है, नित्य है, अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय और कर्त्तास्वरूप है। जीवात्मा देखो। पाश पदार्थ चार प्रकारका है—मल, कर्म, माया और बोधशक्ति। स्वाभाविक अशुचिको मल कहते हैं, जैसे तण्डुल तुष द्वारा आच्छादित रहता है, उसी प्रकार वह मल दृक् शक्ति और क्रियाशक्तिको आच्छादित कर देता है। धर्माधर्मको कर्म कहते हैं, प्रलयावस्थामें जिससे समस्त कार्य लीन होते और फिर सृष्टिके समय पुनः उत्पन्न होते हैं, उसको माया और पुरुष तिरोधायक पाशको रोधशक्ति कहते हैं। जीव पशुपदार्थ है। यह पशु पदार्थ तीन प्रकारका है—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। एकमात्र मलस्वरूप पाशयुक्त जीवको विज्ञानाकल कहते हैं और मल, कर्म और माया इन पाशत्रय द्वारा युक्तको सकल। समाप्तकलुष और असमाप्तकलुषके भेदसे जीव भी दो प्रकारका है। प्रलयाकल जीवके भी दो भेद हैं—पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय। पक्वपाशद्वयको मुक्ति मिलती है। अपक्वपाशद्वयको पूर्यष्टक देह धारण कर स्वकर्मानुसार तिर्यक्, मनुष्यादि विभिन्न योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इस मतमें—मन, बुद्धि और अहङ्कार, चित्तस्वरूप अन्तःकरण, भोगसाधन कला, काल, नियति, विद्या, राग प्रकृति और गुण ये सप्त तत्त्व, पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्र, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय इन एकविंशति तत्त्वात्मक सूक्ष्म देहको पूर्यष्टक देह कहते हैं। अपक्व पाशद्वय जीवोंमें जिनके पुण्यातिशय सञ्चित हैं, उनको महेश्वर पृथिवीपतित्व प्रदान करते हैं। सकल-स्वरूप जीव भी दो प्रकारका है-पक्व कलुष और अपक्व कलुष। महादेव अपक्व कलुषोंको महेश्वरकी पदवी देते हैं और अपक्व कलुषोंको संसारकूपमें निक्षिप्त करते हैं। शैव देखो।

पूर्णप्रज्ञदर्शन—पूर्णप्रज्ञने आनन्दतीर्थकृत भाष्यके मतानुसार अपने दर्शनका सङ्कलन किया है। इस दर्शनके अनुसार जीव सूक्ष्म और ईश्वर-सेवक है, वेद अपौरुषेय, सिद्धार्थबोधक और स्वतःप्रमाण है, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण हैं। 'प्रपञ्चसत्य'के विषयमें पूर्णप्रज्ञ और रामानुजका एकसा मत है, परन्तु रामानुजके माने हुए भेद, अभेद और भेदाभेद इन तीन तत्त्वोंको यह स्वीकार नहीं करता। पूर्णप्रज्ञका कहना है कि रामानुजने विरुद्ध तीन तत्त्वोंको स्वीकार कर शङ्कराचार्यके मतकी पुष्टि की है। यह मत अश्रद्धेय है। आनन्दतीर्थकृत शरीरकमीमांसाके भाष्य पर दृष्टिपात करनेसे मालूम होता है कि जीव और ईश्वरमें जो परस्पर भेद है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस भाष्यमें लिखा है—"स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।" इस श्रुतिका यह तात्पर्य नहीं कि ईश्वर और जीवमें परस्पर भेद नहीं है, किन्तु 'तस्य त्वं' अर्थात् 'उसके तुम' इस षष्ठी समास द्वारा उसमें 'जीव ईश्वरका सेवक है', ऐसा अर्थ निकलता है। इस दर्शनमें तत्त्व दो प्रकारका माना गया है-स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। इनमें भगवान् सर्वदोष-विवर्जित अशेष सद्गुणोंका आश्रयस्वरूप विष्णु ही स्वतन्त्र तत्त्व है और जीवगण अस्वतन्त्र अर्थात् ईश्वरके अधीन हैं। ईश्वरकी सेवा तीन प्रकारसे होती है—अङ्कन, नामकरण और भजन। इनमेंसे अङ्कनकी पद्धति साकल्यसंहिताके परिशिष्टमें विशेषरूपसे लिखी है तथा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन तैत्तिरीयक उपनिषद्में किया गया

है। जिससे नारायणके शङ्खचक्रादि चिह्न चिरकाल विराजित रहें, ऐसा करना चाहिए। अङ्कनको प्रक्रियाएं अग्निपुराणमें लिखो है। द्वितीय सेवा नामकरण हैं; अपने पुत्रादिकोंका केशवादि नाम रखना चाहिए, इससे बात बातमें भगवान्‌का नाम-कीर्तन होता है। तृतीय सेवा भजन करना है। यह सेवा तोन प्रकारकी है—कायिक, वाचिक और मानसिक। कायिक भजनके तीन भेद हैं—दान, परित्राण और परिरक्षण। वाचिकके चार भेद है-सत्य, हित, प्रिय और स्वाध्याय। मानसिक भजन भो तीन प्रकारका है-दया, स्पृहा और श्रद्धा। जैसे "सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्" इस वाक्यसे-शूद्र भो भक्तिके साथ ब्राह्मणको पूजा करे तो ब्राह्मणको भांति पवित्रादि गुणविशिष्ट हो सकता है, ऐसा अर्थ समझमें आता है, उसी प्रकार 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। इस श्रुतिवाक्यके द्वारा 'ब्रह्मज्ञ और ब्रह्मका अभेद' ऐसा अर्थ न हो कर ऐसा अर्थ होगा कि 'ब्रह्मज्ञानो व्यक्ति ब्रह्मको तरह सर्वज्ञत्वादि गुणसम्पन्न होते है।' श्रुतिमें माया, अविद्या, नियति, मोहिनी, प्रकृति और वासना इन दो शब्दों का प्रयोग है, जिनका अर्थ भगवान्‌की इच्छामात्र है, न कि अद्वैतवादियोंकी कल्पित अविद्या और जो प्रपञ्च शब्द कहा गया है, उसका अर्थ प्रकृत पञ्च भेद है। पञ्चभेद इस प्रकार है—जीवेश्वरभेद, जड़ेश्वरभेद, जड़जीवभेद जीवो तथा जड़पदार्थका परस्पर भेद। ये प्रपञ्च सत्य और अनादिसिद्ध हैं। ब्रह्मका सर्वोत्कर्ष प्रतिपादन करना हो सम्पूर्ण शास्त्रोंका उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं, जिनमें मोक्ष ही नित्य है, अन्य तीन पुरुषार्थ अनित्य हैं। बुद्धिमान् व्यक्तिमात्रका प्रधान पुरुषार्थ मोक्षको प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना सर्वतोभावसे उचित एवं विधेय है। परन्तु ईश्वरके प्रसन्न हुए बिना मोक्षलाभ नहीं होता। ज्ञानके बिना ईश्वर प्रसन्न नहीं होते। ज्ञान शब्दसे विष्णुका सर्वोत्कर्ष ज्ञान समझना चाहिये।

क्षय और अक्षय आदिका सम्यक् ज्ञान होनेसे विष्णुके साथ सहवास होता है, समस्त दुःख दूर हो जाते हैं और नित्य सुखका उपभोग होता है। श्रुतिमें लिखा है—एक वस्तुका अर्थात् ब्रह्मका तत्त्वज्ञान होनेसे समस्त वस्तुओंका ज्ञान हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे ग्रामस्थ प्रधान व्यक्तिको जान लेनेसे ग्रामका परिचय मिल जाता है तथा पिताको जाननेसे पुत्रका परिचय प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस जगत्‌के प्रधान भूत और पिता स्वरूप जो ब्रह्म हैं, उनका ज्ञान हो जानेसे सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। अद्वैतमतावलम्बोगण व्यासकृत वेदान्तसूत्रका जो कूटार्थ किया करते है, वह कुछ नहीं है। उन सूत्रोंमेंसे एक सूत्रका तात्पर्य यहा लिखा जाता है। यथा—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्रके "अथ" शब्दके तोन अर्थ होते हैं—आनन्तर्य, अधिकार और मङ्गल। "अतः" शब्दका हेत्वर्थ गरुडपुराणके ब्रह्मनारद संवादमें लिखा है। 'जब नारायणको प्रसन्नताके बिना मोक्ष नहीं होता और उनके ज्ञानके बिना उन्हें प्रसन्नता नहीं होती, तब ब्रह्मजिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करना आवश्यक है।' यही इस सूत्रका अर्थ है। "जन्माद्यस्य यतः" इस सूत्रमें ब्रह्मके लक्षण कहे गये हैं। इस सूत्रका अर्थ यह है कि 'जिससे इस जगतको उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार होता है, और जो नित्य निर्दोष अशेष सद्‌गुणाश्रय है, ऐसे नारायण हो ब्रह्म है।' 'ऐसा ब्रह्म है इसका प्रमाण क्या?' इस प्रश्नके उत्तरमें कहा है, "शास्त्रयोनित्वात्" शास्त्र ही निरुक्त ब्रह्मके प्रमाण हैं, कारण ब्रह्म हो शास्त्रोंका प्रतिपाद्य विषय है; शास्त्रोंके उपक्रम और उपसंहारमें ब्रह्म हो प्रतिपादित हुए हैं। आनन्दतीर्थके भाष्यमें समस्त विवरण विस्ताररूपसे लिखा है। पूर्णप्रज्ञने उस भाष्यके मतानुसार उसका रहस्य खोल दिया है। पूर्णप्रज्ञको और भी दो संज्ञाएं हैं—मध्वमन्दिर और मध्व। पूर्णप्रज्ञने अपने मध्वभाष्यमें लिखा है, मैं वायुका तृतीय अवतार हूं।' वायुके प्रथम अवतार हनूमान् तथा द्वितीय अवतार भीम है। पूर्णप्रज्ञ देखो।

रामानुजदर्शन—इसमें आर्हतमतका प्रतिवाद है। रामानुजने तर्कादि द्वारा यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है, कि वह अप्रमाणिक और अश्रद्धेय है। कारण उसमें पञ्चतत्त्व, सप्ततत्त्व और नवतत्त्वादि नाना विषय प्रकटित हुए हैं। प्रथमतः सबको यह सन्देह उपस्थित हो सकता है कि सप्ततत्त्व, नवतत्त्व और पञ्चतत्त्व आदिमेंसे किस

पर विश्वास करना चाहिये *। बादमें अव्यवस्थित मतावलम्बनसे प्रयोजन क्या, ऐसा समझ कर लोग उस मतके ग्रहण करनेसे निवृत्त हुए। आर्हत्मतमें लिखा है कि देहके परिमाणानुरूप जीवका परिमाण है। इसका भी खण्डन है। इसमें नाना प्रकारकी युक्तियाँ दी गई है। देहके परिमाणानुरूप जीवका परिमाण होनेसे घटादि जड़वस्तुकी भाँति जीव भी परिमित होना चाहिए। परिमित वस्तु कभी भी नाना स्थानोंमें नहीं रहती, अतएव जीवका भी एक समयमें नाना देशोंमें रहना असम्भव है, इत्यादि †।

अद्वैतमतप्रवर्तक शङ्कराचार्यके मतावलम्बियोंका कहना है कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य एवं श्रुतिप्रतिपाद्य है। जगत् प्रपञ्च कुछ भी सत्य नहीं है। सब मिथ्या है। जैसे भ्रमवश रज्जुमें सर्पको मिथ्या कल्पना हो जाती है, और पीछे रज्जु जान कर भ्रम निवारण होने पर उस कल्पित सर्पको भी निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार अविद्याके द्वारा यह जगत्प्रपञ्च ब्रह्ममें कल्पित हो रहा है। ब्रह्मज्ञान होनेसे ही उस अविद्याको निवृत्ति हो कर जगत्प्रपञ्चको भी निवृत्ति हो जाती है। अविद्या भाव पदार्थ है, किन्तु वह सत् वा असत् पदवाच्य नहीं हो सकती, इस कारण उसे सदसदनिर्वचनीय कहा गया है। विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान होनेपर उस अविद्याका नाश हो जाता है। परन्तु इस विषयमें अद्वैतमतावलम्बियोंने जो अनुभव प्रमाण रूपमें उपनिषद्के वाक्य उद्धृत किये हैं, उसके द्वारा उल्लिखित भाव स्वरूप अविद्या सिद्ध नहीं हो सकती। रामानुजने इस प्रकारसे शङ्कराचार्यका अद्वैतमत खण्डित किया है। इस दर्शनमें पदार्थ तीन माने गये हैं--चित्, अचित् और ईश्वर। चित् जीवपदवाच्य, भोक्ता, असङ्कुचित, अपरिच्छन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप नित्य एवं अनादि कर्मरूप अविद्यासे वेष्टित है। भगवत्की आराधना और उसके पदकी प्राप्ति करना आदि जीवका स्वभाव है। जीव अति सूक्ष्म है। अचित् भोग्य और दृश्यपदवाच्य है, अचेतनस्वरूप जडात्मक जगत् एवं भोग्यत्व आदि स्वभावोंसे युक्त है। यह अचित् पदार्थ तीन प्रकारका है—भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसको भोगा जाय, वह भोग्य है; जैसे अन्नपानादि। जिससे भोग किया जाय वह भोगोपकरण है, जैसे भोजनपात्रादि। जिसमें भोगा जाय, वह भोगायतन है; जैसे शरीरादि। ईश्वर सबके नियामक हैं, जगतके कर्त्ता है, एवं अपरिच्छन्नज्ञान ऐश्वर्य और वीर्यशक्ति आदिसे सम्पन्न है। चित् अचित् सभी वस्तुएं उनके शरीरस्वरूप हैं, पुरुषोत्तम, वासुदेव आदि उनकी संज्ञाएं है। ईश्वर परम कारुणिक हैं, इसलिए उपासकोंको यथोचित फल प्रदान करनेके अभिप्रायसे पाँच प्रकारका शरीर धारण करते हैं। प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादि; द्वितीय रामादि अवतारस्वरूप विभव; तृतीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार संज्ञाक्रान्त व्यूह; चतुर्थ सूक्ष्म और सम्पूर्ण षडगुण वासुदेव नामक परब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जीवोंके नियन्ता है। इन पाँच मूर्तियोंमें पूर्व पूर्वको उपासनासे पाप क्षय होता और उत्तरोत्तर उपासनाका अधिकार प्राप्त होता है। इस मतमें अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योगके भेदसे उपासना भी पाँच प्रकार को मानी गई है। देवमन्दिरका मार्जन और अनुलेपन आदिको अभिगमन कहते हैं और गन्धपुष्पादि पूजोपकरणके आयोजनको उपादान। इज्या पूजाका नामान्तर है। अर्थानुसन्धान पूर्वक मन्त्र, जप, स्तोत्रपाठ, नाम-संकीर्तन और शास्त्राभ्यास आदिको स्वाध्याय तथा देवतानुसन्धानको योग कहते हैं। इस प्रकारसे उपासना करनेसे भक्तोंको नित्य पदकी प्राप्ति होती है तथा भगवान्का स्वरूप ज्ञान लेने

* आर्हतदर्शनमें प[ञ्च]तत्त्व नहीं माना है और न नवतत्त्वका ही कहीं उल्लेख है। आर्हतदर्शन केवल सप्त तत्त्वोंको ही स्वीकार करता है; जैसा कि नीचेके सूत्रसे प्रकट होता है।—

"जीवाजीवास्रवबन्धसंवरमोक्षास्तत्त्वम्॥"

(तत्त्वार्थसूत्र अ० १ सू० २)

† इसमें आर्हतमत[का] यह कहना है कि जीव परिमित नहीं है, किन्तु जब जैसा शरीर पाता है, उसीमें रहता है; शरीरसे बाहर नहीं निकलता और न शरीरके कुछ अंशोंमें ही रहता है, वरन् समस्त शरीरमें व्याप्त रहता है। जैसे—प्रदीपका प्रकाश घटमें भी समा सकता है और बड़े भारी मकानमें भी व्याप्त हो सकता है। उसी प्रकार जीव भी स्वदेहपरिमाणी है।

पर पुनर्जन्मादि नहीं होता। चित् और अचित्के साथ ईश्वरका भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों हो विद्यमान हैं। श्रुतिमें जहां ईश्वरको निर्गुण कहा गया है, वहां उसका तात्पर्य सिर्फ इतना ही है, कि वास्तवमें मनुष्योंकी तरह रागद्वेषादि गुण ईश्वरमें नहीं है और जहां पदार्थके नानात्व-विषयका निषेध किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर चित् और अचित् समस्त वस्तुओंकी आत्मा हैं ; इसलिए सम्पूर्ण पदार्थ हो ईश्वरात्मक हैं ; ईश्वरसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है। इन सब विषयोंका तत्त्वानुसन्धान करके रामानुजने शारीरक-सूत्रका भाष्य बनाया है। बौधायनाचार्यने महोपनिषद्-के मतानुसार एक वृत्ति बनाई हैं, जो अत्यन्त विस्तृत है। इसलिए रामानुजने उस वृत्तिके मतानुसार एक संक्षिप्त भाष्य लिखा है। रामानुज देखो।

रसेश्वर-दर्शन—पदार्थ-निर्णयके विषयमें प्रत्यभिज्ञा दर्शनके साथ इसका ऐकमत्य है। प्रत्यभिज्ञादर्शनमें पारद-पदार्थके विषयमें कहीं भो उल्लेख नहीं है। परन्तु इस दर्शनमें उसका विशेषरूपसे निर्देश किया गया है। बस, यही इसमें विशेषता है। जिस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शनने महेश्वरको परमेश्वररूप माना है और जीवात्मा एवं परमात्माका अभेद स्वीकार किया है, उसी प्रकार यह दर्शन भी महेश्वरको परमेश्वर एवं जीवात्माको परमात्मा माननेके लिए प्रस्तुत है। परन्तु यह प्रत्यभिज्ञादर्शनकी तरह कपोल-कल्पित एक मात्र प्रत्यभिज्ञाको ही परमपद मुक्तिका साधन नहीं मानता; परम मुक्तिके लिए यह दूसरा ही मार्ग बतलाता है। इस दर्शनका मत है, कि मुमुक्षु व्यक्तियोंको प्रथमतः देहको स्थिरताके लिए यत्न करना चाहिये; पीछे क्रमशः योगाभ्यास करते करते जब ज्ञानोदय हो जाता है, तब मुक्ति-रसका आविर्भाव स्वतः हो जाता है। यद्यपि अन्यान्य दर्शनोंमें भो मुक्तिके साधनके लिए एक एक मार्ग दिखलाया गया है और उन मार्गोंसे परमपद मुक्तिपद पानेको सम्भावना है, तथापि उन मार्गोंमें लोगोंको प्रवृत्ति नहीं हो सकतो। परन्तु इस दर्शनमें पारद-रसद्वारा देहका स्थैर्य सम्पादन कर क्रमशः योगाभ्याससे निरत हो सकते हैं, ऐसा होनेसे परमकारुणिक परमेश्वर परितुष्ट हो कर पारितोषिकस्वरूप सर्व प्रधान मुक्तिपद प्रदान करते हैं। इसलिए मुमुक्षु व्यक्तियोंको प्रथमतः देहको स्थिरताका उपाय करना चाहिए। देहकी स्थिरताके लिए पारदरसही एकमात्र उपाय है, पारदरस-द्वारा देहका स्थैर्य-सम्पादन होता है, ऐसा अन्य किसी भी दर्शनमें उल्लेख नहीं है। इस दर्शनके मतसे, पारद-रससे देहका स्थैर्य सम्पादन करनेसे शरीरके रहते ही मुक्ति होती है, इस मुक्तिको जीवन्मुक्ति कहते हैं। प्रथमतः यह शरीर श्वासकासादि नाना रोगोंका आश्रय है, विनश्वर है, इस कारण समाधिकरण-क्लेशके सहनेमें नितान्त अशक्त है। दूसरी बात यह है कि उसी समय देहका पतन हो जाता है, इसलिए देहमें समाधिका होना असम्भव है। इसके लिए पहले पारदरस-द्वारा शरीरको दिव्य कर लेना चाहिए; ऐसा कर लेनेके बाद फिर योगाभ्यास आदिके द्वारा परमतत्त्वको स्फूर्तिका होना सम्भव है। यही कारण है जो इस दर्शनमें देहको स्थिरताका साधन बतलाया गया है। यह पारदरस सामान्य धातु नहीं है, कारण महादेवने स्वयं पार्वतीसे कहा है कि पारदरस मेरा स्वरूप है, यह मेरे प्रत्यङ्गसे उत्पन्न हुआ है। यह पारद संसाररूप समुद्रके यन्त्रणा-निवृत्ति-स्वरूप है। पार पहुंचाता है, इसलिए यह 'पारद' कहलाता है। पारद मेरा वोज है और अभ्रक तुम्हारा। इन दोनों बोजोंका यथारीति मिश्रण कर सकने पर मृत्यु और दारिद्र्य तथा दूर होतो है।" पारद नाना प्रकारका है, एक एक प्रकारके पारदमें एक एक प्रकारका असाधारण गुण है। वह पारद द्वारा शून्य मार्गमें चलनेको शक्ति तथा मृत पारद द्वारा जोवित करनेको शक्ति प्राप्त होतो है, इत्यादि। एक मात्र पारद ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्गको प्रदान करता है। पारदके सिवा अन्य कोई भो वस्तु ऐसी नहीं है जो शरीरको नित्य बना सके। इसके दर्शन, स्पर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन और दानसे सम्पूर्ण अभोष्ट सिद्ध होते हैं। पारद-रस अन्यान्य रसोंको अपेक्षा उत्तम होनेके कारण हो उसका नाम रसेश्वर पड़ा है। इस दर्शनमें रसका गुण विशेष रूपसे वर्णित है, इसी कारण यह दर्शन रसेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ है। रसेश्वर देखो।

पाणिनिदर्शन - यह दर्शन पाणिनि मुनि-प्रणीत है। पाणिनि-व्याकरण ही पाणिनि दर्शन है। इसमें समस्त संस्कृत शब्द ही साधित और व्युत्पादित हुए हैं। इस पाणिनि-दर्शनके अध्ययन करनेसे संस्कृतभाषामें व्युत्पत्ति होती है। संस्कृतभाषामें व्युत्पत्ति होनेसे नाना उपकार होते हैं, वेदादि शास्त्रोंकी रक्षा होती है, इत्यादि।

इस दर्शनके मतसे, शब्द दो प्रकारका है, एक नित्य और दूसरा अनित्य। नित्य शब्द एकमात्र स्फोट है, उसके सिवा वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य है। वर्णातिरिक्त स्फोटात्मक भी कोई नित्य शब्द है, इस विषयमें बहुत सी युक्तियां दिखलाई गई हैं। उनमेंसे प्रधान युक्ति यह है, कि स्फोट न होता तो केवल वर्णात्मक शब्दके द्वारा अर्थबोध नहीं हो सकता था। यह सभी मानते हैं कि अकार, गकार, नकार और इकार ये चार वर्ण ऐसे हैं जिनके द्वारा अग्निका बोध होता है; परन्तु यह केवल उन चार वर्णोंसे ही संपादित नहीं हो सकता ; कारण यदि उन चार वर्णोंमेंसे प्रत्येक वर्णके द्वारा वह्निका बोध होता, तो केवल अकार अथवा गकार उच्चारण करनेसे ही वह्निका बोध क्यों नहीं होता? इस दोषके परिहारार्थ वे विचारको एकत्रित हो कर वह्निका बोध करा देते हैं, यह कहना भी बालकताका प्रकाश करना है। कारण वर्ण तो आशु-विनाशी ठहरे, आगेके वर्णोंकी उत्पत्तिके समय पूर्व पूर्व वर्ण विनष्ट हो जाते हैं, सुतरां अर्थबोधकी बात तो दूर रही, उनका एकत्रावस्थान भी असम्भव है। अतएव कहना होगा कि उन चार वर्णोंसे प्रथमतः स्फोटकी अभिव्यक्ति अर्थात् स्फुटता होती है। बादमें स्फुट-स्फोट द्वारा अग्निका बोध होता है। इस स्थल पर कोई आपत्ति करते हैं कि प्रत्येक वर्ण द्वारा स्फोटकी अभिव्यक्ति स्वीकार करनेसे पूर्वोक्त प्रत्येक वर्ण द्वारा अर्थबोधका दोष आता है और समुदाय वर्णद्वारा अभिव्यक्ति स्वीकार करने पर भी वही दोष आता है। जब दोनों ही पक्षमें दोष आता है, तब इस स्फोटको स्वीकार करनेसे क्या प्रयोजन? इसका सिद्धान्त इस प्रकार है-जैसे एक बार पाठ करनेसे पाठ्य ग्रन्थका समस्त तात्पर्य अवधारित नहीं होता किन्तु बारबार आलोचना करनेसे ही वह दृढ़रूपसे अवधारित होता है, उसी प्रकार प्रथम वर्ण अकारके द्वारा स्फोटको किञ्चिन्मात्र स्फुटता होने पर भी संपूर्ण स्फुटता नहीं होती। बादमें द्वितीय और तृतीयादि वर्ण द्वारा क्रमशः स्फुटतर और स्फुटतम हो कर स्फोट वह्निका बोधक होता है, नहीं तो किञ्चिन्मात्र स्फुट होनेसे ही स्फोट अर्थबोधक होता हो, ऐसा नहीं। जैसे नील, पीत और रक्तादि वर्णके सान्निध्यवश एक ही स्फटिक मणि कभी नील, कभी पीत और कभी रक्त वर्ण प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार स्फोट एक मात्र होने पर भी घट और पटादि रूप भिन्न भिन्न अर्थका बोधक होता है। इस मतमें स्फोटको ही सच्चिदानन्द ब्रह्म माना गया है। शब्दशास्त्रकी आलोचना करते करते क्रमशः अविद्याकी निवृत्ति होती है और तदनन्तर मुक्ति मिल जाती है। व्याकरणशास्त्र मुक्तिका द्वारस्वरूप है। पाणिनि और व्याकरण देखो।

प्रत्यभिज्ञादर्शन—इस दर्शनके मतसे महेश्वर जगदीश्वर हैं, वे ही एकमात्र समस्त जगत्‌के कारण हैं। जिस प्रकार बहुरूपी लोग कभी राजा, कभी भिखारी, कभी स्त्री और कभी वृद्ध इत्यादि नाना प्रकारके रूपधारण करते हैं, उसी प्रकार भगवान् महेश्वर भी स्थावर-जङ्गमादि नाना रूपोंमें अवस्थान करनेकी इच्छासे स्थावर और जङ्गमात्मक जगत्‌का निर्माण करते और उसी उसी रूपमें अवस्थान करते हैं। इस कारण यह जगत्‌के ईश्वरात्मक होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं। परमेश्वर आनन्दस्वरूप, ज्ञाता एवं ज्ञानस्वरूप है, इसलिए अस्मदादिकी घटपटादि विषयक जो ज्ञान हो रहा है, वह सब परमेश्वरका स्वरूप है। इस मतमें मुक्तिस्वरूप परापर सिद्धका उपाय एकमात्र प्रत्यभिज्ञाको माना है। अन्य मतोंकी तरह इस मतमें पूजा, ध्यान, जप, याग और योगादिके अनुष्ठानकी आवश्यकता नहीं बतलाई गई है। प्रत्यभिज्ञाके द्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है। 'स एवेश्वरोऽहं' 'वह ईश्वर ही मैं हूं' ऐसे परमेश्वरके साथ जीवात्माके अभेदज्ञानको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। इस प्रत्यभिज्ञाको स्वीकार करनेके कारण इस दर्शनका नाम 'प्रत्यभिज्ञा' पड़ा है। खर्वाकृति व्यक्तिको वामन कहते हैं। पूर्व उपदिष्ट व्यक्तिको खर्वाकृति पुरुष दृष्टिगोचर होने

पर, "सोऽयं वामनः" 'वह यही वामन है', ऐसा ज्ञान होता है, नैयायिक आदि इसे ही प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। शास्त्र और अनुमानादिके द्वारा ईश्वरके स्वरूप और शक्तिका परिज्ञान कर, वह शक्ति जीवात्मामें भी है, ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेने पर 'स एवेश्वरो ऽहं' 'वह ईश्वर मैं ही हूं' ऐसा ज्ञान हो जाता है। इस मतके अनुसार जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं है परमात्मा स्वतः प्रकाशमान है। जैसे आलोकसंयोगादिके विना इस गृहस्थित घटपटादि वस्तुका प्रकाश नहीं होता उस प्रकार परमेश्वरके प्रकाशमें किसी कारणकी आवश्यकता नहीं होती, वे सर्वत्र सर्वदा प्रकाशमान हैं। परन्तु जब 'गुरुवाक्य श्रवण कर सर्वज्ञत्वादि-रूप ईश्वरका धर्म मुझमें ही है, ऐसा ज्ञानका उदय होता है, तब पूर्णभावका आविर्भाव होता रहता है और आत्मा-प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, फिर अन्य किसी भी पदार्थकी आवश्यकता नहीं रहती। प्रत्यभिज्ञा देखो।

औलुक्यदर्शन--महर्षि कणादने इस दर्शनका प्रणयन किया है। इनका दूसरा नाम उलूक था; इसलिए इस दर्शनको औलुक्यदर्शन कहते हैं, कणाद भी इसीका नाम है। इस दर्शनमें, अन्यान्य दर्शनोंका अनभिमत, विशेष नामसे एक स्वतन्त्र पदार्थ माना गया है, इसलिए इसका नाम वैशेषिक दर्शन है। यह दर्शन षड्दर्शनोंमेंसे एक है। इस दर्शनमें अत्यन्त दुःखनिवृत्तिको ही मुक्ति माना है। जिस दुःखको निवृत्ति होनेसे, फिर कभी दुःख न हो, उसको अत्यन्त दुःखनिवृत्ति कहते हैं। यह मुक्ति आत्म-साक्षात्कारस्वरूप तत्त्वज्ञानके बिना नहीं मिलती। किन्तु वह तत्त्वज्ञान सहज-साध्य नहीं है। श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। भगवान् कणादने शिष्यके प्रार्थना करने पर मननका अद्वितीय साधन-स्वरूप दश-अध्यायात्मक इस शास्त्रका प्रणयन किया है। इस दर्शनमें सभी अध्यायोंमें आह्निक नामक दो दो विरामस्थान हैं। इस दर्शनके मतसे प्रत्यक्ष और अनुमानके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। अन्यान्य दर्शनोंमें जितने भी प्रमाण माने गये हैं, वे सब अनुमानमें आ जाते हैं। इस दर्शनमें पदार्थ दो प्रकारका माना गया है—भाव और अभाव। भाव पदार्थ छः प्रकारका है—द्रव्य, गुण, कर्म, जाति, विशेष और समवाय। इनमें द्रव्यपदार्थके नौ भेद हैं-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुणपदार्थ २४ प्रकारका है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म और अधर्म। नील पीतादि वर्णको रूप कहते है। रूप वर्णोंके भेदसे नाना प्रकारका है जिस वस्तुका रूप नहीं हैं, वह दृष्टिगोचर नहीं होता और जिसका रूप है वह दृष्टिगोचर होता है, इसलिए रूपको दर्शनका कारण माना गया है। रस छः प्रकारका है—कटु, कषाय, तिक्त, अम्ल, लवण और मधुर। गन्ध, सुरभि और असुरभिके भेदसे दो प्रकार है। बुद्धि शब्दका अर्थ ज्ञान है। ज्ञान दो प्रकारका है—प्रमा और भ्रम। जिसमें जो जो गुण वा दोष हों, उसको उन गुणों वा दोषोंसे युक्त समझना यथार्थ ज्ञान वा प्रमा है और जिसमें जो दोष वा गुण नहीं हों उसको उन दोषों वा गुणोंसे युक्त समझना अयथार्थ ज्ञान वा भ्रम कहलाता है। जैसे, पण्डितको मूर्ख वा रज्जुको सर्प समझना। निश्चय और संशयके भेदसे भी ज्ञान दो प्रकारका है। 'इस भवनमें मनुष्य है' और 'इस भवनमें मनुष्य है या नहीं?' ऐसे ज्ञानोंको यथाक्रमसे निश्चय और संशय कहते हैं। संशय नाना कारणोंसे हो सकता है। विशेष दर्शनके होनेसे संशयकी निवृत्ति होती है। विशेष पदसे, जिस वस्तुका संशय हो, उसके व्याप्यका बोध करना चाहिये। जिस वस्तुके न होने पर जो वस्तु नहीं रह सकती, वही वस्तु उसकी व्याप्य है। जैसे वह्निके विना धूम नहीं हो सकता, इसलिए वह्निका व्याप्य धूम है, अतएव जब तक धूम न दिखलाई दे तब तक वह्निका संशय ही रहता है। परन्तु धूमके दिखलाई देने पर वह संशय दूर हो जाता है। सुख और दुःख धर्माधर्मके द्वारा होता है। सुख सबका अभिप्रेत है और दुःख अनभिप्रेत। आनन्द और चमत्कारादिके भेदसे सुख तथा क्लेशादिके भेदसे दुःख नाना प्रकारका है। अभिलाषको इच्छा कहते हैं। यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन-

योनि। जिस विषयमें जिसकी चिकीर्षा होती है, उसे उस विषयमें प्रवृत्ति होती है और जो जिस विषयसे द्वेष करता है, वह उस विषयसे निवृत्त होता है। अतएव प्रवृत्ति और निवृत्तिमें यथाक्रमसे चिकीर्षा और द्वेष कारण है। जिस यत्नके करने पर जीवित रहा जाता है उसको जीवनयोनि कहते हैं। जीवनयोनि-यत्नके बिना प्राणी क्षणकाल भी जीवित नहीं रह सकते। इस यत्नके द्वारा ही प्राणियोंके श्वास-प्रश्वासादि निर्वाहित होते हैं। गुरुत्व पतनमें कारण है तथा द्रवत्व क्षरणमें कारण है। यह स्वाभाविक और नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। संस्कारके तीन भेद हैं—वेग, स्थितिस्थापक और भावना। वेग क्रिया आदिके द्वारा उत्पन्न होता है। वृक्षकी शाखाको आकर्षण करके मोचन करने पर जिस गुणके सद्भावसे वह पूर्वस्थानमें स्थित होता है, उस गुणको स्थितिस्थापक संस्कार कहते है जिस संस्कारके द्वारा पूर्वानुभूत वस्तुओंका स्मरण हो, वह भावना-संस्कार है। धर्म, शुभादृष्ट और पुण्यादि पदवाच्य है। यह गंगास्नान और यागादि धर्मजनक है। अधर्मको दुरदृष्ट और पाप कहते है; यह अवैध धर्मानुष्ठानके करने पर होता हैं एवं प्रायश्चित्तादिद्वारा विनष्ट हो सकता है। शब्द दो प्रकारका है—ध्वनि और वर्ण। मृदङ्गादि द्वारा जो शब्द होता है, उसे ध्वनि एवं कण्ठादि द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे वर्ण कहते हैं। यह वर्णात्मक शब्द स्वर और व्यञ्जनके भेदसे दो प्रकारका है। गुणपदार्थ द्रव्यमात्रमें विद्यमान है। क्रियाको कर्म कहते हैं। कर्म पदार्थ उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन, इस तरह पाँच प्रकारका है। ऊर्ध्व-प्रक्षेपको उत्क्षेपण, अधोविक्षेपणको अवक्षेपण और विस्तृत वस्तुओंके विस्तारको प्रसारण कहते हैं। भ्रमण, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्यक गमन आदि गमन होमें शामिल है। जातिपदार्थ नित्य और अनेक वस्तुमें रहता है। पर और अपरके भेदसे जाति द्विविध है। जो अनेक स्थानोंमें रहती है, उसे परजाति कहते है और जो अल्प स्थानोंमें रहती है उसे अपर जाति। जिसके चैतन्य है, वह आत्मा है। आत्मा इन्द्रिय और शरीरको अधिष्ठाता है; आत्माके बिना किसी भी इन्द्रियसे कोई भी काम नहीं हो सकता।

आत्माके दो भेद हैं—जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा देखो। इस दर्शनमें विशेष पदार्थको नित्य माना है। आकाश और परमाणु आदि एक एक नित्यद्रव्यमें एक एक विशेष पदार्थ है। यदि पदार्थ न होता, तो परमाणुओंके परस्पर विभिन्न रूपका निश्चय कदापि नहीं हो सकता था। जैसे दो अवयवी वस्तुओंको, परस्पर अवयवगत विभिन्नताको देख कर, विभिन्न रूपोंका निश्चय किया जाता है; उसी 'प्रकार यह परमाणु अन्य परमाणुसे भिन्न है' तथा 'अन्य परमाणुमें जो विशेष है, वह अपर परमाणुमें नहीं है,' इसलिए अन्य परमाणु अपर परमाणुसे पृथक् है इस रीतिसे समस्त परमाणुओंकी परस्परकी विभिन्नताका निश्चय किया जा सकता है। द्रव्यके साथ गुणका, कर्मके साथ जातिका और नित्य द्रव्यके साथ विशेष पदार्थका जो सम्बन्ध है तथा अवयवके साथ अवयवीका जो सम्बन्ध है, उसीका नाम समवाय पदार्थ है। अभाव दो प्रकारका है—भेद और संसर्गाभाव। गृहसे पुस्तक भिन्न है पुस्तक गृह नहीं है, इत्यादि स्थलोंमें जो अभाव प्रतीयमान होता है, वह भेद कहलाता है। संसर्गाभाव तीन प्रकारका है—प्रागभाव, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। पहले जो सात पदार्थोंका उल्लेख किया गया है, उनके सिवा और पदार्थ नहीं है। इन्हींसे तावत् पदार्थ आविर्भूत होता है। अन्धकारादि कोई स्वतन्त्रपदार्थ नहीं है, क्योंकि आलोकका अभाव ही अन्धकार है। इसके सिवा अन्धकार पदार्थमें और कोई प्रमाण नहीं हैं।

*वैशेषिक और कणाद देखो।*

अक्षपाददर्शन (न्यायदर्शन)—इस दर्शनके प्रणेताका नाम महर्षि अक्षपाद और गौतम था, इसलिए इसे अक्षपाद और गौतमदर्शन कहते हैं। इसमें न्याय और तर्कपदार्थका विशेषरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है, इसलिए इसके न्याय और तर्कशास्त्र ये दो नाम पड़ गये हैं। इसके दर्शनमें अनुमानकी रीतिका भी विशेष निरूपण है, इसलिए लोग इसे आन्वीक्षिकी शास्त्र भी कहते हैं। इस न्यायशास्त्रमें सभी शास्त्रोंकी उपयोगिता बतलाई गई हैं। कारण दर्शनकारका यह कहना है, कि न्यायशास्त्रके बिना किसी भी शास्त्रका

यथार्थ तात्पर्य ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतएव न्यायशास्त्र समस्त शास्त्रोंका द्वारस्वरूप हैं। बहुतों-का कहना है कि इस शास्त्रमें "एकमेवाद्वितीय" इत्यादि अनेकानेक न्यायविरुद्ध श्रुतियां हैं, परन्तु इसको बौद्धाधिकार-विवृत्तिको आद्योपान्त देखनेसे उक्त कथन मिथ्या प्रतीत होने लगतो है। महामहोपाध्याय रघुनाथ शिरोमणिने उन श्रुतियोंका समन्वय किया है। यह दर्शन ५ अध्यायोंमें विभक्त है, प्रत्येक अध्यायमें दो दो आह्निक हैं। इस मतमें पदार्थ सोलह माने हैं—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। जिसके द्वारा यथार्थरूपसे वस्तुओंका निर्णय किया जाता है, उसे प्रमाण पदार्थ कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्दके भेदसे प्रमाण चार प्रकारका है। इन चार प्रमाणोंसे क्रमशः प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द-बोध ये चार प्रमितियां उत्पन्न होती हैं। नयनादि इन्द्रियों द्वारा यथार्थरूपसे वस्तुओंका जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्षप्रमिति कहते हैं। प्रत्यक्षप्रमिति ६ प्रकारकी है—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, त्वाच, श्रावण और मानस। व्याप्य पदार्थको देख कर व्यापक पदार्थका जो ज्ञान होता है, उसे अनुमिति कहते हैं। जिस पदार्थके रहने पर जिस पदार्थका अभाव नहीं रहता, उसको व्याप्य और जिस पदार्थके न होनेसे जो पदार्थ नहीं रहता, उसे व्यापक कहते हैं। जैसे—'किसी भी स्थानमें वह्निके विना धूम नहीं रह सकता' यहां धूम वह्निका व्याप्य है, तथा 'जहां धूम हो, वहां वह्निका अभाव नहीं हो सकता' यहां वह्नि धूमका व्यापक है। यही कारण है जो पर्वतादि पर धूम देख कर वह्निका अनुमान किया जाता है। अनुमान तीन प्रकारका है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। कारण देख कर कार्यका अनुमान करना पूर्ववत् (अर्थात् कारणलिङ्गक अनुमान) है। जैसे, मेघकी उन्नतिको देख कर वर्षाका अनुमान करना। कार्य देख कर कारणका अनुमान करना शेषवत् (अर्थात् कार्य लिङ्गक अनुमान) है। जैसे, नदीकी अत्यन्त वृद्धिको देख कर वृष्टिका अनुमान करना। कारण और कार्यके विना ही केवल व्याप्य वस्तुको देख कर जो अनुमिति होती है, उसका नाम सामान्यतोदृष्ट है। जैसे, गगनमण्डल-में पूर्णचन्द्रमाके सन्दर्शनसे शुक्लपक्षका अनुमान, क्रियाको हेतु मान कर गुणका अनुमान और पृथिवीत्व जातिको हेतु मान कर द्रव्यत्वजातिका अनुमान करना आदि। किसो किसी शब्दके किसी किसी अर्थमें शक्ति परिच्छेदको उपमिति कहते हैं। इन शब्दों द्वारा जो बोध होता है, उसे शब्दबोध कहते हैं। यह शब्दप्रमाण दो प्रकारका है—दृष्टार्थक और अदृष्टार्थक। जिस शब्दका अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है, उसे दृष्टार्थक शब्द कहते हैं और जिसका अर्थ अदृश्य है, वह शब्द अदृष्टार्थक कह-लाता है। प्रमेयपदार्थ बारह प्रकारका है—आत्मा, शरीर, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग। इन्द्रियके दो भेद हैं—अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रिय। दोष तीन प्रकारका है—राग, द्वेष और मोह। काम, मत्सर, स्पृहा, तृष्णा, लोभ, माया और दम्भादिके भेदसे राग नाना प्रकार है। रमणेच्छा को काम कहते हैं। अपने प्रयोजनके विना ही दूसरेके अभिमत विषयको निवारणेच्छाका नाम मत्सर है। जिस विषयसे धर्मको कोई हानि नहीं होती ऐसे विषयकी प्राप्तिको अभिलाषाको स्पृहा और 'मेरे सञ्चित द्रव्यका क्षय न हो' एतादृश इच्छाको तृष्णा कहते हैं। कार्पण्य आदिके भेदसे तृष्णा नाना प्रकारकी है। जिस-के द्वारा पाप हो सकता है, ऐसे विषय लाभकी अभि-लाषाको लोभ कहते हैं। परवञ्चनाका नाम माया है। छलसे अपना धार्मिकत्वादि प्रकट करके अपना उत्कृ-ष्टत्व प्रकट करनेको इच्छाको दम्भ कहते हैं। क्रोध, ईर्षा, असूया, द्रोह, अमर्ष और अभिमानादिके भेदसे द्वेष भी नाना प्रकारका है। विपर्यय, संशय, तर्क, मान, प्रमाद, भय और शोकादिके भेदसे मोह भी नाना प्रकारका है। बारम्बार उत्पत्तिको अर्थात् एक बार मरण और एक बार जन्मग्रहण तथा पुनः मरण और तदनन्तर जन्मग्रहणरूप जन्मग्रहणकी आवृत्तिको प्रेत्यभाव कहते हैं। जब तक मुक्ति न हो, समस्त जीवोंको यह प्रेत्य-भाव दुःख दिया करता है। मुक्तिके सिवा इस दुःखसे

निवृत्त होनेका और कोई उपाय नहीं है। अत्यन्त दुःखनिवृत्त रूप मुक्तिको अपवर्ग कहते हैं। यह अपवर्ग ही सबका प्रयोजनीय एवं प्रार्थनीय है। मुख्य और गौणके भेदसे प्रयोजन दो प्रकारका है। अभिलषणीय विषयान्तरका सम्पादक होनेसे जो विषय अभिलषणीय होता है, वह गौण है, और तदतिरिक्त केवल अभिलषणीय विषयको मुख्य प्रयोजन कहते हैं। प्रत्येक जीवका मुख्य प्रयोजन सुख और दुःखको निवृत्ति है। कोई भी व्यक्ति किसी भी विषयमें प्रवृत्त क्यों न हो, सबका प्रधान उद्देश्य सुख वा दुःख निवृत्ति है। इस सुख वा दुःखनिवृत्तिका सम्पादक होनेके कारण प्रति क्षेत्रकर विषय भी प्रार्थनीय होता है। फलतः सभी विषयोंका प्रधान उद्देश्य सुख वा दुःखनिवृत्ति है और इसलिए सुख और दुःख-निवृत्तिको मुख्य प्रयोजन कहा है। धनोपार्जन आदि इसका साधन है, इसलिए वह गौण प्रयोजन है। अनिश्चित विषयका शास्त्रानुसार निर्णय करनेका नाम सिद्धान्त है। जैसे—'मुक्ति कैसे हो सकती है?' इस प्रकारके प्रश्न उपस्थित होने पर शास्त्रादिके द्वारा 'तत्त्वज्ञान होनेसे मुक्ति होती है' ऐसा निश्चय करना। सिद्धान्त चार प्रकारका है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम। विचाराङ्ग वाक्यविशेषको अवयव कहते हैं। अवयवके ५ भेद हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन। आपत्ति-विशेषका नाम तर्क है। परस्पर जिगीषु न हो कर किसी प्रकृत विषयके तत्त्वनिर्णयार्थ वादी प्रतिवादीके विचार (शास्त्रार्थ)-को वाद कहते हैं। प्रकृत विषयका वास्तविक साधक न होने पर भी आपाततः जिसे प्रकृत विषयका साधक समझा जाय, वह हेत्वाभास है। वक्ता जिस अर्थतात्पर्यसे जिस शब्दका प्रयोग करता है, उस शब्दका वैसा अर्थ ग्रहण न करके उसके विपरीत कल्पनापूर्वक मिथ्या अर्थ वा दोषारोप करना छल कहलाता है। प्रतिज्ञात विषयमें प्रतिवादीके दोष देने पर उस दोषके उद्धारमें असमर्थ हो कर प्रतिज्ञात विषय परित्यागादि रूप पराजयमें जो कारण है, उसे निग्रहस्थान कहते हैं। न्याय मतमें, षोडश पदार्थका तत्त्वज्ञान होने पर आत्मतत्त्वज्ञान होना माना है। फिर वस्तुके स्वरूपकी उपलब्धि होती है। आत्मा शरीरादिसे पृथक् मालूम होने लगती है। इसलिए शरीरादिमें आत्मत्वबुद्धि-स्वरूप मिथ्याज्ञान उत्पन्न नहीं होता। यदि राग और द्वेष ही नहीं रहा, तो फिर उनके कार्य स्वरूप धर्म और अधर्मात्मक प्रवृत्तिकी पुनः सम्भावना कैसे हो सकती है? धर्म और अधर्म ही जब जन्मग्रहणका मूल कारण है, तब धर्माधर्मसे निवृत्त होने पर फिर जन्मादि नहीं हो सकते। जन्मादिका अभाव ही सम्पूर्ण दुःख-निवृत्ति है और सम्पूर्ण दुःखनिवृत्ति ही मुक्ति है। जीवात्माके अतिरिक्त एक परमेश्वर भी है, अनुमान और श्रुति आदि उसका प्रमाण है। जीवात्मा देखो। न्याय और वैशेषिक इन दोनों दर्शनोंमेंसे, अब किसी भी शास्त्रमें मूलसूत्रका सम्यक् अनुशीलन नहीं रहा, केवल शास्त्रसम्मत संग्रह और टीकाएं ही साधारणतः न्यायशास्त्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। पारमार्थिक मतके विषयमें दोनोंका एकसा मत है। ये दोनों युक्ति प्रधान शास्त्र हैं। अन्यान्य विषयोंमें जो थोड़ा बहुत मतभेद है, वह अत्यन्त सामान्य है। वैशेषिक सप्तपदार्थ मानता है और नैयायिक षोडशपदार्थवादी है, इतनी ही दोनोंमें विशेषता है। ये दोनों ही दर्शन परमाणुवादी हैं। न्याय देखो।

साङ्ख्यदर्शन—इस दर्शनके प्रणेता महर्षि कपिल हैं। महर्षि कपिलने जब देखा कि इस जगन्मण्डलमें सभी त्रितापसे तापित हैं, जिधर दृष्टि फेरो जाय उधर ही दुःखमय है, दुःखके सिवा और कुछ भी नहीं है, तब उन्होंने दयापरवश हो निस्तारके उपायस्वरूप इस अध्यात्मशास्त्रका प्रचार किया। इस दर्शनमें पञ्चविंशति तत्त्वोंकी संख्या अर्थात् गणना की गई है, इसीलिए इसका नाम सांख्यदर्शन पड़ गया है। मूल प्रकृति, महत्, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय, पञ्च तन्मात्र, पञ्च महाभूत और पुरुष, इस प्रकार पचीस तत्त्व हैं। प्रकृतिके परिणामसे इस चराचर जगत्‌की उत्पत्ति हुई है और पुरुष प्रकृतिकी मायामें विमोहित हो कर प्रतिबिम्बक्रमसे दुःख भोगता है। पुरुष नित्य और अपरिणामी है। यह न तो किसीकी प्रकृति है और न विकृति। मूल प्रकृति त्रिगुणात्मिका

अर्थात् समभावमें अवस्थित जो सत्व, रज और तमोगुण है, उनका स्वरूप है। सत्त्व, रज और तम ये वैशेषिकोक्त गुण पदार्थ नहीं है, किन्तु द्रव्य पदार्थ है। पुरुष पशु बन्धन करता है, इसलिए इसे गुण कहा गया है। यह प्रकृति सक्रिय, नित्य, अनाश्रित (अर्थात् किसी आश्रयका अवलम्बन बिना लिए ही अवस्थित), असंयुक्त, अविभक्त, स्वतन्त्र (अर्थात् अहङ्कारादि तत्त्वान्तरको सहायताके बिना ही स्वकार्यमें समर्थ), अचेतन, जडात्मक और परिणामी है। महत्तत्वसे ले कर इस दृश्यमान् महान् महोमण्डली आदि महाभूत तक सम्पूर्ण पदार्थ मूल प्रकृतिकी साक्षात् परम्पराका परिणाम विशेष है। ये गुणत्रय परस्पर मिल कर जगत्-कार्यका सम्पादन करते है। सत्त्वगुण सुख स्वरूप, लघु और प्रकाशक है, रजोगुण दुःख-स्वरूप एवं उपष्टम्भक अर्थात् सत्त्व और तम जो अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है, उसका प्रवर्तक है। तमोगुण मोहस्वरूप, गुरु और आवरक है। जिस समय प्रकृतिका विरूप परिणाम होता है, उस समय प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र तथा पञ्च तन्मात्रसे पञ्च महाभूत, इस प्रकार समस्त सृष्टि होती है। इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ नहीं हैं। महत्तत्त्व बुद्धिस्वरूप है। बुद्धितत्त्वके द्वारा ही समस्त विषयोंके कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय होता है। इस निश्चयको अध्यवसाय कहते है। अध्यवसाय बुद्धिका धर्म है। पुरुष नित्य, सत्त्वादि त्रिगुण-शून्य, चेतन-स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ, द्रष्टा, विवेकी, सुखदुःखादिसे शून्य मध्यस्थ और उदासीन पदवाच्य है। पुरुष शरीरोंके भेदसे नाना प्रकारका है अर्थात् एक एक शरीरका अधिष्ठाता जीव-स्वरूप एक एक पुरुष है। शरीर दो प्रकारका है—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल शरीर मातापितासे उत्पन्न होता है। मातासे लोम, शोणित और मांस एवं पितासे स्नायु, अस्थि और मज्जाको उत्पत्ति होती है। इस मातापितृज शरीरको षाट्कौषिक शरीर कहते हैं। यह शरीर ही रसान्त, भस्मान्त और विष्टान्त होता है। सूक्ष्म शरीर बुद्धि, अहङ्कार, एकादशेन्द्रिय और पञ्च तन्मात्र इन अठारह तत्त्वोंका समूह है। यह नित्य अर्थात् प्रलय पर्यन्त स्थायी और अव्याहत अर्थात् अप्रतिहतगति-युक्त है। सूक्ष्म शरीर शिलामें प्रविष्ट हो सकता है तथा इहलोक और परलोकमें साथ रहता है। यह सूक्ष्म शरीर नर, पशु, पक्षी, शिला और वृक्षादि-स्वरूप स्थूल शरीर धारण करता है। यही शरीर सुख दुःखादिका भोग करता है; इसका विनाश नहीं होता। प्रकृतिने सबके आदिमें एक एक सूक्ष्म शरीरका निर्माण किया था। प्रकृति पुरुषकी विवेकख्याति तक पुरुषके साथ (संयुक्त) रहती है। विवेकख्याति होते ही प्रकृति निवृत्त होती है। जैसे नर्तकी नृत्य दर्शन-रूप स्वकार्य सम्पादन कर निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुषको संसाररूप रङ्ग दिखा कर उससे निवृत्त हो जाती है। ये अन्धपङ्गुवत् स्वकार्य सम्पादनमें समर्थ है। इसी लिए प्रकृति पुरुषसापेक्ष है और पुरुष भी प्रकृतिगत है। सुख दुःखको आत्मगत समझ कर उनके निवारणकी अभिलाषासे मुक्तिको प्रार्थना करता है। यह मुक्ति प्रकृतिके साथ पुरुषको अन्यथाख्याति (अर्थात् भेदज्ञानस्वरूप तत्त्वज्ञान)के बिना नहीं मिलती। यह तत्त्वज्ञान प्रकृतिके द्वारा ही सम्पादित होता है। इसलिए पुरुष भी प्रकृति सापेक्ष है। प्रमाणके तीन भेद है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। सभी कार्य सत् अर्थात् उत्पत्तिके पहले स्व स्व कारणसे सूक्ष्म रूपमें संयुक्त रहते है; पीछे जब आविर्भूत होते है, तब उसे उत्पन्न कहते है और जब तिरोभूत हो जाते है, तब विनष्ट। वस्तुतः कोई भी कार्य उत्पन्न वा विनष्ट नहीं होता। त्रिविध दुःखको अत्यन्तनिवृत्ति ही परम पुरुषार्थ वा मोक्ष है। जिससे इस दुःखकी निवृत्ति हो सके, उसी विषयको इस दर्शनमें विशेष आलोचना की गई है।

सांख्य और कपिल देखो।

पातञ्जल-दर्शन—इस दर्शनके प्रणेता भगवान् पतञ्जलि है। उन्हींके नामानुसार इस दर्शनका नाम पातञ्जल-दर्शन पड़ा है। इस दर्शनमें योगका विषय विशेषता निर्दिष्ट होनेके कारण इसको योगशास्त्र भी कहते है तथा पदार्थ निर्णयांशमें सांख्यके साथ एकमत होनेसे यह सांख्यप्रवचन भी कहा जाता है। भगवान् कपिलने जो पचीस तत्त्व माने हैं, उन्हें पतञ्जलिने भी स्वीकार किया

है। इनके मतसे, पुरुषातिरिक्त परमेश्वर है; केवल इतना ही प्रभेद है। इसीलिए कोई सांख्य शास्त्रको सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य कहा करते हैं। सेश्वर सांख्य पातञ्जल है और निरीश्वर सांख्य कपिलसूत्र। सांख्यशास्त्रमें ईश्वरको स्वीकार किया है या नहीं, यह नितान्त दुर्बोध्य और अनालोच्य है। इसलिए तद्विषयक विचारादि यहां नहीं दिये गये।

यह दर्शन चार पादोंमें विभक्त है। इन चार पादों-में योगशास्त्र करनेको प्रतिज्ञा, योगका लक्षण, योगके उपायस्वरूप अभ्यास और वैराग्यका स्वरूप और भेद, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञातके भेदसे समाधिके विभाग, सविस्तार योगोपाय, ईश्वरका स्वरूप, प्रमाण, उपासना और उसका फल, चित्तविक्षेप और दुःखादिका निरा-करणोपाय, समाधिभेद, क्रियायोग, क्लेशकर्मका प्रभेद, तत्त्वज्ञान, यम-नियमादि, ध्यान, धारणा, समाधि, सिद्धि-पञ्चक, विज्ञानवाद, निराकरण आदिका दिग्दर्शन कराया गया है। पतञ्जलिने छब्बीस तत्त्व माने हैं। इन छब्बीस तत्त्वोंसे ही समस्त पदार्थ आविर्भूत हुए हैं। इनके सिवा और कोई पदार्थ नहीं है। चौबीस तत्त्व और पुरुष इन पचीस तत्त्वोंका वर्णन सांख्य दर्शनमें हो चुका है। छब्बीसवाँ तत्त्व ईश्वर है। परमेश्वर क्लेशादि-से रहित, जगन्निर्माणार्थ स्वेच्छानुसार शरीर धारण-पूर्वक संसारके प्रवर्तक और संसारानलमें सन्तप्यमान व्यक्तियोंके अनुग्राहक, असीम कृपाके निधान तथा अन्त-र्यामीके रूपमें सर्वत्र देदीप्यमान हैं। योगके द्वारा उन-को पहचाना जा सकता है। चित्तवृत्तिका निरोध अर्थात् विषयसुखमें प्रवृत्त चित्तको विषयोंसे विनिवृत्त और ध्येय वस्तुमें संस्थापित कर, तन्मात्रका ध्यान करनेका नाम योग है। अन्तःकरणको चित्त कहते हैं। चित्तको पांच अवस्थाएं हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र। चित्तकी अवस्थाविशेषको चित्तवृत्ति कहते हैं। चित्तवृत्ति पांच प्रकारकी होती है—प्रमाण, विप-र्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमके भेदसे प्रमाण तीन प्रकारका है। मिथ्याज्ञान-को विपर्यय कहते हैं। कोई विषय वास्तवमें नितान्त असम्भव होने पर भी तदर्थ प्रतिपादक शब्द-श्रवण करते ही आपातः तद्विषयका जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसका नाम विकल्प है। निद्राशब्दसे साधारण निद्रा और स्मरण शब्दसे स्मृति अर्थ ग्रहण करना चाहिये। यह पांच प्रकारकी चित्तवृत्ति ही चित्तका परिणाम विशेष है और इसीलिए वह चित्तका धर्म है, आत्मधर्म नहीं है। परिणाम तीन प्रकारका है—धर्म, लक्षण और अवस्था। योगस्वरूप चित्तवृत्तिका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे होता है। बहुत काल तक निरन्तर आदराति-शयके द्वारा किसी विषयमें प्रयत्न करनेका नाम अभ्यास है, और विषयसुख वितृष्णाको वैराग्य कहते हैं। जिसको वैराग्य उत्पन्न होता है वह विचारता है कि 'मैं सुख दुःखजनक विषयोंके वशीभूत नहीं हूं, सुख-दुःख-जनक विषय मेरे ही वशीभूत है।' इसलिए वैराग्यको वशीकार शब्दसे भी कहा जा सकता है। विषय दो प्रकारका है, एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक। इहलोक-में उपभुज्यमान विषयको दृष्ट कहते हैं और परलोकमें भोक्तव्य विषयको आनुश्रविक। ज्ञानयोगके अधि-कारी सभी नहीं होते, जिनका चित्त प्रसन्न है, उन्हींका ज्ञानयोगमें अधिकार है। जिनका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ है उन्हें क्रियायोग करना पड़ता है। मन्त्रका संस्कार दश प्रकार है—जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति इन क्रियायोगोंका अनुष्ठान करनेसे क्लेशोंमें क्षीणता होती है। योगाङ्गके आठ भेद है-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। प्राणवायुके स्वाभाविक गति-विच्छेदको प्राणायाम कहते है। प्राणायाम तीन प्रकार-का है-रेचक, पूरक और कुम्भक। विधिके अनुसार योगा-नुष्ठान करनेसे सिद्धि होती है। सिद्धि नाना प्रकारकी है, जिनमें अणिमा, लघिमा, गरिमा, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावशायित्व ये आठ सिद्धियां महासिद्धि कहलाती है। सभी व्यक्तियोंके लिए संसारका कारण एक मात्र प्रकृतिपुरुषका संयोग है। यह प्रकृति-पुरुष-संयोग अविद्याके कारण होता है। उस अविद्याको नष्ट करनेमें एक मात्र विवेकख्याति ही समर्थ है। इसके सिवा अन्य उपाय नहीं है। जिस प्रकार चिकित्सा-

जैसे रोग, रोग हेतु, आरोग्य और भैषजके भेदसे चतुर्व्यूह रूप है, उसी प्रकार योगशास्त्र भी हेय, हेय-हेतु, मोक्ष और मोक्ष-हेतुके भेदसे चतुर्व्यूहात्मक है। दुःखमय संसार हेय है। प्रकृति-पुरुष-संयोग हेय-हेतु है। आभ्यन्तरिक प्रकृति पुरुष-संयोग निवृत्तिरूप कैवल्यको मोक्ष और विवेकख्यातिस्वरूप दर्शनको मोक्षहेतु कहते हैं। पातञ्जल और सांख्य देखो।

मीमांसादर्शन—इस दर्शनके प्रणेता महर्षि जैमिनि हैं, इसलिए इसका द्वितीय नाम जैमिनिदर्शन भी है। इसमें वेदके विषयोंको मीमांसा की गई है, इसलिए इसका नाम मीमांसा दर्शन पड़ा है। मीमांसाके बिना किसी-भी विषयका सिद्धान्त नहीं बन सकता। इसलिए प्रत्येक कार्यमें मीमांसाकी आवश्यकता है। जिस प्रकार वेदके तात्पर्यका निश्चय करना कठिन है, उसी प्रकार श्रुति और स्मृति आदिका पारस्परिक विरोधभञ्जन पूर्वक दोनोंकी मान्यता कायम रखना भी कम कठिन नहीं है। इसलिए मीमांसाका प्रयोजन है। मीमांसा करनी हो, तो एक मात्र मीमांसादर्शन ही उसके लिए उपाय स्वरूप है। श्रुतियोंमें जिन स्थानों पर अस्पष्टता और पारस्परिक विरोध था, अथवा तादृश श्रुतिके साथ जिन स्थानोंमें कल्पशास्त्र और मनु आदि स्मृतियोंकी विप्रतिपत्ति थी, महर्षि जैमिनिने इस दर्शनमें उन्हींको मीमांसा की है। इस दर्शनका मत इस प्रकार है—वेद अपौरुषेय है और वेद ही ब्रह्म है, ईश्वर वा मनुष्य कोई भी उसका कर्त्ता नहीं है। वह नित्य है। जो वेदको धारण और वैदिक कर्माचरण करते हैं वे ही ब्राह्मण हैं। वेद यदि किसी व्यक्ति-द्वारा रचा गया होता, तो उसका कोई अंश अवश्य ही मिथ्या होता, इसमें सन्देह नहीं। इत्यादि रूपसे वेदका अपौरुषेयत्व प्रतिपादित हुआ है। यह दर्शन द्वादश अध्यायोंमें तथा सहस्र संख्यक अधिकरणोंमें विभक्त है। उसके एक एक अधिकरणमें एक एक प्रकार विरोधको मीमांसा है और प्रत्येक अधिकरणमें पांच पांच अङ्ग हैं - विषय, अविषय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय।

"विषयोऽविषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरं।
निर्णय वेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतं ॥" (मीमांसा)

जैसे—एक श्रुतिमें है, 'वृक्ष सम्बन्धीय कुश-द्वारा यज्ञ करना चाहिए' और दूसरी श्रुतिमें है, 'उदम्बर वृक्षजात कुश द्वारा यज्ञ करें।' इस स्थानमें कुश-द्वारा यज्ञ करनेके व्यवहारका नाम विषय है। समस्त प्रकारके वृक्षोंके कुशसे यज्ञ होगा या उदुम्बर वृक्षसम्बन्धीय कुशसे होगा ऐसे सन्देहका नाम अविषय है। सिद्धान्त विरुद्ध तर्कोपन्यासका नाम पूर्वपक्ष है और सिद्धान्तानुकूल विचारका नाम उत्तरपक्ष। निर्णय शब्दसे सङ्गति (अर्थात् सिद्धान्तसिद्ध विचार्य वाक्यमें तात्पर्यावधारण) अर्थ लेना चाहिये। देवगण शरीरी वा सचेतन नहीं हैं, जिस देवके लिये जो मन्त्र वेदमें निर्दिष्ट हुआ है वह देव उसी मन्त्र-स्वरूप है, मन्त्रके अतिरिक्त देवताके सत्त्वमें कोई प्रमाण नहीं है, वरं तद्विरोधी प्रमाण ही बहुतर है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि मन्त्रसे भिन्न कोई शरीरी देवता होते, और उनकी पूजा की जाती तथा वे आवाहनादि द्वारा करुणा-पूर्वक घट और प्रतिमा आदिमें अधिष्ठित हो कर पूजादि ग्रहण करते, तो घट या मृन्मय-प्रतिमा आदि ऐरावतके साथ इन्द्रदेवके भारवहनमें अशक्त हो कर चूर्ण हो जाती और छोटेसे घटमें तादृश वृहदाकार ऐरावतके साथ इन्द्रका समावेश भी कैसे सम्भवपर हो सकता है? परन्तु देवताको मन्त्रात्मक कहनेसे यह दोष नहीं आता। वेद अपौरुषेय और स्वतःप्रमाण है। ऐसे स्थल पर नैयायिक आदि पण्डितगण कह दिया करते हैं कि वेदोक्त विषयमें सत्यता है, इसलिये वेदको नित्य मानना पड़ेगा, ऐसा कोई नियम नहीं। घट कुम्भकार द्वारा बना है, इस वाक्यार्थमें याथार्थ्य है, इसलिये जैसे उस वाक्यमें अभ्रान्त पुरुषोक्ति हैं, उसी प्रकार वेद अभ्रान्त पुरुषके द्वारा बना है, किसी व्यक्तिके द्वारा नहीं बना। नैयायिक विद्वानोंने इस प्रकारके अनेक सूक्ष्मानुसन्धान कर वेदका ईश्वर-निर्मितत्व प्रतिपादन किया है, किन्तु इधर परमेश्वरके शरीरादि कुछ भी स्वीकार नहीं करते, यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है। यदि परमेश्वरके शरीरादि नहीं हैं, तो उन्होंने वेदकी रचना किस प्रकारसे की? इत्यादि प्रकारसे न्यायकी युक्तियोंका खण्डन किया गया है। मीमांसा देखो।

वेदान्त दर्शन—इसके सूत्र-रचयिता वेदव्यास हैं। शङ्कराचार्यने उस सूत्रके आधार पर इस दर्शनका प्रणयन किया है, इस कारण इसका नाम शङ्करदर्शन भी है। वेदव्यासके सूत्र इतने अस्फुट हैं कि किसी प्रकार भी उनका तात्पर्य ग्रहण नहीं किया जा सकता; वरं जिसका जैसा अभिप्राय है, वह उसी तरहका अर्थ ग्रहण कर सकता है। इसी कारणवश वेदान्तसूत्रके नाना प्रस्थान हैं, अर्थात् रामानुजकृत व्याख्यानुसार रामानुजप्रस्थान, मध्वाचार्यकृत व्याख्यानुसार माध्व प्रस्थान और शङ्कराचार्यकृत व्याख्यानुसार शङ्करप्रस्थान हुआ है। इनके सिवा और भी अनेक प्रस्थान हैं, जिसका सम्प्रति प्रचलन नहीं है। शङ्कराचार्यने असाधारण प्रतिभाबलसे इसमें अद्वैतमत संस्थापन किया है। उपनिषद् शास्त्र ही भारतीय ब्रह्मज्ञानका पूर्ण-भाण्डार है। इस उपनिषद्को मीमांसाके लिये वेदान्त सूत्रकी सृष्टि हुई है। वेदान्तका विषय कहनेके पहले उपनिषद्का विषय कहना ही उचित है। उपनिषदोंका मत दो प्रकार है—द्वैत और अद्वैत। अद्वैतके मतसे, ब्रह्मके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। द्वैत मतानुसार ब्रह्म भी हैं और जीव एवं जगत् भी हैं। आपाततः ये दोनों मत स्वतन्त्र जान पड़ते हैं, परन्तु स्पष्ट समझमें आ जाने पर वह मत भिन्न नहीं जान पड़ता।

शङ्कराचार्यने इस दर्शनमें विशेषतः अद्वैतमतकी पुष्टि की है। यह वेदान्तदर्शन चार पादोंमें विभक्त है, जिनमें ब्रह्मको जगत्कर्तृत्वादि अस्फुटार्थ श्रुतियोंका ब्रह्मपरत्वादि, सांख्यमत-निराकरण, अद्वैतमत-विरुद्ध श्रुति और स्मृतिका समन्वयादि, आकाशके नित्यत्वका खण्डन और जन्यत्वका संस्थापन, जीवकी संसारगति, क्रमादि जगत्की अवस्थाभेद आदि वेदान्त प्रतिपाद्य विषयोंका विवेचन है। इस दर्शनके मतसे एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है और सम्पूर्ण, जगत् मिथ्या है; ब्रह्म-ज्ञान होने पर मुक्ति हो जाती है। ये सब विषय प्रधान रूपसे श्रुति, स्मृति और युक्ति दिखला कर ही प्रतिपादित किये गए हैं। इसमें अधिकारी होना आवश्यकीय बतलाया है। जो अधिकारी न हो कर सर्वोपास्य निर्गुण ब्रह्मोपासनाके लिए उद्यत होते हैं, उन्हें "ज्ञानाद्वै नरकं" अर्थात् केवल शास्त्रज्ञानकी आलोचना करनेसे नरक जाना पड़ता है। इत्यादि श्रुतिके अनुसार केवल नारकी होना पड़ता है।

वास्तवमें प्रकृत फल अणुमात्र भी प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मज्ञानके अधिकारी होना सहज नहीं है। जिन्होंने अध्ययनविधिके अनुसार वेद और वेदान्तोंका अध्ययन कर वेदार्थोंको संपूर्ण तथा हृदयङ्गम कर लिया है; जिन्होंने इहजन्ममें वा जन्मान्तरमें काम्य और निषिद्ध कर्मोंसे निवृत्त हो कर केवल सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य नैमित्तिक कर्म, प्रायश्चित और उपासना अर्थात् शाण्डिल्यविद्याके अनुसार सगुण ब्रह्मविषयक मानस उपासना आदि अनुष्ठानों द्वारा चित्तको अत्यन्त निर्मल बना लिया है तथा जो साधन चतुष्टय संपन्न हो कर अभ्रान्त हो चुके हैं, वे ही व्यक्ति ब्रह्मज्ञानके अधिकारी हैं। उल्लिखित प्रकारसे ब्रह्मज्ञानके अधिकारी हो कर ज्ञानकाण्डकी आलोचना करनेसे शीघ्र ही ब्रह्म-भाव प्राप्तिस्वरूप मुक्तिभाजन हो सकते हैं। ब्रह्म सत् अर्थात् सत्स्वरूप है, चित् अर्थात् चैतन्यपदवाच्य है, ज्ञानस्वरूप है, अखण्ड अर्थात् अपरिच्छिन्न है, अद्वितीय है तथा निधर्मक अर्थात् ब्रह्ममें ज्ञान वा सुखादि कोई भी धर्म नहीं है। ब्रह्म ही स्वयं ज्ञान और स्वरूप हैं। यद्यपि 'घटज्ञानसे पटज्ञान भिन्न है' और 'तुम्हारे ज्ञानसे मेरा ज्ञान पृथक् है' इस तरहके भेदव्यवहारको देख कर साधारणतः ज्ञानका नानात्व ही प्रतीयमान होता है, तथापि विशेष रूपसे विवेचना करने पर यह मालूम हो जायगा कि विशेष स्वरूप उपाधिके नानात्वके कारण ही ज्ञानके नानात्वका भ्रम होता है, वास्तवमें ज्ञान अनेक नहीं किन्तु एकमात्र है। जैसे एक ही मुख तैलमें प्रतिबिम्बित होने पर दूसरी तरहका और जलमें प्रतिबिंबित होने पर तीसरी तरहका मालूम होने लगता, किन्तु वास्तवमें मुख एक ही प्रकारका है, उसमें भेद नहीं है, तैलादि रूप उपाधिके भेदसे भेद-व्यवहार हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानका ऐक्य रहने पर भी घट-पटादि विषयस्वरूप उपाधिके भेदसे ज्ञानमें विभिन्नता प्रतीत होती है। परब्रह्मके प्रतिबिम्बयुक्त सत्त्व, रज और

तमोगुणात्मक और सत् वा असद्रूपमें अनिर्णेय पदार्थ-विशेषको अज्ञान कहते हैं। यह अज्ञान ही जगत्‌का कारण है, इस अज्ञानकी आवरण और विक्षेप ये दो शक्तियां हैं। जैसे मेघ परिमाणमें अल्प होने पर भी दर्शकोंके नयन आच्छन्न कर बहुयोजन-विस्तृत सूर्यमण्डलको भी मानो आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार अज्ञान परिच्छन्न हो कर भी जिस शक्तिके द्वारा दर्शकको बुद्धि-वृत्तिको आच्छादित कर मानो अपरिच्छन्न आत्माको ही तिरोहित कर देता है उस शक्तिको आवरणशक्ति कहते हैं और जिस शक्तिके द्वारा अज्ञान उपादान-कारणरूपमें जगत्सृष्टि होती है, उसे विक्षेपशक्ति कहते हैं। यह अज्ञान वास्तवमें एक होने पर भी अवस्थाभेदसे दो प्रकारका है—माया और अविद्या।

विशुद्ध, अर्थात् रज वा तमोगुण द्वारा अनभिभूत सत्त्वगुण प्रधान अज्ञानको अविद्या कहते हैं। मायामें जो परब्रह्मका प्रतिबिम्ब होता है, वह प्रतिबिम्ब ही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् वा ईश्वर है और अविद्यामें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह उस अविद्याके वशीभूत हो कर मनुष्यादि यावत् जीवपदवाच्य हैं। अविद्या नाना प्रकारकी हैं, अतएव उसके प्रतिबिम्ब भी नाना होनेसे जीव भी नाना हैं। जीवके नानात्ववादको सब वेदान्तिक स्वीकार नहीं करते, बल्कि युक्ति द्वारा एकत्ववादका ही प्रतिपादन करते हैं। माया और अविद्याको ही यथाक्रमसे ईश्वर और जीवकी सुषुप्ति, आनन्दमय कोष और कारण-शरीर कहते हैं। इस कारण शरीरमें अभिमानी ईश्वर और जीव यथाक्रमसे सर्वज्ञ और प्राज्ञ हो जाते हैं। जीवोंके उपभोगके लिए परमेश्वर जीवोंके पूर्वकृत सुकृत और दुष्कृतके अनुसार अपरिमित शक्ति-विशिष्ट मायाके साथ नामरूपात्मक निखिल प्रपञ्चको प्रथमतः बुद्धिमें कल्पना कर "ऐसा करनाही उचित है" इस प्रकारका सङ्कल्प करते हैं। पीछे उस मायाविशिष्ट आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवी उत्पन्न होती है। इन आकाशादि पांच पदार्थोंको पञ्चसूक्ष्मभूत, पञ्चीकृतभूत और पञ्चतन्मात्र भी कहते हैं। कारणमें जैसा गुण होता है, तदनुरूप गुण, कार्यमें भी उत्पन्न होता है, इस न्यायके अनुसार कारणके सत्त्व, रज और तम आदि गुण हैं और आकाशादि पञ्चभूतमें संक्रान्त होते हैं। इन पञ्चभूतोंके एक एक सत्त्वांशसे क्रमशः ज्ञानेन्द्रियपञ्चक उत्पन्न होता है।

आकाशके सत्त्वांशसे श्रोत्र, वायुके सत्त्वांशसे त्वक्, तेजके सत्त्वांशसे चक्षु, जलके सत्त्वांशसे रसना और पृथिवीके सत्त्वांशसे घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न होती है तथा पञ्चभूतोंके सत्त्वांशोंके मिल जाने पर, उसके द्वारा अन्तःकरणकी उत्पत्ति होती है। अन्तःकरण अवस्थाके भेदसे दो प्रकारका है—बुद्धि और मन। जिस समय अन्तःकरणकी निश्चयात्मक वृत्ति होती है, उस समय उसे बुद्धि कहते हैं और जब सङ्कल्प और विकल्पात्मक वृत्ति होती है तब वह मन कहलाता है। प्रत्येक पञ्चभूतके रजोअंशसे क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थरूप पञ्चकर्मेन्द्रियोंकी सृष्टि होती है तथा उन पञ्च भूतोंमें समुदित रजोअंशपञ्चकसे प्राणवायु उत्पन्न होती है। पूर्वोक्त बुद्धि ज्ञानेन्द्रियपञ्चकके साथ विज्ञानमय कोष मन कर्मेन्द्रियके साथ मनोमय कोष और प्राण कर्मेन्द्रियके साथ प्राणमयकोष बन जाता है। इन तीन कोषोंमें विज्ञानमयकोष ज्ञानशक्तिमान् है; कर्तृत्वशक्ति-सम्पन्न मनोमयकोष इच्छाशक्तिशील एवं कारणस्वरूप है, और प्राणमयकोष क्रियाशक्तिशाली एवं कार्य-स्वरूप है। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, बुद्धि और मन ये सतह सूक्ष्म-शरीर हैं। लिङ्गशरीर इस सूक्ष्म-शरीरका ही नाम है। लिङ्गशरीर इहलोक और परलोकगामी है तथा मुक्ति पर्यन्त स्थायी है। एक एक लिङ्ग-शरीरके अभिमानी जीवको तैजस कहते हैं और समस्त लिङ्गशरीरके अभिमानीको हिरण्यगर्भ। ईश्वर जीवके उपभोग-सम्पादक स्थूल विषयोंके सम्पादनार्थ पांच पांच सूक्ष्म भूतोंका पञ्चीकरण करते हैं। जिसकी प्रणाली इस प्रकार है परमेश्वर आकाशादिमेंसे प्रत्येकको प्रथमतः दो अंशोंमें विभक्त करते हैं। पीछे प्रत्येक भूतके उस एक एक अंशके चार चार टुकड़े करके पूर्वकृत आकाशके दो खण्डोंमेंसे जो एक एक खण्ड बचा है, उसमें वायु, तेज, जल और पृथिवीके चार चार खण्डोंमेंसे सबका एक खण्ड दे कर स्थूलाकाशको तथा

पूर्व स्थित वायुके एक अंशमें आकाश, तेज, जल और पृथिवीके उन चार चार खण्डोंमेंसे एक एक खण्ड दे कर स्थूलवायुको; और इसी रीतिसे स्थूलतेज, स्थूलजल और स्थूलपृथ्वीको भी सृष्टि करते हैं। इन पञ्चीकृत पञ्च भूतोंको ही पञ्च स्थूलभूत कहते हैं। इन स्थूल भूतोंमें ही शब्दादि गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार पञ्चीकृत और त्रिवृत्कृत स्थूलसे ही यथासम्भव भूः, भुव, स्व, मह, जन, तपः और सत्य ये सप्त लोक तथा अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल उत्पन्न होता है। स्थूल शरीरके चार भेद हैं—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। इस स्थूल देहकी कान्ति और पुष्टिमें कारण है अन्न और पानीयादिका भक्षण। अन्नके उदरस्थ होने पर उसके स्थूलांश से पुरीष, मध्यमांशसे मांस और सूक्ष्मांशसे मनको पुष्टि होती है। पीत पानीयादि वस्तुके स्थूल, मध्यम और सूक्ष्मांश यथाक्रमसे मूत्र रक्त और प्राणको पुष्टिके रूपमें परिणत होता है।

वास्तवमें परब्रह्मके सिवा सभी वस्तुएं मिथ्या हैं, इस जगत्‌में जो कुछ पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब रज्जु सर्पको तरह अज्ञान कल्पित मात्र हैं तथा जीवात्माके साथ परमात्माका भेद नहीं है, जीवात्मा ही परमात्मा है और परमात्मा ही जीवात्मा है। अतएव इस जगत्‌का सृष्टिक्रम और जीवात्मा एवं परमात्माका विभाग करना बन्ध्यापुत्रके नामकरणको तरह हास्यास्पद है। जैसे मायावी इन्द्रजाल-विद्याके द्वारा ऐन्द्रजालिक वस्तुओंका प्रकाश करता है और दर्शकोंका दर्शनौत्सुक्य निवारण कर पुनः उन वस्तुओंका संहार करता है, उसी प्रकार परमेश्वर अचिन्त्य शक्तिशाली मायाके द्वारा जगत्‌की सृष्टि कर प्राणियोंको सुकृत और दुष्कृतका फल प्रदान करते हैं और फिर अन्तमें जगत्‌का प्रलय कर देते हैं। प्रलय चार प्रकार है—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और आत्यन्तिक। ब्रह्मज्ञान-निमित्तक परम मुक्तिको प्राप्तिको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। ब्रह्मज्ञान द्वारा संसारके मूलकारण मूल अज्ञानसे निवृत्त होने पर फिर संसारकी स्थिति वा पुनरुत्पत्ति नहीं होती। प्रलयका क्रम इस प्रकार है—प्रथमतः पृथिवीका लय जलमें होता है; पीछे जलका लय तेजमें, तेजका लय वायुमें, वायुका लय आकाशमें, आकाशका लय जीवमें, जीवका लय अहङ्कारमें, अहङ्कारका लय हिरण्यगर्भाके अहङ्कारमें और उसका भी लय अज्ञानमें होता है।

इस दर्शनके मतमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम अर्थापत्ति और अनुपलब्धिके भेदसे प्रमाण छः प्रकारका है। इन छः प्रमाणों द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंको सिद्धि होती है। इन छः प्रकारके प्रमाणों द्वारा बुद्धिमान् व्यक्तिगण ऐहिक और पारत्रिक सुखसम्भोगादिके अस्थिरत्वादि दोष देख, परम सुख-स्वरूप परात्पर परब्रह्म-प्राप्तिके निमित्त तत्साधनीभूत तत्त्वज्ञानेच्छु हो कर उसके उपाय-स्वरूप श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधिके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं। सविकल्पक और निर्विकल्पकज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इत्यादि विकल्पोंके विलय-निरपेक्षको सविकल्पक समाधि कहते हैं और तत्सापेक्ष परब्रह्म वस्तुमें निविष्टचित्तकी स्थिरताको निर्विकल्पक। निर्विकल्पक समाधि-दशामें चित्तवृत्ति निर्वायु देशस्थित प्रदीप-शिखाको तरह निश्चल होती है। इस निर्विकल्पक समाधिकी सिद्धि होने पर तत्त्वज्ञानी हो कर क्रमशः जीवन्मुक्त और परममुक्त हो सकते हैं। फिर सम्पूर्ण अज्ञान तिरोहित हो जाता है।

वेदान्त और शंकराचार्य देखो।

षड्दर्शन ही हिन्दुओंके गौरवका विषय है। इन छहों दर्शनोंके प्रणेता मुनिगण विषयशक्तिका ह्रास कर परमपदको प्राप्तिके लिये विशेष यत्नशील थे। एक एक दर्शन-सम्बन्धी अनेकानेक ग्रन्थ हैं।

प्राचीन आचार्योंकी तरह प्राचीन ग्रीस और चीनदेश तथा मुसलमानोंमें दर्शनशास्त्रको विशेष चर्चा थी। वर्त्तमानमें यूरोप और अमेरिकामें इसको काफी चर्चा हो रही है। देशभेदसे दर्शनशास्त्रको श्रेणीबद्ध करनेसे आर्यदर्शन एवं मुसलमानों और चीनोंके दर्शनको प्राच्य तथा यूरोप और अमेरिकाके दर्शनशास्त्रको पाश्चात्य कहा जा सकता है। पाश्चात्य दर्शनको भी समयके भेदसे श्रेणीबद्ध करनेसे प्राचीन और आधुनिक इन दो श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है, जिसमें ग्रीस-देशीय दर्शन ही प्राचीन है। पाश्चात्य दर्शन तथा

रोमका दर्शनशास्त्र भी प्राचीन ग्रीक दर्शनशास्त्रके अन्त भूत है। दर्शनशास्त्रके इतिहास-लेखकोंने प्राचीन ग्रीक दर्शनशास्त्रको तीन भागोंमें विभक्त किया है। उन्होंने थेलिस (Thales)-को ग्रीकदर्शनका प्रवर्त्तक माना हैं। सक्रेटिस से सक्रेटिस के पूर्वतन दार्शनिकों का प्रथम समयका एवं सक्रेटिस (Socrates) प्लेटो (Ptalo) और आरिष्टटल (Aristotle) को द्वितीय समयका तथा अरिष्टटल से नव प्लेटोनिसम (Neo-Platonism) नामक दर्शनके शेष पर्यन्त दार्शनिकों-को तृतीय अर्थात् शेष समय बतलाया है। सक्रेटिस के पूर्ववर्ती दार्शनिकोंको पाच विभागोंमें विभक्त किया गया है—हिलिसिष्ट (Hilicist), पिथागोरियन, (Pythagorean), एलियाटिक (Eliatic), आट-मिष्ट (Atomist) और सफिष्ट (Sophist)। थेलिस (Thales) ही प्रथम श्रेणीके दार्शनिक थे। स्थानानु-सार शेषोक्त दार्शनिकोंको प्रथम श्रेणीके आयोनिक (Ionic) दार्शनिक भी कहा जा सकता है। परि-दृश्यमान जगत् किस तरह और किस मूल उपादानसे उत्पन्न हुआ, उपर्युक्त दार्शनिकोंका मूल उद्देश्य था। इनमेंसे किसी किसीने जलको, किसीने वायुको और किसीने तेज आदिको आदिकारण माना है। थेलिस (Thales)ने ईसासे ६४० वर्ष पहले जन्मग्रहण किया था। ५५० पूर्वखृष्टाब्दको उनकी मृत्यु हुई थी। ये क्रिसस (Craesus) और सोलन (Solon) के सम-सामयिक थे। इनके मतसे जल ही समस्त पदार्थोंकी उत्पत्तिमें आदि-कारण है। आनाक्सिमन्दर (Anaximander) और आनक्सिमेनिस (Anaximenes) ये दोनों आयोनिक (Ionic) दार्शनिक है। आँनाक्सि-मन्दरके मतसे शीतोष्ण अर्थात् तेज और तेजका अभाव तथा आँनाक्सिमेनिसके मतसे मरुत् ही विश्वका कारण है। ये तीनों ही व्यक्ति आयोनिक दार्शनिकोंमें विशेष प्रसिद्ध है।

पिथागोरस 'पिथागोरियन (Pythagorian) नामक दर्शनशास्त्रके प्रवर्तक हैं। पिथागोरसका जन्म ५४० ख़ृष्टपूर्वाब्दको सामस नगरमें हुआ था और ५०० खृ० पू० को मृत्यु हुई थी। इनके द्वारा प्रवर्त्तित दर्शन-के मतसे, समसन्निवेश और समानुपात (harmony and proportion) तथा इन दोनोंको परिणति संख्या ही (number) पदार्थोंको उत्पत्तिमें कारण हैं। इस श्रेणीके दर्शनमतका प्रचार सबसे पहले फिलोलस (Philolau-) ने किया था। सिमियस (Simmias), सिबिस (Cebes), ओकेलस (Ocelus), टाइमियस (Timaeus), एकेक्रेटिस (Echecrates), एक्रिओ (Achrio), आरकिटस (Archytas), लाइसिस (Lysis) और इउरिटस (Urytus) ये हो व्यक्ति पिथागोरियन दार्शनिकोंमें ख्यातनामा हुए हैं।

पिथागोरियनोंने आत्माका अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतसे आत्मा भी हरमनि (Harmony) मात्र है और शरीर उसका कारागार स्वरूप है।

कलोफन देशीय (Colophon) जेनोफानिस (Xenophones), एलियाटिक (Eleatic) दर्शनके प्रवर्त्तक थे। पूर्व पूर्व दार्शनिकोंने पदार्थका बहुत्व स्वीकार किया है। किन्तु इन लोगोंने पदार्थके एकत्वको स्थिर करनेका प्रयास किया है। उनके मतसे ईश्वर ही सर्व-नियन्ता हैं। इनमें पारमिनाइडिस (Parmenides), जेनो (Zeno), मेलिसस ये हो ख्यातनामा दार्शनिक हुए हैं। एक मात्र सत् ही पदार्थ है, असत् कोई पदार्थ नहीं है, यही पारमिनाइडिसका मत है। अन्यान्य विशेष विवरण 'पाश्चात्यदर्शन' और 'प्राच्यदर्शन' शब्दमें देखो।

दर्शनपथ (सं० पु०) दर्शनस्य पन्था ६-तत्। दृष्टिपथ, नजरकी पहुँच।

दर्शनप्रतिभू (सं० पु०) दर्शनाय प्रतिभूः। प्रतिभूभेद, वह मनुष्य जो किसी दूसरेको हाजिर कर देनेका भार अपने ऊपर ले, जामिनदार। इसका विषय याज्ञवल्क्य संहितामें इस प्रकार लिखा है—भाई, स्वामी, स्त्री, पिता और पुत्र इन लोगोंका धन जब तक एक साथ रहता है, तब तक एक दूसरेसे सलाह लिये बिना इनमें-से कोई भी जामिन नहीं हो सकता है। आप इसे छोड़ देवें, जरूरत पड़ने पर मैं इसे हाजिर कर दूंगा, इसे आप ऋण दें, यह ठगेगा नहीं, विश्वासी है, अगर यह नहीं देगा, तो मैं ऋण चुका दूंगा, आप किसी बातका डर न करें, जो खोल कर ऋण दें, इस प्रकार दानके

तीन भेद जामिन कहे गये हैं। दर्शन और विश्वासका जामिन यदि मर जाय, तो उसके लड़कोंको महाजनका ऋण परिशोध करना चाहिये, नहीं तो वे पापके भागी होते हैं। यदि अनेक व्यक्ति अंश निर्देश कर किसी एकके प्रतिभू हों, तो जो जिस प्रकारके अंशका प्रतिभू हुआ हो, उसे वैसा ही देना होगा। फिर यदि एक कायाश्रित हों अर्थात् विशेष अंश निर्देश न कर सभी मिल कर ऋणोमें हो जाँय, तो जामिनदार महाजनके इच्छानुसार धन देनेको वाध्य हैं। जामोनदार सबके सामने महाजनको जो कुछ देगा, ऋणीको उचित है, कि वह उसका दूना लगा कर प्रतिभूको दे। धानका ऋणी होनेसे प्रतिभूको उसका तिगुना, वस्त्रका चौगुना और रसका अठगुना देनेको लिखा है।

(याज्ञवल्क्यसं० २अ० ) प्रतिभू देखो।

दर्शना (स ० स्त्री०) नदीविशेष, एक नदीका नाम। (पद्मपु०)

दर्शनी ( सं० स्त्री० ) तैलकीट, तेलिन नामका कीड़ा।

दर्शनीय ( सं० त्रि० ) दृश्यते इति दृश-अनीयर. । १ दर्शनयोग्य, देखने लायक। २ मनोहर, सुन्दर।

दर्शनी हुंडो ( हिं० स्त्री० ) दरसनी हुंडी देखो।

दर्शनोज्ज्वला (सं० स्त्री०) श्वेत जाती वृक्ष, सफेद जाय-फलका पेड़।

दर्शनोपनिषद् ( सं० स्त्री० ) उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्-का नाम।

दर्शप ( सं० त्रि० ) दर्शन दर्शनेन पिवन्ति पा-क। दर्शन मात्रसे ही पाट देवभेद।

दर्शयामिनी ( सं० स्त्री० ) दर्शस्येव यामिनी। तमिस्रा, अँधेरी रात, अमावस्याकी रात।

दर्शयितृ ( सं० त्रि० ) दर्शयतीति दृश-णिच्-दर्शि-तृच्। १ दर्शक, दिखानेवाला। ( पु० ) २ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।

दर्शविपद् ( सं० पु० ) दर्शे अमावस्यायां विपद् प्रणाशो-ऽदर्शनं यस्य। चन्द्र, चन्द्रमा।

दर्शाना ( हिं० क्रि० ) दरसाना देखो।

दर्शित ( सं० त्रि० ) दृश-णिच् क्त। १ दिखलाया हुआ। २ प्रकाशित।

दर्शिन् ( सं० त्रि० ) दृश-णिनि। १ द्रष्टा, देखनेवाला। २ विवेचक, विचार करनेवाला। ३ साक्षात् कारक, दर्शन या मुलाकात् करानेवाला।

दर्शिवन् ( सं० त्रि० ) दृश "अन्येष्वपि दृश्यन्ते" इति क्वनिप्। द्रष्टा, देखनेवाला।

दर्शी—१ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत नेल्लूर जिलेका एक जमींदारी तालुक। इसका परिमाणफल ६१६ वर्गमील है। तालुकका प्रधान नगर दर्शी है। यह अक्षा० १५° २३´ से १६° १´ उ० और देशा० ७९° १९´ से ७९° ५८´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ८२४५९ है। इसमें ११८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १५° ४८´ उ० और देशा० ७९° ४४´ पू०में अवस्थित है। यहां थाना, डाकघर तथा कुछ राजकोय कार्यालय है।

दर्श्य ( सं० त्रि० ) दृश-यत्। दर्शनोय, देखने लायक।

दल ( सं० क्ली० ) दलतीति दल-अच्। १ उत्सेध। २ खण्ड, टुकड़ा। ३ पत्र, पौधोंका पत्ता। ४ धन, दौलत। ५ तमालपत्र। ६ अर्द्ध, आधा भाग। ७ अस्त्रच्छद, अस्त्रके ऊपरका आच्छादन, कोष, म्यान। ८ अपद्रव्य, बुरी चीज। ९ समूह, झुण्ड, गरोह। १० काष्ठ फलकादि-का स्थूलत्व, पटरीके आकारकी किसी वस्तुकी मोटाई। ११ जलज-तृणविशेष, जलमें होनेवाली एक घास। १२ फूलकी पखड़ी। १३ मण्डली, गुट्ट। १४ सेना, फौज। १५ तेजपत्र, तेजपत्ता।

दल—शलके छोटे भाई। शल देखो। इन्होंने वामदेवको मारनेके लिये एक विषाक्त बाण फेंका था, इस पर वामदेवके शापसे उसी बाण द्वारा इनके पुत्र श्येनजित् मारे गये।

दलइलामा—बौद्धलोग इन्हें एक जोवित बुद्धका अवतार समझते हैं। तिब्बतको राजधानो लासा नगरके बाहर बुद्दला नामक मन्दिरमें ये वास करते हैं। इनके शिष्योंकी संशोधित वा संस्कृत बौद्ध कहते हैं।

लामा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

दलक ( अ० स्त्री० ) गुदड़ी।

दलक ( हिं० पु० ) १ नक्काशी साफ करनेका राजगीरोंका एक यन्त्र। इनका आकार कुरोसा होता है परन्तु सिरे

पर चिपटा होता है। (स्त्री०) २ कम्प, थरथराहट, धमक। ३ टीस, चमक।

दलकना (हिं० क्रि०) १ फट जाना, चिर जाना। २ उद्विग्न हो उठना, चौंकना। ३ कांपना, थर्राना। ४ भीत कर देना, डराना।

दलकपाट (सं० पु०) फूलका वह कोष जिसके भीतर कली रहती है। इसकी पखड़ियां हरी होती हैं।

दलकोमल (सं० क्ली०) पद्म, कमल।

दलकोष (सं० पु०) दलान्येव कोषो यस्य। १ कुन्दपुष्पवृक्ष, कुंदका पौधा। २ मल्लिकापुष्पवृक्ष, चमेलीको पेड़।

दलगञ्जन (सं० त्रि०) १ सेनाको मारनेवाला। (पु०) २ एक प्रकारका धान।

दलगन्ध (सं० पु०) सप्तपर्ण वृक्ष, सतिवन।

दलगोमा—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ६' उ० और देशा० ९०°४८' पू०में अवस्थित है। यहां प्रतिवर्षके जनवरी महीनेमें एक बड़ा मेला लगता है। यहां इस जिलेके प्रधान जमींदार बिजनी राजाकी एक जमींदारी कचहरी है।

दलघुरा (हिं० पु०) एक प्रकारको रोटी। इसमें पिसी हुई दाल नमक मसालेके साथ भरी रहती है।

दलढ (सं० त्रि०) दल-बाहु० अढन्। द्विधाकारक, दो टुकड़ोंमें करनेवाला।

दलथंमन (सं० पु०) बांसका बना हुआ कमखाब बुनने वालोंका एक यन्त्र। इसमें अंकुड़ा और नकुआ बंधा रहता है।

दलथिया—बङ्गाल २४ परगनेके अन्तर्गत बसिरहाट महकूमेका एक ग्राम।

दलदल (हिं० स्त्री०) १ कीचड़, पांक। २ बहुत गहराई तकको गीली जमीन। यह जमीन इस तरहकी होती है, कि इस पर पैर रखनेसे यह नीचे धंस जाता है। ३ बुड्ढी स्त्री। यह पालकीके कहारोंकी बोली है।

दलदला (हिं० वि०) जिसमें दलदल हो।

दलदार (हिं० वि०) मोटादलवाला।

दलन (सं० पु०) १ पीस कर खंड खंड करनेका काम। २ विनाश, संहार।

दलना (हिं० क्रि०) १ चूर्ण करना, खण्ड खण्ड करना, मीड़ना। २ रौंदना, कुचलना, मलना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना। ४ चक्की द्वारा अनाज आदिके दानोंको दो दलोंमें करना।

दलनिर्मोक (सं० पु०) दलतीति दलं वल्कलं निर्मोक इव यस्य। भूर्जपत्रवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

दलनी (सं० स्त्री०) दल्यतेऽनया दल करणे ल्युट्-ङीप्। १ लोष्ट्र, ढेला। २ भेदकर्त्ता, विच्छेद करनेवाला।

दलप (सं० पु०) दल्यतेऽसौ दलयते अनेन वा दल-कपन्। १ स्वर्ण, सोना। २ अस्त्रप्रहरण, हथियारका छोड़ना। ३ विदारक मात्र। ४ दलपति।

दलपति (सं० पु०) दलस्य पतिः ६-तत्। १ दलका प्रधान व्यक्ति, मण्डलीका मुखिया, सरदार। २ सेनापति।

दलपुष्पा (सं० स्त्री०) दलानि पत्राणीव पुष्पाणि यस्याः। केतकी। इसके फूल पत्तेके आकारके होते हैं।

दलदा—सिंहलके काण्डी नगरमें रक्षित बुद्धदेवके सचित्र दन्त। पोर्त्तुगीजोंने १५६० ई०में असली दांत विनष्ट कर दिये थे। अभी जो दांत देखे जाते हैं, वे प्रायः दो इञ्च लम्बे विवर्ण हाथी-दांतके सिवा और कुछ नहीं है। ये देखनेमें बहुत कुछ कुम्भीरके दांतों से लगते हैं।

दलपतिराय—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये अहमदाबादके रहनेवाले थे। इनका जन्म १८२८ ई०में हुआ था। इन्होंने "उदैपुर" वाले जगतेसके नाम पर यह ग्रन्थ बनाया है। शुद्ध शब्द उदयपुर और जगत्सिंह है। इनकी भाषा बहुत मधुर और भाव बड़े गम्भीर होते थे। नीचेका दोहा इन्हींका बनाया हुआ है—

"रहे सदा विकसित विमल धरे बास मृदु मंजु।
उपज्यो नहिं पुनि पंकते प्यारी तव मुख कंजु॥"

इन्होंने अनुप्रास भी अच्छे रक्खे है। इनकी कविता बहुत थोड़ी है, परन्तु है बड़ी उत्कृष्ट। इनके बनाये हुए अनेक छन्द भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे लिखा जाता है—

"आली री निहारि वृषभानुकी दुलारी आहि
पेखि प्राण प्रीतमके प्रेम पासमें परत
भौंहनको फेरिबो औ हेरिबो बिहंसि मन्द
टेरिबो प्रवीको अब नाह अंकमैं भरत

आजु लौं न जानी ही सो परी पहिचानी अब
जोबन निसानी ऐसी अंग अंगको भरत।
विधना प्रवीन मानो तनमें नवीन कियो चाहे
कटि छीन याते पीन कुचको कात ॥"

दलबल (सं० पु०, सैन्य, फौज, लावलश्कर।

दलबा (हिं० पु०) एक निर्बल पक्षी जिसे तोतरबाज, बटेरबाज आदि अपने पास रखते हैं। वे इसे दूसरे पक्षियोंसे लड़ा कर और मार खिला कर उन पक्षियोंका साहस बढ़ाते हैं।

दलवाइ सेतुपति—रामनादके एक राजा। इन्होंने १५७१ शकाब्दमें प्रसिद्ध रामेश्वर-मन्दिरका पूर्वीय गोपुर निर्माण किया था। यह आज भी असम्पूर्ण अवस्थामें पड़ा है। तृतीय प्राकारके पूर्वोत्तर कोणका सभापति नामक मन्दिर भी इन्होंका बनाया हुआ है।

दलबादल (हिं० पु०) १ बादलोंका समूह, बादलोंका झुण्ड। २ भारी सेना। ३ बहुत लम्बा चौड़ा शमियाना, बड़ा भारी खेमा।

दलमलना (हिं० क्रि०) १ कुचल डालना, रौंदना, मीड़ डालना। २ विनष्ट कर देना, मार डालना।

दलमा—बङ्गाल देशके मानभूम जिलेके अन्तर्गत दलमा नामक पर्वतश्रेणीका एक प्रधान पहाड़। यह ३४०७ फुट ऊंचा है। यह पार्श्वनाथका प्रतिद्वन्द्वी समझा जाता है, किन्तु पार्श्वनाथ पहाड़के उच्च शृङ्गके जैसा इसके एक भी शृङ्ग नहीं है। खरिया और भरिया नामको दो असभ्य जातियां इस पर्वत पर वास करती हैं।

दलमौ—१ युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलेकी एक तहसील। इसमें दलमौ, सरेनी और खाइरोन नामके परगने लगते हैं। यह अक्षा० २५° ५७' से २६° २२' उ० और देशा० ८०° ४१' से ८१° २१' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४७२ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २७०८०० है। इसमें कुल ५७५ ग्राम और एक शहर पड़ते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक परगना। इसके उत्तरमें रायबरेली परगना, पूर्वमें सलोन, दक्षिणमें फतेपुर जिला तथा पश्चिममें खाइरोन और सरेनी परगने हैं। परिमाणफल २५३ वर्गमील है। पहले इस प्रदेशमें भर नामकी एक जाति रहती थी। दिल्लीके सम्राट्‌ पकाने इसे परगना बनाया। इसमें १० ग्राम लगते हैं जिनमेंसे लालगञ्ज ही प्रधान है। प्रत्येक ग्राममें एक बाजार है। यहांके आमदनी द्रव्योंमें फैजाबादका चावल और चीनी तथा फतेपुरकी रूई ही प्रधान है। पहले यहां बहुत सोरा तैयार होता था, किन्तु अभी केवल दो ग्रामोंमें कुछ कुछ तैयार होता है। यहां प्रतिवर्ष दो मेले लगते हैं।

३ उक्त परगनेका एक प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २६° ४' उ० और देशा० ८१° २' पू० रायबरेली नगरसे १६ मील दक्षिणमें गङ्गा नदीके किनारे अवस्थित है।

कहा जाता है, कि प्रायः २००० वर्ष पहले कन्नौज के राजा दलदेवने यह नगर स्थापन किया। बहुत दिनों तक यह स्थान भर जातिके अधिकारमें था। इसके चारों ओरके प्रदेशोंमें भर जातिके साथ मुसलमानोंका विवाद बहुत काल तक चलता रहा। लगभग ४०० ई०में भरलोग सुलतान इब्राहिम सरकीसे सम्पूर्ण रूपसे परास्त हो गये। यहाँ बहुतसी मस्जिदें तथा भर लोगोंके दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

यहाँ महादेवका एक मनोहर मन्दिर, मुसलमानोंकी कई एक मस्जिदें तथा सराय है। गङ्गासे ले कर रायबरेली होती हुई लखनऊ तक एक पक्की सड़क गई है। यहां थाना, डाकघर, गवर्मेण्टके अंगरेजी विद्यालय तथा छोटा औषधालय है। कार्त्तिक संक्रान्तिमें यहां प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता है। सारा दलमौ परगना एक मुन्सफके अधीन है। शहरकी लोकसंख्या प्रायः ५६२५ है।

दलशालिनी (सं० स्त्री०) कच्चूका शाक, कचूका साग।

दलसायसी (सं० स्त्री०) श्वेत तुलसीवृक्ष, सफेद तुलसीका पौधा।

दलसारिणी (सं० स्त्री०) सारोऽस्त्यस्याः सार इनि ङीप्, च, दले सारिणी। केमुक, केमुआ, कचू।

दलसिंह—बुन्देलखण्डके एक राजा और हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म १७२४ ई०में हुआ था। इन्होंने "प्रेमपयोनिधि" नामक एक ग्रन्थ बनाया था।

दलसूचि (सं० पु०) दलस्य सूचिरिव। १ कण्टक, कांटा।

२ कण्टक वृक्ष, वह पौधा जिसके पत्तोंमें कांटे हों। ३ पत्तोंका कांटा।

दलस्थ (सं॰ त्रि॰) दले तिष्ठति स्था-क। दलभुक्त, जिसमें दल हो।

दलस्नसा ( सं॰ स्त्री॰ ) दलस्य स्नसा ६-तत्। पत्रशिरा। पत्तेकी नस।

दलहन ( हिं॰ पु॰ ) वह अनाज जिसकी दाल बनाई जाती है।

दलहरा ( हिं॰ पु॰ ) दाल बेचनेवाला, जो दाल बेच कर अपनी रोजी चलाता हो।

दलहीनफला ( सं॰ स्त्री॰ ) सुलेमानी खजूर।

दलाक्रान्त ( सं॰ त्रि॰ ) दले आक्रान्तः। दलस्थ, जिसमें दल हो।

दलाढक ( सं॰ पु॰ ) दलैराढ्क इव। १ स्वयं जात तिल वृक्ष, जंगली तिल। २ पृश्नी, गेरू। ३ नागकेशर पुष्प वृक्ष। ४ कुन्द पुष्पवृक्ष। ५ करिकर्णवृक्ष, गजकर्णी, एक प्रकारका पलाश। ६ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। ७ वात्या आंधी, अंधड़। ८ महत्तर, प्रतिष्ठित। ९ फेन। १० घातक। ११ माहुत। १२ कुम्भिका, जलकुम्भी।

दलाढकी ( सं॰ स्त्री॰ ) १ फणिकज्जक वृक्ष। २ पृश्निपर्णी, पिठवन लता।

दलाढ्य ( सं॰ पु॰ ) दलेन भेदेन आढ्यः। १ पङ्क, कोचड़। २ कुन्दपुष्पवृक्ष।

दलामल ( सं॰ क्ली॰ ) दलेन अमलं। १ मरुवक वृक्ष, मरुवेका पौधा। २ दमनक वृक्ष, दौनेका पौधा। ३ मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़।

दलाम्ल ( सं॰ क्ली॰ ) दलेषु अम्लो रसो यस्य। चुक्रशाक, अमलोनी, लोनिया साग।

दलारा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका झूलनेवाला बिस्तरा। मल्लाह लोग इसका व्यवहार जहाज पर करते हैं।

दलाल ( अ॰ पु॰ ) १ सौदा मोल लेने या बेचनेमें सहायता पहुंचानेवाला आदमी, बिचवई। २ वह जो स्त्री पुरुषका अनुचित संयोग कराता हो, कुटना। ३ जाटोंकी एक जाति।

दलाली ( फा॰ स्त्री॰ ) १ दलालका काम। २ दलालको मिलनेवाला द्रव्य।

दलाह्वय ( सं॰ क्ली॰ ) दल इति आह्वयो यस्य। पत्रक, तेजपत्ता।

दलि ( सं॰ पु॰ स्त्री॰ ) दल्यते इति दल इन् ( सर्वधातुभ्य इन् उण् ४।११७) लोष्ट्र, ढेला।

दलिक (सं॰ क्ली॰) दल्यते भिद्यते दल-इन् संज्ञायां कन्। काष्ठ, काठ।

दलिङ्गकोट—स्वाधीन सिक्किमके दक्षिण नीचू और देचू नदीके पश्चिम तथा तिस्ता नदीके पूर्वमें अवस्थित एक पार्वत्य उपविभाग। १८६४ ई॰को भूटानको यात्राके फलस्वरूपमें यह प्रदेश अंगरेजोंके हाथ आया। अभी यह दार्जिलिङ्ग प्रदेशके अन्तर्भुक्त हो गया है और कालिमपङ्ग नामसे मशहूर है।

अभी यह महकूमा तीन भागोंमें विभक्त हो गया है—१ कृषकोंके लिए एक भाग। इसको ३०००० एकड़ जमीन माप कर दश सालके लिए बन्दोबस्त की गई है। २ एक वन और सिनकोना उपजानेके लिये गवर्मेण्टकी खास जमीन। ३ चायको खेती करनेके लिए ९००० एकड़ जमीन।

इसमें एक बाजार और महकूमेके कार्यालय है। तिस्ता नदीके ऊपर एक पुल हो जानेसे सभी समयमें पश्चिम दिशासे आने जानेकी सुविधा हो गई है, इसी कारण धीरे धीरे लोकसंख्या भी बढ़ती जा रही है। इसका परिमाणफल ४८६ वर्गमील है।

दलित ( सं॰ त्रि॰ ) दलमस्य जातं दल तारकादित्वादितच्। १ प्रस्फुटित, प्रफुल्ल। २ खण्डित, टुकड़ा किया हुआ। ३ विदीर्ण, रौंदा हुआ, कुचला हुआ। ४ विनष्ट किया हुआ। ( क्ली॰ ) ५ दाल।

दलिन् ( सं॰ त्रि॰ ) दल सुखादित्वात् मत्वर्थे इनि। १ दलयुक्त, जिसमें दल या मोटाई हो। २ जिसमें पत्ता हो।

दलिया ( हिं॰ पु॰ ) वह अनाज जो दल कर टुकड़े टुकड़े में किया गया हो।

दलीपसिंह (दिलीपसिंह)—पञ्जाबकेशरी रणजित्‌सिंहके कनिष्ठ पुत्र। १८३८ ई॰में तदानीन्तन गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्डके साथ महाराज रणजित्‌सिंहके साक्षात् होनेसे प्रायः तीन महीने पहले दलीपसिंहका जन्म हुआ था। महाराज रणजित्‌सिंहको मृत्युके बाद

पञ्जाब-राज्य प्रभुत्वप्रयासी अर्थगृध्नु पिशाचोंके ताण्डव-नृत्यसे विभीषिकापूर्ण हो गया। रणजितसिंह १८३९ ई०में मृत्युशय्या पर पहुंच चुके थे और दलीप १८४३ ई०में सिंहासन पर बैठे थे। इन पांच वर्षके भीतर राज्यशासनको क्षमता पांच व्यक्तियोंके हाथ पहुंच चुकी थी। दलीपसिंहको भारतवर्षका शेष स्वाधीन भूपति समझना चाहिए। दलीपसिंहकी जीवनीसे हम सिंहासनारोहणके समय पञ्जाबकी अवस्थाको पर्यालोचना करना चाहते हैं और उचित भी यही है।

रणजितसिंहको मृत्युके बाद उनके ज्येष्ठपुत्र खड्गसिंह राजसिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपनी अकर्मण्यता और छिन्नताके कारण राज्यका भार विश्व ध्यानसिंहको न दे कर चेतसिंह नामके एक मूर्ख, दाम्भिक और खुशामदीके हाथ सौंप दिया। खड्गसिंहके पुत्र नवनिहालसिंह अकर्मण्य पिताके कमठ पुत्र थे। उन्होंने ध्यानसिंहके साथ मिल कर चेतसिंहके कवलसे पिताको रक्षा की और कार्यतनः वे ही पञ्जाबके राजा हो गए। नवनिहालसिंह अपने पिता खड्गसिंहको अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करके लौट रहे थे कि रास्तेमें विश्वासघातकोंके षड्यन्त्रसे अथवा यों कहिये कि पञ्जाबके अदृष्ट-चक्रका परिवर्तन होनेवाला था इसलिए वे मार दिये गये। नवनिहालसिंहके मारे जाने पर उनकी माता चाँदकुमारीने राज्यका भार अपने ऊपर ले लिया। ध्यानसिंह उनकी अधीनतामें शासनसचिव नियुक्त हुए। किन्तु इसमें ध्यानसिंहको सन्तोष न हुआ। वे शेरसिंहके साथ षड़यन्त्र रचने लगे। शेरसिंह रणजितसिंहके पुत्र थे, किन्तु रणजितसिंह उन्हें अपना औरस पुत्र न समझते थे। ध्यानसिंहके भाई गुलाबसिंह और सुचेतसिंह इस षड्यन्त्रमें शामिल थे। ये दोनों शेरसिंहके पृष्ठपोषक थे और इसीलिये रानी चाँदकुमारीको बाध्य हो कर सिंहासन त्यागना पड़ा। किन्तु शेरसिंह राज्यभार ले कर बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उनके ज्वालासिंह नामक एक प्रिय सरदार थे। राज्यप्राप्ति-विषयमें सहायता करनेके कारण ज्वालासिंह शेरसिंहके और भी प्रिय बन गये और इसीलिए वे कूट-नीतिविशारद प्रभुत्वप्रयासी ध्यानसिंहकी कोपदृष्टिमें पड़ कर मारे भी गये।

शेरसिंहने लेहनासिंह नामक एक सिन्धनवाले सरदारको बन्दी कर उनकी सम्पत्ति अपने राज्यमें मिला ली थी। कुछ दिन बाद लेहनासिंहके मुक्त होने पर उनके भाई उत्तरसिंह और भतीजे अजितसिंह राज-दरबारमें सम्मानित हुए। अब ये उत्तरसिंह और अजितसिंह ही क्षमता प्राप्त हो अपना बदला चुकानेके लिए ध्यानसिंह और शेरसिंहमें अविश्वासका बीज बोने लगे। चेष्टा फलवती हुई। शेरसिंह अपने कमरेमें बैठ कर मल्लोंकी क्रीड़ा देख रहे थे, कि इतनेमें अजितसिंह अपनी बन्दूक दिखानेके बहाने भीतर घुस पड़े। शेरसिंहने बन्दूक लेनेके लिये ज्यों ही हाथ बढ़ाया त्यों ही दुनाली बन्दूककी गोली उनकी छातीमें आ लगी, उसी समय वे जमीन पर गिर पड़े और मर गये। बादमें लेहनासिंहने शेरसिंहके अप्राप्तवयस्क पुत्र प्रतापसिंहको भी हत्या कर डाली। ध्यानसिंहने चक्रान्त-जालमें पड कर प्राण गँवा दिये। ध्यानसिंहकी हत्याके समय लेहनासिंह उपस्थित न थे। उनकी इच्छा थी, कि ध्यानसिंहके सुयोग्यपुत्र हीरासिंह और सुचेतसिंहको भी राजधानीमें बुला कर एक साथ तीनोंका काम तमाम करते; किन्तु जब वह आशा विफल हुई तब उन्होंने दूसरी चाल चली।

ध्यानसिंह और गुलाबसिंह देखो।

हीरासिंह उस समय अपने सेनावासमें थे। उनके पास समाचार भेजा गया, कि महाराज शेरसिंहको मृत्यु पर विचार करनेके लिए राजा ध्यानसिंहने सुचेतसिंह आदिको बुलाया है। परन्तु उन लोगोंने ध्यानसिंहके हाथका आज्ञापत्रके बिना जाना स्वीकार न किया। इस पर जबरन ले जानेके लिए ५०० सेना उपस्थित हुई। हीरासिंहने भी दलबलके साथ उनका सामना किया, जिससे उनकी सेना भाग गई। अब तक हीरासिंहको सिर्फ शेरसिंहकी हत्याका हाल ही मालूम था, ध्यानसिंहके विषयमें वे कुछ भी न जानते। एक घण्टे बाद यह समाचार उनके कानों तक पहुंचा। उन्होंने सिख-सर्दारोंको बुला कर पिताकी हत्याका हाल सुनाया और उनसे सहायता मांगी। शेरसिंहके समयसे ही सिख सेना प्रभुत्व-प्रयासमें अग्रसर हुई थी।

राज्यके शासन और परिचालनके विषयमें सिख-सर्दार लोग पञ्चायत करके बहुत कुछ सहायता पहुंचाया करते थे। इस दुर्दमहृदय उच्छृङ्खल जातिको नियमोंमें आवद्ध रख कर उनसे काम लेते, ऐसा व्यक्ति उस समय कोई भी न था। रणजित्‌सिंहको मृत्युके बाद खड्गसिंह-को जगह यदि नवनिहालसिंह सिंहासन पर बैठते, तो सम्भव था कि पञ्जाबका अदृष्ट-चक्र पलटा खाता और पञ्जाबकी ऐसी अधोगति न होने पाती। हीरासिंह समझ गये थे, कि खालसा सेना ही इस समय पञ्जाबकी 'प्रभु' है, उनका अभिवल जिनकी तरफ है, वही राजा है। इसीलिए उन्होंने सिख सरदारोंसे सलाह की और खालसा-सेनाके हाथ आत्म समर्पण कर दिया।

खालसा-सेनाने अब तक सुबुद्धि-परिचालित हो कर कार्य किया था; अकर्मण्य शेरसिंहकी मृत्युसे उसने विशेष क्षति न समझी थी। किन्तु कार्यदक्ष मन्त्री ध्यान सिंहको हत्यासे वह सिन्धनवाले सर्दारों पर विशेष क्रुद्ध हुई और हीरासिंहको सहायता करनेके लिए तैयार हो गई।

इसी बीचमें अजितसिंह पञ्चमवर्षीय शिशु दलीपको राजा बना कर खुद वजीर बन बैठे। हीरासिंहने फरासीसी सेनापति भेञ्चुरा और आविटा वेलोकी सहायतासे लाहोर घेरनेकी तैयारियां कर लीं। लेहनासिंह और अजितसिंह दलबल-सहित मारे गये। सिर्फ किसी तरह दलबलके साथ शतद्रु नदी पार हो अंग्रेजी राज्यमें जा, अपने प्राण बचा लिए। युद्धमें विजय होनेसे हीरासिंहने सैनिकोंको एक मासका वेतन पुरस्कार दिया और भविष्यमें वेतन बढा देनेकी स्वीकारता दी। लाहोर अधिकार करनेके बाद चौथे दिन शासन और सैनिक विभागके समस्त सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके समक्षमें उनकी अनुमतिसे महाराज रणजीतसिंहके एकमात्र जीवितपुत्र दलीपसिंहका 'राज्यभार-ग्रहण' विघोषित हुआ। हरिसिंह उनके वजीर हुए।

महारानी झिन्दन दलीपकी गर्भधारिणी माता थीं। पत्नियोंमें झिन्दन हो महाराज रणजितसिंहकी प्रियतमा महिषी थीं। महाराज इन्हें "माः तुषा" अर्थात् 'पतिकी लाडली' कहा करते थे। यह बात सत्य हो सकती है कि चरित्र-दोषसे उनका चरित्र कलङ्कित था, किन्तु वे वीर्यवती और तेजस्विनी थीं, इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। अंग्रेज इतिहास लेखकोंने अपनी लेखनीके बलसे रानी झिन्दनका चरित्र मिथ्या कलङ्कित कर दिया है।

सुचेतसिंह महारानी झिन्दनके प्रियपात्र थे। हीरासिंहका वजीर होना सुचेतसिंहको सह्य न हुआ; वे महारानीके बड़े भाई जवाहिरसिंहसे इस विषयमें परामर्श करने लगे। महारानी भी उसमें शामिल हो गईं। गुलाबसिंह इस समय जम्बूसे लाहोर आ गये। परन्तु वेतन वृद्धि कर देनेसे हीरासिंह सेनाके प्रिय बन चुके थे, इसलिए वे इनका कुछ कर न सके। एक दिन जवाहिरसिंहने महाराजको हस्तगत करके सेनाके सामने कहा, कि "दिलीप और उनकी माताको हीरासिंह विशेषरूपसे निग्रहीत कर रहे हैं, यदि आप लोग इसका शीघ्र प्रतिविधान न करेंगे तो शीघ्र ही हमें महाराजको ले कर अंग्रेजका आश्रय लेना पड़ेगा।" महाराज रणजितसिंहकी मृत्युके बादसे अंग्रेजोंने लाहोर-दरबारके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। १८०८ ई०में अंग्रेज-गवर्मेण्टके साथ महाराज रणजितसिंहको प्रथम सन्धि हुई थी। १८३७ ई०के जून महीनेमें अंग्रेज, रणजितसिंह और अफगानिस्तानके अधिपति शाहसुजा इन तीनोंके बीच एक सन्धि हुई, जिसमें सिन्धुदेशके अमीरोंको स्वाधीनता स्वीकार की गई थी। अंग्रेजोंने सुजाका पक्ष ले कर सिन्धुदेश हड़प कर लिया। अफगान-युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजी-सेनाने पञ्जाबके भीतरसे लौटनेकी अनुमति मांगी। उस समय नवनिहालसिंह वहांके प्रधान थे—तो उन्होंने अनुग्रहपूर्वक, सिर्फ एक बारके लिए अनुमति दे दी। इसके कुछ दिन बाद शाह सुजाकी रक्षाके लिए फिर अफगानिस्तानमें रसद और सेना भेजनेकी आवश्यकता पड़ी—लाहोर-दरबारकी पूर्ण सम्मतिसे पञ्जाब प्रदेशसे सेना भेजी गई। इस समय लाहोरके दुर्वृत्त और उद्धतप्रकृत रेसिडेण्ट ब्रोडफुट साहबके व्यवहारसे सिख-जाति दिनोंदिन उत्तेजित होती जा रही थी; गवर्नर-जनरल लार्ड आकलेण्डने उन्हें स्थानान्तरित करके सिखोंको शान्त कर दिया।

बादमें पेशावरके विषयमें गड़बड़ो मची। १८०८ ई०के सन्धिपत्रके अनुसार पेशावर पर रणजितसिंहका अधिकार था। अब शाहसूजाने उस पर कब्जा करना चाहा; अङ्गरेजोंने भी उनका पीठ ठोंकी। इसी समय शाहसूजा पर एक नई आफत आ टूटी; उन्हें अङ्गरेजोंसे सेना मांगनी पड़ी। इस बार भी सेना पञ्जाबके भीतर हो कर निकल गई। उस समय पञ्जाबके सिंहासन पर शेरसिंह थे; किन्तु उनमें इतनी क्षमता न थी कि वे सिखसेनाकी उच्छृङ्खलताको दमन करते। इस समय गवर्नर-जनरलके एजेण्टने शेरसिंहको कहला भेजा कि "हम बारह हजार सेनाके साथ अवाध्य सिखोंका दमन करना चाहते हैं, पर उसके बदले आपको नकद चालीस लाख रुपये और शतद्रुके दक्षिणस्थ प्रदेश देने पड़ेंगे।" शेरसिंह इस शर्त पर राजी न हुए। परन्तु यह बात छिपी न रही। कुछ दिन बाद ही गवर्नर-जनरलके एजेण्टने घोषणा निकाली कि "लाहोर-दरबारके साथ अब हम किसी भी सन्धि-सूत्रसे आबद्ध नहीं हैं, शीघ्र ही पेशावर दखल किया जायेगा।" घोषणाके अनुसार कार्य भी हो गया।

इसके कुछ दिन बाद शाहसूजाका परिवारवर्ग काबुल जा रहा था, मेजर ब्रडफुट उनके रक्षक थे। उनके साथ कुछ सिखसेना भी भेजी गई थी, किन्तु मेजर साहबके संशयके कारण वह शत्रु समझी गई। सौभाग्यवश इसका परिणाम जितना भयानक समझा गया था, उतना न हुआ—मामला थोड़ेमें ही निपट गया। निपट तो गया, मगर अङ्गरेजों पर सिखोंकी घृणा और भी बढ़ गयी। इसके कई दिन बाद ही अङ्गरेज अफगानिस्तानसे भगा दिये गये। सिखसेनाकी अनुकूलतासे और गुलाबसिंहकी सहायतासे अङ्गरेजोंको पुनः अफगानिस्तानमें प्रवेश करनेका अधिकार मिला। पहलेकी सन्धिके अनुसार निषिद्ध होने पर भी अङ्गरेजोंने फिरोजपुर आदि कई स्थानोंमें सेना संग्रह कर रक्खी थी। सिखसेना अङ्गरेजोंके कौशल-जालको अच्छी तरह समझती थी और साथ ही अङ्गरेजों पर उनकी घृणा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

इन सब कारणोंसे सिख-सेनाने जवाहिरसिंहके प्रस्तावको अच्छा न समझा। सारी रात परामर्श होता रहा, हीरासिंहके अनुचरोंने भी सैनिकोंको बहुत सी बातें समझाईं। आखिर यह निर्णय हुआ, कि सुचेतसिंह और जवाहिरसिंह राज्यके शत्रु हैं। हीरासिंह बड़े सबेरे ही जवाहिरसिंहके पाससे बालक महाराजको ले आये और महासमारोहके साथ नगरमें प्रविष्ट हुए। जवाहिरसिंह कारागारमें डाल दिये गये। महाराजके मामा थे, इसलिये प्राणदण्ड न हुआ। गुलाबसिंह लाहोरमें ही थे। सुचेतसिंह और हीरासिंहमें कभी भी मेल नहीं होगा, यह समझ कर वे सुचेतसिंहको साथ ले जम्बू चले गये। महाराज रणजितसिंहके काश्मीरासिंह और पेशोरासिंह नामके और भी दो पुत्र थे, किन्तु इनको वे अपना औरस-पुत्र न मानते थे। इस समय वे लाहोरका सिंहासन पानेके लिए अग्रसर हुए। हीरासिंह और गुलाबसिंह दोनोंने मिल कर उन्हें शियालकोटमें घेर लिया। खालसा-सेना रणजितसिंहके नाम पर इतनी भक्ति करती थी कि रणजितसिंहके पुत्रके विरुद्ध युद्धयात्रा उनको मनःपूत न हुई; हीरासिंहको इस युद्धयात्रासे उनकी सेनामें उनके प्रति अश्रद्धाका भाव फैल गया। पीछे हीरासिंहने दोनों भाइयोंको निरापद जाने दिया और स्वयं पञ्जाब चले आये। इसी समय जवाहिरसिंह कारागारसे भाग गये, इसमें सुचेतसिंहका भी हाथ था। १८४४ ई०में सुचेतसिंह अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये सहसा राजधानीमें उपस्थित हुए। हीरासिंह सावधान थे; खालसा-सेनाको उन्होंने पुरस्कार देना स्वीकार किया, जिससे वह उनके वश हो गई। सुचेतसिंह जिस भरोसे पर आये थे, वह जड़-सहित नष्ट हो गया। उपायान्तर न देख उन्होंने एक मस्जिदमें आश्रय लिया और वहीं सिख-सैनिकोंने उन्हें दल सहित मार डाला।

सिन्धनवाले उत्तरसिंहने शतद्रुके उस पार भाग कर हीरासिंहके क्रोधसे अपनी रक्षा की थी; अब वे मौका देख मांझामें जा कर विद्रोही बाबा वीरसिंहके साथ मिल गए। बाबा वीरसिंहने घोषणा की कि, पञ्जाबराज्य वस्तुतः सिखगुरु गोविन्दका राज्य है। दलीप इस समय बालक है; हीरासिंह राज्यमन्त्रित्व-रूप उच्च पदके लिए सम्पूर्ण अयोग्य हैं और सिन्धनवाले

उत्तरसिंह उस कार्यके लिए सम्पूर्ण योग्य आदमी हैं। इसके बाद वे खालसा-सेनाके पास पत्रादि भेजने लगे। किशोरासिंह और पेशोरासिंह भी इस विद्रोहमें सम्मिलित हुए। विद्रोह-दमनके लिये लाहोरसे उसी समय सेना भेजी गई। दोनों तरफसे बड़ी जोरकी लड़ाई हुई। युद्धक्षेत्रमें बाबा वीरसिंह, सिन्धनवाले उत्तरसिंह, काश्मीरासिंह आदि वीरशय्या पर सदाके लिए सो गए। उपायान्तर न देख पेशोरासिंहने लाहोर जा कर आत्मसमर्पण किया। इस तरह हीरासिंह निष्कण्टक हो गए। उनके शत्रुकुलका दमन हो गया, विद्रोह प्रशमित हो गया, जिस प्रभुत्वकी प्रत्याशासे उन्होंने अपने पितृव्य सुचेतसिंहको भी विनिष्ट कर डाला था, इतने दिन बाद वही प्रभुता उनकी मुट्ठीमें आ गई।

पण्डित जल्ला हीरासिंहके बाल्यगुरु थे। जल्ला उद्धतस्वभाव, क्षमताप्रयासी और क्रूरकर्मा थे। हीरासिंह इस व्यक्तिके हाथकी क्रीड़ापुत्तलिका मात्र थे। हीरासिंहके अभ्युदयके साथ साथ जल्लाकी भी मर्यादा बढ़ती जाती थी। जल्ला जितनी क्षमताका परिचालन करते थे, उससे चौगुनी हठकारिता दिखाते थे। खालसा सेनाने उनके विरुद्ध हीरासिंहको कई बार सावधान कर दिया था, किन्तु हीरासिंहने उसकी परवाह नहीं की, अथवा यों समझिये कि उस विषयमें कुछ निराकरण करना उनकी शक्तिके बाहर था। कारण चाहे जो हो, हीरासिंहने जब उसका कोई प्रतिविधान न किया, तो सिखसेनाकी वितृष्णा होने लगी। जल्ला दरबारमें बैठ कर वृद्ध सरदार और सामन्तराजोंको अवमानना किया करते थे। इस तरह अवमानित हो वृद्ध माजितिया-सरदार लेहनासिंहने हरिद्वारकी यात्राके बहाने लाहोर त्याग दिया। महारानी झिन्दनके बड़े भाई जवाहरसिंह इस समय अमृतसहरमें रह कर हीरासिंहके विरुद्ध अकाली, भाई आदि रणचण्ड-सम्प्रदायको उत्तेजित कर रहे थे। लाहोर-दरबारमें एक लालसिंहके सिवा और कोई भी क्षमताशाली व्यक्ति न था। यह क्षमता भी हीरासिंहकी दी हुई न थी, रानी झिन्दन लालसिंह पर स्नेह करती थीं, उसी शक्तिसे लालसिंह शक्तिमान थे।

जवाहिरसिंह अमृतसहरमें अभिलाषानुयायी कार्य समाप्त कर लाहोर लौट आये। यहांकी उत्यक्त खालसा-सेनाने उनकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। महारानी झिन्दन और लालसिंह भी हीरासिंहके सर्वनाशके लिए मौका देख रहे थे, उन्हें भी मौका मिल गया।

महारानी झिन्दन पुत्रकी मङ्गलकामनाके लिये एक दिन दान कर रही थी; उस समय जल्लाने उन्हें अपदस्थ और लाञ्छित किया। जवाहिरसिंहकी मनस्कामना पूर्ण हुई। उन्होंने सेनाके साथ मिल कर हीरासिंहसे जल्ला पण्डितको मांगा। हीरासिंह पण्डित जल्लाको छोड़नेके लिये राजी न हुए। अशान्तिकी सम्भावना होने पर भी कुछ गड़बड़ी न हुई। किन्तु हीरासिंह समझ गये थे कि अब उनका समय पूरा हो चुका, अब भाग जानेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, लाहोरमें रहनेसे उनको जानसे भी हाथ धोना पड़ेगा। हीरासिंह अपने दल-सहित लाहोर छोड़ कर चल दिये। जवाहिरसिंहने सेनाके साथ उनका पीछा किया। तारीख २१ दिसम्बर सन् १८४४ ई०को हीरासिंह अपने दल सहित मारे गए। बहुत दिनोंमें जवाहिरसिंहकी मनस्कामना पूर्ण हुई, वे वजीर हो गये।

हीरासिंह अपने पिता ध्यानसिंहकी तरह सर्वगुणोंमें गुणवान् न होने पर भी बुद्धिमान्, विचक्षण और कर्मठ व्यक्ति थे। नाना तरहकी गड़बड़ोंके रहते भी इन्होंने इतने दिनों तक अपनी क्षमताको अप्रतिहत रक्खा था, यह साधारण क्षमताका परिचायक नहीं है। उनकी धर्मलाभेच्छा भी प्रबल थी। रणजितसिंहकी मृत्युके बाद गुलाबसिंह धनराशिकी गाड़ियोंमें भर कर जम्बू ले गये थे। हीरासिंहने वजीर होनेके साथ ही रणजितसिंहके कोषागारसे प्रायः चालीस लाख रुपये हजम कर लिए। ध्यानसिंहकी मृत्युके बाद यदि सिन्धनवालोंके हाथ राज्यका भार रहता, तो वह धन कोषागारमें ही रहता और सिख-युद्धके समय उससे बहुतोंका उपकार होता। खालसा-सेनाकी अविमृष्यकारितासे हीरासिंह वजीर हुए और राज्यमें विद्रोह, षड़यन्त्र आदि तरह तरहकी गड़बड़ी होने लगी। परन्तु

इस खालसा-सेनाके भयसे हीरासिंहको बहुत सावधान रहना पड़ता था; अन्यथा उनकी प्रभुत्व-प्रचेष्टा और अर्थगृध्नुता दुराशाके सर्वोच्चशिखर पर पहुंचे बिना नहीं रहती। यह कहना अयुक्ति न होगा कि इस वंशका प्रभुत्व ही पञ्जाबराज्यके अधःपतनका अन्यतम कारण है।

जवाहिरसिंह इस बातको समझ गये थे। वजीर होते ही उन्होंने गुलाबसिंहसे तीन लाख रुपये मांगे और मृत सुचेतसिंह एवं हीरासिंहकी सम्पत्ति राज्यमें मिला ली। गुलाबसिंहने गत्यन्तर न देख खालसा सेनाकी शरण ली और उनको बहुत रुपये दिये। परन्तु इतने पर भी उन्हें शान्ति न मिली; उन्हें लाहौर जाना पड़ा। वहां उन्हें ६८००००) रुपये दण्डस्वरूप देने पड़े और न्यायप्राप्त जागीरोंके सिवा और सब वापस कर देनी पड़ी। इस तरह बहुत कुछ हानि सह कर उन्हें जम्बू लौट आना पड़ा।

गुलाबसिंहकी क्षमताका ह्रास हो जानेके कारण अब मुलतानका शासन करना अवश्यकर्त्तव्य हो गया। यहां मुलतानका थोड़ासा इतिहास लिखा जाता है, क्योंकि वह अग्नि मुलतानमें ही प्रज्वलित हुई थी, जिससे बादमें पञ्जाब भस्मीभूत हुआ। मुलतान पहले मुसलमान शासनकर्त्ताओंके अधीन था। १८०२ ई०में रणजितने इस पर पहला आक्रमण किया, किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट जाना पड़ा। बहुत कोशिश करने के बाद रणजितसिंहने १८१८ ई०में मुलतान अधिकार किया। उस समय यहां 'जमजमा' नामकी प्रसिद्ध और बड़ी तोप व्यवहृत होती थी, जो इस समय लाहौरके अजायब-घरमें मौजूद है। मुलतान अधिकार करनेके बाद वे एक व्यक्तिको नवाब नियुक्त कर लाहौर चले आये। इस समयसे लाहौरमें प्रतिवर्ष नियमित कर आने लगा। १८२१ ई०में सेवनमल मुलतानके नवाब हुए। ये विचक्षण शासनकर्त्ता थे। १८४४ ई०के सितम्बर मासमें सेवनमल मारे गये और उनके पुत्र मूलराज मुलतानके शासकर्त्ता हुए। इन्होंने लाहौर दरबारको नियमानुसार नजराना नहीं भेजा और न उसकी आज्ञाकी कुछ परवाह ही की। इस कारण लाहौर-दरबारने सेना भेजनेकी तैयारियां की। मूलराज डर गये और १८४५ ई०में १८ लाख रुपयेकी नजर भेंट की।

इधर अपमान और अपव्ययके कारण गुलाबसिंह जम्बूमें बैठे हुए जाल-जड़ित सिंहकी तरह अपने आप जल कर खाक हो रहे थे। वे जवाहिरसिंहसे बदला लेनेकी इच्छासे पेशोरासिंहके साथ षड़यन्त्र रचने लगे। काश्मीरासिंहकी मृत्युके बाद लाहौर-दरबारके विद्रोहमें संलिप्त रहनेके कारण पेशोरासिंहको अन्य कोई दण्ड न दिया गया था। उन्हें केवल लाहौरसे निकल जाने और गुजरानवालामें रहनेकी अनुमति दी गई थी। वे वहां शान्तिसे रहते थे, किन्तु गुलाबसिंहके परामर्शने उनकी राज्यलालसा बढ़ा दी। फौजके भरोसे तथा बाध्यतावश वे लाहौर आये। रानी झिन्दनने उन्हें आदरके साथ रक्खा। सैनिकोंकी पञ्चायतोंने भी उनका यथेष्ट सम्मान किया। इससे जवाहिरसिंह बड़े चिन्तित हुए और सेनाको रुपयोंका लोभ दिया। खालसा-सेना धनके वशमें थी, धनके वशीभूत हो उसने पेशोराको लौट जानेके लिए कहा। पेशोरासिंहको बाध्य हो कर लाहौर त्याग देना पड़ा। इस समय गुलाबसिंहने जवाहिरसिंहको पेशोरासिंहकी हत्या करनेके लिए परामर्श दिया। किन्तु सहसा ऐसा हो न सका। पेशोरासिंह सहसा अटकदुर्ग अधिकार कर राजाकी उपाधि ग्रहण कर बैठे। लाहौरसे सेना भेजी गई, पर उसने रणजितसिंहके पुत्रके विरुद्ध युद्ध करना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें दोनोंमें सन्धि हो गई। सन्धिके बाद ही पेशोरासिंह पकड़े गये और कैदमें डाल कर वे मार दिये गये। यह संवाद जब लाहौर पहुंचा, तो जवाहिरसिंह बड़े आनन्दित हुए। जवाहिरसिंहके मित्रोंने उनको आनन्द-प्रकाश करनेके लिए निषेध किया था, किन्तु होनहार बलवान् होती है। गुलाबसिंहके चर खालसा-सेनाको जवाहिरसिंहके विरुद्ध उत्तेजित करने लगे। सिक्ख-पञ्चायतने जवाहिरसिंहको दरबारमें उपस्थित होनेके लिए आह्वान किया। बहुत ऊहापोह करनेके बाद जवाहिर सिंह दलीपके साथ एक ही हाथी पर सवार हो सेनाके सामने आये। सेनाने उनको मार डालनेका निश्चय कर लिया था। सहसा दलीपको स्थानान्तरित

कर दिया गया और दूसरे मुहूर्तमें बन्दूककी गोलियोंसे जवाहिरसिंह मार दिये गये। रानी झिन्दनके विस्मय की सीमा न रही। सेना जवाहिरसिंहको मार कर ही शान्त हो गई, इस बार उसने और कुछ अहिताचरण कर अपनी क्षमता कलङ्कित न की। जवाहिरसिंह मारे तो गये, पर वजीर बनना अब किसीने भी स्वीकार न किया। गुलाबसिंह, तेजसिंह आदिने, खालसा-सेनाके व्यवहारसे डर कर सचिव पद अस्वीकार किया। अन्तमें स्थिर हुआ कि लालसिंहको मन्त्र-सचिव और तेजसिंहको प्रधान सेनापति नियुक्त कर महारानी झिन्दन ही राज्य-शासन करेंगी। इस तरह पञ्जाब-केशरी रणजितसिंहका समृद्ध राज्य दो कापुरुष और अकर्मण्य व्यक्तियोंके हाथ सौंपा गया।

खालसा-सेनाका प्रताप इस समय उच्छृङ्खलताको चरम सीमा तक पहुंच गया था। लालसिंह और तेजसिंह समझ गये थे कि जब तक खालसा-सेनाका अस्तित्व है, तब तक वे किसी तरह भी निरापद नहीं हो सकते। खालसा-सेना उनकी विलास-प्रियतामें सहायता नहीं पहुंचा सकती। ब्रिटिशराज्यकी सेनाके सिवा और किसीकी भी क्षमता नहीं, जो इस दुर्द्धर पराक्रमशाली खालसा सेनाओंको वश करे। परन्तु इस बातको वे प्रगट न कर सके; कारण जवाहिरसिंहका दृश्य उनके सामने नाच रहा था और यह भी निश्चित था कि वीर-केशरी रणजितसिंहके पुत्रकी खालसा-सेना कभी भी अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार करने न देगी। इतने पर भी लालसिंह और तेजसिंहने अपना उद्देश्य यही निश्चित किया, कि जैसे बने वैसे खालसा-सेनाका विनाश करना ही होगा। वे इसीका मौका ढढने लगे।

यदि खालसा सेना इतनी उच्छृङ्खल न होती और यदि वह अपनी उद्धतप्रकृतिके कारण अपने राजनीति-कुशल व्यक्तियोंका नाश न करती, तो शायद पञ्जाब राज्य इतनी जल्दी ब्रिटिश राज्यका शिकार न बनता, शायद अब भी हम पञ्जाबके सिंहासन पर दलीपसिंह-के वंशधरको देखते। जैसे रोमक-सेनाकी उच्छृङ्खलता रोम राज्यके अधःपतनका अन्यतम कारण हुई थी, उसी प्रकार खालसा सेनाकी उच्छृङ्खलता पञ्जाबके लिये हुई।

जिन सब कारणोंसे सिखोंके राज्यमें अंग्रेजों-का प्राबल्य होने लगा था, उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। इतनेमें और एक छोटा सा कार्य हो गया है। अभीष्ट साधनमें अकृतकार्य हो सुचेतसिंह फिरोजपुर भाग गये थे, वहां मरते समय वे पन्द्रह लाख रुपये जमीनमें गाड़ छोड़ गये थे। उनके अनुचरों-ने उक्त रुपयोंको हजम करना चाहा, किन्तु वे पकड़े गये। लाहोर-दरबारका नियम था कि 'निःसन्तान व्यक्तियोंकी सम्पत्ति राज्य कोषमें मिला ली जायगी।' इसके सिवा राज-विद्रोहीकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली जाती थी। इस नियमके अनुसार लाहोर दरबारने सुचेतसिंहके उक्त अर्थ पर अपना अधिकार निर्द्धारित किया। परन्तु न्यायपरायण ब्रिटिश-सरकारके मतसे स्थिर हुआ, कि सुचेतसिंह राजद्रोही हैं तो क्या, उनकी सम्पत्ति राजकोष-भुक्त नहीं हो सकती और लाहोर-दरबार जिस सम्पत्ति पर अपना अधिकार बतलाता है, उसका विचार ब्रिटिश-अदालतमें प्रकाश्यभावसे होगा। सिखों-ने इस तरहके नीतिबहिर्भूत आदेशका भी अनुमोदन किया था। विचार हुआ और भारतीय रीतिनीतिके अनु-सार सुचेतसिंहके अर्थ पर लाहोर-दरबारका पूर्ण अधि-कार भी प्रमाणित हुआ, किन्तु अर्थ लौटाया नहीं गया। उसके बाद सीमान्तप्रदेशमें अंग्रेज लोग क्रमशः अपना बल बढ़ाने लगे। औद्धत्य और छलसे उन्होंने फिरोज-पुरको अपनी मुट्ठीमें कर लिया; लुधियाना, सिवाथु और अम्बालामें भी सेना बैठा दी। सिन्धुदेश भी अंग्रेजों-के हाथ लग गया। १८३८ ई०में सीमान्त प्रदेशमें २५०० अंग्रेजी सेना थी जो क्रमशः बढ़ती हुई ३२००० हो गई। इसके अलावा १०००० सेना मेरठमें रक्खी गई थी। इन्हीं सब कारण-कलापोंसे सिखोंको संदेह हुआ 'कि अपने राज्यकी रक्षा करना अङ्गरेजोंका उद्देश्य नहीं है; आस-पासके राज्योंको ग्रास करना ही उनका अभिप्राय है।' इसके सिवा उस समय रणजित-सिंहके राज्यका भविष्य क्या होगा, इस विषयमें भी प्रकाश्यरूपसे वादविवाद चल रहा था। सर विलि-

यम मेक्‌नटन्‌ने घोषणा की थी कि रणजितसिंहके पौत्र-को मृत्युके बाद पेशावर राज्य शाहसूजाको सौंपा जायगा। १८४६ ई०में मेजर ब्रडफूट सोमान्तप्रदेशके ब्रिटिश प्रतिनिधि नियुक्त हुए। इन्होंने घोषणा की कि पतियाला आदि लाहोरके अधीनस्थ राज्योंने अंग्रेजों-का आश्रय ग्रहण किया है; इसलिए वे दलीपसिंहको मृत्यु वा पदच्युतके बाद ब्रिटिश-अधिकारमें आ जायेंगे। इसी समय शतद्रू नदी पर नावोंका पुल बाँधनेके लिए जो नावें बन कर तैयार हुई थीं, उनमें समस्त सेना भर कर फिरोजपुरको तरफ भेज दी गई। मुलतानके शासनकर्त्ता मूलराजके साथ भी ब्रडफूट साहबका गुप्त पत्रव्यवहार चल रहा था। सिंधु-विजेता सर चार्ल्स नेपियरने भी कहा था, कि अंग्रेजों-को पञ्जाबमें प्रवेश करना ही पड़ेगा। इन कार्यकलापों-को देख कर सिख-जातिने यह निश्चय कर लिया कि अंग्रेजोंसे युद्ध अवश्यम्भावी है। टासलकामी, विश्वासघातक दोनों सचिव इस अग्निमें घीका काम करने लगे। इसी समय सोमान्त प्रदेशमें तदानीन्तन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिञ्जको शीघ्र आनेकी खबर सुन कर सबके सब दंग रह गये। युद्धको अनिवार्य समझ, १७ नवेम्बरको सिख जातिने अंग्रेजोंके विरुद्ध घोषणा निकाल दी। ११ दिसम्बरको वे शतद्रु पार कर १४ दिसम्बरको फिरोजपुरके पास पहुंच गये और वहीं पड़ाव डाल दिया। इस तरह प्रथम सिख युद्ध का सूत्रपात हुआ।

मुदकी, फिरोजशहर, बदुआल, अलीवाल और सोबरा-ह्न आदि स्थानोंमें कई एक भीषण युद्ध हुए। सिख-सेनापतियोंके षड़यन्त्रसे महावीर सिख जाति परास्त हो गई। अंग्रेजी फौज शतद्रुके उस पार धावित हुई। गव-र्नर जनरल लार्ड हार्डिञ्जने कसूरसे १४ फरवरी (१७४६ ई०)को घोषणा की कि "जब तक सिख लोग अंग्रेजोंके साथ अपनी सन्धि भङ्ग करनेका समुचित दण्ड न देंगे, तब तक पञ्जाब राज्य अंग्रेजोंके अधिकारमें रहेगा।"

सिखोंने इस बातकी कल्पना भी न की थी, कि सोबराहनमें जय प्राप्त करनेके बाद ही अंगरेज लोग इतनी जल्दी शतद्रु पार हो कर लाहोरकी ओर अग्रसर होंगे। अब बड़े लाटकी घोषणा सुन कर लाहोर दर-बार बड़ी चिन्तामें पड़ गया। जिसमें अंगरेजी फौज लाहोर न आ सके, ऐसा बन्दोबस्त करनेके लिए गुलाब-सिंह शीघ्र ही कसूर भेजे गये। परन्तु लाटसाहबने गुलाबसिंहको एक भी न मानी और कहा, "लाहोरके सिवा हम अन्य किसी भी स्थान पर सिखोंसे सन्धि न करेंगे।" गुलाबसिंह विफल-मनोरथ हो लौट आये और सोचने लगे, शायद बालक दलीपसिंहको अंगरेज शिविरमें पहुंचा देनेसे अंगरेजोंका लाहोर आना रुक सकता है। यह सोच कर वे दिलीपको ले चले। उस समय अंगरेजी सेना कसूरसे रवाना हो कर ललिया नदी पार कर चुकी थीं; वहाँ दलीपसिंह बड़े लाटके सामने पहुंचाये गये। महामान्य हार्डिञ्जने दलीप-सिंहके साथ बड़े आदरका बरताव किया और कहा, "जिस नरपतिने अंगरेजोंके साथ तीस वर्ष तक अवि-च्छिन्नभावसे सद्भाव रक्खा है, उन्हींके वंशधर पञ्जाबके राजा हों, यही हमारा अभिप्राय है।"

उस समय बड़े लाटने सरदारोंके प्रति लक्ष्य रख कर कहा था कि "दलीपसिंहको राज्याभिषिक्त किया जायगा; परन्तु विपाशा और शतद्रुके मध्यस्थ प्रदेश विजेताके राज्यमें शामिल किया जायगा और युद्धकी क्षतिपूर्तिके लिए पञ्जाबराज्यसे डेढ़ करोड़ रुपये वसूल किये जायेंगे।" बहुत वाद-विवादके बाद, इच्छा न होने पर भी सिख सामन्तोंको लाटसाहबके प्रस्ताव पर सहमत होना पड़ा। परन्तु बड़े लाटने निश्चय किया कि सिखोंकी राजधानीमें ही सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर होंगे। लिहाजा सिख सरदारोंको दलीपसिंहके साथ लाहोर लौट आना पड़ा। २० फरवरीको अंगरेजी फौज सिखोंकी राजधानीमें उपस्थित हुई। उसी दिन गवर्नर-जनरलके आदेशानुसार सर हेनरी लारेन्स, सर फ्रेडरिक कैरि और विलियम एडवर्ड्‌स् दलीपसिंहको पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित करनेके लिए आये। महा-समारोहके साथ दलीपसिंह पञ्जाबके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। दूसरे दिन राज-प्रासादमें एक दरबार लगा, यहाँ दलीपसिंह और उनके अमात्यवर्गने गवर्नर जनरलके साथ सादर सम्भाषण कर उनके सदयाचरण

को यथेष्ट प्रशंसा की। इसे दरबारमें बड़े लाटने सुप्रसिद्ध 'कोहिनूर' देखनेकी इच्छा प्रकट की। गुलाबसिंह स्वयं उस रत्नको लाये और लार्ड हार्डिञ्जको दिखलाया। शताधिक अंगरेज राजपुरुषोंने उस अतुलनीय हीरेको देखा और आश्चर्यान्वित हो कर उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे। तारीख ८ मार्चको सिख-दरबार और अंगरेजोंमें पहली सन्धि हुई, जिसमें स्थिर हुआ कि सिख-महाराज शतद्रुके दक्षिणस्थ प्रदेशोंका स्वत्व बिलकुल छोड़ देंगे विपाशा और शतद्रुके मध्यस्थ प्रदेशों पर अंगरेजोंका अधिकार होगा। युद्धकी क्षतिपूर्तिके लिए डेढ़ करोड़ रुपये देनेमें असमर्थ होनेके कारण सिख-दरबारने एक करोड़ रुपयेके बदले फिलहाल काश्मीर और हजाराके साथ विपाशा और सिन्धु नदके मध्यवर्ती समस्त प्रदेश देना स्वीकार किया तथा बाकी पचास लाख रुपये नगद देने कबूल किये। इसी समयसे सिख-राज्यको १२ हजार अश्वारोही और २० हजार प्यादे रखनेकी अनुमति दी गई और कहा गया कि वृटिश गवर्मेण्टकी बिना अनुमति लिए यह संख्या बढ़ाई नहीं जा सकती। ब्रिटिश गवर्मेण्ट सिखदरबारके आभ्यन्तरिक राजकार्यमें हस्तक्षेप न करेगी। परन्तु यदि किसी विषयमें मध्यस्थताकी आवश्यकता पड़े, तो ब्रिटिश-गवर्मेण्ट सिख-राज्यके मङ्गलके लिए अपनी सलाह दे कर सिख दरबारकी सहायता करेगी।

थोड़े ही दिनोंमें सिख दरबारने बाकी पचास लाख रुपये चुका दिये। इसी समय महारानी झिन्दनने उद्धतस्वभाव सिखोंकी कार्यावलीसे डर कर गवर्नर-जनरलको लिख भेजा कि 'हमें और हमारे पुत्र दलीपको सिखोंके हाथमें न रख ब्रिटिशसीमामें अथवा कलकत्तेके गवर्मेण्ट-हाउसमें रखना ही दोनोंके लिए मङ्गलजनक है।' महारानीके अनुरोधानुसार सिख-दरबारके प्रधान प्रधान राज-पुरुषोंने लार्ड हार्डिञ्जसे लाहोर दरबारकी रक्षाके लिए अनुरोध किया कि कुछ दिन ब्रिटिश-सेनाको यहीं रहने दें', तो अच्छा हो।

तारीख ८ मार्चको गवर्नर जनरलके शिविरमें एक सभा हुई, जिसमें दलीपसिंह और प्रधान प्रधान सिख-सरदार उपस्थित थे। बड़े लाटने सबको लक्ष्य करके कहा "वृटिश-गवर्मेण्ट सिखोंके राजकार्यमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहती, ब्रिटिश-सेना प्रस्थान करनेके लिए तैयार है। परन्तु लाहोर-दरबारके अनुरोधसे हमने उसे कुछ दिन और रखनेके लिए स्वीकारता दी है। गुरुतर राजकार्य-संशोधनके विषयमें भले-बुरेका भार सिख-दरबार पर छोड़ते हैं। हम यथासाध्य सहायता करनेके लिए तैयार हैं, किन्तु सिख सरदारगण यदि लापरवाही करेंगे तो उनके राज्यकी रक्षा करनेमें ब्रिटिश-गवर्मेण्ट किसी तरह भी समर्थ न होगी।" लार्ड हार्डिञ्जका सदुपदेश सुन कर सभी सरदारोंने कृतज्ञता स्वीकार की।

दूसरे दिन लार्ड हार्डिञ्जने राज-प्रासादमें जा कर महाराज दलीपसिंहसे साक्षात् किया।

तारीख ११को एक सन्धि हुई, जिसमें निर्णीत हुआ कि सिख-सेनाके संशोधन और संस्कारके लिए ब्रिटिश-गवर्मेण्ट वर्त्तमान वर्षके अन्त तक महाराज और लाहोरवासियोंकी रक्षाके लिए अपनी सेना लाहोरमें ही रक्खेगी।

सिख-राज्यकी रक्षा तो हुई पर नवीन राजा दलीपसिंहके प्रतिनिधि स्वरूप कौन राज्यशासन करेगा, यह प्रश्न हल न हुआ। इस समय यदि गुलाबसिंह मन्त्री बनाये जाते तो कुछ गड़बड़ी न होती, किन्तु सिख-राजमाताके संवर्द्धित लालसिंह, महारानी झिन्दनकी कृपासे, सचिव बन गये। वे मन्त्री तो हुए, पर सब उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। उनके सम्बन्धी और खुशामदी लोग निकृष्ट उपायोंसे प्रजाका खून चूसने लगे। कुछ भी हो, शीघ्र ही लालसिंहका अधःपतन हुआ।

लालसिंह देखो।

दरबारके प्रधान सभ्योंने, बालक दलीपसिंहकी नाबालिग अवस्था तक, ब्रिटिश-गवर्मेण्टसे पञ्जाबका शासनभार ग्रहण करनेके लिए अनुरोध किया। लार्ड हार्डिञ्जने इस अनुरोधकी रक्षा की। १६ दिसम्बरको और एक सन्धि हुई, जिसमें स्थिर हुआ कि "गवर्नर-जनरलके प्रतिनिधि स्वरूप लाहोरमें एक अंग्रेज रेसिडेण्ट रहेंगे। प्रत्येक राजकीय कार्यमें उनकी पूर्ण क्षमता होगी। कई एक दक्ष व्यक्ति रेसिडेण्टके सहकारी कार्यकर्त्ता बनाये जायेंगे। जिससे पञ्जाबवासियोंकी जातीय

प्रथा और आचार व्यवहारकी रक्षा हो एवं सबका न्याय्य-स्वत्व कायम रहे, उसके लिए ब्रिटिश-गवर्मेण्ट विशेष ध्यान दिया करेगी। रेसिडेण्टके परामर्शानुसार सदस्यगण राजकार्य चलावेंगे महाराजकी रक्षा और राज्यमें शान्तिस्थापन करनेके लिए गवर्मेण्ट लाहोरमें इच्छानुसार सेना रख सकेगी, जिसके लिए पञ्जावराज्य वार्षिक २२ लाख नानकशाही रुपये ब्रिटिश-गवर्मेण्टको दिया करेगा। महाराज दलीपसिंहकी जननी और उनकी परिचारिकाओंके भरणपोषणके लिए सिख-दरबार वार्षिक डेढ़ लाख रुपये दिया करेगा। जब तक दलीपसिंह नाबालिग हैं, तब तक दोनों पक्षोंको इसी सन्धिके नियमानुसार चलना पड़ेगा।" १८५४ ई०के ४ सितम्बरको महाराज दलीपसिंहके षोडशवर्षमें पदार्पण करने पर इस सन्धिके नियमोंसे दोनों पक्ष मुक्त हो गये। इतिहासोंमें यह सन्धि 'भैरोवाल' नामसे प्रसिद्ध है।

इस प्रकार बालक दलीप ब्रिटिश-गवर्मेण्टके आश्रित हुए। लार्ड हार्डिञ्ज जब तक भारतमें थे, तब तक उन्होंने सिख राज्यके प्रति यथेष्ट उदारता दिखलाई थी। महामति सर हेनरी लारेन्सने उस समय पञ्जावके शासन और बालक दलीपके रक्षण-वेक्षणका भार ग्रहण किया था। इन्हीं महानुभवके प्रयत्नसे सिख-राज्यमें शान्ति हुई थी। यद्यपि वे महाराज दलीपको यथेष्ट स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे, तथापि महारानी भिन्दन प्रतिनिधि-सभाके विरोधमें थी। महारानी भिन्दन कई बार रेसिडेण्टकी इच्छाके विरुद्ध कार्य कर चुकी थीं, किन्तु लारेन्स उनके विरोधी न हुए थे। अन्तमें लार्ड हार्डिञ्जको रानीके आचरणका संवाद मिलने पर, उन्होंने महाराज दलीपको मातासे पृथक् रहनेका आदेश दिया। दलीपसिंहने, मातासे पृथक् होने पर भी, अंग्रेजोंके साथ पूर्ववत् शिष्टाचार और नम्रतासे पेश आये। वास्तवमें लार्ड हार्डिञ्ज और सर हेनरी लारेन्स महाराज दलीप पर जनककी तरह स्नेह रखते थे; किन्तु दलीपके दुर्भाग्यसे ये दोनों ही महानुभव थोड़े दिन बाद भारतभूमि त्याग कर विलायत चले गये।

लार्ड हार्डिञ्जके बाद अब पर-राष्ट्रलोलुप मार्कीस-ऑफ डलहौसी गवर्नर जनरल हो कर भारत पधारे। उस समय सम्पूर्ण भारतवर्षमें पूर्ण शान्ति विद्यमान थी एवं लाहोरकी रेसिडेण्ट सर एफ० करि थे और उनके सहकारी सर हेनरी लारेन्सके भाई जन लारेन्स।

उन दिनों मुलतानके शासनकर्ता थे मूलराज। ये भी सिख दरबारके आचरणसे असन्तुष्ट हो कर विद्रोही हो गये। इस समय लाहोरके रेसिडेण्ट यदि विलम्ब न करके शीघ्र ही सेना भेज देते, तो सम्भवतः विद्रोह दब जाता; किन्तु उनके विद्रोह दमनमें विलम्ब करनेके कारण पञ्जाब राज्यके भावी अनिष्टपातकी सूचना हो गई।

इसी समय महारानी भिन्दन शेखोपुर दुर्गमें निर्वासित हुई एवं छत्रसिंह नामक सिख साम्राज्यके एक विशिष्ट सम्भ्रान्त सरदारकी कन्याके साथ जो दलीपका विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ था, वह भी रेसिडेण्ट द्वारा उपेक्षित हुआ। इसके सिवा उक्त छत्रसिंहके साथ अंग्रेजोंने बड़ा दुर्व्यवहार किया; * जिसके कारण १८४८ ई०में दूसरी बार सिख युद्ध हुआ। यद्यपि यह युद्ध ब्रिटिशगवर्मेण्टकी असावधानताके कारण ही हुआ था, तथापि गवर्नर जनरल डलहौसी इस बार पञ्जाब राज्य ग्रास करनेके लिए अग्रसर हुए। युद्धकी सूचना पाते ही प्रधान सेनापति लार्ड गफ पञ्जाब पहुंचे। दलीपसिंहका सौजन्य देख कर वे मुग्ध हो गये।

रामनगर, साहदुल्लापुर और चिलियनवालाके युद्धमें सिखसेनाका अद्भुत रणनैपुण्य और अजेय ब्रिटिशसेनाकी पराजय देख कर ब्रिटिश गवर्मेण्ट और समस्त भारत विचलित हो गया था। इस संवादके इङ्गलैण्ड पहुंचने पर वहाँके कोर्ट-आफ डिरेक्टर लोग सिन्धुविजेता नेपियरको प्रधान सेनापतिका पद देनेके लिए तैयार हो गये थे। कुछ भी हो, वीरवर लार्ड गफके अद्भुत रण-कौशलसे गुजरातके युद्धमें सिखसेनाने, अलौकिक वीरता दिखलाते हुए पराजय स्वीकार कर ली। इस युद्धमें लाहोर दरबारके अधिकांश सरदारोंके योग न देने पर भी और उस समय पञ्जाब-राज्य सम्पूर्णरूपसे ब्रिटिश-के करतलाधीन होने पर भी लार्ड डलहौसीने दलीप-

* इसका विवरण 'शेरसिंह' शब्दमें देखना चाहिये।

को राज्यच्युत कर पञ्जाबको ब्रिटिश शासनाधीन कर दिया।

दलीपसिंह

१८४९ ई०, २९ मार्चको लाहोर-राज-दरबारका शेष अधिवेशन हुआ, इस दिन अभिभावक अंग्रेजोंके रक्षणाधीन रणजितसिंहके पुत्र महाराज दलीप सिंहने पैतृक सिंहासन पर बैठ कर अन्तिम अधिवेशन समाप्त किया। इस अधिवेशनमें सिखसरदारगण दीन हीन वेशमें उपस्थित हुए थे।

अब क्या था, दलीपसिंहके सर्वनाशको तैयारियां होने लगी। पर राज्यलोलुप अंग्रेज प्रतिनिधिने महा राज रणजितसिंहके एक मात्र उत्तराधिकारी जीवित पुत्र बालक दलीपसिंहको सन्धि पर हस्ताक्षर करनेके लिए आदेश दिया। दीवान दीनानाथने शिशु नृपति पर अत्याचार न करनेके लिए और एक बार प्रार्थना की; किन्तु अंग्रेज राजपुरुषोंने उनकी बात पर तनिक भी ध्यान न दिया। अज्ञान बालक दलीपसिंहने, अभि-भावक अंग्रेज-राजके आदेशानुसार अपने सर्वनाशपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। सन्धिपत्र पर निम्नलिखित शर्त लिखी गई थीं—

१। महाराज दलीपसिंहने स्वयं एवं उनके उत्तरा-धिकारियोंकी तरफसे पञ्जाबका सब हक छोड़ दिया।

२। लाहोर दरबारका कर्ज चुकानेके लिये दरबार-की सारी सम्पत्ति इष्टइण्डिया कम्पनीको दी जाती है।

३। 'कोहिनूर' इङ्गलैण्डकी रानीको दिया जायगा और महाराजा दलीपसिंह अपने लिये तथा अपने ज्ञाति एवं अनुचरवर्गके भरणपोषणके लिये कंपनीसे ज्यादासे ज्यादा पांच लाख और कमसे कम चार लाख रुपयेकी वार्षिक वृत्ति लिया करेंगे।

४। सिख-राज आजन्म 'महाराज दलीपसिंह बहा-दुर' यह उपाधि काममें ला सकेंगे। महाराज दलीप-सिंह वहीं वास कर सकेंगे, जहांके लिए गवर्नर-जनरल आज्ञा दें।

इस प्रकार अन्यायरूपसे शिशु-महाराज दलीपसिंह अपने पैतृक सम्पत्तिसे वञ्चित किये गये। डलहौसी देखो।

१८४९ ई०में शिशु दलीपके अभिभावक द्वारा सर्व-स्वान्त होने पर जन लोगिन् नामक एक अंग्रेज डाक्टर उनके शिक्षक और तत्त्वावधायक नियुक्त हुए। दलीपके प्रासादके समीप ही उनका वासस्थान निर्दिष्ट हुआ। अब तक दलीपसिंह बारहवें वर्षमें ही थे। इतनी कम उम्रमें उन्होंने फारसी भाषा सीख ली। अंग्रेजी सीखने-का भी उन्हें आग्रह था।

लोगिनके सदय व्यवहारसे दलीप थोड़े ही दिनोंमें उनके पक्षपाती हो गये। उन्हें हमेशा लोगिनके साथ रहना पसन्द था। बिना लोगिनको साथ लिये वे कभी भी बाहर हवा खाने नहीं निकलते थे। वास्तवमें लोगिन भी दलीप पर खूब स्नेह करते थे। बालक दलीपने इतनी कम उम्रमें जिस धी-शक्तिका परिचय दिया था, उससे लोगिन्को यह स्वीकार करना पड़ा था कि— 'अंग्रेज बालक इस उम्रमें ऐसी बुद्धिका परिचय देनेमें अक्षम हैं'। आमोद-प्रमोदमें दलीपको बाजपक्षीका शिकार और चित्रपटादि अङ्कन करना पसन्द था। १८४९ ई०की ११ दिसम्बरको गवर्नर-जनरलने दलीपसिंहको पञ्जाबसे फतेगढ़ चले जानेके लिए आदेश किया। इसी समय बड़े लाटके आदेशानुसार राजा शेरसिंहके एक-मात्र पुत्र जिसकी उम्र साढ़े छः वर्षकी थी, कुमार

शिवदेव भी दलीपके साथ स्थानान्तरित किये गये। १८५० ई०के फरवरी मासमें दलीप, शिवदेव और उनकी माता रानी दखनूके साथ फतेगढ़ आ गये।

गङ्गाके समीप एक साधारण प्रासाद दलीपके लिए निर्दिष्ट हुआ। दलीपके शिक्षक महात्मा लोगिन्‌ने निकटवर्त्ती बंगलेको खरीद कर, दलीपके लिए वहां एक उद्यान बनवा दिया। यहां दलीपकी शिवदेवके साथ गाढ़ी मित्रता हो गई। १८५० ई०में लोगिन्‌ने दलीपके विवाहके लिए प्रस्ताव किया। परन्तु दलीपकी सम्मति न होनेके कारण विवाह स्थगित रहा। लोगिनकी शिक्षाके प्रभावसे दलीप अङ्गरेजी शिक्षा और अंग्रेजी रीति नीतिका अनुकरण करना खूब पसन्द करते थे। थोड़े दिनोंमें उन्हें ईसाई धर्म पर श्रद्धा हो गई और उसे धारण करनेकी अभिलाषा भी जग उठी।

१८५२ ई०में दलीपसिंहको हिन्दुस्तानके प्रधान प्रधान स्थानोंमें परिभ्रमण करनेकी इच्छा हुई। वे प्रच्छन्नभावसे थोड़े आदमियोंके साथ फतेगढ़से निकल पड़े। सिर्फ शिवदेवकी माता उनके साथ नहीं गई थी, वे कुछ दिनोंके लिए पोहरमें रही थीं।

दलीप यद्यपि गुप्तभावसे निकले थे, तथापि उन्हें देखनेके लिए रास्तेमें बहुत लोगोंका समागम हुआ था। दिल्ली, आगरा, मेरठ, रुरकी, सिकन्दरा आदि स्थानोंमें परिभ्रमण करते हुए हिन्दुओंके पवित्र तीर्थ हरिद्वार पहुंचे। इस समय हरिद्वारमें यात्रियोंकी बहुत भीड़ थी, नाना स्थानोंसे नाना जातीय लोग उपस्थित थे, इस लिए दलीपके प्रकाश्यभावसे वहां भेजनेमें गवर्मेण्टको शङ्का हुई। दलीप यद्यपि अति गुप्तभावसे हरिद्वार पहुंचे थे, तथापि कुछ सिखोंने उन्हें पहचान लिया और उनकी मङ्गलकामनाके लिए जयध्वनि करने लगे। गवर्मेण्टने इस भयसे कि पीछे कुछ गड़बड़ी न हो, दलीपको अंग्रेज-शिविरमें पहुंचा दिया। वर्षाके प्रारम्भमें ये मसूरी पहुंच गये। वहां ये प्रतिदिन प्रातःकालके समय ४।५ कोस तक पैदल भ्रमण करते थे। बसन्तकाल तक मसूरीमें ही बिता कर पीछे ये बान्धव सहित फतेहगढ़ लौट आये।

१८५३ ई०की ८वीं मार्चको, ये अपना धर्म छोड़ कर ईसाई बन गये। जर्डन नदीके जलके बदले गङ्गाजल छिड़क कर उनका धर्मान्तर-ग्रहण कार्य सम्पन्न किया गया। इस समय बहुतसे अंग्रेजों और इस देशके ईसाइयोंने मङ्गलकामनार्थ इन्हें पत्र भेजे थे। दलीपकी विलायत जानेकी इच्छा पहलेसे ही थी। लोगिन्‌ने यह बात लार्ड डलहौसीको लिखी। १८५४ ई०के प्रारम्भमें कोर्ट-ऑफ-डिरेक्टरकी अनुमति ले कर गवर्नर-जनरलने दलीप को विलायत जानेकी आज्ञा दे दी। शिवदेव भी दलीपसिंहके साथ विलायत जानेके लिए तैयार थे। परन्तु १८५४ ई०में (ग्रीष्मऋतुमें) जब दलीप विलायत जानेके लिए कलकत्ता आये, तब शिवदेवकी माताने शिवदेवकी विलायत-यात्राके विरुद्ध आवेदन-पत्र भेजा, जिससे उनका जाना रुक गया। दलीपको गवर्नर-जनरलने अपने प्रासादमें आमन्त्रण कर उनका खूब स्वागत किया था।

१८५४ ई०, १८ अप्रेलको दलीपसिंह विलायत जानेके लिए जहाज पर सवार हुए। लोगिन् और पण्डित नेमियागोरे नामक एक ब्राह्मण-जातीय ईसाई उनके साथ गये। दलीपसिंह इंग्लैण्डमें अपनी जातीय पोशाक काश्मीरी कुर्ते पर जरीदार मखमलका कोट और जरीदार पतलून, शिर पर रत्न जड़ित शिरपेच, कानोंमें पन्नोंकी बोरबली और गलेमें मोतियोंकी तिलड़ी पहना करते थे। इंग्लैण्डकी महारानीके स्वामी प्रिन्स अलबर्ट इनके साथ सर्वदा वार्तालाप करते रहते थे और अक्सर इन्हें वकिङ्हम प्रासादमें ले जाकर उनकी तसबीर खिचवाते थे। एक दिन इस प्रकार चित्र तसबीर उतारते वक्त महारानी विक्टोरियाने बीबी लोगिन्‌से पूछा 'महाराज क्या कोहिनूरके विषयमें कभी कुछ पूछते हैं? इस विषयमें महाराज जो कुछ कहें मुझसे सब कहना।' अवसर मिलने पर एक दिन बीबी लोगिन्‌ने दलीपसे पूछा, 'आप क्या कोहिनूर देखनेकी इच्छा रखते हैं?' दिलीपने उत्तर दिया, 'हां, मैं और एक बार उसे हाथमें लेना चाहता हूं।'

एक दिन दलीपसिंह राजप्रासादमें चित्रकरके पास चुपचाप बैठे थे, इतनेमें महारानी विक्टोरिया हाथमें

कोहिनूर लिये दलीपके सामने पहुंचीं। दलीपने बड़े आश्चर्यके साथ उसे हाथमें लिया। इंग्लैण्डेश्वरीने दलीपसे पूछा, "आप क्या इसे पहलेको अपेक्षा उत्तम देख रहे हैं?' दिलीपने धीरतासे यह कह कर 'इसकी ज्योति तो कुछ बढ़ी है, पर आकार छोटा हो गया है।" कोहिनूर नम्रभावसे महारानीके हाथमें दे दिया और पुनः चित्रकारके पास बैठ गये। इस समय उनके मुंहका भाव तनिक भी परिवर्तित न हुआ था। महारानी तथा अन्यान्य सभी उनके शान्तभावको देख कर चमत्कृत हो गये थे।

महारानी दलीपके आचरणसे इतनी सन्तुष्ट हुई थीं कि उन्होंने लोगिनको दलीपका इतिहास लिखने की अनुमति दी। कभी कभी महारानीके पुत्र और राजकुमारियां भी दलीपके साथ नाना प्रकार क्रीड़ा किया करती थीं। धीरे धीरे राजकुमारोंके साथ दलीप का सौहार्द हो गया। महारानी दलीपको उनके जन्मदिनके उपलक्षमें बहुमूल्य उपहार दिया करती थीं। इस तरह इंग्लैण्डके राजपरिवारके स्नेहमें दलीपसिंह परम सुखसे दिन बिताने लगे। इसी समय कूर्ग राजकुमारीके साथ इनकी मुलाकात हुई। किसी समय लोगिन् उनके साथ दलीपका विवाह करना चाहते थे। दलीपसिंह उक्त राजकुमारीके गुणोंके पक्षपाती होने पर भी, उनसे विवाह करनेकी इच्छा न रखते थे। उस समय लार्ड हार्डिंज इंग्लैण्डके प्रधान सेनापति थे। उन्होंने दलीपको निमन्त्रण दे कर केण्ट नगरमें बुलवाया। वहां दलीपने बड़े आनन्दसे ७ दिन बिताये। वास्तवमें इंग्लैण्डके लोग दलीपसिंहका सम्मान वहांके राज-परिवारके समान करते थे।

अब तक दलीपसिंह नाबालिग थे। शीघ्र ही बालिग होंगे; फिर उनके लिए कैसा बन्दोबस्त किया जायगा, यह जाननेके लिए वे बड़े व्यग्र थे। लोगिनने इस विषयको जाननेके लिये १८५४ ई०के चैत्र मासमें लार्ड डलहौसीको लिखा—"महाराजको इच्छा है कि भविष्यमें उन्हें कोई भू-सम्पत्ति न दी जाय। १८४८ ई०की सन्धिके नियमानुसार उन्हें पांच लाखके भीतर रुपये मिलने चाहिए। उनके परिवारवर्गमें यदि किसीको मृत्यु हो जाय और उसको वृत्तिके जो रुपये बचें वह दलीपको मिलने चाहिए।" लार्ड डलहौसीने उत्तरमें लिखा, कि दूसरेको वृत्तिके रुपये उन्हें नहीं मिल सकते।

इसके बाद दलीपसिंहने विद्याचर्चा और सत्कार्यमें मन दिया। उन्होंने अमृतसरके निकटवर्ती विद्यालयके छात्रोंको पारितोषिक-वितरणके लिए १०००) रु०, विलायतमें निःस्वार्थ परोपकारियोंकी सभामें १०००) रु० और इंग्लैण्डके दरिद्रोंको ५०००) रु० दिए तथा अपने स्थितिकाल तक वहां वार्षिक २५०००) रु०के दानका बन्दोबस्त कर दिया।

इसके कुछ समय बाद ये स्काटलैण्डके मेञ्जिस दुर्गमें जा कर कोर्ट-आफ-डिरेक्टरोंके साथ बड़े आनन्दसे रहे। यहां उनके साथ बहुत सी संभ्रान्त महिलाओंने वार्तालाप किया था; किन्तु दलीपसिंह विलायती ललनाओंकी प्रशंसामें मुग्ध नहीं हुए थे—रमणीके कूटजालमें उनका चरित्र कलङ्कित नहीं हुआ था। यही दलीपसिंहके महत्त्वका परिचय है।

दिलीपसिंह दो वर्षके लिए विलायत गये थे। १८५६ ई०के दिसम्बर महीनेमें जेनोआ और फ्लोरेन्स होते हुए वे इटलीको राजधानी रोमनगरीमें पहुंचे। महानुभव पोपने दलीपके सम्मानार्थ, राजप्रासादमें जहां सुन्दर प्रतिमूर्त्तियां थीं वहां रोशनी लगानेके लिए आदेश किया। रोमसे फिर वे नेपल्स पम्पियर, आग्नेयगिरि विसुवियस गये और जिनेभा होते हुए इंग्लैण्ड पहुंचे।

इंग्लैण्डमें आकर उन्होंने सुना कि अयोध्या ब्रिटिशके अधीन हो गया है। अयोध्याके नवाब वाजिदअली शाहको अङ्गरेजोंने १५ लाख रुपयेको वृत्ति देना स्वीकार किया है। इसके सिवा उनके परिवारवर्गके भरण-पोषणके लिये गवर्मेण्टको ओर भी बहुत रुपये देने पड़ेंगे। स्वाधीन सिखराज्यके अधिपति वीरवर रणजितसिंहके पुत्र और उनके परिवारवर्गके लिए कुल पांच लाखका बन्दोबस्त होनेके बाद उन्होंके आलसी सामन्तराजको विलासिताके लिए ब्रिटिश-गवर्मेण्टका वृत्तिस्वरूप १५ लाख रुपया देना दलीपको बहुत बुरा लगा; उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। भविष्यमें

अच्छी व्यवस्था हो सकती है, इस आशासे उन्होंने क्लारिज होटलसे १८५६ ई०के ८ दिसम्बरको कोर्ट-आफ डिरेक्टरोंके सभापतिको एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था—"दश वर्षकी उमरमें मैं अपने अभिभावकके आदेशानुसार पञ्जावराज्य अङ्गरेजोंको देनेके लिए बाध्य हुआ था। उस समय अभिभावक और मन्त्रियोंके परामर्शसे सन्धिकी शर्तें अच्छी ही मालूम पड़ी थीं। अब आशा करता हूं, कि मेरे पूर्वपद और वर्त्तमान अवस्थाका विचार करके मेरे सम्मानके योग्य न्याय्य बन्दोवस्त किया जायगा।" सभापतिने इसके उत्तरमें यह लिख भेजा कि "भारतवर्षसे खबर मंगा कर उत्तर दिया जावेगा; किन्तु सन्धिके नियमानुसार जो आप अपने इच्छानुसार वासस्थानके विषयमें पराधीन थे, उससे मुक्त किए जाते हैं।" मई मास तक ठहर कर वे अपने विषयमें कोर्ट-आफ डिरेक्टरोंसे पूछना ही चाहते थे, कि इतनेमें (जुन मासमें) संवाद पहुंचा कि 'भारतवर्षमें भीषण सिपाही-विद्रोह फैल गया है। इस कारण उन्होंने पत्र लिखना स्थगित रक्खा।

इस समय विण्डसर और अस्वरनके राजप्रासादमें प्रायः दलीपका निमन्त्रण हुआ करता था। युवराज और राजकुमार अलफ्रेड अलवरटनमें आ कर दो तीन बार क्रोकेट खेलते थे और उनका फोटो लिया करते थे।

१८५६ ई०के अन्तमें विलायतकेकुछ धूर्तोंने दलीपके नामसे रानी झिन्दनको पत्र लिखा। उस समय दलीपकी माता नेपालमें थीं। (झिन्दन देखो। संयोगवश वह पत्र जङ्गबहादुरके पास पहुंच गया। उन्होंने उसे नेपालके व्रिटिश रेसिडेण्टके पास भेज दिया। बादमें वही पत्र गवर्नर जनरलके पास होता हुआ विलायतमें डिरेक्टरोंके पास पहुंचा। दलीपकी तरफसे सर जन् लोगिनने गवर्मेण्टको कहा, "ये पत्र दलीपके नहीं हैं; जाल मालूम पड़ते हैं।"

इसी समयसे दलीपकी माताके विषयमें कुछ चिन्ता हुई। नेमियागोरे भारत लौट रहे थे। दलीपने उनसे माताके पास जानेके लिए अनुरोध किया। किन्तु नेमियाने स्वयं न जा कर एक उदासीको मारफत रानी झिन्दनके पास पत्र लिख भेजा। इस संवादसे रानी बहुत दुःखित हुई। सर जन् लोगिनने दलीपकी तरफसे नेमियाको पत्र दिया जिसमें लिखा था—"एक अपरिचित व्यक्तिको महारानीके पास भेजना, यह महाराजकी इच्छा नहीं थी। आप स्वयं जा कर महारानीसे मिलें और उन्हें समझा कर कहें, कि किस तरह रहना आप पसन्द करती हैं, महाराज किस तरह आपके काममें आ सकते हैं? इस समय नेपालमें रहना ही उनके लिए मङ्गलकर है। भविष्यमें जिससे वे आत्मीय-स्वजन और परिवारवर्गसे परिवृत्त हो कर सुखसे रह सकें, महाराज भारतमें जा कर उसका प्रयत्न करेंगे।"

सिपाही विद्रोहके समय महाराज दलीपसिंहका फतेहगढ़वाला मकान भी लूट गया, जिसमें उनके भारत लौटनेके लिए कुछ धन था। इस समाचारसे दलीप बड़े दुःखित हुए थे। अंग्रेजोंकी देखरेखमें रहने पर भी अंग्रेज गवर्मेण्टने उसकी क्षतिपूर्त्ति नहीं की थी।

१८५७ ई० तारीख २८ दिसम्बरको, दलीप लोगिन्की शिक्षाधीनतासे मुक्त हुए। जिस उमरमें हिन्दू-राजकुमार बालिग होते हैं, उससे तीन वर्ष ज्यादा होने पर भी अथवा यूरोपीय राजपुत्र जिस अवस्थामें बालिग समझे जाते हैं उससे एक वर्ष अधिक होने पर भी कोर्ट-आफ-डिरेक्टरोंने दिलीपको सूचना दी कि "महाराज अब भी नाबालिग हैं, इसलिए विषय सम्पत्तिके कार्य-सम्पादनमें अक्षम हैं।" दलीपसिंहको उनके इस प्रकारके उत्तरसे कुछ आश्चर्य हुआ था। कुछ भी हो; इस समय भारत-गवर्मेण्टने लोगिन्का वेतन बन्द कर देने और दलीपको वृत्तिमेंसे लोगिन्को ४२३।/५ देनेके लिए कम्पनीके सेक्रेटरीको लिखा। परन्तु कोर्ट-आफ-डिरेक्टरोंने इस प्रस्तावका समर्थन नहीं किया।

दलीपसिंहको अब फिर देश-भ्रमणकी इच्छा हुई। वे विक्टोरिया और उनके स्वामीके निमन्त्रणकी रक्षा कर इंग्लैण्डसे चल दिये। रोम, कानस्तान्तिनोपल आदि स्थान देख कर दलीपको अत्यन्त हर्ष हुआ। रोममें कुर्ग-राजकुमारीके साथ उनकी मुलाकात हुई। बीबी लोगिनने सोचा था, कुर्ग-राजकुमारी ही दलीपका मन चुरावेगी; किन्तु दलीपने एक दिन बात बातोंमें बीबी लोगिनसे कहा—"सिर्फ अंग्रेज-रमणी ही मेरी पत्नी बननेके

योग्य हैं। इस विषयमें मुझे कई एक लार्ड-कन्याओंके पाणिग्रहणको दिलासा मिलो है।" ग्रोष्मकालमें दलीप फिर इंगलैण्ड पहुंच गये।

कुमार शिवदेवने अपने चचाको एक पत्र लिखा कि "मेरी माताकी वृत्तिसे ही इस समय बड़ी तकलीफसे मेरो गुजर होती है।" दलीपने शिवदेवकी वृत्ति बढा देनेके लिए भारतगवर्मेण्टसे आवेदन किया। बहुत वादानुवादके बाद शिवदेवके लिए सिर्फ ८०००) रु० की वृत्ति निर्द्धारित हुई।

१८५८ ई० तारीख २० मईको दलीपसिंहने सुना कि 'अंग्रेजी कानूनके अनुसार बालिग होने पर उन्हें वर्षमें २५०००) पौण्ड ( करीब ढाई लाख रुपये ) की वृत्ति मिला करेगी'। इसके बाद सुना कि उनमेंसे १५००) पौण्ड उनकी जीवितावस्थामें मिलेंगे, अवशिष्ट १००००) पौण्डमेंसे उनकी स्त्रीके लिए कमसे कम वार्षिक ३०००) पौण्ड रख कर बाकी इंगलैण्डके कानूनके अनुसार वे अपने उत्तराधिकारियोंमें बांटे जा सकेंगे। किन्तु यदि कोई उत्तराधिकारी न हो तो जिस रुपयेका व्याजसे उनको वार्षिक दशहजार पौण्ड दिये जायंगे, वे सब रुपये गवर्मेण्टके होंगे।' परन्तु सिपाही-विद्रोहके समय उनकी जो सम्पत्ति नष्ट हुई थी, उसको क्षतिपूर्त्ति-स्वरूप उन्हें कुछ भी न मिला।

दलीपने १ नवम्बरको लोगिन्के लिए एक पत्र लिखा कि "गवर्मेण्टने अभी तक मेरे लिए कुछ बन्दोबस्त नहीं किया है, मैं अस्थिर हो गया हूं। मुझे डर है, कि कहीं मैं कर्जदार न हो जाऊं, गवर्मेण्टको इस विषयको जल्द ताकीद करनी चाहिए।

धीरे धीरे धनके अभावसे दलीप व्याकुल हो उठे। बहुत लिखापढ़ी करनेके बाद गवर्मेण्टने दलीपके सब हक चुकानेके लिए उनसे १८६० ई०की २०वीं जनवरीको एक स्वाक्षरित पत्र लिखवा लिया, जिसमें लिखा था—'मैं जीवद्दशामें वार्षिक २५००० पौण्ड और इसके अलावा नकद २००००० पौण्ड चाहता हूं। उत्तराधिकारीके अभावमें यह धन भारतके साधारण-हितकार्यमें व्यय करनेका मुझे अधिकार होगा। इसीसे मेरे सब हक चुक जायगे।'

भारतसभाने दलीपके उक्त स्वाक्षरित पत्रको पा कर ( २३ मार्चको ) दलीपको लिखा कि "१८४८ ई०की सन्धिके अनुसार वृत्तिका जो अंश महाराजको मिल सकता था, अब उसमें उनका अधिकार न रहा।" वास्तवमें वृत्तिसे इस समय करीब २० लाख रुपये बचे थे। ३ अप्रैलको दलीपने उत्तर दिया कि "सर चार्ल्स उडसे मुलाकात करते समय पत्र पर मैंने जो हस्ताक्षर किये थे, उसके लिए मैं बहुत दुःखित हूं। वृत्ति भोगीको मृत्यु होनेसे अब तक कितने रुपये इकट्ठे हुए हैं, इस बातको बिना जाने मैं अपना हक छोड़ नहीं सकता।" करीब डेढ़ वर्ष हो गये, दलीपको अपने शेष पत्रका कुछ भी उत्तर नहीं मिला।

१८६० ई०के दिसम्बर मासमें दिलीपने माताके वासस्थानका बन्दोबस्त और व्याघ्र-शिकार करनेकी इच्छासे भारत यात्रा की।

गवर्नर जनरलने दलीपके भारत आनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं की; किन्तु इन्हें पञ्जाबराज्यमें प्रवेश करनेके लिए निषेध कर दिया।

१८६१ ई०के जनवरी महीनेमें दलीप भारत आ गये। आते समय वे अपनी जमींदारी आदिके विषयमें कोर्ट आफ-डिरेकटरोंसे लिखापढ़ी करनेका भार लोगिन् पर छोड़ आये। परन्तु कोर्ट आफ-डिरेक्टरोंने लोगिन्के क्षमता पत्रको अग्राह्य किया।

दलीपसिंह कलकत्ते आ कर स्पेन्सस-होटलमें ठहरे। यहां कुमार शिवदेवके साथ उनकी भेंट हुई। दलीप गवर्मेण्टसे निवेदन कर माताको पुनः भारत ले आये। बहुत दिन बाद रणजितसिंहकी पत्नी महारानी झिन्दनने अपने पुत्रका मुंह देख कर कहा था "मैं अब अपने पुत्रसे अलग न रहूंगी।"

दलीपको भारतवर्षमें रहना अच्छा न लगा। फरवरी मासमें इन्होंने लोगिन्को एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था—'भारत बहुत ही जघन्य स्थान है; यहां मैं आया हूं, इसलिए मुझे अनुताप हो रहा है। लोगोंको मिला-भेंटी मुझे जरा भी दम नहीं लेने देती। बुड्ढे खुशामदी लोग पुरानी बातोंको छेड़ कर मुझे हैरान किया करते हैं। भारतवासी बड़े, मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और मेरे

छणाके पात्र हैं। इंग्लैण्ड आनेके लिए मैं अपना सर्वस्व दे सकता हूं।"

इसी समय एक दिन कुछ सिख-सेना चीनसे कलकत्ता आई। रणजीतसिंहके पुत्रका आगमन-संवाद मालूम होते ही उसने आनन्दमें उत्फुल्ल हो होटल घेर लिया और उच्चःस्वरसे दलीपको अभिवादन किया। सिख सेनाकी राजभक्ति देख कर अंग्रेजोंको विचलित होना पड़ा था। गवर्नर-जनरलने दलीपका पश्चिम-प्रान्तमें जाना बन्द कर दिया और शीघ्र ही उन्हें विलायत जानेके लिए कहा गया। इस बार दलीपकी मा भी विलायत गईं।

जुलाई मासमें सब विलायत पहुंच गये और लैङ्कैष्टर-गेटके पास एक बड़े प्रासादमें ठहराये गये।

जुलाई मासमें दलीपको सर चार्लस् उडके एक पत्रसे मालूम हुआ कि "१८५८ ई० तारीख ४ सितम्बर तक किसी किसी वृत्ति भोगीकी मृत्यु हो जानेसे कुल ७६४२६३) रुपयेकी बचत हुई थी।" परन्तु इस हिसाबमें भूल होनेके कारण दलीपने एक पूरा और असली हिसाब भेजनेके लिए लिखा। महीनों बीत गये, पर कुछ उत्तर न आया।

माताके प्रभावसे दिलीपसिंहका धर्म-भाव घटने लगा। अब प्रत्येक रविवारको गिर्जा जाना भी उन्हें अच्छा न लगा। उच्चपदस्थ राजपुरुषोंने माताके पास रह कर दलीपसिंह बिगड़ जायेंगे, इस आशङ्कासे माताके लिए पृथक् मकानका बन्दोवस्त कर दिया।

दलीपसिंह समझ गये कि अङ्गरेज लोग सहजमें उनकी सुव्यवस्था करनेके लिए तैयार नहीं, और तो क्या, उनकी माताको भी बिना दोषके उनसे पृथक् कर दिया। इन सब कारणोंसे अब वे स्थिर न रह सके। माताको भारत भेजनेके लिए अधीर हो उठे। अपने भावी जीवनके निरानन्दमय दृश्यको देख कर दलीप मर्म्माहत हुए और उन समय कुछ शान्तिकी आशासे उन्होंने इंग्लैण्डकी मोहनी रमणी-समाजमें अपना चरित्र कलुषित कर लिया।

१८६१ ई०में दलीपसिंह "ष्टार-अव-इण्डिया" की उपाधिसे विभूषित हुए।

१८६३ ई०में महारानी झिन्दनकी लण्डन नगरमें मृत्यु हुई। माताका शोक पूरा भी न हुआ था कि दो मास बाद रूसमें जनकोपम उनके शिक्षागुरु लोगिन्का देहान्त हो गया। इस उच्चहृदय व्यक्तिकी मृत्युसे दलीपको बड़ा कष्ट हुआ था। बीबी लोगिनकी सान्त्वना देनेके लिये कुछ दिन ठहर कर १८६४ ई०में दलीप माताकी मृतदेह ले कर बम्बईमें उपस्थित हुए। यहां इन्होंने जननीका शवदाह किया और नर्मदाके पवित्र जलमें उनकी भस्म डाल कर वे फिर इंग्लैण्डकी तरफ चल दिये।

रास्तेमें दलीप इजिप्टकी राजधानी अलेकसन्द्रिया नगरमें उतरे। यहाँ बीम्बामूलर नामकी एक सरल मार्किन-बालासे उनका विवाह हो गया। सरला षोड़शी और महाराजदलीपकी महिषी हो कर भी पूर्ववत् धीर और शान्त थीं। वे इंगलैण्डकी उच्च रमणी-समाजमें मिलना भी पसन्द न करती थीं उन्हें निभृतमें पति-सुहागमें समय बिताना बहुत पसन्द था। ये अरबीके सिवा और कोई भी भाषा न जानती थीं। इसलिए पहले पहल दलीपसिंहको स्त्रीके साथ बातचीत करनेमें बड़ी परेशानी उठानी पड़ी थी। पीछे उन्होंने स्त्रीको अङ्गरेजी सिखानेके लिए एक बीबी नियुक्त कर दी थी। महारानी विक्टोरियाने दलीपको सस्त्रीक बुलाया था और उनकी महिषीके शान्तस्वभाव और सद्गुणोंसे उन्हें बड़ा आनन्द हुआ था।

अब महाराज दलीपको अपने परिवारकी चिन्ता हुई। १८६२ से १८८२ ई० तक गवर्मेण्टने दलीपके लिए कुछ भी बन्दोवस्त नहीं किया। आखिर दलीपने उपायान्तर न देख सर जन् लौरेन्स पर इस विषयकी मीमांसा करनेका भार देनेके लिए अनुरोध किया। सर जन् लौरेन्स १८४९ ई०की सन्धिका असली हाल जानते थे, क्योंकि उन्हींके प्रयत्नसे यह सन्धि हुई थी। सर चार्लस उडने दलीपके प्रस्ताव पर सहमत हो कर सर फ्रेडरिक कैरिको लौरेन्सको सहायता पहुंचानेको कहा। रणजित सिंहको पञ्जाबके राजा होनेसे पहले कुछ पैत्रिक जमींदारी थी। महारानी झिन्दन जब दलीपकी अभिभाविका थीं, तब वे जमींदारियोंसे कर वसूल करती

थीं। अब लौरेन्स उन जमींदारियोंका विषय समझानेके लिए दलीपके पक्षमें नियुक्त हुए। परन्तु दुःख है कि बहुत चिन्ताके बाद लौरेन्स और केरिने जो निर्णय किया भारतसभाकी वह स्वीकार नहीं हुआ।

सन्धिकी शर्तोंकी कुछ भी मीमांसा न हुई; और तो क्या, दलीपकी पूर्व पैतृक सम्पत्ति और सिपाहीविद्रोहमें लूटी जानेवाली फतेगढस्थ स्थावर-सम्पत्तिके विषयमें भी कुछ बन्दोबस्त न हुआ। बहुत लिखा-पढीके बाद फतेगढकी प्रायः दो लाख रुपयेकी सम्पत्तिके हर्जानेके बदले ३००००) रुपये मिले।

इस समय दलीपसिंहने सुना था कि 'दलीपकी मृत्युके बाद उनकी एलमेडन जमींदारी भी बेच दी जावेगी।' अब वे इस विचारमें पड़ गये कि उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्रादिकी क्या हालत होगी। उन्होंने यह भी सुना कि उनकी मृत्युके बाद ज्येष्ठ राजकुमारके भरणपोषणके लिए गवर्मेण्ट सिर्फ ३०००) पौण्ड दिया करेगी। जो दलीपसिंहके पुत्रके लिए निहायत कमती है।

दलीपसिंहने जब कुछ भी उपाय न देखा, तब इंग्लैण्ड-वासियोंसे सुविचार पानेकी आशासे उन्होने १८८२ ई०, तारीख २१ अगस्तके "टाइमस" पत्रिकामें एक विज्ञप्ति प्रकट की, जो इस प्रकार है,—

"भैरवाल-सन्धिके अनुसार अंगरेज-गवर्मेण्टने मेरे रक्षण और राज्यशासनका भार ग्रहण किया था। अंगरेजोंके मुलतानके विद्रोह दमनमें विलम्ब करनेके कारण ही सारे पञ्जाबमें विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हुई थी। विद्रोह दमनके बाद लार्ड डलहौसीने घोषणा कर दी थी कि 'जो लोग विद्रोहमें शामिल नहीं है, उन्हें किसी भी तरहकी सजा नहीं दी जायगी। इस प्रकारकी घोषणा निकालने पर भी शान्ति स्थापन कर चुकनेके बाद वे एक असहाय शिशुको मुट्ठीमें पा कर अपने लोभको न सम्हाल सके भैरवाल-सन्धिके अनुसार कार्य न कर उन्होंने पञ्जाब जब्त कर लिया और सारी सम्पत्ति बेच दी। बेच कर २५००००) पौण्ड उठे, यह धन ब्रिटिश-पालित सेनाको बांट दिया गया। मैं निर्दोष हूं, मेरी कनिष्ठाङ्गुल भी कभी गवर्मेण्टके विरुद्ध नहीं उठी, किन्तु दोषियोंके साथ मुझे भी सजा भोगनी पड़ी। मैं अन्याय रूपसे अपने पैतृक राज्यसे वञ्चित किया गया हूं। लार्ड डलहौसीके मतसे १८५० ई०में मेरे राज्यकी आमद ५० लाख रुपयेकी थी, अब सम्भवतः आमद और भी बढ़ गई होगी। मैं नाबालिग अवस्थामें अभिभावकके आदेशानुसार राज्यच्युतिके सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करनेके लिए बाध्य किया गया था; मैं उस सन्धिपत्रको कानूनके खिलाफ समझता हूं। इसलिए अब भी मैं पञ्जाबका अधिपति हूं। कुछ भी हो, अब उस बातके जिक्रसे कुछ लाभ नहीं। अब मैं अपनी दयालु इंग्लैण्डेश्वरीकी प्रजा बन कर रहना चाहता हूं। १८४८ ई०की सन्धिके अनुसार मेरी भू-सम्पत्ति जब्त नहीं हुई है। उस सम्पत्तिका राजस्व इस समय १२०००० पौण्ड है, किन्तु दयामय ब्रिटिश-गवर्मेण्ट मुझे यावज्जीवन २५००० पौण्ड वृत्ति दे कर ही सन्तुष्ट हो गई। इसके अलावा मेरी मृत्युके बाद मेरी जमींदारी बेच दी जावेगी इस हृदयविदारक शर्त पर भविष्यमें मुझे और भी २००० पौण्ड वृत्ति देना स्वीकार किया है। सुतरां साफ दीख रहा है कि मेरे पीछे मेरे पुत्रादिका मान-सम्भ्रम सब नष्ट हो जायगा। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि इस सभ्य खृष्टान-जगत्‌में यदि एक भी न्यायपरायण व्यक्ति विद्यमान हों, तो वे मेरी ओरसे अंग्रेज-पार्लामेण्टमें मेरे पक्षका समर्थन करें। अन्यथा मेरा सुविचार और कहां हो सकता है?

दलीपकी इस विनीत प्रार्थना पर किसीने भी ध्यान न दिया। एक दिन १८८३ ई०के जुलाई मासमें उन्होंने बीबी लोगिनसे कहा, "मैंने इंग्लैण्ड और उसकी शठतासे सब सम्बन्ध तोड़ दिया।" बीबी लोगिन्‌ने दिलीपकी अवस्थाका संवाद सर हेनरी पनसनबीकी मारफत महारानी विक्टोरियाको दिया। महारानीने भारत-सचिवको दलीपके सम्बन्धमें विवेचना करनेके लिए अनुरोध किया। परन्तु करीब एक वर्ष बीत गया, भारत-सभाने कुछ भी प्रतिविधान न किया। १८८४ ई०के तारीख २५ जुलाईको दलीपने बीबी लोगिनको खबर दी कि "मैं शीघ्र ही भारत जाऊंगा। रूष-सेना करीबन आ चुकी है; भारत विपत्तिमें है; इस

समय यदि मैं ब्रिटिश गवर्मेंटकी सहायता कर सकूं तो सम्भव है कि सरकार मुझ पर सदय हो जाय।"

इसके बाद दलीपने और भी एक वर्ष तक धैर्य धारण किया। पश्चात् उन्होंने १८८५ ई०के मार्च महीनेमें तत्कालीन भारत सचिव लार्ड काम्बर्लिको लिखा—"यदि ब्रिटिश गवर्मेंट शीघ्र ही मेरी कुछ सुव्यवस्था न करेगी, तो मैं हमेशाके लिए अपनी भू-सम्पत्ति और इंग्लैण्डका निवास छोड़ देनेके लिये बाध्य होऊंगा। मुझे जो वृत्ति मिलती है, उससे मैं अपनी मर्यादाको रक्षा भी नहीं कर सकता।" परन्तु भारत-सचिवने इसका भी कुछ उत्तर न दिया। अब तो दलीपसिंहसे सहा न गया, वे अपनी एलभेडन जमींदारी गवर्मेंटको सौंप कर भारत आनेकी तैयारियां करने लगे। सेक्रेटरी-आफष्टेटको यह विश्वास न था कि दलीप सचमुच ही इंग्लैण्ड छोड़ देंगे। दलीप जब साउदम्पटनसे आगे बढ़ने लगे, तब उन्होंने दलीपको सूचना दी कि "आपको अपने हकमेंसे ५०००० पौण्ड दिये जायंगे।" दलीप उतनेसे सन्तुष्ट न हुए और इंग्लैण्ड छोड़ कर चल दिए। बहुतसे उच्चहृदय अङ्गरेजोंने उनसे इंग्लैण्ड छोड़नेके लिए मना किया था, परन्तु उनकी बात पर दलीपने जरा भी ध्यान न दिया। यदि वे उनकी बात मान कर वहीं रहते तो भविष्यमें उनको दुर्दशा न होती।

बहुत अनुनय-विनय करनेके बाद दलीपको भारत आनेको अनुमति मिली, परन्तु पञ्जाबमें जानेकी आज्ञा न मिली। जो कुछ भी हो, उन्होंने जहाज पर सवार होनेके पहले स्वदेशवासियोंको एक पत्र दिया, जिसका अभिप्राय इस प्रकार था—

"प्रियतम स्वदेशवासियो! मेरी इच्छा न थी कि मैं भारतमें जा कर रहूं। परन्तु अदृष्टके दोषसे मुझे भारत जाना पड़ेगा। मैंने अपने पूर्वजोंके धर्मको छोड़ कर विजातीय धर्मको अपनाया है, इसके लिए मैं आप लोगोंसे क्षमा प्रार्थी हूं। मैं बम्बई पहुंचते ही पुनः 'पाहल' ग्रहण करूंगा। परन्तु पञ्जाबमें जा कर अब मैं आप लोगोंसे मिल न सकूंगा।"

स्वदेशवासियोंमें किसी किसीने उसी समय दलीपको सहानुभूति-सूचक पत्र भेज दियां। किन्तु इन पत्रोंके मिलनेके पहले ही दलीपको अवस्था परिवर्त्तित हो गई थी। उन्होंने एडेनमें पहुंचते ही सिख-धर्म ग्रहण कर लिया था। उनके पत्र और सिखोंके मनोभावको देख कर गवर्मेंट शङ्कित हो गई और इसीलिए उसने दलीपको रास्तेमें रोक दिया। दलीपने महारानी विक्टोरियाको तारसे प्रार्थना की कि 'प्रकाश्यभावसे मेरा विचार होना चाहिए।' साथ ही उन्होंने क्रोधान्ध हो यह भी घोषित कर दिया कि "ग्यारह वर्षकी उमरमें मेरे अभिभावकने बलपूर्वक मुझसे राज्यच्युतिके सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करा लिए थे, इस कारण वह सन्धि मुझे स्वीकार नहीं है।" कुछ भी हो, दलीप शीघ्र ही बन्दी कर इंग्लैण्ड पहुंचाये गए। इस व्यवहारसे वे अङ्गरेजोंको महाशत्रु समझने लगे। वास्तवमें बार बार निराशाके दंशनसे दलीपको बुद्धि भ्रष्ट हो गई, धैर्य धारण वा चित्तसंयमको क्षमता उनमें न रही। हृदयको यन्त्रणा और क्रोधमें अन्धे हो कर उन्होंने अङ्गरेजोंसे वृत्ति लेना भी बन्द कर दिया। कुछ दिन महाकष्टसे इंग्लैण्ड रह कर छद्मवेशमें वे फ्रान्स चले गये।

दलीपने सोचा था कि उन पर अत्याचार किये जानेकी खबर सुन कर शायद फ्रान्स गवर्मेंट अङ्गरेजोंके विरुद्ध उन्हें कुछ सहायता पहुंचायगी। इसी दुराशासे उन्होंने फ्रान्स-गवर्मेंटको सेना-सहित उन्हें पुंदिचेरी भेजनेके लिए पत्र लिखा। फ्रान्स-गवर्मेंटने उस पत्रका कुछ भी उत्तर न दिया। आखिर निराश होकर दलीपने आयर्लैण्ड-देशीय पाट्रिक कासी नाम धारण कर अभय पत्र ( Pass port ) प्राप्त किया और फ्रान्ससे जर्मनीको राजधानी वार्लिनको चल दिए। यहां दलीप बड़ी मुसीबतमें पड़ गये—नकद रुपये और अभयपत्र सब चोरी चला गया। जर्मनीसे वे रूस राज्यके सीमान्तमें उपस्थित हुए, किन्तु Pass-portके बिना राज्यमें प्रवेश करना उनके लिए मुश्किल हो गया। दलीपने उपायान्तर न देख, 'मस्कौगजट'के सम्पादक काट्कफको तारसे अपना असली नाम और दुरवस्थाका संवाद भेजा। दिलीप जिससे बिना अभयपत्रके रूसियामें प्रवेश कर

सकें, उसके लिए काट्‌कफ्‌ने सोमान्त प्रदेशके कर्मचारी और पुलिसको तार दिया तथा दलीपको लानेके लिए एक दूतको भेज दिया।

१८८७ ई०के अप्रेल मासमें दलीपने रूसराज्यमें प्रवेश किया। मस्कौनगरमें उपस्थित होने पर काट्‌कफ्‌ने आदरके साथ उनकी अभ्यर्थना की।

दलीपने मस्कौ रहते समय इंग्लैण्डके प्रति यथेष्ट अवज्ञा और विद्वेषभाव प्रकट किया था। वे सर्वदा यही कहा करते थे कि 'रूसियाको अधीनता खीकार करना हमारा प्रधान कर्तव्य है। मैं मध्य एशियाके विषयमें रूसके लिए आत्मोत्सर्ग करनेके लिए तैयार हूं।'

दलीपके मुंहसे अङ्गरेजोंको निन्दा सुन कर रूसके लोग खूब सन्तुष्ट होते थे। ११वीं जूनको मस्कौके गवर्नर-जनरलने प्रकाश्यरूपसे दलीपकी अभ्यर्थना की थी।

इसके एक महीने बाद दलीपने सुना, कि उनकी प्रियतमा महिषीने उन्हींको विरह-वेदनासे इंग्लैण्डमें प्राणत्याग दिए हैं। रानीको मृत्युसे दलीप और भी व्याकुल हो उठे। उनका मस्तिष्क विकृतप्राय हो गया। उन्होंने भारतवर्षके प्रधान प्रधान संवादपत्रोंमें इस प्रकारको घोषणा निकलवा दी—"एडेनमें रोके जानेके कारण मेरी अङ्गरेज-भक्ति दारुण घृणामें परिणत हो गई है। अङ्गरेजोंने अन्याय रूपसे मेरा राज्य हरण किया है। इसीलिए मैंने रूसके आज्ञाधीन रह कर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।" इसके बाद १८८८ ई०के अगस्त मासमें उन्होंने भारतवासियोंको सम्बोधन करके फिर एक घोषणा निकाली—"मैं भारतवर्षके पचीस करोड़ लोगोंमें, प्रत्येकसे मासिक एक पैसा और पञ्जाबके प्रत्येक व्यक्तिसे एक आना मासिक देनेके लिए प्रार्थना करता हूं। मैं रूसियाको सहायतासे यूरोपीय सेना ले कर शीघ्र ही भारतमें पदार्पण करनेकी प्रतिज्ञा करता हूं।

कुछ भी हो, दलीपकी अदूरदर्शिताके कारण रूसके सम्राट्‌ने उनसे साक्षात्‌ न किया। दलीप भी आशानुरूप सहानुभूति न पानेके कारण १८९० ई०में फ्रान्सको राजधानी पेरिस लौट आए। यहां भोगविलासमें उनका चरित्र और भी कलुषित हो गया; उन्हें शीघ्र ही एक भीषण रोग हो गया। रोगका संवाद पा कर उनके पुत्र भिक्टर दलीप उन्हें देखनेके लिए आए। १८९० ई०में इसी अवस्थामें दलीपने भारत-सचिव लार्ड क्रसोको एक पत्र दिया, उसमें लिखा कि 'मैं भारतेश्वरी महारानी विक्टोरियासे क्षमा मांग रहा हूं। यदि वे क्षमा कर दें, तो मैं भविष्यमें उनके इच्छाधीन रहना स्वीकार करता हूं।" तारीख १ अगस्तको लार्ड क्रसोने दलीपको लिखा कि 'महारानी आपको क्षमा करती हैं।' इससे दिलीप कुछ निश्चिन्त हुए। दलीप बहुत ज्यादा बीमार थे, इसलिए उनके पुत्रने महारानीको धन्यवाद लिख भेजा।

१८९३ ई० तारीख २२ अक्टोबरको पेरिसनगरके एक होटलमें सन्न्यासरोगसे दलीपसिंहकी मृत्यु हुई थी। तारीख २८ अक्तूबरको उनका मृतशरीर एल्भिडनके प्रासादमें लाया गया और वहीं अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न की गई।

दलीमृग (सं० पु०) बिलेशय अंगोच्छ प्राणिविशेष।

दलील (अ० स्त्री०) १ युक्ति, तर्क। २ बहस, वाद-विवाद। ३ प्रयोजनीय कागज पत्र।

दलेगन्धि (सं० पु०) दले गन्धो यस्य, समासान्त इत्, सप्तम्या अलुक्। सप्तपर्णी वृक्ष।

दलेंज (हिं० पु०) १ बूढ़ा घोड़ा, वह घोड़ा जो जवान न रह गया हो। २ वह आदमी जिसकी उमर ढल गई हो।

दलेल (हिं० स्त्री०) ड्रिल, कवायद।

दलै (हिं० क्रि०) हाथीवानोंकी एक बोली। इसमें हाथी मुंह खोलता और खाने लगता है।

दलोद्भव (सं० त्रि०) दलादुद्भवति उद्‌-भू-अच्। दलजात मधुमेद, एक प्रकारको शहद जो पत्तोंसे उत्पन्न होती है।

दल्भ (सं० पु०) दलति विशीर्णं भवत्यनेन दल-भ। (दलिभ्यां भः। उण् ३।१५१) १ प्रतारणा, धोखा। २ पाप, गुनाह। ३ चक्र, चक्का, पहिया। ४ मुनिभेद, एक मुनिका नाम।

दल्भ्य—दाल्भ्य देखो।

दलिम (सं० पु०) दलति विदारयति असुरानिति दल-मि (दलिमः। उण् ४।४७) १ इन्द्र; दल्यतेऽनेन। २ वज्र।

दलिमत् (सं० त्रि०) दलिम विद्यतेऽस्य दलिम-मतुप्। वज्रयुक्त, जिसमें वज्र हो।

दल्य (सं० त्रि०) दलस्य अदूरदेशादि दलवलादित्वात् य। दलके अदूर देशादि, दलका सन्निकट स्थान।

दल्लाल (हिं० पु०) दलाल देखो।

दल्लाला (अ० स्त्री०) दूती, कुटनी।

दल्लाली (हिं० स्त्री०) दलाली देखो।

दवँरी (हिं० स्त्री०) दँवरी देखो।

दव (सं० पु०) दुनोति पीडयति दु-अच्। १ वन, जङ्गल। २ वनाग्नि, वह आग जो वनमें आपसे आप लग जाती है। ३ अग्नि, आग। ४ उष्णता, गरमी। ५ उपताप, दुःख, तकलीफ।

दवथु (सं० पु०) दु-भावे अथुच्। १ परिताप, दुःख। २ दाह, जलन।

दवदग्धक (सं० क्ली०) दवेन दग्धं सत् कायति प्रकाशते कै-क। रोहिष तृण, रोहिस नामकी घास।

दवदहन (सं० पु०) दावाग्नि, दवारि, दावा।

दवन (हिं० पु०) १ नाश। २ दौना नामका पौधा।

दवनपापड़ा (हिं० पु०) पितपापड़ा।

दवना (हिं० क्रि०) दग्ध करना, जलाना।

दवनी (हिं० स्त्री०) दँवरी, सिसाई, मँड़ाई।

दवा (फा० स्त्री०) १ रोग या व्यथा दूर करनेवाली वस्तु, औषध। २ चिकित्सा, उपचार। ३ दूर करनेकी युक्ति। ४ अवरोधका उपाय, दुरुस्त करनेकी तदबीर।

दवाईखाना (हिं० पु०) दवाखाना देखो।

दवाखाना (फा० पु०) औषधालय।

दवाग्नि (सं० पु०) दवानां वनानां अग्निः, वा दव एव अग्निः। दावानल, वनमें लगनेवाली आग।

दवात (अ० स्त्री०) मसिपात्र, मसिदानी।

दवानल (सं० पु०) दवस्य अनलः। वनाग्नि।

दवामी (अ० वि०) स्थायी, जो सदा बना रहे।

दवामी बंदोबस्त (फा० पु०) जमीनका एक बंदोबस्त। इसमें सरकारी मालगुजारी सदाके लिये नियत कर दी जाती है।

दवारि (हिं० स्त्री०) वनाग्नि, दावानल।

दविष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन दूरः दूर-इष्ठन्, दूर शब्द स्थाने दवादेशः। सुदूर, बहुत दूरवर्त्ती।

दवीयस् (सं० त्रि०) इदमनयोरतिशयेन दूरं दूर-ईयसुन् स्थूर दूरेत्यादिना साधुः। सुदूर, अत्यन्त दूरवर्त्ती।

दश (सं० त्रि०) दंशयति दीप्यते दन्शि बाहुलकात् कनिन् न लोप (दन्श दंशने नलोपः। उण् १। १५६ उज्ज्वलदत्त)। संख्याविशेष, पांचका दूना, जो गिनतीमें नौसे एक अधिक हो, दश।

"दिशोदशोक्ताः पुरुषस्य लोके सहस्रबाहुर्दशपूर्णं शतानि।
दशैव मासान् बिभ्रति गर्भवत्यो दशैरका दशदाशा दशार्हाः॥"
(भारत ३।१३४।१७)

दशवाचक शब्द ये हैं—हस्ताङ्गुलि, अश्वबाहु, रावणमस्तक, क्षपताके तार, दिक्, विश्वदेव, अवस्था, चन्द्राश्व और पंक्ति। (कविकल्पलता) दशन् शब्द नित्य बहुवचनान्त है।

द्रव्यकी दश प्रकारकी गुण-क्रिया है। १ शैत्य—इससे ह्लादन, स्तम्भन, मूर्च्छा, तृष्णा और दाहकी निवृत्ति होती है। २ उष्ण—यह शैत्यका उलटा है, किन्तु पाचक है। ३ स्निग्ध—स्नेह और मार्दवकर, बलकर और वर्णकर है। ४ रूक्ष—स्निग्धका विपरीत, विशेषतः स्तम्भनकर और खर है। ५ पिच्छिल—जीवनीय, बलकर, सन्धानकर, श्लेष्मल और गुरु है। ६ विशद—पिच्छिलका विपरीत, क्लेदशोषक और रोपणकर है। ७ तीक्ष्ण—दाहपाक और आस्रावकर है। ८ मृदु—तीक्ष्णका विपरीत है। ९ गुरु—अवलम्बता, उपलेप, बलवृद्धि और पुष्टिजनक है। १० लघु—गुरुका विपरीत, लेपनकर और रोपणकर है। द्रव्यके दश प्रकारके गुण १ द्रव—क्लेदकर है। २ सान्द्रस्थूल—बन्धनकर हैं। ३ श्लक्ष्ण—पिच्छिलवत् है। ४ कर्कश—विशदवत्, सुखानुबन्धी और सूक्ष्म है। ५ सुगन्ध—रुचिकर और मृदु है। ६ दुर्गन्ध—सुगन्धका विपरीत, हृल्लासक, अरुचिकर, सारक, अनुलोमकारक और मदकर है। ७ व्यवायी—सारे शरीरमें फैल कर उसे पाक कर देता है। ८ विकाशी—यह आह्लाद उत्पन्न कर धातुका बन्धन शिथिल कर देता है। ९ आशुकारी—यह द्रुतगामीके लिए जलस्थ तैल-

वत् शरीरमें बहुत शब्द फैल जाता है तथा १० छोटी छोटी शिराओंमें भी प्रवेश करता है। (द्रव्यगुणदर्पण)

दशाइ—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह मध्य भारतकी भुपावर एजेन्सीके अधीन दशाइ नामक जागीर का प्रधान नगर है। यह अमभिरासे १० मील उत्तर सर्दारपुरसे १२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

दशक (सं० क्लो०) दश परिमाणस्य कन्। दश संख्या। मनुके अनुसार धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश धर्मके लक्षण है।

दशकण्ठ (सं० पु०) दश कंठा गला यस्य। रावण।

दशकण्ठजहा (सं० पु०) रावणसंहारक, श्रीरामचन्द्र।

दशकण्ठजित् (सं० पु०) दशकण्ठं जयति जि-क्विप्। रावण जीता, राम।

दशकण्ठारि (सं० पु०) रावणके शत्रु, श्रीरामचन्द्र।

दशकन्ध (हिं० पु०) रावण।

दशकन्धर (सं० पु०) दशकन्धरा ग्रीवा यस्य। रावण।

दशकन्धरजित् (सं० पु०) दशकन्धरं जयति जि-क्विप्। राम।

दशकन्यातीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

दशकर्मज्ञ (सं० पु०) दश कर्म-ज्ञा-क। दशकर्मके मन्त्रादि विषयमें अभिज्ञ, वह जो दशकर्मके मन्त्रादि जानता हो।

दशकर्मन् (सं० क्लो०) दशविधं कर्म। गर्भाधानादि दशविध संस्कारकर्म, गर्भाधानसे लेकर विवाह तकके दश संस्कार यथा—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, और विवाह।

दशकर्मपटु (सं० पु०) दशकर्मणि पटुः। दशकर्म विषयोंके पारदर्शी।

दशकर्मपद्धति (सं० स्त्री०) दशकर्मणां पद्धतिः। दशकर्म-विषयक पद्धति, जिस पुस्तकमें दशकर्मके सभी विवरण लिखे हुए है, उसे दशकर्मपद्धति कहते हैं। साम, ऋक् और यजुर्वेदीय तीन दशकर्मपद्धतियां है; उनमेंसे भवदेवभट्टने सामवेदीय, पशुपतिभट्टने यजुर्वेदीय और कालेशीने ऋक्वेदीय दशकर्मपद्धति प्रणयन की।

इन्हीं पद्धतियोंके अनुसार अभी समस्त संस्कार-कार्य किये जाते है।

दशकर्मान्वित (सं० पु०) दशकर्मभिः अन्वितः। १ दश-कर्म द्वारा युक्त जो सब कार्यादि करते है उन्हें दशकर्मा-न्वित कहते है। २ दशकर्माभिज्ञ ब्राह्मण, जो दशकर्म विषयक और अन्यान्य सब प्रकारके पौरोहित्यादि कार्य अच्छी तरह जानते हैं, उन्हें दशकर्मान्वित कहते हैं।

दशकामजव्यसन (सं० क्लो०) कामसे उत्पन्न दश प्रकार-के व्यसन। मृगया, द्यूतक्रीड़ा, दिवानिद्रा, परनिन्दा, प्रमदासक्ति, नृत्य, गीत, क्रीड़ा, वृथा भ्रमण और मद्य-पान ये ही दश प्रकारके व्यसन कामज है। व्यसन देखो।

दशकुमारचरित (सं० क्लो०) महाकवि दण्डीका बनाया हुआ एक गद्यग्रन्थ। इसमें दश राजकुमारोंके चरित वर्णित हुए हैं, इसीसे इस ग्रन्थका नाम दशकुमारचरित पड़ा है। यह एक अत्यन्त आश्चर्य उपन्यास ग्रन्थ है। कविने इसमें अलौकिक कवित्वशक्तिका परिचय दिया है। यह ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है—पूर्व और उत्तर भाग। कोई कोई पण्डित कहते है कि दशकुमारका पूर्वभाग ही दण्डीका बनाया हुआ है, उत्तरार्द्ध किसी दूसरे कविका कृत है। इस प्रकारको किंवदन्तीका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

दशकुलवृक्ष (सं०पु०) दशगुणितः कुलवृक्षः। तन्त्रोक्त कुल-वृक्ष दशक, तन्त्रके अनुसार दशकुलवृक्ष। लिसोड़ा, करञ्ज, बेल, पीपल, कदंब, नीम, बरगद, गूलर, आंवला और इमली ये ही दश कुलवृक्ष है। सभी साधकोंको प्रातः-काल उठ कर इन दश कुलवृक्षोंको प्रणाम करना चाहिए।

दशकोषी (सं० स्त्री०) रुद्रतालके ग्यारह भेदोंमेंसे एक।

दशक्षीर (सं० क्लो०) दशविधं क्षीरं। दशविध दुग्ध, सुश्रुतके अनुसार दश जन्तुओंका दूध। गाय, बकरी, ऊंटनी, भैंस, घोड़ी, स्त्री, हथिनी, हरिणी और गदही इन दश प्रकारके जन्तुओंके क्षीरको दशविध क्षीर कहते है। दुग्ध देखो।

दशगात्र (सं० पु०) १ शरीरके दश प्रधान अंग। २ मृतक सम्बन्धी एक कर्म। यह मनुष्यके मरनेके पीछे दश दिन तक होता रहता है। इसमें प्रतिदिन पिण्ड-दान करते हैं। पुराणके अनुसार इसी पिण्डके द्वारा

क्रम क्रमसे प्रेतका शरीर बनता है और दशवें दिन पूरा हो जाता है, पहले पिण्डसे शिर, दूसरेसे आँख, नाक, कान इत्यादि बनते हैं।

दशग्राम ( सं० क्ली० ) दशग्रामयुक्त परगना।

दशग्रामपति ( सं० पु० ) दशानां ग्रामाणां पतिः, उत्तरपद द्विगुस०। दशग्रामके अध्यक्ष, वह जो राजाकी ओरसे दश ग्रामोंके अधिपति बनाया गया हो। जिसकी आज्ञासे दशग्राम शासित होते है, उसे दशग्रामपति कहते हैं। इसका विषय मनुस्मृतिमें इस प्रकार लिखा है—राजा राज्यकी सुरक्षाके लिए यथासाध्य दो, तीन, दश वा सौ ग्रामोंके मध्य एक दल सैन्य संस्थापन करे और एक एक अधिनायकके ऊपर उन ग्रामोंके विचारादिका भार सौंप दे। राजा पहले पहल प्रत्येक ग्राममें एक एक अधिपति, पीछे क्रमशः उससे अधिक प्रतिष्ठा और योग्यताके मनुष्य देख कर दश ग्रामोंका अधिपति नियत करे। इसी प्रकार बीस, सहस्र आदि तकके ग्रामोंके हाकिम नियुक्त कर सकते हैं। जब ग्राममें चोरी आदि किसी प्रकारका अन्यान्य कार्य उपस्थित हो जाये, तो ग्रामाधिप स्वयं उसका विचारादि करते हैं। यदि सम्यक् रूपसे वे कर न सकें, तो दशग्रामाधिपति उसका न्याय कर सकते हैं। यदि वे भी इसमें असमर्थ हों, तो इसी प्रकार उत्तरोत्तर अधिनायकको इसका विचार करना चाहिये। (मनु ७अ०) अभी जिस प्रकार एक एक जिला मजिष्ट्रेटसे शासित होता है, उसी प्रकार पहले भी ग्रामपति, दशग्रामपति आदिसे एक ग्राम वा दशग्राम शासित होते थे।

दशग्रामिक ( सं० त्रि० ) दशग्रामा अधिकृतत्वेन सन्त्यस्य ठन्। १ दशग्रामाधिप, दशगाँवके मालिक। २ दशग्रामादिके अदूर देशादि।

दशग्रामी ( सं० पु० ) दशग्रामा, अधिकृतत्वेन सन्त्यस्य इनि। दशग्रामका अधिपति, दशगांवका मालिक।

दशग्रीव ( सं० पु० ) दश ग्रीवा अस्य। १ रावण। २ असुरविशेष, एक राक्षसका नाम। ३ दमघोषका एक पुत्र, शिशुपालका भाई। ४ एकादश मन्वन्तरमें इन्द्रका शत्रु भेद, ग्यारहवें मन्वन्तरमें इन्द्रके एक शत्रुका नाम। इसका दूसरा नाम वृष था। (गरुड़पु० ८७ अ०)

दशजटा ( सं० स्त्री० ) दशमूल।

दशज्योतिस् ( सं० पु० ) सुभ्राजका बड़ा लड़का। इसके दश हजार पुत्र थे। (भारत आदि० १ अ०)

दशत् ( सं० स्त्री० ) दश परिमाणस्य अति। दशवर्ग, दशकी संख्या।

दशतय ( सं० त्रि० ) दश अवयवा यस्य, दशानां अवयवा वा संख्यायाः अवयवे तयप्। १ दशसंख्या, दशका अंक। २ दश संख्यान्वित, जिसमें दशका अंक हो।

दशति ( सं० स्त्री० ) दशावृत्ता दश निपातनात् साधुः। शत संख्या, सौ।

दशदशी ( सं० त्रि० ) दशावृत्ता दश परिमाणस्य डिनि। शतगुणित, सौ गुना।

दशदिक् ( सं० स्त्री० ) पूर्वादि दिक् समूह। यथा—पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण, अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान, अधः और ऊर्द्ध।

दशदिक्पाल ( सं० पु० ) दशदिशः पालयति, पाल-अच्। दश दिशाओंके अधीश्वर, ये सब देवगण पूर्वादि क्रमसे दशों दिशाओंका पालन करते है—इन्द्र पूर्वदिशाके पालक, अग्नि अग्निकोणके, यम दक्षिणदिशाके, निर्ऋत नैर्ऋत कोणके, वरुण पश्चिमदिशाके, मरुत् वायुकोणके, कुवेर उत्तरदिशा, ईश ईशान कोण, ब्रह्मा ऊर्द्ध दिशा और अनन्त अधःदिशाके पालक हैं। ये दश देवता दशों दिशाओंकी रक्षा करते है। प्रत्येक पूजामें इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी पड़ती है।

दशद्वार (सं० पु०) शरीरके दश छिद्र, यथा—२ कान, २ आंख, २ नाक, १ मुख, १ गुद, १ लिङ्ग और १ ब्रह्माण्ड।

दशधा ( सं० अव्य० ) दशानां प्रकारः दश-धा ( संख्याया विधार्थे धा। पा ५।३।४२ ) दश प्रकार, दश तरह।

दशन् (सं० त्रि०) दन्श बाहु० कनिन्। १ संख्याविशेष, दश। २ दश संख्यायुक्त, जिसमें दश अंक हों।

दशन ( सं० क्ली० ) दश्यतेऽनेन शरीरं दन्श करणे ल्युट्, दश दशीति निर्देशात् क्वचित् किल्वपि न लोपः। १ कवच। (पु०) २ शिखर। ३ दन्त, दांत।

दशनच्छद ( सं० पु० ) दशनान् दन्तान् छादयति छादि घञ् ह्रस्वः। ओष्ठ, होंठ।

दशनपद ( सं० क्ली० ) दशनस्य दशनक्षतस्य पदं। दशन

दंत स्थान, वह जगह जहां दांतोंके काटनेसे जख्म हो गया हो।

दशनवास (सं॰ क्लो॰) दशनानां वास इव आच्छादकत्वात्। ओष्ठ, होंठ।

दशनबीज (सं॰ पु॰) दशन इव बीजमस्य। दाड़िम्ब वृक्ष, अनार।

दशनांशु (सं॰ पु॰) दशनस्य अंशुः ६-तत्। दशनज्योतिः, दांतोंकी शोभा।

दशनाङ्क (सं॰ पु॰) दशनस्य दशनक्षतस्य अङ्कः। दशनक्षत, दांतोंसे काटा हुआ जख्म या चिह्न।

दशनाख्या (सं॰ स्त्री॰) दशनः आख्यो यस्याः, एतत् सेवनेन हि दन्तस्य दार्ढ्यात् अस्य तथात्वं। चुक्रिका, लोनिया साग।

दशनाम (सं॰ पु॰) संन्यासियोंके दश भेद, यथा—तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती और पुरी।

दशनामी—संन्यासियोंका एक वर्ग। अद्वैतवाद प्रचारक सुप्रसिद्ध शङ्कराचार्यके चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामलक, मण्डन और तोटक। इन चारोंके भी फिर अलग अलग शिष्य थे। पद्मपादके दो शिष्य थे-तीर्थ और आश्रम, हस्तामलकके दो शिष्य—वन और अरण्य, मण्डनके तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर, इसी प्रकार तोटकके भी तीन शिष्य थे—सरस्वती, भारती और पुरी। इन्हीं दश शिष्योंके नामसे दशनामी संन्यासीकी उत्पत्ति हुई है।

जो तत्त्वमसि प्रभृति लक्षणविशिष्ट हैं और त्रिवेणीसङ्गमतीर्थमें तत्त्वार्थ भावसे स्नान करते हैं, वे तीर्थ कहलाते हैं। जो आश्रम ग्रहण करनेमें समर्थ हैं और कामनाविवर्जित हो कर जन्म तथा मरणसे निर्मुक्त होते हैं, उनका नाम आश्रम है। जो कामना परिशून्य हो कर रमणीय निर्झरके पासके वनमें वास करते हैं, वे वन कहलाते हैं। जो आरण्यव्रत ग्रहण करके सारा संसार छोड़ देते और आनन्ददायक वनमें चिरकाल तक वास करते हैं, उन्हें अरण्य कहते हैं। जो हमेशा पहाड़ पर रहते, गीताभ्यासमें कुशल, अविचलित बुद्धि और गम्भीर हैं, वे गिरि कहलाते हैं। जो पहाड़के नीचे वास करते हैं, ध्यान और धारण करनेमें समर्थ हैं तथा सारात्सार ब्रह्मको जानते हैं, उनका नाम पर्वत पड़ा है। जो सागरके सदृश गम्भीर भावसे रहते हैं, फलमूलादि आहार करते हैं और आत्ममर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, उन्हें सागर कहते हैं। जो सर्वदा स्वरज्ञानविशिष्ट, स्वरवादी, कवीश्वर और संसार सागरमें सारज्ञानविशिष्ट हैं, वे सरस्वती कहलाते हैं। जो विद्याभारसे परिपूर्ण हो कर सभी भारोंका त्याग करते हैं और दुःख-भार क्या है, उसे जानते तक भी नहीं, उनका नाम भारती है। जो ज्ञानतत्त्वमें पूर्ण हैं, पूर्ण तत्त्वपदमें अवस्थित हैं और सर्वदा परब्रह्ममें निरत रहते हैं, वे ही पुरी हैं।

शङ्कराचार्यने चार मठ स्थापित किये थे जिनमें इन दश प्रशिष्योंकी शिष्य-परम्परा चली आती है। पुरी, भारती और सरस्वतीकी शिष्यपरम्परा शृङ्गेरी मठके अन्तर्गत है; तीर्थ और आश्रम शारदामठके अन्तर्गत, वन और अरण्य गोवर्द्धनमठके अन्तर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठके अन्तर्गत है। प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होता है।

प्रत्येक मठके पृथक् पृथक् अध्यक्ष हैं जो महन्त कहलाते हैं। प्रत्येक महन्त अपने मठ और तत्संलग्न भू-सम्पत्तिके अधिकारी हैं।

दशनामियोंमें अरण्य-सम्प्रदायके संन्यासी प्रायः नहींके बराबर हैं। सागर और पर्वत सम्प्रदाय भी बहुत हैं।

यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निर्गुण उपासक प्रसिद्ध हैं पर इनमेंसे बहुतेरे शैवमन्त्रकी दीक्षा लेते हैं। दशनामी संन्यासियोंमेंसे कितने तो ऐसे हैं जो स्वधर्मोचित नियमका प्रतिपालन नहीं करते। इन लोगोंके कार्य-कलाप देखनेसे मालूम पड़ता है कि तीर्थ-भ्रमण और गञ्जिका सेवनके सिवा इनके और कोई कार्य नहीं है। वेदान्तका तत्त्वानुशीलन ही इनका प्रधान धर्म है, किन्तु ये लोग तन्त्र और योगशास्त्रका अनुशीलन करके तदनुरूप कार्य करते हैं। इनमेंसे कुछ तो भिक्षोपजीवी हैं और कुछ वाणिज्यादि करके अपना गुजारा करते हैं।

दशनामी संन्यासियोंमेंसे अनेक सुपण्डित, ग्रन्थकार और अध्यवसायशील पर्याटक देखे जाते हैं। शङ्कराचार्यके शिष्य आनन्दगिरिने उनके जीवनीविषयक एक प्रबन्ध लिखा है और उनके बनाये हुए सूत्रभाष्य आदि को टीका भी रची है। सुप्रसिद्ध माधवाचार्यने संन्यासधर्म ग्रहण करनेके बाद वेदभाष्य लिखा और तभीसे वे विद्यारण्यस्वामी नामसे प्रसिद्ध हुए। इस सम्प्रदायके अनेक संन्यासी आज भी सेतुबन्ध, बदरिकाश्रम, केदारनाथ, कैलास पर्वत और मानस सरोवर, यहां तक कि वेलुचिस्तान आदि स्थानोंमें भ्रमण किया करते हैं। पुराणपुरी तिब्बत और रुषियासे हो आये थे।

ये लोग कौपीन पहनते हैं। मरने पर शवदाह नहीं होता शव या तो नदीमें फेंक दिया जाता या जमीनमें गाड़ा जाता है। ये लोग भिन्न भिन्न पन्था और वृत्तिका अवलम्बन करके दण्डी, परमहंस आदि नाम धारण करते हैं। सन्यासी और दण्डी देखो।

दशनोच्छिष्ट (सं० क्लो०) १ निश्वास, नाक या मुंहके बाहर निकलनेवाला श्वास। २ अधर चुम्बन, होठोंका चूमना।

दशप (सं० पु०) दश ग्रामान् पाति रक्षति पा-क। दश ग्रामरक्षक, राजनियुक्त पुरुषभेद। जिस राजपुरुषके ऊपर दस ग्रामोंका रक्षणावेक्षणका भार सौंपा गया हो, उसे दशप वा दशग्रामपति कहते हैं। राजा किसीको एक ग्रामका, किसीको दश, बीस वा सौ ग्रामोंका आधिपत्य देते हैं।

दशपञ्चतपस् (सं० पु०) दशसु इन्द्रियेषु पञ्चसु वह्निषु तपो यस्य। इन्द्रियजयपूर्वक पञ्चाग्नितपश्चारी, जो पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियको जीत कर पञ्चाग्निसाध्य तप करते हैं उन्हें दशपञ्चतपस् कहते हैं।

दशपल्ला—उड़ीसेके करद महालोंमेंसे एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २०°११´ से २०°३५´ उ० और देशा० ८४°२९´ से ८५°७´ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ५६८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें अङ्गुल राज्य, नरसिंहपुर राज्य और महानदी; दक्षिणमें मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत गुमसर राज्य, पूर्वमें खण्डपाड़ा और नयागढ़ राज्य तथा पश्चिममें बोद राज्य है। यह छोटा राज्य पर्वतमय है। इसके प्रधान पर्वतका नाम गोआलं देश है जिसकी ऊँचाई २५०६ फुट है। प्रधान शहरका नाम दशपल्ला है।

लोकसंख्या प्रायः ५१९८७ है। हिन्दू और असभ्य निवासियोंमें कन्ध जातिकी संख्या हो अधिक है। राज्य की आय लगभग ७००००) रु०की है जिसमेंसे ६६१) रु० वृटिशसरकारको देने पड़ते हैं। यह राज्य दो भागोंमें विभक्त है। महानदीके दक्षिणखण्डको दशपल्ला और उत्तरखण्डको युदुम वा जोरीपल्ला कहते हैं। शेष अंश जीत कर दशपल्ला राज्यके अन्तर्भुक्त किया गया है। यह अंश पहले अङ्गुल राज्यके अन्तर्गत था।

यहांके राजवंश सूर्यवंशीय क्षत्रिय हैं। इनकी उपाधि भञ्ज और राजचिह्न मयूर है। बोदराज्यके एक पुत्रने पांच सौ वर्ष पहले यह राज्य स्थापन किया। मयूरभञ्जके राजाको सदृश इस वंशके आदिपुरुष मयूरडिम्बसे उत्पन्न हुए हैं। वर्त्तमान कालमें राजाके ५२१ सैन्य और २६९ पुलिस प्रहरी हैं। इसमें कुल ४८५ ग्राम लगते हैं जिसमेंसे कुञ्जवन प्रधान है। राज्यमें १ दातव्य औषधालय, १ मिडिल-स्कूल, २ अपर प्राइमरी तथा ३० लोअर प्राइमरी स्कूल हैं।

दशपारमिताधर (सं० पु०) दश पारमिता धरो येन। बुद्ध।

दशपिण्ड (सं० पु०) मृत्युके बाद दिये जानेके दश पिण्ड।

दशपुर (सं० क्लो०) दश दिशः पिपर्त्तीति पृ-क। १ कैवर्त्ती मुस्तक, केवटी मोथा। दश पुरी यत्र। २ देशविशेष, मालवेका एक प्राचीन विभाग। इसके अन्तर्गत दश नगर थे। मेघदूतमें इसका नाम आया है। इसका वर्त्तमान नाम मन्दशोर है।

दशपुरुष (सं० पु०) दश गुणितः पुरुषः। स्वजनकावधि पुरुष दशक, अपनेसे ले कर दश पीढ़ी।

दशपूर (सं० क्लो०) दश दिशः पूरयति पूर-अण्। नगरविशेष। दशपुर देखो।

दशपूर्वरथ (सं० पु०) दशपूर्वः रथः यस्य। दशरथ।

दशपेय (सं० पु०) दशभिः पुरुषैव सम पेयं यत्र। यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

दशबल (सं० पु०) दशबलानि यस्य। बुद्ध। दान,

शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान बुद्धके ये दश बल थे, इसीसे इनका नाम दशबल हुआ है।

दशबाहु (सं० स्त्री०) दश बाहवोऽस्याः। १ दशभुजा, दुर्गा। (त्रि०) २ दशबाहुयुक्त, जिसके दश भुजाएं हों।

दशभुजा (सं० स्त्री०) दश भुजा बाहवो यस्याः। दुर्गा। त्रेतायुगमें स्वायम्भुव मन्वन्तरको देवताओंकी भलाईके लिए महामाया दशभुजारूपमें प्रादुर्भूत हुई थीं और उन्होंने स्वयं दैत्योंका नाश किया था।

दशभूमिग (सं० पु०) दशसु भूमिषु दानादिबलेषु गच्छतीति गम-ड। बुद्धदेव।

दशभूमीश (सं० पु०) दशसु भूमिषु दानादिषु ईष्टे प्रभवति ईश अच्। बुद्ध।

दशम (सं० त्रि०) दशानां पूरणः पूरणे डट्, ततो नान्तत्वात् मट्। दश संख्याका पूरण, दशवां।

दशमदशा (सं० स्त्री०) साहित्यके इस निरूपणमें वियोगीकी एक दशा। इसमें वह प्राण छोड़ देता है।

दशमभाव (सं० पु०) जन्मलग्नांशविशेष, तन्वादि बारह भावोंमेंसे दशवां भाव अर्थात् कुण्डलीके लग्नसे दशवां घर। लग्नसे ले कर व्यय पर्यन्त बारह राशियोंकी तनु प्रभृति संज्ञा निर्दिष्ट हैं। इनमेंसे दशवें घरमें मान, आज्ञा और कर्मविषयक शुभाशुभका विचार किया जाता है। इस घरमें यदि शुभग्रहादि हों, तो शुभफल और अशुभ ग्रह हों, तो अशुभफल मिलता है। तनु प्रभृति भावकी स्फुट गणनाके विना फलाफल प्रायः ठीक नहीं होता है। द्वादशभाव देखो।

दशमलव (हिं० पु०) भिन्नका एकभेद। इसके घरमें दश या उसका कोई घात होता है।

दश महाविद्या (सं० स्त्री०) शाक्तोंको उपास्य दश इष्टदेवमूर्त्तियां।

चामुण्डातन्त्रके मतसे—

"काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः॥"



काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला यह दशमहाविद्या सिद्धविद्या नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन दशमहाविद्याकी उत्पत्तिमें मतभेद है। कुछ लोग यों कहते हैं,—सतीने जब दक्षयज्ञमें जाना चाहा तब महादेवने निषेध किया। इस पर भगवतीने पहले काली मूर्त्ति दिखा कर शिवको डराया। भोलानाथ भयभीत हो कर भागनेको उद्यत हुए, किन्तु महामायाने दशों ओर दश मूर्त्तियोंमें आविर्भूत हो कर उनका रास्ता रोक दिया। जिन दश मूर्त्तियोंमें महामाया आविर्भूत हुई थीं, वही दश महाविद्या हैं। महाभागवतपुराणमें इसका उल्लेख यों है—

सत्युवाच।
सहस्रं वद देवेश तथापि पितुरालये।
गमिष्यामि महायज्ञं द्रष्टुमिच्छुरहं प्रभो॥
मयि तत्र गतायां स सम्मान कुरुते यदि।
तदोक्त्वा पितरं तुभ्यं दापयिष्यति चाहूतिम्॥
ममाग्रे यदि ते निन्दा करोष्यति विमूढधीः।
तदा तस्य महायज्ञं नाशयामि न संशयः॥

शिव उवाच।
न तत्र गमनं युक्तं कदाचिदपि ते सति।
विनापमानं सम्मानं तत्र तेन भविष्यति॥
मन्निन्दनमसह्यन्ते करिष्यति पिता तव।
प्राणान् हास्यति तच्छ्रुत्वा तस्य किं त्वं करिष्यति॥

सत्युवाच।
यास्याम्येव महादेव सत्यं मत्पितुरालये।
स्वमाज्ञापय वा नो वा सत्यं सत्यं वदामि ते॥

शिव उवाच।
मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य पुनः पुनः किं
ब्रवीषि गन्तुं पितुरालये च।
प्रयोजनं तत्र किमस्ति ते सति
ब्रुहि स्फुटं तत् कथमेतदुत्तरम्॥
असम्मानं भयं येषां विद्यते न दुरात्मनाम्।
तएव तत्र गच्छन्ति यत्र सम्मानभावना॥
मान्यैः कदाचिन्नो गच्छेदपूज्यगृहे सति।
अपूज्यकस्य या पूजा न सा पूजेति मन्यते॥

मन्निन्दनश्रुतौ मेने प्रीतिस्ते जायते सति ।
मन्निन्दकगृहे कस्मादन्यथा गन्तुमिच्छसि ॥
सत्युवाच ।
त्वन्निन्दनश्रुतौ शम्भो न प्रीति र्जायते मम ।
तच्छ्रोतुमिच्छुर्नो वापि तत्र गन्तुं समुत्सहे ॥
यदैव त्वां परित्यज्य सर्वानाहूय दैवतान् ।
समारभन्महायज्ञमसम्मानं तदैव हि ॥
ज्ञातं तव त्वमेतत्तु न समालोकसे प्रभो ।
यथैवं स महायज्ञं समादयति मत् पिता ॥
त्वामनादृत्य दर्पेण तदा ते क्वापि नो जनः ।
आहूतिं श्रद्धयोपेतं सम्प्रदास्यति भूतले ॥
तदहं तत्र यास्यामि त्वमाज्ञापय वा नवा ।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखं ॥
शिव उवाच ।
अवारितासि देवि त्वं यथेच्छं कुरु सर्वथा ।
अपकर्म स्वयं कृत्वा परं दूषयते कुधीः ॥
जानामि वाग्वहिर्भूतां त्वामहं दक्षकन्यके ।
यथारुचि कुरु त्वञ्च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे ॥
एवमुक्ता महेशेन तदा दाक्षायणी सती ।
चिन्तयामास संक्रुद्ध्वा क्षणमारक्तलोचना ॥
संप्रार्थ्य मामनुप्राप्य पत्नीभावेन शंकरः ।
मामवज्ञाय वचनं भाषतेऽति सुदारुणम् ॥
अक्षेनमपि दर्पिष्ठं पितरञ्च प्रजापतिम् ।
संस्थास्यामि कियत्कालं स्वस्थानं निज लीलया ॥
ततश्च प्रार्थितानेन भूत्वा हिमवतः सुता ।
शम्भोः पत्नी भविष्यामि भूयोहं स्वयमेव हि ॥
एवं सञ्चिन्त्य मनसा क्षणं दाक्षायणी मुने ।
भयानकैस्त्रिनेत्रै मोंहयामास शंकरम् ॥
शम्भुः समीक्ष्य तां देवीं क्रोधविस्फुरिताधराम् ।
कालाग्नितुल्यनयनां स्तब्धान्तः समभून्मुने ॥
एवं समीक्ष्यमाना सा शम्भुना भीतचेतसा ।
सहसा भीमदंष्ट्रास्या साट्टहासं सदाकरोत् ॥
तन्निशम्य महादेवो महाभीतो विमुग्धवत् ।
कष्टेनोन्मील्य नेत्राणि तां ददर्श भयानकां ॥
एवं समीक्ष्यमाना सा सहसा तेन नारद ।
त्यक्त्वा हैमी रुचिं प्रासीत् कृष्णाञ्जनसमप्रभा ॥

दिगम्बरा गलत्केशा लोलजिह्वा चतुर्भुजा ।
कामालसलसद्देहा स्वेदाक्ततनुरुल्वणा ॥
महाभीमा घोररावा मुण्डमाला-विराजिता ।
उद्यत्प्रचण्डकोट्याभा चन्द्रार्द्धकृतशेखरा ।
उद्यदादित्यसंकाशकिरीटोज्ज्वलमस्तका ॥
एवं समादाय वपुर्भयानकं
जाज्ज्वल्यमानं निज तेजसा सती ।
कृत्वाट्टहासं सहसा महास्वनं
सोत्तिष्ठमाना विरराज तत्पुरः ॥
तथाविधाकारवतीं निरीक्ष्यतां
विहाय धैर्यं स महेश्वरस्तदा ।
चकार बुद्धिं प्रपलायने भयात्
समभ्यधावच्च दिशोति मुग्धवत् ॥
तं धावमानं गिरिशं विलोक्य सा
दाक्षायणी वारयितुं पुनः पुनः ।
चकार माभैरिति शब्दमुच्चकैः
साट्टाट्टहासं सुमहाभयनकम् ॥
निशम्य तद्वाक्यमतीव सम्भयात्
तस्थौ न शम्भुः क्षणमप्यमुत्र वै ।
दिगन्तमागन्तुमतीव वेगतः
समभ्यधावद्भयविह्वल स्तदा ।
एवं पतिं वीक्ष्य भयातिभूतकं
दयान्विता तत्प्रतिवारणेच्छया ।
सर्वासु दिक्षु क्षणमात्र मध्यतः
स्थिता च भूत्वा दशमूर्त्तयस्तदा ॥
सुन्धावमानो गिरिशोति वेगतः
प्राप्नोति यां यां दिशमेव तत्र तां ।
भयानका वीक्ष्य भयेन विद्रुतो
दिशं तथान्यां प्रति चाभ्यधावत ॥
न प्राप्य शम्भुस्तु भयान्वितो दिशं
तत्रैव संमुद्रितचक्षुरास्थितः ।
उन्मील्य नेत्राणि ददर्श तां पुरः
श्यामालसत्पङ्कजसन्निभाननान् ॥
हसन्मुखी पीनपयोधरद्वयां
दिगम्बरां भीमविशाललोचनाम् ।
विमुक्तकेशीं रविकोटिसन्निभां

चतुर्मुखा दक्षिणसमुकस्थिताम् ॥
एवं विलोक्य ता शम्भुर्महाभीत इवाब्रवीत् ।
का त्वम् श्यामा सती कुत्र गता मत्प्राणवल्लभा ॥
सत्युवाच ।
न पश्यसि महादेव सतीं मां पुरतः स्थिताः ।
कथं तवेदृशो बुद्धिः किं मां त्वं लक्ष्यसेऽन्यथा ॥
शिव उवाच ।
त्वं सा यदि सती दक्षकन्या मत्प्राणवल्लभा ।
कथं तदा कृष्णवर्णा कथं वा भूर्भयप्रदा ॥
सर्वासु दिक्षु एताः का देव्योतिभयदायिकाः ।
त्वं चासां कतमा देवि वद मां भयविह्वलं ॥
सत्युवाच ।
अहन्तु प्रकृतिः सूक्ष्मा सृष्टिसंहारकारिणी ।
अभवं त्वद्वनितायै त्वदर्थे गौरदेहिका ॥
त्वामेव लिप्सुः पुरुषं प्राकृत्वीकृतवशाच्छिव ।
साहं पितुर्महायज्ञविनाशाय भयानका ॥
अभवं त्वन्तु मा भीतिं कुरु मत्तो महेश्वर ।
दश दिक्षु महाभीमा या एता दशमूर्तयः ॥
सर्वा ममैव मा शम्भो भयं कुरु महामते ।
त्वं मत्प्राणसमो भर्ता तवाहं वनिता सती ॥
त्वां दृष्ट्वाहं महाभीतं धावमानं दिशो भयात् ।
परित्रातुं दिशः सर्वा स्तवाहं दशधा स्थिता ॥
शिव उवाच ।
त्वं मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
त्वामज्ञात्वा मोहामोहात्तवाप्रियतमं वचः ॥
मयोक्तं तन्महादेवि क्षमस्व परमेश्वरि ।
महाभयानका एता मूर्तयस्तव याः शिवे ॥
आसां नामानि मे ब्रुहि प्रत्येकं भीमलोचने ।
देव्युवाच ।
एता सर्वाः महादेव महाविद्यासमप्रभाः ।
आसां नामानि वक्ष्यामि शृणु तानि महेश्वरः ॥
काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च सुन्दरी बगलामुखी ॥
धूमावती च मातंगी नामान्यन्याति वै शिवे ।
शिव उवाच ।
कस्याः किंनाम देवि त्वं विशेष्य च पृथक् पृथक् ।
कथयस्व जगद्धात्रि सुप्रसन्नासि मे यदि ॥

देव्युवाच ।
येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना ।
श्यामवर्णा तु या देवी स्वयमूर्ध्वे व्यवस्थिता ॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी ।
दक्षे सव्येतरेयं या विशीर्षातिभयप्रदा ॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते ।
वामेतरेयं या देवी सेयं तु भुवनेश्वरी ॥
पृष्ठतस्तव देव्येषा बगला शत्रुसूदनी ।
वह्निकोणेतरेयं या विधवारूपधारिणी ॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी ।
नैरृत्यान्तरे या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी ॥
वायौ या तु महाविद्या सेयं मातङ्गनामिका ।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी ॥
अहन्तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु ।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहु मूर्तिषु ॥
भक्त्या सभजता नित्यां चतुर्वर्गफलप्रदां ।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकाना महेश्वरः ॥
मारणोच्चाटनक्षोभमोहनद्रावणानि च ।
वश्यस्तम्भनविद्वेषायमि प्रेतानि कुर्वते ॥
इमां सर्वा गोपनीया न प्रकाश्या कदाचन ।
आसां मन्त्रं तथा यन्त्रं पूजाहोमविधिं तथा ॥
पुरश्चर्या विधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा ।
आचारनियमं चापि साधकानां महेश्वर ॥
तदेवागमशास्त्रन्तु लोके ख्यातं भविष्यति ।
अहं तव प्रियतमा त्वं च मेऽतिप्रियपतिः ॥
पितुः प्रजापतेर्दर्पनाशायाशु व्रजाम्यहम् ।
त्वमाज्ञापय देवेश त्वं न गच्छसि चेद्यदि ॥
इति देव समाभीष्टं त्वयवानुगतापरहम् ।
गच्छामि यज्ञनाशाय पितुर्दक्ष प्रजापतेः ॥
इति तस्य वच श्रुत्वा महाभीत इव स्थितः ।
प्रोवाच वचनं शम्भु कालीं भीमा विलोचनां ॥
जाने त्वां परमेशानि पूर्णा प्रकृतिमुत्तमाम् ।
अजानता महामोहाद्यदुक्तं क्षन्तुमर्हसि ॥
त्वमाद्या परमा विद्या सर्वभूतेष्ववस्थिता ।
स्वतन्त्रा परमाशक्तिः कस्ते विधिनिषेधकः ॥
त्वं चेद्गमिष्यसि शिवे दक्षयज्ञविनाशने ।
कामे शक्तिस्त्वां निषेद्धुं कथं तत्रास्मि वा क्षमः ॥

यच्चोक्तमतिमोहेन मत्वेमानं पतिं तव ।
तत्क्षमस्व महेशानि यथारुचि तथा कुरु ॥
एवमुक्त्वा महेशेन तथा सा जगदम्बिका ।
ईषत्सहास्यवदना वदनं चेदमब्रवीत् ॥
त्वं तिष्ठ सर्वप्रमथै रत्रैव महेश्वर ।
याम्यहं मत्पितृगृहे साम्प्रतं यज्ञदर्शने ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवं ताराप्यूर्द्ध्वव्यवस्थिता ।
एकरूपा समभवत् सहसा तत्र नारद ॥
अन्याश्च मूर्त्तयश्चाष्टौ सहसान्तर्हिता स्तदा ।
अथ शम्भुः समालोक्य गन्तुमिच्छुं सुरेश्वरी ॥
प्रमथानाह भगवान् रथमानय चोत्तमम् ।
युताश्वायुतसिंहेन रत्नजालविराजितम् ॥
तच्छ्रुत्वा तत्क्षणादेव प्रथमाधिपतिः स्वयं ।
रथं समानयत् सिंहैरयुतैर्युक्तमाशुगैः ॥
तां समारोपयामास प्रमथाधिपतिः स्वयं ।
तस्मिन् रथेस्थिता काली विह्वला भीमरूपिणी ॥"

( महाभागवत ८म अ० )

ऊपर दश महाविद्याकी उत्पत्तिके विषयमें जो विवरण लिखा गया, वह महाभागवत पुराणके सिवा और किसी पौराणिक वा तान्त्रिक ग्रन्थमें नहीं मिलता।

तन्त्रमें महाविद्याकी उत्पत्ति और प्रकारसे वर्णित है—

"कलौ कृष्णत्वमासाद्य शुक्लापि नीलरूपिणी ।
लीलया वाक्प्रदाचेति तेन नीलसरस्वती ॥
तारकत्वात् सदा तारा तारिणी च प्रकीर्त्तिता ।
भुवनाना पालकत्वाद्भुवनेशी प्रकीर्त्तिता ॥
सृष्टिस्थितिकरी देवी भुवनेशी प्रकीर्त्तिता ।
श्रीदात्री च सदा विद्या श्रीविद्या च प्रकीर्त्तिता ॥
निर्गुणा च महादेवी षोडशी परिकीर्त्तिता ।
भैरवी दुःखसंहन्त्री यमदुःखविनाशिनी ॥
कालभैरवभार्या च भैरवी परिकीर्त्तिता ।
त्रिशक्ति कालदा देवी छिन्ना चैव सुरेश्वरी ॥
त्रिगुणा च महादेवी मोहिनी मोक्षदा ध्रुवं ।
धूमावती महामाया धूम्रासुरनिसूदनी ॥
धूमरूपा महादेवी चतुर्वर्गप्रदायिनी ।
जगन्माता जगद्धात्री जगतामुपकारिणी ॥
बकारे वारुणी देवी गकारे सिद्धिदा स्मृता ।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या मे प्रकीर्त्तिता ॥
मातंगी मदशीलत्वान्मतंगासुरनाशिनी ।
सर्वापत्तारिणी देवी मातंगी परिकीर्त्तिता ॥
वैकुण्ठवासिनी देवी कमला च परिकीर्त्तिता ।
पातालवासिनी देवी लक्ष्मीरूपा च सुन्दरी ॥
एता दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ।"

महादेवीके शुक्ला होने पर भी कलिमें कृष्णत्व प्राप्त कर नीलरूपिणी हो गई थीं। अब लीलाक्रमसे उन्होंने वाक्शक्ति प्रदान की, इसीसे उनका नाम नील-सरस्वती पड़ा। सब भूतोंको तारण करनेके कारण वे तारा वा तारिणी कहलाईं। ये सब भुवनोंका पालन करती हैं इसीसे ये भुवनेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हैं तथा सृष्टि और स्थितिकारिणी होनेसे भी ये भुवनेश्वरी कहलाईं। महादेवी श्री दान करती हैं, इसीसे ये श्रीविद्या नामसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिगुणातीता हैं इसीसे इनका नाम षोडशी है। ये सब प्रकारके दुःखोंका नाश करती हैं, यम-यन्त्रणासे रक्षा करती हैं और भैरवकी भार्या हैं इसीसे इनका नाम भैरवी पड़ा है। यह देवी त्रिशक्तिरूपिणी हैं, मस्तकछिन्ना हैं, मोहिनी और मोक्षदायिनी हैं, इसीसे इनका नाम छिन्नमस्ता हुआ है। इसी महामायाने धूम्रासुरका विनाश किया था, तथा इनका वर्ण धूम्र है तथा ये धर्म अर्थ काम और मोक्षकी देनेवाली है इसीसे ये धूमावती नामसे प्रसिद्ध है। बकार शब्दका अर्थ वारुणी देवी, गकार शब्दका सब प्रकारकी सिद्धिदायिका और लकार शब्दका अर्थ पृथिवी है तथा ये स्वयं चैतन्यरूपिणी हैं इसीसे इनका नाम बगला रखा गया है। महादेवी अत्यन्त मदशीला है, इन्होंने मतङ्ग असुरको मारा है तथा ये सब आपदोंसे उद्धार करती हैं, इसी कारण इनका नाम मातङ्गी है। महादेवी हमेशा वैकुण्ठमें वास करती हैं, इसीसे इनका नाम कमला और पातालमें रहनेसे लक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध है। यह दशमहाविद्या भी सिद्धविद्या नामसे वर्णित हैं।

नारद-पञ्चरात्रमें ( ३।१ अ० ) लिखा है—

"दक्षगेहे समुद्भूता या सती लोकविश्रुता ।
कुपिता दक्ष राजर्षिं सती त्यक्त्वा कलेवरं ॥

अनुगृह्य च मेनाया जाता तस्यान्तु सा तदा ।
काली नाम्नेति विख्याता सर्वशास्त्रे प्रतिष्ठिता ॥"

सती दक्षगृहमें जन्म ले कर राजर्षि दक्षके प्रति बहुत कुपित हुईं, इसी कारण इन्होंने अपना कलेवर छोड़ दिया। पीछे बहुत अनुग्रह करने पर इन्होंने मेनकाके गर्भमें जन्म-ग्रहण किया और उस समय ये सती काली नामसे प्रसिद्ध हुईं।

फिर स्वतन्त्र-तन्त्रके मतसे—

"महारात्रिदिनेऽवन्त्यां नगर्यां जातमेव तत् ।
कालीरूपं महेशानी साक्षात् कैवल्यदायकं ॥"

महेश्वरीने अवन्ती नगरीमें महारात्रिके दिन काली-रूप धारण किया था, इसीसे इनका नाम काली पड़ा है। ये साक्षात् कैवल्यदायिनी हैं।

नारदपञ्चतन्त्रमें ( ३।२ अ० ) लिखा है—जो दक्ष-गृहमें उत्पन्न हुई थीं, उनका नाम सती है, कैवल्यदा-यिनी होनेके कारण उनका नाम एकजटा है, वे ही सब भूतोंको तारण करती हैं। इसीसे इनका नाम तारा पड़ा है अथवा लीला क्रमसे वाक्-दान करती हैं इसीसे इनका नाम नीलसरस्वती और उग्रत्वके कारण उग्र-तारिणी नाम पड़ा है।

फिर स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा है—कालरात्रिके दिन दो-पहर रातको इन्होंने उग्र आपदसे तारण किया था; इसीसे इनका नाम उग्रतारा पड़ा। मेरुके पश्चिम कूलमें चोल नामक एक महाह्रद है। इस ह्रदमें माता नीलसर स्वतीने जन्मग्रहण किया और यहां वे तीन युग तक जप करती रहीं। ऊर्ध्व वक्त्रसे तेजोराशिके चोलह्रदमें गिरने-से इसका वर्ण नीला हो गया था, इसीसे ये नीलसर-स्वती नामसे प्रसिद्ध हैं। षोडशीकी उत्पत्तिका विवरण नारदपञ्चरात्रमें इस प्रकार लिखा है—

"भूयः शृणु मुनिश्रेष्ठ रहस्यं परमाद्भुतम् ।
येन काली महामाया सुन्दरीत्वमुपागता ॥
कैलासशिखरे रम्ये वसमाने च शङ्करे ।
इन्द्रश्च प्रेषयामास सर्वश्चाप्सरसो मुदा ॥
आगतास्ता महादेवं तुष्टुवुस्तु महेश्वरं ।
इत्येव वचनं श्रुत्वा तासां स वृषभध्वजः ॥
आभाष्य श्लक्ष्णया वाचा करुणामृतया ततः ।

ईश्वर उवाच ।

पुरुषस्यातिथिर्ज्ञेयः पुरुषो नात्र संशयः ।
स्त्रीणां स्त्री चातिथिर्ज्ञेया तस्मादूचुःतु कालिकां ॥
इत्युक्त्वा तत्परं रम्यं विवेश परमेश्वरः ।
उवाच कालीं भगवानीश्वरं परमेश्वरीं ॥
ता अप्यवापुः परमा प्रीतिं परमदुर्लभां ।
ततो देवी महाकाली चिन्तयित्वा मुहुर्मुहुः ॥
एतद्रूपमपोहाय शुद्धगौरी भवाम्यहं ।
यस्मात् कालीति कालीति महादेवः समाह्वयेत् ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा अन्तर्द्धानं गता परा ।
महादेवोऽपि कालेन गतोऽन्तःपुरं शिवः ॥
नापश्यच्च तदा कालीं तस्थौ तस्मिन् पुरे हरः ।
अथ काले कदाचित्तु आगतस्तत्र नारदः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं महादेवं महेश्वरं ।
कृताञ्जलिपुटस्तस्थौ ततो देवाग्रतो मुनिः ॥
महादेवोऽपि वामेन पाणिना मुनिसत्तमं ।
उपस्पृश्य समाश्वास्य चक्रे पुण्यवतीं कथां ॥
कालेन कियता तत्र कथान्ते मुनिसत्तम ।
उवाच सादरं वाक्यं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥

नारद उवाच ।

क गता त्वां परित्यज्य काली कालविनाशिनी ।
प्रत्युवाच महादेवस्तं मुनिं नारदं ततः ॥
अन्तर्द्धानं गता देवी मां हित्वा मुनिसत्तम ।
इति प्रोक्त्वा वचस्तस्य नारदो हर्षमागतः ॥
विवादसमयश्चायं महाकालस्य शूलिनः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा ध्यानमाश्रित्य नारदः ॥
ददर्श तां महाकालीं ध्यानचक्षुः समाश्रितः ।
सुमेरोरुत्तरे पार्श्वे स्थिता सा परमेश्वरी ॥
प्रणम्य परया भक्त्या उपतस्थे जगन्मयी ।

देव्युवाच ।

विद्रूपेणा मदीयेन किं करोति महेश्वरः ।
तस्यैव कुशलं सर्वं कथयस्व मुनीश्वर ॥

नारद उवाच ।

उद्योगं परमं चक्रे विहारार्थं महेश्वरः ।
देवदेवो गिरिसुते तं निवारय सुव्रते ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सक्रोधा परमेश्वरी ।

जाज्वल्यमाना रक्ताक्षी रूपमन्यद्दधौ परा ।
यन्नास्ति त्रिषु लोकेषु सौन्दर्यमपि कुत्रचित् ॥
दधौ तद्रूपमतुलं सर्वेषामधिकं परं ।
यत्रास्ते भगवान् देवो देवदेवो महेश्वरः ॥
समागता क्षणेनैव ततः सा परमेश्वरी ।
ददर्श हृदये शम्भोः स्वच्छायां परमेश्वरी ॥
उवाच सा महादेवं क्रोधेन महतावृता ।
कृतघ्नस्त्वं महादेव मया यः समयः कृतः ॥
त्वत् त्वं लंघितवान् देव किमर्थं परमेश्वर ।
कृत्वा विवाहं हृदये स्थानं दत्तं मया शिव ॥
एतत् श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रहस्य परमेश्वरः ।
उवाच स प्रियां साध्वीं प्रेमगद्गदया गिरा ॥
ईश्वर उवाच ।
नाहं कृतघ्नो कल्याणि नाहं समयलंघकः ।
हृदये मे त्वया दृष्टा स्वच्छाया नात्र संशयः ॥
ध्यानं कुरु महाभागे पश्य त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
स्वच्छायामेव देवेशि ततः सुस्थाभवत् परा ॥
उवाच परमेशानं देवदेवं महेश्वरं ।
परेण प्रेमभावेन जगदीशं जगन्मयं ।
का च्छायां हृदि दृष्टा सा तन्मे ब्रुहि जगत्पते ॥
ब्रह्मोवाच ।
इति श्रुत्वा महादेवः कालिकावचनं परं ।
उवाच प्रेमभावेन देवदेवं सनातनः ॥
ईश्वर उवाच ।
यस्मात्त्रिभुवने रूपं श्रेष्ठं कृतवती शिवे ।
तस्मात् स्वर्गे च मर्त्ये च पातालेऽन्यत्र पार्वति ॥
सुन्दरी पञ्चमी श्रीश्च ख्याता त्रिपुरसुन्दरी ।
सदा षोडशवर्षीया विख्याता षोडशी ततः ॥
या छायां हृदये मेऽद्य दृष्ट्वा भीता सुरेश्वरि ।
तस्मात् सा त्रिषु लोकेषु ख्याता त्रिपुरभैरवी ॥
यावस्था भगवत्याश्च सुस्थचिता कृपामयी ।
ततस्तां भुवनेशानीं राजराजेश्वरीं विदुः ॥
या चोग्रतारिणी प्रोक्ता या च दिक्करवासिनी ।
सैषा ललितकान्ताख्या ख्याता मंगलचण्डिका ॥
कौषिकी देवदूती च याश्चान्यामूर्त्तयः स्मृताः ।
या ख्याता भुवनेशानी तस्या भेदानेकधा ॥

त्रिपुटा जयदुर्गा च वनदुर्गा त्रिकण्टकी ।
कात्यायनी महिषघ्नी दुर्गा च वनदेवता ॥
श्रीरामदेवता वज्रप्रस्तारिणी च शूलिनी ।
गृहदेवी गृहारूढा मेधा राधा च कालिका ॥
कथिताश्च समासेन तासां भेदाश्च नारद ।
विस्तारेण तु केनैव शक्यते गदितुं मुने ॥"

जिस समय शङ्कर रमणीय कैलास-शिखर पर वास करते थे, उस समय इन्द्रने उनका स्तव करनेके लिए अप्सराओंको भेजा था। अप्सराओंने आ कर जहां तक हो सका खूब स्तव किया। इस पर महादेवजी सन्तुष्ट हो कर बोले थे, 'पुरुषका अतिथि पुरुष है, स्त्रीको अतिथि स्त्री है। इस कारण तुम लोग कालीके निकट जावो।' इतना कह कर महादेव तो रमणीयपुर चले गये और अप्सरागण भी परमदुर्लभ प्रीति प्राप्त कर वापस आईं। महादेवने यह वृत्तान्त कालीसे कहा। इस पर काली बहुत चिन्ता करने लगीं और कालीरूपका परित्याग कर शुद्ध गौरी हो गईं। महादेव भी काली काली कह कर चिल्लाने लगे महादेवने अन्तःपुर जा कर जब कालीको नहीं देखा, तब वे वहीं रहने लगे। किसी समय नारदजी वहां जा पहुंचे। महादेवने नारदके शरीरको बाएँ हाथसे स्पर्श कर उनका खूब सत्कार किया और तरह तरहका बातचीत की। नारदने महादेवसे पूछा, 'कालविनाशिनी काली आपको छोड़ कर कहां चली गई है?' महादेवने कहा, 'काली हमें छोड़ कर अन्तर्हित हो गई है।' यह सुन कर नारदजी बहुत खुश हुए। उन्होंने अपने ध्यानचक्षुसे देखा कि सुमेरुके उत्तरपार्श्वमें महादेवी अवस्थान करती है। इस पर नारद महामायाके पास गये और उन्हें प्रणाम कर वहीं रहने लगे। महादेवीने नारदसे पूछा, 'महादेव मेरे बिना किस प्रकार रहते हैं, उनका कुशल सम्वाद हमें कहो।' इस पर नारदजीने कहा, 'हे गिरिसुते! देवदेव महादेव परम विवाहके लिए उद्योग कर रहे हैं, आप उन्हें रोकिये।' यह सुन कर देवी बहुत बिगड़ीं और उनकी आंखें लाल लाल हो गईं। तब देवीने दूसरा रूप धारण किया। उन्होंने जैसा सौन्दर्य धारण किया, वैसा तीनों लोकोंमें

कहीं भी न था। ऐसे अतुलनीय रूपको धारण कर वे जहां भगवान् महेश्वर रहते थे, वहीं उपस्थित हुईं। महादेवीने शम्भुके हृदयमें अपनी छाया देख बहुत गुस्सा कर कहा,—'हे कृतघ्न! तू मेरे साथ प्रतिज्ञारूपी पाशसे बंधे हुए हो, तो फिर क्यों उसे उल्लङ्घन करते हो? तूने विवाह करके मुझे अपने हृदयमें स्थान दिया है।' महादेव कालीकी ऐसी क्रोध भरी बातें सुन कर कुछ मुसकुरा कर बोले, 'हे कल्याणी! मैं कृतघ्न नहीं हूं और न मैंने प्रतिज्ञा ही उल्लङ्घन की है. मेरे हृदयमें जो देखती हो, वह तुम्हारी ही छाया है, इसमें सन्देह नहीं।' पीछे कालीको जब मालूम पड़ा कि यह उन्हींकी छाया है, तब वे कुछ शान्त हुईं और महादेवजीने बोलीं, 'वह छाया कौन है? हमें कहिये।'

यह सुन कर महादेवने कहा, 'हे शिवे! तूने त्रिभुवनमें श्रेष्ठरूप धारण किया था। इसीसे स्वर्गमें, मर्त्यमें और पातालमें क्रमशः सुन्दरी, पञ्चमी और श्रीत्रिपुरसुन्दरी नामसे प्रसिद्ध होगी और सर्वदा षोड़शवर्षीया हो कर षोड़शी नाम भी धारण करोगी। आज मेरे हृदयमें अपनी छाया देखकर तू डर गई थी इसीसे तीनों लोकोंमें तेरा नाम त्रिपुरभैरवी होगा। भगवतीकी कृपामयी सुस्थचित्ताकी जो अवस्था है उसे तू भुवनेश्वरी और राजराजेश्वरी समझो। वह कृपामयी अवस्था उग्रतारिणी, दिक्करवासिनी, ललितकान्ता, मङ्गलचण्डिका कौषिकी, देवदूती आदि नामोंसे प्रसिद्ध होंगी। उनका एक नाम भुवनेश्वरी भी होगा जिनके अनेक भेद होंगे। यथा—त्रिपुरा, जयदुर्गा, वनदुर्गा, त्रिकटकी, कात्यायिनी महिषघ्नी, दुर्गा, वनदेवता, आरामदेवता, वज्रप्रस्तारिणी, शूलिनी, गृहदेवी, मेधा, राधा, कालिका आदि।

छिन्नमस्ताका उत्पत्ति-विवरण नारदपञ्चरात्रमें इस प्रकार लिखा है—

"एकदा पार्वती देवी स्नानार्थं गतवत्यपि।
सार्द्धं सहचरीभ्याञ्च मन्दाकिन्या जले मुदा॥
तत्र स्नात्वा कामवाणपीड़िता च जगन्मयी।
बभूव कृष्णा सा देवी जगदानन्दकारिणी॥
अथ काले कदाचित्तु ताभ्यां पृष्टा महेश्वरी।
देहि भक्ष्यं क्षुधार्त्ताभ्यां मावाभ्यां परमेश्वरी॥
अत्र ते च प्रदास्यामि कुरुतां मे प्रतीक्षणं।
क्षणादूर्ध्वं पुनः पृष्टा देहि भक्ष्यमथावयोः॥
प्रतीक्षणं प्रकुर्वन्तां किञ्चित् कालं स्मरामि च।
क्षणात् परमूचतुस्ते देहि भक्ष्यमथावयोः॥
माता त्वं सर्वजगतां मातरं प्रार्थयेच्छिशुः।
माता ददाति सर्वेषां भोजनाच्छादनादिकम्॥
अतस्त्वं प्रार्थये भक्ष्यं भक्षार्थं करुणामयि।
इति श्रुत्वा महेशानी मधुरं वचनं तयोः॥
गृहे गत्वा प्रदास्यामि इत्यूचे वचनं तयोः।
ऊचतुस्ते पुनस्तां वै डाकिनी वर्णिनी परे॥
जया च विजया ये तु आवां क्षुत्परिपीड़िते।
देहि भक्ष्यं जगन्मातर्यथा तृप्ये कृपामयि॥
तथा कुरु जगन्मातर्वरदे देवी वाञ्छितम्।
इति श्रुत्वा वचः श्लक्ष्णं कृपामयि शुचिस्मिता॥
नखाग्रेण च चिच्छेद वामेन स्वशिरस्तदा।
छिन्नमात्रन्तु तत्शीर्षं वामहस्ते पपात च॥
कण्ठाद्विनिःसृतं रक्तं त्रिधारेण तपोधन।
वामदक्षिणभेदेन ये धारे च विनिर्गते॥
सखीमुखे तु संयोज्य मध्यधारा स्वकानने।
एवं कृत्वा तु ता स्तत्र गताः सर्वा यथागतम्॥
छिन्नं तस्या यतो मुण्डं छिन्नमस्ता ततः स्मृता।"

एक दिन पार्वतीदेवी सहचरियोंके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करने गई थी। स्नान करनेके बाद वह कामातुर हो गईं। उस समय जगदानन्दकारिणी देवी कृष्णा हो गईं। पीछे किसी समय दो सहचरियोंने महेश्वरीसे कहा, 'हे महेश्वरी! हम लोगोंको बहुत भूख लगी है, अतः हमें कुछ खानेको दीजिये'। महेश्वरीने कहा था, 'कुछ काल ठहर जावो खानेको देती हूं'। पीछे कुछ समय बीत जाने पर दोनोंने फिर देवीसे कहा, 'आप संसारकी माता है, शिशु मातासे ही खाद्य पदार्थके लिए प्रार्थना करता है। माता अपने सभी बच्चोंको खाने देती है। अतः हे करुणामयि! आपसे हम लोग खानेको कुछ चाहती हूं।' यह सुन कर देवीने कहा, 'घर जा कर हम लोग भोजन करेंगे।' डाकिनी, वर्णिनी, जया, विजयाने फिरसे क्षुधातुर हो कर कहा था, 'हे

जगन्मातः कृपामयि! हम लोगोंको खानेके लिए कुछ दीजिए जिससे क्षुधा निवृत्त हो।' कृपामयी देवीने यह सुन कर बाएँ नखाग्रसे अपना कण्ठ काट डाला। ऐसा करनेसे उनका मस्तक बायें हाथ पर गिर पड़ा। कण्ठसे रक्तके तीन धाराएँ निकलीं। बाईं और दाहिनी ओरकी धाराको उन्हींकी दो सखियोंने मुँहमें लगा दिया और बीचकी धाराको उन्होंने अपने मुँहमें रख लिया। इसी प्रकार मुण्डच्छिन्न हुआ था। उनका छिन्नमस्ता नामपड़नेका यही एक कारण है।

स्वतन्त्रतन्त्रमें लिखा,—

"छिन्नोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि तारा सैव च कालिका।
पुरा कृतयुगे चैव कैलासे पर्व्वतोत्तमे॥
महामाया मया सार्द्धं महारतपरायणा।
शुक्रोत्सारणकाले तु चण्डमूर्त्तिर भूत्तदा॥
तदास्वदेहसम्भूते द्व शक्ती सम्बभूवतुः।
डाकिनी वर्णिनी नाम्ना सख्यौ ताभ्यां सहाम्बिका॥
पुष्पभद्रानदीकूलं जगाम चण्डनायिका।
मध्याह्ने च क्षुधार्त्ते च चण्डिकां पृच्छतस्ततः॥
भक्षणं देहि तत्श्रुत्वा विहस्य चण्डिका शुभा।
चिच्छेद निज मूर्द्धानं कवन्धोपरि पार्वती॥
निजं मूर्त्तिं समासाद्य या पुरा परिकीर्त्तिता।
त्रिवर्णां तान्तु दृष्ट्वाहं सहसा क्रोधमागतः॥
अन्यैः कृतमिदं मत्वा ततः शुश्राव तद्यथा।
तदाभूत् क्रोधजो देवी मदंशः क्रोधभैरवः॥
वीररात्रिदिने जाता दिनान्तं परमा कला।
सखीभ्यां सह देवेशि नद्यां तस्या प्रचण्डिका॥"

छिन्नाकी उत्पत्ति कहता हूँ,—वही कालिका और वही तारा छिन्नमस्ता है। पहले सत्ययुगमें सर्वश्रेष्ठ कैलास पर्वत पर महामाया हमारे (शिवके) साथ महारतपरायणा थीं। शुक्रोत्सारणके समय महामायाने चण्डमूर्त्ति धारण की और उस समय उनकी देहसे दो शक्तियां निकलीं जिनके नाम डाकिनी और वर्णिनी थे। इन दोनोंमें सखीभाव था, अम्बिका उनके साथ पुष्पभद्रा नदीके किनारे गईं थीं। दोपहरके समय उन दोनोंने क्षुधार्त हो चण्डिकासे कहा था कि, 'हमें भूख लगी है। कुछ खानेको दीजिए।' तब चण्डिकाने हँसते हुए अपना मस्तक काट डाला।

मातङ्गीकी उत्पत्ति नारदपञ्चरात्रमें इस प्रकार लिखी है—

"कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नविभूषिते।
उपविष्टो महादेवी शम्भोरङ्के प्रिया सती॥
उवाच प्रेमभावेन स्वपतिं परमेश्वरी।

देव्युवाच।

त्वत् प्रसादाज्जगन्नाथ न किञ्चिद्दुर्लभं मम।
यतस्त्वं सर्वदोऽसीति सर्वेषां प्रियकारक॥
किन्त्वहं गन्तुमिच्छामि मातापित्रोः शुभालये।

ईश्वर उवाच।

प्रियं समतद्देवेशि ममापि गमनं शिवे।
सन्देहः किंतु मे देवि गन्तासि ह्यनिमन्त्रिता॥
इति श्रुत्वा वचः पत्युर्वाढमित्याह हृष्टवत्।
गतायां मयि तत्रैव ततो गन्तासि शङ्कर॥
एतत्ते समयं भद्रे कृतवानस्म्यहं शिवे।
गतायां त्वयि गच्छामि तवानयनहेतुना॥
एतस्मिन्नन्तरे मेना चकारोत्सवमुत्तमम्।
क्रौञ्चमाप्रेषयामास यत्र देवः सदाशिवः॥
ततो दृष्ट्वा महादेवः क्रौञ्चं तं धरणीगतं।
वामेन पाणिनोथाप्य समालिंग्य गिरेः सुतं॥
चुचुम्बे तस्य मूर्द्धानं नेत्राम्भःशिरसि क्षिपन्।
स्वांके निवेशयामास पृष्ट्वा कुशलमव्ययं॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा किमर्थंहिमागतः।

क्रौञ्च उवाच।

यदि तेऽस्ति कृपानाथ मयि दासे जगत्पते।
हिमालयसुतां गौरीं तत्र नेतुं समुत्सहे॥

शङ्कर उवाच।

शीघ्रं गच्छ वरारोहे क्रौञ्चेन सह पार्वती।
पुनः प्रणम्य सा देवी देवदेवं महेश्वरं॥
कृच्छ्रेण रथमारुह्य मैनाकिना समं ययौ।
क्षणात् पितृगृहं प्राप्य उत्तीर्य च रथात्ततः॥
जगाम वायुवेगेन क्रौञ्चेन सह सत्वरा।
यत्रास्ते हिमवान् राजा मेना च वरवर्णिनी॥
एवं सुखोषिता तत्र पार्वती पितृमन्दिरे।

उवास कतिचिन्मासान् तेषा हर्षप्रवर्द्धं च ॥
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः शङ्खमादाय देवराट् ।
शंखकारस्य वेशेन जगाम हिमवद्गृहं ॥
विक्रेतुकामः शंखानां छलेन त्रिपुरान्तकः ।
नारीभ्यः प्रददौ शंख पार्वत्यै न ददाति च ॥
पार्वती प्रणयाविष्टा कृत्वा तस्य च सम्मतिं ।
दास्यामि ते महाभागे चारुशंखं महेश्वरि ॥
मया यथाचितं भद्रे दातव्यं मूल्यमेव तत् ।
बाढमुक्त्वा जगद्धात्री परिधाय सुनिर्मलम् ॥
दिव्यं मनोहरं शंखं चारुरूपं सुशोभनं ।
शंखकारस्तदाप्राह मूल्यं देहि पतिव्रते ॥
देव्युवाच ।
पिता मे हिमवानद्रिर्भर्त्ता शम्भुः कृपामयः ।
पुत्रा मे गणनाथाद्या भ्राता मैनाक एव च ॥
भ्रातृपुत्रः स्वयं क्रौञ्चो माता च मम मेनका ।
यत् पार्थयसि भद्रन्ते तद्दास्यामि न संशयः ॥
शङ्खकार उवाच ।
पीडितः कामबाणेन त्वया सार्द्धं वरानने ।
शीघ्रं वरय मा भद्रे नान्यत् पथ्यं ममेप्सितं ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्खकारस्य पार्वती ।
मामेवं वचनं दत्तं कः शक्नोति जगत्त्रये ॥
गदितुं दुष्टभावोऽसौ शप्तुं चक्रे मनस्ततः ।
ततो ध्यानं समास्थाय धर्ममालम्ब्य पार्वती ॥
ददर्श चेष्टितं शम्भोः प्रहस्य परमेश्वरी ।
उवाच शङ्खकारं तं स्मितपूर्वानना ततः ॥
अधुना गच्छ भद्रन्ते पूरयामि मनोरथम् ।
दिनान्तरे महावाद्या विसृज्य सा जगद्धिता ॥
किरातवेशमास्थाय सखीभिः परिवारिता ।
जगाम यत्र देवेशः सन्ध्यां चक्रे महेश्वरः ॥
नृत्यगीतैः कामवेशैः पानभोजनविस्तरैः ।
उवास तत्र रमणावेशेन परमेश्वरी ॥
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सन्ध्या कर्त्तुं जगाम सः ।
मानसाख्य सरस्तीरे गत्वा सन्ध्यां महेश्वरः ॥
ददर्श ता सखीमिश्च कामवेशोज्ज्वला पराम् ।
रक्तवर्णां रक्तवस्त्रपरीधाना सुनिर्मलाम् ॥
तन्वीं विशालनयना पीनोन्नतघटस्तनीं ।
आगत्य सन्निधौ तस्याः प्राह देवः कृपामयः ॥
ईश्वर उवाच ।
का त्वं शुभ्रू वरारोहे किमर्थमिहमागता ।
मनोरथं ते दास्यामि सत्यं सत्य कृपा कुरु ॥
चाण्डाल्युवाच ।
चाण्डाल्यस्मि सुरश्रेष्ठ तपोर्थमिहमागता ।
देवत्वमभिलाषं मे मा विघ्नं कुरु पण्डित ॥
ईश्वर उवाच ।
शिवोऽहं देव देवेशि तपस्विफलदायकः ।
अधुना पार्वतीं तुल्यां करिष्ये नात्र संशयः ॥
तदेव कामभावेन तत्कल्याणि भजस्व मां ।
कथं विलम्बसे देवि देवत्वं यदि वांछसि ॥
चाण्डाल्युवाच ।
तपोऽर्थमागता अत्र देवदेव जगत्पते ।
देवतात्वमवाप्तं वै मा विघ्नं कुरु धर्मराट् ।
ईश्वर उवाच ।
भविष्यति न ते विघ्न कायक्लेशेन किं तव ।
अधुना भव देवीत्वं मद्वाक्यं विफलं नहि ॥
इत्युक्त्वा हस्तमादाय हस्तेन परमेश्वरः ।
उपविष्टो महादेव स्तस्या आसनमुत्तमं ॥
तया सार्द्धं महादेव समाश्लिष्य च तां शिवः ।
चुचुम्बे वदनं तस्या मैथुनायोपचक्रमे ॥
रममाण स्तया सार्द्धं कालेन कियता हरः ।
चण्डालवेशमगमत्ततः प्राह प्रिया सती ॥
नाह त्वा छलितुं शक्या केनोपायेन कुत्र चित् ।
त्वं हि देव गुरुदेव देवदेव जगत्पते ॥
एव नानाप्रकारेण तयोस्तु रममाणयो ।
अभवच्च तयोः प्रीतिरतुला मुनिसत्तम ॥
रत्यन्ते चोपविष्टौ तु ततः प्राह परं सती ।
जपं कुरु जगन्नाथ देहि मे वाञ्छितं वरं ॥"
ईश्वर उवाच ।
"यस्माच्चण्डालवेशेन मामेवं समुपागता ।
तस्मान्मूर्तिरियं भद्रे भविष्यति न संशयः ॥
उच्छिष्टचाण्डालिनीख्याता सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
कृताया तव पूजाया पूजान्ते परमेश्वरि ॥
साङ्गा भविष्यति शिवे अन्यथा नैव पार्वति ।

मातङ्गो नाम मूर्तिस्ते भविष्यति न संशयः ॥
सिद्धविद्या महाविद्या यथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरभैरवी देवी यथा च भुवनेश्वरी ॥
काली तारा महाविद्या यथा ते उत्तमे तनू ॥
भैरवी छिन्नमस्ता च तथा धूमावतीतनूः ।
बगला सिद्धविद्या च मातंगी ते तनुरियं ॥"

नाना रत्नोंसे विभूषित रमणीय कैलास-शिखर पर महादेवी शम्भुकी गोदमें बैठी हुई है। इसी समय उन्होंने बहुत प्रेमभावसे शिवजीसे कहा,—'हे प्रभो! आप सब अभिलाषाओंके देनेवाले हैं। आपकी कृपासे हमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है। पितृघर जानेकी आज मेरी एकान्त इच्छा है।' यह सुन कर महादेव जी बोले,—'इसमें मेरी अनिच्छा नहीं है और मैं भी वहां जाना चाहता हूं, किन्तु बिना बुलाये जाना उचित नहीं है।' इस पर पार्वतीने कहा, 'मेरे जानेके बाद आप जाइयेगा।' फिर महादेवजी बोले, 'मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि तुम्हारे जानेके कुछ समय बाद ही मैं तुम्हें लाने जाऊंगा।'

इस समय मैनकाने महोत्सव किया था। इस उपलक्षमें पार्वतीको लानेके लिये उसने क्रौञ्चको भेजा। क्रौञ्चने आ कर शिवजीसे निवेदन किया। महादेवने उसकी खूब खातिर की। क्रौञ्चने महादेवसे कहा 'जगत्पते! यदि मेरे प्रति कृपा करें, तो गौरीको पितालय ले चलूं।' यह सुनकर महादेवजीने पार्वतीको क्रौञ्चके साथ बहुत जल्द जाने कहा। पार्वती महादेवको प्रणाम कर रथ पर बैठीं और मैनाकीके साथ, जहां राजा हिमवान् और मैनाक थे तथा जहां पार्वती सुखसे पाली गईं थीं, उस पितृभवनमें पहुंचीं। इसी समय देवपति शम्भु हाथमें शंख लिये शंखकारका भेष बना हिमालयके घरमें पधारे और शंख बेचनेका बहाना कर स्त्रियोंको शंख दिखाने लगे। इन्होंने सभीको शंख दिया, किन्तु पार्वतीको नहीं। पार्वतीके शंख मांगने पर शंखकारने कहा, 'हे महेश्वरि! मैं इसका जो दाम मांगूगा वह यदि दो, तो मैं तुम्हें एक बढ़िया शंख दूं।' पार्वतीके स्वीकार करने पर शंखकारने उन्हें शंख पहना दिया। दाम मांगने पर पार्वतीने कहा, 'मेरे पिता पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, कृपासागर महादेव मेरे स्वामी हैं, गणपति आदि पुत्र हैं, मैनाक भाई हैं, क्रौञ्च भतीजा है, मेनका माता है, अतएव आप जो चाहें सो मैं देनेको तैयार हूं।' यह सुन कर शंखकारने कहा,—'हे वरानने! मैं अत्यन्त कामपीडित हुआ हूं, अतः मेरी इच्छा शीघ्र पूरी करो, इसके सिवा मैं और कुछ भी नहीं चाहता।' यह सुन कर पार्वती बहुत क्रोधान्वित हो बोलीं, 'त्रिजगत्में मुझे इस प्रकार कठोर वचन कहनेको किसकी शक्ति है?' यह सोच कर पार्वतीने मन-ही-मन उन्हें शाप देना चाहा। पीछे ध्यान करनेसे उन्हें मालूम पड़ा कि शिवजीके सिवा यह दूसरा कोई नहीं है।

बाद महामायाने कुछ हंस कर कहा, 'अभी जावो, कुछ दिन बाद तुम्हारा मनोरथ पूरा करूंगी।' महादेवजी तो चले गये। इधर पार्वती किरातका भेष धारण कर सखियोंके साथ, जहां देवपति महादेव सन्ध्या कर रहे थे, वहीं नृत्य गीत आदि कामवेशविभूषिता हो पहुंची। इस समय शिवजी सन्ध्या करनेकी इच्छासे मानससरोवरमें गये थे। वहां वे कामवेशोज्ज्वला, रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रपरिधाना, पीनोन्नतपयोधरा, सखीपरिवृता गौरीको देख, उनके पास गये और बोले, 'हे सुभ्रु तुम कौन हो? किस लिये यहां आई हो? तुम्हारा मनोरथ पूरा करूंगा, मुझ पर कृपा करो।' महादेवके इस प्रकार पूछने पर उस स्त्रीने कहा, 'मैं चाण्डाल हूं, तपस्याके लिये यहां आई हूं, केवल लाभ करना ही मेरी अभिलाषा है। मेरे तपमें विघ्न न डालें, यह आपसे निवेदन है।' इस पर महादेवजीने कहा, मैं देवताशिव हूं और मैं ही तपस्वियोंको फल प्रदान किया करता हूं। अभी मैं तुम्हें पार्वतीके समान मानूंगा इसमें सन्देह नहीं। हे कलशाणि! अभी तुम कामवशसे मेरी सेवा करो। यदि केवल चाहती हो, तो विलम्ब क्यों करती? इस पर चाण्डालीने कहा, 'हे देवदेव जगत्पते! मैं तपस्याके लिए यहां आई हूं, केवल प्राप्त होगा, इसमें आप विघ्न न डालें।' महादेवने कहा, 'तुम्हारी तपस्यामें विघ्न न होगा और शरीरमें कष्ट देनेका ही क्या प्रयोजन! अभी तुरंत केवलको जावोगी, मेरा वचन कभी निष्फल होनेको नहीं।' इतना कह कर

उन्होंने चाण्डालीका हाथ पकड़ा और उसे उत्तम आसन पर बिठाया। महादेव उसके साथ आलिङ्गनादि करके क्रीड़ा करनेके लिए उताक हो गए और कुछ काल तक क्रीड़ा करके चाण्डालवंशको प्राप्त हुए। पीछे सतीने कहा, 'आपको मैं किसी प्रकार छल नहीं सकती, आप देवदेव जगत्पति हैं।' इस प्रकार उन दोनोंमें गाढ़ी प्रीति हो गई। इसके अनन्तर सतीने कहा था, 'हे जगन्नाथ! जप कीजिये और हमें अभिलषित वर दीजिये।'

यह सुन कर महादेवने कहा, 'मेरा रूप चाण्डाल सा हो गया है, अतः तुम भी चाण्डाली होगी, इसमें सन्देह नहीं। सभी शास्त्रोंमें तुम गोपिता उच्छिष्ट-चाण्डालिनी नामसे प्रसिद्ध होगी। हे देवि! पूजा करनेके बाद जब तक तुम्हारी पूजा न की जायगी, तब तक पूजा सिद्ध न होगी। तुम्हारी इस मूर्त्तिका नाम मातंगी रहेगा। जिस प्रकार सिद्धविद्या, महाविद्या, त्रिपुरभैरवी भुवनेश्वरी, काली, तारा तुम्हारी तनु है उसी प्रकार भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला आदि सिद्धविद्या भी तुम्हारी तनु होगी।

फिर स्वतन्त्रतन्त्रके मतसे—

"अथोच्छिष्टचाण्डालिनीं वक्ष्ये शृणुष्व सावधानतः।
नारदः पृष्टवान् विष्णुं गीतज्ञानं वद प्रभो ॥
तमुवाच हरिः पूर्वं गतोऽहं शङ्कर प्रति।
तत्र दृष्टं शिवं शान्तं मारीचगणसंकुलम् ॥
अनेकरससंयुक्तं विविधास्वादनैर्युतम्।
सामरस्यं तदा जातमुच्छिष्टं गलितं मुदा ॥
अनेकगुणसम्पन्ना प्रत्युत्पन्ना कुमारिका।
उच्छिष्टं देहि देहीति पार्वती शङ्करेण च ॥
उभाभ्यां दत्तमुच्छिष्टं प्रसादं प्रीतिपूर्वकम्।
शिवाशक्ती ऊचतुस्ता कन्ये त्वां प्रभजन्ति ये ॥
जपहोमादिभिस्तेषां सिध्यन्ति च मनोरथाः।
तदा प्रभृति चोच्छिष्टमातङ्गीति निगद्यते ॥"

उच्छिष्टचाण्डालिनीका विषय कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो। एक समय नारदने यह विषय विष्णुसे पूछा। इसके उत्तरमें विष्णुने कहा, 'एक दिन जब मैं शिव-दर्शन करने गया था, तब मैंने वहां शिवको शान्त तथा मारीचों और उच्छिष्ट जातिसे घिरा देखा। 'उच्छिष्ट दो, उच्छिष्ट दो,' ऐसा कह कर पार्वती महादेवके साथ प्रीतिपूर्वक उच्छिष्ट प्रसाद खाने लगीं। इस पर उन्हें दोनों शिव-शक्तियोंने कहा था, 'जो तुम्हारी स्तुति करेगा, जपहोमादि द्वारा उसीके सब मनोरथ सिद्ध होंगे।' तभीसे पार्वतीका उच्छिष्ट मातङ्गी नाम पड़ा है।

उक्त विवरणके बाद स्वतन्त्रमें दूसरी जगह लिखा है—

"अथ मातङ्गिनीं वक्ष्ये क्रूरभूतभयंकरीं।
पुरा कदम्बविपिने नानावृक्षसमाकुले ॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां मतङ्गो नामतो मुनिः।
शतवर्षसहस्राणि तपोऽतप्यत सन्ततम् ॥
तत्र तेजः समुत्पन्नं सुन्दरी नेत्रतः शुभे।
तेजोराशिरभुत्तत्र स्वयं श्रीकालिकाम्बिका ॥
श्यामलं रूपमास्थाय राजमातङ्गिनी भवेत्।"

क्रूरभूतभयङ्करी मातङ्गिनीका विषय कहा जाता है। पहले नाना प्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण कदम्बवनमें सभी भूतोंको वश करनेके लिए मतङ्ग नामक मुनिने हजार वर्ष तक तपस्या की थी। वहीं पर सुन्दरीके नेत्र-से तेज निकल पड़ा था। वही तेजोराशि पहले श्री-कालिका वा अम्बिका पीछे श्यामल रूप अवलम्बन कर राजमातङ्गिनी नामसे प्रसिद्ध हुई है।

धूमावतीकी उत्पत्तिके विषयमें भी इसी प्रकार मत-भेद है नारदपञ्चरात्रके मतसे—

"एकदा वसमानन्तु कैलासशिखरे हरः।
अङ्कस्था गिरिजा तत्र पप्रच्छ वृषभध्वजम् ॥
क्षुधया पीड्यमानास्मि देहि भोक्तुं यथोचितं।

ईश्वर उवाच।

क्षणं प्रतीक्ष्व भद्रं ते दास्यामि भोजनं ततः।
इत्युक्त्वा विरराभाशु देव देव वृषध्वज ॥

देव्युवाच।

देहि भक्ष्यं महादेव क्षुधितास्मि जगत्पते ॥
विलम्बितुं न शक्नोमि पीडितास्मि महेश्वर।
इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं पुनः प्राह कृपानिधिः ॥
क्षणं प्रतीक्ष्व दास्यामि भक्षणं चाति वांछितं ॥
पुनः प्रतीक्ष्य सा देवी पुनः प्राहत्विदं वचः ॥
देहि भक्ष्यं जगन्नाथ न शक्नोमि विलम्बितुं।
इत्युक्त्वा पतिमादाय मुखे विक्षेप सा तदा ॥
क्षणेन तस्या देहात्तु धूमसंघो व्यजायत।

ततो देहे समुत्पन्ने शंभुस्तु निज मायया।
उवाच परमेशानः स्वां प्रियां शृणु शोभने॥
पश्य भद्रे महाभागे पुरुषो नास्ति मां विना।
त्वदन्या वनिता नास्ति पश्य त्वं ज्ञानचक्षुषा॥
विधवासि कुरु त्यागं शङ्खसिन्दूरमेव च।
साधव्यं लक्षणं देवि कुरु त्यागं पतिव्रते॥
एषा मूर्त्तिस्तव परा विख्याता वगलामुखी।
धूमव्याप्तशरीरात्तु ततो धूमावती स्मृता।"

(नारदप० ३१ अ०

एक दिन महादेव कैलास-शिखर पर बैठे हुए थे और गिरिजा उनकी गोद पर बैठी थीं। उन्होंने वृषभध्वजको पूछा था, 'हे देवदेव महादेव! मैं भूखसे बहुत व्याकुल हो रही हूं, कुछ खाद्य पदार्थ दीजिए।' महादेवने कहा, 'कुछ काल ठहर जाओ, खानेको देता हूं। इतना कह कर शिवजी विरत हो गये। देवीने फिरसे कहा, 'हे देवदेव जगत्पते! मुझे इतनी भूख लगी है, कि मैं क्षणकाल भी ठहर नहीं सकती, अतः बहुत जल्द खानेको कुछ दीजिए।' महादेवने प्रियतमा पत्नीकी यह बात सुन कर कहा, 'कुछ समय विलम्ब करो, बाद वाञ्छित खाद्य देता हूं।' सती फिर भी बोली, 'हे जगन्नाथ! विलम्ब करनेकी अब मुझमें शक्ति न रही, शीघ्र खानेको दीजिए।' इतना कह कर देवीने पतिको पकड़ कर अपने मुखमें डाल दिया। थोड़े ही समय बाद उनके शरीरसे धूमराशि निकलने लगी। बाद शिवजीने अपनी माया द्वारा देह उत्पन्न कर पत्नीसे कहा था, 'अयि शोभने! ज्ञानचक्षु द्वारा देखो, मेरे सिवा कोई पुरुष नहीं है और तुम्हारे सिवा न कोई स्त्री ही है। अभी तुम विधवा हो चुकी, शङ्ख सिन्दूरका परित्याग करो हे पतिव्रते, अब पातिव्रत्य चिह्न छोड़ दो। तुम्हारी यह मूर्त्ति वगलामुखी नामसे प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे समूचे शरीरमें धूम परिव्याप्त हो गया था। इस कारण तुम्हारा दूसरा नाम धूमावती भी होगा।'

स्वतन्त्रतन्त्रके मतसे—

"दक्षप्रजापतेर्यज्ञे सर्वसंहारच चला।
क्रुद्धा देहं विनिक्षिप्य ततो धूमोऽभवन् महान्॥
तस्माद्धूमावती जाता सर्वशत्रु विनाशिनी।
काली काला कालवक्त्रा भौमवारे निशामुखे॥
प्राप्तेऽच्च तृतीयायां जाता धूमावती शिवा।"

दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें सतीने अपनी देह परित्याग कर दी थी। पीछे इस देहसे धूमराशि निकलने लगी, इसीसे इनका नाम धूमावती पड़ा है। मङ्गलवार अक्षय-तृतीयाको शामको शिवा धूमावती हो कर उत्पन्न हुई थीं। यह मूर्त्ति सर्वशत्रु विनाशिनी है।

स्वतन्त्रतन्त्रमें वगलामुखीकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

"अथ वक्ष्यामि देवेशि वगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि वातक्षोभउपस्थिते॥
चराचर-विनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यवाच सन्तुष्टा महाश्रीत्रिपुराम्बिका॥
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे वगलाम्बिका॥
श्रीविद्यासभवं तेजो विजृम्भति इतस्ततः।
चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता॥
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रि प्रकीर्त्तिता।
तस्यामेवार्द्धरात्रौ तु पीतह्रदनिवासिनी।
ब्रह्मास्त्रविद्यासञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भनी परा॥
तत्तेजो विष्णुजं तेजोविद्यानुविधयोगतम्।"

हे देवेशि! वगलाकी उत्पत्तिका कारण कहता हूं। पहले सत्ययुगमें चराचर विश्वके विनाशके लिए वातक्षोभके उपस्थित होने पर विष्णु बहुत चिन्तित हुए थे। पीछे त्रिपुराम्बिका तपस्या-वाक्यसे सन्तुष्ट हो हरिद्राख्य सरोवर देख कर जलक्रीड़ापरायणा हुई थीं उस देवीने महापीतह्रदके मध्य श्रीविद्यासम्भव तेजको मङ्गलवारकी चतुर्दशी और उसमें कुल नक्षत्रका योग तथा मकार समन्वित होनेसे वीररात्रि हुई। इस वीररात्रिके दिन आधी रातको त्रैलोक्यस्तम्भिनी पीतह्रदनिवासिनी देवी उत्पन्न हुई थीं। यह तेज विष्णुसे निकला था।

महालक्ष्मीकी उत्पत्ति भी स्वतन्त्रतन्त्रमें इस प्रकार लिखी है—

"अथ श्रीभुवना वक्ष्ये त्रैलोक्योत्पत्तिमात्रिकां।
पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टुं तपोऽप्यत दारुणम्।

तपसा तस्य सन्तुष्टा शक्तिः सा परमेश्वरी ।
चैत्रशुक्लनवम्यान्तु उत्पन्ना तारिणी स्वयं ॥
क्रोधरात्रिः समाख्याता सर्वशक्तिमयी शिवा ।
क्षीरोदार्णवसम्भूता मथनादुदधेः पुरा ॥
विष्णोर्वक्षःस्थलस्था च पद्म सनगता रमा ।
कृष्णाष्टम्यां भाद्रपदे कोलापुरनिकृन्तिनी ॥
तस्या तिथौ समुत्पन्ना महामातंगिनी कला ।
फाल्गुनैकादशीयुक्ता भृगौ भौमे च या तिथिः ॥
जाता तस्यां महालक्ष्मीः सर्वसौभाग्यदायिनी ॥"

अनन्तर त्रैलोक्यकी उत्पत्तिके विषयमें मातृस्वरूप श्रीभुवनाका विषय कहता हूं। पहले ब्रह्माने जगत्को सृष्टि करनेके लिए घोर तपस्या की थी। उनकी तपस्यासे परमेश्वरीकी वह शक्ति सन्तुष्ट हो गई थीं। अतएव चत्र शुक्ल नवमीकी तारिणी स्वयं उत्पन्न हुई थीं। ये सर्वशक्तिमयी और क्रोधरात्रि नामसे प्रसिद्ध हुईं। ये पहले समुद्रमन्थनके समय चोरोदसमुद्रसे निकली थीं। ये विष्णुको वक्षस्थलस्थायिनी और पद्मासनगता हैं। इन्होंने ही भाद्रकी कृष्णाष्टमी तिथिको कोलासुरको विनाश किया और उसी तिथिमें महामातङ्गिनी रूपमें उत्पन्न हुई थीं। फाल्गुनमासकी एकादशीतिथिको, अथवा शुक्र और मङ्गलवारको जो तिथि पड़ती है, उसी तिथिमें सर्वसौभाग्यदायिनी महालक्ष्मीका जन्म हुआ था।

प्रत्येक महाविद्याका फिर भैरव निर्दिष्ट है। तोडलतंत्रके मतसे—

"शृणु चार्व्वंगि सुरभे कालिकायाश्च भैरवम् ।
महाकालं दक्षिणाया दक्षभागे प्रपूजयेत् ।
महाकालेन वै सार्द्धं दक्षिणा रमते सदा ॥
तारायाः दक्षिणे भागे अक्षोभ्यं परिपूजयेत् ।
तेन सार्द्धं महामाया तारिणी रमते सदा ॥
महात्रिपुरसुन्दर्या दक्षिणे पूजयेत् शिवम् ।
पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च प्रतिवक्त्रे सुरेश्वरि ॥
तेन सार्द्धं महादेवी सदाकामकुतूहला ।
अतएव महेशानि पंचमीति प्रकीर्तिता ॥
श्रीमद्भुवनसुन्दर्या दक्षिणे त्र्यम्बकं यजेत् ।
भैरव्या दक्षिणे भागे दक्षिणामूर्ति संज्ञकम् ।
पूजयेत् परयत्नेन पंचवक्त्रं तमेव हि ॥
छिन्नमस्ता दक्षिणांशे कबन्धं पूजयेत् शिवम् ।
कबन्धपूजनाद्देवी सर्व्वसिद्धीश्वरी भवेत् ॥
धूमावती महाविद्या विधवारूपधारिणी ।
बगलाया दक्षभागे एकवक्त्रं प्रपूजयेत् ॥
महारुद्रेति विख्यातं जगत्संहारकारकम् ।
मातंगी दक्षिणांशे च मातंग पूजयेत् शिवम् ॥
तमेव दक्षिणामूर्तिं जगदानन्दकारकम् ।
कमलाया दक्षिणांशे विष्णुरूपं सदाशिवम् ॥
पूजयेत् परमेशानि ससिद्धो नात्र संशयः ।
पूजयेदन्नपूर्णाया दक्षिणांशे च रूपकम् ॥
महामोक्षप्रदं देवं दशवक्त्रं महेश्वरम् ।
दुर्गाया दक्षिणे भागे नारदं परिपूजयेत् ॥
अन्यास्तु सर्व्वविद्यासु ऋषयः परिकीर्तिताः ।
स एव तस्या भर्त्ता च दक्षभागे प्रपूजयेत् ॥"

कालिकाके भैरव कालकी पूजा कालीके दक्षिण भागमें करनी चाहिये। इस प्रकार ताराके दक्षिणमें अक्षोभ्यकी, महात्रिपुरसुन्दरीके दक्षिण पञ्चानन शिवकी, भुवनसुन्दरीके दक्षिण त्र्यम्बकको, भैरवीके दक्षिण दक्षिणामूर्त्तिकी, छिन्नामस्ताके दक्षिण कबन्ध नामक शिवकी, वगलाके दक्षिण महारुद्र नामक एकवक्त्र महादेवकी, मातङ्गीके दक्षिण मतङ्गनामक शिवकी, कमलाके दक्षिण विष्णुरूपी सदाशिवकी, अन्नपूर्णाके दक्षिण दशमुख महेश्वरकी और दुर्गाके दक्षिण नारद इत्यादि भैरवमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है।

शास्त्रोंका कहना है कि दशमहाविद्याने ही दशावताररूप धारण किये थे। तोडलतन्त्रके १०म उल्लासमें लिखा है—

"दशावतारं देवेश ब्रूहि मे जगतां गुरो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व सुविस्तरात् ॥
का वा देवी कथम्भूता वद मे परमेश्वर ।

शिव उवाच ।

तारा देवी मीनरूपा बगला कूर्ममूर्तिका ।
धूमावती वराहः स्याद् छिन्नमस्ता नृसिंहिका ॥
भुवनेश्वरी वामनः स्यान्मातंगी राममूर्तिका ।
त्रिपुरा जामदग्न्यः स्याद्बलभद्रस्तु भैरवी ॥
महालक्ष्मीर्भवेत् बुद्धो दुर्गा स्यात् कल्किरूपिणी ।

"स्वयं भगवती काली कृष्णमूर्तिः समुद्भवा ॥
इति ते कथितं देव्यवतारं दशमेव हि ।
एतासां पूजनाद्देवि महादेवसमो भवेत् ॥"

हे देवेश जगत्गुरो। मुझे दशावतारका विषय विस्ताररूपसे कहिये, यह वृत्तान्त सुननेको मुझे तीव्र उत्कण्ठा है। कौन कौन देवी किस मूर्त्तिमें आविर्भूत हुई थीं, सो भी कहिये। पार्वतीके इस प्रश्न पर महादेवने कहा था, 'तारादेवीने मत्स्यावतार, वगलाने कूर्म, धूमावतीने वराह, छिन्नमस्ताने नृसिंह, भुवनेश्वरीने वामन, मातङ्गीने राम, त्रिपुरासुन्दरीने जामदग्न्य, महालक्ष्मीने वुद्ध, दुर्गाने कल्कि और कालीने कृष्णमूर्त्ति धारण की थी। इनकी पूजा करनेसे साधक महादेव सदृश होता है।' दशमहाविद्याका ध्यान तत्तत् शब्दमें और अपरापर विषय यन्त्र और मन्त्र शब्दमें देखो।

दशमांश (सं० पु०) दशवां हिस्सा, दशवां भाग।

दशमान (सं० पु०) जनपदविशेष तथा तज्जनपदवासी, एक देशका नाम तथा वहांके अधिवासी।

दशमाल (सं० पु०) जनपदविशेष, दशमालिक देश।

दशमालिक (सं० पु०) १ देशभेद, एक प्राचीन देशका नाम। २ दशमालिक देशके राजा। ३ उक्त देशके अधिवासी।

दशमास्य (सं० पु०) दशमासान् गर्भे स्थितः यत्। दश मास तक गर्भमें स्थित बालक। गर्भस्थित बालकके गर्भमें सुखसे जीवन वितानेके लिये ये तीन ऋक् बतलाए गए हैं।

"यथा वातः पुष्करिणीं समिंगयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥"
"यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥"
"दशमासाञ्छयानः कुमारो अधिमातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥"
(ऋक् ५।७८।७-९।)

वायु जिस प्रकार जलाशयको परिचालित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा गर्भ सञ्चालित हो और दश मासके बाद गर्भस्थ जीव निकल पड़े। वायु स्वयं कम्पमान् हो कर वनको कम्पित करती है, समुद्र वायुसे परिचालित हो कर स्वयं परिचालित होता है। उसी तरह गर्भस्थित जीव दश मास तक गर्भमें रह कर जरायुवेष्टित हो भूमिष्ठ होवे। जीव दश मास तक अपनी जननीके जठरमें अवस्थित रह कर जीवित अक्षतशरीर जननीसे निकल जावे। दशमास सुखसे जननीके जठरमें वास कर जरायुज जीव निर्गत होवे और जननी भी जीवित रहे। (सायण) अश्विनीकुमारने गर्भिणीके सुखप्रसवके लिये इसी प्रकार स्तव किया था।

दशमिकभग्नांश—अङ्कशास्त्रका एक प्रकरण। जिसके द्वारा भिन्न मात्रको ही अखण्ड आकारमें ला सकें, उसका नाम दशमिकभग्नांश वा दशमलवभिन्न है। जब भिन्नका हर दश वा दशका कोई घात होता है, तो उसे दशमलवभिन्न कहते हैं। दो वा अधिक भिन्नोंको तुलना करनेमें पहले उन्हें समान हरवाले भिन्नोंमें लाना पड़ता है, फिर दूसरे दूसरे हरोंके भिन्नको अपेक्षा समान हरवाले भिन्नके प्रश्न सहजमें बनाये जाते हैं। किन्तु जिन सब संख्याओंको ले कर सहजमें हिसाब बनाया जा सकता है, वे सब अङ्क १०, १००, १०००, १०००० इत्यादि हैं, क्योंकि १के बाद केवल शून्य ही रखना होता है। इन सब अङ्कोंको दशमलव अङ्क कहते हैं। किसी एक अखण्ड राशिको दशमलवमें आसानीसे ला सकते हैं। जैसे;—

$$७४ = \frac{७४०}{१०} = \frac{७४००}{१००} = \frac{७४०००}{१०००}; \frac{३}{१०} \text{ अथवा } \frac{३००}{३०००}$$

अथवा $\frac{३०००}{१००००}$।

किसी संख्याके अन्तमें एक शून्य बैठाना और उसे दशसे गुना करना दोनों समान है। हम लोग किसी भिन्नके अंशमें अनेक शून्य योग कर सकते हैं, किन्तु जितने शून्य योग करेंगे उतने ही शून्य फिर हरमें भी बैठाने होंगे।

इसी प्रकार सामान्य भिन्नको दशमलवभिन्नमें ला सकते हैं। मान लो, $\frac{७}{१६}$ को दशमलवभिन्नमें लाना है। अब इसके अंश और हर दोनोंको क्रमशः १०, १००, १०००, १०००० इत्यादिसे गुना करो। गुणनफल क्रमशः $\frac{७०}{१६०}, \frac{७००}{१६००}, \frac{७०००}{१६०००}$ इत्यादि होगा। यहां

देखा जाता है कि प्रत्येक भिन्नके हरको १६ से भाग देने पर कुछ भी शेष नहीं बचता और भागफल १०, १००, १०००, इत्यादि दशमलव अङ्क होता है। लेकिन यदि उक्त भिन्नोंमेंसे किसी भिन्नका अंश १६से विभाज्य हो, तो उस भिन्नका अंश और हर दोनों १६से विभाज्य होगा। यहां पर ७०, ७००, ७०००, ७००००, इत्यादि-मेंसे किसी प्रथम संख्याको १६से भाग देने पर शेष कुछ नहीं बचता है।

उन सब संख्याओंको १६ से भाग दो।

१६) ७० (४
 ६४
 ६

१६) ७०० (४३
 ६४
 ६०
 ४८
 १२

१६) ७००० (४३७
 ६४
 ६०
 ४८
 १२०
 ११२
 ८

१६) ७०००० (४३७५
 ६४
 ६०
 ४८
 १२०
 ११२
 ८०
 ८०

अब यहां देखा जाता है, कि ७०००० ही प्रथम राशि है, जिसे १६ से भाग देने पर शेष कुछ नहीं बचता है। किन्तु यहां प्रत्येक भागफलका रखना अनावश्यक है। केवल अन्तिम भागसेही काम चल जायेगा।

यहां ७०००० = १६ × ४३७५

उसके लिये $\frac{७००००}{१६००००} = \frac{१६ \times ४३७५}{१६ \times १००००} = \frac{४३७५}{१००००}$

∴ आवश्यक भिन्न = $\frac{४३७५}{१००००}$।

एक सामान्य भिन्नको दशमलवभिन्नमें लानेमें अंशमें शून्य जोड देते है और जब तक भाग पूरा पूरा न लग जाय, तबतक भाग देते जाते है। जो भागफल होता है उसे ही आवश्यक भिन्नका अंश समझते हैं और जितने शून्य अंशमें बैठाते हैं, उतने ही शून्य १ के बाद हरमें भी रखने होते हैं।

कई जगह ऐसा भी देखा जाता है, कि अनेक भिन्नके अंशमें शून्य बैठाने पर भी वह हरके द्वारा विभाज्य नहीं होता। जैसे $\frac{१}{७}$ को दशमलवभिन्नमें लाओ।

$$(७)\frac{१००००००००००००००००००० \text{ इत्यादि।}}{१४२८५७\ १४२८५७\ १४२८५७ \text{ इत्यादि।}}$$

हम लोग देखते हैं कि भागफल यथाक्रम १४२८५७ ये कई अङ्क दुहराए गये हैं, इसी कारण $\frac{१}{७}$ को दशमलवभिन्नमें नहीं ला सकते है। वह जो कुछ हो, यदि हम लोग १४२८५७ १४२८५७ मेंसे कुछ अंकोंको लेकर अंश बनावें और जितने शून्यको बैठा कर वे सब अङ्क बने हैं, उतने शून्य १ के बाद रक्खें, तो जो भिन्न बनेगा वह $\frac{१}{७}$ से कहीं छोटा होगा।

| | | | |
|---|---|---|---|
| जैसे $\frac{१}{१०}$ | से | $\frac{१}{७}$ | $\frac{३}{१०}$ बड़ा |
| $\frac{१४}{१००}$ | ,, | $\frac{१}{७}$ | $\frac{२}{७००}$ ,, |
| $\frac{१४२}{१०००}$ | ,, | $\frac{१}{७}$ | $\frac{६}{७०००}$ ,, |
| $\frac{१४२८}{१००००}$ | ,, | $\frac{१}{७}$ | $\frac{४}{७००००}$ ,, |
| $\frac{१४२८५}{१०००००}$ | ,, | $\frac{१}{७}$ | $\frac{५}{७०००००}$ ,, |
| $\frac{१४२८५७}{१००००००}$ | ,, | $\frac{१}{७}$ | $\frac{१}{१००००००}$ ,, |

पहली श्रेणीमें जो भिन्न हैं वे $\frac{१}{७}$ से छोटे है। अतएव यद्यपि हम लोग $\frac{१}{७}$ के समान दशमलवभिन्न रख कर नहीं निकाल सकते, तो भी एक ऐसा दशमलवभिन्न निकाल सकते हैं, जो $\frac{१}{७}$ से बहुत छोटा हो।

भागफलमें बहुतसे अङ्कोंका बारबार आनेका कुछ कारण है। मान लो, कि तुम्हें १००० को २४७ से भाग देना है, इस भागका प्रत्येक भागशेष २४७ से छोटा होगा। चाहे ० होगा वा २४७ के मध्य कोई एक राशि होगी। यदि भागशेष शून्य न हो, तो क्रमगत भाग देते रहनेसे एक भागशेष दो बार आवेगा। मान लो, २४६ भागशेष सभीमें अलग अलग आवेगा। जिस तरह २४७ भागशेष २४७ से बड़ा नहीं हो सकता है; उसके लिये यदि हम लोग क्रमागत भाग करते हो जांय तो एक

भागशेष पहलेके किसी भागशेषके बराबर होगा। अब इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि जितने भागशेष समान होंगे, भागफलमें फिर उतने ही समान अङ्क आवेंगे। यहां पर ऐसा प्रश्न किया जा सकता है कि जब अनेक सामान्यभिन्न दशमलवभिन्नमें परिणत नहीं होते, तब दशमलवको क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यही है कि दशमलवके सङ्कलन, व्यवकलन, गुणन और भाग सामान्य भिन्नको अपेक्षा बहुत सहज है। यद्यपि सभी सामान्यभिन्न समान दशमलवभिन्नमें परिणत नहीं होते, तो भी उसका एक ऐसा निकट दशमलव निकल सकता है कि यदि उस सामान्य भिन्नके बदले वह दशमलवभिन्न बैठाया जाय, तो बहुत सामान्य भूल होती है।

सभी दशमलवभिन्न सामान्य भिन्नके रूपमें नहीं लिखे गये है। वे इस प्रकार चिन्ह द्वारा लिखे जाते है, जैसे · हरमें जितने शून्य रहेंगे, अंशके उतने अङ्क दाहिनी ओरसे ले कर एक विन्दु द्वारा चिह्नित करते है। जैसे—

$\frac{१४७३२६}{१०}$ = १४७३२·६ ; $\frac{१४७३२६}{१००}$ = १४७३·२६;

$\frac{१४७३२६}{१०००}$ = १४७·३२६ ; $\frac{१४७३२६}{१००००}$ = १४·७३२६

विन्दुकी बाईं ओरके अङ्कोंमें दशमलवको कितनी अखण्ड राशि हैं और दाहिनी ओरके अङ्कोंमे कितने भिन्न है (जिसका हर १० है), वह मालूम हो जाता है। जैसे—पहलेको दाहिनी ओरके अङ्कमें एक भिन्न है जिसका हर दश है, दूसरेका १०० है इत्यादि समझा जाता है। सभी दशमलव पूरे आकारमें नहीं लिखे जाते। ·७ लिखनेसे $\frac{७}{१०}$ ·०७ लिखनेसे $\frac{७}{१००}$ इत्यादि समझा जाता है। दशमलवको दाहिनो ओर शून्य बैठानेसे उसके मानमें कुछ फर्क नहीं पड़ता। जैसे— ·३ और ·३००। पहला दशमलव $\frac{३}{१०}$ और दूसरा $\frac{३००}{१०००}$ के समान है। हम लोग देखते है कि दूसरा दशमलव पहलेके अंश और हर दोनोंका १००से गुणा किया गया है। अतएव दोनोंका मान समान है।

दो दशमलवको समान हरके बनानेमें जिस दशमलवमें दूसरे दशमलवकी अपेक्षा कम अङ्क है उसमें जितने अङ्क कम हैं उतने शून्य बैठाते है। मान लो, ·५४ और ४·३२८ हैं। पहला दशमलव $\frac{५४}{१००}$ और दूसरा $\frac{४३२८}{१०००}$। यहां पर हम लोग देखते है कि दोनोंका हर समान है किन्तु $\frac{५४००}{१००००}$ = ·५४००। अखण्ड राशिमें दशमलव अन्तमें बैठाते हैं. जैसे १२८ = १२८·। किन्तु अन्तिमको बिन्दो लिखनी नहीं होती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि १२८ और १२८·०० दोनों बराबर है। क्योंकि पहला १२८ और दूसरा $\frac{१२८००}{१००}$ है। जिस तरह सामान्य भिन्नको विशुद्धरूपसे दशमलव भिन्नमें वा भिन्नमें ला सकते है उसका यहां पर जानना आवश्यक है। जिस भिन्नका हर मौलिक अङ्क २ और ५ को छोड़कर किसी दूसरे मौलिक अङ्कसे विभाज्य हो वह भिन्न सम्पूर्ण रूपसे सामान्य दशमलवमें परिणत नहीं होता। फिर जिस भिन्नका हर उन दोनों मौलिक अङ्कोंसे विभाज्य हो उस भिन्नको सामान्य दशमलवमें परिवर्त्तन कर सकते हैं।

दशमलवका सङ्कलन, व्यवकलन, गुणन और भाग होता है। सभी आवर्त्त दशमलव भिन्नको विशुद्ध रूपसे दशमलवमें नहीं ला सकते। जिस भिन्नका भागफल शेष नहीं होता और भागफलमें कई एक अङ्क बारबार आते है, उस भागफलको आवर्त्तदशमलव कहते है।

आवर्त्तदशमलव दो प्रकारका होता है—विशुद्ध और मिश्र। जिस दशमलव भिन्नमें दशमलव बिन्दोके बाद पहले ही अङ्कसे एक वा अधिक अङ्क बार बार आने लगे उसे विशुद्धआवर्त्त दशमलव कहते है जैसे— ·५५५५५···। जिस दशमलव भिन्नमें दशमलव बिन्दोके बाद कोई और प्रकारके अङ्क आ कर फिर एक वा अधिक अङ्क बार बार आने लगे उसे मिश्र-आवर्त्त दशमलव कहते हैं। जैसे—·३२३२३२······।

भग्नांश और पौनःपुनिकदशमिक देखो।

दशमिन् (सं० त्रि०) नवति रूढ़ं दशमो सा अवस्थासेदो अस्त्यस्य पूरणत्वात् इनि। अति वृद्ध, जिसकी उमर ८० वर्षसे अधिक हो गई हो।

दशमी (सं० स्त्री०) दशम-ङीप्। १ तिथिविशेष, चान्द्र

मासके किसी पक्षकी दशवीं तिथि। २ विमुक्तावस्था। ३ मरणावस्था। ४ अतिशेष वयोऽवस्था।

दशमीस्थ (सं० त्रि०) दशम्यां अवस्थायां तिष्ठति स्था-क। १ अतिवृद्ध, जिसकी उमर ८० वर्षसे अधिक हुई हो।

दशमुख (सं० पु०) दशमुखानि यस्य। रावण।

दशमुखान्तक (सं० पु०) दशमुखस्य अन्तकः। राम।

दशमुखरिपु (सं० पु०) दशमुखस्य रिपुः ६-तत्। राम।

दशमूत्रक (सं० क्लो०) दशानां मूत्रकाना समाहारः। हाथी, भैंस, ऊंट, गाय, बकरा, भेंडा, घोड़ा, गदहा, मनुष्य और स्त्री इन दश जीवोंका मूत्र। उक्त समस्त प्रकारके मूत्रोंके विषयमें सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

गाय, भैंस, बकरे, भेड़े, हाथी, घोड़े, गदहे और ऊँटका मूत्र तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, तिक्त, पश्चात्‌लवण रस, लघु, शोधनकर, कफ, वात, क्रमि, मेद, विष, गुल्म, अर्श, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, अरुचि और पाण्डुरोगका शान्तिकर, हृद्य और अग्निकर है। इसके सिवा दूसरे जीवोंका मूत्र कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, शोधनकर, कफ और वायु शान्तिकर, क्रमि, मेद और विषनाशक, अर्श, जठररोग, गुल्म, शोफ, अरुचि और पाण्डुरोगहारी, भेदक, हृद्य, अग्निकर तथा पाचक है।

विशेष विवरण मूत्र शब्दमें देखो।

दशमूल (सं० क्लो०) दशाना मूलानां समाहारः, पात्रादित्वात् न ङीप्। पाचनविशेष। सरिवन, पिठवन, छोटी कटाई, बड़ी कटाई और गोखरू ये लघुमूल तथा बेल, सोनापाठा, गंभारी, गनियारी और पाठा वृहन्मूल कहलाते हैं। इन दोनोंके योगको दशमूल कहते है। इन दशमूलोंके क्वाथमें पीपरका चुर्ण आधा तोला मिला कर सेवन करनेसे सन्निपात, ज्वर, कास, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल तथा कण्ठ और हृदयकी वेदना जाती रहती हैं।

दशमूलगुड़ (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। दशमूल मिश्रित १२॥ सेरको ६४ सेर जलमें डाल कर आग पर चढ़ाते है। जब जल सिर्फ १६ सेर बच जाता है, तो उसे उतार लेते हैं। बाद इस काढ़ेमें १२॥ सेर पुराना गुड़ और ८४सेर अदरकका रस मिला कर उसे धीमी आँचसे पाक करते है। काढ़ा सा घना हो जाने पर उसमें पीपर, पिपरामूल, मिर्च, सोंठ, हींग, विडङ्ग, वनअजवायन, चीतामूल, चई और पञ्च लवण प्रत्येक १ पल डाल कर अच्छी तरह मथते हैं। पाक हो जाने पर उसे स्निग्ध भाण्डमें रख छोड़ते हैं। इसकी सेवन-मात्रा एक तोला है। इससे अग्निमान्द्य, आमज ग्रहणी, प्लीहा और ज्वर आदि रोग बहुत जल्द दूर हो जाते है। (भैषज्यर० ग्रहण्यधि०)

दशमूलघृत (सं० क्लो०) चक्रदत्तोक्त ज्वरनाशक घृत भेद। दशमूल ८२सेरको ६४ सेर जलमें डाल कर आँच देते है। पीछे पीपर, पिपरामूल, चई, चीतामूल, सोंठ और यवक्षार प्रत्येकका ८ तोला ले कर चूर्ण बनाते हैं। घी और दशमूलोंके क्वाथको एक साथ पाक कर पीछे कल्कद्रव्य पाक करते हैं। बाद घी छान कर ८४सेर दूधके साथ पाक किया जाता है। ऐसा करनेके बाद फिरसे उस दूध मिश्रित घीको छान लेते हैं। इसके सेवन करनेसे विषम ज्वरादि रोग जाता रहता है।

दशमूलतैल (सं० क्लो०) चक्रदत्तोक्त वधिरतानाशक तैल औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैल ८४ सेर, क्वाथार्थ दशमूल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, सम्हालूके पत्तीका रस १६ सेर, क्वाथार्थ दशमूल १ सेर। इस तैलके सेवन करनेसे सन्निपात, शिरका रोग और अस्थिसन्धि तुरंत ही आरोग्य हो जाती है। दूसरी विधि—कटुतैल ४ सेर, दशमूलका क्वाथ १६ सेर, कल्कार्थ दशमूल १ सेर। इस तैलका नस लेनेसे असमय पर बालोंका सफेद होना बन्द हो जाता है तथा अभ्यङ्ग शिरःशूल आदि रोग जाते रहते हैं।

अन्यप्रकार—कटुतैल ४ सेर, दशमूलका क्वाथ १६ सेर, दूध ८ सेर, कल्कार्थ जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, कंकोल, क्षीरकंकोली, ऋद्धि, वृद्धि, प्रत्येक ८ तोला। इसका व्यवहार करनेसे वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, शिरोरोग आदि नष्ट हो जाते हैं।

दशमूलतैल—स्वल्प, वृहत् और मध्यमके भेदसे तीन प्रकारका है।

स्वल्प दशमूल—कटुतैल ४ सेर, दशमूलका क्वाथ १६ सेर, कल्कार्थ दशमूल १ सेर। इससे सान्निपातिक ज्वर, श्वास और कासरोग जाता रहता है।

मध्यम दशमूलतैल—कटु तैल ४ सेर, क्वाथार्थ दशमूल, करञ्जबीज, सम्हालूका पत्र, जयन्तीपत्र, धुस्तूरपत्र प्रत्येक ४६ पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ क्वाथ द्रव्य प्रत्येक ६ तोला। इसका सेवन करनेसे शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

बृहद्दशमूलतैल—कटु तैल ४ सेर, क्वाथार्थ दशमूल प्रत्येक १० पल, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर, अदरकका रस ४ सेर, कल्कार्थ पीपर, पिपरामूल, चई, चीतामूल, सोंठ, त्रिकटु, जीरा, कृष्णजीरा, सफेद सरसों, सैन्धव, यवक्षार, निसोथ, हल्दी, दारुहल्दी प्रत्येक २ तोला, पाकका जल ८ सेर। यह तैल अभ्यङ्ग और नसमें व्यवहृत होता है। इससे शिरोरोग और ऊर्ध्वजत्रुगत नाना प्रकारके कष्ट दूर हो जाते हैं।

दूसरे प्रकारका बृहद्दशमूलतैल—कटु तैल १६ सेर, क्वाथके लिये दशमूल १२॥ सेर, शेष १६सेर, धुस्तूरपत्र १२॥ सेर, सम्हालूका पत्र १२॥ सेर, जल ६४सेर, शेष १६ सेर, चूर्णके लिये वासकमूलकी छाल, वच, देवदारु, कचूर, रास्ना, यष्टिमधु, मिर्च, पीपल, सोंठ, कृष्णजीरा, कायफल, करञ्जबीज, कुट, इमलीकी छाल, जंगलीसेम, चीतामूल प्रत्येक ८ तोला। इसका व्यवहार करनेसे कर्णशूल, शिरःशूल और नेत्रशूल तुरंत ही दूर हो जाता है।

महादशमूलतैल—कटु तैल १६सेर, काढ़े के लिये दशमूल १२॥ सेर, जल ६४सेर, शेष १६सेर, बिजौरेका रस १६सेर, अदरकका रस १६सेर, धतूरेका रस १६सेर; चूर्णके लिये पीपल, कुटकी, करञ्जबीज, कृष्णजीरा, श्वेतसर्षप, बच, सोंठ, चीतामूल, कचूर, देवदारु, रास्ना, हुरहुर, कायफल, सम्हालूका पत्र, चई, गेरूमट्टी, पिपरामूल, शुष्कमूला, अजवायन, जीरा, कुट, वन-अजवायन, विहड़कमूल प्रत्येक १ पल। इस तैलके सेवन करनेसे कफ, खाँसी और शिरका रोग चंगा हो जाता है। यह प्रत्यक्षमें फल देनेवाला है। शिरके रोगमें यह एक प्रधान तैल है।

दशमूलशुण्ठी—ज्वरघ्न औषधभेद। इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है—३२ तोला जलमें २ तोला दशमूल डाल कर काढ़ा बनाते हैं। ८ तोला जल बच जाने पर उसे उतार लेते हैं। पीछे उसमें आध तोला सोंठका चूर्ण डाल देते हैं। इसके सेवन करनेसे ज्वरातिसार और शोथके साथ ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। (भैषज्यर०)

दशमूलादिक्वाथ (सं० पु०) ज्वरनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—बेलका छिलका, गंभारी, सोनापाठा, श्योनाक, गनियारी, जयन्ती, गोखरू, भटकटैया, बृहती, सरिवन, चाकुल्या, रास्ना, पीपल, पिपरामूल, कुटकी, सोंठ, चिरायता, मोथा, गुलञ्च, गुलशकरी, दाख, दुरालभा और शतमूली इन सबका क्वाथ सेवन करनेसे वातजनित ज्वर तथा अन्य प्रकारके उपद्रव जाते रहते हैं।

दशमूलारिष्ट (सं० पु०) वाजीकरणाधिकारोक्त औषधभेद। प्रस्तुत-प्रणाली—दशमूल प्रत्येक ५ पल, चीतामूल २५ पल, कुड़ २५ पल, लोध २० पल, गुलञ्च २० पल, आँवला १६ पल, दुरालभा १२ पल, खैर, विड़ङ्ग, हड़ प्रत्येक ८ पल, कटु, मञ्जिष्ठा, देवदारु, विड़ङ्ग, यष्टिमधु, कञ्जिका, निर्मली, बहेड़ा, पुनर्णवा, चई, जटामांसी, प्रियङ्गु, अनन्तमूल, कृष्णजीरा, निसोथ, रेणुक, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर हल्दी, सुल्फा, पद्मकाष्ठ, नागेश्वर, मोथा, इन्द्रजौ, कर्कटशृङ्गी, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, कंकोल, क्षीरकंकोला, ऋद्धि, वृद्धि प्रत्येक २ पल, पाकके लिए उक्त समुदायका ८ गुना जल, शेष चतुर्थांश, दाख ६० पल, जल ३० सेर, शेष २२॥ सेर। इन दोनों काढ़ेको एक साथ मिला कर मट्टीके बरतनमें रखते हैं और पीछे मधु ४सेर, गुड़ ५०सेर, धवईका फूल ३ पल, कंकोल, गुलशकरी, रक्तचन्दन, जायफल, लवङ्ग, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागेश्वर, पीपल प्रत्येक २ पल और मृगनाभि ॥ तोला इन सबको एक साथ मिला कर उस मट्टीके बरतनमें डाल देते हैं। बाद बरतनको ढक कर एक मास तक जमीनमें गाड़ रखते हैं। पीछे उसमें निर्मली फल दे कर रसको साफ करते हैं, यह अरिष्ट, ग्रहणी, अरुचि, वातव्याधि, श्वास, कास, धातुक्षय और मेह आदि रोगोंमें विशेष उपकारी है। यह अत्यन्त पुष्टिजनक, बलकर, शुक्रवर्द्धक और कामोद्दीपक माना गया है।

दशमूलीतैल (सं० क्ली०) वाधिर्यनाशक तैल औषध-

भेद, एक प्रकारका तैल जिसके सेवन करनेसे वहरापन जाता रहता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली यों है—तिल तैल ४ सेर, काढ़े के लिये मिश्रित दशमूल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूलका चूर्ण १ सेर। यह दशमूलीतैल वधिरता नाश करनेमें रामवाण है।

दशमौलि (सं० पु०) रावण।

दशयोगभङ्ग (सं० पु०) दशानां अङ्गानां योगः दशयोगः तस्य भङ्गः। संस्कारकार्यमें नक्षत्रवेधविशेष। विवाहादि कोई संस्कार काम दशयोगभङ्गमें नहीं करना चाहिये। जिस नक्षत्रमें सूर्य हो और जिस नक्षत्रमें संस्कारादि काम होनेवाला हो उन दोनों नक्षत्रोंके जो स्थान गणना क्रममें हों उन्हें जोड़ देते हैं। यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्नाईस, अठारह तथा बीस आवे, तो दशयोगभङ्ग होगा। (ज्योतिषसार०)

इस दशयोगभङ्गमें कोई कोई प्रतिप्रसव स्वीकार करते हैं। यह प्रतिप्रसव अगत्यापक्षमें किया जाता है। जिस नक्षत्रमें दशयोग विद्व होगा, उसके आद्यपादमें सूर्यके रहनेसे चतुर्थांश दूषित, द्वितीय पादमें रहनेसे तृतीय पाद दूषित, चतुर्थ पादमें रहनेसे प्रथम पाद दूषित और प्रथम तथा तृतीय पादमें रहनेसे द्वितीय पाद दूषित होता है। इन सब दुष्टपादोंको छोड़ कर अन्यान्य पादोंमें सभी कार्य किये जाते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व०)

इस दशयोगभङ्गमें गर्भाधानादिसे ले कर विवाह पर्यन्त दश प्रकारके संस्कारोंका करना बिलकुल निषेध है।

दशरथ (सं० पु०) दशसु दिक्षु रथ. रथगतिर्यस्य। १ इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा, अयोध्याधिपति, रामचन्द्रके पिता। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें दशरथको उत्पत्ति-कथा इस प्रकार लिखी है—सौराष्ट्र देशमें भिक्षु नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनको स्त्री उनसे हमेशा झगड़ती रहती थी, यहां तक कि एक दिन उसने आत्महत्या कर डाली। इस पापसे वह प्रेत हो गई और इधर उधर घूमने लगी। एक दिन धर्मदत्त नामक किसी ब्राह्मणको देख कर वह प्रेत-ब्राह्मणी उसके समीप गई। संयोगवश धर्मदत्तके हाथसे तुलसीपत्रों का जल उसके शरीर पर टपक पड़ा जिससे उसके पापका बोझ कुछ कम गया। द्विजपत्नीने ब्राह्मणको प्रणाम कर कहा, 'आप कृपया मुझे कहिए, कि अभी मैं कौनसा काम करूं जिससे मेरा पाप दूर हो जाय।' इस पर धर्मदत्तने कहा, 'तुमने बहुत पाप किया है, अतः कोई पुण्यधर्म करनेका तुम्हें अधिकार नहीं है। जब तुमने हमारी शरण ली है, तो तुम्हें उद्धार करना हमारा अवश्य कर्त्तव्य है। मैंने आज तक जितने कार्त्तिकव्रत किये हैं, उनमेंसे आधा तुम्हें प्रदान किया।' इतना कह कर ब्राह्मणने उसे तुलसी मिश्रित जल दिया और द्वादशाक्षर मन्त्र कह सुनाया। बाद वह द्विजपत्नी दिव्यरूपधारिणी हो गई। उसी समय विष्णुके दूत दिव्यरथ ले कर वहां पहुंच गये और द्विजपत्नीको उस रथ पर बिठा लिया। धर्मदत्त यह देख कर बहुत विस्मित हुए। तब विष्णुदूतने उनसे कहा, 'आप चिन्ता न करें, आपके समान पुण्यवान् कोई देखनेमें नहीं आता। इस जन्मके बाद आप स्त्री समेत वैकुण्ठको जायंगे। वहां बहुत दिन तक रह कर जब पुण्यका क्षय हो जायगा, तब सूर्यवंशमें दशरथ नामके राजा होंगे। इस कन्याको ले कर आपके तीन स्त्रियां होगी। स्वयं भगवान् विष्णु आपको पिताके जैसा स्वीकार करेंगे।' (पद्मपु० उत्तरख०)

दशरथ सूर्यवंशीय महाराज अजके पुत्र थे। यों तो इनके अनेक स्त्रियां थीं, पर कौशल्या, केकयी और सुमित्रा ये ही तीन प्रधान थीं। एक दिन ये शब्दवेधी-बाणकी परीक्षा करनेके लिये आधी रातको यमुनाके किनारे गये। वहां इन्होंने शब्द पर लक्ष्य करके बाण फेंका, जिससे अन्धमुनिका पुत्र मारा गया। इस पर अन्धमुनिने दशरथको शाप दिया—"मैं जिस प्रकार पुत्र-शोकसे कातर हो कर प्राणत्याग करता हूं, तुम्हें भी उसी प्रकार पुत्रके विरहसे कातर हो कर मरना पड़ेगा।' दशरथ ब्राह्मणपुत्रका बध कर दुःखितचित्तसे घरको लौटे। बहुत दिन तक पुत्र नहीं होनेके कारण महाक्लेशसे इनका समय व्यतीत होने लगा। पीछे वशिष्ठके परामर्शसे इन्होंने वाराङ्गना द्वारा ऋष्यशृङ्गको बुलवा कर पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञीय चरुको इन्होंने कौशल्या और केकयीको दे दिया। केकयी और कौशल्याने अपने अपने चरुसे एक एक खण्ड सुमित्राको दिया। इसीसे कौशल्यासे

राम, केकयीसे भरत तथा सुमित्रासे लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। कौशल्याके शान्ता नामको एक कन्या भी थी, जिसे दशरथने लोमपादको दत्तरूपसे दिया था। राम जब बड़े हुए, तब उन्हें राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करनेका आयोजन होने लगा। कल रामचन्द्रजीको राजगद्दी मिलेगी, यह खबर मन्थरा द्वारा केकयीको लगी। इस पर केकयीने दशरथसे पूर्वके दो वर माँगे। पहला रामको चौदह वर्षका वनवास और दूसरा भरतको राज्य। दशरथ अपनी प्रतिज्ञाको पालन करनेके लिये वैसा ही करनेको वाध्य हुए। रामके वन चले जाने पर राजा दशरथ बहुत दुःखित हुए और पुत्रवियोगसे ही आधो रातको पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे इनको मृतदेह तैलद्रोणीमें रखी गई और ननिहालसे भरतने आ कर अन्त्येष्टिक्रिया की। राम देखो।

२ शान्तिकके पुत्र, जिनके पुत्रका नाम ऐड़वीडी था (भाग०) ३ सम्राट्, अशोकके पुत्र। प्रियदर्शी देखो।

दशरथसुत (सं० पु०) दशरथस्य सुतः ६-तत्। राम।

दशरश्मिशत (सं० पु०) दशरश्मि शतानि अस्य। सहस्रकिरण, सूर्य।

दशरात्र (सं० पु०) दशभि रात्रिभि र्निर्वृत्तः ठञ्, तस्य लुकि तद्धितार्थे द्विगो अच् समा०। १ दशरात्रसाध्य यागभेद, एक यज्ञ जो दश दिनोंमें समाप्त होता है। (क्ली०) २ दशानां रात्रीनां समाहारः। रात्रिदशक, दश रात। संख्यावाचक शब्दके बाद रात्रि शब्द रहनेसे समाहारद्विगु समासमें क्लीवलिङ्ग होता है।

दशरूपक (सं० क्ली०) दशरूपकाणि दृश्यकाव्यानि प्रतिपाद्यत्वेन सन्त्यत्र अच्। नाटकादि लक्षण प्रतिपादक ग्रन्थभेद। इस ग्रन्थमें दृश्यकाव्यके लक्षण और नायक नायिका आदिके लक्षण तथा नाटकके दोष गुण आदि विशेष रूपसे बतलाये गये हैं।

दशरूपभृत् (सं० पु०) दश-मत्स्यकूर्म वराहादीनि रूपाणि बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुगागमश्च। विष्णु। दशावतार देखो।

दशलक्षणक (सं० पु०) दश लक्षणानि यस्य। धर्म। धर्मके दश लक्षण हैं, इसीसे इसे दशलक्षण कहते हैं। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश धर्मके लक्षण हैं।

दशवक्त्र (सं० पु०) दश वक्त्राणि यस्य। रावण।

दशवाजिन् (सं० पु०) दश वाजिनो रथे यस्य। चन्द्रमा।

दशवार्षिक (सं० त्रि०) दशसु वर्षेसु भवः ठञ्, उत्तरपद वृद्धिः। दशवर्षभव, जो दश वर्षमें होता हो।

दशवाहु (सं० पु०) महादेव। (भारत १३।१७।४०)

दशविध (सं० त्रि०) दशविधा प्रकारा यस्य। दश प्रकार, दश तरह।

दशवीर (सं० क्ली०) दशवीरा यत्र। सत्रभेद, एक सत्र या यज्ञका नाम।

दशव्रज (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

दशशत (सं० क्ली०) दशगुणितं शतं। १ दश सौ, हजार। २ तत्संख्येय, वह जिसमें हजारको संख्या हो।

दशशतनयन (सं० पु०) दशशतं नयनानि यस्य। इन्द्र।

दशशतरश्मि (सं० पु०) दशशतं सहस्रं रश्मयोऽस्य। सूर्य।

दशशताक्ष (सं० पु०) दशशतं अक्षीणि यस्य। इन्द्र।

दशशताङ्घ्रि (सं० स्त्री०) दशशतं अङ्घ्रयो यस्य। १ शतमूली। २ शतावरी।

दशशीर्ष (सं० पु०) १ रावण। २ एक प्रकारका अस्त्र जिससे चलाये हुए अस्त्र निष्फल किये जाते हैं।

दशसप्ता (सं० स्त्री०) दश च सप्त च अस्यां विष्टुतौ। सामवेदके विन्यासके भेदसे एक विष्टुतिका नाम।

दशसाहस्र (सं० क्ली०) दशगुणितं सहस्रं परिमाणमस्य अण् उत्तरपदवृद्धिः। १ दशगुणित सहस्र, अयुत, दश हजार। २ तत् संख्येय, उतनीही संख्याओंका।

दशसाहस्रिक (सं० क्ली०) दश सहस्राणां प्रमाणं अण्, ततो ठञ् उत्तरपदवृद्धिः। अयुत परिमित भागादि, दश हजारका हिस्सा।

दशहरा (सं० स्त्री०) दश अदत्तोपादानहिंसादि दशविधानि दशजन्मकृतानि वा पापानि हरतोति हृ-अच् ततष्टाप्। ज्येष्ठ मासको शुक्लादशमी। इसी दिन गङ्गाका जन्म हुआ था।

ज्येष्ठ मासको शुक्लादशमी मङ्गलवारको हस्ता नक्षत्रमें गङ्गा स्वर्गसे मर्त्यलोक पर पधारी थीं। इसीसे

यह दिन अत्यन्त पुण्यजनक माना जाता है। इस तिथि-में सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। इस तिथिमें यदि गङ्गास्नान किया जाय, तो अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस तिथिमें जाह्नवी दश प्रकारके तथा दश जन्मकृत पाप हरण करती है, इसी कारण इस तिथिका नाम दशहरा पड़ा है अदत्तका उपादान, अविधिपूर्वक हिंसा और परदारसेवा ये तीन प्रकारके कायिक पाप हैं, पारुष्य, अनृत, पिशुनता और असम्बन्ध प्रलाप ये चार वाङ्मय पाप हैं; परद्रव्यचिन्तन, मन ही मन दूसरेका अमंगल करनेकी चेष्टा और मिथ्याभिनिवेश ये तीन मानस पाप हैं। ये दश प्रकारके पाप गंगासे हरण किये जाते हैं। इसीसे ज्येष्ठ शुक्ला दशमीका नाम दशहरा रक्खा गया।

"अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतं॥
पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः।
असम्बन्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधं॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनं।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसं॥
एतानि दश पापानि प्रशमं यान्तु जाह्नवि।
स्नातस्य मम मे देवि जले विष्णुपदोद्भवे॥
विष्णुपादार्थसम्भूते गंगे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥
श्रद्धया भक्तिसम्पन्ने श्रीमातर्देवि जाह्नवि।
अमृतेनाम्बुना देवि भागीरथि पुनीहि मां॥ (कृत्यतत्त्व)

दशहराके दिन गङ्गास्नान करते समय इस मन्त्रको पढ़ कर स्नान करना चाहिये। यदि इस दशमीमें हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो दश जन्मार्जित दश प्रकारके पाप क्षय होते हैं और उक्त तिथि यदि मङ्गलवारमें पड़े, तो दश प्रकारके पाप नष्ट हो कर सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासमें यदि मलमास हो, तो भी उस मासकी शुक्ला दशमी तिथिमें दशहरा होगी। वहां पर तिथिमाहात्म्य ही प्रबल है। (तिथितत्त्व०) यदि दशमी तिथि दो दिन तक व्याप्त रहे और पहले दिन हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसी दिन दशहरा होगी। यदि पहले दिन हस्ता नक्षत्र न हो तो दूसरे दिन और यदि पूर्व दिन मङ्गलवार पड़े, तो उसी दिन दशहरा मानी जायगी। बाद दूसरे दिन केवल तिथिमें स्नान करने-को लिखा है। यदि इस दिन गङ्गा स्नान न कर सके, तो किसी नदीमें अर्घदान और तर्पणादि करनेसे भी भारीसे भारी पाप दूर हो जाता है। (स्कन्दपु०)

दशहरा तिथिमें गंगामूर्त्ति बनवा कर गंगापूजा करनी चाहिये। इस दिन गंगापूजा अवश्यकर्त्तव्य है और मत्स्य, कच्छप, मण्डूक, मकरादि जलजन्तु, सोने, चाँदी आदिके बनवा कर उन्हें गंगामें फेंकनेका विधान है। यदि सोने, चाँदीके न बनवा सके, तो पिष्टके ही बना कर काम चला सकते हैं और घृतप्रदीपको जला कर गंगामें बहा देना चाहिये। इस दिन जो कोई मनुष्य 'ओं नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै नमः' यह मन्त्र दिन रात जप करे, उसे पांच हजार दशधर्म फल प्राप्त होता है। दशहराके दिन गङ्गाजलमें बैठ कर जो गंगाका स्तोत्र पाठ करते हैं, वे अधम वा दरिद्र नहीं होते। इसी कारण इस दिन दश प्रकारके पापोंको क्षय करनेके लिये गंगा-स्नान अवश्यकर्त्तव्य है।

दशा (सं० स्त्री०) दशतीति दन्श-क ततो न लोपः वा दश्यते इति अच् ततष्टाप्। १ अवस्था, हालत। २ दीप-वर्त्ति, दीयेकी बत्ती। ३ चित्त। ४ वस्त्रान्त, कपड़ेका छोर। यह दशा शब्द बहुवचनान्त है। ५ कालकृत गर्भ-वासादिरूप अवस्था, यह दशा दश प्रकारकी है। मनुष्य-की दश दशाएं हैं,—गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगण्ड, यौवन, स्थविरता, जरा, प्राणरोध और मृत्यु ये दश मनुष्यकी अवस्थाएं इसी दशाके अधीन हैं। (मोक्षधर्ममें नीलकण्ठोक्त)। ६ कामकृत विरहियोंकी अवस्था। यह अवस्था भी दश है, यथा—नयनप्रीति, चिन्ता, सङ्कल्प, निद्राच्छेद, तनुता, विषयनिवृत्ति, लज्जानाश, उन्माद, मूर्च्छा और मरण। पहले नायकका दर्शन, बाद उसके लिये चिन्ता, चिन्ता करते करते नायकको पाने-का सङ्कल्प, इस सङ्कल्पसे निद्राका ह्रास, निद्रा ह्रास होनेसे ही शरीर क्षीण हो जाता है, शरीर क्षीण हो जानेसे फिर कोई विषय अच्छा नहीं लगता, तब आपसे आप लज्जा जाती रहती है। बाद एकबारगी उन्मत्त होना पड़ता है, उन्मत्तसे मूर्च्छा आ जाती है। इस

मूर्च्छासे मृत्यु तक होनेकी सम्भावना है। विरहवर्णन करते समय इन दशाओंमेंसे केवल ८ का ही वर्णन करते हैं, मृत्युका नहीं। (अलंकारशास्त्र) ७ ग्रहोंको स्व स्व फल विपाक कालभेदरूप अवस्था। ज्योतिषमें इनका विषय इस प्रकार लिखा है--

सत्ययुगमें लाग्निकीदशा, त्रेतामें गौरीदशा, द्वापरमें योगिनीदशा और कलियुगमें नाक्षत्रिकी दशा द्वारा मनुष्यके शुभाशुभका विचार होता है। अभी अष्टोत्तरी नाक्षत्रिकी दशाका विवरण कहा जाता है।

सूर्यका दशाभोगकाल ६ वर्ष, चन्द्रमाका १० वर्ष, मङ्गलका ८ वर्ष, बुधका १७ वर्ष, शनिका १० वर्ष, वृहस्पतिका १९ वर्ष, राहुका १२ वर्ष और शुक्रका २१ वर्ष है। इनमेंसे प्रत्येक दशाकी अन्तर्दशा है।

एक चतुष्कोण-क्षेत्र अङ्कित करके उसमें पूर्वादि अष्टदिक् चिह्नित करो। पीछे इस क्षेत्रकी आठ दिशाओंमें पूर्वदिशासे आरम्भ कर कृत्तिकादि नक्षत्र स्थापन करो। पूर्वादि चारों ओरमें तीन तीन करके और अग्न्यादि चार कोणोंमें चार चार करके तीन नक्षत्र रक्खो। यथा,—पूर्व दिशामें—कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे रविकी दशा, अग्निकोणमें—आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या और अश्लेषा इन चार नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे चन्द्रकी दशा; मघा, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनीमें जन्म होनेसे मङ्गलकी दशा, हस्ता, चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रमें जन्म होनेसे बुधकी दशा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा; पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् और श्रवणा नक्षत्रमें जन्म होनेसे वृहस्पतिकी दशा; धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वभाद्रपदनक्षत्रमें जन्म होनेसे राहुको दशा; उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे शुक्रकी दशा होती है। सूर्य, राहु, मङ्गल और शनि इनकी दशामें मनुष्योंको दुःख तथा वृहस्पति, बुध, चन्द्र और शुक्र इनकी दशामें सुख मिलता है। वर्त्तमान शकाब्दके अङ्कमेंसे जन्मकालीन शकका अङ्क घटानेसे जितने वर्ष बचेंगे, उनके प्रतिवर्षमें ५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ३१ विपल २४ अनुपल जोड़ते हैं, अब योगफल जितना होगा, उतना ही वर्ष उमर मान कर दशाका निर्णय करते हैं, इसीको सावनशुद्धि कहते है।

जन्मकालमें नक्षत्रका जितना दण्डपल बीत गया है और जितना दण्डपल बच रहा है, उसे जान कर अनुपात द्वारा दशाकालमें कितना अंश बीत गया है और कितना अंश अवशिष्ट है उसका निर्णय करना होगा। जिस तरह रोहिणी नक्षत्रमें किसी मनुष्यका जन्म होनेसे २ वर्ष बीत गया है और चार वर्ष अवशिष्ट है, ऐसा जानना होगा। अवशिष्ट चार वर्षोंमें रोहिणी नक्षत्रका जितना दण्ड पल बीत जाने पर जन्म हुआ है, उससे अनुपात करके कितना अंश अवशिष्ट है, वह स्थिर करना होगा। जन्मके पहले जिस ग्रहकी दशा होगी उसके भोगकालके बाद तत्परवर्त्ती ग्रहकी दशाका भोग होगा। यदि जन्मनक्षत्रका परिमाण ६० दण्ड हो, तो दशाका भुक्त और अवशिष्ट जाननेके लिए अनुपात नहीं करके निम्नलिखित नियमानुसार भुक्तावशेष स्थिर कर सकते हैं।

जन्मके समयमें नक्षत्रका जितना दण्ड और पल बीत गया है, शुभग्रहकी दशा होनेसे उसे थोड़ा और पापग्रहकी दशा होनेसे उसे दूना करके, गुणनफलको पुनर्वार दशा परिमाणके अङ्कसे गुणा करते हैं।

पीछे उस गुणनफलको ३० से भाग देनेसे मास और मासको १२से भाग देनेसे वर्ष होगा। इस प्रकार दशाका भुक्त अंश जान कर दशा परिमित कालसे वियोग करनेसे ही अवशिष्ट मालूम हो जायेगा। जन्मनक्षत्रका परिमाण यदि ६० दण्डसे न्यूनाधिक हो, तो अनुपात करके दशा कालका भुक्त और अवशिष्ट अङ्क स्थिर किया जाता है।

नक्षत्रानुसार दशाभागका कालविभाग—कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले रविकी दशा होती है; इस दशाका भोगकाल ६ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें दो वर्ष, प्रति नक्षत्रके पादमें ६ मास (नक्षत्रके चार भागोंमेंसे एक भागका नाम पाद है) और प्रति दण्डमें १२ दिन तथा प्रति पलमें १२ दण्ड होते है। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्यानक्षत्रमें जन्म होनेसे चन्द्रकी दशा होती है, इस दशाका भोगकाल १५ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष ८ महीना, प्रतिपादमें ११ महीना ७ दिन ३० दण्ड, प्रति दण्डमें २२ दिन ३० दण्ड और प्रति पलमें २२ दण्ड ३० पल होते

हैं, ऐसा जानना चाहिये। मघा, पूर्वफल्गुणी और उत्तरफल्गुणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे मङ्गलकी दशामें जन्म जानना होगा। इस दशाका परिमाण ८ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें २ वर्ष ८ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें ८ मास, प्रतिदण्डमें १६ दिन तथा प्रतिपलमें १६ दण्ड होते हैं।

हस्ता, चित्रा, स्वाती और विशाखानक्षत्रमें जन्म होनेसे बुधकी दशामें जन्म जाना जाता है। इस दशाका परिमाण १७ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४ वर्ष ३ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्ष २२ दिन ३० दण्ड, प्रति दण्डमें २५ दिन ३० दण्ड और प्रति पलमें २५ दण्ड ३० पल होते है।

अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिको दशा होती है। यह दशाभोग्यकाल १० वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष ४ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें १० मास, प्रति दण्डमें २० दिन और प्रतिपलमें १० दण्ड भोग होता है।

पूर्वाषाढा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् और श्रवणानक्षत्रमें जन्म होनेसे वृहस्पतिको दशा होती है। इस दशाका परिमाण १९ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४वर्ष ९ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें १वर्ष २ मास १५ दिन, प्रति दण्डमें २८ दिन ३० दण्ड और प्रति पलमें २८ दण्ड ३० पल होते हैं।

अन्यप्रकार—वृहस्पतिको स्थूलदशा १९ वर्ष है। इस दशा परिमितकालको चार भाग करके एक भाग पूर्वाषाढानक्षत्रका और अवशिष्ट तीन भागकी समष्टि अर्थात् १४ वर्ष ३ मासको दो भाग करके एक भाग अर्थात् ७ वर्ष १ मास १५ दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्रका और ७ वर्ष १ मास १५ दिन श्रवणानक्षत्रका विभाग जानना होगा। अग्निपुराणके मतानुसार वृहस्पतिकी दशाको ४ भाग करके एक भागको पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रका और अवशिष्ट अर्द्धके अर्द्धको अभिजित् नक्षत्रका और दूसरे अर्द्धको श्रवणानक्षत्रका विभाग जानना होता है। यथा पूर्वाषाढ़ाके ४ वर्ष ९ मास, उत्तराषाढ़ाके ७ वर्ष १ मास १५ दिन, अभिजित्के ३ वर्ष ६ मास २२ दिन ३० दण्ड और श्रवणाके ३ वर्ष ६ मास २२ दिन ३० दण्ड होते हैं।

धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले राहुकी दशा होती है। इस दशाका परिमाण १२ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४ वर्ष, प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्ष, प्रति दण्डमें २४ दिन और प्रति पलमें २४ दण्ड होंगे।

उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले शुक्रको दशा होती है। इस दशाका भोग काल २१ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ५ वर्ष ३ मास, प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्ष ३ मास २२ दिन ३० दण्ड, प्रति दण्डमें १ मास १ दिन ३० दण्ड और प्रतिपलमें ३१ दण्ड ३० पल होते है। पहले जन्मनक्षत्रमे दशाका निरूपण किया जाता है।

| जन्मनक्षत्र | दशा | भोग्यकाल |
|---|---|---|
| ३ कृत्तिका<br>४ रोहिणी<br>५ मृगशिरा | रवि | ६ वर्ष |
| ६ आर्द्रा<br>७ पुनर्वसु<br>८ पुष्या<br>९ अश्लेषा | चन्द्र | १५ वर्ष |
| १० मघा<br>११ पूर्वफल्गुनी<br>१२ उत्तरफल्गुनी | मङ्गल | ८ वर्ष |
| १३ हस्ता<br>१४ चित्रा<br>१५ स्वाती<br>१६ विशाखा | बुध | १७ वर्ष |
| १७ अनुराधा<br>१८ ज्येष्ठा<br>१९ मूला | शनि | १० वर्ष |
| २० पूर्वाषाढा<br>२१ उत्तराषाढा<br>० अभिजित्<br>२२ श्रवणा | वृहस्पति | १९ वर्ष |
| २३ धनिष्ठा<br>२४ शतभिषा<br>२५ पूर्वभाद्रपद | राहु | १२ वर्ष |
| २६ उत्तरभाद्रपद<br>२७ रेवती<br>१ अश्विनी<br>२ भरणी | शुक्र | २१ वर्ष |

इन सब नक्षत्रोंके अनुसार जिस नक्षत्रमें जन्म हुआ है, उसी नक्षत्रको लेकर दशाका निरूपण करना चाहिए।

दशाफल—रविकी दशामें चित्तका परिताप, धन-हानि, क्लेश, विदेशगमन, रोगभय, अनिष्टपात, दुःख, जीवनहानि, बन्धन और राजपीड़ा होती है।

चन्द्रकी दशामें—मनुष्यका ऐश्वर्य, घोटकादि वाहन, राजपूजा, रत्न, कुल, मङ्गल, प्रताप, वीर्य वृद्धि, मिष्टान्न-भोजन, पानीयपान और उत्तमशय्या लाभ होती है।

मङ्गलकी दशामें—दुष्ट मनुष्योंसे आत्मविनाश, बन्धन, भय, चिन्ता, ज्वर, विकलता, और भीति, अग्निभय, विवाद रोग, अकीर्त्ति, प्रताप हानि और धनका विनाश होता है।

बुधकी दशामें—उत्तमा कामिनीसम्भोग, धनागम, अत्यन्त सुखलाभ, विविध ऐश्वर्य, कोषागारकी वृद्धि और मनोरथपूर्ण होता है।

शनिकी दशामें—अपवाद, वध बन्धन, आश्रयविनाश, चौरभय, अग्नि, सर्प तथा राजभय, आशाभङ्ग और कार्य-हानि होती है।

वृहस्पतिकी दशामें—राज्यप्राप्ति, धनागम, पुत्रलाभ, विविध वस्तुओंका भोग, सुख और धन, धान्यवृद्धि, विद्या, सुख्याति, एवं लक्ष्मी प्राप्त होती हैं।

राहुकी दशाकालमें—पत्नीके अपराधके कारण विवाद, बन्धन और अस्त्राघातका भय, अल्प पराक्रम, अत्यन्त कष्ट, धन और कान्तिविहीन शरीर होता है।

शुक्रकी दशाके समयमें—मन्त्रसिद्धि, प्रमदासङ्गलाभ, अभिलाष पूर्ण, वदान्यता, राजपूजित, हस्ती और अश्व आदि सवारियों पर जाना, मनोरथ सिद्धि, अर्थसञ्चय और राजलक्ष्मी लाभ होती है। यह तो स्थूलदशाका विषय कहा गया, किन्तु प्रत्येक दशामें अन्तर्दशा है। अन्तर्दशाका फल अन्तर्दशाके कालानुसार हुआ करता है।

अन्तर्दशा—रविकी स्थूलदशा ६ वर्ष है जिसमेंसे रविका अपना दशान्तर ४ मास, चन्द्रका १० मास, मङ्गलका ५ मास, बुधका ११ मास २० दिन, शनिका ६ मास २० दिन, वृहस्पतिका १ वर्ष २० दिन, राहुका ८ मास और शुक्रका अन्तर्दशा १ वर्ष २ मास है। रविकी दशाके मध्य रविकी अन्तर्दशासे राजदण्ड, मनस्ताप, बन्धन, विदेशगमन, शरीरपीड़ा और नाना प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं। रविकी दशामें चन्द्रकी अन्तर्दशासे मनुष्यका शत्रुनाश, रोगशान्ति, वित्तलाभ और नाना प्रकारके सुख मिलते हैं। मतान्तरसे रविकी दशाके मध्य चन्द्रकी अन्तर्दशामें रोग, शङ्का, त्रास, इच्छाहानि, मनःपीड़ा आदि होती है। रविकी दशाके मध्य मङ्गलकी अन्तर्दशामें मनुष्य प्रधान हो कर मणिरत्न और प्रवाल आदि पाते हैं। रविकी दशाके मध्य बुधकी अन्तर्दशामें मनुष्य दरिद्र और दुःखी होता है एवं उसके सारे शरीर-में विचर्चिका आदि रोग होते हैं और इस प्रकार नाना प्रकारके शरीरके उपद्रवोंसे वह कष्ट पाता है।

रविकी दशाके मध्य शनिकी अन्तर्दशामें मनुष्य राजभय पा कर शक्तिरहित और धैर्यहीन होता है, तथा उसके सब कार्य निष्फल होते हैं। मतान्तरसे—रविकी दशाके मध्य शनिकी अन्तर्दशामें मनुष्यका सन्ताप, वित्त बन्धुनाश, पराजय तथा उसके सब कार्य नष्ट हो जाते हैं।

रविकी दशाके मध्य वृहस्पतिकी अन्तर्दशामें मनुष्य-की सम्पत्ति वृद्धि और रोगशान्ति होती है तथा वह दूसरोंसे विश्वास और धर्म लाभ करता है। मता-न्तरसे—रविकी दशाके मध्य वृहस्पतिकी अन्तर्दशामें मनुष्य अर्थ, धर्म और सुख पाता है। इसके बाद वह कुष्ठादिरोगसे छुटकारा पा कर सुखी होता है।

रविकी दशाके मध्य राहुकी अन्तर्दशामें मनुष्यके रोग, शोक, भय, मृत्यु, वित्तनाश और तरह तरहके अशुभ होते हैं।

रविकी दशामें शुक्रकी अन्तर्दशासे शिरःपीड़ा, उदरा-मय, ज्वर, अतीसार और शूल आदि रोगोंसे मनुष्यका शरीर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

चन्द्रमाकी स्थूल दशाका काल १५ वर्ष है जिसमेंसे २ वर्ष १ मास अपनी अन्तर्दशा है। इस समय सम्पत्ति-की वृद्धि, स्वर्णभूषिता स्त्रीलाभ और अत्यन्त यशोवृद्धि होती है।

चन्द्रकी दशामें १ वर्ष १ मास १० दिन मङ्गलकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय सर्वदा काल और चोर भय तथा शरीरमें अनेक तरहके रोग होते हैं। मता-न्तरसे चन्द्रकी दशाके मध्य मङ्गलकी अन्तर्दशामें मनुष्यकी

शिरपिस्तपीड़ा और चोरका भय होता है।

चन्द्रकी दशामें २ वर्ष ४ मास १० दिन बुधकी अन्त र्दशाका भोगकाल है। इस समय प्रफुल्ल, सुखसम्पत्ति, हाथी और घोड़ेकी सवारी तथा गोधनादि प्राप्त होता है।

चन्द्रको दशामें १ वर्ष ४ मास २० दिन शनिकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय बुद्धिक्षय, सुहृद्भेद, विपद् आदि अनेक प्रकारके अमङ्गल होते हैं। मतान्तर-से चन्द्रकी दशाके मध्य शनिको अन्तर्दशामें क्लेश, राज-भय, विपद्, शोक और सम्पत्ति नाश होतो है।

चन्द्रकी दशामें २ वर्ष ७ मास २० दिन वृहस्पतिको अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य धन, धर्म, सुख, वस्त्र और अलङ्कार प्राप्त करता है।

चन्द्रको दशामें १ वर्ष ८ मास राहुको अन्तर्दशाका काल है। इस समय सब प्रकारका रोग और वन्धुनाश होता है तथा वह थोड़ा समय भी सुखो नहीं हो सकता है। मतान्तरसे—अग्निभय, दुःख, शोक, बन्धुविच्छेद और धनक्षय होता है।

चन्द्रकी दशामें २ वर्ष ११ मास शुक्रको अन्तर्दशा-का समय है। इस समय मनुष्य उत्तमास्त्रोसङ्गम, धन, धान्य, मुक्ता, मणि आदि लाभ कर सुखी होता है।

चन्द्रकी दशामें १० मास रविको अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य राजाका अनुग्रह, सुख और अतुल ऐश्वर्य लाभ करता है।

मङ्गलकी स्थूल दशा ८ वर्ष है जिसमेंसे मङ्गलको अपनी दशा ७ मास ३ दिन २० दण्ड है। मङ्गलको इस निजदशाके समयमें वन्धुके साथ कलह, अग्निदाह और शारीरिक पीड़ा होतो है।

मङ्गलकी दशामें १ वर्ष ३ मास २० दण्ड बुधको अन्तर्दशाका काल है। इस समय नृप, चोर, शत्रु और शृङ्गिजन्तुसे भय तथा नाना प्रकारके मनस्ताप और ज्वरादि होते हैं।

मङ्गलकी दशामें ८ मास २६ दिन ४० दण्ड शनिको अन्तर्दशाका काल है। इस समय धननाश, मनस्ताप, हृदयपीड़ा आदि दुःख होते है।

मङ्गलको दशामें १ वर्ष ४ मास २६ दिन ४० दण्ड वृहस्पतिको अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य तीर्थयात्रा, देव-ब्राह्मण पूजा आदि अच्छे अच्छे कार्य करते हैं। किन्तु साथ ही साथ राजभय भी होनेकी सम्भावना है।

मङ्गलकी दशाके मध्य वृहस्पतिकी अन्तर्दशामें मनुष्य पुष्प, धूप, अन्नवस्त्रादि द्वारा देवता और ब्राह्मण-की अर्चना करता है और राजतुल्य सम्मान पाता है।

मङ्गलको दशामें १० मास २० दिन राहुको अन्त-र्दशाका काल है। इस समय अस्त्रभय, अग्नि, चोर, शत्रुभय और वित्तनाश आदि अमङ्गल होता है।

मङ्गलको दशामें १ वर्ष ६ मास २० दिन शुक्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय धननाश, रोग, शत्रु-भय आदि उपद्रव और राजभय होता है।

मङ्गलकी दशामें ५ मास १० दिन रविको अन्त-र्दशाका काल है। इस समय अतुल ऐश्वर्य, राजसम्मान, स्त्रीलाभ तथा पदकी वृद्धि होती है।

मङ्गलकी दशामें १ वर्ष १ मास १० दिन चन्द्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय नाना प्रकारको सम्पत्ति, सुख, मुक्ता और मणि आदि भूषणको प्राप्ति होती है।

बुधकी स्थूलदशा १७ वर्ष है जिसमेंसे २ वर्ष ८ मास ३ दिन २० दण्ड उसको निज दशाका काल है। इस समय मनुष्य धर्म उपार्जन करता, बुद्धिको वृद्धि होती है तथा धन, सौभाग्य और अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

बुधकी दशामें १ वर्ष ६ मास २६ दिन ४० दण्ड शनिको अन्तर्दशाका काल है। इस समय वातश्लेष्मा, पोड़ा, वन्धुओंके साथ विवाद और विदेशगमन आदि क्लेश होते हैं।

बुधकी दशामें २ वर्ष ११ मास २६ दिन ४० दण्ड वृहस्पतिकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य रोगसे छुटकारा, शत्रुभय विनाश, धनागम और सुपुत्र पाता है।

बुधकी दशामें १ वर्ष १० मास २० दिन राहुकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय अकस्मात् अग्निभय, बन्धन, वित्तनाश और महाक्लेश होता है।

बुधकी दशामें ३ वर्ष ३ मास २० दिन शुक्रको अन्त-र्दशाका काल है। इस समय मनुष्य पुत्रवान् और धार्मिक होता है।

बुधकी दशामें ११ मास १० दिन रविकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य सुवर्ण, प्रवाल, विपुल यश, श्रीमान् और दूसरेका धन प्राप्त करता है।

बुधकी दशामें २ वर्ष ३ मास १० दिन चन्द्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य शत्रु और शृङ्गिजन्तुसे भय तथा नाना प्रकारके कष्ट पाता है।

बुधकी दशामें १ वर्ष ३ मास ३ दिन २० दण्ड मङ्गलकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय शिरका रोग, हृदय पीड़ा, दस्यु और तस्करभय एवं जांघ और पैरमें पीड़ा होती है।

शनिकी स्थूल दशाका भोगकाल १० वर्ष है जिसमेंसे ११ मास ३ दिन २० दण्ड शनिकी निजान्तर्दशा है। इस समय मनुष्य खलवृत्ति अवलम्बन करता है एवं स्त्री और पुरुषसे निग्रह, अर्थक्षय, बन्धुविनाश, विदेशगमन और मिथ्यापवाद आदि पाता है।

शनिकी दशामें १ वर्ष ९ मास ३ दिन २० दण्ड वृहस्पतिकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य देवताओंके प्रति अनुरक्त और शान्त प्रकृति हो कर विविध सम्पत्ति लाभ करता है तथा उसका शत्रु नाश होता है।

शनिकी दशामें १ वर्ष १ मास १० दिन राहुकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यका विदेशगमन, बन्धुविद्वेष, मित्रभय और अकस्मात् अग्निदाह आदि तरह तरहके उपद्रव होते हैं।

शनिकी दशामें १ वर्ष ११ मास १० दिन शुक्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यका बन्धु समागम, भार्या और वित्तलाभ होता है तथा सुख सम्पत्ति और सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

शनिकी दशामें ६ मास २० दिन रविकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यका धनपुत्रविनाश हो कर दुखकी वृद्धि होती है और जीवन तथा बल नष्ट होता है।

शनिकी दशामें १ वर्ष ४ मास २० दिन चन्द्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यका बन्धुविच्छेद, स्त्रीविनाश, कलह और नाना प्रकारकी पीड़ा होती है।

शनिकी दशामें ८ मास २६ दिन ४० दण्ड मङ्गलकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय देशत्याग, पीड़ा और तरह तरहके दुःख प्राप्त होते हैं।

शनिकी दशामें १ वर्ष ६ मास ३० दिन २० दण्ड बुधकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य भाग्यवान् और सम्मानभाजन हो कर पुत्रलाभ करता है।

वृहस्पतिकी स्थूलदशाका परिमाण १९ वर्ष है जिसमेंसे ३ वर्ष ४ मास ३ दिन २० दण्ड इसकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य सत्पुत्र, तपस्या, सुख्याति, पौरुष, सुख और गजाश्वादि वाहन पाता है।

वृहस्पतिकी दशामें २ वर्ष १ मास १० दिन राहुकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय अकस्मात् भय और राजपीड़ा आदि उपद्रव तथा बन्धन और मनस्तापादि शारीरिक क्लेश होता है।

वृहस्पतिकी दशामें ३ वर्ष ८ मास १० दिन शुक्रकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय शत्रुभय और बन्धुनाश हो कर नाना प्रकारके रोग और स्त्रीवियोग आदिसे तरह तरहके दुःख होते हैं।

वृहस्पतिकी दशामें १ वर्ष २० दिन रविकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मित्रलाभ, धनागम, उत्तमा-स्त्रीलाभ और राजाका प्रियपात्र होता है।

वृहस्पतिकी दशामें २ वर्ष ७ मास २० दिन चन्द्रकी अन्तर्दशाका काल है। ऐसे समयमें उत्तमा स्त्रीलाभ और शत्रुभय होता है। तथा वह सब प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो कर राजतुल्य सम्मान पाता है।

वृहस्पतिकी दशामें १ वर्ष ४ मास २६ दिन ४० दण्ड मङ्गलकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य अत्यन्त क्रोधी, शत्रुनाशक और हाथीके जैसा भयङ्कर देखनेमें लगता है। तथा वह सौभाग्ययुक्त हो कर सुखसे समय बिताता है।

वृहस्पतिकी दशामें २ वर्ष ११ मास २६ दिन ४० दण्ड बुधकी अन्तर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य कभी सुस्थ और कभी अस्वस्थ हो कर सुख और दुःख भोग करता है, शत्रुकी वृद्धि होती है और देवपूजामें अनुराग उत्पन्न होता है।

वृहस्पतिकी दशामें १ वर्ष ९ मास ३ दिन २० दण्ड

शनिकी अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य वेश्या सहवासमें सुखभोग करता है और वित्तविहीन हो कर सर्वदा अधम कार्यमें लगा रहता है।

राहुकी स्थूल दशा १२ वर्ष है। इसमेंसे राहुका निजभोगकाल १ वर्ष ४ मास है। इस समय स्त्री-वियोग, बन्धुनाश, शत्रुभय और अर्थनाश होता है।

राहुकी दशामें २ वर्ष ४ मास शुक्रको अंतर्दशाका काल है। इस समय ब्राह्मणके साथ मित्रता, स्त्रीलाभ, वित्तसञ्चय और बन्धुओंके साथ स्नेहवृद्धि होती है।

राहुको दशामें ८ मास रविको अंतर्दशाका काल है। इस समय शत्रुभय, भयानक रोग, अर्थनाश, राजभय, अतिशय व्यथा और शिरोरोगादि अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं।

राहुको दशामें १ वर्ष ८ मास चन्द्रको अंतर्दशाका काल है। इस समय स्त्रीविनाश, कलह, क्लेश, पापमें अनुराग, कुभोजन, बन्धुविच्छेद और रिपुका भय उपस्थित होता है।

राहुको दशामें १० मास २० दिन मङ्गलकी अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यको विषभय, अस्त्रभय, अग्निभय, चौरभय और तरह तरहके कष्ट होते हैं।

राहुको दशामें १ वर्ष १० मास २० दिन बुधकी अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यको कफ और वातघटितरोग तथा भयावह शिरःपीड़ा होती है।

राहुकी दशामें १ वर्ष १ मास १० दिन बृहस्पतिकी अंतर्दशाका समय है। इस समय मनुष्य रोगमुक्त और शत्रुभयसे विहीन हो कर देवता और ब्राह्मणपूजामें तत्पर रहता है और नाना प्रकारके धर्म उपार्जन करता है।

शुक्रकी स्थूल दशा २१ वर्ष है जिसमेंसे ४ वर्ष १ मास इसको अपनी ही अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य सुनीति सीख कर कीर्त्ति लाभ करता है और स्त्री द्वारा सुख वृद्धि और अर्थलाभ होता है।

शुक्रकी दशामें १ वर्ष २ मास रविको अंतर्दशाका काल है इस समय मनुष्यको चक्षुरोग, बन्धन, महाभय और सब विषयोंमें अमङ्गल होता है।

शुक्रको दशामें २ वर्ष ११ मास चन्द्रको अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यके नख, दंत और मस्तकमें पीड़ा होती है तथा बन्धुओंके साथ सर्वदा विवाद उपस्थित होता है।

शुक्रको दशामें १ वर्ष ६ मास २० दिन मङ्गलको अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्यको उत्तमा स्त्री और भूमि-लाभ होता है तथा वीर्यको हानि होती है।

शुक्रकी दशामें ३ वर्ष ३ मास २० दिन बुधकी अन्तर्दशाका काल है। इस दशामें उत्तमास्त्रीलाभ, धन धान्यादि सम्मान, शरीरको पुष्टि और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है।

शुक्रकी दशामें १ वर्ष ११ मास १० दिन शनिको अंतर्दशाका काल है। इस समय मनुष्य उत्तम नगरमें, अत्यन्त मनोहर घरमें, सुन्दरी स्त्रीके साथ क्रीड़ा कौतुक आदि आमोद प्रमोद करता है तथा शत्रुनाश और मित्रलाभ होता है।

शुक्रको दशामें ३ वर्ष, ८ मास, २० बृहस्पतिको अंतर्दशाका काल है। इस दशामें मनुष्य उत्तमा स्त्री और धन धान्य लाभ करता है, तथा सर्वदा बन्धुओंसे वेष्टित हो कर सुखसे समय बिताता है।

शुक्रको दशामें २ वर्ष ४ मास राहुको अन्तर्दशाका काल है। इस समय विदेश गमन, दुःख, अन्त्यजातिके साथ समागम और पापकर्ममें अनुराग होता है।

इन सब ग्रहोंकी अन्तर्दशाके अनुसार फलाफल स्थिर होता है तथा दशाकालीन ग्रहोंके बलाबलके ऊपर फलाफल निर्भर करता है।

हरगौरीदशा—हरगौरीदशाको गणनासे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र इस प्रणाली द्वारा ग्रहोंकी गणना करनी होती है। इस दशामें समस्त ग्रहोंके दशाभोगके कालकी समष्टि १२० वर्ष है। इस दशाकी गणना करते समय कृत्तिकासे ले कर पूर्वफल्गुनी तकके नौ नक्षत्रोंमें सूर्यादि नवग्रहकी दशाका आरम्भ होता है। पीछे उत्तरफल्गुनी और उत्तराषाढ़ासे नौ नक्षत्रोंमें एक एक ग्रहकी दशाका आरम्भ हुआ करता है। शुक्लपक्षमें जात व्यक्तिके सम्बन्धमें इसी तरह कृत्तिका नक्षत्रसे गणना करके दशाके आरम्भका निरूपण किया जाता है। कृष्ण पक्षमें जातव्यक्तिके

सम्बन्धमें अश्विनीसे गणना करके किस नक्षत्रमें जन्म होनेसे किस ग्रहकी दशा पहले होगी इसका निश्चय किया जाता है।

हरगौरीकी दशामें ६ वर्ष रविकी दशा है; पीछे चन्द्रमाकी दशा १० वर्ष, मङ्गलकी ७ वर्ष, राहुकी १८ वर्ष, वृहस्पतिकी १८ वर्ष, शनिकी १७ वर्ष, बुधकी १६ वर्ष, केतुकी ७ वर्ष और शुक्रकी २० वर्ष दशाका भोगकाल है। जिस ग्रहकी दशामें जिस ग्रहकी अन्तर्दशाका निर्णय करना होगा, उन दो ग्रहोंकी दशावर्ष संख्याकी परस्पर गुणा करके गुणनफलको दशसे भाग देते हैं, भागफल जितना होता है उतना महीना होगा और फिर अवशिष्टाङ्कको ३० से गुणा करके दशसे भाग दे कर भागफल जितना होता है, उतना दिन होगा और इसे ही अन्तर्दशाका भोगकाल मानना चाहिये। इसी प्रकार इस दशाकी अन्तर्दशाका निरूपण किया जाता है।

विंशोत्तरी दशा—इस विंशोत्तरी दशामें पहले सूर्यकी, पीछे चन्द्र, मङ्गल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र इस प्रकार क्रमशः दूसरे दूसरे परवर्ती ग्रहोंकी दशाका भोग है। इस विंशोत्तरी दशाके मतसे रविकी ६ वर्ष, चन्द्रकी १० वर्ष, मङ्गलकी ७ वर्ष, राहुकी १८ वर्ष वृहस्पतिकी १६ वर्ष, बुधकी १७ वर्ष, केतुकी ७ वर्ष और शुक्रकी २० वर्ष दशाकी भोग अवधि है। इन सब ग्रहोंके दशाकालकी समष्टि १२० वर्ष है। जिस मनुष्यकी राशिमें समस्त ग्रहोंका दशाभोग रहता है, वह मनुष्य १२० वर्षतक जीता है।

इस दशामें और कृत्तिका नक्षत्रसे जिस दशाका आरम्भ होता है, उसमें विशेषता यही है, कि जिस मनुष्यका कृत्तिका उत्तरफल्गुनी अथवा उत्तराषाढ़ा-नक्षत्रमें जन्म होता है, उसकी पहले रविकी दशा होती है। इसी प्रकार रोहिणी, हस्ता वा श्रवणानक्षत्रोंमें जन्म होनेसे चन्द्रकी दशा होती है। मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठानक्षत्रोंमें मङ्गलकी, आर्द्रा, स्वाती वा शतभिषा नक्षत्रोंमें राहुकी; पुनर्वसु, विशाखा वा पूर्वभाद्रपदमें वृहस्पतिकी; पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपदमें शनिकी; अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवतीमें तथा मूला वा अश्विनीमें केतुकी; पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा वा पूर्वभाद्रपदमें बुधकी और मघा वा भरणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे शुक्रकी दशा पहले होगी। पीछे ऊपर लिखे हुए क्रमानुसारसे दूसरे दूसरे परवर्ती ग्रहोंकी दशा होगी।

विंशोत्तरी दशामें इसी प्रकार अंतर्दशाके कालका निरूपण करना होता है। जिस ग्रहकी दशामें जिस ग्रहकी अंतर्दशा स्थिर करनी होगी, उन दो ग्रहोंके दशाभोगकी वर्ष संख्याकी परस्पर गुना करके १२० से भाग देते हैं, भागफल जितना होगा वही अंतर्दशाका वर्ष है। अवशिष्ट अङ्कको १२ से गुणा करके गुणनफलको १२० से भाग दे कर भागफल जो होगा, वह महीना होगा। इसी प्रकार दण्डादि भी स्थिर करना होता है।

आर्द्रादि अष्टोत्तरी दशा—अष्टोत्तरी दशाकी गणनाकी प्रणाली प्रायः पूर्वोक्त नक्षत्रकी दशाकी नाईं है। केवल प्रभेद यही है, कि नक्षत्रकी दशामें कृत्तिकासे आरम्भ करके सूर्यादि ग्रहकी दशा निर्णय करनी होती है, लेकिन इस दशामें आर्द्रानक्षत्रसे आरम्भ करके दशा स्थिर करनी होगी। यथा—

आर्द्रादि अष्टोत्तरी दशा।

| जन्मनक्षत्र | दशा | दशाभोगका काल |
|---|---|---|
| आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, अश्लेषा | रविका | ६ वर्ष। |
| मघा, पूर्व फल्गुनी, उत्तरफल्गुनी | चन्द्रका | १५ वर्ष। |
| हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा | मङ्गलका | ८ वर्ष |
| अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला | बुधका | १७ वर्ष |
| पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवणा | शनिका | १० वर्ष। |

| जन्मनक्षत्र | दशा | दशाभोगका काल |
|---|---|---|
| धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद | बृहस्पतिका | १९ वर्ष । |
| उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी | राहुका | १२ वर्ष । |
| कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा | शुक्रका | २१ वर्ष । |

इसी प्रकार अष्टोत्तरी दशा स्थिर करनी होगी। अन्तर प्रत्यन्तर्दशाका काल नाक्षत्रिकोदशाके जैसा होगा। केवल कहीं कहीं फलाफलमें फर्क पड़ेगा ।

त्रिंशोत्तरी दशाकी गणना इस प्रकार करनी चाहिये । अष्टोत्तरी नाक्षत्रिकी दशाकी नाईं जन्मके नक्षत्रानुसार पहले दशाका निरूपण करना होगा। केवल दशाभोगके कालमें फर्क पड़ता है, नाक्षत्रिकीदशामें रविका ६ वर्ष, चन्द्रका १५ वर्ष है इत्यादि। इस दशाके नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे जिस ग्रहको दशा होगी, उस ग्रहके दशाभोगके कालमें उन सब नक्षत्रोंका भाग देनेसे जितना वर्ष और जितना महीना होगा, उतना ही वर्ष और महीना उस ग्रहके दशाभोगका काल जानना होगा।

यथा रविका २ वर्ष, चन्द्रका ३ वर्ष ९ मास, मङ्गलका २ वर्ष ८ मास, बुधका ५ वर्ष ३ मास, शनिका ३ वर्ष ४ मास, बृहस्पतिका ४ वर्ष ९ मास, राहुका ४ वर्ष, शुक्रका ५ वर्ष ३ मास भोगकाल है।

इन सब दशाओंकी समष्टि ३० वर्ष है। सुतरां ३० वर्षमें समस्त ग्रहोंका दशाभोग शेष होता है। दशाभोग शेष हो जाने पर पुनः उन सब ग्रहोंका दशाभोग हुआ करता है।

त्रिंशोत्तरी दशाफल—जिसका जिस नक्षत्रमें जन्म होगा, उस नक्षत्रावधि दशाको जन्मदशा, जन्म नक्षत्रसे दशम नक्षत्रको दशाको कर्मदशा और जन्म नक्षत्रसे षोडश नक्षत्रकी दशाको आधान दशा कहते हैं। जिस वर्षमें मनुष्यकी जन्म-दशामें रवि वा बृहस्पति, कर्म दशामें राहु वा रवि और आधान-दशामें बुध वा शनि अधिपति हों, उस वर्षमें उसकी मृत्यु होती है।

किसी मनुष्यका कृत्तिका नक्षत्रमें जन्म होनेसे प्रथम २ वर्ष रविकी दशा, पीछे ५ वर्ष ९ मास तक चन्द्रकी दशा, ८ वर्ष ५ मास तक मङ्गलकी दशा, १२ वर्ष ८ मास बुधकी दशा; बाद १६ वर्ष तक शनिकी दशा, २० वर्ष ९ मास तक बृहस्पतिकी दशा, २४ वर्ष ९ मास राहुकी दशा और उसके बाद ३० वर्ष तक शुक्रकी दशा होगी। इस प्रकार ३० वर्ष तक ग्रहगण दशा-भोग करेंगे, पीछे अर्थात् ३० वर्षके बाद पुनः उन सब ग्रहोंका दशाभोग होगा।

जिसका जो जन्मनक्षत्र होगा, वह तदनुसार इसी प्रकार दशाका काल और ग्रहका निर्णय कर लें। बाद उसके कर्मनक्षत्रकी दशाकी गणना करनी होगी। यथा—जिसका कृत्तिका नक्षत्रमें जन्म हुआ है, उसका कर्मनक्षत्र १२ उत्तरफल्गुनी है। पहले मङ्गलकी दशा और दशाभोगका काल २ वर्ष ८ मासमें ४ वर्ष ३ मास, बुधकी दशा जोड़नेसे ६ वर्ष ११ मास होता है। पीछे १० वर्ष ३ मास शनिकी दशा और उसके बाद १५ वर्ष तक बृहस्पतिकी दशा है। फिर उसके बाद १९ वर्ष तक राहुकी दशा, २४ वर्ष ३ मास शुक्रकी दशा, २६ वर्ष ३ मास तक रविकी दशा और उसके बाद ३० वर्ष तक चन्द्रकी दशा है।

इसके अनन्तर उस मनुष्यके आधान अर्थात् षोड़श नक्षत्रकी गणना करनी होगी।

कृत्तिकानक्षत्रमें जातव्यक्तिका ज्येष्ठानक्षत्र ही आधान नक्षत्र होगा। इस नक्षत्रमें पहले ३ वर्ष ४ मास शनिकी दशा, पीछे ८ वर्ष १ मास तक बृहस्पतिकी दशा, १२ वर्ष १ मास तक राहुकी दशा, १७ वर्ष ४ मास तक शुक्रकी दशा, १९ वर्ष ४ मास तक रविकी दशा, २३ वर्ष १ मास तक चन्द्रको दशा, बाद २५ वर्ष ९ मास तक मङ्गलकी दशा और उसके बाद ३० वर्ष तक बुधकी दशा होगी।

इस प्रकार प्रति नक्षत्रमें जातव्यक्तिके जन्म, कर्म और आधान नक्षत्रकी दशाकी गणना करनी चाहिए। किसी मनुष्यके जिस वर्षमें जन्मनक्षत्रका दशाधिपति

राहु अथवा रवि और आधान नक्षत्रका दशाधिपति बुध वा शनि हो, तो उस मनुष्यका नस वर्षमें महत् रिष्ट समझना होगा। इस दशाकी गणनासे अभिजित्नक्षत्र-की भी दशाकी गणना होती है।

इस त्रिंशोत्तरी दशाकी गणनादि सहज रीतिसे करनेके लिए एक चक्र अङ्कित किया जाता है। इसे देख कर यदि अन्यान्य नक्षत्रोंकी गणना की जाय, तो किसकी कितने वर्षकी अवस्थामें किस ग्रहकी दशा होगी वह मालूम हो जावेगा।

चक्र।

जिसका कृत्तिकानक्षत्रमें जन्म होगा, उसका त्रिंशोत्तरी दशागणनाका दृष्टान्त।

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जन्मनक्षत्र दशा | रवि | चन्द्र | मङ्गल | बुध | शनि | वृह० | राहु | शुक्र | |
| ३ कृत्तिका। | २ वर्ष | ३।९ | २।८ | ४।२ | ३।४ | ४।९ | ४ | ५।२ | ३० |
| कर्मनक्षत्र दशा | मङ्गल | बुध | शनि | वृह० | राहु | शुक्र | रवि | चन्द्र | |
| १२ उत्तरफल्गुनी। | २।८ | ४।३ | ३ ४ | ४।९ | ४ | ५।२ | २ | ३।९ | ३० |
| आधान नक्षत्र दशा | शनि | वृह० | राहु | शुक्र | रवि | चन्द्र | मङ्गल | बुध | ३० |
| १२ ज्येष्ठा। | ३।४ | ४ ९ | ४ | ५।२ | २ | ३।९ | २।८ | ४।३ | |

नित्यदशा गणना—जिस दिन नित्यदशाकी गणना करोगे, उस दिनकी तिथि, वार और नक्षत्र इनके अङ्कको तथा जिसकी दशाकी गणना करोगे, उसके जन्मनक्षत्राङ्क, इन चार अङ्कोंको एक साथ जोड़ कर ८से भाग दो। इस प्रकार भाग देनेसे जो शेष बचेगा, उससे फल निर्णय करो। यदि शेष १ रहे, तो उस दिन रविकी दशा; ४ रहे तो बुधकी, ५ रहे तो शनिकी; ६ रहे तो वृहस्पतिकी; ७ रहे तो राहुकी और ८ वा शून्य रहे तो शुक्रकी दशा होगी। इस दशाकी प्रति दिन गणना करके प्रतिदिनका शुभ.शुभ निर्णय करोगे।

उक्त प्रकारकी गणनासे जिस दिन सूर्यकी दशा होगी, उस दिन वित्तनाश और चन्द्रकी दशामें धर्म और अर्थलाभ, मङ्गलकी दशामें अस्त्राघात, बुधकी दशामें सम्पद्लाभ, शनिकी दशामें मान्द्यवृद्धि, वृहस्पतिकी दशामें सम्पत्ति, राहुकी दशामें बन्धन तथा शुक्रकी दशामें सब प्रकारके सुख मिलते हैं। गर्ग प्रभृतिने इस दशाका फल इस प्रकार निरूपित किया है।

प्रकारान्तरसे दिनदशाकी गणना—

जन्मनक्षत्राङ्कको चारसे गुणा करके उसमें जिस दिनकी दशाकी गणना करोगे उस दिनकी तिथि और वार अङ्कको जोड़ दो।

पीछे उस युताङ्कको ९से भाग दे कर अवशिष्ट अङ्कद्वारा दिनदशा स्थिर करनी होगी। अवशिष्ट १ रहनेसे रवि, २ रहनेसे चन्द्र, ३ रहनेसे मङ्गल, ४ रहनेसे राहु, ५ रहनेसे वृहस्पति, ६ रहनेसे शनि, ७ रहनेसे बुध, ८ रहनेसे केतु, ९ वा शून्य रहनेसे शुक्र दिन दशाके अधिपति होंगे। इस प्रकार प्रतिदिन दशाकी गणना करके प्रति-दिनके शुभाशुभका फल निर्णय किया जाता है। जिस दिन रविकी दशा होगी, उस दिन शोक अथवा क्लेश होगा। इसी प्रकार चन्द्रकी दशामें शौर्य और मनो-वाञ्छाकी सिद्धि। मङ्गलकी दशामें अस्त्र वा अग्निभय, राहुकी दशामें अर्थव्यय, वृहस्पतिकी दशामें स्त्रीलाभ, शनिकी दशामें धनव्यय, बुधकी दशामें पुण्यकार्य, केतुकी दशामें कार्यनाश, शुक्रकी दशामें लाभ और पुण्यसञ्चय हुआ करता है। जिस तिथिमें दशाकी गणना करोगे जब तक वह तिथि रहेगी तब तक उसी दशाका

अनुयायी फल होगा। तिथिके परित्याग होने पर फिर वैसा फल नहीं होता, तब फिरसे गणना करके फल निकालना होगा।

योगिनी दशा—स्वीय जन्मनक्षत्रमें तीन जोड़ कर ८से भाग देनेसे जो अवशिष्ट रहेगा, उसी अङ्कके अनुसार योगिनी दशा मालूम हो जायगी। १ अवशिष्ट रहनेसे मङ्गलाकी दशामें, २ रहनेसे पिङ्गलाकी दशामें, ३ रहनेसे धन्याकी दशामें ४ रहनेसे भ्रामरीकी दशामें, ५ रहनेसे भद्रिकाकी दशामें, ६ रहनेसे उल्काकी दशामें, ७ रहनेसे सिद्धाकी दशामें और ८ रहनेसे शङ्कटाकी दशामें जन्म होगा।

मङ्गलाका दशाभोग काल १ वर्ष, पिङ्गलाका २ वर्ष, धन्याका ३ वर्ष, भ्रामरीका ४ वर्ष, भद्रिकाका ५ वर्ष, उल्काका ६ वर्ष, सिद्धाका ७ वर्ष और शङ्कटाका ८ वर्ष है।

जन्मनक्षत्रानुसार योगिनी दशाका निरूपण—आर्द्रा, चित्रा और श्रवणानक्षत्रमें जन्म होनेसे पहले मङ्गलाकी दशा, पुनर्वसु, स्वाती और धनिष्ठानक्षत्रमें जन्म होनेसे पिङ्गलाकी, पुष्या, विशाखा और शतभिषानक्षत्रमें धन्याकी, अश्विनी, अश्लेषा, अनुराधा और पूर्वभाद्रपदनक्षत्रमें भ्रामरीकी, भरणी, मघा, ज्येष्ठा और उत्तरभाद्रपदनक्षत्रमें भद्रिकाकी, कृत्तिका, पूर्वफल्गुनी, मूला और रेवतीनक्षत्रमें उल्काकी, रोहिणी, उत्तरफल्गुनी और पूर्वाषाढ़ानक्षत्रमें सिद्धाकी, मृगशिरा, हस्ता और उत्तराषाढ़ानक्षत्रमें जन्म होनेसे शङ्कटा योगिनीकी दशा होगी। पहले जन्मनक्षत्रानुसार दशाका निर्णय करके जन्मनक्षत्रका मानदण्ड स्थिर करते हैं। पीछे उस नक्षत्रका जितना दण्ड भुक्त हुआ है तथा जितना दण्ड बच रहेगा, उससे अनुपात करके भोगका काल निर्णय करते हैं। मङ्गलायोगिनी मनुष्यका सर्वदा मङ्गल करती हैं, उनकी दशामें प्रणय, यशलाभ और सब विषयोंमें शुभ होता है।

पिङ्गलायोगिनी सर्वदा मनुष्योंको तरह तरहका कष्ट दिया करती है। इसकी दशामें मनुष्यको दुःख और धनादिका नाश होता है।

सर्वकल्याणकारिणी धन्यायोगिनीकी दशामें सुख, दुःख, श्रीवृद्धि, प्रणय, सम्मान और धनधान्यादि प्राप्त होता है।

भ्रामरीयोगिनी हमेशा मनुष्योंको दुःख दिया करती है। इनकी दशामें विदेश गमन, दुःख, कार्यनाश, मनःपीड़ा आदि नाना प्रकारके क्लेश होते हैं।

भद्रिकायोगिनीकी दशामें सुख, लाभ, यश, धर्मभोग, स्त्री, पुत्र और सन्तोष होता है।

उल्कायोगिनी सब समय मनुष्योंके शोकको बढ़ाती है। इनकी दशामें तरह तरहके रोग, दुःख, भय, शोक, धननाश, शत्रु, भय और मनस्ताप हुआ करता है।

सिद्धायोगिनीकी दशामें धन, धान्य, यश, धर्म, सुख, राजपूजा और जन साधारणसे आदर प्राप्त होता है और सर्व कार्यकी सिद्धि होती है।

शङ्कटायोगिनी दशामें जीवनका डर रहता है। यदि किसी तरह जीवन रह भी जाय, तो वह सर्वदा रोग, शोक, मनःपीड़ा और नाना प्रकारके शङ्कटोंसे घिरा रहता है।

योगिन्यन्तर्दशा—जितना वर्ष जिसकी स्थूलदशा होगी, उतने ही अङ्कको उन अङ्कोंसे गुणा करके गुणन फलको ३६से भाग देनेसे जितना भागफल होता है, उतना ही वर्ष उस योगिनीका अन्तर्दशाकाल होगा। जो सब योगिनी शुभ फल देती हैं, अन्तर्दशामें भी वे शुभफल ही देंगी।

लाग्निकदशा—दशाज्ञान द्वारा सब प्राणियोंका शुभाशुभ फलका समय जाना जाता है। इसीसे दशाका निर्णय करना आवश्यक है। आयुर्दाय गणना-प्रणाली द्वारा गणना करके जिस ग्रहको जितना वर्ष निर्णीत होगा उस ग्रहका दशाकाल उतना ही वर्ष समझना चाहिये। ग्रहगण अवस्थानुसार अपने अपने दशाकालमें शुभाशुभ फल देते हैं। लग्न, रवि और चन्द्र इन तीनोंमें जो बलवान् होगा, उसकी दशा पहले होगी। पीछे जिसकी दशा होगी, उसके केन्द्रस्थानमें जो ग्रह रहेगा, उसकी दशा समझनी चाहिये।

केन्द्रस्थानमें यदि दो तीन ग्रह रहें, तो उनमेंसे जो ग्रह बलवान् है पहले उसीकी दशा होगी। पीछे क्रमानुसार और दूसरे दूसरेकी।

पहले जिसकी दशा होगी, उसके केन्द्रस्थानमें यदि कोई ग्रह न रहे, अथवा केन्द्रस्थानस्थ दशाभोगके बाद पणफरमें अर्थात् दूसरे, पांचवें, आठवें और ग्यारहवें स्थानमें कोई ग्रह रहे, तो दशा उसीकी होगी, पणफरके घरमें दो तीन ग्रहोंके रहनेसे पहले बलवान् ग्रहका पीछे बलहीन ग्रहका दशाभोग होता है। यदि दो तीन ग्रहोंका बल समान हो, तो जिस ग्रहकी प्रदत्त आयुकी संख्या अधिक होगी, पहले उसीकी दशा होती है। पीछे क्रमशः ग्रहप्रदत्त आयुके संख्याधिक्यके अनुसार दशाका पूर्ववर्त्तित्व समझना चाहिये। दो तीन ग्रहोंका बल और आयुकी संख्या समान रहनेसे जिस ग्रहकी प्रदत्त आयुकी संख्या अधिक होगी, पहले उसीकी दशा होती है, बाद क्रमशः ग्रहप्रदत्त आयुकी संख्याके आधिक्यानुसार दशाका पूर्ववर्त्तित्व होगा। दो तीन ग्रहोंका बल और आयुकी संख्या समान होनेसे जो ग्रह पहले उदित होगा उसीकी दशा पहले होगी। इसी प्रकार दूसरे दूसरे उदित ग्रहोंकी दशा क्रमशः होती जायगी।

ग्रहगण यदि स्वक्षेत्रमें वा स्वहोरादिमें अथवा मित्रक्षेत्रमें वा मित्रहोरादिमें रहें, तो दशाफल शुभ होता है। स्वक्षेत्र होरादिस्थित और मित्रहोरादि स्थित ग्रहगण जब नीचेसे ऊपरकी ओर जाते हैं तब उनका दशाफल बहुत शुभ होता है, ऐसा समझना चाहिये।

नैसर्गिकी दशा—बृहज्जातकमें नैसर्गिकी दशा इस प्रकार लिखी है—चन्द्रमाका १ वर्ष, मङ्गलका २ वर्ष, बुधका ९ वर्ष, शुक्रका २० वर्ष, बृहस्पतिका १८ वर्ष, रविका २० वर्ष, और शनिका ५० वर्ष, नैसर्गिकी दशा है। अपने अपने दशाकालमें ग्रहगण यदि शुभ हों तो दशाफल शुभ और यदि अशुभ हों, तो दशाफल अशुभ होता है।

ग्रहदशाके अन्तमें लग्नकी दशा—यवनाचार्यके मतसे लग्नदशासे मनुष्यको शुभफल मिलता है। लेकिन ज्योतिर्विद्का कहना है, कि लग्न दशामें अशुभ फल होता है। लग्न चन्द्र और सूर्य ये तीनों यदि पूर्ण बलवान् हों, तो सत्याचार्यके मतानुसार पहले लग्न दशा होगी, यदि तीनोंका बल समान न हों, तो उनमेंसे जो बलवान् होगा, उसीकी दशा पहले होगी।

दशाधिपति यदि नीच स्थानमें अर्थात् शत्रुक्षेत्रमें अथवा नवांशमें स्थित हो तो उस दशाकालमें मनुष्य अशुभ फल पाता है। जब दशाधिपति ग्रह पूर्ण बलवान् और पर मोच्च स्थानमें रहता है, तब वह दशा सम्पूर्ण दशा कहलाती है। इस दशामें आरोग्य और धनकी वृद्धि होती है। दशाधिपतिग्रह यदि सम्पूर्ण बलहीन और नीच राशि स्थित हो, तो वह दशा रिक्तादशा कहलाती है। इस दशामें मनुष्यका धन पुत्र नष्ट होता है। जब दशाधिपति ग्रह अपनी उच्चराशिमें अवस्थित हो और यदि उसे कुछ बल रह जाय, तो उस दशाको पूर्ण दशा कहते हैं। इस दशामें मनुष्यको धन वृद्धि होती है। जब दशाधिपति बहुत नीच स्थानमें अर्थात् शत्रुके नवांशमें रहता है, तब वह दशा अनिष्टफला कहलाती है। इस दशामें अनेक प्रकारके रोग और अनिष्टकी वृद्धि होती है।

रविके दशाकालमें मनुष्य नख, दन्त, चर्म, सुवर्ण, क्रूरकर्म, पथ और राजा द्वारा धन लाभ करता है तथा उसके तेज, धैर्य, उद्यम, कान्ति और प्रतापकी वृद्धि होती है। भार्या, पुत्र, धन, अस्त्र, अग्नि और राजा इन सबसे कष्ट पहुंचनेकी सम्भावना रहती है। तथा पापकर्ममें अनुराग, निज भृत्यके साथ कलह, हृदय और क्रोड़स्थानमें पीड़ा होती है।

चन्द्रके दशाकालमें मनुष्य मन्त्र और ब्राह्मण द्वारा धन कमाता है, निद्रा, आलस्य और मृदुताकी वृद्धि होती है, ब्राह्मणके प्रति भक्ति होती है। कीर्त्ति बढ़ती है, अर्थोपार्जन और अर्थव्यय हुआ करता है तथा स्वजनोंमें शत्रुता होती है।

मङ्गलकी दशामें मनुष्य शत्रुदमन, राजा, भ्राता, मही और ऊर्णाविशिष्ट पशु इन सबसे धन उपार्जन करता है। मङ्गलग्रहके शुभ होनेसे सब फल मिलते हैं, लेकिन यह ग्रह यदि अशुभ हो, तो पुत्र, मित्र, स्त्री और भाइयोंके साथ शत्रुता होती है तथा पण्डित और गुरुके साथ अप्रणय उत्पन्न होता है। परस्त्री लोभ, प्रहारादि जनित पिपासा, रुधिरस्राव, ज्वर और पित्तविकार आदि रोग होता है, पापकार्यमें आसक्त व्यक्तियोंके साथ प्रणय जनमता है तथा वह अधर्ममें प्रवृत्त और उग्र स्वभावका होता है।

बुधकी दशामें बुधग्रह यदि शुभ हो, तो सौख्य, दौत्य-कर्म द्वारा मित्र, गुरु और ब्राह्मणसे धनलाभ होता है, तथा वह पण्डित, प्रशंसित और कीर्त्तिभाजन होता है और उसे कांसा, सोना, घोड़ा, जमीन, सौभाग्य और सुख मिलता है। बुधग्रहके अशुभ रहनेसे मनुष्य उपहास, परसेवा, परिश्रम, बन्धन, शोक और पीड़ाग्रस्त रहता है।

वृहस्पतिके दशाकालमें—वह ग्रह यदि शुभ हो, तो विद्यादि गुण, सम्मान, प्रादुर्भाव, वृद्धि, कान्ति, प्रताप, माहात्म्य और उद्यमादि द्वारा धनलाभ, सुवर्ण, अश्व, पुत्र, हस्ती और वस्त्रलाभ तथा गुणज्ञ राजाके साथ प्रणय और उनके स्नेहका पात्र होता है। वृहस्पतिके अशुभ होनेसे सूक्ष्मवस्तुके अनुसन्धानमें परिश्रम, कर्णपीड़ा और अधार्मिकोंके साथ शत्रुता होती है। शुक्रकी दशामें शुक्रके शुभ होनेसे मनुष्यके, गीतानुराग, हर्ष, सुगन्धि द्रव्य, अन्न, पानीय, वस्त्र, स्त्री, रत्न, शरीरकान्ति, अभिलषित द्रव्य, ज्ञान, प्रियवस्तु और बन्धु इन सबको वृद्धि होती है तथा वह क्रयविक्रयमें कौशल और कृषिकार्य द्वारा धन उपार्जन करता है। शुक्रके अशुभ होनेसे राजा, व्याध और अधार्मिकके साथ शत्रुता तथा प्रिय व्यक्तिके विनाश पर शोकप्राप्ति होती है। शनिके दशाकालमें शनिके शुभ होनेसे मनुष्यको गदहा, ऊंट, पक्षी और वृद्धा स्त्री मिलती है तथा वह ग्राम, नगर और पुरी पर अधिकार जमा कर सम्मानलाभ करता है। शनि यदि अशुभ हो, तो श्लेषा, वायुकोप और मोह प्रभृति विपद् पड़ती है, तन्द्रा, निन्द्रा, आलस्य और परिश्रमादि द्वारा क्लेश, भृत्य, सन्तान, स्त्री इनसे अपमान तथा अङ्गच्छेद और पीड़ाजनित क्लेशभोग होता है। जो ग्रह जन्मकालमें शुभ रहेगा, वह दशाकालमें भी शुभफल देगा, अशुभ होनेसे अशुभ और मिश्र होनेसे मिश्रफल प्राप्त होता है। लग्नाधिपति ग्रहकी दशाके जैसा लग्नदशाका भी फल होता है।

ग्रहोंके दशाकालमें दशाधिपति और अन्तर्दशाधिपति दोनों ही फल देते हैं, किन्तु अन्तर्दशाधिपति ग्रह-प्रदत्त फल ही मनुष्य भोग करता है।

योगिनी, वार्षिकी, नाक्षत्रिकी, लाग्निकी, मुकुन्दा, विंशोत्तरी, त्रिंशोत्तरी, पताकी, हरगौरी और दिनदशा ये ही दश दशा हैं। इनमेंसे सत्ययुगमें लग्नदशा, त्रेतामें हरगौरी दशा, द्वापरमें योगिनी दशा और कलिमें एकमात्र नाक्षत्रिकी दशा ही प्रधान है। ज्योतिषियोंका कहना है, कि पूर्वोक्त विवरण देख दशाफलकी गणना करके जीवनके शुभाशुभका निर्णय किया जा सकता है।

दशाकर्ष (सं० पु०) दशायावर्त्या आकर्षति तैलादिकमिति आकृष-अच्। १ प्रदीप, चिराग। २ वस्त्राञ्चल, कपड़ेका छोर या अंचल।

दशाकर्षी (सं० पु०) दशाया आकर्षतीति दशा-कृष णिनि। प्रदीप, चिराग।

दशाक्षर (सं० क्ली०) दश अक्षराणि पादेऽत्र। १ पंक्तिनामक छन्दोभेद। (त्रि०) २ दशाक्षरयुक्त मन्त्रभेद

दशागुग्गुलु (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त औषधभेद। त्रिकटु, चिता, त्रिफला, मुस्तक (मोथा) और गुग्गुल इनके समान समान भागोंको पका कर खानेसे मेदोदोष तथा कफ और आमवातसे उत्पन्न समस्त रोग नष्ट होते हैं। (भावप्र०)

दशाङ्गधूप (सं० पु०) १ अवग्रह पिशाचादि नाशक धूपविशेष। यह धूप त्रिदोषनाशक है। धूप देखो। २ पुष्पदानके बाद देवताओंको दिये जानेका धूप। मधु, मोथा, घी, गन्ध, गुग्गुल, अगुरु, शैलज, सरल, सिह्न और सिद्धार्थ इन्हीं दश द्रव्योंको चूर्ण कर दशाङ्गधूप तैयार करते हैं।

इसके बनानेकी दूसरी रीति—कर्पूर, कुष्ठ, अगुरु, गुग्गुल, चन्दन, केशर, वासक, पत्र, त्वक् और जातीकोष इन सब द्रव्योंके चूर्णमें घी मिलानेसे दशाङ्गधूप तैयार होता है।

दशाङ्गलेप (सं० पु०) प्रलेप विषयमें दिये जानेका दशाङ्ग-योगविशेष। शिरीष, यष्टिमधु, तगरचन्दन, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कुट और वाला इनको पीसकर घीके साथ प्रलेप देनेसे विसर्प, कुष्ठ, ज्वर और शोथ जाते रहते हैं।

दशाङ्गुल (सं० क्ली०) दश अङ्गुलय इव शिरा चिह्नानि फलत्वगुपरि सन्त्यस्य, अच्। खर्बुज, खरबूजा। भावप्रकाशके मतसे इस फलके ऊपर उंगलीकी नाईं शिरा-

चिह्न रहता है, इसीसे इस फलका नाम दशाङ्गुलि हुआ है। दश अङ्गुलयः परिमाणमस्य इति तद्धितार्थे द्विगोः तच्च तस्य लुक् समासान्तः अच् प्रत्ययः। दशाङ्गुल परिमित, वह जो दश उंगलीका हो।

दशाङ्घ्रि (सं० पु०) दशमूल।

दशाधिपति (सं० पु०) १ ज्योतिषोक्त दशापति रव्यादिग्रह, फलित ज्योतिषमें दशाओंके अधिपति ग्रह। दशानां पदातीनां अधिपतिः। २ दश पदातिका अध्यक्ष, दश सैनिकों या सिपाहियोंका अफसर, जमादार।

दशानन (सं० पु०) दश आननानि वदनानि यस्य। रावण।

दशानिक (सं० पु०) अन्यते इति भावे घञ् आनो-जोवनं तस्मिन् हितः आनिकः दशायां अवस्थाविशेषे आनिकः। दन्तीवृक्ष, जमालगोटा।

दशान्त (सं० पु०) दशायाः अन्तः ६-तत्। १ वार्द्धक्य, बुढ़ापा। २ वर्त्तिकान्त, बत्तीका पिछला भाग।

दशापवित्र (सं० क्लो०) दशा वस्त्राञ्चलं पवित्रमिव। श्राद्धादिमें देय वस्त्रखण्ड, कपड़ेके खंड जो श्राद्ध आदिमें दान दिये जाते हैं।

दशामय (सं० पु०) दश आमया यस्मात्। रुद्र।

दशार—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के झालावर विभागका एक सामान्य राज्य। इसमें ७ ग्राम लगते हैं। राजस्व प्रायः ६०००) रु० है, जिसमेंसे १२८६८) रु० वृटिश गवर्मेण्टको करस्वरूप देने पड़ते हैं। इसका परिमाणफल २६५ वर्गमील है।

दशारुहा (सं० स्त्री०) दशसु दिक्षु आरोहति अङ्गेर्वाप्नो-तीति आरुह-क-टाप्। कैवर्त्तिका, एक प्रकारकी लता। यह मालव देशमें बहुत होती है और इससे कपड़े रंगाए जाते हैं।

दशार्ण (सं० पु०) दश ऋणानि दुर्गभूमयो जलधारा वा यत्र ततो वृद्धिः। देशविशेष, एक देश जो विन्ध्य पर्वतके पूर्व दक्षिणमें अवस्थित है। दशान नदी इसी देश हो कर बहती है। टलेमीने इस स्थानका नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है। मेघदूत पढ़नेसे पता चलता है, कि विदिशा नगरी इसी दशार्णकी राजधानी थी। विदिशा देखो।

(त्रि०) ततस्याभिजनः तस्य राजा वा अण्। २ उक्त देशके निवासी। ३ उक्त देशके राजा। दश अर्णानि वर्णानि यत्र। ४ दशाक्षरमन्त्रविशेष। (स्त्री०) ५ नदीविशेष, एक नदी जिसका वर्त्तमान नाम दसान है। ६ जैनपुराणके अनु-सार एक राजा। इन्होंने तीर्थङ्करके दर्शनके निमित्त जा कर अभिमान किया था। इस पर तीर्थङ्करके प्रताप उन्हें वहां १६७७७२१६००० इन्द्र और १३३७०५७२-८००००००० इन्द्राणियां दिखाई पड़ीं और उनका गर्व चूर्ण हो गया।

दशार्णक—दशार्ण देखो।

दशार्णा (सं० स्त्री०) दसान या धसान नामकी एक नदी। यह विन्ध्य पर्वतसे निकल कर बुन्देलखण्डके कुछ भागों-में प्रवाहित हो कर कालपीके पास यमुनासे मिल गई है।

दशार्णेयु (सं० पु०) पौरव रौद्राश्व राजाके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३१ अ०)

दशार्द्ध (सं० क्लो०) दशानां अर्द्धं। १ पञ्चसंख्या, दशका आधा पांच। २-तत्। संख्येय, पांच अङ्कोंका दश-बलानि ऋध्नोति ऋध-अण्। ३ दशबल बुद्ध, दश बलोंसे युक्त बुद्धदेव।

दशार्ह (सं० पु०) १ क्रोष्टुवंशीय धृष्ट राजाके पुत्र। २ राजा वृष्णिके पौत्र। ३ वृष्णिवंशीय पुरुष। ४ वृष्णि-वंशियोंका अधिकृत देश। (पु०) ५ विष्णु।

दशावतार—विष्णुके असंख्य अवतारोंमेंसे दश अवतार बहुत प्रसिद्ध हैं। इन दश अवतारोंके नाम यों हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथी राम, बलराम बुद्ध, और कल्की। विष्णुके जितने अवतार हैं उनमेंसे यही दश अवतार उन्होंने संसारके अति सङ्कट कालमें लिये थे, इस कारण दश-अवतार कहनेसे केवल इसी दशका बोध होता है।

भगवान् विष्णु कब, कहां, किस तरह और क्यों, दश मूर्त्तियोंमें दश बार इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे, नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

१ला मत्स्यावतार।—पौराणिक कालमें गणनानुसार वर्त्तमान समयमें श्वेतवराह नामक कल्प चल रहा है। इसके पहले कई कल्प हो चुके हैं। प्रतिकल्पके

अवसानके समय एक एक महाप्रलय होता गया है। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उस समय योगनिद्राके वशीभूत थे। प्रलय-कालमें भूः आदि चौदहों भुवन जलमग्न हो गये, वेदादि भी विनष्ट हुए। श्वेतवराहकल्पके पहले जो कल्प था उस कल्पकी प्रवृत्तिके समय जो प्रलय हुआ, उस समय निद्रित ब्रह्माके मुखसे वेदादि गिर पड़े। हयग्रीव नामक कोई दानवपति उन समस्त वेदोंको चुरा ले गया। प्रलयकी घटनाके पहले द्राविड़ देशमें सत्यव्रत नामक अतितेजस्वी विष्णुपरायण एक राजर्षि राज्य करते थे। ये बलविक्रम और तपस्यामें अपने पितृपितामहादिसे भी बढ़े चढ़े थे। वर्त्तमान श्वेतवराहकल्पमें इसी सत्यव्रतने विवस्वान्‌के पुत्र श्राद्धदेवके रूपमें जन्म लिया था। भगवान्‌ने इन्हींको मनुके पद पर अभिषिक्त किया। एक समय राजा सत्यव्रतने विशालावदरी नामक स्थानमें एक पदसे ऊर्ध्ववाहु हो, पीछे मस्तकको झुकाए अनिमेष दृष्टिसे तपस्या करना आरम्भ किया। इस तरह इनके दश हजार वर्ष व्यतीत हो गये। बाद एक दिन ये कृतमाला नदीमें (किसी किसीके मतसे तमसा नदीमें) आर्द्र वस्त्रसे पितृलोगोंको जल तर्पण कर रहे थे। तर्पण करनेके लिये जो जल ले रहे थे उसकी एक अञ्जलिमें शिलसा नामकी एक छोटी मछली आई। द्राविडेश्वरने जलाञ्जलिके साथ मछलीको पुनः नदीमें फेंक दिया। इस पर मछली करुण स्वरसे बोल उठी, 'हे राजन। आप दीनवत्सल और परमकारुणिक हैं, मैं अत्यन्त दुर्बल हूं, अतः आपका आश्रय चाहती हूं। मकरकुम्भीरादि हिंस्र जन्तुओंने मेरे ज्ञातिवर्गको मार डाला है, इसी भयसे मैंने आपकी शरण ली थी, तब आपने क्यों मुझे पुनः इस नदीमें डाल दिया।"

तब द्राविड़ेश्वर सत्यव्रतने करुणार्द्र हो पुनः उसे बाहर निकाला और रक्षाके लिये कलसीके जलमें रख दिया। पीछे तर्पणादि करके वे मछली सहित उस कलसीको ले कर घर आये। उसी दिन रातमें वह मछली इतनी बढ़ गई कि कलसीमें उसके लिये काफी जगह न रही। तब उसने व्याकुल हो राजासे कहा, अब मैं इसमें स्वच्छन्दतासे रह नहीं सकती हूं, मुझे किसी दूसरे विस्तृत स्थानमें रख छोड़िये।' तब राजाने उसे मणिकच्छजलमें (अन्य पुराणके मतानुसार कूपमें) रख दिया। मणिकच्छ जलमें रखनेके साथ ही वह मछली एक ही मुहूर्तमें तीन हाथकी हो गई और कातर हो कर पुनः उसने अन्य विस्तृत स्थानके लिये राजासे प्रार्थना की। इस बार राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया, किन्तु वहां भी उसकी देह बढ़ने लगी और क्षण भरमें हो सरोवरके आयतनसे ज्यादा हो गई। तब मछलीने पुनः व्याकुल हो कर राजासे कहा, 'महात्मन्। आपने मेरी रक्षाका भार लिया है और जिन सब जलाशयोंमें मुझे फेंकते आ रहे हैं उनमें मेरे शरीरके बढ़ जानेसे मैं स्वच्छन्दरूपसे रह नहीं सकती हूं। अतएव मुझे ऐसे जलाशयमें रख छोड़िये जिसके जलमें वर्द्धित देहके साथ अच्छी तरह रह सकूं।'

राजर्षि सत्यव्रत यह देख बहुत विस्मित हो गये और उसे एक ह्रदसे दूसरे ह्रदमें देने लगे। इस पर भी कहीं उसके रहनेकी गुंजाइस न देख राजर्षि उसे समुद्रमें फेंकनेके लिये चल पड़े। तब उस अलौकिक मछलीने राजासे कहा 'राजन्। मुझे समुद्रके जलमें मत फेंकिये, क्योंकि वहां निश्चय ही बलवान् सामुद्रिक जन्तु मुझे मार डालेंगे। मैंने प्राण बचानेके लिये ही आपका आश्रय लिया है। अभी आश्रय होनेकी बात तो दूर रहे जहां मेरे प्राणनाशकी सम्पूर्ण सम्भावना है वहीं आप मुझे फेंकनेको जा रहे हैं।'

यह सुन कर राजा किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये और कुछ काल मौन भावमें रह कर उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि यह मछली नहीं हो सकती है, भगवान्‌के सिवा ऐसी अलौकिक देह धारण करनेकी क्षमता किस जीवमें है? ऐसा सोच कर उन्होंने मत्स्यसे पूछा; "आप कौन हैं? क्यों आप मुझे इस तरह विमोहित करते हैं। आप एक ही दिनके मध्य समस्त ह्रद सरोवरोंसे भी अधिक बढ़ गये। यह ईश्वरीय मायाके सिवा और कुछ नहीं है। मालूम पड़ता है कि आप स्वयं नारायण हैं और प्राणियोंके किसी मङ्गलोद्देशके लिये आपने जलचर रूप धारण किया है। अतः हे पुरुषोत्तम। मैं आपका दास हूं, क्यों मुझे इस तरह माया दिखला रहे हैं? अभी किस लिये आपने अद्भुत शरीर धारण किया है, सो मुझे

कहिये। आपको लीला सुननेसे ही मैं चरितार्थ हो जाऊंगा।"

तब मत्स्यरूपीने कहा, 'राजन्! मैं ही नारायण हूं। जीवरक्षार्थका उपदेश देनेके लिये तुम्हारे पास आया हूं। आजसे सातवें दिन स्थावर जङ्गमादि समन्वित यह जगत् प्रलय-पयोधिके जलमें निमग्न होगा। बहुत भीषण काल आ रहा है, अभी तुम मेरे उपदेशानुसार कार्य करो। क्या स्थावर, क्या जङ्गम, क्या जड़, क्या चेतन सभीका विनाश हो कर जब जगत्को प्रलय जलमें निमग्न होते देखोगे, तब तुम समस्त ओषधि, बीज, प्राणी-मिथुन और ऋषियोंको ले कर मेरी अपेक्षा करना। प्रलयके भीषण तरङ्ग-मुखमें मैं एक बड़ी नाव भेजूंगा। तुम उन्हें ले कर उस विशाल नाव पर चढ़ जाना। उस समय चारों ओर अन्धकार छा जायगा। महर्षियोंके तेजोबलसे वह नाव उस आलोकहीन प्रलय-जलमें भ्रमण करेगी, क्योंकि उसका विनाश नहीं है। जब प्रचण्ड वायुवेगसे नाव डगमगाने लगेगी, तब मैं शृङ्गयुक्त अलौकिक शृङ्गी मत्स्यके रूपमें उपस्थित हो जाऊंगा। और तुम महासर्प रूपी रस्सेसे मेरे सींगमें नाव बांध देना। कमलयोनिके निद्रावसान तक हम लोगोंको नावको ले कर प्रलय जलमें घुमाते फिरेंगे। उस समय तुम मेरा ब्रह्म नामका माहात्म्य समझ सकोगे। मैं ही वह वर्णन कर तुम्हारे शरीरमें अपना स्वरूप दिखला दूंगा। इतना कह कर मत्स्यरूपी भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

पीछे राजर्षि सत्यव्रत भगवान्के वाक्यानुसार उक्त सभी को संग्रह कर समुद्रके किनारे कुशासन फैला भगवान् विष्णुकी प्रतीक्षा करने लगे। इसके अनन्तर प्रलयकारी मेघगण मुषलधारसे जल बरसाने लगे और समुद्रका जल बहुत ही शीघ्र बढ़ गया। धीरे धीरे सूर्य छिपने लगे। समुद्रमें पर्वतके समान तरङ्गें उठीं और आस पासकी सभी जमीन प्लावित होने लगी। इस समय तरङ्गके मुखमें एक विशाल तरणी आ पहुंची। तब राजर्षि विष्णु भगवान्को स्मरण कर महर्षियोंके साथ सब संगृहीत वस्तुओं और प्राणियोंको ले कर नावपर चढ़ गये। इधर पृथ्वी डूबने लगी और उधर नाव समुद्रमें तैरने लगी। कुछ समय बाद दस हजार योजन विस्तृत शृङ्गयुक्त सुवर्णमय,एक महामत्स्य उनके सामने आविर्भूत हुआ। राजर्षिने भगवान्के आदेशानुसार महासर्परूपी रज्जुसे उस मत्स्यके शृङ्गमें नाव बांध कर मधुसूदन का स्तव किया। नावके बांधे जाने पर वह मत्स्य बहुत तेजीसे उसे खींचने लगा।

इस तरह भ्रमण करते समय उस मत्स्यके मुखसे राजर्षि सत्यव्रतने मत्स्यपुराण, सांख्ययोग और आत्मतत्त्व सुना। (मत्स्यपुराण देखो।) इस तरह कुछ दिन बीत जाने पर नाव हिमालय पर्वतके निकट जा पहुंची। प्रलय जलमें चराचर विश्वके डूब जानेसे भी अभ्रभेदी हिमालयके एक शिखरका कुछ अंश विष्णुकी मायासे न डूबा। मत्स्यने उस शृङ्गको दिखला कर राजर्षि सत्यव्रतसे उसी शिखरमें नाव बांधने कहा। राजर्षिने भी वैसा ही किया। वह शिखर तभीसे नौबन्धन नामसे प्रसिद्ध आ रहा है। पीछे मत्स्यरूपी नारायण अन्तर्हित हो गये।

इसके अनन्तर प्रलयकी समाप्ति हो जाने पर विधाता योगनिद्रासे उठे और उन्होंने देखा, कि भगवान्की कृपासे जगत्का बीज बच गया है सही किन्तु वेद अपहृत हो गया। ब्रह्माने वेदके विरहसे व्याकुल हो विष्णुकी शरण ली। इस पर भगवान्ने दानवेन्द्र हयग्रीवको संहार कर वेद ब्रह्माको दे दिया।

पीछे भगवान्ने मत्स्यरूप परित्याग कर ऋषियोंके निकट अपने रूपकी व्याख्या की और कहा, 'यह सत्यव्रत मनुः रूपमें आविर्भूत हो कर सुर, असुर, नर आदि पदार्थोंकी सृष्टि करेगा। इसकी तीव्र तपोबलसे जगत्की उत्पादनशक्ति पैदा होगी।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

यही सत्यव्रत अन्तमें विवस्वत्के पुत्र श्राद्धदेव नामसे वर्त्तमान कल्पमें प्रादुर्भूत हुए और विष्णुके प्रसादसे वैवस्वत नामसे वर्त्तमान कल्पके सप्तम मनु हुए थे।

२य कूर्म अवतार। एक दिन दुर्वासा मुनि सन्तानक वनमें भ्रमण कर रहे थे। इसी समय विद्याधर बंधुओंने पारिजात फूलकी एक माला दे कर उनकी सम्बर्द्धना की। महर्षि दुर्वासा जब उस मालाको पहने जा रहे थे, तब उन्होंने रास्तेमें देवराज इन्द्रको देखा

और उन्होंको यह माला समर्पण की। इन्द्रने महर्षि-की दी हुई मालाको स्वयं न पहन ऐरावतके कुम्भके ऊपर रख दिया। ऐरावतने पारिजातकी गन्धसे प्रमत्त हो उस मालाको अपनी सूंडसे जमीन पर फेंक दिया। महर्षि दुर्वासाने निज प्रदत्त मालाको इस तरह अमर्यादा देख क्रोधित हो कर इन्द्रसे कहा, 'वासव! तूने गर्वित हो कर मेरी दी हुई मालाकी अवहेला की है, इस कारण आजसे तू श्रीभ्रष्ट होगा और तेरा स्वर्ग भी श्रीहीन होवेगा।' दुर्वासाके वचन किसी हालतसे मिथ्या नहीं हो सकते। लक्ष्मीदेवी उसी समय स्वर्ग और इन्द्रको छोड़कर पातालमें वरुणके घर चली आईं।

देवताओंके श्रीभ्रष्ट हो जानेसे यज्ञादि कार्य विलुप्त होने लगे। असुरगण प्रवल पराक्रान्त हो उठे। देवता युद्धमें पराजित हुए। बहुतसे देवताओंने असुर-युद्धमें प्राणत्याग किया। तब इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण प्रभृति प्रधान देवगण विषम सङ्कटका आगमन देख संसारकी रक्षाका उपाय सोचने लगे। किन्तु जब वे कुछ स्थिर न कर सके, तब सबके सब सुमेरुशिखर पर उपस्थित हुए।

उन्होंने ब्रह्माका स्तव कर उनसे सब बातें कह सुनाईं और कहा कि, इस विपद्में हरिके सिवा और दूसरा कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता है। अतः हम लोग उन्हींके पास चलें।' इतना कह कर सबके सब विष्णुके पास पहुंचे और उन्हें स्तव कर प्रसन्न किया। विष्णु भगवान्ने कहा, 'हम तुम लोगोंका विपद् दूर करेंगे, किन्तु अभी तुम्हें एक काम करना पड़ेगा। जब तक सुसमय उपस्थित न हो, तब तक तुम लोग दैत्योंके साथ मिल कर रहो। अभी जगत्की जो अवस्था है, वह अमृतके सिवा और दूसरे किसीसे भी दूर नहीं हो सकती। अतएव जिससे समुद्रमन्थन द्वारा अमृत उत्पन्न हो, वे ही काम करना पड़ेगा। अमृतके सेवन करनेसे मृत भी जीवित हो जाता है, समुद्र मन्थन बाएं हाथका खेल नहीं है। क्षीरोदसागरमें सभी लतापता-ओषधि फेंकी जायंगी और मन्दरपर्वतको मन्थन दण्ड तथा वासुकीको रज्जु बना कर समुद्र मथना होगा। देवासुरमें वैरभाव रखनेसे यह काम नहीं हो सकता वरं उनकी भी सहायता इसमें आवश्यक है। अतः तुम लोग असुरोंसे मेल करनेके लिये तैयार हो जाओ। समुद्रमन्थनमें मन्दरपर्वतका वेग पृथ्वी नहीं सह सकती, वह क्रमशः रसातलको चली जायगी। तब मैं कूर्मके रूपमें मन्दरको अपनी पीठ पर चढ़ा लूंगा। समुद्र मथनेसे अनेक रत्न उत्पन्न होंगे, लोभ नहीं करना, दैत्योंकी सम्मतिके बिना कोई काम न करना तथा कालकूट उत्पन्न होने पर डरना भी नहीं।' इतना कह कर नारायण अन्तर्द्धान हो गये।

उस समय बलि दैत्योंके अधिपति थे। देवताओंने उनसे सन्धि करनेका प्रस्ताव पेश किया। बलिराजने इन्द्रसे समुद्रमन्थनकी कर्त्तव्यता और उपकारिता जान कर अरिष्टनेमि प्रभृति दानवोंसे सलाह ले कर सन्धि कर ली और वे सागरमन्थन कर अमृतोत्पादनमें व्यग्र हो गये।

पीछे सुरासुर दोनों पक्षोंने समुद्र मथनेका संकल्प कर मन्दर पर्वतको उखाड़ा और उसे ले कर वे क्षीरोदसागरकी ओर रवाना हुए। कुछ दूर जाकर वे पर्वतका बोझ सह न सके और रास्तेमें ही उसे छोड़ दिया। मन्दर पर्वतके गिरनेसे अनेक सुरासुर चूर चूर हो गये। तब गरुड़वाहन विष्णुने उन्हें जिला कर मन्दर पर्वतको उठा गरुड़की पीठ पर रखा। गरुड़ने भी पर्वतको क्षीरोदके किनारे रख कर प्रस्थान किया।

इसके अनन्तर देवताओंने समुद्रको प्रसन्न करनेके उद्देशसे कहा,—'हे वारिधे! हम लोग अमृत निकालनेके लिये तुम्हारा जल मथेंगे, इसमें तुम अनुमति दो।' क्षीरोदसागरने कहा,—'यदि आप लोग मुझे अमृतका कुछ अंश देना स्वीकार करें, तो इसमें मुझे मन्दरादिके भ्रमणसे जितना कष्ट होगा, उसे सह्य करनेको तैयार हूं। इस पर देवगण सहमत हो गये। अब काम आरम्भ हुआ। वासुकीकी रज्जु बना कर देवताओंने उसे मन्दरके चारों ओर लपेट दिया। नारायणने देवताओंको वासुकीका अगला भाग और दैत्योंको पिछला भाग पकड़नेके लिये कहा। इस पर दैत्योंने कहा, 'ऐसा क्यों होगा? हम लोगोंने वेदाध्ययन किया है, अस्त्रविद्यामें भी हम लोग निपुण हैं, हम लोगोंका जन्म कर्म भी

अप्रशस्त नहीं है, तो हम लोग सर्पका पिछला भाग अर्थात् दुम क्यों पकड़ेंगे ? शास्त्रमें लिखा है, कि सर्पका लाङ्गूल पकड़नेसे अमङ्गल होता है, अतः हम लोग उसे पकड़ नहीं सकते।' विष्णुने भी हां में हां मिला कर उनकी बात मान ली। अन्तमें देवताओंने सर्पका लाङ्गूल-भाग और दैत्योंने मुख-भाग पकड़ कर मन्दरको समुद्रजलमें स्थापन किया।

मन्थन कार्य आरम्भ हुआ। मन्दर देव-दैत्यके वलसे आकर्षित होने लगा। मन्दरका वेग सह्य करने का जलमें न तो ऐसा कोई आधार था और न देवासुर का ऐसा वल ही था कि मन्दरको पकड़ कर रख सके। सुतरां मन्दर धीरे धीरे समुद्रके गर्भ में जाने लगा। तब सब कोई विषण्णमुखसे विष्णुका मुख ताकने लगे। विष्णुने भी दुर्विपाक समझ एक विशालाकार कूर्मका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रविष्ट हो उस भ्राम्यमाण मन्दरको अपनी पीठ पर रख लिया और ऊपरकी ओर उठाये रहा।

मन्थनके वेगसे क्रमशः वासुकीके सहस्र फणोंसे अग्निशिखा और धूम निकलने लगा जिससे दैत्यगण बहुत व्याकुल और निर्वल हो गये। भगवान्‌की कृपासे मेघ जल बरसाने लगा और उन्हें कुछ शान्ति मिली।

इसके अनन्तर सबसे पहले ही सधूम अग्निकी नाईं महाविष कालकूट ( दूसरे पुराणके मतसे सबसे पीछे ) उत्पन्न हुआ। इस विषके आघ्राणसे देवासुर और जगत्‌के समस्त प्राणी हतचेतन हो पड़े। यह देख ब्रह्माने महादेवकी शरण ली और उनसे कहा, 'प्रभो ! यदि आप अभी रक्षा नहीं करेंगे, तो त्रिभुवन ध्वंस हो जायगा।' इस पर जगत्‌की भलाईके लिये महादेव कालकूटको पी गये। विषके प्रभावसे उनका कण्ठ नीलवर्ण हो गया, तभीसे महादेव नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

शिवकी कृपासे कालकूटके अन्तर्हित हो जाने पर देवदैत्य चैतन्य लाभ कर पुनः समुद्र मथने लगे। इस बार पहले सुरभी नामक गौ उत्पन्न हुई। ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे ग्रहण किया। देवताओंके भ्रष्ट हो जानेसे उनका यज्ञ विनष्ट हो गया था, सुरभीके घृतसे उस यज्ञको उद्धार करनेके लिये महर्षि लोग उसकी सेवा करने लगे। पीछे अश्वरत्न उच्चैःश्रवा निकला। इन्द्र और वलि दोनों ही उसे लेनेकी कोशिश करने लगे। विष्णुके कहनेसे इन्द्रने शीघ्र ही उसका लोभ परित्याग किया। बाद गजरत्न ऐरावत निकला जिसके चार दाँत थे। इन्द्रने उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर अष्ट दिग्गज, अष्टकरिणी, पद्मराग और कौस्तुभमणिकी उत्पत्ति हुई। कौस्तुभमणिको विष्णुभगवान्‌ने स्वयं अपने वक्षस्थल पर धारण किया। पीछे स्वयं लक्ष्मी देवी और तब अलौकिक रूपलावण्यवती कमलनयना परम-रमणीया एक दूसरी कामिनी उत्पन्न हुईं। इ का नाम वारुणी वा मदिरा था। नारायणके आदेशसे दैत्योंने उस कन्याको ग्रहण किया। बाद अमृतकुम्भ हाथमें लिये धन्वन्तरि निकले। देव और दैत्य अमृत लेनेके लिये आपसमें झगड़ने लगे। अन्तमें दैत्योंने वलपूर्वक उसे ले लिया। उस पर नारायणने मोहिनी स्त्रीमूर्त्ति धारण कर दैत्योंसे अमृतकुम्भ मांगा। उन्होंने इनके रूपसे मोहित हो जब अमृतकुम्भ दे दिया, तब विष्णु भगवान् उसे ले अन्तर्हित हो गये। इसी बीच शिवजी उस मोहिनी मूर्त्तिको देख आसङ्गलिप्सासे मुग्ध हो कर उसके पीछे पीछे घूमने लगे थे। अन्तमें नारायणने उनका भ्रम तोड़ कर कहा, 'जो कुछ हो, जब तुम मुग्ध हो गये हो, तब तुम्हें उपभोग करनेके लिये मैंने अपना आधा शरीर दिया।' इतना कह कर दोनोंका देहार्द्ध मिला कर वे हरिहर मूर्त्तिमें प्रकाशित हुए।

इधर देवासुर अमृत चुराया गया है यह देख आपसमें युद्ध करनेको मुस्तैद हो गये। वासुकीके निश्वाससे जर्जरित हो दैत्यगण परास्त हुए और देवतालोग विजयी हो कर विष्णुलोकको चले गये। वहां वे अजर अमर होनेके उद्देश्यसे अमृत पीने लगे। सिंहिकानन्दन राहु नामक एक दैत्यने भी छिपके उन लोगोंके साथ अमृत पी लिया। चन्द्र और सूर्यने यह देख उसकी पोल खोल दी। उसी समय विष्णुने राहुका मस्तक सुदर्शन चक्रसे काट डाला। अमृत उसके कण्ठ तक चला आया था, इस कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। तभीसे उसका छिन्न मस्तक गगनपथमें घूमता है

एवं स्थानके कालानुसार चन्द्र और सूर्यको ग्रास करता है।

इस तरह भगवान्ने कूर्ममूर्त्तिमें जगत्को हृता लक्ष्मीका उद्धार किया।

दूसरे पुराणमें कूर्मावतारका विवरण इस प्रकार है—भगवान् जब जलमें सोये हुए थे, तो उनके गात्रमलसे एक रमणी उत्पन्न हुई। यही रमणी आद्याशक्ति हैं। भगवान् इन्हें अवलम्बन कर इन्हींके गर्भसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीन मूर्त्तियोंमें आविर्भूत हुए। आद्याशक्ति तब शवके रूपमें बहती हुई ब्रह्माके निकट पहुंची और उनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर ब्रह्माने जब चारों ओर देखनेके लिये अपना मुंह घुमाया, तब वे चतुर्मुख हो गये। पीछे वे विष्णुके पास गईं, विष्णुने उन्हें तुरत ही वापिस कर दिया। अन्तमें उन्होंने जब महादेवसे मिलनेकी प्रार्थना की, तब महादेवने कहा, 'यदि आप सौ बार अपना शरीर परिवर्त्तन कर सकें, तो मैं आपको ग्रहण कर सकता।' इस पर आद्याशक्ति शिवकी इच्छा पूरी कर उनसे मिल गईं।

इस तरह शक्तिके स्थापित होने पर विष्णुने ब्रह्मासे पृथ्वीकी सृष्टि करने कहा। ब्रह्मा पृथ्वीका बीज नहीं पा कर निश्चेष्ट हो रहे। तब विष्णुने अपने कर्णमलसे मधुकैटभ नामके दो दैत्योंको उत्पादन किया। वे उत्पन्न होते ही ब्रह्माको मारने दौड़े। ब्रह्माने भयभीत हो विष्णुकी ही शरण ली। विष्णुने दैत्योंको मार कर उन्हींके मेदमांससे पृथ्वीकी सृष्टि करने कहा। ब्रह्माने बीज पा कर मेदिनी सृष्टि की, किन्तु जलके ऊपर पृथ्वी बहने लगी। ब्रह्माको स्थिर करनेके लिये धराधरने पर्वतकी सृष्टि की, लेकिन पर्वतके भारसे पृथ्वी डगमगाने लगी। ब्रह्माने तब वासुकी नागको पर्वत पकड़ने कहा, पर जलमें वासुकीका आधार कौन होगा यह सोच कर उन्होंने फिर विष्णुकी शरण ली। तब विष्णुने महाकूर्ममूर्त्ति धारण कर वासुकीको अपनी पीठ पर ले लिया। पर्वतके साथ पृथिवी स्थिर हुई। ब्रह्माने फिर स्थावरजङ्गमकी सृष्टिको ओर मन दिया।

३य वराह अवतार—पौराणिक कालकी गणनानुसार चतुर्दश मन्वन्तर वा सत्यत्रेतादिपरिमित ७१ दिव्ययुगमें एक कल्प हुआ। इस कल्पके अन्तमें महाप्रलय हुआ था। चतुर्दश मनुओंमें स्वायम्भुव मनु ही प्रथम थे। जब स्वायम्भुव मनु पहले उत्पन्न हुए, तब उन्होंने ब्रह्मासे पूछा, 'हे पितः! मैं किस तरह आपकी सेवा करूं, सो मुझे बतला दीजिये।' ब्रह्माने कहा, 'वत्स! तुम अपनी स्त्रीसे एक पुत्र उत्पादन करो और पृथ्वी शासन तथा यज्ञादि द्वारा यज्ञेश्वरकी आराधना करो।' इस पर मनुने कहा 'पितः! पुत्रोत्पादनका स्थान कहां है? पृथ्वी कहां है? अभी तो जलमें डूबे हुए हैं।' मनुके वचनसे जाना जाता है, कि उनके जन्मकालमें महाप्रलय हो कर कोई एक कल्प बीत गया है और उन्होंने ही पहले मनुके रूपमें जन्म ग्रहण कर दूसरे एक कल्पका आरम्भ किया है। ठीक उसी समय विष्णुने वराहमूर्त्ति धारण की।

ब्रह्माने मनुके मुखसे पृथ्वीकी जलमग्नावस्था सुन कर सोचा, पृथिवीका उद्धार कौन कर सकता? जिन्होंने मुझे सृष्टि कार्यमें नियुक्त किया है, उसी भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कोई भी यह काम करनेमें समर्थ नहीं जान पड़ता है। ब्रह्मा यह सोच ही रहे थे, कि उनकी नाकसे एक उंगलीका वराह निकल पड़ा। ब्रह्मा उसे देख कर विस्मित हो गये। वह शूकर तुरन्त ही आकाशमें रह कर एक बड़े हाथीके समान बढ़ गया। ब्रह्माने इस अलौकिक शूकरको देख कर समझा कि नारायण यह मायावी देह धारण कर यहां पहुंचे हैं। इस समय शूकररूपीने अपना शरीर पर्वतके जैसा बढ़ा कर वज्रध्वनिकी नाईं शब्द किया। उसी समय ब्रह्मादिने उन्हें नारायण समझा और निःसंशयितके रूपमें उन्हें जान कर तीन वेदोंसे उनका स्तव किया। वराहदेवने उन्हें आश्वास देनेके बहानेसे पुनः गर्जन करते हुए जलमें प्रवेश किया।

यज्ञवराह भगवान्ने समुद्रमें प्रविष्ट हो अपने खुरोंसे समुद्रको एक ओरसे दूसरे ओर तक विदारण करके देखा, कि प्रलयकालमें उन्होंने कारण-जलमें शयन कर जिस पृथिवीको गोदमें धारण किया था, वही पृथिवी अभी रसातलमें पड़ी हुई है। आदिवराह यह देख अपने विशाल दन्ताग्र पर धरणीको बिठा कर जलसे बाहर निकले।

एक दिन सूर्यास्तके समय मरीचिनन्दन आप होमकार्य समाप्त करके अग्निगृहमें बैठे हुए थे। उसी बीच उनकी स्त्री दिति कामपीड़िता हो उनके समीप पहुंची। महर्षिने कहा, 'कुछ देर ठहरो, अभी राक्षसी समय है, इस समय भगवान् भूतपति भूतोंके साथ सर्वत्र विचरण करते हैं और अपने तीनों नेत्रोंसे सब ओर निहारते हैं। इस समय भगवान्के स्मरणके सिवा दूसरा काम नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है।' दितिने कहा, 'हे नाथ! मैं पुत्रवती सपत्नियोंका सौभाग्य देख कर नितान्त दुःखित हो गई हूं, इसी कारण अभी मदनवेदना उपस्थित हो कर बहुतही यन्त्रणा दे रही है, अतएव आप दुःखिनीको उद्धार कीजिये।' कश्यप उन्हें फिर समझाने लगे, किन्तु दितिने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया और वे लज्जा परित्याग कर स्वामीका वस्त्र खींचने लगी। काश्यपने पत्नीका ऐसा आग्रह देख भगवान्का स्मरण करके पत्नीको अभिलाषा पूरी की। कश्यपका सायंकालीन नियम भङ्ग हुआ और दितिका मन अनुतापसे जलने लगा। काश्यपने अपनी स्त्रीको चिन्तित देख कर कहा, 'हे प्रिये! तुम्हारे चित्तकी अशुद्धि, मुहूर्त्तदोष, मेरा नियमभङ्ग और रुद्रकी अवहेला इन चार दोषोंके कारण तुम्हारे इस गर्भसे दो अपकृष्ट पुत्र उत्पन्न होंगे। वे लोक और लोकपालोंको कष्ट पहुंचावेंगे, अनर्थक प्राणीहत्या और स्त्रियोंको कष्ट देंगे और अन्तमें महर्षियोंका कोप बढ़ा कर भगवान्के हाथसे मारे जायगे। तुम्हारे एक पौत्र होगा, जो सदा ईश्वरके ध्यानमें लीन रहेगा।' दितिने सौ वर्ष गर्भ धारण करनेके बाद हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक दो यमज पुत्र प्रसव किये। ये दोनों पहले जय विजय नामसे वैकुण्ठके द्वारपाल थे। एक समय सनकादि चारों ऋषि जब विष्णु भगवान्के दर्शन करने आये थे, तब इन्होंने उन्हें नंगा देख उपहास किया और बेंत भी लगायो। उन्हीं ऋषियोंके शापसे जय विजयने हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हो कर दितिके गर्भमें जन्म लिया।

थोड़े ही समयमें उन दोनों पुत्रोंने महाबलशाली हो कर देवताओं पर अपना आधिपत्य जमाया और ब्रह्माकी आराधना कर वर प्राप्त किया। हिरण्यकशिपु त्रिभुवनका अधीश्वर हुआ और हिरण्याक्ष पृथ्वी जीत कर स्वर्गको गया। ब्रह्माके वरके प्रभावसे देवगण उन दोनोंसे परास्त हुए। तब हिरण्याक्ष जयकी अभिलाषासे सागरके मध्य वरुणकी विभावरीपुरी पहुंचा। वरुणने कहा, 'मैं आपसे युद्ध नहीं कर सकता, आप अद्भुत बलशाली, दैत्यश्रेष्ठ और रणपण्डित हैं, सुतरां पुरुषोत्तमके सिवा कोई भी आपको रणमें सन्तुष्ट नहीं कर सकेगा। आप उनके पास जाइये, वे ही आपका अभिमान चूर करेंगे।' हिरण्याक्ष इस कटूक्तिको ओर ध्यान न दे कर विष्णुकी खोजमें निकला। नारदने उसे कह दिया कि विष्णु अभी रसातलमें मिलेंगे।

यह सुनते ही हिरण्याक्ष रसातलको पहुंच गया, वहां उसने विष्णुको तो नहीं देखा, लेकिन देखा कि एक विशाल वराह अपने दांतोंके ऊपर पृथ्वीको धारण किये उसे ऊपर उठा रहा है। तब इस अद्भुतकर्मा वराहको देख कर वह दैत्यश्रेष्ठ विस्मित हो गया और गाली गलौज देता हुआ उन पर टूट पड़ा। आदिवराहने कटूक्ति सुन कर उसके प्रति अपनी भीम दृष्टि फेरी; उसीसे उसका तेज विनष्ट हो गया। पीछे हरिने पृथ्वीको उठा कर जलके ऊपर रखा और अपनी आधारशक्तिसे उसे स्थिरकर अर्द्ध वराह और अर्द्ध विष्णु मूर्त्तिसे दैत्य पर आक्रमण किया। दोनोंमें घनघोर युद्ध होने लगा। ब्रह्मा अन्तरीक्षमेंसे बोले, 'यह दुष्ट दैत्य मुझसे वर पा कर देवताओंसे अजेय हो गया है, किन्तु अभी लोकनाशकारी अभिजित् नामक मुहूर्त्त बीत रहा है, अतएव आप उसे विनाश कीजिये।" नारायण स्वयं अनन्त कालरूपी हैं, इस पर ब्रह्मा उन्हें मुहूर्त्तका उपदेश देते हैं, यह देख कर उन्होंने चिढ़ कर सुदर्शन चक्र द्वारा उस दैत्यको मार डाला। वराह अवतारमें भगवान्ने इसी तरह धरित्रीका उद्धार किया था।

कालिका पुराणमें इस वराहके विषयमें एक नयी कथा पाई जाती है। भगवान् वराहमूर्त्ति धारण करने हिरण्याक्षको मारने तथा पृथिवीका उद्धार करने पर भी शान्त न हुवे। महावराह तब पृथ्वीसे उपरत हो कर बहुतसी सन्तान उत्पादन करने लगे। उन सब महा-

शूकरोंने पृथ्वी पर उत्पात आरम्भ किया। देवताओंने इनके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो पुनः विष्णुका स्तव कर उनसे कहा, 'हे प्रभो! आप इस महावराह मूर्त्तिको संहार कीजिये तथा इन सब उत्पीड़क प्राणियोंको भी मार डालिये।' इस पर विष्णुने जवाब दिया, 'एक बार जो शक्ति मुझसे निकल गई है, उसे मैं संहार नहीं कर सकता। उस शक्तिको दमन करनेके लिये उससे भी अधिक किसी दूसरी शक्तिकी आवश्यकता है। इनके लिये महादेव उपयुक्त ठहराये गये। देवताओंने भी उन्हें अधिकतर शक्ति समन्वित करनेके लिये अपनी अपनी शक्ति उन्हें प्रदान की। तब महादेवने अष्टपद महाकाय शरभमूर्ति धारण कर महावराह और उसके वंशको विनाश कर पृथिवी शान्त की। हिरण्याक्ष देखो।

४र्थ नृसिंहावतार।—हिरण्याक्षका भाई हिरण्यकशिपुने ब्रह्मासे वर पाया था, कि क्या देवता, क्या मानव क्या सृष्ट प्राणी किसीसे भी उसका नाश नहीं होगा और न तो जल, स्थल, स्वर्ग वा आकाशमें ही उसकी मृत्यु होगी। इस वरके प्रभावसे वह अपनेको अमर समझ देवताओंकी उपेक्षा तथा उनके प्रति अत्याचार करने लगे। वह इन्द्रादि देवता किसीको भी नहीं समझता तथा विष्णुके साथ हमेशा द्वेष रखता था। इसका पुत्र प्रह्लाद बहुत बचपनसे ही भगवद्भक्त था। इस कारण हिरण्यकशिपु उसके ऊपर बहुत विरक्त रहा करता था। प्रह्लादको हरिभक्तिसे विचलित करनेके लिये हिरण्यकशिपुने पहले उसे अग्निमें, हाथ पैर बांध करके जलमें और हाथीके पैर तले फेंक दिया, किन्तु भगवान्की कृपासे प्रह्लादका बाल बाँका भी न हो सका। दैत्यपतिने जब विरक्त हो कर पूछा कि इस तरह विपदमें वह किस तरह रक्षा पाता है? तब प्रह्लादने उसे जवाब दिया 'कि भगवान् विष्णु, हो उसे उद्धार करते हैं। वे सर्वव्यापी, सर्वदर्शी और सर्वज्ञ हैं। इस पर दैत्यपतिने कहा, 'तुम्हारा हरि क्या सर्वव्यापी है? क्या वह इस मर्मरपत्थरके खंभेमें भी है?' प्रह्लादने बहुत दृढ़तासे उत्तर दिया, 'जरूर, भगवन् इसमें भी हैं।' तब दैत्यपतिने उसकी बात पर अविश्वास कर पुत्रको मिथ्यावादी बतलाया और हरिकी उपासनासे विचलित करनेके लिये कहा, 'अच्छा हम अभी खम्भेको दो खंड करते हैं, देखें, तुम्हारा हरि इसमें किस तरह है।' इतना कह कर दैत्यपतिने खड्गसे खम्भेको दो खण्ड कर डाला। आश्चर्यका विषय था, कि भगवान् भक्तवाक्य, भक्तविश्वास और भक्तके प्राण बचानेके लिये उसी समय अर्द्ध सिंह और अर्द्ध नराकार देह धारण कर उस खम्भेसे निकल पड़े और बिना उपेक्षा किये हुए उस दैत्यपतिको बाल खींच कर उसे अपने दोनों ऊरु पर रख लिया और नखोंसे उसकी कुक्षि फाड़ कर उसे मार डाला। उस समय सन्ध्या काल था। दैत्यपतिने इस तरह अदृष्ट एक अभिनव जीवाकार मूर्त्तिके ऊरु पर सन्ध्याके समय प्राण त्याग किये। ब्रह्मवाक्य भी सफल हुआ। प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु देखो।

भगवान्ने इसी तरह चौथे अवतारमें नृसिंहमूर्त्ति धारण कर भक्तकी प्राणरक्षा और पृथिवीको दैत्यके कवलसे उद्धार किया।

५म वामनावतार। नृसिंहावतारमें जिस प्रह्लादकी कथा कही गई है, उन्होंके पौत्र बलि बड़े धार्मिक थे। उनके धर्म और बुद्धिसे प्रसन्न हो कर भगवान्ने उन्हें त्रिकालका अधिपति बनाया। इस आधिपत्यको पा कर वे बड़े दानशील हो गये। उनके निकट कोई अर्थी विमुख नहीं होता था। उनके न्याय सुशासक और सुपालक भी एकसे एक थे। ऐसा सद्गुण सब रहने पर भी वे इतने गर्वित थे, कि देवता और ब्राह्मणकी ओर नजर भी नहीं उठाते थे। इस कारण देवताओंने उनसे असन्तुष्ट हो कर विष्णुकी शरण ली। विष्णुने उन्हें आश्वासित कर कश्यपके औरस और अदितिके गर्भसे वामन रूपमें जन्मग्रहण किया। उपनयनके बाद वामन बलिके निकट दान पानेकी इच्छासे गया। बलिने क्षुद्रकाय ब्राह्मण सन्तानको अपने सामने प्रार्थीके रूपमें उपस्थित देख पूछा, 'हे द्विज! तुम क्या चाहते हो?' इस पर वामनने कहा 'मैं छत्रदण्ड स्थापन कर तपस्याका आसन बनानेके लिये सिर्फ तीन कदम जमीन माँगता हूं।' बलि बोले 'ऐसा सामान्य दान मेरे लिये उपहास कर है, तुम ग्राम नगर आदिके लिये प्रार्थना करो।' तब वामनने कहा, 'मेरे अधिक प्रयो-

मालावार उपकूलमें समुद्र-प्लावन बन्द कर आज भी वहां विद्यमान है।

भगवान्‌ने इस अवतारमें मातृहत्या की थी, अतः इस पापसे परशु उनके हाथमें लगा हो रहा था, इसीसे उनका नाम परशुराम हुआ है। दुर्दान्त क्षत्रियोंका विनाश, समुद्र-वेगको रोक कर दक्षिण भारतको रक्षा ये सब काम इसी अवतारमें हुए थे। परशुराम देखो।

७म राम अवतार।—लङ्कामें रावण नामक राक्षसराज बहुत दर्पित हो कर त्रिलोकमें उत्पात मचाने लगे। देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् नारायणने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामसे चार अंशोंमें उत्तरकोशलके राजा दशरथके पुत्र बन कर जन्मग्रहण किया था। लक्ष्मी भी सीताके रूप मिथिलाराजाकी कन्या हुई थीं। तारका नामको एक राक्षसीके उत्पातसे अधीर हो कर विश्वामित्र ऋषि भगवान्‌के अवतार स्वरूप रामके पास गये और उनसे सहायता मांगी। राम और लक्ष्मण दोनोंने जा कर ताड़काका विनाश किया और यज्ञ देखनेके बहानेसे मिथिलामें जा शिव धनु तोड़ कर सीताको व्याहा। परशुराम इस धनुषको गच्छित रखे गये थे। उन्हें जब मालूम पड़ा कि क्षत्रियसे यह धनुष तोड़ा गया, तब वे रामका विनाश करनेके लिये उद्यत हुए। रामने हंसते हुए भार्गवके स्वर्गगमनका रास्ता बन्द कर दिया, यह देख परशुराम लज्जित हो वापिस आये। विमाताके चक्रान्तमें पड़ कर राम लक्ष्मण और सीताके साथ पञ्चवटी वनको गये। वहां रावणकी बहन सूर्पणखाने लक्ष्मणको देख कामपीड़ित हो कर उनसे प्रार्थना की। लक्ष्मणने रामसे इशारा पा कर उसको नाक काट डाली। सूर्पणखाके रक्षक खरदूषण वाद युद्ध करने आये, तब वे दलबलके साथ मारे गये। तब सूर्पणखाने सब वृत्तान्त रावणसे कह सुनाया और वह दुष्ट राक्षस सीताको हर कर लङ्का ले गया। मारीच राक्षस सोनेका मृग बन रामको प्रलुब्ध कर बहुत दूर ले गया, इसी बीच रावण योगीके वेशमें सीताको हर ले गया था। रास्तेमें पक्षीन्द्र जटायुने रावणको रोका और पीछे लड़ाईमें रावणने उसे मार कर लङ्का प्रस्थान किया। सीता उसके रथमें बैठी हुई रोती और अपने अलङ्कारको फेंकती चली गईं। पीछे रामने मारीचको राक्षस जान मार डाला। जब उन्होंने लौट कर कुटीमें सीताजी न देखा, तब वे उनको तलाशमें बाहर निकले और रास्तेमें मृतप्रायः पतित जटायुसे सब वृत्तांत मालूम हो गया। ऋष्यमुख पर्वत पर वानरराजाके भाई सुग्रीवके निकट उन्होंने सीताका एक अलङ्कार पाया। सुग्रीवने सीताके उद्धारका लोभ दिखा कर रामसे वानरराज वालिका वध कराया और स्वयं राज्य अधिकार कर रामको वानरसेना द्वारा सहायता की। हनुमान्‌ने समुद्र पार कर सीताकी खोज निकला और वहांके राजोद्यानको तहसनहस कर लौटा। नल नामक एक वानरने अद्भुत कौशलसे समुद्रको पुलसे बांध दिया। उसी पुल द्वारा रामने ससैन्य लङ्का जा रावणको सवंश नाश कर उद्धार किया। रावणके भाई विभीषणने लड़ते समयमें ही रामकी सहायता की। अंतमें विभीषण ही लङ्काके राजा हुए। पीछे राम, सीता और लक्ष्मणके साथ अयोध्या लौटे और भरतने उन्हें राज्य सौंप दिया। सीताके दूसरेके घरमें अधिक दिन रहनेके कारण इधर उधर काना फूसी होने लगी। रामने सीताको वाल्मीकिके तपोवनमें छोड़ आनेके लिये लक्ष्मणसे कहा। लक्ष्मणने भी वैसा ही किया। उस समय सीता गर्भवती थीं। ऋषिके आश्रममें कुश और लव नामक उनके दो पुत्र हुए। इन दोनोंने ऋषिबालकोंकी नाईं गीतादि और क्षत्रियोंकी नाईं धनुर्वेद भी सीखा। वाल्मीकिने इन्हें असली परिचय न दिया, किन्तु स्वरचित रामायणका गान सीतावर्जन तक सिखला दिया। इधर कुछ दिन बाद रामने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ कर सब ऋषियोंको निमन्त्रण किया। वाल्मीकि भी स्वशिष्य कुशलवको साथ ले यज्ञस्थलमें पहुंचे। सभास्थलमें रामायणका गान होने लगा। क्रमशः ऋषिने उन दोनोंका परिचय दे दिया। सीता पुनः लाई गईं। किन्तु रामचन्द्रने जब अग्नि परीक्षा किये बिना उन्हें पुनर्ग्रहण करना न चाहा, तब सीता परीक्षा देनेके पहले हो पातालको चली गईं। पीछे कुछ दिन बाद जब राम कालपुरुषके साथ कथोपकथन कर रहे थे, उसी समय लक्ष्मण वहां पहुंच गये और राम

जन नहीं है, जो ही मैं चाहता, उसीके पानेसे सन्तुष्ट हो जाऊंगा, अधिक लोभ नहीं करता।' बलिने हंस कर दानके लिये जल ग्रहण किया। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने कहा, 'महाराज! विपदकी आशंका है, ये स्वयं नारायण हैं।' इस पर बलि बोले, 'जो कोई हों, जब दान देनेके लिये तैयार हो गया हूं, तब अन्यथा नहीं हो सकती।' दानका संकल्प हो गया। वामनने अकस्मात् विराटमूर्त्ति धारण कर एक पदसे ऊर्ध्वलोक, दूसरे पदसे अधोलोक आच्छादन किया और तब नाभिदेशसे एक तीसरा पद निकाल कर अपना स्थान मांगा। तब बलिने करबद्ध हो प्रार्थना की, 'प्रभो! अब मेरा दर्प चूर्ण हो गया, तीसरा पद मेरे मस्तक पर रखिये।' विष्णु भगवान्‌ने भी हंसते हुए वैसा ही किया और उनके दान धर्मके पुरस्कार स्वरूप उन्हें अधोलोक लौटा दिया तथा पातालमें उनका वासस्थान स्थिर कर दिया। पीछे वे उनकी भक्तिसे प्रसन्न हो कर उनके द्वार पर चतुर्भुज मूर्त्तिमें द्वारपालक हो गये।

इस अवतारमें भगवान्‌ने महादाम्भिकका दम्भ विनाश कर देवदुःख दूर किया था।

६७ परशुराम अवतार।—भृगुवंशजात जमदग्नि नामक ऋषिके औरस और उनकी रेणुका नामक क्षत्रिया स्त्रीके गर्भसे राम उत्पन्न हुए। जमदग्निके और कई एक लड़के थे। किसी कारणवश जमदग्निने पत्नीसे विरक्त हो उसका मस्तक काट डालनेके लिये अपने लड़कोंसे कहा। रामने मातृहत्याकी अपेक्षा पितृआज्ञा लङ्घनको गुरुतर पाप समझा। अतः परशु द्वारा माताका शिर काट डाला। इस परशुको उन्होंने महादेवसे पाया था। जमदग्निने रामके कार्यसे खुश हो उन्हें वर मांगने कहा। तब रामने माताका पुनर्जीवन, अपना दीर्घजीवन और युद्धमें अजेयत्वके लिये प्रार्थना की। जमदग्निने ऐसा ही किया। मातृहत्याके पापसे परशु उनके हाथमें लगा ही रहा, छूटा नहीं। अतः राम इस पापसे मुक्त होनेके लिये कैलास तपस्या करने गये। हैहयदेशाधिपति कार्त्तवीर्य अर्जुनने एक दिन जमदग्निके आश्रममें जा कर इन्द्रकी गच्छित धन कामधेनु नामक गौके लिये प्रार्थना की। किन्तु जमदग्निने उसे देना अस्वीकार किया। जब राजा बलपूर्वक गोहरणको उद्यत हुए, तब देव-गौ अकस्मात् निज शरीर वर्द्धित कर क्षत्रियसैन्यका विनाश करने लगी। राजा तुरत ही नौ दो ग्यारह हो गये। इस समय राम भी तपस्यासे लौटे थे; उन्होंने सब विवरण सुन कर अर्जुनके विरुद्ध यात्रा की, और उन्हें युद्धमें विनाश कर पुनः कैलास चले गये। पीछे अर्जुनके पुत्रोंने जमदग्निका शिर काट डाला। मरते समय जमदग्निने रामसे इसका बदला चुकानेके लिए कह दिया था। जब जमदग्निकी चिता जल रही थी उसी समय राम पहुंचे और उन्होंने पितृवधका प्रतिशोध लेनेका यह पण किया, कि 'जब क्षत्रियगण इतने गर्वित और अन्यायकारी हो गए हैं, तब पृथ्वीसे समस्त क्षत्रियवंश नष्ट करना ही अच्छा है।' यह प्रतिज्ञा कर उन्होंने इक्कीस बार पृथिवीको निःक्षत्रिय किया। अब सारी पृथिवी पर इनका आधिपत्य फैल गया, किन्तु नृपतिहीन होनेसे तमाम अराजकता बढ़ने लगी। यह देखकर कश्यप पृथिवीकी भलाईके लिये रामके समीप आये। राम भी पृथिवीकी दशा देखकर बहुत खिन्न थे और गुरुको उपस्थित देख सारी पृथिवी उन्हें दान दे दी। बाद जब वे तपस्याके लिए कैलास जानेको उद्यत हुए, तब कश्यपने कहा, 'जो चीज तुमने दान दे दी है, उसे लेनेसे प्रत्याहारी होगे।' यह सुन कर रामने समुद्रके किनारे वरुणसे जा कहा, मैं सारी पृथिवी कश्यपको दान दे आया हूं, अब मेरे रहनेका कहीं स्थान नहीं बचा, सो तुम मुझे कोई स्थान दो। मेरे धनुषसे तीर छूट कर जहां तक जायगा, उतनी दूरतक तुम हट जाओ और वही जमीन मुझे दे दो।' वरुणने यह अनुरोध सुन कर इसे वैष्णवीमाया समझा और इस विषयमें देवताओंसे सलाह ली। उन्होंने कहा कि 'आज रातमें यम कीड़ेका रूप धारण कर रामके धनुषकी डोरीको काट देंगे। कल तीर छोड़ते समय डोरी टूट जायगी और तीरका वेग कम हो जायगा। ऐसा होनेसे तुम्हें अधिक दूर हटना नहीं पड़ेगा। ऐसा ही हुआ भी। मालावार उपकूलके लोगोंमें ऐसा प्रवाद है, कि परशुराम ही

नियमानुसार लक्ष्मणको परित्याग करनेको बाध्य हुए। लक्ष्मणने सरयू में प्राणत्याग किया और कुछ दिन पीछे राम, भरत, शत्रुघ्न तथा अन्यान्य अनुगत लोगोंको साथ कर सरयू में प्रवेश करते हुए स्वर्ग चले गये।

राम देखो।

८म बलरामावतार—मथुराके राजा उग्रसेनके औरससे कंस नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ। कंसने राजा हो कर अपने वृद्ध पिता उग्रसेनको कैद कर लिया। इसके अत्याचारसे सभी लोग तङ्ग तङ्ग हो गये। बाद देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने पृथ्वीको भारमुक्त करनेके लिए पुनः अवतीर्ण होना स्वीकार किया। देवकी कंसकी चचेरी बहन थी; जिसका विवाह वृष्णिवंशीय वसुदेवसे हुआ था। कंसको नारदसे यह बात मालूम हो गई कि देवकीके आठवें गर्भसे जो लड़का उत्पन्न होगा वही उसका प्राणनाश करेगा। इस पर उन्होंने क्रुद्ध हो कर देवकीको पतिके सहित कैद कर रखा और एक एक करके उसके छः बच्चोंको मरवा डाला। जब सातवां शिशु गर्भमें आया, तब योगमायाने अपनी शक्ति उस शिशुको देवकीके गर्भसे आकर्षित कर रोहिणीके गर्भमें कर दिया। रोहिणी मथुराके निकटवर्ती गोकुलपति गोपराज नन्दके यहां रखी गई। आठवें गर्भके समय देवकी पर कड़ा पहरा बैठाया गया। आठवें महीनेमें भादों बदी अष्टमीकी रातको देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णका जन्म हुआ। वर्षा बहुत जोरसे हो रही थी, उसी रातको पहरुओंके सो जाने पर वसुदेव उस शिशुको ले कर नन्दके यहां दे आये। उसी रातको नन्दके भी एक कन्या हुई थी। वसुदेवने सूतिका गृहमें जा उस कन्याको ला कर देवकीके पास सुला दिया। दूसरे दिन जब कंस उस कन्याको मारनेके लिए उद्यत हुए, तब वह कन्या उनके हाथसे छूट आकाश जाकर बोलीं 'तुम्हारा विनाश करनेवाला गोकुलमें बढ़ रहा है।' यह सुन कर कंसने गोकुलके सब बालक और जीव सन्तानको मार डालनेकी आज्ञा दी। नन्दालयमें रोहिणीके गर्भजात शिशुका नाम बलराम तथा देवकीके शिशुका नाम श्रीकृष्ण रखा गया। बचपनमें वे दोनों कंसके भयसे इधर उधर छिपे रहते थे। बाद जब वे गाय चरानेमें प्रवृत्त हुए, तब कंससे नियुक्त दैत्यगण उन्हें मारनेके लिए आने लगे। बलरामके हाथसे धेनुक और प्रलम्ब नामक दो असुर मारे गये। कंसने दोनों भाइयोंको मारनेके अनेक उपाय किये पर सब व्यर्थ हुए। अन्तमें उसने उन्हें एक यज्ञमें निमन्त्रण किया। नन्द कंसके अधीन एक राजा थे, अतः वे सपुत्र वहां पहुंचे। यज्ञस्थलमें श्रीकृष्ण और बलरामने कंसको मार उग्रसेनको कारागारसे मुक्त कर सिंहासन पर स्थापन किया। पीछे वे ही मथुरा राज्यके सर्वे सर्वा हो गये। बाद जरासन्ध (कंसका श्वशुर)से मथुरासे भगाये जाने पर वे दोनों द्वारकामें आ ठहरे। बलरामने रेवतीसे विवाह किया। जब कृष्णके पुत्र साम्ब दुर्योधनकी कन्यालक्षणाको चुरानेमें कारावद्ध हुए थे, तब बलरामने ही युद्ध करके उन्हें छुड़ाया था। द्विविद नामक वानरका राजा भी इनके हाथसे मारे गये थे। ये दुर्योधनके अस्त्रविद्याके गुरु थे और एक बार तीर्थ गये थे। अन्तमें प्रभासके युद्धमें यदुवंशका नाश होने पर इन्होंने योगावलम्बन करके कृष्णके पहले ही प्राणत्याग किया।

इस अवतारमें भगवान्‌ने श्रीकृष्णके साथ मिल कर अवतारका कर्त्तव्य पालन किया।

९म अवतार बुद्ध।—कपिलवस्तु नगरमें राजा शुद्धोदन और मायादेवीसे सिद्धार्थ नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये अन्तमें शाक्यसिंह नामसे ही पुकारे जाने लगे। इनका एक दूसरा नाम गौतम था। बचपनसे ही ये खेलसे विरत निर्जनवासप्रिय और ध्यानधारणापरायण थे। दण्डपाणिकी कन्या गोपासे इनका विवाह हुआ। संसारी होने पर भी गौतम कहा करते थे, "जगत्‌में स्थायी कुछ नहीं है, सत्य कुछ नहीं है, काष्ठके घर्षणसे उत्पन्न अग्निकणकी नाईं यह जीवन है, यह कभी जल उठता है और कभी बुझ जाता है। हम लोग यह नहीं जान सकते कि यह कहांसे आता है और कहां चला जाता है। यह वीणाध्वनिके समान है। पण्डित लोग वृथा इसका आद्यन्त अनुसन्धान करते हैं। क्या ऐसी कोई एक महाशक्ति है जिससे हम लोग विरामलाभ कर सकें? यदि मैं 'उसका अनुसन्धान करूं', तो निश्चय है कि मैं उसे मनुष्योंको

दिखा सकता। यदि मैं स्वाधीन हो जाऊं, तो मैं पृथ्वीको मुक्त कर सकता।" गौतमके ऐसे विश्वातीत विचार दूर करनेके लिए अनेक उपाय किये गये; किन्तु सब व्यर्थ हुए। एक दिन जब वे नगर घूमने गये तब वहां एक जरातुर वृद्ध, एक रोगपीड़ित तथा एक भिक्षु संन्यासीको देख कर उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो आया। एक रातको वे एक नौकरको साथ ले घोड़े पर सवार हो राजपाट छोड़ छाड़ कर घरसे निकले। इस समय उन्हें राहुल नामका एक पुत्र हुआ था। प्रातःकाल होने पर गौतमने उस नौकरको अपना अलङ्कार, परिच्छद और घोड़ा देकर राज्यको लौट जाने कहा। बाद वे पहले वैशाली नामक स्थानमें जाकर एक विप्र-ब्राह्मणके शिष्य हो गये। उनकी ज्ञानस्पृहा अपरिमेय थी। वैशालीमें शिक्षा समाप्त कर वे राजगृहके विख्यात श्रेष्ठ पण्डितके पास गए। यहां भी वे तृप्त न हुए। तब वे उरुविल्वग्राममें जा कर पांच सहपाठियोंके साथ तपस्या करने लगे। तपस्याके बाद,उनके साथियोंने उन्हें नास्तिक समझ कर छोड़ दिया। अन्तमें वे अनेक साधनाके बाद यथार्थ ज्ञान लाभ कर तृप्त हुए। इसी समय उन्होंने बुद्ध नाम ग्रहण किया और मायामोहित जगत्के लिए एक नूतन ज्ञाना-लोक प्रकाश किया। वे अपना मत प्रचार करनेके लिए काशी गये, वहां उनके सहाध्यायी पाँच संन्यासी उनका मत मानने लगे। पीछे प्रचारकार्यमें व्रती हो कर वे राजगृहमें राजा बिम्बिसारको सभामें बुलाये गए। राजाने उनका उपदेश सुन कर उनके रहनेके लिए कालान्तक नामक मठ उन्हें प्रदान किया। यहां रह कर वे अपना उपदेश प्रचार करने लगे। इसी स्थान पर उनके प्रधान शिष्य सारिपुत्र कात्यायन और मौद्गल्यायन उनके निकट आये थे। राजा बिम्बिसारके पुत्रसे वे दोनों मारे जाने पर बुद्ध राजगृह छोड़ कर श्रावस्ती नगरको,चले गये। अयोध्याके राजा प्रसेनजित्ने उनका मत ग्रहण किया। बारह वर्ष बाद वे अपने पितासे मुलाकात करनेके लिए घर लौटे। उन्होंने अपने राज्यमें कई एक अमानुषी कार्य करके सब शाक्योंको बौद्ध बनाया। स्त्रीजातिके मध्य सबसे पहले उनकी स्त्री और चाचीने बुद्धमत ग्रहण किया। ७० वर्षकी अवस्थामें वे फिर राजगृह आये और पितृहन्ता राजा अजातशत्रुको बौद्ध बनाया। पीछे वे वैशाली और वहांसे कुशीनगर गये। इस समय उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि उनका अन्तिम समय बीत रहा है। वैशाखी पूर्णिमाके दिन एक शालवृक्षके तले ध्यानस्थ हो उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

पुराणके अनुसार ये ही बुद्ध नारायणके अवतार थे। पुराणमें लिखा है, कि एक दिन दैत्योंने इन्द्रसे पूछा, कि किस तरह हम लोग स्थायिभावसे संसार पर राज्य कर सकेंगे? इन्द्रने इन्हें पवित्र भावसे यागयज्ञ और वेदविहित आचारके अनुवर्त्ती होने कहा। इस पर जब वे एक महायज्ञका अनुष्ठान करने लगे, तब अन्यान्य देवताओंने विष्णुकी शरण ली। विष्णुको भी जब यह मालूम हो गया कि यज्ञफलसे त्रिलोकका आधिपत्य दैत्योंसे दखित होगा, तब वे एक संन्यासीमूर्त्ति धारण कर अपवित्र वेशमें हाथमें एक झाड़ लिये यज्ञानुष्ठायी दैत्योंके निकट पहुंचे। जब उन लोगोंने इनके अपवित्र वेशभूषा देख कर इनका परिचय पूछा, तो इन्होंने कोई अन्य उत्तर दिये बिना यज्ञमें देवकार्यके लिये प्राणीबध करना बहुत अन्याय बतलाया। स्वयं पवित्र होनेके लिये दूसरेका प्राण लेना यह बिलकुल अनुचित तथा अन्याय है। मैं जब चलता हूं, तो इसी झाड़ूसे आगेकी जमीन साफ कर लेता, जिससे कि कोई क्षुद्र प्राणी मेरे तले दब कर मर न जाय। इस तरहके हृदय-मोहकारी दया-उद्दीपक वचनोंसे दैत्योंका हृदय पिघल आया और उन्होंने आरब्ध यज्ञको परित्याग कर, "अहिंसा परमो धर्मः" यह मत अवलम्बन करते हुए वेदमार्ग त्याग किया। त्रिभुवन दैत्यके ग्राससे बच गया। नारायणका अवतार होनेसे ही सब फलीभूत हुआ। बुद्ध देखो।

१०म *अवतार कल्की*—कल्की अवतार अब तक भी नहीं हुआ है। इसके बाद होगा। कलिके अत्याचारसे पीड़ित हो कर देवगण विष्णुसे प्रार्थना करेंगे और विष्णु शम्भलग्राममें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके औरससे उत्पन्न होंगे। परशुराम उन्हें वेदादि सिखावेंगे और महादेव अस्त्रविद्या सिखा कर एक सर्वगामी अश्व, एक

अक्षय असि और एक शुक्लपक्षी दान देंगे। पीछे वे पृथ्वीके समस्त म्लेच्छ और विधर्मियोंको विनाश कर पुनः सनातन धर्मको प्रतिष्ठा और हिन्दुराजत्व स्थापन करेंगे। कल्कि देखो।

इन दश अवतारोंमें मत्स्य, कूर्म, वराह और वामनको कथा वेदमें पाई गई है। मत्स्य और कूर्मको उक्ति शतपथ-ब्राह्मणमें; कूर्म, वराह और वामनको कथा तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें है। मत्स्य अवतारमें जो प्रलयकी कथा लिखी गई है, वह ईसाइयोंके बाइबिलमें लिखे हुए नोआके समयके जलप्लावनके इतिहाससे मिलती है। भगवान्‌के आदेशसे सत्यव्रतने जिस तरह नाव द्वारा सब जीवोंकी रक्षा की, ईसाइयोंके नोआने भी उन्हींके आदेशसे वैसा ही किया था। मनु और नुया नोआ शब्द पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे एक व्यक्तिबोधक है। उन लोगोंका कहना है, कि पाश्चात्य शास्त्रके इतिहासने देशभेदसे रूपान्तरित हो कर वेदमें स्थान पाया है। प्रलयकालके जलप्लावनको पण्डित मोक्षमूलर कहते हैं, कि यह वार्षिक हैमन्तिक अथवा प्रावृट्‌के वृष्टि-जनित देशविशेषके जल-प्लावनके सिवा और कुछ नहीं है। प्रलय देखो।

भूतत्त्ववेत्ता कहते हैं—कि इन दश अवतारोंमें पृथ्वी परकी जीवसृष्टिकी क्रमविकाश कथा ही लिखी गई। वे यह भी कहते हैं, कि जब भूसृष्टि नहीं हुई थी, तब जलचर जीवके सिवा और दूसरा कोई नहीं था। उस समय भगवान्‌की सत्ता दिखलानेके लिये उनकी मत्स्य मूर्त्ति कल्पना की गई है। पीछे जब सागरमेंसे थोड़ी जमीन निकली, तब उभचर कूर्म वा कच्छप मूर्त्ति कल्पित हुई है। इसके अनन्तर भूमिभाग बढ़ने लगा, जल हट कर बहुत दूर चला गया, किन्तु भूमि उस समय कर्दम मात्र थी। वैसी जमीनमें वराह सरीखा जीव ही रह सकता है, अतः उस युगमें भगवान्‌के वराह अवतार कल्पित हुआ है। इसके बाद जमीन सूख गई जिसमें वराह छोड़ कर अन्य जीव रहने लगे। नर और पशु उत्पन्न हुए, किन्तु तो भी नर और पशुमें जो विभिन्नता है, वह नहीं थी। उसी नर और पशुको सृष्टिके प्रथम युगमें भगवान्‌की नर-पशु (नृसिंह) मूर्त्ति कल्पित हुई है। पीछे वामन और परशु-राम अवतारमें मनुष्य समाजकी उन्नतिका क्रम-विकाश और रामचन्द्रमें उसका पूर्ण विकाश दिख लाया गया है। बलराम, बुद्ध और कल्किमें मनुष्य समाज-की विभिन्न अवस्थाका वर्णन और तदुपयोगी अवतारकी कल्पना है।

यदि यथार्थमें देखा जाय, तो पहलेके चार अवतारोंमेंसे तीनमें जैसा वृहत् कार्य हुआ है, शेष कोई अवतारोंमें वैसा नहीं देखा जाता। ये सब अवतार पाश्चात्य जगत्‌के Hero-worship रूपान्तर समझे जाते हैं।

अभी उड़ीसा प्रभृति स्थानोंमें दशावतारकी जो मूर्त्तियां देखनेमें आती हैं, उनमेंसे बुद्धकी जगह चतुर्भुज जगन्नाथकी मूर्त्ति अङ्कित हुई है। इसी कारण बहुतसे लोग जगन्नाथदेवको बुद्धका ही रूप मानते हैं। किन्तु जगन्नाथ देवके माहात्म्य-प्रकाशक स्कन्दपुराणीय उत्कल-खण्डमें दशावतारसे जगन्नाथमूर्त्तिका कोई सम्बन्ध नहीं लिखा है—

"अतो दशावताराणां दर्शनाद्यत्तु यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यो दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्॥"
(उत्कलख० ५१ अ०)

दशाश्व (सं० पु०) दश अश्वा रथे यस्य। १ चन्द्रमा। इनके रथमें दश घोड़े लगते हैं। २ इक्ष्वाकुके दशवें लड़के। (भारत १३।२।६)

दशाश्वमेध (सं० क्ली०) काशीके अन्तर्गत एक तीर्थ। ब्रह्माने राजर्षि दिवोदासकी सहायतासे काशीमें दश अश्वमेध यज्ञ किये थे। जिस स्थान पर ये यज्ञ किये गये वही स्थान दशाश्वमेध नामसे प्रसिद्ध है। पहले यह तीर्थ रुद्रसरोवरके नामसे मशहूर था। ब्रह्माके यज्ञके पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा। यह स्थान अत्यन्त पुण्यजनक है। यज्ञको समाप्ति होने पर ब्रह्माने यहां दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापित किया था। यह तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ है। यहां स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, देवपूजा, सन्ध्योपासना, तर्पण और श्राद्ध आदि सत्कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य दशाश्वमेधमें स्नान कर दशाश्वमेधेश्वर का दर्शन करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला प्रतिपद् तिथिमें यहां स्नान करनेसे

दशजन्मकृत पाप और शुक्लाद्वितीयामें स्नान करनेसे उसी समय दोनों जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। ज्येष्ठ मासकी शुक्लादशमी तिथि तक जो मनुष्य यथाक्रमसे गङ्गा स्नान करते हैं, वे तिथिसंख्या परिमित जन्मसञ्चित पापोंसे छुटकारा पाते हैं।

दशजन्मार्जित पापसंहारिणी दशहरा तिथिमें जो मनुष्य दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करता है, उसे यमयन्त्रणा भोग नहीं करना पड़ता है। दशहरा तिथिमें दशाश्वमेधेश्वरका दर्शन करनेसे दशजन्मकृत पाप जाते रहते हैं। दश अश्वमेध यज्ञ करके अवभृत स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, दशहरा तिथिको दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे भी निश्चय ही वही फल मिलता है। गङ्गाके पश्चिमी किनारे अवस्थित दशहरेश्वरको प्रणाम करनेसे मनुष्य कभी दुर्दशाग्रस्त नहीं होते हैं।

(काशीख० ५२अ०) काशी देखो।

दशाश्वमेधिक (सं० क्ली०) दशाश्वमेध देखो।

दशास्य (सं० पु०) दश आस्यानि यस्य। रावण।

दशास्यजित् (सं० पु०) दशास्यं जयति दशास्य जि-क्विप्। श्रीराम।

दशाह (सं० पु०) दशानां अह्नां समाहारः टच् समासान्तः समाहारत्वात् नाह्नादेश। १ दश दिन। २ मृतकके कृत्यका दशवां दिन। गृह्यसूत्रोंमें मृतक कर्म तीन ही दिनोंका माना गया है। प्रथम दिन श्मशानकृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग और आदि और तीसरे दिन सपिण्डीकरण। स्मृतियोंने प्रथम दिनके कृत्यका दश दिनों तक बढ़ा दिया है, जिनमें हर एक दिन एक एक पिण्ड एक एक अङ्गकी पूर्त्तिके लिये दिया जाता है। किन्तु ग्यारहवें दिनके कृत्यमें अब भी द्वितीयाङ्ग संकल्पका पाठ किया जाता है।

दशिन् (सं० त्रि०) दश संख्याः येषां इनि। १ दश संख्यायुक्त, दश अंकवाला। दश संख्या प्रमाणं येषां इनि। २ दश संख्या प्रमाणक, जो दश अङ्कोंका हो। (पु०) ३ राजासे नियुक्त दशग्रामाधिपति। दशवर्त्तिका वस्त्राञ्चलं वा अस्त्यस्य इनि। ४ दशायुक्त दीप, वह चिराग जिसमें दश बत्तियां हों। ५ सदश वस्त्र, झालरदार कपड़ा।

दशोविदर्भ (सं० पु०) दक्षिणस्थ देशभेद, एक देश जो दक्षिणमें अवस्थित है। (भारत, भीष्म ९ अ०)

दशेन्धन (सं० पु०) दशा वर्त्तिका इन्धनं काष्ठमिव यस्य। प्रदीप, चिराग।

दशेर (सं० पु०) दशतीति दन्श-एरक्। हिंस्रजन्तु, हिंसक जीव।

दशेरक (सं० पु०) दशेर संज्ञायां कन्। १ मरुभूमि। २ तद्देशस्थ, उसी देशका निवास। ३ जनपदविशेष, वर्त्तमान माड़वार देश। ४ उक्त देशके निवासी। ५ उक्त देशके राजा।

दशेरुक (सं० पु०) दशति दुःखं न ददाति दन्श एरक् ततो कन्। मरुदेश।

दशेश (सं० पु०) दशानां ईश ६ तत्। १ दशापति रवि प्रभृति। दशानां ग्रामाणां ईशः। २ राजासे नियुक्त दशग्रामाधिपति।

दशैकाशिक (सं० त्रि०) एकादशार्थत्वात् एक।दशवस्तुतो दश ये दत्ता दश एकादश भविष्यन्ति ते दशैकादशाः निपातनात् समासान्तोऽकार। जो सैकड़े दश रुपये सूद लेते हैं उन्हें दशैकाशिक कहते हैं।

दशोणि (सं० पु०) दश बहवः ऊणयो यस्य। बहुहविष्क, वह जिसके पास बहुत हुतादि हो।

दशोनसि (सं० पु०) वेदोक्त सर्पभेद, वेदके अनुसार एक सांपका नाम।

दशौषधकाल (सं० पु०) दशविध औषधकालः मध्यलो० कर्मधा०। दश प्रकारके औषधका समय। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—निर्भक्त, प्राग्भक्त, अधोभक्त, मध्यभक्त, अन्तराभक्त, सभक्त, सामुद्ग मुहुर्मुहु, ग्रास और ग्रासान्तर ये दश प्रकारका औषध-सेवनका समय है।

केवल औषधसेवन करनेको निर्भक्त कहते हैं—अन्नहीन औषध अर्थात् औषध सेवन करके कुछ नहीं खानेसे औषधका वीर्य बढ़ जाता है। इससे रोग बहुत जल्द शान्त हो जाता है। बालक, वृद्ध, युवती और कोमलाङ्ग व्यक्तिके लिये इस प्रकारका औषध-सेवन अत्यन्त ग्लानिकर और बलक्षयकर है।

प्राग्भक्त—खानेके पहले औषध सेवनेका नाम प्राग्-

भक्त है। इस तरह औषध सेवन करनेसे शीघ्र परिपाक होता है और बलको हानि होती है। वृद्ध, शिशु, भीरु और स्त्रियोंके लिये इस प्रकारका औषध सेवन विधेय है। अधोभक्त-भोजनान्तमें औषध सेवनेका नाम अधोभक्त है। इससे शरीरके ऊर्ध्वभागस्थ अनेक प्रकारके रोग शान्त होते हैं और कूवत भी आ जाती है।

मध्यभक्त—खाते समय औषध सेवन करनेको मध्य भक्त कहते हैं। इससे औषधका वीर्य सारे शरीरमें फैलता नहीं है, मगर मध्यभागस्थ सभी रोग जाते रहते हैं।

अन्तराभक्त—खानेके पहले वा पीछे औषध सेवन करनेका नाम अन्तराभक्त है। यह हृद्य, बलकर और अग्निकर है।

सभक्त—औषधके मेलसे भोजन तैयार कर सेवन करनेको सभक्त कहते है। अबला, बालक और वृद्धके लिये यह औषध सेवनीय है।

सामुद्ग—भोजनके पहले और पीछे औषध सेवन करनेका नाम सामुद्ग है। जब ऊर्ध्व और अधः दोनों ओर दोषको गति रहती है, तभी इस प्रकारका सेवन हितकर है।

मुहुर्मुहु—अन्नके साथ हो वा न हो सर्वदा सेवन करनेका नाम मुहुर्मुहु है। श्वास, कास, हिक्का और वमनरोगमें इस प्रकारका सेवन करना कर्त्तव्य है।

ग्रासान्तर—पिण्डके साथ मिला कर सेवन करनेको ग्रासान्तर कहते है। वमनीय, धूम और श्वासादि रोगमें लेहनीय औषध इसी प्रकार सेवनीय है। यही दश प्रकारका औषधका समय है।

दष्ट (सं० त्रि०) दन्श-क्त। दंशित, दाँतसे काटा हुआ।

दष्टपीड़ित (सं० क्ली०) दंशनविशेष, दाँतसे काटनेका एक भेद।

दस (सं० पु०) दस उपक्षेपे वेदे भावे अच्। उपक्षेप, आक्षेप।

दस (हिं० वि०) १ पाँचका दूना, जो गिनतीमें नौसे एक अधिक हो। २ कई, बहुतसे। ३ पाँचको दूनी संख्या। ४ उक्त संख्याका सूचक अंक।

दसठौन (हिं० पु०) प्रसवकालकी एक रीति। इसमें प्रसूता स्त्री दशवें दिन स्नान कर सौरीके घरसे दूसरे घरमें आती है।

दसना (हिं० क्रि०) १ विस्तृत होना, फैलना। २ विस्तर फैलाना, बिछाना। (पु०) ३ विस्तर, बिछौना।

दसमरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बरसाती नाव। यह बहुत बड़ी होती है। इसमें दश तख्ते लंबाई केवल लगी होती है।

दसरंग (हिं० पु०) मलखंबकी एक कसरत।

दसरान (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच।

दसवाँ (हिं० वि०) गिनतीके क्रममें जिसका स्थान दश पर हो।

दसा (हिं० पु०) अगरवाल वैश्योंके दो प्रधान भेदोंमेंसे एक भेद।

दसारी (हिं० स्त्री०) पानीके किनारे रहनेवाली एक चिड़िया।

दसी (हिं० स्त्री०) १ कपड़ेके किनारे परका सूत, छोर। २ कपड़ेका पल्ला। ३ बैलगाड़ीकी पटरी। ४ एक प्रकारका औजार जिससे चमड़ा छीला जाता है।

दसूया—१ पञ्जाबके होशियारपुर जिलेके अन्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० ३१° ३५´ से ३२° ५´ उ० और देशा० ७५° ३०´ से ७५° ५८´ पू० काङ्गड़ा पहाड़ और विपासा नदीके मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०१ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २३८००४ है। इसमें दसूया, मुकेरियन, मिआनी और तन्दाउरमर नामक शहर तथा ६३३ ग्राम लगते हैं। इसकी आय ४ लाख रुपये से अधिक है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ४८´ उ० और देशा० ७५° ४०´ पू० होशियारपुर शहरसे २५ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६४०४ है। प्रवाद है, कि विराट् राजने यहाँ राजधानी स्थापन की। आइन-इ-अकबरीमें नगरके उत्तर एक प्राचीन गढ़का उल्लेख है। १८१७ ई०में रणजित् सिंहने इस दुर्गको अपने अधिकारमें कर लिया था। १८६७ ई०में यहाँ एक म्युनिसिपलिटि स्थापित हुई। यहाँ धान और तमाखूका व्यवसाय खूब चलता है। नगरमें छोटी अदालत, थाना, डाकघर, सराय, विद्यालय और सुन्दर जलाशय है।

दसेंदू ( हिं० पु० ) केंदू, तेंदूका पेड़ ।

दसेरक ( सं० पु० ) दशेरकः मरुदेश सोऽभिजनोऽस्य, तस्य राजा वा अण्‌ । १ दासेरक, दसेरक देशके निवासी और राजा । २ दसेरक देशके सभी मनुष्य और राजगण । ३ गर्दभ, गदहा ।

दसैं ( हिं० स्त्री० ) दशमी तिथि ।

दसोतरा ( हिं० वि० ) दश ऊपर, दश अधिक ।

दसौंधी ( हिं० पु० ) वन्दियों या चारणोंकी एक जाति । ये लोग अपनेको ब्राह्मण बतलाते हैं, ब्रह्मभट्ट ।

दस्तदाजी ( फा० स्त्री० ) हस्तक्षेप, किसी काममें छेड़ छाड़ ।

दस्त ( फा० पु० ) १ पतला पायखाना । २ हाथ ।

दस्तक ( फा० स्त्री० ) १ खटखटानेकी क्रिया । २ घरके अंदरके लोगोंको बुलानेके लिये बाहरसे दरवाजेकी कुंडी खटखटानेकी क्रिया । ३ वह आज्ञापत्र जो किसीसे देना या मालगुजारी वसूल करनेके लिए निकाला जाता है, गिरफ्तारी वा वसूलीका परवाना ।

दस्तकार ( फा० पु० ) वह आदमी जो हाथसे कारीगरीका काम करता हो ।

दस्तकारी ( फा० स्त्री० ) कला संबन्धिनी सुन्दर रचना जो हाथसे की जाय, हाथकी कारीगरी ।

दस्तखत ( फा० पु० ) स्वाक्षर, हस्ताक्षर ।

दस्तखती ( फा० वि० ) जिस पर हस्ताक्षर हो ।

दस्तगीर ( फा० पु० ) सहायक, मददगार ।

दस्तपनाह ( फा० पु० ) चिमटा ।

दस्तबरदार ( फा० वि० ) जो किसी वस्तु परसे अपना अधिकार उठा ले ।

दस्तबरदारी ( फा० स्त्री० ) १ त्याग । २ त्यागपत्र ।

दस्तयाब ( फा० वि० ) प्राप्त, हस्तगत ।

दस्तरखान (फा० पु०) खाना रखे जानेकी चादर अर्थात् चौकीकी वह चादर जिस पर मुसलमान लोग भोजनकी थाली रखते हैं ।

दस्ता ( फा० पु० ) १ वह जो हाथमें आवे । २ सोंटा, डंडा । चोगे या कबा पर लगानेकी एक प्रकारकी घुंडी । ४ हाथमें आ जाने योग्य किसी वस्तुका गड्ड या पूला । ५ कागजके चौबीस तावोंकी गड्डी । ६ फूलोंका गुच्छा, गुलदस्ता । ७ औजार आदिका मूठ, बेंट । ८ सिपाहियोंका छोटा दल, गारद । ९ चपरास, संजाफ । ( हिं० पु० ) १० एक प्रकारका बगला, हरगिला । ११ जस्ता देखो ।

दस्ताना ( फा० पु० ) १ हस्तावरणी, हाथका मोजा । २ एक प्रकारकी सीधी तलवार । इसकी मूठके ऊपर कलाई तक पहुंचनेवाला लोहेका परदा लगा रहता है ।

दस्तावर ( फा० वि० ) विरेचक, जिससे दस्त आवे ।

दस्तावेज ( फा० स्त्री० ) व्यवहार सम्बन्धी लेख, वह कागज जिसे लिखकर किसीने कोई प्रतिज्ञा की हो अथवा द्रव्य सम्पत्ति आदिका लेन देन किया हो ।

दस्तावेजी (फा० वि०) दस्तावेज सम्बन्धी, दस्तावेजका ।

दस्ती ( फा० वि० ) १ हाथका । ( स्त्री० ) २ छोटी मूठ, छोटा बेंट । ३ छोटा कलमदान । ४ विजयादशमीके दिन राजासे सरदारों तथा अफसरोंके बीच बांटे जानेका सौगात । ५ कुश्तीका एक पेंच ।

दस्तूर ( फा० पु० ) १ रीति, नियम, रस्म, रवाज । २ विधि, कायदा । ३ पारसियोंका पुरोहित । ४ जहाजके छोटे पाल । ये सबसे ऊपरवाले पालके नीचेकी पंक्ति में दोनों ओर होते हैं ।

दस्तूरी ( फा० स्त्री० ) एक प्रकारका हक जो नौकर अपने मालिकका सौदा लेनेमें दूकानदारोंसे पाते हैं ।

दस्पना (फा० पु०) चिमटा ।

दस्म ( सं० पु० ) दस्यति उत्क्षिपति दक्षिणादिकमिति दस-मक्‌ । १ उपक्षेपक, आक्षेप करनेवाला । २ दर्शनीय, देखने योग्य । ३ यजमान । ४ चौर, चोर । ५ हुताशन, अग्नि । ६ खल, दुष्ट मनुष्य ।

दस्मत्‌ ( सं० त्रि० ) दसि दंसन दर्शनयोः, ततो मक्‌ दस्ममित्यत्र मकारस्य वर्णव्यापत्त्या तकारः । दर्शनीय, देखनेयोग्य ।

दस्मवर्चस्‌ ( सं० त्रि० ) दस्मं वर्चः यस्य । १ दर्शनीय तेजा, जिसका प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा हो । (पु०) २ इन्द्र । ३ मरुत्‌ ।

दस्म्य ( सं० पु० ) दस्म स्वार्थे यत्‌ । दर्शनीय, देखने योग्य ।

दस्येवसह ( सं० पुं० ) उपद्रवके लिए चोरका अभिभावक।

दस्यु ( सं० पु० ) दस्यति परस्वान् नाशयतीति दश-युच् (यजि मनि शुन्धिदसि जनिभ्यो युच्। उण् ३।२०)। १ महासाहसिक, डकैत। २ खल, दुष्ट। ३ चौर, चोर।

ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें जो क्रियादिसे रहित हो जानेके कारण वाह्यजाति कहलाते हैं, वे चाहे साधुभाषी हों अथवा म्लेच्छभाषी हो, उनकी गिनती दस्युमें ही की जा सकती है। द्विजविगर्हित काम करनाही इन लोगोंकी जीविका है। दस्युजातिसे आयोगव स्त्रीके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वे सैरिन्ध्र नामसे प्रसिद्ध हैं। यह जाति केशरचनादि कामोंमें सुचतुर है, ये यथार्थमें दास नहीं, तो भ दास कार्योपयोगी एवं पाश द्वारा मृगादिका वध कर जीविका निर्वाह करते हैं। ( मनु १०।३१ ) ४ कर्मवर्जित, वह जो अपने कर्मोंसे च्युत हो गया हो। ५ असुर, राक्षस। (त्रि०) ६ उपक्षेपक, उपेक्षा करनेवाला, विरक्त रहनेवाला।

ऋक्संहिताके कई मन्त्रोंमें दस्यु शब्दका उल्लेख है। कहीं कहीं दस्यु शब्द पढ़नेसे बोध होता है, कि आर्य भिन्न कोई जाति दस्यु वा दास कहलाती थी। इन लोगोंने आर्य जातिके पहले भारतवर्षके नाना स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया था। कितनोंने तो ग्राम नगरादि भी बसाया था। इनके बाहुबलसे आर्यगण कई बार अनेक कष्ट पा चुके थे और वे ही पहले असुरादि कहलाते थे। इन्द्रने मानो उन्हींको उच्च बनानेके लिये अवतार लिया था। आर्य लोगोंके प्रभावसे 'अनास' दस्युगण परास्त हो कुछ तो जङ्गलमें और कुछ दूर देशोंमें प्राण ले कर भागे और जो बच रहे उन्होंने आर्योंकी अधीनता स्वीकार कर ली और उन्हींके समाजमें मिल गये। निम्नलिखित मन्त्रसे दस्युके साथ आर्य जातिका कैसा सम्बन्ध था वह जाना जाता है।

"त्वं ह नु त्यद् अदमयो दस्यु'रेकः कृष्टीरवनोरार्याय।"

(ऋक् ६।१८।३)

हे इन्द्र! मैंने ही दस्यु लोगोंको अपने वशमें किया है और तुमने ही आर्य लोगोंको पुत्र दासादि दिए हैं।

"विश्वाहमात् सीमनमानिन्द्र दस्यून् विशो दासीरकृणोर प्रशस्ताः।"

(५।२८।४)

हे इन्द्र! तुमने ही इन दस्यु लोगोंको समस्त सद्गुणों वञ्चित किया है, तुमने ही दास मनुष्योंको निन्दनीय बनाया है।

हम लोगोंके मित्र त्रसदस्यु लोगोंको कठोर पर्वतके शिखर परसे गिरा दें जो भिन्न व्रतावलम्बी हैं, जिनके मनुष्यत्व नहीं है, जो यज्ञादि नहीं करते अथवा देवताओंको भी नहीं मानते हैं। ( ऋक् ८।५९।१० )

हे इन्द्र! हम लोगोंने इस यज्ञकी सामग्री इकट्ठी की है, तृप्ति भर खा लो। हम लोग तुमसे अन्न और ऐसा बल चाहते हैं जिससे अमानुषको विनाश कर सकें। हम लोगके चारों ओर दस्यु हैं। वे न तो याग यज्ञादि करते और न किसीको मानते ही हैं, उनके कार्य स्वतन्त्र हैं, वे मनुष्यमें ही नहीं है। हे अमित्रघ्न! उन लोगोंका वध करो, उन दासोंको हत्या करो।

(ऋक् १०।२२।७-८)

हे इन्द्र! तुमने पहले सूर्यका रथचक्र काट डाला था। दूसरा धन प्राप्तिके लिये कुत्सको दिया था। तुमने वज्र द्वारा मुखसौन्दर्यहीन अर्थात् नासिकारहित दस्यु लोगोंको हतबुद्धि कर युद्धमें वध किया था।

( ऋक् ५।२९।१० )

यज्ञहीन, जल्पक, हिंसितवाक, श्रद्धाहीन, बुद्धिशून्य, पणिनामक यज्ञरहित दस्युगणको दूर कीजिये। अग्निको प्रधान कर जो यज्ञ नहीं करते उन्हें हेय दृष्टिसे देखिये। ( ऋक् ७।६।३ )

हे इन्द्राग्नि! तुमने एक ही उद्योगसे दासोंकी ९० पुरियोंको कम्पित कर दिया था। तुमने दस्यु शम्बरकी शताधिक अप्रतिम पुरी ध्वंस कर दी है।

( ऋक् ३।१२।६ )

जब उनके हाथोंमें वज्र दिया गया था तब उन्होंने दस्युगणको उससे विनाश कर दिया था। ( २।२०।८ )

हे इन्द्र! तुमने कुलितरके अपत्य दास शम्बरको बड़े पर्वतके शिखर परसे औंधे मुंह गिरा कर नाश किया था। ( ४।३०।१४ )

तुमने इस युद्धमें मनुष्यका सुख बढ़ानेके लिये

दास नमुचिका मस्तक चकनाचूर कर दिया है।
(५।३०।७)

दासने स्त्रियोंको अपना अस्त्रस्वरूप बनाया था। इसकी अबला सेना मेरा क्या कर सकेगी ? यह सोच कर इन्द्र उसकी दो प्रियतमा स्त्रियोंको अन्तःपुरमें बांध कर पीछे उस दस्युके साथ लड़ाई करने गये थे।

वृत्र शम्बर और नमुचि ये सब दास, दस्यु और असुर नामसे वेदमें वर्णित है। इससे मालूम होता है ये तीनों शब्द वैदिकयुगमें एक जातिबोधक थे।

नमुचि, शम्बर और वृत्र देखो।

छान्दोग्य उपनिषद्‌में असुर जातिके विषयमें जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—

आज भी जो मनुष्य दानहीन, श्रद्धाहीन वा यज्ञहीन हैं वे असुरधर्म्मा कहलाते हैं। असुरोंका यही सनातनधर्म है,-वे शवदेहको अर्थ, वसन, और अलङ्कारसे सजते हैं। उन लोगोंका ख्याल है कि ऐसा काम करनेसे ही इस लोकका पुरुषार्थ सिद्ध होता है।

यथार्थमें भारतीय असभ्य और म्लेच्छ जातिमें उक्त प्रथा अब भी प्रचलित है।

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—

तुम लोगोंका वंशधर भ्रष्ट होगा। यही अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मुतिव उत्तरदिक्‌वासी अनेक जातियां हैं। विश्वामित्रसे ही दस्युगण उत्पन्न हुए हैं।

कुलकटोकामें लिखा है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातिमें जो क्रियारहित होनेके कारण जातिच्युत हुए हैं वे चाहे म्लेच्छभाषी हों, चाहे आर्यभाषी हों सभी दस्यु कहलाते हैं।

महाभारतके सभापर्वमें इस प्रकार लिखा है—

"दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः।
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः॥"

दरदोंके साथ काम्बोज और उत्तरपूर्वमें जो सब दस्यु जाति वास करती थीं अर्जुनने उन्हें परास्त किया था। द्रोणपर्वमें भी श्मश्रुयुक्त दस्युजातिका उल्लेख है।

शान्तिपर्वके १६८ अध्यायमें दस्युके विषयमें भीष्मने एक इतिहास इस प्रकार कहा है—

मध्यदेशीय एक ब्राह्मण ब्राह्मणहीन समृद्धिशाली एक ग्रामको देख कर भिक्षाकी आशासे वहां गये। सब वर्णोंका सम्मानकृत्, धर्मशील, सत्यवादी और दाननिरत एक धनी दस्यु वहां वास करता था। ब्राह्मणने उसीके पास जा कर भिक्षा मांगी। उस ब्राह्मणका नाम गौतम था। दस्युके साथ रह कर धीरे धीरे वे भी उन्हींको तरह हो गये। इस प्रकार वे आनन्दपूर्वक दस्यु ग्राममें रहने लगे। इसी बीच एक ब्राह्मणने आ कर उनसे कहा, तुम मोहान्ध हो कर क्या कर रहे हो? उत्तम मध्यदेशीय ब्राह्मणवंशमें तुम्हारा जन्म है। किस प्रकार तुमने इस दस्यु भावको ग्रहण किया?

उक्त विवरण पढ़नेसे जाना जाता है, कि दस्युजाति म्लेच्छ समझी जाती थी और उनके साथ वास करना ब्राह्मणोंके लिए नितान्त हेय समझा जाता था।

शान्तिपर्वके ६५ अध्यायमें दस्युका कर्त्तव्य इस प्रकार निर्धारित हुआ है—

माता, पिता, आचार्य, गुरु और राजाकी सेवा करना ही दस्युका कर्त्तव्य है। वेदके अनुसार इन लोगोंका धर्मकार्य करना ही धर्म है। पितृयज्ञ, कूप, जलसत्र, शयन और यथा समय ब्राह्मणोंको दान, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, वृत्ति, ज्ञातिपालन, पुत्रभार्यादिका भरण-पोषण, शौच, अद्रोह, सभी यज्ञोंमें दक्षिणा दान और पाकयज्ञादि करना ये सब दस्युके प्रधान कर्म है। ये सब कर्म केवल दस्युके ही नहीं, वरं चारों वर्णोंके बतलाए गए है। मान्धाता कहते हैं, कि सभी वर्णोंमें दस्यु पाये जाते हैं, वे भिन्न भिन्न वेश धारण कर चारों आश्रमोंमें वर्त्तमान है।

दस्युजूत (सं० त्रि०) दस्युभिः जूतः। दस्यु द्वारा प्रेरित, जो डकैतोंसे कुकर्मोंमें प्रवृत्त हो।

दस्युनहण (सं० त्रि०) दस्युका दमनकर्त्ता, डकैतोंको दमन करनेवाला।

दस्युता (सं० स्त्री०) १ लुटेरापन, डकैती। २ दुष्टता, क्रूर स्वभाव।

दस्युभय (सं० पु०) दस्यूनां भयः। चौरभय, चोर या डकैतका डर।

दस्युवृत्ति (सं० स्त्री०) दस्यूनां वृत्तिः। चौर्य, चोरी, डकैती, लुटेरापन।

दस्युसात् ( सं० अव्य० ) दस्यु नामधीनं भवति सम्पद्यते वा साति। तस्कराधीन।

दस्युहत्य ( सं क्लो० ) दस्यूनां हत्या यत्र। वह संग्राम जिसमें डकैत मारे जाते हैं।

दस्युहन् ( सं० त्रि० ) दस्युं हन्ति हन्-क्विप्। असुर विघातक इन्द्र।

दस्र ( सं० पु० ) दस्यति उत्क्षिपति पांशूनिति दस-रक्। १ खर, गदहा। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। दस्यति रोगान् क्षिपति दस उपक्षेपे रक्। २ अश्विनीकुमार। ३ द्वित्व संख्या, दोहरी संख्या। ४ द्वित्व संख्येय, दोका समूह, जोड़ा। ५ अश्विनीनक्षत्र। ( क्लो ) ६ दर्शनीय, देखनेयोग्य। ७ हिंस्र, हिंसा करनेवाला।

दस्रदेवता ( सं० स्त्री० ) दस्रौ अश्विनौ अधिष्ठातृ देवता यस्याः। अश्विनीनक्षत्र।

दस्रसू (सं० स्त्री०) दस्रौ अश्विनौ सूते सू-क्विप्। संज्ञा, सूर्यकी स्त्री। इनके गर्भसे अश्विनीकुमारने जन्म ग्रहण किया है।

दह (हिं० पु०) १ नदीके भीतरका गड्ढा, पाल। २ कुण्ड, हौज। (स्त्री०) ३ ज्वाला, लपट, लौ।

दह ( फा० वि० ) दश।

दहक ( हिं० स्त्री० ) १ आग दहकनेकी क्रिया, धधक, दाह। २ ज्वाला, लपट। ३ शर्म, लज्जा।

दहकन ( हिं० स्त्री० ) दहकनेकी क्रिया।

दहकना ( हिं० क्रि० ) १ ज्वालाके साथ ऊपर उठना, धधकना। २ शरीरका गरम होना।

दहकाना ( हिं० क्रि० ) १ धधकाना। २ क्रोध दिलाना, भड़काना।

दहकामल—वृन्दावनका एक ग्राम। यहां श्रीकृष्णका लीलास्थान था।

दहड़दहड़ ( हिं० क्रि०-वि० ) लपट फेंकते हुए, धायंधायं।

दहदहा ( सं० स्त्री० ) कुमारानुचरमातृभेद। ( भारत शान्ति० ४७ अ० )

दहन ( सं० पु० ) दहतीति दह ल्यु। १ अग्नि, आग। २ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ भल्लातक भिलावां। ४ दुष्टतेजा, दुष्ट या क्रोधी मनुष्य। (पु०) ५ कपोत, कबूतर। ६ रुद्र-भेद, एक रुद्रका नाम। ७ कृत्तिकानक्षत्र। ८ तीनकी संख्या। ९ ज्योतिषमें एक योग। यह पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रोंमें शुक्रके होने पर होता है। १० ज्योतिषमें एक वीथी। यह पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें शुक्रके होने पर होती है। ११ दाह, जलनेकी क्रिया। ( त्रि० ) १२ दाहक मात्र। (क्लो०) १३ वृश्चिकाली। १४ गुग्गुल। १५ अगुरु, अगर वृक्ष। १६ काञ्जिकभेद, एक प्रकारकी कांजी।

दहनकेतन ( सं० पु० क्लो० ) दहनस्य केतनं ध्वज इव। धूम, धुआं।

दहनप्लुष्ट ( सं० त्रि० ) दहनादिव प्लुष्टं शोषणं यस्मात्। वैद्यक प्रसिद्ध पदार्थ। (Blister) यह शरीरमें लगानेसे अग्निकी नाईं फफोले पड़ जाते हैं।

दहनप्रिया ( सं० स्त्री० ) दहनस्य अग्नेः प्रिया ६-तत्। स्वाहादेवी, अग्निकी प्रिया।

दहनबहुल ( सं० पु० ) अग्नि, आग।

दहनविटपी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिका, एक प्रकारका पेड़।

दहनर्क्ष ( सं० क्लो० ) दहनं नाम ऋक्षं। कृत्तिका नक्षत्र।

दहनशील ( सं० पु० ) जलनेवाला।

दहनसारथि ( सं० पु० ) दहनस्य सारथिः ६ तत्। वायु, हवा।

दहना ( हिं० क्रि० ) १ जलना, बलना। २ भस्म करना, जलाना। ३ क्रोध दिलाना, कुढ़ना। ४ धंसना, नीचे बैठना।

दहनागुरु ( सं० पु० ) दहनाय अगुरु। दाहागुरु, एक प्रकारका सुगन्ध द्रव्य।

दहनाराति ( सं० पु० ) दहनस्य अग्ने अराति शत्रुः। जल। अग्निमें जल देनेसे वह बुझ जाती है, इसीसे अग्निको दहनाराति कहते हैं।

दहनीय ( सं० त्रि० ) दह्यते दह-अनीयर्। दाह्य, जलने वा जलाये जाने योग्य।

दहनोपल ( सं० पु० ) दहनाय वह्न्युत्पादनाय य उपलः प्रस्तरखण्डः। सूर्यकान्तमणि। इस मणिमें सूर्यकी किरण लगनेसे आग निकल आती है, इसीसे इसका नाम दहनोपल हुआ है।

दहनोल्का (सं॰ स्त्री॰) दहनस्य उल्का ६-तत्। अग्निके विस्फुलिङ्ग रूप उल्का।

दहपट (फा॰ वि॰) १ ध्वस्त, चौपट। २ दलित, रौंदा हुआ, कुचला हुआ।

दहपटना (हिं॰ क्रि॰) १ ध्वस्त करना, ढाना। २ दलित करना, कुचलना।

दहबासी (फा॰ पु॰) दश सिपाहियोंका सरदार।

दहर (सं॰ पु॰) दह-अर। १ मूषिका, चुहिया। २ भ्राता, भाई। ३ बालक। ४ नरक। ५ वरुण। ६ कुक्कुट, मुर्गा। (त्रि॰) ७ स्वल्प, छोटा। ८ सूक्ष्म। ९ दुर्बोध।

दहर (हिं॰ पु॰) १ दह, नदीका गहरा स्थान। २ कुंड, हौज़, गड्ढा।

दहर दहर (हिं॰ क्रि॰ वि॰) धधकते हुए, धाँयधाँय।

दहरपुष्ठ (सं॰ स्त्री॰) तैत्तिरीय संहिताका एक अंश।

दहरसूत्र (सं॰ स्त्री॰) बौद्धोंका एक ग्रन्थ वा सूत्र।

दहराकाश (सं॰ पु॰) दहरं आकाशः कर्मधा॰। चिदाकाश, ईश्वर।

दहल (हिं॰ स्त्री॰) भयसे हठात् काँप उठनेको क्रिया।

दहलना (हिं॰ क्रि॰) भयसे स्तम्भित होना, डरसे काँप उठना।

दहला (फा॰ पु॰) दश चिह्नोंवाला ताश।

दहलाना (हिं॰ क्रि॰) भयभीत करना, डरसे कंपाना।

दहलीज (फा॰ स्त्री॰) वह लकड़ी जो दरवाजेके चौखटके नीचे जमीन पर रहती है, देहली।

दहशत (फा॰ स्त्री॰) भय, डर, खौफ।

दहसमो (फा॰ स्त्री॰) इस सालके खातेको बही।

दहा (फा॰ पु॰) १ मुहर्रमका महीना। २ ताजिया। ३ मुहर्रमकी १से १० तारीखका समय।

दहाई (फा॰ स्त्री॰) १ दशका मान। २ अङ्कोंके स्थानोंकी गणनामें दूसरा स्थान।

दहाड़ (हिं॰ स्त्री॰) १ किसो भयङ्कर जन्तुका घोर शब्द। २ आर्त्तनाद, रोनेका घोर शब्द।

दहाड़ना (हिं॰ क्रि॰) १ गरजना, गुर्राना। २ चिल्ला चिल्ला कर रोना। ३ जोरसे चिल्लाना।

दहाना (फा॰ पु॰) १ द्वार। २ मशकका मुंह। ३ नदीका मुहाना। ४ नाली, मोरी। ५ घोड़ेके मुंहकी लगाम।

दहार (अ॰ पु॰) १ प्रान्त, प्रदेश। २ समीपवर्ती प्रदेश, गवेंड।

दहिङ्गल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी चिड़िया। यह आठ अंगुल लम्बी होती और कोड़े मकोड़े खाती है। इसके पैरों पर सफेद और काली लकीरें होती हैं।

दहिट—बंबईके काठियावाड़के अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

दहिना (हिं॰ वि॰) अपसव्य, बाँयाका उलटा।

दहिनावर्त्त (हिं॰ वि॰) दक्षिणावर्त्त देखो।

दहिने (हिं॰ क्रि॰-वि॰) दाहिनी तरफका।

दहियक (फा॰ पु॰) दशमांश, दशवां हिस्सा।

दहियल (हिं॰ पु॰) दहला देखो।

दही (हिं॰ पु॰) दधि देखो।

दहींगर (हिं॰ पु॰) दहीका घड़ा।

दहेंड़ी (हिं॰ स्त्री॰) मट्टीका बरतन जिसमें दही रखा जाता है।

दहेज (अ॰ पु॰) विवाहके समय कन्यापक्षकी ओरसे वरपक्षको दिये जानेका धन, यौतुक, दायजा।

दहेला (हिं॰ वि॰) १ दग्ध, जला हुआ। २ संतप्त, दुःखी। ३ आर्द्र, भीगा हुआ।

दहोतरसौ (हिं॰ पु॰) एक सौ दश।

दह्यमान (सं॰ त्रि॰) दह-कर्मणि शानच्। जो जल रहा हो।

दह्र (सं॰ पु॰) दहतीति, दह-रक्। १ दावानल, दावाग्नि। २ नरक। ३ अग्नि। ४ वरुण। ५ हृदयाकाश।

दह्राग्नि (सं॰ पु॰) दह्रस्य अग्निः। जठराग्नि।

दा (सं॰ स्त्री॰) दा-क्विप्। १ दान। २ रक्षा। ३ छेद। ४ उपताप, उत्ताप, गर्मी।

दा (हिं॰ पु॰)-सितारका एक बोल।

दाईं (हिं॰ वि॰) १ दाहिनी। (स्त्री॰) २ बार, दफा।

दाई (हिं॰ स्त्री॰) १ धात्री, धाय। २ वह स्त्री जो प्रसूताके उपचारके लिए नियुक्त होती है, वह स्त्री जो स्त्रियोंको बच्चा जननेमें सहायता देती है। ३ वह दासी जो छोटे छोटे बच्चोंकी देख-भाल करनेके लिए रखी जाती है। ४ पिताकी माता, दादी। ४ बड़ी बूढ़ी स्त्री।

दाउद खाँ—जब शेरशाह-वंशीय इस्लाम शाह दिल्लीके सम्राट् थे, उस समय बङ्गालके सूरवंशीय अन्तिम नवाब गयासुद्दीनको १५६३ ई०में मार कर सुलेमान नामक कराणीवंशके पठान बङ्गालके अधिपति हुए। १५७२ ई०में सुलेमान कराणीकी मृत्यु हुई। बाद उनके बड़े लड़के बयाजिद राजगद्दी पर बैठे। दूसरे वर्ष बयाजिदको मारकर पठानसरदारोंने बयाजिदके छोटे भाई दाउदको बङ्गालके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। राजा होनेके साथ ही दाउदने देखा कि उनके पास कुल १४०००० पदातिक, ४०००० अश्वारोही, २०००० कमान और ३६०० हाथी हैं। उस समय गौड़नगरके दूसरे पारमें उनकी राजधानी थी। दाउदने अपना सैन्यबल देख कर बिहारमें सब जगह अपने नाम पर खुतबा पढ़नेका हुक्म दिया। पहली बारकी युद्धयात्रामें इन्होंने गाजीपुरके समीपस्थ जमानिया नामक मुगल दुर्ग पर अधिकार जमाया। इस समय दिल्लीमें अकबर सम्राट् थे। दाउदका विवरण सुनकर अकबरने उनके विरुद्ध अपने प्रधान सेनापति मुनीमखाँ और राजा टोडरमलको भेजा। मुनीमने पटनेको जीत कर बङ्गालमें प्रवेश किया। दाउद उड़ीसाको भाग गये। रास्तेमें मेदिनीपुर और जलेश्वरके बीच मुगलमारी (तुकारो) नामक स्थानमें मुगल और पठान-सेनाकी मुठभेड़ हुई (१५७५ ई०में)। पहले पठानोंकी जयको सम्भावना थी, किन्तु टोडरमलके कौशलसे अन्तमें मुगलोंकी ही जीत हुई। दाउद उड़ीसाको चल दिये। मुगलोंसे पीछा किये जाने पर कटकके समीप दाउदने आत्मसमर्पण किया। पीछे मुगलोंने उन्हें कटकका शासनकर्त्ता बनाया। मुनीमखाँ लौट कर फिर ताण्डासे गौड़में राजधानी उठा लाये और आप स्वयं बङ्गालका शासन करने लगे। इस समय गौड़में महामारी फैली हुई थी, मुनीम खाँ उसीके शिकार बन गये। बङ्गाल मुगलराज्यभुक्त हुआ। गौड़नगर भी अरण्यमें परिणत होने लगा। मुनीम खाँका मृत्यु-सम्वाद सुन कर दाउदने कटकसे बङ्गाल पर धावा मारा। मुगल सम्राट्ने हुसेन कुली खाँको सेनापति बना कर टोडरमलके साथ दाउदके विरुद्ध भेजा। राजमहलके समीप घनघोर लड़ाई छिड़ी। दाउद मारे गये और मुगलोंकी जीत हुई (१५७५ ई०में)। दाउदका छिन्नमस्तक अकबरके पास भेज दिया गया। हुसेन कुलीखाँ ही बङ्गाल बिहार उड़ीसाके शासनकर्त्ता हुए।

दाउदनगर—गया जिलेके औरङ्गाबाद उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° ३' उ० और देशा० ८४° २४' पू० सोन नदीके दाहिने किनारे और पटना शहरके बायें किनारे पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८७४४ है। कहा जाता है कि दाउद खाँसे यह नगर स्थापित हुआ है। उन्हींको बनाई हुई दाउद नामको सराय शहरकी प्रधान अट्टालिका है। शायद यह दुर्गके रूपमें व्यवहार करनेके लिये बनाई गई थी। एक छोटा इमामबाड़ा और व्यवसायके लिये उपयुक्त चौतरा नामक चकवा विख्यात है। यहां कपड़ा, मोटा गलीचा और कम्बल तैयार होता है। दाउदनगरसे ४ मील दूर गया जानेके रास्ते पर एक सुन्दर शिल्पकार्यविशिष्ट मन्दिर है।

भविष्य ब्रह्मखण्डमें लिखा है कि, 'सोन नदीके किनारे गया देशमें दाहुद (दाउद) नगर बसाया जायगा और शापभ्रष्ट दाहुद नामक एक मुसलमान इसके स्थापयिता होंगे। साल भर दाउदनगरमें हिन्दू और मुसलमानोंमें लड़ाई होगी। पीछे कीकटवासियोंको प्रार्थनासे शान्ति स्थापित होगी। दाहुद नगरकी प्रजा सोन नदीकाही जल काममें लावेगी। कलिके दश हजार वर्ष बीत जाने पर दाहुदनगर ध्वंश हो जायगा।"

दाउदनगर गयासे २० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित हैं। इसमें प्रायः ८००० घर लगते हैं। दाउद खाँकी सरायमें दो बड़े बड़े फाटक हैं। दाउदके पुत्रका नाम अहमद था। इसीके नामानुसार अहमद गञ्जका नाम पड़ा है। चौतरा मकान तीन खनका है। प्रत्येक तल क्रमशः छोटा है और प्रत्येक तलमें ढालू छतका बरामदा है। यहां आजकल भी देशी वस्त्र प्रस्तुत होता जिसे यहांके अधिवासी अपने काममें लाते हैं। यहांके तांतियोंको दुर्भिक्षके समयमें भी सरकारी रिलीफ कार्यकी सहायता नहीं लेनी पड़ती है। यहां १८८५ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

दाउदपुत्र—सम्राट् अकबरके मरनेके बाद तथा नादिरशाहके अभ्युदयके मध्यकालमें ( १६०५-१७३९ ई० ) दाउद खाँके पुत्रगण बहुत प्रबल हो उठे थे। वे दाउदपुत्र नामसे ही प्रसिद्ध हो गए थे, यहां तक कि इनके सभी वंशधर 'दाउदपुत्र' कहलाते थे। कपड़ा बुनना तथा सैनिक वृत्ति ही इन लोगोंकी उपजीविका थी। शिकारपुर प्रान्तमें इनका प्रधान अड्डा था। भ्रमणशील जातिकी नाईं ये लोग कभी तो खाँपुरमें और कभी तराई, सक्कर आदि स्थानोंमें रहा करते थे।

महरोंके साथ अनेक युद्धके बाद दाउदपुत्रोंने उत्तर सिन्धप्रदेश पर अपनी गोटी जमाई। इस समय ये लोग एक प्रकार पुरुषानुक्रमसे सिन्धप्रदेश पर शासन करते रहे, किन्तु निकटवर्ती प्रदेशोंके शासनकर्त्ताओंके साथ इनका हमेशा युद्ध-विग्रह हुआ करता था। इसे शान्त करनेके लिए जहांगीरने सिन्धु प्रदेश पर अस्थायी राजप्रतिनिधि नियुक्त किया। पीछे दाउदपुत्रोंने १६५८ ई०से ले कर १७८० ई० तक सिन्धुप्रदेश पर शासन किया था,

दाउदपुर—प्रतापगढ़ जिलेका एक ग्राम। यहां दाउद खाँके बनाये हुए बहुतसे भग्नदुर्ग देखनेमें आते हैं। कहा जाता है, कि अलाउद्दीन खिलजीके समयमें ये सब दुर्ग बनाए गए थे

दाऊ ( हिं० पु० ) १ बड़ा भाई। २ कृष्णके ज्येष्ठ भ्राता, बलदेव।

दाऊद ( हिब्रु Daud )—दूसरा नाम डेभिड (David=प्रिय) इस्रायलके द्वितीय राजा। ये जुडा जातिभुक्त थे तथा बैथलम् निवासी जेसीके नवम और सबसे छोटे लड़के थे। बचपनमें ये अपने पिताके मेषपालकी रक्षा करते थे। इस समय पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें सामुयेलने इन्हें इस्रायलके राजपद पर अभिषिक्त किया। इस्रायलके राजा सल उस समय भी जीवित थे, शायद इस अभिषेकका विषय नहीं जानते होंगे। दाऊदकी वीणा बजानेकी अलौकिक शक्ति थी। सल बीच बीचमें पागल हो जाया करते थे, तभी दाऊद सुमधुर वीणाध्वनि सुना कर उनकी उन्मत्तता दूर करते थे। पीछे इस्रायेललोगोंके साथ जब फिलिष्टाइनोंका झगड़ा उपस्थित हुआ तब सलने ससैन्य युद्धयात्रा की। दोनों पक्षोंने जब युद्ध-क्षेत्रमें कदम बढ़ाया, तब फिलिष्टाइनोंमेंसे एक दुर्द्धर्ष बलशाली महाकाय गोलियथ नामक वीरने इस्रायेलोंको युद्ध करनेके लिए ललकारा। इस पर जब किसीने कदम बढ़ानेका साहस न किया, तब दाऊदने स्वयं गोलियथके सामने हो उस पर पत्थर फेंका जिससे वह जमीन पर गिर पड़ा और तब तलवारसे उसका सिर काट डाला। इस अलौकिक वीरत्वसे इस्रायेलाइटगण सबके सब दाऊदके पक्षपाती हो धन्य धन्य कहने लगे। सलने भी लड़ाई जीत कर पहले दाऊदकी खूब तारीफ की थी, पर पीछे उन्हें सभीके प्रेमभाजन देख उनकी पहली प्रीति शीघ्र ही उत्कट हिंसामें पलट आई। फिर दाऊद सलके सिंहासन पर बैठेगा, इस चिन्तासे सुलगती हुई आग और धधक उठी। उन्होंने दाऊदको मार डालनेका संकल्प किया। किन्तु उनकी एक भी चाल न चली—दाऊदका एक बाल भी बाँका कर न सके। पीछे इस विवादको निबटानेके ख्यालसे सलने अपनी लड़कीको उन्हें ब्याह दिया। लेकिन वह ईर्षानल कब बुझनेको था—मनके भीतर जल रहा था। सल पुनः दाऊदको मारनेके लिए कटिबद्ध हुए। दोनोंमें घनघोर लड़ाई छिड़ी। दाऊद यथासाध्य आत्मरक्षा करने लगे। लड़ते समय इन्होंने सलको दो बार अपने हाथमें पा कर भी उन्हें न मारा। अन्तमें युद्धक्षेत्रमें सल मारे गये और लड़ाईका भी अवसान हुआ।

पीछे दाऊद जूडाके सिंहासन पर बैठे। हेबरनमें उनकी राजधानी बसाई गई। जूडा छोड़ कर और दूसरी दूसरी जातियोंने सलके पुत्र इश्बोशेथको अपना राजा मान कर इस बातकी घोषणा कर दी। इश्बोशेथके मारे जाने पर दाऊद समूचे राज्यके अधिकारी हुए और १०१५ से १०५५ ई० तक राज्य कर आप पञ्चत्वको प्राप्त हुए। राजगद्दी पर बैठनेके बाद ही वे सबसे पहले जेबुसाइटोंके साथ लड़नेको उतारू हो गये और उन्हें परास्त कर उनका प्रधान नगर जेरुसालेम ले लिया तथा वहां अपना वासस्थान स्थापित किया। इसी नगरमें यहूदियोंका प्रधान अड्डा था। बाद दाऊद फिलिस्ताइन, आमेलकाइट, एडोमाइट, मोयाबाइट, अमो-

हाइट और सिरीय आदि जातियोंको युद्धमें परास्त कर एक ओर इडफ्रेतिससे भूमध्यसागर तक और दूसरी ओर सिरोयसे लोहित सागर तक ५० लाख प्रजापूर्ण विस्तीर्ण साम्राज्यके अधीश्वर हुए। किन्तु इन्होंने बाथसेवाका हरण और उसके स्वामीको विनष्ट कर अपने विजय-गौरवको कलङ्कित किया। वे वाणिज्यसे उत्कर्ष साधनमें उत्साही तथा उसके उन्नति-कल्पमें विशेष मनोयोगी थे। उनके राजत्वमें यहूदियोंने शिल्प, वाणिज्य, धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति, काव्य, इतिहास, सङ्गीत, आदि की अच्छी उन्नति की थी। राज्यशासनके लिये हमेशा एक दल सेना तैयार रहती थी। सुचारुरूपसे राज्य चलानेके लिए उन्होंने बारह शासनकर्त्ताओंकी नियुक्त कर हरएक पर इस्रायलकी विभिन्न जातियोंका शासन भार सौंपा।

जो कुछ हो, दाऊद निरापद्से राज्यसुखका भोग कर न सके थे। उन्हें अनेक विपत्तियोंका सामना करना पड़ा था। उनका पुत्र भी विद्रोही हुआ था और पीछे मारा भी गया। इससे उनका अवशिष्ट जीवन बहुत उदासीनतासे बीतता था, इसमें सन्देह नहीं।

दाऊद केवल युद्धवीर, राजनीतिविद् और राजा थे, सो नहीं, उनकी कवित्व शक्ति भी प्रशंसनीय थी। उनका बनाया हुआ स्तुति गीतिपुस्तक ( Book of psalm ) ईसाई जगत्में अतुलनीय है।

दाऊदका जीवन निष्पाप नहीं था। दुर्दम इन्द्रियोंके वशीभूत हो कर वे अपनी अधिक समय भोगविलासमें बिताया करते थे। इन सब दुष्कृतोंसे वे हमेशा जर्जर और व्याकुल रहते थे। वे कहते थे, कि गतपाप उनके हृदयमें हरवख्त जाग्रत् रहता है। किन्तु इतने पापी तथा भ्रमसङ्कुल तामसी होने पर भी उनका अकपट हृदयावेग इतिहासमें अतुलनीय है। दुर्दान्त रिपुओंसे उन्मार्गी किये जाने पर भी उनकी हृदयवत्ता लुप्त न हो सकी थी। अनुतापानलसे उनका हृदय दग्ध हो कर पवित्र रहता था। कोई पाप करनेमें वे हिचकते नहीं थे और न करके उसे छिपाते ही थे। दाऊदका बनाया हुआ जो धर्मगीत है, उसे पढ़नेसे ही ज्ञात होता है, कि किस प्रकार इन राजकविकी सरल आत्मा भविष्यत्की भीषण विभीषिकासे भीत, निबिड़ तमसाच्छन्न सन्देहसे आन्दोलित और अज्ञात आपत्पातकी आशङ्कासे आतङ्कित होकर विघूर्णित होती है, अन्तमें फिर किस प्रकार उस महा अन्तर्विप्लवकी भीषण झटिकाके अपगत होनेसे दुःख, शोक, सन्ताप, मर्मपीड़ा द्वारा विशोधित ईश्वर-प्रेम उनके हृदयमें उदित हुआ है। ईश्वरमें ध्रुव, अटल और ऐकान्तिक भक्तिसूचक इस प्रकारका गीत बाइबिलमें बहुत कम देखनेमें आता है। दाऊदके सुखदुःखमय अनेक घटनापूर्ण जीवन-चरित उनके गीतसे ही साफ झलकता है। बहुतसे ऐसे धर्मविद् ईसाई हैं जो दाऊदको योशुख्रृष्टका एक स्वरूप मानते हैं। बाइबिलमें दाऊदका खूब लम्बा चौड़ा इतिहास वर्णित है।

दाऊदखानी ( फा॰ पु॰ ) १ एक प्रकारका चावल। २ बढ़िया सफेद गेहूं।

दाऊदिया ( अ॰ पु॰ ) १ एक प्रकारका गेहूं। २ एक प्रकारकी आतिशबाजी।

दाऊदी ( अ॰ पु॰ ) बहुत नरम और सफेद छिलकेका एक प्रकारका गेहूँ।

दां ( हिं॰ पु॰ ) बार, दफा, बारी।

दां ( फा॰ पु॰ ) ज्ञाता, जाननेवाला।

दांक ( हिं॰ स्त्री॰ ) दहाड़, गरज।

दांकना ( हिं॰ क्रि॰ ) गरजना, दहाड़ना।

दांग ( फा॰ स्त्री॰ ) १ छः रत्तीकी तौल। २ दिशा, ओर। ३ छठां भाग।

दांग ( हिं॰ पु॰ ) १ नगाड़ा, डंका। २ टीला, छोटो पहाड़ी। ३ पहाड़का शिखर।

दांगर ( हिं॰ पु॰ ) डांगर देखो।

दांगी ( हिं॰ स्त्री॰ ) जुलाहोंकी एक लकड़ी जो कंघीमें लगी रहती है।

दांडना ( हिं॰ क्रि॰ ) १ दण्ड देना, सजा देना। २ जुरमाना देना।

दांडिक ( हिं॰ पु॰ ) जल्लाद।

दांत ( हिं॰ पु॰ ) दन्त देखो।

दांतघुंघुनी (हिं॰ स्त्री॰) पोस्तेके दानेकी घुंघनी। यह बच्चेका पहला दांत निकलने पर बांटी जाती है।

दांतली ( हिं॰ स्त्री॰ ) काग, डाट।

दाँता (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका कंगूरा जो दाँतके आकारका होता है।

दाँताकिटकिट (हिं॰ स्त्री॰) १ वाग्‌युद्ध, झगड़ा। २ गाली गलौज।

दाताकिलकिल (हि॰ स्त्री॰) दाँताकिटकिट देखो।

दाँतिया (हिं॰ पु॰) रेहका नमक जिसे पोनेके तंबाकू में उसको तेजी बढानेके लिये डालते हैं।

दाँती (हिं॰ स्त्री॰) १ घास या फसल काटनेका हंसिया। २ नावके घाट पर गड़ा हुआ बड़ा खूंटा। इससे नावका रस्सा बाँध दिया जाता है। ३ भिड़की जातिका एक काला कीड़ा। ४ दाँतोंकी पंक्ति। ५ दो पहाड़के बीचका तंग स्थान, दर्रा, घाटी।

दांना (हिं॰ क्रि॰) पकी फसलके डंठलोंको दाना अलग कर देनेके लिये रौंदवाना।

दांवनी (हिं॰ स्त्री॰) दामिनी नामका आभूषण।

दाँवरी (हिं॰ स्त्री॰) रज्जु, डोरी।

दाक (सं॰ पु॰) ददाति दक्षिणामिति दा-क। १ यजमान। २ दाता।

दाक्ष (सं॰ पु॰) दक्षस्येदं अण्। १ दक्षसम्बन्धीय यज्ञादि। दाक्षीणां सङ्घः अङ्को लक्षणं वा इञन्तात् अण्। २ दाक्षिसमुदाय। ३ उसका अङ्क। ४ उसका लक्षण। दाक्षेः छात्राः 'इञश्च' इति अण्। ५ दाक्षिका छात्रसमूह। दाक्षेरागतः अण्। (त्रि॰) ६ दाक्षिसे आगत, दाक्षियज्ञसे आया हुआ। ७ दाक्षिका दण्ड प्रधान मानवका अन्तेवासी।

दाक्षक (सं॰ पु॰) दाक्षेरिदं गोत्रचरणात् वुञ्। १ दण्ड प्रधान मानवका अन्तेवासी।

दाक्षायण (सं॰ पु॰ स्त्री॰) दक्षस्य गोत्रापत्यं इञ्, युनि फक्। १ दक्षका युवा गोत्रापत्य। २ सुवर्णादि अलङ्कार, सोने आदिका आभूषण। ३ भूषण, गहना। ४ दक्षकृत यज्ञभेद, दक्ष द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ-ब्राह्मणमें है। (त्रि॰) ५ दक्षसे उत्पन्न। ६ दक्षके गोत्रका। ७ दक्ष सम्बन्धी।

दाक्षायणभक्त (सं॰ पु॰) दाक्षायणस्य विषयो देशः एषु कार्यादित्वात् भक्तल्। दाक्षायण यज्ञ सम्बन्धीय देशरूप विषय।

दाक्षायणयज्ञ (सं॰ पु॰) दाक्षायणस्य यज्ञः। दक्षयज्ञ।

दाक्षायणिन् (सं॰ त्रि॰) दाक्षायण-इनि। सुवर्णयुक्त, सोनेका।

दाक्षायणी (सं॰ स्त्री॰) दक्षस्य अपत्यं स्त्री दक्ष-फिञ्, गौरा॰ ङीष्। १ अश्विनीसे लेकर रेवती तक २७ नक्षत्र। २ दुर्गा। ३ रोहिणी नक्षत्र। ४ दक्षकी कन्या। ५ दन्ती वृक्ष। ६ काश्यपकी स्त्री, अदिति। ७ कद्रु। ८ विनता। (भारत १।२२।५)

दाक्षायणीपति (सं॰ पु॰) दाक्षायणीनां अश्विन्यादि नक्षत्राणां पतिः ६-तत्। चन्द्रमा।

दाक्षायणीरमण (सं॰ पु॰) रमयतीति रम-ल्यु। चन्द्रमा।

दाक्षायण्य (सं॰ पु॰) दाक्षायण्यां अदितौ भवः यत्। आदित्य, सूर्य।

दाक्षाय्य (सं॰ पु॰) दक्षाय्य एव स्वार्थे अण्। गृध्र, गिद्ध।

दाक्षि (सं॰ पु॰ स्त्री॰) दक्षस्य गोत्रापत्यं इञ्। दक्षका अपत्य, दक्षको सन्तान।

दाक्षिकन्था (सं॰ स्त्री॰) दाक्षीणां कन्था, (संज्ञायां कन्थोशीनरेषु। पा २।४।२०) इति उशीनरत्वाभावात् न क्लीवता। वाह्लीक देश।

दाक्षिकर्ष (सं॰ पु॰) ग्रामविशेष, एक गांवका नाम।

दाक्षिकूल (सं॰ क्ली॰) एक ग्रामका नाम।

दाक्षिण (सं॰ पु॰) दक्षिणा प्रयोजनमस्य अण्। क्रतु-ग्रहाङ्ग होमभेद, एक होमका नाम। (त्रि॰) २ दक्षिणा सम्बन्धी।

दाक्षिणक (सं॰ पु॰) दक्षिणाया कर्मसमाप्तौ द्रव्यदान-रूपायां क्रियायां प्रसृतः, दक्षिणमार्गेण चन्द्रलोकं गच्छति वा वुञ्। १ दक्षिणातत्पर। चन्द्रलोकगामी। बन्धविशेष, बन्धके तीन भेद हैं,—प्राकृतिक, वैकृतिक और दाक्षिणक। बन्ध देखो।

दाक्षिणशाल (सं॰ त्रि॰) दक्षिण-शालायां भवः। दक्षिण-द्वारी गृह, वह घर जिसका दरवाजा दक्षिणकी ओर हो।

दाक्षिणात्य (सं॰ त्रि॰) दक्षिणा दक्षिणस्यां दिशि भवः दक्षिणा-त्यक् (दक्षिणा पश्चात् पुरसस्त्यक्। पा ४।२।९८) १ दक्षिण देशोद्भव, जो दक्षिण देशमें उत्पन्न हो। २ दक्षिणादिकस्थ, दक्षिणदिशाका। (पु॰) ३ नारिकेल, नारियल। ४ दक्षिण

देशवासी। ५ दक्षिण देशके अन्तवर्ती। ६ दक्षिणराज्य।

भारतवर्षके दक्षिणांशको साधारणतः दाक्षिणात्य कहते हैं। विन्ध्य पर्वतमालाके भारतवर्षके ठीक मध्यस्थलमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर विस्तृत होनेसे भारतवर्ष उत्तर और दक्षिण खण्डोंमें स्वभावतः विभक्त हो गया है। उत्तरखण्डको आर्यावर्त्त और दक्षिण खण्डको दाक्षिणात्य कहते हैं। आर्यावर्त देखो। जिस प्रकार उत्तरखण्डका आर्यावर्त नाम हुआ है, उसी प्रकार दाक्षिणात्य नाम किसी कारणसे नहीं पड़ा है। केवल दक्षिण दिशामें रहनेसे ही लोग इसे दाक्षिणात्य कहते हैं। एक समय नर्मदा नदीसे कृष्णा नदीके अन्तर्गत भूखण्ड मात्रको दाक्षिणात्य कहते थे। किन्तु कालक्रमसे वह परिवर्तित हो गया है।

दाक्षिणात्य भारत एक वृहत् उपद्वीप है। इसके पश्चिममें अरबसागर, दक्षिणमें भारत महासागर, और पूर्वमें बङ्गोपसागर; केवल उत्तरमें विन्ध्यपर्वतमाला और आर्यावर्त नामक उत्तरभारत है। यह उपद्वीप त्रिकोणाकार है। इसके शृङ्गका नाम कुमारिका वा कन्याकुमारी अन्तरीप है जो सर्वदक्षिणांशमें भारत महासागरमें प्रविष्ट हुआ है, तथा जिसका भूमिभाग विन्ध्यपर्वतमाला है। यह त्रिभुजाकृति दाक्षिणात्य स्वभावतः एक दुर्भद्य दुर्गवत् रचित हैं। इसके उत्तरमें जिस तरह विन्ध्य पर्वत माला पूर्वपश्चिममें एक समुद्रकूलसे दूसरे समुद्रकूल तक विस्तृत है, उसी तरह पश्चिम पार्श्वमें समुद्रकूलसे थोड़ी दूर पर उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत लगभग ४ हजार फुट ऊंचा पश्चिम घाटका सह्य पर्वतमाला है। और उसी तरह पूर्वमें भी पूर्वघाट पर्वतमाला और दक्षिणमें दोनों पर्वतोंके सङ्गमस्थान पर नीलगिरि और मलयपर्वत है। पश्चिमघाटके पश्चिममें समुद्रके किनारे जिस प्रकार अप्रशस्त भूखण्ड उत्तर दक्षिणमें विस्तृत है उसी प्रकार पूर्वघाटके पूर्वमें भी पश्चिमकी अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत भूखण्ड है तथा नीलगिरि और मलयके दक्षिणमें भी वैसा ही है। दाक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलको मलवार उपकूल और पूर्व उपकूलको करमण्डल उपकूल कहते हैं। यहाँ जितनी नदियाँ हैं सभी पूर्वकी ओर पूर्वघाटके मध्य होती हुई बङ्गोपसागरमें गिरी हैं। प्रधान प्रधान नदियोंमें नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा, पेन्नार और कावेरी बड़ी और श्रेष्ठ है। इनमेंसे पहली दो नदियाँ पश्चिमकी ओर प्रवाहित हो कर अरब सागरमें गिरती हैं। पूर्वोपकूलकी भूमि दलदल है। लेकिन पश्चिमोपकूलकी वैसी नहीं है। यहां कहीं कहीं पश्चिमघाटका एक एक शाखा पर्वत समुद्रपृष्ठसे बहुत ऊंचा है तथा समुद्रोपकूल तक फैला हुआ है यहाँ तक कि कोई कोई पर्वत ऐसा है जो समुद्रके जलमें प्रविष्ट हो गया है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें आर्यावर्त्तका जितना वर्णन पाया जाता है, उतना दाक्षिणात्यका नहीं। १३वीं शताब्दीमें मुसलमानोंकी गोटी जमनेके पहले प्रत्नतत्त्वविदोंको गवेषणासे तथा प्राचीन मन्दिर दुर्गादिके अस्तित्वसे ही यहांका कुछ कुछ इतिहास जाना जाता है। हिन्दू पुराणादि तथा बौद्ध ग्रन्थादिसे भी कुछ हाल मालूम होता है। रामायणोक्त रामकर्त्तृक दाक्षिणात्यप्रवेशके पहले दाक्षिणात्यके विषयमें उतना अधिक विवरण नहीं मिलता। रघुवंशमें रघुके दिग्विजय-उपलक्षमें दाक्षिणात्यका जो विवरण पाया जाता है, उसे ठीक रामचन्द्रके पहलेका नहीं मानना ही युक्तिसङ्गत है, उसे रघुवंशके ग्रन्थकार कालिदासके समसामयिक मानना अच्छा है। रामायण महाभारतादिके समय दाक्षिणात्यके समस्तांशमें जितने मनुष्य रहते थे, उनका प्रमाण मिलता है।

ईसा जन्मके समयसे ले कर इस विषयका विचार करना सुविधाजनक है। १३वीं शताब्दीके पहलेका दाक्षिणात्यके सम्बन्धमें जो कुछ हाल मालूम है, वह हिन्दूशास्त्र, बौद्धशास्त्र, चीनपरिव्राजकोंका भ्रमणवृत्तान्त, प्राचीन खोदित लिपि और प्राचीन ग्रीक लोगोंके लिखित विवरणादि द्वारा जाना जाता है।

ग्रीक लोगोंके वर्णनसे ईसाजन्मका परवर्त्ती हाल कुछ कुछ जाना जाता है। ८०से ८८ ई०के बीच "पेरिप्लस" नामक ग्रीक लोगोंके वाणिज्य विवरणकी पुस्तक लिखी गई।* बहुतोंका मत है कि वह ग्रन्थ एसियासे लिखा गया है। पूर्व समयमें जब ग्रीक

* Indian Antiquary, Vol, VIII, 1879. p 107—108

लोग भारतवर्ष आते थे, तब उन्हें ग्रीससे निकल कर मिस्र, अरब, अफ्रिका, फारस, बेलुचिस्तान आदि देशोंके किसी किसी स्थानमें जहाज लगते थे। उक्त ग्रन्थमें उसका धारावाहिक वर्णन है। उसके बाद सबसे पहले भारतोपकूलमें जिन सब स्थानोंका उल्लेख है, उनका विवरण धारावाहिक रूपमें संक्षिप्त रीतिसे नीचे दिया जाता है। उससे पहली शताब्दीमें दाक्षिणात्यकी अवस्था कैसी थी, वह मालूम हो जायेगा।

१। स्काइथिया (Skythia) (शक) देशके उपकूलवर्त्ती सिन्थस् (Senthas) नदीका मुहाना—यही सिन्धु नदीका मुहाना है। पारस्य (Pasiees)-के अन्तर्गत पासिरा (Pasira) नामक छोटे शहरसे थोड़ी दूर पर बगिसर (Bagisara) नामका बन्दर था जो वर्त्तमान उर्मरा वा अरबा नामक अन्तरीपके ऊपर अवस्थित था। इस स्थानसे ग्रीकपोत सिन्धु मुहानेमें प्रवेश करता था। यहांका जल सफेद है। सफेद जल देख कर ही नाविक लोग सावधान हो जाते थे, क्योंकि यहांके समुद्रजलमें अजस्र सर्प बहते हुए दीख पड़ते थे तथा थोड़ी दूर पर फारसकी ओर एक प्रकारका विभिन्न जातीय 'ग्राइ' (Graai=ग्राह) कुम्भीर पाया जाता था। मध्य मुखके ऊपर 'बर्बरिकन्' (Barbarikon) नामका एक विख्यात वाणिज्य बन्दर था।*

२। मीन नगर (Minnagar) यह नगर उक्त बन्दरके सामने एक क्षुद्र द्वीप पर अवस्थित था। इसी नगरमें उस समय शकराज्यकी (Skythio) राजधानी थी। पारद राजगण (Parthian Princes) उस समय यहां राज्य करते थे। इसके छोटे छोटे राज्योंमें युद्ध विग्रह सदा हुआ करता था।

३। आरियकि (Ariake) 'मोम्बरोस' (Mombaros) प्रदेशके 'आरियकि' (Ariake) एक विभागका नाम है, 'आरियकि' टलेमीके मतानुसार 'लारिकि' नामसे प्रसिद्ध है। इयुलके मतसे 'लारिकि' 'लाट' वा 'लार'देश है, गुजरातका अधिकांश प्राचीन कालमें लाट नामसे मशहूर था। पण्डित भगवान्लाल इन्द्रजीके मतानुसार 'आरियकि' संस्कृत 'अपरान्तिक' शब्दका ग्रीक नाम है, पश्चिम समुद्रपृष्ठवर्त्ती प्रदेश पुराणमें 'अपरान्त' नामसे वर्णित हुआ है। 'मोम्बरोस'से ही वर्त्तमान 'मुम्बई' वा 'बम्बई' शब्द उत्पन्न हुआ।

४। अबिरिया (Aberia) मोम्बरसके दूसरे देशके मध्य भागमें स्काइथियाका अबिरिया अंश अवस्थित है। यही संस्कृत 'आभीर' देश है। इस आभीरदेशके सम्मुखवर्त्ती समुद्रोपकूल हो 'सुरस्त्रेणि' (Surostiene) संस्कृत सुराष्ट्र है। सुराष्ट्र देशकी राजधानीका नाम भी उस समय मीननगर था। इसी मीननगरसे बहुत कपड़े बेचनेके लिये बरुगज (भरुकच्छ) शहरमें भेजे जाते थे।

५। अष्टकप्र (Astaka pra) यह बरुगज शहरकी (Barugaga वर्त्तमान भरोचेके) विपरीत दिशामें अवस्थित है। इस नगरका संस्कृत नाम इयुलके मतानुसार 'हस्तकवप्र' वा 'हस्तवप्र' है। यही वर्त्तमान भावनगरके निकटवर्त्ती 'हाथव' नामका स्थान है।

६। मइ (Moais) अष्टकप्रकी एक नदी। इस नदीका मुख बहुत विस्तृत है और बाईं ओर 'बइओनिस' नामका एक द्वीप है। "मइस्" नदी वर्त्तमान 'मही' है और द्वीप शायद 'पेरम्' होगा†।

७। नम्मदोयस् (Namnadios)—उक्त द्वीपसे पूर्वकी ओर अग्रसर हो कर इसी नामकी एक नदीमें मिल गई है और बरुगज शहरको चली गई है। यही नदी वर्त्तमान नर्मदा नदी है।

८। बरुगज (Barugaza) शहर यही नर्मदा तीरस्थ एक प्राचीन विख्यात बन्दर है। इसका वर्त्तमान नाम भरोच है। अध्यापक विल्सनके मतसे यह 'भृगुचेत' वा 'भृगुकच्छ' शब्दका अपभ्रंश है। बृहत्संहितामें यह भरुकच्छ नामसे प्रसिद्ध है। भृगुवंशीके लोग जहां रहते थे, वही भृगुचेत है। गुजरातमें, कच्छ प्रदेशमें और भरोच जिलेमें आज भी अनेक भार्गव ब्राह्मण वास

* Indian Antiquary, Vol. VII p. 138 151

† Indian Ant, Vol VIII, 1879, 141 'पेरिप्लुस"में जो क्रमशः दक्षिणकी ओर अग्रसर होनेकी वर्णना देखी जाती हैं, उससे नर्मदाके उत्तरवर्ती स्थानका बोध होता हैं, ऐसा होनेसे 'मइस' 'मही' नहीं हो सकता। लेकिन यह सम्भव है, कि मही तक घूम कर जहाज उस समय नर्मदामें प्रवेश करता था।

करते हैं। ये लोग अभी दरिद्र और मूर्ख हो गये हैं। मूर्खोंके कहनेसे 'भृगुक्षेत्र' क्रमशः 'भृगुक्षत्र' 'भृगुकच्छ' 'भृगुकक्ष' 'भरुकच्छ' हो गया है। ग्रीक लोगोंने इस भरुकच्छका नाम 'बरुगज' रखा है।

९। दखिनाबद्स् (Dakhinabads) वही देश है जो बरुगजसे दक्षिणमें अवस्थित है। इसका संस्कृत नाम 'दक्षिणापथ' है। इस देशका अभ्यन्तर भाग मरुमय तथा पार्वत्य है एवं व्याघ्रादि श्वापद, भीषण सर्प और वानरादिसे परिपूर्ण है। इसको दूसरी ओर गङ्गातीरवर्त्ती जनपद है।

१०। 'पैठान' (Paithan)—यह शहर बरुगजसे दक्षिण २१ दिनकी दूरी पर अवस्थित है। इसके पूर्वमें दश दिनके रास्ते पर 'तगर' (Tagara) शहर पड़ता है। ये दोनों शहर उस प्रान्तमें सबसे प्रधान वाणिज्यस्थल हैं। यह 'पैठान' प्रतिष्ठान शब्दका अपभ्रंश है; तथा तगर वर्त्तमान 'जुनार' है। इन दो स्थानोंमें पहले वस्त्र-शिल्पका बड़ा ही प्रादुर्भाव था।

११। लिमारिक वा दिमारिक (Limurike or Dimurik) वा दमिरिक दाक्षिणात्यके पूर्ववर्त्ती एक विभाग है। शायद वही तामिल वा द्राविड़ देश है। तामिल देखो।

१२। काल्लिएन (Kallıena) वर्त्तमान 'कल्याण'। यह अभी बम्बईके निकट अवस्थित है। एक समय इसका नाम खूब मशहूर था। अनेक खोदित लिपियोंमें इसका उल्लेख है। इसके सिवा नौसरिप (Nausaripa) वर्त्तमान सूरतसे १८ मील दक्षिणमें अवस्थित नौसरि नामका स्थान है। सोपूपर (Souppora) बमाईके निकटवर्त्ती सुपारा नामका स्थान है, पुराणमें इसे सूर्पारक कहा है। पूर्व-समयमें यहां तांबा और तिल उत्पन्न होता था तथा पोशाकके लिये अच्छे अच्छे कपड़े तैयार होते थे।

१३। सेमुल्ल (Semulla) इयुलके मतानुसार यह वर्त्तमान बम्बईसे २३ मील दक्षिण चेनवल वा चौल नामका बन्दर था, किन्तु पण्डित इन्द्रजीके मतसे यह वर्त्तमान 'चिमूला' है। अनेक खोदित लिपियोंमें इसका उल्लेख है।

उस स्थानके बादसे ले कर दमिरिकके निकट तक कई एक छोटे स्थानोंका उल्लेख है, जो वर्त्तमान गोआसे बम्बईके मध्य अवस्थित थे। उनमेंसे कुछ ये हैं—हिप्पोकौर (Hippokoura) वर्त्तमान 'घोड़ा बन्दर', मन्दगर (Mandagaı) वर्त्तमान 'राजपुर', पलैपतम् (Palaipatm) वर्त्तमान 'बङ्कट' मेलिजेइगर (Melızeıgara) वर्त्तमान जयगढ़, बुजानटियम् (Buzantium) वर्त्तमान वैजयन्ती, तोगरोन (Togaron) वर्त्तमान देवगढ़, (यह विजयदुर्गके निकट है)। तुरन्नोसबोया (Turonnosboa) इयुलके मतसे यही वर्त्तमान बन्दा वा तिरकाल् नदी है। इस अञ्चलमें मालवनके निकटस्थ तीर पर प्रथम द्वीपका नाम सिन्धु दुर्ग है। इसके बाद ही एक छोटा द्वीप है जिसे अङ्गरेजोमें अभी बारट आइलैण्ड्स (Burut Islands) कहते हैं। इसीके बीच भिङ्गोर्ला (Vingorla) पर्वत विशेष प्रसिद्ध है। पेरिप्लसमें यह पर्वत सेसिक्रियेनइ (Sesıkrıenaı) नामसे वर्णित हुआ है।

१४। ऐगिदिअन (Aıgıdıon) गोआके निकटवर्त्ती ऐगिदियाई द्वीप है, किन्तु इयुलका कहना है, कि सदाशिवगढ़के दक्षिणवर्त्ती 'अञ्जद्वीप' है।

१५। नौर (Naura) यह दमिरिकके अन्तर्गत है। वर्त्तमान होनेवर कभी कभी ओनोर रूपमें लिखा जाता है। यह शरावती नदोके मुहानेके निकट अवस्थित है।

१६। नित (Nitıa)—यह दमिरिकका प्रथम बन्दर है। मुल्लरके मतानुसार यह वर्त्तमान मिरजानवा कोमता है, किन्तु इयुल इसे मङ्गलूर बतलाते हैं। इस स्थानके और कई एक जो स्थान हैं वे इस प्रकार हैं,—मुजिरिस (Muziris) नामक नगरमें आरियकि और मिस्रसे आगत जहाजोंके ठहरनेका स्थान था। कालडोएलके मतसे यही वर्त्तमान मुइरीकोट्टा (Muyırekotta) है। यह केरोबोत्रस (Kerobotres) राज्यमें अवस्थित है। तुण्डि (Tundı) इस राज्यको राजधानी और बन्दर थी। इसका वर्त्तमान नाम तुण्डी और नेलकुण्डा (Nelkunda) है, उस समय इसको गिनती प्रधानामें होती थी। यही वर्त्तमान किण्डा नामक स्थान है। केरोबोत्रसका संस्कृत नाम केरल-

पुत्र है। केरलपुत्रके राजगण जिस भूभागमें राज्य करते थे, वहां अभी मलयालम् भाषा प्रचलित है और वही प्राचीन केरल राज्य है। करौर ( Kuroura ) नगरमें वर्त्तमान करूर नगर उनकी राजधानी थी। नेलकुण्डा पाण्ड्य राजाओंके अधिकारमें था और मदुरा (तामिल) वा मथुरा (संस्कृत) शहरमें इनकी राजधानी थी। इस बन्दरके निकट नदीके मुहाने पर जहां जहाज आदि ठहरते थे, वह बकरी (Bakre) वा वेकार ( Bacare ) नामसे प्रसिद्ध था। इसका वर्त्तमान नाम मुल्लरके मतसे मर्करी है। उस समय वरुगज और नेलकुण्डा सरीखा बड़ा वाणिज्य स्थान दाक्षिणात्यमें एक भी न था।

१७। परलिया ( Paralia )—यह एक प्रदेशका नाम है। अभी इसे दक्षिण त्रिवाङ्कुड और दक्षिण तिन्नेवेली कहते हैं। यहां कुइलन कोलम्ब नगरके दक्षिण जो रक्त पर्वत है, पेरिप्लुस ग्रन्थमें उसका नाम पुरहोस ( Purrhos) रखा है. इसके समीप उस समय भी मुक्ता निकाली जाती थी। पाण्ड्य राजगण इस व्यवसायके अधिकारी थे।

१८। कोमार ( Komar ) वा कुमारिका अन्तरीप, दुर्गा कुमारीके नामसे ही इसका नामकरण हुआ है। आज भी यहां अनेक मनुष्य प्रतिमास भगवतीके उद्देशसे किसी विशेष दिनमें स्नानदानादि किया करते हैं। लेकिन प्राचीनकालमें जितनी धूमधाम हुआ करती थी, उतनी आज कल नहीं। उस समय यहां एक दुर्ग भी था। पेरिप्लुसकी लिखित ग्रीक नाविकोंके वर्णनसे जाना जाता है, कि उसी समय वह स्थान समुद्रका गर्भशायी होने पर था। आज कल उसका चिह्नमात्र भी दृष्टिगत नहीं होता है. केवल अन्तरीपसे कुछ दूर समुद्रगर्भमें अर्द्धजागरित एक पर्वतके ऊपर एक परिष्कार जलका कूप है। पेरिप्लुसमें कोलखोई या कोलकेई (Kolkhoi) नामक एक दूसरे स्थानका उल्लेख कुमारिकाके बाद पाया जाता है, वह कयाल नामक प्राचीन नगर है। यहां पर पाण्ड्य राजाओंकी प्रथम राजधानी थी। अभी वह समुद्रसे ३ मील दूर चला गया है। इसके तलदेशसे समुद्रके हट जाने पर इसीके अभावमें पोर्त्तुगीजोंने एक तुंतकुड़ि ( Tuticorin ) नामका एक नया बन्दर निर्माण किया है।



१९। कयालके दूसरे उपकूल पर आरगलु नामक प्रदेशका नाम पाया जाता है। इसके एक अन्तरीपका नाम कोरु (koru) था जिसके ऊपर आरगेरु (Argeiron) नामका एक नगर बसा हुआ था। यही प्राचीन भूवेत्ताओंका कोलिस नगर था। इसका वर्त्तमान नाम रामेश्वर है। बाद पूर्व उपकूल हो कर उत्तरकी ओर जानेमें निम्न कई एक विख्यात वाणिज्यस्थान मिलते थे—कामर ( Kamara ), टलेमी शायद इसीको खाबेरिस नदी तीरवर्त्ती कह गये हैं। यही वर्त्तमान कावेरी तीरवर्त्ती कावेरी पत्तन है, पदुकी ( Poduke ) यही पदुच्छेरि वा 'नूतन नगर' है, यही वर्त्तमान कालमें पुदिचेरी है।

२०। इसके बाद ताम्रपर्णी द्वीपका वर्णन है। मगधसे एक दल औपनिवेशिकने आ कर इस द्वीपका ताम्रपर्णी नाम रखा। तिन्नेवेली जिलेमें इस नामकी एक नदी है। मूल्लर अनुमान करते हैं, कि पहले इस नदीके किनारे मगधोंने उपनिवेश बसाया, पीछे यहांसे उठा कर सिंहल ले गये।

२१। मसलिन (Masalin ) गोदावरी और कृष्णाके मध्यगत भूभागका नाम है। टलेमीने इसे मसोलिया कहा है। संस्कृत नाम मौसल है। शायद मसलीपाटन ( मछलीपत्तन ) इसीका रूपान्तर है।

२२। इसके बाद दोशारिण (Dosorene) नामका एक दूसरा प्रदेश है। यह दशान और गोदावरी नदीके मध्य गत भूभागका नाम है। यही संस्कृत दशार्ण देश है। टलेमीने इस स्थलके अधिवासियोंके विषयमें कहा है, कि यहां भिन्न भिन्न जातिके लोग रहते थे, जिनमेंसे एक जातिका नाम किरादई (Kirradai) है। संस्कृतमें इसे किरात कहते हैं।

इसके बाद पेरिप्लुसमें गङ्गाके मुहानास्थित एक नगरका नाम मात्र लिखा है; भारतसम्बन्धमें कोई उल्लेख नहीं है।

इससे हम लोग यह देखते हैं, कि उस समय दाक्षिणात्यमें यथेष्ट सभ्यता थी, अनेक राज्य, नगर, बन्दरादि थे। यूरोपके साथ भी दाक्षिणात्यके अनेक जनपदोंका वाणिज्यसम्बन्ध था।

पहली शताब्दीमें दाक्षिणात्यकी यही अवस्था थी।

अब यह देखना चाहिये, कि ईसा जन्मके ५।६ सौ वर्षके भीतर इस देशकी कैसी अवस्था थी। ईसा-जन्मके ५।६ सौ वर्ष पहले बुद्धका समय था। उनके समयका दाक्षिणात्यका बहुत परिचय पाया जाता है।

महावंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि विजय नामके जो बङ्गराजकुमार सिंहल जा कर पहले पहल राजा हुए थे, उनका जन्म तथा बुद्धदेवका निर्वाणलाभ एक ही दिन हुआ था। विजय जब शत्रुसे विताड़ित होकर दक्षिणकी ओर चले, तब वे 'लाल' (राढ़)देशकी उपत्यका तथा पर्वतमाला पार कर अग्रसर हुए। उन्होंने नर्मदाके उत्तर सुदुगिरि, सुप्पार (सूर्पारक*) देशकी माल्लोगिरि (मलयगिरि) और दक्षिणमें पाण्डुगिरिको भी अतिक्रम किया था।

बौद्धग्रन्थोंमें महावंश, राजरत्नाकरी, राजावली, मिलिन्दप्रश्न, सद्धर्मालङ्कार, कायविरतिगीत और अनेक बौद्धजातक ग्रन्थादि, फाहियान और यूएनचुअङ्गका भ्रमण, ललितविस्तर, सद्धर्मपुण्डरीक इत्यादि ग्रन्थ तथा पाश्चात्य पण्डितोंकी गवेषणापूर्ण पुस्तकादि पढनेसे जाना जाता है, कि बुद्धके समयमें दाक्षिणात्य प्रधानतः दो खण्डोंमें विभक्त था, एक कृष्णानदीका उत्तरीय-खण्ड, दूसरा दक्षिणीय खण्ड। उत्तरीय खण्डमें (१) उड़ीसा और (२) कलिङ्ग ये दोनों राज्य तथा पूर्वांशमें (३) लाल (लाट) देश नर्मदाके दोनों कूलोंसे ले कर गुजरात तक विस्तृत था। (४) सुनापरान्तक (स्वर्णापरान्तक) वा अपरान्त, (५) अवन्ति और (६) नवभूवन ये सब पश्चिम कूलमें नर्मदाके निकट वर्त्तमान थे। फिर दक्षिणखण्डमें (७) रक्तचन्दनका देश (८) द्राविड़ (९) पाण्ड्य और मलय (१०) महिन्द्र (११) नागोदोपा (नागद्वीप) १२ महिलारट्ट ये कई एक राज्य थे। राजावलीमें बौद्ध धर्मविरोधी राज्योंमेंसे चोलराज्यका भी नाम है।

गोदावरीकी अववाहिकामें दाक्षिणात्यका साधारण नाम दक्षिणापथ था। उत्तर-पूर्व राज्योंके दक्षिणांशको हीरकक्षेत्र कहते थे। क्षीरनदी वा पल्लार-नदीकी अववाहिका ही द्राविड़ नामसे मशहूर थी। यह पूर्वघाट पर्वतमाला और पेन्नार-नदीकी दक्षिण अववाहिकासे लेकर चोलराज्यकी दक्षिणी सीमा तक विस्तृत थी।

इस समय नर्मदा नदीके उत्तरीय किनारे कोङ्कण प्रदेशसे (वेण) गङ्गा नदीके कूल तक नागराजका राज्य विस्तृत था। श्रावस्तीसे लौटते समय बुद्ध इस राज्यमें पहुंचे थे। काम्बे उपसागरके पश्चिमांशमें नर्मदाकी खाड़ीके ऊपर लाल (लाट) देश अवस्थित था और एक दूसरा लाल (राढ़) बङ्गराजाके अधीन रहा।* नर्मदाकी उत्तर अववाहिकाके निकट उज्जयिनी वा अवन्ति राज्यका उल्लेख है। यह राज्य आर्यावर्त्तान्तर्गत होने पर भी दाक्षिणात्यके साथ इसकी घनिष्ठता थी।

गोदावरीकी उत्तरीय अववाहिका पर अश्मक और मूलक राज्य था। गुहालिपिमें इसका उल्लेख है। 'मूलक' राज्य ही पौराणिक 'मौलिक' राज्य है। गोदावरीके दोनों किनारे तथा डेल्टामें कलिङ्गराज्य था। कृष्णा नदीके पूर्वांशके उत्तरी किनारे वर्त्तमान विदर और गोदावरीकी मञ्जिरा नामक शाखा-नदीके कूल तक मञ्जरिक नामक नागराज्य था। बुद्धने इस देशके नागराजको अपना दर्शन दिया था।

दक्षिणांशमें पाण्ड्यराज ही एक मात्र पराक्रान्त सुव्यवस्थित राज्य था। यह राज्य वर्त्तमान मदुरा और तिन्नेवेली जिला तक विस्तृत था।

सिंहलद्वीपमें भी तीन नागराज्य और तीन यक्षराज्य थे। सिंहलद्वीपके समीप मणिद्वीपमें भी नागाधिकार था।

७वीं शताब्दीके ग्रन्थोंमें ओड्र, दक्षिणकोशल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, प्राचीन कलिङ्ग, मालव, भरुकच्छ (भृगुकच्छ वा चेत्र), धनकटक (कृष्णा-नदीके दक्षिणांशमें अवस्थित) द्राविड़ (राजधानी काञ्चीपुर), मालकूट (राजधानी कोङ्कणपुर), आदि राज्योंमें बुद्धके भ्रमणकी बातें लिखी हैं।

इन सब नगरोंमेंसे लालदेशमें सिंहपुर (सिंहनुवर वा सिंहपुरनुवर), सुनापरान्तदेशमें सागलनुवेर, भरुकच्छ (भरोच), उज्जयनी, अलक, प्रतिष्ठान, गङ्गनदी (ग्राम), सूर्पारक नगर, मलुयाराम (ग्राम;

* महाभारतीक देश।

* Turner' Mahavamso, p, 44—45.

कलिङ्ग देशमें अश्मक और मौलिक, दक्षिणा पथमें माहिष्मती*, मालकूट राज्यमें कोङ्कणपुर, द्राविड़ राज्यमें काञ्चीपुर और दक्षिण मथुरा (मदुरा) था।

बन्दरादिमें भरुकच्छ, सिंहपुर (बङ्गराजपुत्र विजयने इस नगरसे सिंहलको यात्रा की), स्वागल (विजयके मरने पर उनका भतीजा सिंहासन पानेकी इच्छासे यहाँसे सिंहलको गये थे), सूर्पारक†, (इस स्थानमें सिंहल जाते समय विजयका जहाज ठहरा था), कलिङ्ग देशमें आजित्ता (Adzietta) ब्रह्मदेशीय बौद्धग्रन्थके मतानुसार बङ्गोपसागरमें जहाज ठहरनेका स्थान) आदिका उल्लेख है।

जलयानमें—"जनकजातक" ग्रन्थमें एक जहाजके नष्ट होनेकी कथा लिखी है, उसमें माझी, मल्लाह और आरोही मिला कर कुल ७ सौ मनुष्य थे। सूर्पारक-बोधिसत्त्व जिस जहाज पर चढ़ कर वाणिज्य करनेके लिये गये थे, उसमें उन्हें छोड़ कर और भी ७ सौ वणिक थे, ऐसा लिखा है। मेघवाहन-जातकमें एक जहाज पर ५ सौ मनुष्योंकी बात लिखी है। बुद्धप्रिय पूर्णके भाई तीन सौ मनुष्योंको साथ ले कर एक जहाज पर गये थे इत्यादि। इससे जाना जाता है, कि उस समय बहुत बड़े बड़े जहाज थे और दाक्षिणात्यके बन्दरमें आया जाया करते थे। वे सभी जहाज वायुके वेगसे चलते थे।

पण्य द्रव्योंका विषय सूर्पारक-बोधिसत्त्वके विवरणमें है। उन्होंने सभी स्थानोंसे सब प्रकारका द्रव्यसंग्रह किया था। रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, मणिमाणिक्यादि, सिंहलकी मुक्ता आदि द्रव्य साधारण पण्यके साथ सभी कुछ कुछ आते थे। स्वदल बङ्गराजकुमारने विजयको जब कुवेणी आहार्यदान किया, तब उन्होंने जहाज द्वारा चावल संग्रह कर दिया था। सुतरां उस समय चावलकी आमदनी और रफ्तनी भी थी। कभी कभी देशीय द्रव्य ले कर जिन विदेशीय द्रव्योंको बदलते थे उनमें चावल, धान, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, सुगन्धद्रव्य, औषध, शङ्ख, स्वर्ण, लोह तथा उसका द्रव्य, कपास, राङ्कव वस्त्र आदि ही प्रधान था।

*महाभारतोक्त राजा नीलकी राजधानी।

† यह भी महाभारतोक्त देश है। यह आधुनिक बेसिन नगरके निकट वर्त्तमान था।

बुद्धके समय जब दाक्षिणात्यमें इतना वाणिज्यव्यापार रहनेका प्रमाण मिलता है, तब यह स्पष्ट कह सकते हैं कि बुद्धके पहले कमसे कम ५ सौ वर्ष भी दाक्षिणात्यमें सभ्यता तथा राजादिको शृङ्खला थी। इस प्रकार ई० सन्‌के हजार वर्ष पहले भी दाक्षिणात्यमें जो सभ्यता थी वह बहुत कुछ प्रमाणित है इसके पहले महाभारतका समय था।

महाभारतके समय भी दाक्षिणात्यमें आर्यसभ्यता फैली हुई थी। उस समय कलिङ्ग, माहिष्मती, विदर्भ, द्राविड़ आदि स्थानोंमें क्षत्रिय राजाओंका राज्य था और दाक्षिणात्यके अनेक स्थान आर्योंके निकट पुण्यक्षेत्ररूपमें गिने जाते थे। वनपर्वके तीर्थयात्रा पर्वाध्यायमें इसका विलक्षण प्रमाण पाया जाता है।

किन्तु भारतीय युगमें भी दाक्षिणात्यके अनेक स्थान वन जङ्गलोंसे परिवृत्त थे। आर्यसभ्यता ज्यों ज्यों बढ़ती जाती थी, त्यों त्यों वनजङ्गल ग्राम नगरादिमें परिणत होता जाता था। इसके पहले हम लोग रामायण और उसके भी पहले वैदिक युगमें आ पहुंचे।

वैदिकयुगमें दाक्षिणात्यमें केवल अनार्य जातिका ही वास था, उस समयमें आर्यसभ्यता वहाँ फैली न थी। अगस्त्य ऋषिने ही पहले दाक्षिणात्यमें आर्यधर्म प्रचारका सूत्रपात किया तथा परशुराम और रामचन्द्रके यत्नसे अनार्य जातिमें आर्यसभ्यता प्रचारित हुई। रामायण पढ़नेसे मालूम होता है, कि यमुना नदीके दक्षिणसे ले कर समस्त गोदावरी प्रदेश तक दण्डकारण्य ही विस्तृत था। वहां राक्षस प्रभृति अनार्य जाति राज्य करती थी। उस समय राक्षस, वानर आदि असभ्य जातिगण तरह-तरहके फल, वृक्षोंसे समाकीर्ण ग्राम तथा गिरिदरीवेष्टित कुसुममय गुहाओंमें रहती थीं। उन लोगोंमें भी राजा थे, सामन्त थे तथा राज्यपरिचालनोपयोगी विधि-व्यवस्था भी थी। उनके बलविक्रमसे आर्य ऋषिगण बहुत भय तथा कष्ट पाते थे। आर्यावर्त्तवासी क्षत्रियोंकी सहायता लेते थे। क्षत्रिय राजगण भी दाक्षिणात्यके राजाओंकी उतनी उपेक्षा नहीं करते। राजर्षि जनकने सीता स्वयम्बरके समय दाक्षिणात्य-राजाओंको भी निमन्त्रित किया था—

"दाक्षिणात्यानरेन्द्रांश्च सर्वानानय मा चिरम् ॥"

(रामा० १।१२ सर्ग)

दाक्षिणात्यवासी अनार्य जातिके उपद्रवकी कथा रामायणमें इस प्रकार लिखी है—

"दृश्यन्त्यतिवीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि।
नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैरसुखदर्शनैः ॥
अप्रशस्तैरशुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान्।
प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्रमनार्याः पुरुषर्षभः ॥
तेषु तेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च।
रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः ॥

(रामा० २।११६ सर्ग)

किसीका मत है, कि ऐतरेयब्राह्मणमें विश्वामित्रके पुत्र अंध्रका उल्लेख है। इसी अंध्रसे दाक्षिणात्यके आन्ध्र वा आन्ध्रजनपदका नामकरण हुआ है। इससे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ऐतरेयब्राह्मणके समयसे ही दक्षिणापथवासी अनार्य जातिके साथ आर्य जातिका संस्रव हुआ था। रामायणमें दाक्षिणात्यके अन्तर्गत पाण्ड्य, चेर और चोल इन तीन प्रधान जनपदोंका उल्लेख है। हरिवंशके मतसे ययातिके पुत्र तुर्वसुके वंशमें पाण्ड्य, केरल, कोल और चोल ये चार उत्पन्न हुए थे।

उपरोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है, कि अंध्र, पाण्ड्य, चोल आदि क्षत्रियगणने ही संस्कारभ्रष्ट, जातिच्युत और समाजच्युत हो कर दाक्षिणात्यमें प्रवेशपूर्वक अनार्य समाजमें आधिपत्य फैलाया तथा अधिक दिन तक अनार्य जातिके साथ रह कर अनार्यधर्म और अनार्य भाषा ग्रहण की। उनके वंशधर पैतृक आर्यभाव और आर्य भाषा कुछ समय तक भूल गये थे।

१ली शताब्दीमें दाक्षिणात्यमें कैसी समृद्धि और सभ्यता थी, उसका पाश्चात्य ग्रन्थोंसे पता लगता है। उस समय दाक्षिणात्यमें शाह, आंध्र, काण्व आदि राजगण राज्य करते थे। इनका अधःपतन होने पर नल, मौर्य, कदम्ब, सेन्द्रक, कलचूरी, गङ्ग, अलूप, लाट, मालव, गुर्जर, पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, होयसाल, यादव आदि वंशीय राजाओंका आधिपत्य फैल गया। कोङ्कण और कराडमें शिलाहार, सौन्दत्ति, रट्ट, हाङ्गल और गोआमें कदम्ब, येलबुर्गामें सिन्द, गुत्तलमें गुप्त, महिसुरमें कोङ्गु, ओरङ्गलमें गणपति आदि सामन्त राजगण भी एक समय प्रबल हो उठे थे।

१३वीं शताब्दी तक समस्त दाक्षिणात्य हिन्दू राजाओंके शासनाधीन था। १२९०से १३०० ई०के मध्य दिल्लीश्वर अलाउद्दीन् खिलजीने महाराष्ट्र, तैलङ्ग और कर्णाट पर आक्रमण किया। १३३८ ई०में महम्मद तुगलकने दाक्षिणात्यमें हिन्दू प्रभावको चूर कर डाला। इसके कुछ दिन बाद ही वाह्मणीवंशका अभ्युदय हुआ। इनके प्रबल प्रतापसे तैलङ्गके तथा विजयनगर वा कर्णाटके हिन्दूराज्यका अवसान हो गया। कुछ समय बाद गृहविवादके कारण वाह्मनीराज्य विजयपुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा, बिदर और बेरार इन पाँच खण्डोंमें विभक्त हो गया। १६३० ई०के पहले ही अन्तिम दो राज्योंका अस्तित्व लोप हुआ। शेष तीन शाहजहान् और औरङ्गजेबके यत्नसे ही दिल्ली साम्राज्यमें मिला लिए गये। १७१० ई०में महाराष्ट्रोंने दाक्षिणात्यमें चौथ वसूल करनेका अधिकार पाया था। महाराष्ट्रनायकने सतारा राज्यका बसाया। पीछे सताराके राजाकी प्रकृत शासनभक्ति पूनाके पेशवाके हाथ लगी। शीघ्र ही महाराष्ट्रोंका पराक्रम कुछ कम हो गया।

दाक्षिणात्यके मुसलमानोंकी चेष्टासे हैदराबादमें निजामत राज्यका सूत्रपात हुआ। इस समय तुङ्गभद्राके उत्तरवर्त्ती राजा और सामन्तगण पेशवाकी तथा दक्षिणावर्त्ती राजा निजामकी अधीनता स्वीकार करते थे। पीछे महिसुर दोनों शक्तिकी अधीनता स्वीकार करता था, बाद वह हैदरअलीके हाथ लगा। इस समय केवल त्रिवाङ्कुड़के हिन्दूराज स्वाधीनता भोग कर रहे थे १८वीं शताब्दीमें दाक्षिणात्यकी ऐसी अवस्था थी। इस समय पोर्त्तुगीज, ओलन्दाज, फरासी और वृटिशजाति दाक्षिणात्यके उपकूलमें वाणिज्य करती थी। जिस समय महाराष्ट्र और निजाममें लड़ाई छिड़ी थी, उसी समय फरासी और वृटिशने दोनों पक्षोंकी सहायता देकर धीरे धीरे अपनी प्रभुता फैला ली। यथा समय वृटिशका भाग्य चमक उठा अभी प्रायः अल्पभूभाग छोड़ कर समस्त दाक्षिणात्य वृटिश गवर्मेण्टके शासनाधीन है।

अभी दाक्षिणात्य प्रधानतः मन्द्राज प्रेसिडेन्सी,

बम्बई प्रेसिडेन्सीका अधिकांश, हैदराबाद, महिसुर, त्रिवाङ्कुड़, तथा और कई एक देशीय राज्योंमें विभक्त है।

महाभारत, रामायण और पौराणिककालके दाक्षिणात्य जनपद समूहका नाम तथा वर्त्तमान अवस्थान दाक्षिणात्यके विभिन्न शब्दमें देखो।

दाक्षिणापथक (सं० त्रि०) दक्षिणापथे देशे भवः धूमादित्वात् वुञ्। दक्षिणापथदेशजात, दक्षिणापथदेशका।

दाक्षिणिक (सं० पु०) बन्धनविशेष, एक प्रकारका बन्धन जो दक्षिणा प्रधान इष्टापूर्त्त आदि कर्मोंको काममावश करनेसे होता है।

दाक्षिण्य (सं० क्ली०) दक्षिणस्य भावः दक्षिण-ष्यञ्। १ अनुकूलता, प्रसन्नता। २ परच्छन्दानुवर्त्तन, दूसरेके चित्तको फेरने या प्रसन्न करनेका भाव। ३ सरलता, सुशीलता, उदारता। ४ साहित्यदर्पणोक्त नाटकलक्षणभेद, साहित्यमें नाटकका एक अंक।

चेष्टा तथा वाक्य द्वारा दूसरेके उदासीन या अप्रसन्न चित्तको फेर कर प्रसन्न करनेका नाम दाक्षिण्य है। उदाहरण—

"प्रसाधय पुरीं लंकां राजा त्वं हि विभीषण।
आर्येणानुगृहीतस्य न विघ्नः सिद्धिमन्तरा॥"
(साहित्यदर्पण)

हे विभीषण! तुम लङ्कापुरीको रक्षा करो तथा तुम ही यहांके राजा बनो। इस जगह इसी वाक्य द्वारा विभीषणका चित्त अनुवर्त्तित हुआ, इसीसे यह दाक्षिण्य हुआ। इसी प्रकार चेष्टा द्वारा भी हुआ करता है। ५ दक्षिणाचाररूप भावविशेष, श्मशानभैरव और उग्रतारा प्रभृति देवीको वामाचार और दक्षिणाचारमें पूजा करनी चाहिये। ऋषि, देवता, पितृ, मनुष्य, भूत समूह इन पांच प्रकारके यज्ञ द्वारा सब प्रकारके ऋण परिशोध कर विधिपूर्वक स्नानदानादि द्वारा सरहस्य जो पूजा की जाती है, उसीको दाक्षिण्य कहते हैं। (कालिकापु० ७७ अ०) (त्रि०) ६ दक्षिणार्ह, दक्षिणासंबन्धी। दक्षिणे भवं दाक्षिण-ठञ्। ७ दक्षिणभव, दक्षिणका।

दाक्षिपलद (सं० पु०) जनपदविशेष, एक देशका नाम।

दाक्षिकद (सं० पु०) एक ह्रदका नाम।

दाक्षी (सं० स्त्री०) दक्षस्य स्त्र्यपत्यं दक्ष-इञ्। १ दक्षका स्त्री-अपत्य, दक्षकी कन्या। २ पाणिनि मुनिकी माता। पाणिनि देखो।

दाक्षीपुत्र (सं० पु०) दाक्ष्याः पुत्रः ६-तत्। पाणिनि मुनि।

दाक्षेय (सं० पु०) दाक्ष्या अपत्यं पुमान् दाक्षी-ढक्। (स्त्रीभ्योढक्। पा ४।१।१२०) दाक्षीपुत्र, पाणिनि मुनि।

दाक्ष्य (सं० क्ली०) दक्षस्य भावः कर्मधा० दक्ष-ष्यञ्। दक्षता, निपुणता, पटुता।

दाख (हिं० स्त्री०) १ अंगूर, । २ मुनका। ३ किशमिश।

दाखिल (फा० वि०) १ प्रविष्ट, घुसा हुआ, पैठा हुआ। २ शामिल, शरीक, मिला हुआ। ३ पहुंचा हुआ।

दाखिलखारिज (फा० पु०) सरकारी कागज परसे किसी सम्पत्तिके अधिकारीका नाम काट कर उस पर उसके उत्तराधिकारी वा किसी दूसरे अधिकारीका नाम लिखनेका काम।

दाखिलदफ्तर (फा० वि०) बिना विचार किये हुए दफ्तरमें डाल रखा हुआ कागज।

दाखिला (फा० पु०) १ प्रवेश, पैठ। २ वह कार्य जो किसी संस्था, कार्यालय आदिमें सम्मिलित किया गया हो। ३ किसी चीजके दाखिल वा जमा करनेका कागज।

दाखी (हिं० स्त्री०) दाची देखो।

दाग (हिं० पु०) १ दग्ध, दाह, । २ मृतकका दाह कर्म, मुर्दा जलानेकी क्रिया। ३ जलन, डाह। ४ जलनेका चिह्न।

दाग (फा० पु०) १ धब्बा, चित्ती। २ चिह्न, निशान, अंक। ३ कलङ्क, ऐब, दोष। ४ जलनेका चिह्न। ५ वह चिह्न जो किसी चीजके सड़ जानेसे उस पर पड़ जाता है।

दागदार (फा० वि०) १ जिस पर दाग लगा हो। २ धब्बेदार।

दागना (हिं० क्रि०) १ दग्ध करना, जलाना। २ शरीर पर चिह्न देनेके लिये तपे हुए लोहेसे किसीके अङ्गको

जलाना। ३ भरी हुई बन्दूकमें बत्ती देना, रंजकमें आग लगाना। ४ तप्त मुद्रासे अंकित करना। ५ शरीर की फुंसी आदिको जलाने वा सुखानेके लिये तेज दवा लगाना। ६ रंग आदिसे अंकित करना।

दागबेल (फा० स्त्री०) वह चिह्न जो सड़क बनाने, नींव खोदनेके लिये कुदालसे भूमि पर किया जाता है।

दागव्यायनि (सं० पु०) दगुका गोत्रापत्य।

दागी (फा० वि०) १ दागयुक्त, जिस पर दाग लगा हो। २ जिस पर सड़नेका निशान हो। ३ कलङ्कित, दोषयुक्त, लाञ्छित। ४ दण्डित, जिसको सजा मिल चुकी हो।

दागोब—बौद्धोंका एक प्रकारका स्मरणार्थ स्तम्भ। यह संस्कृत 'धातु गर्भ' शब्दका अपभ्रंश है। पालि भाषामें इसे "धातुगब्भ" और तामिलमें "दागोब" (Dagob) कहते हैं। जिस प्रकार सभी चैत्य बौद्धके नाम पर प्रतिष्ठित वा उत्सर्ग किये हुए हैं, उसी प्रकार मृत व्यक्तिको भस्म ले कर जो सब स्तम्भ वा स्मृतिचिह्न बनाये जाते हैं उन्हें दागोब कहते हैं।

दागोबमें तरह तरहकी कारुकार्यविशिष्ट धातु और प्रस्तरनिर्मित पात्र रहते हैं। प्रायः प्रत्येक दागोबमें एक एक सोने वा चांदीका बकस रहता है जो कई प्रकारका होता है। शिष्यसे घिरे हुए गौतमकी धर्मोपदेशक मूर्त्ति बकस पर अङ्कित रहती है। वह बकस नाना प्रकारके रत्नोंसे मण्डित और तरह तरहके चित्रोंसे चित्रित है। कहीं कहीं तो इन सब बकसोंमें दांत, हड्डी और भोजपत्र पर लिखे हुए अनेक ग्रन्थ देखनेमें आते हैं, किन्तु ये सब अभी काममें नहीं आते, क्योंकि इतने जीर्ण हो गये हैं, कि उठानेसे हो नष्ट हो जानेकी सम्भावना है। सिंहलके अनुराधापुरमें बहुतसे दागोब हैं। बौद्ध पुण्यार्थी लोग इनके चारों तरफ प्रदक्षिण करते हैं। इन सब चैत्योंके विषयमें प्रवाद है—किसी समय सिंहलराज एलोरा बैलगाड़ी पर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें गाड़ीके पहियेसे टक्कर खा कर दागोबका एक पत्थर टूट फूट गया। पीछे राजाने देखा कि इस स्थानके १५ पत्थर अलग अलग हो गये हैं। इस पर वे डर गये और पापके प्रायश्चित्तके लिये १०००) रु० दान किये।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके दागोब देखनेमें आते हैं। इनमेंसे अमरावती, अजण्टा, इलावबेल्ली, कार्ली, अभयगिरि, लङ्काराम और कङ्कमधुका दागोब प्रधान है। इनके सिवा और भी अनेक दागोब हैं जो ब्रह्मवासी बौद्धोंके उपासना-मन्दिर सरीखे दीख पड़ते हैं।

दाघ (सं० पु०) दह-भावे घञ्_न्यङ्क्वादित्वात्-कु। दाह, जलन, गरमी।

दाङ्ग—बम्बई प्रदेशके सूरत पोलिटिकल एजेन्सीके अधीन एक विस्तीर्ण भूभाग। इसके उत्तरमें बरोदा राज्य, दक्षिणमें नासिक जिला और सरगानराज्य, पूर्वमें खान्देश, नासिक जिला और बरोदा राज्य तथा पश्चिममें बांसदा राज्य है। यह अक्षा० २०° २२´ से २१° ५´ उ० और देशा० ७३° २८´ से ७३° ५२´ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ९९९ वर्गमील है। यह भूभाग उत्तरदक्षिणमें ५२ मील लम्बा और २८ मील चौड़ा है।

यह भूभाग १५ भागोंमें विभक्त है। प्रत्येक भाग एक सरदारके अधीन है। १५ भागोंके नाम ये हैं—दाङ्गपिमप्री, वड़वान, केतककडुपड़ा, अमाला, चिञ्चलि, पिम्पलादेवी, पलासविहार, औचर, देरभौति, गार्वि, शिवबारा, किर्ली, वासुर्णा, विलबारी और सुरगाना। इन पन्द्रहोंमें १४ भीलसरदारोंके अधीन और १ कुणबीके अधीन हैं। यथार्थमें ये सबके सब स्वाधीन हैं, किन्तु युद्धविग्रहके समय ये सब गार्वीसरदारके अधीन काम करनेको बाध्य हुए थे। पहले ये सरदारगण मलहारके प्रधानको ७००) रु० कर देते थे। लेकिन कर वसूल करनेके समय प्रधानके साथ सरदारोंका विवाद हुआ करता था। अभी गवर्मेण्टने इस गड़बड़ीको दूर करनेके लिये सरदारोंके प्राप्य रुपयेमेंसे कुछ लेकर प्रधानके वंशधरको दे देनेकी व्यवस्था कर दी है।

इसमें २९९ ग्राम लगते हैं और लोकसंख्या प्रायः १८६३४ है।

सरदारोंमें एक मात्र बड़ा लड़का ही उत्तराधिकारी होता है। अभी समस्त दाङ्गभूभाग गवर्मेण्टने सरदारोंसे ठेके पर ले लिया है। इसमें यह शर्त किया गया है, कि सरदार छः मास पहले सूचना देकर

भूभाग पुनः वापिस कर सकते हैं। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर है।

दाङ्गलि (दङ्गलि)—एक संन्यासी सम्प्रदाय। इस संसारमें अर्थके विना कोई काम सम्पन्न नहीं होता और अर्थका बल सबसे अधिक है। इसोसे इस सम्प्रदायके संन्यासी भिक्षावृत्ति छोड़ कर वाणिज्य व्यवसाय अवलम्बन किये हुए हैं। हैदरावाद, पूना, सतारा आदि अनेक प्रसिद्ध नगरोंमें इनके मठ कोठी विद्यमान हैं।

पहले कलकत्तेमें भी इनके मठादि थे। इनमेंसे एक एक मनुष्य मठाध्यक्ष अर्थात् महन्त होते हैं। बहुतेरे वाणिज्य व्यवसाय द्वारा विपुल सम्पत्तिके अधीश्वर हो गये हैं। यहां तक कि कितने महन्तोंके पास करोड़ों रुपयेकी सम्पत्ति है।

मठाध्यक्ष मठमें रह कर मठका काम काज किया करते हैं। उनके शिष्यलोग देशदेशान्तरोंमें घूम घूम कर वाणिज्य व्यवसाय द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। इस प्रकार वाणिज्यसे जो धन जमा होता है, वह सत्कर्ममें लगाया जाता है। दाङ्गलि महन्त लोग बालकोंको खरीद कर अपना शिष्य वा चेला बनाते हैं। वे उन्हें यत्नपूर्वक प्रतिपालन और शिक्षा प्रदान करते हैं। कुछ दिन इसो प्रकार प्रतिपालन कर यदि मठाध्यक्ष होनेके उपयुक्त समझते, तो मठका कुल भार उन्हीं पर सुपुर्द कर देते तथा अन्यथा उन्हें दशनामी संन्यासियोंको सौंप देते हैं।

दाजल—पञ्जावके डेरागाजीखाँ जिलेके अन्तर्गत जैनपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९° ३४' उ० और देशा० ७०° २४' पू०; डेरागाजीखाँ शहरसे ४८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। नाहिरोंके आधिपत्यके समय यह नगर बहुत बढ़ा चढ़ा था। कुछ समयके बाद गाजीखांने यह शहर अपने अधिकारमें किया। पीछे यह खेलातके खानोंके हाथ आया। पहले यहां बहुत वाणिज्य होता था, अभी उस तरहका नहीं है। यहांकी लोकसंख्या लगभग ६२१२ है। १८७३ ई०में म्युनिसिपालिटी स्थापित हुई। शहरकी आय ६८००) रु० है।

दाडक (सं० पु०) दालयति सुखाभ्यन्तरस्थद्रव्यं विचूर्णी करोतीति दल विच्-ण्वुल, लस्य-ड़। १ दन्त, दाँत। २ दाढ़, डाढ़।

दाड़व—ग्रामविशेष, एक गांव जो काशीसे दो योजन पश्चिममें अवस्थित है।

भविष्य ब्रह्मखण्डमें लिखा है कि कल्कि भगवान् म्लेच्छोंको तलवारसे नाश करके शान्तिपूर्वक इसो दाडवदेशमें रहेंगे। दाड़व ग्रामके पास ही ताम्रचूड़ नामक ग्राममें यवन लोग रहेंगे कलिका आधा भाग समाप्त होने पर यह ग्राम नष्ट हो जायगा।

(भा० ब्रह्म ख० ५७ अ०)

दाड़स (हिं० पु०) एक प्रकारका सांप।

दाड़िम (सं० क्लो०) दलनमिति दाल, तेन निर्वृत्तः भाव-प्रयन्तादिमप्, डलयोरैकत्वं। १ एला, इलायची। २ फलवृक्षविशेष, अनार।

इसका फूल लाल और फल खट्टा लिये कुछ मीठा होता है तथा बीजोंसे भरा रहता है। संस्कृत पर्याय—करक, पिण्डपुष्प, दाड़िम्ब, पर्वरुक, स्वाद्वम्ल, पिण्डीर, फलशाडव, शुकवल्लभ, रक्तपुष्प, दाड़िमीसार, कुट्टिम, फलखाड़व, रक्तबीज, सुफल, दन्तबीजक, मधुबीज, कुचफल, रोचन, मणिबीज, करकफल, वृत्तफल, सुनील, नीलपत्र।

भिन्न भिन्न देशोंमें लोग इसे भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं, जैसे, बङ्गालमें दालिम, दाड़िम, डालिम, आनार; पश्चिमाञ्चलमें ढालिम, ढारिम्ब, अनारका पेड़, बेदाना, नासफल; उड़ीसामें दालिम, दालिम्ब; दक्षिणमें अनार, द्राविड़में मादलै, मदलम्, मिश्चिजातिमें मदल, तैलङ्गमें दनिम्म, दादिम दालिम्ब, कर्णाटमें दालिम्बेगिदा; बम्बई प्रदेशमें अनार, दालिम्ब; गुजरातमें दाडम्; पञ्जावमें दारु, दारुणी; पारस्यमें नर, अनार; अरबमें राणा वा रम्मन। (Punica Granatum)

पारस्य, कुर्दिस्तान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और भारतवर्षमें सब जगह अनारके पेड़ पाये जाते हैं। कहीं कहीं तो छोटी छोटी और कहीं बड़ी बड़ी शाखाओं प्रशाखाओंके बड़े बड़े पेड़ देखनेमें आते हैं।

बहुत पहलेसे भारतवर्षके लोग इसे आदर करते आ रहे हैं। इसके फूलोंसे फीका अस्थायी लाल रंग बनता है जिससे लोग कपड़ा रंगाते हैं। फलका छिलका चमड़ा रंगानेके और सिझानेके काममें आता है। अभी

कभी इसे हल्दी और नील रंगके साथ भी मिला देते हैं। पश्चिमाञ्चलमें इसके छिलकेसे कपड़ा रंगानेका एक प्रकारका रंग तैयार किया जाता है जिसे ककरेजो रंग कहते हैं। इसके लिये वे छिलकेको पानीमें मिद्ध करते हैं और बारह आनेके हिसाबसे पानी जल जाने पर शेष पानीको हो काममें लाते हैं। पेड़के छिलकेसे भी चमड़ा रंगाया जाता है। इसी कारण युक्तप्रदेशसे प्रति वर्ष इसकी यथेष्ट रफ्तनी होती है। यह रुपयेमें डेढ़ सेरसे ले कर दश सेर तक बिकता है।

अनारके फलका व्यवहार औषधमें पहलेसे ही होता था। हिन्दुओंके प्राचीन वैद्यक ग्रन्थमें, ईसाइयोंके बाइबलके आदि भागमें भी अनारका उल्लेख है। इजिप्ट, पार्सिपोलिस और आसिरियाके स्थापत्यशिल्पमें तथा पुरातन कीर्त्तिस्तम्भमें अनारके चित्र देखे जाते हैं।

अजीर्णरोगमें अनारका रस बहुत हितकर है। डाक्टर ऐन्सलिका कहना है, कि पेटमें जब बड़े बड़े कोड़े पड़ जाते हैं, तब उन्हें नष्ट करनेमें इसके मूलका छिलका बहुत उपकारी है। बीज और मज्जा क्रमशः पाकस्थली और हृद्‌पिण्डके लिये फायदामन्द, सङ्कोचक और शैत्यकारक है। फूल और कली रक्तसोधक और लघुत्पादक है। इसके मूलमें कोड़े नाश करनेका जो गुण है, वह पहले यूरोपीय लोग नहीं जानते थे। डाक्टर बुकाननको बङ्गालसे इसका कृमिनाशक गुण मालूम हुआ था। पीछे डाक्टर ऐनस्ली, फ्लेमिं आदि यूरोपीय चिकित्सकगण इसका व्यवहार करने लगे। अभी यूरोप और भारतवर्षमें सब जगह इसका मूल व्यवहृत होता है। इस की माता आध छटांकसे एक छटांक तक है। कण्ठशोथ वा मूत्रनाली सम्बन्धीय रोगमें भी इसके काढ़ेका प्रयोग होता है।

अजीर्ण, और कृमिरोगमें कहीं कहीं अनारके पत्तोंका रस और कच्चा फल उपकारी है। इसकी कलीको पीस कर ४।५ ग्रेनका प्रयोग करनेसे वायुनलीप्रदाह (bronchitis) प्रशमित हो जाता है।

यह पेड़ पार्वतीय प्रदेशमें बहुत उपजता है। बङ्गालका अनार छोटा और बीजपूर्ण होता है। इसीसे अफगानिस्तान और फारसके छोटे दानेदार, बड़े बड़े अनार इस देशमें बेचनेको लाये जाते हैं। वहांके अनार बङ्गालकी अपेक्षा सुस्वादु और नरम होते हैं।

वैद्यकके मतसे—अनार रसके भेदसे तीन प्रकारका होता है, मधुर, मधुराम्ल और केवल अम्ल। इनमेंसे मधुर रसयुक्त अनार वायु, पित्त, कफ, प्यास, दाह, ज्वर, हृद्रोग, कण्ठगत रोग तथा मुखरोगनाशक, तृप्तिकारक, शुक्रवर्द्धक, लघु, शुक्र कषाय रस, धारक, स्निग्ध और मेधा तथा बलवर्द्धक, मधुराम्ल अनार अग्निदीप्तिकारक, रुचिकारक, किञ्चित् पित्तवर्द्धक और लघु तथा अम्ल अनार पित्तवर्द्धक, कफ और वायुनाशक है। (भावप्र०)

बङ्गदेशमें जो अनार उपजता है, वह अधिक दानेदार और अम्ल रसात्मक होता है। पटना प्रदेशसे जो अनार आता है, वह मधुराम्ल रसात्मक होता है और उसे मस्कट कहते हैं। काबुल प्रदेशके अनारमें केवल मीठा रस रहता है और उसे बेदाना कहते हैं। इनके सिवा एक और प्रकारका दाड़िमका पेड़ है। जिसका फल देखनेमें नहीं आता है। यह घोर रक्तवर्ण बहुदलोंसे परिपूर्ण रहता है और इसमें केशर नहीं होता है। इसे कोई तो गुलो-अनार और कोई रोहितक कहता है। इसका दूसरा नाम दाड़िमपुष्पक है।

दाड़िमपत्रक (सं० पु०) दाड़िमस्य पत्रमिव पत्रमस्य कप्। रोहितक वृक्ष, रोहेड़ा।

दाड़िमपुष्प (सं० पु०) दाड़िमस्य पुष्पमिव पुष्पमस्य। १ रोहितक वृक्ष। यह पेड़ अनार फूलके जैसा होता है, इसीसे इसका नाम दाड़िमपुष्प हुआ है। (क्लो०) दाड़िमस्य पुष्पं ६-तत्। २ दाड़िम या अनारका फूल।

दाड़िमप्रिय (सं० पु०) दाड़िमफलं प्रियं यस्य। कीर पक्षी, सुग्गा। यह अनार खाना बहुत पसन्द करता है।

दाड़िमभक्षण (सं० पु०) भक्षयतीति भक्ष-ल्यु, भक्षको भक्षकः, दाड़िमस्य भक्षणः ६-तत्। कीरपक्षी, शुक, सुआ, तोता।

दाड़िमादिचूर्ण (सं० क्लो०) वैद्यकोक्त चूर्ण औषधभेद।

दाड़िमाद्यघृत (सं० क्लो०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घी ६४ सेर, चूर्णके लिये अनारका दाना, विड़ङ्ग, हल्दी, चई, जीरा, त्रिफला, सौंफ, पीपल, गोखुरूका बीज, अजवायन, धनिया, अमलवेत, पीपरा

मूल, सैन्धवलवण प्रत्येक २ तोला, पाकका जल १६ सेर, इन सबको घृतपाक प्रणालीके अनुसार यथोपयुक्तरूपसे पाक करते हैं। उपयुक्त मात्रामें इसका व्यवहार करनेसे प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग जाते रहते है।

इसके सिवा और दो प्रकारके दाड़िमाद्यघृत हैं, महादाड़िमाद्य और वृहद्दाड़िमाद्यघृत। महादाड़िमाद्यकी प्रस्तुत प्रणाली—घृत ऽ४ सेर, काढ़ेके लिए दाड़िमके बोज ऽ२ सेर, जल १६ सेर, शेष ऽ४ सेर, यवतण्डुल ऽ२ सेर, जल ऽ६ सेर, कुलथीउरद ऽ२ सेर, जल १६ सेर, शेष ऽ४ सेर, शतमूलीका रस ऽ४ सेर, गायका दूध ऽ४ सेर, चूर्णके लिए दाख, पिण्डखजूर, त्रिफला, रेणुक, जीवक, ऋषभक, कङ्कोल, क्षीरकङ्कोल, मेद, महामेद, ऋद्धि, वृद्धि, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, कुट, इलायची, भूमिकुष्माण्ड, बला, शिलाजित, दारचीनी, खसकी जड़ और कृष्णाभ्र प्रत्येकका चूर्ण तीन तोला। इन सबको घृतपाकके अनुसार पकाते है। इस घीके पीनेसे सब प्रकारका मेह जाता रहता है। मेह रोगके लिए यह एक उत्कृष्ट औषध है।

वृहद्दाड़िमाद्यघृत—घृत ऽ४ सेर, काथके लिए पक्का अनार ऽ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, चूर्णके लिए अनारका दाना, चई, जीरा, विडङ्ग, हलदी, दारुहलदी, दाख, पिण्डखजूर, नीलोत्पल, गजपिप्पली, वनयमानी, महानिम्ब, कङ्कोल, सोंठ, वच, देवदारु, कुट, गम्भारीके मूलकी छाल, यष्टिमधु, अनन्तमूल, ग्वालककड़ीका मूल, मूर्वा, वंशलोचन, कर्कटश्रृङ्गी, धनिया, कुलथी, महामेद, नीमकी छाल, वृहती, भटकटैया, त्रिफला अडूसेकी छाल, संभालुका मूल, सब मिला कर ऽ१ सेरको १६ सेर जलमें यथाविधि पाक करते हैं। इसी घीके पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह दूर हो जाता है।

(भैषज्यर० प्रमेहाधिकार)

दाड़िमाष्टक (सं० पु०) वैद्यकमें एक चूर्ण। इसमें अनारका छिलका पड़ता है।

दाड़िमी (सं० स्त्री०) दाड़िमवृक्ष, अनारका पेड़।

दाड़िमीरस (सं० पु०) रसभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—अनारको घीमें सन्तप्त करके एक बरतनमें रखते हैं। इस तरह पक जाने पर उसे कपड़ेमें छान कर जो रस निकलता है उसीको दाड़िमरस कहते हैं।

दाड़िमीसार (सं० पु०) दाड़िमीं दाड़िमीशब्दं सरति प्राप्नोतीति सृ-अण्। दाड़िम, अनार।

दाड़िम्ब (सं० पु०) दाड़िम देखो।

दाडी (सं० स्त्री०) दल्यते फलेऽसौ कर्मणि घञ्, गौरा० ङीष् लस्य ड़। १ दाड़िम, अनार। २ अनारका फल।

दाढ़ (सं० स्त्री०) १ चौभर। २ भीषण शब्द, गरज, दहाड़।

दाढ़ा (सं० स्त्री०) दैप-शोधने टा-क्षिप्, दै शुद्धी दानाय वा ढौकते ढौक-ड। १ दंष्ट्रा, चौभर। २ प्रार्थना, विनति। ३ समूह, जत्था।

दाढ़ा (हिं० पु०) १ दावानल, वनकी आग। २ अग्नि, आग। ३ दाह, जलन।

दाढिका (सं० स्त्री०) दाढ़ायै केशसमूहाय प्रभवतीति ठक्, ततष्टाप्। १ श्मश्रु, दाढ़ी। २ दंष्ट्रिका, चौभर।

दाढी (हिं० स्त्री०) १ चिबुक। २ ठुड्डी और दाढ़ परके बाल।

दाढीजार (हिं० पु०) वह मनुष्य जिसकी दाढ़ी जली हो। यह एक प्रकारकी गाली है जिसे स्त्रियाँ गुस्सा कर पुरुषोंको देती हैं।

दाण्ड (सं० पु० क्ली०) दण्डस्य इक्ष्वाकुपुत्रभेदस्य अपत्यं शिवादि अण्। १ दण्डराजाका अपत्य। स्त्रियां ङीप्। दण्डस्य भावः अण्। (क्ली०) २ दण्डभाव। ३ आयुधजीविसंघभेद, वह जो हथियार चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो। दण्डानां समूहः अञ्। ४ दण्डसमूह।

दाण्डकि (सं० पु०) १ त्रिगर्त्त-आयुधजीविसंघभेद। २ दंडकका अपत्य, दंडकका वंशज।

दाण्डकीय (सं० त्रि०) दाण्डकि स्वार्थे-छ। दांडकि।

दाण्डग्राहिक (सं० पु०) दण्डग्राहस्य अपत्यं दंडग्राह-ठक्। (रेवत्यादिभ्यष्ठक्। पा ४।१।१४६) दंडग्राहका अपत्य।

दाण्डपाता (सं० स्त्री०) दंडस्य पातोऽस्यां तिथौ इति घञन्तात् अः (घञ् सास्यां क्रियेति ञः। पा ४।२।५८) दंडमात्रस्थित तिथिभेद, जिस तिथिमें केवल एक दंड रहता है, उसे दाण्डपाता कहते हैं।

दाण्डपायन (सं॰ पु॰) दण्डपस्य अपत्यं दण्डप अपत्ये फक् (नडादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) दण्डपका अपत्य।

दाण्डमाथिक (सं॰ त्रि॰) दण्डमाथं धावति ठक्। (माथो-त्तरपदपदव्यनुपदं धावति। पा ४।४।३७) दण्ड द्वारा मन्थन-योग्य, जो डण्डेसे मथने लायक हो।

दाण्डाजिनिक (सं॰ त्रि॰) दण्डाजिनेन शाठ्येन दम्भेन वा अर्थानन्विच्छति दण्डाजिन-ठञ्। कुहक, वह जो दण्ड और अजिन धारण करके अपना अर्थ साधन करता फिरे, छली, धार्मिक।

दाण्डायन (सं॰ पु॰) दण्डस्य गोत्रापत्यं नड़ादित्वात् फक्। दण्डका गोत्रापत्य।

दाण्डिक (सं॰ त्रि॰) दण्डेन दण्डधारणेन जीवति वेत-नादित्वात् ठञ्। दण्डधारणोपजीवी, जो दण्ड धारण कर के अपनी जीविका चलाता हो। सत्ययुगमें राजा, राज्य, दण्ड और दाण्डिक कुछ भी नहीं थे। २ वह जो दण्ड देनेके लिए नियुक्त हो, जल्लाद।

दाण्डिक्य (सं॰ क्लो॰) दाण्डिकस्य भावः यत्। दाण्डिकका भाव।

दाण्डिन् (सं॰ पु॰) दण्डेन प्रोक्तं अधीयते शौनका-दिनि। दण्डप्रोक्त कल्पसूत्राध्यायिसमूह, दण्डके कहे हुए कल्पसूत्रके अध्याय।

दाण्डिनायन (सं॰ पु॰-स्त्री॰) दण्डिनो गोत्रापत्यं नड़ादि-त्वात् फक्, दाण्डिनायनेत्यादिना टिलोपाभावः। दण्डीका गोत्रापत्य।

दात (सं॰ त्रि॰) दाप कर्मणि क्त। १ लून, खण्डित, छिन्न। दैप कर्त्तरि क्त। २ शुद्ध, पवित्र।

दातव्य (सं॰ त्रि॰) दा-तव्य। १ दानयोग्य, देनेयोग्य। (पु॰) २ दान, देनेका काम। ३ दानशीलता, उदा-रता।

दातव्यचिकित्सालय (सं॰ पु॰) वह औषधालय जहां बिना मूल्य दिये औषध दी जाती तथा चिकित्सा की जाती है।

दाता (सं॰ पु॰) दातृ देखो।

दातागञ्ज—युक्त प्रदेशके बुदौन जिलेकी एक तहसील यह अक्षा॰ २७°४०´ से २८°११´ उ॰ और देशा॰ ७९°६´ से ७९°३१´ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ४१८ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २१५१८६ है। इसमें ३८५ ग्राम और ३ शहर लगते हैं जिनमेंसे अलापुर और ककराला नामके शहर सबसे बड़े हैं। इस तहसीलके दक्षिण में गङ्गा और पूर्वमें रामगङ्गा प्रवाहित है। यहां तहसील-की कचहरी, छोटी अदालत, विद्यालय तथा औषधा-लय है।

दताना-पश्चिम मालव एजेन्सीके अधीन एक छोटा सामन्त राज्य। यहांके राजा सिन्धियासे मासिक १८०) रु॰ तनखाहके रूपमें पाते हैं।

दातापन (हिं॰ पु॰) दानशीलता।

दातार (हिं॰ पु॰) दाता, देनेवाला।

दाताराम—छन्दोमञ्जरीके एक टीकाकार।

दाति (सं॰ स्त्री॰) दैप शोधे-क्तिच्। १ शुद्धि, सफाई। २ छेदन। दा-क्ति। ३ दान। ४ दत्त, वह जो दिया गया हो।

दातु (सं॰ क्लो॰) दा-भावे तुन्। १ दान।

दातुन (सं॰ स्त्री॰) दतुवन देखो।

दातून (हिं॰ स्त्री॰) १ दन्तीकी जड़। २ जमालगोटेकी जड़। (स्त्री॰) ३ दतुवन देखो।

दातृ (सं॰ त्रि॰) दा-तृच्। १ दानकर्त्ता, दान देनेवाला। २ दानशील।

दातृता (सं॰ स्त्री॰) दातुर्भावः भावे तल्। दातृत्व, दानशीलता, देनेकी प्रवृत्ति।

दातृत्व (सं॰ क्लो॰) दातृ भावे त्व। दातृता, देनेकी प्रवृत्ति।

दात्तामित्रीय (सं॰ त्रि॰) दत्तामित्र सम्बन्धीय।

दात्यूह (सं॰ पु॰ स्त्री॰) दाप-क्तिन् दातिं मारणं जहाति दाति जह-अण् वा दो-क्तिन् दितिं वहति वह क अट्, दित्यूह स्वार्थे अण्, ततो आत्वं। १ पक्षिविशेष, पपीहा, चातक। पर्याय—कालकण्टक, अत्यूह, दात्यौह, काल-कण्ठ, मासङ्ग, शितिकण्ठ, कचाटुर और काकमद्गु। गुण-वायुनाशक, हृद्य, शुक्रवृद्धिकारी, श्रमनाशक, तुष्टि-प्रद और वातनाशक। (हारीत ११ अ॰)

चटक, जलकाक, हंस, चकवा, मुरगा, सारस, रज्जु-वाल, शुक और सारिका आदि पक्षियोंको खाना नहीं चाहिये। २ जलकाक, जलकौवा। ३ चातक। ४ मेघ, बादल।

दात्यूहक (सं० पु०) दात्यूह-स्वार्थे कन्। दात्यूह।
दात्यौह (सं० पु०) दात्यूह पृषो० साधुः। दात्यूह पक्षी, पपीहा।
दात्र (सं० क्लो०) द्यति दाति वानेन दो अवखण्डने ष्ट्रन् (दाम्न शसेति। पा ३।२।१८२) १ छेदनसाधन अस्त्रभेद, दाँतो, हँसिया। इसका पर्याय—लवित्र और खड्गोक है। २ दान। ३ दातव्य, देनेका काम। ४ दानकर्त्ता, वह जो दान देता हो।
दात्री (सं० स्त्री०) दातृ-ङोप्। १ दानकर्त्री, वह जो दान देती हो। २ गङ्गा। ३ हँसिया, दाँती।
दात्व (सं० पु०) ददातीति दा त्वन् (जनि दा च्यु सिति। उण् ४।१०४) १ दाता। २ यज्ञकर्म।
दाथा (दाठा)—बम्बईप्रदेशमें काठियावाड़ जिलेके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। इसमें २६ ग्राम लगते हैं। राज्यको आमदनी २५०००) रु० है जिसमेंसे ५०९९) रु० बरोदाके गायकवाड़को और २९९) रु० जूनागढ़के नवावको करस्वरूप देने पड़ते हैं। भूपरिमाण ५१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः दश हजार है।
दाद (सं० पु०) दद-भावे-घञ्। दान।
दाद (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका चर्मरोग। दद्रु देखो।
दादनी (फा० स्त्री०) १ चुकाई या दी जानेकी रकम। २ किसी कामके लिये पेशगी दी जानेकी रकम।
दादमर्दन (हिं० पु०) हिन्दुस्तानके उद्यानोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका चकवँड़। प्रवाद है, कि यह पेड़ अमेरिकाके टापुओंसे लाया गया है, इसीसे इसे विलायती चकवँड़ भी कहते हैं। इसके पत्तोंको पीस कर लगानेसे दाद जाती रहती है।
दादरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका चलता गाना। २ एक प्रकारका ताल, जिसमें दो अर्द्धमात्रायें रहती हैं। इसमें केवल एक आघात होता है।
दादस (हिं० स्त्री०) सासकी सास, ददिया सास।
दादा (हिं० पु०) १ पितामह, पिताका पिता। २ बड़ा भाई। ३ आदरसूचक शब्द जो बड़े बूढ़ोंके प्रति कहा जाता है।
दादाजी कोण्डदेव-एक प्रसिद्ध दक्षिणी ब्राह्मण। महाराष्ट्रनायक शाहजीने पूनामें राजधानी स्थापन करके वहाँका शासनभार दादाजीपर सौंप दिया। ये विचक्षण, न्यायपर, राजनीतिकुशल और प्रजाप्रिय थे। इनके शासनके गुणसे थोड़े ही दिनोंमें राज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुँच गया था। इन्होंने प्रजाकी मालगुजारी दर बहुत कमा दी; पूनाके निकटवर्त्ती जङ्गलोंको व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओंसे शून्य कर दिया, इस प्रकार पहाड़ियों तथा पथिकोंकी खूब भलाई की।

जीजोबाई और उसके लड़के प्रसिद्ध शिवाजीके रहनेके लिये इन्होंने लालमहल नामक एक वृहत् प्रासाद निर्माण किया था।

शाहजीने दादाजीके ही ऊपर शिवाजीका शिक्षाभार सौंप दिया था। इन्हींके शिक्षागुणसे शिवाजी ब्राह्मणभक्त, हिन्दू-धर्मानुरागी, समरकुशल और राजनीतिज्ञ हो कर भारतवर्षमें प्रसिद्ध हो गये थे। शाहजीके मरनेके बाद दादाजीने ही शिवाजीके हाथ पितृराज्यका शासन भार अर्पण किया। शिवाजी दादाजीकी खूब खातिर करते थे। १६४७ ई०में दादाजी इस लोकसे चल बसे। मरते समय ये शिवाजीको जननी जन्मभूमिकी स्वाधीनता, गो-ब्राह्मणकी रक्षा और हिन्दूधर्मकी जयपताका उठानेका उपदेश दे गये थे। शिवाजी आजीवन गुरुके उपदेश भूले नहीं थे। शिवाजी देखो।
दादाभाइ—एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इनके पिताका नाम था गङ्गाधरमाधव। इन्होंने किरणावली नामक सूर्यसिद्धान्तकी टीका तथा तुरीययन्त्रकी रचना की है।
दादाभाइ नौरजी—नारोजी दादाभाइ देखो।
दादी (हिं० स्त्री०) पिताकी माता।
दादो (फा० पु०) न्यायका प्रार्थी, फरियादी।
दाद्री—१ पञ्जाबकी जिन्द निजामत और राज्यकी दक्षिणीय तहसील। यह अक्षा० २८° २४´ से २८° ४८´ उ० और देशा० ७५° ५५´ से ७६° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५९१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ९२३६८ है। इसके दक्षिण और पश्चिममें दुजानराज्य, नाभाकी बावल, निजामत, पटियालेकी महेन्द्रगढ़ निजामत और लोहारुराज्य; पश्चिममें हिसार जिला और पूर्वमें रोहतक है। यहाँका जलवायु शुष्क और गरम है। इसमें दाद्री, कलाना और बौंद नामके तीन शहर

तथा १८१ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे अधिकका है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अचा० २८ २५´ उ० और देशा० ७६´ २०´ पू० दिल्लीसे ८७ मील और जिन्दशहरसे ६० मील दक्षिणमें पड़ता है। जन-संख्या लगभग ७००८ है। यह बहुत पुराना शहर प्रतीत होता है, लेकिन इसका प्राचीन इतिहास कुछ भी मालूम नहीं। १८५७ ई०में यह शहर झज्जरके नवाबके आत्मीय नवाब बहादुरजङ्गसे शासित होता था। पीछे कई कारणोंसे वृटिशगवर्मेण्टने उनके हाथसे यह स्थान छीन लिया। बाद १८५७ ई०के गदरमें जिन्दके राजाने अङ्गरेजोंको काफी सहायता पहुंचाई थी, इस कारण उन्हें पुरस्कारस्वरूप यह स्थान दिया गया।

दादुपन्थी—एक विख्यात वैष्णवसम्प्रदाय। दादुपन्थियोंको रमानन्दीको एक शाखा कह सकते हैं। दादु इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे इसीसे इसका नाम दादुपन्थी हुआ है। प्रवाद है, कि दादु एक कबीरपन्थीके शिष्य थे, क्योंकि कबीरपन्थियोंकी गुरुप्रणालीमें इनका नाम छठे स्थानमें आया है, जैसे—१ कबीर, २ कमाल, ३ यमाल, ४ विमल, ५ वुद्धन और ६ दादु। रामका नाम जपना ही इन वैष्णवोंकी एकमात्र उपासना है। ये रामको अपना उपास्य देवता मानते हैं सही, किन्तु वेदान्तमतसिद्ध परब्रह्मकी नाईं उनका निर्गुणस्वरूप वर्णन करते हैं और उनका मन्दिर तथा प्रतिमूर्त्ति स्थापित करना अनुचित समझते हैं।

दादु अहमदाबादके एक धुनिया थे। १२ वर्षकी अवस्थामें ही ये अपना नगर परित्याग कर अजमेरके अन्तर्गत शम्भर नगरमें रहने लगे थे। वहांसे ये कल्याणपुर को गये। अन्तमें इन्होंने ३७ वर्षकी अवस्थामें जयपुरसे बीस कोस पर नरैन नामक स्थानमें निवास किया। कहते हैं, कि यहां इन्हें आकाशवाणी हुई कि, 'तुम परमार्थ साधनमें लग जावो।' इस वाक्यको सुन कर ये नरैनसे ५ कोस दूर वहरण पर्वत पर चले गये और वहां कुछ दिनों तक रह कर पीछे सदाके लिये गायब हो गये, कोई चिह्न बच न रहा। इस पर दादुपन्थी लोग कहते हैं, कि वे परमेश्वरमें लीन हो गये है। दाविस्तानमें लिखा है, कि अकबरके समय दादु दरवेश अर्थात् उदासीन हो गये थे और पहुंचे हुए साधुओं-में गिने जाते थे। दादुपन्थी न तो तिलक लगाते और न माला ही पहनते हैं केवल जपमाला साथ रखते हैं और मस्तक पर एक प्रकारकी टोपी पहनते हैं। यह टोपी चौकोर अथवा गोल होती है और रङ्ग सफेद रहता है। पोछेमें एक झब्बा लटका रहता है। ये लोग स्वयं अपने हाथसे टोपी बनाते है।

दादुपन्थी तीन श्रेणियोंमें विभक्त है—विरक्त, नागा और विस्तरधारी। जो विषय रागशून्य हो कर पर-मार्थ साधनमें समय बिताते हैं, वे लोग विरक्त कहलाते हैं। इन लोगोंके शरीर पर केवल एक वस्त्र और हाथमें कमंडलु रहता है; मस्तक पर कोई आवरण नहीं रहता।

नागा लोग अस्त्रधारी होते हैं, रुपये पैसे मिल जाने पर युद्ध करनेको भी तैयार हो जाते हैं। ये सब युद्ध कार्यमें बड़े दक्ष होते हैं। बहुतसे राजा नागा सेना अपने यहां रखते हैं।

विस्तरधारी लोग साधारण मनुष्योंकी तरह नाना प्रकारके व्यवसाय करते हैं। ये तीन शाखाएं फिरसे विभक्त हो कर कई एक प्रशाखाओंमें बंट गई हैं जिनमें-से ५२ प्रशाखा प्रधान हैं। इन ५२ प्रशाखाओंमें परस्पर क्या फर्क है, उसका जानना बहुत कठिन है। दादुपन्थी लोग उषाकालमें शव दाह करते हैं, किन्तु इनमेंसे कुछ ऐसे भी धर्मव्रती हैं जो समझते हैं कि शवदाह करनेसे कितने कीड़े मकोड़के प्राण नष्ट होंगे, इस कारण वे मरते समय अपना मृत शरीर पशुपक्षियोंको खिला देनेके लिए प्रान्तर वा कान्तारमें फेंक देनेको कह जाते हैं। दाविस्थानमें भी लिखा है, कि किसीके स्वर्गवास होने पर दादुपन्थी मृत देहको पशुकी पीठ पर रख देते और यह कह कर प्रान्तरमें भेज देते हैं कि इससे हिंसक और दूसरे दूसरे जन्तुओंका सन्तुष्ट होना ही सबसे श्रेय है। अजमेर और मारवाड़ देशमें दादुपन्थी अधिक संख्यामें रहते हैं। नरैन ग्राममें इस सम्प्रदायका एक प्रधान देवस्थान विद्यमान है। वहां दादुकी शय्या और दादुपन्थियोंके प्रामाणिक शास्त्र भी रखे हुए है। विहित

विधानके साथ उन दोनोंको पूजा होती है। नरैनके पास जो एक पहाड़ है उस पर छोटा घर बना हुआ है, कहते हैं, कि इसी स्थानसे दादु अन्तर्द्धान हो गये थे। यहां प्रति वर्ष फाल्गुनको शुक्ल पक्षीय प्रतिपदसे लेकर पौर्णमास तक एक बड़ा भारी मेला लगता है। इस सम्प्रदायका विवरण हिन्दी भाषाके कई ग्रंथोंमें लिखा हुआ है। उनके धर्मग्रंथमें कई जगह कबीर-पंथियोंके अनेक वचन उद्धृत हैं।

"दादुके विश्वासका अङ्ग" नामक एक ग्रंथ है जिसकी कुछ कविता नीचे देते हैं।

"दादू सहजे होयगा जे कुछ रचिया राम।
काहेको कळपे मरे दुखी होइब काम॥"

राम जो कहते हैं, वह अवश्य ही होगा। अतः तुम क्यों व्यर्थ शोकसे प्राण त्याग करते हो? यह अत्यन्त दूषणीय कर्म है।

"दादू कहे जे तैकिया सुवहै रहा जो तूं करे।
करण करावण एक तूं कोई न देखा दूसरे॥
सोइ हमारा साइया जे सबका द्वानि बिचार॥"

दादू कहते हैं, कि हे जगदीश्वर! तूने जो कुछ किया है, वही रह गया है और जो तू करेगा, वही होगा। तू कर्त्ता है, तू ही कारयिता है, दूसरा कोई नहीं। जिन्होंने सारी वस्तुओंको सुन्दर बना कर रचा है, वे ही हमारे ईश्वर हैं। जीवन और मरणका विचार उन्हींके हाथ है, अतः उन्हींका सदा स्मरण करो।

दादुर (हिं० पु०) मेंढक, बेंग।

दादू (हिं० पु०) १ दादाके प्रति प्यारका शब्द। २ भाई आदिके समान एक साधारण संबोधन। ३ एक साधुका नाम इनके नाम पर एक पंथ चला है। प्रवाद है, कि दादू अहमदाबादके धुनिया थे। जब इनकी उमर १२ वर्षकी थी, तभी ये अपना नगर छोड़ कर अजमेर, कल्याणपुर आदि स्थानोंमें कुछ दिनों तक रहे थे। पीछे ३६ वर्षकी अवस्थामें ये जयपुरसे २० कोस दूर नरैन नामक स्थानमें जा कर रहे। यहां ये आकाशवाणीके अनुसार कई दिनों तक गुप्त थे। कबीरपंथियोंमें प्रसिद्ध है, कि दादू कबीरपंथी थे। इन्होंने भी कबीरके समान ही राम नामके रूपमें निर्गुण परब्रह्मकी उपासना चलाई है। अकबरके समयमें दादूका खूब आदर होता था। इनकी बनाई हुई अनेक कविताएं मिलती हैं जिनमेंसे एक नीचे देते हैं—

"भौ जल मैं बहि जात उते जिन काढि लिये अपने करि आदू।
और संदेह मिटाइ दियो सब कानिनि टेरि सुनाइके नादू॥
पूर्णब्रह्म प्रकाश कियौ पुनि छुटि गयो यह वाद विवादू।
ऐसी कृपा जु करी हम उपर सुंदरके उर है गुरु दादू॥"

दादू—बम्बईके सरकाना जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २६° २४' से २७° ३' उ० और देशा० ६७° ४१' से ६८° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २८४ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ५५२१८ है। इसमें दादू नामका एक शहर और ५३ ग्राम लगते हैं। आय १½ लाख रुपयेकी है। तालुकके उत्तर सिन्धु नदी बहती है। गेंहू और चना यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य है।

दादूदयाल (हिं० पु०) दादू देखो।

दादूपन्थी (हिं० पु०) दादू नामक साधुका अनुयायी। दादूपन्थीके तीन भेद हैं—विरक्त, नागा और विस्तरधारी। विरक्त लोग सिर्फ जलपात्र और कौपीन रखते हैं, नागा लोग लड़ाके होते और राजाओंकी सेनामें भरती होते हैं। दादुपन्थी देखो।

दाधिक (सं० त्रि०) दध्नि दध्ना वा संस्कृतं दध्ना चरति दधि ठक्। (चरति। पा ४।४।८) १ दधिमें संस्कृत द्रव्य, दहीमें सोधा हुआ पदार्थ। २ दध्नाचारी। ३ दधि द्वारा संसृष्ट। ४ दधिमें उपसिक्त। (क्ली०) ५ घृतऔषधभेद। इसको प्रस्तुत प्रणाली—विट्‌लवण, इन्द्रयवचो, सैन्धव, चित्रक, त्रिकटु, जीरक (जीरा), हिङ्गु (हींग), सोवर्चल, यवक्षार, आम्रातक और अम्लवेतस इन सब द्रव्योंको खटासको नीबूके रसमें चौगुने दहीके साथ घीको पाक करते हैं। इसी घीका नाम दाधिक घी है। इसके सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा और शूल आदि रोग जाते रहते हैं।

दाधिक्क (सं० त्रि०) दधिक्का सम्बन्धीय।

दाधित्थ (सं० क्ली०) दधित्थस्य विकार अनुदात्तादित्वात् अञ्। १ कपित्थका विकार, कैथका विकार। (क्ली०) तस्य परिमाणं अञ्। २ कपित्थपरिमाण, कैथके बराबर।

दाधीचि (हिं० पु०) दधीचिके वंशका मनुष्य।

दाधृवि (सं० स्त्री०, धृवि युड्, लुक्, ततो इन्। धरित्री, पृथ्वी, धरती।

दार्ष्टि (सं० त्रि०) धृष्-यङ्-लुक्-ततो इन्। १ धर्षक, दमन करनेवाला, दबानेवाला। २ अत्यन्त धर्षक।

दान (सं० क्ली०) दा दाने दो अवखण्डने दैप शोधने भावादौ ल्युट्। १ गजमद, हाथीका मद। २ पालन। ३ छेदन। ४ वह वस्तु जो दानमें दी जाय। ५ कर, महसूल। ६ राजनीतिके चार उपायोंमेंसे एक। ७ शुद्धि। ८ वृक्षकोटर कीटज मधु, वह मधु जो पेड़के कोटरके कीड़ोंसे बनता हो। इसका गुण—रुच, दीपन, कफ, छर्दि और मेहनाशक है। ९ देवब्राह्मणादि सम्प्रदानक द्रव्यमोचन। वह व्यापार जिसमें किसी वस्तु परसे अपना स्वत्व दूर हो गया हो। इसका पर्याय-त्याग, विहापित, उत्सर्जन, विसर्जन, विश्राणन, वितरण, स्पर्शन, प्रतिपादन, प्रादेशन, निर्वपण, अपवर्जन, अंहति, दाय, प्रदान, ददन, दत्ति, उत्सर्ग, अतिसर्जन, स्पर्श, विसर्ग, त्यजन और प्रदेशन है। दानका लक्षण—

"अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनं।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य वक्ष्यते॥"
(शुद्धितत्त्व)

सत्पात्र देख कर उन्हें श्रद्धापूर्वक समस्त द्रव्य अर्पण करनेका नाम दान है। दानके ६ अङ्ग हैं, यथा—

"दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धादेयं च धर्मयुक्।
देशकालौ च दानानामाङ्गान्येतानि षड्विदुः॥" (शुद्धित०)

दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धादेय, धर्मयुक्त, देश और काल ये ही ६ दानके अङ्ग कहे गये हैं। जब दान करना हो, तब मन ही मन पात्रको स्थिर कर अर्थात् अमुक व्यक्तिको दान देंगे ऐसा निश्चय करके पृथ्वी पर जल गिरा देना चाहिये, पीछे दानवस्तु उन्हें दे देनी चाहिये। इस तरहका दान सबसे श्रेष्ठ है, सागरका अन्त भले ही मिल जाय, पर इस प्रकारके दानफलका अन्त नहीं मिलता है।

परोक्षकल्पित दान—यदि वह पात्र न मिले, तो उनके गोत्रजोंको, यदि गोत्रज भी न मिलें तो बन्धुको, बन्धुके अभावमें स्वजातिको, यदि स्वजाति भी न मिले तो उस दानवस्तुको जलमें फेंक देनेको लिखा है।
(शुद्धित०)

दान करनेके समय स्नान कर विशुद्ध स्थानको गोबरसे लीप लें, बाद उस स्थान पर बैठ कर पहले दान दें और पीछे दानके लिये दक्षिणा।

प्रयोजनकी अपेक्षा न कर अर्थात् किसी प्रकारकी उपकारकी आशा न रखते हुए केवल बुद्धिसे प्रणोदित हो कर सत्पात्रको जो दान दिया जाता है उसे धर्मदान कहते हैं। (शुद्धित०)

यह दान अतीव पुण्यदायक है और सभी दानोंमें श्रेष्ठ है। जिसको दान देना हो उसके समीप जा कर दान देनेसे अनन्त गुण और बुला कर दान देनेसे सहस्र गुण प्राप्त होता है। प्रार्थना करनेके बाद दान देनेसे अर्द्ध फल मिलता है। जो किसीको आशा दे कर दान नहीं देते, वे ब्रह्महत्याके पातकी होते हैं। जो दान दे कर पीछे तापग्रस्त हों, वे भी निरयगामी होते हैं।

उक्त विधानके अनुसार जो दान देते और लेते हैं, वे दोनों ही स्वर्गवासी और उसके विपरीत होनेसे नरकवासी होते हैं। प्रकृतिके अनुसार दानके तीन भेद हैं, सात्विक, राजसिक और तामसिक।

उपकारक व्यक्तिके उपकारका ख्याल न कर केवल दातव्यके ख्यालसे जो उपयुक्त देश, काल और पात्रके अनुसार दान दिया जाता है, उसे सात्विक दान, प्रत्युपकारकी इच्छासे अथवा फलप्राप्तिकी इच्छासे जो दान दिया जाता है, उसे राजस दान और देशकाल पात्रादिका विचार किये बिना जो किसी देशमें, किसी कालमें तथा किसी पात्रको असत्कार एवं अवज्ञाके साथ दान दिया जाता है, उसे तामस दान कहते हैं। जिनकी प्रकृति सात्विक भावसे गठित है, वे सात्विक दान करते हैं, उनके सामने राजस और तामस दान हेय है। यह दान नित्य नैमित्तिकादिके भेदसे चार प्रकारका है,—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल। इन चारोंमें चतुर्थदान सबसे श्रेष्ठ है। किसी उपकारकी प्रत्याशा न कर प्रतिदिन ब्राह्मणादि सत्पात्रको जो दान दिया जाता है, उसे नित्यदान, जो दान पापादिकी शान्तिके लिये, अर्थात् किसी प्रकारके उपकारके लिये सत्पात्रको दिया जाता है, उसे नैमित्तिक दान, सन्तान, ऐश्वर्य और स्वर्गादिकी कामनासे जो दान दिया जाता है, उसे काम्यदान और ईश्वरकी प्रीतिके लिये ब्रह्मविद् ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, उसे विमल दान कहते हैं। यही दान सबसे श्रेष्ठ है। (कूर्मपु०)

जहां शालग्रामशिला वा गङ्गादि तीर्थ हों, वही स्थान दानके लिये प्रशस्त है। शामको अर्थात् सूर्यके अस्त होने पर दान करना निषेध है, यदि कोई करे भी, तो उस दानका कोई फल नहीं। जो सामर्थ्यवान् है, उसके पास यदि कोई विपद्ग्रस्त ब्राह्मण कोई चीज मांगने जाय और वह उसे फटकार ले तो वह नरकभोगी होता है।

जीवन अनित्य है, आयु अत्यन्त चञ्चल है, कब मृत्युका ग्रास बन जायगी उसका कुछ निश्चय नहीं है। यह सब सोच कर हरएकका मुख्य कर्तव्य है, कि अपना जीवन सर्वदा दानादि पुण्यकर्मोंमें लगा दे। भोजन करके दान करना बिलकुल निषेध है। अभुक्त हो कर दान करना चाहिये। जो पतनसे उद्धार करता है, उसे दानपात्र कहते हैं। जिसका विद्या और तपमें पूरा दखल है, उसीको दान देना चाहिये और उसीको दान देनेसे दाता पतनसे उद्धार पा सकता है।

जो सब ब्राह्मण शूद्रके अर्थादि द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, वे दानके अपात्र हैं। दानके वे ही पात्र हैं जिनके हृदयमें शूद्रान्न नहीं है। किसीका पिण्डादि लोप होते देख कर दयापरवश पुत्रदानका नाम दत्तक है,। यह दान सभी दानोंमें उत्तम माना गया है। दत्तक देखो।

समीपस्थ शास्त्रज्ञानसम्पन्न ब्राह्मणको न दे कर यदि दूसरे ब्राह्मणको कुछ दान दे, तो दाताके सात कुलका विनष्ट होता है। (शातातप)

मन्त्रपूर्वक दान यदि अपात्रमें करे, तो वह नरकभोगी होता है। देवता, अग्नि और ब्राह्मणको दान देनेमें यदि कोई निषेध करे, तो वह सौ बार तिर्यग्योनि प्राप्त कर पीछे चाण्डालकुलमें जन्म लेता है। (शातातप)

यतियोंको सोना, चांदी और तांबा दान नहीं करना चाहिये, जो कोई करता भी है उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता। वाक्य द्वारा जो स्वीकार कर लिया है उसे पूरा नहीं करने पर ऋणी होना पड़ता है।

इस मनुष्यको दान देंगे यदि ऐसा कहें, तो सबसे पहले उसीको देना उचित है।

जो धन दूसरेको कष्ट दे कर नहीं, वरं श्रमादि द्वारा उपार्जित हुआ हो, वही धन देय अर्थात् दानका उपयुक्त है, यदि वह कम भी क्यों न हो। (देवल)

जो मनुष्य दूसरेका धन अपहरण कर पीछे उसे दान करता है उसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता और न उसे दानका कोई फल ही मिलता है। लङ्गड़े, अन्धे, बहरे, गूंगे एवं व्याधिपीड़ित अर्थात् महापातक रोगग्रस्त मनुष्योंको दान नहीं देना चाहिये, लेकिन प्रतिपालन करना अवश्य कर्त्तव्य है। यदि वे लोग अन्नवस्त्रादिके अभावसे कष्ट पावें, तो उनका उसी धनसे उपकार करना चाहिये। विशुद्ध धन सात प्रकारका है, यही सात प्रकारका धन दान कर सकते हैं। अध्ययनादि द्वारा प्राप्त धन, शौर्य अर्थात् जयादि द्वारा पाया हुआ धन; जप, होम और देवसेवादि करके लब्ध धन, कन्यागत धन, कन्याके साथ आगत श्वश्रु आदि द्वारा लब्ध धन, शिष्यगत अर्थात् गुरुदक्षिणादि द्वारा प्राप्त धन, याज्यागत अर्थात् ऋत्विक् करके प्राप्तधन, अन्वयागत अर्थात् ज्ञातिवर्गसे लब्ध धन, ये ही सात प्रकारके धन विशुद्ध हैं। इस धनको सात्विक धन कहते हैं।

राजसिक धन—कुसीद, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, शालानुवृत्ति अर्थात् सेवा टहल और उपकार द्वारा जो धन प्राप्त होता है उसे राजसिक धन कहते हैं। तामसिक धन-द्यूतक्रीड़ा, चौर्य, पार्श्विक, परपीड़ा, साहस, समुद्रयान और गिरि-आरोहण, व्याज अर्थात् शूद्रादि हो कर ब्राह्मणोंका वेश धारण पूर्वक जो धन उपार्जन किया जाता है, उसे तामसधन कहते हैं। दोनोंमें सात्विकधनको श्रेय और तामसिकधनको निन्दनीय बतलाया है। इस प्रकारका धन दानमें न लगाना चाहिये। पूर्वोक्त विशुद्ध जो सात प्रकारके धन कहे गये हैं, वे ही दानके लिये प्रशस्त हैं। चाहे किसी वस्तुका दान क्यों न करें, हरएकके एक एक अधिष्ठात्री देवता हैं। उन्हींका नाम ले कर दान करना चाहिये।

देयद्रव्यके देवता—भूमि दानके देवता विष्णु, कन्या दानके प्रजापति, गजदानके भी प्रजापति, तुरगके देवता यम, एक खुरविशिष्ट पशुमात्रके भी यम, धेनुदानके देवता रुद्र महिषदानके देवता यम, छागदानके देवता अग्नि, मेषदानके देवता वरुण और वराहदानके देवता विष्णु हैं। इसके सिवा सभी जङ्गली पशुओंके देवता वायु और जलज जन्तुओंके

अधिष्ठात्री देवता वरुण हैं। सुवर्णदानके देवता अग्नि, मत्स्यदानके प्रजापति, पुस्तकादि विद्याङ्गदानके सरस्वती, छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, आसन और पादुका दानके देवता प्रजापति, सब प्रकारके क्षतोपकरणके देवता विष्णु, समुद्रजात रत्नादिके देवता अग्नि हैं, इत्यादि। जिस किसी द्रव्यका दान करना हो, उस द्रव्यके अधिष्ठात्री देवताका नामोल्लेख करके उत्सर्ग और दान करना चाहिये। दान करते समय दाता जिसे दान दें उसका नाम गोत्र ले कर तथा द्रव्यके अधिष्ठात्री देवताके नामसे उत्सर्ग करके दान करें। (विष्णुधर्मोत्तर)

दानके पात्र—जिनके शान्ति, दया, सत्य, शील, तपस्या और शास्त्रज्ञान आदि हैं, वे ही प्रकृत दानके पात्र हैं।

हरएकका मुख्य कर्त्तव्य है, कि वह हमेशा गो, तिल, भू, हिरण्य आदि पात्रविशेषको दान करे। पुण्यकारी मनुष्य आर्त्तियोंको अन्नदान, कुटुम्बीयोंको गोदान, याज्ञिकोंको सुवर्ण, अनपत्योंको पुत्र, कन्या, क्षत्रियको युद्धोपकरण द्रव्य, वैश्यको पण्योपयोगी द्रव्य और शूद्रको शिल्पोपयोगी द्रव्य दान करे। जो वस्तु जिस वर्णकी उपयोगी है, वही वस्तु उसे दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। ब्रह्मचारियोंको दण्ड, कृष्णाजिन और कमण्डलु दान करनेसे अधिक पुण्य लिखा है। इसी प्रकार गृहस्थको वस्त्र, शय्या, आसन, धान्य, गृह और गृहपरिच्छद; वानप्रस्थोंको नीवार, शाक, फल और दुग्ध तथा स्त्रियोंको गन्ध, माङ्गल्य द्रव्य, ताम्बूल और अलक्तक वस्त्रादि दान देनेसे विशेष फल है। लेकिन स्मरण रहे, कि स्त्रियोंको यदि दान देना हो, तो उसके स्वामीके प्रत्यक्षमें दान दे, न कि परोक्षमें। बालकोंको क्रीड़नक अर्थात् काठके खिलौने दान करनेसे विशेष पुण्य होता है। वे दोनों लोकमें पुण्यवान् होते हैं। जो दुर्भिक्षमें अन्न और सुभिक्षमें हेम तथा वस्त्र दान करते हैं। (अग्निपु०)

जो धन अन्यान्य कार्य द्वारा प्राप्त हुआ हो; उसे दान करनेमें कोई फल नहीं है।

दानाङ्ग कालमें तिथिकाल—कार्त्तिक मासकी प्रतिपद् तिथिमें जो दान किया जाता है, वह अतीव पुण्यजनक माना गया है। आश्विन मासकी द्वितीया तिथिका दान भी विशेष प्रशस्त है। वैशाख मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें जो दान किया जाता है उसे भी पुण्यजनक माना है। भाद्र और माघ मासको शुक्ला चतुर्थीमें यदि मङ्गलवार पड़े, तो उस दिनका नाम सुखदा है और उस दिन दान करनेसे विशेष पुण्य मिलता है। अग्रहायण और श्रावण मासको शुक्लापञ्चमीमें दान करनेसे अक्षय पुण्य मिलता है। अग्रहायण और श्रावण मासको षष्ठीमें एवं शुक्लपक्षकी सप्तमीमें यदि उस दिन रविवार पड़े दान करनेसे अक्षयफल प्राप्त होता है। अग्रहायणकी शुक्ला सप्तमी, पौषमासकी शुक्लाष्टमी, आश्विन मासकी शुक्लानवमी, ज्येष्ठमासको शुक्लादशमी तथा शुक्लपक्षकी पुष्यानक्षत्रयुक्त एकादशी तिथि, भाद्रमासकी श्रवणा नक्षत्र युक्त शुक्ला द्वादशी, आश्विन मासकी द्वादशी, पुष्यानक्षत्रयुक्त फाल्गुन मासकी द्वादशी, चैत्रमाघकी त्रयोदशी, चैत्रमाघ और श्रावणकी शुक्ला चतुर्दशी, वैशाख मास और कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा ये सब तिथियां दानके लिए प्रशस्त कही गई है। व्यतिपात, युगादि, अमावस्या, अयनसंक्रान्ति, चन्द्र और सूर्यग्रहण आदि पुण्यकालमें दान करना चाहिये। दानका निषिद्ध काल—शामको तथा रातको दान नहीं करना चाहिये, जो कोई रातको दान करता है उसे कोई फल नहीं मिलता। (स्कन्दपु०)

महागुरुके मरने पर पहले वर्ष दान नहीं करना चाहिये। चन्द्रसूर्यादि ग्रहणमें भी रातको दान कर सकते हैं। कन्यादान रात होमें प्रशस्त है। (वृद्ध वशिष्ठ)

ग्रहण, उद्वाह, यात्रादि-प्रसव ये सब नैमित्तिक दान हैं। रात्रिमें भी यह दान निषिद्ध नहीं है। अट्टहास, गङ्गासागरसङ्गम, कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, वाराणसी आदि तीर्थसमूहमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। नदीके किनारे, गोष्ठ, ब्राह्मणके घर इत्यादि पुण्यस्थलमें जाकर दान करना पुण्यप्रद है। दान करनेके समय सबसे पहले श्रद्धाकी विशेष जरूरत है। श्रद्धान्वित हो कर यदि शाक भी मुट्ठी भर दान किया जाय, तो वह भी अनन्तगुण फलदायी होता है। फिर श्रद्धाशून्य हो कर यदि सर्वस्व दान भी क्यों न कर दे, तो भी कोई फल नहीं। इसीसे श्रद्धाको दानका एक अङ्ग माना है। केवल दान ही नहीं वरं श्रद्धाके बिना सभी काम निष्फल

होते हैं। दानके समय दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही स्नानादि कर शुचि हो जावें, पीछे दाता दान करें और ग्रहीता उस दानको ग्रहण करें। (वराहपु०)

दानकालमें 'ओं' शब्द उच्चारण कर दान करना चाहिये। ग्रहीताको भी प्रणव उच्चारण कर उसे ग्रहण करना चाहिये। (जातुकर्ण्य)

प्रणव ही एक मात्र जगत्‌का बीज और वेदका आदि है। इसी कारण प्रणव उच्चारण कर स्नान दानादि शुभ कार्य करनेको लिखा है।

प्रश्नपूर्वक जो ब्राह्मणको दान देता है, वह नरक भोगी होता तथा जो ब्राह्मण इस प्रकारका दान ग्रहण करता है उसे भी नरक भुगतना पड़ता है। (शातातप)

अपमान करके जो दान देते हैं एवं जो इस प्रकार का दान लेते हैं, दोनों ही बहुत दिन तक निरयगामी होते हैं। किसी कार्यको प्रत्याशा करके जो दान करते हैं और जो उसे ग्रहण करते हैं, दोनोंको नरककष्ट भुगतना पड़ता है।

चाहे जिस किसी वस्तुका दान करना चाहें उसे मन्त्रपूर्वक दान करें अमन्त्रक दान निष्फल होता है।

यदि महापातकज रोग हो अथवा किसी कठिन पीड़ासे ग्रस्त हो, तो उस रोगके लिये विहित द्रव्य विधानानुसार दान करके चिकित्सा करनी चाहिये। रोगके लिये दानका विषय हारीतसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

गो, भूमि वा सुवर्ण दान कर देवताओंका पूजन पूर्वक रोगका प्रतिकार करे। कुष्ठ और पाण्डुरोगकी शान्तिके लिए गो, भूमि वा हिरण्य दान करना चाहिये। मेह, शूल, श्वास, भगन्दर, अर्श और कासरोगमें सुवर्ण तथा अन्न दान, ज्वररोगमें रुद्रजप, सोति, अन्न वा मास दान, गुल्म और अग्निमान्द्यरोगमें कन्यादान; मेह और अश्मरी रोगमें लवण दान करना चाहिये। शूलरोगमें प्रभूत अन्न दान करनेसे आरोग्य लाभ होता है। रक्तपित्त रोगमें घृत और मधु दान; ग्रहणीरोगमें गो, हिरण्य, भूमि और अन्नदान; कुनखी और श्यावदन्तरोगमें सुवर्ण दान, श्वित्र और कुष्ठरोगमें रौप्यदान; सिध्मल रोगमें त्रपुदान; बहुमूत्रमें गोदान; नेत्ररोगमें घृत दान, नासिकारोगमें सुगन्ध द्रव्य दान, कण्ठुरोगमें तैल दान; जिह्वारोगमें रस दान और पित्तरोगमें उष्ट्रदान करके रोगकी चिकित्सा करनेको बतलाया है। इस प्रकार दान करके चिकित्सा करनेसे रोग बहुत जल्द शान्त हो जाता है।

(हारीत द्वितीय स्थान १७०)

ग्रहगण गोचरमें यदि अष्ट वर्ग वा दशाके विरुद्ध हों, तो दानादि द्वारा शुभ होता है।

रविग्रहका दान—माणिक्य (अभावमें मूल्य), गोधूम, सवत्स धेनु, कुसुम्भरञ्जित वस्त्र, गुड़, स्वर्ण, ताम्र, रक्तचन्दन, रक्तवस्त्र और आतपतण्डुल दक्षिणाके साथ दान करनेसे रविग्रह कभी बुरा फल नहीं देता है।

चन्द्रका दान—रजत पात्रमें तण्डुल, कर्पूर, मुक्ता, शुक्लवस्त्र, रौप्य, युगोपयुक्त वृष, घृतपूर्ण कुम्भ और वस्त्र है।

मङ्गलका दान—प्रवाल, गोधूम, मसूर, उरद, अरुणवर्ण वृष, गुड़, स्वर्ण, रक्तवस्त्र, करवीर पुष्प और ताम्र मङ्गलग्रहके लिए करना होता है।

बुधका दान—नीलवस्त्र, स्वर्ण, कांस्य, उरद, पीतवर्ण पुष्प, द्राक्षा और हस्तिदन्त है।

वृहस्पतिका दान—चीनी, दारुहरिद्रा, अश्व, पीतधान्य, पीतवस्त्र, रक्तपुष्प, लवण और स्वर्ण है।

शुक्रका दान—विचित्र वस्त्र, श्वेताश्व, धेनु, वस्त्र, रौप्य, स्वर्ण, सुगन्धि और तंडुल है।

शनिका दान—उरद, तैल, नीलवस्त्र, कृष्णतिल, नीलमणि, महिष, लौह और सवस्त्र दक्षिणा है।

राहुका दान—गोमेद, रत्न, अश्व, नील वस्त्र, कंबल, कृष्णतिल और सवस्त्र दक्षिणा है।

केतुका दान—वैदुर्यमणि, रत्न, मृगमद, तिल, तिलतैल; कम्बल और खड्ग सवस्त्र दक्षिणाके साथ दान करना होता है। ग्रह सम्बन्धीय सभी दान उसी मन्त्रसे तथा वस्त्रके साथ उत्सर्ग करके दान करना चाहिये। दानद्रव्यादि ग्रहाचार्यको दें अन्यथा फल नहीं मिलता है। यदि कोई ब्राह्मण जान कर अथवा बिना जाने लोभवश उस दानको ग्रहण करे, तो वह इस लोकमें दरिद्र होता है और मरनेके बाद चण्डालयोनिमें जन्म लेता है। (ज्योतिष)

ग्रह सम्बन्धीय किसी प्रकारका दान ग्रहाचार्यके

सिवा और किसी ब्राह्मणको न लेना चाहिये।

सभी धर्मशास्त्रों और पुराणोंमें दानका माहात्म्य वर्णित है। इनके सिवा कितने ग्रन्थकारोंने दानके विषयमें कितने ग्रन्थ संस्कृतभाषामें रचे हैं। उनमेंसे कुछ ये हैं—कमलाकररचित दानकमलाकर, रघुनन्दनकृत दानःखतत्त्व, गोविन्दानन्द रचित दानकौमुदी, अनन्तदेव रचित दानकौस्तुभ; गौतम, जयराम, दिवाकर और वृन्दावनकी दानचन्द्रिका, दिवाकरका दानदिनकर, भवदेवभट्टको दानधर्मप्रक्रिया, नरराज और रत्नाकर ठक्कुरकी दानपञ्जिका, रामदत्तको दानपद्धति, नीलकण्ठको दानपरिभाषा और दानमयूख, श्रीधरमिश्रको दानपरीक्षा, अनन्तभट्टका दानपारिजात, मित्रमिश्रका दानप्रकाश, दयारामका दानप्रदीप, कुवेरानन्दका दानभागवत, व्रजराजको दानमञ्जरी, चण्डेश्वर और राजभट्टका दानरत्नाकर, नरराज और विद्यापतिकी दानवाक्यावली, दानविवेक, मदनसिंहदेवका दानविवेकोद्योत, दिवाकरकी दानसंक्षेपचन्द्रिका, अनन्तभट्ट, कामदेव तथा राजा बल्लालसेनका दानसागर, इनके सिवा हेमाद्रिका दानखण्ड और अपरार्कका दानापरार्क है।

दानक (सं० क्लो०) कुत्सितं दानं दान-कन्। कुत्सित दान, बुरा दान।

दानकर्म (सं० क्लो०) दानमेव कर्म। दानक्रिया, देनेका काम। इसका पर्याय—दाति, दाशति, दासति, राति, राशति, पृनाति, पृनाति, शिक्षति, तुञ्जति और महत है।

दानकाम (सं० त्रि०) दानं कामयते काम-स्वार्थे णिङ् अण्। दानशील, दान देनेका काम।

दानकुल्या (सं० स्त्री०) हस्तीका मदजल, हाथीका मद।

दानकेली—श्रीरूपगोस्वामीका बनाया हुआ भाणिकालक्षणाक्रान्त दृश्यकाव्य।

दानगढ़—इस स्थानमें श्रीकृष्णने दानलीला की थी।

दानघाटी—गोवर्द्धनस्थित श्रीकृष्णका लीलास्थान।

दानच्युत (सं० पु० क्लो०) गोत्रप्रवर ऋषिभेद।

दानधर्म (सं० पु०) दानाख्यो धर्मः दानरूपोधर्मो वा मध्यलो०। दानका धर्म, दान-पुण्य।

दाननिवर्त्तनकुण्ड—गोविन्दकुण्डके निकट अवस्थित एक कुण्ड।

दानपति (सं० पु०) दाने पतिः श्रेष्ठः ७-तत्। १ सतत दाता, सदा दान देनेवाला। २ अक्रूरका नामान्तर, शतधन्वाने स्यमन्तक मणिको चुराकर इन्होंके पास रखा था। मणिके प्रभावसे ये प्रतिदिन दान दिया करते थे, इसी कारण इनका नाम दानपति हुआ है। (भागवत) ३ दैत्यभेद, एक दैत्यका नाम।

दानपत्र (सं० क्लो०) दानस्य पत्रं। त्यागपत्र, वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई सम्पत्ति किसीको प्रदान की जाय। पूर्व समयमें दानपत्र ताम्रपत्र आदि पर खोदे जाते थे। बहुतसे राजाओंके दिये हुए दानपत्र ऐसे हैं जिनसे अनेक ऐतिहासिक बातोंका पता लगता है।

दानपद्धति (सं० स्त्री०) दानस्य पद्धतिः। दान-विषयक पद्धति, दानकी प्रणाली वा नियम।

दानपात्र (सं० क्लो०) दानस्य पात्रं। दानयोग्य ब्राह्मणभेद, दान पानेके उपयुक्त व्यक्ति।

दानप्रतिभाव्य (सं० क्लो०) ऋण परिशोध करनेके लिये जामिन।

दानफल (सं० क्लो०) दानस्य फलं ६-तत्। दानका फल, दानके लिये धर्मसञ्चय।

दानफलका विषयमें अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—जो दाता ब्राह्मणोंके समीप जा कर भक्तिपूर्वक उन्हें दान देते हैं वे तीन अवस्थामें अक्षय फल प्राप्ति करते हैं। भय वा क्रोधपूर्वक दान देनेसे गर्भावस्थामें तथा ईर्षा और क्रुद्ध हो कर दम्भ तथा अर्थके लिये द्विजातियोंको दान देनेसे बाल्यकालमें इसका फल प्राप्त होता है।

जो वैश्य और वेदविहीन सन्ध्यादि-उपासना वर्जित ब्राह्मणोंको दान देते है, वे वृद्धकालमें इसका फल पाते हैं।

चार प्रकारके जन्म और सोलह प्रकारके दान निष्फल हैं—अपुत्र व्यक्ति, बक धार्मिक, पराक्षभोजी और जो सर्वदा मनुष्योंको कष्ट देते रहते है इन्हीं चार प्रकारके मनुष्यका जन्म निष्फल है। १ देवपितृविहीन, २ ईश्वरके प्रति दोषारोपी, ३ दत्तानुकीर्त्तन (दान दे कर बोलना),

४ वेद, अग्नि और व्रतत्यागी, ५ अन्याय द्वारा उपार्जित वस्तु दान, ६ ब्रह्मघाती, ७ मिथ्यावादीगुरु, ८ चोर, ९ पतित, १० कृतघ्न, ११ जो सर्वदा ब्राह्मणोंके प्रति द्वेष रखता हो, १२ याचक, १३ वृषलीपति, १४ परिचारक, १५ भृत्य और १६ मिथ्यावादीको दान देना, यही सोलह प्रकारके दान निष्फल हैं।

दानलीला (सं॰ स्त्री॰) १ कृष्णकी एक लीला। इसमें उन्होंने ग्वालिनोंसे गोरस बेचनेका कर वसूल किया था। २ एक पुस्तक जिसमें श्रीकृष्णकी इस लीलाका वर्णन किया गया है।

दानव (सं॰ पु॰) दनोरपत्यं दनु-अण्। (तस्यापत्यं। पा ४।१।९२) दनुका अपत्य, कश्यपके वे पुत्र जो दनु नामकी पत्नीसे उत्पन्न हुए, असुर, राक्षस।

इन्द्रने अभिषुत सोमको पान कर मायावी राक्षसोंकी सभी माया नष्ट कर दी थीं। भागवतमें दनुके ६१ पुत्र गिनाए गये है। जिनमेंसे द्विमूर्द्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, तापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय यही १८ प्रधान हैं।

महाभारतके अनुसार दक्षकी कन्या दनुसे विख्यात चालीस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमेंसे विप्रचित्ति राजा हुए थे। इनके नाम ये हैं,—शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, वीर्यवान्, अश्वशङ्कु, गगनमूर्द्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपाद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य और चन्द्र। दनुवंशमें जन्म होनेके कारण ये लोग दानव कहलाये। दानवोंमें जो सूर्य और चन्द्र हुए उन्हें देवताओंसे भिन्न समझना चाहिये। (भारत १।६५ अ॰)

मनुसंहितामें लिखा है, कि दानव पितरोंसे उत्पन्न हुए थे। (मनु ३।२०१)

मरीचि आदि ऋषियोंसे पितर उत्पन्न हुए थे। फिर पितृगणोंसे देव दानव और देवताओंसे चराचर जगत् आनुपूर्विक क्रमसे उत्पन्न हुए हैं। दानवस्येदं अण्। (त्रि॰) दानव सम्बन्धीय। स्त्रियां ङीप्।

दानवगुरु (सं॰ पु॰) दानवानां गुरुः ६-तत्। दानवोंके गुरु, शुक्राचार्य।

दानवच्छ (सं॰ पु॰) दाने वक्ष इव। वैश्यजातिक अश्वविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। महाभारतमें लिखा है, कि इस प्रकारके घोड़े देवताओं और गन्धर्वोंकी सवारीमें रहते, कभी बूढ़े नहीं होते और मनकी तरह वेगशाली होते है। (महाभारत १।१७१ अ॰)

दानवप्रिया (सं॰ स्त्री॰) नागवल्ली लता, पानकी बेल।

दानवारि (सं॰ पु॰) दानवानां अरिः ६-तत्। १ देवता। २ विष्णु। ३ इन्द्र। दानमेव वारि जलं। (क्ली॰) ४ गजमदजल, हाथीका मद।

दानविधि (सं॰ पु॰) दानस्य विधिः ६-तत्। दान देनेका विधान वा नियम।

दानवी (सं॰ स्त्री॰) १ दानवकी स्त्री। २ दानवजातिकी स्त्री, राक्षसी।

दानवी (हिं॰ वि॰) दानवसम्बन्धी, दानवोंकी।

दानवीर (सं॰ पु॰) १ अत्यन्त दाता, वह जो दान देनेसे न हटे। २ वीररसभेद। ३ नायकभेद। साहित्यमें वीररसके अन्तर्गत चार प्रकारके जो वीर गिनाये गये हैं उनमें एक दानवीरका भी नाम आता है। दानवीरतामें उत्साह स्थायीभाव है, याचक आलम्बन हैं, अध्यवसाय और दानसमय ज्ञान आदि उद्दीपन विभाव हैं, सर्वस्व त्याग आदि अनुभाव तथा हर्ष और धृति आदि संचारी भाव है।

दानवेन्द्र (सं॰ पु॰) राजा बलि।

दानवेय (सं॰ पु॰) दन्वाः अपत्यं दनु स्त्रियां ढक्, ततो ठक्। दक्षकी कन्या दनुका अपत्य।

दानव्रत (सं॰ क्ली॰) दानमेव व्रतं। दानरूपी व्रत।

दानशक्ति (सं॰ स्त्री॰) दानस्य शक्तिः। दातृत्व, दान करनेकी क्षमता।

दानशील (सं॰ त्रि॰) दाने शीलं स्वभावो यस्य। दाता, दानी। इसका पर्याय—वदान्य और वदन्य है।

दानशीलता (सं॰ स्त्री॰) उदारता, दान करनेकी प्रवृत्ति।

दानशूर (सं॰ पु॰) दाने शूरः वीरः। दानवीर; शाक्यमुनि।

दानशौण्ड (सं॰ त्रि॰) दानेषु शौण्डः अतिदक्षः। अत्यन्त वदान्य, बहुत दानी।

दानसागर (सं० पु०) दानानां सागर इव। महादान विशेष, एक प्रकारका महादान। इसका प्रचार बङ्ग देशमें है। इसमें भूमि, आसन और सोलह पदार्थोंका दान किया जाता है। दानानां सागर इव प्रतिपादकतया आधार इव। २ तुलापुरुषादि महादानका विधानज्ञापक स्मृतिनिबन्धभेद।

दाना (फा० पु०) १ अन्नका एक कण, अनाजका एक कण। २ अन्न, अनाज। ३ चर्वण, चबेना। ४ बाल, फली या गुच्छेमें लगा हुआ कोई छोटा बीज। ५ उक्त बीजोंमेंसे एक बीज। ये बीज कड़े गूदेके साथ बिलकुल मिले हुए अलग अलग निकलते हैं, जैसे अनारका दाना। ६ एक ही तागेमें गूंथी, पिरोई या जोड़ी हुई कोई छोटी गोल वस्तु। ७ मालाकी गुरिया। ८ बरतनकी नक्काशीमें गोल उभार। ९ खुजलाने वा रोग आदिसे उत्पन्न शरीरके चमड़े पर महीन महीन उभार। १० टटलनेसे अलग अलग मालूम होने योग्य किसी सतह परके छोटे छोटे उभार। ११ कण, कणिका, रवा। १२ वह शब्द या अदद जो गोल या पहलदार छोटी वस्तुओंके लिये संख्याके स्थान पर आता है, जैसे चार दाने मिर्च। (फा० वि०) १३ बुद्धिमान्, अक्लमन्द।

दानाई (फा० स्त्री०) बुद्धिमत्ता, अक्लमन्दी।

दानाकेश (हिं० पु०) चोगेके पहने जानेका एक प्रकारका जरदोजीका कपड़ा।

दानाचारा (फा० पु०) भोजन, आहार, खाना पीना।

दानाध्यक्ष (सं० पु०) दानका प्रबन्ध करनेवाला कर्मचारी, वह व्यक्ति जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य ब्राह्मणोंमें बाँटा जाय।

दानापानी (हिं० पु०) १ अन्न जल, खान पान। २ भरण पोषणका आयोजन, जीविका। ३ रहनेका संयोग।

दानापुर—विहार उड़ीसा प्रदेशके अन्तर्गत पटना जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° ३०' से २५° ४४' उ० और देशा० ८४° ४८' से ८५° १५' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४२४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३१५६६०७ है। इसमें दो शहर और ७८१ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें गङ्गा तथा पश्चिममें सोननदी प्रवाहित है। २ उक्त विभागका एक प्रधान शहर और सेनानिवास। यह अक्षा० २५° ३८' उ० और देशा० ८५° ३' पू०; दानापुर रेलवे ष्टेशनसे ३॥ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या ३३६९८ है जिनमें २४५७५ हिन्दू, ८१०५ मुसलमान और १०१८ ईसाई हैं। यह शहर बाँकीपुरसे ३ कोस दूर है। इसके उत्तरमें गङ्गानदी और दक्षिणमें इष्टइण्डिया रेलवे लाइन है। दानापुर, बाँकीपुर और पटना ये तीनों शहर एक दूसरेसे बहुत समीप हैं और तीनों नगरमें रेलवे ष्टेशन हैं। १८५७ ई०की पटने जिलेमें जो सिपाहीविद्रोह हुआ था, उसका सूत्रपात इसी दानापुर-सेनानिवाससे हुआ था। उसी सालके जुलाई महीनेमें यहांके तीन दल सिपाही विद्रोही हो कर अपने अस्त्रशस्त्रके साथ सेनानिवाससे बाहर निकले और दल बाँध कर शाहाबादको गये। वहां उन्हें कोई बाधा देनेवाला नहीं था, अतः उन्होंने आरा पर आक्रमण कर दिया। इसके पहले ही दानापुरसे एक दल गोरा पल्टन आरा बचानेको भेजी गई थी। दोनों दलमें घनघोर लड़ाई छिड़ी। यूरोपीय गोरा-सैन्यकोंने विलक्षण पटुता और साहससे युद्ध किया तो सही, किन्तु अन्तमें सिपाहियोंकी ही जीत हुई। यहां १८८७ ई०में म्युनिसिपेलिटी कायम हुई। शहरकी आय २७००० रु०की है।

दानाम्र (सं० वि०) दानकर्म, दान करनेका काम।

दानाबन्दी (फा० स्त्री०) खेतकी नापनेका काम जिससे खड़ी फसलसे उपजका अन्दाज किया जाय।

दानिन् (सं० त्रि०) दानमस्यास्ति दान-इनि। दानयुक्त।

दानिनी (सं० स्त्री०) दान करनेवाली स्त्री।

दानिशमन्द खाँ—उर्दूके एक मशहूर कवि। इन्होंने स्फुट नामक ग्रन्थकी रचना की है। ये १७०७ ई०में विद्यमान थे तथा औरङ्गजेबके राज-दरबारमें रहते थे।

दानिश (फा० स्त्री०) १ बुद्धि, समझ। २ सम्मति, राय, सलाह।

दानि (हिं० वि०) १ दान करनेवाला, उदार। (पु०) २ वह जो कर संग्रह करता हो। ३ पहाड़ी नेपालियोंकी एक जाति।

दानीय (सं० त्रि०) दीयतेऽस्मै दा सम्प्रदाने अनीयर्। दानपात्र, दान करनेके योग्य।

दानु (सं० पु०) ददातीति दा नु (दाधाभ्यां नुः। उण् ३।३२) १ दाता। २ विक्रान्त। ३ सुख। ४ वायु, हवा। ५ दानव, राक्षस। (क्ली०) ६ दान। ७ वर्षण, बरसनेका काम। ८ देय धन, देनेयोग्य धन।

दानुद (सं० त्रि०) दानुं ददाति दानु-दा-क। धनदाता, धन देनेवाला।

दानुमत् (सं० त्रि०) दानुः विद्यतेऽस्य दानु-मतुप्। हिंसायुक्त।

दानेदार (फा० वि०) जिसमें दाने हों, रवादार।

दानोकम् (सं० क्ली०) ध्यानका एक नियम, दान देनेका एक स्थान।

दान्त (सं० त्रि०) दम कर्त्तरि क्त। १ बहिरिन्द्रिय निग्रह-कर्त्ता, जिसने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो। २ दमित जिसका दमन किया गया हो। ३ दन्तनिर्मित, जो दांतके बने हों। ४ दांत सम्बन्धी। (पु०) ५ शिंशिन वृक्ष, पहाड़ परकी बावली। ६ मदनक वृक्ष, मैनफल। ७ विदर्भके राजा भीमसेनके दूसरे पुत्र जो दमयन्तीके भाई थे। ८ दाना।

दान्ता (सं० स्त्री०) अप्सराविशेष, एक अप्सराका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

दान्ति (सं० स्त्री०) दम-क्तिन्। १ तपःक्लेशादि सहिष्णुता, वह जिसमें क्लेश आदि सहनेकी शक्ति हो। २ वाह्येन्द्रियनिग्रह, इन्द्रियोंका दमन। ३ वश्यता, अधीनता। ४ नम्रता, विनय।

दान्तिक (सं० त्रि०) गजदन्तनिर्मित, जो हाथीके दांतके बने हों।

दाप (हिं० पु०) १ दर्प, अहङ्कार, घमंड, गर्व। २ शक्ति, बल, जोर। ३ उत्साह, उमङ्ग। ४ आतङ्क, रोब। ५ क्रोध, गुस्सा। ६ दाह, जलन, ताप।

दापक (हिं० पु०) दबानेवाला।

दापनीय (सं० त्रि०) दंडार्ह, सजा देनेयोग्य।

दापयितव्य (सं० त्रि०) दंडके योग्य, सजा देने लायक।

दापित (सं० त्रि०) दा-णिच् कर्मणि क्त। १ साधित, जो साधन किया गया हो। २ दण्डित, जिसे सजा मिली हो। ३ धनादि द्वारा आयत्तीकृत, जो धन आदि देकर वशीभूत किया गया हो। (पु०) ४ दापितधनक प्रतिवादी प्रभृति। ५ शोधित द्रव्य।

दापोली—१ बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० १७° ३५' से १८° ४' उ० और देशा० ७३° २' से ७३° २२' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५०० वर्गमील और जनसंख्या प्राय १५४६२८ है। इसके उत्तरमें जञ्जीरा और कुलावा, पूर्वमें कुलावा और खेड़ा, दक्षिणमें वाशिष्ठी नदी जो चिपलुनसे दापोलीको अलग करती हैं। तथा पश्चिममें अरबसागर है। यहाँ दूसरी दूसरी जातियोंमेंसे कुनबी, मांग, महार और भण्डी जातिके लोग अधिक रहते हैं। इसमें दापोली और हरनाय नामके दो शहर तथा २४३ ग्राम लगते हैं। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात १२१ इञ्च है।

समुद्रके किनारे यह विभाग प्रायः ३० मील विस्तृत है। समुद्रके निकटवर्त्ती ग्राम अल्प बालुकायुक्त हैं। समुद्रके किनारे सावित्री और वाशिष्ठो नदियोंके सङ्गम पर बङ्कोत और दाभोल नामके दो बड़े बड़े ग्राम हैं जहां आम और कटहलके वृक्ष यथेष्ट पाये जाते हैं।

२ उक्त विभागका एक सदर। यह अक्षा० १७° ४६' उ० और देशा० ७३° ११' पू० समुद्रसे ५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २८६७ है। १८८० ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई। शहरमें एक सब-जजकी अदालत, अस्पताल, मिशन स्कूल तथा एक टेकनिकल स्कूल है। कोङ्कणके मध्य यही स्थान स्वास्थ्यकर हैं।

दाब (हिं० स्त्री०) १ दबने या दबानेका भाव, चांप। २ भार, बोझा। ३ आतङ्क, अधिकार, रोब।

दाबकश (हिं० पु०) लोहारोंके छेदनेके यन्त्रोंका एक हिस्सा।

दाबदार (हिं० वि०) आतङ्क रखनेवाला, प्रभावशाली, प्रतापी, रोबदार।

दाबना (हिं० क्रि०) दबाना देखो।

दाबा (हिं० पु०) १ कलम लगानेका काम। इसमें पौधोंकी टहनीको मट्टीमें गाड़ते वा दबाते हैं। २ सिंध, युक्तप्रदेश और बङ्गालकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली जो आठ नौ अंगुल लम्बी होती है।

दाबिल (हिं० पु०) एक प्रकारका सफेद पक्षी। इसकी

पाँच दश बारह अंगुल लम्बी और छोर पर पैसेकी तरह गोल और चिपटी होती है।

दावो ( हिं० स्त्री० ) कटी हुई फसलके पूले जो बराबर बराबर बाँधे हुए रहते हैं और मजदूरोंमें दिये जाते हैं।

दाभ ( हिं० पु० ) एक प्रकारका कुश, डाभ।

दाभि—गुजरातकी राजपूत-जातिकी एक प्रधान श्रेणी। प्रवाद है, कि पूर्व समयमें दाभि लोगोंका वासस्थान गजनी, एदर, भीलडीगढ़ और खेडागढमें था। दाभऋषि इन लोगोंके आदिपुरुष थे। दाभऋषिकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा सुना जाता है,—

"श्रीरामचन्द्रने सीताको वनवास दिया। सीता निर्जनवनमें जा कर रहने लगीं। दश मास व्यतीत होनेके पश्चात् उन्होंने पूर्णचन्द्र प्राय एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम रखा गया लव। एक दिन सीता उसे ऋषिके पास छोड़ कर स्नान करनेको चली गईं; किन्तु रास्तेमें एक वनचरीको देख लौट आईं और लवको साथ ले पुनः उसी राहसे स्नानके लिये निकलीं। इधर ऋषिके ध्यान टूटने पर जब उन्होंने बालकको अपने समीप न देखा तब वे विचार करने लगे कि, शायद विड़ाल वा शृगाल अथवा कोई हिंस्रक जन्तु उसे मार खाया। ऐसा सोच कर उन्होंने दाभ ( दर्भ ) की एक मूर्त्ति बनाई और यजुर्वेदका उच्चारण कर उसका नाम दर्भ वा दाभऋषि रखा। सीताने लौट कर देखा कि उन्हींके लड़केके जैसा एक दूसरा लड़का उक्त मुनिके आश्रममें पड़ा हुआ है। ऋषिसे पूछने पर उन्होंने कहा "हे शक्ति! अब क्या हो सकता? इन दोनोंको तुम अपना पुत्र समझो।" इस प्रकार सत्ययुगका अर्द्धभाग बीतने पर ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्ष सोमवार दिन दुर्वासा मुनिने महाबल दर्भको सृष्टि की। गङ्गवेगर-पर्वत पर ८४ ऋषियोंके समक्षमें उसी युगके १५८४ वर्ष बीतने पर दाभि उत्पन्न हुए थे। दर्भ ऋषिको २०वीं पीढ़ीमें अमरसेनने जन्म ग्रहण किया था। उन्होंने पसोलुढ़से यात्रा कर चौहान लोगोंको मार भगाया और प्रमाणगढ़ अपने अधिकारमें कर लिया। अमरसेनकी १२ वीं पीढ़ीमें सुरपाल पैदा हुए। ये प्रमाणगढ़को छोड़ कर कुछ दिन काश्मीरमें जा बसे थे। सुरपालकी १६ वीं पीढ़ीके बाद योधाने काश्मीरको छोड़ दिया और पड़ियारोंको परास्त कर तम्बोल पर अधिकार जमाया। उनके १० पीढ़ी नीचे अखिराजने यादवोंसे शत्रुञ्जय दुर्ग जीता था। देभा (डेभा) अखिराजके ७ पीढ़ी नीचे थे। इन्होंने सम्वत् १३७२ में कोरम्बोंको मार भगाया और खेडागढ अपने अधिकारमें कर लिया।

दाभि लोग खेडागढमें बहुत दिनों तक रहे। पीछे राठोर लोगोंने इन्हें मार डाला। उनमेंसे शालदाभिने किसी प्रकार आत्मरक्षा की और भिन्मोले (भिलमाल)में आ कर बस गये। शालदाभिके पूर्ववर्त्ती अष्टम पुरुष दुदारके समयमें दाभि लोगोंने कच्छवाह भीलोंसे भीलड़ीगढ़ जय किया था। यहां बहुत दिनों तक उन लोगोंकी राजधानी थी। दुदारको ५वीं पीढ़ीमें सोमेश्वर दाभिने जन्म ग्रहण किया था। इन्होंने मेहराज नामक एक कविको सीताल्ला ग्राम दान किया था। जिनके वंशधर आज भी उक्त ग्रामोंका भोग करते हैं।

शालदाभिके प्रपौत्र आसलदाभिने गृह-विवादके कारण भिन्माल छोड़ कर एदरमें आश्रय लिया। यहां एदरराजने उन्हें दश हजार अश्वारोहीके पद पर नियुक्त किया। यथाक्रम उन्होंने अनेक ग्राम अधिकृत कर भीलड़ीगढ़में वासस्थान बनाया। आसलदाभिके पुत्रने एक भील सरदारकी कन्याके रूप पर मुग्ध हो उसका पाणिग्रहण किया, किन्तु अन्तमें समाजके मध्य निन्दित होनेके भयसे वे एदरसे न आ कर आबूशिखरके समीप चोतोपला पहाड़ पर चले गये और वहां भाटेश्वरी देवीकी कठोर आराधना करने लगे। देवीने उनकी पूजासे सन्तुष्ट हो उन्हें शिरोहीराजके निकट जानेका आदेश दिया। शिरोहीराजने उन्हें रोह-चरोता चौरासी ग्राम दान दे सम्मानित किया। भाटेश्वरीके अनुग्रहसे ही उन्होंने सम्मान लाभ किया था, अतः उन्होंने अपना नाम भाटेश्वरीय रखा। उनके वंशधर आज भी भाटेश्वरीय नामसे प्रसिद्ध हैं और वर्त्तमान समयमें भी उक्त स्थान पर वास करते हैं।

दाभी ( सं० स्त्री० ) अनिष्टजनक, वह जो हानि पहुंचाता हो।

दाम्य ( सं० त्रि० ) १ शासनके योग्य, जो शासनमें आ सके। २ बाधा देने योग्य।

दाम (सं० क्लो०) दो खण्डने वा करणे मन् दामन्। १ पश्वादि बन्धनरज्जु, पशु आदिको बांधनेकी रस्सी। इसका पर्याय—सन्दान और रज्जु है। २ माला, हार। ३ समूह, राशि। ४ विश्व, लोक। ५ सन्धान, खोज, तलाश। (त्रि०) ६ दाता, देनेवाला।

दाम (फा० पु०) १ जाल, फन्दा, पाश।

दाम (हिं० पु०) १ एक दमड़ीका तीसरा भाग। २ धन रुपया, पैसा। ३ दाननीति, राजनीतिकी एक चाल। इसमें शत्रु धन द्वारा वशमें किया जाता है। ४ मूल्य, कीमत, मोल। ५ सिक्का, रुपया।

दामक (सं० पु०) वह रस्सी जो गाड़ीके जुएमें लगी रहती है। २ बागडोर, लगाम।

दामकण्ठ (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

दामकण्ठि (सं० पु०) दामकण्ठस्य युवा गोत्रापत्यं दाम-कण्ठ-इञ्। दामकण्ठका युवा गोत्रापत्य।

दामग्रन्थि (सं० पु०) मत्स्यराज विराटका सेनापति। (भारत विराटप० ३१ अ०)

दामचन्द्र (सं० पु०) द्रुपद राजाके एक पुत्रका नाम। (भारत द्रोणप० १५८ अ०)

दामजातश्री (सं० पु०) सुराष्ट्रके शकवंशका एक राजा।

दामन् (सं० क्लो० स्त्री०) दो खण्डने दीयते इति दा-मनिन्। (मवेधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४५) १ दोहन-के समय पश्वादिका पादबन्धनरज्जु, वह डोरी जो गायके दुहते समय उसके पैरमें बांधी जाती है। २ माला, हार। ३ रज्जु, रस्सी। ४ वह रस्सी जिससे अनेक पशु बांधे जाय। ५ दमनक वृक्ष।

दामन (फा० पु०) १ अंगे, कोट, कुर्त्ते आदिका निचला भाग, पल्ला। २ पहाड़ोंके नीचेकी भूमि। ३ नाव या जहाजके सामनेकी वह दिशा जिस ओर हवाका धक्का लगता हो। ४ बादवान।

दामनगीर (फा० वि०) १ ग्रसनेवाला, पल्ले पड़नेवाला। २ दावा करनेवाला, दावेदार।

दामनपर्वन् (सं० क्लो०) दमनो दमनवृक्षस्तस्येदमि-त्यण् प्रत्यये दामनं तद्भञ्जनसम्बन्धि पर्व यस्मिन्। १ दमनभञ्जन तिथि, चैत्र शुक्लचतुर्दशी। २ चैत्रमासकी शुक्लद्वादशी। दमनक देखो।

दामनि (सं० पु०) दमनस्यापत्य इञ्। १ दमनका अपत्य। २ आयुधजीवि सङ्घभेद।

दामनी (सं० स्त्री०) दामेव प्रज्ञादि० स्वार्थे अण् अनि नलोपः ङीप्। पशुबन्धन-रज्जु, रस्सी, डोरी।

दामनी (फा० स्त्री०) घोड़ोंकी पीठ पर डालनेका चौड़ा कपड़ा।

दामनीय (सं० पु०) दामनि राजन्यादि० छ। दमनका अपत्य।

दामन्यादि (सं० पु०) पाणिनिका गणभेद। दामनि, औलपि, वैजवापि, औदकि, औदाकि, आच्युतन्ति, शाकुन्तकि, आकिन्दति, औडवि, काकदन्तकि, शाकुन्तपि, सार्वसेनि, बिन्दु, बैन्दवि, तुलभ, मौञ्जायन, काकन्दि और सावित्रीपुत्र ये छो दामन्यादि हैं।

दामर (हिं० स्त्री) १ दरार भरनेके लिए नावोंमें लगाई जानेकी राल। २ डामर देखो। ३ वह भेंड़ जिसके कान छोटे होते हैं।

दामार (हिं० स्त्री०) दामरी देखो।

दामरी (हिं० स्त्री०) रज्जु, रस्सी, डोरी।

दामलिप्त (सं० क्लो०) तमोलिप्त नगर। तमोलुक देखो।

दामलिह् (सं० पु०) दाम-लेढि लिह-क्विप्। दाम-लेहक।

दामा (सं० स्त्री०) दामन्-टाप्। दाम देखो।

दामाञ्जन (सं० क्लो०) दामाञ्चलं पृषोदर दित्वात् नस्य नः। अश्वादिकी पादबन्धन-रज्जु, वह रस्सी जिससे घोड़ों आदिके पैर बांधे जाते हैं।

दामाञ्चल (सं० क्लो०) दाम्नः अञ्चलमिव। दामाञ्जन देखो।

दामाद (फा० पु०) जामाता, जमाई।

दामासाह (हिं० पु०) वह दिवालिया महाजन जिसकी सम्पत्ति उसके लहनेदारोंके बीच हिस्सेके मुताबिक बँट जाय।

दामासाही (हिं० स्त्री०) किसी रकमका वह निर्णय जो दिवालिए महाजनकी सम्पत्तिसे एक एक लहने-दारको मिले।

दामिनी (सं० स्त्री०) दामा सुदामा नगः स एकदेशत्वेन अस्त्यस्य इनि-ङीप् (सहायां मन्माभ्यां। पा ५।२।१३७) १ विद्युत्, बिजली। २ स्त्रियोंका एक शिरोभूषण, दावनी।

दामो ( हिं० स्त्री० ) मालगुजारी, कर।

दामोद ( सं० पु० ) अथर्ववेदकी एक शाखा।

दामोदर ( सं० पु० ) दाम बन्धनसाधनं उदरे यस्य, वा दमादि साधनेन उदारा उत्कृष्टा मतिर्या तया गम्यते इति दामोदरः। यशोदानन्दन कृष्ण। यमलार्जुनके गिरने-के समय यशोदाने ताड़नेके लिये श्रीकृष्णके पेटमें रस्सो लगाकर बांधा था, इसीसे गोपियाँ उन्हें 'दामोदर कहने लगों'। तभीसे वे संसारसे अभिहित हुए हैं।

( हरिवंश ६३ अ० )

विष्णुसहस्रनामके भाष्यकारके मतसे दामका अर्थ विश्व या लोक माना गया है। जिनके उदरमें समस्त विश्व हो, उन्हींका नाम दामोदर है। महाभारतमें लिखा है 'दामाद्दामोदरं विदुः' अर्थात् वहिरिन्द्रिय निग्रहका नाम दम है, अत्यन्त दम साधनके लिये दामोदर नाम पड़ा है। २ अतीत अर्हत्‌भेद, एक जिनदेवका नाम। ३ शाल-ग्राम मूर्त्तिभेद, यह शालग्राम स्थूल होता और उसका चक्र सूक्ष्म होता है। यह मनुष्योंके लिए सुखद है।

जिसके ऊपर और नोचे दो चक्र होते, मुखमें बिल अर्थात् गड्ढा होता और मध्यभागमें एक लंबो रेखा खींचो रहतो है उसे भो दामोदर समझना चाहिये।

(ब्रह्मांडपु०)

दामोदर—१ काश्मीरके एक राजा। ये काश्मीरके राजा प्रथम गोनर्दके बाद राजा हुए। ये गान्धार-राजकन्याके स्वयंवरमें उसे हरणको गये थे और वहीं श्रीकृष्णके चक्र-से मारे गए। २ काश्मीरके एक दूसरे राजा। ये महा राज जलोकके बाद सिंहासन पर अभिषिक्त हुए और ये शिवभक्त भो थे। यक्षाधिपति कुवेरके साथ इनका मित्रता थो। इनके आज्ञानुसार यक्षोंने एक जलाभूमिके ऊपर एक बड़ा पुल निर्माण किया और उसीके ऊपर इन्होंने एक नगर स्थापन कर उसका नाम दामोदर रखा। एक दिन इन्होंने क्षुधातुर ब्राह्मणोंको प्रार्थना पूरो नहीं को। इस पर उन्होंने राजाको सर्पयोनिमें जन्म लेने का शाप दिया। पीछे इन्होंने ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर यह वर पाया, कि एक दिन समस्त रामायण सुन लेने पर वे शापमुक्त हो जांयगे।

दामोदर—इस नामके अनेक संस्कृत-ग्रन्थकारोंके नाम पाये जाते हैं। जिनमेंसे निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं।

१ महानाटक सङ्कलयिता।

२ काश्मीरके एक ग्रन्थकार।

३ पद्यावली, सदुक्तिकर्णामृत और भोजप्रबन्धधृत एक महाकवि।

४ अभववादके रचयिता।

५ पद्मनाभके शिष्य। इन्होंने १४१८ ई०में आर्यभट-तुल्यकरण ग्रन्थ और करणप्रकाश टीका प्रणयन की है।

६ कंसवध-नाटकके रचयिता।

७ लघुकालनिर्णय नामके ज्योतिर्ग्रन्थकार।

८ जातकर्मपद्धति और दामोदरपद्धति नामके ज्योति-र्ग्रन्थकार।

९ लीलावती-पाटीगणितके एक विख्यात टीकाकार

१० भक्तिचन्द्रिकाका प्रणेता।

११ माधवयोगीके शिष्य। इन्होंने 'मीमांसानयविवेका-लङ्कार' रचा है।

१२ वाणीभूषण नामक छन्दोग्रन्थके रचयिता। ये अपनेको दीर्घघोषवंशीय बतला गये हैं।

१३ विवेकदीपक नामक धर्मशास्त्रके संग्रहकार।

१४ एक विख्यात वैद्यक ग्रन्थकार। इन्होंने वैद्य-जीवन, व्याध्यर्गल और हरिवन्दन नामके वैद्यकग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

१५ शतपथीयानुवाकसंख्या और होतावलोकके प्रणेता।

१६ श्राद्धपद्धतिके रचयिता।

१७ अष्टाङ्गहृदयको सङ्केतमञ्जरी नामके टीकाकार।

१८ समरसार नामक ज्योतिषके एक टोकाकार।

१९ लक्ष्मीधरके पुत्र, सङ्गीतदर्पणके रचयिता।

२० विष्णुभट्टके पुत्र, आरोग्यचिन्तामणिके प्रणेता।

२१ इष्टिकालके रचयिता।

२२ जातक संग्रहकार।

२३ सिद्धान्तहृदय नामके ज्योतिर्ग्रन्थकार।

२४ होराप्रदीपके रचयिता।

२५ गङ्गाधरके पुत्र, यन्त्रचिन्तामणि नामके एक तान्त्रिक ग्रन्थकार।

२६ विश्वनाथके पुत्र, भगवत्प्रसादचरितके रचयिता।

२७ धर्मचन्द्रके शिष्य, एक जैन-ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने चन्द्रप्रभपुराण, व्रतकथाकोश और श्रावकाचार इन तीन ग्रन्थोंका प्रणयन किया है।

२८ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने बहुतसी अच्छी अच्छी कविताओंकी रचना की है। उदाहरणार्थ एक नीचे दी गई है,—

"श्रीनाथ जीको ध्यान मेरे निशिदिन री माई
माधुरी मूरति सोहनी सूरति चित लियो चुराई।
लाल पाग लटकि भाल चिबुक बेसर कंठमाल
कर्णफूल मंदहास लोचन सुखदाई॥
मोरपक्ष शीश धरें मोतिनके हार गरे बाजूबंद
पहुंचिन करमुद्रिका सुहाई।
क्षुद्र घंटिका जेहरि नूपुर बिछिया सुदेश
अंग अंग देखत उर आनंद न समाई॥
मुरली अधर धरें श्याम ठाढे ब्रज युवति साह
सप्त सुरन तान गान गोवर्द्धन राई।
निरखि रूप अति अनूप छाके सुरनर विमान
बल्लभ-पद-किंकर दामोदर बलि जाई॥"

दामोदर—बङ्गालको एक प्रसिद्ध नदी। यह अक्षा० २३° ३७' उ० और देशा० ८४° ४१' पू०में पड़ती है। यह छोटा नागपुरके पहाड़से निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर ३५० मील जानेके बाद विख्यात जलमारो (गाङ्गदाड़ा) (James and Marysands) नामक बालूरेतसे कुछ उत्तरमें कलकत्तेसे २७ मील दक्षिण भागीरथीमें मिल गई है। यह सङ्गमस्थान अक्षा० २२° १७' उ० और देशा० ८८° ५' पू०में अवस्थित है। कलकत्तेसे ले कर उत्तर-पूर्वमें मध्यभारतके पार्वत्यप्रदेशकी सीमा तकके विस्तीर्ण भूभागमें दामोदर तथा इसकी बहुत सी सहायक नदियां बहती हैं।

लोहरडंगा नगरके समीप दामोदर नदीकी अववाहिका (Basin) सोननदीकी अववाहिकासे पृथक् हुई है। एक ओरका जल पूर्वकी ओर आ कर दामोदरमें और दूसरी ओरका उत्तरकी ओर विहार प्रदेशकी सबसे प्रधान सोननदीमें जा गिरा है। दो नदियोंके मिलनेसे यह नदी उत्पन्न हुई है, जिनमेंसे दक्षिणकी नदीका उत्पत्तिस्थान लोहरडंगाके तोरी परगनेमें और उत्तरकी नदीका उत्पत्तिस्थान हजारीबाग जिलेके उत्तर-पश्चिम कोनेमें है। ये दोनों पहाड़ी नदियां प्रायः २६ मील जानेके बाद हजारीबाग जिलेके पश्चिममें एक दूसरेसे मिल कर ठीक पूर्वकी ओर कुणाकी जमुन्या आदि उत्तरस्थ उपनदियोंके साथ मिल गई है और पीछे उक्त जिलेके मध्य हो कर ८३ मील तक चली गई है; बाद मानभूमि जिला होती हुई पूर्वकी ओर वर्द्धमान जिलेके प्रान्तभागमें आ गई है। इस स्थानमें दामोदरकी सबसे बड़ी उपनदी बराकर इससे आ मिली है। यहांसे इसका स्रोत दक्षिणकी ओर कुछ वक्र हो कर यह वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत रानीगञ्ज उपविभाग और बाकुड़ा जिलेकी मध्य सीमा होती हुई वर्द्धमान जिलेमें प्रवेश करती है और उसी ओर वर्द्धमाननगरसे कुछ दक्षिण तक आ गई है। बाद यह नदी ठीक दक्षिणकी ओर वर्द्धमान और हुगली जिला हो कर प्रवाहित है। इस स्थानसे लेकर बहुत दूर तक पार्वत्य प्रदेशमें इसका वेग खूब प्रखर है। यहां बहुत सी नदियां इसमें आ मिली हैं। केवल अन्य नदियोंके मिल जानेसे ही इसकी गति मृदुल नहीं हुई है, वरं समतल भूमिमें प्रवाहित होनेसे इसका जल शाखा प्रशाखाके रूपमें बाहर निकल गया है। इन उपनदियोंमें कोण नदी प्रधान है जो वर्द्धमान जिलेके सलीमाबादसे निकल कर कुन्ती नदी नाम धारण कर नौआसराय ग्रामके निकट भागीरथीमें जा गिरी है।

पहले दामोदरका स्रोत कलकत्तेसे बहुत उत्तरमें भागीरथीके साथ मिलता था। अभी वह ह्रास हो गया है। जो कुछ सामान्य स्रोत रह गया है लोग उसे 'काणसोणा'की खाड़ी कहते हैं।

भारतवर्षकी अन्यान्य नदियोंकी नाईं दामोदर नदीकी भी गति पहले प्रखर और पीछे अत्यन्त मन्द है। इसका उत्पत्तिस्थान समुद्रपृष्ठसे १३२३ फुट ऊंचा है। इसी ऊंचे स्थानसे ले कर यह नदी हजारीबाग जिलेमें प्रति मीलमें ८ फुट नीचेकी ओर प्रवाहित हो कर केवल ८३ मील आनेमें ७४४ फुट नीचे पहुंच गई है। शेष २५० मीलके पथमें इसकी कुल अवनति केवल ५८२ फुट है। इस तरह पहले प्रखर वेगके साथ

बहनेसे ही मट्टी आदि जम गई है और पीछे इसका वेग मन्द हो गया है।

मानभूम जिलेमें भी दामोदरका वेग उतना कम नहीं है। लेकिन वर्द्धमान जिलेमें इसका वेग बहुत मन्द हो गया है, इसीसे वहां अक्सर बालूका चर पड़ा करता है। वर्द्धमानके दक्षिणमें तथा हुगली जिलेमें इसकी गति मन्द है, सुतरां स्रोतसे लाई हुई मट्टी आदि इस प्रदेशमें तथा पलताकी दूसरी ओर भागीरथीके साथ सङ्गमस्थलमें बहुत जम गई है। फिर इस स्थानसे कई मील दक्षिणमें रूपनारायण नदीका सङ्गम है। सुतरां भागीरथीका स्रोत रुक जानेसे वहां बड़ा चर पड़ जाता है, इस कारण जाने आनेमें बहुत असुविधा होती है। पहले जब दामोदर कलकत्तेके उत्तरमें भागीरथीसे मिलती थी, तब सब जल प्रवाहित हो कर नदीका मुहाना परिष्कार रहता था और चर पड जानेकी कोई आशङ्का नहीं रहती थी। स्रोतके परिवर्त्तन हो जानेसे कलकत्तेके उत्तरमें भागीरथीके किनारे जलपथ द्वारा वाणिज्यका बहुत ह्रास हो गया है

मुहानेसे बहुत दूर तक दामोदरनदीमें नाव आदि आती जाती है। वर्षाकालमें रानीगञ्जके ऊपर तक बड़ी बड़ी नावें जा सकती हैं, अन्य समयमें हुगलीके आमता तक नाव जाती है। पहले रानीगञ्जसे बहुतसी नावें पथरियाकोयला लाद कर हवड़ाके अन्तर्गत महिष-रेखाको जाती थी और वहांसे ये सब कोयले उलुबेड़िया खाड़ी तथा भागीरथी हो कर कलकत्तेको लाये जाते थे। अभी रेल हो जानेसे कोयलेकी रफ्तनीकी सुविधा हो गई है।

दामोदर नदीमें बहुत भयानक बाढ़ आती है, जिससे ग्राम, शस्यक्षेत्र, मनुष्य तथा मवेशी आदि विनष्ट हो जाते हैं। १७७० ई०की बाढ़से वर्द्धमान नगर प्रायः तहस नहस हो गया था और नदी-किनारेका बांध टूट जानेसे बहुत क्षति हुई थी। फलतः उस साल घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। १८२३ और १८५५ ई०की बाढसे भी बहुतसे मकान, वृक्ष, मनुष्य तथा पशु आदि बह गये थे और कृषकोंके खेत आदिका चिह्न भी विलुप्त हो गया था जिसके लिये बहुत काल तक सीमानिर्द्धारण ले कर विवाद चलता रहा था। उक्त बाढ़के बाद वर्द्धमानके मध्य हो कर रेलपथ स्थापित हो जानेसे रेलवे लाइनकी रक्षाके लिये अच्छी व्यवस्था कर दी गई तथा १८५५ ई०में गवर्मेंटने बांधकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया; तभीसे वहां कोई दुर्घटना न हुई। नदीके उत्तरकी ओर अभी एक तरहका बचाव हो गया है, किन्तु सब जल एकही ओर बहनेसे दक्षिण दिशाकी अवस्था और भी शोचनीय हो गई है। उस ओर उर्वर शस्यपूर्ण देशोंको बाढ़से अक्सर क्षति हुआ करती है।

**दामोदर आचार्य**—एक विख्यात उपनिषद्-भाष्यकार इनके बनाये हुए ऐतरेय, काठ, केन, तैत्तिरीय, प्रश्न और मुण्डकोपनिषद्के भाष्य पाये जाते हैं।

**दामोदर गार्ग्य**—एक वैदिक पण्डित। इन्होंने पारस्करानुसारिणी प्रयोगपद्धति रचना की है और अर्क, विष्णु, गङ्गाधर तथा हरिहरका नाम उद्धृत किया है।

**दामोदर गुप्त**—काश्मीरके एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने शम्भलीमत वा कुट्टनीमत नामका काव्य बनाया है। राजतरङ्गिणीमें ये जयापीड़कवि नामसे प्रसिद्ध हैं। जयापीड़ने ७७८ से ८१३ ई० तक काश्मीरमें राज्य किया।

**दामोदर ठक्कुर**—एक प्रसिद्ध स्मार्त्त पण्डित। इन्होंने संग्रामशाहके राजत्व कालमें 'दिव्यनिर्णय'की रचना की है। दानमयूखमें कई जगह उनका मत उद्धृत हुआ है।

**दामोदर त्रिपाठी**—बालकल्पतन्त्र और यन्त्रचिन्तामणिके रचयिता।

**दामोदर दास**—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सन् १५६५ ई०में हुआ था। इनके विषयमें और किसी विशेष बातका पता नहीं चलता।

**दामोदर देव**—हिन्दी-ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमेंसे कुछ ग्रन्थोंके नाम नीचे दिये गए हैं—रस-सरोज, बलभद्रशतक, उपदेशअष्टक, बलभद्रपचीसी और वृन्दावनचन्द्रशिखनखध्यानमंजूषा। ये १८८८ ई०में विद्यमान थे तथा उरछा-नरेश हम्मीर सिंहके गुरु थे।

**दामोदर दैवज्ञ**—सभाविनोद और षट्पञ्चाशिकाके टीकाकार। केशवके जातकपद्धतिमें शेषोक्त ग्रन्थ उद्धृत हुआ है।

**दामोदर पण्डित**—कीर्त्तिचन्द्रोदय नामक धर्मशास्त्रकार।

इन्होंने अकबरके समयमें चूडमल्लको सहायतासे उक्त ग्रन्थ प्रणयन किया है।

दामोदर भट्ट—१ जगन्नाथनन्दके शिष्य और सोनभट्टके पुत्र। इन्होंने तर्करत्नाकरसेतु और मुमुक्षुसर्वस्व बनाये हैं। २ मांसविवेकके रचयिता।

दामोदर मिश्र—कर्णपुरके राजा हेमन्तसिंहके सभा पण्डित। इन्होंने किरातार्जुनीयको गौरवदोपनी नाम-की एक टीका बनाई है।

दामोदर शास्त्री—हिन्दी ग्रन्थके रचयिता तथा सुप्रसिद्ध कवि। ये संवत् १८३०में विद्यमान थे। इन्होंने बहुतसी हिन्दी पुस्तकोंकी रचना की है, जैसे-राजलीला, मृच्छकटिक, बालखेल, राधामाधव, मैं वही हूँ, नियुद्धशिक्षा, पूर्व दिग्यात्रा, दक्षिण दिग्यात्रा, लखनऊका इतिहास, संक्षिप्त रामायण और चित्तौरगढ। इनकी गिनती नाट्यकारोंमें की जाती है।

दामोदर सहाय—हिन्दीके एक कवि। ये संवत् १८६०-में मौजूद थे। इनकी मृत्यु हालमेंही हुई है। इनके बारेमें और कुछ विशेष बातका पता नहीं लगता।

दामोदर स्वामी—हिन्दी-ग्रन्थके रचयिता तथा कवि। इन्होंने संवत् १६८७ में 'नेमबत्तीसी' नामक पुस्तककी रचना की। इनके बनाये हुए नेमबत्तीसी, रेखता, भक्ति सिद्धान्त, रासविलास और स्वयं गुरुप्रताप नामक ग्रन्थ छत्रपुरमें पाये गए हैं। इनकी कविता सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे दी गई है,—

"श्री हरिवंश कृपालु लाल पद-पंकज ध्याऊं।
वृन्दाबनमें बसौ सीस रसिकनको नाऊं॥
अंचऊं जमुना नीर जीव राधापति गाऊं॥
नैननि निरखौं कुंज रेनु या तन लपटाऊं॥
कहुं झूठ न बोलौं सति कहीं निन्दा सुनौं न कान।
नित पर युवती जननी गनौं पर धन रक समान।"

दामोष्णीष (सं॰ पु॰) प्रवर ऋषिभेद। (भारत सभा॰ ४ अ॰)

दाम्पत्य (सं॰ क्ली॰) दम्पत्योरिदं पत्यन्तत्वात् यक्। १ दम्पती सम्बन्धी अग्निहोत्रादि, दम्पतीसे सम्बन्ध रखनेवाले अग्निहोत्रादि कर्म। २ स्त्री पुरुषके बीचका प्रेम या व्यवहार। (त्रि॰) ३ स्त्री पुरुष सम्बन्धी, स्त्री-पुरुषका सा।

दाम्पत्यप्रणय (सं॰ पु॰) विवाहित स्त्रीपुरुषका प्रणय, स्वामी और स्त्रीका परस्पर अनुराग।

दाम्भिक (सं॰ त्रि॰) दम्भेन चरतीति दम्भ-ठक्। (चरति। पा ४।४ ८) १ दम्भयुक्त, वञ्चक, पाखण्डी। २ अहङ्कार, घमण्डी। (पु॰) ३ वक, बगला।

दाय (सं॰ पु॰) दा-दाने घञ्, ततो युक् (आतो युक-चिण्कृतोः। पा ७।३।३३) १ यौतुकादि देय धन, दायजी, दान आदिमें दिया जानेवाला धन। २ विभागार्ह पितादि धन, वारिसोंमें बाटा जानेवाला धन या मिल कियत। दायभाग देखो। दोङ्क्षये भावे घञ्। ३ लय, वह जो लेने लायक हो। दो-खण्डने घञ्। ४ खण्डन, विभाग। ५ देय धनादि, देनेयोग्य धन। ६ दीयमान धन, वह धन जो दूसरेको दिया गया हो। ७ दान। ८ दाता, वह जो दान देता हो।

दायक (सं॰ त्रि॰) ददातीति दा-ण्वुल्। १ दाता, देनेवाला।

दायज (हिं॰ पु॰) दायजा देखो।

दायजा (हिं॰ पु॰) यौतुक, दहेज।

दायबन्धु (सं॰ पु॰) दाये-बन्धुः। भ्राता, भाई।

दायभाग (सं॰ पु॰) दायस्य भागः वा दायस्य सम्बन्धि-भिर्भागो यत्र। धनविभाग, पैतृक धनविभाग, बपौती धनका आपसमें बांट, अठारह प्रकारके विवादोंमेंसे एक प्रकारका विवाद। बङ्गदेशमें जीमूतवाहनकृत दाय-भागका विशेष आदर है। यह ग्रन्थ धर्मरत्नका एक भाग है। जीमूतवाहनने एक एक विषयमें तर्क वितर्क, विशेष विवेचना और यथायोग्य प्रमाण दिखला कर दूसरेका मत खण्डन करते हुए अपना मत संस्थापन किया है। बाद दायनिबन्धन तथा और जितने ग्रन्थ रचे गये हैं, वे भी जीमूतवाहनके ही आधार पर बने हैं। सभी ग्रन्थोंने अपने अपने मतकी प्रामाणिकता और पोषकताके लिये उन्हीका मत अवलम्बन किया है। यहां तक कि उनमें कई जगह उनका वाक्य हूबहू उद्धृत किया गया है। दायभागके साथ साथ दायतत्त्व, श्रीकृष्ण-तर्कालङ्कारकृत दायभाग-टीका और दायक्रमसंग्रहका विशेष आदर है। श्रेयस्मार्त रघुनन्दनकृत दाय-तत्त्व नितान्त संक्षिप्त होने पर भी विशेष उपकारी है।

इसमें विषय तो सभी हैं, पर वे जीमूतवाहनके मतानुमतकी अपेक्षा संक्षिप्त वाक्यमें प्रकाशित हुए हैं। केवल किसी किसी विषयमें रघुनन्दनने दायभागसे भिन्न मत प्रकाश किया है और कहीं कहीं दायभागकी त्रुटि भी पूरी की है। दायक्रमसंग्रह श्रीकृष्ण तर्कालङ्कारका मूल ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ दायभागका सुसंग्रह है और इसका मत दायभाग टीकाके अनुरूप है।

रामनाथ विद्यावाचस्पतिकृत दायरहस्य वा स्मृतिरत्नावलीका बङ्गदेशमें कहीं कहीं आदर था; किन्तु किसी विषयमें उनका मत जीमूतवाहन और रघुनन्दनके मतसे भिन्न है।

दायभागकी अनेक टीकाएं हैं जिनमेंसे श्रीनाथआचार्य चूडामणिकृत टीका ही सबसे प्राचीन है। यह टीका यद्यपि कई जगह श्रीकृष्णतर्कालङ्कारसे उपेक्षित, खण्डित और संशोधित हुई है, तो भी इसकी गिनती एक उत्तम टीकामें की गई है। अच्युत चक्रवर्त्तीने भी दायभागकी एक टीका बनाई है। इस टीकामें कई जगह उन्होंने चूडामणिका उल्लेख किया है। इसके सिवा उन्होंने श्राद्धविवेककी भी एक टीका रची है। अच्युत और चूडामणिके बाद महेश्वर भट्टाचार्यने भी एक टीका प्रणयन की है। यह टीका श्रीकृष्णतर्कालङ्कारके समयकी अथवा उससे कुछ पहले की है। श्रीकृष्णतर्कालङ्कार एक प्रधान नैयायिक पण्डित थे। इन्होंने विशेष विवेचनापूर्वक यह टीका प्रणयन की है। टीका विशेष आदृत और विख्यात है, तथा दायभाग और दायतत्त्वके बाद ही प्रामाण्य है। रघुनन्दन नामक एक और पण्डितने दायभागकी टीका बनाई है। कोई कोई इन रघुनन्दनको स्मृतिके संग्रहकर्त्ता रघुनन्दन बतलाते हैं, किन्तु यह भ्रमात्मक है। क्योंकि स्मार्त्त रघुनन्दन इस प्रकारकी अकर्मण्य टीका कभी नहीं लिख सकते। किसी पण्डितने इस टीकाका विशेष प्रचार होनेके लिये अपना नाम न दे कर रघुनन्दनका ही नाम दिया था। दायरहस्यकर्त्ता रामनाथ विद्यावाचस्पति भी इसकी एक टीका बना गये है। काशीराम भट्टाचार्यने जो टीका बनाई है वह दायतत्त्वकी है। यह टीका दायभागकी टीकासे बहुत कुछ मिलती जुलती है।

दायशास्त्रका मत परस्पर भिन्न होने पर भी भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न निवन्धकारियोंके मत प्रचलित है। गौड़ अर्थात् बङ्गदेशमें धर्मरत्न अर्थात् दायभाग, श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार और श्रीनाथआचार्य चूडामणिकृत दायभाग टीका, स्मृतितत्त्व, दायतत्त्व, विवादार्णवसेतु, विवादसारार्णव और विवादभङ्गार्णव ये सब ग्रन्थ विशेष आदृत हैं और इनके मतानुसार बङ्गदेशमें दायविषयक सभी विचार सम्पन्न होते हैं। मिथिला अञ्चलमें मिताक्षरा, विवादरत्नाकर, विवादचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, द्वैतपरिशिष्ट, विवादचन्द्र, स्मृतिसारसमुच्चय और मदनपारिजात आदिका मत प्रचलित है।

काशीप्रदेशमें मिताक्षरा, वीरमित्रोदय, माधवीय, विवादताण्डव और निर्णयसिन्धु इन सब ग्रन्थोंका मत प्रचलित है।

महाराष्ट्र प्रदेशमें मिताक्षरा, मयूख, निर्णयसिन्धु, हेमाद्रि, स्मृतिकौस्तुभ और माधवीयका मत चलता है।

द्राविड़-प्रदेशके द्राविड़ और कर्णाटकभागमें मिताक्षरा, माधवीय और सरस्वतीविलास एवं अन्ध्रभागमें मिताक्षरा, माधवीय, स्मृतिचन्द्रिका और सरस्वतीविलासका मत प्रचलित है।

मिताक्षरा ग्रन्थ काशी प्रदेशमें प्रचलित मतका संस्थापक है और अन्यान्य निबन्धमें कई जगह प्रामाण्य है। काशीप्रदेशसे ले कर भारतवर्षीय अन्तरीपकी दक्षिणी सीमा तक मिताक्षराका आदर है और यह ग्रंथ प्रधान निबन्धके जैसा गण्य और विशेष मान्य है। काशी प्रदेशमें पराशरमाधव, व्यवहारमाधव, मित्रमिश्रकृत वीरमित्रोदय, वीरेश्वर भट्ट और बालम्भट्ट प्रणीत मिताक्षरा टीका और कमलाकरकृत विवादताण्डव आदि मिताक्षराके साथ विशेष आदृत और व्यवहृत होता है। वहां उन्हीं ग्रंथोंके मतानुसार दायविभाग सम्पन्न होता है।

भारतवर्ष जब अंग्रेजोंके शासनाधीन हुआ, तबसे ले कर आज तक संस्कृतमें तीन निबन्ध प्रस्तुत हुए हैं,—पहला विवादार्णवसेतु वारनहेष्टिंसके समयमें, दूसरा विवादसारार्णव और तीसरा विवादभङ्गार्णव लार्ड कार्णवालिसके समयमें। पहला निबन्ध मिथिलावासी

ईमान्त सर्वोड विविदोसे और दूसरा विवेगोनिवाभो जगन्नाथ तर्कपञ्चाननसे संग्रहोत हुआ है। किन्तु ये दोनों ग्रंथ सर विलिमम जोन्स साहबके आदेश और उपदेशानुसार रचे गये हैं।

दायविभागका विषय दायभागमें इस प्रकार लिखा है—लड़के सब पितृधनको जो आपसमें बांट लेते हैं उसोका नाम दायभाग है। इस विभागमें जो धन प्राप्त होता है उसे ऋषि लोग विवादपद कहते हैं, अर्थात् यह धन ले कर नाना प्रकारके विवाद उपस्थित होते हैं।

पितृसे आगत धनका नाम पितृधन वा वपौती धन है। पिताके मरनेके बाद उस पितृधनको पुत्रस्वत्वक कहते हैं। पितृ और पुत्र ये दोनों पद उपलक्ष मात्र है। इनसे सम्पर्कीय समस्त अधिकारियोंका बोध होता है। क्योंकि सम्पर्क मात्रसे हो समस्त सम्पर्कीयोंके धन विभागमें भी दायभाग पदका प्रयोग है। इसो कारण दायभाग विवादपद उपक्रम करके मातृ प्रभृतिका भी धनविभाग निर्दिष्ट हुआ है। (दीयत इति व्युत्पत्त्यादाय शब्दो ददाति प्रयोगश्च गौणः।) जो दान करे इस व्युत्पत्तिसे दाय शब्द निकला है। किन्तु मृतादि धनमें यह लागू नहीं है। अतः दा धातुका प्रयोग गौण है, लक्षणार्थात् द्वारा जिस प्रकार दानाधोन स्वत्वनाश और परस्वत्वोत्पत्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मरने पर वा पतित होने पर अथवा सन्यासधर्म ग्रहण करने पर उस धनमेंसे उसका स्वत्व नहीं रह कर पुत्रादिका स्वत्व रहता है।

पूर्व स्वामीका स्वत्वनाश होने पर पोछे तत्सम्बन्धाधीन जिस द्रव्यमें स्वत्व रहता है, उसी धनमें दाय शब्द प्रसिद्ध है। पहले दाय निरूपण करके उसका विभाग निरूपण करना आवश्यक है। पहले यह देखना चाहिये कि दायका विभाग अवयवका विभाग अथवा दायके सहित विभाग, इन सब पक्षोंमें कौन पक्ष श्रेष्ठ है? प्रथम पक्षको श्रेष्ठ नहीं कह सकते, क्योंकि ऐसा होनेसे दायविनाश होता है, दूसरा पक्ष भी उपयुक्त नहीं है, संयुक्त द्रव्यमें 'यह मेरा नहीं है, मेरे भाईका विभक्त धन है' इस प्रकार व्यवहार हुआ करता है। संबन्धका विशेष इस प्रकार सामुदायिक स्वत्व उत्पन्न होनेके बाद उस स्वत्वके द्रव्य विशेषमें जो व्यवस्थापन होता है उसका नाम विभाग है, यह भी नहीं कह सकते। एक संबन्ध एकका सामुदायिक स्वत्व उत्पन्न कराते समय एक दूसरा तुल्यबल सम्बन्ध द्रव्यका प्रतिबन्धक होता है. अतः ऐसा न कर एकैक अंश स्वत्व उत्पन्न करता है, पोछे विभाग हो उसका व्यञ्जक होता है। फिर समस्त पितृधनमें सब पुत्रोंके सामुदायिक स्वत्वको उत्पत्ति और विनाशको कल्पनामें केवल गौरवमात्र है।

भूमि, सुवर्ण आदि धनमें एक देशोपात्त अर्थात् उस अंशमें उत्पन्नद्रव्यका यह द्रव्य अमुकका है, यह अमुकको नहीं है इस प्रकार अवधारण अविभक्तावस्थामें नहीं रहनेसे वैशेषिक व्यवहारको अनुपयुक्तताका होना नहीं होनेके बराबर है। आंशिक स्वत्वके गुटिकापातादि द्वारा व्यक्तिकरणको विभाग कहते हैं अथवा विभाग शब्दका यौगिक अर्थ यह है-विशेषरूपसे भाग अर्थात् स्वत्वज्ञापन, इसोका नाम विभाग है।

पिताके मरनेके बाद पुत्र धनको आपसमें बांट सकते हैं, ऐसा कहनेसे यही बोध होता है कि विभाग करनेके पहले उस धनमें पुत्रका कोई स्वत्व नहीं रहता और विभागको भी स्वत्वका कारण नहीं कह सकते, क्योंकि उदासीन व्यक्ति और असम्पर्कीयके धनको गुटिकापातादि द्वारा विभाग करने पर स्वत्ववान् हो सकता है, यह भी असङ्गत है। इसीसे ऐसा सिद्धान्त हुआ है। पित्रादिके मरनेके बाद हो यह धन हम लोगोंका है, ऐसा पुत्रगण कहा करते हैं और एव पुत्रादिको जगह विना विभाग हो स्वत्व हो जाता है। सुतरां पित्रादिको मृत्यु हो पुत्र प्रभृतिके स्वत्वका कारण है, इससे पूर्वोक्त किसी प्रकारकी असङ्गति नहीं है।

पूर्वस्वामीके मरते समय उत्तराधिकारीका जोवन हो उस स्वत्वका कारण है। जीवनपदसे सन्तानको गर्भस्थावस्थाका भी ज्ञान होता है, केवल गर्भस्थके जन्म लेनेको अपेक्षा रहतो है। उपार्जकके उपार्जन व्यापारको अर्जन कहते हैं। इस अर्जन द्वारा जो उपार्जित धनका स्वामी होता है, उसका नाम अर्जक है। इसलिए उत्तराधिकारिताको जगह पुत्रका जन्म हो अर्जनपद वाच्य है, इससे पिताके जीतेजी पुत्रका पितृधनमें स्वत्व हो भी जाय तो भी ऐसा कहनेसे पित्रादिको मरणापेक्षा

नहीं है। इस कारण किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है, कि जन्म ही अर्जन है। पितृधन पुत्रका है, ऐसा कहनेसे मनु प्रभृति स्मृतिशास्त्रके साथ विरोध उत्पन्न होता है। मनुने कहा है, कि पिता और माताके मरने पर पुत्र पैतृकधनको आपसमें बराबर बराबर बांट लें। पिता माताके जीतेजी पुत्र उस धनको आपसमें नहीं बांट सकते। पत्नी, पुत्र और क्रीतदास ये तीनों अधम माने गये हैं। लोग जो कुछ उपार्जन करते हैं, वह धन उन्हींका होता है। अतः ऐसा स्थिर हुआ कि पिता और माताके जीवित रहने पर पुत्रोंका धनमें कोई अधिकार नहीं है, उनके मरने पर ही उनका स्वामित्व होता है। मृत्यु पदमें केवल मरणमात्र विवक्षित नहीं है, किन्तु पतितत्व प्रव्रजितत्वादिका बोधक है। क्योंकि स्वत्व-विनाशक रूपमें क्या मरण क्या पातित्य, क्या संन्यास सभी समान है। नारदके वचनानुसार माताकी रजोनिवृत्ति और बहनोंकी शादीविवाह होनेके बाद तथा पिताके पतित वा गृहस्थाश्रमरहित अथवा विषयविरक्त होनेके बाद पुत्रगण पितृधनको आपसमें बांट सकते हैं। इनमेंसे पतितके सर्वस्व दानादि प्रायश्चित्तशास्त्रमें विहित होने पर यदि पिता प्रायश्चित्त न करे, तो उनका पातित्य ही स्वत्व-विनाशक होता है; लेकिन यदि वे प्रायश्चित्त ले लें, तो उनका स्वत्व नाश नहीं होता।

"मातुर्निवृत्ते रजसि दत्तासु भगिनीषु च।
निनष्टे वापशरणे पितर्युपरतस्पृहे॥"

(दायभाग)

पिताके मरनेके बाद बड़ा लड़का ही सर्वधनाधिकारी होगा अन्य लड़के नहीं, इसका क्या कारण? मनुने कहा है, कि बड़ा लड़का ही समस्त पितृधन पावेगा, अवशिष्ट भाई पितृवत् उस बड़ेके अनुजीवी होंगे।

"ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा॥"

(दायभाग)

इस वचनके ज्येष्ठपदमें पिताका पुन्नाम-नरकनिवर्त्तक पुत्र ही अभिप्रेत है, वर्त्तमान जीवितोंमें ज्येष्ठ नहीं है ऐसा मनुका वचन है। ज्येष्ठसे ही मनुष्य पुत्रवान् और पितृलोकके ऋणसे मुक्त होता है। इसी कारण ज्येष्ठ पितृधन प्राप्त करने योग्य है। जिसके द्वारा ऋणशोध हो और स्वर्गका आनन्त्यलाभ हो, वही ज्येष्ठ धर्मजपुत्र है, अन्य पुत्रोंको कामज बतलाया है। इसका तात्पर्य यह है, कि बड़ा भाई पिताकी नाईं अनुगत सभी भाइयोंका भरणपोषण करे। यदि वे इसमें असमर्थ हों, और छोटा हो भरण पोषण कर सके, तो वही कर्त्ता ठहराया जायगा। संसार प्रभृतिका रक्षणावेक्षण करनेमें यदि छोटा क्षमतावान् हो, तो सभीके इच्छाधीन वही छोटा सबका भरणपोषण करेगा। इस कारण ज्येष्ठत्व सब धनाधिकारका कारण नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि मनुने फिर एक जगह कहा है, भ्रातृगण मिल कर रहें अथवा धर्मवृद्धिकी कामनासे पृथक् रूपसे रहें, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है, इत्यादि कारणोंसे बड़ा भाई धनाधिकारी न हो कर सभी भाई पितृधनको आपसमें बराबर बराबर बांट सकते हैं। इस प्रकार पिताके स्वत्वनाशका काल एक और विभागका काल एक दूसरा है। यदि पिताका स्वत्व नाश न हो, तो उनकी इच्छासे ही विभाग हो सकता है। इस तरह पितृधन विभागके दो समय हैं, एक पिताके मरने पर और दूसरा पिताके विषयवैराग्य तथा माताकी रजोनिवृत्ति होने पर यदि माताकी न तो रजोनिवृत्ति हो और न पिता ही विषयानुरक्तिसे रहित हों, तो धनविभाग उनकी इच्छा पर निर्भर है। इस मिताक्षरामें जो तीन काल कहे गये हैं वे आदरणीय नहीं हैं। क्योंकि माताकी रजोनिवृत्ति और पिताका विषय वैराग्य एक समयमें नहीं होता।

कोई कोई कहते हैं, कि वृद्ध पिताके कार्याक्षम होने पर पुत्र पितृधन विभाग कर सकते हैं, किन्तु इस वचनका ऐसा अभिप्राय नहीं है। पिताके जीवित रहने पर पितृधनके ग्रहण वा दान अथवा गच्छित करनेका पुत्रका कुछ भी अधिकार नहीं है। पिताके अत्यन्त वृद्ध वा प्रवासी अथवा रोगग्रस्त होनेके बाद पैतृकधनकी और ख्याल करना चाहिये। उनकी अनुमति ले कर कार्यदक्ष अन्य पुत्र भी सब काम काज कर सकते हैं। किन्तु पिता वृद्ध वा उन्मत्त अथवा रोगग्रस्त ही क्यों न हो जांय, तो भी ज्येष्ठ पुत्र ही पिताकी नाईं अन्य भाइयोंके

धनको रक्षा करेगा, लेकिन उसे धनविभाग करनेका कोई अधिकार नहीं है। अब धनविभागके केवल दो ही समय उपयुक्त समझे गये, एक पिताकी मृत्यु और दूसरा उनकी इच्छा। यदि वे चाहें तो हर समय पुत्रों-के बीच धनविभाग कर सकते हैं। पितामाताके मरने पर पुत्र पितृधनको आपसमें बाँट लें, क्योंकि गार्हस्थ्य आश्रम धनके बिना नहीं चलता, इसी कारण पुत्र पिता-माताके रहते स्वाधीन नहीं हो सकते। यदि सभी अपनी अपनी इच्छासे धन खर्च करें, तो धन-क्षय हो जाता है और गृहस्थाश्रम नहीं चलता। इसी कारण पितामाताके जीवित रहने पर पुत्र स्वाधीन नहीं हो सकते हैं। अतः उनको जीवदशामें पुत्रोंका एक साथ रहना विधेय है। उनके मरनेके बाद वे विभक्त हो कर पृथक् पृथक् रूपसे धर्म कर्मकी वृद्धि कर सकते हैं। इसीलिये जीवित पितामाताका विभाग निषिद्ध बतलाया है। यह विभाग पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके बीच एकसा समझना चाहिये; क्योंकि पुत्र, मृतपितृक पौत्र और मृत पितृक पितामाताको प्रपौत्र इन तीनोंके ही पार्वणाधि-कारमें धनिपिण्ड और धनिभोग्य पिण्डद्वय दानमें कोई नहीं है। जिस प्रकार पक्षिगण पीपलवृक्ष पर रहने-की आशा करते हैं, उसी प्रकार पिता पितामह और प्रपितामह ये सब जातसन्तानकी उपासना करते हैं और यह आशा रखते हैं, कि सन्तान मधु, माँस, शाक, दुग्ध और पायस द्वारा वर्षामें नवोदकोपलक्षमें तथा मघामें उन लोगोंका श्राद्ध करेंगी। दायभाग।

इस वचनमें प्रपितामह ग्रहणार्थ लिये पुत्रपदसे ले कर प्रपौत्र तक लाक्षणिक विधाय है। प्रपितामह तक पार्वण श्राद्धकारी समझ कर प्रपौत्र पर्यन्तका धनमें बराबर अधि-कार है। इसीसे जीवितपितृक पौत्र और प्रपौत्रके पार्वणमें अनधिकार प्रयुक्त पिण्ड प्रदान नहीं करनेसे वे दायाधिकार नहीं हो सकते।

उनके पिताका भाग ही भविष्यमें उनका होगा। फिर जहां एक पुत्र जीवित है और उसके कई एक पुत्र भी हैं, वहां एक भाग उस पुत्रका और एक भाग उन सब पोतोंका होगा। इसका कारण यह है कि पितामह धन संबन्धका मूल कारण है, 'स्वपितृधीन जन्म है, सुतरां उस पिताके जितने धनकी स्वामित्वयोग्यता थी, उतनेके ही वे सब अधिकारी होंगे। फिर 'अनेक पितृकानांतु पितृतो भागकल्पना' इस वचनका अभिप्राय ऐसा नहीं है। यहां पर यदि एक वचनका प्रयोग किया जाय, तो ऐसा समझा जायगा कि वह धन पितृव्यके पिताका ही था, अतः पितृव्यका ही वह धन होगा, भ्रातृपुत्रका कुछ भी नहीं। फिर 'पितृतो भागकल्पना' इस वाक्यका पिता यदि पुत्रवत् भागकी व्यवस्था करे, तो जिस प्रकार पिता की दो भाग प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार पितृव्यके दो भाग और उनके भ्रातृपुत्रका एक भाग होता है, किन्तु यह भी शिष्टाचारविरुद्ध है। अतएव जहां एक भाईके थोड़े पुत्र हों और दूसरेको अनेक, वहां भी पितृनुसार भागकी कल्पना करनी चाहिये। अतः यह स्थिर हुआ कि पैतृक धन यदि विभक्त करना हो, तो सभी पुत्र बरा-बर बराबर भाग लें, ऐसा न हो कि किसीको कम मिले और किसीको अधिक।

याज्ञवल्क्यने कहा है कि पितामाताके मरने पर पैतृक धन और ऋणको पुत्रगण आपसमें समान भागोंमें बाँट लें।

पिताकी मृत्यु के बाद यदि सहोदर भाई पितृधनको बाँटना चाहे, तो माताको भी पुत्रका बराबर भाग दें। किन्तु सहोदर और वैमात्र दोनोंके बीच भाग विभक्त न कर दें। 'समांशहारिणी माता' इत्यादि वचनोंसे मातृ-पदका मुख्य अर्थ जननी है, न कि विमाता।

यदि माताके पास स्वामी और श्वशुरादिका दिया हुआ कुछ भी स्त्रीधन न रहे, तो उसे पुत्रका समान अंश प्राप्य है। लेकिन यदि स्त्रीधन दिया गया हो, तो आधा भाग देना उचित है। जहां पिता पुत्रोंको समान भाग दें, वहाँ पुत्रहीना सभी स्त्रियोंको भी स्त्रीधन नहीं रहने पर पुत्रका समान अंश देवें। वचन विशेषसे यही प्रमाणित हुआ है, कि पिता पुत्रहीना पत्नियोंको भी पुत्रके जैसा अधिकारिणी बनावें, किन्तु पुत्रवतियोंको नहीं। पितामह धनविभागके समय पौत्र पुत्रहीना पितामहीको समान अंश दें, क्योंकि शास्त्रमें पितामही-को माताके समान कहा है।

'अविवाहिता कन्या सिर्फ विवाहयोग्य धन पा सकती

है। कोई कोई कहते है, कि अविवाहिता कन्याको भ्रातृभागका चतुर्थांश मिलना उचित है। "समांशाभ्रातर स्त्वेषां तुरीयांशश्च कन्यकाः।" (वृहस्पति) इस वचनके अनुसार माताको समान अंश और कन्याको चतुर्थांश मिलना चाहिये अर्थात् पुत्रका तीन भाग और अविवाहिता कन्याका एक भाग। किन्तु जहां स्वल्प धन रहे, वहां पुत्रोंका स्वामित्व है, अर्थात् पुत्र अपने अपने भागमेंसे कुछ निकाल कर चतुर्थांश कुमारोको दें, अर्थात् असंस्कृता भगिनियोंको भी अपने अंशसे चतुर्थांश दे कर उनका संस्कार कर्म करें। इस वाक्यका तात्पर्य इस प्रकार है-भगिनियोंको संस्कार-कर्त्तव्यता ही लिखो गई है, अधिकारिताको कथा नहीं। प्रचुर धन होने पर भगिनियोंको विवाहयोग्य धन होना चाहिए, कोई निर्दिष्ट अंश देनेको व्यवस्था नहीं है। यदि सब जगह चतुर्थांश देनेका नियम कायम रखें, तो जहां चार पांच पुत्र और एक कन्या हो, वहां कन्याको प्रचुर धन हाथ लगेगा। फिर जहां चार पांच कन्या और एक पुत्र हो, वहां भी पुत्रको कुछ भी नहीं मिल सकता। लेकिन यह उचित नहीं है क्योंकि सर्वत्र पुत्र ही प्रधान है। इन्हीं सब कारणोंसे भगिनीको कोई निर्दिष्ट अंश न दे कर केवल विवाहयोग्य धन देना चाहिये। अविवाहिता भगिनियोंका ऋतुमती होनेसे पहले ही विवाह करना कर्त्तव्य है। इसोसे अंशादिका विशेष नियम नहीं है, किन्तु उस संस्कारकार्यमें यदि सम्पूर्ण व्यय भी हो जाय, तो भी वह दोषावह नहीं है।

स्त्रीधन-विभाग—प्रथमतः स्त्रीधनका निरूपण करना चाहिए। विष्णुवचनानुसार पितृदत्त, मातृदत्त, पुत्रदत्त, भ्रातृदत्त, अध्यग्न्युपागत अर्थात् यौतुक धन, अधिवेदनलब्ध, मातुलादि दत्त, शुल्क और अन्वाधेय ये सब स्त्रीधन है। विवाहके बाद भर्तृकुल और पितृमातृकुलसे तथा भर्त्ता और पितामातासे स्त्रीको जो धन मिलता है, उसी धनको अन्वाधेय धन कहते हैं। पिता और माताके सम्बन्धियोंसे और पितामातासे विवाहके बाद जो धन मिलता है तथा स्वामीसे और स्वामिकुल अर्थात् श्वशुरादिसे जो धन प्राप्त होता है, उसका भी नाम अन्वाधेय है। विवाहके समय यौतुक धन मिलता है, वह सन्तान सन्ततिके नहीं रहने पर स्वामीका होता है। नारदने अध्यग्नि, अध्यावाहनिक, भत्तृदत्त, भ्रातृदत्त, पितृ और मातृदत्त इन छः प्रकारके धनको स्त्रीधन कहा है। विवाहकालमें अग्निके सामने स्त्रियोंको जो दान दिया जाता है, वही अध्यग्नि नामक स्त्रीधन है। पोहरसे ससुराल जाते समय स्त्रीको पितृकुल वा मातृकुलसे जो धन मिलता है, उसे अध्यावाहनिक स्त्रीधन कहते हैं। भर्तृदाय शब्दसे भर्तृदत्त धनका बोध होता है, संक्रान्त धनका नहीं। पतिके मरने पर स्त्री अपने इच्छानुसार भर्तृदाय खर्च कर सकती है। किन्तु पतिके रहते वह कुछ भी खर्च नहीं कर सकती।

याज्ञवल्क्य कहते हैं, कि पितृदत्त, मातृदत्त पतिदत्त, भ्रातृदत्त, अध्यग्न्युपात और आधिवेदनिक ये छः स्त्रीधन है। द्वितीय पत्नीसे विवाह करनेके लिये स्वामी पहली स्त्रीको जो पारितोषिक देता है, उसका नाम आधिवेदनिक है। (अधिवेदन शब्दका अर्थ बहुविवाह उपलक्षमें जो कुछ मिले, इसी व्युत्पत्तिसे आधिवेदनिक शब्द निकला है।) वृत्ति अर्थात् ग्रासाच्छादनावशिष्ट धन, अलङ्कार, शुल्क, और सूद ये सब स्त्रीधन है। स्त्री बेरोकटोक इन सब धनोंका दानविक्रयादि कर सकती है। स्त्रीधनका प्रकृत लक्षण यह है—स्त्री स्वामीको कुछ भी अपेक्षा न कर स्वयं जो धन दान विक्रय कर सके, उसीको स्त्रीधन कहते हैं।

स्त्रीको शिल्पकर्मसे तथा पितृमातृ और भर्तृकुल भिन्न अन्य किसी व्यक्तिसे जो कुछ मिले, वह भी स्त्रीधन कहलाता है। कात्यायन ऋषिने कहा है, कि यथा-विवाहिता हो वा कुमारी हो अथवा पतिके घरमें वा स्वयं पतिसे जो कुछ प्राप्त हो, उसे सौदायिक नामक स्त्रीधन कहते हैं। इस सौदायिक धनमें स्त्रीका पूरा अधिकार रहता है। स्वामी यदि दुर्भिक्षादि सङ्कटमें पड़ जाय और जीविकानिर्वाह करनेका कोई उपाय न रहे, तो उसी हालतमें वे स्त्रीधन ले सकते हैं, अन्यथा नहीं। दुर्भिक्षके समय, आवश्यक धर्मकार्यमें और रोगग्रस्त होने पर तथा उत्तमर्ण ऋण परिशोधके लिये कारारोध करनेके बाद स्वामी विपद्ग्रस्त हो कर यदि स्त्रीधन ग्रहण करें और पीछे उसे लौटा न दें, तो कोई

दोष नहीं। किन्तु पूर्वोक्त दुर्घटनाव्यतीत यदि स्त्रीधन ग्रहण करें, तो पीछे उसे परिशोध कर देना चाहिये, नहीं तो वह राजासे दण्डनीय होता है। स्वामी स्त्रीधन ले कर यदि परदाराके साथ सहवास तथा पूर्वस्त्रीकी अवहेला करे, तो राजाको उचित है कि उससे स्त्रीधन बलपूर्वक ले कर स्त्रीको दिला दें। माताके मरने पर सहोदर भाई और बहन सब कोई मिल कर अयौतुक धनको आपसमें बराबर बराबर बाँट लें। स्त्रीधनमें उनके लड़कोंका तथा अविवाहिता कन्याओंका हक रहता है। किन्तु विवाहिता कन्या पुत्रके रहते अयौतुक धन नहीं पा सकती।

दायाधिकारक्रम। स्वत्वकारण।—पूर्व स्वामीके मरते समय उत्तराधिकारीका जीवन ही तत्स्वत्वका प्रतिकारण है। यहां पर जीवनके अर्थसे गर्भावस्थाका भी बोध होता है। केवल गर्भस्थके जन्म लेनेकी ही अपेक्षा रहती है। गर्भस्थके भूमिष्ठ होने पर उसका प्राप्य धन उसकी बन्धु वा मित्रके हाथ तब तक सुपुर्द कर देना चाहिये।

उद्देशरहित व्यक्तिके (जिसका किसी प्रकारका उद्देश न पाया जाय) धनमें बारह वर्ष बीतने पर उसके उत्तराधिकारीका स्वत्व हो जाता है।

मरणपातित्य, आश्रमान्तर गमन और उपेक्षा द्वारा धनीका स्वत्वनाश होने पर उस धनमें पुत्रका अधिकार रहता है। औरसपुत्रके जन्म लेनेके पहले गृहीत दत्तक और सपुत्रके साथ विषयभागी होता है। सभी औरसपुत्रों-का पितृधनमें समान अधिकार है। जिस पौत्रका पिता तथा जिस प्रपौत्रका पितृपितामह मर गया हो, वे (धनीका) पुत्रके साथ अपना अपना पितृयोग्य अंश विभाग कर लें। पौत्रोंका पितृनुसार भाग मिलेगा, न कि संख्यानुसार।

पत्नीका अधिकार—पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके अभावमें पत्नी धनाधिकारिणी होती है। पत्नी यदि व्यभिचारिणी हो तो अधिकारिणी नहीं हो सकती। जो धन पतिके अधिकारमें था, पत्नी उसी धनकी अधिकारिणी होगी। पति भविष्यमें जिस धनका उत्तराधिकारी होता है, पत्नी उस धनकी अधिकारिणी नहीं होगी। यदि दो वा दोसे अधिक पत्नी रहें, तो सबोंका बराबर बराबर हिस्सा होगा। पत्नियोंमें यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसके अधिकृत पतिधनमें जीवित पत्नियोंका अधिकार समझना चाहिये। पत्नी पतिका केवल धन भोग कर सकती है, दान विक्रय वा बन्धक रखनेका उसका कोई अधिकार नहीं है। अपुत्रा पत्नी विशुद्धस्वभावा हो पतिगृहमें वास कर यावज्जीवन धन भोग करे, पीछे उसके मरने पर पतिका उत्तराधिकारी धन ग्रहण करेगा। यदि दौरात्म्यादिके कारण पत्नीका पतिगृहमें रहना कठिन हो जाय, तो पितृ प्रभृति कुलमें रह कर वह पतिका धन पावेगी, किन्तु व्यभिचारिणी होने पर उसे पतिका धन नहीं मिलेगा। स्त्रीसंक्रान्त धनमात्रमें तत्पूर्व स्वामीके सम्बन्धीके ही उत्तराधिकारी होनेसे पत्नीपदमें अधिकारिणी स्त्रीमात्रका बोध होता है। स्त्री पतिसंक्रान्त धनका केवल उपभोग कर सकती है, अपव्यय किसी हालतसे नहीं कर सकती। यहां उपभोगका अर्थ विलास नहीं है, वरं देह धारणोपयुक्त अन्नवस्त्र है, अन्न वस्त्रके लिये उस धनसे ले सकती है। पतिका धन यदि उतना काफी न हो जिससे अच्छी तरह जीवन धारण कर सके, तो पतिका विषय बन्धक दे सकती है, यदि उससे भी गुजर न चले, तो विक्रय करनेका भी उसे अधिकार है। पतिकी पारलौकिक क्रियाके लिये यदि वह दान विक्रय करे, तो वह भी सिद्ध होगा।

पतिके ऋणशोध, कन्याके विवाह, अवश्य पोष्य परिवारके प्रतिपालन अथवा अत्यावश्यक-हितकार्यमें दानादि करनेसे वह धन सिद्ध होगा।

भविष्य उत्तराधिकारी यदि पत्नीका अन्नाच्छादन एवं अवश्य कर्त्तव्य कार्यका खर्च दे वा देनेको राजी हो, तो वह पतिका विषय विक्रयादि नहीं कर सकती। यदि करे, तो वह सिद्ध नहीं होगा। पतिके उपकारार्थ दान और भोगके सिवा यदि धन दूसरे दानादिमें खर्च हो, तो वह असिद्ध माना जाता है। सर्वस्व बेच कर यदि जीवन धारण और पतिके ऋणशोधादि अवश्य कर्त्तव्य-कार्य सम्पन्न न हो, तो वह भी शास्त्रसम्मत है। किन्तु पारलौकिक कार्य्यक्रियाके लिये केवल थोड़ा ही अंश दानादिमें खर्च करना अभिमत है, सर्वस्व नहीं। पत्नी

यदि शास्त्र विरुद्ध दानादि करे, तो उसके पतिके उत्तराधिकारोगण इसमें प्रतिबन्धक हो सकते हैं, किन्तु जो मुख्य अधिकारी हैं, वे ही रोकटोक कर सकते हैं। जो गौण उत्तराधिकारी है उन्हें छेड़छाड़ करनेका कोई अधिकार नहीं है।

धनस्वामीके उपकारार्थ पत्नी यदि अर्थानुरूप दानादि करे, तो भविष्य उत्तराधिकारीकी सलाह नहीं लिये बिना भी वह सिद्ध होगा।

पत्नी जिस तरह स्थावर धनका अपहार नहीं करती, उसी तरह अस्थावर धनका भी अपहार नहीं कर सकती। क्योंकि दोनों प्रकारके धनसे ही अन्तमें पतिका उपकार हो सकता है। इसी उद्देशसे प्रचलित दायभागादि ग्रन्थोंमें स्त्रीके अधिकृत संक्रान्त स्थावर अस्थावर धनमें कोई विशेषता नहीं बतलायी है।

धनस्वामीके अनुपकारमें पत्नी यदि भविष्य उत्तराधिकारीकी सम्मतिके बिना दानादि करे, तो वह असिद्ध होता है।

पत्नी यदि पतिसंक्रान्त धनको अभियोगादि द्वारा उद्धार कर भी ले, तो भी उस धनमें उसकी पहलेसे अधिक क्षमता नहीं होती। पत्नी जिस तरह पतिका संक्रान्तधन दानादि नहीं करती, उसी तरहसे तदुपधातसे उपार्जित समस्त धन भी दानादि करनेका उसे अधिकार नहीं है। पत्नीकृत संक्रान्त धनका दानादि असिद्ध होने पर वह धन पत्नीके दखलमें ही रहेगा। (यदि वह पत्नी अभिचारादि कोई अन्याय कर्म न करे, तब)

उत्तराधिकारीको ठगनेके उद्देशसे स्त्री यदि किसी तरह पतिका धन दूसरेके हाथ लगा भी क्यों न दे, तो वह असिद्ध होगा। पत्नी पतिके पितृव्यादिकी सलाह ले कर अपने पितृमातृकुलमें भी दान दे सकती है। किन्तु दानादि विषयमें विधवा पतिकुलके ही अधीन रहेगी।

पत्नीके मरने पर उसके जीवित निकट सम्बन्धी ही पीछे उत्तराधिकारी होंगे। पत्नीके अभावमें दुहिता अधिकारिणी होती है। दत्ता और अदत्ता कन्याके रहने पर अदत्ता कन्या ही धनाधिकारिणी होती है। यदि अविवाहिता कन्या न रहे, तो पुत्रवती और सम्भावितपुत्रा दुहिता दोनोंका बराबर अधिकार होगा। बन्ध्या और पुत्रहीना दुहिता अधिकारिणी नहीं हो सकती।

जिस कन्याके पुत्र नहीं पर पौत्र हैं, जिसके पुत्रकी मृत्यु हो गई है तथा जिसके केवल कन्या है, वह बन्ध्या नहीं होने पर भी धनाधिकारिणी नहीं हो सकती।

अधिकारप्राप्त दुहिता चाहे बन्ध्या हो, चाहे विधवा हो अथवा वह कन्यामात्र ही प्रसव करे, उसका स्वत्व नाश नहीं होता।

*दायाधिकारसे अयोग्य दुहिताको यदि कोई जीविका न रहे,* तो सङ्गतिके अनुसार उसे अन्नवस्त्र देना उचित है। यदि अधिकारयोग्या अनेक दुहिता हों, तो सभीका समान अधिकार होगा। उनमेंसे किसी एकके अभावमें उसका अधिकृत धन जीवित सभी अधिकारिणियोंका होगा। लड़की संक्रान्त धनको शास्त्रोक्त नियमके भिन्न दानविक्रय वा बन्धक नहीं दे सकती, यदि दे, तो वह जायज नहीं होगा।

अधिकारयोग्या दुहिताके अभावमें दौहित्रका अधिकार होता है। दुहिताका अभाव वह पद वहां पर पुत्रवती और सम्भावितपुत्रा दुहिताका अभावज्ञापक है। क्योंकि बन्ध्या और पुत्रहीन विधवा दुहिताके रहने पर भी दौहित्रका अधिकार देखा जाता है।

मातामहका धनाधिकारी हो कर यदि दौहित्रकी मृत्यु हो जाय, तो उस संक्रान्त धनमें उसके पुत्र आदिका अधिकार होगा। मातामहका कोई संबन्धी अधिकारी नहीं हो सकता। अनेक दौहित्रके रहने पर सभीका मातामह धनमें समान अधिकार है, वह विभाग उन्हींके संख्यानुसार होगा, न कि उनके मातृसंख्यानुसार।

दुहिताका दत्तक मातामहके धनका अधिकारी नहीं हो सकता। दौहित्रके अभावमें पिता और पिताके अभावमें माता धनाधिकारिणी होती है। विमाता अधिकारिणी नहीं होती। माता शास्त्रोक्त नियमके अतिरिक्त दानविक्रयादि नहीं कर सकती है। माताके अभावमें भ्राताका अधिकार, सहोदर भ्राताके अभावमें वैमात्रेय भ्राताका अधिकार होता है। अविभक्त स्थावर धनमें सहोदर और वैमात्रेय भ्राताका समान अधिकार है। गुणवान्

दत्तक यदि औरसपुत्र अर्थात् धनोकी माताने ग्रहण किया जाय, तो वह भी सहोदरके रूपमें गिना जाता है। फिर यदि धनोको माता उसे दत्तक न बनावें, तो उसकी गिनती धनीके वैमात्रेयमें होती है। भाईका धन पा कर यदि भाईकी मृत्यु हो जाय, तो उसके अपने लड़के ही उस धनके अधिकारी होते हैं। यदि सहोदर और वैमात्रेय भ्राता मृत भ्राताके संसृष्ट न हो, तो सहोदरका धन सहोदर ही पावेगा। जहां वैमात्रेय संसृष्टि और सहोदर असंसृष्टि हो, वहां दोनों ही दायाधिकारी होते हैं।

यदि सहोदर और वैमात्र दोनों ही संसृष्ट हों, तो केवल सहोदर ही धन पावेगा। सहोदरमेंसे किसी एकके संसृष्ट होने पर वही अधिकारी होता है। केवल वैमात्रेय भ्राताके मरने पर उनमेंसे जिसकी मृतके साथ संसृष्ट था, पहले वही उस धनका अधिकारी होगा। उसके अभावमें असंसृष्टि।

भ्रातृगण विभक्त हो कर यदि पीछे प्रेमवश मिल जांय और फिर पीछे विभक्त हो जाय, तो बराबर बराबर धन बाँट ले, बड़ेको अधिक नहीं मिलेगा।

भ्राताके साथ भ्रातुष्पुत्र एक समय अधिकारी नहीं होते। वैमात्रेय भ्राताके अभावमें सहोदर भ्राताका पुत्र अधिकारी होता है। सहोदर भ्राताके पुत्राभावमें वैमात्रेय भ्राताका पुत्र अधिकारी होगा। यदि सहोदर भ्राताका कोई पुत्र संसृष्ट और कोई असंसृष्ट हो, तो जो संसृष्ट है, वही उस धनका अधिकारी होता है। उसी प्रकार वैमात्रय भ्राताका कोई पुत्र संसृष्ट और कोई असंसृष्ट हो, तो जो संसृष्ट है, वही अधिकारी होगा। यदि सहोदर और वैमात्रेय भ्राताके पुत्र संसृष्ट अथवा असंसृष्ट हों, तो भी दोनों अवस्थामें सहोदर भ्राताका संसृष्ट पुत्र अधिकारी है।

भतीजेके अभावमें भाईके पौत्रका अधिकार है। भ्रातृपौत्रके अधिकारमें भी सहोदर और वैमात्रेय क्रम एवं संसृष्टि और असंसृष्टिका नियम लागू है। मृतपितृक भ्रातुष्पुत्र और मृतपितृपितामहका भ्रातृपौत्र यदि अनेक हों, तो सहोदर और वैमात्रेय संसृष्ट और असंसृष्ट क्रमानुसार अधिकार और विभाग होगा। लेकिन यह विभाग उनके संख्यानुसार होगा, पितृ संख्यानुसार नहीं।

भ्रातृपौत्रके अभावमें पितृदौहित्रका अधिकार है। सहोदर और वैमात्रेय दोनों प्रकारके भगिनीपुत्रोंका समान अधिकार होगा।

पितादिके जो दौहित्रगण धनी अथवा तदुत्तराधिकारीकी पत्नियोंके निधनकालमें जीवित वा गर्भस्थित हैं, वे ही उस धनके अधिकारी होंगे। उसके बादका गर्भस्थ अधिकारी नहीं होगा। पितृदौहित्रके अभावमें भ्रातृ-दौहित्र अधिकारी गिना जाता है।

भ्रातृ-दौहित्रके अभावमें पितामह, पितामहके अभावमें पितामही, पितामहीके अभावमें पितृसहोदर, पितृसहोदरके अभावमें पिताके वैमात्रेय भाई, पितृवैमात्रेयके अभावमें पितृसहोदरके पुत्र और पितृसहोदरके अभावमें पितृवैमात्रेय भ्रातृपुत्र धनाधिकारी होता है।

पितृवैमात्र भ्रातृपुत्रके अभावमें पितृसहोदरका पौत्र, पितृवैमात्रेय भ्रातृपुत्रके अभावमें पितृसहोदरके पौत्र, पितृसहोदरके पौत्राभावमें पितृवैमात्रेय भ्राताके पौत्र और पितृवैमात्रेयके भ्रातृपौत्राभावमें पितामहके दौहित्रका अधिकार है।

पितामहके दौहित्राभावमें पितृव्यके दौहित्र, पितृव्यके दौहित्रके अभावमें प्रपितामहका अधिकार है और प्रपितामहके अभावमें प्रपितामही धनाधिकारिणी होती है।

प्रपितामहीके अभावमें पितामहका सहोदर, वैमात्रेय भाई और उसका पुत्र तथा पौत्र यथाक्रमसे अधिकारी होता है।

पितामहके पौत्रके अभावमें प्रपितामहके दौहित्रका अधिकार है।

प्रपितामहके दौहित्राभावमें पितामहका भ्रातृ-दौहित्र धन पावेगा।

पितामहके भ्रातृदौहित्राभावमें मातामह धनाधिकारी होंगे।

मातामहके अभावमें मामाका अधिकार है।

मामाके अभावमें मामाका पुत्र अधिकारी होगा।

मामाके पुत्राभावमें मामाका पौत्र धनाधिकारी होगा।

मामाके पौत्राभावमें मातामहका दौहित्र धनाधिकारी होता है।

मातामहके दौहित्राभावमें प्रमातामह, प्रमातामहके अभावमें उनका पुत्र, प्रमातामहके पुत्राभावमें उनका पौत्र, पौत्रके अभावमें प्रपौत्र, प्रपौत्रके अभावमें उनका दौहित्र और दौहित्रके अभावमें वृद्धप्रमातामह धनाधिकारी होते हैं।

वृद्धप्रमातामहके अभावमें उनके पुत्रका, वृद्धप्रमातामहके पुत्राभावमें पौत्रका, पौत्रके अभावमें प्रपौत्रका और प्रपौत्रके अभावमें उनके दौहित्रका अधिकार है। धनीका भाग हो, इस प्रकार पिण्डदानकर्त्ताके अभावमें सकुल्य अधिकारी होता है। पीछे प्रपौत्रका पौत्र और उसके बाद प्रपौत्रका प्रपौत्र अधिकारी होता है। उसके अभावमें वृद्धप्रपितामहादि ऊर्ध्वतन सकुल्यका और उनकी सन्ततियोंका यथाक्रम अधिकार है। अर्थात् पहले वृद्धप्रपितामह, अभावमें उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्र क्रमशः अधिकारी होता है। इनके अभावमें अतिवृद्धप्रपितामह, उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्र क्रमशः अधिकारी होता है। उनके अभावमें अत्यतिवृद्धप्रपितामह, उनके पुत्र पौत्र, प्रपौत्र और दौहित्र क्रमशः अधिकारी होता है। बहुज्ञाति सकुल्य और बान्धवके रहने पर उनमेंसे जो अधिक निकट सम्पर्कीय है, वही अपुत्र व्यक्तिका धनाधिकारी होगा। इस प्रकार सकुल्यके अभावमें समानोदकका अधिकार होगा।

चौदह पीढ़ी तककी ज्ञातिको समानोदक कहते हैं।

समानोदक और सकुल्यकी नाईं आसक्ति अर्थात् पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रादि क्रमशः धनाधिकारी होता है।

समानोदकके अभावमें आचार्य अधिकारी होता है। आचार्याभावमें शिष्य, शिष्यके अभावमें सहवेदाध्यायी ब्रह्मचारी, उसके अभावमें स्वग्रामस्थ सगोत्र, सगोत्रके अभावमें स्वग्रामस्थ समान प्रवर अधिकारी होता है। उक्त सभीके अभावमें वेदज्ञ गुणयुक्त उस ग्रामस्थित ब्राह्मणका अधिकार है। अगर इसका भी अभाव हो, तो ब्राह्मण छोड़ कर दूसरेके धनमें राजा अधिकारी होते हैं। गुणवान् ब्राह्मणके अभावमें ब्राह्मण भिन्न धनमें ग्रामस्थ ब्राह्मणका अधिकार है। स्वग्रामस्थ गुणवान् ब्राह्मणके अभावमें दूसरे ग्रामके गुणवान् ब्राह्मणका अधिकार होगा। सम्भ्रान्त ब्राह्मणके धनमें सामान्य ब्राह्मणका अधिकार है। यदि सद्ब्राह्मणका अभाव हो, तो ब्राह्मणका धन सामान्य ब्राह्मणके हाथ लगेगा।

पहले स्वग्रामस्थ सामान्य ब्राह्मण, उसके अभावमें भिन्न ग्रामस्थ सामान्य ब्राह्मण अधिकारी होते हैं।

शास्त्रानुसार आचार्य धनाधिकारी हो सकते; लेकिन गुरु नहीं। धनी ब्राह्मणके नहीं होने पर उत्तराधिकारीके अभावमें उसका धन राजाका होता है।

मृतधनीकी और्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये। मृत व्यक्तिका जो धन पावेगा, वही उसके और्ध्वदैहिकादि कार्य करेगा। यदि एक व्यक्ति धनाधिकारी हो और दूसरा और्ध्वदैहिकादि क्रियाधिकारी हो, तो धनाधिकारी व्यक्ति धन दे कर क्रियाधिकारी द्वारा वह कार्य करावेगा।

वानप्रस्थादिका धनाधिकार—ब्रह्मचारीके धनमें आचार्यका अधिकार है।

वानप्रस्थके धनमें एक तीर्थवासी अथवा एकाश्रमवासी धर्मभ्राता अधिकारी होगा। उसके अभावमें एकत्र वासी अथवा एकाश्रमी अधिकारी होते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धनमें आचार्यका अधिकार है।

उपकुर्वाण ब्रह्मचारीका धन उसके पितादिका होता है।

कुलाचारादि—यदि किसी देशमें, प्रान्तमें, ग्राममें वा समाजमें, जातिमें वा कुलमें कोई आचार चला आ रहा हो, तो पूर्वोक्त समस्त नियमापेक्षा मान्य है। किन्तु जो आचार बहुकालका बहु पुरुषसे एकादिक्रम चला आता हो, वही पूर्वोक्त नियमकी अपेक्षा विशेष मान्य होगा। जो आचार बहुकालमें क्रमिकरूपमें न आवे, वह उतना मान्य नहीं है। किन्तु बलसे वा अधर्माचरणसे यदि आचारका अवरोध हो, तो उसे आचारभङ्ग नहीं कह सकते। जीविकाविषयक मृत धनीके त्यक्त विषयसे उसका अवश्य पोष्यवर्ग अन्नवस्त्र पा सकता है।

मृत धनीके त्यक्त विषयसे उसकी अविवाहिता भगिनी वा कन्या विवाहोचित धन पानेकी अधिकारिणी है।

पत्नी वा अधीन परिवारको यदि कोई अनुचित कारण से अलग कर दिया गया हो, तो परिवार कर्त्ताके स्थानमें तथा उसको मृत्युके बाद वह उस धनसे अन्नवस्त्र पावेगा। जो पोष्यव्यक्ति न्यायपूर्वक परिवारमें रहे और आहारादि न पावे, वह पृथक् हो कर अन्नवस्त्र पावेगा। मृतधनीके अर्थानुसार वह केवल उतना ही धन पावेगा जिससे उसका गुजरमात्र हो। केवल अन्नवस्त्र ही मिले ऐसा नहीं, वरं विषय काफी रहने पर दूसरे दूसरे आवश्यक एवं धर्मकार्यार्थ धन देना होगा

यदि कोई स्त्री व्यभिचारको कामना न कर पिता माता या कुटुम्बके घरमें आश्रय ले, तो भी वह अन्न-वस्त्र पानेकी अधिकारिणी है। पतिका यदि ऐसा आदेश हो, कि पतिकुलमें रहनेसे ही ग्रासाच्छा-दन मिलेगा, तब वह यदि बिना कारणके किसी दूसरे स्थानमें जा कर वास करे, तो वह ग्रासाच्छादनकी अधि-कारिणी नहीं हो सकती।

पतित भिन्न विभागमें अनधिकारी व्यक्ति मृत धनीके विषयसे अन्नवस्त्र पावेगा। दायाधिकारी उक्त व्यक्तियों-को यदि अन्नवस्त्र न दे, तो राजाको दिला देना उचित है।

अनधिकारी व्यक्तियोंको कन्या जब तक ब्याही न जाय, तब तक वे ग्रासाच्छादन पावेंगी।

उनकी अपुत्रा स्त्रियोंको यदि वे सदाचारी हों, अन्न वस्त्र मिलेगा, व्यभिचारिणी होने पर नहीं।

पितृकृत विभाग-काल।—पिता स्वोपार्जित धनको जब चाहें, विभाग कर सकते हैं। किन्तु पैता-मह विषयमें माताकी रजोनिवृत्ति होने पर जब पिताकी इच्छा हो, तब वे विभाग कर सकते। (माता शब्दसे विमाताका भी बोध होता है)

वस्तुतः माता और विमाताकी रजोनिवृत्तिके बाद अथवा पिताकी रतिशक्ति बन्द होनेके बाद जब पिताकी इच्छा हो, तब वे पितामहधनको बाँट सकते हैं। पितासे धन विभक्त हो जानेके बाद यदि कोई भाई जन्म ले, तो वह भी बराबर हिस्सा पा सकता है।

पितृकर्तृक स्वोपार्जित धनविभाग स्वोपार्जित धनका विभाग पिताकी इच्छा पर निर्भर है। स्वोपा-



र्जित धन पिता जितना चाहें, उतना ले सकते हैं।

किसी पुत्रके गुणित्वके लिये सम्मानार्थ अथवा किसी पुत्रके अनेक परिवारका पालन करनेके लिये, अथवा कोई पुत्र अयोग्य हो एवं कृपा, भक्ति आदिके कारण यदि पिता न्यूनाधिक विभाग करें अर्थात् किसी पुत्रको अधिक और किसीको कम दें, तो भी वह विभाग धर्मतः सिद्ध होगा। किन्तु यदि गुणित्वादिका कारण न हो, तो स्वोपार्जित धनका विभाग धर्मसङ्गत नहीं है।

अत्यन्त व्याधि, क्रोधादिके कारण आकुल-चित्त हो कर अथवा कामादि विषयमें अत्यन्त आसक्त हो कर यदि पिता एक पुत्रको अधिक और दूसरेको कम भाग दें, अथवा कुछ भी न दें, तो वह विभाग असिद्ध होता है; फिर पिता यदि गुणित्वादिके कारण न्यूनाधिक भाग दें, तो वह धर्मसङ्गत और सिद्ध होता है। यदि रोगादिसे आकुलचित्त हो कर सम्पत्ति बांट दें अथवा किसी पुत्रको कुछ भी अंश न दें, तो वह भी असिद्ध माना जाता है। गुणित्वादि कारणके बिना तथा रोगादिके लिये अस्थिरचित्तता भिन्न केवल इच्छासे यदि न्यूनाधिक विभाग कर दे, तो वह धर्मसङ्गत नहीं है, पर सिद्ध है। यदि पुत्र एक ही समय अपने अपने विभागके लिये प्रार्थना करें, तो भक्तत्वादिके कारण पिता विषम विभाग न करें। सभी पुत्रोंको समान भाग देनेसे पुत्रहीना पत्नियोंको भी पुत्रके बराबर भाग देना उचित है। स्वामी स्त्रीधन न दे कर पत्नीको भी समान अंश देवें। यदि स्त्रीधन हो, तो जिस पत्नीको जितना स्त्रीधन दिया गया है, पिता उतना ही धन अपुत्रा स्त्रीको भी दे। यदि स्त्रीधन न हो, तो उन्हें पुत्रका समान अंश देना उचित है। किन्तु पुत्रोंको न्यून देने और स्वयं अधिक लेनेसे पिता पुत्रहीना पत्नीको अपने अंशसे पुत्रके बराबर भाग देवें। स्त्रीधन होने पर अपुत्रा पत्नीको आधा देना चाहिये।

भार्या, माता अथवा पितामहीका लब्धअंश यदि भोग द्वारा क्षय हो जाय, तो भार्या पुनः जीविका पानेकी अधि-कारिणी है। यदि भोगावशिष्ट रहे और धनीका गृहीत धन भोगमें क्षय हो जाय, तो वे पुत्रादिवत् भार्यासे भी

ले सकती हैं। पत्नीको अपने विभागमें जो धन प्राप्त हुआ हो, उसे वे बिना न्यायकारण दानविक्रय नहीं कर सकतीं और न बन्धक ही दे सकती हैं। वे केवल भोग मात्र कर सकती हैं, पीछे वह धन पूर्वस्वामीके उत्तराधिकारीका होगा।

स्वोपार्जित और पैतामह-धननिर्णय।—जो धन आदिमें पितासे उपार्जित हुआ है वह उसका प्रकृत उपार्जित है। पितामहका धन खो जानेके बाद पिता यदि उसे निज परिश्रम द्वारा उद्धार करें, तो उस धनको वे स्वोपार्जित धनकी नाईं व्यवस्था कर सकते हैं। पैतामह स्थावर धन रहने पर अस्थावर पैतामह धनको वे स्वोपार्जित धनके जैसा काममें ला सकते हैं। पिता अपने पितासे जो भूमिनिबन्ध और दासादि पाते हैं, वही प्रकृत पैतामह धन है। क्रमागत धन ही पैतामहवत् व्यवहारार्थ है।

मातामहादिकी मृत्यु होने पर जो धन हाथ लगता है, वह स्वोपार्जित धनकी नाईं व्यवहृत हो सकता है।

पितृकृत पैतामह धन विभाग—पैतामह धनको यदि पिता विभाग करें, तो एक एक अंश अपने पुत्रोंको और दो अथवा दोसे अधिक अंश आप लेवें। पूर्वोक्त गुणवत्वादिके कारण पिता पैतामह धनको न्यूनाधिक विभाग नहीं कर सकते और इस प्रकार विभाग करनेका उन्हें अधिकार भी नहीं है। पिता जितना पुत्रको देवें, उतना ही पितृहीन पौत्रको और पिता-पितामहहीन प्रपौत्रको भी उनके पितृपितामह योग्यांश देवें।

पुत्रार्जित धनमें पिताका अंश।—पुत्रार्जित धनमें भी पिताके दो भाग हैं। पितृद्रव्यके उपघातमें पुत्र कर्तृक अर्जित धनका आधा पिताका और इस प्रकार जो उपार्जन करते हैं, उनका दो अंश और अन्य पुत्रों का एक एक अंश होगा।

पितृद्रव्यके उपघातके बिना अर्जित धनमें पिताका दो अंश और पुत्रका भी उतना ही होगा। अन्यान्य पुत्रोंको इस धनमें कुछ भी नहीं मिलेगा।

विद्याविहीन पिता जनकता मात्र दो अंश पावेंगे। यदि कोई पुत्र निज परिश्रमसे और किसी भाईके धनके उपघातसे उपार्जन करे, तो उस धनमें पिताका दो अंश और उन दो पुत्रोंका एक एक अंश होगा। फिर यदि वह किसी भाईके धन द्वारा तथा निज परिश्रम और धन द्वारा धन उपार्जन करे, तो उसमें अर्जकका दो अंश और पिताका भी दो अंश तथा धन दाताका एक अंश होगा। दोनों अवस्थामें ही दूसरे दूसरे भाईका अंश नहीं है।

जिस पौत्रका पिता जीवित है, उसके अर्जित धनका भाग पितामहका नहीं वरं उसके पिताका होगा। पितामह धनके उपघातसे यदि अर्जित हुआ हो, तो उपघातित धनानुसार पितामह एक अंश पावेंगे।

मातामहके धनोपघातसे यदि दौहित्रने धन उपार्जन किया हो, तो उपघातित धनानुसार मातामहका एक अंश और मातुलादिका एक अंश होगा। किन्तु मातामहके धनोपघातके बिना यदि दौहित्र धन उपार्जन करे, तो मातामहका कुछ भाग न होगा।

भ्रातृ कर्तृक विभाग—पिताके मरने पर उनका स्वत्व नाश होने अथवा स्वत्व रहने पर भी, धनविभाग पुत्रोंकी इच्छा पर निर्भर है। तभीसे भ्राताओंका विभाग काल माना जाता है। किन्तु माताके रहते विभाग धर्मसङ्गत नहीं है। यदि माताकी अनुमति ले कर विभाग किया जाय, तो वह धर्मसङ्गत हो सकता है।

भ्राताओंके अंशका-परिमाण -सहोदर भाइयोंका धनमें समान अधिकार है, अतः वे बराबर अंश ले लें।

औरस और दत्तक पुत्रके बीच यदि धनविभाग किया जाय, तो औरस पुत्रका दो अंश और दत्तकका एक अंश होगा। अधिकारी भ्राताओंमेंसे यदि कोई एक भी अपौत्र छोड़ बिना मर जाय, तो उसका दूसरा जो कोई उत्तराधिकारी होगा, उसे भी योग्य अंश मिलेगा।

पितृहीन पौत्र और पितृपितामहहीन प्रपौत्र क्रमशः अपने अपने पिता और पितामहके योग्य अंशका भागी हैं, अपने अपने संख्याके अनुसार नहीं।

साधारण धनके उपघातमें उपार्जित विषय-भाग—साधारण धनके उपघातमें अर्जित धनमें अर्जकका दो भाग और अन्यका एक भाग होगा। अविभक्त कुटुम्बोंमें यदि किसीके श्रमसे साधारण धनकी वृद्धि हुई हो, तो उसमें उसे दो अंश मिलना उचित है।

साधारण धनका उपघात होनेसे, जिसका जितने धनका उपघात हो, उसे उसीके अनुसार भाग मिलना चाहिये।

मिश्रित धन तथा परिश्रमसे यदि कोई विषय उपार्जित हो और यदि उसके धन तथा श्रमका परिमाण मालूम हो जाय, तो वे तदनुसार अंश भागी होंगे, अन्यथा समभागी।

भाइयोंमें यदि एककी भी इच्छा पृथक् होनेकी हो, तो धन विभाग हो सकता है। यदि माताके जीते जी विभाग हो जाय तो, उसे पुत्रके बराबर भाग मिलेगा। माता वा पितामहीकी इच्छासे धनविभाग नहीं हो सकता।

स्वामी प्रभृति यदि स्त्रीधन न दें, तो उसमें माताका समभाग प्राप्य है, किन्तु स्त्रीधन देनेसे उसे केवल आधा मिलेगा। यदि पुत्र माताका अंश देनेसे इनकार जाय, तो माता अभियोगादि द्वारा ले सकती है। जहां माताके केवल एक पुत्र हो, वहां उसे केवल अन्नवस्त्र मिलेगा।

सहोदर और वैमात्रेय भाइयोंके बीच परस्पर विभाग होनेसे माता अंशभागिनी नहीं होती। किन्तु यदि सहोदर भाइयोंके बीच विभाग हो, तो माताको भ्रातृतुल्यांश मिलना चाहिये। वैमात्रेय भाइयोंके साथ यदि सहोदर अथवा उनमेंसे कोई अपना भाग पृथक् कर ले, तो उसको माता और पुत्रको बराबर अंश मिलेगा।

पैतृक धनके उपघातमें अर्जित विषयका अंश पानेका भाई जिस प्रकार अधिकारी है माता भी उसी प्रकार उसकी अधिकारिणी है।

माता यदि किसी मृत पुत्रकी उत्तराधिकारिणी हों, तो वे तद्योग्यांश तथा मातृत्वके कारण पुत्र तुल्यांश पावेंगी, वे केवल एक पुत्रके अंशकी भागिनी होंगी, वैसा नहीं। पुत्रके विभागमें उन्हें जितना मिल सकता, पुत्र और पौत्रोंके विभागमें भी उतना ही मिलेगा।

पितामहका धन यदि पौत्र विभाग करें, तो पितामही और पौत्र दोनोंको बराबर बराबर भाग मिलेगा। पितामही यदि किसी मृत पौत्रकी अधिकारिणी हों, तो वह उसी प्रकार उसका योग्यांश तथा पितामही कह कर अपना योग्यांश पावेंगी। यदि पौत्रमेंसे कोई पौत्र अथवा किसी मृत पौत्रका संबन्धी उसका अंश ले ले, तो पितामही उससे अपना अंश पानेकी अधिकारिणी है। स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति एक प्रकारसे विभक्त हो जानेसे भी पितामही उसी प्रकार अपना अंश पावेंगी।

माताकी नाईं पितामही भी प्राप्त धनको दान विक्रयादि नहीं कर सकती।

विभाज्य निर्णय—पैतामह और पिताका अर्जित तथा साधारण धनके उपघातसे अर्जित ये तीन प्रकारके धन विभाज्य हैं। दूसरेके व्यापारसे जो धन अर्जित हुआ है, वह केवल व्यापारकारीके साथ ही विभाज्य हो सकता है। पूर्वकृत भूमिको यदि कोई निज परिश्रम द्वारा उद्धार करे, तो उसे चार भागोंमेंसे एक भाग देकर फिर शेष भागों को आपसमें बराबर बराबर बांट लें।

विद्या उपाधि द्वारा प्राप्त धन साधारण धनके उपघातसे अर्जित नहीं होने पर भी समान है और अधिक विद्वानोंके साथ विभाज्य है। न्यूनविद्या तथा विद्याहीन व्यक्तियोंके साथ वह धन विभक्त नहीं हो सकता। उपघातसे अर्जित विद्याधनमें सभीका अंश है।

कुलसे वा पितासे शिक्षित भ्राताओं द्वारा उपार्जित तथा शौर्य द्वारा प्राप्त धन विभाज्य है। पिता और पितृव्यादि भिन्न अर्थात् दूसरेसे शिक्षित हो विद्या द्वारा जो कुछ अर्जित किया जाता है, वह समविद्वान् तथा अधिक विद्वानोंके साथ विभाज्य है, न्यून विद्वान् और विद्याहीनके साथ विभाग नहीं हो सकता।

यदि विद्यार्जनकालमें उसके परिवारका यदि दूसरा भाई अपने धनसे प्रतिपालन करे, तो वह उस विद्यासे उपार्जित धनमें भाग ले सकता है। दो वा तीन मूर्ख भाई यदि उसकी स्त्रीका प्रतिपालन करे, तो वे भी उस धनके भागी होंगे। यदि कोई भाई अपने परिवारको दूसरे भाईके हाथमें सौंप धन उपार्जन करनेके लिये विदेश गया हो, तो उसके उपार्जित धनमें उसके भाईका भी अंश होगा। जहां भागका परिमाण निर्दिष्ट न हो, वहां समान भाग समझना चाहिये।

अविभाज्य निर्णय—अनुपघातसे अर्जित धन अर्जक-का ही होगा, दूसरेका नहीं।

साधारण धनके उपघातसे अर्जित धनमें अन्य भ्राताओंका भाग निर्दिष्ट होना अनुपघातसे अर्जित धनमें भाग नहीं होनेके समान है। जो धन पितादिके धनको सहायता न ले कर उपार्जित हुआ है, वह अनिच्छासे विभक्त नहीं हो सकता, क्योंकि वह निज चेष्टासे प्राप्त हुआ है।

पैटक धनके उपघाताभावमें द्रव्य द्वारा अन्य भाइयोंका उद्योग नहीं है केवल अर्जकने अपनो चेष्टासे उसे प्राप्त किया है। यह उसका असाधारण धन है, यह विभक्त नहीं हो सकता। पितृद्रव्यका खर्च न ले कर स्वयं उपार्जित धन औद्वाहिक धन अर्थात् जो धन श्वशुरने जमाईको दिया हो, विद्या द्वारा लब्ध धन शौर्य द्वारा उपार्जित धन तथा सौदायिक धन अविभाज्य है।

क्रमागत विषय यदि किसी दूसरेने ले लिया हो और उसे यदि परिवारमेंसे किसोने साधारण धनके उपघातके बिना तथा और भो दूसरे प्रकारको मदद न ले कर लौटा लिया हो तो यह धन उसोका होगा दूसरेका नहीं। अर्थात् विभक्त वा अविभक्त द्वारा साधारण धनके अनुपातसे एवं दूसरेकी सहायताके बिना भूमिसम्पत्ति छोड़ कर जो कुछ अर्जित हो वह अर्जकका हो होगा, उसमें दूसरेका कुछ भो अधिकार नहीं।

पितृ-पितृव्यादि भिन्न दूसरेसे प्राप्त तथा किसी विद्या द्वारा साधारण धनके अनुपघातसे अर्जित धनमें न्यून विद्वान् वा अविद्वान्‌का हिस्सा नहीं है, किन्तु समान विद्वान् वा अधिक विद्वानका हिस्सा है।

शौर्य द्वारा अर्जित धन, भार्याधन और विद्यार्जित धन तथा स्नेहप्रयुक्त पितृदत्त धन, ये चारों प्रकारके धन विभाज्य नहीं हैं।

वस्त्र, पत्र अर्थात् अश्वादि वाहन, अलङ्कार, उदक, कृतान्न, स्त्रीगण, योगक्षेम अर्थात् अपना अपना व्यवहार-योग्य शय्यासन, भोजनपात्रादि, याज्य, यागस्थान वा याग-प्रतिमा अर्थात् देवोत्तर ये सब विभाज्य नहीं है। (मनु)

मवेशीका पथ, गाड़ीका पथ, परिधेय वस्त्र, प्रयोज्य और भिक्षार्थ द्रव्य अविभाज्य है। प्रयोज्य अर्थ अर्थात् जो जिसके कामकी चोज है, यथाश्रुत प्रभृतिके ग्रन्थादि, ये सब मूर्खोंके साथ विभक्त नहीं हो सकते। पुस्तक केवल पण्डितोंको होगो, मूर्खोंको नहीं। लेकिन उनका जो कुछ अंश निकलेगा, उसमेंसे उतना मूल्य अथवा अन्य द्रव्य पा सकते है।

पिताके जीतेजी पुत्र यदि गृहाद्यानादि लगावे, तो वह उसीका होगा, दूसरेका नहीं। पिता इसमें कुछ भो छेड़छाड नहीं कर सकते, विभाग करना वा न करना उसी पर निर्भर है।

विभागके बाद गर्भस्थपुत्रका भाग यदि पिता पुत्रोंके बीच धन बांट कर तथा आप भी यथाशास्त्र भाग ले कर पुत्रोंके साथ असंसृष्टावस्थामें मरें, तो विभागके बाद जातपुत्र पितृधन को पावेगा और वही उसका अंश होगा।

यदि धनीकी अज्ञात गर्भावस्थामें पुत्र पृथक् पृथक् हो जाँय, तो उसके बाद जातपुत्रका भी भाग भ्राताओंके भागमें होगा। धनोको स्त्रीका गर्भ प्रकाश हो जाय और यदि गर्भस्थके भूमिष्ठ होनेके पहले उसका भाग अलग कर दे, लेकिन विभागके बाद पुत्रोत्पादन न हो, तो पिताका अंश सभो पुत्र बराबर बराबर बाँट सकते है। पुत्रोंको पृथक् पृथक् कर किसो पुत्रके साथ संसृष्टावस्थामें फिर एक पुत्र उत्पन्न करनेके बाद यदि पिताकी मृत्यु हो जाय, तो उस धनमें विभक्तोंका ही अधिकार होगा।

पिता यदि स्त्रीका गर्भ निश्चय करके भी अपने प्रभुत्व के लिये पुत्रोंको विभक्त कर दें, तो उससे पुत्रोंका हो अधिकार कायम रहेगा, गर्भस्थका नहीं। पितृधनमें ही केवल उसका अधिकार होगा। विभागके बाद पुत्रोत्पादन होनेसे उसे भो समान भाग मिलेगा। यदि भूमि आदि पितामह धन भो विभक्त हो जाय, तो विभक्तज उस धनका भाग भ्राताओंसे पावेगा।

विभाग हुआ है वा नहीं इस प्रकार सन्देह उपस्थित होने पर ज्ञाति वा बन्धुओंकी अथवा दूसरोंकी गवाही द्वारा अथवा लिखित कागजादि द्वारा उसका निर्णय कर लेना चाहिये। यदि कोई निदर्शन वा साक्षी न हो, तो आनुमानिक प्रमाण प्रामाण्य है।

विभागके बाद आगत कुटुम्बका भाग—विभक्त हो, वा न हो, दायाद उपस्थित होने पर वह साधारण विषय का भाग पावेगा। ऋण, क्षेत्र, गृह, और लेख्य जो जो पैतामह धन हों, चिरकाल विदेशमें रहने पर भी यदि वह फिर घर लौट आवे, तो वह उस धनका भागी होगा। केवल उसीको भाग मिलेगा सो नहीं, उसकी सन्तान भी भागहारी होगी।

यदि कोई आदमी अविभक्तावस्थामें देशान्तर जाय और बहुत समयके बाद लौट आवे, तो वह तथा सातपीढ़ी तक उसकी सन्तान पुरुषानुक्रमसे तद्देशवासी वा प्रतिवासीके परम्परा परिचित होनेके बाद यथाशास्त्र अंश पावेगी। किन्तु विदेशमें रहते हुए उसकी केवल चार पीढ़ी तक उस धनकी भागी होगी। अविभक्तावस्थामें धनकी वृद्धि वा क्षय हो कर जितना बचे उतना ही विभाज्य है।

ऋण-परिशोधादि—पिताका ऋण परिशोध कर जितना धन बच रहे, वही विभाज्य है। पितामहके चाचाका अथवा दूसरेका दायरूपधन यदि हाथ लगे, तो पहले उसका ऋण चुका कर दायग्रहण करना चाहिये। उत्तराधिकारी क्रमसे जिसका धन प्राप्त होगा, पहले वह उसका ऋण परिशोध करनेको बाध्य है। किन्तु बङ्गदेशमें पिताका वा पितामहका अथवा किसी पूर्व स्वामीका धन जब तक न पावे, तब तक कोई उसका ऋण परिशोध करनेको बाध्य नहीं है।

पूर्वस्वामीका ऋण परिशोध उसके त्यक्त धनके परिमाणानुसार कर्त्तव्य है। मृत धनीका त्यक्त धन यदि बहुतोंके हाथ लगे, तो उसका ऋण प्रत्येकको अपने अपने अंशसे चुकाना चाहिये। पितामहके जीवनकालमें पौत्रोंके पैतामह धनाधिकारी होनेसे पहले पितामहका ऋण परिशोध करना कर्त्तव्य है। ऋण चुका कर यदि धन कुछ बच रहे, तो पिताका ऋण भी उसे परिशोध करना होगा। अधिकारी पिताका ऋण उसके जीवनकालमें ही पैतामह धनाधिकारी पुत्रोंको चुकाना चाहिये। ऋणग्राही व्यक्तिके २० वर्ष तक प्रवासी होने पर उसका पुत्र, पौत्र अथवा धनहारी व्यक्ति बीस वर्षके बाद उसका चुकावें।

पिता यदि अपने पुत्रोंके बीच धन और ऋण बांट दें और अपना अंश ग्रहण कर लें तथा पीछे यदि दूसरा पुत्र उत्पन्न हो, तो जातपुत्र पिताका ऋण परिशोध कर दाय पावेगा। अविभक्त दायादोंमें एकने परिवारके लिये यदि ऋण किया जाय तो सभीको वह ऋण चुकाना होता है अथवा वह ऋण साधारण विषयसे चुकाया जायगा। अविभक्तोंका कृत ऋण उनमेंसे किसी एकके जीवित रहने पर भी उसे ही देना होता है तथा भ्राताओंके अविभक्त होने पर पितृऋण भी उसी प्रकार परिशोध्य है। किन्तु विभक्त हो जाने पर वे अपने अपने प्राप्त दायानुसार उसे चुकावें।

असंस्कृत पुत्र-कन्याका संस्कार—जिन भाइयोंका संस्कार हुआ है, उन्हें पितृधन द्वारा असंस्कृत भाइयों और बहनोंका संस्कार करना अवश्य कर्त्तव्य है। धनीको अविवाहिता कन्या आदिका विवाहादि संस्कार अधिकृत धनानुसार होगा। पितृधन नहीं रहने पर भी भाई अपने अपने धनसे उनका संस्कार करें।

अप्राप्त व्यवहार विषय।—इस देशमें प्रचलित शास्त्रानुसार पन्द्रह वर्षके शेष* तक अप्राप्त व्यवहार काल अर्थात् नाबालिगी है। नाबालिग व्यवहार कार्य नहीं कर सकता; यदि किसी तरह कर भी ले, तो वह असिद्ध तथा निवर्त्तनीय है। जब तक उसकी नाबालिगी दूर न हो, तब तक उसका धन उसके बन्धु वा मित्रके हाथ सौंपा रहेगा, उसका धन किसी हालतसे खर्च नहीं हो सकता। जो खुद अपनेको तथा अपने धनको बचानेमें असमर्थ है उसका राजा सर्वाध्यक्ष है। अध्यक्षरूपसे राजा बालकके धनको उसकी नाबालिगी तक देख रेख करेंगे। राजा आत्मीय स्वजनोंमेंसे जिसे योग्य समझें उसीके ऊपर नाबालिगका कुल भार सुपुर्द कर दें। वे बालकके तथा अवश्यपोष्य परिवारके अन्न-वस्त्रके लिये आवश्यक होने पर अथवा अनिवार्य कार्य करनेके लिये जितने खर्चकी आवश्यकता समझें उतना ही देवें। नाबालिगी दूर हो जाने पर उन्हें उसके धनको आय, व्यय, ह्रास और वृद्धिका हिसाब देना होगा। यदि वे किसी प्रकार धनको खो दें, तो उसका क्षति पूरण भी करना होगा।

* वर्त्तमान आइनके अनुसार १७ वर्षके शेष तक।

बङ्गदेशमें पुत्रवान् पुरुष पितामह वा स्वोपार्जित स्थावर अस्थावर विषयको पुत्रोंकी सम्मतिके बिना दान-विक्रय यथा इच्छा कर सकते हैं। धनी मरते समय अपने धनको विभक्त करनेका नियम (विल) कर सकते हैं।

हिस्सेदारोंमेंसे एक वा अनेक यदि साधारण विषय-से अपना प्राप्य अंश दानादि कर दे, तो वह वैध और सिद्ध है। अविभक्तावस्थामें हिस्सेदार नाबालिगको सलाह न ले कर आवश्यक पड़ने पर विक्रयादि कर सकता है।

जहां समान हिस्सेदार प्राप्त व्यवहारादि प्रयुक्त सम्मति देनेमें समर्थ हों, और अनुपस्थित भी न हों, वहां दानादि कार्य करने पर भी उनको सम्मति लेनी पड़ती है।

दान लेख्य और वाक्य द्वारा हुआ करता है। ग्रहीता जब तक उसे ग्रहण न करे, तब तक दाताका स्वत्व उस वस्तु पर बना रहता है।

किसी नियमपूर्वक दानमें यदि वह उस नियमसे पालित न हो, तो दाताका स्वत्व नहीं जाता तथा ग्रहीताका भी स्वत्व नहीं होता।

दानमें प्राप्त कह कर दो मनुष्योंके एक वस्तुके प्रार्थी होने पर भी किसका आगम पहले है वह यदि व्यक्त न हो, तो जिसको भुक्ति प्रमाणित होती, वही अधिकारी माना जाता है। किन्तु किसीका भी आगम पूर्वसे प्रमाणित होनेसे उसकी भुक्ति नहीं रहने पर भी वही अधिकारी होगा। जो जो विषय दानविषयक, विक्रय और बन्धकके हैं उनमें यही नियम लागू है।

अदेय प्रकरण—निक्षेप, न्यास, गच्छित, बन्धक, याचित और न्याय कारणके बिना अपने स्वत्वके अति-रिक्त साधारण धन और अनापत्कालमें स्त्रीधनका दानादि असिद्ध है।

पुत्रादि रहने पर सर्वस्व दान तथा शास्त्रसम्मतके बिना साधारण विषयमेंसे अपने अंशका दानादि सिद्ध तो है; लेकिन अधर्म है।

दत्तक पुत्र बनानेके लिये पुत्रदान, परिजन व्याप्त विपद्में परिजनका पालन करनेके लिये तथा आव-श्यक धर्म कर्म करनेके लिये अविभक्त विषयका स्वकीय अंशातिरिक्त और विभक्त स्वकीय समुदायका और स्त्री-धनका दानादि सिद्ध तथा धर्मसंगत है।

देय प्रकरण—उत्तम रूपसे परिवारका प्रतिपालन कर जो कुछ बच रहे उस स्थावर अवस्थावर धर्मका दानादि सिद्ध और धर्मसंगत है।

परिवार पालनके व्याघातमें स्वेच्छापूर्वक अथवा काम्यधर्मकी कामनासे जो दानादि किया जाता है वह सिद्ध होने पर भी धर्मसङ्गत नहीं है, किन्तु सर्वस्व न बेच कर विपद्से त्राण, परिवार पालन अथवा अवश्य धर्म कर्म यदि न किया जाय, तो सोच विचार कर जो कुछ किया जायगा, वही सिद्ध होगा। भरणपोषण अशक्तादि न्याय्यकार्यमें यदि कोई स्त्री तात्कालिक मुख्य दायादको स्वाधिकृत संक्रान्त धन दे दे, तो यह दान सिद्ध समझा जायेगा।

राज्य अविभाज्य है। योग्य होने पर बड़ा ही राज्या-धिकारी होता है। यदि बड़ा अयोग्य हो, तो अन्य भ्राता राज्याधिकारी होगा।

दत्त प्रकरण—भृति, द्रव्यका मूल्य वा शुल्करूपमें अर्थात् विवाहमें, तुष्टिमें वा प्रत्युपकाररूपमें, स्नेहमें, अनु-ग्रहमें वा श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाय, वह अप्रत्या-हार्य है। भृतिमें वा अत्यन्त व्याकुलताप्रयुक्त हो कर यदि अधिक धन देनेको राजी हो जाय, तो वह दातव्य नहीं है। वस्तुतः गृहदाहादिमें और पुत्रके रोगादिमें यदि कोई किसी भाईको सर्वस्व देनेको स्वीकार करे, तो वह स्वीकार असिद्ध है। किन्तु उपकारके अनुसार अधिक देना उचित है। अत्यन्त अधिक धन देनेमें प्रति-श्रुत हो जाने पर यदि वह न दिया जाय अथवा उतना दे भी दिया जाय, तो भी वह उपरोक्त युक्तिसे पुनर्ग्रह-णीय है।

अदत्त-प्रकरण—भयान्वित, क्रोधान्वित, कामान्ध, मोहप्रयुक्त, उन्मत्त, आर्त्त वा अप्रकृतिस्थ अवस्थामें, अथवा उत्कोचरूपमें, परिहासमें, क्रीड़ामें, भ्रममें वा प्रता-रणामें, अथवा बालक अस्वतन्त्र वा अपवर्जित द्वारा, अथवा प्रतिलाभेच्छामें वा अपात्रको पात्रबोधमें अथवा अतिवृद्ध, अतिव्याकुल, निःसम्बन्ध, वा अति दुष्ट द्वारा

अथवा पापकर्ममें जो दिया जाता है वह अदत्त है। वस्तुतः दोषयुक्त दान असिद्ध है, किन्तु कारणमूलक दान सिद्ध है। आर्त्तकृत धर्मार्थ दानको सिद्ध माना है। बालक कर्तृक धर्मार्थ दान दक्षिणादि सिद्ध है।

दायभाग सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया, वह प्रायः वर्त्तमान आईनके अनुसार है, किन्तु कहीं कहीं कुछ अदल बदल भी हो गया है। दायसम्बन्धमें मिताक्षराका मत नहीं लिखा गया। मिताक्षराशब्दमें यह विषय लिखा जायगा। दायभागमें कहीं कहीं अनेक विषय ऐसे हैं जहां बहुतोंका मतभेद है तथा टीकाकारोंने भी वहां और भी दुरूह कर दिया है। इन्हीं सब कारणोंसे कई जगह उनका मत न ले कर केवल दाय विषयमें दाय सम्बन्धकी व्यवस्थायें दी गई है।

दायमुलहब्स ( अ० पु० ) आजन्म कैद, काले पानीकी सजा।

दायर ( फा० वि० ) १ चलता हुआ, फिरता हुआ। २ चलता, जारी।

दायरा ( अ० पु० ) कुण्डल, मण्डल, गोल घेरा। २ वृत्त। ३ कक्षा। ४ मण्डली। ५ डफली, खंजड़ी।

दायाँ ( हिं० वि० ) दाहिना।

दायागत ( सं० त्रि० ) १ जो कुछ बांट बखरेमें आया हो, मौरूसी हिस्सेमें पड़ा हुआ। ( पु० ) २ पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक।

दायागरी ( फा० स्त्री० ) दाईका काम।

दायाद ( सं० पु० ) दायं विभजनीयं धनं आदत्ते आ दा-क, दायं अस्ति अर्श-अण्, दायस्य आदः ग्राहकः। १ दायग्राही, हिस्सेदार। २ पुत्र, बेटा। ३ सपिण्ड कुटुंबो। (त्रि०) ४ दायाधिकारी, धनाधिकारी, जो दायका अधिकारी हो। स्त्रियां टाप्। ५ कन्या। मुग्धबोधके मतसे यणन्तरके बाद लोप होता है, ऐसी हालतमें दायादी ऐसा रूप होना चाहिये। लेकिन प्रायः सभी जगह दायादा ऐसा ही रूप देखा जाता है।

दायापवर्त्तन (सं० क्ली०) दायस्य अपवर्त्तनं। उत्तराधिकारित्व लोप करण, किसी जायदादमें मिलनेवाले हिस्सेकी जब्ती।

दायादवत् ( सं० त्रि० ) पुत्र, लड़का।

दायादी ( सं० स्त्री० ) कन्या, लड़की।

दायाद्य (सं० क्ली०) दायादस्य भावः ब्राह्मणादि० ष्यञ्। १ सापिण्ड्य। दायरूपं आद्यं। २ सापिण्ड्य निबन्धन धन।

दायाद्यता ( सं० स्त्री० ) दायाद्यस्य भावः भावे तल्, ततो टाप्। दायाद्यका भाव, देनदार होनेका भाव।

दायित ( सं० त्रि० ) दाय-दाने णिच्-क्त। दायित, दिया हुआ।

दायित्व ( सं० पु० ) १ दायादका भाव, देनदार होनेका भाव। २ जिम्मेदारी, जवाबदेही।

दायिन् ( सं० त्रि० ) दाय-णिनि। दाता, देनेवाला।

दायिनी ( सं० त्रि० ) देनेवाली।

दायें ( हिं० क्रि० वि० ) दाहिनी ओरको।

दार ( सं० पु० ) दारयति भ्रातॄन् दृ-णिच् दारि कर्त्तरि अच्। १ भार्या, स्त्री, पत्नी। "दारादेर्नित्य" इस सूत्रके अनुसार दार शब्द नित्य-बहुवचनान्त है इस शब्दमें एक वचनका प्रयोग नहीं होता, सदा बहुवचन हुआ करता है। दृ करणे घञ्। २ औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। भावे घञ्। ३ विदारण, फाड़नेका काम। 'दार' शब्द हिन्दीमें स्त्रीलिङ्ग होता है।

दारक ( सं० त्रि० ) दारयति नाशयति पितॄणां दृ-णिच् ण्वुल्। १ पुत्र, बेटा। २ बालक, लड़का, लौंड़ा। स्त्रियां टाप्। ३ कन्या। ४ ग्राम्यशूकर, घरेलू सूअर। ( वि०) ५ विदारक, फाड़नेवाला।

दारकर्मन् ( सं० क्ली० ) दाराणां तद्भावस्य प्रतिपादकं कर्म। भार्यात्वसम्पादक ज्ञान विशेषरूप विवाह, जिस क्रियामें यह मेरी भार्या है ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उसीको दारकर्म कहते हैं, विवाह, शादी।

दारकाचार्य ( सं० पु० ) शाक्यबुद्धके शिक्षागुरु।

दारक्रिया ( सं० स्त्री० ) दाराणां क्रिया। दारकर्म, विवाह।

दारगञ्ज—इलाहाबाद नगरके उपकण्ठस्थ एक शहर। यह अक्षा० २५° ४४' उ० और देशा० ८१° २५' पू०में अवस्थित है। यह शहर गङ्गाके दक्षिणी किनारे पड़ता है, इसीसे यह इलाहाबादका एक अंश भी समझा जाता है। इलाहाबादके मजिष्ट्रेट ही यहांका शासन-

कार्य चलाते हैं और वहींकी पुलिस इस शहरको शान्ति रक्षा करती है। नगर भी इलाहाबाद म्य.निसिपैलिटी-के अन्तर्गत है। इलाहाबादके केन्द्रस्थानसे इसकी दूरी केवल २ मील है।

दारग्रहण (सं० क्ली०) दाराणां ग्रहणं। पत्नीग्रहण, विवाह।

दारण (सं० क्ली०) दारयति नाशयति जलमलं अनेन दृ-णिच् करणे ल्युट्। १ कतकफल, निर्मलीका फल। यह फल जलमें देनेसे जलको मैल दूर हो जाती है। दृ-णिच् भावे ल्युट्। २ विदारण, चीरने या फाड़नेका काम, चीर फाड़। ३ विदारणसाधन अस्त्रादि, चीरने फाड़नेका अस्त्र या औजार। ४ व्रणादि स्फोटन सम्पादक औषधविशेष, वह दवा जिसके लगानेसे फोड़ा आपसे आप फूट जाता है। भावप्रकाशमें लिखा है कि करञ्ज, भल्लातक (चिलबिल), दण्ती, चिता, अश्वमारक (कनेर), कबूतर, कौवे और गीधकी बीट कुछ पके हुए फोड़ेमें लगानेसे वह आपसे आप फूट जाता है। चार द्रव्य अथवा यवक्षार आदिके प्रयोगसे भी फोड़ा फूट जाता है, किन्तु यह बहुत कष्टदायक होता है।

दारद (सं० क्ली०) दरदि देशभेदभवः स्निग्धादि० अण्। १ दरद देशोद्भव विषभेद, एक प्रकारका विष जो दरद देशमें होता है। २ पारद, पारा। ३ हिङ्गुल, ईङ्गुर। ४ समुद्र।

दारद (दार्द)—लादक प्रदेशके पश्चिमभागमें सिन्धु नदीके कूलवर्त्ती भूभागवासी एक जाति। ये लोग आर्यवंशके है, नाना शाखाओंमें विभक्त हो कर नाना स्थानोंमें वास करते हैं। इनमेंसे कितने ऐसे हैं जिन्होंने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया है। मनुने महाभारतादि ग्रन्थोंमें इस जातिको संस्कारभ्रष्ट व्रात्य-क्षत्रिय बतलाया है।

अभी ये लोग तीन विभिन्न भाषाओंमें बोलते हैं। तीन भाषाओंमें लिखते समय पारस्य अक्षर व्यवहृत होता है। इन तीन भाषाओंके नाम शीना, खजुना और अर्णिया है। आस्तर, गिलघिट् एवं और भी दक्षिणमें चेला, दारेल, तोङ्गली एवं पाला प्रभृति सिन्धुनदके उभय कूलवर्त्ती प्रदेशोंमें शीना हुणजा और नागर नामक स्थानोंमें खजूना तथा चित्रल और इयाशानमें अर्णिया भाषा प्रचलित है। काश्मीरी लोग इनके मध्य रह कर भी अपनी ही भाषामें बोलते हैं, किन्तु काश्मीरी और दार्द भाषा बहुत कुछ एक दूसरेसे मिलती जुलती है।

गिलघिट्, आस्तर और बल्चिस्तानके दार्दगण रोण, शीन, यस्कुन, क्रेमिन और डोम आदि श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इनमेंसे शीन और यस्कुन जाति ही प्रधान है। क्रेमिणगण मिश्र जाति है। डोम और ढोकरा सबसे नीच है। बहुतोंका मत है, कि यही दार्द जाति ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतास् वर्णित दादिसि ( Dadicae ) जाति है। किन्तु सार्जन बेलु ( Belleu ) साहब कहते हैं कि काकर जातिके साथ अफगानिस्तानमें 'दादि' नामक एक जाति वास करती है, शायद यही जाति हिरोदोतस् वर्णित दादिस जाति होगी। प्लिनो भी काश्मीर सीमान्तके हिन्दूकुशस्थ दारद प्रदेशका उल्लेख कर गये हैं। पुराणमें भी दरद और इस जनपदवासी दारदोंका उल्लेख है।

दारद लोग शराबके बड़े प्रेमी हैं। ये स्वयं अपने पीनेके काबिल शराब प्रस्तुत करते हैं। अश्वसारको सिद्ध कर उसमें लादक प्रदेशसे मंगाये हुए प्यापस नामक एक प्रकारका द्रव्य मिलाते हैं। बाद उसे धूपमें अथवा आगके समीप १०।१२ दिन तक रख छोड़ते हैं। पीछे इसे छान लेनेसे ही शराब तैयार हो जाती है। आस्तर, शीन और गिलघिट्के लोग इस प्रकारका मद्य काममें लाते हैं। नागरमें भी दाखसे एक प्रकारका मद्य बनाया जाता है।

दारदगण स्त्रीपुरुष एक साथ खाते हैं। अगर दो पुरुष एक साथ दूध पी लें, तो वे बहुत दिन तक जातिच्युत किये जाते हैं।

ये लोग घोड़ेकी पीठ पर चढ़ कर एक प्रकारका खेल खेलते हैं, जिसे 'पोलो' कहते हैं। आस्तरमें इस खेलको तोपो और गिलघिट्में बुला कहते हैं। इस खेलके लिये गाँवके बाहर एक लम्बा चौड़ा मैदान नियत रहता है।

शिकारमें जाना ये लोग बहुत पसन्द करते हैं और धनुर्वाण चलानेमें बड़े सिद्धहस्त हैं। प्रायः शीतकालमें ही शिकार खेला करते हैं।

ये लोग बन्दूकका व्यवहार करते हैं। इनकी बन्दूक

टोपीदार बिलायती बन्दूक सी नहीं होती। उनमें अग्नि संयोगसे गोली छोड़ी जाती है। बन्दूककी गोलियां फकत शीशेको न बना कर पत्थरके टुकड़ोंमें सोसा मोड़ कर बनाते हैं। शर सन्धान और बन्दूक चलानेमें ये लोग बड़े दक्ष होते हैं।

आमोद-प्रमोदके समय ये लोग बाजेके साथ साथ नाच गान किया करते हैं। असिचर्मादि ले कर भी ये दल बांध कर तरह तरहके खेल दिखलाते हैं।

दारेल लोग मृत व्यक्तिको बगलमें बैठ कर दाख सुपारी आदि खाते हैं। यह जाति प्रायः मट्टीके नीचे गड्ढा बना कर उसमें अपना खाद्य पदार्थ गाड़ रखते हैं। कब कैसी विपद् आ घिरेगी, शायद इसी आशङ्का से वे ऐसा करते हैं। सन्तानके विवाहादिमें गड़ा हुआ खाद्य पदार्थ निकाल कर बन्धु बान्धवोंमें वितरण किया जाता है। खाद्य पदार्थके साथ घीभी गाड़ रखते हैं। अधिक दिन हो जानेके कारण घीका स्वाद बदल जाता और रंग भी लोहे सा हो जाता है, किन्तु दार्द लोग समझते हैं, कि यह रंग सुन्दर और सुन्दरीका सौभाग्य-सूचक है।

दारपरिग्रह (सं० पु०) दाराणां परिग्रहः ग्रहणं। दार-कर्म, विवाह।

दारपरिग्रही (सं० त्रि०) दारपरिग्रह-इनि। दारपरिग्रह-युक्त, जिसने पाणिग्रहण किया हो।

दारबलिभुज (सं० पु०) दारेण चञ्चु वा घातजन्य विदारणेन बलिं भुङ्क्ते भुज्-क्विप्। बकपक्षी, बगला।

दारमदार (फा० पु०) १ आश्रय, ठहराव। २ कार्यका भार, किसी कामकी जिम्मेदारी।

दारल—एक प्राचीन देश। दारेल देखो।

दारव (सं० त्रि०) दारुणः विकारः रजतादित्वात् अञ्। १ दारुविकार काष्ठमय पदार्थ, लकड़ीका बना हुआ। २ काष्ठ सम्बन्धी।

दारसंग्रह (सं० पु०) दाराणां संग्रहः। दारग्रहण, विवाह।

दारा (हिं० स्त्री०) १ भार्या, पत्नी, स्त्री। २ हिन्दुस्तान-में समुद्रके किनारे मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। यह लम्बाईमें तीन हाथ और तौलमें दश ग्यारह सेर होती है।

दारा—१ पारस्यके कैयानवंशके ८वें राजा। इनका जन्म रानी हुमायूँके गर्भसे हुआ था। इनके राजत्वकालमें पारस्यमें अनेक युद्धविग्रह और प्रधान प्रधान घटनाएं घटी थीं। इन्होंने केवल १२ वर्ष तक राज्य किया था। पीछे इनके लड़के दारा (२य) राजा हुए।

२ दूसरा नाम दाराव। ग्रीक ऐतिहासिकगण इन्हींको Darius Cadomanus नामसे बतला गये हैं। ३३१ ई०के पहले महावीर अलिकसन्दरसे ये लड़ाईमें मारे गये। ये ही कैयानवंशके अन्तिम राजा थे।

३ एक फारसी कवि। इनकी कविताकी रचना बहुत अच्छी होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"रहता हूं सदा तालबे दीदार तुम्हारा।
मुद्दतसे मेरा दिल है गिरफ्तार तुम्हारा॥
उम्मेद यही शामो सहर रखता हूं दिलमें
रब्ब ही देखलावेगा दीदार तुम्हारा॥
महताब भी खिजमतसे चरखपै है घट गया
क्या खूब है मुखड़ा यह तरहदार तुम्हारा॥
दिल देनेको तयार हैं कितने ही खरीदार
क्या गर्म है यह हुस्नका बाजार तुम्हारा॥
यारोंको तो मुखड़ा जरा देखलावो नाजनीं
देखा करें यह हुस्न सुबह शाम तुम्हारा॥
यह बात खताकी है तो हम जावें वतनकों
हैं नाज नहीं जुल्फका हरकाम तुम्हारा।"

दाराई (फा० स्त्री०) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा, दरियाई।

दाराड़—कच्छ प्रदेशवासी एक श्रेणीका मुसलमान। ये लोग पहले हिन्दू थे।

दाराधिगमन (सं० क्ली०) विवाह, शादी।

दाराधीन (सं० त्रि०) स्त्रैण, जो स्त्रीका वशीभूत हो।

दाराशाह—एक कवि। इन्होंने सन् १७१० ई०में दोहास्तव-संग्रह और सारसंग्रह नामक दो पुस्तकें लिखी हैं।

दाराशिकोह—भारतवर्षके मुगलसम्राट् शाहजहान्‌के ज्येष्ठ पुत्र। ये पितामाताके तृतीय सन्तान थे, किन्तु पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। इनकी माताका नाम था अलिया-बेगम। ये अलियाबेगम ही 'मुमताज-महल'के नामसे

प्रसिद्ध हुई थीं *। इन्हींका समाधि-मन्दिर जगत्में 'ताजमहल'के नामसे विख्यात है। अरमो साहबने मुसलमान ऐतिहासिकोंके विवरणसे जो कुछ संग्रह किया है, उसमें लिखा है कि शाहजहान्ने आसफ्खा (नूर जहान्के भाई)की कन्या ममताजा जमानोके साथ विवाह किया था, इन्हींकी समाधिके लिये ताजमहल बनवाया था और इन्हींके गर्भसे दाराशिकोह, सूजा आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे †। कौनसे संवत्में दाराका जन्म हुआ, इसका कोई निश्चित विवरण नहीं मिलता। बिभारिज साहब अपने 'भारतवर्षके इतिहास'में एक जगह लिखते हैं, कि १६५७ ई०में दाराकी उम्र ४२ वर्षकी थी और वे औरङ्गजेबसे दो वर्ष बड़े थे ‡। इससे तो यह मालूम होता है कि दाराका जन्मकाल १६१५ ई० है ; किन्तु औरङ्गजेबके समकालवर्ती काफी खाँने अपने 'मुन्तखब-उल्-लुवाब' नामके इतिहासग्रन्थमें औरङ्गजेबका जन्मकाल १०२८ हिजरी ( अर्थात् १६१८ ई० ) लिखा है। इस हिसाबसे दाराका जन्मकाल १६१७ ई० ठहरता है। बादशाहनामाके मतसे, १०२४ हिजरी २८ सफर ( १६१५ ई०, २० मार्च)-को दाराका जन्म हुआ था। दाराके सहोदर भाई आठ और छः बहनें थीं। शेष सन्तानके प्रसव करते समय, ४० वर्षकी उम्रमें अलिया-बेगमकी (१०४० हिजरी, १६२० ई०में) मृत्यु हुई थी। उस समय दाराकी उम्र सिर्फ १३ वर्षकी थी। शाहजहान्की राजगद्दी पर बैठे सिर्फ चार ही वर्ष हुए थे। सूजा औरङ्गजेब, मुराद तथा जहान्-आरा, रोशन्-आरा आदि शाहजहान्की इतिहास-प्रथित सन्तानें दाराकी सहोदर-सहोदरा थीं।

काश्मीरसे लाहोर आते समय, मार्गमें जब ( १६२७ ई०) जहाँगीरको मृत्यु हुई थी, उस समय दाराशिकोह, महम्मद, सूजा और औरङ्गजेब नूरजहान्के पास ही थे। यद्यपि नूरजहान् इस समय अपने दामाद शाहरियारके लिए दिल्लीका राजसिंहासन हस्तगत करना चाहती थीं और उसके लिये शाहजहान् भतीज-जमाई होने पर भी उनके विरुद्ध आचरण करते थे, किन्तु तो भी भतीजो को सन्तान होनेके कारण वे शाहजहान्के पुत्रोंको अपने महलके पास रख कर उनका लालन पालन करती थीं। इस समय दाराको उम्र १० वर्षको थी। जहाँगीरकी मृत्युके समय शाहजहान् आगरेमें न थे, दाक्षिणात्यमें थे। शाहरियार ही राज्यके अधिकारी होंगे, ऐसा प्रायः निश्चित हो चुका। परन्तु मूर्ख शाहरियार उस समय पिताका धन हस्तगत करनेके अभिप्रायसे लाहोर चल दिये। इधर मन्त्री इराद खाँ और सेनापति यामिन-उद्दौला आसफ खाँ (नूरजहान्के भाई) राज्यको विशृङ्खला निवारणार्थ, खुशरू (जहाँगीरके ज्येष्ठ पुत्र)-के पुत्र बुलाकीको सिंहासन पर बैठानेके लिये नूरजहान्के स्वीय अभिप्रायसिद्ध करनेके एक दिन पहले आगरा आये और सबसे पहले उन्होंने शाहजहान्के पुत्रोंको राज्ञीके अधिकारसे निकाल कर शादिक खाँ नामक एक सेनापतिके हाथ सौंप दिया। दौहित्रोंको निरापद करके, आसफखाँने जामाताके लिए सिंहासनके रक्षार्थ मन्त्रीके परामर्शसे बुलाकीको सिंहासन पर बिठा दिया और जामाताको लानेके लिए दाक्षिणात्यको आदमी भेज दिया। ४ महीने बाद ( १६२८ ई०में ) * आगरेमें आ कर शाहजहान्के राज्यप्राप्त करनेके २ वर्ष बाद (अर्थात् १६३० ई० वा १०४० हिजरीमें ) १३ वर्षकी उम्रमें दाराका विवाह हुआ था। जहाँगीरके द्वितीय पुत्र कुमार परवेजकी कन्या नादिरा भी दाराको व्याही गई थी। यह विवाह बड़ी शान-शौकतके साथ हुआ था। उन्हीं नादिराके गर्भसे सुलेमान-शिकोह और शिपिहर शिकोह नामके दाराके दो पुत्र हुए थे। १६५१ ई० (१०६२ हिजरी)में सुलतान शाहजहान्के आदेशसे कुमार औरङ्गजेब बहादुर मुलतानसे कन्दाहार जय करनेके लिये गये थे, काबुलके रास्तेमें अल्लामो शाह दुल्ला खाँ नामक सेनापति कन्दाहार जयका फरमान और

* Elliot's History of India, Vol. VII p. 27, and note

† Historical Fragments of the Moghul Empire, p. 187—188.

‡ Beveridge's History of India, Vol, 1, p. 28.

* १६२७ ई०के अक्तुबर मासमें जहाँगीरकी मृत्यु हुई थी और १६२८ ई०के फरवरी महीनेमें शाहजहान् सिंहासन पर बैठे थे।

बड़ी भारी फौजके साथ उनका साथ दिया था। दोनों सेनाओंको इकट्ठा कर औरङ्गजेबने कन्दाहारको दुर्ग घेर लिया। दुर्ग सुदृढ़ और अस्त्र शस्त्रसे पूर्ण था, भीतर से अजस्र वर्षण होनेके कारण मुगलोंके लिए खड़ा रहना भी मुश्किल हो गया। औरङ्गजेबके अधीन दो तोपें थीं, पर वे भी लगातार चलाते रहनेसे फट गईं। अल्लामी शाह दुल्लाउँके सेनादलमें मीर-इ-आतीश काशिम खाँके अधीन पांच तोपें थीं; वे भी लगातार चलती रही थीं पर उससे कुछ फल न हुआ। अनर्थक बारूद और गोली नष्ट भ्रष्ट हो गये, दुर्गकी तनिक भी क्षति न हुई। यह संवाद शाहजहान्‌के पास पहुंचा और एक विपत्तिका सूत्रपात हुआ। गजनीके निकट वर्त्ती उजवेक और अलमान जातीय अफगानोंने विद्रोही हो कर महा अनिष्ट करना शुरू कर दिया। अतएव १६५२ ई०में औरङ्गजेबको लौट आना पड़ा।

औरङ्गजेबके लौट आने पर, कुमार बुलन्द इकबाल दारा-शिकोहने दृढ़ताके साथ कहा कि, मैं 'कन्दाहार पर अवश्य विजय लाभ करूंगा। शाहजहान्‌ने ज्येष्ठ पुत्रको बात पर विश्वास कर उसी वर्ष इन्हें काबूल और मुल-तान प्रदेशके शासनकर्ता बना कर बहुत सी सेनाके साथ कन्दाहार भेज दिया। दाराने लाहोर पहुंचनेके साथ ही साथ युद्धको सब तैयारियां कर लीं; जिसके करनेमें कमसे कम १ वर्ष लगता, उसे दाराने चार हो महिनेमें कर दिखाया। इनके साथ 'किशावर-कुशा' (देशजयी) और 'गढ़भञ्जन' नामकी दो बहुत बड़ी तोपें थीं। इनमें जो गोले दिये जाते थे, उनका वजन १।८ (एक मन आठ सेर) था। और भी एक तोप थी, जिसका वजन १।१६ (एक मन सोलह सेर) था। इसके सिवा आपने ५ हजार मन बारूद और २५ हजार मन सीसा भी साथ रखा था। सब तैयारियां कर चुकने पर आपने चलनेके दिन पितासे अनुमति ली। मुलतानके रास्तेमें रसद और घासका सुभीता था, इसलिए सेना उसी मार्गसे चली। १६५३ ई०में (हिजरो सन् १०६३ में) दाराने कन्दा-हार अवरोध किया और बुस्तके दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

इस अवरोधमें ५ महीने बीत गये। बारूद, सीसा, गोला, गोली सब निबटाक हो चले। अफगानिस्तानके पर्वतमाला-समाच्छन्न प्रदेशमें शीतके प्रकोपसे शीतवस्त्र-हीन मुगलसेना बड़ी विरक्त हो उठी। सुलतान शाह-जहान्‌को मालूम पड़ते हो उन्होंने लिख भेजा कि, 'यदि अभी दुर्ग जय करना सम्भव समझो और थोड़े दिनमें काम पूरा हो जाय, तो होने दो; नहीं तो वृथा समय नष्ट करना उचित नहीं, लौट आना ही श्रेयस्कर है। दाराके द्वारा नव-नियुक्त बुस्त प्रदेशके शासनकर्त्ता बुस्त दुर्ग ध्वंस करके सेना सहित दाराके साथ आ मिले। उन्होंने दुर्गके साथ साथ बुस्तका कारखाना तक उठा दिया। दाराके लौट चलनेका प्रस्ताव करने पर सभी मुगल-सेना-पति उसमें राजी हो गये और उसी वर्षके शेषमासमें अवरोध उठा कर सब हिन्दुस्तान लौट आये।

जहांगीरके समयमें ऐसा निर्णय हुआ था कि अबसे चित्तौरके कोई भी राना चित्तौरदुर्गका संस्कार न करा सकेंगे। १६५३ ई०में राणा जगत्‌सिंहने उस आदेश की कुछ भी परवाह न कर दुर्गके जीर्ण स्थानोंको तुड़वा कर मजबूतीके साथ बनवाना शुरू कर दिया। शाहजहान्‌को मालूम पड़ते ही, उन्हें ३० हजार सैनिकोंके साथ अल्लामी शाहदुल्ला खांको चित्तौर ध्वंस करनेके लिए भेज दिया।

दाराशिकोह शाहजहान्‌के प्रिय पुत्र थे, सर्वदा उनके पास रहते थे, यहाँ तक कि मतद्वैत होने पर भी वे दाराके परामर्शानुसार काम करते थे। सम्राट्‌को यह पुत्रवश्यताकी बात सर्वत्र फैल गई। राना जगत्‌सिंह-को भी यह बात मालूम थी। शाहदुल्ला खांके खलोल-पुरमें जाकर छावनी डालते ही रानाने गुप्तभावसे दारा-के पास अपना विश्वस्त आदमी भेजा। उसने दारासे जा कर कहा, 'राना कहते हैं, आप बीचमें पड़ कर बाद-शाहके क्रोधको शान्त कर दीजिये।' दाराने राना जगत्‌सिंहको ओर सम्राट्‌से प्रार्थना की। सम्राट्‌ने दूतके मारफत रानाको कहला भेजा कि, 'राना अपने ज्येष्ठ पुत्रको मुगल-दरबारमें रख दें और रानाकी एक दल सेना उन्हींके किसी आत्मीय व्यक्तिके अधीन दाक्षिणात्य-में रह कर मुगल बादशाहका काम करे।' यदि इस आदेशको राना न मानेंगे तो उनका चित्तौर ध्वंस कर

दिया जायगा। रानाने पुनः दाराको संवाद दिया कि, 'यदि आप अपने दीवानको भेज दें तो उनके साथ मैं पुत्रको भेज सकता हूं।' सम्राट्‌से आज्ञा ले कर दाराने अपने दीवान शेख अबदुल करीमको चित्तौर भेजा। इतनेमें शाहदुल्लाकी सेनाने चित्तौर पर आक्रमण कर मोरचाकी दीवार आदि तोड़ना शुरू कर दिया। रानाने पुनः प्रतिनिधि भेजनेका निश्चय किया, इतनेमें दाराके दीवान आ पहुंचे।

रानाने उसी समय अपने ज्येष्ठ पुत्रको उनके साथ बादशाहकी सेवामें भेज दिया। दाराकी मध्यस्थतामें राजकुमारको प्रतिभूस्वरूप पा कर शाहजहान्‌ने रानाको क्षमा कर दिया।

१६५२ ई०के मध्यभागमें शाहजहान्‌के राज्यमें १०६५ हिजरी सन्‌के बीतने पर एक उत्सव हुआ था। उस उत्सवमें नाना देशोंके राजा निमन्त्रित हुए थे। इस मजलिशमें शाहजहान्‌ने अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराको एक विशेष खिलात दे कर सम्मानित किया था। इस खिलातके साथ जो अंगरखा दिया था, उसकी अस्तीन और मगजीमें कारचोपीका काम था, जिसमें मोती और मणि माणिक्यादि जड़े हुए थे। इस अंगरखेकी कीमत ५० हजारसे ज्यादा ठहराई गई थी। एक शिरपेच (शिरफन्द) दिया गया था, जिसके एक चुन्नी और दो मोतियोंके दाम १ लाख ७० हजार रुपये थे। इसके सिवा नकद १२ लाख रुपयेभी दिये गये थे। इस खिलात पानेके बाद दारा शाह बुलन्द एकबार 'दारा शिकोह' कहलाने लगे। शाहजहान्‌की यह उपाधि जहांगीरसे मिली थी। दारा अब तक दरबारमें सम्राट्‌के तख्तताउसके सामने बैठा करते थे, अब वे तख्तताउसके दाहिने स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाये जाने लगे।

१६६८ ई०में शाहजहान्‌ बीमार पड़ गये। इस समय राज्यका समस्त कार्यभार दारा पर था, जिससे उनके और भाई बिगड़ उठे, महम्मद सूजा इस समय बङ्गालमें, औरङ्गजेब दाक्षिणात्यमें और मुराद वक्स गुजरातमें शासनकर्त्ता थे।

दारा शाहजहान्‌के बड़े प्रिय थे, क्योंकि वे फारसी, अरबी और संस्कृत भाषामें विशेष व्युत्पन्न तथा साहसी, सरल और बुद्धिमान् थे। परन्तु एक बातकी दारामें कमी थी, वे अपरिणामदर्शी थे, जब जिस कामकी प्रवृत्ति होती उसे झट कर डालते थे। शाहजहान् दारा पर इतना प्रेम करते थे कि कभी कभी उनके परामर्शानुसार अन्याय काम भी कर डालते थे। दाराको सम्राट् अपनी आंखोंके ओझल न होने देते थे। दारामें एक विशेष गुण था कि उन्होंने अकबरकी तरह मुसलमान और हिन्दू धर्मके सार तथ्योंका संग्रह कर अपना धर्ममत स्थिर किया था। जिस समय दारा कन्दाहार जय करने गये थे (१०५० हिजरीमें) उस समय काश्मीरमें मोलाना शाह नामके एक फकीरसे आपकी मुलाकात और जान पहचान हुई थी। उसी व्यक्तिने आपको हिन्दू, मुसलमान और ईसाई धर्मका समन्वय करके अद्वैतवादकी शिक्षा दी थी। इन्हींके द्वारा आपको हिन्दू शास्त्रोंका रहस्य मालूम हुआ और तभीसे आपके धर्ममतमें परिवर्तन हो गया। ये अकबरकी तरह मुसलमान फकीर और हिन्दू संन्यासी, गुंसाई आदिके साथ बैठ कर सर्वदा धर्मालोचना किया करते थे। उपासनाके समय आप अल्लाहके बदले 'प्रभु' शब्द व्यवहार करते थे, अंगूठी पर ॐकार खुदाते थे और नमाज, रोजा आदिका पालन कुरानके अनुसार नहीं करते थे। इन कारणोंसे मुसलमान समाज दारा पर बहुत नाराज रहती थी। दाराका कहना था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मोंका उद्देश्य एक ही है और दोनोंकी नींव यमज भ्राताकी तरह सत्य पर अवस्थित है। दारा अपनेको कट्टर मुसलमान नहीं कहते थे और न वैसा आचरण ही करते थे। इन्हीं सब कारणोंसे, जब आपने पिताकी अस्वस्थतामें राज्यभार ग्रहण किया, तब राज्यके सम्भ्रान्त लोगोंमें सनसनी फैल गई। बहुतोंके हृदयमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि अगर इस समय बादशाहकी मौत हो जाय, तो दारा मुसलमान धर्मका मूलोच्छेद बिना किये न छोड़ेंगे। इसी कारण मुसलमान ऐतिहासिकोंने दाराकी बहुत कुछ निन्दा की है। शाहजहान्‌ने पहलेसे ही दाराको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। सूजा, औरङ्गजेब आदिके मनमें राज्यलिप्सा थी, किन्तु अब तक प्रकाशमें नहीं आये थे। दाराके भाइयोंमें सूजा भ्रष्टाचारी विला-

अप्रिय, किन्तु युद्धवित् और बुद्धिजीवि थे, मुराद केवल आनन्दप्रिय और अत्यन्त मद्यसेवी थे। दारा पहलेसे ही सतर्क हो गये थे, उन्होंने पिताकी मारफत भाइयोंको अति दूरदेशोंके शासनकर्त्ता नियुक्त कर राजधानीसे बहुत दूर भिजवा दिया था। इसीलिए सम्राट्के अस्वस्थ होने पर जब दाराने राज्यभार ग्रहण किया, तब साक्षात् समाजमें कुछ गड़बड़ी न फैलने पर भी, परस्पर एक दूसरेको अन्तरङ्ग द्वारा सब संवाद मालूम हो गया। बङ्गालमें सूजाने और अहमदाबादमें मुरादने अपने अपने नामके सिक्के चला दिये और खुत्बा पढ़ाने लगे। सुजा देर करना ठीक न समझ कर राज्यवृद्धिके अभिप्रायसे पटना और बिहार प्रदेश बङ्गालमें मिला लिया। दारा सिर्फ औरङ्गजेबको कूटबुद्धि और तीक्ष्ण दृष्टिसे डरते थे और दक्षिणमें उन्होंने जैसा बलविक्रम दिखाया था, उससे भी वे औरङ्गजेबसे शङ्कित थे। शाहजहान् पहलेसे ही दाराके पक्षपाती और इस समय प्रत्यागत हो कर और भी उनके निर्देशानुवर्ती हो पड़े। औरङ्गजेब ठीक इसी मौके पर बीजापुर अवरोध किया। उनकी सहायताके लिए उस समय बहुतसी सेना और सेनापति उपस्थित थे। ऐसे मौके पर औरङ्गजेबके अधीन इतनी शक्ति रखनी दाराने युक्तिसङ्गत न समझा। उन्होंने अपनी स्वभावसिद्ध हठ-कारिताके वश उसे कौशलसे घटाने लिए तुरंत ही सम्राट्के द्वारा आदेश भिजवा दिया कि 'बीजापुरका अवरोध छोड़ कर समस्त सेना और सेनापतियोंके साथ राजधानीमें चले आओ।' औरङ्गजेब इस आदेशका मर्म समझ गये और अकेलेसे अवरोध करना मुश्किल समझ कर बीजापुरके अधिपति सिकन्दर आदिलशाहके प्रस्तावानुसार उसने सन्धि कर ली और राजस्व एवं सन्धिके मूल्यरूपमें १ करोड़ रुपये ले कर खुजिस्ता-बुनियाद (औरङ्गाबाद) को चल दिये। वहां पहुंचने पर उन्हें मालूम हुआ कि दारा दिल्ली छोड़ कर पिलटकोषागार अधिकार करनेके लिए आगरा गये हैं।

१६५७ ई०के शेष भागमें शुजा बड़ी भारी फौजके साथ दिल्लीकी ओर अग्रसर हुए। शाहजहान् उस समय कुछ सुस्थ थे। उन्होंने शुजाको युद्ध करनेके लिये पत्र द्वारा मनाई की, परन्तु इसके बाद ही उन्हें संवाद मिला कि शुजा युद्धके लिये अग्रसर हो रहे हैं। अब बाध्य हो कर दाराको राजा जयसिंह (मीरजा) और सुलेमान-शिकोहके अधीन सेना भेजनी पड़ी। राजा जयसिंह जब सेना सामने ले कर काशीके निकट गङ्गा-तीरवर्ती बहादुरपुर पहुंचे, तब शुजा डेढ़ कोसको दूरीसे युद्धके लिये तैयार हुए। दूसरे दिन सूर्योदयसे पहले राजा जयसिंहने सेना-सहित आगे बढ़ कर अप्रस्तुत अवस्थामें शुजाकी सेना पर आक्रमण किया। शुजाकी सेना उषाकालकी मधुर निद्रामें मग्न थी। शस्त्रोंका शब्द सुन कर शुजाकी सेना जग गई। उठ कर देखा तो वहां सब सफाया पाया—धनरत्न, तोप, गोला, बारूद सब कुछ शत्रुके कब्जेमें पहुंच चुका था; कुछ लोग बन्दी भी हो चुके थे। आखिर मामला बिगड़ते देख शुजा कुछ अनुचरोंके साथ चुपचाप नाव पर चढ़ कर चलते बने। शुजा अपने राज्यमें न गये, इसलिए उनका सारा राज्य दाराके हस्तगत हो गया। इधर कैदियोंको ले कर जयसिंह आगरा पहुंचे। दाराने उन कैदियोंको नगरके चारों तरफ घुमाया एवं कुछ लोगोंको प्राणदण्ड दिया गया और कुछ लोगोंके हाथ काट दिये गये।

जिस दिन दाराके पुत्र सुलेमान-शिकोह और राजा जयसिंहने शुजाके विरुद्ध यात्रा की थी, उसी दिन और एक दल सेनाके साथ महाराज यशवन्तसिंह और कासिम खाँ दक्षिणको रवाना हुए थे। औरङ्गजेब और मुराद दक्षिणमें क्या कर रहे हैं और किस अवस्थामें हैं, इस बातको जाननेके लिये ही दाराने ऐसा किया था। मुरादबक्स अगर अहमदाबाद छोड़कर और किसी तरफ जांय, तो उन पर आक्रमण करनेका भार कासिम पर सौंपा गया और यशवन्तसिंह अवस्था देख कर व्यवस्था करेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। इसके पहले जब मुगल सम्राट् महाराज यशवन्तसिंहका राज्य आक्रमण करनेके लिए अग्रसर हुए थे, उस समय यशवन्तसिंहने अपने बलाबलको अच्छी तरह समझ कर दाराशिकोहके पास दूत भेज दिया था। उसने दाराके पास पहुंच कर सब कह सुनाया, दारा राजाको सहायता पहुंचानेको राजी हो गये। सम्राट्ने दाराको समझा कर, कुछ तिरस्कार और आश्वास देकर, एक पत्र भेजा।

यशवन्तसिंह पत्रके द्विभावात्मक मर्मको समझ और भी डर गये, उन्होंने दाराकी खुशामद छोड़ कर मिर्जा राजा जयसिंहकी सहायतासे सम्राट्‌से क्षमा प्राप्त की। सम्राट्‌ने उन्हें शान्त करके अहमदाबादकी सूबेदारी दे दी और उसके लिए एक फरमान और खिलात भेज दी। दाराने इस समय मालवको अपने वशमें कर लिया और उसके राजस्व द्वारा वेतनादि दे कर सेनाको सन्तुष्ट किया। सेना भी वहांके धनरत्नादिको देख कर बड़े उत्साहसे मालिकका काम बजाने लगी। इसी बीचमें दाराने औरङ्गजेबके वकीलको कैद कर उसका मकान लूट लिया।

इधर मुरादबक्सने अहमदाबादमें अपने नामका सिक्का चला दिया और खुतबा पढ़नेका हुक्म जारी कर स्वाधीनतासे ख्वाजा-शाहवाज नामक एक खोजाके अधीन सूरत दुर्ग जय करनेके लिये सेना भेज दी और साथ ही बन्दरके समस्त वणिकोंसे १५ लाख रुपयेका दावा किया। बहुत तर्क-वितर्कके बाद वणिकोंने ६ लाख रुपये देनेकी स्वीकारता दी।

उधर जब औरङ्गजेबने जाफराबाद और कल्याण प्रदेश जय कर बीजापुर अवरोध किया, उस समय सम्राट् शाहजहानने मीरजुमला (उमदात्-उल्-सलातनत्-उलक स्थिर मुयाज्जमखाँ)-को उनकी सहायताके लिये भेजा। मीरजुमला उनके साथ मिल कर कार्य करने लगे। आलमगीरनामामें लिखा है, कि दाराशिकोहने इस समय गुप्तरोत्या बीजापुराधिपति आदिलखाँ और उनके अन्यान्य अमीर उमरावोंको औरङ्गजेबके आदेशानुसार कार्य न करनेके लिये पत्र लिखा था। इससे आदिलशाहने औरङ्गजेबकी बात न मानी। इसके बाद दाराने औरङ्गजेबको हीनबल करनेके लिये सम्राट्‌के द्वारा मीरजुमलाको सेना-सहित आगरा लौट आनेके लिए आदेश भिजवाया। तदनुसार मीरजुमलाने आगरा लौटनेकी तैयारियाँ कर लीं। औरङ्गजेब बड़े भाईके इस कौशलको समझ गये। उन्होंने मीरजुमला जैसे सुदक्ष सेनापतिका बृहत् सेना-सहित दाराके पक्षमें रहना युक्ति-सङ्गत न समझ, उन्हें मार्गमें ही सहसा रोक कर दौलताबादके दुर्गमें कैद कर दिया। मीरजुमलाके पुत्र महम्मद अमीनखाँ इस समय दरबारमें मीरबकशीके पद पर नियुक्त थे। दाराको मीरजुमलाके बन्दी होनेका संवाद मिलते ही, उन्होंने अमीनखाँको कैद कर लिया। पीछे ३।४ दिन बाद यथार्थ घटना मालूम होने पर वे छोड़ दिये गये। इनायतखाँके "शाहजहाननामा"के अनुसार, इससे कुछ पहले आदिलखाँकी मृत्यु हो गई थी और उनके पुत्र मजहुल इलाही उनके उत्तराधिकारी निर्णीत हुए थे। औरङ्गजेबने इसी समय अपने मातुलपुत्रको, जिनका नाम खाँ जहान् शायस्ताखाँ था, शासनभार सौंप कर दौलताबाद भेजा था। इसके अलावा बीजापुरके अवरोधकी रक्षाके लिए जमादत् उल्-मुल्क मुयाज्जमखाँ (मीरजुमला), शाह नवाबखाँ सफवी (शायस्ताखाँके छोटे भाई), महब्बतखाँ, निजवेतखाँ, राजा रायसिंह आदि सेनापति और करीब २० हजार अश्वारोही भी उनके साथ गये थे। मुयाज्जमखाँ (मीरजुमला)ने, इससे कुछ पहले (आदिलखाँकी जीवित-अवस्थामें) शाहबुलन्द इकबाल दाराशिकोहके द्वारा प्रेरित दो क्रीतदासके लाये हुए गुप्त आदेशके अनुसार हीरा, पन्ना, चुन्नी आदिसे सुशोभित कुछ घोड़े, कर्णाटजयके धनरत्नमेंसे कुछ अंश तथा दोनों क्रीतदासोंको आदिलखाँके पास भेजा था। उपहार और दूतोंको ग्रहण करनेके बाद ही आदिलखाँकी मृत्यु हो गई थी। नवभूपतिने उन दोनों क्रीतदासोंके हाथ पत्रोत्तर और उपहार दे कर वापस कर दिया था।

'अमल-इ-साली' नामक इतिहासके मतसे, दाराने सिर्फ मीरजुमलाको ही लौट आनेका आदेश नहीं दिया था, वरन् औरङ्गजेबके अन्यान्य सेनापतियोंको भी बुलाया था। तदनुसार महाबत्‌खाँ, राव छत्रसाल तथा अन्यान्य दो चार व्यक्ति औरङ्गजेबकी आज्ञाकी अपेक्षा न कर लौट आये थे।

औरङ्गजेब, कौशलसे छोटे भाइयोंको हस्तगत करनेके अभिप्रायसे सर्वदा पत्रादि लिखा करते थे और साथ ही उन्हें भारतके भावी सम्राट् बतला कर खुश रखनेकी चेष्टा भी करते थे। वे समझते थे कि शुजा बङ्गालमें अकेले हैं: यदि उत्तराधिकारको ले कर भाइयोंमें युद्ध ठने, तो उन दोनों भाइयोंके दक्षिणसे युद्ध करनेके

लिये उपस्थित होने पर, अकेले दारा वा अकेले शुजा बाधा नहीं दे सकते, इसलिये युद्धमें उन्हींकी जय होगी। उसके बाद कण्टकसे कण्टकवत्, सुरापायी अपरिणत बुद्धि मुरादको हटाना विशेष कष्टकर न होगा। ऐसा विचार कर उन्होंने मुरादको पत्र लिखा,— "मैं फकीर हूं; प्रवञ्चनापूर्ण संसारमें रहने वा राजकार्यमें हस्तक्षेप करनेकी मेरी रत्तीमात्र भी इच्छा नहीं है। परन्तु साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि अधार्मिक दारा राज्याधिकारी बने। तुम वीर हो, धीर हो, राज्यके तुम ही योग्य अधिकारी हो। अधार्मिक दाराने पिताको अपने वशमें कर लिया है और अभीसे वह हम लोगों पर हुक्म भी चलाने लगा है। इस समय हम लोगोंको एक साथ काम करना चाहिये और राज्यकी विशृङ्खला दूर करनी चाहिये। पिता जीवित हैं, यदि हम लोग मिल कर उनके राज्यमें शृङ्खला स्थापित कर सकेंगे, तो वे भी सन्तुष्ट होंगे। फिर हम लोग उनसे दाराके लिये क्षमा मांगेंगे और उन्हें मक्का भेजनेकी व्यवस्था करेंगे। फिलहाल मालवासे यशवन्तसिंह तुम्हारी राह रोकनेके लिये उपस्थित होंगे। तुम उनको अच्छी तरह काबू करना। मुझे तुम अपना आज्ञाकारी समझना। मैं शीघ्र ही अपनी सुहहत् सेना और बहुतसी तोपोंके साथ नर्मदानदीके किनारे तुम्हारे साथ आ मिलूंगा। तुम अवश्य ही विजय प्राप्त करोगे। परमेश्वरके नाम पर शपथ करके कह रहा हूं, तुम मुझ पर सन्देह न करना।"

१६५८ ई०में औरङ्गजेब बुरहनपुर पहुंचे। महाराज यशवन्तसिंहको औरङ्गजेबके आनेको कुछ भी खबर न थी। आखिर औरङ्गजेबकी सेना जब उज्जयिनीसे ७ कोसकी दूरी पर पहुंची, तब उन्हें संवाद मिला। मान्डूके अधिपति राजा शिवराजको मालूम होते ही उन्होंने महाराज यशवन्तसिंहको लिख भेजा कि शत्रु-की सेना शिप्रानदी पार हो चुकी है। उधर कासिमखां भी, मुरादके अहमदाबादसे चलनेका संवाद सुन कर अग्रसर हुए; किन्तु रास्तेमें जब सुना कि वे दूसरे मार्गसे औरङ्गजेबके साथ मिलनेके लिये करीब १८ कोस आगे निकल गये हैं, तब हताश हो कर लौट आए। धार-दुर्गके पास औरङ्गजेब और मुरादकी सेनाका मिलाप हुआ। धार-दुर्गमें दाराकी जो सेना थी, वह डर गई और दुर्ग छोड़ कर महाराज यशवन्तसिंहके दलमें जा मिली। काशिमखाँ भी जा मिले।

महाराज यशवन्त सिंहने अपनी समस्त सेनाके साथ औरङ्गजेब और मुरादकी सम्पूर्ण-सेनासे डेढ़ कोसकी दूरी पर छावनी डाल दी। कूटबुद्धि औरङ्गजेबने इस समय कवि नामके एक ब्राह्मणको दूत बना कर यशवन्तके पास भेजा। कवि काव्यकुशल और हिन्दीके कवि थे। उन्होंने औरङ्गजेबके आदेशानुसार यशवन्तसिंहसे जाकर कहा, "मैं पितृदर्शनके लिये जा रहा हूं, अतएव तुम मेरे साथ चल सकते हो वा मेरे मार्गसे सेना सहित दूर चले जाओ, क्योंकि इससे गड़बड़ी हो सकती है।' यशवन्तसिंह इस चातुरीको समझ कर बड़े क्रुद्ध हुए, उन्होंने इसका जवाब दे दिया। दूसरे दिन (२० अप्रील १६५८ ई०) युद्ध शुरू हो गया। राजपूतकलङ्क यशवन्त और काशिमखाँको सेना परास्त हो कर भाग गई। औरङ्गजेबने विजयी हो कर ग्वालियर-के मार्गसे प्रस्थान किया।

इस समय बहुत ज्यादा गरमी पड़नेके कारण सम्राट् शाहजहान्‌का स्वास्थ्य कुछ अच्छा था, वे आगरेसे देहली चले गये। दाराने बहुत आपत्ति की। इस पर फिर जब यशवन्तसिंहके पराजयकी बात सुनी, तब उन्होंने शीघ्र ही सम्राट्‌को आगरा आनेके लिए लिखा। इसके बाद दारा ६० हजार सेना और श्रेष्ठ सेनापतियोंको साथ ले कर युद्धके लिए अग्रसर हुए। सम्राट् शाहजहान्‌ने निषेध किया; समझाया कि अभी हम जीवित हैं, इस युद्धसे नतीजा क्या निकलेगा। सिर्फ भाइयोंमें विवाद खड़ा हो जायगा। इस समय मेरी यात्राका आयोजन करना ही ठीक है, मैं जा कर औरङ्गजेब और मुरादको समझा दूंगा।" पर दाराशिकोहने उनकी बात न मानी। वे शायस्ताखांकी मध्यस्थतामें सम्राट्‌की मति परिवर्तन करनेकी कोशिश करने लगे। शायस्ताखाँ सम्राट्‌के श्यालक थे, वे सभी भानजों पर प्यार करते थे तथा औरङ्गजेबकी बुद्धि और गुणोंकी प्रशंसा करते थे। सम्राट् पुत्रोंके मनोभावको ताड़ गये, वे औरङ्गजेबको

अपने पास बुला कर समझाना चाहते थे और इसके लिए शायस्ताखाँसे सलाह भी लिया करते थे।

यशवन्तसिंहकी पराजयकी खबर आनेके पहले शायस्ताखाँसे इस विषयमें काफी सलाह होती थी; पर शायस्ताखाँ उन्हें मना करते थे। औरङ्गजेबकी बुद्धि पर भरोसा था, उन्होंने औरङ्गजेबको समझानेकी कोई आवश्यकता न समझी। उसके बाद जब यशवन्तसिंहके पराभवका संवाद आया, तब सम्राट् शायस्ताखाँ पर बहुत क्रुद्ध हुए। क्रोधके आवेशमें आकर शायस्ताखाँकी छाती पर बेंत जमा दिया और २।३ दिन तक उनका मुंह न देखा। इसके बाद सम्राट्ने फिर उन्हें बुला कर वही बात पूछी, परन्तु शायस्ताखाँने पूर्ववत् परामर्श ही दिया। सब तैयारियां हो जाने पर भी शायस्ताखाँने सम्राट्को शत्रुओंके साथ मिलने न दिया।

यशवन्तसिंहके पराजय होनेके बाद १६५८ ई०के मई महीनेमें दाराशिकोहने खलील-उल्लाखाँ नामक एक सेनापतिके अधीन कुछ सेना धौलपुर भेज दी। चम्बल नदीके पारघाटोंकी रक्षाका भार भी उक्त सेनापति पर ही था। दारा स्वयं आगरेमें शहरके बाहर रह कर प्रतीक्षा करने लगे। शुजाको पराजित कर सुलेमान-शिकोह वहीं आ कर उनसे मिलेंगे; ऐसी उनकी आशा थी, किन्तु ऐसा न हुआ। यथा समय सुलेमान उपस्थित न हो सके। दाराको वाध्य हो कर अग्रसर होना पड़ा। सामुगढ़ नामक स्थानमें दोनों पक्षको सेनाने एक मीलके फासले पर पड़ाव डाल दिया। खलील-उल्लाखाँ धौलपुरमें रह कर भी कुछ बाधा न डाल सके।

दूसरे दिन सुबह (ता० ७ रमजान, १०६८ हि०में) दाराशिकोह अपनी सेना सम्हालने लगे। उस दिन बड़ी गर्मी पड़ी थी। धूपकी गरमीसे वर्मा आदिके गरम हो जाने तथा पानी न मिलनेके कारण बहुत सी सेना मर गई। औरङ्गजेब अग्निमुखी तोपका गोला गिरने योग्य स्थान छोड़ कर विपक्षके आक्रमणकी प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु दाराने शाम तक आक्रमण ही नहीं किया। औरङ्गजेबने उसी तरह सेनाको विश्राम करनेका आदेश दिया और सुबह तक खूब होशियार रहनेके लिये कह दिया। रात बीत गई। सुबह नवाज पढ़नेके बाद ही औरङ्गजेब युद्धार्थ प्रस्तुत हुए। महम्मद मुरादबक्स अपने प्रसिद्ध सरदारोंको ले कर बाईं तरफ रहे। बहादुरखाँ दाहिनी ओर और औरङ्गजेबके पुत्र महम्मद आजिम हाथी पर चढ़ कर पीछेकी तरफ रहे।

दाराकी तरफ उनके द्वितीय पुत्र सिपेहर-शिकोह सेनाके सामने थे। उनकी सहायताके लिए रुस्तमखाँ बारह हजार अश्वारोहियोंके साथ दाहिनी ओर मौजूद थे। ये पहले औरङ्गजेबकी तोप पर कब्जा करनेका प्रयत्न करने लगे। औरङ्गजेबकी तरफसे उनके पुत्र महम्मद सुलतान सम्मुखभागकी रक्षाके लिए उपस्थित थे। दुर्भाग्य वश अपने ही तरफका गोला लग जानेसे रुस्तमखाँका हाथी मारा गया। उस समय युद्धकी अवस्था भीषण थी। रुस्तमखाँने बीचमें रहना युक्तिसङ्गत न समझ, शत्रुकी दाहिनी ओर बहादुर खाँ पर हमला कर दिया। बहादुरखाँ रुस्तमका आक्रमण सह न सके, क्रमशः पीछे हटने लगे। घोरतर युद्धके बाद बहादुरखाँ आहत हुए और युद्धमें पीठ दिखा कर भागनेके लिए मजबूर हुए। दाहिनी ओरकी सेना तितर-बितर होने लगी। यह देख इस्लाम खाँ, सेख मीर आदि सेनापति दक्षिण पार्श्वकी रक्षाके लिए नव-बलके साथ दौड़े आये। नव-बलके साथ रुस्तमकी परिश्रान्त सेना ज्यादा देर तक जूझ न सकी। रुस्तमखाँ प्रायः परास्त हो गये और सिपेहर-शिकोह भाग गये।

खबर पातेही दाराने रुस्तमकी सहायताके लिए २० हजार अश्वारोहियोंको नियुक्त किया और स्वयं पीछेसे तोप छोड़ने लगे। दाराके स्वयं अग्रसर होने पर औरङ्गजेबने अपने दलके कुल बन्दूक-धारियोंको सामने कर दिया और एक साथ तोप दागनेके लिए आज्ञा दे दी। दारा सहसा इतने गोला-गोलियोंका आक्रमण सह न सके और पीछे हट आये। उस दिन यहीं तक हो कर युद्ध समाप्त हो गया।

दूसरे दिन दाराने मुराद पर आक्रमण किया। खलीलउल्लाखाँ आज दाराके दलमें सम्मुखभागके नायक थे। उन्होंने एकबारगी हजार उजबेक तीरन्दाजोंको मुरादके हाथी मारनेके लिए आज्ञा दी। मुरादकी सेना और हाथी एक साथ हजार तीरन्दाजोंका आक्रमण सह

न सके। हाथी भागा जाता था, पर मुरादने उसके पैरमें जंजीर डलवा दी। राजपूत सरदार राजा रामसिंह इस समय अपनी पीतवसनधारी सेनाके साथ आगे बढ़े और मुराद पर बरछा छोड़ते हुए कहने लगे—"तुम दाराशिकोहके साथ सिंहासनको लेकर स्पर्द्धा करने आये हो?" मुरादने अपने हाथसे एक तीर मार कर राजा रामसिंहको जमीन पर गिरा दिया, वे मर गये उनकी अधिकांश पीतवसनधारी सेना प्रमत्त हस्तीके द्वारा मारी गई। आलमगीर-नामेमें लिखा है कि औरङ्गजेबने इस समय मुरादको सहायता दी थी। परन्तु मुनतखब उल्-लुबाबके ग्रन्थकारने स्वयं अपने पिताके (जो कि उस समय औरङ्गजेबके पास मौजूद थे) मुखसे सुना था कि औरङ्गजेबने मुरादको सहायता पहुँचानेका इरादा तो किया था, पर ऐसा हो न सका।

इसी समय राठोरराज रूपसिंहने राजपूत सेनाके साथ औरङ्गजेबकी सेनाका मध्यस्थल आक्रमण किया। मध्यभागमें औरङ्गजेब स्वयं सेनापति थे। रूपसिंहने युद्धमें प्रवेश करनेके साथ ही तलवार हाथमें ले कर विपक्षकी सेनाके अन्दर घुस पड़े और अपने घोड़ेको छोड़ कर विपक्षियोंका विनाश करते हुए औरङ्गजेबके हस्तीको लक्ष्य करके आगे बढ़ने लगे। कोई भी उन्हें रोक न सका। शत्रु-रक्तमें स्नान करके वे हाथीके पास पहुँच गये और हौदाकी रस्सी काट कर उसे गिरानेकी कोशिश करने लगे। औरङ्गजेबने विस्मित हो कर इस प्रकारके साहसी वीरको जीवित बन्दी करनेका आदेश दिया, किन्तु सैनिकोंने उनकी आज्ञा समझनेसे पहले ही उस दुर्द्धर्ष वीरको टुकड़ा टुकड़ा कर डाला।

रुस्तमखाँने आ कर युद्धकी भीषणता और भी बढ़ा दी। इस युद्धमें रुस्तमखाँ और राजा छत्रशाल मारे गये। दारा एक ही युद्धमें इतने सेनापतियोंको मरते देख प्रायः हतबुद्धि-से हो गये। इसी समय एक गोली आ कर उनके हौदा पर लगी, जिससे दारा चकित और भयभीत हो कर निरस्त्र अवस्थामें एक घोड़े पर सवार हो गये। इससे और भी अनिष्ट हुआ। उनकी सेनाका कुछ अंश तो उन्हें हौदा पर न देख हताश हो गया और कुछ अंश उन्हें निरस्त्र अवस्थामें घोड़े पर सवार होते देख यह समझ बैठा कि वे भाग रहे हैं। वस्तुतः सैनिक इस विचारमें पड़ गये कि अब युद्ध करें या भाग चलें। इसी बीचमें और एक दुर्घटना हुई; एक सैनिक दाराको पीठसे एक शरपूर्ण तूण बाँध रहा था। वह दाहिने हाथसे तूणको थामे हुए बायें हाथसे बांधनेका फीता घुमा कर ला ही रहा था कि इतनेमें एक तोपका गोला आया और वह तूण सहित दाहिने हाथको उड़ा ले गया; साथ ही वह सैनिक भी मारा गया। इससे आसपासकी सेना बहुत डर गई और भगाने लगी। उन्हें भागते देख तथा दाराको हाथी पर सवार न देख युद्धनियुक्त बहुत सी सेना दाराकी मृत्यु-आशङ्कासे तितर-बितर हो गई। दाराने अपनी सेनाको सम्हालनेके लिए बहुत कुछ कोशिश की, पर जब किसी तरह भी वह एकत्र न हुई, तब उन्होंने शत्रुकी तोपके सामने खड़े हो कर प्राण देनेकी अपेक्षा भाग जाना ही उचित समझा। सिपेहर शिकोह २०।४० अनुचरोंके साथ उनके साथ जा मिले। पीछे और भी हजार अश्वारोही उनके साथ हो लिए। पिता और पुत्र दोनों आगराकी तरफ चल दिये। शत्रुदल आनन्दसे विजयोत्सवमें मत्त हो गया।

औरङ्गजेबने युद्धमें जयी हो कर आनन्दसे पहले उपासना की, बादमें स्वयं जा कर दाराके परित्यक्त शिविर पर अपना कब्जा कर लिया। मुरादके शरीर और मुख पर तीरोंके बहुतसे जख्म हो गये थे। औरङ्गजेबने जा कर पहले उनके जख्मों पर प्रलेप लगवाया और मुरादकी वीरत्वकी यथेष्ट प्रशंसा की। अन्तमें उन्हें भावी सम्राट् कह कर मूर्ख अभिमानी राजपुत्रोंको भुला दिया। मुरादके हौदा पर इतने तीर लगे थे कि वह एक बड़ा सेह-सा दीखता था। शर-लिप्त यह हौदा मुरादके वीरत्वका निदर्शन स्वरूप बहुत दिनों तक (फररुखशियरके समय तक) मुगल-राजभण्डारमें सुरक्षित था।

पुत्र सहित दारा शामके वक्त बिना रोशनीके अपने प्रासादमें पहुंचे। लज्जाके मारे वे पिताको अपना मुंह न दिखा सके। सम्राट्ने जब दाराके आनेका संवाद सुना, तब उन्हें आश्वास दे कर परामर्शके लिए अपने पास बुलाया; तो भी दारा उनके पास न आ सके। उसी

रातको तीसरे पहरके बाद उन्होंने लाहौर पहुंचनेके अभिप्रायसे दिल्लीको प्रस्थान किया। साथमें सिपेहर शिकोह, पत्नी, कन्या और कुछ अनुचर थे। मार्गमें तीन दिनके बाद प्रायः ५ हजार अश्वारोही उनके साथ हो लिए। इसी समय सम्राट्‌के भेजे हुए कुछ अमीर भी वहां आ पहुंचे और दाराके साथ हो लिए।

जयलाभके बाद औरङ्गजेबने पिताको एक पत्र लिखा, जिसमें समस्त घटनाएं आनुपूर्विक लिखीं और पीछेसे परमेश्वरकी इच्छासे ऐसा हुआ है, इस प्रकार लिख कर पिताके पास भेज दिया। इसी समय मामा खाँ जहान् शायस्ताखाँ और उनके पुत्र महम्मद अमीनखाँने आ कर औरङ्गजेबका साथ दिया। ता० १० रमजानको औरङ्गजेबने सामुगढ़ त्याग दिया और आगरा पहुंच कर नगरके बाहर पड़ाव डाल दिया। इस जगह बादशाहने उन्हें सान्त्वना दे अपने हाथसे एक पत्र लिखा। इसी समय शाहजादी बादशाह-बेगम पिताकी अनुमति ले कर भाईको देखने गई और स्नेहछलसे दो एक बातमें अनुयोग किया। औरङ्गजेबने अनुयोगको अत्यन्त कुभावसे ग्रहण कर ज्येष्ठी भगिनीको तीव्र उत्तर दिया। बादशाह-बेगम भाईके व्यवहारसे क्षुण्ण हो कर लौट आईं। दूसरे दिन सम्राट्‌ने एक तलवार पर "आलमगीर" शब्द खुदवा कर तथा एक प्रशंसा-सूचक पत्र दे कर अपने एक विश्वस्त अनुचरको औरङ्गजेबके पास भेज दिया। औरङ्गजेब "आलमगीर" अर्थात् "विश्व-विजेता" नाम पा कर अत्यन्त आनन्दित हुए और अपने पुत्र महम्मद सुलतानको शहरमें शान्ति स्थापनके लिए भेज दिया। इस अवसर पर बहुतसे सम्भ्रान्त व्यक्ति उनके साथ मिलने आये थे; औरङ्गजेबने उन्हें पदवृद्धिके साथ साथ बहुत धन-रत्नादि उपहारमें दिया।

ता० १७ रमजान (८ जून) को औरङ्गजेबने पुत्र महम्मद सुलतानको कहला भेजा कि "पहले तुम आगरा-दुर्गमें जाना और दुर्गके प्रत्येक द्वारमें अपने विश्वस्त अनुचरको प्रहरी नियुक्त कर देना। पीछे अपने बाबाके पास जा कर उनसे राजकार्यसे अवसर ग्रहण करनेका प्रस्ताव करना। बाहरकी कोई भी खबर वृद्ध सम्राट्‌के पास न पहुंचने पावे, इसकी विशेष व्यवस्था करना।" महम्मद सुलतानने पिताका इशारा पा कर अपने बाबा (वृद्ध शाहजहान्)के हाथसे सम्पूर्ण क्षमता छीन ली और उनके रहनेके लिये निर्जन स्थानका बन्दोबस्त कर दिया। इसके बाद औरङ्गजेबने दाराशिकोहकी जागीर मेवात अधिकार करनेके लिए महम्मद जाफर खाँको भेजा। राजकोषागारसे मुरादको २६ लाख रुपये और राजाओंके प्रयोजनकी अन्यान्य सामग्री दे कर उस समय भी उन्हें वशमें रक्खा और १२वीं रमजानको स्वयं सेना सहित आगरामें प्रवेश कर दाराशिकोहकी अट्टालिकामें रहने लगे।

इधर दारा लाहौर शहरमें भी न घुस सके। उन्हें आशङ्का थी, कि कहीं औरङ्गजेबकी सेना छिप कर उनका पीछा न करती हो, नहीं तो शहरमें घुसते ही वह उन्हें घेर लेगी। दाराशिकोह बाहरमें रह कर ही अर्थ और बल-संग्रह करने लगे। सुलेमान-शिकोह शुजाको परास्त कर बिहारमें ठहरे हुए थे। औरङ्गजेबकी जयवार्त्ता सुन, पिताके साथ जा मिले या नहीं, इसी दुर्भावनामें पड़े हुए थे। दाराने पुत्रको आनेमें अनर्थक विलम्ब होते देख, स्वयं निश्चेष्ट नहीं रह सके; डर लगा कि किसी दिन औरङ्गजेबकी सेना आ कर उन्हें कैद कर लेगी। आखिर वे १५ हजार घुड़सवारोंके साथ पञ्जाबकी तरफ चल दिये। दारा इस समय कातरोक्तिसे अपनी विपन्नावस्थाकी बात लिख कर रोज अपने पुत्रको (बिहारमें) पत्र लिखा करते थे और इसी तरह आगरेको भी पिताके पास अपनी दुर्दशाके कारण बुद्धि-भ्रंशताकी बात लिखा करते थे।

औरङ्गजेबने सोचा था, कि पितासे जा कर क्षमा मांगें और जो कुछ हुआ, सब ईश्वरकी इच्छासे हुआ, ऐसा कह कर प्रबोध देंगे; किन्तु दारा पर सम्राट्‌के अत्यधिक स्नेहका स्मरण होते ही उनका साहस जाता रहा। फिर उन्होंने अपने मध्यम पुत्र महम्मद आजिमको भेज दिया। आजिमने जा कर ५०० अशरफियाँ और ४ हजार सिक्के नजर किये। सम्राट्‌ने शोकसे, दुःखसे, क्रोधसे आँखोंमें पानी भर कर पोतेको छातीसे चुपटा लिया। इसके बाद आजिमने पिताको ओरसे वक्तव्य सुनाया। सम्राट्‌ने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नहीं

कहा। उसके बाद औरङ्गजेब अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतान और इसमाइलखांको वृद्ध सम्राट्का प्रहरी नियुक्त कर ज्येष्ठ भ्राताके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। खां दूरान् इलाहाबाद अधिकार करनेके लिये भेजे गये।

इधर शाहजहान्ने काबुलके शासनकर्त्ता महब्बतखांको गुप्तरीतिसे एक पत्र लिखा, कि "दाराशिकोह लाहोर जा रहे हैं; वहां रुपये और आदमियोंकी कमी नहीं है और न आपके समान साहसी वीर ही कोई है। इसलिए आप अपनी सेनाके साथ दारासे मिलें और यहा आ कर इन दोनों अवाध्य दुर्दान्त पुत्रोंका शासन कर वृद्ध सम्राट्का उद्धार करें।"

मुराद और औरङ्गजेब दाराको खोजते हुए मथुरा पहुंचे और वहीं पड़ाव डाल दिया। इसी समय एक दिन (४थी सवालको) औरङ्गजेबको वृथा भार वहन असह्य हो उठा; उन्होंने मुरादको अपने तम्बूमें न्योता दे कर बुलाया और खूब शराब पिला कर बेहोशीमें उन्हें कैद करके हाथी पर चढ़ा कर सालिमगढ़के किलेमें भेज दिया। साथ ही लोगोंको सन्देह न हो इस खयालसे, तीन हाथी सजवा कर बाकी तीनों दिशाओंमें भेज दिये। पीछे उनका धनरत्नादि सर्वस्व हरण कर लिया।

इसी बीचमें दाराने लाहोर जा कर राजकोषागारसे करीब एक करोड़ रुपये प्राप्त किये और अमीरोंसे भी उन्हें काफी सहायता मिली। अब वे सेना इकट्ठी करने लगे। उधर १०६८ हि०में १ली जेलकाद (ता० २२ जुलाई १६५८ ई० )को औरङ्गजेब शुभमुहूर्त्तमें दिल्लीके सिंहासन पर बैठ गये। परन्तु अपने नामके सिक्के चलाना, विभिन्न देशीय राजाओंको उपहार देना और अपने नामसे खुतबा पढ़वाना आदि कार्य स्थगित रक्खे।

इधर सुलेमान-शिकोह पिताका पत्र पा कर उनसे मिलने तथा औरङ्गजेबके हाथसे बचनेके अभिप्रायसे हरिद्वारके पास सेना-सहित गङ्गा पार कर लाहोरको तरफ चल दिये। औरङ्गजेबको यह बात मालूम पड़ते ही, उन्होंने बहादुरखांको उनके गतिरोधके लिए भेजा और स्वयं लाहोरकी ओर रवाना हुए। सुलेमानने गङ्गा पार कर चुकने पर सुना कि उनके विरुद्ध सेना आ रही है। इस सम्वादके पाते ही उन्होंने काश्मीर जानेका निश्चय कर लिया और श्रीनगरके पहाड़की सड़क पकड़ ली। श्रीनगरके राजा उन्हें सहायता भी दे सकते हैं, ऐसी सुलेमानकी आशा थी किन्तु ऐसा नहीं हुआ; बल्कि उनकी निजकी सेनाने भी उनका साथ छोड़ दिया, सिर्फ ५०० अश्वारोही मात्र उनके साथ रहे। आखिरको सुलेमान इलाहाबाद लौट आये और वहां बीमार पड़ गये। बीमारीकी हालतमें और भी कुछ अनुचरोंने उनका साथ छोड़ दिया। सुलेमानको डर था कि कहीं शत्रुके हाथमें न फँस जांय, इसलिए वे कुल दो सौ आदमियोंके साथ फिर श्रीनगर चल दिये। मार्गमें बादशाह बेगमको जागीरके बीचसे जाते समय उन्होंने अपने दीवानसे २ लाख रुपये लिये और उनका मकान लूट लिया। अन्तमें उन्हें मार भी डाला। इस व्यवहारसे क्रुद्ध हो कर समस्त अनुचरोंने उनका साथ छोड़ दिया, सिर्फ महम्मद शाह कोका अकेले उनके साथ रहे। श्रीनगर पहुंचने पर वहांके राजाने धनादि ले कर इन्हें एक तरहसे कैदीकी हालतमें रक्खा। बहादुरखांको मालूम होते ही, उन्होंने राजाको लिख भेजा कि "बन्दीको सेनाकी रक्षकतामें हमारे पास भेज कर आप आगरा चले जाइये।"

अमल-इ-शालीके मानेसे मालूम होता है कि श्रीनगरके राजाने सुलेमान शिकोहको बन्दी कर अपने पुत्रके साथ बहादुरखांके पास भेज दिया था और बहादुरखाने उन्हें नवीन सम्राट् ( औरङ्गजेब )-के सामने उपस्थित किया। सम्राट्ने उन्हें ग्वालियर-दुर्गमें रख कर कङ्कर (पोस्तर शरबत—मृदु विष) खिलानेके लिए आदेश दिया।

इसी समय अलीनकोके पुत्रोंने मुरादके नाम पर पितृहत्याकी नालिश की। औरङ्गजेबने सम्राट्को हैसियतसे उन्हें ग्वालियर जा कर खूनके बदले खून लेनेका आदेश दिया। मुराद इस समय ग्वालियरके किलेमें कैद थे। काजी लोग मुरादके दोषानुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। इस पर मुरादने कहा-"मुझे बचा लेनेसे राज्यकी कुछ हानि नहीं होती। परन्तु यदि सम्राट् ही बन्दीको बचाना नहीं चाहते, तो फिर वृथा आडम्बरकी क्या आवश्यकता है? मेरे भाग्यमें जो कुछ है, होने दो।" अलीनकीके

दोनों पुत्रोंके दो आघातसे मुरादको मृत्यु हो गई। इसके बाद मृदु-विषके प्रभावसे सुलेमान-शिकोहको मृत्यु होने पर चचा और भतीजे दोनोंको उसी किलेमें गाड़ दिया गया;

लाहौर और उसके आसपासके स्थानोंसे दाराने लोभ दिखा कर करीब बीस हजार अश्वारोही इकट्ठे किये। बाद शुजाको हस्तगत करनेके लिये दाराने उन्हें प्रतिश्रुतियोंसे भरा हुआ एक पत्र लिखा। शुजा भी बड़े भाईको सहायता करनेके लिए ढाकामें सेना संग्रह करने लगे। इधर दाराने लाहोरमें ही अपनेको सम्राट् रूपमें प्रसिद्ध करने तथा अपने नामसे मुद्रा चलानेका विचार किया; किन्तु ऐसा हो न सका। कारण इसी बीचमें लाहोरके लोगोंको मालूम पड़ गया कि औरङ्गजेब दिल्लीके सिंहासन पर बैठ गये हैं, इसलिए बहुतोंने डरसे दाराका पक्ष छोड़ दिया।

उधर औरङ्गजेबके साथ सामुगढ़के युद्धमें पराजित हो कर महाराज यशवन्तसिंह अपने राज्यमें भाग गये। राजा छत्रशालको कन्या उनको प्रधान महिषी थीं। स्वामी युद्धमें पीठ दिखा कर भाग आये हैं, यह सुन कर महारानीने स्वामीका बड़ा तिरस्कार किया। महाराज यशवन्तसिंहने स्त्रीके द्वारा तिरस्कृत होने पर औरङ्गजेबसे क्षमा मांगी। औरङ्गजेबने महाराजको प्रार्थना स्वीकार कर ली, दरबारमें उपस्थित होने पर सम्राट्ने उन्हें धनादि द्वारा संवर्द्धित किया और उनको मनसबदारी ( अश्वारोही सेनाका नायकत्व ) उन्हें ही वापस दे दी।

औरङ्गजेबके पञ्जाबकी तरफ अग्रसर होने पर दाराशिकोह डर गये। एक तो पहलेसे ही औरङ्गजेबके नामसे डर कर बहुतसी सेनाने उनका साथ छोड़ दिया था, दूसरे फिर सेना इकट्ठी होनेसे पहले ही दिल्लीको बड़ी सेनासे युद्ध होनेकी सम्भावना देख, वे एक हजार अश्वारोही और तोपें ले कर ठट्ठा और मुलतानकी तरफ चल दिये। उनके सेनापति दाऊदखां औरङ्गजेबकी गति रोकनेके लिए लाहोरमें ही रहे। दाऊदखांको आदेश दे गये कि दिल्लीको सेना जिससे नदी पार न हो सके, उसके उपायार्थ उन लोगोंके आनेसे पहले ही नदीको कुल नावें डुबो कर वा जला कर नष्ट कर दें। कुछ दिन बाद, औरङ्गजेबने मुलतानके पास इरावती नदीके किनारे पड़ाव डाल दिया है, यह सुन कर दारा हट कर भक्कर नामक स्थानमें चले गये।

इसी बीचमें संवाद आया कि मुयाज्जमखां सुलतान शुजाको परास्त करके आ रहे हैं और सम्राट्-पुत्र महम्मद सुलतान उनका पीछा कर रहे हैं। इस समय दाराकी ओर भी कुछ सेनाने साथ छोड़ दिया। दाराको बाध्य हो कर धनरत्नादिका कुछ अंश भक्करमें छोड़ना पड़ा और मरुभूमिके बीचसे शिविस्थान नामक स्थानको प्रस्थान करना पड़ा। सेखमीरने उनका पीछा किया। सेखमीर जब उनके बिलकुल पास पहुंच गये तब दाराशिकोह १ हजार अश्वारोहियोंके साथ अहमदाबाद चले गये। सेखमीरकी सेना भी जलाभाव और पथक्लान्तिके कारण बलहीन हो गई थी। अधिक घोड़ों तथा भारवाहियोंकी मृत्यु हो जानेसे अधिकांश सेना पैदल चलने लगी।

इसी समय औरङ्गजेबने सुना कि दाराशिकोह कच्छके रास्तेसे अहमदाबादके बहुत पास पहुंच गये हैं और मार्गमें उन्होंने ११४ हजार अश्वारोही सेना संग्रह की है। सेखमीरने जब देखा कि दाराका पीछा करना व्यर्थ है, तब वे पञ्जाबके रास्तेसे लौट पड़े। मार्गमें लाहोरके शासनकर्त्ता अमीरखांने सम्राट्के आदेशानुसार सलीमगढ़से मुरादको उनके साथ ग्वालियर दुर्गको भेज दिया। वहां उनके भाग्यमें जो बदा था, वह पहले ही लिखा जा चुका है।

इधर दाराशिकोहने कच्छके जमींदारको रुपये दे कर वशमें कर लिया और उनकी कन्याके साथ अपने पुत्र सिपिहर ( सफीर ) शिकोहका विवाह करनेका वचन दिया। कच्छके जमीन्दारने अपने आदमियोंके साथ उन्हें अहमदाबाद भेज दिया। वहां पहुंचने पर औरङ्गजेबके श्वशुर शाहनवाज खां उनसे आ कर मिले और मुरादबक्सका रक्खा हुआ करीब दश लाख रुपयेका चांदी सोना उन्हें दे दिया। माल हाथमें पड़ते ही दाराने फिर बल सञ्चय करना प्रारम्भ कर दिया। दाराके नव नियुक्त सेनापतियोंने धीरे धीरे सूरत, काम्बे,

भड़ौंच आदि बन्दरों पर अपना कब्जा कर उसके चारों तरफका प्रदेश भी हस्तगत कर लिया। पांच सप्ताहके भीतर दाराने और २० हजार अश्वारोही इकट्ठे कर लिए। फिर क्या था, दाराने बीजापुर और हैदराबादके शासनकर्त्ताको रुपये और सेना भेजनेके लिए लिख दिया।

इसी बीचमें महाराज यशवन्तसिंह फिर बुद्धिदोषसे मुगल दरबारसे निकाले गये। शुजाके साथ युद्ध करने गये थे, किन्तु वहाँ जा कर वे शुजासे मिल गये। पीछे शुजाके परास्त होने पर यशवन्तसिंह अपमानित हो कर दक्षिणकी ओर भाग गये। दाराको आशा थी कि ये अपमानित राजपूत वीर संवाद पाते ही उनका साथ दे सकते हैं। किन्तु वे मुगल दरबारमें पुनः अपना विश्वास कायम करनेके अभिप्रायसे फिर एक विश्वास-घातकताके कार्यमें प्रवृत्त हो गये। दारा जब दक्षिण-के नव-गठित सैन्यदलको ले कर आगे बढ़े उस समय यशवन्त सिंहने पत्र द्वारा उनको सूचना दी कि "मैं आ कर आपका साथ दूंगा।" औरङ्गजेबको इस बातका पता लगते ही वे अजमेरकी ओर चल दिये। मिर्जा राजा जयसिंहने इस समय महाराज यशवन्तसिंहकी तरफसे उनकी क्षमा प्रदान करनेके लिए औरङ्ग-जेबसे बहुत कुछ अनुरोध किया था। औरङ्गजेबने उनकी बात मान ली। राजा यशवन्तसिंह दारासे मिलनेके लिए जोधपुरसे २० कोस आगे चले गये थे, उक्त सम्वादके मालूम पड़ते ही वे लौट पड़े और अपने राज्यमें चले आये। दाराने यशवन्तको अपने पक्षमें लानेके अभिप्रायसे देवचन्द नामक एक ब्राह्मणको दो बार तथा सफीर-शिकोहको एक बार उन-के पास भेजा, परन्तु राजाने वाक्‌जाल फैला कर उन्हें स्तोकवाक्योंसे भुला दिया।

साहाय्य-विरहित हो कर दाराने अजमेरकी पर्वत-मालाको चारों तरफसे सुरक्षित रखनेकी व्यवस्था की और स्वयं बीचमें रहने लगे; जितने भी पार्वत्य पथ गये थे, सब पत्थर डलवा कर बन्द करा दिये। बीच बीचमें बन्दूक धारियोंको रख छोड़ा था और कहीं कहीं तोपें भी बैठाल दी थीं औरङ्गजेबको मालूम पड़ते ही, उन्होंने अपनी सेनाको तोपें भेज कहला भेजा कि जिस तरह हो दाराका व्यूह तोड़ो। तीन दिन तक भीषण युद्ध होता रहा, पर दाराकी सेना इस ढंगसे लगी हुई थी कि इन तीन दिनोंमें उनकी विशेष कुछ हानि नहीं हुई। दाराकी छिपी हुई सेना सहसा आक्र-मणकारी शत्रुके सामने आती और उन्हें छिन्न भिन्न करके तुरंत अपनी जगहमें छिप जाती थी। चौथे दिन औरङ्गजेबने सेनापतियोंको बुला कर उत्साहित किया और उन्हें सम्मान संवर्द्धनाका लोभ दे कर, यामुनके जमींदार राजा राजरूपको प्रथम आक्रमणका भार दिया। राजरूपने एक दल भाड़सी प्यादोंके साथ दाराके सैन्यव्यूहकी पीछे एक छोटेसे पर्वतशिखर पर जा कर मुगल-सम्राट्‌की पताका उड़ा दी। दाराके सेनापतिगण यह नहीं जानते थे कि उस स्थान पर आ कर शत्रु किसी दिन उन पर हमला कर देंगे। कुछ भी हो, राजा राजारूपने पीछेसे आ कर शाह-नवाजखां पर चढ़ाई कर दी। शाहनवाजके दलके सम्मुखभाग पर जब सेख मीर और अफगान-वीर दिलीरखां दोनोंने एक साथ आक्र-मण किया, तो वे परास्त हो गये और दामादके युद्धमें परास्त हो जानेके अपमानसे क्षुब्ध हो कर युद्धक्षेत्रमें ही उन्होंने अपने प्राण तज दिये।

दारा पराजय और शाहनवाजके प्राण-विसर्जनका हाल सुन कर सहसा भग्न-हृदय हो पड़े और पुत्र सफीर-शिकोह और फिरोज मेवाती तथा और कुछ अन्तःपुर-चारिणीको साथ ले भाग गये। कुछ हलके कीमती मणि-माणिक्योंके सिवा वे अपना सब कुछ वहीं छोड़ गये और अहमदाबादकी तरफ अग्रसर हुए। जब तीन घण्टे रात बीत चुकी, तब औरङ्गजेबने सुना कि दारा भाग गये। उस समय भी दाराकी कोई कोई अग्रवर्त्ती सेना युद्ध कर रही थी। राजा जयसिंह और बहादुर खांने एक दल सेना ले कर उनका पीछा किया। दाराके पांच कोस आगे बढ़ जाने पर उनके अनुचारियोंमें परस्पर विवाद हुआ और उनकी धनराशिमेंसे जिसके हाथ जो पड़ा, लेकर चम्पत हो गया। स्त्रियोंकी रक्षाके लिए जो खोजा नियुक्त थे, वे भी उनका कुछ न कर सके, सिर्फ स्त्रियोंकी रक्षा करते रहे। परन्तु इन अकृतज्ञ लुटेरोंने

स्त्रियों के भी जेवर उतार लिए, उन्हें एक हाथी पर बिठा दिया और उनके ऊंट ले कर मरुभूमिके रास्तेसे चम्पत हुए। खोजा लोग उस हाथी को ले कर डेढ़ दिन बाद दारासे जा मिले। भृत्य-विरहित, द्रव्यादि लुण्ठित और अपदस्थ दारा एक दल क्षुब्ध, विपन्न, क्लिष्ट, अत्याचार-पीड़ित स्त्रियों को साथ ले मरुभूमि पार कर ८ दिनमें अहमदाबाद पहुंचे। शहरके प्रधान व्यक्तियों ने, औरङ्गजेबको सम्राट् समझनेके कारण उनके डरसे, दाराको शहरमें घुसने से रोका। भाग्यताड़ित दारा वहां भी इस प्रकारसे अपमानित हो, नगराधिकारकी आशा को छोड़ शहरसे दो कोसकी दूरी पर कारी नामक स्थानको चल दिये। इस जगह दुर्दान्त कोल-सर्दार कान्होजीने इनकी सहायता की और इन्हें साथ ले कर गुजरातके भीतरसे कच्छकी सीमा तक पहुंच गये। कच्छके जमींदारने इससे पहले जिस प्रकार दाराकी सहायता पहुंचायी थी, अबकी बार वैसा नहीं किया। पहले उन्होंने दाराके भाग्य परिवर्तनके साथ साथ अपने भाग्य-परिवर्तनका भी मीजान लगाया था, परन्तु अबकी बार भाग्यहीन दारासे कुछ आशा करना व्यर्थ जान, उनके साथ मुलाकात तक भी नहीं की। दाराकी आंखों से आँसू गिरने लगे, वे उसी दशामें भकरको चल दिये।

जो अब तक इतनी दुर्दशामें भी छायाकी तरह दाराके साथ रहती थी, सिन्धु प्रदेशकी सीमामें पहुंचते ही उसी फिरोज मेवातीने जब देखा कि दुर्भाग्य दाराका पीछा न छोड़ेगा, तब वह भी उन्हें छोड़ कर दिल्लीको चल दी। दारा सिर्फ एक पुत्रको ले कर जाबियान नामक स्थानमें पहुंचे। वहाँ मरुभूमिके डकैतोंने कैद करनेके अभिप्रायसे इनका रास्ता रोक दिया। इनके साथ युद्ध करके दारा मकाशी जातिके देशमें पहुंचे। इस जातिके सरदार मिर्जा मकाशीने उन्हें आश्रय दिया और अपने आदमियोंके साथ १२ दिनका रास्ता तय कर कन्दाहार पहुंचाना चाहा। मिर्जा मकाशीने ईरान (फारस) जानेके लिए दारासे बहुत कुछ अनुरोध किया, पर दारा दिल्लीके सिंहासनका स्वप्न न छोड़ सके थे; इसलिए उन्होंने कच्छके अन्तर्गत दादरके जमींदार मालिक जीवानके पास जानेकी इच्छा प्रकट की। मालिक जीवान बहुतसे विषयोंमें दारासे कृतज्ञ था, दाराने कई बार उसकी जान बचा दी थी और बहुतसा उपकार भी किया था। दाराके उपस्थित होने पर यह अतिथि-हनन-कारी कृतघ्न नरपशु उन्हें अपने घर ले गया। वहां दो दिन रहनेके बाद दाराकी पत्नी नादिरा बेगम और कन्या कुमारी परवेजने दुर्दशा और दुश्चिन्ताके कारण आमाशय रोगमें प्राण तज दिये। अबकी बार कच्छमें प्रवेश करते समय उन्हींके नियुक्त किये हुए सूरत और भड़ौचके शासनकर्त्ता गुल महम्मद ५० अश्वारोहियों और २५० बन्दूकधारियोंके साथ आ कर मिले थे और यहां तक बराबर साथ थे। अब दुःख पर दुःख, विपत्ति पर विपत्ति, निराशा पर निराशा भोग कर दारा पागल-से हो गये थे। उनकी बुद्धि मारी गई थी। उन्होंने ऐसे मौके पर अपने एकमात्र सहाय गुल महम्मदको स्त्री और कन्याके मृत-शरीरके साथ लाहोर भेज दिया। विपत्तिके समयमें एकमात्र विश्वासी बन्धुको दूर भेज कर कुछ नौकरों तथा अकर्मण्य खोजाके साथ वहीं पड़े रहे।

दूसरे दिन सुबह मालिक जीवानकी सहायतासे वे ईरान जानेके लिये तैयार हुए; मालिकने तैयारियां भी कर दीं, कृतघ्नताको पानीमें बहाकर धन पानेकी आशाको छिपाये वह कुछ दूर तक दाराके साथ भी गया, किन्तु पीछेसे बहाना बतला कर वह लौट आया और अपने भाईके अधीन कुछ बदमाश आदमियोंको उनके साथ छोड़ आया। कुछ दूर चल कर उस व्यक्तिने दारा पर सहसा धावा कर उन्हें बन्दी कर लिया। इसके बाद सफीर शिकोह तथा अन्यान्य व्यक्तियोंको भी बन्दी कर बड़े भाईके पास पहुंचा दिया। मालिक जीवानने यह संवाद राजा जयसिंह और बहादुरखाँको भेजा। बहादुरखाँने भकरके शासन कर्त्ताको यह संवाद शीघ्र ही सम्राट्के पास भेजनेको कहा और उन्होंने स्वयं भी भेजा। दोनों जगहसे संवाद आने पर औरङ्गजेबको विश्वास हो गया, उन्होंने ढोल पिटवा कर यह खबर चारों तरफ फैला दी। साधारण लोग मालिक जीवान पर विश्वासघातकताके कारण बड़े बिगड़े और उसे धिक्कारने लगे, परन्तु दरबारसे उसे २०० घोड़े और एक हजारी मुनसबदारी मिली।

इस समय सुलेमान-शिकोह श्रीनगरके राजाके आश्रयमें थे। राजा राजरूपने सम्राट्के आदेशानुसार श्रीनगरके राजाको लिख दिया कि, "आपने सुलेमानको आश्रय दिया है, इस कारण सम्राट् आपसे नाराज हैं, अतएव आप उन्हें अपने राज्यसे निकाल दीजिये।" इसका परिणाम जो कुछ हुआ, वह पहले ही लिखा जा चुका है।

१६५८ ई०में, सेप्टेम्बर मासके प्रारम्भमें बहादुरखाँ दाराशिकोह और सफोर-शिकोहको ले कर सम्राट्के पास पहुंचे।

सम्राट्ने आदेश दिया—"पिता और पुत्रको जञ्जीरोंसे बांध कर हाथी पर चढ़ाया जाय और शहरके तमाम बाजारोंमें घुमा कर पुरानी दिल्लीके खिजिराबाद नामक स्थानमें कैद रक्खा जाय।" बहादुरखाँको दोनों कैदियोंको ले आनेके बाबत काफी इनाम मिला और इज्जत की गई।

मालिक जीवान, इस घटनाके बाद बख्तियारखाँ नाम धारण कर दिल्ली पहुंचे। मार्गमें, जो लोग मन ही मन दारा पर स्नेह करते थे, उन लोगोंने तथा साधारण जनताने मिल कर मालिक जीवानको मारा पीटा गाली-गलौज दी और कीच कंकड़ भी मारे। अन्तमें जानसे मार डालनेकी भी कोशिश की, पर मालिक जीवान ढालसे अपना मुंह छिपा कर भीड़में शामिल हो किसी तरह राज-दरबार तक पहुंच गये। रास्तेमें बहुतसे साथी मारे भी गए थे, पीछेसे कोतवालने आकर बहुतोंको बचा लिया अनुसन्धान किए जाने पर मालूम हुआ, कि हैबतखाँ नामक एक आहदी (रक्षक)ने इस गड़बड़ीका सूत्रपात किया था। उसको शिरश्छेदका दण्ड दिया गया।

१६५८ ई०में, सेप्टेम्बर मासके अन्तमें ( १०६८ हि० के जेलहज्जमें ) दाराशिकोहके लिये प्राणदण्डका आदेश हुआ। व्यवहारजीवियोंने राय दी कि "दारा धर्मबहिर्भूत, अनाचारी, काफिरोंके सहवासी और उनके आचारोंके पालक हैं, इसलिए मुसलमानी-शास्त्रके अनुसार वे अपराधी हैं।" साम्राज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी, भारतके भावी सम्राट् दाराशिकोहका मस्तक आज रातको बातमें धड़से अलग कर दिया गया। उनका छिन्न शरीर हाथी पर रख कर नगरमें घुमाया गया और अन्तमें वह हुमायूं बादशाहकी कब्रके पास गाड़ दिया गया। सफोर शिकोह ग्वालियर-दुर्गमें कैद रक्खे गए।

हिन्दू-बन्धु, मुगल सिंहासनके प्रकृत उत्तराधिकारी दाराशिकोहका आज इस तरह अन्त हो गया।

पहले ही लिखा जा चुका है कि दाराशिकोह एक विचक्षण विद्वान् थे। काव्य-जगत्में इनकी 'कादिरी' नामसे प्रसिद्धि है। आपने 'सफीनत् उल आउलिया' नामसे महम्मदकी संक्षिप्त जीवनी, हिन्दू और मुसलमान-धर्म एकीकरणकी मनसासे 'मज्मा उल. बहरइन' नामक एक उत्कृष्ट धर्मग्रन्थ, १०६७ हि०में 'मुन्तखब् शाहनामा', "इस नात् उल् अरिफीन" आदि कई उत्कृष्ट फारसीग्रन्थ रचे थे। आपने फकीर मौलानाके मुंहसे वेदके सारभूत उपनिषद्का परिचय पा कर काशीसे साधु संन्यासी और प्रधान पण्डितोंको बुलाया था और उनके मुंहसे उपनिषद्की व्याख्या सुन, ६ महीने तक कठिन परिश्रम करके १०६७ हि०में ( १६५६ ई०में ) टिप्पणीसहित फारसी भाषामें प्रायः सभी प्रधान उपनिषदोंका अनुवाद प्रकट किया था।

फारसी विद्वान् मूसी आन्ताई दुपेरोंने उक्त अनुवादित उपनिषदोंका फरासीसी भाषामें प्रचार किया था। इस फरासीसी अनुवादको देख कर ही यूरोपियोंका ध्यान इधर आकर्षित हुआ था, अब भी यूरोपीयगण इसका आदर करते हैं। दाराशिकोहके पक्षपातशून्य धर्ममतको सुन कर हिन्दू लोग उन्हें हिन्दू ही समझा करते थे। काट्रु ( Catrow ) ने लिखा है कि दाराने मरते समय खृष्टीय मत ग्रहण किया था। उपनिषदोंकी भूमिकामें दाराने वेद और पुराणकी आलोचना कर एक बड़ी अच्छी बात लिखी है। *

* अङ्गरेजी-अनुवाद इस प्रकार है—'Happy is he, who having abandoned the prejudice of vile selfishness, sincerely and with grace of God renouncing all partiality shall study and comprehend this translation which is to be denominated 'mighty secrets'

दाराशिकोह प्रकृत तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिए सिर्फ कुराणका ही भरोसा नहीं रखते थे। आप हिन्दुओंके वेदोपनिषदादि, ईसाइयोंके बाईबिल आदि भी पढ़ा करते थे। उपनिषद्‌की भूमिकामें आप इस बातको कबूल कर गये है †। इस भूमिकामें आपने स्वीकार किया है कि किसी धर्मकी निन्दा वा किसीसे घृणा करना कुराणका अभिमत नहीं है। आपका बनाया हुआ फारसी भाषामें रचित अथर्ववेदोक्त रुद्रस्तव बहुत ही सरस है।

दारि (सं० त्रि०) दृ-णिच-इन्। दारक, फाड़नेवाला।

दारिका (सं० स्त्री०) दारक-टाप् अतइत्वं। १ कन्या, बेटी। २ बालिका।

दारिकादान (सं० क्लो०) दारिकायाँ दानं। कन्यादान।

knowing it to be a translation of the words of God, he shall become unperishable and without dread and without solicitude, and eternally liberated."

(a) "And whereas the views of this seeker of plain truth were directed to be origin of the being in Arabic language, and the Syriac, and the Chaldaic, and the Sanskrit, he was desirous to comprehend these *Opnikhats*, which are a treasury of monotheism and in which the proficients, even among that tribe, where become very rare by translating without any wordly motive in a clear style word for word."

(b) "And whereas the holy *Koran* is almost totally mysterious, and at the present day the understanders thereof are very rare, he (Dara) was desirous to collect into view all the heavenly books, that the very word of God itself might be its own commentary; and if in one book it be compendious, in another book it might be found diffusive, and from the detail of one, the other might be comprehensible, he had therefore cast his eyes on the book of Moses, and the Gospels, and the Psalms and other holy pages."

† "And it is also known out of the holy *Koran* that there is no tribe without a prophet and without a Bible and from sundry passage therein it is proved, that God inflicts no punishment on any tribe until a Prophet hath been sent to them and that there is no country wherein a religion accompanied with prophecy hath not been placed."

दारिकेश्वर—बङ्गालके अन्तर्गत बाँकुड़ा और वर्द्धमान जिलेकी एक नदी। यह मानभूम जिलेके तिलाबेनी पहाड़से निकल कर पूर्व दक्षिणकी ओर बाँकुड़ा, वर्द्धमान और हुगली जिलेके मध्य होती हुई भागीरथीके मुहानेमें गिरी है। बाँकुड़ा जिला हो कर प्रवाहित होनेके समय इसका स्रोत पूर्वकी ओर चला गया है और दो शाखाओंमें विभक्त हो कर पुनः मिल गया है। इसकी प्रधान उपनदी गन्धेश्वरी बाँकुड़ा शहरसे २ मील पूर्व दारिकेश्वरके साथ मिलती है। वर्द्धमान जिला हो कर जाते समय दारिकेश्वर ताराजुली और आमोदर नामकी और भी दो उपनदियोंके साथ मिल कर वङ्किम तरङ्गमें प्रधानतः दक्षिण पूर्वकी ओर गमन करती है। बाद यह हुगली और मेदिनीपुर जिलेकी मध्य-सीमा होती हुई मुहाना तक चली गई है। वर्द्धमान जिलेसे वहिर्गत होनेके बाद इसका नाम बदल कर रूपनारायण हो गया है। प्रति मीलमें इसकी प्रबलता दामोदरकी अपेक्षा कुछ न्यून होने पर भी इसमें दामोदरकी नाईं अनेक समय भीषण बाढ़ आया करती है जो प्रायः ४।५ फुट ऊंचे जलके प्राचीरकी नाईं नदी और कूलको भरती हुई प्रखर वेगसे हठात् पहुंच जाती है और मनुष्य, पशु घोड़े आदिको जो कुछ सामने पड़ते बहा ले जाती है। स्त्रियां नदीके किनारे बालूके ऊपर अपनी अपनी कलशी रख कर स्नान करती हैं, ऐसे समयमें सहसा कलकल गम्भीर शब्द करती हुई भीषण वेगसे बाढ़ पहुंच जाती और स्त्रियां कलशी ले कर किनारे तक भी पहुंचने नहीं पाती, कि बाढ़ पहुंच कर उन्हें कलशीके साथ बहा ले जाती है,—इस तरहकी घटना कई बार हो चुकी है। वर्षाकालमें कभी कभी इसमें दो तीन दिन तक ऐसी बाढ़ रहती है, कि आना जाना बिलकुल बन्द हो जाता है। नदीमें कहीं कहीं बड़े बड़े पत्थर हैं जिनमें टक्कर खा कर नावें आदि टूट फूट जाती हैं। वर्षाके सिवा दूसरे समयमें अधिक जल नहीं रहता है। ग्रीष्मकालमें नदीका अधिकांश स्थान बालूसे ढक जाता है। बालू खोदने पर जल मिलता है। इस नदीमें कई जगह बाढ़के समय स्रोतके वेगसे बालूके हट जाने पर गहरा और बहुत लम्बा दह बन जाता है जिसमें ग्रीष्म

कालमें भी प्रचुर जल रहता है। दारिकेश्वरमें नावके द्वारा वाणिज्यादि नहीं होता है। वर्षाकालमें केवल दो चार बड़े बड़े काठ मानभूमसे बहा लाते हैं। इसका किनारा बहुत उर्वरा है। वर्द्धमान और हुगली जिलेमें बाढ़से बचनेके लिए नदीके किनारे बांध है।

दारित (सं० त्रि०) दार्यते स्मेति दृ-णिच्-क्त। क्षतदारण, चीरा या फाड़ा हुआ।

दारिद्र्य (सं० क्लो०) दरिद्रस्य भावः दरिद्र-ष्यञ्। दरिद्रता, निर्धनता, गरीबी। दुःखका अनुभव करके सुख शोभा पाता है, लेकिन जो सुखका अनुभव करके दुःख पाता है वह मृतकल्प हो कर जीवनधारण करता है। दरिद्रता अनन्त दुःखदायक है। गुणवान् मनुष्य भी जब दारिद्र्य दशाको प्राप्त होते हैं, तब उनके सभी गुण जाते रहते हैं।

दारिल—वत्सशर्माके प्रपौत्र। इन्होंने अथर्ववेदीय कौशिक-सूत्रकी टीका रचना की है।

दारी (सं० स्त्री०) दारयति पदतलमिति दृ-णिच्-इन्। (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११८) ततो ङीष्। क्षुद्ररोग-विशेष। भावप्रकाशमें लिखा है कि, जो लोग पैदल अधिक चलते हैं उनको वायु कुपित हो कर सूखी हो जाती है और पीछे चमड़ा कड़ा होकर फट जाता है, बेवाई, खरवा।

इसकी चिकित्सा - इस रोगमें शिरावेधपूर्वक रक्त-मोक्षण और स्नेह स्वेद तथा प्रलेप द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। मोम, बकरेकी चर्बी और मज्जा, घी और यवक्षार इन सबको मिला कर बार बार प्रलेप देना चाहिए। धूना, सैन्धव और लोहा इन सबको घी और मधुके साथ मल कर उसमें सरसोंका तेल मिलावे और बाद दोनो पैरोंमें लगानेसे दार रोग जाता रहता है। मोम, शिलाजतु, घी, गुड़, गुग्गुल, धूना और गेरुमट्टी इन सबको पीस कर प्रलेप देनेसे यह रोग दूर हो जाता है। धतूरेके बीजका मूल कल्क और मानकचूका चार जल दे कर सरसोंके तेलमें पकावें, बाद उसे पैरोंमें लगानेसे पाददारीरोग नष्ट हो जाता है।

दारी (हिं० स्त्री०) दासी, लड़ाईमें जीत कर लाई हुई लौंड़ी।

दारीजार (हिं० पु०) १ लौंडीका स्वामी। पूर्व समयमें राजा लोग कोई लौंडी रख लिया करते थे। पीछे उससे अप्रसन्न होने पर उसे किसी दूसरे मनुष्यको सौंप देते थे तथा जीवननिर्वाहके लिये कुछ जागीर भी दे देते थे। जो उस लौंडीका पति बनता, वह 'दारीजार' कहलाता था। और उनसे उत्पन्न सन्तान 'दारीजात' कहलाती थी। २ दासीपुत्र, गुलाम।

दारु (सं० पु० क्लो०) दीर्यते इति दृ उण्। (दृसनिजनीति। उण् १।३) १ काष्ठ, काठ, लकड़ी। २ पित्तल, पीतल। ३ देवदारु, देवदार। ४ शिल्पी, बढ़ई, कारीगर। ५ दारक, वह जो चीरफाड़ करता हो। (त्रि०) दा-दाने दो खण्डने वा-रु। ६ दानशील, देनेवाला। ७ खण्डनशील, टूटने फटनेवाला।

दारुक (सं० क्लो०) दारु-स्वार्थे कन्। १ देवदारु, देवदार। (पु०) २ श्रीकृष्णके एक सारथीका नाम। ये बड़े कृष्ण-भक्त थे। सुभद्राहरणके समय इन्होंने अर्जुनसे कहा था कि मुझे बांध कर तब आप सुभद्राको रथ पर ले जाइए। मैं यादवोंके विरुद्ध रथ नहीं हांक सकता। श्रीकृष्णके मरने पर ये अर्जुनको उनके निकट लाए और बाद जङ्गलको चले गए। (भाग० भारत) ३ एक योगाचार जो शिवके अवतार कहे जाते हैं। ४ काठका पुतला।

दारुकच्छ (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। (त्रि०) तत्र भवः कच्छान्तदेशवासित्वात् वुञ्। २ दारुकच्छक, दारुकच्छदेशका।

दारुकदली (सं० स्त्री०) दारुवत् काठिना कदली। १ वनकदली, जङ्गली केला। २ काष्ठकदली, कठकेला।

दारुका (सं० स्त्री०) दारुणा काष्ठेन कायति कै-क-टाप्। काष्ठमयी स्त्री, कठपुतली। इसका पर्याय—पत्रिका, दारुस्त्री, शालभञ्जिका, शालभञ्जी, शालाङ्गी, दारुपुत्रिका, कुरुपठी और दारुगर्भा है।

दारुकावन (सं० क्लो०) वनमयतीर्थभेद, एक वनका नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुकि (सं० पु०) दारुकस्य अपत्यं फिञ्। दारुकका अपत्य।

दारुकेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

दारुकेश्वरतीर्थ (सं० क्लो०) शिवपुराणोक्त तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम जिसका उल्लेख शिवपुराणमें आया है।

दारुगन्धा (सं० स्त्री०) चीड़ा नामक गन्धद्रव्य, विरोजा।

दारुगर्भ (सं० स्त्री०) दारुमयो गर्भो यस्याः। दारुमय स्त्री, कठपुतली।

दारचीनी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात गुड़त्वक्, एक प्रकारका तज। भावप्रकाशके मतसे इसके पर्याय—त्वक् स्वादु और दारुसिता, तथा शब्दरत्नावलीके मतसे सुतकट, भृङ्ग, त्वक् पत्र, वराङ्गक, त्वक्, चोल, पल, हृद्य सुरभिवल्कल, उत्कट, चोच और गुड़त्वक् हैं। इसे बङ्गालमें डालचीनी, पञ्जाबमें किरफा वा दारचीनी, बम्बई प्रदेशमें तज, दालचीनी वा तीखो, तैलङ्गमें दार-लिङ्ग, लवङ्गपत्ता, सन्नलवङ्गपत्ता, द्राविड़में करुवा, कर्णाटमें दालचीनी वा लवङ्गपत्ते, सिंहलमें दारचीनी वा तलिखाहे कहते हैं। गुड़त्वक् देखो।

यह पेड़ दक्षिण-भारत, सिंहल और तेनासरिममें होता है। सिंहलके पश्चिम उपकूलमें भी इसकी खेती होती है। भारतवर्षमें यह जंगलोंमें ही मिलता है और लगाया भी जाता है तो बगीचोंमें शोभाके लिये। कोङ्कण-से ले कर लगातार दक्षिणकी ओर इसके अनेक पेड़ मिलते हैं। जो पेड़ जङ्गलमें उगता है वह लगाए हुए पेड़से कहीं बड़ा होता है। (Cinnamonum zeylanicum) बाइबिल पुस्तकमें यह दारचीनी Kinnemon नामसे वर्णित है। (Exodus XXX. 20)

वाणिज्यक्षेत्रमें दो श्रेणीकी दारचीनी प्रचलित है, सिंहलकी दारचीनी और चीनकी दारचीनी। चीनकी दारचीनी बहुत निकृष्ट समझी जाती है।

सिंहल, चीन, श्याम, कोचीन, चीन और यवद्वीप-से विशेष कर इसकी रफ्तनी होती है। इनमेंसे सिंहल-की दारचीनी ही बहुत पहलेसे विदेशमें रफ्तनी और आहत होती आ रही है। १७६९ ई०को (ओलन्दाजोंके आधिपत्यकाल तक) सिंहलमें सब जगह यह पेड़ जंगली उपजता था, तब भी कोई दारचीनीकी खेती नहीं करता। नरम जमीनमें जो पेड़ उपजता था वही उत्कृष्ट समझा जाता था और गरम मसालेके लिये यूरोप आदि स्थानोंमें भेजा जाता था।

सिंहल और दाक्षिणात्यमें जो त्वक् संग्रह करते हैं, वे इसके नो भेद बतलाते हैं—१ नाग, २ कपूर, ३ वाइते, ४ सबेल, ५ डवुल, ६ निका, ७ माल, ८ तोपत और ९ वेकुरुन्दु।

इसके पत्ते तेजपत्ते हीकी तरहके, पर उनसे चौड़े होते हैं। इसमें बहुत छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें लगते हैं। फूलके नीचेकी दिउली छ फांकोंकी होती है। सिंहलमें दारचीनीके पेड़ लगानेकी यह रीति है—कुछ कुछ रेतीली करैल मिट्टीमें ४।५ हाथके फासले पर इसके बीज बोते या कलम लगाते हैं। इन्हें धूपसे बचानेके लिये पेड़की डालियाँ आस पास गाड़ देते हैं। ६ वर्षमें यह पेड़ ४।५ हाथ ऊंचा हो जाता है। इस समय इसकी डालियोंकी छिलका उतारनेके लिये काटते हैं। डालियों में छुरीसे हलका चीरा इस वास्ते लगा देते हैं कि छाल जल्दी उचट आवे। इस प्रकार पृथक् किए हुए छालके टुकड़ोंको जमा करके दबा दबा कर छोटी छोटी अंटियोंमें बांध कर रख छोड़ते हैं। दो तीन दिन इसी तरह पड़े रहनेके बाद छालोंमें एक प्रकारका हलका खमीर-सा उठता है। इसकी सहायतासे छालके ऊपरकी झिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा टेढ़ी छुरीसे हटा दिया जाता है। अन्तमें छालको दो दिन छायामें सुखाने और फिर धूप दिखा कर रख देते हैं।

दारचीनीकी छाल, पत्ते और मूल इन तीन स्थानोंसे तीन प्रकारके तेल निकलते हैं। सिंहल और इंग्लैण्डमें छालको चुआ कर सैकड़े पीछे आध वा एक भाग तेल निकालते हैं। यह तेल देखनेमें सोने जैसा लगता है और गन्ध भी काफी रहती है। यह सुगन्धद्रव्यमें व्यवहृत होता है पत्तोंसे जो तेल निकलता है उसकी गन्ध लवङ्ग सी होती है। सिंहल देशसे यह 'लवङ्गतैल' नामसे भेजा जाता है। मूलका तेल पीला और पानीसे कुछ हलका होता है। इसमें कपूर और दारचीनीसी गन्ध रहती है। पहले इस पेड़के फलसे ही एक प्रकार-का तेल प्रस्तुत होता था लेकिन अब कहीं भी देखनेमें नहीं आता।

दारचीनी दो प्रकारकी होती है, दारचीनी जीलानी और दारचीनी कपूरी। ऊपर जिस पेड़का विवरण

दिया गया है, वह दारचीनी जीलानी है कपूरके छिलके-में बहुत ज्यादा सुगन्ध रहती है। हिन्दुस्तानमें इसके फल देहरादून, नीलगिरि आदि स्थानोंमें लगाए गये हैं। पहले चीन देशसे इसकी सुगन्धित छाल आती थी, इसीसे उसे दारुचीनी कहने लगे।

यूरोपीय चिकित्सकोंके मतसे दारुचीनीका गुण—सुगन्ध, उत्तेजक, वायुनाशक, उदराध्मान, उदरशूल, अंतड़ीकी आक्षेपजनक पीड़ा, बलहारक उदरामय, पाकस्थलीका प्रदाह, रजसाधिक्य आदि रोगोंमें विशेष उपकारी है। दन्तशूल और जिह्वाके लिए यह अत्यन्त तेलस्कार है। आमाशयरोगमें भी २० ग्रेन दारचीनीके चूर्णका प्रयोग विशेष फलप्रद है।

दारुज (सं॰ पु॰) दारुणो जायते जन ड। १ मर्दल वाद्य-भेद, एक प्रकारका बाजा। (त्रि॰) २ काष्ठनिर्मित, लकड़ीका बना हुआ। ३ काष्ठसे उत्पन्न, लकड़ीमें पैदा होनेवाला।

दारुण (सं॰ पु॰) दारयतीति दृ-णिच् उन्। १ चित्रक-वृक्ष, चीतेका पेड़। २ भयानक रस। ३ रौद्र नामक नक्षत्र। ४ विष्णु। ५ शिव। ६ एक नरकका नाम। ७ राक्षस। (त्रि॰) ८ विदारक, फाड़नेवाला। ९ भीषण, घोर। १० दुःसह, प्रचण्ड, कठिन।

दारुणक (सं॰ क्लो॰) दारुणवत् कायतीति कै-क। मस्तकजात क्षुद्र रोगविशेष, शिरमें होनेवाला एक क्षुद्ररोग जिसमें चमड़ा रूखा होकर सफेद भूसीकी तरह छूटता है, रूसी। वायु और कफ कुपित होकर मस्तक-के स्थलमें जा कर आश्रय लेता है, तब केशभूमि कण्डु-युक्त, रुक्ष और कर्कश हो जाती है अर्थात् ऊपरका चमड़ा सूखने लगता है, इसीको दारुणक कहते हैं। इसकी चिकित्सा इस प्रकार है—पियारका बीज, यष्टि-मधु, कुट, उरद और सैन्धव इन सबको मधुके साथ मिला कर मस्तक पर लगानेसे दारुणक रोग जाता रहता है। गुञ्जाफलके चूर्ण और भृङ्गराजके रससे तेलको पका कर प्रयोग करनेसे भी कण्डु और दारुणक क्षुद्ररोग नष्ट होता है। आमकी गुठली और हड़के बराबर बराबर भागको दूधके साथ पीस कर उसका प्रलेप भी इस रोग-का रामबाण है। (भावप्र॰)

दारुणता (सं॰ स्त्री॰) दारुणस्य भावः दारुण-तल्, स्त्रियां टाप्। दारुणका भाव, कठोरता।

दारुणा (सं॰ स्त्री॰) १ तिथिभेद, अक्षय-तृतीया। २ नर्मदा खण्डको अधिष्ठात्री देवी।

दारुणात्मन् (सं॰ त्रि॰) दुरात्मा, दुष्ट, खोटा।

दारुणारि (सं॰ पु॰) विष्णु।

दारुण्य (सं॰ क्ली॰) १ कार्कश्य, क्रूरता, कठोरता। २ उग्रता, भीषणता।

दारुतीर्थ (सं॰ क्ली॰) शिवपुराणोक्त तीर्थभेद।

दारुनटी (सं॰ स्त्री॰) काठपुतली।

दारुनारी (सं॰ स्त्री॰) कठपुतली।

दारुनिशा (सं॰ स्त्री॰) दारुप्रधाना निशा हरिद्रा। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

दारुपत्री (सं॰ स्त्री॰) दारुणः देवदारुणः पत्रमिव पत्र-मस्याः, ङीष्। हिङ्गुपत्री।

दारुपात्र (सं॰ क्ली॰) दारुणः पात्रं वा दारुनिर्मितं पात्रं। काष्ठ जलाधारादि पात्र, काठका बरतन। मनुने यतियोंको अलाबुपात्र (तुमड़ी) और दारुपात्र रखनेका विधान किया है।

दारुपीता (सं॰ स्त्री॰) दारुणा काष्ठेन पीता, काष्ठ-प्रधानत्वात् तथात्वं। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

दारुपुत्रिका (सं॰ स्त्री॰) दारुमयी पुत्रिका। काष्ठपुत्त-लिका, कठपुतली।

दारुफल (सं॰ पु॰) पिस्ता। (Pistachio)

दारुब्रह्म—जगन्नाथ। जगन्नाथ देखो।

दारुमय (सं॰ त्रि॰) दारुनिर्मित दारु-मयट्। काष्ठ-निर्मित, काठका बना हुआ।

दारुमुखाह्वया (सं॰ स्त्री॰) दारुमुख्यं आह्वयते स्पर्द्धते आ-ह्वे-अच्। गोधा, गोह नामक जन्तु।

दारुमुच् (सं॰ पु॰) एक स्थावर विषका नाम।

दारुमूषा (सं॰ स्त्री॰) दारुप्रधाना मूषा। दारुमोचाख्या-विष, एक स्थावर विषका नाम।

दारुयन्त्र (सं॰ क्ली॰) दारुमयं यन्त्रं। काष्ठनिर्मित यंत्र-भेद, काठका बना हुआ एक औजार।

दारुयोषिता (सं॰ स्त्री॰) कठपुतली।

दारुवधू (सं॰ स्त्री॰) दारुमयी वधूः। वधूप्रतिमा

दारुमयी वधूरिव वा। १ काष्ठपुत्तलिका, कठपुतली। २ काष्ठमयी स्त्री प्रतिमा।

दारुवह (सं॰ त्रि॰) दारु वहति वह-अच्। दारुवाहक, लकड़ी ढोनेवाला।

दारुसार (सं॰ पु॰) दारुषु सारः श्रेष्ठः। चन्दन।

दारुसिता (सं॰ स्त्री॰) दारुणि सितेव। गुडत्वक्, दारचीनी।

दारुहरिद्रा (सं॰ स्त्री॰) दारुप्रधाना हरिद्रा। स्वनाम ख्यात वृक्षविशेष, (Curcuma xanthorrhiza) दारुहलदी। इसका पर्याय पीतद्रु, कालेयक, हरिद्रु, दार्वी, पचम्पचा, पर्जनी, पीतिका, पीतदारु, स्थिरराग, कामिनी, कटङ्कटेरी, पर्जन्या, पीता, दारुनिशा, कालीयक, कामवती, दारुपीता, कर्कटीनी, दारु, निशा और हरिद्रा है। यह हिमालयके पूर्व भागसे ले कर आसाम, पूर्व बङ्गाल और तेनासरिम तक होती है। इसमें सफेद फूल गुच्छोंमें लगते हैं। एक प्रकारका पीला रंग इसके जड़के छिलकेसे निकलता है। इसकी जड़ और डंठलका रंग पीली होता है, इसीसे इसका नाम दारुहल्दी पड़ा है। यथार्थमें यह हल्दी जातिका नहीं है। यह दवाके काममें आती है। इसका गुण-तिक्त, कटु, उष्ण, व्रण, मेह, कण्डु, विसर्प, त्वग्दोष और चक्षु दोष नाशक।

दारुहस्तक (सं॰ पु॰) हस्त इव प्रतिकृतिः कन्। इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) दारुणो हस्तकः। काष्ठ निर्मित हस्त, काठका बना हुआ हाथ।

दारू (फा॰ स्त्री॰) १ औषध, दवा। २ मद्य, शराब। ३ बारूद।

दारूकार (फा॰ पु॰) शराब बनानेवाला, कलवार।

दारेल (दारल)—सिन्धुनदके पश्चिमकूलवर्त्ती एक प्राचीन प्रदेश। बहुत प्राचीनकालमें दारेलनगरमें उद्यान राज्यकी राजधानी थी। दारदगण इस प्रदेशके प्राचीन अधिवासी थे, इसीसे इसका नाम दारेल पड़ा है। बौद्धोंके प्रादुर्भावके समयमें दारेल अत्यन्त सौभाग्यशाली था। चीनयात्री फाहियान और युएनचुयङ्ग दोनों ही इस देशको देखने आए थे। फाहियानने दारेलका तो-लि नाम रखा है। उन्होंने यहां १०० फुट ऊंची मैत्रेय बोधिसत्त्वकी काष्ठनिर्मित एक बड़ी मूर्त्ति देखी थी। युएनचुयङ्गने इसे उज्ज्वल स्वर्ण वर्णमें रञ्जित एवं अलौकिक गुणसम्पन्न बतलाया है। प्रवाद है, कि मध्यान्तिक नामक एक मनुष्यने बोधिसत्त्वके तत्त्वावधानमें इस विशाल मूर्त्तिका निर्माण किया था। निर्माताकी भावी बोधिसत्त्व मैत्रेयका आकार प्रकार सूक्ष्मरूपमें दिखलाने के लिए मध्यान्तिक उसे तीन बार तूषित नामक चतुर्थ स्वर्गमें ले गए थे। स्थपतिने वहां मैत्रेयकी मूर्त्ति देख कर उसी प्रकारकी दीर्घ आकारप्रकारादियुक्त काष्ठमयी मूर्त्ति बनाई।

दारोगा (फा॰ पु॰) १ प्रबन्ध करनेवाला अफसर। २ पुलिसका एक अफसर जो किसी थाने पर अधिकारी हो, थानेदार।

दारोगाई (फा॰ स्त्री॰) दारोगाका काम वा पद।

दार्घसत्र (सं॰ त्रि॰) दीर्घसत्रे भवः दीर्घसत्र-अण्, ततो आद्य च आत् (देविकाशिंशपेति। पा ५।३।९६) दीर्घसत्रयागोत्पन्न, उस यज्ञका जो बहुत दिनों में समाप्त हो।

दार्जिलिङ्ग—१ बङ्गालके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके शासनाधीन राजशाही कोचविहार विभागके उत्तरभागका एक जिला। यह अक्षा॰ २६° ३१' से २७° १३' उ॰ और देशा॰ ८७° ५९' से ८८° ५३' पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ११६४ वर्गमील है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः २४९११७ है। इसमें दो शहर और ५६९ ग्राम लगते हैं।

यह जिला दो भागोंमें विभक्त है-एक भाग पार्वतीय और दूसरा भाग तराई वा पर्वतके तलदेशको, यहांके लोग मोरङ्ग कहते हैं। तराई प्रदेश अस्वास्थ्यकर है।

इस जिलेके समतल क्षेत्र समुद्रपृष्ठसे सिर्फ ३०० फुट ऊंचा है, किन्तु उसकी बगलसे ही गिरिमाला ६००० से १०००० फुट तक ऊपर उठी है। उसका पार्श्वभूभाग समुज्ज्वल तुषारमण्डित है। पृथ्वीमें सबसे ऊंची चोटी धवलागिरि और काञ्चनजङ्घा इस तुषारमय प्रदेशके साथ मिली है। इस पार्वतीय प्रदेशमें १२ हजार फुट ऊंचेमें श्यामल तृणादि देखे जाते हैं। और उसके ऊपर तालीशपत्र जातिका वृक्ष और देवदारु, पाइन आदि तथा समतलक्षेत्रके निकट मूल्यवान् शालवृक्ष उत्पन्न होते हैं।

तराई अंशमें पहले मलेरिया ज्वरका विशेष प्रादुर्भाव था। मेच, धीमल, और कोच जातिके लोक जङ्गल जला कर उसमें खेती करते थे। अभी चाय और खेतीबारीके लिये अधिकांश जङ्गल परिष्कार किया गया है।

वृटिशाधिकृत भूभागमें यहां सिङ्गलीला पहाड़ ही सबसे ऊंचा है, इसके बहुतसे ऊंचे शृङ्ग हैं, जिनमेंसे फलालुम १२०४२ फुट, सुबांव १०४३० फुट और तङ्गलु १००८४ फुट ऊंचा है।

इतिहास—पहले यह जिला सिक्किम राज्यके अन्तर्गत था। गोरखाके राजा पृथ्वीनारायण जिस समय प्रभूत विक्रमसे नेपाल अधिकार कर अपना राज्य विस्तार करनेको अग्रसर हुए थे, उसी समय सिक्किमके राजाने राज्यच्युत हो कर वृटिश गवर्मेण्टकी शरण ली थी। इसमें कई वर्ष बाद नेपालके साथ अङ्गरेजोंकी लड़ाई छिड़ी। १८१६ ई०में नेपाल राजाने परास्त हो कर वृटिश सेनापति सरडेभिड अक्टरलेनीसे साथ सन्धि कर ली। इस सन्धिके अनुसार सिक्किम और उसको दक्षिणांश वृटिशशासनाधीन हुआ। वृटिशगवर्मेण्टने सिक्किम राज्य प्रकृत स्वत्वाधिकारीको अर्पण किया। इसी समयसे सिक्किम अङ्गरेजोंके मित्र राज्योंमें गिना जाने लगा। १८३४ ई०को राज्यसीमाके लिये नेपाल और सिक्किममें विवाद उपस्थित हुआ। मेजर बवेडने गवर्नर जेनरलके प्रतिनिधिस्वरूप विवाद निवटा दिया। इस समय बवेड साहबने सिक्किम राज्यको सूचना दी, कि गवर्नर जेनरल दार्जिलिङ्गके जलवायुका गुण अच्छी तरह पा चुके हैं; यदि दार्जिलिङ्ग उन्हें दे दिया जाय, तो वे बहुत खुश होंगे। इस पर १८३५ ई०में सिक्किम राजाने दार्जिलिङ्गका पार्वतीय अंश अर्थात् बड़ी रंजित नदीका दक्षिण-भाग, कालियल, रूसी (बलासन) और छोटी रंजित नदीका पूर्वभाग तथा रंनाधु और महानन्दा नदीका पश्चिमभाग इष्ट इण्डिया कम्पनीको प्रदान किये। उसी बवेडसाहबने दार्जिलिङ्गमें पहाड़ काट कर रास्ता निकाल दिया। जिससे जाने आनेको बहुत सुविधा हो गई है। रेलपथ होनेसे पहले इसी पथ हो कर लोग दार्जिलिङ्ग जाते थे। शिलिगुड़ीसे दार्जिलिङ्ग आनेके रेलपथके बगलमें उक्त पहाड़ी रास्ता देखा जाता है। अभी वह रास्ता केवल भूटिया लोगोंके काम आता है।

उक्त पथ प्रस्तुत करके बवेड साहबने सिञ्चल पहाड़में सैनिक शिविर बनाया तथा भूमि आदिका बन्दोबस्त और विचारालयादि स्थापन किया। पीछे उन्हींके यत्नसे १८३८ ई०में वृटिश गवर्मेण्टने नेपालराजासे बलासन और छोटी रंजित नदीका पश्चिमांश जया मेची नदीका पूर्वांशस्थित भूखण्ड पाया। थोड़े ही दिनोंमें दार्जिलिङ्गकी ओर बङ्गालके राज पुरुषोंकी दृष्टि आकर्षित हुई और वह असमस्थ यूरोपीय सैनिकोंके सेना निवासमें गिना जाने लगा। इस समय बहुतोंने घर आदि बनानेके लिये जमीन बन्दोबस्त कर ली, तब भी दार्जिलिङ्गमें चायकी खेती प्रचलित नहीं हुई। डाक्टर हुकार वृटिश गवर्मेण्ट तथा सिक्किमके राजाका आदेश लेकर दार्जिलिङ्गके सुपरिण्टेण्डेण्ट डाक्टर क्याम्बलके साथ सिक्किमराज्यको गये। वहां वे राजमन्त्रीके षड़यन्त्रसे कैद कर लिये गये। उन लोगोंके अपमानका बदला चुकानेके लिये एक दल वृटिशसैन्य भेजी गयी। वृटिशगवर्मेण्ट सिक्किम-राजको प्रतिवर्ष रुपया भेजती थी, वह भी बन्द कर दिया। इस समय सिक्किमको तराई लेकर प्रायः ६४० वर्गमील जमीन वृटिशशासनाधीन हुई। पुनः भूटानयुद्धके बाद १८६४ ई०में तिस्ता नदीके पूर्व पार्श्वस्थ सभी पार्वतीय भूभाग दार्जिलिङ्गमें मिला दिये गये। अभी सिक्किमराजके साथ वृटिश-गवर्मेण्टकी गाढ़ी मित्रता है। सिक्किम-राज दार्जिलिङ्गके डेपुटि-कमिश्नरकी सलाह ले कर सभी काम करते हैं। वृटिश गवर्मेण्टने राजकी वार्षिक वृत्ति बढ़ा कर अभी १२०००) रु० स्थिर कर दिये हैं।

स्वास्थ्यावासके कारण दार्जिलिङ्गकी लोकसंख्या धीरे धीरे बढ़ती जा रही है। विशेषतः नौर्दर्न-बेङ्गाल स्टेट-रेलवे के हो जानेसे बङ्गवासी यूरोपीय लोग सिमला-शैलकी अपेक्षा दार्जिलिङ्गको ही विशेष पसन्द करते हैं।

१८५६ ई०को दार्जिलिङ्गमें सबसे पहले चायके बगीचे लगाये गये। थोड़े ही दिनोंमें यहाकी चाय सर्वत्र आदृत हो जानेसे चायकी खेती बहुत बढ़ गई है,

इस कारण लोकसंख्या भी बढ़ती जा रही है।

बङ्गालके दूसरे दूसरे स्थानोंकी नाईं यहां भी आमन वा हैमन्तिक तथा आउस वा भदई धान होते हैं। तराई-प्रदेशमें दिनों दिन धानकी खेती बढ़ती जा रही है। बङ्गाली और नेपाली लोग ही यहाँ हल जोतते हैं। पहले वन जलाकर 'जूम' प्रणालीसे शस्योत्पादन करना असभ्य जातिमें प्रचलित था। अभी वह प्रथा उठ गई है। पर्वत और तराई इन दो प्रदेशोंमें 'हाल' और 'पाटो' इन दो प्रकारकी भूमिकी माप प्रचलित है। जितनी जमीनमें जितना हल वा बैल लगता है उसको हाल और जितना बीज बुना जाता है उसको पाटी कहते हैं। अभी कहीं कहीं अंगरेजी माप प्रचलित हो गया है। तराई अञ्चलकी एक एकड जमीनमें प्रायः १२ मन अनाज उत्पन्न होते हैं। तिस्ता नदीके पश्चिम खासमहल-में गवर्मेण्टने प्रति घरके ऊपर ३ रु० कर स्थिर किया है। किन्तु दार्जिलिङ्ग-शहर दार्जिलिङ्ग-म्युनिसिपैलिटीके कर्त्तृत्वाधीन है। अधिवासियोंको यथेष्ट कर देना पड़ता है। इस जिलेमें चायकी खेती और चायका वाणिज्य ही प्रधान है।

यहांके समस्त चायके बगीचे अंगरेजोंकी देखभालमें है और उन्हींके मूलधनसे यह चलाया जाता है।

रेलपथकी सुविधा रहनेसे यहांकी अधिकांश चाय कलकत्तेको भेजी जाती है। जिलेमें १८४ चायके खेत हैं और प्रायः १४ लाख बीघे जमीनमें चायकी खेती होती है। १९११ ई०को इस जिलेमें प्रायः १३२७३२ मन चाय पैदा हुई थी।

१८६२ ई०से यहां सिनकोणाकी खेती आरम्भ हुई है। इस ज्वरघ्न औषधका आदर बढ़ जानेसे अभी इसकी खेती भी खूब बढ़ गई है। कई जगह कुनाइनके बदले सिनकोणाका व्यवहार हो जानेसे प्रति वर्ष इस सिनकोणासे गवर्मेण्टको लाखसे अधिक रुपयेकी आमदनी होती है।

बाढ़ आदिसे दार्जिलिङ्गकी विशेष क्षति नहीं होती है। यहां दुर्भिक्षका सूत्रपात होनेसे ही पहाड़ी लोग एक स्थानसे दूसरे स्थानको भाग कर आत्म-रक्षा करते हैं। जिस समय पूस महीनेमें धानका मूल्य बढ़ जाता है, उसी समय लोग भावी दुर्भिक्षकी आशङ्का करते हैं।

वाणिज्य—अभी चाय ही यहांका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। यहांके लेपचा लोग एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा तैयार करते हैं जो जिलेके निम्नश्रेणीके मनुष्यके काम आता है। पहाड़ी लोग भिन्न भिन्न स्थानोंसे चीना प्याला, मूंगा, अकीकका कटोरा और घंटा आदि यहां बेचनेको लाते हैं। यहांकी भूटिया लोगोंकी बनाई हुई कटारी और लेपचा लोगोंकी छूरी बहुत मशहूर है। दार्जिलिङ्ग शहरमें यूरोपीय लोगोंके व्यवहारार्थ और विलासानुरूप अनेक द्रव्य पाये जाते हैं, किन्तु दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा उनका मूल्य भी अधिक है। खनिजद्रव्योंमें यहां कोयला, लोहा, ताँबा और चूना पाये जाते हैं।

तिब्बत जानेके रास्ते पर तिस्ता नदीके ऊपर एक सुन्दर लोहेका पुल है। इस जिलेमें विद्याकी खूब उन्नति है। यों तो यहाँ बहुतसे स्कूल तथा कालेज हैं, पर सेण्टपाल्स स्कूल, सेण्टजोसेफ्स कालेज, डायोसेसन्-बालिका स्कूल, लोरेटो कोनभेण्ट स्कूल, विक्टोरिया स्कूल तथा डावहिल बालिका स्कूल प्रधान हैं। इसके सिवा यहां अस्पताल, चिकित्सालय आदि हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५२' से २७° १३' उ० और देशा० ८७° ५९' से ८८° ५३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७२६ वर्गमील है। इस उपविभागका अधिकांश पर्वतमय है और कुछ अंश जङ्गलसे परिपूर्ण है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १३३३८६ है। इसमें इसी नामका एक शहर और १८१ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त दार्जिलिङ्ग जिलेका एक प्रधान नगर और अंग्रेजोंका ग्रीष्मकालका स्वास्थ्यावास। यह अक्षा० २७° ३' उ० और देशा० ८८° १६' पू०में अवस्थित है।

इस स्थानकी उत्पत्तिके विषयमें मतभेद है। कोई कोई बौद्धके मतसे इसका प्राचीन नाम 'दर्जेलामा' बतलाते हैं। दर्जे नामके एक लामा यहां वास करते थे। उनमें अलौकिक शक्ति रहनेके कारण भूटिया लोग उनकी विशेष भक्ति श्रद्धा करते थे। इसी दर्जेलामासे दार्जिलिङ्ग नाम हुआ है। फिर कोई कोई हिन्दूके मतसे दुर्जयलिङ्ग नामक शिवके नामसे ही वर्त्तमान नाम-

करण हुआ है, ऐसा कहते हैं। कालिकापुराणमें भी एक दुर्जयगिरिका उल्लेख है। वर्त्तमान दार्जिलिङ्ग से कामरूप तक कि गिरिमाला शायद कालिकापुराणमें दुर्जयगिरि नामसे वर्णित हुई है। फिर किसीने दार्जिलिङ्ग शब्दकी इस तरह व्युत्पत्ति की है, द=प्रस्तर, रजे=श्रेष्ठ, लिङ्ग=स्थान वा प्रदेश अर्थात् पवित्र गुहा वा लामाओंका चिह्नित स्थान। दार्जिलिङ्गकी वर्त्तमान अदालतसे कुछ दूरमें एक गुहा है जहां भूटिया लोग कभी कभी आकर महाकालकी पूजा करते हैं। बहुतसे संन्यासी भी बीच बीचमें आया करते हैं। भूटिया लोग कहते है कि इस गुहा हो कर तिब्बतकी राजधानी लासा नगरी तक जा सकते हैं और लामागण भी यह हो कर आते जाते हैं। प्रवाद है, कि नेपालके फुनसोलामगी नामक एक राजाके राजत्वकालमें यहां लामासराय या गुहा बनाई गई और लामाओंने ही इसका नाम दार्जिलिङ्ग रखा। इसी नामसे अभी सारा जिला प्रसिद्ध है। एक सङ्कीर्ण पहाड़के ऊपर दार्जिलिङ्ग शहर अवस्थित है। इसके साथ तीन शिखर संलग्न हैं। यहां रेलवेकी एक ष्टेशन है जो समुद्रपृष्ठसे ७१६६ फुट ऊंचा है। किसी किसी अंगरेजका विश्वास है, कि दार्जिलिङ्ग शहरमें और लण्डन नगरमें एक ही तरहका शीत-ग्रीष्म पड़ता है।

दार्जिलिङ्गका जलवायु अच्छा होनेके कारण लोकसंख्या भी धीरे धीरे बढ़ रही है। आजकलकी लोकसंख्या प्रायः १६९२४ है जिनमेंसे १०२७१ हिन्दू, ४४३७, बौद्ध, ११३२ ईसाई और १०४९ मुसलमान है।

यहांके एडेनसानिटोरियम, कोचविहार महाराजका प्रासाद, छोटे लाटका प्रमोदभवन आदि उल्लेख योग्य हैं। इसके सिवा यहां बड़ी बड़ी गिर्जा तथा बोटनिकल गार्डन आदि हैं। यह शहर १८३५ ई०में अंगरेजोंके हाथ लगा।

इसके आस पासमें भी उल्लेखयोग्य अनेक स्थान है। ७८८६ फुट ऊंचे जलापहाड़ पर सुन्दर सैन्यनिवास, महाकाल पहाड़की गुहा, भूटियाके ग्राममें भोटग्रन्थसज्जित बुद्धमन्दिर, लिवङ्गमें नूतन सैन्यस्वास्थ्यावास और नगरके बीच काकभोरा जलप्रपात देखनेके योग्य हैं। इस प्रपातको अंगरेज लोग विक्टोरिया फल (Victoria Fall) कहते हैं। कहते हैं कि, यहां गौरीदेवी आ कर स्नान करती थीं।

स्वास्थ्यरक्षाके लिए जिस तरह बहुतसे लोग यहां आते हैं, उसी तरह व्यवसायके लिए भी अनेक वणिक् और सामान्य दूकानदार सर्वदा आया करते हैं। यहांकी आय दो लाख रुपयेसे अधिक है। यहां प्रति रविवारको हाट लगती है जिसमें सभी चीजें मंहगी बिकती हैं। शहरमें बहुतसे स्कूल तथा चिकित्सालय हैं।

दाढच्युत (सं० पु०) १ दृढच्युतका अपत्य। २ सामभेद।

दाढ्र्य (सं० क्ली०) दृढ़स्य भावः दृढ-ष्यञ्। दृढता, मजबूती।

दार्त्तेय (सं० त्रि०) दृतौ भवः ढञ्। १ दृतिभव, चमड़ेका। २ दृतिभवस्थित, जो चमड़ेमें रहता हो।

दार्दुर (सं० पु०) दर्दुरः मृत्पात्रभेद स्तदाकारोऽस्त्यस्य प्रज्ञादि त्वात् ण। १ दक्षिणावर्त्त शङ्खका एक भेद। (क्ली०) २ लाचा, लाह, लाख। ३ जल, पानी। (त्रि०) दर्दुरस्येदं अण्। ४ दर्दुर सम्बन्धी।

दार्दुरिक (सं० त्रि०) दर्दुरः मृत्पात्रभेदः शिल्पमस्य ठञ्। मृत्पात्रभेदकारक, कुम्हार।

दार्भ (सं० त्रि०) दर्भस्येदं अण्। कुश सम्बन्धी।

दार्भायण (सं० पु० स्त्री०) दर्भस्य गोत्रापत्यं दर्भ-फक्। दर्भ ऋषिका गोत्रापत्य।

दार्भि (सं० पु० स्त्री०) दर्भस्य गोत्रापत्यं इञ्। दर्भ ऋषिका गोत्रज।

दार्भ्य (सं० त्रि०) दर्भे भवः कुर्वादि० ण्य। दर्भभव, कुशका।

दार्व (सं० पु०) १ देशभेद, एक देश जो कूर्मविभागके ईशान कोणमें आधुनिक काश्मीरके अन्तर्गत पड़ता था। (स्त्री०) २ तवस्थ नदीभेद, उसी देशकी एक नदी।

दार्वक (सं० त्रि०) दार्वेषु दार्वजनपदेषु भवः। बहुवचनार्थे वुञ्। दार्वजनपदभव, दार्व देशका।

दार्वट (सं० क्ली०) दारु इव निश्चलतया निरूपणीयविषयनिश्चयार्थं अटन्त्यत्र अट घञर्थे क। १ चिन्तागृह, वह कोठरी जहां एकान्तमें बैठकर किसी बातका विचार किया जाय।

दार्वण्ड (सं० पु०) दारुवत् कठिनं अण्डं यस्य। मयूर, मोर। इसका अंडा काठकी तरह कड़ा होता है।

दार्वाघाट (सं० पु०) दारु काष्ठं आहन्तीति आ-हन-अण्, टश्चान्तादेशः। शतपत्रक पक्षी, कठफोड़वा नामकी चिड़िया।

दार्वाघात (सं० पु०) दारुणि आघातो यस्मात्। १ दार्वाघाट पक्षी। (त्रि०) २ काष्ठाघातमात्र, काठ पर आघात करनेवाला।

दार्व्यादि (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा। दारुहल्दी, रसाञ्जन वासकमूलका छिलका, मोथा, चिरायता, बेलसोंठ और भेलावा हरएक दो दो तोला ले कर आध सेर जलमें उबालते हैं। बाद आध पाव जल रह जाने पर उसे नीचे उतारते हैं। मधुके साथ इस क्वाथका सेवन करनेसे प्रदररोग दूर हो जाता है।

दार्व्यादिलौह (सं० क्ली०) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—दारुहल्दी, हल्दी, हड़, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, पीपर, मिर्च, विड़ंग और उतना ही लोहेको एक साथ मिलावे। बाद मधु और घीके साथ इसका लेहन करनेसे पाण्डु और कामलारोग जाता रहता है।

दार्विका (सं० स्त्री०) दारयति दृ उत्वादित्वात् साधुः ङीप्। १ दार्वी, दारुहल्दी। तद्विकारोऽपि दार्वी अभेदोपचारात् स्वार्थे कन् टाप्। २ दारुहरिद्रा-क्वाथोद्भव तुत्थ, दारुहल्दीसे निकाला हुआ तूतिया। ३ रसाञ्जन, रसायन। ४ गोजिह्वावृक्ष, वनगोभी, गोजिया।

दार्विपत्रिका (सं० स्त्री०) दार्व्याः पत्रमिव पत्रमस्याः ततः कन् टाप् अत इत्वं। गोजिह्वावृक्ष, वनगोभी।

दार्वी (सं० स्त्री०) दारयति दृ-णिच् उण्, स्त्रियां दारुणस्य अवयवविभागरूपत्वेन गुणवचनत्वात् ङीष्। १ दारुहरिद्रा, दारुहलदी। २ गोजिह्वा, वनगोभी। ३ देवदारु, देवदार। ४ हरिद्रा, हलदी।

दार्वीक्वाथोद्भव (सं० क्ली०) रसाञ्जनविशेष। दारुहल्दीका काढ़ा और उतना ही दूधको उबालते हैं पीछे जब बहुत थोड़ा बच जाय, तब उसे उतारते हैं; इसी गाढ़ दार्वीकाढ़को रसाञ्जन कहते हैं। चक्षुके लिये यह बहुत उपकारी है। इसका पर्याय—तार्क्ष्यशैल, रसगर्भ और तार्क्ष्यज है। इसका गुण—कटु, तिक्तरस, उष्णवीर्य, रसायन, छेदन तथा कफ, विष, नेत्ररोग और व्रणनाशक है। (भावप्र०)

दार्वीतैल (सं० क्ली०) तैल औषधभेद, तिलतैल ६४सेर, कल्कार्थ दारुहरिद्रा, तुलसी, यष्टिमधु, हरिद्रा, दारुहरिद्रा इन सबको मिला कर ६१ सेर तथा १६सेर जल सबको एक साथ उबालते हैं। इस तैलसे मेढ्ररोग जाता रहता है।

दार्व्यादि (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। दारुहल्दी, इन्द्रयव, मजीठ, वृहती, देवदारु, गुलञ्च, भूआंवला, पित्तपापड़, श्यामालता, गजपिप्पली, कण्टकारी, नीमकी छाल, मोथा, कुट, सोंठ, पद्मकाष्ठ, कचूर, अटरुष, सरलकाष्ठ, चिरायता, भल्लातक, अकवन, कुशकी जड़, कुटकी, पीपल, धनिया इन सबको एक साथ मिला कर काढ़ा प्रस्तुत करते हैं। पीछे मधु मिला कर इसे सेवन करनेसे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, द्वन्द्वज, सतत आदि कठिनसे कठिन विषम ज्वर, अन्तस्थ, वहिःस्थ, धातुस्थ और दैर्घ्यरात्रिक ज्वर तथा शीत, कम्प, दाह, कार्श्य, घर्मनिर्गम, वमि, ग्रहणी, अतीसार, कास, श्वास, कामला, शोष, शोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि, अष्ट विधशूल, बीस प्रकारके प्रमेह, प्लीहा, अग्रमांस, यकृत्, हलीमक इत्यादि रोग वज्राहत वृक्षकी नाईं नष्ट हो जाते हैं। (भैषज्यर० ज्वराधि०)

दार्श (सं० त्रि०) दर्शे भवं आर्ष प्रयोगे ठञ्, वाधित्वा० अण्। १ दर्शभव, जो देखनेसे उत्पन्न हो। (त्रि०) दृशि नेत्रे भवः अण्। २ नेत्रभव, जो आंखसे उत्पन्न हो।

दार्शनिक (सं० त्रि०) १ दर्शनशास्त्रवेत्ता, दर्शनशास्त्र जाननेवाला। २ दर्शनशास्त्र सम्बन्धी।

दार्शपौर्णमासिक (सं० त्रि०) दर्शे पौर्णमास्यां च भवः ठञ्। दर्शपौर्णमासभव, जो अमावस्या और पूर्णिमामें हो।

दार्शिक (सं० त्रि०) दर्शे भवः दर्श-ठञ्। दर्शभवः, आर्षप्रयोगमें दार्श होता है, अर्थात् ठञ् न हो कर अण् होता है। दर्शपौर्णमास संबन्धीय।

दार्श्य (सं० त्रि०) दार्शिक।

दार्षद (सं० त्रि०) दृषदि पिष्टः अण्। पत्थरका बना हुआ।

दार्षद्वत (सं० क्लो०) दृषद्वत्यां नद्यास्तीरे कर्त्तव्यं अण्.। सत्रभेद, एक यज्ञ जो दृषद्वती नदीके किनारे किया जाता था।

दार्ष्टान्त (सं० त्रि०) दृष्टान्त-अण्.। दृष्टान्तयुक्त, जिसमें उदाहरण दे कर समझाया गया हो।

दार्ष्टान्तिक (सं० त्रि०) दृष्टान्तेन युक्तः ठञ्.। दृष्टान्तयुक्त।

दाल (सं० क्ली०) दलेभ्यः सञ्चितं दल अण्.। वन्यमधु, पेड़के खोड़रेमें मिलनेवाला शहद। इसका गुण—मधुर, अम्ल, कषायरस, लघुपाकी, अग्निदोप्तिकारक, कफघ्न, रुच, रुचिकर, वमि और प्रमेहनाशक, स्निग्ध, तथा शरीरका उपचयकर है। (पु०) दले जातं दल-अण्.। २ कोद्रव धान्यभेद, कोदो नामका अन्न। ३ दलन, चूर चूर करनेका काम।

दाल (हिं० स्त्री०) १ दली हुई अरहर मूंग आदि जो सालनकी तरह खाई जाती है। जिन अनाजोंमें कलियां लगती हैं और जिनके बीज दबानेसे टूट कर दो दलों या खंड़ोंमें हो जाते हैं उसीकी दाल होती है। २ दालके आकारकी कोई वस्तु। ३ हल्दी, मसालेके साथ पानीमें उबाला हुआ दला अन्न। यह रोटी भात आदिके साथ खाया जाता है। ४ किरणोंका समूह जो सूर्यमुखी शीशेसे हो कर आता है। यह इकट्ठा हो कर गोल दालके आकारका हो जाता है और इससे आग लग जाती है। ५ चेचक, फोड़े फुंसी आदिके ऊपरका चमड़ा जो सूख कर छूट जाता है, पपड़ी। ६ अंडेकी जरदी। (पु०) ७ हिमालय पर, सिमला तथा पंजाबमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह तुन जातिका होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है जो हरएक काममें लाई जाती है।

दालचीनी (सं० स्त्री०) दारचीनी देखो।

दालन (सं० पु०) दालयति दल-णिच्-ल्यु। दन्तगत-रोगभेद, दांतका एक रोग।

दालभ्य (सं० पु०) एक मुनिका नाम।

दालमोट (हिं० स्त्री०) वह दाल जो घी तेल आदिमें नमक, मिर्चके साथ तली गई है।

दालव (सं० पु०) दलति दल-उण्, तस्यायं अण्.। स्थावर विष।

दालबूकर्क—(Don Alphonzo Dalboquerque) पोर्त्तुगीज-राजका एक विख्यात सेनाध्यक्ष, लोग उन्हें विशेषकर आलबूकार्क ही कहा करते थे। १५०४-१५०८ ई०के मध्य ये भारतकी ओर भेजे गये थे। इन्होंने अरबसागरके किनारे मस्कट आदि स्थानोंको जीत कर १५१० ई०के नवम्बर मासमें दो बार गोआपर आक्रमण किया था। दूसरे वर्ष मलकाका दुर्ग और अर्मज द्वीप भी इनके दखलमें आ गया। १५१३ ई०को १८वीं फरवरीको आदेन बन्दर पर अधिकार जमानेके लिए ये २० जहाजों पर १७०० पोर्त्तुगोज और २००० भारतीय सेनाओंको साथ ले कर वहां जा पहुंचे, किन्तु उद्देश्य सिद्ध न हुआ। जो कुछ हो, उसी वर्ष इन्होंने पेरिम द्वीपमें प्रवेश किया। १५१६ ई० तक इनकी क्षमता एक सी बनी रही। इनके यत्नसे पोर्त्तुगीजोंका आधिपत्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। ऐतिहासिक डि व्यारस इनके साथी थे।

दाला (सं० स्त्री०) दल्यते दल कर्मणि घञ्.। महाकाल नामकी लता।

दालादर्पिकया—सिंहलवासी बौद्धोंका एक उत्सव। इस उत्सवमें बुद्धके दांत यात्रियोंको दिखलाए जाते हैं। काण्डीराजभवनसंलग्न विहारमें ये दांत दागोबाकारके हैं और कई एक धातुनिर्मित रत्नखचित बकसमें रखे हुए हैं। इन दांतोंका विषय दाठवंशके दूसरे और तीसरे अध्यायमें इस प्रकार लिखा है—

क्षेम नामक बुद्धके एक शिष्यने शाक्यसिंहके निर्वाणके बाद (५४३ ई० सन्‌के पहले) उनके दांत कुशीनगरसे लाकर कलिङ्ग देशके राजा ब्रह्मदत्तको दिए थे। ब्रह्मदत्त और उनके पुत्र काशी तथा पौत्र सुनन्द शासनकालसे ले कर दूसरे राजाओंके शासन पर्यन्त प्रायः ८०० वर्ष तक ये सब दांत आदरपूर्वक रखे गये। पहले दन्तपुराधिपति गुहशिव इन दांतोंके विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे, पीछे मालूम होने पर उन्होंने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया। बौद्धधर्मसे दीक्षित हो कर उन्होंने अपने राज्यसे अन्य धर्मावलम्बियोंको निकाल भगाया। हिन्दुओंने बहुत दुःखित होकर पाटलिपुत्रके राजा पाण्डुकी शरण ली। पाण्डुने गुहशिवके विरुद्ध कुछ योद्धा

भेजे। वे जा कर इन सब दांतोंको पाण्डुराजाके पास उठा लाये। राजाने उन्हें तोड़ फोड़ डालनेको बहुत कोशिश की, लेकिन वे कुछ कर न सके। अन्तमें उन्होंने भी बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। वे सब दांत फिरसे दन्तपुर भेज दिए गये। पीछे वे दांत वहांसे अनुराधपुरमें लाए गए। १५६० ई०में पोर्त्तुगीज-युद्धके समय कनष्टान्टाइन डि ब्रागैञ्जाने वे सब दांत नष्ट कर डाले। किन्तु सिंहलवासी बौद्ध लोग इसे स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि जिस समय वह मन्दिर तोड़ा गया था उस समय वे सब दांत सङ्घाराममें थे। अनेक पुरातत्त्वविदों और सिंहलवासी मुत्तुकुमार स्वामीका कहना है, कि अभी जो बुद्धदन्त कह कर दिखलाए जाते हैं, वे किसी हालतसे नरदन्त नहीं हैं।

दालान (फा० पु०) मकानका वह हिस्सा जो चारों ओरसे घिरा न हो और जिसकी तीन ओर खुली हो, बरामदा, ओसारा।

दालि (सं० स्त्री०) दल-इन्। १ दाल। दाल देखो। २ दाड़िम्ब, अनार। ३ देवदाली लता।

दालिका (सं० स्त्री०) दालिव स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। महाकाललता।

दालिम (सं० पु०) दाड़िमः डस्य लः। दाड़िम, अनार।

दाल्भ (सं० पु०) दलभस्य दलभगोतस्य छात्रादि० अण, यलोपः। दाल्भ्यके सभी छात्र।

दाल्भ्य (सं० पु० स्त्री०) दलभस्य मुने र्गोत्रापत्यं यञ्, (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) १ दलभऋषिके गोत्रका मनुष्य। २ एक नामक मुनि। इन्द्र इनके बन्धु थे। इन्होंने चन्द्रसेन राजाकी गर्भिणी स्त्रीकी परशुरामके क्रोधसे रक्षा की थी। इसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वही दाल्भ्य कायस्थोंके आदिपुरुष हुए।

दाल्भ्यघोष (सं० पु०) पुण्याश्रमरूप तीर्थभेद। (भारत वनप० ९० अ०)

दाल्भ्यायणि (सं० पु०) दलभस्य यून्यपत्यं फिञ्। दाल्भ्य ऋषिका युवा अपत्य।

दालिम (सं० पु०) दालयति असुरान् दाल-णिच् बाहु०मि। इन्द्र।

दांव (हिं० पु०) १ बार, दफा। २ अनुकूल संयोग, अवसर, मौका। ३ बारी, पारी। ४ चाल, पेच, बंद। ५ कार्यसाधनकी युक्ति, उपाय, चाल। ६ खेलनेकी दारी। ७ छल, कपट। ८ जीतका पांसा या कौड़ी। ९ ठौर, जगह, स्थान।

दांवना (हिं० क्रि०) दाना झाड़नेके लिए मांड़ना।

दांवनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां अपने माथ पर पहनती हैं।

दांवरी (हिं० स्त्री०) रज्जु, रस्सी।

दाव (सं० पु०) दुनोति उपतापयति दु-ण (दुण्योरनुपसर्गे। पा ३।१।१४२) १ वन, जङ्गल। २ वनवह्नि, वनआग। ३ अग्नि, आग। दु भावे घञ्। ४ उपताप, जलन।

दाव (हिं० पु०) १ एक प्रकारका हथियार। २ एक वृक्षका नाम।

दावत (अ० स्त्री०) १ ज्योनार, भोज। २ निमंत्रण, न्योता, ज्याफत।

दावदी (हिं० स्त्री०) गुलदावदी देखो।

दावन् (सं० पु०) दा कर्मभावादौ वनि। १ देव, वह जो देनेयोग्य हो। २ दान।

दावन (हिं० पु०) १ दमन, नाश। २ हंसिया। ३ एक प्रकारका टेढ़ा छुरा, खुखड़ी।

दावना (हिं० क्रि०) १ दावना देखो। २ दमन करना, नष्ट करना।

दावनी (हिं० स्त्री०) दांवनी देखो।

दावप (हिं० पु०) दावं वनवह्निं पाति पा-क। पुरुषभेद, एक मनुष्यका नाम।

दावरा (हिं० पु०) धावरा नामका पेड़।

दावसु (सं० पु०) अङ्गिरा मुनिके एक पुत्रका नाम।

दावा (हिं० स्त्री०) वनके बांस तथा पेड़ोंकी डालियोंकी रगड़से उत्पन्न आग

दावा (अ० पु०) १ किसी वस्तु पर अधिकार प्रगट करनेका काम, किसी चीज पर हक जाहिर करना। २ वह मुकदमा जो किसीके विरुद्ध जायदाद वा रुपये पैसेके लिए चलाया जाता है। ३ स्वत्व, हक। ४ अभियोग, नालिश। ५ प्रताप, अधिकार, जोर। ६ दृढ़तापूर्वक कथन, जोरके साथ कहना। ७ दृढ़ता।

दावागीर (अ० पु०) वह जो अपना दावा करता हो अपना हक जतानेवाला।

दावाग्नि (सं॰ पु॰) दावोद्भवोऽग्निः मध्यलो॰ कर्मधा॰। वनोद्भव अग्नि, वनमें लगनेवाली आग।

दावाग्निमोचनवन—एक वनका नाम। इस वनमें श्रीकृष्ण दावाग्नि भक्षण कर गये थे।

दावात (अ॰ स्त्री॰) मसियात, स्याही रखनेका बरतन।

दावादार (अ॰ पु॰) दावा करनेवाला, अपना हक जतानेवाला।

दावानल (सं॰ पु॰) दावोद्भवोऽनलः। दावाग्नि, वन-आग।

दावानलकुण्ड—कुण्डविशेष, एक कुंड जो दावाग्निमोचनवनमें अवस्थित है।

दाविक (सं॰ त्रि॰) देविकायां भवः अण्, ततो आद्य-चो आत् (देविका शिंशपेति। पा ७।३।१) देविकानदी-सम्भव, जो देविकानदोमें होता है।

दाविककूल (सं॰ त्रि॰) देविकाकूले भवः अण् आद्य चो आत्। देविकाकूलोद्भव, जो देविकानदीके किनारे होता है।

दाविनी (सं॰ स्त्री॰) १ बिजली। २ एक गहना जिसे स्त्रियां माथे पर पहनती है।

दावी (हिं॰ पु॰) धवका पेड़।

दाश (सं॰ पु॰) दशति हिनस्ति मत्स्यान् दश-ट, नस्य आत्व (दंशाश्व। उण ५।११) १ धीवर, केवट, मछुवाहा। निषाद पुरुष और आयोगव स्त्रीसे उत्पन्न व्यक्तिको दाश कहते हैं। ये नौका बनाते है और कैवर्त या केवट भी कहलाते है। २ भृत्य, नौकर।

दाशक (सं॰ पु॰) दाश-स्वार्थे कन्। दाश धीवर।

दाशग्राम (सं॰ पु॰) दाशप्रधानो ग्रामः। धीवर प्रधान ग्राम, वह गाँव जिसमें धीवरोंको ही चलती बनती है।

दाशग्रामिक (सं॰ त्रि॰) दाश-ग्राम-ठञ्। दाशग्रामके निकट देशादि।

दाशतयो (सं॰ त्रि॰) दश-अवयवा अस्य तयप् ततः स्वार्थे-ण, स्त्रियां ङीप्। दशावयव ऋग्वेदसंहिता।

दाशनन्दिनी (सं॰ स्त्री॰) दाशस्य नन्दिनी। धीवरकन्या, व्यासको माता, सत्यवती।

दाशपुर (सं॰ पु॰ क्ली॰) दाशान् धीवरान् पूरयति पूर-अण्। १ कैवर्तमुस्तक, एक प्रकारका मोथा। २ धीवरोंकी बस्ती।

दाशफली (सं॰ स्त्री॰) दाशप्रियं फलं यस्याः ङीप्। औषधिभेद, एक प्रकारकी दवा।

दाशमेय (सं॰ पु॰) देशभेद, एक देश जो उत्तर दिशामें अवस्थित है।

दाशरथ (सं॰ पु॰) दशरथस्येदं अण्। श्रीरामचन्द्र। दाशरथिः श्रीरामस्येदं अण्। (त्रि॰) २ दाशरथि संबन्धीय।

दाशरथि (सं॰ पु॰। दश रथस्यापत्यं अत इञ्। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र आदि।

दाशरथि राय (दाशराय नामसे प्रसिद्ध)—बङ्गदेशके एक विख्यात कवि। १८०४ ई॰में इनका जन्म हुआ था। बङ्गला साहित्यको इन्होंने खूब उन्नति कर डाली थी। ये राढोय ब्राह्मण थे; वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत काटोया-के निकट बाँदमुडा नामक ग्राममें इनका पैतृकवास था। पाटुलीके निकटवर्ती पोला नामक ग्राममें अपने नानाके यहाँ रह कर इन्होंने पढना लिखना सीखा था। पीछे ये अंगरेजोंकी नीलकी कोठीमें किरानीका काम करके अपना गुजारा करने लगे। बचपनसे ही इन्हें गाने बजानेका पूरा शौक था।

इस समय पोलाग्राममें अक्षय कटानी (अकाबाई) नामक नृत्य-गीत व्यवसायिनी एक नीच जातिकी स्त्री रहती थी। उसके गाने बजाने पर मोहित हो कर दाशरथिरायका उसके साथ गाढ़ा प्रेम हो गया था।

कुछ दिन बाद अकबाईने एक उस्तादो कविका दल संगठन किया। एक दिन दाशरथिने एक सङ्गीतसंग्राममें प्रतिपक्षसे गाली गलौज सुनी, तभीसे इन्होंने प्रतिज्ञा करके कविका दल छोड़ दिया। कविदलमें आनेके पहले विषयकर्मका परित्याग कर दिया था।

इनकी बनाई हुई अनेक कविताएं और छन्द हैं। १७७९ शक (१८५६ ई॰) को ५२ वर्षकी अवस्थामें आपका देहान्त हुआ। उनके एक भी पुत्र न था, कन्या एक थी। प्रसन्नमयी नामकी उनकी स्त्री अनेक दिन तक जीवित रहीं। रामप्रसादके जैसा इनका गान मधुर और चित्ताकर्षक होता था। आज भी बहुतसे लोग बड़ी चाहसे इनके गानका सुर सीखते है। कृत्तिवास, काशीदास देवलीला लिख कर जिस प्रकार बङ्गालकी

जनताके भक्तिभाजन हुए हैं, दाशरथिराय भी उसी प्रकार वङ्गालके आबालवृद्धवनिताके आनन्दके लिए सहज नूतनरूप सङ्गीतामोद प्रदान कर सभीके प्रीतिभाजन हो गये हैं।

दाशराज्ञ (सं० त्रि०) दशानां राज्ञां इदं तद्धितार्थ द्विगो अण्_ लपधालोपः। दशराजा सम्बन्धी।

दशरात्रिक (सं० पु०) दशरात्रेण निर्वृत्तः ठञ्_। दश-रात्र साध्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो दश दिनोंमें समाप्त होता है। (त्रि०) दशरात्रस्येदं ठञ्_। २ दश-रात्र सम्बन्धी।

दाशार्ण (सं० पु०) दशार्ण स्वार्थे अण्_। १ दशार्ण-देश। सोऽभिजनोऽस्य तस्य राजा वा अण्_। २ पित्रादि क्रमसे दशार्ण देशवासी। ३ दशार्ण देशके राजा।

दाशार्ह (सं० पु०) दशार्हस्य गोत्रापत्यं शिवादित्वात् अण्_। यदुवंशीय कृष्णादि। दशार्हस्तद्वाचकशब्दोऽ-स्त्यत्र अध्याये अनुवाके वा अण्_। २ आयुधजीविसंघ-भेद। ३ यदुवंशीय राजा।

दाशाश्वमेध (सं० पु०) दशाश्वमेध-अण्_। दशाश्वमेध सम्बन्धीय।

दाशु (सं० त्रि०) दाश दाने उन्। १ दाता, देनेवाला। २ दत्त, जो दिया गया हो।

दाशुरि (सं० त्रि०) दाश हिंसने उरिन्। हिंसक, मारनेवाला।

दाशेय (सं० पु० स्त्री०) दाश्या धीवर्या अपत्यं ढक्_। १ धीवरका अपत्य। स्त्रियां ङीप्_। २ व्यासकी माता सत्यवती।

दाशेर (सं० पु०-स्त्री०) दास्या अपत्यं क्षुद्रादित्वात् ढक्_। धीवरकी सन्तति।

दाशेरक (सं० पु०) दाशेरप्रधानः देशः संज्ञायां कन्। १ मरुभूदेश, मारवाड़। २ मरुभूदेशके राजा। ३ उक्त देशका निवासी।

दाशौदनिक (सं० पु०) दश ओदना यत्र यज्ञे तस्य व्याख्यानो ग्रन्थः ठञ्_। १ दशौदन यज्ञव्याख्यान ग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें दशौदन यज्ञका विषय लिखा हो। दशौदन यज्ञस्य दक्षिणा यज्ञाख्यत्वात् ठञ्। २ दशौदन यज्ञकी दक्षिणा।

दाश्त (फा० स्त्री०) पालन पोषण, परवरिश।

दाश्य (सं० त्रि०) दश-क दशस्य दंशकस्य अदूरदेशादि सङ्काशा० ण्य। दंशकके अदूर देशादि।

दाश्व (सं० त्रि०) दाश वन् बाहु० इड़भावः। दाता, दानी।

दाश्वस् (सं० त्रि०) दाश्व-दाने क्वसु (दाश्वान् साह्वान-मीढ्वांश्च। पा ६।१।१२) इति सूत्रेण निपातनात् साधु। १ दत्तवत्, जो दिया गया हो। २ हिंसितवत्, जो हिंसा की गई हो।

दास (सं० पु०) दसतीति दसि-ट्, नस्य च आत् (दंसेष्टष्टनौ। उण् ५।१०)। १ ज्ञातात्मा, आत्मज्ञानी। २ शूद्र। ३ धीवर, मछुआ। स्त्रियां ङीष्। दासते भृतिरस्मै दासति ददात्यङ्गं स्वामिने उपचाराय वा दास-अच्। ४ वह जिसने अपना जीवन स्वामीकी सेवामें लगा दिया हो; भृत्य, नौकर। पर्याय—दासेर, दाशेय, गोप्यक, चेटक, नियोज्य, किङ्कर, प्रेष्य, भुजिष्य, परिचारक, प्रेष्य, प्रेष, प्रैष परिकर्मा, परिचर, सहाय, उपस्थाता, सेवक, अभिसर, अनुग। ५ शूद्रोंको एक उपाधि जो उनके नामके अन्तमें लगाई जाती है।

ब्राह्मणोंके नामके आगे शर्म्मन्, क्षत्रियोंके वर्मन्, वैश्योंके गुप्त और शूद्रोंके नामके आगे दास लगाया जाता है। दास दाने सम्प्रदाने घञ्। ६ दानमात्र।

जो अपनी आत्माको दूसरेके लिये दान करता है, उसे दास कहते हैं। हिन्दू धर्म्मशास्त्रमें दासके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं। ब्राह्मण छोड़ कर क्षत्रियादि तीन वर्ण दास हो सकते हैं।

"त्रिषु वर्णेषु विज्ञेयं दास्यं विप्रस्य न क्वचित्॥"

(स्मृतिचं०)

तीनों वर्णोंमें दासत्वका विषय समझना चाहिये। ब्राह्मण सवर्णके यहां भी दास नहीं हो सकते, यदि लोभवश हो भी जांय, तो उन्हें हीनकर्म कदापि नहीं करना चाहिये। (कात्यायन)

फिर मनुमें लिखा है, कि यदि कोई ब्राह्मण लोभवश संस्कृत द्विजको अपना दास बनावे, तो राजा उसे दण्ड दें।

किन्तु शूद्रोंको दास्यकर्ममें नियुक्त करनेमें कोई दोष

नहीं है। क्योंकि सेवा-टहल करनेके लिये उसकी सृष्टि हुई है। दास पन्द्रह प्रकारके माने गये हैं —गृहजात अर्थात् जो अपने घरमें दासोके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो, क्रीत अर्थात् मोल लिया हुआ, दायमें मिला हुआ, अना-कालभृत अर्थात् दुर्भिक्षमें पाला हुआ, आहित अर्थात् जो स्वामीसे इकट्ठा धन ले कर उसे सेवा द्वारा चुकाता हो, ऋणदास अर्थात् जो ऋण ले कर दासत्वके बन्धनमें पड़ा हो, युद्धप्राप्त जिसे लड़ाईमें जीता हो, पणमें जित जिसे जुआमें जीता हो स्वयं उपागत जो अपनी राजी खुशीसे दासत्व स्वीकार करने आया हो, प्रव्रज्यावसित अर्थात् जो संन्याससे पतित हुआ हो, क्षत अर्थात् इतने दिनों तक आपका दास होऊंगा, इस तरह जो आया हो, भक्तदास, वड़वाहृत (गृहदासीका नाम वड़वा है उसीके लोभमें जो आया हो अर्थात् उससे विवाह कर दासत्व कर्ममें नियुक्त होनेको वड़वाहृत कहते हैं) और आत्मविक्रेता, जिसने अपनेको बेच दिया हो। (नारद)

जो दास अपने प्रभुको प्राणपणसे रक्षा करता हैं, प्रभु उसे पुत्रके समान प्रतिपालन करे और पीछे वह दास दासत्वसे मुक्त हो जाता है। (स्मृति०)

जो आत्मविक्रेता है अर्थात् कुछ रुपया ले कर अपने को बिका गया है, उसे सबसे नीच दास समझना चाहिये। यह आत्मविक्रेता स्वामीके प्रसादसे बिना अर्थात् स्वामीको खुश किये बिना कभी दासत्वसे मुक्त नहीं हो सकता। (स्मृति०)

शूद्र स्वामीसे विमुक्त होने पर भी दासत्वसे मुक्त नहीं हो सकता हैं। दासत्वकर्म उसका स्वाभाविक है। इसी कारण कोई उसे इस कार्यसे विमुक्त नहीं कर सकता।

मनुने सात प्रकारका दास बतलाया है—ध्वजाहृत, अर्थात् जिसे युद्धमें जीत कर लाया हो, भक्तदास अर्थात् जो केवल भात या भोजन पर रखा गया हो, गृहज अर्थात् घरकी दासीका पुत्र, क्रीत अर्थात् जिसे मोल लिया हो, दत्तिम अर्थात् जो दूसरेसे दिया गया हो, दण्डदास अर्थात् राजकृत दण्डशुद्धिके लिये जिसने दासत्व स्वीकार किया हो। (मनु ८।४१५)

ये सब दास जो कुछ धन उपार्जन करेंगे वह उनका नहीं वरन् उनके स्वामीका होगा। मनुका मत है, कि ब्राह्मण विस्रब्धचित्तसे दासशूद्रका धन ले सकते हैं, क्योंकि शूद्रका अपना कुछ भी नहीं है।

ये सब दास यदि अन्याय काम करें और प्रभुकी आज्ञा पालन न करे, तो उन्हें दण्ड देना उचित है। मनुके मतानुसार स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य और सहोदर छोटा भाई ये सब यदि कुछ अपराध कर बैठें, तो पतली रस्सीसे अथवा वेणुदलसे उन्हें दण्ड देना चाहिये।

रस्सीसे केवल पीठ आघात करे, भूल कर भी उत्तम अङ्ग पर प्रहार न करे। यदि मालिक बहुत गुस्सा कर बुरी तरहसे प्रहार करे तो वह चोरकी तरह राजदण्ड-से दण्डित होता है। (मनु ८।२९९ ३००) बलपूर्वक जिसे दासकर्ममें नियुक्त किया हो और चोरने चोरी करके जिसे दासके निमित्त बेचा हो वह पूर्वोक्त कारण छोड़ कर भी दासत्वसे मुक्त हो सकता है। (याज्ञवल्क्य)

दासोंके लिये दो तरहके काम बतलाये गये हैं शुभ और अशुभ। दरवाजे पर झाड़ू देना, मल-मूत्र उठाना, जूठा धोना आदि बुरे कर्म माने गये हैं और शेष सभी कर्म शुभ है। (मिताक्षराधृत नारद)

ब्राह्मणका दास क्षत्रिय, क्षत्रियका वैश्य और शूद्र सभीका दास है।

७ निज गोत्रमें संस्कार व्यतीत गृहीतदत्तक, जिस बालकका पितृगोत्रमें चूड़ादि संस्कार किया गया हो, पीछे उस बालकको यदि कोई दत्तकरूपसे ग्रहण करे, तो उसे दास कहते है। ८ वृत्रासुर। ९ दस्यु। दस्यु देखो। स्त्रियां ङीप्। दासी। (त्रि०) दास उपक्षेपे अच्। १० उपक्षेपक, उपेक्षा या घृणा करनेवाला।

दास—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने अनेक सुमधुर कविताएं रची है। उदाहरणार्थ एक नीचे दी जाती है।

"श्रीगोकुल नाथ निज वपु धरो।
भक्तहेत प्रकटे श्रीवल्लभ जगते तिमिर हर्यो॥
नन्दनन्दन भये तब गिरि गोप ब्रज उद्धर्यो।
नाथ विट्ठल सुवन ह्वैके परमहित अनुसर्यो॥
अति अगाध अपार भवनिधि तारि अपनो कर्यो।
दास माधव आस इसे चरण शरणों पर्यो॥

दास अनन्त—हिन्दी-ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने "रैदासकी परचई" और "कबीर साहिबकी परचई" इन दो ग्रन्थों-

को बनाया है। ये किस समयमें विद्यमान थे, उसका ठीक ठीक पता नहीं लगता।

दासक (सं० पु०) दास-स्वार्थे क। १ दास, सेवक। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

दासकायन (सं० पु० स्त्री०) दासकस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फक्। दासक ऋषिका गोत्रापत्य।

दास गोविन्द—एक भक्त और हिन्दी-कवि।

दासता (सं० स्त्री०) दासत्व, सेवावृत्ति।

दासत्व (सं० क्ली०) दासस्य भावं दास त्वतलौ भावे इति त्व। दासका कर्म, पराधीनता, गुलामी।

दास दलसिंह—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सन् १८८० ई०में "दलसिंहानन्दप्रकाश" नामक एक पुस्तक लिखी है।

दासनन्दिनी (सं० स्त्री०) दासस्य धीवरस्य नन्दिनी। सत्यवती, धीवर-कन्या।

दासपत्नी (सं० स्त्री०) दासयति दास उपक्षेपे अच् दासी इत्यासुरः पतिर्यासां। १ अप., जग। दासस्य पत्नी। २ दासकी स्त्री।

दासपन (हिं० पु०) दासत्व, सेवाकर्म।

दासपुर (सं० क्ली०) कैवर्त्तमुस्तक, एक प्रकारका मोथा।

दासमित्र (सं० क्ली०) दासस्य मित्रं ६-तत्। दासका मित्र।

दासमित्रि (सं० पु० स्त्री०) दासमित्रस्य अपत्यं इञ्। दास मित्रका अपत्य।

दासमीय (सं० त्रि०) दशमे देशभेदे भवः, वा दासं शूद्रं मिमते मानयन्ति मैथूनार्थिन्यः ता दासम्यस्तासु भवः छ। १ दसमदेश भव, दसम देशमें उत्पन्न। (पु०) २ दसमदेशका निवासी।

दासमेय (सं० पु०) पुराणोद्भव जनपदविशेष, पुराणके अनुसार एक प्राचीन जनपद।

दासर—कर्णाटक प्रदेशवासी जातिभेद। यह जाति कवलिगर वा कैवर्त्त जातिको एक शाखा मानी जाती है। इनका कहना है कि ये लोग तैलङ्गसे कर्णाटमें आ कर बस गये हैं।

कर्णाटक प्रदेशके बीजापुर अञ्चलमें बहुतसे दासर देखे जाते हैं। इनकी दो श्रेणियां हैं, तिरमल दासर और गन्धदासर। दोनों श्रेणीमें केवल खान पान ही चलता है, विवाह नहीं। तिरमलदासरकी स्त्रियोंको अपनी स्वतन्त्रता रहती है, वे वेश्यावृत्ति और नाच गान किया करती है, इसमें पुरुषइतलिक भी आपत्ति नहीं करते। किन्तु गन्धदासरमें यह कुप्रथा प्रचलित नहीं है। इस जातिमें बारह उपाधियां हैं, विङ्गि, यवरु, चिनमवरु, चिन्ताकालवरु, इत्यादि।

इन लोगोंका आचार व्यवहार कुछ कवलिगर वा धीवरसे मिलता जुलता है। किन्तु ये लोग उनसे कुछ अधिक असभ्य और परिश्रमी मालूम पड़ते हैं। इन लोगोंकी भाषा कनाड़ी और तेलुगु है।

ये लोग गांवके बाहर अस्थायी घर बना कर रहते हैं। हिन्दू होने पर भी मुसलमानों पर्व मोहर्रममें हसन होसेनके उद्देशसे बकरेको बलि देते हैं। किन्तु गो-मांस कोई नहीं खाता। सभी धर्म कर्म ब्राह्मणोंसे कराते हैं। मारुति इनके उपास्यदेवता और नागपञ्चमी, दशहरा तथा गणेशचतुर्थी इनके प्रधान पर्व हैं। इन लोगोंकी विवाहपद्धति चिसाड़ी और कर्णाटकको कैवर्त जाति सी है।

दासरङ्गी—हिन्दीके एक विख्यात कवि। इनकी कविता लालित्यपूर्ण होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे दी गई है,—

> मोहे बोरी सोई रंगमें कान्हा और कीन्हों जोई मनमाना।
> मिलवत मइको सब दिन जाना कर करि हूं मैं कौन बहाना।
> कौन अपना कौन बिगनारखोंगी जाकी काना।
> दासरंगी है श्यामके रंगमें वाही भा रंग न आना॥

दासराज—एक अनार्य राजा। इनकी पालित कन्यासे महाराज शान्तनुका विवाह हुआ था।

दासवेश (सं० पु०) दासस्य दस्योर्वेशः ६-तत्। दस्युनाश, डकैतोंका सत्यानाश।

दासा (हिं० पु०) १ वह बांध या पुश्ता जो दीवारसे सटा कर उठाया जाता है। यह कुछ ऊंचा होता है। और इस पर चीज वस्तु भी रख सकते हैं। २ वह चबूतरा जो आंगनेके चारों ओर दीवारसे सटा कर उठाया जाता है। यह आंगनके पानीको घर या दालानमें जानेसे

रोकता है। ३ वह पत्थर जो दीवारकी कुरसीके ऊपर बैठाया जाता है। ४ वह लकड़ो या पत्थर जो दरवाजेके ऊपर दीवारके आरपार रहता है। ५ हंसिया।

दासानुदास (सं॰ पु॰) सेवकका सेवक, बहुत तुच्छ सेवक। यह शब्द नम्रता और शिष्टता प्रगट करनेमें व्यवहृत होता है।

दासिका (सं॰ स्त्री॰) दासति ददाति आत्मानमिति दास दाने खुल्, टाप् अत इत्वं। दासी, लौंडी।

दासी (सं॰ स्त्री॰) दास गौरादि॰ ङीष्। १ दासकी पत्नी, नीच जातिकी स्त्री। २ परिचारिका, टहलनी लौंड़ी। ३ शूद्र और कैवर्त्तकी भार्या, धीवर या शूद्रकी स्त्री। ४ धोबरी, मलाहिन। ५ काकजङ्घा। ६ नीलाम्लान, काला-कारोंठा नामका पौधा। ७ नीलझिण्टी, नीली कटसरैया। ८ पीतझिण्टी, पीली कटसरैया। ९ वेदी।

दासीत्व (सं॰ क्ली॰) दास्याः भावः दासी-त्व। दासीका कर्म, सेवाहत्ति।

दासीदास—एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

> "दोऊ सुघर लाल होरी खेलत नीके समाज।
> इत श्रीराधारानी गोरी उत सावरे ब्रजराज॥
> नाना वसन आभूषण पहनके युगल अंग छवि छाज।
> राजत है गौरश्याम अंग द्युति कोटि कोटि रतिराज॥
> गोपी गोप सब आए बन बन विविध मण्डली साज।
> चित्त उमंग सब गावत नाचत बाजत एक स्वर साज॥
> डारत रंग गुलाब उड़ावत नेक न आवत लाज।
> कुलकी कान मान गुरुजनकी मन चितसों गई भाज॥
> लखि लखि हंस हंस करत परस्पर मनमाने सब काज।
> नर नारी सब यह सुख विलसत कोऊ अटा कोऊ छाज॥
> है सुनरी सिर मन्दिर मोरी है देव सिरताज।
> दासीदास हिय डर निरन्तर यहि छबि सों विराज॥"

दासीपाद (सं॰ त्रि॰) दास्याः पाद इव पादो यस्य, हस्त्यादित्वात् नान्त्य लोपः। दासतुल्य पादयुक्त, जिसके पाँव दासके जैसे हों।

दासीभारादि (सं॰ पु॰) पाणिनीउक्त शब्दगणविशेष। दासीभार, देवहूति, देवभीति, वसुनीति, औषधि और चन्द्रमस ये ही दासीभारादिगण है।

दासीसभ (सं॰ क्ली॰) दासीनां सभा तती क्लीवलिङ्गत्वं। (अशाला च। पा २।४।२४) दासीकी सभा, दासियोंका झुण्ड।

दासेय (सं॰ पु॰) दास-स्वार्थे ढक्। १ दास, गुलाम-ज्यादा। २ कैवर्त्त, धीवर। दासस्य उत्पन्नं इति फक्। (त्रि॰) २ दासोत्पन्न, जो दाससे पैदा हुआ हो।

दासेयी (सं॰ स्त्री॰) दासेय स्त्रियां ङीप्। सत्यवती, व्यासकी माता।

दासेर (सं॰ पु॰) दास्या अपत्यं ढ्रक्। १ दास, गुलाम। २ कैवर्त्त, धीवर। ३ उष्ट्र, ऊंट। ४ दासिकापत्य, दासीकी सन्तति।

दासेरक (सं॰ पु॰) दासेर-स्वार्थे कन्। १ उष्ट्र, ऊंट। २ दासीसुत, दासीपुत्र। ३ जातिभेद, एक जातिका नाम।

दास्तान (फा॰ स्त्री॰) १ वृत्तान्त। २ हाल, कथा। ३ वर्णन बयान।

दास्य (सं॰ क्ली॰) दासस्य भावः दास-ष्यञ्। भक्तिके नव भेदोंमेंसे एक।

> "अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च।
> स्मरणं कीर्तनं शश्वत् गुणश्रवणमीप्सित॥
> निवेदनं स्वस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणं।"
> (ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिख॰) भक्ति देखो।

दास्यमान (सं॰ त्रि॰) दा कर्मणि स्यमानः। भविष्य-दान सम्बन्धी वस्तु, जो दिया जानेवाला हो।

दास्यादि (सं॰ पु॰) भैषज्यरत्नावलिके अनुसार पाचन औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—नीली, कठसरैया, देवदारु, इन्द्रयव, मजीठ, श्यामालता, अकवन, कचूर, सोंठ, खसकी जड़, चिरायता, गजपिप्पली, बलाडूमर, पद्मकाष्ठ, धनिया, मोथा, सरलकाष्ठ, सोहिंजनकी छाल, गुलशकरी, भटकटैया, खेतपापड़, कुशकी जड़, कुटकी, अनन्तमूल, गुड़ूच और कुट सब मिला कर २ तोला, इसे ३२ तोले जलमें उबालते हैं, जब ८ तोला जल बच जाय, तो उसे उतार लेते हैं। आधा तोला मधुके साथ इसका सेवन करनेसे धातुस्थ विषमज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, ऐकाहिक और द्व्याहिक, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, वमिके साथ ज्वर, वयसे उत्पन्न ज्वर, सततक, चातुर्थक आदि ज्वर अति शीघ्र प्रशमित हो जाते हैं।

दास्र (सं० क्लो०) दस्रो देवतेऽस्य अण्‌। अश्विनोनक्षत्र।
दाह (सं० पु०) दह भावे घञ्‌। १ दहन, भस्मीकरण, जलानेकी क्रिया या भाव। २ शव जलानेकी क्रिया, मुर्दा फूंकनेका काम।

मृत्युके बाद शवदेह जलानी पड़ती है। इसका विधान शुद्धितत्त्वमें इस प्रकार लिखा है,—मृत्युके बाद पुत्रादि मृतशरीरको श्मशानमें ले जा कर रखें और स्नान करके पिण्डदानके लिये अन्न पकावें। फिर मृतकके शरीरमें घी मल कर उसे निम्नलिखित मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करावें। बाद नए वस्त्रमें लपेटें। उस जगह पर कुश बिछा कर मृतकका मस्तक दक्षिणकी ओर घुमा कर रखना होता है।

मन्त्र—ओं गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः।
कुरुक्षेत्रञ्च गंगां च यमुनां च सरिद्वरां॥
कौशिकी चन्द्रभागा च सर्वपापप्रणाशिनीं।
भद्रावकाशां गण्डकीं सरयूं पनसां तथा॥
वैनवं च वराहं च तीर्थं पिण्डारकं तथा।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरां स्तथा॥"

इन सब पुण्य तीर्थोंका विषय स्मरण कर अर्थात्‌ इसका पाठ कर शवको स्नान करावें, बाद एक दूसरा नवीन वस्त्र पहना कर गलेमें उपवीत और उत्तरीय डाल दें। अनन्तर आंख, कान, नाक, मुंह इन सात छेदोंमें थोड़ा थोड़ा सोना डालें।

इतना हो चुकने पर अग्निदाता चिताभूमिमें जा कर पिण्डदान करें और जमीन पर थोड़ा गोबर गिरा कर प्राचीनावीत हो (जनेऊको दाहिने कंधे पर डाल कर) वायाँ घुटना टेक कर बैठे। बाद 'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिसद' यह मन्त्र पढ़ कर कुशमूल द्वारा एक रेखा खींचे। फिर उस रेखा पर कुश बिछावे और 'ओं एहि प्रेत सौम्य गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिर्देह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं नियच्छ' इस मन्त्रसे आह्वान करें। तदनन्तर सतिल जलपात्र बाएं हाथसे दाहिने हाथमें ले कर 'ओं अद्य अमुक गोत्र प्रेत अमुक देवशर्मन्‌ अवनेनिक्ष्व' इस मन्त्रसे जलको कुश पर गिरा दें। इसके बाद तिल सहित पिण्ड ले कर कुश पर विसर्जित करे। जब इतना कृत्य हो जाय, तब पुत्रादि चिता तैयार करें और मुर्दैको उस पर दक्षिण ओर सिर करके लेटा दें। जो सामवेदी हों वे शवका मस्तक उत्तरकी ओर रखें। पुरुष शवको पट करके और स्त्री शवको चित करके चिता पर लेटा देनेका विधान है। फिर अग्निदाता अग्नि ले कर 'एनं दहन्तु' अग्नि इसे दग्ध करें, ऐसा कहे।

"ओं कृत्वा तु दुष्करं कर्म जानता वाप्यजानता।
मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पंचत्वमागतं॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतं।
दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान्‌ लोकान्‌ स गच्छतु॥"

इस मन्त्रका पाठ कर तीन बार अग्नि प्रदक्षिण करे और दक्षिण ओर अपना मुंह करके शवके मस्तकको ओर आग लगा दे। दाह कर्म समाप्त हो जाने पर प्रादेशप्रमाणकी सात लकड़ियां हाथमें ले कर सात बार प्रदक्षिण करे और प्रत्येक प्रदक्षिणमें एक एक लकड़ी चितामें डालता जाय। जब शव जल जाय, तब 'क्रव्यादाय नमस्तुभ्य" यह मन्त्र पढ़ कर एक बांससे चिता पर सात बार प्रहार करे जिससे कपाल फूट जाय। इतना करके चिताग्निको ओर ताके बिना, वामभाग होते हुए नदीमें वा गङ्गामें स्नान करनेके लिये सबके सब चले जाँय। शव सम्बन्धीय वस्त्रादि श्मशानवासी चाण्डालोंके होते हैं। सूतिका और रजस्वला अवस्थामें स्त्रियोंकी मृत्यु होनेसे 'आपोहिष्ठेय वामदेव्यादि' मन्त्र द्वारा आवाहन कर उसे स्नान करावे और तब दाह कर्म करे। गर्भवती स्त्रीको मृत्यु होने पर दूसरी जगह गर्भ निःसारित करके दाह करना होता है। गर्भवती स्त्रीका गर्भ निःसारित किए बिना दाह करना विशेष दोषावह और अधर्मजनक है।

अनन्तर जलके समीप जा अग्निदाता बड़ोंको आगे करके जलमें प्रवेश करे। स्नान कर चुकनेके बाद वस्त्रादि पहन कर प्राचीनावीत हो दक्षिणमुखमें प्रेतके उद्देशसे तर्पण करे। जो सामवेदी हैं, उन्हें आचमन करके 'ओं अमुकगोत्रं प्रेतं अमुक देवशर्माणं तर्पयामि' इस मन्त्रसे तर्पण करना चाहिये और जो यजुर्वेदी हैं, उन्हें इस मन्त्रसे, 'ओं अमुकगोत्र प्रेत अमुक देवशर्मं एतत्ते तिलोदकं तृप्यस्व' तीन बार तर्पण करनेमें

बंधुर्त फल लिखा है, एक बार करनेसे भी काम चल सकता है। तर्पण करनेके बाद फिरसे स्नान करके अग्निदाताको आगे किए सबके सब जलाशयसे बाहर हो जांय और तृणचेल पर बैठ कर इस प्रकार चिन्ता करें—

इस संसारमें मनुष्य कदलीस्तम्भके जैसा निःसार हैं, जीवन विद्युद्वत् चञ्चल है, सभी वस्तु क्षणस्थायी हैं, इनमें सारको कल्पना करना मूढ़ोंका काम है। सभी अपने अपने कर्मोंका भोग कर देहत्याग करते हैं और करेंगे, इसमें विलाप करनेका क्या प्रयोजन? पृथ्वी, समुद्र, देवता जब इन लोगोंका भी नाश है, तब मानवकी विषयमें चिन्ता ही क्या? इसके बाद घर आ कर नीमके पत्तेको दांतोंसे काट कर "शमी पापं शमयन्तु" इस मन्त्रसे शमीका स्पर्श करें। पीछे 'अश्मेव स्थिरोभूयांस' यह कह कर पाद द्वारा पत्थरका और 'अग्निर्नः शर्म यच्छतु' कह कर अग्निका स्पर्श करनेको लिखा है। बाद गो, छाग, गोमय, उदक और गौरसर्षप छू कर घरमें प्रवेश करना चाहिये।

दिनको यदि दाह करने जांय, तो रातको और यदि रातको जायं, तो दिनको लौट आवें। यदि ऐसा न हो सके, तो ब्राह्मणको अनुमति ले कर किसी समय लौट सकते हैं। (शुद्धितत्व) अन्त्येष्टि देखो।

२ कुपित पित्तज देहसन्तापभेद, एक रोग जिसमें शरीरमें 'जलन' मालूम होती है; प्यास लगती है और कण्ठ सूखता है।

भावप्रकाशमें दाहरोग सात प्रकारका लिखा है। इनमेंसे पित्तजन्य दाहरोगमें पैत्तिक ज्वरके सभी लक्षण दीख पड़ते हैं, प्रभेद इतना ही है, कि पित्तज्वरमें शरीरकी ग्लानि और आमाशय दूषित होता है, इस रोगमें वैसा नहीं होता। इसका भी पित्तज ज्वरके जैसा प्रतिविधान करना चाहिये।

रक्तजन्य दाह—रक्तजन्य दाह रोगमें सारा शरीरका रक्त बिगड़ कर दाह उत्पन्न करता है, रोगी दाहसे इतना पीड़ित होता है, कि उसका समूचा शरीर मानो निकटस्थ प्रज्वलित अग्निसे तापित हो रहा है, ऐसा मालूम पड़ता है। प्यास अधिक लगती है, शरीर और दोनों नेत्र ताम्रवर्णसे हो जाते हैं, मुखसे रक्तसी गन्ध निकलती है।

रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह—शस्त्रादिसे क्षत होने पर उस क्षतसे रक्तस्राव होता है और कोष्ठप्रदेश जब रक्तसे भर जाता है, तब उसे रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह कहते हैं।

मद्यज दाह—मद्यपानजनित उष्मा, पित्त और रक्तके साथ मिल और बढ़ कर जब चर्ममें आश्रय लेती है, तब घोरतर दाहरोग उत्पन्न होता है इसीको मद्यज दाह कहते हैं, पित्तके कुपित होनेसे जैसा प्रतिविधान आवश्यक है, वैसा ही इसका प्रतिविधान करना होता है।

तृष्णानिरोधज दाह—जो अबोध मनुष्य प्यास लगने पर जल नहीं पीता, उसकी रसधातुके क्षीण हो जाने पर भी पित्तकी उष्मा बढ़ती है। वह पित्तोष्मा शरीरकी भीतर और बाहर दाह उत्पन्न करती है। इस रोगमें रोगीका गला, तालु और ओष्ठ सूख जाता है।

धातुक्षयज दाह—धातुक्षयजन्य दाह रोगमें मूर्छा आती है, प्यास लगती है, स्वरभङ्ग होता है, और काम काज करनेमें जी नहीं लगता। यदि रोगी दाहसे अत्यन्त पीड़ित हो, तो समझना चाहिए कि उसकी मृत्यु निकट पहुंच गई है।

मर्माभिघातज दाह—मस्तक, हृदय और वस्ति आदि मर्मस्थानोंमें आघात पहुंचनेसे जो दाह उत्पन्न होता है, उसीको मर्माभिघातज दाह कहते हैं। इस प्रकारका दाहरोग भी असाध्य है।

असाध्य दाह—सब प्रकारकी दाहरोगियोंके शरीरका यदि बाहरी भाग शीतल और भीतरी भागमें जलन देती हो, तो वैसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। यही दाहरोग असाध्य दाह कहलाता है। इसका प्रतिविधान करना धूलको रस्सी बटनेके समान है।

दाहरोगकी चिकित्सा—शतधौत घृत और जौके सत्तूको मिला कर शरीर पर उसका लेप लगानेसे दाहरोग जाता रहता है।

बेरकी आंठीके गूदेके और आंवलकीको मिल कर उसे कांजी द्वारा पीस कर लेप लगानेसे अथवा कांजी संसिक्त आर्द्र वस्त्र द्वारा सारे शरीरको ढके रखनेसे दाह रोग आरोग्य होता है। खसकी जड़ और रक्तचन्दनको कांजीके साथ पीस कर शरीर पर लगानेसे तथा पद्मपत्र वा कदलीपत्र निर्मित शय्या पर सुला कर चन्दनाक्त जल

सिञ्चित व्यजन द्वारा हवा करनेसे दाहरोग विनष्ट होता है।

तृष्णा और दाहको रोकनेके लिये जलसेचन, अवगाहन और व्यजनानिल सेवन करनेके बदले शीतल जल ही प्रशस्त है।

प्रियङ्गु, लोध, खसकी जड़, सुगन्धबाला, नागकेशर-पत्र और कैवर्त्तमुस्तक इन सबको कालीयक काष्ठ (पीला मुसब्बर) के काढ़ेके साथ पीस कर शरीर पर लगानेसे दाहरोग नष्ट होता है।

सुगन्धवाला, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, रक्तचन्दन और पद्मको एक साथ पीस कर जलमें मिलाते हैं, पीछे उस जल द्वारा एक द्रोणी भर कर उसमें स्नान करनेसे दाहरोग दूर हो जाता है।

प्रस्फुटित पद्मसमन्वित तड़ाग, जलयन्त्र घर (फौवारेका घर) और चन्दनचर्च्चिताङ्गी कामिनी दाहरोगमें विशेष हितकर है। पद्मनिमग्न जल, चीनी मिश्रित जल, चीनी मिश्रित दूध और ईखका रस सेवन करनेसे दाह रोग सदाके लिये जाता रहता है।

रक्तचन्दन, पित्तपापड़, खसकी जड़, सुगन्धबाला, मोथा, पद्ममूल, पद्ममृणाल, सौंफ, धनिया, पद्मकाष्ठ और आँवलको इन सब द्रव्योंसे अर्द्धावशिष्ट क्वाथ प्रस्तुत कर जब वह शीतल हो जाय, तब मधु मिला कर उसे पान करे। इससे अत्यन्त प्रबल दाह भी नष्ट हो जाता है।

६४ सेर तिलतैलको ६४ सेर काँजीके साथ धीमी आँचमें पाक कर शरीर पर लगानेसे दाहज्वर अच्छा हो जाता है। (भावप्रकाश दाहाधिकार)

पान जन्य उष्णता जब पित्तरक्तसे वृद्धि पा कर त्वकमें आश्रय लेती है, तब घोरतर दाह उत्पन्न होता है। ऐसी हालतमें पित्तजन्य दाहके जैसा प्रतिविधान करना चाहिए। इस प्रकारका दाह यदि समृद्धिशाली व्यक्तिके शरीरमें हो, तो चन्दनलेप, शिशिरोदक, शीतलजल, कोमल शय्या, कामिनीसंस्पर्श आदि हितकर है।

पित्तजन्य दाहमें पित्तज्वरके जैसा प्रतिविधान है। प्यास लगने पर यदि पानी न पीए, तो जलीय रसधातु शोष हो कर तेज उत्पन्न होता है। इससे शरीरके भीतरी भागमें जलन देती है; गला, तालु, ओष्ठ और जिह्वा सूख जाती है तथा रोगी काँपने लगता है। ऐसे समयमें तेजको शान्त कर जलीय धातुकी वृद्धि करनी चाहिए। शर्कराको शीतल जल, ईखके रस और मद्यमें डाल कर सेवन करनेसे यह बहुत जल्द आराम हो जाता है। कोष्ठदेशके रक्तपूर्ण होनेसे अन्तर्दाह उपस्थित होता है। धातुक्षय जन्य दाहके उपस्थित होनेसे मूर्च्छा और तृष्णा होती है, स्वर क्षीण होता है, क्रिया शक्तिरहित होती है और शरीर अवसन्न हो जाता है। ऐसी हालतमें रक्तपित्त-सी प्रक्रिया, स्निग्ध और वायुशान्तिकर क्रिया हितकर है। अनाहार, शोक आदि अनेक कारणोंसे दाह उत्पन्न होता है; अभीष्ट विषयके प्राप्त हो जानेसे ही इसकी शान्ति होती है। मर्मस्थानमें अभिघातके कारण जो दाह होता है, वह असाध्य माना जाता है। जिस दाह रोगमें ऊपरसे तो शीतल और भीतरसे जलन है, उसे भी असाध्य समझना चाहिए। (सुश्रुत)

४ जलन, ताप। ५ शोक, सन्ताप, अत्यन्त दुःख, डाह।

दाहक (सं० त्रि०) दहति दह-ण्वुल्। १ दाहकर्त्ता, जलानेवाला। (पु०) २ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ रक्त चित्रक, लाल चीता। ४ अग्नि, आग।

दाहकता (सं० स्त्री०) जलानेका भाव या गुण।

दाहकत्व (सं० पु०) जलानेका भाव।

दाहकर्म (सं० पु०) शवदाहकार्य, मुर्दा फूंकनेका काम।

दाहकाष्ठ (सं० क्ली०) दाहाय यत् काष्ठं। दाहागुरु, अगर जिसे सुगन्धके लिए जलाते हैं।

दाहक्रिया (सं० स्त्री०) शवदाहकर्म, मुर्दा जलानेका काम।

दाहघ्न (सं० क्ली०) दाहं हन्ति हन-टक्। देहदाहनाशक औषधादि।

दाहज्वर (सं० पु०) दाहप्रधानो ज्वरः। गात्रज्वालायुक्त ज्वररोग, वह ज्वर जिसमें शरीरसे बहुत अधिक जलन मालूम हो।

दाहदा (सं० स्त्री०) नागवल्ली लता।

दाहन (सं० स्त्री०) दह-णिच् भावे ल्युट्। १ भस्म करानेकी क्रिया, जलवानेका काम। २ जलानेका काम।

दाहना (हिं० क्रि०) १ भस्म करना, जलाना, फूंकना। २ सन्तप्त करना, दुःख पहुंचाना, सताना।

दाहनागुरु (सं॰ क्लो॰) दाहनस्य दाहनाय अगुरु। दाहगुरु नामक गन्धद्रव्यविशेष, अगर।

दाहनिखास ( सं॰ पु॰ ) सुगन्ध अर्जकवृक्ष।

दाहमय ( सं॰ त्रि॰ ) दाहेन प्रचुरः दाह-मयट्, दाह प्रधान ज्वरादि, वह ज्वर जिसमें अधिक जलन मालूम हो।

दाहसर ( सं॰ पु॰ ) दाहार्थं स्रियते गम्यतेऽस्मिन् सृ-अप्। श्मशान, मुर्दा जलानेका स्थान।

दाहहरण ( सं॰ क्लो॰ ) दाहो ह्रियतेऽनेन हृ ल्युट्-णिच् कर्त्तरि ल्यु वा। वीरणमूल, खस।

दाहा (फा॰ पु॰) १ मुहर्रमके दश दिन। इतने दिनों के बीच ताजिया बनता है और दफन किया जाता है। २ ताजिया।

दाहागुरु (सं॰ क्लो॰) दाहाय यदगुरु। सुगन्धितद्रव्यविशेष, जलानेका अगर। इसका पर्याय—दाहनागुरु, दाहकाष्ठ, धूपागुरु, तैलागुरु, पूर और वनवल्लभ है। इसका गुण—कटु, उष्ण, केशवर्द्धन, वर्णप्रसाधक, केशदोष, विनष्टकारक और सर्वदा सौगन्धविस्तारकारी है।

दाहिन् ( सं॰ त्रि॰ ) दहति दह-णिनि। दाहक, जलानेवाला।

दाहिकाशक्ति ( सं॰ त्रि॰ ) दाहक-स्त्रियां ङीप्। अत इत्वं। दहन करनेकी शक्ति।

दाहिना ( हिं॰ वि॰) १ अपसव्य, दक्षिण, 'बाया' का उलटा। २ जो दहिना हाथ पड़ती हो। ३ अनुकूल, प्रसन्न।

दाहिने (हिं॰ क्रि॰ वि॰ ) दाहिने हाथकी ओर।

दाही ( हिं॰ वि॰ ) दाहिन् देखो।

दाहुक ( सं॰ त्रि॰ ) दह-बाहुलकात् उकन्। दाहक, जलानेवाला।

दाह्य ( सं॰ त्रि॰ ) दह कर्मणि ण्यत्। १ दहनीय, जलाने योग्य।

दिअली ( हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका बहुत छोटा दीया जो मट्टीका बना होता है। २ झूलके नीचेकी हरे रंगकी कटोरी जो कई भागोंमें बटी होती है।

दिआ ( हिं॰ पु॰ ) दीया देखो।

दिआवती ( हिं॰ स्त्री॰ ) दियाबती देखो।

दिआसलाई ( हिं॰ स्त्री॰ ) दियासलाई देखो।

दिउ (द्वीप)-पश्चिम भारतमें पोर्त्तुगीजके अधीन एक द्वीप। यह अक्षा॰ २०॰ ४३' और देशा॰ ७१॰ २' पू॰ काठियावाड़के दक्षिणसीमास्थ एक विस्तीर्ण खाड़ीके दूसरे किनारे अवस्थित है। पूर्व-पश्चिममें इसकी लम्बाई ७ मील और उत्तर दक्षिणमें केवल २ मील है। उत्तरसीमाकी खाड़ीमें छोटी छोटी डोंगी और नावें जाती आती है। इस खाड़ीके रहनेसे यह द्वीप गुजरातसे पृथक् हो गया है। दक्षिण बगलमें रेतीले बालूका पहाड़ हो गया है, इसीके नीचे हो कर समुद्रका जल बहता है।

इस द्वीपके पहाड़ १०० फुटसे अधिक ऊँचे नहीं हैं। इस द्वीपमें जगह जगह नारियलके बगीचे देखनेमें आते हैं। द्वीप छोटा होने पर भी यहां एक बन्दर है। आठ हाथ गहरे जलमें जहाज लंगर डाल कर रह सकता है।

यहांका जलवायु शुष्क और उष्ण है। जमीन अनुर्वर है और अच्छे जलका मिलना दुर्लभ है। कृषिकार्यका भी उतना आयोजन नहीं है। उत्पन्न द्रव्योंमें गेहूँ, कांगनी, बाजरा, नारियल और आमके फल प्रधान है। लोकसंख्या प्रायः १४६१४ है।

द्वीपके पूर्वकोणमें दिउ नगर अवस्थित है जो नवी बन्दरसे पांच मील दूर पड़ता है। एक समय यह नगर वाणिज्य व्यवसायमें विशेष समृद्धिशाली था। उस समय यहां ५०००० लोग वास करते थे। अभी वह पूर्व समृद्धि जाती रही। बहुत दिनोंकी बात नहीं है, कि मोजाम्बिक और भारतके नाना स्थानोंके साथ यहांका वाणिज्य चलता था। नगरके अनेक गृहस्थोंके एक एक बड़ा जलकुण्ड है। वर्षाके समय वे लोग उसमें जल भर रखते हैं।

पहले इस नगरमें बहुतसी सुन्दर और बड़ी बड़ी अट्टालिकायें थीं, अभी उस तरहकी बहुत थोड़ी बच गई है। उनमेंसे सेमालिज गिर्जा उल्लेखयोग्य है। अभी यहां सेण्टफ्रासिस् आश्रम ( वर्त्तमान सैनिक अस्पताल ), सेण्टजन नामक कब्रस्तान आदि भग्नावस्थामें पड़े हैं। यहांकी टकसालमें पहले सब प्रकारकी मुद्रायें प्रस्तुत होती थीं, अभी वैसा नहीं है। इसके अलावा यहां पोर्त्तुगीज गवर्नरका प्रासाद, कारागार और विद्यालय है।

शहरमें १० देवालय और २ मस्जिद देखी जाती हैं। पोर्त्त गीजोंके आनेके पहले यहां बहुतसे हिन्दूतीर्थ और बड़े बड़े देवमन्दिर थे जो पोर्त्तु गीजोंसे तहसनहस कर डाले गये।

दिउ नगर छोड़ कर इसमें और तीन ग्राम लगते हैं,—उत्तरमें बचवारा, दक्षिणमें नगवा और पश्चिममें मोनकवाय। शेषोक्त दो ग्रामोंमें दुर्ग हैं।

कपड़ा बुनना और कपड़ा रंगाना यहांके लोगोंकी प्रधान जीविका है। यहांके अनेक अधिवासी मत्स्य-जीवी हैं। वार्षिक आय प्रायः ४००००) रु० है।

अरब और पारस उपसागरमें वाणिज्यकी विशेष सुविधा होगी, यह सोच कर पोर्त्तु गीजोंने यहाँ आक्रमण किया, किन्तु पहली बार उनकी सब चेष्टाएं निष्फल हुई। मुगल-सम्राट् हुमायुने जब गुजरातके अधिपति बहादुर शाह पर आक्रमण किया, उसी समय १५३५ ई०में बहादुरशाहने पोर्त्तु गीजोंसे सन्धि कर उन्हें इस द्वीपमें एक दुर्ग निर्माण करनेकी आज्ञा दी। १५३६ ई०की दोनों पक्षोंमें षड़यन्त्र चल रहा था। १५३७ ई०में पोर्त्तु गीजके जहाजसे लौटते समय गुजरातके अधिपति मारे गये। इसी वर्ष बहादुरके भतीजे ३य महम्मदने पोर्त्तु गीजके दुर्ग पर चढ़ाई की, किन्तु उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। १५४५ ई०में महम्मदने दूसरी बार चढ़ाई की। इस पर डमजोआ और डिकाष्ट्रो बहुतसी सेना ले कर द्वीप पहुंचे और उन्होंने मुसलमान सेनाओंको पराजय कर द्वीपवासी पोर्त्तु गीजोंकी रक्षा की। काष्ट्रोके वीरत्वसे सारा द्वीप पोर्त्तु गीजोंके अधिकारमें आ गया। १६७० ई०में मस्कटसे अनेक सशस्त्र अरबोंने आ कर द्वीप पर आक्रमण किया और पीछे लूट-मार मचाते हुए वे लौट गये। तभीसे वहाँ कोई गड़बड़ी न हुई।

वर्त्तमान दुर्ग मुसलमान अवरोधके बाद डिकाष्ट्रोसे बनाया गया है। इसका संस्थान सुदृढ़, गठन सुन्दर और बहुतसे पीतलके कामानसे सुरक्षित है। पुल पार कर बाहरी फाटक हो कर इस दुर्गमें जाना पड़ता है। बाहरी फाटकमें पोर्त्तु गीज भाषामें उत्कीर्ण लिपि है। वहांके गवर्नर फौजदारी और दीवानी दोनों शासन विभागके कर्त्ता हैं। ये गोआके गवर्नर जनरलके अधीन हैं।

**दिओदोरस, सिकिउलस** (Diodoros Siculus)—एक प्रसिद्ध ग्रीक ऐतिहासिक। इनका सिसिली द्वीपमें आजिरियम नामक स्थानमें जन्म हुआ था। उनकी लिखी हुई पुस्तकके सिवा और कहीं भी इनके जीवनचरितका हाल नहीं मिलता। वे जुलियस और अगष्टस् सीजरके समसामयिक थे। उन्होंने एशिया और यूरोपके नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर तथा रोमनगरमें बहुत दिनों तक वास कर उन उन स्थानोंका प्राचीन और तत्कालीन ऐतिहासिक विवरण संग्रह किया था। इन सब संग्रहीत विवरणोंसे उन्होंने तीस वर्ष अटूट परिश्रम कर 'बिबलिओथेका' (Bibliotheca) अर्थात् पुस्तकागार नामक एक वृहत् इतिहास लिखा, जो चालीस खण्डोंमें संपूर्ण है। इसके प्रथम ६ खण्डोंमें ट्रोजान् युद्धके पूर्व पर्यन्त ग्रीस और अन्यान्य देशीय देवदेवीविषयक कहानियोंका वर्णन है। उसके बाद ग्यारह खण्डोंमें ई०सन्के पहले ११८४ वर्षसे ले कर अलेकसन्दरके समय तकका इतिहास लिखा है। अवशिष्ट तेईस खण्डोंमें वे सभी घटनाएं वर्णित हैं, जो ईसा जन्मके ६० वर्ष पहले घटी थीं। इन चालीस खण्डोंमें संपूर्ण वृहत् इतिहासका अधिकांश कालक्रमसे लुप्त हो गया है, सभी केवल प्रथम ५ खण्ड और ११ से २० खण्ड तक, यही १५ खण्ड पाये जाते हैं। ५से १० खण्ड तक तो एकबारगी ही लुप्त हो गया है, अवशिष्ट अंशोंका नाना अंश कई जगह मिलता है।

दिओदोरसके इतिहाससे प्राचीन कालका काफी विवरण जाना जाता है। साधारणतः उनकी रचना कल्पनाचातुर्य और अतिरञ्जनदोषवर्जित तथा सरल और प्रसादगुणसम्पन्न है, किन्तु उनमें वैसी प्रखर मेधाशक्ति थी, ऐसा संभव नहीं। उनका इतिहास सुशृङ्खलाबद्ध नहीं है, उन्होंने जो सब विवरण सुने थे अथवा अन्यान्य ऐतिहासिकोंसे प्राप्त किया था उन सबके सत्यासत्य निर्द्धारणमें वैसी विचार-शक्ति वे दिखला न सके हैं। ऐसा होने पर भी वे ऐसे कितने विषय लिपिबद्ध कर गये हैं, जो कहीं भी नहीं मिलते। किन्तु दुःखकी बात है कि उनकी पुस्तकके सर्वापेक्षा प्रयोज-

नीय खण्ड ही लुप्त हो गए हैं। यदि वे सब खण्ड अभी रहते, तो निःसन्देह अतीतकालके नाना तत्त्व जो अभी सन्देहके घोर अन्धकारमें विलीन हैं, सबके सामने जगमगा उठते।

दिक् ( सं० स्त्री० ) दिशा, ओर, तरफ। दिशा देखो।

दिक ( अ० वि० ) १ विरक्त, हैरान, तंग। २ अस्वस्थ, बीमार। (पु०) ३ क्षयी रोग, तपेदिक।

दिक्चन ( हिं० पु० ) एक प्रकारकी ईख। इसका गुड़ बहुत अच्छा बनता है।

दिक्दाह (हिं० पु०) दिग्दाह देखो।

दिकौड़ी ( हिं० स्त्री० ) बर्रे, हड्डा।

दिक्क ( सं० पु० ) दिक्षु कायते कै-क। करभ, बीस वर्षका हाथीका बच्चा।

दिक्कत (अ० स्त्री०) १ कष्ट, तङ्गी, तकलीफ। २ कठिनता, मुश्किल।

दिक्कन्या (सं० स्त्री०) दिश एव कन्याः। दिक्-रूप कन्या, दिशा रूपी कन्या। सब दिशाएं ब्रह्माकी कन्या मानी जाती हैं। वराहपुराणमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

एक दिन ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करनेके पहले सोचने लगे, कि इस संसारकी सृष्टि कौन करेगा? इसी बीच उनके कानोंसे महाप्रभावशालिनी दश कन्यायें आविर्भूत हुईं। इनमेंसे पूर्वा, पश्चिमा, प्रतीची और उत्तरा ये चार कन्यायें अत्यन्त रूपवती और गम्भीर थीं। उन्होंने ब्रह्माको प्रणाम कर कहा, 'हे देव देव जगत्पते! हमें ऐसा स्थान प्रदान कीजिये जहां स्वामीके साथ हम लोग आनन्दसे रहें।' यह सुन कर ब्रह्माने कहा, 'तुम लोगोंकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी। यह ब्रह्माण्ड बहुत विस्तृत है। इसके अन्तभागमें अभी तुरन्त जा कर तुम लोग अपनी इच्छानुसार वास करो, विलम्ब करनेकी जरूरत नहीं। तुम्हारे लिये तपस्वी और निष्पाप पतियोंकी सृष्टि करूंगा, जिनके साथ तुम लोग खूब चैन काटोगी। अभी तुम लोगों को जिधर जानेकी इच्छा हो उधर चली जाओ।' ब्रह्माके आज्ञानुसार वे सब एक एक दिशाको चली गईं। इस प्रकार ब्रह्माने उन्हें विदा कर महाबलशाली लोकपालोंकी बहुत जल्द सृष्टि की। बाद उन्होंने दशों कन्याओंको बुलाया। लोकपितामह ब्रह्माने लोकपालोंके साथ उन सबोंको ब्याह दिया। इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, धनद और ईशान इन अष्टदिक्‌पालोंको उक्त आठ कन्यायें प्रदान कर आप तो ऊर्ध्व दिशामें रहने लगे और शेषको उन्होंने अधोदिशामें व्यवस्थित किया। इसके बाद वे सब देवियां इन्द्रादिके साथ आनन्दसे रहने लगीं। (वराहपु०)

दिक्कर ( सं० पु० ) दिशं आदेशं करोति वा दिशं स्त्रीमुखदर्शनं करोति कृ-टच्। १ युवा, जवान मनुष्य। २ महादेव, शिव।

दिक्करवासिनी (सं० स्त्री०) दिक्करे शिवे वसतीति वस-णिनि, ङीप्। कामरूपस्थ देवीविशेष, दिक्कर अर्थात् महादेवमें जो वास करे उसीका नाम दिक्करवासिनी है।

दिक्करिका ( सं० स्त्री० ) दिक्करिणः दिग्गजस्य सकाशात् कायते शोभते इति दिक्करिन् कै-क, ततष्टाप्। नदीविशेष। नाटक पर्वत पर मानसरोवरके जैसा एक सरोवर है। महादेव पार्वतीके साथ इसी सरोवरमें जलक्रीड़ा करते हैं। इसके पूर्व और मध्यभागसे तीन नदियां निकली हैं, पश्चिम भागसे जो नदी निकली है, उसीका नाम दिक्करिका है। यह दिग्गजके क्षेत्रसे निकलती है इसीसे इसका नाम दिक्करिका पड़ा है। इसका वर्तमान नाम दिकराई है। कामरूप देखो। दिक्‌ दन्तदंशनं करिका नखक्षतरेखा च यस्याः। २ युवती, जवान औरत।

दिक्करिन् ( सं० पु० ) दिक्षु स्थितः करी। ऐरावत आदि आठ हाथी, दिग्गज।

ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक ये आठ हाथी दिग्गज नामसे प्रसिद्ध हैं।

दिक्करी ( सं० स्त्री० ) दिशः वस्त्रलाकारा दन्तक्षतरेखाकरी च नखक्षतरेखा च यस्याः संज्ञात्वात् न कप्, वा दिक्करः युवा, ततो ङीष्। युवती स्त्री।

दिक्कान्ता ( सं० स्त्री० ) दिश एव कान्ताः। दिक्कन्या।

दिक्कामिनी (सं० पु०) दिश एव कामिन्यः। दिक्-रूप स्त्री।

दिक्‌सार ( सं० पु० ) जैनियोंके मतानुसार भवनपति नामक देवताओंमेंसे एक।

दिक्चक्र (सं० क्लो०) दिशैव चक्रं। १ चक्रवाल। २ आठों दिशाओंका समूह।

दिक्तट (सं० पु०) दिक्चक्र।

दिक्पति (सं० पु०) दिशां पति। १ दिगधीश्वर, ज्योतिषके मतानुसार दिशाओंके स्वामी ग्रह। शुक्र अग्निकोणके, कुज (मङ्गल) दक्षिणके, राहु नैऋतकोणके, शनि पश्चिमके, चन्द्रमा वायुकोणके, बुध उत्तरके और बृहस्पति ईशान कोणके अधिपति माने गये हैं। २ आठों दिशाओंके पति इन्द्रादि। दिक्न्या देखो।

दिक्पाल (सं० पु०) दिशां पालयति पालि-अण्। १ पुराणानुसार दशों दिशाओंके पालन करनेवाले देवता। पूर्वके देवता इन्द्र, अग्निकोणके अग्नि, दक्षिणके यम, नैऋतकोणके नैऋत, पश्चिमके वरुण, वायुकोणके मरुत, उत्तरके कुवेर, ईशानकोणके ईश्वर, ऊर्ध्व दिशाके ब्रह्मा और अधोदिशाके देवता अनन्त हैं। २ चौबीस मात्राओंका एक छन्द। इसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है। इसको पाँचवों और सत्तरहवों मात्राएं लघु होती हैं।

दिक्शूल (सं० क्लो०) दिशि दिग्भेदे गतौ शूलमिव। कुछ विशिष्ट दिनोंमें कुछ विशिष्ट दिशाओंमें कालका वास। दिक्शूलके दिन कहीं जाना नहीं चाहिए। शुक्र और रविवारमें पश्चिमको ओर, मङ्गल और बुधवारमें उत्तरको ओर, सोम और शनिवारमें पूर्वको ओर तथा बृहस्पतिवारमें दक्षिणको ओर दिक्शूल माना जाता है, अर्थात् जिस वारका जिस दिशामें शूल होता है, उस वार उस दिशाको ओर नहीं जाना चाहिये। कहते हैं, कि दिक्शूलमें यात्रा करनेसे इन्द्रतुल्य प्रभावशाली होने पर भी मनोरथ सिद्ध नहीं होता है, आर्थिक हानि होती है कोई न कोई रोग अवश्य हो जाता है और यहाँ तक कि कभो कभो यात्रोको मृत्यु भी हो जाती है।

किसोके मतसे बुध और बृहस्पतिवारको दक्षिणको ओर, बृहस्पतिवारको चारों कोणोंको ओर, रवि तथा शुक्रवारको पश्चिम दिशाको ओर शूल होता है। पहले ओर प्रधान मतके सम्बन्धमें लोगोंने एक चौपाई भी इस प्रकार बना ली है—'सोम सनीचर पुरुब न चालू, मङ्गल बुध उत्तर दिस कालू। आदित शुक्र पच्छिम दिस राहू, बीफे दक्खिन लंक दिस दाहू।'

दिक्साधन (सं० क्लो०) दिशः साध्यन्ते ज्ञानार्थं अनेन। दिक्ज्ञान-साधन उपायभेद, वह उपाय जिससे दिशाओंका ज्ञान हो। बहुत पहलेसे भारतीय ज्योतिर्विद् सभी दिशाओंके निर्णय करनेका उपाय बहुत सूक्ष्म रीतिसे कह गये हैं। संस्कृत ज्योतिःसिद्धान्त-शास्त्रके यन्त्राध्यायमें यष्टि और शङ्कु आदि द्वारा दिशा निरूपणका सूक्ष्म उपाय वर्णित है। जिस दिशामें सूर्योदय होते है वही पूर्व और जिस दिशामें सूर्य अस्त होते हैं वही पश्चिम दिशा है, इस प्रकार पूर्व और पश्चिमका ज्ञान हो जानेसे मत्स्यचिह्न * द्वारा उत्तर और दक्षिणका ज्ञान बहुत आसानीसे हो जाता है। फिर समस्त भूमण्डलके उत्तर भागमें मेरु † है। सूर्योदयके समय सूर्यको ओर मुंह करके खड़ा होनेसे सामने पूरब, पीठको ओर पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर दिशा पड़ती है। किन्तु सूक्ष्मरूपसे यदि विचार किया जाय, तो सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशामें उदय नहीं होते और न पश्चिममें अस्त हो होते हैं। हरएक पाँचवें वर्षमें केवल दो हो दिन अर्थात् विषुव संक्रान्ति दो दिन सूर्य ठीक पूरबमें उदय हो कर पश्चिममें अस्त होते हैं। जो कुछ हो, दूसरे दूसरे समयमें भी सूर्य द्वारा सूक्ष्मरूपसे दिशाका ज्ञान हो सकता है, प्राचीन सूर्यसिद्धान्तग्रन्थमें इसकी प्रणाली निम्नलिखित प्रकारसे वर्णित है। जैसे जल द्वारा संशोधित किसो समतल शिलातल पर अथवा

---

* पूर्व और पश्चिममें दो बिंदु लेकर उन्हें केंद्र मानो और दोनोंकी परस्पर दूरीको व्यासार्ध मान कर दो वृत्त बनाओ। इस प्रकार जो दो परिधि बनती हैं वही मत्स्यचिह्न है। इसे कोई कोई तिमि भी कहते हैं, जिन दो बिंदुओं पर दोनों परिधि आपसमें कटती हैं उन्हें एक रेखासे मिला दो। यही सयोजक रेखा उत्तर-दक्षिणको सूचित करती है।

† "यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा
तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठम्।
तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलाना-
मुदक्स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धम्।" (गोलाध्याय

किसो प्रकार दृढ़ प्रलेपयुक्त किसी समतल भूमि पर इच्छानुसार उंगलीकी व्यासार्द्ध मान कर एक समवृत्त बनाओ ; इस वृत्तके केन्द्रस्थलमें बारह उंगलीकी एक कील गाड़ दो। पीछे उसकी छाया पूर्वाह्न और अपराह्नमें जहां जहां वृत्तकी परिधिके ऊपर पड़ती है वहां एक एक विन्दु चिह्नित करो। इन दो विन्दुओंको पूर्व और पश्चिमका विन्दु मानो अब इन दोनोंको अलग अलग केन्द्र मान कर तिमि या मत्स्यचिह्न द्वारा मध्यस्थलमें उत्तर दक्षिणकी रेखा अङ्कित करो। इसी प्रकार उत्तर-दक्षिण रेखाके मध्यस्थलमें तिमि चिह्न द्वारा पूर्व-पश्चिमकी रेखा भी खींचो। इन दो रेखाओं द्वारा उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिमका ज्ञान हो जानेसे मत्स्य-चिह्न द्वारा उसी प्रकार विदिक् अर्थात् मध्यवर्त्ती सभी दिशाओंका ज्ञान हो जायगा।

पूर्वोक्त रूपसे निर्द्धारित पूर्व-पश्चिम दिशा निरक्ष प्रदेशके सिवा अन्यत्र सभी स्थानोंमें समान नहीं है। अर्थात् निरक्ष प्रदेशमें पूर्व पश्चिम दिशा सब जगह एक रेखाभिमुखी है अर्थात् वहां एक स्थान एक और स्थानके पूर्ववर्त्ती होनेसे दूसरा स्थान पूर्व स्थानके ठीक पश्चिममें पड़ता है। ऐसा केवल निरक्ष प्रदेशमें ही होता है दूसरे स्थानमें नहीं। क्योंकि वहां एक स्थानसे दूसरा स्थान पूर्ववर्त्ती होनेसे पूर्व स्थान परोक्त स्थानके ठीक पश्चिममें नहीं पड़ता। इसका कारण यही है कि सभी स्थानोंके उत्तरमें मेरु अवस्थित है। सुतरां किसी स्थानमें पहले उत्तर-दक्षिण रेखा अङ्कित कर पूर्वोक्त रूपसे पूर्व-पश्चिम दिशाका निरूपण करनेमें जो रेखा उत्पन्न होगी, उसके अन्य किसी विन्दुमें फिरसे यथाविधि उत्तर दक्षिणकी रेखा अङ्कित करो। बाद पूर्व पश्चिम दिशाके निरूपण करनेमें शेषोक्त पूर्व पश्चिम निर्देशक रेखा प्रथमोक्त पूर्व पश्चिम रेखाके ऊपर नहीं पड़ती है। इस प्रकार उज्जयिनी नगरसे पृथ्वीके एक चतुर्थांशकी दूरी पर पूर्वकी ओर यदि यमकोटि नगर अवस्थित हो, तो यमकोटिके पश्चिममें उज्जयिनी नहीं पड़ेगा। उज्जयिनीके दक्षिण लङ्का हो उसकी दिक्‌वर्त्ती होगी। किन्तु निरक्षप्रदेशमें उस प्रकारके असमंजस होनेको कोई सम्भावना नहीं है। जो कुछ हो निरक्ष प्रदेशसे समान अक्षान्तर वृत्तोंको यदि उन सब स्थानोंके पूर्व-पश्चिमकी ज्ञापक रेखा कहें, तो फिर इस प्रकारकी गड़बड़ी होनेकी सम्भावना नहीं है। सुतरां किसी स्थानको किसी स्थानके पूर्व वा पश्चिम अवस्थित माननेसे ही, वे दोनों स्थान एक अक्षान्तर वृत्तमें अवस्थित है, ऐसा समझना चाहिये। मारकेटर साहबके प्रसिद्ध मानचित्रमें (Marcator's Projection) इसी प्रकार दिशाओंका निरूपण हुआ है। उसमें याम्योत्तर रेखाओंको उत्तर और दक्षिण मेरु प्रदेशमें संयुक्त तो नहीं किया है वरन् उन्हें परस्पर समान्तर भावसे अक्षान्तर वृत्तोंको याम्योतर रेखाके साथ समकोण बनाते हुए निरक्षवृत्तके समान्तर भावमें अङ्कित किया है। अतः इसमें पूर्व-पश्चिम दिशाके निरूपणमें कोई गड़बड़ी नहीं है। ध्रुवतारा उत्तरको ओर मेरुके ऊर्ध्व भागमें अवस्थित है, सुतरां यष्टि द्वारा ध्रुवको वेध कर अर्थात् ध्रुवताराकी ओर लक्ष्य करके उस यष्टिको उस स्थान पर गाड़ दें, तो उसके ठीक नीचे जो रेखा पड़ेगी वही उत्तर दिशाको बतलाती है। कई जगह इसी प्रकार ध्रुवतारा द्वारा उत्तर दिशाका ज्ञान किया जा सकता है। किन्तु यदि खूब गौर कर देखा जाय, तो ध्रुवतारा मेरु प्रदेशके ठीक ऊपरमें नहीं है वरन् इसके समीप ही है। किसी स्थानमें यह ठीक ऊर्द्ध्वस्थ नहीं है। वह स्थान ध्रुवतारा और सप्तर्षिमण्डल (सत भैया) नामक तारापुञ्जके अन्तिम तारासे ले कर दूसरे तारा तक एक रेखा पर अवस्थित है। अतः जब ध्रुवतारा और सप्तर्षिमण्डलका वह तारा ठीक ऊर्द्ध्व-अधोभागमें अवस्थित रहता है, तभी ध्रुवतारा भौगोलिक उत्तर दिशाको निर्द्देश करता है। पृथ्वीके आह्निक आवर्त्तनमें प्रति दिन दो बार इसी प्रकार घटना हुआ करती है। सुतरां उसी समय ध्रुववेध द्वारा उत्तर दिशाका पता लग जाता है। पीछे एक दिशाका पता मालूम हो जानेसे शेष दिशाओंका ज्ञान आपसे आप हो जा सकता है। घड़ी आदि द्वारा मध्याह्न काल निर्धारित करके उस समय सूर्यकी गति लक्ष्य करनेसे ही याम्योत्तर रेखा निकल आवेगी।

दिक्सुन्दरी ( सं० स्त्री० ) दिश एव सौन्दर्यं। दिक्रूप सुन्दरी, दिक्कन्या।

दिक्स्वस्ति ( सं० क्लो० ) दिक्कोण, किसी दिशाका कोण।

दिक्स्वामी ( सं० पु० ) दिशां स्वामी। दिगधिपति।

दिच्छा ( हिं० स्त्री० ) दीक्षा देखो।

दिच्छित ( हिं० वि० ) दीक्षित देखो।

दिखना ( हिं० क्रि० ) दिखाई देना, देखनेमें आना।

दिखलवाई ( हिं० स्त्री० ) १ दिखलवानेके बदलेमें दिये जानेका धन। २ दिखलाई देखो।

दिखलवाना ( हिं० क्रि० ) दूसरेको दिखलानेमें प्रवृत्त करना।

दिखलाई (हिं० स्त्री०) १ दिखलानेको क्रिया। २ दिखलानेका भाव। ३ दिखलानेके बदलेमें दिया गया हुआ धन।

दिखलाना ( हिं० क्रि० ) १ दृष्टिगोचर कराना, दिखाना। २ अनुभव कराना, मालूम कराना।

दिखाई (हिं० स्त्री०) १ दिखानेका काम। २ दिखानेका भाव। ३ दिखानेके बदलेमें दिये जानेका धन। ४ देखनेका काम। ५ देखनेका भाव। ६ देखनेके बदलेमें दिये जानेका धन।

दिखाना ( हिं० क्रि० ) दिखलाना।

दिखाव (हिं० पु०) १ देखनेका भाव या क्रिया। २ दृश्य।

दिखावट ( हिं० स्त्री० ) १ दिखलानेका भाव या ढंग। २ ऊपरी तड़क भड़क, बनावट।

दिखावटी ( हिं० वि० ) जो सिर्फ देखने लायक हो, पर काममें न आ सके, दिखौआ।

दिखावा ( हिं० पु० ) आडम्बर, ऊपरी तड़क भड़क।

दिखौआ ( हिं० वि० ) बनावटी।

दिखौवा ( हिं० वि० ) दिखौआ।

दिगंश ( सं० पु० ) दिशः अंशः। दिकस्थ अंशभेद, क्षितिजवृत्तका ३६०वां अंश। आकाशमें ग्रहों और नक्षत्रों आदिकी स्थिति मालूम करनेके लिये क्षितिज-वृत्त ३६० अंशोंमें विभक्त किया जाता है और जिस ग्रह या नक्षत्रका दिगंश जानना होता है, उस परसे अधस्स्व-स्तिक और खस्वस्तिकको स्पर्श करता हुआ एक वृत्त खींचा जाता है। यही वृत्त पूर्व बिन्दुसे क्षितिजवृत्तको दक्षिण अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उतने-को उस ग्रह या नक्षत्रका दिगंश कहते हैं।

दिगंशयन्त्र ( सं० पु० ) किसी ग्रह या नक्षत्रका दिगंश मालूम करनेका यन्त्र।

दिगन्त (सं० पु०) दिशां अन्तः ६-तत्। १ सभी दिशाओंका अन्त भाग, दिशाओंका छोर। २ शास्त्रीय ज्ञान कर्मयुक्त जनाधिष्ठित मध्यदेशके अतिरिक्त एक देश। ३ क्षितिज, आकाशका छोर। ४ चारों दिशाएं। ५ दशों दिशाएं।

दिगन्त ( हिं० पु० ) आंखका कोना।

दिगन्तर ( सं० क्लो० ) दिशां अन्तरं अवकाशः। १ दो दिशाओंके बीचका स्थान। अन्या दिक् दिगन्तरं। २ अन्यदिक्, विपरीत दिशा।

दिगम्बर ( सं० पु० ) दिगेव अम्बरं वस्त्रं वस्य। उलङ्ग-त्वात् तथात्वं। १ शिव, महादेव। २ क्षपणक, नंगा रहनेवाला जैन यति। जैन देखो। ३ एक प्रसिद्ध वैया-करण। गणरत्न-महोदधिमें इनका प्रकृत नाम देवनन्दी और इसका नामान्तर दिग्वस्त्र और दिग्वासा लिखा है। ४ दिशाओंका वस्त्र, तम, अंधेरा। (त्रि०) ५ जिसका वस्त्र केवल दिशाएं हों, उलङ्ग, नंगा।

दिगम्बरता ( सं० स्त्री० ) नग्नता, नंगापन।

दिगम्बरानुचर—एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने बोधप्रक्रिया नामक वेदान्त, दत्तात्रेय माहात्म्य और जाबालोपनिषदर्थप्रकाश नामक जाबालोपनिषद्की टीका रचना की है।

दिगम्बरी (सं० स्त्री०) दिगम्बर-ङीष्। १ दुर्गा, पार्वती। ( त्रि० ) २ नग्ना, नंगी।

दिगादि ( सं० पु० ) पाणिनिसूत्रोक्त गणभेद। दिक्, वर्ग, पूग, गण, पक्ष, धाय्य, मित्र, मेधा, अन्तर, पथिन्, रहस, अलीक, उखा, साक्षिन्, देश, आदि, अन्त, मुख, जघन, मेष, यूथ, न्याय, वंश, वेश, काल और आकाश ये ही दिगादि गण हैं।

दिगिभ ( सं० पु० ) दिशां इभाः। दिग्हस्ती, दिग्गज।

दिगीश्वर ( सं० पु० ) दिशां ईश्वरः ६-तत्। १ इन्द्रादि दिक्पाल। २ सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह।

दिगुपाधि ( सं० पु० ) दिशां उपाधिः। सभी दिशाओंके

प्राच्यादि व्यवहारको उपाधि। सभी दिशाएं नित्य हैं तथा एक लौकिक व्यवहारके लिये अमुक दिशा पूर्व और अमुक पश्चिम है। इस तरह दिशाओंको उपाधि कल्पित हुई है। यथार्थमें दिशाओंको कोई उपाधि नहीं है। दिशा देखो।

दिग्गज (सं० पु०) दिशि स्थितो गजः। १ आठों दिशाओंमें अवस्थित ऐरावत आदि आठ हाथी। ये पृथ्वीको दबाए रखने और उन दिशाओंकी रक्षाके लिये स्थापित हैं। इन आठ हाथियोंके नाम ये हैं,—पूर्वमें ऐरावत, पूर्व-दक्षिणके कोनेमें पुण्डरीक, दक्षिणमें वामन, दक्षिण-पश्चिममें कुमुद, पश्चिममें अञ्जन, पश्चिम-उत्तर कोनेमें पुष्पदन्त, उत्तरमें सार्वभौम और उत्तर-पूर्वके कोनेमें सुप्रतीक। (त्रि०) २ बहुत बड़ा, बहुत भारी।

दिग्गयन्द (सं० पु०) दिग्गज।

दिग्गि—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह जयपुरसे प्रायः २१ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां मट्टीकी दीवारसे घिरा हुआ एक किला है। प्रतिवर्ष कल्याणजीका मेला लगता है जिसमें प्रायः १५ हजार मनुष्य एकत्रित होते हैं।

दिग्जय (सं० पु०) दिशां तत्स्थलोकनृपाणां जयः। १ जिगीषु राजाके दिक्स्थित राजाओंको जीतना। २ विद्या द्वारा नाना स्थानके मनुष्योंको जीतना। पूर्व समयमें जिस तरह राजा नवीन राज्याभिषिक्त हो कर देशदेशान्तरोंको जीतने जाते थे, उसी तरह विद्यार्थी भी पाठ समाप्त कर सब स्थानोंमें पण्डितोंको जीतनेके लिये जाते थे।

दिग्ज्ञान (सं० क्ली०) दिशां ज्ञानं ६-तत्। प्राच्यादि ज्ञानसाधन प्रकारभेद, जिससे सभी दिशाओंका ज्ञान हो।

दिग्ज्या (सं० स्त्री०) दिशां ज्या। दिगंश, दिशाका कोर।

दिग्दर्शन (सं० क्ली०) दिशो दृश्यतेऽनेन दृश करणे ल्युट्। दिक् निरूपण करनेका यन्त्रविशेष, एक प्रकारका यन्त्र जिससे दिशाका ज्ञान होता है। (Mariner's compass) इसकी सहायतासे क्या स्थलभागमें, क्या अकूल समुद्रमें, क्या घनघटाच्छन्न घोर अन्धकारमयी रात्रिमें सभी समय आसानीसे दिशाका निरूपण किया जा सकता है। इसीसे अर्णववाही नाविकोंके लिए यह यन्त्रविशेष उपकारी है। यहां तक कि अकूल दुस्तर समुद्र हो कर सुदीर्घ यात्रा करते समय इसका साहाय्य अपरिहार्य है। पहले नाविक लोग सूर्य और ध्रुवतारा आदि नक्षत्रोंको देख कर अभीष्ट दिशाकी ओर नाव जहाज चलाते थे, किन्तु आकाश जब मेघाच्छन्न हो जाता था, सूर्य चन्द्र तारे आदि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ते थे, तब किस दिशाकी ओर जहाज जा रहा है, इसका पता नहीं लगता था, जिससे उन्हें बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ती थीं। इस कारण वे उपकूलके किनारे हो रहते थे, किनारेका पता नहीं लगने पर उन्हें बीच समुद्रमें जहाज ले जानेका साहस नहीं होता था। १२वीं शताब्दीके बाद भी युरोपमें दिग्दर्शन यन्त्रका कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु उसके भी बहुत पहले अति प्राचीनकालमें चीन तथा अन्यान्य प्राच्यदेशोंके लोग जो चुंबक सूचीका हाल जानते थे, उसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। चीनका कहना है, कि २६३४ ई०सन्के पहले सम्राट् हुयांतिरके आदेशानुसार जो दक्षिणदिक्निर्देशक यन्त्र प्रस्तुत हुआ, वह यही दिग्दर्शन यन्त्र था। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि वे लोग पहले पहल स्थलभागमें ही इसका व्यवहार करते थे। ३८० ई०के लगभग इसका व्यवहार समुद्रमें होते सुना गया। किसी किसीका मत है, कि चीन देशसे लौटते समय मार्क-पोलो सबसे पहले दिग्दर्शन-यन्त्रको यूरोपमें लाये। फिर बहुतेरे कहते हैं, कि नेपल्स राज्यके अन्तर्गत एमेलफि-निवासी इलामी और गिवजानि १३६२ ई०में समुद्र वासोपयोगी दिग्दर्शन-यन्त्रका आविष्कार किया। किन्तु इसके पहलेसे ही समुद्रमें दिग्दर्शन यन्त्रके व्यवहारका उल्लेख पाया जाता है। शायद गिवजानि इसीका उन्नति साधन मात्र किया होगा। जो कुछ हो इसका आविष्कार-काल अनिश्चित है। दिग्दर्शन यन्त्रका आविष्कार हो जानेसे व्यवसाय वाणिज्यको विशेष सुविधा हो गई है तथा नाविकोंको भी समुद्रके बीच जहाज ले जानेका जो भय बना रहता था वह दूर हो गया है। अभी नाविकगण आसानीसे दुस्तर सागरमें ठीक

पथानुसरण करके अभिलषित स्थानमें पहुंच सकते हैं।

दिग्दर्शन वा कम्पास यन्त्र लोहेकी मोटी सुईके ऊपर बना हुआ है। इसकी एक ओर धातुमय आवरणसे और दूसरी ओर कांचसे आवृत रहती है। धातुमय आवरणके भीतर दिक्-निर्देशक रेखा द्वारा विभक्त कागजके ऊपर चुंबकसूची स्थापित होती है। कागजके ऊपर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम ये चार दिशाएं तथा ईशान, अग्नि, नैऋत, वायु आदि चार कोण निर्दिष्ट रहते हैं। इस प्रकार कुल १६ वा ३२ दिशाएं कम्पासमें व्यवहृत होती हैं। उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाको पहले "उ, पू, द" और 'प' सङ्केत द्वारा चिह्नित करके उनके मध्यवर्ती जितने कोण होते हैं वे सूचित किये जाते हैं। जैसे—उत्तरपूर्व कोण जानने में "उ पू", दक्षिण पश्चिम कोणमें "द प' इत्यादि। उत्तर दिशामें जो सूई रहती है उसमें हमेशा फूल वा ताराचिह्न अङ्कित रहता है। इससे उत्तर दिशाका इनाम सहजमें हो जाता है।
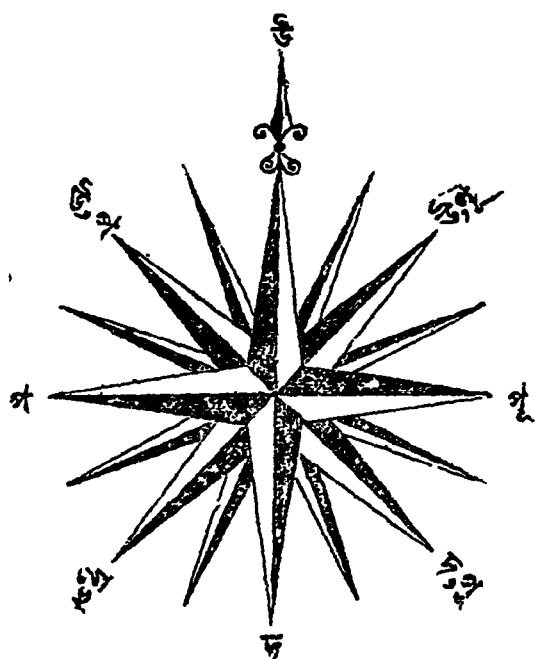
दिग्दर्शन-यन्त्र

जरीब आदि कार्यों में दिक् निर्देशके बदले उत्तरसे ही कर समस्त वृत्तकी परिधि ३६० समान अंशोंमें विभक्त रहती है। उत्तरी रेखा पर इनका शून्य और वहांसे क्रमागत पश्चिमकी ओर एकादि क्रमसे ३६० तक अङ्क लिखे रहते हैं। ठीक पश्चिममें ९०, दक्षिणमें १८०, पूर्वमें २७० इत्यादि। सुविधाके लिये किसी किसी कम्पासमें उस गोलाकार कागजका फलक चुंबककी सुईके साथ संलग्न रहता है, सुतरां इसका कागज सुईके साथ घूम कर चिह्नित स्थानके सर्वदा उत्तर दिशामें ही पड़ता है।

अब चुंबककी सुईका एक प्रान्त हमेशा उत्तरको ओर रहता है। चुम्बक देखो। सुतरां कागजके उत्तरदिग्-ज्ञापक चिह्नको सुई और प्रान्तके नीचे लानेसे सभी दिशाएं निर्दिष्ट हुईं। किन्तु चुंबकका कांटा सर्वत्र भौगोलिक उत्तर अर्थात् याम्योत्तर रेखाके साथ ठीक नहीं रहता। यहां तक कि, एक ही स्थानमें विभिन्न समयमें इसका उत्तरी प्रान्त भौगोलिक वा प्रकृत उत्तर दिशाके पूर्व या पश्चिम दिशामें झुक जाता है। इसे चुंबककी अपसृति ( Declination of the needle ) कहते हैं। पूर्वको ओर कांटा झुकनेसे प्राच्यापसृति और पश्चिमको ओर झुकनेसे उसे प्रतीच्यापसृति कह सकते हैं। पृथ्वीके प्रायः सभी प्रधान स्थानोंमें अपसृति प्रायः सूक्ष्मरूपसे अनेक प्रकारकी परीक्षा द्वारा निर्द्धारित हुई है। कम्पास द्वारा ठीक दिशाका निरूपण करनेमें इस विषमताको बाद देना होता है। यथार्थमें इसी प्रकार दिग्दर्शन द्वारा दिशाका निरूपण किया जाता है। सामान्य पर्यवेक्षणादि द्वारा यह अपसृति सहजमें निकाली जा सकती है। पृथ्वीके प्रायः सभी स्थानोंकी चौम्बकीय अपसृति-निर्देशक मानचित्र प्रस्तुत हुए हैं। प्रत्येक नाविक अपने अपने जहाज पर उस मानचित्रको रख कर दिग्दर्शनकी सहायतासे दिशाका निरूपण करते हैं।

इसके सिवा प्रत्येक जहाज पर जितना लोहा देखनेमें आता है उसमें थोड़ा बहुत चुम्बकत्व आ ही जाता है। जहाज परका यह लोहा कम्पास यन्त्रके पास सटा कर रखनेसे पार्थिव चुम्बक-शक्ति अच्छी तरह अपना काम नहीं कर सकती। सुतरां कम्पासके कांटेकी उत्तरी दिशामें बहुत फर्क पड़ जाता है। इस फर्कको दूर करनेके लिये नाविक लोग अनेक प्रकारके उपाय अवलम्बन करते हैं। जहाजके आगे कम्पासके समीप लोहेकी छड़

रख देनेसे जहाज परके अन्यान्य लोहोंको चुम्बकशक्तिसे आकर्षण उत्पन्न होता है, वह बहुत कम जाता है। कभी कभी जहाजके अगले भाग पर कम्पास न रख कर ऊंचे मस्तूल पर रखनेसे जहाजको चुंबक शक्ति उतनो कार्यकारी नहीं होती। सुतरां कम्पासका कांटा प्रायः उत्तरको ओर रहता है। किन्तु इतने उपाय करने पर भो कभी कभो सुईके हट जानेसे दिशाको भूल हो हो जाती है। प्रशान्त-महासागरमें सुदीर्घ जलयात्राके समय इस प्रकारको सामान्य भूलसे भारी अनिष्ट हो सकता है। ऐसे समयमें नाविक लोग आकाशके किसी तारेको ओर लक्ष्य करके जहाजके एक पहियेको घुमाते हैं और कम्पास-को सुईकी परीक्षा करते हैं। ऐसा करनेसे जहाज परकी चुंबकशक्तिसे उत्पन्न सुईको अपसृतिका परिमाण निकल पड़ता है। इसी प्रकार नाविक लोग कम्पासकी निर्दिष्ट दिशामें संशोधन करके अभिलषित ओर जानेको समर्थ होते हैं। कहना फजूल है कि कम्पास द्वारा विशुद्ध रूपसे दिशाका ज्ञान नहीं होनेसे उपकारकी बात तो दूर रहे, विशेष अनिष्ट होनेको सम्भावना रहती है।

स्थलभागमें भी जरीब आदि कार्योंमें कम्पासका व्यवहार बहुत उपकारी है। भूगर्भ तथा सुरङ्गादिको खोदनेमें इसका व्यवहार समुद्रयात्राके व्यवहारसे किसी अंशमें कम नहीं है। दिग्दर्शन भिन्न भिन्न कार्योंमें व्यवहृत होता है, इस कारण इसको आकृति और गठनप्रणाली भिन्न भिन्न तरहको होती है। एक कामके लिये जो कम्पास बनाया जाता है, वह दूसरे काममें नहीं आ सकता। २ अभिज्ञता, जानकारी। ३ वह जो कुछ उदाहरण स्वरूप दिखलाया जाय, नमूना। ४ नमूना दिखानेका काम।

दिग्दाह (सं॰ पु॰) दिशां दाहः। उत्पातविशेष, एक दैवी घटना। इसमें सूर्यास्त होने पर भी दिशाएं लाल जलती हुई सी मालूम पड़ती हैं।

दिग्दाह यदि पीतवर्ण दीख पड़े, तो राजाका भय और यदि अग्निवर्ण दीख पड़े, तो सारा देश नष्ट हो जानेका डर रहता है। इस समय यदि दक्षिणी वायु अथवा वर्षा हो जाये, तो सारी फसल नष्ट हो जानेको सम्भावना रहती है। दिग्दाहमें बहुत चमकीली और सूर्यसी छाया प्रकाशित होती है, इस प्रकारका दाह राजाका भय और शस्त्रप्रकोप सूचना करता है। पूर्वकी ओर दिग्दाह होनेसे राजा और क्षत्रियोंका, अग्निकोणमें होनेसे शिल्पियों और कुम्हारोंका, दक्षिणमें होनेसे उग्रपुरुषों, वैश्यों, दूतों, पुनर्भूओं और प्रमादोंका, पश्चिममें होनेसे शूद्रों और कृषिजीवियोंका, वायुकोणमें होनेसे तुरङ्गके साथ साथ चोरोंका, उत्तरको ओर होनेसे विप्रोंका, और ईशानकोणमें दिग्दाह होनेसे पाखण्डियों और वणिकोंका अनिष्ट होता है। यदि आकाश परिष्कार रहे और तारागण निर्मल मालूम पड़ते रहें तथा वायु प्रदक्षिण भावसे बहती हो, तो स्वर्ण वर्ण दिग्दाहमें प्रजा तथा राजा दोनोंका मङ्गल होता है। (बृहत्सं॰ ३१ अ॰)

दिग्देवता (सं॰ स्त्री॰) दिशां तन्मर्यादानां देवता साक्षीभूतेव। सभी दिशाओंके साक्षीभूत देवता।

दिग्ध (सं॰ पु॰) दिह्यते लिप्यते स्म विषयादिना दिह-क्त। १ विषाक्त वाण, जहर मिला हुआ वाण। इसका पर्याय—लिप्तक है। २ स्नेह, प्रेम। ३ अग्नि। ४ प्रबन्ध, निबन्ध। ५ तैल, तेल। (त्रि॰) ६ विषाक्त, जहरमें बुझा हुआ। ७ लिप्त।

दिग्घ (हिं॰ वि॰) दीर्घ, लम्बा, बड़ा।

दिग्नगर—वर्द्धमान जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा॰ २३° २२' उ॰ और देशा॰ ८७° ४५' पू॰में अवस्थित है। पहले यहां बहुतसे मनुष्योंका वास था। यहांके पीतल और कांसेका बरतन बढ़िया होता है।

दिग्पट (हिं॰ पु॰) १ दिशारूपी वस्त्र। २ वह जो दिशारूपी वस्त्र धारण करता हो, दिगम्बर, नङ्गा।

दिग्पति (हिं॰ पु॰) दिक्पाल देखो।

दिग्पाल (हिं॰ पु॰) दिक्पाल देखो।

दिग्बल (सं॰ क्ली॰) दिङ्-निमित्तं ग्रहाणां बलं। लग्नादिमें स्थित ग्रहोंका बल। मङ्गल और रविके लग्नसे दशवें स्थानमें रहने पर दक्षिणदिग्बली, शनि लग्नसे सातवें स्थानमें रहने पर पश्चिम दिग्बली और शुक्र तथा चन्द्रमा लग्नसे चौथे स्थानमें रहने पर उत्तर दिग्बली मानी जाती है। इसकी सहायतासे दिक्‌निर्णय और दूसरी कई प्रकारको गणनाएं की जाती है।

दिग्बलिन् (सं॰ पु॰) दिग बलं अस्त्यस्य इनि। १ दिङ्,

निमित्त बलयुक्त ग्रह, वह ग्रह जो किसी दिशाके लिये बली हो। २ तादृश राशिभेद, वह राशि जिस पर किसी ग्रहका बल हो।

दिग्भाग ( सं० पु० ) दिशां भागः। दिग्विभाग।

दिग्भ्रम ( सं० पु० ) दिशाओंका भ्रम होना, दिशा भूल जाना।

दिग्मण्डल ( सं० पु० ) सम्पूर्ण दिशाएं, दिशाओंका समूह।

दिग्रस—बरारके वून जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २०° ६' उ० और देशा० ७७° ४५' पू०में अवस्थित है। सूती कपड़ेके व्यवसायके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

दिग्राज ( हिं० पु० ) दिक्पाल देखो।

दिग्वदन ( सं० क्लो० ) दिग्भेदे वदनं यस्य। सभी दिशाओंमें स्थित राशिभेद। पूर्वमें मेषराशि, दक्षिणमें वृषराशि, उत्तरमें कर्कटराशि इसी प्रकार और सभीको समझना चाहिये।

दिग्वसन ( हिं० पु० ) दिग्वस्त्र देखो।

दिग्वस्त्र ( सं० पु० ) दिक्रूपं वस्त्रं यस्य। १ महादेव। २ जैनभेद, चपणक। ( त्रि० ) ३ लग्न, नङ्गा।

दिग्वान् ( सं० पु० ) चौकीदार, पहरेदार।

दिग्वारण ( सं० पु० ) दिक्षु स्थितो वारणः। ऐरावतादि दिग्गज।

दिग्वास ( सं० पु० ) दिक्रूपं वासः यस्य। १ महादेव, शिव। २ जैनभेद, नङ्गा रहनेवाला, जैन यति। ( त्रि० ) ३ उलङ्ग, नङ्गा।

दिग्विजय ( सं० पु० ) दिशां तत्स्थनृपलोकानां विजयः। युद्ध द्वारा चतुर्दिक् जयकरण, अपनी वीरता दिखलाने और महत्त्व स्थापित करनेके लिए राजाओंका देश-देशान्तरोंमें अपनी सेनाके साथ जा कर युद्ध करना और विजय प्राप्त करना। जैसे पाण्डव-दिग्विजय। २ विद्या द्वारा चतुर्दिक् जयकरण, अपने गुण, विद्या वा बुद्धि आदिके द्वारा देश देशान्तरोंमें अपनी प्रधानता अथवा महत्त्व स्थापित करना। जैसे, शङ्कर दिग्विजय।

दिग्विजयगञ्ज—रायबरेली जिलेके अन्तर्गत एक तहसील वा उपविभाग। यह अक्षा० २६° १७' ३०" से २६° २६' उ० और देशा० ८१° १' ३०" से ८१° ३७' पू०में अवस्थित है। इसके मध्यवर्ती दिग्विजयगञ्ज नामक ग्राममें तहसीलदार और पुलिस-इन्सपेक्टर रहते हैं। इसी ग्रामके नामसे ही तहसीलका नामकरण हुआ है।

दिग्विजयी ( सं० त्रि० ) दिग्विजय-इन्। विद्या वा बाहुबल द्वारा दिग्विजय करनेवाला, जिसने दिग्विजय किया हो, जैसे दिग्विजयी राजा, अर्थात् जिस राजाने भिन्न भिन्न देशोंको युद्धमें जीत कर उन पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। जैसे, दिग्विजयी पण्डित अर्थात् जिस पण्डितने गुण, विद्या वा बुद्धि आदिके द्वारा देशान्तरोंके पण्डितोंको परास्त कर वहां अपनी प्रधानता अथवा महत्त्व स्थापित किया है।

दिग्विदिक् ( सं० स्त्री० ) सकलदिक्, सब दिशाएं।

दिग्विदिकस्थ ( सं० त्रि० ) दिग्विदिक्-स्था-क। जो भिन्न भिन्न दिशाओंमें स्थित हो।

दिग्विभाग ( सं० पु० ) दिशां विभागः। दिग्भाग, दिशा, ओर, तरफ।

दिग्विलोकन ( सं० क्लो० ) दिशां विलोकनं। शून्यदृष्टि।

दिग्व्यापी ( सं० त्रि० ) जो सब दिशाओंमें व्याप्त हो।

दिग्व्रत ( सं० पु० ) जैनियोंका एक व्रत। इसमें वे कुछ अभीष्ट समयके लिये प्रतिज्ञा करते हैं कि अमुक दिशामें इतनी दूरसे अधिक न जायंगे।

दिग्शिखा ( सं० पु० ) पूर्व दिशा।

दिग्सिन्धुर ( सं० पु० ) दिग्गज।

दिघौंच ( हिं० पु० ) एक प्रकारका पक्षी। इसकी छाती सफेद, डैने काले और सुनहले होते हैं।

दिङ्क ( सं० पु० ) स्फोटनकाले दिङ् इति कृत्वा कायते शब्दायते कै-क। उत्कुणडिम्ब, जूं नामका एक छोटा कीड़ा जो सिरके बालोंमें पड़ता है।

दिङ्नक्षत्र ( सं० क्लो० ) दिशि दिग्भेदेन स्थितं नक्षत्रं। दिशाओंमें अवस्थित नक्षत्र। कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वादिकी ओर उदय होते हैं। जिसका नक्षत्र जिस दिशामें रहता है उसी नक्षत्रमें उसका घर शुभ होता है।

दिङ्नाग ( सं० पु० ) दिशि स्थितो नागः। १ दिग्गज। २ एक विख्यात बौद्ध ग्रन्थकार। इनका बनाया हुआ प्रमाणसमुच्चय ग्रन्थ पढ़नेसे बौद्धमतके अनेक गूढ़ विषय

जाने जा सकते हैं। मल्लिनाथने मेघदूतकी टीकामें लिखा है, कि दिङ्नाग कालिदासके एक घोर प्रतिद्वन्द्वी थे। वाचस्पति मिश्रने इनका मत उद्धृत किया है। वल्लभदेवकी सुभाषितावलीमें दिङ्नागकी एक कविता उद्धृत हुई है, किन्तु वह कविता महाभारतमें पाई जाती है।

दिङ्नारि (सं० स्त्री०) १ वेश्या, रण्डी। २ कुलटा, व्यभिचारिणी।

दिङ्मण्डल (सं० क्लि०) दिशां मण्डलं। दिक्चक्र, दिशाओंका समूह।

दिङ्मातङ्ग (सं० पु०) दिशि स्थितो मातङ्गः। दिग्गज।

दिङ्मात्र (सं० क्ली०) दिशैव मात्रच्। उदाहरण मात्र, केवल नमूना।

दिङ्मूढ़ (सं० त्रि०) दिशि मूढ़ः। १ दिग्भ्रान्तियुक्त, जिसे दिग्भ्रम हुआ हो। २ मूर्ख, बेवकूफ।

दिङ्मोह (सं० पु०) दिशि मोहः। दिक्भ्रम, दिशा भूल जाना।

दिण्डि (सं० पु०) तिण्डि पृषोदरादित्वात् साधुः। वाद्यभेद, एक तरहका बाजा।

दिण्डिर (सं० पु०) डिण्डिर पृषोदरादित्वात् साधुः। वाद्यभेद, प्राचीन कालका एक बाजा।

दिण्डी (सं० पु०) उन्नीस मात्राओंका एक छन्द। इसके अन्तमें दो गुरु होते हैं और जिसमें ९ तथा १० पर विश्राम होता है।

दिण्डीर (सं० पु०) समुद्रफेण, समुद्रफेन।

दित (सं० त्रि०) दीयते स्म दो अवखण्डने दो-क्त. इति इत्वं (द्यतिस्यतीति। पा ७।४।४०) छिन्न, चीरा हुआ।

दिति (सं० स्त्री०) दैत्यमाता, कश्यप ऋषिकी एक स्त्री। इनके गर्भसे जो सब उत्पन्न हुए, वे ही दैत्य कहलाये। विष्णुपुराणमें लिखा है कि जब इनके सब पुत्र इन्द्र और देवताओंसे मारे गये, तब उन्होंने अपने पति कश्यपसे कहा, कि 'मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूं जो इन्द्रका भी दमन करे।' कश्यपने उनकी अभिलाषा पूरी और साथ ही साथ यह भी कह दिया कि, 'तुम्हें सौ वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा। इतने समय तक बहुत ही पवित्रता पूर्वक रहना पड़ेगा, भ्रमसे कभी अधर्माचरण करना न होगा।' दिति भी बहुत सावधानीसे धर्म पालन करने लगीं। इधर इन्द्र अपनी भावी विपद्‌की आशङ्का कर दितिका व्रत भङ्ग करनेकी ताकमें लगे रहे। एक दिन रातके समय दिति बिना हाथ पैर धोए सोनेको चली गईं। इस अवसरमें इन्द्रने वज्रसे उनके जरायुके सात टुकड़े कर डाले। गर्भस्थ शिशुके रोनेसे इन्द्र भी घबरा उठे। उसी समय उन्होंने सातों टुकड़ोंमेंसे हर एकके फिर सात टुकड़े किये। ये ही उनचास खण्ड मरुत् कहलाते हैं। मरुत् देखो। दो-भावे क्तिन्। २ खण्डन, तोड़ने या फोड़नेका काम। (पु०) ३ राजविशेष, एक राजाका नाम। (त्रि०) ४ दाता, देनेवाला।

दितिकुल (सं० स्त्री०) दैत्यवंश।

दितिज (सं० पु०) दितेर्जायते जन-ड। दैत्य, दितिके पुत्र।

दितितनय (सं० पु०) दितेस्तनयः। दैत्य, असुर।

दितिसुत (सं० पु०) दितेः सुतः। दैत्य, राक्षस।

दित्य (सं० पु०) दितौ भवः यत्। १ असुर, राक्षस। (त्रि०) २ छेदनार्ह, जो छेदने या काटने योग्य हो।

दित्यवाह (सं० पु०) दित्यं छेदनार्हं धान्यादिकं वहति वह-ण्वि। द्विवर्षवयस्क पशु, दो वर्षका पशु।

दित्सा (सं० स्त्री०) दातु-मिच्छा द-सन् भावे अ। दानेच्छा, दान करनेकी इच्छा।

दित्सु (सं० त्रि०) दातुमिच्छुः दा-सन् ततो उः। दानेच्छु, जो दान करना चाहता हो।

दित्स्य (सं० त्रि०) दान करने योग्य, जो दान किया जा सके।

दिदार (हिं० पु०) दीदार देखो।

दिदम्भिषु (सं० त्रि०) दम्भ सन् ततो उ। ठगनेकी इच्छा।

दिदित्सु (सं० त्रि०) छोड़ देनेकी इच्छा।

दिद्दा—लोहर दुर्गाधिपति सिंहराजकी कन्या। काश्मीरके राजा क्षेमगुप्तके मरने पर दिद्दा अभिमन्यु नामक शिशु पुत्रको सिंहासन पर बिठा आप मन्त्रियोंकी सहायतासे राज-कार्य चलाने लगीं। इन्होंने सारा राजकार्य अपने हाथमें ले लिया सही, लेकिन राज्यशासनोपयोगी बुद्धिका इनमें बिलकुल अभाव था। ये मन्त्री

फाल्गुन आदि कई एक प्रधान व्यक्तियोंके साथ बहुत बुरी तरहसे पेश आई। इस पर वे सबके सब दिद्दाके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। अन्तमें इन्होंने ब्राह्मणोंको रिश्वत दे कर बहुत चतुरतासे विवाद शान्त किया। कुछ दिन बाद पुनः विद्रोह उपस्थित हो गया। इस बार इन्होंने विवादको न निवटा कर ससैन्य दुर्गमें आश्रय ले लड़ाई ठान दी और विजय भी अन्तमें प्राप्त कर ली। कितने विद्रोही मारे गये और कितने कैद कर लिये गए। कैदी विद्रोही भी कुछ समय बाद यमराजके अतिथि बनाये गये। अभिमन्यु १३ वर्ष १० मास राज्य कर यक्ष्मारोगसे पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे दिद्दाने अपने पौत्र (अभिमन्युके पुत्र) नन्दीगुप्तको राजा बनाया। इन्होंने अपने पुत्रके स्मरणार्थ अभिमन्युपुर नामक एक नगर बसाया और वहां अभिमन्यु स्वामी नामक एक देवमूर्त्तिको प्रतिष्ठा भी की। इतना ही नहीं, ये अपने नाम पर भी दिद्दापुर और दिद्दा स्वामी नामक नगर और देवमूर्त्ति स्थापित कर गई हैं। इस प्रकार अच्छे अच्छे कामोंके करनेसे प्रजा इन्हें कुछ कुछ चाहने लगीं। किन्तु एक वर्षके अन्दर ही इनका पुत्रशोक जाता रहा और इन्होंने अपने पौत्रको मरवा डाला। पीछे द्वितीय पौत्र त्रिभुवनगुप्त राजा हुए, किन्तु दिद्दाने उन्हें भी यमपुरको भेज दिया। बाद कनिष्ठ पौत्र भीमगुप्तने राजसिंहासन सुशोभित किया। दिद्दाके समयमें पापको जड़ मजबूत हो गई थी। व्यभिचार तो मानो इसके अङ्गका भूषण बन गया था। नीचसे नीच जातिको भी अपना उपपति बना लेती थी। धीरे धीरे लोगोंको अश्रद्धा इसकी ओर बढ़ने लगी। भीमगुप्तको भी ये सब बातें अपनी मांसे मालूम हुईं। वे कट्टर धार्मिक थे, पितामहीका ऐसा व्यवहार देख अत्यन्त मर्माहत हो गये और उनका चरित्र सुधारनेका उपाय करने लगे। राजकार्यकी सुशृङ्खला भी स्थापन करनेकी इन्होंने खूब कोशिश की। पापिष्ठा दिद्दाको यह सब हाल मालूम होने पर इसने खुल्लमखुल्ला भीमको हत्या कर डाली और स्वयं राजसिंहासन अधिकार कर बैठी। इसके प्रधान उपपति तुङ्ग प्रधान मन्त्री हुआ। यह मनुष्य पहले खशजातीय महिषपालक था, पीछे रानीको कृपासे पांच भाइयोंके साथ राजकार्यमें नियुक्त हुआ। अन्यान्य मन्त्रियोंको वाध्य हो कर तुङ्गकी अधीनता करनी पड़ी, किन्तु उनके हृदयमें राज्यनाशको कामना जाग्रत् हो गई। तुङ्गको जब इसको खबर लगी, तब उसने बहुतोंका प्राणवध किया। पीछे दिद्दाने अपने भतीजे संग्रामराजको सिंहासन पर अभिषिक्त किया। इसके कुछ समय बाद रानीकी मृत्यु हुई। संग्रामराज राजकार्य चलाते रहे। (राजतरङ्गिणी)

दिद्दापुर—काश्मीरका एक नगर। दिद्दाने अपना नाम चिरस्मरणीय रखनेके लिये अपने नाम पर यह नगर बसाया।

दिद्दास्वामी (सं० पु०) दिद्दासे प्रतिष्ठित देवमूर्त्ति। दिद्दाने दिद्दापुरमें दिद्दास्वामी नामकी एक देवमूर्त्ति स्थापन की।

दिदृक्षमाण (सं० त्रि०) दृश-सन् दिदृक्ष-शानच्। जो देखनेकी इच्छा करता हो।

दिदृक्षा (सं० स्त्री०) द्रष्टुमिच्छा दृश-सन् भावे अ। दर्शनेच्छा, देखनेका अभिलाष।

दिदृक्षु (सं० त्रि०) द्रष्टुमिच्छुः दृश-सन्-ततो उ। दर्शन करनेका इच्छुक, जो देखना चाहता हो।

दिदृक्षेण्य (सं० त्रि०) द्रष्टुमिष्टव्यः दृश-सन् केन्य। दर्शन करनेका अभिलषणीय, जिसकी अभिलाषा देखनेकी हो।

दिदृक्षेय (सं० त्रि०) दिदृक्षां अर्हति, दिदृक्षा बाहु० ठक्। दर्शनीय, देखनेयोग्य हो।

दिद्यु (सं० पु०) दिद्युत् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ वज्र। २ वाण।

दिद्युत (सं० पु०) द्युत क्विप् निपा० साधुः। १ दीप्तिशील, वह जिसमें खूब चमक दमक हो।

दिधक्षमाण (सं० त्रि०) दिधक्ष-शानच्। दाहनेच्छु, जिसने दाह करनेकी इच्छा की हो।

दिधक्षा (सं० स्त्री०) दग्धुमिच्छा। दह-सन् ततो अ। दग्ध करनेकी इच्छा, जलानेकी ख्वाहिश।

दिधक्षु (सं० पु०) दग्धुमिच्छुः दह-सन् ततो उ। दग्ध करनेकी इच्छा।

दिधि (सं० पु०) धा-कि। १ धैर्य। २ धारण।

दिधिषाय्य (सं० पु०) दधाति आनन्दमिति धा-आय्य,

धातोर्हित्वं ह्रस्वं युक् च ( दिधिषाय्यः उण् । ३।८७ ) १ आरोपित बन्धु, बनावटी दोस्त । ( त्रि० ) २ धारक, धारण करनेवाला ।

दिधिषु ( सं० पु० ) दिधिं धैर्यं स्यतीति सो बाहुलकात् कुः वा दिधिषुं आत्मन इच्छति सुप आत्मनः क्यच्, ततो क्विप्, बाहु० ह्रस्वः । १ द्विरूढापति, पहले एक बार ब्याही हुई स्त्रीका दूसरा पति । २ गर्भाधानकर्त्ता, गर्भाधान करनेवाला मनुष्य ।

दिधिषू ( सं० स्त्री० ) दधाति पापं यहा दिधिं धैर्यं इन्द्रियदौर्बल्यात् स्यति त्यजतीति दा वा सो कूप्रत्ययेन साधुः ( अदद्न कूरम्बिति । उण् १।८५ ) १ द्विरूढ़ा, वह स्त्री जिसके दो ब्याह हुए हों । २ वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसको बड़ी बहनके विवाहके पहले हुआ हो । ( त्रि० ) ३ धारक, धारण करनेवाला ।

दिधिषूपति ( सं० पु० ) दिधिषूः द्विरूढ़ा तस्याः पतिः स्वामी । द्विरूढ़ापति, दो बार ब्याही हुई स्त्रीका पति ।

मनुका कहना है, कि पुत्रोत्पादनके लिये धर्मतः प्रति ऋतुमें एक एक बार गमन नहीं करके जो मनुष्य नियम धर्मको उल्लङ्घन कर कामवश अपने मृत भ्राता-की पत्नीमें आसक्त हो जाता है, उसे दिधिषूपति कहते हैं। स्मृतिमें परपूर्वाके पतिको दिधिषूपति कहा है। धृतराष्ट्र और पाण्डुके जनकत्वके लिये व्यासको भी दिधिषूपति कह सकते हैं ।

दिन ( सं० क्लो० ) द्यति खण्डयति महाकालमिति दो छेदे-इनच् (बहुलमन्यत्रापि । उण् २।४८) सूर्यकिरण, प्रका-शित समय, सूर्यके उदयसे लेकर अस्त तकका समय, दिवस, ६० दण्ड परिमित काल, उतना समय जिसमें सूर्य क्षितिजके ऊपर रहता है। पर्याय—घस्र, अहन्, दिवस, वासर, भास्वर, दिवस, वार, अंशक, द्यु । (शब्दर०) वैदिक पर्याय—वस्तो, द्यु, भानु, वासर, स्वस-राणि, घ्रंस, घर्म, घृण, दिन, दिवा, दिवेदिवे, द्यविद्यवि । (निघण्ट) चान्द्रतिथिरूप काल और मानुष दिन अर्थात् एक चान्द्रतिथि एक दिन ।

यह समय सर्वदा परिवर्त्तनशील है, इस कारण ज्योतिषी लोग अहोरात्रको एक दिन मानते हैं। आह्निक-गति निबन्धन पृथ्वी २४ घण्टेमें एक बार अपने मेरुदण्ड ( अक्ष ) पर घूमती है, यही दिनरात होनेका कारण है। पृथ्वी गोलाकार है, इस कारण एक बारमें उसके आधे भाग पर सूर्यका प्रकाश पड़ता है और आधा भाग अंधेरेमें रहता है। जिस भाग पर प्रकाश पड़ता है वहाँ दिन और जो भाग अंधेरा रहता है वहाँ रात होती है। पृथ्वीके आह्निक आवर्त्तनके लिये दो मेरु सन्निहित प्रदेश छोड़ कर अन्यान्य सभी स्थानोंमें प्रति दिन एक बार प्रकाश और एक बार अन्धकार पड़ता है। कहना फजूल है, कि सूर्य ही दिवारात्रिके कर्त्ता हैं। दिवाभागमें सूर्य चक्रवालके ऊपरी भाग पर और रातको उसके नीचे रहता है, इसी कारण रातको दिखाई नहीं पड़ता । सूर्य परिदृश्यमान आकाशमण्डलके किसी स्थानसे हट कर जब फिर उसी स्थान पर आ जाता है, तब उतनेही समयको दिवारात्रि अथवा एक दिनका मान कहते है। अब प्रश्न यह उठता है, कि किस समय दिनकी गणना करनी होगी ? इस विषयमें भिन्न भिन्न जाति और सम्प्रदायके लोगोंका भिन्न भिन्न ख्याल है, अतः वे अपने अपने सुभीतेके लिये दिनकी गणना करते हैं। प्रधानतः सूर्योदय, सूर्यास्त, दिनके दो पहर और रातके दो पहरसे दिनका आरम्भकाल माना जाता है। दिवाभागमें सभी प्राणी अपने अपने कामोंमें मस्त रहते हैं और अन्धकारमय निशाकालमें वे विश्राम करते हैं। कामके बाद विश्राम होना स्वाभाविक है। अतः सूर्यो-दयसे आरम्भ करके सूर्योदय तकके समयको दिन मानना सहजसिद्ध और प्रकृतिसङ्गत है। मालूम पड़ता है कि इसी कारण इस देशके ज्योतिषियोंने सूर्योदयसे दिवसको गणना करनेकी प्रथा प्रचलित की है। आज भी इस देशमें उसी तरहकी प्रथा जारी है। प्रायः सभी प्राचीन जाति सूर्योदयसे दिनमानकी गणना करती थीं केवल अरबके लोग मध्याह्नसे और मिस्रके लोग आधी रातसे दिनकी गणना करते थे। फिलहाल एशियाकी अधिकांश जाति और यूरोपके अष्ट्रिया, तुरुष्क और इटालीके लोग सूर्यो-दयसे तथा चीनी मध्यरात्रिसे, अरबी मध्याह्नसे और यूरोपीय अन्यान्य जातिके लोग मध्यरात्रिसे दिनकी गणना करते है। सूर्योदयकाल सूक्ष्मरूपसे प्रत्यक्ष करना अपेक्षाकृत, अनिश्चित और दुरूह होनेके कारण ही

ज्योतिषी लोग शायद मध्यदिवा वा मध्यरात्रिसे दिनको गणना करते होंगे। यूरोपके अधिकांश स्थानोंमें मध्यरात्रिसे दिनकी गणना करने पर भी, ज्योतिर्विद्याविषयक अधिकांश पर्यवेक्षणादि रजनीयोगमें ही हुआ करता है, इस कारण एक रातमें प्रत्यक्षीकृत भिन्न भिन्न प्रकारकी घटनायें कभी कभी भिन्न भिन्न तारीखकी पड़ जाती हैं तथा उससे तरह तरहकी असुविधायें उत्पन्न होती हैं। इसी लिये ज्योतिषी लोग दो पहर दिनसे ही दिनकी गणना करते हैं। सुभीतेके लिये दिनकी पूर्वाह्न १२ घंटोंमें भाग न करके एक ही बार २४ घंटे तक गणना की जाती है। इस प्रकार ज्योतिषियोंका मङ्गलवार जब २१ घण्टेका होता है, तब लौकिक और राजकीय व्यवहारमें बुधवार पूर्वोक्त ८ घण्टेका होता है, ज्योतिषियोंका जब बुधवार २ घण्टेका होता है, तब लौकिक व्यवहारमें बुधवार अपराह्न २ घण्टेका अर्थात् ज्योतिषियोंकी तारीख लौकिक व्यवहारकी तारीखसे १२ घण्टेके बाद शुरू होती है। ईसाई धर्मयाजक सूर्यास्तसे ले कर सूर्यास्त तक दिनकी गणना करते थे।

पहले दिनके विषयमें जो कुछ कहा गया, उसकी आरम्भकालमें विभिन्नता होने पर भी समयका परिमाण बराबर है। ज्योतिषियोंने साधारणतः तीन प्रकारका दिन माना है—(१) नाक्षत्र दिन (२) स्फुट सावन वा सौरदिन तथा (३) मध्यम सावन वा सौर दिन।

किसी नक्षत्रको एक बार याम्योत्तररेखा परसे हो कर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आनेसे जितना समय लगता है, उतने समयको नाक्षत्र दिन कहते हैं। याम्योत्तर रेखाके ऊपर हो कर जानेके बदले, नक्षत्रके उदयकालसे ले कर फिर दूसरी बार उदयकाल तकके समयको भी नाक्षत्र दिन कह सकते हैं। किन्तु पूर्वोक्त उपाय ही यन्त्रादि द्वारा देखनेमें सुविधाजनक मालूम पड़ा है। यह समय ठीक उतना ही है जितनेमें पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम सकती है। इसका परिमाण हमेशा एकसा रहता है, जब कभी घटता बढ़ता भी है, तो इतना थोड़ा कि दो एक युगमें कोई फर्क न दीख पड़ता। इसीसे ज्योतिषी लोग नाक्षत्र दिनमानका व्यवहार बहुत करते हैं।

पृथ्वी अपने अक्ष पर ठीक एक बार घूम चुकी वा नहीं, उस विषयमें मनुष्योंको उतना सम्बन्ध नहीं है। प्रकाश और अन्धकार ले कर ही उनका दिन है। सूर्यको याम्योत्तर रेखा परसे हो कर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आनेमें जितना समय लगता है, उतने समयका स्फुटसावन वा सौरदिन होता है। यह सौर दिन नाक्षत्र दिनसे लगभग ४ मिनट ज्यादा होता है। यह ४ मिनट बढ़नेका क्या कारण है, सो लिखते हैं। मान लो, कि एक दिन दोपहरके समय एक नक्षत्र और सूर्य युगवत् याम्योत्तररेखा पर आ पहुंचे हैं। दूसरे दिन पृथ्वीके ठीक एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकने पर वह नक्षत्र याम्योत्तर रेखा पर आवेगा, किन्तु उस समय सूर्य १ अंश तक आकाशमें पूर्वकी ओर ढल गया है। सुतरां सूर्यको दूसरी बार उस स्थान पर आनेमें पृथ्वीको और भी ४ मिनट अधिक घूमना होगा। राशिचक्रमें सूर्यकी इस प्रकारकी पूर्वगति यदि बराबर चालकी होती, तो वह सौर दिन और नाक्षत्र दिनके जैसा सुस्पष्ट हो जाता। लेकिन वैसा नहीं है। क्रान्तिवृत्तके साथ निरक्षवृत्तको छेदनेके लिये इन दोनोंकी वक्रता हमेशा एक सी नहीं रहती। अतः क्रान्तिपथमें दृश्यतः सूर्यकी गति बराबर होने पर भी निरक्षवृत्तमें इसकी संघातगति समान नहीं होती। पृथ्वीकी गति भी वर्ष भरमें सब दिन एक सी नहीं है। इन्हीं सब कारणोंसे दृश्यतः सूर्यकी पूर्वगति बड़ा ही वैषम्यभावापन्न है। इसीसे सौरदिनका मान भी घटता बढ़ता रहता है। यदि एक घड़ी यथाविधि प्रकृत सौरदिनका समय मालूम करनेके लिये रखी जाय, तो सप्ताह होते न होते देखा जायगा, कि उसमें और सूर्यघड़ीमें एक सा समय नहीं है, चाहे किसीमें कम होगा या ज्यादा। इसका कारण और कुछ नहीं है, घड़ी ठीक ही चल रही है, पर हां, इतनेमें सूर्यकी दृश्यमान गति परिवर्त्तित हो कर सौरदिनकी विषमता हो गई है, किन्तु सूर्यघड़ी हमेशा सौर दिन ही निर्देश करती है। यही सब गड़बड़ी देख कर ज्योतिषियोंने सौरदिनका एक परिमाण निर्द्दिष्ट कर दिया है। सम्वत्सरगत कालकी दिनसंख्यासे भाग देनेसे जो काल पाया जाता है वही मध्यम

सौरदिन है। यह २४ घण्टे या ६० दण्डोंमें विभक्त रहता है।

स्मृति और पुराणके मतानुसार एक चन्द्रमास पितृलोकका एक दिन, एक सौर वर्ष देवता और असुरोंका एक दिन और ८६४०००००० वर्ष ब्रह्माका एक दिन होता है। २ ज्योतिस्तत्त्वोक्त राशिभेद, फलित ज्योतिषमें एक राशिका नाम। ३ समय, काल, वक्त। ४ निश्चित या उचित समय, नियत वा उपयुक्त काल। ५ वह काल जिसके मध्य कोई विशेष बल हो, विशेषरूपसे बिताया जानेवाला समय।

दिनकर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, दिनस्य करः। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक।

दिनकर—१ प्रबोधसुधाकर नामक संस्कृत वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता। २ एक विख्यात नैयायिक। इनका प्रकृत नाम महादेव दिनकर था। इन्होंने तथा इनके पिता बालकृष्णने सिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश नामक सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीका प्रणयन की है। यह टीका दिनकरी नामसे भी प्रसिद्ध है। इसके सिवा भवानन्दने जो तत्त्वचिन्तामणिकी टीका लिखी है, दिनकरने उसकी भी एक वृत्ति की है। ३ मासप्रवेशसारणी नामक ज्योतिर्ग्रन्थकार। ४ रसतरङ्गिणी-टीकाके रचयिता।

दिनकरकन्या (सं० स्त्री०) यमुना।

दिनकरतनय (सं० पु०) दिनकरस्य तनयः ६-तत्। अर्कनन्दन। १ शनि। २ यम। ३ कर्ण। ४ सुग्रीव। स्त्रियां टाप्। ५ तापती। ६ यमुना। ७ चित्रगुप्त।

दिनकरदेव (सं० पु०) सूर्यदेव।

दिनकरभट्ट—१ एक विख्यात स्मार्त्त पण्डित। ये रामेश्वरभट्टके पुत्र और विश्वेश्वरभट्टके पिता थे। इन्होंने छत्रपति शिवजीके आश्रममें दिनकरोद्योत नामक एक वृहत् स्मृतिनिबन्धकी रचना आरम्भ की। किन्तु वे इसे सम्पूर्ण कर न सके, वरं इनके पुत्र विश्वेश्वरने इसे पूरा किया। इसके अलावा इन्होंने शास्त्रार्थसार, कर्मविपाकसार, शान्तिसार और भट्टदिनकर नामक शास्त्रदीपिकाकी एक टीका प्रणयन की है।

२ वारेन्द्रवासी गौरवंशीय एक ज्योतिर्विद्। इन्होंने १५०० शकमें खेटसिद्धि तथा चन्द्रार्की नामक ज्योतिर्ग्रन्थ बनाये हैं। ३ पद्माकर भट्टके पुत्र। इन्होंने तर्ककौमुदी नामक तर्कभाषाकी एक टीका रची है।

दिनकर राव—ग्वालियरके दीवान वा प्रधान राजमन्त्री। १८५२ ई०में ग्वालियरके राजा बालिग हुए और उनका राजकार्य चलानेके लिये वृटिश गवर्मेण्टने युवक दिनकर रावको दीवान बनाया। उनके सुशासनके गुणसे ग्वालियरराज्यको खूब उन्नति हुई। उन्होंने जो कुछ संस्कार किया, अंगरेजराजपुरुषगण भी मुक्तकण्ठसे उसकी प्रशंसा कर गये हैं। अन्यान्यरूपसे जो कर लिया जाता था, दिनकरने उसे बन्द कर दिया। ऐसा करनेसे अनेक राजकर्मचारियोंका स्वार्थ खोया गया। इस पर राजा उन लोगोंकी उत्तेजनासे दिनकर रावको पदच्युत कर आप स्वयं राजकार्य देखने लगे। किन्तु थोड़े ही समयके बाद राज्यमें अशान्ति फैल गई। सुतरां सुश्रृङ्खला स्थापन करनेके लिये दिनकर राव पुनः नियुक्त किये गये। सिपाही विद्रोहके समय इन्होंने प्राणपणसे वृटिश गवर्मेण्टको सहायता की थी। १८५८ ई०के दिसम्बर महीनेमें उनके स्थान पर बालाजी चिमनाजी दीवान हुए।

दिनकरात्मजा (सं० स्त्री०) दिनकरस्य सूर्यस्य आत्मजा। सूर्यकन्या, यमुना, तपती।

दिनकर्त्तृ (सं० पु०) दिनं करोति कृ-तृच्। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आकका पेड़।

दिनकृत (सं० पु०) दिनं करोति दिन कृ-क्विप् तुकागमश्च। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मंदार।

दिनकेशर (सं० पु०) दिनस्य केशर इव। अन्धकार, अंधेरा।

दिनक्षय (सं० पु०) दिनस्य तिथेः क्षयः। तिथिक्षय।

दिनचर्या (सं० स्त्री०) दिवसका कर्त्तव्य कर्म, दिन भरका काम धन्धा। प्रति दिन किस प्रकारका आचरण करनेसे शरीर स्वस्थ रह सकता है, इसके विषयमें भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

जिस प्रकारके आहार और आचरणादि द्वारा मनुष्योंको सर्वदा स्वास्थ्य रक्षा हो, वैद्य उसी प्रकारकी उन्हें सलाह दें। स्वास्थ्य ठीक नहीं रहनेसे जीवन धारण ही विषवत् हो जाता है। इसी स्वास्थ्यलाभके लिये

दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या लिखी गई है। इस विधिके अनुसार नियम प्रतिपालन करनेसे निश्चय ही शरीर सुस्थ रह सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

यदि वायु, पित्त, कफ, अग्नि. धातु और मलको समता रहे, शरीरानुरूप क्रिया समर्थ हो और आत्मा, इन्द्रिय तथा मनकी प्रसन्नता रहे, तो उसे स्वास्थ्य कहते हैं। हर किसीको स्वास्थ्यरक्षाके लिये ब्राह्म मूहूर्त में अर्थात् सूर्योदयके दो दण्डके भीतर बिछावनसे उठ कर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन प्रकारके दुःखोंको शान्तिके लिये ईश्वरका नाम जपना चाहिये। पीछे दधि. घृत, दर्पण, श्वेतसर्षप, बिल्व, गोरोचना और माल्यका दर्शन तथा स्पर्शन करना चाहिये। प्रति दिन घीको छायामें अपने शरीरको देखनेसे आयुकी वृद्धि होती है। उषाकालमें ही मलमूत्रादि परित्याग करना चाहिये। इस नियमका प्रतिपालन करनेसे अन्त्रकूजन अर्थात् आंतोंकी गुड़गुड़ाहट, पेटका फूलना तथा पेटकी गुरुता जाती रहती है। मलमूत्रादिका वेग कभी रोकना नहीं चाहिये, क्योंकि इससे नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होती है।

मलवेग धारण करनेसे पेटमें गुड़गुड़ाहट तथा वेदना और गुह्यदेशमें कर्त्तनवत् पीड़ा होती है। वायु वेग धारण करनेसे मलमूत्रनिरोध, उदराध्मान और शरीरमें थकावट आ जाती है और मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्राशय तथा शिश्नदेशमें वेदना, मूत्रकृच्छ्र, शिरःशूल, शरीरमें नम्रता और वङ्क्षणदेशमें आकर्षणवत् पीड़ा होती है। इसीसे मलमूत्रादिका वेग यदि उपस्थित हो जाय, तो अनिवार्य कार्य सामने रहते भी उसे रोकना न चाहिये। यदि वेग न पहुंचे, तो उसे बलपूर्वक कोंथ कर निकालनेकी कोशिश भी न करनी चाहिये। मलमूत्रादि कर चुकनेके बाद गुह्यदेशको भलीभांति जलसे परिष्कार कर लेना चाहिये। इससे शरीरकी क्लान्ति जाती रहती है, देह पवित्र होती है और अलक्ष्मी तथा कलिकालजात पाप विनष्ट होते हैं।

इसके अनन्तर हाथ और पांव धो डालना चाहिये, इससे शारीरिक पुष्टिसाधन और चक्षुकी भलाई होती है। बाद दतुवन ले कर मुख धोना उचित है।
दंतधावन और दंतकाष्ट देखो।

दतुवन कर चुकनेके बाद बार बार कुल्ली करनी चाहिये। ऐसा करनेसे कफ, तृष्णा और मुखगत मल जाता रहता है तथा मुखका भीतरी भाग साफ हो जाता है। प्रतिदिन कड़ुआ तेल नाकमें देनेका अभ्यास करना चाहिये।

किन्तु कफ शान्तिके लिये प्रातःकाल, पित्त शान्तिके लिये मध्याह्नकाल और वायु शान्तिके लिये सायंकाल नस्य लेना उचित है। नस्य लेनेसे मुख सुगन्ध, स्वर स्निग्ध और सभी इन्द्रियां शान्त होती हैं तथा वलि, पलित और व्यङ्गरोग जाता रहता है। इसके बाद आंखोंमें अंजन लगाना चाहिये, इससे आंखें देखनेमें सुन्दर लगती हैं तथा सूक्ष्म पदार्थ भी भलीभांति देखे जा सकते हैं। किन्तु जो रातमें जगे हैं, उसके लिये तथा परिश्रान्त, वमिरोगाक्रान्त, भुक्त और शिरःस्नात मनुष्यके लिये नेत्राजनका व्यवहार निषेध है।

हर पांचवें दिन नख और दाढ़ी मुंड़वानी चाहिये तथा बाल छंटवाने चाहिए। क्योंकि केशादिके छंटानेसे शिरकी शोभा बढ़ती है तथा धन और आयुकी वृद्धि होती है। नाकके बाल न उखाड़ना चाहिये; उखाड़नेसे नेत्रकी शक्ति बहुत जल्द घट जाती है। प्रति दिन कंघीसे बाल झाड़ना तथा व्यायाम करना अवश्य कर्त्तव्य है। व्यायाम करनेसे शरीरकी लघुता, कर्मसामर्थ्य, विभक्त घनगात्रता (अर्थात् शरीरका जहां जहां पतला और मोटा होना उचित है वहां उसका पूरा होना), दोषका नाश और अग्निकी वृद्धि होती है। वसन्त और शीतऋतुमें व्यायाम करना विशेष उपकारी है। इसके सिवा अर्थात् ग्रीष्मादि ऋतुमें जिसको जैसा बल है उसकी आधी शक्ति लगा कर व्यायाम करना चाहिये। जब तक हृदयस्थित वायु मुखरन्ध्र द्वारा वहिर्गत न हो और मुखशोष उपस्थित न हो तथा कपाल, नासिका और गात्रसन्धिसे पसीना न जाय, तब तक आधी शक्तिका व्यायाम नहीं समझा जा सकता है। भोजन तथा शृङ्गार कर चुकनेके बाद व्यायाम करना निषिद्ध है। इसके सिवा दुबले पतले मनुष्योंके लिये तथा कास, श्वास, क्षय, पित्त, रक्तपित्त, क्षत और धातुशोष

इत्यादि रोगाक्रान्त मनुष्योंके लिये भी व्यायाम निषिद्ध बतलाया है।

शरीरकी पुष्टिके लिये प्रति दिन समूचा शरीरमें तेल लगाना चाहिए। विशेष कर मस्तक पर, दोनों कानों और दोनों पैरोंमें तेल लगाना फायदामन्द है।

अभ्यङ्ग विषयमें सरसोंका तेल, गन्धतेल और पुष्प वासित तेल प्रशस्त है। अभ्यङ्ग द्वारा वायु, कफ और श्रान्ति दूर होती है तथा बल, सुख, निद्रा, शरीरकी कोमलता, परमायु वृद्धि तथा शरीरकी पुष्टि होती है। शिर पर तेल लगानेसे सारी इन्द्रियां तृप्त होती हैं, दर्शन शक्ति बढ़ती है, शरीरकी पुष्टि होती है तथा शिरोगत रोग जाता रहता है।

प्रति दिन कानमें तेल डालनेसे किसी प्रकारका कर्ण रोग नहीं होता। इस प्रकार तेल लगा कर अवगाहन पूर्वक स्नान करना चाहिए। इसमें लोमकूप, शिराजाल और धमनी द्वारा शरीरके भीतर तेल, जल आदिके प्रविष्ट होनेसे देहकी तृप्ति तथा वृद्धि होती है। जिस प्रकार वृक्षके मूलमें जल देनेसे नये पत्ते निकल आते हैं, उसी प्रकार स्नेह-संसिक्त गात्रमें जल देनेसे मनुष्यके रस-रक्तादि धातु समूह पुष्ट होता है। शीतल जलादि द्वारा परिषेचन करनेसे बाह्य उष्मा प्रतिहत हो कर शरीरके भीतर प्रविष्ट करती है। उष्ण जल द्वारा शिर:स्नान करनेसे चक्षुकी दीप्ति बढ़ती है। स्नानके बाद कपड़ेसे देहको भली भांति रगड़ना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीरकी क्लान्ति, कण्डू और त्वग्दोष विनष्ट होता है। गात्रमर्दनके बाद शरीर जब स्निग्ध हो जाय, तब कपड़ा पहन लेना चाहिये। स्नानादि कर चुकनेके बाद यथा-योग्य अनुलेपनादि कर्त्तव्य है। अनुलेपनके बाद यथा विधान शरीरको भूषित करना चाहिये।

बाद जब खानेका समय पहुंचे, तब मङ्गलजनक सामग्री ग्रहण करनी चाहिये। प्रति दिन ऐसा करनेसे परमायु और शुभादृष्ट बढ़ता है। ब्राह्मण, गो, अग्नि, पुष्पहार, घृत, सूर्य, जल और राज्य ये ही आठ मङ्गल-जनक पदार्थ हैं।

खानेके पहले और पीछे खड़ाऊँका व्यवहार करना उत्तम है, इससे पदगत रोग जाता रहता है तथा चक्षुकी भलाई होती है।

मनुष्योंको स्वभावतः चार स्पृहा बलवती होती है—आहार, पान, निद्रा और सुरतेच्छा। भूख लगने पर यदि न खाया जाय, तो अरुचि, श्रान्तिबोध, तन्द्रा, चक्षुकी दुर्बलता, रक्तरसादि धातुकी क्षीणता और बल-की हानि होती है। प्यास लगने पर यदि जल न पाया जाय, तो कण्ठशोष, मुखशोष, श्रुतिशक्तिका ह्रास, रक्त-शोष और हृदयदेशमें पीड़ा होती है। नींदको रोकने-से जंभाई, शिर और आंखोंका भारीपन, शरीरमें वेदना और तन्द्रा होती है तथा खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह परिपक्व नहीं होता। बाह्य अग्नि जिस प्रकार दाह्य वस्तुके अभावमें धीमी हो जाती है, उसी प्रकार क्षुधित व्यक्तिकी आहार्य वस्तु नहीं मिलने पर शारीरिक पाचक अग्नि भी क्षीण हो जाती है। जठराग्नि प्रथमतः भुक्त द्रव्य परिपाक करती है, उसके अभावमें कफादि दोष-समूहको, फिर उसके भी अभावमें रसरक्तादि धातुको और बाद धातुके अभावमें प्राण तक परिपाक कर जाती है। यही कारण है कि भूख लगने पर भोजन करना कर्त्तव्य है। प्रति दिन भोजनके प्रारम्भमें लवणार्द्रक अर्थात् नमक और अदरख खाना चाहिए, बाद कोमल द्रव्य और अन्त-में द्रव पदार्थ खाना वा पीना उचित है। इस नियमा-नुसार भोजन करनेसे बल और स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। भोज्य वस्तुमें जो जो वस्तु यथाक्रमसे सुस्वादु हो, पहले उसीको खाना चाहिये। एक वस्तु खा लेनेके बाद दूसरी जो वस्तु खानेकी इच्छा होती है; उसीको यहां पर सुस्वादु बतलाया है। बहुत जल्दीसे वा देरीसे भोजन करना मना है। जिस मनुष्यकी अग्नि मन्द हो, उसे तीन प्रकारके गुरु द्रव्यका परित्याग करना चाहिये। मात्रा गुरु, स्वभावतः गुरु और संस्कार गुरु यही तीन प्रकारके गुरु पदार्थ हैं। मात्रा गुरु मूंग आदि है, यह स्वभावतः गुरु नहीं है, पिष्टकादि संस्कार गुरु है। गुरु और लघु द्रव्य जितना खानेसे तृप्तिबोध हो, उतना ही खाना उचित है; अर्थात् उरदकी पीठी आधा मात्रामें और मूंगादिकी पीठी पूरी मात्रामें खानी चाहिये। पेयादि तरल द्रव्य है, तक्र आदि उससे भी अधिक तरल है, अतः किसी पदार्थमें उसे मिला कर अधिक मात्रामें खानेसे भी उसे गुरु नहीं कह सकते। क्योंकि पेय पदार्थ

सब प्रकारसे लघु गुरुयुक्त है। शुष्क द्रव्य चिउड़ा आदि, विरुद्ध द्रव्य दूध मछली आदि और विष्टम्भि द्रव्य चना आदि, इन सबको खानेसे जठराग्नि मन्द हो जाती है। भोजनका उपयुक्त समय बिता कर अथवा भूख नहीं लगने पर खाना उचित नहीं है।

उदरके चार अंशोंमेंसे दो अंशको भोज्य द्रव्यसे, एक अंशको जलसे भर लेना चाहिये और शेष एक अंशको वायु जाने आनेके लिये खाली छोड़ देना चाहिये। अत्यन्त जलपान करनेसे भुक्त द्रव्य परिपाक नहीं लेता तथा बिलकुल जलपान नहीं करनेसे भुक्तद्रव्यको पचनेमें बाधा पहुंचती है। इसीसे खाते समय जठराग्निको उद्दीप्त करनेके लिये पुनः पुनः थोड़ा थोड़ा जल पीते रहनेसे शरीर दुर्बल हो जाता तथा अग्नि प्रदीप्त होती है, भोजनके बाद जल पीनेसे शरीरको स्थूलता और कफकी वृद्धि होती है। इसीसे आधा भोजन कर चुकने पर पानी पीना स्वास्थ्यकर है। तृष्णातुर व्यक्तिके लिये भोजन और क्षुधित व्यक्तिके लिये जलपान बिलकुल मना है। क्योंकि तृष्णातुर मनुष्यके भोजन करनेसे गुल्मरोग और क्षुधित मनुष्यके जलपान करनेसे जलोदर उत्पन्न होता है। इस नियमसे भोजन शेष हो जाने पर तनिका करके कुल्ली करनी चाहिए। कुल्ली करते समय दांतोंमें जो मैल बैठी हो उसे यत्नपूर्वक धो डालना चाहिये। ऐसा करनेसे मुखकी दुर्गन्ध जाती रहती है। यदि कोई पदार्थ दांतमें दृढ़रूपसे सट गया हो, तो उसे दांत समझ कर निकालनेकी कोशिश न करनी चाहिये।

आचमन करनेके बाद जलसिक्त हाथ दोनों आंखोंको पोंछ लेना चाहिये। भोजन कर चुकनेके बाद आंखमें जल छिड़कनेसे तिमिका विनष्ट होता है। इसके अनन्तर जिससे खाया जाय, इसके लिए अगस्त्यादि महात्माओंके नाम जपने चाहिए। अङ्गारक, अगस्त्य, वैश्वानर, सूर्य और दोनों अश्विनीकुमारके नाम ले कर पेट पर हाथ फेरनेसे खाये हुए पदार्थको पचनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचती। भोजन करनेके बाद अगुरु आदिके धूपसे कफका नाश कर हृद्य, कटुतिक्त, कषाय, रसविशिष्ट फलको चबा कर मुखको निर्मल रखना चाहिए। पीछे सुगन्धित द्रव्यके साथ पान चिबानेसे चित्त प्रसन्न रहता है। ताम्बूल देखो।

इसके बाद धीरे धीरे एक सौ कदम जाना कर्त्तव्य है। भोजन करके जो मनुष्य उक्त नियमका पालन न कर बैठ जाता है, उसे तोंद निकलती है, जो सो जाता है, उसके शरीरकी पुष्टि होती है और जो भ्रमण करता है अर्थात् धीरे धीरे एक सौ कदम जाता है, उसकी आयु बढ़ती है। जो मनुष्य तेजीसे चलता है, उसे नाना प्रकारकी उत्कट व्याधि होती है। इसके पश्चात् जितनी देर तक आठ बार सांस ली जा सकती है, उतनी देर तक चित हो कर उससे दूना समय तक दाहिनी करवट ले कर और उससे भी दूना बाईं करवट ले कर सोना चाहिए। अजीर्ण होने पर बाईं करवट लेना मना है। उक्त नियमके अनुसार प्रतिदिन चलनेसे शरीरको किसी प्रकारकी व्याधि छू तक नहीं सकती। (भावप्रकाश) रात्रिचर्या शब्द देखो।

दिनचारी (हिं० पु०) दिनको चलनेवाला सूर्य।

दिनज्योति (सं० क्लो०) दिनस्य ज्योतिः। आतप, धूप।

दिनदीप (सं० पु०) सूर्य।

दिनदुःखित (सं० पु० स्त्री०) दिने दिवसे दुःखितः दिवाभावे वियोगित्वात्तथात्वं। चक्रवाकपक्षी, चकवा पक्षी।

दिननाथ (सं० पु०) सूर्य।

दिननायक (सं० पु०) दिनके स्वामी, सूर्य।

दिननाह (सं० पु०) दिननाथ देखो।

दिनप (सं० पु०) दिनं पाति पा-क। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक। ३ वाराधिपति सूर्यादि, दिन वा वारके पति।

दिनपति (सं० पु०) दिनस्य पतिः। दिनप देखो।

दिनपाकी अजीर्ण (सं० पु०) एक प्रकारका अजीर्ण। इसमें एक बारका किया हुआ भोजन आठ पहरमें पचता है और बीचमें भूख नहीं लगती।

दिनपात (सं० पु०) दिनस्य चान्द्रदिनस्य तिथेः पातः चयः। दिनक्षय।

दिनपाल (सं० पु०) सूर्य।

दिनपिण्ड (सं० पु०) दिनस्य पिण्डः ६-तत्। ज्योतिषोक्त अहर्गण।

दिनप्रणी (सं० पु०) दिनं प्रणयति करोति प्र-णी-क्विप। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक।

दिनप्रवेश (सं॰ पु॰) ताजकोक्त मासप्रवेशकी नाईं वर्षमास सम्बन्धी दिनका प्रवेश। इसका विषय ज्योतिष-में इस प्रकार लिखा है। जब वर्ष प्रवेश होता है, तभी प्रथम मासका तथा प्रथम दिनका प्रवेश होना समझा जाता है। वर्ष-प्रवेश कालके रविस्पष्टमें एक राशि जोड़ने-से जितनी राशि होंगी, उनका नाम मासार्क है। मासार्क के निकटस्थ पूर्व परवर्त्ती किसी समयके रविस्फुटके साथ मासार्कका अन्तर कर जो अंश बच रहेगा, उसे कला बनाते हैं। पीछे रविकी गतिसे उसमें भाग देनेसे जो भागफल हो, उसे निकटस्थ जिस दिन घन दण्ड समयमें रविका स्फुट लिया गया था, उसके साथ योग वा वियोग करते हैं। अर्थात् मासार्कके पूर्व रविस्फुटमें योग और पीछे रविस्फुटसे वियोग किया जाता है। (ताजक)

इस प्रकार योग वा वियोग करनेसे जितने दिन दंडादि होंगे उतने ही दिन दण्डादि समयमें मासप्रवेश होगा। दिनप्रवेश भी इसी नियमसे समझना चाहिए। जिस समय दिनप्रवेश होगा उस समय समस्त ग्रहस्फुट, भाव, सन्धि और वलादिका निरूपण कर फलका विचार करना होता है।

दिन-प्रवेशकालमें वर्षप्रवेशादिकी नाईं सूर्यादि ग्रह और द्वादश भावका साधन कर चन्द्र और नवांशाधिपति द्वारा शुभाशुभका विचार करते हैं। मुन्थाधिपति, जन्म-लग्नाधिपति, विराशिपति, दिनरात्रिका अधिपति, दिन-लग्नाधिपति, मास लग्नाधिपति और वर्षलग्नाधिपति इन-में जो बलवान् हो कर दिन लग्नको देखता है, वही ग्रह दिनाधिपति होता है। यदि दिनप्रवेश लग्न वा चन्द्रसे त्रिकोण हो, केन्द्र हो वा ग्यारहवां स्थान बल-वान् हो, शुभग्रह छठे स्थानमें तथा तीसरे वा ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हो, तो उस दिन सुख, मान, अर्थ और यशका लाभ होता है।

छठे, आठवें वा बारहवें स्थानमें यदि पापयुक्त दिनाधि-पति, वर्षाधिपति वा मासाधिपति हो, तो रोग, मान और यशकी हानि होती है। उक्त ग्रह गण यदि केन्द्र त्रिकोण वा ग्यारहवें स्थानमें हों, तो सुखलाभ समझना चाहिये। दिन प्रवेश नवांश शुभग्रहयुक्त हो कर यदि चन्द्रमा कर्त्तृक मित्र दृष्टि द्वारा देखा जाता हो, तो नीरोग राज्य लाभ तथा शरीरकी पुष्टि होती है। इसका विप-रीत होनेसे पूर्ववत् विपरीत फल समझना चाहिये। यदि दिन-प्रवेशकालमें जो भाव नवांश शुभग्रहसे स्नेह दृष्टि द्वारा देखा जाता हो वा शुभयुक्त हो, तो उस भाव-का शुभ फल होता है। इसका विपरीत होनेसे अर्थात् पापयुक्त वा पापग्रह कर्त्तृक शत्रु द्वारा देखे जानेसे उस भावका अशुभ फल समझना चाहिए। षष्ठभाव नवांश यदि शुभयुक्त हो, तो रोग और पापयुक्त होने पर भी शुभफल है। व्ययभाव नवांश शुभयुक्त वा शुभदृष्ट हो, तो समझना चाहिए कि अपनी स्त्रीसे सहाय होगा। जाया भावके नवांश शुभयुक्त वा शुभदृष्ट होनेसे निजपत्नी द्वारा सुख और पाप दृष्ट वा पापयुक्त होनेसे गृहविरोध होता है। यदि जाया भाव दो पापोंके बीचमें पड़ जाय तो मृत्यु समझी जाती है।

सप्तमभाव नवांश शुभ मध्यस्थ हो, तो अनेक प्रकार-के कामिनी-सुख प्राप्त होते हैं। उक्त नवांशमें यदि बृह-स्पति रहे, तो अपनी स्त्रीमें और यदि अन्यग्रह रहे, तो दूसरेकी स्त्रीमें रतिसम्भोग होता है। अष्टमभाग नवांश दिनप्रवेश-लग्नका अष्टम स्थान शुभग्रहसे दृष्ट वा युक्त हो, तो रणमें मृत्यु होती है। शुभाशुभयुक्त हो वा दृष्ट हो, तो शुभ फल और यदि पाप दृष्ट वा पापयुक्त हो, तो दुःख मिलता है। दिनप्रवेशलग्नके दूसरे और बारहवें स्थानमें पापग्रह हो, तो हानि, शुभग्रह हो, तो सहाय; पापग्रहके लिये कर्त्तरीयोग हो, तो अशुभ तथा रोग और यदि शुभग्रह घटित कर्त्तरीयोग हो, तो शुभ होता है। क्षीणचन्द्रलग्नमें वा आठवें स्थानमें रह कर पाप दृष्ट वा पापयुक्त हो, तो मृत्यु अथवा रोग तथा शत्रुसे अस्त्रका भय होता है। मङ्गल-युक्त चन्द्रके छठे वा आठवें स्थानमें रहनेसे शत्रुसे अस्त्र-का भय और चौथे स्थानमें पापग्रहके रहनेसे गजाश्वादि-से पतन और शरीरमें नाना प्रकारके रोग होनेकी आशङ्का रहती है। सातवें स्थानमें शुभग्रहके रहनेसे जय, दूसरे स्थानमें सुख, नवें स्थानमें धर्म, अर्थागम और राज-सम्मान प्राप्त होता है। दिनप्रवेशके समय चन्द्रमा जिस प्रकार रहते हैं, फल भी उसी प्रकार मिलता है। चन्द्र-स्फुटकी राशिको छोड़ कर अवशिष्ट भागको २से गुना

करें और गुणनफलको ५से भाग दें, तो चन्द्रमाको अवस्था मालूम हो जायेगी। चन्द्रमाकी प्रवासावस्थामें मनुष्यका भी प्रवास, नष्टावस्थामें वित्तनाश, मृतावस्थामें मृत्युभय, जयावस्थामें जय, हास्यावस्थामें स्त्री विलासादि सुख, क्रीड़ावस्थामें सुख, सुप्तावस्थामें निद्रा, भुक्तावस्थामें देहपीड़ा, भय और ताप आदि हुआ करता है। (नीलकण्ठोक्त ताजक)

दिनबन्धु (सं० पु०) दिनस्य बन्धु। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मंदार।

दिनबल (सं० पु०) दिने बलं यस्य। द्विपदराशि, फलित ज्योतिषमें बारह राशियोंमेंसे पांचवीं, छठी, सातवीं, ग्यारहवीं, और बारहवीं ये छह राशियां दिनबल या दिनबली मानी जाती है और बाकी रात्रिबल।

दिनमणि (सं० पु०) दिनस्य मणिरिव। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मंदार।

दिनमयूख (सं० पु०) दिने मयूखो यस्य। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक।

दिनमल (सं० क्ली०) मास, महीना।

दिनमान (सं० क्ली०) दिनस्य मानं। सूर्यदर्शनकालका मानभेद, सूर्योदयसे ले कर सूर्यास्त तकके समयका मान। बारहों मासके प्रति दिनका दिनमान निम्नलिखित नियमसे स्थिर किया जाता है। पहले रविस्फुट करना होता है। पीछे यदि उस रविका स्फुट अयनांश युक्त हो, तो उससे अयनांश निकाल लेते हैं। ऐसा करनेसे शून्य समयका अर्थात् विषुव संक्रान्तिके रविका स्फुट निकल आवेगा। इस विषुवसंक्रान्तिसे ले कर क्रमशः ६ मासके ६ संक्रान्ति दिनोंका अर्थात् वैशाख मासमें विषुव संक्रान्ति-दिवसीय ० शून्य, ज्येष्ठ मासकी संक्रान्तिके दिवसीय ३० तीस, आषाढ़ मासके संक्रान्ति दिवसीय ५४, श्रावण मासके संक्रान्ति दिवसीय ६४, भाद्रमासके संक्रान्ति दिवसीय ५४, आश्विन मासके संक्रान्ति दिवसीय ३० इन छः अङ्कोंको विषुवकी मध्याह्न छाया ५।१० से गुणा करते हैं, बाद उसमें ८० का भाग दे कर भागफल जो होता है उसमें ३० जोड़ते हैं। अब योगफल जो दण्ड होगा, वही यथाक्रमसे उक्त विषुव संक्रान्ति आदि छः संक्रान्ति दिवसका दिन-मान माना जायगा। फिर जो छः संक्रान्ति बच रहेगी उनका दिनमान इस प्रकार निकालना होता है, जैसे—जिन ६ संक्रान्ति दिनोंका दिनमान ६० से नियुक्त करने पर जो बच जायगा वही यथाक्रमसे कार्तिकादि ६ मासके संक्रान्ति दिनोंका दिनमान होगा। जिन जिन देशोंमें बारह अंगुलीके शङ्कुका ५-१० पाँच अंगुल दश व्यङ्गुल मध्याह्न छाया हो उन देशोंका दिनमान इस प्रकार निकालना होता है, जैसे—वैशाख मासके विषुवसंक्रान्ति दिवसीय दिनमान ३०दण्ड होता है। इस ३० दण्डको ६० दण्डमेंसे निकाल लेने पर जो ३० बच जाता है, वही कार्त्तिक मासकेसंक्रान्ति दिवसका दिनमान होगा। ज्येष्ठ मासका संक्रान्ति-दिवसीय दिनमान ३१।४३ पल है। इन अङ्कोंको ६०मेंसे घटा लेने पर २८।१७ पल बच जाता है, यही अग्रहायण मासके संक्रान्तिदिवसका दिनमान होगा। आषाढ़ मासका संक्रान्ति-दिवसीय दिनमान ३३।६ पल है, ६० मेंसे इसे निकाल लेने पर जो २६।५४ पल बच जाता है वही पौष मासके संक्रान्तिदिनका परिमाण है। श्रावण मासके संक्रान्ति दिनका परिमाण ३३।४० पल है जिसे ६० दण्डमेंसे निकाल लेने पर २६। २० पल अवशिष्ट रहता है यही माघ मासके संक्रान्ति दिवसका दिनमान है। भाद्रमासकी संक्रान्तिका दिनमान ३३।६ पल है, इस अङ्कको ६० मेंसे निकाल लेने पर २६।५४ पल बच जाता है, वही फाल्गुन मासके संक्रान्तिदिवसका दिनमान होगा। आश्विन मासका संक्रान्ति दिवसीय दिनमान ३१।४३ पल है उसे ६०मेंसे वियोग करने पर २८।१७ पल अवशिष्ट रहता है, यही २८।१७ पल चैत्र-संक्रान्ति दिवसीय दिनमान होगा। ये सब जो दिनमान कहे गये प्रत्येक ६६ वर्षमें रविका एक अयन-दिन होता है। इसी नियमके अनुसार अभी १० चैत्रको दिनमें सूर्य विषुवरेखा पर आते हैं, इसीसे वह दिवसीय दिनमान ३० दण्डका होता है। दूसरी दूसरी संक्रान्ति उस महीनेके १०वें दिनमें होती हैं। पहले केवल संक्रान्तिदिनका दिनमान कहा गया; इसके मध्यवर्ती दिनोंका दिनमान स्थिर करते समय मासका संक्रान्ति दिवसीय दिनमान निकालते हैं। बाद दूसरे दिनसे ले कर परवर्त्ती संक्रान्ति दिनके पूर्व दिन

तक गणना करके जितने दिन दण्ड होंगे उससे पूर्व संक्रान्तिसे पर संक्रान्ति तक जो दण्डादिकी वृद्धि होती है उसे त्रैराशिक द्वारा दूसरे दूसरे दिवसका दिनमान स्थिर किया जा सकता है।

खं० खाम्नी ३०युग नायकौ ५४ युगरसौ ६४षेदेषव: ५४ जाग्नय:। छाया ५।१० ग्ना खनवो: ९०वृत्ता: खदहनैं ३० युक्ता युमानानि षट्॥

दिनमाली (सं० पु०) सूर्य।

दिनमुख (सं० क्लो०) दिनस्य मुखं। प्रभात, सवेरा।

दिनमूर्द्धन् (सं० पु०) दिनस्य मूर्द्धा इव आद्य स्थानत्वात्। उदयगिरि।

दिनयौवन (सं० क्लो०) दिनस्य यौवनमिव। मध्याह्न, दोपहर।

दिनरत्न (सं० क्लो०) दिनस्य रत्नमिव प्रकाशकत्वात्। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक।

दिनराज (सं० पु०) सूर्य।

दिनराशि (सं० पु०) ज्योतिषोक्त अहर्गण।

दिनव्यास (सं० पु०) दिनस्य अहोरात्रात्मक कालव्यापकवृत्तस्य व्यास:। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार अहोरात्रवृत्त व्यासका अर्द्धव्यास।

दिनशेष (सं० पु०) दिनान्त, संध्या, शाम।

दिनांश (सं० पु०) दिनस्य अंश। १ दिनके प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायंकालमें तीन अंश वा विभाग। २ दिनके पांच अंश या विभाग, जिनके नाम ये हैं—सूर्योदयके बाद तीन मुहूर्त्त प्रात:, तीन मुहूर्त्त सङ्गव, तीन मूहूर्त्त मध्याह्न, तीन मुहूर्त्त अपराह्न और तीन मुहूर्त्त सायाह्नकाल। दिन इन्हीं पाँच अंशोंमें विभक्त है। इनमें प्रातरादि कालको पितृगणके उद्देशसे कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

दिनागम (सं० पु०) दिनस्य आगमः। प्रभातकाल, तड़का।

दिनाइ—युक्तप्रदेशमें हमीरपुर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कुल पहाड़से ३ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां छोटे पहाड़के ऊपर चन्देल राजाओंके समयका शिवमन्दिरका ध्वंसावशेष देखा जाता है। इसका कारुकार्य देखने योग्य है। पहाड़के नीचे जैनतीर्थङ्कर शान्तिनाथकी एक वृहत् मूर्त्ति पड़ी हुई है जिसमें केवल ११९४ संवत् खुदा हुआ है।

दिनाजपुर—बङ्गालके लाटके शासनाधीन राजशाही विभागके पश्चिमांशवर्ती एक जिला। यह अक्षा० २४° ५५' से २६° २३' उ० और देशा० ८८°२से ८९° १८' पू० में अवस्थित है। भूपरिमाण ३९४६ वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें जलपाइगुड़ी, पश्चिममें पुरणियां, पूर्वमें रङ्गपुर, दक्षिण-पूर्वमें बगुड़ा, दक्षिणमें राजशाही और दक्षिण-पश्चिममें मालदा है।

उत्तर-बङ्गालके अन्यान्य जिलाओंकी अपेक्षा यहांकी जमीन जलप्लावित हुआ करती है। हिमालयसे ले कर गङ्गाके किनारे तककी भूमि बहुत शक्त है, इस कारण नदीका किनारा सहजमें हो नष्ट नहीं होता है। जिलेके दक्षिण और वायुकोणमें कुलिक नदीके तीरवर्त्ती प्रदेशकी भूमि तरङ्गायित होनेसे १९० फुट ऊंची पहाड़के आकारमें हो गई है। बहुतसी नदियां जिलेमें बहती हैं। वर्षाकालमें जब बाढ़ आ जाती है, तब ये सब नदियां किनारा पार कर आसपासके स्थानोंमें पङ्क भर देती हैं। जितनी ही पङ्क जम जाती है, वहां उतनी ही अच्छी फसल लगती है। वर्षाकालमें उक्त नदियां उमड़ आती हैं, किन्तु ग्रीष्मकालमें सूख कर बहुत सङ्कीर्ण हो जाती हैं। जब उनमें बाढ़ आ जाती है, तब जल दो मील स्थान तक फैल जाता है। जिलेके दक्षिण भागमें मट्टीका पहाड़ है जो घने जंगलसे परिपूर्ण है और जहां तरह तरहके हिंसक पशु वास करते हैं।

दिनाजपुर जिलेकी सभी नदियां प्रधानत: दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं, एक श्रेणी दक्षिणकी ओर आ कर महानन्दामें गिरी है और दूसरी दक्षिण-पूर्वकी ओर बगुड़ा और राजशाही जिलेकी तिस्ता नदीमें। महानन्दा नदी पश्चिम सीमान्तमें प्रायः ३० मील तक प्रवाहित है। नागर, टाङ्गन और पुनर्भवा इसकी उपनदियां हैं, जिनमें वर्षाकालमें नावें आ जा सकती हैं। आतराई (आत्रेयी), यमुना और करतोया नदियां पुरानी तिस्तामें जा गिरी हैं। विगत शताब्दीमें तिस्ताका स्रोत सहसा परिवर्त्तित हो कर ब्रह्मपुत्र नदीमें गिरता है, इसी कारण इन सब उपनदियोंमें वाणिज्यकी बहुत असुविधा हो गई है।

जिलेमें सब जगह विशेषकर करतोया नदीके किनारे बहुतसे शालके पेड़ पाये जाते हैं। इन सब जंगलोंसे जमींदारोंको यथेष्ट आय होती है। कभी कभी अकालमें वे सब पेड़ काट कर नदीमें बहा दिये जाते हैं; अतः काठ उतना उमदा नहीं होता है। अरण्यमें मधु, अनन्तमूल, शतमूली और जंगली फूल पाये जाते हैं। जङ्गली जन्तुओंमें बाघ, चिता, सूअर, भैंसा, तरह तरहके हरिण, वनबिलाव, गीदड़, नेवला, लकड़बग्घा और नदीमें कुम्भीर आदि देखे जाते हैं। बाघ और चिता घने जङ्गलमें रहते हैं और प्रति वर्ष बहुतसे मनुष्योंको मार डाला करते हैं। भैंसा, सूअर और गीदड़ आदि ईख तथा धानके खेतोंमें आ कर बहुत नुकसान करते हैं। जिले भरमें शिकार और अन्यान्य पक्षी तथा तरह तरहकी मछलियां पाई जाती हैं। यहां कई जगह बहुत बड़े बड़े प्रान्तर पड़ गये हैं जहां पशुपालकगण विना करके अपने अपने मवेशीको चराते हैं।

यहांकी लोकसंख्या प्रायः पन्द्रह लाख है जिसमें असभ्य जातिकी संख्या ही सबसे अधिक है। ये सब शायद नितान्त नीचभावसे हिन्दू धर्ममें रहनेकी अपेक्षा विजेता मुसलमानोंके धर्म का आश्रय लेना ही अच्छा समझते हैं और इसीसे यहां मुसलमानोंकी संख्या अधिक हो गई है। छोटा नागपुरसे भूमिज, सन्थाल, कोल, खरवार, भूंइया आदि जातिके लोग यहां आ कर सड़क बनाने तथा जंगल काटनेके काममें लग गये हैं। प्रकृत हिन्दूकी संख्याकी अपेक्षा हिन्दू सम्प्रदायभुक्त अर्द्ध हिन्दूओंकी संख्या प्रायः दुगनी है। ये पाली, राजवंशी और कोच आदि नामसे मशहूर हैं। कहते हैं कि कुछ कालके लिये ब्राह्मण यहां आकर वास करते हैं। अन्यान्य जातियोंमें राजपूत, कायस्थ, धीवर, बनियां, दुसाध, नाई, तांती, कुम्हार, लोहार, ग्वाला, भंगी और चण्डाल हैं। दिनाजपुर शहरमें ब्राह्मसमाज स्थापित हुआ है, कई एक राजकर्मचारी इसके उपासक हैं। कुछ जैनी भी यहां आ कर बस गये हैं। भिक्षाजीवी वैरागी वैष्णवकी संख्या भी कम नहीं है, अनेक पाली इस सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। अधिकांश मुसलमान लोग कृषिजीवी हैं; जमींदार वा व्यवसायीकी संख्या बहुत कम है। अनाजको काटनेके समयमें कुछ लोग दूसरे जिलेसे यहां आ जाते हैं, किन्तु दिनाजपुरसे बहुत कम लोग दूसरे स्थानको जाते हैं।

दिनाजपुर जिलेमें एक शहर और ७८४१ ग्राम लगते हैं। अधिकांश अधिवासी कृषिजीवी हैं जो छोटे छोटे गांवोंमें रहना बहुत पसन्द करते हैं। दूकानदार और कारीगर लोग भी अपने अपने खर्चके मुताबिक अनाज उपजा लेते हैं। धानकी खेती ही यहां प्रधान है, किन्तु उपयुक्त जमीन रहने पर थोड़ा बहुत साग- तथा फल मूलादि भी उपजाया जाता है।

यहांके अधिकांश कृषक बहुविवाह करते हैं। वे बाहरमें खेती करते और घरमें स्त्रियां कपड़ा बुनती, सूत कातती तथा घरके और सभी काम अपने ऊपर ले लेती हैं। नदीके किनारे बड़ी बड़ी आढ़तें हैं जहां धान तथा और तरहके अनाज जमा रहते और वर्षाके आरम्भमें नाव द्वारा दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं।

धान ही इस जिलेका प्रधान शस्य है। हैमन्तिक, आशु, बोरो ये ही तीन प्रकारके धान यहां हुआ करते हैं। इसके सिवा जुन्हरी, बाजरा, तरह तरहका उरद, तमाकू, पटसन, सरसा, गुंजा, ईख और पान आदि उपजाये जाते हैं।

दिनाजपुरमें अतिवृष्टि वा अनावृष्टि आदि दुर्घटना प्रायः नहींके बराबर है। वर्षाकालमें नदियां उमड़ कर बहुत दूर तक जलप्लावित कर देती हैं सही, किन्तु इससे उपकार नहीं हो तो शस्यका अपकार भी नहीं होता है। केवल १८७३ ई०के सुदीर्घ अनावृष्टिमें इस जिलेमें आमन धान कुछ भी नहीं हुआ था जिससे प्रजाको असीम कष्ट भुगतना पड़ा था। गवर्मेण्टने रिलीफ कार्य खोल कर इस दुर्भिक्षमें बहुत कुछ सहायता दी।

नर्दर्न-बङ्गाल-ष्टेट-रेलपथ इस जिले हो कर गया है। इसकी एक शाखा दिनाजपुर शहर होती हुई गई है। जिले भरमें पक्की सड़कें हैं। नदी द्वारा वाणिज्यादि चलता है सही, किन्तु बहुतसी नदियोंमें वर्ष भरमें केवल ३।४ महीने तक बड़ी बड़ी नावें जाती आती हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि यहांके अधिकांश अधिवासी कृषिजीवी हैं, इसीसे शिल्पकी उन्नति बहुत कम

है, नील तथा रेशमकी एक भी कोठी नहीं है। चीनी-का कारबार भी धीरे धीरे घटता जा रहा है। स्थानीय व्यवहारके लिये मोटा कपड़ा कुछ कुछ तैयार होता है। सिकली घासकी बनी हुई चटाई बहुत बढ़ियां और टिकाउ होती है।

रेल होनेके पहले नदी हो कर हो दिनाजपुर जिलेका वाणिज्य होता था। अभी रेल हो जानेसे व्यवसायको और भी सुविधा हो गई है। चावल, पटसन, तमाकू, चीनी और चमड़ेकी रफ्तनी दूसरे दूसरे स्थानोंमें होती है। आमदनीमें नमक और विलायती कपड़ा प्रधान है। जिलेके पश्चिम भागसे चावल आदि महानन्दानदी हो कर विहार और उत्तर प्रदेशोंमें भेजे जाते हैं और पूर्वांशके वाणिज्यद्रव्य तिस्ताकी उपनदी तथा नर्दर्न बङ्गाल-ष्टेट-रेलपथ हो कर कलकत्ते लाये जाते हैं। ग्रीष्मकालमें व्यापारी लोग सारे जिलेमें इधर उधर घूम कर चावल बटोरते और उसे बैलगाड़ी अथवा ऊंट पर लाद कर आड़तमें जमा रखते हैं। वर्षाकालमें ये सब चावल दूसरे दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं। जिलेमें रायगञ्ज, नितपुर, चाँदगञ, विरामपुर और पतिराम प्रधान हैं। नेकमर्द नामक स्थानमें किसी मुसलमान फकीरके स्मरणार्थ प्रति वर्ष एक मेला लगता है जिसमें प्रायः डेढ़ लाख मनुष्य इकट्ठे होते हैं और भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे गाय, भैंस तथा तरह तरहके पण्यद्रव्य ला कर वेंचे जाते हैं। प्रान्तपुर, ढालदिग्गी, और अलवार खोधा इन तीन स्थानोंमें भी छोटा मेला लगता है।

मध्यवृत्ति और पाठशालाओंमें सरकारी सहायता मिलनेकी व्यवस्था हो जानेसे विद्याशिक्षाकी खूब उन्नति हो गई है। अंगरेजी शिक्षाके लिये भी नाना स्थानोंमें स्कूल स्थापित हुए हैं।

निम्नबङ्गकी अपेक्षा दिनाजपुरका जलवायु शीतल है। यहां बिना वसन्तकालके शेष होनेसे गरमी नहीं पड़ती है। वैशाख महीनेमें १०।१५ दिन तक रातको काफी ठण्ढ पड़ती है। शीतकालमें रातको पाला पड़ता है और सुबहको चारों ओर कुहेसा छा जाता है जो बिना सूर्योदयके दूर नहीं होता है। देखा गया है, कि ग्रीष्मकालमें यह स्थान विदेशियोंके लिये स्वास्थ्यकर नहीं है। वार्षिक वृष्टिपात ४४ इञ्च और तापांश फा० ८३.५° है।

जिलेमें नाना प्रकारके ज्वर, कालाज्वर, ग्रीहा, उदरामय, प्लेग और वसन्त आदि रोग सदा होते रहते है। मलेरियाका प्रादुर्भाव यहां खूब अधिक है। बहुतसे अधिवासी इस रोगसे प्रति वर्ष मरते है। अंगरेज कर्मचारीगण भी उक्त रोगोंसे आक्रान्त हो कर इस स्थानको छोड़नेमें बाध्य हो जाते हैं। राजकार्यके परिचालनमें भी बहुत असुविधा हो जाती है। परीक्षा करके देखा गया है, कि सैकड़े ७५ आदमी रुग्न रहते हैं जिनमेंसे ५४ प्लीहारोगसे। दिनाजपुर-म्युनिसिपेलिटीमें मृत्यु-संख्या प्रति हजारमें वार्षिक प्रायः ४२ मनुष्य अर्थात् लण्डननगरसे दुगुन होती है। जिले भरमें मृत्युसंख्या और भी अधिक है। दिनाजपुर नगरके सन्निकट तथा अन्यान्य स्थानोंमें जल बाहर निकालने, जङ्गल आदि काटने तथा दातव्य चिकित्सालय स्थापन करनेको व्यवस्था करके स्वास्थ्योन्नतिकी ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। कहना नहीं पड़ेगा, कि दिनाजपुरकी अवस्था पहलेसे बहुत कुछ सुधर गई है। दिनाजपुर नगर, रायगञ्ज, चूड़ामन, महादेवपुर, बलूरघाट आदि स्थानोंमें दातव्य-चिकित्सालय हैं।

इतिहास—दिनाजपुरका प्राचीन इतिहास नितान्त अस्पष्ट है। पौराणिककालमें यह स्थान ज्योतिषिक नामसे मशहूर था। पीछे इसका कुछ अंश निवृत्ति और कुछ वरेन्द्रभूमके अन्तर्गत हुआ। प्रवादके अनुसार इस जिलेका अधिकांश प्राचीन मत्स्यदेशके अन्तर्गत था और विराटराज यहां राज्य करते थे। बहुतसे लोग इसी मत्स्यको महाभारतोक्त विराटराजका राज्य बतलाते हैं। किन्तु महाभारत पढ़नेसे स्पष्ट जाना जाता है, कि विराटका मत्स्यदेश उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें अवस्थित था, न कि इस अञ्चलमें। प्रवाद है, दिनाजपुरमें एक समय वाणराजा राज्य करते थे। इस जिलेके नाना स्थानोंमें वाणकी कोर्त्तिका भग्नावशेष देखा जाता है।

बहुत दिन हुए कि पराक्रान्त बौद्धराजगण यहां राज्य करते थे। जिलेमें कई जगह बौद्धप्रभावके प्रकृष्ट-

निदर्शन पाये जाते हैं। बौद्धधर्मानुरागी पालराजगण इस अञ्चलमें राज्यशासन करते थे। उनकी कीर्त्ति आज भी दिनाजपुरमें मौजूद है। पुरातत्त्वप्रसङ्गमें इस विषयकी आलोचना की जायगी। पालवंश देखो।

पालवंशीय राजाओंका पराक्रम घट जाने पर यह जिला सेनराजाओंके हाथ लगा था। पालवंशकी नाईं यहां कोई सेन-राज रहते थे कि नहीं, इसका प्रमाण नहीं पाया जाता है। किन्तु यहांकी तर्पणदीघीमें लक्ष्मणसेनका ताम्रशासन मिला है। सेनके बाद यह जिला गौड़के मुसलमान अधिपतिके अधिकारमें आया। दिनाजपुरके नाना स्थानोंमें उत्कीर्ण पारसी और अरबी शिलालिपिसे उसका प्रमाण मिलता है। बुकानन साहबने लिखा है, कि गणेश नामके एक राजा यहां बहुत प्रबल हो गये थे। आईन-इ-अकबरीमें इनका नाम कानिश वा गानिस बतलाया गया है। एक समय ये सारे बङ्गालके अधीश्वर हो गये थे। अद्वैतप्रकाश नामक ग्रन्थके मतसे—मन्त्री नरसिंह नाड़ियालकी सलाहसे राजा गणेश मुसलमान बादशाहको मार कर गौड़ेश्वर बने थे।

दिनाजपुरके वर्त्तमान राजवंशका इस तरह इतिहास पाया जाता है।

उत्तरराढ़ीय कायस्थवंशमें पूर्वोक्त गणेशके वंशधर विष्णुदत्त नामक एक व्यक्तिको नवाब सरकारसे दिनाजपुरमें कानूनगो-पद मिला। यहां भाग्यलक्ष्मी उन पर खूब प्रसन्न हुईं। उनके पुत्र श्रीमन्तदत्तने बङ्गालके सूबेदार शाहशुजाके यहां प्रतिष्ठा पाई और चौधरी उपाधि ग्रहण की। उनके एक पुत्र और एक कन्या थी। श्रीमन्तकी मृत्युके बाद उनके पुत्र हरिश्चन्द्र मजुमदारने पितृसम्पत्ति प्राप्त की। उनके भांजे शुकदेव अपने मामाकी सम्पत्तिकी देख रेख करते थे। अपुत्रकावस्थामें हरिश्चन्द्र चौधरीकी मृत्यु होने पर १५६६ शकाब्दमें शुकदेव मामाकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर बैठे। उस समय राजमहलमें बङ्गालकी राजधानी थी। शुकदेवने राजमहलमें जाकर शाहशुजासे फरमान ग्रहण किया। थोड़े ही दिनोंमें वे विपुल सम्पत्तिके अधीश्वर हो गये। सब कोई उन्हें राजा शुकदेव कहा करते थे। उन्होंने शुकसागर नामकी एक बड़ी दिग्घी खुदवाई थी। उनकी पहली स्त्रीसे रामदेव और जयदेव नामके दो पुत्र और दूसरीसे प्राणनाथ उत्पन्न हुए थे। १६०२ शकमें शुकदेवकी मृत्यु होने पर उनके बड़े पुत्र रामदेवने ३ वर्ष और पीछे छोटे पुत्र जयदेवने भी ३ वर्ष राज्य किया। इस समय घोड़ाघाट परगना उनके अधिकारभुक्त हुआ। १६०८ शकमें प्राणनाथने अपने वैमात्रेय भाईकी सम्पत्ति पाई। उनके विरुद्ध दिल्लीके दरबारमें अभियोग लगाया गया था, इसी कारण उन्हें दिल्ली जाना पड़ा। १६१४ शकमें वे बादशाह आलमगीरके निकट पहुँचे और अपनी निर्दोषिता प्रमाण कर उन्होंने बादशाहसे 'राजा' की उपाधि पाई। राहमें वृन्दावनधामकी यमुनाके जलमें उन्हें राधाकृष्णकी एक मूर्त्ति मिली थी, उस मूर्त्तिको ला कर उन्होंने उसे अपने घरमें स्थापन किया। मूर्त्तिका नाम रुक्मिणीकान्त रखा गया। उन्हींके यत्नसे कान्तनगरमें सुप्रसिद्ध मन्दिर बनाया गया।

इसके सिवा प्राणनाथने और भी कई एक देवालय तथा प्राणसागर नामक एक बड़ा सरोवर निर्माण किया। कान्तनगरका मन्दिर उनके समयमें अधूरा ही रहा। उनकी मृत्युके बाद उनके दत्तक पुत्र रामनाथने उसे पूरा किया।

रामनाथको कोई कोई रमानाथ भी कहते हैं। १६४१ शकमें राजा प्राणनाथकी मृत्यु होने पर रमानाथ सारी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। प्रवाद है, कि उनको बाणराजाके भग्न मकानमें प्रभूतधन हाथ लगा था, उसीसे उनकी श्रीवृद्धि हुई थी। इस समय जब सालबाड़ी परगनेके जमींदार राजस्व दे न सके, तब नवाब मुर्शीदकुली खाँने रमानाथको सालबाड़ी परगना अधिकार करनेका हुक्म दिया। इस पर सालबाड़ीके जमींदारके साथ रामनाथका दो बार युद्ध हुआ। प्रथम युद्धमें रामनाथ जयलाभ कर सालबाड़ीसे कालिका और चामुण्डादेवीकी मूर्त्ति लाये। दूसरी बार युद्धमें जमींदार सम्पूर्णरूपसे परास्त हुए और सालबाड़ी परगना रामनाथके अधिकारमें आ गया। उन्होंने नवाबके पास अपना विजयसम्वाद और राजस्व भेज दिया। नवाबने सन्तुष्ट हो कर उन्हें करदार परगना अर्पण किया। १६६७ शकको वे काशी, प्रयाग, वृन्दावन तथा दिल्लीको गये। दिल्ली-

दरबारमें उन्हें 'महाराज'की उपाधि, राजोचित खिलअत और अपनी राजधानीमें दुर्ग तथा सैन्य रखनेकी आज्ञा मिली। वे वृन्दावनसे एक गोपालमूर्त्ति लाये थे। १६७६ शकका गोपालगञ्जमें पचीस मन्दिर निर्माण कर उक्त मूर्त्ति स्थापित की गई। बङ्गालमें इस तरहका मन्दिर विरला ही है।

इसके पहले इन्होंने शुकसागरके किनारे पिताके स्थापित शुकेश्वरलिङ्गका भी एक सुन्दर शिवालय निर्माण किया था। इसके अलावा रामनाथ और भी अनेक सत्कीर्त्ति कर गये हैं। सुना जाता है कि एक समय यह कल्पतरु हो गये थे।

उस समय सैयद महम्मद नामक एक व्यक्ति रङ्गपुरकी सीमान्तरक्षाके लिए फौजदार नियुक्त थे। महाराज रामनाथके अतुल ऐश्वर्यका परिचय पा कर दुष्ट फौजदारने एक दिन उनके राजप्रासाद पर आक्रमण किया और उनका सर्वस्व लूट लिया। रामनाथने स्त्री पुत्रके साथ गोविन्दनगर भाग कर आत्मरक्षा की। पीछे गङ्गास्नानके बहाना करके उन्होंने मुर्शिदाबाद जा सूबादारसे फौजदारके अत्याचारकी कथा कह सुनाई। सूबादारने सैयद महम्मदको पकड़ लानेके लिए एक सैन्यदल भेजा। उसी सैन्यकी सहायतासे रामनाथने फौजदारको मार डाला तथा उनके अधिकृत बालाशनादि पाँच परगने अधिकार किये। पीछे वे सूबादारके निकट नकद साढ़े चार लाख रुपये और मुक्ता जवाहरात भेज कर उनके प्रीतिभाजन हुए। रामनाथके चार स्त्री, चार पुत्र, चार कन्या और चार जमाई थे। इसीसे वे अपने समस्त द्रव्योंमें ४ चिह्न अङ्कित कराते थे। आज भी राजभवनके सभी द्रव्योंमें ये चार चिह्न व्यवहार होते देखे जाते हैं।

१६८२ शकमें रामनाथ पञ्चत्वको प्राप्त हुए। उनके जीते जी बड़े लड़केकी मृत्यु हुई थी। शेष तीन पुत्रोंमें सम्पत्तिके लिए विवाद उठा। रामनाथके दूसरे पुत्र कृष्णनाथ पिताके श्राद्धादिके बाद ही सनन्द लानेके लिए दिल्लीको गये, किन्तु दुर्भाग्यवश दिल्लीसे लौट आनेके बाद ही करदाह-घरमें सहसा उनकी मृत्यु हो गई। अब उनके तीसरे भाई वैद्यनाथ निष्कण्टक हो सारी सम्पत्ति अधिकार कर बैठे। उनके समयमें मीरकासिम बङ्गालके नवाब थे। उन्होंने बङ्गालके समस्त राजाओं तथा जमींदारोंके प्रति राजस्व वृद्धिके लिये हुक्म दिया। जब वैद्यनाथ अधिक राजस्व देनेको राजी न हुए, तब मीरकासिमने कौशलक्रमसे मुङ्गेर आ कर उन्हें कैद कर लिया। इस अवसर पर उनके छोटे भाई कान्तदेवने इष्ट-इण्डिया कम्पनीके निकट अपने नाम पर सनन्द पानेकी प्रार्थना की। वैद्यनाथ दुर्ग-रक्षकको रिशवत दे कर दिनाजपुर भाग आये और कान्तनाथका षड़यन्त्र जान कर उन्हें अलग कर दिया। उनके यत्नसे आनन्दसागर नामक सरोवर, आनन्दसागर और मातासागरके साथ संयुक्त रामदाँड़ा नामक बड़ी खाड़ी और १६८७ शकको अपनी राजधानीमें कालियाकान्तजी-उ विग्रहका मन्दिर निर्माण किया गया।

वैद्यनाथके समयमें दिनाजपुरका ऐश्वर्य चरम सीमा तक पहुंच गया था। उनके एक भी सन्तान न थी, इसीसे उन्होंने राधानाथ नामक एक ज्ञातिपुत्रको गोद लिया था। वृटिश गवर्मेण्टके निकट राधानाथने 'राजा बहादुर' की उपाधि पाई थी। उन्हींके समयमें दिनाजपुर राज्यकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। सुशासनके अभावसे इस समय विजयनगर परगना छोड़ कर प्रायः सारी सम्पत्ति बेची गई। इसी दुःखसे राधानाथका प्राणान्त हुआ। पीछे उनके दत्तकपुत्र गोविन्दनाथ उत्तराधिकारी हुए।

इन्होंने वृन्दावनमें कुञ्जसंयुक्त एक मनोहर मन्दिर निर्माण कर राधाश्याम रायके नाम पर उत्सर्ग किया। १७६२ शकको गोविन्दनाथकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र तारकनाथ राजा हुए। महाराज तारकनाथ दिनाजपुर जिलेके नाना स्थानोंमें पक्की सड़कें और दिनाजपुर शहर तथा रायगञ्जमें दातव्य अस्पताल निर्माण कर देशका बहुत उपकार कर गये हैं। १७८७ शकमें अपुत्रक अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। बाद उनकी स्त्री श्यामामोहिनी सम्पत्तिकी अधिकारिणी हुईं। उन्होंने १८७४ ई०के मन्वन्तरके समय बहुत धन दे कर दीन प्रजाकी रक्षा की थी। उनकी ऐसी उच्च दयाके प्रतापसे गवर्मेण्टने उन्हें 'महारानी' की उपाधि दी। इन्हींके यत्न-

से दिनाजपुरमें अङ्गरेजी, बङ्गला और व्यायाम सिखानेके विद्यालय स्थापित हुए। इन्होंने ही दिनाजपुरके भूतपूर्व महाराज गिरिजानाथ राय बहादुरको गोद लिया था। महाराज गिरिजानाथने वृटिश गवमे गटसे K. C. I. E. को उपाधि पाई थी और वे निखिल भारतीय कायस्थ सम्मेलनके सभापति हुए थे। उनके दत्तक पुत्र वर्त्तमान महाराज जगदीशनाथ राय बहादुर हैं।

पुरातत्त्व—इस जिलेके नाना स्थानोंमें प्राचीन हिन्दू और बौद्ध राजाओंकी प्राचीन कीर्त्ति और पुण्य स्थान हैं।

वोरगञ्ज थानेके मध्य कान्तनगरके चारों ओरके भूभागको यहांके लोग उत्तरगोग्टह कहते हैं। उन लोगोंका विश्वास है, कि विराट्राज यहां गौ चराते थे। वोरगञ्जसे २ कोस पूर्वमें आत्रेयी नदीके किनारे सनका नामक स्थानमें प्राचीन ध्वंसावशेष देखा जाता है। कहते हैं, कि यहां चांद सोदागरके मट्टीका दुर्ग था। कान्तनगर और प्राणनगरमें दिनाजपुरके राजाओंके प्रासादका भग्नावशेष है।

रानी-शङ्कल थानेके गोरखनाथ नामक स्थानमें एक अत्यन्त प्राचीन शिव और काली-मन्दिर देखे जाते है। यहां पत्थरसे घिरा हुआ एक प्रस्रवण वा कूप है। कितना ही जल उससे क्यों न खर्च किया जाय, तो भी कमता नहीं है। शिवरात्रिके दिन यहां बहुत भारी उत्सव होता है। इसके निकट रामराय और श्यामरायकी प्राचीन कीर्त्तिका भग्नावशेष है।

पोरगञ्ज थानेमें तङ्गननदीके बायें किनारे ईंटोंका ढेर देखनेमें आता है। प्रवाद है, कि यहां विराट्के समसामयिक महादेवका एक किला था। हेम्मताबादके निकट मखदुम टोकरपोस नामक एक मुसलमान साधुकी दरगाह है। हजारों मुसलमान यहां साधुकी पूजा करनेको आते हैं।

टोकरपोसकी मस्जिद सुलतान होसेनशाहने निर्माण की है। मस्जिदमें ८८६ हिजरी अङ्कित है। हेम्मताबादके पश्चिम भागमें महेश नामके एक राजा राज्य करते थे। यहांके लोगोंका कहना है, कि बदरुद्दोन नामक एक मुसलमान पोरके उत्पातसे महेश ढाकामें जा बसे। यहां एक ऊंचा प्राचीर है जिसे लोग होसेनशाहका 'तख्त' वा सिंहासन कहते हैं। वंशीहारी थानेके उत्तर पूर्व भागमें राजा महीपालकी कीर्त्ति महीपालदिग्गी नामक एक बड़ा सरोवर है जो आध कोस तक फैला हुआ है। जगदल थानेमें तङ्गन और पुनर्भवा नदीमें दलदल हो जानेसे एक द्वीप हो गया है। इस द्वीपके मध्य एक सरोवर और एक प्रकाण्ड ईंटेका स्तूप देखा जाता है। इस अञ्चलमें लोगोंका विश्वास है, कि सूर्यवंशीय मायारुद्र राजा राज्य करते थे। गङ्गारामपुर थानेमें दमदमा नामक स्थानसे प्राय: तीन कोस दक्षिणमें अनेक प्राचीन कीर्तियाँ और ध्वंसावशेष है जिन्हें लोग बाण राजाकी कीर्त्ति बतलाते हैं। यहां तर्पणदीघी नामक एक बड़ी पुष्करिणी है। चौहत्तर सालके मन्वन्तरके समय इसके निकट एक छोटा तालाब खोदते समय उसमें महाराज लक्ष्मणसेनका एक खण्ड ताम्रशासन पाया गया था।

प्रवाद है, कि बाणराजा तर्पण करते थे, इसीसे इसका नाम तर्पणदीघी हुआ है। इसके पास ही बाणेश्वर भवन और मुसलमानोंकी प्राचीन राजधानी देवकोट अवस्थित है। देवकोटमें मुसलमान राजाओंके समयकी कई एक उत्कीर्ण लीपियां हैं।

हवड़ा थानेमें विराटपाट नामक ईंटोंके स्तूपसे घिरा हुआ एक प्राचीन स्थान है। यहांके लोग थोड़ी दूरके फासले पर विराटसेनापति मदनके प्रासादका भग्नावशेष बतलाते है। इससे भी कुछ दूर अनेक प्राचीन स्तूप है जिनमेंसे कुछ कीचकके भवन माने जाते हैं। हवड़ा थानेमें करतोया तीर्थ अवस्थित है। किसी योग उपलक्षमें हजारों हिन्दू यहां करतोया नदीमें स्नान करते आते है। इस अञ्चलके मुसलमान लोग भी माला उत्सर्ग करके करतोयाके प्रति भक्ति प्रदर्शन करते हैं। इसके सिवा घोड़ाघाट थानेके करतोयामें ऋषितीर्थ विद्यमान है। हिन्दू और मुसलमानकी कीर्त्तिके अलावा इस जिलेमें बौद्ध प्रभावके निदर्शन और बौद्ध ध्वंसावशेषकी कमी नहीं है। दिनाजपुरके दक्षिण पूर्वांशमें अनेक बौद्ध कीर्त्तिके ध्वंसावशेष इधर उधर पड़े हैं। इस अञ्चलमें पौण्ड्रवर्द्धनकी प्राचीन राजधानी वर्द्धनकुटी अवस्थित है। पालराजगण यहां राजत्व करते थे। गोविन्द-

गञ्जसे १६ कोस पश्चिम पहाड़पुर नामक ग्राममें बौद्ध-स्तूप देखा जाता है। इससे प्रायः ढाई कोस पश्चिममें 'योगी गुफा' नामक विख्यात स्थान है जहाँ पत्थरकी मायादेवीको मूर्त्ति देखनेमें आती है। बौद्ध लोगोंके इस पवित्र स्थानमें पूर्व समयमें वैष्णवोंने चतुर्भुज नारायण मूर्त्ति स्थापन की है। यहां बौद्धोंको देव-देवियोंको मूर्त्तियां और शिल्पनैपुण्य देखे जाते हैं। खेतल परगनेमें भी इस तरहके अनेक हैं। पांचबीबी थानेके उत्तर-पूर्व और पहाड़से प्रायः ५॥ कोस उत्तर-में तुलसी-गङ्गाके किनारे निमाईशाह नामक पीरके वासस्थानके समीप बौद्धस्तूप देखा जाता है। यहांसे आध कोसकी दूरी पर बौद्धराज महीपालका स्थापित महीपुर अवस्थित है। योगीगुफाके चारो ओर अनेक ध्वंसावशेष हैं। प्रवाद है, कि वहां देवपालकी माता भीमादेवी, चन्द्रपाल, महीपाल आदिके प्रासाद थे। यहांसे तीन कोस दूर प्रसिद्ध बुदलस्तम्भमें नारायणपाल-के समयको शिलालिपि उत्कीर्ण है। सचमुच योगी गुफाके निकटवर्त्ती ५ स्तूप उद्घाटन करनेसे पाल-राजाओंकी अनेक कीर्त्तियां पाई जा सकती हैं। जिलेमें ८ चिकित्सालय और कुल १०५४ विद्यालय हैं।

२ दिनाजपुर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° १४´ से २५° ५०´ उ० और देशा० ८८° २´ से ८८° १८´ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल १५८४ वर्ग-मील और जनसंख्या प्रायः ६१२६१७ है। इसमें एक शहर और ३२२० ग्राम लगते हैं।

३ दिनाजपुर जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ३८´ उ० और देशा० ८८° ३८´ पू० पूनर्भवा नदीके बायें किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग चौदह हजार है। यहां १८६८ ई०में म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई है। शहरमें जिलेके प्रधान कार्यालय, कारागार और एक सरकारी हाई-स्कूल है।

दिनाख्य (सं० क्लो०) अन्धकार, अन्धेरा।

दिनाती (हिं० स्त्री०) १ मजदूरों आदिका एक काम। २ मजदूरोंकी एक दिनकी मजदूरी।

दिनादि (सं० पु०) दिनस्य आदि। प्रभातकाल, सवेरा।

दिनाधीश (सं० पु०) दिनस्य अधीशः। १ सूर्य। २ अर्क-वृक्ष, आक।

दिनान्त (सं० पु०) दिनस्य अन्तः। दिवावसान, सायं-काल, शाम।

दिनान्तक (सं० पु०) दिनं अन्तयति अन्त णिच्-ण्वुल्। अन्धकार, अँधियारा।

दिनाजपुर—दानापुर देखो।

दिनारम्भ (सं० पु०) दिनस्य आरम्भः ६-तत्। प्रभात-काल, सवेरा।

दिनार्द्ध (सं० पु०) मध्याह्न, दो पहर।

दिनावसान (सं० क्लो०) दिनस्य अवसानं। दिनान्त, सन्ध्या, शाम।

दिनावा (हिं० स्त्री०) हिमालय तथा आसामकी नदियों-में मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली जो प्रायः हाथ भर लम्बी होती है। हरिद्वारमें यह बहुत पाई जाती है।

दिनास्त (सं० पु०) सूर्यास्त, सन्ध्या।

दिनास्त्र (सं० क्लो०) मन्त्रभेद, एक प्रकारका मन्त्र।

दिनिका (सं० स्त्री०) दिनं भृत्यहेतु तया अस्त्यत्र इति-ठन्। एक दिन कृत कर्ममूल्य, एक दिनका वेतन या मजदूरी।

दिनी (हिं० वि०) प्राचीन, पुराना।

दिनेमार—डेन्मार्क देशके अधिवासी। अंगरेजोमें इन्हें डेन (Danes) कहते है। डेन्मार्क देखो। सत्तरहवीं शताब्दीके आरम्भसे ही दिनेमार लोग भारतवर्षमें वाणिज्य करने लगे थे। १६१२ ई०में इनकी प्रथम इष्ट-इण्डिया-कम्पनी और १६७० ई०में द्वितीय इष्ट-इण्डिया-कम्पनी स्थापित हुई। १६१६ ई०में ट्रङ्कुवर और श्रीरामपुरमें इन्होंने कोठी स्थापित की। ये दोनों स्थान बहुत दिनों तक उन्हींके अधीन रहे, अन्तमें १८४५ ई०को अंगरेजोंने उन्हें डेन्मार्कोंसे मोल ले लिया। मन्द्राज प्रेसिडेन्सिके पोर्टनाभ और मालवाके उपकूलमें इद्दोभा तथा कोलचेरी आदि स्थानोंमें भी दिनमारोंकी कोठियाँ थीं।

डेन्मार्कके राजाको सहायतासे इस देशमें पहले पहल ईसा-धर्मके प्रटेष्टाण्टका मत चलाया गया। जिजेनबाल्ग और प्लुशे (Plutschau) १७०५ ई०में दिनेमारोंके आश्रम ट्राङ्कुवरमें प्रटेष्टाण्टके मतका प्रचार आरम्भ किया। इन्होंने ही प्रेटेष्टाण्टके मत पर तामिल भाषामें सभी बाइबल बनाई हैं।

बङ्गाल देशमें केरि, मार्समन, श्रोयार्ड आदि ईसाके प्रचारकोंके नाम विशेष मशहूर हो गये हैं। इन्होंने श्रीरामपुरमें रह कर भिन्न भिन्न भाषाओंमें वाइबलका अनुवाद किया। कहना नहीं पड़ेगा कि इन्होंने कितनी पुस्तकें प्रणयन कीं और विद्याशिक्षाकी नूतन प्रणाली अदल बदल कर इस देशको कैसी उन्नति की। बङ्गला भाषामें पुस्तक छपानेके लिये इन्होंने पहले बङ्गीय अक्षर तैयार करवाये थे।

दिनेर (हिं० पु०) दिनकर, सूर्य।

दिनेश (सं० पु०) दिनस्य ईशः। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मंदार। ३ सूर्यादि वाराधिपति, दिनके अधिपति ग्रह।

दिनेश—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये गया जिलेके टिकारी नामक स्थानमें रहते थे। इन्होंने १८६४ संवत्‌में रसरहस्य और नखशिख नामक दो ग्रन्थ लिखे।

दिनेशपुष्प (सं० क्ली०) कैरव पुष्प, कुमुद, बघोला।

दिनेशात्मज (सं० पु०) दिनेशस्य आत्मजः। १ शनि। २ यम। ३ कर्ण। ४ सुग्रीव। स्त्रियां टाप्। ५ तापती। ६ यमुना।

दिनेश्वर (सं० पु०) दिनस्य ईश्वरः। १ दिनेश, सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक। ३ सूर्यादि वाराधिपति।

दिनौंधी (हिं० स्त्री०) आँखका एक प्रकारका रोग। इसमें दिनके समय सूर्यकी प्रखर किरणोंके कारण बहुत कम दिखाई देता है।

दिन्दिगुल—१ मन्द्राजके मदुरा जिलेका एक उपविभाग। इसमें चार तालुक लगते हैं—दिन्दिगुल, पलनी, कोदैकानल और पेरियाकुलम्।

२ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १०°०' से १०°४९' उ० और देशा० ७७°४०' से ७८°१५' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ११२३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः साढ़े चार लाख है। इसमें एक शहर और २०९ ग्राम लगते हैं। १७८९ ई०में यह तालुक इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके हस्तगत हुआ, कोदवर, मानीरो आदि कई एक छोटी छोटी नदियां इसमें प्रवाहित हैं। इसके अलावा मछलीसे परिपूर्ण अनेक तालाब हैं। सुना जाता है, कि इन सब पुष्करिणियोंमें पहले मुक्ता और सीप मिलती थी। यहांके उत्पन्नद्रव्योंमें तमाकू, केला और कहवा प्रसिद्ध है। इस तालुकके अन्तर्गत गुतम और कमलपत्ती नामक स्थानमें लोहेका कारखाना एक समय बहुत समृद्धिशाली था।

३ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १०°२२' उ० और देशा० ७७°५९' पू०में अवस्थित है। इसका प्रकृत नाम दिण्डुकल अर्थात् दिण्डुक नामक दानवका शैल है। यह नगर समुद्रपृष्ठसे प्रायः ८८० फुट ऊंचेमें अवस्थित है और पलनी-पर्वतके कोदाइकानाल स्वास्थ्यनिवाससे ५४ मील और मदुरासे ३२ मील दूर है।

अधिवासियोंकी संख्या २५१८२ है जिनमेंसे १८०६० हिन्दू ३१७५ मुसलमान और ३९४७ ईसाई हैं। १८६६ ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई है।

दिन्दिगुल मन्द्राज प्रदेशके बड़े बड़े शहरोंके साथ रेल द्वारा संयुक्त है। तमाकू, कहवा, इलायची और पशुचर्म आदि यहांसे भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे जाते हैं। पहले यहांके रेशमी वस्त्र और उत्कृष्ट मसलिनका खूब आदर था; कसम्बा नामक ऊनी कम्बल भी बहुत प्रचलित था। सबडिविजनका सदर होनेसे दिन्दिगल शहरमें समस्त अदालत, पोष्ट-टेलिग्राफ-आफिस, डाकबङ्गला, गवर्मेण्ट स्कूल और दातव्य-चिकित्सालय है।

पहले दिन्दिगल नगर मदुरा राजाके नाममात्र अधीन एक पृथक् राज्यकी राजधानी था। इसका दुर्ग नगरसे पश्चिम समुद्रपृष्ठसे १२२३ फुट ऊर्ध्व एक दुरारोह शैलशृङ्गके ऊपर अवस्थित है और चारों ओर बहुत दूरसे देखनेमें आता है।

आज भी यह दुर्ग सम्पूर्ण अवस्थामें विद्यमान है। दुर्गका अवस्थान स्वभावतः दुराक्रम्य और सुदृढ़ है, परन्तु यह मदुरा और कोयम्बतोरके मध्यवर्ती गिरिवर्त्मसे रक्षित है। इसी कारण इस दुर्गके लिये कई बार लड़ाई हो चुकी है।

१६२३से १६५९ ई० तक यह स्थान महाराष्ट्र, महिसुर और मदुरा सेनाओंके रणकौशलकी लीलाभूमि हो गया था। उस समय दिन्दिगलके सर्दारगण प्रायः १८

छोटे छोटे सर्दारोंके ऊपर आधिपत्य करते थे। चांद साहब, महाराष्ट्रगण और महिसुरको सेनाओंने यथाक्रम इस शहरको अधिकार किया। १७५५ ई०में हैदरअलीने इस दुर्गमें सेनासन्निवेश करके निज भावी राज्य स्थापन करनेका सूत्रपात किया। दक्षिणकी ओरसे कोयम्बो-तोरके बाद अवस्थित होनेके कारण हैदरअलीके साथ युद्धमें यह दुर्ग अंगरेजोंके लिये बहुत असुविधाजनक हो गया था। १७६९ ई०में यह अंगरेजोंके हाथ लगा, किन्तु १७६८ ई०में पुनः उनसे छीन लिया गया। १७८३ ई०में अंगरेजोंने दूसरी बार इसे अधिकृत कर १७८४ ई०में मङ्गलूरकी सन्धिके अनुसार महिसुरके राजाको अर्पण किया। १७९० ई०में पुनः युद्धकी खबर मालूम होने पर अङ्गरेजोंने इसे हस्तगत किया। अन्तमें १७९२ ई०की सन्धिके अनुसार यह दुर्ग इष्ट-इण्डिया-कम्पनीको दे दिया गया। पहाड़की सबसे ऊंची चोटी पर कई एक ध्वंसावशिष्ट पुरातन देवमन्दिर विद्यमान हैं। दुर्गके प्राचीरके चारों तरफ १४६० शकाङ्कित विजयनगरके राजा अच्युतदेवकी शिलालिपि देखी जाती है।

दिन्दिवरम्—१ मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण अर्काट जिलेका एक उपविभाग। इसमें तीन तालुक लगते है, दिन्दिवरम्, तिरुवन्नामलय और विलुपुरम्। दक्षिण भारतीय रेल-पथ इस तालुक होकर गया है। इसमें तीन स्टेशन हैं जिनमेंसे प्रधान स्टेसन दिन्दिवरम् और गिञ्जि हैं।

२ उक्त विभागका एक तालुक। यह अक्षा०१२° २´से १२°२९´ उ० और देशा० ७९°१३´से ८०° पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः साढ़े तीन लाख है। तालुककी आय ७७८००० रु० है।

३ इसी नामके तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १२°१५´ उ० और देशा० ७९°३९´ पू०में अवस्थित है। इसका शुद्ध नाम तिन्त्रिड़ोवनम् अर्थात् इमलीका जङ्गल है। लोकसंख्या प्रायः बारह हजार है।

दिन्दोरी—१ बम्बई-प्रदेशके अन्तर्गत नासिक जिलेका एक उपविभाग। इसके उत्तरमें कलवान और सप्तशृङ्ग पर्वत; पूर्वमें चन्दोर और निफाद; दक्षिणमें नासिक उपविभाग तथा पश्चिममें सह्याद्रि और पेंट है। परिमाणफल ५२८ वर्गमील है।

इस उपविभागका अधिकांश पर्वतमय है, इसीसे बैल-गाड़ी जाने आनेकी बहुत असुविधा है। सिर्फ सावल गिरिपथसे लेकर वलसार तक एवं आइवन गिरिपथसे लेकर कलवान तक दो पक्की सड़कें गई है। वैशाख और जेठ महीनेमें जलवायु स्वास्थ्यकर है और दूसरे समयमें ज्वररोगका खूब प्रादुर्भाव होता है।

२ उपरोक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह नासिकसे १५ मील उत्तरमें पड़ता है। यहां अदालत, डाकघर, दातव्य चिकित्सालय आदि हैं।

३ मध्यप्रदेशके मण्डला जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २२° २६´ से २३°२३´ उ० और देशा० ८०°२०´से ८१°४५´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २५२४ वर्ग-मील और लोकसंख्या लगभग डेढ़ लाख है। इसमें ८५४ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है।

दिव्यग्राम (सं० पु०) काश्मीरका एक ग्राम।

दिपालपुर—१ पञ्जाबके अन्तर्गत मोण्टगमारी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०°१९´ से ३०°५६´ उ० और देशा० ७३°२५´से ७४°८´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ९८४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः दो लाख है। इसमें दिपालपुर नामका एक शहर और ४५८ ग्राम लगते है। इसके प्रायः ३ अंशोंमें कृषिकार्य होता है, शेष भाग परती और अनुर्वर है।

२ उक्त तहसीलका एक प्राचीन और ध्वंसावशिष्ट नगर। यह अक्षा० ३०°४०´ उ० और देशा० ७३°३२´ पू० ओखारा स्टेशनसे १७ मील तथा पाकपत्तनसे २८ मील ईशान-कोणमें प्राचीन विपाशा नदीके किनारे अवस्थित है। यह दुर्दशाग्रस्त होने पर भी पहले दिल्लीके पठान राजाओंके समयमें सुसमृद्ध उत्तर पञ्जाबकी राजधानी था। सोलहवीं शताब्दीमें भी बाबरने दिपालपुर नगरको लाहोरका समकक्ष कह कर उल्लेख किया है। बहुतेरोंका अनुमान है, कि यह नगर शायद देवपाल नामक किसी राजासे स्थापित हुआ होगा और उन्हींके नाम पर दिपा-लपुर नाम पड़ा है। किन्तु इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं पाया जाता है। प्रवाद है,—इसका आदि नाम श्रीपुर था। विजयचन्द नामक किसी क्षत्रियने यह नगर स्थापन कर अपने पुत्रके नाम पर इसका नामकरण

किया। जेनरल कनिंहम साहब कहते हैं, कि यही स्थान सम्भवतः टलेमीवर्णित देदलनगर होगा। प्राचीन नगर-प्राचीरमें कहीं कहीं भग्न ईंटोंके साथ शकराजाओंकी मुद्रा पाई गई है। फिरोज तुगलकने चौदहवीं शताब्दीमें यह नगर परिदर्शन कर इसके बाहर एक मस्जिद निर्माण की और शतद्रु नदीसे खाड़ी काट कर वे नगरके समीप तक जल लाये थे। तैमुरके आक्रमणकालमें यह नगर समृद्धिमें मूलतान छोड़ कर और सभी नगरोंसे बढ़ा चढ़ा था, उस समय यहां ८४ बुर्ज, ८४ मस्जिद और ८४ कूप थे। प्राचीन नगरकी चहार दीवारी प्रायः २१ मील लम्बी होगी। इसके बाहरमें भी बहुत दूर तक भग्न ईंटोंका स्तूप देखनेसे मालूम पड़ता है, कि प्राचीरके बाहर बहुत मनुष्योंका वास था। अभी उस विस्तीर्ण नगरका ध्वंसमात्र रह गया है। वर्त्तमान दिपालपुर-नगर प्राचीन नगरके ईशान-कोणमें नदीके दूसरे किनारे अवस्थित है। नदीके ऊपर तीन गुम्बजका एक पुल है। यह नगर किस कारण परित्यक्त तथा विनष्ट हुआ इसका पूरा पता नहीं चलता है, लेकिन अनुमान किया जाता है कि विपाशा नदीका पुरातन स्रोत सुख जाना ही इसका एक कारण है। अंगरेजोंके अधिकारमें आने पर खाड़ी आदि मरम्मत की गई जिससे दिपालपुरके प्राचीन वाणिज्यकी कुछ तरक्की हुई है। यहां तहसील-की अदालत, थाना, सराय, स्कूल, चिकित्सालय आदि हैं।

दिपालपुर—मध्यभारतके अन्तर्गत इन्दोर तथा होलकर-राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५१' उ० और देशा० ७५° ४५' पू०में अवस्थित है। शहरके पूर्वमें एक बड़ी पुष्करिणी है।

दिप्सु (सं० त्रि०) दम्भ सन् उ छान्दसः न भष्। दम्भेच्छु, जो हानि वा कष्ट पहुंचाना चाहता है।

दिब (हिं० पु०) निर्दोषिता या अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित करनेकी परीक्षा, जैसे, अग्निपरीक्षा।

दिमकरसी (हिं० वि०) एक सो दो। इसका व्यवहार छोटे छोटे लड़के पहाड़ेमें करते हैं, जैसे सत्तरह छक्के दिमकरसी।

दिमाक (हिं० पु०) दिमाग देखो।

दिमाग (अ० पु०) १ मस्तिष्क, सिरका गूदा। २ अभिमान, घमंड, शेखी। ३ मानसिक शक्ति, बुद्धि, समझ।

दिमागचट (हिं० वि०) जो बहुत अधिक बकवाद करके दूसरोंको व्याकुल कर देता है, बक्की।

दिमागदार (फा० वि०) १ जिसकी मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो। २ अभिमानी, घमंडी।

दिमाग-रौशन (फा० पु०) नास, सुंघनी।

दिमागी (फा० वि०) दिमागदार देखो।

दिमापुर—आसाम प्रदेशके अन्तर्गत शिवसागर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° ५४' उ० और देशा० ९३° ४४' पू०में धनेश्वरी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५६६ है। पहले यहां कछाड़ राजाओंकी राजधानी था। अब यह जङ्गलमें परिणत हो गया है। आज भी घने जङ्गलमें जहां तहां बड़ी बड़ी पुष्करिणी और दुर्गके प्राचीर-सा ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। कुछ समय पहले जब यहां दिमापुर ग्राम और बाजार स्थापित हुआ, तब उस समय यहां एक आदमी भी नहीं रहता था। इस ग्राममें अनेक निर्मल जलपूर्ण सुन्दर सरोवर विद्यमान हैं और विस्तीर्ण दुर्ग-के प्राकारका स्पष्ट चिह्न आज भी दीख पड़ता है। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि उक्त प्राचीर ईंटेका बना था और कमसे कम ८ हाथ ऊंचा और ४ हाथ चौड़ा था। ईंटेका बना हुआ सुदृढ़ फाटक और उसकी पत्थर-की चौखट आज भी दीख पड़ती है। किन्तु काठका किवाड़ बहुत दिन पहले लुप्त हो गया है। प्राचीरसे ईंटें गिर कर नीचे दोनों बगल ढेर हो गई हैं और उसके ऊपर कई तरहकी तरुलतादि उपज गई हैं। दुर्ग-का परिसर दोनों तरफ प्रायः ८०० गज है जो बहुत कुछ समचतुर्भुज क्षेत्रके जैसा मालूम पड़ता है। नदी-की ओर प्राचीरके निकट खाई नहीं है, किन्तु नदीके विपरीत ओर गहरी खाईका चिह्न देखनेमें आता है। दुर्गमें तीन छोटी छोटी पुष्करिणियोंका गर्भमात्र रह गया है। फाटकके भीतर बायीं ओर बहुतसे पत्थरके स्तम्भ एक श्रेणीमें खड़े हैं। कहना नहीं पड़ेगा, कि यही स्तम्भ यहांकी प्राचीन कीर्त्तियोंमें सबसे अधिक कौतूहलोद्दीपक और विस्मयजनक हैं। बड़े बड़े

स्तम्भकी ऊंचाई २५ फुट और छोटेसे छोटेकी ८ फुट ५ इञ्च है। शेष स्तम्भ १२से १३ फुट तथा परिधि १८से २० फुटके भीतर ही हैं। इनकी साधारण गठनप्रणाली एक सी होने पर भी वे एक समान दीख नहीं पड़ते। प्रत्येककी गठन और खोदाईमें कुछ विशेषता है। किस उद्देश्यसे ये सब स्तम्भ बनाये गये थे, इसका अनुमान करना कठिन है। इनकी असमान ऊंचाई और ऊपरमें कारुकार्य रहने पर भी ये प्रासादादिके स्तम्भसे मालूम नहीं पड़ते। बहुत पहलेसे यह स्थान जनशून्य हो गया है और यहांके राजवंश भिन्न भिन्न स्थानोंमें जा बसे हैं। सुतरां इन सब प्राचीन कीर्त्तियोंके विषयमें किसी तरहका विश्वासयोग्य प्रवाद भी नहीं है और न तो कहीं खोदितलिपि भी पाई जाती है। सम्प्रति कई एक स्तम्भोंका निकटवर्त्ती स्थान जङ्गल काट कर परिष्कार किया गया है और सब जगह दुर्गम अरण्य है।

अभी यहां एक पुलिस आउट-पोष्ट रह गया है। धनेश्वरी नदी हो कर नावको जाने आनेकी सुविधा होनेसे यहां नागाओंके साथ कुछ कुछ वाणिज्य-व्यवसाय चलता है।

दिय (सं० त्रि०) देय पृषो० साधुः। देय, देने योग्य।

दियट (हिं० स्त्री०) दीयट देखो।

दियरा (हिं० पु०) एक प्रकारका पकवान। मीठा मिले हुए आटेकी लोई बनाते हैं और उसके बीचमें अंगूठेसे गड्ढा करके घी या तेलमें तल कर बनाते हैं। गड्ढा करने पर इसका आकार दीये-सा हो जाता है, इसीसे इसका नाम दियरा पड़ा।

दियाँर (हिं० स्त्री०) दीमक देखो।

दिया (हिं० पु०) दीया देखो।

दियानत (हिं० स्त्री०) दयानत देखो।

दियानतदारी (हिं० स्त्री०) दयानतदारी देखो।

दियाबत्ती (हिं० स्त्री०) दीया जलानेका काम।

दियारा (फा० पु०) १ नदीके हट जाने पर किनारेमें जो जमीन निकल आती है उसे दियारा कहते हैं, कछार, खादर। २ प्रदेश, प्रान्त, दयार।

दियासलाई (हिं० स्त्री०) काठकी वह सलाई जो रगड़नेसे जल उठती है। यह प्रायः एक अंगुल या इससे भी कुछ कम लम्बी होती है। इसके सिरे पर गन्धक आदि कई भभकनेवाले मसाले लगे होते हैं जिसमें रगड़ पहुंचनेसे आग निकल आती है। जिस सलाईके सिरे पर गंधक रहती है, वह हरएक कड़ी चीज पर रगड़नेसे जल उठती है। किन्तु दूसरे तरहकी मसालेयुक्त सलाई-विशिष्ट मसालोंसे लगी हुए तल पर ही रगड़नेसे जलती है। आग वा चिनगारीसे यदि उसका सिरा स्पर्श कराया जाय, तो भी सलाई जल उठती है। लकड़ीके अलावा एक और प्रकारकी मोमकी बनी हुई दियासलाई होती है जो लकड़ीकी सलाईसे अधिक समय जलती रहती है। आजकल वैज्ञानिकों द्वारा कागज आदिकी भी सलाई बनाई गई है। आग सुलगाने और दीया जलानेमें इसका व्यवहार होता है।

दिर (हिं० पु०) सितारका एक बोल।

दिरम (अ० पु०) १ मिस्र देशका चांदीका सिक्का। २ एक तौल जो साढ़े तीन माशेकी मानी गई है।

दिरमानी (फा० पु०) चिकित्सक, वैद्य।

दिरहम (फा० पु०) दिरम नामका सिक्का।

दिरिपक (सं० पु०) कन्दुक, गेंद।

दिरेस (हिं० पु०) एक प्रकारकी छींट जो महीन कपड़े पर छपी होती है, ड्रेस। २ ठीक करनेकी क्रिया। (वि०) ३ दुरुस्त, लैस, ठीक किया हुआ।

दिर्हम (हिं० पु०) दिरम देखो।

दिल (फा० पु०) १ कलेजा। २ मन, हृदय, चित्त। ३ प्रवृत्ति, इच्छा। ४ साहस, दम।

दिलगीर (फा० वि०) १ उदास। २ दुःखी, शोकाकुल।

दिलगीरी (फा० पु०) १ उदासी। २ दुःख, रंज।

दिलगुरदा (फा० पु०) साहस, हिम्मत, बहादुरी।

दिलचला (फा० वि०) १ साहसी, दिलेर। २ शूर, वीर। ३ दाता, दानी। ४ पागल।

दिलचस्प (फा० वि०) चित्ताकर्षक, मनोहर।

दिलचस्पी (फा० स्त्री०) १ दिलका लगना। २ मनोरञ्जन।

दिलचोर (हिं० वि०) जो अच्छी तरह काम नहीं करता हो, कामचोर।

दिलजमई (अ० स्त्री०) सन्तोष, तसल्ली।

दिलजला ( हिं॰ वि॰ ) अत्यन्त दुःखी, जिसका दिल जला हो।

दिलदरिया ( हिं॰ पु॰ ) दरियादिल देखो।

दिलदरियाव ( हिं॰ पु॰ ) दरियादिल देखो।

दिलदार ( फा॰ वि॰ ) १ उदार, दाता। २ रसिक। ३ प्रेमी, प्रिय।

दिलदारी ( फा॰ स्त्री॰ ) १ उदारता। २ रसिकता। ३ प्रेमिकता।

दिलपसन्द ( फा॰ वि॰ ) १ मनोहर, उमदा। ( पु॰ ) २ एक प्रकारका कपड़ा जो फुलवर या चुनरीकी तरह होता है। इस पर बेलबूटे आदि छपे हुए होते हैं। ३ एक प्रकारका आम।

दिलबर ( फा॰ वि॰ ) प्यारा, प्रिय।

दिलबहार ( फा॰ पु॰ ) खग्र खाशी रंगका एक भेद।

दिलरुबा ( फा॰ पु॰ ) वह जिससे प्रेम किया जाय, प्यारा।

दिलवल ( हिं॰ पु॰ ) एक प्रकारका पेड़।

दिलवाना ( हिं॰ क्रि॰ ) दिलाना देखो।

दिलवारा ( देलवाड़ा )—राजपूतानेके अन्तर्गत उदयपुर राज्यका एक शहर। यह अक्षा॰ २४°४७' उ॰ और देशा॰ ७२°४४' पू॰ उदयपुर शहरसे १४ मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २४११ है। उदयपुरके कई सामन्त सरदार यहां वास करते हैं। नगरके दक्षिण एक पहाड़के ऊपर उन लोगोंके भवन हैं। इससे और भी कुछ दक्षिण १००० फुट ऊंचे आबू पहाड़के ऊपर जैनियोंका विख्यात दिलवारा मन्दिर अवस्थित है। यह जैनियोंका पवित्र स्थान माना जाता है। पहले यहां शिवकृष्णादिके मन्दिर थे ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु उनका एक चिह्न भी रह न गया है। इसमें ८६ ग्राम लगते हैं। यहांके राजाकी उपाधि 'राजाराना' है। यहांकी आमदनी ७२०००) रु॰ है तथा ४८००) रु॰ दरबारको करस्वरूप देने पड़ते हैं।

दिलवाला ( फा॰ वि॰ ) १ उदार, दाता। २ बहादुर, साहसी।

दिलवैया ( हिं॰ वि॰ ) जो दूसरेको दिलाता हो।

दिलहा ( हिं॰ पु॰ ) दिल्ला देखो।

दिलहेदार ( हिं॰ वि॰ ) दिल्लेदार देखो।

दिलाना ( हिं॰ क्रि॰ ) १ देनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ प्राप्त कराना।

दिलावरखाँ—जहांगीरके दो सेनापति। उनमेंसे एक ५००० और दूसरे ७००० सैन्यके अधिनायक थे।

दिलाराम—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी। ये १७७५ सं॰में विद्यमान थे।

दिलाल—मेघना-मुहानेके सन्दीप नामक द्वीपका एक मुसलमान दस्युराज। इसको दस्युवृत्ति करनेके लिये अनेक वेतनभोगी सेनाएं थीं। इसका ख्याल था, कि विभिन्न जातीय स्त्री पुरुषोंमें विवाह शादी करनेसे जो सन्तान जन्म लेती है वह बहुत मजबूत होती है। इसी धारणाके अनुसार इसके अधिकारमें जितनी जाति वा सेना थीं, उनमें परस्पर आदान प्रदानकी प्रथा इसने जारी कर दी थी। वह यह भी कहा करता था, कि हिन्दू जो इतने दुबले पतले मालूम पड़ते हैं इसका कारण यही है, कि वे केवल अपनी ही जातिमें आदान प्रदान किया करते हैं। बङ्गालके नवाबको सेनासे पकड़े जाने पर यह मुर्शिदाबादको लाया गया था। यहां लोहेके पिंजरेमें कुछ काल कैद रह कर पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

दिलावर ( फा॰ वि॰ ) १ शूर, बहादुर। २ उत्साही, साहसी।

दिलावर—पञ्जाबके अन्तर्गत बहवलपुर राज्यका एक दुर्ग। यह अक्षा॰ २८°४४' उ॰ और देशा॰ ७१°१४' पू॰ पंचनदीके बायें किनारेसे ४० मील दूर मरुभूमिमें अवस्थित है। कहा जाता है, कि ८४३ ई॰में बेड़ा सिन्ध-भाटने इसे निर्माण किया। १७४७ ई॰ तक यह दुर्ग जयशालमेरके राजाओंके अधिकारमें था, उसी वर्ष दाउदके लड़कोंने इस पर अपना अधिकार जमा लिया।

दिलावर खाँ—मालव प्रदेशके मुसलमान राजवंशके आदि-पुरुष। इनकी माता सुलतान शाहउद्दीनके वंशकी थी। हिन्दू राजाओंके अधःपतन होने पर १३१० ई॰में दिल्लीपति गयासुद्दीन बलबन्के समयमें मुसलमानोंने मालव देश पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया। उसी समय मालवने दिल्ली-सम्राट्‌की अधीनता स्वीकार कर ली। अन्तमें १३८७ ई॰की महम्मद शाह तुगलकके राजत्व-

कालमें दिलावर खाँ मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। १३९८ ई०में तैमुरलङ्गने जब दिल्ली पर चढ़ाई की, तब सम्राट् महमूदशाह भाग कर लगभग ३ वर्ष पहले गुजरातमें और पीछे मालवदेशमें रहे थे। १४०१ ई०में जब सम्राट् दिल्लीको लौटे, तब दिलावरने अपने सभासदोंके बीच मालव-राज्य विभाग कर उन्हें वहांका सामन्त राजा बनाया और आप स्वाधीन हो कर राज्य करने लगे। धारा नगरमें उनकी राजधानी थी। माण्डु नगरमें भी वे बहुत काल तक रहे थे।

राजा होनेके कई वर्ष बाद १४०५ ई०में दिलावर खाँकी मृत्यु हुई। बाद उनके लड़के आल्प खाँ राजसिंहासन पर बैठे। दिलावर खाँसे नीचे उनके वंशीय ११ राजाओंने मालवदेशमें राज्य किया। पीछे हुमायूंके पुत्र वीरवर अकबरने मालव देशको जीत कर उसे दिल्लीके मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

दिलीप (सं० पु०) सूर्यवंशीय नृपविशेष। सूर्यवंशमें दिलीप नामके दो राजा थे। हरिवंशमें इन दोनोंका विषय इस प्रकार लिखा है—राजा सगरके पुत्रोंमेंसे पांच पुत्र पृथ्वीके अधीश्वर हुए। इन पांचोंमें एकका नाम असमंजस था। असमंजसके पुत्र अंशुमान और अंशुमानके पुत्र दिलीप थे। इनका दूसरा नाम खट्टाङ्ग भी था। इन्होंने मुहूर्त्तकालके लिए स्वर्गसे आ कर मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण किया था। किन्तु इतने ही समयके मध्य इन्होंने सत्यधर्म और बुद्धिके बलसे त्रिलोकका अनुसन्धान कर लिया। भगीरथ इन्होंके पुत्र थे। पीछे इसी सूर्यवंशमें महाराज अनमित्रके दुलिदुह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्र सर्वविद्याविशारद थे। इनके भी पुत्रका नाम महाराज दिलीप था। ये दिलीप रामचन्द्रके प्रपितामह और रघुके पिता थे। रघुने अपने बाहुबलसे अयोध्यामें राजधानी साई। (हरिवंश १५ अ०)

लिङ्गपुराणके मतानुसार असमंजसके पुत्र अंशुमान, अंशुमानके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ थे। पीछे इसी वंशमें ऐलविलि नामक राजाके औरससे दिलीपने जन्म ग्रहण किया। ये खट्टाङ्ग नामसे भी प्रसिद्ध थे, मुहूर्त्तकालके लिए ये स्वर्गसे मर्त्यलोकमें आये थे। इन्होंने सत्य और बुद्धिके बलसे तीनों लोकों तथा तीनों अग्नियोंको जीत लिया था। इनके पुत्रका नाम रघु था। ये ही रामचन्द्रके प्रपितामह थे। (लिंगपुराण ६६ अ०)

महाकवि कालिदासने अपने रघुवंशमें दिलीपका विवरण इस प्रकार लिखा है—राजा दिलीप एक बार स्वर्गसे मर्त्यलोकमें अपनी स्त्रीसे मिलनेके लिए आते समय स्वर्गीय गौ सुरभिकी पूजा करना भूल गये थे। इसलिए उसने दिलीपको शाप दिया कि, 'जब तक तुम मेरी नन्दिनीकी सेवा न करोगे, तब तक तुम्हें पुत्र न होगा।' बहुत दिनों तक कोई सन्तान न होनेके कारण राजा बड़े चिन्तित हुए, पीछे पत्नीके साथ कुलगुरु वशिष्ठकी शरणमें पहुंचे। ऋषि वशिष्ठको योगबलसे मालूम हुआ कि सुरभिकी अवहेला करना ही सन्तान नहीं होनेका मूल कारण है, इसलिए उन्होंने राजासे नन्दिनीकी सेवा करनेको कहा। राजा भी अनन्यकर्मा हो सुरभितनया नन्दिनीकी सेवा करने लगे। एक बार एक शेरने नन्दिनीको खाना चाहा। दिलीपने उसकी रक्षाके लिए अपने आपको उस शेरके आगे डाल दिया। इस पर नन्दिनी बहुत प्रसन्न हो गई और उसने राजाको वर दिया। उस वरसे उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम रखा गया रघु। रघुके ही नाम पर रघुवंश नाम प्रसिद्ध हुआ है। दिलीपकी पत्नीका नाम सुदक्षिणा था। रघु जब बड़े हुए, तब दिलीपने उन पर राज्यभार सौंप संसारका त्याग किया।

दिलीप—हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। ये चैनपुर नामक ग्राममें रहते थे। इन्होंने संवत् १८१६ में रामायण-टीका नामक एक पुस्तक लिखी।

दिलीपराट (सं० पु०) दिलीप एव राट् राजा। दिलीप राजा।

दिलीपसिंह—दलीपसिंह देखो।

दिलीर (सं० क्ली०) गोमय छत्र, गोबर छत्ता, भुंईफोड़।

दिलेर (फा० वि०) १ शूर, वीर। २ साहसी, हिम्मती।

दिलेरी (फा० स्त्री०) १ वीरता, बहादुरी। २ साहस, हिम्मत।

दिल्लगी (फा० स्त्री०) १ दिल लगनेकी क्रिया। २ चित्त-विनोद या हंसने हंसानेकी बात, ठट्ठा, मजाक, मसखरी।

दिल्लगीबाज़ ( फा० पु० ) वह जो हंसी या दिल्लगी करता हो, मसखरा, मखौलिया।

दिल्लगीबाज़ी ( फा० स्त्री० ) दिल्लगी करनेका काम।

दिल्ला ( हिं० पु० ) किवाड़के पल्लेमें लकड़ीका एक विशेष चौखटा बना या जड़ दिया जाता है।

दिल्ली—पञ्जाबके अन्तर्गत एक भूभाग। यह अक्षा० २७° २९' से ३१° १८' उ० और देशा० ७४° २९' से ७४° ४०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १५३८५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः पांच लाख है। इस विभागमें दिल्ली, गुरुगांव, कर्णाल, हिसार, रोहतक, अम्बाला और सिमला नामके ७ जिले लगते हैं।

२ पञ्जाबके लाटके शासनाधीन उक्त दिल्ली विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° १२' से २९° १४' उ० और देशा० ७६° ४८' से ७७° ३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १२८० वर्गमील है। राजा दिलु वा धिलुके नाम पर इस जिलेका नाम पड़ा है। इसके उत्तरमें कर्णाल जिला, पश्चिममें रोहतक, दक्षिणमें गुरुगांव जिला तथा पूर्वमें यमुना नदी है। यमुनाके उत्तर-पश्चिम प्रदेशके अन्तर्गत मीरट और बुलन्दशहर जिला पड़ता है।

दिल्ली जिलेकी एक ओर यमुना नदीका अववाहिका-स्थित पल्वलमय उर्वरा प्रान्तर और दूसरी ओर राजपूतानेकी पर्वतश्रेणीकी उपकण्ठस्थ शैलमाला है। इस कारण जिलेकी भूमिकी प्रकृति भी विचित्र है। इसका उत्तर-भाग शतद्रु नदीके दक्षिण तीरवर्त्ती है। निम्न-प्रान्तर प्रायः जलशून्य और अनुर्वर है, पर इसके मध्य हो कर यमुना खाई गई है, इसीसे जहां तहां जल जमा हो कर कोई हानि नहीं करता अथवा जमीनसे नमक निकल कर उद्भिद्का भी उतना नुकसान नहीं करता है। ऐसे स्थानोंमें फसल भी अच्छी लगती है। इस अंशमें केवल यमुनाकी तीरवर्त्ती भूमि स्वभावतः बहुत उर्वरा है। पहले यमुना नदी इस अंशके ५ कोस पश्चिममें जिस स्थान हो कर बहती थी, अब भी वहां नदीका ऊंचा तट साफ साफ दिखाई पड़ता है। कालक्रमसे यमुना नदी हट कर वर्त्तमान स्थान पर आ गई है और वहां एक यह विस्तीर्ण चर वा झरना क्रमशः छोटा हो कर दिल्लीसे एक मील उत्तर में आरावली की एक शाखासे प्रतिहत हो कर प्रवाहित होता है। यह प्रस्तरमय शैल प्रायः यमुनाके गर्भ तक विस्तृत है। आरवली पहाड़की एक शाखा दिल्ली जिलेके दक्षिणकी ओर गुरुगांव होती हुई तीन मील प्रशस्त मालभूमिमें परिणत हो गई है और दिल्ली नगरसे १० मील दक्षिणमें दो भागोंमें विभक्त हुई है, जिनमेंसे एक भाग उत्तरकी ओर दिल्लीके पश्चिमसे आकर अन्तमें यमुनातीरस्थ प्रान्तमें विलीन हो गया है और दूसरा भाग दक्षिण-पश्चिमकी ओर घूम कर पुनः गुरुगांव जिलेमें प्रवेश करता है। यह मालभूमि किसी जगह भी समतल भूमिसे ५०० फुट अधिक ऊंची नहीं है, किन्तु उसमें कहीं भी जल नहीं देखा जाता है। थोड़ी जमीन ऐसी है कि समतल होने पर भी जलके अभावसे वहां कोई फसल नहीं लगती। उसमें केवल घास आदि उत्पन्न होती है। पशुचारणके सिवा वह स्थान और किसी काममें नहीं आता है। वर्षाकालमें पहाड़का जल बहुत वेगसे नीचेकी ओर समतल प्रान्तरमें आ कर जमा हो जाता है और इसीसे आस पासकी जमीन उर्वरा हो जाती है। जिलेके दक्षिण-पूर्वमें नाजफगढ़ नामक एक विस्तीर्ण छिछला जलाशय है। भाद्र तथा आश्विन मासमें यह जलाशय प्रायः ४३।४४ वर्गमील तक फैल जाता है। दिल्ली प्रवेश होनेके पहले ही यमुनाका अधिकांश जल पूर्व और पश्चिम-खाई हो कर बह जाता है। इसी कारण यहां आ कर यमुना सूख जाती है और वर्षाकालके सिवा दूसरे सभी समयमें पैदल पार कर सकते हैं। फिर भी दिल्लीके नीचे ओखला शहरके निकट यमुनाका अवशिष्ट जल आगरा खाई हो कर बह जाता है। इन सब खाइयों हो कर बह जानेसे यमुना बिलकुल सूख जाती है, किन्तु बांध तथा बालूकी राशिके नीचे हो कर बहुत जल निकल कर जमा हो जाता है। इसी कारण स्रोत कुछ कुछ चलता रहता है।

इस जिलेका इतिहास प्रधानतः दिल्लीनगरके इतिहाससे ही संसर्ग रखता है। सुतरां वह उसी स्थानमें लिखना उपयुक्त होगा। अति प्राचीन कालसे ही यह स्थान भारतवर्षीय महाबल पराक्रान्त एक राजचक्रवर्तीकी

सुसमृद्ध राजधानी हो कर आ रहा है। वर्त्तमान दिल्ली-नगर जिस स्थान पर अवस्थित है, उसके चारों ओर प्रायः १०।१२ मीलके मध्य ये सब राजधानी एकके बाद दूसरी आदि क्रमसे स्थापित हुई है। आज भी बहुतसे भग्नस्तूपादि लक्ष स्थानमें देखे जाते और वे प्राचीन राजधानीका सौभाग्य तथा समृद्धिकी घोषणा करते हैं। इसका अति प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है। पाण्डव लोग यहां आ कर रहे थे। कुरुपाण्डवकी लड़ाईके बाद यही इन्द्रप्रस्थ नगरी भारतवर्षके अद्वितीय राजचक्रवर्ती युधिष्ठिरकी राजधानी हुई। इन्द्रप्रस्थ देखो।

युधिष्ठिरके बाद उनके वंशके तीस पुरुषों वा पीढ़ियोंने इन्द्रप्रस्थमें राज्य किया। पीछे पाण्डव-राजमन्त्रीने सिंहासन अधिकार किया। विसर्वके वंशधरोंके ५०० वर्ष राज्य करनेके बाद पन्द्रहवें गौतमराज इन्द्रप्रस्थके सिंहासन पर बैठे। इस जिलेके साथ समस्त आर्यावर्त यथाक्रमसे हिन्दू, पठान, मुगल और अन्तमें महाराष्ट्रोंके हाथ आया। १८०३ ई०में लार्ड लेककी विजयके बाद दिल्ली अङ्गरेजोंके हाथ आई और सन्धिके द्वारा तात्कालिक मुगल राजधानी दिल्लीनगरके उत्तर-दक्षिण यमुनाके पश्चिम तीरस्थ विस्तीर्ण भूखण्ड अङ्गरेजोंको दिया गया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने सम्राट् शाह आलमको महाराष्ट्रोंके हाथसे बचाया था, इस कारण उनके खर्चके लिये सम्राट्ने उन्हें वर्त्तमान दिल्ली और हिसर जिलेका अधिकांश अर्पण किया। अङ्गरेज कर्मचारीगण सम्राट्के नाम पर दिल्ली प्रदेशमें राज्य करने लगे। केवल वल्लभगढ आदि कई स्थानोंके राजा स्वाधीन भावसे अपना अपना राज्य-शासन करते थे। लेकिन इस तरह शासनकार्यमें बहुत ही विशृङ्खला उपस्थित हुई। अन्तको १८३२ ई०में एक आईनके द्वारा दिल्लीका रेसिडेण्ट और चीफ कमिश्नरका पद उठा दिया गया तथा शासनका भार एक कमिश्नरके हाथ दे कर आगरा-हाइकोर्टके अधीनस्थ किया गया। इसके बादसे ही दिल्लीप्रदेश यथार्थमें इष्ट-इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें आ गया। तभीसे ले कर १८५७ ई०के सिपाहीविद्रोहके समय तक यह प्रदेश युक्तप्रदेशके अन्तर्भुक्त रहा। १८१९ ई०में दिल्ली-जिला पहले पहल संगठित हुआ। उस समय वर्त्तमान रोहतक जिलेके कई भाग इसके अन्तर्गत थे। पीछे करनाल जिलेके अन्तर्गत पानीपत तहसीलके अधिकांश तथा वल्लभगढ़ राज्य क्रमशः इसके अन्तर्भुक्त किये गये। सिपाही-विद्रोहके समयमें समस्त जिला विद्रोहियोंके हाथ आ गया था तथा उत्तरीभाग अङ्गरेजोंके पुनरधिकार करने पर भी जब तक दिल्ली नगर सम्पूर्ण रूपसे अङ्गरेजोंके हाथ न आया, तब तक वे दक्षिणभागमें पुनराधिपत्य स्थापन कर न सके थे। १८५८ ई०में सिपाहीविद्रोहके दमन होने पर दिल्ली-जिला अङ्गरेज गवर्मेण्टके नवोपार्जित पञ्जाब प्रदेशके छोटे लाटके अधीन किया गया। वल्लभगढ़के राजा राजविद्रोहिताके अपराधमें दण्डित होने पर, उनका राज्य एक नूतन तहसीलके रूपमें दिल्ली जिलेका अन्तर्भुक्त हुआ और यमुनाके पूर्वतीरस्थ पूर्व परगना नामक भूभाग युक्तप्रदेशके अन्तर्गत किया गया। कुछ दिनोंके बाद सिंहासनच्युत दिल्लीके सम्राट् रंगूनको निर्वासित हुए जहां १८६२ ई०में उनका देहान्त हुआ। सम्राट्को स्थानान्तरित करनेके बादसे दिल्ली जिलेमें एक प्रकारकी शांति विराजती है।

जिलेमें ४ शहर और ७१४ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः सात लाख है जिनमेंसे हिन्दू ५१०५२२, मुसलमान १६७२९० और जैन ७०२६ है। इनके सिवा यहां सिख, पारसी, ईसाई तथा अन्यान्य धर्मावलम्बीके लोग वास करते हैं।

इस जिलेमें जितनी जातियां वास करती हैं उनमेंसे जाटगण ही प्रधान है तथा उनकी संख्या भी सबसे अधिक है। दिल्लीके उत्तरमें अधिकांश भूमि इन्हीं लोगोंके अधिकारमें है। किन्तु बहुत जगहके ब्राह्मण भी अधिकारी हैं। अन्यान्य स्थानोंके जाटोंकी नाईं ये भी परिश्रमी, कृषिकुशल तथा नियमित समय पर राजस्व देते हैं। यमुना तीरवर्ती उर्वरा भूमिकी अपेक्षा मध्यभागकी ऊंची भूमिमें ही बहुतसे जाट वास करते हैं। दिल्लीके निकट ये प्रधानतः दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं, यथा–देशवाले वा देशस्थ और पाश्चात्य; शेषोक्त संप्रदाय पश्चिमसे आये हुए हैं। दोनों संप्रदायमें विशेष पार्थक्य नहीं है। इनमेंसे अधिकांश ही शैव संप्रदायके

हिन्दूधर्मावलम्बी हैं और बहुतोंने मुसलमान, सिख आदिका मत अवलम्बन किया है। इनके बाद राजपूतोंको संख्या अधिक है। इन लोगों तथा ब्राह्मणोंमेंसे अनेक मुसलमानधर्ममें दीक्षित हुए हैं। इनके सिवा ब्राह्मण, बनियाँ, लोहार, चमार, धोबी, घेरी, गूजर, कसाई, नाई आदि हिन्दू तथा बेलुची, शेख, सैयद, पठान, मुगल, फकीर आदि मुसलमान वास करते हैं। यहां तगा नामकी एक दूसरी श्रेणीके ब्राह्मण हैं जो अपनेको गौड़देशीय बतलाते हैं। प्रवाद है, कि तक्षक कुलका सत्यानाश करनेके लिये ये लोग यहां बुलाये गये थे। बहुतसे लोग अनुमान करते हैं, कि यह तक्षकवंश शायद बौद्धधर्मावलम्बी शकराजगण हो होंगे। बनियां लोग जिलेमें सब जगह भरे हुए हैं और दूकान अथवा व्यवसाय करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। गूजर जाति स्वभावतः आलसी और शठ होते हैं। इन लोगोंमेंसे अधिकांश दक्षिणकी ओर ऊंची मालभूमि और पहाड़ पर पशुचारण तथा कृषिकार्यादि द्वारा जीविका चलाते हैं। ये अधिक काल तक एक जगह नहीं रहते हैं। कहते हैं, कि ये लोग मवेशी आदिको चुराया करते हैं। गोपालक अर्थात् अहीरगण अपनेको हिन्दू-समाजमें नितान्त निम्न स्थानके अधिकारी नहीं समझते हैं। मुसलमानोंमें केवल पठानगण हो विशुद्ध मुसलमान वंशोद्भव हैं। इस जिलेमें जो चार शहर लगते हैं उनके नाम दिल्ली, सोनपत, फरीदाबाद और बल्लभगढ़ हैं।

जिलेका अधिकांश उच्च प्रस्तरमय अनुर्वर है तथा कहीं कहीं लवणमय भी है, इस कारण सभी जमीन कृषिकर्मका सम्पूर्ण अनुपयोगी है। अवशिष्ट जमीन जलके अभावसे परती रहती है। गवर्मेण्टने खाई काट कर अनेक जगह जल सींचनेकी सुविधा तथा कृषिकार्यके उन्नतिसाधनकी अच्छी व्यवस्था कर दी है। उत्तरी भागमें यमुनाकी पश्चिम तीरवर्त्ती खाई रहनेके कारण अच्छी उपज होती है। कपास, ईख, धान, बाजरा, ज्वार, जुन्हरी, गेहूं, जौ, चना आदि प्रधान उत्पन्नद्रव्य हैं। तम्बाकू भी कम नहीं उपजता है। नील और सरसों भी कुछ कुछ उपजाई जाती है। यमुनाके पश्चिमी किनारे विस्तीर्ण पलिमय खादरमें जल सींचनेका अभाव नहीं होने पर भी वहां खाईके किनारेके जैसा शस्यादि उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस विषयमें कृत्रिम उपायसे सिञ्चितभूमि यमुनातीरवर्त्ती भूमिको अपेक्षा उत्कृष्ट है। खाईके किनारे जो सब अनाज उपजते हैं, वे सब खादरमें भी हुआ करते हैं। थोड़ी गहरी जमीन खोदनेसे ही सुस्वादु जल निकल आता है। दिल्लीके दक्षिणभागकी प्रकृति स्वभावतः अनुर्वर और पर्वतमय है। यद्यपि आगरा खाई इसी स्थान हो कर काटी गई है, तो भी खाई नीची रहनेके कारण उसके जलसे ऊपरकी जमीन सींचनेका कोई उपाय नहीं है। नाजफगढ़-झील वर्षाकालमें भर जाती है और उसका जल एक खाई हो कर यमुनामें ही चला जाता है। झीलके कुछ सुख जाने पर जलमें डुबी जमीन आबाद की जाती है। जो कुछ हो, इस जिलेमें वर्षा बहुत कम होती है, इसीसे खाई आदिके रहने पर भी कृषिकार्यकी अच्छी उन्नति नहीं होती है।

दिल्ली बहुत काल तक युक्तप्रदेशके अन्तर्गत था। अतएव इस जिलेकी जोत जमीन आदिका बन्दोवस्त बहुत कुछ युक्तप्रदेशकी जैसा है। भायाचारा नाम एक प्रकारकी जोत खूब प्रचलित है। अधिकांश प्रजाकी दखली जमीन नहीं है। जमीनके उत्पन्न शस्यके अनुसार मालगुजारीका निर्ख भिन्न भिन्न है।

वाणिज्यादि प्रधानतः दिल्ली नगरमें ही अधिक हुआ करता है। इसके सिवा सोनपत, फरीदाबाद और बल्लभगढ़में स्थानीय क्रय विक्रयके लिये हाट हैं। जिलेके शिल्पादि भी दिल्लीनगरमें ही सीमाबद्ध हैं। नगरकी नक्काशी तथा जरीका काम सर्वत्र विख्यात है और यहांका काचमण्डित चिकनी मट्टीका बरतन पेशावर छोड़ कर भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंके बरतनोंकी अपेक्षा सबसे बढ़िया होता है। दिल्लीसे कुछ दूर यमुना नदीको पार कर कालका तक रेलवे लाइन चली गई है। अतः यहां वाणिज्यकी अच्छी सुविधा है। जो कुछ हो, उसके लिये सामान्य असुविधा होने पर भी नदी, सुन्दर राजपथ और रेलपथ आदिके द्वारा दिल्ली प्रधान वाणिज्य स्थानसे संलग्न होने पर भी इसको उतनी क्षति नहीं होती है। गाजियाबाद जंक्सनसे ले कर यमुनाके ऊपर

लोहेके पुल पर होती हुई दिल्ली शहर तक इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके रेलपथकी एक शाखा आई है। यह शाखा पञ्जाब रेलपथके साथ मिली हुई है। राजपूताना ष्टेट-रेलवे दक्षिणभागमें कुछ दूर तक जिलेके मध्य होती हुई गुरुगांवकी ओर गई है। वर्षाकालमें बडी बडी नावें यमुनामें आती जाती हैं। दिल्लीसे लाहोर, आगरा, जयपुर और हिसार तक प्रस्तरमय उत्कृष्ट राजपथ गये हैं। इनके सिवा व्यवसाइयोंके जाने आनेके लिये बहुतसी सड़कें प्रत्येक शहर और प्रधान प्रधान घाट तक चली गई हैं। भागपत, झाना, मणियारपुर और कुन्दपुरमें नावके पुल हैं।

शासन और राजस्व विभागमें यहां १ डिपुटिकमिश्नर, १ सहकारी असिष्टेण्ट और २ अतिरिक्त सहकारी असिष्टेण्टकमिश्नर, १ स्माल जज, २ मुन्सफ और ३ तहसीलदार हैं। इनके सिवा शान्तिरक्षा, स्वास्थ्य तथा राजस्व आदि वसूल करनेके लिये आवश्यकीय दूसरे दूसरे कर्मचारी हैं। यह जिला ३ तहसीलों तथा शान्तिरक्षाकी सुविधाके लिये १३ थानाओंमें विभक्त है। इस जिलेमें विद्याकी खूब उन्नति है। यहां २ आर्टकालेज, १४ सेकेण्डरी, ११० प्राइमरी, १ ट्रेनिंग, ११३ एलिमेण्टरी स्कूल तथा ७०० बालिका-विद्यालय हैं। इस विभागमें प्रतिवर्ष लगभग दो लाख रुपये व्यय होते हैं। इनके सिवा डफरिन अस्पताल और ८ चिकित्सालय हैं। १९०६ ई०के दिसम्बर महीनेमें विकटोरिया मेमोरियल जनाना अस्पताल एक लाख रुपये खर्च करके बनाया गया है।

अन्यान्य जिलाओंके साथ दिल्लीके जलवायुका विशेष भेद नहीं है। ज्येष्ठ मासके दारुण ग्रीष्मके समयमें छायामें उत्तापका परिमाण फा० ११६° तक हुआ करता है और पौषमासमें निम्नसंख्या फा० ४६° ४ तक रहती है। वार्षिक वृष्टिपात २०से ३० इं० है। ज्वर और उदरामय पीड़ा सचराचर हुआ करती है। कभी कभी वसन्तरोगसे बहुत मनुष्योंकी मृत्यु होती है।

३ दिल्ली जिलेकी सदर तहसील। यह अक्षा० २८°३०´ से २८° ५३´ उ० और देशा० ७६°५१´ से ७७° १७´ पू० यमुनानदीके पश्चिममें अवस्थित है। भूपरिमाण ४२८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २०८५४७ है। दिल्ली शहर इसी तहसीलके अन्तर्गत है।

४ उक्त दिल्ली विभागके अन्तर्गत दिल्ली जिलेका एक प्रधान नगर तथा भारतवर्षकी वर्तमान राजधानी। यह अक्षा० २८° ३९´ उ० और देशा० ७७° १५´ पू० यमुनानदीके बायें किनारे अवस्थित है। यह शहर कलकत्तेसे ९५६ मील, बम्बईसे ९८२ मील और करांचीसे ९०७ मील दूर है। भूपरिमाण ५५७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २३२८३७ है, जिनमेंसे हिन्दू और मुसलमानकी संख्या ही सबसे अधिक है। शहरका दूसरा नाम शाहजहानवाद है। इसकी उत्तर, पश्चिम और दक्षिण-दिग्‌में सम्राट् शाहजहान्‌की बनाई हुई बहुत ऊँची पत्थरकी दीवारसे घिरा हुई है तथा पूर्वकी ओर पुण्यतोया यमुनानदी प्रवाहित है। उक्त प्राचीरका परिमाण ५½ मील है। वर्त्तमान उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें अङ्गरेजोंकी खाई तथा प्राचीरसे नगर और भी दुर्गम हो गया है। इसके दश सिंहद्वार हैं जिनमेंसे उत्तरमें काश्मीर और मोरीद्वार, पूर्वमें काबुल और लाहोरद्वार तथा दक्षिणमें अजमेर और दिल्ली-द्वार प्रधान हैं। मुगलसम्राट्‌का राजप्रासाद नगरके पूर्वमें यमुनानदीके किनारे अवस्थित है और अभी यह दुर्गके रूपमें व्यवहृत होता है। इसके तीन ओर लोहितवर्ण रेतीले पत्थरके बनाये हुए ऊँचे प्राचीर हैं एवं पश्चिम तथा दक्षिणमें एक सिंहद्वार है। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके बाद प्रासादका कुछ अंश तोड़ फोड़ कर गोरा सेनाओंके रहनेके लिये मकान बनाये गये हैं। उक्त दुर्गके दक्षिण दरियागञ्ज नामक स्थानमें देशी सिपाही सेनाओंके लिये एक सेनानिवास है। यमुनाके दूसरे किनारे सोलहवीं शताब्दीमें सलीमशाहका बनाया हुआ सलामगढ़ नामकी एक दुर्ग है जो अभी भग्नदशामें पड़ा हुआ है। सलीमगढ़के एक कोने हो कर इष्ट-इण्डिया-रेलवे-कम्पनीके रेलपथ एक सुरम्य लोहेके पुलसे यमुना पार कर दिल्ली नगरके अभ्यन्तरस्थ ष्टेशनको जाते हैं, बाद उक्त रेलपथ राजपूताना-ष्टेट-रेलवे नामक नगरके उत्तर-पश्चिम कोनेमें प्राचीरको छेद कर बाहर निकल गया है। नगरके उत्तर पूर्व कोनेमें कोषागार और अन्यान्य सरकारी आफीस तथा दरियागञ्जका सेनानिवास है। दुर्गके पश्चिमकी ओर कम्पनीका बगीचा है। सेनानिवास, दुर्ग,

रेलपथ और बेगोचा नगरके प्रायः आधे भागको घेरे हुए है। इस भागमें लोकसंख्या कम है, किन्तु दूसरे भागमें बहुत अधिक है।

दिल्लीका स्थापत्य शिल्पका गौरव जगद्विख्यात है। इस जगह सम्पूर्ण विवरण देना असम्भव है। यथार्थमें दिल्लीको बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंका निर्माणकौशल बहुत आश्चर्यजनक है, जो वर्णनसे प्रकाश नहीं किया जा सकता। मि० फार्गुसनने अपने भारतीय और प्राच्य-स्थपति-विद्याके इतिहास (History of India and Eastern Architecture)में इन प्रासादोंका खूब सुन्दर वर्णन किया है। शाहजहान्‌का राजप्रासाद आगरेके राजप्रासादसे चित्रवैचित्र तथा आडम्बरमें कम होने पर भी इसकी गठनप्रणाली समभावापन्न है और भारतीय सर्वप्रधान स्थपतिप्रिय सम्राट्‌से बनाई गई है। इस प्रासादकी लम्बाई उत्तर दक्षिणमें ३२०० फुट और चौड़ाई पूर्व पश्चिममें ५६०० फुट है। इसके चारों ओर लाल पत्थरके बनाये हुए ऊंचे प्राचीर हैं और कहीं कहीं गुम्बज भी दिये गये हैं। प्रवेशद्वार बहुत सुन्दर है। मि० फार्गुसनका कहना है, कि यह प्रवेशद्वार संसारके यावतीय प्रासादोंके प्रवेशद्वारसे कहीं बढ़ा चढ़ा है। यह प्रासाद बहुतसे उद्यान, फुहारे आदिसे अलङ्कृत है तथा नाट्यशाला, सङ्गीतशाला आदि अनेक अंशोंमें विभक्त है। दूसरे दूसरे मकानोंकी बात छोड़ देने पर भी दीवानीखास अर्थात् सम्राट्‌का मन्त्रणागार शाहजहान्‌की बनाई हुई अन्यान्य समस्त अट्टालिकाओंकी अपेक्षा सुन्दर नहीं होने पर कारुकार्यमें सबोंसे बढ़ कर है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। यमुना नदीके ठीक ऊपरमें एक घर अवस्थित है जिसके भीतरी भागका निर्माणकौशल और फलपुष्पादिके चित्र आदिका कल्पनाचातुर्य बहुत प्रशंसनीय है। दीवानीखासकी छतके चारों तरफ लिखा हुआ है. 'पृथ्वीमें यदि स्वर्ग है तो यही एक है' वास्तविकमें इस तरहका अनुपम सौन्दर्यमय कक्ष पृथ्वीके यावतीय राजप्रासादोंमें कहीं नहीं है, यदि ऐसा कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रासादके मध्यस्थलसे समस्त दक्षिण भागमें १००० फुट परिमित स्थानमें सम्राट्‌का अन्तःपुर था। जिसका परिसर यूरोपके बड़े बड़े राजप्रासादोंसे भी द्विगुण था। प्रासादके अधिकांश कक्षादि तहस नहस हो गये हैं, अभी जो कुछ बच रहे हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रवेशकक्ष, नौबतखाना, दीवानी-आम, दीवानीखास, और रङ्गमहल। इसके सिवा और भी दो घर विद्यमान हैं। कहना नहीं पड़ेगा कि, यही सब मकान प्रासादोंमें सर्वोत्कृष्ट हैं, किन्तु तिस पर भी इनके सामनेका प्राङ्गण और एक दूसरेको मिलानेवाले पथ आदिका लोप हो जानेसे इनकी श्री बहुत कुछ जाती रही। अंगरेजोंके सैन्यवासको हर्म्यावलीमें जो विचित्र काञ्चनखचित किये हुए थे, वे अब नहीं हैं।

शहरके जिस अंशमें देशीय लोगोंका वास है, वहांकी अट्टालिकादि ईंटकी हैं लेकिन बहुत सुन्दर और सुदृढ़ दीख पड़ती हैं। बहुत सी गलियां तथा छोटे छोटे रास्ते टेढ़े हैं, किन्तु खराब होने पर भी भारतवर्षके दूसरे दूसरे शहरोंमें दिल्लीके जैसा उत्कृष्ट बड़ा रास्ता नहीं है। इसके प्रधान प्रधान दश वृहत् राजपथ अच्छी तरह पत्थरसे बंधे हुए हैं। जल बाहर निकालनेके लिए नर्मदाकी व्यवस्था और रातमें रोशनी आदिका बन्दोबस्त बहुत अच्छा है। चान्दनीचक वा रजतरथ्या नामक पथ सबसे प्रसिद्ध है, जो ७४ फुट लंबा है और दुर्गसे ले कर लाहोरके तोरण-द्वार तक प्रायः ३ मील लंबा है। इसकी मध्यस्थित जलप्रणालीके दोनों तरफ नीम और पीपलके वृक्ष लगे हैं। पहले इसी प्रणाली हो कर राजप्रासादमें जल लाया जाता था अभी इसके ऊपर ऊंची सड़क बनाई गई है। चान्दनीचकसे कुछ दक्षिण एक खण्ड ऊंची भूमिके ऊपर विख्यात जुमा मस्जिद है, सम्राट् शाहजहान्‌ने अपने राजत्वके चार वर्ष बाद इसका निर्माण आरम्भ किया और दश वर्षमें समाप्त किया था। इसके सामनेमें ४५० वर्गफुट प्रशस्त चत्वरभूमि मर्मर पत्थरसे बंधी हुई है और चारों ओर दावार है। इस स्थानसे उत्तरकी ओर दृष्टिपात करनेसे समस्त दिल्ली नगर देखनेमें आता है। मसजिदकी लंबाई २६१ फुट है। इसके तीन गुम्बज सफेद मर्मर पत्थरके बने हैं। नीचेसे लेकर मस्जिद तक पत्थरकी सीढ़ी गई है। छतके ऊपर सामने भागमें दो कोनेमें दो ऊंचे शिखर हैं। मसजिदका अभ्यंतर भाग सफेद मर्मर

पत्थरका बना हुआ है। दिल्लीकी ओर दो मसजिदें उल्लेखनीय हैं, उनमेंसे एकका नाम काला मस्जिद है। प्रवाद है, किसी अफगान सम्राट्‌ने इसे बनाया था। इसका रंग धीरे धीरे काला हो जानेके कारण लोग इसे काला मसजिद कहते हैं। दूसरी रसुन-उद्दौलाकी मसजिद है। आधुनिक बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंमेंसे दिल्ली गवर्मेण्ट हाउस, गवर्मेण्ट कालेज, रेसिडेन्सी और प्रटेष्टेण्टोंकी गिर्जा ये ही चार प्रधान हैं। कर्नल इस्कीनर एक लाखसे अधिक रुपये खर्च करके उपरोक्त गिर्जा बना गये हैं। चान्दनीसे यमुनाकी ओर अर्धपथ पर एक घड़ीका स्तम्भ और उसके सामने दिल्ली कालेज-भवन तथा म्यूजियम वा जादूघर है। चान्दनीचकके उत्तरमें महारानीका उद्यान है और उससे भी कुछ उत्तरमें पहाड़के मूल तक नगरकी सीमा विस्तृत है। इस पर्वतके शृंग पर चढ़नेसे दिल्ली शहर और स्टेशनका दृश्य बहुत मनोहर लगता है। नगरके पश्चिम-प्राचीरके बाहरमें,बहुतसे ग्राम देखे जाते हैं, इनमेंसे एक ग्राममें सम्राट्‌का समाधिस्थान है। इसमें सम्राट् हुमायुन्‌का बनाया हुआ पत्थर तथा संगममरका समाधिमन्दिर देखने योग्य है। नगरसे प्रायः दो मीलकी दूरी पर एक विस्तीर्ण उद्यानके चारों ओर प्राचीर है तथा अभ्यन्तरमें कई जगह सुन्दर जलाशय और अनेक मन्दिर हैं। इसके मध्यभागमें २० फुट ऊंचे और २०० फुट चौड़े चबूतरेके ऊपर सुन्दर स्तम्भराशि सुशोभित है तथा श्वेतमर्मर पत्थरका गुंबजयुक्त हुमायुन्‌का समाधिमन्दिर अवस्थित है जो आज तक भी सम्पूर्ण अवस्थामें विद्यमान है। नगरसे और भी कुछ पश्चिम एक मीलकी दूरी पर एक दूसरा समाधि-मन्दिर है जिसके अभ्यन्तरमें भी बहुत सुन्दर,समाधिमन्दिर तथा छोटी मस्जिद विद्यमान है। इनमेंसे मुसलमान फकीर निजामउद्दीनकी समाधि और धर्मशाला प्रधान है। सिपाहीविद्रोहके पहले दिल्लीके शेष सम्राट्‌गण इस फकीरको समाधिके चारों ओर घिरे रहते थे। प्रत्येक समाधिक्षेत्र मर्मरके घेरेमें अवस्थित है। इन सब कब्रिस्तानोंके अलावा दिल्लीमें कुतुबमिनार, लौहस्तम्भ आदि और भी बहुत सी प्राचीन कीर्त्ति विद्यमान हैं जिनका उल्लेख नीचे दिया गया है।

समृद्धिशाली अमीर तथा अन्यान्य धनकुबेरोंकी हर्म्यावली निःसन्देह पूर्व नगरकी प्रभूत शोभा देती, किन्तु उनमेंसे अभी एक भी मौजूद नहीं है। उन सब स्थानोंमें वर्त्तमान सम्भ्रान्त व्यक्तियोंकी मनोहर अट्टालिकायें बनाई गई हैं। इस नगरमें परिष्कृत जल सब जगह मिलता है। अभी इसकी परिच्छन्नता तथा स्वास्थ्योन्नतिके विषयमें सभीका ध्यान आकर्षित हुआ है।

१७९२ ई०में यहां दिल्लीकालेज स्थापित हुआ। यही विद्यालय १८७७ ई० तक प्रधान गिना जाता था। पहले इसमें केवल देशीभाषाकी शिक्षा दी जाती थी। देशीय सम्भ्रान्त मुसलमानगण चन्दा दे कर इसका खर्च चलाते और सभा संगठन करके इसको कार्यावली परिदर्शन करते थे। १८२८ ई०को उक्त कालेजमें अंगरेजो-शिक्षाविभाग खोला गया और १८५५ ई०को यह सरकारी शिक्षाविभागके अन्तर्गत हुआ। तभीसे दिल्ली-कालेजमें अनेक लोग शिक्षालाभ कर कृतविद्य हो गये हैं। १८५७ ई०के सिपाहीविद्रोहके समय विद्रोहियोंने इस कालेजभवनको तहस नहस कर डाला और दुष्प्राप्य ग्रन्थोंको लूटा। १८५८ ई०में एक दूसरा मकान निर्माण कर उसमें कालेज स्थापित हुआ जो कलकत्ता विश्वविद्यालयके अधीन किया गया। अन्तमें १८७७ ई०के फरवरी महीनेमें पञ्जाबकी राजधानी लाहोर नगरके कालेजमें उस प्रदेशकी शिक्षाका केन्द्रीभूत बनानेके लिये दिल्ली-कालेजके अध्यापक आदि स्थानान्तरित हुए हैं।

जिस दिनसे प्राचीन आर्यगण भारतवर्षमें अपना आधिपत्य जमा कर पुण्यसलिला यमुनाके किनारे रहने लगे, उसी दिनसे यहां बहुतसे राजाओं और राजचक्रवर्त्तियोंका उत्थान तथा पतन होने लगा। कई एक राजाओंके बाद राजा, सम्राट्‌के बाद सम्राट्‌ने यहां नयी नयी राजधानी स्थापित करके राज्यशासन किया। बाद वे क्रमशः कराल कालके गालमें फंसते गये। पीछे बहुतसी राजधानियां स्थापित हुईं और धीरे धीरे तहस नहस भी होती गईं। अतः वर्त्तमान कालमें जहां दिल्ली नगर अवस्थित है, उसके चारों ओर एक प्रकाण्ड ध्वंसक्षेत्रके जैसा पड़ा है। विशप हिवर साहब इस भग्नदृश्यका इस प्रकार वर्णन कर गये हैं, "यह दृश्य एक

अत्यन्त भयानक ध्वंसक्षेत्रके जैसा दीख पड़ता है, भग्नस्तूपके बाद भग्नस्तूप है, समाधिके बाद समाधि है, टूटे फूटे घरोंकी टूटी फूटी ईंटें और तरह तरहके पत्थरोंके टुकड़े चारों ओर वृक्षलता रहित कठिन मरुभूमिके समान पृथ्वी पर इधर उधर पड़े हैं।" ये सब ध्वंसावशिष्ट भग्नस्तूपराशि वर्त्तमान शाहजहानाबाद नगरसे पांच कोस दूर राजपिथोरा और तोगलकाबाद दुर्ग तक विस्तृत है। जितनी दूर तक उक्त ध्वंसावशिष्ट राजधानी-समूह देखा जाता है, उसका परिमाणफल ४५ वर्ग-मील है। वर्त्तमान नगरके प्राचीरसे २ मील दक्षिणमें जहां इन्द्रप्रस्थ वा पुराणकिला नामका ग्राम और दुर्ग है, पहले वहां पाण्डवोंका इन्द्रप्रस्थ नगर बसा हुआ था।

अब यह देखना चाहिये कि शहरका नाम दिल्ली किस प्रकार पड़ा। ई० सन्के प्रायः ५० वर्ष पहलेसे दिल्ली अथवा दिल्लीपुर इसी नामकी उत्पत्ति हुई थी। फेरिस्ताके मतानुसार जेनरल कनिंहम कहते हैं, कि राजा दिलुसे दिल्लीका नामकरण हुआ है। ये इन्द्रप्रस्थके गौतमवंशीय राजाओंके परवर्त्ती मयूरवंशके अंतिम राजा थे। उस समय दिल्ली-नगर वर्त्तमान शहरसे ५ मील दक्षिणमें अवस्थित था। किन्तु इस विषयमें जितनी कहानियां कही गई हैं, उनमेंसे तीसरी वा चौथी शताब्दीके राजा धावके द्वारा स्थापित प्रसिद्ध लौहस्तम्भसे जो कुछ मालूम हुआ है उसे ही प्रमाणस्वरूप ग्राह्य करना चाहिये। यह धातुमय स्तम्भ ठोस है। इसका व्यास १६ इं० और लम्बाई ५० फुट है। इसके आधेसे अधिक भाग मट्टीमें गड़ा हुआ है। स्तम्भमें पश्चिमकी ओर संस्कृत अनुशासन भली भांति खोदा हुआ है। केवल यही लिपि इसके प्राचीन इतिहासके परिचायकके जैसा आदरणीय है। प्रिन्सेप साहबने सबसे पहले इस अनुशासनका पाठोद्धार किया, जिसका मर्म इस प्रकार है—'राजा धाव जो अपनी भुजाके बलसे बहुत काल तक सारी पृथ्वीके अद्वितीय अधीश्वर हुए थे, उन्हींके कीर्त्तिस्वरूपमें यह स्तम्भ स्थापित हुआ। ये सब खोदितलिपियां उनकी तेज तलवारसे शत्रुओंकी देहके गहरे क्षताङ्क-की भांई उनकी कीर्त्ति चिरकाल तक घोषणा करें।"

कनिंहम साहब अनुमान करते हैं, कि ये धाव राजा शायद ३१९ ई०में विद्यमान थे। उस समयके गुप्तवंशके अनुशासनके अक्षरोंका ढंग देखनेसे भी पता चलता है, कि ये सब अक्षर गुप्तराजवंशके समसामयिक है। किन्तु वंशपरम्परागत प्रवादके अनुसार उक्त लौहस्तम्भ तोमरवंशके स्थापनकर्त्ता अनङ्गपालसे प्रतिष्ठित समझा जाता है। ऐसा होनेसे इसका प्रतिष्ठाकाल आठवीं शताब्दीमें पड़ जाता है। कहते हैं, कि व्यासने राजाको यह स्तम्भ पृथ्वीमें दृढ़रूपसे गाड़नेकी आज्ञा दी। और साथ साथ यह भी कह दिया था, कि इसकी दृढ़ताके ऊपर ही उनकी राजलक्ष्मीकी स्थिरता निर्भर रहेगी। उन्हींके कथनानुसार यह स्तम्भ गाड़ा गया। तब व्यासने पुनः राजासे कहा, कि स्तम्भका निचला भाग पृथ्वीके अन्दर वासुकीके मस्तकमें जा अटका है, अतः स्तम्भ भी अचल रहेगा और राजाकी राजलक्ष्मी भी अचल रहेगी। लेकिन स्तम्भका मूल वासुकीके मस्तक पर जा अटका है, यह राजाको तनिक भी विश्वास न हुआ और उन्होंने स्तम्भको उखड़वा दिया। स्तम्भके उखाड़ते ही वहांसे लोहूकी धारा निकलने लगी। इस पर राजा विस्मय हो पड़े और अपने सन्देह पर पश्चात्ताप करने लगे। जो कुछ हो, राजाने व्यासको पुनः बुला कर स्तम्भको फिरसे स्थापित किया। किन्तु इस बार किसी तरह स्तम्भ पहलेकी तरह अटल न रह सका, वरं ढीला अर्थात् ऊपरको ही उठा रहा। इसी कारण तोमरवंशकी राजलक्ष्मी भी थोड़े ही समयमें दूसरेके हाथ लगी। स्तम्भके ढीला रहनेके कारण ही नगरका नाम दिल्ली पड़ा। * इस प्रवादमें भी मतभेद है। जो कुछ हो, यह बहु मतसे स्थिर हुआ है कि यह नगर तोमरवंशीय राजाओंके अभ्युत्थानके समय स्थापित हुआ। किन्तु स्तम्भमें जो लिपि है उससे प्रवादकी सत्यता अप्रमाणित हो जाती है।

---

* "किल्ली तो ढिल्ली भई
तोमर भये मत हीन।"
किल्ली अर्थात् स्तम्भ ढिल्ली अर्थात् ढीला हो गया है, तोमरकी इच्छा पूरी न होगी।

जेनेरल कनिंहमका कहना है, कि दिल्ली नगरके बहुत काल तक भग्नावस्थामें पड़े रहनेके बाद अनङ्गपालने ७३० ई०में वहां राजधानी स्थापित कर के नगरका पुनः संस्कार किया। उनके वंशीय परवर्ती राजाओंने दिल्लीसे कनोज वा कान्यकुब्ज नगरमें जा कर राजधानी बसाई।

राठोर-वंशके स्थापयिता चन्द्रदेवने जब ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यभागमें कान्यकुब्ज (कनोज) से तोमरोंको मार भगाया, तब उसी वंशके २य अनङ्गपालने दिल्लीको लौट कर वहां पुनः एक बार तोमर-राजधानी स्थापित की। उन्होंने दिल्ली नगरको फिरसे गृहप्रासादि द्वारा सुशोभित तथा खाई और प्राचीर द्वारा सुदृढ़ किया। आज भी कुतुबमिनारके चारों ओर उस दुर्गके प्राचीरका भग्नावशेष पड़ा हुआ है। राजा धावके प्रतिष्ठित लौहस्तम्भमें अनुशासनकी एक दूसरी पंक्ति है। जिसका मर्म इस प्रकार है—'११०८ सम्वत्में (१०५२ ई०में) अनङ्गपाल दिल्लीको जनपूर्ण करें।' इस लिपिसे अनङ्गपालका दिल्लीमें पुनरागमनका समय अनुमान किया जाता है। इसके प्रायः एक सौ वर्ष बाद तोमर वा तुआर वंशके शेष राजा ३य अनङ्गपालके राजत्वकालमें अजमेराधिपति चौहान वंशीय विशालदेवने दिल्ली अधिकार किया। जो कुछ हो, विशालदेवने तोमरराजको सामन्तरूपसे दिल्लीमें राज्य करने दिया। क्रमशः दोनों वंश विवाहसूत्रसे एक हो गये। इसी समय आर्यावर्त्तके शेष स्वाधीन भूपति महाराज पृथ्वीराजने जन्म ग्रहण किया। वे तुआर और चौहान दोनों वंशके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने रायपिथोरा नामक दुर्ग और अनङ्गपालके दुर्गप्राकारके बाहर एक और प्राचीर निर्माण कर दिल्ली नगरको और भी सुदृढ़ कर दिया। आज भी बहुत दूर तक इस प्राचीरका भग्नावशेष देखनेमें आता है। इसके बाद मुसलमान ऐतिहासिकोंसे दिल्लीका सुस्पष्ट विवरण पाया जाता है। ११९१ ई०में शाहबुद्दीन वा महम्मदघोरी (गोरी) ने पहली बार आर्यावर्त्त पर चढ़ाई की। पृथ्वीराजने अपने प्रभूत पराक्रमसे राज्यकी रक्षा की और प्रसिद्ध थानेश्वरके युद्धमें महम्मद घोरीको सम्पूर्णरूपसे पराजित तथा उन्हें भगा कर ४० मील तक अनुसरण किया। दो वर्षके बाद ही पराक्रान्त महम्मदघोरीने पुनः भारतवर्ष पर आक्रमण किया। इस बार दैव दुर्विपाकसे पृथ्वीराज युद्धमें पराजित हुए। दुर्दान्त मुसलमान-सेनापतिने वीरवर पृथ्वीराजको कैद कर निःसहाय अवस्थामें मार डाला। भारतका सौभाग्यरवि उसी दिन अस्त हो गया। हिन्दूके गौरवका उसी दिन अवसान हुआ। पराधीनताके तमोमय घनजालमें उसी भीषण दिनको भारतके भावी अदृष्टाकाश आच्छन्न किया। विधर्मियोंका विजातीय शासनशेल उसी दिनसे हिन्दूके वक्षस्थलमें गाड़ा गया।

महम्मद घोरीके प्रतिनिधि कुतबुद्दीन आइवकने पृथ्वीराजको पराजय कर दिल्ली अधिकार किया और उसी समयसे दिल्ली-नगर मुसलमानोंकी राजधानी हुआ। १२०६ ई०में महम्मद घोरीकी मृत्युके बाद कुतबने अपनेको स्वाधीन राजा कह कर घोषणा की। दिल्लीके गुलाम-राजाओंमें वे ही पहले थे। इनकी स्थापित की हुई बहुत सी कीर्त्तियाँ ध्वंसावस्थामें पड़ी हैं। कुतुबकी मस्जिद ११९३ ई०में दिल्ली जीते जानेके बादसे आरम्भ हो कर तीन वर्षमें समाप्त हुई। पीछे उनके जमाई अलतमसने इसका अनेकांश वर्द्धित किया। मसजिदके दो प्राङ्गण हैं, एक बाहरमें और दूसरा भीतरमें। भीतरका प्राङ्गण चारों ओर नाना कारुकार्यखचित स्तम्भश्रेणीसे युक्त बारामदेसे घिरा हुआ है। ये यशस्तम्भ प्राचीन हिन्दूदेवमन्दिरको तोड़ फोड़ कर संग्रह किये गये थे। पहले इन स्तम्भोंमें खोदित देवदेवीओंकी प्रतिमूर्त्तियां चूने आदिसे परिपूर्ण स्थूल आवरणमें आवृत थीं, किन्तु अभी आवरणके गिर जानेसे मूर्त्तियां स्पष्टरूपसे नयनगोचर हो कर हिन्दुओंके प्राचीन शिल्पगौरवको अच्छी तरह प्रकाश करती हैं। इबन-बतुता नामक एक मुसलमान भ्रमणकारीने मस्जिद तैयार होनेके डेढ़ सौ वर्ष बाद उसे देख कर कहा था, कि यह मसजिद सौन्दर्य और विस्तारमें अतुलनीय है। मसजिदके बाहरवाले प्राङ्गणके नैर्ऋतकोणमें कुतुबका एक दूसरा कीर्त्तिस्तम्भ है, उसीका नाम दिल्लीका कुतबमिनार है। कुतुबमिनार देखो। कुतुबमिनारके प्राङ्गणके मध्यस्थलमें राजाधावका प्रतिष्ठित लौह स्तम्भ विद्यमान है। इस मिनारके चारों ओर भग्न

स्तूप पड़े हैं जिनमेंसे १३११ ई०में प्रारब्ध अला-उद्दीन्-का असम्पूर्ण स्तम्भका ध्वंसावशेष प्रधान है।

गुलाम राजाके समयमें ही दिल्लीके सिंहासन पर एक मुसलमान रमणी आरोहण हुई। अनुचरोंने उन्हें सुलतान-रजिया यह पुरुषोचित उपाधि दी थी। १२९० ई० तक गुलाम राजाओंके राज्य करने पर जलाल-उद्दीन खिलजीने दिल्लीको अधिकार किया। इनके भतीजे अला-उद्दीनके राजत्व-कालमें मध्य एशियासे मुगलोंने दो बार दिल्ली पर धावा मारा।

१३२१ ई०में तुगलक वंश दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। इस राजवंशके आदिपुरुष गयास-उद्दीनने दिल्ली से ४ मील पूर्वमें एक नूतन राजधानी स्थापित की। इस राजधानीका दुर्ग, अट्टालिका, राजपथ आदिका सुस्पष्ट भग्नावशेष विस्तीर्ण स्थानमें आज भी देखा जाता है। १३२५ ई०में गयास-उद्दीन्के मरने पर उनके लड़के महम्मद तुगलक दिल्लीके सम्राट् हुए। इन्होंने तीन बार समस्त दिल्लीवासीको अपनी राजधानी देवगिरि वा दौलताबादमें जो ८०० मील दक्षिणमें अवस्थित था, भेजनेकी चेष्टा की। उस सुदीर्घ पथमें जाने आनेमें दिल्लीवासियोंको जो कष्ट झेलने पड़े थे, वह अकथनीय है। ताञ्जियर-निवासी इब्नबतुता १३४१ ई०में दिल्लीको देखने आये। वे इस परित्यक्त पुरीकी प्रकाण्ड शून्य अट्टालिकाओंका वर्णन अच्छी तरह कर गये हैं। पीछे फिरोजशाह तुगलक नामके एक दूसरे सम्राट्ने एक बार और दिल्ली-राजधानी स्थानान्तरित की। हुमायुन्की समाधि और पहाड़के मध्यवर्त्ती स्थानमें यह राजधानी स्थापित हुई। इस नरपतिके प्रासादके भग्नस्तूपमें वर्त्तमान दक्षिण तोरण द्वारके बाहर अशोकका बनाया हुआ स्तम्भ है जो ४२ फुट लम्बा और फिरोजशाहका लाट अर्थात् स्तम्भ कह कर विख्यात है। गुलाबी रंगके एक खण्ड पत्थर पर यह स्तम्भ संगठित है, जिसमें पालि भाषामें एक लिपि उत्कीर्ण है। प्रिन्सेप साहबने बहुत यत्न और परिश्रमसे उसका पाठोद्धार किया। इस तरहके स्तम्भ आज तक दिल्ली नगरमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ। फिरोजशाहने यह खिजिराबादसे ला कर अपने नवीन राजप्रासादमें स्थापन किया था।

१३९८ ई०को महम्मद तुगलकके राजत्वकालमें विख्यात तैमुरलङ्गने दिल्ली पर चढ़ाई की। महम्मद गुजरातको भाग गये और उनकी सेना प्राचीरके समीप ही तैमुरसे पराजित हुई। तैमुर अरक्षित नगरमें प्रवेश कर लगातार पांच दिनों तक लोमहर्षणकारी हत्याकाण्ड करने लगे। दिल्लीको सारी सड़कें तथा घाट मृतदेहसे भर गये। अन्तमें नरशोणितलोलुप तैमुरको उत्कट नरहत्याकी लालसा परितृप्त होने पर वे अनेक नर नारीको बन्दी कर तथा प्रचुर अर्थ ले कर स्वदेशको लौट गये। प्रायः दो मास तक दिल्ली इसी तरह उजाड़-सा दीखता रहा। अन्तमें महम्मद तुगलकने आ कर पुनः दिल्ली साम्राज्यका कुछ अंश अधिकार किया। १४०२ ई०में महम्मदके प्राण-त्याग करने पर सैयद वंशने दिल्लीके चारों ओरके सामान्य प्रदेशोंमें १४४४ ई० तक राज्य किया। पीछे लोदी वंशने राज्याधिकार करके आगरा नगरमें राजधानी स्थापित की। १५२६ ई०में भारतवर्षके मुगल सम्राटोंके आदि पुरुष बाबरने बहुत थोड़ी शिक्षित सेनाको साथ ले भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया और लोदी वंशके अन्तिम राजा इब्राहिमलोदीको पानीपतकी लड़ाईमें परास्त कर दिल्लीको अधिकार किया। ये अपना अधिकांश समय आगरेमें ही बिताते थे। १५३० ई०में बाबरकी मृत्यु होने पर उनके लड़के हुमायुन् दिल्लीको आये और उन्होंने प्राचीन इन्द्रप्रस्थके अहातेमें पुराणकिल्ला नामक दुर्ग निर्माण तथा संस्कार किया। १५४० ई०में सेरशाहने हुमायुन्को भगा कर दिल्ली नगर प्राचीरसे घेर लिया। इनका बनाया हुआ लालदरवाजा नामका फाटक आज भी जेलखानेके सामने रास्तेके किनारे मौजूद है और इनके लड़के सलीमका बनाया हुआ सलीमगढ़ नामका दुर्ग आज भी देखनेमें आता है। १५५५ ई०में हुमायुनने पुनः दिल्ली अधिकार किया, किन्तु छह महीनेके अन्दर उनकी मृत्यु हो गई। इनका समाधिमन्दिर बहुत मनोहर है। उनके पूर्ववर्त्ती अकबर तथा जहाङ्गीर आगरे और लाहोर अथवा अजमेरमें रहते थे। सुतरां दिल्ली कुछ काल तक शोचनीय दशामें रही। पीछे सम्राट शाहजहान्के समयमें दिल्लीकी दशा कुछ पलट गई।

इन्होंने नगरको वर्त्तमान परिखा प्राचीरादिसे सुरक्षित किया और अपने नाम पर इसका नाम शाहजहानाबाद रखा। प्रसिद्ध जुमा-मस्जिद इन्हींको बनाई हुई है। इसके सिवा इन्हों ने यमुना नदीको पश्चिमी खाड़ी संस्कार की। औरङ्गजेबके समयमें दिल्लीकी खूब उन्नति हुई थी। इनका यशसौरभ दिङ्मण्डल परिपूरित कर यूरोप-खण्डमें भी विस्तृत हो गया था और इनकी राजसभाका अलौकिक वैभव तथा गौरव भ्रमणकारियोंके मुखसे और भी सौ गुना बढ़ कर उपन्यासकी नाईं दूर दूर देशोंमें जनसाधारणके भय विस्मय-कौतूहलसे उद्दीप्त कर्णोंमें गूंजता था।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद गृहविवादसे शीघ्र ही मुगल-साम्राज्यका पतन होने लगा। १७२६ ई०में महम्मद शाहके राजत्वकालमें महाराष्ट्र लोग दिल्लीके समीप आ पहुंचे। तीन वर्षके बाद नादिरशाहने अभिमानके साथ इस नगरमें प्रवेश किया। तैमुरकृत हत्याकाण्डका पुनः एक बार अभिनय हुआ। ५८ दिन दिल्लीमें रह कर उन्होंने धनी, दरिद्र सभीको लूटा। जब तक एक कौड़ी भी कहीं बच न रही, तब तक वे लूटते ही रहे। अन्तमें वे प्रायः ८ करोड़ रुपये और विख्यात मयूरका आसन ले कर स्वदेशको लौट गये। १७६० ई०में प्रायः छह मास तक दिल्लीमें घमसान युद्ध होनेके बाद राजधानी अधःपतनकी चरमसीमा तक पहुंच गई। इसी समय अहमद शाह दुराणीने दो बार दिल्ली पर आक्रमण किया और दुर्दान्त वर्गी सेनाने भी शहरको तहस नहस कर डाला। १७६० ई०में सम्राट् आलमगीर मारे गये। बाद शाहआलम नाम मात्रके सम्राट हुए सही, किन्तु उन्हें कुछ भी अधिकार न रहा। अफगान और महाराष्ट्रगण धीरे धीरे दिल्ली पर चढ़ाई करने लगे। अन्तमें १७७१ ई०को महाराष्ट्रोंने शाह आलमको दिल्लीमें स्थापित किया, किन्तु १७८८ ई०में उन्होंने दिल्लीका दुर्ग अधिकार कर लिया और सम्राट सिन्धियाके हाथ बन्दी हुए।

१८०३ ई०में लार्ड लेकने महाराष्ट्रोंको पराजित तथा दिल्ली अधिकार कर शाह आलमको मुक्त किया। दूसरे वर्ष होलकरने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, किन्तु रेसिडेण्ट अक्टरलोनीने कुछ सेनाके साथ नगरकी रक्षा की। अन्तमें लार्ड लेकने जा कर आक्रमणकारियोंको मार भगाया। इस विजित प्रदेशके प्रासाद छोड़ कर और सभी स्थान सम्राटके नामसे शासित होते थे।

इसके बाद पचास वर्षोंके अभ्यन्तर दिल्लीमें और कोई ऐतिहासिक घटना न हुई। पीछे १८५७ ई०में सिपाही-युद्धके समय दिल्लीमें पुनः एक बार पतनोन्मुख मुगलोंका आधिपत्य स्थापित हुआ। १०वीं मईके सन्ध्या समय मीरटके सिपाहीगण विद्रोही हो उठे और दूसरे दिन प्रातःकालमें यमुना नदी पार करनेकी चेष्टा करने लगे। यह सुन कर वहांकी रक्षित सैन्यके अधिनायक, कमिश्नर और कलक्टर साहबने लाहोरके फाटकके समीप पहुंचने पर विद्रोहियोंने उन्हें खण्ड खण्ड कर काट डाला। उस समय अधिकांश यूरोपीय कर्मचारी नगरमें रहते थे। घर घर हत्याकाण्ड और लूट चलने लगी। ८ घण्टोंके मध्य अस्त्रागार और दुर्ग छोड़ कर सभी शहर विद्रोहियोंके हाथ आ गये। यह संवाद शीघ्र ही नगरके बाहर सेनानिवासमें पहुंचने पर उसी समय वहांसे एक दल सेना विद्रोहियोंके विरुद्ध भेजी गई। किन्तु दिल्लीमें पहुंचनेके साथ ही वह सेना विद्रोहियोंके साथ मिल गई और सेनाविभागके प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको कतल करने लगी। लेफ्टिनेण्ट उइलोबीने आठ यूरोपियनकी सहायतासे विलक्षण साहसके साथ अस्त्रागारकी रक्षाके लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु अन्तमें हताश हो वे अस्त्रागारकी बारूदके ढेरमें आग लगा कर नौ-दो ग्यारह हो गए। क्षणमात्रमें बारूदके प्रज्वलित होनेसे बहुत भीषण शब्द करता हुआ अस्त्रागार उड़ गया। इसमें पाँच अङ्गरेज विनष्ट हुए और शेष चारने भाग कर अपनी प्राण रक्षा की। दुर्ग और सेनानिवासके सिपाही मीरटसे गोरा पलटन आनेकी आशङ्कासे निश्चिंत बैठे थे। सन्ध्याके समय वे भी विद्रोही हो गये और यूरोपीय स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध जिसको सामने पाते उसीको वध करने लगे। बहुत थोड़े यूरोपीय जो बच गये थे उनका भी भूख प्याससे प्राणान्त हुआ। उसी दिन संध्यासमयके बाद दिल्लीमें अंगरेजशासनके समस्त चिह्न एक बारगी विलुप्त हो गये।

इस तरह मुगल-साम्राज्यका पुनः एक बार अभ्युत्थान हुआ, किन्तु सम्राट् इस हठे।गत स्वाधीनताको अधिक दिन भोग न कर सके। १८५७ ई०की ८वीं जूनको अंगरेजी सेनाने बदली-का-सरायके युद्धमें विद्रोहियोंको अच्छी तरह परास्त किया। उसी दिन संध्या समय उन्होंने विद्रोहियोंके सेनानिवाससे भगा कर नगरके बाहर ऊंची भूमि पर छावनी डाली तीन मास अवरोध किये रहनेके बाद अंगरेजीसेनाने पुनः दिल्ली हस्तगत किया। सम्राट्‌ने भाग कर हुमायुन्‌के समाधिमन्दिरमें आश्रय लिया, किन्तु दूसरे दिन उन्होंने अङ्गरेजोंको आत्म-समर्पण किया। सामरिक-आईनसे उनका विचार किया गया। विद्रोहियोंको उत्तेजनाके अपराधमें उन्हें दोषी ठहरा कर चिरकालके लिए रङ्गून नगरको निर्वासित किया। वहां १८६२ ई०में उनकी मृत्यु हो गई और साथ ही साथ मुगल-सम्राट्‌का नाम भी जाता रहा।

दिल्ली पुनः अंगरेजोंके अधिकारमें आने पर कुछ काल तक वह सामरिक-विभागके शासनाधीन रहा। उस समय भी दिल्लीनिवासी सुयोग पा कर यूरोपीय सेनाओंकी हत्या करने लगे। इसके प्रतिकारके लिए उन्होंने अधिवासियोंको कुछ दिनोंके लिए दिल्लीसे निकाल बाहर किया। हिन्दू लोगोंको कुछ दिन बाद ही नगरमें प्रवेश करनेकी अनुमति मिली, किन्तु मुसलमान लोग १८५८ ई०को ११वीं जनवरी तक उसी हालतमें रहे। इस तारीखको दिल्ली नगर सामरिक शासनके विभागसे साधारण शासनविभागके अन्तर्गत किया गया। तभीसे दिल्लीमें एक प्रकारसे शान्ति विराजती है और दिनो दिन इसकी उन्नति हो रही है। १८७७ ई०को १ली जनवरीको महारानी भारतेश्वरीका घोषणापत्र पढ़नेके लिए इसी दिल्ली नगरमें दरबार लगा, जिसमें भारतवर्षके सभी प्रधान प्रधान राजगण उपस्थित थे। १९०३ ई०की १ली जनवरीको यहां एक भारी दरबार लगा जिसमें सप्तम एडवर्ड भारतवर्षके सम्राट् निर्वाचित किये गए थे।

१९११ ई०की १२वीं दिसम्बरको भारत सम्राट् पञ्चम जार्जके घोषणानुसार कोरोनेसन दरबारके दिन जबसे भारतकी राजधानी कलकत्तेसे दिल्ली उठ कर आई, तबसे यहांकी उन्नति दिनों दिन होती जा रही है। तारीख १५ दिसम्बरको सम्राट्‌ने स्वयं दो अभिषेक-पत्थर स्थापित किये थे और कहा था, "हमारी आन्तरिक इच्छा है, कि यहां जितने सरकारी-भवन बनाए जांय, उनकी गठन प्रणाली अति उत्तम हो, जिससे कि इस प्राचीन और मनोरम नगरका सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ जाय।" तदनुसार एक सभा स्थापित हुई और उसी सभासे पहले पहल नगरकी उत्तरीय तथा दक्षिणीय दिशा सुरक्षित की गई। ऐसा करनेसे दिल्लीमें जो बाढ़का भय सदासे चला आ रहा था, वह जाता रहा।

१९१२ ई०के दिसम्बर मासमें Sir Bradford Leslie ने लन्दनके Royal Society of Artsके भारतीय सेक्सनके सामने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें उन्होंने कहा था कि नई राजधानी दिल्लीके उत्तरीय भागमें बसाई जाय, ऐसा करनेसे जलकी भी विशेष सुविधा होगी, कारण यमुना नदी पास ही बहती है।

१९१३ ई०को फरवरीमें इस विषयमें एक सभा स्थापित हुई जिसमें यह निर्णीत हुआ कि दिल्लीके उत्तरीय भागकी अपेक्षा दक्षिणीय भाग विशेष स्वास्थ्यकर है। अतः दक्षिणीय भागमें ही राजधानीके सुप्रशस्त भवन बनाए जांय। अन्तमें ऐसा ही हुआ। उस भवनके पास ही राजप्रतिनिधि (Viceroy's Court)की अदालत भी बनाई गई। सरकारी अदालत भी उसी जगह है जो पूरबसे पश्चिमको चली गई है और जिसकी लम्बाई ११०० फुट तथा चौड़ाई ४०० फुट है। इसके उत्तरके अलंगमें प्रवेशद्वार और पश्चिमके अलंगमें एक बहुत लम्बा चौड़ा दालान है जिसमें समय समय पर सभा लगा करती है। नीचेकी प्रधान सतहमें कौंसिलके सदस्य, मन्त्री तथा दूसरे दूसरे कर्मचारी रहते हैं। इसके अलावा और जितने स्थान हैं वहां भिन्न भिन्न विभागके हाकिम लोग बैठ कर विचार कार्य करते हैं। अदालतके चारों ओर घने वृक्ष, जलाशय आदिके रहनेके कारण वहांकी शोभा और ही निराली है। वर्त्तमान कालमें Imperial Record-office, The Ethnological Museum, The

Medical research Institute, Library और War Museum इन चार सुरम्य भवनके बन जानेसे दिल्ली नगरका सौन्दर्य पहलेसे कहीं अधिक बढ़ गया है।

यहां गत यूरोपीय युद्धके स्मारकमें एक अन्यतम भवन बनाया जा रहा है जिसकी नींव १९२१ ई०की १० फरवरीको ड्यूक आफ कनाट (Duke of Connaught) से डाली गई है। यह भवन १६२ फुट लम्बा होगा। इसका सर्वांश सफेद पत्थरका और सतह लाल पत्थरको बनाई जा रही है। इसके ऊपरमें 'India' शब्द बड़े अक्षरोंमें खुदा हुआ है और उसके नीचे १९१४-१९१८ ई० अङ्कित है।

साधारण स्थलोंमें निम्नलिखित प्रधान हैं। दिल्ली इनष्टिटिउट—यह जन साधारणके चंदे तथा गवर्मेण्टकी सहायतासे बनाया गया है। इसमें दरबारहौल, यादूगार, पुस्तकागार, पाठागार, स्टेशन संक्रान्तघर, वक्तृता देनेका रङ्गमञ्च और नाचका घर आदि कई एक विभाग हैं। म्युनिसिपल-सभा और औनरेरी मजिष्ट्रेटकी बैठक उक्त दरबारहालमें लगती है। सरकारी सभी आफिस, जिला अदालत, कोषागार, तहसीली पुलिस आफिस, डिष्ट्रिक्ट जेल, पगलागारद, अस्पताल और दातव्य औषधालय हैं। सदाव्रतका घर जनसाधारणके चन्दे और म्यूनिसिपैलिटोकी सहायातासे चलता है। यहां ४ गिर्जा हैं। दिल्ली-कालेज १७९२ ई०में स्थापित हुआ है जो वहांके अधिवासियोंके चन्देसे परिचालित होता है। १८२८ ई०में लखनऊके नवाब फजलअली खाँने इस कालेजमें एकमुश्तसे १७००००) रु० दान दिये हैं। अभी दिल्लीमें बहुतसे छापेखाने भी हो गये हैं।

दिल्ली नगरमें इष्ट-इण्डिया, पञ्जाब और राजपूताना ष्टेट रेलवेकी स्टेशन है। ग्राण्ड ट्राङ्करोड और अन्यान्य बहुतसे सुन्दर राजपथ दिल्लीके चारों ओर प्रधान प्रधान स्थानोंको गये हैं। इसके सिवा यमुना हो कर भी नावें जाती आती हैं। सुतरां दिल्लीमें क्या जलपथ, क्या स्थलपथ, क्या रेलपथ सभी रास्तेसे वाणिज्यकी सुविधा है। आजकल यह शहर कलकत्ते बम्बई राजपूताने आदिके साथ विस्तीर्ण वाणिज्यका एक केन्द्रस्थल है। आमदनीमें नालको गोटी, रासायनिक औषध, रुई, रेशम, सूत, गेहूं, सरसों आदि तेलहन अनाज, घी, नमक, तरह तरहकी धातु, सींग, चमड़ा तथा विलायती कपड़ा प्रधान है। ये सब द्रव्य पुनः यहांसे दूसरी दूसरी जगह भेजे जाते हैं। इसके सिवा तमाकू, चीनी, तेल, सोने चांदीके तरह तरहके अलङ्कार और जरी आदि जो रफ्तनी होती है। सिन्द, काबुल, अलवार, बिकानेर, जयपुर और टोंआव तथा पञ्जाबके समस्त नगरोंमें दिल्लीके सौदागर वाणिज्य करनेको जाते हैं। बङ्गाल और दिल्ली-बैंक यूरोपीय मूलधनसे स्थापित हुए हैं। यहां कई सौदागरके बहुतसे एजेण्ट हैं। चाँदनीचक कारबारका प्रधान अड्डा है। शिल्पजातमें सोने चांदीके महीन तारोंके बनाये हुए पुष्पादि प्रधान हैं। किन्तु अभी विलायती द्रव्योंका अनुकरण बहुत प्रबल हो जानेसे उनका कल्पना-चातुर्य और सौन्दर्य बहुत कम गया है। मुगल-राजवंशका लोप होनेसे भी यह शिल्प उत्साहहीन हो गया है। पञ्जाबके मध्य दिल्ली नगरमें अच्छी मलमल तैयार होती है, इसके सिवा यहां उत्कृष्ट शाल तथा तरह तरहके कारुकार्यविशिष्ट मट्टीके बरतन प्रस्तुत होते हैं। चाँदनीचकमें मणि जवाहरात आदिके अनेक सौदागर रहते हैं। दिल्लीकी म्यूनिसिपैलिटी प्रथम-श्रेणीमें गिनी जाती है।

दिल्लीका प्रत्येक प्राचीन सौधमन्दिर तथा अन्यान्य स्थानोंका विवरण संक्षेपमें लिखनेसे भी एक प्रकाण्ड पुस्तक बन जाती, सुतरां यहां केवल प्रधान प्रधान स्थान और अन्यान्य कीर्त्ति कलापाकी सिर्फ नामकी एक तालिका दी जाती है। यथा—तुगलकाबाद, तुगलककी समाधि, हजार सतुन, आदिलाबाद, मन्दिरअल्ली, रोसन, चिराग, सुलतान बहलोल लोदीकी समाधि, सतपल्ला बाध, खिड़की मस्जिद, दरगाह, युसुफ कोटल, दरगाह शेख सलाउद्दीन, पांचबुर्ज, लाडूनसराय, लङ्गरखाँकी समाधि, बस्तिबाउडी, खिजिरका गुम्बज, बड़ पल्ला, खान खानानकी समाधि, नीलगुम्बज, हुमायुन्‌की समाधि और उसके मध्य कई एक कब्र, अरब कि सराय, दरवाजा मन्दि, ईसाखाँकी समाधि और मस्जिद, दरगाह निजामुद्दीन, खिजर खाँकी मस्जिद, दिल्लीके अन्तिम राजाओंकी समाधि, दरगाह अमीर खुसरू,

राजाखाँकी समाधि, चौसठ खंभा, लालमहल, सैयद आबिदकी समाधि, लाल बङ्गला, पुराणकिल्ला, खास-महल, नीलछत्रि, सिरमन्दिर, किल्लाकोणमस्जिद, काबुलका फाटक, फिरोजशाहका कोतला, अशोकका स्तम्भ, कुशाक-शिकार चौबुरजी, भूभूलिङ्ग, फिरोज-शाहकी कोतलाके दक्षिणको लिपियुक्त एक मस्जिद, पुराण किल्लाके निकट नगरतोरण और इसके निकटवर्ती लिपि-युक्त मस्जिद, कुतबमिनार, मस्जिद, कुतब-उल-इस-लाम, लौहस्तम्भ, असम्पूर्ण मिनार, वृहत् मिनार वा लाट, कुशाक सबुज, अलतमसको समाधि, अलाउद्दीन खिलजी-को समाधि, अलाई दरवाजा, इमाम जामिनको समाधि, महम्मद कुली खाँकी समाधि, राजन-का-वइन, मौलाना जमालकी समाधि और मस्जिद, गयास-उद्दीन बलवन-की समाधि, शामसी हौज और निकटस्थ मन्दिर, दरगाह कुतबुद्दीन, बख्तियारकी मस्जिद, मोती मस्जिद, आदम खाँकी समाधि, योगमाया, अनङ्गपालका लालकोट और अलाउद्दीनकृत उसका विस्तार किला, राय पिथोरा, हाजी बाबा रोसबीकी समाधि, सुलतान गोरीकी समाधि, हौज खास, फिरोजशाहकी कब्र, पहाड़के ऊपर सुलतान गोरी-की समाधिका भग्नावशेष, किस्तवायन, महीपालपुर, मालचा, बदि मञ्जिल वा विजयमन्दिर, मस्जिद बेगम-पुर, मठकी मस्जिद, तिरह्वीनजा, मुबारकपुरकी कोतला समाधि, बुर्ज, काला हजरत फतेशा, खैरपुरकी समाधि और मस्जिद, सिकन्दर लोदीको समाधि, यन्त्र-मन्त्र, कदमशरीफी, महल भूली भटियारी, मस्जिद सरहिन्द, निगमबोध घाट, दिल्ली दुर्गस्थ सौधमाला, जुमा मस्जिद, काला वा कलान मस्जिद, दरगाह शाह तुर्कमान, मस्जिद अकबरबादी, सोनाली मसजिद, जिनत्-उल् मसजिद, शरीफ-उद्दीलानी मसजिद, फतेपुरी मसजिद, पञ्जाबी कटरा मसजिद, फकर-उल मसजिद, गाजि उद्दीन्का मदरसा, सोनाली मसजिद कोतवाली, औक-पुर और सूर्यकुण्ड, सलीमगढ़ और दुर्गके मध्यवर्त्तीसेतु, जहाँपना, दिल्ली शिरसा, फिरोजाबाद, सिरि, किलो-खड़ी आदि।

दिल्लीवाल (हिं॰ वि॰) १ दिल्ली सम्बन्धी, दिल्लीका। २ दिल्लीका रहनेवाला। (पु॰) ३ एक प्रकारका देशी जूता जो दिल्लीमें तैयार होता है।

दिल्लेदार (फा॰ वि॰) जिसमें दिलहा या दिल्ला लगा हो।

दिव (सं॰ स्त्री॰) दीव्यन्त्यत्र दिव बाहु॰ आधारे डिव। १ स्वर्ग, सोना। २ आकाश। ३ दिन।

दिव (सं॰ क्ली॰) दीव्यन्त्यस्मिन, दिव घञ र्थे अधि-करणे क। १ स्वर्ग। २ आकाश। ३ दिन। ४ वन, जङ्गल।

दिवच्छस् (सं॰ त्रि॰) १ स्वर्गीय। (पु॰) २ इन्द्र।

दिवगृह (हिं॰ पु॰) देवगृह देखो।

दिवङ्गम (सं॰ त्रि॰) दिवं आकाशं स्वर्गं वा गच्छति दिव बाहु॰ खच् मुम्। १ आकाशगामी। २ स्वर्गगामी।

दिवन् (सं॰ पु॰) दीव्यत्यस्मिन्निति दिव कनिन्। (कनिन् यु वृषीति। उण् १।५६) दिन, रोज।

दिवराज (सं॰ पु॰) स्वर्गके राजा, इन्द्र।

दिवरानी (हिं॰ स्त्री॰) देवरानी देखो।

दिवस (सं॰ पु॰ क्ली॰) दीव्यत्यत्र दिव असच् किच्। (दिवः कित्। उण् ३।१२१) दिन, वासर, रोज।

दिवसकर (सं॰ पु॰) करोतीति कृ-अच्, दिवसस्य करः। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़।

दिवसकृत् (सं॰ पु॰) दिवसं करोति कृ-क्विप्, तुगा-गमः। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक।

दिवसनाथ (सं॰ पु॰) दिवसस्य नाथः। सूर्य।

दिवसभर्तृ (सं॰ पु॰) दिवसस्य भर्त्ता। सूर्य।

दिवसमुख (सं॰ क्ली॰) दिवसस्य मुखं। प्रभात, सवेरा।

दिवसमुद्रा (सं॰ स्त्री॰) एक दिनका वेतन, एक दिनकी मजदूरी।

दिवसविगम (सं॰ पु॰) दिवसस्य विगमः। दिवावसान, सन्ध्याकाल, शाम।

दिवसान्तर (सं॰ त्रि॰) अन्यत् दिवसं। अन्य दिन, दूसरा दिन।

दिवसेश्वर (सं॰ पु॰) दिवसस्य ईश्वरः। दिनके प्रभु सूर्य।

दिवस्पति (सं॰ पु॰) दिवः पति अलुक् समासः। त्रयो-दश मन्वन्तरइन्द्र, तेरहवें मन्वन्तरके इन्द्रका नाम।

दिवस्पुत्र (सं॰ पु॰) दिवः आकाशस्य पुत्रवत् प्रियः वा दिवः पुरु त्रायते त्रै क, पृषो॰ साधु। १ द्युलोक प्रिय। २ द्युलोकपालक, सूर्य।

दिवस्पृथिवी (सं० स्त्री) द्यौश्च पृथिवी च दिवो दिवसा-देशः। (दिवसश्च पृथिव्यां। पा ६।३।३०) स्वर्ग और भूमि।

दिवस्पृश् (सं० पु०) स्पृशति स्पृश-क्विन् दिवः स्पृक्, ६-तत्। १ पाद द्वारा स्वर्गस्पर्शी विष्णु। वामनावतारमें विष्णुने पैरसे स्वर्गको स्पर्श किया था।

दिवा (सं० पु०) १ दिन, दिवस। २ २२ अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें ७ भगण और १ गुरु होता है।

दिवाइ-युक्तप्रदेशके अन्तर्गत बुलन्दशहर जिलेका एक समृद्धिशाली नगर और वाणिज्य स्थान। यह अक्षा० २८° १२' उ० और देशा० ७८° १६' पू० बुलन्दशहरसे २६ मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १०५७८ है। कहा जाता है, कि सुन्धगढ़ नामक एक प्रधान राजपूतने राजधानीके उत्तर १०२८ ई०में यह नगर स्थापित किया। अभी अयोध्या और रोहिलखण्ड रेलपथ इसी नगर हो कर जानेसे इसकी दिनों दिन उन्नति हो रही है। यहांसे मोटे कपड़े, रुई, घी और अनाजकी रफ्‌तनी होती है। यहां एक ऐङ्गलो वर्नाक्यूलर और एक मिडिल-स्कूल है। प्रति सोमवारको एक बड़ी हाट लगती है।

दिवाकर (सं० पु०) दिवा दिनं करोतीति कृ-ट। (दिवाविभेति। पा ३।२।२१) १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, आक। ३ काक, कौआ। ४ पुष्पविशेष, एक तरहका फूल।

दिवाकर—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य हैं—

१ दिनकरके पुत्र, दानदिनकरके रचयिता।

२ वृत्तरत्नाकरके टीकाकार। मल्लिनाथने शिशुपाल-वधकी टीकामें उक्त टीका उद्धृत की है।

३ प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। किसी किसी ग्रन्थमें इनका दूसरा नाम 'दिनकर' बतलाया है। ये नृसिंहके पुत्र कृष्णदैवज्ञके पौत्र और दिवाकरके प्रपौत्र थे। इन्होंने तत्त्वचिन्तामणि नामक गणितज्योतिष, जातकपद्धति, जातकपद्धतिप्रकाश, पद्मजातक, केशवपद्धतिकी प्रौढ़मनोरमा नाम-टीका, मकरन्दवृन्दावन, रथोद्धता नामक वर्षगणितपद्धति, वर्षतन्त्र, श्रीपतिप्रकाश, गणितामृतसारणी, जातकपद्धति उदाहरण, रामविनोद-प्रकाशपद्धति, दिवाकरी और १६२७ ई०में गोपीराज-मतखण्डन नामक ज्योतिग्रन्थ प्रणयन किये।

४ एक प्रसिद्ध स्मार्त्त पण्डित। इनके पिताका नाम महादेवभट्ट और माताका नाम गङ्गा, पितामहका बालकृष्ण, प्रपितामहका महादेव और वृद्धप्रपितामहका नाम नारायण था। इनके केवल एक पुत्र था जिनका नाम था वैद्यनाथ।

इन्होंने १६८३ ई०में धर्मशास्त्र सुधानिधि नामक एक वृहत् स्मृतिनिबन्ध (आचारार्क, तिथ्यर्क आदि इसीके अन्तर्गत हैं), प्रायश्चित्तमुक्तावली और प्रायश्चित्तमुक्तावलीप्रकाश, मन्त्रमार्त्तण्ड, श्राद्धचन्द्रिका और १६८४ ई०में वृत्तरत्नाकरादर्शकी रचना की।

५ महादेवभट्टके पुत्र और रामेश्वरभट्टके पौत्र। इनका उपनाम 'काल' था। ये पूर्वोक्त दिवाकरकी माता गङ्गाके पितामह थे। इन्होंने दानचन्द्रिका और स्मार्त्त प्रायश्चित्त-की रचना की। ६ पद्यावलीधृत एक विख्यात कवि।

दिवाकरदत्त—सूक्तिकर्णामृतधृत एक संस्कृत कवि।

दिवाकरवत्स—कल्याणमालास्तोत्र एवं विवेकध्यान नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। शेषोक्त ग्रन्थ अभिनवगुप्तकी ईश्वर-प्रत्यभिज्ञासूत्रविमर्शिनीवृत्तिमें उद्धृत हुआ है।

दिवाकरसुत (सं० पु०) दिवाकरस्य सुतः। सूर्यपुत्र शनि, यम, कर्ण, सुग्रीव। स्त्रियां टाप्। यमुना, तापी।

दिवाकीर्त्ति (सं० पु०) दिवा दिवसे एव कीर्त्तिर्यस्य, रात्रौ चौरकर्मनिषेधात्। १ नापित, नाई। २ चाण्डाल। प्राचीन कालमें नाइयोंको केवल दिनके समय ही नगर आदिमें घूमनेका अधिकार था। नाई और चाण्डाल आदिको स्पर्श करनेसे स्नान आदि कर लेना चाहिये। दिवा अकीर्त्तिर्यस्य। ३ उलूक, उल्लू। दिनमें इसका नाम लेनेसे भक्षद्रव्य तीता हो जाता है, ऐसा प्रवाद है। इसीसे दिनमें इसका नाम नहीं लेना चाहिये।

दिवाकीर्त्य (सं० क्ली०) दिवा दिवसे कीर्त्यं कीर्त्तनीयं। वर्षसाध्य गवामयनयज्ञमें विषुवसंक्रान्तिके दिन गो सामभेद, वह सामगान जो साल भरमें होनेवाले गवामयनयज्ञमें विषुव संक्रान्तिके दिन गाया जाता है।

दिवाचर (सं० पु०) दिवा चरतीति चर-ट। १ पक्षी, चिड़ियां। २ चाण्डाल।

दिवाचारी ( सं० त्रि० ) दिवा चरति चर-णिनि। दिवस-सञ्चारी भूत, दिनमें चलनेवाला।

दिवातर ( सं० क्ली० ) अतिशयेन दिवा प्रकाशकं तरप्। अत्यन्त प्रकाशक दिवा, बहुत उजला दिन।

दिवानिशाम् (सं० स्त्री०) दिवस और रात्रि, दिन रात।

दिवानी ( हिं० स्त्री० ) १ बरमेमें होनेवाला एक प्रकार-का पेड़। इसकी लकड़ी लाल होती है और इस पर भूरी तथा नारङ्गी रंगकी धारियां पड़ी रहती हैं। दीवानी देखो।

दिवान्ध ( सं० पु० स्त्री० ) दिवा दिवसे अन्धः। १ पेचक, उल्लू। २ दिवसान्ध प्राणिमात्र, वह जिसे दिनमें न सूझता हो, दिनौंधीका रोग। (स्त्री०) ३ चमगुला पक्षी। ( त्रि० ) ४ जिसे दिनमें न सूझे।

दिवान्धकी (सं० स्त्री०) दिवान्ध स्वार्थे-क गौरा० ङीष्। कुछुन्दरी, छुछुंदर।

दिवापुष्ट ( सं० पु० ) सूर्य, दिनकर।

दिवाप्रदीप ( सं० पु० ) कुत्सित मनुष्य, खराब आदमी।

दिवाभिसारिका ( सं० स्त्री० ) वह नायिका जो दिनमें अपने प्रेमीसे मिलनेके लिए शृङ्गार करके किसी निर्दिष्ट स्थानमें जाय।

दिवाभीत (सं० पु० स्त्री०) दिवा दिवसे भीतः। १ पेचक, उल्लू। ( पु० ) २ कुमुदाकर, सफेद कमल। ३ चोर, चोर।

दिवाभीति ( सं० स्त्री० ) दिवा दिवसे भीतिर्भयं यस्य। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ दिवस भीतियुक्त, जो दिनमें बाहर निकलनेसे डरता हो।

दिवामणि (सं० पु०) दिवा दिवसस्य मणिरिव। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, आक।

दिवामध्य ( सं० क्ली० ) दिवा दिवसस्य मध्यं। मध्याह्न, दोपहर।

दिवावसान ( सं० क्ली० ) दिनका शेष भाग, सन्ध्या, शाम।

दिवाल ( हिं० वि० ) देनेवाला।

दिवाला (हिं० पु०) पूंजी वा आय न रह जानेके कारण ऋण परिशोधमें असमर्थता, कर्ज न चुका सकना, टाट उलटना। जब व्यापारीको अपने व्यापारमें घाटा आता है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस ऋणके परिशोध करनेमें अपनी असमर्थता जाहिर करता है, तब उसका दिवाला होना मान लिया जाता है। पूर्व समयमें ऐसी हालत हो जाने पर ऋणी व्यापारी अपनी दूकानका टाट उलटा कर उस पर एक चौमुखा दीया जला देते थे। ऐसे करनेसे लोग समझ जाते थे, कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और इनका दिवाला हो गया। इसी दीया बालने या जलाने से "दिवाला" शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आजकल दिवालेके विषयमें कुछ कानून बन गये हैं। इस समय ऋणी व्यापारी किसी निश्चित न्यायालयमें जा कर दिवालेकी दर्खास्त देता है कि मुझे बाजारका कितना देना है और इस समय कितना धन या सम्पत्ति मेरे पास बच गई है, बाद न्यायालयकी तरफसे एक योग्य आदमी नियुक्त हो कर उसकी बची हुई सारी सम्पत्ति नीलाम कर देते हैं और उस रकमसे उसका सम्पूर्ण लहना वसूल करके हिस्सेके अनुसार उसका सारा कर्ज चुका देते हैं। इसमें ऋणीको ऋणके लिए जेल जानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। २ किसी पदार्थका बिलकुल न रह जाना।

दिवालिया ( हिं० वि० ) जिसने दिवाला निकाला हो।

दिवाली ( हिं० स्त्री० ) १ दीवाली देखो। ( पु० ) २ खराद या सानमें लपेटनेका एक तस्मा, जो उसे खींचनेके काममें आता है, दयाली।

दिवावसु ( सं० पु० ) दिवा वसुः किरणो यस्य। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मदार। दीव्यति दिव क्विप् द्यौः आवसुः हविरस्य वा दिवमावसति वस-उन्। ३ दीप्त-हविष्क। ४ द्युलोकवासी इन्द्र।

दिवाशय ( सं० पु० ) दिवा दिवसे शेते शी-अच्। १ दिवास्वापयुक्त, वह जो दिनमें सोता हो। २ दिनमें अप्रकाशयुक्त, अन्धेरा दिन।

दिवासञ्चर (सं० त्रि०) दिवा दिवसे सञ्चरति सम्-चर-ट। दिवसचारी प्राणिभेद, दिनमें चलनेवाला जानवर। इसका पर्याय—श्यामा, श्येन, शशघ्न, वञ्जुल, शिखी, श्री-कर्ण, चक्रवाक, चाष, भण्डीरक, खञ्जरीट, शुक, ध्वांक्ष, त्रिविध कपोत, भारद्वाज, कुलाल, कुक्कुर, खर, हारीत,

श्‍येन, कपि, फेरण्ड, पूर्णकूट और चटक हैं। ये सब दिवाचर हैं।

दिवास्वप्न (सं० पु०) दिवा दिवसे स्वप्नः। दिवानिद्रा, दिनको सोना। भावप्रकाशके मतानुसार दिनमें सोना नहीं चाहिये, सोनेसे शरीरमें कफकी वृद्धि होती है। किन्तु ग्रीष्मकालमें यदि दिनको सोवे, तो कोई दोष नहीं। ग्रीष्मकालके सिवा और ऋतुओंमें दिवानिद्रा निषिद्ध है। जिनका प्रति दिन दिवानिद्राका अभ्यास है, वे यदि दिवानिद्राका परित्याग करें, तो उनके वायु, पित्त और कफ ये तीनों दोष बिगड़ जाते हैं। जो मनुष्य व्यायाम वा स्त्रीप्रसङ्ग द्वारा अथवा पथपर्यटनसे क्लान्त हो जाते हैं तथा जो अतिसार, शूल, श्वास, पिपासा, हिक्का, वायुरोग, मदात्यय और अजीर्ण इन सब रोगोंसे आक्रान्त हों अथवा क्षीणदेह, क्षीणकफ, शिशु और वृद्ध हो एवं जो रातमें जगे हों, उनके लिये दिवानिद्रा हितकर है। जिन्हें दिवानिद्रा और रात्रिजागरणका अभ्यास हो, उन्हें दिवानिद्रा और रात्रिजागरणमें कोई दोष नहीं होता। (भावप्र० निद्रा देखो।)

दिवानिद्रा कामज व्यसनमें गिनी जाती है।

"मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशकोगणः॥" (मनु)

दिवास्वाप (सं० पु०) दिवा दिवसे स्वापः ७ तत्। दिवा निद्रा, दिनमें सोना।

दिवास्वापा (सं० स्त्री०) वलगुला पक्षी, वग्गुला।

दिवि (सं० पु०) दीव्यतीति दिव्य क्रीड़ायां दिव-इन् स च कित्। (इगुपधात् कित्। उण् ४।११८) चाषपक्षी, नीलकण्ठ।

दिविक्षय (सं० त्रि०) स्वर्गवासी।

दिविचित् (सं० त्रि०) दिवि चयति चि-क्विप् तुकागम, अलुक् समासश्च। स्वर्गवासी, स्वर्गमें रहनेवाला।

दिविगत (सं० त्रि०) दिवि गतः अलुक् समासः। स्वर्गगत, जो स्वर्गको गया हो।

दिविचर (सं० त्रि०) दिवि आकाशे चरतीति चर-ट। आकाशचारी, आकाशमें घूमनेवाला।

दिविचारी (सं० त्रि०) दिवि चरति चर-णिनि। आकाशचारी।

दिविज (सं० पु०) दिवि जायते जन-ड अलुक् समासः। १ द्युलोकजात, वह जो स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हो। २ कुङ्कुमागुरुचन्दन, केशरयुक्त अगरचंदन।

दिविजात (सं० त्रि०) दिवि जातः अलुक् समासः। स्वर्गजात, जो स्वर्गमें पैदा हुआ हो।

दिविता (सं० स्त्री०) दीप बाहु० इतच् पृषो० साधुः। दीप्ति।

दिवित्मत् (सं० त्रि०) दीप्तिमत् पृषोदरादित्वात् साधुः। दीप्तियुक्त, प्रकाशमान्।

दिविदिवि (हिं० पु०) धारवाड़, कनाड़ा बीजापुर, खानदेश आदि नगरोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका छोटा पेड़। यह दक्षिण अमेरिकासे भारतवर्षमें आया है। इसकी पत्तियां चमड़ा सिझाने और रंगनेके काममें आती हैं।

दिवियज् (सं० पु०) दिवि द्युलोके स्थितान् इन्द्रादीन् यजति यज-क्विप्, अलुक् समासः। द्युलोकस्थित देवयाजी, वह जो स्वर्गलोकमें रह कर देवताओंका याग करे।

दिवियोनि (सं० त्रि०) स्वर्गजन्मा, जो स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हो।

दिविरथ (सं० पु०) १ पुरुवंशी राजा भूमन्युके एक पुत्रका नाम। इनका उल्लेख महाभारतमें आया है। २ हरिवंशके अनुसार अङ्गदेशके अधिपति दधिवाहनके एक पुत्रका नाम।

दिविश्रित् (सं० त्रि०) स्वर्गमें वास करनेवाला।

दिविषद् (सं० पु०) दिवि सीदतीति सद-क्विप्, सप्तम्या अलुक् षत्वञ्च। १ देवता। २ स्वर्गवासी।

दिविष्टम्भ (सं० त्रि०) स्वर्गमें स्थापनीय, स्वर्गमें रहने योग्य।

दिविष्टि (सं० क्ली०) याग, यज्ञ।

दिविष्ठ (सं० त्रि०) दिवि स्वर्गे तिष्ठति स्था-क-अलुक् समासः ततो षत्वं। १ स्वर्गस्थ, स्वर्गमें रहनेवाला। २ अन्तरीक्षस्थित। ईशानकोणके एक देशका नाम जिसका विवरण वृहत्संहितामें आया है।

दिविसद्—दिविषद् देखो।

दिविस्पृश् (सं० त्रि०) दिवि स्पृशति क्विन्, न षत्वं। द्युलोकस्पर्शी, जो स्वर्गलोकको स्पर्श करते हैं।

दिवी ( सं० स्त्री० ) दिव बाहु० ई। उपजिह्विका कीट, एक प्रकारका कीड़ा।

दिवेदिवे ( अव्य ) दिव बाहुलकात् द्वित्वञ्च। दिनों दिन।

दिवेश ( सं० पु० ) दिग्पाल।

दिवोकस् ( सं० पु० ) द्यौः स्वर्गः आकाशो वा ओको यस्य। १ देवता। २ चातक पक्षी, चकवा। ( त्रि० ) ३ आकाशवासी।

दिवोजा (सं० त्रि०) दिवो जायते जन-ड, बाहु० अलुक समासः। जो स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ हो।

दिवोदास ( सं० पु० ) दिवः स्वर्गात् दासो दानं यस्मै। १ वध्र्यश्वके एक पुत्रका नाम। ब्रह्मर्षि इन्द्रसेनाके वध्र्यश्व नामक एक पराक्रमशाली पुत्र हुए। इन्हीं वध्र्यश्वसे मेनकाके गर्भसे दो यमज सन्तान उत्पन्न हुई जिनमेंसे एक पुत्र और दूसरी कन्या थी। पुत्रका नाम राजर्षि दिवोदास और कन्याका नाम यशस्विनी अहल्या रखा गया। दिवोदासके महर्षि मित्रयु नामक एक पुत्र थे। ( हरिवंश ३२ अ० ) २ मनुवंशीय रिपुञ्जय नामक एक राजा। इन्होंने काशीमें कठोर तपस्या की। ब्रह्माने तपस्यासे संतुष्ट हो कर वर दिया, "रिपुञ्जय ! तुम इस पृथ्वीका पालन करो, नागराज अपनी अनङ्गमोहिनी नामकी कन्या प्रदान करते हैं, यही तुम्हारी स्त्री होगी। देवता लोग स्वर्गसे तुम्हें पुष्प और रत्न देंगे, इसी कारण तुम्हारा नाम दिवोदास पड़ेगा। मेरे वरसे तुम अत्यन्त बलशाली होगे।" लोकपितामह ब्रह्मा इस तरहका वर देकर स्वस्थानको चले गये और दिवोदास भी काशीमें रह कर अच्छी तरह प्रजापालन करने लगे। काशी देखो।

दिवोदास चन्द्रवंशीय भीमरथके पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम सुदास और प्रतर्दन था। ये इन्द्रके उपासक थे। इन्द्रने शम्बर असुरको १०० पुरियोंमेंसे ९९ पुरियां नष्ट करके बाकी एक पुरी इन्हींको दी थी। ये काशीके राजा थे। महाभारतके मतसे इनके पिताका नाम सुदेव था। पिताके मरने पर ये ही राजा बन बैठे। इनके पितृशत्रु, वीतहव्यके पुत्रोंने इन्हें युद्धमें परास्त किया। पीछे इन्होंने भरद्वाज मुनिका आश्रय लिया। मुनिने इनके लिए एक यज्ञ किया जिसके प्रभावसे इनके प्रदर्शन नामक एक वीर पुत्र पैदा हुआ जिसने वीतहव्यके पुत्रोंको युद्धमें मार डाला। महादेवने इन्हींसे काशी ली थी। (भारत अनुशासन ३० अ०) ३ दिवोदासप्रकाश नामक धर्मशास्त्रके प्रणेता। निर्णयसिन्धु और श्राद्धमयूखमें यह ग्रन्थ उद्धृत हुआ है। ४ चिकित्सादर्पणकार। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण और सुश्रुतमें इस ग्रन्थका उल्लेख है।

दिवोदुह् ( सं० त्रि० ) दिवोधुक, स्वर्गसे दूधका गिरना।

दिवोद्भव ( सं० त्रि० ) दिवे स्वर्गे उद्भवति उद्-भू-अच्। १ स्वर्गजात, जो स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हो। ( स्त्री० ) दिवि वने उद्भवो यस्याः। २ एला, इलायची।

दिवोरुच् (सं० त्रि०) आकाशमें दीप्तिशील, जो आकाशमें चमकता हो।

दिवोल्का (सं० स्त्री०) दिवा जाता उल्का। वह उल्का या चमकीला पिण्ड जो दिनके समय आकाशसे गिरता हो।

दिवौकस् ( सं० पु० ) दिवं स्वर्गं आकाशो वा ओकोऽवस्थानं यस्य। १ देवता। २ चातकपक्षी। ( त्रि० ) ३ स्वर्गवासी, स्वर्गमें रहनेवाला।

दिवौकस ( सं० पु० ) ओकस् शब्दो अदन्तोऽप्यस्ति दिवं ओकमोऽस्य। देवता।

दिव्य (सं० त्रि०) दिवि भवः यत्। १ स्वर्गभव, स्वर्गसे सम्बन्ध रखनेवाला। २ आकाशभव, आकाशसे संबन्ध रखनेवाला। ३ प्रकाशमान, चमकीला। ४ अत्यन्त सुन्दर, बहुत बढ़िया। ( पु० ) ५ यम। ६ गुग्गुलु, गुग्गुल। ७ तान्त्रिक आचारविशेष, तान्त्रिकोंका आचार जिसे दिव्यभाव कहते हैं। सब तान्त्रिककार्य तीन भावोंके होते हैं, दिव्य, पशु और वीरभाव। सत्य और त्रेताके प्रथमार्द्ध तक दिव्य हैं; वीरभावमें तान्त्रिककार्य करनेकी विधि निर्दिष्ट है। पञ्चमकार साधन, श्मशानसाधन और चितासाधन दिव्य तथा वीरभावानुसार होते हैं। ये सब आचरण पशुभावमें नहीं करना चाहिये। तन्त्र देखो। ८ उत्पातभेद, आकाशमें होनेवाला एक प्रकारका उत्पात। ९ नायकभेद, वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो। यह नायक दिव्य और अदिव्यके भेदसे कई प्रकारका है। इनमेंसे इन्द्रादि दिव्यनायक, इन्द्राणी आदि दिव्या

नायिका, माधव आदि अदिव्य नायक, मालती आदि अदिव्या नायिका है। (रसमंजरी) १० लवङ्ग, लौंग। (क्लो०) ११ हरिचन्दन। १२ गङ्गाजलादि स्पर्शपूर्वक शपथभेद। गङ्गाजल छू कर जो झूठ बोलता है, वह जब तक ब्रह्माकी सृष्टि लोप नहीं होगी, तब तक नरक में वास करता है। गङ्गाजल स्पर्श कर शपथ नहीं खाना चाहिये। यदि कोई गङ्गाजल स्पर्श करा कर शपथ खाने कहे, तो दोनों हो नरकगामी होते हैं।

गङ्गोदक, ताम्र, गोमय और गोरजस्पर्श कर यदि कोई सत्य वा असत्य शपथ करे, तो करने और करानेवाले दोनों हो नरकभोगी होते हैं। (गायत्रीतन्त्र ५ प०) १३ व्यवहारभेद, न्यायालयमें प्राचीन कालकी एक प्रकारकी परीक्षा जिससे किसी मनुष्यका अपराधी या निरपराधी होना सिद्ध होता था। जब वादी और प्रतिवादीका लौकिक तथा लेख्य प्रमाणादि नहीं रहते थे, तब तुला आदिके द्वारा विधानानुसार परीक्षा ली जाती थी। बृहस्पतिके मतानुसार ये परीक्षायें नौ प्रकारकी हैं,—

घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तण्डुल, तप्तमाषक, फल और धर्मज। इनमें तुला या घट, अग्नि, जल, विष और कोष ये पांच परीक्षाएँ कठिन अपराधोंके लिये; तण्डुल चोरीके लिये, तप्तमाषक बड़ी भारी चोरीके लिये और फल तथा धर्मज साधारण अपराधोंके लिये हैं। यह दिव्य ब्राह्मणादि वर्णभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारका है। ब्राह्मणकी परीक्षा घटविधि या तुलासे, क्षत्रियकी अग्निसे, वैश्यकी जलसे और शूद्रकी विषसे परीक्षा लेनी चाहिये।

बालक, वृद्ध, आतुर और स्त्री इन लोगोंकी परीक्षा तुलाविधिसे ही होनी चाहिये। विष्णुसंहितामें लिखा है, कि स्त्रियोंकी विषपरीक्षा, श्लेष्मरोगी और श्वासकास रोगीकी जलपरीक्षा, कोढ़ियोंकी अग्निपरीक्षा और शराबियों, लंपटों, जुआरियों, धूर्त्तों तथा नास्तिकोंकी कोषपरीक्षा कदापि न होनी चाहिये।

धर्मज और घटधारण परीक्षा सब ऋतुओंमें हो सकती है। वर्षा, हेमन्त और शिशिरकालमें अग्निकी, ग्रीष्ममें जलकी, और शीतकालमें विषकी परीक्षा करनेका नियम है। शीतकालमें जल, ग्रीष्मकालमें अग्नि, वर्षाकालमें विष और प्रभातके समय तुलाकी परीक्षा नहीं होनी चाहिये। अग्नि, घट और कोष-परीक्षा सवेरे, जल-परीक्षा दोपहरको और विषपरीक्षा रातको होनी चाहिये। बृहस्पति जिस समय सिंहस्थ या मकरस्थ हो अथवा भृगु अस्त हो उस समय कोई परीक्षा नहीं करनी चाहिये। मलमासमें और अष्टमी तथा चतुर्दशीको भी परीक्षा नहीं होनी चाहिये। दिव्य या परीक्षाके दिनसे एक दिन पहले परीक्षा देने और लेनेवाले दोनोंको उपवास करनेका नियम है। कुछ विशिष्ट नियमोंके अनुसार राजसभामें एकत्रित मनुष्योंके सामने परीक्षा होनी चाहिये। किसीका मत है, कि इसके अलावा 'तुलसी' नामका एक और प्रकारका दिव्य भी है, पर इसके विषयमें कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुलापरीक्षामें अभियुक्त एक बड़े तराजू पर बैठता और दो बार अदल बदल कर तौला जाता था। यदि वह दूसरी बारकी तौलमें बढ़ जाता, तो निरपराध और बराबर उतर जाता वा घट जाता तो दोषी समझा जाता था। अग्निपरीक्षामें तप्त लोहेका अञ्जलीमें ले कर सात मण्डलोंके भीतर धीरे धीरे चलना पड़ता था। बिना हाथ जले यदि वह काम हो जाता, तो चोर निर्दोष समझा जाता था। जलपरीक्षामें अभियुक्त जलमें गोता लगाता था। गोता लगाते समय तीन बाण छोड़े जाते थे। जब अभियुक्त जलमें डूबता, ठीक उस समय तीसरा बाण चलाया जाता था। जिस वक्त बाण छूटता था, उसी वक्त एक आदमी बहुत तेजीसे जहां बाण गिरता उसी स्थान पर पहुंच जाता था और एक दूसरा आदमी उस बाणको लेकर उस स्थान पर बहुत वेगसे दौड़ कर आता था जहांसे बाण छूटा था। इतने समय तक यदि अभियुक्त जलमें ही रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विषपरीक्षामें अभियुक्तको विष अधिक खिलाया जाता था। विष पच जाने पर अभियुक्त निर्दोष ठहराया जाता था। कोषपरीक्षामें अभियुक्तको किसी देवताके स्नानका तीन अंजलि जल पीनेके लिये दिया जाता था। एक पक्षके अभ्यन्तर उक्त देवताके क्रोधसे यदि अभियुक्त किसी घोर दुःखमें न पड़ता, तो वह सच्चा माना जाता था।

इसी प्रकारके और भी दिव्य थे। १४ तत्त्ववेत्ता। (स्त्री०) १५ आमलकी, आंवला। १६ वन्ध्याककोंटकी, बांझ ककोड़ा। १७ शतावरी, शतावर। १८ महामेदा। १९ ब्राह्मी। २० श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। २१ हरीतकी, हड़। २२ मुरा, सुरा। २३ गन्धवती। (पु०) २४ स्थूलजीरक, बड़ा जीरा। (क्ली०) २५ देवदिन। २६ देवदिनका परिमाण। २७ द्युलोकजात, वह जो स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हो। २८ शूकर, सूअर। २९ कपूरकचरी। ३० यव, जौ। ३१ वह स्नान जो धूपमें बरसते हुए पानीसे किया जाय।

दिव्यक (सं॰ पु०) १ सर्पभेद, एक प्रकारका सांप। २ जन्तुभेद, एक प्रकारका जन्तु।

दिव्यकट (सं० क्ली०) प्रतीचीस्थ पुरभेद, प्राचीन कालका एक देश। इसका उल्लेख महाभारतमें है। यह पश्चिम दिशामें अवस्थित था।

दिव्यकवच (सं० पु०) १ देवताओंका दिया हुआ कवच। २ स्तोत्रविशेष, एक प्रकारका स्तोत्र जिसका पाठ करनेसे अंग-रक्षा हो।

दिव्यकुण्ड (सं० क्ली०) दिव्यं पुण्यप्रदत्वात् अत्युत्कृष्टं कुण्डं। कामरूपमें चोभकशैलके पूर्व भागकी एक पुष्करिणीका नाम। कामरूपमें दुर्जय पर्वतके दक्षिण-पूर्व-कोणमें वरासन नामका एक नगर है। इसीके दक्षिणमें चोभकशैल अवस्थित है। पहाड़ पर लाल पत्थर के ऊपर स्वयं देवी विराजती है और इसी पहाड़की उपत्यकाभूमिमें दिव्यकुण्ड है जिसमें स्नान कर देवीकी पूजा करनी पड़ती है। जो सौभाग्यशाली मनुष्य दिव्य कुण्डमें स्नान कर पद्मपुष्करिणी देवीका पूजन करते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। (कालिकापु० ८१ अ०)

दिव्यक्रिया (सं० स्त्री०) दिव्यके द्वारा परीक्षा लेनेकी क्रिया।

दिव्यगन्ध (सं० पु०) दिव्य गन्धः यस्य। १ गन्धक। दिव्यः गन्धः। २ मनोहर गन्ध, जिसकी गन्ध अच्छी हो। (क्ली०) ३ लवङ्ग, लौंग।

दिव्यगन्धा (सं० स्त्री०) दिव्यः गन्धो यस्याः। १ स्थूलैला, बड़ी इलायची। २ महापत्रशाक, बड़ी चेंचका साग।

दिव्यगाय (सं० पु०) दिव्यः स्वर्गीयः गायनः। स्वर्गगायक, गन्धर्व।

दिव्यचक्षु (सं० त्रि०) दिव्यं अलौकिकं चक्षुर्यस्य। १ ज्ञानचक्षु। गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है, 'हे अर्जुन। तुम इस चर्मचक्षुद्वारा हमारे ऐश्वरिक रूपको नहीं देख सकते हो। हम तुम्हें दिव्यचक्षु देते हैं, जिससे तुम हमारे ऐश्वरिकरूप घोर प्रभावको अच्छी तरह देख सकोगे।' दिव्यं स्वर्गीयं मनोज्ञं वा चक्षुः। २ स्वर्गीयचक्षु। ३ सुन्दर लोचन, अच्छी आंख। ४ उपचक्षु, चश्मा। ५ मर्कट, बन्दर। ६ सुगन्ध भेद, एक प्रकारका गन्धद्रव्य। (त्रि०) दिव्ये आकाश-भूते चक्षुषी यस्य। ७ अन्धा, जिसे कुछ भी दिखाई न दे।

दिव्यचन्दन (सं० क्ली०) हरिचन्दन।

दिव्यता (सं० स्त्री०) १ देवभाव। २ दिव्यका भाव। ३ उत्तमता, सुन्दरता।

दिव्यतुम्बी (सं० स्त्री०) अलाबूभेद, एक प्रकारका कद्दू।

दिव्यतेजस् (सं० स्त्री०) दिव्यं तेजो यस्याः। ब्राह्मी शाक। इसके सेवन करनेसे स्वर्गीय लोगोंके जैसा तेज हो जाता है, इसीसे इसका नाम दिव्यतेजस् पड़ा।

दिव्यदर्शी (सं० त्रि०) दिव्यं अलौकिकपदार्थं पश्यति दृश-णिनि। अतीन्द्रिय पदार्थदर्शक।

दिव्यदृश् (सं० त्रि०) दिव्यं पश्यति दृश-क्विप्। दिव्य-पदार्थ देखनेवाला।

दिव्यदेवी (सं० स्त्री०) पुराणके अनुसार एक देवीका नाम।

दिव्यदोहद (सं० क्ली०) दिव्यं स्वर्गीयं दोहदं अभिलाषो यत्र। उपयाचित, वह पदार्थ जो किसी अभीष्टकी सिद्धिके अभिप्रायसे किसी देवताको अर्पित किया जाय।

दिव्यदृष्टि (सं० स्त्री०) दिव्यचक्षु देखो।

दिव्यधर्मी (सं० पु०) सुशील, नेक, अच्छा।

दिव्यनगर (सं० पु०) ऐरावती नगरी।

दिव्यनदी (सं० स्त्री०) दिव्या नदी। आकाशगङ्गा।

दिव्यनारी (सं० स्त्री०) दिव्य स्त्री, अप्सरा।

दिव्यपञ्चामृत (सं० क्ली०) पञ्चानां अमृतानां तत्तुल्यस्वादु-गुणाढ्यद्रव्याणां समाहारः। पञ्चामृत; यह दही, दूध, घी, चीनी, और मधु इन पाँच चीजोंको मिला कर बनाया जाता है।

दिव्यपुष्प (सं० पु०) दिव्यं मनोज्ञं पुष्पं यस्य।

१ करवीर, कनेर। (क्लो०) २ मनोहर पुष्प, सुन्दर फूल।

दिव्यपुष्पा (सं० स्त्री०) दिव्यानि पुष्पानि यस्याः। महाद्रोणा, बड़ा गूमा। इसका पेड़ मनुष्यके बराबर ऊँचा और फूल लाल होता है।

दिव्यपुष्पिका (सं०, स्त्री०) दिव्यपुष्प संज्ञायां कन्-टाप् । अतइत्वं। लोहितवर्ण अर्कवृक्ष, लाल रंगका मदार या आक।

दिव्यप्रश्न (सं० पु०) दिव्य- प्रश्नः। अनागतज्ञापक प्रश्न।

दिव्यमान (सं० क्लो०) दिव्यं मानं। दैवमान।

दिव्ययमुना (सं० स्त्री०) दिव्या यमुना तत्तुल्यफल-प्रदत्वात्। नदीविशेष। यह कामरूपमें दमनिका नदीके पूर्वमें अवस्थित है। दमनिका नदके पूर्वोत्तर कोणमें यमुनाके समान फलदायिनी दिव्ययमुना नामक। एक बड़ी नदी है जो दक्षिण पर्वतसे निकल कर दक्षिण समुद्रमें जा गिरी है। जो इस नदीमें एक मास तक स्नान करता है, उसे मुक्ति और तरह तरहके सुख सौभाग्य प्राप्त होते हैं। विशेष कर कार्तिक महीनेमें इस नदीमें स्नान करनेसे मोक्ष मिलता है। (कालिकापु० ७९ अ०) कामरूप देखो।

दिव्यरत्न (सं० क्लो०) दिव्यं चिन्तामात्रं तदर्थप्रदायक-त्वात् अलौकिकं रत्नं। चिन्तामणि। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि वह सब कामनाएँ पूरी करता है।

दिव्यरथ (सं० पु०) दिव्यः स्वर्गीयः अन्तरीक्षं वा रथः। व्योमयान, देवताओंका विमान।

दिव्यरस (सं० पु०) दिव्यः रसः नित्य कर्मधा०। १ पारद, पारा। २ मनोज्ञ रस (त्रि०) दिव्यः रसः यस्य ३ मधुररसयुक्त, जिसका रस मीठा हो।

दिव्यलता (सं० स्त्री०) दिव्यवनभवा लता। १ मूर्वा लता, मूरहरी, चुरनहार। २ मनोज्ञ लतामात्र।

दिव्यवस्त्र (सं० पु०) दिव्यं वस्त्रमिव, अभिधानात् पुंस्त्वं। १ सूर्य शोभा, सूर्यका प्रकाश। (क्लो०) दिव्यं वस्त्रं। २ मनोहर वस्त्र, बढ़िया कपड़ा। दिवि भवं यत्, दिव्यं वस्त्रं। ३ दिविभव वस्त्र, स्वर्गीय वस्त्र। (त्रि०) दिव्यं सुन्दरं वस्त्रं यस्य। ४ सुन्दर वस्त्रयुक्त, जिसके अच्छा कपड़ा हो।

दिव्यवाक्य (सं० पु०) आकाशवाणी, देववाणी।

दिव्यवाह (सं० स्त्री०) वृषभानु गोपकी कुछ कन्याओंमें-से एक।

दिव्यश्रोत (सं० क्लो०) वह कान जिससे सब कुछ सुना जाय।

दिव्यसरित् (सं० स्त्री) दिव्या सरित्। आकाशगङ्गा।

दिव्यसानु (सं० पु०) दिव्यः सानुर्यस्य। १ विश्वदेव-भेद। २ दिव्यसानुक गिरि।

दिव्यसार (सं० पु०) दिव्यः सारो यस्य। शालवृक्ष, साखू-का पेड़।

दिव्यसिंह—श्रीहट्ट जिलेके उत्तर-पश्चिमको फैला हुआ सुनामगञ्ज नामका एक उपविभाग। यहां लाउड़का जङ्गल प्रसिद्ध है। ५०० वर्ष पहले यहां जो राजा राज्य करते थे, उन्हींका नाम दिव्यसिंह था। इन्होंने ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण किया था। अद्वैतप्रभुके पिता कुवेर इनके मन्त्री थे। इसी कारण दिव्यसिंह अद्वैतप्रभुके बाल्यचरितसे अच्छी तरह अवगत थे। काल क्रमसे अद्वैतप्रभु लाउड छोड़ कर शान्तिपुर चले आये। उनकी ख्याती चारों ओर फैली हुई थी। बाद वृद्ध राजा दिव्यसिंह अपने लड़केको राज्य सौंप कर आप शान्तिपुरमें आ कर अद्वैतप्रभुके साथ रहने लगे। राजा-के वैराग्यको देख कर अद्वैतने उनका 'कृष्णदास' यह नया नाम रखा। वैष्णवोंमें वे इसी नामसे परिचित हैं। राजा दिव्यसिंह (कृष्णदास)ने संस्कृत भाषामें अद्वैत-की बाललीला रचना की।

दिव्यसूरि (सं० पु०) रामानुज सम्प्रदायके बारह आचार्य। इनके नाम ये हैं, कासार, भूत, महत्, भक्तिसार, शठारि, कुलशेखर, विष्णुचित्त, भक्ताङ्घ्रिरेणु, मुनिवाह, चतुष्क-वीन्द्र, रामानुज और गोदा देवी।

दिव्यस्त्री (सं० स्त्री०) दिव्याङ्गना, अप्सरा।

दिव्यांशु (सं० पु०) सूर्य।

दिव्या (सं० स्त्री०) दिवि भवा मनोज्ञत्व गुणावत्वात् दिव्येव। १ धात्री, धाय। २ वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ा। ३ शतावरी, शतावर। ४ महामेदा। ५ ब्राह्मी जड़ी। ६ स्थूल जीरक, बड़ा जीरा। ७ श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। ८ हरीतकी, हड़। ९ नायिकाभेद, तीन प्रकारकी नायिकाओंमेंसे एक।

दिव्यादिव्य (सं० पु०) दिव्यः स्वर्गीय अदिव्यश्च । १ नायकभेद (स्त्री०) २ नायिकाभेद ।

दिव्यावदान (सं० क्ली०) बौद्ध अवदान ग्रन्थभेद ।

दिव्याश्रम (सं० पु०) पुण्याश्रमविशेष । कुरुक्षेत्रका दर्शन करके बलदेवजी दिव्याश्रमको गये थे । यह पवित्र आश्रम, आम, पाकर, बट, बेल, कटहल आदि वृक्षोंसे समाकीर्ण है । यहां ब्रह्मचारिणी कुमारी शाण्डिल्य-दुहिताने घोर तपस्या करके सिद्धि पाई थी । महात्मा बलदेव ऋषियोंके मुखसे यह वृत्तान्त सुन कर वहां संध्यादि कार्य करते हिमालय गये थे ।

दिव्यासन (सं० क्ली०) आसनभेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका आसन ।

दिव्यास्त्र (सं० पु०) १ देवताओंका दिया हुआ हथियार । २ वह हथियार जो मन्त्रोंसे चलाया जाता है ।

दिव्योलक (सं० पु०) सर्पभेद एक सांपका नाम ।

दिव्योदक (सं० क्ली०) दिव्यं आन्तरीचं उदकं । आकाश-जल । इसका पर्याय—खवारि, आकाशसलिल, व्योमोदक और अन्तरीच-जल है । इसका गुण—त्रिदोष-नाशक, मधुर, पथ्यद, परम रुचिकर, अग्निकारक, तृष्णा और संज्ञानाशक है । सद्योभूमिष्ठ जलका गुण—कलुष और दोषनाशक है ।

दिव्योपपादुक (सं० स्त्री०) दिवि भवः दिव-यत् (द्युप्राग-पागुदक्प्रतीचो यत् । पा ४।२।१०) उपपद उ-ऊञ् । (लष पतपद स्थेति । पा ३।२।१५४) दिव्यश्चासौ उपपादुकश्चेति । देव, बिना मातापिताके उत्पन्न देवता ।

दिव्यौघ (सं० पु०) दिव्यानां स्वर्गीय गुणानां ओघः समूहो यत्र । गुरुविशेष, एक प्रकारका गुरु ।

दिव्यौषधि (सं० स्त्री०) दिव्यः ओषधिः । मनःशिला, मैनसिल ।

दिब्रु—आसामके लखीमपुर जिलेकी दक्षिणांशस्थित एक नदी । यह दिब्रुगढ़ नगरके निकट ब्रह्मपुत्र नदीमें जा गिरी है । इसी नदीके नामसे इसके तीरस्थ दिब्रुगढ़ नगरका नाम पड़ा है ।

दिब्रुगढ़—आसाम प्रदेशके अन्तर्गत लखीमपुर जिलेका एक उपविभाग । यह अक्षा० २७° ७' से २७° ५२' उ० और देशा० ८४° ३' से ८५° ५' पू०में अवस्थित है । भूपरिमाण १३५४ वर्गमील है । इसके तीन ओर पर्वत हैं । लोकसंख्या प्रायः २८६५७२ है । इसमें दिब्रुगढ़ नामका एक शहर और ८०० ग्राम लगते हैं । उपविभागकी आय लगभग ४७६००० रु० है ।

२ उक्त विभागका एक प्रधान नगर । यह अक्षा० २७° २८' उ० और देशा० ८४° ५५' पू०में दिब्रु नदीके बायें किनारे अवस्थित है । लोकसंख्या प्रायः ११२२७ है । यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध और जैन लोग वास करते हैं । ब्रह्मपुत्र होता हुआ स्टीमर दिब्रु-मुख अर्थात् दिब्रु नदीके मुहाने तक जाया करता है । दिब्रुगढ़ ही जलपथमें वाणिज्यकी अन्तिम सीमा है । इस नगरसे चाय और कुचुक नामक एक प्रकारके गोंद-की रफ़्तनी होती है और आमदनीमें कपड़ा, चावल, नमक और तेल प्रधान है । यहां एक सेनानिवास है ।

दिश् (सं० स्त्री०) दिशति अवकाशं ददाति या दिश्-क्विन् प्रत्ययेन साधुः । (ऋत्विगदधृगिति । पा ३।२।५९) १ आशा, पूर्व-पश्चिम दक्षिणादिरूपा । पर्याय-ककुप्, काष्ठा आशा, हरित्, निर्देशिनी, दिशा, ककुभ, हरित, गो । वैदिकमतसे दिक्के नाम इस प्रकार हैं, –

"कृत्वैवमवधिं तस्मादिमं पूर्वञ्च पश्चिमं ।
इति दिशो निर्दिश्येत यथा सा दिगिति स्मृता ॥"

अवधि अर्थात् नियम करके तुम पूर्व हो, तुम पश्चिम हो, इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ इस कारण 'दिश्' ऐसा शब्द हुआ है । दिशाका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये क्षितिज वृत्त चार भागोंमें विभक्त किया गया है, जिनको पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं । प्रत्येक दो दिशाओंके बीच एक कोण भी होता है । पूर्व और दक्षिणके बीचके कोण अग्निकोण, दक्षिण और पश्चिमके बीचके कोणको नैऋत्य, पश्चिम और उत्तरके बीचके कोणको वायव्यकोण और उत्तर तथा पूर्वके बीचके कोणको ईशान कहते हैं । जिस ओर सूर्य उदय होते हैं उस ओर मुँह करके यदि खड़े हो, तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर होता है । इसके अतिरिक्त दो दिशायें और भी मानी जाती हैं—एक सिरके ठीक ऊपरकी ओर दूसरी पैरके ठीक नीचेकी ओर जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व और

अधः कहते हैं। इस प्रकार कुल दश दिशाएँ हैं। वैशेषिकका मत है कि वास्तवमें दिशा एक ही है, काम चलानेके लिये उसके भेद कर लिए गए हैं। संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग इसके गुण है। २ दन्तक्षत, दाँतका जख्म। ३ दशसंख्या। ४ श्रोत्राधिष्ठित देवताभेद, एक देवता जो कानके अधिष्ठाता देवता माने जाते है।

दिशस् ( सं० स्त्री० ) दिशतीति दिश-असुन्। दिक्, दिशा।

दिशा ( सं० स्त्री० ) दिश-क्विप्-टाप्। १ नियत स्थानके अतिरिक्त शेष विस्तार, ओर, तरफ। २ क्षितिज वृत्तके किये हुए चार कल्पित विभागोंमेंसे किसी एक विभागको ओरका विस्तार। दिक् देखो। ३ रुद्र-पत्नीभेद, रुद्रकी एक स्त्रीका नाम।

दिशागज ( सं० पु० ) दिशायां स्थितो गजः। दिग्गज।

दिशाचक्षु ( सं० पु० ) गरुड़ात्मज भेद, गरुड़के एक पुत्रका नाम।

दिशापाल ( सं० पु० ) दिशां पालयति पालि-अण्। १ दिक्पाल। २ ब्रह्मा कर्त्तृक नियोजित वैराजादि प्रजापति-पुत्र, ब्रह्मासे नियुक्त किये हुए वैराजादि प्रजापतिके पुत्र। ये लोग सभी दिशाओंका पालन करते है। हरिवंशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—लोकपितामह ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत् विभाग करके दिक्पालोंको स्थापित किया, पूर्व दिशाकी रक्षाके लिये विराट्के लड़के सुधन्वा, दक्षिणमें कर्दम प्रजापतिके पुत्र शङ्खपद राजा, पश्चिममें महात्मा रजःपुत्र केतुमान और उत्तर ओरमें प्रजापति पर्जन्यके लड़के राजा हिरण्यरोमा नियुक्त हुए। इस तरह गणपति और दिक्पालोंसे रक्षित प्रदेश यथाविधि आवहमानकालसे आज तक पालित होता है। ( हरिवंश ४ अ० )

दिशभ्रम ( सं० पु० ) दिक्भ्रम।

दिशावकाशकव्रत ( सं० पु० ) जैनियोंका एक प्रकारका व्रत। इसमें वे सवेरे यह निश्चय कर लेते हैं कि आज हम अमुक दिशामें इतनी दूर तक जायगे।

दिशाशूल ( हिं० पु० ) दिक्शूल देखो।

दिशि ( हिं० स्त्री० ) दिशा देखो।



दिशिनियम ( हिं० पु० , दिशावकाशकव्रत देखो।

दिशेभ ( सं० पु० ) दिग्गज।

दिशोदण्ड ( सं० पु० ) दिशं अनादृत्य दण्डः। अनादर द्वारा दण्ड।

दिश्य (सं० त्रि०) दिशि भवमोति दिश-यत्। ( दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४ ) दिग्भव, दिशा संबन्धी।

दिष्ट (सं० क्ली०) दिशति इष्टानिष्ट फलं ददाति दिश-क्त ( क्तिच्क्तौ च संज्ञाया। पा। ३।३।१७४ः १ भाग्य। (पु०) दिशति दिश संज्ञाया क्त। २ काल। ३ वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। ४ दारुहरिद्रा, दारुहल्दी ( त्रि० ) ५ उपदिष्ट, जिसे उपदेश दिया गया हो। ७ प्रदर्शित, दिखलाया गया हो। ८ दत्त जो दिया गया हो।

दिष्टबन्धक ( हिं० पु० ) किसी चीजको बन्धक या रेहन रखनेका एक भेद। इसमें महाजनको केवल रुपयेका सूद दिया जाता है।

दिष्टान्त (सं० पु०) दिष्टस्य भाग्यस्य अन्तो यत्र। मरण, मौत।

दिष्टि (सं० स्त्री०) दिश-क्तिन् संज्ञायां क्तिच् वा। १ हर्ष, खुशी। २ परिमाण। ३ उपदेश। ४ कथन। ५ उत्सव। ६ भाग्य।

दिष्ट्या ( सं० अव्य० ) दिश सम्पदादित्वात् भावे क्विप्, दिशं देशनं स्त्यायति स्त्यै-क्विप, निपा० साधुः। १ हर्ष, प्रसन्नता। २ मङ्गल।

दिष्णु ( सं० त्रि० ) ददाति दा बाहुलकात् गिष्णु। दाता, देनेवाला।

दिसंबर ( अं० पु० ) अंगरेजी सालका अन्तिम महीना, जिसमें इकतीस दिन लगते हैं।

दिसा ( हिं० स्त्री० ) दिशा देखो।

दिसावल ( हिं० पु० ) वैश्योंकी एक जाति।

दिसावर ( हिं० पु० ) देशान्तर, दूसरा देश।

दिसावरी ( हिं० वि० ) जो विदेशसे आता हो, बाहरी।

दिशाशूल ( हिं० पु० ) दिक्शूल देखो।

दिस्ता ( हिं० पु० ) दस्ता देखो।

दिस्सा ( हिं० स्त्री० ) ओर, तरफ।

दिहंदा ( फा० वि० ) दाता, देनेवाला।

दिह—अयोध्याके अन्तर्गत रायबरेली जिलेका एक शहर।

यह साई नदीके किनारे बरेली नगरसे १० मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

दिहङ्ग – आसामके अन्तर्गत लक्ष्मीपुर जिलेकी एक नदी। जिन तीन नदियोंके योगसे ब्रह्मपुत्र नदी उत्पन्न हुई है, दिहङ्ग उनमेंसे प्रधान है। इससे और सबकी नदियोंकी अपेक्षा अधिक जल आता है। तिब्बतदेशमें सानपो नामकी जो नदी है, सभीका विश्वास है कि वही नदी हिमालयके अज्ञात अगम्य राह होती हुई बहुत दूर जानेके बाद अरब पर्वतके गह्वरपथसे निकली है और अन्तमें आसाम आ कर दिहङ्ग नाम धारण किया है।

दिहली ( हिं० स्त्री० ) दहलीज देखो।

दिहाड़ा ( हिं० पु० ) १ दुर्गत, बुरी हालत।

दिहाड़ी ( हिं० स्त्री० ) १ दिन। २ दिन भरकी मजदूरी।

दिहात ( हिं० स्त्री० ) देहात देखो।

दिहाती ( हिं० वि० ) देहाती देखो।

दिहातीपन ( हिं० पु० ) देहातीपन देखो।

दिहिङ्ग—आसामके अन्तर्गत लक्ष्मीपुर जिलेकी दो नदियां। इनके नाम नोआ ( नव ) दिहिङ्ग और बूढ़ी दिहिङ्ग हैं। इन दो नदियों तथा दिहिङ्ग नदीके योगसे ब्रह्मपुत्र नदी उत्पन्न हुई है। नोआ दिहिङ्ग पूर्वभागमें सिंपो पर्वतसे निकल कर पश्चिमकी ओर सदिया शहरसे कुछ ऊपरमें ब्रह्मपुत्र नदीसे मिली है। बूढ़ीदिहिङ्ग लक्ष्मीपुर जिलेके अग्निकोणमें पटकाई पर्वतसे उत्पन्न हो कर पश्चिमकी ओर जयपुर शहरके समीप होती हुई अन्तमें शिवसागर और लक्ष्मीपुर जिलेके मध्य ब्रह्मपुत्र नदीमें गिरी है। वर्षाकालमें बूढ़ीदिहिङ्ग हो कर जयपुर तक जहाज जाता आता है। बिशगांव नामक ग्रामके निकट कृत्रिम खाड़ी काट कर दो दिहिङ्ग नदियोंमें मिला दी गई है। बूढ़ीदिहिङ्ग नदीके किनारे विस्तृत स्थान पर पथरिया कोयले और मिट्टीके तेलकी खान है। यहांका कोयला बहुत उमदा होता है तथा विदेश भेजनेकी भी अच्छी सुविधा है। १८८६ ई०में कोयले और मिट्टी तेलकी खान एक ही बार खोली गई, किन्तु अनेक दिन बाद काम बन्द हो गया। जयपुर और माकुम नामक स्थानमें अभी कोयलेकी खान खोदी गई है। आसाम-रेलवे और ट्रेडिङ्ग कम्पनी स्थापित हुई है। इस कम्पनीने कोयलेकी रफ्तनीके लिए डिब्रुगढ़ स्टीमरघाटसे ले कर दमदमा तक प्राय: ४५ मील रेलपथ खोल दिया है। दमदमासे पुन: दिहिङ्ग नदीके ऊपर हो कर माकुमके कोयलेकी खान तक रेल गई है।

दिहुडी ( हिं० स्त्री० ) ड्योढ़ी देखो।

दिहुला ( हिं० पु० ) पूर्वके जिलोंमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

दिहेज ( सं० पु० ) दहेज देखो।

दीं ( हिं० स्त्री० ) दीमक देखो।

दीअट ( हिं० स्त्री० ) दीयट देखो।

दीआ ( हिं० पु० ) दीया देखो।

दीक ( हिं० पु० ) काठू या हिजलीके पेड़के छिलकेसे निकलनेवाला एक प्रकारका तेल। यह जालमें मांजा देनेके काममें आता है। हिजलीके पेड़ दक्षिणमें समुद्रके किनारे बहुत पाए जाते हैं।

दीक्षक ( सं० त्रि० ) दीक्षते दीक्ष-ण्वुल्। उपदेष्टा, दीक्षा देनेवाला।

दीक्षण ( सं० क्ली० ) दीक्ष भावे ल्युट्। यज्ञादि निमित्त नियमभेद, दीक्षा देनेकी क्रिया।

दीक्षणीय ( सं० पु० ) दीक्षणाय हितं हितादित्वात् छ। दीक्षासाधन हविर्भेद, दीक्षासाधन करनेका एक प्रकारका होम।

दीक्षणीया ( सं० स्त्री० ) दीक्षणीय-टाप्। इष्टिभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

दीक्षणीयेष्टि (सं० स्त्री०) दीक्षणीया इष्टिः। यज्ञविशेष। इसका पर्याय सौमिकी है। इस यज्ञमें देवताओंको विशेषतः विष्णु और अग्निको आह्वान कर एकको सूर्यरूपमें और दूसरेको अपने रूपमें यज्ञकारीकी पापमुक्तिके लिए पूजते हैं। बाद उसे वस्त्र और काले हिरणके चमड़ेसे ढांक कर अन्यान्य यज्ञकार्य किये जाते हैं। पीछे उसका आवरण उतार कर उसे स्नान करनेको भेज देते हैं। इसके अनन्तर उसका नया जन्म होना समझा जाता है।

दीक्षा (सं० स्त्री०) दक्षी भावे,अ स्त्रियां टाप्। १ यजन, यज्ञकर्म, सोम यागादिका संकल्प पूर्वक अनुष्ठान। २ पूजन। ३ व्रतसंग्रह। ४ नियम। ५ उपनयनसंस्कार

जिसमें आचार्य गायत्री मन्त्रका उपदेश देते हैं। यज्ञोपवीत देखो। ६ गुरुके निकट तन्त्रोक्त इष्टमन्त्रग्रहण।

गौतमीय तन्त्रमें लिखा है, कि जिससे विमल ज्ञान और दिव्यत्वका लाभ हो, सभी कर्मवासनाएं क्षीण हों तथा पापसमूह क्षय हो, उसीका नाम दीक्षा है। दीक्षा ग्रहण करना अवश्य कर्त्तव्य है। दीक्षित नहीं होनेसे देह पवित्र नहीं होती, इसी कारण प्रत्येक वर्णका दीक्षा ग्रहण करना मुख्य कर्त्तव्य है पिता, मातामह, कनिष्ठ-सहोदर और शत्रुपक्षसे मन्त्र लेना उचित नहीं।

"पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात् तथा मातामहस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥" (योगिनीतन्त्र)

स्वामी पत्नीको, पिता पुत्रकन्याको और भाई भाईको दीक्षा नहीं दे सकते। पति यदि सिद्धमन्त्रके हों, तो पत्नीको दीक्षित कर सकते हैं।

"न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुता।
न पुत्रं च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत्॥
सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्॥" (रुद्रयामल)

यति, पिता, वनवासी और विविक्ताश्रमी अर्थात् संसारत्यागीसे यदि दीक्षा ली जाय, तो वह दीक्षा कल्याणदायिका नहीं होती।

"यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणां दीक्षा न सा कल्याणदायिका॥"
(गणेशविमर्षिणी)

ये सब निषेध वचन रहनेके कारण उक्त व्यक्तियोंसे दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। लेकिन वे सब निषिद्ध व्यक्तिगण यदि सिद्ध हों, तो उनसे दीक्षा ले सकते हैं, वह दीक्षा अशुभ नहीं होती, बल्कि कल्याण कर होती है।

यदि भाग्यानुसार सिद्ध-विद्याका लाभ हो, तो बिना गुरुका विचार किए ही दीक्षा ले सकते हैं। यदि किसीने प्रमाद वा अज्ञानतावश पितासे मन्त्र ले लिया हो, तो उसे प्रायश्चित्त लेकर पुनः दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

"प्रमाच्च तथाज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरन्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्॥"
(गणेशविमर्षिणी)

यहां पर पितृपदको उपलक्षण जानना चाहिए अर्थात् मातामह आदि पहले जो जो निषिद्ध बतलाये गये हैं, उनसे यदि मन्त्र लिया जाय, तो प्रायश्चित्त करके फिरसे मन्त्र लेना विधेय है।

शूद्रमें इस प्रकार दीक्षा-ग्रहण करना प्रायश्चित्त दश हजार सावित्री जप बतलाया है।

रुद्रयामलमें यतिसे भी दीक्षा लेनेका विधान है, किन्तु विशेषता यह है कि वे तीर्थाचारयुक्त मन्त्रतन्त्र-विशारद, संयतेन्द्रिय और नित्य कार्यतत्पर यति हों। पिताका मन्त्र निर्वीर्य है अर्थात् पितासे दीक्षित होनेसे यदि उस मन्त्र द्वारा जप पूजादि की जाय, तो किसी फलकी आशासे हाथ धो कर बैठना पड़ता है। किन्तु शैव और शाक्त मन्त्रके विषयमें कोई दोष नहीं। 'पितासे दीक्षित न होना' यह वचन कौल-दीक्षापर है अर्थात् कौलाचार विहित दीक्षासे पितासे भी मन्त्र ग्रहण कर सकते हैं, तद्भिन्न सर्वत्र नहीं। क्योंकि योगिनीतन्त्रमें शक्त्यादि विद्याका लक्ष्य करके ही पितादिसे दीक्षा ग्रहण निषिद्ध बतलाया है, अथवा 'शैवे शाक्ते न दुष्यति' इस स्थानके शाक्त पदको केवलमात्र तारादि विद्या विषयमें जानना चाहिए अर्थात् तारादिका मन्त्र पितादिसे ग्रहण किया जा सकता है। मत्स्यसूक्तमें इस प्रकार लिखा है,—'पिता ज्येष्ठपुत्रको मन्त्र दे सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं'। गङ्गा और काशी आदि महातीर्थोंमें तथा चन्द्र सूर्य-ग्रहण कालमें पितादिसे मन्त्रग्रहण करनेमें किसी दोषका विचार नहीं किया जाता। स्वप्नलब्ध और स्त्री प्रदत्त मन्त्रका पुनर्वार संस्कार करनेसे ही वह शुद्ध होता है। यदि स्त्रियोंसे मन्त्र लेनेकी इच्छा हो, तो उनमें निम्न-लिखित गुणोंका रहना आवश्यक है,—साध्वी, सदाचार-तत्परता, गुरुके प्रति भक्तिशीला, जितेन्द्रिया, सर्वमन्त्रार्थ तत्त्वज्ञा, सुशीला और पूजादि कार्यमें अनुरक्ता अर्थात् इन सब गुणसम्पन्ना स्त्रियोंसे दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु विधवामें ये सब गुण रहने पर भी, वह दीक्षा देनेकी योग्य नहीं है। स्त्री गुरुसे मन्त्र लेनेसे शुभ फल प्राप्त होता है, विशेषतः मातासे दीक्षित होनेसे अष्टगुण फल मिलता है। यदि माता अपना उपासित मन्त्र

प्रदान करे, तो अष्टगुण फल, नहीं तो शुभ फल होता है। किसी किसी तन्त्रविद्का कहना है कि सिद्ध मन्त्र ग्रहण करनेमें गुरुका विचार करना नहीं होता। विधवा स्त्रीको मन्त्र देनेका अधिकार नहीं है, इसके प्रतिप्रसवमें इस प्रकार लिखा है,—विधवा स्त्री पुत्रकी आज्ञा ले कर, कन्या पिताकी आज्ञा ले कर मन्त्र दे सकती है, नहीं तो इन्हें स्वतन्त्रता नहीं है। गर्भवती स्त्रीसे मन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं। किन्तु दशम मास गर्भवती स्त्रीसे यदि मन्त्र लिया जाय, तो रौरव नरक होता है।

मन्त्र यदि स्वप्नमें लाभ हो, तो वह मन्त्र सद्गुरुसे पुनः ग्रहण करना चाहिये। यदि सद्गुरु न मिलें, तो जल पूर्ण कलसमें प्राण प्रतिष्ठा करके एक वटपत्र पर कुङ्कुम द्वारा वह मन्त्र लिखे और पीछे उस पत्रको उक्त कलसमें डाल दे। तदनन्तर मन्त्र सहित उस वटपत्रको उठा कर स्वयं वह मन्त्र ग्रहण करे। स्वप्नलब्ध मन्त्रमें मन्त्रपरीक्षा अनावश्यक है।

दीक्षाकी आवश्यकता—दीक्षावतीत मन्त्रजप दूषित होता है, इसीसे पहले दीक्षाका निरूपण करना आवश्यक है। दीक्षा मनुष्यको दिव्य ज्ञान देती है और पाप राशिको क्षय करती है। यही कारण है कि ब्रह्मचर्यादि सभी आश्रमोंमें दीक्षाकी आवश्यकता है। कारण दीक्षा ही जप, तपस्या आदिकी जड़ है। विना दीक्षाके जप तपस्यादि कोई कार्य्य ही नहीं हो सकता। इसलिये सभी आश्रमोंमें दीक्षित हो कर रहना चाहिए। विना दीक्षित हुए जो मनुष्य जपपूजादि कार्य करता है, उसका वह कार्य्य पत्थर पर बीज बोनेके समान निष्फल होता है।

दीक्षाविहीन व्यक्तिकी सिद्धि वा सद्गति कुछ भी नहीं होती। अतएव बहुत यत्नपूर्वक गुरुसे अवश्य दीक्षित होना चाहिए। यथाशास्त्र दीक्षित होनेसे वह दीक्षा क्षणकालके मध्य लक्ष उपपातक और कोटि महापातक दग्ध करती है। जो गुरुसे दीक्षित न हो कर अन्यके मन्त्र देख कर स्वयं दीक्षित होता है, वह नराधम सहस्र मन्वन्तरमें भी निष्कृति नहीं पाता। अदीक्षित व्यक्तिको तपस्या, नियम, व्रत, तीर्थगमन तथा शारीरिक परिश्रम द्वारा कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। अदीक्षित व्यक्तिका अन्न विष्ठाके समान, जल मूत्रके समान और तत्कृत श्राद्धादि भी निष्फल है। (तन्त्र०)

शूद्रको दीक्षाके विषयमें जो प्रभेद है वह इस प्रकार है-प्रणव और प्रणवघटित मन्त्र शूद्रको नहीं देना चाहिए। जो ब्राह्मण शूद्रको आत्ममन्त्र, गुरुका मन्त्र, अजपामन्त्र, स्वाहा और प्रणवसंयुक्तमन्त्र देता है उस ब्राह्मणकी अधोगति होती है और मन्त्रग्रहीता शूद्र भी निरयगामी होता है। लक्ष्मी मन्त्र (श्रीं) का लेना स्त्री और शूद्रके अधिकार नहीं है। शूद्रको गोपाल, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य और गणेशका मन्त्र देना चाहिए। कारण शूद्र यही सब मन्त्र लेनेके अधिकारी है। इसको अन्यथा करनेसे वे पाप भागी होते हैं। जिन जिन देवताके मन्त्र लेनेका अधिकार है, उनमेंसे अनुकूल मन्त्र ग्रहण करना चाहिए। दीक्षाके समय ताराचक्र, राशिचक्र और नामचक्रका विचार करना होता है।

स्वप्नलब्ध मन्त्र, स्त्रीसे ग्रहीतव्य मन्त्र, मालामन्त्र और त्र्यक्षरमन्त्र लेनेमें सिद्धादिका विचार नहीं करना चाहिए नपुंसक मन्त्र, सूर्यका अष्टाक्षर, पञ्चाक्षर, एकाक्षर, द्व्यक्षर और त्र्यक्षरादि मन्त्रका सिद्धान्त विचार नहीं करना। जिस मन्त्रके अन्तमें 'हुं फट्' रहे उसे पुं मन्त्र, जिसके अन्तमें 'स्वाहा' रहे उसे स्त्री मन्त्र और जिसके अन्तमें 'नमः' रहे, उसे नपुंसक मन्त्र कहते हैं। सुतरां मन्त्र तीन प्रकारका है।

जो जो महाविद्या पृथ्वी पर दोषपरिशून्या है उसका विवेय इस प्रकार लिखा है। काली, नीला, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाख्यावासिनी, वाला, मातङ्गी, शैलवासिनी आदि देवियां कलिकालमें साधकको पूर्ण फल प्रदान करती हैं। ये सब देवता सिद्धमन्त्र हैं, सुतरां कलिकालमें इनकी उपासनामें अधिक परिश्रम उठाना नहीं होता अर्थात् "कलौ संख्याचतुर्गुण" इत्यादि शास्त्रानुसार कलिकालमें जप पूजादिकी जो चतुर्गुणसंख्या निर्दिष्ट है, वह करनी नहीं होती। कारण ये सब महाविद्या कलिदोषदुष्टा नहीं हैं।

दश महाविद्या मन्त्र लेनेमें सिद्धादि विचार, नक्षत्र

चक्रादि विचार, बगलादि शोधन और अरिमित्रादिका विचार करना नहीं होता। दीक्षाके समय इनका मन्त्र ग्रहण करनेसे शुभ होता है। कोई कोई कहते हैं, कि इस प्रशंसा-वाक्यका विचार सर्वत्र ही आवश्यक है। क्योंकि दुरदृष्टक्रमसे यदि स्वप्नमें कभी वैरिमन्त्र मिल जाय, तो उससे दोष दृष्ट होता है। इसी कारण विचार का आवश्यक है।

दीक्षाके समय नामग्रहणप्रणाली—दीक्षा ग्रहणके समय पितामाताने जो नाम रखा है, उसी नामकी देवशर्मा आदि उपाधि और श्रीका परित्याग कर अन्यान्य सभी वर्ण नाम ग्रहण करें। नाम ग्रहणके विषयमें पिङ्गला-तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है—जिसका जो प्रसिद्ध नाम रहता है अथवा जन्मकालमें जो नाम रक्खा जाता है उसे वही नाम लेना होता है और यति लोगोंके लिए वही नाम लेना उचित है जो उनके गुरु पुष्पपात द्वारा रखते हैं। रुद्रयामलमें लिखा है, कि जो नाम ले कर पुकारनेसे निद्रित व्यक्ति जग उठता है, दूसे जवाब देता है और जो नाम ले कर पुकारनेसे अन्यमनस्क अवस्थामें प्रत्यु-त्तर देता है वही नाम ग्रहण कर दीक्षा कार्यका अनु-ष्ठान करना चाहिये। किस देवताके मन्त्रग्रहणमें किस चक्रका आवश्यक है, वह इस प्रकार है,—विष्णुमन्त्र-ग्रहणमें नक्षत्रचक्र, शिवमन्त्रमें कोष्ठचक्र, त्रिपुरामन्त्रमें राशिचक्र, गोपालमन्त्र और राममन्त्रमें अकडमचक्र, गणेशमन्त्रमें हरचक्र, वराहमन्त्रमें कोष्ठचक्र, और महा-लक्ष्मीमन्त्रमें कुलाकुलचक्रका विचार कर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

चक्र विचारका दातव्य विषय तत्तत् चक्र शब्दमें देखो।

दीक्षाप्रकरण—दीक्षाके समय निर्दिष्ट दिनमें गुरु शिष्यको बुला कर पवित्र कुशशय्या पर बिठावे और निद्रामन्त्रसे उसका शिखाबन्धन करे। शिष्य शयनके समय यह निद्रामन्त्र तीन बार पढ़े और उपवासी तथा जितेन्द्रिय हो कर श्री गुरुके पादुकाका ध्यान करते हुए सो जावे। निद्रामन्त्र—"ॐ हिलिहिलि शूलपाणये स्वाहा" अथवा

"नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्य्येष्वशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत् प्रसादात् महेश्वर॥"

यह मन्त्र पढ़ कर शयन करे। दूसरे दिन सवेरे गुरु शिष्यसे स्वप्नदृष्ट शुभाशुभ हाल पूछें। शिष्य यदि स्वप्नमें कन्या, छत्र, रथ, प्रदीप, अट्टालिका, पद्म, नदी, हस्ती, वृष, माल्य, समुद्र, सर्प, वृक्ष, पर्वत, घोटक, कोई पवित्र द्रव्य, आममांस, मद और आसन इनमेंसे कोई एक वस्तु देखे, तो उसका मंत्र सिद्ध होगा, ऐसा समझना चाहिए।

दीक्षाके विषयमें काल-निर्णय।—चैत्रमासमें दीक्षाग्रहण करनेसे पुरुषार्थसिद्धि, वैशाख मासमें रत्नलाभ, ज्येष्ठ मासमें मृत्यु, आषाढ़में बन्धुनाश आश्विनमें रत्नसञ्चय, कार्त्तिक और अग्रहायणमें मंत्रसिद्धि, पौषमें शत्रुपीड़ा, माघमें मेधावृद्धि और फाल्गुनमें सब प्रकारकी कामनाएं सिद्ध होती हैं। यदि उक्त विहित मासमें मलमास पड़े, तो उस मासको छोड़ देना चाहिए। कभी भी मलमासमें दीक्षाग्रहण न करें। चैत्र मासमें दीक्षाका जो विधान कहा गया है, उसे गोपालमंत्र ग्रहणके विषयमें जानना चाहिए। क्योंकि किसी तन्त्रमें लिखा है, कि चैत्रमासमें दीक्षाग्रहण करनेसे मरण और दुःख होता है। भाद्र और नक्षत्रमासमें भी मंत्र लेना निषेध है। इसी कारण दीक्षाके सम्बन्धमें सौरमास ग्राह्य है।

दीक्षाके सम्बन्धमें वार निर्णय—रविवारको दीक्षाग्रहण करनेसे वित्तसञ्चय, सोमवारको शान्ति, मङ्गलवारको आयुःक्षय, बुधवारको सौन्दर्यप्राप्ति, वृहस्पतिवारको ज्ञानलाभ, शुक्रवारको सौभाग्य और शनिवारको यशका नाश होता है।

तिथिनिरूपण—प्रतिपद्में दीक्षाग्रहण करनेसे ज्ञाननाश, द्वितीयामें ज्ञान, तृतीयामें पवित्रता, चतुर्थीमें वित्तनाश, पञ्चमीमें बुद्धिवृद्धि, षष्ठीमें ज्ञाननाश, सप्तमीमें सुख, अष्टमी-में बुद्धिनाश, नवमीमें शरीरक्षय, दशमीमें राजवत् सौभाग्यलाभ, एकादशीमें पवित्रता, द्वादशीमें सर्वसिद्धि, त्रयोदशीमें दरिद्रता, चतुर्दशीमें तिर्य्यक्योनिप्राप्ति, अमावस्यामें मानहानि और पूर्णिमा तिथिमें मंत्र लेनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। किन्तु इन सब तिथियोंमें अना-ध्याय तिथि वर्जित है। जिस दिन मेघगर्जन,

भूमिकम्प और उल्कापात हो, वही दिन अस्वाध्याय कहलाता है। सुतरां उन समस्त दिनोंमें तथा वेदोक्त अन्यान्य अस्वाध्यायमें दोक्षाग्रहण निषेध है। द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, द्वादशी और त्रियोदशी तिथि दोक्षाके लिये प्रशस्त है. किन्तु षष्ठी और त्रयोदशी तिथिमें केवल विष्णु-मंत्र और षष्ठी तिथिमें शिवमंत्र ग्रहण कर सकते हैं। दशमी और सप्तमी तिथिको दीक्षाके लिये निषिद्ध बतलाया है। ( शैवतंत्र )

नक्षत्र-निर्णय—अश्विनी नक्षत्रमें दीक्षाग्रहण करनेसे सुख, भरणीमें मृत्यु, कृत्तिकामें दुःख, रोहिणीमें वाक्-पतित्व, मृगशीर्षमें सुखप्राप्ति, आर्द्रामें वन्धुनाश, पुनर्वसुमें धनसम्पत्ति, पुष्यामें शत्रुनाश, अश्लेषामें मृत्यु, मघामें दुःखनाश और पूर्वफल्गुनीमें सौन्दर्यप्राप्ति, उत्तरफल्गुनी-में ज्ञान, हस्तामें धन, चित्रामें ज्ञानसिद्धि, स्वातीमें शत्रुनाश, विशाखामें सुख, अनुराधामें वन्धुवृद्धि, ज्येष्ठामें सुतहानि, मूलामें कीर्त्तिवृद्धि, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा-में कीर्त्ति, श्रवणामें दुःख, धनिष्ठामें दारिद्र्य, शतभिषामें ज्ञान, पूर्वभाद्रमें सुख, उत्तरभाद्रमें दुःख, और रेवती नक्षत्रमें कीर्त्तिवृद्धि होती है यहां आर्द्रा और कृत्तिका जो निषेध बतलाया है वह शिव और वह्निके इतर विषयके लिये अर्थात् शिव और वह्निमन्त्र लेनेमें उक्त दोनों नक्षत्र दोषावह नहीं है। कारण कहीं पर शिव और वह्निमन्त्र ग्रहणके विषयमें आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्रको प्रशस्त बतलाया है।

अश्विनी, भरणी, स्वाती, विशाखा, हस्ता, ज्येष्ठा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी और उत्तराषाढ़ामें दीक्षा-ग्रहण शुभजनक है। यहां पर ज्येष्ठा और भरणीनक्षत्रमें दीक्षाका जो विधान है, वह केवल राममन्त्रके लिये।

योगनिर्णय—शुभ, सिद्ध, आयुष्मान्, ध्रुव, प्रीति, सौभाग्य, वृद्धि और हर्षणयोग दीक्षाकार्यमें शुभावह है। रत्नावलीमें लिखा है कि प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्र, हर्षण, वरीयान्, शिव, सिद्ध और इन्द्र ये सोलह योग दीक्षा कार्यमें शुभजनक हैं।

करणनिर्णय—वव, वालव, कौलव, तैतिल और वणिज ये सब करण दीक्षा कार्यमें शुभ हैं।

लग्न निर्णय—वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीन इन सब लग्नोंमें तथा चन्द्रतारा शुद्धिमें दीक्षाग्रहण कर सकते हैं। विष्णुमन्त्र लेनेमें स्थिरलग्न अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये चार लग्न प्रशस्त हैं।

शिवमन्त्र लेनेमें चार लग्न अर्थात् मेष, कर्कट, तुला और मकर ये चार लग्न तथा शक्तिमन्त्र दीक्षामें द्व्यात्मक लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन ये चार लग्न शुभजनक हैं। लग्नसे तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानमें पापग्रह तथा लग्नसे चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम, और पञ्चम स्थानमें शुभग्रह रहनेसे दीक्षाकार्यमें शुभ होता है। किन्तु दीक्षाकार्यमें वक्रग्रह अनिष्टकारी है, इसी उसका परित्याग करना चाहिये।

पक्षनिर्णय—शुक्लपक्षमें दीक्षा शुभफल प्रदान करती है और कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथि तक भी दीक्षाकार्य दोषावह नहीं है। सम्पत्तिकामी व्यक्तिको शुक्लपक्षमें और मुक्तिकामीको कृष्णपक्षमें मन्त्र लेना चाहिये। पूर्वोक्त निषिद्धमासमें और तिथि विशेषमें मंत्र ग्रहण कर सकते है, इस विषयमें रत्नावलीमें इस प्रकार लिखा है,—भाद्रमासकी षष्ठी, आश्विनमासकी कृष्णाचतुर्दशी, कार्त्तिककी शुक्ला नवमी अग्रहायणकी तृतीया, पौषकी शुक्लाचतुर्थी, फाल्गुनकी शुक्लानवमी, चैत्रमासकी काम-चतुर्दशी, वैशाखकी अक्षय तृतीया, ज्येष्ठकी दशहरा, आषाढ़की शुक्लापञ्चमी और श्रावणकी कृष्णापञ्चमी इन सब देवपर्वोंमें जो दीक्षाग्रहण की जाती है, वह तीर्थ स्थानमें दीक्षाग्रहणके समान कोटि गुणफलदायी होती है। इन सब देवपर्वोंमें मन्त्रग्रहण करनेसे मास, तिथि, वार और नक्षत्रादि कुछ भी विचार नहीं किया जाता। शिवजीने स्वयं कहा है, कि देवपर्वमें मन्त्र-ग्रहण करनेमें वार, नक्षत्र, मास और तिथ्यादि दोष तथा योगकरणादिके दोषादोषका विचार नहीं करना चाहिये। किसी किसीका मत है, कि चैत्रकी शुक्ला-त्रयोदशी, वैशाखकी शुक्ला एकादशी, ज्येष्ठकी कृष्णा-चतुर्दशी, आषाढ़की नागपञ्चमी, श्रावणकी एकादशी, भाद्रकी जन्माष्टमी, आश्विनकी महाष्टमी, कार्त्तिककी शुक्लानवमी, अग्रहायणकी शुक्लाषष्ठी, पौषकी चतुर्दशी, माघमासकी शुक्ला एकादशी, फाल्गुनकी शुक्लाषष्ठी ये

सब तिथियां दीक्षाकार्यके लिए प्रशस्त है। उत्तरायण और दक्षिणायनादि संक्रान्तिदिन, चन्द्र सूर्यग्रहण, युगाद्या तिथि और मन्वन्तरा तिथि तथा महापूजा दिन दीक्षाकार्यमें शुभप्रद है। चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी और अष्टमी ये सब तिथियां भी दीक्षाग्रहणके लिए प्रशस्त मानी गई हैं। यहां पर चतुर्दशी और अष्टमीको शक्ति-दीक्षामें तथा चतुर्थीको गणेशमन्त्रदीक्षाके विषयमें जानना चाहिये। दीक्षाके लिए सूर्यग्रहणके जैसा उत्तम समय और दूसरा नहीं है। चन्द्रसूर्य-ग्रहणकालमें वार-तिथ्यादिका विचार नहीं किया जाता। सूर्यग्रहणकाल-में शक्तिदीक्षा और चन्द्रग्रहणकालमें विष्णुदीक्षा नहीं लेनी चाहिये। रुद्रयामलके वचनानुसार श्रीविद्याके सिवा अन्य विद्याके विषयमें जानना चाहिये अर्थात् सूर्यग्रहण-में श्रीविद्याका मन्त्र और चन्द्रग्रहणकालमें गोपाल मन्त्र ग्रहण कर सकते हैं। गौतमीय तन्त्रमें कहा है, कि पर्वयोगमें और चंद्रग्रहणकालमें सभी प्रकारकी दीक्षाएं प्रशस्त है। नीलतंत्रमें तारामंत्रका विषय इस प्रकार लिखा है-कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि, शुभलग्न, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र और मित्रतारामें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

चन्द्र और सूर्य-ग्रहणकालमें दीक्षा ग्रहणका कुछ भी विचार नहीं किया जाता। सूर्यग्रहणकालमें श्रीविद्या और दुर्गा मन्त्रग्रहण करनेसे मनुष्य मुक्तिलाभ करता है। यदि सोमवारको अमावस्या, मङ्गलवारको चतुर्दशी और रविवारको सप्तमी तिथि पड़े, तो वह तिथि शत सूर्यग्रहण समान होती है, इसमें दीक्षादि कार्य अत्यन्त प्रशस्त है। कुलार्णवमें लिखा है कि रविवारको सप्तमी, सोमवारको अमावस्या, मङ्गलवारको चतुर्थी और वृहस्पतिवारको अष्टमी तिथि होनेसे देवतुल्य पर्व होता है, इस कारण यह तिथि दीक्षाके लिये अत्यन्त प्रशस्त है।

गङ्गादि पुण्यतीर्थ, कुरुक्षेत्र, पीठस्थान, प्रयाग, कैलास पर्वत और काशीक्षेत्र इन सब स्थानोंमें मंत्र ग्रहणका कुछ भी विचार नहीं किया जाता। विष्णुयामलमें लिखा है, कि देवीके बोधनसे लेकर नवमी तक जितनी तिथियां पड़ती हैं, प्रत्येक तिथिमें दीक्षाग्रहण करनेसे समस्त अभीष्ट सिद्ध होते हैं। आश्विनमासकी शुक्लाष्टमी तिथि दीक्षाके लिए विशेष प्रशस्त है क्योंकि इस समय जगदम्बा घर घर विराजती है। अतएव इस समयमें दीक्षा ग्रहण करनेसे यथेष्ट फल प्राप्त होता है, इसमें मास और नक्षत्रादिका विचार नहीं किया जाता। फिर भी लिखा है कि दुर्गादेवीके बोधनमें, अशोकाष्टमीमें, रामनवमीमें तथा गुरुके आज्ञानुसार मंत्र लेनेमें कालाकालादिका विचार नहीं करना चाहिये।

उक्त किसी एक लग्न वा तिथिमें दीक्षाग्रहण कर सकते हैं।

इनमेंसे जिस किसी लग्न वा जिस किसी तिथिमें जो दीक्षाग्रहण की जाती है, वह दोषावह नहीं होती। मङ्गलवारको चतुर्थी पड़नेसे तथा त्र्यहस्पर्श दिनमें लग्नादिकी बिना विवेचना किए ही मन्त्र ले सकते हैं। समयाचार-तन्त्रमें लिखा है, कि युगाद्यतिथि, जन्मदिवस और उत्त-रायण तथा दक्षिणायन संक्रान्तिको दीक्षाग्रहण करनेमें शुभाशुभका कुछ भी विचार नहीं किया जाता। गुरुदेव शिष्यको बुला कर कृपापूर्वक यदि दीक्षित करें, तो लग्नादिका कुछ भी विचार नहीं करना होगा। जब मन्त्रज्ञ गुरु स्वयं उपस्थित हो कर शिष्यको दीक्षित करें, तब समस्त वार, ग्रह, नक्षत्र और राशि शुभफल देती है।

दीक्षास्थानका निरूपण—गोशाला, गुरुका भवन, देवा-लय, कानन, पुण्यक्षेत्र, उद्यान, नदीतीर, आमलकी और बिल्ववृक्षके समीप, पर्वताग्र, पर्वतगुहा और गङ्गातट इन सब स्थानोंमें दीक्षाग्रहण करनेसे कोटिगुण फल प्राप्त होता है। गया, भास्करक्षेत्र, विरजातीर्थ, चट्टग्राममें चन्द्र-नाथ पर्वत, मतङ्गदेश और कन्याराष्ट्र इन सब स्थानोंमें मन्त्र नहीं लेना चाहिए। वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि यदि शुक्र अस्तगत अथवा वृद्धावस्थामें हो, अथवा यदि गुरु और रवि एक घरमें हो, तो मेष, वृश्चिक और सिंहमें मन्त्रग्रहण करनेसे दोष नहीं होता। काली तारादि महाविद्याके मन्त्रग्रहणमें कालाकालादिका विचार नहीं किया जाता। यह विषय मुण्डमालातन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—महाविद्याका मन्त्र लेनेमें कालादिका विचार नहीं किया जाता और न अरिमित्रादि दोषके विचार-की ही आवश्यकता होती है। (तंत्रसार)

अन्यान्य विवरण मंत्र शब्दमें और कलावती दीक्षाका विषय कलावती शब्दमें देखो।

पंचायतनी दीक्षा—इस दीक्षाका विषय यामलमें इस प्रकार लिखा है। पञ्चायतनी दीक्षामें शक्ति, विष्णु शिव, सूर्य और गणेश इन पाँच देवताओंके पाँच मंत्र अङ्कित कर उनसे पञ्च देवताकी पूजा करनी होती है। इसमें विशेषता यह है, कि गुरु जब इन पञ्चदेवताके मध्य शक्तिचक्रको प्रधान समझें, तब उसे यंत्रके मध्य अङ्कित कर पूजा करें और उस यंत्रके ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव नैऋ तकोणमें गणेश तथा वायुकोणमें सूर्यका मंत्र निर्माण करके इनकी पूजा करनी होती है। फिर यदि मध्यभागमें विष्णुकी अर्चना करें, तो ईशानकोणमें गणेश, नैऋ त कोणमें सूर्य और वायुकोणमें अम्बिकाका यंत्र अङ्कित करके इनकी पूजा करें। यदि मध्यभागमें शङ्करको अर्चना करें, तो ईशान कोणमें विष्णु, अग्निकोणमें सूर्य, नैऋ तकोणमें गणेश और वायुकोणमें पार्वतीकी पूजा करनी होती है, इत्यादि।

(तंत्रसार) पंचायतनी दीक्षा देखो।

संक्षेप दीक्षा—सर्वतोभद्रमण्डलके ऊपर नूतन कुम्भ स्थापन करके उसे जलसे भर दें। पीछे गन्ध और पुष्प द्वारा उस वस्त्रसंयुक्त कुम्भकी अर्चना कर उसमें सर्वौषधि और नवरत्न डाल दें। अनन्तर कुम्भके ऊपर पञ्चपल्लव दे कर यथाशक्ति देवताकी पूजा करके होम विधिके अनुसार अष्टोत्तरशत होम करें। होम हो जाने पर अलङ्कृत शिष्यको वेदीके ऊपर अग्निके समीप बिठावें और प्रोक्षणोपात्रस्थ जल और शान्तिकुम्भ जलमें अष्टोत्तरशत मूलमंत्रका जप करके उस जल द्वारा अभिषिक्त करें। पीछे शिष्यके मस्तक पर हाथ रख कर उसे मूल मंत्र प्रदान करें। इतना हो जाने पर 'नमोस्तु' इस मंत्रसे आतपतण्डुल द्वारा शिष्य गुरुको अर्चना करे। प्रकारान्तर यथा—अक्षत युक्त शङ्खको जलसे भर कर उसमें देवताको आराधना करे। पीछे शङ्खस्थ जलद्वारा शिष्यको अभिषिक्त करके गुरु शिष्यके मस्तक पर हाथ रखें और उसके कानोंमें एक बार मंत्रका जप करें। विस्तृत दीक्षा-प्रणालीके अनुष्ठानमें यदि अशक्त हों, तो अक्षतयुक्त शङ्खको अर्चना करके उस जल द्वारा मूलमंत्रसे आठ बार शिष्यको अभिषिक्त करें और पीछे उसके कानोंमें आठवार मूलमंत्र जप करें। विश्वसार तंत्रमें लिखा है कि चन्द्र अथवा सूर्यग्रहणकालमें, तीर्थस्थानमें, काश्यादि पुण्यक्षेत्रमें अथवा शिवालयमें गुरु यदि शिष्यको अभीष्ट मंत्र कह दें, तो वही दीक्षा हुई। इन सब स्थानोंमें पूजादि करना अनावश्यक है। उक्त तंत्रमें यह भी लिखा है कि अन्यान्य युगमें ब्रह्मदीक्षा, दीक्षा और उपदेश देना चाहिए। कलियुगमें केवल उपदेश देनेसे ही काम चल सकता है। उपनयनादि संस्कारको भी दीक्षा कहते हैं। ५ अनुष्ठान। ६ प्रवृत्तकरण, प्रवर्त्तना। ७ यज्ञादि कर्ममें संस्कार।

दीक्षाकर्ट (सं॰ पु॰) दीक्षागुरु।

दीक्षागुरु (सं॰ पु॰) दीक्षायां गुरुरुपदेष्टा। मन्त्रादि उपदेष्टा, वह जो दीक्षा देता है।

दीक्षातत्त्व (सं॰ क्लो॰) दीक्षायाः तत्त्वं। दीक्षाविषयक तत्त्व, दीक्षा सम्बन्धके आवश्यक जानने योग्य विषय।

दीक्षान्त (सं॰ पु॰) दीक्षायाप्रधान यागस्य अन्तः अन्तोपलक्षितो यज्ञः। अवभृत स्नानरूप यागभेद, वह अवभृत यज्ञ जो किसी यज्ञके समापनांतमें उसकी त्रुटि आदिके दोषकी शान्तिके लिये किया जाता है। अवभृत देखो।

दीक्षापति (सं॰ पु॰) दीक्षायाः पतिः ६-तत्। दीक्षापालक, सोम।

दीक्षापाल (सं॰ पु॰) दीक्षायाः पालः। दीक्षापति।

दीक्षायूप (सं॰ पु॰ क्लो॰) दीक्षाङ्गं यूपः। दीक्षाङ्ग पश्वादि मारणार्थ काष्ठमय पदार्थ भेद, काठका वह हथियार जिससे यज्ञका पशु मारा जाता है।

दीक्षित (सं॰ त्रि॰) दीक्ष-कर्त्तरि क्त, वा दीक्षा सञ्जातोऽस्य, तारकादित्वादितच्। १ व्रतादिक यज्ञादि कर्ममें सङ्कल्प पूर्वक प्रवृत्त, जिसने सोम यज्ञादिका सङ्कल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। २ तन्त्रोक्त गृहीतमन्त्र, जिसने आचार्यसे दीक्षा ली हो।

अदीक्षित व्यक्ति जप पूजादि जो सब कार्यका अनुष्ठान करते है, वे निष्फल होते है। दीक्षा देखो। (पु॰) ३ काम्पिल्ल नगरस्थ यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण। काम्पिल्ल नगरमें सोमयाजी कुलके यज्ञदत्त नामक वेदवेदाङ्ग

विशारद एक ब्राह्मण थे। ये राजमान्य और बहुधन सम्पत्तिके अधीश्वर थे तथा अपना समय साग्निक और वेदाध्ययनमें बिताते थे। ४ स्वीकृतदीक्ष, वह जिसने दीक्षा स्वीकार की हो।

दीक्षितायनी (सं० स्त्री०) दीक्षितः स्वनामख्यात ब्राह्मण एव अयनं गतिर्यस्याः स्त्रियां टिलात् ङीप्। काम्पिल्ल नगरके दीक्षित नामक ब्राह्मणकी स्त्री। (काशीखं० १३ अ०)

दीक्षित (सं० पु०) दीक्ष (सुददीपदीक्षश्च। पा ३।२।१५३) इति सूत्रेण युक्तं बाधित्वा शीलार्थे तृच। दीक्षाशील, वह जिसने गुरुसे मन्त्र लिया हो।

दीखना (हिं० क्रि०) दृष्टिगोचर होना, दिखाई देना।

दीघी (हिं० स्त्री०) दीर्घिका, पोखरा, तालाब।

दीठ (हिं० स्त्री०) १ नेत्रकी ज्योति, देखनेकी शक्ति। २ दृकपात, नजर, निगाह। ३ दृक्पथ, आँखकी ज्योतिका प्रसार। ४ देखनेमें प्रवृत्तनेत्र, देखनेके लिये खुली हुई आँख। ५ अच्छी वस्तुपर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव बुरा पड़े। ६ निरीक्षण, देखभाल, देखरेख। ७ सङ्कल्प, उद्देश्य, विचार। ८ पहचान, परख, तमीज। ९ कृपादृष्टि, मिहरबानीकी नजर।

दीठबंद (हिं० पु०) नजरबंद, जादू।

दीठबंदी (हिं० स्त्री०) नजरबंदी, जादू।

दीति (सं० स्त्री०) दीप-क्तिन् बेटे पलोपः। दीप्ति, प्रकाश, रोशनी।

दीदवान—राजपूतानेके जोधपुर राज्यके अन्तर्गत इसी नामके जिलेका एक सदर। यह अक्षा० २८°३४' उ० और देशा० ७४°३५' पू० जोधपुर शहरसे १३० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके लगभग है। इसका प्राचीन नाम द्रुदवानक है। कहते हैं कि यह पहले शाम्भरके चौहानराजके अधिकारमें था, पीछे मुगलोंके हाथ आया। तदनन्तर १८वीं शताब्दीमें जोधपुरके महाराज वखतसिंहने इसे अपने अधिकारमें कर लिया। शहर चारों ओर पत्थरकी दीवारसे घिरा हुआ है। यहां मनोहर अट्टालिकाएँ, डाकघर, वर्नाक्यूलर स्कूल तथा एक चिकित्सालय है। अकबरकी बनाई हुई मसजिद ही सबसे अधिक कारुकार्यविशिष्ट है। मसजिदके अलावा कितने देवमन्दिर भी हैं।

दीदा (फा० स्त्री०) १ दृष्टि, नजर। २ दर्शन, देखादेखी। (पु०) ३ नेत्र, आंख। ४ अनुचित साहस, ढिठाई।

दीदार (फा० पु०) साक्षात्कार, दर्शन।

दीदिवि (सं० पु० क्ली०) दिव्यत्यनेनेति दिव-क्विन् अभ्यासस्य च दीर्घश्च (दिवोद्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य। उण् ४।५५) १ अन्न, अनाज। २ वृहस्पति। ३ स्वर्ग। ४ भक्ष्यद्रव्य, खानेकी चीज। (त्रि०) पुनः पुनः भृशं वा दीव्यति दिव-यङ्-लुक्-इन् न गुण अभ्यासदीर्घः। पुनः पुनः, फिर फिर।

दीदी (हिं० स्त्री०) ज्येष्ठ भगिनीके लिये सम्बोधन शब्द, बड़ी बहनको पुकारनेका शब्द।

दीधिति (सं० स्त्री०) दी धीते दीप्यते इति दीधो संज्ञायां क्तिच् इट्। १ सूर्य चन्द्रमा आदिकी किरण। २ नैयायिक प्रवर रघुनाथ शिरोमणिने चिन्तामणिकी एक टीका प्रस्तुत की है, इस टीकाका नाम दीधिति है। ३ अङ्गुल उंगली।

दीधितिकृत् (सं० पु०) दीधितिं करोति कृ-क्विप्। चिन्तामणि-टीकाकारक रघुनाथ शिरोमणि। रघुनाथ-शिरोमणि देखो।

दीधितिमत् (सं० पु०) दीधितयः भूम्ना सन्त्यस्य मतुप्। सूर्य।

दीन (सं० त्रि०) दीयते क्षमेति कर्त्तरि क्त ततो निष्ठा तस्य नः (ओदितश्च। पा ८।२।४५) १ दुःखित। २ दरिद्र, गरीब। ३ कातर। ४ शोच, उदास। ५ हीन। ६ क्षुब्ध। ७ सन्तप्त। ८ नम्र, विनीत। (क्ली०) ९ नगरपुष्प।

दीन (अ० पु०) धर्म विश्वास, मत, मजहब।

दीनकृष्णदास—वङ्गालके एक प्राचीन पद्यकर्त्ता। बहुतसे लोग इनके रचित पद्योंको कृष्णदास कविराज-रचित-पद्य कहते हैं, किन्तु ऐसा कहना नितान्त भूल है।

दीनता (सं० स्त्री०) दीनस्य भावः दीन-तल्-ततो टाप्। १ दैन्य, दरिद्रता, गरीबी। २ कातरता। ३ क्षोभ, उदासी, खिन्नता। ४ सन्ताप।

दीनदयाल (हिं० वि०) दीनदयालु देखो।

दीनदयाल—१ एक प्रसिद्ध हिन्दी-कवि। ये जातिके कायस्थ थे। इनका सं० १८८५ में अलीगढ़ जिलेके कोयल नामक ग्राममें जन्म हुआ था।

२ हिन्दीके एक कवि। ये जिला रायबरेलीमें रहते थे और इनके पिताका नाम था भौन कवि।

३ एक सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसी कविताएं रची हैं, उदाहरणार्थं एक नीचे देते हैं,—

"आवै रसिया मोहन गऊ चरावै
छहो राग सुध श्रीमुख गावै।
लकुट कामर मुरली कर लिये
दोहना सोहना मोहना॥
मुकुट झलक दृग हंसनि अलक
छवि अङ्ग अङ्ग नखसे सोहना मोहना।
यह छवि निरख शिव ब्रह्मा
सुर नारद वीन ले सुध जोहना॥
दीन-दयाल ख्याल अब
गतकी अगम अगोचर ताहे।
नचावत ग्वाल बाल सङ्ग
गोहना मोहना सोहना॥"

दीनदयालगिरि—हिन्दीके एक सुप्रसिद्ध कवि। इन्होंने सम्वत् १८८८में अनुरागबाग तथा सं० १९१२में अन्योक्तिकल्पद्रुम ये दो पुस्तकें लिखीं। इनके निवासस्थानका हाल इन्हीं दो ग्रन्थोंसे विदित होता है। अनुरागबागमें इन्होंने श्रीकृष्णजीका चरित्र संक्षेपरूपसे वर्णन किया है। इसमें उद्धवका श्रीकृष्णसे गोपिकाओंके सन्देशका वर्णन बड़ा लम्बा चौड़ा है और उसमें सूरदासकी भांति इन्होंने भी उद्धवका प्रेमोन्मत्त होना लिखा है। इस पुस्तकमें पांच अध्याय हैं, जिनमेंसे चारमें श्रीकृष्णकी कथा वर्णित है और पांचवेंमें देवताओंकी स्तुति है।

ये रूपकके बड़े प्रेमी थे। इन्होंने अन्य काव्यांगोंका भी वर्णन किया है, जिनकी कथा साहित्य-रीतिकी जैसी है। इनके जगह जगह पर प्राकृतिक वर्णन भी अच्छे दीख पड़ते हैं इनकी अनुरागबाग नामक पुस्तकमें लिखी हुई अनेक सुमधुर कविताओंमेंसे एक उदाहरणस्वरूप नीचे देते हैं—

"गरजे बातन ते कहा, धिक नीरधि गम्भीर।
बिकल बिलोकैं कूपपथ तृषावन्त तो तीर॥
तृषावन्त तो तीर फिरै तोहिं लाज न आवै।
भंवर लोल कल्लोल कोटि निज विभव दिखावै॥
बरनै दीनदयाल सिन्धु तो को को बरजे।
तरल तरंगी ख्यात वृथा बातनते गरजे॥"

दीनदयालशर्मा—हिन्दीके एक कवि तथा भारतधर्ममहामण्डलके सबसे बड़े व्याख्यानदाता। इनकी अवस्था प्रायः ५५ वर्षकी होगी। इन्होंने घूम घूम कर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें व्याख्यान दिये हैं तथा अच्छी सफलता प्राप्त की है।

दीनदयालु (सं० त्रि०) दीने दयालु। १ दुःखित पर दयालु, दीनों पर दया करनेवाला। (पु०) २ ईश्वरका एक नाम।

दीनदयालु पाठक—मुहूर्त्तभैरव नामक संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

दीनदयालु वाजपेयी—रघुवरसंहिता नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

दीनदरवेश—फारसीके एक कवि। इनका जन्म-स्थान बुंदेलखण्ड था और ये १८७५ सं०में विद्यमान थे तथा मारवाड़ नरेश महाराज मानसिंहके यहां रहते थे।

दीनदार (फा० वि०) जो अपने धर्म पर विश्वास रखता हो, धार्मिक।

दीनदारी (फा० स्त्री०) धर्माचरण।

दीनदास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने गोलकाण्ड नामक ग्रन्थ लिखा।

दीनदुनी (अ० स्त्री०) लोक परलोक।

दीननाथ (सं० पु०) दीनानां नाथः। दुःखित जनभर्त्ता, वह जो दुखियोंकी रक्षा करता हो।

दीननाथ—१ गीर्वाणबोध नामक संस्कृत काव्यके रचयिता। २ पूर्वसंग्रह नामक संस्कृत ज्योतिषके रचयिता।

दीननगर—पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३२° ८' उ० और देशा० ७५° २८' पू० गुरुदासपुर शहरसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५१८१ है। १७५० ई०में यह शहर अदीनबेगसे स्थापित हुआ। यह रणजित्‌सिंहका ग्रीष्मकालका वासस्थान था। हसली नामकी नदी यहां प्रवाहित है। १८६७ ई०को शहरमें म्युनिसिपैलिटी स्थापित

हुई। कम्बल तथा शालके लिये यह शहर प्रसिद्ध है। यहाँ एक चिकित्सालय और एक मिडिल स्कूल है। शहरकी आय प्रायः ८७००) रु० है।

दीननाथ पण्डित—पञ्जाब-केशरी महाराज रणजित् सिंहके राजस्व-सचिव। इनके पिता भकतमल दिल्ली नगरमें एक उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी थे। पञ्जाबके दीवान गङ्गारामके साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। १८१४ ई०में गङ्गारामने दिल्लीसे इन्हें लाहौरमें बुलाया। उसी समय गङ्गाराम लाहौरमें राज सरकारके हर्त्ताकर्त्ता थे, अतः उन्होंने दीननाथको एक पद पर नियुक्त किया। शीघ्र ही इनकी असाधारण धीशक्ति तथा अध्यवसाय सब जगह मालूम हो गया। १८२६ ई० में सुदक्ष दीवान गङ्गारामको मृत्युके बाद उनके पद पर ये ही राजकीय मुद्राध्यक्ष और सैनिकविभागके प्रधान कर्मचारीके पद पर नियुक्त किये गए। पीछे १८३४ ई०में दीवान भवानीदासके मरने पर वे प्रधान राजस्वसचिवके पद पर नियुक्त हुए। रणजित् सिंहकी मृत्युके बाद भी ये बहुत दिनों तक सिखराज्यके प्रधान दीवान रहे। ये सुवक्ता, कर्मकुशल, कूटनीतिवित्, सूक्ष्मदर्शी तथा परिश्रमी थे।

दीननाथसूरि—एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने राष्ट्रकूट-वंशीय भैरवमाडवके आदेशसे भैरव नवरत्न नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है।

दीनबन्धु (सं० पु०) १ वह जो दुःखियोंकी सहायता करता हो। २ ईश्वरका एक नाम।

दीनबन्धुमित्र—बङ्गालके एक विख्यात ग्रन्थकार और कवि। चौबीस परगनेके अन्तर्गत चेलिनो ग्राममें इनके पूर्व-पुरुष वास करते थे। इनका जन्म ई० १८३० सालके चैत मासमें हुआ था।

बचपनसे इनके कायस्थ पाठशालामें लिखना पढ़ना समाप्त करनेके बाद इनके पिताने इन्हें जमींदारी सिरीस्तेमें सामान्य वेतन पर नियुक्त करा दिया। किन्तु इस ओर इनका तनिक भी ध्यान न था, अतएव पिताकी बात अनसुनी कर ये कलकत्ते आये और यहाँ इन्होंने अंगरेजी सीखना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने हेयर-स्कूलकी उच्चतम छात्रवृत्ति-परीक्षा पास की और १८५१ ई०में कालेज छोड़ दिया। ये १८५५ ई०को पटनेमें मासिक १५० रु० पर पोष्ट-माष्टरके पद पर नियुक्त हुए। इनकी कार्यकुशलता देख गवर्मेण्ट सरकार बहुत प्रसन्न हुई और धीरे धीरे ये कलकत्तेमें जेनरल पोष्टमाष्टरके प्रधान सहकारीके पद पर नियुक्त हो गये।

लुसाई युद्धसे लौट आने पर १८७१ ई०में इन्हें रायबहादुरकी पदवी मिली और १८७३ ई०की १ली नवम्बरको इन्होंने विषम बहुमूत्र रोगसे आक्रान्त हो कर अपना कलेवर बदला। इनके बनाये हुए नीलदर्पण, लीलावती, द्वादश कविता, कमलेकामिनी नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं।

दीनभवानन्द—एक प्राचीन पदकर्त्ता। इनके बनाये हुए बङ्गला पद वैष्णवोंके लिए बड़े ही रोचक हैं।

दीनहाट—बङ्गालके कोचबिहार राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २६° ८' उ० और देशा० ८९° २८' पू० रङ्गपुर सड़क पर अवस्थित है। जनसंख्या एक हजारके करीब है। यहाँ एक हाई स्कूल है।

दीनसाधक (सं० पु०) महादेव।

दीना (सं० स्त्री०) दीन-टाप्। १ मूषिका, मूसा, चूहा। (त्रि०) २ दरिद्रा, गरीब।

दीननाथ—एक प्रसिद्ध हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डमें रहते थे। इन्होंने १९११ सं०में भक्तिमञ्जरी नामक पुस्तक लिखी।

दीननाथअध्वर्यु—एक हिन्दी-कवि। इनका सम्वत् १८७६में जन्म हुआ था तथा सं० १९००में प्रश्नोत्तरखण्ड नामक ग्रन्थ लिखा गया।

दीनार (सं० पु०) दीयते इति। १ स्वर्णभूषा, सोनेका गहना। २ निष्ककी परिमाण, निष्ककी तौल। ३ दो सुवर्ण कर्ष। ४ स्वर्णमुद्रा, मोहर। ५ माष चतुष्टयमान। ५ माशा।

दीनार (सं० पु०) १ स्वर्णभूषण, सोनेका गहना। २ निष्कको तौल। ३ स्वर्णमुद्रा, मोहर। ४ एशिया और यूरोपके नाना स्थानोंमें प्रचलित प्राचीन मुद्राविशेष। यह कहीं सोनेका और कहीं चांदीका बना होता था, देशभेदसे इसके मूल्यमें भी भेद था। अभी भारतवर्षमें यह कहीं भी प्रचलित नहीं होता, किन्तु मुसलमानोंके

यहां आनेके बहुत दिन पहलेसे इसका प्रचार था। हरिवंश, महावीरचरित आदिमें इसका उल्लेख है। साँचीमें बौद्धस्तूपका जो बड़ा खण्डहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट् चन्द्रगुप्तका एक लेख है जिसमें दीनारका नामोल्लेख पाया जाता है। अमरकोषमें भी दीनार शब्द मिलता है और निष्कके बराबर अर्थात् दो तोलेका माना गया है। रघुनन्दनके मतानुसार दीनार ३२ रत्ती सोनेका होता था। अकबरके समयमें जो दीनार नामका सोनेका सिक्का प्रचलित था उसका मान एक मिसकाल अर्थात आध तोलेके अन्दाज था।

हिन्दुस्तानकी तरह अरब और फारस देशमें भी दीनार नामकी स्वर्णमुद्रा प्रचलित थी। बहुतोंका अनुमान है कि फारस और भारतवर्षकी दीनार-मुद्रा सम्भवतः रोमके दिनारियस्‌के नामसे ही प्रचलित थी। धात्वर्थ पर ध्यान देनेसे भी दीनार शब्द आर्यभाषाका ही प्रतीत होता है। अब प्रश्न यह होता है कि यह सिक्का भारतसे फारस अरब होते हुए रोममें गया अथवा रोमसे इधर आया। यदि चन्द्रगुप्तका लेख तथा हरिवंश आदि संस्कृत ग्रन्थोंकी अधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय, तो दीनारको इसी देशका मानना पड़ेगा।

दीनारी (हिं० पु०) लोहारोंका ठप्पा।

दीप (सं० पु०) दीप्यते दीपयति वा स्वं परञ्चेति दीपि वा दीप च। वर्त्तिस्थ ज्वलदग्निशिखा, जलती हुई बत्ती, दीया, चिराग। पर्याय—प्रदीप, स्नेहाश, दीपक, कज्जलध्वज, शिखातरु, गृहमणि, ज्योतुस्तावृच, दशेन्धन, दोषातिलक, दीपास्य, नयनोत्सव।

जलदाता तृप्ति, अन्नदाता अक्षय सुख, तिलदाता मनोमत सन्तान सन्तति और दीपदाता उत्तम चक्षुलाभ करते हैं। इसका विषय पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इस प्रकार लिखा है—चन्द्रसूर्यग्रहणमें तथा नर्मदा और कुरुक्षेत्रमें तुलापुरुषदान करनेसे जो पुण्य होता है, कार्त्तिक मासमें दीपदान करनेसे उससे कहीं अधिक पुण्य प्राप्त होता है। कार्त्तिक मासमें विष्णुके आगे जो दीपदान करते हैं उनका अश्वमेधयज्ञ निष्प्रयोजन है और एक दीपदान करनेसे समस्त यज्ञका फल मिलता है। जो कार्त्तिक मासमें विष्णुके आगे दीपदान नहीं करते, उन्हें चारों ओरसे पाप घिर लेता है और जो करते हैं उन्हें अशेष फल प्राप्त होता है। कार्त्तिक मासमें दीपदान करनेसे विष्णु जैसा प्रसन्न होते हैं वैसा गयामें पिण्डदानसे नहीं होते।

"मन्त्रहीनं क्रियाहीनं शुद्धिहीनं जनार्द्दन।
व्रतं सम्पूर्णतां यातु कार्त्तिके दीपदानत॥"

इसी मंत्रसे विष्णुके आगे दीपदान करना चाहिये। बलि कार्त्तिक मासमें विधिपूर्वक विष्णुके आगे दीपदान करके सब पापोंसे मुक्त हुए थे तथा स्वर्गको चले गए थे। दीपका स्पर्श करके कोई वैधकार्य करना निषेध है, करनेसे महापाप होता है।

"दीपं स्पृष्ट्वा तु यो देवि मम कर्माणि कारयेत्।
तस्यापराधाद्वै भूमे! पापं प्राप्नोति मानवः॥"
(वराहपु०)

दीपार्थ स्नेहादिका नियम—घृत और तेलसे दीप प्रस्तुत करना चाहिये, दूसरे स्नेह पदार्थसे नहीं। (अग्निपु०)

दीप द्वारा लोक जय होता है—यह तेजोमय और चतुर्वर्गप्रद है इसीसे यत्नपूर्वक दीप द्वारा देवताको पूजा करनी होती है। दीप ७ प्रकारका है—घृतप्रदीप, तिलतैलयुक्त प्रदीप, सार्षप तैलयुक्त, फलनिर्यासजात, राजिकाजात, दधिजात और अग्नुज। पद्मसूत्रभव, दर्भ, गर्भसूत्रभव, शणज, बादर और कोषोद्भव ये पांच प्रकारकी बत्ती दीपकार्यमें व्यवहृत होती है। तैजस, दारुमय, लौहनिर्मित, मृण्मय और नारिकेलजात पात्र दीपके लिये प्रशस्त है। प्रदीपका आधार तैजसादिका होना चाहिये अथवा वृक्षके ऊपर दीपदान करना चाहिये। भूल कर भी जमीन पर दीपदान न करे, पृथ्वी सब कुछ सहन कर सकती है; केवल दो वस्तु सहन नहीं कर सकती—एक बिना कारण पदाघात और दूसरी दीपताप। इस कारण पृथ्वी जिससे ताप न पावे, इस प्रकार दीपदान करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता उसे ताम्रताप नामक नरक होता है। शोभनवृत्ताकार वर्त्तियुक्त, सुस्नेह, अभग्नपात्रमें स्थित, सुदृश्य, सुच्छाय, इस प्रकार वृक्षकोषमें यत्नपूर्वक दीपदान करना होता है। जिस दीपका ताप चार उंगलीको दूरीसे पाया जाय, वह दीप नहीं, वह पापवह्नि है। नेत्रादिका आह्लादकर,

शोभन, अर्चियुक्त, भूमितापविवर्जित, सुशिख, शब्द-शून्य, धूमरहित, अनति ऊर्ध्व और दक्षिणावर्त्त वर्त्ति-युक्त दीपदान ही मङ्गलजनक है। दीप यदि वृक्ष पर स्थित हो और पात्र यदि स्नेह द्वारा पूरित रहे, बत्ती यदि दक्षिणावर्त्तमें अवस्थित हो कर उज्ज्वलभावसे जले, तो वही दीप सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकारका दीप देव-ताओंका तुष्टिप्रद माना जाता है। यदि इस प्रकारका दीप वृक्ष पर न हो, तो उसे मध्यम दीप और यदि उस दीपमें तेल न रहे, तो उसे अधम दीप कहते हैं। शण-सूत्र वा वृक्षको त्वक्‌निर्मित अथवा जीर्ण, मल वा मलिन वस्त्र सलिताकी काममें न लाना चाहिये। श्री-वृद्धिके लिए सर्वदा तुलाकी सलिता प्रस्तुत करनी चाहिये। घृत और तैलादि मिला कर दीपको न बालना चाहिये। जो मनुष्य घृत और तैलादि मिला कर दीप बालते हैं उन्हें तामिस्र नरकमें जाना पड़ता है। वसा, मज्जा और अस्थि निर्यास प्रभृति प्राणियोंके अङ्गसमुद्भव स्नेह द्वारा दीया जलाना निषेध है, जो ऐसा करता है उसे नरक भुगतना पड़ता है। श्रीवृद्धिकी इच्छा रखते हुए अस्थिनिर्मित अथवा दुर्गन्धादियुक्त पात्रमें दीप रखें। यत्नपूर्वक कभी भी लक्षणयुक्त और देवताके निमित्त कल्पित दीप न बुझाना चाहिए और न ज्ञानपूर्वक अथवा लोभादि वशीभूत हो कर उसे चुराना ही चाहिए। क्योंकि दीप चुरानेसे अन्धा होता है और जो दीप बुझाता है वह काला होता है। (कालिकापु० ७८ अ०)

पुरुषके दीप बुझानेसे और स्त्रीके कुष्माण्ड छेदन करनेसे निश्चय ही वंश नाश होता है। पुरुष देवदत्त दीप बुझा सकते हैं।

कार्त्तिक मासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिको नरकसे छुटकारा पानेके लिये दीपदान करना चाहिये। देवता-को दीपदान करते समय घण्टा अवश्य बजाना चाहिये।

"स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा।
घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च॥"

(विधानपारिजात)

एकादशीतत्त्वधृत कालिकापुराणके वचनानुसार देवताके निमित्त कल्पित दीपका भी बुझाना मना है।

'नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुप कल्पितं।
दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्॥"

(एकादशीत०)

देवार्थ उपकल्पित दीप चुराना नहीं चाहिये, चुरानेसे अन्धा होता है। बृहत्‌संहितामें दीपका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—वामावर्त्त, मलिन-किरण, स्फुलिङ्गयुक्त और अल्पमूर्त्ति दीप विमल स्नेह और वर्त्तिकान्वित होने पर भी शीघ्र नाश प्राप्त होता है। जो दीप कम्पमान और शब्दयुक्त होता है, विशेषरूपसे उसकी प्रसारित शिखा होने पर भी शलभ वा मरुत्-विहीन हो कर शीघ्र नाश होता है। इस प्रकारका दीप पाप फल देनेवाला है। दीपादि संहत मूर्त्ति, आयत तनु, कंपनहीन, दीप्तिमान, निःशब्द, सुन्दर प्रदक्षिण गति अर्थात् जिसकी गति दक्षिणकी ओर हो, वैदुर्य और स्वर्ण सदृश द्युतिमय और रुचिर दीप शुभ-जनक माने जाते हैं। (बृहत्‌संहिता ८४ अ०) प्रदीप देखो।

दीपक (सं० क्लो०) दीपयति दीप-णिच्-ण्वुल्। १ वाक्यालङ्कार। इसका लक्षण साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखा है—जहां प्रस्तुत और अप्रस्तुतका एक ही धर्म कहा जाता है अथवा बहुत सी क्रियाओंका एक ही कारक होता है, वहां दीपकालङ्कार होता है। अप्रस्तुतका अर्थ अवर्णनीय विषय और प्रस्तुतका अर्थ वर्णनीय विषय है। उदाहरण—

"बलावलेपादधुनापि पूर्ववत्
प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥" (साहित्यद०)

जगज्जिगीषु वह शिशुपाल पहलेकी तरह (अर्थात् पूर्व जन्ममें हिरण्यकशिपु आदिके रूपमें जिस प्रकारका संसारको कष्ट देता था) आज भी अहङ्कारके साथ इस संसारको कष्ट देता है। सती स्त्री और निश्चला प्रकृतिने जन्मान्तरमें भी उस पुरुषको पाया था। निश्चला प्रकृति और सती स्त्री परजन्ममें भी उसका परित्याग नहीं करती तथा उसका आश्रय ग्रहण करती है। यहां पर वर्णनीय विषय शिशुपाल संसारको कष्ट देता है, पूर्वजन्ममें जब हिरण्यकशिपुने रावणादि रूपमें जन्म

ग्रहण किया था और जिस प्रकार वह संसारको कष्ट देता था, आज भी शिशुपालके रूपमें उसी प्रकार कष्ट देता है। हिरण्यकशिपु रावणादिकी परपीड़ारूपनिश्चला प्रकृतिने इस शिशुपाल-रूपमें जन्मग्रहणके समय भी उसका परित्याग नहीं किया अर्थात् यही यहां पर वर्णनीय विषय हुआ। यहां पर प्रस्तावनीय विषय हुआ—सती स्त्री जन्मान्तरमें भी उसका परित्याग नहीं करती। इन दो वर्णनीय और अवर्णनीयका धर्माभिसंबन्धके कारण दीपक अलङ्कार हुआ। अनेक क्रियाओंका एक कारक होनेसे दीपक अलङ्कार होता है। उदाहरण

"दूरं समागतवति त्वयि जीवनाथे
भिन्ना मनोभवशरेण तपस्विनी सा।
उत्तिष्ठति स्वपिति वासगृहं त्वदीय
मायाति याति हसति श्वसिति क्षणेन॥"
(साहित्यद०)

हृदयनाथ! तुम्हारे चले जाने पर वह दीना कामशरपीड़ित हो कर कभी उठती है, कभी सोती है, कभी हंसती है और कभी लंबी साँस भरती है। यहां पर एक नायिकाके उत्थानादिके अनेक क्रियासंबन्ध हेतु दीपक अलङ्कार हुआ।

तुल्ययोगितामें भी एक धर्मका कथन होता है पर वह या तो कई प्रस्तुतों या कई अप्रस्तुतोंका होता है। दीपकमें प्रस्तुत और अप्रस्तुतके एक धर्मका कथन होता है। दीपक चार प्रकारका होता है—आवृत्तिदीपक, कारकदीपक, मालादीपक और देहलीदीपक। आवृत्तिदीपकमें या तो एक ही क्रियापद भिन्न भिन्न अर्थोंमें बार बार आता है अथवा एक ही अर्थके भिन्न भिन्न पद आते हैं। कारक दीपक भी ठीक इसी तरहका है। माला दीपकमें एकावली और दीपकका मेल होता है। देहली दीपकमें एक ही पद दो ओर लगता है। २ रागविशेष, सङ्गीतमें छः रागोंमेंसे एक। हनुमत्के मतसे यह छः रागोंमें दूसरा राग है। यह राग सूर्यके नेत्रसे निकला है और सम्पूर्ण जातिका है तथा षड्ज स्वरसे आरम्भ होता है। इसके गानेका समय ग्रीष्मऋतुका मध्याह्न है। इसका स्वरग्राम यह है—स रे ग म प ध नि स। इसकी पांच रागिणियां मानी जाती हैं—देसी, कामोदी, नाटिका, केदारी और कान्हड़ा। पुत्र आठ हैं—कुन्तल, कमल, कलिङ्ग, चम्पक, कुसुम, राम, लहिल और हिमाल। भरतके मतसे दीपककी पत्नियां हैं केदारा, गौरी, गौड़ी, गुर्जरी और रुद्राणी तथा पुत्र हैं कुसुम, टङ्क, नटनारायण, विहागरा, किरोदस्त, रभसमङ्गला, मङ्गलाष्टक और अडाना। ३ तालविशेष, एक तालका नाम। इसमें प्लुत लघु और प्लुत होते हैं। ४ प्रदीप, दीया, चिराग। ५ पक्षीविशेष, बाज नामका पक्षी। ६ यमानी, अजवायन। ७ कुङ्कुम, केसर। ८ मयूरशिखा। ९ एक प्रकारकी आतिशबाजी। (त्रि०) १० दीप्तिकारक, प्रकाश करनेवाला, उजाला फैलानेवाला। ११ जठराग्निको दीप्त करनेवाला, पाचनकी अग्निको तेज करनेवाला। १२ उत्तेजक, शरीरमें वेग या उमंग लानेवाला।

दीपकमाला (सं० स्त्री०) १ दशाक्षरयुक्त छन्दोभेद। एक वर्णवृत्तका नाम इसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण, जगण और गुरु होता है। २ दीपकअलंकारका एक भेद।

दीपकपूरज (सं० पु०) कपूर, कपूर।

दीपकलिका (सं० स्त्री०) दीपस्य कलिकेव। १ दीपशिखा, दीएकी टेम। शूलपाणिकृत याज्ञवल्क्यसंहिताकी प्रसिद्ध टीका।

दीपकली (हिं० स्त्री०) दीप शिखा, चिरागकी लौ।

दीपकवृक्ष (सं० पु०) १ एक प्रकारका बड़ा दीवट। इसमें दीये रखनेके लिए कई शाखाएं इधर उधर निकलती रहती हैं। २ झाड़।

दीपकसुत (सं० पु०) कज्जल, काजल।

दीपकाल (सं० पु०) दीया बालनेका समय, सन्ध्या।

दीपकावृत्ति (सं० पु०) १ दीपक अलङ्कारका एक भेद। २ पनसाखा।

दीपकिट्ट (सं० क्ली०) दीपस्य किट्टं। दीपजात कज्जल, काजल।

दीपकूपी (सं० स्त्री०) दीपस्य कूपीव तैलधारकत्वात्। दीपवर्त्ति, दीएकी बत्ती।

दीपखोरी (सं० स्त्री०) दीपं खोरयति गत्याघातं करोति स्थिरीकरोतीति खोर गत्याघाते णिच्-अच् गौरादित्वात् ङीष्। दीपकूपी, दीएकी बत्ती।

दीपङ्कर—बुद्धके अवतारोंमेंसे एक अवतार।

दीपङ्कर श्रीज्ञान अतिष—एक विख्यात बौद्ध यति। ये ६८० ई०में गौड़राज्यान्तर्गत विक्रमपुर नगरमें उत्पन्न हुए थे। इनका आदि नाम चन्द्रगर्भ था। इन्होंने अवधूत जेतारिसे शिक्षा प्राप्त की थी। ये हीनयान श्रावकोंके त्रिपिटक, वैशेषिक दर्शन, महायान मतावलम्बियोंके तीन पिटक, माध्यमिक और योगाचार सम्प्रदायभुक्त बौद्धोंके दुरूह न्यायदर्शन तथा चार तन्त्रोंसे भली भांति जानकार थे। इन्होंने तीर्थिकोंके शास्त्रमें भी सम्यक् पारदर्शिता प्राप्त कर एक ब्राह्मणको तर्क-वितर्कमें परास्त किया था। पीछे इन्होंने सांसारिक सुखभोग विसर्जन, धर्म, ध्यान और अध्यात्मज्ञानसम्वलित लिपिशिक्षा नामक बौद्धोंके तन्त्रग्रन्थ पढ़नेकी इच्छा प्रकट की। इसके लिए वे कृष्णगिरिके विहारस्थ राहुलगुप्तके पास गए। यहां बौद्धोंके गुह्यतन्त्रसे दीक्षित हो कर इन्होंने अपना नाम गुह्यज्ञानवज्र रखा। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें दन्तपुरीके महासांघिकाचार्य शीलरक्षितने इन्हें पवित्र बौद्धमन्दिरमें दीक्षित कर दीपङ्करश्रीज्ञान उपाधिसे भूषित किया। इकीस वर्षकी अवस्थामें श्रीज्ञानने उच्चतम भिक्षुकी पदवी प्राप्त की और धर्मरक्षितने इन्हें बोधिसत्व मन्त्र ग्रहण कराया। इन्होंने उस समयके समस्त बौद्धपण्डितोंसे शिक्षा प्राप्त की थी। बाद इन्होंने बौद्धधर्मके प्रधान आचार्य चन्द्रगिरिसे शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा प्रगट की। तदनुसार वे एक वणिक्पोत पर चढ कर सुवर्णद्वीपको पहुंचे और वहां बारह वर्ष तक विशुद्ध बौद्धधर्म सीख कर वज्रासनस्थ (बोधगया) महाबोधिके मठमें आ कर रहने लगे।

अतीष देखो।

दीपचन्द्र—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने सं० १७५०-में परमात्मपुराण, चिद्विलास और ज्ञानदर्पण नामक ग्रन्थ लिखे।

दीपदान (सं० पु०) १ किसी देवताके सामने दीपक जलानेका काम। दीपदान पूजनका एक अंग समझा जाता है। २ कार्त्तिक महीनेमें बहुतसे दीपक जलानेका काम जो विशेष कर राधादामोदरके लिये किया जाता है। ३ मरणासन्न व्यक्तिका एक काम। इसमें उसके हाथसे आटेके जलते हुए दीयेका सङ्कल्प कराया जाता है।

दीपदानी (हिं० स्त्री०) वह डिबिया जिसमें घी बत्ती आदि दीया जलानेकी सामग्री रखी जाती है।

दीपध्वज (सं० पु०) दीपस्य ध्वज इव। कज्जल, काजल।

दीपन (सं० पु०) दीप्यते इति दीप-ल्यु। १ तगरमूल, तगरकी जड़। २ कुङ्कुम, केसर। ३ मयूरशिखा वृक्ष। ४ शालिञ्च शाक, एक प्रकारका साग। ५ कासमर्द, कसौंदा। ६ पलाण्डु, प्याज। ७ शास्त्रमन्त्र संस्कारभेद, मन्त्रके उन दश संस्कारोंमेंसे एक जिनके विना मन्त्र सिद्ध नहीं होता। जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति ये ही दश मन्त्रके संस्कार है। ८ प्रकाशन, प्रकाशित करनेका काम। ९ रसेश्वरदर्शनके अनुसार पारेका सातवां संस्कार। १० जठराग्निको तीव्र करनेकी क्रिया, भूखको उभारनेका काम। ११ उत्तेजन, आवेग उत्पन्न करना। (त्रि०) १२ दीपयिता, दीपन करनेवाला।

दीपनगण (सं० पु०) जठराग्निको तीव्र करनेवाले पदार्थोंका वर्ग। इस वर्गके अन्तर्गत चीता, धनिया, अजमोदा, जीरा, शाकवेर इत्यादि हैं।

दीपनी (सं० स्त्री०) दीप्यते जठरवह्निरनया दीप-णिच् ल्युट् स्त्रियां ङीप्। मेथिका, मेथी। २ यमानी, अजवायन। ३ पाठा। ४ कर्कटिका, ककड़ी।

दीपनीय (सं० पु०) दीप्यते जठरवह्निरनेन दीप-णिच् अनीयर्। १ यमानी, अजवायन। २ औषधवर्गविशेष। दीपनगण देखो। (त्रि०) ३ दीपनयोग्य। ४ उत्तेजनके योग्य।

दीपनीया (सं० स्त्री०) यमानी, अजवायन।

दीपनीयौषध (सं० क्ली०) आग्नेय औषध।

दीपपादप (सं० पु०) दीपस्य पादप इव। दीपवृक्ष, दीवट।

दीपपुष्प (सं० पु०) दीप इव पुष्पं यस्य। चम्पक वृक्ष, चंपा।

दीपभाजन (सं० क्ली०) दीपस्य भाजनं ६ तत्। दीपपात्र।

दीपमाला (सं० स्त्री०) दीपानां माला ६-तत्। श्रेणीभूत प्रदीप, जलते हुए दीयोंकी पंक्ति।

दीपमाली (हिं० स्त्री०) दीवाली।

दीपवत् (सं० त्रि०) दीप अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। दीपयुक्त गृहादि, जिसके घरमें दीए जलते हों।

दीपवती (सं० स्त्री०) दीपवत् स्त्रियां ङीप्। कामाख्यास्थित नदीविशेष। यह शाखती नदीके पूर्वमें अवस्थित है और हिमालय पर्वतसे निकलती है। यह नदी दीएकी नाईं अन्धकार दूर करती है, इसीसे देव मनुष्य समाजमें इसका नाम दीपवती हुआ है। इसके पूर्वमें शृङ्गाट नामका एक प्रसिद्ध पर्वत है। (कालिकापु० ८२।३)

दीपवृक्ष (सं० पु०) दीपस्य वृक्ष इव आधारः। दीपाधार, दीवट, दीयट। इसका पर्याय—दीपतरु ज्योत्स्ना वृक्ष और दीपपादप है।

दीपशत्रु (सं० पु०) दीपस्य शत्रुरिव। कीटभेद, पतंग, फतिंगा।

दीपशिखा (सं० स्त्री०) दीपस्य शिखा कारणत्वेन अस्त्यस्याः अच्-टाप्। १ कज्जल, काजल। दीपस्य शिखा। प्रदीप ज्वाला, चिरागकी लौ।

दीपशृङ्खला (सं० स्त्री०) दीपानां शृङ्खलेव। दीपाली, दीवाली।

दीपसंज्ञ (सं० पु०) चित्रकवृक्ष, चीता।

दीपसुत (सं० पु०) कज्जल, काजल।

दीपाग्नि (सं० पु०) आंचका एक परिमाण जो धूमाग्निसे चौगुना माना जाता है।

दीपान्वित (सं० त्रि०) दीपैरन्वितः। दीपयुक्त।

दीपान्विता (सं० स्त्री०) कार्त्तिक मासकी अमावस्या जिसके प्रदोषकालमें लक्ष्मीका पूजन और दीपदान आदि होता है, दीवाली। इस दिन लक्ष्मीका पूजन किया जाता है और यथाशक्ति घरमें भीतर, बाहर, पथ, हाट, श्मशान, नदीतटको दीपमालासे सजाते हैं। सूर्यके तुलाराशिमें जानेसे अर्थात् कार्त्तिक मासकी अमावस्या तिथिको नाना प्रकारके उपकरणों द्वारा पार्वणश्राद्ध करे और अपराह्न समयमें राजा नगरके सब किसीसे लक्ष्मीपूजा तथा उल्कादान करनेको घोषणा कर दें।

लक्ष्मीपूजाकी व्यवस्था।—यदि अमावस्या दो दिन पड़े, तो प्रदोष व्याप्तिके द्वारा समयका निर्णय करना होता है अर्थात् जिस दिन अमावस्याका प्रदोष समय हो उसी दिन लक्ष्मीपूजा होती है। इसका प्रमाण—

"तुलासंस्थसहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः।
उल्का हस्ता नराः कुर्युः पितृणा मार्गदर्शनम्॥"

(तिथित०)

किन्तु यदि प्रदोष दोनों दिन पावे, तो दूसरे दिन लक्ष्मीपूजा करनी चाहिये। इसका प्रमाण—

"उभयतः प्रदोषप्राप्तौ परदिन एव युग्मात्।
दण्डैकोरजनीयोगो दर्शस्य स्यात् परेऽहनि।
तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका॥"

(तिथित०)

दोनों दिन प्रदोषप्राप्ति होनेसे दूसरे दिन लक्ष्मीपूजा होगी। अमावस्या यदि दूसरे दिन एक दण्ड रात तक रहे, तो पूर्वदिनका परित्याग कर परदिनमें लक्ष्मीपूजा विधेय है। इसका नाम सुखरात्रिका है। यदि दो दिन प्रदोषकी प्राप्ति न हो, तो पार्वणश्राद्धके अनुरोधसे दूसरे दिनमें उल्कादान और पूर्वदिनमें लक्ष्मीपूजा होगी।

"अमावस्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी।
पूजनीया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका॥"

(तिथित०)

दोनों दिन प्रदोष नहीं पानेसे उल्कादान पार्वण श्राद्धके अनुसार दूसरे दिन करना होगा। भूत-चतुर्दशीके दिन जो मूर्ख उल्कादान करता है, उसीके पितृगण निराश हो उसे दारुण शाप देकर चले जाते हैं। दर्शनके लिए उल्कादानकी अवश्य कर्त्तव्यता है। जिस दिन पितृगणके उद्देशसे पार्वणश्राद्ध किया जायगा उसी दिन उल्कादान विधेय है। इसी कारण दूसरे दिन पार्वणश्राद्ध किये जाने पर उसी दिन शामको उल्कादान करना होता है और पूर्वदिन लक्ष्मीपूजा। कारण यदि रातको अमावस्या पड़े और दिनमें चतुर्दशी रहे, तो उसी दिन रातको लक्ष्मीपूजा करनी होगी इसीका नाम सुखरात्रि है। पितृकृत्यके कारण दक्षिणकी ओर प्राचीनावीत हो उल्कादान करना चाहिए।

उल्काग्रहणका मंत्र—

"शस्त्राशस्त्रहतानाञ्च भूताना भूतदर्शयोः।
उज्ज्वलज्योतिषा देहं दहेयं व्योमवह्निना॥"

उल्कादानका मंत्र—

"अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिं॥"

उल्काविसर्जनका मंत्र—

"यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते॥"

इसी मंत्रसे उल्काग्रहण दान और विसर्जन करना होता है। इस दिन बाल और आतुरके सिवा किसी-को दिनमें न खाना चाहिये। प्रदोषके समय यथाविधान लक्ष्मीपूजा करके देवताके घरमें दीपवृक्ष प्रदान करे और पीछे चतुष्पथ, श्मशान, नदी, पर्वत, सानु, वृक्षमूल, गोष्ठ, चत्वर, गृह और क्रय-विक्रय स्थानको दीप पंक्तिसे अच्छी तरह सुशोभित करे। इस प्रकार चारों ओर रोशनी करनेका नाम दीवाली है। युक्तप्रदेशमें यह त्योहार खूब धूमधामसे मनाया जाता है।

दीपान्विता अमावस्याके दिन लक्ष्मीपूजाप्रयोग।—घरमें उत्तरमुखी होकर लक्ष्मीका पूजन करे। पहले स्वस्ति-वाचन करके सङ्कल्प करे। 'ॐ तदसद्य श्री अद्येत्यादि अमुकगोत्र अमुक देवशर्मा परम विभूतिलाभकामः लक्ष्मीपूजनमहं करिष्ये', इस प्रकार सङ्कल्प करके शाल-ग्राम वा घटादिस्थ जलसे लक्ष्मीपूजा करे। 'पाशाक्ष' इत्यादि मंत्रसे ध्यान करके यथाशक्ति, दश वा षोडशोप चारसे पूजा करनेका विधान है। अनन्तर—

"ओं नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।
या गतिस्त्वत् प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्॥"

इस मंत्रसे तीन बार पुष्पाञ्जली दे कर निम्नलिखित मंत्रसे प्रणाम करे।

"ओं विश्वरूपस्य भार्य्यासि पद्मे पद्मालये शुभे।
सर्व्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥"

इसके बाद कुवेरादिका पूजन करना होता है। पूजा हो जानेके बाद घरमें दीप जलाते हैं। दीपका मंत्र—

"अग्निर्ज्योतिः रविर्ज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च।
उत्तमः सर्व्वज्योतिषां दीपोऽयं प्रतिगृह्यतां॥"

बाद ब्राह्मण और बन्धुबान्धवोंको खिलापिला कर स्वयं भोजन करते हैं। लक्ष्मीपूजा देखो।

काली कुलसद्भाव नामक तान्त्रिकग्रन्थके मतसे—इस दिन महानिशाको कालीपूजा की जाती है। विशेष विवरण श्यामा शब्दमें देखो।

दीपाली (सं॰ स्त्री॰) दीपानां आली। दीपश्रेणी, जलते हुए दीपकी पंक्ति।

दीपावती (सं॰ स्त्री॰) रागिणीविशेष। यह दीपक और सरस्वतीके योगसे उत्पन्न हुई है।

दीपावलि (सं॰ स्त्री॰) दीपानां आवलिः ६-तत्। १ दीप-श्रेणी, दीयोंकी पंक्ति। २ दीवाली।

दीपिका (सं॰ स्त्री॰) दीपयति प्रकाशयति दीप-णिच्-ण्वुल, टापि अत इत्वं। १ महिम्नापनीय श्रोनिवासकृत ज्योतिर्ग्रन्थ। २ रागिणीविशेष। यह रागकी पत्नी मानी जाती है और प्रदोषकालमें गाई जाती है। (त्रि॰) ३ प्रकाश करनेवाली, उजाला फैलानेवाली।

दीपिकातैल (सं॰ क्ली॰) तैलौषधभेद। इसको प्रस्तुत प्रणाली—देवदार, सलई या चीड़की सात आठ अंगुल लम्बी लकड़ीको लेते और उसे रूए आदिसे कलनी-की तरह चारों ओर छिद्र करते हैं। फिर उसमें रेशम लपेट कर तेलमें खूब डुबाते और वत्तीकी तरह जलाते हैं। इस प्रकार प्रज्वलित वत्तीमेंसे जो गरम गरम तैल बूंद बूंद गिरता है, उसीका नाम दीपिकातैल है। कानका दर्द दूर करनेके लिये यह तैल बहुत उपकारी है।

दीपित (सं॰ त्रि॰) दीपयतीति दीप-णिच्-तृच्। १ दीप्ति-कर्त्ता, प्रकाश करनेवाला। २ प्रकाशित, प्रज्वलित। ३ चमकता हुआ। ४ उत्तेजित।

दीपीय (सं॰ त्रि॰) दीप अपूपादित्वात् हितार्थे छ। दीपहित।

दीपोत्सव (सं॰ पु॰) दीपैरुत्सवः। १ दीपहेतुक उत्सव, दीवाली। २ दीपान्विता अमावस्या।

दीप्त (सं॰ त्रि॰) दीप क्त। १ प्रकाशान्वित, जगमगाता, हुआ। २ प्रज्वलित, जलता हुआ। (क्ली॰) ३ स्वर्ण, सोना। ४ हिङ्गु, हींग। ५ निम्बुक, नीबू। ६ सिंह। ७ नासिकागत रोगविशेष, नाकका एक रोग। इसमें नाकसे भापकी तरह गरम गरम हवा निकलती है और नथुनोंमें जलन होती है। (त्रि॰) ८ उज्ज्वल, सफेद। ९ आलोकमय, प्रकाशमय।

दीप्तकंस ( सं० क्ली० ) शुद्धकांस्य धातु, शुद्ध कांसा।

दीप्तक ( सं० क्ली० ) दीप्तमेव स्वार्थे कन्। स्वर्ण, सोना।

दीप्तकिरण ( सं० पु० ) दीप्ताः किरणाः यस्य। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, आक, मंदार।

दीप्तकीर्त्ति ( सं० त्रि० ) दीप्ता कीर्त्तिर्यस्य। १ प्रकाशमान यशस्क, जिसका यश बहुत दूर तक फैल गया हो। २ कार्त्तिकेय।

दीप्तकेतु (सं० पु०) १ नृपभेद, एक राजाका नाम। २ दक्षसावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम। दीप्तः केतुः कर्मधा०। ३ दीप्तध्वजा। दीप्तः केतुर्यस्य। ( त्रि० ) दीप्त ध्वजक, जिसकी ध्वजा प्रदीप्त हो उसे दीप्तकेतु कहते हैं।

दीप्तजिह्वा ( सं० स्त्री० ) दीप्ता जिह्वा यस्याः। उल्कामुखी शृगाली, मादा गीदड़, सियारिन। गीदड़के मुंहका अगला भाग कुछ काला होता है, इसीसे इसका नाम उल्का या लुआठा मुख पड़ा है। उल्काका दूसरा अर्थ जलता हुआ पिण्ड या प्रकाश है। इसी भ्रमसे दीप्तजिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है।

दीप्तपिङ्गल ( सं० पु० ) दीप्तपिङ्गलश्च दीप्तं स्वर्ण तद्वत् पिङ्गलो वा। सिंह।

दीप्तपुष्पा ( सं० स्त्री० ) लाङ्गली वृक्ष, कलियारी।

दीप्तमूर्त्ति (सं० त्रि०) दीप्ता मूर्त्तिर्यस्य। १ प्रकाशान्वित मूर्त्ति, जो मूर्त्ति बहुत सफेद हो। ( पु० ) २ विष्णु।

दीप्तरस ( सं० पु० ) दीप्त उज्ज्वलः रसो यस्य। किञ्चुलक, केंचुआ। रातके समय अंधेरेमें केंचुएके शरीरके रससे एक प्रकारकी चमक निकलती है, इसीसे इसका नाम दीप्तरस पड़ा।

दीप्तरोम (सं० पु०) विश्वदेवभेद, एक विश्वदेवका नाम।

दीप्तलोचन (सं० पु०) दीप्ते लोचने नयने यस्य। विड़ाल, बिल्ली।

दीप्तलोह (सं० क्ली०) दीप्तं लोहमिव। १ कांस्य, कांसा। २ ज्वलित लौह, तपाया हुआ लाल लोहा।

दीप्तवर्ण ( सं० त्रि० ) दीप्तं स्वर्णमिव वर्णो यस्य। १ सुवर्णतुल्य, जिसका वर्ण सोनेसा चमकता हो। ( पु० ) २ कार्त्तिकेय।

दीप्तशक्ति ( सं० त्रि० ) दीप्ता शक्तिर्यस्य। १ प्रकाशमान सामर्थ्य, जिसका प्रभाव बहुत फैल गया है। (पु०) २ कार्त्तिकेय।

दीप्तांशु (सं० पु०) दीप्ता अंशवोऽस्या। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आक, मदार।

दीप्ता ( सं० स्त्री० ) दीप्त-टाप्। १ लाङ्गलिका वृक्ष, कलियारी। २ ज्योतिष्मती लता, मालकँगनी। ३ सातला नामक थूहर। ( त्रि० ) ४ प्रकाशयुक्त, चमकती हुई। ५ सूर्यसे प्रकाशित।

दीप्ताक्ष ( सं० पु० ) दीप्ते अक्षिणी यस्य। १ विडाल, बिल्ली। (त्रि०) २ दीप्तिलोचनान्वित, उज्ज्वल चक्षुविशिष्ट, जिसकी आंखें चमकती हों।

दीप्ताग्नि (सं० पु०) दीप्तः अग्निर्यस्य। १ अगस्त्यमुनि। इन्होंने समुद्रको पी लिया था और वातापि नामक राक्षसको पचा डाला था, इसीसे इनका नाम दीप्ताग्नि हुआ है। अगस्त्य देखो। ( त्रि० ) २ दीप्तजठराग्नियुक्त, जिसकी पाचनशक्ति बहुत प्रबल हो। ३ प्रज्वलित अग्नि, जिसकी भूख जगी हो, भूखा।

दीप्ताङ्ग (सं० त्रि०) दीप्तं अङ्गं यस्य। १ दीप्तियुक्त देह, जिसका शरीर चमकता हो। ( पु० ) २ मयूर, मोर।

दीप्ति ( सं० पु० ) दीप-क्तिन्। दीपन, उजला, रोशनी। इसका पर्याय—प्रभा, रुच्, रुचि, त्विष, भा, भास, छवि, द्युति, रोचिस् और शोचि है। २ स्त्रियोंका अयत्नज गुण।

वयसभोग, देशकाल और गुणादिद्वारा जो कान्ति बहुत उद्दीप्त होती है, उसीको दीप्ति कहते हैं। अवस्थाके अनुसार स्त्रियोंकी शारीरिक कमनीयता उत्पन्न होती है, उसीका नाम दीप्ति है। ३ अभिव्यक्ति, ज्ञानका प्रकाश जिससे विवेक उत्पन्न होता है और अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो जाता है। दीप संज्ञायां क्तिन्। ३ लाक्षा, लाख। ४ कांस्य, कांसा। ५ कान्ति, शोभा, छवि। ६ विश्वदेवभेद, एक विश्वदेवका नाम।

दीप्तिक (सं० पु०) दीप्त्या कायतीति कै-क। दुग्धपाषाणवृक्ष, शिरशोला।

दीप्तिकेश्वर तीर्थ ( सं० क्ली० ) दीप्तिकेश्वरं नाम तीर्थं। तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

दीप्तिमत् ( सं० त्रि० ) दीप्ति विद्यतेऽस्य, दीप्ति-मतुप्। १ दीप्तियुक्त, चमकता हुआ। २ कान्तियुक्त, शोभायुक्त। ( पु० ) ३ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

दीप्तिमान् ( हिं॰ वि॰ ) दीप्तिमत् देखो।

दीप्तोद ( सं॰ पु॰ ) दीप्तं उदकं यत्र उदकस्य उदादेशः। १ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें वधूसर नामकी एक नदी है जिसमें स्नान कर दानादि करनेसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं। यहां भृगुनन्दन परशुरामने स्नान करके अपना खोया हुआ तेज फिरसे प्राप्त किया था। देवयुगमें भृगुने यहां घोर तपस्या की थी। (भारत वन ८८ अ॰)

दीप्तोपल ( सं॰ पु॰ ) दीप्तः सूर्यकिरणसम्पर्कात् ज्वलित उपलः। सूर्यकान्त मणि।

दीप्य ( सं॰ त्रि॰ ) दीप्ताय दीपनाय हितं गवादि॰ यत्। दीप्तिहित, जो जलाया जाने को हो। २ जो जलाने योग्य हो। ( पु॰ ) दीपाय अग्निदीपनाय हितं अपूपादित्वात् पक्षे यत्। ३ यमानी, अजवायन। यह बहुत अग्निकारक होता है, इसीसे इसका नाम दीप्य पड़ा। ४ जीरक, जीरा। दीप तत्र साधु इति यत्। ५ मयूरशिखा। ६ रुद्रजटा।

दीप्यक ( सं॰ क्ली॰ ) दीपाय हितं साधुरिति वा। दीप्यत् सुतः स्वार्थे कन्। १ अजमोदा। २ यमानी, अजवायन। ३ मयूर-शिखा। ४ लाचमस्तक वृक्ष, रुद्रजटा। ५ रक्तचित्रक, लाल चीता। ६ कुङ्कुम, केसर। ७ तगर। ८ निम्बूकवृक्ष, नीबूका पेड़। ९ श्येन पक्षी।

दीप्यका ( सं॰ स्त्री॰ ) यमानी, अजवायन।

दीप्यमान (सं॰ त्रि॰ ) प्रज्वलित, चमकता हुआ।

दीप्यवल्ली (सं॰ स्त्री॰) अजमोदा।

दीप्या ( सं॰ स्त्री॰ ) १ पिण्डखर्जुरी पिण्ड खजूर। २ कृष्णजीरकभेद, एक प्रकारका काला जीरा। ३ यमानी, अजवायन।

दीप्र ( सं॰ त्रि॰ ) दीप्यते इति दीप-र ( नमिकम्पाति। पा३।२।१६७) दीप्तिशील, प्रकाशयुक्त।

दीमक (फा॰ स्त्री॰) लकड़ी आदिमें उत्पन्न एक प्रकारका कीड़ा। यह चींटीकी तरह होती है और इसे जालीदार पर निकलते हैं। बल्मीक देखो।

दीयट (हिं॰ पु॰) दीवट देखो।

दीयमान ( सं॰ त्रि॰ ) दीयते इति दा कर्मणि शानच्। जिसे किसीको देना हो, जो देनेके लिये हो।

दीया (हिं॰ पु॰) १ वह बत्ती जो प्रकाशके लिये जलाई जाती है, चिराग। दीप देखो। ( स्त्री॰ ) २ वह बरतन जिसमें तेल डालकर जलानेके लिये बत्ती दी जाती है।

दीयासलाई ( हिं॰ स्त्री॰ ) दियासलाई देखो।

दीरघ-हिन्दीके एक कवि। ये जातिके ब्राह्मण तथा काशीवासी थे। इन्होंने सम्वत् १८७९ में दो ग्रन्थोंको लिखा जिनके नाम दृष्टान्ततरङ्गिणी और वंश-वर्णन है।

दीर्घ ( सं॰ त्रि॰ ) दृणातीति दृ-विदारणे बाहु॰ घञ्। १ आयतलम्बा। परीमाण देखो। (पु॰) २ तालशालवृक्ष। ३ उष्ट्र, ऊंट। ४ माडवृक्ष। ५ उष्ट्र, ऊंट। ६ रामशर, नरकट। ७ ज्योतिषमें पांचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशिको दीर्घराशि कहते हैं। ८ हिमालवर्ण, वह वर्ण जिसका उच्चारण खींच कर हो। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये दीर्घस्वर कहलाते हैं। सङ्गीतमें भी दो मात्राओंका नाम दीर्घ है, यथा अ—अको एक साथ उच्चारण करनेमें जो काल लगता है, वह दीर्घ काल कहलाता है।

दीर्घकणा ( सं॰ स्त्री॰ ) दीर्घा कणा नित्यकर्मधा॰। गौरजीरक, सफेद जीरा।

दीर्घकण्टक ( सं॰ पु॰ ) दीर्घः कण्टको यस्य। बबूरवृक्ष, बबूलका पेड़।

दीर्घकण्ठ (सं॰ पु॰-स्त्री॰) दीर्घः कण्ठो यस्य। १ बकपक्षी, बगला। २ दानवभेद, एक दानवका नाम। (त्रि॰) ३ आयत कण्ठमात्र, जिसकी गरदन लम्बी हो।

दीर्घकण्ठक ( सं॰ पु॰ ) दीर्घकण्ठ-कप्। बकपक्ष, बगला।

दीर्घकन्द ( सं॰ क्ली॰ ) दीर्घः कन्दो यस्य। १ मूलक, मूली। २ मालाकन्द।

दीर्घकन्दक (सं॰ स्त्री॰) दीर्घकन्द-कप्। मूलक, मूली।

दीर्घकन्दिका ( सं॰ स्त्री॰ ) दीर्घकन्दक टाप् टापि अत इत्वं। तालमूली, मुसली।

दीर्घकन्धर ( सं॰ पु॰ ) दीर्घः कन्धरो यस्य। १ बकपक्षी, बगला। ( त्रि॰ ) २ दीर्घकन्धरयुक्त, जिसकी गरदन लम्बी हो।

दीर्घकर्ण (सं॰ त्रि॰) दीर्घौ कर्णौ यस्य। १ जिसके कान

बड़े बड़े हों। (पु०) २ जातिविशेष, एक जातिका नाम।

दीर्घकाण्ड (सं० पु०) दीर्घः काण्डो यस्य। गुच्छ तृण, गोंदला।

दीर्घकाण्डा (सं० स्त्री०) १ पातालगरुड़ीलता, छिरछिटा। २ तिक्ताङ्गा, एक प्रकारकी बेल।

दीर्घकाय (सं० त्रि०) दीर्घः कायः यस्य। आयत शरीरी, लम्बे चौड़े शरीरवाला।

दीर्घकाल (सं० क्ली०) दीर्घं कालं। अनेक दिन।

दीर्घकील (सं० पु०) दीर्घः कीलः शाखादण्डो यत्र। अङ्कोठवृक्ष, अंकोलका पेड़।

दीर्घकीलक (सं० पु०) दीर्घकील: स्वार्थे कन्। अङ्कोठ वृक्ष, अंकोलका पेड़।

दीर्घकुल्या (सं० स्त्री०) गजपिप्पली।

दीर्घकूरक (सं० क्ली०) दीर्घं कूरकं अन्नं। राजान्न, आन्ध्रदेशमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

दीर्घकेश (सं० पु० स्त्री०) दीर्घः केश इव लोम अस्य। १ भल्लुक, भालू। २ देशभेद, एक देश जो कूर्मविभागके पश्चिमोत्तरमें अवस्थित है। (त्रि०) ३ आयतकेशयुक्त, जिसके लम्बे लम्बे बाल हों।

दीर्घकोशिका (सं० स्त्री०) दीर्घकोशो यस्याः कप्, कापि अत इत्वं। भिन्नायिका, सुतुही। इसका पर्याय—दुर्णामा और शुक्ति है।

दीर्घखरच्छन्द (सं० पु०) इत्कट, एक प्रकारका क्षुप।

दीर्घगति (सं० पु०) दीर्घः गतिर्यस्य। उष्ट्र, ऊंट। यह लम्बे लम्बे डेग रखता है, इसीसे इसका नाम दीर्घगति हुआ है।

दीर्घगमन (सं० त्रि०) दीर्घं गच्छति दीर्घ-गम-णिनि। जो बहुत तेजीसे जाता हो।

दीर्घग्रन्थि (सं० पु०) दीर्घोग्रन्थि पर्व यस्य। गजपिप्पली।

दीर्घग्रीव (सं० पु०) दीर्घा ग्रीवा यस्य। १ उष्ट्र, ऊँट। २ नीलक्रौञ्च, सारस। ३ देशभेद, एक देशका नाम। यह कूर्म-विभागके दक्षिण-पश्चिमकी ओर अवस्थित है। (त्रि०) जिसकी गरदन लम्बी हो।

दीर्घघाटिक (सं० पु० स्त्री०) दीर्घा घाटा अस्यास्ति ठन्। १ उष्ट्र, ऊंट। २ बक, बगला। (त्रि०) ३ लंबी गरदनवाला।

दीर्घचञ्चु (सं० पु०) दीर्घा चञ्चुर्यस्य। पक्षिभेद, एक किस्मकी चिड़ियां।

दीर्घच्छद (सं० पु०) दीर्घाश्छदा यस्य। १ इक्षु, ईख। (त्रि०) २ दीर्घच्छदक, जिसके लम्बे लम्बे पत्ते हों।

दीर्घच्छन्दस् (सं० क्ली०) छन्दोविशेष, बड़ा छन्द।

दीर्घजङ्गल (सं० पु०) दीर्घं यथा तथा जङ्गलो गतिशील:। मत्स्यविशेष, बड़ा भींगा।

दीर्घजङ्घ (सं० पु०) दीर्घा जङ्घा यस्य। १ बक, बगला। २ उष्ट्र, ऊंट। (स्त्री०) ३ दीर्घ जाँघ, लम्बी टांग। (त्रि०) ४ आयत जानुयुक्त, जिसकी टाँगें लम्बी हों।

दीर्घजानुक (सं० पु०) दीर्घः जानुर्यस्य ततो कप्। दीर्घजङ्घ, लंबी टांग।

दीर्घजिह्व (सं० पु०) दीर्घा जिह्वा यस्य। १ सर्प सांप। २ दानवविशेष, एक दानवका नाम। (त्रि०) ३ जिसकी लंबी जीभ हो।

दीर्घजिह्वा (सं० स्त्री०) दीर्घजिह्व-टाप्। १ राक्षसीभेद, विरोचनकी पुत्री एक राक्षसी जिसे इन्द्रने मारा था। २ कुमारानुचर मातृगणभेद, मातृगणोंमेंसे एक जो कार्त्तिकेयकी अनुचरी है।

दीर्घजिह्वी (सं० पु०) १ कुक्कुर, कुत्ता।

दीर्घजीविन् (सं० त्रि०) दीर्घं बहुकालं जीवति जीवणिनि। बहुकालजीवी, जो बहुत दिनों तक जीए।

राजा यदि न्यायपूर्वक दण्ड दें, महापातकोंसे धन न लें और वेदपारग ब्राह्मण यदि प्रभु हों, तो ऐसे समयमें वे दीर्घजीवी होते हैं। दीर्घजीवन लाभ करनेमें विशुद्धाचारकी आवश्यकता है। विशुद्धाचारी और स्वधर्मपरायण होने पर निश्चय ही दीर्घ-जीवन प्राप्त हो सकता है। यथेच्छाचार ही अकाल मृत्युका प्रतिकारण है, इसीसे मन्वादि सभी शास्त्रोंमें ही विशुद्धाचारीकी प्रशंसा देखी जाती है और अकाल मृत्युके बाद उद्देश स्थलमें भी इस प्रकार लिखा है—विहितकर्मका अननुष्ठान, निन्दितका सेवन, इन्द्रियका अनिग्रह, आलस्य और भय ये सब ही एकमात्र अकाल मृत्युके कारण हैं। जो ये अनुष्ठान नहीं करते, अर्थात् स्वधर्मपरायण हो कर रहते हैं, वे ही दीर्घजीवन प्राप्त कर सकते हैं।

दीर्घतन्तु (सं० पु०) दीर्घास्तन्तवः स्तुतयो यस्य। १ प्रभूत-स्तुतिक देवादि, वह देवादि जिसमें अनेक स्तव हों। २ दीर्घकालव्यापो सन्तानक। ३ दीर्घ तन्तु, लंबा तागा।

दीर्घतपस् (सं० पु०) दीर्घं बहुकालव्यापकं तपो यस्य। १ बहुकालव्यापक तपस्क आयुवंशीय नृपभेद। हरिवंशके अनुसार आयुवंशीय एक राजा। इन्होंने बहुत काल तक तप किया था, इसीसे इनका नाम दीर्घतपस् पड़ा है। (त्रि०) २ जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो।

दीर्घतमस् (सं० पु०) १ काशीराजके पुत्र धन्वन्तरीके पिता, उतथ्यके पुत्र। महाभारतमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—उतथ्य नामक एक धीसम्पन्न मुनि थे। इनकी स्त्रीका नाम ममता था। ममता जिस समय पूर्ण गर्भवती थी उस समय उतथ्यके छोटे भाई देवताओंके पुरोहित वृहस्पति ममताके पास पहुंचे और सहवासकी इच्छा प्रकट करने लगे। इस पर ममताने वृहस्पतिसे कहा, 'मैंने तुम्हारे बड़े भाईसे गर्भ धारण किया है, अतः इस समय तुम जाओ। मेरी इस सन्तानने गर्भमें ही रह कर षडङ्गवेद अध्ययन किया है, तुम्हारा वीर्य भी अमोघ है, एक कुक्षिमें दो सन्तानका रहना असम्भव है। इसलिये तुम अभी चले जाओ।' लेकिन वृहस्पति अति तेजस्वी हो कर भी कामके वशमें आ कर अपनेको रोक न सके और सहवासमें प्रवृत्त हुए। इस पर गर्भस्थ बालकने भीतरसे कहा, 'हे तात! शान्त हो, एक गर्भमें दो बालकोंकी स्थिति नहीं हो सकती।' जब वृहस्पतिने इतने पर भी न सुना, तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिशुने अपने पैरोंसे वीर्यको रोक दिया, जिससे वह वीर्य नीचे जमीन पर गिर पड़ा। इस पर भगवान् वृहस्पतिने क्रुद्ध हो कर गर्भस्थ बालकको शाप दिया, 'तुमने मुझे ऐसे समयमें इस तरहकी बात कही, इसलिये तुम दीर्घतामसमें प्रविष्ट हो अर्थात् अन्धा हो जा।' वृहस्पतिके शापसे वह बालक अन्धा हो कर जन्मा और दीर्घतमा नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्रद्वेषी नामकी एक ब्राह्मण-कन्यासे इनका विवाह हुआ। इस स्त्रीके गर्भसे इन्हें गौतम आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए जो सबके सब लोभ और मोहके वशीभूत थे। दीर्घतमा सुरभि-सन्तान काम-धेनुसे गोधर्म शिक्षा प्राप्त करके उससे श्रद्धापूर्वक मैथुन आदिमें प्रवृत्त हुए। दीर्घतमाको इस प्रकार मर्यादाभङ्ग करते देख आश्रमके मुनि लोग उनके विरुद्ध हो गये। उनकी स्त्री प्रद्वेषी भी बहुत विरक्त हुई। एक दिन दीर्घतमाने स्त्रीको अप्रसन्न देख कर पूछा, 'तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती हो?' इस पर प्रद्वेषीने जवाब दिया, 'स्वामी स्त्रीका भरण पोषण करते हैं इसीसे उन्हें भर्त्ता या पति कहते हैं। पर आप अन्धे हैं, कुछ कर नहीं सकते। इतने दिनों तक मैं आपका तथा आपके पुत्रोंका भरण पोषण करते करते थक गई, अब आगे मुझसे यह काम नहीं हो सकता।

दीर्घतमाने क्रुद्ध हो कर कहा, 'आजसे मैं यह मर्यादा बांध देता हूं कि स्त्री एक मात्र पतिसे ही अनुरक्त रहे। पति चाहे जीता हो या मरा, वह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती। यदि कोई स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी, तो वह पतित हो जायगी।' स्वामीके ऐसे वचनोंसे कुपित हो कर ब्राह्मणीने अपने लड़कोंसे कहा, 'तुम लोग अपने अन्धे पिताको बांध कर गङ्गामें फेंक आओ।' माताके आज्ञानुसार वे उन्हें गङ्गाकी धारामें बेड़ा पर चढ़ा कर बहा आये। दीर्घतमा गङ्गामें बहुत दूर तक बह कर चले गये। संयोगवश बलि नामक एक राजा गंगास्नानको आये हुए थे। वे ऋषिको ऐसी अवस्थामें देख अपने घरको ले गये। बाद उन्हें तेजस्वी जान कर राजाने उनसे प्रार्थना की, 'हे महाभाग! मेरी स्त्रीसे सहवास कर एक योग्य सन्तान उत्पन्न कीजिये जिससे मेरी वंशकी रक्षा हो।' जब ऋषि सम्मत हुए, तब राजाने अपनी सुदेष्णा नामकी रानीको उनके पास भेजा। किन्तु रानी उन्हें अन्धा और बुड्ढा देख कर उनके पास न गई; लेकिन उसने अपनी दासीको भेज दिया। ऋषिने उस शूद्रा दासीसे कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये। राजाने यह जान कर पुनः अपनी स्त्री सुदेष्णाको उनके पास भेजा। दीर्घतमाने रानीका सारा अंग टटोल कर कहा, 'जाव, तुम्हें अत्यन्त तेजस्वी पुत्र होंगे और वे अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म नामसे प्रसिद्ध होंगे। इस भूमण्डलमें उनके नामसे एक एक देश विख्यात होगा। अंगके नामसे अंग

देश, वंगसे वंग देश, पुण्ड्रसे पुण्ड्र देश और सुह्मसे सुह्मदेश होगा।' (भारत आदिप० १०४ अ०) नीतिमञ्जरीमें लिखा है—वैतन आदि भृत्योंने दीर्घतमाको पहले अग्निमें डाल दिया, किन्तु अश्विनीकुमारकी रक्षासे इस बार बच गये। उन्होंने पुनः दीर्घतमाको जलमें फेंक दिया, इस बार भी इनका कुछ भी अनिष्ट न हुआ। बाद वैतनने इनके मस्तक, वक्ष और दोनों बाहुओं पर आघात किया था अन्तमें बहुत अनुतप्त हो कर ऋषिने आत्महत्या कर डाली।

दीर्घतरु (सं० पु०) दीर्घः तरुः। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। २ दीर्घवृक्ष मात्र, लंबा पेड़।

दीर्घता (सं० स्त्री०) दीर्घस्य भावः दीर्घ-तल-टाप्। आयति, लम्बाई।

दीर्घतिमिषा (सं० स्त्री०) दीर्घतिम वा किषन्। कर्कटी, ककड़ी।

दीर्घतुण्डा (सं० स्त्री०) दीर्घं तुण्डं यस्या। १ छुछुन्दरी, छछूंदर। (त्रि०) २ दीर्घतुण्डयुक्त गजादि, जिसका मुंह लम्बा हो, जैसे हाथी आदि। (क्ली०) ३ दीर्घतुण्ड लम्बा मुंह।

दीर्घतृण (सं० पु०) दीर्घं तृणमिव, अभिधानात् पुंस्त्वं। १ पल्लिवाह तृण, एक प्रकारकी घास जिसको खानेसे पशु दुर्बल हो जाते हैं। (क्ली०) २ दीर्घतृण, लम्बी घास।

दीर्घदण्ड (सं० पु०) दीर्घो दण्ड इव काण्डावच्छेदेन। १ एरण्डवृक्ष, अंडीका पेड़। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

दीर्घदण्डी (सं० स्त्री०) दीर्घदण्ड गौरादित्वात् ङीष्। गोरक्षी, गोरख इमली।

दीर्घदर्शिता (सं० स्त्री०) दीर्घदर्शिनो भावः दीर्घदर्शिन् तल् अनुनासिक लोपः ततो टाप्। बहुदर्शिता, बहुत दूर तककी बातका विचार।

दीर्घदर्शी (सं० पु०) दीर्घं दीर्घात् वा पश्यति णिनि। १ वह जो दूर तक सब बातोंका परिणाम सोचता हो, पण्डित। २ भल्लूक, भालू। ३ गृध्र, गीध। (त्रि०) ४ दूरदर्शक, बहुत दूर तक सोचनेवाला।

दीर्घदल (सं० पु०) मालाकन्द।

दीर्घदृष्टि (सं० पु०) दीर्घा दृष्टिर्दर्शनमस्य। १ पण्डित, वह जो दूर तककी बात सोचता हो। २ दूरवीक्षण नामक यन्त्रभेद, दूरबीन।

दीर्घद्रु (सं० पु०) दीर्घश्चासौ द्रुश्चेति। तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

दीर्घद्रुम (सं० पु०) दीर्घो द्रुमः। शाल्मलिवृक्ष, सेमरका पेड़।

दीर्घद्वार—भविष्य ब्रह्मखण्डोक्त विशाल देशान्तर्वर्ती एक जनपद। यह गण्डकी नदीके किनारे अवस्थित माना जाता था। पहले इसमें सात हजार ग्राम और तीस शहर लगते थे।

दीर्घनख—बुद्धके सामयिक एक ब्रह्मचारी। इन्होंने 'दीर्घनख परिव्राजक-परिपृच्छा' नामकी पुस्तक रची है।

दीर्घनाद (सं० पु०) दीर्घः दूरगामित्वात् विस्तीर्णः नादो यस्य, कुम्भादित्वात् न णत्वं। १ शङ्ख। २ आयतशब्द, जोरकी आवाज। (त्रि०) ३ बहुकालस्थायी शब्दयुक्त घण्टादि, जिससे भारी शब्द निकले।

दीर्घनाल (सं० पु०) दीर्घं नालं यस्य। १ यावनाल, ज्वार। २ गुण्डतृण, गोंदला घास। (क्ली०) ३ दीर्घरोहिष्क, रोहिस घास।

दीर्घनास (सं० त्रि०) दीर्घा नासा यस्य। दीर्घनासिकायुक्त, जिसकी नाक लम्बी हो। २ दीर्घनासिका, लम्बी नाक।

दीर्घनिद्रा (सं० स्त्री०) दीर्घा निद्रा। १ मृत्यु, मौत। २ दीर्घकालव्यापिनी निद्रा, बहुत देर तक रहनेवाली नींद।

दीर्घनिश्वास (सं० पु०) लम्बी सांस जो दुःख या शोकके आवेगके कारण ली जाती है।

दीर्घनिस्वन (सं० पु०) शङ्ख।

दीर्घपक्ष (सं० पु०) दीर्घौ पक्षौ यस्य। १ कलिङ्गाख्य, कलिंग पक्षी। २ दीर्घपक्षयुक्त पक्षिमात्र, वह पक्षी जिसके डैने लम्बे हों।

दीर्घपटोलिका (सं० स्त्री०) दीर्घा पटोलिका। लताफल विशेष। इसका गुण—स्निग्ध, कटु, विष्टम्भी और गुरु; वायु, पित्त, श्लेष्मा, रुचि, भेदकारक, मधुर और शीतल है।

दीर्घपत्र (सं० पु०) दीर्घं पत्रं यस्य। १ राजपलाण्डु,

लाल प्याज। २ विष्णुकन्द। ३ हरिदर्भ, एक प्रकारका कुश। ४ कुपीलुवृक्ष, कुचला। ५ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख।

दीर्घपत्रक (सं० पु०) दीर्घपत्र संज्ञायां कन्। १ रक्त लशुन, लाल लहसुन। २ एरण्ड, रेंड, अंडी। ३ हिज्जल वृक्ष, समुद्रफल। ४ वेतसवृक्ष, वेत। ५ करीरवृक्ष टेंटी का पेड। ६ जलज मधुकवृक्ष, जलमहुआ। ७ लशुन, लहसुन।

दीर्घपत्रा (सं० स्त्री०) दीर्घं पत्रं यस्याः। १ चित्रपर्णिका, मंजीठ। २ क्षुद्रजम्बुवृक्ष, छोटा जामुनका पेड़। ३ पृश्निपर्णीलता, पिठवन। ४ गन्धपत्रा। ५ केतकी। ६ शालपर्णी, सरिवन। ७ डोरीक्षुप, एक प्रकारकी लता।

दीर्घपत्रिका (सं० स्त्री०) दीर्घपत्र संज्ञायां कन् टाप अत इत्वं। १ श्वेतवचा, सफेद वच। २ घृतकुमारी, घीकुआर। ३ शालपर्णी, सरिवन। ४ श्वेत पुनर्णवा, सफेद गदहपुरना।

दीर्घपत्री (सं० स्त्री०) दीर्घपत्र गौरादि० ङीष्। १ पलाशीलता, खिरनी। २ महाचञ्चु शाक, एक किस्मका साग।

दीर्घपर्ण (सं० त्रि०) जिसके लम्बे पत्ते हों।

दीर्घपर्णी (सं० स्त्री०) दीर्घं पर्णं यस्या गौरादि० ङीष्। पृश्निपर्णी, पिठवन।

दीर्घपल्लव (सं० पु०) दीर्घः पल्लवो यस्य। १ शनवृक्ष, सनका पेड़। (त्रि०) २ आयत पत्रयुक्त, जिसकी पत्तियां लम्बी हों। (पु स्त्री०) ३ आयतपल्लव, लम्बा पत्ता।

दीर्घपाद (सं० पु०) दीर्घः पादो यस्य समासान्तः अन्त्यलोप। १ कङ्कपक्षी। २ सारस। (त्रि०) ३ दीर्घ पदयुक्त, लम्बो टांगवाला।

दीर्घपादप (सं० पु०) दीर्घश्चासौ पादपश्चेति। १ ताल, ताड़का पेड़। १ पूग, सुपारीका पेड़।

दीर्घपृष्ठ (सं० पु०) दीर्घं पृष्ठं यस्य। सर्प, सांप।

दीर्घप्रज्ञ (सं० पु०) द्वापरयुगमें असुरावतार वृषपर्वा नामक नृपभेद, द्वापरके एक राजा वृषपर्वा जो असुरके अवतार थे। ये अत्यन्त दूरदर्शी थे, इसीसे इनका नाम दीर्घप्रज्ञ पड़ा। (त्रि०) दीर्घप्रज्ञा यस्य। २ दूरदर्शी।

दीर्घफल (सं० पु०) दीर्घफलं यस्य। आरग्वधवृक्ष, अमलतास।

दीर्घफलक (सं० पु०) दीर्घफल संज्ञायां कन्। अगस्त्यवृक्ष, अगस्तका पेड़।

दीर्घफला (सं० स्त्री०) दीर्घाणि फलानि यस्याः। १ मालव-देशप्रसिद्ध जतुका नामकी लता। २ कपिलद्राक्षा, अंगूर।

दीर्घफलिका (सं० स्त्री०) दीर्घफल-कप्, टाप्, कापि अत इत्वं। १ कपिलद्राक्षा, लम्बा अंगूर। २ जतुका। ३ मेषशृङ्ग नामकी लता। ४ तिक्तालाबु, तीता कद्दू।

दीर्घबाला (सं० स्त्री०) दीर्घः बालः केशो यस्याः। चमरी, सूरागाय

दीर्घबाहु (सं० पु०) दीर्घौ बाहु यस्य। १ शिवानुचर-भेद, शिवके एक अनुचरका नाम। २ धृतराष्ट्रका पुत्रभेद, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ३ आयत बाहु-युक्त, जिसकी भुजा लंबी हो।

दीर्घबालुक (सं० पु०) वृद्धदारक लता।

दीर्घबाहुगर्वित (सं० पु०) दैत्यभेद, एक असुरका नाम।

दीर्घभुज (सं० पु०) दीर्घौ भुजौ यस्य। १ शिवानुचर-भेद, शिवके एक अनुचरका नाम। (त्रि०) २ दीर्घ बाहुयुक्त, जिसकी भुजा लम्बी हो।

दीर्घमारुत (सं० पु०) दीर्घः अधिकसमयव्यापी मारुतः निःश्वासवायुर्यस्य। हस्ती, हाथी।

दीर्घमुख (सं० पु०) १ यक्षभेद, एक यक्षका नाम। २ दीर्घमुखयुक्त, जिसका मुंह लम्बा हो।

दीर्घमूल (सं० पु०) दीर्घं मूलं यस्य। १ मोरटलता, एक प्रकारकी बेल। २ बिल्वान्तरवृक्ष,। (क्लो०) ३ लाम-ज्जकतृण, एक पोली घास जो बेनाकी तरह होती है। ४ यासक्षुप, जवास। ५ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ६ विभी-तकवृक्ष। ७ इन्द्रयव, कुड़ा। ८ मूलक, मूली।

दीर्घमूलक (सं० क्लो०) दीर्घमूल-संज्ञायां कन्। मूलक, मूली।

दीर्घमूला (सं० स्त्री०) दीर्घःमूलं यस्याः टाप्। श्यामा-लता, कालोसर। २ शालपर्णी, सरिवन।

दीर्घमूलिका (सं० स्त्री०) दीर्घमूल-कप् टाप्, कापि अत इत्वं। दुरालभा, जवास, धमासा।

दीर्घमूली (सं० स्त्री०) दीर्घं मूलं यस्याः ङीप्। दुरा-लभा, जवासा।

दीर्घयज्ञ ( सं० त्रि० ) दीर्घः बहुकालव्यापको यज्ञो यस्य। १ बहुकालव्यापक यज्ञकारी, जिसने बहुत काल तक यज्ञ किया हो। ( पु० ) २ द्वापरयुगके एक अयोध्याधिपति। ( भारत सभा० २८ अ० )

दीर्घयाथ ( सं० त्रि० ) या-कर्मणि थ, दीर्घकालेन याथः गन्तव्यः। दीर्घकाल द्वारा गन्तव्य, बहुत काल तक जाने योग्य।

दीर्घरङ्गा ( सं० स्त्री० ) हरिद्रा, हलदी।

दीर्घरत ( सं० पु० ) कुक्कुर, कुत्ता।

दीर्घरद ( सं० पु० ) दीर्घौ रदौ दन्तौ यस्य। १ शूकर, सूअर। २ दीर्घदन्त, लम्बा दाँत। ( त्रि० ) ३ आयतदन्तयुक्त, जिसके निकले हुए लम्बे दांत हों।

दीर्घरव—उत्कलके एक राजा। ये उत्कलविजयी महाराज जनमेजयके पुत्र थे। जनमेजय देखो।

दीर्घरसन ( सं० पु० ) दीर्घा रसना जिह्वा यस्य। सर्प, सांप।

दीर्घरागा ( सं० स्त्री० ) दीर्घः अधिककालस्थायी रागः यस्याः। हरिद्रा, हलदी।

दीर्घरात्र ( सं० क्ली० ) दीर्घाः प्रचुरा रात्रयः सन्त्यत्र, अर्श आदित्वादच्। चिरकाल, अधिक समय।

दीर्घराव (सं० त्रि०) दीर्घः रावः यस्य। उच्च शब्दकारी, जो भारी शब्द करता हो।

दीर्घरोगिन् ( सं० त्रि० ) चिररोगी, जो सदा रोगसे ग्रसित रहता हो।

दीर्घरोम ( सं० पु० ) दीर्घाणि रोमाणि यस्य। १ भल्लूक, भालू। २ शिवानुचरभेद, शिवके एक अनुचरका नाम।

दीर्घरोहिषक ( सं० क्ली० ) दीर्घं रोहिषं ततः स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। सुगन्धि तृणविशेष, मालव, राजपूताना और मध्यप्रदेशमें होनेवाली एक प्रकारकी रोहिस घास। इसमेंसे बहुत अच्छी सुगन्ध निकलती है जो नीबूकी सुगन्धिसे मिलती जुलती है। इसका संस्कृत पर्याय—इक्ष्वाकु, इक्षुच्छद, यज्ञेष्ट, दीर्घनाल और तिक्तसार है। इनका गुण—कटु, उष्ण, कफ, वात, भूतग्रह और विषनाशक तथा अपचात और उपघातकारक है।

दीर्घलताद्रुम ( सं० पु० ) अश्वकर्ण वृक्ष, लताशाल।

दीर्घलोचन ( सं० त्रि० ) दीर्घं लोचनं यस्य। १ आयत नेत्रक, बड़ी आँखवाला। (पु०) २ शिवानुचरभेद, शिवके एक अनुचरका नाम। ३ धृतराष्ट्र पुत्रभेद, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (क्ली०) आयतं लोचनं। ४ लम्बी आँख।

दीर्घलोहितयष्टिका ( सं० स्त्री० ) रक्तेक्षु, लाल ऊख।

दीर्घवंश ( सं० पु० ) दीर्घो वंश इव। १ नल तृण, नरकट। २ सन्तत कुल। ३ प्राचीनवंशसम्भूत, वह जो प्राचीन वंशमें उत्पन्न हुआ हो।

दीर्घवक्त्र ( सं० पु० स्त्री० ) दीर्घं वक्त्रं मुखं यस्य। १ हस्ती, हाथी। (क्ली०) दीर्घं वक्त्रं। २ आयत वदन, लम्बा मुंहवाला।

दीर्घवाच्छिका ( सं० स्त्री० ) दीर्घवत् शोकते सिञ्चति शोक-क पृषोदरा० ह्रस्वः। कुम्भीर, घड़ियाल।

दीर्घवर्षाभू ( सं० पु० स्त्री० ) दीर्घा वर्षाभूः। श्वेत पुनर्णवा, चिराटिका।

दीर्घवल्ली ( सं० स्त्री० ) दीर्घा वल्ली। १ महेन्द्रवारुणी, बड़ा इन्द्रायन। २ पातालगरुड़ीलता, छिटा। ३ पलाशीलता, बौटिया पलाश।

दीर्घवृक्ष ( सं० पु० ) दीर्घः वृक्षः। १ शालवृक्ष, साखका पेड़। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

दीर्घवृन्त (सं० पु०) दीर्घं वृन्तं यस्य। १ श्योनाक वृक्ष, सोनापाठा। २ श्योनाक प्रभेद, एक दूसरे प्रकारका सोनापाठा। ३ लताद्रुम, लताशाल।

दीर्घवृन्तक ( सं० पु० ) दीर्घवृन्त स्वार्थे कन्।

दीर्घवृन्त देखो।

दीर्घवृन्ता ( सं० स्त्री० ) दीर्घं वृन्तं यस्याः। इन्द्रचिर्भिटीलता।

दीर्घवृन्तिका ( सं० स्त्री० ) दीर्घं वृन्तं यस्याः कप्, टापि अतइत्वं। एलापर्णी।

दीर्घशर ( सं० पु० ) दीर्घः शरः। यावनाल धान्य, ज्वार, जुन्हरी।

दीर्घशस्य ( सं० पु० ) शाव फल।

दीर्घशाख ( सं० पु० ) दीर्घा शाखा यस्य। १ शणवृक्ष, सनका पेड़। २ शालवृक्ष, साखुका पेड़।

दीर्घशाखिका ( सं० स्त्री० ) दीर्घा शाखा यस्याः कापि अतइत्वं। नीलाम्लोक्षुप, नलवनगुड़।

दीर्घशिम्बिक (सं० पु०) दीर्घा शिम्बिर्यस्य कप्। स्वव, एक प्रकारकी राई।

दीर्घशूक (सं० पु०) दीर्घः शूकः अग्रं यस्य। शालिभेद, एक प्रकारका धान।

दीर्घशूकक (सं० क्ली०) दीर्घं शूकं यस्य कप्। राजान्न, अन्ध्र देशके आमन धानको राजान्न कहते हैं।

दीर्घश्मश्रु (सं० त्रि०) बृहत् श्मश्रुयुक्त, जिसकी बड़ी बड़ी दाढ़ी हो।

दीर्घश्रवस् (सं० पु०) दीर्घं श्रवो यस्य। १ दीर्घतमा ऋषिके एक पुत्रका नाम। इन्होंने अनावृष्टि होने पर जीविकाके लिये वाणिज्य कर लिया था जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें है। (क्ली०) २ दीर्घकर्ण, लंबा कान। (त्रि०) ३ दीर्घकर्णयुक्त, जिसके लंबे कान हों।

दीर्घश्रुत् (सं० त्रि०) १ जो दूर तक सुनाई पड़े। २ जिसका नाम दूर तक विख्यात हो।

दीर्घसक्थ (सं० त्रि०) दीर्घं सक्थिनी यस्य बहुव्री० स्वाङ्गात् च। दीर्घोरु, जिसकी जांघ लंबी हो।

दीर्घसत्र (सं० क्ली०) दीर्घं बहुकालसाध्यं सत्रं। १ यज्ञविशेष, एक यज्ञ जो बहुत दिनोंमें समाप्त होता था। २ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें ब्रह्मादि देवता और परमर्षि सिद्ध आदिने यथानियम वास किया था। इस तीर्थमें केवल जानेसे ही अश्वमेध और राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है। (भारत ३।१०३।१०४) ३ यावज्जीवन कर्त्तव्य अग्निहोत्र यज्ञ। (त्रि०) ४ दीर्घसत्र यज्ञकर्त्ता, जिसने दीर्घसत्र यज्ञ किया हो।

दीर्घारण्य (सं० क्ली०) दीर्घं अरण्यं। निविड़ वन, घना जङ्गल।

दीर्घालर्क (सं० पु०) दीर्घोऽलर्क इव। श्वेतमन्दारक वृक्ष, सफेद मदार।

दीर्घास्य (सं० त्रि०) दीर्घं आस्यं यस्य। १ आयतमुख, बड़े मुंहवाला। (पु०) २ शिवानुचरभेद, शिवके एक अनुचरका नाम। ३ हस्ती, हाथी। दीर्घं आस्यं यत्र देशे। ४ पश्चिमोत्तर देशभेद।

दीर्घाहन् (सं० पु०) दीर्घाणि अहानि यत्र। निदाघ समय, ग्रीष्मकाल।

दीर्घिका (सं० स्त्री०) दीर्घैव दीर्घा संज्ञायां कन् टापि अत इत्वं। १ जलाशयभेद, बावली, छोटा तालाब। किसी किसीके मतसे ३०० धनुष लंबे जलाशयको दीर्घिका कहते हैं। २ जलाशयमात्र। ३ हिङ्गुपत्र।

दीर्घैर्वारु (सं० पु०) दीर्घा इर्वारुः। डङ्गरीलता, लंबी ककड़ी। २ महालावु, बड़ा कद्दू।

दीर्घोच्चारण (सं० क्ली०) दीर्घं उच्चारणं। गुरु उच्चारण।

दीर्ण (सं० त्रि०) दृ-विदारे क्त। विदारित, फटा हुआ, दरका हुआ।

दीवट (हिं० स्त्री०) दीया रखनेका आधार जो पीतल, लकड़ी आदिका बना होता है, चिरागदान।

दीवान (अ० पु०) १ राजसभा, दरबार। २ मंत्री, वजीर। ३ गजलोंके संग्रहकी पुस्तक।

दीवानआम (अ० पु०) १ आम दरबार। २ आम दरबार लगानेका स्थान।

दीवानखाना (फा० पु०) बड़े आदमीके बैठने तथा सब लोगोंसे मिलनेका घरका बाहरी कमरा।

दीवानखालसा (अ० पु०) वह कर्मचारी जिसके पास राजा या बादशाहकी मुहर रहती है।

दीवानखास (अ० पु०) १ खास दरबार। २ खास दरबार लगानेका मकान।

दीवाना (फा० वि०) विक्षिप्त, पागल।

दीवानापन (फा० पु०) विक्षिप्तता, पागलपन।

दीवानी (फा० स्त्री०) १ दीवानका पद। २ सम्पत्ति आदि संबन्धी स्वत्वका निर्णय करनेका न्यायालय। (वि०) ३ पगली, बावली।

दीवार (फा० स्त्री०) १ प्राचीर, भीत। २ ऊपर उठा हुआ किसी वस्तुका घेरा।

दीवारगीर (फा० स्त्री०) दीया आदि रखनेका आधार जो दीवारमें लगाया जाता है।

दीवारगीरी (फा० स्त्री०) दीवारमें लगाये जानेका छपा हुआ कपड़ा, पिछवाई।

दीवाल (हिं० स्त्री०) दीवार देखो।

दीवालदण्ड (हिं० पु०) एक प्रकारकी कसरत। यह दीवार पर हाथ टिका कर की जाती है।

दीवाला (हिं० पु०) दिवाला देखो।

दीवाली (हिं० स्त्री०) एक उत्सव जो कार्त्तिककी अमा-

वसगामें होता है। इसमें ग्रामको घरमें भीतर बाहर बहुत-से दीए जला कर पंक्तियोंमें रखे जाते हैं और लक्ष्मीका पूजन होता है। जिस दिन प्रदोषकालमें अमावस्या रहेगी, उसी दिन दीवाली होती है और लक्ष्मीकी पूजा की जाती है। जब अमावस्या लगातार दो दिन प्रदोषकालमें पड़ती है तब दूसरे दिनकी रातको दीवाली मानी जाती है और वह रात सुखरात्रिका कहलाती है। यदि अमावस्या प्रदोषकालमें न पड़े, तो प्रथम दिन लक्ष्मी-पूजा और दूसरे दिन दीपदान होता है; क्योंकि पार्वण-श्राद्ध उसी दिन होता है। इस दिन लोग अक्सर जुआ खेला करते हैं।

दीर्घसत्री (सं० पु०) दीर्घसत्रकारी, वह जिसने दीर्घ-सत्र यज्ञ किया हो।

दीर्घसुरत (सं० पु०) दीर्घं बहुकालव्यापकं सुरतं यस्य। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ शूकर, सूअर। (त्रि०) ३ आयत सुरत, देरतक रति करनेवाला।

दीर्घसूक्ष्म (सं० पु०) दीर्घश्वासी सूक्ष्मश्चेति। प्राणा-यामभेद।

दीर्घसूत्र (सं० त्रि०) दीर्घं बहुकालेन सूत्रं कार्या-रम्भः यस्य। १ चिरक्रिय, प्रत्येक काममें विलम्ब करने-वाला।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि सभी काम जल्दी करना चाहिए। यदि राजा दीर्घसूत्र हों तो उनकी बहुत खराबी होती है, किन्तु राग, काम, द्रोह, पापकार्य और अप्रिय कर्मोंमें दीर्घसूत्र हो अवलम्बन करना चाहिये, अर्थात् इन सब दुष्कर्मोंमें दीर्घसूत्री होनेसे वे सब काम नहीं हो सकते, इसीसे उक्त कर्मोंमें दीर्घसूत्रका विधान है। जो मनुष्य किसी उपस्थित कार्यके करनेमें देर लगाते अथवा आलससे दूसरे दिनके लिये छोड़ देते हैं, उन्हें दीर्घसूत्र कहते हैं। जो अपनी उन्नति चाहते हों, उन्हें यत्नपूर्वक दीर्घसूत्रताका परिहार करना चाहिये। दीर्घसूत्र होनेसे कदापि उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। (क्ली०) २ दीर्घसूत्र, लम्बा सूत।

दीर्घसूत्रता (सं० स्त्री०) दीर्घसूत्रस्य भावः दीर्घसूत्र-तल्-टाप्। चिरक्रियता, प्रत्येक काममें विलम्ब करने-की आदत।

दीर्घसूत्री (सं० त्रि०) सूत्रं बहुकालं व्याप्य कार्यारम्भोऽस्त्यस्य दीर्घसूत्र-इनि। दीर्घसूत्र, देरसे काम करनेवाला।

दीर्घस्कन्ध (सं० पु०) दीर्घः स्कन्धो यस्य। तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

दीर्घस्वर (सं० पु०) दीर्घः स्वरः। दीर्घ देखो।

दीर्घा (सं० स्त्री०) दीर्घ-टाप्। पृश्निपर्णी, पिठवन। इसका पर्याय—पृथक्पर्णी, लाङ्गुली, क्रोष्टुपुच्छिका, धामनि, कलसी, तन्वी, गुहा, क्रोष्टुक मेखला, दीर्घा, शृगालविन्ना, अङ्घ्रिपर्णी, सिंहपुच्छिका, दीर्घपत्रा, अति-गुहा, पृथ्निला और चित्रपर्णिका है।

दीर्घाङ्कुर (सं० पु०) राजशाली, राजान्न।

दीर्घाङ्घ्री (सं० स्त्री०) शालपर्णी।

दीर्घाङ्घ्रि (सं० स्त्री०) शालपर्णी।

दीर्घाध्वग (सं० पु०) दीर्घं आयतं अध्वानं गच्छति गम-ड। १ पत्रवाहक। २ उष्ट्र, ऊँट।

दीर्घायु (सं० त्रि०) दीर्घं आयुर्यस्य। १ चिरजीवी, बहुत दिनों तक जीनेवाला। (पु०) २ शाल्मली वृक्ष, सेमरका पेड़। ३ काक, कौवा। ४ मार्कण्डेय। ५ जीवक वृक्ष।

दीर्घायुत्व (सं० क्ली०) दीर्घायु देखो।

दीर्घायुध (सं० पु०) दीर्घः आयुधः। १ कुन्तास्त्र। दीर्घौ आयुधौ इव दण्डौ यस्य। २ शूकर, सूअर।

दीर्घायुष्ट्व (सं० पु०) दीर्घायुषो भवः दीर्घायुस्-त्व। बहु-काल आयु, बहुत दिनों तक जीवित रहना।

दीर्घायुष्य (सं० पु०) दीर्घं आयुष्यं जीवनं यस्य। १ श्वेत मन्दारक, सफेद मदार। (त्रि०) २ दीर्घायुर्युक्त, जिसकी आयु बड़ी हो।

दीर्घायुस् (सं० पु०) दीर्घं आयुर्यस्य। दीर्घायुष्ययुक्त, चिरजीवी, वह जिसकी आयु बड़ा हो, बहुत दिनों तक जीनेवाला मनुष्य।

सुश्रुतमें लिखा है कि जिसके शरीरमें शिरा, स्नायु वा सन्धि गूढ़भावसे निहित हो; जिसका अंग प्रत्यंग परस्पर दृढ़रूपसे संश्लिष्ट हो; सभी इन्द्रियां स्थिर हों और शरीर उत्तरोत्तर सुदृश्य होता जाता हो, वही मनुष्य दीर्घायु है। जो जन्मकालसे ही अरोग हो, जिसके शरीर-का ज्ञान और विज्ञान दिनों दिन बढ़ता जाता हो, उसे

भी दीर्घायु समझना चाहिए। चिकित्सककी चिकित्सा करते समय यह जान लेना परमावश्यक है कि रोगी अल्पायु है या दीर्घायु। दीर्घायुके निरूपणके विषयमें सुश्रुतमें और एक जगह इस प्रकार लिखा है—जिसके हस्त, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, स्तनके अग्रभाव, दशन, वदन, स्कन्ध और ललाट विस्तृत हों; अंगुलिके पर्व, उच्छ्वास, बाहु और चक्षुदीर्घ हों; भ्रू और दोनों स्तनके मध्य तथा वक्षस्थल विस्तीर्ण हों, जङ्घा, मेढ़ तथा ग्रीवा ह्रस्व हों; नाभि और बुद्धि गम्भीर हों दोनों स्तन अनुच्च और दृढ़ भाव गठित हों, कर्ण दीर्घ लोमोंसे विशिष्ट हों, मस्तिष्क मस्तकके पश्चाद्भागमें हो तथा स्नान और अनुलेपन करनेसे जिसका शरीर मस्तकसे निम्नभाग तक क्रमशः शुष्क हो जाय और सबके अन्तमें हृदयदेश शुष्क हो, उसी मनुष्यको दीर्घायु समझना चाहिए।

दीवास—गौड़ ब्राह्मण सम्प्रदायका एक भेद। इस नामके ब्राह्मणोंकी लोकसंख्या बीकानेर, मारवाड़ और नाथद्वारेमें अधिक पाई जाती है। राजपूतानेमें देवास नामका स्टेट है, वहांसे ये लोग उपर्युक्त स्थानको चले आये और देवास वा दीवास नामसे प्रसिद्ध हुए।

दीवि (सं० पु०) नीलकण्ठ नामका पक्षी।

दीसना (हिं० क्रि०) दृष्टिगोचर होना, दिखाई देना।

दीसा—बंबई प्रदेशके अन्तर्गत गुजरात प्रदेशके पालनपुर राज्यका एक शहर और अंगरेजी सेनानिवास। यह अक्षा० २४° १४' ३०" उ० और देशा० ७२° १२' ३०" पू० माउनगरसे ३०१ मील उत्तर-पश्चिम नीमचरसे २५१ मील पश्चिम तथा बंबईनगरसे ३८० मील उत्तर बानस् नदीके किनारे अवस्थित है। पहले इस शहरका नाम फरीदाबाद था। शहरसे उत्तर पश्चिम ३ मीलकी दूरी पर बानस् नदीके किनारे अंगरेजी सेनानिवास है। पूर्व समयमें यह शहर सुदृढ़ प्राचीरसे घिरा था और बरौदा गायकवाड तथा राधनपुरको सेनाके आक्रमणसे यह जरा भी नष्ट भ्रष्ट न हुआ था। अभी वह प्राचीर कई जगह टूट फूट गया है। यहां डाकघर और टेलिग्राफ-आफिस है।

दुंका (हिं० पु०) छोटा कण, कन, दाना।

दुंगरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मोटा कपड़ा।

दुंद (हिं० पु०) १ युद्ध, झगड़ा। २ युग्म, जोड़ा। ३ ऊधम, उत्पात, हलचल। ४ दुंदुभि, नगाड़ा।

दुंबा (फा० पु०) पञ्जाब और काश्मीरसे ले कर अफगानिस्तान तथा फारस तकमें मिलनेवाला एक प्रकारका मेढ़ा। इसकी दुम चक्कीके पाटकी तरह गोल और भारी होती है। इसका ऊन बहुत उमदा होता है।

दुंबाल (फा० पु०) १ चौड़ी पूंछ। २ नावकी पतवार। ३ जहाजका पिछला हिस्सा।

दुंबुर—हिमालयके किनारे चेनाबसे लेकर पूरबकी ओर होनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह गूलरकी जातिका होता है। बङ्गाल, उड़ीसा और बरमाकी नदियों या नालोंके किनारे भी यह पेड़ देखनेमें आता है। इस पर लाख पाई जाती है। इसके छिलकेके रेशोंसे छप्परकी कांड़ी धान आदि बांधी जाती है। इसके फल वर्षाऋतुमें पकते और खाये जाते हैं। फल तो देखनेमें अच्छे मालूम पड़ते पर स्वाद फीका होता है। इसके पत्ते कुछ खुरदरे होते हैं और काठ माजनेके काममें आते हैं।

दुःकुल (सं० पु०) चोर नामक गन्धद्रव्य।

दुःख (सं० क्लो०) दुर, दुष्टं खनतीति खन-ड वा दुःखयतीति दुःख अच्। १ संसार। २ व्याधि, रोग, बीमारी। ३ कष्ट, क्लेश, तकलीफ। पर्याय—व्यथा, अमानस्य, प्रसूतिज, कष्ट, कृच्छ्र, आभील, अर्त्ति, अर्त्ति, आर्त्ति, पीड़न, अवाधा, बाधन, आमनस्य, आमानस्य, विबाधन, पीड़ित और विहेठन। ये सब वस्तु दुःखद हैं—पारतन्त्र्य, दूसरेके अधीन रह कर जीवन धारण करना, आधि (मानसिक क्लेश), व्याधि, मानच्युति, शत्रु, कुभार्या, नैःस्व, धनराहित्य, कुग्रामवास, कुस्वामिसेवन, बहुकन्या, दुष्टत्व, परराष्ट्रवास, वर्षाप्रवास, भार्याद्वय, कुभृत्य, दुर्बलकरणक कृषि और कविकल्पलता ये सब मनुष्योंके दुःखप्रद हैं। ४ साङ्ख्यादि मतसिद्ध प्रतिकूल वेदनीय रजोकार्य चित्तधर्मभेद। न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे दुःख आत्माका धर्म है और सांख्य वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रोंमें दुःखको बुद्धि-धर्म अर्थात् चित्त-धर्म बतलाया है।

बुद्धि, सुख, दुःख और इच्छा ये सब आत्माके धर्म हैं। यह दुःख अधर्मसे उत्पन्न हुआ करता है।

दुःखके प्रति अधर्म करना दुःखका कार्य है, कार्य और कारणके साथ नित्यसंबन्ध रहनेके कारण अधर्म आचरण करनेसे ही दुःख अवश्यंभावी है। जितने प्राणी हैं दुःख सभीका अनभिप्रेत है। मनुष्यकी जितने प्रकारकी चेष्टाएं देखी जाती हैं, सभीका उद्देश्य दुःखनिवृत्ति है। इसी दुःखकी निवृत्तिके लिए मनुष्य कितने प्रकारके क्लेश सहते हैं, वह अकथनीय है। किन्तु किस पथका आश्रय करनेसे दुःखनिवृत्ति है, उसका निरूपण कर पद पदमें अनन्त दुःख भुगतना पड़ता है। इसीसे न्याय और वैशेषिक दर्शनमें लिखा है 'अधर्मजन्यं दुःखं स्यात्' अधर्म आचरण करनेसे ही दुःख होता है। क्लेशादिके भेदसे दुःख कई प्रकारका है। सुख सभीका अभिप्रेत है, यही कारण है, कि सभी प्राणी सुखकी तलाशमें सर्वदा प्रवृत्त रहते हैं। इस वस्तुसे हमारे सुख-दुःखकी निवृत्ति होगी, ऐसा ज्ञान ही जानेसे सुख-दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा उत्पन्न होती है।

जिसके द्वारा जो निष्पन्न होता है, उसे उसका फल कहते हैं, जैसे रसोईका फल अन्न, शास्त्रानुशीलनका फल ज्ञानोदय, इत्यादि। फलपदार्थ भी मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है। चरमफलको मुख्य फल कहते हैं। मुख्य फल सुख और दुःखका भोग है। इसके अतिरिक्त सभी फल गौण हैं, क्योंकि सभी कर्मोंके चरममें सुख वा दुःखके भोगस्वरूप फल-पर्यवसान होता है। रन्धन द्वारा अन्तमें जब भोजन करनेसे तृप्तिरूप सुख तथा शास्त्रकी आलोचना करके ज्ञानोदय होता है, तब असीम विद्यानन्दरूप दुःखका भोग होता है। फिर चोरी आदिके दोषसे दूषित हो कर कारागाररूप अशेष यन्त्रणास्वरूप दुःखका भोग होता है। इस प्रकार विवेचना करनेसे यह साफ झलकता है कि सभी कर्मोंका चरमफल सुख भोग अथवा दुःखभोग है। अत्यन्त दुःखनिवृत्ति होनेसे मुक्ति होती है। यही मुक्ति एक मात्र सभीको अभिप्रेत है। इसी मुक्तिके लिये सभी चेष्टित रहते हैं, किन्तु पथ खो जानेसे मनुष्य नाना प्रकारके उपाय अवलम्बन कर अनेक प्रकारके कष्ट पाते हैं।

सांख्यदर्शनके मतसे—दुःखनिवृत्तिके लिए ही शास्त्रको जिज्ञासा हुई है। मनुष्य जब दुःखसे सर्वदा पीड़ित हो कर क्रमागत जन्ममृत्युरूप दुःखसे अभिभूत होने लगा, तब परम कारुणिक कपिलदेवने भूतोंके प्रति दया करके दुःखोद्धारके उपायस्वरूप पचीस तत्त्वज्ञानके विषयका उपदेश दिया। उसका ज्ञान हो जानेसे दुःखका क्षय होता है। यदि इस संसारमें दुःख नामका कोई पदार्थ न रहता, नित्यपदार्थके जैसा यदि उसकी निवृत्ति न होती और इस दुःखका परिहार यदि अत्यन्त कष्टसाध्य होता, तो शास्त्रजिज्ञासाकी आवश्यकता न थी। दुःखोत्पत्ति होती है, जब ऐसा देखा जाता है, तब फिर दुःख-ध्वंस भी होता है, इसीसे

"दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदवघातके हेतौ।
दृष्टे सापार्था चेत् नैकान्तात्यन्ततो भावात्॥"

(तत्त्वकौमुदी)

दुःखत्रयका विनाश ही यहां पर जानना उचित है। दुःख तीन प्रकारका है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। इनमेंसे आध्यात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है, शारीरिक और मानसिक। वात, पित्त और श्लेष्माकी कमी बेशी होनेसे जो दुःख होता है, उसे शारीरिक दुःख कहते हैं, काम, क्रोध, लोभ और मोहादि निवन्धन दुःख मानसिक दुःख है। आधिभौतिक दुःख भी चार प्रकारका है—सभी भूतोंसे उत्पन्न, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्जसे उत्पन्न, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, दंश, मशक आदि स्थावरादिजनित दुःख हैं। आधिदैविक अर्थात् देवतासे उत्पन्न, जैसे—शीत, उष्ण, वात, वर्षा और वज्रपतनजनित क्लेश।

इन तीन प्रकारके दुःखोंका विनाश ही एकमात्र शास्त्रजिज्ञासाका उद्देश्य है, जिससे इन तीनों दुःखोंका नाश हो, वही हेतु है। इन सब दुःखोंका क्षणिक नाश होते देखा जाता है। कोई कोई कहते हैं, कि इन सब दुःखोंके विनाशके सैकड़ों उपाय हैं। शारीरिक दुःखनिवृत्तिके लिये चिकित्सक द्वारा नाना प्रकारके उपाय निर्धारित हैं। मानसिक दुःखके निवारके [illegible]

मनोज्ञ स्त्री, पान, भोजन आदि उपाय बतलाया है। नीति शास्त्राभ्यास-कुशलता आदि अवलम्बन करनेसे आधिभौतिक दुःखनिवृत्त होता है। आधिदैविक दुःखकी प्रतीकारके लिये मणिमन्त्रौषधादि सहज उपाय हैं।

इन सब दुःखोंके प्रतीकारके उपाय सत्य तो हैं, लेकिन इससे क्षणिक निवृत्ति होती है, एकान्त और अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती। एकान्त और अत्यन्त दुःखकी निवृत्ति ही सभी दर्शनशास्त्रोंका प्रधान उद्देश्य है। जिस तरह भूख लगने पर भोजन करनेसे भूख जाती रहती है, फिर कुछ देरके बाद भूख लग जाती है, उसी तरह उक्त उपायोंसे दुःखकी निवृत्ति होने पर भी एकान्त और अत्यन्त दुःख-निवृत्ति नहीं होती। खैर, मान लिया, कि दृष्टोपायसे दुःखनिवृत्ति नहीं होती, लेकिन आनुश्रविक अर्थात् वैदिक क्रियाकलाप द्वारा दुःखकी निवृत्ति हो सकती है इस विषयमें तत्त्वकौमुदीमें इस प्रकार लिखा है—

दृष्टके जैसा आनुश्रविक भी असम्पूर्ण कारण है, वह भी अविशुद्धि और क्षयातिशययुक्त है और इसके विपरीत है अर्थात् व्यक्त अव्यक्त तथा ज्ञेय ज्ञानही श्रेय है, त्रिविध दुःख कुछ भी नहीं रहेगा, कभी भी पुनरुत्पन्न नहीं होगा, इस प्रकारका भाव जब विनिवृत्त वा विनष्ट हो जाता है, तब उसे आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्ति कहते हैं।

मामूली तौर पर दुःख निवृत्त होना साधारण पुरुषार्थ है, किन्तु आत्यन्तिक दुःखका निवृत्तिको आत्यन्तिक पुरुषार्थ कहते हैं। इसका दूसरा नाम परमपुरुषार्थ भी है। इसका कारण यह है, कि इस प्रकारकी दुःखनिवृत्ति ही दुःखनिवृत्तिकामनाको चरमसीमा है। दृष्ट उपाय द्वारा अर्थात् लौकिक उपकरण द्वारा आत्यन्तिक दुःखको निवृत्ति नहीं होती, लौकिक उपकरण द्वारा आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्ति होनेसे भी उसका अनुवर्त्तन रहता है। धनादि द्वारा उपस्थित दुःख मिट जाता है सही, लेकिन उसके कुछ देर बाद ही फिर उसी प्रकारका दुःख पहुंच जाता है। सुतरां यह कह सकते हैं, कि लौकिक उपायसे क्षणिक दुःख निवृत्त होता है, न कि आत्यन्तिक दुःख। क्षणिक दुःखकी निवृत्ति होनेसे भी वह अपुरुषार्थ नहीं है, क्योंकि पुरुष वह भी चाहता है और यह भी आज अगर क्षुधाका प्रतिकार किया जाय, तो कल फिरसे क्षुधा उत्पन्न होगी, यह सोच कर क्या कोई कभी उदास हो सकता है? क्या कभी खानेकी इच्छा नहीं करता? अतएव प्रति दिनकी क्षुधाको जगह जिस प्रकार उस सामयिक क्षुधाकी निवृत्तिको पुरुषार्थ मानते हैं, उसी प्रकार लौकिक उपाय और तत्साध्य सामयिक दुःखनिवृत्ति इन दोनोंको भी पुरुषार्थ मान सकते हैं।

सभी जगह और सभी समय दुःखनिवारक लौकिक उपाय नहीं रहता और रहनेकी सम्भावना भी नहीं। अगर रहे भी, तो उससे दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। यही कारण है, कि शास्त्रतत्त्वज्ञ लोग दुःखनिवारक लौकिक उपायको हेय और तुच्छ समझते हैं। वे लोग स्त्री, अन्न-पान और भोजनादि दृष्ट उपायका परित्याग और शास्त्रीय उपायका अवलम्बन करते हैं। लौकिक उपायसे दुःख मिटता है, उसका तारतम्य वा उत्कर्षापकर्ष है। किन्तु वह दुःखनिवृत्तिस्वरूप मुक्तिमें नहीं है। इसीसे मुक्ति ही सर्वोत्कृष्ट है। इसका तात्पर्य यह है, कि मुक्तिकी उत्कर्षता जान कर अभिज्ञ पुरुष क्षणिक दुःखनिवृत्ति और तत्साधक लौकिक उपकरणको तुच्छ समझते हैं और मुमुक्षु हो कर शास्त्रपथ अवलम्बन करते हैं। धनादि दृष्ट उपाय और वैदिक क्रियाकलाप दोनों ही एक-से हैं। धनभोग जैसा नश्वर है, पुण्यभोगभी वैसा ही नश्वर है। अतः शास्त्रीय उपायोंमें क्रियात्मक उपाय आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिका कारण नहीं है। शास्त्रने मोक्षका उपदेश बतलाया है, यह बात ठीक है; परन्तु उसमें अनेक प्रश्न और अनेक विचार हैं।

कोई कोई कहते हैं कि इस दुःखका भोग कौन करता है? आत्मा वा और कोई दूसरा। किन्तु आत्मा किसी प्रकारके धर्ममें लिप्त नहीं है, वे त्रिगुणातीत हैं, प्रकृतिको माया पर मोहित हो कर प्रतिबिंबके तौर पर सुख दुःखादि भोग करती हैं। जीवात्मा देखो।

चाहे जीवके साक्षात् संबन्धमें हो, चाहे परम्परा संबन्धमें हो, एक बार सुखानुभव होनेसे हो दूसरे समयमें वह याद रहेगा; अवश्य याद रहेगा। सुखाभिज्ञ मनुष्य

जो बार बार सुख भोगकी इच्छा रखता है, भोगकी कामना करता है और सुखसाधनद्रव्यमें समासक्त रहता है, उसको उस इच्छाका, उस कामनाका वा वैसी आसक्तिका नाम राग है। इस प्रकार सुखेच्छाकी नाई दुःखके प्रति अनुशय वा अनुवृत्ति हुआ करती है। "दुःखानुशयी द्वेषः" (पात० २।८) पूर्वानुभूत दुःखका स्मरण होनेके साथ ही दुःखप्रद वस्तुके प्रति वितृष्णा, अनिच्छा वा अनभिलाष उत्पन्न होता है। उसको प्रतिघात चेष्टा भी होती है। उस प्रतिघात चेष्टा वा अनिच्छा विशेषको द्वेष कहते हैं। जिस वस्तुसे एक बार दुःख हो चुका है, उस वस्तुके प्रति द्वेष अवश्य उत्पन्न होगा। इस प्रकारका द्वेष होनेसे जिससे वह फिरसे उत्पन्न हो, उसकी चेष्टा होती है अर्थात् अवश्य ही उसकी प्रतिघात चेष्टा उत्पन्न होगी। क्रोध, हिंसा और विप्रलिप्सा अर्थात् प्रतारणाकी इच्छा ये सब द्वेषके रूपान्तरमात्र हैं। जिससे हमें दुःख न हो, प्रति दिन वही चेष्टा रहती है और दुःखका परित्याग कोई करनेमें समर्थ नहीं है। समस्त जीव बार बार मरणदुःखका भोग कर जीवके चित्तमें उसी प्रकारका संस्कार वा वासनासे सञ्चित या बद्धमूल होते आ रहे हैं। इन सब वासनाओंका नाम स्वरस है। इसी स्वरसके द्वारा ज्ञानी, अज्ञानी सभी जीवोंके चित्तमें उसी प्रकारका भाव अर्थात् अलक्ष्य रूपसे मरणदुःखकी छाया वा स्मृति नामक सूक्ष्माकार वृत्ति आरूढ़ है। उस आरूढ़वृत्तिका नाम अभिनिवेश है। एकबार दुःखानुभव हो जानेसे इस दुःखप्रद वस्तुके प्रति विद्वेष उत्पन्न होता है, जिससे वह फिर न हो, उसके लिये चेष्टा वा इच्छाविशेषका प्रादुर्भाव होता है, उस इच्छाविशेषको भी अभिनिवेश कह सकते हैं।

दुःखको चूड़ान्त सीमा मरण है। मरण ही दुःखकी पराकाष्ठा वा चरमसीमा है। यही कारण है, कि जीवको मरनेका अधिक डर है और उनके चित्तमें "जिससे मैं न मरू" ऐसी जो सूक्ष्मवृत्ति है, वह अन्यान्य वृत्तियोंके मूलमें निगूढ़ भावसे छिपी है।

प्राणिमात्रमें ही शरीरके ऊपर—इन्द्रियके ऊपर "अहं" इस प्रकारका सम्पर्क स्थिर है, कारण प्राणिगण देह और इन्द्रियसे पृथक् होना नहीं चाहते। केवल यही नहीं, धनादिका नाश भी वे नहीं चाहते, हरवक्त यही ख्याल तथा प्रार्थना करते हैं कि जिससे उनका मरण किसी प्रकार न हो। विशेषतः मरणदुःखकी अनुवृत्ति अर्थात् "मैं जिससे न मरू" ऐसी प्रार्थना जीवके हृदयमें हर वक्त जागरूक है। क्या ज्ञानी, क्या मूर्ख, क्या इतर प्राणी सभीको मरनेका डर है। अतः सभी प्राणी इस प्रकारकी प्रार्थना करते हैं। जीवोंमें ऐसा संस्कार रहनेसे अनेक प्रकारका दुःख होता है और वे कभी भी किसी प्रकारका दुष्कर्म नहीं कर सकते। ऐसा कौनसा उपाय है जिससे 'मैं न मरू' और हर समय अच्छा बन कर रहूं" यह चिन्ता हरवक्त मौजूद रहती है। महर्षि पतञ्जलि और अन्यान्य ऋषियोंने इस प्रकारका मरणत्रास देख कर इसे पूर्वजन्मका संबन्ध अर्थात् पूर्वजन्मका भोग स्थिर किया है।

पहले कहा जा चुका है, कि सुखका एक बार अनुभूत हो जानेसे फिरसे उसकी इच्छा बढ़ती है और दुःखका अनुभूत हो जानेसे उसके प्रति विद्वेष उत्पन्न होता है। जीवको जब मरनेके प्रति इतना विद्वेष है, तब यह निःसन्देह अनुमित होता है कि मरणमें कोई अवश्य कठोरतर यन्त्रणा है और जीवने उस कठोरतर दुःखका कभी न कभी अवश्य भोग किया है। मरणमें यदि दुःख नहीं रहता और जीव यदि उसका भोग नहीं किया होता, तो जीवको मरणके प्रति उतना विद्वेष नहीं रहता। मरणका विद्वेष केवल मनुष्यमें नहीं बल्कि कीटादि और सद्योजात शिशुमें भी है। मनुष्य जब एक ही बार मरता है, दो बार नहीं, तब मरनेका उतना डर क्यों? इससे यह अवश्य सिद्ध होता है, कि मरणमें एक अनिर्वचनीय दुःख है जिसका भोग जीवने किया है। वर्त्तमान देहमें उसीकी अनुवृत्ति होती है, वह अनुवर्त्तन वासना संस्कारके स्रोतमें आती रहती है। निगूढ़तम वासनाके स्रोतमें बहनेके कारण जीव उसे स्पष्ट समझ नहीं सकता अर्थात् मैं कई बार मर चुका और कई बार मरण-दुःख-भोग कर चुका, यह स्पष्ट रूपसे नहीं जान सकता है। इन्द्रिय द्वारा यदि इसका ज्ञान हो जाता, तो यह अवश्य समझमें आ सकता था। किन्तु यह इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। सुतरां उसका ज्ञान नहीं होनेसे ही

जीव स्पष्ट रूपसे समझ नहीं सकता, कि मैं एक बार मर चुका था और अनिर्वाच्य कठोरतम दुःख भी भोग चुका था। इसीसे जीवको मरनेकी इतनी अनिच्छा है। यदि मरण ही सब प्रकारके दुःखोंमें प्रधान हो, तो किस प्रकार इस दुःखसे छुटकारा पाया जाय तथा इसका कारण ही क्या? संसारका चित्र देखनेसे मालूम पड़ता है, कि सभी जीव जन्म ले कर अनेकों दुःख झेलते हैं और फिर मृत्युमुखमें पतित होते हैं—एक बार मर कर फिर दूसरी बार जन्म लेते हैं। दुःखकी बात तो दूर रहे, सांसारिक जो सुख है, वह भी दुःखमय है। इस कारण उस दुःखमिश्रित सुखको दुःख ही समझना होगा। सांख्यदर्शनमें विज्ञानभिक्षुने लिखा है, "तदपि दुःखपक्षे निःक्षेपणीयः" अर्थात् वह सुख भी दुःखमें गिनने योग्य है। सभी दर्शन शास्त्रोंमें दुःख-निवृत्तिका कारण ढूंढा गया है। कोई कोई कहते हैं कि प्रकृति और पुरुषका संयोग ही दुःखका प्रतिकारण है। फिर कोई कहते हैं, कि अविद्या वा मायावशसे ही दुःख भोग हुआ करता है। जो कुछ हो, इन सबमें सामान्य मतभेद रहने पर भी मूल सभीका एक है। किसीका मत यह भी है, कि प्रकृति और पुरुषका सम्यक् ज्ञान हो जानेसे दुःख निवृत्त होता है। फिर कोई कहते हैं, कि अज्ञानोपहित चैतन्यकी मायारूप उपाधि तिरोहित हो जानेसे दुःख दूर हो जाता है। इस प्रकार दुःखके नष्ट होनेको मुक्ति वा मोक्ष कहते हैं। मुक्ति और मोक्ष देखो। दुःखका कारण क्या है, यह विषय कुछ विशेष रूप बतलाया जाता है। हम लोग जो कामकाज करते हैं, उसका एक संस्कार आत्मामें दृढ रूपसे अङ्कित होता है। पीछे वह संस्कारानुरूप सुख दुःखका भोग हुआ करता है। अतएव सुख और दुःखके मूलको कर्माशय कहना चाहिये। इसी पर भगवान् पतञ्जलिने कहा है, "क्लेशमूलः कर्माशयः दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः" (पात० द० २।१२)। क्लेशमूलक कर्माशय दो प्रकारका है, एक दृष्टजन्मवेदनीय, दूसरा अदृष्टजन्मवेदनीय अर्थात् वर्त्तमान शरीर द्वारा तथा जन्मान्तरीय शरीर द्वारा ज्ञात। चिरकाल जीवित रह कर भला बुरा काम करो और उसका फल भोगो। सभी जीव क्लेशसे बाध्य हो कर ही भले बुरे काम करते हैं और वे सब काम फिर उनके नये क्लेश वा कर्ममूलकी सृष्टि करते हैं। कर्मफलके अनुभव द्वारा जो चित्तचैतन्य सुख, दुःख आदिका क्षति पूरण होता है वा नूतन राग, द्वेषादि रूप कर्मबीज होता है, इसीको योगी लोग कर्माशय, याज्ञिक लोग अदृष्ट, अपूर्व, पाप, पुण्य वा धर्माधर्म कहा करते हैं। कोई उसे संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार जब तक रहेगा, तब तक दुःख अनिवार्य है। इस संस्कारके रहनेसे ही उसके फलस्वरूप जाति, जन्म, मरण, जीवन और भोग अवश्य होगा। उक्त कर्माशय क्लेश यदि योगादिके द्वारा जीर्ण, शीर्ण वा दग्धकल्प न हो, तो उसे बाध्य हो कर अवश्य ही विविध प्रकारके अच्छे बुरे काम करने होंगे तथा उसे अपने किए हुए कर्मोंका अच्छा बुरा फल भी भोगना होगा। बार बार जन्म, बार बार मरण और बार बार सुर, नर और तिर्यक् योनिमें पतन, बार बार अल्पकाल और बहुकाल जीवन धारण तथा बार बार सुख-दुःखादि का भोग हुआ करेगा। जहां सुखका उल्लेख है, वहां वह सांसारिक दुःखमिश्रित सुख है अर्थात् दुःख नामक सुख है। क्योंकि योगियोंने विषय मात्रको ही दुःख माना है।

परिणाममें दुःख अर्थात् भोगकालमें दुःख और पश्चात् वा स्मरणकालमें भी दुःख होना तथा सत्त्वादि गुणोंके आपसमें अभिभूत करते देख कर योगियोंने सभी वस्तुओंकी दुःखमें गिनती की है, किन्तु अनभिज्ञ, अयोगी और अविवेकी मनुष्य हो मोहसे मुग्ध और भ्रमान्ध हो कर इसमें सुख होता है, इसमें दुःख होता है, ऐसा निर्णय करते हैं। जो नहीं जानता है, वही विषान्नको सुस्वादु समझ कर भक्षण करता है; किन्तु जो जानता है, वह उसे भक्षण नहीं करता। उसी तरह जो नहीं जानता है, वह दुःखमिश्रित सुख भोग करता है और जो जानता है वह उसे भोग करना नहीं चाहेगा। जिस तरह खूब बारीक तथा खूब कोमल मकड़ीके सूतके स्पर्शसे आँखको दुःख होता है, उसी तरह योगी लोग वा विवेकी लोग दुःखानुविद्ध भोगको दुःसह समझते हैं। प्रत्येक दृश्यमें वा प्रत्येक भोगमें परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख एक साथ अर्पित हैं।

अनभिज्ञ मोहान्ध मनुष्य उसे नहीं समझ सकते। यही कारण है कि वे उस पर मुग्ध होते, आसक्त होते तथा भोग करनेके लिये व्यतिव्यस्त रहते हैं। किन्तु जो उसे समझ गये हैं, वे क्या कभी उसके पास जा सकते? कभी नहीं। मद्यपान द्वारा उत्पन्न मनोविकार जिस तरह शराबीके निकट सुख समझा जाता है, उसी तरह विषयेन्द्रियके संयोग द्वारा अर्थात् चक्षु आदिके साथ स्त्री मूर्त्ति आदिके संयोगादि द्वारा जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसे अविवेकी लोग भूलसे सुख मानते हैं।

अविवेकी जिसे सुख कहते हैं, विवेकी उसीको दुःख मानते हैं। जो परिणाम दुःख, तापदुःख और संस्कारदुःखमें जड़ित है, जो केवल मनका विकार मात्र है, जो केवल सत्वगुणके कलुष परिणामके सिवा और कुछ नहीं है, वह सुख नहीं है, सुख नामक दुःख है। भोगमें जो सुख नहीं है, प्रत्येक भोगके साथ साथ जो परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख भुगतना होता है, वह जाननेके लिये थोड़ा ही विचार काफी है। मान लो, एक दिन तुमने किसी एक दिव्याङ्गनासे सहवास किया। उस समय तुम्हें जो मनोविकार उत्पन्न हुआ, उसीको तुम सुख समझने लगे। मनोविकार जब तक रहा, तभी तक तुमने सुखका अनुभव किया। किन्तु उसके कुछ देर बाद ही फिर जो दुःख था वही दुःख है। वह काम करनेसे तुम्हारी आयु जो क्षय हुई, उसके लिये तुम्हें एक और पृथक् दुःख हुआ। फिर भी देखो, कि तुम्हारा वह मनोविकार वा सुख स्थायी न रहा, बहुत जल्द नष्ट हो गया। सुख नहीं रहा, नष्ट हो गया, यह सोच कर भी तुम्हें एक दूसरा दुःख उत्पन्न हो आया। तुमने जो उस अनुचित मनोविकारको थोड़े कालके लिये सुख माना था, उसके प्रभावसे दूसरे दिन फिर वही पानेके लिये लालायित हुए। सुखके लिये लालायित होनेसे कितना क्लेश, कितना दुःख, कितना आयास और कितना पाप करना होता है, वह भी गौर कर देखो। उस सुख नामक मनोविकार वा भोगको दीर्घ करनेके लिये तुम इच्छुक हो वा नहीं? अवश्य हो। किसी गतिसे यदि तुम्हारी उस इच्छाकी पूर्त्ति न हो, अर्थात् उसके इच्छानुरूप उपकरण न मिले, अथवा भोगका सङ्कोच या उसकी अल्पता हो, तो तुम्हें कितना दुःख होगा, वह भी मुंह हुए बिना एक मुंहसे नहीं कह सकते।

मान लो, तुम्हारे भोगका सङ्कोच वा अल्पता न हुई, वृद्धि ही हुई। किन्तु ज्यों ही भोग बढ़ा, त्यों ही उसके साथ साथ रोग भी उत्पन्न हुआ। "भोगे रोगभय" अर्थात् भोगके साथ रोगका भय अवश्य होता है। अत्यन्त भोग करनेसे रोग अवश्य होगा, सुतरां उससे दुःख भी होगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक भोगका परिणाम दुःखमय है। इसमें सन्देह नहीं। इस पर थोड़ा विचार करनेसे भोगका परिणाम जो दुःख है वह मालूम हो जायगा। यहां तक कि वर्त्तमानमें अर्थात् भोगकालमें भी तुम सैकड़ों दुःख वा सैकड़ों परितापसे आक्रान्त वा जड़ित रहते हो। पीछे यह नष्ट हो जाता है, किस प्रकार यह स्थायी रहेगा, किस प्रकार यह बढ़ेगा, किस प्रकार इसका व्याघात नहीं होगा इत्यादि प्रकारोंके अनेक चिन्तानल वा तापजनक चिन्ताएं उपस्थित हो कर तुम्हें परितप्त करती हैं। इसके सिवा उसकी आनुसङ्गिक विविध पापमय मनोवृत्ति अर्थात् राग, द्वेष, क्रोध आदि उदित हो कर तुम्हारे हृदयमें अनेक प्रकारके भविष्य दुःखोंका बीज सञ्चार करते हैं। अतएव दुःखभोगके साथ साथ जो अनेक प्रकारके ताप वा दुःख भोगने होते हैं, अब वह स्थिर हो गया। इस विषयमें और भी एक उपाख्यान है। सुख भोग करनेके साथ ही चित्तमें उसका संस्कार आबद्ध हो जाता है, यह संस्कार तुम्हें बार बार उस भोगकी ओर खींच ले जाता है। यही कारण है, कि तुम पुनः पुनः पूर्वानुभूत सुखके समान सुखभोगकी इच्छा करते हो, जब तक उस सुखको नहीं पाओगे, तब तक व्याकुल रहते हो। अतएव सुखभोगका संस्कार भी दुःखजनक है। भोग क्या है, इसका विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि भोग कुछ नहीं है। यह केवल एक प्रकारका मानसविकार है। सुतरां क्षणपरिणामी सत्व, रज और तमोगुणका क्षणिक परिणामरूप क्षणभङ्गुर भोगमात्र ही दुःख है। इन्हीं सब कारणोंसे अर्थात् प्रत्येक भोगमें ही परिणाम, ताप और संस्कार ग्रथित रहनेसे तथा परस्पर विरोधी

गुणपरिणाम वर्तमान रहनेसे योगी लोग तथा विवेकी लोग उसे दुःख मानते हैं। वे उसे कभी भी सुख नहीं मानते। ऐसा होनेसे सुख नहीं है, मनोविकारके नष्ट होनेसे ही सुख है, ईश्वर और आत्मतत्त्वमें चित्तके स्थिर होनेसे ही सुख है, मनोलय होनेसे और भी सुख है। वह सुख दृश्यभोगमें नहीं है, इस कारण योगी लोग दृश्य समुदायको दुःख माना है। यही सबका उद्देश्य है, इसीमें सब कोई व्यतिव्यस्त रहते हैं। किन्तु प्रकृतिमार्ग-का अवलम्बन न कर सकनेके कारण असीम दुःखको रोकनेके लिये जो चेष्टा की जाती है, वह वृथा है। क्योंकि दुःखकी जब उत्पत्ति होती है, तब दुःखके प्रथम क्षणमें उत्पत्ति, द्वितीय क्षणमें स्थिति और तृतीय क्षणमें दुःख आपसे आप नष्ट हो जाता है। दुःख जब आपसे आप विनष्ट हो जायगा, तब उसके लिये चेष्टा करना निष्प्रयोजन है। अतीत दुःख तो विनष्ट हो चुका है, उसके लिए भी साधन करना निष्प्रयोजन है। इसीसे शास्त्रमें अतीत और वर्तमान दुःखका प्रतिकार न कर अनागत दुःखके प्रतिकारकी व्यवस्था है।

'हेयं दुःखमनागतं।" (पात० २।१६) अनागत अर्थात् भविष्य दुःख ही हेय है, जिससे भविष्यमें फिर कोई न होवे, वह करना ही कर्तव्य है। इसका अभिप्राय यह है, कि प्रारब्धभोग अर्थात् जिसका भोग आरम्भ हुआ है, वह दुःख बिना भोग किये निवृत्त नहीं होता। किसी प्रकारके योग वा यत्न द्वारा उसे नष्ट भी नहीं कर सकते। अतः योगीके प्रति उपदेश यह है, कि वे अनागत अर्थात् भविष्य दुःखके निवारणकी चेष्टा न करें। योग द्वारा दुःखका बीज दग्ध कर डालनेसे ही वह सुसिद्ध हो जायगा। दुःखबीजरूप अज्ञानके नष्ट हो जानेसे दुःखाङ्कुर कहांसे होगा? द्रष्टा आत्मा और दृश्य अर्थात् अन्तःकरण उन दोनोंका संयोग रहना ही दुःखका कारण है।

तात्पर्य यह कि सुख, दुःख और मोह ये सभी बुद्धि-द्रव्यके विकार हैं। बुद्धिद्रव्य वा अन्तःकरण इन्द्रिय सम्बन्ध द्वारा विषयाकारमें और सुख दुःखादि आकारमें परिणत होनेके साथ ही वह चित्शक्ति द्वारा प्रज्वलित होता है। उस प्रकारकी प्रदीप्तताको शास्त्रकार चित्शक्तिका प्रतिसंक्रम वा चित्तकी छायापत्ति बतलाते हैं। लोकव्यवहारमें उसे 'दर्शन' वा 'मुलाकात' कहते हैं। अतः परिणाम स्वभाव बुद्धिसत्व वा अन्तःकरण पदार्थ दृश्य है और उसके निकटवर्त्ती अपरिणामी चित्शक्ति उसको द्रष्टा है वही दृश्य और द्रष्टा है—इन दोनों-का जो संयोग कहा गया है, अर्थात् वे दोनों जो एकी भाव हो रहे हैं, वही संसारी जीवके उल्लिखित दुःखसमूहका मूल है; अर्थात् बुद्धिके ऊपर पुरुष वा आत्माकी अभेदभ्रान्ति वा आत्मसम्पर्क कल्पित होता है, यही जान कर पुरुष सुखदुःखादिके विकारमें विकृत प्रायः होते हैं। सुतरां बुद्धिके साथ उस प्रकारके मिथ्या-संबन्धकी घटना रहनेसे ही पुरुषका क्लेशमय भोग उप-चारकमसे उत्पन्न होता है।

जब तक प्रकृति पुरुषका तत्त्वज्ञान और अज्ञानोप-हित चैतन्यकी माया उपाधि दूर नहीं होगी, तब तक दुःख कुछ भी निवृत्त नहीं होगा। पहले कहा जा चुका है, कि वैदिक क्रियाकलाप द्वारा दुःखकी निवृत्ति नहीं होती, इसका तात्पर्य यह है कि इससे आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति नहीं होती। ऐसा कह कर वैदिक क्रिया-कलाप परित्यज्य नहीं है। इससे चित्त-शुद्धि होती है, चित्तशुद्धि होनेसे सम्यक्‌ज्ञानका उदय होता है, तभी दुःखकी निवृत्ति होती है, ऐसा माननेसे वैदिक क्रिया-कलाप भी दुःखनिवृत्तिका कारण है। 'अपाम सोम' अमृता अभूम' इत्यादि श्रुतियोंमें हम लोग सोमरस पान करके देवत्व लाभ करेंगे, ऐसा लिखा है। वैदिक क्रिया-कलापमें स्वर्गादिका लाभ होता है, वहां पर सुखका अनुभव करके फिर अत्यन्त दुःखनिवृत्तिके प्रति यत्न नहीं रहता। इनका पुण्य जब क्षीण हो जाता है, तब फिर जन्मग्रहण करना पड़ता है। इन्हीं सब कारणोंसे क्रियाकलापकी निन्दा की गई है। इसके सिवा और कुछ नहीं है। वैदिक क्रियाकलाप ही एकमात्र चित्त-शुद्धिका उपाय है। चित्तशुद्धि नहीं होनेसे तत्त्वज्ञानादि नहीं होते।

मनुष्यको आशा ही दुःखका कारण है। आशा जब तक रहेगी; तब तक अनन्त दुःख भुगतना ही होगा। जब कोई प्रकारकी आशा न रहेगी, तभी यथार्थमें दुःख-का नाश होगा।

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं।
तथा सन्छिद्य कान्ताशां सुखंसुष्वाप पिंगला॥"
(सांख्य भाष्य)

आशा ही परम दुःख है, नैराश्य ही सुख है, पिङ्गला वेश्या अपने कान्तको आशा न रख सुखसे सोई थी। जब हम लोगोंको सब आशा तिरोहित हो जायेगी और किसी विषयकी जरूरत न रहेगी, तभी दुःखको निवृत्ति होगी। आशाको मोहिनी मायासे विमोहित हो कर हम लोग लगातार दुःख भोगते हैं। जिस दिन आशा दूर हो जायेगी, उसी दिन और क्लेश भुगतना न होगा। वराह-पुराणमें इन सबको दुःख बतलाया है—अहङ्कारी जीव मोहसे आहत्त हो कर हमें (ईश्वर) पा नहीं सकते, इससे और अधिक दुःख क्या होगा, जो सर्वागी हैं, सर्व विक्रेता है, नमस्कार वि-वर्जित हैं और जो हमें प्राप्त नहीं कर सकते, इससे और अधिक दुःख क्या है? चरमे दोपहरके समय अतिथिके उपस्थित होने पर जो अतिथिसेवा न कर आप भोजन कर लेते हैं, इससे और अधिक दुःख क्या हो सकता? कोई तो आममांस खाता है, कोई दूध, घीका सेवन करता है और कोई सूखा मांस खाता है, कोई दुग्धफेनिभ शय्या पर सोता है, कोई तृणशय्या पर दिन बिताता है, कोई विद्वान् हैं, कोई ज्ञाता है, कोई सर्वशास्त्रविशारद है, फिर कोई मूर्ख है, इससे और अधिक दुःख क्या होगा?

दुःखकर (सं० वि०) दुःख उत्पन्न करनेवाला, क्लेश पहुंचानेवाला।

दुःखकोद्रवा (सं० स्त्री०) मसूरिकाभेद, एक प्रकारका मसूर।

दुःखग्राम (सं० पु०) १ दुःखानां ग्रामो यत्र। संसार। संसार ही सब प्रकारके दुःखका कारण है, या संसार ही दुःख मय है। बिना संसारके निवृत्ति हुए दुःख निवृत्त नहीं हो सकता है, इसीसे संसारको दुःखग्राम कहते हैं। दुःखानां ग्रामः ६-तत्। २ दुःख समुदाय, दुःखका समूह।

दुःखजात (सं० वि०) जातं दुःखमस्य परनिपातः। १ संजात दुःख, जिससे कष्ट हो। (क्ली०) दुःखानां जातं ६-तत्। २ दुःखसमुदाय, दुःखका ढेर।

दुःखजीवी (सं० वि०) जो कष्टसे समय व्यतीत करता हो।

दुःखता (सं० स्त्री०) दुःखस्य भावः दुःख तल्, ततो टाप्। दुःखत्व, दुःखका भाव।

दुःखत्रय (सं० क्ली०) दुःखानां त्रयं। त्रिविध दुःख, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकारके दुःख। दुःख देखो।

दुःखद (सं० वि०) दुःखं ददाति दा-क। दुःखदायी, क्लेश पहुंचानेवाला।

दुःखदग्ध (सं० त्रि०) दुःखेन दग्धः। परितप्त, कष्टमें पड़ा हुआ।

दुःखदर्शन (सं० पु०) गृध्र, गीध।

दुःखदाता (सं० पु०) वह मनुष्य जो दुःख पहुंचाता हो।

दुःखदायक (सं० त्रि०) दुःख-दा-णिच्-ण्वुल्। दुःखकर, कष्ट पहुंचानेवाला।

दुःखदायी (सं० त्रि०) दुःख देनेवाला।

दुःखदिर (सं० पु०) दुष्टः खदिरः। महासार खदिरभेद, एक प्रकारका खैर।

दुःखदोह्या (सं० स्त्री०) दुःखेन दुह्यते इति दुह ण्यत्। करटा, वह गाय जो कठिनतासे दुही जा सके।

दुःखनिवह (सं० त्रि०) दुःसह, अत्यन्त कष्टदायक।

दुःखप्रद (सं० पु०) दुःखद, कष्ट देनेवाला।

दुःखबहुल (सं० पु०) दुःख पूर्ण, क्लेशसे भरा हुआ।

दुःखभञ्जन—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने राजा चन्द्रशेखरजो त्रिपाठीके आज्ञानुसार 'चन्द्रशेखरकाव्य' नामक एक ग्रन्थ बनाया था। उसमें कुछ खण्डित हो गया था जिसकी पूर्ति रघुवीर कविने की।

दुःखभाग (सं० त्रि०) दुःख-भज ण्विन्। दुःखभोगी, जो कष्ट भोगता हो।

दुःखभाषित (सं० त्रि०) कष्ट उच्चारित।

दुःखभोग (सं० पु०) दुःखस्य भोग। दुःखानुभव, दुःखका सहना।

दुःखमय (सं० त्रि०) दुःख स्वरूपे मयट्। १ दुःख स्वरूप। २ दुःखपूर्ण, क्लेशसे भरा हुआ।

दुःखलभ्य (सं० त्रि०) दुःखेन लभ्यः। दुःखसाध्य, जो कठिनतासे मिल सके।

दुःखलब्धिका (सं० स्त्री०) १ वह वस्तु जो कठिनतासे प्राप्त हो। २ रानीभेद, एक रानी।

दुःखलोक ( सं० पु० ) वह लोक जहाँ दुःख भोगना पड़े संसार।

दुःखवर्द्धन ( सं० पु० ) कर्णपालीरोग, कानकी लौमें होनेवाली एक बीमारी।

दुःखशील ( सं० त्रि० ) दुःखं शीलयति शील-अण्। दुःखानुभवशीलनकर्त्ता, जिसका दुःख भोगनेका स्वभाव हो, अर्थात् जो सर्वदा दुःख अनुभव करता हो।

दुःखसञ्चार ( सं० पु० ) १ कष्टसे समयका बिताना। २ कष्टभोग।

दुःखसागर ( सं० पु० ) दुःखानां सागरः। दुःखका समुद्र, अत्यन्त क्लेश।

दुःखसाध्य ( सं० त्रि० ) दुःखसे होने योग्य, जिसका करना कठिन हो।

दुःखहरा ( सं० स्त्री० ) दुःखं हरति हृ-अच्-टाप्। दुःखनाशिनी दुर्गा।

दुःखाकर ( सं० पु० ) दुःखस्य आकरः। १ दुःखकी खान, संसार। ( त्रि० ) २ दुःखदायक, कष्ट पहुँचानेवाला।

दुःखाचार ( सं० त्रि० ) १ दुःस्वभाव। २ दुःशासन।

दुःखान्त ( सं० पु० ) दुःखस्य अन्तः। १ दुःखका अवसान, क्लेशकी समाप्ति। ( त्रि० ) २ जिसके अन्तमें दुःख हो। ३ जिसके अन्तमें दुःखका वर्णन हो। प्राचीन यूनानी साहित्यग्रन्थोंमें नाटकके दो भेद बतलाये गये हैं—पहला सुखान्त (Comedy) और दूसरा दुःखान्त (Tragedy)। इसलिए यूरोपके साहित्य, नाटक वा उपन्यास दो प्रकार के कहे गये हैं। लेकिन भारतके आचार्योंने इस प्रकार का भेद नहीं किया है।

दुःखान्वित ( सं० त्रि० ) दुःखेन अन्वितः। दुःखयुक्त, जिसे कष्ट हो।

दुःखायतन ( सं० पु० ) संसार।

दुःखार्त्त (सं० त्रि०) दुःखेन आर्त्तः पोड़ितः दुःखपोड़ित कष्टसे व्याकुल।

दुःखित ( सं० त्रि० ) दुःख मञ्जातमस्य, दुःख तारकादित्वातादितच्। सञ्जात दुःख, जि कष्ट या तकलीफ हो।

दुःखिन् ( सं० त्रि० ) दुःखमस्यास्तीति इनि। दुःखान्वित, क्लेशित, पीड़ित।

दुःखिनी ( सं० त्रि० ) जिस पर दुःख पड़ा हो, दुःखिया।

दुःप्राप्य ( सं० त्रि० ) दुःखेन पाप्यते आप-ण्यत्। दुःखलभ्य, जिस पर दुःख पड़ा हो।

दुःशकुन ( सं० क्ली० ) दुष्टं शकुनं। अशुभसूचक निमित्तभेद, बुरा शकुन। यात्रामें बुरा शकुन दिखाई पड़नेसे काम सिद्ध नहीं होता है।

वन्ध्या, चर्म, तुष, अस्थि, सर्प, लवण, अङ्गार, इन्धन, क्लीव, विट्, तैल, उन्मत्त, वसा, औषध, शत्रु, जटिल, प्रावृट्, तृण, व्याधित, नग्न, तैलाभ्यङ्ग, विकलाङ्ग, क्षुधार्त्त, रक्त, स्त्रीपुष्प, शठ, स्वगृहदाह, मार्जारयुद्ध, क्षुत, कापायवस्त्रधारी, गुड़, तक्र, पङ्क, विधवा, कुब्ज, कुटुम्ब, वस्त्रादिका स्खलन, कणधान्य, कपास, वमन, दक्षिणकी ओर गर्दभरव, गर्भिनी, मुण्डितमस्तक, आर्द्र वस्त्रपरिधायी, दुर्वच, अन्ध, वधिर और उदक्यो ये सब दुःशकुन है अर्थात् इन को देख कर यात्रा करनेसे अमङ्गल होता है। कालो यदि काला वस्त्र पहने हुए यात्राकालमें दिखाई पड़े, तो अपशकुन होता है। ( शब्दार्थचिन्तामणिधृत वाक्य )

यात्राके समय पक्षी आदिके द्वारा पुरुषोंके जन्मान्तरकृत शुभाशुभ कर्मप्रकाश होते हैं, इसीका नाम शकुन कहते हैं। (वृहत्संहिता ८६।८० अ०) विशेष विवरणके लिये शकुन शब्द देखो।

दुःशला (सं० स्त्री०) १ राजा धृतराष्ट्रकी एक मात्र कन्या। यह गान्धारीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी और सिन्धुराज जयद्रथको व्याही थी। जब कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें जयद्रथ मारे गये, तब दुःशलाने अपने छोटे लड़केको ही राजसिंहासन पर बिठा कर बहुत दिनों तक राजकार्य चलाया था। उसके लड़केका नाम सुरथ था जो क्रमशः राजकार्यमें बहुत विचक्षण हो गया था। पाण्डवोंके अश्वमेध यज्ञके समय जब अर्जुन यज्ञका घोड़ा लेकर सिन्धुदेशमें पहुँचे, तब जिस अर्जुनके हाथसे उसके पिताकी मृत्यु हुई थी वही अर्जुन युद्धार्थी होकर आये हुए हैं, यह सुनकर सुरथ भयसे मूर्च्छित हो पड़े और पञ्चत्वको प्राप्त हुए। अर्जुनने इस बातको सुन कर सुरथके बालक पुत्रको सिंहासन पर अभिषिक्त किया। ( भारत ) (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुःशासन ( सं० त्रि० ) दुःखेन शिष्यतेऽसौ शास कर्मणि युच्। १ जिस पर शासन करना कठिन हो, जो किसी

का दबाव न माने। (पु०) २ धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। इन्होंने गान्धारीके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। ये दुर्योधनके अत्यन्त प्रेमपात्र और मन्त्री थे। दुर्योधन इन्हींको रायसे सब काम करते थे। कुरु-पाण्डवकी लड़ाईमें यही मूल कारण थे। जब पाण्डव लोग जुए-में हार गये थे, तब दुःशासनने द्रौपदीको रजस्वलावस्था-में सभास्थलमें ला कर वस्त्र खींचनेकी चेष्टा की थी। किन्तु ईश्वरकी कृपासे कुछ कर न सके, जितना ही वस्त्र खींचते थे, उतना ही वह बढ़ता जाता था। अन्तमें वे थक कर लज्जासे सिर झुकाये सभामें बैठ गये। ये अत्यन्त क्रूर स्वभावके थे। पाण्डव लोग वन जाते समय एक एक प्रतिज्ञा करके पुरीसे निकल गये। भीमसेनकी प्रतिज्ञा थी कि, 'मैं जब तक दुःशासनका रक्तपान न करूंगा और इसके रक्तसे द्रौपदीके बाल न रगूंगा, तब तक द्रौपदी बाल न बांधेगी।' कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें भीम-सेनने उनका वक्ष फाड़ कर अपनी वह भयङ्कर प्रतिज्ञा पूरी की थी।

दुःशील (सं० त्रि०) दुष्टं शीलं यस्य। दुष्टशील, बुरे स्वभावका।

दुःशीलता (सं० स्त्री०) दुःशीलस्य भावः दुःशील-तल्-टाप्। अविनय, दुष्टता।

दुःशोध (सं० त्रि०) दुःखेन शुध्यते दुर-शुध कर्मणि खल्। १ कष्ट द्वारा शोधनीय, जिसका सुधार कठिन हो। २ जिस धातु आदिका शोधना कठिन हो।

दुःश्रव (सं० त्रि०) दुर-श्रु-खल्। १ अश्राव्य, जिसके सुननेसे दुःख उत्पन्न हो। (पु०) २ काव्यका एक दोष। यह कानोंको कर्कश लगनेवाले वर्णोंके आनेसे होता है।

दुःषन्धि (सं० पु०) दुष्टः सन्धिः सुसामादित्वात् षत्वे वा विसर्गस्य षः। दुष्टसन्धि, दिखावटी मेल।

दुःषमम् (सं० क्ली०) दुष्टं समम् अत्र 'तिष्ठद्गु' इत्यव्ययी भावः षत्वे रो वा षः। गर्ह, निन्दा।

दुःषेध (सं० त्रि०) रोध करनेमें असमर्थ, जिसका निवारण कठिन हो।

दुःसक्थ (सं० त्रि०) दुष्टं सक्थि यस्य, अच् समा-सान्तः। दुष्ट सक्थियुक्त।

दुःसङ्कल्प (सं० पु०) १ दुष्ट विचार, बुरा इरादा। २ जो बुरा सङ्कल्प करता हो, खोटी नियतका।

दुःसङ्ग (सं० पु०) कुसङ्ग, बुरा साथ, बुरी सोहबत।

दुःसन्धान (सं० पु०) केशवदासके अनुसार काव्यमें एक रस। यह उस जगह पर होता है जहां एक तो अनुकूल होता है और दूसरा प्रतिकूल; एक तो मेलकी बात करता है, दूसरा बिगाड़की।

दुःसह (सं० त्रि०) दुःखेन सह्यतेऽसौ दुर-सह खल्। १ दुःखद्वारा सहनीय, जिसका सहन करना कठिन हो। (पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुःसहा (सं० स्त्री०) नागदमनी।

दुःसाध (सं० त्रि०) दुःखेन साध्यतेऽसौ खल्, तदर्थं घञ् वा। दुःसाध्य, जिसका करना कठिन हो।

दुःसाध्य (सं० त्रि०) १ कष्टसाध्य, जिसका साधन कठिन हो। २ जिसका उपाय कठिन हो।

दुःसाधिन् (सं० त्रि०) दुष्टं साधयति साधि-णिनि। १ दुष्टसाधक। (पु०) २ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।

दुःसाहस (सं० पु०) १ अनुचित साहस, ऐसी बात करने को हिम्मत जो अच्छी न समझी जाती हो। २ व्यर्थका साहस, ऐसी हिम्मत जिसका परिणाम कुछ न हो।

दुःसाहसिक (सं० त्रि०) अगम साहसिक, जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो।

दुःसुप्त (सं० त्रि०) दुर स्वप-क्त वा अत्वं। १ दुष्ट स्वप्नयुक्त। (क्ली०) २ दुष्टस्वप्न, खराब सपना।

दुःस्त्री (सं० स्त्री) दुष्टा स्त्री, खराब औरत।

दुःस्थ (सं० त्रि०) दुष्टं तिष्ठति स्था-क। १ दुर्दशापन्न, जिसकी स्थिति बुरी हो। २ मूर्ख। ३ दुःखमें अवस्थित, दरिद्र। ४ लुब्ध, लोभी।

दुःस्थित (सं० त्रि०) दुर-स्था-क्त। दुःखमें अवस्थित, दरिद्र, गरीब।

दुःस्थिति (सं० स्त्री०) दुर-स्था-क्तिच्। दुरवस्था, दुर्दशा, बुरी हालत।

दुःस्पर्श (सं० त्रि०) दुःखेन स्पृश्यतेऽसौ दुर-स्पृश-कर्मणि खल्। १ दुरालभ, जिसे पाना कठिन हो। २ स्पर्श करनेमें अशक्य, जिसका छूना कठिन हो। (स्त्री०) ३ लता-करञ्ज। ४ कपिकच्छु, केवांच। ५ आकाशगङ्गा। ६ कण्टकारी, भटकटैया।

दुःस्फोटक (सं० पु०) दुष्टः स्फोटयति स्फुट-अच्। अस्त्र-विशेष, एक प्रकारका हथियार।

दुःस्वप्न ( सं॰ पु॰ ) दुष्टः स्वप्नः प्रादिसमास। अशुभसूचक स्वप्नभेद, बुरा स्वप्न, ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता हो। निद्रावस्थामें क्या क्या स्वप्न देखनेसे क्या क्या फल होता है, वह ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

स्वप्नमें यदि कोई हँसे वा विवाद देखे अथवा नाचना गाना सुने, तो समझे कि विपत्ति आनेवाली है। यदि दाँतका टूटना एवं विचरण करना देखा जाय, तो शारीरिक पीड़ा होती है। यदि अपनेको तेल मलते, गदहे, भैंस या ऊँट पर सवार हो कर दक्षिण दिशाको जाते देखे, तो समझना चाहिये कि मृत्यु निकट है। स्वप्नमें घूघू, जवापुष्प, अशोक, करवीरतेल और नमक देखनेसे विपत्ति, नग्ना स्त्री, छिन्ननासा, शूद्रकी विधवा, पौढी और तालफल देखनेसे शोक; रुष्ट ब्राह्मण और कोपान्विता ब्राह्मणीको देखनेसे घरसे अचिरात् लक्ष्मी-त्याग तथा वनपुष्प, रक्तपुष्प, पलाश, कपास और शुक्ल-वस्त्र देखनेसे दुःख होता है।

स्वप्नमें स्त्रियोंको हँसते, गान करते तथा कृष्णवस्त्र परिधाना विधवाको देखनेसे मृत्यु; देवताका नाच गान और हँसी तथा उछलना, कूदना वा दौड़ना देखनेसे उस देशका शीघ्र विनाश, वमि और मलमूत्रत्याग तथा वैद्य, सोना और चाँदीका देखना एवं कृष्णवस्त्रपरिधाना स्त्री आलिङ्गन ऐसा देखनेसे उसको अवश्य मृत्यु होती है। मृत वत्समें मृग वा नरमुण्ड तथा अस्थिमाला देखनेसे अमङ्गल; अस्थिमाला पाता हूँ, ऐसा देखनेसे विपत्ति; घी, दूध, मधु, छाछ वा गुड़से अपनेको लिप्त देखनेसे पीड़ा, ऊँट वा गदहेके रथ पर अकेला अपनेको बैठा हुआ देखनेसे मृत्यु; लाल वस्त्र पहनी हुई तथा लाल अनुलेपनसे विभूषिता स्त्रीको स्वप्नमें आलिङ्गन करनेसे व्याधि एवं पतित नख और केश, अङ्गार तथा भस्मपूर्ण चिता देखनेसे मृत्यु होती है।

श्मशान, शुष्ककाष्ठ, तृण, लौह और ईषत् कृष्णमसी स्वप्नमें देखनेसे दुःख, पादुका, फलक, रक्तपुष्पमाल्य, माष, मसूर और मुद्ग देखनेसे व्रण; कण्टक, सरलकाष्ठ, काक, भल्लूक, वानर, खर, पूय ( पीप ) और गात्रमल देखनेसे व्याधिका कारण, भग्न और क्षत, भाण्ड, शूद्र और गलत्-कुष्ठरोगी, रक्तवस्त्र, जटिल, शूकर, महिष, खर महाघोर अन्धकार, मृतजीव और योनिलिङ्ग देखनेसे विपत्ति; कुवेशधारी, म्लेच्छ, पाशहस्त, और यमदूत देखनेसे अवश्यम्मृत्यु; ब्राह्मण-ब्राह्मणी, बालक बालिका और पुत्र कन्या ये सब रागान्वित हो कर विदा हो रहे हैं, ऐसा देखनेसे दुःखलाभ; कृष्णपुष्प और कृष्णपुष्पमाल्य, अस्त्रशस्त्रधारी, विकृतकाया म्लेच्छकामिनी देखनेसे अवश्य ही मृत्यु, नृत्यगीत, वाद्य, रक्तवस्त्र, मृदङ्गध्वनि और सुख देखनेसे निश्चय ही दुःख; मत्स्यादि पकड़नेसे भाईकी मृत्यु एवं कबन्ध, मुक्तकेशी, छिन्न और नृतप्रकारी ये सब देखनेसे मृत्यु होती है। मृत वा मृता स्त्री वा कृष्णवर्णा म्लेच्छपत्नीका आलिङ्गन देखनेसे भी अवश्य मृत्यु होती है। स्वप्नमें दाँतोंका टूटना वा बालोंका गिरना देखनेसे शारीरिक पीड़ा; शृङ्गी वा दंष्ट्री आक्रमण करनेको उद्यत है, ऐसा देखनेसे राजभय, छिन्नवृक्ष, शिलावृष्टि, तुष, रक्ताङ्गार, भस्मवृष्टि, पतितगृह, भयानक धूमकेतु, वृक्षका भग्नस्कन्ध आदि देखनेसे दुःख; रथ, गृह, शैल, वृक्ष, गो, हस्ती, तुरग और खरसे अपनेको पृथ्वी पर गिरा देखनेसे विपत्ति; उच्च स्थानसे गर्त्त, भस्म, अङ्गार, चिता, क्षारकुण्ड और चूर्णमें गिरा देखनेसे मृत्यु, बलपूर्वक किसीका मस्तक वा मस्तकसे छत्र ग्रहण कर रहा है, ऐसा देखनेसे पितृ-नाश, सवत्सा गौ प्रसूता हो कर घरसे जा रही है, ऐसा देखनेसे लक्ष्मीहीन; यमदूत पाशसे बाँध कर ले जा रहे है, गणक, ब्राह्मण, ब्राह्मणी और गुरु रुष्ट हो शाप दे कर जा रहे हैं, भैंस, गदहा, भालू, ऊँट और सूअर रुष्ट हो कर दौड़ रहे हैं, ऐसा देखनेसे विपत्ति तथा कौआ, कुत्ता, भालू लड़ते झगड़ते शरीर पर आ कर गिर रहा है, ऐसा देखनेसे मृत्यु होती है।

जो सब स्वप्नकी कथाएं ऊपर कही गईं, वे सभी दुःस्वप्न है। विशेष विवरण स्वप्न शब्दमें देखो। स्वप्न देखनेसे ही तदनुसार फल होगा, सो नहीं, सभी स्वप्न फललाभ नहीं करते। स्वप्न यदि प्रथम याममें देखा जाय, तो एक वर्षके भीतर फल प्राप्त होता है, दूसरे याममें देखनेसे ८ महीनेमें, तीसरे याममें तीन महीनेमें, चौथेमें आध महीनेमें, अरुणोदयकालमें स्वप्न देखनेसे दश

दिनमें और प्रातःकालमें देखनेसे उसी समय जगने पर फल मिलता है। किन्तु प्रातःकालमें दुःस्वप्न देखनेसे जाग उठना उचित नहीं, स्वप्न दर्शनके बाद सो जाना ही कर्त्तव्य है। चिन्ता और व्याधिसे समायुक्त हो कर यदि स्वप्न देखे, तो वह निष्फल होता है। जड़, मूत्र और पुरीष द्वारा अपवित्र, भयाकुल, दिगम्बर और मुक्तकेश ऐसी अवस्थामें स्वप्न देखनेसे कोई फल नहीं मिलता। कायस्थगोत, नीच व्यक्ति, मूर्ख और शत्रु आदिके समीप स्वप्नवृत्तान्त नहीं करना चाहिये।

पूर्वोक्त दुःस्वप्न देखनेसे उसकी शान्ति करना चाहिए। शान्तिका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें जो लिखा है वह इस प्रकार है,—

रक्तचन्दनके काष्ठको घृताक्त कर होम और सहस्र बार गायत्री जप करे। ऐसा करनेसे दुःस्वप्नका फल नहीं मिलता और सहस्र बार मधुसूदन नामका जप करनेसे भी दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाता है। पूर्वमुख हो कर श्रीकृष्णका नामाष्टक भक्तिपूर्वक पढ़नेसे भी दुःस्वप्न सुस्वप्नमें परिणत हो जाता है।

दुःस्वभाव (सं० पु०) १ दुःशीलता, बुरा स्वभाव, बदमिजाजी। (त्रि०) २ दुःशील, दुष्ट स्वभावका।

दुःस्वरनाम (सं० पु०) एक प्रकारका पापकर्म। इसके उदय होनेसे प्राणियोंके कठोर और हीनस्वर होते हैं।

दु (हिं० वि०) 'दो' शब्दका छोटा रूप।

दुअन (हिं० पु०) दुवन देखो।

दुआ (अ० स्त्री०) १ प्रार्थना, विनती, याचना। २ आशीर्वाद, असीस। (हिं० पु०) ३ एक प्रकारका गहना जो गलेमें पहना जाता है।

दुआब (हिं० पु०) दुआया देखो।

दुआबा (फा० पु०) वह प्रदेश जो दो नदियोंके बीचमें पड़ता हो।

दुआल (फा० स्त्री०) १ चर्म, चमड़ा। २ रिकाबका तसमा।

दुआला (हिं० पु०) लकड़ीका एक बेलना। यह सुनहरी छपी हुई छींटोंके छापोंको बैठानेके लिए फेरा जाता है।

दुआली (फा० स्त्री०) सानकी बद्धी, खरादका तसमा।

दुकड़हा (हिं० वि०) १ जिसका दाम दो दमड़ी या एक छदाम हो। २ तुच्छ, नाचीज। ३ अनादृत, नीच, कमीना।

दुकड़ा (हिं० पु०) १ एकमें लगी हुई दो वस्तु, जोड़ा। २ दो दमड़ी, एक पैसेका चौथाई भाग, छदाम। ३ वह जिसमें किसी वस्तुका जोड़ा हो।

दुकड़ी (हिं० वि०) १ जिसमें किसी वस्तुका जोड़ा हो। (स्त्री०) २ दो बूटियों वाला ताशका पत्ता। ३ चारपाईकी बुनावट। इसमें दो दो बाध एक साथ बुने जाते हैं। ४ वह बग्घी जिसमें दो घोड़े जोते जाते हैं। ५ दो कड़ियोंको लगाम।

दुकान (फा० स्त्री०) वह स्थान जहां बेचनेके लिये तरह तरहकी चीजें रखी हों, हट्ट, हट्टी।

दुकानदार (फा० पु०) १ दुकानका मालिक। २ ढोंग रच कर रुपया प्राप्त करनेका काम।

दुकाल (हिं० पु०) अन्न कष्टका समय, अकाल।

दुकुली (हिं० स्त्री०) चमड़ा मढ़ा हुआ एक प्रकारका पुराना बाजा।

दुकूल (सं० क्ली०) दु जलच-कुक-च। दुष्टः कूलमि कूल आवरणे क पृषो० वा साधु। १ क्षौम वस्त्र, सन या तीसीके रेशेका बना हुआ कपड़ा। २ सूक्ष्म वस्त्र, महीन कपड़ा, बारीक कपड़ा। ३ वस्त्र, कपड़ा।

दुकूल—बौद्धोंके शाम जातकके अनुसार एक बौद्ध ऋषि। ये गौतम वा शामके पिता थे। इनका विवरण शाम जातकमें इस प्रकार लिखा है—शामके जन्मके बाद दुकूल अपनी स्त्री परिकाके साथ एक दिन फलमूलकी तलाशमें अरण्यमें गये और वहां दैवदुर्विपाकसे दोनों अंधे हो गये। शाम उन्हें ढूंढ कर अपने आश्रमको ले आये और अनन्यभाव तथा एकाग्रचित्तसे पिता-माताकी सेवा करने लगे। एक दिन वे सन्ध्या समय नदीसे जल लाने गये। वहां किसी राजाने उन्हें मृग समझ कर तीर चलाया। शाम राजासे अपने असहाय माता-पिताकी भावी दुःख सम्पूर्ण कहने न पाये थे, कि उनको प्राणवायु उड़ गई। बाद राजाने उनके अन्धे मातापिताके पास पहुंच कर सब समाचार कह सुनाया। इसके अनन्तर दुःखसे कातर वे सबके सब मृत शामके पास आए। परिकाने कहा, "यदि मेरा पुत्र

यथार्थ ब्रह्मचारी रहा हो, यदि उस 'सत्यशिला' क्रिया-कलापको अतन्द्रितभावसे किया हो, यदि बुद्धदेवमें उसको सच्ची भक्ति रही हो, तो उस पुण्यके फलसे मेरा पुत्र हो जाय।" दुकूलने भी इस तरह सत्यक्रिया करने पर श्याम जी उठे। ऐसे समयमें एक देवीने प्रकट हो कर उनके माता-पिताको चक्षु दान किया।

यह उपन्यास रामायणमें दिये हुए दशरथ द्वारा अन्धक मुनिके पुत्र सिन्धुवधके आख्यानका अनुकरण है। अनन्तर इतना है कि रामायणमें सिन्धु बाणाघातसे गतासु हो गये थे और पुत्रशोकसे अंधक मुनिने प्राणत्याग किया था, पर श्यामजातकमें श्यामका उठना और अंधोंका दृष्टि पाना लिखा गया है।

दुकेला (हिं० वि०) जो अकेला न हो।

दुकेले (हिं० क्रि० वि०) दूसरे व्यक्तिको साथ लिये।

दुक्कड़ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बाजा जो तबलेकी तरह होता है और सहनाईके साथ बजाया जाता है। २ एकमें जुडी हुई या साथ पटी हुई दो नावोंका जोडा।

दुक्का (हिं० वि०) १ जो अकेला न हो। २ जिसमें कोई दो वस्तु एक साथ हों। ३ जो एक साथ दो हो।

दुक्की (हिं० स्त्री०) दो बूटियोंवाला ताशका एक पत्ता।

दुखण्डा (हिं० वि०) दो तल्ला, जिसमें दो खन हों।

दुखड़ा (हिं० पु०) १ दुःखका वृत्तान्त, दुःखकी कथा। २ कष्ट, विपत्ति, तकलीफ, मुसीबत।

दुःखदाई (हिं० वि०) दुःखदायी देखो।

दुखना (हिं० क्रि०) पीड़ायुक्त होना, दर्द करना।

दुखाना (हिं० क्रि०) १ कष्ट पहुंचाना, पीडा देना। २ किसीके पके घाव आदिको छू देना।

दुखारा (हिं० वि०) पीड़ित, दुःखी।

दुखीया (हिं० वि०) दुःखसे पीड़ित। जो दुःखमें पड़ा हो।

दुखीयारा (हिं० वि०) १ जिसे किसी बातका कष्ट हो, दुखीया। २ जिसे कोई शारीरिक कष्ट हो, रोगी।

दुखी (हिं० वि०) १ जिसे कष्ट हो। २ जिसे मानसिक कष्ट हुआ हो, जिसके दिलमें रंज हो।

दुखीला (हिं० वि०) दुःखपूर्ण, जो दुःख भोगता हो।

दुगई (हिं० स्त्री०) बरामदा, ओसारा।

दुगड—बम्बईके थाने जिलेके अन्तर्गत भिवन्दी तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १९° २७' उत्तर और देशा ७३° ७' पू० भिवन्दी शहरसे ९ मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७३७ है। १७८० ई०में जेनरल हटलेने महाराष्ट्रोंको इसी स्थान पर पराजय किया था।

दुगडिया—मध्यभारतके भूपालराज्यके बन्दोबस्तकालमें पिण्डारी सरदार चोतूके भाई राजाखाँने अपनी जीवद्दशा-में भोग करनेके लिए शुजावलपुरका कुछ भाग जागीरमें पाया था। १८२५ ई०में राजा खाँके मरने पर उनके कथनानुसार वृटिश गवर्मेण्टने सारी सम्पत्ति उनके पांच पुत्रोंमें बराबर बराबर बाँट दी। दुगडिया राजा खाँके तीसरे पुत्रके अंशमें पड़ा।

दुगदुगी (हिं० स्त्री०) १ गरदनके नीचे और छातीके ऊपरका भाग जो कुछ गहरा सा होता है। २ एक प्रकारका आभूषण जो गलेमें पहना जाता है और छातीके ऊपर तक लटका रहता है।

दुगना (हिं० वि०) द्विगुण, दूना।

दुगदंनियावैठक (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेच। जब पहलवानका एक हाथ जोड़की गरदन पर होता है और जोड़का वही हाथ पहलवान्की गरदन पर होता है, उसी समय यह पेच किया जाता है। इसमें पहल-वान दूसरा हाथ बढ़ा कर जोड़की जांघोंमें देता है और बैठक करके गरदन दबाते हुए उसे फेंक देता है।

दुगाड़ा (हिं० पु०) १ वह बन्दूक जिसमें दो नलियां लगी रहती है। २ दोहरी गोली।

दुगारि—राजपूतानेके अन्तर्गत बुन्दी राज्यका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° ४०' और देशा० ७५° ४८' पू० बुन्दी शहरसे २० मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १५३१ है। १८वीं शताब्दीमें यह ग्राम महाराव राजा उमेदसिंहके छोटे लड़केको जागीरके रूपमें दिया गया था। आज भी यह उन्हींके उत्तराधिकारीके अधीन है। कनकसागर नामका यहां एक बड़ा जलाशय है जिसका क्षेत्रफल लगभग तीन वर्गमील होगा। यहां बहुतसे हिन्दू देवालय तथा दो जैन-मन्दिर है।

दुगासरा (हिं० पु०) किसी दुर्गके किनारेका गांव।

दुगूल (सं० क्ली०) दुकूल पृषोदरादित्वात् साधुः। दुकूल देखो।

दुग्ध (सं० क्ली०) दुह्यते इम दुह कर्मणि क्त। स्त्रीजातिके स्तनोंसे निःसृत द्रव द्रव्यविशेष, सफेद रंगका वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो स्तनपायी जीवोंको माताके स्तनोंमें रहता है और जिससे उनके बच्चोंका बहुत दिनों तक पोषण होता है। इसके संस्कृत पर्याय—क्षीर, पीयूष, उधस्य, स्तन्य, पय और बालजीवन हैं। (भावप्रकाश)

स्तनपायी जीव जन्म लेनेके बाद बहुत दिनों तक केवल दूध पी कर जीते हैं और उसीसे उनका पुष्टिसाधन होता है। परमेश्वरके अपार कौशलसे उनको माताके स्तनोंमें उनके जीवन धारणोपयोगी यथेष्ट दूध रहता है। उस समय शिशु दूधके सिवा और कोई खाद्य पचा नहीं सकता, उसे अन्य खाद्यका प्रयोजन भी नहीं पड़ता। माताके दूधसे ही उसके सभी खाद्योंका अभाव जाता रहता है। शरीर धारण करनेके लिये जितने पदार्थोंको आवश्यकता है, वे सभी पदार्थ दूधमें मौजूद हैं, अतः केवल दूध पी कर ही जीवन धारण किया जा सकता है। इसीसे बहुतेरे डाक्टरोंने दूधको आदर्श खाद्य माना है।

माताके शरीरका रस प्रक्रियाविशेषसे स्तनोंमें दूधके रूपमें परिणत हो जाता है और कुचाग्र (ढिपनी) हो कर गिर पड़ता है। गाय, भैंस आदि रोमन्थक प्राणियोंके कुचाग्रमें केवल एक एक छेद रहता है, लेकिन मनुष्योंमें वैसा नहीं है। उनके स्तनोंमें दूध निकलनेके लिये अनेक छेद रहते हैं। ये सब छेद अनेक शाखाओं प्रशाखाओंसे युक्त हैं। विशेष विवरण स्तन शब्दमें देखो।

प्रायः सभी प्राणियोंका दूध अस्वच्छ, शुभ्रवर्ण, परिस्रुत, जलसे कुछ भारी, कुछ मीठा और विलक्षण हलकी गन्धयुक्त होता है। यह गन्ध दूधमें अनेक प्रकारके अम्ल और उद्वायु पदार्थोंके रहनेसे उत्पन्न होती है। उत्कृष्ट अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा देखनेसे ताजा दूधमें असंख्य शुभ्रवर्ण अण्डाकार विम्ब देखे जाते हैं। इन सब विम्बोंका व्यास १ इञ्चके १० हजार भागोंके एक भागके लगभग होता है। सुतरां मनुष्यशोणितके अण्डाणु उनसे दूनेसे भी अधिक हैं। वह सूक्ष्म सूक्ष्म अण्डमेद वा तैल अण्ड लालवत् पदार्थमय है तथा स्वच्छ सलिलवत् पदार्थमें बहता है। दूधके उस जलीयांशमें अण्डाणु सबसे भारी है। इसी कारण दूध जब थोड़ी देर तक यों ही छोड़ दिया जाता है, तब वह तैलमय अण्ड या चरबी ऊपर आ जाती है और वही परिवर्त्तित हो कर मलाई वा मक्खन बन जाती है। पीछे उस दूधमें मक्खनका भाग बहुत कम रह जाता है। दूधको मथने पर भी चरबी एक साथ मिल जाती है और बहने लगती है। इस प्रकारके दूधको माठा दूध कहते हैं और यह बहुत कम मोलमें बिकता है। दूधमें जब खटाईका अंश मिल जाता है, तब थोड़ी देरमें वह जम कर दही बन जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है, कि दूधमेंसे जल और उसके संयोजक अंश अलग हो जाते हैं। इसे दूधका फटना कहते हैं। उसी समय भी जलमें शर्करा और नाना जातीय खनिज पदार्थ तथा लवणादि रह जाते हैं। नीचे बहुतसे प्रधान प्रधान प्राणियोंके दूधका पृथक् पृथक् उपादान लिखा गया है। १०० भाग दुधको विश्लिष्ट करके उसमें जो जो वस्तु पाई जाती है, दूसरे स्तम्भमें उसकी तालिका दी गई है।

| | जलीयांश | तैलादि पदार्थ | छेना | शर्करा | क्षारादि कठिन पदार्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| स्त्रीका दूध (औसत) | ८८३.६ | २५.३ | ३४.३ | ४८.२ | २.३ |
| ,, (ऊर्ध्व संख्या) | ९१४.० | ५४.० | ४५.२ | ६२.४ | २.७ |
| ,, (निम्नसंख्या) | ८६१.४ | ८.० | १९.६ | ३९.२ | १.६ |
| ,, (शिशु १४दिनका) | ८७९.८४८ | ४२.९६८ | २५.३३३ | ४१.१३५ | २.०९६ |
| गायका दूध | ८५७.० | ४०.० | ७२.० | २८.० | ६.२ |
| गदहीका दूध | ९१६.२ | १.१ | १८.२ | ६०.८ | ३.५ |
| बकरीका दूध | ८६८.० | ३३.२ | ४०.२ | ५२.८ | ५.८ |
| भेडीका दूध | ८५६.२ | ४२.० | ४५.० | ५०.० | ६.८ |

हम लोगोंके देशमें भैंसके दूध, दही और घीका प्रचार बहुत ज्यादा है। भैंसके दूधमें तेलका भाग अधिक रहनेके कारण उससे मक्खन और घी ज्यादा निकलता है। घोड़ीके दूधमें शर्कराका भाग अधिक है, अतः उससे एक प्रकारका आसव तैयार होता है।

स्तनपायी जीवोंके बच्चे बहुत दिनों तक केवल दूध पी कर ही रहते हैं और उसीसे उनके शरीरको पुष्टि होती

है। अतः यह कह सकते हैं, कि दूधमें प्राणियोंके पुष्टि-जनक सभी पदार्थ विद्यमान हैं। तदनुसार डाक्टर प्राउट ( Prout ) साहबने दूधके उपादानोंके अनुसार खाद्यके पर्यायोंका विभाग करनेका प्रस्ताव किया; जैसे—

१ जलीय खाद्य ( जल ), २ अण्डलालमय खाद्य ( छेना ), ३ तैलमय खाद्य ( मक्खन ), ४ शर्करामय-खाद्य ( दुग्ध-शर्करा ) और ५ चारमय खाद्य, यह भी दूधमें विद्यमान है। हेडलेन साहबने दूधके चाराशका विश्लेषण करके उसमें चूना, नमक, यवचार, सोडा, म्यागनेसिया आदि पदार्थ पाये हैं।

दूध सहजमें हो किसी विशेष उत्तेजनाके विना बच्चोंके पेटमें पच जाता है। इसके सभी उपादान बातकी बातमें परिवर्त्तित हो कर शरीरके पोषणमें लगे रहते हैं। चूना आदि दूधका कठिनांश बच्चोंको हड्डियोंका पोषण करता और उन्हें मजबूत बनाये रहता है। इसी प्रकार तैलमय छेना और तरल शर्करासे शरीरके दूसरे दूसरे अंशको पुष्टि होती है। बच्चोंको कब तक माताका दूध पीना उचित है, उसका कोई ठीक नहीं है। उनको शारीरिक पुष्टि आदि द्वारा इसमें फर्क पड़ जाता है। कमसे कम ८ मास तक दूध पीनेका समय निर्द्धारित है। इसके बाद दूध पीनेसे शिशु और प्रसूति दोनोंको हानि होनेकी सम्भावना है।

बच्चा जब माताका दूध छोड़ दे, तब भी उसे गाय, भैंस, बकरी आदिका दूध पिलाना तथा खाद्य पदार्थ खाने देना उचित है। केवल दूध पी कर शरीरकी सम्यक् पुष्टि नहीं भी हो, तो भी सभी अवस्थाओंमें मनुष्य-देहके लिये दूध अतिशय पुष्टिजनक है। रुग्न, दुर्बल, विशेषतः काशरोगाग्रस्तोंके लिये दूध अमृतके समान है।

दूंतिया आदि कोई धातव विष खा कर शरीर यदि विषाक्त हो गया हो तो दूध पीनेसे वह प्रशमित हो जाता है।

पहले कहा जा चुका है, कि दूरवीक्षणको सहायतासे ताजे दूधमें छोटे छोटे अनेक मेदमय अण्ड देखे जाते हैं जिनमेंसे अधिकांशका व्यास $\frac{१}{१००००}$ इञ्चसे ले कर $\frac{३}{२००००}$ इञ्च, कभी $\frac{३}{१००००}$ इञ्च तक देखा जाता है। किन्तु किसी किसी डाक्टरने परीक्षा करके दूधमें $\frac{१}{१०००}$, यहां तक कि $\frac{३\frac{१}{२}}{१०००}$ इञ्च व्यासका अण्ड देखा है। वे सब छोटे छोटे मेदमय अण्ड फिर भी सूक्ष्म आवरणोंसे आच्छादित हैं। वे सब आवरण तैलमय नहीं हैं, क्योंकि ताजे दूधमें एसिटिक एसिड मिलानेसे वे सब अण्डोंके आकार बिलकुल बदल जाते हैं। आवरण यदि शुद्ध मेदमय रहता, तो ऐसा परिवर्त्तन कदापि नहीं होता। फिर इथर मिलानेसे भी वे मेदको तरह गल नहीं जाते।

प्रसवके बाद हो स्तनसे जो दूध निकलता है, उसका उपादान परवर्त्ती समयके दूधसे बहुत पृथक् है। यह दूध तीन चार दिन तक खूब गाढ़ा रहता है, इस अवस्थामें उसे 'पेवस' कहते हैं। डाक्टरोंने परीक्षा करके देखा है, कि पेवसमें अपेक्षाकृत अनेक मेदमय अण्डाणुके सिवा पीतवर्ण वस्तुलाकार बहुसंख्यक छोटे छोटे मेद और अण्डलालमय कणादि विद्यमान हैं, इथर मिलानेसे वे सब मेदभाग बहुत जल्द गल जाते हैं। ३।४ दिनों तक वे सब कण अधिक मात्रामें रहते हैं, पीछे क्रमशः कम हो कर २।१ दिनके भीतर बिलकुल गायब हो जाते हैं। कभी कभी २० दिनों तक वे सब कण दूधमें देखे गए हैं।

स्वास्थ्यके सिवा प्रसूतिके खाद्यके ऊपर भी स्तन-दुग्धका गुणागुण बहुत कुछ निर्भर है। यह सभीको मालूम है, कि जब शिशु केवल दूध पी कर प्राणकी रक्षा करता है, तब उसे शारीरिक कष्ट होने पर माता उपवास करती है और स्वयं औषधका सेवन करती है। इसीसे शिशु आरोग्य हो जाता है। शिशुके पीड़ित होने पर माताको हो पथ्यापथ्यका विचार करना होता है। डाक्टरोंने परीक्षा की है, कि एक कुत्ती जब सिर्फ अनाज खाती थी, तब उसके दूधमें मक्खन और शर्करा अधिक पाया जाता था, फिर उसे जब मांसादि खानेको मिलने लगा, तब उसके दूधमें कठिन पदार्थको मात्रा अधिक देखी गई। अतः यह स्पष्ट है, कि रसयुक्त खाद्य देनेसे दूधमें मक्खनका भाग अधिक होता है। यह नियम अन्यान्य प्राणियोंमें भी लागू हो सकता है। फिर प्रोफेसर साहबने देखा है, कि गाय भैंस आदि जब घरमें

पाली जाती है, तब उनके दूधमें अधिक मक्खन रहता है और जब वे मैदानमें चरनेको छोड़ दी जाती है, तब दूधमें मक्खनका भाग कम जाता है। वर्षाकालकी कटी हुई सूखी घासकी अपेक्षा ग्रीष्मकालकी ताजी घास खिलानेसे भी दूधमें अपेक्षाकृत मक्खनका भाग ज्यादा रहता है।

फेरियर साहबने परीक्षा करके कहा है, कि शिशुके दूध पीनेके समय नारीका दूध यद्यपि क्रमशः बदला करता है, तो भी उसमें नवनीतका अंश बराबर रहता है, कभी भी घटता बढ़ता नहीं। बच्चा ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों मातृदुग्धमें छेनेका भाग भी बढ़ता जाता है। इधर शर्कराका भाग कम होता आ रहा है और उधर क्षारांशकी वृद्धि होती जा रही है।

दूधकी विशुद्धताका निरूपण करनेके लिये अनेक प्रकारके यन्त्र आविष्कृत हुए हैं। इसका विवरण दुग्धपरिमापक यन्त्रमें देखो।

एशियाके पूर्व और दक्षिणांशमें केवल हिन्दू छोड़ कर और कोई जाति गाय भैंसका ताजा दूध नहीं खाती। यहां तक कि चीन, ब्रह्मदेश, मलय और भारतके पूर्व प्रान्तस्थ खसिया, गारो, नागा, जावा यवद्वीप), सुमात्रा, जापान आदिके देशोंके लोग ताजा दूध पीना तो दूर रहे, के माफिक उससे घृणा करते हैं। वे लोग दूधको शुष्क कर अथवा सड़ा कर उससे पनीर, छेना आदि सुखाद्य द्रव्य बना लेते हैं। कहना फजूल है कि उनके बनाये हुए पनीरादि इस देशके लोगोंके लिए प्रीतिकर नहीं हो सकते। हिन्दू छोड़ कर बहुत अल्पसंख्यक जाति नवनीत वा मक्खनको गला कर घी तैयार करती है और उसे उपादेय खाद्यके जैसा व्यवहार करती है। यूरोपीयगण मक्खनका व्यवहार बहुत करते हैं, घीको उतना पसन्द नहीं करते। बहुत सी ऐसी जाति है जो दुग्धविक्रयको नितान्त हीनवृत्ति समझती हैं। अरबी दूधके बदले पण्य लेते हैं, किन्तु बेचते नहीं। लब्बान (दुग्ध-विक्रेता)को वे लोग अति घृणित तथा जघन्य समझते हैं। बालफोर साहबका अनुमान है कि उस देशमें बिना पैसा लिए अतिथिको दूध देनेका जो नियम है उसीसे विक्रय-प्रथा इतनी

दूषित समझी गई है। आज भी मक्का नगरमें मिसंरीय एक निकृष्ट जातिके सिवा दूसरी कोई जाति दूध नहीं बेचती।

पश्चिम और मध्य एशियाकी अनेक जाति आज भी ऊंटनीका दूध पीती हैं। वहां कितने ऐसे हैं जो केवल ऊंटनीका दूध पी कर ही जीवन धारण करते हैं। बहुत प्राचीन कालसे ऊंटनीका दूध व्यवहृत होते सुना गया है। बाइबलमें लिखा है कि याकुबने अपने भाई ईशाको अन्यान्य पशुओंके साथ ३० दुग्धवती ऊंटनी दी थी। इससे साबित होता है, कि यहूदीगण बहुत पहलेसे ही उष्ट्रदुग्धका व्यवहार करते थे।

चीनके उत्तर भागमें विशेषतः मङ्गोलिया प्रदेशके लोग ताजा दूध पीते हैं और उससे छेना, मक्खन आदि भी तैयार करते हैं। मङ्गोलियामें गौकी संख्या अधिक है। गोदुग्धके सिवा ये लोग घोड़ीका दूध भी पीते हैं। घोड़ीके दूधमें कठिन क्षारादिका भाग सैकड़े लगभग १७ और शर्करा लगभग ८ अंश है, इस कारण शर्कराभाग सहजमें ही अन्तरोत्सेकके द्वारा सुरासारमें परिणत हो जाता है। यही कारण है, कि मङ्गोलिया तथा तातार-वासी घोड़ीके दूधसे कुमिस नामक अपने लिये एक प्रकारकी बढ़िया आसव प्रस्तुत करते हैं। हानवंशीय सम्राटोंके राजत्वकालमें चीन देशमें कुमिस प्रचलित था। काल्मक तातारगण गाय और घोड़ीके दूधको उबाल कर खट्टा होने देते हैं और पीछे उसे अनेक तरहसे गला कर शराब तैयार करते हैं। यही मादक द्रव्य ग्रीष्मकालमें बड़ा बहुतायतसे व्यवहृत होता है। ग्रीष्मकालमें लगभग २४ घण्टे सड़ा रखनेके बाद चुआनेसे ही शराब बन जाती है। शीतकालमें २।३ दिन तक दूध सड़ाया जाता है।

भैंसका दूध भारतवर्षमें बहुत व्यवहृत होता है। इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है तथा गोदुग्धकी अपेक्षा मक्खनका भाग इसमें ज्यादा रहता है। बहुतसे ऐसे धूर्त ग्वाले हैं जो गायके दूधमें थोड़ा भैंसका दूध मिला कर उसे गायका दूध कह कर बेचते हैं। यही नहीं, वे लोग भैंस और गायके दूधको एक साथ मिला कर उससे मक्खन निकालते हैं। जो कुछ हो, अनेक

निष्ठावान् हिन्दू भैंस आदिका दूध अपवित्र समझ कर उसे काममें नहीं लाते।

तिब्बत, मङ्गोलिया, चीन, तातार आदि स्थानोंके मनुष्य चमरो, जंगली गाय आदिका दूध पीते हैं। रूसिया-के उत्तर-भागमें बलगा हरिण दूध देती है। अरबके लोग विना आँच दिये दूधको सुखा कर जमोदा नामक एक प्रकारका चीर तैयार करते हैं। घी मिलानेसे वह बहुत मोठा हो जाता है। जल मिला कर भी वे लोग उस शुष्क चीरको बढ़िया समझ कर पीते हैं, किन्तु विदेशियोंके लिए वह इतना सुस्वादु और प्रीतिकर नहीं है। कहना नहीं पड़ेगा कि देश, काल और मनुष्यों की रुचि भेदसे दही, छेना, मक्खन, नवनीत नाना प्रकारसे प्रस्तुत तथा व्यवहृत होते हैं। जहां जितने प्रकार मिष्टान्न देखे जाते हैं वे या तो दुग्धजात या दूधमिश्रित अथवा दुग्धजात किसी पदार्थसे बने हुए हैं। गायका दूध केवल हिन्दू हो नहीं वरन् पृथ्वीकी अनेक जातियों-के खाद्यका प्रधान उपादान है। संस्कृत कवियोंका कहना है, कि गव्यरसके विना भोजन हो वृथा है। गाय भैंस आदिका दूध सद्य और तरल अवस्थामें हो सुपाच्य तथा पुष्टिकर है। इसके सिवा उसे विकृत करके किसी प्रकारका खाद्य वा पानीय प्रस्तुत क्यों न करें वह अपेक्षा-कृत गुरुपाक हो जाता है। दूध भिन्न भिन्न उपायोंसे शुष्क एवं चूर्ण अवस्थामें लाया जाता है। इस प्रकारके दुग्ध चूर्णको गरम जलमें मिलानेसे कृत्रिम दुग्ध प्रस्तुत होता है। समुद्रमें जब लम्बी दौड़ करनी होती है तब दूधका मिलना असम्भव हो जाता है। ऐसी हालतमें उस दुग्ध चूर्णसे कृत्रिम दूध तैयार कर वह जहाजकी लोगों विशेषतः दुध मुंहे बच्चेको दिया जाता है।

ताजा दूध अधिक देर तक रखनेसे भी वह नष्ट नहीं होता जिससे दूध नष्ट न हो और बहुत दिनों तक अवि-कृत रह सके उसके लिए अनेक चेष्टाएं की गई हैं। कितने तो इसमें कृतकार्य भी हो चुके हैं। इस प्रकार जहां गाय भैंसका ताजा दूध नहीं मिलता वहां उन सब दूधसे काम चल जाता है।

दुग्ध रखनेके जो अनेक उपाय रचे गए हैं यहां उन-का संक्षेप वर्णन किया जाता है। इस देशमें आज कल अनेक पृथक् पृथक् कम्पनोकृत जो सब विलायती दूध आता है, उसका अधिकांश हो निम्नलिखित उपाय-से प्रस्तुत होता है, पहले दूधको एक प्रशस्त तांबेकी कड़ाहीमें डाल कर ११०° फा० तापसे सिद्ध करना होता है और पीछे उसमें थोड़ी चोनी मिला कर क्रमागत चार घण्टे तक उसे हाथसे चलाते हैं। सिद्ध हो जाने पर दूधका तृतीयांश जब बच जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। पीछे उस गाढ़े दूधको टीनके कनटरमें भर कर ठण्ढा होनेके लिए उसे कुछ काल तक पानीमें रख छोड़ते हैं। इस प्रकारका प्रस्तुत दूध बहुत दिनों तक अविकृत रहता है। इस प्रकारके प्रस्तुत दूधको एसेन्स-आफ-मिल्क कहते हैं। ब्लाचफोर्ट साहबने एक प्रकार-का कठिन दूध तैयार किया है जिसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार है। ५६ सेर दूधमें १४ सेर श्वेत शर्करा और एक चमचा भर बाईकार्बनेट आफ-सोडा मिलाते हैं। उस मिश्रित द्रव्यको एनामेल मण्डित लौहकटाह में डाल कर वाष्पके तापसे सिद्ध करते हैं। क्रमागत उसमें हवा लगने देते और बराबर उसे चलाते रहते हैं। ऐसा करते करते दूध जब बिलकुल जल कर चूर्ण सा रह जाता है तब उसे उतार लेते हैं। इसी चूर्णको पीछे एक एक पौण्डका बना कर दाब रखते हैं और तब ईंटेके आकारमें बना कर बेचते हैं। व्यवहारके समय उस ईंटेके जलमें गलनेसे ही दूध बन जाता है। कहना फजूल है, कि बहुतसे लोगोंकी प्रतियोगितासे दिनों दिन नाना प्रकारसे रचित दूध आविष्कृत हो रहा है। चीनी सोडा वा किसी प्रकारके क्षारयोगसे जलीयांशका ह्रास होना तथा दूधसे वायुका निकल जाना ये सब प्रक्रियाके मूल सूत्र हैं। सेवार साहबने दूधपात्रसे वायु-को निकाल कर पीछे उस पात्रको शतांशिककी १०० उत्ताप अग्निमें सिद्ध किया था, पीछे वह दूध बोतलमें पाच वर्ष तक अविकृत रहा था।

वैद्यक भावप्रकाशके मतसे दूधके गुण—मधुर रस, स्निग्ध, वायु और पित्तनाशक, सारक, सद्य शुक्रकारक, शीतवीर्य, सभी प्राणियोंका सात्म्य, जीवन और शरीरका उपचयकारक, बलकारक, मेधाजनक, शुक्रवर्द्धकोंमें श्रेष्ठ, वयःस्थापक, आयुष्कार, सन्धानकारक, रसायन, वमन,

विरेचन और वस्तिक्रियाके समान गुणकर, पाण्डु, दाह, तृष्णा, हृद्रोग, शूल, उदावर्त्त, गुल्म, वस्तिगतरोग, गुदाङ्कुर, रक्तपित्त, अतिसार, योनिरोग, श्रम, क्लम और गर्भस्रावमें सर्वदा हितकर है। बालक, वृद्ध, क्षत, क्षीण रोगग्रस्त, क्षुधातुर और मैथुन द्वारा कृश इन सब व्यक्तियोंके लिये दूध सर्वदा हितकारी है।

गोदुग्धके गुण—मधुर रस, मधुर विपाक, शीतल, स्तन्यवर्द्धक, स्निग्ध, वातघ्न, रक्तपित्तनाशक, दोष, धातु मल और स्रोतोसमूहका ईषत् क्लिन्नतासम्पादक एवं गुरु हैं। प्रतिदिन इसका सेवन करनेसे जरा और समस्त रोग जाते रहते हैं। सभी दूधमें गोदुग्ध ही श्रेष्ठ है। इसमें भी काली गायका दूध वायुनाशक और अत्यन्त गुणकारी है। पीली गायका दूध पित्त और वायु नाशक; सफेद गायका दूध कफकारक और गुरु; लाल तथा विचित्र रंगों वाली गायका दूध वायुनाशक माना गया है। बालवत्सा अर्थात् जिस गायका बछड़ा बहुत छोटा है और जो बिना बच्चेकी है वैसी गायका दूध त्रिदोषजनक है। यह दूध कदापि सेवन नहीं करना चाहिये। जंगली, तराई और पहाड़ी गायका दूध गुरु और स्निग्ध है।

आहार विशेषमें गुण विशेष—जो सब गाय बहुत कम खाती है उनका दूध गुरु, कफकारक, बलजनक अत्यन्त शुक्रवर्द्धक और सुस्थ व्यक्तियोंके लिये गुणकारी हैं। जो सब गाएं पलाल तृण और कपासके बीज खाती हैं उनका दूध रोगियोंके लिये हितकर है।

भैंसका दूध—मधुर रस, शुक्रवर्द्धक, गुरु, निद्राजनक, अभिष्यन्दी, क्षुधाजनक, शीतवीर्य है, तथा गायके दूधसे इसमें विशेष चरबी रहती है।

बकरीका दूध—कषाय, मधुररस, शीतवीर्य, संग्राही, लघु, रक्तपित्त, अतीसार, क्षयकाश, और ज्वरका शान्तिकारक है तथा सब प्राणियोंसे इसका दूध कुछ विशेष फायदामन्द है।

मृगादिके दुग्धगुण—मृगादि जंगली पशुओंका दूध बकरी दूधके जैसा उपयोगी है।

भेंड़ीका दूध—लवण, मधुर रस, स्निग्ध, उष्णवीर्य अश्मरीरोगनाशक, अहृद्य, तृप्तिकर, केशका हितजनक, शुक्र, पित्त और कफवर्द्धक, गुरु और वायुजनक, काशरोगमें तथा दूसरे दोषोंके संसर्गविहीन वायुरोगमें प्रशस्त है।

घोड़ीका दूध—घोड़ीका दूध तथा एक खुरवाले जन्तुओंका दूध रूक्ष, उष्णवीर्य, बलकारक, अम्ललवण, मधुररस, लघु, शोष और वायुनाशक है।

ऊँटनीका दूध—लघु, मधुर, लवणरस, अग्निदीप्तकारक, सारक और क्रिमि, कुष्ठ, कफ, आनाह, शोथ तथा उदर रोगनाशक है।

हथिनीका दूध—शरीरका उपचयकारक, मधुर, कषायरस, गुरु, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, शीतवीर्य, स्निग्ध, चक्षुका हितकारक और स्थिरतासम्पादक है।

नारीका दूध—लघु, शीतवीर्य, अग्निप्रदीपक और वायु, पित्त तथा चक्षुशूलविनाशक है। यह नस्य और चक्षुप्रसाधन क्रियामें प्रशस्त माना गया है।

धारोष्ण दुग्ध— अर्थात् दुहनेके बाद जब तक दूध उष्ण रहता है, तब तक उसका गुण बलकारक, लघु, शीतवीर्य, अमृतके समान गुणकारी, अग्निदीप्तिकारक और त्रिदोषनाशक है, किन्तु ठण्ढा हो जाने पर इसे पीना निषेध है। गायका दूध धारोष्ण अवस्थामें उपकारी है; किन्तु भैंसका दूध धाराशीत अवस्थामें अर्थात् दुहनेके बाद ठण्ढा हो जाने पर; भेंड़ीका दूध शीतोष्ण अवस्थामें (अर्थात् उबाल कर जब तक वह ठण्ढा न हो तब तक) और बकरीका दूध उबाल कर ठण्ढा हो जाने पर गुणदायक है। गाय और भैंसके दूध छोड़ कर सभी अपक्व दूध अभिष्यन्दी, गुरु, कफवर्द्धक, आमजनक और अहितकारी है। अपक्व नारीका दूध हितकारक है। लेकिन उबाले जाने पर वह अहितजनक हो जाता है।

दूधको उबाल कर उष्ण अवस्थामें सेवन करनेसे कफ और वायु नष्ट होती है और ठण्ढा हो जाने पर उससे पित्तकी हानी होती है। अर्द्धांश जलके साथ पाक करके जो दूध बच जाता है वह अपक्व दूधसे लघु होता है।

जलरहित दूध जितना ही उबाला जाय उतना ही वह गुरु, स्निग्ध, वृष्य और बलवर्द्धक होता है।

सद्यप्रसूता गायके गाढ़े दूधको १ पीयूष (पेवस)

कहते हैं। फटे हुए दूधको उबालनेसे जो पिण्डाकृति अंश बन जाता है उसे किलाट वा छेना तथा अपक्व फटे हुए दूधको क्षीरशाक कहते हैं। दही वा मट्ठेसे दूधको फाड़ कर उसे कपड़ेसे निचोड़ लेनेसे जो भाग बच जाता है उसे तक्रपिण्ड और द्रवभागको मोरट (छेनेका पानी) कहते हैं। पीयूष, किलाट, क्षीरशाक और तक्रपिण्ड ये सब शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, बलवर्द्धक, गुरु, कफ-जनक, हृदयग्राही, वायु और पित्तनाशक हैं तथा जिसका अग्नि तेज है और जिसे नींद नहीं लगती है अथवा जो मैथुन कर्मसे क्षीण हो गया है उसके लिए ये बहुत उपकारी हैं। चीनी मिश्रित मोरटका गुण लघु, बलकारक, रुचिजनक, सुखशोध, पिपासा, दाह, रक्तपित्त, और ज्वरनाशक है।

दुग्धका सर—गुरु, शीतवीर्य, पुष्टिकारक, रक्तपित्त और वायुनाशक, तृप्तिकारक, शरीरका उपचयकारक, स्निग्ध, कफ, बल और शुक्रदायक है।

खण्ड संयुक्त दुग्ध—शुक्रवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है। गुड़ संयुक्त दुग्ध—मूत्रकृच्छ्रनाशक, पित्त और कफ वर्द्धक है। रात्रिकालमें सोमगुण अधिक है इसीसे सभी प्राणियोंकी देह सोमात्मक रहती हैं और उस समय किसी प्रकारकी शारीरिक क्रिया नहीं होती, इस कारण दैहिक धात्वादि सोमगुण विशिष्ट होते हैं। यही कारण है कि प्रभातकालका दूध सायंकालके दूधसे गुरु और शीतवीर्य होता है। दिनके समय सूर्यकी किरणोंसे प्राणियोंका शरीर संतप्त हो जाता है, सुतरां सभी धात्वादि आग्नेय गुणान्वित होते हैं। विशेषतः व्यायाम और वायुका सेवन किया जाता है, इस कारण प्रभात कालके दूधकी अपेक्षा सायंकालका दूध लघु और वायु तथा कफनाशक होता है।

प्रातःकालमें दूध पीनेसे पुष्टि, उपचय और अग्नि प्रदीप्ति होती है, मध्याह्नकालमें पीनेसे बल और अग्निकी वृद्धि होती है। बचपनमें दूध पीनेसे शरीरकी वृद्धि, क्षयावस्थामें पीनेसे क्षयका निवारण, वृद्धावस्थामें पीनेसे शुक्रकी वृद्धि तथा रात्रिकालमें पीनेसे शरीरकी भलाई, अनेक प्रकारके दोषोंका नाश और चक्षुका विशेष उपकार होता है। रात्रिको खाते समय दूधको किसी चीजमें न मिला कर उसे केवल पी जाना ही उचित है। यदि किसी खाद्य पदार्थमें मिला कर इसे पीया जाय, तो वह अच्छी तरह परिपक्व नहीं होता।

मानवगण दिनके समय विदाही अन्न तथा पानीय द्रव्य खाते हैं, उस विदाहकी शान्तिके लिए प्रतिदिन दूध पीना चाहिए।

क्षय, बालक और वृद्ध व्यक्तियोंके लिए तथा जिनकी अग्नि प्रदीप्त हैं उनके लिए दूध अत्यन्त फायदामन्द है, क्योंकि इससे सद्य शुक्रकी वृद्धि होती है।

मथित दूधका गुण—गाय अथवा बकरीके दूधको मथ कर कुछ उष्ण अवस्थामें पीनेसे वह लघु, शुक्रजनक और स्वर, वायु, पित्त और कफनाशक होता है। गाय अथवा बकरीके दूधसे जो फेन निकलता है वह त्रिदोष-नाशक, रुचिकारक, बलवर्द्धक, अग्निवृद्धिकारक, हित-कर, सद्यतृप्तिकारक, लघु और अतीसार, अग्निमान्द्य तथा जीर्णज्वरमें प्रशस्त है।

निन्दित दुग्ध—जिस दूधका रंग बदल गया हो, जो खट्टा हो गया हो, जिससे दुर्गन्ध आती हो और जिसमें खट्टा तथा नमक सा स्वाद आता हो, वह निन्दित अर्थात् दुष्ट दूध कहलाता है। इस प्रकारका दूध सेवन करनेसे हानि होती है तथा कुष्ठादि रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। (भावप्र० पूर्वख०)

दूधका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—गाय, बकरी, ऊँटनी, भेड़ी, भैंस, नारी और हथिनी, ये सब अनेक प्रकारकी औषधियां खाती हैं, इस कारण इनका दूध प्रशस्त, आश्वासजनक, गुरु, मधुर, पिच्छिल, शीतल, स्निग्ध, निर्मल, सारक और मृदु है। जो सब प्राणी केवल दूध पी कर जीवन धारण करते हैं, उनके लिए उक्त प्रकारका दूध ही अनुकूल और सेवनीय है। किसी प्रकारका दूध उनके लिए निषिध नहीं है। क्योंकि दूध उन सब प्राणियोंका जातीय आहार है। वायु, पित्त, शोणित और मानसिक विकारमें दूधका पीना अच्छा है। जीर्णज्वर, कास, श्वास, क्षय, गुल्म, उन्माद, उदरी, मूर्च्छा, भ्रम, मत्तता, दाह, पिपासा, हृद्रोग, वस्ति-रोग, पाण्डु, ग्रहणी, अर्श, शूल, उदावर्त्त, अतीसार, प्रवाहिका, योनिरोग, गर्भस्राव, रक्तपित्तश्रम और क्लम,

इन सब रोगोंमें दूध शान्तिकर है तथा यह पापनाशक, बलकर, हृष्य, कामेन्द्रियका उत्तेजक, रसायन, मेधाजनक, सन्धानस्थापन, वयःस्थापन, आयुष्कर, पुष्टिकर, वमन और विरेचनमें हितकर और ओजःधातुवर्द्धक है। बालक, वृद्ध, क्षत, क्षीण और क्षुधार्त्तके लिए तथा स्त्रीसंसर्ग और परिश्रमसे जो क्लान्त हो गये हों, उनके लिए दूध ही उत्कृष्ट पथ्य है। रात्रिकालमें चन्द्रमाके गुणसे और व्यायामके अभावसे प्रातःकालका दूध प्रायः भारी और शीतल होता है। दिनके समय सूर्यके तापसंचालनसे, वायुसेवनादि कारणोंसे अपराह्न कालका दूध वायुका अनुलोमकर, श्रान्तिनाशक और चक्षुका दीप्तिकर है। दूध उबाले जाने पर लघु होता है, केवल नारीका दूध ही अपक्व अवस्थामें हितकर है। अपक्व दूधमें धारोष्ण दूध ही गुणविशिष्ट है, दुहनेके बाद ठण्ढा हो जाने पर इसमें विपरीत गुण हो जाता है। उबाला हुआ सभी दूध भारी और पुष्टिकर है। दुर्गन्धित खट्टा, तथा नमकीला दूध पीना बिलकुल मना है। (सुश्रुत)

दूधकी उत्पत्तिका विषय हारीतसंहितामें इस प्रकार लिखा है। जो जो वस्तु खाई जाती है, वह क्षीर शिरामें अनुगत हो कर पित्त द्वारा मूर्च्छित और जठराग्नि द्वारा परिपक्व होती है। इस प्रकार परिपक्व हो कर जब उसका सार स्तन्यवाहिनी शिरामें पहुंचता है, तब उसे दूध कहते हैं। यह अमृतके समान तथा सब प्राणियोंके जीवन तथा बलकारक है। हारीतने असमञ्जसमें पड़ कर अपने पितासे पूछा था, 'विभो! यह दूध किस प्रकार रसकी सम्पत्ति है और किस प्रकार इसकी वृद्धि होती है? यह दूध रक्तवर्णका न हो कर पाण्डुवर्णका क्यों होता है तथा कुमारी और बांझको दूध नहीं होनेका क्या कारण है?' इसके उत्तरमें पिताने कहा था, 'रक्तपित्तमें परिपाक हो कर रक्त ही श्वेतवर्ण हो जाता है, दूधके सफेद होनेका यही कारण है। कुमारी और बांझको अल्प धातु और अल्पबल है, इसीसे उनको दूध नहीं होता। बन्ध्याकी क्षीर नाड़ी वातसे परिपूरित रहती है और आर्त्तवका परिमाण अधिक रहता है, इसीसे इन्हें दूधकी प्रवृत्ति नहीं होती। स्त्रियोंके प्रसूता होने पर स्रोतकी विशुद्धि होती है, इसीसे बहुत जल्द दूध उत्पन्न हो जाता है। सद्यःप्रसूता स्त्रीका दूध श्लैष्मिक रहता है, इसीसे उस दूधका परित्याग करना उचित है। स्त्रियोंका अविकृत दूध बलकारक और दोषनाशक है।' (हारीतसं० प्रथम स्थान ८ अ०)

पूर्वाह्नमें गायका दूध और अपराह्नमें भैंसका दूध प्रशस्त है। दूधके साथ चीनी मिला कर खानेसे हो बलकी वृद्धि होती। (राजनि०)

दूधको सब समय गरम करके पीना चाहिये। दूधके साथ मछली, मांस, गुड़, मुद्ग, और मूलक खानेसे कोढ़ होता है, शाक और जंबीरी नीबूके रसके साथ सेवन करनेसे तुरत मृत्यु होती है। शाक, अम्ल, फल, पिण्याक, कुलत्थ, लवण, आमिष, करीर, दधि और मांस मिला हुआ दूध अहितकर है। (राजवल्लभ)

दूधको उबाल कर उसे कुछ उष्ण अवस्थामें ही पीना अच्छा है। उबाला हुआ यदि तीन मुहूर्त्त तक छोड़ दिया जाय, तो वह अतप्त समझा जाता है, इस प्रकारका दूध दूषित है। दूधको चौथाई भाग जलसे सिद्ध करके पान करनेसे शरीरकी भलाई होती है। दूधका सर वायुनाशक, तृप्तिकर, बलकर, तेजस्कर, स्निग्ध, रुचिकर और स्वादु है, परिपक्व होने पर यह मधुर, रक्तपित्तनाशक और गुरुपाक होता है। दुग्धान्न चक्षुर्हितकर, बलकर, पित्तनाशक और रसायन है। पर्यूषित अर्थात् बासी दूध गुरु, विष्टम्भी और दुर्जर होता है।

बच्चा जन्मनेके बाद जब तक सात दिन पूरा न हो, तब तक गायका दूध पीना निषेध है।

दुग्धकूपिका (सं० स्त्री०) दुग्धकूपः साधनत्वेन अस्त्यस्या इति दुग्ध-कूप-ठन्-टाप्। पिष्टकविशेष, एक प्रकारका पकवान। भावप्रकाशमें इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार लिखी है,—पाककुशल मनुष्य छिनेके साथ चावलके चूर्णको अच्छी तरह पीसे। बाद उसकी गोल लोई बना कर उसमें गड्ढा करे। फिर इस लोईको घीमें थोड़ा तल कर उसके गड्ढेमें खूब गाढ़ा दूध भर दे और गड्ढेका मुँह मैदेसे बन्द कर दे। अनन्तर इस दूध भरे हुए बड़ेको घीमें तल कर चाशनीमें डाल दे और कुछ क्षणके बाद उसे बाहर निकाल ले, इसीको

दुग्धकूपिका कहते हैं। इसका गुण—बलकारक, पित्त और वायुनाशक, पुष्टिजनक तथा शरीरका उपचयकारक है। इसके सेवन करनेसे दग्धं नशक्ति बढ़ती है। (भावप्र०)

दुग्धतालीय (सं० क्लो० ) दुग्धस्य तालाय प्रतिष्ठायै हितं। १ दुग्धाग्र, दूधका फेन। २ मलाई।

दुग्धतुम्बी (हिं० वि० ) क्षीरालाबु, सफेद कद्दू।

दुग्धत्रय (सं० क्लो० ) गो-महिष-छागदुग्ध, गाय, भैंस और बकरीका दूध।

दुग्धदा (सं० स्त्री० ) दुग्धं ददाति या दुग्धद स्त्रियां टाप्। १ वह जो दूध देती है। २ चणिका-तृण, एक प्रकारकी घास।

दुग्धपरिमापक यन्त्र—( Galacto meter or Lactometer ) दूधके गुणागुण और विशुद्धताकी परीक्षा करनेका एक यन्त्र। प्रायः सभी जगह ग्वालेसे विशुद्ध दूध नहीं मिलता। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखनेसे दूधमें मिले हुए अनेक अन्यान्य द्रव्य पाये जाते हैं। स्वाद, गन्ध आदिसे भी उसका कुछ कुछ पता लग जाता है। दूधमें मक्खनका अंश अथवा इसमेंका मिश्रित जलका परिमाण मालूम करनेके लिये दुग्धपरिमापक यन्त्रका प्रयोजन होता है। इस यन्त्रकी गठन और व्यवहार बहुत सहज है। एक सूक्ष्मकाँचका नल १०० अंशोंमें विभक्त रहता है। जिस दूधकी परीक्षा करनी होगी उसे इस नलमें अच्छी तरह भर देते हैं। कुछ काल तक उसीमें रहनेके बाद मक्खनका कुल भाग ऊपर उठ आवेगा। तब वह मक्खन नलमें जहां तक आ गया है, नलके चिह्नित अङ्कोंको देखनेसे ही दूधमें सैकड़े कितना मक्खन है, वह मालूम हो जायेगा। डीफिल साहबने दूधकी परीक्षा करनेके लिये जिस परिमापक यन्त्रका आविष्कार किया है, वह दो इञ्च लम्बा और २० अंशोंमें विभक्त है। विशुद्ध जलमें देनेसे उस यन्त्रका ०° चिह्न तक डूबता है और आपेक्षिक गुरुत्व १.०२८३ होता है। यहां तक कि किसी द्रव पदार्थमें देनेसे २०° चिह्न तक डूब जाता है। दूध निर्जल होने पर वह यन्त्र १४० अंश चिह्नित स्थान तक डूबता है। कहना नहीं पड़ेगा, कि दूधमें आपेक्षिक गुरुत्व जलकी अपेक्षा कुछ अधिक है। जल मिलानेसे ही इसका आपेक्षिक गुरुत्व कम जाता है, सुतरां दुग्धपरिमापक यन्त्र अधिक डूब जाता है।

दुग्धपाचन (सं० क्लो० ) पच्यतेऽस्मिन्निति पच अधिकरणे ल्युट्। दूध गरम करनेका बरतन।

दुग्धपाषाण (सं० पु० ) दुग्धं क्षीरं पाषाण-इव कठिनं यस्य। वृक्षविशेष, एक किस्मका पेड़। इसका पर्याय—दुग्धपाषाणक, दुग्धाश्मा, क्षीरी, गोमेदसन्निभ, वज्राभ, दौग्धिक, दुग्धी और क्षीरस्रव है। इसका गुण—रुचिकारक, ईषदुष्ण, ज्वर, पित्त, हृद्रोग, शूल, कास और आध्मान-विनाशक है।

दुग्धपुच्छी (सं० स्त्री० ) दुग्धवत् शुभ्रं पुच्छं मूलदेशो यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम। इसका पर्याय—सेवकालु, निशाभङ्गा और नसङ्करी है।

दुग्धपोष्य (सं० त्रि० ) दुग्धेन पोष्यः। १ जो केवल दूध पी कर रहता हो। (पु०) २ शिशु, बच्चा।

दुग्धफेन (सं० पु०) १ दुग्धस्य फेन इव फेनो यत्र। २ क्षीरडिण्डीर, एक पौधा। इसका नामान्तर शाकेर है। ३ दूधका फेन।

दुग्धफेनी (सं० स्त्री०) दुग्धवत् शुभ्रः फेनो यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। क्षुद्र क्षुपविशेष, एक छोटा पौधा। इसका पर्याय—पयःफेनी, फेनदुग्धा, पयस्विनी, लूतारि, व्रणकेतुघ्नी और गोजापर्णी है। इसका गुण—कटु, तिक्त, शीतल, विषव्रणनाशक और रुचिकर है।

दुग्धवटी (सं० स्त्री० ) शोथवटी।

दुग्धबन्धक (सं० पु० ) दुग्धार्थं बन्धः ततो कन्। दुग्ध दोहनार्थं गोबन्ध, दूध दूहनेके लिये गायका बांधना।

दुग्धबीजा (सं० स्त्री० ) दुग्धवत् शुभ्रं बीजं यस्याः। यवनालादा तण्डुल, ज्वार, जुन्हरी। इसके दो दानोंमेंसे सफेद दूध निकलता है।

दुग्धसन्तानिका (सं० क्लो०) दुग्धसर।

दुग्धसमुद्र (सं० पु० ) समुद्रविशेष, क्षीरसमुद्र।

दुग्धाक्ष (सं० पु०) दुग्धवत् शुभ्रं अक्षं नेत्रं चिह्नविशेषो यस्य। उपलविशेष, एक प्रकारका नग या पत्थर। इस पर सफेद सफेद छींटे होते हैं।

दुग्धाब्धि (सं० पु० ) दुग्धसमुद्र, क्षीरसागर।

दुग्धाब्धितनया (सं० स्त्री० ) दुग्धाब्धेस्तनया। लक्ष्मी।

दुग्धाम्बुधि (सं० पु० ) दुग्धसमुद्र, क्षीरसागर।

दुग्धाश्मम ( सं० क्लो० ) दुग्ध तालीय, मलाई।

दुग्धाश्मन् (सं० पु०) दुग्धं चीरं अश्मा प्रस्तर इव कठिन यस्य। दुग्धपाषाण, एक पेड़।

दुग्धिका ( सं० स्त्री० ) दुग्धं निर्यासो बहुलतया विद्यते यस्याः दुग्ध-ठन्-टाप् च। १ वृक्षविशेष, दुद्धी नामका पेड़, खिरनी। इसका पर्याय—स्वादुपर्णी, चीरावी, चीरिणी, दुग्धी, चीरी और चीरात्मिका है। इसका गुण—उष्ण, गुरु, रूच, वातल, गर्भकारक, स्वादुचोर, कटु, तिक्त, मलमूत्रोपसर्गकारक, पटु, स्वादु, विष्टम्भी, बलकर एवं कफ, कुष्ठ और क्रमिनाशक है। २ गन्धिका वृच। इसका पर्याय—उत्तमा, युग्मफला और उत्तम-फलिनी है।

दुग्धिन् ( सं० त्रि० ) दुग्धमस्त्यस्य इनि। चीरवृक्ष, एक प्रकारका पेड़।

दुग्धिनिका ( सं० स्त्री० ) रक्तापामार्ग, लालचिचड़ा।

दुग्धी ( सं० स्त्री० ) दुग्धं चीरं बहुलतया अस्त्यस्याः इति अर्श आदित्वादच् गौरादि० ङीष्। १ चीरावी, दुधिया नामकी घास। इसका पर्याय—उत्तमा, दुग्धिका, दुग्धी, फलोत्तमा, फलिनी और दुग्धपाषाण है। ( त्रि० ) २ दूधवाला, जिसमें दूध हो।

दुघ (सं० त्रि०) दुह-क ऽस्य घ। दोहनकर्त्ता, दुहनेवाला।

दुघड़िया ( हिं० वि० ) दो घड़ीका।

दुघड़िया मुहूर्त्त ( हिं० पु० ) द्विघटिकामुहूर्त्त देखो।

दुङ्गागली—पञ्जाब प्रदेशके हजारा जिलेके मध्य एक छोटा स्वास्थ्यवास। यह अक्षा० ३४° ६' उ० और देशा० ७३° २५' पू०में अवस्थित है। ग्रीष्मकालमें अंगरेज लोग यहां आ कर कुछ दिनों तक रहते हैं। यहां एक होटेल, डाकघर और एक छोटा गिरजा है।

दुचंद ( फा० वि० ) द्विगुण, दूना।

दुचल्ला ( हिं० पु० ) वह छत जिसके दोनों ओर ढाल हो।

दुचित ( हिं० वि० ) १ अस्थिरचित्त, जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो। २ चिन्तित, फिक्रमन्द।

दुचित्ता ( हिं० वि० ) १ अस्थिरचित्त, जो दुविधेमें हो। २ चिन्तित, जिसके चित्तमें खटका हो। ३ सन्देहमें पड़ा हुआ।

दुच्छुन ( सं० पु० ) दु-उपतापे भावे क्विप्, तुक्, च स्तु उपतापः तन्निवारणे शक्नोतीति शक-पचाद्यच्। १ मुरा नामक गन्धद्रव्यविशेष। २ कपूर कचरी। ३ तालिशपत्र।

दुच्छुन (सं० त्रि०) दुष्ट उच्छुनः प्रादिस० पृषोदरादित्वात् साधु। दुष्ट उच्छुन, जो बहुत फूल गया हो।

दुच्छून् ( सं० पु० ) दुष्टः श्वा-प्रादिसमासः पृषोदरा० साधु। दुष्ट कुक्कुर, पगला कुत्ता।

दुजड़ ( हिं० स्त्री० ) तलवार।

दुजड़ी ( हिं० स्त्री० ) कटारी।

दुजान—१ दिल्ली विभागके कमिश्नरके अधीन पञ्जाबका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २८° ३९' से २८° ४२' उ० और देशा० ७६° ३७' से ७६° ४३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १०० वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २४१७४ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३० ग्राम लगते हैं। अंगरेज सेनापति लोर्ड लेकने अबदुल समन्द खांके कार्यसे सन्तुष्ट हो कर उन्हें तथा उनके लड़कोंको आजीवन भोग करनेके लिये यह स्थान प्रदान किया था। १८०६ ई०में गवर्नल जेनरलने उन्हें एक चिर स्थायी सनद दी थी। इस समय हरियाना जिलेको कई जमींदारी इस सनदके अन्तर्गत हुई। बाद उन कई एक ग्रामोंमें जमींदारीके बदले अबदुल समन्दने रोहतक जिलेके दुजान और मेहाना ग्राम ग्रहण किये। दुजान ग्राम दिल्लीसे पश्चिम ३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। नवाब हसनअलीने १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय गवर्मेंण्टको अच्छी सहायता पहुंचाई थी। १८८२ ई०में वर्त्तमान नवाब मुमताजअली इस राज्यके अधिकारी हुए। नवाब हृटिश गवर्मेंण्टको दो सौ अश्वारोहीसे सहायता पहुंचानेमें वाध्य हैं। राज्य-कार्यकी सुविधाके लिये यह राज्य दुजान और नाहर नामकी दो तहसीलोंमें विभक्त है। यहां एक एंग्लो-वर्नाक्युलर-मिडिल-स्कूल है। राज्यकी आय ७७१७० रुपये है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २८° ४१' उ० और देशा० ७६° ३८' पू०, दिल्लीसे ३७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। दुर्जन शाह नामक किसी फकीरसे यह नगर स्थापित हुआ है। उन्हींके नामानुसार शहरका नाम दुजान पड़ा है।

दुजानु ( फा० क्रि० वि० ) दोनों घुटनोंके बल।

दुटूक (हिं॰ वि॰) खण्डित, दो टुकड़ोंमें किया हुआ।

दुडि (सं॰ स्त्री॰) दुलि लस्य डः। कच्छपी, कछुई।

दुण्डुक (सं॰ वि॰) दुण्डुभ इव कायति कै-क पृषो॰ भलोपः। दुष्टचित्त, खोटा दिलवाला।

दुण्डुभ (सं॰ पु॰) द्रोडति मज्जति दुड़ मज्जने उभ नुन् रलोपश्च। डुण्डुभ सर्प, डेड़हा साँप।

दुण्डुभा (सं॰ स्त्री॰) सर्पपक्ष, एक प्रकारकी सरसो।

दुण्डुभि (सं॰ पु॰) दुन्दुभि पृषो॰ साधु। दुन्दुभि।

दुत (सं॰ त्रि॰) दु उपतापे क्त। पीड़ित, जिसे तकलीफ हो।

दुत (हिं॰ अव्य॰) १ तिरस्कारसूचक एक शब्द जो हटानेके समय प्रयोग किया जाता है। २ घृणासूचक शब्द।

दुतकार (हिं॰ स्त्री॰) तिरस्कार, फटकार, धिक्कार।

दुतकारना (हिं॰ क्रि॰) १ दुत् दुत् शब्द करके किसीको अपने पाससे हटाना। २ तिरस्कृत करना, धिक्कारना।

दुतर्फा (फा॰ वि॰) दोनों पक्षका, दोनों ओरका।

दुतारा (हिं॰ पु॰) दो तार लगे हुए एक प्रकारका बाजा। यह उंगलीसे सितारकी तरह बजाया जाता है।

दुति (हिं॰ स्त्री॰) द्युति देखो।

दुतिया (हिं॰ स्त्री॰) पक्षकी दूसरी तिथि, दूज।

दुतिवंत (हिं॰ वि॰) १ आभायुक्त, चमकीला। २ मनोहर, सुन्दर।

दुत्थोत्थदवोय (सं॰ पु॰) नीलकण्ठ-ताजिकोक्त वर्ष-प्रवेश विषयक योगभेद, नीलकण्ठताजिकके मतानुसार वर्ष प्रवेशमें एक योग।

दुथरी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी मछली।

दुदल (हिं॰ वि॰) १ द्विदल, जिसके टूटने या फूटने पर दो बराबर दल या खंड हो जांय। (पु॰) २ दाल। ३ हिमालयके कम ठण्ढे स्थानोंमें तथा नीलगिरि पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका पौधा। इसकी जड़ औषधके काममें आती है। जिगरकी बीमारी, आँव, चर्मरोग आदिमें यह बहुत उपकारी होती है। कोई कोई इसे कानफूल और बरन भी कहते हैं।

दुदहंड़ी (हिं॰ स्त्री॰) दुधहँडी देखो।

दुदामी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी सूती कपड़ा। पहले इस तरहका कपड़ा मालवदेशमें बहुत बनता था।

दुदाहि (दुधै)—युक्तप्रदेशके ललितपुर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा॰ २४° २५´ उ॰ और देशा॰ ७८° २३´ पू॰ ललितपुर शहरसे २० मील दक्षिणमें अवस्थित है।

यहांके प्रभूत ध्वंसावशेष देखनेसे इस ग्रामको प्राचीन समृद्धिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। रामसागरके किनारे यहांकी पूर्व कीर्त्तिका चिह्न दृष्टिगोचर होता है।

यहांके वराह-मन्दिर और ब्रह्म-मन्दिर उल्लेखयोग्य है भारतवर्षमें ब्रह्माका मन्दिर बहुत कम पाया जाता है, किन्तु यहांके सुगठित और शिल्पनैपुण्ययुक्त मन्दिरने यह अभाव दूर कर दिया है। प्रायः १००० ई॰में चन्देलराज यशोवर्माके पौत्र देवलब्धिने यह ब्रह्म-मन्दिर निर्माण किया है। मन्दिर जगमोहन, भोगमण्डप और गर्भगृह इन तीन अंशोंमें विभक्त हैं। गर्भगृह बहुत अंधेरा है और इसके बीचके फाटकके निकट नवग्रह रचित चतुर्भुज ब्रह्ममूर्त्ति हंसके ऊपर विराजित हैं। १०वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण कुटिलाक्षरकी कुछ शिलालिपियां इस मन्दिरमें उत्कीर्ण हैं।

इस ग्राममें दो भग्न जैन-मन्दिर भी देखे जाते हैं। एकमें अभी भी ८ हाथ ऊंची एक दिगम्बर जिनमूर्त्ति विद्यमान है। दूसरेमें पूर्व समयकी तीर्थङ्करकी २४ मूर्त्तियां स्थापित थीं। ब्राह्मणोंके उत्पातसे जैनमूर्त्तियों का अस्तित्व लोप हो गया है।

यहांसे एक पावकी दूरी पर 'बनियाका बरात' नामक एक जंगल पड़ता है। जिसमें बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

चन्देलराज सल्लक्षणसिंहकी एक खंड खोदित लिपिमें यह स्थान 'दुग्धकूप्यग्राम' नामसे वर्णित हुआ है।

दुदुमा—जलपाईगुड़ी जिलेमें प्रवाहित एक नदी। गैरकाटा और ननाई नदीके मिलनेसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई है। इसके किनारे गवर्मेण्टके खास वन-विभागके काष्ठादि विक्रयकी एक आढ़त है। इसकी कई एक उपनदियां हैं, यथा—गुलन्दी, आपूआ, रेहती, बड़वांक, देमदेमा और लासाति। ये सब नदियां भूटानकी गिरिमालासे निकली हैं।

दुदुह (सं० पु०) अनुवंशीय नृपभेद, अनुवंशके एक राजाका नाम।

दुद्धी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास जो जमीन पर बहुत दूर तक फैल जाती है। इसके डंठलोंमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गांठें होती हैं जिनके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है। इस घासमें फूलोंके गोल गोल गुच्छे लगते हैं। इसके दो भेद हैं, एक बड़ी दुद्धी और दूसरी छोटी दुद्धी। पहलीमें दो ढाई अंगुल लम्बी और एक अंगुल चौड़ी पत्ती होती है; दूसरीकी पत्तियां बहुत महीन और दोनों सिरों पर गोल होती हैं। यह घास गरम भारी रूखी, वादी और कड़ई होती है तथा कोढ़ और कृमिको दूर करती है। छोटे छोटे लड़के बड़ी दुद्धीसे गोदना गोदनेका खेल भी खेलते हैं। वे इसके दूधसे कुछ लिख कर इस पर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिह्न बन जाते हैं।

२ मन्द्राज, मध्य प्रदेश और राजपूतानेमें होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी सफेद और अच्छी होती है तथा बहुतसे कामोंमें लाई जाती है।

३ भारतवर्षके सब गरम प्रदेशोंमें विशेष कर पञ्जाब और राजपूतानेमें होनेवाला थूहरकी जातिका एक छोटा पौधा। इसका दूध दवामें दिया जाता है। ४ एक प्रकारकी सफेद मट्टी, खड़िया मट्टी। ५ सारिवा लता। ६ जंगली नील।

दुद्रुम (सं० पु०) दुर दुष्टोद्रुमः पृषोदरादित्वात् रलोपः। १ हरित् पलाण्डु, हरा प्याज। २ कन्दविशेष।

दुधपिठवा (हिं० पु०) एक प्रकारका पकवान। यह गुंधे हुए मैदेकी लम्बी लम्बी वत्तियोंको दूधमें पकानेसे बनता है।

दुधपुर—बम्बई प्रदेशके रेवाकान्थाके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। भूपरिमाण २ वर्गमील है। यहांके सरदार राठोर राजपूत हैं। राज्यकी आय प्रायः १८२४०) रु० है जिसमें ११००) रु० वृटिशगवर्मेण्टको और ८७) रु० जूनागढ़के नवाबको देने पड़ते हैं।

दुधरज—गुजरातके झालावार प्रान्तके मध्यवर्त्ती एक छोटा सामन्त राज्य। इसमें केवल दो ग्राम लगते हैं। आय प्रायः १८२४०) रु० है जिसमेंसे ११००) रु० वृटिशगवर्मेण्टको और ८७) रु० जूनागढ़के नवाबको देने पड़ते हैं।

दुधहंडी (हिं० स्त्री०) दूध रखने वा गरम करनेका मट्टीका छोटा बरतन।

दुधाधारी—एक संन्यासी सम्प्रदाय। ये केवल दूध पी कर जीवन धारण करते हैं।

दुधार (हिं० वि०) १ दूध देनेवाली। २ जिसमें दूध हो।

दुधारा (हिं० वि०) १ जिसमें दोनों तरफ धार हो। (पु०) २ दो तेजधारोंका एक प्रकारका चौड़ा खांड़ा या तलवार।

दुधारी (हिं० वि०) १ दूध देनेवाली, जो दूध देती हो। २ जिसमें दोनों ओर धार हो। (स्त्री०) ३ एक प्रकार की कटारी जिसमें दोनों ओर तेज धार हो।

दुधि (सं० त्रि०) दुधि हिंसाकर्म इति भाष्योक्तः दुध-हिंसायां कि। हिंसक, मारनेवाला।

दुधिच्छु (सं० पु०) दुग्धेच्छु, वह जो दूध चाहता हो।

दुधित (सं० त्रि०) क्षुभित, विरक्त, उदास।

दुधिया (हिं० वि०) १ दूध मिला हुआ, जिसमें दूध पड़ा हो। २ दूधसा सफेद, सफेद जातिका। (स्त्री०) ३ दुद्धी नामकी घास। ४ बड़ौदेकी तरफ होनेवाली एक प्रकार की ज्वार या चरी जो चौपायोंको खिलाई जाती है। ५ खड़िया मट्टी। ६ कलियारीकी जातिका एक विष। ७ एक प्रकारकी चिड़िया। कोई कोई इसे लटेरा भी कहते हैं।

दुधियाकंजई (हिं० वि०) १ जो नीलापनके लिए कुछ भूरा हो। (पु०) २ एक प्रकारका रंग। यह नीलापन लिए हुए भूरा होता है। अंगरेज इस रंगमें रंगनेके लिए कपड़ेको पहले हर्रेके काढ़ेमें डुबाते और पीछे धूपमें सुखा कर कसीसमें रंगते हैं। ऐसा करनेसे इसका रंग खुल जाता है।

दुधियापत्थर (हिं० पु०) १ एक किस्मका मुलायम सफेद पत्थर। इसके अच्छे अच्छे प्याले आदि बनते हैं। २ एक नग या रत्न।

दुधियाविष (हिं० पु०) कलियारीकी जातिका एक विष। इसके सुन्दर पौधे काश्मीर, चित्राल हजाराके पहाड़ों तथा हिमालयके पश्चिमी भागोंमें पाये जाते हैं।

इसका पौधा कलियारी ही की तरहका सुन्दर फूलोंसे सुशोभित होता है। पौधेकी जड़में ही विष रहता है। इसकी जड़ कलियारीकी जड़से छोटी और मोटी होती है। हजाराके लोग इसे मोहरी और काश्मीरके बन-बल-नाग कहते हैं।

दुधेली (हिं० स्त्री०) दुद्धी देखो।

दुधैल (हिं० वि०) जो बहुत दूध देती है।

दुध्र (सं० त्रि०) दुध वाहु० रक्, दुष्टं वा धारयति, धृ-क पृषोदरादि० साधुः। १ हिंसक, मारनेवाला। २ प्रेरक, भेजनेवाला। ३ दुर्द्धर, प्रचण्ड, प्रबल। ४ दुर्द्धर्ष, जिसका दमन करना कठिन हो। ५ दुष्टव्यवस्थापक।

दुध्रकृत् (सं० त्रि०) दुष्ट कार्यकारी, खराब काम करनेवाला।

दुध्रवाच् (सं० त्रि०) दुष्ट कथा, कटु वचन।

दुनद्या (हिं० पु०) दो नदियोंका सङ्गमस्थान।

दुनाली (हिं० वि०) १ जिसमें दो नल लगी हों। (स्त्री०) २ वह बन्दूक जिसमें दो दो गोलियां एक साथ भरी जायं।

दुनियां (अ० स्त्री०) १ संसार, जगत्। २ जनता, लोग। ३ जगत्‌का प्रपंच, संसारका जंजाल।

दुनियाई (हिं० वि०) १ सांसारिक। (स्त्री०) २ संसार, जगत्।

दुनियादार (फा० पु०) १ वह मनुष्य जो सांसारिक झंझटोंमें फंसा हो, गृहस्थ। (वि०) २ व्यवहारकुशल, जो ढंग रच कर अपना काम निकाल लेता हो।

दुनियादारी (फा० स्त्री०) १ गृहस्थीका जंजाल, दुनियांका कारबार। २ वह ढंग जिससे अपना मतलब सिद्ध हो। ३ बनावटी व्यवहार।

दुनियासाज (फा० वि०) १ स्वार्थसाधक, जो ढंग रच कर अपना मतलब निकाल लेता हो। २ चापलूस, लल्लो चप्पो करनेवाला।

दुनियासाजी (फा० स्त्री०) १ स्वार्थसाधनकी वृत्ति, अपना मतलब निकालनेका ढंग। २ चापलूसी, बात बनानेका ढंग।

दुन्दम (सं० पु०) दुन्द इत्यव्यक्तशब्देन मणति शब्दायते इति मण-शब्दे ड। दुन्दुभि, नगाड़ा।

दुन्दु (सं० पु०) १ वसुदेव, श्रीकृष्णके पिता। २ दुन्दुभि वाद्य, धौंसा, नगाड़ा।

दुन्दुभि (सं० पु०) दुन्दु इत्यव्यक्तशब्देन भातीति भा बाहुलकात् कि। १ बृहत् ढक्का बड़ा ढोल, नगाड़ा। इसका पर्याय—भेरी और आनक हैं। २ वरुण। ३ दैत्यभेद, एक दानवका नाम। ४ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम। ५ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा। ६ विष, जहर। ७ कुकुरवंशीय अन्धकके एक पुत्र। ८ क्रौञ्चद्वीपाधिपतिके पुत्र। ९ क्रौञ्चद्वीपका देशभेद, कौंच द्वीपका एक विभाग। १० पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ११ असुरविशेष, एक राक्षसका नाम। रामायणमें लिखा है, कि इसे बालिने मार कर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका था। इस पर महर्षि मतङ्गने शापसे बालि उस पर्वतके पास नहीं आ सकता था। (स्त्री०) १२ एक गन्धर्वी। ब्रह्माके आदेशसे इसने मन्थरा हो कर जन्म ग्रहण किया था। इसीके षड़यन्त्रसे रामचन्द्रजी वनको गये थे। (भारतवन २७५ अ०) १३ अक्षविशेष, पासेका एक दांव। १४ एक प्रकारका प्राचीन आनद्ध यन्त्र।

दुन्दुभिक (सं० पु०) कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा।

दुन्दुभिनिर्ह्राद (सं० पु०) दुन्दुभेरिव निर्ह्रादो यस्य। दानवभेद, एक असुरका नाम।

दुन्दुभिषेण (सं० पु०) दुन्दुभिः सेनायां यस्य। नृपभेद, एक राजाका नाम।

दुन्दुभिस्वन (सं० पु०) दुन्दुभेर्वाद्यभेदस्य स्वनो यत्र विषचिकित्सायां। सुश्रुतोक्त विषचिकित्साभेद, सुश्रुतमें लिखी हुई एक प्रकारकी विषचिकित्सा। वच, अश्वकर्ण, तिनिश, पिचुमर्द (नीम), पाटली, पारिभद्रक, आम्र, डुमर, करहाट (कमलाकी जड़), ककुभ (अर्जुनका पेड़), सर्ज्जक, आस्रातक, श्लेष्मातक, अङ्कोट, आमलक, प्रग्रह, कूटज, शमी, कुपित्थ अश्मान्तक, चिरविल्व, महावृक्ष, स्नुही वृक्ष, भल्लातकवृक्ष, श्योनाहक, मधुर, रक्तशोभाञ्जन, मूर्वा, तिलक, गोक्षुरक, गोपघण्टा और अरिमेद इन सबको भस्मका गोमूत्रमें चार बना कर कपड़ेमें उसे छान लें। पीछे पिप्पलीमूल, तण्डुलीयक, अम्लवेतस, चोचक (छाल), गुडलकों, मञ्जिष्ठा, वारञ्जिका, गजपिप्पली, मिर्च, उत्पल, श्यामालता, विडङ्ग, काली,

अनन्तमूल, सोमलता, निसोथ, कुंकुम, शालपर्णी, केवड़ा, श्वेतसर्षप, वरुणवृक्ष, सैन्धवलवण, पाकर, हिज्जलवृक्ष, वेतस, मूषिकपर्णी, बलाखिका, अतिविषा, पञ्चशिरा, हरीतकी, भद्रदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वच और लौह चूर्ण इन सब द्रव्योंको उक्त चारमें डाल दें और लेप बनावें। इस लेपको दुंदुभि, पताका, तोरण इत्यादिमें पोते। ऐसे तोरण, दुंदुभि आदिके श्रवण, दर्शन वा स्पर्शसे विषका प्रभाव दूर हो जाता है। शर्कराश्मरी, अर्श, वायुजन्य गुल्म, कास, शूल, उदरी, अजीर्ण, ग्रहणी, अरुचि और सब प्रकारके शोक तथा श्वास रोगमें भी इसका सेवन किया जाता है। (सुश्रुत दुंदुभिस्वनीय चिकित्सिताध्याय)

दुन्दुभिस्वर (सं॰ पु॰) दुन्दुभिका शब्द, नगाड़ेकी आवाज।

दुन्दुभिस्वरराज (सं॰ पु॰) बुद्धका एक नाम।

दुन्दुभ्य (सं॰ पु॰) दुन्दुभौ दानवभेदे विषे वाद्यभेदे वा भवः प्रसूतो वा यत्। १ रुद्रभेद। दुन्दुभये तद्वादनाय साधु यत्। २ दुन्दुभिवादन-साधनमन्त्रभेद, एक प्रकारका मन्त्र।

दुन्दुमार (सं॰ पु॰) धुन्धुमार पृषोदरा॰ साधुः। धुन्धु मार, राजा त्रिशङ्कुके एक पुत्रका नाम।

दुपट्टा (हिं॰ पु॰) १ दो पाटकी चद्दर। २ वह लम्बा कपड़ा जो कंधे या गले पर रखा जाता है।

दुपट्टी (हिं॰ स्त्री॰) दुपट्टा देखो।

दुपद (हिं॰ पु॰) द्विपद देखो।

दुपर्दी (हिं॰ स्त्री॰) दोनों ओर पर्दे लगी हुए मिरजई, फतुही वा नीमस्तीन।

दुपहर (हिं॰ स्त्री॰) दोपहर देखो।

दुपहरिया (हिं॰ स्त्री॰) १ मध्याह्न, दो पहर। २ डेढ़ दो हाथ ऊंचा एक प्रकारका पौधा। यह एक सीधे डंठलके रूपमें होता है और फूलोंके लिये बगीचोंमें लगाया जाता है। दूसरे दूसरे पौधोंकी नाईं इसमें शाखाएं या टहनियां नहीं निकलती हैं। इसके पत्ते आठ-दश अंगुल लम्बे, एक डेढ़ अंगुल चौड़े और गहरे हरे रंगके होते हैं। इसके फूल कटोरीके आकारके गोल और गहरे लाल रंगके होते हैं। फूलोंके झड़ जाने पर जो बीज-कोश रह जाता है उसमें राईके दानेसे काले काले बीज पड़ते हैं। इसका गुण—मलरोधक, कुछ गरम, भारी, कफकारक, ज्वरनाशक, तथा वातपित्त-नाशक है। ३ दुष्ट, पाजी, हरामजादा।

दुपहरी (हिं॰ स्त्री॰) दुपहरिया देखो।

दुफसली (हिं॰ वि॰) दोनों फसलोंमें उत्पन्न होनेवाला।

दुफानिकुत्थ (सं॰ क्ली॰) नीलकंठताजिकोक्त वर्षप्रवेश योग भेद। मन्दगति ग्रह यदि उच्च स्वक्षेत्रादि रहित हो कर शीघ्रगति ग्रहके साथ इत्थशाल योगविशिष्ट हो और यदि उक्त शीघ्रगति ग्रह अस्तगत, नीचगत वा वक्रगत न हो, तो यह योग होता है। इस योगमें सभी काम सफल होते हैं। इस योगका नाम 'दुकालिकुत्थ' भी है।

दुबगली (हिं॰ स्त्री॰) मालखम्भकी एक कसरत। इसमें बेंतको दोनों बगलोंमेंसे निकाल कर हाथ ऊंचे करके उसे इस तरह लपेटे जाते हैं कि एक कुंडल सा बन जाता है। इसके बाद दोनों पैरोंको सिरकी ओर उठाते हुए उसी गोल कुंडलमेंसे निकल कर कलाबाजीके साथ नीचे गिराये जाते हैं।

दुबड़ा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास जो चौपायोंके खानेके काममें आती है।

दुबधा (हिं॰ स्त्री॰) १ अनिश्चय, चित्तकी अस्थिरता। २ असमंजस, आगा पीछा। ३ सन्देह संशय। ४ चिन्ता, खटका।

दुबराजपुर-बङ्गालके वीरभूम जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २३°४८' उ॰ और देशा॰ ८७°२४' पू॰ सिउड़ीसे १४ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां मुनसफी अदालत, थाना और एक बड़ा बाजार है। यहां बहुतसे तालाब हैं जिनके किनारे अनेक ताड़के पेड़ोंसे ताड़ी निकाली जाती है। नगरके दक्षिणमें दानेदार पत्थर तथा काले अबरकका पहाड़ है। इसके ऊपर चढ़नेसे पार्श्वनाथ, राजमहल और पञ्चकूट पहाड़ दृष्टिगत होते हैं। पहाड़के ऊपर पत्थर काट कर एक सुन्दर शिवालय बनाया गया है।

दुबरालगोला (हिं॰ पु॰) तोपका लंबोतरा गोला।

दुबराल पलंग (हिं॰ पु॰) पालकी एक डोरी। इसे खींच कर पालके पेटेकी हवा निकाली जाती है।

दुबला (हिं॰ वि॰) १ कृश, क्षीण शरीरका। २ अशक्त, कमजोर।

दुबलापन (हिं० पु०) कृशता, क्षीणता।
दुआइन (हिं० स्त्री०) दूबेकी स्त्री।
दुबागा (हिं० पु०) सनकी मोटी रस्सी।
दुबारा (हिं० क्रि०-वि०) दोबारा देखो।
दुबाला (हिं० वि०) दोबाला देखो।
दुबाहिया (हिं० पु०) वह योद्धा जो दोनों हाथोंसे तलवार चलाता हो।
दुविधा (हिं० स्त्री०) दुवधा देखो।
दुविसी (हिं० स्त्री०) गवर्मेण्टकी ओरसे दिये जानेका एक प्रकारका कमीशन। इसमें बीस रुपयेके लगान पर दो रुपये दिये जाते हैं।
दुबे (हिं० पु०) ब्राह्मणोंकी एक उपाधि। यह शब्द द्विवेदीका अपभ्रंश शब्द है। द्विवेदीका नाम संक्षेत भाषा भाषियोंने दोवे रखा था जिसका भी अर्थ था दो वेदका जाननेवाला। यही दोवे शब्द भाषामें दुबे हो गया।
दुभाखी (हिं० पु०) दुभाषी देखो।
दुभाषिया (हिं० पु०) वह जो दो भाषाओंको जानता हो।
दुभाषी (हिं० पु०) दुभाषिया।
दुमंजिला (फा० वि०) दो खंडा, जिसमें दो खन हों।
दुम (फा० स्त्री०) १ पुच्छ, पूंछ। २ किसी कामका सबसे शेष थोड़ासा भाग। ३ वह आदमी जो किसीके पीछे लगा रहता है, पिच्छलग्गू। ४ वह वस्तु जो पूंछकी तरह पीछे लगी या बंधी होती है।
दुमका–१ बिहार और उड़ीसाके अन्तर्गत सन्थाल परगने जिलेका एक सदर उपविभाग। यह अक्षा० २३° ५९´ से २४° ३९´ उ० और देशा० ८६° ५४´ से ८७° ४२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १४२९ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ४१६८६१ है। इसमें दुमका नामका शहर और २१०५ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४° १६´ उ० और देशा० ८७° १५´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय ५३२६ है। अङ्गरेजी राज्यके आरम्भसे ही दुमकामें अङ्गरेज गवर्मेण्टके थानेका नाम देखनेमें आता है। १७९८ ई०में दुमका वीरभूमके अधीन एक घाटवाली थाना था। १७९५ ई०में राजमहल पार्वत्य प्रदेश पर शासन करनेके लिये इसे भागलपुरके अधीन एक 'कोहिस्थानी' थाना बना दिया गया। १८५५ ई० तक इसका नाम दुमका ही सुना जाता था। इसी साल सन्ताल-विद्रोहके समय यहांकी छावनीकी अंगरेजी सेनाने इसका नाम नयादुमका रखा। आज भी लोग इसे केवल दुमका ही कहते हैं। नयादुमका का नाम बहुत कम सुना जाता है। १८५६ ई०में दुमका 'सन्थाल परगना' जिलेका सदर हुआ, किन्तु कुछ दिनोंके बाद उक्त जिलेका प्रत्येक सबडिविजन जब प्रधान जिला हो गया, तब दुमका केवल दुमका-सबडिविजनका सदर रहा। यहां जिलेकी संक्रान्त अदालत आदि है। मोर नदीके किनारे यहांका बाजार अवस्थित है। १९०३ ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई। शहरकी आय प्रायः ७७०० रु० है।
दुमची (फा० स्त्री०) १ पूंछके नीचे दबा हुआ घोड़ेके साजका एक तसमा। २ पुट्ठोंके बीचकी हड्डी।
दुमदार (फा० वि०) १ जिसे पूंछ हो। २ जिसके पीछे पूंछकी तरह कोई वस्तु लगी या बंधी हो।
दुमन (हिं० वि०) अप्रसन्न, खिन्न, अनमना।
दुमाता (हिं० वि०) १ बुरी माता। २ सौतेली मा।
दुमाला (हिं० पु०) पाश, फंदा।
दुम्बक (सं० पु०) दुम्ब, एक प्रकारका भेंड़ा।
दुरंगा (हिं० वि०) १ जिसमें दो रङ्ग हों। २ दो पक्ष अवलम्बन करनेवाला, दो तरहकी चाल चलनेवाला।
दुरंगी (हिं० स्त्री०) द्विविधा, कभी एक पक्षका और कभी दूसरे पक्षका अवलम्बन।
दुर (सं० अव्य) दु-रुक्‌ सुक्‌ वा। १ दुष्ट। २ निन्दा। ३ निषेध। ४ दुःख। ५ ईषदर्थ। ६ कृच्छार्थ। ७ क्षय, दुबला। ८ असम्पत्ति। ९ सङ्कट। क्रियाके साथ मिलनेसे दुर्‌ वा दुस्‌ शब्द उपसर्ग हो जाता है।
दुर (सं० त्रि०) दृ-क्विप्‌। द्वार, दरवाजा।
दुर (सं० त्रि०) दु-बाहु० कुरं। दाता, देनेवाला।
दुर (हिं० अव्य०) एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कार पूर्वक किसीको हटानेके लिये होता है। इसका प्रयोग विशेष कर कुत्तोंके लिए होता है। कभी कभी लोग बच्चों आदिको यों ही प्यारसे भी कह देते हैं।
दुर (फा० पु०) १ मुक्ता, मोती। २ नाकमें पहननेका मोतीका लटकन; लोलक। ३ छोटी बाली।

दुरक्ष (सं० पु०) दुष्टो अक्षः प्रादिस०। १ कपट पाशक, पासा, चौपड़। २ दुष्टनेत्र, बुरी निगाह।

दुरखा (हिं० पु०) नील, तमाखू, सरसों, गेहूं इत्यादिकी फसलको नुकसान करनेवाला एक प्रकारका फतींगा।

दुरखुम (हिं० पु०) दरीके तानेके दो दो सूतोंको एकमें बाँधना। यह इसलिये किया जाता है, कि वे उलझ न जांय।

दुरतिक्रम (सं० त्रि०) दुःखेन अतिक्रम्यतेऽसौ दुर-अति-क्रम खल्। १ अलङ्घनीय, जिसका उल्लंघन न हो सके। २ अजेय, जिसे कोई जीत न सके। ३ अपार, जिसका पार पाना कठिन हो। (पु०) ४ विष्णु।

दुरत्यय (सं० त्रि०) दुःखेन अतीयते दुर-अति-इ-खल्। दुरतिक्रमणीय, जिसका पार पाना कठिन हो। २ दुस्तर, जिसका अतिक्रम न हो सके।

दुरत्येतु (सं० त्रि०) दुर-अति-इ-कर्मणि तुन्। दुरतिक्रमणीय।

दुरदुराना (हिं० क्रि०) तिरस्कारपूर्वक दूर करना।

दुरदृष्ट (सं० क्लो०) दुर-दुष्टं अदृष्टं। दुर्भाग्य, बुरी किसमत। पापकर्मसे दुरदृष्ट उत्पन्न होता है। जो कोई काम किया जाता है, उसका एक संस्कार रहता है। उसी संस्कारको 'अदृष्ट' कहते हैं। यह अदृष्ट शुभाशुभ कर्म साध्य है। शुभ कर्म अर्थात् पुण्य कर्म करनेसे शुभादृष्ट और पाप कर्म करनेसे दुरदृष्टि होता है। अतः पाप ही एक मात्र दुरदृष्टिका कारण है। अदृष्ट देखो।

दुरद्मनी (सं० स्त्री०) अद-भावे मनिन् वा ङीप्, दुष्टा अद्मनी प्रादिस०। दुर्भोजन, खराब भोजन।

दुरधिग (सं० त्रि०) दुःखेन अधिगम्यतेऽसौ दुर-अधि-गम बाहु० कर्मणि ड। १ दुष्प्राप्य, जिसका मिलना कठिन हो। २ दुर्ज्ञेय, जिसका जानना कठिन हो।

दुरधिगम (सं० त्रि०) दुःखेन अधिगम्यते दुर-अधि-गम कर्मणि खल्। १ दुष्प्राप्य जो पहुंचके बाहर हो। २ दुर्ज्ञेय, जो समझके बाहर हो।

दुरधिष्ठित (सं० त्रि०) दुर-अधि-स्था क्त। १ नितान्त मन्दभावसे सम्पादित, जो बहुत धीरे धीरे किया जाय। (पु०) २ अनुपयुक्त गृहाधिष्ठान।

दुरधीत (सं० क्लो० दुष्टं अधीतं प्रादिस०। दुष्टाध्ययन। जो पढ़ा गया हो पर उसका मर्म न समझा हो और उसे बोलनेकी शक्ति भी न हो, उसे दुरधीत कहते हैं। अग्निके बिना जिस तरह सूखी लकड़ी नहीं जलती, उसी तरह दुरधीत विद्या भी फलदायक नहीं है।

दुरध्यय (सं० त्रि०) दुःखेन अधीयते दुर-अधि-इ खल्। अध्ययन करनेमें अशक्य, जो सहजमें पढ़ा न जाता हो।

दुरध्यवसाय (सं० पु०) दुर-दुष्टः अध्यवसायः। मन्द कार्यकी चेष्टा, खराब कामका यत्न।

दुरध्व (सं० पु०) दुष्टो अध्वा प्रादिसमासः अच् समा०। दुष्टवर्त्म, कुपथ, कुमार्ग, बुरा रास्ता।

दुरनुपालन (सं० त्रि०) जिसका पालन करना कठिन हो।

दुरनुबोध (सं० त्रि०) जिसका याद रखना कठिन हो।

दुरनुष्ठित (सं० त्रि०) दुर-अनु-स्था-क्त। जो दुःखसे किया जाय।

दुरनुष्ठेय (सं० त्रि०) दुर-अनु-स्था-यत्। कष्टसे अनुष्ठानयोग्य, जो कठिनतासे किया जाय।

दुरन्त (सं० त्रि०) दुष्टोऽन्तो अवसानं यस्य। मृगया द्यूतपानादि व्यसन, जिसका अन्त बहुत अशुभजनक हो। जो पहले तो अच्छा मालूम पड़े, पर पीछे बहुत कष्टकर हो उसे दुरन्त कहते हैं। मनुके मतानुसार सभी व्यसन दुरन्त है। अतः उन्हें यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। दुर्ज्ञेयोऽन्तः परिच्छेदो यस्य। २ दुर्ज्ञेय, जिसका जानना कठिन हो। ३ गम्भीर, घोर, प्रचण्ड। ४ दुरतिक्रमणीय, जिसका उल्लङ्घन न हो सके। ५ दुष्ट, खल। ६ दुर्गम, कठिन।

दुरन्तक (सं० पु०) दुरन्त-कप्। १ असंख्यमर्याद। २ शिव।

दुरन्वय (सं० त्रि०) दुःखेन अन्वीयतेऽसौ दुर अनु इ-कर्मणि खल्। दुःख द्वारा अनुगमनीय, जो कठिनता अनुसरण किया जाय।

दुरन्वेष्य (सं० त्रि०) जिसका अनुसन्धान या तलाश कष्टसे की जाय।

दुरवचा (फा० पु०) एक मोती।

दुरवास (हिं० पु०) दुर्गन्ध, बुरी महक।

दुरपचार (सं० त्रि०) जिसे असन्तुष्ट वा विरक्त नहीं कर सकते।

दुरपनेय (सं॰ त्रि॰) दुःखेन अपनीयतेऽसौ दुर-अपनो यत। जिसका हटाना कठिन हो।

दुरभिग्रह (सं॰ पु॰) दुःखेन आभिमुख्येन गृह्यतेऽसौ दुर-अभि-ग्रह-खल्। १ अपामार्ग, चिचड़ो। (स्त्री॰) २ दुरालभा, जवासा। ३ कपिकच्छु, केवाँच, कौंछ। (त्रि॰) ४ दुःख द्वारा ग्राह्य, जो कठिनतासे प्राप्त हो।

दुरभिगाह (सं॰ त्रि॰) दुष्प्रवेश्य, जटिल, जिसका जानना कठिन हो।

दुरभिसन्धि (सं॰ स्त्री॰) दुष्ट षट्चक्र, मिल जुल कर की हुई कुमन्त्रणा।

दुरमुस (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका डंडा जो गदाके आकारका होता है। इसके नीचे पत्थर या लोहेका भारी टुकड़ा लगा रहता है। यह कंकड़ या मट्टी पोट कर बैठानेके काममें आता है।

दुरवगत (सं॰ त्रि॰) दुर्-अव-गम-क्त। जो कठिनतासे जाना जा सके।

दुरवगम (सं॰ त्रि॰) दुर्-अव-गम-खल्। दुर्ज्ञेय, जिसका जानना कठिन हो।

दुरवग्राह्य (सं॰ त्रि॰) दुःखेन अवगृह्यतेऽसौ दुर-अव-ग्रह ण्यत्। जो दुःखसे ग्रहण किया जाय।

दुरवबोध (सं॰ त्रि॰) दुःखेन अवबुध्यतेऽसौ दुर-अव-बुध-खलर्थे घञ्। दुर्बोध्य, जो कठिनतासे मालूम हो सके।

दुरवरोह (सं॰ त्रि॰) दुःखेन अवरुह्यतेऽसौ दुर-अव-रुह खलर्थे घञ। दुरारोहणीय, जो कठिनतासे चढ़ा जाय।

दुरववद (सं॰ क्लो॰) विरुद्ध बोलने वा निन्दा करनेके पक्षमें कष्टकर, जिससे सहजमें कटुवचन न निकले।

दुरवस्थ (सं॰ त्रि॰) दुर्-दुष्टा अवस्था यस्य। दुर्दशापन्न, जो अच्छी दशामें न हो।

दुरवस्था (सं॰ स्त्री॰) दुष्टा अवस्था प्रादिस॰। दारिद्र्यादि मन्द अवस्था, बुरी दशा, खराब हालत।

दुरवाप (सं॰ त्रि॰) दुःखेन अवाप्यतेऽसौ अव-आप-खल्। दुष्प्राप्य, जो कठिनतासे प्राप्त हो सके।

दुरवेक्षित (सं॰ क्लो॰) दुष्टं अवेक्षितं। मन्द दृष्टि, बुरी निगाह।

दुरम (हिं॰ पु॰) सहोदर भाई।

दुरस्यु (सं॰ त्रि॰) दुःख देने वा अनिष्ट करनेमें इच्छुक, बा।

दुरह्न (सं॰ पु॰) दुर निन्दितं अह्नः। दुर्दिन, खराब दिन।

दुराक (सं॰ पु॰) दुनातीति दु-न उपतापे आकः। १ म्लेच्छ विशेष, एक म्लेच्छ जातिका नाम। २ म्लेच्छ-देशविशेष, एक म्लेच्छदेशका नाम।

दुराकाङ्क्ष (सं॰ त्रि॰) दुर दुष्टा आकांक्षा यस्य। दुर-प्रत्याशी, जो खराब विषयकी आशा करता हो।

दुराकाङ्क्षा (सं॰ स्त्री॰) दुष्प्राप्य विषयकी अभिलाषा।

दुराकृति (सं॰ त्रि॰) दुर्-दुष्टा आकृतिर्यस्य। १ मन्द आकृतिविशिष्ट, जो देखनेमें खराब हो। (स्त्री॰) दुष्टा आकृति। २ मन्द आकृति, खराब स्वरूप।

दुराक्रन्द (सं॰ अव्य॰) दुःखेन आक्रन्द्यतेऽसौ आक्रन्द-खल्। अति दुःखसे क्रन्दन, बहुत दुःखसे रोना।

दुराक्रम (सं॰ त्रि॰) दुःखेन आक्रम्यतेऽसौ दुर्-आ-क्रम-खल्। दुःख द्वारा आक्रमणीय, जो बहुतसी कठिनतासे आक्रमण किया जाय।

दुराक्रम्य (सं॰ त्रि॰) दुर्-आ-क्रम-ण्यत्। दुःखसे आक्रमणीय, जिस पर सहजमें चढ़ाई न की जा सके।

दुराक्रोश (सं॰ पु॰) दुःखेन आक्रुश्यतेऽसौ दुर्-आ क्रुश खलर्थे घञ्। आर्त्तनाद, दुःखका रोना।

दुरागत (सं॰ त्रि॰) दुःखेन आगतः। जो बहुत कष्टमें पड़ा हो, दुःखित।

दुरागम (सं॰ पु॰) मन्द उपायसे उपार्जन, बुरी रीतिसे हासिल करना।

दुरागमन (हिं॰ पु॰) द्विरागमन देखो।

दुरागौन (हिं॰ पु॰) बधूका दूसरी बार अपनी ससुराल जाना।

दुराग्रह (सं॰ पु॰) दुःखेन आगृह्यतेऽसौ दुः आ-ग्रह-खल्। १ मन्द विषयमें आग्रहयुक्त, किसी बात पर बुरे ढंगसे अड़ना, हठ, ज़िद। २ अपने मतके ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहनेका काम।

दुराग्रही (हिं॰ वि॰) १ जो बिना उचित अनुचित विचारके अपनी बात पर अड़ जाता है, हठी, ज़िद्दी। २ जो अपने मतके ठीक न सिद्ध होने पर भी उस पर स्थिर रहता है।

दुराचर ( सं० त्रि० ) दुःखेन आचर्य्यतेऽसौ दुर्-आ-चर-खल्। १ दुश्चर, जो कठिनतासे आचरण किया जाय। २ दुष्टाचार युक्त, खोटा व्यवहारवाला।

दुराचरण ( सं० पु० ) दुष्ट व्यवहार, बुरा चालचलन।

दुराचरित ( सं० क्लो० ) दुःखेन आचरितं। जो बहुत कठिनतासे किया गया हो।

दुराचार ( सं० पु० ) आचर्य्यते इति चर भावे घञ्। दुर्दुष्टः आचारः। १ दुष्ट आचार, बुरा चालचलन। अध्यात्म-रामायणमें लिखा है, कि कलिकालमें सभी मनुष्य पुण्यकर्मसे रहित होंगे, सर्वदा खराब कामोंमें लगे रहेंगे और झूठ बोलेंगे। ( त्रि० ) दुष्टः आचारो-यस्य। २ दुष्टाचारयुक्त, जिसका चालचलन खराब हो।

दुराचारी ( हिं० वि० ) दुष्ट आचरण करनेवाला, बुरे चालचलनका।

दुराज ( हिं० पु० ) १ दुष्ट शासन, बुरा राज्य। २ वह राज्य वा शासन जो एक ही स्थान पर दो राजाओंका हो। ३ वह स्थान जिस पर दो राजाओंका राज्य हो, दो राजाओंकी अमलदारी।

दुराजी ( हिं० वि० ) दो राजाओंका, जिसमें दो राजा हों।

दुराढ्यङ्कर ( सं० त्रि० ) दुःखेन आढ्यं क्रियते कर्मोपपदे खल् मुम्। दुःख द्वारा अनाढ्य, दुःखित, पीड़ित।

दुराढ्यम्भव ( सं० क्लो० ) दुःखेन अनाढ्येन आढ्येन भूयते, उपपदे भावे खल्-मुम्। जो बहुत कष्ट करके बुरी अवस्थासे अच्छी अवस्थामें आया हो।

दुरात्मता ( सं० स्त्री० ) दुरात्मनो भावः दुरात्मन्-तल्-टाप्। दुरात्माका कार्य या भाव।

दुरात्मन् ( सं० त्रि० ) दुष्टः आत्मा अन्तःकरणं यस्य। दुष्टान्तःकरण, नीचाशय, खोटा। मनुके मतसे जो मनुष्य कन्याका दोष छिपा कर कन्यादान करता है, वही दुरात्मा है और उसका दान निष्फल होता है।

दुरादान ( सं० त्रि० ) जो कष्टसे धारण किया जाय।

दुरादुरी ( हिं० पु० ) गोपन, छिपाव।

दुराधन् ( सं० पु० ) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ( भारत आदि० ६७ अ० )

दुराधर ( सं० पु० ) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ( भारत १।११७ अ० )

दुराधर्ष ( सं० पु० ) दुष्टान् राक्षसान् आधर्षति दुर्-आ-धृष-अच्। १ श्वेतसर्षप, सफेद सरसों। २ विष्णु। (त्रि०) ३ अधर्षणीय, जिसका दमन करना कठिन हो। ४ अहङ्कारी, अभिमानी।

दुराधर्षता ( सं० स्त्री० ) प्रचण्डता, प्रबलता।

दुराधर्षा ( सं० स्त्री० ) दुराधर्ष-टाप्। कुटुम्बिनीवृक्ष।

दुराधार ( सं० त्रि० ) दुःखेन आधार्य्यते दुर्-आ-धारि कर्मणि खल्। १ दुःख द्वारा आधारणीय, जो कठिनताके सहारा पा सके। २ चिन्तनीय। (पु०) ३ महादेव, शिव।

दुराधि (सं० पु०) दुर्दुष्टः आधिः। क्लेशजनक, जिससे दुःख हो।

दुराधी ( सं० त्रि० ) मन्द चेष्टाकारी, दुष्ट आचरणका।

दुरानम ( सं० त्रि० ) दुःखेन आनम्यते दुर्-आ-नम-णिच् कर्मणि खल्। दुःख द्वारा आनमनीय, जो बहुत कठिनतासे सन्तुष्ट किया जाय।

दुराना ( हिं० क्रि० ) १ दूर होना, हटना। २ अलक्षित होना, छिपना। ३ दूर करना, हटाना। ४ त्यागना, छोड़ना। ५ गुप्त रखना, छिपाना।

दुरानी—अफगानिस्तानकी मुसलमान-धर्मावलम्बी एक जाति। इसका दूसरा नाम अबदली है। दुरानी शब्द पारस्य भाषासे निकला है। इसका मौलिक अर्थ 'मुक्तासम्बन्धीय' है। अबदली जाति अपने दाहिने कानमें छोटी छोटी मुक्ताओंसे जड़ा हुआ कुण्डल पहनती है, इसीसे इन लोगोंके प्रथम राजा वीरवर अहमद शाह अबदलीने 'दुर्रिदुरान्' अर्थात् मुक्तावलीकी मुक्ताकी उपाधि पाई थी। तभीसे सभी अबदली जाति दुरानी नामसे कहलाती आ रही है। यह जाति साद्दोजाई, पपुलजाई, बारकजाई, इल्कोजाई, नुरजाई, ईशाकजाई और खगवनी आदि कई एक शाखाओंमें विभक्त है। इन का आदि वासस्थान कन्दाहार (प्राचीन गान्धार) प्रदेशमें था। वहींसे ये लोग बहुत दिन हुए हेलमन्द और अर्घन्दाव नदीके किनारे होते हुए वर्त्तमान हजारा प्रदेशमें आकर बस गये हैं। काबुलसे लेकर जलालाबाद

प्रदेशके बीच कहीं कहीं दो एक दुरानीका वास है। इन सब स्थानोंमें सभी जगह इनमेंसे कुछ तो जमींदार है और कुछ सैनिक विभागके वृत्तिभोगी। कोई भी सामान्य प्रजाके रूपमें नहीं है।

प्रसिद्ध सम्राट शाह अबदली (पीछे दुरानी) ने अपने असाधारण वीरत्व और अध्यवसायके प्रभावसे इस जातिको प्रबल पराक्रान्त, रणकुशल और दिग्विजयी बना दिया था। अहमद शाह अबदली देखो। उन्हींके समय में यह जाति उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँच गई थी। पूर्वमें शतद्रु और सिन्धु नदीके किनारेसे लेकर पश्चिममें पारस्यकी मरुभूमि तक और उत्तरमें आमू वा अक्सस् नदीसे लेकर, दक्षिणमें अरबसागर तकके प्रदेशोंमें दुरानी शासन विस्तृत था। अहमदके बार बार इस रत्नभूमि पर चढ़ाई करनेसे यह जाति राजपदमें उन्नत और महासमृद्धिशाली हो गई। जितने पशुपालक और दस्युवृत्तिके सर्दार थे, वे सभासदमें नियुक्त हुए। किन्तु असभ्य अशिक्षित अवस्था द्वारा दैव क्रमसे हठात् धन-सम्पत्ति और क्षमताप्राप्त कर ये लोग अधिक दिन उसे रख न सके। सम्राट शाहके मरनेके बाद ही उनके पुत्र विलासी, दुर्बलचेता और निरुद्यम तैमूरके राजत्वकालमें उनके अनेक प्रदेश अधिकारसे निकल पड़े। तैमूरकी मृत्युके बाद उनके पुत्रोंने सारा राज्य आपसमें बाँट लिया, किन्तु गृहविवादके कारण शीघ्र ही वे सबके सब बल-हीन हो गये और बारकजाई वंशीय दोस्त महम्मदने काबुलके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उनके भाइयोंने कन्दाहार, खिलात आदि स्थानोंमें राज्य स्थापित किया। इसी प्रकार सद्दोजाइ वंशसे अफगानिस्तानका राज्य-शासन बारकजाइके हाथ लगा। सद्दोजाइ वंशीय अहमद शाह दुरानीके वंशधर सुजा अंगरेजोंके आश्रित होकर लुधियानामें रहते थे।

भारत-सरकारने रूसियाके आक्रमणसे बचनेके लिये दोस्त महम्मदके साथ सन्धि स्थापनका प्रस्ताव किया, किन्तु दोस्त महम्मद इसमें राजी न हुए। अतः गवर्मेण्टने १८३९ ई०में सुजाको काबुलके सिंहासन पर बिठाया। पीछे दोस्त महम्मदने तुरत ही अङ्गरेजोंकी शरण ली और अंगरेजोंने उन्हें भारतवर्षको भेज दिया। किन्तु उसके बाद ही काबुल युद्धके समय १८४२ ई०में सुजा दुर्दान्त अफगानोंसे मारे गये। उसी वर्ष काबुलकी सभी अंगरेजी सेना मारी गई। इसका बदला लेनेके लिये अंगरेज गवर्मेण्टने पलक साहबके अधीन वहां सेना भेजी जब वह सेना अच्छी तरह बदला लेकर भारतको लौटी, तब यहांसे दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तानके अमीर बना कर भेज दिये गये। युद्ध-प्रिय अफगानोंने साहसी, वीर दोस्त अहम्मदको आदर पूर्वक अभ्यर्थना की। तभीसे उन्हींके वंशधर राज्य करते आ रहे हैं।

दुराप (सं० त्रि०) दुःखेन आप्यते दुर-आप-खल्। १ दुष्प्राप्य, कठिनतासे मिलनेवाला। (क्लो०) भावे खल्। २ दुष्प्राप्ति।

दुरापन (सं० त्रि०) दुर्-आप-ल्युट्। दुष्पाप, कठिनता-से मिलनेवाला।

दुरापादन (सं० त्रि०) दुःखेन आपाद्यते दुर्-आ-पाद-ल्युट्। दुःख द्वारा आपादनीय, जो कठिनतासे जा सके।

दुरापूर (सं० त्रि०) दुःखेन आपूर्यते आ-पुर-खल्। १ दुष्पुर, जो बहुत कठिनतासे पूरा किया जाय। २ दुःख द्वारा पूर्यमान, जो चारों ओर दुःखसे घिरा हो।

दुराबाध (सं० त्रि०) १ जो दुःख वा पीड़ा देनेके योग्य नहीं हो। (पु०) २ शिव, महादेव।

दुराम्नाय (सं० त्रि०) जो बहुत कठिनतासे वशीभूत किया जाय।

दुराय्य (सं० त्रि०) दुष्प्राप्य, जो कठिनतासे प्राप्त हो।

दुरारक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन आरक्ष्यते दुर्-रक्ष यत्। दुःख द्वारा रक्षणीय, जो बहुत कठिनतासे बचाया जा सके।

दुराराध्य (सं० त्रि०) दुःखेन आराध्यते आ-राध यत्। १ दुःख द्वारा आराधनीय, जिसकी पूजना वा सन्तुष्ट करना कठिन हो। (पु०) २ विष्णु।

दुरारिहन् (सं० पु०) दुष्टमियर्त्ति दुर् ऋ-णिनि। दुरारी दुर्गामी असुरः तं हन्ति हन-क्विप्। विष्णु।

दुरारुह (सं० पु०) दुःखेन आरुह्यतेऽसौ दुर्-आ-रुह खर्थे कमणि क। १ विल्ववृक्ष, बेलका पेड़। २ नारिकेल-वृक्ष, नारियलका पेड़। ३ दुरारोहनीय जिस पर चढ़ना कठिन हो।

दुरारुहा (सं० स्त्री०) १ खर्जूरी वृक्ष, खजूरका पेड़। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ वंश, बांस।

दुरारोह (सं० पु० स्त्री० दुःखेन आरुह्यते दुर-आ-रुह-खल्। १ सरठ, गिरगिट। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। (त्रि० २ ओवल्ली। ३ शाल्मलिवृक्ष, सेमरका पेड़। ४ ताल वृक्ष, ताड़का पेड़। ५ खजुंरी वृक्ष, खजूरका पेड़। (त्रि०) ६ दुरारोहणीय, जिस पर चढ़ना कठिन हो। (पु०) ७ दुःख द्वारा आरोहण, वह जिस पर चढ़ना कठिन हो।

दुरारोहा (सं० स्त्री०) १ ओवल्लीवृक्ष। २ सरठ, गिरगिट। ३ खजुंरी वृक्ष, खजूरका पेड़।

दुरालक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन आलक्ष्यते दुर-आ-लक्ष-यत्। जो बहुत कठिनतासे दीख पड़े।

दुरालभ (सं० पु०) दुःखेन आलभ्यते आ-लभ-खल्। दुर्लभ्य, जिसका मिलना कठिन हो।

दुरालभा (सं० स्त्री०) दुरालभ-टाप्। स्वनामख्यात कण्टक युक्त क्षुद्र क्षुप विशेष, जवासा, धमासा, हिंगुआ। इसका संस्कृत पर्याय—दुरालम्भा, धन्वयास, ताम्रमूला, कच्छुरा, दुस्पर्शा, धन्वी, धन्वयवासक, प्रबोधनी, सूक्ष्मदला, विरूपा, दुरभिग्रहा, दुर्लभा, दुष्प्रधर्षा, यास, यवास, दुस्पर्श, कुनाशक, रोदनी, अनन्ता, रुसुद्रान्ता, गान्धारी, कषाया, धनुर्यास, युवस, कच्छुरा, विकण्टक और पञ्चमुखी है। इसका गुण—सारक, ज्वर, छर्दि, श्लेष्म, पित्त, विसर्प और वेदनानाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, क्षार, अम्ल, मधुर, वात, गुल्म और प्रमेहनाशक है। २ कर्पास, कपास।

दुरालम्भ (सं० त्रि०) दुर-आ लभ-खल्, नुम्। दुरालभ, जिसका मिलना कठिन हो।

दुरालाप (सं० पु०) दुर्दुष्टः आलापः। १ कटुवचन, बुरो बात चीत, गाली। (त्रि०) दुर्दुष्टः आलापो यस्य। २ कटुभाषी, बुरा वचन बोलनेवाला।

दुरालोक (सं० त्रि०) १ अत्युज्ज्वल, बहुत सफेद। (पु०) २ अत्युज्ज्वलता, चमक।

दुराव (हिं० पु०) १ अविश्वास या भयके कारण किसीसे बात गुप्त रखनेका भाव, छिपाव। २ कपट, छल।

दुरावर्त्त (सं० त्रि०) जो बहुत कठिनतासे घुमाया जा सके।

दुरावह (सं० त्रि०) जिसका लाना कष्टकर हो।

दुराव्य (सं० क्ली०) अवगत्यांदौ भावे ण्यत् दुष्टं आव्यं गतिः। दुष्टमति, खराब विचार।

दुराश (सं० पु०) दुर्दुष्टा आशा यस्य। दुराशान्वित, जिसे अच्छी उम्मीद न हो।

दुराशय (सं० पु०) दुर्दुष्टः आशयः। १ दुष्ट आशय, बुरी नीयत। (त्रि०) २ दुष्टाशययुक्त, जिसकी नीयत बुरी हो, खोटा।

दुराशा (सं० स्त्री०) दुर्दुष्टा आशा। दुर्मनोरथ, व्यर्थकी आशा, झूठी उम्मीद।

दुरास (सं० त्रि०) अजेय, जिसे कोई जीत न सके।

दुरासद (सं० त्रि०) दुःखेन आसाद्यतेऽसौ दुर्-आ-सद कर्मणि खल्। १ दुष्प्राप्य, जिसका मिलना कठिन हो।

दुरासित (सं० क्ली०) दुर्-आ-सक्त। १ वह स्थान जहां रहने योग्य न हो। २ खराब वासस्थान।

दुराहर (सं० त्रि०) दुःखेन आह्रियतेऽसौ दुर्-आ-हृ-खल्। दुःख द्वारा आहरणीय, जिसके खानेमें बहुत कष्ट हो।

दुराहा (सं० त्रि०) दुरदृष्ट, अभागा।

दुरित (सं० क्ली०) दुष्टं इतं गमनं नरकादिस्थानप्राप्तिरस्मात्। १ पाप। २ उपपातक, छोटा पाप। (त्रि०) ३ पापयुक्त, पापी।

दुरितक्षय (सं० पु०) दुरितस्य क्षयः। पापक्षय, पापका घटना।

दुरितदमनी (सं० स्त्री०) दुरितं दम्यतेऽनया दम करणे ल्युट्, ङीप्। १ शमीवृक्ष। (त्रि०) २ पापनाशिनी, पापका नाश करनेवाली।

दुरितारि (सं० पु०) दुरितस्य अरिः ६ तत्। १ दुरित नाशक, पापनाशक। २ जैनियोंका शासनदेवताभेद।

दुरियाना (हिं० क्रि०) १ दूर करना, हटाना। २ तिरस्कारके साथ भगाना, दुरदुराना।

दुरिष्ट (सं० क्ली०) दुष्टं इष्टं यज्ञः। अभिचारार्थ यज्ञ, वह यज्ञ जो मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचारोंके लिये किया जाय। स्मृतिपुराण आदिमें ऐसा यज्ञ करना महापाप बतलाया है। विष्णुपुराणके मतानुसार देवता ब्राह्मण और पितरोंसे द्वेष करनेवाला, रत्नका चुरानेवाला, दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, अभिभक्ष और अभोज्य

नरकमें जाते हैं। २ पाप, पातक। उशनाकी स्मृतिने पातकोंको दुरित कहा है।

दुरिष्टकृत (सं० पु०) दुरिष्टं अभिचारयज्ञं करोतीति कृ-क्विप्, तुगागमः। अभिचार-यज्ञकर्त्ता, वह जो अभिचार यज्ञ करता हो।

दुरिष्टि (सं० स्त्री०) दुष्टा इष्टिः। अपकारीय यज्ञ, अभिचारार्थ यज्ञ।

दुरिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन दुःनिन्दितः। अतिमन्द, खोटा, खराब।

दुरीश (सं० पु०) दुष्टः ईशः प्रभुः। निन्दित प्रभु।

दुरीषणा (सं० स्त्री०) दुर्दुष्टा ईषणा इच्छाभि शंसनं। शाप, बददुआ। २ अहित कामना, बुरी नीयत।

दुरु (सं० पु०) पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।
(भारत अनु० १६५ अ०)

दुरुक्त (सं० क्ली०) दुष्टं उक्तं। दुष्टवचन, खराब वचन।

दुरुक्ति (सं० स्त्री०) दुष्टा उक्तिः। कटुवाक्य, कड़ुई बात।

दुरुखा (फा० वि०) १ जिसके दोनों ओर मुंह हो। २ जिसके दोनों ओर कोई चिह्न हो। ३ जिसके दोनों ओर दो रंग हों।

दुरुच्चार (सं० त्रि०) दुःखेन उच्चार्यतेऽसौ दुर-उत्-चर खलर्थे घञ्। अनुच्चार्य, अश्लील, लज्जाजनक, फूहड़।

दुरुच्चार्य (सं० त्रि०) दुर-उत्-चर-ण्यत्। जो सहजमें उच्चारण न किया जा सके।

दुरुच्छेद (सं० त्रि०) दुःखेन उच्छिद्यतेऽसौ दुर-उद्-छिद् कर्मणि खल्। १ दुर्वार, जो कठिनतासे उखाड़ा जा सके।

दुरुच्छेद्य (सं० त्रि०) दुर-उत्-छिद ण्यत्। दुच्छेद्य, जो सहजमें उखाड़ न सके।

दुरुत्तर (सं० त्रि०) दुःखेन उत्तीर्यतेऽसौ दुर-उत्-तृ-कर्मणि खल्। १ दुस्तर, जिसे पार पाना कठिन हो। २ अनुत्तर, जिसका उत्तर देना कठिन हो। दुष्टं उत्तरं (क्ली०) ३ दुष्ट उत्तर, खराब जवाब।

दुरुत्तोल्य (सं० त्रि०) दुस्तोल्य, जो बहुत कठिनतासे उठाया जा सके।

दुरुत्सह (सं० त्रि०) दुःसह, जो सहने योग्य न हो।

दुरुदय (सं० त्रि०) १ जो अच्छी तरह दीख न पड़े। २ दुर्निरीक्ष्य, जिसे देखते न बने, भयंकर, खौफनाक।

दुरुदाहर (सं० त्रि०) दुःखेन उदाह्रियते दुर-आ-हृ कर्मणि खल्। जिसका उदाहरण सहजमें न दिया जा सके।

दुरुद्वह (सं० त्रि०) दुःसह, जो सहने योग्य न हो।

दुरुधुरा (सं० स्त्री०) योगभेद, जन्मकुण्डलीका एक योग। इससे अनफा और सुनफा दोनों योगोंका मेल होता है।

जन्मकालमें यदि सूर्यको छोड़ कोई दूसरा ग्रह चन्द्रमासे बारहवें घरमें हो, तो अनफा योग और यदि सूर्यको छोड़ चन्द्रमासे दूसरे घरमें हो, तो सुनफा योग होता है। यदि ये दोनों योग हों अर्थात् सूर्यको छोड़ कोई दूसरा ग्रह लग्नसे बारहवें घरमें रह कर चन्द्रमासे दूसरे घरमें अवस्थान करे, तो दुरुधुरायोग होता है। इस दुरुधुरायोगमें जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, वीर और विख्यात, साधान, सौम्य मूर्त्ति, उत्तम सौभाग्यशाली, सुखोपभोगी, दाता, कुटुम्ब प्रतिपालक, सुबुद्धि और उत्तम ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुष होता है।

दुरुपक्रम (सं० त्रि०) दुःखेन उपक्रम्यतेऽसौ दुर उप-क्रम खल्। दुरासद, दुर्गम, जहां जाना कठिन हो।

दुरुपचार (सं० त्रि०) दुर-उपचर-घञ्। अनुग्रम्य, खराब व्यवहार।

दुरुपयोग (सं० पु०) अनुपयुक्त व्यवहार, बुरा उपयोग।

दुरुपलक्ष (सं० त्रि०) दुःखेन उपलक्ष्यतेऽसौ दुर-उप-लक्ष खल्। दुर्निरीक्ष, जिसे देखते न बने।

दुरुपसर्पी (सं० त्रि०) दुःखेन उपसर्पं यत उप-सृप-णिनि। अतर्कित भावसे आगत, जो अकस्मात् आ पहुँचा हो।

दुरुपस्थान (सं० त्रि०) दुष्प्राप्य, जिसका मिलना कठिन हो।

दुरुपाय (सं० पु०) दुष्ट- उपायः। दुष्टोपाय, खराब विचार।

दुरुफ (पु०) नीलकण्ठताजिकके मतानुसार फलित ज्योतिषका एक योग।

दुरुम (हिं० पु०) पतले और लम्बे दानेका एक प्रकारका गेहूँ।

दुरुस्त (फा० वि०) १ जो अच्छी अवस्थामें हो, ठीक। २ बिना दोषका, जिसमें ऐब न हो। ३ उचित, मुनासिब। ४ यथार्थ, वास्तविक।

दुरुस्ती (फा० स्त्री०) संशोधन, सुधार।

दुरूह (सं० त्रि०) दुःखेन ऊह्यते दुर ऊह-कर्मणि खल्। दुर्वितर्क, जो विचारमें जल्दी न आ सके, गूढ़, कठिन।

दुरेफ (हिं० पु०) द्विरेफ देखो।

दुरेवा (सं० त्रि०) दुर-इ बाहु० व। दुःख द्वारा गम्य, जहां जाना कठिन हो।

दुरोक (सं० त्रि०) दुष्ट ओको समवायो अत्र। दुःसेव, जहां रहने योग्य न हो।

दुरोण (सं० पु०) गृह, घर।

दुरोदर (सं० पु०) दुष्टं आ समन्तादुदरमस्य। १ द्यूतकार, जुआरी। २ पण, दावं। ३ अक्ष, पासा। (क्लो०) ४ द्यूत, जुआ।

दुरोह (सं० पु०) नागकेशर वृक्ष।

दुरौंधा (हिं० पु०) वह लकड़ी जो दरवाजेके ऊपरमें रहती है, भरेठा।

दुर्ग (सं० पु०-क्ली०) दुःखेन गम्यतेऽसौ दुर-गम-बाहु० ड। प्रसिद्ध राजाओंका आश्रयणीय कोट, गढ़, किला। कालिकापुराणमें दुर्गका विषय इस प्रकार लिखा है—राजा नगरके समीप ही प्राकार, अट्टालिका और तोरण द्वारा भूषित दुर्ग बनावें। नगर पर यदि किसी तरह शत्रु चढ़ाई कर दे, तो दुर्गमें आश्रय ले कर उनका समना करें। दुर्ग राजाओंका प्रधान सहाय है। दुर्गका एक धनुर्द्धारी दूसरे स्थानके सौ मनुष्योंसे और दुर्गके एक सौ मनुष्य, बाहरके हजार मनुष्योंसे युद्ध कर सकते हैं। इसी कारण सभी जगह दुर्गकी प्रशंसा की गई है। जलदुर्ग, भूमिदुर्ग, वृक्षदुर्ग, वनदुर्ग, मरुदुर्ग और पर्वतदुर्ग इन छः प्रकारके दुर्गमें देशके अनुसार कोई दुर्ग बना सकते हैं, जैसे पार्वत्यदेशमें पर्वतदुर्ग, मरुदेशमें मरुदुर्ग इत्यादि। दुर्ग धनुषके जैसा त्रिकोण वा गोल बनाना चाहिये, इसके सिवा और दूसरे प्रकारका न बनावें। मृदङ्गाकार दुर्ग बनाना बिलकुल मना है, क्यों कि इस प्रकारका दुर्ग कुलनाशक माना गया है। राक्षसराज रावणका लङ्का-दुर्ग मृदङ्गकी आकृतिका था। बलि राजाका शोणितपुरमें तेजोमय दुर्ग तो था सही, लेकिन उसकी आकृति पक्षी-सी थी; इसीसे बलि भ्रष्ट और लङ्काधिपति रावन विनष्ट हुए। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका अयोध्या नगर धनुषके जैसा त्रिकोण था, इसीसे यह सर्वदा शुभप्रद रहा। राजा दुर्गभूमिमें यदि दुर्गादेवीको और दुर्गद्वारमें दिक्पालोंको यथाविधि पूजा करें, तो विजय प्राप्त कर सकते हैं। राजा जय, वृद्धि आदिकी कामनासे दुर्गका निर्माण करें। (कालिकापु० ८४ अ०)

राजाको उचित है, कि दुर्ग भलीभांति प्रस्तुत कर उसमें आप वास करें तथा उसमें अधिकांश वैश्य और शूद्र, अल्प ब्राह्मण तथा अनेक कर्मचारीको भी रहनेका स्थान दें। ऐसे स्थानमें दुर्ग बनाना उत्तम है, जहां शत्रु हठात् आ न सके, जहां नाना प्रकारके फलपुष्पादि सुशोभित हों और जहां व्याल तथा तस्कर आदिका कुछ भी उपद्रव न हो। जहां तक हो सके भक्तजनाकीर्ण देशमें ही इसका बनाना श्रेय है। धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग और गिरिदुर्ग यही छः प्रकारके दुर्ग हैं। इनमेंसे किसी एक दुर्गका निर्माण कर उसमें राजा वास करें। इन छः प्रकारके दुर्गोंमें शैलदुर्ग सर्वोत्तम, अभेद्य और शत्रुभेद है। वहां दूसरोंके लिये दुर्गम, उत्कृष्ट, अनुयन्त्रायुधसम्पन्न और हट्टादि तथा देवालयादि विशिष्ट पुर स्थापन करें।

(अग्निपु०)

फिर मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि राजा जब प्रभूत धन सम्पत्ति, हस्ती, अश्व, प्रभृति बलसम्पन्न हो जाय, तो दुर्ग बनावे और उसमें आप वास करें। दुर्ग निर्माणके लिये ऐसा स्थान प्रशस्त है—जहां अनेक वैश्य और शूद्र, अल्प ब्राह्मण और बहुसंख्यक कर्मकार रहते हों, जहां अनुरक्त मनुष्य वास करते हों, जहां प्रजा करके भारसे पीड़ित न हो और राजा सुखभोगी हो, जहां भूमि अदेवमातृक हो, वृक्षादि फलके बोझसे झुक गये हों और परचक्रका अगम्य हों; जहां शत्रु आदि हठात् प्रवेश न कर सकते हों और जहां सरीसृप, व्याघ्र और

तस्कर आदिको कुछ भी शिकायत न हो, वही स्थान दुर्गके लिये प्रशस्त है। उक्त दुर्गोंमेंसे कोई दुर्ग क्यों न हो, उसके चारों तरफ खाई अवश्य रहनी चाहिये। पीछे प्राकार और अट्टालकसंयुक्त करके उसके चारों ओर सैकड़ों शतघ्नो-यन्त्रोंका रहना परमावश्यक है। उसमें मनोहर सकपाट गोपुर बना कर उसे पताकादि द्वारा सुशोभित कर दें और इसके मध्य भी चार लम्बी चौड़ी वीथिका बनावें। पहली वीथिकाके अग्रभागमें सुदृढ़भावसे देवताका घर, दूसरी वीथिकाके आगे राजवेश्म, तीसरीके आगे धर्माधिकरण अर्थात् विचारालय और चौथी वीथिकाके अग्रभागमें गोपुर बनाना चाहिये। पुरका चोकोन आयताकार वा वृत्ताकार होना अच्छा है। इसे त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकार वा वज्राकार भी बना सकते हैं। नदीके किनारे यदि पुरादि बसाना चाहें तो उसे चन्द्राकारका ही बनाना चाहिये, इसके सिवा और किसी प्रकारका शुभदायक नहीं है। राजगृहके दक्षिण ओर कोशागार और उसके भी दक्षिणमें गजस्थान बनावें। अग्निकोणमें अस्त्रागार, महानस, अन्यान्य कर्मशालाएँ, पुरोहितका घर, राजगृहके बाईं ओर मन्त्री, वेदविद् ब्राह्मण, चिकित्सक, कोष्ठागार, गो और अश्वस्थान रहे। अश्वशालाके उत्तर वा दक्षिणकी ओर श्रेणी प्रशस्त है, दूसरी ओर नहीं। अश्वशालामें सारी रात दीप जलता रहे और उसमें कुक्कुर, वानर, मर्कट और सवत्सा धेनु भी रख दे। गो, गज और अश्वशालामें सूर्यके डूबने पर उनका पुरोष फेंके। राजा इसी तरह दुर्गमें यथाक्रमसे योद्धा, शिल्पी, मन्त्री, गोवैद्य, अश्ववैद्य, गजवैद्य आदिका अवस्थान निर्दिष्ट कर दें। दुर्गके मध्य तरह तरहके कष्ट होनेकी सम्भावना रहती है, इसीसे उसके प्रतीकारके लिये वैद्योंका रहना परमावश्यक है। दुर्गमें नाना प्रकारके प्रहरणयुक्त सहस्रघाती अर्थात् जिसने सहस्रोंको युद्धमें मार डाला है, वैसे मनुष्यके ऊपर दुर्गका कुल दारमदार रहे। दुर्ग-द्वार सुगुप्त रहना चाहिये और इसका कार्यकलाप जिससे कोई न जान सके, इसका पूरा बन्दोबस्त रहे। दुर्गमें सब प्रकारके आयुध, धनुष, तोमर, खड्ग, कवच, वसा, लाठी, गेंद, लोहेकी बर्छी, गड़ांस, प्रस्तर, मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, शूल, शक्ति, फरसा, चक्र, वर्म, कुदाल, रज्जु, बेंत, पीढ़ा, भूसी, हंसिया आदि सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रादिका पूरा इन्तजाम रहे। सब प्रकारके बाजे, सब प्रकारकी औषध, प्रचुर यवस, इन्धन, गुड़, तैल, वसा, गोरस, मज्जा, स्नायु, अस्थि, गोचर्म, पटह, धान, जौ, गेहूं, रत्न, सब प्रकारके वस्त्र, उरद, मूंग, कलाय, चना, तिल, प्रभृति सब प्रकारके शस्य, पांशु, गोमय, शण, सजरस, भूर्ज, जतु, लाक्षा, टङ्कण, आशीविष द्वारा कुम्भ, व्याल, सिंहादि मृगपक्षी इन्हें दुर्गके मध्य यथास्थान पर रख दिया करें। इनके सिवा वहां नाना प्रकारके फल भी एकत्रित रहें।

भीत, प्रमत्त, कुपित, विमानित, कुभृत्य और पापाशय लोगोंको दुर्गमें कदापि रहने न दें। (मत्स्यपु०२१७ अ०)

दुर्ग राजाओंका प्रधान सहाय है। दुर्गके नहीं रहनेसे राज्यकी कुछ भी रक्षा नहीं हो सकती। राज्यरक्षा करनेमें दुर्गको उत्तमरूपसे सुदृढ़ रखना नितान्त प्रयोजन है।

दुर्गका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—राजाओंके कैसे पुरमें रहना उचित है, युधिष्ठिरके इस प्रश्न पर भीष्मदेवने ऐसा कहा था, दुर्ग ६ प्रकारका है—धनुर्दुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग जलदुर्ग और वनदुर्ग। यही छः प्रकारके दुर्ग बना कर उनमें समृद्धिसम्पन्न पुरी बसावें। जो पुरी दुर्गके मध्य अवस्थित तथा दुर्गके प्राकार, सुदृढ़ खाई, हाथी, घोड़े और रथसे समाकीर्ण रहेगी; जहां अनेक विद्वान्, शिल्पी और सुनिपुण धार्मिकोंका वास होगा, जहां असंख्य तेजस्वी मनुष्य एवं हाथी, घोड़े, चत्वर और बाजार रहेंगे, वहां किसी बातका डर नहीं है। दुर्गके मध्य कोष, सैन्य और मित्र परिवर्द्धन तथा विचारालय संस्थापन करके अन्यान्य नगर और ग्रामोंसे दोषको बाहर निकाल देनेकी हमेशा कोशिश रहे। दुर्गमें अस्त्रसंख्या वृद्धि, धान्यादि संग्रह और यन्त्र तथा अमल हमेशा मौजूद रहना चाहिए। काष्ठ, लोह, तुष, अङ्गार, शृङ्ग, अस्थि, वंश, मज्जा, तैल, मधुक्रम, औषध, शण, सर्जरस, शर, चर्म, स्नायु, बेत, मुञ्ज और बल्वज-संग्रह, पुष्करिणी तथा कूप आदि नाना प्रकारके जलाशय, वट, पीपल आदि वृक्षोंको यत्नपूर्वक

रखना चाहिये। आचार्य, ऋत्विक्, पुरोहित, स्थपति, साम्वत्सरिक, चिकित्सक, प्रज्ञावान् और जितेन्द्रिय आदि साधु-समूहको बहुत आदरके साथ इस दुर्गस्थ पुरीमें रख कर न्यायके अनुसार दण्ड देना चाहिये। जो राजा दुर्गका निर्माण किये विना राज्य-रक्षा करना चाहते हैं वे बहुत जल्द राज्यच्युत और लोगोंके सामने उपहासास्पद होते हैं। दुर्ग ही राजाओंका प्रधान सहाय है। इसे से दुर्ग निर्माण कर सुदृढ़भावसे उस की रक्षा करते हुए राज्य पालन करें। (भारत शान्तिपर्व राजधर्म देखो।)

२ असुरभेद, एक असुरका नाम जिसे मारनेके कारण देवीका नाम दुर्गा पड़ा। दुर्गा देखो।

दुर्ग—दुर्ग देखो।

दुर्गकर्मन् (सं० क्ली०) दुर्गार्थं दुर्गे वा कर्म कार्यं। दुर्गसाधन कर्मभेद, दुर्ग बनानेका काम। दुर्ग देखो।

दुर्गकारक (सं० पु०) दुर्गं करोति वेष्टनेन कृ-ण्वुल्। १ वृक्षभेद, एक पेड़का नाम। (त्रि०) २ दुर्गकर्त्ता, दुर्ग बनानेवाला।

दुर्गन्धा (सं० स्त्री०) जैन-दर्शनमें एक प्रकारका मोहनीय कर्म। इसके उदयसे मलिन पदार्थोंसे ग्लानि उत्पन्न होती है।

दुर्गटीका (सं० स्त्री०) दुर्गसिंहकृत कालाप-व्याकरण-की एक टीका।

दुर्गत (सं० त्रि०) दुर्गच्छति दुर्-गम कर्त्तरि क्त। १ दरिद्र, गरीब। २ दुर्दशाग्रस्त, जिसकी बुरी गति हुई हो। (पु०) ३ सदुक्तिकर्णामृतधृत एक संस्कृत कवि।

दुर्गतता (सं० स्त्री०) दुर्गतस्य भावः दुर्गत-तल् ततो टाप्। दरिद्रता, गरीबी, कंगाली।

दुर्गतरणी (सं० स्त्री०) दुर्गं तीर्यतेऽनया तृ करणे ल्युट् ततो ङीप्। १ देवी भेद, एक देवीका नाम। (त्रि०) २ दुर्गतरणसाधन, जिसके द्वारा दुर्ग उत्तीर्ण हो सकें।

दुर्गति (सं० स्त्री०) दुष्टा गतिः। १ नरक। २ दुर-वस्था, बुरी गति, बुरा हाल। ३ क्लेशकर पथ, कठिन रास्ता। (त्रि०) ४ दारिद्र्ययुक्त, गरीब।

दुर्गतिनाशिनी (सं० स्त्री०) दुर्गतिं नाशयति नाशि-णिनि-ङीप्। दुर्गा देवी। इनका नाम लेनेसे सब प्रकारकी दुर्गति जाती रहती है, इसीसे इनका नाम दुर्गतिनाशिनी पड़ा। विपदके समय जो भक्तिपूर्वक दुर्गाका नाम जपते हैं उनके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं।

दुर्गदेव—षष्ठोसम्वत्सरी नामक संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। इनका बनाया हुआ सम्वत्सर नामक एक दूसरा ज्योतिष पाया जाता है।

दुर्गन्ध (सं० पु०) दुष्टः गन्धः। १ दुष्टगन्ध, बुरीगन्ध, बदबू। जिसे दुर्गन्धका सुगन्ध और सुगन्धका दुर्गन्ध ज्ञान होता है अथवा जिसे किसी प्रकारकी गन्धका ज्ञान नहीं है, उसे क्षीणायु समझना चाहिये। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। ३ पलाण्डु, प्याज। दुर्दुष्टो गन्धो यत्र। (त्रि०) ४ दुष्ट गन्धयुक्त, बुरी महकका। (क्ली०) दुर्दुष्टो गन्धो यस्य। ५ सौवर्चल लवण, काला नमक। हिन्दी-में इस शब्दको स्त्रीलिङ्ग माना है।

दुर्गन्धता (सं० स्त्री०) दुर्गन्धका भाव।

दुर्गन्धिन् (सं० त्रि०) दुर्गन्धोऽस्त्यस्येति दुर्गन्ध इनि। दुर्गन्धयुक्त, जिसकी गन्ध बुरी हो।

दुर्गपति (सं० पु०) दुर्गस्य पतिः। १ दुर्गरक्षक, वह जिसके ऊपर दुर्गका रक्षा-भार सौंपा गया हो। २ दुर्ग-स्वामी, किलेका मालिक।

दुर्गपाल (सं० पु०) दुर्गे दुर्गं वा पालयति पालि अण्। १ कष्टपालक, वह जो विपदसे बचाता हो। २ दुर्ग-रक्षक, किलेदार।

दुर्गपुष्पी (सं० स्त्री०) दुर्गं पुष्पं यस्याः जातित्वात् ङीष्। वृक्षविशेष, एक वृक्षका नाम। इसका संस्कृत पर्याय— केशपुष्टा, मानसी, वालाक्षी और केशधारिणी है।

दुर्गम (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन गम्यते इति दुर्-गम-खल्। १ जहां जाना कठिन हो। २ दुर्ज्ञेय, जिसे जानना कठिन हो। ३ दुस्तर, कठिन, विकट। ४ दुर्ग, किला। ५ विष्णु। ६ असुरविशेष, एक असुरका नाम। (क्ली०) ७ वन, जंगल। ८ सङ्कटस्थल, कठिन स्थिति।

दुर्गमणीय (सं० त्रि०) दुर्-गम अनीयर्। दुर्गम्य, जहां जाना कठिन हो।

दुर्गमता (सं० स्त्री०) दुर्गम होनेका भाव।

दुर्गरक्षक (सं० पु०) गढ़पति, किलेदार।

दुर्गय—वासुदेवके पुत्र, द्वादश श्लोकीके टीकाकार।

दुर्गल (सं० पु०) दुःस्थितो गलो यत्र लोकानां। देशभेद, एक देशका नाम। सोऽभिजनोऽस्य, तस्य राजा वा, अण्। दौर्गल, दुर्गल देशके राजा वा अधिवासी।

दुर्गलङ्घन (सं० पु०) दुर्गं दुर्गमस्थानं मरुभूम्यादि लंघ्यतेऽनेन लङ्घि करणे ल्युट्। १ उष्ट्र, ऊंट।

दुर्गवाल—यह गौड़ ब्राह्मणोंका एक कुल नाम है जो आजकल सासन भी कहाता है। गौड़ोंके १४४४ ग्रामोंमेंसे यह भी एक ग्रामका नाम है और वहांके रहनेवाले गौड़ोंके एक भेद दुर्गवाल हुए।

दुर्गसंस्कार (सं० पु०) दुर्गस्य संस्कारः। दुर्गका संस्कार, दुर्गको मरम्मत करना। दुर्गको मरम्मत नहीं रहनेसे राजाको पद पद पर पराजयको सम्भावना रहती है। इसी कारण सदैव दुर्ग संस्कार करना विशेष आवश्यक है।

दुर्गसञ्चर (सं० पु०) दुर्गं सञ्चर्यते अनेन सम्-चर करणे अप्। संक्रम, दुर्गम स्थानों तक पहुंचानेका साधन, सीढ़ी, पुल, बेड़ा आदि।

दुर्गसञ्चार (सं० पु०) दुर्गनद्यादि दुर्गमस्थानं सञ्चर्यते गम्यतेऽनेन सम चर-घञ्। दुर्गसचर देखो।

दुर्गसिंह—कातन्त्रवृत्तिके रचयिता। मल्लिनाथ, विट्ठल, भट्टोजी, दुर्गादास, वोपदेव, हेमाद्रि आदिने इनका मत उद्धृत किया है। इन्होंने कलापव्याकरण और परिभाषावृत्तिकी रचना को है। २ विख्यात निरुक्तभाष्यकार। ये जम्बूमार्ग निवासी नामसे प्रसिद्ध थे। ३ एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। नृसिंह दैवज्ञने इनका मत उद्धृत किया है।

दुर्गसिंह कवि—कातन्त्र-व्याकरणकी वृत्तिके रचयिता एक जैन कवि

दुर्गसेन—वल्लभदेवके सुभाषितावली-धृत एक प्राचीन संस्कृत कवि।

दुर्गा (सं० स्त्री०) दुर्-गम्-ड (सुदुरोरधिकरणे। (पा ३।२।४८ वार्त्तिक) ततष्टाप्। १ आद्याशक्ति। इनका नामान्तर—उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरा, शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला, अपर्णा, पार्वती, मृडानी, चण्डिका, अम्बिका, शारदा, चण्डी, चण्डवती, चण्डा, चण्डनायिका, गिरिजा, मङ्गला, नारायणी, महामाया, वैष्णवी, महेश्वरी, महादेवी, हिण्डी, ईश्वरी, कोट्टवी, षष्ठी, माधवी, नगनन्दिनी, जयन्ती, भार्गवी, रम्भा, सिंहरथा, सती, भ्रामरी, दक्षकन्या, महिषमर्दिनी, हेरम्बजननी, सावित्री, कृष्णपिङ्गला, वृषाकपायी, लम्बा, हिमशैलजा, कार्त्तिकेयप्रसू, आद्या, नित्या, विद्या, शुभङ्करी, सात्विकी, राजसी, तामसी, भीमा, नन्दनन्दिनी, महामाया, शूलधारा, सुनन्दा, शुम्भघातिनी, ह्री, पर्वतराजतनया, हिमालयसुता, महेश्वरवनिता, सत्या, भगवती, ईशानी, सनातनी, महाकाली, शिवानी, हरवल्लभा, उग्रचण्डा, चामुण्डा, विधात्री, आनन्दा, महामाता, महामुद्रा, माकरी, भौमी, कल्याणी, कृष्णा, मानदात्री, मदालसा, मानिनी, चार्वङ्गी, वाणी, ईशा, वलेशी, भ्रमरी, भूष्या, फाल्गुनी, यती, ब्रह्ममयी, भाविनी, देवी, अचिन्ता, त्रिनेत्रा, त्रिशूला, चर्चिका, तीव्रा, नन्दिनी, नन्दा, धरित्री, मातृका, चिदानन्दस्वरूपिणी, मनस्विनी, महादेवी, निद्रारूपा, भवानिका, तारा, नीलसरस्वती, कालिका, उग्रतारा, कामेश्वरी, सुन्दरी, भैरवी, राजराजेश्वरी, भुवनेशी, त्वरिता, महालक्ष्मी, राजीवलोचनी, धनदा, वागीश्वरी, त्रिपुरा, ज्वालामुखी, वगलामुखी, सिद्धविद्या, अन्नपूर्णा, विशालाक्षी, सुभगा, सगुणा, निर्गुणा, धवला, गीति, गीतवाद्यप्रिया, अट्टालवासिनी, अट्टाट्टहासिनी, घोरा, प्रेमा, वटेश्वरी, कीर्त्तिदा, बुद्धिदा, अवीरा, पण्डितालयवासिनी, मण्डिता, संवत्सरा, कृष्णारूपा, वलिप्रिया, तुमुला, कामिनी, कामरूपा, पुण्यदा, विष्णुचक्रधरा, पञ्चमा, वृन्दावनस्वरूपिणी, अयोध्यारूपिणी, मायावती, जीमूतवसना, जगन्नाथस्वरूपिणी, कृत्तिवसना, त्रियामा, यमलार्ज्जुनी, यामिनी, यशोदा, यादवी, जगती, कृष्णजाया, सत्यभामा, सुभद्रिका, लक्ष्मणा, दिगम्बरी, पृथुका, तीक्ष्णा, आचारा, अक्रूरा, जाह्नवी, गण्डकी, ध्येया, जृम्भणी, मोहनी, विकारा, अक्षरवासिनी, अंशका, पत्रिका, पवित्रका, तुलसी, अतुला, जानकी, वन्ध्या, कामना, नारसिंही, गिरीशा, साध्वी, कल्याणी, कमला, कान्ता, शान्ता, कुला, वेदमाता, कर्मदा, सन्ध्या, त्रिपुरसुन्दरी, रासेशी, दक्षयज्ञविनाशिनी, अनन्ता, धर्मेश्वरी, चक्रेश्वरी, खञ्जना,

विदग्धा, कुब्जिका, चित्रा, सुलेखा, चतुर्भुजा, राका, प्रज्ञा, ऋद्धिदा, तापिनी, तपा, सुमन्त्रा, दूती इत्यादि। *

नामनिरुक्ति—देवीके दुर्गादि नाम होनेका कारण देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"स्मरणाद्भये दुर्गे तारिता रिपुसङ्कटे।
देवाः शक्रादयो यस्मात्तेन दुर्गा प्रकीर्त्तिता॥" (३१ अ०)

स्मरणमात्रसे ही इन्होंने इन्द्रादि देवोंको दुर्गम शत्रुसङ्कटसे उद्धार किया था, इसीसे इनका नाम दुर्गा पड़ा।

मार्कण्डेयपुराणोक्त देवीमहात्म्यके मतसे—

"तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्।
दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति॥"

मैं दुर्ग नामक महासुरको विनाश करूंगी, इसी कारण मैं दुर्गादेवी नामसे विख्यात होऊंगी।

काशीखण्ड (७२ अ०)-में लिखा है—

"अद्य प्रभृति मे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति।
दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादतिदुर्गमात्॥"

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणीय प्रकृतिखण्डके मतसे—

"दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे च कर्मणि।
शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि॥७
महाभयेऽति रोगे चाप्यशब्दो हन्तृवाचकः।
एतान् हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्त्तिता॥" ८

दुर्ग नामक दैत्य महाविघ्न, संसारबन्धन, कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय, अतिभय और हन्ताको भी जो देवी हनन करती हैं, वेही दुर्गा नामसे ख्यात है। (प्रकृतिखण्ड ५७ अ०)

अपरापर नाम निरुक्तिके विषयमें देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"सर्वाणि हृदयस्थानि मंगलानि शुभानि च।
ददाति इप्सितांल्लोके तेन सा सर्वमंगला॥"

देवी सबके हृदयमें रह कर मङ्गल, शुभ और अभिलषित फल देती हैं, इसीसे जनसाधारणमें इनका नाम सर्वमङ्गला पड़ा है।

"शोभनानि च श्रेष्ठानि या देवी ददते हरे।
भक्तानामार्त्तिहरणी मंगल्या तेन सा स्मृता॥"

ये भक्तोंको शोभन अथवा श्रेष्ठ फल देती हैं और उनका दुःख निवारण करती हैं, इसीसे इनका नाम मङ्गल्या हुआ है।

"शिवा मुक्तिः समाख्याता योगिनां मोक्षगामिनी।
शिवाय यो जपेद्देवीं शिवा लोके ततः स्मृता॥"

शिव शब्दका अर्थ मुक्ति है जो देवी योगियोंको मोक्षदायिका हैं। शिवफलके लिये देवीकी आराधना की जाती है इसीसे इनका नाम शिवा पड़ा है।

"सोमसूर्यानिलास्त्रीणि यस्या नेत्राणि भार्गव।
तेन सा त्र्यम्बका देवी मुनिभिः परिकीर्त्तिता॥"

चन्द्र, सूर्य और वायु ये देवीके त्रिनेत्रस्वरूप हैं, इसीसे मुनियोंने इनका नाम त्र्यम्बका रखा है।

"योगाग्निना तु या दग्धा पुनर्जाता हिमालये।
पूर्णसूर्येन्दुवर्णाभा अतो गौरीति सा स्मृता॥"

योगानलसे जिन्होंने अपना शरीर दग्ध करके हिमालय पर पूर्ण सूर्येन्दु सदृश रूप धारण किया था, वेही गौरी हैं।

"कं ब्रह्मा कं शिवः प्रोक्तमश्मसारश्च कं मतम्।
धारणाद्वसनाद्वापि कात्यायनी मता बुधैः॥"

क शब्दसे ब्रह्मा, शिव और अश्मसारका बोध होता है। ब्रह्मा और शिव उन्हें धारण किये हुए हैं और अश्मसार उनके वस्त्र हैं इसीसे उनका नाम कात्यायनी पड़ा है।*

देवीका स्वरूप।—ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे—

सृष्टि, स्थिति और लयकारिणी आद्या नारायणी शक्ति है। जिस शक्ति द्वारा मैं ब्रह्मादि देवताकी सृष्टि करती हूं, जिससे विश्व जययुक्त होता है और सृष्टि होती है, जिस शक्तिके बिना संसार नहीं रह सकता, वही शक्ति मैंने शिवको दी है। दया, निद्रा, क्षुधा, तृप्ति, तृष्णा, श्रद्धा, क्षमा, धृति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति और लज्जाकी अधिदेवी ही शक्ति हैं। वे ही वैकुण्ठमें, गोलोक धाममें और मर्त्यमें महासाध्वी राधिका सती हैं, वे ही क्षीरोदसमुद्रमें लक्ष्मी हैं, वे ही दक्षकन्या सती है, वे ही दैत्यदुर्गतिनाशिनी मेनकाकी कन्या दुर्गा हैं, वे ही वाणी,

* एक हजार नामोंमेंसे ये कई एक नाम लिखे गये है।

* देवीकी भिन्न भिन्न नामनिरुक्तिके विषयमें देवीपुराण ३७ अः और ब्रह्मवैवर्तमें प्रकृति खंड ५७ अ० द्रष्टव्य है।

विप्रोंकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री हैं, वे ही अग्निकी दाहिका शक्ति, सूर्यकी प्रभाशक्ति, पूर्ण चन्द्रकी शोभा शक्ति, जलकी शीतलाशक्ति, धराकी धारणा और शस्य-प्रसूति शक्ति हैं, वे ही ब्राह्मणोंकी ब्राह्मण्यशक्ति, देवताओंकी देवशक्ति, वे ही तपस्वियोंकी तपस्या, गृहस्थोंकी गृह-देवी, मुक्तोंकी मुक्ति और सांसारिकोंकी मायाशक्ति हैं, वे ही भक्तोंकी भक्तिशक्ति और हम लोगोंके प्रति सर्वदा भक्तिमती हैं, वे ही राजाओंकी राज्यलक्ष्मी, वणिकोंकी लभ्यरूपिणी हैं, संसारसागरको पार करनेमें वे ही दुस्तर-तारिणी तरी हैं, सज्जनोंकी वे ही बुद्धि और मेधाशक्ति-स्वरूपा हैं, वे ही श्रुतिशास्त्रकी व्याख्याशक्ति, दाताकी दानशक्ति, क्षत्रियादिकी विप्रभक्ति और सतीकी पतिभक्ति है। इस तरहकी जो शक्ति है उन्हें मैं महादेवको दान दिया है।

देवीका परिचय।–सबसे पहले वाजसनेयसंहिता (शुक्ल यजुर्वेद ३।५७)में अम्बिकाका उल्लेख पाया जाता है—

"एष ते रुद्र भागः सह स्वसाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।"

हे रुद्र! आप अपनी भगिनी अम्बिकाके साथ हम लोगोंके दिए हुए इस पुरोडाशको कृपया ग्रहण कीजिए।

( तैत्तिरीय-ब्राह्मण १।६।१०।४ )

यहां भाष्यकार महीधरने इस प्रकार लिखा है—

'अम्बिकाया रुद्रभगिनीत्वं श्रुत्योक्तम् (२।६।२।९), "अम्बिका ह वै नामास्य स्वसा तयास्यैष सह भाग इति योऽयं रुद्राख्यः क्रूरो देवस्तस्य विरोधिनं हंतुमिच्छा भवति तदान्यथा भगिन्या क्रूरदेवतया साधनभूतया तं हिनस्ति। सा चाम्बिका शरद्रूपं प्राप्य ज्वरादिकमुत्पाद्य तं विरोधिनं हन्ति। रुद्राम्बिकयो-रुभयोरनेन हविषा शान्तं भवति। तथा च तित्तिरिः। एष ते रुद्र भागः सह स्वसाम्बिकयेत्याह शरद्वा अस्याम्बिका सा भिया एषा हिनस्ति यं हिनस्ति तयैवैनं सह शामयतीति॥"

का० ५।१०।१३

अम्बिकाके रुद्रभगिनीत्व श्रुतिमें ही कहा गया है कि अम्बिका उन्हींकी भगिनीका नाम है,-उनके साथ उनका भी यज्ञभाग है। यह रुद्र नामक क्रूरदेवता अपने विरोधियोंको मारनेकी इच्छा करते हैं। उसी तरह साधनभूता क्रूरदेवी अपनी भगिनीके साथ विरोधी-को मारती हैं। वही अंबिका शरद्रूपग्रहणपूर्वक ज्वरादि उत्पादन करके अपने विरोधोंको विनाश करती हैं। रुद्र और अंबिकाका उभयत्व हविद्वारा शान्त हो। तित्तिरि श्रुतिमें लिखा है कि, 'हे रुद्र। यही आपका भाग है, भगिनी अम्बिकाके साथ ग्रहण कीजिये। यही अंबिका शरत् रूप धारण कर इनका नाश करती और तुम्हारे सहित पुनः शान्त करती है।'

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है कि देवी अंबिका पहले रुद्रकी भगिनी रूपमें गिनी जाती थीं। पीछे तलवकार-उपनिषद्में उमा हैमवतीकी उत्पत्तिके विषयमें इस तरह लिखा है—

एक समय ब्रह्माने देवताओंके लिये युद्धमें जय लाभ की, किन्तु यह जयलाभ उन लोगोंके सामान्य बलसे ही संघटित हुआ है, ऐसा सभोंने अनुमान किया। ब्रह्मा उन लोगोंका यह भ्रम दूर करनेके लिये प्रगट हो गये; किन्तु देवताओंने उन्हें न पहचाना। उन्होंने पहले अग्निको पीछे वायुको उनका स्वरूप मालूम करनेके लिये भेजा। जब वे ब्रह्माके पास पहुँचे, तब ब्रह्माने उनका परिचय पूछा। अग्निने कहा, 'मैं सब चीज जला सकती हूं।' वायुने कहा, 'मैं सब चीज उड़ा सकती हूँ।' तब ब्रह्माने उन्हें एक घास दी। दोनों देवता उस घासको कुछ कर न सके। बाद देवताओंने इन्द्रसे कहा, 'मघवन्! चल कर देखिये कि यह भक्तिका कौनसा पदार्थ है।' इन्द्र उसे देखनेके लिये ज्यों ही अग्रसर हुए, त्यों ही वे ( ब्रह्म ) अदृश्य हो गये। वह ब्रह्म बहुत शोभायमाना उमा हैमवती स्त्रीकी मूर्त्ति धारण कर ऊपर आकाशकी ओर चल पड़े। उनको जाते देख इन्द्रने उनसे पूछा, 'आप कौन हैं?' इस प्रकार उन्होंने (स्त्रीरूपाने) कहा, 'यही ब्रह्म है। इसी ब्रह्मको विजय-के प्रभावसे ही तुम लोगोंने महत्त्व प्राप्त किया है।' तभीसे उन्होंने ब्रह्मको पहचाना।

केनोपनिषद्के उक्त विवरणके अनुसार यह जाना जाता है कि उमा हैमवती ही ब्रह्मविद्या हैं। भाष्यकारने यहां उमा हैमवती शब्दकी इस प्रकार व्याख्या की है—

'हैमवतीं हेमकृताभरणवतीमिव बहुशोभमानामित्यर्थः। अथवा उमैव हिमवतो दुहिता हैमवती, नित्यमेव सर्वज्ञेन ईश्वरेण सह वर्त्तते इति।'

तैत्तिरीय आरण्यकके भाष्यमें सायणाचार्यने भी इस प्रकार लिखा है, "हिमवत्पुत्र्या गौर्या ब्रह्मविद्याभिमानिरूपत्वाद् गौरीवाचक उमाशब्दो ब्रह्मविद्यामुपलक्षयति। अतएव तलवकारोपनिषदि ब्रह्मविद्यामूर्त्तिप्रस्तावे ब्रह्मविद्यामूर्त्तिः पठ्यते 'बहुशोभमानामुमा हैमवतीं तां होवाच' इति तद्विषयः तया उमया सह वर्त्तमानत्वात् सोमः।"

हिमवान्की कन्या गौरीका ब्रह्मविद्याभिमानी रूप रहनेसे गौरीवाचक उमाशब्द द्वारा ब्रह्मविद्या ही उपलक्ष होता है। इसी कारण तलवकार उपनिषद्में ब्रह्मविद्याकी मूर्त्ति वर्णित हुई है। 'उस बहु शोभमाना उमा हैमवतीने उन्हें कहा' इस तरहसे उमाके साथ वर्त्तमान हेतु सोम नाम हुआ है।

पुनः उक्त आरण्यकके ३८ अनुवाकके सायण-भाष्यमें इस प्रकार लिखा है—

"उमा ब्रह्मविद्या तया सह वर्त्तमान सोम परमात्मन्"

हे परमात्मन् सोम! उमा ब्रह्मविद्या है और तुम्हारे साथ वर्त्तमान हैं। उस आरण्यकके १८ अनुवाकमें 'अम्बिकापतये।' शब्द है, यहां भी भाष्यमें 'अम्बिका जगन्माता पार्वती तस्या भर्त्रे' ऐसी व्याख्या है।

कैवल्योपनिषद्में इस तरह वर्णित है—

"उमा सहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तं।"

तैत्तिरीय आरण्यकके नवम अनुवाकमें दुर्गाके विषयमें स्पष्ट आभास पाया जाता है।

"कात्यायनाय विद्महे कन्याकुमारिं धीमहि तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्।"

सायणाचार्यके मतसे यही वेदोक्त दुर्गा गायत्री है। उन्होंने लिखा है, 'पश्चाद्दुर्गा गायत्री। हेम प्रख्यामिन्दुखण्डाङ्कमौलिमित्यागमप्रसिद्ध मूर्त्तिधरां दुर्गां प्रार्थयते कात्यायनाय इति। कतिं वस्ते इति कात्यो रुद्रः।...स एव यानमधिष्ठानं यस्या सा कात्यायनी अथवा कतस्य ऋषिविशेषस्य अपत्यं कात्यः।...कुत्सितमनिष्ठं मारयति इति कुमारी कन्या दीप्यमाना चासौ कुमारी च कन्या कुमारी। दुर्गिः दुर्गा। लिङ्गादि व्यत्ययः सर्वत्र छान्दसो द्रष्टव्यः।'

पीछे दुर्गा गायत्री कहता हूं। सुवर्ण सदृश मस्तकमें अर्द्धचन्द्रभूषिता इत्यादि आगमप्रसिद्ध मूर्त्ति धारिणी दुर्गाकी प्रार्थना करता हूं। कति आच्छादन करते हैं, इसीसे इनका दूसरा नाम कात्य है। वे जिसके अधिष्ठान हैं, वे ही कात्यायनी हैं। अथवा कत नामक ऋषि विशेषका अपत्य होनेके कारण कात्य नाम हुआ है। कुत्सित अनिष्ट मारते हैं अर्थात् विनाश करते हैं, इसीसे उनका नाम कुमारी है; कन्या अर्थात् दीप्यमाना दोनोंके मिल जानेसे उनका नाम कन्याकुमारी हुआ है। दुर्गि ही दुर्गा है, ऐसा लिङ्गादिव्यत्यय वेदमें सब जगह देखा जाता है।

नारायणोपनिषद्में दुर्गा गायत्री इस तरह है—

कात्यायनायै विद्महे कन्याकुमारिं धीमहि,
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥"

ऋग्वेद-परिशिष्टके रात्रि-परिशिष्टमें दुर्गाके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

"स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बहृचप्रियाम्।
सहस्रसम्मितां दुर्गां जातवेदसे सुनवाम सोमम्॥५
शान्त्यर्थं द्विजातिनामृषिभिः सोमपाश्रिताः।
ऋग्वेदे त्वम् समुत्पन्नाऽराति यतो निदधाति वेदः॥६
ये त्वाम् देवि प्रपद्यन्ते ब्राह्मणाः हव्यवाहनीम्।
अविद्या बहुविद्याः वा स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा॥७
अग्निवर्णां शुभां सौम्या कीर्त्तयिष्यन्ति ये द्विजाः।
तान् तारयति दुर्गाणि नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः॥८
दुर्गेषु विषमे घोरे संग्रामे रिपुसंकटे।
अग्निचोरनिपातेषु दुष्टग्रहनिवारणे॥
दुर्गेषु विषमेषु त्वां संग्रामेषु वनेषु च।
मोहयित्वा प्रपद्यन्ते तेषां मे अभयं कुरु॥
केशिणीं सर्वभूताना पंचमीति च नाम च।
स मां समा निशाः देवी सर्वतः परिरक्षतु॥ ओम् नमः।
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः
सुतरसि तरसे नमः॥

दुर्गा दुर्गेषु स्थानेषु शं नो देविभिष्टये।
यः इमं दुर्गास्तवं पुण्य रात्रौ रात्रौ सदापठेत्॥

देव्युपनिषद्में महादेवीका ऐसा परिचय है—

सब देवताओंने उनके चारों ओर बैठ कर उनसे पूछा था, 'आप क्या महादेवि है?' इस पर उन्होंने जवाब दिया, "मैं ब्रह्मस्वरूपिणी प्रकृतिपुरुषात्मक जगत् हूं, मुझसे ही

जगत् उत्पन्न होता है। मैं शून्य और अशून्य हूं, मैं आनन्द और अनानन्द हूं, मैं विज्ञान और अविज्ञान हूं, मैं ब्रह्म और अब्रह्म हूं, आथर्वश्रुतिमें यही निर्दिष्ट है। मैं ही पञ्चभूत और अपञ्चभूत हूँ, मैं ही अखिल जगत् हूँ, मैं ही वेद और अवेद हूं, मैं ही रुद्रगण और वायुगण हूं, मैं आदित्य और विश्वदेव हूँ, मैं इन्द्र और अग्नि हूं, मैं ही दोनों अश्विनी कुमार हूं, मैं ही सोम, त्वष्टा, पूषा और भग हूं, मैं ही विष्णु, ब्रह्मा और प्रजापतिको धारण करती हूं, जो यज्ञ करते हैं, उन्हीं यजमानोंको मैं प्रचुर धन दान करती हूँ, मैं सब राज्योंमें वास करती हूं, जगत्के पिताको मैं ही पहले उत्पन्न करती हूँ, समुद्र-जलके मध्य मेरा जन्म है, मुझे जो पहचानता है वह देवीपदको प्राप्त होता है'। बाद देवताओंने कहा, 'ये ही आत्मशक्ति, विश्वविमोहिनी, पाशाङ्कुश और धनुर्वाण धारिणी हैं, ये ही श्रीमहाविद्या हैं। जो इन्हें मानते या पहचानते हैं वे शोकसे निस्तार पाते हैं।

वह्वृचोपनिषद्‌में ऐसा परिचय पाया जाता है—

देवी ही सबसे आगे एक मात्र थीं। उन्होंने ही ब्रह्माण्डकी सृष्टि की और वे कामकला और शृङ्गारकला नामसे विख्यात हुई हैं। उन्हींसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रगण, गन्धर्वगण, अप्सरागण, किन्नरगण और सब स्थानोंको वादित्रवादिगण जन्म ग्रहण करते हैं। उन्होंने ही सब भोग्य उत्पादन किये हैं, वास्तविक शक्तिसे ही सब उत्पन्न हुए हैं। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज तथा स्थावर, जंगम और मनुष्यादिने इन्हींसे ही जन्म प्राप्त किये हैं। यही देवी पराशक्ति, शाम्भवी, विद्या, कादिविद्या, हादिविद्या, सादिविद्या, रहस्य और ओङ्कारादि वाक्‌प्रतिष्ठा हैं। वे ही तीनों पुर और तीनों शरीरमें व्यापित हो कर देश काल और वस्तुके आसङ्गके लिये भीतर और बाहरमें प्रकाशित हैं। वे ही महात्रिपुरसुन्दरी, प्रत्यक्‌चैतन्य हैं, वे ही आत्मा हैं, वे ही अन्य पक्षमें असत्य अनात्मा हैं। यही देवी ब्रह्म सम्वित्, भावाभावकालविनिर्मुक्ता, चिद्विद्द्वितीया, ब्रह्मसम्वित्, सच्चिदानन्दलहरी, महात्रिपुरसुन्दरी, भीतर और बाहरमें अनुप्रवेश कर स्वयम् एकस्वरूप प्रकाशमान हैं। जो कुछ सत् है, जो कुछ चित् विद्यमान है, जिसका आनन्द ही प्रिय है, वह यही सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी हैं। सकल विश्वके सब देवगण सर्वसाधारण महात्रिपुरसुन्दरी हैं। ये ही सत्य ललिता नामसे प्रसिद्ध हैं। यथार्थमें ये ही अद्वितीय अखण्ड पर ब्रह्म हैं। इन्होंने पञ्चरूप परित्याग करके अखरूप धारण किया था। वही महदादि मत् एक परतत्त्व हैं। मैं ही प्रज्ञान ब्रह्म हूँ, मैं ही ब्रह्म और तत्त्वमसि हूं, मैं ही आत्मा वा परब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म ही हूं, जो मैं हूं वही मैं हूं, जो यह है वही मैं हूं; इस तरह जो कहा जाय वा सोचा जाय वे सभी वे ही हैं, वे ही षोड़शी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बालाम्बिका, वगला, मातङ्गी, स्वयंवरकल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुण्डा, चण्डा, वाराही, तिरस्कारिणी, राजमातङ्गी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढ़ा, प्रत्यङ्गिरा, धूमावती, सावित्री, गायत्री, सरस्वती और ब्रह्मानन्दकला हैं।

देवीका वैदिक परिचय ऊपरमें लिपिबद्ध हुआ। महाभारत और हरिवंशमें भी इस तरह वर्णित है। अभी पौराणिक विवरण वर्णन किया जाता है।

महामायाका आविर्भाव।—कालिकापुराणके मतसे ज्योतिर्मय परब्रह्मके अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आविर्भूत हुए।

ब्रह्मा और विष्णुने सृष्टि स्थितिके संरक्षणके लिए अपनी अपनी शक्ति ग्रहण की, किन्तु महेश्वरने वैसा नहीं किया। वे योगमें लवलीन हो रहे। कुसुमशरके प्रभावसे ब्रह्मा अपनी सृष्टि सन्ध्याके प्रति अनुरक्त हुए इस कार्यके लिए महादेवने उनकी खूब हंसी उड़ाई। 'महादेव भी किसी तरह शक्तिके साथ सम्मिलित होवें" इसके लिए ब्रह्मा भी यथेष्ट चेष्टा करने लगे। इधर महादेवके पाणिग्रहण किये बिना सृष्टिकी रक्षा नहीं हो सकती है सही, किन्तु महादेवकी जीवनसंगिनी होनेको कोई उपयुक्त रमणी न थी। अतः सब कोई बहुत चिन्तित हुए।

अन्तमें बहुत सोच विचारके बाद ब्रह्माने दक्ष और मरीचि आदिसे यह बात कही, "सन्ध्या और सावित्रीको आराध्य देवी विष्णुमायाके सिवा ऐसी कोई दूसरी स्त्री नहीं है जो शिवको मोहित कर सके। मैं उनकी स्तुति करता हूं; ये ही अवश्य शिवको मोहित

करेंगी। हे दक्ष! तुम भी उस जगन्मयीकी पूजा करो जिससे वे तुम्हारी कन्या बन कर शिवकी स्त्री हों।" ब्रह्माकी आज्ञासे दक्ष प्रजापतिने तीन हजार दिव्य वर्ष तक कठोर तपस्या की थी। महामाया पहले ब्रह्मा, पीछे ध्यानस्थ दक्षके सामने उपस्थित हुईं। उन्होंने स्वीकार किया कि वे ब्रह्माकी कामना पूर्ण करेंगी और दक्षसे इस प्रकार बोलीं, 'मैं बहुत शीघ्र तुम्हारी स्त्रीके गर्भसे तुम्हारी कन्याके रूपमें जन्मग्रहण करके शङ्करकी सहधर्मिणी होऊंगी। जभी तुम मेरा निरादर करोगे तभी मैं देह त्याग करूंगी।" ऐसा कह कर देवीने दक्ष-पत्नी वीरिणीके गर्भमें जन्म लिया। क्रमशः महामाया शैशवावस्थाके पश्चात् यौवनावस्थाको प्राप्त हुईं। महादेवको पानेके लिये वे माता पिताकी आज्ञा ले कर उनकी पूजा करने लगीं। जो महादेव विवाह करनेसे घृणा करते थे अभी वे सतीके रूप और पूजासे मुग्ध हो कर उन पर आसक्त हो गये। उन्होंने सतीको दर्शन दिये और सतीने वरकी प्रार्थना की। दाक्षायणीको कथा समाप्त न होने पाई थी कि महादेव बार बार कहने लगे कि, 'तुम मेरी स्त्री बनो।' तब सती हँस हँस कर बोलीं, 'मेरे पिताको सूचित कर मुझसे विवाह कीजिये।" यह कह कर सती अपनी माताके पास लौट आईं। महादेव भी हिमालय पर्वत पर जा कर सतीके विरहसे व्याकुल हो पड़े और उन्होंने ब्रह्मासे अपना हाल कह सुनाया। ब्रह्माका मनोरथ फलीभूत हुआ। उन्होंने दक्षके पास जा कर शिवके मनोभावको कह सुनाया। दक्ष भी प्रफुल्ल चित्तसे सतीको उन्हें अर्पण किया। प्रकृति पुरुषका मिलन हुआ, कैलासगिरि कन्दर और हिमालय पर महाकौषी नदीके प्रपातके निकट शिवा शिवाणीके साथ अनेक प्रकारसे विहार करने लगे। इस तरह कुछ दिन व्यतीत हो गये। दक्षने महायज्ञका अनुष्ठान किया। सब देवता उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए सिवा महादेव कपालीके। यज्ञमें बुलाने योग्य नहीं हैं ऐसा सोच कर दक्षने उन्हें निमन्त्रण नहीं दिया था। सती दक्षको प्रियतमा होने पर भी कपालीको भार्या होनेके कारण उस यज्ञमें दोषदर्शी दक्षने उन्हें आह्वान नहीं किया। जब सतीने अपने पिताके उस दुर्व्यवहारकी कथा सुनी, तब क्षण भर भी उनको जीवन धारण करनेकी इच्छा न रही। कोपारुणनयना सतीने योगबलसे शरीरके सब द्वार बन्द कर कुम्भक किया। उस महा कुम्भको छेद कर उनको प्राणवायु निकल गई। महादेवने घर आ कर विजयासे सतीके प्राणत्यागका कारण सुना। इस पर रोषपूर्ण महारुद्र अति शीघ्र दक्षयज्ञमें उपस्थित हो कर यज्ञ ध्वंस करनेको उद्यत हुए। दक्षयज्ञ देखो। तब रुद्रभीत यज्ञ ब्रह्मलोकसे आ कर अपने मायाबलसे सतीके मृत शरीरमें प्रविष्ट हुए। यज्ञानुगामी रुद्र सतीके पास पहुंच कर और उन्हें मृत देख यज्ञको भूल गये और उस मृत देहको बगलमें बैठ कर शोक करने लगे। उनके नेत्रके जलसे वैतरणी नदीकी उत्पत्ति हुई। महादेव सतीको लाशको कंधे पर रख कर विलाप करते हुए पूरबकी ओर जाने लगे। तब ब्रह्मा, विष्णु और शनि इन तीन देवताओंने सतीके शरीरमें प्रवेश कर उसे खण्ड खण्ड कर डाला। जहां जहां सतीका अंग गिरा वही स्थान पुण्य तीर्थ वा महापीठ हुआ। 'शिव मायासे मोहित हो कर सतीके शोकमें विलाप करते थे। जगज्जननी माया ही इसका कारण था। जब तक सती पुनः जन्म ग्रहण न करेगी, तब तक वे निष्कल परब्रह्मके ध्यानमें निमग्न रहें, ब्रह्मादि देवगण ऐसा सोच कर महामायाकी स्तुति करने लगे। उन लोगोंकी स्तुतिसे सन्तुष्ट हो महामायाने योगनिद्रा शिवका हृदय परित्याग किया। शिव प्रकृतिस्थ होकर पुनः योगासीन हुए। इधर हिमालयकी स्त्री मेनका पुत्रके लिए सत्ताईस वर्ष तक महामायाकी पूजा करती रहीं। पहलेसे ही दाक्षायणी गिरिराज-महिषीके प्रति सुप्रसन्न थीं। अभी उनकी ऐकान्तिक भक्तिसे आकृष्ट हो कर उनके सामने प्रकट हुईं। मेनकाने प्रार्थना की, "हे देवि! मैं वीर्य्यवान् और आयुष्मान् शत पुत्र और आनन्दरूपा त्रिभुवनमोहिनी एक कन्याके लिये प्रार्थना करती हूं।" भगवतीने उनकी प्रार्थना पूरी की और मेनकाकी कन्याके रूपमें जन्म लिया। इस प्रकार वसन्त कालमें मृगशिरा नक्षत्रकी नवमी तिथिमें अर्द्धरात्रिके समय महामायाका जन्म हुआ। हिमालयने उनका नाम 'काली' और बान्धवोंने 'पार्वती' रखा।

एक दिन नारदने हिमालयको अपना परिचय दे कर

कहा, 'यदि आपको लड़की काली तपस्या द्वारा शिवजीको प्रसन्न कर ले, तो वह सुवर्णाभा और सुवर्णको नाईं गौराङ्गी विद्युत्सदृशी हो जायेंगी। शिवजी ही इनके योग्य वर हैं।' उस समय महादेव हिमालयको ओषधिप्रस्थनगरके निकट ध्यानमें मग्न थे। एक दिन गिरिराजने यहां आ कर विधानपूर्वक महादेवकी पूजा की। महादेव उनकी पूजा ग्रहण कर बोले, "मैं गोपनीय स्थानमें तपस्याके लिये आया हूं, किन्तु जिससे कोई व्यक्ति यहां आने न पावे, वैसा ही काम आप कीजिए।" गिरिराजने उनकी आज्ञा मान ली, केवल वे अपनी लड़कीको महादेवकी पूजाके लिये वहीं छोड़ चले आये। काली भी भक्तिपूर्वक प्रतिदिन शम्भुकी सेवा करने लगीं। किन्तु इस बार भोलानाथका मन तनिक भी न लुभाया। देवीकी साधु साधनासे महादेवने देख करके भी न देखा।

इधर तारकासुर प्रबल हो स्वर्गराज्य अधिकार कर बैठे। सब देवगण व्याकुल हो पड़े। इस समय महादेवके औरसजात पुत्रके सिवा कोई भी तारकासुरको मारनेमें समर्थ नहीं है, यह बात ब्रह्माने सभीसे कह दी। महादेवको मोहित करनेके लिये मदन रति और वसन्तके साथ भेजे गये। इस बार कुसुमायुधका शरसन्धान व्यर्थ हुआ। महादेवकी क्रोधानलसे वे उसी जगह भस्म हो पड़े। इससे भगवतीकी विरह-ज्वाला और भी बढ़ गई। वे वयस्तया करके क्षीण और मलिन हो पड़ीं। (हरिवंशमें लिखा है, कि मेनकाने कन्याकी इस अवस्थाको देख कर कहा था, 'उमा' और अधिक तपस्या मत करो, उसीसे भगवतीका नाम उमा पड़ा।)

आशुतोष क्या अब स्थिर रह सकते? उन्होंने देवीसे कहा, "हे सुभगे! मैं तुम्हारे विरहसे बहुत दुःखित हूं। मेरे नेत्रानलसे दग्ध मदन भस्म रूपमें मेरे ही अङ्गमें वास करता है। वह मानो बदला चुकानेके लिए तुम्हारे समक्षमें ही मुझे दग्ध कर रहा है। अब तुम मुझ पर प्रसन्न होवो।" इस पर देवी और क्या बोल सकती। इशारेसे उन्होंने सखियोंसे अपना मनोभाव कह सुनाया,- पिता ही कन्याको समर्पण करते हैं। इस समय पिताको कहनेसे ही सब दिशाओंकी रक्षा हो सकती है। इतना कह कर लज्जासे सिर झुकाके पार्वती अपने पिताके घर चली आईं। मरीचि आदि ऋषियोंने महादेवके आदेशसे उनकी इच्छा पूरी करनेको कहा। यह सुन कर गिरिराजने मानो स्वर्ग पा लिया। बहुत समारोहके साथ उन्होंने पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दिया। पीछे महादेव कालीको साथ ले कैलास आ कर आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन महादेवने उर्वशी आदि स्वर्गवेश्याओंको देख कर पार्वतीसे कहा, 'हे भिन्नाञ्जनश्यामले कालि! तुम उर्वशी आदिके साथ आलाप करो।' इतना कह कर वे कालीके निकटसे हट गये। 'भिन्नाञ्जनश्यामला काली' यह सुन कर भगवतीको क्रोध आ गया। उन्होंने अप्सराओंके सामने महादेवकी उस बातसे अपनेको निन्दित समझा और शैलशिखर पर गुप्त हो कर वे प्रकृति भावसे रहने लगीं। बहुत तलाश करने पर भी महादेवने उन्हें न पाया, इससे वे बहुत व्याकुल हो गये। महादेवको बहुत दुःखित जान सतीने उन्हें अपना दर्शन दिया। महादेव उनका मान-भङ्ग करनेके लिये उनके पास गये, किन्तु कालीने कहा, "जब तक मेरा शरीर सोनेके समान गोर न हो जावेगा, तब तक मैं आपके साथ सहवास नहीं कर सकती।" इतना कह कर महामाया महाकौषोप्रपात नामक हिमालयके शिखर पर चली गईं। यहां उन्होंने एक सौ वर्ष तक तपस्या की। अन्तमें वे भीतर और बाहर सब जगह महादेवको ही देखने लगीं। अब देवीका अभीष्ट सिद्ध हुआ। आकाशगङ्गाके जलमें स्नान कर काली विद्युत्सदृशा गौरवर्णा गौरी हो गईं। (कालिकापु० ४५ अ०)

कार्त्तिक और गणेश इनके पुत्रके नाम हैं। इन्होंने महिषीमर्दिनीके रूपमें महिषासुरका नाश किया।

देवीभागवतमें देवीकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

देवगण महिषासुरके युद्धमें परास्त हो कर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। ब्रह्मा भी शिव और देवताओंको साथ ले विष्णुलोकको गये। वहां उन्होंने विष्णुसे कहा कि, 'ब्रह्माके वरसे महिषासुर पुरुषसे अवध्य है। सुतरां वरदानके प्रभावसे वह बहुत ही उद्धत और गर्वित हो गया है। इधर ऐसी कोई स्त्री भी देखनेमें नहीं

आती जो उससे युद्ध करे।' अभी जिससे उसकी मृत्यु हो, वैसा ही उपाय कर दीजिए'। यह सुनकर विष्णुने हंसते हुए कहा, "यदि तुम लोग उस असुरका वध करना चाहते हो, तो अपनी अपनी स्त्रीके साथ मिलकर अपने अपने तेजसे प्रार्थना करो, जिससे तेजसमूह एकत्रित हो कर एक नारीके रूपमें आविर्भूत हो जावे। उस नारीको हम लोग रुद्रादिके त्रिशूल आदि दिव्य-अस्त्रसे भूषित कर देंगे। वही नारी मदगर्वित असुरको मारनेमें समर्थ होगी।" इस समय ब्रह्माके मुखसे पद्मरागमणिकी नाईं रक्तवर्ण दुःसह तेज उत्पन्न हुआ। इसी तरह शङ्करके शरीरसे अत्यद्भुत रौप्यवर्ण, विष्णुके शरीरसे नीलवर्ण, इन्द्रके शरीरसे त्रिगुणमय विचित्रवर्ण, कुवेर, यम, अनल और वरुणके शरीरसे सुमहत् तेजपुञ्जका प्रादुर्भाव हुआ। पीछे अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भास्वर तेज निकला। अब उन सब तेजोंके समूहसे बहुत उजेला होने लगा जिसे देख कर विष्णु आदि सभी विस्मित हो गये। उनका विस्मय और भी बढ़ गया, जब अकस्मात् उस तेजपुञ्जसे एक अद्वितीय रमणी-मूर्त्ति आविर्भूत हुई। यही रमणी मूर्त्ति महालक्ष्मी है। इस भुवनमोहिनीको बाहु अठारह, मुखमण्डल श्वेतवर्ण, नयन कृष्णवर्ण, अधर रक्तवर्ण और पाणितल ताम्रवर्ण है। ये दिव्यभूषणभूषिता कमनीया कान्तिधारिणी हैं। इनके सहस्र बाहु होने पर भी ये असुरोंके विनाशके लिये तेजोराशिसे अठारह भुजा लिए आविर्भूत हुईं। (देवीभाग० ८।८ अः)

किसके तेजसे भगवतीका कौन अंग उत्पन्न हुआ था, उसके विषयमें भी देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है—

शङ्करके तेजसे उनका सुविपुल श्वेतवर्ण और मनोहर मुखकमल, यमके तेजसे आजानुलम्बित कृष्णवर्ण मनोहर केशकलाप, अग्निके तेजसे मध्यस्थलमें कृष्णवर्ण-तारकायुक्त और प्रान्तभाग रक्तवर्ण ऐसे त्रिनयन, सन्ध्याके तेजसे कृष्णवर्ण भ्रूयुगल, वायुके तेजसे नातिदीर्घ नातिह्रस्व श्रवणयुगल, कुवेरके तेजसे तिल-फूलके सदृश नासिका, दक्षादिके तेजसे कुन्दकुसुमके सदृश दन्तपंक्ति, अरुणके तेजसे रक्तवर्ण अधर, कान्तिकके तेजसे रमणीय ओष्ठ, विष्णुके तेजसे अष्टादश बाहु, वसुगणके तेजसे रक्तवर्ण समस्त अङ्गुलि, सोमके तेजसे उत्तम स्तनयुगल, इन्द्रके तेजसे त्रिवलीयुक्त मध्यस्थल, वरुणके तेजसे जङ्घा और ऊरुयुगल तथा पृथ्वीके तेजसे विपुल नितम्ब उत्पन्न हुआ। तब उस पराशक्तिको देवताओंने अपना अपना अस्त्र इस प्रकार प्रदान किया,—विष्णुने चक्र, शङ्करने शूल, वरुणने शङ्ख, अग्निने शतघ्नी, वायुने वाणपूर्ण तूण, इन्द्रने वज्र, यमने कालदण्ड, ब्रह्माने गङ्गाजलपूर्ण कमण्डलु, वरुणने पाश और पद्म, कालने खड्ग और चर्म, कुवेरने सुरापूर्ण पानपात्र तथा विश्वकर्माने परशु और गदा प्रदान की। इस प्रकार अस्त्र शस्त्रसे भूषित हो महादेवी सिंहके ऊपर आरोहण करके असुरका नाश करनेके लिये अग्रसर हुईं। घमसान युद्धके बाद महादेवीके हाथसे महिषासुर पराजित और निहत हुआ।

मार्कण्डेय चण्डीमें भी सब देवताओंके तेजसे सहस्रभुजा महिषमर्दिनीके आविर्भावकी कथा लिखी है। कालिकापुराणमें महामायाकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

"जब महादेवी (दशभुजा) ने महिषासुरका वध किया ही था, फिर उन्हीं (षोडशभुजा) ने भद्रकालीके रूपमें महिषासुरका वध किया था; ऐसा क्यों लिखा गया? देवताओंको जब उस भद्रकालीकी मूर्त्तिका दर्शन हुआ, तब उन्होंने देवीके पाददेशमें महिषासुरको निपतित और उसके हृदयमें शूल विद्ध देखा था, उसका क्या कारण? और महिषासुरने एक दिन निशायोगमें पर्वतके ऊपर बहुत ही निदारुण भयङ्कर स्वप्न देखा था,—उसे ऐसा मालूम हुआ, कि महामाया भद्रकाली बहुत भीषणभावसे अपना मुख फैला कर खड्ग द्वारा उसका शिरश्छेद करके रक्तपान कर रही है। प्रातःकाल होने पर महिषासुर बहुत डर गया और अपने अनुचरोंके साथ उसने महामायाकी पूजा की। पीछे महादेवी महिषासुरसे पूजित हो कर षोड़शभुजा भद्रकालीके रूपमें आविर्भूत हुईं। इस समय महिषासुरने महामायाको प्रणाम कर कहा था, 'हे देवि! मैंने सत्यकी ही स्वप्नमें देखा है, कि आप मेरा शिरच्छेद कर रक्तपान कर रही हैं। इससे मुझे पूरा विश्वास है कि आप निश्चय ही मेरा रुधिर पान करेंगी। मैं आपसे मारा जाऊंगा, इसमें तनिक

भी सन्देह नहीं और साथ साथ दुःख भी नहीं है। पहले मेरे पिताने मेरे लिये आपके साथ शम्भूकी आराधना की थी, उसीसे मेरा जन्म हुआ है। मैंने इन्द्रत्वको पाया है और अखण्ड ब्रह्माण्डका आधिपत्य निर्विवादपूर्वक उप भोग किया है, सुतरां अब मुझे आपके आश्रयके सिवा और किसी चीजकी अभिलाषा नहीं है। निखिल यज्ञमें जिससे मैं पूज्य होऊं, वैसा ही कीजिये। जब तक सूर्य रहें तब तक मैं आपका पदत्याग न करूं, यही वर मुझे प्रदान कीजिये।' इस पर महादेवीने कहा, 'यज्ञका ऐसा एक भाग भी नहीं है जो अभी मैं तुम्हें दे सकूं। किन्तु युद्धमें मुझसे मारे जाने पर भी तुम कभी मेरा पदत्याग नहीं करोगे। जहां मेरी पूजा होगी उसी जगह तुम्हारे इस शरीरकी भी पूजा होगी।

तब महिषासुरने देवीको प्रणाम कर पूछा, 'हे परमेश्वरि! यज्ञमें आपकी किस किस मूर्त्तिके साथ मैं पूज्य होऊंगा?' इस पर देवीने कहा, 'उग्रचण्डा, भद्रकाली और दुर्गा इन तीन मूर्त्तियोंमें तुम सर्वदा मेरे पादलग्न होकर मनुष्य, देव और राक्षसोंसे पूजे जाओगे। आदि सृष्टिमें मैंने अष्टादशभुजा उग्रचण्डाकी मूर्त्तिमें द्वितीय सृष्टिमें इस (षोडशभुजा) भद्रकालीके रूपमें तुम्हें मारा है और अभी मैं (दशभुजा) दुर्गाके रूपमें अनुचरोंके साथ तुम्हें मारूंगी।'

दुर्गाकी उत्पत्तिके विषयमें काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

पुराकालमें दुर्ग नामक रुरुके एक पुत्र था। उस महादैत्यने तपस्याके बलसे तीनों लोक जीतकर अपने अधीन कर लिये तथा इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण आदिके पद भी छीन लिये थे। उसके भयसे ऋषियोंने तपस्या और ब्राह्मणोंने वेद पाठ करना छोड़ दिया। देवताओंने बहुत दुःखित होकर महेश्वरकी शरण ली। महेश्वरने उस दुष्ट असुरको मारनेके लिये देवीको भेजा। महादेवी देवताओंको अभय देकर युद्धका उद्योग करने लगीं। पहले उन्होंने कालरात्रि नामकी रुद्राणीको उस दैत्यको पकड़ लानेके लिये भेजा। दुर्गासुर उस मनोरमा रुद्राणीके रूपसे मोहित हो गया और उसने इन्हें अन्तःपुर पकड़ कर ले जानेका हुक्म दिया। 'दैत्यकार्य में आई हुई हूं'। ऐसा कहने पर भी उनकी बात न सुनी गई। दैत्यके अनुचर ज्यों ही कालरात्रिको पकड़नेके लिये अग्रसर हुए, त्यों ही देवीके हुङ्कारसे वे सबके सब भस्म होने लगे। तब दुर्गासुरके आदेशसे दश हजार असुरोंने आ कर उस देवीको पकड़ना चाहा। देवीकी निःश्वास वायुसे दैत्यगण व्याकुल हो कर इधर उधर गिरने लगे। देवी भी उस स्थानको छोड़ कर आकाशमार्गको चली गईं। दुर्गासुरने अपने दैत्यवीरोंको साथ ले उनका पीछा किया। कुछ समयके बाद महासुरोंने विन्ध्याचल पर आ कर सहस्रभुजा, महातेजा और महाप्रहरणा महादेवीको देखा। उन्होंने यह भी देखा कि कालरात्रि आ कर देवीके निकट उनसे विरुद्ध कुछ कह रही है। दुर्गासुर महामायाका रूप देख कर कामशरसे पीड़ित हो गया और उसने अपने अनुचरोंको प्रलोभन दे कर कहा कि, 'तुममेंसे जो कोई उन्हें पकड़ कर ला सकोगे उसे विशेषरूपसे पारितोषिक दूंगा।' तब दैत्यवीरगण भगवतीको पकड़ लानेके लिये छुटे। किन्तु कोई भी महामायाके सामने न हो सका। सभी परास्त हो गये। पीछे दुर्गासुर स्वयं महादेवीसे लड़नेमें प्रवृत्त हुआ।

महादेवीके शरीरसे अनेक शक्तियां उत्पन्न हो कर दैत्यसेना ध्वंस करने लगीं। दुर्गासुर अपनी सेनाओंकी दुर्दशा देख महागजकी मूर्त्ति धारण कर देवीकी ओर दौड़ा। महादेवीने पाशास्त्रके प्रहारसे उसके भीमशुण्डको दो खण्ड कर डाला। तब दैत्यपतिने फिर महिषरूप धारण कर देवी पर आक्रमण किया, किन्तु देवीने त्रिशूलके आघातसे उसे पृथ्वी पर लेटा दिया। फिर बहुत शीघ्र ही वह दैत्य सहस्रभुज पुरुषकी मूर्त्ति धारण कर प्राणपणसे युद्ध करने लगा। इस बार भी देवीने एक महास्त्र फेंक कर उसे खण्ड खण्ड कर डाला। दुर्गासुर मारा गया। स्वर्गमें दुन्दुभि बजने लगी। देवगण देवीकी स्तुति करने लगे। उसी दिनसे महादेवी दुर्गाके नामसे प्रसिद्ध हुई हैं। (काशीख'ड ७२अ०)

कालिकापुराणमें एक जगह लिखा है—दशभुजा जगद्धात्रीने जो महिषासुरको विनाश किया था, वे ही आश्विन मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रादुर्भूत हुई थीं। पीछे शुक्लपक्षकी सप्तमीको देवताओंके तेजसे उन्होंने

देवीको मूर्त्ति धारण की थीं। अष्टमीको देवताओंने उन्हें तरह तरहके अलङ्कारोंसे सजाया था। नवमीको महादेवीने नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजित हो महिषासुरको विनाश किया और दशमीको वे देवताओंसे विसृष्ट हो कर अन्तर्धान हो गईं। पुराकालमें स्वायंभुव मन्वन्तरमें दशभुजा भगवती देवताओंसे पूजी गई थीं। सप्तशतीचण्डीके मतसे—स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ राजा और समाधि वैश्यने देवीका पूजन किया था। देवीभागवतके मतसे भारतभूमिमें सबसे पहले सुयज्ञ राजाने ही देवीकी पूजा की थी।

देवीभागवत, महाभागवत, कालिकापुराण, बृहन्नन्दिकेश्वरपुराण और बृहद्धर्मपुराणमें रामचन्द्रने जो शरत्कालमें देवीकी पूजा की थी, वह कथा लिखी है। कालिकापुराण और बृहद्धर्मपुराणमें लिखा है—रामके प्रति अनुग्रह और रावणको वध करनेके लिये ब्रह्माने रात्रिकालमें महादेवीको समझा कर कहा था। महाभागवतमें लिखा है—रामचन्द्र अठहत्तर सौ नीलपद्म द्वारा देवीकी पूजामें प्रवृत्त हुए, किन्तु देवीने उन्हें छलनेके लिए एक पद्म छिपा रखा। तब रामचन्द्र अपनी एक आँखको निकाल कर देवीके महापद्ममें अर्पण करनेको अग्रसर हुये। देवीने उन्हें निरस्त कर उनकी मनोवाञ्छा पूरी की।

किसीका मत है कि, रावणने वसन्तकालमें दुर्गाकी पूजा की थी, इसीसे वह वासन्तीपूजा नामसे प्रसिद्ध है। वासन्तीपूजा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

दुर्गोत्सवविधि।—शरत्कालमें वार्षिक जो महापूजा की जाती है, उसे शारदीया महापूजा कहते हैं। इस पूजाके चार प्रधान कर्म हैं, स्नपन, पूजन, होम और बलिदान। यह पूजा तीन तिथि तक करना पड़ता है।

प्रतिवर्ष आश्विनमासमें प्रत्येकको यह पूजा करनी चाहिये। जो लोग मोह, आलस्य और दम्भ वा द्वेषपूर्वक पूजा नहीं करते, उन पर देवी भगवती क्रुद्ध हो कर उनके सब मनोरथ नष्ट कर देती हैं। इस शरत्कालीन दुर्गा पूजाको नित्यता सब प्रकारसे प्रतिपादित हुई है जिसके नहीं करनेसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। (तिथित०)

दुर्गापूजा करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं और जो विधिके अनुसार पूजा करते हैं, वे अतुल विभूति और चतुर्वर्ग फल पाते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जो वे चाहते, वही उन्हें शीघ्र मिल जाता है। समाधि नामक वैश्यने पूजा करके निर्वाण और सुरथ राजाने राज्यादि पाया था। जो जिस अभिलाषसे देवीकी पूजा करते हैं, उनका वह अभिलाष पूरा हो जाता है। रोगी रोगसे मुक्त होता और मुमुक्षु मुक्ति लाभ करता है। इन्हीं सब कारणोंसे प्रत्येकको यह पूजा करना अवश्य कर्त्तव्य है। इस पूजाके ७ कल्प कहे गये हैं—इन सातोंमेंसे सामर्थ्यानुसार किसी कल्पमें पूजा करनी चाहिये।

नवम्यादि कल्प।—भाद्रमासकी कृष्णानवमीसे लेकर आश्विनमासकी महानवमी तक जो पूजा की जाती है, उसे नवम्यादि कल्प कहते हैं। आश्विनमासकी शुक्ला प्रतिपद्से लेकर महानवमी तक जो पूजा की जाती है, उसे प्रतिपदादि कल्प, आश्विन शुक्लाषष्ठीसे लेकर महानवमी तकको षष्ठादिकल्प; सप्तमीसे लेकर महानवमी तकको सप्तम्यादि कल्प; महाष्टमीसे ले कर महानवमी तकको अष्टम्यादि कल्प; केवल महाष्टमीके दिनको अष्टमीकल्प और महानवमीके दिनको नवमीकल्प कहते हैं। ये ही सात प्रकारके कल्प हैं। इन्हीं सात कल्पों द्वारा इनका नित्यत्व प्रतिपादित हुआ है। जो जिस अवस्थाके हैं, वे इन सात कल्पोंमेंसे किसी एक कल्पमें पूजा कर सकते हैं।

कल्पारम्भके बाद यदि अशौच हो जाय, तो पूजाके प्रतिबन्धक नहीं होना चाहिये। क्योंकि लिखा है—

'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्च्चने जपे।
आरब्धे सूतकं नस्यादनारब्धे तु सूतकं॥"

(तिथित०)

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चना और जपके आरम्भ हो जाने पर सूतक अशौच नहीं होता, अनारब्ध होने पर सूतक अशौच माना जाता है।

दुर्गोत्सवको व्रत कहा गया है। यह पूजा सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारकी है। सात्त्विकी पूजामें निरामिष नैवेद्य, जप और यज्ञादि, पुराणादिमें

कीर्त्तित भगवतीका माहात्म्य पाठ और देवीसूक्त जप प्रभृति करने पड़ते हैं। बलिदान और सामिष नैवेद्यादि द्वारा जो पूजा की जाती है उसे राजसी पूजा कहते हैं। जबयज्ञके बिना सुरामांसादि उपहारसे जो पूजा की जाती है, उसे तामसी पूजा कहते हैं। इस तरहकी पूजा म्लेच्छ और दस्यु गण करते हैं। (तिथि०)

जिस जगह पूजाके स्थान पर पूजकका तपोयोग अधिक रहता है और पूजाका आधिक्य तथा देवप्रतिकृतिका सद्रूप होता है, उसी जगह देवता पहुंच जाते हैं। (तिथित०)

नवम्यादि कल्प—रविके कन्या राशिमें जानेसे अर्थात् आश्विनमासके कृष्णपक्षकी आर्द्रा नक्षत्रयुक्त नवमीतिथिमें देवीका बोधन करना चाहिये। यदि नवमीमें आर्द्रा नक्षत्र न पड़े, तो किस नवमीमें बोधन होगा? कालिका-पुराणके मतसे नवमीमें अष्टादशभुजाका बोधन और षष्ठीमें दशभुजाका ध्यान करना कर्त्तव्य है। स्मार्त्तके मतसे यह संगत नहीं है, क्योंकि कामाख्या-पद्ममूर्त्ति प्रकरणमें इस प्रकार लिखा है—

"शरत्काले पुरा यस्मात् नवम्यां बोधिता सुरैः।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च नामतः॥
रूपमस्याः पुरा प्रोक्तं सिंहस्थं दश बाहुभिः।
रूपमेवं दशभुजं पूर्वोक्तन्तु विचिन्तयेत्॥
उग्रचण्डेति या मूर्त्तिं भद्रकाली त्वहं पुनः।
यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्त्तिता॥"(तिथित०)

पहले शरत्कालमें नवमीतिथिमें देवताओंने जो देवीका ध्यान किया है उसका नाम शारदा है। ये दश-बाहुयुक्त और सिंहवाहिनी है, इत्यादि पूर्वोक्त वचनानुसार महिषासुरके पादलग्नत्वके कारण पूजाका विषय पहले लिखा गया। किन्तु अष्टादशभुजामें महिषासुरके प्रतिपादलग्नत्वकी सम्भावना नहीं है, इत्यादि कारणोंसे नवमी या षष्ठीमें दशभुजाका ध्यान करना उचित है।

नवमीमें ध्यान करके ज्येष्ठानक्षत्रकी षष्ठीमें बिल्व वृक्षमें आमन्त्रण, मूलानक्षत्रकी सप्तमीमें पत्रिकाप्रवेश, पूर्वाषाढ़ाकी अष्टमीमें पूजा, होम और उपवास, उत्तराषाढ़ानक्षत्रकी नवमीमें अनेक तरहकी बलि द्वारा शिवा की पूजा और श्रवणानक्षत्रकी दशमीमें प्रणाम करके विसर्जन करना चाहिये। पहले जो सब नक्षत्र कहे गये हैं उन सब तिथियोंमें यदि उन सब नक्षत्रोंका योग न हो तो उन्हीं सब तिथियोंमें कार्यादि करनेका विधान है। नक्षत्रको बात जो कही गई है वह सिर्फ फलातिशयके लिये है। यदि उन तिथियोंमें पूर्वोक्त नक्षत्रका योग हो तो पूजामें भी विशेष फल होता है। (तिथित०)

प्रतिवर्ष कन्याराशिमें सूर्यके रहनेसे अर्थात् आश्विन मासमें कर्त्तव्यत्वकी अनुपपत्तिके लिये सिंहको अर्थात् भाद्रमासमें ध्यान तथा तुलामें अर्थात् कार्त्तिकमासमें स्थापनादिक करना चाहिये, किन्तु मलमासमें करना निषेध है। यदि आश्विनमास मलमास हो तो उस मासमें पूजा नहीं करके कार्त्तिकमासमें करनी चाहिये। ऐसी हालतमें भाद्रमासमें ध्यान और कार्त्तिक मासमें पूजा होगी। भाद्रको कृष्णानवमीसे प्रतिदिन देवीमाहात्म्यका पाठ और पूजादि करनी पड़ती है। (तिथित०)

कृष्णानवमीमें जो ध्यान होगा वह दैवकृत्यके लिये पूर्वाह्नमें होना चाहिये। यदि दोनों दिन पूर्वाह्नमें नवमी पड़े, तो पूर्व दिनमें और पूर्व दिनमें यदि आर्द्रानक्षत्र हो तो पूर्व दिनके पूर्वाह्न समयमें देवीका ध्यान होगा। ध्यान करनेमें जो रात्रिपद उल्लिखित हुआ है उसे देवरात्रिपद समझना चाहिये। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है इसीसे रात्रिपद व्यवहृत हुआ है। यदि दूसरे दिन आर्द्रानक्षत्र हो, तो उसी दिन ध्यान करना चाहिये और यदि पूर्वाह्नके समय आर्द्रानक्षत्र हो, तो आर्द्रानक्षत्रके अनुरोधसे पूर्वाह्न समयमें ही ध्यान करना होगा।

षष्ठीमें यदि ध्यान करना चाहे, तो सायंकालमें करना चाहिये। जो नवमीमें ध्यान करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे ही षष्ठीके सायंकालको ध्यान करते हैं।

षष्ठीके सायंकालका बिल्ववृक्षमें देवीका ध्यान करना चाहिये। जिस समय संध्या स्पष्ट न हुई हो, तारे अच्छी तरह दिखाई न पड़ते हों वही समय प्रकृति ध्यानका काल है।

षष्ठीमें सन्ध्या समय ध्यान और आमन्त्रण करना चाहिये। पत्रिकाप्रवेशके पूर्व दिन यदि सायंकालमें षष्ठी हो तो एक ही दिन ध्यान और आमन्त्रण होगा। किन्तु पत्रिकाप्रवेशके पूर्व दिन सन्ध्या समय षष्ठी न हो, तो उसके

पूर्व दिन सन्ध्या समय ध्यान और दूसरे दिन सन्ध्याके समय आमन्त्रण करना होगा। जिस समय दोनों दिन सन्ध्या समय षष्ठी हो उसी समय दूसरे दिन सन्ध्या समय ध्यान करना चाहिये। यदि दोनों ही दिन सन्ध्या समय षष्ठी न हो, तो पूर्वाह्णमें षष्ठीमें बोधन करना होगा। (तिथित०)

प्रतिपदादि कल्प—आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्र-विधिका अनुष्ठान और प्रतिपदादि क्रमसे महानवमी तक विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। प्रतिपदमें कल्प आरम्भ करके महानवमी तक देवीमाहात्म्यका पाठ और पूजन करना चाहिये। प्रतिपदमें केश संस्कार द्रव्य, द्वितीयामें पट्टडोर, तृतीयामें दर्पण, सिन्दूर और अलक्तक, चतुर्थीमें मधुपर्क, तिलक और नेत्रमण्डल, पञ्चमीमें अङ्गराग और यथा शक्ति अलंकार, षष्ठीमें बिल्ववृक्षमें ध्यान, सप्तमीमें पूजन, अष्टमीमें उपवास और अष्टशक्तिकी पूजा, नवमीमें उग्रचण्डा और अन्यान्य देवताओंकी पूजा, बलिदान और कुमारीपूजा करनी चाहिये। दशमीमें पूजा करके विसर्जन करना पड़ता है।

इस तरह विधिपूर्वक जो भगवतीकी पूजा करते हैं उनके सब क्लेश जाते रहते हैं तथा वे पुत्र, दारा, धन और धान्यादि विविध सुखोंको प्राप्त करते हैं, और अन्त समय इस देहको परित्याग कर भगवतीके गणोंमें गिने जाते हैं, उसी विधानको नवरात्र कहते हैं।

षष्ठ्यादिकल्प—षष्ठीके दिन प्रातःकालमें कल्पारम्भ करके सन्ध्या समय बिल्वशाखा और फलसे ध्यान करना चाहिये। सप्तमीमें बोधित बिल्वशाखा ला कर पूजा करनी पड़ती है। अष्टमीमें पूजा और जागरण, नवमीमें प्रभूत बलिदान और पूजा तथा दशमीमें शावरोत्सव द्वारा विसर्जन करना चाहिये।

साधारणतः प्रायः ये ही तीन कल्प देखे जाते हैं, नवम्यादिकल्प, प्रतिपदादिकल्प और षष्ठ्यादिकल्प। कई जगह इन तीन कल्पोंमेंसे किसी एक कल्पके अनुसार दुर्गाकी पूजा की जाती है, किन्तु कुलाचारके अनुसार जिनका जिस कल्पका विधान है वे उसी कल्पके अनुसार पूजा करते हैं। क्योंकि कुलाचार उल्लङ्घन करना शास्त्रसम्मत नहीं है।

जिस दिनसे कल्पारम्भ हो उस दिनसे ले कर महानवमी तक पूजन और विजया दशमीमें विसर्जन करना पड़ता है, तथा प्रतिदिन देवीमाहात्म्य और ऋषिच्छन्दादिका पाठ करना होता है।

पुराणादिमें कीर्त्तित भगवतीका माहात्म्य पढ़नेसे सब प्रकारकी कामनाएं सिद्ध होती हैं। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत चण्डीमें इस प्रकार लिखा है—

"शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥" (चण्डी)

शरत्कालमें जो महापूजा होती है उसमें चण्डीमाहात्म्य अवश्य पठनीय है, जो भक्तिपूर्वक देवीमाहात्म्य पढ़ते वा सुनते हैं, वे सब प्रकारकी विपदोंसे मुक्त होते हैं।

नवम्यादि कल्पारम्भसे महानवमी तक प्रति दिन एक बार करके देवीमाहात्म्यका पाठ करना चाहिये। कोई कोई कहते हैं, कि देवीमाहात्म्यका एक ही बारका पाठ काफी है, प्रति दिन पाठ करनेकी कोई जरूरत नहीं। इस पर रघुनन्दनने कहा है, कि एक बार पाठ करनेसे शास्त्रार्थ सिद्ध होता है, तो भी फलबाहुल्यके कारण पुनः पुनः पाठ करना आवश्यक है।

प्रतिपदादिकल्पमें प्रतिपदसे महानवमी तक और षष्ठ्यादिकल्पमें षष्ठीसे महानवमी तक पाठ करें। नवम्यादि कल्पमें नवमीमें बोधन करके पत्रीप्रवेशके पूर्व दिन अर्थात् षष्ठीमें सायंकालको आमन्त्रण और अधिवास करें। यदि नवमीके दिन बोधन न कर सके तो षष्ठीके दिन बोधन, आमन्त्रण और देवीका अधिवास करना होता है।

बोधन और आमन्त्रणका मन्त्र भेदानुसार एक नहीं है, भिन्न भिन्न है। बोधन-मन्त्र—

"श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजा करोम्यहं॥
ऐं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।
अकाले ब्रह्मणो बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा॥
अहमप्याश्विने तद्वत् बोधयामि सुरेश्वरीं।
शक्रेणापि च स बोध्य प्राप्तं राज्यं सुरालये॥

तस्मादहं त्वां प्रतिबोधयामि विभूतिराज्यप्रतिपत्तिहेतोः।
यथैव रामेण हतो दशास्य स्तथैव शत्रून् विनिपातयामि ॥"

आमन्त्रणका मन्त्र—

"मेरुमन्दार-कैलासहिमवच्छिखरे गिरौ।
जातः श्रीफलवृक्षत्वं अम्बिकायाः सदा प्रियः॥
श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः।
नेतव्योऽसि मया गच्छ पूज्यो दुर्गा स्वरूपतः॥"

सप्तम्यादिकल्प।—आश्विनमासकी शुक्ला सप्तमीसे महा नवमी तक देवीकी पूजा करनी होती है। सप्तमी तिथिमें कल्पारम्भ करके नवपत्रिका और मृण्मयी भगवतीकी प्रतिमापूजा तथा अष्टमीमें महास्नान कराना होता है। पञ्चगव्य, गायत्री, कषाय, गन्धादि, तीर्थवारि, सब प्रकारकी ओषधि, भृङ्गार, कलस, पुष्परत्नादि तोय प्रभृति तथा गीत, वादित्र, नाट्य द्वारा महास्नान करानेका विधान है। बाद पूजा, नाना प्रकारके उपहारादि द्वारा नैवेद्य और तिलधान्यादि संयुक्त विल्वपत्र द्वारा होम करना होता है। संसारमें जो सब काम्य सुख है, वे इसी होम द्वारा प्राप्त होते हैं, इतना ही नहीं, मनुष्य दीर्घायु, पुत्र और विपुल धनधान्यादि समन्वित होते हैं। नवमीमें इसी विधिके अनुसार पूजा की जाती है और देवीको प्रसन्न करनेके लिये बलि चढ़ाई जाती है। इस प्रकार विधिके अनुसार पूजा करनेसे इस जन्ममें विविध भोग करके अन्तमें स्वर्गको प्राप्त होता है।

पत्नीप्रवेश-व्यवस्था—मूलानक्षत्रयुक्त सप्तमी तिथिमें वा केवल सप्तमीमें पूर्वाह्न समय पत्रीप्रवेश अर्थात् नवपत्रिकाकी स्थापना करनी होती है। दोनों दिन यदि पूर्वाह्न लाभ हो, तो दूसरे दिन पत्रीप्रवेश होगा। इसमें तिथियुग्मादिका विचार नहीं किया जाता।

पूर्वाह्न समयमें नवपत्रिकाप्रवेश अत्यन्त शुभ और सिद्धिदायिनी है। मध्याह्न समयमें पत्रीप्रवेश करनेसे जनपीड़न और क्षय, तथा सायाह्नकालमें वध, बन्धन और नाना प्रकारके अशुभ होते हैं। इसीसे पूर्वाह्न समयमें नवपत्रिका प्रवेश प्रशस्त माना गया है।

नवपत्रिका—कदली, दाड़िम, धान्य, हरिद्रा, मानक, कचु, विल्व, अशोक और जयन्तीपत्र ये ही नौ नवपत्रिका है। नवपत्रिका देखो।

पत्री स्थापन करके मृण्मयी मूर्त्तिको प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है। क्योंकि देवप्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठा नहीं करनेसे उसमें देवत्व नहीं होता। प्राणप्रतिष्ठाके बाद यथाविधि नानाप्रकारके उपहार द्वारा देवीका पूजन किया जाता है।

महाष्टमीके दिन उपवास, नाना प्रकारके उपहार और बलि द्वारा भगवतीकी पूजा करनी होती है। अष्टमीमें भी बलिदानका विषय व्यवस्थापित हुआ है, किन्तु देवीपुराणके वचनानुसार अष्टमीको बलिदान करनेसे वंशनाश होता है। इस पर रघुनन्दनने कहा है कि अष्टमीमें बलिदान जो निषिद्ध बतलाया है, वह सन्धिपूजाके बाद, कारण सन्धिपूजा अष्टमीके शेष दण्ड और नवमीके प्रथम दण्डमें होती है।

सन्धिपूजा—अष्टमी और नवमीकी सन्धिमें योगिनियोंके साथ देवीकी पूजा करनी होती है। इसमें अष्टमीके शेषदण्ड और नवमीके प्रथमदण्डमें जो देवीकी पूजा की जाती है, वह अत्यन्त फलदायक है। अष्टमी और नवमीकी सन्धि रात्रिभागमें ही प्रशस्त, अर्द्धरात्रिमें दशगुण, सन्ध्याराात्रमें त्रिगुण फलदायक है। इस सन्धिकालको उमामहेश्वरतिथि कहते हैं।

महाष्टमी तिथिको पुत्रवान् व्यक्ति उपवास न करे। नवमीमें विविध बलि प्रभृति उपहार द्वारा देवीकी पूजा करे। अष्टमी वा नवमी इन दो दिनोंमेंसे किसी एक दिनमें होम करना होता है, किन्तु महाष्टमी दिनका होम प्रशस्त है। जप और स्तोत्र पाठ करके नवमीके दिन दक्षिणान्त करना चाहिए। देवीके पूजोपचारके विषयमें जिनकी जैसी शक्ति है, उन्हें उसी प्रकार पूजा करनी चाहिये।

महाष्टमीके दिन ही उपवास करनेका विधान है। महाष्टमी पूजाके दूसरे दिन यदि सन्धिपूजा हो, तो उस दिन उपवास नहीं होगा।

महानवमी पूजाकल्प—आश्विन मासमें महानवमीको भगवतीकी पूजा की जाती है।

"लब्धाभिषेको वरदा शुक्ले चाश्व युजस्य च।
तस्मात् सा तत्र सपूज्या नवम्यां चण्डिका बुधैः॥"

(तिथित०)

केवल अष्टमी और नवमीकल्प—आश्विनमासकी महाष्टमी और महानवमी तिथिको विशुद्ध भावसे भगवतीका यथाविधि उपचारसे पूजन करना चाहिये।

अष्टम्यादि कल्पारम्भमें—अष्टमी और नवमी ये दो दिन यथाविहित पूजादि करनी चाहिये।

दुर्गाका ध्यान—

"जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतशेखरां।
लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननां॥
अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनां।
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिता॥
सुचारुदशना तद्वत् पीनोन्नतपयोधरां।
त्रिभंगस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्द्दिनीं॥
मृणालायतसंस्पर्शदशबाहुसमन्वितां।
त्रिशूलं दक्षिणे पाणौ खड्गं चक्रं क्रमादधः॥
तीक्ष्णवाणं तथा शक्तिं दक्षिणे सन्निवेशयेत्।
खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च॥
घण्टां वा परशुं वापि वामतः सन्निवेशयेत्।
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनं।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितं॥
रक्तारक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फुरितेक्षणं।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रूकुटीभीषणाननं॥
सपाशवामहस्तेन धृतकेशञ्च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितं।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥
शत्रुक्षयकरीं देवीं दैत्यदानवदर्पहां।
प्रसन्नवदनां देवीं सर्वकामफलप्रदां॥
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका।
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टितां।
चिन्तयेत् सततं दुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदां॥"

इस मन्त्रसे देवीका ध्यान कर महास्नानपूर्वक षोडशोपचार और बलिदानादि द्वारा पूजा करे, साथ साथ आवरण और देवताका भी पूजन हो। इसी प्रकार सप्तमी, अष्टमी और नवमी पूजा की जाती है।

विजयादशमीकल्प—उपर्युक्त विधिसे पूजा समाप्त कर दशमी दिन देवीका विसर्जन करना होता है। 'चरलग्ने विसर्जयेत्' इस वचनके अनुसार चरलग्नमें देवीका विसर्जन करना होगा। यदि चरलग्नका योग न हो, तो केवल तिथिमें ही विसर्जन करना होता है। देवीको यात्राकालमें स्नान करा कर विसर्जन करनेका विधान है। नौयान अथवा नरयान द्वारा भगवती शिवाको ले जा कर क्रीड़ा-कौतुकादि करते हुए स्रोतोजलमें फेंक देना चाहिये।

विसर्जन करनेके बाद घर आ कर अच्छिद्रावधारण करना चाहिये। पीछे जल द्वारा निम्नलिखित मन्त्रसे यजमानको अभिषिक्त करना चाहिये।

अभिषेक-मन्त्र—

"ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते यजन्तस्त्वेमहे देवा उपप्रयन्तु मरुतः सुदानवे इन्द्रप्राशुर्भवा सचा।

ओं सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै नैर्ऋतस्तथा॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहितो शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः पुष्टिः कान्तिश्च मातरः॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपालाः सुसंयताः।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुकेतुश्च तर्पिता।
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च॥
देवपत्न्योऽध्वरा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः।
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये॥"

(बृहन्नन्दिकेश्वरपुराण)

इसी विजयादशमीके दिन अपराजिताकी पूजा की

जाती है। इस तिथिमें राजाओंको विजययात्रा अत्यन्त शुभदायक होती है। इस दिन यदि वे यात्रा न करें, तो उनके राज्यमें वर्ष भरके भीतर कोई विजय नहीं होगी। (तिथित०)

यदि राजा स्वयं यात्रा करनेमें अशक्त हों, तो खड्गादिकी यात्रा करानी चाहिये। इस विजयादशमीके दिन दुर्गानामका जप करनेसे अशेष फल प्राप्त होता है। कैसी ही विपत्ति क्यों न आ पड़े, दुर्गा-नामका जप करनेसे वह जाती रहती है।

"दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गानाम परं मनुं।
यो जपेत् सततं चण्डि जीवन्मुक्तः स मानवः॥
महोत्पाते महारोगे महाविपदि सङ्कटे।
महादुःखे महाशोके महाभयसमुत्थिते॥
यः स्मरेत् सततं दुर्गां जपेत् यः परमं मनुं।
स जीवलोको देवेशि नीलकण्ठत्वमवाप्नुयात्॥"

(मुण्डमालात०)

प्रातःकालमें उठ कर जो दुर्गानामका स्मरण करते, उनके भी सब क्लेश जाते रहते हैं। दुर्गा नाम भव-समुद्र पार करनेका तरणिस्वरूप है। भक्तिपूर्वक जो दुर्गानाम लेते उन्हें अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। दुर्गा-नामसे सब विपत्तियां दूर हो जाती हैं। दुर्गादेवीका विसर्जन हो जानेके बाद घर आ कर पिता, माता और गुरुको प्रणाम तथा आत्मीय, स्वजन तथा बन्धुबान्धवों-के साथ प्रेमालिङ्गन करना चाहिये। दुर्गोत्सव हिन्दुओं-

का एक प्रधान उत्सव है। लेकिन, बङ्गदेशमें यह उत्सव जिस समारोहसे मनाया जाता है, वैसा और किसी देशमें देखनेमें नहीं आता। हिन्दूगण अपना अपना कामकाज छोड़ कर तीन दिन तक इस महोत्सवमें लगे रहते हैं। उनका कहना है, कि ऐसा दिन सालके भीतर और कभी नहीं आवेगा। जो लोग दूर दूर देशोंमें नौकरी करते हैं, वे भी इस उत्सवमें घर आनेसे बाज नहीं आते, खर्चकी कुछ परवाह नहीं करते तथा उत्सव-में योगदान दे कर अपने जीवनको धन्य समझते हैं। देवी विसर्जनके बाद वे आनन्दसागरमें गोते मारते हैं, यहां तक कि कट्टर शत्रुओंके भी अपराध भूल कर उनसे गले गले मिलते हैं।

दशभुजा दुर्गाकी मृण्मयी प्रतिमाका पूजन सब जगह नहीं होता। बङ्गालमें इसकी भरमार है। आर्या-वर्त्त तथा दाक्षिणात्यके दूसरे दूसरे स्थानोंमें जहां भग-वतीकी शक्तिमूर्त्ति प्रतिष्ठित है, वहीं विशेष कर देवी-पूजा और उत्सवादि होते हैं। बहुत जगह तो घट-स्थापन करके ही महादेवीकी पूजा की जाती है। बङ्गाल भिन्न अन्य स्थानोंमें इस उत्सवको दशहरा कहते हैं। दक्षिण प्रदेशमें इस दिन कहीं कहीं चण्डीपाठके बदलेमें वेद पाठ होता है। महाविद्या, शारदीयपूजा और वासन्ती पूजा आदि शब्दोंमें अपरापर विवरण देखो।

दुर्गा—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म १८६० सं०में हुआ था तथा इन्होंने १८८५ सं० में बहुतसी कविताएं रचीं।

दुर्गाचरण रक्षित—एक बङ्गाली वणिक्, गोविन्दचन्द्र रक्षितके पुत्र। १२४७ ई०में चन्दननगरमें इनका जन्म हुआ था। पिताके मरने पर ये कलकत्तेके किसी सौदा-गरके यहां नौकरी करने लगे। साथ साथ इन्होंने स्वाधीन व्यवसाय भी आरम्भ कर दिया। थोड़े ही समयके अन्दर वणिक समाजमें इन्होंने खूब नाम कमाया। मरीच शहर, वर्दो तथा फ्रांसके अन्यान्य शहरोंमें ये स्वाधीन भावसे वाणिज्य कर प्रभूत धनशाली हो गए। इन्होंने अपने खर्चसे कई एक विद्यालय तथा धर्मशालायें बन-वाई थीं। १८७२ ई० में चन्दननगरके शासन और विधिकी व्यवस्था करनेके लिये जो 'लोकल कौंसिल' स्थापित हुई थी उसीके ये सभ्य बनाए गए। १८७९ से १८८५ ई० तक ये उस सभाके सभापति रहे और इन्होंके परामर्शा-नुसार सर्वकाम काज चलता रहा। १८८२ ई०में फरास

गवर्मेण्टने इनकी सत्यता और न्यायपरताके पुरस्कार स्वरूप इन्हें नगरका अवैतनिक जज और मजिष्ट्रेट बनाया। इनका विद्यानुराग देख कर पारीनगरके फरासी साहित्य-परिषद्ने इन्हें सम्मानित सभ्यपद (Officiel de Academie) अर्पण किया और एक पदक भी भेज दिया। एशियाके पूर्व प्रान्तमें फरासी समाजने १८८८ ई०में इन्हें (Chevalier de ordre Royal du Cambodge)की उपाधि दी।

१८८६ ई०की १ली जनवरीको प्रसिद्ध नेपोलियन वोनापार्टके प्रतिष्ठित फरासीसियोंका अत्युच्च सम्मान-पद Chevalier de la Legion de honour नामक उपाधि भी इन्हें मिली थी। ये जातिके ताँती और प्रकृति हिन्दू थे। अति सामान्य अवस्थासे निज चेष्टा द्वारा जितने मनुष्य अपने समाजमें उन्नत हो गए हैं ये उनमें-से एक हैं।

दुर्गाचरण वन्द्योपाध्याय—बङ्गालके एक प्रसिद्ध चिकित्सक। यूरोपीय चिकित्सामें इन्होंने ऐसी पारदर्शिता लाभ की थी कि बङ्गाल भरमें इनका मुकाबला कोई कर नहीं सकता था।

दुगाढ़ (सं० त्रि०) दुर-गाह कर्मणि क्त। कष्ट द्वारा अवगाह्य, जिसमें प्रवेश करना कठिन हो।

दुर्गादत्त मैथिल—बुन्देलापति हिन्दूपतिके आश्रयमें रह कर इन्होंने वृत्तमुक्तावली नामक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

दुर्गादत्त व्यास—हिन्दीके एक कवि तथा सुप्रसिद्ध कवि अम्बिकादत्त व्यासके पिता। ये काशीमें रहते थे तथा इन्होंने सं० १९२७ में कवितासंग्रह नामक एक ग्रन्थ लिखा।

दुर्गादास—एक विख्यात राठोरनेता। मारवाड़के राजा यशोवन्तसिंहकी मृत्युके बाद पिशाच-प्रकृति औरङ्गजेबने जब यशोवन्तके शिशु पुत्र तथा उनके परिवारको अपने अधीन करनेकी चेष्टा की, तब राठोर-वीर दुर्गादासने राठोर-कुलमानकी रक्षा करनेके लिये दिल्ली राजधानीमें मुसलमानी सेनाके साथ घमसान युद्ध किया था। उन्हींके परामर्शसे एक विश्वासी मुसलमान एक टोकरेमें यशोवन्तके पुत्र शिशु अजितको रख कर गुप्त भावसे दिल्ली छोड़ किसी निरापद स्थानमें ले आया था। जब कुमार निरापदसे इष्ट स्थानको पहुंच गये, तब दुर्गादास बहुतसे विश्वासी अनुचरोंको साथ ले वहां आए और कुमारको ले कर आबूशिखर पर चले गये। यहां ये एक संन्यासीके घरमें गुप्त रूपसे रह कर शिशु अजितका लालन पालन करने लगे। इनके यत्न और स्नेहसे शिशु अजितने रक्षित और युद्धविद्यादि शास्त्रमें सुशिक्षित हो अन्तको राजपूत समाजमें विशेष ख्याति प्राप्त की।

जिस समय दुर्गादास अजितको ले कर अर्बुदशिखर पर जा रहे थे, उसी समय इन्दुवंशीय परिहारके राजाने माड़वारके शून्य सिंहासन पर अपना अधिकार जमाया। राठोरजातिने नेतृहीन होने पर भी तुरंत ही परिहारोंको भगा कर माड़वारका उद्धार किया। नेतृहीन राठोरोंका वीरत्व देख कर औरङ्गजेब जल उठे और माड़वार-राज्यको ध्वंस करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। इस समय दुर्गादासने कुमार अजितको मेवारमें ला रखा था। औरङ्गजेबने ससैन्य चित्तौर पर आक्रमण कर दिया। इस समय उन्होंने सुना कि राठोरवीर दुर्गादासने झालोर पर अधिकार कर लिया है। मुगलसम्राट्ने फौरन इसका बदला लेनेके लिये झालोरमें सेना भेजी। मुगलसैन्यके पहुंचनेके पहले ही दुर्गादास झालोर पर अपना पूरा अधिकार जमा तथा वहांसे प्रचुर धन लेकर योधपुर चले गये थे। इस समय मुगलसम्राट्ने समस्त राजपूत-जातिको इसलामधर्ममें दीक्षित करानेका हुक्म दिया। उनका यह आदेश प्रतिपालन करनेके लिये उनके पुत्र कुमार अकबर मुगलसेनापति ताहबरखांसे जा मिले। नादोल नामक खेतमें भीषण युद्धकी आग धधक उठी। मेवार और माड़वारके वीरोंने मिल कर मुसलमानी सेनाको कुचल डाला। १७३७ सम्वत्के १४ आश्विनको जो महा-युद्ध छिड़ा था उसमें महावीर दुर्गादासने अपना अतुल वीरत्व और अपूर्व शौर्य दिखलाया था।

औरङ्गजेबके पुत्र कुमार अकबर राजपूतोंका असीम साहस और अनुपम वीरत्वको देख कर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने सोचा था, कि इस प्रकारके महावीरोंको यदि अपने पक्षमें कर सकें, तो मैं बहुत जल्द भारतका राज-छत्र ग्रहण कर सकता हूं। यह सोच कर उन्होंने

दुर्गादाससे मिलनेके लिये उनके पास एक दूत भेजा। दुर्गादासने सोचा, कि कुमार अकबरके साथ मित्रता करनेसे कुमार अजितके पक्षमें बहुत कुछ अच्छा होगा। ऐसा सोचते हुए वे सब राजपूत वीरोंको साथ ले मुगल-शिविरमें जा पहुंचे। दोनों दलमें सन्धि हो गई, औरङ्गजेबके चिरशत्रु राठोरोंने कुमार अकबरको भारतका सम्राट् स्वीकार कर लिया। तब अकबरने अपनेको सम्राट् बतला कर तमाम घोषणा कर दी। औरङ्गजेबको जब यह सम्वाद मालूम हुआ, तब उन्होंने अकबर और उनके साथी दुर्गादासको अच्छी तरह दण्ड देनेके लिये कूटनीति चलाई। उन्होंने पहले ताहवरखांको जो अकबरका दाहिना हाथ था, हस्तगत करनेके लिये महाव-पुरस्कारका लोभ दिखलाया। ताहवरखां लोभमें पड़ कर औरङ्गजेबके साथ मिल गये और उन्होंने एक विश्वासी फकीरको भेजकर राजपूतोंको यह जता दिया कि, 'पिता पुत्रमें अब मेल हो गया है, हम लोगोंने जो प्रतिज्ञा की थी, अभी वह मानो पूरी हो गई है। अब आप लोग अपने अपने देशको लौट जांय।' इतने यह भी कहा, कि ताहवरखां औरङ्गजेबके हाथसे मारे गये हैं। यह सुन कर राजपूतोंमें बहुत चलचल मचा। वे सबके सब तुरंत ही अजमेरसे १० कोस दूर चले आये। पीछे कुमार अकबरको जब इस विश्वासघातकताकी खबर मिली, तो वे फौरन विश्वस्त सेनाको साथ ले पुनः राजपूतोंसे जा मिले। यह रहस्य खुल जाने पर राजपूत लोग बहुत पश्चात्ताप करने लगे। उन्हें जैसा अवसर हाथ लगा था, कि उससे बहुत जल्द औरङ्गजेबका सत्यानाश और उनका भाग्योदय होता, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

अभी वीर दुर्गादास कुमार अकबरको ले कर माड़वारके पश्चिमको ओर चल पड़े। इधर औरङ्गजेबने अकबरको पकड़नेके लिये एक विश्वासी मनुष्यके हाथ ८ हजार स्वर्णमुद्रा दे कर दुर्गादासके पास भेजा। दुर्गादास वैसे पुरुष नहीं थे कि रिश्वतके वशोभूत हो जाते। उन्होंने उस रुपयेको ले कर अकबरको ही दे दिया। अकबर दुर्गादासको ऐसी आनुरक्ति और प्रतिज्ञापालनमें उन्हें अटल देख कर विस्मित हो गये। ऐसे उच्च हृदय व्यक्तिको उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। औरङ्गजेबने जब देखा, कि उनकी सब चालबाजी व्यर्थ निकली तब उन्होंने दुर्गादास और अकबरको पकड़ लानेके लिये बहुत जल्द एक दल सैन्य भेजी। दुर्गादास अपने बड़े भाई सोनिङ्गके हाथ अजितका कुल रक्षाभार सौंप कर आप अकबरको साथ लिए बाहर निकले। ज्योंही वे बाहर निकले, त्योंही मुगल-सेनाने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। दुर्गादास अपने अमित तेजसे शत्रु व्यूहको भेद कर दक्षिणको ओर चल दिये। औरङ्गजेबने झालर तक उनका पीछा किया था। अन्तमें जब उन्हें मालूम पड़ा, कि वे ठीक रास्तेसे नहीं आए, दुर्गादास दाहिनो ओर गुजरात और बाईं ओर चम्बलको छोड़ते हुए निरापदसे नर्मदाको ओर चले गये हैं, तब वे क्रोधसे अधीर हो उठे और अपने पुत्र आजिमको राठोरवंश ध्वंस कर डालनेके लिये हुक्म दे दिया और आप सेनाको साथ ले दक्षिणकी ओर रवाना हुए। इतना करने पर भी वे दुर्गादासका कुछ भी पराक्रम खर्व न कर सके। १७३८ सम्वत्में कुमार अकबर मराठोंके साथ मिल गये। अब दुर्गादास निश्चिन्त हो कर ससैन्य अजमेरको पहुंचे और वहांके मुसलमान शासनकर्त्ता पर चढ़ाई कर दी। पीछे वे महाराणाकी साहाय्यार्थ कुछ दिनके लिये चित्तौरको गये। इसके थोड़े ही समय बाद कुमार अकबर औरङ्गजेबके भयसे पारस्य देशको भाग गये थे। पहलेसे ही उनकी कन्या और परिवार राठोरोंके निरीक्षणमें था। पीछे राठोरपतिने मुगलराजनन्दिनोका सतीत्व नष्ट कर दिया, इस कलङ्कको आशङ्कासे औरङ्गजेबने अजितके साथ सन्धि कर ली। इतने दिनके बाद दुर्गादासको मनस्कामना पूरी हुई। उन्होंने जब देखा कि उनके यत्नका धन अजित समस्त आपदोंको झेल कर सिंहासन पर बैठे, तब वे फूले न समाये। जब तक वे जीते रहे, तब तक अजितको सुखसमृद्धिके लिये ही उन्होंने आत्मोत्सर्ग कर दिया था। इस प्रकारके उच्चप्रकृति, प्रभुभक्त, महावीर, सदाशय और दृढ़प्रतिज्ञ बहुत कम देखे जाते हैं।

दुर्गादास विद्यावागीश—नवद्वीप-निवासी एक पण्डित। ये नैयायिक प्रधान वासुदेव सार्वभौमके पुत्र थे। इन्होंने

वोपदेवकृत मुग्धबोध व्याकरण और कविकल्पद्रुमको टीका प्रणयन की। उस कल्पद्रुम टीकाका नाम धातु-दीपिका है। उसी टीकामें इन्होंने अपनेको वासुदेव सार्वभौमका पुत्र बतलाया है।

"शाके सोमरसेषु भूमिगणिते श्रीसार्वभौमात्मजो दुर्गादास इमां चकार विषदां टीकां सुबोधावधिः।"

फिर एक जगह इन्होंने लिखा है—

"इति वासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्यात्मज श्रीदुर्गादास-शर्म विरचित धातुदीपिका नाम कविकल्पद्रुमटीका समाप्ता।"

इनकी धातुदीपिकाको टीका १५११ वा १५६१ शकाब्दमें समाप्त हुई है, क्योंकि 'शाके सोमरसेषु' रसा-इषु और रसइषु इन दोनोंके ही मिलनेसे 'रसेषु' होता है। रसा शब्दसे १ और रस शब्दसे ६का बोध होता है। यदि यहां पर रसा-इषु ऐसा ही लिया जाय, तो वह टीका १५११ शकको साबित होती है और इन्हें सार्वभौमके पुत्र मान सकते हैं। १४५५ शकमें चैतन्यका देहान्त हुआ। उस समय सार्वभौम जीवित थे और यदि १५११ शकमें 'धातुदीपिका' रची गई हो, तो दोनोंमें ४६ वर्षका फर्क पड़ता है। यदि दुर्गादासको कुछ दीर्घ-जीवी समझ लें, तो इन्हें सार्वभौमके पुत्र माननेमें कोई अत्युक्ति नहीं। सार्वभौम जगद्विख्यात पण्डित थे, इसलिये हो सकता है, कि उन्हींके नाम पर अपना परिचय दिया हो। दुर्गादासके बाद सार्वभौम-वंशका कोई परिचय नहीं मिलता।

दुर्गादास विद्यावाचस्पति—गुरुपादुकापञ्चकस्तोत्रके टीकाकार।

दुर्गादाससन्मिश्र—न्यायबोधिनी नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

दुर्गादेवी—महाराष्ट्र देशमें प्रसिद्ध एक महादुर्भिक्ष। इस प्रकारके दुर्भिक्षकी बात आज तक नहीं सुनी गई है। (१३९६ से १४०७ ई० तक) बारह वर्ष तक पानीके नहीं पड़ने पर यह दुर्भिक्ष हुआ था। दुर्भिक्षके १ले वर्षमें महमूदशाह बाह्मनीने गुजरातसे रसद लानेके लिये १२००० बैल नियुक्त किये थे। किन्तु इतनेसे होता क्या? जलाभावसे थोड़े ही समयमें सारी आबादी मरु-भूमिमें बदल गई। कितने आदमी मरे, उसकी शुमार नहीं। मुसलमान शासनकर्त्ता देश छोड़ कर भाग गये। इसी मौकेमें हिन्दूसामन्तोंने यहां अपनी गोटी बैठा ली। १२ वर्षके बाद वृष्टि होने पर यह दुर्भिक्ष जाता रहा।

दुर्गाधिकारी (सं० पु०) दुर्गका अधिकारी, किलेदार।

दुर्गाध्यक्ष (सं० पु०) दुर्गस्य अध्यक्षः ६-तत्। दुर्गरक्षक, किलेदार।

जो अनाक्रार्य अर्थात् जिसको जल्दी जीत न सके, वीर, कुलीन और कार्यकुशल हों वे ही दुर्गाध्यक्ष हो सकते हैं।

दुर्गानवमी (सं० स्त्री०) दुर्गाया पूजोपलक्षिता नवमी। कार्त्तिकमासकी शुक्ल-नवमी, चान्द्र कार्त्तिककी शुक्ल-नवमीको दुर्गानवमी कहते हैं। यह तिथि त्रेतायुग-की आद्यातिथि है अर्थात् इस तिथिमें त्रेतायुगकी प्रथमोत्पत्ति हुई थी। इस दिन जगद्धात्रीदेवीका तीन बार पूजन करना होता है, पूर्वाह्न, मध्याह्न और सायाह्न। जो इस प्रकारकी पूजा करते हैं, उन्हें सब प्रकारके अभिलषित फल मिलते हैं। जो त्रिकालमें पूजा करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे केवल एक कालमें अर्थात् एक बार पूजा कर सकते हैं। विधिपूर्वक चार मास चण्डिका-की पूजा करनेमें जो फल होता है, नवमी दिन जगद्धात्रीकी पूजा करनेसे भी वह फल लिखा है।*

जगद्धात्री देखो।

दुर्गापुर—मैमनसिंह जिलेके नेत्रकोणा उपविभागका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २५° ८' उ० और देशा० ९०° ४१' पू०में अवस्थित है। यहां पटसनसे एक प्रकारका कागज तैयार होता है। लोकसंख्या प्रायः ४२२ है। यहां सुसङ्गके महाराजका एक सुन्दर भवन है।

दुर्गाप्रसाद—१ एक हिन्दी-कवि। इन्होंने सं० १९२८में गजेन्द्रमोक्ष नामक एक पुस्तक लिखी।

२ हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये कायस्थ-जातिके थे तथा बुन्देलखण्डके अन्तर्गत चरखारी नामक ग्राममें रहते थे। इन्होंने भानुपुराण, गोवर्धनलीला, भक्तिशृङ्गार

* "कार्त्तिकस्य सिते पक्षे नवम्यां जगदीश्वरीं।
त्रिकालमेककालं वा वर्षे वर्षे प्रपूजयेत्॥"

शिरोमणि, ध्यानस्तुति, मिलापलीला और राधाकृष्णाष्टक नामक ग्रन्थ प्रणयन किये।

२ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने अजितसिंह फतेह रस अर्थात् नायकरासो नामको एक पुस्तक लिखी।

दुर्गाप्रसाद मिश्र—हिन्दीके परमोत्तम लेखकों तथा कवियोंमेंसे एक। इनका जन्म संवत् १८१६को काश्मीरमें हुआ था। संस्कृत, हिन्दी और बंगलामें इनका पूरा दखल था तथा ये कुछ कुछ अंगरेजी भी जानते थे। जीवकार्थ ये सपरिवार कलकत्तेमें ही रहते थे। इन्होंने कई समाचार पत्र चलाये तथा सम्पादित किये। उनमेंसे प्रसिद्ध पत्र भारतमित्र इन्होंका चलाया हुआ है। इसके अतिरिक्त सारसुधानिधि, उचितवक्ता और मारवाड़ो-बन्धु नामक पत्र इन्होंने प्रकाशित किये तथा २०, २२ पुस्तकें भो लिखीं। सं० १८६७को ५१ वर्षकी अवस्थामें इनका स्वर्गवास हुआ।

दुर्गाभक्तितरङ्गिणी (सं० स्त्री०) एक तन्त्रका नाम। विद्यापति देखो।

दुर्गामाहात्म्य (सं० क्लो०) दुर्गायाः माहात्म्यं। देवीमाहात्म्य, भगवतोका महिमा। चण्डोमें देवीका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित है, इसोसे चण्डोको देवी माहात्म्य कहते हैं।

दुर्गाराम—पाषण्डखण्डक नामक संस्कृत-ग्रन्थकार।

दुर्गावतो—चित्तौरके राना सङ्गकी कन्या। रेसिनके राजा शिलोदीके साथ इनका विवाह हुआ था। १५३१ ई०में गुजरातके अधिपति बहादुर शाहने शिलोदीको कैद कर उन्हें बलपूर्वक मुसलमानी धर्ममें दीक्षित किया। कुछ समयके बाद ही शिलोदीके भाई लक्ष्मणने जब रेसिनका दुर्ग बहादुर शाहके हाथ सौंप देनेको ठाना, तब रानो दुर्गावतीने मुसलमानोंके पंजेमें जानेको अपेक्षा विष खा कर मरना ही श्रेय समझा। यह सोच कर इन्होंने सात सौ राजपूत-स्त्रियोंके साथ प्रज्वलित कुण्डमें आत्मसमर्पण किया।

दुर्गावतो—महोबाके राजाको कन्या। हमीरपुर जिलेके महोबानगरमें चन्देल राजपूतोंकी राजधानो थी। इनका रूप गुण सुन कर गढमण्डलके गोंड राजपूतवंशीय दलपत् शाहने इनसे विवाह करनेको विचारा। दुर्गावतो किसी दूसरेके साथ वरी जा चुकी थी और साथ साथ दलपत्‌शाह जातिमें इनसे होन भो थे। इन्हीं दो कारणोंसे विवाहके उपयुक्त न ठहराये गए। इस पर दलपत्‌ने हतोत्साह न हो दलबलके साथ दुर्गावतीके पिता पर चढ़ाई कर दी और उन्हें परास्त कर दुर्गावतोको निज धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्गावतीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके तोसरे ही वर्ष दलपतशाह रानी दुर्गावतो पर राज्यभार और पुत्र वोरनारायणका रक्षा-भार सौंप आप इस लोकसे चल बसे। दुर्गावतो दयाधर्ममें उन्नत और प्रजा-पालनमें सर्वदा कर्त्तव्यपरायणा थीं। मध्यप्रदेशमें आज भो हरएक घरमें उनको कीर्त्ति गाई जातो है। इनके अतुल ऐश्वर्यको कथा सुन कर सम्राट् अकबरके माणिकपुरस्थ प्रतिनिधि आसफखाँने १८००० सेनाको साथ ले मण्डलको राजधानो सिङ्गगढ़ पर धावा मारा। रानो दुर्गावती युद्धमें परास्त हो कर पहले गढा (आधुनिक जब्बलपुरके समीप) और पीछे वहाँसे मण्डलको चलो गईं। यहां फिर भो लड़ाई छिड़ी। पहले दिन तो रानो दुर्गावतोको हो जीत हुई, लेकिन दूसरे दिन आसफखाँ जब कमानसे काम लेने लगे, तब रानोकी बहुत क्षति हुई। तिस पर भो ये असीम साहससे अपनी सेनाका परिचालन करती हो रहीं, युद्धक्षेत्र छोड़ा नहीं। युद्धकालमें एक तोरसे इनको बाईं आँख और दूसरेसे गला भिद गया। बाद इनके पीछेकी सूखो नदोमें सहसा जलके आ जानेसे इनको सब सेनायें तितर बितर हो गईं। तब जयकी आशा न देख दुर्गावतो हताश हो गईं और माहुतको कमरसे तेज छुरोको ले कर अपनी छातोमें घुसेड़ दिया और पञ्चत्वको प्राप्त हुईं।

दुर्गाशङ्कर—इन्होंने मल्लारिपद्धति नामक ज्योतिषकी टीका और आगारविनोद नामक शिल्पशास्त्र प्रणयन किया है।

दुर्गाशङ्करपांडे—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सम्वत् १८४६में हुआ था। इन्होंने नटवरपचीसो, लेख और लेखक, पुस्तकावलोकन, अभिषेक, धर्मनीतिशिक्षा तथा व्रजनाथशतक नामक ग्रन्थ लिखे।

दुर्गाष्टमी (सं० स्त्री०) आश्विन और चैत्रके शुक्लपक्षको अष्टमी।

दुर्गासहाय—एक प्रसिद्ध संस्कृत पण्डित। इन्होंने अन्दरत्न और मुहूर्त्तरचन नामक संस्कृत ज्योतिष ग्रन्थ तथा वृत्तविवेचन नामक छन्दोग्रन्थ रचे हैं।

दुर्गास्मरण (सं० क्लो०) दुर्गायाः स्मरणं ६ तत्। दुर्गा नाम स्मरण, दुर्गाका नाम जपना। तन्त्रसारमें लिखा है, कि परिदृश्यमान सम्पूर्ण जगत् ही दुर्गामय है वा वे ही इस संसारके कारण हैं, उन्हींसे संसारकी उत्पत्ति हुई है। मैं दुर्गास्वरूप अर्थात् अभेद हूं, ऐसी चिन्ताको दुर्गास्मरण कहते हैं।

दुर्गाह्य (सं० त्रि०) दुःखेन ग्राह्यते गाह-ण्यत्। जिसका अवगाहन करना कठिन हो।

दुर्गाह्व (सं० पु०) दुर्गा आह्वा यस्य। भूमिज गुग्गुलु, भूमिगूगल।

दुर्गुण (सं० पु०) दुष्टगुण, दोष, ऐब, बुराई।

दुर्गृभि (सं० त्रि०) दुःखेन गृह्यतेऽसौ दुर्-ग्रह बाहु० कर्मणि कि, सम्प्रसारणं वेदेऽस्य भः। दुर्ग्राह, जिसे कठिनतासे पकड़ सकें।

दुर्गेश (सं० पु०) दुर्गाध्यक्ष, किलेदार।

दुर्गोत्सव (सं० पु०) दुर्गायाः उत्सवः। दुर्गापूजा निमित्त उत्सव, दुर्गापूजाका उत्सव जो नवरात्रमें होता है।

दुर्ग्रह (सं० त्रि०) दुःखेन गृह्यतेऽसौ दुर्-ग्रह कर्मणि खल्। १ दुःख द्वारा ग्रहणीय, जो जल्दी पकड़नेमें न आवे। २ दुर्ज्ञेय, जो कठिनतासे समझमें आवे। ३ दुरासक। (स्त्री) ४ अपामार्ग, चिचड़ी।

दुर्ग्रहा (सं० स्त्री०) १ मुस्ता, मोथा। २ अपामार्ग, चिचड़ी।

दुर्ग्राह्य (सं० त्रि०) दुःखेन गृह्यतेऽसौ दुर्-ग्रह कर्मणि ण्यत्। ग्रहण करनेमें अशक्य, जिसे कठिनतासे पकड़ सकें।

दुर्घट (सं० त्रि०) दुःखेन घटयतेऽसौ दुर्-घट कर्मणि खल्। दुःसम्पाद्य, मुश्किलसे होने लायक।

दुर्घटना (सं० स्त्री०) दुर्दुष्टा अशुभा घटना। १ अशुभ घटना, ऐसी बात जिसके होनेसे बहुत कष्ट या पीड़ा हो। २ विपद्, आफत।

दुर्घोष (सं० पु०) दुर्दुष्टः घोषो निनादो यस्य। १ भल्लूक, भालू। २ दुष्टशब्द, कटुवचन। (त्रि०) ३ दुष्टशब्दयुक्त, जिससे कटु या कर्कश वचन निकाले।

दुर्जन (सं० पु०) दुष्टो जनः प्रादिस०। दुष्टजन, खल, खोटा आदमी।

यदि दुर्जन विद्याभूषित भी हो, तो भी उसका संग नहीं करना चाहिये। मणिभूषित सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता? दुर्जन प्रियवादी होने पर भी उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसके मुखमें तो मधु है, पर हृदयमें हलाहल विष भरा है। इन्हीं सब कारणोंसे दुर्जनको दूरसे ही परित्याग करना चाहिये। दुर्जन सर्पसे भी बढ़ कर भयंकर है। अतः दुर्जनसे सदैव अलग ही रहना चाहिये। (चाणक्य)

कुमारसम्भवमें लिखा है, कि दुर्जन अपकार द्वारा ही शान्त होता है न कि उपकारसे। दुर्जनका उपकार करना अच्छा नहीं है। जो दुर्जनका संग करता है, वह महापातक है।

दुर्जनता (सं० स्त्री०) दुष्टता, खोटापन।

दुर्जनदास—एक हिन्दी कवि। इन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम रागमाला है।

दुर्जनशाल—राजपूतानेके अन्तर्गत कोटाके एक प्रसिद्ध राजा। ये कोटाराज भीमसिंहके तीसरे लड़के थे। पिताके मरने पर पहले इनके बड़े भाई अर्जुनसिंह राजा हुए थे, किन्तु चार वर्ष राज्य करनेके बाद निःसन्तान अवस्थामें उनकी मृत्यु हो गई। पीछे मझले श्यामसिंह और छोटे दुर्जनशाल ये दोनों भाई सिंहासनके लिये झगड़ने लगे। अन्तको दोनोंमें खूब भारी लड़ाई छिड़ी। युद्धमें श्यामसिंह मारे गये, इस पर दुर्जनशालके शोकका पारावार न रहा। अन्तमें १७८० सम्वत्‌को शोकसन्तप्त हृदयसे ये पितृसिंहासन पर आरूढ़ हुए।

मुगल-सम्राट् महम्मद शाह इन्हें बहुत चाहते थे। इनके प्रार्थनानुसार महम्मद शाहने यह हुक्म चला दिया था कि यमुनाके किनारे जहां जहां हरजाति वास करती हैं, वहां वहां मुसलमान लोग गोहत्या नहीं कर सकते।

१७९५ सम्वत्‌में हरराज दुर्जनशालके साथ महाराष्ट्र-नायक पेशवा बाजीरावने मित्रता की। किन्तु यह मित्रता स्थायी न रही। १८०० सम्वत्‌को अम्बरराज ईश्वरीसिंहने कोटाको दखलमें लानेकी इच्छासे जाट

और महाराष्ट्रोंके साथ दोस्ती कर कोटा पर चढ़ाई कर दी। इस समय महावीर दुर्जनशाल अपने विपुल विक्रमसे राज्य-रक्षा कर रहे थे। तीन मास अवरोधके बाद ईश्वरीसिंहकी सब चेष्टायें व्यर्थ हुईं और वे निराश हो कर लौट आये। इस युद्धमें महाराष्ट्र-दलके अन्यतम नेता जयप्पा सिन्धियाका एक हाथ तीरसे कट गया था। प्रधान सेनापति हिम्मतसिंहके गुणसे दुर्जनशालने बाखोरावसे नाहरगढ़का दुर्ग पाया था।

ईश्वरीसिंहके भाग जाने पर वीरवर दुर्जनशालने पूर्व शत्रुताको भूल कर उमेदसिंहको उनके पैतृक बुन्दी-राज्यमें अभिषिक्त करनेके लिये खूब चेष्टा की। उस समय इनके परामर्शसे उमेदसिंहने होलकरको सहायता ले कर बुन्दी-राज्यको वापिस किया सही, किन्तु इस उपकारमें इन्हें भी होलकरको स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। पीछे इन्होंने अनेक देश जीत कर कोटा राज्यमें मिला लिये। १८१० संवत्‌को हर और खीची इन दो जातियोंमें घमसान युद्ध उपस्थित हुआ। इस युद्धमें उमेदसिंहने दुर्जनशालकी खूब सहायता की थी।

तीन वर्ष राज्य करनेके बाद दुर्जनशाल इस लोकसे चल बसे। जिस गुणके रहनेसे राजपूत प्रशंसनीय होते हैं, वे सभी गुण इनमें पाये जाते थे। अमायिकता, उदारता और साहसिकता इनमेंसे एकका भी इनमें अभाव न था। वे गुण और विश्वासके बड़े पक्षपाती थे। उनके समयमें यह नियम प्रचलित था, कि सन्ध्याके बाद कोटाका नगरद्वार बन्द हो जायगा, फिर कोई भी नगरमें प्रवेश न कर सकेगा। संयोगवश एक दिन वे युद्धसे लौट कर नगरद्वार पर उपस्थित हुए। उस समय रात हो चुकी थी, दरवाजा बन्द हो गया था। इनके कहनेसे नौकरोंने फाटकमें धक्का दिया और इन्होंने अपना परिचय दे कर फाटक खोलनेको कहा। द्वार-रक्षकने भीतरसे जवाब दिया कि, 'रातमें दरवाजा खोलनेका हुक्म नहीं है, अतः आप रात भर कहीं दूसरी जगह जा कर रहें।'

सवेरे जब दुर्जनशालने नगरमें प्रवेश किया, तब द्वार रक्षकने उनके चरणों पर अस्त्र रख कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की। दुर्जनशालने उसके कर्त्तव्यकार्यसे खुश हो कर उसे यथेष्ट पारितोषिक दिये। इनके गुणके विषयमें अनेक दन्त-कथाएं प्रचलित हैं।

दुर्जय (सं० त्रि०) दुःखेन जीयतेऽसौ दुर्-जि-खल्। १ जय करनेमें अशक्य, जिसे जीतना बहुत कठिन हो। (पु०) २ विष्णु। ३ कार्त्तवीर्य वंशमें उत्पन्न अनन्त राजाके एक पुत्रका नाम। (कूर्मपुराण) ४ दानवविशेष, एक असुरका नाम। ५ राक्षसका नाम।

दुर्जयगिरि—कामरूपका एक विख्यात पहाड़। कालिका-पुराणमें इस पहाड़का विषय लिखा है। कामरूप देखो।

दुर्जयन्त (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम।

दुर्जर (सं० त्रि०) दुःखेन जीर्यति जॄ अच्। कष्टपरिपाच्य, जो कठिनतासे पचे।

दुर्जरफल (सं० क्ली०) कर्कटिका, ककड़ी।

दुर्जरा (सं० स्त्री०) दुर्जर-टाप्। ज्योतिष्मतीलता, मालकंगनी।

दुर्जात (सं० क्ली०) दुष्टं जातं प्रा० स०। १ व्यसन। २ असमञ्जस, कठिनता, संकट। (त्रि०) ३ जिसका जन्म बुरी रीतिसे हुआ हो। ४ जिसका जन्म वृथा हुआ हो। ५ अभागा, नीच।

दुर्जाति (सं० त्रि०) दुःस्थिता जाति यस्य। १ निन्दित-वंशीय, बुरे कुलका। दुःस्थिता जातिर्जन्म यस्य। २ जिसका जन्म बुरी रीतिसे हुआ हो। ३ जिसकी जाति बिगड़ गई हो। दुष्टा जातिः। ४ बुरी या नीच जाति।

दुर्जीव (सं० त्रि०) दुःस्थितो जीवो जीवनोपायो यस्य। १ परभक्ष्यादुपजीवी, दूसरेके दिये अन्न पर रहनेवाला। दुर् जीव भावे खल्। (क्ली०) २ निन्दित जीवन, बुरा जीवन। दुःखं जीवति जीव-अच्। ३ दूसरेके अधीन होकर जीवनधारण।

दुर्जेय (सं० त्रि०) दुःखेन जीयतेऽसौ दुर्-जी-यत्। दुर्जय, जिसे जीतना अत्यन्त कठिन हो।

दुर्ज्ञेय (सं० त्रि०) दुःखेन ज्ञायते ज्ञा कर्मणि यत्। दुर्बोध्य, जो जल्दी समझमें न आ सके।

दुर्णय (सं० पु०) दुष्टो नयः, प्रादिस० ततो णत्वं। १ दुष्टा नीति, बुरी चाल। दुःस्थितो नयो यस्य। (त्रि०) २ दुष्ट नीतियुक्त, बुरी चालवाला।

दुर्णश (सं॰ त्रि॰) दुःखेन नश्यति दुर्-नश अच् वेदे णत्वं। कष्ट द्वारा नष्ट, जो बहुत मुश्किलसे नष्ट हो।

दुर्णामन् (सं॰ स्त्री॰) दुःखितं नामोऽस्य 'पूर्वपदात् संज्ञायां' इति णत्वे प्राप्ते क्षुभ्नादिपाठात् न णत्वं इति केचित्, वेदे तु णत्व मध्यपाठोऽदृश्यते। १ दीर्घकोशिका, शुक्ति नामक जलजन्तु, सुतुही। २ अर्शरोग, बवासीरकी बीमारी। बहुत पाप करनेसे अर्शरोग होता है, अतः पाप ही अर्श रोगका कारण है। इसीसे इसे निन्दित समझ कर इसका नाम दुर्णामन् हुआ है।

दुर्णीति—दुर्नीति देखो।

दुर्दम (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दम्यतेऽसौ दुर्-दम-कर्मणि खल्। १ अदमनीय, जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। २ प्रचण्ड, प्रबल। (पु॰) ३ रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न वसुदेवके एक पुत्रका नाम।

दुर्दमन (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दम्यतेऽसौ बाहु॰ युच्, दुःखेन दमनं यस्य इति वा। १ दुःख द्वारा दमनीय, जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। २ जनमेजयवंश जात शतानीकात्मज नृपभेद, जनमेजयके वंशमें उत्पन्न शतानीक राजाके पुत्र।

दुर्दमनीय (सं॰ त्रि॰) १ जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। २ प्रचण्ड, प्रबल।

दुर्दम्य (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दम्यते दम यत्। १ अदमनीय, जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। (पु॰) २ बछतर, गायका बछड़ा।

दुर्दर्प (सं॰ पु॰) भल्लातक वृक्ष, भिलावाँ।

दुर्दर्श (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दृश्यतेऽसौ दुर्-दृश कर्मणि खल्। १ दुःखद्वारा दर्शनयोग्य, जिसे देखना अत्यन्त कठिन हो। २ जो देखनेमें भयङ्कर हो।

दुर्दर्शन (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दृश्यते दृश-युच्। १ दुर्दर्श, जो जल्दी दिखाई न पड़े। (पु॰) २ कौरवोंका एक सेनापति।

दुर्दशा (सं॰ स्त्री॰) दुष्टा दशा। दुरवस्था, बुरी दशा, खराब हालत।

दुर्दान्त (सं॰ त्रि॰) दुःखेन दान्तः दम-क्त। १ दुर्दमनीय, जिसका दमन करना कठिन हो। २ प्रचण्ड, प्रबल। (पु॰) ३ कलह। ४ बछतर, गायका बछड़ा। ५ शिव, महादेव।

दुर्दिन (सं॰ क्ली॰) दुष्टं दिनं। १ मेघाच्छन्न दिन, ऐसा दिन जिसमें बादल छाए हों। २ घनान्धकार, बहुत अन्धकार। ३ वृष्टि, बरसा। ४ दूषित दिनमात्र, बुरा दिन। जिस दिन भगवान्का नाम नहीं लिया जाता वही दिन दुर्दिन है, मेघाच्छन्न दिन दुर्दिन नहीं है। (शब्दार्थचि॰ धृत) ५ दुर्दशाका समय, बुरा वक्त।

दुर्दिवस (सं॰ पु॰) दुष्टः दिवसः प्रादिस॰। दुर्दिन, खराब दिन, बरसातका दिन।

दुर्दुरिया—बङ्गाल प्रदेशके ढाका जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन विध्वस्त ग्राम। भूइयां राजाओंका बनाया हुआ दुर्गका ध्वंसावशेष आज भी देखनेमें आता है। लोग इसे रानीबाड़ी भी कहते हैं। एक समय यह दुर्ग अर्द्ध चन्द्राकारमें स्थापित था। इसके चारों ओर बनार नदी बहती थी। १८३८ ई॰में भी प्रायः २ मील तक १२ से १४ फुट ऊंची चहार-दीवारी थी। दुर्गकी अवस्थिति देखनेसे मालूम पड़ता है, कि एक समय दो मकान और एक बुर्ज थे। इस ग्रामके पास ही पहले एक नगर था। अभी टूटी फूटी ईंटें आदि उसका परिचय देती हैं।

दुर्दुरूढ़ (सं॰ त्रि॰) दोलयति उत्क्षिपति आस्तिकतामिति दोलि बाहु॰ कूटप्रत्ययेन साधुः। नास्तिक।

दुर्दुहा (सं॰ स्त्री॰) वह जिसके दूहनेमें कठिनता हो

दुर्द्यूत (सं॰ क्ली॰) दुष्टं द्यूतं प्रादिस॰। कपट द्यूत-क्रीड़ा, छलसे पाशा खेलना।

दुर्दृशीक (सं॰ क्ली॰) दुर्-दृश्यां कर्मणि ईकक्। दुर्दर्शनीय विष, वह विष जो जल्दी दिखाई न पड़े।

दुर्दृष्ट (सं॰ त्रि॰) दुष्टं दृष्टं। रागादि दोष दुष्ट, जिसका राग, लोभ आदिके कारण सम्यक् निर्णय न हुआ हो। याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें लिखा है कि ऐसे मुकदमेको राजा पुनः निरीक्षण करें और यदि अन्याय हुआ हो, तो न्यायाधीश तथा मुकदमा जीतनेवालोंको उसका दूना दण्ड दें जितना हारनेवालेको अन्यायसे हुआ हो।

दुर्दैव (सं॰ क्ली॰) दुष्टं दैवं। १ दुरदृष्ट, दुर्भाग्य। २ पाप। ३ बुरा संयोग, दिनोंका बुरा फेर।

दुर्दैववत् (सं॰ त्रि॰) दुर्दैवं विद्यतेऽस्य दुर्दैव मतुप

भस्य वः। दुरदृष्टयुक्त, अभागा, बुरी किसमतवाला।

दुद्रिता (सं० स्त्री०) एक लताका नाम।

दुद्रुम (सं० पु०) दुष्टो द्रुमः। पलाण्डु, प्याज।

दुर्द्धर (सं० पु०) दुर्दुःखेन ध्रियते धृ-कर्मणि खल्। १ नरकविशेष, एक नरकका नाम। २ ऋषभौषधि। ३ पारद, पारा। ४ भल्लातक, भिलावां। ५ महिषासुरका एक सेनापति। ये भगवतीदेवीके साथ युद्धमें मारे गये। (मार्क०पु० ८३।१८) ६ धृतराष्ट्रका पुत्रभेद, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ७ शम्बरासुरके एक मन्त्रीका नाम। ८ विष्णु। ९ रावणका सेनापति। अशोकवाटिकाके उजाड़नेके समय जब हनुमान्के हाथसे बहुतसे राक्षस मारे गये तब रावणने उसे पकड़नेके लिये दुर्द्धर आदिको भेजा था। यह राक्षस हनुमान्के हाथसे मारा गया था। (त्रि०) १० जिसे कठिनतासे पकड़ सके। ११ प्रबल, प्रचण्ड। १२ दुर्ज्ञेय, जो कठिनतासे समझमें आवे।

दुर्द्धरा—महाराज चन्द्रगुप्तकी पटरानी। चाणक्य शत्रु हाथसे बचानेके लिये चन्द्रगुप्तको प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा करके विषपानका अभ्यास कराते थे, किन्तु चन्द्रगुप्तको इसका पता नहीं। संयोगवश एक दिन रानी दुर्द्धरा उनके साथ खानेको बैठीं। उस समय वे पूर्णगर्भा थीं और विष खानेका उन्हें अभ्यास भी न था। अतः विषाक्त भोजन करते समय चाणक्य आ पहुंचे और 'यह क्या कर रही हो' ऐसा कहते न कहते रानी पञ्चत्वको प्राप्त हुईं। बाद चाणक्यने उनके गर्भको फाड़ कर गर्भस्थ बालकको बाहर निकाल लिया और वही बालक पीछे बिन्दुसार नामसे प्रसिद्ध हुआ।

दुर्द्धरीतु (सं० पु०) दुर्-धृ बा० ईतुन। दुर्द्धरणीय, वह जो जल्दी पकड़नेमें न आ सके।

दुर्द्धर्तु (सं० त्रि०) दुर्द्धर, जिसे कठिनतासे पकड़ सके।

दुर्द्धर्म (सं० त्रि०) दुःस्थितो धर्मो यस्य, समासान्तविधेरनित्यत्वात् आर्षेन क्वचित् अनिच् समा०। दुष्ट धर्मयुक्त।

दुर्द्धर्ष (सं० त्रि०) दुःखेन धृष्यतेऽसौ दुर्-धृष कर्मणि खल्। १ अधर्षणीय, जिसका दमन करना कठिन हो। २ दुर्जेय, जिसे परास्त करना कठिन हो। ३ प्रबल, प्रचण्ड, उग्र। (पु०) ४ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।३) ५ रावणके दलका एक राक्षस।

दुर्द्धर्षण (सं० त्रि०) दुर्-धृष-युच्। दुःख द्वारा धर्षणीय, जिसे जल्दी वशमें न ला सकें।

दुर्द्धर्षता (सं० स्त्री०) दुर्द्धर्षस्य भावः दुर्द्धर्ष तल्-टाप्। दुर्द्धर्षका भाव।

दुर्द्धर्षा (सं० स्त्री०) दुर्द्धर्ष-टाप्। १ नागदमनी, नागदौना। २ कन्थारी वृक्ष।

दुर्द्धा (सं० स्त्री०) दुर्-धा-भावे अ। दुष्टधान।

दुर्द्धार्य (सं० त्रि०) दुःखेन धार्यते धारि-यत्। दुर्बोध्य, जो जल्दी समझमें न आ सके।

दुर्द्धाव (सं० त्रि०) दुर्-धाव-खल्। दुःशोधनीय, जिसका संशोधन करना कठिन हो।

दुर्द्धित (सं० त्रि०) दुर्-धा कर्मणि क्त, वेदेन धाञो हिः। दुष्टभावसे स्थापित।

दुर्द्धी (सं० त्रि०) दुःस्थिता धीर्यस्य। दुष्टबुद्धियुक्त, बुरी बुद्धिका।

दुर्द्धुर (सं० त्रि०) दुर् धुर्वं हिंसने कर्मणि क्विप्। दुःख द्वारा हिंसनीय।

दुर्द्धुरूढ (सं० पु०) दुर् धुर्वं डट् पृषो० साधुः। युक्ति बिना गुरुवाक्य अमान्यकारी शिष्य, वह शिष्य जो गुरुकी बात जल्दी न माने।

दुर्नय (सं० पु०) दुर्-नी-अच्। नीति विरुद्धाचरण, कुनीति, बुरी चाल।

दुर्नाद (सं० पु०) १ अप्रिय ध्वनि, बुरा शब्द। (त्रि०) २ कर्कशध्वनि करनेवाला।

दुर्नामक (सं० पु०) दुष्टं नामा अस्य। अर्शरोग, बवासीरकी बीमारी।

दुर्नामन् (सं० पु०-स्त्री०) दुःनिन्दितं नाम यस्य। १ दीर्घकोषिका, सीप, सुतुही। २ कुख्याति, बुरा नाम, बदनामी। ३ दुष्ट वचन, गाली।

दुर्नामारि (सं० पु०) दुर्नाम्नः अर्शरोगस्य अरिः शत्रुः। शूरण, जीमीकन्द। यह अर्शरोगको दूर कर देता है।

दुर्नाम्नी (सं० स्त्री०) दुर् निन्दितं नाम यस्याः ङीप्। दुर्नामा, शुक्ति, सीप।

दुर्निग्रह (सं० त्रि०) दुःखेन निगृह्यते दुर् नि-ग्रह-खल्। दुर्दम, जिसे जल्दी वशमें न ला सकें।

दुर्निमित (सं० त्रि०) दुर्-नि-मि-क्त। १ दुष्टभावसे चिह्न, जो बुरे ख्यालसे फेंक दिया गया हो।

दुर्निमित्त (सं० क्ली०) दुष्टं निमित्तं। भावि रिष्टसूचक शकुनभेद, होनेवाले अरिष्टको सूचित करनेवाला अशकुन, बुरा सगुन। विपद् आनेके पहले ही बुरे सगुन दीख पड़ते हैं। ऐसी हालतमें उनकी शान्ति करनी चाहिये।

दुर्नियन्तु (सं० त्रि०) दुर्-नि-यम-तुन्। दुःख द्वारा नियन्तव्य, जिसे बहुत कठिनतासे अधीन कर सकें।

दुर्निरीक्ष (सं० त्रि०) दुःखेन निरीक्ष्यते निर् ईक्ष-खल्। बहुत कष्टसे जो निरीक्षण किया जाय, जिसे देखते न बने। २ भयङ्कर। ३ कुरूप।

दुर्निरीक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन निरीक्ष्यते निर्-ईक्ष-यत्। दुर्निरीक्ष देखो।

दुर्निवर्त्य (सं० त्रि०) दुःखेन निवर्त्यते दुर्-नि वृत-यत्। जो दुःखसे निवर्त्तित हो, जो बहुत मुश्किलसे किया जाय।

दुर्निवार (सं० त्रि०) दुर्-नि-वृ-घञ्। जो बहुत कष्टसे निवारण किया जाय, जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्निवार्य (सं० त्रि०) दुर्-नि-वृ-ण्यत्। १ जो बहुत कष्टसे निवारण किया जाय, जो जल्दी रोका न जा सके। २ जो जल्दी हटाया न जा सके। ३ जिसका होना प्रायः निश्चित हो।

दुर्निष्प्रपतर (सं० क्ली०) दुःखेन निष्प्रपतति दुर्-निर प्र-पत-अच्, अतिशयेन तत्तरप्, वेदे तकारलोपः। दुःख द्वारा निष्क्रान्ततर, जो जल्दी टल न सके।

दुर्नीत (सं० क्ली०) दुर्-नी-भावे क्त। १ नीतिविरुद्धाचरण, बुरी नीति, कुचाल। (त्रि०) २ दुर्नीतियुक्त, बुरी चालवाला।

दुर्नीति (सं० स्त्री०) दुर् दुष्टा नीतिः दुर्-नी-क्तिन्। दुष्टानीति, अन्याय, अयुक्त आचरण। अन्यायी होनेसे अनेक तरहके कष्ट भोगने पड़ते हैं, इसलिये हरएकका दुर्नीति परिहार करना मुख्य कर्त्तव्य है। यदि राजा दुर्नीतियुक्त हो, तो उसका राज्य बहुत जल्द नष्ट हो जाता है। दुर्नीति अवलम्बन कर जो कोई काम किया जाय, वही उच्छृङ्खल हो जाता है। नीति देखो।

दुर्नीतिभाव (सं० पु०) दुर्नीत्याः भावः। दुर्नीतिका भाव।

दुर्नृप (सं० पु०) दुष्टः नृपः। कुराजा, खराब या अन्यायी राजा।

दुर्वचन (सं० पु०) दुष्टो वचनः। कुवाक्य, गाली।

दुर्वद्ध (सं० त्रि०) दुष्टं बद्धं। १ दुष्टभावसे बद्ध, जो खराब तरहसे बांधा गया हो।

दुर्बल (सं० त्रि०) दुर्निन्दितं बलं यस्य। १ कृश, दुबला पतला। इसका पर्याय—अमांस, छात, छान्त, शित, शात, अबल और अल्पबलयुक्त है।

सभी कामोंमें सबल मनुष्य जय प्राप्त करते हैं, किन्तु दुर्बल मनुष्यकी जीत दैवसंयोगसे ही होती है। 'बलीयसा हि दुर्बलं बाध्यते।' इति न्यायात्। बलवान्से दुर्बल पराजित होता है, इस न्यायके अनुसार प्रत्येक बलवान् मनुष्य दुर्बलको सता सकता है और कई जगह पीड़ित होते देखा गया है। इसलिये 'दुर्बलस्य बलं राजा' अर्थात् दुर्बलोंका एकमात्र राजा ही बल है, ऐसा भी कहा है। राजाको सर्वदा सबलके हाथसे दुर्बलको बचाना चाहिये। २ शिथिल, कमजोर। ३ दुश्चर्मा, जिसके चमड़े पर रोग हुआ हो।

दुर्बलता (सं० स्त्री०) दुर्बलस्य भावः दुर्बल-तल्-टाप्। १ दुर्बलत्व, बलकी कमी, कमजोरी। २ कृशता, दुबलापन।

दुर्बलत्व (सं० क्ली०) दुर्बल भावे त्व। दुर्बलता।

दुर्बला (सं० स्त्री०) दुर्बल-टाप्। अम्बशिरोषिका, जलसिरिसका पेड़।

दुर्बलाचार्य—परिभाषेन्दुशेखरटीका, मञ्जूषा और कुञ्चिका नामकी उसकी टीका और दुर्बली नामक संस्कृत व्याकरणके रचयिता।

दुर्बाल (सं० त्रि०) दुष्टो बालो यस्य। १ दुश्चर्म रोगयुक्त, जिसके चमड़े पर रोग हो। (पु०) २ खलति, गंजा। ३ कुटिलकेश, घुंघराले बाल।

दुर्बीरण (सं० क्ली०) दुष्टं वीरणं। दुष्टवीरण तृणभेद, एक प्रकारकी घास।

दुर्बुद्धि (सं० स्त्री०) दुष्टा बुद्धिः। १ दुर्मति, खराब बुद्धि। (त्रि०) दुष्टा बुद्धिर्यस्य। २ मन्दबुद्धियुक्त, खल, दुष्ट।

दुर्बुध (सं० त्रि०) दुःखेन बुध्यतेऽसौ दुर्-बुध-घञर्थे क। दुर्बल चित्त, बुरे चित्तका, दुष्ट।

दुर्बोध ( सं॰ त्रि॰ ) दुःखेन बुध्यते बुध-कर्मणि खल् । दुर्ज्ञेय, जो जल्दी समझमें न आवे, गूढ़ ।

दुर्बोध्य ( सं॰ त्रि॰ ) दुःखेन बुध्यते बुध ण्यत् । दुर्बोध, जिसका बोध कठिनतासे हो ।

दुर्ब्राह्मण (सं॰ पु॰) दुष्टो ब्राह्मणः । निन्दित ब्राह्मणभेद । जिसके तीन पुरुषसे वेदपाठ और विहित होम लोप हो गया है, उसे दुर्ब्राह्मण कहते हैं ।

दुर्भक्ष (सं॰ त्रि॰) दुःखेन भक्ष्यते दुर् भक्ष-खल् । १ कष्ट द्वारा भक्षणीय जो जल्दी खाया न जा सके । २ खानेमें बुरा । (पु॰) ३ दुर्भिक्ष, वह समय जिसमें भोजन कठिनतासे मिले ।

दुर्भक्ष्य ( सं॰ त्रि॰ ) दुर्-भक्ष-ण्यत् । दुर्भक्ष, जिसे खाना कठिन हो ।

दुर्भग (सं॰ त्रि॰ ) दुःस्थितो भगो भागं यस्य । दुष्टभाग्यान्वित, जिसका भाग्य बुरा हो, अभागा ।

हरिवंशमें लिखा है, कि जो पाप करता है वही दुर्भग हो कर जन्मग्रहण करता है ।

दुर्भगत्व (सं॰ क्लो॰ ) दुर्भगस्य भावः दुर्भग त्व । दुर्भगता ।

दुर्भगा (सं॰ स्त्री॰) दुर्भग-टाप् । १ पतिस्नेहरहिता स्त्री, वह स्त्री जो अपने पतिके स्नेहसे वंचित हो । इसका पर्याय-विरक्ता, विद्रक्ता, निम्बा और सौभाग्यरहिता स्त्री है । ( त्रि॰ ) २ मन्द भाग्यवाली, अभागिन ।

दुर्भञ्ज ( सं॰ त्रि॰ ) दुष्टो भञ्जः । जो सहजमें टूट न सके ।

दुर्भर (सं॰ त्रि॰ दुःखेन भ्रियते दुर् भृ-खल् । १ दुःसह, गुरु, भारी । २ जिसे उठाना कठिन हो, जो लादा न जा सके ।

दुर्भरा ( सं॰ स्त्री॰ ) ज्योतिष्मतीलता ।

दुर्भागी ( हिं॰ वि॰ ) अभागा, मन्द भाग्यका ।

दुर्भाग्य (सं॰ क्लो॰) दुष्टं भाग्यं -प्रादिस॰ । १ दुरदृष्ट, मन्दभाग्य, खोटी किस्मत । २ पाप । ( त्रि॰ ) दुःस्थितं भाग्यं यस्य । ३ दुष्ट भाग्ययुक्त, मन्द भाग्यका । ४ हतभाग्य, अभागा ।

दुर्भाव ( सं॰ पु॰ ) १ बुरा भाव । २ द्वेष, मनोमालिन्य, मनमोटाव ।

दुर्भावना ( सं॰ स्त्री॰ ) दुष्टा भावना । १ दुश्चिन्ता, बुरी भावना । २ चिन्ता, अन्देशा, खटका ।

दुर्भाव्य ( सं॰ क्लो॰ ) दुःखेन भूयते दुर् भू-ण्यत् । अभावनीय, जिसकी भावना सहजमें न हो सके ।

दुर्भाषित (सं॰ त्रि॰) दुष्टः भाषितः । १ मन्दकथन, खराब वचन । दुर्भाषितं यस्य । २ कर्कशभाषी, कटु, वचन बोलनेवाला ।

दुर्भाषिन् ( सं॰ त्रि॰ ) दुःखेन भाषते दुर्-भाष-णिनि । दुष्टभाषी, कटु वचन बोलनेवाला ।

दुर्भिक्ष (सं॰ क्लो॰) भिक्षायाः अभावः अव्ययीभावसमासे अस्य अव्ययत्वं । भिक्षाका अप्राप्ति काल, ऐसा समय जिसमें भिक्षा या भोजन कठिनतासे मिले, अकाल, कहत । जिस देशमें जितना शस्य होना आवश्यक है, उस देशमें उतना नहीं होनेसे दुर्भिक्ष होता है । जो कुछ पहले उत्पन्न हुआ था, उसके निबट जानेसे चेष्टा करने पर भी फिर खाद्य द्रव्यादि नहीं मिलता, इसलिये दुर्भिक्ष आ पहुंचता है । दुर्भिक्षकारक वर्षका विषय ज्योतिस्तत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

षष्टि संवत्सरके मध्य १७ प्रमाथी नामक संवत्सरमें राष्ट्रभङ्ग, दुर्भिक्ष, चोरका उपद्रव और घोर विग्रह होता है । २० व्यय नामक संवत्सरमें, ३४ शर्वरी संवत्सरमें, ३५ प्लवसंवत्सरमें, ५० अनल संवत्सरमें दुर्भिक्ष पड़ता है । ५१ पिङ्गल संवत्सरमें नर्मदाके किनारे, ५५ दुर्मति नामक संवत्सरमें सामान्यरूपसे दुर्भिक्ष ५६ रक्ताक्ष संवत्सरमें, ५८ क्रोधसंवत्सरमें और ६० क्षय संवत्सरमें विषम दुर्भिक्ष तथा तरह तरहके उपद्रव हुआ करते हैं ।

जिस समय श्मशानसे गीदड़, कुत्ते आदि मांस और हड्डी लेकर नगरमें प्रवेश करें अथवा उसे घरमें छोड़ भाग जांय, उस वर्षमें दुर्भिक्ष पड़ता है; पृथ्वी श्मशान भूमिमें परिणत हो जाती है ।

"मांसास्थिनी समादाय श्मशानाद् गृध्रवायसा ।
श्वाशृगालोऽथवा मध्ये पुरस्य प्रविशन्ति चेत् ॥
विकिरन्ति गृहादौ च श्मशानं सा मही भवेत् ।
संग्रामश्च महाघोरो दुर्भिक्षमरकस्तथा ॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

दुर्भिक्ष आदि राष्ट्रविप्लवमें यदि अशौचादिका विशेष नियम उल्लङ्घन किया जाय, तो वह दोषावह नहीं है ।

"दुर्भिक्षयुक्तराष्ट्रे च मृतके सूतकेऽपि वा।
नियमाश्च न दुष्यन्ति दानधर्मरतेष्वपि॥"
(गरुडपु० २२६ अ०)

जो स्त्री अपने पीहरमें है और उसका द्विरागमन नहीं हुआ है, उसके पहले यदि अकाल पड़ जाय, तो पति उसे अपने घरमें ला सकता है, इसमें कोई दोष नहीं है।

"एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
पतिना नीयमानायाः पुरश्शुक्रो न दुष्यति॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

दुर्भिक्षके समय राजाको उचित है, कि वे बहुत यत्नसे प्रजाकी रक्षा करें। फिर जहां राजाके दोषसे ही दुर्भिक्ष पड़ता है, वह देश समूल नष्ट हो जाता है। दुर्भिक्षके समय जो अन्नदान करते हैं, वे अत्यन्त पुण्यशाली हैं। दुर्भिक्षके समय चाणक्यने जो नौ वृत्तियोंका विधान किया है, वे ये हैं—

"शकटः शाकिनी गावो जालमास्कन्दनं वनं।
अनूपः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नववृत्तयः॥" (चाणक्य)

दुर्भिक्षके समयमें गाड़ी-छकड़ा, शाकिनी, गाय, भैंस, जाल, युद्ध, वन, पर्वत और राजा इन नौ वृत्तियों को अवलम्बन करके विपद्से उद्धार होना चाहिये।

दुर्भिद (सं० त्रि०) दुःखेन भिद्यते दुर्-भिद कर्मणि घञर्थे क। १ दुर्भेद्य, जो जल्दी भेदा न जा सके। २ जिसके पार कठिनतासे जा सकें।

दुर्भिषज्य (सं० त्रि०) दुर्-भिषज कन्ध्वा यक, कर्मणि ण्यत् यलोपः। १ दुश्चिकित्स्य, जिसकी चिकित्सा सहजमें न हो सके। २ दुःख द्वारा चिकित्सा, बुरी रीतिसे इलाज।

दुर्भृत्य (सं० पु०) दुष्टो असत् भृत्यः। दुष्ट भृत्य, खराब नौकर। शुक्रनीतिमें भृत्योंके विषयमें इस प्रकार लिखा है—जिन नौकरोंको उपयुक्त तनखाह नहीं दी जाती हो और जिन्हें दण्ड दिया गया हो अथवा जो शठ, कातर, लोभी, समक्षमें अप्रियवादी, घूसखोर, नास्तिक, ठग, सत्यवादी होने पर भी असूयापरायण, अपमानित और जो अपनी बुद्धिके बलसे असत्यको सत्य और सत्यको असत्य प्रमाणित कर धनादि ग्रहण करते हैं, वे अपने मालिकका बहुत अनिष्ट कर बैठते हैं।

दुर्भेद (सं० त्रि०) दुःखेन भिद्यते दुर्-भिद्-खल्। दुर्भेद्य, जो कठिनतासे छिदे।

दुर्भेद्य (सं० त्रि०) दुःखेन भिद्यते दुर्-भिद कर्मणि ण्यत्। दुर्भेद।

दुर्भ्रातृ (सं० पु०) दुष्ट भ्राता, कपटी भाई।

दुर्मख (सं० त्रि०) १ असुखी। २ मन्द यज्ञ।

दुर्मङ्गल (सं० त्रि०) अशुभ, बुरा।

दुर्मति (सं० स्त्री०) दुष्टा मतिः। १ दुर्बुद्धि, बुरी बुद्धि, नासमझी। (पु०) २ साठ सम्वत्सरोंमेंसे एक। इस वर्षमें दुर्भिक्ष होता है। (त्रि०) दुष्टिता मतिर्यस्य। ३ दुष्टमतियुक्त, जिसकी समझ ठीक न हो।

दुर्मद (सं० त्रि०) दुरुष्टितो मदो यस्य। १ उन्मत्त नशे आदिमें चूर। २ अभिमानमें चूर, गर्वसे भरा हुआ। (पु०) ३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुर्मनस् (सं० क्ली०) दुष्टं मनः। दुष्टमन, बुरा चित्त। १ दुष्टितं मनो यस्य। (त्रि०) २ दुष्टितमनस्क, उदास, खिन्न, अनमना। ३ बुरे चित्तका।

दुर्मना (सं० स्त्री०) शतावरी।

दुर्मनायमान (सं० त्रि०) दुर्मनस् क्यङ् सलोपः। दुर्मनायमानच्। उद्विग्नचित्त, चिन्तित, उदास।

दुर्मनुष्य (सं० पु०) दुष्टो मनुष्यः। दुष्ट मनुष्य, खोटा आदमी।

दुर्मन्तु (सं० त्रि०) दुर् मन-तुन्। दुष्ट मन्यमान, जो दुष्ट या खोटा समझा जाता हो।

दुर्मन्त्र (सं० पु०) दुष्टोमन्त्रः। दुष्टमन्त्रणा, बुरो सलाह।

दुर्मन्त्रित (सं० त्रि०) दुर् मन्त्र क्त। १ दुष्टभावसे मन्त्रित, जिसमें बुरी सलाह दी गई हो। (क्ली०) भावे क्त। २ दुष्ट मन्त्रणा, बुरी सलाह।

दुर्मन्त्रिन् (सं० पु०) दुष्टः मन्त्री। कुमन्त्री। मन्त्रीके जितने गुण कहे गये हैं, यदि वे सब गुण उनमें न हों तो वे दुर्मन्त्री कहलाते हैं। जिस राजाका मन्त्री दुष्ट हो उसका राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। मन्त्रिन् देखो।

दुर्मर (सं० क्ली०) दुष्टो मरो मृत्यु। १ दुष्ट मृत्यु। (त्रि०) दुःखेन मरो मरणं यस्य। २ दुष्टभावसे मृत जिसको मृत्यु बड़े कष्टसे हो।

जो अतिशय पापी हैं, उनकी मृत्यु बड़े कष्टसे

होती है। इसका विषय निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—चाण्डाल, उदक, सर्प, ब्राह्मण, विद्युत्, दंष्ट्री और पशुसे पापियोंको जो मृत्यु होती है, उसे दुर्मरण कहते हैं। इस प्रकार जिनकी मृत्यु होती है, उनके उद्देशसे यदि उदकादि क्रियाएं की जायं, तो वे विफल होती हैं। जो क्रोधमें आ कर शस्त्र, अग्नि, विष, उद्बन्धन, जल, गिरि और वृक्षसे पतन, इनमेंसे किसी एक उपायसे प्राण त्याग करे, तो इस प्रकारको मृत्यु भी दुर्मृत्यु कहलाती है।

ऐसे व्यक्तिका दाह, अन्त्येष्टिक्रिया आदि कोई संस्कार नहीं होता। यदि कोई मोहवश दाहादि करे, तो उसे प्रायश्चित्त ले कर शुद्ध होना पड़ता है।

दुर्मृत्युके लिये दानादि करने होते हैं। इसका विषय विश्वप्रकाशादिमें इस प्रकार लिखा है,—सर्प द्वारा मृत्यु होनेसे काञ्चन, हस्ती द्वारा निहत होनेसे चार निष्क सुवर्ण, राजासे हत होनेसे हिरण्मय पुरुष, चोरसे मारे जानेसे धेनु, शत्रुसे हत होनेसे यथाशक्ति काञ्चन, शय्यासे मृत्यु होनेसे शय्या, शौचहीन अवस्थामें मृत्यु होनेसे दो निष्क सुवर्ण, संस्कारहीन हो कर मरनेसे ब्राह्मण बालकको उपनयन, अश्व द्वारा हत होनेसे तीन निष्क सुवर्ण-निर्मित अश्व, कुक्कुर द्वारा हत होनेसे शक्तिके अनुसार क्षेत्रपालका स्थापन, शूकर द्वारा हत होनेसे सदक्षिण महिष, उच्चस्थानसे गिर कर मरनेसे धान्य पर्वत, विष खाकर मरनेसे सुवर्णनिर्मित मेदिनी, उद्बन्धन द्वारा मृत्यु होनेसे कनकनिर्मित कपि, प्रस्तर द्वारा निहत होनेसे सवत्सा पयस्विनी धेनु, जल द्वारा मृत्यु होनेसे हैमवरुण, विसूचिकारोगसे मृत्यु होनेसे शत ब्राह्मण-भोजन, कासरोगसे मृत्यु होनेसे अष्ट कृच्छ्रव्रत, अतिसाररोगसे मरनेसे लाख गायत्रीका जप, अन्तरीक्षसे मृत्यु होने पर वेदपारायण, विद्युत्पात द्वारा मृत्यु होनेसे विद्यादान और पतित हो कर मृत्यु होनेसे षोड़श प्राजापत्यका अनुष्ठान करना होता है। ऊपरमें जितने प्रकारको मृत्यु बतलाई गई है, सभी दुर्मृत्यु है। इस प्रकारकी मृत्युसे तथा अपत्यरहित हो कर मरनेसे नवति कृच्छ्रचान्द्रायण करना होता है। ये सब अनुष्ठान कर चुकनेके बाद मृतव्यक्तिकी और्ध्वदैहिक क्रियाएं की जाती हैं। मृत्यु देखो।

दुर्मरण (सं० क्लो०) दुर्-मृ-ल्युट्। बुरे प्रकारसे होनेवाली मृत्यु। दुर्मर देखो।

दुर्मरत्व (सं० क्ली०) दुर्मरस्य भावः दुर्मर-त्व। दुर्मरता, दुर्मृत्यका भाव।

दुर्मरा (सं० स्त्री०) दुर्मर-टाप्। १ दूर्वा, दूब। २ श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। ३ शतमूली।

दुर्मर्ष (सं० पु०) दुःखेन मृष्यते दुर्-मृष कर्मणि खल्। दुःख द्वारा मर्षणीय, जिसे सहन करना कठिन हो।

दुर्मर्षण (सं० पु०) दुर्-मृष भाषायां खल् वाधित्वात् युच्। १ वह जो बहुत कठिनतासे सहन किया जाय। २ विष्णु। ३ धृतराष्ट्रका पुत्रभेद, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुर्मर्षित (सं० त्रि०) दुर्-मृष-क्त। वैरता-साधनमें उत्तेजित, जो बदला चुकानेकी घातमें हो।

दुर्मल्लिका (सं० स्त्री०) दृश्यकाव्यरूप उपरूपकभेद। नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक आदि अनेक तरहके दृश्य काव्य हैं, दुर्मल्लिका उनमेंसे एक है। इसमें हास्यरस प्रधान होता है और यह चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। इसमें गर्भाङ्क नहीं होते, अल्प नायक होता है। प्रथम अङ्कमें त्रिनालि होती है जो विट्की क्रीड़ासे पूर्ण रहती है। द्वितीय अङ्कमें पञ्चनालि और विदूषकका विषय, तृतीय अङ्कमें षण्नालि और पीठमर्दनका विषय तथा चतुर्थ अंकमें दशनालि और क्रीड़ित नायक होता है। जिसमें ये सब लक्षण पाये जाते, उसे ही दुर्मल्लिका कहते हैं। जैसे, बिन्दुमती।

दुर्मल्ली—दुर्मल्लिका देखो।

दुर्मात्सर्य (सं० क्ली०) दुष्टं मात्सर्यं। दुष्ट मात्सर्य, ईर्षा, डाह।

दुर्मायुध (सं० त्रि०) दुष्टान्यायुधानि मिन्वन्ति मि क्षेपे उन्। दुष्टायुधक्षेपक, खराब अस्त्र फेंकनेवाला।

दुर्मित्र (सं० पु०) दुष्टं मित्रं प्रादिस० अमित्रवत् पुंस्त्वं। १ अमित्र, शत्रु। (त्रि०) दुःस्थितं मित्रं यस्य। २ दुष्टबन्धुयुक्त, जिसके खराब मित्र हो।

दुर्मित्रिय (सं० त्रि०) दुर्मित्राय अमित्राय साधु। अमित्र भावसे अवस्थित।

दुर्मिल (सं० पु०) १ भरतके पुत्रविशेष, भरतके सात

लड़कोंमेंसे एक। २ छन्दोभेद, एक छन्दका नाम। इसके हरएक चरणमें १०, ८ और १४के विरामसे ३२ मात्राएं होती हैं। ३ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें आठ सगण होते हैं।

दुर्मिलका (सं० स्त्री०) मात्रावृत्तभेद, एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तेईस वर्ण होते हैं।

दुर्मुख (सं० त्रि०) दुष्टं मुखं यस्य तद्व्यापारो वा यस्य। १ अश्व, घोड़ा। २ वानरभेद, रामचन्द्रजीको सेनाका एक बन्दर। ३ महिषासुरका सेनापतिभेद, महिषासुरके एक सेनापतिका नाम। ४ रामचन्द्रजीका एक गुप्तचर। इसके द्वारा वे अपनी प्रजाका वृत्तान्त जाना करते थे। इसीके मुखसे उन्होंने सीताका लोकापवाद वृत्तान्त सुना था जिसके कारण सीताका द्वितीय वनवास हुआ था। उत्तर-रामचरितमें इसका उल्लेख पाया जाता है। ५ नृपभेद, एक राजाका नाम। ६ नागभेद, एक नागका नाम। ७ शिव, महादेव। ८ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ६ उत्तरद्वारगृह, वह घर जिसका द्वार उत्तरकी ओर हो। १० षष्टिसम्वत्सरके मध्य ११ संवत्सर, साठ संवत्सरोंमेंसे ग्यारहवां संवत्सर। ११ यक्षभेद, एक यक्षका नाम। १२ गणेशजीका एक गण। (त्रि०) १३ अप्रियवादी, बुरा वचन बोलनेवाला। १४ जिसका मुख बुरा हो। भक्तमालमें एक दूसरे दुर्मुखका उल्लेख पाया जाता है। ये राधिकाके देवर और उनकी बहन अमङ्गमञ्जरीके स्वामी थे।

दुर्मुखा (सं० स्त्री०) शुक्ल गुञ्जा, सफेद घुंघची।

दुर्मुखी (सं० स्त्री०) एक राक्षसी। इसे रावणने जानकीको समझानेके लिए नियत किया था।

दुर्मुट (हिं० पु०) दुर्मुस देखो।

दुर्मुस (हिं० पु०) एक प्रकारका लम्बा डंडा जो गदाके आकारका होता है। इसके नीचे लोहे या पत्थरका भारी गोल टुकड़ा रहता है। यह सड़कों आदि पर कंकड़ या मिट्टी पीट कर बैठानेके काममें आता है।

दुर्मुहूर्त्त (सं० पु० क्लो०) निन्दितो मुहूर्त्तः प्रादिस०। अप्रशस्त मुहूर्त्त, खराब समय।

दुर्मूल्य (सं० त्रि०) दुष्टितं मूल्यं। दुष्टित मूल्य, जिसका दाम अधिक हो, महंगा।

दुर्मेधस् (सं० त्रि०) निन्दिता मेधा अस्य, असिच् समा०। निन्दित मति, मन्दबुद्धि, नासमझ।

दुर्मेधस्त्व (सं० क्लो०) दुर्मेधसो भावः त्व। दुष्ट बुद्धिका कार्य।

दुर्मेधाविन् (सं० त्रि०) दुष्ट मेधावी। दुष्टमेधायुक्त, मन्दबुद्धिका, नासमझ।

दुर्मैत्र (सं० पु०) दुष्टो मैत्रः। दुष्टबन्धु, दुष्टमित्र।

दुर्मोका (सं० स्त्री०) श्वेत गुञ्जा, सफेद घुंघची।

दुर्मोह (सं० पु०) दुष्टं निन्दितं मुह्यत्यनेन मुह करणे घञ्। १ काकतुण्डी, कौवा ठोंठी। (स्त्री०) २ काकादनी, सफेद घुंघची।

दुर्मोहा (सं० स्त्री०) १ काकादनीलता, सफेद घुंघची। २ रक्त गुञ्जा, लाल घुंघची।

दुर्य (सं० पु०) दुरं याति या-क दुरि द्वारे भवः यत् वा। १ गृह, घर। २ द्वारभवयूप, दरवाजे परका खंभा।

दुर्यशस् (सं० क्लो०) निन्दितं यशः। अकीर्त्ति, अपयश।

दुर्योग (सं० पु०) दुष्टो योगः। १ दुर्भाग्यसूचक ग्रहयोगभेद, वह ग्रहयोग जो दुर्भाग्यकी बातें सूचित करता है। २ दुष्ट कौशल।

दुर्योण (सं० क्लो०) दुष्टा योनिस्थानमस्यास्य अर्श आदि० अच् संज्ञायां णत्व। संग्राम, युद्ध, लड़ाई।

दुर्योध (सं० पु०) दुःखेन युध्यतेऽसौ दुर् युध कर्मणि खल्। दुःख द्वारा योधनीय, वह जो बड़ी बड़ी कठिनाइयोंको सह कर भी युद्धमें स्थिर रहे, विकट लड़ाका।

दुर्योधन (सं० पु०) दुर्दुःखेन युध्यतेऽसौ दुर्-युध-युच्। कुरुवंशीय राजा धृतराष्ट्रके बड़े लड़के। महाभारतीय युद्धके ये ही प्रधान नायक और कौरवदलके नेता थे। पाण्डु राजाके मरने पर पांचों पाण्डव राजा धृतराष्ट्रसे हस्तिनापुरको लाये गये। यहां वे दुर्योधनादि सौ भाइयोंके साथ शास्त्र और शस्त्र विद्या सीखने लगे। द्वितीय पाण्डव भीम और दुर्योधन दोनों एक उमरके थे। भीमके अपरिमित बलविक्रम और गदा चलानेमें सिद्ध हस्त देख कर दुर्योधन बहुत जलते थे। दुर्योधन भी गदायुद्धमें विशेष पारदर्शी थे और

इन्हों ने द्वारिकाधिपति श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामसे अस्त्रादि चलानेको सोखा था, पर ये भीमकी बराबरी नहीं कर सकते थे। अत उन्हें मार डालनेके लिए एक दिन दुर्योधनने खेलके बहाने उन्हें विष पिला दिया और मूर्च्छितावस्थामें गङ्गामें फेंक दिया। इसो अवस्थामें वासुकी उन्हें नागलोक ले गये जिससे उनके शरीरका सारा विषज्वर जाता रहा।

धृतराष्ट्र पाण्डवों और कौरवोंमें युधिष्ठिरको बड़ा समझ युवराज बनाना चाहते थे, लेकिन दुर्योधनने बहुत आपत्ति की। पुत्रस्नेहसे पीड़ित हो कर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको कुमन्त्रणासे युधिष्ठिरादि पांचों भाइयोंको वनमें भेज दिया। रास्तेमें उन्हें जला कर मार डालनेके लिए दुर्योधनने लाहका एक घर बनवाया और उसो घरमें उन्हें रहनेको कहा गया, किन्तु इसमें भी वे कृतकार्य न हुए। वनवाससे लौट कर पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थमें अपनी राजधानी बसाई। इस समय युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञमें पाण्डवोंको क्षमता, प्रतिपत्ति और यश देख कर दुर्योधन जल उठे और अपने पिताको कह सुन कर पाण्डवोंको पासा खेलनेके लिए बुलाया। गान्धारके राजकुमार शकुनि पासा खेलनेमें बड़े सिद्धहस्त थे और दुर्योधनके मामा होनेके सबबसे वे ही दुर्योधनको तरफसे पासा खेलने लगे। राजा युधिष्ठिर भो अक्षविद्यामें कम नहीं थे। शकुनिके न्यायपथसे तो नहों मगर उसके छल और कौशलसे युधिष्ठिर अपना सारा राज्य और धन यहां तक कि द्रौपदीको भो हार गये। दुर्योधनने इस जोतसे प्रफुल्लित हो द्रौपदोको सभाके बीच लानेका हुक्म दिया। द्रौपदो उस समय रजःस्वला थों, अत: वे आनेमें राजी न हुईं। इस पर दुःशासन बलात् बाल खोंचता हुआ उन्हें सभामें लाया। दुर्योधनने द्रौपदोको अपनो जंघा पर बैठनेके लिए बुलाया। इस पर भोमने क्रुद्ध हो कर गदासे दुर्योधनको जंघाको तोड़नेको प्रतिज्ञा को। अन्तमें धृतराष्ट्रने मध्यस्थ हो कर इस विवादको निपटा दिया और द्यूतके नियमानुसार यह निर्णय किया कि पाण्डव बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करें। वनवासके समय दुर्योधन पाण्डवोंको दुर्दशा देख फूले न समाये और घोष-यात्राको निकले। रास्तेमें दलबलके साथ वे गन्धर्वोंसे पकड़े गये। युधिष्ठिरके कहनेसे भीम और अर्जुन उन्हें गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ा लाये। इस घटनासे दुर्योधन बहुत लज्जित हुए और पाण्डवोंके नाशका उपाय सोचने लगे। अज्ञातवास पूरा हो जाने पर कृष्णने दोनों पक्षोंके बीच मेल हो जानेकी खूब कोशिश को, लेकिन दुर्योधनने एक भो न सुनो। इस पर दोनों ओरसे घमघोर युद्धका आयोजन होने लगा। दोनों पक्षने कृष्णसे सहायता मांगो। अन्तमें पाण्डवोंने अकेले कृष्णको और दुर्योधनने कृष्णको अक्षौहिणी सेनाको ग्रहण किया। कुरुक्षेत्रमें महायुद्ध छिड़ा। दश दिन तक लगातार युद्धके बाद कौरवके सेनापति भीष्म, पांच दिनके बाद सेनापति द्रोण, ढाई दिनके बाद कर्ण और आध दिनके युद्धमें कौरव-सेनापति शल्य मारे गये। इस प्रकार कौरवोंको पूरो हार हुई। दुर्योधन भाग कर एक ह्रदमें छिप रहे। अन्तमें वे पाण्डवोंकी लगती बातोंसे उत्पोड़ित हो बाहर निकले और भीमके साथ गदा-युद्ध करने लगे। इस बार दुर्योधनको ही जीत होनेकी सम्भावना थी, किन्तु भोमने पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण करते हुए न्याय विरुद्ध होने पर भो कमरके नीचे गदा-प्रहार किया। इससे दुर्योधनको हड्डो चकना चूर हो गई और वे जमीन पर गिर पड़े। इसी अवस्थामें उनके मस्तक पर गदाघात कर भीमने अपना बहुत दिनका धधकता हुआ क्रोध ठंढा किया। पाण्डव जब मृत प्राय: दुर्योधनको छोड़ चले गये, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उन्हें देखनेको आये। हताश अवस्थामें दुर्योधनने इन्हींको पाण्डव-संहारमें नियुक्त किया और भीमका सिर काट लेनेको कहा। अश्वत्थामाने छद्मवेशमें पाण्डवोंके शिविरमें प्रवेश कर द्रौपदोके पञ्चपुत्रोंको मार डाला और दुर्योधनसे यह सम्वाद कह सुनाया। यह खबर सुनते हो दुर्योधन बहुत खुश हुए और उसी समय परलोकको सिधारे। (महाभारत) काशीदासीमहाभारतमें लिखा है—अश्वत्थामा पञ्चपाण्डवके भ्रमसे द्रौपदोके पांचों पुत्रके सिर काट लाये। दुर्योधनने भीमका सिर देखना चाहा। इस पर अश्वत्थामाने भीमाकृति भीमपुत्रका सिर ला दिया। किन्तु दुर्योधनके हाथसे दबानेसे जब वह सिर चूर हो

गया, तभी अश्वत्थामाका भ्रम समझा गया। अन्तमें दुर्योधन लम्बी साँस भर कर बोले, अश्वत्थामा! पञ्च-पाण्डव ही हमारे शत्रु हैं, न कि द्रौपदीके ये निर्दोष नन्हे बच्चे।' इसके बाद ही दुर्योधनको हर्ष विषाद दोनों हो आया और उसी समय उनकी प्राणवायु उड़ गई। दुर्योधनको युधिष्ठिर 'सुयोधन' कहते थे। (त्रि०) २ जो बहुत दुःख सह कर लड़ाई कर सके।

दुर्योनि (सं० स्त्री०) निन्दिता योनिः प्रादिस०। १ निन्दित जाति, म्लेच्छजात। दुःस्थिता योनिर्यस्य (त्रि०) २ निन्दित जातिक, जिसका जन्म नीच कुलमें हो।

दुर्रा (फा० पु०) कोड़ा, चाबुक।

दुर्रानी (फा० पु०) अफगानोंकी एक जाति।

दुर्लक्षण (सं० क्ली०) दुष्टं लक्षणं। अशुभ चिह्न।

दुर्लक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन लक्ष्यतेऽसौ दुर्-लक्ष यत्। १ अदृश्य, जो कठिनतासे दिखाई पड़े। (पु०) दुष्ट उद्देश्य, बुरी नीयत।

दुर्लङ्घन (सं० त्रि०) दुःखेन लङ्घ्यते लङ्घ-युच्। दुःख द्वारा लङ्घनीय, जो जल्दी लांघ न हो सके।

दुर्लङ्घ्य (सं० त्रि०) दुःखेन लङ्घ्यते लङ्घ-यत्। अलङ्घनीय, जिसे जल्दी लांघ न सकें।

दुर्लतिका (सं० स्त्री०) दुष्टा लतेव स्वार्थे कन्-टाप्। १ निन्दित लता। २ छन्दोभेद, एक प्रकारका छन्द।

दुर्लभ (सं० त्रि०) दुःखेन लभ्यते दुर्-लभ कर्मणि खल्। १ दुष्प्राप्य, जो कठिनतासे मिल सके। २ अति प्रशस्त, बहुत बढ़िया। ३ प्रिय, प्यारा। चाणक्यने लिखा है, कि सत्यवाक्य, उत्तमपुत्र, सदृशी भार्या और प्रियतम स्वजन ये सब संसारमें अति दुर्लभ है। (पु०) ४ कच्चूर, कचूर। ५ विष्णु। "दुर्लभो दुर्जयो दुर्गः।" (विष्णुसहस्रनाम) अर्थात् दुर्लभभक्तिसे विष्णुका दर्शन होता है, इसीसे भगवान् विष्णुका नाम दुर्लभ पड़ा है। व्यासका वचन है, कि सहस्र सहस्र जन्म धारण कर तपस्या करनेसे कृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है। इसी भक्ति द्वारा उनका दर्शन होता है। (स्त्री०) ६ दुरालभा, जवासा, धमासा। ७ श्वेत कण्टकारी, सफेद भटकटैया।

दुर्लभक—काश्मीरराज दुर्लभवर्द्धनके पुत्र। ये अनङ्गलेखाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। पिताकी मृत्युके बाद ये काश्मीरके सिंहासन पर बैठे और पीछे प्रतापादित्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

इन्होंने प्रतापपुर नामक एक नगर स्थापित किया जहां रोहितसे नोनग्रामका एक बनिया आ कर रहने लगा था। इस बनियेके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता थी। एक दिन ये अपने मित्र बनियेकी स्त्री श्रीनरेन्द्रप्रभाको देख कर बहुत मोहित हो गये; किन्तु अपनी अभिलाषाको छिपाये रखनेका कारण मानसिक पीड़ासे ग्रसित हो शय्याशायी हो पड़े। बाद इनके मित्रको जब यह हाल मालूम हो गया, तब उसने अपनी स्त्रीको इन्हें अर्पण कर दिया जिससे उनकी सारी व्यथा जाती रही और पूर्ववत् ये स्वस्थ हो गए। इस रानीके गर्भसे इनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—चन्द्रापीड़ वा वज्रादित्य, तारापीड़ वा उदयादित्य और अविमुक्तापीड वा ललितादित्य। ६० वर्ष राज्य करनेके बाद इनका प्राणान्त हुआ।

दुर्लभ—मुलतानके एक विख्यात ज्योतिर्विद्। अल्-बिरुनीने इनका मत उद्धृत किया है।

दुर्लभराज—सामुद्रतिलक नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इनके पुत्र जगद्देवने स्वप्नचिन्तामणि नामक संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थकी रचना की है।

दुर्लभवर्द्धन—काश्मीरराज बालादित्यके जामाता। बालादित्यने ज्योतिषीके मुंहसे सुना था, कि उनकी मृत्युके बाद गोनर्दवंशका लोप होगा। इसी कारण उन्होंने दुर्लभवर्द्धनके साथ अपनी कन्या अनङ्गलेखाका विवाह कर इनके पुत्र दुर्लभकको पुत्र कह कर ग्रहण किया। ये कर्कोटनागके वंशीय थे। इनके श्वशुरने इन्हें प्रज्ञादित्यका नाम दे कर प्रचुर धन अर्पण किया। स्त्री इनकी बहुत अवज्ञा करती थी और उनका व्यभिचार काश्मीरमें चारों ओर फैल गया। दुर्लभवर्द्धनने यह व्यभिचार-वृत्तान्त सुन कर अपनी स्त्रीको छोड़ दिया। श्वशुरकी मृत्युके बाद ये ही राजा बन बैठे। इनकी स्त्रीसे अनेक सन्तान हुई थीं जिनमेंसे दुर्लभक जो इन्हींके औरससे उत्पन्न हुए थे पीछे राज्याधिकारी हुए। इन्होंने ३६ वर्ष राज्य किया था। काश्मीर देखो।

दुर्लभस्वामी (सं० पु०) काश्मीरके श्रीनगरमें प्रतिष्ठित देवमूर्त्ति विशेष।

दुर्लभा (सं० स्त्री०) १ जीवन्ती। २ श्वेत कण्टकारी, सफेद भटकटैया। ३ रक्तदुरालभा, लाल जवासा।

दुर्ललित (सं० क्ली०) दुर्-लल ईप्सायां भावे क्त। १ दुश्चेष्टा, बुरा काम। २ दुश्चेष्टित, दुष्कर्म, पाप। (त्रि०) ३ दुष्कर्म करनेवाला। ४ चपल, चंचल।

दुर्लषित (सं० क्ली०) दुर्-लष-क्त। दुश्चेष्टा, बुरा काम।

दुर्लभ (सं० पु०) दुःखेन लभ्यते दुर्-लभ-घञ्। दुःख द्वारा लाभ, बहुत कठिनतासे प्राप्त होनेवाला।

दुर्लेख्य (सं० क्ली०) दुष्टं लेख्यं। १ गर्हित लेख्य-पत्र, आवश्यकीय कागज पत्रादिके नष्ट हो जाने पर जो दूसरी बार कागज लिखा जाता है, उसे दुर्लेख्य कहते हैं। नारदके मतानुसार लिपिका अक्षर लोप कर दुष्ट भावसे झूठ बना कर जो लिखा जाता है उसे दुर्लेख्य कहते हैं। अर्थात् कागजमें जैसा लिखा था, वैसा न लिख कर अपनी आवश्यकताके अनुसार झूठ बना कर लिखना। (त्रि०) २ जो बुरा लिखा हुआ हो, जिसकी लिखावट बुरी हो।

दुर्वच (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन उच्यते दुर्-वच-खल्। १ जो दुःखसे कहा जा सके, जिसके कहनेमें कष्ट हो। २ जो कठिनतासे कहा जा सके। (पु०) ३ दुर्वचन, गाली।

दुर्वचन (सं० पु०) दुर्वाक्य, कटु वचन, गाली।

दुर्वचस् (सं० क्ली०) दुष्टं वचः। गर्हित वाक्य, कटु वचन।

दुर्वराह (सं० पु०-स्त्री०) दुष्टो वराहः प्रादिस०। गर्हित वराह, पालतू सूअर।

दुर्वर्ण (सं० क्ली०) दुर् निन्दितं सुवर्णापेक्षया वर्णं यस्य। १ रजत, चांदी। २ एलवालुक, एलुवा। (त्रि०) ३ निन्द्यवर्णयुक्त, खराब जातिका। ४ खराब रंगका। ५ श्वेतकुष्ठी, जिसे सफेद कोढ़ हुआ हो। (पु०) दुष्टो वर्णः। ६ निन्दनीय ब्राह्मणादिवर्ण। ७ दुष्ट अक्षर, खराब अक्षर।

दुर्वर्त्त (सं० त्रि०) दुर्-वृ-कर्मणि तुन्। दुर्वार, जिसका निवारण कठिन हो, जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वस (सं० त्रि०) दुःखेनोष्यतेऽत्र दुर्-वस वाहु० आधारे खल्। कष्टसे वासयोग्य, जहां रहनेमें बहुत कष्ट हो।

दुर्वसति (सं० स्त्री०) दुःखेन वसतिः। दुःखसे अवस्थिति, जहां रहनेमें बहुत तकलीफ होती हो।

दुर्वह (सं० त्रि०) दुःखेन उह्यते अनेन दुर्-वह कर्मणि खल्। दुःख द्वारा वहनीय, जिसे उठा कर ले चलना कठिन हो।

दुर्वहक—सुभाषितावलीधृत एक प्राचीन संस्कृत कवि।

दुर्वाच् (सं० स्त्री०) दुर्दुष्टा निन्दिता वाक्। १ निन्दित-वाक्य, बुरा वचन। दुष्टा वाक् यस्य। (त्रि०) २ निन्दित वचनान्वित, जिसकी बोली बहुत कर्कश हो।

दुर्वाच्य (सं० क्ली०) निन्द्यं वाच्यं प्रादिस०। अपवाद, अकीर्त्ति, निन्दा।

दुर्वाद (सं० पु०) दुष्टो वादः प्रादिस०। १ अकीर्त्ति, अपवाद, बदनामी। २ स्तुतिपूर्वक अप्रियवाक्य, स्तुति द्वारा कहा हुआ अप्रिय वचन। ३ निन्दित वाक्य, अनुचित वचन।

दुर्वान्त (सं० क्ली०) दुष्टं वान्तं प्रादिस०। १ विधानातिक्रम द्वारा वमन, अनियमित उलटी। दुःस्थितं वान्तं यस्य। २ दुष्टवमनयुक्त, जिसे अनियमित उलटी होती हो।

दुर्वार (सं० त्रि०) दुःखेन वार्यतेऽसौ दुर्-वारि-खल्। कष्टसे वारणीय, जिसका निवारण कठिन हो।

दुर्वारण (सं० त्रि०) दुःखेन वारणमस्य। १ कष्टसे वारणीय, जो जल्दी रोका न जा सके। (पु०) २ शिव, महादेव।

दुर्वारि (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन वारिर्वारणं यस्य। काम्बोज देशीय योधभेद, काम्बोज देशका एक वीर जो महाभारतकी लड़ाईमें लड़ा था।

दुर्वारित (सं० त्रि०) मन्दभावसे निवारित वा शासित।

दुर्वार्त्ता (सं० स्त्री०) दुष्टा निन्दिता वार्त्ता। दुष्टवार्त्ता, बुरी खबर।

दुर्वार्य (सं० त्रि०) दुःखेन वार्यतेऽसौ दुर्-वारि खत्। अति कष्टद्वारा वारणीय, जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वासना (सं० स्त्री०) दुर्दुष्टा वासना। १ दुष्ट वासना,

ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके। २ दुष्ट आकांक्षा, बुरी इच्छा।

दुर्वासा ( सं० पु० ) दुर्दुष्टं निगूढ़मिति वास इव धर्मावरणत्वं यस्य। १ एक मुनि। इनकी नामनिरुक्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है, जिसका धर्ममें दृढ़ विश्वास हो उसे दुर्वासा कहते हैं।

"निगूढ़निश्चयं धर्मं यं तं दुर्वाससं विदुः।"

(भारत अनु ४७ अ०)

दुर्वासा अत्रिमुनिके पुत्र और शिवांशसम्भूत थे। इनका स्वभाव बहुत उग्र था। और्वमुनिकी कन्या कन्दलीसे इनका विवाह हुआ था। विवाहके समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि पत्नीके सौ अपराध क्षमा करेंगे। तदनुसार इन्होंने पत्नीके सौ अपराध कर चुकनेके बाद उनको शापसे भस्म कर दिया।

इस पर और्वमुनीने बहुत दुःखित हो 'तेरा अभिमान चूर होगा' ऐसा अभिशाप दिया। तदनुसार महाराज अम्बरीषसे इनका अभिमान चूर हुआ। एक दिन भ्रमण करते समय इन्होंने किसी अप्सराके हाथमें एक सन्तानक पुष्पमालाको देख उससे माग लिया। मालाको जब इन्होंने ऐरावतके मस्तक पर डाला, तब ऐरावतने उसे जमीन पर फेंक दिया। इस पर दुर्वासाने बहुत कुपित होकर इन्द्रको शाप दिया जिससे वे श्रीभ्रष्ट हो गये। इन्हींके शापसे शकुन्तला दुष्यन्तसे परित्यक्त हुई थीं। इन्होंने कुन्तीभोजगृहमें कुन्तीकी परिचर्यासे तुष्ट हो कर उन्हें जो महामन्त्र प्रदान किया था, उसीके प्रभावसे पाण्डवोंका जन्म हुआ। इन्होंने राधिकाकी प्रकृति जान कर वृषभानु राजाके निकट उनकी भूरि प्रशंसा की।

दुर्योधन पर खुश होकर ये काम्यकवनमें द्रौपदीके खानेके बाद भोजन करने गये थे। एक समय भ्रमण करते हुए इन्होंने श्रीकृष्णका आतिथ्य ग्रहण किया था।

दुर्वासा उन्मत्त स्वभावके थे, इसीसे कभी किसी काम की व्यवस्था न थी। कभी तो ये बहुत मनुष्योंका भोजन खा लेते और कभी थोड़ा ही खा कर भोजन समाप्त करते थे। एक दिन इन्होंने उत्तप्त पायस भोजन करते समय श्रीकृष्णसे कहा कि, "इस पायसको सर्वाङ्गमें लेपन कीजिये।" कृष्णने उसी समय वैसा ही किया, केवल ब्राह्मणके प्रति भक्तिवशतः पैरके तले न लगाया। इस पर ऋषिने रुक्मिणीको देहमें पायस लेप कर उन्हें रथमें लगाया और आप रथ पर चढ़ कर रुक्मिणीको कशाघात करने लगे। रुक्मिणी यथाशक्ति रथ खींच कर जब क्लान्त हो गईं, तब दुर्वासा क्रुध होकर रथ परसे उतरे और दक्षिणकी ओर जानेको उद्यत हुए। पीछे श्रीकृष्णसे सन्तुष्ट किये जाने पर इन्होंने कहा था, "आप क्रोधजित् हैं, हमारे वरसे आप और रुक्मिणी दोनों सर्व लोकके प्रिय होंगे। आपने जो पैरके तले पायस नहीं लेपा उससे हम बहुत अप्रसन्न हुए हैं। जो कुछ हो, पदतल छोड़ कर आपका सर्वाङ्ग अभेद्य हुआ।" इन्हींके शापसे शाम्बने यदुवंश नाशक मूसल प्रसव किया था और इसीसे यदुवंशका ध्वंस हुआ। ( भारत, ब्रह्मवै०, भागवत )।

२ आर्याद्विशती, देवी महिम्नस्तोत्र, परशिवमहिम्नस्तोत्र, ललितास्तवरत्न और सुन्दरीमहिमा नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

दुर्वाहित ( सं० क्ली० ) दुर्वह, जिसे उठाकर ले चलना कठिन हो।

दुर्विकत्थन (सं० त्रि०) जो क्रोध वा दम्भसे अभिमान पूर्वक कहा जाय।

दुर्विगाह (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन विगाह्यते दुर्-वि-गाह कर्मणि खल्। दुरवगाह, जिसकी थाह जल्दी न लग सके।

दुर्विगाह्य ( सं० त्रि० ) दुःखेन विगाह्यते दुर्-वि-गाह ण्यत्। दुर्विगाहनीय, जिसका अवगाहन करना कठिन हो।

दुर्विचिन्त्य (सं० त्रि०) दुःखेन विचिन्त्यते दुर्-वि-चिन्ति-यत्। चिन्ताका असाध्य, जो जल्दी सोचा न जा सके।

दुर्विज्ञान (सं० क्ली०) दुर्दुःखेन विज्ञायते दुर्-वि-ज्ञा-युच्। अज्ञेय, वह जो बहुत मुश्किलसे जाना जा सके।

दुर्विज्ञेय ( सं० त्रि० ) जिसका कष्ट या कठिनतासे ज्ञान हो।

दुर्वितर्क ( सं० त्रि० ) दुर्वितर्क्य देखो।

दुर्वितर्क्य (सं० त्रि०) दुर्-वि-तर्क यत्। जो सहजमें

सोच कर स्थिर न किया जा सके, जिसके निश्चय करने में कठिनता हो।

दुर्विद (सं० त्रि०) १ दुर्ज्ञेय, जिसे जानना कठिन हो।

दुर्विदग्ध (सं० त्रि०) दुष्टो विदग्धः प्रादिस०। १ गर्वित अहङ्कारी। २ जो अच्छी तरह जला न हो, अधजला। ३ जो पूर्ण परिपक्व न हो।

दुर्विदग्धता (सं० स्त्री०) पूरी निपुणताका अभाव, अधकचरापन।

दुर्विदत्र (सं० त्रि०) विद-लाभे विद ज्ञाने वा बाहु० अत्र, विदत्रं लभ्यं धनं ज्ञानं वा प्रादिस०। १ दुर्धनक। २ दुर्ज्ञानक।

दुर्विद्य (सं० त्रि०) दुर्विद-यत्। अज्ञ, अशिक्षित, मूर्ख।

दुर्विध (सं० त्रि०) दुष्टा विधा अस्य। १ दरिद्र। २ खल। ३ मूर्ख।

दुर्विधि (सं० पु०) दुष्टः विधिः। १ दुर्भाग्य। २ कुनियम, बुरी विधि।

दुर्विधेया (सं० स्त्री०) कर्पूरशठी।

दुर्विनय (सं० पु०) दुर्-वि नी भावे अच्। विनय राहित्य, बुरा शिष्टाचार।

दुर्विनीत (सं० त्रि०) दुर्-वि-नी कर्त्तरि क्त। विनय शून्य, अशिष्ट, उद्धत, अक्खड़।

दुर्विनीति (सं० स्त्री०) दुर्-वि नी भावे क्तिन्। विनय-राहित्य, अशिष्टाचार, उद्धतपन।

दुर्विपाक (सं० पु०) दुष्टः विपाकः। १ मन्द परिणाम, बुरा फल। २ दुर्घटना, बुरा संयोग।

दुर्विभाग (सं० पु०) दुष्टो विभागः प्रादिस०। मन्द विभाग, वह जो जल्दी विभक्त न किया जाय।

दुर्विभाव्य (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन विभाव्यते दुर्-वि-भू-ण्यत्। दुर्बोध, जिसका अनुमान न हो सके।

दुर्विभाष (सं० क्लो०) दुष्टा विभाषा यत्र। दुर्वाच्य, बुरा वचन।

दुर्विमोचन (सं० त्रि०) दुःखेन विमोचनं यस्य। १ बहुत कष्टसे मोचनीय, जिससे छुटकारा पाना मुश्किल हो। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुर्विलसित (सं० क्लो०) दुष्टं विलसितं। दुष्कार्य, खराब काम।

दुर्विवक्तृ (सं० पु०) दुष्टः विवक्ता। मन्दवक्ता, कटु वचन बोलनेवाला।

दुर्विवाह (सं० पु०) दुर्निन्दितो विवाहः। आसुर आदि चार प्रकारके विवाह। ब्राह्म प्रभृति चार प्रकारके विवाहमें गुणवान् पुत्र उत्पन्न होते, इसीसे इस प्रकारके विवाहको सुविवाह कहते हैं और आसुर प्रभृति चार प्रकारके विवाहमें ब्रह्मद्वेषी तथा धर्मद्वेषी पुत्र उत्पन्न होते, इसीसे उसे दुर्विवाह कहते हैं। निन्दिता स्त्रीको व्याहनेसे निन्दित सन्तान होती है, वह भी दुर्विवाह है।

दुर्विष (सं० पु०) दुःस्थितो विषो यस्य। विषजन विकार-शून्य शिव, महादेव। समुद्र मथनेके समय महादेवने विषपान किया था, पर विषका प्रभाव उनपर कुछ भी न पड़ा, इसीसे महादेवका नाम 'दुर्विष' पड़ा है।

दुर्विषह (सं० त्रि०) दुःखेन विषह्यतेऽसौ दुर्-वि-सह कर्मणि खल्। १ अत्यन्त दुःखसे सहनीय, जिसे सहना कठिन हो। २ असह्य। (पु०) ३ शिव, महादेव। ४ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुर्विषह्य (सं० त्रि०) दुःखेन विषह्यते वि-सह-यत्। अत्यन्त दुःखसे सहनीय, जिसे सहना कठिन हो।

दुर्वृत्त (सं० क्लो०) दुष्टं वृत्तं प्रादिस०। १ निन्दित आचरण, बुरा व्यवहार। दुःस्थितं वृत्तं यस्य। २ दुर्जन, जिसका आचरण बुरा हो।

दुर्वृत्ति (सं० स्त्री०) दुष्टा वृत्तिः। मन्द व्यवहार, निन्दित आचरण, बुरा काम।

दुर्वेद (सं० त्रि०) दुःखेन विद्यते लभ्यतेऽसौ दुर्-विद लाभे कर्मणि खल्। दुर्लभ, जो कठिनतासे मिल सके।

दुर्व्यवस्था (सं० स्त्री०) कुप्रबन्ध, बद-इन्तजामी।

दुर्व्यवस्थापक (सं० पु०) दुष्टो व्यवस्थापकः। दुष्ट व्यवस्थापक, कुप्रबन्धकर्त्ता।

दुर्व्यवहार (सं० पु०) दुर्दुष्टो व्यवहारः। १ राग और लोभादि द्वारा असम्यक् निर्णीत व्यवहार, वह मुकदमा जिसका फैसला घूस अदावत आदिके कारण ठीक न हुआ हो। २ मन्द आचरण, बुरा व्यवहार। ३ दुष्ट आचरण।

दुर्व्यसन (सं० पु०) दुष्ट आदत, बुरी लत।

दुर्व्यसनी (सं० त्रि०) दुष्ट अभ्यासयुक्त, बुरी लतवाला।

दुर्व्याहृत (सं० त्रि० ) दुष्टं व्यवहृतं प्रादिस० । मन्द-कथित, खराब शब्दका व्यवहार करना ।

दुर्व्रजित (सं० क्ली०) गर्हितं व्रजितं प्रादिस० । निन्दित गति, खराब हालत ।

दुर्व्रत (सं० त्रि०) दुष्टं व्रतं । १ दुर्नीत, नीचाशय, जिसने बुरा व्रत लिया हो । (पु० ) २ दुष्ट मनोरथ, नीच आशय ।

दुर्हण ( सं० त्रि० दुःखेन आहन्यतेऽसौ आ-हन कर्मणि खल् । हनन करनेमें अशक्य, जिसे मारना कठिन हो ।

दुर्हणायु ( सं० त्रि० ) दुष्टं हननमिच्छति क्यच्, दुर्हनाय उन्, वेदे णत्वं । दुष्ट हननेच्छु, जो मार डालने की इच्छा करता हो ।

दुर्हणावत् ( सं० त्रि० ) दुर्हणा विद्यतेऽस्य दुर्हणा मतुप मस्य वः । सांघातिक, संहार करनेवाला ।

दुर्हणु ( सं० त्रि० ) दुःस्थो हनुर्यस्य प्रादि वहु० वा दुर्-हन-उन् । १ दुःखसे हननीय, जिसे कतल करना कठिन हो । २ दुष्ट हनुयुक्त, संहार करनेवाला ।

दुर्हल ( सं० त्रि० ) दुष्टो हलिरस्य अच् समा० । मन्द हलयुक्त, खराब हलवाला ।

दुर्हार्द ( सं० त्रि० ) दुराचरित, बुरा चालचलन ।

दुर्हित ( सं० त्रि० ) शत्रु, वैरी ।

दुर्हुत ( सं० क्ली० ) निन्दितं हुतं । निन्दित होम ।

दुर्हृणायु ( सं० त्रि० ) दुष्टं हृणीयते क्रुध्यति लज्जते वा दुर्-हृणो कण्ड्वादित्वात् यक्, ततो उण्, अल्लोपय-लोपौ पृषो० साधुः ईकारस्याकारः । १ दुष्ट क्रोधन, दुष्टभावसे क्रोधी । २ दुष्टभावसे लज्जमान ।

दुर्हृद ( सं० त्रि० ) दुर्दुष्टं हृदयं यस्य (सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः । पा ५।४।१५० ) इति निपातनात् हृदयस्य हृद्भावः । शत्रु, दुश्मन ।

दुर्हृदय ( सं० त्रि० ) दुःस्थं हृदयं यस्य प्रादि० वहु० । १ दुष्टान्तःकरण युक्त, बुरे दिलका, खोटा । दुष्टं हृदयं (क्ली०) २ दुष्ट अन्तःकरण । जहां शत्रु और मित्र न मालूम पड़े वहां हृदय शब्दको जगह हृद् आदेश नहीं होता है । शत्रु और मित्र मालूम पड़ने पर दुर् और सु पूर्वक हृदय शब्दको जगह हृद् आदेश होता है । इसी से दुर्हृदय इस जगह हृद् आदेश नहीं हुआ ।

दुर्हृषीक ( सं० त्रि० ) दुर्दुष्टः हृषीकं यस्य । दुर्बलेन्द्रिय जिसको इन्द्रियां दुर्बल हों ।

दुलकी ( हिं० स्त्री० ) घोड़ेकी एक चाल । इसमें घोड़ा चारों पैर अलग अलग उठा कर कुछ उछलता हुआ चलता है ।

दुलखी ( हिं० स्त्री० ) ज्वार, नील, तमाखू, सरसों और गेहूं आदि फसलोंको नुकसान पहुंचानेवाला एक प्रकारका कीड़ा

दुलड़ा ( हिं० वि० ) १ दो लड़ोंका । २ वह माला जिसमें दो लड़ हों ।

दुलड़ी ( हिं० स्त्री० ) दो लड़ोंकी माला ।

दुलती ( हिं० स्त्री० ) १ मालखम्भकी एक कसरत । २ घोड़े आदि चौपायोंका पिछले दोनों पैरोंको उठा कर मारना ।

दुलदुल ( अ० पु० ) एक प्रकारकी खच्चरी । इसे इसकन्दरिया (मिस्र)के हाकिमने मुहम्मद साहबको नजरमें दिया था । साधारण लोगोंमें यह घोड़ा समझा जाता है और मुहर्रमके दिनोंमें इसकी नकल निकाली जाती है । मुसलमान लोग मुहर्रमकी आठवींको अब्बासके नामका और नवींको हुसैनके नामका बिना सवारका घोड़ा धूमधामके साथ निकालते हैं ।

दुलरी (हिं० स्त्री० ) दुलड़ी देखो ।

दुलहन ( हिं० स्त्री० ) नवविवाहिता वधू, नई व्याही हुई स्त्री ।

दुलहा ( हिं० पु० ) दूल्हा देखो ।

दुलहिन ( हिं० स्त्री०) दुलहन देखो ।

दुलहेटा ( हिं० पु० ) प्रिय पुत्र, लाड़ला बेटा, दुलारा लड़का ।

दुलाई ( हिं० स्त्री० ) ओढ़नेका दोहरा कपड़ा । इसके भीतर रूई भरी रहती है ।

दुलाई—१ पार्वतीय त्रिपुराराज्यमें प्रवाहित एक उपनदी जो मनुनदीसे निकली है । २ त्रिपुरा राज्यके अन्तर्गत एक परगना ।

दुलार ( हिं० पु० ) प्रेम, अनुराग ।

दुलारना ( हिं० क्रि० ) प्रेमके कारण बच्चों या प्रेमपात्रोंको खुश करनेके लिए उनके साथ अनेक प्रकारकी चेष्टा करना, लाड़ना ।

दुलारभट्टाचार्य—प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ गदाधरीको क्रोड नामक टीकाके रचयिता।

दुलारा (हिं० वि०) १ प्यारा, लाड़ला। (पु०) २ प्रिय पुत्र, लाड़ला बेटा।

दुलारी (हिं० वि०) १ प्यारी, लाड़ली। २ प्रिय कन्या, लाड़ली बेटी।

दुलीचन्द—हिन्दीके एक कवि। इनका जयपुरमें निवासस्थान था। इन्होंने सं० १८०० के लगभग महाराज रामसिंह जयपुरनरेशकी आज्ञासे "महाभारत भाषा" नामकी एक पुस्तक लिखी।

दुलीचा (हिं० पु०) आसनविशेष, गलीचा, कालीन।

दुलीदुह (सं० पु०) दिलीपराजाके पिता, अनमित्रके पुत्र। (हरिवंश १५ अ०)

दुलैचा (हिं० पु०) गलीचा, कालीन।

दुलोल—सूक्तिकर्णामृतधृत एक कवि।

दुलोही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी तलवार। यह लोहेके दो टुकड़ोंको जोड़ कर बनाई जाती है।

दुल्लल (सं० त्रि०) दु-क्विप्, दुतं ललति लल-अच्। रोमश।

दुल्ला नवाब—एक विख्यात साधु। १७५४ शकमें ये कलकत्तेके निकटवर्त्ती शिवपुरसे भूकैलासमें लाये गये। उस समय ये समाधिस्थ थे। कितने बङ्गाली और साहबने इनके ध्यान भङ्गको चेष्टा की। नाकके पास अमोनियाका प्रयोग करनेसे भी इनका ध्यान भङ्ग न हुआ।

कब तक वे समाधिस्थ रहे, इसका कुछ निश्चय नहीं है उस समय वे कुछ भी खाते पीते नहीं थे। बहुत मुश्किलसे दो चार बुन्द दूध गलेके भीतर डाला जाता था। जो कुछ हो जन साधारणकी उत्तेजनासे कुछ दिनके बाद ही उनका ध्यानभङ्ग हुआ। ५।७ दिन कोशिश करने पर वे दो एक बात बोले थे। नाम पूछने पर वे 'दुल्लानवाब' अपना नाम बतलाते थे। कोई कोई उन्हें पञ्जाबी समझता था। जब वे समाधिस्थ थे, तब उनका वर्ण तप्त काञ्चनके जैसा उज्ज्वल था। किन्तु ध्यानभङ्गके बाद उनकी पहली मुखश्री और शरीरको ज्योति जाती रही। १७५५ शकमें उदरभङ्ग हो कर उनकी मृत्यु हुई।

समाधिकालमें योगीगण जो महा स्वच्छन्द भोग करते हैं एवं इस दुर्दिनके समय भी जो भारतमें सिद्ध योगीका अभाव नहीं है, यह साधु उसका निदर्शन स्वरूप हैं।

दुल्व—तिब्बतमें बौद्धोंका विनयशास्त्र।

दुल्हो—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलेका एक नगर। यह चोका नदीसे दो कोस उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। पहले यहां जमींदारका एक बड़ा मकान था। सिपाही-विद्रोहके समय यह अंग्रेजोंके अधिकारभुक्त हुआ।

दुल्ला (हिं० स्त्री०) दूसरे नम्बरका गोली, गोलोके खेलमें गोर गोलोके पोछेको गोली।

दुवन (हिं० पु०) १ दुर्जन, बुरा आदमी। २ राक्षस, दैत्य। ३ शत्रु, वैरो।

दुवस् (सं० क्लो०) दुवस् परिरक्षणे कण्ड्वादि० यक् दुरस्य क्विप् अलोपयलोपौ भावः। १ हविः। २ परिचरण, टहल, खिदमत।

दुवस्य (सं० त्रि०) दुवस्य शक्यार्थे यत् अल्लोपयलोपौ। परिचर्यार्ह, सेवा करने योग्य, खिदमत करने काबिल।

दुवस्यु (सं० वि०) दुवः परिचरणमिच्छति क्यच्, ततो उन्। परिचरणेच्छायुक्त, जिसको इच्छा सेवा करनेको हो, जो टहल करना चाहता हो।

दुवस्वत् (सं० त्रि०) दुवो हविः परिचरणं वास्त्यस्य मतुप् मस्य वः सान्तत्वात् न पदकार्य। १ हविर्युक्त। २ परिचरणयुक्त।

दुवाज (हिं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा।

दुवाल (फा० स्त्री०) चमड़ेका तसमा। २ रिकाबका तसमा।

दुवालबन्द (फा० पु०) कमर आदिमें लपटनेका चमड़ेका तसमा।

दुवाली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका औजार। यह रंगे वा छपे कपड़ों पर चमक लानेके लिए घोंटनेके काममें आता है। २ बन्दूक, तलवार आदि लटकानेका चमड़ेके चौड़े तसमेका परतला।

दुवालीबंद (फा० पु०) वह सिपाही जो परतला आदि लगाये तैयार रहता है।

दुवोया (सं० स्त्री०) पूजा।

दुवोयु (सं० त्रि०) दुवः परिचर्यामिच्छन्ति क्यचि वेदे वा पदकार्यं ततो उन्। परिचरणेच्छु, जो पूजा वा सेवा करना चाहता हो।

दुश्वार (फा० वि०) १ दुरूह, कठिन। २ दुःसह, जो सहन करने योग्य न हो।

दुश्वारी (फा० स्त्री०) कठिनता।

दुशाला (हिं० पु०) पशमीनेकी चद्दरोंका जोड़ा। इसके किनारे पशमीनेकी रंग बिरंगी बेलें बनी रहती हैं। काश्मीर और पेशावरमें दुशाला बहुत तैयार होता है। काश्मीरी दुशाले अच्छे और कीमती होते हैं।

दुशालापोश (फा० वि०) १ अमीर। २ जो अच्छा कपड़ा पहने हुए हो। ३ जो दुशाला ओढ़े हो।

दुशाला-फरोश (फा० पु०) दुशाला बेचनेवाला।

दुश्चक्रम (सं० पु०) गोचर, गोखरू।

दुश्चर (सं० त्रि०) दुःखेन चर्यतेऽसौ दुर्-चर कर्मणि खल्। १ दुष्कर, जिसका करना कठिन हो। २ दुर्गम, जहां जाना कठिन हो। दुःखेन दुष्टं वा चरति चर-अच्। ३ शम्बूक, सीप। ४ भल्लूक, भालू।

दुश्चरत्व (सं० क्ली०) दुश्चरस्य भावः त्व। दुश्चरका भाव, दुश्चरता।

दुश्चरित (सं० क्ली०) दुष्टं चरितं प्रादिस०। १ दुष्कृत, पाप।

मनुने लिखा है, कि इस जन्म वा पूर्व जन्मके दुश्चरित्र द्वारा मनुष्य कोढ़ी, कुनखी आदि होते हैं अर्थात् पाप करनेका फल उन्हें अवश्य ही भुगतना पड़ता है। जिस तरह महाह्रदमें ढेला फेंकनेसे वह डूब जाता है, उसी तरह सब दुश्चरित वेदमें डूब जाते हैं, अर्थात् वेदपाठ और वेदोक्त क्रियाकलापका अनुष्ठान करनेसे सब दुश्चरित जाते रहते हैं। जो यथाविहित वेदपाठ और वैदिक क्रिया-का अनुष्ठान करते हैं उन्हें पापकी ओर ध्यान नहीं रहता है एवं पूर्वकृत पाप दूर हो जाते हैं। २ दुश्च-रित्र, बुरा आचरण, बदचालिनो। (त्रि०) दुःखेन चरितं। ३ दुःखसे आचरणीय, बहुत कठिनतासे करने योग्य। ४ दुष्ट आचरणयुक्त, बदचलन।

दुश्चरितिन् (सं० त्रि०) दुराचार।

दुश्चरित्र (सं० त्रि०) दुर्निन्दितं चरित्रं यस्य। १ मन्द-चरित्र, बुरा चरित्रवाला, बदचलन। (पु०) २ दुराचार, बुरी चाल।

दुश्चर्मन् (सं० पु०) दुष्टं चर्म यस्य। अनावृतमेढ़, वह पुरुष जिसकी लिङ्गेन्द्रियके मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा न हो। इसका पर्याय—छिन्नमक, चण्ड और शिपिविष्ट है। गुरुपत्नीहरण करनेसे दुश्चर्मा होता है जो महापातकका चिह्न है।

इस प्रकारके लोग जन्मसे ही बिना इस चमड़ेके होते हैं। ऐसे पुरुषोंको बिना प्रायश्चित्त किये किसी कर्मके करनेका अधिकार नहीं है। यहां तक कि बिना प्राय-श्चित्त किये उनका दाहकर्म और मृतकर्म भी नहीं किया जा सकता। महापातक देखो।

दुश्चलन (हिं० स्त्री०) दुराचरण, खोटी चाल।

दुश्चारित्र (सं० क्ली०) चरित्रमेव स्वार्थे अण्, चारित्र, दुष्टं चारित्रं। १ दुष्ट चरित्र, पाप। (त्रि०)-दुःस्थितं चारित्रमस्य। २ दुष्टचरित्रयुक्त, बदचलन।

दुश्चिकित्स (सं० त्रि०) दुर्-चिकित्स-खल्। अचिकित्स, जिसकी चिकित्सा कठिन हो।

दुश्चिकित्सा (सं० स्त्री०) दुर्निन्दिता चिकित्सा। निन्दित चिकित्सा, आयुर्वेद सम्बन्धी चिकित्साके विरुद्ध चिकित्सा करना। अनाड़ी या दुष्ट चिकित्सक यदि इस तरह गो पशु आदि की चिकित्सा करे तो उन्हें उत्तम साहस दण्ड और मनुष्यकी चिकित्सा करे तो मध्यम साहस दण्ड देनेका विधान है।

दुश्चिकित्सित (सं० त्रि०) दुश्चिकित्स-क्त। अचिकित्सनीय, जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाईसे हो सके। जिस ग्राम में दुश्चिकित्सित व्याधि पीड़ित लोग रहते हों, उस ग्राम-में वास नहीं करना चाहिये।

दुश्चिकित्स्य (सं० त्रि०) दुर्-कित स्वार्थे सन्, दुःखेन चिकित्स्यते दुर्-चिकित्स कर्मणि यत्। बहुत दुःखसे चिकित्सनीय, जिसकी चिकित्सा कठिनतासे हो सके।

दुश्चिक्य (सं० क्ली०) लग्नसे तृतीय राशि, फलित ज्योतिषके अनुसार जन्मसे तीसरा स्थान।

दुश्चित् (सं० पु०) १ दुश्चिन्ता, आशङ्का, खटका। २ आकु-लता, घबराहट।

दुश्चिन्ता (सं० स्त्री०) कुचिन्ता, आशङ्का, फिक्र।

दुश्चिन्त्य (सं० त्रि०) दुःखेन चिन्त्यते चिन्ति कर्मणि यत्। अति दुःख द्वारा चिन्तनीय, जो कठिनतासे समझमें आवे।

दुश्चेष्टा (सं० स्त्री०) कुचेष्टा, बुरा काम।

दुश्चेष्टित (सं० क्ली०) दुर्निन्दितं चेष्टितं। १ निन्दित चेष्टित, दुष्कर्म, पाप। २ मन्द कार्य, खोटा काम।

दुश्च्यवन (सं० पु०) दुःसहं च्यवनं चालनमस्य वा दुर्दुष्टश्च्यवनः शिवो यस्य दुर्-च्यु-ल्यु। १ इन्द्र।

इन्द्र बहुत काल तक स्वर्गमें राज्य करनेके बाद अपने स्थानसे च्युत हुए थे, इसी कारण इनका नाम दुश्च्यवन पड़ा है। एक एक मन्वन्तरमें चौदह इन्द्र होते हैं। कमसे कम पांच हजार युग तक एक एक इन्द्र अपने स्थान पर रहते हैं। कल्पभेदसे प्रत्येक इन्द्रका नाम भिन्न भिन्न है। इन्द्र देखो। (त्रि०) २ अविचाल्य, जो जल्दी विचलित न हो।

दुश्च्याव (सं० त्रि०) दुःखेन च्याव्यतेऽसौ दुर्-च्यु-णिच कर्मणि खल्। १ अति कष्टसे च्यावनीय, जो जल्दी च्युत न किया जा सके। (पु०) २ शिव, महादेव

दुश्मन (फा० पु०) शत्रु, वैरी।

दुश्मनी (फा० स्त्री०) शत्रुता, वैर।

दुश्श्रव (सं० क्ली०) दुःखेन श्रूयतेऽसौ दुर्-श्रु-खल्। श्रुतिदुःखावह परुषवर्णयुक्त काव्यदोषभेद। जहां शब्द विन्यास सुननेमें बहुत कठोर मालूम पड़े, वहां यह दोष होता है।

दुष्कर (सं० त्रि०) दुःखेन क्रियते दुर्-कृ कर्मणि खल्। १ अत्यन्त दुःखसे करणीय, जिसे करना कठिन हो। (क्ली०) २ आकाश। भावे खल्। ३ दुःखसे करण, वह काम जो कठिनतासे किया जा सके।

दुष्करचर्या (सं० स्त्री०) दुष्कर कार्यके अधीन।

दुष्करण (सं० त्रि०) जो मुशकिलसे हो सके।

दुष्कर्ण (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुष्कर्मन् (सं० क्ली०) दुष्टं कर्म प्रादिस०। १ पाप। दुर्निन्दितं कर्म यस्य। २ पापकर्मकारक, बुरा काम करनेवाला।

दुष्कर्मी (हिं० वि०) १ दुराचारी, बुरा काम करनेवाला। (पु०) २ पापी।

दुष्कलेवर (सं० पु० क्ली०) दुष्टं निन्दितं कलेवरं। १ कुत्सित कलेवर, खराब शरीर। २ व्याधिमय देह।

दुष्काल (सं० पु०) दुष्टः काल प्रादिस०। १ निन्दित काल, जिस कामके लिये जो काल निर्णीत है, वह काम उस समयमें न कर किसी दूसरे समयमें करनेसे कालका दुष्टत्व होता है। दुःसहः कालो कलनमस्य। २ महादेव। ३ दुर्भिक्ष, अकाल।

दुष्कीर्त्ति (सं० त्रि०) दुष्टा कोर्त्तिर्यस्य। १ दुष्टकीर्त्ति युक्त, जिसे अपयश हो। (स्त्री०) दुष्टा कीर्त्तिः। २ कुकीर्त्ति, अपयश, बदनामी।

दुष्कुल (सं० क्ली०) दुष्टं कुलं प्रादिस०। १ निन्दित कुल, नीच कुल, बुरा खानदान। २ चोरक नामक गन्ध द्रव्य। दुष्टं कुलं यस्य। (त्रि०) ३ नीच कुलजात, नीच कुलका, तुच्छ घरानेका।

दुष्कुलीन (सं० त्रि०) दुष्कुले भवः दुष्कुल ठक्। निन्द्य कुलभव, नीच घरानेका।

दुष्कृत् (सं० क्ली०) मन्दकार्य, बुरा काम।

दुष्कृत (सं० क्ली०) दुष्टं कृतं प्रादिस०। १ पाप। २ बुरा काम।

दुष्कृतकर्मन् (सं० क्ली०) दुष्कृतं कर्म यस्य। १ दुष्कार्य, बुरा काम। (त्रि०) २ पापी, बुरा काम करनेवाला।

दुष्कृतात्मन् (सं० त्रि०) दुष्कृतं आत्मा स्वभावो यस्य। पापात्मा, दुरात्मा, खोटा।

दुष्कृति (सं० त्रि०) दुष्टा कृतिर्यस्य। १ दुष्कर्मकारक, कुकर्मी, पापी। २ कुकर्म, बुरा काम।

दुष्कृतिन् (सं० त्रि०) दुष्कृतमस्त्यस्य अस्त्यर्थे इनि। दुष्कृतकारी, बुरा काम करनेवाला।

दुष्कृष्ट (सं० त्रि०) दुर्-कृष-क्त। जो दुःखसे कर्षित हुआ हो, जो बहुत कठिनतासे खींचा गया हो।

दुष्क्रिया (सं० स्त्री०) दुष्टा क्रिया। कुकार्य, बुराकाम।

दुष्क्रियाचरण (सं० क्ली०) दुष्क्रियाका अनुष्ठान, बुरे कामका करना।

दुष्क्रियारत (सं० त्रि०) दुष्क्रियाया रतः ७-तत्। कुकार्यमें अतिनिविष्ट, जो बुरे काममें लगा रहता हो।

दुष्क्रीत (सं० त्रि०) दुर्दुःखेन क्रीयते स्म इति दुर्-क्री क्त। दुर्मूल्य, महंगा।

दुष्ख—दुःख देखो।

दुष्खदिर (सं० त्रि०) दुष्टः खदिरः प्रादिस०। कालस्कन्द, एक प्रकारका खैर। इसका पेड़ छोटा होता है। इसका संस्कृत पर्याय—कम्बोजी, कालस्कन्द, गोरट, अमरज, पत्रतरु, बहुसार, खदिर, महासार और क्षुद्रखदिर है। इसका गुण—कटु, उष्ण, तिक्त, रक्तव्रणोत्थ दोष, कण्डूति, विष, विसर्प, ज्वर, कुष्ठ और उन्माद नाशक है।

दुष्ट (सं० त्रि०) दुष-क्त। १ दुर्बल, कमजोर। २ अधम, नीच, खोटा। ३ दोषाश्रित, जिसमें दोष हो। ४ पित्तादि दोषयुक्त, जिसे पित्त आदि दोष हो। (क्लो०) ५ कुष्ठ, कोढ़।

दुष्टगज (सं० पु०) दुष्टः गजः। गम्भीरवेदी हस्ती, बदमाश हाथी।

दुष्टचारिन् (सं० त्रि०) दुष्टं चरति चर णिनि। १ दोषयुक्त कर्मकारी, बुरा आचरण करनेवाला। २ दुर्जन, खल।

दुष्टचेता (सं० त्रि०) १ बुरी चिन्ता करनेवाला, बुरे विचारका। २ अहिताकांक्षी, बुरा चाहनेवाला। ३ कपटी।

दुष्टता (सं० स्त्री०) दुष्टस्य भावः दुष्ट-तल् ततो टाप्। १ दुर्जनता, बदमाशी। २ दोष, नुक्स, ऐब। ३ बुराई, खराबी।

दुष्टत्व (सं० क्लो०) दुष्टस्य भावः दुष्ट भावे-क्त। दुष्टता, खोटाई।

दुष्टनु (सं० त्रि०) दुष्टा तनुर्यस्य प्रादि बहु० वेदे षत्वं। दुष्ट देहयुक्त, खराब शरीरवाला।

दुष्टपना (सं० पु०) दुष्टता, खोटाई।

दुष्टपीनस (सं० पु०) पीनसरोग।

दुष्टप्रतिश्याय (सं० पु०) नासारोगविशेष, नाकको एक प्रकारकी बीमारी।

दुष्टयोग (सं० पु०) दुष्टः योगः। १ वैधृति व्यतिपात प्रभृति निन्दित योग। इस योगमें स्नान दानादि सभी शुभ कर्म वर्जित हैं। २ अरिष्टसूचक गोचरविलग्नादि स्थित ग्रहयोगभेद।

दुष्टर (सं० त्रि०) दुःखेन तीर्यतेऽसौ कर्मणि खल् वेदे षत्वं। दुस्तर, जिसे पार करना कठिन हो।

दुष्टरक्ताट्टक (सं० त्रि०) दुष्टा रक्ता च ट्टगस्य। पित्तादि दोषज रक्तनेत्रक। पित्तादि दोष उत्पन्न होनेसे आंखें लाल हो जाती हैं, इसीको दुष्टरक्ताट्टक कहते हैं। जो अत्यन्त स्त्री आशक्त हैं, वे दुष्टरक्ताट्टक होकर जन्मग्रहण करते हैं।

दुष्टरीतु (सं० पु०) दुर्-तृ-तुन् वेदे इ, दीर्घश्च ततोषत्वं। बहुत दुःख द्वारा तरणीय, जिसे पार करना कठिन हो।

दुष्टवृष (सं० पु०) दुष्टः वृषः। वह बैल जो सामर्थ्य होने पर भी बोझ खींच न सके, मट्टर बैल। इसका पर्याय गलि है।

दुष्टव्रण (सं० पु०) दुष्टः व्रणः। अचिकित्स्य व्रणभेद, वह घाव जो अच्छा न हो सके। यह रोग चिकित्सा करने पर भी आरोग्य नहीं होता है। जिसने पूर्व जन्ममें घोर पाप किया है, उसे ही यह रोग होता है। इसमें यदि मृत्यु हो जाय, तो प्रायश्चित्त किये बिना दाहादिकार्य नहीं होता है। यदि कोई मोहवश उसको दाहादि क्रिया कर बैठे, तो दाहकारीको भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है नहीं तो वह किसी तरहका धर्म-कर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकता है।

दुष्टव्रण, गण्डमाला, पक्षाघात प्रभृति रोग महापातकज है। रोगी यदि जीवित कालमें इस रोगका प्रायश्चित्त न करे, तो उस घरके लोग भी व्रतनियमादि किसी धर्म-कर्मका अनुष्ठान नहीं कर सकते हैं। किन्तु प्रायश्चित्त करने पर पाप नष्ट हो जाता है और पीछे रोग भी धीरे धीरे घटने लगता है। इसी कारण सभी पातकज रोगोंमें सबसे पहले प्रायश्चित्त करना आवश्यक है।

दुष्टसाक्षिन् (सं० पु०) दुष्टः साक्षी कर्मधा०। नारदादि कथित असाक्षित्व प्रयोजक दोषयुक्त साक्षी, कूटसाक्षी। जो गवाह सच्ची गवाही नहीं देते, उन्हें दुष्टसाक्षी कहते हैं। सभी वर्णोंमें जो सत्यवादी है, जिन्हें कर्त्तव्य कर्मका ज्ञान है और जो अलुब्ध हैं उन्हें साक्षी बना सकते हैं। किन्तु इसका विपरीत गुणावलम्बी होनेसे उन्हें त्याग कर देना चाहिये। जिनके साथ अर्थका सम्बन्ध है, जो मित्र, साहाय्यकारी, भृत्य और प्रकृति शत्रु हैं, जिन्होंने पहले झूठी गवाही दी है, जो व्याधि-

ग्रस्त तथा महापातकादि दोषसे दूषित हैं, उनकी साक्षी ग्राह्य नहीं है। वही सब साक्षी दुष्टसाक्षी कहलाते हैं। सूपकार तथा उसी प्रकारका कारुकर्मजीवी, नटादि बहुवेदज्ञ, ब्रह्मचारी वा संन्यासी, दास, लोक विगर्हित व्यक्ति, निषिद्धकर्मकारी, वृद्ध शिशु, चण्डालादि नीचजाति, अन्ध खञ्जादि विकलेन्द्रिय, आर्त्त, मत्त, उन्मत्त, क्षुधा तृष्णासे पीड़ित, पथश्रमसे क्लान्त, कामातुर, क्रुद्ध और तस्कर इन्हें भी साक्षी बना नहीं सकते। इन लोगोंकी भी दुष्टसाक्षीमें गिनती की गई है। (मनु ८।६४-६५) विशेष विवरण साक्षिन् शब्दमें देखो।

दुष्टाचार (सं० पु०) १ कुकर्म, कुचाल, खोटा काम। (त्रि०) २ दुराचारी, बुरा काम करनेवाला।

दुष्टाचारी (सं० त्रि०) कुकर्मी, खोटा काम करनेवाला।

दुष्टात्मा (सं० त्रि०) जिसका अन्तःकरण बुरा हो, खोटी प्रकृतिका।

दुष्टान्न (सं० पु०) १ दुष्ट अन्न, बिगड़ा हुआ अन्न, बासी अनाज। २ कुत्सित अन्न। ३ वह अन्न जो पापकी कमाई हो। ४ नीचका अन्न।

दुष्टि (सं० स्त्री०) दुष-क्तिच्। दोष, ऐब।

दुष्टु (सं० त्रि०) दुर्निन्दितं तिष्ठति दुर्-स्था कु-षत्वं। अविनीत, जो विनीत न हो, उद्धत।

दुष्टु (सं० अव्य०) दुर्-निन्दितं तिष्ठति दुर्-स्था-कु, ततो षत्वं। निन्दा, शिकायत।

दुष्टुत (सं० त्रि०) दुर्दुष्टः निन्दितः स्तुतः वेदे षत्वं। निन्दित भावसे स्तुत, जिसकी बड़ाई बुरी तरहसे की गई है।

दुष्पच (सं० त्रि०) दुःखेन पच्यते दुर्-पच-खल्। १ जो कठिनतासे पके। २ जो जल्दी न पचे।

दुष्पतन (सं० क्ली०) दुष्टं पतत्यनेन पत करणे ल्युट्। १ अपशब्द, कुवाच्य, गाली। (क्ली०) दुर्-पत भावे ल्युट्। बहुत दुःखसे पतन, बहुत मुश्किलसे गिरनेका भाव।

दुष्पत्र (सं० पु०) दुष्टानि पत्राणि यस्य। १ चोर नामक गन्धद्रव्य। २ चण्डाल-कन्द।

दुष्पद (सं० त्रि०) दुःखेन पद्यते दुर्-पद कर्मणि खल्। अत्यन्त दुःखसे प्राप्य, जो बहुत कठिनतासे मिले।

दुष्पराजय (सं० त्रि०) दुःखेन पराजीयतेऽसौ दुर्-परा-जि कर्मणि खल्। १ जय करनेमें अशक्य, जिसका जीतना कठिन हो। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुष्परिग्रह (सं० त्रि०) दुःखेन परिगृह्यतेऽसौ दुर्-परि-ग्रह कर्मणि खल्। १ परिग्रह करनेमें अशक्य, जो जल्दी पकड़में न आ सके, जिसे वशमें लाना कठिन हो। (स्त्री०) २ निन्द्यभार्या, बदचलन औरत। (त्रि०) दुःखितः परिग्रहो भार्या यस्य। ३ दुष्टभार्यक, जिसकी स्त्री खराब हो।

दुष्परिहन्तु (सं० त्रि०) दुर्-परि-हन खलर्थे तुन्। अत्यन्त दुःखसे नाशयितव्य, जिसे मरना कठिन हो।

दुष्परीक्ष (सं० त्रि०) दुःखेन परीक्ष्यते दुर्-परि-ईक्ष-यत्। अत्यन्त दुःखसे परीक्षणीय, जिसे जांचना कठिन हो।

दुष्पर्श (सं० त्रि०) दुर्-स्पृश कर्मणि खल्-वा विसर्गलोपः। १ दुःखसे स्पर्शनीय, जिसे स्पर्श करना कठिन हो, जिसे छूते न बने। २ दुष्प्राप्य, जो जल्दी हाथमें न लगे। (स्त्री०) ३ दुरालभा, जवासा, धमासा।

दुष्पर्शा (सं० स्त्री०) दुरालभा, जवासा।

दुष्पान (सं० त्रि०) दुःखेन पीयतेऽसौ खलर्थे कर्मणि युच्। दुःखसे पेय, जो बहुत कठिनतासे पिया जा सके।

दुष्पार (सं० त्रि०) १ दुस्तर, जिसे जल्दी पार न कर सके। २ दुःसाध्य, कठिन।

दुष्पुत्र (सं० पु०) दुष्टः पुत्रं कर्मधा०। १ कुपुत्र, खराब लड़का। (त्रि०) दुष्टः पुत्रः यस्य। २ दुष्ट पुत्रयुक्त, जिसके खराब लड़का हो।

दुष्पुरुष (सं० पु०) दुष्टः पुरुषः कर्मधा०। निन्दित पुरुष, खोटा मनुष्य।

दुष्पूर (सं० त्रि०) दुर्-पूरि कर्मणि खल्। १ पूरण करनेमें अशक्य, जो जल्दी पूरा न हो सके। २ अनिवार्य, जो निवारणके योग्य न हो। मनुष्यकी आशा दुष्पूर है और वे इसकी मोहिनी मायामें विमोहित होकर पद पद दुःख पाते हैं। आशा एक भी पूरी नहीं होती है। एक आशा पूरी भी हो जाती है, तो फिर तुरत ही उसकी जगह एक दूसरी आशा उत्पन्न हो जाती है।

दुष्प्रकम्प्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्रकम्प्यते दुर्-प्र-कम्प-यत्। जो सहजमें न कँप सके।

दुष्प्रकाश (सं० त्रि०) दुष्टः प्रकाशः प्रादिस०। अन्धकार, अँधेरा।

दुष्प्रकृति (सं० त्रि०) दुष्टा प्रकृति र्यस्य। १ दुःशील, बुरे स्वभावका। (स्त्री०) २ बुरी प्रकृति, खोटा स्वभाव।

दुष्प्रजस् (सं० त्रि०) दुःस्था प्रजा यस्य बहुव्रीहौ असिच समासान्तः। निन्द्य प्रजायुक्त, जिसकी प्रजा खोटी हो।

दुष्प्रज्ञ (सं० त्रि०) निर्बोध, अनजान।

दुष्प्रज्ञान (सं० त्रि०) दुःखेन प्रज्ञायतेऽसौ दुर्-प्र-ज्ञा-खलर्थे कर्मणि युच्। १ जो सहजमें जाना न जा सके। (क्लो०) दुष्टं प्रज्ञानं। २ निन्दनीय ज्ञान, खराब बुद्धि।

दुष्प्रतिग्रह (सं० त्रि०) प्रतिग्रहके पक्षमें बहुत कठिन, जो जल्दी ग्रहण न किया जा सके।

दुष्प्रतिवीक्षणीय (सं० त्रि०) दुर्-प्रति वि-ईक्ष अनीयर्। जो बहुत कष्टसे देखा जाय, जो जल्दी दीख न पड़े।

दुष्प्रतिवीक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्रतिवीक्ष्यते दुःख प्रति वि-ईक्ष कर्मणि-यत्। जो बहुत कठिनतासे दिखाई पड़े।

दुष्प्रधर्ष (सं० त्रि०) दुष्करः प्रधर्षोऽस्य। १ अत्यन्त दुःखसे धर्षणीय, जो जल्दी धर पकड़में न आ सके। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत भीष्म० ९८ अ०) (स्त्री०) ३ दुरालभा, जवासा, धमासा। ४ खजुंरा, खजूर।

दुष्प्रधर्षण (सं० त्रि०) दुर्-प्र-धृष भाषायां युच्। १ अत्यन्त दुःखसे धर्षणीय, जो जल्दी पकड़में न आ सके। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (स्त्री०) ३ वार्त्ताको।

दुष्प्रधर्षा (सं० स्त्री०) १ दुरालभा, जवासा, हिंगुवा। २ खजुंर, खजूर।

दुष्प्रधर्षिणी (सं० स्त्री०) दुष्प्रधर्षोऽस्त्यस्याः इनि-ङीप्। १ कण्टकारी, भटकटैया। २ वृहती, बैंगन, भंटा।

दुष्प्रधृष्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्रधृष्यतेऽनेन, दुर-प्र-धृष कर्मणि यत्। अत्यन्त दुःखसे धर्षणीय, जो बहुत मुश्किलसे पकड़में आ सके।

दुष्प्रमेय (सं० त्रि०) जो सहजमें नापा न जा सके।

दुष्प्रलम्भ (सं० त्रि०) दुःखेन प्रलभ्यते दुर्-प्रलभ-खल्। जो सहजमें ठगा न जा सके। २ जो सहजमें प्राप्त न हो सके।

दुष्प्रवाद (सं० पु०) दुष्टः प्रवादः प्रादिस०। १ दुष्ट प्रवाद, बुरी अफवाह। दुष्टः प्रवादो यस्य। २ निन्दित प्रवादयुक्त, जिसकी बुरी अफवाह हो।

दुष्प्रवृत्ति (सं० स्त्री०) दुष्टा प्रवृत्तिः प्रादि-स०। दुष्टा प्रवृत्ति, बुरी प्रवृत्ति।

दुष्प्रवेश (सं० त्रि०) दुष्करः प्रवेशोऽत्र। दुःखसे प्रवेश्य, जिसमें घुसना कठिन हो।

दुष्प्रवेशा (सं० स्त्री०) कन्थारी वृक्ष।

दुष्प्रसह (सं० त्रि०) दुःखेन प्रसह्यतेऽसौ दुर्-प्र-सह कर्मणि खल्। १ दुःसह, जिसका सहन करना कठिन हो। २ भीषण, भयानक। (पु०) ३ एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

दुष्प्रसाद (सं० त्रि०) जो सहजमें प्रसन्न न हो, जो बहुत मुश्किलसे खुश किया जाय।

दुष्प्रसादन (सं० त्रि०) दुष्प्रसाद देखो।

दुष्प्रसाध्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्रसाध्यतेऽनने दुर्-प्रसाध-यत्। साधन करनेमें अशक्य, जो बहुत कठिनतासे किया जाय।

दुष्प्रसाह (सं० त्रि०) दुःखेन प्रसह्यतेऽनेन खलर्थे घञ। दुःसह, जिसका सहन करना कठिन हो।

दुष्प्रहर्ष (सं० त्रि०) दुष्करः प्रहर्षोऽस्य। १ दुष्कर प्रहर्षयुत, जो सहजमें प्रसन्न न हो। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दुष्प्राप (सं० त्रि०) दुःखेन प्राप्यतेऽसौ दुर्-प्र-आप-खल्। दुर्लभ, जो कठिनतासे प्राप्त हो।

दुष्प्रापन (सं० त्रि०) दुष्प्राप्य, जो सहजमें न मिल सके।

दुष्प्राप्ति (सं० स्त्री०) दुःखसे प्राप्ति, वह चीज जो बहुत कठिनतासे मिले।

दुष्प्राप्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्राप्यतेऽसौ दुर्-प्र-आप कर्मणि यत्। दुरालभ्य, जिसका मिलना कठिन हो।

दुष्प्रावी (सं० स्त्री०) १ दुष्प्राप्य। २ अशुभकर।

दुष्प्रीति (सं० स्त्री०) दुष्टा प्रीतिः। १ अप्रीति, कुप्रेम, बुरी मुहब्बत। (त्रि०) दुष्टा प्रीतिर्यस्य। २ दुष्ट प्रीति-युक्त, जिसमें बुरा प्रेम हो।

दुष्प्रेक्ष (सं० त्रि०) दुःखेन प्रेक्ष्यते दुर्-प्र-ईक्ष कर्मणि खल्। १ दुर्दर्श, जिसे देखना कठिन हो। २ भीषण, भयङ्कर।

दुष्प्रेक्षणीय (सं० त्रि०) दुर्दर्शनीय।

दुष्प्रेक्ष्य (सं० त्रि०) दुःखेन प्रेक्ष्यते दुर्-प्र-ईक्ष-कर्मणि यत्। बहुत कष्टसे दर्शनीय, जिसे देखना कठिन हो।

दुष्मन्त (सं० पु०) पौरववंशीय एक राजा, चन्द्रवंशीय ऐलिराजाके पुत्र। ये अत्यन्त धर्मपरायण थे। इनकी कथा जो महाभारतमें लिखी है, वह इस प्रकार है—एक दिन राजा दुष्मन्त (दुष्यन्त) शिकार खेलते खेलते थक कर कण्वमुनिके आश्रमके पास जा निकले। यहांसे वे अमात्यवर्गको विदा कर आप अकेले कण्वमुनिके आश्रममें गये। इस समय महर्षि कण्व आश्रममें न थे। उनकी पाली हुई लड़की शकुन्तलाने राजाका उचित सत्कार किया। इस प्रकार पूजित हो कर राजाने शकुन्तलासे पूछा, 'भद्रे! मैं कण्व ऋषिका दर्शन करने आया हूं, वे कहां गये हैं?' शकुन्तलाने जवाब दिया, 'पिता फल फूल लानेके लिये गये हैं कुछ काल ठहर जाइये, तब उनसे दर्शन होगा।'

राजा शकुन्तलाके असामान्य सौन्दर्य देख कर उस पर मोहित हो गये और फिर पूछने लगे, 'शुभे! तुम ऐसी रूपसम्पन्ना हो कर इस जङ्गलमें क्यों और कहांसे आई हो? यदि कोई बाधा न हो, तो हमें सब वृत्तान्त कह सुनाओ जिससे हमारा कौतूहल दूर हो जाय।' यह सुन कर शकुन्तला बोली 'मैं अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई हूं, महामुनि कौशिक मेरे पिता हैं। मैं ऊर्ध्वरेता भगवान् कण्वकी पालितकन्या हूं।' राजाने शकुन्तलाको अप्सरा-गर्भसे उत्पन्न जान कर उससे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। इस पर शकुन्तलाने कहा, 'यदि गन्धर्वविवाहमें कुछ दोष न हो और यदि आप मेरे ही पुत्रको युवराज बनावें, तो मैं आपसे विवाह करनेको सम्मत हूं।' राजा दुष्मन्तने 'ऐसा ही होगा' स्वीकार कर यथाविधान गन्धर्व-मतसे शकुन्तलाका पाणिग्रहण किया। महर्षि कण्व जब आश्रममें आये, तब यह वृत्तान्त सुन कर बहुत खुश हुए। विवाहके बाद शकुन्तलाने गर्भ धारण किया। तीन वर्ष बीत जाने पर उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम ऋषियोंने सर्वदमन रखा। कुछ दिन बाद महर्षि कण्वने शिष्योंके साथ शकुन्तलाको राजाके पास भेज दिया। शकुन्तला राजाके पास पहुंच और यथोपयुक्त उनका सत्कार कर बोली, 'राजन्! यह आपका पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ है। देवतुल्य यह आपका औरसपुत्र है, इसे युवराज बनाइये।' राजाको सब बातें याद तो थीं, लेकिन लोकनिन्दाके भयसे उन्होंने उन्हें छिपानेकी चेष्टा की और शकुन्तलाका तिरस्कार करते हुए कहा, 'रे दुष्ट तपस्विनी! तू किसकी पत्नी है? तुम्हारे साथ धर्म, अर्थ और कामके विषयमें मैंने कभी कोई सम्बन्ध नहीं किया। अतः तुम्हारी इच्छा अब जहां जानेकी हो, वहां चली जा।'

राजाका ऐसा कठोर वचन सुन कर शकुन्तलाने भी लज्जा छोड़ कर जो जीमें आया खूब कहा। दुष्मन्तने भी जलीकटी बातोंसे शकुन्तलाका तिरस्कार किया। अन्तमें नितान्त क्रोधित हो कर शकुन्तलाने लगती बातोंमें राजासे कहा, 'राजन्! आप स्वयं दुर्जन हो कर सज्जनोंका तिरस्कार करते हैं, जिस प्रकार कुपित भुजङ्गसे डर लगता है, उसी प्रकार सत्यधर्मच्युत पुरुषसे आस्तिकोंकी बात तो दूर रहे, नास्तिक लोग भी डरते हैं। जो कुछ हो, जो मनुष्य पुत्र उत्पादन कर उसे स्वीकार नहीं करता, भगवान् उसे यथोचित फल देते हैं।' इतना कह कर शकुन्तलाने अपनी राह ली। उसी समय देववाणी हुई, 'महाराज! शकुन्तलाने जो कुछ कहा, यथार्थः सत्य है। यह पुत्र आपका ही है, इसे ग्रहण कीजिये। हम लोगोंके कहनेसे आप इसका भरण करें और इसका भरत नाम रखें।' देववाणी सुन कर राजाने शकुन्तलाको ग्रहण किया। शकुन्तलाके वह पुत्र आगे चल कर सार्वभौम राजचक्रवर्ती हुए। उसी भरतसे भारत नाम पड़ा है। (महाभारत आदि ६८-७४)

महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञान-शकुन्तला नामक ग्रन्थमें दुष्मन्तका जो हाल लिखा है, वह महाभारतसे बिलकुल पृथक् है। महाभारतमें यह लिखा है, कि दुष्मन्तने केवल लोकनिन्दाके भयसे शकुन्तलाको अच्छी तरह जानते हुए भी उसे परित्याग किया था। किन्तु कालि-

दासने कौशलसे राजा दुष्मन्तको दुष्ट नायक होनेसे बचाने-के लिए दुर्वासाके शापकी कल्पना की है और यह दिखलाया है, कि उसी शापके प्रभावसे राजा सब बातें भूल गये जिससे शकुन्तलाको लाचार हो कर लौट जाना पड़ा। फिर भी कविने राजाको बतलाते हुए यह कहा है, कि उस समय शकुन्तला गर्भवती थी, किसी धर्मभीरु व्यक्तिके बिना गर्भिनी स्त्रीको कौन अपनी स्त्री बना सकता है? इसके सिवा शकुन्तला जब राजाकी दी हुई अंगूठी उन्हें स्वयं दिखलानेको राजी हुई और पीछे न दिखला सकी, तब राजाका सन्देह और भी बढ़ गया और शकुन्तलाको लौट जाना पड़ा।

महाभारतमें लिखा है, कि शकुन्तलाने भी लज्जा छोड़ कर पुंश्चलीकी नाईं गालियोंकी बौछाड़ राजा पर की थी, किन्तु कालिदासने शकुन्तलाको मूर्त्तिमती लज्जा बतलाया है।

"शकुन्तला मूर्त्तिमतीव सत्क्रिया।" (शकुन्तला)

शकुन्तला कालिदासकी एक अपूर्व सृष्टि है। विशेष विवरण शकुन्तला शब्दमें देखो।

हरिवंशमें दुष्मन्तका जो विवरण लिखा है, वह इस प्रकार है—महाराज सुरोधके औरस और उपदानवीके गर्भसे दुष्मन्त उत्पन्न हुये थे। दुष्मन्तके पुत्र भरत थे जिनका जन्म शकुन्तलाके गर्भसे हुआ था।

(हरिवंश ३२ अ०)

दुर्योदर (सं० पु०) एक प्रकारका उदर-रोग। यह सिंह आदि पशुओंके नख और रोएं अथवा मल, मूत्र, आर्त्तव-मिश्रित अन्न वा एक साथ मिला हुआ घी और मधु खाने तथा गन्दा पानी पीनेसे उत्पन्न होता है। इस रोगमें त्रिदोषके कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला होता जाता है, उसके शरीरमें जलन होती है और कभी कभी उसे मूर्च्छा भी आती है। बदलीके दिन यह रोग प्रायः उभरता है।

दुसह (हिं० वि०) असह्य, जो सहा न जाय।

दुसाखा (हिं० पु०) १ दो कनखे निकले हुए एक प्रकार-का शमादान। २ एक प्रकारकी छोटी लकड़ी जो डंटेके आकारकी होती है। इसके छोर पर दो कनखे फूटे होते हैं। इसमें भाफा बांध कर भांग छानी जाती है।

दुसाध (हिं० पु०) १ सूअरपाली हिन्दुओंमें एक नीच जाति। यह पाण्डुपुत्र भीमसेनके अनुचरोंसे उत्पन्न है, ऐसा प्रवाद है। यह जाति आठ सम्प्रदायोंमें विभक्त है—कनौजिया, मगहिया, भोजपुरिया, पैलवार, कामर वा कानवर, कुरो वा कुरीण, धाढ़ी वा धार, शिलोटिया और बाहलिया।

उक्त सम्प्रदायोंमें परस्पर खानपान होता है, मगर विवाहका आदान प्रदान नहीं होता। किसी ग्वालेने दे बात् एक गायको मार डाला था, इसीसे वह धाढ़ी-दुसाध नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी कारण अन्यान्य दुसाध धाढ़ियोंके साथ मिलकर भोजनादि नहीं करते हैं। कामर वा कानवर सम्प्रदाय भी गोमांस खानेके दोषसे इसी तरह बहिर्गत थे; किन्तु अभी उक्त दोषसे विमुक्त हो कर वे आपसमें खाने पीने लगे हैं। कोई कोई बाहलियों को दुसाध नहीं मानते हैं, उन लोगोंका कहना है, कि ये बेदियाकी नाईं एक विभिन्न जाति हैं। दुसाधमें यह रिवाज है कि वह जब चाहे तब अपनी कन्याका विवाह कर सकता है, अधिक उमर होने पर भी यदि कन्याका विवाह न करे, तो कोई शिकायत नहीं होती। लेकिन किसी किसी सम्प्रदायमें ऐसा भी है कि अविवाहिता कन्याकी उमर ज्यादा हो जाने पर उसका विवाह विधवा-विवाहके जैसा होता है। इन लोगोंका विवाह हिन्दूके मतसे ही होता है। केवल धनी दुसाध विवाहके समय अपने पुरोहितको बुलाते हैं। कन्या यदि बचपनमें ही ब्याही जाय, तो ऋतुमती हुए बिना वह ससुराल नहीं जाती है। पुरुषमें केवल एक विवाह है, किन्तु स्त्री यदि चिररुग्ना, बन्ध्या वा मृतवत्सा हो, तो वह दूसरा विवाह कर सकता है। सन्थाल परगनेमें तीन विवाह तक करने-को प्रथा है। विधवा विवाहमें भी कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु विधवा अपने देवरसे विवाह कर सकती है। यदि विधवा किसी दूसरेसे विवाह करे, तो वह न तो अपने स्वामीकी सम्पत्तिकी अधिकारिणी होती और न सन्तानको अपने साथ ही ले जा सकती है। इन लोगोंमें पञ्चायत है। पञ्चायत सामाजिक दोषका विचार करती है। इस जातिमें विवाह-विच्छेदकी प्रथा भी है। सन्थाल परगने और पालामौमें शालके पत्तेको फाड़

कर तथा एक लकड़ीको दो खण्ड करके पतिपत्नीका सम्बन्ध तोड़ा जाता है।

ये लोग अपनेको हिन्दू बतलाते हैं। अनेक जिलोंमें ये श्रीनारायणी, कबीरपन्थी, तुलसीदास, गोरखनाथ वा नानकके सम्प्रदायभुक्त हैं। किन्तु यह बहुत आधुनिक है। पहले राहु ही दुसाधोंके एकमात्र उपास्य देवता थे। अभी भी अगहन, माघ, फाल्गुन और बैशाख महीनेके किसी किसी दिन राहुकी पूजा होती है। पटनेके समीप सेरपुरमें विख्यात दसा गोढ़ियाके नामसे एक मन्दिर है। वहां गोढ़ियाको देवता मान कर पूजते हैं।

बिहारमें भीमसेनके हारी सालाहस वा शैलेश, मिरजापुरमें विन्ध्याचल, पटनेमें पीर, भैरव, जगदा मा, काली और केतु तथा अन्यान्य स्थानोंमें चीरामल दुसाधोंके उपास्य देवता हैं।

बहुतसे कनौजी वा मैथिली ब्राह्मण ही दुसाधोंके पुरोहित हैं। पूर्व बङ्गालमें शाकद्वीपी ब्राह्मण भी दुसाधोंको पुरोहिताई करते हैं। चतुर्भुज रूपधारी विष्णुरचित ज्ञानसागर पुस्तक इन लोगोंका धर्मग्रन्थ है। ये लोग शवको जलाते और कभी जमीनमें भी गाड़ देते हैं। मृत्युके बाद ग्यारहवें दिनमें श्राद्धकर्म किया जाता है। सन्तान उत्पन्न होने पर स्त्रियां ६ दिन तक अशुचि रहती है और बारह दिन हुए बिना वे सांसारिक कार्य नहीं कर सकती है।

दुसाध डोम, धोबी और चमार छोड़ कर सभी जातिका अन्न खाते हैं। उक्त जातियोंके अतिरिक्त और सभी हिन्दू जातिके लोग दुसाध हो सकते हैं। दुसाध होते समय उनके सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको बकरेका मांस खिलाना पड़ता है तथा शराब भी देनी पड़ती है। पर विरले ही अपनी इच्छासे दुसाध होता है। इन लोगोंका जातिपेशा चौकीदारी है। पर अश्वरक्षक, माहुत, कुली, दरवानके काममें भी ये लोग नियुक्त होते हैं। बहुतसे दुसाध साहबके बवरची और खानसामा भी होते हैं। साधारणतः दुसाध कुकर्मी और चोर कह कर मशहूर है, इसीसे पुलिस इन लोगोंके ऊपर कड़ी निगाह रखती है।

दुसाध लोग साधारणतः हृष्टपुष्ट होते हैं। बङ्गालके नवाब अलिवर्दीखांके समयमें अनेक दुसाध सैनिकका काम करते थे। क्लाइवके समयमें भी दुसाध सैनिक थे। बङ्गाल, कोचबिहार, दार्जिलिङ्ग, त्रिपुरा, पटना, गया, तिरहुत, सन्याल परगना, लोहरडगा, सिंहभूम, मानभूम, युक्त प्रदेशमें कई जगह तथा गाजीपुरमें बहुतसे दुसाध वास करते हैं। (वि०) २ अधम, दुष्ट, नीच।

दुसार (हिं० पु०) १ आर पार छेद, वह छेद जो एक ओर से दूसरी ओर तक हो। (क्रि० वि०) २ आरपार, वारपार।

दुसाल (हिं० पु०) आर पार छेद।

दुसाहा (हिं० पु०) वह खेत जिसमें दो फसलें हों, दोफसली खेत।

दुसूती (हिं० स्त्री०) पञ्जाबमें तैयार होनेवाली एक प्रकारकी मोटी चादर। इसमें दो तागोंका ताना और बाना होता है।

दुसेजा (हिं० पु०) पलंग, बड़ी खाट।

दुस्तर (सं० त्रि०) १ जिसे पार करना कठिन हो। २ दुर्घट, विकट, कठिन।

दुस्त्यज (हिं० वि०) जिसका त्यागना कठिन हो, जो कठिनाईसे छोड़ा जा सके।

दुस्थ (सं० वि०) दुर्-स्था क, बाहुलकात् विसर्गलोपः। दुःखसे अवस्थित, जिसका रहना कठिन हो। २ कुक्कुट, मुर्गा। ३ कुक्कुर, कुत्ता।

दुस्पृष्ट (सं० क्ली०) दुष्टं पृष्टं वा विसर्गलोपः। मन्द भावसे जिज्ञासित, जो बुरी तरहसे पूछा गया हो।

दुस्पर्श (सं० पु०) दुरालभा, जवासा।

दुस्पर्शा (सं० स्त्री०) १ कपिकच्छू। २ रक्त दुरालभा, लाल जवासा। ३ पाटल वृक्ष। ४ आकाशवल्ली लता। ५ कण्टकारी, भटकटैया।

दुस्फोट (स० पु०) १ दुष्ट व्रण, बुरा घाव। २ अस्त्रभेद, एक प्रकारका हथियार।

दुस्सह (हिं० वि०) दुःसह देखो।

दुहता (हिं० पु०) बेटीका बेटा, नाती।

दुहत्था (हिं० वि०) १ दोनों हाथोंसे किया हुआ। जिसमें दो मूठें या दस्ते हों।

दुहत्थी ( हिं० स्त्री० ) मालखम्भकी एक कसरत। इसमें खिलाड़ी मालखम्भको दोनों हाथोंसे कुहनी तक लपेटता है और जिधरका हाथ ऊपर होता है उधरकी टांगको उठा कर मालखम्भ पर सवारी बांधता है और हाथ पेटके नीचे निकाल लेता है।

दुहना ( हिं० क्रि० ) १ दूध निकालना। २ तत्त्व निकालना, निचोड़ना, सार खींचना।

दुहना ( हिं० स्त्री० ) दूध दुहनेका बरतन, दोहो।

दुहरना ( हिं० क्रि० ) दोहरना देखो।

दुहरा ( हिं० वि० ) दोहरा देखो।

दुहराना ( हिं० क्रि० ) दोहराना देखो।

दुहाई ( हिं० स्त्री० ) १ घोषणा, पुकार। २ सहायताके लिये पुकार। ३ शपथ, कसम, सौगन्ध। ४ गाय भैंस आदिको दुहनेका काम। ५ दुहनेकी मजदूरी।

दुहाग ( हिं० पु० ) १ दुर्भाग्य। २ वैधव्य, रंडापा।

दुहागिन ( हिं स्त्री० ) विधवा, सुहागिनका उलटा।

दुहाजू ( हिं० वि० ) १ जो पहली स्त्रीके मर जाने पर दूसरा विवाह करे। २ जो पहले पतिके मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहादि ( सं० पु० ) दुह आदि यस्य। धातुगणविशेष। लकार निर्णयके लिये यह गण निर्दिष्ट हुआ है। दुह, याच, रुध, प्रच्छ, भि, चि, ब्रू, शास, जि, दण्ड, मन्थ, वद ये सब धातु दुहादिगण हैं। "अप्रधाने दुहादीना" पाणिनिके शासनानुसार जहां द्विकर्मक धातुका कर्म उक्त होगा वहां दुहादि धातुका अप्रधान कर्म उक्त होगा। गौणकर्मको अप्रधान कर्म कहते हैं। अप्रधान कर्म उक्त होनेसे 'उक्तेकर्मणि प्रथमा' इस नियमके अनुसार दुहादि धातुका अप्रधानकर्म अर्थात् गौणकर्ममें द्वितीया विभक्ति होगी। द्विकर्मक धातुका मुख्यकर्म उक्त होता है, किन्तु 'अप्रधाने दुहादीनां' इस विशेष नियमके अनुसार ऐसा नहीं होगा।

दुहाना ( हिं० क्रि० ) दूध निकलवाना।

दुहाव (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी प्रथा। इसमें जमींदार प्रतिवर्ष जन्माष्टमी आदि त्योहारोंके उपलक्षमें किसानोंको गाय भैंसका दूध दुहा कर ले लेता है। २ वह दूध जो इस प्रथाके अनुसार किसान जमींदारको देता है।

दुहावनी (हिं० स्त्री०) गाय दुहनेके लिये ग्वालेको दिये जानेका धन, दूध दुहनेकी मजदूरी।

दुहिता (हिं० स्त्री०) दुहितृ, कन्या, लड़की।

दुहितृपति (सं० पु०) दुहितुः पतिः वा षष्ठ्याः अलुक् समासान्तः। दुहिताका पति, जामाता, दामाद।

दुहितृ ( सं० स्त्री० ) दोग्धि विवाहादिकाले धनादिकमाकृष्य गृह्णातीति वा दोग्धि गा इति दुह तृच् (नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ होतृ पोतृ भ्रातृ जामातृ मातृ पितृ दुहितृ। उण् २।९६) निपातनात् गुणाभावः। कन्या, बेटी, लड़की।

लड़कीको यत्नपूर्वक पालन कर उसे उपयुक्त पात्रके हाथ सौंप देना चाहिये। विशेष रूपसे पात्रकी विवेचना करके कन्यादान करना उचित है। कन्यादानके पात्रापात्रका विषय इस प्रकार लिखा है—गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूढ़, रोगी, कुत्सित, अत्यन्त क्रोधी, अत्यन्त दुर्मुख, चापल, अङ्गहीन, अन्ध, बधिर, जड़, मूर्ख, क्लीवतुल्य और पापी इनके साथ कन्याका विवाह करनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है। उक्त पात्रको कन्यादान कदापि नहीं देना चाहिये।

शान्त, गुणी, युवक, पण्डित और वैष्णव ये सब पात्रके योग्य हैं। इनके साथ कन्याका विवाह करनेसे कन्यादाताके दशवापी दान करनेका फल प्राप्त होता है।

उक्त रूप गुण और दोषको विशेष रूपसे परीक्षा कर कन्यादान करना चाहिये। यदि कोई कन्या पालन कर उसे विक्रय करे, तो उसे कुम्भीपाक नरक होता है। वह नरकमें जाकर वह मूत्र और विष्ठा खाता है तथा जब तक चौदह इन्द्र अवस्थान करेंगे, तब तक इसी दुर्दशामें रहेगा। बाद व्याध योनिमें उसका जन्म होता है। इस व्याधजन्मको प्राप्त कर रात दिन वह मांसका भार वहन करता और बेचता रहता है।

यथोक्तरूपसे कन्यादान करनेसे उसे नाना प्रकारके पुण्य प्राप्त होते हैं। वेदज्ञ, त्रिसन्ध्या करनेवाला, पण्डित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय इस प्रकारके सद्गुणसम्पन्न पात्रको कन्यादान करना श्रेय है। अपात्रको भूल कर भी कन्यादान न करे।

जो अपनी कन्याको विष्णु वा महादेवकी प्रीतिके

लिये दान करते हैं, वे नारायण स्वरूप होते है, यह कथा श्रुतिमें लिखी है।

मन्वादिसंहितामें भी अपात्रको कन्या देना निषिद्ध बतलाया है।

दुहितृत्व ( सं० क्ली० ) दुहितुर्भाव-, दुहितृ-त्व। कन्याका भाव।

दुहितृपति (सं० पु०) दुहितुः पतिः। जामाता, दामाद।

दुहितृमत् ( सं० त्रि० ) दुहितृ विद्यतेऽस्य अस्त्यर्थे मतुप्। दुहितृ युक्त, जिसके लडकी हो।

दुहेला ( हिं० वि० ) १ दुःखदायी, दुःसाध्य, कठिन। ( पु० ) २ दुःखदायक कार्य, विकट खेल।

दुहोतरा ( हिं० पु० ) कन्याका पुत्र, नाती।

दुह्य ( सं० क्ली० ) दुह्यते इति दुह-कर्मणि क्यप् (एतिस्तु शास्-वृद जुषः क्यप्। पा ३।१।१०९) इति सूत्रस्य 'शंसि दुहि गुहिभ्यो वा' इति कागिकोक्तः क्यप्। दोहन योग्य, दुहनेयोग्य।

दुह्यमान (सं० त्रि०) दुह्यते इति दुह कर्मणि शानच्। दोहनविशिष्ट, जो दुहा जाय।

दुह्यु ( सं० पु० ) ययाति राजाके एक पुत्रका नाम। इन्होंने शर्मिष्ठाके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। राजा ययाति जब दिग्विजय कर चुके, तब उन्होंने भूमिको अपने पुत्रोंमें बांटा था। पश्चिम दिशाके देश दुह्युको मिले थे। राजा ययातिने जब अपना बुढ़ापा देकर इनसे जवानी मांगी थी, तब इन्होंने अस्वीकार कर दिया था। इस पर ययातिने शाप दिया था, कि मेरे हृदयसे जन्म लेकर भी अपना यौवन मुझे नहीं देते हो, इसलिये तुम्हारी कोई प्रिय अभिलाषा पूर्ण न होगी।

ययाति देखो।

दू ( सं० पु० ) रोग, बीमारी।

दूआ ( हिं० पु० ) १ कलाई पर पहननेका एक प्रकारका गहना। यह सब गहनोंके पीछेकी ओर पहना जाता है। २ दो बूंटियोंका ताशका एक पत्ता। ३ किसी खेल विशेषतः जुएवाले खेलका एक दांव। यह दो चिह्नों, बूटियों या कौड़ियों आदिसे सम्बन्ध रखता है। ( स्त्री० ) ४ दुआ देखो।

दूकान ( हिं० पु० ) दुकान देखो।

दूकानदार ( हिं० पु० ) दुकानदार देखो।

दूकानदारी ( हिं० स्त्री० ) दुकानदारी देखो।

दूगू ( हिं० पु० ) हिमालयकी तराईमें मिलनेवाला एक प्रकारका बकरा।

दूज ( हिं० स्त्री० ) द्वितीया, किसी पक्षकी दूसरी तिथि।

दूडभ ( सं० त्रि० ) दुर्दुःखेन दभ्यते इति दुर्-दभ-खल् ( दुरोदाशनाश दभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वञ्च। पा ६।३।१०९ ) इत्यस्येति वार्त्तिकोक्त्या उत्वं भस्य डत्वञ्च। १ अत्यन्त दुःखसे दण्डनीय। २ व्यसनप्राप्त विपद्युक्त, जो व्यसनी होनेके कारण दुःखी हो। ३ दुर्दम्य, नाश करनेमें अशक्य।

दूडाश ( सं० त्रि० ) दुःखेन दास्यते यः दुर्-दाशि खल् 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट' इत्यस्य दुरोदाशनाशेति' इति वार्त्तिकोक्त्या उत्वं डत्वञ्च। पीड़ायुक्त, दुःखित।

दूढी ( सं० त्रि० ) दुष्टं ध्यायति दुर्-ध्यै चिन्तायां सम्पदादित्वात् भावे कर्त्तरि वा क्विप्। दूडभ शब्दवत् कार्य। १ दुष्टध्यायी। २ दुष्ट बुद्धि।

दूढ्य (सं० त्रि०) दुःखेन ध्यायति दुर्-ध्यै-क दूडभ शब्दवत् कार्य। दुष्टध्यायी, अधम।

दूणाश ( सं० त्रि० ) दुःखेन नश्यतेऽसौ दुर्-नाशि-खल् ( दुरोदाशनाशेति। पा ६।३।१०९ ) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या उत्वं णत्वञ्च। जो बहुत कठिनतासे नष्ट या बरबाद हो।

दूत (सं० पु०) दूयते वार्त्तावहनादिना दू-क्त दीर्घश्च (दूतनिभ्यां दीर्घश्च। उण् ३।९०) १ वार्त्ताहर, सम्वाद पहुंचाने या लानेवाला। पर्याय—सन्देश, सन्दिष्टकथक। राजा जब सन्धिविग्रह आदिका अनुष्ठान करते हैं अथवा कोई सम्वाद भेजते हैं, तब दूतका प्रयोजन होता है।

"चारेक्षणः दूतमुखः।" राजाओंका दूत मुख स्वरूप है, चर चक्षु है अर्थात् राजा जो कुछ कहते हैं वह दूतके मुखसे। दूत और चर राजाओंके प्रधान सहाय हैं। दूतके बिना सन्धि विग्रह आदि कोई काम शृङ्खलाके साथ नहीं होता। इससे दूतका स्वभाव अच्छी तरह देख सुन कर उसे अपने यहां नियुक्त करें। दूतका विषय पुराणमें जो लिखा है, वह इस प्रकार है—

जिस दूतको नियुक्त करें, उसके पास ये सब गुण रहना आवश्यक है,—यथोक्तवादी, देशभाषाविशारद,

जहां उसे भेजना होगा, वहांकी भाषामें सुपण्डित, कार्य-कुशल, क्लेशसह, देशकालविभागविद् अर्थात् किस समय किस तरहसे काम करनेसे फलदायक होगा, वह जो विशेष रूपसे जानता हो तथा नीतिशास्त्रमें वक्ता इस प्रकारका लक्षणाक्रान्त मनुष्य दूत होनेके योग्य है। चाण क्यने दूतका विषय इस प्रकार कहा है—

"मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः परचित्तोपलक्षकः।
धीरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते॥"

(चाणक्य १०६)

जो अत्यन्त बुद्धिमान्, वाक्पटु, उत्तम बुद्धिसम्पन्न तथा दूसरोंका हृदय जाननेमें विशेष पारदर्शी हैं, धीर और यथोक्तवादी हैं, इस प्रकारके गुणसम्पन्न पुरुष दूत बनाये जा सकते हैं। युक्तिकल्पतरुमें दूतका विषय इस प्रकार लिखा है-जो शत्रुओंका आकार और इशारा देख कर सब भाव समझ सके तथा जो प्रत्युत्पन्नमति, धीर, दक्षिणज्ञ, सभ्य, सत्कुलजात, कार्यकुशल, राजाके प्रति दृढ़ अनुरक्त, विशुद्ध स्वभावसम्पन्न, मेधावी, देश-कालवित्, वपुष्मान्, निर्भीक, वाग्मी आदि गुणसम्पन्न पुरुष दूतके योग्य हैं और वही दूत प्रशस्त माने गये हैं। यह दूत तीन प्रकारका होता है—निसृष्टार्थ, मितार्थ और शासनहारक। इनमेंसे जो कार्यकालमें केवल प्रभुकी आज्ञा प्रतिपालन करते है, उन्हें निसृष्टार्थ; जो कार्य मात्र कह कर शान्त हो जाते हैं, उत्तर प्रत्युत्तर कुछ भी नहीं देते, उन्हें मितार्थ और जो लेख्य पत्रादि ले कर जाते हैं, उन्हें शासनहारक कहते हैं। दूत किसी विषयका निश्चय नहीं कर सकते और न वह कोई विषय लिख ही सकते हैं। दूतको जब उसके प्रभुका विषय कुछ पूछा जाय, तो उसे प्रभुका किसी प्रकारका छिद्र प्रकाश न करना चाहिये; बल्कि वे जा कर अपने मालिकका तेज एवं श्री, विक्रम और उन्नतिकर वाक्य, शत्रुकी क्षोभकर चेष्टा, अमर्षणीयता, कार्यदक्षता और निर्भीकता ये सब विषय वर्णन करें। कामन्दकीमें जो दूतका विषय लिखा है, वह इस प्रकार है—मन्त्रणा-कुशल, मन्त्रज्ञ, प्रगल्भ, मेधावी, वाग्मी और सुपण्डित इस प्रकारके गुणसम्पन्न व्यक्ति दूत होनेके उपयुक्त हैं। ऐसे दूतको दूताभिमानीके समीप भेजना चाहिये। राजा-ओंके चर दो प्रकारके हैं— प्रकाश और अप्रकाश। जो प्रकाश्यभावसे राजाके कार्यादि करते हैं, उन्हें दूत और जो अप्रकाशित रहते हैं, उन्हें चर कहते हैं।

पहले दूत द्वारा सन्धान ले कर चर प्रेरण करे, तब इन्हीं दो उपायोंसे परराष्ट्रका समुदय वृत्तान्त मालूम हो सकता है। जो राजा स्वपक्ष वा परपक्षका अभिप्राय नहीं जान सकते, वे जगते हुए भी अत्यन्त निद्रित हैं, कभी उनकी यह निद्रा टूट नहीं सकती और थोड़े ही दिनमें वे विनष्ट हो जाते हैं। इसीसे दूत और चर नियुक्त कर जैसे स्वराष्ट्र वैसे ही परराष्ट्र सम्बन्धीय सभी वृत्तान्त जानना चाहिये। दूत वध्य नहीं है। दूतको सम्मानादि प्रदर्शन कर उससे सब वृत्तान्त सुन लेना चाहिये। राजधर्म देखो।

२ किसीका भी कष्ट क्यों न हो, उसे जान कर जो वैद्यगृहमें जाता है, उसे वैद्यकोक्त दूत कहते हैं। उसके मुखसे सुन कर चिकित्सक रोगका निर्णय करे।

वैद्यक दूतका लक्षण।—खञ्ज, अन्ध, मूक, वधिर, वामन, स्त्री, क्रुद्ध, तृषित, जीर्ण, श्रान्त, क्षुधार्त्त, दीन, क्रोधी आदि दोषयुक्त व्यक्ति दूत नहीं हो सकते अर्थात् इन्हें वैद्यगृहमें भेजना न चाहिये।

३ प्रेमीका सन्देशा प्रेमिका तक या प्रेमिकाका सन्देशा प्रेमी तक पहुंचानेवाला मनुष्य।

(त्रि०) ४ प्रेष्यमात्र, भेजनेके योग्य।

दूतक (सं० पु०) दूत स्वार्थे कन्। १ दूत। २ राजप्रदत्त शासनादि ज्ञापन करनेका प्रधान कर्मचारी, वह कर्म-चारी जो राजाकी दी हुई आज्ञाका सर्व साधारणमें प्रचार करता है।

दूतकत्व (सं० पु०) १ दूतका काम। २ दूतकका काम।

दूतकर्म (सं० पु०) दूतत्व, खबर पहुंचानेका काम।

दूतघ्नी (सं० स्त्री०) दूतं दु उपतापे भावे औणादिक क्त, दोर्त्तञ्च, दूतं उपतापं हन्तीति हन-ठक्-ङीप्। कदम्ब-पुष्पी, गोरखमुंडी। (Michelia Kadamba)

दूतता (सं० स्त्री०) दूतत्व, दूतका काम।

दूतत्व (सं० क्ली०) दूतस्य भावः दूत भावे त्व। दूतका काम।

दूतपन (हिं० पु०) दूतका काम।

दूति ( सं॰ स्त्री॰ ) दूयते नायकादिवार्त्ताहरणादिनेति। दु वाहु॰ति दीर्घश्च। दूती, कुटनी।

दूतिका ( सं॰ स्त्री॰ ) दूतिरेव स्वार्थे कन् ततष्टाप् अत इत्वं। दूती, कुटनी।

दूती ( सं॰ स्त्री॰ ) दूति कृदिकारादिति वा ङीप्। दौत्य कर्ममें नियुक्ता स्त्री, स्त्रीपुरुषको वार्त्तावाहिनी, कुट्टनी, कुटनी, सञ्चारिका। पर्याय—सारिका, दूतिका, दूतीका। साहित्यदर्पणमें दूत और दूतीका विषय इस प्रकार लिखा है—

"निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः।
कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः॥"

( साहित्यद॰ ३।८६ )

प्रयोजन पड़ने पर जो पुरुष भेजा जाता है, उसे दूत कहते हैं। यह दूत तीन प्रकारका है—निसृष्टार्थ, मितार्थ और सन्देशहारक। दूतीको भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

जो सब दूत वा दूती दोनोंके अर्थात् जिसने भेजा है और जिसके पास भेजा गया है, भाव विशेषरूपसे समझ कर स्वयं उसका उत्तर भी दे दे तथा अपना काम निकाल ले, उसे निसृष्टार्थ, जो थोड़ा ही कह कर अपना काम निकाल ले उसे मितार्थक और जो केवल प्रभुकी कथा ही कह दे, उसे सन्देशहारक दूती कहते हैं। स्त्रियोंकी भावाभिव्यक्ति दूतीप्रेरण द्वारा जानी जाती है।

सखी, नर्त्तकी, दासी, धात्रीकन्या, प्रतिवेशिनी, अप्रौढा कन्या, संन्यासिनी, धोबिन, चित्रकारादि स्त्री, तंबोलिन, गंधिन आदि स्त्रियां दूतीके कामके लिये उपयुक्त समझी जाती हैं। नायिका विषयमें ये सब दूती होती हैं, किन्तु इन्हें नायक विषयमें भी दूती समझना होगा।

दूतियोंके ये सब गुण रहना आवश्यक है;—नृत्य गीतादि कार्यदक्षता, उत्साह, दृढ़तर यत्न, भक्ति, स्मृति, चित्तज्ञता अर्थात् चित्त देख कर जो अवगत हो सके, कर्त्तव्यार्थ स्मरण, माधुर्य, नर्मविज्ञान अर्थात् परिहासाभिज्ञता, वाग्मिता और मधुरभाषित्व जो इन सब गुणोंसे सम्पन्न हैं उन्हें दूती कहते हैं। गुणके तारतम्यानुसार दूतियां तीन प्रकारकी है—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

दूतियोंको बोलचालमें कुटनी कहते हैं। इनके जालमें पड़ कर कितने जितेन्द्रिय पुरुष धर्मसे च्युत हो गये हैं।

दूत्य ( सं॰ क्ली॰ ) दूतस्य भावः कर्म वा ( दूतवणिग्भ्याञ्च। पा ५।१।१२६ ) इत्यस्येति वार्त्तिकोक्त्या यः, वैदिकेतु ( दूतस्य भागकर्मणि। पा ४।४।१२० ) इति य। १ दूतकर्म, दूतका काम। २ दूतका भाव।

दूदकश ( फा॰ स्त्री॰ ) १ वह मार्ग जिससे धुआं बाहर निकल जाय, धुआंकश, चिमनी। २ एक प्रकारका दमकल। इसके द्वारा धुआं दे कर पौधोंमें लगे हुए कीड़े कुड़ाये जाते हैं।

दूदला ( हिं॰ पु॰ ) एक प्रकारका पेड़।

दूध ( हिं॰ पु॰ ) दुग्ध देखो।

दूधचढ़ी ( हिं॰ वि॰ ) जिसके स्तनोंमें दूध पहलेसे बढ़ गया हो।

दूधनाथ—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सं॰ १८२३ में हुआ तथा सं॰ १८४५ में इन्होंने हररामपच्चीसी और हरिहरसतक नामक दो ग्रन्थ लिखे।

दूधनाथ उपाध्याय—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने गोरक्षा पर एक पुस्तक लिखी।

दूधपिलायी ( हिं॰ स्त्री॰ ) १ वह दाई जो दूध पिलाती है। २ विवाहकी एक प्रथा। इसमें बारातके समय वरके घोड़ी या पालकी आदि पर चढ़नेके पहले माता वरको दूध पिलानेकी सी मुद्रा करती है। ३ वह धन या नेग जो माताको उक्त क्रियाके बदलेमें मिलता है।

दूधपूत ( हिं॰ पु॰ ) धन और सन्तति।

दूधबहन ( हिं॰ स्त्री॰ ) वह बालिका जो किसी ऐसी स्त्रीका दूध पी कर पली हो जिसका दूध पी कर कोई और बालिका या बालक भी पला हो।

दूधभाई ( हिं॰ पु॰ ) ऐसे दो बालकोंमेंसे कोई एक जो एक ही स्त्रीके स्तनका दूध पी कर पला हो, पर जिनमें कोई एक बालक दूसरे माता पितासे उत्पन्न हो।

दूधमञ्जरी ( हिं॰ स्त्री॰ ) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

दूधमुंहा ( हिं॰ वि॰ ) जो अभी तक माताका दूध पीता हो, छोटा बच्चा, बालक।

दूधमुख ( हिं० वि० ) छोटा बच्चा, बालक।

दूधराज ( हिं० पु० ) १ भारत, अफगानिस्तान और तुर्किस्तानमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी बुलबुल। कोई कोई इसे शाह बुलबुल भी कहते हैं। २ एक प्रकारका सांप जिसका फन बहुत बड़ा होता है।

दूधवाला ( हिं० पु० ) वह जो दूध बेचता हो, ग्वाला।

दूधहंडी ( हिं० स्त्री० ) दूध गरम करनेका मट्टीका बरतन, मेटिया।

दूधा ( हिं० पु० ) १ अगहन महीनेमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल वर्षों तक रह सकता है। २ अनाजके कच्चे दानेका रस। यह दूधके रंगका होता है।

दूधभाती ( हिं० स्त्री० ) विवाहकी एक रसम। इसमें वर और कन्या दोनों अपने अपने हाथसे एक दूसरेको दूध और भात खिलाते हैं। यह रसम विवाहसे चौथे दिन होती है।

दूधिया (हिं० वि०) १ दूध सम्बन्धी, जिसमें दूध मिला हो। २ श्वेत, सफेद। ( पु० ) ३ एक प्रकारका सफेद बढ़िया पत्थर। यह चिकना और चमकीला होता है और इसकी गिनती रत्नोंमें होती है। इसका रंग कभी कभी बदला करता है अर्थात् लाल, भूरा और हरा भी हो जाता है। इसमें रेतका भाग अधिक होता है और कुछ लोहा भी होता है। इसके कई भेद हैं और इसमें धूप-छांहकीसी चमक होती है। इसका नग अंगूठियोंमें जड़ा जाता है। ४ प्यालियां आदि बनाई जानेका एक प्रकारका सफेद चटिया मुलायम पत्थर। ५ एक प्रकारका हलुआ सोहन। इसमें दूध मिला रहता है, इस कारण यह कुछ नरम हो जाता है।

दूधिया खाकी ( हिं० पु० ) सफेद राखका सा रंग।

दून ( सं० पु० ) दू उपतापे क्त 'दुग्वोदीर्घश्च' इति वार्त्तिकोक्त्या तस्य न दीर्घश्च। १ अध्वादि द्वारा श्रान्त, वह जो चलते चलते थक गया हो। २ उपतप्त, वह जो तकलीफमें पड़ा हुआ हो। ३ दुःखिताक्लिष्ट, वह जो दुःखसे व्याकुल हो।

दून ( हिं० स्त्री० ) १ दूनेका भाव। २ साधारणसे कुछ जल्दी जल्दी गाना। ( पु० ) ३ तराई, घाटी।

दूनसिरिस ( हिं० पु० ) हिमालय पर्वत पर मिलनेवाला सफेद सिरिसका पेड़। यह बहुत ऊंचा होता है और इसे बढ़नेमें देरी नहीं लगती है। इसका छिलका हरापन लिये सफेद होता है। इसकी लकड़ीसे, जो भूरी चमकदार और मजबूत होती है, रस पेरनेका कोल्हू, मूसल, पहिए, चायके सन्दूक और खेतीके औजार बनाये जाते हैं। इसका कोयला भी बनाया जाता है। इसके फूल बड़े सुगंधित होते हैं। इसमें तेल बहुत निकलता है।

दूना ( हिं० वि० ) द्विगुण, दुगुना।

दूनाराय—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सं० १७५४के पूर्व बहुतसी अच्छी कविताएं रचीं। इनका नामोल्लेख सूदन कवि द्वारा भी पाया गया है।

दूब ( हिं० स्त्री० ) एक प्रकारकी बहुत प्रसिद्ध घास। दूर्वा देखो।

दूबदू ( हिं० क्रि०-वि० ) सामने सामने, मुकाबिलेमें।

दूबिया (हिं० वि०) एक प्रकारका हरा रंग।

दूबे ( हिं० पु० ) द्विवेदी ब्राह्मण।

दूभर ( हिं० वि० ) दुःसाध्य, कठिन, मुश्किल।

दूमा ( हिं० पु० ) एक छोटा थैला जो चमड़ेका बना होता है। इसमें तिब्बतसे चाय भर कर आती है। इसमें कमसे कम तीन सेर चाय आती है।

दूरंदेश ( फा० वि० ) दूरदर्शी, अग्रसोची, आगा पीछा सोचनेवाला।

दूरंदेशी ( फा० स्त्री० ) दूरदर्शिता।

दूर् ( सं० स्त्री० ) दैप शुद्धौ वाहुलकात् कू। १ प्राणरूप देवताभेद, उपासकोंके शरीरमें अवस्थित प्राणरूप देवता 'दूर्' नामसे प्रसिद्ध है। ये उपासकोंको मृत्युको दूर करते हैं, इसीसे उनका नाम दूर् पड़ा है। ( त्रि० ) दुदुःखेनैयते प्राप्यते इति दुर्-इण् ( दुरिणो लोपश्च। उण् २।२० ) इति रक् धातोर्लोपश्च। अनिकट, बहुत फासले पर। इसका पर्याय—विप्रकृष्ट और अनासन्न है। वैदिक पर्याय—आक, पराक, पराच, आर और परावत है।

दूरक ( सं० त्रि० ) दूर-स्वार्थे कन्। दूर, जो फासले पर हो।

दूरग ( सं० त्रि० ) दूरं गच्छति दूर-गम-ड । १ दूरगामी, बहुत दूर तक जानेवाला । ( पु० ) २ उष्ट्र, ऊँट । ३ गर्द भ, गदहा ।

दूरगत ( सं० त्रि० ) दूरं गतः ६-तत् । जो बहुत दूर तक चला गया हो ।

दूरगामी ( सं० त्रि० ) दूरं गच्छति दूर-गम-णिनि । जो बहुत दूर चला गया हो ।

दूरग्रहण (सं० क्लो०) बहुत दूरसे ग्रहण वा दर्शन करने की शक्ति ।

दूरङ्गरण ( सं० क्लो० ) एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेकी क्रिया ।

दूरङ्गम (सं० त्रि०) दूरं गच्छति गम बाहुलकात् वेदे ख, मुम्‌च । दूरगामी, बहुत दूर तक चलनेवाला ।

दूरचर (सं० त्रि०) दूरे चरतीति चर ट । दूरविचरणकारी, दूर तक चलनेवाला ।

दूरजम् ( सं० क्लो० ) वैदूर्यमणि ।

दूरतस् ( सं० अव्य० ) दूर-तस् । दूरसे ।

दूरत्व (सं० क्लो०) दूरस्य भावः दूर भावे त्व । दूर होनेका भाव, अन्तर, दूरी, फासला ।

दूरदर्शक ( सं० त्रि० ) १ दूर तक देखनेवाला । ( पु० ) २ पण्डित, बुद्धिमान् ।

दूरदर्शन ( सं० पु०-क्लो० ) दूरेऽपि दर्शनं दृष्टिर्यस्य । १ गृध्र, गीध । ( पु० ) २ पण्डित । दृश-भावे ल्युट् । ( क्लो० ) ३ दूरसे दर्शन । ४ दूरवीक्षण-यन्त्रभेद, दूरबीन ।

दूरदर्शिता ( सं० स्त्री० ) दूरकी बात सोचनेका गुण दूरंदेशी ।

दूरदर्शी ( सं० त्रि० ) दूरात् पश्यति कार्याकार्ये प्राक् पश्यति जानाति वा दृश-णिनि । १ दूरदर्शक, बहुत दूरकी बात सोचनेवाला, दूरंदेश । ( पु० ) २ पण्डित, बुद्धिमान् । ३ गृध्र, गीध ।

दूरदृश् ( सं० त्रि० ) दूरात् पश्यति दृश-क्विन् । १ दूरदर्शी । ( पु० ) २ पण्डित । ३ गृध्र, गिद्ध ।

दूरदृष्टि ( सं० त्रि० ) दूरे दृष्टिर्यस्य । १ दूरदर्शी, दूरंदेश । ( स्त्री० ) २ दूरदर्शन, भविष्यका विचार ।

दूरनिरीक्षक ( सं० पु० ) दूरबीन नामक यन्त्र ।

दूरबा ( हिं० पु० ) दूर्वा देखो ।

दूरबीन ( फा० स्त्री० ) एक प्रकारका यन्त्र ।

दूरवीक्षण देखो ।

दूरमूल (सं० पु०) दूरे असन्निकटे मूलं यस्य । १ मुञ्जतृण, मूंज । २ दुरालभा, जवासा, धमासा ।

दूरयायी ( सं० त्रि० ) दूरे याति - या णिनि । दूरगामी, दूर तक चलनेवाला ।

दूरवर्त्ती ( सं० त्रि० ) दूरे वर्त्तते दूर वृत-णिनि । दूरस्थित, जो दूर हो ।

दूरवस्त्रक ( सं० त्रि० ) दूरे वस्त्रं यस्य । वस्त्रहीन, उलङ्ग, नंगा ।

दूरवासी ( सं० त्रि० ) दूरे वसति वस-णिनि । दूरदेशवासी । दूरदेशमें रहनेवाला ।

दूरवीक्षण ( सं० क्लो० ) दूरं वीक्ष्यतेऽनेन दूर-वि-ईक्ष-ल्युट् । ( Telescope ) नलाकार यन्त्रविशेष, एक प्रकारका यन्त्र जिससे दूरकी चीजें बहुत पास और स्पष्ट या बड़ी दिखाई देती हैं, दूरबीन ।

जिन सब यन्त्रोंसे जीवसमूहका विशेष कल्याण हुआ है, उनमेंसे दूरवीक्षणयन्त्र भी एक है । दूरबीनका आविष्कार पहले पहल हालैंड देशमें सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें हुआ था । एक बार एक चश्मेवाला अपनी दूकान पर बैठा हुआ काम कर रहा था इतनेमें उसका लड़का जो अपनी आंखोंमें दो शीशे लगा कर खेल रहा था, सहसा चिल्ला उठा कि देखो ! वह सामनेका बुर्ज कितना पास आ गया । चश्मेवालेने देखा कि उसका लड़का दो शीशोंको आगे पीछे रख कर देख रहा है । जब उसने भी उसी प्रकार उन शीशोंको रख कर देखा, तब उसे उनका उपयोग जान पड़ा । इसके उपरांत उसने अनेक प्रकारकी परीक्षाएं करके कुछ सिद्धान्त स्थिर किए और उन्हींके अनुसार दूरवीक्षणका आविष्कार हुआ । १५७० ई०में डाक्टर डीने परिप्रेक्षित शीशे (Perspective glasses)-का विषय वर्णन किया था । पीछे दूरवीक्षणयन्त्रके आविष्कारके विषयमें अनेक परीक्षाएं हुईं । हालैंडसे ही सबसे पहले दूरवीक्षणका आविष्कार हुआ है, ऐसा अङ्गरेज लोग स्वीकार करते हैं । जकारियस, जान्-

वेन, हान्सलिपार्स, जेम्स वा याकूब मेतियार्स आदि कुछ व्यक्ति दूरवीक्षणके आविष्कारकर्त्ता माने जाते हैं। पीछे भुवनविख्यात गेलीलियो इसका विषय जान कर दूरवीक्षणयन्त्रकी सृष्टि करनेको यत्नशील हुए। उन्होंने १६०८ ई०में एक काठके नलके दोनों ओर दूरदृष्टि-साधक शीशे बैठा कर एक प्रकृष्ट दूरवीक्षण यन्त्रकी सृष्टि की और उससे वे आकाशमण्डलस्थ चन्द्र, सूर्य, तारे आदिको देखने लगे। इस यन्त्रकी सहायतासे उन्होंने यह पता लगाया कि वृहस्पति ग्रहके चारों ओर चार चन्द्रमा घूम रहे हैं, सूर्य अपने मेरुदण्ड पर घूमते हैं और उनमें कितने प्रकारके दाग हैं, चन्द्रमामें पर्वत और उपत्यका है तथा सामान्य चक्षुसे अगोचर अनेक ज्योतिष्क आकाश-मण्डलमें विराजमान हैं। १६१० ई०में प्रकृत दूरवीक्षण-यन्त्रकी सृष्टि हुई। तबसे दूरवीक्षण बनानेके काममें बराबर उन्नति होती आई है।

ज्योतिर्विद् हर्शेल साहबकृत दूरवीक्षणयन्त्र द्वारा जो वस्तु देखी जाती है वह अपने स्वाभाविक अवयवकी अपेक्षा ६०० गुण बड़ी दीखती है। महातेजःपुञ्ज शनिग्रह उस यन्त्रसे ऐसा स्पष्ट दीख पड़ता है। मानो हम लोग ग्रहाभिमुख ४००००००० कोस अग्रसर हो कर उन्हें देख रहे हैं। १ घंटेमें यदि हम लोग २५ कोस ग्रहकी ओर जा सकें, तो ४०००००.०० कोस जानेमें हम लोगोंको १८० वर्ष लगेगा, किन्तु इस यन्त्रकी सहायतासे इतने दूरस्थित होने पर भी उन्हें स्पष्टरूपसे देख सकते हैं। इसकी सहायतासे हम लोगोंको बहु-दूरस्थ अगम्य अचल ज्योतिष्क और उनका अवस्थिति स्थान देखनेमें आता है। दूरवीक्षण यन्त्रकी सृष्टि होनेसे ज्योतिषशास्त्रकी विशेष उन्नति हुई है। पहले जिन सब ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र और धूमकेतुका हाल मनुष्य स्वप्नमें भी नहीं जानते थे, अभी दूरवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे उन्होंने उनका आविष्कार कर डाला है। इसकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है। क्षुद्र और वृहत् आदि कई प्रकारके दूरवीक्षणयन्त्र हैं।

लिफ आनमन्दिरके दो हाथ व्यासयुक्त दूरवीक्षण और पार्सनटाउनके चार हाथ व्यासयुक्त यन्त्र हो आजकल पृथ्वी भरमें सबसे बड़ा यन्त्र माना जाता है। इनमेंसे दूसरे (लार्ड रसके) यन्त्रका व्यास परिमाण पहलेसे दूना होने पर भी लिफके प्रतिफलक दूरवीक्षण (Reflecting-telescope) यन्त्रकी अपेक्षा इसकी परिसर द्रष्टिकारी शक्ति बहुत कम है। इस प्रकार लिफ-मानमन्दिरके दूरवीक्षण-यन्त्रको वैज्ञानिकोंने उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न बतलाया है और अपने कल्पित दूरवीक्षणको क्षमताको इसी यन्त्रके साथ तुलना की है। उन्होंने गणना करके देखा है, कि नूतन यन्त्रकी रश्मिपुञ्जीकरणशक्ति (Light-gathering Power) लिफके यन्त्रकी अपेक्षा एकचतुर्थांश अधिक होगी।

दूरवीक्षणयन्त्र एक गोल नलके आकारका होता है जिसमें आगे और पीछे दो गोल शीशे लगे रहते हैं। आगेवाले शीशेको प्रधान लेन्स और पीछेवाले शीशेको उपनेत्र वा चक्षुलेन्स कहते हैं। प्रधान लेन्स अपने सम्मुख पदार्थका प्रतिबिम्ब ग्रहण करके पीछेवाले लेन्स पर फेंकता है और पीछेवाला लेन्स या उपनेत्र उस प्रतिबिम्बको विस्तृत करके आखोंके सामने उपस्थित करता है। आवश्यकतानुसार प्रधान लेन्स आगे पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है। दर्शनीय पदार्थकी आकृतिको छोटाई वा बड़ाई इन्हीं दोनों लेन्सोंकी दूरी पर निर्भर रहती है।

विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ कितने नये नये यन्त्रोंका आविष्कार हो रहा है उसकी सुमार नहीं। वैज्ञानिक लोग एक ऐसा दूरवीक्षणयन्त्र बनाना चाहते हैं, जिससे ज्योतिष्कमण्डलका समस्त विवरण प्रत्यक्षगोचर हो।

दूरवेधी (सं० पु०) दूरात् वेधोऽस्त्यस्य इनि। १ दूरसे लक्ष भेदक, वह जो दूरसे निशाना मारता है।

दूरसंस्थ (सं० त्रि०) दूरे संस्था स्थितिर्यस्य। दूरस्थ, दूरवर्त्ती, दूरस्थित।

दूरसंस्थान (सं० क्लो०) दूरे संस्थान। १ दूरस्थता, वह जो दूरमें हो। २ दूरमें स्थिति, दूरका वास।

दूरस्थ (सं० त्रि०) दूरे तिष्ठति दूर-स्था क। दूरस्थित, दूरका।

दूरापात (सं० त्रि०) दूरमापतति दूर-आ-पत-ण। दूरपाती अस्त्र, वह अस्त्र जिसे दूरसे फेंक कर मारा जाय।

दूरापातिन् ( सं॰ त्रि॰ ) दूरं आपतति आ-पत णिनि। दूरनिक्षेप्य अस्त्र, दूरसे फेंके जानेका अस्त्र।

दूराप्लाव ( सं॰ त्रि॰ ) दूरे आप्लावो यस्य। दूरसे लम्फ प्रदानकारी, जो दूरसे उछलता हो।

दूरावस्थित ( सं॰ त्रि॰ ) दूरवर्त्ती, जो दूरमें हो।

दूरी ( हिं॰ स्त्री॰ ) दूरत्व, अन्तर, फासला, बीच।

दूरीकरण ( सं॰ क्ली॰ ) बहिष्कृतकरण, बाहर निकाल देनेकी क्रिया।

दूरीकृत ( सं॰ त्रि॰ ) ताड़ित, जो निकाल दिया गया हो।

दूरीभूत ( सं॰ त्रि॰ ) ताड़ित, निकाला हुआ।

दूरूढ़ा ( सं॰ त्रि॰ ) दुर्-रुह-क्त रेफे परे पूर्वाणो दीर्घः। क्षुद्ररोगविशेष।

दूरे अमित्र ( सं॰ पु॰ ) दूरे अमित्र शत्रुर्यस्य वेदे सप्तम्याः अलुक्। एकोनपञ्चाशत् मरुत्के मध्य मरुत्‌भेद, उन चास मरुतोंमेंसे एक मरुत्‌का नाम।

दूरेत्य ( सं॰ त्रि॰ ) दूरे भवः त्य। दूरभव, दूरस्थ, जो दूरमें हो।

दूरेपाक ( सं॰ त्रि॰ ) दूरे पचति पच-ण न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं, सप्तम्याः अलुक्। दूरसे पचाने वा पकानेवाला।

दूरेपाकु ( सं॰ त्रि॰ ) पच-उण्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं सप्तम्याः अलुक्। दूरेपाक देखो।

दूरेभा ( सं॰ त्रि॰ ) जो दूरसे चमके।

दूरेयम ( सं॰ त्रि॰ ) जो यमकी पहुंचसे बाहर हो, जहाँ यम न जा सके।

दूरेरितेक्षण ( सं॰ त्रि॰ ) दूरे ईरितं ईक्षणं येन। केकर, कैंया, ऐंचा ताना।

दूरेवध ( सं॰ त्रि॰ ) जो दूरसे प्रहार करे।

दूरोह (सं॰ पु॰) दुःखेन रुह्यतेऽसौ दुर-रुह कर्मणि खल् रेफे परे पूर्वाणो दीर्घः। १ दुःख द्वारा रोहणीय, आदित्य-लोक जहां चढ़ कर जाना असम्भव है। ( त्रि॰ ) २ दुरारोहमात्र, जिस पर चढ़ कर जाना मुश्किल हो।

दूरोहण ( सं॰ पु॰ ) दुष्करं आरोहणं यस्य। १ आदित्य, सूर्य। (क्ली॰) २ छन्दोभेद, एक प्रकारको छन्द। (त्रि॰) ३ दुरारोहणीय जो चढ़ने योग्य न हो। ४ जिस पर चढ़ना बहुत कठिन हो। ५ दुःसाध्य रोहण, जिस पर चढ़ना असम्भव हो।

दूर्य (सं॰ क्ली॰) दूरे उत्सार्यं दूर यत्। १ पुरीष, विष्ठा। सवेरे उठ कर नैऋतकोणमें खड़ा हो कर तीर छोड़नेसे वह जितनी दूर तक जाय, उतना स्थान छोड़ कर विष्ठा त्याग करना चाहिये, इसीसे पूरीषका नाम दूर्य पड़ा है। २ क्षुद्र कर्चूर, छोटा कचूर।

दूर्व ( सं॰ पु॰ ) नृपभेद, एक राजाका नाम।

दूर्वा ( सं॰ स्त्री॰ ) दूर्वंति रोगान् अनिष्टं वा दूर्व हिंसायां अच्, रेफे परे पूर्वाणो दीर्घः। ( Panicum dactylon ) स्वनामख्यात तृणभेद, दूब नामकी घास। पर्याय—शतपर्विका, सहस्रवीर्या, भार्गवी, रुहा, अनन्ता, तिक्तपर्वा, दूर्मरा, बहुवीर्या, हरिता, हरिताली और कच्छ-सहा। श्वेत दूर्वाके पर्याय—शतवीर्य, गण्डाली, शकुला-क्षक, गोलोमी, शतपर्वा, सितदूर्वा, सिता, नन्दा और महावरा। भावप्रकाशके मतसे दूर्वा और गण्डदूर्वा तीन प्रकारकी होती है—नीलदूर्वा, श्वेतदूर्वा और गण्डदूर्वा। रुहा अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्य और शतवल्ली ये सब नीलदूर्वाके पर्याय हैं। इसमें शीत वीर्य, तिक्त, मधुर, कषाय, रस और कफपित्त, रक्तदोष, वीसर्प, तृष्णा, दाह और चर्मरोगनाशक गुण माना गया है।

गोलोमी और शतवीर्या श्वेतदूर्वाके नामान्तर हैं। इसका गुण—कषाय, तिक्त, मधुररस, व्रणनाशक, ओजो-धातुवर्द्धक, शीतवीर्य, वीसर्प, रक्तदोष, तृष्णा, पित्त, कफ और दाहनाशक है।

गण्डाली, मत्स्याक्षी और शकुलाक्षक ये गण्डदूर्वाके नामान्तर हैं। गुण—शीतवीर्य, लौहद्रावक, धारक, लघु, तिक्त, कषाय, मधुर रस, वायुवर्द्धक, कटु, विपाक और दाह, तृष्णा, कफ, कुष्ठ, रक्तपित्त और ज्वरनाशक है। (भावप्रकाश)

यह घास पश्चिमी पञ्जाबके थोड़ेसे बालुमय भागको छोड़कर शेष समस्त भारतमें और पहाड़ों पर आठ हजार फुटकी उँचाई तक बहुत उपजती है। सब ऋतु तथा सब जमीनमें यह उगती है तथा बहुत जल्दी और सहज-में फैल जाती है। गाय और घोड़ा इसे बड़े प्रेमसे खाता है और इससे उसका बल खूब बढ़ता है। कहीं कहीं इसको सुखाकर वर्षों तक रखते हैं। इसके

खानेसे गाय और भैंस अधिक दूध देने लगती है। जिस स्थानपर यह एक बार हो जाती है, वहांसे इसे बिलकुल अलग कर देना बहुत दुरूह है।

दूर्वाका उत्पत्ति-विवरण भविष्योत्तर-पुराणमें इस प्रकार लिखा है—

प्राचीनकालमें जब देवासुरसे क्षीरोदसमुद्र मथा जा रहा था, तब विष्णुने मन्दरपर्वतको अपनी बाहु और जङ्घा पर धारण किया था। मथनेके लिये पर्वत बहुत वेगसे घूमने लगा, जिससे विष्णुके सब रोएं घिस कर गिर पड़े। ये सब रोएं समुद्रको तरङ्गसे किनारे जा लगे थे जिससे हरे रंगकी सुन्दर दूब निकल आई। इसी प्रकार विष्णुके शरीरसे दूर्वाकी उत्पत्ति हुई थी। इसके ऊपर मथित अमृत-कुम्भ रखा गया था और उस कुम्भ परसे कुछ जलकी बुन्द इसपर टपक पडी थी। इसीसे यह दूर्वा अजर और अमर हो गई है तथा पवित्र कह कर प्रसिद्ध है।

दूर्वा सब पापोंको विनष्ट करती है, इसीसे इसका नाम दूर्वा पड़ा।

"दूर्वा हरति पापानि धात्री हरति पातकं।
हरीतकी हरेद्रोगं तुलसी हरते त्रयं॥" (विष्णुध०)

दूर्वा पूजाका एक प्रधान उपकरण है। केवल इसीसे देव-पूजा की जा सकती है। यह बहुत पवित्र मानी गई है। किन्तु दुर्गादेवीके पूजनमें इसका व्यवहार नहीं होता।

अक्षत द्वारा विष्णुका, तुलसी द्वारा विनायकका और दूर्वा द्वारा दुर्गाका पूजन नहीं करना चाहिये।

'न दूर्वया यजेत् दुर्गां' इस वचनके अनुसार दुर्गाका दूर्वासे पूजन करना निषेध है, किन्तु दुर्गापूजामें अर्घमें दूर्वा दी जा सकती है। क्योंकि अर्घमें दूर्वादानकी विशेष विधि बतलाई गई है, इसीसे अर्घ्यकार्यमें दूर्वा दान दोषावह नहीं है। (आह्निकतत्त्व

**दूर्वाली** ( सं० स्त्री० ) वासुदेवके भाई वृकको स्त्री।

**दूर्वाग्राम**—पञ्चकूटके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह चन्दनकारीसे ५ कोस पूर्वमें अवस्थित है।

**दूर्वाघृत**—वैद्यकोक्त रक्तपित्ताधिकारका औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली--४ सेर चावलमें १६ सेर जल डाल कर उस जलको फिर छांक लेते हैं। पीछे उसमें बकरीका दूध १६ सेर, बकरीका घी ४ सेर डालते हैं। दूर्वामूल, केसर, मजीठ, एलुआ, चीनी, सफेद चन्दन, खसकी जड़, मोथा, लाल चन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक के दो तोलेको लेकर चूर्ण बनाते हैं। रक्तवमन होनेसे उसी घीको पीते, नाकसे लोहू गिरनेसे इसका नस लेते, कान और आंखसे लोहू गिरनेसे उसमें उक्त जल देते, गुह्य द्वारसे लोहू गिरनेसे पिचकारी देते और रोमकूपसे लोहू गिरनेसे शरीरमें मालिश करते हैं।

**दूर्वाष्टमी** सं० स्त्री०) दूर्वा तद्रूपा गौरी तत्प्रिया अष्टमी। भाद्र शुक्लाष्टमी, भाद्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें जो व्रतानुष्ठान किया जाता है, उसे दूर्वाष्टमी कहते हैं।

भाद्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास कर दूर्वा, गौरी, गणेश और महादेवका फल प्रभृति यथा प्राप्ति उपचार द्वारा पूजन करते और इस अनग्निपक्व द्रव्यको खाते हैं। इस प्रकार जो व्रतानुष्ठान करता है, वह ब्रह्महत्यापापसे मुक्त होता है। यह व्रत आठ वर्षोंमें समाप्त होता है। जिस वर्षमें आरम्भ किया जाता है, उस वर्षसे ले कर जिस वर्षमें सम्पूर्ण होगा उस वर्षमें इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है। जिस वर्षमें यह व्रत ग्रहण करना होगा, उस वर्षमें यदि अकाल पड़ जाय, तो व्रत ग्रहण नहीं किया जा सकता। फिर यदि प्रतिष्ठा वर्षमें किसी प्रकारका प्रतिबन्धक उपस्थित हो जाय जिससे प्रतिष्ठा न की जा सके, तो अकालमें प्रतिष्ठा नहीं कर सकते। जो वर्ष कालाशुद्धि रहेगा, उस वर्षमें प्रतिष्ठा करनी होगी।

व्रतप्रयोग-विधि—व्रतारम्भके पूर्व दिन संयम कर दुसरे दिन प्रातःकालमें स्नानादि और आचमन करके स्वस्तिवाचन करना चाहिये, पीछे सूर्यार्घ देकर सङ्कल्प करते हैं।

सङ्कल्प—विष्णुर्नमोऽद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे अष्टम्यां तिथावारभ्य अमुक गोत्रा श्रीअमुकी मर्त्यलोकाधिकरणक सुखसौभाग्याविच्छिन्न पुत्रपौत्रादिलाभपूर्वक ब्रह्मलोकप्राप्तिकामा भविष्यपुराणोक्ताष्टावर्ष-निष्पादित दूर्वाष्टमीव्रतमहं करिष्ये।

इस प्रकार सङ्कल्प करके सङ्कल्पसूक्त पढ़े। पीछे

यथाविधि आसन-शुद्धादि करके गणेशादि देवताका पूजन करे। इसके बाद कृष्णका ध्यान करना होता है।

ध्यान—

"नीलोत्पलदलश्यामं चतुर्बाहुं किरीटिनं।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनं॥
श्रीवत्सलक्षणोपेतं श्रिया वान्या समन्विता॥"

इस तरह ध्यान और मानसोपचारसे पूजा कर "ओं कृष्णाय नमः" इस मन्त्रसे पाद्यादि द्वारा पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद आवरण-देवताकी पूजा करनी होती है। शची, दुर्गा, गौरी, श्री, सरस्वती, गङ्गा, दिति, अदिति, सुषेणा, अरुन्धती, मन्दोदरी, सुभद्रा, शाण्डिली जया, विजया, रमा, दीक्षा, रेवती, दमयन्ती, शोला, सुकेशा, रम्भा, वासुदेव, देवकी, विष्णु महादेव, ये सब आवरण-देवता है। पूजा करके दूर्वाका ध्यान करना होता है। ध्यान—

"ओं नीलोत्पलदलश्यामां सर्वदेवशिरोधृता।
विष्णुदेहोद्भवा पुण्याममृतैरभिषिञ्चिता॥
सर्वदैवाजरां दूर्वाममरां विष्णुरूपिणीं।
दिव्यसन्तानसदात्रीं धर्मार्थकाममोक्षदां॥"

पीछे यथोपचारसे दूर्वाका पूजन करके उसे प्रणाम करना चाहिये। प्रणामका मन्त्र—

"त्वं दूर्वेऽमृतनामासि पूजितासि सुरासुरैः।
सौभाग्यसन्ततिं दत्त्वा सर्वकार्यकरीभव॥
यथा शाखाप्रशाखाभि विस्तृतानि महीतले।
तथा ममापि सन्तानं देहित्वमजरामरं॥"

इसी प्रकार प्रणाम, भोज्य और उत्सर्ग करना होता है। पीछे बायें हाथमें डोर पकड़ कर व्रतकी कथा सुनते हैं। व्रत-कथा—

युधिष्ठिर उवाच।

"व्रतमेकं समाचक्ष्व विचार्य मधुसूदन।
येन सन्ततिविच्छेदो जायते न कदाचन॥

श्रीकृष्ण उवाच।

मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां शुक्लपक्षे युधिष्ठिर।
दूर्वाष्टमीव्रतं नाम या करोति पतिव्रता॥
न तस्याः क्षयमाप्नोति सन्तानं शासपौरुषं।
नन्दते वर्द्धते नित्यं यथा दूर्वा तथा कुलं॥

युधिष्ठिर उवाच।

कथमेषा समुत्पन्ना कस्माद्दूर्वाचिरायुषी।
कस्मात् वन्द्या पवित्रा च लोके धन्या महीतले॥
येन वा तद्व्रतं देव चरितं केन हेतुना।

श्रीकृष्ण उवाच।

क्षीरोदसागरे पूर्वं मथ्यमानेऽमृतार्थिना।
विष्णुना बाहुजंघाभ्यां विधृतो मन्दरो गिरिः॥
भ्रमता तेन वेगेन लोमान्यापर्षितानि वै।
ऊर्मिभिस्तानि रोमाणि चोत्क्षिप्तानि तटान्तरे॥
अजायत शुभा दूर्वा रम्या हरितशाद्वला।
एवमेषा समुत्पन्ना दूर्वा विष्णुतनूद्भवा॥
तस्या उपरि विन्यस्तं मथितामृतमुत्तमं॥
देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः।
तत्र येऽमृतकुम्भस्य निपेतुर्वारिबिन्दवः॥
तैरियं स्पर्शमासाद्य दूर्वा चैवाजरामरा।
वन्द्या पवित्रा देवैस्तु सर्वदाभ्यर्चिता तथा॥
पूजयेत्तां प्रयत्नेन द्रव्यैर्नानाविधैरपि।
अष्टम्यां फलपुष्पैस्तु गुवाकैर्नारिकेलकैः॥
द्राक्षा हरीतकीभिश्च मोचकैर्ऊर्णकैस्तथा।
नागरंगैश्च जम्बीरैर्बीजपूरैश्च शोभनैः॥
दध्यक्षतैः पयोभिश्च धूपनैवेद्यदीपकैः।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शृणुष्व कथितं मया।
त्वं दूर्वेऽमृतनामासि वन्दितासि सुरासुरैः॥
सौभाग्यं सततिं दत्त्वा सर्वकार्यकरी भव।
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले।
तथा ममापि सतानं देहि त्वमजरामरं।
एवमेव पुरा पार्थ पूजिता त्रिदशोत्तमैः॥
तेषां पत्नीभिरनिशं भगिनीभिस्तथैव च।
पूजिता च तथा गौर्या देव्या रत्या श्रिया तथा।
सरस्वत्या गङ्गया च दित्यादित्या सुशीलया।
बिन्दुमत्या केशवत्या इन्दुमत्या सुशीलया॥
मन्दोदर्या चण्डिकया मायया दीक्षया तथा।
मर्त्यलोके च रेवत्या दमयन्त्या सुशीलया॥
सुकेशया घृताचा च रम्भया मिश्रकेशया।

मज्जनन्या मेनकया तथैव मानिकादिभिः।
श्रीभिरभ्यर्चिता दूर्वा सौभाग्यसुखदायिनी॥
स्नाताभिः शुचिवस्त्राभिर्दूर्वा संपूजिता जनैः।
दत्त्वा पिष्टानि विप्रेभ्यः फलानि विविधानि च॥
तिलपिष्टानि गोधूमधान्यपिष्टानि पायसं।
भोजयित्वा सुहृन्मित्रं सम्बन्धिस्वजनं तथा॥
ततो भुञ्जीत तच्छेषं स्वयं भक्त्या समाहिता।
नारीचैव प्रकुर्वीत चाष्टमीव्रतमुत्तमं॥
सर्वतः सुखसौभाग्यपुत्रपौत्रादिभिर्युता।
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा चतुर्वर्गं गता गुणः॥
वसते रमया सार्द्धं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
मेघावृतेऽम्बरतले विशदे च पक्षे
याश्चाष्टमीव्रतमदो नभसीह कुर्युः।
दूर्वां तदक्षततिलैः प्रतिपूजयेयु
स्ताः प्राप्नुयुः सकलसिद्धिमवृद्धिमृद्धिं॥"

इति भविष्योत्तरे दूर्वाष्टमीव्रतकथा समाप्ता।

युधिष्ठिरने एक दिन श्रीकृष्णसे पूछा था, कि कौन व्रतानुष्ठान करनेसे स्त्रियोंका सन्तति विच्छेद नहीं होता। इस पर श्रीकृष्णने कहा था, कि भाद्र मासके शुक्लपक्षको अष्टमी तिथिमें दूर्वाष्टमी व्रत करनेसे उनकी सन्ततिकी अकाल मृत्यु नहीं होती। दूर्वा जिस तरह पृथ्वी पर अजर अमर हो कर विस्तृत हो गई, उसी तरह जो नारी इस व्रतका अनुष्ठान करती है, उसकी सन्तति भी वृद्धि लाभ करती कभी क्षय नहीं होती। यह व्रत सौभाग्य प्रदान करता है। भविष्योत्तरपुराणके मतसे इस व्रतका अनुष्ठान करना प्रत्येक नारीका कर्त्तव्य है।

**दूर्वासोम** ( सं० पु० ) सुश्रुतोक्त रसायनाङ्ग सोमलताभेद। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारको सोमलता।

**दूर्वेष्टका** ( सं० स्त्री० ) यज्ञाङ्ग चितिरूप इष्टकाभेद, यज्ञकी वेदीमें काम आनेवाली एक प्रकारकी ईंट।

**दूलनदास**—एक सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवि। इन्होंने शब्दावली नामकी एक पुस्तक रची।

**दूलमदास**—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने अपने पिता जगजीवनदाससे शिक्षा पाई थी, जिनका जगजीवनदासी पन्थ कोटवा गांजरमें चलाया हुआ है। इस मतके अनुयायी उत्तर प्रान्तमें बहुत हैं।

**दूलह**—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इनके जन्म-कालका ठीक ठीक पता नहीं लगता, किन्तु अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म सं० १७७७ में हुआ था। ये कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण थे तथा इनका वासस्थान वनपुरा था। स्फुट छन्दोंके अतिरिक्त 'कविकुलकण्ठाभरण' इनका एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें कुल इक्यासी छन्द हैं। दूलहके स्फुट छन्द बहुतायतसे नहीं मिलते। कुल मिलाकर इनके एक सौसे अधिक छन्द मिलेंगे, परन्तु इन्हीं थोड़ेसे छन्दोंमें इस कविने ऐसी मोहनी डाल रखी है कि इसकी कविता पढ़ कर यह कोई नहीं कह सकता कि दूलहके छन्द न्यून हैं। क्या भाषाकी उत्तमता, क्या कविताकी प्रौढ़ता और क्या बहुतेरे अन्य गुण, सभी बातोंमें इनकी कविता अत्यन्त सराहनीय है। कंठाभरणमें इन्होंने अलङ्कारोंका विषय कहा है और कुल ८१ छन्दोंमें उसे ऐसा दिखा दिया है कि वह अनिर्वचनीय है। रीतिके अधिकांश ग्रन्थ कविताकी प्रौढ़तामें कंठाभरणको नहीं पा सकते। दूलहने लक्षण और उदाहरण एक ही छन्दमें ऐसे मिला दिये हैं कि कंठाभरण कंठ करनेमें बहुत ही सुगम और काव्यमें बहुत ही सुहावना हो गया है। कंठाभरणका माहात्म्य दूलहने निम्न दोहेसे कहा है,—

"जो या कंठाभरणको, कंठ करै चितलाय।
सभा मध्य शोभा लहै, अलंकृती ठहराय॥"

यदि किसी ग्रन्थका माहात्म्य सच्चा है, तो इसका सबसे पहले है। वास्तवमें कंठाभरण कंठाभरण ही है—यह ग्रन्थ कंठ करने योग्य अवश्य है और ऐसा रोचक है कि दो चार बार पढ़नेसे बिना परिश्रमके ही मुखस्थ हो सकता है। कविताके न जाननेवालेको चाहे दो चार स्थानों पर इसके अलङ्कार भले ही ध्यानमें न आवें, परन्तु एक बार समझ लेनेसे इसके लक्षण और उदाहरण बहुत ही साफ हो जाते हैं।

दूलह कविताके आचार्य न हो कर केवल अलङ्कारसम्बन्धी आचार्य हैं और ऐसे आचार्योंमें इनका पद बहुत ऊंचा है। किसी कविने इनकी प्रशंसामें कहा है कि, "और बराती सकल कवि दूलह दूलहराय।" उनकी भाषा और काव्य-प्रौढ़ताके उदाहरणार्थ केवल एक छन्द नीचे देते हैं—

"सारीकी सरौटें सब सारीमें मिलाय दीन्हीं
भूषणकी जेब जैसे जेब जहियत है।
कहै कवि दूलह छिपाये रद छद सुख नेह
देखि सौतिनकी देह दहियत है ॥
बाला चित्रसाला ते निकरि गुरुजन आगे
कीन्ही चतुराई सो लखाई लहियत है।
सारिका पुकारैं हम नाहीं हम नाहीं ए जू
राम राम कहौ नाहीं नाहीं कहियत हैं ॥"

दूलहत्रिवेदी—हिन्दीके एक कवि। इनका वासस्थान बनपुरमें था। इन्होंने 'कविकुलकण्ठाभरण' नामक ग्रन्थ सन् १७४६ ई०में लिखा था।

दूलहराय—ढूंढार राज्यके स्थापनकर्त्ता। ये निषधाधिपति राजा नलको ३३ पीढियोंके बाद राजा सोढासिंहके पुत्र थे। सोढ़ासिंहके मरने पर उनके भाईने अपने सुकुमार भतीजेको गद्दीसे उतार दिया। दूलहरायकी माता अपने देवरका ऐसा कठोर अत्याचार देख कर बहुत चिन्तित हुईं। वे सामने आती हुई एक दूसरी विपत्तिको देख पुत्रको झोलीमें बांध कर राजधानीसे बाहर निकलीं। उन्होंने सोचा कि, 'जब यह नृशंस राज्य लेनेके लिये उद्यत हुआ है, तब मेरे पुत्रके प्राण ही क्यों रहने देगा।' अतः महारानी कंगालिनके वेशमें पुत्रकी झोली ले कर चलीं। चलते चलते वे खोहगावके पास पहुंचा, जो वर्त्तमान जयपुरसे ढाई कोसकी दूरी पर था। मार्गकी थकावट तथा भूख-प्याससे रानी व्याकुल हो गई थीं; अतएव वे बच्चेको झोली रख कर फल फूलादि ढूंढ़नेको गईं। बाद लौट कर उन्होंने देखा कि बच्चा सोया हुआ था और उस पर एक सांप फनकी छाया किए खड़ा था। यह देख दुःखिनी रानी पर मानो वज्र गिरा—उनका शरीर कांप उठा। उसी समय एक ब्राह्मण उधरसे जाता देख पड़ा। उसने रानीको सान्त्वना देते हुए कहा, 'आप चिन्तित न होवें, आपका पुत्र राजा होगा।' इस पर रानीने कहा, 'भविष्यत्‌को मुझे कुछ चिन्ता नहीं—भविष्य सर्वदा अन्धकारमें रहा करता है। इस समय हमलोग भूखे हैं, आप ऐसा कोई उपाय बतावें जिससे हम लोगोंको भोजन मिले।' तब ब्राह्मणने उन्हें खोहगांवका मार्ग बतला दिया। रानी उक्त ग्राममें आ कर मीनाराजाके यहां दासियोंमें भर्त्ती हुईं। एक दिन मीनाकी रानीके आदेशसे इन्होंने भोजन बनाया। उस भोजनको खा कर मीनाराज बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि, 'यह भोजन किसने बनाया है?' उस भोजन बनानेवाली परिचारिकाका परिचय पाते ही मीनाराज उसको अपनी भगिनीके समान तथा दूलहरायको भानजेके समान मानने लगे। दूलहराय भी मीनाराजका आश्रय पा कर क्षात्रधर्मकी शिक्षा प्राप्त करने लगा। उस समय दिल्लीके सिंहासन पर तोमर-वंशका अधिकार था और मीनाराज उसके करद राजा थे। जब दूलहरायकी अवस्था १४ वर्षकी हुई, तब मीनाराजने इन्हें कर देनेके लिए दिल्ली भेजा।

दूलहराय दिल्लीमें पांच वर्ष तक रहे, उस समय मीनाके एक कविके साथ इनका विशेष परिचय हो गया था। दिल्लीके राजाको देखनेसे दूलहरायको भी राजा बननेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मीनाके कविकी सलाहसे दूलहरायने मीनाराज लालनसी पर आक्रमण किया और उनको मार कर वे स्वयं राजा बन बैठे। राजा बन कर दूलहराय निश्चिन्त नहीं बैठे रहे, उन्हें अपना राज्य बढ़ानेकी चिन्ता हुई। इसी विचारसे वे बड़गूजर राजा पर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थित हुए। बड़गूजरके राजाने इनको अपनी लड़की ब्याह दी और इनको अपना उत्तराधिकारी भी बनाया। माची नामक स्थानमें नाटू नामका एक मीनाराज रहा करता था, उस पर भी दूलहराय चढ़ गए। दोनों दलोंमें घनघोर लड़ाई हुई, मीनाराजको सेना परास्त हुई और दूलहरायने उस पर भी अधिकार जमा लिया। माची प्रदेश पर दखल जमा कर दूलहरायने वहां अपनी नयी राजधानी बनवायी और उसका नाम रखा 'रामगढ़'। इन्होंने अजमेरको राजकुमारी भरोनीके साथ भी ब्याह किया था। एक समय राजा दूलहराय किसी देवमन्दिरसे दर्शन करके लौटे आ रहे थे, रास्तेमें मीनाओंका एक बड़ा दल इन पर टूट पड़ा। इन्होंने भी जान बचानेकी नितान्त चेष्टा की, परन्तु ये एकाकी इतनी बड़ी सेनाका क्या कर सकते थे। इसीसे उस युद्धमें ये मारे गए।

दूलाश (सं० त्रि०) दूःखाश दश्य वा लः। दुःख द्वारा हिंस्य, जो कठिनतासे मारा जा सके।

दूलिका (सं० स्त्री०) दूली-स्वार्थे कन्-टाप्, पूर्व ह्रस्वश्च। दूली, नीलका पेड़।

दूली (सं० स्त्री०) दूरं दूरत्वं अस्या अस्ति दूर-अच् रस्य लः, गौरादित्वात् ङीष्। नीली वृच, नीलका पेड़। इसे उत्पन्न करने अथवा बेचनेमें भारी दोष माना गया है। जो लोभ वश इसकी खेती करते, वे तीन कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करके विशुद्ध होते हैं। इसके उपजाने आदिमें पाप होता है अतः इसे दूर कर देना चाहिये, इसी कारण इसका नाम दूली पड़ा है।

दूल्हा (हिं० पु०) दूलह देखो

दूल्हाराम—रामसनेही पन्थके तीसरे गुरु तथा एक हिन्दी-कवि। इनका जन्म सन् १७७६ ई०में हुआ था और १८२४ ई०में ये परमपदको प्राप्त हुए। इनके प्रायः १०००० सबद और ४००० साखी प्रसिद्ध हैं।

दूवकुण्ड—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह ग्वालियर शहरसे ७६ मील दक्षिण-पश्चिम तथा सिप्रीसे ४४ मील पश्चिमोत्तर कोणमें कुनु और चम्बल नदीको अधित्यकाके ऊपर घने जङ्गलके मध्य अवस्थित है। यहां अत्यन्त प्राचीन एक जैन मन्दिर है जो लगभग ८ सौ वर्ष पहलेका बना हुआ है। मन्दिरमें जैन श्रेष्ठी और श्रावकोंके उत्कीर्ण अनेक खोदित लिपियुक्त शिलाफलक हैं। इनके पढ़नेसे जाना जाता है, कि एक समय यहां दिगम्बर जैनियोंको विशेष प्रधानता थी। आज भी अनेक भग्न दिगम्बरकी जिनमूर्त्तियां विद्यमान हैं। प्रवाद है, कि अमरकण्ड नामक एक महाराष्ट्र सरदारने यहांकी जैन देवमूर्त्तिको तोड़ फोड़ डाला था।

दूवा (हिं० पु०) दूआ देखो।

दूष्य (सं० क्ली०) दूयते इति भावे क्विप्, दूः खेदस्ता श्यायते श्यै-क। वस्त्रनिर्मित गृह, तंबू, खेमा।

दूषक (सं० त्रि०) दूषयति दूष्-णिच् ण्वुल्। १ दोषोत्पादक, दोष लगानेवाला। इसका पर्याय पांसन है। २ खल, दुष्ट। (पु०) ३ शालिधान्यभेद, एक प्रकारका धान।

दूषण (सं० क्ली०) दूषि भावे ल्युट्। १ दोष, ऐब, बुराई। २ दोष लगानेकी क्रिया या भाव। (त्रि०) दूषि कर्त्तरि ल्यु। ३ दोषजनक, दोष उत्पन्न करनेवाला। मनुके अनुसार पान, दुर्जन संसर्ग, पतिविरह, भ्रमण, दूसरेके घरमें रहना और निद्रा ये सब काम स्त्रियोंके लिये दूषणीय हैं। (पु०) ४ राक्षसभेद, रावणके भाई। यह वटीमें यह खरके साथ सूर्पनखाको रक्षाके लिये नियुक्त किया गया था। सूर्पनखाकी नाक और कान कट जाने पर रामचन्द्रजीके साथ इसका घमसान युद्ध हुआ था, जिसमें रामचन्द्रके हाथसे यह मारा गया। (रामा० आर०) ५ जैनियोंके सामायिक व्रतमें ३२ त्याज्य बातें, जिनमेंसे १२ कायिक, १० वाचिक और १० मानसिक हैं।

दूषणारि (सं० पु०) दूषणस्य राक्षसभेदस्य अरिः ६-तत्। रामचन्द्र। इन्होंने दूषणको मारा था।

दूषयिष्ठ (सं० त्रि०) दूष-णिच्-तृच्। दोषोत्पादक, दोष लगानेवाला।

दूषयित्नु (सं० त्रि०) दूषि शीलार्थे इत्नुच्। दूषणशील, जो दूषने योग्य हो।

दूषि (सं० स्त्री०) दूषयति दूष-इन्। (सर्वधातुभ्यः इन्। उण् ४।११७) दूषिका, आँखकी मैल।

दूषिका (सं० स्त्री०) दूषि-स्वार्थे कन्-टाप् यद्वा दूषि-ण्वुल्-टाप् अत इत्वञ्च। १ नेत्रमल, आँखकी मैल। इसका संस्कृत पर्याय—दूषि, दूषी, पिष्टोड़क, दूषिका, पिच्छट और पिल्लट है। २ तूलिका चित्रकारोंकी कूंची। (त्रि०) ३ दूषणकर्त्री, दोष लगानेवाली।

दूषित (सं० त्रि०) दूष-क्त। १ प्राप्तदोष, जिसमें दोष हो। २ मैथुनापवादयुक्त, जिस पर व्यभिचारका दोष लगा हो। इसका पर्याय—अभिशस्त, वाच्य, क्षारित और आक्षारित है।

दूषिता (सं० स्त्री०) दूषित-टाप्। दूषणप्राप्ता कन्या, वह लड़की जिसमें कोई ऐब लगा हो। इसका पर्याय—सखेदा, वर्षकारिणी और प्रमादिका है।

दूषी (सं० स्त्री०) दूषि 'कृदिकारादिति' ङीष्। दूषिका, आंखकी मैल।

दूषीका (सं० स्त्री) दूषयति दूषि ईकन् ततष्टाप्। (कृषि दूषिभ्यामीकन्। उण् ४ १६) दूषिका, आँखकी मैल।

दूषीविष (सं० क्लो०) दूषयतीति दूषि वाहुलकात् ई, ततः कर्मधारयः। सुश्रुतोक्त धातुदूषक विषभेद, सुश्रुतके अनुसार शरीरमें रहनेवाला एक प्रकारका विष जो धातुको दूषित करता है। इस विषका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है।

स्थावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम इन तीन प्रकारके विषोंमेंसे यदि कोई विष शरीरमें प्रविष्ट हो जानेके उपरान्त नहीं निकलता, उसका कुछ अंश शरीरमें रह कर जीर्ण हो जाता है अथवा विषनाशक औषधोंसे दबाने या नष्ट करने पर भी पूर्णरूपसे नष्ट नहीं होता, तब वह कफसे आच्छादित हो कर दूषीविष कहलाता है। इस विषसे तो प्राण नहीं जाते, लेकिन कफके साथ मिल कर वह वरसों तक शरीरमें व्याप्त रहता है। जिसके मुंहमें वह विष रहता है, उसका रंग पीला पड़ जाता है, मलका रंग बदल जाता है, मुंहमें दुर्गन्ध और विरसता होती है, प्यास लगती है, मूर्च्छा और उल्टी होती है और दुष्योदरके-से लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जब यह विष पक्वाशयमें रहता है, तब कफवात जन्य रोग और जब पक्वाशयमें रहता है, तब वायुपित्तजन्य रोग उत्पन्न होता है। इसमें पक्षहीन पक्षीको नाई रोगीके सिरके बाल झड़ जाते हैं, रस आदि धातुओंमें इस विषके रहनेसे जिस धातुमें यह रहता है, उसीका विकार होता है। शीतल वायु प्रवाहित मेघाच्छन्नके दिनमें जब यह कुपित होता है तब निम्नलिखित लक्षण दिखाई देने लगते हैं—जंभाई आती है, अंग टूटते हैं, रोएँ खड़े हो जाते हैं, शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं, हाथ पैर सूज जाते हैं, जलोदरी रोग के होते हैं, सभी धातु क्षय हो जाते हैं तथा मूर्च्छा और पिपासा धीरे धीरे बढ़ने लगती है। इसके सिवा इस विषसे उन्माद, आनाह, शुक्रक्षय, वाक्यकी जड़ता, कुष्ठ आदि तरह तरहके उपद्रव होने लगते हैं।

पूर्वोक्त क्षीणतेज विष देश, काल और भक्ष्यद्रव्यके दोषसे तथा दिवानिद्रासे दूषित हो कर सब धातुओंको दूषित करता है, इसीसे इसे दूषीविष कहते हैं। दूषीविष कष्टक पीड़ित रोगीके स्वेद, मेद और वमन द्वारा संशोधित हो जाने पर उसे निम्नलिखित दूषीविषनाशक दवा पिलानी चाहिये। पीपर, गजपीपर, गन्धतृण, जटामांसी, लोध, मोथा, सुवर्चिका, छोटी इलायची, कनकपलाश, गेरूमट्टी इन सबको पीस कर मधुके साथ सेवन करनेसे दूषीविष जाता रहता है। इसको विषारि अगद कहते हैं। यह अगद अन्यान्य रोगोंमें भी व्यवहृत होता है। ज्वर, दाह, हिक्का, शुक्रक्षय, शोफ, अतीसार, मूर्च्छा, हृद्रोग, जठररोग, उन्माद और कम्प इन सब रोगोंमें भी विषनाशक औषधका प्रयोग कर सकते हैं। दूषीविष रोगके आत्मवान् होनेसे वह शीघ्र आरोग्य हो जाता है, किन्तु एक वर्षसे ज्यादा व्याप्त रहने पर वह असाध्य हो जाता है। (सुश्रुत कल्पस्थान २अ०)

दूषीविषारि (सं० पु०) दूषीविषस्य अरिः। दूषीविषनाशक द्रव्य, वह पदार्थ जिससे दूषीविष दूर होता हो।

दूष्य (सं० त्रि०) दूष-णिच्-यत्। १ दूषणीय, दोष लगाने योग्य। २ निन्द्य, निन्दा करने योग्य। ३ राज्योपघातक, राज्यको हानि पहुंचानेवाला। ४ तुच्छ, नीच। (पु०) ५ वस्त्र, कपड़ा। ६ वस्त्रगृह, तंबू, खेमा। ७ पूय, पीप।

दूष्या (सं० स्त्री०) दूष्यते इति दूष-णिच-यत्-टाप्। हस्तिकक्ष्य रज्जु, हाथी बांधनेका रस्सा। इसका पर्याय—कक्षा, वरत्ता और चूषा है।

दूष्युदर (सं० क्लो०) उदररोगभेद, पेटका एक रोग। इसका लक्षण—असत् स्त्रियों द्वारा नख, रोम, मूत्र, मल वा आर्त्तवयुक्त अन्नपान दिये जानेसे वा शत्रु कर्त्तृक विष देनेसे अथवा दूषित जल वा दूषीविषके सेवन करनेसे रक्त और दोष कुपित हो कर जठरमें सान्निपातिक लक्षणविशिष्ट घोर उदरी रोग उत्पन्न करता है। जिस दिन शीतल वायु बहती है और आकाश बादलोंसे आच्छादित रहता है, उस दिन इस रोगके सभी दोष बिगड़ जाते हैं। जिससे दाह उत्पन्न होता है, रोगीको मूर्च्छा आने लगती है, वह कृश और पाण्डुवर्णका हो जाता है तथा तृष्णासे कण्ठ सूखने लगता है। इसीको दूष्युदर कहते हैं। (सुश्रुत)

भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—किसी असच्चरित्रा स्त्रीके वशीकरणादि द्वारा स्वार्थसिद्धिकी कामनासे जिसको अन्नजलके साथ नख, लोम, मूत्र, मार्जारादिकी विष्ठा वा आर्त्तवरक्त खिलाया जाता

है अथवा जिसे शत्रु संयोगज विष देता है अथवा जो व्यक्ति दूषित जलपान वा दूषीविष भक्षण करता है, उसका वातादि दोष और रक्त दूषित हो कर शीघ्र ही अत्यन्त घोरतर त्रैदोषिक उदररोग उत्पन्न करता है। शीतलवायु और दुर्दिनमें यह रोग और भी बढ़ जाता है। रोगीको प्यास अधिक लगती है, बार बार मूर्च्छा आती है, शरीर पीला हो जाता है और प्याससे गला सूख जाता है। इसे सान्निपातिक उदर भी कहते हैं। (भावप्र०)

दूसना (हिं० क्रि०) दूषना देखो।

दूसरा (हिं० वि०) १ द्वितीय, पहलेके बादका। २ अन्य, अपर, और, गैर।

दूहड़—ईडरके राजा आसथानके ज्येष्ठ पुत्र। पिताकी मृत्युके बाद दूहड़ अपनी पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हुए। परन्तु उनका हृदय उस राज्यके पानेसे तृप्त नहीं हुआ। प्राचीन कन्नौज-राज्य पर दखल जमानेकी उनको बड़ी प्रबल इच्छा थी। पिताके राज्य पर बैठ कर दूहड़ अपने अभिलाषको पूर्ण करनेका प्रयत्न करने लगे। परन्तु उनका प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ हुआ। कन्नौजराज्यके उद्धार करनेमें निष्फलप्रयत्न हो कर दूहड़ने मंदोर-राज्य पर अधिकार जमानेकी नितान्त चेष्टा की। इस चेष्टामें वे केवल असफल ही नहीं हुए किन्तु कराल कालके गालमें फंस गए।

दूहना (हिं० क्रि०) दुहना देखो।

दूहनी (हिं० स्त्री०) दोहनी देखो।

दृंहण (सं० क्ली०) दृंह-ल्युट्। दृढ़करण, मजबूत करनेकी क्रिया।

दृंहित (सं० त्रि०) दृंह-क्त। वर्द्धित, बढ़ाता हुआ।

दृक (सं० क्ली०) दीर्यते इति दृ-विदारे बाहुलकात् कक। १ छिद्र, छेद। २ नेत्र, आंख।

दृक (हिं० पु०) हीरा।

दृक्काण (सं० क्ली०) ज्योतिषोक्त राशिका तृतीय दशांशरूप अंश, फलित ज्योतिषमें एक राशिका तीसरा भाग जो दशांशोंका होता है।

दृक्कर्ण (सं० पु०) दृशौ नेत्रावेव कर्णौ यस्य। सर्प, साँप।

दृक्कर्म (सं० क्ली०) दृगर्थं दृष्टार्थं कर्म। समस्त ग्रहोंका दर्शन योग्यताके ज्ञानार्थ कर्मभेद, ज्योतिषमें वह क्रिया वा संस्कार जो ग्रहोंको अपने क्षितिज पर लानेके लिये किया जाता है। इससे ग्रहोंके योग, चन्द्रमाको शृंगोन्नति तथा ग्रहों और नक्षत्रोंके उदयास्तका पता चलता है। इस संस्कारके दो भेद हैं, आक्षदृक और आयनदृक।

दृक्काण (सं० क्ली०) ज्योतिषोक्त राशिका दशांशरूप तृतीयांश, एक राशिका तीसरा भाग जो दश अंशोंका होता है। प्रत्येक राशिमें तीन तीन द्रेक्काण होते हैं। राशिको तीन भागोंमें विभक्त करके एक एक भागको द्रेक्काण कहते हैं। जो ग्रह जिस राशिका अधीश्वर होता है, वही उस राशिके प्रथम द्रेक्काणका स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशिका अधीश्वर द्वितीय द्रेक्काणका और उससे नवीं राशिका तृतीय द्रेक्काणका अधिपति होता है, अर्थात् मेष राशिका अधीश्वर मङ्गल है। अतः मेषराशिके प्रथम द्रेक्काणका अधिपति मङ्गल, द्वितीय दृक्काणका रवि क्योंकि यह मेषसे पाँचवीं राशि सिंहका अधिपति है और तृतीय दृक्काणका बृहस्पति होगा क्योंकि यह मेषसे नवीं राशि धनुका स्वामी है। इसी प्रकार वृष प्रभृति सभी राशियोंके विषयमें जानना होगा। मेषादि लग्न परिमाणको तीन भाग करनेसे द्रेक्काण मालूम हो जायेगा। दृष्टान्त—कलकत्तादि प्रदेशमें अयनांश शोधित मेषलग्नका परिमाण ४ दण्ड, ७ पल, ७ विपल है, उसे तीन भाग करनेसे प्रत्येक भाग १ दण्ड, २१ पल, २२ विपल, २० अनुपल होता है। अतएव मेषलग्नके प्रथम भागमें जन्म होनेसे उसका मङ्गलके द्रेक्काणमें जन्म होना कहते हैं। प्रथम भागके बाद २ दण्ड ४४ पल ४४ विपल ३० अनुपलमें जन्म होनेसे उसका रविके द्रेक्काणमें जन्म होना साबित होता है; क्योंकि मेषसे पञ्चम राशि जो सिंह है, उसका अधिपति रवि है और रवि ही उस मेषके द्वितीय द्रेक्काणके अधिपति हैं। २ दण्ड ४४ पल ४४ विपल ४० अनुपलके बीत जाने पर जिसका जन्म होता है उसका बृहस्पतिके द्रेक्काणमें जन्म माना जायगा, कारण मेषसे नवीं राशि धनु है और उस धनुके अधिपति बृहस्पति हैं। अयनांश शोधित सभी

लग्नोंको विभाग कर सहज उपायसे द्रेकाण मालूम करनेके लिए एक तालिका नीचे दी गई है जिसमें लग्नमानको तीन भाग करके किसका किस भागमें जन्म हुआ है, यह देखनेसे ही सहजमें मालूम हो जायगा।

तालिका—

| राशिके नाम | प्रथम द्रेकाण | द्वितीय द्रेकाण | तृतीय द्रेकाण |
|---|---|---|---|
| मेष | मङ्गल | रवि | वृहस्पति |
| वृष | शुक्र | बुध | शनि |
| मिथुन | बुध | शुक्र | शनि |
| कर्कट | चन्द्र | मङ्गल | वृहस्पति |
| सिंह | रवि | वृहस्पति | मङ्गल |
| कन्या | बुध | शनि | शुक्र |
| तुला | शुक्र | शनि | बुध |
| वृश्चिक | मङ्गल | वृहस्पति | चन्द्र |
| धनु | वृहस्पति | मङ्गल | रवि |
| मकर | शनि | शुक्र | बुध |
| कुम्भ | शनि | बुध | शुक्र |
| मीन | वृहस्पति | चन्द्र | मङ्गल |

शुभग्रहोंके द्रेकाणका नाम जल है और अशुभ ग्रहोंके द्रेकाणका नाम दहन। जलद्रेकाणमें जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु जलमें होती है और दहन द्रेकाणमें जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्निसे होती है। शुभग्रहोंके द्रेकाणमें पापग्रहयुक्त होनेसे उसकी सलिल और मिश्र संज्ञा होती है।

सौम्यरूप द्रेकाण—मिथुनके एवं मीनलग्नके प्रथम द्रेकाणका, कर्कट और धनुलग्नके द्वितीय द्रेकाणका तथा कन्यालग्नके तृतीय द्रेकाणका नाम सौम्यरूप द्रेकाण है। इन सब द्रेकाणोंमें जन्म होनेसे मनुष्य सुखी होता है।

रत्नभाण्डान्वित द्रेकाण- कर्कट लग्नके प्रथम द्रेकाणका नाम फलपुष्पयुत है। इस द्रेकाणमें जिसका जन्म होता है, वह फलपुष्पयुक्त घरमें वास करता है। धनुलग्नके द्वितीय द्रेकाणका और तुला लग्नके प्रथम द्रेकाणका नाम रत्नभाण्डान्वित है। इसमें जन्म होनेसे रत्नभाण्ड प्राप्त होता है।

रौद्रद्रेकाण—मेषलग्नके द्वितीय और तृतीय द्रेकाण, वृश्चिकके द्वितीय और तृतीय, मिथुन और तुलाके तृतीय, मीनलग्नके द्वितीय और सिंहलग्नके प्रथम तथा द्वितीय द्रेकाणका नाम रौद्र द्रेकाण है।

उद्यतास्त्र द्रेकाण—मिथुन, मेष, मकर, कुम्भ इनके प्रथम द्वितीय और तृतीय द्रेकाण तथा धनुके प्रथम और तृतीय, तुलाके तृतीय, सिंह और कन्याके द्वितीय द्रेकाणका नाम उद्यतास्त्र द्रेकाण है। इन सब द्रेकाणोंमें जिसका जन्म होता है, उसकी अस्त्राघातसे मृत्यु होती है।

सर्पनिगड़ द्रेकाण—मीन और कर्कटके शेष द्रेकाण और वृश्चिकके प्रथम और द्वितीय द्रेकाणका नाम सर्पनिगड़ द्रेकाण है। इन सब द्रेकाणोंमें जिस मनुष्यका जन्म होता है उसे सर्प डँसता है।

व्याड़ द्रेकाण-कुम्भ और वृश्चिकके प्रथम और द्वितीय, कर्कट और मीनके तृतीय, सिंहके प्रथम और तृतीय, मकरके तृतीय, तुलाके द्वितीय और तृतीय द्रेकाणका नाम व्याड़ द्रेकाण है। इसमें जन्म होनेसे उसको हिंस्र जन्तुओंसे मृत्यु होती है।

पाशधारिपक्षि-द्रेकाण—वृषके प्रथम और मकरके प्रथम तथा तृतीय द्रेकाणका नाम पाशधारि-द्रेकाण है। इसमें जन्म होनेसे पाशधारी अर्थात् व्याध विशेषसे मृत्यु होती है। तुलालग्नके द्वितीय और तृतीय एवं सिंह और कुम्भके प्रथम द्रेकाणको पक्षि-द्रेकाण कहते हैं। इस द्रेकाणमें जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु पक्षीसे होती है।

द्रेकाणमें जन्मफल—प्रति लग्नमानको तीन भाग करके उसके किस द्रेकाणमें पुरुष होगा और किसमें स्त्री एवं उसकी कैसी आकृति होगी तथा हृत वा नष्ट वस्तुकी प्रश्न-गणनासे चोर पुरुष है वा स्त्री और उसकी कैसी आकृति है तथा परिच्छदादि कैसा है उसका विषय वृहज्जातकमें इस प्रकार लिखा है—

मेषके प्रथम द्रेकाणमें जन्म होनेसे पुरुष पैदा होता है। वह मनुष्य अपनी कमरमें सफेद वस्त्र लपटाये रहेगा तथा कृष्ण वर्ण, क्रोधी, विपद्ग्रस्त व्यक्तिको बचानेमें समर्थ, भीषण स्वभावयुक्त, कुठारधारी तथा रक्तचक्षुयुक्त होगा।

मेषके द्वितीय द्रेष्काणमें स्त्री जन्म लेती है। उसे लालवस्त्र पहननेकी तथा भूषण और भोजनीय द्रव्यकी विशेष लालसा होगी। वह कुम्भोदरी, अश्वमुखी, पिपासायुक्ता और खञ्जा होगी। मेषके तृतीय द्रेष्काणमें पुरुष उत्पन्न होता है। वह पुरुष क्रूर, चतुःषष्टिकलाभिज्ञ, कपिलवर्ण, सर्वदा कर्ममें अभिलाषी, नियम पालन करनेमें असमर्थ, उद्यत दण्डहस्त, रक्तवस्त्रपरिधानप्रिय और क्रोधी होगा।

वृषके प्रथम द्रेष्काणमें स्त्री उत्पन्न होती है। उस स्त्रीका केश कुञ्चित और लून, उदर कुम्भाकृति तथा वह खाने पीने और अलङ्कार पहननेमें सर्वदा अभिलाषिणी होती है।

वृषके द्वितीय द्रेष्काणमें पुरुषका जन्म होता है। वह पुरुष कृषि, धान्य, गृह, धेनु आदि यथेष्ट प्राप्त करेगा तथा वह पण्डित, हल और गाडी चलानेमें दक्ष, क्षुधार्त्त और मलिन वस्त्रधारी होगा।

वृषके तृतीय द्रेष्काणमें भी पुरुष उत्पन्न होता है। उस पुरुषका शरीर हाथीके जैसा वृहत्, दाँत पाण्डुवर्ण, चरण वृहत्, वर्ण पिङ्गल तथा वह मेष और मृगमांस खानेको बहुत पसन्द करेगा।

मिथुनके प्रथम द्रेष्काणमें स्त्रीका जन्म होता है। वह स्त्री सूचीकर्ममें अभिलाषिणी, सुन्दरी, आभरण पहनने और पहोनानेमें आह्लादिता, सन्तानहीना तथा अत्यन्त कामार्त्ता होती है।

मिथुनके द्वितीय द्रेष्काणमें पुरुष उत्पन्न होता है। वह पुरुष धनुर्द्धारी एवं बलवान् होगा और क्रीड़ा, पुत्र और अलङ्कार आदिकी चिन्तामें सर्वदा व्यतिव्यस्त रहेगा।

मिथुनके तृतीय द्रेष्काणमें पुरुष पैदा होता है। वह पुरुष अलङ्कार विभूषित, बहु अर्थशाली, धनुर्द्धारी, नृत्य-गीतादि कुशल और परिहासपटु होगा।

कर्कटके प्रथम द्रेष्काणमें जन्म होनेसे पुरुष होता है। वह पुरुष हाथीके समान बलवान् और मलयकाननवास-प्रिय होगा, तथा उसका मुँह सूअरके जैसा और हयग्रीव होगा।

कर्कटके द्वितीय द्रेष्काणमें जन्म होनेसे स्त्रीकी उत्पत्ति होती है। वह स्त्री कर्कशस्वभावा और पूर्णयौवना होने पर भी रोदनशीला होगी।

कर्कटके तृतीय द्रेष्काणमें पुरुष उत्पन्न होता है। वह पुरुष स्त्रीके आभरणके लिये विशेष व्यतिव्यस्त रहेगा।

सिंहके प्रथम द्रेष्काणमें पुरुष जन्म लेता है। वह पुरुष मलिन वस्त्रधारी एवं पितृमातृवियोगविधुर हो कर रोदनपरायण होता है।

सिंहके द्वितीय द्रेष्काणमें पुरुष होता है। उस पुरुषकी अश्व सदृश आकृति, मस्तकमें पाण्डुवर्ण माला-युक्त कृष्णसार चर्म, कम्बलधारी, दुरासद तथा उसको नाकका अगला भाग झुका होगा।

सिंहके तृतीय द्रेष्काणमें पुरुषका जन्म होता है। वह पुरुष वानरके जैसा स्वभाववाला, लम्बी दाढी वाला तथा कुटिल होगा।

कन्याके प्रथम भागमें स्त्री जन्म लेती है। वह स्त्री मलिन वस्त्रपरिधाना, अर्थाभिलाषिणी और गुरुकुल-गामिनी होगी।

कन्याके द्वितीय भागमें पुरुष होता है। उसके हाथ-में लेखनी, श्यामवर्ण मस्तक वस्त्रद्वारा वेष्टित तथा वह धनुर्द्धारी और लोमश होगा।

कन्याके तृतीय द्रेष्काणमें स्त्री जन्म लेती है। वह स्त्री गौरवर्णा, धौतवस्त्रसे आच्छादिता और देवभक्ति परायणा होगी।

तुलाके प्रथम द्रेष्काणमें पुरुष उत्पन्न होता है। वह पुरुष रास्ते पर तुला दण्ड धारण कर विक्रयादि द्वारा जीविका निर्वाह करेगा तथा तुलाकार्यमें विशेष दक्ष होगा।

तुलाके द्वितीय द्रेष्काणमें पुरुषका जन्म होता है। उस पुरुषका मुख पक्षीके जैसा होगा। वह सर्वदा क्षुत्-पिपासान्वित हो कर स्त्रीपुत्रको स्मरण करता रहेगा।

तुलाके तृतीय भागमें भी पुरुष जन्म लेता है। वह पुरुष नाना प्रकारके स्वर्णालङ्कारोंसे विभूषित होगा और उसकी आकृति कुत्सित होगी।

वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणमें स्त्रीका जन्म होता है। वह स्त्री वस्त्र आभरणवर्जिता होती है और तरह तरहके कष्ट पाया करती है। वृश्चिकके द्वितीय भागमें भी स्त्री

होती है, वह स्त्री सुखाभिलाषिणी होगी।

वृश्चिकके तृतीय द्रेक्काणमें पुरुष होता है। वह पुरुष अत्यन्त प्रतापान्वित होगा और उसे देखनेसे सभी भय करेंगे।

धनुके प्रथम भागमें पुरुषकी उत्पत्ति होती है। वह पुरुष घोड़ेके सदृश बलवान् होगा और धनुर्धारण कर तपस्वियोंके यज्ञीय द्रव्यकी रक्षा करेगा।

धनुके द्वितीय द्रेक्काणमें स्त्री होती है। वह स्त्री मनोरमा अत्यन्त सुन्दरी और सौभाग्यशालिनी होगी।

धनुके तृतीय द्रेक्काणमें पुरुष जन्म लेता है। वह पुरुष अत्यन्त सुन्दराकृतियुक्त होता है और नाना प्रकारके सुख सम्पद्का भोग करता है।

मकरके प्रथम द्रेक्काणमें पुरुष होता है। वह पुरुष रोमश, मकरदन्त और शूकर सदृश देहसम्पन्न होता है।

मकरके द्वितीय भागमें स्त्री जन्म लेती है। वह स्त्री कला जाननेवाली तथा नाना प्रकारकी विचित्र वस्तुओंकी अभिलाषिणी होती है।

मकरके तृतीय द्रेक्काणमें पुरुष होता है। वह पुरुष सुन्दराकृतियुक्त तथा अर्थ सम्पद् लाभ करता है।

कुम्भके प्रथम द्रेक्काणमें पुरुषका जन्म होता है। वह पुरुष खाने पीने की चिन्तामें सर्वदा व्याकुल रहेगा।

कुम्भके द्वितीय द्रेक्काणमें स्त्री जन्म लेती है। वह स्त्री दुर्भाग्यशालिनी होगी।

कुम्भके तृतीय भागमें पुरुषका जन्म होता है। वह श्यामवर्ण होगा और उसके कान लोमयुक्त होंगे।

मीनके प्रथम द्रेक्काणमें पुरुष जन्म लेता है, वह पुरुष सौभाग्यशाली होगा।

मीनके द्वितीय द्रेक्काणमें स्त्री जन्म लेगी, वह स्त्री बहुत सुन्दरी होगी।

मीनके तृतीय द्रेक्काणमें पुरुष होता है। वह पुरुष नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, विशेष यह है कि द्रेक्काणाधिपति स्त्रीग्रह यदि दुर्बल हो और लग्नाधिपतिग्रह यदि पुरुष हो अथवा पुरुषग्रह देखा जाता हो, तो स्त्री द्रेक्काणमें पुरुष जन्म लेता है एवं बलवान् स्त्रीग्रह यदि उस लग्नमें रहे, तो पुरुष द्रेक्काणमें स्त्री जन्म लेती है। किन्तु स्त्री द्रेक्काणमें पुरुषके जन्म लेने पर उस पुरुषका स्वभाव स्त्रीके जैसा और पुरुष द्रेक्काणमें स्त्रीके जन्म लेने पर, उस स्त्रीका स्वभाव पुरुषके जैसा होता है। (दीपिका)

लग्नके किसी द्रेक्काणमें जन्म होनेसे स्त्री और पुरुष जन्म लेते हैं, उसका पूरा विवरण दिया गया। अब कोष्ठीप्रदीपके मतसे—मेषके प्रथम द्रेक्काणमें जन्म होनेसे पुरुष दाता, भोक्ता, तेजस्वी, उग्र, उन्नतिहीन, बन्धुप्रिय, और क्रोधी होगा। मेषके द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे वह स्त्री चञ्चल, रतिमान्, गोत्रप्रिय, प्रशस्तमना, मित्रभक्त-भोगी और सुरूप तथा तृतीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे गुणवान्, परदोषकर, नरेन्द्रसेवी, स्वजनप्रिय, अतिशय धार्मिक और राजप्रिय होगा।

वृषके प्रथम द्रेक्काणमें जिस पुरुषका जन्म होता है, वह पानभोजनप्रिय और नारीवियोग-सन्तापयुक्त, स्त्री-कर्मानुसारी तथा वस्त्रालङ्कारयुक्त होगा।

द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे उत्तम धनसम्पन्न, मित्रतायुक्त, सुरूपसम्पन्न, भोक्ता, भूषणरत, बलवान्, स्थिर प्रकृतियुक्त, मनस्वी, लोभी और स्त्रीप्रिय तथा तृतीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे चतुर, अल्प भाग्यधर, मलिन तथा स्वजातियोंको ग्रहण करके पीछे परितापित होता है।

मिथुनके प्रथम द्रेक्काणमें जन्म होनेसे स्थूल मस्तक-सम्पन्न, बलवान्, प्राज्ञ, गुणवान्, धूर्त, विलासी, राजलब्धमानी और वाग्मी होता है। द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे सुरूप और सुन्दर गठनयुक्त, सूक्ष्म केशयुक्त, विख्यात, मृदु, महाघोसम्पन्न, प्रतापान्वित, बलशाली और यशस्वी तथा तृतीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे कोमल नयनयुक्त, उत्तम शरीरसम्पन्न, वृहत् मस्तकविशिष्ट, निर्जनप्रिय और भ्रमणशील होता है।

कर्कट राशिके प्रथम द्रेक्काणमें जन्म होनेसे देवता और ब्राह्मणभक्त, चपल, गौरवर्ण, सुधीर मूर्त्ति और स्त्री पुत्रप्रिय होता है। द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे लोभी, सुन्दर स्त्रीरत, अल्परुचि, स्त्रीजित, अभिमानी, भ्रातृ पूजित, विलासी, चपल और बहुभोजी होगा तथा तृतीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे स्त्रीचञ्चल, भाग्यवान्, विदेशप्रिय, मित्र और पुत्रादिका प्रीतिकर तथा स्त्रैण होता है।

सिंहके प्रथम द्रेक्काणमें जिसका जन्म होता है, वह

दाता, घातक, विजयेच्छु, बहुधनसम्पन्न, रमणीका बन्धु, गुरु, राजसेवक और वर्द्धिष्णु होगा। द्वितीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे सुकवि, कामी, दाता, स्थिरस्वभाव तथा उत्तम शरीरयुक्त, भूषणेच्छु, सुखभोगी, शुभकर्ममें रुचि और उत्तम बुद्धियुक्त तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे परधनहरणमें लोभी, स्थूल शरीरयुक्त, महामति, धूर्त्त, अनेक सन्ततियुक्त और प्रगल्भ होता है।

कन्याके प्रथम द्रेकाणमें जन्म होनेसे मनुष्य श्यामवर्ण, सुवाक्यसम्पन्न, विनीत, प्राज्ञ, सुन्दरमूर्त्ति और उत्तम चक्षुयुक्त होता है। द्वितीय द्रेकाणमें होनेसे धीर, विदेशगामी, शिल्प और समरकुशल, वाचाल और बुद्धिमान् तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे रोगी, परान्नभोजी, रति और गीतयुक्त, राजप्रिय, खर्व, स्थूलदृष्टि और स्थूल मस्तकयुक्त होता है।

तुलाराशिके प्रथम द्रेकाणमें जन्म लेनेसे कन्दर्पके समान रूपवान्, कर्मनिपुण, भक्त और सेवाज्ञ तथा उत्तम मेधावी ; द्वितीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे पद्मचक्षु विशिष्ट, उत्तम रूपवान्, प्रलापी, विख्यात आत्मवंश वर्द्धनकर्त्ता, वृत्ति और अर्थपटु, एवं तृतीय द्रेकाणमें जन्म लेनेसे चपल, शठ, कृतघ्न, रूपहीन, क्रूराचारी, कृश शरीरयुक्त, धन, बन्धु और यशोहीन, अल्पबुद्धि तथा पतित होता है।

वृश्चिकके प्रथम द्रेकाणमें जन्म लेनेसे गौरवर्ण, स्थिर प्रकृतियुक्त, क्रोधी, मदरहित, चक्षुविशिष्ट, स्थूल, विशाल शरीर और विवादप्रिय ; द्वितीय द्रेकाणमें मिष्टान्नपान भोजी, बलवान्, रतिप्रिय, कमनीय मूर्त्ति, शत्रुजयकारी, सरल और क्रियावान् तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म लेनेसे श्मश्रुरोमहीन, हिंस्र, पिङ्गाक्ष, महोदर, प्रवक्ता, धर्मच्युत, बाहु और हृदय स्थूल तथा सतृष्ण होता है।

धनुराशिके प्रथम द्रेकाणमें जिसका जन्म होता है वह उत्तम मण्डलाकार चक्षुसम्पन्न, वाग्मी, मृदु और धर्मपरायण होता है। द्वितीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे शास्त्रवेत्ता, मन्त्रभृतोंमें श्रेष्ठ और प्रभु तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे बन्धुतापट, साधुगतियुक्त, धार्मिक, मानी, वाराङ्गनासक्त, रूपयशोभाजन और प्रभु होता है।

मकरके प्रथम द्रेकाणमें जन्म लेनेसे आजानुलम्बित बाहु, श्यामवर्ण, पृथुलोचन, शठ, मितभाषी, स्त्रीविजित और मेधायुक्त ; द्वितीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे श्यामवर्ण, शठ, परस्त्री और धनापहारी तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म लेनेसे दीर्घ ललाटयुक्त, पापात्मा, कृश और दीर्घाङ्ग एवं विदेशवासी होता है।

कुम्भके प्रथम द्रेकाणमें जन्म होनेसे मनुष्य अतिशय लुब्ध, उन्नत, कार्यकुशल, धनवान् और सुवाक्यसम्पन्न ; द्वितीय द्रेकाणमें लुब्ध, पटु, धृतिमान्, और गौरवर्ण, मेधावी और बहुमित्रसम्पन्न तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे शठ, प्रलापी, कृश, कुशील, रतिवेत्ता और बहुमित्रयुक्त होता है।

मीनके प्रथम द्रेकाणमें जन्म होनेसे प्राज्ञ, गौरवर्ण, मेधावी, कृतज्ञ, विख्यात, क्रियाकुशल, सुखभोगी और विनीत; द्वितीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे यत्नशील, परान्नभोक्ता, कामी, सज्जनोंका स्मरणीय और पण्डितप्रिय तथा तृतीय द्रेकाणमें जन्म होनेसे श्यामवर्ण, कलानिपुण, शुचि, द्विजानुरक्त, क्रीड़ा और हास्यकुशल होता है।

यदि सूर्यके द्रेकाणमें जन्म हो, तो बालक मलिन, शूर, स्त्रीवल्लभ, क्रूर, साहसिक, कुकर्मकुशल, मूर्ख, रूपहीन, व्रणान्वित शरीर, बहु आशायुक्त, गुर्वङ्गनागामी, अल्पसन्तानविशिष्ट द्यूतक्रियारत, पापी, मुखर, कृपण और असूयान्वित होगा।

चन्द्रके द्रेकाणमें जन्म होनेसे बालक सुन्दर गठनसम्पन्न, सम्पूर्ण, धनवान्, बहुभाषी वैधकर्मरत, तीर्थगामी, शास्त्रवेत्ता, कुलभूषण, देवता, गुरु और बन्धुओंका भक्त, नित्य धर्मरत, विदेशयात्राकुशल और दाता होता है।

मङ्गलके द्रेकाणमें जन्म होनेसे मलिन, क्रूर, धनहीन, पापात्मा, खल, दयाहीन, दुश्चरित, बहुभाषी, आत्मम्भरि, क्रोधी, रोगार्त्त, परसेवक और गुणविहीन होगा।

बुधके द्रेकाणमें जन्म लेनेसे बुद्धिमान्, सर्वदा राजपूज्य, दीर्घायु, बलवान्, बहुसन्ततियुक्त, शान्त, यशस्वी, शुचि, धर्मज्ञानपरायण, प्रमादशून्य, शास्त्रविद्, धनी, मानी और कुरूप होता है।

वृहस्पतिके द्रेकाणमें जन्म होनेसे अतिशय गुणवान्, दीर्घायु, सुबुद्धिसम्पन्न, प्रियभाषी, धार्मिक, दयालु, शान्त, सुशील और यशस्वी होता है।

शुक्रके द्रेक्काणमें जन्म होनेसे सुन्दर शरीरसम्पन्न, राजमन्त्री, सर्वज्ञ, दाता और साधुओंका प्रतिपालक, धनी, दयालु, शुचि और धार्मिक होता है।

शनिके द्रेक्काणमें जन्म होनेसे मलिन, क्रूर, मृदु, तस्कर, दुश्चरित्र, कृपण, गुणहीन, पापात्मा, गुरुङ्गना गामी, अतिशय खल, क्रोधी, निर्दय, रोगार्त्त, सुहृर, कुरूप और कामातुर होगा। ( कोष्ठीप्रदीप )

दृक्क्षेप ( सं० पु० ) दृशां क्षेप, ६-तत्। १ दृष्टिपात, अवलोकन। २ सूर्यसिद्धान्तोक्त दृक्वृत्तज्यान्तरालस्थ शररूप क्षेप, दशम लग्नके नतांशकी भुजज्या। इसका काम सूर्यग्रहणके स्पष्टीकरणमें पड़ता है। मध्यज्याको उदयज्यासे गुना कर गुणनफलमें त्रिज्यासे भाग दिया जाता है। फिर भागफलको वर्ग करके और उसमें मध्यज्याके वर्गको घटा कर जो शेष संख्या रह जाती है उसका वर्गमूल निकाला जाता है। इसी मूलके अंकको दृक्क्षेप कहते हैं।

दृक्पथ ( सं० पु० ) दृशां पन्था ६-तत्। दृष्टियोग्य स्थान, दृष्टिका मार्ग, दृष्टिकी पहुँच।

दृक्प्रद ( सं० क्ली० ) सौवीराञ्जन।

दृक्पात ( सं० पु० ) दृशां पातः ६-तत्। दृष्टिपात, अवलोकन।

दृक्प्रसादा (सं० स्त्री०) दृशौ नेत्रे प्रसादयति प्र-सद-णिच-अण्-टाप्। कुलत्था, कुलत्थाञ्जन। आँखमें यह लगानेसे आंख साफ होती है, इसीसे इसका नाम दृक्प्रसादा हुआ है।

दृक्प्रिया (सं० स्त्री० ) दृशोः प्रिया ६-तत्। शोभा, सुन्दरता, खूबसूरती।

दृक्शक्ति ( सं० स्त्री० ) दृक्-प्रकाशनमेव शक्तिः। १ प्रकाशरूप चैतन्य। २ तद्युक्त सर्व प्रकाशक चेतन पुरुष, आत्मा।

दृक्श्रुति ( सं० पु० ) दृशौ एव श्रुति कर्णौ यस्य। सर्प, सांप।

दृग ( हिं० पु० ) १ आंख। २ दृष्टि, देखनेकी शक्ति। ३ दोकी संख्या।

दृगञ्चल ( सं० पु०) पलक।

दृगध्यक्ष (सं० पु०) दृशोः नेत्रयोरध्यक्षः अधिष्ठातृदेवः। सूर्य। सूर्यसे प्रकाश प्राप्त होता है। इसी प्रकाशमें देखनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

दृगमिचाव (हिं० पु०) आंख मिचौलीका खेल।

दृगल (सं० क्ली०) दृशे दर्शनाय अलति अल अच्। पक्वल खण्ड, पुरोडाश।

दृग्गणित (सं० पु०) ग्रहोंका वेध करके गणित करना।

दृग्गणितैक्य (सं० पु०) ग्रहोंको किसी समय पर गणितसे स्पष्ट करके पुनः उसे वेध कर निकालनेकी क्रिया। जब न्यूनता वा अधिकता प्रतीत हो, तो उसमें संस्कार करना पड़ता है जिससे ग्रहोंके वेध और स्पष्टमें आगे भेद न पड़े।

दृग्गति (सं० स्त्री०) दृशोर्गतिः ६-तत्। १ चक्षुकी गति, दृष्टिकी पहुँच। २ सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहस्पष्टोपयोगी दृग्गतिभेद। ३ दशमलग्नकी नतांशकी कोटिज्या। इसका काम सूर्यग्रहण निकालनेमें आता है। इसका तरीका इस प्रकार है—मध्यज्याको उदयज्यासे गुना करते और गुणनफलको त्रिज्यासे भाग देते हैं। पीछे भागफलका वर्ग करते और वर्गफलसे त्रिज्याका वर्ग घटाते हैं। इस प्रकार जो शेष अंक बच जाता है उसका वर्गमूल दृग्गति कहलाता है।

दृग्गोचर (सं० त्रि०) जो आँखसे दीख पड़े।

दृग्गोल ( सं० पु० ) खगोलके अन्तर्गत एक गोल, दृङ्मण्डल।

पहले खस्वस्तिक और अधःस्वस्तिक ये दो स्वस्तिक करते हैं, पीछे उनमें दो अन्तःकीलक बना कर वलयरूपसे गाड़ देते और तब दृङ्मण्डल बनाते हैं। इस दृङ्मण्डलको पूर्ववृत्तसे कुछ छोटा बनाना होता है जिससे यह खगोलके बीच अच्छी तरह घूम सके। इसमें यदि एक ही ग्रहगोल हो, तो एक दृङ्मण्डल होगा। जो जो ग्रह जहां जहां अवस्थान करता है, उस उस ग्रहके ऊपरी भागमें दृग्ज्या और शङ्क्वादि करना होगा अथवा भिन्न भिन्न रूपसे आठ दृङ्मण्डल बनाना होगा। बाद अष्टम और दृक्क्षेपमण्डल उस खगोलमें ध्रुवचिह्नको दो नलिकाओंकी बांधते और नलिकाके आधारकमें खगोल करके तीन अंगुलोंकी दूरी पर दृग्गोल बनाते हैं।

क्रान्तिमण्डलादियुक्त खगोलवृत्त और भूगोलवृत्तसे

जो निबद्ध होता है, उसीको दृग्गोल कहते हैं। अग्रा, कुज्या, समशङ्कु, आयच्चेत्र, द्विगोलजात, भगोलवृत्त और खगोलवृत्त मिल कर गोलबन्धमें सम्यक् रूपसे उपलक्षित न हो, तो इसीको दृग्गोल कहते हैं।

दृग्ज्या (सं० स्त्री०) सूर्यसिद्धान्तोक्त दिनमानादि ज्ञानार्थ शङ्कुच्छायाकी उपयोगिनी दृष्टियोग्या दृक्वृत्तक्षेत्रस्थ जीवा, दृक्मण्डल वा दृग्गोलके खस्वस्तिकसे जो ग्रह जितना लटका रहता है उसे नतांश और इसी नतांशकी ज्याको दृग्ज्या कहते हैं।

दृग्भक्ति (सं० स्त्री०) प्रेमदृष्टि, मुहब्बतकी निगाह।

दृग्भू (सं० स्त्री०) १ वज्र। २ सूर्य। ३ सर्प।

दृग्लम्बन (सं० क्ली०) सिद्धान्तशिरोमणि-कथित ग्रहणदर्शनोपयोगी दृक्क्षेत्रस्थ लम्बभेद। ग्रहण स्पष्ट करनेमें जब सूर्य और चन्द्रमा गर्भाभिप्रायसे एक सूत्र आ जाते हैं, परपृष्ठाभिप्रायसे एक सूत्रमें नहीं आते, तब उन्हें पृष्ठाभिप्रायसे एक सूत्रमें लानेके लिए जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्लम्बन कहते हैं।

दृग्विष (सं० पु०) दृशि विषं यस्य। दृष्टिविष सर्पभेद वह साँप जिसकी आँखोंमें विष होता है।

दृग्वृत्त (सं० क्ली०) दृशः प्रचारस्थानं वृत्तमिव। वृत्ताकार दृक्प्रचार-स्थल, क्षितिज।

दृग्व्याधिहतम् (सं० क्ली०) रक्ताञ्जन।

दृङ्नति (सं० स्त्री०) सिद्धान्तशिरोमण्युक्त ग्रहग्र-दर्शनोपयोगिताके लिये दर्शित दृक्प्रचारकी नति। ग्रहण स्पष्ट करनेमें सूर्य और चन्द्रमाका जब प्रभान्त कालीन स्पष्ट किया जाता है और वे गर्भाभिप्रायसे एक सूत्रमें आ जाते हैं परपृष्ठाभिप्रायसे नहीं आते, तब पृष्ठाभिप्रायसे उन्हें एक सूत्रमें लानेके लिये जो याम्योत्तर संस्कार किया जाता है, उसे दृङ्नति कहते हैं।

नति देखो।

दृङ्मण्डल (सं० क्ली०) दृशः तत्प्रचारस्य मण्डलमिव। गोलबन्धान्तर्गत वलयाकार मण्डलभेद, दृग्गोल।

दृढ़ (सं० त्रि०) दृह-क्त निपातनात् साधुः। १ स्थूल, मोटा। २ प्रशिथिल, जो ढोला न हो, जो खूब कस कर बँधा या मिला हो। ३ बलवान्, हृष्टपुष्ट। ४ कठिन। ५ निडर, ढीठ। ६ ध्रुव, पक्का। ७ स्थायी, जो जल्दी दूर, नष्ट वा विचलित न हो सके। (क्ली०) ८ लोह, लोहा। (पु०) ६ धृतराष्ट्रपुत्रभेद, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। १० त्रयोदश मनु रुचिका पुत्रभेद, तेरहवें मनु रुचिके एक पुत्रका नाम। ११ विष्णु। १२ सप्तविध रूपकी मध्य एक प्रकार, संगीतमें सात रूपकोंमेंसे एक। १३ लीलावत्युक्त कुट्टकगणितभेद। १४ गणितमें वह अंक जो दूसरे अंकसे पुरा पूरा विभाजित न हो सके, जैसे १, ३, ५, ७……। १५ एलवालुक, एलुवा, मुसब्बर। १६ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। १७ धववृक्ष। १८ हीरक, हीरा।

दृढ़कण्टक (सं० पु०) दृढ़ः कण्टको यस्य। १ क्षुद्र कण्टकयुक्त वृक्षभेद। २ क्षुद्र फलकवृक्ष। ३ खर्जूरवृक्ष, खजूरका पेड़। ४ अक्षोटवृक्ष, अखरोटका पेड़।

दृढ़काण्ड (सं० पु०) दृढ़ं काण्डं यस्य। १ वंशवृक्ष, बाँस। २ दीर्घरोहिषक, रोहिस घास। ३ पाताल गरुड़ीलता, छिरेंटा।

दृढ़काण्डा (सं० स्त्री०) वत्सादनीलता, छिरेंटा।

दृढ़कारी (सं० त्रि०) दृढ़-कृ-णिनि। १ प्रारब्धसम्पादयिता, जो अपने कर्त्तव्य विषय पर अटल रहे। २ दृढ़तासे काम करनेवाला। ३ मजबूत करनेवाला।

दृढ़क्षत्र (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

(भारत १।६७ अ०)

दृढ़क्षुरा (सं० स्त्री०) दृढं क्षुरमिव अग्रं यस्याः। वल्वजातृण, सागे बागे।

दृढगर्भ (सं० क्ली०) हीरक हीरा।

दृढगात्रिका (सं० स्त्री०) दृढं गात्रं यस्याः कप्, टापि अतइत्वं। मत्स्याण्डी, राब, खाँड़।

दृढ़ग्रन्थि (सं० पु०) दृढः ग्रन्थिः पर्व यस्य। १ वंश, बांस। (त्रि०) २ दृढ़ ग्रन्थियुक्त माल, जिसकी गाँठें मजबूत हों।

दृढ़ग्राही (सं० त्रि०) दृढ़-ग्रह-णिनि। दृढ़रूपसे ग्रहणकारी, निश्चय करूंगा ऐसा सोच कर जो ग्रहण करता हो।

दृढ़च्छद (सं० पु०) दृढ़ः छदो यस्य। १ दीर्घ रोहिषक तृण, बड़ी रोहिस। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

दृढ़च्युत (सं० पु०) अगस्त्य मुनिके एक पुत्रका नाम।

थे परपुरंजय नामक राजाकी कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनका नाम दृढ़वाह भी है। (भागवत ४।२८ अ०)

दृढ़तरु (सं० पु०) दृढ़ः तरुः कर्मधा०। धववृक्ष, धवका पेड़।

दृढ़ता (सं० स्त्री०) १ दृढ़त्व, दृढ़ होनेका भाव। २ मजबूती। ३ स्थिरता। ४ पक्कापन।

दृढ़तृण (सं० पु०) दृढ़ं कठिनं तृणं यस्य। मुञ्जातृण, मूंज नामकी घास।

दृढ़तृणा (सं० स्त्री०) दृढ़ं तृणं यस्याः। वल्वजा तृण, सागी वागी।

दृढ़त्व (सं० क्ली०) दृढ़स्य भावः दृढ़ भावे त्व। दृढ़ता।

दृढ़त्वच् (सं० पु०) दृढ़ा त्वक् यस्य। १ यावनालशर, ज्वारका पेड़। २ मुञ्जतृण, मूंज। (त्रि०) ३ कठिन चर्मयुक्त, जिसकी त्वचा या छाल कड़ी हो।

दृढ़दंशक (सं० पु०) दृढ़ं यथा तथा दंशतीति दंश-ण्वुल्। जलजन्तुविशेष, घड़ियाल।

दृढ़दस्यु (सं० पु०) दृढ़च्युतके पुत्र, एक ऋषि।

दृढ़धन (सं० पु०) दृढ़ं धनं निश्चयरूपसम्पत्तिर्यस्य। शाक्यमुनि, बुद्ध।

दृढ़धनुस् (सं० पु०) शाक्यमुनिके एक पूर्व पुरुष।

दृढ़धन्वन् (सं० पु०) दृढ़ं धनुर्यस्य, अनङ् समासान्त। १ दृढ़ धनुष्क, जो धनुष चलानेमें दृढ़ हो। २ पौरव नृपभेद, एक पुरुवंशीय राजाका नाम। (भारत १।१८६ अ०)

दृढ़धन्वी (सं० त्रि०) दृढ़ धनुयुक्त, जिसका धनुष दृढ़ हो।

दृढ़धुर (सं० त्रि०) १ दृढ़ धुरायुक्त, जिसका बम या डंडा मजबूत हो। २ जो बोझ ढोनेमें समर्थ हो।

दृढ़नाभ (सं० पु०) माया-अस्त्र रोकनेका मन्त्रभेद। इसे विश्वामित्रजीने रामचन्द्रको बतलाया था।

दृढ़निश्चय (सं० पु०) दृढ़ः कुतर्कैरभिभवितुं अशक्यतया स्थिरः निश्चयो अहं ब्रह्म अस्मि इति निश्चयो यस्य। स्थिरमत, वह जो अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहे, जो अपनी बात पर जमा रहे।

दृढ़नीर (सं० पु०) दृढ़ं कालेन दृढ़तां प्राप्तं नीरं यस्य। नारिकेल, नारियल। इसके भीतरका जल धीरे धीरे जम कर कड़ा हो जाता है।

दृढ़नेत्र (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

दृढ़नेमि (सं० पु०) १ अजमीढ़ वंशीय सत्यधृति नृप पुत्र नृपभेद, अजमीढ़ वंशके एक राजाका नाम जो सत्यधृतिके पुत्र थे। (हरिवंश २० अ०) दृढ़ा नेमिर्यस्य। २ दृढ़नेमिवा रथ, वह रथ जिसकी धुरी मजबूत हो।

दृढ़पत्र (सं० पु०) दृढ़ं पत्रं यस्य। १ वंश, बांस। २ मुञ्जतृण, मूंज नामकी घास। (त्रि०) ३ दृढ़पत्रयुक्त, जिसके पत्ते दृढ़ हों।

दृढ़पत्री (सं० स्त्री०) दृढ़पत्र गौरादित्वात् ङीष्। वल्वजा तृण, सागी वागी।

दृढ़पद (सं० पु०) तेईस मात्राओंका एक मात्रिक छन्द। इसमें १३ और १० मात्राओं पर विश्राम होता है। अन्तमें दो गुरु होते हैं।

दृढ़पाद (सं० त्रि०) दृढ़ः पादः पदनं ज्ञानं यस्य। १ दृढ़निश्चय, विचारका पक्का। (पु०) २ वेधस, ब्रह्मा।

दृढ़पादा (सं० स्त्री०) दृढ़ः पादो मूलं यस्याः, समासान्त विधेरनित्यत्वात् नाम्यलोपः। यवतिक्ता।

दृढ़पादी (सं० स्त्री०) दृढ़पाद-ङीष्। भूम्यामलकी, भूआँवला।

दृढ़पुष्पा (सं० स्त्री०) गुलुच्छकन्द, गुच्छकन्द, कन्द शाक।

दृढ़पृष्ठक (सं० पु०) कच्छप, कछुआ।

दृढ़प्ररोह (सं० पु०) दृढ़ः प्ररोहः अङ्कुरो यस्य। वटवृक्ष, बरगद।

दृढ़फल (सं० पु०) दृढ़ानि फलानि यस्य। नारिकेल, नारियल।

दृढ़बन्धिनी (सं० स्त्री०) दृढ़ं यथा तथा बध्नातीति बन्ध-णिनि-ङीप्। १ श्यामालता, अनन्तमूलकी लता। (त्रि०) २ अशिथिल बन्धकारक।

दृढ़बालुक (सं० क्ली०) एलबालुक, मुसब्बर।

दृढ़भार्गवक (सं० स्त्री०) छोरक, छोरा।

दृढ़भूमि (सं० पु०) दृढ़ा भूमिरवस्था यस्य। योगशास्त्रमें मनको एकाग्र और स्थिर करनेका एक अभ्यास। इसका विषय पातञ्जलयोगशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

चित्तको स्थिर करनेके लिये जिससे राजस और तामस वृत्तिका उदय न हो, ऐसे यत्न विशेषको अभ्यास कहते हैं। विषयाभिनिवेशको परित्याग करके चित्तको बलपूर्वक

वारम्बार एकाग्र वा एकतान करना तथा उसके पूर्व साधक यमनियमादि सात प्रकारके योगाङ्गोंका अनुष्ठान करना ही अभ्यास है। यमनियमादि द्वारा परिशोधित चित्तको बार बार एकाग्र करते समय उसे धीरे धीरे दृढ़, अर्थात् अविचाल्य होकर स्थिर करना चाहिये। जब देखें, कि अभ्यास दृढ़ हो गया है, तब वैसे चित्तको जब चाहें, तब एकतान कर सकते हैं। इस प्रकारके अभ्यासको दीर्घकाल तक सदा श्रद्धापूर्वक करते रहने से वह क्रमशः दृढ़ और अविचलित हो जाता है, इसीको दृढ़भूमि कहते हैं। वस्तुतः उक्त प्रकारका अभ्यास दो चार दिनमें नहीं होता। श्रद्धाके साथ, भक्तिके साथ, उत्साहके साथ सर्वदा अभ्यास करते रहनेसे ही, वह बहुत दिनके बाद दृढ़ता प्राप्त करता है। इस तरह योगाभ्यास जब दृढ़ होगा, तब चित्त सम्पूर्ण रूपसे अधीन हो जायेगा। चित्तमें किसी प्रकारकी चञ्चलताका समावेश न होगा। वह आपसे आप एकाग्र हो जायेगा, ऐसा होनेसे ही दृढ़भूमि होता है। इस अवस्थाको प्राप्त कर लेने पर वैराग्यकी प्राप्ति निकट हो जाती है।

दृढ़माला (सं० स्त्री०) भूधात्री।

दृढ़मुष्टि (सं० पु०) दृढ़ा मुष्टिर्धारणाय यस्य। १ खड्गादि। दृढ़ा दानाद्यभावात् कठिना मुष्टिर्यस्य। (त्रि०) २ कृपण, कंजूस। ३ दृढ़मुष्टिधारक, जो मुट्ठीमें जोरसे पकड़े, कस कर पकड़नेवाला।

दृढ़मूल (सं० पु०) दृढं मूलं यस्य। १ मुञ्जतृण, मूंज। २ मन्थानक तृण, मथाना नामकी घास जो तालोंमें होती है। ३ नारिकेल, नारियल।

दृढ़रङ्गा (सं० स्त्री०) दृढ़ः स्थिरः रङ्गो रागो यस्याः। स्फटी, फिटकरी।

दृढ़रजा (सं० स्त्री०) प्रौढ़ स्त्री, युवान औरत।

दृढ़रथ (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। २ कश्यप वंशके एक राजाका नाम।

दृढ़रुचि (सं० स्त्री०) दृढ़ा रुचिर्यस्य। १ स्थिर रागयुक्त। २ कुशद्वीपपति हिरण्यरेता प्रैयव्रतके एक पुत्रका नाम।

दृढ़लता (सं० स्त्री०) दृढ़ा कठिना लता। पातालगरुड़ीलता, छिरेंटा।

दृढ़लोम (सं० पु०) दृढ़ानि लोमानि यस्य। १ शूकर, सूअर। (त्रि०) २ कठिन लोमयुक्त, जिसके रोएं कड़े हों।

दृढ़वज्र (सं० पु०) एक असुरराज।

दृढ़वर्म (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रका पुत्रविशेष, धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। दृढ़ं वर्म यस्य। (त्रि०) २ दुर्भेद्यसन्नाहयुक्त, जिसका कवच वा बखतर बहुत कठिन हो।

दृढ़वल—एक प्राचीन वैद्यक ग्रन्थकार। वाचस्पतिने इनका वचन उद्धृत किया है।

दृढ़वल्कल (सं० पु०) दृढं वल्कलमस्य। १ पूगवृक्ष, सुपारीका पेड़। २ लकुचका पेड़। (त्रि०) ३ दृढ़वल्कलयुक्त, जिसकी छाल कड़ी हो।

दृढ़वल्का (सं० स्त्री०) दृढं वल्कं यस्याः। अम्बष्ठा, ब्राह्मणीलता, पाढ़ा।

दृढ़वल्ल (सं० पु०) मुञ्जतृण, मूंज।

दृढ़वीज (सं० पु०) दृढं वीजं यस्य। १ चक्रमर्द, चकवड़। २ वदर, वैर। ३ बबूर, बबूल। ४ नारिकेल, नारियल। (त्रि०) ५ कठिन वीजयुक्त, जिसके बीज कड़े हों।

दृढ़वृक्ष (सं० पु०) नारिकेल, नारियल।

दृढ़वृन्त (सं० पु०) दृढ़वृक्ष देखो।

दृढ़वेधन (सं० क्ली०) दृढ़रूपसे विद्धकरण, मजबूतीसे भेदनेकी क्रिया।

दृढ़व्य (सं० पु०) ऋषिभेद, एक मुनिका नाम।

दृढ़व्रत (सं० त्रि०) दृढं प्रतिपक्षे स्खलयितुं व्रतं यस्य। स्थिर सङ्कल्पयुक्त, अपने सङ्कल्प पर जमा रहनेवाला।

दृढ़शक्तिक (सं० त्रि०) दृढ़ा शक्तिर्यस्य ततो कप्। महाशक्तियुक्त, जिसे खूब ताकत हो।

दृढ़सन्ध (सं० त्रि०) दृढ़ा सन्धा यस्य। १ स्थिर सन्धान, सङ्कल्पका पक्का। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

दृढ़सन्धि (सं० त्रि०) दृढ़ः स्थूलः सन्धिर्यस्य। निश्छिद्र। इसका पर्याय संहत है।

दृढ़सूत्रिका (सं० स्त्री०) दृढं सूत्रं यस्याः कप् अत इत्वं। मूर्वालता, मुर्रा।

दृढ़सेन (सं० पु०) कलियुगके जनमेजय वंशीय नृपभेद।

दृढ़स्कन्ध (सं० पु०) दृढः स्कन्धो यस्य। १ क्षीरिका वृक्ष, खिरनीका पेड़। २ पिण्डखर्जूर, पिंडखजूर। (त्रि०) ३ दृढ़स्कन्धविशिष्ट, जिसका कंधा मजबूत हो।

दृढ़स्थिति ( सं० पु० ) नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़।

दृढस्यु ( सं० पु० ) लोपामुद्राके गर्भसे उत्पन्न अगस्त्य ऋषिके एक पुत्रका नाम। ये इध्मवाह नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

दृढ़हनु ( सं० पु० ) अजमीढ़ वंशीय नृपभेद, अजमीढ़ वंशके एक राजाका नाम।

दृढ़हस्त ( सं० पु० ) दृढ़ः हस्तः हस्तव्यापारो यस्य। १ खड्गादि धारण विषयमें दृढ़ हस्तयुक्त योद्धा पुरुष, वह योद्धा जो हथियार आदि पकड़नेमें पक्का हो। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६७ अ०)

दृढ़ा ( सं० स्त्री० ) मुषली, मूसली।

दृढ़ाङ्ग ( सं० त्रि० ) दृढ़ं अङ्गं यस्य। १ कठिनाङ्गयुक्त, जिसके अंग दृढ़ हों, हृष्टपुष्ट। ( क्ली० ) २ जीरक, जीरा।

दृढ़ादि ( सं० पु० ) पाणिन्युक्त शब्दगण विशेष,—दृढ़, परिवृढ़, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड़, वधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, जवन ये सब शब्द दृढ़ादिगण हैं।

दृढ़ाना ( हिं० क्रि० ) १ दृढ़ करना, पक्का करना। २ पुष्ट होना, कड़ा होना। ३ स्थिर या पक्का होना।

दृढ़ायु (सं० पु०) १ तृतीय मनु सावर्णिके एक पुत्रविशेष, तृतीय मनु सावर्णिके एक पुत्रका नाम। २ उर्वशी-गर्भजात ऐल नृपपुत्रभेद, उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न ऐल राजाके एक पुत्रका नाम।

दृढ़ायुध ( सं० पु० ) दृढ़ः आयुधो तद्व्यापारो यस्य। १ योद्धा। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ( त्रि० ) ३ अस्त्र ग्रहण करनेमें पक्का, युद्धमें तत्पर।

दृढ़ारङ्गा ( सं० स्त्री० ) स्फटिकारिका, फिटकरी।

दृढ़ाश्व ( सं० पु० ) धुन्धुमार नृपपुत्रभेद, धुंधुमारके एक पुत्रका नाम।

दृढ़ेयु ( सं० पु० ) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

दृढ़ेषुधि ( सं० पु० ) दृढं इषुधि र्येन। १ वद्धतूणक योध, वह योद्धा जो लड़नेके लिये तरकश आदि लिए हों। २ राजभेद, एक राजाका नाम।

दृत ( सं० त्रि० ) दृ-क्त। १ आदरयुक्त, सम्मानित। दृ विदारे क्त बाहुलकात् ह्रस्वः। २ विदीर्ण, फाड़ा हुआ।

दृता ( सं० स्त्री० ) द्रियते सेवेति दृङ्-कर्मणि क्त टाप्। जीरक, जीरा।

दृति ( सं० पु० ) दृणातीति दृ विदारे दृति ति ह्रस्वश्च ( दृणाते ह्रस्वश्च। उण् ४।१८३ ) १ चर्मपुटक, खाल का बना हुआ पात्र। चर्मपात्रमें अनेक छिद्र नहीं रहने पर भी जिस तरह केवल एक छिद्रके दोषसे उसका सब जल निकल जाता है, उसी तरह इन्द्रियोंमें यदि एक भी इन्द्रिय स्खलित हो, तो उसीसे परम ज्ञान नष्ट हो जाता है। २ मत्स्य, मछली। ३ गलकम्बल, वह चमड़ा जो गाय, बैल आदिके गलेके नीचे झूलता है। ४ मेघ, बादल। ५ मशक। ६ सत्रविशेषधारक यजमानभेद। ७ रोमश चर्म, रोआं लगा हुआ चमड़ा।

दृतिधारक ( सं० पु० ) दृतिश्च मंपुटस्तदाकारं धारयतीति धारि-ण्वुल् ( ण्वुल् तृचौ। पा ३।१।१३३ ) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम है। इसका पर्याय—आनन्दी, मूषिकारातु और वामन है।

दृतिवातवतोरयन (सं० क्ली०) यज्ञभेद, एक यज्ञका नाम।

दृतिहरि ( सं० पु० ) दृतिं चर्ममयद्रव्यं हरतीति दृति-हृ-इन्। कुक्कुर, कुत्ता।

दृतिहार (सं० पु०) मशक ढोनेवाला, भिश्ती।

दृत्य (सं० त्रि०) दृ-कर्मणि क्यप्। १ आदरणीय, जिसकी इज्जत हो। (क्ली०) भावे क्यप्। २ आदर, सम्मान।

दृभ्र (सं० क्ली०) दृढ़ता या मजबूतीसे पकड़नेकी क्रिया।

दृन् ( सं० अव्य० ) १ हिंसा। २ दृढ़ार्थ।

दृन्फू (सं० स्त्री०) दृन्फ कू निपातनात् न नलोपः। १ सर्प जाति। २ वज्र।

दृम्भू (सं० स्त्री०) दृन्फतीति दृन्फ निपातनात् कूप्रत्ययेन साधु। (अन्दू दृम्भू जम्बू कम्बू कफेलू कर्कंधू दिधिषु। उण् १।८५) १ सर्प, सांप। २ चक्र, पहिया। ( पु० ) ३ वज्र। ४ सूर्य। ५ राजा। ६ अन्तक, नाश करनेवाला।

दृप्त ( सं० त्रि० ) दृप गर्वे हर्षे च वर्त्तमाने क्त। १ गर्वान्वित, इतराया हुआ। २ हर्षसे फूला हुआ।

दृप्र ( सं० त्रि० ) दृपति बाधते इति दृप-रक्। ( स्फायित-ञ्चोति। उण् २।१३ ) १ दृढ़बलयुक्त, प्रचण्ड, प्रबल। २ घमण्डी, इतराया हुआ।

दृब्ध ( सं० त्रि० ) दृभ ग्रन्थने कर्मणि क्त। १ ग्रथित, गुथा हुआ। २ भीत, डरा हुआ। भावे-क्त। ( क्लो० ) ३ ग्रन्थन। ४ भय।

दृभीक ( सं० पु० ) दृभ बाहुलकात् ईकन्। असुरभेद, एक दैत्यका नाम।

दृमिचण्डेश्वर ( सं० क्लो० ) मत्स्यपुराणोक्त शिवलिङ्गभेद।

दृवन् ( सं० त्रि० ) दृ-विदारे क्वनिप् बाहुलकात् वेदे ह्रस्वः। विदारक, चीरफाड़ करनेवाला।

दृश् (सं० पु०) पश्यत्यनेन इति दृश-करणे क्विप्। १ चक्षु, आँख। भावे क्विप्। २ दर्शन, देखना। ३ बुद्धि। (त्रि०) पश्यतोति दृश कर्त्तरि क्विन्। ४ बोधक, दिखानेवाला। ५ देखनेवाला। (स्त्रो०) ६ दृष्टि। ७ द्वित्व-संख्या, दोकी संख्या।

दृशति (सं० स्त्रो०) दृश बाहुलकात् भावे अतिक्। दर्शन, देखना।

दृशद् ( सं० स्त्रो० ) दृषद् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ शिला, पत्थर। २ सिल, पट्टी।

दृशद्वती ( सं० स्त्रो० ) दृषद्वती पृषोदरादित्वात् साधुः। १ ब्रह्मावर्त्त सोमास्थ नदीभेद, एक नदी जो ब्रह्मावर्त्तकी सोमा पर अवस्थित है। यह कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत है। जो इस नदीके किनारे वास करते हैं, वे स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं। यह स्थान बहुत मनोरम है। दृषद्वती देखो। २ कात्यायनी।

दृशा (सं० स्त्रो०) दृश हलन्तत्वात् वा टाप्। चक्षु, आँख।

दृशाक ( सं० त्रि० ) दृश कर्मणि ईकक्। दर्शनीय, देखने योग्य।

दृशाकांक्ष्य ( सं० क्लो०) दृशा दृष्टया वा आकांक्ष्यं अभिलषणीयं। पद्म, कमल।

दृशान ( सं० पु० ) दृश-आनच् किच्च। १ लोकपाल, प्रजाका पालन करनेवाला राजा। २ विरोचन नामक दैत्य। ३ आचार्य, गुरु। ४ ब्राह्मण। ५ उपाध्याय। ( क्लो० ) ६ ज्योतिः, प्रकाश, आभा। (त्रि० ) दृश्यते इति दृश-कर्मणि आनच्। ७ दृश्यमान, जो दिखाई पड़ रहा हो।

दृशि ( सं० स्त्रो० ) दृश्यतेऽनया दृश-इन् स च कित्। १ चक्षु, नेत्र। २ चेतन पुरुष। "द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।" ( पात०सू० २।२०)

पुरुषका नाम द्रष्टा है, यथार्थमें जिसे द्रष्टा कहना चाहिये, वह द्रष्टा नहीं है, क्योंकि वह चिद्रूपो और अपरिणामो है। सुतरां परिणामनस्वभाव अन्तःकरण ही ज्ञानादि धर्मका आधार है। निर्विकार स्वभाव आत्मा वा पुरुष जब उस प्रकारकी बुद्धिमें उपरत हों, बुद्धिके साथ एकीभूत हों अर्थात् जब वे सन्निधानवशतः बुद्धि वृत्तिमें प्रतिविम्बित वा अभिव्यक्त हों तभी उन्हें उपचार क्रमसे द्रष्टा कहते हैं। बुद्धि वा अन्तःकरणके परिणाम वा विषयाकारताके नहीं रहने पर उन्हें कुछ भी द्रष्टृत्व नहीं रहता।

तात्पर्य यह, कि बुद्धिवृत्तिमें प्रतिविम्बित होना ही उसका देखना होगा, अन्यथा किसो प्रकारसे नहीं।

( पात०सू० २।२५ )

दृक् और दृश्यके संयोगका कारण अविद्या है। यह अविद्या यदि योगाभ्यास द्वारा तथा तत्त्वज्ञान वा चित्तनिरोध द्वारा विदूरित हो जाय, तो उस पुरुषके साथ प्रकृतिका संयोग वा द्रष्टृ दृश्यभाव नहीं रहता, वरं वह मुक्त अर्थात् केवल हो जाता है। जड़ सम्बन्धवर्जित हो जानेसे वह निज चिद्घन-स्वभावमें प्रतिष्ठित रहता है। ३ प्रकाश, उजाला। ४ शास्त्र।

दृशी ( सं० स्त्रो० ) दृशि बाहुलकात् ङीष्। दृशि देखो।

दृशेन्य ( सं० त्रि० ) दृश-कर्मणि केन्यन्। दर्शनीय, देखने योग्य।

दृशोपम ( सं० क्लो० ) दृशाया उपमा यत्र। श्वेतपद्म, सफेद कमल।

दृश्य ( सं० त्रि० ) दृश्यते इति दृश-कर्मणि क्यप्। १ दर्शनीय, जो देखने योग्य हो। २ मनोरम, सुन्दर। ३ द्रष्टव्य, जो देखनेमें आ सके, जिसे देख सके। ४ ज्ञेयमात्र, जानने योग्य।

द्रष्टा और दृश्यका संयोग ही हेय अर्थात् दुःखका प्रतिकारण है। द्रष्टा, आत्मा और दृश्य अर्थात् अन्तःकरण इन दोनोंका संयोग होनेसे ही दुःख उपस्थित होता है। केवल दुःख ही नहीं, वल्कि सुख, दुःख और मोह ये सभी अन्तःकरणके विकार है। बुद्धि द्रव्यका अन्तःकरण इन्द्रिय सम्बन्ध द्वारा विषयाकारमें और सुख दुःखादि आकारमें परिणत होनेके साथ ही वह चित्

शक्ति द्वारा प्रज्वलित हो जाती है। सुतरां परिणाम स्वभाव बुद्धिसत्त्व वा अन्तःकरण पदार्थ दृश्य और तत्-सन्निधिस्थ अपरिणामी चित्‌शक्ति उसकी द्रष्टा है।

दृश्य और द्रष्टा इन दोनोंका जो संयोग है अर्थात् ये दोनों जो एकही भावसे गठे हुए हैं, वही संसारी जीवों-के दुःखसमूहका मूल है। 'प्रकाशक्रियास्थितिशील' भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यं।" (पात० २।१८) प्रकाश स्वभाव सत्व, क्रियात्मक रजः, दोनोंका प्रतिरोधक अचल स्वभाव तम, एतत् क्रियात्मक भूत और इन्द्रिय ये सब दृश्य है। पुरुष भिन्न परिदृश्य जगत्‌में जो कुछ दृष्टि-गोचर होते हैं, वही दृश्य हैं। ये सभी पुरुषके भोग और अपवर्ग प्रदानके लिये उद्यत है। सत्व, रज और तम यह गुणत्रयात्मक प्रकृति और तदुत्पन्न जो कुछ भूत भौतिक हैं, सभी पुरुषके भोग और अपवर्गके कारण है। यह दृश्य अविवेकीके भोग और विवेकीके मोक्ष प्रदानके लिये उद्यत है। इसका विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो। (पु०) ५ देखनेकी वस्तु, नेत्रोंका विषय, आँखोंके सामनेका पदार्थ। ६ दृष्टिके सामनेका मनोरञ्जक व्यापार, तमाशा। ७ अभिनय द्वारा दर्शकोंको दिखाये जानेका काव्य, नाटक। ८ गणितमें ज्ञात वा दी हुई संख्या।

दृश्यकाव्य (सं० क्लो०) काव्यविशेष, जो काव्य नाट्य-शालामें नट लोगोंसे दिखलाया जाता है, उसे दृश्यकाव्य कहते हैं।

काव्य दो प्रकारका है—दृश्य और श्रव्य। जो अभि-नीत होता है, उसे दृश्यकाव्य कहते हैं। इसे जन-साधारण नाटक कहते हैं, किन्तु साहित्यदर्पण आदि अलङ्कार शास्त्रोंके मतानुसार नाटक दृश्यकाव्यका एक भेद मात्र है।

नाट्यशालामें नट लोग जो जो पुस्तक अभिनय करते हैं, वे सभी दृश्यकाव्यके अन्तर्गत है। जो नाट्यशास्त्र दृश्यकाव्यका प्राणस्वरूप है, उसे भरत मुनिने बनाया था। कहते हैं, कि उन्होंने यह ब्रह्मासे सीख कर गन्धर्व और अप्सराओंको सिखलाया था। धीरे धीरे यह प्रचलित हो गया। दृश्यकाव्य दो भागोंमें विभक्त है, रूपक और उप-रूपक। इनमेंसे रूपकके दस और उपरूपकके अट्ठारह भेद हैं।

नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथ्य और प्रहसन ये दश रूपक हैं-तथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका ये अठारह उपरूपक है।

दृश्यकाव्यमें नाटक सबसे प्रधान है। इसका गल्प पौराणिक विवरणसे लिया जाता है तथा कुछ अंश कपोल-कल्पित रहता है। इसका नायक दुष्मन्त सरीखा राजा, रामचन्द्र सरीखा अलौकिक क्षमतासम्पन्न और श्रीकृष्ण सरीखा देवता होगा। शृङ्गार वा वीररस इसका प्रधान वर्णनीय विषय रहेगा। अभिज्ञान-शाकु-न्तल, मुद्राराक्षस, वेणीसंहार, अनर्घराघव आदि ग्रन्थ नाटक-श्रेणीभुक्त है। प्रकरणका लक्षण नाटकके जैसा है, केवल इसके गल्पमें समाजकी प्रकृति और प्रेम-विषयक वर्णन रहेगा। प्रकरण दो अंशोंमें विभक्त है, शुद्ध और सङ्कीर्ण। शुद्धप्रकरणकी नायिका वेश्या और सङ्कीर्ण प्रकरणकी नायिका किसी भद्रवंशकी प्रतिपा-लिता कामिनी वा सहचरी होगी। प्रकरणका नायक नाटकके जैसा उच्च श्रेणीका व्यक्ति नहीं रहेगा, इसका नायक मन्त्री, ब्राह्मण वा सम्भ्रान्तवणिक् होगा। मृच्छ-कटिक, मालतीमाधव आदि प्रकरण लक्षणाक्रान्त है। है। भाण यह एक अङ्कमें सम्पूर्ण होगा, इसकी भाषा विशुद्ध होगी, प्रारम्भ और शेषमें सङ्गीत रहेगा। नाट्यका केवल नायक ही अभिनय क्रीड़ा करेगा। उसे रङ्गभूमिमें आ कर नाना स्वर और नाना भावभङ्गी द्वारा विविध व्यक्तियोंको सम्बोधन कर सभ्यगणको मनोरञ्जन करना होगा। लीलामधुर और सारदातिलक नामकग्रन्थ भाणश्रेणीभुक्त है।

व्यायोग यह भी एक अङ्कमें सम्पूर्ण है। युद्ध-वर्णन इसका उद्देश्य है, प्रेम और रहस्यकी वर्णना इसमें नहीं है। इसका नायक अलौकिक क्षमतासम्पन्न पुरुष होगा। जामदग्न्यजय, सौगन्धिकाहरण, धनञ्जयविजय आदि संस्कृत ग्रन्थ व्यायोगमें गिने जाते है।

समवकार तीन अङ्कोंमें सम्पूर्ण होता है। देवता और असुरोंका युद्धवर्णन इसका प्रधान वर्णनीय विषय

है। यह आद्योपान्त वीररसव्यञ्जक तथा उष्णीक और गायत्री छन्दसे भरा हुआ है। अभिनयकाल इसमें हाथी, घोडा, रथादि परिपूर्ण, युद्धक्षेत्र, तुमुलसंग्राम और नगरादिका ध्वंस इत्यादिका विषय विशेषरूपसे वर्णित रहेगा। समवकार ग्रन्थ बहुत विरल है। डिम-यह वीर और भयानक रस संयुक्त रूपक है तथा चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। असुर और देवता इसके नायक हैं। ईहा-मृग भी चार अङ्कोंमें समाप्त होता है। देवदेवी इसके नायक और नायिका हैं प्रेम और कौतुक वर्णन इसका प्रधान उद्देश्य है। कुसुमशेखर-विजय आदि ग्रन्थ ईहामृगके अन्तर्गत हैं। अङ्क—यह एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है और करुणरस-प्रधान है। कवि किसी प्रसिद्ध पौराणिक विषय ले कर इसके गल्पकी रचना करें। शर्मिष्ठा-ययाति नामक क्षुद्र संस्कृत ग्रन्थ अङ्क लक्षणाक्रान्त है। वीथी ठीक भाणके लक्षणके जैसा है और एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। किन्तु दशरूपकके मतानुसार इसके दो अङ्क हो सकते हैं। प्रहसन हास्यरस प्रधान रूपक है, इसे एक अङ्कमें सम्पूर्ण करना होता है। समाजकी कुरीतिका संशोधन और रहस्यजनक विवरणका वर्णन करना इसका मुख्य उद्देश्य है। नाटोल्लिखित व्यक्तिगण राजा राजपारिषद, धूर्त्त, उदासीन, भृत्य और वेश्या होंगे। इसमें नीच जातिके पुरुष स्त्रियोंके जैसा प्राकृत भाषामें कथोपकथन करेगा। हास्यार्णव, कौतुकसर्वस्व और धूर्त्तसमागम आदि संस्कृत प्रहसन हैं। नाटिका वा प्रकरणिका प्रायः एक प्रकारकी है। शृङ्गाररस इसका प्रधान वर्णनीय विषय है। रत्नावली आदि नाटिका है। त्रोटक ५।७।८ वा ९ अङ्कोंमें सम्पूर्ण होता है, पार्थिव और स्वर्गीय विषय इसका प्रधान वर्णनीय है। विक्रमोर्वशी आदि त्रोटक है। गोष्ठी एक अङ्कमें सम्पूर्ण है। इसके नाटयप्रदर्शक व्यक्ति ९।१० पुरुष और ५।६ स्त्री हैं। रैवतमदनिका गोष्ठीके लक्षणाक्रान्त है। सट्टकमें एक आश्चर्य गल्प आदिसे अन्त तक प्राकृत भाषामें वर्णित रहता है। कर्पूरमञ्जरी ग्रन्थ इसी लक्षणका है। नाट्यरासक—यह एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है और इसका वर्णितव्य विषय प्रेम और कौतुक है। इसका आद्योपान्त अभिनय-कालमें नृत्य और सङ्गीतसे भर देना चाहिये। नर्मवती और विलासवती नामक संस्कृत ग्रन्थ नाट्यरासकके अन्तर्गत है। प्रस्थान भी नाट्यरासकके जैसा है, पर इसके नाट्योल्लिखित व्यक्तिगण अत्यन्त नीच जातिके होते हैं। यह भी तान लय स्वर संयुक्त नृत्यगीतोंसे परिपूर्ण और दो अङ्कोंमें सम्पूर्ण है। उल्लाप्य एक अङ्कमें समाप्त होता है, प्रेम और हास्य इसका प्रधान वर्णनीय विषय है। पौराणिक तथा नाट्यविषयक कथोपकथन गीतमें गाया जाता है। देवीमहादेव नामक संस्कृत ग्रन्थ इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। काव्य प्रेमविषयक वर्णनमें तथा एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है। इसके बीच बीचमें संगीत और कविता भरी रहती है। यादवोदय आदि ग्रन्थ इसके अन्तर्भुक्त हैं। प्रेङ्खण वीररस प्रधान और एक अङ्कमें समाप्त होता है। इसका नायक नीच जातिका होना चाहिये। वालिवध आदि संस्कृत ग्रन्थ प्रेङ्खण कह कर प्रसिद्ध है। रासक—यह हास्यरस उद्दीपक उपरूपक है तथा एक अङ्कमें समाप्त होता है। इसमें केवल पांच पुरुष अभिनेता रखे गये हैं। नायक नायिका ये दोनों उच्चश्रेणीके व्यक्ति, नायक मूर्ख और नायिका बुद्धिमती होनी चाहिये। मेनकाहित यही केवल एक रासक है। संलापक १।२।३ वा ४ अङ्कोंमें समाप्त होता है। इसका नायक प्रचलित धर्मके विरुद्ध मतावलम्बी है। इसके अधिकांशमें युद्धवर्णन रहता है। मायाकापालिक नामक संस्कृत ग्रन्थ इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है। श्रीगदित—एक अङ्कमें सम्पूर्ण है। इसकी नायिका लक्ष्मी हैं और इसमें अधिकांश सङ्गीत रहता है। क्रीड़ा रसातल संस्कृत ग्रन्थको श्रीगदित मानते हैं। शिल्पक—यह चार अङ्कोंसे युक्त है, श्मशान इसका रङ्गस्थल है, नायक ब्राह्मण और प्रतिनायक चाण्डाल है। इन्द्रजाल और आश्चर्य घटनाका वर्णन करना ही इसका उद्देश्य है। कनकावतीमाधव नामक संस्कृतग्रन्थ इसी श्रेणीके भुक्त है। विलासिका एक अङ्कमें समाप्त है। प्रेम और कौतुक इसका वर्णनीय है। दुर्मल्लिका हास्यरस प्रधान उपरूपक है और चार अङ्कोंमें सम्पूर्ण होता है। बिन्दुमती इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। प्रकरणिका नाटिकाके

जैसा है। हल्लीश—इसमें आद्योपान्त सङ्गीत और नृत्य रहता है। आजकल इसे 'अपेरा' कह सकते हैं। यह एक अङ्कमें समाप्त होता है। एक पुरुष और ८।१० स्त्रियोंसे यह उपरूपक खेला जाता है। केलिरैवतक नामक संस्कृत ग्रन्थ इसी श्रेणीका है। भाणिका एक अङ्कमें सम्पूर्ण होता है और हास्यरससे परिपूर्ण है। कामदत्ता नामक संस्कृत ग्रन्थ इसके लक्षणाक्रान्त है।

संस्कृत दृश्यकाव्योंमें यही सब लक्षण पाये जाते थे। नाटक रचनामें भाषादिका भी विशेष नियम था। नाटक अङ्क और गर्भाङ्कमें विभक्त है। नाट्योल्लिखित व्यक्तियोंमें नान्दी, विदूषक, सूत्रधार, पारिपार्श्विक और नट नटीका उल्लेख रहेगा। पुरुषोंकी भाषा संस्कृत और स्त्रियोंकी प्राकृत भाषामें कथोपकथन होना आवश्यक है। ये सब विषय साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखे हैं। उच्च पदस्थ पण्डितोंकी वक्तव्य भाषा संस्कृतमें होगी। इसी प्रकार स्त्रियोंके विषयमें शौरसेनी एवं गाथा अङ्कमें सम्पूर्ण होता है और हास्यरससे परिपूर्ण होता है। सम्यकमें महाराष्ट्री भाषा प्रयुक्त होगी। राज-अन्तःपुर-चारियोंकी भाषा मागधी होगी और राजपुत्र, राजपरिचारक तथा श्रेष्ठियोंके सम्यक्में अर्द्धमागधी। विदूषकके लिए प्राच्य, धूर्त्तके लिए अवन्तिका और योद्धा तथा नागर आदिके लिए दाक्षिणात्य भाषाका प्रयोग करना उचित है। शकार आदि अन्त्यज जातिके लिए शकारी, वाह्लीकके लिये वाह्लीकी, द्राविड़के लिए द्राविड़ी, आभीर देशीयके लिए आभारी, पह्लव और उसी प्रकारकी जातिके लिये चाण्डाली रीतिकी भाषा व्यवहार्य है। काष्ठ वा तृणपर्णादिजीवी व्यक्तिके विषयमें आभीरी वा चाण्डाली तथा अङ्गारकारक नीच व्यवसायियोंकी भी यही भाषा ग्राह्य है। कुत्सितवाक् मूर्खोंके लिए पैशाची और उच्च पदाभिषिक्त चेट और चेटियोंके लिए शौरसेनी व्यवहार्य है। बालक, उन्मत्त, षण्ड और आर्त्त व्यक्तियोंकी शौरसेनी और कहीं कहीं संस्कृतका व्यवहार करना भी कर्त्तव्य है। ऐश्वर्यमदसे मत्त एवं दरिद्र भिक्षु आदिके लिये प्राकृत भाषाका प्रयोग करना आवश्यक है। उत्तमाश्रय व्यक्ति, कपट संन्यासी आदि, देवी, मन्त्रिकन्या और वेश्या इन सबके लिए संस्कृत भाषा उपयुक्त है। यदि किसी दूसरी भाषाका भी प्रयोग हो, तो कोई दोष नहीं। स्त्री, सखी, बालक, धूर्त्त, वेश्या और अप्सराओंको अपनी भाषा व्यवहार करते समय बीच बीचमें अपनी चतुराई दिखलानेके लिए संस्कृतका भी प्रयोग करना चाहिये। (साहित्यदर्पण)

विशेष विवरण नाटक और तत्तत् शब्दमें देखो।

दृश्यमान (सं० त्रि०) १ जो दिखाई पड़ रहा हो। २ चमकीला, सुन्दर।

दृश्यादृश्य (सं० त्रि०) दृश्यञ्च अदृश्यञ्च द्वन्द्व०। दृश्य और अदृश्य।

दृश्यादृश्या (सं० स्त्री०) १ किसी अंशमें दृश्य चन्द्र और किसी अंशमें अदृश्य चन्द्र। २ तदभिमानी देवताभेद। ये अङ्गिराकी तीसरी कन्या है।

दृश्वन् (सं० त्रि०) दृश-क्वनिप्। दर्शक, देखनेवाला।

दृषत् (सं० स्त्री०) दृषद् देखो।

दृषत्सार (सं० क्ली०) दृषदः पाषाणस्य सार इव सारो यस्य। मुण्डायस।

दृषद् (सं० स्त्री०) दीर्यते असौ इति दृ-आदिगुक्-स्वश्च (दृणातेः षुग्-ह्रस्वश्च। उण् १।१२१) १ पाषाण, पर्वतकी चट्टान। २ सिल, पटी। ३ प्रस्तर, पत्थर।

दृषदिमाषक (सं० पु०) माषः शुल्कत्वेन दीयते कन् दृषदि पेषण, व्यवहारे राज्ञे देय माषकः अलुक् समासः। पेषण व्यवहारमें राजदेय माषरूप कर, एक प्रकारका कर जो पत्थरके व्यवसायमें राजाको दिया जाता है।

दृषद्वत् (सं० त्रि०) दृषदः सन्त्यस्मिन् भूम्ना मतुप् मस्य वः। १ दृषद्युक्त, शिलायुक्त। (पु०) २ एक राजाका नाम।

दृषद्वती (सं० स्त्री०) दृषद्वत् स्त्रियां ङीष्। १ एक नदीका नाम। सरस्वती और दृषद्वती ये दोनों देवनदियां हैं और इनका मध्यस्थान ब्रह्मावर्त्त नामसे प्रसिद्ध है।

कुरुक्षेत्रमें यह नदी प्रवाहित है। ऋक्‌संहिताके अनुसार यह पुण्यसलिला नामसे मशहूर है। महाभारतमें इसकी गिनती महातीर्थोंमें की गई है। इसे आजकल घग्घर और राखी कहते हैं। यह थानेश्वरसे १२ मील दक्षिणमें प्रवाहित है। कुरुक्षेत्र देखो। २ विश्वामित्रकी एक पत्नीका नाम। (त्रि०) ३ पथरीली।

दृष्ट (सं० त्रि०) दृश-कर्मणि क्त। १ विलोकित, देखा हुआ। २ ज्ञात, जाना हुआ। दृष्ट विषय और आनु-श्रविक अर्थात् वेदप्रतिपादित विषय इन दोनोंमें सम्यक् रूपसे निस्पृह होने पर वशीकार संज्ञा नामक वैराग्य उत्पन्न होता है जो देखा जाता है, उसका नाम दृष्ट है। स्त्री, अन्न, पान, उपलेपन आदि वर्त्तमान भोग साधन सभी वस्तु दृष्ट हैं। जो विन्दुमात्र भी प्रत्यक्ष-गोचर होते हैं, वे सभी दृष्ट पदवाच्य हैं। भावे क्त। ३ दर्शन, देखना। ४ राजाओंके स्वराष्ट्रस्थित चौरादि-का भय। ५ परराष्ट्रस्थित दारुविलोपादिका भय। (क्ली०) ६ साक्षात्कार।

सांख्यके मतसे प्रमाण तीन प्रकारके हैं—दृष्ट, अनु-मान और आप्त वचन। इनमेंसे प्रत्यक्ष प्रमाणका नाम दृष्टप्रमाण है जो सबसे श्रेष्ठ माना गया है। जो प्रत्यक्ष हो जाता है, उसमें और किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता। इसीसे दृष्टप्रमाण सबसे श्रेष्ठ है। इन्द्रियके साथ बाह्य वस्तुके संयोगका अव्यवहित बाद ही जो उससे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुका स्वरूपबोधक वृत्ति उत्पन्न होती है, उसीका नाम दृष्ट वा प्रत्यक्ष है।

प्रमाण देखो।

दृष्टकर्म (सं० त्रि०) जो कार्य दृष्ट वा परीक्षित हुआ हो, जो काम देखा वा जांचा गया हो।

दृष्टकूट (सं० क्ली०) १ प्रहेलिका, पहेली। २ कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दोंके वाचकार्थसे न समझा जा सके, बल्कि प्रसंग वा रूढ़ अर्थोंसे जाना जाय।

दृष्टत्व (सं० क्ली०) दृष्टस्य भावः दृष्ट भावे त्व। दृष्टका भाव, देखनेका कारण।

दृष्टदोष (सं० त्रि०) दृष्टो दोषः रागलोभादिर्यस्य। ज्ञात-रागलोभदोषादियुक्त, जिस मनुष्यके राग, लोभ आदि दोष देखे गये हैं, उसे दृष्टदोष कहते हैं।

दृष्टनष्ट (सं० त्रि०) दृष्टः सन् नष्टः। दर्शन मात्र नष्ट, जो देखनेसे ही बरबाद हो जाय।

दृष्टपृष्ठ (सं० त्रि०) दृष्टं प्रतियोद्धृभिः पृष्ठं यस्य। पला-यमान, युद्धके समय भाग जानेसे शत्रुगण उनकी पीठ देखते हैं, इसीसे दृष्टपृष्ठसे पलायनका अर्थ होता है।

दृष्टप्रत्यय (सं० त्रि०) दृष्टेन दर्शनेन प्रत्ययः विश्वासो यस्य। दर्शन द्वारा ज्ञातदृढ़निश्चय, वह पक्का विचार जो देख कर ही किया जाय।

दृष्टरजस् (सं० स्त्री०) दृष्टं रजः आर्त्तवं यया। १ दृष्टरजस्का नारी, वह औरत जिसको रजस्वला दीख पड़े। २ तदुपलक्षिता प्रौढ़ा स्त्री, जवान औरत।

दृष्टवत् (सं० त्रि०) १ प्रत्यक्षके समान। २ सांसारिक, लौकिक।

दृष्टवाद (सं० पु०) केवल प्रत्यक्षको ही माननेवाला दार्शनिक सिद्धान्त।

दृष्टवीर्य (सं० त्रि०) दृष्टं वीर्यं येन। दृष्टबल, जिसको शक्ति देखी वा जांची गई हो।

दृष्टसार (सं० त्रि०) दृष्टः सारो येन। दृष्ट बल, जिसकी ताकत देखी गई है।

दृष्टादृष्ट (सं० त्रि०) १ वह जो देखनेका नहीं है, उसे जिसने देखा हो। २ जो देखा और जो न देखा गया हो।

दृष्टान्त (सं० पु०) दृष्टः अन्तः निश्चयो यस्मिन्। १ उदाहरण, किसी विषयको स्पष्टरूपसे जतानेके लिये वा प्रमाणित करनेके लिये अन्य किसी परिज्ञात विषयका उल्लेख। २ शास्त्र। ३ मरण। ४ अर्थालङ्कारविशेष। इसका लक्षण साहित्यदर्पणमें इस प्रकार लिखा है—

समान धर्माक्रान्त वस्तुके प्रतिबिम्बनका नाम दृष्टान्त है, जहां दो विषय समान धर्मावलम्बी होंगे और उनका प्रतिबिम्बन, प्रणिधानगम्य साम्यत्व होगा अर्थात् दोनों विषयोंकी समता प्रणिधान करनेसे हो बोध होगा, वहां दृष्टान्तालङ्कार होता है। यह साधर्म्य और वैधर्म्य-में होगा।

उदाहरण—

"अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधारां।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥"

(साहित्यद० १० प०)

सत्कवियोंकी वाणीका गुण नहीं जानने पर भी अर्थात् अर्थादि नहीं मालूम होने पर भी उनकी उक्ति कर्णोंमें मधुधारा वर्षण करती है, जिस तरह मालती पुष्प-माला गन्ध नहीं होने पर भी वह नेत्रोंको चुरा लेती है। यहां पर कर्णोंमें मधुधारा वमन और नेत्र

ऽरण इन दोनोंके शब्द एकसे तो नहीं है, पर कुछ प्रणि-धान करके देखनेसे दोनोंकी समानता स्पष्टरूपसे मालूम हो जायेगी। यहां दो विषय है, एक सत्वविभवित और दूसरा मालतीमाला। सत्वविभवितिकी जगह 'अवि-दितगणा' गुण अर्थात् अर्थादि दोष नहीं होने पर भी कर्णोंमें मधुधारा वर्षण और दूसरा मालतीमाला इस पदमें 'अनधिगतपरिमाला' गन्धपरिज्ञात नहीं होने पर भी नेत्रहरण इन दो विषयोंकी समता यद्यपि एक सी नहीं है, तोभी प्रणिधान अर्थात् कुछ मनोयोगपूर्वक देखनेसे ये दोनों एकसे मालूम पड़ते हैं। इसी कारण दृष्टान्त यहां पर अलङ्कार हुआ। साधर्म्य और वैधर्म्य अर्थात् वैपरीत्यमें यह अलङ्कार होता है। पूर्वोक्त जो उदाहरण दिया गया, वह साधर्म्य द्वारा हुआ। अब वैधर्म्यका उदाहरण यों है—

"त्वयि दृष्टे कुरङ्गाक्ष्या श्रंसते मदनव्यथा।
दृष्टानुदयभाजिन्दौ ग्लानिः कुमुदसंहते॥"
(साहित्यदर्पण १० परि०)

तुम्हारे प्रकट होनेसे कुरङ्गाचोकी मदनव्यथा दूर होती है। इन्दुके उदित नहीं होने पर कुमुदसंहतिकी ग्लानि देखी जाती है। यहां पर दोनोंको विपरीत भाव-से समता हो जानेसे दृष्टान्तालङ्कार हुआ। इस श्लोकमें कुरङ्गाचीकी मदन व्यथाका नाश और कुमुदसंहतिकी ग्लानिका दर्शन, एकका दुःखनाश और दूसरेका दुःख-दर्शन इन दो पदोंको विपरीत भावसे प्रणिधान द्वारा समता हो जानेसे दृष्टान्तालङ्कार हुआ। दृष्टान्त और प्रतिवस्तूपमा प्रायः एकसे हैं, फर्क केवल यही है, कि जहां एक क्रियाका पृथक् निर्देश होगा, वहां प्रतिवस्तू-पमा अलङ्कार होगा। प्रतिवस्तूपमा देखो।

५ गौतमसूत्रोक्त षोड़श पदार्थके मध्य पदार्थभेद, न्यायके सोलह पदार्थोंमेंसे एक पदार्थ। न्यायके अनुसार जिस पदार्थके विषयमें लौकिक जनों और परीक्षकोंका एक मत हो उसे दृष्टान्त कहते हैं। जिस प्रत्यक्ष बातको सभी जानते या मानते हों, वही दृष्टान्त है, "जहां धूआं होता है वहां आग होती है" इस बातको कह कर किसीने कहा "जैसे रसोई घरमें" तो यह दृष्टान्त हुआ। न्यायके अवयवोंमें उदाहरणके लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टान्तका व्यवहार तर्कमें होता है, उसे उदाहरण कहते हैं।

दृष्टान्तित (सं० त्रि०) दृष्टान्त-स्वरूप गृहीत, जो उदा-हरण या मिसालमें लिया गया हो।

दृष्टार्थ (सं० त्रि०) दृष्टः अर्थो येन। १ जिसने अर्थ देखा हो। २ जिसका अर्थ स्पष्ट हो। (पु०) ३ वह शब्द जिसके श्रवणसे श्रोताको किसी ऐसे अर्थका बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस संसारमें होता हो। जिस तरह 'गङ्गा' शब्दको सुननेसे ही ऐसी नदीका बोध हो जाता है जो हिन्दुस्थानके उत्तरी भागमें प्रत्यक्ष देखी जाती है।

दृष्टि (सं० स्त्री०) दृश-भावे क्तिन्। १ दर्शन, देखनेको वृत्ति। २ दृक्पात, अवलोकन, निगाह, टक। ३ प्रकाश। ४ चक्षु। ५ पहचान, अटकल, अन्दाज। ६ कृपादृष्टि, मिहरबानीकी नजर। ७ ध्यान, अनुमान, विचार। ८ आशाकी दृष्टि, आस, उम्मीद। ९ उद्देश्य, नीयत।

दृष्टिकूट (सं० पु०) दृष्टकूट देखो।

दृष्टिकृत् (सं० त्रि०) दृष्टिं करोति कृ-क्विप्, तुगागमश्च। १ दर्शक, देखनेवाला। (क्ली०) २ स्थलपद्म।

दृष्टिक्षेप (सं० पु०) दृष्टेः क्षेपः। दृष्टिपात, अवलोकन।

दृष्टिगत (सं० पु०) दृष्टिं गतः विषयतया प्राप्त स्यात्। १ नेत्रका विषय। २ नेत्रगत रोगभेद, आँखकी एक बीमारी। (त्रि०) ३ जो दिखाई न पड़े, जो देखने-में न आया हो।

दृष्टिगुण (सं० पु०) दृष्ट्या गुण्यते अभ्यस्यते यत्र गुण अभ्यासे अच् वा घञ्। १ वाणादिलक्ष्य, तीर आदिका निशाना। २ नेत्र-गुण।

दृष्टिगोचर (सं० पु०) दृष्टेर्गोचरः। नेत्रगोचर, वह जो देखनेमें आ सके।

दृष्टिदृक् (सं० पु०) राजा इक्ष्वाकुके एक पुत्रका नाम।

दृष्टिनिपात (सं० पु०) दृष्टेर्निपातः। दृष्टिनिःक्षेप, अवलोकन।

दृष्टिप (सं० पु०) दृष्टिं पिबति पा-क। देवगणभेद।

दृष्टिपथ (सं० पु०) दृष्टेः पन्था। दृष्टिका पथ, नजरकी पहुंच।

दृष्टिपात (सं० पु०) दृष्टेः पातः। दृष्टिनिःक्षेप, अवलोकन।

दृष्टिपूत (सं० त्रि०) १ जो देखनेमें शुद्ध हो। २ जिसके देखनेसे आंखें पवित्र हों।

दृष्टिपूतना (सं० स्त्री०) लड़कोंका स्त्री-ग्रहविशेष।

दृष्टिप्रदा (सं० स्त्री०) नेत्ररोग, आँखकी बीमारी।

दृष्टिफल (सं० क्ली०) एक राशिमें स्थित ग्रहके दूसरी राशिमें स्थित ग्रह पर दृष्टि करनेसे जो फल होता है, उसे दृष्टिफल कहते हैं। वृहज्जातकमें दृष्टिफलका विषय इस प्रकार लिखा है—

मेषराशिस्थित चन्द्र यदि मङ्गलसे देखा जाय, तो भूपाल, बुधसे पण्डित, वृहस्पतिसे राजतुल्य, शुक्रसे गुणवान्, शनिसे तस्कर और रविसे भृत्य होता है। वृष-राशिस्थित चन्द्र मङ्गलसे देखे जाने पर धनहीन, बुधसे चोर, गुरुसे माननीय, शुक्रसे भूपाल, शनिसे धनवान् और रविसे भृत्य होता है।

मिथुनराशिस्थित चन्द्र मङ्गलसे दृष्ट होने पर शास्त्र-व्यवसायी, बुधसे क्षितिपति, गुरुसे पण्डित, शुक्रसे भय-हीन, शनिसे तन्तुकर्मकारी और रविसे दृष्ट होने पर धनहीन होता है। कर्कट राशिस्थित चन्द्र मङ्गलसे दृष्ट होने पर योद्धा, बुधसे कवि, वृहस्पतिसे पण्डित, शुक्रसे भूपाल, शनिसे अस्त्रजीवी और रविसे धनहीन होता है।

सिंहराशिस्थित चन्द्र यदि बुधसे देखा जाय, तो मनुष्य ज्योतिषवेत्ता, गुरुसे धनवान्, शुक्रसे नरश्रेष्ठ, शनिसे क्षुरकर्मकर, रविसे नरपालक और मङ्गलसे दृष्ट होने पर प्राणिघातक होता है।

वृश्चिक राशिस्थित चन्द्र बुधसे दृष्ट होने पर युगल सन्तानोत्पादक, वृहस्पतिसे दृष्ट होने पर कुलाङ्ग, शुक्रसे वस्त्रका रागकर्त्ता, शनिसे अङ्गहीन, रविसे धनहीन और मङ्गलसे दृष्ट होने पर भूपाल होता है।

धनुराशिस्थित चन्द्र बुधसे दिखाई पड़ने पर ज्ञातियों का अधीश्वर, वृहस्पतिसे क्षितिनाथ, शुक्रसे मनुष्योंका आश्रयस्थल तथा शनि, रवि और मङ्गलसे देखे जाने पर जातबालक दाम्भिक और शठ होता है।

मकरराशिस्थित चन्द्र बुधसे दृष्ट होने पर राजा-धिराज, वृहस्पतिसे दृष्ट होने पर राजा, शुक्रसे पण्डित, शनिसे धनवान्, सूर्यसे दरिद्र और मङ्गलसे भूपति होता है।

कुम्भराशिस्थित चन्द्र यदि बुधसे देखा जाय, तो जात-बालक भूपाल, गुरुसे राजतुल्य और शुक्र, शनि, रवि तथा मङ्गलसे परस्त्रीमें आसक्त रहता है।

मीनराशिस्थित चन्द्र बुधसे देखे जाने पर उपहास-वेत्ता, वृहस्पतिसे नरपाल, शुक्रसे पण्डित एवं शनि, रवि और मङ्गल इन पापग्रहोंसे दृष्ट होने पर मनुष्य पापात्मा होता है।

मेषादि द्वादशराशिके अर्द्ध भागको होरा कहते हैं। यह होरा रवि और चन्द्रमाका हुआ करता है।

सूर्यादि ग्रहगण अपनी अपनी अधिष्ठित राशिके जिस होरामें रहेंगे, यदि चन्द्रमा उस समय स्वीय अधिष्ठित मेषादि द्वादश राशिकी किसी एक राशिमें सूर्यादि ग्रहके अधिष्ठित होरामें रह कर उन सब ग्रहोंसे देखे जांय, तो शुभफल होगा।

मेषादि द्वादश राशिकी किसी एक राशिमें चन्द्रमा यदि रविके होरा भागमें रहें और मेषादि द्वादश राशिके रविके होराभागस्थित रवि आदि ग्रहोंसे देखे जांय, तो अत्यन्त शुभ होता है। फिर मेषादि द्वादश राशिकी किसी एक राशिमें चन्द्रके होराभागस्थित सूर्यादि ग्रहोंसे देखे जाने पर भी शुभकर होता है। इसका विपरीत होनेसे अर्थात् रविके होराभागस्थित ग्रहोंसे तथा चन्द्रके होरा-भागस्थित चन्द्र सूर्यके होराभागस्थ ग्रहोंसे दृष्ट होने पर अशुभ होता है। अधिपति शुभग्रहसे देखे जाने पर शुभ और पापग्रहसे देखे जाने पर मध्यफल प्राप्त होता है। यदि रवि आदि ग्रहगण मित्रभवन और स्वभवन गत हो कर दृष्टिप्रदान करें, तो शुभ होता है। फिर शत्रुभवन गत हो कर दृष्टिप्रदान करनेसे अशुभ फल मिलता है।

ग्रहोंकी दृष्टिके अनुसार जो सब फल ऊपर लिखे गये, वे ही लग्नके फल हुआ करते हैं। (वृहज्जातक)

जिस राशिमें राहु रहता है, उस राशिसे दक्षिणा-वर्त्तकी गणनासे पञ्चम, सप्तम, नवम और द्वादश राशि-में राहुकी पूर्ण दृष्टि, द्वितीय और दशम राशिमें त्रिपाद दृष्टि; तृतीय, षष्ठ, चतुर्थ और अष्टम राशिमें अर्द्धदृष्टि रहती है और जिस राशिमें राहु रहता है, उस राशिके फिर ग्यारहवें स्थानमें राहु और केतुकी दृष्टि नहीं रहती। इन सब दृष्टि और ग्रहोंके बलाबलके अनुसार फलाफल-का विचार किया जाता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

दृष्टिबन्ध ( सं० पु० ) इन्द्रजाल, जादू, दोखबंदी।

दृष्टिबन्धु ( सं० पु० ) दृष्टेर्नेत्रस्य बन्धुरिव साहश्यापादनात्। खद्योत, जुगनू।

दृष्टिमण्डल ( सं० क्लो० ) दर्शन।

दृष्टिमत् ( सं० त्रि० ) दृष्टिर्विद्यते अस्य दृष्टि मतुप.। दृष्टियुक्त, जिसे दृष्टि हो।

दृष्टियोनि ( सं० पु० ) ईर्ष्यक, क्लीब।

दृष्टिरोग ( सं० पु० ) नेत्ररोग, आँखको बीमारी।

दृष्टिरोध ( सं० पु० ) १ दृष्टिकी रोक, नजर पहुंचनेमें रुकावट। २ व्यवधान, आड, ओट।

दृष्टिवन्त (हिं० वि०) १ दृष्टिवाला। २ ज्ञानी, जानकार।

दृष्टिवर्त्म (सं० क्लो०) आंखकी पलक।

दृष्टिवाद ( सं० पु० ) जैनदर्शनानुसार अङ्गप्रविष्ट श्रुतके द्वादश अङ्गोंमेंसे बारहवां अङ्ग। ये द्वादशाङ्ग जैन धर्मके मूल ग्रन्थ हैं। ग्यारह अङ्ग तथा यह दृष्टिवाद मिलता नहीं। जैनाचार्य सकलकीर्त्ति रचित तत्त्वार्थसारदीपकमें इसका जो उल्लेख है उससे पाया जाता है, कि इसमें चन्द्र सूर्य आदिकी गति आयु आदि, प्राणापान चिकित्सा, मन्त्र तन्त्र तथा अनेक प्रकारके विषय सम्मिलित हैं।

दृष्टिवादमें क्रियावादियोंका मत विस्तृत भावसे आलोचित हुआ है। यह पांच भागोंमें विभक्त है—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

परिकर्मके मध्य—

१। चन्द्रप्रज्ञप्ति—इसमें जिनाधिप चन्द्रको शक्ति, गति आयु, विभूति आदिका वर्णन है। इसको पदसंख्या ३६५०००० है।

२। सूर्यप्रज्ञप्ति—इसमें सूर्यको आयु, परिवार, चार और वैतादिसम्पद् वर्णित है। पदसंख्या ५०३० ० है।

३। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—इसमें जम्बूद्वीपका भोग, भूमि और कुलपर्वतादिका विषय वर्णित है। इसको पदसंख्या ३२५००० है।

४। द्वीपवार्धिप्रज्ञप्ति—इसमें असंख्य द्वीप, समुद्र और पर्वतादिका विषय वर्णित है। पदसंख्या ५२३६००० है।

५। व्याख्याप्रज्ञप्ति—इसमें छः प्रकारके द्रव्योंका गुण-पर्याय और लक्षणादिका वर्णन है। पदसंख्या ८४३६००० है।

कुल मिला कर परिकर्मकी पदसंख्या १८१५०००० है।

सूत्र—मानव द्वारा कर्मके कर्तृत्व और भोगादि जो सब हुआ करते हैं, सूत्रमें वही सब विषय वर्णित है। इसकी पदसंख्या ८८००००० है।

प्रथमानुयोग—इसमें ६३ शलाका पुरुषोंके स्वरूपादि वर्णित हुए हैं। पदसंख्या ५००० है।

पूर्वगतके मध्य -

१। उत्पादपूर्व—इसमें जीवादिकी उत्पत्ति, नाश और स्थितिका विषय वर्णित है। पदसंख्या १०००००००है।

२। अग्रायणीपूर्व—इसमें अङ्गसमूहके विषय और मुख्य तात्पर्य निर्णीत हुए हैं। पदसंख्या ९६०००००।

३। वीर्यप्रवादपूर्व—चक्री, केवली और देवादिका शक्तिज्ञान और वीर्यादि निर्दिष्ट हुए हैं। पदसंख्या ७०००००० है।

४। अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व—इसमें द्रव्यके पञ्चास्तिकायका अस्तिनास्तिका विषय आलोचित हुआ है। पदसंख्या ६०००००० है।

५। ज्ञानप्रवादपूर्व—इस ग्रन्थमें पञ्चज्ञान और तीन प्रकारका अज्ञान तथा जो ज्ञानाज्ञान धारण करते हैं, उन्हींका विषय वर्णित है। पदसंख्या ९९९९९९९ है।

६। सत्यप्रवादपूर्व—वाग्गुप्ति अर्थात् वाक्संयम, सुनृत और सत्यादिका विषय लिखा है। पदसंख्या १००००००६ है।

७। आत्मप्रवादपूर्व—इस ग्रन्थमें जीवोंके कर्म, कर्तृत्व और भोक्तृत्वादि निरूपित हुए हैं। पदसंख्या २६००००००० है।

८। कर्मप्रवादपूर्व—इसमें मानवके कर्मसम्बन्धमें बहुतसी बातें लिखी हैं। पदसंख्या १८०००००० है।

९। प्रत्याख्यानपूर्व—इसमें जीवोंका प्रत्याख्यान, व्रत-नियमादि स्वरूप वर्णित है। पदसंख्या ८४००००० है।

१०। विद्यानुवादपूर्व—इसमें सब विद्याओंके निमित्तादि अष्टाङ्गका विषय लिखा है। पदसंख्या ११०००००० है।

११। कल्याणपूर्व—इसमें ६३ शलाका पुरुषोंके कल्याणकर कर्मसमूहका विषय वर्णित है। पदसंख्या २६००००००० है।

१२। प्राणावायपूर्व—प्राणायाम चिकित्साका विषय लिखा है। पदसंख्या १३००००००० है।

१३। क्रियाविशालपूर्व—इसमें छन्द, अलङ्कार, सत्काव्य, कला और गुणादिका विषय वर्णित है। पदसंख्या ९००००००० है।

१४। लोकबिन्दुसारपूर्व—इसमें मोक्षमार्गादिका विषय विवृत हुआ है। पदसंख्या १२५०००००० है।

पूर्ववादको कुल पदसंख्या ९५५००००००५ है।

चूलिकाके मध्य—

१। जलगता—इसमें जलमें गमन और मन्त्रादि-प्रभावसे जलस्तम्भनादिका विषय लिखा है। पदसंख्या २०९८९२०० है।

२। स्थलगता—इसमें स्थलभ्रमण और तन्त्रमन्त्रादि प्रतिपादित हुए है। पदसंख्या २०९८९२०० है।

३। मायागता—इसमें इन्द्रजालादि हेतु मन्त्रवादादि लिखे है। पदसंख्या २०९८९२००० है।

४। रूपगता—इसमें व्याघ्र, हस्ती आदिके रूप धारण करनेकी विद्या है। पदसंख्या २०९८९२०० है।

५। आकाशगता—आकाश-गमनके सम्बन्धमें मन्त्र-तन्त्रादि वर्णित है। पदसंख्या २०९८९२०० है।

चूलिकाकी कुल पदसंख्या १०४९४६०० है।

गणधर-विरचित इस शेष अङ्गको कुल पदसंख्या १०८६८५६००५ है। ८वें भागमें 'जैनधर्म' शब्द देखो।

दृष्टिविक्षेप (सं॰ पु॰) दृष्टिस्तदेकदेशस्य विक्षेप। १ कटाक्ष-दर्शन। दृष्टिविक्षेपः। २ दृष्टिपात, अवलोकन। ३ दर्शनान्तराय।

दृष्टिविभ्रम (सं॰ पु॰) दृष्टेर्विभ्रम। नेत्रविलासभेद।

दृष्टिविज्ञान (सं॰ क्ली॰) दृष्टिविज्ञानं। आलोक और दर्शनविषयक विद्या।

दृष्टिविष (सं॰ पु॰) दृष्टौ विषं यस्य। सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।

दृष्टिसन्धि (सं॰ पु॰) नेत्रकोण।

दृष्टिस्थान (सं॰ क्ली॰) दृष्टेः स्थानं। ग्रहोंका अवलोकन-स्थान, कुण्डलीमें वह स्थान जिस पर किसी दूसरे स्थानमें स्थित ग्रहको दृष्टि पड़ती है। प्रश्न वा जन्म-कालमें जो ग्रह जिस राशिमें हों उससे तीसरे और दशवें स्थानोंको वह एक चरणसे, नवें और पांचवेंको दो चरणोंसे, चौथे और आठवेंको तीन चरणोंसे और सातवें को पूर्ण दृष्टिसे देखेगा।

इसमें विशेषता यह है कि, तीसरे और दशवें स्थानमें शनि ग्रहको पूर्ण दृष्टि, नवीं और पांचवों राशिमें वृहस्पतिको पूर्ण दृष्टि, चौथो और आठवीं राशिमें मङ्गलको पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इसके सिवा अन्यान्य स्थानोंमें अर्थात् दूसरे, छठे, ग्यारहवें और बारहवें स्थानमें ग्रहोंको दृष्टि पड़तो है। ग्रहोंके बलाबल तथा इन सब दृष्टिके अनुसार न्यूनाधिक विवेचना कर फलाफल निर्णय किया जायगा।

दृष्या (सं॰ स्त्री॰) दूष्या, हाथीको पोठका आवरण।

दे (हिं॰ स्त्री॰) १ स्त्रियोंके लिए एक आदरसूचक शब्द, देवी। (पु॰) २ बङ्गाली कायस्थोंकी एक उपाधि।

देई (हिं॰ स्त्री॰) १ देवी। २ स्त्रियोंके लिये एक आदर-सूचक शब्द।

देउड़ (वार देउड़ो)—सागर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा॰ २३°२२' उ॰ और देशा॰ ७९°४' पू॰के मध्य सागरसे ४४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः सौ वर्ष हुए डकैतोंने इस नगरको जला डाला था, जिससे लगभग तीस हजार मनुष्योंको मृत्यु हुई और बहुतसे लोग नगर छोड़ कर भाग गये। इसी कारण आज तक यहांको लोकसंख्या बहुत कम है।

देउलगांव राजा—बरारके बुलदाना जिलेके अधीन एक नगर। यह अक्षा॰ २०°१' उ॰ और देशा॰ ७६°५' पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६२९३ है। नगरका पहला नाम देवलवाड़ो है। जादोनवंशीय राजाओंने यहां कुञ्जवाटिका निर्माण को थी, उसीके अनुसार इसका नाम पड़ा है। नगरके उत्तरमें छोटे छोटे पहाड़ और दक्षिणमें आम्नी नामकी एक छोटी नदी प्रवाहित है। एक समय नगरके चारों ओर प्राचीर था, अभी उसका केवल भग्नांश रह गया।

नगरके निर्माणकर्त्ता जादोनवंशका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है। लाखोजी जादोन राव उत्तर भारतसे यहां आ कर बस गये थे। उनकी कन्या जिजिबाई

के साथ शाहजीका विवाह हुआ था। इसी जिजियाईके गर्भसे महावीर शिवाजीका जन्म हुआ था।

जादोनवंश ही लगातार यहांकी आय भोग करते आ रहे थे। पर १८४१ ई०में जब बाजीरावके अधीन एक दल अरब-सेनाने आ कर यहां आश्रय लिया, तब वृटिश गवर्मेंटने जादोनोंकी सम्पत्ति जब्त कर ली। जादोनोंके यत्नसे बरारमें जो सब देवस्थान बनाये गये हैं, उनमेंसे इसी नगरका बालाजीका मन्दिर विख्यात है।

कार्त्तिक महीनेमें बालाजीका महोत्सव होता है जिसमें प्रायः आध लाख रुपये खर्च किए जाते हैं। जो सब देवदर्शन करने आते हैं, वे सबके सब भर पेट प्रसाद पाते हैं। कपास और रेशमका व्यवसाय यहां प्रधान है।

देउलघाट-बरारके बुलदाना जिलेके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २०' ३१' उ० और देशा० ७६' १० ३०'' पू०में पेनगङ्गा नदीके किनारे अवस्थित है। पहले इसका नाम देउली था। यहां बहुतसे हिन्दू देवमन्दिर थे जो औरङ्गजेबके भेजे हुए नासोर-उद्दोनसे तहस नहस कर डाले गये।

देख (हिं० स्त्री०) अवलोकन। देखनेकी क्रिया या भाव।

देखना (हिं० क्रि०) १ अवलोकन करना। २ निरीक्षण करना, जांच करना। ३ अन्वेषण करना, ढूंढ़ना, खोजना। ४ परीक्षा करना, परखना। ५ निगरानी रखना ताकते रहना। ६ समझना, सोचना। ७ अनुभव करना, भोगना। ८ अध्ययन करना, बाँचना। ९ परीक्षा करना गुणदोषका पता लगाना। १० संशोधित करना, शोधना।

देखभाल (हिं० स्त्री०) १ निरीक्षण, जाँच, पड़ताल। २ साक्षात्कार, दर्शन।

देखरेख (हिं० स्त्री०) निरीक्षण, देखभाल।

देखाऊ (हिं० वि०) १ जो केवल देखनेके लिये हो, झूठो तड़क भड़कवाला। २ बनावटी।

देखादेखी (हिं० स्त्री०) साक्षात्कार, दर्शन।

देखभाली (हिं० स्त्री०) देखभाल देखो।

देखाव (हिं० पु०) १ दृष्टिकी सीमा, नजरकी पहुँच। २ रूपरंग दिखानेकी क्रिया या भाव, बनाव। ३ ठाट बाट, तड़क भड़क।

देखावट (हिं० स्त्री०) १ रूप रंग दिखानेकी क्रिया या भाव। २ ठाट-बाट, तड़क भड़क।

देखावना (हिं० क्रि०) दिखाना देखो।

देखौआ (हिं० वि०) देखाऊ देखो।

देग (फा० पु०) एक प्रकारका बड़ा बरतन जिसका मुंह और पेट चौड़ा होता। इसमें खाना पकाया जाता है।

देग (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजपक्षो।

देगचा (फा० पु०) छोटा देग।

देगची (फा० स्त्री०) छोटा देगचा।

देदीप्यमान (सं० त्रि०) जाज्वल्यमान, अत्यन्त प्रकाश-युक्त, चमकता हुआ।

देन (हिं० स्त्री०) १ देनेकी क्रिया या भाव, दान। २ प्रदत्त वस्तु।

देनदार (हिं० पु०) ऋणी, कर्जदार।

देनदारी (हिं० स्त्री०) ऋणी होनेकी अवस्था।

देनलेन (हिं० पु०) महाजनोंका व्यवसाय।

देना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तु परसे अपना स्वत्व हटा कर उस पर दूसरेका स्वत्व स्थापित करना, प्रदान करना। २ सौंपना, हवाले करना। ३ थमाना, हाथ पर रखना। ४ प्रहार करना, मारना। ५ स्थापित करना, रखना। ६ बंद करना, भिड़ाना। ७ उत्पन्न करना, निकालना। ८ अनुभव कराना, भोगाना।

देना (हिं० पु०) ऋण, कर्ज।

देमागिरि—चट्टग्राम पार्वत्यप्रदेशमें कर्णफुली नदीका एक जलप्रपात। इसी प्रपातके बादसे कर्णफुली नदीका आकार कुछ बढ़ गया है। १८७२ ई०में देमागिरि ग्राममें रबर और अन्यान्य वनज पदार्थ बेचनेके लिये एक हाट स्थापित हुई है।

देमालपुर—दिपालपुर देखो।

देय (सं० वि०) दा कर्मणि-यत्। दातव्य, देने योग्य।

देर (फा० स्त्री०) १ अतिकाल, विलम्ब। २ समय, वक्त।

देव (सं० पु०) दिव अच्। १ अमर, सुर, देवता। २ राजा। ३ मेघ। ४ पारद, पारा। ५ ब्राह्मणोंको एक

उपाधि। ६ देवदारु, देवदार। ७ पूज्य व्यक्ति। ८ दीप्त, तेजोमय व्यक्ति। ९ परात्मा। प्रधानतः स्वर्गवासीको देव वा देवता कहते हैं। इस संसारमें भी श्रेष्ठ व्यक्ति देव कहलाते हैं, जिस तरह भूदेव अर्थात् ब्राह्मण, नरदेव अर्थात् राजा। कोई कोई देव शब्दको श्रेष्ठार्थवाचक कहते हैं जैसे नरदेव नरश्रेष्ठ। देवता शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। १० एक प्राचीन वैयाकरण। ११ आतुर-संन्यासकारिका नामक धर्मशास्त्रकार। १२ देवर। १३ ज्ञानेन्द्रिय। १४ ऋत्विक्।

देव (फा० पु०) दैत्य, राक्षस।

देव—१ हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये जिला मैनपुरीके समाने गांवके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् १६६१ में हुआ था। ये हिन्दी भाषा काव्यके आचार्य माने जाते है। शिवसिंह-सरोजके कर्त्ताको इनकी बनाई ७२ पुस्तकोंका पता चला था जिनमेंसे कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं—प्रेमतरङ्ग, भावविलास, रसविलास, रसानन्दलहरी, सुजानविनोद, काव्यरसायन, पिङ्गल, अष्टयाम, देवमाया-प्रपञ्चनाटक, प्रेमदीपिका, सुमिलविनोद और राधिका-विलास।

२ इनका दूसरा नाम काष्ठजिह्वास्वामी था। ये काशीमें रहते तथा संस्कृतके बड़े पण्डित थे। एक बार इन्होंने शास्त्रार्थमें अपने गुरुको परास्त किया था जिससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ। तभीसे इन्होंने काठकी जीभ बना कर मुंहमें डाल ली। ये पाटी पर लिख कर लोगोंसे बातचीत किया करते थे। काशीनरेश महाराज ईश्वरी-नारायणसिंहने इनसे उपदेश लिया था। इन्होंने 'विनयामृत' आदि अनेक भाषाके ग्रन्थ बनाये है।

देवअंशी (हिं० त्रि०) जो देवताके अंशसे उत्पन्न हो।

देवऋण (सं० पु०) देवताओंके लिये कर्त्तव्य, यज्ञादि।

देवऋषभ (सं० पु०) देवश्चासौ ऋषभश्चेति नित्यकर्मधा० प्रकृतिवद्भावः। धर्मकी स्त्री भानुगर्भजात पुत्र, ये कश्यपकी कन्या थीं।

देवऋषि (सं० पु०) देवानां ऋषिः पूज्यत्वात् प्रकृति-वद्भावः। देवर्षि नारदादि। नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवक (सं० पु०) १ एक यदुवंशीय राजा। ये श्रीकृष्णके मातामह थे। इन्होंने गन्धर्वपतिके अंशावतार रूपमें जन्म ग्रहण किया था। इनके चार पुत्र और सात कन्याएँ थीं जिनका विवाह वसुदेवके साथ हुआ था। उग्रसेन इनके बड़े भाई थे। २ युधिष्ठिरके एक पुत्रका नाम। ३ देव, देवता।

देवका—एक हिन्दी-कवि। सूर्यमल्ल नामक कविने इनका नाम अपने १८९७ सं०में बनाये हुए ग्रन्थमें लिखा है। इससे प्रकट होता है कि ये सं० १८९७ में विद्यमान थे।

देवकान्या (सं० स्त्री०) देवताकी स्त्री, देवी।

देवकपास (हिं० स्त्री०) रामकपास, नरमा, मनवा।

देवकर्ण—१८५७ ई०में जो सिपाही-विद्रोह हुआ था, उसमें देवकर्ण अंगरेज गवर्मेण्टके विपक्षमें थे। इन्हींकी चेष्टा और यत्नसे मथुरेमें चारों ओर विद्रोहको आग धधकने लगी थी। ५ अक्तूबरको आगरेसे मजिष्ट्रेट साहब सेना सामन्त लेकर मथुरा पर चढ़ाई करनेके लिये पहुँच गये। विद्रोही-सेनापति देवकर्ण मजिष्ट्रेटसे कैद कर लिये गये। पीछे कर्नल काटनर मथुरेके भीतर जा कर विद्रोहियोंको सान्त्वना देते हुए काशी तक चले गये। तभीसे मथुरेमें और कोई गड़बड़ी न मची।

देवकर्दम (सं० पु०) देवप्रियः कर्दम इव। सुगन्धि द्रव्यविशेष। यह चन्दन, अगर, कपूर और केसरको एकमें मिलानेसे बनता है।

देवकर्म (सं० पु०) वह कर्म जिससे देवता प्रसन्न किये जाँय।

देवकलि—रागिणी विशेष। इसका नामान्तर देवगिरि है। देवगिरि देखो।

देवकवि—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने १७९७ सं०में रागमाला नामक एक पुस्तक लिखी है जिसमें इन्होंने अमीरखाँको अपना आश्रयदाता बतलाया है।

देवकांडर (हिं० स्त्री०) एक बहुत छोटा पौधा। इसकी पत्तियों और डंठलोंमें राईकी-सी झाल होती है। यह ऊंचे करारों वाली बड़ी नदियोंके किनारे पाई जाती है। पत्तियां कटावदार और फांकोंमें विभक्त होती हैं। उभरी हुई गिलटी बैठानेमें यह पौधा बहुत उपयोगी है।

देवकात्मजा (सं० स्त्री०) देवकस्य आत्मजा कन्या। देवकी।

देवकार्य ( सं० क्लो० ) देवप्रियार्थं कार्यं । देवप्रियार्थ होम पूजादि कार्य, देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये किया हुआ कर्म ।

देवकालो—तिरहुत जिलेमें सीताभारो रास्तेके ऊपर अवस्थित एक ग्राम । यहां कई एक बड़े मन्दिर हैं जिनमें एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है । फाल्गुन मासमें इस शिवलिङ्ग पर जल चढ़ानेके लिये बहुतसे लोग समागम होते हैं ।

देवकाष्ठ ( सं० क्लो० ) देवप्रियं काष्ठं । देवदारु, देवदार । इसका पर्याय—पूतिकाष्ठ, भद्रकाष्ठ, सुकाष्ठक, स्निग्धदारुक और काष्ठदारु है । इसका गुण—तिक्त, उष्ण, रूक्ष, श्लेष्म और वायुनाशक है ।

देवकिरि ( सं० स्त्री० ) देवं मेघं किरतीति कृ-क गौरादित्वात् ङीष् । एक रागिणी जो मेघरागकी भार्या मानी जाती है ।

देवकिल्बिष ( सं० क्लो० ) देवेन कृतं किल्बिषं अनिष्टकर्म, देवकृत अनिष्ट कार्य ।

देवकी (सं० क्लो०) देवक-ङीप् । देवककी कन्या, वसुदेवकी स्त्री । पर्याय—देवकी, कृष्णजननी और देवकात्मजा । जब वसुदेवके साथ इनका विवाह हुआ, तब नारदने आकर मथुराके राजा कंससे कहा, 'मथुरामें जो तुम्हारी चचेरी बहन देवकी है उसके आठवें गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही तुम्हारा वध करेगा । अतः तुम अभीसे सावधान हो जावो ।' इतना कहकर नारद चल दिये । कंसने क्रोधसे अधीर होकर अपने आत्मीय तथा सचिवोंसे कहा, 'तुम लोग देवकीका गर्भ नष्ट करनेमें सावधान रहना, एक एक करके देवकीके सब गर्भ नष्ट कर देना । देवकी विश्वस्त हृदयसे स्वेच्छानुसार हमारे अन्तःपुरमें रहे और अन्तःपुरकी स्त्रियां उसकी अच्छी तरह सेवा सुश्रुषा करती रहें ।' कंसने एक एक करके देवकीके छः बच्चोंको मरवा डाला । जब सातवां शिशु गर्भमें आया, तब योगमायाने अपनी शक्तिसे उस शिशुको देवकीके गर्भसे खींच कर रोहिणीके गर्भमें कर दिया । इधर तो यह तलाश होने लगी कि देवकीका सातवां गर्भ क्या हो गया । इसी बीच देवकीको आठवें गर्भका सञ्चार हुआ । इस समय उस पर कड़ा पहरा बैठाया गया । समय पूरा भी न होने पाया था, कि देवकीके गर्भसे आठवें मासमें हो भादो वदी अष्टमीकी रातको श्रीकृष्णका जन्म हुआ । उसी रातको यशोदाके एक कन्या उत्पन्न हुई । वसुदेव रातो रात देवकीके शिशु श्रीकृष्णको गोदमें लेकर यशोदाके पास दे आये और यशोदाकी कन्याको लाकर उन्होंने देवकीके पास सुला दिया । बाद वसुदेवने कंसके पास जा कर कहा, कि उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई है । यह सुनकर कंसने उस कन्याको ले कर ज्यों ही पत्थर पर पटकनेको था, त्यों ही वह कन्या जो योगमाया थी उसके हाथसे छूट कर ऊपरसे बोली, 'तू इस पापसे बहुत जल्द नाश हो जायेगा ।' इतना कह कर वह आकाश मार्गसे उड़ कर विन्ध्यपर्वत पर आ बैठी । पीछे कृष्णने कंसका वध कर देवकी और वसुदेवका उद्धार किया । देवकी और वसुदेव पूर्वजन्ममें क्रमशः पृश्नि और सुतपा नामसे प्रसिद्ध थे । भगवान्के वरसे उन्होंने अदिति और कश्यप हो कर वामनरूपी भगवान्को पुत्र रूपमें प्राप्त किया । अदितिने जब कश्यपकी वरुणकी गाय लौटा देनेसे रोका था, तब ब्रह्माके शापसे मानुषी योनिमें उनका जन्म हुआ और वे देवकी नामसे प्रसिद्ध हुए । वसुदेव, कृष्ण और कंस देखो ।

मथुरेमें इनकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है । दर्शन करनेसे सब प्रकारके पाप जाते रहते हैं । (पुराण)

देवकीनन्दन ( सं० पु० ) देवक्याः नन्दनः ६-तत् । वसुदेवकी स्त्री देवकीके पुत्र श्रीकृष्ण ।

देवकीनन्दन—१ एक हिन्दी-कवि । इनकी गिनती नाटककारोंमें होती थी तथा इन्होंने जयनरसिंहकी, होलीखगेश और चक्षुदान नामक ग्रन्थ लिखे ।

२ हिन्दीके एक कवि । इनका जन्म संवत् १९१८ में मुजफ्फरपुरमें हुआ था । २४ वर्षकी अवस्था तक ये मुजफ्फरपुर तथा गया जिलेमें हो रहे और इसके पीछे ये काशीमें रहने लगे । इन्होंने जंगलोंकी अच्छी सैर की थी । अपने देखे हुए स्थानों तथा जंगलोंका वर्णन इन्होंने अपने उपन्यासोंमें खूब किया है । इनके बनाये हुए चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्तासन्तति, नरेन्द्रमोहनी, कुसुमकुमारी, वीरेन्द्रवीर, काजरकी कोठरी आदि उपन्यास परम लोकप्रिय तथा मनोहर है । इनके उपन्यास ऐसे

रोचक हैं कि बहुतसे लोगोंने उन्हें पढ़ कर ही हिन्दी सीखी। इन्होंने पण्डित माधवप्रसादके सम्पादकत्वमें सुदर्शन नामक एक उत्तम मासिकपत्र भी निकाला था, पर वह बन्द हो गया। इनकी भाषा बहुत सरल होती है और वह मनोहर भी है। इनका हालमें ही परलोक वास हुआ है।

२ कनौजसे एक मीलकी दूरी पर मकरन्द नगर नामक ग्राममें कविभूषण देवकीनन्दनका जन्म सं० १८०१ में हुआ था। इनके पिताका नाम था सुबली शुक्ल

देवकीनन्दनजी अवधूतसिंह रुद्रामऊ जिला हरदोईके यहां रहते थे। इन्होंने शृङ्गारचरित्र और अवधूत-भूषण नामक ग्रन्थ यथाक्रम सं० १८४१ और १८५७में लिखे। प्रथमोक्त पुस्तकमें नायक तथा नायिकाका भेद, भावादि, हाव, गुण, अनुप्रास और अलङ्कारका वर्णन है। यह ग्रन्थ अच्छा तथा इसकी भाषा ललित है। अलंकार विभाग प्रायः दोहेमें कहा गया है। इनकी कवितामें दो एक जगह कूट भी पाये जाते हैं। शेषोक्त अवधूत-भूषण नामक पुस्तकमें कवि तथा राजवंशका पूरा वर्णन किया गया है। तदनन्तर अर्थालङ्कार एवं शब्दालङ्कारका ब्यौरा है। देवकीनन्दनकी कविता सराहनीय है। उसमें ऊंचे भाव बहुतायतसे आए हैं। काव्यांगोंका चमत्कार इस कविने अच्छा दिखाया है और पाठकोंकी विचारशक्ति भी पैनी करनेका मसाला छन्दोंमें रखा है। इनकी अनेक उत्कृष्ट कविताओंमेंसे एक उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"मोतिनकी माल तोरि चीर सब चीरि डारे
फेरि कै न जैहौं आली दुःख विकरारे हैं।
देवकीनन्दन कहैं धोखे नाग छौननके
अलकैं प्रसून नोचि नोचि निरवारे हैं।
मानि मुख चन्द भाव चोंच दई अधरन
तीनौं ये निकुंजन मैं एकै तार तारे हैं।
ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे
मोरे मतवारे त्यों चकोरे मतवारे हैं॥"

देवकीनन्दन कविराज—एक प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थकार। इन्होंने आचार्यचिन्तामणि, एकादशीव्रतनिर्णय, चरित्र-चिन्तामणि, नामरत्नविवरण, बालबोध, रसाभिध महाकाव्य और वैष्णवाभिधान आदि संस्कृत ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

देवकीनन्दन शुक्ल—एक सुप्रसिद्ध हिन्दीकवि। ये मकरन्दपुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १८७०में हुआ था। इनकी कविता सरस और मनोहर होती थी। इनके और दो भाई थे, ये तीनों ही कविता करनेमें बड़े निपुण थे। इनका बनाया "नखसिख" नामक एक ग्रन्थ है।

देवकीपुत्र (सं० पु०) १ देवकीनन्दन श्रीकृष्ण। २ पुरुषयज्ञदर्शन विषयमें घोर नामक आङ्गिरसके शिष्य कृष्ण। इनकी माताका नाम भी देवकी था।

देवकीमातृ (सं० पु०) देवकी माता यस्य। समासान्तविधेरनित्यत्वात् न कप्। श्रीकृष्ण।

देवकीय (सं० त्रि०) देवस्येदं गहादित्वात् छ। देव सम्बन्धीय, देवताका।

देवकीर्त्ति—१ एक प्राचीन संस्कृतके ज्योतिषी। भट्टोत्पलने इनका मत उद्धृत किया है। २ वर्णदेशना नामक संस्कृत व्याकरणके रचयिता। रायमुकुटने इनकी कथा उद्धृत की है।

देवकुक्कुटक (सं० पु०) सुनिषण्णक शाकभेद, एक प्रकारका साग।

देवकुण्ड (सं० क्ली०) देवकृतं कुण्डं। १ वह जलाशय जो किसी देवताके निकट या नाम पर होनेके कारण पवित्र माना जाता है। २ प्राकृतिक जलाशय, वह गड्ढा या ताल जो आपसे आप बन गया हो।

देवकुतुम्बक (सं० पु०) महाद्रोणपुष्प।

देवकुम्भ (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष, तुम्बा।

देवकुरु (सं० पु०) जम्बूद्वीपके छह खण्डोंमेंसे एक खण्ड। यह सुमेरु और निषधके बीच माना गया है।

देवकुरुम्बा (सं० स्त्री०) महाद्रोणी, बड़ा गूमा।

देवकुल (सं० क्ली०) देवाय कोलतीति कुल संघाते क। १ देवगृहभेद, एक प्रकारका देवमन्दिर जिसका द्वार अत्यन्त छोटा हो। देवानां कुलं। २ देवताओंका वंश। ३ देवतासमूह।

देवकुला—प्रभासखण्डोक्त पवित्र नदी।

देवकुल्या (सं० स्त्री०) देवकृता कुल्या अल्पसरित्। १ देव-

नदी गङ्गा। २ मरीचि और पूर्णिमाकी कन्या।

देवकुसुम (सं० क्लो०) देवप्रियं कुसुमं पुष्पं यस्य। लवङ्ग, लौंग।

देवकूट (सं० क्लो०) १ वशिष्ठाश्रम सन्निकटस्थित आश्रम भेद, एक पवित्र आश्रम जो वशिष्ठके आश्रमके निकट था। २ मेरुके पूर्वस्थित एक पर्वत।

देवकृष्ण—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"द्वारे द्वारे फिरे नहीं सुध राम भजनकी।
औरनको उपदेश करत है अरे सुध न रही तनमनकी॥
लोभ ग्रस्यो रहत निशि वासर आशा लागी है धनकी।
देवकृष्ण प्रभुको सुमरण कर के गैल गही श्रीवृन्दावनकी॥"

देवकेसर (सं० पु०) सुर पुन्नाग, एक प्रकारका पुन्नाग।

देवकोट—दिनाजपुरके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। महम्मद ई-बख्तियारके गौड़ आक्रमणके बाद कुछ दिनों तक इन्होंने यहां राजधानी बनाई थी। इसी स्थानमें ६०२ हिजरीको अलीमर्दनने उन्हें मार डाला था। दमदमके निकट गङ्गारामपुरमें जो ध्वंसावशेष है, वहीं ब्लेकम्यान साहबके मतानुसार प्राचीन देवकोट अवस्थित था। अभी भी इसके निकटवर्त्ती समस्त स्थान देवकोट परगनेके अधीन हैं।

देवक्षत्र (सं० क्लो०) देवानां क्षत्रं बलं यत्र। यज्ञ।

देवक्षेत्र (सं० क्लो०) देवाना क्षेत्रं। १ देवताओंका क्षेत्र, पुण्यस्थान। २ स्वर्ग।

देवक्षेम (सं० पु०) विज्ञानकाय नामक ग्रन्थके रचयिता।

देवखात (सं० क्लो०) देवेन खातं, अकृत्रिमत्वादस्य तथात्वं। देवखातक, अकृत्रिम जलाशय, ऐसा ताल या गड्ढा जो आपसे आप बन गया हो। मनुने लिखा है, कि नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर, गर्भ और प्रस्रवणमें नित्यस्नान करना चाहिये।

देवखातक (सं० पु० क्लो०) देवखातमेव स्वार्थे-कन्। १ अकृत्रिम जलाशय। इसका पर्याय—खाखात, अखात और देवनिर्मित है। २ गुहा, कन्दरा।

देवखातविल (सं० क्लो०) देवखातं अकृत्रिमं विलं नित्यकर्मधा०। गुहा, कन्दरा।

देवगङ्ग—आसाममें प्रवाहित एक नदी। इसका अन्त्यका नाम दिवङ्ग है।

देवगढ़—१ बम्बई प्रदेशके अधीन रत्नगिरि जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० १६° ११' से १६° ३५' उ० और देशा० ७३° १८' से ७३° ५७' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५२५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १४३७५० है। इसमें ११८ ग्राम लगते हैं। इस उपविभागके मध्य देवगढ़ नगर समुद्र तीरवर्त्ती एक सुन्दर बन्दर है। यहां दुर्गका एक भग्नावशेष है। प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले महाराष्ट्र दस्युसे यह दुर्ग निर्माण किया है। १८१८ ई०में कर्नल होमलकसे अङ्गिरा पकड़े गये। १८७५ ई०में खैरापत्तनसे महकूमा उठा कर यहां लाया गया।

२ उक्त उपविभागका एक बन्दर। यह अक्षा० १६° २३' उ० और देशा० ७३° २२' पू० बम्बईसे १८० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७६१ है। पानीकी गहराई १८ फुट है।

३ बम्बईके अच्छोरा राज्यका एक ग्राम। यह श्रीवर्द्धनसे ३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ११३० है। यहां कालभैरवका एक मन्दिर है जहां जानेसे भूत प्रेतसे ग्रसित मनुष्य अच्छे हो जाते हैं। महाशिवरात्रि और कार्त्तिक शुक्ले उपलक्षमें यथाक्रम फरवरी और नवम्बर महीनेमें दो मेले लगते हैं।

देवगढ़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ईख।

देवगण (सं० पु०) देवानां गणः ६-तत्। १ देवसमूह। २ नक्षत्रभेद। ३ देवपक्ष। ४ देवानुचरादि, किसी देवताका अनुचर।

देवगणग्रह (सं० पु०) सुश्रुतोक्त देवादि गणरूप ग्रह। देवसमूह विशुद्ध स्वभावके होते हैं, इसीसे वे ग्रह नहीं हो सकते। सुतरां देवगण देवग्रह माने गये हैं। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

रोगीके क्रिया-शुद्धता, विषमता, अमानुषिकता और सहिष्णुता होनेसे उसे ग्रह कहते हैं। असंख्यग्रह और ग्रहाधिपतिगण अशुचि, अमर्यादक, क्षत वा अक्षत लोगोंके हिंसाकारी हैं। ये सत्कार पानेकी अभिलाषासे इधर उधर भ्रमण करते हैं। ये ग्रहगण भिन्न भिन्न आकारके होते हैं और आठ भागोंमें विभक्त हैं। देव, असुर, गन्धर्व यक्ष, पितृ, रक्ष, भुजङ्ग और पिशाच,ये ही आठ प्रकार हैं।

सन्तुष्ट, शुचि, गन्धमाल्य प्रभृति, तन्द्राहीन, विशुद्ध, संयतभाषी, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि, वरप्रदाता, ब्रह्मनिष्ठाशील, ये सब देवग्रहाविष्टके लक्षण और धर्मोक्त, द्विज, गुरु तथा देवनिन्दक, कुटिलनेत्र, निर्भय, विषम दृष्टि, मद्यपानसे असन्तुष्ट और दुष्टबुद्धि ये सब असुरग्रहाविष्टके लक्षण हैं।

जिस प्रकार दर्पणादिमें छाया, प्राणियोंकी देहमें शीतोष्ण, सूर्यकान्तमणिमें सूर्यरश्मि और देहमें जीव अलक्षित भावसे प्रवेश करता है, ग्रहगण भी उसी प्रकार शरीरके मध्य प्रवेश करते हैं। देवग्रह पौर्णमासी तिथिमें आविष्ट होते हैं। ग्रहोंमेंसे जो देवांशसम्भूत हैं उनमें देवताकी सत्ता रहनेके कारण वे देवग्रह कहलाते हैं। उन सब शुचिशील देवग्रहोंको देवताके समान नमस्कार और प्रार्थना करनी चाहिये।

किन्तु ये सब देवग्रह दिव्यभाव धारण कर, हिंसाके लिए विचरण करते हैं, इसीसे इन्हें भूत भी कहते हैं। इनकी शान्तिके लिए एकाग्रचित्त हो कर जप, होम आदि क्रियाओंका अनुष्ठान करना होता है।

इन सब ग्रहोंको रक्तवर्ण गन्धमाल्य, सब प्रकारके भक्ष्य द्रव्य, वस्त्र, मद्य, मांस, रक्त आदि जिनका जो अभिलषित पदार्थ है, उन्हें वही दें। जो दिवाभागमें मनुष्यकी हिंसा करते हैं, उन्हें दिवाभागमें ही बलिप्रदान करें। देवग्रह होनेसे देवताके गृहमें होम करके बलिदान देना होता है। देवग्रहकी जगह किसी विषयका अयुक्तरूपसे प्रयोग न करें, नहीं तो वह ग्रह क्रुद्ध हो कर वैद्य और आतुर दोनोंको ही मार डालता है।

(सुश्रुत उत्तरतन्त्र ६० अ०)

देवगणदेव—एक प्राचीन संस्कृत कवि।

देवगणिका (सं० स्त्री०) स्वर्वेश्या, अप्सरा।

देवगति (सं० स्त्री०) १ मरनेके उपरान्त उत्तमगति, स्वर्गलाभ। २ मरने पर देवयोनिकी प्राप्ति।

देवगन्धक (सं० क्ली०) रोहिषतृण, रोहिष नामको घास।

देवगन्धर्व (सं० पु०) देवानां गन्धर्वः ६-तत्। देवताओंके निकट गान करनेवाला गन्धर्व।

देवगन्धा (सं० स्त्री०) देवप्रियो गन्धो यस्याः। महामेदा।

देवगर्भ (सं० पु०) देवात् गर्भो यस्य। १ देवाहित गर्भक, वह मनुष्य जो देवताके वीर्यसे उत्पन्न हो। (स्त्री०) २ कुशद्वीपकी एक नदीका नाम। (भागवत ५।२०।२१)

देवगांव—युक्तप्रदेशके आजीमगढ़ जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° २८' से २५° ५७' उ० तथा देशा० ८२° ४९' से ८३° २१' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८९ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग २६४८५१ है। यह तहसील देवगांव, बेलदौलताबाद और बेलहाबान् ले कर संगठित है। इसमें ७०२ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। यहांकी आय ३५३००० है। यहांकी प्रधान नदियां मनर्ग, बेस्र, और गाङ्गो हैं।

देवगान्धार (सं० पु०) देवप्रियः देवयोग्योक्त गान्धारः। एक रागका नाम। यह भैरव रागका पुत्र माना जाता है। यह सम्पूर्ण जातिका राग है। इसमें ऋषभ और धैवत कोमल लगते हैं। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे।

देवगान्धारी (सं० स्त्री०) श्रीरागकी भार्या। यह शिशिर ऋतुमें तीसरे पहरसे लेकर आधी रात तक गाई जाती है।

देवगायक (सं० पु०) गन्धर्व।

देवगायन (सं० पु०) देवानां गायनः ६-तत्। गन्धर्व।

देवगिरा (सं० स्त्री०) देववाणी, संस्कृत।

देवगिरि (सं० पु०) देवाना प्रियः गिरि। एक पहाड़का नाम। यहां अनेक देवमूर्त्तियां है, इसीसे उस पर्वतका नाम ऐसा पड़ा है।

देवगिरि—हैदराबाद राज्यके औरङ्गाबाद तालुक और जिलेका एक नगर और दुर्ग। अभी यह दौलताबाद नामसे प्रसिद्ध है। यह अक्षा० १९° ५७' उ० देशा० ७५° १३' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १२५७ है।

देवगिरि दुर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध है। दाक्षिणात्यमें हिन्दू राजाओंके समयमें यहां बहुतसे प्रबल पराक्रान्त राजा वास करते थे। डेढ़ सौ फुट ऊंचे कोणाकार पत्थर पर दुर्भेद्य दुर्ग संगठित है। इसका बाहरी घेरा प्रायः डेढ़ कोस है। दुर्ग और प्राकारके मध्यवर्त्ती स्थानमें बहुतसी खाइयां हैं। सदर फाटकके सिवा भीतर प्रवेश होनेका और कोई दूसरा दरवाजा नहीं है। खाईके बाहर थोड़ी ही दूर पर २१० फुट ऊंचा एक मिनार है। १२९४ ई०में

मुसलमानोंने सबसे पहले इस स्थानपर आक्रमण किया और इसी स्मरणार्थ यह मिनार बनाया गया है। अभी भी उस मिनारका कोई अंश बरबाद नहीं हुआ है। इसके शिखर पर चढ़नेसे निकटवर्त्ती प्रदेशका दृश्य बहुत मनोरम लगता है। मिनारके पास ही बहुत प्राचीन और बड़े जैन मन्दिरका ध्वंसावशेष पड़ा है तथा मन्दिरके निकट चीनीमहलका खंडहर भी देखनेमें आता है। गोलकुण्डाके अन्तिम सुलतान अबुल होसेन (तानशा नामसे प्रसिद्ध) औरङ्गजेबसे इसी स्थान पर बन्दी हुए थे। इसके सिवा प्राचीन राजप्रासादका भग्नावशेष पूर्व समृद्धिका परिचय देता है।

जिस पहाड़के ऊपर देवगिरि दुर्ग स्थापित है, वह प्रायः ६०० फुट ऊँचा होगा। खाई भी लगभग ३० फुट विस्तृत होगी जिसे एक छोटे पत्थरके पुल हो कर पार करते हैं।

देवगिरिनगर कब स्थापित हुआ है, इसका पता नहीं चलता है। यहांके यादवराजाओंके अभ्युदयकालसे देवगिरिका नाम और समृद्धि भारतविख्यात हुई है।

प्रसिद्ध कलचुरी वंशका जब अधःपतन हुआ, तब इसके आस पासका सारा प्रदेश होयशल बल्लाल और द्वारसमुद्रके यादवराजाओंके हाथ आया। इस समय उत्तर भाग एक दूसरे यादववंशके हस्तगत हुआ। उन्होंने देवगिरिमें राजधानी स्थापित की। कई शिला लेखोंमें जो इन यादवराजाओंकी वंशावली मिली है, वह इस प्रकार है—

सिंघन (१ला)
|
मल्लुगि
|
भिल्लम (शक ११०९-१११२)
|
जैतुगि (१ला), जैत्रसिंह वा जैत्रपा
| (शक १११२-११३१)
सिंघन (२रा)
[सिंह, सिंहल, सिंहन वा त्रिभुवनमल्ल]
| (शक ११३१-११६९)
जैतुगि (२रा) वा चैत्रपाल
|
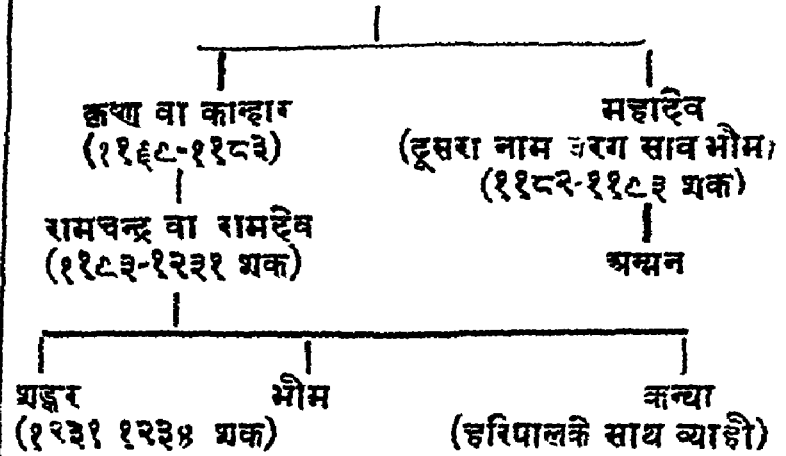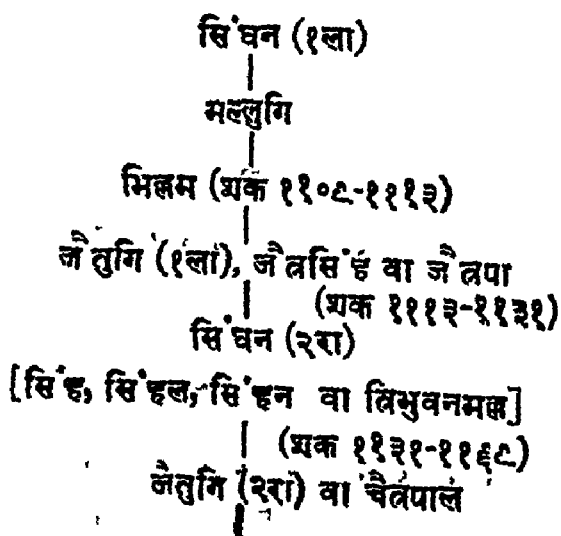
यादवराज १म सिंघनने महाबलशाली कर्णाटकके राजाको पराजय किया। प्रवाद है, कि भिल्लमके जीते जी उनके लड़के जैतुगि धारवाड जिलेके अन्तर्गत लकुण्डी नामक स्थानमें होयशलराज द्वितीय बल्लालसे पराजित हुए। जैतुगिने विजयपुरमें राजधानी स्थापित की। उन्होंने त्रिकलिङ्गके राजाको पराजय कर उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया। पीछे धारवाड़ तक इनकी राज्यसीमा फैल गई थी।

द्वितीय सिंघनके राजत्वकालमें ही देवगिरि यादवोंकी राजधानी कह कर प्रसिद्ध हुआ। उनके समयके ३८ शिलालेख पाये गये हैं, जिनके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने तिलङ्ग, कलचुरि और अन्धराजको जीता था। उनके समयमें देवगिरिका यादवराज्य बहुत बढ़चढ़ गया था। २य सिंघनके बाद उनके पोते कृष्ण राजा हुए। उनके महाप्रधान वा प्रतिनिधिके खोदित शिलालेखसे जाना जाता है, कि उनके पिता (यादवसेनापति)ने रट्ट, कोङ्कणके कादम्ब, गुत्तीके पाण्ड्य और होयशलराजको पराजय कर कावेरीके किनारे जयस्तम्भ स्थापन किया था।

द्वितीय सिंघनके बाद महादेवने अपने बाहुबलसे राजसिंहासन अधिकार कर लिया। महादेवके समय देवगिरिसभामें अनेक महापण्डित रहते थे जिनमेंसे महापण्डित हेमाद्रि और बोपदेवका नाम बहुत प्रसिद्ध है। महादेवके बाद उनके लड़के अम्मनके भाग्यमें राज्यसम्पद बदा नहीं था, इसलिये कृष्णके पुत्र रामचन्द्र सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने बाहु-बलसे वर्त्तमान बम्बई प्रदेशका समस्त दक्षिण और मध्यभाग अपने कब्जेमें कर लिया। १२१६ शक (१२९४ ई०)में अलाउद्दीनने ८ हजा

अश्वारोहियोंको साथ ले देवगिरि पर अकस्मात् चढ़ाई कर दी। राजा जहां तक लड़ते बना वहां तक लड़े, पर तीन सप्ताह तक लगातार युद्ध कर चुकनेके बाद जब दुर्गके भीतर सामग्री घट गई, तब उन्होंने आत्मसमर्पण किया और विजेता खिलजीके साथ सन्धि कर ली। यही सबसे पहला समय था कि देवगिरिके यादववंशने मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार की। देवगिरिपति कर देनेको वाध्य हुए। १२२८ शकमें रामचन्द्रने कर देना अस्वीकार किया। उस समय अलाउद्दीन् अपने चचेको मार कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठ चुके थे। उन्होंने एक लाख अश्वारोहीके साथ मालिक काफुरको दक्षिण भेजा। इस बार भी रामचन्द्र विपुल मुसलमान-वाहिनीके साथ युद्ध कर स्वाधीनता बचा न सके और वाध्य हो कर उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली। बाद वे दिल्ली भेज दिये गये।

अलाउद्दीन्ने सम्मानपूर्वक उन्हें फिर देवगिरि भेज दिया। तीन वर्षके बाद जब मालिक काफुर ओरङ्गलको जीतने गये थे, तब राजा रामचन्द्रने बहुत समारोहसे उनकी अभ्यर्थना की थी। १२३२ शकमें राजा शङ्करने अपनेको स्वाधीन कह कर प्रचार किया और मुसलमानराजको कर देनेसे अस्वीकार किया। पुन: १२३४ शकमें मालिक काफुरने शङ्कर पर आक्रमण कर दिया, शङ्कर पराजित हुए और मार डाले गये। इस समय मालिक काफुर दक्षिणके और राज्यों में लूट पाट करने लगे। देवगिरि उनका सदर हुआ। कुछ दिन बीतने पर जब वे दिल्लीको बुलाये गये, तब राजा रामचन्द्रके जामाता हरिपालने दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंसे दलबल संग्रह कर मुसलमानोंको मार भगाया और आप देवगिरिके सिंहासन पर अधिकार कर बैठे। छह वर्ष तक उन्होंने पूर्ण प्रतापके साथ राज्य किया। अन्तमें १२४० शकमें दिल्लीके बादशाह मुबारकने ससैन्य आ कर उन पर चढ़ाई की। षड़यन्त्र और विश्वासघातकतासे हरिपाल पराजित हुए। बाद मुसलमानोंने उनका मस्तक दो खण्ड कर नगरके द्वार पर लटका दिया। इस प्रकार यादव-राज्यकी समाप्ति हुई। पीछे दिल्लीश्वरके प्रियपात्र कई एक व्यक्ति यथाक्रमसे देवगिरिके सिंहासन पर बैठे। गयासउद्दीनके पुत्र महम्मद तुगलक १३२५ ई०में दिल्लीके सिंहासन पर आरोहण हुए। सुविख्यात दिल्ली नगर उन्हें अच्छा न लगा। अत: १३३८ ई०में उन्होंने देवगिरिमें राजधानी स्थापन करनेका संकल्प किया और दिल्लीवासियोंको हुक्म दिया कि वे अति शीघ्र दिल्ली छोड़ कर देवगिरिको चले जांय। दिल्लीसे देवगिरि ४०० सौ कोस दूर था, अत: दिल्लीवासियोंको उतनी दूरकी यात्रा करनेमें कैसा कष्ट झेलना पड़ा था, वह अकथनीय है। क्षीणमति सुबारकको बुद्धिके दोषसे दिल्ली नगर जनशून्य और श्रीभ्रष्ट हो गया और देवगिरिकी समृद्धि बहुत बढ़ गई। इस समय देवगिरिका नाम 'दौलताबाद' अर्थात् सौभाग्यशाली नगर रखा गया। तांजियर वासी इबनबतूता देवगिरिकी समृद्धि देख कर मुक्तकण्ठसे तारीफ कर गये हैं। तुगलक-वंशके बाद देवगिरि कुलवर्गा और विदरके बाह्मनीवंशके शासनाधीन हुआ। १५२६ ई० तक यह स्थान बाह्मनीवंशके अधीन रहा। पीछे देवगिरिका दुर्ग अहमद नगरके निजामशाही वंशके हाथ आया। उनके अध:पतनके बाद यह मुगलोंके अधीन हुआ। १७०७ ई०में औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद वर्त्तमान निजाम-वंशके स्थापयिता आसफजाने मुगलाधिकृत प्रदेशोंके साथ साथ देवगिरि भी अपने अधिकारमें कर लिया। यहांके दुर्गमें अभी केवल १०० सैन्य हैं।

देवगिरि—धारवाड़के अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह करजगीसे तीन कोस पश्चिममें अवस्थित है, यहांसे कादम्ब राजाओंके समयके बहुतसे ताम्रशासन पाये गये हैं। एक समय यहां जैनोंकी प्रधानता थी। जखनाचार्य निर्मित यहांका यल्लमाका मन्दिर विख्यात है।

देवगिरि (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, एक रागिणी जो सोमेश्वरके मतसे वसन्त रागकी भार्या मानी गई है। भरतके मतसे ये हिन्दोल रागके पुत्र, नागध्वनिको सङ्गीतदर्पणके मतसे नटकल्याणकी और हनुमत्के मतसे मालकोश रागकी भार्या है। यह हेमन्त ऋतुमें दिनके चौथे पहरसे ले कर आधी रात तक गाई जाती है। किसीका मत है, कि यह रागिणी संकर है और इसे पूर्वी तथा सारंगके मेलसे और फिर किसीके मतानुसार सरस्वती,

मालश्री और गान्धारीके मेलसे बनी है। यह सम्पूर्ण जातिकी रागिणी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। स्वरग्राम इस प्रकार है—"स ऋ ग म प ध नि स"।

देवगुप्तसूरि—१ उकेशगच्छसम्भूत एक विख्यात जैनाचार्य, ककसूरिके एक शिष्य। इनका दूसरा नाम जिनचन्द्र था। इन्होंने पहले "नवपद" वा नवपदप्रकरण नामक जैनशास्त्रीय ग्रन्थ प्रकाश किया; पीछे १०७३ सम्बत्में 'श्रावकानन्द' नामक नवपदकी एक विस्तृत संस्कृत टीका लिखी। इनकी कुलचन्द्र नामक एक और भी उपाधि थी।

२ एक जैनाचार्य, सिद्धसूरिके शिष्य। इनके दो शिष्य थे, यशोदेव और सिद्धसूरि। प्रथम शिष्यने ११७४ संवत्में अष्टचर्याविवरण और द्वितीय शिष्यने ११९२ सम्वत्में वृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिकी रचना की।

देवगुरु (सं० पु०) १ देवताओंके गुरु, वृहस्पति। २ देवताओंके गुरु अर्थात् पिता, कश्यप।

देवगुर्वी (सं० स्त्री०) सरस्वती।

देवगुह्य (सं० त्रि०) देवानां गुह्यं ६-तत्। देवताओंके अति रहस्य, जो देवताओंके अत्यन्त गुप्त विषय हों। जिससे प्राणियोंके वैराग्य उत्पन्न न हों और देवताओंके मध्य यह विषय छिपा रहे, इसी कारण इसका नाम देवगुह्य हुआ है।

देवगृह—गयाका एक पुण्यस्थान। यहां च्यवनाश्रम था।

देवगृह (सं० क्ली०) देवानां गृहं ६-तत्। देवालय, देवमन्दिर। इसका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

देवगृह यदि बनवाना चाहे, तो उसके मध्य जलाशय और उपवनका रहना परमावश्यक है। इष्टापूर्त्त द्वारा जो सब लोक लाभ होते हैं, एक देवगृह बनानेसे वही सब लोक मिलते हैं। इससे लोकभूषण और देवतातुष्टि दोनों ही होते है। सलिल और उद्यानयुक्त मनुष्यकृत वा दैव सम्पादित स्थानके समीप देवतागण स्वयं आ पहुंचते है। जिस सरोवरमें नलिनीरूप छत्रद्वारा सूर्यकी किरण पड़ती है, जिस निर्मल जलमें हंसके स्कन्ध द्वारा श्वेतपद्मके नीचे तरंगें मारती हैं, जिस सरोवरमें हंस, कारण्डव, क्रौञ्च और चक्रवाकगण शब्द करते है तथा जिसके तीरस्थ निचुल वृक्षकी छायामें जलचारी प्राणिगण विश्राम करते हैं उस सरोवरके समीप देवगण सुखी रहते है। क्रौञ्चश्रेणी जिसकी काञ्चीकलाप है, कलहंसका कलस्वन जिसका शब्द है जल जिसका वस्त्र है, सफरियां जिसकी मेखला हैं, तीरस्थ प्रफुल्ल वृक्ष जिसके कर्णभूषण हैं, जल और स्थलका सङ्गमस्थान जिसका श्रोणी है, पुलिन जिसके उन्नत स्तन हैं और हंस जिसके हास्य है, इस प्रकार निम्नगामिनी नदियोंके समीपवर्त्ती स्थानोंमें देवगण उपस्थित हो जाते हैं।

वनके उपान्त स्थानमें, नदी, शैल और निर्झरको उपान्त भूमिमें और उद्यानयुक्त पुर प्रदेशमें देवगण नित्य रति लाभ करते है। देवगृह निर्माणका स्थान निरूपण करनेमें वास्तुविद्यामें जो सब भूमि ब्राह्मणोंको कही गई है, देवमन्दिरके लिये वही सब भूमि प्रशस्त हैं। देवगृहमें सर्वदा चतुःषष्टिपद वास्तुमण्डलका करना कर्त्तव्य है।

इसमें समदिक्स्थित मध्यस्थलमें द्वार बनावे। जिसका विस्तार जितना होगा, उसे उसके दूने परिमाणसे उन्नत करे। उन्नतिका एकतृतीयांश कटि हो, विस्तारका अर्द्धक गर्भगृह और चतुर्दिकस्थ अन्य सभी दीवारें हों। गर्भ एक चतुर्थांश चौड़ा और उससे दूना ऊंचा हो। ऊँचाईके चतुर्थांशमें विस्तीर्ण शाखा और उपरितन अंशके दिगन्तको समभावमें निर्माण कर उसका विस्तार एक चतुर्थांश करे और उसके घेरेको विस्तारका चतुर्थांश बनावे अर्थात् दोनो शाखाओंका दैर्घ्य विस्तारका चौथाई हो। तीन, पाँच, सात और नौ शाखाओंका आयतन ही प्रशस्त है। अधःस्थ शाखाके चार भागोंमें दो द्वारदेश बनावे। इसका शेषभाग मङ्गलसूचक विहङ्गम, श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, घट, मिथुन, पत्रवल्ली और प्रमथगणसे उपशोभित हो। द्वारके परिमाणसे आठवां भाग कम और पिण्डिकायुक्त प्रतिमा हो। प्रतिमायुक्त पिण्डिकामें दो भाग प्रतिमा और तृतीयांश पिण्डिका रहे। मेरु, मन्दर, कैलाश, विमानच्छन्द, नन्दन, समुद्र, पद्म, गरुड़, नन्दिवर्द्धन, कुञ्जर, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोड़शास्त्रि और अष्टास्त्रि ये बीस प्रकारकी देवगृहकी संज्ञा हैं। यथाक्रम इनका लक्षण लिखा जाता है—

जो देवगृह षड़ कोण, दशभौम, सुन्दर कुहरयुक्त और बत्तीस हाथ लम्बा हो तथा जिसमें चार दरवाजे लगे हों, वैसे देवगृहका नाम 'मेरु' है। जो तीस हाथ विस्तीर्ण, दश भौमयुक्त तथा चूड़ावान् हो, उसे 'मन्दर' कहते हैं। मन्दर लक्षणका देवगृह यदि १८ हाथ विस्तीर्ण और आठ भौमयुक्त हो, तो उसे 'कैलास' कहते हैं। जो जालाकृति गवाक्षविशिष्ट तथा २१ हाथ विस्तीर्ण हो उसका नाम 'विमान' है। जो २१ हाथ विस्तीर्ण और १६ चूड़ा युक्त हो तथा जिसमें ६ भौम लगे हों, उसे 'नन्दन' कहते हैं। गोलाकार एक शृङ्ग और एक भौम देवालयका नाम 'समुद्र'; एक भूमिक, एकशृङ्ग, पद्माकृति और अष्टशाख देवागृहका नाम 'पद्म' गरुड़की तरह आकृतिविशिष्ट देवगृहका नाम 'गरुड़'; २४ हाथ विस्तीर्ण सप्तभौम और २० अण्डोंमें विभूषित देवगृहका नाम 'नन्दिवर्द्धन'; गजपृष्ठकी तरह आकारधारी और मूलमें चारों ओर १६ हाथ विस्तृत देवालयका नाम 'कुञ्जर', १६ हाथ विस्तृत और तीन चन्द्रशालाओंमें विशिष्ट वलभीदेश, ऐसे देवालयका नाम 'गुहराज', बारह हाथ विस्तृत, गोलाकार, एक शृङ्ग और एक नेमियुक्त देवालयका नाम 'वृष' इसी प्रकारके गोलाकार देवगृहका नाम 'वृत्त', हंसाकार देवगृहका नाम 'हंस', ८ हाथ विस्तीर्ण कलशाकार देवालयका नाम 'घट', ४ द्वार तथा अनेक चूड़ाविशिष्टका नाम 'सर्वतोभद्र', ८ हाथ विस्तृत, द्वादश कोण तथा सिंह चिह्न समन्वित देवालयका नाम 'सिंह' और जिस देवालयके ५ अण्डोंमेंसे ४ कृष्णवर्णके हों उसका नाम 'चतुरस्र' है। (वृहत्सं° ७४ अ०)

अग्निपुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले स्थानका निरूपण कर चौकोन क्षेत्रको सोलह भागोंमें विभक्त करके मध्यस्थित चार भागोंको आयत और शेष बारह भागोंको भित्तिके लिये कल्पित करे। जङ्घा चतुर्भाग परिमित उच्छ्रित, जङ्घासे द्विगुण उन्नत मञ्जरी और मञ्जरीके चतुर्थ भागमें प्रदक्षिण परिमाण हो। उभयपार्श्वमें सम वा द्विगुण शोभासम्पादनानुरूप अग्र भूमिका विस्तार हो। मण्डपके आगे दो गर्भसूत्र विस्तीर्ण और चतुर्थांशसे अधिक दीर्घस्तम्भ द्वारा मुखमण्डप बनावे। पीछे इकासी पदयुक्त वास्तु करके मण्डपका आरम्भ करे। प्रतिमा प्रमाणका शुभ पिण्डिका बनाकर उसके आधे भागमें गर्भ निर्माण करे। उस गर्भके बराबर सभी भित्तियां, भित्तिके आयामके बराबर उत्सेध, भित्तिके उच्छ्रयसे दूना शिखर, शिखरसे चौगुना भ्रमणभूमि, शिखरका चौथाई भाग सामनेका मुखमण्डप, गर्भका आठवां भाग रथ निकलनेका द्वार और परिधिके छठे भागके बराबर रथ रहे। देवगृहमें तीन रथोंका रहना परमावश्यक है और तीनों रथ तीन घोड़ोंको सर्वदा लगाये रखे। वेदिकासे कुछ ऊंचेमें कलसकी स्थापना करे। प्रासादके चतुर्थांश परिमाणमें प्राकारकी ऊँचाई और पादोनपरिमिति गोपुरकी ऊंचाई होगी।

(अग्निपु०२६८अः)

विशेष विवरण प्रासाद और मन्दिर शब्दमें देखो।

**देवग्रह** (सं० पु०) भूतग्रहविशेष। जो सब मनुष्य जागते वा सोते देवताओंको देखते हैं, वे उसी समय उन्मत्त हो जाते हैं, इन्हींको देवग्रह कहते हैं।

**देवग्राम**—त्रिपुराके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह राधानगरके दक्षिणमें अवस्थित है।

**देवघट**—१ बङ्गालमें यशोहरके मध्यवर्त्ती एक गण्डग्राम। २ हिमालय पहाड़ पर स्थित देवप्रयागके निकटवर्त्ती एक प्राचीन तीर्थ। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इसका माहात्म्य वर्णित है। (हिमवत् ८।८८, ४४।१४४)

**देवघन** (हिं० पु०) बगीचोंमें लगाये जानेका एक पेड़।

**देवघर**—१ बिहार और उड़ीसेके सन्ताल परगनेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४° ३' और २४° ३८' उ० तथा देशा० ८६° २८' और ८७° ४' पू० अवस्थित है। भूपरिमाण ९५२ वर्गमील और लोकसंख्या २९७४०२ है। इसमें देवघर और मधुपुर नामक दो शहर और २३६९ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° २९' और देशा० ८६° ४२' पू० ईष्ट इण्डियन रेलवेकी कोर्ड लाइनसे चार मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या ८८३८ है। यहां २२ शिवमन्दिर हैं। जिनमेंसे वैद्यनाथका मन्दिर प्रसिद्ध है।

विशेष विवरण वैद्यनाथ शब्दमें देखो।

**देवङ्गम** (सं० त्रि०) देवं गच्छति गम खच् । देवगामी, जो देवताके पास हो।

देवचक्र (सं० क्लो०) १ यज्ञाङ्ग अभिप्लवभेद, गवामयन यज्ञके एक अभिप्लवका नाम। २ यामलोक्त देवताके भेदसे उपासनाज्ञापक चक्रभेद।

देवचन्द्र—विख्यात जैन ग्रन्थकार हेमचन्द्रके शिष्य। इन्होंने शान्तिनाथवृत्त नामक प्राकृत ग्रन्थ बनाया है। मुनिदेवसूरिने उसीको संक्षेपमें संस्कृत भाषामें प्रकाश किया है।

देवचन्द्रगणि—एक प्रसिद्ध जैन पण्डित। इन्होंने १६४८ सम्वत्में अपने शिष्य मुनिचन्द्रके लिये यमकस्तुति और उसीकी टीका रची है।

देवचर्या (सं० स्त्री०) देवानां चर्या ६ तत्। १ देवचरित। २ देवार्थ चरण होमादि।

देवचाली (सं० पु०) इन्द्रतालके छह भेदोंमेंसे एक।

देवचिकित्सक (सं० पु०) १ देवताओंके चिकित्सक, अश्विनीकुमार। २ द्वित्व संख्या, दोकी संख्या। ३ अश्विनीनक्षत्र।

देवच्छन्द (सं० पु०) देवैश्छन्द्यते आकाङ्क्ष्यते छन्द-घञ्। हारविशेष, एक प्रकारका हार। यह किसीके मतसे १०० या १०८ लड़ियोंका और किसीके मतसे ८१ लड़ियोंका होता है।

देवच्छन्दस (सं० क्लो०) देवप्रियं छन्दः टच् समासान्तः। वैदिक छन्दोभेद।

देवज (सं० पु०) देवाज्जायते जन-ड। १ देवजात, देवतासे उत्पन्न। (क्लो०) २ सामभेद। ३ कृशाश्वके भाई सूर्यवंशीय संयम नृपतिके एक पुत्रका नाम।

देवजग्ध (सं० त्रि०) देवैरद्यते इति अद-क्त जग्धादेशः। (अदोजग्धिर्ल्यप्तिकिति। पा २।४।३६) १ देवताओंसे भक्षित। (क्लो०) २ कत्तृण, सोंधिया, एक खुशबूदार घास। ३ रोहिषतृण, रोहिस घास।

देवजग्धक (सं० क्लो०) देवजग्ध-स्वार्थे कन्। कत्तृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास।

देवजन (सं० पु०) देवरूपो जनः। १ देवरूप जन, देवताके सदृश मनुष्य। देवाना जन। २ उपदेव, गन्धर्व।

देवजनविद्या (सं० स्त्री०) देवजनानां विद्या। गन्धर्वविद्या, नाच गान आदि।

देवजाति (सं० त्रि०) देवेभ्यो जातः। १ जिन्होंने देवतासे जन्म ग्रहण किया हो। (पु०) देवानां जातः। २ देवगण।

देवजामि (सं० स्त्री०) देवानां जामिरिव। १ देवबन्धु। २ देवताओंकी स्त्री।

देवजित-पञ्चास्तिकाय-टीका नामक जैन ग्रन्थके रचयिता।

देवजुष्ट (सं० त्रि०) देवैर्जुष्टं। देवसेवित, देवताको चढ़ा हुआ।

देवट (सं० त्रि०) दिव्यतीति दिव-अटन् (शकादिभ्यो अटन्। उण ४।८१) शिल्पी, कारीगर।

देवटी (सं० स्त्री०) देवं देवशब्दं अटति अतिक्रामतीति अट अण् अकन्वादित्वादलोपः गौरादित्वात् ङीष्। गङ्गाचिल्ली, एक प्रकारकी चील।

देवठान (हिं० पु०) १ विष्णु भगवान्‌का सो कर उठना। २ कार्त्तिक शुक्ला एकादशी। इस दिन विष्णु भगवान् सो कर उठते हैं, इसीसे इसका माहात्म्य माना जाता है।

देवड़ा—पञ्जाबके जव्वलपुर राजकी एक राजधानी। यह अक्षा० ३४° ७ उ० और देशा० ७७° ४४' पू० पावर नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २५० है। जहां जहां खेती होती है और नदियां बहती हैं वहीं लोगोंका वासस्थान है। यहांके राना निकटवर्त्ती पहाड़के ऊंचे शृङ्ग पर बने हुए राजप्रासादमें रहते हैं जो समुद्रपृष्ठसे ६५५० फुट ऊंचे पर अवस्थित है।

देवढ़ी (हिं० स्त्री०) ड्योढ़ी देखो।

देवतर (सं० त्रि०) अतिशयेन देवः दीप्तः देवक्रो वा तरप्। १ अत्यन्त दीप्त, बहुत चमकीला। २ अति देवक।

देवतरणी (सं० स्त्री०) राजतरणीपुष्पवृक्ष।

देवतरु (सं० पु०) देवप्रियः तरुः। १ मन्दारादि वृक्ष। स्वर्गके वृक्ष पांच माने जाते हैं—मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पतरु और हरिचन्दन। २ चैत्यवृक्ष, गांवका कोई प्रसिद्ध वृक्ष, अश्वत्थ वृक्ष, पीपल।

देवतर्पण (सं० पु०) ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके नाम ले ले कर पानी देनेकी क्रिया।

देवता (सं० स्त्री०) देवस्वार्थे तल् क्वचित् स्वार्थिका अपि प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्ते इति भाष्योक्तेः पुंस्त्वातिक्रमेण स्त्रीत्वं। देव, निर्जर।

अभी देवता कहनेसे स्वर्ग वासी अमर प्राणीका बोध होता है। ऋग्वेदके ऋषि लोग ऐसा समझते थे कि नहीं, इसमें घोर सन्देह है। कात्यायन ऋषिने ऋक्-संहिताकी अनुक्रमणिकामें लिखा है—

"यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता। तेन वाक्येन प्रतिपाद्यं यद्वस्तु सा देवता।"

जिनकी कथा या वाक्य है वही ऋषि हैं। जिनका विषय उन्हींसे ज्ञात होता है, वही देवता हैं। ऋषि-वाक्यके प्रतिपाद्य जो वस्तु है, वही देवता है।

ऋषि, छन्द और देवता इन्हीं तीन ले कर वेद बना है। जो वस्तु हम लोग सचराचर देखते हैं, चन्द्र, सूर्य, ग्रहादि, गिरि, नदी, वनस्पति आदि जिनके द्वारा वैदिक ऋषियोंने कुछ उपकार पाया है, ऋक् संहितामें वे देवता नामसे प्रसिद्ध हैं।

निरुक्तकार यास्कने देवता शब्दका ऐसा अर्थ किया है-

"दानाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता।" (७।१५)

दान और दीपनके लिये जो द्युस्थानगत हों, वही देव और देवता है।

सायणाचार्यने ऋक्-संहिताके प्रथम मन्त्रके भाष्यमें 'देव' शब्दकी ऐसी व्याख्या की है,—

"तथा देवनार्थं दीव्यति धातुनिमित्तो देवशब्द इत्येत दाम्नायते। देवनाद्वै देवोऽभूदिति तद्देवानां देवत्वमिति।"

देवनार्थ दिवधातुसे देव शब्द निकला है, इसीसे देवता नाम पड़ा है। देवनके हेतु देवता हुआ है इसीलिये देवताओंका देवत्व है। योगी याज्ञवल्क्यने लिखा है— "दीव्यते क्रीडते यस्मात् रोचते द्योतते दिवि।

तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः॥"

जो दीप्ति पाते हैं, क्रीड़ा करते हैं, स्वर्गमें शोभते हैं और द्युतिविशिष्ट हैं वे ही देवता कहलाते हैं तथा वे ही सब देवताओंसे प्रशंसित होते हैं।

देव शब्दका मूल धात्वर्थ द्योतमान् वा दीप्तिमान् है। ('द्योतनाद्देवः।' मनुटीका कुल्लूक १२।११७) आर्य ऋषियोंके सामने जो दीप्तिमान् हुए थे, पहले उन्हींको उन लोगोंने देवता माना था। अभी देव शब्दकी जैसी विशेषता है, पहले वैदिकयुगमें देवता-आख्यात प्रकृति-पुञ्जकी वैसी विशेषता आरोपित नहीं हुई थी। धीरे धीरे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिका आधिपत्य देख कर तथा इन सब प्रकृतिपुञ्जसे संसारके नित्य उपकार और नित्य प्रयोजनीयतासे मुग्ध हो ऋषियोंने उनके प्रति विशेष देवत्व आरोपित किया। देवतत्त्वका यही मूल बीज है। ऋक्-संहितामें जिन सब देवदेवियोंके नाम आये हैं उनमेंसे कुछ ये हैं;—अग्नि, वायु, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विद्वय, विश्वदेवगण, मरुत्गण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, सूर्य, विष्णु, पृश्नि, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्र, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, उशना, त्रित, त्रैतन, अहिर्बुध्न, अज-एकपात्, ऋभुक्षा, गुरुत्मान् ये सब देव हैं और सरस्वती, सूनृता, इला, इन्द्राणी, होत्रा, पृथिवी, उषा, आप्त्री, रोदसी, राका, सिनीवाली और गुङ्गू ये सब देवियां।

इतना होने पर भी देवतत्त्व सर्ववादिसम्मत नहीं हुआ। देवताओंकी संख्या और भी अस्तित्व नास्तित्वके विषयमें वैदिक ऋषियोंमें भी मतभेद था। इस विषयमें निरुक्तकार यास्कने ऐसा लिखा है—

"देवता तीन हैं, पृथ्वीमें अग्नि, अन्तरीक्षमें इन्द्र वा वायु और आकाशमें सूर्य। बाकी देवता या तो इन्हीं तीनोंके अन्तर्भूत हैं, अथवा होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता आदिके कर्मभेदके लिए इन्हीं तीनोंके अलग अलग नाम हैं। क्योंकि स्वतन्त्र भावसे उनकी स्तुति की गई और भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं।" (निरुक्त ७।५)

ऋक्-संहिताके १म, ८म और ९म मण्डलके अनेक सूक्तोंमें ३३ देवताओंका उल्लेख है।

"ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्यामध्येकादशस्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ देवासो यज्ञमिमं जुषध्वं॥"
(ऋक् १।१३९।११)

जो देवता स्वर्गमें ग्यारह, पृथ्वीमें ग्यारह और अन्तरीक्षमें भी ग्यारह हैं वे अपनी अपनी महिमासे यज्ञ सेवा करते हैं।

"ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्।
विदन्नह द्वितासनन्॥" (ऋक् ८।२८।१)

जो तीस और तीन अर्थात् ३३ देवता बर्हि (मयूर) पर बैठे थे, वे हमें अवगत हो जांय और दो प्रकारका धन दान करें।

ये ३३ देवता कौन कौन हैं ? इसके विषयमें—ऋक् संहितामें तो कोई बात नहीं लिखी है, पर शतपथ-ब्राह्मणमें इसका जो उल्लेख है वह इस प्रकार है—

"कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशत् इन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥"

(शतपथब्रा० ११।६।३।५)

८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति यही ३३ देवता हैं।

फिर ऐतरेयब्राह्मणमें ३३ सोमप और ३३ असोमप इन ६६ देवताओंका उल्लेख है।

अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश-आदित्य, प्रजापति और वषट्कार ये ३३ सोमप हैं और एकादश प्रयाज, एकादश अनुयाज और एकादश उपयाज ये ३३ असोमप। सोमपायी सोमसे तृप्त होते हैं और असोमपायी यज्ञीय पशुओंसे। (ऐतरेयब्रा० २।१८)

ऋग्वेदमें एक स्थान पर देवताओंकी संख्या ३३३९ कही गई है।

"त्रीणिशता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।"

(ऋक् ३।९।९)

तीन हजार तीन सौ तीस और नौ देवगण* अग्निकी पूजा करते हैं।

शतपथब्राह्मण (११।६।३।४), शाङ्खायनश्रौतसूत्र (८।२१।१४) आदि वैदिक ग्रन्थोंमें भी ३३३९ देवताओंका उल्लेख है। मालूम पड़ता है कि देवताओंकी इस प्रकारकी संख्याके विषयमें मतभेद देख कर ही कोई कोई ऋषि फिर देवताओंके अस्तित्वमें सन्देह कर गये हैं। ऋक् संहितामें लिखा है—

"प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभिष्टवाम ॥"

(८।१००।३)

हे जयाभिलाषी व्यक्तिवृन्द ! इन्द्र हैं, यह यदि सत्य हो, तो इन्द्रके उद्देश्यसे सत्यभूत सोमका उच्चारण करो। नेम ऋषि कहते हैं, इन्द्र नामका कोई नहीं है। किसने उन्हें देखा है ? हम लोग किसकी स्तुति करेंगे ?

इस प्रकारका सन्देह थोड़े ही दिनोंमें ऋषियोंके हृदयसे दूर हो गया था। वे जानते थे, कि देवता लोग सोमरस पान करते हैं और मनुष्योंसे भिन्न हैं।

ऋग्वेदमें स्पष्ट लिखा है—"हे असुर वरुण ! देवता हों वा मर्त्य (मनुष्य) हो तुम सबके राजा हो।" (यहां देवता और मनुष्यमें पृथकता निरूपित हुई।)

(ऋक् २।२७।१०)

ऋक् संहितामें महोच्च भाव भी प्रगट हुआ है। अन्तमें बतलाया है कि भिन्न भिन्न देवता एक परमात्माके नाम मात्र हैं।

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥"

(१।१६४।४६)

पण्डित लोग इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहा करते हैं। ये सब स्वर्गीय सुपर्ण और गरुत्मान् हैं तथा एक होने पर भी बहुतोंका बोध होता है। इसीको अग्नि, यम और मातरिश्वा कहते हैं।

"सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।"

(१०।११४।५)

सुपर्ण अर्थात् पक्षी एक ही है, बुद्धिमान् पण्डित लोग उसीको कल्पनाके बलसे अनेक बतलाते हैं।

अन्तके जो दो ऋक् उद्धृत हुए हैं वही उपनिषद् और वेदान्तप्रतिपाद्य एकात्मवादके मूल बीज हैं। पुराणमें जिन असंख्य देव देवियोंको वर्णना हैं, वे कुछ नहीं है, वे केवल एक परमात्मा वा ईश्वरकी ही महिमाव्यञ्जक रूपकको वर्णना हैं। ऋक् संहिताके उक्त दो मन्त्रोंमें उनका मूलसूत्र प्रकटित हुआ है। अधिक कहना नहीं पड़ेगा, कि देव-देवीका उपासनामूलक वर्त्तमान हिन्दूधर्म उक्त दो सूत्रोंमें प्रतिष्ठित है। मीमांसा-दर्शनके मतसे देवताओंके वास्तविक रूप वा विग्रह नहीं है। देवगण मन्त्रात्मक हैं। चतुर्थ्यन्त पदयुक्त मन्त्र ही देवता है। पौराणिक देवतत्त्व शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

मनुसंहितामें लिखा है—

* सायणाचार्यने भाष्यमें लिखा है, कि देवता केवल ३३ ही हैं, ३३३९ नाम महिमाप्रकाशक है। किन्तु ऋक् संहिताके १०म मण्डलके ५२ सूक्तमें भी इन ३३३९ देवताओंका उल्लेख है।

"ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवदानवाः।
देवेभ्यस्तु जगत् सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः॥"
(मनु ३।२०१)

ऋषियोंसे पितृगण, पितृगणसे देवदानव और देवगणसे स्थावर जङ्गमादि सारा संसार उत्पन्न हुआ है।

मनुके वचनानुसार देवताओंकी मानो एक स्वतन्त्र श्रेणी है। सभी पुराणके मतसे कश्यप ऋषि तथा अदितिसे ही देवताओंकी उत्पत्ति हुई है। फिर दाक्षिणात्यमें द्राविड़ादि अञ्चलके हिन्दुओंमें ऐसा विश्वास है, कि सत्व्यक्ति ही मर कर देवता और असत्व्यक्ति मर कर उपदेवता होते हैं।

इधर वैदिक और पौराणिक ग्रन्थोंमें देवासुर-संग्रामका परिचय मिलता है।

ऐतरेयब्राह्मणमें हम लोग सबसे पहले देव और असुर नामक दो दलोंके संग्रामका परिचय साफ साफ पाते हैं।

फिर किसीका मत है, कि देवासुरसंग्राम रूपक वर्णनामात्र है। वह प्राकृतिक शक्तिसमूहका संघर्षप्रकाशक है। ऋक्संहिताके अनेक मन्त्रोंमें देव और असुर ये दोनों शब्द एक अर्थसे प्रयुक्त तथा अनेक जगहोंमें दृश्यमान प्रकृतिपुञ्जके संग्रामरूपमें व्यवहृत होने पर भी ऋक्संहिताके किसी किसी मन्त्रमें एवं ऐतरेयब्राह्मणमें देव और असुर इन दो दलोंके परस्पर वैरभावका प्रभूत दृष्टान्त मिलता है। इस दृष्टान्तसे अनेक भाषाविद् और पुराविद् अनुमान करते हैं, कि वेदोक्त देवासुर ही संसारके प्राचीनतम सभ्य आर्यजातिके पूर्वपुरुष हैं। पारस्य और भारतवासी आर्योंके पूर्वपुरुष जब एक साथ मिलकर रहते थे, तब देवासुरमें कोई पृथकता नहीं थी। उस समयके ऋक्में देवासुरकी वर्णना एक ही भावसे की गई है। फिर जब गृह-विवाद अथवा और दूसरे दूसरे कारणोंसे देव और असुरके उपासकोंमें फूट हो गई और जब उनका परस्पर विद्वेषभाव बढ़ने लगा था, तब एक दल दूसरे दलकी निंदा करने लगा। अग्नि उपासक प्राचीन पारसिकोंने अवस्ता नामक प्राचीन धर्मशास्त्रमें देवताओंको अहिताचारी और प्रेतस्वरूप तथा देव उपासकोंको मिथ्या शठ आदि नामोंसे सम्बोधन किया है। फिर उधर भी वैदिक ऋषियोंने असुर और असुर-उपासकोंकी निन्दा करना छोड़ा नहीं।

आर्य, वेद, पारसी प्रभृति शब्द द्रष्टव्य।

आसिरीयसे जिस प्राचीनतम शिल्प-लिपिका आविष्कार हुआ है उसमें आसिरीयके लोगोंको 'असुर' बतलाया है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि उन असुरों और देवोपासकोंमें जो घोरतर संग्राम छिड़ा था; वही देवासुर संग्राम नामसे प्रसिद्ध है।

वेदमें जिन ३३ देवताओंका उल्लेख है, उन्हींसे पद्मपुराणमें ३३ कोटि देवताओंकी कल्पना की गई है। पुराणमें लिखा है—

"सदारा विबुधाः सर्वे स्वानां स्वानां गणैः सह।
त्रैलोक्ये ते त्रयस्त्रिंशत् कोटिसंख्यतयाऽभवन्॥"
(पाद्मे उत्तरखण्ड)

इस त्रैलोक्यमें देवता, उनकी स्त्री तथा उनके गण सब मिलाकर ३३ कोटि हैं।

देवताओंके गण गणदेवता शब्दमें देखो।

पुराणके मतानुसार अधिकारीके भेदसे देवताका भेद हुआ करता है। कूर्मपुराणमें लिखा है—

जिस पुरुषके जो अभिमत हैं, वे ही उनके देवता हैं। वे ही कार्य विशेष द्वारा पूजित हो कर मनुष्योंको अभीष्ट दान देते हैं। सभी जगह यह नियम है, सो नहीं; इसका विपरीत भी हुआ करता है। राजाओंके देवता अग्नि, आदित्य, ब्रह्मा और महादेव हैं, देवताओंके देवता विष्णु, दानवोंके महादेव, गन्धर्व और यक्षोंके सोम, विद्याधरोंके वाग्देवी, साध्योंके हरि, रक्षोंके शङ्कर रुद्र, किन्नरोंके पार्वती, ऋषियोंके ब्रह्मा और महादेव, मनुके विष्णु, उमा और भास्कर, ब्रह्मचारियोंके ब्रह्मा, वैखानसोंके देवता सभी है, यतियोंके देवता महेश्वर, भूतोंके भगवान् रुद्र, कुष्माण्डके विनायक और सबोंके देवता देवदेव प्रजापति हैं। ऐसा भगवान् ब्रह्माने स्वयं कहा है।

फिर देवताओंमें भी वर्णभेद बतलाया गया है। महाभारतके शान्तिपर्वमें मोक्षधर्ममें लिखा है—द्वादश आदित्य क्षत्रिय हैं, मरुद्गण वैश्य हैं, उग्र तपस्यायुक्त अश्विद्वय शूद्र हैं और आङ्गिरस देवगण ब्राह्मण है। इस

प्रकार सब देवता चार वर्णोंमें विभक्त हुए हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे—देवताओंमें केवल छः ही प्रधान हैं—

"गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
देवषट्कञ्च सपूज्य नमस्कुर्य्य विचक्षणः॥" (ब्रह्मवै०)

गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा ये ही देवषट्क हैं। इन छहोंकी पूजा और प्रणाम करना हरएकका कर्त्तव्य है।

मासविशेषसे देवताविशेषकी पूजा निर्दिष्ट है। मन्त्रमहोदधिके मतसे—

"यथा यथेष्टदेवेषु नृणां भक्तिः समेधते।
प्राप्यते तैरयत्नेन मनोऽभीष्टं तथा तथा॥
शुचौ तत्तदेह कुर्य्याद्देव प्रस्वपनोत्सवम्।
ऊर्जे तथैव देवानामुत्थापनविधिं सुधीः॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां विशेषाच्छिवपूजनम्।
आश्विनाद्यनवाहेषु दुर्गां पूज्ययथाविधि॥
गोपालं पूजयेद्विद्वान्नभः कृष्णाष्टमीदिने।
रामं चैत्र सिते पक्षे नरसिंहं प्रपूजयेत्॥
यजेच्छुक्लचतुर्थ्यान्तु गणेशं भाद्रमाघयोः॥
महालक्ष्मीं यजेद्विद्वान् भाद्रकृष्णाष्टमीदिने।
माघस्य शुक्लसप्तम्यां विशेषाद्दिननायकम्॥
या काचित् सप्तमी शुक्ला रविवारयुता यदि।
तस्यां दिनेशं सपूज्य दद्यादर्घ्यं पुरोदितम्॥
तत्तत् कल्पोदितानन्यान् देवताप्रीतिवर्द्धनान्।
विशेषान्नियमान् कृत्वा भजेद्देवमनन्यधीः॥
आषाढ़ी कार्त्तिकी मध्ये किञ्चिन्नियममाचरेत्।
देवसम्प्रीतये विद्वान् जप पूजादितत्परः॥
एवं यो भजते विष्णुं रुद्रं दुर्गां गणाधिपम्।
भास्करं भक्त्या नित्यं स कदाचिन्न सीदति॥"

'किस प्रकार इष्टदेवमें भक्ति तथा यत्न किये विना मनुष्योंको अभीष्ट लाभ हो सकता है, उसका विषय कहते हैं—ग्रीष्मकालमें पहले देवताओंका प्रस्वपनोत्सव और पीछे उनका उत्थापन करें। माघमासकी कृष्णचतुर्दशी तिथिमें शिवपूजा करे। आश्विनमासमें प्रतिपदसे ले कर नवमी तक दुर्गापूजा, श्रावणकी कृष्णाष्टमीमें गोपालपूजा, चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें रामपूजा, वैशाखकी कृष्णचतुर्दशी तिथिमें गणेशपूजा, भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें महालक्ष्मीपूजा, माघमासकी शुक्ल सप्तमी तिथिमें दिननायककी पूजा, यदि किसी शुक्लसप्तमीमें रविवार पड़ जाय तो उस वारमें गणेशपूजा करनी चाहिये। आषाढ़ और कार्त्तिकमासमें कोई नियम आचरण कर सकते हैं। देवताको खुश करनेके लिये जपपूजादिमें तत्पर हो कर यदि विष्णु, रुद्र, दुर्गा, गणेश और सूर्य इनको नित्य पूजा की जाय, तो जो पूजा करते हैं, वे कभी अवसन्न नहीं होते।'

वर्त्तमान हिन्दुओंमें कुलदेवता, इष्टदेवता, गृहदेवता, ग्राम्यदेवता, स्थानदेवता आदिकी पूजा देखी जाती है।

कुलक्रमानुसारसे जो देवता पूजित होते आ रहे हैं, वे ही कुलदेवता हैं। शिव, विष्णु, दुर्गा इनमेंसे कोई एक किसी श्रेणीके हिन्दु परिवारके कुलदेवता माने गये हैं। जो जिस देवताके मन्त्रसे दीक्षित होते हैं, वे ही मन्त्र-प्रतिपाद्य देवता इष्टदेवता हैं। घरके अधिष्ठात्री स्वरूप वास्तु पूजित होते हैं, वही गृहदेवता हैं। ग्राम्यदेवताका कोई विशेष रूपादि निर्दिष्ट नहीं है। रघुनन्दनने लिखा है—

ग्राम्यदेवताका स्थितिकाल कलिका प्रथम २००० वर्ष है। इस समयके बादसे फिर ग्राम्यदेवताका देवत्व नहीं रहता।

"कलेर्दश सहस्राणि विष्णुस्तिष्ठति भूतले।
तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्राम्यदेवता॥"

चैत्य आदि वृक्षादिके तले जिस देवताका पूजन होता है, उसीको ग्राम्यदेवता कहते हैं।

दाक्षिणात्यमें ही ग्राम्यदेवताकी अधिक प्रधानता है। वहांके निम्नश्रेणीके हिन्दूमें ही ग्राम्यदेवताके प्रति विशेष श्रद्धा है। वे सब ग्राम्यदेवता कहीं तो मूर्त्तिहीन काष्ठखण्डमें और कहीं शिलाखण्डमें पूजित होते हैं।

दाक्षिणात्यके दक्षिण और पश्चिममें ये देवता अम्मा, अम्मन् वा अम्मार तथा पश्चिम और उत्तरांशमें सट्वाइ, भैरो, मसोवा, चामुण्डा, असरा, आइ, मरियाई आदि नामसे पुकारे जाते हैं। जनसाधारण विपद् पड़ने पर

अथवा रोगसे पीड़ित होने पर उनकी पूजा करते हैं तथा उनको तृप्तिके लिये बकरे, भेड़, भैंसे आदिकी बलि देते हैं।

बौद्ध लोग भी देवताका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। उनके मतसे बुद्ध और बोधिसत्वसे निम्नश्रेणीमें देवगण और देवगणके नीचे मानव हैं। उनका कहना है, कि देवता अनेक प्रकारके हैं जिनमेंसे दिव्यावदान नामक संस्कृत बौद्धग्रन्थमें चातुर-महाराजिक, तुषित आदि देवताओंका उल्लेख है।

जो ऊपरी भागसे विचरण करते हैं, वे ये हैं—चातुर-महाराजिक देवता, तुषित, निर्माणरति, परिनिर्मित-वशवर्त्ती, परीत्ताभ, अप्रमाणाभ, आभास्वर, परीत्तशुभ, अप्रमाणशुभ, शुभकृत्स्न, अनभ्रक, पुण्यप्रसव, बृहत्फल, अवृह, अतप, सुदृश, सुदर्श और अकनिष्ठ।

जैन लोग भी बौद्धके जैसा तीर्थङ्कर केवलीको जो उनके उपास्यदेवता हैं देवाधिदेव मानते हैं। उनके मतसे देवगण इन देवाधिदेवोंको अपेक्षा पदमर्यादा तथा सभी विषयोंमें निम्न है। देवताओंके बाद मानव हैं। जैनियोंके देवता चार प्रकारके हैं—वैमानिक वा कल्पभव, कल्पातीत, ग्रैवेयक और अनुत्तर। फिर वैमानिकके १२ भेद हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, अन्तक, शुक्र, सहस्रार, नत, प्राणत, आरण और अच्युत। कल्पातीतके ८ और अनुत्तरके ५ भेद हैं।

पृथ्वीके प्राचीनतम सभी सभ्य देशोंमें एक समय भिन्न भिन्न देवदेवियोंकी उपासना प्रचलित थी। अनेक देवदेवियोंकी पूजा पद्धति तथा रूपादिको देखभाल कर किसी किसीने ऐसा कहा है, कि मिस्रदेशसे देवतत्त्वका सूत्रपात हुआ। भिन्न भिन्न देशोंमें उन्हींकी छायाकी नकल हुई थी। किन्तु यह मत समीचीनसा प्रतीत नहीं होता। वैदिक आर्योंकी नाईं दूसरी दूसरी सभ्य जातियोंमें भी देवतत्त्व आपसे आप निकला था। पर हां, यह नहीं कह सकते कि विदेशीय संश्रवमें एक भाव भावान्तरमें रूपान्तरित नहीं हुआ।

मिस्र, रोम प्रभृति शब्द देखो।

देवताकुसुम (सं० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

देवतागार (सं० क्ली०) देवतानां आगारं ६-तत्। देवगृह, देवताओंके घर।

जो कोष्ठागार, आयुधगृह और देवगृह नष्ट करता है तथा हस्ती, अश्व और रथ हरण करता है उसे राजाको चाहिये कि बिना गवाही आदि लिये विनाश कर दें।

देवतागृह (सं० क्ली०) देवतानां गृहं ६-तत्। देवताओंके आलय, देवालय।

देवताजित् (सं० पु०) देवतां जयति जि-क्विप्। १ देवविजयी असुरादि। २ भरत-पुत्र सुमतिके एक लड़केका नाम।

देवताड़ (सं० पु०) देवो दीप्तस्तालः इति लस्य ड़। १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पौधा। इसका पर्याय—वेणी, खरा, गर, जीमूत, अगरी, खरागरी, ताड़ी, आखुविषहा, आखु, विषजिह्व, महाच्छद, कदम्ब, खुज्जाक और देवताडक है। इसमें इधर उधर टहनियां नहीं निकलतीं, तलवारकी तरह दो ढाई हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ोंसे चारों ओर निकलते हैं। पत्ते कड़े होते हैं और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके मध्यका काण्ड डंडेकी तरह छः सात हाथ ऊपर निकल जाता है और इसीके सिरे पर फूलोंके गुच्छे लगते हैं। पत्तोंके रेशोंसे बहुत मजबूत रस्से बनाये जाते हैं। कोई कोई इसे रामबांस भी कहते हैं। देवो-चन्द्रार्कौ ताड़यति ताड़ि कर्मणि अण्। २ राहु। देवनाय दीपनाय ताड़यतेऽसौ ताडि कर्मणि अच्। ३ अग्नि, आग। ४ घोषकलता। ५ देवदाली वृक्ष, बेंदाल।

देवताड़क (सं० पु०) देवताड़ स्वार्थे कन्। देवताड़वृक्ष।

देवताड़ी (हिं० स्त्री०) १ देवदालीलता, बेंदाल। २ तुरई, तरोई।

देवताण्ड (सं० पु०) देवदालीवृक्ष।

देवतात (सं० पु०) तन-क्त तत एव तात स्वार्थे अण्। देवानां तातः। १ देवताओंके निमित्त विस्तृत यज्ञ। २ देवताओंके पिता, कश्यप। ३ मरीच्यादि ऋषि। ४ हिरण्यगर्भ।

देवताति (सं० पु०) देव-स्वार्थे तातिल्। देवता।

देवताधिकरण (सं० क्ली०) देवताकर्मसु तदधिकारित्वमनधिकारित्वं वा अधिक्रियते विचार्य्यतेऽत्र अधि कृ

आधारे वयुट्। यज्ञादिमें देवताओंके अधिकारित्वका अन्यतर साधक न्यायभेद।

देवताधिप (सं० पु०) देवतानां अधिपः ६-तत्। देवताओंके अधिपति इन्द्र।

देवताध्याय (सं० क्लो०) सामवेदका एक ब्राह्मण।

देवतानुक्रम (सं० पु०) देवतानां अनुक्रमः ६ तत्। देवोद्देश, देवताओंका उद्देश।

देवताप्रतिमा (सं० स्त्री०) देवतानां प्रतिमा ६-तत्। देवताओंकी प्रतिमूर्त्ति। देवताओंकी प्रतिमा गठनके अङ्गमानादि और मूर्त्ति-विषय सामान्य रूपसे वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

देवालय-द्वारका एक तृतीयांश जितना हो, वही पिण्डिकाका प्रमाण है। इसी परिमाणकी पिण्डिका बना कर इससे दूने परिमाणकी प्रतिमा बनानी चाहिये। प्रतिमाका विस्तार अपनी उंगलीके परिमाणसे बारह उंगलीका रहे और मुख आयत हो। किन्तु नग्नजित् मुनिके मतमें प्रतिमाका दैर्घ्य चौदह उंगली बतलाया है। यह द्राविड देशमें प्रचलित है। नाक, ललाट और ग्रीवाका परिमाण चार उंगली, दो कान, दो हनु और चिवुकके विस्तारका परिमाण दो उंगली होना चाहिये। ललाटका परिमाण आठ उंगली, विस्तार दो उंगली, दोनों शङ्ख दो उंगली और कर्ण, हनु तथा चिवुकका विस्तार दो उंगली रहे। दोनों भौं साढ़े पांच उंगलीकी तथा कर्णस्रोत सुन्दर रूपसे बनाना चाहिये। नेत्रान्तसे दोनों कानोंका विवर चार उंगली, अधर एक उंगली और आधेसे अधिक ओष्ठ रहना चाहिये, ऐसा वशिष्ठने कहा है। पहुंचा अर्द्धाङ्गुल तथा मुख चार अङ्गुल, नाकके अग्रभागसे उसके दोनों पुट तक दो अङ्गुल और नाकका उच्छ्राय दो अङ्गुल हो तथा यह दोनों आंखोंके मध्यस्थानमें चार अङ्गुलके अन्तर तक व्याप्त रहे। अक्षिकोष और नेत्रद्वय दो अङ्गुल; इसका तृतीयांश नेत्रतारा, पञ्चमांश दृक्तारा और अक्षिविकाश एक अङ्गुलका रहे।

एक पार्श्वसे ले कर दूसरे पार्श्व तक दश अङ्गुलके भ्रू, अर्द्धाङ्गुलकी भ्रूरेखा, दो अङ्गुलका भ्रूमध्य और चार अङ्गुलका भ्रूदैर्घ्य रहना चाहिये। भ्रूमध्यमानका विस्तार पर्द्धाङ्गल रहे, इसे केशरेखावत् बनाना आवश्यक है। नेत्रान्तमें अङ्गुली सदृश करवीर देना कर्त्तव्य है। मस्तकको विशालता ३२ अंगुलकी और प्रशस्त १४ अंगुलका होना चाहिये। ग्रीवादेश दश अंगुली विस्तीर्ण और इक्कीस अंगुली दैर्घ्य रहे। नग्नजित् मुनिके मतानुसार केशयुक्त मस्तककी लम्बाई १६ अंगुलीकी होनी चाहिये। कण्ठसे हृदय तकका परिमाण बारह अंगुलि, हृदयसे नाभि और नाभिसे मेढ्रदेश तक भी उसी परिमाणका होना चाहिये। दोनों ऊरु और जङ्घा चौबीस अंगुलीका, जानु और पिच्छ चार अंगुलिका, दोनों गुल्फ भी चार अंगुलिका, दोनों पद १२ अंगुलि दीर्घ और ६ अंगुलि प्रशस्त, दोनों पादाङ्गुष्ठ ३ अंगुल प्रशस्त और पांच अंगुल दीर्घ तथा पादतर्जनीकी लम्बाई ३ अंगुलिकी होनी चाहिये। अवशिष्ट सभी पदांगुलीकी क्रमशः अष्टांश कम करके बनाना चाहिये। १।० उंगली अंगुलका उत्सेध और अंगुष्ठका चतुर्थ भाग ही अंगुष्ठ नखका परिमाण रहे। इसमें किसी किसीका मत इस प्रकार भी है—एक अंगुलिका परिमाण चतुर्थ भाग कम और अन्य सभी अंगुलियां एक उंगली, वा आधी उंगली अथवा उससे भी कमकी होनी चाहिये। जङ्घाके अग्रभागकी लम्बाई १४ उंगली और चौडाई ५ उंगलीकी होनी चाहिये। जङ्घाका मध्यभाग सात उंगलीका रहे और उसकी लम्बाई परिणाहसे तिगुनी तथा उसका वेध सात उंगलीका हो। जानुवेध आठ उंगली और परिणाह २४ उंगलीका होना चाहिये। चतुर्दश अंगुली परिमित विपुल दोनों उसके मध्यदेशको परिधि ऊरुसे दूनी अर्थात् २८ अंगुलकी, अष्टादश अंगुल परिमित कटिदेशको परिधि ४ अंगुलकी और नाभिका वेध और प्रमाण १ अंगुलका होना चाहिये। नाभिमध्यके साथ दोनों स्तनोंके मध्य परिणाहका परिमाण २४ अंगुली और ऊर्ध्व १६ अंगुलि, दोनों कच ६ अंगुलि, स्कन्धदेश ८ अङ्गुलि और बाहु तथा दोनों प्रबाहुका परिमाण १२ अङ्गुलि, बाहु ६ अङ्गुलि विस्तृत और प्रतिबाहु चार अङ्गुलि परिमाणका होना चाहिये। दोनों बाहुमूलकी लम्बाई १६ अङ्गुलिकी और आगेके दोनों हाथोंकी लम्बाई बारह अङ्गुलिको होनी चाहिये।

करतलका विस्तार ६ अङ्गुली और दैर्घ्य ७ अङ्गुली,

मध्यमा ५ अङ्गुली, प्रदेशिनी अङ्गुलीका परिमाण मध्याङ्गुलिसे पर्वार्द्धसे कम, अनामिका तर्जनीके बराबर और कनिष्ठाका परिमाण अनामिकासे एक पर्व कम रहना चाहिए। अंगुष्ठमें दो पर्व और अन्यान्य अंगुलियोंमें ३ पर्व तथा उनके नखका परिमाण पर्वसे आधा होना चाहिए। देशानुरूप भूषण, वेश, अलङ्कार और मूर्त्ति द्वारा प्रतिमाको लक्षणयुक्त करना चाहिए।

देवप्रतिमा १०८ अंगुलिकी होनेसे उत्तम, ८६ होनेसे मध्यम और ८४ होनेसे अधम समझी जाती है। भगवान् विष्णुको द्विभुज, चतुर्भुज वा अष्टभुज बना कर उनके वक्षस्थलको श्रीवत्साङ्कयुक्त और कौस्तुभमणसे भूषित करना चाहिए। उनकी आकृति अतसी पुष्पवर्णकी तरह श्यामवर्ण, पीतवस्त्र परिहित, प्रसन्नमुख, कुण्डल और किरीटधारी तथा उनकी गला, वक्षस्थल, स्कन्ध और दो भुजाएं होनी चाहिए। इस विष्णु प्रतिमाके दाहिने हाथोंमें यथाक्रम खड्ग, गदा, शर और चौथे हाथमें शान्ति और बायें हाथोंमें कार्मुक, खेटक, चक्र और शङ्ख देना चाहिए। नारायणको यदि चार भुजा देनी हो, तो दाहिने पार्श्वके एक हाथमें शान्तिप्रद और दूसरे हाथमें गदाधर तथा बायें पार्श्वके हाथोंमें शङ्ख और चक्र देना उचित है। लेकिन द्विभुज करते समय दाहिने हाथमें शान्ति और बायें हाथमें शङ्खका रहना आवश्यक है। भक्त लोगोंको इसी प्रकार विष्णुकी प्रतिमा बनानी चाहिए।

बलदेवकी शङ्ख, चक्र और मृणालकी नाईं गौरवर्ण कलेवरविशिष्ट, एक कुण्डलधारी, मदविभ्रमलोचन और हलधारी बनाना कर्त्तव्य है।

कृष्ण और बलदेवके बीच एक अनंशा नामकी देवी प्रतिमा बना कर उस देवीकी कटि संस्थित और उनके हाथमें पद्म दे। उस देवीके चतुर्भुजा होने पर उसके बायें दो हाथोंमें पुस्तक सहित पद्म और दाहिने दो हाथोंमें बरद और अक्षसूत्र रहे। अष्टभुजा देवीके बायें सभी हाथोंमें कमण्डलु, धनु, पद्म और शस्त्रयुक्त तथा दाहिने हाथोंमें वर, शर, दर्पण और अक्षसूत्र देना चाहिये। साम्ब गदाधारी, प्रद्युम्न चापधारी और सुन्दर रूप विशिष्ट हों, तथा इनकी स्त्रियोंको भी खेटक और निस्त्रिंशधारिणी बनावें। ब्रह्मा कमण्डलुधारी, चतुर्मुख और पद्म संस्थित हों। कार्त्तिकेयको कुमाररूपधारी, शक्तिधर और मयूर चिह्नित बनावें। शुक्लवर्ण इन्द्रके हाथमें वज्र, और तिर्यक्भावापन्न ललाट, वाहन चतुर्दन्त ऐरावत हो और उनके तीन नेत्र हों। महादेवके मस्तक पर चन्द्रकला, वृषध्वज, ऊपरमें तीसरा नेत्र, बाईं ओर शूल, धनु और पिनाक रहे तथा गिरिजाकी उमाका अर्द्धाङ्ग बनाना चाहिए। बुधके चरण और हाथोंमें पद्म रहे उनकी मूर्त्ति प्रसन्न और केश नीले रंगका हो तथा वे पद्मासन पर बैठे हों। अर्हत्‌की आजानुलम्बित बाहु, श्रीवत्साङ्कयुक्त, प्रशान्तमूर्त्ति, दिग्वसन, तरुण और रूपवान् बनाना चाहिये।

रविकी नाक, ललाट, जङ्घा, ऊरु, गण्ड और वक्षः उन्नत रहे, किन्तु पदसे ले कर वक्षभाग तक छिपा रहे तथा वे औत्तरिक वेषधारी हों। उनके हाथोंमें पद्म, माथे पर मुकुट तथा वे भ्रमणकारी ग्रहोंसे परिवृत हों; उनके गलेमें हार और कुण्डल द्वारा वदन भूषित हो। जो सुवर्णके जैसा द्युतिशाली मुख, कंचुक द्वारा गुप्त देह, स्मित और प्रसन्नमुख तथा रत्नकी उज्ज्वलप्रभा मण्डल-विशिष्ट सूर्यकी प्रतिमा बनाते हैं उन्हें अनेक प्रकारके मङ्गल होते हैं। देवप्रतिमा यदि एक हाथके परिमाणकी हों, तो सौम्या, दो हाथकी होनेसे धनदायिनी, तीन वा चार हाथकी होनेसे क्षेम और सुभिक्षका कारण होती हैं। देवप्रतिमाके अधिक अङ्ग होनेसे कर्त्ताको नृपभय, हीनाङ्गी होनेसे अमङ्गल, चीणोदरी होनेसे क्षुद्भय और कृश होनेसे उसका अर्थनाश होता है।

प्रतिमा यदि शस्त्रपात द्वारा क्षत और बाईं ओर अवनत हों, तो कर्त्ता तथा उसकी स्त्रीका मरण एवं दाहिनी ओर भी अवनत होनेसे उसकी मृत्यु अवश्य होती है।

प्रतिमाकी दृष्टि ऊर्ध्वगत होनेसे कर्त्ता अन्धा और अधोमुखी होनेसे वह सर्वदा चिन्तित रहता है। इस सूर्यप्रतिमाके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया, सभी देवप्रतिमाके विषयमें भी वैसा ही समझना चाहिये।

जिससे पूर्वोक्त दोष न होने पावे, उसी प्रकार विशेष-सावधानीसे देवप्रतिमा बनानी चाहिए।

लिङ्गको वृत्तपरिधिको सूत्र द्वारा दैर्घ्य परिमित करके उसे तीन भागोंमें विभक्त करे। उसका एक भाग मूलका परिमाण हो। किन्तु मूल चौकोण रहे, उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। दूसरे भागमें अष्टास्रिके मध्य और तीसरे भागमें ऊर्ध्वस्थल बनाना चाहिए। लिङ्गका निचला चौकोण भाग पिण्डिका छिद्रके बीच इस प्रकार विन्यस्त रहे कि वह गर्त्तसे ले कर पिण्डिकाके उच्छ्राय भाग तक चारों ओर दीख पड़े। उक्त लिङ्गके कृशदीर्घ होनेसे वह देशनाशक, पार्श्वहीन होनेसे पुरनाशक एवं क्षतमस्तक होनेसे सबोंका अनिष्टकर होता है।

मातृगणको स्वनाम दैवताके अनुरूप चिह्नयुक्त करना कर्त्तव्य है। सूर्यपुत्र रेवन्त अश्वारूढ़, मृगयाक्रीडादियुक्त, महिषारूढ़ और वरुणपाशधारी तथा हंसारूढ़; कुवेर नरवाहनारूढ़, वृहत् कुक्षियुक्त और सुन्दर किरीटधारी है। प्रथमाधिपति गणेश गजमुख, प्रलम्ब जठर, कुठारधारी, एकदन्त तथा मूलक कन्द और सुनील दल कन्द धारणकारी हैं। ( वृहत्स० ५८ अ० )

अग्निपुराणमें देवप्रतिमाका लक्षण इस प्रकार लिखा है—भगवान् नारायणने जो मत्स्यावतार धारण किया था, उस मत्स्यका आकार प्राकृत मत्स्यके जैसा; कूर्मका आकार कूर्मके जैसा; वराहका आकार मनुष्यके जैसा अङ्गप्रत्यङ्गविशिष्ट हो, हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हो, दाहिने और बायें पार्श्वमें शङ्ख, लक्ष्मी वा पद्म और श्री हो तथा चरणतलमें पृथिवी और अनन्त हो।

नृसिंहका वदन व्यादित, वाम ऊरुमें दानव क्षत विक्षत, गलेमें माला हाथमें चक्र और गदा है। इसी अवस्थामें वे दैत्यपतिका वक्ष विदारण कर रहे हैं।

वामनकी आकृति ह्रस्व, मस्तक पर छत्र, हाथमें दण्ड और चार बाहु हैं। परशुरामावतारके हाथमें सशर शरासन, खड्ग और परशु है। रामावतारमें दो भुजा है और उन दो भुजाओंमें धनु, शर, खड्ग और शङ्ख सुशोभित है। बलरामको चार बाहु लाङ्गल और गदासे सुशोभित है। इनमेंसे बायें हाथोंके ऊपरके हाथमें लाङ्गल, नीचेमें सुशोभन शङ्ख और दाहिने हाथोंके ऊपरके हाथमें मूषल और नीचेके हाथमें चक्र है।

भगवान् बुद्धकी मूर्त्ति अत्यन्त शान्त, कान लम्बे, अङ्ग गौरवर्ण, परिधान सुन्दर वस्त्र, आसन ऊर्ध्व पद्म है। वे वर और अभयदान दे रहे हैं। भगवान् कल्किको मूर्त्ति ब्राह्मणकी है। वे घोड़ेके ऊपर बैठे हुए हैं, हाथमें धनु, तून, खड्ग, शङ्ख, चक्र और शर है। दक्षिणोर्ध्वमें गदा, वामोर्द्ध्वमें चक्र, दोनों पार्श्वमें ब्रह्मा और महेश्वर हैं, इसी प्रकार वासुदेवको मूर्त्ति बनानी चाहिये।

चण्डीके वीस हाथ हैं, जिनमेंसे दाहिने हाथोंमें शूल, असि, शक्ति, चक्र, प्रास, खेट, आयुध, अभय, डमरू और शक्तिका तथा बायें हाथोंमें नागपाश, खेटक, कुठार, अङ्कुश, धनु, घण्टा, ध्वज, गदा, आदर्श और मुद्गर हैं। कहीं कहीं चण्डीके दश हाथ भी लिखे हैं। उनके नीचे छिन्नमूर्द्धा पतित महिष है। क्रोधसे भर कर उनके हाथोंमें अस्त्र शोभते हैं। उस महिषके गलेसे एक पुरुष निकला हुआ है, जिसके हाथमें शूल है, मुखसे रक्त वमन हो रहा है तथा उसे रश्म और माला है, दोनों आँखें लाल हैं, गला पाशबद्ध है और वह सिंहसे आक्रान्त है। चण्डीका दाहिना चरण सिंहके कन्धेपर और बायां पैर असुरकी पीठ पर है। ये त्रिनेत्रा और सशस्त्रा हैं।

चण्डीकी एक और मूर्त्ति है जिसे अठारह बाहु हैं। इनमेंसे दाहिने हाथोंमें मुण्ड, खेटक, आदर्श, तर्जनी, चाप, ध्वज, डमरू और पाश है तथा बायें हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अङ्कुश, शर, चक्र और शलाका है। अवशिष्ट मूर्त्तियोंके १६ बाहु हैं। रुद्रचण्डादि नौ मूर्त्तिके हाथोंमें डमरू और तर्जनी छोड़ कर उल्लिखित सभी अस्त्र हैं। रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका और उग्रचण्डा इनका वर्ण यथाक्रम रोचनाभ, अरुण, असित, नील, शुक्ल, धूम्र, पीत और श्वेत है। ये सभी सिंहके ऊपर बैठी हुई मुष्टि द्वारा महिष और उसके ग्रीवा सम्भूत शस्त्रशाली पुरुषका कच (बाल) ग्रहण कर रही हैं: इनका नाम नवदुर्गा है। ललिताके बायें हाथमें स्कन्ध और मस्तक तथा दाहिने हाथमें दर्पण है। लक्ष्मीके दाहिने हाथमें पद्म और बायें हाथमें श्रीफल है। सरस्वतीके हाथमें पुस्तक, अक्षमाला और वीणा है। जाह्नवी के हाथमें कुम्भ और पद्म है, उनका वर्ण श्वेत और

आसन मकर है। तुम्बुरु शुक्ल वर्ण और शूल तथा वीणा हाथमें ले कर माताके पुरोभागमें वृष पर आरूढ़ हैं। गौरी चतुर्मुखी और ब्रह्मचारिणी हैं, हाथमें अक्षमाला शोभती है। शाङ्करी श्वेतवर्णा और हंसगामिनी हैं, बायें हाथोंमें कुण्ड और अक्षपात्र तथा दाहिनेमें शर और चाप है। कौमारी द्विभुजा और रक्तवर्णा हैं, हाथमें शक्ति हैं, शिखिपृष्ठ पर बैठी हुई हैं। वाराही दण्ड, शङ्ख, असि और गदा हाथमें लिए महिषपृष्ठ पर बैठी हैं। बायें हाथमें चक्र और पार्श्वमें गदा पद्मधारिणी लक्ष्मी विराज कर रही हैं। इन्द्राणी सहस्रलोचना हैं, बायें हाथमें वज्र है।

चामुण्डाके तीन नेत्र हैं, देहमें मांस नहीं है, अस्थि-चर्मसार है, केश ऊर्ध्वग है, उदर क्षश है, परिधान द्वीपिचर्म है, बायें हाथमें कपाल और पट्टिश है, दाहिने में शूल और कर्त्तरी है, अस्थि भूषण है और आसन शवका है। यक्षिणीके लोचन स्तब्ध और दीर्घ हैं, शाकिनीकी दृष्टि वक्र और अप्सराओंके नेत्र रक्त और पिङ्गलवर्ण हैं, शरीर सौन्दर्यसे पूर्ण है। द्वारपाल नन्दीश्वरके हाथमें अक्षमाला और त्रिशूल है।

( अग्निपु० ८८ अ० )

देवप्रतिमाको नगरकी ओर स्थापित करना चाहिये। पूर्वकी ओर इन्द्रका, अग्निकोणमें अग्निका, दक्षिणकी ओर मातृका, भूतसमूह, यम और चण्डिकाका नैऋतमें पितृदेवताओंका, वारुणमें वरुणादिका, वायव्यमें वायु और नागका, सौम्यमें यक्ष और गुह्यका, ईशानमें चण्डीश्वर और महादेवका, सब दिशाओंमें विष्णुका और मध्यभागमें ब्रह्माका मन्दिर बनाना चाहिए। देवालयका विशेष सावधानीसे निर्माण कर उसमें देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

(अग्निपु० ८८ अ० )

अग्निपुराणमें अनेक देवप्रतिमाके लक्षण लिखे गये गये हैं। विस्तारके भयसे उनका उल्लेख यहां नहीं किया गया। हेमाद्रि-व्रतखण्डमें, विष्णुधर्मोत्तरमें और हयशीर्षपञ्चरात्रमें अनेक देवताओंके मूर्त्तिलक्षण लिखे हुए हैं। यहां पर सभी लक्षण न लिख कर केवल उन्हीं सब देवताओंके नाम दिये गये हैं। गणेश, सरस्वती ( मूर्त्ति चतुर्भुजा और सर्वाभरणविभूषिता हैं, दाहिने हाथमें पुस्तक और अक्षमाला तथा बायेंमें वीणा तथा कमण्डलु है ), लक्ष्मी, महालक्ष्मी, भद्रकाली, चण्डिका, दुर्गा, नन्दा, अम्बा, सर्वमङ्गला, कालरात्रि, ललिता, ज्येष्ठा, गौरी, भूतमाता, सुरभि, योगनिद्रा, मातृगण, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा, नान्दीमुख मातृगण (गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवमाता, स्वाहा, स्वधा, धृति, पुष्टि, तुष्टि, आत्मदेवता, कुलदेवता ये सब नान्दीमुख मातृगण है), नवदुर्गा, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकर्णिका, बलविकर्णिका, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी, मनोन्मनी, कृष्णा, उमा, पार्वती, महाकाली, वारुणी, चामुण्डा, शिवदूती, कात्यायनी, अम्बिका, योगीश्वरी, भैरवी, रम्भा, शिवा, कीर्त्ति, सिद्धि, ऋद्धि, क्षमा, वैष्णवी, ऐन्द्री, याम्या, दीप्ति, रति, श्वेता, भद्रा, मङ्गला, जया, विजया, काली, घण्टाकर्णा, जयन्ती, दिति, अरुन्धती, अपराजिता, कौमारी और चतुःषष्टि योगिनी हैं। मयदीपिकाके मतसे योगिनीयोंके नाम ये हैं—अक्षोभ्या, रूक्षपर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया, क्षेमा, वाला, लीला, लया, लोला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला, हुताशना, विशालाक्षी, हुङ्कारा, वड़वामुखी, हाहारवा, महाक्रूरा, क्रोधना, भयानना, सर्वज्ञा, तरला, तारा, कृष्णा, हयानना, रससंग्राही, शवरा, तालुजिह्विका, रक्ताक्षी, सुप्रसिद्धा, विद्युज्जिह्वा, करङ्किनी, मेघनादा, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी, चन्द्रावली, चन्द्रहासा, वरप्रदा, प्रपञ्चिका, प्रलयान्ता, शिशुवक्त्रा, पिशाची, पिशिताशया, लोलुपा, धमनी, तपनी, वामनी, विकृतानना, वायुवेगा, वृहत्कुक्षि, विकृता, विश्वरूपिका, यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्गा, यमान्तिका, विड़ाली, रेवती, पूतना और विजयन्तिका।

आदित्यपुराणमें इन सब देव-मूर्त्तियोंका उल्लेख पाया जाता है—ब्रह्मा, प्रजापति, लोकपाल, विश्वकर्मा, धर्म, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, धनुर्वेद, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, पञ्चरात्र, पाशुपत, पातञ्जल, साङ्ख्य, अर्थशास्त्र,

नारद मुनि, भृगु, अङ्गिरा, विष्णु, लोकपाल विष्णु, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, काम, साम्ब, देवकी, यशोदा, गोपाल, बुद्ध, कल्कि, नर-नारायण, हरि, हयग्रीव, कपिल, व्यास, वाल्मीकि, दत्तात्रेय, धन्वन्तरि, जलशायी, गरुड, रुद्र, मृत्युंञ्जय, अर्द्धनारीश्वर, दक्षिणामूर्त्ति, उमामहेश्वर, हरिहर, विश्वेश्वर, रुद्रभेद, एकपाद, अहिर्बुध्न, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, जयन्ता, अपराजिता, स्कन्द, भैरव, महाकाल, नन्दि, वीरभद्र, ज्वर, वसु, ध्रुव, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास, द्वादशादित्य, धातु, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सूर्य, त्वष्टा, विष्णु, ४८ मरुत्, रेवन्त, यक्ष राक्षसादि, गन्धर्व, वासुकि, तक्षकादि, पितृगण, सभी विश्वदेव, सप्तसमुद्र, द्वीपादि दिक्पति, अग्नि, यम, वरुण, वायु, धनद, आकाश, ध्रुव, नवग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, राशि, काल, मुहूर्त्त, सित, अजप, आयभट, सावित्र, वैराज, गन्धर्व, अभिजित, रौहिणेय, बल, विजय, सम्भ्रम, वरुण, सुभग, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, अव्यय, सर्वजित्, देय, मन्मथ, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, प्लव आदि अनेक देवताओंका उल्लेख है। इन सब देवप्रतिमाकी यथाविधान प्रतिष्ठा करनेसे धर्म अर्थ लाभ होते हैं। प्रतिमा-लक्षण तत्तत् शब्दमें देखो।

**देवताप्रतिष्ठा** (सं० स्त्री०) देवताना प्रतिष्ठा ६-तत्। देवताओंकी प्रतिष्ठा। देवताओंको विधिके अनुसार प्रतिष्ठा करनेसे देवप्रतिमामें देवत्व आ जाता है। देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा किये बिना पूजादि नहीं होता। पहले देवमूर्त्तिका निर्माण कर पीछे यथाविधि प्रतिष्ठा करते हैं।

"सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा।
शैलदारुमयी वापि लौहशङ्खमयी तथा॥
रीतिका धातुयुक्ता च ताम्रकांस्यमयी तथा।
शुभदारुमयी वापि देवतार्च्चा प्रशस्यते॥"

(प्रतिष्ठातत्त्व)

सुवर्ण, रजत, ताम्र, रत्न, पाषाण, दारु, लौह, शङ्ख, रीतिका और कांस्य द्वारा देवप्रतिमा बना कर प्रतिष्ठा करते हैं। इन सब प्रतिमाओंकी प्रासादमें प्रतिष्ठा करनेसे अधिक शुभ होता है। प्रतिमामें देवत्वकी कल्पना नहीं करनेसे साधकोंको उपासनामें व्याघात पहुंचता है। इसीसे चैतन्यस्वरूप, अद्वितीय, अशरीरी ब्रह्मके उपासकोंके कार्यके लिये रूपकी कल्पना की जाती है।

"चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥"
'रूपकल्पना रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यंशादि कल्पना।'

(देवप्रतिष्ठातत्त्व)

स्वर्णज प्रतिमाको प्रतिष्ठा करनेसे मुक्तिलाभ और तेजोनिर्मित दारुनिर्मित तथा रैत्तिकी-प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनेसे शुभ होता है। देवप्रतिमाकी तरह शालग्रामादि शिला और शिवलिङ्गादिकी भी प्रतिष्ठा करनी होती है। ज्योतिषोक्त दिनमें तथा कालशुद्धिमें प्रतिष्ठा करनेका विधान है। मलमासादि अशुभकालमें प्रतिष्ठा नहीं होती। प्रतिष्ठा देखो।

**देवतामणि** (सं० पु०) महाभेद।

**देवतामय** (सं० त्रि०) देवतात्मक देवता-मयट्। १ देवतात्मक, देवतास्वरूप। (पु०) २ हिरण्यगर्भरूप देवताभेद।

**देवतायतन** (सं० क्ली०) देवतानां आयतनं ६-तत्। देवगृह, देवालय।

**देवतालय** (सं० पु०) देवतानां आलयः ६-तत्। देवगृह।

**देवतावेश्मन्** (सं० क्ली०) देवतानां वेश्म ६-तत्। देवगृह, देवालय।

**देवतिथि** (सं० पु०) पुरुवंशीय अक्रोधनके एक पुत्रका नाम।

**देवतिलक**—कल्याणमन्दिरस्तोत्रके टीकाकार।

**देवतीर्थ** (सं० क्ली०) १ पवित्र तीर्थभेद। २ देव पूजाका उपयुक्त समय। ३ अंगुलिका अग्रभाग, अंगूठेको छोड़ उँगलियोंका अगला भाग जिससे हो कर संकल्प या तर्पणका जल गिरता है।

**देवत्त** (सं० त्रि०) देवता कर्त्तृक दत्त, जो देवतासे दिया गया हो।

**देवत्य** (सं० त्रि०) देवसम्बन्धीय, देवताका।

**देवत्या** (सं० पु०) पक्षिभेद, वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका पक्षी।

**देवत्रा** (सं० अव्य०) देवाय देयं करोति कर्मणि देवे

वाच.। १ कर्णादि विषयमें देवताको देने योग्य। २ देवताधीन। (पु०) देयं वन्दे देवे रमे वा द्वितीयान्तात् सप्तम्यन्तात् न देवशब्दात् त्रा। ३ वन्दनादि कर्मयुक्त देवता। ४ रमणविषय देवता। (त्रि०) देवान् त्रायते त्रा-क। ५ देवता-रक्षक।

देवत्रात—आश्वलायन श्रौतसूत्रके एक भाष्यकार। निर्णयसिन्धु और संस्कारकौस्तुभमें यह भाष्य उद्धृत हुआ है।

देवत्रयी (सं० पु०) ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस तीन देवताओंका समूह।

देवत्व (सं० क्लो०) देवस्य भावः भावे त्व। देवताका भाव, देवताका धर्म।

देवदग्ध (सं० क्लो०) रोहिष तृण, रोहिस घास।

देवदण्डा (सं० स्त्री०) देवात् मेघात् दण्डो यस्याः। नागवला, गँगेरन।

देवदण्डोत्पला (सं० स्त्री०) नागवला।

देवदत्त (सं पु०) देवा एनं देयासुरिति मंज्ञायां (क्तिच् क्तौ च संज्ञायां। पा ३।३।१७४) १ मंज्ञा शब्द प्रतिपाद्य नरभेद, जिस जगह नामादि मालूम न हो, उस जगह देवदत्त यही शब्द प्रयोग किया जाता है, जैसे देवदत्त प्रस्तुत करता है।

जिस तरह ब्राह्मण कम्बलमें ब्राह्मणार्थ नहीं है, उसी तरह देवदत्तादि वाक्य निरर्थक अर्थात् इसका कोई अर्थ नहीं है। २ वह सम्पत्ति जो देवताके निमित्त दान की गई हो। ३ देहस्थित जृम्भनकर वायुभेद, शरीरकी पांच वायुओंमेंसे एक जिससे जँभाई आती है। ४ अर्जुनके एक शंखका नाम। ५ अष्टकुल नागोंमेंसे एक। (त्रि०) देवेन दत्तः ३-तत्। ६ देवलब्ध, जो देवतासे दिया गया हो। ७ जो देवताके निमित्त दिया गया हो।

देवदत्त—शाक्यवंशीय एक राजकुमार, शुद्धोदनका भतीजा। जिस प्रकार दुर्योधन युधिष्ठिरादिके शत्रु थे, उसी प्रकार देवदत्त भी शाक्यबुद्धके घोर ज्ञातिशत्रु रहे। जिस जिस बौद्ध ग्रन्थमें बुद्ध शाक्यसिंहका विवरण है, उसी उसी ग्रन्थमें देवदत्तके भी अनेकों परिचय मिलते हैं। बुद्धके साथ लड़कपनसे ही पाले पोसे जाने पर भी तेजःवीर्य विद्याबुद्धि सभी विषयोंमें शाक्यसिंहको बढ़ा चढ़ा देख कर देवदत्त बहुत जलते थे। पहले इन्होंने यशोधरासे विवाह करनेकी इच्छा की थी, किन्तु यशोधराने उन्हें पसंद न किया और वे सिद्धार्थकी अङ्कलक्ष्मी हो गईं। इस पर देवदत्त बहुत बिगड़े और उनका अनिष्ट करनेमें लग गये। किस प्रकार बुद्धका अनिष्ट कर सकते, वे हमेशा यही मौका ढूंढने लगे। मगधराज विम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु देवदत्तके परम मित्र थे। कल्पद्रुमावदानमें लिखा है, कि अजातशत्रुने अपने मित्र देवदत्तकी बातमें पड़ कर अपने पिता बिम्बिसारको मार डाला था। फिर अवदानशतकमें भी एक जगह लिखा है, कि जब बुद्ध जेतवनमें रहते थे, तब दुर्वृत्त देवदत्तने बहुतसे घातकोंको उन्हें मार डालनेके लिये भेजा था; किन्तु वे उनका बाल बाँका भी कर न सके। देवदत्त और अजातशत्रुने मिल कर बुद्ध मतके विरुद्ध कई एक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये थे। भद्रकल्पावदानमें लिखा है, कि सिद्धार्थके संसारत्याग करने पर उनकी प्रियतमा भार्या यशोधराको पानेके लिये देवदत्तने उन्हें बहुत प्रलोभन दिया था। पर जब उनकी इच्छा पूरी न हुई, तब वे उन्हें मार डालनेके लिये भी उद्यत हो गये थे।

जो कुछ हो, सिद्धार्थके विरुद्ध इन्होंने जितनी चालें चलाईं सब निष्फल हुईं। इनके मित्र अजातशत्रु भी बुद्धसे दीक्षित हुए थे। पृथ्वी इस दुर्वृत्त देवदत्तको और अधिक दिन रख न सकी, एक दिन वह विदीर्ण हो हो गई। देवदत्तको नरककी यन्त्रणा भुगतनी पड़ी। बौद्धोंके अनेक अवदान ग्रन्थोंमें लिखा है, कि बुद्ध जितनी बार उत्पन्न हुए थे, उतनी बार देवदत्तने उनका शत्रु हो कर जन्मग्रहण किया था।

ब्रह्मदेशीय बौद्ध लोग देवदत्तको ही योशुखृष्ट मानते हैं। फिर श्यामवासियोंका विश्वास है, कि देवदत्त यूरोपके एक देवता हैं।

देवदत्त—१ एक हिन्दी-कवि। शिवसिंहसरोजमें लिखा है कि इनका बनाया ललितकाव्य प्रसिद्ध है। सं० १७०५ में ये विद्यमान् थे।

२ ये भी एक हिन्दीके कवि थे। सं० १७७२ में इनका जन्म हुआ था। इनका बनाया 'योगतत्त्व' नामक एक ग्रन्थ है।

३ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने सं० १८१८ में

काश्मीरके महाराज कुमार व्रजराजके कहनेसे द्रोणपर्व नामक एक ग्रन्थ लिखा।

४ एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि। ये इटावाके रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म-संवत् १७२० में हुआ था और सं० १८०२में इनका देहान्त होना अनुमान-सिद्ध है। ये केवल १६ वर्षकी बाल्यावस्थासे ही उत्कृष्ट कविता करने लगे थे। इनको कभी कोई उदार आश्रय-दाता नहीं मिला और इसीकी खोजमें अथवा अन्य किसी कारणसे ये प्रायः समस्त भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्त घूमे। इसका प्रभाव इनकी कविता पर बहुत ही अच्छा पड़ा और प्रत्येक स्थानके निवासियोंका इन्होंने सच्चा वर्णन किया। अपने समस्त आश्रयदाताओंमें भोगी-लालका हाल इन्होंने सबसे विशेष श्रद्धायुक्त लिखा। कोई कोई तो इन्हें ५२ ग्रन्थोंका और कोई ७२ ग्रन्थोंका रच-यिता बतलाते हैं। जो कुछ हो, इनके बनाये कुछ ग्रन्थोंके नाम नीचे देते हैं—भावविलास, प्रेमतरङ्ग, सुखसागर-तरङ्ग, सुजानविनोद, काव्यरसायन, तत्त्वदर्शनपचीसी, रसानन्दलहरी, देवमायाप्रपञ्चनाटक, सुमिलविनोद प्रेमचन्द्रिका और नीतिशतक।

इनकी कवितामें उत्तम छन्द बहुतायतसे पाये जाते हैं। इनकी भाषा शुद्ध व्रजभाषा है और वह भाषा-सम्बन्धी प्रायः सभी आभूषणोंसे सुसज्जित है। इन्होंने तुकान्त भी बड़े ही मनोहर रखे हैं।

५ जैन मतानुसार सूर्यके एक पुत्र।

६ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इन्होंने संस्कृत भाषामें महालाघवप्रकाश नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

७ शृङ्गाररसविलास नामक अलङ्कार-ग्रन्थके रच-यिता।

८ गुर्जरवासी हरिके पुत्र। इन्होंने धातुरत्नमाला नामक संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ लिखा है।

देवदत्तक (सं० पु०) देवदत्तो मुख्य एषां इति कन्। देवदत्त-प्रधानक।

देवदत्त बाजपेयी—एक हिन्दी कवि। ये लखनऊ जिलेके पुरन्दर नामक ग्राममें रहते थे।

देवदत्त शास्त्री—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म संवत् १९०८ को कानपुरमें हुआ था। इन्होंने वैशेषिकदर्शन-भाष्य और ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिकेन्दुपराग नामक दो ग्रन्थ लिखे।

देवदत्ताग्रज (सं० पु०) देवदत्तस्य अग्रजः। शाक्य बुद्ध।

देवदर्श (सं० त्रि०) देवं पश्यति दृश-अण्। १ देवता-दर्शक, देवताका दर्शन करनेवाला। (पु०) २ ऋषि-भेद, एक ऋषिका नाम।

देवदर्शन (सं० त्रि०) देवं पश्यति दृश-ल्युट्। १ देव-दर्शक। (पु०) २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। (क्ली०) ३ देवताका दर्शन।

देवदर्शिन् (सं० पु०) देवदर्शनप्रोक्तं अधीयते इति देव दर्श-णिनि। वह जो देवदर्श ऋषिप्रोक्त शास्त्र अध्ययन करते हैं।

देवदाली (सं० स्त्री०) देव शोधने भावे ल्युट्; देवस्येव दानं शुद्धिर्यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। घोषकाकृति, बड़ी तरोई।

देवदार—गुजरातके अन्तर्गत एक अर्द्ध स्वाधीन क्षुद्र राज्य। यहां अधिकांश राजपूत और कोलजातिका वास है। पहले इस राज्यमें केवल डकैतोंका अड्डा था। उनके उत्पातसे निकटवर्ती देशवासी तंग आ गये थे। १८१८ ई०में वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें यहांसे निकाल बाहर किया। तभीसे यह राज्य गवर्मेण्टकी देखरेखमें है। किन्तु वृटिश गवर्मेण्ट राज्यके आभ्यन्तरिक किसी विषयमें हस्तक्षेप नहीं करती। यह अक्षा० २४° ८' उ० और देशा० ७१° ४९' पू०में अवस्थित है।

देवदार (हिं० पु०) एक बहुत ऊंचा पेड़।

देवदारु देखो।

देवदारु (सं० क्ली०) देवानां दारु तेषां प्रियत्वात्। वृक्ष-विशेष, एक बहुत ऊंचा पेड़। संस्कृत पर्याय—शक्रु-पादप, पारिभद्रक, भद्रदारु, द्रुकिलिम, पीतदारु, दारु, पूतिकाष्ठ, सुरदारु, दारुक, स्निग्धदारु, अमरदारु, शाम्भव, भूतहारि, भवदारु, भद्रवत्, इन्द्रदारु, मस्तदारु, सुरभूरुह, सुराह्व और देवकाष्ठ।

हिन्दीमें इसे किलन्, देवदार वा किलन्का पेड़, पञ्जाबमें देउदार, कलाईन्, दादा, काश्मीरमें दार वा देवदार, हिमालय-अञ्चलमें दियार, देउदार, द्दार, तिब्बतमें गियम्, तामिलमें देवदारी चेड़ी, तैलङ्गमें देव-

दारी चेट्, मलयमें देवतारस, अरबमें सफ़ रुद देवदार वा सनोवरुल् हिन्द और फारसीमें दरख्ते देवदार वा निस्तार कहते हैं। इसका अंग्रेजी वैज्ञानिक नाम है Cedrus Deodara or Pinus Deodara.

यह पेड़ हिमालय पर ६००० फुटसे ८००० फुट तककी ऊंचाई पर होता है। पेड़ अस्सी गज तक सीधे ऊंचे चले जाते हैं और पश्चिमी हिमालय पर कुमाऊंसे लेकर काश्मीर तक पाये जाते हैं। इस दरख्तकी अनेक जातियां संसारके अनेक स्थानोंमें पाई जाती हैं। हिमालयवाले देवदारके अतिरिक्त एशियाई कोचक (तुर्कीका एक भाग) तथा लुबना और साइप्रस टापूके देवदार मशहूर हैं। हिमालय पर जो देवदार होते हैं उनकी डालियां सीधी और कुछ नीचेकी ओर झुकी होती हैं, पत्तियां महीन महीन होती हैं। डालियोंके सहित सारे पेड़का घेरा ऊपरकी ओर बराबर कम अर्थात् गावदुम होता जाता है। देवदारके पेड़ डेढ़ डेढ़ दो दो सौ वर्ष तकके पुराने पाये जाते हैं। ये जितने ही पुराने होते हैं उतने ही विशाल होते हैं। बहुत पुराने पेड़ोंके धड़ या तनेका घेरा १५—१५ हाथ तकका पाया गया है। इसके तने पर हरएक शाल एक मण्डल या छल्ला पड़ता है, इसलिए इन छल्लोंको गिन कर पेड़की अवस्था बताई जा सकती है।

देवदारकी लकड़ी कड़ी, सुन्दर, हलकी, सुगन्धित और सफेदी लिये बादामी रङ्गकी होती है और मजबूतीके लिये प्रसिद्ध है। इसमें घुन कीड़े कुछ भी नहीं लगते। यह इमारतोंमें लगती है और अनेक प्रकारके सामान बनानेके काममें आती है। काश्मीरमें बहुतसे ऐसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ वर्षकी देवदारकी धरनें आदि लगी हैं और अभी ज्योंकी त्यों हैं। काश्मीरमें देवदारकी लकड़ी पर नक्काशी बहुत अच्छी होती है। कांगड़ेमें इसे घिस कर चन्दनके स्थान पर लगाते हैं। इससे एक प्रकारका अलकतरा और तारपीनकी तरहका तेल भी निकलता है। इस तेलको पञ्जाबमें 'केलोनका तेल' कहते हैं। यह चौपायोंके घाव पर लगाया जाता है। वैद्यकके मतसे यह तिक्त, रुक्ष, श्लेष्मा, वायु और भूतदोषनाशक माना जाता है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—स्निग्ध, उष्ण, कटुपाक, विवर्ण, आध्मान, शोथ, हिक्का, ज्वर, प्रमेह, पीनस, श्लेष्मा, श्वास, कास, कण्डु और वायुनाशक है।

देवदारुवन-एक पुण्य स्थान। सह्याद्रिखण्ड, नृसिंहपुराण और ब्रह्माण्डपुराणमें इसका वर्णन है।

देवदार्वादि (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त क्वाथौषधभेद, भावप्रकाशके अनुसार एक क्वाथ। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—देवदार, वच, कुड़, पिप्पली, सोंठ, चिरायता, जायफल, मोथा, कुटकी, धनिया, हड़, गजपिप्पली, जवासा, गोखरू, भटकटैया, गुलकन्द, काकड़ा सींगी और स्याह जीरा इन सबका बराबर भाग ले कर काढ़ा बनाते हैं। पीछे उसमें हींग और नमक डाल देते हैं। इसे प्रसूता स्त्रीको पिलानेसे ज्वर, दाह, सिरकी पीड़ा, अतीसार, मूर्च्छा आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

देवदालिका (सं० स्त्री०) देवदालीव कायति कै-क टाप् पूर्व ह्रस्वः। महाकाल वृक्ष।

देवदाली (सं० स्त्री०) देवेन मेघोदयेन दाली दलनं यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। लताविशेष। इसका पर्याय—जीमूतक, कण्टफला, गरा, गरी, वेणी, महाकोषफला, कटुफला, घोरा, कदम्बी, विषहरा, कर्कटी, सारमूषिका, वृत्तकोषा, आखुविषहा, दाली, रोमशफलिका, कुरङ्गिका, सुतकारी और देवताड़ है। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, कटु, पाण्डु, कफ, दुर्नाम, श्वास, कास, कामला और भूतनाशक है। यह लता देखनेमें तुरईकी बेलसे मिलती जुलती है। पत्तियां भी तुरईकी पत्तियोंके समान होती हैं, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होतीं। इसके फूल पीले लाल और सफेद इन तीन रंगोंके होते हैं। फल ककोड़ेकी तरहके कांटेदार होते हैं। इसको लताको घघरबेल और बंदाल भी कहते हैं।

देवदासी (सं० स्त्री०) देवं इन्द्रियं दासयति इन्ति इति देव-दास-अण् गौरादित्वात् ङीष्। १ वनबीजपूरक वृक्ष, बिजौरा नीबूका पेड़। देवाय क्रीड़ायै दासीव। २ वेश्या। देवानां दासी। ३ देवताओंकी परिचारिका, मन्दिरोंकी दासी वा नर्त्तकी। दाक्षिणात्यमें मन्दिरकी देवनर्त्तकीको ही देवदासी कहते हैं। देवपूजनके समय उनके सामने नाचना गाना ही इनका काम है। जग-

आथसे लेकर दक्षिणके प्रायः सभी प्रधान प्रधान मन्दिरोंमें देवदासी वा देवनर्त्तकी देखी जाती हैं।

प्राचीन कालमें मिस्र, ग्रीस, आसिरीया, फिनिसिया आदि स्थानोंके देवालयमें इस प्रकारकी अनेक देवनर्त्तकी थीं। बहुत दिनकी बात नहीं है, कि एशियाके पश्चिमांशमें तथा ग्रीसके वीणास् देवीके मन्दिरमें अनेक देवदासी देखी जाती थीं। वेश्यावृत्ति और देवकीर्त्तन करना ही उनका पेशा था। एक समय आर्मेणियामें यह नियम था, कि उच्च वंशीय सभीकी कन्याएं विवाहके पहले अनाइतिस् (अनाहिता) देवीकी सेवामें नियुक्त होवें। इस समय यदि वे असदाचरण भी कर बैठतीं, तो विवाहके बाद कोई उनको निन्दा नहीं करता। बाबलिनमें भी स्त्रियां जब तक एक बार मिलित्ता (Mylitta) देवीके मन्दिरमें आत्मसमर्पण न कर लेतीं, तब तक वे स्वतन्त्र नहीं हो सकती थीं। विवाहके बाद फिर देवमन्दिरमें उनका प्रयोजन नहीं पड़ता। बाइबलके एक्सोडास ग्रन्थमें भी लिखा है—स्वर्णनिर्मित गोवत्सस्वरूप देवके सामने इसराइलकी सन्तान नाच गान करती थीं। ( Exodus )

दाक्षिणात्यके चेङ्गलपत् जिलेमें कई जगह तांतियोंमें यह रीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी लड़कीको ऋतुमति होनेके पहले किसी मन्दिरको दान कर देते हैं। वहां उस्ताद लोग इन्हें नाचना गाना सिखाते हैं। तैलङ्गमें इन सब कुमारियोंको 'बसवा' और महाराष्ट्रमें 'मुरली' कहते हैं। बसवा विशेष कर शिवजीके मन्दिरमें अपना समय बिताती हैं। इनमेंसे जो सच्चरित्र रहतीं, वे आजीवन ब्रह्मचर्य अवलम्बन करती हैं। प्रायः अनेक देवालयके पूजारियों तथा कर्त्तृपक्षोंसे ये सम्भोग किया करती है। इनमेंसे किसीका तो खड्गसे और किसीका देवसे विवाह होता है। खड्गके साथ विवाह करते समय कन्या खड्गके ऊपर एकलड़ी माला रख देती है, भाट मङ्गल-श्लोक पढ़ता है, माता धान दूर्वासे आशीर्वाद देती है। तभीसे वह 'भविन्' या कुमारी हो कर किसी मन्दिरमें नियुक्त होती है। जब कोई मनुष्य कन्याको कची उमरमें ही उसे देवताके उद्देशसे दान कर देता है, तब इस क्रियाको दाक्षिणात्यमें 'सेज' कहते है।

देवदासी लोग बहुत सवेरे अर्थात् दो दण्ड रात रहनेके पहले ही मन्दिर जाती हैं। इस समय वे दो घण्टे और फिर सन्ध्या समय दो घण्टे नाचना गाना सीखती हैं। दो चार वर्षोंमें ही नाचना गाना अच्छी तरह आ जाता है। इनमेंसे बहुतोंका विश्वास है कि स्वर्गको देवसभामें जिस प्रकार अप्सरागण देवनर्त्तकी है, उसी प्रकार मर्त्त्यके देवालयमें भी ये लोग देवनर्त्तकी हैं। इन्हें मन्दिरोंसे गुजारा मिलता है। राजा वा किसी धनीके यहां जब कोई उत्सव होता है, तब ये लोग बुलाई जाती है और वहां भी कुछ न कुछ इन्हें मिल ही जाता है। मरने पर इनका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है। कन्या नहीं रहने पर वह दूसरेकी कन्याको गोद लेती है अथवा कन्या खरीद कर उसका लालन पालन करती है। भविष्यमें वह भी नाचना गाना सीख कर देवनर्त्तकी हो जाती है।

देवसेवाके लिये देवनर्त्तकी नियुक्त करनेकी प्रथा ग्रीस आदि पाश्चात्य देशोंकी नाईं भारतवर्षमें बहुत पहलेसे चली आ रही है। हजारों वर्ष पहलेकी खोदित लिपिमें मन्दिरप्रतिष्ठाके साथ साथ देवनर्त्तकी-प्रदानकी बात भी लिखी है। एक समय उत्तरी भारतमें भी इसी प्रकार अनेक देवनर्त्तकी रहती थीं, पर आजकल वैसा नहीं है। प्रवाद है, कि एक समय कामाख्याके मन्दिरमें प्रायः पांच हजार देवनर्त्तकी देखी गई थीं। अभी दक्षिण भारत छोड़ कर और कहीं भी देवनर्त्तकीका आदर नहीं है।

देवदीप ( सं० पु० ) देवार्थः दीपः। १ देवताके निमित्त दीप, वह दीया जो किसी देवताके लिए जलाया गया हो। देवः दीप्तिशीलं दीपयति प्रकाशयति वुद्धिस्थं करोति दीप-णिच्-अण्। २ लोचन, चक्षु, आंख।

देवदुन्दुभि (सं० पु०) देवानां दुन्दुभिरिव हर्षप्रदत्वात्। १ रक्त तुलसी, लाल तुलसी। २ कृष्ण तुलसी, काली तुलसी। ३ देवढक्का, देवताओंका बाजा।

देवदूत ( सं० पु० ) देवताओंका दूत, अग्नि।

देवदूती ( सं० स्त्री० ) देवानिन्द्रियाणि दूयन्ते अवसादयन्तीति दू-क्तिच्, ततो ङीष्। १ वनवीजपूरक वृक्ष, विजौरा नीबू। २ अप्सरा।

देवदेव (सं० पु०) देवेषु मध्ये दीव्यति दिव-अच्। १ महादेव, शिव। २ ब्रह्मा। ३ विष्णु। ४ गणेश।

देवदेवेश (सं० पु०) देव प्रकारः देवदेवः तस्य शः। महादेव।

देवदोल (सं० पु०) देवैर्द्रष्टव्यो दोलः। प्रातःकरणीय दोलोत्सव, सवेरे जो दोलपूजा की जाती है, उसे देवदोल कहते हैं। दोल देखो।

देवद्युर (सं० पु०) भरतवंशीय देवाजित्का अपत्य नृपभेद, भरतवंशके एक राजा जो देवाजित्के पुत्र थे।

देवद्रुम (सं० पु०) १ कल्पवृक्ष, पारिजात आदि स्वर्गके वृक्ष। २ देवदारु, देवदार।

देवद्रोणी (सं० स्त्री०) देवानां द्रोणी ६-तत्। १ देवयात्रा। २ स्वयम्भु लिङ्गादिका अवस्थानगह्वर, अथवा जिसमें स्वयंभूलिङ्ग स्थापित किया जाता है।

देवद्र्यच (सं० त्रि०) देवं अञ्चति पूजयति अनुच-क्विन् टेरद्र्यादेश (विष्वग्देवयोश्च टेर द्र्यञ्चतावप्रत्यये। पा ६।३।१२) देवपूजक।

देवधन (सं० क्ली०) देवार्थं धनं। १ देवताके उद्देशसे उत्सृष्ट धन, देवताके निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन। २ देवस्वामिक धन।

देवधर भागवताचार्य—काश्मीरवासी कवि मङ्खके समसामयिक एक गृह्यसूत्रके भाष्यकार।

देवधान्य (सं० क्ली०) देवयोग्यं धान्यं। धान्यविशेष, ज्वार। इसका पर्याय—यवनाल, योनल, जूर्णाह्वय, पोङ्काला, और वीजपुष्पिका है।

देवधाम (सं० पु०) देवस्थान, तीर्थस्थान।

देवधुनी (सं० स्त्री०) गङ्गानदी।

देवधूप (सं० पु०) देवानां प्रियो धूपः। गुग्गुल, गूगुल।

देवन (सं० क्ली०) दिव-भावे ल्युट्। १ व्यवहार। २ जिगीषा, किसीसे बढ़ चढ़ कर होनेकी वासना। ३ क्रीड़ा, खेल। दीव्यति अस्मिन् अधिकरणे ल्युट्। ४ लीलोद्यान, बगीचा। दीव्यत्यनेन दिव-करणे ल्युट्। ५ पद्म, कमल। ६ परिवेदना, शोक, रंज। ७ द्युति, कान्ति। ८ स्तुति। ९ द्यूत, जुआ। १० पाशक, चौसर। ११ गति।

देवन—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसी कविताएं रचीं। इनकी कविता सराहनीय होती थी।

देवनदी (सं० स्त्री०) देवानां नदी ६-तत्। १ गङ्गा। २ सरस्वती और दृषद्वती नदी।

देवनन्दिन् (सं० पु०) देवं शत्रुं नन्दयति नन्दि-णिनि। इन्द्रका द्वारपाल।

देवनन्दी—एक प्रसिद्ध जैन वैयाकरण। किसी किसी पट्टावलीमें देवनन्दीका नामान्तर यशःकीर्त्ति, यशोनन्दी, पूज्यपाद, गुणनन्दी और गुणाकर देखा जाता है।

"यशःकीर्त्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महायतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः।"

किसीका मत है, कि इन्होंने ही प्रसिद्ध जैनेन्द्रव्याकरणकी रचना की है। कोई कोई पूज्यपाद और देवनन्दीको स्वतन्त्र व्यक्ति बतलाते हैं। पूज्यपादने जैनेन्द्र-व्याकरणका मूल सूत्र और देवनन्दीने उसकी टीका रची है। इसके सिवा देवनन्दीने 'पञ्चवस्तुक' नामक संस्कृत व्याकरणविषयक एक सुन्दर ग्रन्थ बनाया है। श्रुतकीर्त्तिने पञ्चवस्तुककी सम्वलित व्याख्या प्रकाश की। दिगम्बर-दर्शनसार नामक अर्द्ध मागधी भाषामें रचित जैनग्रन्थके मतानुसार पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दीने ५२६ सम्वत्को मथुरामें द्राविड़सङ्घ स्थापन किया।

इससे साबित होता है, कि पूज्यपाद ५२६ सम्वत्के पहले और श्रुतकीर्त्ति १०२५ शकमें विद्यमान् थे। यदि पूज्यपाद और देवनन्दी एक ही व्यक्ति हों, तो फिर बात ही क्या; अन्यथा देवनन्दी पूज्यपाद और श्रुतकीर्त्तिके मध्यकालमें आविर्भूत हुए थे, इसमें सन्देह नहीं।

देवनल (सं० पु०) देव इव श्रेष्ठत्वात् नलः। नलभेद, एक प्रकारका नरकट। इसका पर्याय—देवनाल, महानल, वन्य, नलोत्तम, स्थूलनाल, स्थूलदण्ड, सुरनाल और सुरद्रुम है। इसका गुण—अति मधुर, वृष्य, ईषत्, कषाय, नलापेक्षा, अधिकवीर्य और रसकार्यमें अत्यन्त प्रशस्त है।

देवना (सं० स्त्री०) दिव-भावे-युच् टाप् च। १ क्रीड़ा, खेल। २ सेवा, टहल।

देवनागर (सं० पु०) लिपिभेद। प्रकृत नाम नागर वा नागरी है।

पण्डितोंके मतसे भी 'नगरे भवं' इसी तरहसे नागर नाम पड़ा है। काशीके किसी पण्डितने "देवनगरे भवं इति देवनागरम्" ऐसी व्युत्पत्ति की है। इस प्रकार

किसी नगरमें या जनपदमें इस अक्षरके प्रचलित होनेके कारण इसका नाम देवनागर पड़ा है। फिर किसीकी कल्पना है, कि पहले देवलोकमें यह अक्षर प्रचलित था, इसीसे इसका "देवनागर" नाम हुआ है। किन्तु उपरोक्त कोई मत भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। केवल 'नगरे भव" ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे किसी नगरसे नागरकी उत्पत्तिकी कल्पना तो की जा सकती है, मगर उस नगरकी अनिश्चयताका बोध होता है। किसी एक निर्दिष्ट अक्षरको बतलानेमें जिस स्थान वा पात्रसे इसका निकास हुआ, उस स्थान वा पात्र विशेषको बतला देना उचित है। किन्तु उक्त मतप्रकाशकोंमेंसे किसीने भी विशेष स्थान वा पात्रका निर्देश नहीं किया। अतः केवल 'नगरे भव" कहनेसे नागराक्षरकी उत्पत्तिका निर्णय नहीं हो सकता। स्वर्गीय राजा राधाकान्त देवने अपने जगद्विख्यात शब्दकल्पद्रुममें नागर शब्दका ऐसा अर्थ किया है, "नागरदेशीयाक्षरम्।" वर्त्तमान अध्यापक लोग शब्दकल्पद्रुमके मत ग्रहण नहीं करते। हम लोगोंने जहां तक प्रमाण संग्रह किये हैं, उनसे जान पड़ता है, कि नगर नामक किसी स्थानसे तथा नागर नामक किसी सम्प्रदाय विशेषसे प्रवर्त्तित होनेके कारण इस अक्षरका नाम नागर पड़ा है। जिस तरह बिहारसे बिहारी, उड़ीसासे उड़िया, पञ्जाबसे पञ्जाबीका नामकरण हुआ है, नागरकी नामोत्पत्ति भी उसी तरह है। प्रायः साढ़े सात सौ वर्ष पहले विख्यात पण्डित शेषकृष्ण (१) अपनी प्राकृतचन्द्रिकामें कुछ श्लोक उद्धृत कर देशभाषाका परिचय दे गये हैं—

"महाराष्ट्री तथावन्ती शौरसेन्यर्द्धमागधी।
वाह्लीकी मागधी चैव षडेता दाक्षिणात्यजाः * ॥
प्राचंडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
वार्वरावन्त्यपांचालटाक्कमालवकैकयाः ॥
गौडोड्रदैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसैंहलाः।
कालिङ्ग्यप्राच्यकर्णाटः काञ्च्यद्राविडगौर्जराः ॥
आभीरो मध्यदेशीय-सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः।
सप्तविंशत्यपभ्रंशा वैडालादि प्रभेदतः ॥"

महाराष्ट्री, अवन्ती, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, वाह्लीकी और मागधी दाक्षिणात्य देशजात यही ६ मूल-भाषा है। इन्हीं ६वोंसे आभीर, प्राचण्ड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्वर, आवन्त्य, पाञ्चाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड़, दैव, पाश्चात्य, पाण्ड्य, कौन्तल, सैंहल, कालिङ्ग, प्राच्य, कर्णाट काञ्च्य, द्राविड, गौर्जर, आभीर, मध्यदेशीय, विडाल ये २७ आपसमें बहुत कुछ अदल बदल कर अपभ्रंश भाषा हो गई है।

उक्त वचनोंसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि जिस तरह महाराष्ट्र, शूरसेन आदि स्थानोंके नामानुसार महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी आदि भाषा प्रचलित हुई है, उसी तरह पहले नगर, उपनगर, दैव आदि जनपदोंके नामानुसार नागर, उपनागर, दैव आदि अक्षरोंका नामकरण हुआ है।

भारतवर्षमें नगर नामका केवल एक ही जनपद नहीं है। बङ्गदेशके वीरभूमकी प्राचीन राजधानीका नाम भी नगर है। तञ्जोरमें नगर नामका एक प्राचीन बन्दर है। महिसुरके एक विस्तीर्ण विभागका नाम नगर है जिसमें नगर नामका एक तालुक और इसी नामका एक ग्राम भी लगता है। पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेमें विपाशा नदीके किनारे भी नगर नामका एक विशिष्ट शहर और नगरकोट नामका एक प्राचीन नगर है। इनके सिवा दरभङ्गा जिलेमें नगर-बस्ती, सिन्धु-प्रदेशमें नगरपार्कर नामक एक शहर और बस्ती जिलेमें नगर-खास नामक एक नगर देखनेमें आता है। इतना ही नहीं, बल्कि दाक्षिणात्यमें 'नगरम्' नामके बहुतसे छोटे और प्राचीन ग्राम हैं।

नागर नामकी भी कमी नहीं है। उत्तर बङ्गालमें नागर नामकी दो नदियां हैं जिनमेंसे एक तो पूर्णिया जिलेसे निकल कर दिनाजपुर जिलेकी ओर चली गई है और दूसरी बगुड़ा जिलेसे निकलकर राजशाही जिलेमें

---

(१) कृष्ण पण्डित नामसे भी प्रसिद्ध; ये नरसिंहके पुत्र थे और शेषवंशमें उत्पन्न हुए थे। विख्यात रामकृष्ण गोपाल भंडारकरके मतसे शेष कृष्णके भतीजे रामचंद्र प्रायः ११५० ई०में विद्यमान थे। (R. G. Bhandarkar's Report of the Sanskrit Mss, 1883-84, p. 59.)

* 'षडेता दाक्षिणात्यजाः।' कहीं कहीं ऐसा भी पाठ है।

प्रवेश करती है। केवल राजपूतानेमें नागर नामके ८११० स्थान हैं जिनमेंसे तीन शहरमें गिने जाते हैं। एक शहर जयपुर राज्यमें *, दूसरा मारवाड़ राज्यमें § और तीसरा प्रसिद्ध रणथम्भरसे ५ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। सन्थाल परगनेमें भी दुर्गसमन्वित नागर नामका एक विख्यात ग्राम है। अफगानिस्तानके अन्तर्गत काबुल जिलेके पार्वत्य प्रदेशमें नागर नामकी एक जाति भी रहती है। एक समय वृटिश गवर्मेण्टके साथ उसकी लड़ाई भी हो चुकी है। किसी व्यक्तिने इसी नागर जातिका अनुसन्धान पा कर स्थिर किया है, कि उसीके नामानुसार इस नागराक्षरका नामकरण हुआ है। उनका विश्वास है कि जिस तरह प्राचीनतम आर्य लोग मध्य-एशियासे आ कर धीरे धीरे भारतवर्षमें बस गये उसी तरह इस नागर जातिसे हो किसी तरह नागराक्षरका भारतवर्षमें प्रचार हुआ होगा। किन्तु उक्तमत समर्थन करने योग्य नहीं है। वह नागरजाति अभी इसलाम धर्मावलम्बी होने पर भी सभी राजपूत हैं। वे राजपूतानेसे ही अपना आदि निवास बतलाते हैं। इस हिसाबसे काबुलके उत्तरांशसे जो नागराक्षर इस देशमें आया है उसकी कल्पना करना भी असङ्गत है।

राजपूतानेके चित्तोरके समीप नागरी नामक एक अत्यन्त प्राचीन नगर है। ईसा जन्मके कई सदी पहलेसे हो यह नगर अवस्थित है, इसका पता सुप्रसिद्ध कनिङ्गहम साहबने इस स्थानसे आविष्कृत छेनी-चिह्नित (Punch-marked) मुद्रा द्वारा लगाया है; किन्तु उनके मतसे इस स्थानका प्राचीन नाम ताम्रवती नगरी है।

ऊपर जो सब नाम उद्धृत किये गये, उन सब स्थानोंमें ऐसी कोई बात अथवा आनुसङ्गिक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे नागराक्षरके उत्पत्तिस्थानका ठीक ठीक पता लग सके।

उपरोक्त देशोंके सिवा बम्बई प्रदेशके अहमदनगर जिलेमें नगर नामक एक विस्तीर्ण विभाग है जिसका भूपरिमाण ६१८ वर्गमील है †। वहां नागर नामक एक श्रेणीके ब्राह्मण भी रहते हैं। स्थानीय मनुष्य अहमदनगरको केवल नगर कहा करते हैं। उनका कहना है, कि सुलतान अहमदसे १४११ ई०में अहमदनगर स्थापित होनेके पहले भी यह स्थान नगर नामसे प्रसिद्ध था। यहाके नागर ब्राह्मण स्कन्दपुराणके नागरखण्डको अपना प्रधान परिचायक ग्रन्थ मानते हैं। नागरखण्डमें लिखा है—सरस्वती नदीके तीरवर्ती हाटकेश्वरक्षेत्रका दूसरा नाम नागर है। नगर विभागके नागर ब्राह्मण लोग कहते हैं, कि उक्त विभागमें सरस्वती नदीके किनारे श्रीगुण्डोनगरमें जो प्राचीन हाटकेश्वर मन्दिर है, वही नागरखण्ड वर्णित हाटकेश्वर है जिसके क्षेत्रका विस्तार पांच कोस तक है। एक समय नगर वा अहमदनगर इसी विस्तृत क्षेत्रके अन्तर्गत था। उन लोगोंका विश्वास है कि नागरखण्डमें जिन बहुसंख्यक तीर्थोंका उल्लेख है, वे उक्त नगरविभागमें हो पड़ते थे। मुसलमान राजाओंके घोर अत्याचारसे उनमेंसे अधिकांश तहस नहस तथा विलुप्त हो गये हैं अभी सिद्धेश्वर नागनाथ, हाटकेश्वर आदि थोड़े मन्दिर विद्यमान हैं।

उक्त नगरविभाग और वहांके ब्राह्मणोंकी बातों पर विश्वास करनेसे ऐसा कह सकते हैं, कि यही स्थान नागरखण्डोक्त प्राचीन नगरक्षेत्र है और वहींसे नागर ब्राह्मण और नागराक्षरका नामकरण हुआ है। किन्तु हाटकेश्वरके पण्डा लोगोंके अपने नाम जाहिर करनेके लिए ऐसा क्षेत्रमाहात्म्य प्रकाश करने पर भी वर्त्तमान श्रीगुण्डीनगरका हाटकेश्वर नागरखण्डोक्त प्राचीन हाटकेश्वर नहीं है। पूर्वतन हाटकेश्वरक्षेत्र स्थापित होनेके बहुत पीछे उक्त मन्दिर बनाया गया। नागरखण्डमें एक जगह लिखा है, कि चम्पशर्मा नामके एक नागर ब्राह्मणने पुष्प नामक किसी व्यक्तिसे दान ग्रहण किया था, इस कारण वे समाजच्युत किये गये। वे ज्ञाति बन्धुओंसे परित्यक्त हो कर नगर छोड़ सरस्वती नदीके दाहिने किनारे आ कर रहने लगे। उनके वंशधर ब्राह्म-

* प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमका मत है, कि इसका प्राचीन नाम कर्कोटनगर है। प्रवाद है, कि राजा मुचुकुन्दने यह नगर बसाया था। यहांसे हिन्दूराजाओंके समयकी बहुत प्राचीन छह हजार मुद्रायें आविष्कृत हुई हैं।

§ स्थानीय लोगोंके मतसे नागगढ़से वर्तमान नागर नाम पड़ा है।

† Bombay Gazetteer, Vol. XVII p. 608.

नागर नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हीं वाह्य नागरोंने वर्त्तमान नगरविभागके अन्तर्गत ओगुण्डो * नामक नगरमें पूर्वतन हाटकेश्वरक्षेत्रके आदर्श पर सरस्वती नदीके दाहिने किनारे हाटकेश्वरादि स्थापन किये और वे वर्त्तमान अहमदनगरको ही प्राचीन 'नगर' मानने लगे, नागरखण्डके मतसे नगरक्षेत्र पञ्चक्रोशी हाटकेश्वरक्षेत्रके अन्तर्गत है और सरस्वती नदीके उत्तरीय किनारे पर अवस्थित है, किन्तु वर्त्तमान अहमदनगर ओगुण्डोसे पांच कोस दूरमें पड़ता है। अहमदनगरके समीप सरस्वती नदी भी नहीं बहती, इस हिसाबसे नगरविभागके अन्तर्गत अहमदनगरको नागर ब्राह्मणोंका आदि निवास नगरक्षेत्रके जैसा नहीं मान सकते। इसी स्थानसे नागराक्षरकी उत्पत्ति हुई है इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

तब यह कहा जा सकता है, कि प्रकृत नागरोत्पत्तिस्थान कहां है?

गुजरातके एक मनुष्यने लिखा है, कि यहांके नागरपण्डित लोग कहते हैं कि नागरी अक्षर उनके पूर्वपुरुषोंसे उत्पन्न हुआ है।

गुजरातमें आज भी बहुसंख्यक नागर ब्राह्मणोंका वास है। वे ही अपनेको और सब ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ समझते हैं। यहां तक कि वे किसी अन्य श्रेणीके ब्राह्मणोंका अन्नजल ग्रहण नहीं करते। गुजरातके हिन्दू राजगण प्राचीन कालसे ले कर आज तक भी इन नागर ब्राह्मणोंका विशेष आदर सत्कार करते आ रहे हैं। मन्त्रित्व आदि सभी राजकीय कार्योंमें नागरब्राह्मण ही नियुक्त किये जाते हैं। वे लोग स्कन्दपुराणके नागरखण्डको ही अपना प्रधान परिचायक धर्मग्रन्थ मानते हैं।

नागर ब्राह्मणकी उत्पत्तिके विषयमें नागरखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—आनर्त्ताधिप सफेद कुष्ठरोगसे आक्रान्त हुए। इस रोगसे बचनेका कोई उपाय न देख वे हताश हो पड़े। एक दिन उन्होंने विश्वामित्रके आश्रममें जा कर उनसे अपनी दुरवस्थाको कथा कह सुनाई। आश्रममें जितने मुनि थे, उन्होंने राजाकी कातरोक्तिसे दयार्द्रचित्त हो उन्हें शङ्खतीर्थमें स्नान करनेको कहा। शङ्खतीर्थमें स्नान कर राजा कुष्ठरोगसे मुक्त हुए। बाद उन्होंने उस शङ्खतीर्थके समीप चमत्कारपुर नामक एक कोस विस्तृत एक नगर बसाया। यहां वे विविध सुरम्य हर्म्य बनवा कर वेदवित् कुलीन और धार्मिक ब्राह्मणोंको ला कर बसाने लगे। कुछ समय बाद उनमेंसे चित्रशर्मा नामक एक वेदवित् ब्राह्मणने जन्म लिया। चित्रशर्माने तपस्यादि द्वारा देवादिदेवको सन्तुष्ट किया। महादेव उनकी मनोवाञ्छा पूरी करनेके लिये पातालके हाटकेश्वर मूर्त्तिमें आविर्भूत हुए। भिन्न भिन्न देशोंसे यात्रिगण उस अनुपम हाटकेश्वर लिङ्गको देखने आने लगे। चमत्कारपुरवासी दूसरे दूसरे ब्राह्मणोंने सोचा कि चित्रशर्मामें और हम लोगोंमें कुछ भी प्रभेद नहीं है। वह चिरस्थायी कीर्त्ति स्थापन करके जनतामें पूज्य हुआ, तो हम लोग भी क्यों न होवें? ऐसा सोच कर वे सबके सब बहुत कठोर तपस्या करने लगे। महादेवने सन्तुष्ट हो कर अपना दर्शन दिया। उस समय चमत्कारपुरवासी ब्राह्मणोंमें ६८ गोत्र थे। महादेवने उन ब्राह्मणोंसे कहा, 'कुल ६८ शैव क्षेत्र हैं। मैं ६८ भागोंमें विभक्त हो कर उन सब स्थानोंमें रहता हूं। अभी तुम लोगोंको अभीष्ट-सिद्धिके लिये मैं ६८ मूर्त्तियोंमें इस क्षेत्र पर आविर्भूत होऊंगा।' तदनुसार यहां ६८ देवप्रासाद बनाये गये और एक एक गोत्र एक एक देवकी सेवामें नियुक्त हुए। (नागरखण्ड १०६ और १०७ अध्याय।)

किसी समय आनर्त्ताधिपतिको मालूम हुआ कि उनके पुत्रके दुष्ट ग्रहके कारण चिरशान्तिमय समृद्धिशाली राज्यमें महाविघ्न उपस्थित होगा। इस पर उन्होंने प्रधान प्रधान दैवज्ञोंको बुलवाया। दैवज्ञने राजासे उपयुक्त ब्राह्मणों द्वारा इसको शान्ति करानेको कहा। इसके पहले ही आनर्त्तराजने चमत्कारपुरमें सुन्दर सौधावली निर्माण कर ६८ गोत्रज ब्राह्मणोंको बसाया था। अभी उन्होंने दैवज्ञोंके कथनानुसार चमत्कारपुरमें जा कर उन ब्राह्मणोंसे अपने भावीपुत्रके कल्याणकी शान्तिके लिये बहुत अनुरोध किया। इस पर १६ ब्राह्मण शान्ति और होम कार्यमें नियुक्त हुए। इधर तो याग यज्ञ होने

---

* List of Antiquarian Remains in the Bombay Presidency, by J. Burgess, p. 107.

लगा, उधर आनर्त्त राजकी राजधानीमें भी राजपुत्रके जन्मोत्सव-उपलक्षमें बहुत धूमधाम होने लगी, किन्तु इस आमोद प्रमोदमें पुनः निरानन्द दीख पड़ा। राजपुत्रके ग्रहदोषसे राजाके राज्य, हाथी-घोड़े वे यानवाहनादि सभी क्षय होने लगे। इस पर चमत्कारपुरके ब्राह्मण बहुत गुस्सा गए। उन्होंने सोचा, कि हम लोग प्रतिमास १६ मनुष्य मिल कर यथाविधि होमादि कर रहे हैं, किन्तु उसका कोई फल देखनेमें नहीं आता। अतएव हम लोग अग्निदेवको अवश्य ही शाप देंगे। इस पर अग्निदेवने अपना दर्शन दे कर उनसे कहा, 'ब्राह्मणगण! क्रोधमें आ कर हमें क्यों' व्यर्थ शाप दे रहे हैं। मास मासमें जो १६ आदमी होम किया करते हैं उनमेंसे त्रिजात नामक एक ब्राह्मणके दोषसे सभी द्रव्य नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण सूर्यादि ग्रहगण आपके दिये हुए द्रव्यको ग्रहण नहीं करते। यही कारण है कि राज्यमें रोग शोक दिनों दिन इतना बढ़ रहा है। उस नीच ब्राह्मणको छोड़ कर होम करनेसे ही राजा आरोग्य और पुत्रादि लाभ कर सकते हैं तथा उनके शत्रुओंका भी विनाश हो सकता है।" यह सुन कर ब्राह्मणगण बहुत लज्जित हो कर बोले, "किस प्रकार मालूम होगा कि हममेंसे एक मनुष्य होमद्रव्यको दोषित कर रहा है।" अग्निने उत्तर दिया, "होमकुण्डमें मेरे पसीनेके पानीसे स्नान कर सभी परिशुद्ध होवें, स्नान करनेके बाद जिसके शरीरमें विस्फोटक निकल आवेगा, समझिये, कि उसीसे द्रव्य नष्ट हो रहा है।" अग्निके कथनानुसार एक एक करके १६ ब्राह्मणोंने होमकुण्डमें पैठ कर स्नान किया। उनमेंसे केवल त्रिजातके शरीरमें विस्फोटक निकला। इस पर त्रिजात लज्जासे अपना मुंह ऊपर न उठा सके। नितान्त दुःख, खेद और लज्जासे वे वनवासी हो गये। सच पूछिये तो त्रिजात एक वेदवित् महा पण्डित थे। केवल मातामें दोषसे ही उनकी ऐसी दुर्दशा हुई थी। अपना अवस्था जान कर वे निर्जन वनभूमिमें कठोर तपस्या करने लगे।

महादेवने सन्तुष्ट हो कर उन्हें अपना दर्शन दिया। त्रिजात उनके पैरों पर गिर कर बोले, "देवादिदेव! मैं मातृदोषसे चमत्कारपुरवासी ब्राह्मणों और आनर्त्तराजसे बहुत लज्जित हुआ हूं। जिससे मैं सब ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठत्व प्राप्त कर सकूं, उसका उपाय आप कृपा कर बता दें।" महादेवने कहा, "कुछ काल तक सब्र रखो, तुम्हारा अभीष्ट अवश्य ही पूरा होगा।" इतना कह कर देवादिदेव अन्तर्हित हो गये। इधर चमत्कारपुरमें महाविभ्राट उपस्थित हुआ। मौद्गल्य गोत्रज देवराजके पुत्र क्राथ नामक एक ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके साथ नागपञ्चमीके दिन स्नान करने गये। सामान्य जलसर्प समझ कर उन्होंने लाठीसे नागकुमार रुद्रमालको मार डाला। इस पर नागराजके हुक्मसे अनेक विषधर चमत्कारपुरमें झुण्डके झुण्ड उपस्थित हुए। विषधरोंके विषम उत्पातसे आबालवृद्धवनिता सभी घर छोड़ भागने लगी। सैकड़ों ब्राह्मण सांपके काटनेसे परलोकको सिधारे। बाद बहुतसे ब्राह्मण अत्यन्त भयभीत हो, जिस वनमें त्रिजात रहते थे, उसी वनमें चले गये। त्रिजातने उनके दुःखकी बात सुन कर कहा, "तुम लोग डर मत करो।" वे फिर देवादिदेवके ध्यानमें निमग्न हुए। महादेवने दर्शन दे कर कहा, "तुम्हें एक सिद्ध मन्त्र देता हूं। इस मन्त्रके उच्चारण करनेसे ही महा विषधर भी विषहीन हो जायगा।

> "गरं विषमिति प्रोक्तं न तत्रास्ति च साम्प्रतम्।
> मत्प्रसादात्त्वया ह्येतदुच्चार्य्यं ब्राह्मणोत्तम ॥
> न गरं न गरं चैतत् श्रुत्वा ये पन्नगाधमाः।
> तत्र स्थास्यन्ति ते वध्या भविष्यन्ति यथा सुखम् ॥
> अद्य प्रभृति तत्स्थानं नगराख्यं धरातले।
> भविष्यति सुविख्यातं तव कीर्त्तिविवर्द्धनम् ॥
> तथान्योऽपि च यो विप्रो नागरः शुद्धवंशजः।
> नगराख्येन मन्त्रेन अभिमन्त्र्य त्रिधा जलम् ॥
> प्राणिनं कालसंदृष्टमपि मृत्युवशं गतं।
> प्रकरिष्यति जीवन्तं प्रक्षिप्य वदने स्वयम् ॥"
>
> (नागरखंड ११७।७८-८२)

अर्थात् 'गर शब्दसे विषका बोध होता है, किन्तु अभी वहां पर विष नहीं है। जब तुम 'न गरं' 'न गरं' (विष नहीं विष नहीं) यह शब्द उच्चारण करोगे, तब उसे सुन कर जो पन्नगाधम वहां रहेगा, उसे तुम मेरे अनुग्रहसे बहुत आसानीसे मार सकोगे। इस धरातल

पर आजसे तुम्हारा कीर्त्तिवर्द्धक यह स्थान नगर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो कोई विशुद्ध नागर ब्राह्मण इस नगर मन्त्रको उच्चारण करके तीन बार जल ले कर मरणापन्न प्राणीके मुखमें देगा, उसके भी प्राण तुरन्त लौट आवेंगे। इस मन्त्रके उच्चारण वा स्मरण करनेसे स्थावर, जङ्गम, कृत्रिमादि सभी विष जाते रहते हैं।' इतना कह कर भगवान् अदृश्य हो गये। त्रिजात उन ब्राह्मणोंको साथ ले चमत्कारपुरमें आये। सब कोई मिल कर उच्चैःस्वरसे 'न गरं' 'न गरं' यह शब्द बोलने लगे। सिद्धमन्त्र सुन कर चमत्कारपुरके सभी विषधर निर्विष हो पड़े। एक भी भाग न सका। हजारों साँप मारे गये। अभी त्रिजातके सम्मानका पारावार न रहा। जो एक दिन लज्जावनतमुखसे दुःखित हो देश छोड़ गये थे, आज उन्हींके हृदयमें आनन्दका स्रोत बहने लगा। आज उन्हींसे चमत्कारपुर 'नगर' नामसे प्रसिद्ध हो गया और वहांके ब्राह्मण नागर कहलाने लगे।

नागरखण्डके मतसे—नगरका पहला नाम चमत्कार था। राजा चमत्कारने अनेक सौध निर्माण कर वहां ब्राह्मणोंको बसाया और उन्हींके नाम पर चमत्कारपुरका नामकरण हुआ। इस स्थानका दूसरा नाम हाटकेश्वरक्षेत्र भी है जो आनर्त्त देशके नैऋ‌र्त्तकोणमें अवस्थित है। यह पुण्य-धाम पाच कोस तक विस्तृत है। (नागर खण्ड ४१।५१-५२।) इसके पूर्वमें गयाशीर्ष, पश्चिममें विष्णुपद और दक्षिण-उत्तरमें गोकर्णेश्वर है।

(नागरखण्ड १६।२-६।)

नागरखण्डके दूसरे स्थानमें लिखा है—उक्त क्षेत्र पञ्चक्रोश होने पर भी नगरका आयतन केवल एक कोस है। (नागरख० ११।६२-६३।) उक्त पञ्चक्रोशी हाटकेश्वरमें अचलेश्वर, गोकर्णेश्वर, गयाशीर्ष, मार्कण्डेश्वर, चित्रेश्वर, धुन्धमारेश्वर, ययातीश्वर, कालनेश्वर, कपिलेश्वर, आनर्त्तेश्वर, शूद्रकेश्वर, अजपालेश्वर, वाणेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, त्रिजातेश्वर, अम्बारेवती, केदारेश्वर, वृषभनाथ, सत्यसन्धेश्वर, अटेश्वर, धर्मराजेश्वर, मिष्टान्नदेश्वर, चित्राङ्गदेश्वर, अमरकेश्वर, अटेश्वर, मकरेश्वर, पुष्पादित्य आदि देवमन्दिर हैं और पातालगङ्गा, गङ्गायमुना, प्राचीसरस्वती, नागतीर्थ, शङ्खतीर्थ, मृगतीर्थ, लिङ्गभेदोद्भवतीर्थ, रुद्रावर्त्त, रामहृद, चक्रतीर्थ, मातृतीर्थ, सुधारतीर्थ आदि सैकड़ों तीर्थ हैं।



नागरखण्डके मतसे—

नैमिषारण्य, केदारनाथ, पुष्कर, भूमिजाङ्गल, वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रभास और हाटकेश्वर इन आठ सर्वप्रधान पुण्यक्षेत्रोंमें जो श्रद्धापूर्वक स्नान करता है उसे सर्वतीर्थस्नान करनेका फल मिलता है। इन आठ क्षेत्रोंमेंसे हाटकेश्वरक्षेत्र ही प्रधान है। यहां शिवकी आज्ञासे सभी तीर्थ अधिष्ठित हैं। कलिकालमें मुमुक्षु व्यक्तिमात्रका ही सर्वतीर्थ-वेष्टित यह हाटकेश्वर क्षेत्र सेवनीय है।

(नागरखण्ड १०३।४-१०।

विलसन साहबने अपने भारतीय जातितत्त्व (Indian Caste) नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"नागर शब्द पुरवाचक नगर शब्दका विशेषण रूप है। नागर कहनेसे गुजरातके प्रधान ६ श्रेणियोंका बोध होता है। उक्त प्रदेशके उत्तर-पूर्व भागके किसी किसी नगरसे उनका नामकरण हुआ है।" (१)

पहले ही कहा जा चुका है कि नागरखण्डके मतसे त्रिजात द्वारा हाटकेश्वरका क्षेत्र जब विषधर हीन हो गया, तब उसका नाम नगर रखा गया और उनसे जो ब्राह्मणगण इस देशमें लाये गये थे, उनके बस जानेसे ही नागर नाम पड़ा था। (२)

गुजरातके नागर ब्राह्मण कहते हैं, कि आनन्दपुर वा वर्त्तमान बड़ानगर नामक स्थान ही उनका आदि निवास है जो गुजरातके अन्तर्गत कड़ी जिलेमें अवस्थित है। अभी वह बरोदा गायकवाड़-राजके अधिकारमें आ गया है। कोई कोई पुराविद् आनन्दपुर भी उसका

(१) "The word Nagar is the adjective form of Nagar, a city. It is applied to several (six) principal castes of Brahmans in Gujrat, getting their designations respectively from certain towns in the north eastern portion of the province."

(Wilson's Indian Castes, Vol. 11 p 96.)

(२) नागरखंडमें भी लिखा है कि त्रिजातके आनेके पहले सांपोंके उपद्रवसे हाटकेश्वरक्षेत्र जनशून्य हो गया था। पीछे त्रिजातने भिन्न भिन्न स्थानोंसे ६४ गोत्रके ब्राह्मणोंको ला कर यहां बसाया। (नागरखंड १०८ अ०)

नाम बतलाते हैं। (३) जान पड़ता है कि समाजच्युत वाह्य नागर लोगोंने उक्त नगरके नामानुसार जब स्वतन्त्र नगर बसाया, (४) तब आनन्दपुरवासी नगरोंने अपनी निवासभूमिको पृथक् समझनेके लिये उसका बड़ानगर नाम रखा था।

वर्त्तमान बड़ानगरमें आज भी प्रसिद्ध हाटकेश्वर मन्दिर विराजमान है। आज भी यहांके नागर ब्राह्मण अपने अधिपति गायकवाड़के कल्याणके लिये शान्तिपाठ किया करते हैं। आज भी पश्चिम भारतके हजारों यात्री यहां आया करते हैं।

बड़ानगर और उसके चारों ओर पञ्चक्रोशके भीतर नागरखण्डवर्णित पूर्वोक्त देवमन्दिर और तीर्थ आज भी विद्यमान हैं (५)। यहांकी सरस्वती नदी स्थानीय लोगोंके निकट गङ्गाकी नाईं पुण्यप्रदा है। जिस रुद्र-माल नामक नागकुमारके हत्याप्रयुक्त पूर्वतन ब्राह्मण ब्रह्मत्यागी हो गये थे, उसी रुद्रमालके मन्दिरका भग्नाव-शेष इस पञ्चक्रोशी हाटकेश्वरक्षेत्रके मध्य सिद्धपुर नामक स्थानमें सरस्वती नदीके किनारे आज भी दर्शकवृन्दके नयनों आकर्षित करता है। नागरब्राह्मणोंका कहना है, कि एक समय ऐसा था, भारतके सभी स्थानोंसे लाखों तीर्थयात्री नगर वा हाटकेश्वरक्षेत्रमें आया करते थे। यहांके पण्डा लोगोंके अनुचर भारतवर्षके सब जगह यात्रीके अनुसन्धानमें जाते थे। सच पूछिये तो आज भी दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें नागर ब्राह्मण देखे जाते हैं। वे लोग आज भी केवल नागराक्षरमें ही अपने धर्मग्रन्थ लिखा करते हैं। यहां तक कि दूरस्थ द्राविड़ और कर्णाट अञ्चलमें—जहां दूसरी कोई जाति नागरा-क्षरको काममें नहीं लाती,—वहां इन नागर ब्राह्मणोंने कई शताब्दी रहकर अपनी मातृभाषा छोड़ दी है सही, किन्तु वे अपने जातीय नागराक्षरको आज भी छोड़ नहीं सके हैं। आज भी वे नागराक्षरका व्यवहार करते हैं। प्रसिद्ध फ्रोडल.ष्टन ष्टोक साहबने विजयनगर और आन-गुण्डीके निकटवर्त्ती नागर ब्राह्मणोंके विषयमें लिखा है, "विजयनगर और आनगुण्डी राजाओंके प्राधान्य कालमें वे लोग इस अञ्चलमें आकर रहने लगे, वे कणाड़ी भाषा बोलते हैं, किन्तु पुस्तकादि लिखते समय केवल नागरी अक्षर ही काममें लाते हैं" (६)।

पहले जो लिख चुके हैं, उसे आद्योपान्त गौरसे पढ़ने-से यह निःसन्देह स्थिर हो जायेगा, कि द्विजात द्वारा जो ब्राह्मण लाये गये थे, वे नगर नामक पुरमें रह कर नागर (७) नामसे प्रसिद्ध हुए। उनको व्यवहृत भाषा नागर और अक्षर नागर वा नागरी नामसे जनसाधारणमें प्रचलित हुआ। उनके साथ नागराक्षरका जो विशेष संस्रव है, वह बहुत दिनोंसे विदेशवासी नागरोंका व्यव-हृत अक्षर ही प्रकृष्ट उदाहरण है।

नगरके पुरवासी नागर ब्राह्मण धर्मपरायण प्राचीन हिन्दू राजाओंके समयमें गुजरातमें सब जगह फैल गये। उनमेंसे कितने तो सोमनाथ पत्तनमें जाकर रहने लगे। प्रभास वा सोमनाथपत्तनका प्राचीन नाम देवनगर भी है। देवपत्तन देखो। इसी देवनगरके वासी नागर ब्राह्मणोंने जिस अक्षरसे अपने धर्मग्रन्थादिको लिपिबद्ध किया, मालूम पड़ता है, कि परवर्त्ती कालमें वही देव-नागर नामसे प्रसिद्ध हुआ अथवा नागरी लिपिको बहु विस्तृति होनेसे अथवा इससे अधिकांश देवमाहात्म्य सूचक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे जानेसे महिमावाचक देव-शब्दके योगसे नागरी 'देवनागरी' नामसे प्रसिद्ध हुई।

(३) Epigraphia Indica, Vol. I. p. 295.

(४) नागरखण्डमें भी लिखा है, कि समाजच्युत चम्पशर्मा और उनके सहचरोंने सरस्वती नदीके दाहिने किनारे नागरेश्वर और नगरादित्य नामक मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की। (नागरखण्ड १५५ अ०) इस हिसाबसे वाह्यनागरोंने जो वहां भी नगर नामक एक पुर बसाया था, वह असम्भव नहीं है।

(५) Campbell's Bombay Gazetteer, Vol. VII, and Lists of the Antiquarian Remains in the Bombay Presidency, by J. Burgess, p. 169.

(६) Indian Antiquary, 1874. p. 230.

(७) नागर ब्राह्मण आज भी अपनेको सब ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ बतलाते हैं जिसके प्रमाण स्वरूप वे एक श्लोक इस प्रकार देते हैं—

"श्रेष्ठा गावः पशूनाञ्च यथा पद्मसमुद्भवः।
विप्राणामिह सर्वेषां तथा श्रेष्ठा हि नागराः॥"
(नागरखण्ड ११८।१५)

नागराक्षरकी उत्पत्ति कबसे हुई यह स्थिर करना बहुत कठिन है। इस देशके ब्राह्मण पण्डितोंका विश्वास है, कि जबसे लिखनेकी प्रणालीकी सृष्टि हुई है तभीसे नागराक्षरका उत्पत्तिनिर्णय करना होगा। उदयपुर वासी प्राचीन लिपिमालाके प्रणेता पण्डित गौरीशङ्करने भी यही मत प्रकाश किया है, किन्तु हम लोगोंके ख्यालसे उक्त पण्डितोंका मत समाचीनसा प्रतीत नहीं होता।

जिन सब प्राचीन ग्रन्थोंमें भारतीय प्राचीन लिपियोंका नामोल्लेख है, उन सब ग्रन्थोंमें नागरी लिपिका कुछ भी उल्लेख नहीं है। उदाहरण स्वरूप यहां कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं—

प्राचीनतम बौद्धग्रन्थ ललितविस्तरमें लिखा है, विश्वामित्र-दारकाचार्य सिद्धार्थको जब लिपि सिखाने आये, तब सिद्धार्थने शिक्षा ग्रहणके पहले ही गुरुके निकट निम्न ६४ प्रकारकी लिपियोंका परिचय दिया था—यथा १ ब्राह्मी २ खरोष्टी ३ पुष्करसारी ४ अङ्गलिपि ५ वङ्गलिपि ६ मगधलिपि ७ माङ्गल्यलिपि ८ मनुष्यलिपि ९ अङ्गुलीयलिपि १० शकारिलिपि ११ ब्रह्मवल्लीलिपि १२ द्राविड़लिपि १३ किनारिलिपि १४ दक्षिणलिपि १५ उग्रलिपि १६ संख्यालिपि १७ अनुलोमलिपि १८ अर्द्धधनुलिपि १९ दरदलिपि २० खास्यलिपि २१ चीनलिपि २२ हूणलिपि २३ मध्याक्षरविस्तरलिपि २४ पुष्पलिपि २५ देवलिपि २६ नागलिपि २७ यक्षलिपि २८ गन्धर्वलिपि २९ किन्नरलिपि ३० महोरगलिपि ३१ असुरलिपि ३२ गरुड़लिपि ३३ मृगचक्रलिपि ३४ चक्रलिपि ३५ वायुमरुलिपि ३६ भौमदेव लिपि ३७ अन्तरीक्षदेवलिपि ३८ उत्तरकुरुद्वीपलिपि ३९ अपरगौड़लिपि ४० पूर्वविदेहलिपि ४१ उत्क्षेपलिपि ४२ निक्षेपलिपि ४३ विक्षेपलिपि ४४ प्रक्षेपलिपि ४५ सागरलिपि ४६ वज्रलिपि ४७ लेखप्रतिलेखलिपि ४८ अनुद्रुतलिपि ४९ शास्त्रावर्त्तलिपि ५० गणनावर्त्तलिपि ५१ उत्क्षेपावर्त्तलिपि ५२ निक्षेपावर्त्तलिपि ५३ पादलिखितलिपि ५४ द्विरुत्तरपदसन्धिलिपि ५५ दशोत्तर पदसन्धिलिपि ५६ अध्याहारिणीलिपि ५७ सर्वरुतसंग्रहणीलिपि ५८ विद्यानुलोमलिपि ५९ विमिश्रितलिपि ६० ऋषितपस्तप्ता ६१ रोचमाना धरणीप्रेक्षणालिपि ६२ सर्वौषधिनिष्यन्दा ६३ सर्वसारसंग्रहणी और ६४ सर्वभूतरुतग्रहणीलिपि। (ललितविस्तर १० अ०)

जैनियोंके प्राचीनतम एकादशाङ्गके मध्य समवाय नामक ४र्थ अङ्गमें लिखा है, कि आदिजिन ऋषभ देवकी लड़की ब्राह्मीके आधार पर जो लिपि तैयार हुई, वही ब्राह्मी कहलाई। ब्राह्मी आदि १८ प्रकारकी लेखनप्रक्रियाके नाम ये हैं—१ ब्राह्मी २ यवनाली ३ दासपुरिका ४ खरोष्टी ५ पुष्करशारिका ६ पार्वतीया ७ उच्चतुरिका ? ८ अक्षरपुस्तिका ९ भोगवयस्था १० वैयणतिया ? ११ निराह्नया १२ अङ्कलिपि १३ गणितलिपि १४ गन्धर्वलिपि १५ आदर्शलिपि १६ माहेश्वरलिपि १७ दामलिपि और १८ बोलिदिलिपि। (समवायसूत्र)

जैनियोंके ४र्थ उपाङ्ग प्रज्ञापनासूत्रमें भी १८ प्रकारकी लिपियोंका उल्लेख है। यथा—१ ब्राह्मी २ यवनाली ३ दासपुरी ४ खरोष्टी ५ पुष्करशारी ६ भोगवतिका (?) ७ पार्वतीया ८ अन्तरकरी ९ अक्षरपुस्तिका १० वैयणिया (?) ११ निह्नइया १२ अङ्कलिपि १३ गणितलिपि १४ गन्धर्वलिपि १५ आदर्शलिपि १६ माहेश्वरी १७ द्राविड़ी और १८ पोलन्दालिपि (८)। अब कोई कोई कह भी सकते हैं, कि उपरोक्त लिपियोंमेंसे देवलिपि, भौमदेवलिपि और अन्तरीक्षदेवलिपि इन तीन प्रकारकी लिपियोंका उल्लेख तो है, पर इनमेंसे कौन देवनागर हो सकता है तथा नागर नाम देवलिपिसे पड़ा है वा भौमदेवलिपिसे। किन्तु जब हम लोग नागर शब्दका कोई उल्लेख नहीं पाते, तब केवल देव शब्दको लेकर नागरीलिपिकी कल्पना करें वह भी युक्तिसिद्ध नहीं है।

---

(८) टीकाकार मलयगिरिने लिखा है—

"ब्राह्मीयवनालीत्यादयो लिपिभेदास्तु सम्प्रदायादवसेयाः।"

जैनियोंके मतसे महावीरके समयमें ही अङ्गसमूह प्रचलित था और यह महावीरके निर्वाणके १६० वर्ष बाद अर्थात् ३६३ ई०सनके पहले पाटलीपुत्रके श्रीसंघमें संग्रहीत हुआ। अंतिम समय मान लेने पर भी यह कह सकते हैं, कि ई०सन्के ४थी शताब्दीके पहले नागरी लिपिका प्रचार नहीं था। समवायाङ्गमें 'जवनालिया' का जो उल्लेख है, वही पाणिनि-वर्णित यवनानी लिपि समझी जाती है।

इस प्रबन्धके प्रारम्भमें ही प्रमाण उद्धृत करके बतला चुके हैं, कि प्राकृतचन्द्रिकाके रचयिता शेषकृष्णने (१२वीं शताब्दीमें) सत्ताईस प्रकारकी अपभ्रंश भाषाओंमेंसे नागर, उपनागर और दैव नामक तीन स्वतन्त्र भाषाका उल्लेख किया है। हो सकता है, कि जिस प्रकार तीन भाषायें थीं उसी प्रकार तीन तरहके अक्षर भी प्रचलित थे। ललितविस्तरमें जिस भौमदेवलिपिका उल्लेख है, या तो उसकी दैवके साथ या देवभाषाके अक्षरोंके साथ समानता हो सकती है।

किन्तु देवलिपि कहनेसे नागराक्षरका ही बोध हो सकता है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। नागर कहनेसे जिस प्रकार देवनागरका ज्ञान होता है, उस प्रकार देवाक्षर कहनेसे नहीं होता।

ई० सन्के १र शताब्दीके अन्दर ललितविस्तर रचा गया। जैनियोंका ४र्थ उपाङ्ग प्रज्ञापनासूत्र श्यामार्य (१म कालकाचार्य) द्वारा प्रणीत हुआ। खरतरगच्छीय पट्टावलीके मतसे वीर-निर्वाणके ३७६ वर्ष पीछे श्यामार्य आविर्भूत हुए। जैन शब्द देखो। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि प्रायः दो हजार वर्ष पहले किसी अक्षरका नागरी नाम नहीं था।

अब प्रश्न यह उठ सकता है, कि नागर वा नागरी नाम कबसे पहले पहल प्रचलित हुआ।

जैनियोंके धर्मशास्त्र नन्दीसूत्रमें हम लोग सबसे पहले नागरीलिपिका उल्लेख पाते हैं। जैन पण्डित लक्ष्मीवल्लभगणिने स्वरचित कल्पसूत्रकल्पद्रुमकलिका नामक कल्पसूत्रकी व्याख्यामें लिखा है—

"अथ श्रीऋषभदेवेन ब्राह्मी दक्षिणहस्तेन अष्टादश लिपयो दर्शिताः। नन्दीसूत्रे उक्ता यथा—१ हंसलिपि २ भूतलिपि ३ यक्षलिपि ४ राक्षसीलिपि ५ उड्डीलिपि ६ यावनीलिपि ७ तुरुक्कीलिपि ८ कीरीलिपि ९ द्राविड़ीलिपि १० सैन्धवीलिपि ११ मालवीलिपि १२ नड़ीलिपि १३ नागरीलिपि १४ पारसीलिपि १५ लाटीलिपि १६ अनिमित्तलिपि १७ चाणक्कीलिपि और १८ मौलदेवी। देशविशेषादन्या अपि लिपय तद्यथा—१ लाटी २ चौडी ३ डाहली ४ कानड़ी ५ गूजरी ६ सोरठी ७ मरहठी ८ कोङ्कणी ९ खुरासानी १० मागधी ११ सेंहली १२ हाड़ी १३ कीरी १४ हम्मीरी १५ परतीरी १६ मसी १७ मालवी १८ महायोधी इत्यादयो लिपयः पुनरङ्कानां गणितकला दर्शिताः वामहस्तेन सुन्दरी प्रतिलिपि दर्शिता।"

नन्दीसूत्र और कल्पसूत्रकी रचनाप्रणाली प्रायः एक सी है। जैनाचार्यगण कहते हैं, कि कल्पसूत्रके कुछ पहले नन्दीसूत्र रचा गया। कल्पसूत्र आनन्दपुरमें (वर्त्तमान बड़ानगरमें) वल्लभीराज ध्रुवसेनके कहनेसे वीरनिर्वाणके ९८० वर्ष पीछे (४५३ ई०में) सङ्कलित हुआ। प्रायः उसी समय या उससे कुछ पहले नन्दीसूत्र भी सङ्कलित हुआ होगा। इस हिसाबसे ४थी या ५वीं शताब्दीमें हम लोग नागरीलिपिका सन्धान पाते हैं। ४थी वा ५वीं शताब्दीके पूर्ववर्त्ती किसी ग्रन्थमें नागरीलिपिका आज भी कोई सन्धान नहीं मिलता। हम लोगोंका भी अनुमान है, कि ४थी शताब्दीके पहले किसी विशेष लिपिका नागरी नाम नहीं हुआ।

जब ४थी शताब्दीके पूर्ववर्त्ती प्राचीन ग्रन्थोंमें नागरीलिपिका कोई उल्लेख नहीं मिलता तथा कबसे नागराक्षरका आरम्भ हुआ है, उसका भी जब कोई निश्चय नहीं है, तब भारतके भिन्न भिन्न स्थानोंसे जो नागराक्षरमें उत्कीर्ण प्राचीनतम शिलालिपि, ताम्रशासनादि तथा नागरी अक्षरमें लिखित प्राचीन हस्तलिपि आविष्कृत हुई हैं वे ही प्रमाणस्वरूप हैं। अतः उन्हींको यहां दिखला देना उचित है। केवल दो एक प्राचीन खोदितलिपि वा हस्तलिपिसे काम नहीं चल सकता। एशियाटिक सोसाइटीके आरम्भसे ले कर आज तक प्रत्नतत्त्वविदोंके यत्नसे जितनी खोदितलिपियां वा हस्तलिपियां संग्रहीत हुई हैं तथा निज सन्धान द्वारा जहां तक आविष्कृत हो सका उनके अक्षरविन्यासको गौरसे देखना एकान्त आवश्यक है। सुतरां नागराक्षरके पूर्वापर लिपिविन्यासका स्थिर करना बहुत अनुसन्धान और समयकी जरूरत है।

उपस्थित थोड़ी खोजसे जहां तक स्थिर हो सका है, उसीका यहां पर संक्षेपसे विवरण दिया जाता है।

वैदिक समयमें भारतवर्षमें किस प्रकारका अक्षर प्रचलित था उसका आज तक भी पता नहीं लगा। बहुतोंका मत है, कि वैदिक समयमें भारतवर्षमें लिपिपद्धति

नहीं थी, सभी एक दूसरेको सुनते आ रहे थे, इसी कारण वेदका दूसरा नाम श्रुति हुआ है। पाश्चात्य पण्डितोंकी धारणा है कि पाणिनिमें जो "यवनानि लिपि"का उल्लेख है, उससे जान पड़ता है कि भारतमें प्रथमतः यवन-लिपि ही प्रचलित हुई और वही लिपि पीछे भारतीय लिपि कहलाने लगी है (९)। पण्डित सत्यव्रत सामाश्रमीने प्रमाण दे कर यह साबित किया है, कि मूल वेद और उपनिषद्‌के रचे जानेके बाद तथा वेदके निरुक्तकार यास्कके पहले पाणिनि आविर्भूत हुए थे। उनके गम्भीर गवेषणापूर्ण प्रबन्ध पढ़नेसे जान पड़ता है, कि कमसे कम तीन हजार वर्ष पहले पाणिनि विद्यमान थे। (१०) पाणिनिके ३।२।२१ सूत्रमें "लिपिकर" शब्दका उल्लेख है। अतः उनके समयमें लिपिप्रणाली प्रचलित थी, इसमें सन्देह नहीं। पण्डित गोल्डष्टकरके मतसे पाणिनिमें जो "यवनानि" शब्दका उल्लेख है वह Cuneiform writing भी कह सकता है (११)। किसीका अनुमान यह भी है, कि पाणिनिके समयमें ब्राह्मणोंका प्रवर्त्तित ब्राह्मी अक्षर प्रचलित था। उस अक्षरके साथ पृथकता दिखलानेके लिये ही पाणिनिने यवनलिपिका उल्लेख किया होगा। पीछे खरोष्टी आदि लिपिया निकली हैं। ब्राह्मी-लिपि नागरीसे भी प्राचीनलिपि होने पर भी विना विशेष प्रमाणके उसको हम लोग भारतका आदि अक्षर नहीं मान सकते। जैनियोंके प्रज्ञापनासूत्रमें लिखा है, कि जिससे अर्द्धमागधी भाषाका प्रकाश हो सके, उसीको ब्राह्मीलिपि कहते हैं (१२)। किन्तु जो लिपि वेदव्यास वाल्मीकीकी अमृतमयी लेखनीसे निकली थी, वह कौन सी लिपि है, आज तक मालूम नहीं।

बुद्धके समय भारतमें तरह तरहके अक्षर प्रचलित थे, इसका पता हम लोगोंको ललितविस्तरसे लगता है। उनके बादसे ही भारतवर्ष पर मगध-राज्यकी बढ़ती दीख पड़ी। उस समय यहांके सम्राट्‌गण स्थानीय मगधलिपिको ही काममें लाते थे, इसमें सन्देह नहीं। समस्त भारतवर्षमें ही जब मगध राजाओंका आधिपत्य विस्तृत था, उस समय मगधलिपि ही सब जगह प्रचलित होगी इसमें भी सन्देह नहीं। इसीसे हम लोग सिन्धु नदीके पश्चिम पार छोड़ कर सभी जगह एक ही प्रकारकी उत्कीर्ण अशोककी अनुशासनलिपि देखते हैं। उक्त मगधलिपिने धीरे धीरे उन्नति लाभ कर यथाक्रम शाह, गुप्त, वलभी, चालुक्य आदि वंशीय राजाओंके समयकी उत्कीर्ण लिपियोंका आकार धारण किया है। उन सब लिपियोंने किस प्रकार पुष्टि लाभ की है वह इस प्रबन्धमें नहीं दिया जाता है। ब्राह्मी और वर्णमाला देखो।

प्राचीन मगध-लिपिसे ही मैथिल (पूर्व विदेह), वङ्ग आदि लिपियां उत्पन्न हुई हैं। नागरी लिपि भी मगध-लिपिसे ही निकलती है। किस प्रकार और कबसे मागधीलिपिसे नागराक्षरका प्रकाश हुआ है अभी उसीका प्रमाण देना उचित है।

पराक्रान्त गुप्तराजगण ४थी शताब्दीसे ले कर ७वीं शताब्दी तक मगधके सिंहासन पर आरूढ़ थे। उनके समयके अनेक लिपिसंयुक्त शिलाफलक और ताम्र-शासन आविष्कृत हुए हैं। उनसे जाना जाता है, कि ४थी शताब्दीसे ले कर ७वीं शताब्दी तक भारतवर्षके पश्चिम प्रान्तसे पूर्व प्रान्त वङ्ग उत्कल पर्यन्त गुप्तमगध-लिपि व्यवहृत होती थी (१३)।

(९) Max Muller's Ancient India, Weber's Indisch Studien, IV. p. 544.

(१०) एशियाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित निरुक्तके ४र्थ भागमें "कः कालो यास्कस्य ?" प्रबन्ध द्रष्टव्य।

(११) Prof Goldstucker's Manava-kalpasutra, preface, p 16.

(१२) "से किं तं भासारिया ? जेणं अद्धमागहाए भासाए भासेन्ति, जत्थ य नं बम्भीलिवि पवत्तइ॥" (प्रज्ञापनासूत्र)

(१३) गुप्तराजाओंके समयमें यह लिपि भारतवर्षके सब स्थानोंमें प्रचलित थी, इसी कारण इसका 'गुप्तलिपि' नाम रखा गया। यथार्थमें यही लिपि गुप्तराजाओंके समयसे बहुत पहले प्रचलित थी। पंजाब, गुजरात और मथुरा प्रान्तसे शाह (शक)-राजाओंके समयमें उत्कीर्ण जो सब प्राचीन शिलालिपि और मुद्रादि आविष्कृत हुई हैं उनमें गुप्तलिपिका निदर्शन है। बांकुड़ेके शुशुनियां पहाड़से प्रबल प्रतापशाली गुप्त-सम्राट् समुद्र-गुप्तके पूर्ववर्ती महाराज चन्द्रवर्माकी जो शिलालिपि अभी आविष्कृत हुई है उसमें भी गुप्तलिपिका पूर्ण विकाश देखा जाता

७वीं शताब्दीके मध्यभागमें मगधराज आदित्यसेनकी शिला-लिपिमें हम लोग नागरी लिपिका निशान पाते हैं। गया जिलेके अन्तर्गत नवादा थानेको सकरी नदीके दाहिने किनारे जाफरपुर वा अफसड़ नामक एक प्राचीन ग्राम है, जहां एक प्राचीन मन्दिरमें वराह-मूर्त्तिके समीप वह शिला-लिपि रखी हुई थी। तथा-दित्य नामक एक गौड़वासीसे वह लिपि उत्कीर्ण हुई है। प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववित् फ्लिट् साहबने इस लिपिके विषयमें यों लिखा है—"इस खोदित लिपिके अक्षरको ७वीं शताब्दीका मागधी-कुटिल नामक (१४) अक्षर कह सकते हैं। यथार्थमें वर्तमान देवनागरीसे इसमें थोड़ा ही अन्तर देखनेमें आता है।' (१५)

आदित्यसेनके पूर्ववर्ती उक्त राजाओंके समयमें जो लिपि उत्कीर्ण हुई है उसके युक्ताक्षरोंकी लेखप्रणाली वर्त्तमान समयके वङ्गीय वा नागराक्षर सरीखा नहीं है, वरन् वह यहांके तिब्बतीय (१६) अक्षरोंसे मिलती जुलती है। किन्तु उक्त अफसड़ लिपिका युक्ताक्षर प्राचीन गुप्तलिपिके स्वरसे तो नहीं, वरन् मैथिली वा प्राचीन नागराक्षरोंमें लिखी हुई पुस्तकोंके युक्ताक्षरोंसे बहुत कुछ मिलता है। अफसड़ लिपिके स्वर और व्यञ्जनका आकार लाखा-मण्डलप्रशस्ति (१७) और भटिन्दाकी शिलाफलकमें (१८) पूर्णता प्राप्त हुई है। श्रीपुरके शबरराजाओंकी शिला-लिपिके अक्षर भी अफसड़ लिपिके क्रमविकाश हैं (१८)। भटिन्दा-शिलाफलक यद्यपि पञ्जाब प्रान्तमें आविष्कृत हुआ है, तो भी उसके युक्ताक्षरको छोड़कर दूसरे दूसरे अक्षरोंके साथ प्राचीन और आधुनिक मैथिल अक्षर बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। गौड़राज धर्मपालके ताम्रफलकमें जो अक्षर उत्कीर्ण है वह भी भटिन्दालिपि सरीखा है (२०)। यद्यपि अफसड़ लिपिके पूर्ववर्ती गुप्त-लिपिका युक्ताक्षर बिलकुल पृथक् था अर्थात् वर्तमान भोटाक्षरके युक्ताक्षरसे नहीं मिलता था, तो भी उसीने धीरे धीरे उन्नति लाभ कर वर्तमान मैथिल, बङ्ग और नागराक्षरके युक्ताक्षरका आकार धारण कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं। बखशालीसे सारदा अक्षरमें लिखी हुई जो प्राचीन पुस्तक आविष्कृत हुई है उसकी वर्णमाला ही हम लोगोंके प्रस्तावको बहुत कुछ समर्थन करती है। डाक्टर होरनली साहबके मतसे वह पुस्तक प्रायः ८वीं वा ९वीं शताब्दीके अन्दर लिखी गई होगी (२१)। उस पुस्तकमें लिखे हुये क, ग, घ, च, छ, ज, ण, त, द, ध, प, ब, म आदि अनेक अक्षरोंके साथ प्राचीन बङ्गाक्षर और मैथिल हस्तलिपिके अक्षर कुछ मिलते हैं। फिर अनेक युक्ताक्षर और व्यञ्जनके साथ अफसड़ आदि गुप्त-लिपियोंकी पूरी सदृशता देखी जाती है। इससे मालूम पड़ता है, कि उक्त सारदा अक्षर भी मगध वा गौड़से पहले निकला और पीछे वह काश्मीर और पञ्जाब प्रान्तमें प्रचलित हुआ होगा, क्योंकि वह लिपि सामयिक गौड़लिपि सी होने पर वह तत्काल-प्रचलित युक्त-प्रदेशकी लिपियोंसे भी नहीं मिलती। इस प्रकार दूर देशोंमें प्रचारित होनेके पहले कमसे कम ७वीं वा ८वीं शताब्दीको गौड़-राज्यमें वह अक्षर प्रचलित था, यह आसानीसे स्वीकार किया जा सकता है।

अतएव जिस समय मगधराज्यमें अफसड़-शिला-लिपि उत्कीर्ण हुई, उस समय वा उसके कुछ बादमें

---

है। हम लोगोंके ख्यालसे अशोकलिपिसे शाह और शाहसे ही गुप्तलिपिका क्रमविकाश हुआ है।

(१४) छिन्दराज लल्लके १०४९ सम्वत्में उत्कीर्ण देवल-प्रशस्तिमें कुटिलाक्षर शब्दका सर्व प्रथम उल्लेख मिलता है-

"विष्णुहरेस्तनयने च लिखिता गौडेन करणिकेनेषा।
कुटिलाक्षराणि विदुषा तक्षादित्याभिधानेन॥"

Epigrephia Indica, vol. I. p. 8.

(१५) Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III p. 202.

(१६) तोन-मी-सम-भो-ट नामक एक व्यक्तिने ७वीं शताब्दीमें भारतीय वर्णमालाका तिब्बतमें प्रचार किया। इसीसे ७वीं वा उसके भी पहले उत्तर-भारतीय वर्णमालाके साथ तिब्बतीय अक्षरोंकी समानता है। भारतवर्षसे बहुत दिन हुए, जो अक्षर विलुप्त हुआ था तिब्बतमें वह आज भी प्रचलित है।

(१७) Epigraphia Indica, Vol. I. p. 10.

(१८) Cunningham's Archæological Survey Reports, Vol. XXIII. plate XXVII.

(१९) Cunningham's Archæological Survey Reports, Vol. XVII, plates IX, XIV and XX.

(२०) Journal Asiatic Society of Bengal, Vol. LXII, pt. I, plate III.

(२१) Indian Antiquary, Vol. XII. p. 89.

आधुनिक लिपिमूलक में थिल और वङ्गाक्षर प्रचलित हुआ होगा।

अब यहां यह प्रश्न उठ सकता है, कि यदि ७वीं वा ८वीं शताब्दीमें वर्त्तमान मैथिल और वङ्गाक्षर प्रचलित हुआ हो, तो गौड़राज धर्मपालकी लिपिमें वर्त्तमान गौड़ाक्षर-का प्रकृतरूप क्यों नहीं दिया गया? इसका उत्तर यही है, कि धर्मपालके पिता गोपाल मगधमें राज्य करते थे, उस समय अक्षरका परिवर्त्तन होने पर भी वे राजकीय दानपत्रादिमें पूर्वतन मगधलिपिका परित्याग न कर सके (२२)। किन्तु धर्मपाल और देवपालके परवर्त्ती पाल-राजाओंने पूर्वाक्षरका परित्याग करके उस समयके प्रच-लित अक्षरोंमें ही ताम्रशासन और शिलाफलकादि उत्कीर्ण किये हैं। उनके प्रचलित अक्षरोंके साथ गुप्त-लिपिकी कोई सदृशता न थी। वही अक्षर यहांकी वर्त्तमान गौड़लिपिका आदि विकाश है (२३)। उन सब लिपियोंने इतने थोड़े समयमें पूर्णता लाभ न की। पूर्णता तथा पुष्टिता लाभ करनेमें कमसे कम दो तीन शताब्दीसे कम समय नहीं लगता। इस प्रकार ६ठी वा ७वीं शताब्दीसे गौड़ाक्षर वर्त्तमान अवस्थामें आ गया है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु मूल वङ्गलिपि उससे बहुत प्राचीन है, क्योंकि दो हजार वर्ष से भी पूर्ववर्त्ती ललितविस्तरमें वङ्गलिपिका स्पष्ट उल्लेख है। वङ्गलिपि देखो। नागरीलिपि उतनी प्राचीन नहीं है।

वर्त्तमान नागराक्षरमें उत्कीर्ण जितने शिलाफलक ताम्रशासन और हस्तलिपि आविष्कृत हुई है, उनमेंसे वगुमरासे प्राप्त गुर्जरराज दद्दप्रशान्तरागका ताम्रशासन-ही जो ४१५ शकमें उत्कीर्ण हुआ था, सबसे प्राचीन है (२४)। इस ताम्रशासनका सर्वांश ही उस समयके गुजराती अक्षरोंसे लिखे जाने पर भी सबसे अन्तमें जहां राजाका हस्ताक्षर हुआ है वहां केवल नागराक्षरमें इस प्रकार लिखा है—"स्वहस्तोयं मम श्रीवीतरागसूनोः श्रीप्रशान्तरागस्य।"

केवल राजाका हस्ताक्षर नागराक्षरमें लिखा रहनेसे यह स्पष्ट जान पड़ता है, कि गुजरातमें भिन्न अक्षरों (गुप्त-लिपियों)-का प्रचार होने पर भी उस समय वा उसके पहलेसे ही राजपरिवारगण नागराक्षरमें लिखनेका अभ्यास करते थे। उपरोक्त दद्दके ताम्रशासनके बाद द्वारकापुरीके दक्षिण-पूर्वमें समुद्रके किनारे अवस्थित धिनिकि ग्रामसे सौराष्ट्रराज जाइक्कदेवका जो ताम्रशासन ७९४ सम्वत्में आविष्कृत हुआ है, उसमें नागराक्षर-का पूरा प्रचार देखा जाता है (२५)। जाइक्कदेवने महा-मात्य भट्टनारायणकी अनुमति ले कर ही मुद्गलगोत्र ईश्वरको उक्त शासनपत्र दिया था। जाइक्कदेवका वह ताम्रशासन देखकर बहुतेरे कहा करते हैं, कि उसकी लिखावट किसी अपटु लेखककी है। किन्तु हम लोगों-का विश्वास कुछ और है। महाराज दद्दकी हस्तलिपिमें जिसप्रकार नागराक्षरके साथ बहुतेरे गुप्तलिपियोंका आभास झलकता है, जाइक्कदेवकी लिपिमें उस प्रकारका आभास तो नहीं देखा जाता, लेकिन वह वर्त्तमान नागराक्षरका प्राचीनतम रूप है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसके बाद ही राष्ट्रकूटराज दन्तिदुर्ग खड्गावलोकके ६७५ शकमें जो ताम्रशासन उत्कीर्ण हुआ है वही देखनेमें आता है। कोलापुरके अन्तर्गत सामनगढ़से वह शासन आविष्कृत हुआ है (२६)। इस ताम्रफलकका अक्षरविन्यास बहुत बढ़िया है। इसके इ, ए, घ, च, ण, ध, न, व और श गुजरातके प्राचीन Cave अक्षरका रूप धारण करने पर भी दूसरे दूसरे सभी वर्णोंमें नागराक्षरका विकाश देखा जाता है। यथार्थमें दन्तिदुर्ग और उसके परवर्त्ती गुजरातके राष्ट्र-कूट राजाओंके यत्नसे ही नागराक्षरका प्रचार आरम्भ

(२२) नालन्दासे महाराज गोपालदेवकी जो उत्कीर्ण लिपि पाई गई है, उसका कोई अंश आधुनिक मान लेनेसे भी वह बहुत कुछ अफ सङ्ग लिपिसे मिलता जुलता है। (Cunningham's Archæological Survey Reports, Vol. 1. plate XIII, No. I)

(२३) Cunningham's Archæological Suevey Reports Vol III, plates XXXV, XXVII.

(२४) Indian Antiquary, Vol. XVII.

(२५) Indian Antiquary, Vol. XII p. 165.

(२६) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. II, p. 3-11. and Indian Antiquary, Vol. XI, p. 110.

हुआ है (२७)। ७५७ शकमें उत्कीर्ण राष्ट्रकूटराज २य ध्रुवके ताम्रशासनमें (२८), ८३६ शकमें उत्कीर्ण राष्ट्रकूटराज इन्द्र नित्यवर्षके ताम्रशासनमें (२९), ८५५ शकमें उत्कीर्ण गोविन्द सुवर्णवर्षके ताम्रशासनमें (३०), ८६२ शकमें उत्कीर्ण राष्ट्रकूटराज कृष्ण अकालवर्षके ताम्रशासनमें (३१) तथा ८८४ शकमें उत्कीर्ण अमोघवर्षके ताम्रशासनमें नागराक्षरका पूर्ण विकाश देखा जाता है।

२य ध्रुवका ताम्रशासन प्राचीनतम नागराक्षरमें लिखा रहने पर भी उसके त, ध, ण, न, ए आदि किसी किसी वर्णमें प्राचीन गुप्ताक्षर वा दाक्षिणात्यकी गुहालिपिका छन्द है, किन्तु गोविन्द सुवर्णवर्ष, इन्द्र नित्यवर्ष और अमोघवर्षके ताम्रशासनमें आधुनिक नागराक्षरका प्रादुर्भाव हुआ है। पूर्वतन दद्द, जाइक्क, दन्तिदुर्ग वा ध्रुवकी शासनलिपिके युक्ताक्षर देखनेसे ही वे युक्ताक्षरसे निकले हुए तथा वर्त्तमान नागराक्षरकी आदिम अवस्थाके युक्ताक्षर सरीखा प्रतीयमान होते हैं। किन्तु गोविन्द सुवर्णवर्षकी लिपिमें विलक्षणता देखी जाती है। जिस प्रकार प्राचीन वङ्गीय और मैथिल लिपिमें ॆ, ो, ौ आदि युक्ताक्षर हैं, उसी प्रकार सुवर्णवर्ष आदिके ताम्रशासनोंमें मैथिल वा वङ्गीय युक्ताक्षर दिये गये हैं। इससे जान पड़ता है, कि वर्त्तमान वङ्गीय और मैथिललिपिमें जो युक्ताक्षर व्यवहृत होता है, गुप्त वा नागरीलिपिके साथ उसकी सादृश्यता नहीं रहने पर भी वह नितान्त आधुनिक नहीं है। कमसे कम ७वीं वा ८वीं शताब्दीमें इस प्रकार का युक्ताक्षर निकला होगा। इस प्रकारकी युक्ताक्षरविशिष्ट नागरीलिपि गुजरातमें जैननागरीके नामसे प्रसिद्ध है।

बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि गौड़राज धर्मपालके ताम्रशासनमें इस प्रकारका युक्तस्वर व्यवहृत नहीं होने पर भी तत्परवर्त्ती दूसरे दूसरे पाल और सेनराजाओंके समयमें जो लिपि उत्कीर्ण हुई है, उसमें भी इस प्रकारका युक्ताक्षर साफ साफ दीख पड़ता है। ९३० शकको वङ्गाक्षरमें लिखित काशीखण्डका जो ग्रन्थ विश्वकोषकार्यालयमें संगृहीत है, उसमें इस प्रकारका युक्ताक्षर साफ साफ अङ्कित है।

९वीं शताब्दीसे नागरी और गौड़लिपिका पूरा प्रचार देखा जाता है। ९वींसे ले कर ११वीं शताब्दीके मध्य नागरी और गौड़लिपिने जो आकार धारण किया था आज भी वह आकार देखनेमें आता है। यदि कुछ कुछ सामान्य भेद देखा भी जाता है, तो स्थानके भेदसे वा लेखकके भेदसे।

ऊपर जो सब बातें लिखी गई हैं उनसे सिर्फ यही जाना जाता है, कि क्या ग्रन्थगत प्रमाण, क्या प्राचीनलिपि दोनोंसे ही ९वीं शताब्दीमें हम लोग सबसे पहले नागरीलिपिका सन्धान पाते हैं। इसके पहले नागरीलिपि थी वा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं पाते। सबसे पहले लिखा जा चुका है, कि नगर नामक पुरवासी नागर ब्राह्मणसे नागराक्षर वा नागरीलिपि प्रचलित हुई है। नागर ब्राह्मण लोग गुजरातके रहनेवाले थे। गुजरातसे ही सर्व प्राचीन नागरीलिपिका आविष्कार हो जानेसे वह हम लोगोंके प्रस्तावका बहुत कुछ समर्थन करता है।

किन्तु यहां अब वह प्रश्न उठ सकता है, कि गुजरातमें २रीसे ७वीं शताब्दी तक जो असंख्य शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं उन्हें पुराविद् लोगोंने गुहालिपिके जैसा उल्लेख किया है। समूचा दक्षिण प्रदेशसे जो सब प्राचीन शिलालिपि वा ताम्रशासन आविष्कृत हुये हैं, उनमेंसे अधिकांश इसी तरहकी गुहालिपिमें उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार नागर ब्राह्मणोंने देश प्रचलित अक्षरोंको ग्रहण न कर दूसरे प्रकारका जो अक्षर ग्रहण किया उसका क्या कारण? गुहालिपिको यदि गौरसे देखा जाय तो उससे नागरीलिपि उत्पन्न हुई है यह साफ साफ स्वीकार नहीं कर सकते, वरन् नागरीलिपिको मगधका गुप्तलिपि-

(२७) केवल राष्ट्रकूटराज कर्क सुवर्णवर्षके ७३४ शकाङ्कित ताम्रशासनमें विलक्षणता तो देखी जाती है। इस ताम्रशासनमें दाक्षिणात्यकी प्राचीन गुहालिपि (Cave alphabet) संगृहीत हुई है। Indian Antiquary, 1883, p. 156.

(२८) Indian Antiquary, Vol. XIV. p. 200.

(२९) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII.

(३०) Indian Antiquary, Vol. XII. p. 280.

(३१) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII.

मूलक मान सकते हैं। इससे बोध होता है, कि गुजरातमें प्रचलित प्राचीनतम नागरीलिपिको गौड़, मगध वा उत्तर भारतवर्ष से ला कर नागर ब्राह्मण द्वारा इसका नागरी नाम पड़ा होगा।

किस प्रकार और किस समयमें इस नागरीलिपिका प्राचीन रूप उत्तर भारतसे गुजरातमें लाया गया इसका निर्णय करना असम्भव है। स्कन्दपुराणीय नागरखण्डके १०८ अध्यायमें लिखा है, कि दूर देशान्तरसे जो ब्राह्मण अपने पुत्रकलत्रादिको साथ ले कर हाटकेश्वरक्षेत्रमें आये थे, नागसे नगर-उद्धारकारी विप्रवर त्रिजातने उन सबको धनरत्नादि दे कर यहां (नगरमें) बसाया था। इससे मालूम पड़ता है कि नागर ब्राह्मण बहुत दूर देशोंसे आ कर यहां रहने लगे थे।

पहले ही लिख चुके हैं, कि नगर वा बड़ानगरका प्राचीन नाम आनन्दपुर था। ४थी, ५वीं और ६ठी शताब्दीके ताम्रशासनमें नगरके बदले केवल आनन्दपुरका नाम देखा जाता है। ५१० सम्वत्‌में सङ्कलित जैनियोंके धर्मग्रन्थ कल्पसूत्रमें लिखा है, कि वलभीराज ध्रुवसेनके आदेशसे इसी आनन्दपुरमें सबके सामने कल्पसूत्र पढ़ा जाता था। चीनपरिव्राजक युअनचुवङ्ग यहां बौद्धसङ्घाराम और अनेक हिन्दू देवमन्दिर देख गये हैं। उस समय यह नगर मालव-राज्यके अधीन था। चीनपरिव्राजकने यहां जो सब हिन्दू देवालय देखे थे, जान पड़ता है, कि वे ही नागरखण्ड-वर्णित हाटकेश्वर आदिके मन्दिर हैं।

अब प्रश्न यह उठता है, कि ४थी वा ५वीं शताब्दीकी नन्दीसूत्रमें नागरीलिपिका उल्लेख रहनेपर भी नागरखण्ड छोड़ कर उस समयके दूसरे दूसरे ग्रन्थोंमें वा उत्कीर्ण लिपियोंमें "नगर" नामका जो उल्लेख नहीं है, इसका क्या कारण? मालूम पड़ता है, कि बौद्ध और जैनराजाओंके आधिपत्यकालमें विधर्मी राजपुरुषोंने ब्राह्मणप्रदत्त नूतन नामको ग्रहण नहीं किया। वे सबके सब आनन्दपुर ही कहा करते थे। पीछे नागरभक्त हिन्दू-राजाओंके समय यह नगर नामसे प्रसिद्ध हुआ (३२)।

नागरखण्डमें लिखा है,—विप्रवर त्रिजात और उनके सहचारी ब्राह्मणोंने नागवंश ध्वंस करके वा नागोंको भगा करके हाटकेश्वरका उद्धार किया —यह प्रसङ्ग पहले ही लिख चुके हैं। हम लोगोंके विचारसे वह एक रूपक वर्णन है। शायद शैव लोगोंने ३री शताब्दीके अन्तमें गुजरातके शाह वा नागवंशीय राजाओंको परास्त कर हाटकेश्वर पर अधिकार जमाया,—यही रूपकको तौर पर स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें वर्णित हुआ है।

गुर्ज्जरेश्वरके पुरोहित सोमेश्वर एक नागर ब्राह्मण थे। उन्होंने स्वरचित सुरथोत्सव नामक महाकाव्यमें अपने पूर्वपुरुषोंका परिचय देते हुए लिखा है, —"द्विजातियोंकी प्रशस्त वासभूमि नगर नामका एक स्थान है, वेदवित् और पवित्र यज्ञीय होमाग्निसे जिस स्थानने पवित्र भाव धारण किया है, वहां राजप्रसादप्राप्त वशिष्ठगोत्रके गुलेच वास करते थे। उनके वंशमें सोलशर्मा उत्पन्न हुए। वे गुर्ज्जरेश्वर मूलराजके पुरोहित थे।" सोमेश्वरने फिर एक जगह लिखा है, कि उनके पूर्वपुरुष ही गुरुपारम्पर्यक्रमसे गुर्ज्जरके चौलुक्योंके यहां पुरोहिताई कराते रहे। उनमेंसे कोई कोई राष्ट्रकूटराजाके भी पुरोहित थे।

मूलराज १०वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उनके समयमें नगर नाम प्रचलित होने पर भी उनके बहुत पहलेसे ही नागर ब्राह्मण जो यहां रहते आते थे, वह सोमेश्वरका वर्णन पढ़नेसे जाना जाता है। ८वीं शताब्दी तक यहां वनराज प्रभृति जैन राजगण राज्य करते थे, इसीसे जान पड़ता है, कि यहां नागरब्राह्मणमूलक नगर नाम प्रचलित हो नहीं सकता।

चीन-परिव्राजकके समय ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहां हिन्दू देवमन्दिरादि प्रतिष्ठित थे। नागरखण्डके मतानुसार नागर ब्राह्मणोंने नगर वा चमत्कारपुरके देवमन्दिरादिका निर्माण किया। ५वीं शताब्दीमें वा उसके पहले आनन्दपुरमें जैनियोंकी प्रधानताका प्रमाण मिलता है। पहले ही कहा जा चुका है, कि ४थी वा ५वीं शताब्दीमें रचित नन्दीसूत्रमें नागरीलिपिका स्पष्ट उल्लेख

(३२) नागरखण्डमें आनन्देश्वर महादेवका वर्णन है, जान पड़ता है कि आनन्दपुरसे ही आनन्देश्वरका नामकरण हुआ होगा।

है और उस समयके गुर्जरराज दद्द-प्रशान्तरागके हस्ताक्षरमें भी नागरीलिपिका प्रथम प्रयोग देखनेमें आता है। इस प्रकार हम लोग अनुमान कर सकते हैं, कि ५वीं शताब्दीके पहले प्रायः ३री और ४थी शताब्दीके मध्य उत्तरी अञ्चल जो नागर ब्राह्मण यहां आये, उन्हींसे नागराक्षर प्रचलित हुआ होगा। आश्चर्यका विषय है, कि गुजरातसे नागराक्षरमें उत्कीर्ण जो सब प्राचीन ताम्रशासन पाये गये हैं, उनमेंसे अधिकांश कान्यकुब्ज, पाटलीपुत्र, पुण्ड्रवर्द्धन आदि स्थानवासी समागत ब्राह्मणोंके लिये ही दिये गये हैं।

उक्त दद्द प्रशान्तरागके ४१५ शकाङ्कित ताम्रशासनमें लिखा है, कि कान्यकुब्जवास्तव्य भट्ट महीधरके पुत्र भट्ट-गोविन्दको वह ताम्रशासन दिया गया था। राष्ट्रकूटराज-नित्यवर्षके ८३६ शकाङ्कित ताम्रशासनमें लिखा है, कि पाटलीपुत्रके लक्ष्मणगोत्रीय वेन्नपभट्टके पुत्र सिद्धपभट्टको लाटदेशान्तर्गत तेन्नग्राम दानमें दिया गया। इसी प्रकार ८५४ शकाङ्कित राष्ट्रकूटराज गोविन्द सुवर्णवर्षके ताम्रशासनमें भी पुण्ड्रवर्द्धननगरके कौशिक गोत्रीय केशव-दीक्षितको लोहग्रामके दानकी बातें लिखी हैं। इन सब प्रमाणोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि बहुत पहलेसे ही कान्यकुब्ज, पाटलीपुत्र और पुण्ड्रवर्द्धनसे बहुसंख्यक ब्राह्मण गुजरातमें आ कर रहने लगे। उनके भी बहुत पहलेसे नागर ब्राह्मण लोग उक्त स्थानोंसे आ कर चमत्कारपुरमें रहने लगे थे। यह सब हाल हम लोगोंको नागरखण्डवर्णित दूरदेशान्तरागत ब्राह्मणोंका विवरण पढ़नेसे मालूम होता है। इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा ही नागरीलिपिका प्राचीनरूप गुजरातमें लाया गया और उन्हींसे प्रचार भी किया गया होगा, इसमें सन्देह नहीं।

नागर ब्राह्मण बहुत प्राचीन कालसे गुजरातके राष्ट्रकूट और चौलुक्य राजाओंके वंशानुक्रमसे पुरोहित थे; इतना ही नहीं, दरबारमें उनकी खातिर भी खूब होती थी। गुर्जर राजगण नागर ब्राह्मणोंके प्रति किस प्रकार असामान्य भक्ति श्रद्धा दिखलाते थे, वह नागर ब्राह्मणोंके आदि वासस्थान बड़ानगरमें जो प्रस्तरलिपि उत्कीर्ण हैं, उनकी सैकड़ों प्रशस्तिमें घोषित है। उक्त राष्ट्रकूट और चौलुक्य राजाओंके यत्नसे ही नागरीलिपि सारे भारतवर्षमें प्रचलित हुई। लाटाधिपति राष्ट्रकूटवंशीय कर्क सुवर्णवर्षके ७३४ शकाङ्कित ताम्रशासनमें स्पष्ट लिखा है—

"गौड़ेन्द्र-वङ्गपति-निर्जयदुर्विदग्ध
सद्गुर्जरेश्वरदिगर्गलतांच यस्य।
नीत्वा भुजं विहत-मालव-रक्षणार्थं
स्वामी तथान्यामपि राज्यच्छलानि भुङ्क्ते॥" (३३)

फिर मान्यखेटके प्रतिष्ठाता राष्ट्रकूटराज नृपतुङ्गके पुत्र गुर्जरेश्वरने कृष्णराजके विषयमें अकालवर्षके ८६२ शकाङ्कित ताम्रशासनमें लिखा है—

"तस्योत्तर्जितगूर्जरोहृतहटल्लाटोद्भट श्रीमदो
गौड़ानां विनयव्रतार्पणगुरुसामुद्रनिद्राहरः।
द्वारस्थान्ध्र-कलिङ्ग-गाङ्गमगधैरभ्यर्चिताज्ञश्चिरं
सूनुः सूनृतवाग् भुवः परिवृढ़ः श्रीकृष्णराजो भवत्॥" (३४)

यहां शासनलिपि पढ़नेसे जान पड़ता है कि ८वीं, ९वीं और १०वीं शताब्दीमें गुर्जरके राष्ट्रकूटराजाओंने गौड़, वङ्ग, कलिङ्ग, गाङ्ग, मगध, मालव आदि स्थानोंको जीता था। (कनौजके विख्यात राठौर-राजगण भी राष्ट्रकूटवंशके थे।) इस प्रकार ज्ञात होता है, कि ८वीं-से १०वीं शताब्दीके भीतर गुर्जरके राष्ट्रकूटवंशके कुल-गुरु नागर ब्राह्मणोंका प्रवर्त्तित अथवा व्यवहृत नागराक्षर नागरी नामसे सारा आर्यावर्त्तमें प्रचलित हुआ था।

राष्ट्रकूट-राजाओंके यत्नसे जो नागरी नाम समस्त आर्यावर्त्तमें फैल गया था, मुद्रायन्त्रकी सहायतासे तथा पाश्चात्य विद्वानोंके उत्साहसे वह लिपि आज सारे संसारमें परिव्याप्त हो गई है।

**देवनागरी**—नागरी लिपिका नामान्तर। देवनागर देखो।

**देवनाथ** (सं० पु०) देवानां नाथः ६-तत्। शिव, महादेव।

**देवनाथ**—१ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने तत्त्वचिन्तामणिकी रचना की है। २ मीनकेतूदय नामक संस्कृत काव्यके रचयिता। ३ रसिकप्रकाश नामक संस्कृत अलङ्कारके रचयिता। ४ एक हिन्दीकवि। इनका और कुछ विशेष पता नहीं मिलता है।

**देवनाथ ठक्कुर**—एक संस्कृत ग्रन्थकार, सोमभट्टके शिष्य।

(३३) Indian Antiquary for 1883, p. 106.

(३४) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII, p. 248.

इन्होंने अधिकरणकौमुदी, अधिकरणसार और स्मृति-कौमुदी नामक कई ग्रन्थ बनाये हैं।

इनकी अधिकरणकौमुदीमें श्रीदत्तका रत्नाकर, हरिनाथका कल्पतरु और वाचस्पतिमिश्रका मत उद्धृत हुआ है।

देवनाथ तर्कपञ्चानन—काव्यकौमुदी नामक काव्यप्रकाशके एक विख्यात टीकाकार।

देवनामन् (सं० पु०) १ कुशद्वीपपति हिरण्यरेताके एक पुत्रका नाम। २ कुशद्वीपके एक वर्षका नाम।

देवनामक (सं० पु०) देवेति नाम यस्य कप्। देवयोनि विद्याधरादि।

देवनायक (सं० पु०) सुरपति, इन्द्र।

देवनारक (सं० पु०) नर एव नारः ततः स्वार्थे कन्। देवरूप नर, देवजन।

देवनारायणखत्री—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सं० १८३४में जौनपुर जिलेमें हुआ था। इन्होंने रामैश्चमनोरञ्जनी, वियोगवारिधि, प्रेमपदावली आदि कई एक ग्रन्थ प्रणयन किये। इनकी कविता अच्छी होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

"गङ्ग तरङ्ग उठैं कच बीचमें अङ्ग उमा अरधङ्ग बसी है।
नङ्ग ह्व अंग अनंग न संग भुवंगम भूषण भाल ससी है॥
प्यारे लला पग सेवत ही तव सेवककी विपदा विनसी है।
सकट आय सहाय करौ अब मेरी हंसी नहीं तेरी हंसी है॥"

देवनारायण लाल—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म सं० १८३३ में हुआ तथा इन्होंने रमेशमनोरञ्जनी नामक एक पुस्तक लिखी है।

देवनाल (सं० पु०) नलएव स्वार्थे अण्, देवइव श्रेष्ठतात् नालः। नलोत्तम, देवनल, बड़ा नरकट।

देवनिकाय (सं० लि०) देवानां निकायः ६-तत्। १ देव समूह। २ देवस्थान, स्वर्ग।

देवनिद् (सं० त्रि०) देवं निन्दति निन्द-क्विप्। देव-निन्दक, देवताओंकी निन्दा करनेवाला।

देवनिर्मित (सं० त्रि०) देवैर्निर्मितः ३-तत्। १ देवतासे रचित, जो देवतासे बनाया गया हो। (स्त्री०) २ गुडूची, गुरुच।

देवनिर्मिता (सं० स्त्री०) गुडूची, गुरुच।

देवनीथ (सं० पु०) सप्तदशपादयुक्त मन्त्रभेद, एक प्रकारका मन्त्र जिसमें सत्तरह चरण होते हैं।

देवन्यल—एक ग्राम। यह अक्षा० ३२° १' उ० और देशा० ७७° २' पू० पञ्जाबके अन्तर्गत सुबाथुसे सिमला जानेके रास्ते पर गम्बर नदीके किनारे अवस्थित है। इस स्थानकी स्थिति और दृश्य बहुत रमणीय है।

यहांसे १५ मील दूर देवन्यल नामका एक दूसरा प्रसिद्ध स्थान है जहां १८१५ ई०में जनरल औकटरलोनीके साथ गोरखाओंका भीषण संग्राम हुआ था। युद्धके बाद ही गोरखा लोग वृटिश गवर्मेण्टके साथ सन्धि करनेको बाध्य हुए।

देवपञ्चरात्र (सं० पु०) पञ्चाह यागभेद, पांच दिनमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

देवपण्डित—एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने पथ्यापथ्य-निघण्टु नामक एक वैद्यक-ग्रन्थ बनाया है।

देवपति (सं० पु०) देवानां पतिः ६-तत्। इन्द्र, देवताओंके स्वामी।

देवपतिमन्त्रिन् (सं० पु०) देवपतेर्मन्त्री ६-तत्। इन्द्रके मन्त्री, वृहस्पति।

देवपत्तन—काठियावाड़के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध देवस्थान। इसका वर्त्तमान नाम सोमनाथ है।

पुराणादिमें यह स्थान प्रभास और प्राचीन खोदित लिपिमें देवपत्तन नामसे वर्णित हुआ है। १३वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण सारङ्गदेवकी प्रशस्तिमें लिखा है, कि पहले यह स्थान देवनगर नामसे भी प्रसिद्ध था। १४वीं शताब्दीमें जयसिंह देवसूरिके कुमारपालचरितमें इस देवनगरका उल्लेख है।

किसी किसीका मत है, कि गुजरातके नागर ब्राह्मणोंके नाम पर अभिहित नागराक्षर इसी स्थान पर सबसे पहले नागरी नामसे प्रसिद्ध हुआ। सोमनाथ, प्रभास, देवनागर आदि शब्द देखो।

देवपत्नी (सं० स्त्री०) देवानां पत्नीव प्रियदर्शनत्वात्। १ मध्वालुक, एक प्रकारका कन्द। देवानां पत्नी वा देवः पतिर्यस्याः। २ देवताकी स्त्री।

देवपथ (सं० पु०) देवानां पन्था ६-तत्। १ देवताओंका पथ, आकाश। इसका पर्याय—छायापथ, सोमधारा और नभःसरित है।

देवपथ बहुत रमणीय है, किन्तु उस पथ हो कर मानवगण नहीं जा सकते हैं। २ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। देवपथतीर्थमें जाकर विधिपूर्वक स्नान दानादि करनेसे देवसत्रका फल लाभ होता है।

देवपथादि (सं॰ पु॰) पाणिन्युक्त शब्दगण विशेष। देवपथ, हंसपथ, वारिपथ, रथपथ, स्थलपथ, करिपथ, अजपथ, राजपथ, शतपथ, शङ्कुपथ, सिन्धुपथ, सिद्धिगति, उष्ट्रग्रीव, वामरज्जु, हस्त, इन्द्रदण्ड, पुष्प, मत्स्य ये सब पथादि हैं।

देवपद्मिनी (सं॰ स्त्री॰) आकाशमें बहनेवाली गङ्गाका एक नाम।

देवपर (सं॰ त्रि॰) देवः परो यस्य। देवायत्त, सिद्धिचिन्तक, जो संकट पड़ने पर कोई उद्योग न करे, केवल देवताका भरोसा किये बैठा रहे।

देवपर्ण (सं॰ क्ली॰) देवप्रियं पर्णं यस्य। सुरपर्ण, माचीपत्र।

देवपशु (सं॰ पु॰) देवाय उत्सृष्टः पशुः। १ देवताके उद्देशसे उत्सृष्ट पशु, वह पशु जो देवताके नामपर उत्सर्ग किया गया हो। २ देवताका उपासक।

देवपात्र (सं॰ क्ली॰) देवानां पात्रं ६-तत्, वा देवैः पीयतेऽत्र या आधारे ष्ट्रन्। अग्नि।

देवपान (सं॰ पु॰) देवैः पीयतेऽनेन पा-करणे ल्युट्। चमस, सोमपान करनेका एक पात्र।

देवपाल (सं॰ पु॰) १ शाकद्वीपका वर्षपर्वतभेद।

(भागवत ५।२०।१८)

२ पालवंशीय एक प्रबल पराक्रान्त और विख्यात राजा, गौड़के प्रथम पालवंशीय राजा धर्मपालके पुत्र। मुङ्गेरसे प्राप्त देवपालका ताम्रशासन पढ़नेसे जाना जाता है, कि कामरूपसे ले कर उड़ीसा तक इनका आधिपत्य फैला हुआ था(१)। तिब्बतके बौद्ध ऐतिहासिक तारानाथका मत है कि हिमालयसे विन्ध्य और जालन्धरसे समुद्र तक समस्त उत्तरभारत कामरूप विजेताके हाथमें आ गया था (२)।

यथार्थमें जिन सब बौद्धपालराजाओंने गौड़में राज्य किया उनमेंसे यश, मान, पराक्रम और विद्या बुद्धिमें देवपालने ही सर्वापेक्षा ख्याति लाभ की थी। हरिमिश्र नामक राढ़ीय ब्राह्मणोंकी कुलाचार्यकारिकामें देवपालकी यथेष्ट सुख्याति देखी जाती है। सच पूछिये तो ये बौद्ध राजा हो कर भी यहांके ब्राह्मणोंका यथेष्ट आदर करते थे। यहां तक कि भट्टनारायण-वंशीय ब्राह्मणगण इनके मन्त्री थे। एक ताम्रशासनसे ज्ञान होता है कि ब्राह्मणमन्त्रीके कौशलसे ही इनका राज्य इतनी दूर तक विस्तृत था। दिनाजपुरसे आविष्कृत महीपालका ताम्रशासन पढ़नेसे मालूम होता है कि जयपाल नामक देवपालके एक भाईने भी अनेक राज्य जय किए थे (३)।

देवपाल किस समयमें गौड़के सिंहासन पर बैठे, इस विषयमें अनेक मतभेद हैं। ढाई सौ वर्ष पहले लिखित ब्रह्मखण्ड नामक एक संस्कृत ग्रन्थमें लिखा है—

"चतुर्वर्ष सहस्रान्ते देवपालो महानृपः।
अष्टौ ग्रामान् चाङ्गदेशे स्थापयिष्यति दानकृत्॥"

(ब्रह्मखण्ड २२।४४)

कलिकालके चार हजार वर्ष बीतने पर महाराज देवपालने अङ्गदेशमें आठ ग्राम स्थापन किये थे। अभी कलिका ५०२६वां वर्ष बीत रहा है। इस हिसाबसे प्रायः हजार वर्ष पहले ९वीं शताब्दीके शेषभागमें किसी समय देवपाल विद्यमान थे। बिहारके निकटस्थ गोसरावान नामक स्थानसे आविष्कृत खोदित लिपि पढ़नेसे जाना जाता है कि वीरदेव नामक एक बौद्ध परिव्राजक बिहारमें (यशोवर्मपुरमें) महाराज देवपालके अनुग्रहसे अनेक दिन ठहरे थे (४)।

गौड़ाधिपति देवपालके पहले कान्यकुब्जमें यशोवर्मा नामक एक प्रबल पराक्रम राजा राज्य करते थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे गौड़के किसी राजाको पराजय और किसीको वध किया था। इसी उद्देश्य पर उनके सभास्थ कवि वाक्पतिने "गौड़वध" नामक प्राकृत काव्यकी

(१) Asiatic Researches, Vol. I, p. 123.

(२) Cunnigham's Arch. Sur. Report, Vol. XV. p. 151.

(३) Journal of the Asiatic Society of Bengal, pt. I. 1895. p. 82.

(४) Indian Antiquary, Vol. XVII. p. 309.

रचना की। मालूम होता है, उक्त यशोवर्मा ही गौड़ेश्वरको पराजय कर अपने नाम पर यशोवर्मपुर स्थापन कर गए हैं। यशोवर्माके पुत्रका नाम आमराज था। राजशेखरको प्रबन्धचिन्तामणि पढ़नेसे जाना जाता है, कि गौड़ाधिप 'धर्म' जैनाचार्य वप्पभट्टसूरिके शिष्य आमराजके जानी दुश्मन थे। वप्पभट्टसूरिका सरस्वती-स्तोत्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि वीरनिर्वाणके १३०० वर्ष पीछे यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ था। ८८५ सम्वत्‌में उनकी मृत्यु हुई (५)। राजशेखरके प्रमाणानुसार गौड़राज धर्म जब आमराजके समसामयिक होते हैं, तब वे भी ८३० से ८८५ सम्वत्‌के मध्य जीवित थे, इसमें सन्देह नहीं। गौड़राज धर्मपालने बहुत दिन तक राज्य किया। धर्मपाल देखो। इससे उनके पुत्र देवपाल ८८५ संवत्‌के बाद राजा हुए थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। ब्रह्मखण्डमें देवपालका जो समय दिया गया है, वह बहुत कुछ इस समयसे मिलता है। ताम्रशासनमें देवपालके पुत्रका नाम राज्यपाल, तिब्बतके तारानाथके मतमें रामपाल और उक्त ब्रह्मखण्डके मतमें शरपपाल बतलाया है। दिनाजपुर और मुङ्गेर प्रान्तमें देवपालकी अनेक कीर्त्ति या देखनेमें आती हैं।

२ कान्यकुब्जके एक विख्यात राजा, हेरम्बपालके एक पुत्र। क्षितिपालके बाद ये कनौजके सिंहासन पर बैठे। सीयडोनीकी खोदित लिपिके अनुसार ये १००५ संवत्‌में राज्य करते थे (६)।

४ पञ्चाल (बदाउन)-के एक विख्यात राष्ट्रकूट वंशीय राजा। ये गोपालदेवके पुत्र और मदनपालके कनिष्ठ सहोदर तथा उत्तराधिकारी थे। ये प्रबल पराक्रान्त राजा थे और १२७५ संवत्‌में राज्य करते थे, यह खोदित लिपिसे जाना जाता है। (७)

५ हरिपालके पुत्र, कातन्त्रगण्डसूत्र-भाष्यके रचयिता।

देवपालित (सं० त्रि०) देवेन मेघाम्बुना पालितः। १ देवमातृक देश, वह देश जिसमें वृष्टिके जलसे खेती आदिका काम चलता है।

देवपीयु (सं० पु०) देवद्वेष्टा असुर।

देवपुत्र (सं० पु०) देवाना पुत्रः ६-तत्। १ देवकुमार। (स्त्री०) २ देवस्य पुत्रीव प्रियत्वात्। ३ एला, इलायची। ४ देवकन्या।

देवपुर (सं० स्त्री०) अमरावती।

देवपुरी (सं० स्त्री०) देवानां पुरी ६-तत्। अमरावती।

देवपुष्प (सं० क्ली०) लवङ्ग, लौंग।

देवपुष्पी (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

देवपूजा (सं० स्त्री०) देवताओंका पूजन।

देवपूज्य (सं० पु०) देवानां पूज्यः ६-तत्। सुराचार्य वृहस्पति।

देवप्रतिकृति (सं० स्त्री०) देवानां प्रतिकृतिः प्रतिमा ६-तत्। देवप्रतिमा।

देवप्रतिमा (सं० स्त्री०) देवानां प्रतिमा ६ तत्। देवप्रतिमूर्त्ति। देवताप्रतिमा देखो।

देवप्रयाग— हिमालयके तिहरी जिलाके अन्तर्गत गङ्गा और अलकनन्दा नदीके सङ्गम पर अवस्थित एक पुण्यस्थान। स्कन्दपुराणके हिमवत्‌खण्डमें (४७।५० और ६१ अध्यायमें) इस पुण्य-भूमिका माहात्म्य वर्णित है। यों तो यहां अनेक पुण्यतीर्थ है, पर देवप्रयाग और ब्रह्मकुण्ड यही दो तीर्थ प्रधान हैं। भागीरथीके उत्तरमें शिवलिङ्ग, दो नदियोंके मध्य स्वयम्भूलिङ्ग, नदीसङ्गम पर वैतालिक शिला, वैतालकुण्ड, शिवतीर्थ, सूर्यकुण्ड, वशिष्ठतीर्थ, वाराहीतीर्थ, वाराही शिला, पुष्पमालातीर्थ, प्रद्युम्नस्थल, प्रद्युम्नस्थलके समीप वैजयायनक्षेत्र तथा गुहाके मध्य विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहांसे आध कोसकी दूरी पर गृध्राचलके समीप विल्वतीर्थ है। सूर्यकुण्डके उत्तरमें ऋषिकुण्ड, गङ्गाके दक्षिणी किनारे सौरकुण्ड, नदीके दक्षिणी किनारे तण्डेश्वरलिङ्ग, वहांसे ४ धनुके फासले पर दानवती नदीके किनारे दानवेश्वर-मन्दिर, दानवतीके मुहानेके समीप विश्वेश्वर महालिङ्ग, तारकेश्वर, तुण्डोश्वर और दानवेश्वरलिङ्ग है। देवप्रयागके दक्षिणमें जहां नवालिककी धारा भागीरथीकी शाखासे मिली है, वहां

(५) Peterson's Report on the Search of Sanskrit Mss 1886 92, p LXXXII

(६) Epigraphia Indica, Vol. I. p. 130, 170.

(७) Indian Antiquary, Vol XX. p. 310.

इन्द्रप्रयागतीर्थ, इन्द्रकुण्ड और धर्मकुण्ड है। उसके भी दक्षिणमें धनुस्तीर्थ, ब्रह्मधारा और इन्द्रेश्वरलिङ्ग है। नवालिकाके पूर्वमें त्रिशूलतीर्थ है। त्रिशूलतीर्थके दक्षिणमें उर्मिका नदी और वैनतेय, नदी है। इन दो नदियोंके सङ्गम पर गरुड़ेश्वरलिङ्ग, इसके दक्षिणमें विभाविनी नदी, नदीसङ्गम पर भाविश्वरीदेवीका मन्दिर, मन्दिरके बाईं ओर मेन्द नदी और दाहिनी ओर राजेन्द्री नदी है। इन दो नदियोंके सङ्गम पर पृथ्वीतीर्थ अवस्थित है। दक्षिणमें कपर्दक शैलके ऊपर कपिञ्जला नदी. पूर्वमें चन्द्रकूट और देवेश्वर शैलके समीप चन्द्रतोया नदी है। इसके बाद लाङ्गलशैल है जहां लाङ्गलेश्वरलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। मन्दिरके दक्षिण-पश्चिममें मञ्जुकुला नदी प्रवाहित है और इसी नदीके सङ्गम पर भीमतीर्थ पड़ता है। देवप्रयागमें यही सब तीर्थ हैं। कितने हिन्दू, संन्यासी और हिमालयवासी हिन्दू लोग इन सब तीर्थोंका दर्शन करने आते हैं।

देवप्रभसूरि—एक श्वेताम्बर जैनाचार्य। इनका कोटिकगण, मध्यमशाखा, श्रीप्रश्नवाहनकुल और हर्षपुरीय गच्छ था। गुर्जरराज सिन्धुराजके समसामयिक हेमसूरिके शिष्य विजयसिंहसूरि, विजयसिंहके शिष्य चन्द्रसूरि, चन्द्रके शिष्य मुनिचन्द्र सूरि और मुनिचन्द्रके शिष्य देवप्रभ थे। इन्होंने पाण्डवचरित्र और मृगावतीचरित्र नामक कई ग्रन्थ रचे हैं। यशोभद्र और नरचन्द्रने देवप्रभके लिए पाण्डवचरित्रका संशोधन किया था।

देवप्रश्न (सं० पु०) देवानुद्दिश्य प्रश्नः वा देवानां ग्रहदेवतानां प्रश्नः। १ ग्रहनक्षत्रादि घटित जिज्ञासा, वह प्रश्न जो ग्रह, नक्षत्र, ग्रहण आदिके सम्बन्धमें हो। २ शुभाशुभ सम्बन्धी प्रश्न। यह किसी देवताके प्रति समझा जाता है और इसका उत्तर किसी विशेष युक्तिसे निकाला जाता है।

देवप्रसूत (सं० त्रि०) देवतासे जात, जो देवतासे उत्पन्न हुआ हो।

देवप्रस्थ (सं० पु०) सेनाविन्दु राजाकी पुरी। यह कुरुक्षेत्रसे पूर्वमें अवस्थित था।

देवप्रिय (सं० पु०) देवानां प्रियः ६-तत्। १ पीतभृङ्गराज, पीली भँगरैया। २ बकवृक्ष, अगस्तका पेड़। ३ नागवल्ली लता। ४ सम्राट् अशोककी उपाधि।

देववधू (सं० स्त्री०) देवानां वधूः ६-तत्। अप्सरा।

देववन्द (हिं० पु०) छाती पर होनेवाली घोड़ोंकी एक भँवरी। यह शुभ लक्षण गिनी जाती है। जिस घोड़े में यह भँवरी हो उसमें और कई तरहके दोष रहते भी वे निष्फल समझे जाते हैं।

देवबन्धु (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

देवबला (सं० स्त्री०) देवानामिव बलं यस्याः। १ सहदेवीलता, सहदेइया नामकी बूटी। २ त्रायमाणा लता, एक प्रकारकी बेल।

देवबलि (सं० पु०) देवार्थं बलिः। देवताओंके निमित्त उपहार।

देवबाँस (हिं० पु०) पूरबी बंगाल और आसाममें होनेवाला एक प्रकारका बाँस। यह १५से २० हाथ और ४०से ४५ हाथ भी ऊँचा होता है। यह मजबूत होता है और मकानोंकी छाजनमें लगाया जाता है। चटाई आदि इससे बनाई जाती है। इसके नरम कल्लोंका अचार भी पड़ता है।

देवबाहु (सं० पु०) १ यदुवंशीय हृदीकपुत्रभेद, यदुवंशके हृदीक राजाके एक पुत्रका नाम। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

देवबोध (सं० पु०) महाभारतके एक टीकाकार।

देवबोधिसत्त्व—एक बोधिसत्व।

देवब्रह्मन् (सं० पु०) देव इव ब्रह्मा। नारद।

देवब्राह्मण (सं० पु०) देवपूजक ब्राह्मण। देवल, वह ब्राह्मण जो किसी देवताकी पूजा करके जीविका निर्वाह करे।

देवभद्र—१ एक चन्द्रगच्छीय जैनाचार्य, भद्रेश्वर सूरिके शिष्य और प्रवचनसारोद्धारके विख्यात टीकाकार सिद्धसेनके गुरु। इन्होंने प्रमाणप्रकाश, श्रेयांसचरित्र आदि ग्रन्थोंकी रचना की। ये १२४२ सम्वत्के पहले विद्यमान थे।

२ राजा भोजके समसामयिक एक कवि।

३ एक प्रसिद्ध जैनग्रन्थकार। इन्होंने प्राकृत भाषामें 'पासनाहचरिय' (पार्श्वनाथचरित्र), कहारयण-

कोस (कथारत्नकोश), वोरचरिय (वोरचरित), सब्बोगसुन्दमाला, आधारणशास्त्र आदि ग्रन्थोंको रचना की है। इनमेंसे कहारयणकोस ११५२ सम्वत्‌को और वोरचरिय ११६८ सम्वत्‌को भरोचनगरमें सम्पूर्ण हुआ था। इनके गुरुका नाम प्रसन्नचन्द्र और उपाध्यायका नाम सुमति था। इन्होंने अभयदेव सूरिके कहनेसे चित्तौरमें महावीरके मन्दिरमें 'जिनवल्लभ'को प्रतिष्ठा की थी।

४ उपदेशरत्नकोशके टोकाकार।

देवभद्र पाठक—एक वेदविद् पण्डित। इनके पिताका नाम बलभद्र और माताका नाम भागीरथी था। इन्होंने कात्यायनकल्पसूत्रको 'कात्यायनप्रयोगसार' नामक एक पद्धति रची है।

देवभवन (सं॰ क्लो॰) देवानां भवनं ६-तत्। १ स्वर्ग। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपल। ३ देवप्रतिमालय, देवालय।

देवभाग (सं॰ पु॰) देवाना भागः ६ तत्। १ देवताओंका भाग। सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है, कि लवण-समुद्रसे ले कर उत्तरस्थित भूगोलका अर्द्ध जम्बूद्वीप तक देवताओंका विभाग है। देवाय देयो भागः। २ देवताको देय धनादि भागभेद, किसी वस्तु या सम्पत्तिका वह अंश जो देवताके लिये निकाला गया हो। ३ देवताओंका भाग।

देवभाषा (सं॰ स्त्रो॰) संस्कृत भाषा।

देवभिषक् (सं॰ पु॰) अश्विनीकुमार।

देवभोति (सं॰ स्त्रो॰) देवेभ्यो भोतिः। १ देवताका भय। २ देवतासे भय, देवतासे डर रखना।

देवभू (सं॰ पु॰) देवं देवत्वं भवति भू-क्विप्। १ देव, देवता। देवाना भू निवासभूमिरुत्पत्तिस्थानं वा यत्र। २ स्वर्ग।

देवभूति (सं॰ स्त्रो॰) देवात् देवलोकात् भूतिरुत्पत्तिर्यस्याः। मन्दाकिनी। देवानां भूतिः ६-तत्। २ देवताओंका ऐश्वर्य।

देवभूमि (सं॰ स्त्रो॰) देवानां भूमिः ६-तत्। १ स्वर्ग। २ देवताओंको प्रिय भूमि।

देवभूय (सं॰ क्लो॰) देवस्य भावः भू-क्यप्। (भुवो भावे। पा ३।१।१०७) १ देवत्व। २ देवसायुज्य।

देवभृत् (सं॰ पु॰) देवं बिभर्त्ति पालयति भृ-क्विप्। १ इन्द्र। २ विष्णु।

देवभोज्य (सं॰ क्लो॰) देवैव भोज्य। अमृत।

देवभ्राज् (सं॰ पु॰) देवेषु भ्राजते भ्राज-क्विप्। सूर्यवंशीय देवभेद।

देवमञ्जर (सं॰ क्लो॰) कौस्तुभमणि।

देवमणि (सं॰ पु॰) देवेषु मणिरिव। १ भर्ग, सूर्य। देवः द्योतनशीलः मणिः। २ कौस्तुभ। ३ अश्वरोमावर्त्त, घोड़ेकी भँवरी। ४ महामेदा।

देवमणि—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने १६ अध्याय तक चाणक्यनीतिभाषा रची है।

देवमत (सं॰ त्रि॰) देवाना मत ६ तत्। १ देवसम्मत, देवताको राय। (पु॰) २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

देवमन्दिर (सं॰ पु॰) देवप्रतिमालय, देवालय।

देवमत्त्री (सं॰ स्त्री॰) महामेदा।

देवमातृ (सं॰ स्त्रो॰) देवाना माता ६-तत्। १ देवता जननी, देवताकी माता। २ अदिति। ३ दाक्षायणी।

देवमातृक (सं॰ त्रि॰) देवो वृष्टिर्मातेव शस्योत्पादनेन पालकत्वात् जननीव यस्य कप्। वृष्ट्यम्बुसम्पन्न व्रीहि-पालित देश, वह देश जिसमें खेती आदिके लिये वर्षाका ही जल यथेष्ट हो। देश तीन प्रकारके है, देवमातृक, नदोमातृक, और उभयमातृक। इनमेंसे जो देश वृष्टि द्वारा ही सम्पन्न होता है, उसे देवमातृक देश कहते हैं।

देवमादन (सं॰ पु॰) देवमोहनकारी सोम, वह सोम जिससे देवता मोहित या मत्त हो जाते है।

देवमान (सं॰ क्लो॰) देवानां मानं कालपरिच्छेदः। १ दिव्यमान, कालकी गणनामें देवताओंका मान, मनुष्योंके एक सौर वर्षका देवताओंका एक दिन। इस तरह ३० दिनका एक महीना और १२ महीनेका वर्ष होता है, इसी परिमाणको देवमान कहते है।

ब्राह्म, दिव्य, पित्र, प्राजापत्य, गुरु, सौर, सावन, चान्द्र और ऋक्ष ये नौ प्रकारके मान हैं। देवेषु मानोऽस्य रमणीयत्वात्। २ देवयोग्य गृहादि।

देवमानक (सं॰ पु॰) देवेषु मानो यस्य कप्। संज्ञायां कन् वा। कौस्तुभमणि, देवमणि।

देवमाया (सं० स्त्री०) देवानां माया ६-तत्। अविद्या बन्धहेतु, परमेश्वरकी माया। माया ही सब प्रकारके बन्धनका प्रतिकारण है। माया देखो।

देवमार्ग (सं० पु०) देवोपलक्षितो मार्गः। १ अर्चिरादि देवाधिष्ठित, देवयान पथ। २ देवाधिष्ठित पथमात्र।

देवमास (सं० पु०) देवाय भ्रूणस्य क्रीड़नाय यो मासः अत्र हि स्मृतेरोजसश्च प्रादुर्भावात् गर्भस्य क्रीड़नादित्वात् तथात्वं। १ गर्भका अष्टममास, गर्भका आठवाँ महीना। आठवें महीनेमें गर्भमें स्मृति और ओजधातुकी उत्पत्ति हो जाती है, इसीसे उसे देवमास कहते हैं। इसका पर्याय गर्भाष्टम है। देवानां मास। २ मनुष्य परिमाण ३० वर्षका एक देवमास, देवताओंका महीना जो मनुष्योंके तीस वर्षके बराबर होते हैं।

देवमित्र (सं० पु०) देवो मित्रं यस्य। १ संज्ञाभेदयुक्त मनुष्यादि। २ शाकल्य ऋषिका एक नाम। ३ अर्जुनवृक्ष, आक या मदारका पेड़। (स्त्री०) ४ कुमारानुचर मातृभेद, कुमार अनुचरी एक मातृका।

देवमीढ़ (सं० पु०) १ यदुवंशीय नृपतिभेद, यदुवंशके एक राजाका नाम। २ मिथिलाके एक प्राचीन राजा। ये कीर्त्तिरथके पुत्र और जनक या सीरध्वजके पूर्वज थे।

देवमीढ़ूष (सं० पु०) १ हृदीकके एक पुत्रका नाम। २ वसुदेवके पितामहका नाम।

देवमुकुन्दलाल—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने संवत् १८०७ में फर्जन्द खेल नामक एक पुस्तककी रचना की।

देवमुनि (सं० पु०) देव इव मुनिः। १ देवर्षि नारदादि। २ तुराख्य ऋषि।

देवयज् (सं० पु०) देव इज्यन्तेऽत्र यज-आधारे क्विप्। देवयजनयोग्य अग्निभेद।

देवयजन (सं० क्ली०) देवा इज्यतेऽत्र यज आधारे ल्युट्। १ वेदिस्थान, यज्ञको वेदी। स्त्रियां ङीप्। २ पृथ्वी। ३ यागाधिकरणस्थान, वह स्थान जहां यज्ञ किया जाय।

देवयजि (सं० पु०) देवं यजते यज-इन्। देवयाजक, देवतायज्ञ करनेवाला।

देवयज्ञ (सं० पु०) देवानां यज्ञ ६-तत्। पञ्चयज्ञान्तर्गत होमरूप गृहस्थोंका नित्यकर्त्तव्य यज्ञभेद, होमादि कर्म जो पांच यज्ञोंमेंसे एक है और गृहस्थोंका प्रतिदिनका कर्त्तव्य है। गृहस्थोंको प्रतिदिन देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ इन पांच यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिए। वे प्रतिदिन पञ्चसूनाजनित जो पाप कर्म करते हैं, वह इस पञ्चयज्ञ द्वारा नष्ट हो जाता है। प्रतिदिन इष्टदेवताके उद्देशसे जो होम किया जाता है, उसे देवयज्ञ, उनके उद्देशसे जो उपहारादि दान किया जाता है उसे भूतयज्ञ और पितृ उद्देशसे जो आद्धतर्पणादि किया जाता हैं, उसे पितृयज्ञ कहते हैं। विधिपूर्वक वेदाध्ययनका नाम ब्रह्मयज्ञ तथा अतिथिसेवा और दानका नाम मनुष्ययज्ञ है। इन पांच यज्ञोंसे दैनन्दिन पञ्चपातक जाता रहता है। (आश्व० गृ० ३।१।१।२)

देवयज्या (सं० स्त्री०) देवानां यज्यः यागः टाप्। देवताओंके लिये याग क्रिया।

देवया (सं० त्रि०) देवतागणकी प्रापयिता, जो देवताओंको पा सके।

देवयात (सं० त्रि०) देवं देवत्वं यातः। देवत्व प्राप्त, जो देवता हो गया हो।

देवयात्रा (सं० स्त्री०) देवानां यात्रा। देवोत्सवादि।

देवयाज्ञिन् (सं० पु०) दानवभेद, एक असुरका नाम।

देवयान (सं० क्ली०) यायतेऽनेन या करने ल्युट्, देवानां यानं ६-तत्। १ देवताओंका गतिसाधन रथभेद, विमान। देवः परेशः यायतेऽनेन मार्गेन या करणे ल्युट्। २ अर्चिरादि मार्गरूप पथ, शरीरसे अलग होनेके उपरान्त जीवात्माके जानेके लिये दो मार्गोंमेंसे वह मार्ग जिससे होता हुआ वह ब्रह्मलोकको जाता है।

वेदान्तदर्शनमें अर्चिरादि पथका विवरण इस प्रकार लिखा है—ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही उत्क्रान्ति अर्थात् शास्त्रोक्त प्रणालीसे शरीर त्याग करते हैं। अज्ञानी भी उत्क्रान्त होते अर्थात् एक लोकसे दूसरे लोकको जाते हैं और ज्ञानी भी। प्रभेद इतना ही है कि ज्ञानीके उत्क्रमणका पथ भिन्न है जिस हो कर अज्ञानी नहीं जा सकते। किन्तु शास्त्रोंमें इसकी खोज करनेसे पता चलता है, कि उत्क्रान्तिके बाद ज्ञानी उपासकोंकी गति और गन्तव्यपथ एक प्रकारके नहीं, भिन्न भिन्न प्रकारके हैं। जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं वे सभी अर्चिः हैं। अर्चिः

देवयानपथसे ब्रह्मलोकको जाते है। यही पथ ब्रह्मलोक-गमनका प्रसिद्ध पथ है। साधक प्रथमतः अर्चि तेजःसम्पन्न होते हैं, पीछे अर्चिसे दिनदेवतामें जाते है। ब्रह्मलोक जानेका केवल एक ही पथ है जिसका नाम है देवयान। उपासक इसी देवयान पथका अवलम्बन करके प्रथमतः अग्निलोकको गमन करते है। इसके सिवा और भी अनेक प्रकारके पथोंका विषय उल्लिखित है। अनेक प्रकारके पथ होनेसे अब यह संदेह होता है कि वे सब पथ एक है वा भिन्न भिन्न? क्या श्रुतिमें सचमुच विभिन्न पथोंका उल्लेख है अथवा एक ही पथ नाना प्रकारके विशेषणोंसे विशेषित हुआ है? सामान्य दृष्टिसे देखनेसे मालूम पड़ेगा कि वे सब पथ विभिन्न है, पर बहुत गौर कर देखनेसे वे सब पथ एक है, विभिन्न नहीं ऐसा जान पड़ेगा। ब्रह्मजिज्ञासुमात्र ही पहले अर्चिः पीछे अह इस प्रकार गमन करते हैं। कारण यह है, कि वही पथ प्रथित ब्रह्मज्ञोंके मध्य प्रसिद्ध है। छान्दोग्य उपनिषद्के पञ्चाग्निविद्याप्रकरणमें लिखा है कि जो अरण्यमें रह कर श्रद्धा और तपको उपासना करते हैं, वे अर्चिरादि पथ हो कर जाते हैं। किन्तु यह सभी उपासकोंके जानेका पथ नहीं है। शास्त्रमें जिन सब उपासनाओंके फलस्वरूप निर्दिष्ट गति अभिहित नहीं हुई है, उन्हीं सब उपासनाओंके उपासक अर्चिरादिको पाते है। भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न पथबोधक शब्दोंके उच्चारित होने पर भी वस्तुतः उन सबका अभिधेय एक है अर्थात् पथ एक है। वही एक पथ विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न विशेषणोंसे विशेषित हुआ है। उन विशेषणोंका विशेष्यभूत पथ एक है, अधिक नहीं। हरएक जगह वह शास्त्रविहित देवयान पथके जैसा जान पड़ता है अर्थात् वे सभी पथ एक है। सुतरां एकलोक पथके साथ अन्यलोक पथ विशेषणोंका समन्वय होना हो सङ्गत है। सभी शास्त्रोंमें स्थिर हुआ है कि ब्रह्मगमन पथ एक है। किन्तु जिस जिस प्रकरणमें जिस प्रकार पथ विशेषण वा पथबोधक शब्द उच्चारित हुए है वे सभी इसी ब्रह्मपथके विशेषण हैं। श्रुतिने देवयान और पितृयान इन दो पथोंका वर्णन कर पीछे कहा है, कि उभय पथभ्रष्टियोंका स्थान अति कष्टकर है और वह तृतीय पथमें गिना गया है। श्रुतिके उस कष्टदायक तृतीय स्थानकी बात कहनेसे ही जाना जाता है कि पितृयान पथके अतिरिक्त देवयान नामक एक दूसरा पथ है और वह पथ अर्चि आदि अनेक पर्वयुक्त है। इसका तात्पर्य यह कि शुभपथ यदि अनेक होते, तो श्रुति तृतीय पथका होना नहीं बतलाते। अर्चि श्रुतिमें लिखा है, कि इन पथके अनेक पर्व वा विभाग है। उपासक लोग ब्रह्मलोकमें जाते है। उनका वह ब्रह्मलोक जानेका पथ किस प्रकार सन्निवेश विशिष्ट है वा किस प्रकार एक ही पथ श्रुतिमें नाना विशेषणोंसे विशेषित हुआ है? इसके उत्तरमें ऐसा सूत्र विनिबद्ध हुआ है—

"वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्यां" ( वेदान्तसू० ४।३।२ )

ब्रह्मलोक जानेवाले देवयान पथ पा कर पहले अग्निलोकमें, पीछे वायुलोकमें, वरुणलोकमें, इन्द्रलोकमें, प्रजापतिलोकमें और ब्रह्मलोकमें जाते है। इसमें प्रथमतः अग्निलोकगमनका उल्लेख है। अन्य श्रुतियोंमें प्रथमतः अर्चिः प्राप्तिका विषय लिखा है जिसे देखनेसे प्रतीत होता है कि अर्चिः शब्द और अग्निलोक दोनोंका एक अर्थ है। अर्चिः और अग्नि शब्दसे ज्वलन (आगकी लौ)का बोध होता है,—सुतरां अर्चिः और अग्नि दोनोंका एक अर्थ होना किसी प्रकार असङ्गत नहीं है। छान्दोग्योक्त देवयान पथके वर्णनमें वायुलोकगमनका उल्लेख नहीं है, किन्तु वायुलोक और देवयान पथका एक पर्व है,—छान्दोग्यमें उसका उल्लेख नहीं है, यह किस प्रकार हो सकता? इसका उत्तर यही है, कि उपासकगण पहले अर्चिको पाते है, अर्चिसे अह्न, अह्नसे आपूर्यमाण वा शुक्लपक्ष, आपूर्यमाण पक्षसे उत्तरायणके छः महीनोंको, उत्तरायणसे संवत्सर, संवत्सरसे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युत्‌को प्राप्त होते हैं और वहां अमानव ( अर्थात् देव ) हो जाते है। इन सब श्रुतियोंमें जो संवत्सर और आदित्य शब्द है, उन दोनोंके मध्य वायुका सन्निवेश है अर्थात् संवत्सरके बाद वायुमें सम्भूत होते है और पीछे आदित्यलोकको जाते है। इस श्रुतिने सामान्यतः वायुलोक जानेकी कथा कही है, किन्तु किस प्रकार

क्रमशः वायुलोककी गति होती है सो नहीं कहा। अन्यान्य श्रुतियोंमें इसका विशेष उल्लेख देखनेमें आता है। जब उपासक व्यक्ति इस लोकसे परलोकको जाते हैं, तब वे इस देहको परित्याग कर वायुलोकको प्राप्त होते हैं।

कौषितकि-श्रुतिमें अग्निके बाद वायुपर्वका उल्लेख है; छान्दोग्यश्रुतिमें वायुके बाद वरुणका स्थान बतलाया है। आदित्यसे चन्द्र, चन्द्रसे विद्युत् इत्यादि हैं। श्रुतिमें जिस विद्युत्लोकको कथा है, उसी विद्युत्लोकके ऊपर वरुणका स्थान निर्दिष्ट किया है। कारण विद्युत्के साथ वरुणका सम्बन्ध देखा जाता है। विद्युत् और वरुण दोनोंमें परस्पर सम्बन्ध रहनेके कारण ही ऐसा अनुमान किया गया है। उसी समय देखा जाता है, कि अति विशाल विद्युत् अति तीव्र मेघनिर्घोषसे मेघोदरमें नृत्य करती है और उसके बाद ही जलवर्षण होने लगता है। वरुणके ऊपर इन्द्र और प्रजापति है। इन दोनोंका स्थान अर्चिः वा अग्नि, पीछे अह्न वा दिन, तब शुक्लपक्ष और उत्तरायण है। ये सब जो कहे गये, वस्तुकल्पमें वे सब क्या है? अर्थात् किस्वरूप हैं? ये सब क्या देवयान पथके एक एक स्थान हैं वा चिह्न? क्या ये सब ब्रह्मलोक प्रस्थित उपासक जीवोंके भोगस्थान है वा उनके वाहक विशेष? इसके उत्तरमें पहले यह कहा गया है, कि अर्चिः आदि देवयानके पथ चिह्नस्वरूप हैं। कारण उपदेशकोंका स्वरूप प्रायः उसी तरह है जिस तरह किसी व्यक्तिको एक नगर वा ग्राममें जाना है और वह राहमें दूसरेसे पूछता जाता है। दूसरा जो उस राहसे जानकार है, कहता है अर्थात् उपदेश देता है कि यहांसे एक अमुक पहाड़ मिलेगा, बाद एक वटवृक्ष और उसके बाद नदी मिलेगी। नदी पार होनेके बाद वह ग्राम मिलेगा जहां तुम जाना चाहते हो। जैसा यह दृष्टान्त है वैसा ही अर्चिः है। अर्चिसे दिवा, दिवासे शुक्लपक्ष इत्यादि कहे गये हैं। ये सब अर्चिः प्रभृति एक एक भोगस्थान हैं, ऐसा जानना चाहिये। श्रुतिमें 'अग्निलोकं आगच्छति' इत्यादि क्रमसे अग्नि आदि कई एक पथ पर्वोंमें लोक शब्द योजित किया है। इससे प्रतीत होता है, कि वे अर्चि प्रभृति सभी लोक विशेष है। लोक शब्दसे भी प्राणियोंके भोगाय तनका बोध होता है, जैसे मनुष्यलोक, देवलोक, पितृलोक इत्यादि। अर्चिः प्रभृतिका भोगभूमित्व पक्ष स्थिर हुआ है, आतिवाहिक पक्ष नहीं। चूंकि अर्चिः प्रभृति अचेतन हैं, इस कारण उनके आतिवाहिकत्व अनुपपन्न हैं। ऐसा देखा जाता है, कि सचेतन जीव ही राजासे वा दूसरेसे अथवा स्वयं प्रयुक्त हो कर राह और दुर्गम प्रदेशमें अतिवहनीय जीवोंको वहन करते हैं। इसके सिद्धान्तमें ऐसा लिखा है, कि वे सब अर्थात् अर्चिः आदि पथ चिह्न नहीं हैं, भोगस्थान भी नहीं हैं, वे अतिवाहिक चेतन हैं। चन्द्रसे विद्युत्, विद्युत्से उन्हें अमानव पुरुष ब्रह्मलोकको ले जाते हैं। अर्चि आदि सभी पर्वोंको वाहकरूपमें निर्देश कर सकते हैं। अर्चिसे ले कर विद्युत् तक सभी चेतन हैं, देवात्मा और ब्रह्मलोक-प्रापक नेता वा वाहक हैं। जो पुरुष विद्युत्से ले जाते है, वे ब्रह्मलोकवासी अमानव है। जो अर्चिरादि पथ होकर ब्रह्मलोकको जाते है, देहत्यागके बाद पिण्डितेन्द्रिय होते हैं।

अर्चिः भोगभूमि नहीं है, उस समय गन्ता पिण्डितेन्द्रिय अवस्थामें रहता है। सुतरां उस समय उसका भोग भी असम्भव है। यदि प्रश्न उठे, कि तब लोकवाची भोग शब्दकी क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यही होगा कि जहां गन्ताका भोग नहीं है वहां तल्लोकवासियोंका भोग रहनेके कारण ही भोगवाची लोक शब्दका प्रयोग हुआ है। जिस लोकके अधिपति अर्चिः अर्थात् अग्नि हैं, उस लोकमें जब उपासक जाता है, तब अग्निदेवता उसके वहन करते हैं अर्थात् ले जाते हैं और वायुलोकमें जानेसे वायुलोकके स्वामी उसे वहन करते हैं, इत्यादि। विद्युत्लोकमें जानेके बाद विद्युत्के परवर्त्ती अमानव पुरुषोंके द्वारा उपासक वरुणादि लोकमें लिवाए जाते हैं और वहांसे वे फिर ब्रह्मलोकमें जाते है। अमानव पुरुष ही उन्हें ब्रह्मलोकमें पहुंचा देते हैं। वरुण आदि भी कोई रोक टोक नहीं करते; बल्कि उन्हें सहायता देते हैं। अर्चिः प्रभृति पथचिह्न अथवा भोगस्थान नहीं है वे अतिवाहिकी देवता हैं। इस पूर्वोक्त देवयान पथ हो कर उपासकगण अर्चिः आदिकी सहायतासे ब्रह्मलोकको जाते हैं।

(वेदान्तदर्शन)

देवयानी ( सं० स्त्री० ) दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी कन्या। वृहस्पतिके पुत्र कच मृतसञ्जीवनी विद्या सीखनेके लिये शुक्राचार्यके शिष्य हुए। युवा कच शुक्राचार्यको सन्तुष्ट कर नृत्य, गीत, वाद्य और फल पुष्पादि द्वारा तथा भृत्यवत् आज्ञानुवर्त्तिता द्वारा युवती देवयानीको प्रसन्न करने लगे। इस प्रकार देवयानी उस पर अनुरक्त हुई। असुरोंको जब यह मालूम हुआ कि कच मृतसञ्जीवनी विद्या लेनेके लिए आया है, तब उन्होंने उसे मार डाला। देवयानी कचको आनेमें विलम्ब देख शुक्राचार्यसे बोली, 'हे तात! कच अब तक भी लौट कर नहीं आया है, हमें जहां तक मालूम पड़ता है कि या तो वह मर गया अथवा मारा गया है। कचके बिना हम क्षणकाल भी जीवन धारण नहीं कर सकती।' तब शुक्राचार्यने मृतसञ्जीवनी विद्याके बलसे उसे जिला दिया। फिर एक दिन कच देवयानीके आदेशसे जङ्गलमें फूल तोड़नेके लिए घूम रहे थे। इसी बीच दानवोंने उसे पीस कर समुद्रमें फेंक दिया। कचके आनेमें विलम्ब देख देवयानीने विलाप करती हुई अपने पितासे कहा, 'कच फिर भी मारा गया। मैं उसके बिना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती।' इस पर शुक्राचार्यने कहा, देवयानि! तुम वृथा शोक करती हो, कच मारा गया है। मैं विद्याके बलसे उसे बार बार जिला देता, तो भी उसे असुर लोग मार डालते हैं, अतएव तुम इस वृथा शोकको छोड़ दो। तुम सरीखी प्रभावशालिनी स्त्रीको किसी नश्वर व्यक्तिके प्रति शोक नहीं करना चाहिये। अतः तुम शोकको परित्याग करो।' देवयानी उनकी बात पर कुछ भी ध्यान न दे कर बोलि, मैं कचके बिना क्षण काल भी रह न सकती। यह सुन कर शुक्राचार्यने पुनः कचको जिला दिया। कचको बार बार मृतसे जीवित होता देख दानवोंने उसे पीस कर शुक्राचार्यके पीनेको सुरामें मिला दिया। शुक्राचार्य कचको सुराके साथ पी गये। जब कच कहीं न मिला तब देवयानी बहुत विलाप करने लगी और पितासे बोली, 'यदि आप इसे ढूंढ न निकालेंगे, तो मैं निराहार रह कर प्राण त्याग करूंगी।' इतना कह कर वह रोने लगी। शुक्राचार्यका हृदय दयासे पिघल गया और उन्होंने कचको आह्वान किया। कचने शुक्राचार्यके पेटमेंसे जवाब दिया, 'गुरो! असुरोंने हमें मार कर सुराके साथ आपको पिला दिया था।' यह सुन कर शुक्राचार्य बहुत घबराये और देवयानीसे बोले, 'देवयानि! कच तो मेरे पेटमें है। अब बिना मेरे मरे कचकी रक्षा नहीं हो सकती है।' इस पर देवयानीने कहा, कि कचका नाश और आपकी मृत्यु, ये दोनों मेरे लिए कष्टकर है।

अन्तमें शुक्राचार्यने कचसे कहा, 'यदि तुम कचरूपी इन्द्र नहीं हो, तो मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभावसे बाहर निकल आओ।' कचने मृतसञ्जीवनी विद्या पाई और वह पेटसे बाहर निकल आया। तब देवयानीने कहा, 'कच! मैं तुम पर नितान्त अनुरक्त हूं, तुमको नहीं देखनेसे मुझे त्रिभुवन शून्य दीखता है। अतएव यथोचित विधानानुसार तू मुझसे विवाह कर।' यह सुन कर कचने कहा, 'शुभे! मैं तुम्हारे पिताका शिष्य हूं, तुम मेरी गुरुपुत्री हो, ऐसा बोलना तुम्हें उचित नहीं।' देवयानी बोली, 'कच! जबसे तुम यहां रहते हो, तबसे तुम्हारे प्रति मेरी जैसी भक्ति, सौहार्द और अनुराग उत्पन्न हुआ है, वह तुम्हें नहीं मालूम है।' तुम मुझे कदापि परित्याग न करो।' कचने बहुत समझा बुझा कर कहा, पर देवयानी कब माननेवाली थी, वह क्रोधित हो कर बोली, 'देखो कच! तुम जिस प्रकार मुझे बिना अपराधके लौटा देते हो, उसी प्रकार तुम्हारी मृतसञ्जीवनी विद्या फलवती न होगी।' इस पर कचने भी देवयानीको शाप दिया, 'देवयानि! मैंने धर्मलोपके भयसे तुम्हें गुरुकन्या जान कर लौटा दिया है। अतएव बिना अपराधके जिस प्रकार तुम। मुझे शाप दिया, उसी प्रकार तुम शुक्राचार्यकी कन्या हो कर भी किसी ब्राह्मणकी पत्नी नहीं हो सकती। तुम्हारे शापसे यह मन्त्र निष्फल होगा सही, पर यह विद्या अमोघ है, यदि मेरे हाथसे फलवती न होगी, तो जिसे मैं सिखाऊंगा उसीके हाथसे होगी।' इतना कह कर कच त्रिदशालयको चले गये। कच देखो।

दैत्योंका राजा वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा और देवयानीमें परस्पर सखी-भाव था। एक बार सखियोंके साथ दोनों किनारे पर कपड़े रख जल विहारके लिये एक

जलाशयमें घुसीं। इसी बीच इन्द्रने वायुका रूप धारण कर दोनोंके वस्त्र एक साथ कर दिये। शर्मिष्ठाने जल्दी में देखा नहीं और जलसे निकल कर देवयानीके कपड़े पहन लिये। इस पर दोनोंमें झगड़ा हुआ और शर्मिष्ठाने देवयानीको कूएंमें ढकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझ कर कि देवयानी मर गई, अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजाके पुत्र ययाति शिकार खेलने आये थे। उन्होंने देवयानीको कूएंसे निकाला और उससे दो चार बातें करके वह अपने नगरकी ओर चले गये। इधर देवयानीने घूर्णिका नामक एक दासीसे अपना सब वृत्तान्त शुक्राचार्यके पास कहला भेजा। घूर्णिकाने दैत्य-सभामें पहुंच कर शुक्राचार्यसे सारी बातें कह सुनाईं। शुक्राचार्य यह खबर पा कर देवयानीके पास आये और घर चलनेके लिये बहुत कहा, पर उसने एक भी न सुनी और साथ साथ यह भी कहा, 'चाहे मेरी निष्कृति हो चाहे न हो, इसमें कोई क्षति नहीं, मैं अब दैत्योंकी राजधानीमें कदापि न जाऊंगी, क्योंकि शर्मिष्ठाने बहुत जली कटी बातोंमें आपका तिरस्कार किया है और कहा है, कि तुम्हारा पिता दैत्योंका स्तुतिपाठक और गायक है।'

यह सुन कर शुक्राचार्य भी दैत्योंकी राजधानी छोड़ अन्यत्र जानेको तैयार हुए। यह खबर जब वृष-पर्वाको लगी, तब वे शुक्राचार्यसे बड़ी विनति करने लगे। शुक्राचार्यने कहा, देवयानीको प्रसन्न करो। तब वृषपर्वा देवयानीके पास जाकर उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे। देवयानीने कहा, 'मेरी इच्छा है, कि शर्मिष्ठा सहस्र और कन्याओंके साथ मेरी दासी हो। जहां मेरे पिता मुझे दान करें वहां वह मेरी दासी हो कर जाय।' वृषपर्वा इस पर सम्मत हुए और उन्होंने सहस्र कन्याओंके साथ शर्मिष्ठाको देवयानीकी दासी बनाकर शुक्राचार्यके घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी नई दासियोंके साथ उसी वनमें क्रीड़ा कर रही थी, इसी बीच राजा ययाति वहां आ पहुंचे। उन्हें देख कर देवयानीने कहा, 'मेरा बड़ा भाग्य है, कि दो हजार कन्याओं और शर्मिष्ठाके साथ आज मैं आपकी अधीना होती हूं, आप मेरा सखा और भर्त्ता होना स्वीकार करें।' राजा ययातिने इसे स्वीकार कर लिया और यह खबर शुक्राचार्यको कहला भेजा। शुक्राचार्यने आ कर ययातिके साथ देवयानीका विवाह कर दिया। पीछे असुरोंसे नाना प्रकारके उपचार पा कर ययाति देवयानी आदिके साथ अपनी राजधानीको चले गये। कुछ दिन पीछे ययातिसे शर्मिष्ठाको एक पुत्र हुआ। देव-यानीने शर्मिष्ठाका पुत्र देख कर उससे पूछा, कि तुमने कामलुब्ध हो कर अन्याय आचरण किया है। इस पर शर्मिष्ठा बोली, कि यह लड़का मुझे एक तेजस्वी ब्राह्मण-से हुआ है। देवयानी इस पर विश्वास करके चुप रह गई। इसके उपरान्त देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु नामके दो पुत्र और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अणु और पुरु ये तीन पुत्र हुए। ययातिसे शर्मिष्ठाके तीन पुत्र हुए हैं, यह जान कर देवयानी अत्यन्त कुपित हुई और उसने अपने पिताके पास इसका समाचार भेजा। शुक्रा-चार्यने भी क्रोधमें आ कर ययातिको शाप दिया कि, "तुमने धर्मज्ञ हो कर अधर्म किया है, इसलिये तुम्हें बहुत शीघ्र बुढ़ापा घेरेगा।" ययातिने शुक्राचार्यसे विनयपूर्वक कहा, 'भगवन्! मैंने कामवश हो कर ऐसा नहीं किया, दानव-दुहिता शर्मिष्ठाने ऋतुमती होने पर ऋतु-रक्षाके लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थनाको अस्वीकार करना मैंने पाप समझा। इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है। यदि कोई स्त्री ऋतुरक्षाके लिये प्रार्थना करे और उसकी पूरी न की जाय, तो वह भ्रूणहा कहलाता है। इस प्रकार कातर हो कर ययाति शुक्रा-चार्यसे अनुनय विनय करने लगे। इस पर शुक्राचार्यने कहा, 'तुम्हें इस विषयमें अनुमति लेना उचित था। अब तो मेरा कहा हुआ निष्फल हो नहीं सकता, किन्तु यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा ले लेगा और अपना यौवन दे देगा, तो तुम फिर ज्योंके त्यों जवान हो जाओगे।'

यथाति और शर्मिष्ठा देखो।

देवयावन् (सं० त्रि०) देवं याति या-वनिप्। देवताओं-के प्रतिगन्ता, जो देवताके उद्देशसे यात्रा करे।

देवयिट (सं० त्रि०) दिव-णिच् परिदेवने तृच्। परि-देवक।

देवयु (सं० त्रि०) देवं याति उपास्यत्वेन प्राप्नोति या-

यु ( युगमादयश्च । उण् ११३८ ) १ धार्मिक । २ लोकयात्रिक । ( पु० ) ३ देवता । देवं यौति यु-क्विप । ४ यज्ञादि द्वारा देवताओंका मिश्रीकारक ।

देवयुग ( सं० पु० ) देवप्रियं युगं । सत्ययुग ।

देवयोनि (सं० पु०) देवानामिव योनिः यस्य । १ विद्याधरादि । विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक और सिद्ध ये देवयोनिके अन्तर्गत हैं । २ देवजाति ।

देवयोषा ( सं० स्त्री० ) देवानां योषा ६-तत् । देवताओंको स्त्री ।

देवर (सं० पु०) दीव्यत्यनेन दिव-अर (अर्त्ति कमि भ्रमीति । उण् ३।१३२ ) । १ पतिका छोटा भाई । पर्याय—देवा, देवृ, दवार, देवान, सुरागाव, और देवल्लो । २ पतिका भ्रातृमात्र, पतिका भाई, छोटा या बड़ा ।

मनुस्मृतिमें लिखा है, कि यदि विधवाको अपने पतिसे कोई सन्तान न हो, तो वह अपने देवर या पतिके किसी अन्य सपिण्डसे एक सन्तान उत्पन्न करा सकती है, एकसे अधिक नहीं । फिर किसीका कहना है, कि वह दो सन्तान तक पैदा करा सकती है । किन्तु कामवश यदि ऐसा आचरण करे, तो उसे दोष लगता है । पर "इमान् धर्मान् वर्जनाहुः कलौ युगे" पराशरके इस वचनानुसार कलिकालमें इसका निषेध है । देवरके लिये बड़े भाईकी स्त्री माताके समान और छोटेकी स्त्री वधूके समान है ।

देवर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यके अन्तर्गत एक ह्रद । यह अक्षा० २४° १८' उ० और देशा० ७४° ४' पू०में उदयपुर शहरसे १५ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है । वहांके लोग इसे 'जयसमन्द' वा जयसमुद्र कहते हैं । १६८१ ई०में राना जयसिंहने अपने नाम पर यह बड़ा जलाशय बनवाया । यह पूर्व-पश्चिममें प्रायः ८ वा १० मील विस्तृत है और इसकी परिधि प्रायः ३० मील है । यह चारों ओर बड़े बड़े पत्थरसे बंधा हुआ है । इसके उत्तरी किनारे धोवरोंकी एक सुन्दर कुञ्जवाटिका है । इतना बड़ा कृत्रिम जलाशय संसारमें बहुत कम देखनेमें आता है ।

देवरक ( सं० पु० ) देवर स्वार्थे-कन् । देवर, पतिका छोटा भाई ।



देवरचित ( सं० त्रि० ) देवैः रचितः । १ जो देवताओं द्वारा रचित हो । ( पु० ) २ देवक राजाके एक पुत्रका नाम । देवक राजाके चार पुत्र और सात कन्या थीं । ३ एक राजा जो ताम्रलिप्तमें राज्य करते थे ।

देवरक्षिता ( सं० स्त्री० ) देवककी एक कन्या, देवकीकी बहन ।

देवरथ ( सं० क्ली० ) देवस्य आदित्यस्य रथः । १ सूर्यका रथ । २ प्रवरान्तर्गत ऋषिभेद । देवानां रथः । ३ देवताओंका रथ, विमान ।

देवरहस्य (सं० क्ली०) देवानां रहस्यं । देवताओंका रहस्य ।

देवराज् ( सं० पु० ) देवेषु राजते राज-क्विप् । इन्द्र ।

देवराज ( सं० पु० ) देवानां राजा ६-तत्, 'राजाहसखिभ्यष्टच्' इति टच् समासान्तः । सुरराज इन्द्र । इसका नामान्तर—इन्द्र, सुरपति, शक्र, दितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्क, काश्यपात्मज, विड़ौजा, सुनासीर, मरुत्वत्, पाकशासन, जयन्तजनक, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमीव्रतनाशन, वृत्रहा, वासव, दधीचिदेहभिक्षुक, जिष्णु, वामनभ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रजित्, विभु, लेखर्षभ, वलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संक्रन्दन, दुश्च्यवन, मेघवाहन, आखण्डल, हरिहय, नमुचि-प्राणनाशन, वृद्धश्रवा, वृष और दैत्यदर्पनिसूदन है । इसका नाम उच्चारण करनेसे सब पाप नाश हो जाते हैं ।

देवराज (हिं० पु०) १ छोटा मोटा देवता । २ एक प्रकारका पटसन जो सुतली बनानेके काममें आता है ।

देवराज—प्रसिद्ध हिन्दू राज डाहिरके चाचाका लड़का । कोई कोई इनके पिताका नाम चन्द्र बतलाते हैं । ये ब्राह्मणाबादसे ८१ मील दूर पोकर्णके निकटवर्ती शीरो नामक स्थानमें राज्य करते थे । महम्मद-बिन् कासिमके समीप जब डाहिर पराजित और मारे गये, तब उनके अनेक कुटुम्बोंने देवराजके यहां आश्रय लिया था ।

देवराज—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू राजा । विजयनगर, महिसुर और यादव राजवंश देखो ।

देवराज—१ एक संस्कृत कवि, अनिरुद्धचरित, आर्यमञ्जरी, नामकचन्द्रोदय आदि काव्योंके रचयिता । २ विश्व-

तत्त्व-प्रकाशिका नामक वेदान्तिक ग्रन्थकार। ३ वरद-राजके पुत्र, मूहूर्त्तपरीक्षाके रचयिता और मुक्तावली नामक एक ज्योतिषके टीकाकार।

देवराज—दाक्षिणात्यमें मन्द्राजके अन्तर्गत विजयनगरके प्राचीन चन्द्रवंशीय राजाओंमेंसे एक राजा। आज तक इस वंशके जितने ताम्रशासन वा शिलालिपि पाई गई है उनमेंसे "राजा देवराज" नामक कोई राजप्रदत्त-लिपि नहीं मिली है। किन्तु डा० बुर्नेलने इस वंशकी जो नाममाला और राजत्वकाल स्थिर किया है, उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजा द्वितीय बुक्कके बड़े लड़केका नाम देवराज वीरदेव वा वीर भूपति था और उन्होंने १४१८ ई०से ले कर १४२८ ई० तक राज्य किया था। मि० सोयेलने मन्द्राजका प्राचीनतत्त्व-संग्रह करनेके लिये जो सब शिलालिपि और ताम्रशासन पाये थे, उन्हें देख कर उन्होंने स्थिर किया है, कि राजा बुक्कके बड़े लड़केका नाम हरिहर (२य) और राजा द्वितीय हरि-हरके बड़े लड़केका नाम देवराय (१म) था। देव-राय १४२६ ई०में राज्य करते थे। इनके लड़केका नाम विजयभूपति था। यही १४१८ शकाब्दमें राजा थे। मि० सोयेलने राजा विजयभूपतिप्रदत्त १४१८ शकाब्दका (१४९६ ई०का) एक ताम्रशासन पाया है। अतः विजय-भूपतिका ही दूसरा नाम देवराज था, ऐसा मान सकते हैं या नहीं तो इस वंशकी नाममाला और काल-तालिकाकी आलोचना अच्छी तरहसे नहीं की गई है, यह भी कह सकते हैं। विजयनगर देखो।

देवरात (सं० पु०) देवैः रातः दत्तः। देवेन श्रीकृष्णेन रातः रक्षितः। १ देवता कर्त्तृक रक्षित परीक्षित नृप। २ विश्वामित्र-के एक पुत्रका नाम। ३ द्वापरयुगके एक प्रसिद्ध राजा। ४ एक स्मृतिकार। ५ एक प्रकारका सारस।

देवरानी (हिं० स्त्री०) १ देवरकी स्त्री, स्वामीके छोटे भाईकी औरत। २ देवराज इन्द्रकी रानी, शची।

देवराम—१ अधिकरणमाला और आह्निकचन्द्रिका नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। २ एक सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवि। इन्होंने बहुतसी सुरस और मनोहर कविताओंकी रचना की। इनकी कविता सराहनीय होती थी।

देवराय—विजयनगरके प्राचीन चन्द्रवंशीय राजाओंमें 'देवराय' नामक दो राजाओंके नाम पाये जाते हैं। प्रथम देवराय राजा द्वितीय हरिहरके पुत्र थे। इन्होंने १४०६ ई०से ले कर १४१७ ई० तक राज्य किया। द्वितीय देवराय विजयभूपतिके पुत्र थे जिन्होंने १४२२से लगा-यत १४४७ ई० तक राज्य किया। विजयनगर देखो।

देवराय दुर्ग—महिसुर राज्यके तुमकुड़ जिलेके अन्त-र्गत एक सुरक्षित गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १३° २२' ३०" उ० और देशा० ७७° १४' ५०" पू० तुमकुड़ शहरसे ८ मील पूर्वमें अवस्थित है।

१६९८ ई०में देवराजने यह स्थान जीत कर यहां उक्त गढ़ निर्माण किया। महिसुरके किसी राजप्रति-ष्ठित गिरिशृङ्ग पर दुर्गनरसिंहका एक मन्दिर है। देवके वार्षिक उत्सवके समय यहां बहुत लोग समा-गम होते हैं।

ग्रीष्मकालमें जिलेके अंगरेज राजपुरुषगण यहां आ कर रहते हैं। यहां जल का अभाव नहीं है।

देवरायपल्ली—नेल्लूर जिलेके आत्मकूर तालुकका एक ग्राम। लोकसंख्या प्रायः ३००० है।

देवराव—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने अनेक कविता रची। इनकी कविता सराहनीय होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"विषय त्यजा भजा श्रीरामया।
विष मत्सुणीया एकवार मरे कोटि कोटि जन्मया लया लया लया॥
कामनी कपट शरीर ताहे मती आयुष्य जाइ लया लया लया।
देवराव भणे श्रीगुरु लागुसा ससारीन फसा फसा फसाया॥"

देवरो (हिं० स्त्री०) छोटी मोटी देवी।

देवरूखे—महाराष्ट्र ब्राह्मणोंका एक भेद। शब्दार्थ तो इसका ऐसा है, कि जो देवताओंसे उदासीन है वे देवरूखे कहाते हैं। परन्तु यहां इनके प्रति इस भावका ग्रहण नहीं है, मगर ये यथार्थमें देवरूखे हैं। देवका अर्थ देवता और रुखका अर्थ कृपा है; अतः जिन ब्राह्मणों पर उनकी गुण-वरिष्ठताके कारण देवतागण प्रसन्नता दिखाया करते थे, वे देवरूखे कहाते कहाते देवरूखे कहे जाने लगे। आजकल इनकी स्थिति सामान्य है। ये कभी भी करते हैं। इनको दक्षिणमें मध्य श्रेणी-ब्राह्मण भी कहते हैं। विशेषरूपसे देवस्थ और सामान्य रूपसे कोई-

नत्र ब्राह्मणोंके साथ इनका भोजन व्यवहार एक है।

देवर्षि (सं॰ पु॰) जैनोंके एक प्रसिद्ध स्थविरका नाम। इन्होंने जैनसिद्धान्त लिपिबद्ध किया था।

देवर्षि (सं॰ पु॰) देवइव ऋषिः देवानां ऋषिर्वा। १ नारदादि ऋषि। नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं। २ न्यायादि कर्त्ता कणादादि।

देवल (सं॰ पु॰) देवं लाति गृह्लाति निज जीविकार्थं देव ला-क। १ देवाजीव, वह जो देवताओंकी पूजा करके जीविका निर्वाह करता है, पुजारी, पंडा।

मनुने लिखा है, कि चिकित्सक, देवल, मांसविक्रयी, व्यवसाजीवि ये हव्यकव्यमें वर्जनीय है। देवल ब्राह्मण द्वारा श्राद्धादि करानेसे वह सिद्ध नहीं होता है। दीव्यति आनन्देनेति दिव कलच् (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८)। २ धार्मिक पुरुष। ३ नारद मुनि। ४ देवर, पतिका छोटा भाई। ५ धर्मशास्त्रवक्ता मुनिविशेष, धर्मशास्त्रके वक्ता एक मुनि। ये असितके पुत्र और वेदव्यासके शिष्य माने जाते हैं। ये रम्भाके शापसे अष्टवक्र हुए थे। ६ प्रत्यूष ऋषिके एक पुत्र। ७ एक स्मृतिकार।

देवल (हिं॰ पु॰) देवमन्दिर, देवालय।

देवल—सिन्धुनदीके मुहाने पर अवस्थित एक बहुत प्राचीन बन्दर। अभी उसका चिह्नमात्र भी नहीं है। यह समुद्रसे तीन कोस दूर पड़ता था। पहले यहां बहुतसे मनुष्य रहते थे। भिन्न भिन्न देशोंसे वणिक्गण वाणिज्य करनेके लिये यहां आते थे।

७१२ ई॰में महम्मद-बिन् कासिम् ससैन्य इस नगरमें आये थे। मुसलमान ऐतिहासिक बलाजरीने लिखा है, कि महम्मद अरमाइल होते हुए सिन्धुके बन्दर देवलको आये थे। यहां अरबोंने एक बौद्धमन्दिरकी ऊँची पताका देखी थी जिसे उन्होंने तोड़ फोड़ कर शहर अधिकार कर लिया। चचनामाके मतानुसार ९३ हिजरी रजब मास अर्थात् ७१२ ई॰के मई मासमें देवल बन्दर कासिमके पुत्र महम्मदसे अधिकृत हुआ।

देवल—मन्द्राजके नीलगिरि जिलेके अन्तर्गत गूदलूर तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा॰ ११° २९' उ॰ और देशा॰ ७६° २३' पू॰ करकूर घाटसे ४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। पूर्व समयमें यह एक समृद्धिशाली स्थान था। जबसे सोनेका कारबार यहांसे उठ गया है, तबसे इसकी दशा बहुत शोचनीय हो गई है। अभी यहांकी लोकसंख्या प्रायः पांच सौ है।

देवलक (सं॰ पु॰) देवल एव स्वार्थे कन्। देवल, पुजारी, पंडा।

देवलगांव—मध्यप्रदेशके चन्दा जिलेके अन्तर्गत एक छोटा ग्राम। इसके समीप एक सुन्दर पहाड़ है। यह अक्षा॰ २०° २३' उ॰ और देशा॰ ८०° २' पू॰ रैवागढ़से ५ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। पहाड़ पर बहुत उमदा लोहा पाया जाता है।

देवलवाड़ा—१ मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलेका एक छोटा ग्राम। यह वर्द्धानदीके किनारे अवस्थित है। यहांकी रुक्मिणीदेवीका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष कार्त्तिकमासमें यहां एक बड़ा मेला लगता है जिसमें नागपुर, पूना, नासिक, जब्बलपुर आदि स्थानोंसे अनेक तीर्थयात्री और वणिक् समागम होते हैं। मेला प्रायः २५ दिन तक रहता है। इस मेलेसे देवालयको बहुत आमदनी होती है। इसी ग्रामके पास भागवतोक्त प्राचीन कुण्डिनपुर अवस्थित था। यहां विदर्भराज भीष्मक राज्य करते थे।

२ बरारके इलिचपुर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा॰ २१° १८' उ॰ और देशा॰ ७७° ४५' पू॰ इलिचपुरसे प्रायः सात कोस दूर पूर्णा नदीके किनारे अवस्थित है। पहले यहां बहुतसे लोग रहते थे, अभी बहुत थोड़े हैं। दो एक प्राचीन मन्दिर और तीन सौ वर्ष पहलेकी एक मस्जिदके सिवा और दूसरा कोई चिह्न नहीं है जिससे प्राचीन समृद्धिका परिचय प्राप्त हो। हिन्दूके मन्दिरमें नृसिंह-मन्दिर उल्लेखयोग्य है। इस मन्दिरके पास ही 'करशुद्धितीर्थ' है। प्रवाद है, कि नरसिंह हिरण्यकशिपुको मार कर अपने हाथके लोहू कहीं भी धो न सके। अन्तमें उन्होंने देवलवाड़ामें आ कर अपना हाथ धोया। जिस स्थान पर उन्होंने हाथ धोया था, वही सरोवर अभी 'करशुद्धितीर्थ' नामसे प्रसिद्ध है।

देवलता (सं॰ स्त्री॰) देवप्रिया लता। १ नवमल्लिका, नेवारी। देवलस्य भावः तल् टाप्। २ देवलत्व, उपजीविकाके लिये देवपूजन।

देवलाङ्गुलिका (सं॰ स्त्री॰) देवयति परि देवयत्यनेन देव-णिच् ध्वज्। देवः लाङ्गुलिकः शूको यस्याः। वृश्चिकालि।

देवलाति (सं॰ पु॰) देवानां तत्प्रतिमानां लातिः ग्रहणं ६-तत्। देवप्रतिमा ग्रहण।

देवलोक (सं॰ पु॰) देवानां लोकः ६-तत्। स्वर्ग। मत्स्यपुराणमें भूः, भुव, स्व, मह, जन, तपः और सत्य ये सातों लोक देवलोक कहे गये हैं।

देवली (हिं॰ स्त्री॰) दिउली देखो।

देवली—मध्यप्रदेशके बरोदा तहसोल और जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ २०° ३८' उ॰ और देशा॰ ७८° २८' पू॰ बरोदा शहरसे ११ मील तथा देवगांव स्टेशनसे ५ मीलको दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५००८ है। यहां चिकित्सालय, विद्यालय और पान्थनिवास है।

देवली—राजपूतानेके अन्तर्गत अजमेर, जयपुर और मारवाड़के मध्यवर्त्ती स्थानमें अवस्थित एक सैन्य-निवास। यह अक्षा॰ २५° ४५' उ॰ और देशा॰ ७५° २२' पू॰ समुद्रपृष्ठसे ११२२ फुट ऊंचे पर अवस्थित है। यह स्थान मेजरटमसे प्रतिष्ठित हुआ है। यहां पदातिक और अश्वारोही सेनाओंके रहनेका बन्दोबस्त है। हरवतीके पोलिटिकल एजेण्ट यहां रहते हैं।

देववक्त्र (सं॰ क्ली॰) देवानां वक्त्रं मुखमिव। देवताओंका अग्नि मुखस्वरूप है क्योंकि वे अग्निरूपो मुखसे ही भोजन करते हैं। देवताओंके निमित्त हव्यकव्य आदिका अग्निमें हवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा।

देववती (सं॰ स्त्री॰) ग्रामणी नामक गन्धर्वकी कन्या। यह सुकेश राक्षसकी पत्नी और माल्यवान्, सुमाली और मालीकी माता थी।

देववधू (सं॰ स्त्री) १ देवताकी स्त्री। २ देवी। ३ अप्सरा।

देववर्णिनी (सं॰ स्त्री॰) भरद्वाजमुनिकी कन्या। यह विश्रवामुनिकी पत्नी और कुबेरकी माता थी। इसके गर्भसे वैश्रवण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वैश्रवणका दूसरा नाम कुबेर है। ये देवताओंके धनाध्यक्ष हैं। पहले लङ्कापुरी इनको राजधानी थी, परन्तु सौतेले भाई रावणके अनेक अत्याचारोंके कारण इन्होंने हिमालयके उत्तरस्थित अलकापुरीको अपनी राजधानी बनाई।

देववर्त्मन् (सं॰ क्ली॰) देवानां वर्त्म ६-तत्। आकाश।

देववर्द्धकि (सं॰ पु॰) देवानां वर्द्धकिः। विश्वकर्मा।

देववर्द्धन (सं॰ पु॰) देवकके राजाके एक पुत्रका नाम।

देववर्ष (सं॰ क्ली॰) देवानां वर्षं ६-तत्। द्वीपभेद, एक द्वीपका नाम। किसी किसी पुस्तकमें वैद्यवर्ष ऐसा लिखा है।

देववल्ला (सं॰ स्त्री॰) सहदेवी, सहदेई नामकी बूटी।

देववल्लभ (सं॰ त्रि॰) देवानां वल्लभः ६-तत्। १ देवताओंके प्रिय। (पु॰) २ सुरपुन्नाग वृक्ष। ३ केसर।

देववाणी (सं॰ स्त्री॰) १ संस्कृत भाषा। २ आकाशवाणी।

देववात (सं॰ पु॰) देवैर्वातः काम्यते स्म। ऋषिभेद, एक वैदिक ऋषिका नाम।

देववायु (सं॰ पु॰) द्वादश मनुका पुत्रभेद, बारहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

देववाहन (सं॰ पु॰) देवान् हवींषि वाहयति प्रापयति वह-णिच्-ल्यु। १ अग्नि। ये देवताओंका हव्य ले जाकर पहुंचाते हैं, इसीसे इनका नाम देववाहन पड़ा। (क्ली॰) देवानां वाहनं। २ देवताओंका वाहन।

देवविद्या (सं॰ स्त्री॰) देवज्ञानार्थी विद्या। निरुक्तविद्या।

देवविश् (सं॰ स्त्री॰) देवानां विशः। देवताविशेष।

देवविहाग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका राग। यह कल्याण और विहाग अथवा सारंग और पूरबीके योगसे बना है। यह सम्पूर्ण जातिका है।

देववी (सं॰ त्रि॰) देवं वेति कामयते वी-क्विप्। देवकाम।

देववीति (सं॰ स्त्री॰) वी-खादने क्तिन्, देवानां वीतिः ६-तत्। देवताओंका भक्षण।

देववृक्ष (सं॰ पु॰) देवप्रियो वृक्षः। १ मन्दारवृक्ष। २ गुग्गुल। ३ सप्तपर्ण वृक्ष, सतिवन।

देववृत्ति (सं॰ स्त्री॰) देवकृता उणादिसूत्रस्य वृत्तिः। उणादिसूत्रका वृत्तिभेद।

देववृद्ध (सं॰ पु॰) सात्वतका एक पुत्र।

देवव्यचस् (सं॰ त्रि॰) वि-अञ्च गतौ असुन् देवीव्यचः ३ तत्। देवता कर्त्तृक व्याप्त।

देवव्रत (सं॰ पु॰) १ भीष्मदेव। २ गेय सामभेद, एक प्रकारका सामगान। (क्ली॰) ३ देवत्व साधनव्रत।

देवव्रतिन् (सं॰ त्रि॰) देवतार्थं व्रतं अस्त्यस्य इति। देवार्थव्रतयुक्त, जो देवताके निमित्त व्रत धारण करता हो।

देवशत्रु (सं॰ पु॰) देवानां शत्रुः ६-तत्। १ देवारि, असुर। २ सुश्रुतोक्त देवगणग्रहभेद। देवगण देखो।

देवशर्मन् (सं॰ पु॰) देव इव शर्मा अशुभनाशकः। १ ब्राह्मणका उपनाम, ब्राह्मण जातिकी एक उपाधि। ब्राह्मणोंके नामकरणके समय नामके अन्तमें देवशर्मन् ऐसा रखा जाता है। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। ३ एक वेदज्ञ ब्राह्मण। इनके कोई सन्तान न रहनेके कारण इनकी स्त्री सदा चिन्तित रहती थी। इसलिए इन्होंने मन्त्रके बलसे देवताको सन्तुष्ट कर एक पुत्र प्राप्त किया, इस पुत्रका आकार सांप-सा था, किन्तु ब्राह्मणी उसे ही यत्नसे पालती थी। उसके साथ एक ब्राह्मण-कन्याका विवाह हुआ था। इस समय उस सर्परूपी ब्राह्मण-तनयने पुरुषमूर्त्ति धारण की और सर्प देह भस्म हो गई। ४ पाटलीपुत्रनगरवासी एक विद्वान् ब्राह्मण। इनके कालनेमि और विगतभय नामके दो शिष्य थे जिनके साथ इन्होंने अपनी दो कन्याओं-का विवाह करा दिया।

देवशस् (सं॰ पु॰) देव बाहुं शस्। देवता।

देवशाख (सं॰ पु॰) एक सङ्कर राग। यह शङ्करा-भरण, कान्हड़ा और मल्लारसे मिल कर बना है। इसमें गांधार कोमल लगता है। इसके गानेका समय १७ दण्डसे २० दण्ड तक है।

देवशिल्पिन् (सं॰ पु॰) देवानां शिल्पी। विश्वकर्मा।

देवशुनी (सं॰ स्त्री॰) देव इव प्रभावान्विता शुनि। देवतुल्य प्रभावयुक्त शुनि, देवलोककी कुतिया, सरमा।

इस देवशुनीकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है—परीक्षितके पुत्र राजा जनमेजयने कुरुक्षेत्रमें एक यज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञ करते समय एक कुत्ता वहां आ पहुंचा। जनमेजयके भाइयोंने उसे मार कर भगा दिया। उस कुत्तेने अपनी माता सरमासे जाकर कहा, 'मैंने न तो कोई अपराध किया था और न यज्ञकी कोई सामग्री ही छुई थी, इस पर भी बिना अपराधके मुझे लोगोंने मारा है।' देवशुनी सरमा यह सुन कर जनमेजयके पास जा कर बोली, 'मेरे इस पुत्रने कोई अपराध नहीं किया था, तुम्हारा घी आदि कुछ भी नहीं चाटा था, तिस पर भी बिना अपराधके तुम लोगोंने इसे मारा, इससे तुम्हारे ऊपर अकस्मात् कोई दुःख पड़ेगा।" यह शाप दे कर देवशुनी चली गई। (भारत आदि॰ ३ अ॰)

देवशेखर (सं॰ पु॰) देवः क्रीडाप्रदः शेखरो यस्य। १ दमनक, दौनेका पौधा। (क्ली॰) देवानां शेखरं। २ देवताका मस्तक।

देवशेष (सं॰ क्ली॰) अनन्त।

देवश्रवस् (सं॰ पु॰) १ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। २ वसुदेवके भाई।

देवश्री (सं॰ पु॰) देवान् श्रयति हविर्दानेन सेवते श्रि-क्विप्। १ यज्ञ। (स्त्री॰) देवानां श्री। २ देवताओंकी लक्ष्मी।

देवश्रुत् (सं॰ त्रि॰) देवेषु श्रूयते श्रु-क्विप् तुक्। देव-ताओंमें प्रसिद्ध।

देवश्रुत (सं॰ पु॰) देवेषु श्रुतः विख्यातः। १ ईश्वर। २ नारद। ३ शास्त्र। ४ अवसर्पिणीके एक जिनका नाम। ५ शुक्राचार्यके एक पुत्रका नाम।

देवश्रेणी (सं॰ स्त्री॰) देवानां श्रेणी च। १ मूर्वालता, मरोरफली, मुर्रा। २ देवताओंकी पंक्ति।

देवश्रेष्ठ (सं॰ पु॰) १ द्वादश मनुका पुत्रभेद, बारहवें मनुके एक पुत्रका नाम। देवेषु श्रेष्ठः। २ देवताओंमें श्रेष्ठ।

देवसख (सं॰ पु॰) देवानां सखा "राजाहःसखिभ्यष्टच्।" इति टच् समासान्त। देवताओंका सखा या मित्र।

देवसखा (सं॰ पु॰) उत्तर दिशाका एक पर्वत।

देवसंगीतयोनिन् (सं॰ त्रि॰) नारद।

देवसत्र (सं॰ क्ली॰) यज्ञभेद, एक यज्ञका नाम।

देवसत्व (सं॰ त्रि॰) देव इव सत्वं यस्य। देवताके जैसा स्वभाववाला।

देवसद (सं० त्रि०) सीदत्यत्र सद् क्विप्, देवानां सदः। देवस्थान।

देवसदन (सं० त्रि०) सीदत्यत्र सद् आधारे ल्युट्। १ देवताओंका आधार। २ स्वर्ग। ३ देवालय।

देवसद्मन् (सं० क्ली०) देवानां सद्म। देवतागृह, देवालय।

देवसभा (सं० स्त्री०) देवानां सभा। १ देवताओंका समाज। इसका पर्याय—सुधर्मा और सुधर्मी है। २ राजसभा। ३ सुधर्मा नामक सभा जिसे मयने अर्जुन या युधिष्ठिरके लिए बनाया था।

देवसभ्य (सं० त्रि०) देवस्य क्रीड़ायाः सभा तस्यां सीदति इति यत्। क्रीड़ासभास्थ, जुएमें उपस्थित। इसका पर्याय—सभिक और देवसामाजिक है।

देवसमाज (सं० पु०) सुधर्मा नामकी सभा।

देवसरि (सं० स्त्री०) गङ्गा नदी।

देवसर्षप (सं० पु०) देवप्रियः सर्षपः। वृक्षभेद, एक प्रकारकी सरसों। इसका पर्याय—अश्वाल, बदर, रक्तमूलक, सुरसर्षपक, सूक्ष्मदल, निर्जरसर्षप और कुरवाङ्कि है। इसका गुण—कटु, उष्ण, कफदोष और रक्तामाशयनाशक है।

देवसह (सं० क्ली०) देवं सहते सह-अच्। १ भिक्षासूत्रभेद। (स्त्री०) २ दन्तोत्पलौषधि, सफेद फूलका दण्डोत्पल। (पु०) ३ सोमाकर पर्वतभेद। ये सब पर्वत उत्तरकी ओर विस्तृत हैं और उन पर प्रचुर सोम उत्पन्न होता है।

देवसाक (हिं० पु०) देवशाक देखो।

देवसागरगणि—एक जैन पण्डित। इन्होंने १६३० ई०में अभिधानचिन्तामणिकी 'व्युत्पत्तिरत्नाकर' नामक एक टीका बनाई है।

देवसात् (सं० अव्य०) देवाधीनं करोति देव साति। देवताके निमित्त देय, जो देवताको उत्सर्ग किया जाय।

देवसायुज्य (सं० क्ली०) देवेन सायुज्यं संमिलनं। देवत्व।

देवसार (सं० पु०) इन्द्रतालके छः भेदोंमेंसे एक।

देवसावर्णि (सं० पु०) मनुभेद, तेरहवें मनुका नाम।

देवसिंह—मध्यभारतके अन्तर्गत रायपुर जिलेके राजिम नामक स्थानसे ८९६ कलचुरि सम्वत्‌को (११४५ ई०को) माघी शुक्लाष्टमीमें (३री जनवरीमें) खोदित एक शिलालिपि आविष्कृत हुई है। यह लिपि वहांके रामचन्द्रके मन्दिरमें उत्कीर्ण है। उससे जाना जाता है, कि राजमालवंशकी पञ्चहंस शाखामें ठाकुर साहिल नामक एक विख्यात वीरने जन्म लिया था। वे जयलब्ध भूभागके राजा हुए। उनके वासुदेव नामके एक छोटे भाई और भायिल, देशल तथा स्वामिन् नामके तीन पुत्र थे। इनमेंसे छोटे लड़के स्वामिन्‌ने भट्टाविल और बिहरा प्रदेश जीता था। देवसिंह उन्हींके छोटे लड़के थे। इनके बड़े भाई जयदेवने दाण्डोर प्रदेश पर और इन्होंने कोमो नामक मण्डल पर अधिकार किया था। देवसिंहके पुत्र सुविख्यात वीर जगपाल वा जगत्पाल उदया ठाकुरानीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। जगत्पाल देखो।

देवसिंहके और भी दो पुत्र थे जिनका नाम गाजल और जयत्सिंह था। इनके देवराज नामक मन्त्री बड़े ही चतुर थे। उन्हींके मन्त्रणा-बलसे जगत्पालादि तीनों भाई बहुत प्रतापशाली हो गये थे और कई एक राज्य जीते थे।

देवसुन्द (सं० पु०) सोमाकार क्षुद्रभेद।

देवसुन्दर—१ तपागच्छके एक विख्यात जैनाचार्य। इन्होंने १३९६ संवत्‌में जन्म, १४०४ संवत्‌को महेश्वर ग्राममें व्रत और १४२० संवत्‌को अणहिलपत्तनमें सूरिपद प्राप्त किया था। इनके पांच शिष्य प्रधान थे—कुलमण्डन, गुणरत्न, सोमसुन्दर, ज्ञानसागर और साधुरत्न। इन पांचोंने अनेक जैन शास्त्रीय ग्रन्थोंकी वृत्ति रची है।

२ भक्तामरस्तोत्रके टीकाकार एक जैन ग्रन्थकर्त्ता।

देवसुषि (सं० पु०) देवैः प्राणादिभिः वक्ष्यमाणः सुषि द्वारं। प्राणादि द्वारा वक्ष्यमाण हृदयका द्वारभेद, यह द्वार पांच है।

देवसू (सं० पु०) सुवन्ति अनुजानन्ति सू-क्विप्, देवाश्च ते सुवश्चेति कर्मधारयः। अनुज्ञाकर्त्ता देवभेद।

देवसूरि—१ जैन ग्रन्थकार। इन्होंने जइदिनचरिया (यतिदिनचर्या) की रचना की है।

२ एक विख्यात जैनाचार्य। मुनिचन्द्रसूरिके शिष्य। ११४३ संवत्‌में इनका जन्म, ११५२ संवत्‌में

दीक्षा और ११७४ संवत्में मृत्यु हुई थी। अण-हिलपत्तनमें जयसिंह सिद्धराजकी सभामें स्त्रियोंको मुक्तिके विषय पर दिगम्बराचार्य कुमुद-चन्द्रके साथ इनका खूब तर्क वितर्क हुआ था। इस तर्कमें जय लाभ कर इन्होंने दिगम्बरोंको नगरसे निकाल भगाया था। १२०४ सम्वत्को इन्होंने फलवर्द्धि ग्राममें एक जिनबिम्ब, एक चैत्य और आरासन नामक स्थानमें नेमिनाथको प्रतिष्ठा की।

ये स्याद्वादरत्नाकर नामक एक सुन्दर प्रमाण ग्रन्थ भी बना गये हैं। इनके शिष्य रत्नप्रभसूरि रत्नाकरावतारिका नामक स्याद्वादरत्नाकरकी एक टीका लिखा है। ११२६ संवत्में इनका देहान्त हुआ।

देवसृष्ट (सं० त्रि०) देवेन सृष्टः। देवता कर्त्तृक सृष्ट, जो देवतासे बनाया गया हो।

देवसृष्टा (सं० स्त्री०) देवाय क्रीड़ार्थं सृष्टा। मद्य, मदिरा।

देवसेन (भट्टारक देवसेन)—एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार, रामसेनके शिष्य। ८५१ सम्वत्में इनका जन्म हुआ था। इनके बनाये हुए दर्शनसार (दर्शनसार), भावसंग्रह और तत्त्वसार नामक प्राकृत ग्रन्थ, आराधणसार (आराधनसार) आदि प्राकृत संस्कृत मिश्रित ग्रन्थ और धन-संग्रह नामक संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं।

देवसेना (सं० स्त्री०) देवाना सेना। १ देवसैन्य, देवताओंकी सेना। २ प्रजापतिकी कन्या जो सावित्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। इनका दूसरा नाम षष्ठी वा महाषष्ठी भी है। ये मातृकाओंमें श्रेष्ठ हैं और शिशुओंका पालन करनेवाली हैं। इनकी बहनका नाम दैत्यसेना है। एक बार केशी दानव इन्हें हर ले गया, किन्तु इन्द्रने इनकी रक्षा की। एक दिन इन्द्रने स्कन्दको बुला कर कहा, 'हे सुरोत्तम! आपके जन्म लेते न लेते स्वयम्भूने इस कन्याको आपको पत्नी निर्दिष्ट कर रक्खा है, अतः आप इनके साथ विवाह कीजिये।' इन्द्रके कहनेसे स्कन्दने यथाविधि देवसेनासे विवाह कर लिया। विवाहमें वृहस्पतिने होम और जप किया था। ब्राह्मणने इन्हें षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता नामोंसे पुकारा। जिस समय स्कन्दके साथ इनका विवाह होता था, उस समय लक्ष्मीदेवीने मूर्त्तिमती हो कर इन्हें आश्रय दिया था। जिस पञ्चमी तिथिको स्कन्द श्रीयुक्त हुए थे, वह श्रीपञ्चमी कहलाई और जिस षष्ठीको स्कन्द कृतकार्य हुए थे, वह षष्ठी वा महाषष्ठी कहलाई। (भारत वन० २८८ अ०)

देवसेनापति (सं० पु०) देवसेनायाः पतिः ६-तत्। स्कन्द, कार्त्तिक।

देवस्थलि—आम्नायतन्त्रके रचयिता।

देवस्थान (सं० पु०) देवानां स्थानमिव स्थानं यस्य। १ एक सिद्ध महर्षि। इन्होंने पाण्डवोंको वन जाते समय सदुपदेश दिया था। पीछे जब युधिष्ठिरने राज्य प्राप्त किया, तब इन्होंने अनेक प्रकारके उपदेश करके उन्हें राज्य छोड़नेसे रोका था। (भारत शान्ति १-२० अ०)

२ देवताओंके रहनेकी जगह। ३ देवालय, देवमन्दिर।

देवस्मिता—धर्मगुप्तवणिककी कन्या। ये अपनी इच्छासे गुहसेनसे विवाह करनेके लिये पितामातासे बिना कहे सुने उनके साथ भाग गईं। ये अत्यन्त पतिपरायणा थीं और स्वामीको कभी विदेश जाने न देती थीं। एक बार गुहसेन जब कटाहद्वीपमें व्यापार करने गये, तब वहांके अनेक वणिक्पुत्रोंने आ कर देव-स्मिताका सतित्व नष्ट करनेकी चेष्टा की। इस कामके लिये उन दुष्टोंने योगकरण्डिका नामक एक परिव्राजिका-की शरण ली। परिव्राजिकाके सिद्धिकरी नामकी एक शिष्या थी। उसीको साथ ले वे देवस्मिताके घर पहुंची। वहां जा कर परिव्राजिका देवस्मिताको परपुरुषासक्ता करनेके लिये कोशिश करने लगी। देवस्मिता इस बातको ताड़ गईं। उन्हें उपयुक्त दण्ड देनेका दृढ़-सङ्कल्प करके उन्होंने दासीके द्वारा धतूरा मिली हुई शराब और कुक्कुरपद चिह्नयुक्त एक मुहर बनवाई। पीछे इशारा करके उन्होंने परिव्राजिकासे वणिक्पुत्र लानेको कहा।

इधर देवस्मिता परिचारिकाने उन्हींसा भेष बना उस वणिक पुत्रको शराब पिला कर बेहोश कर दिया और उस मुहरको आगमें तपा कर उसके कपाल पर छाप दे दिया और सड़कके किनारे गड्ढेमें फेंक दिया।

इस प्रकार एक एक करके वे चारों अपने किए हुए

कर्मोंका उचित दण्ड पा कर अपने घर लौट आये। यहां किसीके सामने उन्होंने यह बात प्रगट न की। पीछे देवस्मिताने उस परिव्राजिका और शिष्याको इसी प्रकार शराब पिला कर बेहोश कर दिया और उनको नाक, कान काट कर उन्हें उसी स्थान पर फेंक दिया। इसके बाद देवस्मिताने सोचा, कि शायद वे वणिक् पुत्र उनके स्वामी का कोई अनिष्ट भी न कर डालें, इस ख्यालसे वे वणिक्‌वेश धारण कर कटाहद्वीपकी गईं। वहां जाकर इन्होंने राजासे कहा, 'मेरे चार विच्छिन्न नौकर आपके राज्यमें भाग आये हैं, उन्हें मुझे तलाश कर दें।' राजाने जब उन्हें तलाश करने कहा, तब वणिक्‌वेशधारी देवस्मिताने उन चार वणिक्‌पुत्रोंको दिखला दिया।

इस पर वहांके सभी लोग, विशेषतः वे चारों वणिक्‌पुत्र बहुत क्रोधित हुए। देवस्मिताने कहा, 'राजन्! मेरे नौकरोंके कपाल पर कुत्तेके पैरका चिह्न है, देखनेकी आज्ञा मिले।' अनन्तर देवस्मिताने आद्योपान्त कुल बातें राजाके सामने कह सुनाईं। इस पर वहां जितने मनुष्य खड़े थे, सब कोई इनकी भूयसी प्रशंसा करने लगे और राजाने भी पातिव्रत्यके उपहारस्वरूप इन्हें प्रचुर सम्पत्ति दी। बाद देवस्मिता गुहसेनको साथ ले ताम्रलिप्त जा कर सुखसे रहने लगीं।

(कथासरित्सागर)

देवस्व (सं० क्ली०) देवानां स्वं। १ देवप्रतिमाके लिये उत्सृष्ट धन, वह जायदाद जो किसी देवताकी पूजा आदिके लिये अलग निकाल दी जाय। २ यज्ञशील मनुष्यका धन। जो इस धनको लोभसे हरता है, वह परलोकमें गीधका जूठा खा कर जीता है।

देवस्वत्वक (सं० पु०) देवस्वत्वेति शब्दशब्दोऽस्मात् अनुवाके अध्याये वा वुन्। देवस्वत्वादि प्रतीकयुक्त अध्याय वा अनुवाक।

देवस्वामी—१ एक विख्यात भाष्यकार। इन्होंने आश्वलायनश्रौतसूत्र, आश्वलायनगृह्यसूत्र और बौधायनसूत्रका भाष्य रचा है। हेमाद्रिप्रभृतिने इनका मत उद्धृत किया है। २ भक्तिकल्पतरु नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

देवहंस (हिं० पु०) एक प्रकारको बत्तख।

देवहरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

देवहव्य (सं० पु०) देवाय हव्यं यस्य। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

देवहाटा खुलाना जिलेके माइहाटी परगनेका एक छोटा शहर। यह अक्षा० २२° २३' १०" उ० और देशा० ८८° ०' १५" पू० यमुना नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७ हजार है। यहां एक म्युनिसपैलिटी है। शंख जला कर यहां चूना तैयार होता है। इसी चूनेके व्यवसायके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

देवहरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

देवहित (सं० स्त्री०) देवानां वा देवैर्हितं। १ देवताओंका हित। २ देवताओंसे प्राप्त हित।

देवहू (सं० स्त्री०) देवाह्वयन्तोऽत्र ह्वे सम्प्र० आधिकर्त्तरि वा क्विप्। १ देवाह्वान, देवताओंका आह्वान। २ व्रीहिपूर्ण शकट, अनाजसे भरी गाड़ी। ३ वामकर्ण, बायां कान। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। (त्रि०) ४ देवाह्वानकर्त्ता, देवताओंका आह्वान करनेवाला।

देवहूति (सं० स्त्री०) स्वायम्भुव मनुको कन्या। महर्षि कर्दमके साथ इनका विवाह हुआ था। महर्षिने इनकी सेवासे प्रसन्न हो कर इन्हें दिव्यज्ञान दिया। इनके गर्भसे नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिल इन्हींके पुत्र हैं। (भागवत)

कर्दम और कपिल देखो।

देवहय (सं० पु०) देवा ह्वयन्तेऽसुरैः यत्र आधारे क्वप्। देवासुरसंग्राम, देवता और राक्षसको लड़ाई।

देवहेडन (सं० क्ली०) हेल-भावे ल्युट् देवानां हेलनं लस्य डः। देवताओंके अवहेलनरूप अपराध।

देवहेति (सं० स्त्री०) देवानां हेतिः। देवास्त्र।

देवहोत्र (सं० पु०) त्रयोदश मन्वन्तरमें योगेश्वररूप हरिके पिता।

देवह्रद (सं० पु०) श्रीपर्वतस्थित तीर्थभेद। इसमें संयतचित्त हो कर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। इस पर्वत पर महादेव देवीके साथ और ब्रह्मा सब देवताओंके साथ वास करते हैं।

देवा (सं० स्त्री०) दिव्यत्यनया दिव-घञ् ततष्टाप्।

१ पत्नचारिणी लता। २ अश्मनपर्णी, विजयसार। ३ मूर्वा, मुर्रा। इसका पर्याय—तेजनी, पिलुनी, देवा, तिक्तवल्ली, पृथकत्वचा, धनुःश्रेणी, मधुरसा और निदंहनी। ४ पटसन।

देवा-१ अयोध्या प्रदेशके बड़वांकी जिलेका एक परगना। १०३० ई०में सैयद सालार मसाउदने इस भूभाग पर अधिकार किया। बहुत दिनों तक यहां मुसलमानोंकी प्रधानता थी। पीछे जनवाके राजपूत लोग प्रबल हो उठे और उन्होंने इस परगनेका अधिकांश जीत लिया। अन्तमें स्थानीय राजाने बहुतसी सेना भेज कर इसके सरदारको पकड़ मंगाया और इस स्थानको दखल कर लिया। जनवाके राजपूत लोग अपनेको वैश्य-क्षत्रिय बतलाते हैं। यहाका भूपरिमाण १४१ वर्गमील है। इस परगनेका आधा तालुकदारी और आधा जमींदारी है।

२ उक्त बड़वांकी जिलेका एक नगर। यह बड़वांकी नगरसे ४ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां बहुत प्राचीन शेख मुसलमान राजाओंके वंशधरका वास है यहांके कांचके बरतन बहुत मशहूर हैं।

देवाकवि—हिन्दीके एक कवि। ये राजपूतानेके रहने वाले कहे जाते थे। सं० १८५५ में इनका जन्म हुआ था। ये कवि कृष्णदास पावहारी गलताजीवालेके शिष्य और उदयपुरके पास एक मन्दिरमें चतुर्भुजस्वामीके पुजारी थे।

देवाक्रीड़ (सं० पु०) देवा आक्रीडन्त्यत्र, आ क्रीड़ आधारे घञ्, देवानां आक्रीड़ः। देवोद्यान, देवताओंका उद्यान, इन्द्रका बगीचा।

देवागार (सं० पु०) देवानां आगारः। देवताओंका स्थान, देवालय।

देवागारिक (सं० त्रि०) देवागारो नियुक्तः अगारान्तत्वात् ठन्। जो देवालयका काम काज करता है।

देवाङ्ग—दक्षिणप्रदेशके तांतियोंका एक भेद। ब्रह्माण्ड उपपुराणके अन्तर्गत देवाङ्गचरित्रमें इस जातिका उत्पत्तिविषय इस प्रकार लिखा है—

मानवोंकी जब सृष्टि हुई, तब वे सबके सब वस्त्रहीन थे। एक दिन सदाशिवने सोचा, कि किस प्रकार इन नवसृष्ट प्राणियोंको वस्त्रादि मिलेंगे? इसी समय उनके शरीरसे एक पुरुषकी उत्पत्ति हुई। देवताके अङ्गसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम देवाङ्ग रखा गया। देवाङ्गको विष्णुसे सूता और मयदानवोंसे तांत आदि कपड़ा बुननेकी कुल सामिग्रियां मिलीं। बाद उन्होंने स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीन लोकोंके उपयोगी वस्त्रादि तैयार कर दिये। मर्त्यवासियोंने खुश हो कर उन्हें आमोदपत्तन वा आमोदपुरका राजा बनाया। देवताओंने सूर्यको एक कन्या और शेषकी एक कन्या इन दो कन्याओंके साथ उनका विवाह कर दिया। नागराजकन्याके एक पुत्र और सूर्यकन्याके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। नागराजके दौहित्रने सौराष्ट्रदेश पर आक्रमण किया और सूर्यकन्याके पुत्रगण कुछ दिन तक आमोदपुरमें ही राज्य करते रहे। पीछे अन्यान्य राजाओंने जब उनका राज्य छीन लिया, तब वे नितान्त हीनावस्थाको प्राप्त हुए। अन्तमें वे सब कपड़े बुन कर अपना गुजारा करने लगे। इसी प्रकार इनके वंशधरोंसे देवाङ्ग नामक तन्तुवाय श्रेणीकी उत्पत्ति हुई।

देवाची (सं० स्त्री०) देवानञ्चति वेदे बाहु० न लोपः नाद्याद्देशत्र ङीप्। १ देवताओंके प्रतिगमनशीला, देवताओंके उद्देशसे चलनेवाली। २ देवपूजिका, देवताका पूजन करनेवाली।

देवाजीव (सं० स्त्री०) देवेन देवप्रतिमासेवनेन आजीवतीति आ जीव-अच्। देवल, पुजारी, पंडा।

देवाजीविन् (सं० त्रि०) देवेन आजीवतीति आ-जीवणिनि। देवल, देवताओंको पूजा करके जीविका चलानेवाला।

देवाट (सं० पु०) अट गतौ भावे घञ्, देवानां अट गमनं यत्र। १ हरिहरक्षेत्र। वराहपुराणमें लिखा है, कि जहां नन्दी महादेवका गोधन ले कर रहते हैं, उसी हरिहरात्मक क्षेत्रमें सब देवता परिभ्रमण करते हैं, इसीसे इसका नाम देवाट हुआ है।

देवातिथि (सं० पु०) कुरुवंशीय अक्रोधनका पुत्र।

देवातिदेव (सं० पु०) देवानतिक्रम्य दीव्यति अति-दिवअच्। विष्णु।

देवात्मन् (सं० पु०) देव आत्मा अधिष्ठातृदेवता यस्य। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपल। २ देवस्वरूप।

देवाधिदेव (सं० पु०) देवानां अधिदेवः ६-तत्। १ सर्वेश्वर, परमेश्वर। २ महादेव, शिव। ३ इन्द्र।

देवाधिप (सं० पु०) देवानामप्यधिपः। १ सर्वनियन्ता परमेश्वर। २ द्वापरयुगके एक राजाका नाम। ३ इन्द्र।

देवान (फा० पु०) १ राजसभा, दरबार, कचहरी। २ अमात्य, मन्त्री। ३ प्रबन्धकर्त्ता।

देवानन्दसूरि—एक जैनाचार्य। इन्होंने सिद्धसारस्वत व्याकरण प्रणयन किया है। जिनप्रभसूरिके तीर्थकल्प पढ़नेसे जाना जाता है, कि १२६६ संवत्‌में देवानन्दसूरिने एक जिनप्रतिष्ठा की थी।

देवानूहल्लि (देवनूहल्लि)—१ महिसुरके बङ्गलोर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३°५' से १३° २२' उ० और देशा० ७७° ३२' से ७७° ५०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २३५ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ६०५३७ है। इस तालुकमें दो शहर और २८४ ग्राम लगते हैं। आय १२१००० रु०की है। पिनाकिनी नदी इस विभाग हो कर प्रवाहित है। यहां कहीं कहीं पोस्ता, विलायती आलू और उत्कृष्ट ईख उपजायी जाती है। टीपू सुलतानके यत्नसे किसी चोन द्वारा यहां ईखकी खेतीको उन्नति हुई है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १५° १३' उ० और देशा० ७७° ४३' पू० बङ्गलोर शहरसे २३ मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ६६४९ है। पहले यहां पलिगारोंकी राजधानी थी। वे अपनेको मोरसु ओक्कल जातिके बतलाते थे। पलिगार देखो। उक्त पलिगार सरदारगण गौड़ नामसे परिचित थे। १७४८ ई०में महिसुरके हिन्दूराजासे अंतिम गौड़ पराजित हुए। इस युद्धमें हैदरअलीने अश्वारोहीके रूपमें अपने वीरत्वका परिचय दे कर हिन्दूराजासे सुख्याति पाई थी। इसी शहरमें टीपू सुलतानका जन्म हुआ था। हैदरअली यहाँ एक पत्थरका दुर्ग निर्माण कर गये हैं। १७९१ ई०में लार्ड कर्नवालिसने इस दुर्ग पर आक्रमण किया था। यहां प्रति सप्ताह बुधवारको हाट लगती है।

देवानांप्रिय (सं० पु०) देवानां प्रिय ६-तत्। 'देवानां प्रिय इति च मूर्खे' इति वाहुलकात् अलुक समासः। १ मूर्ख। २ देवताओंको प्रिय। ३ छाग, बकरा। ४ धर्माशोक। अशोक देखो।

देवाना (हिं० वि०) १ दीवाना देखो। (पु०) २ एक चिड़िया।

देवानीक (सं० पु०) १ सावर्णि नामक तीसरे मनुके एक पुत्रका नाम। २ सगरवंशीय नृपभेद, सगरवंशके एक राजाका नाम। ३ देवताओंको सेना।

देवानुक्रम (सं० पु०) वैदिकमन्त्राणां देवताज्ञापनाय अनुक्रमो यत्र। वैदिकमन्त्रका देवताज्ञापक ग्रन्थभेद।

देवानुचर (सं० स्त्री०) देवाननुचरति अनुचर-ट। देवताओंके पश्चात्‌गामी, देवताओंके साथ चलनेवाले विद्याधर आदि उपदेव।

देवानुयायिन् (सं० पु०) देवान् अनुयाति अनु-या-णिनि। देवानुचर।

देवान्तक (सं० पु०) देवानां अन्तकः ६-तत्। १ राक्षसभेद, एक राक्षसका नाम। २ दैत्यभेद, एक असुरका नाम।

देवान्धस् (सं० क्ली०) देवानां अन्ध इव दर्शनेन प्रीतिकरं। १ अमृत। २ देवनैवेद्यके लिए कल्पित अन्न।

देवान्न (सं० पु०) चरु, हवि।

देवापि (सं० पु०) पुरुवंशीय प्रतीपराजपुत्र नृपभेद। महाराज प्रतीपके तीन पुत्र थे, देवापि, शान्तनु और वाह्लीक। तीनोंमें देवापि बड़े धर्मपरायण थे। इन्होंने संसारी विषयोंमें आसक्त न हो कर तपोबलसे ब्राह्मण प्राप्त किया। बचपनसे ही ये संसारी विषय छोड़ हुए थे। आजकल ये सुमेरु पर्वतके कलापग्राममें योगीके वेशमें रहते हैं। कलिके समाप्त होने पर सत्ययुगमें ये चन्द्रवंश स्थापित करेंगे। (भारत १।९५।४४-४५)

वैदिकमतसे—ऋष्टिसेन राजाके दो पुत्र थे, देवापि और शान्तनु। दोनोंमें देवापि बड़े थे, पर राज्य शान्तनुको मिला और देवापि तपस्यामें लगे। शान्तनुके ज्येष्ठातिक्रमके लिए उनके राज्यमें बारह वर्षको अनावृष्टि हुई। इस पर ब्राह्मणोंने उन्हें कहा, 'तुमने अधर्म आचरण किया है, बड़ेके रहते तुम राजसिंहासन पर बैठे हो, इसीसे देवता लोग अप्रसन्न हो कर जल नहीं बरसाते हैं।' तब शान्तनुने देवापिको सिंहासन पर अभि-

किया किया। देवापिने शान्तनुसे कहा था, 'तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे।' देवापिने यज्ञ कराया जिससे खूब वृष्टि हुई थी। ( निरुक्त २।१०)

देवाब (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी लेई। यह चीमर, गोंद, चूना, बीभन और पानी मिलाकर बनाई जाती है।

देवाभियोग (सं० पु०) किसी दुष्ट देवताका शरीरमें प्रवेश। इस देवताके प्रवेश होनेसे मनुष्य बुरा काम करने लगते हैं।

देवाभीष्ट (सं० त्रि०) देवानां अभीष्टः। १ देवताओंके अभिलषित। स्त्रियां टाप्। २ ताम्बूली, पान। ३ पूग वृक्ष, सुपाड़ीका पेड़।

देवायतन (सं० क्ली०) देवानां आयतनं। देवप्रतिमालय, देवमन्दिर।

देवायुध (सं० क्ली०) देवस्य इन्द्रस्य आयुधं ६-तत्। १ इन्द्र धनुष। सजल मेघयुक्त आकाशमें सूर्यकिरण प्रतिविम्बित होनेसे धनुषाकारका पदार्थ उत्पन्न होता है, उसीको इन्द्रधनुष कहते हैं। २ देवताओंका अस्त्र।

देवायुष (सं० क्ली०) देवानां आयुः अच् समासान्तः। देवताओंका जीवनकाल।

देवारण्य (सं० क्ली०) देवप्रियं देवभूयिष्ठं वा अरण्यं। तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। देवानां अरण्यं। २ देवताओंका उद्यान।

देवाराधन (सं० पु०) देवताओंकी पूजा।

देवारि (सं० पु०) देवानां अरिः ६-तत्। असुर।

देवार्पण (सं० क्ली०) देवेषु अर्पणं। १ देवताके निमित्त किसी वस्तुका दान। देवेभ्योऽर्प्यन्ते वैः अधिकरणे ल्युट्। २ ऋग्वेदादि।

देवार्य (सं० पु०) अर्हद्गणभेद, अर्हत्के एक गणका नाम।

देवार्ह (सं० त्रि०) देवानर्हति अर्ह-दाने अण्। १ देवताओंके निमित्त दानयोग्य। (क्ली०) २ सुरपर्ण, माचीपत्र।

देवार्हा (सं० स्त्री०) देवार्ह-टाप्। सहदेवीलता।

देवालय (सं० पु०) देवानां आलयः आवासः। १ स्वर्ग। २ देवगृह, मन्दिर।

देवाला (सं० स्त्री०) देवानपि आलाति आयत्तीकरोति आ-ला क। रागिणीविशेष।

देवाला (हिं० पु०) दिवाला देखो।

देवाला—मन्द्राज प्रदेशके नीलगिरि जिलेके अन्तर्गत नम्बलकोड़ अंशका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० ११° २८' उ० और देशा० ७६° २३' पू०में अवस्थित है। कहवाके व्यवसायके लिये पहले यह स्थान बहुत प्रसिद्ध था। वैनाड़के सोनेकी खानके निकट होनेके कारण यहां की लोकसंख्या धीरे धीरे बढ़ती गई और यह एक प्रधान नगरमें गिना जाने लगा। यहां पान्थनिवास, थाना, टेलिग्राफ, डाकघर और मजिष्ट्रेट साहबका आवास है।

देवाला—मध्यप्रदेशके चन्दा जिलेके अन्तर्गत एक छोटा ग्राम। यह अक्षा० २०° ६' उ० और देशा० ७८° ६' ३०" पू० भाण्डकसे तीन कोसकी दूरी पर अवस्थित है। सुन्दर शिल्पनैपुण्य और स्थापत्य युक्त देवालयके भग्नावशेषके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। भाण्डक देखो।

देवालिया—काठियावाड़के झालावार प्रान्तके मध्यवर्त्ती एक छोटा राज्य। यहांके सामन्तके अधीन दो ग्राम हैं। ये वृटिश गवर्मेण्टको प्रतिवर्ष ४६७) रु० और जूनागढ़के नवाबको ५६ रु० कर देते हैं। यहांकी वार्षिक आय प्रायः ६ हजार रुपयेकी है।

देवावतार (सं० पु०) देवानां अवतारः ६ तत्। देवताओंका अवतार।

देवावास (सं० पु०) देवानां आवासो वासस्थानं। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। २ स्वर्ग। ३ देवप्रतिमालय। ४ सुमेरु।

देवावी (सं० पु०) देवानवति अव-प्रीणने औणादिक ई। देवतर्पक सोम।

देवावृध् (सं० पु०) देवा वर्द्धन्तेऽत्र वृध-क्विप्, पूर्वपद दीर्घः। पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

देवावृध (सं० पु०) देवा वर्द्धन्तेऽनेन। सात्वत नृपभेद, हरिवंशके अनुसार एक राजाका नाम।

देवाश्व (सं० पु०) देवस्य इन्द्रस्य अश्वः। उच्चैःश्रवा, इन्द्रका घोड़ा।

देवास—१ मध्यभारतके मानपुर एजेन्सीके रक्षणाधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २२° १६' से २३° ५३' उ० और देशा० ७५° ३४' से ७६° ४६' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८८६ वर्गमील है।

वर्त्तमान राजवंशके पूर्वपुरुष कालुजीने पेशवा बाजीरावको खुश करके उनसे देवास, सारङ्गपुर और बहुतसे भूभाग पाये थे। कालुजीके दो पुत्र थे, तुकोजी और जीवाजी। राज्य पानेके लिए दोनों भाइयोंमें विवाद आरम्भ हुआ जिससे यह राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। तभीसे यह दो भागोंमें चला आ रहा है। बड़े पुत्रके उत्तराधिकारी बाबा साहब और छोटेके दादा साहब नामसे प्रसिद्ध थे। बड़े वंशका ही सम्मान अधिक होता है। १८१८ ई०में दोनों सरदारोंने आपसमें मेल कर हटिश गवर्मेण्टका आश्रय लिया और वे अपनी अपनी सेनासे हटिश गवर्मेण्टको सहायता पहुंचानेमें राजो हुए। अन्तमें गवर्मेण्टने ३५६००) रु० वार्षिक कर निश्चित कर दिया। १८२८ ई०में देवासके सरदारोंने बगन्द परगना हटिश गवर्मेण्टकी देख रेखमें छोड़ दिया और इसके बदले गवर्मेण्टसे सब खर्च काट मार कर साढ़े छः हजार रुपये पाने लगे।

सिपाहीविद्रोहके समय देवासके राजाओंने हटिश गवर्मेण्टको खूब सहायता की थी। इसी कारण इन्हें दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका अधिकार मिला है।

बड़े वंशके अधिष्ठाता १म तुकोजी राव थे। १७५२ ई०में उनके स्वर्गारोहणके बाद उनके दत्तकपुत्र कृष्णाजी राव पुआर राजगद्दी पर बैठे। ये बाबासाहब नामसे भी प्रसिद्ध थे। १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें इन्होंने अपनी खूब वीरता दिखाई थी। १७८९ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके पोष्य पुत्र २य तुकोजीराव राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इस समय दोनों वंशकी अवस्था शोचनीय थी; काण, पिण्डारी, सिन्धिया और होलकर जहां तहां इनके राज्यों पर अधिकार कर बैठे थे। तुकोजीरावके मरने पर ३य तुकोजी १९०० ई०में राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इन्दोरके दली कालेजमें और अजमेरके मेयो कालेजमें इन्होंने विद्या शिक्षा प्राप्त की। सम्प्रति यही बड़े वंशके राजा हैं। इनका पूरा नाम है,—H. H. महाराज क्षत्रिय-कुलावतंस समसहस्र सेनापति प्रतिनिधि सर तुकोजीराव पुआर बाबासाहब महाराज के, सी, एस, आइ। इन्हें १५ तोपोंकी सलामी मिलती है। इनके अधीन ६२ अश्वारोही, ७८ पदातिक, ६८ सिबन्दी और १८ गोलन्दाज हैं। इसके अलावा ६०० साधारण पुलिस हैं।

छोटे वंशके अधिष्ठाता जिवाजो राव थे। १७७५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। तबसे ले कर १८९१ ई० तक इस वंशके इतिहासका पता नहीं चलता। पीछे १८९२ ई०में मलहारराव पुंवार राजसिंहासन पर बैठे और फिलहाल यही वहांके राजा हैं। इनका पूरा नाम H. H. महाराज सर मलहार राव बाबासाहब पुआर के, सि, एस, आइ है। इन्हें हटिश गवर्मेण्टको ओरसे १५ तोपोंकी सलामी मिलती है। इनके अधीन ८० अश्वारोही ८८, पदातिक और २७ गोलन्दाज तथा २६८ साधारण पुलिस हैं।

यहांकी लोकसंख्या प्रायः ५४८०४ है, जिनमेंसे सैकड़े ८५ हिन्दू, १० मुसलमान और शेषमें अन्यान्य जाति हैं। इनमें दो शहर और ३३७ ग्राम लगते हैं। यहांकी भाषा हिन्दी, उर्दू और मराठी है। राज्यकी प्रधान उपज ज्वार, चना, रुई, गेहूं, दलहन और अफीम है।

यहांके राजा विशुद्ध राजपूतवंशके होने पर भी महाराष्ट्रोंके साथ वैवाहिक सूत्रमें आबद्ध हो जानेसे राजपूतसमाजमें नीच समझे जाते हैं। दोनों वंशका राजस्व मिला कर तीन लाख रुपयेसे अधिक है।

२ उक्त देवास राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° ५८' उ० और देशा० ७६° ४' पू० इन्दोरसे प्रायः १० कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १५४०३ है। देवासके दो राजा ही यहां भिन्न भिन्न प्रासादमें रहते हैं। शहरके पास ही चामुण्डा नामका एक पहाड़ है जो समुद्रपृष्ठसे ३०० फुट ऊंचा है। इस पहाड़का नाम देवीवासिनी भी है। कहते हैं कि इस पर देवता वास करते थे। शायद इसी देववासिनी पहाड़के नामानुसार नगरका नामकरण हुआ है। १७३९ ई०में जबसे यह शहर महाराष्ट्रोंके हाथ आया था तभीसे इसकी उन्नति हो रही है। चामुण्डा पहाड़ पर एक सुन्दर मूर्त्ति है जो पत्थर काट कर बनाई गई है और वहां मन्दिरके पास ही एक तालाब है। तालाबकी एक बगलमें एक छोटा शिवमन्दिर है। दूर दूर स्थानोंसे लोग देवीके दर्शन करनेको

आते हैं। यहां स्कूल, अस्पताल और पान्थनिवास है।

देवाहार (सं० पु०) देवयोग्य आहारः। देवताके योग्य आहार, अमृत।

देवाह्वय (सं० पु०) १ नृपभेद, एक राजाका नाम। २ देवदारुवृक्ष, देवदार।

देविक (सं० पु०) अनुकम्पितो देवदत्तः मनुष्यनाम बहु-चकत्वेन ठन् द्वितीयादचः परस्य लोपः। अनुकम्पित देवदत्त।

देविका (सं० स्त्री०) दीव्यतीति दिव ण्वुल्-टाप्, टापि अत इत्वं। १ नदीभेद, घाघरा नदी। पद्मपुराणके अनुसार यह आधा योजन चौड़ी और पांच योजन लम्बी है। इसमें देवर्षिगण सर्वदा परिवृत रहते हैं। मत्स्यपुराणके मतसे यह नदी हिमालयके पाददेशसे निकली है।

कालिकापुराणमें लिखा है—इस नदीके साथ सरयू मिली हुई है। यह एक प्रधान तीर्थ है। इसमें स्नान कर चरुपाक करके महादेवकी अर्चना करनेसे सब कार्य सिद्ध होते हैं और यज्ञ करनेका फल मिलता है। देविका पीठ स्थानमेंसे एक है, भगवती यहां नन्दिनीके रूपमें विद्यमान हैं।

२ युधिष्ठिरकी एक स्त्रीका नाम। युधिष्ठिरने इन्हें स्वयंवरमें जीता था। इनके गर्भसे यौधेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। (भारत १।९५ अ०) ३ धुस्तूर, धतूरा। (त्रि०) ४ देवसम्बन्धी।

देविया (सं० पु०) धुस्तूरवृक्ष, धतूराका पेड़।

देविट (सं० पु०) दिव-ट्टच्। अक्षक्रीड़ाकारी, जुआ खेलनेवाला।

देविन् (सं० त्रि०) दिव-णिनि। क्रीड़ाकारक, खेलने-वाला।

देविय (सं० पु०) अनुकम्पितो देवदत्तः बह्वच्कमनुष्य-नामत्वात् घ, द्वितीयादचः परस्य लोपः। अनुकम्पित देवदत्त।

देविल (सं० त्रि०) देह देवने इलच्, दीव्यति आनन्देनेति दिव-इलच्, (गुपादिभ्यः कित्। उण् १।५७) १ धार्मिक। (पु०) अनुकम्पितो देवदत्तः इलच्। २ अनुकम्पित देव-दत्त।

देवी (सं० स्त्री०) दीव्यतीति दिव-अच्, ततो ङीष्। या देवयति प्रवृत्ति-निवृत्त्युपदेशेन यथाधिकारं व्यवहारयति सर्वान् देव-णिच्-अच् ङीप्। १ दुर्गा। देवीभागवतमें लिखा है, कि एक बार महापूजा कर देवीका पाद-जल पीनेसे सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं। जो अनन्य-चित्त हो कर देवीकी भक्ति करते हैं उन्हें अपराध करने पर भी दुःख नहीं भोगना पड़ता है वरं सदा सुख ही मिलता है; क्योंकि उनके परित्राता स्वयं शिवजी हैं। २ देवपत्नी, देवताकी स्त्री। ३ कृताभिषेका राजमहिषी, वह रानी जिसका राजाके साथ अभिषेक हुआ हो, पटरानी। ऐसी रानीको देवी कहना चाहिए। ४ ब्राह्मण-स्त्रियोंके नामोपपद, ब्राह्मणकी स्त्रीके नामके अन्तमें देवी शब्द प्रयोग करना चाहिये। ५ मूर्वा, मरोरफली, मुर्रा। ६ पृक्का, एक प्रकारकी सुगन्धित घास, असबरग। ७ आदित्यभक्ता, हुलहुल, हुरहुर। ८ लिङ्गिनी, पंचगुरिया। ९ वन्ध्याकर्कोटकी, बांझ-खखसा। १० शालपर्णी, सरिवन। ११ महाद्रोणी, बड़ गूमा। १२ पाठा। १३ नागरमुस्ता, नागर-मोथा। १४ मृगेर्वारुका, सफेद इन्द्रायण। १५ हरीतकी, हड़, हरें। १६ अतसी, तीसी। १७ श्यामा पक्षी। १८ रविसंक्रान्ति। यह बहुत पुण्यजनक समझी जाती है, इसीसे यह समय देवीके स्वरूपमें कहा गया है। देवीपूजा करनेसे जिस तरह सर्वार्थसिद्धि होती है उसी तरह इस संक्रान्तिमें किया हुआ कार्य फलदायक होता है। ये सब विषय रघुनन्दनकृत एकादशीतत्त्वमें लिखे हुए हैं।

देवीपुराणमें लिखा है, कि संक्रान्तिमें पुण्यकार्य करनेसे वह कोटिगुण फलदायक होता है।

देवी—उड़ीसामें प्रवाहित एक नदी। कटक जिलेकी काठजूड़ी नदीकी दाहिनी बगलसे छोटी और बड़ी देवी नामकी दो छोटी नदियां निकली हैं और वे कुछ दूर जा कर एक दूसरीसे मिल पुरी जिलेमें प्रवेश करती है। बाद वह कटक जिलेकी दक्षिणी सीमाके निकट बङ्गोप-सागरमें गिरी है। इस नदीके विस्तृत मुहानेके समीप कई वर्ष पहले एक आलोक-गृह बनाया गया था। नदीके मुंह पर बालू पड़ जानेसे आने जानेका पथ दुर्गम हो गया है। बाढ़के समय यहां प्रायः ३।४ हाथ

जल ऊपर उठता है। वर्षाकालमें नदीका जल बहुत बढ़ जाता है। ग्रीष्मकालमें नदीमें १४ कोस तक ज्वार जाता है। इस समय धान और चावलसे लदी हुई बड़ी बड़ी नावें नदी हो कर जाती आती हैं। नदीके मुहानेके चारों तरफ जङ्गल है, ग्राम एक भी नहीं है।

देवी (हिं० स्त्री०) १ जहाजके किनारे पर लकड़ी या लोहेकी दे कर चोंचकी तरह बाहरकी ओर झुके हुए खंभे जिनमें घिरनियाँ लगी होती है। इन घिरनियों पर पड़े हुए रस्सोंके द्वारा किश्तियां जहाज पर चढ़ाई या जहाजसे उतारी जाती हैं। २ लकड़ीका एक मजबूत चौखटा जिसमें दो खड़े खंभोंके ऊपर आड़ा बल्ला लगा रहता है। यह मस्तूल आदिके सहारेके लिये होता है।

देवीकवि— हिन्दीके एक कवि। इनकी बनाई शृङ्गारकी कविता बहुत उत्तम होती थी।

देवीकृति (सं० क्ली०) गोदावरी तटस्थित एक देव उद्यान। वक कच्छप देशवासी एक ब्राह्मणने भगवती विन्ध्यवासिनीके आदेशसे प्रतिष्ठानपुरके निकट देव-मन्दिरके सामने यह उद्यान लगाया था। (कथासरित्सागर ५।७२)

देवीकोट (सं० पु०) बाणराजधानी शोणितपुरका नामान्तर। दिनाजपुरके अन्तर्गत वर्त्तमान देवीकोट।

देवीकोट—तञ्जोर जिलेका एक प्राचीन भग्न दुर्ग। यह अक्षा० ११° २२' उ० और देशा० ७९° ४८' पू० ताञ्जोरसे १२ कोस उत्तरमें अवस्थित है। इष्ट-इण्डिया-कम्पनी भारतवर्षमें आ कर पहले पहल यहां व्यापार करने आई थी। यहांका दुर्ग पहले तञ्जोरके हिन्दू-राजाओंके अधिकारमें था। इसके अवरोधके समय क्लाइव-ने अपनी खूब वीरता दिखाई थी। दुर्ग १२ हाथ ऊंचे प्राचीरसे घिरा हुआ है और इसका घेरा प्रायः आध कोस होगा। इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने यहां कोई कोठी स्थापित नहीं की थी। १७५८ ई०में फरासीसियोंने जब इस दुर्ग पर आक्रमण किया, तब अङ्गरेज लोग इसे छोड़ भाग गये थे। बाद बन्दीवासकी लड़ाईमें सर आयर कूटने फरासीसियोंको परास्त कर उनसे यह दुर्ग छीन लिया।

२ मन्द्राज प्रदेशके मदुरा जिलेका एक नगर। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ८ लाख है।

३ नीलतन्त्र-वर्णित एक पीठस्थान।

देवीगृह (सं० क्ली०) देव्याः गृहः ६-तत्। देवीका मन्दिर।

देवीघाट—नेपाल राज्यके नयाकोटके निकटस्थ एक क्षुद्र ग्राम। साल भरमें ८ महीना मल्लाह और कुम्हार छोड़ कर यहां और कोई नहीं रहता। यह तोड़ी नदीके किनारे पर अवस्थित है। नदीके ऊपर एक पुल बना हुआ है। जमींदारके सिवा और किसीको यह पुल पार होनेका हुक्म नहीं है। देवी भैरवी यहांकी अधिष्ठात्री देवी है। यह पवित्र स्थान है, पर देवीभैरवीके अनुग्रहीत होने पर भी यहां देवीका मन्दिर नहीं हैं। त्रिशूल-गङ्गा और तोड़ीके सङ्गम पर देवीके सम्मानार्थ सिर्फ एक वेदी लकड़ीके खम्भोंसे घेरी हुई है। नयाकोटमें देवीका मन्दिर है। प्रवाद है, कि वह मन्दिर देवीके कहनेसे ही बनाया गया है। देवीघाट समुद्रपृष्ठसे २००० फुटसे भी नीचेमें अवस्थित है। १२वीं सदीके आरम्भमें कर्णाटकवंशके हरिदेव नेपालके राजा हुए। एक समय हरिदेवने अपने एक नौकरको बरखास्त कर दिया। इस पर वह नौकर अपने मालिकके व्यवहारसे क्रुध हो कर मुकुन्दसेनको राज्यमें बुला लाया। मुकुन्दसेन हरिदेवको परास्त कर मत्स्येन्द्रनाथके मन्दिरसे भैरवी-मुर्त्तिको पालपामें उठा ले गये। इस पर देवादिदेव शिवजी बहुत बिगड़े जिससे मुकुन्ददेवकी सारी सेनायें विसूचिका-रोगसे नष्ट हो गईं। मुकुन्दसेनने भी अकेला यतिके वेशमें भाग कर इसी देवीघाटमें प्राण त्याग किये।

वैशाखमासमें देवीका एक उत्सव होता है। उस समय देवीप्रतिमा नयाकोटसे देवीघाटमें लाई जाती हैं। यह उत्सव पांच दिन तक रहता है।

देवीचन्द—एक हिन्दी कवि। इन्होंने सं० १७८७के पूर्व हितोपदेशभाषा नामक एक ग्रन्थ प्रणयन किया।

देवीतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद, एक तन्त्रका नाम।

देवीत्व (सं० क्ली०) देव्याः भावः देवी भावे त्व। देवीका भाव।

देवीदत्त—१ हिन्दीके एक कवि। इनकी शान्तरस तथा सामयिक कविताएं अच्छी होती थीं।

२ एक हिन्दी-कवि। इन्होंने सम्वत् १९०८ में वरकापचीसी नामक एक पुस्तक लिखी।

३ एक हिन्दी-कवि। इनका जन्म सं० १८२२ में हुआ था। ये जातिके ब्राह्मण थे।

४ हिन्दीके एक कवि। इन्होंने नरहरिचम्पू नामकी एक पुस्तक लिखी।

५ सुप्रसिद्ध एक हिन्दी-कवि। इनका बनाया हुआ बेतालपचीसी नामक २९८ पृष्ठोंका एक सुन्दर ग्रन्थ है। इसकी कविता श्रुतिमधुर और मनोहर है। इन्होंने वह ग्रन्थ सं० १८१२ में लिखा है। इसमें विविध छन्दोंमें कविता हुई है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"जै गन नायक बीर विकट दुष्टन सहारन।
जै गन नायक बीर साधु जन विपति विदारन॥
जै गन नायक बीर धीर निरमल मति दायक।
जै गन नायक बीर विघन बन दाहन नायक॥
सुभ एक रदन गज बदन जै जै अखंड आनन्दमय।
कवि देवीदत्त दयालु ज गिरीश नन्द सुखकन्द जय॥"

देवीदत्तराय—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने महाभारत-भाषा नामक एक पुस्तक रची है।

देवीदास—१ एक हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डी तथा सं० १७४२ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाए हैं। यादववंशी करौलीके महाराज भैया रतनसिंहजीकी सभामें ये १७४२ संवत्में गए और तबसे मरणपर्यन्त वहीं रहे। उन्हींके नाम पर इन्होंने 'प्रेम-रत्नाकर' नामक एक ग्रन्थकी भी रचना की है। इनके नीति सम्बन्धी दोहे बहुत सुन्दर हैं।

--२ सिद्धान्तसारसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र-टीका नाम जैन-ग्रन्थके रचयिता। ये बसवा नामके स्थानमें रहते थे और जातिके खण्डेलवाल थे। इनका पहला ग्रन्थ १८४४ संवत्का रचा हुआ है।

३ परमात्मविलास छन्दोबद्ध, प्रवचनसार छन्दोबद्ध, चिद्विलासवचनिका और चौबीसीपूजापाठ नामक जैन-ग्रन्थोंके प्रणेता। ये दुर्गोदह केलगवां (जिला झांसी)-के रहनेवाले और सं० १८१२ में विद्यमान थे।

४ प्रसिद्ध जैन-कवि वृन्दावनदासके समसामयिक एक कवि। आपके बनाए हुए बहुतसे भजन वा पद अब भी जैन-समाजमें प्रचलित है।

देवीदीन—हिन्दीके एक कवि। ये बिलग्रामीके वासी थे तथा इन्होंने नखशिख और रसदर्पण नामके दो ग्रन्थ लिखे।

देवीप्रियक (सं० पु०) देवीं प्रिया इत्याद्यप्रतीकशब्दोऽस्ति अत्र अनुवाके अध्याये वा गोषदादित्वात् वुन्। देवींप्रिय इत्यादि प्रतीकयुक्त अनुवाक वा अध्याय।

देवीपुर—मालदह जिलेके अकबरपुर परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां सप्ताहमें एक बार हाट लगती है। यहांकी जलवायु अच्छा नहीं है। आषाढ़, श्रावण और भाद्र इन तीन महीनोंमें ज्वरका प्रकोप अधिक रहता है।

देवीपुर—दिनाजपुर जिलेके सन्तोष परगनेका एक ग्राम।

देवीपुराण (सं० क्ली०) देवी भगवतीके माहात्म्यादि युक्त उपपुराणभेद, वह उपपुराण जिसमें देवीका माहात्म्य वर्णित है। पुराण देखो।

देवीप्रसाद—१ एक हिन्दी-कवि। ये कायस्थ-जातिके थे। इनका जन्म संवत् १८९७ में हुआ था तथा इन्होंने सं० १९२५ में वैद्यकल्प नामक एक ग्रन्थ लिखा। सं० १९४६ में इनका स्वर्गवास हुआ।

२ हिन्दीके एक कवि। ये बिलगराम जिला हर-दोईके रहनेवाले थे तथा इनका जन्म सं० १९०० में हुआ था।

३ एक हिन्दी कवि तथा गद्यलेखक। आप मुज-फ्फ़रपुरके वासी थे तथा आपने प्रवीणपथिक नामक एक पुस्तक लिखी है।

देवीप्रसाद चौधरी—हिन्दीके एक कवि। ये आगरा प्रान्तके रहनेवाले थे। इनकी कविता मनोहर होती थी।

देवीप्रसाद मुंशी—एक सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवि। इनका जन्म संवत् १९०४ को हुआ था। इनके पिताका नाम कृष्णचंद मुंशी था। ये कायस्थ जातिके थे। इनके पूर्वज मुसलमानी राज्योंसे सम्बन्ध रहनेके कारण फारसी-सेवी थे। केवल इनके पिता और माताहीको हिन्दीका कुछ कुछ अभ्यास था। इन्होंने अपने पितासे उर्दू और फारसी तथा अपनी मातासे साधारण हिन्दी सीखी थी। १६ वर्षकी अवस्थामें अरबी और फारसीका

थोड़ा बहुत अभ्यास कर चुकने पर संवत् १९२०में ये रियासत टोंकमें और तदुपरान्त अजमेरमें नौकर हो गए जहां ये सं० १९३५ तक रहे। बाद १९३६ सं०से आप जोधपुरमें नौकर हो गये।

जिस समय आप टोंकमें नौकर थे, उस समय आपने उर्दू में "ख्वाब राजस्थान" नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसका "स्वप्न राजस्थान" नामक हिन्दी अनुवाद भी आपने कर डाला है। आप प्राचीन इतिहासके बहुत अच्छे ज्ञाता थे। आपने इस विषय पर हिन्दी और उर्दू में प्रायः ५०—६० ग्रन्थ लिखे हैं जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वके समझे जाते हैं। आपकी लिखी हिन्दी पुस्तकोंमेंसे अकबरनामा, जहांगीरनामा, औरङ्गजेबनामा, बाबरनामा तथा राजपूतानेके बहुतसे वीर महाराजाओंके जीवनचरित बहुत प्रसिद्ध हैं। पहले पहल सं० १८७५ में आपने मारवाड़का जो इतिहास लिखा था उसके लिये संयुक्तप्रान्तकी सरकारने आपको ३००) रु० पारितोषिक दिया था। इसके अतिरिक्त नीति और स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी कई पुस्तकोंके लिये आपको और भी कई पुरस्कार तथा प्रशंसापत्र आदि मिल चुके थे।

देवीभागवत (सं० क्ली०) देव्यामाहात्म्यावेदकं भागवताख्यं पुराणं। पुराणभेद, बहुतसे लोग इस पुराणकी गणना उपपुराणोंमें और कुछ लोग महापुराणोंमें करते हैं। 'भागवतं पञ्चमं स्मृतं' महापुराणमें भागवत पञ्चम अर्थात् श्रीमद्भागवत पञ्चम महापुराण है, किन्तु कोई कोई श्रीमद्भागवतको महापुराण नहीं कह कर देवी भागवतको ही महापुराण कहते हैं। पुराण देखो।

श्रीमद्भागवतके समान इस पुराणमें भी बारह स्कन्ध और १८ हजार श्लोक हैं। इसमें देवी भागवतका माहात्म्य विस्तृत रूपसे वर्णित है।

देवीभाट—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म संवत् १७५०में हुआ था। इन्होंने संवत् १७७५में सूमसागर नामक एक ग्रन्थ बनाया है जिसमें सूमोंके लक्षण और उनके भेदाकार वर्णन किये हैं।

देवीभोया (हिं० पु०) देवीको माननेवाला, ओझा।

देवीमहिमन् (सं० पु०) देव्याः महिमा। देवीमाहात्म्य।

देवीमाहात्म्य (सं० क्ली०) देव्या माहात्म्यं ६-तत्। देवी दुर्गाका माहात्म्य, मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'सावर्णिः सूर्यतनयः' इत्यादिसे ले कर 'सावर्णि भविता मनुः' तक त्रयोदश अध्यायात्मक ग्रन्थभेद, चण्डी। इसमें देवीका माहात्म्य वर्णित हुआ है, इसीसे इसका नाम देवीमाहात्म्य हुआ है। जो भक्तिपूर्वक देवीमाहात्म्य पढ़ता वा सुनता है, उसके सब पाप जाते रहते हैं। शरत् कालीन दुर्गापूजाके समय देवीमाहात्म्य पढ़ना चाहिये।

देवीयात्रा—उत्सवविशेष। वैशाखमासमें नयाकोटके भैरवीविग्रहका एक उत्सव होता है। इसमें देवीविग्रह नयाकोटसे देवीघाटमें लाया जाता है। यह उत्सव पांच दिन तक रहता है। इसमें एक भैंसकी बलि दी जाती है। एक नेपाली स्त्री और पुरुष भैरव और भैरवीको सजाते हैं। बंडा जाति ही पुरोहितका काम करती है।

महिष-बलिके बाद ही निवार लोग (नेपाली) गलेकी रुधिरधारा भर पेट पी लेते हैं। जब पेटमें और जगह खाली न रहती, तब वे समस्त पीतरक्त वमन कर देते हैं। इस उद्गीर्ण रक्तको पवित्र समझ कर वे जमा रखते और कुछ इधर उधर बांटते भी हैं। इस उत्सवमें हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मके मनुष्य शामिल रहते हैं। देवीघाटमें देवीका मन्दिर नहीं है। पांच दिन उत्सवके बाद देवीमूर्त्ति पुनः नयाकोटमें लाई जाती है।

देवीरापक (सं० पु०) देवीराप इत्याद्यप्रतीकमस्त्यत्रानुवाके अध्याये वा गोषवादित्वात् वुन्। 'देवीराप' इत्यादि प्रतीकयुक्त अध्याय वा अनुवाक।

देवीराम—शान्तरसके एक कवि। ये संवत् १७५०में उत्पन्न हुए थे, इनके काव्य उत्कृष्ट नहीं है।

देवीलता (सं० स्त्री०) अनन्तमूल।

देवीवीर्य (सं० क्ली०) गन्धक।

देवीसहाय—१ एक हिन्दी कवि। ये कायस्थ जातिके थे। तथा इन्होंने सं० १९६०के पूर्व बहुतसी अच्छी कविताओंकी रचना की।

२ एक हिन्दी कवि तथा गद्यलेखक। ये ब्राह्मण थे तथा इनकी कविता सुमधुर और सराहनीय होती थी।

देवीसिंह—अंगरेज शासनके प्रारम्भमें जो सब अर्थलोलुप मनुष्य अङ्गरेजोंकी सहायतासे बङ्गदेशको उत्सन्न करनेमें

हुए थे, बङ्गके वैश्यकुल तिलक देवीसिंह उनमेंसे एक थे। १७६५ ई०में इष्ट-इण्डिया-कम्पनीको जब बङ्गाल-बिहार और उड़ोसाको दीवानी मिली, तब अंगरेज लोग राज्यशासनका हाल कुछ भी नहीं जानते थे। अतः राजस्व वसूल करनेका भार नायब सूबादार महम्मद रेजाखाँके हाथ सौंपा गया। इस समय देवीसिंहने अन्याय पथसे प्रचुर अर्थ सञ्चय किया था। महम्मद रेजाखाँ देवीसिंहसे ऋण लेनेको वाध्य हुए। इस प्रकारके प्रत्युपकारस्वरूप देवीसिंह महम्मद रेजाखाँके अधीन पूर्णिया में राजस्व वसूल करनेके लिये भेजे गये। येन केन प्रकारेण राजस्व वसूल करके कम्पनीका प्रियपात्र होना रेजाखाँका लक्ष्य था—उस लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिये उन्होंने उपयुक्त मनुष्योंके हाथ ही यह भार सौंप दिया था। पूर्णियाका राजस्व वसूल करनेका भार पानेके साथ ही देवीसिंहने १७६८ ई०में पूर्णियाके अन्तर्गत प्रायः सभी परगनोंका इजारा लिया। यह इजारा ले कर देवीसिंहको आशातीत अर्थलाभ होने लगा।

देवीसिंहके अर्थ संग्रहकी लोलुपता इतनी बढ़ गई कि पूर्णिया जनशून्य हो गया था, क्योंकि कितने मनुष्य घर छोड़ कर देशान्तरको भागने लगे। पूर्णियाको वार्षिक आय ८ लाख रुपये की थी जिसका तृतीयांश तक भी वसूल नहीं होता था। किन्तु देवीसिंह ऐसे आदमी नहीं थे कि एक रुपया भी किसीके यहां बाकी रह जाता। वे वार्षिक १६ लाख रुपयेके हिसाबसे राजस्व वसूल करने लगे। १७७० ई०में बङ्गालमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। देवीसिंहका उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं था। रेजाखाँ भी उसी तरह थे। उन लोगोंका केवल यही ख्याल था कि कम्पनीको जब तक काफी रुपया न हो जायगा तब तक राज्य चल हो नहीं सकता। सुयोग समझ कर देवीसिंह मनमाना काम करने लगे। उस साल फसल कुछ भी न हुई, जिससे प्रजा मालगुजारी दे न सकी। इस पर देवीसिंह जमींदारोंको बहुत तङ्ग करने लगे। जमींदारोंके घरमें जो कुछ नकद रुपया था वह पहले ही देवीसिंहको दिया गया था। अभी अर्थके अभावसे उनका जातिकुल सम्भ्रम नष्ट होने लगा। देवीसिंहने जमींन्दारोंको पकड़वा कर कैद किया, भय दिखलाया, पीछे उन्हें सजा भी दी गई परन्तु इतने पर भी जब कोई परिणाम न निकला, तब वे उनकी स्त्रियोंको कचहरी मंगवा कर बहुत बुरी तरहसे उनको साथ पेश आये। उनके सोनेके आभूषण सब उतार लिए गये और नङ्गी करके वे सबके सामने खड़ी की गईं।

उस समय वारेन हेष्टिंस बंगालके गवर्नर थे। वे जमीनमें जमींदारका कोई स्वत्व है, ऐसा स्वीकार नहीं करते थे। जमींदार उपस्वत्वभोगी मात्र है। इस दुर्भिक्षमें सभी तरहसे जमींदारोंको ही क्षति हुई। बहुतेरे ऋणग्रस्त हो गये। देवीसिंहके इस अत्याचारकी कथा धीरे धीरे फैलने लगी। इस बातको ले कर आन्दोलन भी खूब हुआ। महम्मद रेजाखाँ पदच्युत हुये। रेजाखाँ तो चले गये लेकिन देवीसिंह ज्योंके त्यों बने रहे। यदि देवीसिंह भी चले जाते, तो कितने जमींदारोंके सम्भ्रमकी रक्षा होती, कितनी प्रजाके प्राण बच जाते। रेजाखाँ चले गये, यह बात छिपी रह न सकी। १७७२ ई०में एक परिदर्शन-समिति (Committee of Circuit) स्थापित हुई, हेष्टिंस साहब उसके सभापति हुए। परिदर्शन-समितिमें सभी बातें खुल गईं, देवीसिंह पदच्युत हुए। देवीसिंहको पदच्युत करनेमें वाध्य हो कर भी हेष्टिंसने देवीसिंहकी अनुपम गुणराशिको हृदयङ्गम कर लिया था, अतः उन्हें अपने हाथमें रक्खा। १७७० ई०में महम्मद रेजाखाँके पदच्युत होनेके बाद राजस्व-वसूलका भार हेष्टिंसने अपने हो हाथमें लिया। १७२० ई०में परिदर्शनसमिति स्थापित करके यह नियम पास हुआ कि कम्पनीके अधीन कोई मनुष्य इजारा नहीं ले सकता। राजस्व वसूलके लिये भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें प्रादेशिक-समिति स्थापित हुई। कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, वर्द्धमान, ढाका और दिनाजपुर इन छः विभागोंमें समिति कायम हुई। कर्मचारी नियुक्तका भार हेष्टिंस साहबके ही हाथ था। उन्होंने इस सुयोगसे देवीसिंहको मुर्शिदाबाद-प्रादेशिक-समितिके दीवानी पद पर नियुक्त किया। मुर्शिदाबादको समितिके ऊपर एक करोड़ दश लाख रुपया वसूल करनेका भार था।

१७७२ ई०को २४वीं मईको पांचसाली बन्दोबस्त

हुआ। यह बन्दोवस्त अंगरेजोंके साथ ही किया गया। हेष्टिंसने स्वयं खूब ज्यादा दर पर बन्दोवस्त करके प्रत्येक जिलेमें एक एक अंगरेज कलक्टर नियुक्त किया और उन्हींके ऊपर राजस्व वसूलका कुल भार सौंपा। इसका फल यह हुआ, कि कलक्टरसाहब स्वयं ही बेई-मानी करके इजारा लेने लगे। बढ़ोतरी मालगुजारी जो कुछ वसूल होती थी उसे वे कम्पनीको न दे कर स्वयं हड़प करने लगे। हेष्टिंस भी इसमें कुछ कर न सकते, क्योंकि यदि वे उन्हें कुछ कहते भी तो उनकी अपनी ही पोल खुल जानेकी सम्भावना थी। इसी डरसे वे उन्हें छेड़छाड़ नहीं करते थे; किन्तु राजस्व वसूल नहीं होनेसे घोरतर विपत्‌की सम्भावना है, ऐसा स्थिर कर उन्होंने फिरसे इस काममें देशीय लोगोंको नियुक्त किया और उनकी देखभालके लिये छः समितियां स्थापित हुईं। मुर्शिदाबादमें देवीसिंह और कलकत्ते-में हेष्टिंसके प्रियपात्र गङ्गागोविन्दसिंह दीवान बनाये गये।

गङ्गागोविन्दसिंह ही हेष्टिंसके स्वरूप थे। परि-दर्शन-समितिके सभापति हो कर हेष्टिंस पूर्णिया देखने गये। गङ्गागोविन्द भी हेष्टिंसके साथ थे। देवी-सिंहको गङ्गागोविन्द पहले हीसे जानते थे। किसी कारणवश दोनोंमें मनोमालिन्य हो गया। देवीसिंहको जब यह मालूम हुआ, कि हेष्टिंस गङ्गागोविन्दसिंहके परामर्शानुसार सभी काम कर रहे हैं, तब वे भी गङ्गा-गोविन्दकी शरणमें पहुंचे। गङ्गाजल छू कर उन दोनों-ने आपसमें मित्रता कर ली। गङ्गागोविन्दसिंहकी सुफारिशसे ही देवीसिंह पूर्णियासे निकाल दिये जाने पर भी १७७२ ई०में मुर्शिदाबादकी प्रादेशिक-समितिके दीवान बनाये गये।

दीवान हो कर देवीसिंहने देखा कि प्रादेशिक-समितिके सभ्यगण उन पर अपना दबाव डाल सकते हैं ऐसा होनेसे अर्थसंचय करनेमें उन्हें बाधा पहुंच सकती है। यह सोच कर वे कूटनीति अवलम्बनपूर्वक उन्हें खुश करके अपना काम निकाल लेनेमें तत्पर हुए। प्रादेशिक-समितिके सभी सभ्यगण अल्पवयस्क, कार्यान-भिज्ञ और आमोदप्रिय थे। देवीसिंह तो यही चाहते ही थे। वे उन्हें खुश करनेके लिये उत्तमोत्तम विला-यती शराब और अच्छी औरतको ला कर उन्हें देने लगे। अपरिणत चीणमस्तिष्क अंगरेजदल इन्द्रियतृप्तिके उपकरणस्वरूप उन सब भेंटोंको सादर ग्रहण करने लगे। देवीसिंहकी इच्छा पूरी हुई, अंगरेजदल आमोद प्रमोदमें उलझे रहते थे। अब देवीसिंह बिना रोकटोक-के राजस्व वसूल करने और अपना पेट भरने लगे।

किन्तु निरवच्छिन्न सुखभोग किसीके भाग्यमें बदा न था। समितिके अंगरेजदल राजस्व सम्बन्धीय हिसाब-पत्र वा नियमावली कुछ भी समझते न थे और न सम-झनेकी कोशिश ही करते थे। कुछ दिन बाद रिशवत-का बंटवारा ठीकसे न होनेके कारण आपसमें विरोध शुरू हो गया। क्रमशः यह विवाद इतनी दूर तक बढ़ गया, कि १७७८ ई०में समितिके सभ्य लोगोंने देवीसिंह-को पदच्युत करनेका संकल्प किया। देवीसिंहने कोई दूसरा उपाय न देख गङ्गागोविन्दसिंहकी शरण ली।

हेष्टिंसने कुछ वर्षोंसे प्रादेशिक-राजस्व-समिति द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध होता न देख प्रादेशिक समिति-को उठा देनेके लिये विलायत कोर्ट-आफ-डिरेक्टरोंको लिख भेजा। किन्तु उनका प्रस्ताव अस्वीकार किया गया। इस पर हेष्टिंस बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। इधर कोई उपाय नहीं करनेसे देवीसिंहके जैसा कर्मठ मनुष्य हाथसे जाता है, यह सोचकर हेष्टिंस और भी उद्विग्न हुए। इस समय एक सुयोग उपस्थित हुआ।

१७८० ई०में दिनाजपुरके राजा एक दत्तकपुत्र ग्रहण कर परलोकको सिधारे। राजाके भाई और दत्तकपुत्र उत्तराधिकारी होनेके लिये आपसमें लड़ने लगे। हेष्टिंस ने नाबालिग दत्तकपुत्रको ही उत्तराधिकारी कायम किया और इस मेहनतानेमें उन्हें चार लाख रुपये मिले। राजाको नाबालिग जान कर हेष्टिंसने उसके राज्यकी सुव्यवस्था और रक्षणावेक्षणका भार गुडलाड नामक एक अपरिणत वयस्क युवकके हाथ सुपुर्द किया। इसी मौकेमें उन्होंने देवीसिंहको गुडलाड साहबके दीवान बना कर उन्हें राजस्व समितिके कोपसे बचाया।

गुडलाड साहबके हाथ केवल राज्य-रक्षणका भार ही नहीं था, बल्कि उसके साथ साथ वे रङ्गपुर और

दिनाजपुर जिलेके कलक्टरी पद पर भी नियुक्त हुए थे।

इस बार योग्य मनुष्योंका जोड़ा था। इन दोनोंने राजाके पुराने कर्मचारियोंको बरखास्त कर उनके स्थान पर नये कर्मचारीको नियुक्त किया। राजाका बहुत खर्च घटा दिया गया। धर्मानुष्ठान आदिके लिये रानी जो कुछ पाती थी, वह बन्द कर दिया गया। राजाको मासिक सोलह सौ रुपये जो गुजारेके लिये मिलते थे वह कमा कर छः सौ बनाया गया। यहां तक कि जब कभी रानीका पिता वा अन्य कोई आत्मीय आते थे, तो उन्हें राजभवनमें खानेको नहीं मिलता था। पूर्णियामें देवीसिंहको अनुष्ठित अत्याचार कहानी यहांके किसीसे भी छिपी न थी। उसी देवीसिंहके अधीन हो कर दिनाजपुर-रङ्गपुर डरसे कांप उठा।

जिस आशङ्कासे लोग कांपा करते थे, कालक्रमसे वह अब कार्यके रूपमें परिणत हो गई। १७८१ ई०में देवीसिंहने फर्जी करके एक मुसलमानके नाम पर रङ्गपुर दिनाजपुर और एद्राकपुरका इजारा लिया। इजारा लेनेके साथ ही उन्होंने सभी जमींदारसे ज्यादा जमा देनेके लिये तलब किया। इधर १७७० ई०के दुर्भिक्षसे लोकसंख्याका ह्रास हो जानेसे जमींदारोंकी आय कम गई थी। फिर १७७२ ई०में पांचसाला बन्दोबस्तके समय हेष्टिंससे अधिक दर पर जमीन लेनी पड़ी थी, क्योंकि कोई भी पैटक जमींदारीका परित्याग नहीं कर सकते थे। किन्तु जिस बढ़ोतरी पर जमीन ली गई थी, उतना वे कम्पनीको चुका नहीं सकते थे, फी साल कुछ न कुछ बाकी पड़ ही जाता था। ऐसी अवस्थामें जमाकी फिरसे वृद्धि हो जानेसे जमींदार लोग उसे देनेमें बिलकुल असमर्थ थे। फल यह हुआ, कि जो अभी कबूलियत देनेसे इनकार गये उन्हें देवीसिंहने पकड़वा कर कैद कर लिया। फिर जिन्होंने इस्तीफा देना चाहा, वे भी बाकी राजस्व चुकाये बिना इस्तीफा दे नहीं सकते थे। इस कारण वे भी कैद कर लिये गये। किसी और अत्याचारसे रक्षा पानेका उपाय न देख वे सबके सब कबूलियत करनेको बाध्य हुए।

कबूलियत करनेके कुछ दिन बाद ही देवीसिंहके कर्मचारियोंने खजाना वसूल करना शुरू कर दिया। उस समय नारायणी रुपयेका प्रचार था। कम्पनीके रुपयेके हिसाबसे उस रुपये पर बट्टा लगाया गया। इस प्रकारसे राजस्व और भी बढ़ गया, कोई भी उसे चुका देनेमें समर्थ न हुए। जमींदार और प्रजा दोनों ही पूत हो कर देवीसिंहके कठोर शासनरूपी अग्निमें स्वाहा होने लगे। दिनाजपुरमें चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय आजकलके जैसा कारागार नहीं था। बिना छतवाले घरोंमें कैदी रखे जाते थे और वहीं पहरा बैठता था। देवीसिंहके प्रतापसे क्या धनी क्या गरीब सभी एक ही रस्सीसे बांध कर रखे गये। अन्तमें जब कारागारमें रहनेकी गुंजाइश न रही, तब वे आंगनमें बिखरी हुई मट्टीके ऊपर रखे गये।

देवीसिंहको दिनाजपुरमें ही रहना पड़ता था। कलक्टरकी दीवान, राजा तथा राज्यकी देखभालका भार उन्हीं पर सुपुर्द था। इच्छा रहते भी वे रङ्गपुर नहीं जा सकते थे। इस कारण उन्होंने कृष्णप्रसाद नामक एक प्रतिनिधिको रङ्गपुर भेज दिया। प्रतिनिधि द्वारा जब जमींदारोंको कर वृद्धिका हाल मालूम हुआ, तब वे देवीसिंहके समीप जा कर अपना अपना दुखड़ा रोने लगे। कम्पनीने उस साल मालगुजारी बढ़ानेसे निषेध कर दिया था।

देवीसिंहने कम्पनीकी आज्ञाको उल्लङ्घन कर उन सब जमींदारोंको कैद करके रङ्गपुर भेज दिया और अपने प्रतिनिधिमें कृष्णप्रसादके बदले हररामको नियुक्त किया।

हररामने यहां कदम रखते न रखते सभी जमींदारोंको तलब की। सब कोई जमावृद्धिकी कबूलियत करनेसे इनकार गये। इस पर हररामने उन्हें सजा देनेकी आज्ञा दे दी। फिर क्या था, अर्थलोलुप कर्मचारियोंने उन्हें बैल पर चढ़ा नगरकी परिक्रमा कराई। इस प्रकारका यदि सामाजिक दण्ड होता तो उन्हें जातिच्युत होना पड़ता। दो चार जमींदारोंकी ऐसी दुर्दशा देख शेष सभी जमींदारोंने कबूलियत कर दी। कबूलियत होनेके बाद ही वे रुपया वसूल करने लगे। कोई भी रुपया दे न सके, जमींदारोंकी जमीनकी कीमत नाममात्र दे कर देवीसिंह उसे बेनामीमें खरीदने लगे। किसीके पास

रुपया न था। अत्याचार तथा अपमानसे जर्जरित हो कर बहुत मनुष्य प्राणत्याग करने लगे। इसके बाद कृषकोंके ऊपर अत्याचार शुरू हुआ। कोई उपाय न देख कृषकोंने देशको छोड़ देना चाहा। उन्हें रोकनेके लिये हररामने हरएक गांवमें पहरा बैठाया। फिर इन पहरुओंको तनखाहके लिये 'चौकीबन्दी' नामक एक नए करको सृष्टि हुई। उधर दिनाजपुरमें देवीसिंह १८ प्रकारके कर वसूल करते थे और इधर हररामने रङ्गपुरमें इक्कीस प्रकारके करोंकी सृष्टि की।

इस प्रकार अत्याचार द्वारा हरराम कुछ कुछ रुपये वसूल करने लगे। किन्तु इतने पर देवीसिंह कब सन्तुष्ट होनेको थे। उन्हें हररामकी कार्यदक्षता पर अविश्वास तो न हुआ, पर उन्हें मदद देनेके लिये सूर्यनारायण नामक एक दूसरे मनुष्यको भेजा। सूर्यनारायणने आते ही रौद्रमूर्त्ति धारण कर ली। जमींदारोंकी बात तो दूर रहे, स्त्रियोंके ऊपर भी वे घोर अत्याचार करने लगे। अन्तःपुरकी रमणियां खुले मैदानमें लाई गईं। देवीसिंहके दुष्ट अनुचर बलपूर्वक उन सब कुल कामिनियोंके शरीर परसे अलङ्कार उतारने लगे। कितनी स्त्रिया तो नंगी करके सबके सामने खड़ी की गईं। स्त्री-जातिका जो अन्तिम अपमान है वह सबके सामने होने लगा। हजारों कुलललनाओंने क्षोभ, रोष और अपमानसे आत्महत्या कर डाली। कितनोंने तो लम्बी सांस भर कर ईश्वरके सिंहासनको तप्त कर डाला। उन सब स्त्रियोंकी नंगी करके उनकी बेंतसे खबर ली गई। बांसके टुकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकारमें बना कर उन्हें उनके दोनों स्तनोंमें भिद कर छोड़ देते थे। इस प्रकारका कलङ्कित दृश्य इस संसारमें कभी नहीं देखा गया। इस प्रकार की नारकीय घटनासे कभी भी इतिहासका कलेवर कलङ्कित न हुआ था। इतने अत्याचार पर भी जब आशानुरूप फल न हुआ, तब देवीसिंहने अपने भाई मेघधारीसिंहको रङ्गपुर भेजा। १७८१ ई०से १७८२ ई० तक (अगहन मास तक) तो इसी तरह रहा। १७८२ ई० में देवीसिंह स्वयं कार्यमें पधारे। यन्त्रणा देनेके लिये नये नये उपाय निकाल कर कार्यके रूपमें परिणत होने लगे। दलित, निस्सहाय, उत्पीड़ित प्रजाके आंसुओंसे देश बह चला। हरएक शहरमें, हरएक गांवमें, हरएक घरमें अन्धेरकी तूतियां बोलने लगीं। १७८३ ई०में निरीह प्रजाने जब भागनेका भी कोई रास्ता न देखा, तब उनके मरनेका भय जाता रहा और वे सबके सब देवीसिंहके विरुद्ध डट गए। उन्होंने आपसमें प्रतिज्ञा कर ली कि वे कम्पनीके नौकरोंको देशमें रहने न देंगे। जिस तिस प्रकारसे हो, चाहे उन्हें मार भगावें अथवा स्वयं रणक्षेत्रमें मर मिटें।

खृष्टानपुङ्गव गुडलाड साहबका काम केवल खाना और सोना था; देवीसिंह ही सब काम करते थे। देवीसिंहका कीर्त्ति-कलाप वे देख करके भी नहीं देखते थे, सुन कर भी अनसुनी कर देते थे। रिश्वतकी माया कौन कह सकता है? यथासमय गुडलाडके कानोंमें इन सब बातोंकी भनक पड़ी। उन्होंने सुना, कि सारी प्रजा नूरुल महम्मदको 'नवाब'के पद पर नियुक्त कर बादी हो गई है। उन्होंने तुरंत लेफ्टेनैंट मैकडोनाल्ड-साहबको दलबलके साथ वहां भेजा। विद्रोही-दल एक स्थानमें थे नहीं, साहब किसके साथ युद्ध करते? गुडलाडने यह हुक्म निकाला, कि मैकडोनाल्ड साहब जिस किसीको पकड़ेंगे उसीको मार डाल सकते हैं। इस पर भी विद्रोह-दमन न हुआ। लेफ्टेनैंट साहबको जब मालूम हुआ कि नूरुल महम्मद मुगलहाटमें हैं; तब वे उसी ओर चल दिये। नूरुल महम्मदके साथ मुगलहाटमें केवल ५० मनुष्य थे, उनका दलबल पाटग्राममें था। मैकडोनाल्डने बिना सोचे विचारे मुगलहाटमें उन पर चढ़ाई कर दी। दोनोंमें एक छोटी लड़ाई हुई, जिसमें नूरुल महम्मदको सख्त चोट लगी और वे इस लोकसे चल बसे। इस समय गुडलाड साहबने यह घोषणा कर दी, कि प्रजा यदि अस्त्रका त्याग कर दे, तो उन्हें अभय दान दे सकते हैं। इतना ही नहीं राजस्वके लिये उन पर जो अत्याचार होता आ रहा है वह बन्द कर दिया जायगा। १७८० ई०में वे जिस हिसाबसे मालगुजारी देते थे, उसी हिसाबसे देना होगा, बढ़ोतरा नहीं लिया जायगा। यह सुन कर कितने तो घर वापिस आये, जो कुछ बच रहे उन्हें लेफ्टेनैंट साहबने आ कर विनष्ट कर डाला। जो कुछ हो, देवीसिंहके अत्या-

चाँर पर निरोह बंगाली प्रजाने भी अस्त्र धारण किया था।

रंगपुरका विद्रोह जितना सहजमें मिटा, उतनी जल्दी बात न मिटी। कलकत्ता कौंसिलने इस विद्रोहका कारण जाननेके लिये पिटरसन साहबको रंगपुरमें भेजा। पिटरसन साहबने आ कर प्रमाण संग्रह करनेकी जितनी चेष्टाएं कीं सब व्यर्थ निकलीं। अन्तमें उन्होंने जमींदारोंको उपस्थित होनेका इश्तहार दिया। अधिकांश जमींदार देश छोड़ कर भाग गये थे, एकके सिवा और कोई हाजिर न हुआ। पिटरसन साहबने उसका इजहार ले कर उसे गुडलाड साहबके पास भेज दिया और गुडलाड साहबने भी उसे देवीसिंहके जिम्मे कर दिया। इसके बाद और कोई भी साक्ष्य देनेको हाजिर न हुआ। पिटरसन साहबके जमा-वसूलकी बाकीकी तलब करने पर देवीसिंहने उसे दाखिल किया। गुडलाड साहबने उसकी नकल रखनेका बहाना करके उसे ले लिया और फिर लौटा कर न दिया। इस तरह नाना प्रकारसे व्यर्थ मनोरथ हो कर भी पिटरसन साहबको सब बातें मालूम हो गईं, और उन्होंने अपना मन्तव्य लिख भेजा। हेष्टिंस साहबने पिटरसन साहबको मिथ्यावादी समझ कर एक नई कमीशन १७८४ ई०में बिठाई। १७८५ ई०में हेष्टिंस साहब भारत छोड़ कर चले गये।

लार्ड कर्नवालिस भारतवर्षमें गवर्नर जेनरल हो कर आये। उन्होंने आ कर रंगपुर विद्रोहके विषयमें अनेक बातें सुनीं। १७८९ ई०में कमीशनका काम शेष हुआ। देवीसिंहको चाहे रखनेके लिये हो, चाहे और दूसरा कोई कारण हो, बहुतोंने झूठी गवाही दी। फलतः देवीसिंहका अपराध साबित न हुआ, हररामने ही अत्याचार किया है यही प्रमाणित हुआ। हरराम एक वर्षके लिये कैद किये गये। देवीसिंहका अपराध प्रमाणित नहीं होने पर भी लार्ड कर्नवालिसने उन्हें कम्पनीकी नौकरीसे सदाके लिये हटा दिया। देवीसिंहके कर्म-जीवनका यहीं पर शेष हुआ।

जीवनके शेष काल तक देवीसिंह मुर्शिदाबादके अन्तर्गत नसीपुर नामक स्थानमें आ कर रहने लगे। शेषावस्थामें उन्होंने अनेक दान और प्रतिष्ठा की थी। इसी नसीपुरमें देवीसिंहके उत्तराधिकारीगण आज भी वास करते हैं।

देवीसिंह—हिन्दीके एक कवि। देवीसिंह राजा देखो।

देवीसिंह राजा—हिन्दीके एक कवि। ये चन्देरीके रहनेवाले थे। इन्होंने नृसिंहलीला, आयुर्वेदविलास, रहसलीला, देवीसिंहविलास, अर्बुदविलास और बारहमासी नामक ग्रन्थ लिखे।

देवीसूक्त (सं० क्ली०) देव्याः तद्-देवताकं सूक्तं ऋक्-समुदायः। ऋग्वेदमें शाकलसंहिताके मध्य अत्यन्त प्रसिद्ध देवी-देवताक सूक्तभेद। ऋग्वेद शाकलसंहिताका एक सूक्त जिसका देवता देवी है।

देवीमाहात्म्य पढ़ते समय पहले रात्रिसूक्त, तब सप्तशती और सबसे पीछे देवीसूक्त पढ़ना चाहिये, देवीसूक्त पाठ किये बिना चण्डीपाठ निष्फल होता है।

देवृ (सं० पु०) दिव-ऋ। देवर, पतिका छोटा भाई।

देवेज् (सं० पु०) देवं यजते यज-क्विप्। देवयष्टा, वह जिसने देवताओंका यज्ञ किया हो।

देवेज्य (सं० पु०) देवाना इज्यः पूज्यः। सुराचार्य वृहस्पति।

देवेन्द्र (सं० पु०) देवाना इन्द्रः ६-तत्। सुरेन्द्र, देवताओंके राजा इन्द्र।

देवेन्द्र—कई एक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। १ त्यागराजाष्टकके प्रणेता। २ संङ्गीतमुक्तावलीके रचयिता। ३ स्वानुभूतिप्रकाशके रचयिता। ये गीर्वाणेन्द्रसरस्वती और अमरेन्द्र मुनिके शिष्य थे। ४ यशोधररास नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

देवेन्द्रकीर्त्ति—सागानेरकी गद्दीके एक भट्टारक। ये सं० १६६२में विद्यमान थे। इन्होंने आदित्यव्रतोद्यापन, वृद्धाष्टम्युद्यापन, नन्दीश्वरविधान, पुष्पाञ्जलिविधान, केवलचान्द्रायणोद्यापन, पल्यव्रतोद्यापन, कल्याणमन्दिरोद्यापन, विषापहारपूजाविधान, त्रिपञ्चाशत्क्रियोद्यापन, नन्दीश्वरलघुपूजा, सिद्धचक्रपूजा, रैदव्रतकथा और व्रतकथा कोष नामक जैन ग्रन्थोंकी रचना की है।

देवेन्द्रगणि—१ (नेमिचन्द्र नामसे प्रसिद्ध) जैनियोंके वृहद्गच्छके एक आचार्य, आनन्दसूरिके शिष्य। इन्होंने प्राकृत भाषामें आख्यानमणिकोश और वीरचरित तथा उत्तराध्ययनसूत्रकी टीका रची है। जिनचन्द्रके शिष्य आम्रदेवसूरि आख्यानमणिकोषकी टीका लिख गये हैं।

२ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने प्राकृत भाषामें 'तिलयसुन्दरीरयणचूड़कहा'की रचना की है। ये खरतरगच्छके ३८वें पट्टाचार्य उद्योतनके प्रशिष्य और आम्रदेवके शिष्य थे।

३ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने प्राकृत भाषामें दानकुलक, शीलकुलक, तपःकुलक और भावनाकुलक आदि ग्रन्थ बनाये हैं।

४ पञ्चसंग्रहके रचयिता।

५ जिनचन्द्रके शिष्य आम्रदेव सूरिके एक शिष्यका नाम। इन्होंने प्राकृत भाषामें 'पवयणसारुद्धार'की रचना की है।

देवेन्द्रनाथठाकुर—बङ्गालके सुप्रसिद्ध साहित्यिक रवीन्द्र नाथ ठाकुरके पिता और आदि-ब्राह्मसमाजके अन्यतम प्रवर्तक। आपका जन्म बङ्गालके सुविख्यात ठाकुर-वंशमें (१८१७ ई०में) हुआ था। आपके पिताका नाम द्वारकानाथ ठाकुर था। आपके पांच पुत्र थे—द्विजेन्द्र-नाथ, सत्येन्द्रनाथ, हेमेन्द्रनाथ, ज्योतिरिन्द्रनाथ और रवीन्द्रनाथ।

बङ्गालके प्रसिद्ध राजा राममोहनराय १८२९ ई०में जब विलायत गये थे, तब आपकी उम्र कुल १२ वर्षकी थी। राममोहनरायने बालक देवेन्द्रनाथको देख कर एक दिन कहा था कि "यही बालक भविष्यमें मेरी गद्दीका अधिकारी होगा।" विलायत जाते समय राजा साहब ब्राह्मसमाजका कार्य-भार इन्हीं पर सौंप गये थे। विलायतमें डेढ़ वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनकी भविष्यद्वाणी सफल हुई। राजा साहबकी मृत्युके कई वर्ष बाद ब्राह्मसमाजका कार्यभार इन्हीं पर पड़ा, राजा साहबके कथनानुसार देवेन्द्रनाथ ही उनकी गद्दीके अधिकारी हुए।

प्राथमिक शिक्षा पानेके बाद आप हिन्दू कालेजमें प्रविष्ट हुए और अन्यान्य छात्रोंकी अपेक्षा उन्नतम योग्यताके साथ विद्याध्ययन करने लगे। अंगरेजी पढ़ने पर भी आपका धर्मभाव हृदयसे दूर न हुआ; क्योंकि प्राथमिक शिक्षा आपको राजा राममोहनरायके विद्यालयमें मिली थी।

बचपनमें आप मूर्तिपूजा करते थे और उस पर आपकी आन्तरिक श्रद्धा भी थी; किन्तु एक दिन नक्षत्र-खचितयुक्त आकाशको देख कर आपने स्थिर किया, कि इसके रचयिता कोई परिमित देवमूर्त्ति नहीं हो सकती। तभीसे आप मूर्तिपूजाको व्यर्थ समझने लगे और इस उद्देश्यके प्रचारार्थ तन-मन-धनसे ब्राह्मसमाजकी सेवा करने लगे।

१८३८ ई०में एक दिन आपको श्मशान जाना पड़ा, वहां आपके हृदयमें वैराग्यका उदय हुआ। वहीं अकस्मात् उपनिषद्का फटा एक पन्ना आपके हाथ पड़ गया। उसमें ईशोपनिषद्का प्रथम मन्त्र लिखा था। इस पन्नेको आप ब्राह्मसमाजके तदानीन्तन आचार्य श्रीरामचन्द्र विद्यावागीशके पास ले गये। उसका अर्थ मालूम किया, जिससे आपके हृदयमें एक आनन्दमय नूतन भाव उदित हुआ। इससे पहले आपके हृदयमें यह भ्रान्ति थी कि 'हमारे हिन्दू-शास्त्रोंमें पौत्तलिकताके सिवा निराकार निर्विकार सत्यस्वरूपका निर्देश नहीं है।' अब यह भ्रान्ति दूर हो गई और उपनिषद् एवं वेदों पर श्रद्धा उत्पन्न हुई।

अब आप नियमितरूपसे विद्यावागीश महाशयके पास उपनिषद् आदि पढ़ने लगे। अनन्तर १८३९ ई०में आपने एक सभा स्थापित की, जिसका नाम रक्खा गया "तत्त्वबोधिनी सभा।" यह सभा अब भी मौजूद है। इसका उद्देश्य पौत्तलिकता दूर करना है। पहले पहल इसके सभासद् इने-गिने ही थे। इन सभासदोंको अपनी आमदनीका सोलहवां हिस्सा सभाको देना पड़ता था। फिर वर्द्धमान-महाराज महतावचंद बहादुर, राजेन्द्रलाल मित्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि गण्य-मान्य पुरुष भी इसके सभासद हो गए। इस तरह सभा अपनी उन्नति करती रही।

इस सभाकी स्थापनासे पहले हिन्दू-कालेजके उत्तीर्ण छात्रोंने अन्यान्य छात्रोंके साथ मिल कर एक

सभा कायम की, जिसका नाम रक्खा The society for the acquisition of general knowledge अर्थात् "साधारण ज्ञानोपार्जिका सभा"। १८३८ ई०, ता० १६ मईसे इसका काम चालू हुआ। करीब २०० युवक इसके सभासद् थे, जिनमें श्रीमान् देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी शामिल थे।

पहले 'ब्राह्मसमाज' और 'तत्त्वबोधनी सभा' पृथक् पृथक् थी। १८४१ ई०में दोनों सभाएं देवेन्द्रनाथके उद्योगसे एक हो गईं और जोरसे अपना कार्य करने लगीं। १८४३ ई०में "तत्त्वबोधिनीपत्रिका" प्रकाशित हुई, जो अब भी विद्यमान है। अब सभाका प्रायः सम्पूर्ण कार्य प्रत्यक्ष वा परोक्षभावसे देवेन्द्रनाथ ही करने लगे। स्वर्गीय अक्षयकुमारदत्तको आपने पत्रिकाका सम्पादक नियुक्त किया। पत्रिकामें साहित्य, विज्ञान, इतिहास, दर्शन, जीवनचरित आदि नाना विषयके अच्छे अच्छे लेख प्रकाशित होने लगे। शीघ्र ही इसने अपनी उन्नति कर ली।

इसके बाद आपने एक "ग्रन्थ सभा" (Literary Committee) कायम की जिसके ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि प्रमुख विद्वान् सभासद् थे। जो कुछ ग्रन्थ वा लेख आदि प्रकाशित होते थे, वे सब पहले इस सभा द्वारा पास करा लिये जाते थे।

१८४४ ई०में पत्रिकाका कार्यभार आपने अपने ऊपर ले लिया और नाना प्रकारसे उसकी उन्नति की। बादमें वंशवाटी ग्राममें आपने "तत्त्वबोधिनी पाठशाला" स्थापित की, जो तीन चार वर्ष चल कर बन्द हो गई।

आपके पिताने आपको जमींदारीका काम सिखानेके लिए बहुत कोशिश की, मगर आपका उस तरफ जरा भी ख्याल न था, छिप कर आप वेदान्त पढ़नेके लिये निकल जाया करते थे। आपने स्वर्गीय आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश और स्वर्गीय गिरीशचन्द्र महाशयको अपने खर्चेसे वेद-वेदाङ्गके अध्ययनार्थ काशी भेजा था।

इस समय (१८४५ ई०) डफ् साहब बड़े जोरोंसे ईसाई धर्मका प्रचार कर रहे थे। दो एक भद्र परिवार जब ईसाई हो गये, तो ब्राह्मसमाजमें इसका आन्दोलन हुआ। आपने ईसाइयोंके विरुद्ध व्याख्यान दिलवाये और उनके स्रोतमें बहुत कुछ बाधा डाली। इस उद्योगसे प्रसन्न हो कर कायस्थसमाजपति राजा राधाकान्तदेव बहादुरने आपको 'Defender of the national religion' (जातीय धर्मके रक्षक)की उपाधि दी थी। इसके बाद आपने "हिन्दू हितैषी विद्यालय"की स्थापना की। कुछ वर्ष बाद कोषाध्यक्षके दिवालिया हो जानेसे इसका काम ढीला हो गया था।

इसके बाद आपने काशीसे लौटे हुए पण्डितोंके साथ आलोचना करके ब्राह्मसमाजसे कुछ भ्रान्त सिद्धान्तोंका परिहार किया। इसी वर्ष आपने ऋग्वेदका बङ्गलाभाषामें अनुवाद करना शुरू किया था, किन्तु मैक्समूलरके सभाष्य ऋग्वेदके प्रकट होने पर आपने यह काम बन्द कर दिया।

उधर ब्राह्मोंकी संख्यावृद्धि होनेसे लोगोंमें मतभेद होने लगा और क्रमशः कार्यक्षेत्रमें अशान्तिकी सूचना हुई। यह सब देख-भाल कर १८५५ ई०में आप योगसाधनके लिये हिमालयको चल दिये। इसके एक वर्ष बाद ही सिपाहीविद्रोह उपस्थित हुआ। १८५८ ई०में विद्रोहाग्निके निर्वापित होने पर आप कलकत्ते पधारे और ब्राह्मधर्मका व्याख्यान दिया। इसी समय स्वर्गीय केशवचन्द्रसेनने ब्राह्मसमाजमें योग दान किया। १८६१ ई०में आपकी कन्याका विवाह हुआ जिसमें आपने अपौत्तलिक हिन्दू-अनुष्ठानका प्रथम सूत्रपात किया। इसी साल "साधारण ब्राह्मसमाज"ने आपको "प्रधानाचार्य" की उपाधि प्रदान की।

केशवचन्द्र सेनके साथ आपकी अपूर्व प्रीति थी; किन्तु वह स्थायी न हुई। उपवीत-संस्कारको ले कर दोनोंमें मतभेद हो गया। केशवचन्द्र चाहते थे कि किसी भी उपवीतधारीसे आचार्यका काम न लिया जाय, किन्तु देवेन्द्रनाथ सबको शामिल रख कर काम करना चाहते थे। देवेन्द्रनाथने केशवचन्द्रसे समाजके कार्यसे अवसर ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। बस, फिर क्या था विरोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। केशवचन्द्रने "नवविधान" नाम रख कर एक पृथक् ब्राह्मसमाजकी स्थापना की, जो अब भी मौजूद है। केशवचन्द्र सेन देखो।

केशवचन्द्रने "इण्डियन मिरर" नामक अंग्रेजी पत्र-

को हस्तगत कर लिया। इस पर देवेन्द्रनाथने "नेशनल-पेपर" नामक अंग्रेजी संवादपत्र निकालना शुरू कर दिया। इसके बाद आपने फिर हिमालयको प्रस्थान किया। बस, इसी समयसे आपने सांसारिक सभी कार्यों से अपना हाथ खींच लिया, देशभ्रमण करने लगे। हां, समाजके कार्यकर्त्ताओंको सम्मति आदि अवश्य दिया करते थे; सब काम आप ही की अनुमति अनुसार हुआ करते थे।

१८७२ ई०में, कलकत्तेमें जातीय सभा (National Society)का एक अधिवेशन हुआ, जिसके आप सभापति हुए। १८८६ ई०में जब आप हुगली जिलेके चुंचुड़ा नामक स्थानमें रहते थे, साधारण ब्राह्मसमाजने आपको अभिनन्दन किया, जिसके उत्तरमें आपने उपदेशपूर्ण उपहार प्रदान किया। इसके बाद आप बीमार हो गये; जीनेकी आशा न होने पर भी इस बार आप बच गये।

इसके बाद आपने अपने जीवनके शेष भागका एक कार्य किया। १८८८ ई०के फाल्गुन मासमें आपने सर्वसाधारणके उपकारार्थ वीरभूम जिलेके बोलपुर नामक स्थानमें एक आश्रमकी स्थापना की, जिसने अब भी "शान्तिनिकेतन"के नामसे अपना अस्तित्व कायम रक्खा है। यहां देवेन्द्रनाथके दीक्षाग्रहणके दिन (बंगला ता० ७ पौषको) प्रति वर्ष उत्सव हुआ करता है।

इसके सिवा आपने कई एक पुस्तक भी रची हैं, जो छोटी होने पर भी सारवान् और गम्भीरताको लिए हुए हैं। जैसे-'आत्मतत्त्वविद्या, ब्राह्मधर्मका मत और विश्वास ज्ञान और धर्मकी उन्नति, परलोक और मुक्ति इत्यादि।'

**देवेन्द्रमुनीश्वर**—रुद्रपल्लीयगच्छके एक ग्रन्थकार। ये सद्धतिलकके शिष्य थे। इन्होंने अपने भाई भोला और खेवनामाके अनुरोधसे प्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तिको रचना की।

**देवेन्द्रसिंह**—अञ्चलगच्छके एक विख्यात जैनाचार्य। ये अजितसिंह सूरिके शिष्य तथा धर्मप्रभके गुरु थे। मेरुतुङ्गके षट्पदि अनुसार इनका संवत् १२९९ में जन्म, १३०६ में दीक्षा, १३२३ में सूरिपद, १३३९ में गच्छेश्वर तथा संवत् १३७१ में मृत्यु हुई थी।

**देवेन्द्रसूरि**—१ एक विख्यात जैनाचार्य। ये जगच्चन्द्रके शिष्य तथा विद्यानन्दके गुरु थे। इन्होंने कर्मविपाक, कर्मस्तव, बन्धस्वामित्व, षड़शीतिका, शतक और सप्ततिक नामक प्राकृत भाषाके छः कर्मग्रन्थके साथ साथ प्रथम पांच ग्रन्थोंको टीका, श्राद्धदिनकृत्य और श्रावकदिनकृत्यका मूल तथा टीकाकी रचना की। इन्होंने सप्ततिकके शेष भागमें लिखा है, कि उक्त ग्रन्थ चन्द्रमहत्तरका बनाया हुआ है; किन्तु इन्होंने इसमें केवल १९ कहानियां योग की हैं।

२ तपागच्छके एक पट्टाचार्य। पट्टावलीके देखनेसे जाना जाता है, कि ये सतीर्थ विजयचन्द्र वस्तुपालके 'लेख्यकर्मकृत्' मन्त्री थे। इनके बनाये हुए कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ति, नवकर्मग्रन्थपञ्चकसूत्रवृत्ति, सुदर्शनचरित्र, त्रिभाष्य, श्रीऋषभवर्द्धमान प्रभृति स्तव। मालवमें संवत् १३२७को इन्होंने मानवलीला सम्वरण की। इनके बाद इनके शिष्य नित्यानन्द सूरिपदको प्राप्त हुए।

३ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने १२४० ई०में हेमचन्द्रके शब्दानुशासनको लघुन्यासवृत्ति रची है।

**देवेन्द्राश्रम**—पुरश्चरणचन्द्रिकाके रचयिता। इनके गुरुका नाम विबुधेन्द्राश्रम था।

**देवेश** (सं० पु०) देवानां ईशः ६-तत्। १ देवनियन्ता, देवताओंके राजा इन्द्र। २ विष्णु। ३ महादेव। ४ परमेश्वर। स्त्रियां ङीप्। ५ देवेशी, दुर्गा।

**देवेशतीर्थ** (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

**देवेशय** (सं० पु०) देवे अधिष्ठातृतया शेते शी-अच, अलुक् समासः। परमेश्वर, विष्णु।

**देवेशी** (सं० स्त्री०) १ पार्वती। २ देवी।

**देवेश्वर** (सं० पु०) देवानां ईश्वरः। १ महादेव। २ एक प्राचीन कवि। इन्होंने गोविन्दराज, भोजप्रभृतिके नाम उल्लेख किये हैं। ३ गङ्गाष्टकप्रणेता। ४ कविकल्पलताके रचयिता। ये वाग्भटके पुत्र थे।

**देवेष्ट** (सं० त्रि०) देवानां इष्टः। १ देवताओंके प्रिय। (पु०) २ महामेदा। ३ गुग्गुलु, गुग्गुल।

**देवेष्टा** (सं० स्त्री०) १ महामेदा, बड़ा बिजौरा। २ वन बीजपूरवृक्ष।

**देवोत्तर** (सं० पु०) देवताको अर्पित किया हुआ धन,

वह सम्पत्ति जो किसी देवताके नाम पर अलग निकाल दी गई हो और जो प्रतिष्ठित देवताकी नित्य-सेवा उत्सवादि तथा मन्दिर और पूजकादिका खर्च चलानेमें लगती हो। इसके सिवा देवप्रतिमाकी सज्जादि, तैजसादि वा अलङ्कारादिको भी देवोत्तर कहते हैं।

बङ्गालदेशमें देवोत्तर भूसम्पत्ति बहुत है। पश्चिमोत्तर भारतमें देवमन्दिरादिकी संख्या अधिक है सही, पर उनमें प्रतिष्ठाता लोग भूसम्पत्तिकी अपेक्षा नकद ही अधिक दान कर गये हैं। देवमन्दिरकी आयसे कभी कभी देवताके नाम पर जमींदारी खरीदी जाती है, किन्तु साधारणतः इन सब जमींदारियोंको भी लोग देवोत्तर सम्पत्तिके जैसा मानते हैं।

प्रतिष्ठाताका दान नहीं होनेसे देवोत्तर नहीं होगा सो नहीं, कोई भी अगर प्रतिष्ठित देवता या प्राचीन देवालयके उद्देशसे दान कर दे, वही देवोत्तर कहलायेगा।

पहले इस प्रकारकी प्रदत्त भूसम्पत्तिका कर राज सरकारमें नहीं देना पड़ता था। १७५६ ई०में ईष्ट-इण्डिया कम्पनीको जब बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी मिली तब वह भी इस प्रकारकी जमीनसे कर नहीं लेती थी। किन्तु दीवानी लेनेके बादसे कम्पनीने ऐसी जमीन पर कर निर्द्धारित कर दिया। धार्मिक हिन्दू जमींदार वा धनी लोग आज भी देवता, देवमन्दिर और मठादिकी प्रतिष्ठाके समय भूसम्पत्ति देवोत्तरके रूपमें दान करते हैं सही, मगर उन्हें राजसरकारमें कर देना पड़ता है। पर हां, जो मालगुजारी वे प्रजासे लेते थे, उसे वे निजमें खर्च न कर उसी देवमन्दिरमें चढ़ा देते हैं जिसमें उन्होंने वह भूमि दान कर दी है।

सभी देवोत्तर सम्पत्तिकी देखभाल दाता अपने हाथ नहीं रखते। वे अपने वंशधरोंके प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित देवताके उद्देशसे जो सम्पत्ति दान करते हैं, प्रायः उसीकी देखभाल दाता स्वयं करते हैं। फिर जहां किसी साधारण देवमन्दिरमें तथा किसी दूसरेके प्रतिष्ठित देवमन्दिरमें जो सम्पत्ति दान की गई है, वहां दाताको उसका कोई भार लेना नहीं पड़ता है।

जो सब मन्दिर बिना मालिकके हैं अर्थात् जिन देवमन्दिरोंमें प्रतिष्ठातृवंशका कोई संश्रव नहीं है वा प्रतिष्ठाताका उद्देश नहीं है, उन सब मन्दिरोंके देवोत्तरका रक्षणावेक्षण पुजारी वा महन्त ही करते हैं। कई जगह महन्त लोग ऐसे हैं जो निस्पृह विषयविरत संन्यासी श्रेणीके होने पर भी देवमन्दिरकी सम्पत्ति पा कर ऐसे विषयासक्त हो जाते हैं कि उनका आचार व्यवहार देख कर जमींदार लोग दांतों उंगली काटते हैं। ऐसे अत्याचारी महन्त लोग देवोत्तरकी आयसे अपना भोग विलासका खर्च चलाते हैं। महन्तोंके इस दुर्व्यवहारको रोकनेके लिये कोई सामाजिक विधि वर्त्तमान हिन्दू समाजमें हो नहीं है।

उपनिषद्के समय देवोद्देशसे प्रदत्त द्रव्योंको 'देवता' कहते थे। देवता देखो।

देवोद्यान (सं० क्ली०) देवाना उद्यानं। देवताओंके बगीचे जो चार हैं, नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वतोभद्र। त्रिकाण्डशेषके अनुसार चार देवोद्यानके नाम ये हैं—वैभ्राज, चैत्ररथ, मिश्रक और विप्रकावण।

देवोन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद। इसमें रोगी पवित्र रहता है, सुगंधित फूलोंकी माला पहनता है, आंखें बन्द नहीं करता और संस्कृत बोलता है। देवताके क्रोधसे यह रोग उत्पन्न होता है। सुश्रुतमें भूतविद्यामें अमानुष प्रतिषेधके अन्तर्गत इसका उल्लेख है।

देवोकस् (सं० क्ली०) देवानां ओकः ६-तत्। देवस्थान, सुमेरु पर्वत।

देव्य (सं० क्ली०) देवस्य भावः ष्यञ, वेदे बाहुलकात् न वृद्धिः। देवत्व।

देव्या (सं० स्त्री०) १ सुरा। २ ब्राह्मी क्षुप।

देव्युन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद या रोग। इसमें पक्षाघात होता है, शरीर सूख जाता है, मुंह और हाथ पांव टेढ़े हो जाते हैं तथा स्मरणशक्ति जाती रहती है। कहीं कहीं इसे विलासनी देवी या मावस्था भी कहते हैं।

देश (सं० पु०) दिशति दिश-अच्। १ भूगोलान्तर्गत विभागभेद, पृथ्वीका वह विभाग जिसका कोई अलग नाम हो, जिसके अन्तर्गत कई प्रान्त, नगर, ग्राम आदि हों; जनपद। 'देश तीन प्रकारके होते हैं—जाङ्गल्य, अनूप और साधारण। इसके सिवा और तीन प्रकारके देश

माने गये हैं, देवमातृक, नदीमातृक और उभयमातृक। पर्याय—जनपद, नीवृत्, विषय, उपवर्त्तन, प्रदेश, और राष्ट्र।(शब्दर०) देशका विषय वर्णन करते समय इन सब विषयोंके वर्णन करने होते हैं, रत्न, खान, द्रव्य, पण्य, धान्य, करोद्भव, दुर्ग, ग्राम, जनाधिक्य, नदीमातृकादि, लता, वृक्ष, सरोवर, पशुपुष्टि, खेत, अरघट्ट, केदार, ग्रामीयोंमें सुख और विभ्रम। (कविकल्पलता) २ रागविशेष। यह किसीके मतसे तो सम्पूर्ण जातिका और किसीके मतसे षाड़व या ऋ वर्जित है।

स्वरग्राम – ग म प ध नि स ० ग : ;

अथवा— ग म प ध नि स ऋ ग : :

अथवा—स ० ग म प ध नि स : :

मूर्त्ति—"आस्फोटनाविष्कृतरो महर्ष:

नियुद्धशीलो हि विशालबाहु:।

प्रांशुप्रचण्डश्च तिहेमगौर:

देशाख्यराग: स हि मल्लराग:॥" (सगीतर०)

३ विस्तार, जिसके भीतर सब कुछ है, दिक्। न्याय वा वैशेषिकके मतानुसार जिससे आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, उत्तर-दक्षिण आदिका प्रत्यय होता है वह देश वा दिग्द्रव्य कहलाता है। कालके समान संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग देशके भी गुण हैं। देशके विभु और एक होने पर भी उपाधिके भेदसे उत्तर-दक्षिण, आगे पीछे आदि भेद माने गये हैं। देश-सम्बन्धी 'पूर्व' और 'पर'का विपर्यय हो सकता है, लेकिन काल सम्बन्धी पूर्वापरका विपर्यय नहीं हो सकता।' पश्चिमी दार्शनिकोंमें कान्ट आदिने देशको अन्तःकरणका आरोप मात्र कहा है, न कि इसे मनसे बाहरकी कोई वस्तु माना है। ४ शरीरका कोई अङ्ग। ५ जैन शास्त्रानुसार चौथा पञ्चक। इसके द्वारा अर्थानुसंधान करके तपस्या अर्थात् गुरु, जन, गुहा, श्मशान और रुद्रकी वृद्धि होती है। ६ एक ही राजा या शासकके अधीन भूभाग, राष्ट्र। ७ स्थान, जगह।

देशक (सं० त्रि०) दिशतीति दिश-ण्वुल्। शास्ता, उपदेष्टा, उपदेश करनेवाला।

देशकली (सं० स्त्री०) एक रागिणी। इसमें गांधार कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

देशकार—सम्पूर्ण जातीय राग। यह सबेरे एक दण्डसे पाँच दण्ड दिन चढ़े तक गाया जाता है यह राग परज, सोरठ और सरस्वतीके मेलसे बनता है। यह दीपक रागका पुत्र माना जाता है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि +

अथवा—ध नि स ऋ ग म प+

देशकारी (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष। यह हनुमत्‌के मतसे मेघरागकी पत्नी और किसी किसीके मतसे हिंदोल रागकी पत्नी मानी जाती है। यह सम्पूर्ण जातिकी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि स +

इसके गानेका काल वर्षाऋतुका निशांत वा प्रातःकाल है।

देशगान्धार (सं० पु०) सबेरे एक दण्डसे पाँच दण्ड तक गाये जानेका एक राग।

देशचारित्र (सं० पु०) जैन शास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म। इसके बारह भेद हैं—(१) प्राणातिपातविरमणव्रत, (२) स्थूलमृषावादविरमणव्रत, (३) स्थूलअदत्तादानविरमणव्रत, (४) मैथुनविरमणव्रत, (५) स्थूलपरिग्रहविरमणव्रत, (६) दिशपरिमाणव्रत, (७) भोगोपभोगविरमणव्रत, (८) अनर्थदण्डविरमणव्रत, (९) सामयिकव्रत, (१०) दिशावकाशिकव्रत, (११) पौषधोपवासव्रत, (१२) अतिथिसंविभागव्रत।

देशज (सं० त्रि०) देश-जन-ड। देशजात, देशमें उत्पन्न। देशज (हिं० पु०) शब्दके तीन विभागोंमेंसे एक, वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृतका अपभ्रंश हो बल्कि किसी प्रदेशमें लोगोंकी बोल-चालसे आपसे आप निकल गया हो।

देशज्ञ (सं० पु०) वह जो देशका हाल जानता हो।

देशधर्म (सं० पु०) देशानुरूप: धर्म:। देशोचित धर्म, देशकी रीतिनीति आचार व्यवहार। जिस देशमें जैसा आचरण प्रचलित रहे, वही उस देशका धर्म है। देशधर्म परित्याग नहीं करना चाहिये, किन्तु देशाचारके साथ यदि धर्मशास्त्रका विरोध उपस्थित हो, तो धर्मशास्त्रका मत ग्रहण करना उचित है। किन्तु जहां देशधर्म पालन करनेमें धर्मशास्त्रका कोई नियम उल्लङ्घन

नहीं होता हो, वहां देशाचार प्रति-पालन करना ही कर्त्तव्य है।

देशना ( सं० स्त्री० ) दिश-णिच् युच् टाप्। नियोग विधि प्रभृति।

देशनिकाला ( हिं० पु० ) देशसे निकाल दिये जानेका दण्ड।

देशनिर्णय ( सं० पु० ) देशस्य निर्णयः। देशनिरूपण।

देशपरिच्छिन्न (सं० त्रि०) देशेन परिच्छिन्नः ३-तत्। सर्व-व्यापी, जो सब जगह फैल गया हो।

देवपाली—रागिणीविशेष, देशकारी रागिणीका दूसरा नाम।

देशबन्धु चित्तरञ्जन दास—स्वनाम प्रसिद्ध देशनायक। ५ नवम्बर सन् १८७० ई०को कलकत्ता पटलडांगा स्ट्रीटमें आपका जन्म हुआ था। भुवनमोहन दास आपके पिता थे। उनका आदि निवास विक्रमपुरके अन्तर्गत तेलिर-बाग ग्राममें था। विक्रमपुरके उक्त दासवंश एक समय पूर्ववङ्गका शासन करते थे।

चित्तरञ्जन अपने पिताके द्वितीय पुत्र थे। आपके जन्मके कुछ समय बाद ही भुवन बाबू भवानीपुरमें जा कर रहने लगे। भुवनमोहन कलकत्ता हाईकोर्टके नामी वकील थे। उन्होंने कुछ समाचारपत्रोंके सम्पादन-में भी बड़ी योग्यता दिखाई थी। भुवनमोहन बहुत ही निर्भीक प्रकृतिके, तेजस्वी, स्पष्टवादी और बड़े दानी पुरुष थे। अपनी दानशीलताके कारण हो वे सदैव ऋण-ग्रस्त रहे और अन्तमें दिवालिया होना पड़ा। अपने वंशकी इस परम्परा, इन संस्कारों और संसर्गोंका देशबन्धुके चरित्र पर भारी प्रभाव पड़ा। कहावत है, "होनहार बिरवानके होत चीकने पात।" मि० आर० दासके बचपनमें ही यह मालूम हो गया था कि वे आगे चल कर बहुत बड़े आदमी होंगे। सुशिक्षित परिवारमें जन्म लेनेके कारण उनकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया गया था। आपने भवानीपुरके लन्दन मिशनरी-सोसाइटीके स्कूलसे एण्ट्रेंस पास किया और १८९०में कलकत्तेके प्रेसीडेंसी कालेजसे बी० ए० पास किया। साहित्यमें आपकी विशेष अभिरुचि थी। आप प्रेसीडेंसी कालेजकी साहित्यसभाके प्रधान कार्यकर्त्ता थे। इसी सभामें देशबन्धुने पहले पहल व्याख्यान देना सीखा था। बादमें देशबन्धु आई० सि० एस० की परीक्षा देनेके लिये विलायत गए। जिन दिनों आप सिविल-सर्विसकी परीक्षाकी तैयारियां कर रहे थे, उन दिनों स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी पार्लियामेण्टकी मेम्बरीके लिये खड़े हुए थे। मि० आर० दासने चारों ओर घूम घूम कर दादाभाईके पक्षमें वक्तृताएं दीं। विलायतके कई समाचार-पत्रोंने आपकी इन वक्तृताओंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। १८९२ ई०में पार्लिया-मेण्टके जेम्स मेकलियन नामके एक मेम्बरने अपने भाषणमें हिन्दू-मुसलमानोंके प्रति कुछ कुवाक्य कहे। इस पर देशबन्धुने लन्दनके एकमट हालमें एक सभा करके उस भाषणकी बहुत ही तीव्र आलोचना की। फलस्वरूप भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। अन्तमें इङ्गलैण्डके एक प्रधान मन्त्री मि० ग्लाडस्टोनके सभा-पतित्वमें ओल्डहाममें एक विराट् सभा हुई जिसमें जेम्स मेकलियनको अपने अपराधके लिये क्षमा मांगनी पड़ी। इस सभामें देशबन्धुदासने जो भाषण दिया था उसे सुन कर मि० ग्लाडस्टोन तक मुग्ध हो गये थे। कहते हैं, कि इसी तीव्र भाषणके कारण आपको सिविल सर्विससे हाथ धोना पड़ा। उक्त परीक्षा पास करने पर भी आपका नाम प्रवेशमर लिस्टसे काट दिया गया। तदनन्तर आपने इनरटेम्पलमें बैरिस्टरी पढ़ना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनोंके मध्य सफलता प्राप्त कर आप स्वदेशको लौटे।

१८९३ ई०में स्वदेश लौट कर देशबन्धुदासने कल-कत्ता हाईकोर्टमें बैरिस्टरी आरम्भ कर दी। शुरू शुरूमें आपको अपनी योग्यताका सिक्का जमानेमें बड़ी कठिनाई पड़ी। परन्तु जब योगिराज अरविन्दघोष पर बम-बाजीका मुकदमा चलाया गया तब देशबन्धुने मुकदमा अपने हाथमें लिया और इसी मुकदमेकी जीतसे आपकी प्रतिभा चमकने लगी। इसी समयसे आपके हाथमें कठिनसे कठिन मुकदमें आने लगे। षड़यन्त्रकारियों, नजरबन्दों और दूसरे राजनीतिक अपराधियोंके कई मुकदमोंकी आपने पैरवी की। इनमेंसे अधिकांशमें आपको सफलता मिली और इनमेंसे अधिकांश अभियोग

आपने बिना फीस लिए या नाममात्रकी फीस ले कर किये थे। डुमरांवराजके राज्यसंक्रान्त मामलेमें आपने वैरिस्टरी की और नागपुरके होमरूलके सिक्रेटरी मि० वैयको अपीलमें मुक्त किया। ब्रह्मदेशमें जब डाक्टर मेहता Defence act में पकड़े गये, तब आपने ही मुकदमेकी पैरवी करके उन्हें छुटकारा दिया। देशके वैरिस्टरोंमें आसानीसे मि० आर० दासका नम्बर अव्वल हो गया। पिछले चार वर्षोंसे आपकी आमदनी प्रतिमास लगभग पचास हजार रुपयेकी हो गई थी। इतनी आमदनी इससे पहले देशके और किसी वैरिस्टरकी नहीं हुई थी। खुद सरकार एक मुकदमेमें आपको पचास हजार नकद और डेढ़ हजार रोज उसके अलावा देनेको तैयार थी। किन्तु भारतमाताकी भलाईके लिये आपने वकालत छोड़ कर इस आमदनीको ठुकरा दिया और असहयोग आन्दोलनमें साथ दिया।

दानशीलता—चित्तरञ्जन योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। दानी आप ऐसे थे, कि दीन, दुःखियों, अनाथों और गरीब विद्यार्थियोंकी सेवामें आपने कितने हजारोंका गुप्तदान किया है, इसे कोई नहीं जानता। आपने कितने आत्मीय स्वजनोंको आर्थिक सहायता दी, कितने कङ्गाल गृहस्थोंके लिए अन्नवस्त्रादिकी सुव्यवस्था की और कितने दरिद्र विद्यार्थियोंके पढ़नेका प्रबन्ध किया—इसका हिसाब कौन लगा सकता है? ब्राह्म-विद्यालयका आपने नया घर निर्माण किया, बेलगछिया मेडिकल हाल बनवानेमें प्रचुर अर्थ व्यय किये। बङ्ग भाषाकी उन्नतिके लिये आप अर्थव्यय करनेमें जरा भी हिचकते नहीं थे। पुरुलियामें आपके पिताका प्रतिष्ठित एक अनाथ आश्रम है जिसमें आप प्रति मास प्रायः दो हजार रुपये खर्च करते थे। एक दूसरे अनाथाश्रमको आपने दो लाखका दान दिया और इस दानकी खबर आपकी पत्नी तकको न चल पाई। सुरेशचन्द्र समाजपति अर्थाभावके कारण जब साहित्यपत्रिका चला न सके थे, तब आपने ही काफी पूंजी दे कर पत्रिका चलानेमें सहायता की थी। फरीदपुरके अधिवेशनमें आप बिना किसीके जाने सुने डेढ़ हजार रुपये दान कर आए थे। दरिद्रको आप मनुष्य जान कर दान नहीं देते थे। आप कहा करते थे कि, "जब मैं दरिद्रको कुछ देता हूं। उस समय मुझे ऐसा मालूम पड़ता है मानो स्वयं नारायण ही आ कर मेरे इस तुच्छ दानको ले जाते हैं।"

धर्ममत—चित्तरञ्जनके पिता भुवनमोहन ब्राह्म थे। उस समय अंगरेजी शिक्षित बहुतसे लोग राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्त्तित ब्राह्म धर्म ग्रहण करके सत्यका अन्वेषण करते थे। शुद्ध बङ्गाली, चित्तरञ्जन ब्राह्म परिवारमें जन्म ले कर भी हिन्दू हो गए थे। आपने पुत्र और कन्याका हिन्दू-रीतिसे विवाह किया था। आपका हिन्दुत्व केवल दिखावटी न था, बल्कि आप वैष्णव गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर कट्टर वैष्णव हो गये थे। सर्वव्यापी निराकार ब्रह्मकी चिन्ता कर चित्तरञ्जनका चित्त तृप्त न हुआ। आपने भगवान्‌को भक्तवाञ्छा पूर्णकारी नररूपमें देखना चाहा था। आप विष्णुके पक्के भक्त थे, कीर्त्तन गानको प्राणसे भी बढ़ कर चाहते थे। पदावलीकीर्त्तन सुनते सुनते आपकी आँखोंमें जल डब डबा आता था। बहुत रुपये खर्च करके आपने अनेक दुष्प्राप्य वैष्णव ग्रन्थ संग्रह किए थे। इतना ही नहीं, आपने भी निराकार परब्रह्मके विषयमें अनेक पद बनाये थे, जिन्हें सुन कर लोगोंका चित्त अनिच्छुक होने पर भी उस ओर आकृष्ट हो जाता था।

चित्तरञ्जन हिन्दू होने पर भी जाति भेद नहीं मानते थे। वे कहते थे, 'मैं हिन्दू हूं सही, लेकिन जातिभेद पर मेरा विश्वास नहीं है।' आपने अपना विवाह ब्राह्मणकन्यासे, बड़ी लड़कीका कायस्थ पात्रसे और अपने लड़के चिररञ्जनका विवाह पश्चिम बङ्गके वैद्यवंशमें किया था।

साहित्यजीवन—देशबन्धु बड़े भारी कवि और साहित्य-सेवी भी थे। मालञ्च, माला, सागर-सङ्गीत, अन्तर्यामी और किशोर किशोरी आपकी ही कीर्त्तियां हैं। रवीन्द्रनाथकी और चित्तरञ्जनकी कवितामें प्रभेद यह है, कि रवीन्द्रनाथकी कविता वैष्णवीय आदर्शमें लिखी रहने पर भी वह ब्राह्म भावसे पुष्ट है और चित्तरञ्जनकी कविता वैष्णवकी साधना वा भक्तिका मूर्त्त विकाश है।

आपकी साहित्यसाधना परवर्त्तीयुगमें राजनीतिकी समस्याके साथ संमिश्रित होती आ रही थी। आप

अपने जीवनको कभी भी खण्ड विच्छिन्नरूपमें देख नहीं सकते थे। धर्म साहित्य और राजनीतिका आपके हृदयमें खूब समावेश था।

बङ्गालके साहित्यिक समाजने आपकी प्रतिभाका परिचय पा कर भागलपुर, ढाका और मुन्सीगञ्जमें आपको बङ्गीय साहित्य सम्मेलनका विभिन्न सभापति बनाया था। जब कभी आपको कुछ अवसर मिल जाता था, तब आप साहित्यकी चर्चा करके आनन्द लाभ करते थे। यहां तक कि दार्जिलिङ्गमें मृत्युके दो दिन पहले भी आपने कविताकी रचना करके उसे अपनी स्त्री और कन्याको सुनाया था।

राजनीतिक जीवन—१९०५ ई०में बङ्गविभाग होनेके बाद देशकी राजनीति धर्मनीति हो उठी। दादा भाई नौरोजीने १९०६ ई०को कलकत्ता-कांग्रेसमें जातीय पक्षकी ओरसे स्वायत्तशासनकी इच्छा प्रकट की। १९०६ ई०के पूर्व पर्यन्त कांग्रेसकी रीतिनीति मुट्ठी भर सम्प्रदायोंके हाथ थी। देशके जनसाधारणके साथ इसका उतना सम्पर्क नहीं था। १९०५ ई०की ६ठी जुलाईको ब्रटिश-इण्डियन-एसोसियेशन-गृहमें कांग्रेस कमिटीका जो अधिवेशन हुआ उसमें रिसेप्शन कांग्रेस-कमिटी गठन और अभ्यर्थना समितिगठन ले कर नवीन दल और प्राचीन दलमें विवाद उपस्थित हुआ। नवीन दलके मुखिया थे चित्तरञ्जन, श्यामसुन्दर, विपिनचन्द्र, हेमेन्द्रप्रसाद आदि और प्राचीन दलके सुरेन्द्रनाथ, भूपेन्द्रनाथ आदि। ११वीं जुलाईको इसका फैसला हुआ, नवीन दलकी ही जीत हुई। यही भारतवर्षमें गणतन्त्र-प्रतिष्ठानका प्रथम सूत्रपात था।

१९०५ ई०से ही चित्तरञ्जन बङ्गालके नवीन पन्थी जातीय दलके नेता हुए थे। १९१७ ई०को कलकत्तेमें जो कांग्रेस हुई उसके नेता कौन होंगे यह ले कर विवाद खड़ा हुआ। चित्तरञ्जनके दलने एनी बेसेण्टको और प्राचीन दलने महमूदाबादके राजाको सभापति बनाना चाहा, अन्तमें चितरञ्जनके दलकी ही विजयपताका उड़ी। एनी बेसेण्ट ही कांग्रेसकी सभापति निर्वाचित हुई। इसी समयसे नरम और गरम दल अलग अलग हो गया।

१९२० ई०के सितम्बर मासमें कलकत्तेमें कांग्रेसका एक विशेष अधिवेशन हुआ। उस कांग्रेसमें स्वराज्य-लाभ, पञ्जाब-हत्याकाण्डका प्रतीकार, खिलाफतके अन्यान्य व्यवहारका संशोधन ले कर तीव्र आलोचना हुई। महात्मागांधीने इस कांग्रेसमें असहयोग नीतिका प्रचार किया। स्वयं कांग्रेसके सभापति लाला लाजपत राय, चित्तरञ्जन, विपिनचन्द्रपाल आदि सम्भ्रान्तोंने इसका प्रतिवाद किया। किन्तु वोटसे महात्माजीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

इसके अनन्तर उसी सालके दिसम्बर मासमें नागपुरमें कांग्रेस बैठी। इस कांग्रेसमें सारा बङ्गाल महात्माके असहयोग प्रस्तावके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, इसका खूब आन्दोलन चला। गजब था, चित्तरञ्जनने बङ्गालसे २०० 'गोरखा' वोलण्टीयरोंको किराये पर मंगाया और असहयोगप्रस्तावको निर्मूल करनेकी एक भी कसर उठा न रक्खी। विजयराघवाचार्य भी महात्माके विरुद्ध उठ खड़े हुए। भाटिया और गुजरातीके साथ हत्यावाही तक भी चल गई थी। किन्तु भगवान्की इच्छाको कौन रोक सकता? कांग्रेसमें महात्माका असहयोग-आन्दोलन सर्वसमितिसे पास हुआ और सबसे आश्चर्यका विषय यह था कि स्वयं चित्तरञ्जनने भी सहयोगकी नीतिका परित्याग कर असहयोगनीतिको ग्रहण किया। सुनते हैं, कि महात्माने चित्तरञ्जनको असहयोगकी प्रयोजनीयता पर बहुत देर तक समझाया था। फिर क्या था, चित्तरञ्जन जब जिसको सत्य समझ लेते थे, तब वे उसके लिए अपना सर्वस्व निछावर करनेको तैयार हो जाते थे। असहयोगनीतिकी सत्यता जब उनकी समझमें अच्छी तरह आ गई तब आप देशमाताकी सेवाके लिए बैरिष्टरी छोड़ फकीर हो गए। आप देशोन्नतिके लिये संन्यासीके वेशमें तमाम घूमने लगे।

१९२१ ई०की ११वीं नवम्बरको भारतसरकारके आमन्त्रणसे प्रिंस-आव-वेल्स भारतवर्षमें पधारे। उस दिन सारे हिन्दुस्तानमें हड़तालकी घोषणा कर दी गई। चित्तरञ्जनने भी इस हड़तालका जी खोल कर समर्थन किया। झुण्डके झुण्ड स्वेच्छासेवक घूमने लगे, सारे भारतवर्षमें हड़ताल मनायी गई। इस पर भारतसरकार आगबबूला हो गई और बङ्गाल गवर्मेण्टने चित्तरञ्जनके स्वयंसेवक

बुलाने और वालण्टियर होनेकी घोषणाको गैरकानून बतलाया। देशवासियोंने गवर्नरके इस मन्तव्यको स्वेच्छातन्त्रमूलक तथा अन्यान्य समझा। प्रादेशिक कांग्रेस-कमिटीकी एक सभाने कांग्रेस और खिलाफत-कमिटीको सलाह ले कर देशबन्धु पर कांग्रेसका सभी भार सौंप दिया।

२री दिसम्बरको आपने 'हम लोगोंके देशवासीके प्रति' शीर्षकसे एक लेख छपवा कर १० लाख वालण्टीयरोंको बुलाया था। ७वीं दिसम्बरको अन्यान्य पुरुष वालण्टीयरके साथ आपकी पत्नी वसन्ती देवी, बहन तथा एक और महिला पुलिसको गिरफ्तार करनेका सुअवसर दे स्वेच्छासेवक रूपमें बाहर निकलीं। सरकारने उन्हें इस कामसे रोकनेकी यथेष्ट कोशिश की, लेकिन कुछ भी फल न निकला। आखिरको पुलिस उन्हें गिरफ्तार करनेको बाध्य हुई। वे सब प्रेसिडेन्सी जेलमें रखे गये, लेकिन उसी रातको सरकारके आदेशसे छोड़ दिए गये। इसी दिनसे स्वेच्छा-सेवक दल बांध कर घूमने लगे और एक एक कर सब पकड़े गये तथा जेलमें ठूस दिये गये। १० दिसम्बरको शनिवारके दिनके साढ़े चार बजे चित्तरञ्जन भी गिरफ्तार हुए। उसी दिन श्रीमान् वीरेन्द्रनाथ शासमल, मौलाना अबदुल कलाम आजाद, मौलाना असरफ खाँ आदि नेता भी गिरफ्तार किये गए। गिरफ्तारके समय चित्तरञ्जनके परिवारवर्गने आपसे पूछा था, क्या आपके खानेके लिए भोजन घरसे जायगा? इस पर आपने गम्भीर भावमें जवाब दिया था, नहीं! उसका कोई जरूरत नहीं। साधारण जेल-कैदीका भोजन ही मेरे लिए यथेष्ट होगा। एक पैसेके चावल चनेसे ही काम चल जायगा।'

गिरफ्तार होनेके पहले चित्तरञ्जन अहमदाबाद-कांग्रेसके सभापति निर्वाचित हुए थे। किन्तु कारावद्ध हो जानेके कारण आप सभापति हो न सके, हकीम अजमलखाँ उनकी जगह पर सभापति हुए। जब आप कारागारमें थे, तब पण्डित मदनमोहन मालवीने कलकत्ते आ कर सरकारके साथ देशकी राजनीतिक अवस्थाके विषयमें एक अधिवेशन करनेकी चेष्टा की। देशबन्धु इस प्रस्तावमें सहमत हो गये थे। किन्तु महात्मा गान्धीने १८ दिसम्बरको तार द्वारा यह सूचना दी कि वे इस प्रस्तावमें शामिल नहीं हो सकते। अहमदाबाद-कांग्रेसकी बैठक होनेके पहले ही देशबन्धुदासने महात्मा गांधीके पास एक लेख भेजा था जिसे उन्होंने यंग-इण्डियामें छपवा दिया था। उस लेखमें आपने अपनेको असहयोग-आन्दोलनका कट्टर पक्षपाती बतलाया था और यह भी कहा था, कि क्या कारण है कि भारतवासी इस आईनके द्वारा किसी प्रकारका लाभ उठा नहीं सकते। उस लेखमें यह भी था कि जब तक इस देशवासीको स्वराज्य नहीं मिलेगा, तब तक वे अहिंसा आन्दोलनको छोड़ नहीं सकते। जेलसे छूटनेके बाद बङ्गवासियोंने एक स्वरसे चित्तरञ्जनको अविसंवादित नेता स्वीकार किया था। देशके कल्याणके लिये आपने जो असाधारण स्वार्थत्याग किया था, देशवासियोंने उनके प्रति सम्मान दिखानेके लिए गया-कांग्रेसमें उन्हें सभापति बनाया। इसके पहले उपर्युपरि तीन कांग्रेसके अधिवेशनोंमें कौंसिल-बहिष्कारका प्रस्ताव पास हो चुका था। देशबन्धुदासने गया-कांग्रेसमें उस प्रस्तावका खण्डन किया और कौंसिल-प्रवेश करनेका जोरदार भाषण दिया। किन्तु आपका प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास न हुआ। इस समय आपने स्वराज्य-दल-गठनकी ओर ध्यान दिया। दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें घूम घूम कर आपने अपना मत प्रचार किया। देशके अधिकांश लोगोंने आपका मत स्वीकार कर लिया। इसके बाद दिल्ली कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें आपकी ही चेष्टासे कौंसिल-प्रवेश बहुमतोंसे पास हुआ। मौलवी अबुल कलाम आजाद उस सभाके सभापति थे।

इसके बाद कोकनद कांग्रेसमें जो अधिवेशन हुआ, उसमें भी कौंसिल-प्रवेशका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। फलस्वरूप स्वराज्यदलने कौंसिलमें प्रवेश किया। देशबन्धुने बङ्गीय व्यवस्थापक सभामें भी प्रवेश किया था। मध्यप्रदेश और बङ्गाल देशमें स्वराज्यदल सचमुच द्वैत शासनका संहार करनेमें समर्थ हुआ। चित्तरञ्जनकी यह सफलता भारतके राजनीतिक इतिहासमें सदाके लिए उज्ज्वल अक्षरोंमें लिखी रहेगी।

देशबन्धु चित्तरञ्जन दाश

महात्मा गांधीने अहमदाबाद निखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमिटीमें कौंसिल-प्रवेशका प्रस्ताव समर्थन किया। गान्धी और देशके मिलनेका फल यह हुआ कि स्वराज्यदलको ही कौंसिलमें कांग्रेसका कार्य परिचलित करनेका भार सौंपा गया। स्वराज्यदल और स्वतन्त्र-दलने मिलकर कई बार सरकारको परास्त किया। बङ्गालके मन्त्रीको वेतन देनेका जो प्रस्ताव पेश किया गया था, वह दो बार अग्राह्य हुआ। मध्यप्रदेशमें द्वैतशासन अचल हो गया।

इन सब परिश्रमोंसे चित्तरञ्जनदाशका स्वास्थ्य बिगड़ गया। इस अवस्थामें भी आपका ध्यान क्षणकाल-के लिए भी देश सेवाकी ओरसे विचलित न हुआ था। जब पटनेमें आप स्वास्थ्य लाभके लिए गये, तब वहां आप कुछ अच्छे हो गए थे। इसी बीच सरकारने आर्डिनान्स जारी कर धर पकड़ आरम्भ कर दी, और उस स्वेच्छाचारमूलक आर्डिनान्सको आईनमें लानेके लिए एक पाण्डुलिपि बङ्गीय व्यवस्थापक सभामें पेश की। अब देशबन्धु पटनेमें स्थिर रह न सके। उसी

अस्वस्थ अवस्थामें आप कौंसिलमें पहुंचे। बङ्गीय कौंसिलने जिस दिन बहुसंख्यक वोटोंसे सरकारको परास्त किया उस दिन आपने कहा था 'इस बार निश्चय है, कि मेरा रोग जाता रहेगा।'

इसके अनन्तर आप अस्वस्थ अवस्थामें ही फरीदपुर प्रादेशिक समितिमें सभापति हो कर गए। सभामें आपने वक्तृता दी थी कि, 'मैं आत्मसम्मानको रक्षा करते हुए सरकारके साथ सहयोगिता करनेको प्रस्तुत हूं।' लार्ड बार्किनहेडने उनके इस मन्तव्यको ले कर विलायतको लार्ड सभामें आलोचना की थी।

इसके अनन्तर आप स्वास्थ्यलाभ करनेके लिये दार्जिलिङ्ग गए। वहां आपका शरीर क्रमशः अच्छा होता जाता था। लेकिन १९२५ ई०को १५वीं जून सोमवारको एकायक बुखार आया और दूसरे दिन तारीख १६ जून मङ्गलवारको शामको ५॥० बजे देशका चिराग बुझ गया। सर्वत्र अन्धकारकी घटा छा गई। दीन दुःखियोंके सहारे, भारत माताके दुलारे, सैनिकोंके प्यारे देशबन्धुदास इस अभागे देशको नावको मँझधारमें छोड़ कर चल बसे।

देशबन्धुदासका शव १८ जून वृहस्पतिवारको स्यालदह स्टेशन पर ७॥ बजे पहुंचा। उस समय जो दृश्य देखनेमें आया, वह कलकत्तेमें पहले कभी नहीं देखनेमें आया था। रातके दो बजेसे ही लोग इकट्ठे होने शुरू हो गये और सवेरे छः बजे तक कमसे कम चार लाख लोग इकट्ठे हो गये थे। कलकत्तेके तमाम बाजार बन्द रहे। सरकारी फौजी झण्डे भी देशबन्धुदासके शवका सम्मान करनेके लिये झुका दिये गये थे। जुलूस आठ घण्टेमें श्मशानघाट पर पहुंचा। कलकत्तेमें ऐसी भीड़ आज तक न कभी देखी गई और न सुनी गई थी। हिन्दुस्तान भरमें दूकानें तथा स्कूल आदि बन्द रहे, शोक-सभाएँ करके सहानुभूति प्रकट की गई।

यूरोपके एक असाधारण बुद्धिमान् महापुरुषका कहना है कि, "जब तक किसी मनुष्यके जीवनका अन्त न देख लो, तब तक उसे सुखी मत कहो।" परन्तु देशबन्धु चित्तरञ्जनदासके जीवनके अन्तको भी देख कर हम दावेके साथ यह कह सकते हैं कि वे सुखी सैनिक (Happy warrior) थे।

देशभाषा (सं० स्त्री०) देशीय भाषा, वह भाषा जो किसी देश या प्रान्तमें हो बोली जाती है।

देशभूषण—एक जैन कवि। ये जातिके ओसवाल और सं० ७६५ तक विद्यमान थे।

देशमल्लार—सम्पूर्ण जातीय रागविशेष। इसमें सब स्वर लगते हैं।

देशराज (सं० पु०) आल्हा ऊदलके पिताका नाम। ये राजा परमालके सामन्तोंमें थे।

देशराजचरित्र (सं० क्ली०) गद्यपद्यमयात्मक चम्पूभेद। साहित्यदर्पणमें इस पुस्तकका उल्लेख है।

देशरूप (सं० क्ली०) दिश-कर्मणि घञ्, देशस्य दिश्यमानस्य उचितस्य रूपं। उचित, मुनासिब।

देशसमाख्यवीज (सं० क्ली०) इन्द्र यव।

देशस्थ (सं० त्रि०) देश-स्था-क। १ देशमें अवस्थित, देशमें रहनेवाला। (पु०) २ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंका एक भेद। देशस्थ नाम क्यों पड़ा इसका निर्णय करना कठिन है या तो इस देशमें उत्पन्न होनेके कारण या पर्वतवासी ब्राह्मणोंसे समतलभूमिवासी ब्राह्मणोंको पृथक् पृथक् करनेके कारण देशस्थ नाम पड़ा है। अहमदनगर और पूना जिलेमें देशस्थ ब्राह्मण दो भागोंमें विभक्त हैं—ऋग्वेदीय और यजुर्वेदीय। यहां यजुर्वेदियोंकी दो शाखाएँ हैं, माध्यन्दिन और काण्व। इनमेंसे माध्यन्दिन शाखा ही अधिक देखी जाती है। नीच जातिको ये लोग छूते तक भी नहीं और न उन्हें अपने घरहो चढ़ने देते। छोटेसे बड़े सभी भङ्ग पीते हैं। इसके सिवा और किसी प्रकारको मादक वस्तु व्यवहार नहीं करते। ये लोग बड़े ही आलसी और निकम्मे होते हैं। इनमेंसे कोई तो वैदिक, कोई पौराणिक और कोई गृहस्थ हैं। गृहस्थ लोग नाना प्रकारके काम काज किया करते हैं। जमींदारी, महाजनी, सरकारी, पौरोहित्य आदि सभी कामोंमें इनका अधिकार है। ऋग्वेदीय देशस्थ सुबह शाम आह्निक करते हैं। यजुर्वेदीय देशस्थ केवल मध्य दिन या दो पहरको आह्निक करते हैं, इसीसे इसका दूसरा नाम माध्यन्दिन भी है। ये लोग उच्चश्रेणीके ब्राह्मणोंमें गिने जाते हैं। अन्यान्य ब्राह्मण इन लोगोंको अपेक्षा सामाजिक प्रथामें निकृष्ट हैं। इनमेंसे कोई तो

अद्वैतवादी स्मार्त्त और कोई द्वैतवादी भागवत भी हैं। ये लोग सभी देवदेवीका पूजन करते हैं तथा व्रतउपवासादि भी किया करते है। आलन्दी, इलाहाबाद, काशी, गया, जेजुरी, नासिक, पण्ढरपुर, रामेश्वर और तुलजापुर इनके पवित्र तीर्थ माने जाते हैं। स्त्री लोग घरका काम सम्हालती हैं। इनमें परदेकी रिवाज प्रायः नहींके बराबर है, वे बहुत कुछ स्वाधीन रहती हैं। सन्तानके जन्म लेने पर माताको दश दिन तक अशौच मानना पड़ता है। उमर आनेके पहले ही लड़कियां व्याही जाती है और पुत्रका विवाह बीससे ले कर तीस वर्षके भीतर होता है। मृतका अन्तिमसंस्कार होता, विधवा विवाह नहीं होता, पर बाल्यविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। विधवा सिर मुड़ाये रहती है। सामाजिक गड़बड़ीमें शङ्केश्वरके शङ्कराचार्यको अनुमति ही सर्वश्रेष्ठ है। जो उसकी अवहेला करता, वह जातिच्युत किया जाता है। पहले उन लोगोंके हाथमें बहुत अधिकार थे, पर अभी सामाजिक व्यवहारमें कुछ कम गया है। ऋग्वेदी और यजुर्वेदी देशस्थ एक दूसरेके साथ खाते पीते हैं सही, पर आपसमें विवाह नहीं होता। स्वगोत्रमें भी ये लोग विवाह नहीं करते। अभी देशस्थ बालकगण अंगरेजी स्कूलमें अङ्गरेजी-विद्या पढ़ते है।

सतारा देशस्थ ब्राह्मणोंकी आथर्व नामक एक और शाखा है। वे अधिकांश जिलेके पूर्व भागमें रहते है। यहांकी विवाहिता स्त्रियां भाद्रमासमें शुभोद्देशसे पीला सूता अपने गलेमें पहनती हैं।

शोलापुरके देशस्थ ब्राह्मण बहुत ही अपरिष्कार और अपरिच्छन्न रहते है। अहमदाबादके देशस्थ गृहपालू सभी जन्तुओंका पालन करते है, किन्तु शोलापुरके देशस्थ एक पक्षी तक भी नहीं पालते। इनमेंसे कुछ शाक्त हैं। शाक्तके अतिरिक्त और कोई भी शराब नहीं पीता। पुरुष लोग गलमुच्छा तो नहीं रखते, पर जूड़ा अवश्य बांधते हैं। स्त्रियां बनावटी बालका व्यवहार करती हैं। इनके गृहदेवताके नाम करम्मा और यलम्मा आदि हैं, जो द्राविड़ी देवताके जैसे मालूम पड़ते हैं।

बेलगांवके देशस्थोंमें आपस्तम्ब नामक एक और शाखा देखनेमें आती है। भांजेके साथ लड़कीको व्याहना ये लोग गौरवका विषय समझते है। कहीं कहीं तो मामा भांजीसे विवाह कर लेता है। काण्वशाखाके देशस्थगण पहले बहुत हेय समझे जाते थे, आज कल उन्होंने ही समाजमें उन्नति कर ली है। कृष्णयजुर्वेदी और शुक्लयजुर्वेदी इनमें एक दूसरेके साथ विवाह शादी नहीं होती।

बीजापुरके देशस्थ ब्राह्मण स्मार्त्त, वैष्णव और सोवाश इन तीन भागोंमें विभक्त है। स्मार्त्त और वैष्णव देशस्थमें खानपान चलता है, आपसमें आदानप्रदान भी जारी है। किन्तु वैष्णवदेशस्थ स्मार्त्तदेशस्थको अपनी कन्या नहीं देते। सोवाशदेशस्थ वैष्णव और स्मार्त्त देशस्थकी पक्की रसोई खाते है, पर स्मार्त्त वा वैष्णव देशस्थ उनकी पक्की रसोई नहीं खाते। सोवाश देशस्थकी उत्पत्तिके विषयमें प्रवाद है, कि किसी ब्राह्मणने बागीचा कोड़ते समय एक घड़ा कोयला पाया। उन्होंने समझा कि यह घड़ा पहले सोनेसे भरा था, उनके कर्मके दोषसे वो सोना कोयला हो गया है। पीछे उन्होंने उस घड़ेको दरवाजेके सामने इस ख्यालसे लटका दिया, कि यदि किसीको सुदृष्टि होगी, तो कोयला फिरसे सोना हो जायेगा। एक चमार अपनी लड़कीको साथ लिए उसी राहसे जा रहा था। लड़कीकी दृष्टिसे कोयला सोनेमें पलट गया। इस पर ब्राह्मणने उस चमारकी लड़कीसे शादी कर ली, जिससे वह जाति भ्रष्ट हो गये। बाद उन्होंने १२५ प्रकोष्ठोंमें विभक्त एक घर बनवाया और उसमें अपने १२५ बन्धुओंको छिपके खानेके लिये निमन्त्रण किया। उनमेंसे सब किसीने, 'मैं ही अकेला निमन्त्रित हुआ हूं" ऐसा समझा था।

भोजन कर चुकनेके बाद मुंह धोते समय वे सबके सब एक साथ मिल गये। यह रहस्य हर किसीने जान लिया। पीछे जातिभ्रष्ट हो कर उन्होंने सोवाश नामक एक नवीन विभागकी सृष्टि की।

पहले जिन सब तीर्थस्थानोंकी कथा लिखी गई है, सभी उन्हीं सब तीर्थोंको मानते है। इसके सिवा बादामी, गोकर्ण और श्रीशैल स्मार्त्तोंके तथा द्वारका, मथुरा-

पण्ढरपुर और वङ्कटगिरि वैष्णवोंके प्रिय तीर्थस्थान हैं।

हिन्दूके दश प्रकारके संस्कारोंमें केवल पांचको ही ये सब मानते हैं। दश और ग्यारह वर्षके अन्दर लड़कोंका उपनयन संस्कार होता है। इन लोगोंमें जन्माशौच ग्यारह दिनमें और मृताशौच तेरह दिनमें सम्पन्न होता है।

धारवारमें वैष्णव देशस्थोंका दूसरा नाम माध्व है। इस जिलेके देशस्थगण ग्राम और नगरमें रहते हैं। छोटे छोटे गांवोंमें ये लोग रहना पसन्द नहीं करते।

१२वीं शताब्दीमें हनूमान्‌ने मध्वाचार्य नामसे जन्म ग्रहण किया। उन्होंने मङ्गलूरके उडिपिनगरमें, मध्यतलमें और सुब्रह्मण्यमें तीन मन्दिर निर्माण किये और संन्यासियोंको स्वामी नाम दे कर प्रत्येक मन्दिरके कर्तृत्वमें नियुक्त किया। केवल उडिपिनगरमें आठ मन्दिर स्थापित किये गये थे। प्रति दूसरे वर्ष सूर्यके मकरराशिमें प्रवेश करते समय इन आठ मन्दिरोंके एक एक मनुष्य पर्यायक्रमसे उडूप श्रीकृष्णकी अर्चनामें नियुक्त होता था। मध्वाचार्यके और भी कई एक नाम थे, यथा-श्रीमदाचार्य, पूर्णबोध, सर्वज्ञाचार्य। वे समग्र भारतमें भ्रमण करके जगद्‌गुरु नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके बनाये हुए ३७ संस्कृत ग्रन्थ आज भी वर्त्तमान हैं। अस्सी वर्ष तक धर्मकार्यको परिचालना कर उन्होंने अपने शिष्य पद्मनाभतीर्थके ऊपर कुल भार सौंप माघी शुक्लनवमीमें बदरिकाश्रमकी यात्रा की। लोगोंका विश्वास है, कि वे अब भी जीवित अवस्थामें वहां मौजूद हैं। पद्मनाभके मरने पर नरहरितीर्थ स्वामीके पद पर बैठे। स्वामियोंका क्रम होती है। प्रत्येक स्वामीके मरने पर उनके बन्धु वा अनुचर लोग उनके नाम पर एक एक सम्प्रदायकी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार अठारह सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई है। १२वीं शताब्दीसे लेकर उन्नीसवीं शताब्दीके शेष भाग तक ३५ मनुष्य स्वामीके पद पर अभिषिक्त हुए हैं। इन अठारह सम्प्रदायोंमें आपसमें विवाहकी प्रथा नहीं है। केवल सत्यबोध, राजेन्द्र तीर्थ और वल्लभेन्द्र सम्प्रदायमें एक दूसरेके साथ आदान प्रदान होता है। स्वगोत्रोंमें भी विवाह करना निषेध है। ये लोग एकादशी करते, पान खाते और तमाकू भी पीते हैं। इसके सिवा और किसी प्रकारका मादकद्रव्य काममें नहीं लाते। ये लोग केवल शिखा ही रखते हैं, दाढ़ी नहीं। स्त्री-पुरुषमें भिन्न भिन्न प्रकारका अलङ्कार व्यवहृत होता है। स्त्रियां सावित्रीव्रत करती हैं। गणेशचतुर्दशी, दशहरा, दीवाली, बलिपर्व, मकरसंक्रान्ति, महाशिवरात्रि आदि उत्सव बहुत समारोहसे किये जाते हैं। उपवास ही धर्मका अङ्ग है। पर्व और व्रतके दिन वे प्रायः उपवास किया करते हैं। विधवा और कर्मरत ब्राह्मण एकाहारी होते हैं। तिरुपतिका वेङ्कटरमण, अहोबलका नरसिंह, उडिपिका कृष्ण, काञ्चिका वरदराज, कालहस्तीका कालहस्तीश्वर, रामेश्वरका श्रीराम, श्रीरङ्गका श्रीरङ्गनाथ, तुलजापुरका अम्बाभवानी, गोकर्णका महाबलेश्वर, कोलापुरका महालक्ष्मी आदि अनेक स्थान ही देशस्थोंके पवित्र तीर्थ हैं। इन लोगोंके सोलह संस्कार होते हैं। सन्तानके मरने पर दशदिन तक अशौच रहता है।

आठवें वर्षमें लड़केका उपनयनसंस्कार होता है। अन्यान्य देशस्थोंके जैसा इनमें भी विवाहको वही प्रथा है। विवाहके समय चावलका नैवेद्य सात जगह पूज कर कन्याको उस पर सात बार घुमाते हैं। इसको सप्तपदी कहते हैं। इसके होनेसे ही विवाह समाप्त हो जाता है। अन्यान्य देशस्थोंमें ऐसी प्रथा है, कि स्त्रीके प्रथम रजोदर्शन होनेके सत्तरहवें दिनमें द्वितीय विवाह सम्पन्न होता है, पर माध्व लोगोंमें ऐसी प्रथा नहीं है, उनमें केवल पांच ही दिनमें ऋतुरक्षा होती है तथा इस उत्सवको वे लोग फलशोभन कहते हैं। संन्यासीके सिवा और सभीका दाहकर्म होता है। मृताशौच ग्यारह दिन तक मानते हैं। ब्राह्मणकी मृत्यु होने पर जब तक मृतदेहको दूसरी जगह नहीं ले जाते, तब तक उस जगहके अथवा उस ग्रामके ब्राह्मण जलपान नहीं कर सकते हैं। इन्हें भी यथाविधि श्राद्धादि करना होता है। संन्यासीकी मृत्यु होने पर केवल एक दिन तक अशौच रहता है। अन्यान्य देशस्थोंकी स्त्रियोंमें जैसी स्वाधीनता है, वैसी वैष्णव देशस्थ-स्त्रियोंमें नहीं। विशेष कर युवती स्त्रियोंके साथ बुलाई हुई वा स्वयं आई हुई स्त्रियोंसे बातचीत करनेकी प्रथा नहीं है।

समाजमें जब किसी प्रकारकी गड़बड़ी आ पहुंचती

है, तब उसकी मीमांसा उसी सम्प्रदायसे होती है। अधिक गोलमाल होने पर वे स्वामी (मन्दिरके प्रधान पुरोहित)के पास जाते हैं। स्वामी जिसका दोष पाते, उसे अर्थदण्ड देते हैं। कभी कभी दोषी समाजच्युत भी किया जाता है। किन्तु जिसे अर्थदण्ड होता है, वह फिरसे समाजमें ले लिया जाता है। गत कई एक वर्षों में अंगरेजी शिक्षाके प्रभावसे कितनोंने सामाजिक आचार व्यवहारको परित्याग कर दिया है। यहांके स्मार्त्त-भागवतोंका आचार व्यवहार अन्य जिलोंके भागवत सरीखा है।

देशस्थ ब्राह्मणोंका प्रायः एक सा आचार व्यवहार देखनेमें आता है। पर हां, जिस देशमें जैसी व्यवस्था है उस देशमें वैसी ही है। मुसलमानके स्पर्शमें वे उतना दोष नहीं मानते। जन्मकृत्य, उपनयन, विवाह, मृताशौच सभी इसी देशके ब्राह्मणोंके जैसा है। बङ्गाली ब्राह्मणोंके जैसा उन लोगोंमें भी अनेक साम्प्रदायिक मत हैं। कौन किस सम्प्रदायके हैं, वह उनके ललाटस्थित त्रिपुण्ड्र आदि रेखा देखनेसे ही मालूम हो जाता है। ऋग्वेदी ब्राह्मण वा तो सरकारी नौकरी करते या अपने देशमें खजांची वा मुहर्रिरका काम करते हैं। यजुर्वेदी ब्राह्मण सरकारी नौकरी करनेकी अपेक्षा व्यवसाय करना अधिक पसन्द करते हैं।

मुसलमानोंके समयमें देशस्थ ब्राह्मण कागजात रखनेमें इतने चालाक थे, कि उस कार्यमें देशस्थब्राह्मणके सिवा और कोई नियुक्त नहीं होता था। इतना ही नहीं, बल्कि कागजात भी पारसी भाषाके बदले उन्हीं की भाषामें लिखे जाते थे। बम्बई प्रदेशमें जितनी जातियां रहती हैं उसमेंसे देशस्थ ब्राह्मणकी ही संख्या अधिक है।

देशांकी (हिं० स्त्री०) एक रागिणी। हनुमत्के मतानुसार इसका स्वर ग्राम यों है— ग म प ध नी सा ग, अथवा ग म प ध नो सा रे ग।

देशा—एक गन्धर्व। इन्होंने सोमेश्वरके निकट सङ्गीत विद्या सीखी थी।

देशाका (सं० स्त्री०) रागिणी विशेष। इसका स्वरग्राम यह है— ग म प ध नि सा+

देशाखो (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष। हनुमतके मतसे यह हिंदोलकी दूसरी रागिणी है। यह षाड़व जातिकी है। स्वर गान्धार होता है। गानेका समय वसन्त ऋतुका मध्याह्न है। इसका रूप सुन्दर, चन्द्रके जैसा वदन, क्रोधनस्वभाव, सर्वदा कलहप्रिय तथा वक्षःस्थल धूलियुक्त है।

देशाचार (सं० पु०) देशकी चाल या व्यवहार।

देशाटन (सं० पु०) देशभ्रमण, भिन्न भिन्न देशोंकी यात्रा।

देशान्तर (सं० क्लो०) अन्यो देशः मयूरव्यंसकादिवत् समासः। १ देशभेद, विदेश, परदेश। स्मृतिमें देशान्तरका विषय इस प्रकार लिखा है।

जहांकी बोली परस्पर विभिन्न है अर्थात् जहां स्वरका तारतम्य देखा जाता है तथा जहां बड़ी बड़ी नदी और पहाड़ बीचमें पड़ा है, उसे देशान्तर कहते हैं। नदी और देशके भिन्न भिन्न होने पर यदि वह नजदीक भी रहे, तो भी उसे देशान्तर कहेंगे। अथवा जहां दश दिनोंमें समाचार नहीं पहुंचता है वह भी देशान्तर कहलाते है।

कोई कोई कहते है, कि ६० योजन दूर स्थित देशान्तर कहलाता है। फिर कोई कोई ३० या ४० योजन दूरस्थ स्थानको ही देशान्तर बतलाते हैं।

२ सुमेरु और लङ्काके मध्यरेखा स्वरूप देश और स्वदेशका अन्तर योजन भूगोलमें ध्रुवोंसे हो कर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्व-मान्य रेखासे पूर्व या पश्चिमकी दूरी।

सुमेरु पर्वत और लङ्काकी मध्यगत भूमिके ऊपर हो कर जो रेखा उत्तर दक्षिणकी ओर विस्तीर्ण कल्पित हुई है, उसे मध्य रेखा कहते हैं। उस रेखासे अपना देश जितना योजन दूर रहेगा, उतने योजनको दशसे गुणा कर गुणनफलमें फिर तेरहसे भाग देनेसे जो भागफल होगा, वह पल होगा। वह पल यदि साठसे अधिक हो, तो उसे दण्ड बना कर मध्य रेखाके पूर्वदेशमें जोड़ और मध्य रेखाके पश्चिमदिकमें घटाव करना होगा। जैसे, कलकत्ता देश मध्य रेखासे २०० सौ योजन पूर्वमें है, अतएव इस देशमें देशान्तर २ दण्ड ३४ पल होगा। (सिद्धान्तशिरोमणि)

देशावल—बम्बई प्रदेशवासी नायदुओंके जैसा एक प्रकारकी नीच जाति। ये लोग कई वर्ष पहले बङ्गलूरसे बेलगांवमें आ बसे हैं। तेलगु इनकी भाषा है। वे गाय, बकरे, कुत्ते, मुरगी आदिको पालते हैं। साधारणतः इनका प्रधान भोजन चावल और जो है। कभी कभी ये लोग मांस भी खा लेते हैं। शराब पीनेकी प्रथा इस जातिमें अधिक है। भङ्ग, गांजा आदि एक नशा भी छूटने नहीं पाता। पुरुष शिखा धारण करते और स्त्रियां सिरके दाहिने किनारे जूड़ा बांधती हैं। किन्तु बनावटी बालका व्यवहार इन लोगोंमें नहीं है। ये लोग बहुत मैले कुचैले रहते हैं। जितने देवता हैं सभी इनके उपास्य हैं। लेकिन शिवजीके प्रति इनकी विशेष भक्ति रहती है। देशस्थ ब्राह्मण ही इनके पुरोहित होते हैं। हर काममें पुरोहितकी जरूरत होती है। रोटी और बिस्कुट तैयार कर उसीसे अपना गुजारा करते हैं। छोटे छोटे लड़के स्कूलमें पढ़ने जाते हैं। इनके गुरु नहीं होते, तीर्थयात्रा भी ये लोग नहीं करते हैं। मृतव्यक्तिको ये लोग जलाते नहीं, गाड़ते हैं।

देशिक (सं॰ पु॰) देशे प्रसितः देश-ठक्। १ पथिक, बटोही। देश उपदेशः तत्र प्रसितः ठक्। २ गुरु प्रभृति उपदेष्टा।

देशित (सं॰ त्रि॰) दिश-णिच्-कर्मणि क्त। उपदेशप्रेरित, वह जिसका उपदेश लिया गया हो।

देशिन् (सं॰ त्रि॰) दिशतीति दिश-आदेशे णिनि। देशक, आदेशकारी।

देशिनी (सं॰ स्त्री॰) देशिन् स्त्रियां ङीष्। १ अंगुष्ठ और मध्यमाके बीचकी अंगुलि, तर्जनी अंगुली। २ सूची।

देशी (सं॰ स्त्री॰) १ रागिणीविशेष, हनुमत्‌के मतसे दीपकरागकी भार्या। पञ्चम वर्जित, ऋषभ, ग्रह अंश और न्यास। ग्रीष्मऋतुका मध्याह्नकाल इसके प्रकृत गानका समय है। सोमेश्वरके मतसे यह वसन्तरागकी पत्नी है। मतान्तरसे धैवत वर्जित है। (संगीतसारसं॰) यह मधुमाधव, सारङ्ग, पहाड़ी वा टोरी और खट्‌योगसे उत्पन्न हुई है। संपूर्ण म वादी है—

प सम्वादी ऋ̊ नि̊। (सगीततरंग।)

ऋ ॰ म प ध नि स :: रागविशेष।

ऋ ग म ॰ ध नि स :: मीर्जाखाँ।

मूर्त्ति-"निद्रालसं सा कपटेन कान्तं विबोधयन्ती सुरतोत्सुकेव। गौरी मनोज्ञा शुकपुच्छवस्त्रा ख्याता च देशी रसपूर्णचित्ता।"

(संगीतसारसं॰)

यह सुरतोत्सुकाकी नाईं निद्रालस कान्तको छल पूर्वक जगा रही हैं तथा गौरी, मनोज्ञा, शुभ्र वस्त्रधारिणी और चित्तरसमें परिपूर्णा हैं।

स्वरग्राम—ऋ ग म ध नि स ऋ ::

अन्यत्र मूर्त्तिभेद—

"गजपतिगतिवेणी लोचनेन्दीवराक्षी
पृथुलतरनितम्बालम्बिवेणीभुजंगा।
तनुतरतनुवल्ली वीतकौशुम्भरागा
इयमुदयति देशी रागिणी चारुहासा॥"

(संगीत सारसंग्रह)

२ सङ्गीतभेद।

गीत, वाद्य और नर्त्तन इन तीनोंका नाम सङ्गीत है। यह सङ्गीत मार्ग और देशकी भेदसे दो प्रकारका है। द्रुहिणने जिसका अनुसन्धान किया था, भरतसे जो प्रयुक्त हुआ था और महादेवके सामने जो गाया गया था, उसी रीति द्वारा जो देश देशमें लोकानुरञ्जनके लिये गाया जाता है, उसे देशी कहते हैं। (संगीतदर्पण)

देशीय (सं॰ त्रि॰) देशे भवः गहादित्वात् छ। १ देशज, देशका। २ स्वदेशका। ३ अपने देशमें उत्पन्न या बना हुआ।

देशीयवराड़ी (सं॰ पु॰) रागिणीभेद। गीतगोविन्दमें इसका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—"देशीय वराड़ी रूपकतालेन गीयते।" (गीतगोविन्द)

देश्य (सं॰ क्ली॰) दिश्यते इति दिश कर्मणि ण्यत्। १ पूर्वपक्ष। (त्रि॰) २ देशाढ्य। देशे भवः इति दिगादिभ्यो यत्। दिश-यत्। ३ देशभव, देशका।

देष्टृ (सं॰ त्रि॰) दिश-तृच्। दर्शक।

देष्ट्र (सं॰ पु॰) १ लक्ष्य, आज्ञा। २ शपथ, कसम।

(वैदिक)

देष्ठ ( सं॰ वि॰ ) अतिशयेन दाता दातृ-अतिशायने इष्ठन् तृणोलोपे गुणः। अतिशय दाता, बहुत दानी।

देष्णु ( सं॰ वि॰ ) दा-इष्णु च् गुणः। (गादा-याभिष्णुच्। उण् ३।१६) दाता, देनेवाला।

देस ( हिं॰ पु॰ ) देश देखो।

देसकार ( हिं॰ पु॰ ) देशकार देखो।

देसवाल ( हिं॰ वि॰ ) १ स्वदेशका। ( पु॰ ) २ एक प्रकारका पटसन।

देसवाली—गुजराती ब्राह्मणोंका एकभेद। खेड़ा जिलेमें इन ब्राह्मणोंकी बस्ती विशेष है। प्रदेशोंमें एक देशके लोग अपने ही देशके लोगोंको भी देशवाली कहते कहाते सुने जाते हैं।

देसाई-महाराष्ट्र ब्राह्मण समुदायान्तर्गत देशस्थ ब्राह्मणोंमें लौकिक श्रेणीके ब्राह्मणोंका एक कुल नाम।

देह ( सं॰ पु॰ क्ली॰ ) देग्धि प्रतिदिनं दिह वृद्धौ घञ्। १ शरीर। हिन्दीमें इस शब्दको स्त्रीलिङ्ग माना है। प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त होती है, इसीसे देह नाम पड़ा है। बाल्य, कौमार, यौवन और वार्द्धक्य इत्यादिमें देह परिणाम प्राप्त होता है, इसीसे देहका नाम शरीर भी है। देह प्रतिक्षण ही परिणत होती है। कभी तो इसकी वृद्धि होती और कभी क्षय होता है। यह देह स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारकी है अर्थात् स्थूल देह, सूक्ष्मदेह और कारणदेह। न्यायके मतसे पार्थिवदेह दो प्रकारकी है, योनिज और अयोनिज। फिर योनिज देहके भी दो भेद हैं, जरायुज और अण्डज। शुक्रशोणित सन्निपातके लिये योनिज है, इसके लिये मनुष्यादिका शरीर प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्वेदज और उद्भिज्जादि अयोनिज है। एक और प्रकारका शरीर है, उसे भी अयोनिज कहते हैं। यह शरीर शुक्रशोणितज-सन्निपात छोड़कर धर्मविशेषसे बना हुआ परमाणुप्रभव है, इस प्रकारके शरीर नारदादिके हैं। नारकियोंके शरीर भी अयोनिज है, जलीय देह भी अयोनिज है, इस प्रकारकी देह वरुणलोकमें पाई जाती है। तैजस और तेजोमय देह अयोनिज है, जो सूर्यलोकमें प्रसिद्ध है। वायवीय देह भी अयोनिज है, इस प्रकारको देह पिशाचोंकी है। विशेष विवरण शरीर शब्दमें देखो।

सावित्रीने यमसे पूछा था, 'प्रभो! देहका जब अवसान हो जाता है, तब बन्धुबान्धव उसे भस्मसात् कर घर लौट आते हैं। भस्मसात् हो जाने पर देहमें शुभाशुभ भोग हुआ करता है, कोई देह तो स्वर्गमें अनुपम सुख भोग करती है और कोई नरकमें अतुलनीय यन्त्रणा। अब बतलाइये कि देह हो किस प्रकारको है तथा देहधारी हो अधिक काल तक क्लेश भोग कर किस प्रकार विनष्ट हो जाता है?" इस पर यमने कहा था, "सावित्री। देहका विवरण कहते हैं, सुनो! पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और जल यही पांच देहधारियोंके देहबीज हैं। विधाताकी सृष्टिके ये ही पांच कारण हैं। इन्हीं पञ्चभूतोंसे जो देह बनाई गई है, वह कृत्रिम और नश्वर है। भस्मसात् होनेका यही कारण है। जब यह पाञ्चभौतिक देह भस्मसात् हो जाती है, तब वृद्धाङ्गुष्ठ प्रमाण जीव सूक्ष्म देह धारण करता है। इस सूक्ष्म देहको न तो अग्नि भस्म कर सकती, न यह जलमें हो नष्ट होती और न शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्णकण्टक, तप्तद्रव्य, तप्तलौह, तप्तपाषाण आदि हो इसका कुछ अनिष्ट कर सकता है। यही सूक्ष्मदेह शुभाशुभ फल भोगती है अर्थात् स्वर्गनरकादिको पाती है। परिदृश्यमान इस स्थूल देहमें सुख दुःखादिका भोग प्रत्यक्षसिद्ध है। फिर सूक्ष्मदेहमें स्वर्ग नरकादिका विषय शास्त्र वाक्यसे सिद्धान्त हुआ है।" (ब्रह्मवैवर्तपु॰)

सांख्यप्रभृतिदर्शनके मतसे देह तीन प्रकारको है, स्थूल, सूक्ष्म और भूत। स्थूलदेहको हमलोग माता और पितासे प्राप्त करते हैं। इसीसे इसको मातापितृज शरीर भी कहते हैं। इसका नाम षाट्कौशिक शरीर है, क्योंकि यह षट्-कोश द्वारा उत्पन्न हुआ है। मातासे हम लोग लोम, शोणित और मांस तथा पितासे स्नायु, अस्थि और मज्जा प्राप्त करते हैं। इन्हीं षट्कोशोंसे स्थूल देह बनी है। अतः इस स्थूलदेहका नाम षाट्कौशिक शरीर भी है। मातापितासे षाट्कौशिक शरीरको पा कर भोजनादि द्वारा इसकी पुष्टि करते हैं। जो सब वस्तुएं खाई जाती हैं उन्हींसे यह स्थूल देह परिपुष्ट होती है। खाये हुए पदार्थका असारांश मल-मूत्रादि होता है और सारांशसे रस, रससे शोणित, शोणितसे मांस, मांससे मेद, मेदसे

अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्रोत्पत्ति होती है। इसी शुक्रसे गर्भ होता है। खाद्यद्रव्य ही एक मात्र शरीरका परिपोषक है। अच्छा भोजन करनेसे देह सबल और खराब भोजन करनेसे ही देह क्षीण होती है। यह संसार त्रिगुणमय है, अतएव इस संसारमें जितने पदार्थ हैं सभी त्रिगुणमय हैं। इसीसे जो सब वस्तुएँ खायी जाती हैं, उनमें सत्त्व, रज, वा तमः इनमेंसे जिस गुणकी अधिकता जिस खाद्य वस्तुमें रहती है वही वस्तु प्रति दिन खानेसे देह वा प्रकृति उसीकी तरह होती है। अर्थात् सात्त्विक भोजन करनेसे सात्त्विक प्रकृति, राजसिक भोजन करनेसे राजसिक प्रकृति वा तामसिक भोजन करनेसे तामसिक प्रकृति होती है। देह भी तदनुरूप होती है। पुरुष स्थूलभूतके साथ षाट्‌कौशिक देह परिग्रह करके अपने अपने अदृष्टानुसार सुख दुःख पाता है। देहके विना भोग नहीं हो सकता। यह षाट्‌कौशिक शरीर रसान्त, भस्मान्त वा विष्ठान्तके रूपमें परिणत होता है, अर्थात् इस देहके अवसान हो जानेसे जब बन्धु-बान्धव उसे भस्मसात् करते हैं तब वह भस्मान्त वा जब मट्टीमें गाड़ते हैं तब रसान्त वा जब कोई प्राणी इस जीवदेहको खा लेता है, तब वह विष्ठान्तके रूपमें परिणत होती है। इस स्थूलदेहके अभाव हो जानेसे एक दूसरा शरीर बनता है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। प्रत्येक पुरुष एक न एक शरीर अवश्य अवलम्बन करता है। जिस प्रकार चित्र आश्रयके विना ठहर नहीं सकता उसी प्रकार पुरुष भी जब तक आश्रयरूप देहको अवलम्बन नहीं करता, तब तक वह ठहर नहीं सकता है। जिस तरह जोंक एक दूसरी घासको पकड़ नहीं लेती तब तक पहली घासको छोड़ती नहीं है, उसी तरह पुरुष एक देहका आश्रय किये विना अपनी पूर्व देहका परित्याग नहीं करता है। देहके अवसान होनेके पहले एक भावनामय शरीर उत्पन्न होता है, अर्थात् मृत्युके सभी संस्कार आ कर उपस्थित होते हैं और उस समय सैकड़ों शरीर आ पहुँचते हैं। उस समय अपने अपने कर्मानुरूप एक शरीर परिग्रह करके पुरुष पूर्व देहको परित्याग करता है। यह सूक्ष्म शरीर प्रलयकाल तक भी स्थायी रहता है। यह जल, अग्नि आदि किसीसे भी नष्ट नहीं होता। प्रकृतिने आदि सृष्टि कालमें प्रत्येक पुरुषके लिये इस सूक्ष्म शरीरकी एक एक सृष्टि की थी। जब तक उसे पुरुषके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तब तक यह शरीर पुरुषको नहीं छोड़ता है। बुद्धितत्त्व, अहंकार, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन और पञ्चतन्मात्र इन सबकी समष्टिका नाम सूक्ष्म शरीर है। यह सूक्ष्म शरीर धर्म और अधर्म, ज्ञान और अज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्ययुक्त रहता है। यह सूक्ष्म शरीर भूत शरीरके साथ षाट्‌कौशिक शरीरमें आश्रय ले कर बार बार जन्मग्रहण करता है और मृत्यु मुखमें पतित होता है। सभी भूतशरीर पञ्चमहाभूतोंमें लीन होते हैं और षाट्‌कौशिक शरीर पूर्वोक्त रसान्तादि रूपमें परिणत होता है। किन्तु यह सूक्ष्म शरीर किसी रूपमें परिणत नहीं होता। नाट्यरूप रंगभूमिमें जिस प्रकार नट कभी तो राम और कभी रावणका रूप धारण कर अभिनय करता है, उसी प्रकार यह सूक्ष्म शरीर भी अपने अपने अदृष्टानुसार कभी देवता, कभी पशु और कभी वनस्पति आदि रूपोंमें परिणत होता है। केवल स्थूल शरीरका ही पुनः पुनः त्याग और ग्रहण हुआ करता है। किन्तु जब तक महाप्रलय न होगा वा प्रकृति पुरुषका साक्षात्कार न होगा तब तक यह सूक्ष्म शरीर मौजूद रहेगा। इसका ध्वंस वा परिवर्त्तन कुछ भी नहीं होगा। परिवर्त्तन इसी षाट्‌कौशिक शरीरमें हुआ करता है, भूत शरीरमें कुछ भी नहीं होता। यह महाभूतोंमें निविष्ट हो कर रहता है और इन्हें लिङ्ग भी कह सकते हैं। क्योंकि ये समय पा कर लय प्राप्त होते हैं। जब प्रकृतिपुरुषका विवेक साक्षात्कार होता है, तब सूक्ष्म शरीर प्रकृतिमें; पञ्चतन्मात्र और एकादश इन्द्रिय अहङ्कारतत्त्वमें; अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है, उस समय सूक्ष्म शरीरादि कुछ भी नहीं रहता।

जड़बुद्धि नास्तिकोंका कहना है, कि देहके अतिरिक्त और कोई पृथक् आत्मा नहीं है। जिस तरह चूना और खैरके मिलनेसे स्वभावतः रक्तवर्णका संचार होता है उसी तरह पञ्चभूतोंकी समागमरूप देहके गठित होनेसे

ही भौतिक स्वभाव वशतः चैतन्यका प्रकाश हुआ करता है। उनका मत है, कि जब तक स्थूलदेहका विकाश है तभी आत्माका विकाश रहेगा, देहके विनष्ट होनेसे ही आत्मा नष्ट हो जायेगी। जीवात्मा देखो। देहके छः विकार हैं-जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, परिणाम, अपचय और विनाश। किन्तु जो आत्मा है वह षड़भाव विकाररहित है। अदृष्ट देह और इन्द्रियके साथ जो सम्बन्ध होता है उसीका नाम जन्म है। उत्पत्तिकालसे ले कर मरणकाल तक जो सामयिक विद्यमानता है वह उसका अस्तित्व है। देह ही वृद्धि प्राप्त होती है, परिणत होती है, क्षीण होती है और अन्तमें विनष्ट होती है। ये षड़भाव विकार देहमें ही देखे जाते हैं। इस स्थूलदेह वा शरीरको अन्नमय कोष, सूक्ष्मदेह प्राणमय कोष और कारणदेह मनोमय कोष जानना चाहिये। वेदान्तदर्शनके मतानुसार त्रिवृत्कृत अर्थात् पञ्चीकृत भूत ही देहका उत्पादक है। देह त्र्यात्मक है अर्थात् भूतत्रयका परिणाम है, क्योंकि देहमें तेज, जल और पृथ्वी इन तीनोंके ही काम देखे जाते हैं। त्र्यात्मकताका अन्य निदर्शन त्रिधातु अर्थात् वायु, पित्त और श्लेष्मा है। इन्हीं तीनोंसे देह जकड़ी हुई है। अतः विना भूतान्तरके योगसे केवल जलसे देह नहीं हो सकती। यदि देह केवल जलज होती, तो इसमें वायव्य और तैजस कार्य नहीं रहता। इत्यादि कारणोंसे जाना जाता है, कि त्रिवृत्कृत अर्थात् पञ्चीकृत भूत ही देहका उत्पादक है। शरीर देखो। २ ज्योतिषोक्त लग्न, ज्योतिषमें एक लग्नका नाम। (पु०) ३ दिह भाव घञ्। ३ लेखन। ४ शरीरका कोई अङ्ग। ५ जीवन, जिंदगी। ६ विग्रह, मूर्त्ति, चित्र।

देह (फा० पु०) ग्राम, गाँव, खेड़ा, मौजा।

देहकर्त्तृ (सं० त्रि०) देहं करोति कृ-तृच्। १ देहकारक पृथ्वी प्रभृति भूत समुदाय। २ ईश्वर। ३ सूर्य।

देहकान (फा० पु०) १ कृषक, किसान। २ गवार।

देहकानी (फा० वि०) ग्रामीण, गंवार।

देहकृत् (सं० त्रि०) देहं करोति कृ क्विप्। १ देहकारक पृथिव्यादि भूत। २ परमेश्वर।

देहकोष (सं० पु०) देहस्य कोष इव आवरकत्वात्। १ देहावरक, पक्षियोंके डैने। २ त्वक्, चमड़ा।

देहक्षय (सं० पु०) देहस्य क्षयो यस्मात्। १ रोग। रोग होनेसे शरीर क्षय हो जाता है, इसीसे रोगका नाम देहक्षय पड़ा है। देहस्य क्षयः ६-तत्। २ देहका नाश।

देहज (सं० पु०) देहाज्जायते जन ड। १ तनुज, पुत्र, बेटा। (स्त्री०) २ पुत्री, लड़की, बेटी। (त्रि०) ३ देहजातमात्र, जो शरीरसे उत्पन्न हो।

देहत्याग (सं० पु०) देहस्य त्यागः ६-तत्। प्राणनाश, मृत्यु। मनुने लिखा है, कि पुरस्कारकी प्रत्याशा न करके जो गो, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इनमेंसे किसी एकको विपद्से बचानेमें अपना प्राण दे दे वह यदि नीचसे नीच जातिका भी क्यों न हो तो भी सिद्धिलाभ कर सकता है।

देहद (सं० पु०) देहं दायति शोधयति, देहं देहपुष्टिं ददाति रसायनेन वा दै शोधने दा दाने वा क। १ पारद, पारा। यह धातु देहका परिपोषण करती तथा इसे मजबूत बनाये रखती है। २ देहदाता।

देहदुर्गन्धता (सं० स्त्री०) देहस्य दुर्गन्धता ६-तत्। १ शरीरको दौर्गन्ध्य, शरीरकी बुरी महक। २ शरीरदौर्गन्ध्यनाशक औषध, एक प्रकारकी दवा जिससे शरीरकी दुर्गन्ध जाती रहती है।

देहधारक (सं० क्ली०) देहं धारयति धारि-ण्वुल्, (ण्वुल्तृचौ। पा ३।१।१३३) १ अस्थि, हड्डी, हाड़। २ आहार, भोजन। (त्रि०) ३ देहधारी, शरीरको धारण करनेवाला।

देहधारण (सं० क्ली०) देहस्य धारणं ६-तत्। प्राणधारण, शरीररक्षा।

देहधारी (सं० त्रि०) देहं धारयति धारि-णिनि। शरीरी, शरीरको धारण करनेवाला।

देहधि (सं० पु०) देहो धीयतेऽस्मिन् देह-धा आधारे कि। देहाधार, पक्षियोंका पंख।

देहध्वज (सं० पु०) देहे धर्जति सञ्चरति ध्वज क्विप्। वायु, हवा।

देहपर्याप्ति (सं० स्त्री०) देहस्य पर्याप्तिः। देहोत्पत्ति। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रादि धातुकी जो उत्पत्ति होती है, उसे देहपर्याप्ति कहते हैं।

देहपात (सं० पु०) मृत्यु, मौत।

देहभाज् (सं॰ त्रि॰) देहं भजति भज-ण्वि। देही, जीव।

देहभुज् (सं॰ त्रि॰) देहैः भुङ्क्ते कर्मफलानि भुज-क्विन्। १ देहाभिमानी जीव। देहं भुङ्क्ते भोजयति कर्मसाक्षित्वात् भुज-क्विन्। २ सूर्य।

देहभृत् (सं॰ पु॰) देहं बिभर्त्ति स्वकर्मानुसारेण भृ-क्विप्, तुगागमश्च। १ जीव, अपने अपने कर्मानुसार देहाधिष्ठाता कर्मात्माजीव। २ विवेकज्ञानशून्य अविद्यायुक्त कर्तृत्वाभिमानी जीव। मैं देवता हूं, मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं गृहस्थ हूं इत्यादि अभिमानयुक्त जीवको देहभृत् कहते हैं। यह जीव तीन प्रकारका है। जो रागादि दोषकी प्रबलता वश काम्य निषिद्ध प्रभृति यथेष्ट कर्मोंका आचरण करते, वे प्रथम श्रेणीके हैं। फिर जो पूर्व जन्मकी सुकृति वश रागादि दोष क्षीण होने पर निषिद्ध और काम्य कर्मका परित्याग करके नित्य और नैमित्तिक कर्मफलाभिसन्धिरहित हो कर कार्यानुष्ठान करते, इस तरहके गौण संन्यासी द्वितीय श्रेणीके हैं। पुनः जिनके नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान करके चित्तकी मलिनता दूर हुई है और जो सब कार्मोंको विधिपूर्वक परित्याग कर ब्रह्मनिष्ठ गुरुका अनुसरण करते हैं, वे तृतीय श्रेणीके हैं।

देहम्भर (सं॰ त्रि॰) देहं बिभर्त्ति भृ-वा॰ खच्, मुम् च। देहपोषक, अपने ही शरीरका पोषण करनेवाला।

देहयात्रा (सं॰ स्त्री॰) देहस्य यात्रा लोकान्तरगमनं। १ यमपुरीगमन, मृत्यु, मौत। देहाय देहरक्षणाय वा यात्रा उद्यमादिः। २ भोजन। ३ भरण पोषण।

देहर (हिं॰ स्त्री॰) नदीके किनारेकी नीची भूमि।

देहरा (सं॰ पु॰) देवमन्दिर, देवालय।

देहरादून—१ युक्तप्रदेशके मीरट विभागका एक जिला। यह अक्षा॰ २९° ५७' से ३१° २' उ॰ और देशा॰ ७७° ३५' से ७८° १८' पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण १२०९ वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें टेहरी राज्य, दक्षिण-पूर्वमें गढ़वाल जिला, उत्तरपश्चिममें सिरमूर, रवैन, तरोच और पञ्जाबका जब्बलपुर राज्य तथा दक्षिण-पश्चिममें साहरानपुर जिला है। हिमालय और सिवालिक पहाड़के रहनेके कारण जिलेका अधिकांश ढालवां है। यमुना और गङ्गा यहां बहुत वेगसे बहती हैं, इसीसे इसका किनारा बहुत गहरा हो गया है।

यहांके सिवालिक पहाड़ पर साल लकड़ी बहुत मिलती है। जंगलमें बाघ, चीता, भालू, हरिण और तरह तरहके बन्दर पाये जाते हैं। जिले भरमें वार्षिक वृष्टिपात ८५ इञ्च होता है।

इतिहास। देहरादून महादेवका आवास स्थान केदारखण्डका एक अंश है। रावणवध-जनित पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये राम और लक्ष्मणने यहां आ कर पूजन आदि किये थे। महाप्रस्थान जाते समय पाण्डव लोग भी यहां आये थे। नागवंशीय वामनने नागाग्रध पर्वत पर कुछ काल तक राज्य किया। हरिपुरके निकटस्थ विख्यात 'कालसी' शिलाके ऊपर अशोककी एक लिपि उत्कीर्ण है, जिससे जाना जाता है कि यही देहरादून एक समय भारत और चीन साम्राज्यका सीमा निर्देशक था। युएन-चुवंग जब भारतवर्षमें आये थे, तब उन्होंने यहां कोई नगर ही नहीं देखा। कहते हैं, कि ग्यारहवीं शताब्दीमें जब बञ्जाराका एक दल इस राह हो कर जा रहा था, तब इस स्थानकी शोभासे मुग्ध हो उन्होंने इस वसतिशून्य तथा लोकसमागमशून्य स्थानमें अपना चिर वासस्थान निरूपित किया। सतरहवीं शताब्दीके पहलेका इसका कोई यथार्थ इतिहास नहीं पाया जाता है। उस समय देहरादून गढ़वाल राज्यके अधीन था। सिखगुरु रामराय पञ्जाबसे भगाये जाने पर सम्राट् औरङ्गजेबसे प्रशंसापत्र लेकर गढ़वाल राजाके यहां गये। रामराय देखो। राजा फतेशाने रामरायको गुरुद्वारमें एक मन्दिर बनवा दिया और उसके खर्चके लिये कुछ सम्पत्ति भी दे दी। फतेशाके मरने पर उनके नाबालिग पौत्र प्रताप शा १६९९ ई॰में सिंहासन पर बैठे। राज्यकी दुर्दशा देख कर साहरानपुरके शासनकर्त्ता नाजीब-उद्दौलाने राजद्वार अपना लिया। उनके समयमें गुरुद्वार और भी बढ़ चढ़ गया। नाजीवके मरने पर देहरादूनको अवस्था बहुत शोचनीय हो गई। सीमान्तके जातिसमूहके क्रमागत आक्रमणसे देशकी दशा और भी गिर गई। इसी साल १८०३ ई॰में गोरखाजातिने देहरादून पर आक्रमण किया। राजा पर्युमान शा श्रीनगरसे दून और फिर वहांसे साहरानपुरको भाग गये। गोरखा लोगोंने देहरादून अच्छी

तरह जीत लिया। उनके शासन-कालमें गुलामी प्रथा आरम्भ हुई जिससे देशको दशा पहलेसे भी अधिक शोचनीय हो गई।

गोरखा लोगोंके व्यवहारसे उकता कर १८१४ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने उनके विरुद्ध लडाई ठान दी और देहरादून सहज हीमें अधिकार कर लिया। क्रमशः विशेष क्षतिग्रस्त होने पर भी अंगरेज गवर्मेण्टने कलिङ्गादुर्ग हस्तगत किया। १८१५ ई०को देहरादूनमें पूर्णरूपसे अंगरेजोंका शासन शुरू हुआ।

इस जिलेमें ६ शहर और ४१६ ग्राम लगते है। लोक-संख्या प्रायः १७८१९५ है। जिनमेंसे सैकड़े ८३ हिन्दू, १४ मुसलमान और शेषमें अन्यान्य जाति है। यहांको प्रधान उपज धान, तिल, गेहूं, जौ, ज्वार, जुन्हरो आदि है। यहांसे टिम्बर, बांध, चूना, कोयले, धान और चाय-की रफतनी और दूसरे दूसरे देशोंसे कपड़े, कम्बल, नमक, गुड़, अनाज, तमाखू और मसालेकी आमदनी होती है। सारा जिला देहरा और चकराता इन दो तहसीलोंमें विभक्त है।

जिलेके प्रधान शासनकर्त्ताको सुपरिंटेण्डेण्ट कहते हैं। जो दो सरकारी सुपरिंटेण्डेण्टों द्वारा विचार कार्य करते है। देहरा और चकराता हरएक तहसीलमें एक एक तहसीलदार है। चकरातेमें कनटोन्मेण्ट मजिष्ट्रेट भी है जिन्हें जजको क्षमता है और सामान्य सामान्य अपराधोंका विचार करते है। यहां ३८ स्कूल, १ जेल और ११ अस्पताल है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ५७´से ३०° ३२´ उ० और देशा० ७७° ३५´से ७८° १८´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७३१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १२७०८४ है। यह तहसील दो परगनोंमें विभक्त है। इसमें चार शहर और ३७७ ग्राम लगते हैं। यहा चायके १५ बड़े बड़े उद्यान हैं।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३०° १९´ उ० और देशा० ७८° २´ पू० समुद्रपृष्ठसे २३०० फुट ऊंचेमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २८०९५ है जिनमेंसे १८२४६ हिन्दू, ८०४७ मुसलमान, ११०० ईसाई और कुछ यूरोपीय है।



यह शहर १८वीं शताब्दीमें सम्प्रदायके गुरु रामरायसे स्थापित हुआ है। १६९९ ई०का बना हुआ गुरुका मन्दिर आज भी विद्यमान है जिसमें गुरुकी शय्या अच्छी तरह रक्षित है।

१८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरको आय तीस हजार रुपयेसे अधिककी है। यहा कुल १३ स्कूल है।

देहलक्षण (सं० क्लो०) देहस्य लक्षणं यत्र। १ सामुद्रिक शास्त्र। देहस्य लक्षणं। २ शरीरके ऊपरका चिह्न, तिल, मसा।

देहला (सं० स्त्री०) देहं लाति देहस्य पुष्टिं ददाति देह-ला-क टाप्। मद्य, शराब।

देहलि (सं० स्त्री०) दिह-भावे घञ्। देहो-लेपस्तं लाति गृह्णातीति देह-ला-बाहुलकात् की। देहली देखो।

देहली (सं० स्त्री०) देहलि गौरादित्वात् ङीप्। १ द्वार-पिण्डिका, द्वारको चौखटको वह लकड़ी जो नीचे होती है, दहलीज।

देहली—दिल्ली देखो।

देहलीदीपक (सं० पु०) १ वह दीपक जो देहली पर रखा हुआ रहता है और भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है। २ एक अर्थालङ्कार इसमें किसी एक मध्यस्थ शब्दका अर्थ दोनों ओर लगाया जाता है।

देहवन्त (हिं० वि०) १ शरीर, जिसके देह हो। (पु०) २ शरीरधारी व्यक्ति, वह जो शरीरवान् हो।

देहवत् (सं० त्रि०) देह-अस्त्यर्थं मतुप् मस्य वः। देहात्मा-भिमानी जीव।

देहवान् (सं० त्रि०) १ शरीरधारी। (पु०) २ शरीरधारी व्यक्ति, देही। ३ सजीव प्राणी।

देहवायु (सं० पु०) देहस्थो वायुः। देहस्थित वायु, प्राणादि वायु पांच हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

देहशङ्कु (सं० पु०) प्रस्तर, स्तम्भ, पत्थरका खंभा।

देहसञ्चारिणी (सं० स्त्री०) दुहिता, कन्या, लड़की।

देहसाम्य (सं० क्लो०) देहानां साम्यं। १ अङ्गसमूहका समत्व, शरीरकी समता।

देहसार (सं० पु०) देहस्य सारः ६-तत्। मज्जा, धातु।

देहात (फा० स्त्री०) ग्राम, गांव।

देहाती ( फा० वि० ) १ ग्रामीण, गाँवमें रहनेवाला। २ ग्रामसम्बन्धी, गाँवका। ३ गवाँर।

देहातीत ( सं० पु० ) देहं देहाध्यासं अतीतः। देहाभिमानशून्य विद्वान्, वह विद्वान् जिसे शरीरको ममता न हो।

देहात्मवादी ( सं० पु० ) देहं आत्मानं वदतीति वद णिनि। चार्वाक, वह जो शरीरको ही आत्मा माने।

देहात्मप्रत्यय ( सं० पु० ) देहस्य आत्मतया प्रत्ययः। देहमें आत्मत्वाभिमान, शरीर ही आत्मा है ऐसा अभिमान।

देहाध्यास ( सं० पु० ) देहस्य तद्धर्मस्य वा आत्मतया तद्धर्मतया वा अध्यासः भ्रमः। देहधर्मको ही आत्मा समझनेका भ्रम।

देहान्त ( सं० पु० ) मृत्यु, मौत।

देहान्तर ( सं० पु० ) देहात् अन्तरः। देहान्तरप्राप्ति, मृत्यु।

देहावरण ( सं० पु० ) शरीरका आच्छादन, पक्षियोंका पंख।

देहिका ( सं० स्त्री० ) देग्धोति दिह-वृद्धौ ण्वुल्, टापि अत इत्वं। कीटविशेष एक कीड़ेका नाम। इसका पर्याय—वाट, उपादिक, उपजिह्विका, उत्पादिका, उद्देहिका और दिवी है।

देहिन् ( सं० पु० ) देहाः सर्वे भूतभविष्यद्वर्त्तमाना जगन्मण्डलवर्त्तिनोऽस्य सन्तीति इनि। शरीर, देहधारी, देहवादात्मा, व्यासमम्मत जीव, देहाधिष्ठाता जीव, आत्मा। प्रकृति पुरुषका स्वरूप जाननेके लिये उसके समीप नाना प्रकारके रूपोंमें उपस्थित होती है वही जीवका संसार है। जब उसके स्वरूपका ज्ञान हो जाता है और प्रकृतिके साथ उसे साक्षात् नहीं होती, तब शरीरादि कुछ भी नहीं रहता है। यह जीव बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, स्पर्श, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, भावना, धर्म और अधर्म इन चौदह गुणोंसे युक्त रहता है। यही इन्द्रियादिका अधिष्ठाता है, पुण्यपापादिका आश्रय है और प्रहत्यादिके द्वारा अनुमेय है। (भाषापरि०) जीवात्मा देखो। देहमें चैतन्यादि कुछ भी नहीं है, किन्तु आत्मामें है। देहाधिष्ठाता जीव देहका आश्रय करके सुख दुःख आदिका भोग करता है। देहमें यदि चैतन्य रहता तो मृत शरीरमें इसका व्यभिचार देखा नहीं जाता। जो कुछ हो देही अर्थात् देहाधिष्ठात्री जीव ही देही कहलाता है।

> "देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
> तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥"
>
> (गीता २।३०)

देही नित्य अवध्य है। सभी देहोंमें एक नित्य अवध्य आत्मा रहती है। जिस तरह घटके फूट जाने पर घटाकाशका नाश नहीं होता, उसी तरह ब्रह्मासे ले कर पिपीलिका तक कोई देह क्यों न विनष्ट हो जाय, पर उससे सूक्ष्म शरीर वा आत्माका विनाश नहीं होता।

त्रिकालमें और त्रिलोकमें जितने प्रकारकी देह सम्भूत होती हैं, जो तत्तावत् देह धारण करते हैं वे ही देही हैं। आत्मा विभुके रूपमें सभी देहोंमें विराजमान है। सिर्फ एक आत्मा ही मैं बालक हूं, मैं युवा हूं, मैं वृद्ध हूं इत्यादि तीन अवस्थाओंका अनुभव करती है। देह विभावापन्न है सही, लेकिन जो आत्मा है वह बालककालमें जिस प्रकार थी यौवनकालमें वह उसी प्रकार है तथा वृद्धा अवस्थामें भी उसी प्रकार रहेगी। दैहिक अवस्थामें पृथक्ता तो देखी जाती है पर अपनापन जाननेमें कुछ भी विभिन्नता नहीं होती।

देही स्वप्नावस्थामें कितनी विचित्र देहोंमें विहार करता है, लेकिन कहीं और कभी भी आत्मज्ञानकी स्वतंत्रता नहीं होती। शरीरतत्त्वविदोंका मत है कि शरीरका परमाणुपुञ्ज प्रति १०।१२ वर्षोंमें सम्पूर्ण स्वतंत्र हो जाता है। अतएव बाल्यादि अवस्थामें भी शरीरका नाश हुआ करता है, किन्तु देहीकी कुछ भी विकृति नहीं होती। 'न जायते न म्रियते' इत्यादि श्रुति द्वारा देहीका किसी प्रकारका विकार हो नहीं होता। जिस प्रकार वस्त्र पुराना होने पर नया वस्त्र पहनते हैं उसी प्रकार देही बाल्य कौमार आदि अवस्थाका भोग करके पीछे वृद्ध होने पर देहको छोड़ कर नवीन देह धारण करता है।

देहु—ग्रामविशेष, एक गाँवका नाम।

देहेश्वर ( सं० पु० ) देहाधिष्ठाता, आत्मा।

देहोद्भव ( सं० पु० ) देहजात, शरीरसे उत्पन्न।

देहोद्भूत ( सं० पु० ) देहजात ।

दैच ( सं० त्रि० ) दीचा-अण् । दीचासम्बन्धीय ।

दैतेय ( सं० पु० क्ली० ) दितेरपत्यं ठक् । १ दितिका अपत्य, दितिकी संतति, दैत्य । स्त्रियां ङीप । २ राहुका एक नाम । ( त्रि० ) ३ दितिसे उत्पन्न ।

दैत्य ( सं० पु० ) दितेरपत्यं दिति-ण्य ( दित्यदित्यादित्य पत्युत्तरपदा ण्य । पा ४।१।८५ ) १ असुर, कश्यपके वे पुत्र जो दिति नामकी स्त्रीसे पैदा हुए, ये देवताओंके विरोधी हैं । २ असाधारण बलका मनुष्य । ३ अति करनेवाला आदमी । ४ दुराचारी, दुष्ट व्यक्ति । ५ लौह, लोहा । ( त्रि० ) ५ दितिसम्बन्धी ।

दैत्यगुरु ( सं० पु० ) दैत्यानां गुरुः । शुक्राचार्य ।

दैत्यदानवमर्दन ( सं० पु० ) दैत्य और दानवोंके दमनकारी, इन्द्र ।

दैत्यदेव ( सं० पु० ) दैत्याना देवः ६-तत् । १ वरुण । २ वायु ।

दैत्यद्वीप ( सं० पु० ) गरुड़ात्मजभेद, गरुड़के पुत्रोंमेंसे एक ।

दैत्यग्रह (सं० पु०) असुर ग्रह ।

दैत्यधूमिनी ( सं० स्त्री० ) मुद्राभेद, तारादेवीकी तांत्रिक उपासनामें एक मुद्रा ।

योनि, भूतिनी, बीजाख्या, दैत्यधूमिनी और लेलिहाना ये पांच मुद्रायें तारार्चनमें उल्लिखित हैं । दोनो हाथोंकी सम्पूर्ण रूपसे परिवर्त्तन कर कनिष्ठाङ्गुलिकी मध्यमाको आकर्षण करते हैं । दोनो अनामिकाको नीचे और दोनों तर्जनीको पृथक् रूपसे रखते हैं तथा अंगुष्ठके अग्रभागमें अनामिका फंसाते हैं । ऐसा करनेसे दैत्यधूमिनी मुद्रा बनती है ।

दैत्यनिसूदन ( सं० पु० ) दैत्यान् निसूदयति हिनस्ति नि-सूदि ल्यु । विष्णु ।

दैत्यपति ( सं० पु० ) दैत्यानां पतिः ६ तत् । १ हिरण्यकशिपु ।

दैत्यपुरोधस् ( सं० पु० ) दैत्यानां पुरोधा ६-तत् । शुक्राचार्य, दैत्योंके पुरोहित ।

दैत्यपूज्य ( सं० पु० ) दैत्यानां पूज्यः ६-तत् । दैत्योंके पूजनीय शुक्राचार्य ।

दैत्यमातृ (सं० स्त्री०) दैत्यानां माता ६-तत् । दैत्योंकी माता, दिति ।

दैत्यमेदज ( सं० पु० ) दैत्यस्य मेदात् जायते जन-ड । १ गुग्गुलु, गूगल । स्त्रियां टाप् । २ पृथिवी । पृथिवी मधु और कैटभके मेदसे उत्पन्न हुई थी, इसीसे पृथ्वीका नाम दैत्यमेदजा पड़ा है ।

दैत्ययुग ( सं० क्ली० ) दैत्यानां युगं ६-तत् । दैत्योंका युगविशेष, देवयुगकी नाईं १२ हजार वर्ष ।

दैत्यसेना ( सं० स्त्री० ) प्रजापतिकी कन्या और देवसेनाकी बहन । यह केशीदानवको बहुत चाहती थी । केशी इसे हर ले गया था और उसने इसके साथ विवाह किया था ।

दैत्यहन् ( सं० पु० ) महादेव । ( भारत १३।१७।४७ )

दैत्या (सं० स्त्री०) दितेरियं इति ण्य, ततष्टाप् । १ मुरा नामक गन्धद्रव्य, कपूरकचरी, मुर्रा । २ चण्डौषधि । ३ मद्य, शराब । ४ दैत्य जातिकी स्त्री ।

दैत्यारि ( सं० पु० ) दैत्यानां अरिः ६ तत् । १ विष्णु । २ देवता मात्र । ३ इन्द्र ।

दैत्याहोरात्र ( सं० पु० ) दैत्याना अहोरात्रः ६-तत् । दैत्योंका एक रात दिन । यह मनुष्यके एक वर्षके बराबर होता है ।

दैत्येज्य (सं० पु०) दैत्यानां इज्यः ६-तत् । दैत्यके गुरु शुक्राचार्य ।

दैत्येन्द्र ( सं० पु० ) दैत्याना इन्द्रः ६-तत् । १ दैत्यके प्रभु, दैत्योंके राजा । २ गन्धक ।

दैत्येन्द्रज (सं० क्ली०) हिङ्गुल ।

दैधिषव्य (सं० पु०) स्त्रीके दूसरे पतिका पुत्र ।

दैन (सं० क्ली०) दीनस्य भावः अण् । १ दीनता, दीन होनेका भाव । दिनस्य इदं दिन-अण् । ( त्रि० ) २ दिवस सम्बन्धी, दिनका ।

दैनन्दिन (सं० त्रि०) दिनं दिनं भवं इत्यण्, निपातनात् साधुः । प्रतिदिनका, नित्यका, दिन दिन होनेवाला ।

दैनन्दिनप्रलय ( सं० पु० ) दिनन्दिनवासी प्रलयश्चेति । ब्रह्माके प्रतिदिनावसानमें सब वस्तुओंका चयरूप प्रलय । चतुर्दश इन्द्रावच्छिन्नकाल ब्रह्माका दिन है, अर्थात् जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब तक ब्रह्माका दिन और

तत्परिमितकाल ब्रह्माकी रात्रि है। इसमें ब्रह्मलोकसे अधःस्थित सभी लोक विनष्ट होते हैं और ब्रह्मरात्रिके बीत जाने पर ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं। इस ब्राह्मी निशामें जो प्रलय होता है, उसे क्षुद्रप्रलय कहते हैं। इस प्रलयमें देवता, मुनि और नरादि सभी नाश होते हैं। पूर्वोक्त ३० दिनोंका ब्रह्माका एक महीना और १२ महीनोंका वर्ष होता है। ब्रह्माके इस तरह पन्द्रह वर्ष बीत जाने पर दैनन्दिनप्रलय होता है। वेदविदोंने इसीको दिन रात्रि माना है। इस प्रलयमें चन्द्राकादि दिगीश्वर, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु प्रभृति सभी विनष्ट होते हैं। दैनिन्दिनप्रलय बीतने पर ब्रह्मा पुनः सभी लोकोंकी सृष्टि करते हैं। इस तरह सौ वर्ष ब्रह्माकी परमायु है। (ब्रह्मवैवर्त्तपु०)

दैनार (सं० त्रि०) दीनारे भवं दीनारस्येदं वेति अण्। दीनारपरिमित स्वर्णजात वस्तु।

दैनिक (सं० त्रि०) दिने भवः इति ठञ्। १ दिनभव, जो रोज रोज हो। २ दिन सम्बन्धीय। ३ प्रतिदिनका, रोज रोजका। (स्त्री०) ४ एक दिनकी तनखाह।

दैन्य (सं० पु०) १ दरिद्रता, दीनता। २ अहङ्कारके प्रतिकूलभाव, विनीतभाव। ३ काव्यके सञ्चारी भावोंमेंसे एक। इसमें दुःखादिसे चित्त बहुत नम्र हो जाता है।

दैयाम्पति (सं० पु०) व्याम्पते शब्दका गोत्रापत्य।

दैर्घवरत (सं० पु०) दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः अण्। वह कुआँ जहाँ पानी निकालनेके लिये एक बड़ा रस्सा रखा जाता है।

दैर्घ्य (सं० स्त्री०) दीर्घस्य भावः ष्यञ्। दीर्घता, लम्बाई।

दैलीपि (सं० पु०) दिलीपस्यापत्यं दिलीप-इञ्। दिलीपका अपत्य।

दैव (सं० क्ली०) देवस्येदं देव-अण्। (तस्येदं। पा ४।३।१२०) १ देवतीर्थ, दाहिने हाथकी उंगलीके अगले भागका नाम देवतीर्थ है। (मनु० २।५९)

वृद्धांगुष्ठके मूलके अधोभागको ब्रह्मतीर्थ, कनिष्ठांगुलिके मूलका नाम प्रजापति तीर्थ और समस्त अंगुलियोंके अग्रभागका नाम दैवतीर्थ है। ब्राह्मणको सब समय ब्रह्म, प्रजापति वा दैवतीर्थसे आचमन करना चाहिये।

२ विवाहविशेष, ब्राह्मदैवादि विवाह आठ प्रकारका है। (मनु ३।२८)

अत्यन्त विस्तृत ज्योतिष्टोमादि यज्ञके आरम्भ होने पर उस यज्ञमें यदि कर्मकर्त्ता पुरोहितको सब अलङ्कारोंसे युक्त कन्यादान करे, तो उसे दैवविवाह कहते हैं। दैव कार्यकी सिद्धिकी कामनासे यह विवाह किया जाता है, इसीसे इसका नाम दैवविवाह पड़ा है। दैव विवाहोत्पन्न पुत्र पहले पूर्व पितादि ७ पुरुष और पीछे ७ परपुरुष इन चौदह पुरुषोंको उद्धार करता है और जो सन्तान इस विवाहसे उत्पन्न होती, वह ब्रह्मतेजः सम्पन्न होती है। विवाह देखो। ३ देवतासम्बन्धी।

पितामाताकी मृत्यु होने पर शरीर अपवित्र होता है। जबतक वर्ष पूरा न हो, तब तक देव सम्बन्धी या पितृसम्बन्धी काम नहीं करना चाहिये। देवात् नियतादागतं अण्। ४ भाग्य, प्रारब्ध, अदृष्ट।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि जन्म, कर्म, शुभ और अशुभ सभी दैवके अधीन हैं। केवल यही नहीं, वरं सारा संसार ही एकमात्र दैवाधीन है। इस कारण दैवसे अधिक और कोई बल नहीं है। यह दैव एक मात्र श्रीकृष्णके आयत्त है, सिर्फ वे ही दैवसे अधिक वा श्रेष्ठ हैं। इसी हेतु उस परमात्मा ईश्वरको भक्त लोग भजते हैं। वे दैववर्द्धन करनेमें समर्थ हैं तथा अपनी लीला द्वारा क्षय भी कर सकते हैं, इसीसे कृष्णभक्तगण दैवके अधीन नहीं हैं। ये लोग केवल कृष्णोपासना द्वारा ही शुभाशुभ सभी कार्मोंसे विमुक्ति लाभ कर सकते हैं।

मत्स्यपुराणमें दैवका विषय इस प्रकार लिखा है—एक समय मनुने मत्स्यसे पूछा, कि दैव और पुरुषकारमें कौन श्रेष्ठ है? इसमें मुझे बहुत सन्देह है। इस पर मत्स्यने जवाब दिया था, कि देहान्तरार्जित जो अपना कर्म है उसको दैव कहते हैं अर्थात् पूर्व जन्ममें जो भले बुरे कर्म किये गये हैं, वे ही वर्त्तमान जन्ममें दैव वा भाग्य कहलाते हैं। इसी कारण मनीषियोंने पुरुषकारको श्रेष्ठ बतलाया है। पुरुषकार ही जब भाग्यका प्रति कारण है, तब यही सबसे प्रधान भी है। पुरुषकार नहीं करनेसे भाग्य उत्पन्न नहीं हो सकता है। पूर्व जन्ममें जिन्होंने सैकड़ों सत्कार्य किये हैं, इस जन्ममें

लनके भी पुरुषकारके विना वे सब भाग्य कुछ भी फल नहीं दे सकते हैं। पौरुषवर्जित मनुष्य दैवको ही मानते है अर्थात् वे केवल दैवके ऊपर ही निर्भर रहते हैं। दैव सम्यत् पुरुषकार करनेसे फल देता है। दैव, पुरुषकार और काल ये तीनों मिल कर फल देते है। दैव, पुरुषकार या काल इनमेंसे कोई भी अकेला फल नहीं दे सकता है। जिस तरह कृषि वृष्टिके योगसे फल देती है, उसी तरह दैव भी पुरुषकारके योगसे फल देता है। इसलिये हमेशा बहुत यत्नसे पुरुषकार अवलम्बन करना चाहिये। इस तरह जो आलस्यशून्य हो कर पुरुषकारका अवलम्बन करते, वे परलोकमें शुभ फल पाते हैं। पुरुषकारहीन व्यक्ति केवल दैवपरायण होनेसे फल प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए सर्वदा यत्नपूर्वक पुरुषकारका अवलम्बन करना चाहिये। जब पुरुषकारके बिना दैव भी फल नहीं दे सकता, तब दैवसे भी पुरुषकारको बढ़ कर समझना चाहिए। दैव यदि प्रतिकूल हो, अत्यन्त पुरुषकार करनेसे वह नाश हो सकता है, अर्थात् प्रतिकूल दैव अनुकूल होता है। अतः जो सर्वदा आलस्यरहित हो कर पुरुषाकार अवलम्बन करते, लक्ष्मी उन पर प्रसन्न रहती हैं।

(मत्स्यपु० १८५अ०)

जो कोई कार्य किया जाता है, उसका एक संस्कार रहता, है इसी संस्कारके नाम वासना, संस्कार अदृष्ट वा दैव इत्यादि हैं। कामके लिये जो संस्कार है उसका नाम दैव है। क्लेश ही जीवोंको कर्मप्रवृत्तिका मूल है, अतएव क्लेश नामक अज्ञान अहङ्कार, ममता, रागद्वेष प्रभृति वृत्ति निश्चय ही उत्पन्न करेगा। ऐसा कौन मनुष्य है जो प्रवृत्तिके अधीन काय करते हुए भी उसका फल न भोगे? यह सब देख कर योगी लोग कहते हैं, कि सभी जीव क्लेशसे बाध्य हो कर अच्छा बुरा काम कर डालते हैं और वे सब काम दैव, अदृष्ट या संस्कार इत्यादि नाम धारण कर कर्ममूलकी सृष्टि करते हैं। याज्ञिक लोगोंने उसे अपूर्व, अदृष्ट, पाप पुण्य, धर्माधर्म वा दैव नामसे उल्लेख किया है। जीव उन्हीं सब सञ्चित कर्माशयोंको प्रेरणासे वारम्बार वही सब काम करनेको इच्छुक हो जाता है। इसका सार यह है, कि यह काम करनेके साथ ही जीवोंके सूक्ष्मशरीरमें या चित्तक्षेत्रमें एक प्रकारको शक्ति वा गुण उत्पन्न होता है। वही कर्म-बीज अङ्कुरित हो कर जीवों को बार बार अवस्थान्तर करता है और नये नये रागद्वेषादिके सूक्ष्म सूक्ष्म बीज उत्पादन करता है। उन्हीं सब कर्मबीजोंका नाम कर्माशय है। इसका दूसरा नाम धर्माधर्म, अदृष्ट, भाग्यप्रकृति है। कर्म करनेसे ही जीवोंके सूक्ष्मशरीरमें कर्मके लिये आशय, धर्माधर्म नामक गुण वा शक्ति अवश्य ही उत्पन्न होगी। धर्माधर्म नामक गुण उत्पन्न हो कर वह अपने आश्रयीभूत जीवको निश्चय ही अवस्थान्तरमें पतित करेगा। कब और किस अवस्थामें पतित करेगा, उसका निश्चय नहीं है। लेकिन कभी न कभी अवश्य ही करेगा, कोई निवारण नहीं कर सकता। इस अवस्थान्तर-प्राप्तिका नाम कर्मफल है। यह कर्मफल या तो किसीके वर्त्तमान शरीरमें प्राप्त होता, या किसीके जन्मान्तर वा शरीरान्तरमें। इस तरह फलभोगका नाम भाग्यफलभोग है। यह भाग्यकर्मफलभोगके मूलमें पुरुषकार रहता है, अतएव पुरुषकारके प्रति सर्वदा यत्न करना होगा अर्थात् सत्कार्यमें पुरुषकार करनेसे शुभ दैव वा शुभादृष्ट होगा, सुतरां उसका फल भी शुभ ही होगा। उत्कट वा तीव्र तम पुरुषकार वा कर्म करनेसे तज्जनित आशय और तीव्रतम शक्तिशाली वा वेगशाली होगा। इस तरह पुरुषकार करनेसे दुरदृष्ट नाश होता और बहुत जल्द शुभफल मिलता है। इसलिये पुरुषकार ही दैवसे श्रेष्ठ है। जीवमात्रका ही जिससे शुभदृष्ट हो, वैसा ही पुरुषकार करना विधेय है।

६ देवसर्ग रूप सर्गभेद। यह देवसर्ग आठ प्रकारका है—विबुध, पितृगण, असुर, गन्धर्व अप्सरस्, सिद्ध, यक्षरक्षचारण, भूतप्रेतपिशाच, विद्याधर किन्नरादि यही ८ प्रकारके देवसर्ग है। (भागवत) साख्यतत्त्व कौमुदीके मतसे ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, यक्ष, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकारके दैवसर्ग हैं।

दैवो देवभेदो ,देवताऽस्य अञ्। ७ श्राद्धभेद, देवताके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाता है, उसे दैव-श्राद्ध कहते हैं।

द्विजातियोंको दैवकार्यको अपेक्षा पितृकार्य विशेष-

रूपसे करना चाहिये। दैवकार्य पितृकार्यका अङ्ग स्वरूप पूर्वपोषक मात्र है। पितृकार्यका रक्षक समझ कर दैवकार्य अर्थात् विश्वदेव आवाहनादि पहले करना चाहिये। जो पहले दैवकार्य न कर पितृश्राद्धमें ब्राह्मण निमन्त्रण और अन्तमें विसर्जनादि करते, वे श्राद्धमें पतित होते हैं। (त्रि०) ८ देव सम्बन्धी, जो कुछ देवताके विषयमें किया जाय, उसे दैव कहते हैं। ९ देवताके द्वारा होनेवाला। १० देवताको अर्पित। (पु०) ११ विधाता, ईश्वर। १२ आकाश, आसमान।

दैवक (सं० पु०) देवएव स्वार्थे कन्। दैव।

दैवकी (सं० स्त्री०) देवकस्यापत्यं स्त्री अण्-ङीप्। देवककी कन्या, वसुदेवकी पत्नी, श्रीकृष्णकी माता।

दैवकीनन्दन (सं० पु०) दैवक्याः नन्दनः ६-तत्। दैवकीपुत्र, वासुदेव, श्रीकृष्ण।

दैवकोविद (सं० त्रि०) दैवे शुभाशुभज्ञापकदैवे कोविदः। १ दैवज्ञ, ज्योतिषी। २ दैव पण्डित, जो देवताका विषय जानता हो।

दैवक्षत्रि (सं० पु०) क्रोष्टुवंशीय राजा देवक्षत्रके एक पुत्रका नाम।

दैवगति (सं० स्त्री०) १ ईश्वरीय बात, दैवी घटना। २ प्रारब्ध, भाग्य।

दैवचिन्तक (सं० पु०) दैवं लक्षणेन शुभाशुभं चिन्तयति चिन्ति-ण्वुल्। दैवज्ञ, ज्योतिषी।

दैवज्ञ (सं० त्रि०) दैवं जानन्ति ज्ञा-क। गणक, दैवचिन्तक, जो ग्रहादिकी गणना करके शुभाशुभका विचार करता हो। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—इन्होंने देवता और ब्राह्मणका धन अपहरण किया था, इस कारण इन्हें शाप था, कि ये लोग धूमान्ध नरक भोग कर शतजन्म मूषिक प्रभृति योनियोंमें जन्म लेनेके बाद शबर, स्वर्णकार, सुवर्णवणिक और यवन आदिकी सेवा करेंगे तथा देवता और ब्राह्मणोंकी गणना करके अपनी जीविका चलावेंगे एवं दैवज्ञ ब्राह्मण नामसे पुकारे जायंगे।

जो विप्र लाख, लौहादि एवं रसादि बेचते हैं, वे नागवेष्टित हो कर नागवेष्ट नरकमें जाते हैं। पीछे वे अपने शरीरकी लोमसंख्याके अनुसार नागदंशित हो कर वास करते हैं। अन्तमें वे ही गणक हो कर जन्मग्रहण करते हैं और पीछे सात जन्म तक वैद्य, गोप, चर्मकार और रङ्गकार वंशमें जन्म ले कर शुचि होते हैं।

दैवज्ञ—वङ्गदेशीय एक श्रेणीके ब्राह्मण। ये लोग अपना परिचय देनेके लिये निम्न-लिखित प्रमाण उद्धृत करते हैं। शाकलीय कुलज-पद्धतिमें लिखा है—

"शाकद्वीपस्थिताश्चाष्टौ ब्राह्मणा वेदपारगाः।
आनीता खगभूपेन ग्रहचालनतत्पराः॥
ग्रहदानविपाकेन ग्रहविप्र उदाहृताः।
आचार्यस्तस्य आख्यातिः दैवज्ञः शाकलद्विजः॥"

शाकद्वीपमें आठ वेदविद् ब्राह्मण थे, पक्षिराज गरुड़ इन लोगोंको इस देशमें लाये थे। ये ग्रह-निरूपण विद्यामें पारदर्शी थे। सभी ग्रहदान ग्रहण करते थे, इसलिये इनका नाम ग्रहविप्र पड़ गया। इनके अन्य नाम आचार्य, दैवज्ञ और शाकलद्विज हैं।

ब्रह्मयामलके षष्ठ पटलमें लिखा है,—

"मार्कण्डो माण्डवो गर्गः पराशरस्तथा भृगुः।
सनातनोंगिरा जह्नुः शाकद्वीप्यष्टको मुनिः॥
तदात्मना महातेजाः प्रत्यहं ग्रहचारकाः।
आज्ञया देवदेवस्य गतवान् गरुडस्तथा॥
शाकद्वीपेस्थितो विप्रो प्रविशेत् शाम्बमन्दिरं।
वराहसोमईशानः शान्तिः शुक्रो धनञ्जयः॥
दनुर्वसुन्धराश्चैव ग्रहदाने च ब्राह्मणः।
ग्रहदानविपाके च ग्रहविप्र उदाहृतः॥
गुर्वादित्ये वराहश्च सोमे सोमे स्तथैव च।
ईशानो भूमिपुत्रश्च शान्तिश्च शशिनन्दने॥
शुक्रश्च शुक्रदाने स्यात् सूर्यपुत्रे धनंजयः॥
राहुदाने दनुश्चैव केतुदाने वसुन्धरः।
काश्यपश्च वराहश्च सोमः कौशिक एव च॥
ईशानो गौतमश्चैव शान्तिर्वात्स्य स्तथैव च।
भरद्वाजो भृगुश्चैव पराशर धनंजयौः।
दनुशांडिल्यगोत्रःस्याद् मौद्गल्यश्च वसुन्धरः॥
एते च प्रवरास्तेषां सामवेदेप्युदाहृतः।
सहस्रशीर्षाः पुरुषः सर्वाभूमिं सृष्ट्वा
ग्रहशान्तये तु तिर्यगादि प्रकाशतः।
सपादशतमुखात् ग्रहांशे सपादशतद्विजान् चतुर्वेदवेदिनः

ग्रहब्राह्मणान् सामगानान् नवान् गोत्रान् तदुद्वाहाय
पञ्चविंशाधिकशतमिताः कन्यका असृजत् ॥
सांवत्सरो ज्योतिषिको दैवज्ञो गणकोपि च ।
ग्रहविप्रो द्विजश्रेष्ठः सर्वशास्त्रविशारदः ।
आचार्यो ब्राह्मणेन्द्रश्च घटकः सार्ववैदिकः ॥
सुखी शाखी नमस्योऽग्निः षट्कर्मा ग्रहभूसुरः ।
मौहूर्त्तिकश्च मौहूर्त्तः ज्ञानी कार्तान्तिकश्च स ॥
अपरञ्च । ग्रहाणामर्चनाद्धेतोः शाकद्वीपसमुद्भवः ।
ब्रह्मवक्त्राब्जवेऽज्जन्म दैवज्ञो ब्राह्मणो ध्रुवं ॥
सत्ये ग्रहद्विजाः पूज्यास्त्रेतायां साग्निकद्विजाः ।
नाड़ीच्चा द्वापरे विप्रा निरग्निब्राह्मणाः कलौ ॥
ज्योतिषाध्यापनं पूजा वेदशास्त्रप्रकीर्त्तनं ।
यज्ञः प्रतिग्रहो भिक्षा षड्ग्रहद्विजलक्षणं ॥
एभिः षड्भिर्विहीनो यो ग्रहविप्र, सुरेश्वरि ।
अग्रहब्राह्मणः प्रोक्तः सोऽन्यथा कथयामि ते ॥

मार्कण्डेय, माण्डव्य, गर्ग, पराशर, भृगु, सनातन, अङ्गिरा और जह्नु ये आठ मुनि शाकद्वीपमें रहते थे। उनके महातेजा पुत्रगण प्रतिदिन ग्रह चालन करते थे। देव कृष्णके आदेशानुसार गरुड़ जब उन्हें वहांसे ले आये, तब वे शाम्बके घरमें घुस पड़े। उनके नाम ये थे-वराह सोम, ईशान, शान्ति, शुक्र, धनञ्जय, दनु और वसुन्धर। ग्रहदानमें ये ही आठ व्यक्ति ब्राह्मण थे। ग्रहदान ग्रहण करनेके कारण ये ग्रहविप्र नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्य और बृहस्पतिके दानमें वराह, चन्द्रके दानमें सोम, मङ्गलके दानमें ईशान, बुधके दानमें शान्ति, शुक्रके दानमें शुक्र, शनिके दानमें धनञ्जय, राहुके दानमें दनु और केतुके दानमें वसुन्धर दान-ग्रहणकर्त्ता हुए थे। उनके गोत्र इस प्रकार थे—वराहका काश्यप, सोमका कौशिक, ईशानका गौतम, शान्तिका वात्स्य, भृगुका भरद्वाज, धनञ्जयका पराशर, दनुका शाण्डिल्य और वसुन्धरका मौद्गल्य।

परमेश्वर कह रहे हैं—सहस्रमुख ब्रह्माने सर्व प्रकार भूमिकी सृष्टि कर ग्रहशान्तिके निमित्त मध्य, ऊर्ध्व और अधोभागके प्रकाशानुसार एक सौ पचीस मुखोंसे ग्रहोंके अंशोंमें एक एक करके एक सौ पचीस ग्रहब्राह्मणोंकी सृष्टि की थी। वे ही चार वेदोंके ज्ञाता हो कर ग्रह-ब्राह्मण हुए। ये सामवेदके गान गा सकते हैं। इनके नौ प्रकारके गोत्र थे। पीछे ब्रह्माने १२५ कन्याएं उत्पन्न कीं, जिनके साथ इनका विवाह हुआ।

ग्रहविप्रोंके ये इक्कीस नाम निर्दिष्ट थे—१ सांवत्सर, २ ज्योतिषिक, ३ दैवज्ञ, ४ गणक, ५ ग्रहविप्र, ६ द्विजश्रेष्ठ, ७ सर्वशास्त्रविशारद, ८ आचार्य, ९ ब्राह्मणेन्द्र, १० घटक, ११ सार्ववैदिक, १२ सुखी, १३ शाखी, १४ नमस्य, १५ अग्नि, १६ षट्कर्मा, १७ ग्रहभूसुर, १८ मौहूर्त्तिक, १९ मौहूर्त्त, २० ज्ञानी और २१ कार्त्तान्तिक। *

और भी कहा गया है, कि ग्रहोंकी पूजाके लिये शाकद्वीपमें ब्रह्माके मुखसे दैवज्ञ उत्पन्न हुए थे, उनको निश्चय ही ब्राह्मण समझना चाहिये। सत्ययुगमें ग्रहविप्र, त्रेतामें सात्त्विक ब्राह्मण, द्वापरमें नाड़ीच्च ब्राह्मण और कलियुगमें निरग्नि ब्राह्मण पूज्य हैं।

ग्रहविप्रोंके ज्योतिष अध्यापन, पूजा, वेदशास्त्रकथन, यज्ञ, दान-ग्रहण और भिक्षा ये छः प्रकारके लक्षण हैं। छः कर्मोंसे वर्जित ब्राह्मणको ग्रहविप्र नहीं कहा जा सकता।

जन्मपत्रिका (जनमपत्री) लिखवा कर जो व्यक्ति ग्रहविप्रोंको उसके परिश्रमानुसार दक्षिणा नहीं देते, वे पितरोंके साथ सौ वर्ष तक 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें वास करते हैं।

देवालिया लोग गणकोंसे और गतायु व्यक्ति चिकित्सकोंसे द्वेष करते हैं, गतश्री व्यक्ति और गतायु व्यक्ति ब्राह्मणमात्रसे ही द्वेष रखते हैं। (ग्रहयामल)

राजमार्तण्डमें लिखा है—

"ग्रहद्विजास्तुष्टतमा वदन्ति यत्तद्ग्रहाः कर्म भिराचरन्ति।
तुष्टे तु तुष्टाः सततं भवेयुर्ग्रहाशविप्रेषु खरांशुमुख्याः ॥
ग्रहांशजातो विप्रो यो हस्तार्थं जुहुयादपि।
यद्गृह्णाति यदश्नाति प्राप्नुवन्ति ग्रहाः स्वयं ॥
ब्रह्मन् ग्रहब्राह्मणार्चा ग्रहदानं ग्रहार्चनम्।
ग्रहहोमदक्षिणा च तद्ग्रहब्राह्मणाय वै ॥
दद्यात् सर्वं च तद्द्रव्यं ग्रहब्राह्मणभोजनम्।
इत्येवं ग्रहयज्ञश्च काम्यादिसिद्धये भवेत् ॥"

ग्रहविप्र सन्तुष्ट हो कर जो कुछ कहते हैं, ग्रहगण

* ये इक्कीस नाम ब्रह्माण्डपुराणमें भी पाये जाते हैं।

कार्य-द्वारा वैसा ही आचरण करते हैं। ग्रहविप्रोंके तुष्ट होने पर भी सूर्यादि ग्रह तुष्ट नहीं होते। ग्रहविप्र-गण इत्यादि द्वारा जो घृतादि होम करते हैं तथा जो कुछ ग्रहण करते और भोजन करते हैं, ग्रहोंको वही प्राप्त होता है। ग्रहविप्रकी पूजा करनेसे ही ग्रहोंका पूजा हो जाती है। ग्रहहोममें जो कुछ दक्षिणा दी जाती है, वह तथा ग्रहयज्ञको समस्त सामग्री ग्रहविप्रको देनी चाहिये। ग्रहयज्ञमें ग्रहविप्रोंको भोजन कराना उचित है। इस प्रकार ग्रहयज्ञ करनेसे काम्यादि कर्म सिद्ध होते हैं। गणक और ग्रहविप्र देखो।

दैवज्ञा (सं० स्त्री०) दैवज्ञ-टाप्। दैवज्ञ-पत्नी, ज्योतिषीकी स्त्री। इसका पर्याय—विप्रश्निका और ईक्षणिका है।

दैवत (सं० क्ली०) देवतैव स्वार्थे अण्। १ देवता। देवतानां समूहः अण्। २ देवतासमूह। (त्रि०) देवताया इदं अण्। ३ देवता सम्बन्धी। ४ देवता-सम्बन्धीय प्रतिमादि। ५ निरुक्तका वह भाग जिससे वेदमन्त्रोंके देवताओंका परिचय होता है।

दैवतन्त्र (सं० त्रि०) दैवं भाग्यं तन्त्रं प्रधानं यस्य। भाग्याधीन।

दैवतपति (सं० पु०) दैवतानां देवानां पतिः ६-तत्। इन्द्र।

दैवतप्रतिमा (सं० स्त्री०) दैवतानां देवानां प्रतिमा ६-तत्। देवता-सम्बन्धीय प्रतिमा।

दैवतरस (सं० पु०) प्रवर ऋषिभेद।

दैवतरेय (सं० पु० स्त्री०) दैवतरस्य श्रेष्ठदेवस्य अपत्यं शुभ्रादित्वात् ढक्। श्रेष्ठ देवताका अपत्य।

दैवति (सं० पु० स्त्री०) दैवतस्यापत्यं इञ्। देवताको सन्तति।

दैवतीर्थ (सं० पु०) आचमन करनेमें उंगलियोंके अग्रभागका नाम, उंगलियोंको नोक।

दैवत्य (सं० त्रि०) देवता स्वार्थे ष्यञ्। देवता।

दैवदत्त (सं० त्रि०) देवदत्तस्य छात्राः अण्। १ देवदत्तके छात्रादि। देवदत्तः भक्तिरस्य, अचित्तत्वाभावात् न ठक्, किन्तु अण्। २ देवदत्त-भक्तियुक्त।

दैवदत्ति (सं० पु० स्त्री०) देवदत्तस्यापत्यं देवदत्त-इञ्। देवदत्तका अपत्य, देवदत्तको सन्तति।

दैवदर्शनिन् (सं० पु०) देवदर्शनेन ऋषिणा दृष्टं अधीयते शौनकादित्वात् णिनि। देवदर्शन ऋषिप्रोक्त समस्त छन्दोऽध्यायी।

दैवदारव (सं० त्रि०) देवदारोर्विकारः अञ्। देवदारु वृक्षके विकार यूपादि।

दैवदीप (सं० पु०) दैवः सूर्याधिष्ठात्रिको दीपः। १ चक्षु, नेत्र, आँख।

दैवदुर्विपाक (सं० पु०) दैवको प्रतिकूलता, भाग्यको खोटाई।

दैवन्त्यायन (सं० पु०) देवन्त बाहु० गोत्रे फञ्, ततो-यूनि फक्। त्रार्षेय गोत्र प्रवर ऋषिभेद।

दैवपर (सं० त्रि०) दैवं भाग्यं परं चिन्त्यं यस्य। दैवनिष्ठ। इसका पर्याय यङ्गविष्ठ है।

दैवप्रश्न (सं० पु०) दिवि आकाशे भवः दैवः, दैवः प्रश्नः कर्मधा०। १ शुभाशुभ कर्मको जिज्ञासा। २ दैववाणी। जो सब शुभाशुभ वाक्य आकाशसे सुने जाँय, उसे दैवप्रश्न कहते हैं।

दैवमति (सं० पु० स्त्री०) देवमतस्य ऋषेरपत्यं इञ्। १ देवमत ऋषिका अपत्य। स्त्रियां ङीप्। ततोयूनि फक्। २ दैवमतायन, देवमत ऋषिका युवा अपत्य।

दैवमित्रि (सं० पु० स्त्री०) देवमित्रस्य ऋषेरपत्यं देवमित्र इञ्। देवमित्र ऋषिका अपत्य।

दैवयज्ञि (सं० पु० स्त्री०) देवो देवार्थो यज्ञो यस्य तस्यापत्यं इञ्। १ देवार्थ-यज्ञकारकके अपत्य। स्त्रियां ङीप्। दैवयज्ञायन।

दैवयुग (सं० क्ली०) देवस्य इदं अण्, दैवं युगं कर्मधा०। दिव्ययुग। मनुष्योंके चारों युगोंके बराबर एक दिव्ययुग होता है।

मनुने लिखा है, कि मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक रातदिन होता है। इसी दैव परिमाणके चार हजार वर्षका सत्ययुग होता है। इस युगको सन्ध्या और सन्ध्यांश चार सौ वर्षके होते हैं। अन्यान्य तीन युगोंमें इनकी सन्ध्या और सन्ध्यांश एक हजार एक सौ वर्ष कम होते हैं अर्थात् तीन हजार वर्षमें त्रेतायुग, तीन सौ वर्ष उसकी सन्ध्या और तीन सौ वर्ष उसका सन्ध्यांश। दो हजार वर्ष द्वापरयुग और हजार वर्ष

कलियुगका प्रमाण है। मनुष्योंके ये ही चार युगोंकी संख्या है। इसका बारह हजार वर्ष देवताओंका एक युग होता है।

दैवयोग (सं० पु०) दैवस्य योगः फलोन्मुखतया सम्बन्धः। भाग्यका आकस्मिक फल, संयोग, इत्तिफाक।

दैवरथ (सं० पु०) देवरथस्य देवरथ-अण्। देवरथ-सम्बन्धी।

दैवराजिक (सं० त्रि०) देवराजे भवः काश्यादित्वात् ठञ्। देवराजभव, जो देवराजसे उत्पन्न हो।

दैवराति (सं० पु० स्त्री०) देवरातस्यापत्यं इञ्। १ देवरातका अपत्य। २ जनकराजके पिता।

दैवल (सं० पु०) देवलस्यापत्यं शिवादित्वात् अण्। देवल ऋषिका अपत्य वा सन्तति।

दैवलक (सं० पु०) देवं देवयोनिं लाति गृह्णाति पूज्यत्वेन कुत्सितार्थे वा क। १ भूतसेवक। देवलकस्य इदं अण्। २ देवल सम्बन्धी।

दैवलेखक (सं० पु०) दैवं देवनिमित्तशुभाशुभं लिखतीति लिख-ण्वुल्। मौहूर्त्तिक, गणक, ज्योतिषी।

दैववंश (सं० पु०) दैवाना देवानां वंशः ६-तत्। देवताओंका वंश।

दैववर्ष (सं० पु०) देवताओंका वर्ष जो १३१५२१ सौर दिनोंका होता है।

दैववश (हिं० क्रि० वि०) अकस्मात्, दैव योगसे।

दैववशात् (हिं० क्रि० वि०) दैववश देखो।

दैववाणी (सं० स्त्री०) दैवी आकाश-सम्बन्धिनी वाणी। १ आकाशवाणी। इसका पर्याय—चित्तोक्ति, पुष्पशकटी, दैवप्रश्न और उपश्रुति है। २ संस्कृतवाक्य।

दैववादी (सं० पु०) १ वह जो भाग्यके भरोसे रहता हो। २ निरुद्योगी, आलसी।

दैवविद् (सं० पु०) दैवं वेत्ति विद-क्विप्। दैवज्ञ, गणक, ज्योतिषी।

दैवविवाह (सं० पु०) स्मृतियोंमें लिखे आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे एक।

दैवशर्मि (सं० पु० स्त्री०) देवशर्मणोऽपत्यं ततो बाह्वादित्वात् फिञ्। देवशर्माका अपत्य।

दैवश्राद्ध (सं० पु०) देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेका श्राद्ध।

दैवसर्ग (सं० पु०) दैवः सर्गः कर्मधा०। देवादि सर्गभेद, देवताओंकी सृष्टि। इसके अन्तर्गत आठ भेद हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, यक्ष, राक्षस और पैशाच।

दैवसृष्टि (सं० स्त्री०) देवस्येदं अण्, दैवी सृष्टिः कर्मधा०। स्वयम्भूकृत देवताओंकी सृष्टि।

दैवस्थान (सं० पु० स्त्री०) देवस्थानस्य ऋषेरपत्यं इञ्। देवस्थान ऋषिका अपत्य।

दैवहव (सं० पु०) देवहव्यस्य देवहनामक ऋषिरपत्यस्य छात्राः कण्वादित्वात् अण्, यञोलुप्। देवहव्यके समस्त छात्र।

दैवहीन (सं० त्रि०) दैवेन भाग्येन हीनः ३ तत्। शुभभाग्यहीन, जिसके भाग्यमें कोई शुभ लक्षण न हो। जो अत्यन्त व्यसनी, अधर्मी और तीनों उत्पातमें उत्पीड़ित हैं, वे ही दैवहीन हैं।

दैवाकरि (सं० पु०) दिवाकरस्यापत्यं पुमान् दिवाकर-इञ्। १ शनि। २ यम। (स्त्री०) ३ यमुना।

दैवागत (सं० त्रि०) आकस्मिक, सहसा होनेवाला।

दैवागारिक (सं० त्रि०) देवागारे नियुक्तः 'तत्र नियुक्तः' इत्यधिकारे ठक्। देवागारमें नियुक्त, जो देवालयमें नियुक्त हुआ हो।

दैवात् (सं० अव्य०) हठात्, अकस्मात्, अचानक, इत्तिफाकसे।

दैवात्यय (सं० पु०) दैवकृतोऽत्ययः उत्पातः। दैवकृत-उत्पात, अचानक आपसे आप होनेवाला अनर्थ।

दैवादिक (सं० पु०) दिवादिगणे पठितः ठञ्। दिवादिगणपठित धातु। दिवादिगण धातुमें जो सब धातु हैं, उन्हें दैवादिक कहते हैं।

दैवावृध (सं० पु०) बभ्रुका गोत्रापत्य।

दैवारिप (सं० पु०) देवारीन् असुरान् पाति आश्रयदानेन पा-क देवारिपः समुद्रः तत् भवः अण्। शङ्ख।

दैवाल—भारतीय पक्षीविशेष। अंगरेजी शकुनशास्त्रमें यह दण्डोपवेशी पक्षी जातिके मध्य टुरडीडी (Turdidae) शाखाकी रुटिसेल्लिनी (Ruticellini) उपशाखाके अन्तर्गत कप्सिकस (Copsychus) विभागके मध्य गिना जाता है। इसका नाम कप्सिकस सलेरिस

( Copsychus Saularis ) है, साधारणतः अंगरेजीमें इसे मगपाई रोबिन ( Magpie—Robin ) कहते हैं। भारतवर्षमें यह भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। हिन्दीमें इसे दैवाल, बङ्गालमें दैयाल, तेलगुमें पेद्दान, लक्षिया सरेलागडू, लेप्चामें जविदको और ब्रह्ममें सक्लवये कहते हैं।

यह पक्षी देखनेमें सुन्दर होता है। इसके नरका सिर, छाती, गला और ऊपरी भागके पर बिलकुल काले; पेट और पूंछके निम्नस्थ पर सफेद और डैने काले होते हैं। मादाके डैने और पूंछ धूसर रंगको होती है, लेकिन पर नरके जैसा सफेद होता है। इसकी चोंच काली और ८ इञ्च लम्बी होती है। समस्त भारत और मौलमिन पर्यन्त ब्रह्मदेशमें इस पक्षीके सभी वर्ण एक प्रकारके होते हैं। तेनसेरिम प्रदेश तथा सिंहलमें वर्णमें फर्क पड़ भी जाता है, तो भी इनका श्रेणीविभाग नहीं किया जाता। यह पक्षी सिन्धुदेश और पञ्जाब-काश्मीरमें कहीं भी देखा नहीं जाता तथा निकोबार द्वीपमें भी यह नहीं मिलता है।

दैवाल कीड़े मकोड़े तथा अनाज खा कर अपना पेट पालता है। वैशाखसे ले कर श्रावण तक मादा वृक्षकोटर वा दीवालके छेदमें अंडे पारती हैं, एक एक साथ ४.५ अंडे देती हैं। यह पक्षी बहुत आसानीसे पोस मानता है। इसकी बोली बड़ी मीठी होती है। मैना और तोतेकी तरह यह भी मनुष्यकी बोली समझता और बोलता है।

दैवासुर ( सं० क्ली० ) देवासुरस्य वैरं अण्। १ देवता और असुरकी वैरता। देवासुरशब्दोऽस्त्यस्य अनुवाके अध्याये वा विमुक्तादित्वादण्। २ देवासुरशब्दयुक्त अनुवाक वा अध्याय।

दैवाहोरात्र ( सं० पु० ) दैवः देवसम्बन्धी अहोरात्रः। देवताओंका एक दिन जो मनुष्यका एक वर्ष होता है।

दैविक ( सं० त्रि० ) देवस्य अयं, दैवे भवो वा ठक्। १ देवसम्बन्धीय, देवताओंका। देवानुद्दिश्य प्रवृत्तः वा ठक्। २ देवताओंके उद्देशसे किये जानेका श्राद्ध।

दैवी ( सं० स्त्री० ) देवस्य इयं देव-अण्, ततो ङीप्। १ देवसम्बन्धीय। २ दैवविवाह द्वारा परिणीता स्त्री, वह स्त्री जो दैव-विवाह द्वारा ब्याही गई हो। ३ चिकित्सा-विशेष। दैवी, आसुरी और मानुषी ये तीन प्रकारकी चिकित्सा हैं। देव-द्वीप। ४ गीतोक्त सम्पद्भेद।

इस संसारमें जीवोंकी प्रकृति तीन प्रकारकी है— दैवी, आसुरी और राक्षसी। ये तीनों क्रमशः सत्त्व, रज वा तमोगुणसे निकले हैं। इनमेंसे जो दैवी प्रकृतिका उपकरण ले कर जन्मग्रहण करते, उनकी आत्मोन्नति वा मुक्त्यादि होती है। अभय, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञान और योगके विषयमें निष्ठा यही दैवी हैं। पुत्रकलत्रादि सभी परिजनों और सब प्रकारके परिच्छद तथा प्रतिग्रहादिको परित्याग कर केवलमात्र अकेला मैं किस तरह जीवित रहूंगा, इस तरह निर्भय हो कर जो रहता है उसीमें एक प्रकारके उत्साहविशेषका नाम अभय है। अन्तःकरणकी निर्मलता अर्थात् सम्यक् रूपसे आत्मतत्त्व परिस्फुरणकी उपयुक्तता ही सत्त्वसंशुद्धि है। आत्मतत्त्वादि प्रकाशक शास्त्रका प्रकृत तात्पर्य ग्रहण कर जो संस्कारविशेष उत्पन्न होता है, उसीको ज्ञान कहते हैं। उस ज्ञानकार्यमें परिणत करानेके लिये अर्थात् देहादि जड़ पदार्थके अतीत आत्मतत्त्वके अनुभवके लिये जो चित्तकी एकाग्रताका अभ्यास किया जाता है, उसे योग कहते हैं। फिर इस ज्ञानके योगमें सर्वदा निष्ठा रहनेका नाम ज्ञानयोगनिष्ठा है। इसीको दैवीसम्पद् कहते हैं। ये सब परमहंसाश्रममें सम्पूर्ण विकाश पाते हैं। दान शक्ति, दमशक्ति, यज्ञ प्रभृति स्वाध्याय-शक्ति और तपःशक्ति ये भी दैवीसम्पद् हैं। ये यथाक्रमसे चतुराश्रममें ही विकसित होते हैं। इसके सिवा आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, सर्वभूतदया, अलोलुपत्व, मृदुता, लज्जा, अचापल्य, तेज, क्षमा, धृति, शौच और अमानित्वादि शक्तियां भी दैवीसम्पद् कहलाती है। यह दैवीसम्पद् ब्राह्मणादि चतुर्वर्णमें ही विकसित हो सकता है। जो पूर्व जन्मके कर्मानुसार दैवी प्रकृतिका बीज ले कर जन्मग्रहण करते, उन्होंके परिणामसे बहुत कुछ सहायता पा कर ये सब शक्तियां परिस्फुट होती है। ५ एक वैदिक छन्द।

दैवी ( हिं० क्रि० वि० ) १ देवतासम्बन्धी। २ देवकृत,

देवताओंकी की हुई। ३ आकस्मिक, प्रारब्ध या संयोगसे होनेवाली। ४ सात्विक।

दैवीगति (सं० स्त्री०) १ ईश्वरकी की हुई बात। २ प्रारब्ध, भावी, होनहार।

दैवोदासि (सं० पु०) दिवोदासस्य अपत्यं इञ्। दिवोदासका अपत्य।

दैवोद्यान (सं० क्ली०) दैवानां देवानां उद्यानं। देवताओंका उद्यान।

दैवोपहतक (सं० त्रि०) दैवेन उपहतः कन्। हतभाग्य, अभागा।

दैव्य (सं० क्ली०) देवस्येदं देव-यञ्। १ दैव, देवता। २ भाग्य, नसीब। (त्रि०) ३ देवसम्बन्धीय।

दैशिक (सं० त्रि०) देशेन निर्वृत्तः तस्येदं वा ठञ्। १ देशकृत। २ देशसम्बन्धीय। ३ सम्बन्धविशेष।

दैशिक परत्व बहुतर सूर्य संयोगान्तरितत्वज्ञानसे उत्पन्न होता है अर्थात् जहां सूर्यके संयोगमें अनेक व्यवधान हो उसे दैशिकपरत्व कहते हैं। परत्व देखो।

दैशिकविशेषणता (सं० स्त्री०) देशकृत अभावीय सरूप सम्बन्धभेद।

दैष्टिक (सं० त्रि०) दिष्टं भाग्यमिति मतिर्यस्य इति ठक्। भाग्यप्रमाणक दैवपर, भाग्यके भरोसे रहनेवाला।

दैहिक (सं० त्रि०) देहस्य इदं देहभवं वा देह-ठञ्। १ देह सम्बन्धीय, शारीरिक। २ देहभव, शरीरसे उत्पन्न। मनुने लिखा है, कि वसा, रेत, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नासिकामल, कर्णमल, श्लेष्मा, नेत्रजल, नेत्रमल और घर्म ये बारहों दैहिक मल हैं। इन्हें सर्वदा परिष्कार रखना चाहिये।

दैह्य (सं० त्रि०) देहे भवः देह यञ्। देहभव जीव।

दोंकना (हिं० क्रि०) गुर्राना।

दोंकी (हिं० स्त्री०) धौंकनी।

दोंर (हिं० पु०) एक प्रकारका सांप।

दो (हिं० वि०) तीनसे एक कम, एक और एक।

दो-आतशा (फा० वि०) जो दो बार खींचा या उतारा गया हो। एक बार अर्क या शराब आदि खींच चुकने पर कभी कभी उसको बहुत तेज करनेके लिये फिरसे खींचते या चुआते हैं जिसे दो-आतशा कहते हैं।

दोआब (फा० पु०) वह प्रदेश जो दो नदियोंके बीचमें पड़ता हो।

दोआब—युक्त प्रदेशमें साहरानपुर, मुजफ्फरनगर, मीरट, बुलन्दशहर, अलीगढ़, इटावाका कुछ अंश, मथुराका कुछ अंश, कानपुर, फतेपुर और इलाहाबाद जिलेका कुछ अंश इस भूभागके अन्तर्गत है। युक्त प्रदेशमें यही दोआब सबसे अधिक उर्वरा है और यहां कुछ कुछ अनाज भी हुआ करता है। यहां बहुत लोग रहते हैं जिनमेंसे अधिकांश कृषिजीवि हैं। मीरट, कानपुर, अलीगढ़ और इलाहाबाद ये चार प्रधान वाणिज्य स्थान है। रेलपथकी विस्तृतिके कारण स्थल पथ हो कर ही अनाजोंकी रफ़्नी और आमदनीकी विशेष सुविधा है। दोआब तीन भागोंमें विभक्त है। सहरानपुरसे अलीगढ़ तक एक भाग मथुरा और एटासे ले कर इटावा और फर्रुखाबाद तक दूसरा भाग तथा कानपुरसे ले कर इलाहाबाद तक तीसरा भाग है। गङ्गा और यमुनासे नहर काट कर खेत सींचनेकी जो व्यवस्था की गई है उससे दोआबकी जमीन बहुत उर्वरा है तथा अनाज भी काफी उपजता है।

१८२३ ई०मे यमुनाकी नहरका काम आरम्भ हो कर १८३० ई०में समाप्त हुआ था। पहले दोआबमें काफी अनाज नहीं उपजनेसे प्रतिवर्ष अन्नकष्ट होता था, अतः यमुना जलसे जमीन सींचनेके उद्देश्यसे ही नहर काटी गई। उक्त नहरके काटे जानेसे प्रचुर अनाज उत्पन्न होते देख गङ्गासे भी एक नहर काटनेका प्रस्ताव किया गया।

१८३७-३८ ई०में युक्त प्रदेशके अञ्चलमें बहुत भयानक दुर्भिक्ष पड़ा, जिसमें गवर्मेण्टने उक्त प्रस्ताव कार्यमें परिणत करनेका संकल्प किया।

१८४२ ई०से आरम्भ हो कर १८५४ ई०में उत्तरांशका काम और १८७२-७४ ई०से आरम्भ हो कर १८७८ ई०में नहर काटनेका काम समाप्त हुआ।

दोआबा (फा० पु०) दोआब देखो।

दोक (हिं० पु०) दो वर्षकी उम्रका बछेड़ा।

दोकला (हिं० पु०) १ वह ताला जिसमें दो कलें या पेंच हों। २ एक प्रकारकी मजबूत बेड़ी।

दोकोहा ( हिं० पु० ) वह ऊंट जिसको पीठ पर दो कूबर हों।

दोखंभा ( हिं० पु० ) विना कुल्फोका नैचा।

दोगंग ( हिं० स्त्री० ) दो नदियोंके बीचका प्रदेश।

दोगड़ी ( हिं० स्त्री० ) १ उत्पाती, उपद्रवी, फसादी। २ वह चित्ती या इमलीका चीआं जिसे लड़के जूआ खेलनेमें बेईमानी करनेके लिये दोनों ओरसे घिस लेते हैं और जिसके दोनों ओरका काला अंश निकल जाता और सफेद अंश निकल आता है।

दोगला ( फा० पु० ) १ वह जीव जिसके मातापिता भिन्न भिन्न जातियोंके हों। २ वह मनुष्य जो अपनी माताके असली पतिसे नहीं बल्कि उसके यारसे उत्पन्न हुआ हो, जारज।

दोगला ( हिं० पु० ) एक प्रकारका गोल और गहरा पात्र जो बाँसकी कमचियोंका बना होता है। इससे किसान लोग पानी उलीचते हैं।

दोगा ( हिं० पु० ) १ एक प्रकारका लिहाफ। यह मोटे देशी कपड़े पर बेल बूटे छाप कर बनाया जाता है। २ पानीमें घोला हुआ चूना। यह सफेदी करनेके काममें आता है।

दोगाड़ा ( हिं० पु० ) वह बन्दूक जिसमें दो नली लगी रहती हैं।

दोगुना ( हिं० वि० ) दुगना देखो।

दोग्धव्य ( सं० त्रि० ) दुह-तव्य। दोहनीय, दुहने योग्य।

दोग्धृ ( सं० त्रि० ) दुह तृच्। १ दोहनकर्त्ता, दुहनेवाला। ( पु० ) २ गोपाल, ग्वाला। ३ वत्स, बछड़ा। ४ अर्थोपजीवी। ५ अर्क। ६ दोहनशील, वह जो दुहने योग्य हो।

दोग्ध्री ( सं० स्त्री० ) दोग्धृ-ङीप्। दुग्धवती धेनु, दुधार गाय।

दोघ ( सं० पु० ) दुह-अच् वेदे निपातनात् हस्य घ। दोग्धा, दुहनेवाला मनुष्य।

दोचंद ( फा० वि० ) दुगना।

दोच (हिं० स्त्री०) १ असमंजस, दुबधा। २ कष्ट, दुःख। ३ दबाव।

दोचन (हिं० स्त्री०) १ असमंजस, दुबधा। २ दबाव। ३ कष्ट, दुःख।

दोचना ( हिं० क्रि० ) दबाव डालना।

दोचल्ला (हिं० पु०) दो पलिया छाजन।

दोचित्ता (हिं० वि०) उद्विग्न चित्त, जिसका चित्त एकाग्र न हो।

दोचित्ती ( हिं स्त्री० ) चित्तकी उद्विग्नता, दो चित्त होनेका भाव।

दोचोबा ( हिं० पु० ) वह बड़ा खेमा जिसमें दो दो चोब लगती हों।

दोज ( सं० पु० ) सङ्गीतमें अष्टतालका एक भेद।

दोजई ( हिं० स्त्री० ) गोलाकार वृत्त बनानेका नक्काशोंका एक औजार। इसका आकार छेनीसा होता है।

दोजख (फा० पु०) १ मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासके अनुसार नरक। इसके सात विभाग हैं और इसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरनेके उपरान्त रखे जाते हैं। (हिं० पु०) २ एक प्रकारका पौधा। इसमें सुन्दर फूल लगते हैं।

दोजखी ( फा० वि० ) १ दोजखसम्बन्धी, दोजखका। २ दोजखमें भेजे जानेके योग्य बहुत बड़ा अपराधी, पापी।

दोजर्बी ( फा० स्त्री० ) दोनली बन्दूक।

दोजा ( हिं० पु० ) कल्याणभार्या, दोबारा ब्याहा हुआ आदमी।

दोजानू ( फा० क्रि० वि० ) घुटनोंके बल या दोनों घुटनों टेक कर।

दोजीरा ( हिं० पु० ) एक प्रकारका चावल।

दोजीवा ( हिं० स्त्री० ) गर्भवती स्त्री।

दोड़ी ( सं० स्त्री० ) दोल-अच् गौरादित्वात् ङीष्। लस्य ड़। फलप्रधान वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़ जिसमें अच्छे फल लगते हैं।

दोण्डिका ( सं० स्त्री० ) कोषातकी, कड़ुई तरोई।

दोतरफा (फा० वि०) दोनों ओर सम्बन्धी, दोनों तरफका।

दोतर्फा ( फा० वि० ) दोतरफा देखो।

दोतला ( हिं० वि० ) दोतल्ला देखो।

दोतल्ला हिं० वि० ) दो खंडका, दोमंजिला।

दोतही ( हिं० स्त्री० ) एक प्रकारकी देशी मोटी चादर। यह दोहरी करके बिछानेके काममें आती है।

दौता ( हिं पु० ) दौतही देखो ।

दौतारा ( हिं० पु० ) १ एक प्रकारका दुशाला। २ एक प्रकारका बाजा जो एकतारेकी तरहका होता है। इसमें एकतारेकी अपेक्षा विशेषता यह है कि इसमें बजानेके लिये एकके बदले दो तार होते हैं।

दौति—जुमलाके दक्षिण पश्चिममें अवस्थित एक बहुजनाकीर्ण प्रदेश और नगर। इसके मध्य हो कर कर्णाली नदी प्रवाहित है। यह प्रधान नगर रायबरेलीसे साढ़े ४२ कोस पूर्वोत्तरमें अवस्थित है।

यह प्रदेश अयोध्याको वालुकामय प्रस्तरश्रेणी द्वारा और रोहिलखण्डको काली नदी द्वारा विभक्त करता है।

दौदरी ( हिं० स्त्री० ) दारजिलिङ्ग, सिकिम, भूटान और पूर्वी बंगालमें मिलनेवाला एक प्रकारका सदाबहार पेड़। इसकी लकड़ी काली, चिकनी और कड़ी होती है और इमारतके काममें आती है।

दौदल (हिं० पु०) १ चनेकी दाल या तरकारी। २ कचनारकी कलियां जो तरकारीके काममें भी आती है।

दौदस्ताखिलाल ( फा० पु० ) ताशके तुरुपके खेलमें किसी एक खिलाड़ीका एक साथ बाकी दोनों खिलाड़ियोंको मात करना।

दौदबल्लापुर—१ महिसुरके बङ्गलोर जिलेका उत्तरपश्चिमीय तालुक। यह अक्षा० १३° ७' से १३° ३०' उ० और देशा० ७७° १९' से ७७° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४१ वर्गमील और जनसंख्या करीब अस्सी हजारके है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३४२ ग्राम लगते हैं। तालुकका पूर्वीय भाग पर्वतमय है। सारे तालुकमें अरकावतीके जलसे काम चलता है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३° १८' उ० और देशा० ७७° ३२' पू० बङ्गलूर शहरसे २३ मील दूर अरकावती नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारके करीब है। १२वीं शताब्दीमें यह वाणिज्यका प्रधान केन्द्र था, लेकिन १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यह नगर बसाया गया है। १७६१ ई०में हैदरअलीने इस पर अपना अधिकार जमाया। १८७० ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।



दौदा ( हिं० पु० ) एक प्रकारका बड़ा कौवा। यह दो डेढ़ हाथ लम्बा होता है। इसका रंग काला तथा चोंच या पैर चमकीले होते हैं। यह गांवों तथा जंगलोंमें बहुत पाया जाता है। इसकी आदतें मामूली कौवेकी सी होती हैं। इसका घोंसला ऊँचे वृक्ष पर बना रहता है और यह पूससे फागुन तक अंडे देता है। एक बारमें इसके पाँच अंडे होते हैं।

दौदाना ( हिं० क्रि० ) किसीको दौदनेमें प्रवृत्त करना, दौदनेका काम दूसरेसे कराना।

दौदामी (हिं० स्त्री०) दुदामी देखो।

दौदिन (हिं० पु०) रीठेकी जातिका एक पेड़। इसके फल साबुनकी तरह कपड़े साफ करनेके काममें आते हैं और पत्ते चौपायोंको खिलाये जाते हैं और बीज दवाके काममें आते हैं।

दौदिला ( हिं० वि० ) जिसका चित्त एकाग्र न हो, दोचित्ता।

दौदिली (हिं० स्त्री०) चित्तकी अस्थिरता, दोचित्ती।

दौदुल्यमान ( सं० ति० ) दुल-यङ्, दोदुल्य-शानच्। अत्यन्त दोलायमान, जो बार बार झूलता हो।

दौध (सं० पु०) दुह-अच्. निपातनात् साधुः। गोवत्स, गायका बच्चा। २ गोप, ग्वाला, अहीर। ३ वह कवि जो पुरस्कारके लिये कविता करता हो।

दौधक ( सं० क्ली० ) छन्दोभेद, एक वर्णवृत्त। इसमें तीन भगण और अन्तमें दो गुरुवर्ण होते हैं।

दौधार (हिं० पु०) भाला, बरछा।

दौधारा (हिं० वि०) १ जिसके दोनों ओर धार हो। (पु०) २ एक प्रकारका थूहर।

दौधूयमान (सं० ति०) पुनः पुनः अतिशयेन वा धूयते धू-यङ्। दोधूय धातु शानच्। पुनः पुनः कम्पनविशिष्ट, जो बार बार कांपता हो।

दौन (हिं० पु०) १ वह नीची जमीन जो दो पहाड़ोंके बीचमें पड़ती है। २ दोआबा, दो नदियोंके बीचकी जमीन। ३ दो नदियोंका संगम स्थान। ४ दो नदियोंके मेल। ५ दो वस्तुओंका मेल। ६ एक प्रकारका काठका लम्बा और बीचसे खोखला टुकड़ा। इससे धानके खेतोंमें सिंचाई की जाती है। इसका आकार धान कूटनेकी

ढेंकलीके आकारका होता है और उसीकी तरह जमीन पर लगा रहता है इसका एक सिरा बहुत चौड़ा होता है और इसीसे पानी लिया जाता है। पहले इस सिरेको पानीमें डुबाते हैं और पानीसे भर जाने पर उसे ऊपरकी ओर उठाते हैं। ऐसा करनेसे इसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोखले मार्गसे पानी नालीमें चला जाता है।

दोनली (हिं॰ वि॰) दो नालवाली।

दोना (हिं॰ पु॰) पत्तोंका बना हुआ छोटा गहरा पात्र। यह कटोरेके आकारका होता है और इसमें खानेकी चीजें आदि रखी जाती हैं।

दोनिया (हिं॰ स्त्री॰) छोटा दोना।

दोनों (हिं॰ वि॰) एक और दूसरा।

दोपंथी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी दोहरे खानेकी जाली। स्त्रियाँ प्रायः इसकी कुरतियां बनाती हैं।

दोपट्टा (हिं॰ पु॰) दुपट्टा देखो।

दोपलका (हिं॰ वि॰) १ दो पल्लेका नगीना, दोहरा नगीना। २ एक प्रकारका कबूतर।

दोपलिया (हिं॰ वि॰) दोपल्ली देखो।

दोपल्ली (हिं॰ वि॰) १ दो पल्लेवाला। (स्त्री॰) २ एक प्रकारकी टोपी जो मलमल, अद्धी आदिकी बनी होती है। इसमें कपड़ेके दो टुकड़े एक साथ सिले होते हैं। इस तरहकी टोपी लखनऊ, प्रयाग और काशी आदिमें अधिक व्यवहृत होती है।

दोपहर (हिं॰ स्त्री॰) मध्याह्नकाल, सवेरे और सन्ध्याके बीचका समय।

दोपहरिया (हिं॰ स्त्री॰) दोपहर देखो।

दोपीठा (हिं॰ वि॰) १ दोरुखा, जिसके दोनों ओर एकसा रंग रूप हो। (पु॰) २ कागज आदिका एक ओर छपनेके उपरान्त दूसरी ओर छापना।

दोपौवा (हिं॰ पु॰) १ पावकी आधी ढोली। २ किसी वस्तुका आधा।

दोप्याजा (फा॰ पु॰) एक प्रकारका पका हुआ मांस। इसमें तरकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है।

दोफसली (हिं॰ वि॰) १ दोनों फसलोंके सम्बन्धका। २ दोनों ओर काम देने योग्य।

दोबल (हिं॰ पु॰) दोष, अपराध।

दोबारा (फा॰ क्रि॰ वि॰) १ दूसरी बार, दूसरी दफा। (स्त्री॰) २ दो-आतशा शराब। ३ दो आतशा अरक आदि। ४ वह चीज जो एक बारकी प्रस्तुत चीजसे फिर दूसरी बार प्रस्तुत की गई हो।

दोबाला (फा॰ वि॰) दूना, दुगना।

दोभाषिया (हिं॰ पु॰) दुभाषिया देखो।

दोमञ्जिला (फा॰ वि॰) दो खण्डका, दोतल्ला।

दोमट (हिं॰ स्त्री॰) बालू मिश्रित मट्टी, दूमट भूमि।

दोमहला (हिं॰ वि॰) दो खण्डका, दोमञ्जिला।

दोमरगा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका देशी मोटा कपड़ा। इसकी जनानी धोतियाँ बनाई जाती हैं। इस तरहका कपड़ा मिर्जापुरमें बहुत बनता है।

दोमुहां (हिं॰ वि॰) १ दो मुंहवाला। २ दोहरी चाल चलनेवाला, कपटी।

दोमुहांसांप (हिं॰ पु॰) हाथ भर लंबा एक प्रकारका सांप। इसकी दुम मोटी होनेके कारण मुंहके समान ही जान पड़ती है। इसमें न तो विष होता और न यह किसीको काटता है। कहते हैं, कि छः महीने तक इसका मुंह एक ओर रहता है और छः महीने इसकी दुमका सिरा मुंह बन जाता है और पहला मुंह दुम बन जाता है।

दोमुही (हिं॰ स्त्री॰) नक्काशी करनेका सोनारोंका एक औजार।

दोयम (फा॰ वि॰) जो क्रमसे दोके स्थान पर हो, दूसरा।

दोयरी (हिं॰ स्त्री॰) दारजिलिङ्गके जङ्गलोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है तथा सन्दूक आदि बनाने और इमारतके काममें आती है। इसकी लकड़ीका कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत देर तक ठहरता है।

दोयल (हिं॰ पु॰) बया पक्षी।

दोरङ्गा (हिं॰ वि॰) १ दो रङ्गका, जिसमें दो रङ्ग हो। २ दोनों पक्षोंमें आ सकनेवाला, जो दोनों ओर लग या चल सके। ३ वर्णसङ्कर, दोगला।

दोरङ्गी (हिं॰ स्त्री॰) १ दोनों ओर चलने या लगनेका भाव। २ छल, कपट।

दोरक (सं० पु०) डोरक निपातनात् डस्य द। वीणा-तन्तु बन्धनरज्जु, वह रस्सी जिससे वीणाका तन्तु बंधा जाता है।

दोरसा (हिं० वि०) १ जिसमें दो तरहके रस या स्वाद हों। (पु०) २ एक प्रकारका पीनेका तमाकू। इसका धुआं कड़ुआ और मीठा मिला हुआ होता है।

दोराहा (हिं० पु०) वह स्थान जहांसे आगेको ओर दो रास्ते जाते हों।

दोरुखा (फा० वि०) १ जिसके दोनों ओर एकसा रंग या बेल बूटे हों। २ जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो। ३ सोनारोंका एक औजार। यह हंसुली बनानेके काममें आता है।

दोरेजी (फा० स्त्री०) नीलकी दूसरी फसल जो पहले सालकी फसल कट जानेके बाद उसकी जड़ोंसे फिर होती है।

दोर्गड़ु (सं० पु०) दोषा बाहुना गड्डुः कुब्जितः। कुब्जितहस्त, काठको मोंगरो। इसका पर्याय—कुम्भ और बाहुकुण्ठ है।

दोर्ग्रह (सं० त्रि०) दोर्गृह्यतेऽनेन ग्रह-करणे घञ्। १ बलवान्। इसका पर्याय कौरात, चाम और दोषाग्रह है। २ भुजग्रहण, हाथका पकड़ना। ३ हस्तकी व्यथा, हाथका दर्द।

दोर्ज्या (सं० स्त्री०) सूर्यसिद्धान्तोक्त भुजाकार ज्या, सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार वह ज्या जो भुजके आकारको हो।

दोर्दण्ड (सं० पु०) दोर्दण्ड इव। बाहुरूप दण्ड, भुजदण्ड।

दोर्मध्य (सं० क्ली०) दोष्णो मध्यं। बाहुमध्यभाग, भुजका बिचला भाग।

दोर्मूल (सं० क्ली०) दोषो मूलं। भुजमूल, कक्ष, बगल। इसका पर्याय भुजकोटर है।

दोल (सं० पु०) दुल-घञ्। १ दोलन, हिंडोला। दोल्यतेऽस्मिन् कृष्णेनेति दोलि अधिकरणे घञ्। २ श्रीकृष्णका स्वनामख्यात उत्सवविशेष। इस उत्सवमें श्रीकृष्णको दोलारोहण करा कर झुलाते हैं, इसीसे इसका नाम दोल पड़ा है। यह उत्सव फाल्गुनमासको पौर्णमासी तिथिमें किया जाता है।

दोलकी व्यवस्था—जिस दिन अरुणोदयके समय पौर्णमासी पड़े, उस दिन श्रीकृष्णकी दोलयात्रा होती है। अरुणोदयके समय यदि दो दिन पौर्णमासी पड़े, तो दोलयात्रा पहले दिन होगी, क्योंकि उस दिन सङ्गव और मध्याह्नकाल पाया है और वह पौर्णमासी त्रिसंध्य तक व्यापित है, इस कारण इस प्रकारको पौर्णमासी-का अधिकार होता है। इस दिनकी दोलयात्रा सबसे प्रसिद्ध मानी गई है। यदि तिथिक्षयके कारण अरुणो-दयके समय पौर्णमासी न पड़े, तो दोलयात्रा पहले दिन होगी। इसमें चतुर्दशीका हो आदर किया गया है। पूर्व दिन अरुणोदयके समय पौर्णमासी न पड़ कर यदि पूर्वाह्नमें पड़े और दूसरे दिन मुहूर्तकालसे भो कम यदि पौर्णमासी पड़े, तो भी पूर्व दिनमें हो दोल-यात्रा होगी। पञ्चमी तिथि तक दोलयात्राकी व्यवस्था इस प्रकार है।

कलियुगमें यह दोलोत्सव सब उत्सवोंमें प्रधान है। फाल्गुनको चतुर्दशी तिथिके अष्टम भागमें अथवा प्रति-पत् सन्धिके समय यथाविधि भक्तिपूर्वक सित, रक्त, गौर और पीत इन चार प्रकारके फल्गुचूर्णमें नाना प्रकारके सुगन्ध द्रव्य मिला कर श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करते हैं। एकादशीसे ले कर पञ्चमी तक इसी प्रकार करते रहना चाहिये। यह उत्सव पांच दिन तक मनाया जाता है। दक्षिणाभिमुख करके कृष्णको दोलयान पर रखते हैं। जो इस दोलस्थ कृष्णका दर्शन करते हैं, वे सभी पापों-से छुटकारा पाते हैं, इसमें तनिक भो सन्देह नहीं।

(पद्मपुराण)

स्कन्दपुराणके उत्कलखण्डमें दोलोत्सवका विषय इस प्रकार लिखा है—

फाल्गुनमासमें दोलोत्सव करना चाहिये। इस उत्सवमें गोविन्द लोगोंके आमोद प्रमोदके लिये स्वयं क्रीड़ा करते हैं। इसमें देवदेवकी अर्चना करनी होती है और देवदेव विष्णुको गोविन्द इस आख्यासे अर्चना करते हैं। प्रासादके पूर्व १६ स्तम्भोंको लम्बरूपसे गाड़ देते हैं, उनमें चौकोन चार द्वार वेदिकायुक्त मण्डप प्रस्तुत करते हैं और उन्हें चारु चन्द्रातप, माल्य, चामर तथा ध्वजा आदिसे सुशोभित कर देते हैं। उस वेदिकामें

श्रीपर्णी काष्ठका बना हुआ भद्रासन होना चाहिये, यह उत्सव पाँच वा तीन दिन तक किया जाता है। चतुर्दशी रात्रिके निशामुखमें दोलमण्डपके पूर्व भागमें वह्नि उत्सव करना होता है। यह वह्नि उत्सव दोलयात्रा का एक अङ्ग है। आचार्यको वरण और भूमि संस्कृत करके विधिवत् तृणराशि सञ्चित करते हैं। जो इस समय हरिका अवलोकन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जब तक दोलयात्रा समाप्त न हो, तब तक इस अग्निको बहुत यत्नपूर्वक रखना होता है। चतुर्दशीके यामावसान होने पर अर्थात् अरुणोदयके समय शुभा गोविन्द प्रतिमाको सुगन्ध द्रव्योंसे अधिवासित कर नाना प्रकारके उपचार द्वारा उनकी पूजा करते हैं। उन्हें रंग विरंगकी माला तथा अच्छे अच्छे वस्त्र समर्पण करते तथा द्विजश्रेष्ठगण गोविन्दको परब्रह्म मानकर मन्त्र पाठ करते हैं। इस समय देवप्रतिमा स्वयं पुरुषोत्तम रूपसे विराजित रहते हैं। पीछे उस प्रतिमाको रत्नान्दोलिका द्वारा स्नानमण्डपमें लाते हैं। इस समय अनेक प्रकारके तूर्य-निनाद, शङ्खध्वनि, जयशब्द, स्तोत्रपाठ, ध्वज, पताका, चामर और व्यजन आदि तरह तरहके उपकरणोंसे महोत्सव करते हैं। इस समय देवगण पितामहको आगे करके उस स्थान पर पहुंच जाते हैं। ऋषि लोग भी यह उत्सव देखने आते हैं। भद्रासन पर गोविन्दको अधिवासित कर उपचार द्वारा उनकी पूजा करते और महास्नानकी विधिके अनुसार उन्हें स्नान कराते हैं। यथाविधि महास्नान हो जाने पर गन्ध, तोय और श्रीसूक्त द्वारा उनका अभिषेक करना होता है। स्नानके बाद गोविन्दको वस्त्र, अलङ्कार और माल्यादि द्वारा विभूषित कर उनकी पूजा करनी होती है। इस प्रकार पूजा करके प्रासादका परिवेष्टन करते हैं। पीछे सप्तकृत्व करके गोविन्दको दोल पर बिठा कर सातबार नीचे और ऊपर झुलाते हैं। दोलयात्रा समाप्त होने पर इक्कीस बार उन्हें घुमाते हैं। यही भगवान्‌की लीला है। स्वयं पितामहने ऐसा कहा है। राजर्षि इन्द्रद्युम्नने पहले पहल यह दोलोत्सव किया था। गोविन्दका ध्यान—

"अनर्घरत्नघटित-कुण्डलोद्भासितश्रुतिं।
यथास्थानं यथाशोभं दिव्यालङ्काररञ्जनं॥
विकचाम्बुजमध्यस्थं विश्वधाम्ना श्रिया युतं।
शंखचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनं॥
सुप्रसन्नं सुनासाभ्रू पीनवक्षःस्थलोज्ज्वलं।
पुरोव्योमस्थितै र्देवैर्ब्रह्माद्यै र्नतकन्धरैः।
कृताञ्जलिपुटै र्भक्त्या जयशब्दैरभिष्टुतं॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च किन्नरैः सिद्धचारणैः।
हाहाहूहू प्रभृतिभिः सस्वरं दिव्यगायनैः॥
अहं पूर्विकाया नृत्यगीतवादित्रकारिभिः।
नेत्राम्बुजसहस्रैस्तु पूज्यमानं मुदान्वितैः॥
विकिरद्भिः सर्वदिक्षु गन्धचन्दनजं रजः।
उपवेश्याथ गोविन्दं पूजयेदुपचारकैः॥
वल्लवीवृन्दमध्यस्थं कदम्बतरुमूलगम्।
हावहास्यविलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे॥
गोपीभिश्चैव गोपालै र्लीलान्दोलिकया नगं।
चिन्तयित्वा जगन्नाथं विकिरेद्गन्धचूर्णकैः॥"

दोलोत्सवमें इसी ध्यानसे गोविन्दकी पूजा करनी होती है। जो इस अवस्थामें श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं उनकी मुक्ति होती है। श्रीगोविन्ददेवको तीन बार दोल प्रदान करना होता है। इस दोल प्रदानसे सब पाप जाते रहते हैं। तीन बार दोलोत्सव देखनेसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकारके तापोंसे मानव मुक्त हो जाते हैं। जो राजा यह दोलोत्सव करते हैं, वे चक्रवर्ती होते हैं। ब्राह्मण वेदविद् हो कर मुक्तिलाभ करते हैं।

(स्कन्दपु० उत्कलख० ४२ अ०)

चैत्र मासमें भी दोलयात्रा होती है—

"चैत्रमासि सिते पक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिं।
दोलारूढं समभ्यर्च्य मासमान्दोलयेत् कलौ॥"

(गरुड़पु०)

चैत्रमासके शुक्लपक्षमें हरिको दक्षिणमुख करके दोल पर बैठाना चाहिये। इस दोलोत्सवकी नित्यता पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखी है—

"ऊर्जे रथं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपर्व च।
चैत्रे मदनकारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः॥"

विष्णुं दोलास्थितं दृष्ट्वा त्रिलोकस्योत्सवो भवेत्,
तस्मात् कार्यशतं त्यक्त्वा दोलाहे उत्सवं कुरु ॥" (पद्मपु०)

जो ऊर्ज (कार्तिक मास)में रथ, मधुमास अर्थात् चैत्र मासमें दोलयात्रा, श्रावण मासमें झूलन, चैत्रमासमें मदनका आरोप नहीं करते उनको अधोगति होती है। विष्णुको दोलास्थित देखनेसे त्रैलोक्यका उत्सव होता है, इसलिये अपने सैकड़ों कार्य छोड़ कर दोलोत्सवके दिन दोलोत्सव करना चाहिये।

दोलयात्राका विषय हरिभक्तिविलासमें जो लिखा है, इस प्रकार है—

चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन प्रातः कार्य तथा नित्य पूजादि करके दोलोत्सव करना चाहिये। इस दोलविधिके लिये अनेक प्रकारके उपकरणादि संग्रह करके तथा वैष्णवोंके प्रति सम्मान दिखला करके नृत्य गीत आदि द्वारा प्रभुको दोल पर चढ़ाना चाहिये। अति उन्नत वहिर्वेदिका पर यथाविधि स्थापित करके पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजा करके एक एक पहरमें प्रभुको झुलाना चाहिये और यत्नपूर्वक नाना प्रकारके महोत्सव कर दिन और रात जगते रहना चाहिए। वैष्णव लोग इस प्रकार जागरणादि करके प्रभुको प्रणाम, प्रार्थना आदि कर दोलवेदिकासे अपने घर ले जाते हैं।

चैत्रमासकी शुक्लपक्षीय तृतीया तिथिमें रमापति विष्णुको दोलपर चढ़ा कर यथाविधि पूजा करके एक मास तक झुलाते रहना चाहिये।

फाल्गुनमासकी राकादिमें यदि उत्तरफल्गुनी नक्षत्र पड़े, तो उसी दिन दोलोत्सव करना उचित है।

चैत्र मासकी शुक्लनवमीके दिन जो दोल होता है, उसे रामनवमीका दोल कहते हैं।

फल्गूत्सव और रामनवमी देखो।

भारतवर्षमें सभी जगह दोलयात्रा वा होलीकी धूमधाम होती है। विशेषतः युक्तप्रदेश और उत्कल प्रदेशमें ही होलीका आमोद कुछ अधिक देखा जाता है। दोलके दिन हिन्दू स्त्रीपुरुष आपसमें अबीर छिड़कते तथा तरह तरहके रंगोंसे क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकारके वीभत्स दृश्य रहस्यजनक काण्डका अभी और दूसरे दूसरे देशोंमें उतना अधिक प्रचार नहीं देखा जाता। कोई कहते हैं, कि भगवान् विष्णुने शङ्खचूड वा होलिकाका वध कर यह होली-उत्सव किया था। फिर कोई कहते है कि यही प्रधान वसन्तोत्सव है। वसन्तागममें प्रकृति सती नये नये साजोंसे सज्जित हुई हैं, चेतन अचेतन सभी सृष्टजगत्के ऊपर प्रकृतिने मानो अपना आधिपत्य फैला लिया है। उसी वासन्ती प्रकृतिकी पूजाके लिये ही इस प्रकारका अनुष्ठान हुआ करता है। एक समय यूरोपीय अनेक सभ्य जातियां भी इस प्रकारका वासन्तिक आमोद प्रमोद किया करती थीं। पहले रोमराज्यमें Festum Stultorum, Matronalia, Festa, Lupercalia Festa ( on the Ides of March ), वाचेशोत्सव (Feast of Bacchus ), अन्नपूर्णा ( Anna Perenna )का पूजन आदि जो सब महोत्सव होते थे, उनमें होली उत्सवको तरह धूमधाम होती थी। प्रथम तीन उत्सवोंमें युवकगण उन्मत्त हो नंगे हो कर पथमें, घाटमें और मन्दिरमें उछलते कूदते थे। इसके सिवा the Abbot of Unreason, the Carnival, the Passover और the day of All-fools ये सब जो परिहासजनक आमोद यूरोपमें प्रचलित थे, वे इस देशके अबीर-उत्सव सरीखे थे। एक समय जर्मनोंमें भी यहांके जैसा होली-उत्सवका प्रचार था। बोयेमस ( Joannes Boemus Aubanus )ने लिखा था कि, 'सभी जर्मनी पान भोजन और रसरंगमें अपनेको भूल जाते थे। वे सोचते थे, कि आजके जैसा दिन फिर कभी आनेको नहीं। अधिवासिगण मुंह पर नकाब डाल-कर छद्मवेश बना कर, समूचे शरीरको लाल और काले रंगोंसे रंग कर इधर उधर नंगे घूमते फिरते थे।'

नैवगर्गसने ( Naogeorgus ) यूरोपीय कार्णिभल ( Carnival ) नामक जिस उत्सवकी बात लिखी है, वह ठीक भारतकी होलीके जैसा प्रतीत होता है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसके कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"Then old and young are both as much
as guest of Bacchus' feast;
And four days long they tipple, square'
feed and never rest.

——fear and shame away ;
The tongue is set at libertie, and hath no kind of stay
All things are lawful then and done, no pleasure passed by
That in their minds they can devise, as if they then should dies.
Some naked run about the streets, their faces hid alone,
With-visars close, that so disguised they they may of none be known
* * * * * *
No matron old nor sober man can freely by them come"*

नेवगग सने जैसा विवरण लिखा है, वृन्दावनमें आज भी होली-उत्सवमें वैसा ही वीभत्स व्यापार हुआ करता है। वहां आवालवृद्धवनिता मानसम्भ्रम लोकलज्जा छोड़ कर इस उत्सवमें उन्मत्त हो जाते हैं। इस समय अच्छे बुरेका ज्ञान नहीं रहता। अबीर लगा कर नाना रंगोंसे भूषित हो कर वे अश्लील भाषामें गान करते, बाजा बजाते तथा इधर उधर चक्कर लगाते हैं। इस समय बहुत सी हिन्दू-स्त्रियां दरवाजा बन्द किये रहती हैं। रंगमें रंगी जानेके भयसे वे बाहर नहीं निकलतीं। पर हां, घरके भीतर भी फाग खेलने, अबीर-गुलाब उड़ाने तथा नाच गान करनेसे वे बाज नहीं आतीं।

विशेष विवरण होली शब्दमें देखो।

दोलड़ा (हिं० वि०) दो लड़ोंका, जिसमें दो लड़ें हों।

दोलत्ती (हिं० पु०) दुलत्ती देखो।

दोला (सं० स्त्री०) दोल्यतेऽस्यामिति दोलि-घञ्-टाप्। १ उद्यानमें क्रीड़ाके निमित्त काष्ठादिमय हिन्दोलक, हिंडोला, झूला। २ वाह्यखट्टा, डोली। इसका पर्याय— प्रेङ्खव, दोलो, खट्वाला, दोलिका, प्रेङ्ख और हिन्दोला है

दोलाद्वारा भ्रमणगुण—वातकोप, अङ्गका स्थैर्य और बलाग्निकारक है।

हयग्रीवपञ्चरात, ज्ञानरत्नकोष और, विश्वकर्मीय-शिल्पमें दोलिकायानकी निर्माण-प्रणाली लिखी है।

दोलायन्त्र (सं० पु०) वैद्योंका एक यन्त्र। इसको सहायतासे वे औषधियोंके अर्क उतारते हैं। एक घड़ेमें कुछ तरल पदार्थ भर कर उसे आग पर चढ़ाते हैं। घड़ेके मुंह पर एक लकड़ी रखी रहती है उसी लकड़ीमें बांध कर कुछ औषधियोंकी पोटलीको इस तरह लटकाते हैं कि वह पोटली उस तरल पदार्थके बीचमें रहे, मगर घड़ेकी पेंदीसे न छू जाय। इस तरह उन औषधियोंका अर्क उस तरलपदार्थमें उतर आता है।

दोलायमान (सं० त्रि०) दोलां करोति दोला-क्यङ्, ततः शानच्। दोलनविशिष्ट, झूलता हुआ, हिलता हुआ।

दोलायमान गोविन्द, मञ्चस्थित, मधुसूदन और रथस्थित वामनका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता है।

दोलायुद्ध (सं० क्लो०) दोलेव युद्धं। अनियत जयपराजययुक्त युद्ध, वह लड़ाई जिसमें बार बार दोनों पक्षोंकी हारजीत होती रहे और जल्दी किसी एक पक्षकी अंतिम विजय न हो।

दोलिका (सं० स्त्री०) दोला-स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। हिन्दोला, हिंडोला, झूला। २ डोली।

दोली (सं० स्त्री०) दोल्यतेऽनया दोलि-इन् ततो ङीष्। दोला, डोली।

दोलोत्सव (सं० पु०) वैष्णवोंका एक त्योहार। इसमें वे अपने ठाकुरजीको फूलोंके हिंडोले पर झुलाते हैं। यह उत्सव फागुनकी पूर्णिमाको मनाया जाता है।

दोल्का—अहमदाबादसे ११ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित एक शहर। यहां दो सुन्दर मस्जिद हैं जो लगभग १५० फुट ऊँचो हैं। मस्जिदका सम्मुख भाग ५ गुम्बज और तीन गुम्बजयुक्त दीवारसे घिरा है।

दोवाहार—द्वादश मात्राका ताल।

दोश (हिं० पु०) एक प्रकारका लाख। इसका व्यवहार रंग बनानेमें होता है।

दोशमाल (फा० पु०) कसाईका अंगोछा वा तौलिया।

दोशाखा (फा० पु०) १ दो बत्तियोंका शमादान, दो डालोंकी दीवारगीर। २ भांग छाननेका लकड़ी। इसमें दो शाखें होती हैं और साफी बांध कर भांग छानते हैं।

दोशाला (हिं० पु०) दुशाला देखो।

दोष (सं० पु०) दूष्यते इति दुष वैकृत्ये णिच् भावे घञ्। १ दूषण, बुरापन, खराबी, नुक्स।

* Journal of the Royal Asiatic Society, Vol. IX, p. 175.

"अदाता वंशदोषेण कर्मदोषाद्दरिद्रता।
उन्मादो मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता॥" (चाणक्य ४८)

वंशदोषसे अदाता, कर्मदोषसे दरिद्र, मातृदोषसे उन्माद और पितृदोषसे मूर्ख होता है।

दुष्यत्यनेनेति दुष करणे घञ्। २ पाप, जिससे मनुष्य दूषित होता है, इसे दोष कहते हैं। इसीसे दोषका नाम पाप पड़ा है। ३ वैद्यकके अनुसार शरीरमें रहनेवाले वात, पित्त और कफ जिनके कुपित होनेसे शरीरमें विकार अथवा व्याधि उत्पन्न होती है। ४ गोवत्स, गायका बछड़ा। ५ अभियोग, लगाया हुआ अपराध, लांछन। ६ नव्यन्यायमें वह त्रुटि जो तर्कके अवयवोंका प्रयोग करनेमें होती है। यह तीन प्रकारकी होती है—अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असद्भाव। ७ न्यायके अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणासे मनुष्य भले या बुरे कामोंमें प्रवृत्त होता है। ८ भागवतके अनुसार आठ वसुओंमेंसे एकका नाम। ९ प्रदोष। १० अपराध, कसूर, जुर्म। ११ अपकर्ष-प्रयोजक वस्तुनिष्ठ धर्मभेद, साहित्यमें वे बातें जिनसे काव्यके गुणमें कमी हो जाती है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि रसापकर्षका नाम दोष है। यह पहले पांच प्रकारका है—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष। पाचो दोष पुनः नाना भागोंमें विभक्त हैं।

पददोष और पदांशदोष १६ प्रकारके हैं—दुःश्रव, त्रिविध अश्लील, अनुचितार्थ, अप्रयुक्तता, ग्राम्य, अप्रतीत, सन्दिग्ध, नेयार्थ, निहतार्थता, अवाचकत्व, क्लिष्टत्व, विरुद्ध, मतिकारिता, अविमृष्ट विधेयांश, निरर्थक, असमर्थत्व और च्युतसंस्कारता।

जहां पर अतिशय परुषवर्णका प्रयोग रहता है और उस परुषवर्ण प्रयोगके कारण श्रुतिका अत्यन्त दुःखावह होता है, अर्थात् सुननेमें बहुत कठोर लगता है वहां पर दुःश्रवदोष होता है।

अनुचितार्थ—जहां पर उचितार्थ शब्दका प्रयोग नहीं होता, वहां पर यह दोष होता है।

अप्रयुक्तता—प्रसिद्ध कविगण जिसका प्रयोग नहीं करते अर्थात् जो शब्द अभिधानमें हैं, किन्तु साधारण स्थलमें जिनका प्रयोग नहीं है, उन सब शब्दोंका प्रयोग करनेसे अप्रयुक्तता नामक दोष होता है।

अप्रतीतत्व दोष—जो सब शब्द एक देशमें प्रसिद्ध हैं, उन सब शब्दोंका प्रयोग करनेसे यह दोष होता है।

सन्दिग्धता—जहां पर अर्थबोधक कालमें निश्चयरूपसे अर्थ प्रतीत नहीं होता, वहां पर यह दोष लगता है।

ग्राम्यतादोष—अपकृष्ट भाषामें जो शब्द व्यवहृत होता है, उसे ग्राम्यशब्द कहते हैं और जहां पर ग्राम्य शब्द प्रयुक्त होता है अथवा ग्राम्यार्थबोधक पदकी रचना होती है, अर्थात् किसी प्रकार चमत्कारित्व वर्णित न हो कर केवल अशन वसनादि चिन्तादिमें पर्यवसित होता है, वहां पर ग्राम्यशब्दका प्रयोग दोषरूपमें गिना जाता है।

निहतार्थता—अनेकार्थक शब्दका अप्रसिद्ध अर्थमें प्रयोग करनेसे निहतार्थदोष होता है अर्थात् उभयार्थक शब्दका अप्रसिद्ध अर्थमें प्रयोग करनेसे यह दोष लगता है।

क्लिष्टता—जहां पर अर्थबोध करनेमें कष्ट होता है वहां पर यह दोष होता है।

विरुद्धमतिकारिता—जहां पर विरुद्धार्थका बोध होता है अर्थात् विपरीत बुद्धिके अनुसार अर्थका बोध होता है, वहां पर यह दोष लगता है।

निरर्थकता—जो शब्द केवल श्लोकके पादपूरणार्थ प्रयुक्त होता है तथा जो अर्थशून्य है, उसका प्रयोग करनेसे ही यह दोष होता है।

वाक्यगतदोष २३ प्रकारका है—वर्णप्रतिकूलता, लुप्तविसर्गता, आहतविसर्गता, अधिकपदता, न्यूनपदता, हतवृत्तता, पतत्प्रकर्षता, सहचरभिन्नता, सन्धिविश्लेष, सन्ध्यश्लीलता, सन्धिकष्टता, अर्थान्तरैकपदता, समाप्तपुनरात्तता, अभवन्मतसम्बन्ध, अक्रमता, अमतपदार्थता, वाच्यानभिधान, भग्नप्रक्रमता, प्रसिद्धित्याग, अस्थानमें पदन्यास, सङ्कीर्णता, गर्भितता कथितपदता और अस्थानमें समासन्यास ये सब दोष केवल वाक्यगत ही हुआ करते हैं।

प्रतिकूलवर्णता—जिस रसमें जिन वर्णोंका प्रयोग करना उचित है, वहां उनका प्रयोग न कर यदि विप-

रीत वर्णों का प्रयोग किया जाय, तो वहां प्रतिकूलवर्णता दोष लगता है।

लुप्तविसर्गता—जहां पर केवल विसर्गका लोप करके पदका प्रयोग किया जाता है, वहां यह दोष होता है; जैसे "गता निशा इमा वाले" यहां पर "गताः" 'निशाः' 'इमाः' इन तीनों पदका विसर्ग लोप कर प्रयोग किया गया है, इसीसे यह दोष हुआ।

आहत-विसर्गता—जहां पर विसर्गोंका ओकार करके पदप्रयोग किया जाता है, वहां पर यह दोष लगता है। यथा—"धीरो वरो नरो याति" यहां पर 'धीरः' 'वरः' 'नरः' इन तीन पदोंके विसर्गके स्थानमें ओकार करके प्रयोग किया गया है, इसीसे यह दोष हुआ।

अधिकपदता—जहां पर दो एक पद अधिक रहते हैं, वहां पर अधिकपदतादोष होता है। यथा 'पल्लवाकृति-रक्तोष्ठी' यहां पर 'रक्तोष्ठी' इसका प्रयोग करनेसे ही काम चल जाता, किन्तु 'पल्लवाकृति' यह पद अधिक हुआ है, इसीसे यहां पर यह दोष हुआ।

न्यूनपदता—जहां पर दो एक पद हीन हो, वहाँ पर न्यूनपदता दोष होता है।

समाप्तपुनरात्तता—जहां पर वाक्य अर्थात् कर्त्ता, कर्म और क्रियादिका दोष करके पुनः पद वा वाक्य गृहीत होता है, वहा पर यह दोष लगता है।

दुष्क्रमता, सन्दिग्धता, अनुचितता, सहचरभिन्नता, अर्थपुनरुक्तता आदि भेदसे अर्थदोष नाना प्रकारका है।

दुष्क्रमता—क्रमविपर्यायको जगह दुष्क्रमता नामक दोष होता है अर्थात् जिस क्रमसे कहा जाता था, उसके विपरीत भावमें कहनेसे यह दोष होता है, यथा—

"देहि मे वाजिनं राजन् गजेन्द्रं वा मदालसं।"

राजन्! मुझे एक अश्व अथवा एक अत्युत्तम गजेन्द्र दीजिये, यदि यह न दे सकें, तो उसके बदलेमें राज्यका चतुर्थांश वा राजसिंहासनका आधिपत्य ही दीजिये। यहां पर याचकोंको चाहिये था, कि वह पहले सिंहासनाधिपत्यके लिये, उसके नहीं मिलने पर गजके लिए और सबसे पीछे एक अश्वके लिए प्रार्थना करता, लेकिन यहां पर उसका विपरीत हुआ है। इस कारण दुष्क्रमता दोष लगा।

व्याहतता—पहले किसी विषयके उत्कर्ष वा अपकर्ष का वर्णन कर पीछे उसके अन्यथा प्रतिपादन करनेको व्याहतदोष कहते हैं।

अनुचितता—देश काल पात्र व्यवहारादिके विपरीत वर्णनकी जगह अनुचितता दोष होता है।

कालानौचित्य—भाविकालकी घटनाको अतीत वा वर्त्तमान कालकी घटना माननेसे यह दोष लगता है।

सहचरभिन्नता—उत्तम वस्तुके पर्यायमें अधम वस्तुका अथवा अधमवस्तुके पर्यायमें उत्तम वस्तुका समावेश होनेसे सहचरभिन्नता नामक दोष होता है।

अर्थपुनरुक्तता—जहां पर एक विषयका बार बार वर्णन देखा जाता है, वहां पर अर्थपुनरुक्तता दोष लगता है।

प्रसिद्धिविरुद्धता—आकाश और पापमें मलिनता, यशमें धवलता, क्रोधमें रक्तिमा, वर्षाकालमें हंसोंका मानस-सरोवरमें गमन, कन्दर्पका पुष्प-धनु, भ्रमरपङ्क्तिकी ज्या, पञ्चवाण, कामशर और स्त्रियोंके कटाक्षमें युवजन हृदयभेद, दिवसमें पद्मोन्मेष और कुमुदनिमीलन, निशाकालमें पद्मका निमीलन और कुमुदका प्रकाश, सूर्यकी प्रिया पद्मिनी और छाया, चन्द्रप्रणयिणी कुमुदिनी और तारकावली, मेघगर्जनमें मयूरोंका नृत्य, चक्रवाक मिथुनका रात्रिविरह, कामिनीके चरणाघातसे अशोकपुष्पका विकाश और उनके मुखामृतमें वकुलका उद्गम, वसन्तकालमें जातीपुष्पका अप्रकाश, चन्दनतरु फलपुष्पहीन ये सब कवियोंकी प्रसिद्धि हैं। इन प्रसिद्ध विषयोंका व्यतिक्रम वर्णित होनेसे ही प्रसिद्धिविरुद्धता नामक दोष होता है।

च्युतसंस्कृति—जहां पर व्याकरणदुष्ट शब्द देखा जाता है, वहां पर च्युतसंस्कृति दोष होता है।

असमर्थता—जिस शब्दमें जिस अर्थका बोध नहीं होता है, उस अर्थमें उस शब्दका प्रयोग करनेसे असमर्थता नामक दोष होता है।

निरर्थकता—जो शब्द केवल श्लोकके पादपूरणार्थ प्रयुक्त होता है और जो अर्थशून्य है उसका प्रयोग करनेसे यह दोष होता है।

रसदोष—करुणादि रस, शोकादि स्थायिभाव और निर्वेदादि व्यभिचारिभावके वर्णनकालमें यदि स्व स्व नाम निर्देशपूर्वक उस रसादिका वर्णन किया जाय, तो उसे स्वशब्दवाच्य दोष कहते हैं।

विरुद्धरसभावदोष—जिस रसमें जो स्थायिभावादि प्रतिकूल है, उस रसमें उसका वर्णन होनेसे विरुद्धरस नामक दोष होता है।

अलङ्कारदोष—जहां पर चार चरणोंके मध्य तीन चरणोंमें यमक है, एक चरणमें नहीं, वहां यमकदोष लगता है। उपमालङ्कारमें उपमान और उपमेयगत जाति प्रमाण और गुणादिको न्यूनता, अधिकता वा अनोचित्यादिके घटनेसे उपमादोष होता है।

रीतिविपरीत—जिस रीतिके अनुसार सचराचर प्रयोग देखा जाता है, यदि उसको विपरीत देखा जाय, तो उसे रीतिविपरीत नामक दोष कहते हैं।

यद् शब्दका प्रयोग करनेसे तद् शब्दका प्रयोग करना ही होगा। किन्तु जहां केवल तद् शब्दका प्रयोग है, वहां यद् शब्दको जरूरत नहीं। प्रसिद्धार्थमें तद् शब्दका प्रयोग हुआ करता है। किन्तु केवल यद् शब्द रहनेसे तद् शब्द देना ही होगा, नहीं देनेसे वाक्य शेष नहीं होगा।

दूरान्वयदोष—जहां पर कर्मकर्त्ता आदि कारक निज क्रियाके सन्निहित न हो कर अन्य वाक्यान्तमें अथवा बहुत दूरमें देखे जाय, वहां दूरान्वयदोष हुआ करता है।

छन्दोदोष—छन्दोदोष नाना प्रकारका है जिनमेंसे अधिकाक्षर, न्यूनाक्षर और यतिभङ्ग आदि भेदसे कोई प्रकार देखे जाते हैं। इनमेंसे जो सब प्रसिद्ध हैं उनका केवल पद्यमें व्यवहार होता है, गद्यमें नहीं। यदि उनका व्यवहार गद्यमें किया जाय, तो दोष लगता है।

अश्लीलतादोष—सुरतारम्भ और गोष्ठादिमें अर्थात् जहां पर सम्भोगार्थ स्त्री-पुरुष सभी इकट्ठे हुए हैं, वहां यह दोष गुण हुआ करता है, अर्थात् ऐसे स्थान पर अश्लीलताका वर्णन करनेसे दोष नहीं होता।

निहतार्थता और अप्रयुक्तता दोष श्लेषादिकी जगह दोषरूपमें गिना नहीं जाता। वक्ता और श्रोता यदि दोनों ही आरब्ध विषयसे जानकार हों, तो अप्रतीतता-दोष गुणरूपमें गिना जाता है।

जहां पर स्वयं किसी विषयका परामर्श अर्थात् कथन होता है, वहा पर अप्रतीततादोष नहीं होता।

विहितके अनुवाद्यत्व, विषाद, विस्मय, क्रोध, दैन्य, लाटानुप्रास, अनुकम्पा, प्रसादन, हर्ष, अवधारण और अर्थान्तर संक्रान्तिके वर्णनमें पदतादोष गुणस्वरूप गिना जाता है।

व्याजस्तुतिका वर्णन करनेसे सन्दिग्धतादोष नहीं होता, बल्कि वह गुणमें गिना जाता है।

व्याकरणविद्वत्ता प्रतिपाद्य विषयका वर्णन करनेसे कष्टता और दुःश्रवता दोष नहीं होता। नीच लोगोंको उक्तिके वर्णनकी जगह ग्राम्यशब्दका प्रयोग दोष न हो कर गुण होता है। प्रसिद्ध अर्थमें निर्हेतुता दोष नहीं लगता।

आनन्द प्रभृतिमें मग्न व्यक्तियोंका कभी भी न्यूनपदता दोष न हो कर गुण हुआ करता है।

विवाद, विस्मय, दैन्य और हर्ष प्रभृतिकी जगह पुनरुक्ति दोषरूपमें गिनी नहीं जाती।

स्वीय विद्यावत्तादिके परिचयकी जगह क्लिष्ट शब्दका प्रयोग भी गुण होता है।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें ३२ प्रकारके दोषोंका विषय लिखा है—

यान वा पादुका द्वारा देवगृहमें गमन, देवताके पहले सेवा, देवताके समीपमें प्रमाण नहीं करना, अशौच अवस्थामें और उच्छिष्ट द्रव्योंसे भगवदर्चना, एक हाथसे प्रणाम, एक बार प्रदक्षिण, देवताके आगे पादप्रसारण, पर्यङ्कलम्बन, शयन और भक्षण, मिथ्याभाषण, अति उच्चस्वरसे कथन, वृथाजल्प, रोदनादि, विग्रह, निग्रह और अनुग्रह, स्त्रियोंके साथ क्रूरभाषण, कश्मलावरण, परनिन्दा, परस्तुति, गुरुजनोंके प्रति मौनावलम्बन और देवताओंको निन्दा ये सब दो पदवाच्य हैं। आततायि-शत्रुका यदि वध किया जाय, तो उसमें कोई दोष नहीं लगता।

दोषक (सं० पु०) दोष एव स्वार्थे कन्। गोवत्स, गौका बच्चा, बछड़ा।

दोषकर ( सं० पु० ) लकुचवृक्ष ।

दोषकुम्भ—प्राचीन गुप्तवंशीय राजाओंके मन्त्री । यशोदत्त इस वंशके आदि पुरुष थे । ये लोग गुप्तवंशीय राजाओंके अधीन-विन्ध्य और पारियात्र पर्वतसे आसमुद्र विस्तृत भूभागके अधिपति थे । दोषकुम्भ रविकीर्त्तिके तीसरे पुत्र और प्रसिद्ध अभयदत्तके छोटे भाई थे । इनके धर्मदोष और दक्ष नामक दो पुत्र थे । दक्ष राजा विष्णुवर्माके यहां मन्त्रीका काम करते थे ।

दोषग्राही ( सं० त्रि० ) दोषं गृह्णाति ग्रह-णिनि । खल, दुर्जन, दुष्ट । इसका पर्याय—पुरोभागी, द्विजह्व और मत्सरी है ।

दोषघ्न (सं० त्रि०) दोषं वातादिविकारं हन्ति हन-टक् । धा.,वैषम्यरूप दोषनाशक औषधादि, वह दवा जिससे कुपित कफ, वात और पित्तका दोष शान्ति हो ।

दोषज्ञ ( सं० पु० ) दोषं कर्त्तव्याकरणे दोषं जानाति ज्ञा-क । १ पण्डित । २ वैद्य, चिकित्सक ।

दोषण्य (सं० त्रि० ) दोष्णि भवः दोष-यत् दोषन्नादेशः । बाहुभव, बांहसे उत्पन्न ।

दोषता ( सं० स्त्री० ) दोषका भाव ।

दोषत्रय ( सं० क्लो० ) दोषाणां त्रयं ६-तत् । वायु, पित्त और कफ ।

दोषत्व ( सं० क्ली० ) दोषस्य भावः "त्वतलौ भावे" इति त्व । दोषका धर्म वा भाव ।

दोषपत्र ( सं० पु० ) किसी अपराधीके अपराधोंका विवरण लिखा हुआ कागज ।

दोषपाचन ( सं० पु० ) कपित्थवृक्ष, कैथका पेड़ ।

दोषबलप्रवृत्त: ( सं० पु० ) रोगविशेष, एक प्रकारकी बोमारी ।

दोषभेद ( सं० पु० ) दोषस्य भेदः ६-तत् । सुश्रुतोक्त ६२ प्रकारके दोषोंमेंसे एक ।

दोषल ( सं० त्रि० ) दोष मत्वर्थे लच् । दोषयुक्त, जिसमें दोष हो ।

दोषस् ( सं० स्त्री० ) दुष-असुन् । रात्रि, रात ।

दोषा ( सं० स्त्री० ) दुष्यतेऽन्धकारेणेति दुष-घञ् टाप् । १ रात्रि, रात । दम-डोसि, टाप् । (दमेर्डोसिः । उण. २।६८) भागुरि मते टाप् । २ भुज, बांह । दुष्यत्यवेति दुष-आ (आः समिनिक्षिभ्यां । उण् ४।१७४) इति सूत्रस्थ उज्ज्वलदत्तोक्त आ । ३ नक्त, रात्रि । ४ निशामुख ।

दोषाकर ( सं० पु०) दोषा रात्री करो यस्य वा दोषां करोति दोषा-कृ-बाहुलकात् ट । १ चन्द्रमा । दोषाणां आकरः । २ दोषका आकर, अवगुण वा ऐबकी खान ।

दोषाक्लेशी ( सं० स्त्री० ) दोषां भुजं क्लिश्नातीति क्लिश-अण् गौरादित्वात् ङोष् । वनवर्वुरिका, वनतुलसी ।

दोषाङ्कुश ( सं० पु० ) दोषाणां काव्यदोषाणां अङ्कुश इव, निरासकत्वात् । चन्द्रालोकोक्त काव्यदोषनिवारक कार्य धर्मभेद ।

दोषाचर (सं० पु०) अभियोग, लगाया हुआ अपराध ।

दोषातन ( सं० त्रि० ) दोषा रात्रौ भवः दोष ट्यु-तुट् च । रात्रिभव, जो रातमें हो ।

दोषातिलक ( सं० पु० ) दोषा रात्रेस्तिलक इव । प्रदीप, दीपक, दीआ ।

दोषान्ध (सं० पु०) दृष्टिरोगभेद, आँखको एक बीमारी ।

दोषाभूत ( सं० त्रि० ) रात्रिमें परिणत ।

दोषामान्य ( सं० त्रि० ) रात समझकर ।

दोषावस्तर ( सं० पु० ) १ आलोक, प्रकाश । २ अग्निकी उपाधि ।

दोषावह ( सं० त्रि० ) दोषयुक्त, दोषपूर्ण, जिसमें दोष हो ।

दोषास्य ( सं० पु० ) दोषा रात्रिरास्यमिव यस्य । दोषा-तिलकत्वादस्य तथात्वं । प्रदीप, चिराग ।

दोषिक ( सं० पु० ) दोषाः वातपित्तकफाः कारणत्वेन सन्त्यस्येति ठन् । रोग, बीमारी ।

दोषिन् (सं० त्रि०) दुष्यतीति दुष-घिनुण वा दुष-णिनि । १ दोषयुक्त, अपराधी, कसूरवार । २ पापी । ३ अभियुक्त, मुजरिम ।

दोषैकदृश्य (सं० त्रि०) एवैकस्मिन् नतु गुणसङ्घे दृक-ज्ञानमस्येति वा दोषमेव एकं केवलं पश्यतीति दृश-क्विप् । दोषमात्रदर्शी, जो गुण आदिको न देख कर केवल दोष ही ढूंढ़ता हो ।

दोस् (सं० पु० क्ली०) दम्यतेऽनेन दम-डोसि । बाहु, बांह ।

दोसा (हिं० पु०) पानीमें होनेवाली एक प्रकारकी घास ।

इसका बहुत अधिक अंश पानीमें डूबा रहता है और इसमें एक प्रकारके दाने अधिकतासे होते हैं।

दोसाध (हिं० पु०) दुसाध देखो।

दोसाल (हिं० पु०) बरमाके हाथियोंकी एक जाति। यह कुमरियासे कुछ छोटा होता है और साधारणतः लकड़ियां आदि ढोने या सवारी आदिके काममें आता है।

दोसाही (हिं० वि०) जिसमें वर्षमें दो फसलें पैदा हों।

दोसूती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मोटी चादर जो बिछानेके काममें आती है।

दोस्त (फा० पु०) १ बन्धु, मित्र, स्नेही। २ वह जिससे अनुचित सम्बन्ध हो, यार।

दोस्तअली—मुगलसम्राट्के शासनकालमें अधिकृत प्रदेशों पर कर्तृत्व करनेके लिये और अधीन राजाओंसे देय कर वसूल करनेके लिए सूबादार रहते थे। दिल्लीसे फरमान पाए विना कोई भी राजा वा नवाब नहीं माने जाते थे। औरङ्गजेबकी मृत्युके साथ साथ मुगलसाम्राज्य की यथेष्ट विस्तृति रहते भी क्षमताका ह्रास हो गया था। इसी समय दक्षिण प्रदेशमें निजाम-उल्-मुल्क सूबादार नियुक्त हुए। वे अपनेको वहांके एक प्रकारका राजा ही समझने लगे। उनकी क्षमता पर छेड़छाड़ करनेकी किसीकी शक्ति न थी। कर्णाटक और अर्काटके नवाब यद्यपि दिल्लीके अधीन थे, तो भी उन्हें दाक्षिणात्यके सूबादारके कथनानुसार चलना पड़ता था। नवाब शादत् उल्लाके कोई सन्तान न रहनेके कारण उन्होंने अपने दो भतीजेको गोद लिया। बड़े दोस्त-अलीको कर्णाटकका नवाब और छोटे बकराली को वेल्लूरका दुर्गाधिपति बना कर आप १७३२ ई०में इस लोकसे चल बसे। मरते समय अपनी प्रिय महिषी के भाई गुलाम हुसेनको भी दीवानी देनेकी आज्ञा दे गये थे। इस पर निजाम-उल-मुल्क बहुत सोच-में पड़ गये। उनकी पूरी इच्छा थी कि वे अपना प्रभुत्व फैला कर स्वयं राज्यशासन चलावें। मुगलसम्राट्से वे डरते तो नहीं थे, पर उन्हें अग्राह्य करके शादत् उल्ला जो शासनकी व्यवस्था कर गये, उसे वे बरदाश्त कर न सके। लेकिन हठात् वे कुछ कर भी नहीं सकते थे, क्योंकि उस समय दुरानी पठान भारतवर्ष पर चढ़ाई करने आ रहे थे। दिल्लीमें सिंहासनको ले कर बहुत गड़बड़ी चल रही थी। अतः इस समय निजाम-उल्-मुल्क उन्हीं सब कामोंमें लिपटे रहे। किन्तु उन्होंने षड़यन्त्र करके दोस्त-अलीको फरमान मिलनेमें बाधा डाल दी।

दाक्षिणात्यके त्रिचिनापल्ली और तञ्जोरके राजा वस्तुत दिल्लीके अधीन होने पर भी उनके राजस्व ग्रहण करनेका भार अर्काटके नवाबके ऊपर सौंपा गया था। १७३६ ई०में त्रिचिनापल्लीके राजाको मृत्यु होने पर बकाया राजस्व वसूल करनेके लिये दोस्त-अलीने दीवान चाँद साहबको भेजा। चाँद साहबने गुलाम हुसेनको अपनी लड़की व्याही थी, अतः गुलाम हुसेनने शादत् उल्लाके आज्ञानुसार अर्काटका दीवानीपद आप न ले कर चाँद साहबको प्रदान किया। चाँद साहबने छलबल और कौशलसे दुर्गमें प्रवेश कर उसे अधिकार कर लिया। यह सुन कर निजाम-उल्-मुल्क और भी आग बबूला हो गये।

दुर्गविजयके बाद सूबेदार-अली अर्काटको लौट गये। चाँद साहब त्रिचिनापल्लीका कुल दारमदार अपने ऊपर ले कर वहीं रहने लगे। सूबेदार-अलीने अर्काट लौट कर पितासे सब बातें कह सुनाईं। इस पर दोस्त-अलीने चाँद साहबके बदले मीर आसदको दीवान नियुक्त किया। नूतन दीवान आसद चाँद साहबको अच्छी तरह पहचानते थे। चाँद साहबको राज्य पानेकी जो प्रबल इच्छा हुई थी उसे उन्होंने दोस्त-अलीको कह सुनाया। दोस्त-अलीने इस समय कोई विवाद खड़ा करना उचित न समझा, अतः इस विषयमें कुछ भी छेड़छाड़ न की। चाँद साहब भी ताड़ गए और त्रिचिनापल्ली दुर्गको अच्छी तरह सुदृढ़ और सुरक्षित करने लगे।

इस समय महाराष्ट्रोंकी तूती चारों ओर बोल रही थी। वे इस समय शिवाजीके कथनानुसार काम नहीं करके देश देशमें कर वसूल करनेके बहानेसे दस्युवृत्ति करते थे। १७३८ ई०में निजाम-उल-मुल्कके कहनेसे आ कर महाराष्ट्र-नायक रघुजी भोंसलेने दश हजार

सेनाओंको साथ ले अर्काट पर चढ़ाई कर दी। दोस्त-अलीकी सेना उस समय सुबेदार-अलीके अधीन दक्षिण प्रदेशमें थी। वे ४०००,अश्वारोही और ६००० हजार पदातिक-सेनाको साथ ले रणक्षेत्रमें जा पहुंचे। इस समय चाँद साहबको सहायता देनेकी इच्छा रहते भी उन्होंने सहायता न दी। ऐसी अवस्थामें दोस्त-अलीने दमलचेरी नामक स्थानमें छावनी डाली। एक विश्वास घातक कर्मचारीकी शठतासे दोस्त-अलीका सत्यानाश हुआ। शत्रु पीछेकी ओरसे उन पर टूट पड़े। हार अवश्य होगी, ऐसा जानते हुए भी दोस्त-अली और हुसेन अली दोनों रणक्षेत्रमें खेत रहे। सुबेदार-अलीको रास्तेमें ही इसकी खबर लगी। महाराष्ट्रोंने तब तक अर्काटको न छोड़ा जब तक सुबेदार-अली उन्हें एक कोटि रुपया देनेको राजी न हुए। पीछे वे ही नवाबके पद पर अभिषिक्त हुए।

दोस्तदार (फा० पु०) १ बन्धुभाव। २ वान्धव।

दोस्तदारी (हिं० स्त्री०) दोस्ती देखो।

दोस्त महम्मद—काबुलके अधिपति तैमुरशाहके मरने पर सिंहासनके लिए उनके तीनों पुत्र आपसमें झगड़ने लगे। अन्तमें शाह महमूदने ही सिंहासन पर अधिकार जमा कर अपने भाई जमानशाहकी दो आंखें निकलवा लीं। दूसरा भाई शाहसुजा जान ले कर भागा। शाह महमूदके मन्त्री फतेखाँ सुजाको आश्रय देनेके कारण अटक और काश्मीरके राजाके ऊपर बहुत बिगड़े और इसका बदला लेनेके लिए कोशिश करने लगे। किन्तु पञ्जाबमें उस समय वीरकेशरी रणजित्-सिंह अपना आधिपत्य फैला रहे थे। अतः फतेखाँने उन्हींसे मेल कर लिया और दोनोंने मिल कर काश्मीर पर चढ़ाई कर दी।

रणजित्के भागमें जो कुछ पड़ा उसे वे न ले कर अटक पर अधिकार कर बैठे और काश्मीर फतेखाँके हाथ लगा। अटक लेने पर भी रणजित् तृप्त न हुए। पलायित शाहसुजाको उन्होंने अपने राज्यमें बुलाया। विना लाभके रणजित् कोई काम ही नहीं करते थे। शाहसुजाको हाथमें करके उन्होंने उनसे "कोहिनूर" ले लिया। जब शाहसुजाने देखा, कि पितृराज्य पानेकी कोई आशा नहीं है, तब १८१६ ई०में वे अङ्गरेजाधिकृत लुधियाना भाग गये।

१८१६ ई०में फतेखाँ युद्धकी कामनासे खोरासान चले गये। उस समय हिराटमें शाह महमूदके भाई फिरोज उद्दीन शाह महमूदके नामसे राज्य करते थे। फतेखाँ भी काबुलके बरकजाइ नामक विशिष्टवंशकी सन्तान थे। बुद्धिविवेचनामें उस समय ये, काबुलमें अद्वितीय थे। हिराटको अपने अधीन करनेकी इच्छासे उन्होंने अपने छोटे भाई दोस्त महम्मदको वहां भेजा। दोस्त महम्मदने विश्वासघातकता और कौशल द्वारा अपना काम तो निकाल लिया, पर इस अत्याचार पर शाह महमूद बहुत क्रोधित हुए। दोस्त महम्मद काश्मीरको भाग गये। शाह महमूदने अपने पुत्रोंकी सलाह ले कर फतेखाँको बहुत बुरी तरहसे मरवा डाला। इस पर बरकजाइ-वंशके हर किसीने अस्त्र धारण किया। दो चार छोटी छोटी लड़ाइयोंके बाद शाह महमूद पुत्रोंको साथ ले हिराटको भाग गये। बाद विजेताओंने राज्यको आपसमें बाँट लिया। आजिमखाँको काश्मीर, दिलखाँको कन्दहार और दोस्त महम्मदको काबुल मिला। भाइयोंमें आजिम खाँ सबसे बड़े थे, इस कारण वे ही काबुल-सिंहासन पर बैठना चाहते थे। अपना मनोरथ पूरा करनेके लिये उन्होंने शाह सुजाको प्रलोभन दिया और दोस्त महम्मदसे लड़नेके लिये उसे अपने साथ जानेको कहा। शाह सुजा भी इसमें राजी हो गये, पर वे भी आजिम-खाँसे लड़ाई करनेको तैयार थे। बाद आजिम-खाँने आयुब् नामक एक व्यक्तिको काबुलका राजा बना देनेका भरोसा देते हुए अपने साथ ले लिया। उधर ताड़ित राजा शाह महमूद हिराटसे काबुल पर चढ़ाई करनेके लिये अग्रसर हुए। किन्तु अपनी सेनाओंमें विवाद हो जानेके कारण वे हिराटको लौट आए। इस प्रकार गृह-विवाद होनेसे सभीका सत्यानाश होगा, यह निश्चय कर उन्होंने आपसमें झगड़ा शान्त कर लिया। आयुब् काबुलके राजा हुए और आजिमखाँ उनके मन्त्री बने।

दिलखाँ कन्दहारमें हो रहे, दोस्त महम्मद गजनीको चले गये। सुलतान महमूद नामक इनके एक और भाई थे जिन्हें पेशावर मिला था।

१८२३ ई०में आजिमखांके मरने पर पुनः गृह विवाद उपस्थित हुआ। दोस्त महम्मदने इस विवादको और भी जकड़ दिया। काबुल प्रायः उनके हाथमें आ गया था, इसी समय दिलखाँ और सुलतान महमूदने उन्हें छेड़ दी। अब वे ही एक प्रकारसे काबुलमें प्रभुत्व करने लगे। किन्तु न तो दिल खाँ और न सुलतान महमूद ही शासन कार्यमें विशेष पटु थे, अतः गोलमाल जारी हो रहा। फिरसे नूतन व्यवस्था हुई। दिलखाँने कन्दहार पर और दोस्त महम्मदने गजनी पर अपना अधिकार किया। सुलतान महमूद पेशावर छोड़ कर काबुलके राजा हो गये। इसी बीच कन्दहारमें दिलखाँकी मृत्यु हुई। अब दोस्त महम्मदने काबुल लेना चाहा। सुलतान महमूदने अपनेको दोस्त महम्मदसे अकेला लड़नेमें असमर्थ समझ कर १८२६ ई०में उन्हें काबुल दे दिया और आप पेशावरको लौट आये। शासनकार्यमें दोस्त महम्मद विशेष पटु थे। कई वर्ष इन्होंने काबुलको सुशासनमें रखा था।

इस समय शाहसुजा रणजित्सिंहके साथ सन्धि करके काबुल जीतनेको अग्रसर हुए। रणजित्सिंहने भी सेना भेजी। शाहसुजा पराजित हो कर लुधियाना को लौट आए। इसी मौकेमें रणजित्ने सुलतान महमूदको मार भगा कर पेशावर दखल कर लिया। दोस्त महम्मदको जब यह बात मालूम हुई, तब वे सेनाको साथ ले आगे बढ़े। सुलतान महमूदने भी दश हजार सेनाओंसे उनकी सहायता की। रणजित्ने चारों ओरसे विपदसे घिरा देख दोस्त महम्मदकी सेनाको बहुत कुछ बमा दिया। सुलतान महमूदने सेनाके साथ प्रस्थान किया। युद्धके दिन सवेरे दोस्त महम्मदने देखा, कि उनके पास जितनी सेनायें थीं, उनमेंसे अनेक कहीं चली गई हैं। इस पर वे विषण्ण चित्तसे काबुल लौट आये। बाद सुलतान महमूद सिखोंसे मिल गये और उन्हींकी सहायतासे काबुल जीतनेको अग्रसर हुए। इस पर दोस्त महम्मदने अपने पुत्र अफजलखाँ और अकबरखाँको सुलतान महम्मदके विरुद्ध लड़ाई करनेके लिये भेजा। १८३७ ई०में यह युद्ध छिड़ा था। सिखसैन्य परास्त और तहस नहस हो गई। इस समय पारस्यराजने हिरात और काबुल जीतनेको विचारा। दोस्त महम्मदने कोई दूसरा उपाय न देख अंगरेजोंसे सन्धि करनेका प्रस्ताव पेश किया। उस समय लार्ड अकलैण्ड भारतवर्षके गवर्नर जेनरल थे। उन्होंने सामरिक सन्धि करना तो न चाहा, किन्तु वाणिज्य सम्बन्धी सन्धि करनेकी सलाह दे दी। कार्य भी उन्हींके कथनानुसार हुआ। व्यवसायके विषयमें कथावार्त्ता करनेके लिये सर अलेकसन्दरने वार्नेस नामक एक व्यक्तिको दलबलके साथ काबुल भेजा। दोस्त महम्मदको बात चीतसे मालूम पड़ा, कि अंगरेज उनको विपद्में न तो उन्हें मदद देंगे और न रणजित्से पेशावर लेनेमें उनकी पक्ष ही लेंगे।

किन्तु उस समय ऐसी अफवाह फैली कि रूसियासे एक दूत काबुल जा रहा है। इस पर अंग्रेज लोग डर गये। इङ्गलैण्ड और रूसियाके बीच इस विषयमें बातचीत होने लगी। अन्तमें ऐसा मालूम पड़ा कि रूस-गवर्मेण्टने काबुलमें दूत नहीं भेजा है। भिकोभिचो नामक एक रूस-कर्मचारी आपसे आप यह काम कर रहा है। यह गड़बड़ी शान्त हो गई, लेकिन कन्दहार आदि स्थानोंके राजा पारस्य राजके साथ सन्धि करनेको विशेष उत्सुक हुए। वार्नेस काबुलकी अवस्थासे जानकार थे। अतः वे उन सब राजाओंको सहायता देनेमें राजी हुए और उन्हें पारस्य-राजके साथ सन्धि न करने दी। लार्ड अकलैण्ड यह सम्वाद सुनकर बहुत बिगड़े और उन्होंने इसी विषयमें एक पत्र वार्नेसको लिख भेजा कि उन्हें ऐसा प्रस्ताव पास करनेमें बिलकुल क्षमता न थी। उन्होंने क्षमताका अपव्यवहार किया है, अंग्रेज गवर्मेण्ट काबुलपतिकी किसी प्रकार सहायता कर ही नहीं सकती। उस पत्रमें और भी लिखा था, कि दोस्त महम्मद यदि किसी दूसरे पश्चिमी राजाके साथ सन्धिबन्धन करें, तो उनसे मित्रता टूट जायगी, यह बात उन्हें समझा देनी चाहिये। फिर कन्दहार राजाओंकी सहायता देनेकी बात दे दी गई है, उसका प्रत्याहार करना होगा। इसके साथ साथ दोस्त महम्मदको भी एक पत्र लिखा गया था। वार्नेसने यह पत्र पा कर अपनी बात लौटा ली। दोस्त महम्मद भी पत्र पढ़ कर बहुत चिन्तित हुए। वे अंगरेज

गवर्मेंटके साथ मित्रता कायम रखनेके लिये विशेष उत्सुक थे. किन्तु अंग्रेज गवर्मेण्टने यह बात ग्राह्य न की और उन्हें अधीन राजाके जैसा मान कर अन्य राजाओं-के साथ मित्रता करनेसे मना किया। अंग्रेजने किस लिये वा क्या सोच कर ऐसा कहा, वह कोई भी समझ न सका। ऐसा कठोर पत्र पा कर भी दोस्त महम्मदने पुनः लार्ड अकलेण्डको एक पत्र लिखा। किन्तु अपने पत्रका उत्तर न पा कर उन्होंने भिकोभिचोसे सहायता पानेके उद्देशसे उनकी शरण ली। बार्नेसको इन सब बातोंको खबर लग गई। इसके बाद भी एक मास तक वहां अपेक्षा करके १८३८ ई०की २५वीं अप्रीलको उन्होंने काबुल छोड़ दिया।

इस समय हिराटमें गोलमाल चल रहा था। शाह महमूदके मरने पर उनके पुत्र कामरान हिराटमें राज्य करते थे।

पारस्यराजने हिराट जीतनेको इच्छासे वहां घेरा डाला। अंग्रेजने मध्यस्थ होकर इस विवादको निवटा दिया। पारस्यराजको हिराट न मिला। लार्ड अकलेण्ड काबुलके विरुद्ध युद्ध यात्रा करने लगे। शाहसुजा इतने दिनों तक लुधियानामें थे। अब शाहसुजा, रणजित् सिंह और अंग्रेजोंके बीच एक एक सन्धि इस शर्त पर हुई, कि अंग्रेजोंसे काबुल जीते जाने पर शाहसुजा काबुलके राजा होंगे और रणजितने अफगानिस्तानके जो सब प्रदेश अधिकृत किये हैं, वे उन्हींके होंगे।

यह सब बात बिलकुल ठोक हो जाने पर १८३८ ई०-की ११वीं मार्चको अंगरेजी सेना अफगानिस्तान पहुंची। २४वीं अप्रीलको अंगरेजी सेनाने कन्दहारको जीत लिया। कन्दहारमें लड़ाई न छिड़ी, प्रभूत अर्थ वृष्टिसे कन्दहारका सिंहद्वार उन्मुक्त हो गया। २७वीं जूनको अंगरेज कन्दहार छोड़ कर गजनी जीतनेके लिये अग्रसर हुए। गजनीका दुर्ग अत्यन्त दृढ़ और कौशलसे बना था। अतः सहसा उसका कुछ भी अनिष्ट न हुआ। अफगान लोग दुर्गमें हो रहे, युद्ध करने बाहर न निकले। अन्तमें दुर्ग पर चढ़ाई करके उसे जीत लिया। गजनी-विजयका सम्वाद पा कर दोस्त महम्मद बहुत डर गये। अपने अनुचरोंमेंसे किसी पर भी वे विश्वास कर न सके। इस समय सन्धिका प्रस्ताव करना भी असम्भव था। अतः कोई दूसरा उपाय न देख दोस्त महम्मद २१वीं अगस्त-को काबुल छोड़ कर कहीं भाग गये। शाहसुजाने भी ३० वर्ष बाहर रहनेके बाद काबुलमें प्रवेश किया।

शाहसुजाको राजपद पर स्थापित करके अंगरेजी सेना काबुल छोड़ न सकी, पारस्य, हिराट और रूसिया सभी अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करने पर हैं, यह जान कर अंगरेजी सेनाने अफगानिस्तानका त्याग न किया। शाहसुजा शीतके भयसे जलालाबादमें आ कर रहने लगे शासन-कार्यमें बहुत गड़बड़ी होने लगी। उस समय दोस्त महम्मद खुरममें थे। खिजली लोग बागी होने पर उतारू थे। कन्दहारमें षड़यन्त्र चलने लगा, शाह सुजाके कर्मचारी लोग भी अत्याचार करने लगे। वृटिश गवर्मेण्ट बहुत तंग आ गई। बेलुचियोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उन्होंने लगभग २०० अश्वा-रोहियों और पदातिकोंके प्राण नाश किये। इस समय विद्रोह चारों ओर फैल गया। अच्छा मौका देख कर दोस्तमहम्मद अंग्रेजों पर टूट पड़े। चारों ओरसे विपदसे घेरे रहने पर भी अंग्रेजोंने दोस्त महम्मदको परास्त किया। दोस्त महम्मदने कोई उपाय न देख कर अंग-रेजोंकी शरण ली और मेकनेटन साहबको आत्मसम-र्पण किया। इस पर नीच शाहसुजाने उनका बहुत तिरस्कार किया। आत्मसमर्पणके दश दिन बाद दोस्त महम्मद अंगरेजी सेनासे रक्षित हो कर भारतवर्षको भेज दिये गये। गवर्नर जेनरलने उन्हें दो लाख रुपयेकी वृत्ति स्वीकार की।

दोस्तमहम्मद—१८०८ ई०में नागपुरके राजाने सिन्धियाके अनुगृहीत पिण्डारी-नायक हीरा और बारण नामक दो व्यक्तियोंको भूपालके नवाबके विरुद्ध लड़ाई करने भेजा था। पिण्डारी देखो। लड़ाईमें वे ही विजयी हुए और धन रत्नादि यथेष्ट संग्रह कर अपने साथ लाये। उन दोनोंके लौट आने पर नागपुरके राजाने बारणको कैद कर लिया। हीरा भाग गया किन्तु तुरंत ही यमराजका मेहमान बन गया। हीराके पुत्र दोस्तमहम्मद अपने भाई वासिल महम्मदके साथ पिताका व्यवसाय करने लगा। १८०८ से १८११ ई० तक दोस्तमहम्मदके उत्पातसे मध्यभारत

दममें आ गया। १८१२ ई०में इन्होंने बुन्देलखण्डको लूट कर गया तकके देशोंको बरबाद कर दिया था। यह विशेष कर मालव देशके पूर्वमें ही रहता था और वहींसे देश विदेशको लूटने जाया जाता था। अन्तमें अपने भाई वासिलमहम्मदके हाथ कार्य-भार सौंप कर आप पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

दोस्ताना ( फा० पु० ) १ मित्रता, दोस्ती। २ मित्रताका व्यवहार। (वि०) ३ मित्रताका, दोस्तीका।

दोस्ती ( फा० स्त्री० ) १ मित्रता, स्नेह। २ अनुचित सम्बन्ध।

दोस्तीरोटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी रोटी। वह आटेकी दो लोइयोंके बीचमें घी लगा कर और एकको दूसरी पर रख कर बेलते और तब तवे पर घी लगा कर पकाते हैं। जब यह पक जाती है, तब इसमें दोनों लोइयाँ अलग अलग हो जाती हैं।

दोस्थ ( सं० पु० ) दोषि दोर्वापारे तिष्ठति स्था-क। १ सेवक। २ क्रीड़क, खेल करनेवाला। ( त्रि० ) ३ बाहुस्थित, जो बाँह पर हो।

दोह ( सं० पु० ) दोग्धि अस्मिन्निति, दुह-आधारे घञ्। १ दोहनपात्र, दुहनेका बरतन। दुह्यते, इति दुह-कर्मणि घञ्। २ दुग्ध, दूध। दुह भावे घञ्। ३ दोहन, दुहनेका काम।

दोहज ( सं० त्रि० ) दोहात् दोहनाज्जायते जन-ड। १ दोहनजात, दुहनेसे जो निकले। (क्ली०) २ दुग्ध, दूध।

दोहड़िका ( सं० स्त्री० ) मात्रावृत्तविशेष। इसके प्रथम चरणमें १३, दूसरेमें भी १३, तीसरे और चौथेमें ११ मात्राएं होती हैं।

दोहत्थड ( हिं० स्त्री० ) वह थप्पड़ जो दोनों हाथोंसे मारा जाय।

दोहत्था (हिं० क्रि० वि०) १ दोनों हाथोंसे, दोनों हाथोंके द्वारा। ( वि० ) २ जो दोनों हाथोंसे हो।

दोहद (सं० पु० क्ली०) दोहं आकर्षं ददाति दा-क। गर्भिणीका अभिलाष, गर्भवती स्त्रीकी इच्छा, उकौना। इसका पर्याय—दौहृद, श्रद्धा, लालसा और जातुज है।

गर्भावस्थामें जिन सब वस्तुओंकी इच्छा होती है, वे सब वस्तु यदि गर्भिणीको न दी जाय, तो गर्भ वैरूप्य एवं मरण वा अन्यान्य दोष होता है, इससे गर्भिणी स्त्रीका प्रिय आचरण करना चाहिये। (याज्ञ० ३।७९) सुश्रुतमें दोहदका विषय इस प्रकार लिखा है—स्त्रियोंके गर्भ होनेसे चौथे मासमें सब प्रकारके अङ्ग प्रत्यङ्ग और चैतन्य शक्तिका विकाश होता है। चेतनाका आधार जो हृदय है वह भी चौथे महीनेमें उत्पन्न होता है। इसी समयसे इन्द्रियोंकी कोई कोई विषय भोग करनेकी इच्छा होती है। इस अभिलाषपूरणको ईप्सित वस्तु देना कहते हैं। इस समय स्त्रियोंको देह दो हृदय विशिष्ट (अर्थात् अपना और गर्भस्थ सन्तानका) होती है, अतः तात्कालिक अभिलाषको दौहृद कहते हैं। यदि उनका यह अभिलाष पूर्ण किया जाय, तो गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष अथवा अन्ध होती है। इसलिए गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अभिलषित द्रव्य देना अवश्य कर्त्तव्य है। गर्भिणीके दोहद प्राप्त होने पर सन्तान बलवान् और आयुष्मान् होती है। गर्भावस्थामें इन्द्रियोंका जो वस्तु भोग करनेका अभिलाष उत्पन्न होता है, गर्भपीड़ा होनेकी आशङ्कासे वह अभिलाष अवश्य पूरा करना चाहिये। गर्भवती स्त्रीको ईप्सित वस्तु मिल जाने पर वह गुणवान् पुत्र प्रसव करती है, नहीं तो गर्भके विषयमें अथवा स्वयं डर बना रहता है। गर्भिणीके जिस जिस इन्द्रियका अभिलाष पूरा नहीं होता, सन्तानके भी उसी इन्द्रियका पीड़ा उत्पन्न होती है। गर्भिणीको इच्छा यदि राजदर्शनकी हो, तो सन्तान महाभाग्यवान् और धनवान् होती है। दुकूल, रेशमी वस्त्र अथवा अलङ्कारकी इच्छा हो, तो सन्तान सुन्दर और अलङ्कारप्रिय; आश्रमकी इच्छा हो, तो पुत्र धर्मशील और संयतात्मा; देवप्रतिमाकी इच्छा हो, तो सन्तान देवतुल्य; सर्पादि व्याल-जाति देखनेकी इच्छा हो, तो सन्तान हिंसाशील, गोहका मांस खानेकी इच्छा हो, तो निद्रालु और स्थिरचित्त, भैंसका मांस खानेकी इच्छा हो, तो शूर, रक्ताक्ष और लोमश, हरिणका मांस खानेकी इच्छा हो, तो वनचर, वराहका मांस खानेकी इच्छा हो, तो निद्रालु और शूर, सृमरका मांस खानेकी इच्छा हो, तो उद्विग्न तथा तीतरका मांस खानेकी इच्छा हो, तो सन्तान बहुत भीरु होती है। इन सब जन्तुओंको छोड़ कर यदि अन्य

जन्तुका मांस खानेकी इच्छा हो, तो जो जन्तु जिस स्वभाव और आचारका होगा, सन्तान भी उसी स्वभाव और आचारकी हो जायेगी। जो कुछ हो, गर्भिणीका अभिलाष पूर्ण करना ही एक मात्र विधेय है। (सुश्रुत शारीरस्थान ३ अ०) २ गर्भ चिह्न। ३ एक प्राचीन विश्वास। मल्लिनाथने लिखा है कि सुन्दर स्त्रीस्पर्शसे प्रियङ्गु, पानकी पीक थूकनेसे मौलसिरी, पदाघातसे अशोक, दृष्टिपात तथा आलिङ्गनसे तिलक और कुरुवक, मृदुवार्त्तासे मन्दार, मृदुहाससे चम्पक, हँसीसे पटु, मधुरगानसे आम और नाचनेसे कचनार आदि वृक्ष फूलते हैं।

यही दोहद कवि प्रसिद्ध हैं। जिस तरह गर्भिणीका दोहद पूर्ण नहीं करनेसे सन्तान अपुष्ट होती है, उसी तरह कवियोंने उक्त वृक्षोंके कुसुम विकाशादिके वर्णनकी जगह उक्त लिखित दोहदका विषय कहा है। ४ यात्राके समय दिशा, वार या तिथिके भेदसे उनके दोषकी शान्तिके लिये खाए या पीए जानेवाले कुछ निश्चित पदार्थ। यह विषय मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है—पूर्वकी ओर जानेमें कोई दोष हो, तो उसकी शान्ति घी खानेसे होती है, पश्चिम जानेमें कोई दोष हो, तो मछली खानेसे, दक्षिण जानेमें तिलकी खीर खानेसे और उत्तरकी ओर जानेमें कोई दोष हो, तो वह दूध पीनेसे शान्त हो जाता है। इसको दिग्‌दोहद कहते हैं।

नारदके मतानुसार पूर्वकी ओर जानेसे घृतान्न, पश्चिममें मत्स्यान्न, उत्तरमें घृत और दक्षिणमें खीर खा कर जानेसे शुभ होता है। यह जो मतभेद लिखा है सो जिस देशमें जैसा व्यवहार है, उस देशमें वैसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये।

इसी तरह रविवारको घी, सोमवारको दूध, मंगलको गुड़, बुधको तिल, वृहस्पतिको दही, शुक्रको जौ और शनिवारको उड़द खानेसे यात्रा सम्बन्धी वार-दोषकी शान्ति होती है। इसे वारदोहद कहते हैं।

तिथिदोहद—प्रतिपदमें मदारका पत्ता, द्वितीयामें चावलका धोया हुआ पानी, तृतीयामें घी, चतुर्थीमें यवागू, पञ्चमीमें हविष्य, षष्ठीमें सुवर्णप्रक्षालित जल, सप्तमीमें अपूप, अष्टमीमें बीजपूरक, नवमीमें जल, दशमीमें गोमूत्र, एकादशीमें यवान्न, द्वादशीमें पायस, त्रयोदशीमें ईखका गुड़, चतुर्दशीमें रक्त, पूर्णिमा और अमावस्यामें मूंगका भात खाकर जानेसे शुभ होता है। इसका नाम तिथिदोहद है। इस प्रकार दोहदसे किसी दिशा, वार या तिथिकी यात्रासे होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट फलोंका निवारण हो जाता है।

दोहद—१ बम्बईके पांचमहल जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १२° ३८' से २३° ११' उ० और देशा० ७४° २' से ७४° २८' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ६०७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८०८१८ है। इसमें दो शहर और २११ ग्राम लगते हैं। यहांकी आय एक लाख रुपयेसे अधिककी है। तालुकके पूर्व भागमें अनास नदी प्रवाहित है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। यह अक्षा० २२°५०' उ० और देशा० ७४° १६' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १३९८० है। यह पश्चिममें गुजरात और पूर्वमें मालव इन दो सीमान्त देशोंमें अवस्थित है; इसीसे इसका नाम दोहद पड़ा है। यहां एक दुर्ग है जो १४१२-१४४३ ई०में गुजरातके राजा अहमदके समयमें बनाया गया है। मजफ्फरके समयमें (१५१३-१५२६ ई०) दुर्गका संस्कार और सम्राट् औरङ्गजेबके समयमें इसका एक बार जीर्णसंस्कार हुआ था। यहां ५३० गुजराती भील सेना रहती है। मध्यभागसे समुद्रके किनारे जानेका रास्ता इसी दोहदके भीतर हो कर गया है, इसीसे यह एक सुन्दर वाणिज्य-स्थान हो गया है। इसका प्राचीन नाम दधिप्रदक है। १८७६ ई०में यहां एक म्युनिसिपैलिटी कायम हुई है। शहरकी आय प्रायः १२०००) रु० की है। यहां एक सब-जजकी अदालत, एक अस्पताल और पांच विद्यालय हैं।

दोहदलक्षण (सं० क्ली०) दोहदस्य गर्भस्य लक्षणं यत्र। १ वयःसन्धि। दोहदस्य लक्षणं ६-तत्। २ गर्भलक्षण।

दोहदवती (सं० स्त्री०) दोहदो गर्भिण्यभिलाषोऽस्त्यस्याः दोहद-मतुप् मस्य व ङीप् च। गर्भवती। गर्भावस्थामें गर्भिणीको खाने पीनेकी अधिक इच्छा होती है, इसीसे उसे दोहदवती कहते हैं। गर्भिणीके कर्त्तव्यके विषयमें मत्स्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—गर्भवती स्त्रीको

सन्ध्याके समय खाना, वृक्षके समीप जाना और रहना, ऊंचे स्थान पर चढ़ना, मूसल और उखलो पर बैठना, जलमें अवगाहन और शून्यागारमें रहना नहीं चाहिये। वल्मीक पर रहना; उद्विग्नचित्तता, नख, अङ्गार, और भस्म द्वारा भूमि पर लिखना, सर्वदा शयन, व्यायाम, आपसका कलह, अशुचि या मुक्तकेश हो कर रहना, उत्तर और पश्चिमको ओर सिराहने करके सोना, मैले कुचैले वस्त्र और भींगे पांव रहना तथा उद्विग्नता इन सबको परित्याग करना चाहिये। उन्हें सर्वदा गुरुशुश्रुषा, स्वकुलकार्यमें नियुक्त तथा पतिकी सेवामें हमेशा लगा रहना चाहिये। गर्भवती देखो।

दोहदान्विता (सं० स्त्री०) दोहदेन गर्भजनिताभिलाषेण अन्विता। दोहदवती, गर्भवती।

दोहदोहीय (सं० त्रि०) सामभेद, एक प्रकारका वैदिक गीत या साम।

दोहन (सं० क्ली०) दुह-भावे ल्युट्। १ स्तनसे दुग्ध-निःसारण, गाय भैंस इत्यादिके स्तनोंसे दूध निकालना। दुह्यतेऽस्मिन् दुह-आधारे ल्युट्। २ दोहनपात्र, दोहनी।

दोहनी (सं० स्त्री०) दुह्यतेऽस्या दुह-ल्युट्-ङीप्। १ दोहनपात्र, दूध दुहनेको हांडी। इसका पर्याय—लेपन, पारी, दोह और दोहन है। २ धातकी वृक्ष। ३ दूध दुहनेका काम।

दोहनीकुण्ड—कुण्डविशेष, एक कुण्डका नाम जहां श्री-कृष्णचन्द्रजी गाय दुहते थे।

दोहर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको चादर। यह कपडे को दो परतोंको एकमें सी कर बनाई जाती है और इसके चारों ओर गोट लगी रहती है। यह कभी कभी एक ही कपड़ेकी दो तहोंसे बनाई जाती है और कभी कभी एक तह किसी मोटे कपड़े या छींट आदिको और दूसरी तह मलमल आदि महीन कपड़ेकी होती है।

दोहरना (हिं० क्रि०) १ दूसरी आवृत्ति होना, दो बार होना। २ दो परतोंका किया जाना, दोहरा होना।

दो हरफ़ (फा० पु०) धिक्कार, लानत।

दोहरा (हिं० वि०) १ जिसमें दो परत या तह हों। २ दुगना। (पु०) ३ एक ही पत्तेमें लपेटे हुए पानके दो बीड़े। ४ कतरी हुई सुपारी। ५ दोहा नामका छन्द।

दोहराना (हिं० क्रि०) किसी काम या बातको पुनरावृत्ति करना, किसी बातको दूसरी बार कहना।

दोहरीघाट—युक्त प्रदेशके आजीमगढ़ जिलेके अन्तर्गत घोसी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° १६' उ० और देशा० ८३° ३१' पू० घर्घरा नदीके किनारे अव-स्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३४१७ है। प्रवाद है, कि अठारहवीं शताब्दीमें यह शहर आजमगढ़के राजासे स्थापित हुआ है। यहां एक म्युनिसपैलिटी है। कार्तिकी पूर्णिमा और स्नानयात्रामें यहां मेला लगता है। शहरमें सिर्फ एक प्राइमरी स्कूल है।

दोहरीपट (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेंच।

दोहरीसखी (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेंच।

दोहल (सं० पु०) दोहं आकर्षं लातीति ला-क। दोहद, इच्छा।

दोहलवती (सं० स्त्री०) दोहलो ऽस्त्यस्याः मतुप् मस्य वः ङीप्। दोहदवती, गर्भवती स्त्री।

दोहला (हिं० वि०) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली (सं० स्त्री०) दोहल ङीष्। १ अशोकवृक्ष। २ अर्कवृक्ष, आकका पेड़, मदार।

दोहस् (सं० पु०) दुह-भावे असुन्। दोहन, दुहनेका काम।

दोहसे (सं० अव्य०) दुहतुमर्थे असेन्। दुहनेमें।

दोहा (सं० स्त्री०) १ मात्रावृत्त छन्द, एक हिन्दी छन्द। इसमें होते तो चार चरण हैं, पर जो दो पंक्तियोंमें लिखा जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पंक्तिमें और तीसरा तथा चौथा चरण एक दूसरी पंक्तिमें लिखा जाता है। इसके पहले तथा तीसरे चरणमें १३-१३ मात्राएं होती हैं और दूसरे तथा चौथेमें ११-११। दूसरे और चौथे चरणका तुकान्त मिलना चाहिए। २ सङ्कीर्ण रागका एक भेद।

दोहाई (हिं० स्त्री०) दुहाई देखो।

दोहापनय (सं० पु०) दोहं अपनयति स्वनिःसरणेनेति अप-नी-अच्। गव्यदुग्ध, गायका दूध।

दौहित (सं० त्रि०) दोह-तारकादित्वात् तच्। सञ्जात दोह, दूहा हुआ।

दोही (सं० त्रि०) दुह-शीलार्थे घिनुन्। १ दोहनशील, दूध दुहनेवाला। (पु०) २ गोप, ग्वाला।

दोहो (हिं० पु०) एक छन्द। यह भी दोहेकी तरह दो पंक्तिमें लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरणमें पन्द्रह पन्द्रह मात्राएं और दूसरे तथा चौथे चरणमें ग्यारह ग्यारह मात्राएं होती हैं।

दोहीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन दोग्धा दोग्धृ ईयसुन् तृणोलोपः। अत्यन्त दोग्धा, बहुत दुधारी।

दोह्य (सं० त्रि०) दुह्यते इति दुह-ण्यत्। १ दोहनीय, दूहने योग्य। (पु०) २ दुग्ध, दूध। दुह्यतेऽस्मा इति। ३ गोमहिषादि, गाय, भैंस आदि जानवर जो दूहे जाते हैं।

दौंच (हिं० स्त्री०) दोच देखो।

दौंरी (हिं० स्त्री०) १ कटी फसलके डंठलोंसे दाना झाड़नेके लिए एक साथ रस्सीमें बंधे हुए बैलोंका झुंड फिराना। २ दौंरीके बैलोंके गलेमेंकी रस्सी। ३ झुण्ड।

दौःसाधिक (सं० पु०) दुर्दुष्टः साधः कर्म तत्र नियुक्त ठक्। द्वारस्थित, द्वारपाल, ड्योढ़ोदार।

दौकूल (सं० पु०) दुकूलेन परिवृतो रथः इति अण्। (परिवृतो रथः। पा ४।२।१०) १ दुकूल द्वारा परिवृत रथादि, कपड़ेसे घेरा हुआ रथ आदि। (त्रि०) २ कपड़ेका।

दौड़ (हिं० स्त्री०) १ द्रुतगमन, दौड़नेकी क्रिया। २ वेग पूर्वक आक्रमण, धावा, चढ़ाई। ३ द्रुतगति, वेग। ४ गतिकी सीमा, पहुंच। ५ उद्योगकी सीमा, ज्यादासे ज्यादा उपाय जो हो सके। ६ प्रयत्न, उद्योगमें इधर उधर फिरनेकी क्रिया। ७ बुद्धिकी गति, अक्लकी पहुंच। ८ आयत, विस्तार, लम्बाई। ९ सिपाहियोंका वह दल जो अपराधियोंको एकबारगी कहीं पकड़नेके लिये जाता है। १० जहाज परकी एक लकड़ी। इसमें लकड़ी डाल कर घुमानेसे पतवार बंधी हुई जञ्जीर खिसकती है।

दौड़धपाड़ (हिं० स्त्री०) दौड़धूप देखो।

दौड़धूप (हिं० स्त्री०) परिश्रम, प्रयत्न, किसी कामके लिए इधर उधर फिरनेकी क्रिया।

दौड़ना (हिं० क्रि०) १ द्रुतगतिसे चलना, मामूली चालसे ज्यादा तेज चलना। २ सहसा प्रवृत्त होना, झुक पड़ना, ढलना। ३ व्याप्त होना, फैलना, छाजाना। ४ उद्योग करना, कोशिशमें हैरान होना, उपाय करना।

दौड़ादौड़ (हिं० क्रि० वि०) अविश्रान्त, बेतहाशा।

दौड़ादौड़ी (हिं० स्त्री०) १ दौड़धूप। २ बहुतसे लोगोंके एक साथ इधर उधर दौड़नेकी क्रिया। ३ आतुरता, हड़बड़ी।

दौड़ान (हिं० स्त्री०) १ द्रुतगमन, दौड़नेकी क्रिया या भाव। २ वेग, झोंक। ३ सिलसिला। ४ फेरा, बारी पारी।

दौड़ाना (हिं० क्रि०) १ द्रुतगमन कराना, जल्द जल्द चलाना। २ बार बार आने जानेके लिए कहना या विवश करना। ३ फैलाना पोतना। ४ किसी वस्तुको यहांसे वहां तक ले जाना। ५ फेरना।

दौण्डिका (सं० स्त्री०) कोषातकी, कड़ुई तरोई।

दौत्य (सं० क्ली०) दूतस्य भावः कर्म वा ष्यञ्। १ दूतकर्म, दूतका काम। २ घटकाता।

दौना (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसके पत्ते गुलदाऊदीकी तरह कटावदार होते हैं। पौधेकी डालियोंके सिरे पर एक पतली सींकमें मंजरी लगती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं। जब फूल झड़ जाते हैं, तब उस मंजरीके बीज-कोशोंमें छोटे छोटे दाने पड़ते हैं। पौधे बीजोंसे निकलते हैं और बरसातमें उगते हैं। इसका गुण—शीतल, कड़ुवा, कसैला, खुजली, विस्फोटक आदि नाशक है।

दौनागिरि (हिं० पु०) द्रोणगिरि नामक पर्वत। पूर्व समयमें यहां विशल्यकरणी नामकी संजीवनी औषध पाई जाती थी। जब लक्ष्मणको शक्तिशेल लगा था, तब हनुमानजी इसी पर्वत पर औषध लानेके लिये भेजे गये थे।

दौर (अ० पु०) १ भ्रमण, चक्कर, फेरा। २ कालचक्र, दिनोंका फेर। ३ अभ्युदय काल, बढ़तीका समय। ४ बार, दफा। ५ प्रताप, प्रभाव, हुकूमत। ६ बारी, पारी।

दौरा (अ० पु०) १ भ्रमण, चक्कर। २ चारों ओर घुमनेकी क्रिया, फेरा, गश्त। ३ निरीक्षणके लिये भ्रमण। ४

किसी ऐसे रोगका लक्षण प्रगट होना जो समय समय पर होता हो। ५ बार बार होनेवाली बातका किसी बार होना। ६ सामयिक आगमन, फेरा।

दौरात्म्य (सं० क्ली०) दुर्निन्दित आत्मा स्वभावः यस्य स दुरात्मा तस्य भावः कर्म वा ष्यञ्। १ दुरात्माका भाव। दुर्जनता। २ दुरात्माका काम, दुष्टता।

दौरादौर (हिं० क्रि० वि०) १ अविश्रान्त, लगातार। २ धुनसे, तेजोसे।

दौरान (फा० पु०) १ चक्र, दौरा। २ कालचक्र, दिनो का फेर। ३ फेरा, बारी पारी। ४ सिलसिला, झोंक

दौरित (सं० क्ली०) क्षति, हानि।

दौरेश्रवस (सं० पु०) दौरेश्रुत देखो।

दौरेश्रुत (सं० पु०) सर्प-पुरोहित तिमिर्घका गोत्रापत्य।

दौर्ग (सं० क्ली०) दुर्गस्य दुर्गाया वा इदं अण्। १ दुर्ग-सम्बन्धी, दुर्गका। २ दुर्गा सम्बन्धी, दुर्गाका।

दौर्गत्य (सं० क्ली०) दुर्गतस्य भावः ष्यञ्। १ दारिद्र। २ दुःखित दुरवस्था।

दौर्गन्ध्य (सं० क्ली०) दुर्दुष्टो गन्धो यस्य दुर्गन्धं। ततो भावे ष्यञ्। १ दुर्गन्धता। २ दुष्टगन्धयोग। दुर्गन्धनाशक तैलके विषयमें गरुड़पुराणमें लिखा है कि चन्दन, कुङ्कुम, मांसी, कर्पूरी, जातिपत्र, जाती, कङ्कोल, पूग, लवङ्ग-फल, अगुरु, शोर, काश्मरी, कुष्ठ, तगरमालिका, गोरो-चना, प्रियङ्गु, चोल, मदनक, सरलकाष्ठ सप्तपर्ण, लाक्षा, आमलकी, कर्चूरक और पद्मक इन सब द्रव्योंसे प्रसाधित कर तैल प्रस्तुत करनेसे दौर्गन्ध्यनाश होता है।

दौर्गह (सं० पु०) दुर्गहस्यापत्यं शिवादित्वादण्। १ दुर्गह ऋषिका अपत्य, पुरुकुत्स ऋषि। २ अश्व, घोड़ा।

दौर्गह (सं० पु०) दुःखेन ग्रहो ग्रहणमस्य अश्वस्य तत्-साध्यो यागः अण्। अश्वमेधयज्ञ।

दौर्गायण (सं० पु०) दुर्गस्यापत्यं नड़ादित्वात् फक्। दुर्गका अपत्य।

दौर्ग्य (सं० क्ली०) दुर्गस्य भावः दुर्गस्येदं वा ष्यञ्। १ दुर्गवृत्तिधर्म। २ दुर्गसम्बन्धी।

दौर्जन (सं० त्रि०) दुष्टलोक समाकीर्ण।

दौर्जन्य (सं० क्ली०) दुर्जनस्य भावः इदं वा ष्यञ्। १ दुर्जनत्व, दुर्जनता, दुष्टता। २ दुर्व्यवहार, खराब आच-रण।

दौर्बल्य (सं० क्ली०) दुर्बलस्य भाव इत्यर्थे ष्य वा ष्यञ्। दुर्बलता, कमजोरी।

दौर्ब्राह्मण्य (सं० क्ली) दुर्ब्राह्मणस्य भावः ष्यञ्। दुर्ब्राह्म-णत्व, कुब्राह्मणका काम।

दौर्भागिनेय (सं० पु० स्त्री०) दुर्भगाया अपत्यं पुमान् दुर्भागा ठक् इनङ् (कल्याण्यादीनामिनङ् च। पा ४।१।१२६) १ दुर्भागाका पुत्र, वह लड़का जिसकी माताको उसका पिता पसन्द न करता हो। स्त्रियां ङीप्। २ दौर्भागिनेयी, दुर्भागाकी कन्या।

दौर्भाग्य (सं० क्ली०) दुर्भगस्य दुर्भगाया वा भावः ष्यञ्, ततो उभयपदवृद्धिः। दुर्भगत्व, दुर्भाग्य। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि स्त्रियां यदि पिताके घरमें भोजन करके फिर उसो दिन स्वामोके घरमें भोजन करे, तो उन्हें दौर्भाग्य उत्पन्न होता है और सभो कुलनायिका शाप देतो हैं।

दौर्भ्रात्र (सं० क्ली०) दुष्टो भ्राता [तस्य भावः युवादि-त्वादण्। दुष्ट भ्रातृत्व।

दौर्मनस्य (सं० क्ली०) दुष्टं मनो यस्य तस्य भावः ष्यञ्। दुःख निबन्धन चित्तावसाद, दुर्भावना, चित्तको खोटाई।

दौर्मन्त्र (सं० क्ली०) दुर्मन्त्रस्य भावः ष्यञ्। दुर्मन्त्रता, कुमन्त्रणा, खराब विचार।

दौर्मित्रि (सं० क्ली०) दुर्मित्राका अपत्य।

दौर्मुखि (सं० पु०) दुर्मुखका गोत्रापत्य।

दौर्य (सं० पु०) दूरी, फासला।

दौर्योधन (सं० त्रि०) दुर्योधन-सम्बन्धीय।

दौर्योधनि (सं० पु०) दुर्योधनका गोत्रापत्य, दुर्योधनके गोत्रमें उत्पन्न व्यक्ति।

दौर्वल्य (सं० पु०) दुर्बलता, कमजोरी।

दौर्वासस (सं० क्ली०) दुर्वाससा प्रोक्तं अण्। दुर्वासा-प्रोक्त उपपुराणभेद, दुर्वासाऋषिका बनाया हुआ एक उपपुराण।

दौर्वीण (सं० क्ली०) दूर्वायाः इदं घञ्। १ दूर्वारस, दूबका रस। २ इष्टपर्ण, स्वच्छन्दता।

दौर्व्रत्य (सं० क्ली०) दुष्टं स्खलनोच्छलनादि व्रतं यस्य तस्य भावः ष्यञ्। दुष्टव्रतत्व।

दौर्हार्द (सं० क्ली०) १ कु-स्वभाव, दुष्ट प्रकृति। दुर्भाव, वैर।

दौर्हृद ( सं० क्लो० ) दुर्हृदो भावः अण् बाहुलकात् न द्विपदवृद्धिः। १ इच्छा। दोहद देखो। २ दूषित हृदयत्व, हृदयकी खोटाई।

दौर्हृदय ( सं० क्लो० ) दुर्हृदयस्य दुष्टहृदययुक्तस्य भावः युवादित्वात् अण् न द्विपदवृद्धिः। दुष्टचित्तत्व, दुष्टता।

दौलत ( अ० पु० ) धन, सम्पत्ति।

दौलतखाँ—बङ्गालके बाखरगञ्ज जिलेके दक्षिण शाहा-बाजपुर उपविभागका एक ग्राम। १८७६ ई०को अक्टूबर-मासमें तूफान और बाढ़से यह ग्राम तहस नहस हो गया तथा ग्रामवासी भी बिलकुल विनष्ट हो गए। अभी दौलतखाँ प्रायः जनशून्य हो गया है।

दौलतखाँ लोदी—ये अफगानवंशीय थे। बहुत दिनों तक ये तुगलक वंशीय राजाओंके अधीन रह कर अनेक उच्च पदोंमें नियुक्त हुए थे। बाद इन्हें महमूद तुगलकसे अजीज ममालिककी उपाधि मिली थी। महमूद तुगलकके मरने पर १४१३ ई०में दिल्लीके सम्भ्रान्त उच्च पदस्थ व्यक्तियोंने इन्हें दिल्लीके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। लगभग एक वर्ष राजत्व करनेके बाद १४१४ ई०में मुलतानके शासनकर्त्ता खिजिरखाँने दिल्ली पर आक्रमण किया। वे चार मास तक दिल्लीको घेरे रहे। अन्तमें उन्हींके हाथ दिल्ली सौंप दी गई। खिजिरखाँने फौरन दौलतको फिरोजाबादके कारागारमें भेज दिया। दो ही मासके अन्दर कारागारमें इनका देहान्त हुआ।

दौलतखाँ लोदी ( दौलत लोदी )—इब्राहिमलोदीके समय ये पञ्जाबके शासनकर्त्ता थे। इनके अत्याचारसे सभी लोग तंग आ गये। इस समय इन्होंने बिहारके शासन-कर्त्ता बहादुरखाँकी स्वाधीनता अवलम्बन की।

दौलतखाँने भी विद्रोही हो कर तैमुरवंशके बाबरको काबुलसे बुलाया। १५२६ ई०में बाबरने पानीपतकी लड़ाईमें इब्राहिमको परास्त कर दिल्ली पर अपना अधिकार जमाया। दौलतखाँ बाबर आनेके कुछ पहले ही इस लोकसे चल बसे थे। वे विद्वान् और कवि थे।

दौलतखाँ लोदी शाहुखेल—विद्रोही खाँ जहान् लोदीके पिता। ये पहले मिर्जा अजीज कोका, पीछे अबदुल रहीम और अन्तमें राजकुमार दानियालके अधीन काम करके दो हजारी मनसबदार हुए थे। १६०० ई०को दक्षिण प्रदेशमें इन्होंने प्राण त्याग किये।

दौलतखाना ( फा० पु० ) निवासस्थान, घर।

दौलतमन्द ( फा० पु० ) धनी, सम्पन्न।

दौलतमन्दी (फा० स्त्री० ) सम्पन्नता, मालदारी।

दौलतराम—१ भाषाके एक प्रसिद्ध जैन विद्वान् और ग्रन्थकार। ये बसवा ( मारवाड़)-के रहनेवाले थे और जयपुरमें आ रहे थे। इनके पिताका नाम था आनन्दराम। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। आप राज्यके किसी बड़े पद पर थे। आपने अपने भाषा-हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें लिखा है—

"सेवक नरपतिकौ सही, नाम सुदौलतराम।
तानै यह भाषा करी, जप कर जिनवरनाम ॥२५॥"

वि०सं० १७९५में जब आपने "क्रियाकोश" लिखा था, तब आप किसी राजाके मन्त्री थे, जिनका संक्षिप्त नाम आपने जयसुत ( जयसिंहके पुत्र ) लिखा है। उस समय आप उदयपुरमें थे, जैसा कि आपने लिखा है,—

"संवत सत्रासै पिच्याणव, भादव सुदि बारस तिथि जानव।
मंगलवार उदैपुर माहीं, पूरन कीनी संसै नाही॥
आनंदसुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै॥"

भाषा-हरिवंशपुराणमें लिखा है, कि हरिवंशपुराणकी रचनाके समय जयपुरमें रतनचन्द्र दीवान थे और साथ ही यह भी लिखा है कि उक्त राज्यके मन्त्री प्रायः जैनी हुआ करते हैं। रायमल्ल नामक एक धर्मात्मा सज्जन जयपुरमें रहते थे। उनकी प्रेरणासे प० दौलतरामजीने जैन आदिपुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराणकी वचनिकायें ( गद्यानुवाद) लिखी हैं। हरिवंशपुराणका गद्यानुवाद करनेके लिए उन्होंने मालवसे पत्र लिख कर आपसे प्रेरणा की थी। रायमल्ल किसी कार्यवश मालव गये थे; वहां भाषा पद्मपुराण और आदिपुराणसे लोगोंका बहुत उपकार हो रहा था, यह देख उनके मनमें हरिवंशकी वचनिका करानेकी तीव्र इच्छा हुई और वहांसे उन्होंने पत्र लिखा।

उक्त तीनों ही ग्रन्थोंका जैन-समाजमें बहुत प्रचार है, ये ग्रन्थ बहुत बड़े बड़े हैं। हरिवंशकी वचनिका १९ हजार श्लोकप्रमाण है और पद्मपुराणकी लगभग २० हजार श्लोक-प्रमाण। आदिपुराण उससे भी बड़ा है।

भाषा बहुत सरल, ढूंढारीपनको लिए और प्राचीन है। इन ग्रन्थोंका प्रचार केवल हिन्दी-भाषा भाषियोंमें ही नहीं, बल्कि गुजरात और दक्षिणमें भी ये ग्रन्थ पढ़े और समझे जाते है।

भाषा हरिवंशकी रचना सं० १८२९में, आदिपुराणकी १८२४ और पद्मपुराणकी १८२३में हुई है। योगीन्द्रदेव-कृत 'परमात्मप्रकाश' तथा 'श्रीपालचरित्र'को वचनिका भी आपकी ही बनाई हुई है। प० टोडरमलजी पुरु षार्थसिद्ध्युपायकी भाषाटीका अपूर्ण छोड़ गये थे; वह भी इन्हीं दौलतरामजीने पूरी की है।

'पुण्यास्रव' नामक जैन-ग्रन्थकी वचनिका सं० १७७७में बनी है; मालूम नहीं, वह इन्हींकी है या अन्य दौलतरामकी? ये अत्यन्त धार्मिक पुरुष थे।

२ हिन्दीके एक प्रसिद्ध जैन कवि। आप सासनी (जिला अलीगढ़)के रहनेवाले और जातिके पल्लीवाल थे। सुना जाता है, कि आप छीपीका काम करते थे; परन्तु आध्यात्मिक ज्ञानमें बहुत बढ़े चढ़े थे। आपका रचा हुआ एक 'छहढाला' नामक सुन्दर पद्य-ग्रन्थ है, जिसका जैन-समाजमें बहुत प्रचार है। उक्त ग्रन्थमें आध्यात्मिकरस कूट कूट कर भरा हुआ है। सचमुच भीतरी निगाहसे देखा जाय तो 'छहढाला'में जैनधर्मका सार भरा हुआ है। यह समस्त जैन विद्यालयोंमें पाठ्यपुस्तक है। यह कविकी सर्वथा स्वतन्त्र रचना है। इसके सिवा आपने सैकड़ों पदोंकी रचना की है, जो अपने ढंगके निराले और अध्यात्मरसके आकर है। इनकी कविता संक्षिप्त, सरस और भावपूर्ण होती है। नीचे एक नमूना दिया जाता है।

"मत कीज्यौ जी यारी, घिन-गेह देह जड़ जानके॥
मात-तात रज वीरजसों यह, उपजी मलफुलवारी।
अस्थिमाल पलनसाजालकी, लालल ल जल क्यारी
॥मत कीज्यौ०॥

कर्म-कुरंगथलीपुतली (१) यह, मूत्रपुरीष भण्डारी।
चर्म-मंडी रिपुकर्म घड़ी धन, धर्म चुरावनहारी
॥मत कीज्यौ०॥

जे जे पावन वस्तु जगतमें, ते इन सर्व बिगारी।
स्वेद-मेद-कफ क्लेदमयी बहु, मद-गद व्याल पिटारी॥
॥मत कीज्यौ०॥

जा संयोग रोग-भव तौलौं, जा वियोग शिवकारी।
बुध तासौं न ममत्व करैं यह, मूढ़ मतिनकौं प्यारी॥
॥मत की०॥

जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुःख भारी।
जिन तप ठान ध्यान कर शोषी, तिन परनी शिव-नारी॥
॥मत की०॥

सुर-धनु शरद-जलद जलबुदबुद, त्यौं झट विनशनहारी।
यातैं भिन्न जान निज चेतन, "दौल" होहु शमधारी (२)॥
मत कीज्यौ जी यारी, घिन-गेह देह जड़ जानके; मतकी०॥

३ राजपूतानी भाषाके एक कवि। इन्होंने सम्वत् १८६७में जलन्धरजीरोगुण और परिचयप्रकाश नामक दो ग्रन्थ लिखे।

**दौलतराव सिन्धिया**—प्रसिद्ध सिन्धियाराजवंशके एक राजा, ग्वालियराधिपति माधोजीरावके दत्तकपुत्र। माधोजी सिन्धिया देखो। माधोजी सिन्धिया मरते समय अपने छोटे भाई आनन्दरावके पुत्र दौलतराव सिन्धियाको अपना उत्तराधिकारी बना गये थे। किन्तु उस समय दौलत-राव १५ वर्षके बालक मात्र थे, इसलिए नाना फड़नवीस महाराष्ट्र जातिके भाग्य-नियन्ता हो गये। नाना फड़नवीस देखो। माधोराव पेशवा उस समय भी अल्पवयस्क थे; फड़नवीसने उनके चालचलनके विषयमें खूब कड़ाई करना शुरू कर दिया। फड़नवीसके इस तरह कठोरता अवलम्बन करने पर उन्होंने आत्महत्या करनेका निश्चय कर लिया और मरते समय वे रघुनाथरावके पुत्र बाजी-रावको अपना उत्तराधिकारी बना गये। नाना फड़न-वीस बाजीरावसे कुछ डरते थे, इसलिए उन्होंने मृत पेशवाको विधवा पत्नीको दत्तकपुत्र ग्रहण करनेकी पट्टी पढ़ाई, परन्तु कुछ न हो सका। आखिर उन्हें बाजी-रावसे मिल कर रहना पड़ा। पीछे वृटिश रेसिडेण्ट मि० मलेटकी सहायतासे उन्होंने सम्भ्रान्त व्यक्तियों और कार्यकर्त्ताओंको बुला कर उनसे बाजीरावके छोटे भाई चिमनाजी अप्पाको दत्तक ग्रहण करनेके विषयमें अभि-मत स्वीकृत करा लिया। बाजीरावने इस संवादको पा

(१) कर्म (अर्थात पाप पुण्य) रूपी हरिणोंको फंसाने-वाली जगह पर पुतलीके समान।

(२) रागद्वेष-विहीन।

कर अपने मन्त्री वल्लभ तात्या और दौलतराव सिन्धिया-को सहायतार्थ बुलवा भेजा। ये दोनों यथासमय आ पहुंचे। नाना-फड़नवीस इन दोनोंसे भी डरते थे फड़नवीसने परशुरामभाऊको अपने पास बुला लिया। परशुराम और फड़नवीसकी तरफके लोगोंने परामर्श करके बाजीरावके पक्षमें मिलना ही युक्तिसङ्गत समझा तथा परशुराम शपथ उठा कर बाजीरावको पूना ले गये। इधर वल्लभ तात्या परशुरामके इस प्रकार आचरण करने पर, अपने उद्यमकी विफलता समझ चिमनाजी अप्पाको पूना ले गये और उन्हें यथारीति विधवाके दत्तकपुत्रस्वरूप ग्रहण कर १७७६ ई०को २०वीं मईको पेशवाकी गद्दी पर बिठा दिया। इस तरह चिमनाजी अप्पा ही पेशवा बनाये और माने गये। परशुराम राजकार्य निर्वाह करने लगे। नाना-फड़नवीस इससे पहले ही, अपनेको विपन्न समझ कर किसी कामके बहाने बाहर चले गये थे। परशुरामने समझौता करनेके लिये नाना-फड़नवीससे पूना आनेके लिए अनुरोध किया। फड़नवीस कोङ्कण प्रदेशमें रह गये। वल्लभ तात्याने चारों ओर विपत्ति देख कर बाजीरावको दिल्लीकी तरफ भेज दिया। बाजीराव अपने अनुचर घाटगय शिरिजीरावके साथ परामर्श करने लगे। इस परामर्शके अनुसार घाटगयने दौलतराव सिन्धियाके साथ अपनी कन्याका पाणिग्रहण करना स्वीकार कर लिया। बाजीरावने वल्लभ तात्याके परामर्शानुसार कार्य नहीं किया; वे दिल्ली न गये, बीमारीका बहाना कर वहीं ठहर गये।

इधर नाना-फड़नवीसने हैदराबादके निजामके साथ सन्धि कर बाजीरावको पेशवाके पद पर बिठानेका मार्ग निकाल लिया। बरारके रघुजी भोन्सले तथा गवर्मेण्टने बाजीरावकी तरफ अपना अभिमत दिया। सब ठीक हो चुकने पर, दौलतरावने पहले वल्लभ तात्याको कैद किया। परशुराम लक्षण देख कर चिमनाजीको ले कर कहीं भाग गये। २५ नवम्बरको नाना-फड़नवीस पूना लौटे। बाजीराव १७९६ ई०में ४ दिसम्बरको पेशवा-पद पर अभिषिक्त हुए।

बाजीराव कूटनीति-विशारद थे। राज्यमें क्षमताशाली व्यक्तिमात्रको न रहने देना ही उनका सङ्कल्प था और 'कण्टकेनैव कण्टकं' उनका मूलमन्त्र था। उन्होंने दौलतरावको समझाया, कि नाना-फड़नवीसको बिना दूर किये हम लोगोंका मङ्गल नहीं हो सकता। इच्छा न रहने पर भी, बाजीरावने अपने श्वशुरके अनुरोधसे बाध्य हो कर इस कार्यमें अपना मत दिया। दौलतरावने नाना-फड़नवीस और अन्यान्य क्षमतापन्न व्यक्तियोंको अहमद-नगरके कारागारमें भेज दिया।

१७७८ ई०के मार्च मासमें घाटगयकी कन्या बैजा-बाईके साथ दौलतरावका विवाह हो गया। बाजीरावने दौलतरावको दो लाख रुपया देना कबूल किया था। उन्होंने पूनाके अवस्थापन्न लोगोंसे उक्त रुपये वसूल करनेके लिए कह दिया। दौलतरावके श्वशुर और मन्त्री घाटगय नाना प्रकारके अत्याचार करके रुपये इकट्ठे करने लगे। परन्तु इतने पर भी जब दौलतराव पूनासे न हटे, तब बाजीराव कुछ चिन्तित हुए।

बाजीरावने नाना-फड़नवीसके स्थान पर अमृतरावको नियुक्त किया था। दौलतरावके व्यवहारसे भीत हो कर, उन्होंने अमृतरावसे दौलतरावको मारनेके लिए कहा। षड़यन्त्र रचा गया, परन्तु ठीक समय पर कार्य न हुआ, दौलतराव बच गये। बाजीरावके साथ दौलतरावका मनोमालिन्य हो गया। बाजीरावने निजामके साथ सन्धि कर ली। दौलतरावको चारों ओरसे विपत्तियोंने घेर लिया। इनको सेनाको बहुत दिनोंसे वेतन न मिला था। टीपू सुलतानने इन्हें सहायता न दी। अन्तमें यह सोच कर कि इस विपत्तिमें नाना-फड़नवीसके सिवा अन्य कोई भी उद्धार नहीं कर सकता, ये दश लाख रुपये खर्च करके उन्हें छुड़ा लाये। इसी समय आपने घाटगयके अत्याचारसे झुंझला कर उन्हें कैद कर लिया। अब तो पेशवा डर गये और छिप कर नाना फड़नवीससे मुलाकात करने लगे। बाजीरावको पहीमें आकर नाना-फड़नवीसने मन्त्रि-पद ग्रहण कर लिया। किन्तु दौलतरावके मुंहसे यह सुन कर कि गुप्त रीतिसे बाजीराव उन्हें कैद करनेके लिए दौलतरावको उत्तेजित कर रहे हैं, वे सावधान हो गये। दौलतराव और बाजीरावने परामर्श करके टीपू सुलतानके राज्य पर आक्रमण करनेकी तैयारियां कीं। किन्तु इसी

समय टीपू सुलतानकी मृत्यु हो गई, जिससे उन्हें यह युद्ध छोड़ देना पड़ा।

१८०० ई०में नाना फड़नवीसकी मृत्यु हुई। राज्यमें बड़ी भारी गड़बड़ी फैल गई। दौलतरावने इस बहाने-से कि नाना-फड़नवीस पर हमारे एक करोड़ रुपये पावने हैं, उनकी जागीर हड़पनेकी कोशिश की और उनकी (नाना फड़नवीसकी) स्त्रीका दत्तक ग्रहण करने-की सलाह दी। वल्लभ तात्याके इस समय मन्त्रिपद पर अभिषिक्त होने पर दौलतरावने श्वशुरके परामर्शानुसार उन्हें पकड़ कर अहमदनगर भेज दिया और वहीं उनकी मृत्यु हो गई। पेशवा बाजीराव दौलतरावकी इस कार्यसे डर गये थे, किन्तु उपायान्तर न देख चुप रह गये। इस समय यशोवन्तराव होलकरने दौलत-रावके अधिकारभुक्त प्रदेश पर आक्रमण किया। युद्धमें पहले होलकर ही की जय हुई, किन्तु पीछे दौलतरावने इन्दोरके पास एक युद्धमें होलकरको परास्त कर दिया। होलकर इससे डरे नहीं; उन्होंने द्विगुण उत्साहके साथ दौलतरावके खानदेश पर आक्रमण किया और क्रमशः पूना तक आ पहुंचे। अक्टोबर मासमें होलकरके साथ दौलतराव और पेशवाकी सेनाका युद्ध हुआ। पेशवा और दौलतराव परास्त हो कर भाग गये। नाना स्थानोंमें परिभ्रमण करनेके बाद पेशवाने बेसिनमें अङ्गरेजोंसे एक सन्धि की। इस सन्धिके अनुसार स्थिर हुआ कि पेशवाको रक्षणार्थ कुछ अङ्गरेजी सेना उनके राज्यमें रहेगी और उनके खर्चके लिए २६) रु० आयकी एक सम्पत्ति उन्हें सौंप दी जायगी। इससे सभी मराठे नाखुश हो गये। नाना-फड़नवीस २५ वर्ष तक जिस कार्यके विरुद्ध खड़े थे, अब उनकी मृत्यु हो जानेसे सहजमें वह काम हो गया। दौलतराव बरारके राजाके साथ मिल कर समग्र महाराष्ट्र जातिको साथ ले अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध करने को तैयारियां करने लगे। अङ्गरेजोंको इस बातका पता लग गया। अंग्रेज पेशवाको गद्दी पर बैठानेके लिये प्रायः २० हजार सेनाके साथ पूना आये। बाजीराव अपने सिंहासन पर बैठ गये। होलकर मालव गये हुए थे, वे नहीं आये। दौलतराव, क्या करें क्या नहीं करें, कुछ निश्चय नहीं कर सके। अंग्रेजोंने इनके विरुद्ध युद्ध करनेका निश्चय कर लिया। जनरल वेलिसली पर इस युद्धका भार सौंपा गया। उन्होंने पहले अहमदनगर अधिकार किया। अब दौलतराव महाराष्ट्री सेनाके साथ युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। असाई-क्षेत्रमें वेलिस्लीके साथ युद्ध हुआ, जिसमें ये पराजित हो कर भाग गये। कर्नल स्टिवेनशनने शीघ्र ही बाहन-पुर और आशीरगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजोंके साथ क्रमशः दिल्ली, आगरा और लाशवारीमें दौलतरावका युद्ध हुआ और प्रत्येक युद्धमें इनकी पराजय हुई। कटक, बरार आदि स्थानोंमें भी अंग्रेजोंने अपनी महाशक्तिका परिचय दिया। दौलतरावने अब सन्धिका प्रस्ताव किया, पर सन्धि न हुई। रघुजी भोंसले और दौलतरावकी सेना पुनः अंग्रेजों द्वारा आक्रान्त और पराजित हुई। इस युद्धमें महाराष्ट्रोंकी अन्तिम आशा पर पानी फिर गया।

१८०४ ई०में दौलतरावने अंग्रेजोंसे सन्धि कर ली। यह सन्धि सुर्जी अंजनगांवमें हुई थी। सन्धिकी शर्तके अनुसार दौलतरावने दोआब और अन्यान्य बहुतसे स्थान छोड़ दिये तथा छः हजार अंग्रेजी सेनाके खर्चका भार अपने ऊपर ले लिया।

अब इनके पास राजपूतानेमें जयपुर और जोधपुर तथा दक्षिण और खानदेशमें पैतृक सम्पत्तिके सिवा और कुछ भी न रहा। १८०५ ई०में अंग्रेजोंके भरतपुर-दुर्ग विजय करनेके बाद सिन्धियाने होलकरके साथ मिल कर फिर गड़बड़ मचानेकी कोशिश की, पर लार्ड लेकके साथ युद्धमें पराजित हो भाग गये। उस समय लार्ड कर्नवालिस गवर्नर जनरल थे, उन्होंने दौलतरावके साथ सन्धि कर ली। परन्तु ये निरस्त रहनेवाले न थे। १८१५ ई०में, जब अंग्रेज नेपाल-राजके साथ युद्धमें लिप्त थे, तब होलकर, पेशवा और दौलतराव सब अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्धार्थ तैयार हो गये। उस समय दाक्षिणात्यसे अंग्रेजोंकी सेना न आती तो शायद ये लोग युद्ध करते; किन्तु सेनाके आ पहुंचने पर सबने अपना अपना रास्ता लिया।

१८१७ ई०में गवर्नर-जनरल लार्ड हेष्टिंस्, पिण्डारी-

दमनके लिये कृतसङ्कल्प हो दौलतरावके साथ युद्धसूत्रमें आबद्ध हुए। दौलतरावकी इच्छा न होने पर भी अंग्रेज गवर्मेण्टके इच्छानुसार कार्य करने लगे। वे नेपालियों-को अंग्रेजोंके विरुद्ध उत्तेजित कर रहे थे। उन्होंने पेशवासे अंग्रेजोंकी विपक्षता करनेके लिये प्रायः २५ लाख रुपये लिये थे। किन्तु जब सुना कि गवर्नर-जनरल सेना सहित उनके राजाकी सीमान्तमें आ पहुंचे हैं, तब आप शीघ्र ही अंग्रेजोंके अभिप्रायानुसार कार्य करने लगे। इसी समय पेशवा युद्धार्थ अग्रसर हो गये। अब तक वे पिण्डारियोंको गुप्तरीत्या सहायता पहुंचाते थे, किन्तु जब देखा कि उन्हीं पिण्डारियोंके ध्वंसके लिए अंग्रेजोंने कमर कस ली है, तब वे अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्धार्थ अग्रसर हुए। प्रत्येक युद्धमें अंग्रेजोंकी विजय होने लगी। दौलतराव इस समय स्वयं निरस्त थे, पर उन्होंने अपने सेनाध्यक्ष यशोवन्तरावको पेशवाकी सहायता देनेकी आज्ञा दी थी, यह बात प्रकट हो गई। इस पर अंग्रेजोंने दौलतरावका अशीरगढ़ अधिकार कर लिया। धीरे धीरे अङ्गरेजोंका प्रभुत्व देश भरमें फैल गया। दौलतराव सिन्धिया मन्त्रौषधिरुद्धवीर्य भुजङ्गमकी तरह कालातिपात करने लगे और आखिर १८२७ ई०में उनकी मृत्यु हो गई।

दौलतरावकी विधवा पत्नीने एक ज्ञाति पुत्रको दत्तक ग्रहण किया। प्रवाद है, कि सिन्धियावंशके राजा अपुत्रक होते हैं। यह बात आज तक सत्य होती चली आ रही है। सिन्धियावंशके राजगण अपुत्रक होनेके कारण आज तक दत्तकपुत्रोंको ही अपना अपना राज्य देते गये हैं।

**दौलतशाह**—समरकन्दके बख्तशाहके पुत्र। हिराट-के अबुल गाजी बहादुर उर्फ सुलतान हुसेन मिर्जाके समयमें इनका अभ्युदय हुआ। इनकी लिखी हुई 'ताजकिरा दौलतशाही' नामक एक कविजीवनी है। इस पुस्तकमें दश अरबी कवि और एक सौ चौंतीस पारसी कवियोंके जीवनचरित वर्णित हैं। सुलतान हुसेन मिर्जाके समकालीन ६ मन्त्रि-कवियोंकी जीवनी भी इसमें दी गई है। कविजीवनी १४८६ ई०में लिखी गई थी। १४९५ ई०में दौलतशाहका देहान्त हुआ।

**दौलताबाद**—निजामराज्यका एक शहर। यह हैदराबाद-से २८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। हिन्दू राजाओंके समयमें इसका नाम देवगढ़ या देवगिरि था।

देवगिरि देखो।

**दौलेय** (सं० पु०) दुलेरपत्यं ठक्। कच्छप, कछुवा।

**दौलेश्वरम्**—मन्द्राजके गोदावरी जिलेके अन्तर्गत राज-महेन्द्री तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १६° ५७' उ० और देशा० ८१° ४७' पू० राजमहेन्द्रीसे ५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०३०४ है। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीमें राजमहेन्द्रीके सेतु-पति राजाओंके साथ इलोराके मुसलमान राजाओंका युद्ध इसी स्थान पर हुआ था। गोदावरीका जल सञ्चय करनेके लिये जो कृत्रिम उपाय अवलम्बित हुआ है वह कल इसी शहरमें स्थापित है। यहां पहाड़से पत्थर काट कर बाहर निकाला जाता है।

**दौहिम** (सं० पु०) दुह्मस्य अपत्यं दुह्म-इञ्। इन्द्र।

**दौवारिक** (सं० पु०) द्वारि नियुक्तः ठक्, (तत्र नियुक्तः। पा ४।४।६९) ततोन वृद्धिः औ आगमश्च। १ द्वाररक्षक, द्वारपाल। इसका संस्कृत पर्याय—द्वाःस्थ, क्षत्ता, दण्डी, वेत्रधर, प्रतीहार, प्रतिहार, दर्शक, द्वारी, वेताल, द्वार-पालक, दौःसाधिक, वत्तरूढ़, गवाट, दण्डपांशुल, द्वाःस्थित, वत्तरूक और दण्डवासी है।

दौवारिकका लक्षण—उन्नत, सुन्दराकृतिविशिष्ट, कार्यकुशल, अनुद्धतप्रकृति और परचित्तग्राहक इस तरहके मनुष्य प्रतीहार वा द्वारपालके उपयुक्त हैं। नीतिकुशल चाणक्यने दौवारिकका लक्षण इस तरह बतलाया है—जो इशारा और आकार देख कर सभीके मनका भाव समझ सकें और जो बलवान्, प्रिय-दर्शन, प्रमादशून्य और कार्यदक्ष हों, वे ही प्रतीहारके उपयुक्त हैं। जो अस्त्रशस्त्रकुशल, दृढ़ाङ्ग और आलस्य-शून्य हों, वे भी प्रतीहारके योग्य हैं। उपरोक्त लक्षण-युक्त मनुष्योंको द्वाररक्षाके कार्यमें नियुक्त करना चाहिये। प्रतीहार देखो। २ एकाशीतिपदस्थ वासुदेव-भेद, एक प्रकारका वासुदेव जिन्हें इक्यासी पाँव हैं।

**दौवालिक** (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। २ दौवालिक देशके राजा और अधिवासी।

दौश्चर्म्य (सं० क्लो०) दुश्चर्मणो भावः ष्यञ्। स्वभावतः अनावृतसमेढ्, एक प्रकारका रोग जो जन्मसे ही होता है। मनुने लिखा है, कि जो गुरु-पत्नी हरण करता है, उसीको यह रोग होता है।

दौक (सं० त्रि०) दोषाचरति इति 'दोष उपसंख्यान" इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठन् ततो पत्वं। बाहु द्वारा विचरणकारो, जो केवल दोनों बाहोंके आधारसे तैरता या पार होता हो।

दौष्कुल (सं० त्रि०) दुष्टं कुलमस्य दुष्कुल स्वार्थे अण्। दुष्टकुलयुक्त, जिसका कुल खराब हो, निन्दित वंशका।

दौष्कुलेय (सं० पु०) दुष्कुलस्यापत्यं तत्र भवो वा ठक्। १ दुष्कुलजात, जिसका जन्म निन्दित कुलमें हुआ हो। २ ग्रन्थिपर्ण मूल।

दौष्कुल्य (सं० त्रि०) दुष्कुल-ष्यञ् स्वार्थे ष्यत् वा। दुष्टकुलयुक्त, निन्दित वंशका।

दौष्कृत्य (सं० क्लो०) दुष्टता, मन्द स्वभाव।

दौष्टव (सं० क्लो०) दुष्टोः अविनीतस्य भावः अण्। अविनीतत्व, दुष्टका व्यवहार।

दौष्पुरुष्य (सं० क्लो०) दुष्टः पुरुषः तस्य भावः स्वार्थे वा ष्यञ्। १ दुष्ट पुरुष, खराब आदमी। २ दुष्ट पुरुषका भाव।

दौष्मन्त (सं० पु०) दुष्मन्तस्यापत्यं शिवादित्वादण्। दुष्मन्त राजाका अपत्य, दुष्मन्तका पुत्र भरत।

दौष्मन्ति (सं० पु०) दुष्मन्तस्यापत्यं दुष्मन्त-इञ्। दुष्मन्तका अपत्य, भरत।

दौष्मन्त्य (सं० त्रि०) दुष्मन्तस्यायं ण्य। दुष्मन्त सम्बन्धीय, दुष्मन्तका।

दौस—राजपूतानेमें जयपुर राज्यके अन्तर्गत इसी नामकी तहसील और निजामतका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५४' उ० और देशा ७६° २१' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७५४० है। यहां एक समय अकबरकी राजधानी थी। प्राचीन हिन्दू-मन्दिर और अट्टालिकाओंके भग्नावशेष पूर्व समृद्धिका परिचय देते हैं। १८५८ ई०में सिपाहीविद्रोहके शेषमें विद्रोही-नायक तातिया तोपीको अंगरेजी दो दल सेनाने इसी स्थान घेपर रा था। यहां ७ स्कूल और एक अस्पताल हैं।

दौस्त्र (सं० क्लो०) दुष्टा स्त्री तस्यां भावः युवादित्वादण्। दुष्टा स्त्रीका भाव या कर्म।

दौहिक (सं० त्रि०) दोहं अर्हन्ति ठञ्। नित्य दोहार्ह, प्रतिदिन दुहनेके योग्य।

दौहित्र (सं० पु० स्त्री०) दुहितुरपत्यं विदादित्वादञ्। १ दुहिताका अपत्य, लड़कीका लड़का, नाती। धर्मशास्त्रमें पौत्र और दौहित्रमें कुछ भेद नहीं माना गया है, क्योंकि एक ही व्यक्तिसे पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई हैं। पौत्रके समान दौहित्र भी पिंडदान आदि द्वारा परलोकमें उद्धार कर सकता है। जबतक दौहित्र न हो जाय, तब तक पिताको कन्याके घर भोजन आदि न करना चाहिये, यदि करे तो वह नरकगामी होता है। दौहित्र हो जाने पर भोजन करनेमें कोई दोष नहीं है।

शूद्रका दौहित्र दत्तक हो सकता है, किन्तु ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि दौहित्रको दत्तक ग्रहण करे, तो सिद्ध नहीं होता है। दत्तक देखो।

दौहित्र मातामहका धनाधिकारी हो सकता है, दुहिताके नहीं रहते दौहित्र धन प्राप्त कर सकता है। दायभाग देखो। (क्लो०) २ खड्गादि, तलवार आदि। ३ तिल। ४ गव्यघृत, गायका घी।

दौहित्रक (सं० त्रि०) दौहित्रसम्बन्धी।

दौहित्रवत् (सं० त्रि०) दौहित्रः विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य व। दौहित्रयुक्त, जिसके नाती हो।

दौहित्रायण (सं० पु०-स्त्री०) दुहितुरपत्यं युवा विदादित्वात् अञ्, अच्छि युनि फक्। दुहिताका युवा अपत्य।

दौहृद (सं० पु०) दोहद, वह इच्छा जो स्त्रियोंको गर्भिणी होनेको दशामें होती है।

दौहृदिनो (सं० स्त्री०) गर्भवती नारी। गर्भके समय स्त्रोको अपना और गर्भका हृदय ले कर दो हृदय हो जाता है, इसीसे उसे दौहृदिनी कहते है।

द्याद्विवेदी—एक वैदिक पण्डित। इन्होंने १५५० सम्वत्‌में नीतिमञ्जरी नामक एक ग्रन्थ प्रणयन किया है।

द्यानतिराय—हिन्दी भाषाके एक जैनी कवि। इन्होंने सम्वत् १७८०में धरमविलास, एकीभावभाषा तथा एकीभवभाषा नामक तीन ग्रन्थ प्रणयन किये।

द्याविद्यवि (सं० स्त्री०) दिवस, दिन।

द्यामाक्षमा ( सं० स्त्री० ) द्यौश्च क्षमा च दिवो द्यावा देशः। स्वर्ग और पृथिवी।

द्याव्यापृथिवी (सं० स्त्री० ) द्यौश्च पृथिवी च, दिवो द्यावादेशः। स्वर्ग और पृथिवी। इसका वैदिक पर्याय—स्वध, पुरंध्री, धिषण, रोदसी, चोणी, अम्भसी, नभसी, रजसी, सदसी, सझनी, घृतवती, बहुल, गभीर, गम्भीर, ओमूणी, चम्ब, पार्श्व, मही, उर्वी, पृथ्वी, अदिति, अही, दूर, अस्त, अपार, अर और पार हैं।

द्यावाभूमि (सं० स्त्री० ) द्यौश्च भूमिश्च, दिवो द्यावादेशः। स्वर्ग और पृथिवी।

द्यु ( सं० क्ली० ) दिव-उन् किच्च वा द्योति इति द्यु-क्विप्। १ दिन, रोज। २ गगन, आकाश। ३ स्वर्ग। (पु०) ४ अग्नि। ५ सूर्यलोक।

द्युक ( सं० पु० ) पेचक।

द्युकारि ( सं० पु० ) काक, कौवा।

द्युक्ष ( सं० त्रि० ) दिवि द्युनि क्षयति क्षि निवासे ड। १ स्वर्गलोकवासी। २ दीप्तियुक्त।

द्युक्षवचस् (सं० त्रि०) स्वर्गीय देवताका नाम उच्चारण।

द्युग (सं० पु० स्त्री०) द्युनि दिवि आकाशे वा गच्छति गम-ड। १ पक्षी, चिड़िया। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। (त्रि०) २ आकाशगामिमात्र, आकाशमें विचरण करनेवाला।

द्युगण (सं० पु०) द्युनां दिवां वा दिनानां गणः। ग्रहोंकी मध्य गतिके साधक अंग दिन।

द्युगत् (सं० क्ली०) द्यु-गम-क्विप्। शीघ्र, जल्दी।

द्युचर (सं० त्रि०) दिवि आकाशे चरति चर-ट। १ ग्रह। २ पक्षी।

द्युज्या (सं० स्त्री०) अहोरात्रवृत्तकी व्यासरूप ज्या।

द्युत् (सं० पु०) द्युत-क्विप्। १ किरण। (त्रि०) २ द्योतमान, चमकता हुआ।

द्युत (सं० त्रि०) द्युत क। द्योतमान, प्रकाशवान्।

द्युतान (सं० त्रि०) द्युत-शानच वेदे गणव्यत्ययात् शपो-लुक्। द्योतनशील, प्रकाशवान, चमकीला।

द्युति (सं० स्त्री०) द्युत-इन्। १ दीप्ति, कान्ति, चमक। २ शोभा, छवि। ३ देहजात कान्ति, देहका लावण्य। ४ रश्मि, किरण। ५ चतुर्थ मनुके समय ऋषि, एक ऋषिका नाम जो चतुर्थ मनुके समयमें थे। ६ तामस मुनिके एक पुत्रका नाम।

द्युतिकर ( सं० पु० ) करोतीति कृ-अच्, द्युतेः करः। १ ध्रुव। (त्रि०) २ दीप्तिकारक प्रकाश, उत्पन्न करनेवाला।

द्युतरु (सं० पु० ) कल्पतरु।

द्युतित (सं० क्ली०) द्युत-भावे क्त बाहुलकात् न गुणः। १ दीप्ति, कान्ति, चमक। द्युत कर्त्तरि क्त। (त्रि०) २ दीप्तियुक्त, प्रकाशवान्।

द्युतिधर ( सं० पु० ) द्युतिं देहगतां कान्तिं धारयति अन्तर्भूतण्यर्थे धृ-अच्। १ विष्णु। (त्रि० ) २ प्रकाश या कान्तिको धारण करनेवाला।

द्युतिमणि (सं० पु० ) अर्कवृक्ष, आकका पेड़, मदार।

द्युतिमत् ( सं० त्रि० ) द्युति प्रशंसायां अस्त्यर्थे वा मतुप्। १ प्रशस्त कान्तियुक्त, जिसमें चमक वा आभा हो। ( पु० ) २ स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम। ३ मेरुसावर्ण मन्वन्तरमें सप्तर्षि भेद। ४ मद्रदेशभेद। ५ शाल्वदेशके एक राजाका नाम। ७ प्रियव्रतके पुत्र। इनके पिताने इन्हें क्रौंचद्वीपका शासन-भार सौंपा था।

द्युतिला ( सं० स्त्री० ) द्युतिः लाति ला-क। ओषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

द्युधुनि ( सं० स्त्री० ) स्वर्गनदी, गङ्गा।

द्युन ( सं० क्ली० ) लग्नसे सप्तमराशि।

द्युनिवास ( सं० पु० ) दिवि द्युनि वा निवासो यस्य। देवता।

द्युनिश ( सं० क्ली० ) द्यु च निशा च तयोः समाहारः। अहोरात्र, दिन रात।

द्युनिवासिन् ( सं० पु० ) द्युनि स्वर्गे निवसतीति वस-णिनि। देवता।

द्युपति ( सं० पु० ) द्युनो दिनस्य पतिः। १ दिनपति, सूर्य। द्युनो स्वर्गस्य पतिः। २ इन्द्र।

द्युपथ (सं० पु०) द्युनो पन्था ६-तत्। आकाशपथ, स्वर्ग-मार्ग।

द्युमणि (सं० पु०) द्युनो गगनस्य मणिरिव। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, आकका पेड़। ३ परिशोधित ताम्र, शोधा हुआ ताँबा।

द्युमत् ( सं० त्रि० ) द्योः कान्तरस्यास्ति दिव-मतुप् दिव उत्वं। कान्तियुक्त, चमकदार।

द्युमत्सेन (सं० पु०) शाल्वदेशके एक राजा। इनके पुत्रका नाम सत्यवान् था। दैवदुर्विपाकसे ये नेत्रहीन हो गये थे, उस समय सत्यवान् बच्चा था। इस समय शत्रुओंने षड़यन्त्र करके इन्हें राज्यच्युत कर दिया। इस पर ये अपनी स्त्री और सत्यवान्को ले कर वनवासी हो गये।

सत्यवान् अनन्यकर्मा हो कर पितामाताकी सेवा करने लगे। एक समय मद्रदेशके राजा अश्वपति वनमें इनके समीप गये और अपनी लड़की सावित्रीका विवाह उन्होंने सत्यवान्के साथ कर दिया। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। सत्यवान्की आयु धीरे धीरे घटने लगी। सावित्रीके समक्षमें लकड़ी काटते समय उनको प्राणवायु उड़ गई। सावित्रीने अपने पातिव्रत्यसे यमको विमोहित कर दिया और उन्हें लाचार हो कर वर देना पड़ा। उनके वरके प्रभावसे द्युमत्सेनके नेत्र और राज्य पलट आये तथा सत्यवान्ने भी जीवन लाभ किया। सावित्री और सत्यवान् देखो। द्युमत्सेन राज्य पा कर सन्तानकी तरह प्रजाका पालन करने लगे।

एक समय राजा द्युमत्सेन वधयोग्य व्यक्तिका जब वध करनेमें उतारू हुए थे, तब सत्यवान्ने कहा था, 'तात। इन्हें वध करना आपका कर्त्तव्य नहीं है। धर्म कभी अधर्म और अधर्म कभी धर्म हो सकता है। किन्तु वध कभी धर्मपदवाच्य नहीं हो सकता।' इस पर द्युमत्सेनने कहा, 'वत्स! यदि तुम वध्यके अवधको धर्म कहते हो, तो दस्यु किस प्रकार शासित होगा? सुतरां दुष्टका दमन जब तक नहीं होगा, तब तक किस प्रकार लोकयात्रा निर्वाह होगी? सत्यवान्ने जवाब दिया, 'पितः। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंको ही ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है। इन लोगोंके धर्मपाशसे आवद्ध होनेसे ही सूतमागधादि सभी धर्माचरणमें प्रवृत्त हो जायगे। जिससे किसीका देहनाश न हो, उसी प्रकारका शासन आवश्यक है। ऐसा दण्ड कभी नहीं होना चाहिये जिससे देहका विनाश हो। बन्धन, मस्तक मुण्डन आदि द्वारा दण्ड देना विधेय है और उन्हें सत्पथ पर लानेकी चेष्टा करना उचित है।' यह सुन कर द्युमत्सेनने कहा था, 'इस प्रकारका शासन सत्यादि युगके लिये था, आजकल इस प्रकारके दण्डसे दस्यु शासित नहीं हो सकता।' फिर सत्यवान्ने कहा, 'पितः! यदि आप बिना हिंसा किये दस्युको अधीन नहीं कर सकते, तो नरमेधयज्ञ द्वारा उन्हें संहार कीजिये। जब देखा जाता है, कि जिसका वध किया गया, उसका कोई उपकार नहीं हुआ, क्योंकि इसके बाद भी पुनः उसीके जैसा दूसरा दोषी देखनेमें आता है, तब मेरे ख्यालसे भारी अपराध करनेवाले दोषीको आजीवन कारावद्ध करके उनके मनके कलुषितभावको दूर करनेकी चेष्टा करना ही उचित है।' द्युमत्सेनने कुछ दिन राज्य करके सत्यवान्के ऊपर राज्यभार सौंप पत्नी शैव्याके साथ वानप्रस्थ अवलम्बन किया। (भारत आदि, शान्ति, वनपर्व)

द्युमद्‌गान (सं० क्लो०) सामगानभेद, एक प्रकारका सामगान।

द्युमयी (सं० स्त्री०) विश्वकर्माकी कन्या, सूर्यपत्नी।

द्युम्न (सं० क्ली०) द्युमन्निं मनति अभ्यसत्यसौ म्ना क। १ धन। २ बल। ३ सूर्य। ४ अन्न।

द्युलोक (सं० पु०) द्यौरेव लोकः दिव उत्वं। स्वर्गलोक। वैदिक ग्रन्थोंमें द्युलोककी तीन कक्षाएं कही गई हैं, पहली उदन्वती, दूसरी पीलुमति और तीसरी प्रद्यौ है। इन्हीं तीन कक्षाओंको नाक, स्वर्ग और पितृलोक कहते हैं। उदन्वती कक्षामें चन्द्रमा है, पीलुमती कक्षामें सूर्य है और तीसरी कक्षामें अनेक लोक लोकान्तर हैं। इन लोकोंमें जाना ही अश्वमेधादि बड़े बड़े यज्ञोंका फल होता है।

द्युवन् (सं० पु०) द्योति द्यु-कनिन्, (कनिन् युवृषीति। उण् १।१५६) १ सूर्य। २ स्वर्ग।

द्युषद (सं० पु०) दिवि स्वर्गे सीदतीति सद क्विप्। छन्दसि षत्वं लोकेतुऽपत्वं। १ देव, देवता। २ नक्षत्र। ३ ग्रह।

द्युसद्मन् (सं० पु०) द्युः सद्म यस्य। स्वर्ग।

द्युसरस् (सं० क्ली०) स्वर्गीय ह्रदविशेष, स्वर्गके एक जलाशयका नाम।

द्युसरित् (सं० स्त्री०) स्वर्गनदी मन्दाकिनी।

द्युसिन्धु (सं० स्त्री०) मन्दाकिनी।

द्यू (सं॰ त्रि॰) दिव्यति दिव-क्विप् ऊट्। देवक, क्रोड़क, जुआ खेलनेवाला, जुआरी।

द्यूत (सं॰ क्ली॰) दिव्, क्रीड़ायां भावे क्त, ऊट्च। पाशकादि क्रीड़ा, अप्राणीकरणक क्रीड़ा, वह खेल जिसमें दांव बदा जाय और हारनेवाला जीतनेवालेको कुछ दे, जुआ। पर्याय—अक्षवती, कैतव, पण। यह बहुत अनिष्टकर है। मनुने इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

राजाको चाहिये कि जुआ और पशुपक्षियोंका दङ्गल अपने राज्यमें न होने दे। द्यूत और समाह्वय ये दोनों दोष राजा तथा राज्यके हानिकारक हैं। यह खुले आम की चोरी है। इसीसे इसका रोकना जहां तक हो सके उचित है। अक्षशलाकादि अप्राणी द्वारा जो खेल खेला जाता, उसे द्यूत और पशुपक्षियों द्वारा बाजी रख कर जो खेल खेला जाता है, उसे समाह्वय कहते हैं। जो मनुष्य द्यूत-क्रीड़ा तथा समाह्वय स्वयं करता है, वा दूसरोंसे कराता है, राजा उन्हें अपराधानुसार सभी प्रकारके दण्ड दे सकते हैं। द्यूत और समाह्वयकर्त्ता तथा नटवृत्तिजीवी आदिको शहर या गांवमें बसने नहीं देना चाहिये, नहीं तो ये भोलीभाली प्रजाको ठग कर उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट देंगे। द्यूतको पुराणादिमें भी अनिष्टकर बतलाया है। इसीसे बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि हँसीसे तथा जी बहलानेके लिये भी जुआ न खेलें। प्रकाश्यरूपसे वा प्रच्छन्नभावसे जो जुआ खेलते हैं, राजा उन्हें उचित दण्ड देवें। याज्ञवल्क्य-संहिताके द्यूतसमाह्वयाख्यप्रकरणमें इस प्रकार लिखा है—धूर्त्त जुआरी प्रति दांवमें सौसे कमकी बाजी नहीं लगाता। सभिक अर्थात् द्यूत-सभाध्यक्ष उसके जयलब्ध सैकड़े पीछे बीस भागका एक भाग लेगा। राजा उस द्यूतसभाध्यक्षको धूर्त जुआरीके हाथसे बचाए रखें। सभिक भी राजाको अङ्गीकृत भाग दे। जहां राजा निर्दिष्ट अंश पाते हैं, वहां उस सभिकयुक्त प्रसिद्ध धूर्त्त समाजमें राजाको उचित है कि पराजित द्रव्य जीतने-वालेको दिला दें। यदि धूर्तसमाज न हो, तो राजाको दिलानेकी जरूरत नहीं। राजा द्यूतक्रीड़ाको जय पराजयका निरूपण करनेके लिए थोड़े नौकरों-को साक्षीरूपसे नियुक्त कर दें। जो कपटसे वा ठगनेकी इच्छासे मन्त्रौषधादि द्वारा जुआ खेलें, उन्हें राजाको उचित है कि श्वापदादि चिह्नोंसे चिह्नित कर अपने राज्यसे निकलवा दे। राजा एक मनुष्यको द्यूतसभामें अध्यक्ष बनावें। समाह्वय नामक द्यूतक्रीड़ामें भी इसी प्रकारकी विधि बतलाई है। (याज्ञवल्क्यसं २।२२०-२०६)

मनुने राज्यसे द्यूतक्रीड़ाका बहिष्कार सम्पूर्णरूपसे किया है। किन्तु याज्ञवल्क्यने केवल कूट-द्यूतको निषिद्ध बतलाया है।

अक्ष अर्थात् पाशा, वध्र चर्मपट्टिका, शलाका अर्थात् दन्तादिनिर्मित दीर्घ चतुरस्रा, इन सब अप्राणिद्वारा बाजी रख कर जो खेल खेला जाता है, उसे द्यूत और पशुपक्षियों द्वारा जो खेल खेला जाता है, उसे समाह्वय कहते है। जुआ खेलना मात्र ही द्यूतक्रीड़ामें गिना जाता है। अक्षादि क्रीड़ाकी कामज व्यसनमें गिनती की गई है, इसीसे हरएक व्यक्तिको इस क्रीड़ासे अलग रहना उचित है। द्यूतक्रीड़ासे कितने प्रकारके अनिष्ट हो सकते हैं, वह वर्णनातीत है। पुराणमें इसका जाज्वल्यमान प्रमाण दिया गया है। धर्मराज युधिष्ठिर और सत्यसन्ध नलको इसी खेलके प्रभावसे कितने प्रकारकी कठिनाइयां झेलनी पड़ी थीं वह सबोंको विदित है।

द्यूतकर (सं॰ त्रि॰) करोतीति कृ-अच्, द्यूतस्य करः ६-तत्। द्यूतकर्त्ता, जुआ खेलनेवाला, जुआरी। इसका पर्याय—धात्त, धूर्त्त, अक्षधूर्त, अक्षदेवी, दुरोदर, द्यूतकृत, कितव और कृष्णाकोहल है।

द्यूतकार (सं॰ त्रि॰) द्यूतं कारयति कृ-णिच्-अच्। द्यूतकारयिता, जुआरी। इसका पर्याय—सभिक और सभीक है।

द्यूतकारक (सं॰ त्रि॰) द्यूतं कारयतीति द्यूत-कृ-णिच्, ण्वुल्। द्यूतकारयिता, जुआ खेलनेवाला।

द्यूतकृत् (सं॰ त्रि॰) द्यूतं करोति कृ-क्विप्, तुगागमश्च। द्यूतकर, जुआरी।

द्यूतदास (सं॰ पु॰) वह दास जो जुएको जीतमें मिला हो।

द्यूतपूर्णिमा (सं॰ स्त्री॰) द्यूताय या पूर्णिमा।

कोजागरी, आश्विनकी पूर्णिमा। इस दिन प्राचीन कालमें जुआ खेला जाता था और लोग रातको जागते थे।

द्यूतप्रतिपत् (सं० स्त्री०) द्यूताय क्रीडार्थं या प्रतिपत्। कार्त्तिकमासकी शुक्लाप्रतिपत्। इस दिन सवेरे लोग जुआ खेलते हैं।

प्राचीनकालमें महादेवने एक मनोहर द्यूतकी सृष्टि की और कार्त्तिकमासके शुक्लपक्षके प्रथम दिनमें पार्वतीके साथ वही द्यूत खेला। इसमें पार्वतीकी जीत हुई, महादेव हार गये। इस पर महादेव दुःखी और पार्वती सुखी हो कर रहने लगीं। इसी कारण द्यूतप्रतिपद्के दिन सवेरे जुआ खेलनेको लिखा है। इस खेलमें जिसकी जीत होती है, उस वर्ष उसे सुख और जिसकी हार होती है, उस वर्ष उसे पद पदमें दुःख होता है, यहां तक कि उसका सञ्चित अर्थ भी जाता रहता है। शिवजीने इस दिन द्यूतक्रीड़ा की थी, इसी कारण इस प्रतिपद् तिथिका नाम द्यूतप्रतिपत् पड़ा है।

इस प्रतिपद्का दूसरा नाम कौमुदी भी है। यथा—

"तुष्टयर्थं कार्त्तिके तस्य शुक्ला या प्रतिपत्तिथिः।
विष्णोर्दत्ता मही तत्र कौमुदी सा स्मृता बुधैः॥
कुशब्देन मही ज्ञेया मुदा हर्षं च वै द्विज।
धातुज्ञैः सर्वशब्दज्ञैः सा च वै कौमुदी स्मृता॥"

(पाद्मोत्तरखण्ड)

कार्त्तिकमासकी शुक्लाप्रतिपद् तिथिको कौमुदी कहते हैं। कु शब्दका अर्थ मेदिनी और मुदाका अर्थ हर्ष है, इसीसे समस्त धातुज्ञ तथा सर्वशब्दविदोंकी इस तिथिमें प्रातःकाल जुआ खेलना उचित है। जुआके बाद बलि और दैत्यपूजादि करनेका विधान है।

यथाविधि सङ्कल्पादि करके शालग्राम वा जलको 'एतद्पाद्यं बलये नमः' इत्यादि क्रमसे पाद्यादि द्वारा पूजा करनी चाहिये। पीछे इस मन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि देनी होती है। मन्त्र यथा—

"ओं बलिराज! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो।
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यतां॥"

इस प्रकार पूजा करके उत्सवके साथ दिन बिताना चाहिये। क्योंकि इस दिन जो जिस प्रकारसे रहता है, उस वर्ष उसका उसी प्रकारसे दिन व्यतीत होता है। इस दिन शोक दुःखका परित्याग कर आनन्दके साथ रहना चाहिये।

"यो यो यादृश भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर।
हर्षदैन्यादिना तेन तस्य वर्षं प्रयाति हि॥"

(कृत्यतत्त्व)

यह तिथि अतिशय पुण्या मानी गई है। इस दिन स्नानदानादि करनेसे सौगुण फल मिलते हैं।

"महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्द्धिनी।
स्नानं दानं शतगुणं कार्तिकेऽस्यां तिथौ भवेत्॥"

(कृत्यतत्त्व)

द्यूतफलक (सं० पु०) पासा खेलनेका तख्ता, वह चौकी जिस पर जुएकी कौड़ी फेंकी जाय।

द्यूतबीज (सं० क्ली०) द्यूतस्य बीज कारणं। १ कपर्दक, कौड़ी। २ द्यूतका कारण।

द्यूतवृत्ति (सं० पु०) द्यूतं वृत्तिर्जीविका यस्य। सभिक, द्यूतोपजीवी, वह जो जुआ खेल कर अपना जीवन-निर्वाह करता हो।

द्यूतभूमि (सं० स्त्री०) जुआ खेलनेका अड्डा, जुआ खाना।

द्यूतमण्डल (सं० पु०) १ जुआरियोंकी मंडली। २ जुआ खेलनेका घर, जुआखाना।

द्यूतवैतंसिक (सं० पु०) वह जो प्राणियोंका युद्ध देख कर जीवन व्यतीत करता हो।

द्यूतसमाज (सं० पु०) अक्षक्रीड़ाका स्थान, वह स्थान जहां जुआ खेला जाय।

द्यून (सं० क्ली०) १ लग्नस्थानसे सातवीं राशि। दिव-क्त (दिवोऽविजिगीषायां। पा ८।२।४९) निष्ठा तस्य न तस्य ऊट्। (त्रि०) २ चीण, कमजोर।

द्यो (सं० स्त्री०) द्योतन्ते देवा यत्र द्युत बाहुलकात् डो। १ स्वर्ग। २ आकाश। (पु०) ३ अष्टवसुका अन्यतम, शतपथब्राह्मण और देवीभागवतके अनुसार आठ वसुओंमेंसे एक।

देवीभागवतमें लिखा है, कि इन्होंने वशिष्ठके शापसे पृथ्वी पर भीष्मके रूपमें जन्म ग्रहण किया था। किसी

समय वसुगण अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए वशिष्ठ ऋषिके आश्रममें पहुंचे और स्त्रीके कहनेसे द्यो नन्दिनीगायको चुरा ले गये। वशिष्ठको जब यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने शाप दिया जिससे उन्होंने पृथ्वी पर भीष्मके रूपमें जन्म ग्रहण किया। भीष्म देखो।
(देवीभागवत २।३ स्कन्धः, भारत १।९९ अ०)
महाभारतमें इसका नाम 'द्यु' बतलाया है।

द्योकार (सं० त्रि०) द्योतुल्यान् प्रासादादीन् करोति कृ-अण्। प्रासादादिकर शिल्पिभेद, वह कारीगर जो प्रासादादि बनानेका काम करता हो, राजगीर।

द्योत (सं० पु०) द्युत् भावे घञ्। १ प्रकाश। २ आतप, धूप।

द्योतन (सं० स्त्री०) द्युत शीलार्थे युच्। १ द्योतनशील, प्रकाशमान। (क्ली०) द्युत् भावे ल्युट्। २ दर्शन। ३ प्रकाशन। (पु०) द्युत-युच्। ४ दीप, दीया। ५ दिग्दर्शन, दिखानेका काम।

द्योतनि (सं० त्रि०) द्युत-णिच-अनि। प्रकाशक, जिससे प्रकाश हो।

द्योतित (सं० त्रि०) प्रकाशित।

द्योतिरिङ्गण (सं० पु०) ज्योतिरिङ्गण पृषोदरादित्वात् साधुः। खद्योत, जुगनू।

द्योभूमि (सं० पु०) द्योराकाशं भूमिरिव यस्य। १ पक्षी, चिड़िया। (स्त्री०) द्यौश्च भूमिश्च। २ स्वर्ग और पृथिवी।

द्योषद् (सं० पु०) द्यवि स्वर्गे सीदतीति सद-क्विप्। देवता, स्वर्गवासी।

द्यौत (सं० क्ली०) दिव्यर्थास्मिन्निति दिव-ष्ट्रन् (दिवेर्द्युच। उण् ४।१६०) द्युदादेशः ततो वृद्धिश्च। १ ज्योतिःपदार्थ, चमकीली वस्तु। २ बीज।

द्यौर्लोक (सं० पु०) द्यौरिव लोकः द्योलोकः पृषोदरादित्वात् साधुः। द्युलोक, स्वर्ग।

द्रगड़ (सं० पु०) द्रं इति गड़ति गड़-अच्। वाद्यविशेष, एक बाजा, दगड़ा। इसका पर्याय प्रतिपत्तूर्य है।

द्रङ्क्षण (सं० क्ली०) द्राङ्क्ष्यतेनेति, द्राङ्क्ष-आकाङ्क्षायां ल्युट्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। तोलक, तोला। इसका पर्याय—कोल, वटक और कर्षार्द्ध है।

द्रङ्ग (सं० पु०) पुरभेद, वह नगर जो पत्तनसे बड़ा और कर्वटसे छोटा हो।

द्रढ़िमन् (सं० पु०) दृढ़स्य भावः दृढ़ इमनिच् (पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा। पा ५।१।१२२) ततो ऋकारस्य रकारः। दृढ़ता, मजबूती।

द्रढ़िष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेषां वा अतिशयेन दृढ़ः इति इष्ठन्। अतिशय दृढ़, बहुत मजबूत।

द्रघस (सं० क्ली०) परिच्छद, पोशाक।

द्रप्स (सं० क्ली०) दृप्यति कफोऽनेन दृपं वाहुलकात् रः। १ वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २ तक्र, मट्ठा। ३ रस। ४ शुक्र। (त्रि०) ५ द्रुतगतियुक्त, तेज चलनेवाला।

द्रप्स्य (सं० क्ली०) दृप्यन्त्यनेनेति 'दृप अश्नादयश्च' इति निपातनात् साधुः। १ वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २ शुक्र। ३ रस। ४ तक्र, मट्ठा, छाछ। (त्रि०) ५ द्रुतगमनशील, तेज चलनेवाला। ६ द्रुतहननशील, बहुत जल्द मारने योग्य।

द्रमिल (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम। तामिल देखो।

द्रम्म (सं० पु०) लीलावत्युक्त षोडशपण मूल्यकी मुद्रा, सोलह पण मूल्यकी एक मुद्रा।

द्रव (सं० पु०) द्रु अप्। १ द्रवण। २ पलायन, दौड़। ३ परीहास, हँसी। ४ गति। ५ क्षरण, बहाव। ६ आसव। ७ वेग। ८ रस। ९ द्रवत्व। (त्रि०) १० आर्द्र, गीला। ११ तरल, पानीकी तरह पतला। १२ पिघला हुआ।

द्रवक (सं० त्रि०) द्रु शीलार्थे वुन्। १ पलायनशील, भागनेवाला, भगोड़ू। २ क्षरणशील, बहनेवाला।

द्रवज (सं० पु०) द्रवाज्जायते जन-ड। १ गुड़। २ द्रवजात वस्तुमात्र, वह वस्तु जो रससे बनाई जाय।

द्रवण (सं० क्ली०) द्रु-भावे ल्युट्। १ गमन, गति, दौड़। २ क्षरण, बहाव। ३ अनुताप, गर्मी। ४ पिघलने या पसीजनेकी क्रिया। ५ हृदय पर करुणापूर्ण प्रभाव पड़नेका भाव, चित्तके कोमल होनेकी वृत्ति।

द्रवत् (सं० त्रि०) द्रु शतृ। १ क्षरणयुक्त, बहनेवाला। (क्ली०) २ शीघ्र, जल्दी।

द्रवत्पत्री (सं० स्त्री०) द्रुत् दलं [illegible] गौरादित्वा

ङीष्।] द्रवविशेष, एक प्रकारका पौधा। लोग कहीं कहीं इसे चंगोनो कहते हैं। यह औषधके काममें आता है।

द्रवत्व (सं० क्लो०) द्रवस्य भावः द्रव-त्व। न्यायोक्त संयाप्रक गुणभेद, पानीकी तरह पतला होनेका भाव। इसके दो भेद हैं—सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणोंसे उत्पन्न हो। लोगोंका मत है, कि स्वाभाविक वा सांसिद्धिक द्रवत्व केवल जलमें है और पृथ्वीमें नैमित्तिक द्रवत्व है जो अग्निके संयोग से आ जाता है। आधुनिक विज्ञानके मतानुसार द्रवत्व द्रव्यका एक रूप या उसकी अवस्था मात्र है। इसका कोई खास आकार नहीं है, किन्तु जिस वस्तुके आधारमें वह रहता है उसीके आकारका वह हो जाता है। जिस तरह पानी जब बोतलमें भर दिया जाता है, तब बोतलके आकारका और जब कटोरे लोटे आदिमें रहता है, तब उन्हीं पात्रोंके आकारका होता है। द्रवत्व और विभुत्वमें केवल भेद इतना ही है कि द्रवपदार्थ परिमित अवकाशको घेरता है और विभुपदार्थ पूरे अवकाशमें व्याप्त रहता है। (स्त्री०) द्रव्य भावे तल्-टाप्। द्रवता, बहना, ढलना।

द्रवद्रव्य (सं० क्लो०) द्रवतीति द्रवं द्रव्यं कर्मधा०। १ दुग्ध, दधि, आज्य, तक्र, आसव, जल और तैलादि द्रवपदार्थ। २ दैहिक मूत्रादि।

द्रवन्ती (सं० स्त्री०) द्रवतीति द्रु-शतृ ङीप्।१ एक नदी। २ मूषिकपर्णी, मूषाकाणी। इसका पर्याय—शम्बरी, चित्रा, पत्रश्रेणी, आखुकर्णिका, मूषिकपर्णी, प्रतिपर्णशिफा, सहस्रमूली और विक्रान्ता है। इसका गुण—मधुर, शीतल, रसबन्धकारक, ज्वर, कृमि, शूलनाशक और रसायन है।

द्रवरस (सं० त्रि०) द्रवयुक्तो रसो यस्य। सार्द्र रस, गीला रस।

द्रवरसा (सं० स्त्री०) लाचा, लाख, लाह।

द्रवाधार (सं० पु०) द्रवाणां द्रव्याणां आधारः। १ चुलुक, अंजलि, चुल्लू। २ द्रवद्रव्यरचापात्र, तरलपदार्थ रखनेका बरतन।

द्रवाय्य (सं० त्रि०) द्रु-आय्य। द्युतिशील, चमकीला।

द्रवि (सं० त्रि०) द्रावयति अन्तर्भूतण्यर्थे द्रु-इन्, स्वर्णादि द्रावक, सोना आदि गलानेवाला।

द्रविड़ (सं० पु०) १ स्वनामख्यात देशभेद। दक्षिण भारतका एक देश जो उड़ीसाके दक्षिण पूर्वीय सागरके किनारे रामेश्वर तक विस्तृत है। तेषां राजा सोऽपि जनोऽस्य वा अण्। २ द्रविड़ देशके राजा। ३ पितादिक्रमसे द्रविड़ देशवासी।

मनुने द्रविड़ोंको सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न व्रात्य चत्रियोंकी संतति कहा है, यथा—झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड़। महाभारतमें भी लिखा है, कि परशुरामके भयसे बहुतसे चत्रिय दूर दूरके पहाड़ों और जंगलोंमें भाग गये, वहां भी वे डरके मारे वैदिककार्य का अनुष्ठान नहीं कर सकते थे, इस कारण अपने कर्म ब्राह्मणोंके अदर्शन आदिके कारण भूल गये और वृषलत्वको प्राप्त हो गये। वे ही द्रविड़, आभीर, शबर, पुण्ड्र आदि हुए। बहुषु अणो-लुक्। ४ ब्राह्मणभेद, इसके अन्तर्गत पांच ब्राह्मण हैं—आंध्र, कर्णाटक, गुर्जर, द्रविड और महाराष्ट्र।

द्रविड़ी (सं० स्त्री०) द्रविड़ गौरादित्वात् ङीष्। रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम।

द्रविण (सं० क्लो०) द्रवति गच्छति द्रूयते प्राप्यते वेति द्रु-इनन् (द्रुदक्षिभ्यामिनन्। उण् २।५०)। १ धन। २ काञ्चन, सोना। ३ बल। ४ पराक्रम। (पु०) ५ पृथु राजाके एक पुत्रका नाम। ६ ध्रुव नामक वसुके एक पुत्रका नाम। ७ कुशद्वीपस्थित सीमान्त गिरिभेद, कुशद्वीपका एक सीमापर्वत। ८ क्रौंचद्वीपस्थ एक वर्ष, क्रौंचद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष।

द्रविणक (सं० पु०) वसुसुता, अग्निकी एक स्त्रीका नाम।

द्रविणनाशन (सं० क्लो०) द्रविणं नाशयति नाशि-ल्युट्। शोभाञ्जन, सहजनका पेड़। यह खानेसे धन नाश होता है, इसीसे इसका नाम ऐसा पड़ा है।

द्रविणप्रद (सं० त्रि०) द्रविणं प्रददाति प्र-दा क। १ धनदायक, धन देनेवाला। (पु०) २ विष्णु। ये अभिलषितफल देते हैं, इसीसे इनका नाम द्रविणप्रद हुआ है।

द्रविणस् (सं० त्रि०) द्रविणमिच्छति लालसायां काचि सुक् द्रविणस्यति ततः भावे क्विप् अतो लोपे क्वौ लुप्ते न स्थानिवद्भवति इति यलोपः। धनेच्छा, जिसकी इच्छा धन पानेकी हो।

द्रविणस्यु (सं० त्रि०) द्रविणं आत्मनो लालसया इच्छति क्यचि सुक् द्रविणस्य उण्। लालसापूर्वक धनकामी।

द्रविणोदस् (सं० त्रि०) १ धनदाता। (पु०) २ अग्नि। वराहपुराणमें लिखा है, कि जो बल और धनप्रदान करते हैं, उन्हींका नाम द्रविणोदा है।

अध्वर और यज्ञसमूहमें धनार्थी ऋत्विक् हाथमें पत्थर ले कर द्रविणोदा देवकी स्तुति इस प्रकार करते हैं—हे द्रविणोदा! संसारमें जितने धन हैं, वे हमें दें। हम लोग उस धनको यज्ञके लिये ग्रहण करेंगे।

द्रविणोविद् (सं० त्रि०) जो धन और बल देते हैं।

द्रविणोदस् देखो।

द्रविलु (सं० त्रि०) द्रु-इलच्। गतिशील, चलनेवाला।

द्रवित्नु (सं० त्रि०) द्रु-गतौ इत्नुच्। गतिशील, चलनेवाला।

द्रवीकरण (सं० क्ली०) अद्रवस्य द्रवकरणं इति च्वि प्रत्ययेन साध्यं। गलानेकी क्रिया।

द्रवीकृत (सं० त्रि०) अद्रवस्य द्रवकृतं। जो गलाया गया हो।

द्रवीभाव (सं० पु०) अद्रवस्य द्रवभावः। गलनेका भाव।

द्रवीभूत (सं० त्रि०) १ जो द्रव हो गया हो, जो पानीकी तरह पतला हो गया हो। २ पिघला हुआ, गला हुआ। ३ दयार्द्र, दयालु, पसीजा हुआ।

द्रव्य (सं० क्ली०) द्रोरिव द्रु-यत् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः (द्रव्यञ्च भव्ये। पा ५।३।१०४) १ वस्तु, चीज। २ पित्तल, पीतल। ३ वित्त, धन। ४ पृथिव्यादि नव पदार्थ। ५ विलेपन। ६ भेषज, औषध, दवा। ७ द्रुमविकार। ८ द्रुमसम्बन्धी। ९ जतु, लाह। १० विनय। ११ मद्य, शराब।

द्रव्यके लक्षण भाषापरिच्छेदमें इस प्रकार लिखे हैं—क्षिति, अप्, तेजः, मरुत्, व्योम, काल, दिक्, देही और मन इन नवोंका नाम द्रव्य है। केवल नाम बत लानेसे इसका कुछ भी पता नहीं चलता। न्यायदर्शनमें इस विषयकी विशेषरूपसे आलोचना की गई है।

विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

क्षिति द्रव्य ही गिनतीमें पहला है। इसके अनेक लक्षण हैं, जैसे-गन्धवत्त्व, नानाजातीयरूपवत्त्व, षड् विध रसवत्त्व और पाकजस्पर्शवत्त्व। पृथ्वीके सिवा और किसी पदार्थमें गन्ध नहीं है, इसलिये गन्धवती कहनेसे पृथ्वीका बोध होता है। सुगन्ध और दुर्गन्ध आदि जितने प्रकारको गन्ध है, वे सभी पृथ्वीमें ही है, दूसरे पदार्थमें नहीं।

रूपवत्त्व नानाजातीय रूप, क्षितिके सिवा और किसीमें नहीं है। इसीसे नाना जातीय रूपवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। जल और तेजमें जो रूप है, वह सफेद है।

रसवत्त्व—छः प्रकारके रस केवल पार्थिव पदार्थमें ही विद्यमान् हैं, इसीसे षड्विध रसवत्त्व क्षितिके लक्षण है। जलका स्वाभाविक रस मीठा, कसैला और खारा है। रस पार्थिवांशके योगसे उत्पन्न होता है।

पाकज स्पर्शवत्त्व—पाकजस्पर्श क्षितिके सिवा और किसीमें नहीं है, इसीसे पाकजस्पर्शवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है।

क्षितिके चौदह प्रकारके गुण हैं-रूप, रस गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग अर्थात् संस्कारविशेष, गुरुत्व और नैमित्तिक द्रवत्व। इनमेंसे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार विशेष गुण हैं।

क्षिति दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। पार्थिव परमाणु नित्य है। अनित्य पृथ्वी तीन प्रकारसे विभक्त की जा सकती है—देह, इन्द्रिय और विषय। पार्थिव देह चार प्रकारकी है—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। घ्राणेन्द्रिय ही पार्थिवेन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय द्वारा गन्धका अनुभव होता है वही घ्राणेन्द्रिय है। जो न तो देह है और न इन्द्रिय ही है, अथच पृथ्वी वही विषय है। स्थूलतः इसे भोग्य पृथिवी भी कह सकते।

अप् द्रव्य गणनामें दूसरा है। जलके भी अनेक लक्षण देखे जाते हैं, जैसे-शुक्लरूपत्व, मधुररसत्व, शीतलस्पर्शवत्त्व। स्नेहवत्त्व और सांसिद्धिक द्रवत्व।

जलमें शुक्लरूपके सिवा और किसी प्रकारका रूप नहीं है। पृथिवीमें अनेक प्रकारके रूप हैं। जलमें और कोई रस नहीं है, केवल मधुर रस है। मधुर रसमालविशिष्ट कहनेसे जलका ही बोध होता है, इसीसे मधुररसमावत्त्व जलका लक्षण है।

स्नेहवत्त्व—स्नेह मसृणता है, मसृणता जलका

गुण है, स्नेह किसीमें भी नहीं है। घृत तैलादिमें जो स्नेह है, वह भी तैलके अन्तर्गत है और जलीयांशका गुण है। इसीसे स्नेहविशिष्ट कहनेसे जलका बोध होता है, अतएव स्नेहवत्त्व जलका लक्षण है।

सांसिद्धिक द्रवत्व अर्थात् स्वाभाविक तरलता। स्वाभाविक तरलता जलके सिवा और किसीमें भी नहीं है। इसीसे सांसिद्धिक द्रवत्ववत्त्व जलका लक्षण है। जलमें कुल १४ गुण हैं, जैसे रूप, रस, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिक द्रवत्व और स्नेह। इनमेंसे रूप, रस, स्पर्श, सांसिद्धिक द्रवत्व और स्नेह ये पांच विशेष गुण हैं। जल दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य। जलीय परमाणु नित्य है, अपर समुदाय जल ही अनित्य है। इसी जलीय परमाणुसे अनेक बड़ी बड़ी जलनिधियोंकी सृष्टि हुई है। हिमालयकी धवलभूषण तुषारराजि भी इसी परमाणुसे उत्पन्न हुई है। स्थूल जलके सभी गुण जलीय परमाणुमें हैं, केवल ये ही नहीं, इसमें क्रिया भी है।

अनित्य पृथिवीके जैसा है, अनित्य जल भी तीन प्रकारका है-देह, इन्द्रिय और विषय। जलीय देह अयोनिज है, जलीय देह वरुणलोकवासियोंकी है। रसनेन्द्रिय ही जलीय इन्द्रिय है, जिस इन्द्रियसे रसास्वादन किया जाता है, वही रसनेन्द्रिय है। जो देह भी नहीं है, इन्द्रिय भी नहीं है, केवल जल है, वही विषयात्मक जल है। अतः इसे भोग जल भी कह सकते। हिमकणासे ले कर महासमुद्र तक सभी विषय है।

तेज—द्रव्यगणनामें तीसरा है। इसका लक्षण उष्ण-स्पर्शवत्त्व भास्वरशुक्लरूपवत्त्व और नैमित्तिकद्रवत्ववत्त्व है। जिसमें उष्णस्पर्श है, भास्वरशुक्लस्पर्श है और नैमित्तिक द्रवत्व है, उसीका नाम तेज है। तेजमें और कोई स्पर्श नहीं है, केवल उष्णस्पर्श है, वह्नि और सूर्यकिरण इसका उदाहरण है। उष्णस्पर्श और किसीमें नहीं है, केवल तेजमें है, उष्णस्पर्शविशिष्ट कहनेसे केवल तेजका ही बोध होता है। इसलिये उष्णस्पर्शवत्त्व तेजका लक्षण है। तेजमें और कोई रूप नहीं है, केवल भास्वरशुक्लरूप है, हीरकादि इसके उदाहरण हैं। भास्वरशुक्लरूप भी तेजके सिवा और किसीमें भी नहीं है। सुतरां भास्वरशुक्लरूप कहनेसे तेज ही समझा जाता है। इसीसे भास्वरशुक्लरूपवत्त्व तेजका लक्षण है।

तेजमें स्वाभाविक द्रवत्व नहीं है, किन्तु नैमित्तिक द्रवत्व है, सुवर्णादि इसके उदाहरण हैं। अतः नैमित्तिकद्रवत्वविशिष्ट कहनेसे तेजका बोध होता है। नैमित्तिकद्रवत्वका अर्थ वस्त्वन्तरकी साहाय्यसम्भूत तरलता है। अग्निकी गरमीसे सुवर्णादि तैजः पदार्थ गल जाता है, किन्तु वह जलकी तरह स्वाभाविक तरल नहीं है। इसीलिये नैमित्तिक द्रवत्ववत्त्व तेजका लक्षण है।

तेजमें कुल मिला कर ११ गुण हैं, जैसे—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, रूप, द्रवत्व और वेगाख्य संस्कार। इनमेंसे स्पर्श और रूप ये दोनों विशेष गुण हैं। तेज दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य। तैजस परमाणु नित्य तेज है और दूसरा दूसरा तेज ही अनित्य है। पृथिवीसे बड़ा सूर्यमण्डल, सैकड़ों नक्षत्रमण्डल और सुवर्ण हीरकादि तैजस परमाणुसे उत्पन्न हुए हैं। स्थूल तेजके सभी गुण और सभी क्रियायें परमाणुमें वर्त्तमान हैं। अनित्य पृथ्वीके जैसा है, अनित्य तेज भी तीन प्रकारका है—देह, इन्द्रिय और विषय। तैजसदेह अयोनिज है जो स्वर्गवासियोंकी मानी जाती है। चक्षुरिन्द्रिय ही तैजस इन्द्रिय है। जो देह नहीं है, इन्द्रिय भी नहीं है, केवल तेज है, वही विषयात्मक तेज है। अग्नि, सुवर्ण, सूर्य ये सब विषय हैं।

वायु—द्रव्यगणनामें चौथी है। वायुका लक्षण एक वा दो मुक्तावलीकारका अभिप्रेत है। वायुका प्रथम लक्षण अपाकजानुष्णा-शीतस्पर्शवत्त्व है, दूसरा लक्षण तिर्यक्गमनवत्त्व है। वायुमें रूप नहीं है, रस नहीं, है, गन्ध नहीं है, स्पर्श अवश्य है, किन्तु वह स्पर्श एक प्रकारका नहीं अनेक प्रकारका है, यथा—कठिनस्पर्श, कोमलस्पर्श, वाष्पस्पर्श, उष्णस्पर्श और शीतस्पर्श। स्थूलतः वायुके ये पांच प्रकार स्पर्शभेद किये जा सकते हैं। कठिन, कोमल और वाष्पस्पर्श परस्पर विरुद्ध है तथा उष्णस्पर्श भी परस्पर विरुद्ध है। किन्तु इनमेंसे कौन स्पर्श वायुमें वर्त्तमान है? अपाकज अनुष्ण अशीतस्पर्श वायुमें विद्यमान है। इस वायवस्पर्शको

स्थूलसंज्ञाको वाष्पस्पर्श कहा गया है। स्पर्शके विषयमें विश्वनाथने कहा है—

"अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदात् स त्रिविधो मतः।" (भाषाप०)

स्पर्श तीन प्रकारका है, अनुष्णाशीत, शीतल और उष्ण। कठिन और कोमलस्पर्श पृथ्वीमें है, कठिन और कोमलस्पर्शमें भी अनुष्णाशीतस्पर्शके अन्तर्गत है। पृथ्वीमें जो अनुष्णाशीतस्पर्श है, उसीका नामान्तर कठिनस्पर्श और कोमलस्पर्श है। एक और प्रकारका अनुष्णाशीतस्पर्श वायुमें है। हमने इस अनुष्णाशीत स्पर्शका पृथक् भावसे उल्लेख न कर उसकी जगह कठिनस्पर्श, कोमलस्पर्श और वाष्पस्पर्श इन तीन प्रकारके स्पर्शोंका उल्लेख किया है। वायुका अनुष्णाशीतस्पर्श ही वाष्पस्पर्श है। यह अपाकज है—अनुष्णाशीतस्पर्श वायुमें है, 'अपाकजानुष्णाशीत स्पर्शवान्' कहनेसे ही वायुका बोध होता है। इसीसे अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व वायुका लक्षण है। तिर्यक् गमन वायुमें है। तिर्यक् गमनका अर्थ वक्रगति है, वायुमें न तो सरल गति, न ऊर्ध्वगति और न अधोगति ही है। वायुकी गति केवल वक्र है। इसीसे तिर्यक्गमनवान् कहनेसे वायुका ज्ञान होता है।

प्राचीन मतानुसार कोई कोई पण्डित कहते हैं, कि वायुका दूसरा लक्षण 'स्पर्शाद्यनुमेयत्व' है; स्पर्श आदि द्वारा जिसका अनुमान होता है, वही स्पर्शादि अनुमेय है। अतएव स्पर्शाद्यनुमेयत्व वायुका लक्षण है। वायुमें ९ गुण हैं जैसे—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेगाख्यसंस्कार। इनमेंसे केवल स्पर्श ही विशेष गुण है। वायु दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। वायवीय परमाणु नित्यवायु है, इसके सिवा और सभी वायु अनित्य है। द्यावापृथ्वी परिव्यापक वायु इसी वायवीय परमाणुसे उत्पन्न हुई है। स्थूलवायुके सभी गुण वायवीय परमाणुमें वर्त्तमान है। अनित्य पृथिव्यादिके जैसा अनित्यवायु तीन प्रकारको है, देह, इन्द्रिय और विषय। वायवीय-देह अयोनिज है, यह देह प्रेतपिशाचादिकी है। त्वगिन्द्रिय ही वायवीय इन्द्रिय है। जो देह भी नहीं है, इन्द्रिय भी नहीं है, अथच वायु है, वही विषयात्मक वायु है। इसके ४९ भेद माने गये हैं।

आकाश द्रव्यगणनामें पांचवा है। आकाश ले कर नव्य और प्राचीन दोनों प्रकारके दार्शनिक सम्प्रदायोंमें विवाद चला आ रहा है, यहां पर उसका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। नैयायिकोंके मतानुसार आकाशके अवयव नहीं है, अथच सर्वव्यापक है, आकार नहीं है, अथच गुणवान् है। इसी आकाशके साथ ब्रह्मका सादृश्य देखा जाता है। आकाश अनन्त, अपरिसीम, अनादि और अव्यय है। जितने प्रकारके मूर्त्तद्रव्य हैं सभीमें आकाश संयुक्त है। मूर्त्तका अर्थ किसीका परिमाण स्थिर करना है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, इन सब भूतोंकी अपेक्षा जो विराट् तथा विश्वव्यापक है, जो पृथ्वी, तेज तथा जलके भीतर बाहर है और जो वायुके सर्वत्र ओतप्रोतभावसे अवस्थित है वह नित्य, निर्विकार, निराकार, निर्लेप, परम महत् पदार्थके लक्षण बतलाये गये हैं, वही महत् पदार्थ आकाश है।

आकाशके लक्षण—'शब्दाश्रयत्वं आकाशत्वं'। जो शब्दका आश्रय है वह आकाश है। शब्दका आश्रय और कोई नहीं है, केवल आकाश है। शब्द और किसी द्रव्यमें नहीं रहता, केवल आकाशमें ही रहता है। आकाशके कई एक गुण हैं—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग और शब्द। आकाश नित्य द्रव्य है, आकाशका विशेष गुण मात्र शब्द है। आकाश नित्य द्रव्य है, आकाशके अवयव नहीं है और देहादिके भी विभाग नहीं है। आकाश स्वरूप इन्द्रिय है। इस इन्द्रियका नाम कर्ण है।

काल द्रव्य गणनामें छठा है। नैयायिकके मतसे कालके विषयकी पर्यालोचना नहीं की जा सकती। कालको कोई अपनी आंखोंसे देख नहीं सकता, न कोई स्पर्श करके उसका अस्तित्व समझ सकता, और न कोई प्रमाण ले कर उसकी सत्ता ही पा सकता है। फिर कालको कौन नहीं जानता? कालका आस्वाद ले कर कोई कभी उसकी मधुर रसनासे परितृप्त नहीं हो सकता, मधुर शब्दके जैसा कर्ण भर कर कोई कभी कालामृत पान नहीं कर सकता, तो भी कालकी कथा, कालकी सत्ता सबोंके प्राणमें ग्रथित है। जनकत्व ही कालका लक्षण, काल जन्य मात्रका ही जनक

है, अर्थात् जिन सब पदार्थोंकी उत्पत्ति है, वही जन्य है, काल तत्समुदायका ही जनक या कारण है। इसीसे जनकत्व कालका लक्षण है। काल जो जन्य मात्रका ही जनक है, वह एक प्रकारसे चक्षुके ऊपर ही देखा जाता है। कालमें उत्पत्ति है, कालमें लय है, कितने वस्तुओं-का विकाश होता है, फिर वे कालमें विलीन हो जाते हैं अतएव सभीका मूल काल है। आज घड़ा बनता है, कल वस्त्र तैयार होगा, इन सब बातोंसे जाना जाता है, कि घड़े और वस्त्रकी उत्पत्तिका अधिकरण कालको करता है। आज, कल आदि ये सब शब्द कालके परिचायक हैं। जिस जिस वस्तुकी उत्पत्तिका अधिकरण जिस वस्तुमें होता है, उस वस्तुका जनकत्व वा कारणत्व उसी वस्तुमें रहता है। अतएव घट पटादिकी उत्पत्तिके जैसा काल भी घटपटादिका कारण हुआ है। मूल बात यह है, कि जो उत्पत्तिका अधिकरण है वही उत्पत्तिका कारण है, जो वस्तु जिस वस्तुकी उत्पत्तिका कारण है, वह वस्तु उसका भी कारण है। अतएव काल जन्य पदार्थका कारण है। खण्डकालके खण्डकार्यका कारणत्व ले कर ही सामान्यत. जन्य जनकत्व कालका लक्षण हुआ है।

काल नित्य है। नित्य कालका नामान्तर महाकाल है। यह महाकाल एक है। काल चाहे एक हो, चाहे अनेक हों इस काल स्वीकारकी आवश्यकता ही क्या है? न्यायका मत है, कि पदार्थसिद्धिकी एक युक्ति लाघव है।

दिक् द्रव्यगणनामें सातवां, देही आठवां और मन नवां है। दिक्, जीवात्मा और मन देखो।

ये ही नौ प्रकारके पदार्थ नैयायिकोंके द्रव्य पदार्थ हैं। (भाषापरि० और सिद्धान्तमुक्तावली)

वैद्यकके मतमें द्रव्यके लक्षण पाँच प्रकारके बतलाए गये हैं।

रसगुण, वीर्य, विपाक और शक्ति इनके समाहारका नाम द्रव्य है। इस द्रव्यका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—कोई कोई आचार्य ऐसे हैं जो द्रव्यको ही प्रधान मानते हैं। क्योंकि पहला द्रव्य व्यवस्थित और रस आदि अव्यवस्थित है, जैसे, अपक्वफलमें जिस तरह रस-गुण आदिकी उपलब्धि होती है, पक्वफलमें उस तरह नहीं होती। दूसरा, द्रव्य नित्य है और रसगुण आदि अनित्य, कारण कल्कादिको जगह द्रव्य, रस और गन्ध-विशिष्ट अथवा रस और गन्धहीन हुआ करता है। तीसरा, द्रव्य जातीय गुणको नित्य अवलम्बन करता है। चौथा, पञ्चेन्द्रिय द्वारा द्रव्य ही गृहीत होता है, रसादि नहीं। पाचवां, द्रव्य आश्रय है और रस आदि उसके आश्रित है। छठा, औषधका पथ्य वर्णन करनेमें द्रव्यका नाम उल्लेख कर आरम्भ करना होता है। सातवां, शास्त्र प्रमाण हेतु है। आठवां, रस आदिके गुण द्रव्यकी अवस्था अपेक्षा सापेक्ष है, जैसे तरुण द्रव्यका तरुणरस, पक्व द्रव्यका पक्व रस आदि। नवां, द्रव्यके एकांशमें भी व्याधि शान्ति हुआ करती है। इन्हीं सब कारणोंसे द्रव्य ही प्रधान है ऐसा स्वीकृत हुआ है। क्रिया और क्रियाके गुणको नाईं द्रव्य और द्रव्यका लक्षण समवायिकारण है अर्थात् किस द्रव्य द्वारा क्या फल होगा, वह द्रव्य और उसका गुण दोनों ही उनके फलके उत्पादनके कारण है। सुतरां द्रव्य और गुण परस्पर समवायिकारण है. अर्थात् दोनों ही उस फलके दायक हैं।

कोई कोई इसे स्वीकार न कर रसको ही प्रधान मानते है। फिर किसी पण्डितके मतमें वीर्य ही प्रधान है, यह स्वीकृत हुआ है। फिर बहुतसे पण्डित ऐसे है जो इसे भी स्वीकार नहीं करते, वे परिपाकको ही प्रधान मानते है। इसका विवरण तत्तद् शब्दमें देखो। पण्डित-गण उक्त चार प्रकारको भी प्रधानता स्वीकार नहीं करते। कोई द्रव्य सेवन करनेसे दोषका कुछ अंश द्रव्य द्वारा, कुछ उसके रस द्वारा, कुछ उसके वीर्य द्वारा और कुछ उसके विपाक द्वारा शान्ति वा वृद्धि हुआ करती है।

वीर्यके विना पाक नहीं होता, इसके विना वीर्य नहीं रहता और द्रव्यके विना रस भी नहीं रहता है। सुतरां द्रव्य ही प्रधान है। देह और देहकी स्थिति जिस तरह परस्पर सापेक्ष है, उसी तरह द्रव्यके विना रस नहीं होता और रसके विना भी द्रव्य नहीं होता है। वीर्य कहनेसे शीत उष्णादि आठ प्रकारके गुणका ही बोध होता है। वह आठ प्रकारके वीर्य द्रव्यके आश्रय किये हुए हैं। वे सब गुण निर्गुण रसमें कभी भी

आश्रय ले कर नहीं रह सकती। द्रव्यसे ही द्रव्य परिपाक होता है लेकिन रस उस प्रकार नहीं होता। इन्हीं सब कारणोंसे द्रव्य ही प्रधान है। रस, वीर्य और पाक उस का आश्रय किये हुए है।

द्रव्यका विशेष विज्ञान—पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन सबके मिलनेसे द्रव्य उत्पन्न होता है। इनमेंसे जिस भूतकी अधिकता रहती है, वह उसी नामसे पुकारा जाता है। जैसे—पृथिवी भागकी अधिकतासे पार्थिव, अप् भागकी अधिकतासे आप्य और उसी तरह तैजस, वायव्य और आकाशीय कह कर द्रव्यके नाम दिये जाते हैं। इनमेंसे जो सब द्रव्य स्थूलसारविशिष्ट सान्द्र, मन्द, स्थिर, खर, गुरु, कठिन, गन्धबहुल, कुछ कषाय वा मधुरप्राय हैं, उन्हें पार्थिवद्रव्य कहते है। पार्थिवद्रव्य स्थिरतावलसङ्घात और बन्धनकर, विशेषतः अधोगमनशील है।

जो द्रव्य शीतल, आर्द्र, स्निग्ध, मन्द, गुरु, सारक, सान्द्र, मृदु, पिच्छिल, रसबहुल, ईषत्कषाय, अम्ल वा लवण रसविशिष्ट अथवा मधुरप्राय है, उन्हें जलीयद्रव्य कहते हैं। जलीयद्रव्य स्नेह, हर्ष, क्लेद और संश्लेषकर तथा चरणशील है। जो द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रूक्ष, खर, लघु, विशदरूप, गुणबहुल, ईषत्‌अम्ल और लवणरसविशिष्ट अथवा कटुरसप्राय विशेषतः ऊर्ध्व गमनशील है, उसे तैजस कहते हैं। तैजसद्रव्य दहन, पचन, दारण, तापन, प्रकाशक, प्रभा और वर्णकर है। जो द्रव्य सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, मृदु, ग्राम्यधर्मका उत्तेजक, अव्यक्तरस अथवा शब्दबहुल है उसे आकाशीय द्रव्य कहते हैं। आकाशीयद्रव्य मृदु, सच्छिद्र और लघु है। इन सब लक्षणों द्वारा जगत्‌के सभी द्रव्योंको औषध कह सकते हैं। युक्ति और प्रयोजनके अनुसार सेवित होनेसे तथा वीर्य और गुणविशिष्ट होनेसे सभी द्रव्य कार्यकर होते हैं। इन सब औषधोंका सेवन करनेसे जिस समय काम होता है उस समयको काल, काम करनेवालेको कर्म, जिसके द्वारा किया जाता है, उसे वीर्य, जहां वह काम होता है, उसे अधिकरण, जिस तरह कहा जाता है, उसे उपाय और उस कामका जो परिणाम निकलता है, उसे फल कहते हैं। इन सब औषधोंके मध्य विरेचन द्रव्यमें पार्थिव और जलीय गुण ही अधिक है, पृथिवी और जल गुरु है, यह गुरुताके कारण अधोगामी है। इस अधोगुण की अधिकतासे ही विरेचन हुआ करता है। वमन द्रव्यमें अग्नि और वायु गुण ही अधिक है। अग्नि और वायु लघु है, इसीसे यह लघुताप्रयुक्त ऊर्ध्वगामी है। अतएव ऊर्ध्वगुणके बाहुल्यसे ही वमन हुआ करता है। वमन और विरेचन इन दो प्रकारके गुणविशिष्ट द्रव्योंमें ऊर्ध्वगामिता और अधोगामिता ये दो प्रकारके गुण ही अधिक रहते हैं, उसी तरह संशमन द्रव्यमें आकाशगुण ज्यादा है और वायुका शोषण गुण है, इस कारण संग्राहक द्रव्य में वायुका गुण अधिक है। दीप्तिकर औषधमें अग्निकी और पुष्टिकर औषधमें पार्थिव तथा जलीयगुणकी अधिकता देखी जाती है।

भूमि, अग्नि और जलीय द्रव्यों द्वारा वायुको, भूमि, जल और वायुजात द्रव्योंसे पित्तको और आकाश, अग्नि तथा वायुजात द्रव्योंसे श्लेष्माको शान्ति होती है। आकाश और वायुद्रव्यसे वायुकी, आग्नेय द्रव्यसे पित्तकी और पार्थिव तथा जलजात द्रव्यसे श्लेष्माकी वृद्धि हुआ करती है। प्रत्येक द्रव्यके ही इसी प्रकार गुणादिका विचार करके दोषमें प्रयोग करना होता है। शीतल, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल और विशद-द्रव्योंके इन सब गुणोंको वीर्य कहते हैं।

द्रव्यमें अग्निगुणकी अधिकता रहनेसे तीक्ष्णोष्णवीर्य, जलीयगुण रहनेसे शीत और पिच्छिल वीर्य, पार्थिव और जलीयगुण रहनेसे स्निग्धवीर्य, जल और आकाशगुण रहनेसे मृदुवीर्य, वायुगुण रहनेसे सूक्ष्मवीर्य और क्षिति तथा वायुगुण रहनेसे विषद वीर्य कहलाता है। उष्ण, स्निग्धवीर्य, वातघ्न, शीत, मृदु वा पिच्छिलवीर्य, पित्तघ्न और तीक्ष्ण रूक्ष वा विशदवीर्य श्लेष्मघ्न है।

गुरुपाकसे वातपित्तकी शान्ति होती है एवं लघुपाकसे श्लेष्माकी वृद्धि होती है। मृदु, शीतल और उष्णगुण स्पर्श द्वारा जाना जाता है। पिच्छिल, और विशद दर्शन स्पर्श द्वारा, स्निग्ध और रूक्षगुण दर्शन द्वारा तथा सुख और दुःख उत्पादन द्वारा शीत एवं उष्णगुणका ज्ञान होता है। गुरुपाकसे विष्ठामूत्र रुद्ध हो जाता है तथा ऊर्ध्वगत कफजन्य पीड़ा होती है। लघुपाकसे विष्ठा-

मूत्र बन्द हो जाता है और उसकी वायु कुपित हो जाती है। जिस द्रव्यका जैसा रस है, उसका गुण भी उसीके अनुसार होता है। जैसे मधुररस होनेसे गुरुपाक और पार्थिवगुण विशिष्ट तथा मधुर और स्निग्ध होनेसे जलीय गुणविशिष्ट होता है। द्रव्यके जिस प्रकारके गुण होंगे, शरीरमें वे उसी प्रकार कार्य करेंगे। द्रव्यके गुणसे ही देहकी स्थिति, क्षय और वृद्धि हुआ करती है।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ४०।४१ अ०)

द्रव्यक (सं० त्रि०) द्रव्यं हरति वहति आवहति वा। द्रव्य कन्। १ द्रव्यहारक। २ द्रव्यवाहक।

द्रव्यकल्प (सं० पु०) वैद्यकोक्त कल्कादिपञ्चक।

द्रव्यगण (सं० पु०) द्रव्याणां गणः ६ तत्। सुश्रुतोक्त ओषध विशेषके ३७ प्रकार गणभेद।

द्रव्यगुण (सं० पु०) द्रव्यस्य गुणः प्रतिपाद्यतया यत्र। १ द्रव्यका गुणज्ञापक ग्रन्थभेद, वह पुस्तक जिससे द्रव्योंके गुण आदि मालुम हों।

द्रव्यत्व (सं० पु०) द्रव्यका भाव, द्रव्यपन।

द्रव्यपति (सं० पु०) द्रव्यभेदानां पतिः। वृहत्संहितोक्त द्रव्योंके पति। वृहत्संहितामें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

जो जो राशि जिस जिस द्रव्यकी अधिपति हो कर शुभ और अशुभ फल देती है उनका विवरण कहा जाता है।

मेषराशि—वस्त्र, मेषकम्बल, छागकम्बल, मसूर, गेहूं, शालवृक्ष, जो, स्थलसम्भूत ओषधि और स्वर्ण इन सब द्रव्योंकी अधिपति है।

वृषराशि—वस्त्र, गोधूम, कुसुम, शालिधान्य, यव, महिष और गौकी अधिपति है।

इसी प्रकार धान, शरज्जात द्रव्य, लता, शालुक और कपास मिथुनके अधीन है। कोद्रव (कोदों), कदली, दूब, फल, मूल, पत्र और त्वक् ये सब कर्कटराशिके अधीन है। तुष, धान, रस, गुड़ और सिंहादि त्वक् सिंह राशिके अधीन है। तीसी, कलाय, कुलथी, गेंहू और मूंग इन सबकी अधिपति तुलाराशि है। ईख, श्रिकास्थ द्रव्य, लौह और अजाविक वृश्चिकके तथा अश्व, लवण, अम्बर, अस्त्र, तिल, धान और मूल धनुराशिके अधीन है। तरु गुल्मादि तथा श्रिकास्थ द्रव्य, ईख, स्वर्ण और कृष्णलौह इन सबका अधिपति मकर है। सलिलजात फल, पुष्प, रत्न, चित्र और रूप ये सब कुम्भके अधीन हैं। कपालसम्भव रत्न, अम्बूद्भूत वज्र, नाना रूपयुक्त स्नेह द्रव्य और मत्स्यसमूह मीनराशिके अधीन है।

जिस राशिके दूसरे, चौथे, पाचवें, सातवें, नवें, दशवें, ग्यारहवें वा स्थानमें वृहस्पति होंगे, अथवा दूसरे, पांचवें, आठवें, दशवें वा ग्यारहवें स्थानमें बुध रहेंगे, उस राशिमें जो सब द्रव्य ऊपर कहे गये, उनकी वृद्धि होती है। इसी प्रकार शुक्र जिस राशिके छठे वा सातवें घरमें रहेंगे उस राशिके द्रव्योंको हानि तथा शुक्र अभिन्न राशिके गत होने पर उनकी वृद्धि होती है।

फिर क्रूर ग्रह यदि उपचय गत हो अर्थात् तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश गत हो, तो शुभप्रद होता है; तथा तद्भिन्न यदि अन्यराशिस्थित हो, तो हानिजनक होता है। बलवान् क्रूर ग्रहगण जिस राशिके पोड़ा-स्थानमें अर्थात् उपचय भिन्न स्थानमें संस्थित होते हैं, उस राशिके अधिकृत द्रव्य मूल्यवान् तथा दुर्लभ हो जाते हैं। बलवान् शुभग्रहगण जिस राशिके इष्ट स्थानमें अर्थात् उपचय स्थानमें रहते हैं, उस राशिके अधीनस्थ द्रव्योंकी वृद्धि होती है तथा वे बहुतायतसे मिलते हैं। गोचर-पोड़ामें भी यदि सभी राशि बलवान् शुभग्रहोंसे देखी जांय, तो वे कष्टकर नहीं होतीं, किन्तु क्रूर ग्रहोंसे देखी जाने पर, उसका विपरीत फल होता है।

(वृहत्संहिता ४१ अ०)

द्रव्यमय (सं० त्रि०) द्रव्य-प्राचुर्य मयट्। द्रव्यसाधनक यज्ञादि।

द्रव्यवान् (सं० त्रि०) धनवान्, धनी।

द्रव्यविशेष (सं० पु०) सुश्रुतोक्त धर्मविशेष द्वारा पार्थिवत्वादि विशेष। द्रव्य देखो।

द्रव्यशुद्धि (सं० स्त्री०) द्रव्याणां शुद्धिः। प्रक्षालनादि द्वारा द्रव्यादिका मलापनयन, जल, मट्टी आदि द्वारा वस्तुओंका साफ या पवित्र होना।

"प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः॥"

(मनु ५।५७)

रजत और सुवर्णादि धातु, मरकतमणि और पाषाणमयद्रव्य भस्म और जलसे अथवा मट्टीसे शुद्ध होते हैं। उच्छिष्टादिका प्रलेप रहित सुवर्ण पात्र जल द्वारा शुद्ध होता है। शङ्ख मुक्तादि जलज पाषाणमय पात्र और रौप्य पात्र यदि रेखादियुक्त न हो, तो जलसे धो डालनेसे ही वे शुद्ध हो जाते हैं। जल और अग्निके संयोगसे सोने और चांदीकी उत्पत्ति हुई है। इसी कारण स्वीय उत्पत्तिस्थान जल और अग्नि द्वारा सोने और चांदीकी शुद्धि प्रशस्त होती है। लोहा जल द्वारा, कांसा भस्म द्वारा, ताँबा और पीतल अम्ल द्वारा शुद्ध होता है। घी, तेल द्रव पदार्थ यदि काक कीटादिसे दूषित हो जाय, तो उसे प्रादेश प्रमाणके कुशपत्रसे हल कर विशुद्ध करते है। शय्यादिके जैसा सूत्रसंयुक्त संहतद्रव्यमें जल डाल कर शुद्ध करते हैं और काष्ठमय द्रव्य यदि अत्यन्त उपहत हो जाय, तो उसे छील लेनेसे ही वह शुद्ध हो जाता है। यज्ञीय चमस अर्थात् जलपात्रको और सोमलताके पात्रको पहले हाथसे रगड़ कर पीछे उन्हें जलसे धो लेनेसे ही वे शुद्ध हो जाते हैं। चरुस्थाली, स्रुक्, स्रुव, स्फ्य, खड्गाकार काष्ठ, शूर्प, शकट, मूषल और उदूखल आदि यज्ञीय द्रव्य यदि घृत तैलादिसे चिकने हो गये हों, तो उष्णजल द्वारा प्रक्षालन करनेसे ही वे शुद्ध हो जाते हैं। किन्तु अल्प धान्य वा वस्त्रको जलसे प्रक्षालन करके उसे शुद्ध करते हैं। पादुकादि स्पृष्ट पशुचर्म और वेत्रवंशादि तृणनिर्मित आसन आदिकी शुद्धि वस्त्रकी नाईं और शाक, मूल तथा फल आदिकी शुद्धि धानकी नाईं होती है। कौषेय अर्थात् रेशमी वस्त्र, आविक अर्थात् मेषलोमजात कम्बलादि क्षार और मट्टी द्वारा शुद्ध होते हैं। कुतप अर्थात् नेपालदेशका कम्बल निम्बफलके चूर्ण द्वारा, अंशुपट्ट अर्थात् वल्कलविशेषका वस्त्र विल्वफलके निर्यास द्वारा और क्षौम अर्थात् तीसी फूलके छिलकेका बना हुआ कपड़ा श्वेतसर्षपचूर्ण द्वारा विशुद्ध होता है। तृण, पाकका काष्ठ, पलाल ये सब केवल जलसे ही पवित्र होते हैं। मार्जन और गोमयादिके लेपन द्वारा गृहशुद्धि और मृण्मय पात्रकी शुद्धि पाक द्वारा होती है। मृण्मयपात्र यदि मद्य, मूत्र, विष्ठा, श्लेष्मा, पूय और शोणितद्वारा उपलिप्त हो, तो वह पुनः पाक द्वारा शुद्ध नहीं हो सकता। सम्मार्जन, गोमयादि द्वाराविलेपन, गोमूत्रोदकादि द्वारा सेचन, उल्लेखन (छिलनेसे) और एक अहोरात्र गाभीका वास इन पांच उपायोंसे भूमि शुद्धि होती है। पक्षी कर्त्तृक उच्छिष्ट, गाभीकर्त्तृक आघ्रात, वस्त्राञ्चल वा पदद्वारा स्पृष्ट, अवक्षुत अर्थात् जिसके ऊपर थूक आदि पड़ गया हो और जो केशकीटादि द्वारा दूषित हो गया हो, इस प्रकारका खाद्यद्रव्य मट्टी डाल कर शुद्ध किया जाता है। विष्ठा मूत्रादि अपवित्र लिप्त द्रव्यमें जब तक गन्ध और लेप रहता है, तब तक उसे मट्टी और जल द्वारा मल कर शुद्ध कर सकते हैं। पहला अदृष्ट अर्थात् जिस द्रव्यका उपघात वा संस्पर्शदोष जाना नहीं जाता, दूसरा जो जल द्वारा प्रक्षालित किया गया है और तीसरा शिष्टजन जिन्हें पवित्र कहा करते हैं, ब्राह्मणोंके लिये ये तीनों पदार्थ शुद्ध माने गये हैं। जितने जलसे गौकी प्यास बुझ सके, उतना जल यदि विशुद्ध भूमिगत और स्वाभाविक गन्धवर्ण और रसयुक्त हो तथा वह अपवित्र द्रव्यसे लिप्त न हुआ हो, तो वह पवित्र गिना जा सकता है। कारुकरके हाथ जब कारुकार्यमें नियुक्त हों, तब वे हमेशा शुद्ध रहते हैं। जो द्रव्य बेचनेके लिये बाजार गया है, वह द्रव्य बहुतोंसे छुए जाने पर विशुद्ध रहता है। ब्रह्मचारियोंका भिक्षालभ्य पदार्थ हमेशा शुद्ध रहता है। स्त्रियोंके मुंहको सर्वदा शुद्ध समझना चाहिये।

काकादिकी चोंचके आघातसे जो फल डंठलसे नीचे गिर गया हो, वह शुद्ध है। दूध दुहते समय बछड़ेका मुंह और मृगमारणके समय कुत्तेका मुंह शुद्ध रहता है। जो पशु वा पक्षी कुत्तेसे हत हुआ हो, उसका मांस शुद्ध है, ऐसा मनुने भी कहा है। मांसजीवी अन्यान्य पशु पक्षी भी जो मांस लाते हैं, वह भी शुद्ध मांस है। नाभिके ऊपरी भागमें जो सब इन्द्रियछिद्र हैं, वे सभी पवित्र हैं। अतः उन्हें स्पर्श करनेमें कोई दोष नहीं है। किन्तु नाभिके नीचेके सभी इन्द्रियछिद्र अपवित्र माने गये हैं, अतः उन्हें स्पर्श करनेसे हाथ अपवित्र हो जाता है। देहसे जो सब मल झड़ते हैं वे सब भी अपवित्र हैं। मक्षिका, मुख निर्गत क्षुद्र जलकणा, छाया, गो, अश्व, सूर्यकिरण, धूलि, भूमि, वायु और

श्वग्नि इन्हें स्पर्श करनेमें भी कोई दोष नहीं है।
(मनु ५ अ०)

द्रव्यात्मक (सं० त्रि०) धनवान्, धनाढ्य।

द्रव्याधीश (सं० पु०) कुबेर।

द्रव्यान्तर (सं० क्लो०) अन्यत् द्रव्यं द्रव्यान्तरं। अपर द्रव्य, दूसरी वस्तु।

द्रष्टव्य (सं० त्रि०) दृश-तव्य। १ दर्शनीय, देखने योग्य। २ साक्षात्कर्त्तव्य। ३ जिसे दिखाना हो, जो दिखाया जानेवाला हो। ४ जिसे बतलाना या जताना हो।

द्रष्टृ (सं० त्रि०) दृश-तृच्। १ दर्शक, देखनेवाला। २ साक्षात्कारक, सामने लानेवाला। ३ प्रकाशक, जाहिर करनेवाला। (पु०) ४ सांख्यमतोक्त पुरुष। 'द्रष्टृ दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।" (पात० २।१७) द्रष्टा आत्मा और दृश्य अन्तःकरण इन दोनोंका संयोग रहनेसे द्रष्टा अर्थात् पुरुषके दुःखका कारण है। अभिप्राय यह है, कि सुख, दुःख और मोह ये सभी बुद्धि द्रव्यके विकार हैं। बुद्धि द्रव्य वा अन्तःकरण इन्द्रिय सम्बन्ध द्वारा विषयाकारमें और सुखदुःखादि आकारमें परिणत होनेके साथ ही द्रष्टृ शक्ति द्वारा प्रज्वलित हो जाती है। उस प्रकारके प्रज्वलन वा उस प्रकारकी प्रदीप्तताको शास्त्रकारोंने चित्शक्तिका प्रतिसंक्रम और चिच्छायापत्ति बतलाया है। लोक बोलचालमें उसे दर्शन वा मुलाकात, ज्ञान वा समझना कहा करते हैं। सुतरां परिणामस्वभाव बुद्धिसत्त्व वा अन्तःकरण पदार्थ दृश्य है और तत्-सन्निहित अपरिणामी चित्शक्ति उसकी द्रष्टा है। इस दृश्य और द्रष्टाका जो संयोग है अर्थात् इन दोनों-में जो एकीभाव है, वही संसारी जीवोंका उल्लिखित दुःखसमूहका मूल है। अर्थात् बुद्धिके ऊपर द्रष्टाको अभेद भ्रान्ति वा आत्मसमर्पण कल्पित हुआ है, इसी कारण पुरुष सुखदुःखादिके विकारमें विकृतप्राय होते हैं।

"द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।" (पात० २।२०)

पुरुषकी चित्शक्ति बुद्धिमें प्रतिविम्बित हो कर भोग होती है। इस प्रकार जिसे द्रष्टा कहते हैं, यथार्थमें वे द्रष्टा नहीं हैं। क्योंकि वे चिद्रूपी और अपरिणामी हैं। सुतरां परिणमन-स्वभाव अन्तःकरण ही ज्ञानादि धर्म-का आधार है।

निर्विकार स्वभाव चैतन्य मन आत्मा वा पुरुष जब उस प्रकारकी बुद्धिमें उपरत होते हैं, बुद्धिके साथ एकीभूत होते हैं अर्थात् जब वे सन्निधान वशतः बुद्धि-वृत्तिमें प्रतिविम्बित वा अभिव्यक्त होते हैं, तभी उन्हें उप-चारक्रमसे द्रष्टा कहते हैं। बुद्धि वा अन्तःकरणका परि-णाम वा विषयाकारता नहीं रहने पर उनका कुछ भी द्रष्टृत्व नहीं रहता। तात्पर्य यह कि बुद्धिवृत्तिमें प्रति-बिम्बित होनेसे उनका दर्शन हो हो सकता है और दूसरे प्रकारसे नहीं। पुरुष देखो।

द्रष्टृत्व (सं० क्लो०) द्रष्टुर्भावः त्वतलौ भावे इति त्व। द्रष्टाका भाव, देखनेवालेका भाव या क्रिया।

द्रह (सं० पु०) ह्रद पृषोदरादित्वात् साधुः। अगाध-जल ह्रद, वह ताल या झील जिसमें गहरा जल हो।

द्रह्यत् (सं० त्रि०) दृंह वृद्धौ शतृ वेदे निपातनात् साधुः। दृढ़ीकरण।

द्राक् (सं० अव्य०) द्रा-बाहुलकात् कु। द्रुत, शीघ्र, तेज।

द्राक्षा (सं० स्त्री०) द्राङ्क्ष्यते काङ्क्ष्यते इति द्राक्षि-घञ्। आगमशासनस्यानित्यत्वात् न लोप। फल-विशेष, दाख, अंगूर। इसका संस्कृत पर्याय—मृद्वीका, गोस्तनी, स्वाद्वी, मधुरसा, चारुफला, कृष्णा, प्रियाला, तापसप्रिया, गुच्छफला, रसाला और अमृतफला है। वैद्यकके मतसे इसका गुण—अति मधुर, अम्ल, शीत, पित्तपीड़ा, दाह, और मूत्रदोषनाशक है। राजनिर्घण्टुके मतानुसार यह रुचि, बलकर, सन्तर्पण और स्निग्ध है।

इसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है— द्राक्षा, स्वादुफला, मृद्वीका, हारहूरा और गोस्तनी ये सब द्राक्षाके पर्याय हैं। पकी दाख अर्थात् अंगूरका फल सारक, मधुर, विपाक, कषाय, मधुररस, स्वरप्रदायक, मलमूत्रनिःसारक, वायुजनक, शुक्रवर्द्धक, कफकारक, शरीरको पुष्टि और रुचिजनक तथा पिपासा, ज्वर, श्वास, वायु, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष और मदात्ययरोगनाशक है। कच्ची दाख पकीसे कुछ कम गुणयुक्त, अम्लरस और रक्तपित्तकारक होती है।

गोस्तनी द्राक्षा-अर्थात् मुनक्का शुक्रवर्द्धक, गुरु, कफ और पित्तनाशक है। छोटी दाख जिसके बीए छोटे होते अर्थात् जिसको किशमिश कहते हैं, मुनक्काके समान गुणयुक्त होता है।

पर्वत पर उत्पन्न द्राक्षा अर्थात् जङ्गली लघु, अम्लरस, कफ और पित्तकारक मानी गई है।

करमर्दिका अर्थात् करौंदो जङ्गलीके समान गुणा-दायक है।

भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारको दाख (Vitis Vinifera) उत्पन्न होती है। दाखके कितने भेद हैं उसका निर्णय करना कठिन है। हिमालयके पश्चिमीय भागोंमें यह आपसे आप होती है। भारतके युक्तप्रदेशमें इसको खेती होती है। दक्षिण यूरोपमें दाख सब जगह उपजती है; किन्तु इसको लता देशान्तरमें रोपनेसे यथारूप फल नहीं लगता है। शीतप्रधान देशसे लाई हुई दाख यदि ग्रीष्मप्रधान देशमें रोपी जाय, तो आशानुरूप फल नहीं लगते हैं।

इसकी खेती भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न तरहसे होती है। एशिया-माइनरकी दाखको लता जमीन पर लताकी तरह फैलती है। स्पेन और सिसिलिया देशमें लता काट कर छोटी कर देनेसे वह फैलती नहीं थी। सुतरां टट्टी आदिकी जरूरत भी नहीं पड़ती। इटलीकी अन्तर्वर्ती इट्रुरिया और कम्मेनिया प्रदेशमें दाखकी लता वृक्षों पर और बुन्दुसियममें रस्सीकी मचान पर चढ़ा दी जाती थी जहां वह छत सरीखा बन जाती थी। इनोट्रिया प्रदेशमें ही पहले पहल खूंटी वा किसी अन्य प्रकारका अवलम्बन दे कर दाखकी लताको उसके ऊपर चढ़ा दी जाती थी। अब भी उक्त उपायको अच्छा समझ कर लोग इसे काममें लाते हैं।

बालू मिली हुई मट्टीमें ही दाख अच्छी उपजती है। कड़ी जमीनमें यह अच्छी नहीं लगती। इस कारण दो भाग मट्टीमें एक भाग बालू घोंघा आदि मिलाना पड़ता है और दो हाथ गड्ढा करके उसमें मट्टी, घोंघा और बालू आदिके अस्तरसे मट्टी तैयार करनी पड़ती है।

दाखके बीजसे पौधे नहीं उगते; पर उसके डंठलको काट कर गाड़ देते और उसीसे अंकुर निकलते हैं। चार पांच डंठलको एक ओरकी मट्टीसे ढक देते और दूसरी ओरमें गोबर या कीचड़ इसलिये लगा देते हैं, कि उससे कहीं रस न निकल जाय। दश ही दिनमें डंठलोंसे अँखुआ निकलने लगता है। जिस जमीनमें दाखकी लता लगानी हो, उसे पहले हलसे अच्छी तरह जोत डालें और उसमेंसे ढेले और कंकड़को बाहर फेंक दें। जमीन तैयार हो जाने पर ७।८ हाथकी दूरी पर एक एक गड्ढा खोदना पड़ता है। पीछे उसमें डंठल देकर पानी देना पड़ता है। जब डंठलमें अँखुआ निकलते देखें, तब उसके चारों ओर चार खूंटी गाड़ कर रस्सीको उनमें बाँध दें। पांच महीनेमें वह लता आदमीके बराबर हो जाती है; तब उसे एक वृक्ष-काण्डमें अटका देना चाहिये। अकतूबर महीनेमें जड़ कोड़ कर खुली अवस्थामें १५।१६ दिन तक रखना चाहिये। गाछ छांटनेके प्रथम सप्ताहके बाद ही फिरसे अँखुआ निकलने लगता है। इस समय जड़में अच्छी तरह खाद देकर उसे मट्टीसे ढक देना चाहिये। इस समय दिनमें दो बार जल देना पड़ता है। जब दाख फलने लगे, तब जड़में पानी देनेका प्रयोजन नहीं पड़ता, अगर खेतमें पानी कहीं जमा भी हो गया हो, तो उसे बाहर कर देना ही अच्छा है। उस समय किसान प्रतिदिन सुबहमें खेत जा कर पौधेको कुछ कुछ हिला देते हैं जिससे कि उसमेंसे पानी, कीड़ा, सूखा पत्ता आदि नीचे गिर जावे। जो नीचे गिर पड़ते हैं उन्हें वे जला डालते हैं। दाखका फल बड़ा हो जाने पर ५।६ दिन बाद भी पानी देनेसे काम चल सकता है। अक्टूबर महीनेमें जो लता छांटी जाती है, जनवरीमें उसके फल पकने लगते हैं। गाछ छांटनेके पांच सप्ताह वा डेढ़ मासके बाद फल खाने योग्य हो जाता है। सुतरां जनवरी महीनेमें गाछ छांटनेसे अप्रिल महीनेमें उसका फल खा सकते हैं। वर्ष भरमें दो बार उक्त नियमसे फल मिल सकता है, किन्तु उससे पौधेकी तेजी जाती रहती है।

गाछ ढाकनेके पहले वर्षके अन्तमें ही उससे बहुत सूक्ष्म फल निकलते दिखाई देता है। पीछे प्रतिवर्ष वह पूरा होता जाता है। नमक, भेड़की विष्ठा, भेड़का लोहू और लवणाक्त मत्स्य इसका अच्छी खाद है। कहीं कहीं जड़को कोड़ कर केवल पांच-छः दिन तक उसे खुली अवस्थामें रखते हैं। साधारणतः इसी नियमसे दाख लगाई जाती है।

आसाममें जलवायुके कारण दाख अच्छी तरह नहीं

पकती है। इसी कारण इसकी लताको पके घरको दीवारमें लगा देते है। वहां सूर्यके तापसे तथा दीवारकी गर्मीसे फल अच्छी तरह पक जाते है। विभिन्न देशोंमें जलवायुके भेदसे इसी तरह दो एक सामान्य परिवर्त्तन कर दाखको खेती की जाती है।

दाखके फलसे किशमिश बनता है। इसके प्रस्तुत करनेके दो नियम है, पहले उन्हें धूपमें सुखा लेते है, जब तक डंठल भलीभांति सूख न जाय तब तक किशमिशमें स्वाद नहीं आता है और रस भी कम हो जाता है। एक दूसरे प्रकारका किशमिश होता है जो दाखके फलको डाल समेत तोड़कर घरकी छत पर रखनेसे बनता है। इस तरहकी किशमिश सबूज रंगका होता है। प्रायः ३०।४० दिनोंके भीतर दाखके फल किशमिशमें परिणत हो जाते हैं। कच्ची अवस्थामें दाखके फलको सुखा लेनेसे ही किशमिश बनता है।

सुपक्क दाखके फलसे मुनक्का बनता है। फलके भलीभांति पक जाने पर डंठल समेत उसे तोड़ लेते हैं। कड़ाहीमें जल दे कर उसे उबालते है। जब पानीका खौलना शुरू हो जाता, तब उसमें लगभग ८६ सेर ईंधर और कुछ देर बाद ८२ सेर चूना डाल देते हैं। पीछे कड़ाहीको नीचे उतार रखते हैं। जलके ठण्ढा हो जाने पर धीरे धीरे उसे एक दूसरे बरतनमें ढाल देते हैं। उसी जलका नाम तेजाब है। पीछे फिर एक दूसरी कड़ाहीमें जल डाल कर उसे आग पर चढ़ाते है। जब जल खौलने लग जाता है, तब उसमें तीन सेर अन्दाज तेजाब मिला देते है। बाद दाखके फलको उसमें डूबो कर निकाल लेते है। उस खौलते हुए जलमें फलको एक मिनटसे अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये। इस तरह तीन बार डूबाये जानेके बाद दाखके फलको स्वच्छ जलमें भलीभांति धो देते हैं।

सुश्रुत और चरकसंहितामें दाखका उल्लेख है। इसका गुण—शीतल, मिष्ट और रेचक है तथा श्लेष्मा, सर्दी, यक्ष्मा आदि रोगोंमें बहुत हितकर मानी गई है। इससे द्राक्षारिष्ट नामक एक प्रकारका अरिष्ट भी तैयार होता है। मुसलमान लोग इसे पाचक और रक्तपरिशोधक मानते हैं। इसके डंठलको जला कर जो राख बनती है उसे लगाने या खानेसे पथरी, भगन्दर आदि रोग जाते रहते हैं। दाखका शरबत शरीरको स्निग्ध करता, दाहको निवारण करता तथा मन्दाग्नि, आमाशय आदि रोगोंके काममें आता है। डंठल काट देनेसे वसन्तकालमें उससे एक प्रकारका रस निकलता है जो पहले चर्मरोगमें व्यवहृत होता था। अब भी यूरोपमें जनसाधारण इसे नेत्ररोग (Opthalmia)-में लाते है। इसके सिरकेसे मन्दाग्नि, पेटदर्द और कभी कभी हैजा आरोग्य हो जाता है। इसको नमकके साथ खानेसे उलटी भी आती है।

संस्कृत-साहित्यमें दाखका जो लेख पाया गया है उससे जाना जाता है कि तीन हजार वर्ष पहले भी भारतवासी दाखका नाम जानते थे, किन्तु इसकी उत्पादनविधि शायद वे नहीं जानते थे। चिकित्साशास्त्रमें दाखके संयोगसे प्रस्तुत जिन सब औषधियोंका उल्लेख है, उनमें ताजी दाखकी आवश्यकता नहीं पाई गई है। सुतरां इससे अनुमान किया जाता है कि उस समय भारतवर्षमें दाखकी खेती नहीं होती थी।

मुसलमान राजाओंके पहले दाखकी खेतीका कोई विवरण नहीं मिलता है।

मुसलमान लोग जब कभी कोई देश विजय करते, तब उस देशकी दाखकी लताको निर्मूल कर डालते थे। भारतवर्षमें जो सब जङ्गली दाख पाई जाती है वे सब प्रायः इन्हीं मुसलमान राजाओंके अधिकारके समयमें तहस नहस कर डाली गई थीं, किन्तु यह कह नहीं सकते कि वे पीछे गुल्मकी नाईं विना परिश्रमसे बढ़ कर इस अवस्थामें प्राप्त हो गई हों।

काश्मीरमें दो चार प्रकारकी उत्तम, आठ प्रकारकी निकृष्ट और तीन प्रकारकी जङ्गली दाख पाई जाती है। उत्तमसे उत्तम जङ्गली दाख मुगलसम्राट् जहान्‌गीरके समयमें काबुलसे लाई गई थी। मुगल-राजाओंकी पीने योग्य शराब इसी उत्तम दाखसे बनाई जाती थी। जहान्‌गीरकी मृत्युके बाद औरङ्गजेबने मुसलमानी आचारके अनुसार दाखकी लताको ध्वंस कर डाला। भारतमें दाखकी खेती तभीसे ह्रास हो गई है।

ग्रीक लोगोंने सेमितिक जातिसे दाखकी खेती

सोखी थी। सिरीयासे दाख पहले लिवियन आदि ईरानीय जातियोंमें प्रचारित हुई। वे ही ग्रीक लोगोंके शिक्षक हुए। पीछे रोमकजातिने ग्रीक लोगोंसे दाखका व्यवहार सीखा। रोमकराज न्यूमरके समयमें भी दाखका रस सब कामोंमें नहीं लाया जाता था। दक्षिण इटलीमें ही पहले पहल दाखकी खेती शुरू हुई। पांचवीं शताब्दीमें इटलीकी दाख बहुत मशहूर हो गई। रोमक-प्रजातन्त्रकी समाप्तिके समय दाखका आदर यहां तक बढ़ गया था कि वहांके लोग अनाज आदिको न बो कर इसीकी खेती करते थे। यूरोपके अन्यान्य देशोंमें विशेषतः फ्रान्समें रोमकके अधिकारके साथ साथ दाखके व्यवहारकी खूब वृद्धि हुई थी। फ्रान्ससे जर्मनीमें और तब स्पेनमें इसका व्यवहार प्रचलित हुआ।

रोमक-साम्राज्यके ध्वंसके बाद ही इटलीमें दाखकी खेती गिरने लगी। वहां इसके रससे जो शराब बनती थी उसका अनादर होने लगा और दक्षिण फ्रान्सकी शराबका आदर बढ़ गया। आज भी दक्षिण फ्रान्समें इसके रससे बनी हुई शराब शराबोंकी मां समझी जाती है। पहले भारतवर्षमें भी दाखसे शराब बनाई जाती थी जिसे लोग मार्द्वीक कहते थे।

पञ्जाबमें बारह प्रकारकी दाख देखी जाती है। यहांकी भी दाख यूरोपीय दाखके समान फल देती है सही, किन्तु झाड़ बांध कर जंगल हो जाती है। यथारीति खेती नहीं करना ही इसका प्रधान कारण है। पञ्जाबमें बढ़िया दाख उत्पन्न होने पर भी शराबके लिये इसकी खेती नहीं की जाती है। विशेषतः पञ्जाबकी दाख जिस समय पकती है, उस समय इतनी गरमी पड़ती, कि उसका रस गरमीसे खट्टा हो जाता है। पञ्जाबके मध्य पेशावरकी दाख सर्वोत्तम है। हजारा देशमें भी चार पांच प्रकारके अङ्गुर पाये जाते हैं। भारतके मध्य काश्मीरमें दाखकी जैसी खेती होती है, वैसी और दूसरी जगह नहीं होती। मुसलमान-राज्यके पहले काश्मीरमें दाखकी किस तरह खेती होती थी, उसका अच्छी तरह पता नहीं चलता। मुगल-सम्राट् अकबर वाणिज्यप्रिय थे। उन्होंने ही पहले पहल काश्मीरमें दाखकी खेतीकी व्यवस्था की। ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावणमासमें काश्मीरसे एवं आश्विन, कार्त्तिक और अग्रहायणमें काबुलसे दाख मंगाई जाती थी। मुगल-सम्राट् वा उमरावगण काश्मीरी दाखकी शराब पीते थे। काश्मीरमें इसकी खेतीसे यथेष्ट राजस्व वसूल होता था। सम्राट् अकबरके यत्नसे लाहोर, दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद आदि स्थानोंमें भी दाखकी खेती होने लगी थी।

सम्राट् जहांगीरके समयमें काश्मीरी दाखकी विशेष उन्नति हुई। उन्होंने काबुलसे चार प्रकारकी बढ़िया दाख ला कर काश्मीरमें रोपा था। उस समय इस देशके लोग दाखसे प्रस्तुत शराब पीते थे। औरङ्गजेबके समयसे दाखकी खेती ढीली पड़ गई। १८७६ ई०में किसी साहबने काश्मीरी जङ्गली दाखसे शराब बना कर उसे काश्मीरके राजा प्रतापसिंहके पास भेजा था। यह देख कर राजाने एक बेलजियनके ऊपर शराब तैयार करनेका भार दिया। १८८० ई०में पहले पहल मद्य प्रस्तुत हुआ और १८८५ ई० तक होता रहा। किन्तु इससे किसी प्रकारकी आमदनी न देख इसकी प्रथा बन्द कर दी गई।

१८८४ ई०में काश्मीरके राजाने अपने राज्यमें सुशासन चलानेके लिये अङ्गरेज गवर्मेण्टकी सहायता मांगी। गवर्मेण्ट भी इसमें सहमत हो गई। दाखकी खेतीका हाल अच्छी तरह जानते हुए अङ्गरेज गवर्मेण्टने १८८० ई०में यूरोपसे कुछ लोगोंको मंगा कर काश्मीरमें दाखकी खेती करनी आरम्भ कर दी। अभी काश्मीरमें दाखसे एक प्रकारकी गदली और एक प्रकारकी स्वच्छ पीनेयोग्य शराब बनती है जिसकी प्रशंसा देशविदेशमें हो रही है।

पश्चिमोत्तर प्रदेश और अयोध्याके नाना स्थानोंमें दाख उत्पन्न होती है। सम्राट् अकबरने आगरा, इलाहाबाद आदि स्थानोंमें बढ़िया दाख मंगा कर रोपा था। इस देशकी समतल भूमिमें दाख यथेष्ट फल देती है। आगरा, इलाहाबाद, कानपूर, काशी, लखनऊ, आदि स्थानोंमें उत्तम दाख होती है, किन्तु सब प्रकारकी दाखोंसे शराब नहीं बन सकती। कनावर प्रदेशमें बहुत पहलेसे दाखकी खेती होती है। यहां दाखके फलका

नाम दखन और लताका नाम लान है। यहांकी दाखसे जो शराब बनती उसे विव कहते हैं। इससे एक प्रकारका मादक भी बनता है जिसका नाम रक वा अरक है। पहलेसे कनावर प्रदेशमें अंगूरकी खेती चली आ रही थी। १८५५ और १८६० ई०में इसकी फसलमें एक प्रकारका रोग हो गया जिससे अनेक दाखके उद्यान बरबाद हो गये, तभीसे इसकी खेती बहुत कुछ कम गई है।

मध्यभारतके असीरगढ और उसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें दाख उपजाई जाती है। फल लगनेके साथ ही इसे लोग बेच डालते हैं और किसी प्रकारके काममें नहीं लाते। खाण्डवामें भी दाख लगाई जाती है।

सिन्धु प्रदेशमें भी दाख उत्पन्न होती है। यहां उससे किशमिश नहीं बनाया जाता, किन्तु दो रकमको शराब तैयार होती है। एक प्रकारकी शराबका नाम किशमिशी शराब है जो दाखके सुखानेसे बनती है, दूसरेका नाम आंगूरी शराब है। यह पकी दाखसे तैयार होती है। हैदराबाद, सिहवान, शिकारपुर आदि स्थानोंमें भी आंगूरी शराब बनती थी।

बम्बई प्रदेशमें दाख कब लगाई जाती है, यह ठीक ठीक नहीं कह सकते हैं। खानदेशके राजस्व-संग्राहक (Collector) वहां दाख स्वयं लगाते हैं। पूना, अहमदनगर, औरङ्गाबाद आदि स्थानोंमें भी दाखकी खेती होती है। कुहेसा या बदलीके समय दाखका बहुत नुकसान होता है, इसी कारण पूर्वघाट पर्वतके दक्षिणमें दाख नहीं उपजती है। नासिक और मातपुरा आदि स्थानोंमें भी दाखकी खेती होती थी, किन्तु कुछ दिन पहले उसमें रोग हो जानेसे बहुतसे खेत नष्ट हो गये हैं।

बङ्गालमें अधिक वृष्टि होनेके कारण दाख न तो अधिक उपजती और न सुस्वादु होती है। बिहारमें विशेषतः दानापुर और तिरहुतका जलवायु उत्तर-पश्चिम प्रदेशका जलवायुसा है, इस कारण वहां दाख काफी उपजती है। १८३६ ई०में कप्तान मिलनरने कलकत्तेके पास अपने उद्यानमें दाख लगाई थी और बहुत यत्नसे फल प्राप्त किया था। बङ्गाल देशमें किसी किसी धनी मनुष्यके उद्यानमें दाखकी लता देखी जाती है, किन्तु उसकी खेती नहीं होती।

आसाममें अंग्रेजोंके समयमें ही दाख लगाई गई थी। वहांके गवर्नर जेनरलके एजेण्ट मेजर जेंकिन्सने सबसे पहले गौहाटीमें दाख उत्पन्न की। उन्होंने दाखके फलको पकानेका एक नया नियम चलाया था।

मन्द्राजमें कठिन परिश्रम और यत्न किये बिना दाख नहीं उपजती है। किन्तु नीलगिरि और उसकी उपत्यकामें यथेष्ट फल लगते हैं। यहां चौदह प्रकारकी देशीय दाखोंकी खेती होती है। १८८८ ई०में विलायतसे जो दाख मंगा कर लगाई गई है उसमें भी काफी फल लगते हैं। कुछ दिन पहले स्पेनसे भी दाख मंगा कर रोपी गई है।

ब्रह्मदेशमें अंग्रेज लोग जो दाख उपजाते हैं उसमें सुस्वादु फल लगते हैं। किन्तु वहांके जलवायुके दोषसे दाखकी खेती होना एक तरह असम्भव है।

इस देशमें बहुतसे ऐसे सुन्दर स्थान हैं जहां दाख लानेसे आशातीत फल पाये जाते हैं। दक्षिण यूरोपमें दाख जिस तरह बहुतोंकी जीविकाके रूपमें परिगणित हुई है, उस तरह कुछ कुछ काश्मीर और पञ्जाबके उत्तर-पश्चिम प्रदेशके सिवा भारतवर्षमें और कहीं भी वाणिज्य द्रव्यके उद्देश्यसे दाख नहीं उपजाई जाती है। मणिपुरमें ऐसे बहुतसे स्थान हैं जहां जलवायु और मट्टीके गुणसे दाख अच्छी लग सकती है। गवर्मेण्टकी कृपासे काश्मीरमें अभी दाखकी खेती होती है। वहां यह वाणिज्य-द्रव्यके उद्देश्यसे लगाई जाती और उसीसे बहुतोंकी जीविका चलती है; किन्तु साधारणतः दाखसे किशमिश, मुनक्का आदि प्रस्तुत हो कर वही वाणिज्य द्रव्य हो गया है। मुगल सम्राट् अकबरसे ले कर शाहजहान्के राजत्वकाल तक काश्मीरी दाखकी शराब बहुत आदरणीय थी। औरंगजेबके समयसे ही इसकी अवनति होने लगी। कलकत्तेके अन्तर्जातिक-प्रदर्शनीमें काश्मीरी शराबमें स्वर्णपदक पुरस्कार दिया गया था। इसके सिवा अन्य दो प्रदर्शनीमें भी काश्मीरका मद्य विशेष प्रशंसित हुआ है। वाणिज्यकी ओर इस देशके लोगका लक्ष्य रहनेसे भारतवर्षमें दाखकी खेती एक प्रधान व्यवसाय हो जायगी।

द्राक्षाघृत (सं० क्ली०) द्राक्षामिश्रणेन पक्वं घृतं। चक्रदत्तोक्त घृतौषधविशेष।

द्राक्षादिरष्टादशादि क्वाथ (सं० पु०) क्वाथ औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—किशमिश, गुलञ्च, कपूर, कचूरी, काकड़ाशृङ्गी, मोथा, लालचन्दन, सोंठ, फटकी, आकनादि, चिरायता, जवासा, धनिया, पद्मकाष्ठ, वाला, भटकटैया, वेणामूल, पुष्करमूल और नीम इन सब द्रव्योंको एकत्र कर क्वाथ बनाते हैं। इसका सेवन करनेसे जीर्ण ज्वर, अरुचि, श्वास, कास और शोथ जाता रहता है।

द्राक्षारिष्ट (सं० पु०) अरिष्ट औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—द्राक्षा ६। सेरको १२८ सेर पानीमें पकाते हैं; ३२ सेर पानी रह जाने पर उसे निकाल लेते हैं। बाद इस क्वाथमें २५ सेर गुड़, दारचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, प्रियङ्गु, मिर्च, पीपल और विड़ङ्ग प्रत्येक १ तोला दे कर मथते हैं, बाद घृतभाण्डमें १ मास मुंह बांध कर रख छोड़ते हैं। अन्तमें उसे अच्छी तरह छान लेते हैं। यही द्राक्षारिष्ट है, इसे सेवन करनेसे उरःक्षत, क्षयरोग, कास, श्वास और गलरोग निराकृत तथा बलवृद्धि और मलशुद्धि होती है।

द्राघिमन् (सं० पु०) दीर्घस्य भावः दीर्घ-इमनिच्। दीर्घस्य द्राघादेशः। दीर्घत्व, लम्बाई।

द्राघिमा (सं० पु०) १ दैर्घ्य, दीर्घता, लम्बाई। २ वे कल्पित रेखाएं जो भूमध्य रेखाके समानान्तर पूव और पश्चिमको मानी गई हैं। (Longitude) इस स्थानके प्राथमिक द्राघिमाके पूर्वकी ओर होनेसे पूर्व-द्राघिमान्तर और पश्चिमकी ओर होनेसे पश्चिम-द्राघिमान्तर होता है। संस्कृत ज्योतिषमें इसे 'देशान्तर' कहते हैं।

फिलहाल हम लोग जो द्राघिमान्तर स्वीकार करते हैं, वह ग्रोणवीचके मानमन्दिरकी मध्यरेखासे गिना जाता है। किन्तु फरासीसी लोग पारि-शहरके और अमेरिकन वासिंटनके मानमन्दिरकी मध्यरेखाको मान कर द्राघिमान्तरकी गणना करते हैं।

किसी स्थानका द्राघिमान्तर निकालनेका उपाय।

१। ग्रोणवीचका समय रखता हो, ऐसा एक उत्कृष्ट कालमानयन्त्र (Chronometer) ले कर यहांकी एक घड़ीके साथ मिला कर देखो। दोनोंमें समयका जो फर्क पड़ेगा, वही समय मान कर द्राघिमान्तरके पार्थक्यका निरूपण हो सकता है।

२। किसी एक स्थानसे जिस समय तार द्वारा सम्वाद भेजा जाता है और जिस समय सम्वाद पहुंच जाता है, दोनों समयके अन्तरसे भी द्राघिमान्तर निकाला जाता है।

३। किसी एक मनुष्यने निर्दिष्ट ऊंची भूमि पर रोशनी की, दूरस्थ दूसरे मनुष्यने ज्यों ही रोशनीको जलता देखा, त्यों ही उसने अपनी घड़ीमें समय देख रखा। प्रकाशका जलना और दूरस्थ मनुष्यका देखना, इसमें जितने समयका फर्क पड़ता है, उस हिसाबसे भी द्राघिमाका निरूपण किया जाता है।

उदाहरण—१। क और ख दो मनुष्य टेलिग्राफ तारके परस्पर विभिन्न दिशामें हैं। कने ठीक दो पहरको तार द्वारा सम्वाद भेजा, किन्तु खके पास वह सम्वाद साढ़े दश बजे पहुंचा। अभी यह देखना होगा, कि ख कके पूर्वमें था या पश्चिममें और दोनोंमें कितने अंश (Degree)-का अन्तर था? दोनों स्थानका समय भेद १२—१०° ३०′=१° ३०′ अर्थात् डेढ़ घण्टा है।

किन्तु द्राघिमान्तरका एक अंश=४ मिनट समयका अन्तर ∴ दोनों स्थानका अन्तर अर्थात् द्राघिमान्तरिक दूरत्व $= \frac{१\frac{१}{२} \times ६०}{४} = २२\frac{१}{२}$। कका समय अधिक होनेसे ख कके पश्चिम होता है।

२। मान लो, कलकत्तेसे शामको छः बजे अमेरिकाके निउवोर्कमें तार दिया गया। वहां तार दूसरे दिन सवेरे ७ बज कर १० मिनट २० सेकेण्डमें पहुंचा। अब कलकत्तेका द्राघिमान्तर होता है ८८° २७′ पू०, तो निउवोर्कका द्राघिमान्तर क्या होगा?

निउवोर्कका समय बहुत पीछे पड़ता है, इस कारण निउवोर्क कलकत्तेसे पश्चिममें अवस्थित है।

कलकत्तेकी शाम छः बजे और निउवोर्ककी सुबह ७ घण्टा १० मिनट २० सेकेण्ड, इसमें १० घण्टा ४८ मिनट ४० सेकेण्डका फर्क पड़ता है।

∴ अब दोनों स्थानका द्राघिमान्तरिक दूरत्व।

$= \frac{१० \text{ घं० } ४८ \text{ मि० } ४० \text{ से०}}{४ \text{ मि०}} = १६२° २५′$। किन्तु

पहले हो कहा जा चुका है कि कलकत्तेका द्राघिमान्तर ८८' २७" पू० है।

निउवोर्कका द्राघिमान्तर = (१६२' २५"—८८' २७") = ७३' ५८" प०।

द्राघिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन दीर्घं इति दीर्घ-इष्ठन् दीर्घस्य द्राघादेशः। १ अतिदीर्घ, बहुत लम्बा। (क्लो०) २ दीर्घ रोहिषतृण, लम्बी रोहिस नामकी सुगन्धित घास।

द्राण (सं० त्रि०) द्रा कर्त्तरि क्त निष्ठा तस्य नः ततो णत्वं। १ सुप्त, सोया हुआ। २ पलायित, भगेड़ू। (क्लो०) ३ स्वप्न। ४ पलायन, भागना।

द्राप (सं० पु०) द्रापयति द्रा णिच् पुगागमे द्रापि अच्। १ पङ्क, कीचड़। २ आकाश। ३ कपर्दी, कौड़ी। (त्रि०) ४ मूर्ख। ५ सुप्त, सोया हुआ।

द्रामिल (सं० पु०) द्रमिलाख्यो देशोऽभिजनो अण्। १ चाणक्य मुनि। २ पित्रादिक्रमसे द्रामिलदेशवासी।

द्राव (सं० पु०) द्रु गतौ द्रु-घञ्। १ गमन। २ क्षरण, बहाव। ३ अनुताप, गर्मी। ४ बहने या पसीजनेकी क्रिया।

द्रावक (सं० पु०) द्रवति द्रावयति वा द्रु द्रावि वा ण्वुल्। १ चन्द्रकान्तमणि। (त्रि०) २ हृदयग्राही। ३ द्रवरूपमें करनेवाला। ४ बहाने वाला। ५ हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। ६ चतुर, चालाक। ७ पीछा करनेवाला, भगानेवाला। (क्लो०) ८ व्यभिचारी, जार। ९ मोम। १० सुहागा। ११ प्लोहाघ्नौषधभेद, प्लोहारोगकी एक दवा।

महाद्रावक और शङ्खद्रावक नामक प्लोहानाशक औषधका भैषज्यरत्नावलीमें उल्लेख है। प्रस्तुत प्रणाली—यवक्षार दो भाग और फिटकरी तीन भाग इन दोनोंको बछड़ेके मूतसे पीस कर सुखाना होता है। पीछे किसी शीशेके बरतनमें कपड़े और मट्टीका प्रलेप दे कर उसमें वह कूटा हुआ पदार्थ रख छोड़ते हैं। इस प्रकारके दूसरे बरतनके ऊपर इसे अधोमुख करके दोनोंके मुंह पर लेप लगा देते हैं। नीचेके बरतनके पेंदेमें एक छेद रहना चाहिये। अब दोनों बरतनको उसी अवस्थामें एक गड्ढेमें रख देते हैं। उस गड्ढेमें एक और बरतन रहता है। इस प्रकार स्थापन करके ऊपरी भागसे आंच लगाते हैं अब आगकी गरमीसे उस बरतनका भीतरी पदार्थ गल कर उसका रस गड्ढेके बरतनमें टपक पड़ेगा।

इसके अनन्तर उस रसको लवङ्गचूर्ण वा जरित ताम्रके साथ मिला कर एक रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे प्लोहा आदि रोग द्रवीभूत हो जाता है। श्वित्र और दद्रु आदि रोगोंमें इसका स्थानिक प्रयोग भी किया जाता है। किन्तु इससे आगकी तरह ज्वाला निकलती है। इसीसे दधिके साथ इसका प्रलेप देना आवश्यक है।

अटरुष, चितामूल, अपाङ्ग, इमलीका छिलका, कोहड़ेका डंठल, थूहरकी जड़, तालजटा, पुनर्णवा और वेतवृक्ष इन सबकी भस्मको पाती नीबूके रसमें मिला कर छान लेते हैं। पीछे उस क्षार द्रव्यको कड़ी धूपमें सुखने देते हैं। यह क्षार २ पल, यवक्षार २ पल, फिटकरी १ पल, निशादल १ पल, सैन्धव ४ तोला, सुहागा २ तोला, हीराकस १ तोला, मुद्राशङ्ख १ तोला और समुद्रफेन १ तोला, इन सब द्रव्योंको एक साथ चूर कर बकयन्त्रसे चुआ करके अरक निकालते हैं। इसका नाम महाद्रावक है। इसके ५।७ विन्दु जलमें डाल कर सेवन करनेसे यकृत, प्लोहा और गुल्मादिरोग जाते रहते हैं। अन्यविध—स्वर्णमाक्षिक, कांसा, सैन्धव लवण, रसाञ्जन, समुद्रफेन, यवक्षार, सुहागा, सर्चि क्षार, साम्भलक्षार, धातुकासीस, पद्मकासीस और हीराकस इन सबका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करते हैं। पीछे उसे छिन्न वस्त्र और मट्टी द्वारा लेपित कांचके बरतनमें रखकर बकयन्त्रमें क्रमशः तेज आंचसे यथाविधान पाक करके उसका रस चुआ लेते हैं। महाद्रावक प्रस्तुत करनेका यही तरीका है। इसके भी फिर तीन भेद हैं, स्वल्प, मध्य और वृहत्। फिटकरी, सुहागा, यवक्षार और हीराकस इन चार द्रव्योंके समान चूर्णको मिला कर जो अरक बनता है उसे स्वल्पद्रावक कहते हैं। इसी प्रकार सुहागा, निशादल, फिटकरी, यवक्षार, धातुकासीस, पद्मकासीस और हीराकस इन सात द्रव्योंके अरकको मध्यमद्रावक कहते हैं। फिर स्वर्णमाक्षिक आदि समुदाय द्रव्यके अरकका नाम महाद्रावक है। यह औषध सोंठ वा लवङ्गचूर्णके साथ ७।८ बिन्दु सेवन-

नीय है। इससे अतिशय अग्निवृद्धि और यकृत्, प्लोहा आदि नाना प्रकारके रोग शान्त हो जाते हैं। (भैषज्यर०)

यहांके रसायनशास्त्रमें अंगरेजी Acid शब्दका अर्थ 'द्राव'से शब्द लगाया है। किन्तु यथार्थमें Acidमें द्रावणकी क्षमता नहीं है। पर हां, वैद्यकशास्त्रमें शङ्खद्रावक, महाद्रावकादिका उल्लेख रहनेसे पारिभाषिकरूपमें Acidका अर्थ द्रावक माना जा सकता है।

द्रावककन्द (सं० पु०) द्रावको कन्दो यस्य। तैलकन्द, तेलियाकन्द।

द्रावकर (सं० क्ली०) द्रावं सुवर्णादेर्द्रवं करोति स्वसंयोगेनेति द्राव-कृ-ट। श्वेतटङ्कण, सुहागा।

द्रावकवर्ग (सं० पु०) द्रवकर द्रव्यपञ्चक। तेल, घी आदि तरल पदार्थ।

द्रावण (सं० क्ली०) द्रावयति जलमलं स्वसम्पर्केणेति-द्रु-णिच-युच्। १ कतकफल, रीठा। द्रावि-ल्युट्। २ विद्रावण, द्रवीभूत करनेका कार्य वा भाव। द्रावयतीति द्रावि-ल्यु। ३ भगानेका काम।

द्रावणक (सं० पु०) टङ्कणक्षार, सुहागेका खार।

द्राविका (सं० स्त्री०) द्रावक-टाप्, अत इत्वं। १ लाला, लार। २ मोम।

द्राविड़ (सं० त्रि०) द्रविड़ो देशोऽभिजनोऽस्येति अण्। १ देशविशेषजात, जो द्रविड़ देशमें उत्पन्न हुआ हो। २ पित्रादि कर्मसे द्राविड़देशवासी। द्राविड़, कर्णाट, गुर्जर, महाराष्ट्र और तैलङ्ग ये पांच तरहके द्राविड़ हैं। यह देश विन्ध्याचलके दक्षिणमें अवस्थित है। तामिल शब्द देखो। (पु०) ३ संख्याभेद। ४ वैधमुख्य, आमिया हल्दी। ५ कर्चूर, कचूर।

द्राविड़—१२वीं शताब्दीके पहले प्रादुर्भूत स्मृतिप्रदीप नामक ग्रन्थके रचयिता।

द्राविड़क (सं० पु०) द्राविड़ एव, स्वार्थे कन्। १ वैधमुख्य, कचिया हल्दी। २ विट्लवण, सोंचर नमक।

द्राविड़गौड़ (सं० पु०) रातके समय गाये जानेका एक राग। इसमें शृङ्गार और वीररस अधिक गाया जाता है।

द्राविड़भूतिक (सं० पु०) द्राविड़ एव भूतिरुत्पत्तिर्यस्य कप्। द्राविड़क, विट्लवण, सोंचर नमक।

द्राविड़ी (सं० स्त्री०) द्रविड़े भवा द्रविड़-अण्-ङीप्। एला, छोटी इलायची। इसका पर्याय—सूक्ष्मा, उपकुञ्चिका, तुच्छा, कोरङ्गी, द्राविड़ी और गुटी है।

द्राविड़ी (हिं० स्त्री०) १ द्रविड़ जातिकी स्त्री। (वि०) २ द्रविड़सम्बन्धी, द्रविड़ देशका।

द्राविणोदस् (सं० त्रि०) द्रविणोदस् देखो।

द्रावित (सं० त्रि०) द्रावि-क्त। १ ताड़ित, भगाया हुआ। २ द्रवीकृत, गलाया या पिघलाया हुआ।

द्राव्य (सं० त्रि०) द्रु-ण्यत्। १ अवश्य गमनीय। २ अवश्य चरणीय। ३ अवश्यानुतपनीय।

द्राह्यायण (सं० पु०) द्रह्यस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं। युवादित्वात् अङ्, यूनि फक्। ऋषि विशेष। ये द्रह ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सामवेदके कल्प, श्रौत और गृह्यसूत्र बनाये हैं।

द्राह्यायणसूत्रभाष्य (सं० क्ली०) धन्विन् कृत द्राह्यायणसूत्रका भाष्य।

द्राह्यायणि (सं० पु०) द्राह्यायणके गोत्रापत्य।

द्राह्यायणीय (सं० त्रि०) द्राह्यायणकृत, द्राह्यायण ऋषिका बनाया हुआ।

द्रु (सं० पु०) द्रवति ऊर्ध्वं गच्छति द्रु-मितद्र्वादित्वात् डु। १ वृक्ष, पेड़। २ शाखा, डाल। (स्त्री०) ३ गति।

द्रुकिलिम (सं० क्ली०) किल्यतेऽनेनेति किल श्वैत्यक्रीड़नयोः किल-बाहुलकात् किमच्। द्रुषु वृक्षेषु किलिमं। देवदारु वृक्ष, देवदार। इसका संस्कृत पर्याय—देवदारु, सुराह्व, भद्रदारु, देवकाष्ठ, पीतदारु और दारु है।

द्रुग—१ मध्यप्रदेशके छत्तीसगढ़ विभागका जिला। यह अक्षा० २०° २३' से २२° उ० और देशा० ८०° ४३' से ८२° २' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३८०६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खैरागढ़, कवरधाराज्य और बिलासपुर जिला, पूर्वमें रायपुर जिला, दक्षिणमें काङ्करराज्य, और पश्चिममें खैरागढ़, मन्दगांव राज्य तथा चान्दा और बालाघाट जिला है। जिलेका अधिकांश जङ्गलमय है। यहां तन्दुला नदी प्रवाहित है। इसकी प्रधान उपनदियां पथरा, बरा, सोमवरसा और अमनर है। जिलेमें गरमी बहुत पड़ती है। वार्षिक वृष्टिपात लगभग ४७½ इञ्च है।

इस जिलेमें एक शहर और २०४७ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्राय ७५७१५१ है। यहांकी प्रधान उपज धान, गे ँ, कोदों और तीसी है।

बङ्गालनागपुर-रेलवे जिलेके मध्य हो कर गई है। जिलेमें कुछ जमींदारी राज्य पड़ता है जिसका क्षेत्रफल प्रायः १०४० वर्गमील होगा। जिलेको आय चार लाख रुपयेसे अधिक की है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह १८०६ ई०में रायपुर तथा बिलासपुर ले कर संगठित हुई है। यह अक्षा० २०° ५१´ से २१° ३३´ उ० और देशा० ८१° ६´ से ८१° ३०´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १८११ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३१३५७८ है। इस तहसीलमें द्रुग नामका एक शहर और ४८३ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ है। धानकी खेती ही अधिक की जाती है। तहसीलकी कुल आय एक लाख रुपयेसे ज्यादाकी है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१° ११´ उ० और देशा० ८१° १७´ पू० बम्बईसे ८५८ मील-की दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४००२ है। महाराष्ट्रोंने १७४०-४१ ई०में जब छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया, तब इसी नगरमें उन लोगोंका अड्डा था। उन्होंने यहां एक सुदृढ़ दुर्ग निर्माण किया था जिसके चारों ओर ऊंची दीवार थी। अभी वह भग्ना-वस्थामें पड़ा है। यहां उत्कृष्ट कपासके कपड़े प्रस्तुत होते हैं।

द्रुघन (सं० पु०) द्रुर्वृक्षः हन्यतेऽनेनेति हन-अप्, घना-देशश्च, ततो णत्वं, द्रुममयो घनः इति वा। १ मुद्गर। २ सूत्रधारके मुद्गराकार लौहास्त्रविशेष, सूत्रधारका लोहे-का हथियार जो मुद्गरके आकारका होता है। ३ वैशम्पा-यनोक्त धनुर्वेदके मतानुसार परशु-आकृतिविशिष्ट लौहास्त्र-विशेष, परशु या फरसेके आकारका एक अस्त्र। यह पचास अंगुल लम्बा लोहेका बना होता था। इसका सिरा बड़ा और गला टेढ़ा होता था। इससे झुकाने, गिराने, फोड़ने और चीरनेका काम लेते थे। द्रुः संसारवृक्षो हन्यतेऽनेनेति। ४ ब्रह्मा। ५ कुठार, कुल्हाड़ी। ६ भूमि-चम्पक, भूचम्पा। ७ द्रुममय घन।

द्रुण (सं० क्ली०) द्रुणति हिनस्तीति द्रुण-क। १ धनु, धनुष। २ खड्ग। (पु०) ३ वृश्चिक, बिच्छू। ४ भृङ्ग, भृङ्गी कोड़ा। ५ भ्रमर, भौंरा। ६ मधुमक्षिका, मधुमक्खी। ७ पिशुन।

द्रुणस (सं० त्रि०) द्रुरिव दीर्घा नासिका यस्य। अच् समासान्तः ततो नासिकाया नसादेशश्च पूर्वपदादिति णत्वं। दीर्घनासिकायुक्त, जिसकी नाक लम्बी हो।

द्रुणह (सं० पु०) द्रुणं खड्ग हन्ति गच्छतीति हन गतौ ड। खड्गविधान, तलवारका म्यान।

द्रुणा (सं० स्त्री०) द्रुणं धनुराश्रयत्वेनास्त्यस्याः अच् टाप्। ज्या, धनुषकी डोरी।

द्रुणि (सं० स्त्री०) द्रुणति जलादिकमिति द्रुण-गतौ इन् (इगुपधात् कित्। उण् ४।११८) द्रोणी, पिटारा, मंजूषा।

द्रुणी (सं० स्त्री०) द्रुण् इन् बाहुलकात् ङीष्। १ कर्ण-जलौका, कनखजूर। २ कच्छपी, कछुई। ३ काष्ठाम्बु-वाहिनी, कठवत।

द्रुत (सं० त्रि०) द्रु-क्त। १ जातद्रव, गला हुआ। इसका पर्याय—अवदीर्ण, विलीन और विद्रुत है। २ शीघ्र, तेज। ३ शीघ्रगामी, तेजीसे चलनेवाला। ४ पलायित, भागा हुआ। (पु०) ५ वृश्चिक, बिच्छू। ६ वृक्ष, पेड़। ७ विड़ाल, बिल्ली। ८ तालकी एक मात्राका आधा। इसका चिह्न ० है। इसके देवता शिव और इसकी उत्पत्ति जलसे मानी जाती है। इसका उच्चारण पक्षीकी बोलीके समान होता है। इसका पर्याय—विन्दु, व्यञ्जन, सत्य, अर्द्धमात्रक, आकाश, कूप और वलय है। ९ वह लय जो मध्यमसे कुछ तेज हो, दून। १० हरिण। ११ शशक, खरहा।

द्रुतगति (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, तेज चलनेवाला।

द्रुतगामी (सं० त्रि०) शीघ्रगामी।

द्रुतचारिन् (सं० त्रि०) द्रुतं चरति चर-णिनि। जो जमीन पर बहुत तेजसे चलता हो।

द्रुततिताली—कोई कोई इसे कौआली कहते हैं। कौआली देखो।

द्रुतपद (सं० क्ली०) द्रुतं शीघ्रगामि पदं। १ शीघ्रगामि-पद। २ छन्दोभेद, एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें बारह अक्षर होते हैं, जिसमें चौथा, ग्यारहवां और बारहवां अक्षरगुरु और शेष लघु होते हैं। (त्रि०) ३ द्रुतगामि-पदयुक्त, जिसमें द्रुतगामिपद हो।

द्रुतमध्या (सं० स्त्री०) अर्द्धसमवर्णवृत्तभेद। इसके प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ पद समान

होते हैं। प्रथम और तृतीय पदमें सातवाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ अक्षर गुरु तथा द्वितीय और चतुर्थ पदमें पाँचवाँ, आठवाँ, दशवाँ और बारहवाँ अक्षर गुरु होता है।

द्रुतमांस (सं॰ पु॰) हरिण, खरहे आदिका मांस।

द्रुतविलम्बित (सं॰ क्ली॰) छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ४।७।१०।१२ ये सब वर्ण गुरु और अन्यान्य वर्ण लघु होते हैं।

द्रुति (सं॰ स्त्री॰) द्रु-भावे-क्तिन्। १ द्रव। २ गति।

द्रुनख (सं॰ पु॰) द्रोर्वृक्षस्य नख इव असंज्ञात्वात् णत्वाभावः। कण्टक, काँटा।

द्रुपद (सं॰ पु॰) चन्द्रवंशीय नृपविशेष। चन्द्रवंशमें पृषत नामक एक राजा थे। भरद्वाज ऋषिके साथ उनकी गाढ़ी मित्रता थी। दोनोंको एक ही समयमें पुत्र उत्पन्न हुआ था। पृषतने अपने पुत्रका नाम द्रुपद रखा। भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्य और द्रुपद बचपनमें साथ खेला करते थे और दोनोंमें बड़ी दोस्ती थी। पिताके मरने पर द्रुपद उत्तर पाञ्चालके अधीश्वर हुए। इस समय भरद्वाज भी चल बसे थे। द्रोण वहां रह कर अनन्यकर्मा हो तपस्या करने लगे। एक दिन द्रोणाचार्यने द्रुपदसे आ कर कहा, 'आपसे मेरी बचपनकी मित्रता है, अतः मुझे मित्रता समझिये।' यह सुन कर द्रुपद आगबबूला हो गये और द्रोणसे बोले, 'मूढ़ ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धि मारी गई है, अतुल ऐश्वर्यशाली राजाओंके साथ क्या कभी तुम सरीखे श्रीहीन और निर्धन मनुष्यकी मित्रता हो सकती है। काल सभी पदार्थोंको जीर्ण करता है और कालसे ही सौहार्द भी जीर्ण होता है। मान लिया, कि पहले योग्यतावश तुमसे मेरी मित्रता हुई होगी, लेकिन भूमण्डलमें सौहार्द किसीके भी हृदयमें अजर नहीं रहता। क्योंकि कालक्रमसे वह निराकृत होता अथवा क्रोध कर्त्तृक समूल नष्ट हो जाता है। अतएव तुम इस पुरानी मित्रताकी आशाको छोड़ दो। हे द्विजश्रेष्ठ! किसी प्रयोजनवश तुम्हारे साथ मेरी मित्रता हुई होगी। देखो! दरिद्र मनुष्य कभी भी धनवान् मनुष्यका, मूर्ख विद्वान्‌का और वीर्यहीन मनुष्य शूरका मित्र नहीं हो सकता। अतएव तुम व्यर्थ ही सखित्वकी इच्छा रखते हो। जिसके समान धन, समान बल है उसीसे मित्रता वा विवाद हो सकता है। बलवान् और निर्बल मनुष्योंमें कभी भी दोस्ती वा विवाद होनेकी सम्भावना नहीं। राजाके साथ राजाकी मित्रता हुआ करती है। तुम दरिद्र ब्राह्मण हो, तुम्हारे साथ किस प्रकार मेरी मित्रता हो सकती।' इस प्रकार द्रोण द्रुपदसे अपमानित हो कर अत्यन्त दुःखसे समय बिताने लगे। पीछे भीष्मदेवने द्रोणाचार्यके ऊपर कुरुपाण्डवोंकी अस्त्रशिक्षाका भार अर्पण किया। इन्होंने भी यथाविधान उन्हें अस्त्र-शिक्षा दी। कुरुपाण्डवोंको अस्त्रशस्त्रादिमें विशेष पारदर्शी बना कर इन्होंने उनसे गुरुदक्षिणा मांगते हुए कहा, 'पाञ्चालदेशके राजा द्रुपदने मेरा अपमान किया था। अतः उसका बदला चुकानेके लिये तुम लोग पाञ्चालपुरी जा कर वैर लो और अमात्योंके साथ द्रुपदको बांध कर मेरे पास लाओ।' अर्जुन आदि शिष्योंने 'तथास्तु' कह कर स्वीकार कर लिया। पीछे पाण्डुपुत्रोंने द्रुपदको संग्राममें जीत कर अमात्योंके साथ उन्हें बांध द्रोणके निकट समर्पण किया। द्रोणने द्रुपदसे कहा, 'हे नराधिप! मैं फिरसे तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूं, किन्तु अभी मैं राजा हूं, तुम राजा नहीं हो। राजा नहीं होने पर राजाके साथ मित्रता नहीं हो सकती। अतः तुम्हारे साथ मैं अपना राज्य बाँट देना चाहता हूं। तुम भागीरथीके दक्षिणकूलका राजा हो और मैं उत्तरकूलका राजा होता हूं।' यह सुन कर द्रुपदने कहा, 'आप जो अच्छा समझें वही करें।'

इस प्रकार वे दोनों फिरसे सख्य अवलम्बन करके अपने अपने स्थानको चल दिये। किन्तु इस अपमानसे द्रुपदके हृदयमें गहरी चोट आई और क्षणकाल भी वे इसे भूल न सके। अतः अमर्ष शोकसे व्याकुल हो वे उपयुक्त पुत्रोत्पत्तिकी अभिलाषासे तेजस्वी ब्राह्मणोंका अनुसन्धान करने लगे। गङ्गाके किनारे कल्माषपाद राजाकी पुरीके समीप याज और उपयाज नामक दो स्नातकब्राह्मण रहते थे। ये दोनों बड़े ही तपोनिष्ठ और ब्रह्मपरायण थे। इन्हींसे मनोरथ सिद्ध होगा, यह सोच

राजा अनन्यकर्मा हो उनको उपासना करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया, किन्तु उपयाजने द्रुपदका पौरोहित्य स्वीकार न किया और कहा, 'तुम याजके समीप जाओ, उन्हींसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।' राजा उपयाजके कथनानुसार याजके आश्रममें गये और बहुत विनीत भावसे बोले, 'मैं जिससे कर्म द्वारा संग्राममें दुर्जय और द्रोणविनाशक पुत्र प्राप्त कर सकूं, आप वही उपाय कर दीजिये।' 'याज तथास्तु' कह कर यज्ञका आयोजन करने लगे और इस कार्यमें उन्होंने उपयाजसे भी सहायता मांगी। उपयाज भी उन्हें सहायता देनेमें राजी हुए। पीछे उन दोनों भ्राताओंने मिल कर श्रौताग्नि साध्य यज्ञारम्भ किया। यज्ञके समाप्त होने पर याजने रानीको कहला भेजा, 'हे राज्ञि! तुम हविर्ग्रहणके लिये शीघ्र मेरे समीप आओ।' यह सुन कर रानीने कहा, 'मैंने अङ्गरागादि धारण किया है, अतः मैं अभी अशुचि हूं, कुछ काल विलम्ब जाइये, शुचि हो कर हविर्भाग ग्रहण करती हूं।' याज बोले, 'हव्य वस्तु उपयाज द्वारा मन्त्रपूत हो कर तुझसे पाक की गई है, चाहे तुम आओ चाहे न आओ, अवश्य ही उससे तुम्हारी कामना सिद्ध होगी।' इतना कह कर याजने हुताशनमें संस्कृत हव्यको आहुति प्रदान की। आहुति देनेके साथ ही उस अग्निमें ज्वालावर्ण, भीषणाकृति किरीटभूषण उत्तम कवचयुक्त खड्ग और धनुर्वाणधारी देव सदृश एक कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेनेके बाद ही वह कुमार सिंहनाद करते हुए प्रधान रथ पर आरोहित हुए और इधर उधर विचरण करने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई, 'राजकुमारने द्रोणका वध करनेके लिये जन्म लिया है, वह पुत्र पाञ्चालोंके यशस्कर, भयनाशक और राजाका शोकावह होगा।' पीछे वेदीमेंसे सौभाग्यशालिनी श्यामाङ्गी एक कुमारी निकली। यह कुमारी असामान्या रूपवती थी। इस समय फिर भी आकाशवाणी हुई, 'यह कृष्णा सब रमणियोंमें श्रेष्ठा और अनेक क्षत्रियोंकी क्षयकारिणी होंगी तथा इससे देवकार्य सम्पन्न होंगे।' पीछे ब्राह्मणोंने द्रुपदसे कहा, 'राजन्! यह कुमार धृष्ट अर्थात् प्रगल्भ, अतिधृष्ट अर्थात् विपक्षियोंके उत्कर्षका असहिष्णु और द्युम्नादि अर्थात् कवच कुण्डलादिके साथ उत्पन्न हुआ है, अतएव इसका नाम धृष्टद्युम्न हुआ और कुमारी कृष्णवर्णा हुई हैं, इसीसे इसका नाम कृष्णा हुआ।' राजा द्रुपद द्रोण-निहन्ता पुत्रको पा कर विशेष आनन्दित हुए। इनके शिखण्डी नामक एक और पुत्र थे। द्रुपद भारतयुद्धमें द्रोणके हाथसे मारे गये।

(भारत आदि द्रोणप०)

२ काष्ठका देयभेद। सायण) ३ काष्ठमय पादुका, खड़ाऊं।

द्रुपदा (सं० स्त्री०) द्रुपदं तच्छब्दोऽस्त्यस्यां ऋचि अच्। वैदिक मन्त्रविशेष, एक वैदिक ऋचा जिसके आदिमें द्रुपद शब्द आता है। यदि प्रमादपूर्वक भुक्तोच्छिष्ट चाण्डाल और श्वपचादिको स्पर्श करे, तो आठ हजार गायत्री वा सौ द्रुपदाजप करके पवित्र होना चाहिये।

द्रुपदात्मज (सं० पु०) द्रुपदस्य आत्मजः। द्रुपदके पुत्र, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न। स्त्रियां टाप्। द्रौपदी।

द्रुपदादित्य (सं० पु०) द्रौपदीसे प्रतिष्ठित काशीस्थ आदित्यलिङ्गविशेष। इसका विषय काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है—पांचों पाण्डव कौरवोंसे प्रतारित हो कर जब वनवासी हुए थे, उस समय पतिव्रता पाञ्चालीने सूर्यकी आराधना की थी। सूर्यने प्रसन्न हो कर द्रौपदीको करछी और ढकनेके साथ अक्षयस्थालिका (बटलोई) दे कर कहा था, 'जब तक तुम्हारा भोजन शेष न होगा, तब तक जितने व्यक्ति अन्नार्थी हो कर आवेंगे, इस बरतनके प्रभावसे कोई भी भूखा न लौटेगा, सभी तृप्ति भर खा लेंगे। तुम्हारे खानेके बाद वह बरतन खाली हो जायगा। इसके अतिरिक्त विश्वेश्वरके दक्षिण-भागमें तुम्हारे सामने अवस्थित हमारी जो मनुष्य आराधना करेगा उसको क्षुधाजनित पीड़ा जाती रहेगी।' सूर्यने पुनः द्रौपदीसे कहा, 'हे पतिव्रते पाञ्चालि! भगवान् विश्वेश्वरने प्रसन्न हो कर हमें जो वर दिया है, उसे कहता हूं सुनो, हे रवे! जो मनुष्य पहले तुम्हारी पूजा करके पीछे मेरा दर्शन करेगा उसका दुःख तुम बहुत जल्द दूर कर देना।' मैं विश्वेश्वरके इस वरसे मनुष्योंका पाप मोचन करता हूं। हे द्रौपदि! काशीमें जो तुम्हारा दर्शन करेगा, उसे कभी भी व्याधिजनित क्षुधाजन्य वा तृष्णा सम्भूत क्लेश भुगतना न पड़ेगा। (काशीखण्ड ४८ अ०)

द्रुपदी (सं० स्त्री०) वन्दाक।

द्रुम (सं० पु०) समुदाये वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते इति न्यायात् द्रुः शाखा विद्यतेऽस्य म (द्युद्रुभ्यां मः। पा ५।२।१०८) १ वृक्ष, पेड़। २ पारिजात। ३ कुवेर। ४ स्वनामख्यात किम्पुरुषेश्वर। ५ स्वनामख्यात नृपविशेष। ये पूर्व जन्ममें शिवि नामक दैत्य थे। ६ रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश १६०।६) ७ प्राचीन नृपवरभेद। ८ कुटजवृक्ष, कुरैया, कर्चो। ९ आरग्वध वृक्ष, अमिलतास।

द्रुमकण्टिका (सं० स्त्री०) सेमरका पेड़।

द्रुमकिन्नरप्रभ (सं० पु०) गन्धर्वविशेष, एक गन्धर्वका नाम।

द्रुमकिन्नरराज (सं० पु०) एक किन्नरराज।

द्रुमकिल (सं० पु०) देवदारु, देवदार।

द्रुमग (सं० पु०) स्वल्पजल देश।

द्रुमत् (सं० त्रि०) काष्ठनिर्मित, लकड़ीका बना हुआ।

द्रुमत्वक् (सं० त्रि०) कुटजवल्कल, कुरैयाका छिलका।

द्रुमध्वज (सं० पु०) तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

द्रुमनख (सं० पु०) द्रुमस्य नख इव। कण्टक, काँटा।

द्रुमव्याधि (सं० पु०) १ पेड़का एक रोग। २ लाक्षा, लाख, लाह।

द्रुममय (सं० पु०) द्रुम विकारे मयट्। वृक्षविकार यूपादि।

द्रुममर (सं० पु०) द्रुम-मृ-अप्। कण्टक, काँटा।

द्रुमर (सं० पु०) द्रुम्रियतेऽनेन मृ-करणे-अप्। १ कण्टक, काँटा।

द्रुमरत्नशाखाप्रभ (सं० पु०) किन्नरविशेष।

द्रुमवत् (सं० त्रि०) द्रुमो विद्यतेऽस्य द्रुम-मतुप्, मस्य व। द्रुमविशिष्ट, जिसके उद्यान आदि हों।

द्रुमवल्क (सं० त्रि०) वृक्षकी छाल।

द्रुमशय (सं० पु०) वानर।

द्रुमश्रेष्ठ (सं० पु०) द्रुमेषु श्रेष्ठः। १ प्रधान वृक्ष। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

द्रुमशीर्ष (सं० क्लो०) द्रुमस्य शीर्षमिव शीर्षं यस्य। १ कुट्टिमभेद, एक प्रकारकी छत वा गोल मण्डप जो पेड़की तरह फैला हुआ होता है। द्रुमस्य शीर्षं ६-तत्। २ वृक्षाग्र, पेड़का सिरा।

द्रुमषण्ड (सं० क्लो०) द्रुमाणां समूहः द्रुम-षण्डच्। वृक्षसमूह।

द्रुमसार (सं० पु०) दाड़िम, अनार।

द्रुमसेन (सं० पु०) १ राजभेद, एक राजा जो पूर्वजन्ममें गविष्ट नामका असुर था। २ कौरव पक्षीय एक वीर, कौरवोंके पक्षका एक योद्धा। यह धृष्टद्युम्नके हाथसे मारा गया था। (भारत द्रोणप०)

द्रुमामय (सं० पु०) द्रुमस्य आमय इव। १ लाक्षा, लाख, लाह। २ वृक्षका रोग।

द्रुमारि (सं० पु०) द्रुमस्य अरिः वृक्षनाशकत्वात् तथात्वं हस्ती, हाथी।

द्रुमारुहा (सं० स्त्री०) कैवर्त्तमुस्ता, केवटी मोथा।

द्रुमाश्रय (सं० पु०) द्रुमो-आश्रयो यस्य। १ सरट, गिरगिट। (त्रि०) २ वृक्षाश्रित मात्र।

द्रुमिणी (सं० स्त्री०) वन, जङ्गल।

द्रुमिल (सं० पु०) १ एक दानवका नाम। यह सौभदेशका राजा था। २ नवयोगीश्वरोंमेंसे एक।

मिला (सं० पु०) एक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएं होती हैं और प्रत्येक चरणके अन्तमें गुरु होता है तथा १० और १८ मात्रा पर यति होती है।

द्रुमेश्वर (सं० पु०) द्रुमेषु ईश्वरः श्रेष्ठः। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। द्रुमाणां औषधीनां ईश्वरः। २ चन्द्रमा ३ पारिजात।

द्रुमोत्पल (सं० पु०) द्रुमे उत्पलमिव पुष्पं यस्य। कर्णिकार वृक्ष, कनकचम्पा, कनियारी।

द्रुवय (सं० पु०) द्रोर्वृक्षस्य विकारभूतं प्रस्थादिपरिमाणं द्रुमाने वय। (मानेवयः। पा ४।३।१६२) १ परिमाण। २ लकड़ीकी माप, पैमाना।

द्रुषद् (सं० त्रि०) वृक्ष वा काठके खण्डके ऊपर उपवेशनकारी, जो पेड़ या किसी काठके टुकड़े पर बैठा हो।

द्रुसल्लक (सं० पु०) द्रुषु सल्लक इव। पियालवृक्ष, चिरौंजीका पेड़।

द्रुह (सं० पु०) द्रुह्यति धनादिलाभाशया पितृविनाशं चिन्तयति द्रुह-क। १ पुत्र, बेटा। २ वृक्ष, पेड़। (त्रि०) ३ द्रोहकारक। (स्त्री०) स्त्रीभ्यां ङीप्। ४ दुहिता, लड़की, बेटी।

द्रुहण (सं॰ पु॰) द्रुं संसारगतिं हन्ति हन-अच्। (पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३ ) इति णत्वं। ब्रह्मा।

द्रुहिण (सं॰ पु॰) द्रुह्यति दुष्टेभ्य इति द्रुह-इनन्, गुणाभावश्च। (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।४९ ) ब्रह्मा।

द्रुही (सं॰ स्त्री॰) द्रुह्यति पित्रे विवाहकालीनधनाग्रहणादिना, द्रुह-क, ततो ङीष्। दुहिता, कन्या, बेटी।

द्रुह्यु (सं॰ पु॰) ययाति पत्नी शर्मिष्ठाका बड़ा लड़का। ययातिने द्रुह्युको हजार वर्ष तक अपना बुढ़ापा लेनेको कहा था, किन्तु इन्होंने यह कहते हुए अस्वीकार किया था, कि जराग्रस्त व्यक्ति जीर्ण अवस्थामें हाथी, घोड़े, रथ, और स्त्री आदिका भोग नहीं कर सकता है और उसका वाक्य भी अस्फुट हो जाता है। अतः बुढ़ापेको नहीं ले सकता। यह सुनकर ययातिने शाप दिया था, "तुम मेरे हृदयसे जन्म ले कर भी अपनी अवस्था मुझे प्रदान नहीं करते, इस कारण तुम्हारी प्रियतर अभिलाषा कहीं सिद्ध न होगी। जहां घोड़े, रथ, हाथी, राज्यके योग्य सवारी, गाय, गदहे, बकरे, पाल्की आदि द्वारा गमनागमन न हो सके, जहां सर्वदा बेड़ा तथा कूद फाद कर चलना पड़े और जहां राजा शब्दका व्यवहार नहीं है, वहीं पर तुम्हें परिवार सहित रहना पड़ेगा।" द्रुह्युके वंशमें कोई राजा नहीं हुए। इनके वंशमें भोजगणने जन्म लिया था।

त्रिपुरा देखो।

द्रू (सं॰ पु॰) द्रु-क्विप् दीर्घश्च। स्वर्ण, सोना।

द्रूघण (सं॰ पु॰) द्रुघण पृषोदरादित्वात् साधु। द्रुघण, मुद्गर।

द्रूण (सं॰ पु॰) द्रुण पृषोदरादित्वात् साधु। वृश्चिक, बिच्छू।

द्रेका (सं॰ स्त्री॰) महानिम्ब, बकायन।

द्रेक्क (सं॰ पु॰) द्रेक्काण पृषोदरादित्वात् साधु। द्रेक्काण लग्न राशिका तृतीयांश।

द्रेक्काण (सं॰ पु॰) लग्नके तृतीय भागका एक भाग।

द्रक्काण देखो।

द्रेश्य (सं॰ वि॰) दृश-कर्मणि क्यप्, पृषोदरादित्वात् साधु। दृश्य।

द्रेष्काण (सं॰ पु॰) द्रेक्काण पृषोदरादित्वात् साधु।

द्रक्काण देखो।

द्रोग्धव्य (सं॰ त्रि॰) द्रुह तव्य। व्यथित, हिंसाकारक।

द्रोग्धृ (सं॰ त्रि॰) द्रुह-तृच्। द्वेषी, डाह करनेवाला।

द्रोघ (सं॰ त्रि॰) द्रुह-कर्मणि-घञ्, बाहुलवेदे कुत्वं। १ द्रोह विषय। २ द्रोहसूचक वाक्यादि।

द्रोघमित्र (सं॰ पु॰) क्षतिकर वस्तु, नुकसान पहुंचानेका दोस्त।

द्रोघवचस् (सं॰ क्ली॰) अनिष्टकारी वचन।

द्रोण (सं॰ पु॰-क्ली॰) द्रवयतीति द्रु-गतो नित्। (कृहृ वृषि द्रु पण्य निस्वपिभ्यो नित्ः उण् ३।१० ) १ आढ़क परिमाण। एक प्राचीन माप जो चार आढ़क या १६ सेर, किसी किसीके मतसे ३२ सेरकी मानी जाती थी। इसका संस्कृत पर्याय—घट, कलस, उन्मान, उल्वण और अर्मण है। २ अरणीकाष्ठ, अरणीकी लकड़ी। ३ काष्ठनिर्मित कलस, लकड़ीका एक कलस या बरतन जिसमें वैदिक कालमें सोम रखा जाता था। ४ जल आदि रखनेका लकड़ीका बरतन, कठवत। ५ द्रुममय रथ, लकड़ीका रथ। ६ दण्डकाक, डोम कौआ, काला कौआ। ७ वृश्चिक, बिच्छू। ८ चतुःशत धनु परिमित जलाशय, वह जलाशय या तालाब जो चार सौ धनुष लम्बा चौड़ा हो। ९ मेघनायक भेद। जिस वर्ष यह मेघ नायक होता है, उस वर्ष बहुत अच्छी वर्षा होती है और उपज भी खूब लगती है। १० द्रुम, वृक्ष। ११ वर्षपर्वतभेद, एक वर्ष पर्वतका नाम। १२ क्षीरोदसमुद्रस्थित पर्वतविशेष, द्रोणाचल नामका पहाड़ जो रामायणके अनुसार क्षीरोद समुद्रके किनारे है और जिस पर विशल्यकरणी नामका सञ्जीवनी जड़ी पाई जाती है। १३ मन्दपालके पुत्र। इनके पुत्रोंके नाम पिङ्गाक्ष, अवरोध, सुमुख और सुपुत्र थे जो वपु नामको अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। (मार्कण्डेयपु॰) १४ पुष्पविशेष, एक फूलका नाम। दुर्गा पूजाके समय द्रोणपुष्पसे दुर्गाकी अर्चना करनेसे विशेष फल होता है। यह फूल शरत् कालमें पाया जाता है। १५ वसुपुत्र विशेष, वसुके एक पुत्रका नाम। १६ कदली, केला। १७ नीलका पौधा। १८ महाभारतीय सुविख्यात ब्राह्मण

वीर। पुराण आदिके अनुसार परशुरामके बाद द्रोणाचार्यके जैसा किसी ब्राह्मणने जन्म न लिया।

महाभारतमें आदिसे ले कर द्रोणपर्वके मध्य तक द्रोणाचार्यके विषयमें बहुतसी बातें लिखी गई हैं। यहां संक्षेपसे दिया जाता है—

गङ्गाद्वार (हरद्वार)के निकट भरद्वाज नामक एक विख्यात महर्षि रहते थे। एक दिन वे गङ्गास्नान करने जाते थे, इसी बीच घृताची नामकी अप्सरा नहा कर निकल रही थी। संयोगवश उसका कपड़ा छुट कर गिर पड़ा। ऋषि उसे देख कामार्त्त हुए और उनका वीर्यपात हो गया। तब ऋषिने वीर्यको द्रोण नामक यज्ञपात्रमें रख छोड़ा। उसी यज्ञीयपात्रसे उक्त ब्राह्मण वीर उत्पन्न हुए। द्रोण नामक पात्रसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम भी द्रोण पड़ा। भरद्वाजने पहले अग्निवेश ऋषिको आग्नेय अस्त्रादि प्रदान किये थे, अभी अग्निवेशने गुरुपुत्र द्रोणको वे ही अस्त्र दिये।

भरद्वाजको पृषत नामक एक राजासे मित्रता थी। जिस समय द्रोण उत्पन्न हुए थे, उसी समय पृषतके भी एक पुत्र हुआ था जिसका नाम द्रुपद था। द्रुपद प्रति दिन भरद्वाजके आश्रममें आ कर द्रोणके साथ खेलते और लिखते पढ़ते थे। इस तरह दोनोंमें गाढ़ी मित्रता हो गई। राजा पृषतके मरने पर द्रुपद उत्तर-पञ्चाल देशके राजा हुए।

उसी समय भरद्वाजका भी देहान्त हुआ। द्रोणने पिताके पूर्वनियोगानुसार पुत्र-लाभके लिये शरद्वान्की कन्या कृपीके साथ विवाह किया। यथासमय कृपीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़ेके समान घोर शब्द (स्थाम) किया जो दिग्दिगन्तमें फैल गया, इस कारण लड़केका नाम अश्वत्थामा पड़ा।

उस समय द्रोण भृगुनन्दन परशुरामके निकट महास्त्र और नीतिशास्त्र पढ़नेके लिये महेन्द्र पर्वत पर गये और वहां भार्गवरामके चरण पर गिर कर उन्होंने पहले धनरत्न-प्रार्थना की। परशुरामने कहा, "मेरे सभी धनरत्न ब्राह्मणोंको दान दे दिये गये हैं और पृथ्वी भी कश्यपको दी गई है। विविध अस्त्र शस्त्र और मेरे इस शरीरके सिवा और कुछ नहीं है, इनमेंसे तुम्हें जो मांगनेकी इच्छा हो, मांग सकते हो।" बाद द्रोणने प्रसन्नचित्तसे प्रयोग, उपसंहार और रहस्य समग्र अस्त्र ग्रहण किये।

प्रफुल्लचित्तसे द्रोण घरको लौटे। एक दिन अश्वत्थामा किसी धनीके लड़केको दूध पीते देख कर खूब जोरसे रोने लगा, कोई उसे रोक न सका। द्रोणके घरमें दूध अथवा गाय नहीं थी। दूसरेके घरसे कोई चीज मांग लानेमें धर्मच्युत होगा, इस भयसे वे कहीं न गये। बाद दूसरे दूसरे लड़कोंने दूधसा सफेद जल उसे पिला कर शान्त किया। अश्वत्थामा बहुत खुश हो कर नाचने लगा। यह देखकर दरिद्र द्रोणको बहुत दुःख हुआ। वे स्त्रीपुत्रके साथ प्रिय सखा राजा द्रुपदके यहां चले गये। उन्होंने समझा था, कि पञ्चालराज बालमैत्रीके कारण उनके सब दुःख दूर कर देंगे। किन्तु राजमदके कारण द्रुपदने पूर्व सौहृद्य स्वीकार न किया, वरं महामति द्रोण उनके निकट बहुत अपमानित हुए। द्रुपद शब्द द्रष्टव्य।

इस पर दुःखित और क्रुद्ध हो कर अपमानका बदला लेनेके लिये संकल्प करके कौरव-राजधानी हस्तिनापुरको गये। वहां वे अपने साले कृपाचार्यके यहां सानन्द रहने लगे। यहां अश्वत्थामा गुप्त भावसे पाण्डवोंको अस्त्रविद्या सिखाते थे। किन्तु उन्हें कोई पहचान न सके।

एक दिन युधिष्ठिर आदि राजकुमार हस्तिनापुरसे बाहर निकल कर गेंद खेल रहे थे। खेलते खेलते गेंद कुएंमें गिर पड़ा, कोई उसे निकाल न सके। इसी बीच द्रोणाचार्य वहां आ निकले। उन्होंने तीर द्वारा गेंदको बाहर निकाल दिया। उनके इस असामान्य शरसन्धानने पुण्य देख कर राजकुमारोंने उनका परिचय पूछा।

द्रोणने उन्हें अपना परिचय न दिया। बाद उन्होंने भीष्मके निकट जा कर उस अद्भुतकर्मा ब्राह्मणको कथा कह सुनाई। इस पर वीरवर भीष्म स्वयं द्रोणके पास गये और उन्हें राजकुमारोंको अस्त्र शिक्षाके लिये नियुक्त किया। इसी समयसे वे द्रोणाचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए। उनका सब अभाव दूर हो गया। इन्हींकी शिक्षाके प्रतापसे कौरव और पाण्डव ऐसे बड़े धनुर्धर और अस्त्रकुशल हुए। भिन्न भिन्न देशोंसे अनेक राजकुमार आ कर

इनसे अस्त्रविद्या सीखने लगे। फलतः इनकी ख्याति सारे भारत वर्षमें फैल गई। इनके असंख्य शिष्योंमेंसे अर्जुन ही सबसे श्रेष्ठ निकले। कर्ण, अर्जुन, एकलव्य, अश्वत्थामा आदि शब्द द्रष्टव्य।

जब द्रोणने पाण्डव और धार्त्तराष्ट्रको शिष्यरूपसे ग्रहण किया, तब एक दिन उन्होंने निर्जन स्थानमें राजकुमारोंसे कहा था कि, "मेरे हृदयमें एक अभिलाषा बहुत दिनसे चली आ रही है. तुम लोग अस्त्रविद्यामें पारदर्शी हो कर मेरी वह अभिलाषा पूरा कर सकोगे?" यह सुन कर कौरवगण चुप हो बैठे. किन्तु अर्जुन गुरुका अभीष्ट साधन करनेमें तैयार हो गये।

कौरवोंको अस्त्रशिक्षा समाप्त हो गई। एक दिन द्रोणाचार्यने सभीको बुला कर कहा, "हमारी गुरु-दक्षिणा यही है, कि युद्धमें पञ्चालराज द्रुपदको पराजय कर हमारे पास लाओ।" इस पर कुरुपाण्डवगण गुरुदक्षिणा चुकानेके लिये ससस्त्र अग्रसर हुए। कौरव और पाञ्चालमें घमसान लड़ाई छिड़ी। महावीर अर्जुन द्रुपदको लड़ाईमें पराजय कर उन्हें अपने गुरु द्रोणके पास पकड़ लाये। इस तरह द्रोणाचार्यका बहुत दिनोंका संकल्प पूरा हुआ। किन्तु क्षमाशील द्रोणने द्रुपदकी कोई बुराई न की, वरं बहुत प्रेमभावसे उनसे कहा, 'हे राजन्! तुम बाल्यकालमें हमारे साथ खेला करता था, उसीसे तुम्हारे प्रति हमें स्नेह और प्रीति हो गई थी। अभी भी हम पुनः तुम्हारे साथ मित्रसा बर्त्ताव करते हैं। तुमने कहा था, कि राजाके सिवा और कोई राजा का सखा नहीं हो सकता है, इसी कारण आज हम राज्य पानेके लिये यत्न कर रहे हैं। अभीसे तुम भागीरथीके दक्षिण-किनारेके राजा होगे और हम उत्तर-किनारेके।' पाञ्चाल देखो। यह सुन कर द्रुपदने लज्जासे मुँह नीचे कर लिया। जो कुछ हो, अभी वे द्रोणाचार्यके अनुग्रहसे दक्षिण-पाञ्चालके राजा हुए। उन्होंने समझा कि ब्रह्मबल नहीं होनेसे द्रोणाचार्यका ध्वंस असम्भव है, इस कारण उन्होंने पुत्रेष्टियाग आरम्भ किया। यज्ञके फलसे द्रोणके निहन्तारूपमें धृष्टद्युम्नका जन्म हुआ।

द्रोणका एक संकल्प सिद्ध हुआ सही, किन्तु एक और भी बाकी रह गया। अर्जुन उनको अभिलषित गुरुदक्षिणा देनेमें प्रतिश्रुत हुए थे। अभी उन्होंने अर्जुनसे अपना वह अभिप्राय प्रकाश करते हुए कहा, "हे अर्जुन देखो! जब मैं तुम्हारे साथ युद्ध करनेको प्रवृत्त होऊंगा, तब तुम भी मेरे साथ प्रतियुद्ध करोगे।" गुरुवत्सल महावीर अर्जुन गुरुके चरण स्पर्श करते हुए वैसा ही करनेको सहमत हुए। इसी कारण कुरुक्षेत्रके युद्धमें द्रोणाचार्यके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें अर्जुनने उनसे घमसान युद्ध किया था; नहीं तो अर्जुन गुरुके विरुद्ध कभी अस्त्र धारण नहीं करते। द्रोणाचार्यके जीवनमें ये कई एक घटनाएँ हुई थीं—जब कुरुपाण्डवोंमें गृहविवाद प्रज्वलित हुआ, तब उन्होंने दुर्योधनको पाण्डवोंके प्रति दुर्व्यवहार करनेमें कई बार निषेध किया था। अन्तमें कुलक्षयकर कुरुक्षेत्रका महासमर उपस्थित हुआ। उन्होंने नौ दिन कौरवोंकी ओरसे घोर युद्ध कर असंख्य योद्धाओंका प्राणनाश किया। किन्तु इन्होंके सेनापतित्वके समय अभिमन्यु अन्याययुद्धमें मारा गया था। अन्तमें इन्होंने भी जब अन्याययुद्धमें युधिष्ठिरके मुंहसे 'अश्वत्थामा मारा गया हाथी……'यह सुना, तब पुत्रशोकमें नीचा सिर करके वे ध्यानमें डूबे। इसी अवसर पर धृष्टद्युम्नने उनका सिर दो खण्ड कर डाला। युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न देखो।

द्रोणकलश (सं० पु०) द्रोण-इव कलश। द्रुममय यज्ञपात्रभेद, लकड़ीका एक पात्र जिसमें यज्ञोंमें सोम छाना जाता था। यह वैकंकको लकड़ीका बनाया जाता था।

द्रोणकाक (सं० पु०) द्रोण-इव काकः। वनकाक, काला कौआ, डोम कौआ। इसका संस्कृत पर्याय—काकोल, द्रोण, अरण्यवायस, वनवासी, महाप्राण, क्रूरवावी, फलप्रिय और काकाल है। काक देखो।

द्रोणक्षीरा (सं० स्त्री०) द्रोणमितं दुग्धं यस्याः। द्रोणपरिमित दुग्धवती गो, वह गाय जो एक कलश दूध देती है।

द्रोणगन्धिका (सं० स्त्री०) द्रोणस्य द्रोणपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः कप्-टापि अत इत्वं। रास्ना।

द्रोणगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम। पुराणके अनुसार यह एक वर्षपर्वत है। वाल्मीकीय रामायणमें इसे क्षीरोदसमुद्रमें लिखा है। हनुमान् विशल्यकारिणी संजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गये थे।

द्रोणघा ( सं॰ स्त्री॰ ) द्रोणदुघा पृषोदरादित्वात् दुलोपः। द्रोणदुघा।

द्रोणचित् ( सं॰ पु॰ ) यज्ञीय अग्निभेद।

द्रोणदुग्धा ( सं॰ स्त्री॰ ) द्रोणपरिमितं दुग्धं यस्याः। द्रोणदुघा, वह गाय जो एक द्रोणदूध होती है।

द्रोणदुघा (सं॰ स्त्री॰) द्रोणं दोग्धीति दुह-कप-घश्चान्तादेशः ( दुहः कप् घश्च। पा ३।२।७० ) गवीविशेष, एक प्रकारकी गाय जो एक कलस दूध देती है। इसका पर्याय — द्रोणक्षीरा, द्रोणमाना, द्रोणघा, पयस्विनी, द्रोणदुग्धा और द्रोणमानपयस्विनी है।

द्रोणपदी (सं॰ स्त्री॰) द्रोण-इव पादौ यस्याः, कुम्भपद्यादित्वात् ङीष्, ङीषि पादोऽन्त्यलोपे पद्भावः। द्रोणतुल्यपादयुक्ता स्त्री वह औरत जिसके पांव द्रोणसे हों।

द्रोणपर्णी (सं॰ स्त्री॰) द्रोणस्य वृक्षभेदस्य पर्णमिव पर्णं यस्याः जातित्वात् ङीष्। १ भूमिकदली, भूकदली। २ द्रोणपुष्प।

द्रोणपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) द्रोणवत् पुष्पं यस्याः ङीष्। १ क्षुद्र क्षुपविशेष, गूमा। इसका पर्याय—खर्वपत्रा, कुम्भयोनि, कुरुम्बिका, चित्राक्षुप, कुरुम्बा, सुपुष्पा, चित्रपत्रिका, द्रोणा और फलेपुष्पा है। इसका गुण-कटु, उष्ण, रुचिकर, वात, पित्त, कफ, अग्निमान्द्य और वातनाशक है।

भावप्रकाशके मतसे—द्रोणा, द्रोणपुष्पी और फलेपुष्पा ये कई एक एकार्थवाचक शब्द हैं। इसका गुण—गुरु, लवण, मधुर, कटु रस, रूक्ष, उष्णवीर्य, वायु और पित्तवर्द्धक, तीक्ष्ण, मधुर, विपाक, भेदक एवं कफ, आम, कामला, शोथ, तमकश्वास और क्रिमिनाशक है।

२ गोशीर्षकवृक्ष। इसका गुण—कफ, अर्श, कामला, क्रिमि और शोथनाशक है।

द्रोणमाना ( सं॰ स्त्री॰ ) द्रोणो मानं दुग्धस्य यस्याः। १ द्रोणदुघा, एक द्रोण दूध देनेवाली गाय।

द्रोणमुख ( सं॰ क्ली॰ ) चतुःशत ग्रामके मध्य मनोहर ग्राम, वह गांव जो ४०० गांवोंके बीच प्रधान हो।

द्रोणमेघ ( सं॰ पु॰ ) मेघोंके अधिपतिभेद, बादलके एक अधिपतिका नाम।

द्रोणम्पच ( सं॰ त्रि॰ ) द्रोणं द्रोणपरिमितं पचतीति द्रोण पच-खस् (परिमाणे पचः। पा ३।२।३३) द्रोणपरिमित वस्तु पाककर्त्ता।

द्रोणशर्मपद ( सं॰ क्ली॰ ) एक तीर्थभेद, तीर्थका नाम। ( भारत अनु २५ अ॰ )

द्रोणस ( सं॰ पु॰ ) एक दानवका नाम।

द्रोणसाच ( सं॰ त्रि॰ ) द्रोणं द्रोणकलशं सचते सच-अण्। द्रोणजलसेचक।

द्रोणसिंह ( सं॰ पु॰ ) वलभीवंशीय नृपविशेष, वलभीवंशके एक राजाका नाम।

द्रोणस्तूप ( सं॰ पु॰ ) स्तूपविशेष।

द्रोणा ( सं॰ पु॰ ) द्रोणपुष्पी, गूमा।

द्रोणाचल (सं॰ पु॰) द्रोणगिरि, एक पर्वत।

द्रोणाचार्य ( सं॰ पु॰ ) कुरुपाण्डवोंके अस्त्रशिक्षक, भरद्वाजके पुत्र। इसका पर्याय—अश्वत्थामापिता, कृपीपति, पाण्डवोंके अस्त्रशिक्षागुरु, द्रोण, गुरु, आचार्य, कीर्त्तिभाक्, भारद्वाज, कुम्भयोनि और द्रोणाचार्यक है।

द्रोण देखो।

द्रोणास ( सं॰ पु॰ ) १ वह जिसका मुँह द्रोणसा हो। २ दानवविशेष, वह दानव जो सर्वदा मनुष्योंको रोगग्रस्त करता है।

द्रोणाहाव ( सं॰ त्रि॰ ) आह्वयन्तत्र पानार्थं वलीवर्दान् आहावो जलाधारः जलाशयभेदः, द्रोणमयः द्रुममय आहावः। द्रुममय जलाधारभेद, काठका बना हुआ पानीका वरतन, कठवत।

द्रोणि ( सं॰ स्त्री॰ ) द्रवतीति द्रु-गतौ नि-सच कित् ( वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लेति। उण ४।५१ ) १ द्रोणी, कठवत। २ कदलीत्वगादि निर्मित पात्रभेद, केलेके छिलकेका बना हुआ पात्र, डोंगो। श्राद्धादि कर्ममें डोंगोका काम होता है। ३ काष्ठमय स्नानपात्र, लकड़ीका बना हुआ स्नान करनेका एक वरतन। ४ पर्वत मध्यस्थ देशभेद, दो पर्वतोंके बीचकी भूमि। (पु॰) ५ अश्वत्थामा। ६ अष्टममन्वन्तरके एक ऋषि। ७ एक परिमाण जो दो सूर्प या १२८ सेरका होता था।

द्रोणिका ( सं॰ स्त्री ) द्रोणिरिव कायति प्रकाशते कै-क टाप्। नीलीवृक्ष, नीलका पौधा।

द्रोणी ( सं॰ स्त्री॰ ) द्रोण ङीष्। १ देशविशेष, एक देशका नाम। काष्ठाम्बुवाहिनी, लकड़ीका बना हुआ पात्र, कठवत। ३ कलशाकार-पात्रविशेष, कलशके

आकारका काठका प्याला, डोकिया। ४ दोनियां, छोटा दोना। ५ नीलीवृक्ष। ६ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम। ७ दो पर्वतोंकी सन्धि। ८ इन्द्रचिर्भिटी, इन्द्रायण। ९ द्रोणीलवण, एक प्रकारका नमक। १० नदीविशेष, एक नदी। ११ द्विसूर्पपरिमाण, एक परिमाण जो दो सूर्प या १२८ सेरका होता था। इसका पर्याय—वाह और गोणो है। द्रोण-पत्नी ङीष्। १२ द्रोणाचार्यको स्त्री कृपी। १३ कदली, केला। १४ द्रुत, शीघ्रता।

द्रोणीज (सं० क्ली०) द्रोणीलवण, एक प्रकारका नमक।

द्रोणीदल (सं० पु०) द्रोण्या इव दलं यस्य। केतकीपुष्प, केतकीका फूल।

द्रोणीमुख (सं० क्ली०) द्रोणीव मुखं यस्य। द्रोणमुख।

द्रोणीलवण (सं० क्ली०) द्रोणीसम्भूतं लवणं। उप कर्णाट देशप्रसिद्ध लवणविशेष, एक प्रकारका नमक जो कर्णाटक देशके आसपास होता है। इसे विरिया लोन भी कहते हैं। इसका पर्याय—द्रौणेय, वार्द्धेय, द्रोणीज, वारिज, वार्द्धिभव, द्रोणी, चित्रकूटलवण है। इसका गुण—उष्ण, भेदक, स्निग्ध, शूलनाशक और अल्प पित्तवर्द्धक है।

द्रोणोदन (सं० पु०) सिंहहनुके पुत्रका नाम जो शाक्य बुद्धके चाचा थे।

द्रोण्य (सं० त्रि०) द्रोणः द्रुममयं यूपमर्हति यत्। द्रुम-मय यूपार्ह पश्वादि।

द्रोण्यश्व (सं० त्रि०) द्रोणिं द्रुतं अश्रुते अश व्याप्तौ बाहु० व। द्रुतव्यापक, बहुत जल्द फैल जानेवाला।

द्रोण्यामय (सं० पु०) शरीरके आभ्यन्तरिक रोगभेद, शरीरके भीतरका एक रोग।

द्रोमिल (सं० पु०) चाणक्य मुनि।

द्रोह (सं० पु०) द्रुह-भावे घञ्। १ जिघांसा, दूसरेका अहित चिन्तन, वैर, द्वेष। २ छद्मवध, छल या धोखेसे मारना। ३ हिंसामात्र। मनुने लिखा है कि प्रत्येक उन्नतिकामीको द्रोह परित्याग करना उचित है।

द्रोहचिन्तन (सं० क्ली०) द्रोहस्य चिन्तनं ६-तत्। परानिष्टचिन्ता, प्रतिहिंसाका भाव।

द्रोहाट (सं० पु०) द्रोहाय अटतीति अट-अच्। १ वैडाल व्रतिक, ऊपरसे देखनेमें साधु पर भीतर बुराई रखने-वाला। २ मृगलुब्धक, मृगतृष्णा। ३ वेदशाखाभेद, वेदकी एक शाखा।

द्रोहिन् (सं० पु०) द्रोहोऽस्त्यस्येति इनि, वा द्रुह्यतीति णिनि। द्रोहक, वह जो बुराई चाहता हो, वैरी, शत्रु।

द्रौण (सं० त्रि०) द्रोणं सम्भवति अवहरति पचति वा अण्। १ द्रोणपरिमित धान्यादिके निज द्रव्यमें समावेशक। २ तदपहारक। ३ तदपाचक।

द्रौणायण (सं० पु०) द्रोणस्य अपत्यं पुमान् फक्। अश्वत्थामा।

द्रौणायनि (सं० पु०) अश्वत्थामा।

द्रौणि (सं० पु०) द्रोणस्यापत्यं द्रोण-इञ्। १ अश्वत्थामा। २ एक ऋषि जो पुराणानुसार उनतीसवें द्वापरमें होंगे।

द्रौणिक (सं० त्रि०) द्रोणस्य द्रोणपरिमितबोजस्य वाप इति द्रोण (तस्य वापः। पा ५।१।४५) इति ठक्। द्रोण-परिमित बोजवपनयोग्य खेत, वह खेत जिसमें एक द्रोण या ३२ सेर बोज बोया जाय। द्रोणेन क्रीत: निष्पादितत्वात् ठक्। २ द्रोणक्रीत। द्रोणं द्रोणपरिमितद्रव्यं पचतीति पच-ठञ्। (सम्भवत्यवहरति पचतीति। पा ५।१।५२) ३ द्रोणपाचक।

द्रौपद (सं० पु०) द्रुपदस्यापत्यं पुमान् द्रुपद शिवादित्वात् अण्। द्रुपदराजपुत्र, द्रुपद राजाका लड़का।

द्रौपदी (सं० स्त्री०) द्रुपदस्यापत्यं स्त्री द्रुपद-अण्-ङीप्। द्रुपदराजकन्या। पर्याय—पाञ्चाली, कृष्णा, सैरिन्ध्री, नित्य-यौवना, वेदिजा और याज्ञसेनी।

इनका प्रकृत नाम कृष्णा है। द्रुपदकी कन्या होने-के कारण इनका नाम द्रौपदी पड़ा। राजा द्रुपदने द्रोण-से मर्मपीड़ित हो कर द्रोणनिहन्ता पुत्रलाभके लिये याज और उपयाज नामक दो ब्राह्मणोंको ला कर पुत्रेष्टि यज्ञ किया। द्रुपद और द्रोण शब्द देखो। उस यज्ञकी अग्निसे धृष्टद्युम्न और कृष्णाकी उत्पत्ति हुई।

धृष्टद्युम्न देखो।

महाभारतमें लिखा है, कि कृष्णा आजन्म-युवती रही। उनका वर्ण श्यामल, पद्मपलाशके सदृश सुन्दरनेत्र, नील और कुञ्चित केश तथा सुमनोहर दोनों भौं थीं। उनके शरीरसे नीलोत्पल गन्ध निकलती थी। भूमिष्ठ होते समय

देववाणी हुई थी—'कृष्णा सब रमणियोंमें श्रेष्ठ होगी तथा ये क्षत्रियोंका कुलक्षय और देवताओंके अच्छे अच्छे कार्य करेंगी। इनसे कौरव लोग डरा करेंगे।' ब्राह्मणोंने उस देववाणीके अनुसार इनका नाम कृष्णा रक्खा। पहले ये ऋषिकी कन्या थीं। अपनी तपस्यासे महादेवको सन्तुष्ट कर वर मांगते समय 'मुझे सर्वगुण-सम्पन्न पति दीजिये' इस प्रकार इन्होंने पांच बार कहा था। यही कारण था, कि द्रौपदीके पीछे पांच स्वामी हुए थे।

द्रुपदने पहले ही सोच रखा था, कि अर्जुनके साथ द्रौपदीका विवाह करेंगे। जतुगृह-दाहके बाद उन्होंने अपने मनकी बात मन ही में रख कर उपयुक्त पात्र पानेके लिये एक सुदृढ़ दुर्नम्य धनुष बनवाया और एक कृत्रिम आकाशयन्त्र प्रस्तुत कर उसी पर लक्ष्यका स्थापन किया। पीछे उन्होंने इस बातको तमाम घोषणा कर दी, कि जो मनुष्य लक्ष्य भेद कर सकेगा, द्रौपदी उसीसे व्याही जायगी। बिजलीकी तरह यह खबर चारों ओर फैल गई। भिन्न भिन्न देशोंके राजा और ब्राह्मण पाञ्चाल देशमें आने लगे। कर्ण सहित दुर्योधनादि और ब्राह्मणके वेशमें पाण्डवगण भी द्रुपदसभामें पहुंचे। निर्दिष्ट-दिनमें कृष्णा धृष्टद्युम्नके साथ सभास्थलमें पधारीं बाद धृष्टद्युम्नने समागत राजाओंको सम्बोधन कर कहा, "यही धनुर्वाण है और वही लक्ष्य है, जो व्यक्ति उस घूमते हुए चक्रके छेद हो कर पांच बाणोंसे लक्ष्यभेद कर सकेंगे, उसी महात्माकी मेरी यह भगिनी कृष्णा भार्या होंगी।"

एक एक करके सभी राजाओंने उस लक्ष्य पर निशाना लगाया, लेकिन एक भी कृतकार्य न हुए। तब महावीर कर्णने आगे बढ़ कर धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। उन्हें देख कृष्णाने कहा, 'मैं हीनजातीय सूतपुत्रके साथ विवाह नहीं कर सकती।' यह सुन कर कर्ण आगबबूला हो गये और हंसते हुए सूर्यावलोकन कर धनुषको फेंक दिया। इस प्रकार सभी क्षत्रियोंके अकृतकार्य होने पर अर्जुन इशारेसे श्रीकृष्णकी सलाह ले कर लक्ष्यभेद करनेके लिये अग्रसर हुए। कितने मनुष्य कितनी तरहकी बातें बोलने लगे। किन्तु महावीर अर्जुनने किसीकी ओर दृष्टिपात न कर कृष्णका स्मरण करते हुए तीर धनुष उठाया और सभीके देखते देखते लक्ष्यभेद कर डाला। ब्राह्मण लोग आनन्दध्वनि करने लगे और क्षत्रियगण अपनासा मुंह लिये बैठे रहे।

द्रौपदीने अर्जुनके गलेमें वरमाला डाल दी। अर्जुनको पत्नीके साथ सभास्थलसे जाते देख वहां जितने क्षत्रिय उपस्थित थे, वे सबके सब अपने भीमपराक्रमसे अर्जुन पर टूट पड़े। यह देख कर द्रुपदने ब्राह्मणोंकी शरण ली। ब्राह्मणवेशी पञ्चपाण्डवने मत्त मातङ्गकी नाईं उन राजाओंको दलित और परास्त कर दिया। इन दिनों पाण्डव अपनी माता कुन्तीके साथ गुप्त भेषमें भार्गव नामक ब्राह्मणके यहां रहते थे। अब वे द्रौपदीको साथ लिये उस ब्राह्मणके घर पहुंचे। दरवाजे परसे भीमार्जुनने माताको पुकार कर कहा,—'मां! आज हम लोग एक रमणीय भिक्षा मांग कर लाये हैं।" कुन्ती घरमें थीं और बिना देखे ही भीतरसे बोलीं, 'वत्स! जो कुछ लाये हो सभी मिल कर भोग करो।' पीछे बाहर निकल कर जब उन्होंने द्रौपदीको देखा, तब वे युधिष्ठिरके पास जा कर बोलीं, "तुम दोनों भाइयोंने द्रुपदनन्दिनीका नाम न ले कर केवल 'भिक्षा मांग कर लाए हैं' ऐसा कहा था और मैंने भी बिना बूझे समझे 'सब कोई मिल कर भोग करो' ऐसा कहा है। अब जिससे मेरी बात न टले और अधर्म भी न हो, ऐसा कोई उपाय रचो।' इसी समय श्रीकृष्ण और बलराम आ कर पाण्डवोंके साथ सादर सम्भाषण करके चले गये।

कुन्तीके आदेशसे द्रौपदीने भिक्षा लब्ध अन्नका अग्रभाग देवताओंको, ब्राह्मणोंको तथा उपस्थित भिक्षुकोंको दिया और जो कुछ बच रहा उसे दो भाग किया। एक भाग तो भीमको दिया और दूसरे भागका फिर छः भाग करके आपसमें छवोंने बांट लिया। भोजन कर चुकनेके बाद द्रौपदी सबोंके पाददेशमें सो रहीं। पाण्डवगण युद्धविग्रह और विविध प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंकी आलोचना करने लगे। धृष्टद्युम्नको जब ये सब बातें मालूम हुईं, तब वे पिताके पास जा कर बोले। इस पर द्रुपदने सबोंको अपने घर ला कर व्यासदेवके उपदेशानुसार द्रौपदीका विवाह पञ्चपाण्डवोंके साथ कर दिया।

पाण्डवोंने नारदके सामने प्रतिज्ञा की थी, 'हम पांचोंमेंसे किसी एकके पास द्रौपदी जब रहेगी, उस समय कोई भी उस कोठरीमें नहीं जा सकता। जो इस नियमका उल्लङ्घन करेगा। उसे ब्रह्मचारी हो कर बारह वर्ष वनमें रहना पड़ेगा।' अर्जुन दैवक्रमसे एक बार इस नियमका भङ्ग करके बारह वर्ष तक वनमें रहे थे। अर्जुन और युधिष्ठिर देखो।

किसी समय युधिष्ठिर दुर्योधनके साथ जुआ खेलनेको बाध्य हुए। दुर्योधनके मामा शकुनिके कपटद्यूतसे युधिष्ठिर अपना सब कुछ हार गये। यहां तक कि वे अपने भाइयोंको, अपनेको तथा द्रौपदीको भी हार गये। बाद दुर्योधनने प्रातिकामीको भरी सभामें द्रौपदीको लाने भेजा। उस समय द्रौपदीने प्रातिकामीसे कहा था, 'राजासे पूछ आवो, कि पहले उन्होंने अपनेको अथवा हमें बाजीमें रखा था।' प्रातिकामीको युधिष्ठिरसे जब इसका कोई उत्तर न मिला, तब दुर्योधनके कहनेसे वह पुनः द्रौपदीको पकड़ने आया। द्रौपदीने फिरसे यह कह कर उसे लौटा दिया कि, 'तुम सभामें जा कर माननीय व्यक्तियोंसे पूछो, कि अभी हमें क्या करना कर्त्तव्य है?'

इधर फिर भी प्रातिकामीको लौट आया देख दुर्योधन उस पर बहुत बिगड़े और उसी समय उन्होंने दुःशासन-को द्रौपदीको पकड़ लाने भेजा। दुर्वृत्त दुःशासनने द्रौपदी को एक भी बात न सुनी और वह उन्हें चोटी पकड़ घसीटता हुआ भरी सभामें लाया। दुर्योधनके हुकमसे दुःशासनने द्रौपदीको नंगा करना चाहा। किन्तु कृष्णने कृष्णाकी लाज रख ली। इस समय द्रौपदीके करुण रोदन-से भीम बहुत उत्तेजित हो उठे और सभाके बीच उन्होंने प्रतिज्ञा की, "रे दुर्योधन! याज्ञसेनीको जो जांघ दिख-लाई है, निश्चय जानो उस जंघाको चूरचूर कर डालूंगा। जिस दुःशासनने कृष्णाका ऐसा अपमान किया है, उसके वक्षःस्थलको फाड़ कर यदि लोहू न पीऊं और उससे द्रौपदीके बाल न रंगाऊं, तो मेरा नाम भीम नहीं।" यथार्थमें कुरुक्षेत्रके मैदानमें भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी।

अपने पुत्रोंके इस दुर्व्यवहारसे धृतराष्ट्र भी विचलित हुए थे। उन्होंने द्रौपदीको उसी समय छोड़ देने कहा। इस समय द्रौपदीने भी धृतराष्ट्रसे पतिका राज्य लौटा लिया तथा दासत्व मोचन कराया।

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर देखो।

पीछे फिरसे युधिष्ठिर शकुनिके कूटद्यूतमें पराजित हो कर वनवासी हुए। इस समय द्रौपदी भी पञ्चपाण्डवोंके साथ वन गई थीं जहां उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़े थे। वन जाते समय द्रौपदीने सूर्यसे एक थाली पाई थी थालीमें यह गुण था, कि जब तक उनका भोजन शेष नहीं होता था, तब तक वह भरी रहती थी। सुतरां उनके भोजनके पहले कितने ही मनुष्य क्यों न आ जाते कोई भूखा लौटने नहीं पाता था। दुर्योधनको यह बात मालूम थी। एक दिन उन्होंने महर्षि दुर्वासाको विशेषरूपसे तुष्ट कर द्रौपदीके भोजन कर चुकनेके बाद वनमें जा कर उनके यहां आतिथ्य स्वीकार करनेका अनुरोध किया। दुर्वासा भी सशिष्य पाण्डवोंके पास पहुंचे और उन्हें भोजन करानेको कहा। उस समय कृष्णा खा चुकी थीं। अतः भोजनका प्रबन्ध नहीं होने पर वे सबके सब दुर्वासाके शापसे भस्म हो जायंगे, इस डरसे वे बहुत चिन्तित हो पड़े। बाद कृष्णाके आर्त्तनादसे कृष्णने आ कर, उस पाकस्थलीमें एक जगह एक कण सटा हुआ था, उसे ही ग्रहण कर लिया। इसीसे सशिष्य दुर्वासाकी क्षुधा निवृत्त हो गई।

दुर्वासा देखो।

दुष्ट जयद्रथने एक बार द्रौपदीको हरण करनेकी चेष्टा की, किन्तु उनकी आशा पर पानी फिर गया।

दुर्वासा देखो।

अज्ञातवासके समय द्रौपदी विराट-राजमहिषीकी सैरिन्ध्री हुई थीं। उस समय कीचकने उन पर नजर गड़ाई थी। अन्तमें इन्हींको प्ररोचनासे भीमने कीचकका वध किया।

महाभारतकी लड़ाई होनेके बाद कुछ काल तक इन्होंने पतियोंके साथ सुख भोग किया। महाप्रस्थानके समय ये भी पञ्चपाण्डवोंके साथ हो लीं। और सब पतियों-से ये अर्जुनको ज्यादा पसन्द करती थीं। इसी दोषसे हिमालयके ऊपर सबसे पहले इन्हींके प्राण छूटे।

जिन सब सती रमणियोंके नाम हिन्दू पुरुष तथा स्त्रियां नित्य उच्चारण करती हैं, उनमेंसे द्रौपदी भी एक हैं।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें द्रौपदीके पञ्च स्वामीका विवरण इस प्रकार लिखा है—

त्रेतायुगमें रामचन्द्र जब सीताके साथ वन गये थे, उस समय अग्निने उनसे कहा था, कि प्राक्तन दुर्निवार्य है, अतएव आप सीताको देखभाल अच्छी तरह किया करें। सात दिनके भीतर रावण सीताको हर ले जायेगा। यह सुन कर रामचन्द्रजीने कहा था, कि आप सीताको अपने साथ ले जाइये, यहां केवल उनकी छाया मात्र रहेगी। इस बातको सुन कर अग्निदेव सीताको अपने साथ ले गये। सीता-सदृशी छाया उस जगह रह गई। उसी छायाको रावण हर ले गया था। जिस समय सीताकी अग्निपरीक्षा होती थी, उस समय अग्निने छायाको रक्षा कर सीताको लौटा दिया था। उस छायाने नारायण-सरोवरमें सौ वर्ष तक महादेवकी तपस्या की थी। इनकी तपस्यासे तुष्ट हो कर शङ्करजीने उनसे वर मांगने कहा था। छायाने अत्यन्त व्यग्रचित्त हो 'पतिन्देहि! पतिन्देहि,' इस प्रकार पांच बार प्रार्थना की थी। यह सुन कर शङ्करने कहा था, 'अयि छाये! तूने व्याकुल चित्तसे पांच बार पतिके लिये प्रार्थना की है, इसीसे हरिके अंशस्वरूप पांच इन्द्र तुम्हारे स्वामी होंगे। अभी वे सब पञ्चपाण्डव नामसे प्रसिद्ध हैं।' पीछे यही छाया द्रुपदके यज्ञकुण्डसे निकली और द्रौपदी नामसे मशहूर हुई। ये सत्ययुगमें वेदवती, त्रेतामें सीता और द्वापरमें द्रौपदी कहलाई हैं। ये अत्यन्त कृष्ण-भक्तिपरायणा थी, इसीसे इनका नाम कृष्णा पड़ा। राजा द्रुपदने अर्जुनके साथ इनका विवाह किया था। माताके समीप जा कर अर्जुन बोले थे, 'आज एक रमणीय भिक्षा मांग लाए हैं।' यह सुन कर कुन्तीने घरके भीतरसे कहा था, 'अच्छी बात है, जो कुछ लाये हो, उसे सब भाई मिल कर बांट लो।' यह सुन कर पूर्व समयके महादेवके वर तथा मातृ-आज्ञा इन दो कारणोंसे पांचो भाइयोंने मिल कर द्रौपदीका पाणिग्रहण किया था।

(ब्रह्मवैवर्त्त श्रीकृष्णजन्मख० ११५ अ०)

**द्रौपदेय** (सं० पु०) द्रौपद्या अपत्यं ढक्। युधिष्ठिरादिसे उत्पन्न द्रौपदीके पांच पुत्र।

**द्रौहिक** (सं० त्रि०) द्रोहं नित्यं अर्हति छेदादित्वात् ठञ्। नित्यद्रोहार्ह, रोज रोज बुराई करनेके योग्य।

**द्रौह्य** (सं० त्रि०) द्रुह्युस्यापत्यं द्रुह्-शिवादित्वादण्। द्रुह्युका अपत्य।

**द्वन्द्व** (सं० क्ली०) द्वौ द्वौ सहाभिव्यक्तौ (द्वन्द्वं रहस्यमर्यादा-वचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु। पा ८।१।१५) इति सूत्रेण द्विशब्दस्य द्विर्वचन पूर्वपदस्याम् भावो उत्तरपदस्य नपुंसकत्वं निपात्यते। १ रहस्य, भेदकी बात, गुप्त बात। २ कलह, झगड़ा, बखेड़ा। ३ मिथुन। ४ युग्म, दो वस्तुएं जो एक साथ हों, जोड़ा। ५ शीतो-ष्णादि, दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओंका जोड़ा, जैसे शीत उष्ण, सुख दुःख, भला बुरा इत्यादि। ६ दुर्ग, किला।

राजाओंके बल बहुत काम है, किन्तु दुर्गबलसे उनका स्थिर बल हो जाता है। दुर्गबल ही राजाओंका बल है। दुर्ग देखो। ७ स्त्रीपुरुष वा नरमादाका जोड़ा। ८ समासविशेष, एक प्रकारका समास।

जिस समासमें एक दूसरेकी प्रधानता रहती है, उसे द्वन्द्वसमास कहते हैं। 'उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः' द्वन्द्वसमासमें समस्यमान दोनों पदार्थोंमें ही प्रधानभावसे प्रतीयमान होते हैं। 'अश्वगजौ' 'तालतमालौ' इत्यादिकी जगहमें अश्व, गज, ताल, तमाल आदि जितने पदार्थ हैं, सभी प्रधानभावसे प्रतीयमान हुआ करते हैं। किन्तु सभी जगह इस लक्षणका समावेश नहीं होता। स्थलविशेषमें व्यभिचार लक्षित हुआ करता है। 'हंससारसं दंशमशकं' इत्यादि द्वन्द्वमें दोनों पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान न हो कर तत् समाहाररूप अन्य पदार्थ प्रधानभावसे प्रतीयमान होता है। अतः पूर्वोक्त लक्षण प्रायिक अभिप्रायमें निर्दिष्ट होता है अर्थात् प्रायः सभी जगह तत्तद् लक्षणका समावेश होता है, कहीं कहीं नहीं भी होता। इतरेतरद्वन्द्वमें दोनों पदार्थकी ही प्रधानता रहती है। 'उभयपदार्थ-प्रधानो द्वन्द्वः' इस लक्षणमें दोनों शब्द सम्यक् संलग्न नहीं हैं। उभयपदमें जिस प्रकार द्वन्द्वसमास होता है, बहुपदमें भी उसी प्रकार हुआ करता है। केवल अव्ययी-

भाव समास ही दो पदमें होता है। द्वन्द्व और बहुव्रीहि भी बहुपदमें आता है, तत्पुरुष प्रायः सभी जगह दो पद में आया करता है। कहीं कहीं बहुपदमें भी आते देखा गया है। इस द्वन्द्व लक्षणमें उभय शब्दकी जगह अनेक शब्दोंका समावेश आवश्यक है, अर्थात् उभय और बहुपदमें द्वन्द्वसमास होगा। इसके दो भेद हैं, इतरेतर और समाहार। परस्पर योग समझे जानेसे द्वन्द्वसमास होता है। उदाहरण हरिहर, यहां पर हरि और हर पदार्थमें परस्पर योग समझा जाता है। इसीसे यहां द्वन्द्वसमास हुआ। 'धवखदिरपलास' यहां पर धव, खदिर और पलास इन तीन पदार्थोंका परस्पर योग समझा जाता है। इतरेतर द्वन्द्वसमास होनेसे दो पदके साथ यदि समास हो, तो द्विवचन और यदि बहुपदके साथ समास हो, तो बहुवचन होता है। जैसे—'हरिहरौ' 'धवखदिरपलाशाः' इत्यादि। दो वा अनेक पदार्थोंका समाहार होनेसे द्वन्द्वसमास होता है। समाहार द्वन्द्वसमासमें क्लीवलिङ्ग और एकवचन होता है। किन्तु इतरेतरद्वन्द्वमें परपदका लिङ्ग होता है। द्वन्द्वसमासमें प्राण्यङ्ग, तूर्याङ्ग और सेनाङ्गवाचक पदका समाहार होगा, यथा—'पाणिश्च पादश्च पाणिपादं' यहां पर इतरेतर द्वन्द्वके सूत्रानुसार समास हो कर 'पाणिपादं' ऐसा हुआ। लिङ्गका भेद रहनेसे नदीवाचक शब्दका समाहारद्वन्द्व होगा। पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग वा क्लीवलिङ्ग परस्पर विभिन्न लिङ्ग होने पर भी होगा। यथा—'गङ्गाच शोणश्च गङ्गाशोणं' यहां पर पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग शोण और गङ्गा शब्दका समास हुआ, इस कारण विशेषसूत्रके अनुसार समाहारद्वन्द्व हुआ। किन्तु 'गङ्गाच यमुनाच गङ्गायमुने' ऐसा होगा, क्योंकि गङ्गा और यमुना दोनों स्त्रीलिङ्ग शब्द है। यहां पर लिङ्गभेद न होनेके कारण इतरेतर द्वन्द्व हुआ, समाहार नहीं।

लिङ्गभेद रहने पर देशवाचक शब्दका समाहार होता है। यथा—'कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च' यहां पर पुंलिङ्ग और क्लीवलिङ्गका भेद होनेसे समाहार हो कर 'कुरुकुरुक्षेत्रं' ऐसा हुआ।

बहुवचनमें पशुवाचक, शकुनिवाचक और क्षुद्रजन्तुवाचक पदके विकल्पमें समाहार होता है। यथा—'गावश्च महिषाश्च' यहां पर पशुवाचक शब्द भी बहुवचन हुआ है, इसीसे 'गोमहिषं' ऐसा समाहारसमास हुआ। किन्तु यह यदि एकवचन होता, अर्थात् 'गौश्च महिषश्च' ऐसा वाक्य होता, तो समाहारद्वन्द्व न हो कर 'गोमहिषौ' ऐसा इतरेतरद्वन्द्व होता। बहुवचनमें फलवाचक, वृक्षवाचक और तृणवाचक पदका विकल्पमें समाहार होता है।

जो सब जन्तु परस्पर नित्यविरोधी है उनके बहुवचनमें तद्वाचक पदका नित्य समाहार होता है। गवाश्व आदिका नित्य समाहार होता है। पूर्वापर आदिका विकल्पमें समाहार हुआ करता है।

परस्पर विरुद्ध पदार्थका विकल्पमें समाहार होता है। शूद्रवाची पदका नित्यसमाहार हुआ करता है। दधिपयस् आदिका समाहार नहीं होता।

समास करनेसे समासके बाद जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें समासान्त कहते हैं। द्वन्द्वसमासमें जिसका उत्तर समासान्त होता है उसका विषय कहते हैं। समाहार द्वन्द्वमें चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हान्त शब्दोंके उत्तर अ होता है, यथा 'वाक् च त्वक् च' यहां पर त्वच् इस शब्दके शेषमें एक अकार हुआ, इसीसे 'वाक्त्वच' ऐसा शब्द बना। विद्या सम्बन्ध और गोत्र सम्बन्ध रहनेसे तथा ऋकारान्त शब्द परवर्ती होनेसे ऋकारान्त शब्दके उत्तर डा होता है। डकारका लोप होता है, आकार रह जाता है, यथा—"होता च पोता च" यहां पर समास होनेसे होतृपोतृ ऐसा होगा, किन्तु इस सूत्रके मर्मानुसार होतृके ऋकारके स्थानमें डा हो कर होता हुआ, पीछे 'होतापोतृ' ऐसा हो कर द्विवचनमें 'होतापोतारौ' ऐसा बना।

द्वन्द्वसमासमें पुत्र शब्द यदि पीछे रहे, तो ऋयुक्त शब्दके उत्तर डा होता है। यथा—'पिता च पुत्रश्च' यहां पर पितृपुत्र न हो कर पितृके ऋकारके स्थानमें डा हुआ, अतएव 'पितापुत्रौ' ऐसा पद बना। देवतावाचीपदका द्वन्द्व होनेसे पूर्वपदके उत्तर डा होता है, यथा 'इन्द्रावरुणौ' 'मित्रावरुणौ' इत्यादि। ब्रह्मप्रजापतिके उत्तर डा नहीं होता। यथा—'ब्रह्मा च प्रजापतिश्च' यहां पर 'ब्रह्माप्रजापति' ऐसा न हो कर 'ब्रह्मप्रजापति' होगा।

द्वन्द्वसमासमें सोम और वरुण शब्द यदि पीछे रहे, तो अग्नि शब्दके उत्तर इत् होता है, त (इत्) चला जाता है, केवल इकार रह जाता है। दिव् शब्दके साथ समास होनेसे पूर्ववर्त्ती दिव् शब्दको जगह द्यावा होता है। यथा—'द्यौश्च भूमिश्च' यहां पर दिव् शब्दको जगह द्यावा आदेश हो कर 'द्यावाभूमी' ऐसा हुआ। यदि पृथ्वी शब्द पीछे रहे, तो दिवकी जगह द्यावा और दिवस् होता है। यथा—"द्यावापृथिव्यौ दिवस्पृथिव्यौ।' द्वन्द्व-समासमें 'मातापितरौ' यह पदनिपात प्रयुक्त सिद्ध होता है। जाया और पति शब्दमें समास होनेसे 'दम्पती, जम्पती और जायापती' ये तीन पद होंगे। द्वन्द्वसमास होनेसे 'स्त्रीपुंस' आदि पद निपात प्रयुक्त सिद्ध होते हैं

एकशेषद्वन्द्व-एक विभक्ति होनेसे समानाकार अनेक पदोंका एक मात्र बच जाता है। द्विपदका एक-शेष होनेसे अवशिष्ट पद बहुवचनान्त होता है। यथा-'तरुश्च तरुश्च तरू' यहां पर एक तरुपद अवशिष्ट रह गया और दो पदके साथ समास हुआ है, इस कारण 'तरू' द्विवचनान्त हुआ। बहुपद 'फलञ्च फलञ्च फलञ्च फलानि' यहां पर तोन पदोंके साथ समास हो कर एक पद अवशिष्ट रह गया और फल शब्दमें बहुवचन हो कर 'फलानि' ऐसा पद बना।

समानाकार स्त्रीवाचक पदके साथ समास होनेसे पुरुष-वाचक पद अवशिष्ट रहता है। यथा—'ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ' यहां पर पुरुषवाचक ब्राह्मणपद अवशिष्ट रहा और उसमें द्विवचन हो कर 'ब्राह्मणौ' ऐसा हुआ। स्त्रीलिङ्ग निमित्तक आप, ईप् आदि विशेष व्यतिरिक्त अन्यान्य अंशोंमें समानाकार होना आवश्यक है। किन्तु शब्दका स्वरूपगत वैलक्षण्य रहनेसे नहीं होता, यथा—'हंसश्च सारसो च' 'हंससारसौ' ऐसा पद हुआ।

व्यक्ति विशेषके संज्ञावाचक पदका एकशेष नहीं होता। यथा—'इन्द्रश्च इन्द्राणी च' यहां पर एकशेष हुआ 'इन्द्रेन्द्राण्यौ'।

स्वस्के साथ भ्रातृका और दुहितृके साथ पुत्रका समास होनेसे भ्रातृ और पुत्र पद अवशिष्ट रह जायगा। यथा—'भ्राता च स्वसा च' यहां पर भ्रातृ शब्द अवशिष्ट रहा और द्विवचनमें 'भ्रातरौ' ऐसा हुआ। 'पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ' यहां पर पुत्र पद अवशिष्ट रहा। मातृ शब्दके साथ समास होनेसे पितृ शब्द विकल्पसे अवशिष्ट रहता है।

यथा—माता च पिता च, इस वाक्यमें 'पितरौ' और 'मातापितरौ' ये दो पद होंगे।

श्वश्रू शब्दके साथ समास होनेसे शब्द श्वशुर विकल्पसे अवशिष्ट रहता है। यथा—'श्वश्रूश्च श्वशुरश्च' इन दो पदोंमें 'श्वशुरौ' और 'श्वश्रूश्वशुरौ' ये दो पद होंगे। नपुंसक भिन्नके साथ नपुंसकका समास होनेसे नपुंसक शब्द अव-शिष्ट रहता है और तदुपलक्षमें विकल्पसे एकवचन होता है। किन्तु नपुंसका नपुंसकके साथ समास होनेसे एक-वचन नहीं होता। मुग्धबोधव्याकरणमें द्वन्द्व-समासको 'च' ऐसो संज्ञा को गई है। हिन्दीमें यह समास "और" आदि संयोजक पदोंका लोप बनाया जाता है, जैसे, 'हाथ और पांव' से 'हाथ-पांव' 'रात और दिन से 'रात दिन'। इत्यादि।

द्वन्द्वगद (सं० पु०) द्वन्द्वोरूपो गदः। रागद्वेषादि रूप रोग।

द्वन्द्वचर (सं० पु०) द्वन्द्वेन चरतोति चर-अच्। चक्रवाक, चकवा। यह जहां जाता है. वहां स्त्रीको साथ लिये फिरता है, इसोसे इसका नाम द्वंद्वचर पड़ा है।

द्वन्द्वचारिन् (सं० पु० ) द्वंद्वेन चरतीति चर-णिनि। चक्र-वाक, चकवा।

द्वन्द्वज (सं० त्रि०) द्वंद्वात् जायते जन-ड। १ वायु, पित्त और कफ नामके त्रिदोषोंमेंसे दो दोषसे उत्पन्न रोग। २ सुख, दुःख, रागद्वेष आदि द्वंद्वोंसे उत्पन्न।

द्वन्द्वयुद्ध (सं० क्लो० ) द्वयोर्द्वयो युद्धं। वह लड़ाई जो दो पुरुषोंके बोचमें हो, कुश्ती।

द्वय (सं० क्लो०) द्वौ अवयवौ यस्य द्वि-अवयवे तयप् (संख्याया अवयवे तयप्। पा ५।२।४२) १ द्व्यात्मक, दो। इसका पर्याय—उभ, द्वि, युगल, द्वितय, युग, द्वैत, यम, द्वंद्व, युग्म, यमल और यामल है। स्त्रियां ङोप्। द्वे अवयवे यस्य अयच। (त्रि०) २ द्वित्वान्वित, दोह-राया हुआ।

द्वयस (सं० त्रि०) पाणिन्युक्त प्रत्ययविशेष, पाणिनिका एक प्रत्यय।

द्व्याग्नि ( सं॰ पु॰ ) चित्रकवृक्ष, लाल चीता।

द्वयातिग ( सं॰ त्रि॰ ) द्वयं अतिगच्छति अतिक्रामतीति द्वय-अति गम-ड। रजस्तमोगुणशून्य, सत्त्वगुणयुक्त, जिसके सत्त्वगुणने शेष दो गुणों अर्थात् रजः और तमोगुणको दबा लिया हो। जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हो, और शेष दो गुण दब कर अधीन हो गये हों। समस्त गुण एक दूसरेको दबानेकी चेष्टा करते हैं। सत्त्वादि गुण अन्य गुणोंको दबा कर अपना धर्म प्रकाश करता है, तब उसी गुणका प्राधान्य समझा जाता है और अन्यान्य गुण उसके अधीन हो जाते हैं। उसी तरह जो विशुद्ध सत्त्वप्रधान हैं, उन्हें द्वयातिग कहते हैं अर्थात् रजः और तमोगुण सत्त्वके अधीन रह कर अपना विक्रमादि प्रकाश नहीं कर सकते हैं और धीरे धीरे उनके समस्त कार्य सत्त्वगुणके अधीन हो जाते हैं। इस तरह अवस्था प्राप्त कर सकने पर अचिरात् चित्तशुद्धि होती है, चित्तशुद्धि होने पर धीरे धीरे अज्ञानरूप अन्धकार ज्ञानरूपी प्रकाशसे दूर हो जाता है। तब सुख, दुःख और मोहको आबद्ध करके रख नहीं सकते हैं। अचिरात् वस्तुका स्वरूप ज्ञान होता है। विवेकज्ञानके साथ हो मुक्ति आपसे आप प्राप्त हो जाती है।

द्वयाविन् ( सं॰ त्रि॰ ) द्वयमस्त्यस्य वेदे 'बहुलं छन्दसि' मत्वर्थे विनि, पूर्वपददीर्घश्च। द्वित्वयुक्त, जिसमें दोकी संख्या हो।

द्वयु ( सं॰ पु॰ ) द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां युक्ता द्वि-यु-ड्, पृषोदरादित्वात् साधुः। प्रत्यक्षमें हितवादी और परोक्षमें अप्रियवादी शत्रु।

द्वर ( सं॰ त्रि॰ ) द्वृ-आवृत्तौ अच्। १ आवरणकारक, ढकनेवाला। २ विघ्न डालनेवाला।

द्वाःस्थ ( सं॰ पु॰ ) द्वारि तिष्ठतीति स्था-क। १ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार। २ नन्दिकेश्वर।

द्वाःस्थित ( सं॰ त्रि॰ ) द्वारि स्थितः। द्वारपाल, जो दरवाजेकी रक्षा करे।

द्वाःस्थितदर्शक ( सं॰ त्रि॰ ) द्वारपाल।

द्वाःस्थितदर्शिन् (सं॰ त्रि॰) द्वारिस्थितः सन् दृश-णिनि। द्वारपाल।

द्वाचत्वारिंश ( सं॰ त्रि॰ ) द्वाचत्वारिंशतः पूरणः डट्। जिसमें द्वाचत्वारिंशत् संख्या पूर्ण हो, बयालिसवां।

द्वाचत्वारिंशत् (सं॰ स्त्री॰) द्वयधिका चत्वारिंशत् द्विशब्दस्य बाहुलकात् आत्वं। १ द्वयधिक चत्वारिंशत्संख्या, बयालीसकी संख्या, ४२। (त्रि॰) २ जो संख्यामें चालीससे दो अधिक हो, बयालीस।

द्वाज ( सं॰ पु॰ ) द्वाभ्या जायते जन-ड, पृषोदरादित्वात् साधुः। स्त्रीका वह पुत्र जो उसके पतिसे उत्पन्न न हो, दूसरे पुरुषसे उत्पन्न हो, जारज, दोगला। भागवतमें लिखा है, कि बृहस्पतिने कामातुर हो कर उतथ्यकी स्त्री ममतासे गर्भावस्थामें संभोग किया; लेकिन वह वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसी समय एक कुमारने जन्म लिया। स्वामी व्यभिचारिणी समझ कर मुझे परित्याग कर देंगे, इस भयसे ममता उस सन्तानको छोड़ जानेके लिये उद्यत हुई। इसी सोच देवगणने उस स्थान पर पहुंच कर ममतासे कहा, 'हे ममते! यह बालक एकके वीर्यसे और दूसरेके क्षेत्रसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् द्वाज है। अन्याय रूपसे दो मनुष्योंसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण तुम स्वामीका भय न रखो, वरं इसे तुम अपने स्वामीका पुत्र समझो और इसका भरण पोषण करो।' इस पर ममताने बृहस्पतिसे कहा, 'आप भी इसका पोषण कीजिए, क्योंकि हम दोनोंसे अन्यायरूपसे यह बालक उत्पन्न हुआ है। मैं अकेली इसका भरण पोषण क्यों करूं?' इस तरह ममता और बृहस्पतिमें विवाद छिड़ा और दोनो नवजात बालकको वहीं छोड़ चले गये। वही बालक भरद्वाज नामसे प्रसिद्ध हुआ था। (भागवत ९।२० अ॰) भरद्वाज देखो।

द्वात्रिंश ( सं॰ त्रि॰ ) बत्तीसवां।

द्वात्रिंशत् (सं॰ स्त्री॰) द्वयधिका त्रिंशत्, ततो आत्वं। (द्व्यष्टनःसंख्यायां। पा ६।३।४७ ) वह संख्या जो तीससे दो अधिक हो, बत्तीसकी संख्या, ३२।

द्वात्रिंशदपराध (सं॰ पु॰) द्वात्रिंशत् अपराधः कर्मधा॰। ३२ प्रकारके अपराध। देवताके निकट जूता पहने जाना तथा वहां जा कर देवताको प्रणाम न करना आदि ३२ प्रकारके दोषका विषय तन्त्रसारमें लिखा हुआ है। दोष देखो।

द्वात्रिंशल्लक्षण ( सं॰ पु॰) द्वात्रिंशत् लक्षणानि शुभलक्ष-

गानि यस्य। शुभलक्षणान्वित, महापुरुष लक्षणयुक्त मनुष्य अर्थात् वह मनुष्य जिसके ३२ शुभ लक्षण हों। जिस मनुष्यके ये लक्षण हैं, वे राजराजाधिराज होते हैं। जिसके शरीरकी ऊंचाई और चोड़ाईका परिमाण १०८ अंगुल हो, चमड़ा, केश, उँगली, दांत और उंगलीके पर्व-समूह ये पांच सूक्ष्म हो, जिसके हाथ, आँख, ठुड्डो, घुटना और नाक ये पांच लम्बे हों, जिसके वक्ष, कुक्षि, अलक (छल्लेदार बाल), कन्धा, हाथ और मुंह ये छह उन्नत हों, जिसके हस्ततल, नेत्रका कोण, तालु, जिह्वा, अधर, ओष्ठ और नख ये सात रक्त वर्ण हों, जिसके ललाट, कटि और वक्षःस्थल विस्तीर्ण तथा हाथ कच्छपकी पीठ की नाईं कठिन हों तथा जिसके दोनों पांव कोमल हों वे ही राजराजेश्वर हो सकते हैं। ये सब महापुरुषके लक्षण है।

काशीखण्डमें लिखा है, कि जिनके पञ्चावयव दीर्घ और सूक्ष्म हों, सप्तप्रदेश रक्त वर्ण, षट् प्रदेश उन्नत और त्रिप्रदेश पृथु, लघु और गम्भीर हों, वे सबके ऊपर अपना आधिपत्य जमाते हैं। इन ३२ प्रकारके लक्षणको द्वात्रिंशल्लक्षण कहते हैं। ये लक्षण बहुत शुभ माने जाते हैं।

द्वादश (सं० त्रि०) द्वाधिका दश, ततो आत्वं (द्वाष्टन इति। पा ६।३।४७) जो संख्यामें दश और दो हो, बारह। द्वादशवाचक शब्द—सूर्य, मास, राशि, संक्रान्ति, गुहबाहु, सारिकोष्ठ, गुहनेत्र और वाजमण्डल है। द्वादशानां पूरणः इति डट् (तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८) २ द्वादश संख्याका पूरण, बारहवां। (पु०) ३ बारहकी संख्या या अंक। ४ महादेव, शिव।

द्वादशक (सं० त्रि०) द्वादश संख्यास्य कन्। द्वादश संख्यान्वित पण रूप दण्डादि, बारहका।

द्वादशकर (सं० पु०) द्वादशकरा भुजा यस्य। १ कार्त्तिकेय। २ बृहस्पति। ३ शूलयोग। ४ हर्षणयोग। ५ कुमारानुचरगणभेद, कार्त्तिकेयका एक अनुचर। (स्त्री०) ५ भैरवीभेद।

द्वादशतेली—बङ्गालके निम्नश्रेणीस्थ तेलियोंकी एक शाखा।

द्वादशन् (सं० त्रि०) द्वौ च दश च द्व्यधिका वा दश। १ जो संख्यामें दश और दो हो, बारह, १२। २ द्वादश संख्यायुक्त, जिसमें बारहको संख्या हो।

द्वादशपत्रक (सं० क्ली०) द्वादश अक्षराणि पत्राणि यस्य योगविशेष, बारह अक्षरोंका भगवान्‌के मन्त्ररूप एक प्रकारका योग जिसमें वैशाखादि बारहों मासकी कल्पना की गई है। 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' यही बारह अक्षरका मन्त्र है। इनके विषयमें वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है। स्वयं पितामहने सनत्कुमारको द्वादशपत्रक योगकी शिक्षा देकर उनसे कहा था—

शिखासंस्थ ओंकार मस्तक, मेषराशि, वैशाखमास पहला पत्र है। नकार ललाटदेश वृषराशि, ज्येष्ठमास दूसरा पत्र है। मोकार बाहुयुगल, मिथुनसंस्थित, आषाढ मास तीसरा पत्र है। भकार पक्ष्मयुगल (आँखोंको दोनो बिरनी) कर्कटराशिसंस्थित, श्रावणमास चौथा पत्र है। गकार हृदय सिंहराशिसंस्थित, भाद्रमास पांचवां पत्र है। वकार वाक्यनिचय कन्याराशिसंस्थित, आश्विनमास छठा पत्र है। तेकार अस्त्रसमूह तुलाराशिसंस्थित कार्त्तिकमास सातवां पत्र है। वाकार नाभिदेश वृश्चिकराशिसंस्थित, अग्रहायणमास आठवां पत्र है। सुकार जघनदेश धनुराशिसंस्थित, पौषमास नवा पत्र है। देकार उरु युगल मकरराशि संस्थित, माघमास दशवा पत्र है। वाकार जरुयुगल, कुम्भराशिसंस्थित, फाल्गुनमास ग्यारहवा पत्र है। यकार दोनों चरण मीनराशि संस्थित, चैत्रमास बारहवां पत्र है। 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' यही बारहवर्णका चक्र है। आठवर्णमें नाभिदेशमें तृतीय व्यूहको एक मूर्त्ति है। यही ऊँ शवका द्वादश पाकयोग है। जो इस योगसे अच्छी तरह अवगत है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।

(वामनपुराण ३२ अ०)

द्वादशपत्रिका (सं० स्त्री०) शताह्वाख्या क्षुप, सौंफका पौधा।

द्वादशपुत्र (सं० पु०) औरसादि द्वादशविध पुत्र, बारह प्रकारके पुत्र। इसका विषय विष्णुसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

पुत्र बारह प्रकारके होते हैं। अपनी संस्कृता स्त्रीसे उत्पादित पुत्र औरस है, यही पहला है। नियोगधर्मा-

नुसारसे सपिण्ड, सगोत्र, सवर्ण या उत्तमवर्णसे उत्पादित पुत्र क्षेत्रज है, यह दूसरा है। लड़कीका लड़का तीसरा है। इसका जो पुत्र होगा, वही मेरा पुत्र होगा, अर्थात् श्राद्धादि कार्यकारी होगा, यह कह कर पिताने जो कन्या दी जाती है, वही पुत्रिका है। भ्रातृहीना कन्याको भी पुत्रिका कह सकते हैं।

चौथा पौनर्भव पुत्र। पुनः संस्कृता अर्थात् जो पात्रान्तरके साथ परिणीता, अक्षता अर्थात् अनुपभुक्ता होने पर भी वागदत्ता हो, उसे पुनर्भू कहते हैं और परोपभुक्ता पुनःसंस्कृता अर्थात् जिसका एकके साथ वागदान और दूसरेके साथ विवाह ऐसा नहीं होने पर भी जो केवल दूसरे पुरुषके संसर्गसे दूषित हो गई हो वह भी पुनर्भू कहलाती है। ऐसी स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे पौनर्भवपुत्र कहते हैं। पांचवां कानीनपुत्र अर्थात् वह पुत्र जो किसी कन्याको कुमारी अवस्थामें पैदा हुआ हो। ऐसा पुत्र उस पुरुषका कानीन पुत्र कहलाता है जिसको वह कन्या व्याही जाय। छठा गूढ़ोत्पन्नपुत्र अर्थात् पतिके घर रहते हुए भी पत्नीने जो पुत्र किसी गुप्त जारसे पैदा किया हो उसे गूढ़ोत्पन्नपुत्र कहते हैं। जिस पत्नीसे वह पुत्र उत्पन्न होगा, वह पुत्र उसीका समझना चाहिये। सातवां सहोढपुत्र, जो स्त्री गर्भावस्थामें व्याही जाय, उसने उस गर्भोद्भव पुत्रको सहोढ कहते हैं। वह पुत्र पाणिग्राहकका होता है। आठवां दत्तक पुत्र, मातापिताने अपना पुत्र जिसे दे दिया हो, वह पुत्र उसीका कहलाता है। दत्तक देखो। नवां क्रीतपुत्र, जिससे जो बालक खरीदा गया हो वह उसीका पुत्र होता है। दशवां स्वयमुपागत, जिस बालकने अनाश्रय हो कर पितृसम्बोधनपूर्वक स्वयं किसी दूसरेको ग्रहण की हो, उसे स्वयं उपागत कहते हैं। जिसका आश्रय लिया है, वह उसीका पुत्र होता है। ग्यारहवां अपविद्ध पुत्र, मातापितासे परित्यक्त पुत्रको अपविद्ध कहते हैं। जो इन पुत्रको ग्रहण करता, वही उसका पिता समझा जाता है। किसी दूसरी स्त्रीसे उत्पादितपुत्र बारहवां है। इन बारहोंमेंसे परोल्लिखितकी अपेक्षा पूर्वलिखित पुत्र ही प्रधान है। वे सब पुत्र पिताके धनाधिकारी होते हैं। (विष्णुस० १५ अ०)

वशिष्ठसंहितामें भी बारह प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख है। यथा— व्याही हुई अपनी स्त्रीके गर्भसे स्वयं जो पुत्र उत्पन्न करे, वही पहला है। इस पुत्रके नहीं होनेसे नियुक्त अपनी पत्नीका गर्भजात क्षेत्रज पुत्र दूसरा है। पुत्रिकापुत्र तीसरा है। अभिसन्धिपूर्वक किसी पात्रको दी हुई भ्रातृहीना कन्या पिताका पुत्र समझी जाती है। उस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह मातामहका पुत्रत्व प्राप्त करता है कहा भी है कि, 'मैं तुमको भ्रातृशून्या अलंकृता कन्या दान देता हूं, इससे गर्भसे जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्रकार्य करेगा।' पौनर्भव पुत्र चौथा है, जो स्त्री वागदान दिये हुए स्वामीको परित्याग कर दूसरेके साथ सहवास करती है, उसे पुनर्भू कहते हैं, एवं जो स्त्री क्लीव, पतित वा उन्मत्त स्वामीको परित्याग कर अथवा अपने स्वामीके मरने पर दूसरे पुरुषसे विवाह करती है, उसे भी पुनर्भू कहते हैं। कानीनपुत्र पांचवां है। कुमारी अवस्थामें पिताके घर जो पुत्र उत्पन्न हो, उसे कानीन कहते हैं। पण्डितोंका कहना है, कि उसे मातामहका पुत्र समझना चाहिये और वह पुत्र मातामहका पिण्ड देता और धनाधिकारी होता है। गुप्त जारसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह छठा है। बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे यह पुत्र उत्तराधिकारी होता और पिताको विपद्से परित्राण करता है। शेष छः प्रकारके पुत्र धनाधिकारी नहीं होते हैं। पहला सहोढ़ पुत्र, गर्भावस्थामें व्याही हुई स्त्रीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे सहोढ़ कहते हैं। दूसरा दत्तकपुत्र, पिता और मातासे प्रदत्त पुत्रका नाम दत्तक है। तीसरा क्रीत पुत्र, शुनःशेफविवरणमें इस पुत्रका उल्लेख है। पूर्व समयमें राजा हरिश्चन्द्रने अजीगर्त्तको कुछ सवेंगो तथा धनादि दे कर उनका पुत्र खरीदा था। चौथा स्वयमुपागत पुत्र, इसकी कथा शुनःशेफविवरणमें इस प्रकार लिखी है,—पूर्व समयमें यूपकाष्ठमें बद्ध हो कर शुनःशेफने देवताओंका स्तव किया। जब देवताओंने उसे बन्धनसे मुक्त कर दिया, तब ऋत्विकगण कहने लगे, कि यह बालक हम लोगोंका पुत्र होगा। इस पर किसीने ऋत्विकोंसे कहा, कि आप लोग इसे अपना पुत्र तो बनाना चाहते हैं, पर बहुतोंका एक पुत्र होना असम्भव

है। बाद उन्होंने यह स्थिर कर दिया कि यह बालक जिसका पुत्र होनेकी इच्छा करेगा, उसीका वह पुत्र कहलायेगा। उस यज्ञमें विश्वामित्र होता थे, शुनःशेफ उन्हींका पुत्र हो गया। पांचवां अपविद्ध पुत्र है, जो पुत्र मातापितासे परित्यक्त हो कर दूसरेके घरमें माता-पोसा जाता है, उसे अपविद्ध कहते हैं। छठां शूद्रापुत्र है। ये छः प्रकारके पुत्र धनाधिकारी नहीं हो सकते। पहलेके छः और पीछेके छः यही बारह प्रकारके पुत्र हैं। यदि पूर्व-वर्णका कोई उत्तराधिकारी पुत्र न रहे, तो ये सब धनाधिकारी हो सकते हैं।

द्वादशप्रसृत (सं० लि०) द्वादश प्रसृतयः सन्त्यत्र अच्। द्वादश प्रसृतियुक्त सुश्रुतोक्त वस्तिभेद। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—एक अञ्चसैन्धव और दो पसर मधुको मिलाते हैं। बाद उसमें दो पसर स्नेह डाल कर पुनः मथते हैं। अच्छी तरह मथे जानेके बाद एक पसर कल्क, चार पसर कषाय और अन्तमें प्रक्षेप द्रव्य दो पसर डाल देते हैं। इस तरह वस्तिद्रव्य बारह पसरका कल्पित हुआ है। पूर्णमात्राका यही परिमाण है। मात्राके कम होनेसे उसीके अनुसार प्रसृति (पसर) भी कम होगी। इस तरह यदि सैन्धवसे ले कर तरल पदार्थके सहयोगसे निरूढ़ वस्तिको कल्पना की जाय, तो उनका परिमाण वयसके अनुसार समझना चाहिये।
(सुश्रुत चिकित्सितस्थान ३८ अ०)

द्वादशभाव (सं० पु०) द्वादश गुणितो भावः। ज्योतिस्तत्त्वोक्त तन्वादि द्वादशभाव, फलित ज्योतिषमें जन्म कुण्डलीके बारह घर। जन्मकालके लग्नस्थानसे तनु आदि राशियोंके बारह नाम निर्दिष्ट हुए हैं, इसीसे इसको द्वादशभाव कहते हैं। इसका विषय दीपिकामें इस प्रकार लिखा है,—जन्मकालीन लग्नसे पहले घरमें तनु अर्थात् शरीर क्षीण होगा कि स्थूल, सबल कि निर्बल, लम्बा कि नाटा तथा शिथिल कि दृढ़का विचार करना चाहिये। लग्नसे दूसरे घरमें धन और कुटुम्ब; तीसरेमें युद्ध और विक्रम; चौथेमें बन्धु, वाहन, सुख और आलस्य, पांचवेंमें बुद्धि, मन्त्रणा और पुत्र; छठेंमें क्षत और शत्रु; सातवेंमें काम, स्त्री और पथ; आठवेंमें आयु, मृत्यु, अपवाद वा पापचिन्ता; नवेंमें गुरु, माता, पिता, तप अर्थात् पुण्य, भाग्य और मन; दशवेंमें मान, आज्ञा और कर्म, ग्यारहवेंमें प्राप्ति और आय (प्रश्नदीपिकाके मतसे विद्या और अर्थकी प्राप्ति) तथा बारहवें घरमें मन्त्री और व्ययका विचार किया जाता है।

यह जो बारह भावके विषय कहे गये उनमें पूर्वोक्त भावस्थित ग्रहगण यदि शुभ ग्रह हों और अपने अपने भावके अधिपति ग्रहसे देखे जाते हों वा नहीं भी देखे जाते हों अथवा मिले हुए हों, तो उस भावकी हानि समझनी चाहिये। जिस जिस भावमें जो सब विचार कहे गये हैं, उनका फलाफल निर्णय करते समय उस भावापन्न राशि एवं उसके अधिपति क्रूर सौम्य इत्यादि ग्रहोंका वर्ण और आकृतिका श्वेत रक्ताभा प्रभृति, स्थूलता, और खर्वता एवं राशिकी बलाबल और वे किस तरहके फल देनेमें समर्थ हैं इन सबकी विवेचना करके उक्त फलोंका विचार करना पड़ता है।

शुभग्रह एवं अधिपतिग्रहसे देखे जाने पर जिस फलका आधिक्य कहा गया है, उसका वासस्थल भी समझा जाता है। छठें स्थानमें शत्रु और व्रण, आठवेंमें मृत्यु, अपवाद वा पाप; बारहवेंमें व्ययको इसका विपरीत समझना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है, कि—यदि कोई ग्रह छठे स्थानमें रह कर शुभग्रहसे देखा जाता हो वा युक्त हो, तो व्रण और शत्रुकी वृद्धि न हो कर उनकी हानि होती है। फिर वह ग्रह यदि उसी स्थानमें रह कर पापग्रहसे देखा जाता हो अथवा युक्त हो तो उनकी वृद्धि समझनी चाहिये। आठवें वा बारहवें स्थानमें यदि ऐसे शुभग्रह और उसके अधिपति ग्रहसे देखा जाता हो, तो फलकी हानि और यदि पापग्रहसे देखा जाता हो वा संयुक्त हो, तो फलका आधिकार समझना चाहिये। आठवें स्थानमें मृत्यु एवं अपवादका विपरीत फल कहा गया है। इसीसे केवल इन्हीं दोका विपरीत फल होगा न कि आयुका। बारहवें स्थानमें एक मात्र व्ययका विपरीत फल कहनेसे सिर्फ उसीका विपरीत फल होता है न कि मन्त्रीका।

तनु प्रभृति जो बारह प्रकारके भाव कहे गये हैं उनमेंसे समस्त भावापन्न ग्रहोंको स्फुट गणनाके सिवा उनके फलाफलका विचार नहीं हो सकता है। जिस

तरह लग्न स्थानको तनुभाव और उसके पीछेकी राशिको धनभाव कह कर उस स्थानमें जो ग्रह रहेगा उसे धनभाव समझ कर यदि उसका फलाफल कहा जाय, तो शास्त्रोक्त फलसे भेद पड़ जाता है। यदि ग्रह स्फुट करके गणना की जाय तो सब फलके साथ एकसा होता है। इसी कारण रविप्रभृति ग्रहका स्फुट, पीछे भाव और भावसन्धि इत्यादिकी गणना करना उचित है। पहले ग्रहोंकी स्फुट गणना करके पीछे फलाफलका विचार करना चाहिये।

तन्वादि बारह भावोंके जिस जिस भावमें जो ग्रह रहेंगे, वे यदि सब प्रकारसे क्षुधित अथवा क्षोभित हों, तो वह मनुष्य दुःख पाता है। पण्डितोंको तन्वादि बारह भावोंके सभी भावोंमें ग्रहोंकी स्थिति द्वारा उनके लज्जितादि भावकी विवेचना तथा उन सब ग्रहोंके बलाबलका विचार करके फलका निर्णय करना चाहिये। यदि तन्वादि बारह स्थानोंके किसी स्थानमें दो वा उससे अधिक ग्रह रहें और विभिन्न भावके हों, अथवा एक लज्जित एवं गर्वित इत्यादि हो अथवा तीन भावोंसे युक्त हों, तो मिश्रफल समझना चाहिये। यदि वे सब ग्रह दुर्बल हों, तो फलकी हानि और यदि सबल हों, तो सम्पूर्ण फल होता है। जिसके कर्म अर्थात् दशवें स्थानमें लज्जित, तृषित, क्षुधित अथवा क्षोभित कोई ग्रह रहे, तो वह मनुष्य दुःख पाता है। जिसके पांचवें स्थानमें लज्जित कोई ग्रह रहे उसकी सब सन्तान नष्ट हो जाती है केवल एक बची रहती है। क्षुभित अथवा क्षोभित कोई ग्रह यदि उसके लग्नसे सातवें स्थानमें रहे, उसकी स्त्रीका नाश होता है।

ग्रहोंके शयनादि बारह भाव हैं, यथा—शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि-प्रकाशक, गमनेच्छा, गमन, सभावसति, आगमन, भोजन, नृत्य, लिप्सा, कौतुक और निद्रा। रवि आदि नवग्रहके शयनादि बारह भावका यदि निरूपण करना हो, तो उस समय ग्रहगण जिस नक्षत्रमें रहते हैं, सबसे पहले उसीका विचार करके उसी ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र द्वारा ग्रहकी गुणा करना चाहिये और ग्रहगण स्वयं अधिष्ठित जिस नवांशभावमें रहते हों उसी नौ अङ्कसे उक्त गुणनफलको गुणा करना पड़ता है। पीछे ग्रहोंके अपने अपने जन्मनक्षत्रको उस अंकमें जोड़ कर जन्मलग्नकी संख्या तथा उदयावधि जातदण्ड उसमें मिलाना पड़ता है। इस तरह जो अङ्क बनेगा उसे १२से भाग देनेसे उस अङ्कसंख्याका बारहवां भाव मालूम हो जायगा। अर्थात् यदि शेषाङ्क १ रहे, तो शयनभावकी विवेचना करनी चाहिये।

रविग्रहके शयनादि भावकी गणना करते समय बारह हृतावशिष्ट अङ्कमें ५ जोड़ना पड़ता है और चन्द्र ग्रहके तीन, मङ्गलके दो, बुधके तीन, बृहस्पतिके पांच, शुक्रके तीन, शनिके तीन, राहुके चार और केतुके पांचको जोड़ कर भावका विचार करना चाहिये। युक्ताङ्क यदि बारहसे अधिक हो, तो पुनः उसे १२से भाग दे कर जो शेष बच रहे उससे भावका बोध होता है। यदि हृत शेषाङ्क एक हो, तो शयनभाव इसी तरह भागशेषसे निर्णय कर लेना चाहिये।

रविकी १६ विशाखा, चन्द्रको ३ कृत्तिका, मङ्गलकी २० पूर्वाषाढ़ा, बुधकी २२ श्रवणा, बृहस्पतिकी ११ पूर्वफल्गुनी, शुक्रकी ८ पुष्या, शनिकी २७ रेवती, राहुकी २ भरणी और केतुकी ९ अश्लेषा ये सब ग्रहोंके जन्मनक्षत्र नामसे प्रसिद्ध हैं।

इस शयनादि द्वादशभावमें बहुत मतभेद देखा जाता है। मतान्तरसे शयनादि द्वादशभाव। शयनादि द्वादश भावका यदि विचार करना हो, तो रविप्रभृति ग्रहगण जिस राशिमें हों, उस राशिके अङ्कसे सूर्यादि ग्रहसंख्यक अङ्कको गुणा करना चाहिये। फिर उस अङ्कको ९९से गुणा कर जिस ग्रहके भावकी गणना करनी हो, उसी ग्रहका जन्मनक्षत्र उसमें जोड़ देना चाहिये। पीछे लग्नकी संख्या और जातदण्ड परिमित अङ्क उसमें जोड़ कर १२से भाग दे कर जो शेष बचे उसीसे क्रमशः शयनादिभाव स्थिर करना चाहिये।

दूसरा भेद। जिस राशिमें ग्रह रहे, उसी राशि परिमित अङ्कसे ग्रहकी संख्याको गुणा कर फिर उसे ९से गुणा करते हैं और जिस ग्रहका भाव जानना हो, उस ग्रहका जन्मनक्षत्र एवं जातदण्ड और लग्नपरिमित अङ्क गुणनफलमें जोड़ कर १२से भाग देते हैं। शेष जो बचे उसीको भावबोधक समझना चाहिये।

तोसराभेद।—जिस राशिमें ग्रह रहे, उस अङ्कको दूना करके १५से उसे गुणा करते हैं बाद जिस नक्षत्रमें ग्रह हो उस नक्षत्रके अङ्कको पूर्व गुणनफलमें जोड़ कर १२से भाग देते हैं, अब भागशेष जो बचे उसीसे द्वादशादि भावका कौन भाव है, वह मालूम हो जायगा। एक उदाहरण देनेसे ही साफ साफ मालूम हो जायगा।

मान लो, कि कोई बालक वृषलग्नमें पैदा हुआ है और उस बालककी जन्मकालीन मेषराशिमें रवि ग्रह है। अब उस ग्रहका द्वादशभाव इस तरहसे निकल सकता है। मेषराशिपरिमित अङ्क एक है और रविग्रहका परिमित अङ्क भी एक है। यहां मेषराशि परिमित एक अङ्कसे रविग्रहके एक अङ्कको गुणा करनेसे गुणनफल एक होगा। फिर इस गुणनफलको ९से गुणा करनेसे, गुणनफल ९ होगा। अब ग्रहादिके स्त्रोयनक्षत्र योग करनेकी रीति दिखलाई जाती है। -रविका नक्षत्र विशाखा है और इसका परिमित अङ्क १६ है। पूर्वोक्त गुणनफल ९को इसमें जोड़नेसे २५ होगा। अब उस बालकका उदयावधि जातदण्ड परिमित अङ्क ६ है। इसे वृषलग्न परिमित अङ्कमें जोड़नेसे ८ हुआ। अब ८को २५में जोड़नेसे ३३ होगा। इस ३३को १२से भाग देनेसे लब्धि २ होगी और शेष ९ बचेगा। लब्धिको छोड़ कर शेषाङ्कसे भावका विचार करना चाहिये। यहां पर शेषाङ्क नौ रहनेसे ग्रहका भोजन भाव समझा जाता है। अतएव उस बालकका रविग्रह भोजन भावमें है, ऐसा स्थिर करना चाहिये। जिस तरह रविग्रहको शयनादि भाव-गणनाका उदाहरण दिया गया, यदि रवि मेषराशिमें न रह कर वृषादि किसी राशिमें रहे, तो २।३।४ इत्यादि क्रमसे १२ तक अङ्क होगा और रवि प्रभृति ग्रहका राहु तथा केतु ले कर भी ९ तक अङ्क होगा। इस तरह द्वादशभावकी गणना करके ग्रहोंका बलाबल और शुभाशुभका विषय स्थिर कर लेना चाहिये। (संकेतकौमुदी)

द्वादशमद्य (सं० क्ली०) द्वादशविधं मद्यं। पुलस्त्योक्त द्वादशविध मद्य, पुलस्त्यके मतानुसार १२ प्रकारको शराब। कटहल, दाख, महुवे, खजूर, ताड़, ऐक्षव, माध्वोक, टङ्कमाध्वोक, मैरेय और नारियलका मद्य इसके सिवा बारहवाँ सुरा है। यह शराब बहुत निकृष्ट समझी जाती है।

द्वादशमल (सं० पु०) द्वादशगुणितो मलः। अत्रिसंहिताके अनुसार मनुष्योंके बारह प्रकारके मल।

रसा (चर्वी) रेत, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नाकका मल, कानका मल, नखका मल, श्लेष्मा, आँखका जल और मल यही बारह शारीरिक मल हैं। जो इसको सफाई रखना चाहते, उनका कर्त्तव्य है, कि विष्ठामूत्र त्याग करके लिङ्गमें एक बार, गुह्यमें तीन बार, बायें हाथमें दश बार और दोनों हाथमें सात बार जलके साथ मट्टी दें। यह शौच नियम गृहस्थके लिये है। ब्रह्मचारीके लिये इसका दूना, वानप्रस्थावलम्बोके लिये तिगुना और यतिके लिये चौगुना किया गया है। विष्ठामूत्र त्याग करनेके बाद शुद्ध हो आचमन करके सब इन्द्रिय छिद्रोंको स्पर्श करना चाहिये। वेदाध्ययनके समय तथा खानेके बाद सर्वदा इसी तरह आचमन करना चाहिये। ऐसा करनेसे उक्त बारहके मलकी शुद्धि होती है।

(मनु ६ अ०)

द्वादशमास (सं० पु०) द्वादश गुणितो मासः चैत्रादि १२ मास। बारह महीनेका वर्ष होता है, किन्तु कभी कभी १३ महीनेका भी वर्ष हो जाता है, प्रायः बारह ही महीनेका वर्ष हुआ करता है। ढाई वर्षके बाद जब मलमास होता है, तब १३ महीनेका वर्ष होता है।

दशम भाग समाप्त